४, खंड १] आश्विन, ३०३ तुलसी-संवत् [संख्या २, पूर्ण संख्या ४



संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ७॥)
छमाही मूल्य ४)

प्रोप्राइटर—श्रीविष्णुनारायण भार्गव,
मालिक नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

विदेश में १०)
प्रति संख्या ॥)

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ७॥), छ मास का ४) और प्रति संख्या का ॥) है। वी० पी० से मँगाने में =) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ९), छ महीने का ५) और प्रति संख्या का ॥=) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है; और प्रति मास शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को पत्रिका प्रकाशित हो जाती है। लेकिन ग्राहक बननेवाले चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो अगले महीने के शुक्ल-पक्ष की सप्तमी तक कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। लेकिन उक्त तिथि के बाद सूचना मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा, और उस संख्या को ग्राहक ।॥-) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ या मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाक-घर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १५ रोज़ पेश्तर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंजूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए। हाँ, चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक ख़र्च प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

पं० दुलारेलाल भार्गव

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	... ...	२०)	प्रति	मास
$\frac{1}{2}$,, या १ ,, ,,	... ...	१५)	,,	,,
$\frac{1}{4}$,, या $\frac{1}{2}$,, ,,	... ...	१०)	,,	,,
$\frac{1}{8}$,, या $\frac{1}{4}$,, ,,	... ...	५)	,,	,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ४,००,००० पढ़े-लिखे, धनी मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एवं प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ५०-६० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से अपेक्षाकृत कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो कीजिए।

मैनेजर माधुरी, लखनऊ



[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ४ खंड २	श्रावण-शुक्ल ७, ३०३ तुलसी-संवत् (१९८३ वि०)— १५ अगस्त, १९२६ ई०	संख्या १ पूर्ण संख्या ४९

नंदनंदन

(१)

सो तौ करै कलित प्रकास कला सोरह लौं,
या मैं बास ललित कलानि चौगुनो कौ है ;
कहै "रतनाकर" सुधाकर कहावत सो,
याहि लखैं लागत सुधा कौ स्वाद फीकौ है।
समता सुधारि औ बिषमता बिचारि नीकैं,
ताहि उर धारि, जो बिसद ब्रज-टीकौ है ;
चारु चाँदनी कौ नीकौ नायक निहारि कहौ,
चाँदनी कौ नीकौ, कै हमारौ चाँद नीकौ है ?

(२)

नेह की निकाई नित छाई अंग-अंग रहै,
उठति उमंग रहै अमित अनंद की ;
कहै "रतनाकर" हिये मैं रस पूरि रहै,
आनि ध्यान-मनि मैं मरीची मुख-चंद की।
राची रसना मैं आठौं जाम मधुराई रहै,
ताके नाम रुचिर रसीले गुलकंद की ;
प्रेम-बूँद नैननि निबूँद नित छाई रहै,
ताई रहै ललित लुनाई नंद-नंद की।

"रत्नाकर"

'सुकवि-माधुरी-माला'

प्रचलित भारतीय भाषाओं में हमारी मातृभाषा हिंदी का प्राचीन कविता-भांडार जितना भरा-पुरा है, उतना कदाचित् ही और किसी का हो। हिंदी-माता का यही साहित्य-भांडार अन्यान्य बहनों के सामने उसका मस्तक ऊँचा किए हुए है। किंतु अथाह रत्नाकर के समान हमारे इस सुविस्तृत साहित्य के भी अधिकांश रमणीय रत्नों का परमोज्ज्वल प्रकाश काव्य-रत्न-प्रेमियों का नेत्ररंजन और मनोरंजन नहीं कर रहा है। जैसे समुद्र की अँधेरी, अज्ञात और अगम्य गुफाओं में असंख्य, मंजुल, मनोमोहक और मूल्यवान् मणियाँ भरी पड़ी हैं, वैसे ही हमारे भी बहुतेरे उत्कृष्ट, उज्ज्वल और उपयोगी ग्रंथ, हस्त-लिखित रूप में, प्राचीन प्रकार के बस्तों में बँधे, बक्सों में बंद पड़े सड़ रहे हैं: मानो साहित्य-संसार से उनका कोई संबंध ही नहीं। इसमें संदेह नहीं कि कुछ साहित्यिक गोताख़ोरों ने बस्तों की कंदराओं से निकालकर अनेक ग्रंथ-रत्नों का मुद्रण-उद्धार अवश्य किया है; परंतु वे भी प्रकाशन के उस प्राचीन परिच्छेद में प्रकट हुए हैं, जो इस समय बिलकुल प्रचलित नहीं। इसके अतिरिक्त ये ग्रंथ-रत्न जिस रूप में प्राप्त हुए हैं, उसी में प्रायः प्रकाशित भी कर दिए गए हैं। उनका समुचित संशोधन और संस्करण करके—भूमिका, टिप्पणी आदि की ओप तथा डाँक देकर—सुंदर, सुसज्जित स्वरूप में, साहित्य-संसार को समर्पित करने का पर्याप्त प्रयत्न प्रायः किया ही नहीं गया। इसलिये इन दोनों ही स्थितियों—बस्तों में बँधने की हस्तलिखित स्थिति और प्राचीन प्रकार से छपने की मुद्रित स्थिति—का परिणाम प्रायः एक ही हो रहा है। इन दोनों ही ढंगों के ग्रंथों से वर्तमान हिंदी-कविता-प्रेमी यथेष्ट लाभ नहीं उठा रहे हैं—या यों कहिए कि उठा ही नहीं सकते। क्या यह शोक की बात नहीं कि सूर, बिहारी, देव, मतिराम, कबीर, सेनापति, पदमाकर, हरिश्चंद्र आदि बड़े-बड़े कवियों तक की कमनीय कृतियाँ, जिनका जगत् की किसी भी भाषा को गर्व हो सकता था, सर्वांग-सुंदर संस्करणों में सुलभ नहीं! मातृभाषा का यह भारी अभाव हमारे हृदय में सुदीर्घ काल से काँटे की तरह खटक रहा था।

हर्ष की बात है, इधर जब से कुछ समालोचक-जौहरियों ने प्राचीन काव्य-रत्नों को परिश्रम-पूर्वक परखकर साहित्य-संसार को उनके वास्तविक सुंदर, स्निग्ध और शीतल प्रकाश का परिचय कराना और संपादक-रूपी गुण-ग्राहकों ने अपने पत्र-भांडारों में इन प्राचीन या प्राचीन ढंग की कविता-मणियों को सादर और सस्नेह स्थान देना शुरू कर दिया है, तब से इन पुराने रुचिर रत्नों के दिव्य दर्शनों के लिये प्रेमियों की चाह बढ़ती ही जा रही है—उनका यह अनुराग धीरे-धीरे प्रगाढ़ और व्यापक होता जा रहा है। परंतु परिताप का विषय है कि प्रेमी पाठकों की इस परम पुनीत लालसा की पूर्ति के लिये कोई पूर्ण प्रयत्न नहीं हो रहा है। आशा थी, सभी साहित्यिक संस्थाओं की मुकुटमणि काशी की नागरीप्रचारिणी सभा इस कार्य को तीव्र गति से करेगी। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर अब तक उसी ने सबसे अधिक सराहनीय सेवा की भी है। किंतु अपने अन्यान्य अनेक उद्देश्यों की पूर्ति में लगे रहने के कारण इस ओर उसकी गति इतनी मंद है, और कार्य का परिमाण इतना स्वल्प कि उसके द्वारा प्राचीन कविता-मणियों के पूर्ण प्रकाश का कठिन कार्य

शीघ्र संपन्न होता नहीं दिखलाई पड़ता। प्रयाग के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन से भी इस संबंध में समुचित सेवा की संभावना थी। किंतु वह जिस उदासीन भाव से इस मार्ग में बढ़ रहा है, उससे भी प्राचीन कविता-प्रेमियों को पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हो रहा है। अतएव ऐसी परिस्थिति पर पूर्ण विचार करके—प्राचीन हिंदी-कविता के ग्रंथों के समुचित प्रकाशन का अत्यंत शिथिल प्रयत्न देखकर—यदि हमारे हृदय में भय का उदय हो, तो उचित ही है। कारण, समुद्र की तरंग-मालाएँ किसी अवसर-विशेष पर ही तट की ओर उमड़ चलती हैं। हिंदी-संसार में इस समय प्राचीन हिंदी-कविता के प्रति जो प्रेम प्रस्फुटित हुआ है, उसे देखते हुए हमें उस साहित्य के उद्धार का यही उपयुक्त समय प्रतीत होता है। अवसर बार-बार नहीं आता। अनेक बहुमूल्य ग्रंथ-रत्न बस्तों में बँधे-बँधे नष्ट हो गए, और अनेक नष्टप्राय हैं; पर कुछ प्रेमियों की सतर्कता से अब भी सुरक्षित हैं। जिन सज्जनों ने साहित्य-रक्षा के सुकार्य में इस प्रकार सहायता पहुँचाई है, उनकी सत्कीर्ति साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी। किंतु अब उनसे इस रखवाली का काम लेते रहना ठीक नहीं। अब तो इन ग्रंथ-रत्नों को बाहर लाना ही पड़ेगा—उनके सर्वांगसुंदर प्रकाशन का प्रबंध करना ही पड़ेगा, जिसमें उनकी जगमग ज्योति से काव्य-जगत् जगमगा उठे।

जिन प्रेसों तथा प्रकाशकों ने प्रतिकूल काल में भी अनेक पुस्तकों का प्रकाशन करके उन्हें नष्ट नहीं होने दिया, उनमें कदाचित् लखनऊ के नवलकिशोर-प्रेस का नाम ही अग्रगण्य है। सैकड़ों सुंदर काव्यों का उद्धार करके उन्हें साहित्य-रसिकों को समर्पित करने का श्रेय उसे प्राप्त है। उसके अनंतर काशी की नागरीप्रचारिणी-सभा के अतिरिक्त (जिसका हम ऊपर उल्लेख कर आए हैं) काशी के भारतजीवन और लाइट-प्रेस, बंबई के श्रीवेंकटेश्वर-प्रेस तथा बाँकीपुर के खड्गविलास-प्रेस आदि का नंबर आता है। इन सभी संस्थाओं के उपकार का भार हिंदीभाषा-भाषी-मात्र के सिर पर है। परंतु उपकार-मात्र मान लेने ही से इनके प्रति हमारी कृतज्ञता का पर्याप्त प्रदर्शन न हो सकेगा। यह तो प्रकट ही है कि जिस उच्च उद्देश्य से उत्साहित होकर इनके संचालकों ने अनेक ग्रंथों को छपवाया था, उसकी सिद्धि अब उन ग्रंथों से, उनके प्राचीन परिच्छेद में होने के कारण, नहीं हो रही है। अतएव हमें चाहिए कि उनके उस उच्च उद्देश्य की पूर्ति करके ही उन्हें अपनी हार्दिक कृतज्ञता की भेंट अर्पित करें; अर्थात् उनके प्रकाशित किए हुए ग्रंथ-रत्नों के वर्तमान रुचि और साधनों के अनुकूल सुलभ, सरल और सर्वांग-सुंदर संस्करण निकालें। यह काम कुछ कम कठिन नहीं। विद्या, बुद्धि, समय, परिश्रम और लक्ष्मी, सभी के सहयोग बिना इसमें सफलता की आशा नहीं। उधर प्राचीन काव्यों के उद्धार का कार्य अनिश्चित समय के लिये स्थगित भी नहीं किया जा सकता। अतएव इन सब पहलुओं पर विचार करके अब हम ही प्राचीन हिंदी-काव्य के प्रकाशन का भार, अपने अनेक मित्रों और कृपालुओं की सहायता के बल पर, अपने दुर्बल कंधों पर लेने को तैयार हो गए हैं, और बड़े उत्साह और आनंद के साथ तत्संबंधी विशाल आयोजन की सूचना प्रेमी पाठकों के निकट प्रकट करते हैं।

हमारा विचार है कि **सुकवि-माधुरी-माला** के नाम से एक पुस्तकमाला के प्रकाशन का प्रारंभ किया जाय। उसमें हिंदी के सभी मुख्य कवियों के काव्य छपें। सबका संपादन सुचारु रूप से सर्वांग-सुंदर हो। सभी मुद्रित और अमुद्रित प्राप्य प्रतियों से मिलाकर पुस्तकों में पाठ-शुद्धि की जाय, साथ ही

उनमें आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक भूमिका, आवश्यक टीका-टिप्पणी, अवतरण, शब्दार्थ, पाठांतर आदि का भी समावेश रहे। जो काव्य-मर्मज्ञ विद्वान् जिन कवियों की कविता के मर्मज्ञ हों, उनसे उन्हीं के काव्य का संपादन कराया जाय। संपादन-कार्य के लिये एक संपादक-समिति बनाई जाय। दो-तीन संपादक विशेष रूप से इसी कार्य के लिये नियुक्त किए जायँ। हम लोग यह कार्य आर्थिक लाभ की दृष्टि से नहीं करना चाहते। प्राचीन काव्य-सुमनों के सुगंध से साहित्य-संसार को सुवासित कर देना ही हमारा इष्ट है। अतएव हम चाहते हैं कि धनी-मानी सज्जन इस माला को अपनाकर, विद्वान् काव्य-मर्मज्ञ इसके संपादन में सहायता पहुँचाकर, जिन महानुभावों के पास हस्त-लिखित पुस्तकें हों, वे उन्हें देकर तथा सर्वसाधारण इस माला के ग्राहक बनकर हमारे इस कार्य में समुचित सहायता पहुँचावें। पुस्तकों की छपाई आदि बाहरी वेष-भूषा के संबंध में हमें कुछ कहना नहीं। कारण, हमारी गंगा-पुस्तकमाला, महिला-माला और बाल-विनोद-वाटिका आदि मालाएँ हिंदी-संसार में इस संबंध में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं। और, यह तो कहना ही व्यर्थ है कि इस माला की पुस्तकें भी वेष-भूषा में उसी प्रकार की होंगी। हाँ, यह सूचित कर देना ज़रूरी है कि इस माला की पुस्तकें भी आवश्यकतानुसार चारु चित्रों से सुसज्जित की जायँगी।

संपादन तथा प्रकाशन-क्रम में सबसे ज़्यादा ख़याल काव्योत्कर्ष का रक्खा जायगा, अर्थात् उच्च कोटि के कवियों के ग्रंथ पहले और उनसे नीची श्रेणी के कवियों के ग्रंथ बाद को छापे जायँगे। साथ ही इस बात का भी ध्यान रहेगा कि सबसे पहले उन ग्रंथों में हाथ लगाया जाय, जो अभी तक कहीं भी नहीं छपे; उसके बाद उन ग्रंथों में, जिन्हें मुद्रण-सौभाग्य तो प्राप्त हुआ है, किंतु जिनका संपादन बिलकुल ही नहीं अथवा अच्छी तरह नहीं हुआ। स्थूल रूप से यही हमारा क्रम रहेगा। किंतु किसी विशेष कारण से इस क्रम में परिवर्तन भी हो सकेगा। इस माला में जिन प्रधान कवियों के ग्रंथ निकालने का निश्चय किया गया है, उनके नाम ये हैं—

(१) चंद
(२) जगनिक
(३) विद्यापति
(४) कबीरदास
(५) गुरु नानकदास
(६) सूरदास
(७) नंददास
(८) हितहरिवंश
(९) कृपाराम
(१०) मलिक मुहम्मद जायसी
(११) मीराबाई
(१२) नरोत्तमदास
(१३) हरिदास
(१४) गो० तुलसीदास
(१५) केशव
(१६) रहीम
(१७) गंग
(१८) बीरबल
(१९) बलभद्र
(२०) मुबारक
(२१) रसखान
(२२) दादूदयाल
(२३) सेनापति
(२४) सुंदर

(२५) बिहारी
(२६) चिंतामणि
(२७) भूषण
(२८) मतिराम
(२९) कुलपति मिश्र
(३०) जसवंतसिंह
(३१) नरहरि
(३२) कवींद्र
(३३) सुंदर
(३४) सुखदेव मिश्र
(३५) कालिदास
(३६) रामजी
(३७) नेवाज
(३८) वृंद
(३९) प्रवीनराय
(४०) आलम
(४१) लाल
(४२) घनानंद
(४३) देव
(४४) श्रीपति
(४५) बेताल
(४६) उदयनाथ
(४७) रसलीन
(४८) घाघ
(४९) रसनिधि
(५०) नागरीदास
(५१) चरनदास
(५२) तोष
(५३) रघुनाथ
(५४) गुमान
(५५) दास
(५६) दूलह
(५७) गिरिधर
(५८) सूदन
(५९) सीतल
(६०) दयाबाई
(६१) सहजो
(६२) ठाकुर
(६३) बोधा
(६४) धेनु
(६५) श्रीधर
(६६) सूरति मिश्र
(६७) कृष्ण
(६८) गंजन
(६९) बख़शी हंसराज
(७०) भूपति
(७१) दलपतिराय-बंसीधर
(७२) सोमनाथ
(७३) चाचा बृंदावनदास
(७४) शिव
(७५) कुमारमणि भट्ट
(७६) रघुनाथ
(७७) हरचरणदास
(७८) बैरीसाल
(७९) किशोर
(८०) दत्त
(८१) रतन
(८२) गोकुलनाथ
(८३) गोपीनाथ
(८४) मणिदेव
(८५) शिवनाथ
(८६) लाल कलानिधि

(८७) रामचंद्र
(८८) चंदन
(८९) सबलसिंह
(९०) मधुसूदनदास
(९१) ब्रजवासीदास
(९२) देवकीनंदन
(९३) गुरुदत्त
(९४) घासीराम
(९५) हठी
(९६) थान
(९७) बेनी
(९८) मौन
(९९) बेनीप्रबीन
(१००) जसवंतसिंह
(१०१) पद्माकर
(१०२) ग्वाल
(१०३) चंद्रशेखर
(१०४) प्रतापसिंह
(१०५) दीनदयालु मिश्र
(१०६) सेवक
(१०७) हरिश्चंद्र
(१०८) द्विजदेव
(१०९) लेखराज
(११०) प्रतापनारायण
(१११) महाराज रघुराजसिंह
(११२) द्विजराज
(११३) ब्रजराज
(११४) हनुमान
(११५) ललिताप्रसाद त्रिवेदी
(११६) पूर्ण

संपादन-कार्य में हमें जिन विद्वान् सज्जनों से सहायता मिलने की आशा है, उनमें से कुछ लोगों के नाम ये हैं—

(१) पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
(२) बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर"
(३) पं० श्रीधर पाठक
(४) पं० नाथूरामशंकर शर्मा
(५) बाबू श्यामसुंदरदास
(६) पं० किशोरीलाल गोस्वामी
(७) श्रीमान् मिश्र-बंधु
(८) पं० पद्मसिंह शर्मा
(९) पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय
(१०) पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी
(११) पं० रामचंद्र शुक्ल
(१२) पं० शालग्राम शास्त्री
(१३) पं० आद्यादत्तजी ठाकुर
(१४) पं० कृष्णबिहारी मिश्र
(१५) पं० लोचनप्रसाद पांडेय
(१६) बाबू मैथिलीशरण गुप्त
(१७) पं० रूपनारायण पांडेय
(१८) पं० गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही"
(१९) पं० रामनरेश त्रिपाठी
(२०) श्रीमान् याज्ञिक-त्रय
(२१) पं० शिवाधार पांडेय
(२२) पं० बदरीनाथ भट्ट
(२३) श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा
(२४) श्रीयुत वियोगी हरि
(२५) ठाकुर लक्ष्मणसिंह
(२६) पं० हर्षदेव ओली

माला को सफल बनाने में हम अपनी ओर से कोई कोर-कसर न रक्खेंगे; परंतु प्रेमी पाठकों से भी प्रार्थना है कि यदि वे मातृभाषा-मंदिर के दिव्य

दीपकों की उज्ज्वल आभा से अपनी आँखों की परितृप्ति चाहते हैं, तो अविलंब हमारा करावलंब करें, जिसमें हम शीघ्र ही भगवती भारती को सुकवि-माधुरी-माला पहनाने में कृतकार्य हों।

इस माला के लिये कई कृतविद्य कवियों की कृतियों का सुचारु रूप से संपादन हो चुका है। सर्वप्रथम सुपरिचित, सहृदय सुकवि बिहारीदास की सुप्रसिद्ध सतसई का सुंदर, सटीक और संशोधित संस्करण ही साहित्य-संसार की सेवा में समुपस्थित किया गया है। गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरितमानस के बाद शायद सतसई ही समस्त सुशिक्षित-समाज में सबसे अधिक समादृत हुई है। जितना शृंगार-रस-वाटिका के इस सुविकसित और सुगंधित सुमन का सौंदर्य सहृदयों के चित्त में चुभा और आँखों में खुबा है, उतना औरों का नहीं। अन्यान्य अनेक कवियों की कविता-कामिनियाँ भी कमनीयता में कम नहीं ; किंतु सतसई-सुंदरी की-सी सुंदरता उनमें कहाँ ? इस सुंदरी की सरस सूक्ति-चितवनों के विषय में तो मानो स्वयं कवि ने ही कह दिया है—

> अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरुनि समान ;
> वह चितवनि और कछू, जिहि बस होत सुजान।

सतसई के सुविस्तृत सम्मान के प्रमाण में इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि इस पर पचासों टीकाएँ बन जाने पर भी यह क्रम अभी तक जारी है। 'बिहारी-रत्नाकर' अंतिम और, हमारी राय में, सर्वोत्कृष्ट टीका है।

शृंगारी कवियों में बिहारी का स्थान बहुत ऊँचा है। नीति, भक्ति, वैराग्य आदि के दोहे भी उन्होंने अवश्य लिखे हैं ; किंतु सतसई में प्रधानता शृंगार-रस ही की है। प्रत्येक पद्य उनकी प्रशस्त प्रतिभा का परिचायक है। उच्च कोटि की काव्य-कला, व्याकरण-विशुद्ध, परम परिमार्जित भाषा और वाक्य-लाघव (Brevity) में बिहारी अपना जोड़ नहीं रखते। ऐसे श्रेष्ठ कवि की कविता का समुचित रूप से संशोधन करके उसके गूढ़ तथा सूक्ष्म भाव समझना और स्पष्ट रूप से प्रकाशित कर देना कुछ हँसी-खेल नहीं। इस कठिन कार्य के लिये विशेष विद्या-बुद्धि, काव्य-मर्मज्ञता, सुचिंतन और परिश्रम अपेक्षित हैं। ये सब गुण 'बिहारी-रत्नाकर'-टीका के कर्ता में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। तुलसी, सूर, बिहारी, मतिराम, चंद, घनानंद, पद्माकर आदि कवियों का जितना अध्ययन इन्होंने किया है, उतना हिंदी-साहित्य के शायद ही अन्य किसी विद्वान् ने किया हो। बिहारी-सतसई पर तो आपने विशेष रूप से परिश्रम किया है। अतएव उस पर टीका लिखने के आप सर्वथा अधिकारी हैं। आप और कोई नहीं, हिंदी-साहित्य-मंदिर के सुदृढ़ स्तंभ बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए० हैं।

रत्नाकरजी का जन्म संवत् १९२३ में, ऋषि-पंचमी के दिन, काशी में, हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू पुरुषोत्तमदास था। वह दिल्लीवाल अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्वजों का आदि निवास-स्थान सफ़ीदों (सर्पदमन), ज़िला पानीपत में था। पानीपत की दूसरी लड़ाई के अनंतर वे अकबर के दरबार में आए, और मुग़ल-साम्राज्य में ऊँचे-ऊँचे पद सुशोभित करते रहे। फिर मुग़ल-राज्य के नष्टप्राय हो जाने पर जहाँदारशाह के साथ काशी चले आए, और वहीं बस गए।

बाबू पुरुषोत्तमदासजी फ़ारसी के पूरे पंडित थे। हिंदी-कविता के प्रति भी उन्हें प्रगाढ़ प्रेम था। अनेक अच्छे-अच्छे कवि उनके मकान पर आया



कविवर श्रीजगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०

करते थे। जो बाहर से आते, वे उन्हीं के पास ठहरते। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र उनके मित्र और संबंधी थे। अतः वह भी उनके पास प्रायः आते थे। बालक रत्नाकर इस गोष्ठी में अक्सर बैठते थे, और कभी-कभी कुछ बोल भी उठते थे। एक दिन इसी प्रकार आपके कुछ कहने पर भारतेंदुजी ने कहा—"यह

लड़का कभी अच्छा कवि होगा।" भारतेंदुजी की यह भविष्यवाणी सोलहों आने ठीक उतरी। रत्नाकरजी पर इस सत्संग का इतना प्रभाव पड़ा कि वह भी उर्दू और फिर हिंदी में कविता करने लगे।

जगन्नाथदासजी की सारी शिक्षा काशी में ही हुई। कॉलेज में आपकी द्वितीय भाषा फ़ारसी थी। फ़ारसी लेकर ही इन्होंने सन् १८९१ में बी० ए० पास किया, और एम० ए० में भी फ़ारसी पढ़ी। किंतु किसी कारण से परीक्षा न दे सके। सन् १९०० के लगभग आवागढ़-राज्य में आप प्रधान कर्मचारी नियुक्त हुए, और वहाँ दो वर्ष तक योग्यता के साथ काम किया। किंतु वहाँ की आब-हवा अनुकूल नहीं हुई—आप अस्वस्थ रहने लगे। इसलिये उक्त पद का त्याग करके काशी लौट आए। फिर वहाँ से अपने समय के अनन्य हिंदी-प्रेमी रईस, अयोध्या-नरेश स्वर्गीय महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रतापनारायणसिंह बहादुर के० सी० आई० ई० ने आपको, सन् १९०२ में, बुलाकर अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया, और आपकी योग्यता और कार्यदक्षता से प्रसन्न होकर थोड़े ही दिनों बाद आपको चीफ़ सेक्रेटरी के उच्च पद पर आसीन किया। सन्-१९०६ के अंत में, महाराज के अकाल में काल-कवलित हो जाने पर, श्रीमती महारानी अवधेश्वरी ने आपको अपना निज मंत्री (प्राइवेट सेक्रेटरी) नियत कर लिया। तब से आप इसी पद पर रहकर रियासत का काम कुशलता के साथ कर रहे हैं। कठिन अभियोगों आदि में राज्य को इन्होंने बड़ी मदद पहुँचाई है। राजकाज के झंझटों में पड़े रहने के कारण इन्हें एक सुदीर्घ समय तक साहित्य-सेवा से वंचित रहना पड़ा। हर्ष की बात है, इधर ३-४ वर्षों से मित्रों के साग्रह अनुरोध से आप साहित्य-मंदिर में आकर सरस्वतीदेवी की आराधना करने लगे हैं।

ग्रेजुएट होने पर भी रत्नाकरजी सनातनधर्म के पक्के अनुयायी हैं, और हिंदू-सभ्यता के पूरे समर्थक। आपको प्रसिद्धि की परवा नहीं है। यही कारण है कि आपकी वास्तविक योग्यता से, थोड़े दिन पहले, बहुत कम लोग परिचित थे। आप बड़े हँसमुख और ज़िंदादिल आदमी हैं। आपकी मंडली में बैठकर न हँसना कठिन काम है। आपकी बातचीत में बड़ा मज़ा आता है। स्वभाव आपका बहुत ही मृदुल है। स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र है। बचपन ही से आप व्यायाम-प्रिय हैं, और अपना जीवन बड़े संयम के साथ व्यतीत करते हैं। इसीलिये आप इस समय, ६० वर्ष की अवस्था में भी, ४५ वर्ष से अधिक के नहीं जँचते। वैद्यक का आपको बहुत शौक़ है।

रत्नाकरजी इस समय व्रज-भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि और ज्ञाता समझे जाते हैं। आपकी कविताएँ बड़ी सरस और सुंदर होती हैं। आपके कवित्त देव, पद्माकर आदि के कवित्तों का ध्यान दिला देते हैं। हमारी राय में आपकी-जैसी सरस, मधुर, विशुद्ध और परिमार्जित भाषा लिखने में व्रजभाषा के बहुत कम कवि समर्थ हुए हैं। प्राकृत का भी आपको अच्छा अभ्यास है। शिला-लेख आदि पढ़ने और प्राचीन शोध के कार्य में आपको विशेष रुचि है। कानपुर के प्रथम अखिल भारतीय हिंदी-कवि-सम्मेलन का सभापति-पद आप विभूषित कर चुके हैं। हिंडोला, हरिश्चंद्र, समालोचनादर्श, घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर आदि कई काव्य-पुस्तकें आपने लिखी हैं, जो प्रकाशित भी हो चुकी हैं। बहुत-सी काव्य-पुस्तकों का संशोधन कर उन्हें आप भारत-जीवन प्रेस, काशी

से प्रकाशित करा चुके हैं। अन्यान्य गुणों के साथ आपमें एक अवगुण भी है। वह यह कि आप बड़े आलसी हैं। आपसे कुछ लिखवा लेना आसान नहीं। सख़्त तक़ाज़े कीजिए, तब जाकर कहीं कुछ लिखेंगे। गंगावतरण कलकाशी, अष्टक-रत्नाकर और ऊधव-शतक, ये चार काव्य-ग्रंथ इधर आपने और लिखे हैं, जो शीघ्र ही प्रकाशित होंगे। आशा है, रत्नाकरजी भविष्य में भी भाषा-भांडार को अनेक भव्य और नव्य रत्नों से भरते रहेंगे।*

दुलारेलाल भार्गव

समुद्र-संतरण

क्षितिज में नील जलधि और व्योम का चुंबन हो रहा है। शांत प्रदेश में शोभा की लहरियाँ उठ रही हैं। गोधूली का करुण प्रतिबिंब, बेला की बालकामयी भूमि पर दिगंत की प्रतीक्षा का आवाहन कर रहा है।

नारिकेल के निभृत कुंजों में समुद्र का समीर अपना नीड़ खोज रहा था। सूर्य लज्जा या क्रोध से नहीं, अनुराग से लाल, किरणों से शून्य, अनंत रस-निधि में डूबना चाहता है। लहरियाँ हट जाती हैं। अभी डूबने का समय नहीं है, खेल चल रहा है।

सुदर्शन प्रकृति के इस महा अभिनय को चुपचाप देख रहा है। इस दृश्य में सौंदर्य का करुण संगीत था। कला का कोमल चित्र नील-धवल लहरों में बनता बिगड़ता था। सुदर्शन ने अनुभव किया कि लहरों में सौर जगत् झोंके खा रहा है। वह इसे नित्य देखने आता; परंतु राजकुमार के वेश में नहीं। उसके वैभव के उपकरण दूर रहते। वह अकेला साधारण मनुष्य के समान इसे देखता, निरीह छात्र के सदृश इस गुरु दृश्य से कुछ अध्ययन करता। सौरभ के समान चेतन परमाणुओं से उसका मस्तक भर उठता। वह अपने राजमंदिर को लौट जाता।

सुदर्शन बैठा था किसी की प्रतीक्षा में। उसे न देखते हुए, मछली फँसाने का जाल लिए, एक धीवर-कुमारी समुद्र-तट से कगारों पर चढ़ रही थी, जैसे पंख फैलाए तितली। नील भ्रमरी-सी उसकी दृष्टि एक क्षण के लिये कहीं नहीं ठहरती थी। श्याम-सलोनी गोधूली-सी वह सुंदरी सिकता में अपने पद-चिह्न छोड़ती हुई चली जा रही थी।

राजकुमार की दृष्टि उधर फिरी। सायंकाल का समुद्र-तट उसकी आँखों में दृश्य के उस पार की वस्तुओं का रेखाचित्र खींच रहा था। जैसे वह जिसको नहीं जानता था, उसको कुछ-कुछ समझने लगा हो, और वही समझ, वही चेतना, एक रूप रखकर सामने आ गई हो। उसने पुकारा—"सुंदरी!"

आती हुई सुंदरी धीवर-बाला लौट आई। उसके अधरों में मुसकान, आँखों में व्रीड़ा और कपोलों पर यौवन की आभा खेल रही थी, जैसे नील मेघ-खंड के भीतर स्वर्ण-किरण अरुण का उदय।

धीवर-बाला आकर खड़ी हो गई। बोली—"मुझे किसने पुकारा?"

"मैंने।"

"क्या कहकर पुकारा?"

"सुंदरी!"

*बिहारी-रत्नाकर का 'संपादकीय निवेदन'।—माधुरी-संपादक

"क्यों, मुझमें क्या सौंदर्य है ? और है भी कुछ, तो क्या तुमसे विशेष ?"

"हाँ, मैं आज तक किसी को सुंदरी कहकर नहीं पुकार सका था ; क्योंकि वह सौंदर्य-विवेचना मुझमें अब तक नहीं थी ।"

"आज अकस्मात् यह सौंदर्य-विवेक तुम्हारे हृदय में कहाँ से आया ?"

"तुम्हें देखकर मेरी सोई हुई सौंदर्य-तृष्णा जाग गई ।"

"परंतु भाषा में जिसे सौंदर्य कहते हैं, वह तो तुममें पूर्ण है ।"

"मैं यह नहीं मानता ; क्योंकि फिर सब मुझी को चाहते, सब मेरे पीछे बावले बने घूमते । वह तो नहीं हुआ । मैं राजकुमार हूँ ; मेरे वैभव का प्रभाव चाहे सौंदर्य का सृजन कर देता हो । पर मैं उसका स्वागत नहीं करता । उस प्रेम-निमंत्रण में वास्तविकता कुछ नहीं ।"

"हाँ, तो तुम राजकुमार हो ! इसी से तुम्हारा सौंदर्य सापेक्ष है ।"

"तुम कौन हो ?"

"धीवर-बालिका ।"

"क्या करती हो ?"

"मछली फसाती हूँ ।" कहकर उसने जाल को लहरा दिया ।



"मछली फसाती हूँ" कहकर उसने जाल को लहरा दिया ।

"जब इस अनंत एकांत में लहरियों के मिस प्रकृति अपनी हँसी का चित्र दत्तचित्त होकर बना रही है, तब तुम उसी के अंचल में ऐसा निष्ठुर काम करती हो ?"

"निष्ठुर ! है तो, पर मैं विवश हूँ । हमारे द्वीप के राजकुमार का परिणय होनेवाला है । उसी उत्सव के लिये सुनहली मछलियाँ फसाती हूँ । ऐसी ही आज्ञा है ।"

"परंतु वह ब्याह तो होगा नहीं ।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं भी राजकुमार हूँ । राजकुमारों को अपने चक्र की बातें विदित रहती हैं, इसीलिये कहता हूँ ।"

धीवर-बाला ने एक बार सुदर्शन के मुख की ओर देखा ; फिर कहा—

"तब तो मैं इन निरीह जीवों को छोड़े देती हूँ ।"

सुदर्शन ने कुतूहल से देखा, बालिका ने अपने अंचल से सुनहली मछलियों की भरी हुई मूठ समुद्र-जल में बखेर दी, जैसे

जल-बालिका वरुण के चरण में स्वर्ण-सुमनों का उपहार दे रही हो। सुदर्शन ने प्रगल्भ होकर उसका हाथ पकड़ लिया, और कहा—"यदि मैंने झूठ कहा हो, तो?"

"तो कल फिर जाल डालूँगी।"

"तुम केवल सुंदरी ही नहीं, सरल भी हो।"

"और तुम प्रपंचक हो।" कहकर धीवर-बाला ने एक निःश्वास ली, और संध्या के समान अपना मुख फेर लिया। उसकी अलकावली जाल के साथ मिलकर निशीथ का नवीन अध्याय खोलने लगी। सुदर्शन सिर नीचा करके कुछ सोचने लगा। धीवर-बालिका चली गई। एक मौन अंधकार टहलने लगा। कुछ काल के अनंतर दो व्यक्ति एक अश्व लिए आए। सुदर्शन से बोले—"श्रीमन्, विलंब हुआ। बहुत-से निमंत्रित लोग आ रहे हैं। महाराज ने आपको स्मरण किया है।"

"मेरा यहाँ पर कुछ खो गया है, उसे ढूँढ लूँगा, तब लौटूँगा।"

"श्रीमन्, रात्रि समीप है।"

"कुछ चिंता नहीं, अभी चंद्रोदय होगा।"

"हम लोगों को क्या आज्ञा है?"

"जाओ।"

सब लोग गए। राजकुमार सुदर्शन बैठा रहा। चाँदी का थाल लिए रजनी समुद्र से कुछ अमृत-भिक्षा लेने आई। उदार सिंधु देने के लिये उमड़ उठा। लहरियाँ सुदर्शन के पैर चूमने लगीं। उसने देखा, दिगंत-विस्तृत जल-राशि पर कोई गोल और धवल पाल उड़ाता हुआ अपनी सुंदर तरणी लिए आ रहा है। उसका विषय-शून्य हृदय व्याकुल हो उठा। उत्कट प्रतीक्षा—दिगंतगामिनी अभिलाषा—उसकी जन्मांतर की स्मृति बनकर उस निर्जन प्रकृति में रमणीयता की—समुद्र-गर्जन में संगीत की—सृष्टि करने लगी। धीरे-धीरे उसके कानों में एक कोमल अस्फुट नाद गूँजने लगा। उस दूरागत स्वर्गीय संगीत ने उसे अभिभूत कर दिया। नक्षत्रमालिनी प्रकृति, हीरे-नीलम से जड़ी पुतली के समान, उसकी आँखों का खेल बन गई।

देखा, सब सुंदर है। आज तक जो प्रकृति उदास चित्र बनकर सामने आती थी, वह उसे हँसती हुई मोहिनी और मधुर सौंदर्य से ओतप्रोत दिखाई देने लगी। अपने में और सबमें फैली हुई उस सौंदर्य की विभूति को देखकर सुदर्शन की तन्मयता उत्कंठा में बदल गई। उसे उन्माद हो चला। इच्छा होती थी कि वह समुद्र बन जाय। उसकी उद्वेलित लहरों से चंद्रमा की किरणें खेलें, और वह हँसा करे। इतने में ध्यान आया उस धीवर-बालिका का। इच्छा हुई कि वह भी वरुण-कन्या-सी चंद्र-किरणों से लिपटी हुई उसके विशाल वक्षःस्थल में विहार करे। उसकी आँखों में गोल धवल पालवाली नाव समा गई, कानों में अस्फुट संगीत भर गया। सुदर्शन उन्मत्त था। कुछ पद-शब्द सुनाई पड़े। उसे ध्यान आया कि मुझे लौटा ले जाने के लिये कुछ लोग आ रहे हैं। वह चंचल हो उठा। फेनिल जलधि में फाँद पड़ा। लहरों में तैर चला।

वेला से दूर—चारों ओर जल—आँखों में वही धवलपाल, और कानों में अस्फुट संगीत। सुदर्शन तैरते-तैरते थक चला था। संगीत और वंशी समीप आ रही थी। एक छोटी-सी मछली पकड़ने की नाव आ रही थी। पास आने पर देखा, धीवर-बाला वंशी बजा रही है, और नाव अपने मन से चल रही है।

धीवर-बालिका ने कहा—"आओगे?"

लहरों को चीरते हुए सुदर्शन ने पूछा—'कहाँ ले चलोगी?'



धीवर-बाला वंशी बजा रही है, और नाव अपने मन से चल रही है।

"पृथ्वी से दूर, जल-राज्य में, जहाँ कठोरता नहीं, केवल शीतल, कोमल और तरल आलिंगन है ; प्रवंचना नहीं, सीधा आत्मविश्वास है; वैभव नहीं, सरल सौंदर्य है।"

धीवर-बाला ने हाथ पकड़कर सुदर्शन को नाव पर खींच लिया। दोनों हँसने लगे। चंद्रमा और जलनिधि भी।

जयशंकर "प्रसाद"

हाइने

"शांति की प्रबल इच्छा दूर भाग गई है । मैं फिर से समझ गया हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए, क्या करना पड़ेगा । मैं विप्लव-वंशज हूँ : मैं पूर्ण आनंद और संगीत हूँ : पूरी तलवार और आग का शोला हूँ...हाँ, हो सकता है, पागल भी ।"

हाइनरिख हाइने

हाल में, याने १६२६ के फ़रवरी महीने में हाइने की सत्तरवीं श्राद्ध-तिथि मनाई गई । जर्मनी के इस जग-द्विख्यात कवि की अपनी मातृ-भूमि में उतनी प्रतिष्ठा नहीं है, जितनी बाहर । इसकी रचनाओं को चाव से पढ़नेवाले अनगिनती हैं । हाइने की पूरी ग्रंथमाला छापकर कई प्रकाशक मालदार बन गए हैं । इसके पदों के तीन हज़ार से ऊपर गाने बनाए गए हैं । गोयटे के कुल 1,७०० गाने ही गाए जाते हैं । इसकी पुस्तकों—Buch der Tieder आदि—को साधारण मज़दूर भी समझता और उनसे आनंद उठाता है । किंतु यह सत्तरवीं श्राद्ध-तिथि फीकी रही । इस अवसर पर जर्मनों ने उतना भी उत्साह नहीं दिखाया, जितना इसी महीने में पड़ी हुई रोम्या रोलाँ की साठवीं जन्म-तिथि पर । इसका कारण यह है कि हाइने यहूदी था : और राष्ट्रीय विचार के जर्मन यहूदियों को ज़िंदा खा जाने को तैयार हैं । फ़्रेंच और यहूदी, ये दो शब्द इन्हें असह्य हैं । यहूदी बाप के जर्मन बेटे हाइने का दूसरा बड़ा पाप फ़्रांसीसियों की प्रशंसा थी । गोयटे, हेगल आदि ने भी फ़्रांस की—उसके नेपोलियन की, जिसने जर्मनी को पददलित किया था—तारीफ़ की थी ; किंतु विप्लव के भावों में वे इतने मस्त नहीं हुए, इन विचारों के सागर में वे इतना नहीं डूबे । जर्मनों की संकीर्ण-हृदयता को तृणवत् समझ खुले-दिल अपनी आत्मा के विकास को हाइने ही प्रकट कर सका । इस ढंग से हाइने ने स्वभावतः जर्मनी की निंदा की है । इस मनोवृत्ति के साथ जर्मनों का हाइने के साथ बुरा व्यवहार उसे अधिक कड़वा बनाने का साधन बना । एक स्थान पर हाइने उपदेश देता है—(उस कविता का नाम है Gute Rap हितोपदेश)—वह लिखता है—"अपनी पुस्तकों में नायकों के सदा सच्चे नाम दिया कर । यदि तू इतनी हिम्मत नहीं रखता और घबराता है, तो तेरे एक-एक नायक के लिये दर्जनों मूर्ख आ खड़े होते हैं (याने जर्मन गधे अपनी-अपनी इस नायक से तुलना करते हैं), और कहते हैं, देख, ये मेरे लंबे कान हैं । सब गधे की आवाज़ में कहते हैं, यह मेरा सुर है, मैं गधा हूँ । यद्यपि तूने मेरा नाम नहीं लिया; फिर भी सारी मातृभूमि मुझे जानती है । हाँ, मेरी मातृभूमि जर्मनी ।" इस कविता में हाइने जर्मनों को गधा समझता है । जर्मन, जिनका स्वभाव ही अहंकारमय है, ऐसे सदुपदेश कैसे सुन सकते ? वे ऐसी अच्छी नसीहतों पर जल-भुन जाते हैं । भला इस हास्य-रस के अवतार कवि का स्वागत वे कैसे कर सकते हैं ? यही कारण है कि सारे जर्मनी में उसकी यादगार कहीं नहीं है । बर्लिन में बिस्मार्क के नाम पर बीसियों सड़कें हैं, प्रत्येक मोहल्ले में बिस्मार्क स्ट्रासे है । गोयटे, शिलर, लेसिंग के नाम पर भी कई रास्ते अर्पित हैं । किंतु हाइने का नाम मेरे देखने में अभी तक नहीं आया । उसका पाप यही है कि वह एक आदर्श से पागल बन गया था । फ़्रेंच विप्लव की समता, भ्रातृभाव और स्वतंत्रता ने उसे मस्त कर दिया था । कोई यह न समझे कि वह 'देशभक्त' न था । हाइने १८१३ में, १६ साल की उमर में जर्मनी की तरफ़ से फ़्रांस के विरुद्ध 'स्वतंत्रता का संग्राम' करने को तैयार हुआ था । पेरिस में रहते-रहते उसे इस देशनिकाले में मातृभूमि की स्मृति—जिसने उसे तिरस्कृत, विताड़ित और निर्वासित किया था—अक्सर विकल करती थी । hsehia Von Paris (पेरिस से बिदाई)-नामक पद्य में वह लिखता है—

"Ade, Paris, du teure stadt,
wir mussen hente scheiden."

अर्थात्—

"नमस्कार ! ऐ प्यारे पेरिस, तुझे छोड़ता हूँ मैं आज ।"

इसके बाद वह कहता है—

"Das Dentsche Herz in meiner Brust,
Istpiotzlich krank geworden."

अर्थात् "जर्मन हृदय मेरी छाती में तुरत हो उठा है बीमार । याने मेरी प्रबल इच्छा अकस्मात् जर्मनी जानेकी



हाइने का जन्म-गृह

हो गई है।" इस स्थान में हाइने ने बताया है कि इसका एक-मात्र इलाज मातृभूमि के दर्शन करना है। हाँ, साथ ही यह भी लिख दिया है—"Gar narrisches Sehnsucht treibt mich fort" ; अर्थात् "निरी मूर्खता की यह इच्छा मुझे भगाए ले जाती है।" किंतु कुछ भी हो, कवि का देश-प्रेम इस पद्य में झलकता है। उसका 'मूर्ख हृदय' नहीं मानता कि वह पेरिस न छोड़े, जहाँ उसका सब तरफ़ से यथेष्ट सम्मान हो रहा था। हाइने देशभक्त था। यदि उसने देश के, उसके राजा के, रीति-रिवाज के और नेताओं के विरुद्ध लिखा है, तो इसलिये कि वह ऐसा अंधप्रेमी नहीं था, जो देश-प्रेम के भीतर यह भी शुमार करता है कि उसके चोर-डाकू और लबारों की बुराइयाँ भी छिपा दी जानी चाहिए। दोष दोष हैं, और गुण गुण। सच्चा देश-भक्त निर्भय होकर देश में जो अच्छा है, उसे अच्छा और जो बुरा है, उसे बुरा कहेगा। किंतु इस खरी बात के सुननेवाले बहुत कम मिलते हैं। डी० एल्० राय ने "हासिरगान", "आषाढ़े" आदि में नंदलाल के बिरादरों का चरित्र पूरा नहीं खींचा। यदि वह दिखाते कि भारत में देशभक्ति का किस प्रकार दुरुपयोग हुआ, तो लोग उनका इतना सम्मान न करते। इसके सिवा द्विजेंद्रलाल ने महाराणा प्रताप, दुर्गादास आदि तेजस्वी नायकों के स्वतंत्रता का भाव फैलानेवाले ओजस्वी नाटक लिखे हैं। इनसे उनकी कीर्ति इस स्वच्छता से फैली कि इस धूप में उनके दोष निकालने का किसी में दम न रहा। द्विजेंद्रलाल ने जो हँसी की है, मज़ाक उड़ाया है, वह जनता का नहीं, बल्कि थोड़े आदमियों का, जो विशेष-विशेष पदों पर होते हैं, जैसे डिपुटी कलक्टर, लेक्चरबाज़ आदि। किंतु हाइने और उसके समकालीन बोयर्ने ने सारी जनता का उपहास किया है। एक स्थान पर बोयर्ने ने सारी जर्मन जाति को Ein Volk Von Lakaien (याने जीहुज़ूर-मिज़ाज के गुलामों की जाति) कहा है। बात सच है। आज भी जर्मन यही स्वभाव रखते हैं। किंतु ये लोग अपने ऊपर किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी नहीं सुन सकते। फल यह हुआ कि हाइने की प्रतिभा इस द्वेष के बादलों को चीरकर न खुलने पाई। किंतु विदेश में उसका पूरा सम्मान हुआ। इस समय संसार के साहित्य में उसका स्थान ऊँचा है। जर्मनी से बाहर शायद गोयटे से भी अधिक हाइने की रचना पढ़ी-सुनी जाती है। कहा जाता है, फ़्रांस का प्रसिद्ध साहित्य-सेवक एडमंड डे गोंकूर कहा करता था कि हाइने की तुलना में उसे फ़्रांस के नए लेखक फेरीवालों के समान लगते हैं। गोतिए कहता था—साहित्य में बड़बोलों को यह दंड मिलना चाहिए कि वे हाइने की क़ब्र पर पत्थर ढोवें, जिससे उसके ऊपर पिरामिड तैयार किया जाय। संसार के सर्व-मान्य समालोचक जॉर्ज ब्रांडेस ने लिखा है कि जहाँ-जहाँ लोगों ने संसार की सबसे अच्छी सौ पुस्तकों के नाम भेजे हैं, वहाँ हाइने की पुस्तकों का नाम अवश्य आया है। इँगलैंड के ऐसे बीसियों चुनावों में हाइने कभी नहीं छूटा। कई सूचियाँ ऐसी हैं जिनमें १० अँगरेज़ और १० विदेशी ग्रंथकार हैं; किंतु हाइने उनमें शामिल किया गया है। कई लिस्टों में गोयटे छूट गया है, पर हाइने चुना गया है। यह घटना कितने स्पष्ट रूप में सिद्ध करती है कि "स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।" हाइने की कविताओं का उसके जीवनकाल में ही जापानी-भाषा में अनुवाद हो गया था। अपने 'आत्मचरित्र' के अंत में हाइने एक स्थान पर गर्व के साथ

लिखता है—"सिवा कविता के मैं कुछ न कर सका। नहीं, मैं अपने को धोखेबाज़ हताशा के अर्पण न करूँगा, और इस शब्द की महिमा न घटाऊँगा। मनुष्य बहुत बड़ा है, जब कि वह कवि है और उस पर भी जब कोई आदमी जर्मनी में गीति-काव्य की रचना करता है; क्योंकि जर्मनी दर्शन और संगीत में सर्वोपरि है। × × × मेरे किसी देशबंधु ने इस छोटी उमर में ऐसा नाम न कमाया! जब मेरा सहयोगी वोल्फगांग गोयटे सुख-संतोष के साथ गाता है कि 'चीनी अपने काँपते हुए हाथों से काँच पर वेरटर और लोटे का चित्र बनाते हैं, तो मैं भी—हाँ, एक बार मैं छोटे मुँह से बड़ी बात कहूँगा—इस चीनी प्रसिद्धि के विरुद्ध जापानी प्रसिद्धि का दम भर सकता हूँ।' प्रायः बारह साल पहले, जब मैं यहाँ अपने मित्र वेरमान के साथ ठहरा हुआ था, उन्होंने एक ओलंदाज़ का परिचय कराया, जो तीस साल नागासाकी में रह चुका था। इन सज्जन का नाम डॉक्टर ब्युर्गर था। इसने मुझसे कहा कि उसने एक जापानी को जर्मन पढ़ाई थी, और उसने मेरी कविताओं का भाषांतर छपाया है। यह पहली योरप की किताब है, जो जापानी में छपी है। इसके अतिरिक्त कलकत्ते के Calcutta Review में इस अनुवाद पर एक लेख छपा है *।" खेद है, हाइने ने रिव्यू का यह अंक बहुत खोजा; पर उसे वह कहीं न मिल सका। जो हो, इस अंश से पता लगता है कि यह जर्मन कवि अपने जीवनकाल में ही सर्वत्र विख्यात हो गया था, यहाँ तक कि उसके विरोधी जर्मन भी उसकी प्रतिभा को अस्वीकार न कर सके।

हाइने का जन्म सन् १७६७ में, डुसलडार्फ़-नामक नगर में हुआ था। हाइने ने हँसी में लिखा है कि मैं १८०० के नए दिन में पैदा हुआ हूँ †। इसका यह मतलब है कि मैं नवीन युग का संदेशवाहक हूँ। कुछ लोग उसका जन्म सन् १७६६ ई० बताते हैं। किंतु नई खोज से १७६७ ही ठीक साल निकलता है। हाइने के पिता का नाम साम्सोन हाइने और माता का नाम पायरचे फ़ान गेल्डर्न (Peirche Van Geldern) था। पिता की शिक्षा साधारण थी। किंतु, बक़ौल हाइने, उसका आचार-व्यवहार बड़ा शुद्ध था। वह भिखमंगे के सामने भी विनयपूर्ण रहता था। दानी और व्यापार में अकुशल था। मा पढ़ी-लिखी अँगरेज़ी, फ्रेंच और जर्मन की पंडिता थी, गोयटे और रूसो की भक्त थी, और अपने बाल-बच्चों को Emilie (एमिली) की भाँति शिक्षा देती थी। वह यहूदी होने पर भी कट्टर देशभक्त थी। हाइने ने अपनी माता और पिता का चरित्र हास्य, करुणा तथा स्नेहमय लेखनी से खींचा है। अपने पिता के बारे में उसने लिखा है कि मुझे संसार में उससे अधिक प्यारा कोई न था मा के विषय में उसने 'पेरिस से बिदाई'-नामक कविता में लिखा है—



हाइने (सन् १८२६ का चित्र)

* Heinrich Heine's Autobiography, herausgogeben von karpeles seife. 55.

† Um meine wiege spielten die latztan Mondlichter des 18 ten und das erste Morgenroth des 19 ten Jahrhundert Autobiography. 6 Ibid 19.

"Auch nach der Mutter sehne ich mich, Ich willes offen gestehan, Seit dreizehn Jahren habe ich nicht, Die alte Frau gesehn."

सच पूछो, तो प्यारी मा के, दर्शन का है मन में वेग ;
तेरह साल से इस वृद्धा को नहीं देखने का है खेद ।

हाइने की मातृ-भक्ति आदर्श कही जा सकती है। उसने भक्ति-भाव से मा की सेवा की। मरने से पहले जब वह पेरिस में ८ वर्ष बहुत बीमार रहा, तो उसने अपनी मा को इसकी ख़बर न लगने दी कि कहीं उसके दिल को चोट न पहुँचे।

हाइने के स्मृतिपत्रों (Memorie) से ज्ञात होता है कि उसे वह दिन कभी न भूला, जिस रोज़ नेपोलियन डुसलडार्फ़ आया था। वह बाजा, बैंड, जलूस, स्वागत, वह फ्रांस की नई ज्योति का प्रकाश हाइने को मुग्ध कर गया। उसने लिखा है—"इस उत्सव पर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ; किंतु मेरी माता नहीं।" हाइने को मोशिये ल ग्राँ (M. le Grand) भी न भूला। यह मोशिये इस बालक को बड़ा प्यारा था। अपने जीवन के उत्तर-भाग में वह ख़ुद बयान करता है—"मनुष्य को भाषा का सार तत्त्व जानना चाहिए, और यह तत्त्व पहचानने का सबसे सरल उपाय रामढोल है। मैं फ्रेंच रामढोली को भला क्या धन्यवाद दे सकता हूँ, जो हमारे घर के पास रहता था, और शैतान की मूरत का, किंतु स्वर्गीय दूत की भाँति भला था। वाह! किस मनभावनी ध्वनि से वह रामढोल बजाता था। × × × मैं छोटा-सा बच्चा ज़ंजीर की भाँति उसके गले पड़ जाता था, उसके बटन साफ़ करता था, जो चमकने लगते थे : क्योंकि इससे मोशिये ल ग्राँ ख़ुश होता था। इसे जर्मन की कुछ संज्ञाएँ मालूम थीं, जैसे रोटी, चुंबन, आत्मप्रतिष्ठा आदि : किंतु रामढोल में यह अपनी बात बहुत अच्छी तरह समझा देता था। उदाहरणार्थ जब मैं नहीं समझता था कि Liberte-शब्द का क्या अर्थ है, तो ल ग्राँ मोइस्से Marssalls मार्च अपने रामढोल में पीट देता था, और मैं तुरंत उसका मतलब समझ जाता था। इसी भाँति उक्त सज्जन ने मुझे नया इतिहास सिखा दिया। हाँ, उसकी भाषा मैं नहीं समझता था; किंतु वह बोलने के साथ ढोल पर चोट लगाता जाता था, और मैं इससे उसकी बात पकड़ लेता था। बास्टील और स्वालरी पर जो धावे हुए थे, उनका तूफ़ान आदमी तभी हृदयंगम कर सकता है, जब उसे मालूम हो कि वहाँ किस प्रकार रामढोल का निनाद हुआ था।" इन वाक्यों से इस कवि की प्रवृत्ति का बहुत सुंदर निदर्शन मिलता है। सच तो यह है कि इसके दिल में ढोल की यह बलंद आवाज़, जिसने नए ज़माने का सारी दुनिया में एलान किया था, बैठ गई थी। इस कारण इसने भी रामढोल के कठोर रव की भाँति अपने विचार प्रकट किए थे। फ्रांस में यह नाद बेरांजे (Beranger) के कलेजे में पहुँचा था। इसलिये उसने भी स्वतंत्रता, समता और भ्रातृ-भाव के सिवा कुछ न गाया। (हाइने ने इस लोक-कवि के कुछ शीर्षक लिए हैं)

हाइने को प्राथमिक शिक्षा माता द्वारा मिली। इसके बाद वह एक ग़ैर-सरकारी पाठशाला में भरती किया गया, जिसकी अध्यक्षा फ्राउ हिंडरमान-नामक एक यहूदी स्त्री थी। हाइने ने आत्मचरित में इस स्कूल की बड़ी हँसी उड़ाई है; क्योंकि यहाँ छात्रों को पीटने का भारतीय तरीक़ा था। उसने



हाइने (मृत्यु के पूर्व)

लिखा है—"इस शाला में मुझे लैटिन, भूगोल और मार खाने की विद्या सीखनी पड़ती थी।" यहाँ से वह लीसियम में भरती हुआ। यह एक प्रकार की माध्यमिक पाठशाला थी। इसका अच्छा नाम था ; क्योंकि इसमें गणित और विज्ञान की बहुत अच्छी पढ़ाई होती थी। हाइने ने इस संस्था की अच्छी प्रशंसा की है। यहाँ के अध्यक्ष शालमायर का उस पर अच्छा प्रभाव पड़ा। हाइने चतुर छात्र न था। यह उसने स्वयं भी स्वीकार किया है, और विद्यालयों के काग़ज़-पत्रों से भी इसका पता

चलता है। हाइने ने आत्मचरित में पढ़ाई की हँसी उड़ाई है। इतिहास की वर्ष-संख्या याद करने के बारे में उसने लिखा है कि यह अत्यंत महत्त्व-पूर्ण है; क्योंकि यदि मैं इसे घोखता, तो बर्लिन में मकान का नंबर ढूँढ निकालना मेरे लिये असंभव हो जाता, और बिना इन नबरों को याद किए बर्लिन में कौन अपना मकान ढूँढ सकता है? कारण, वहाँ सब मकान एक तरह के हैं, गोया पानी की बूँदें हों। इसके सिवा उसने ऐसे प्रोफ़ेसर देखे हैं, जिन्हें केवल इतिहास की तिथियाँ याद रखने की योग्यता है। भारत में सन् रटने का रोग प्लेग की तरह फैला हुआ है। हमें ऐसे योग्य प्रोफ़ेसरों को ढूँढने में क्या देर लगेगी? गणित के विषय में उसने कहा है—'घटाना मेरी समझ में बड़ी जल्दी आ गया। उसका मुख्य सिद्धांत यह है कि तीन में से चार नहीं घट सकते, इसलिये एक ऋण लेना पड़ता है।" ऐसे संकट के समय के लिये मैं सम्मति दूँगा कि दो-चार पैसे ज़्यादह ही ऋण लेना चाहिए। गणित की समस्या का यह समाधान हाइने को तब सूझा, जब उसे आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा।

यहूदी होने के कारण हाइने को छुटपन में अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ा; क्योंकि फ्रेंच सरकार ने सबकी समानता घोषित कर दी थी। लेकिन हाइने के एक उदाहरण से विदित होता है कि उसके नगर में भी जर्मन यहूदियों से घृणा करते थे। हाइने का नाम उसके पिता ने अपने एक जान-पहचान अँगरेज़ के नाम पर हैरी (Harry) रक्खा था। उसके दुर्भाग्य से इस शहर के एक कूड़ा ढोनेवाले के गधे का नाम Haarueh (हारूी) था। इस समता ने स्कूल के लड़कों को चुहल का, उसे चिढ़ाने का, अच्छा अवसर दिया। हाइने के सामने वे पूछा करते कि ज़ेब्रा और यहूदी में क्या फ़र्क़ है? उत्तर दिया जाता था—ज़ेब्रा जिबरानी तथा यहूदी इबरानी (यहूदियों की पुरानी भाषा) बोलते हैं। तब एक छात्र पूछता था कि मिशल के गधे हारूी और उसी नाम के उसके चचेरे भाई में क्या भेद है? उत्तर मिलता था, हम नहीं जानते। इस उत्तर को सुनते ही हाइने पागल हो उठता था; पर कमज़ोर का गुस्सा किस काम का?

हाइने जब १६ साल की उम्र में फ्रांकफ़ोर्ट आम माइन गया, तो वहाँ उसने देखा, यहूदी के घर में जन्म लेना बहुत बड़ा पाप है। वह वहाँ गया था बैंक तथा किराने की दूकान का काम सीखने, जिनमें से एक भी न सीख सका। किंतु वहाँ उसे यहूदियों की दुर्दशा का ज्ञान हुआ। फ्रांकफ़ोर्ट में यहूदियों के लिये अलग 'चांडाल-बस्ती' थी। इसके बाहर वे नहीं बस सकते थे। फ़ुटपाथों पर चलने की उन्हें मनाही थी। उन्हें सड़क के उस निचले भाग पर चलना पड़ता था, जिस पर गाड़ी-घोड़े आया-जाया करते थे। सार्वजनिक उत्सवों और जलसों में वे भाग न ले सकते थे। शाम को चार बजे के बाद वे मकान के बाहर न जा सकते थे। गोरे जर्मनों के लिये वे अछूत थे। इसके अनंतर हाइने हांबुर्ग गया। वहाँ उसने अपने चचा के बैंक में काम किया। ज़ामुएल हाइने नाम के उसके धनी चचा ने उसके लिये एक फ़र्म खोल दी, जिसमें सूती कपड़े का थोक काम होता था। किंतु सर्वत्र उसे असफलता मिली। हाँ, वहाँ उसने यहूदियों का क़त्ले-आम देखा। स्वतंत्र विचारों का होने पर भी, उस पर इन घटनाओं का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने लिखा है—Judentum ist kein Religion es ist ein ungluck—अर्थात् यहूदी कोई मज़हब नहीं; यह एक दुर्भाग्य है! है भी सच। सभ्य योरप ने जिस हृदयहीनता से इस जाति को सदा यंत्रणा के सागर में डुबाए रक्खा है, उसे पढ़कर रोमांच हो आता है। यहूदी ईसा ने भले ही दूसरों को नजात बख़्शी हो, पर अपनी जाति को विष का कटोरा पीने को दिया है। अब योरप में ईसाई धर्म का प्रभाव सरासर कम होता जा रहा है, और यहूदियों के दिन भी पलटते नज़र आ रहे हैं।

स्वयं यहूदी होने तथा ईसाई धर्म के पक्ष में न होने पर भी हाइने का मत था कि यहूदी या नसरानी सभ्यता कला के लिये घातक है। उसका कहना था कि रेगिस्तान और नीरस भूमि में सरस कविता नहीं उगती। इसलिये वह सदा मूर्ति-पूजक यूनान की सभ्यता का पक्षपाती रहा। यह बात है भी सच। अरब और नसरों ने सिवा थोड़ी-सी lyric या आत्मोद्गारमय संगीत के कुछ भी नहीं लिखा। अरबों ने तो आपस की मार-काट पर ही कुछ पद्य लिखे हैं। बेलुक़ता सारी किताब लिखने में कई अरब कविता का चमत्कार दिखाते हैं; किंतु भारवि के "न ना नुन्नो" यानी न अक्षर से ही सारा श्लोक भर देने की भाँति यह अक्षर-कौशल कला से शत्रुता रखता है। भारवि ने तो कुछ ही पद्य अक्षर-कौशल के लिखे हैं, और किरातार्जुनीय काव्य का अनुपम ग्रंथ है; लेकिन अरबों ने तो

उस कविता लिखी ही नहीं। मुसलमानी सभ्यता ने संसार को सिवा भाईचारे के कुछ नहीं दिया। यह भाईचारा भी डाकुओं का है, जो डाकू को ही अपनी जमात में शामिल करता है। वहाँ भी मुसलमान ही उसका भाई है, दूसरे काफ़िर। इस संकीर्णता और इस मज़हब तथा उसके माननेवालों की स्वाभाविक क्रूरता और पाशविकता में ललित कलाएँ कैसे जन्म लेतीं? इसलिये अरब और अलबानियों में सिवा धन-लिप्सा के और कोई प्रवृत्ति न जन्मी। यह ऐतिहासिक सत्य हाइने जानता था, और उसने क़बूल भी किया है। किंतु वर्तमान समय में बड़े-बड़े साहित्य-समालोचक पंडित इस मत की पुष्टि करते हैं।

जो हो, हाइने साल-भर फ़्रांकफ़ोर्ट में रहा। फिर वहाँ से वापस चला आया। हाँ, इससे पहले हाइने को एक लड़की से प्रेम हुआ था। यह एक जल्लाद की बेटी थी। हाइने इसके पास बहुधा आया करता था। चूँकि यह अपनी रिश्तेदार एक बूढ़ी औरत के पास रहती थी, जो यंत्र-मंत्र जानती थी, हाइने को जादू-टोने की दुनिया का बड़ा ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी समय हाइने ने कविता आरंभ की। हाइने ने इस लड़की की सुंदरता की बड़ी प्रशंसा की है। किंतु इससे उसका ब्याह न हो पाया; क्योंकि सन् १८१६ में उसकी तबीयत एक दूसरी लड़की पर आ गई, जिसका नाम Amalie Heine (आमाली हाइने) था।

इस साल वह हांबुर्ग गया। वहाँ उसका धन कुबेर चचा बैंकरी करता था। उसने हाइने को दफ़्तर में रख दिया, और कुछ दिनों बाद उसके लिये स्वतंत्र ऑफ़िस स्थापित कर दिया। पर कवि कब बनिया बना है? हाइने का फ़र्म फ़ेल हुआ, और वह धन खो, प्रेम पैदा कर, 'पुनर्मूषिक' बन गया। हाइने के दुर्भाग्य से प्रेम का वह पौधा भी न पनपा। सन् १८२० में आमाली ने एक ज़मींदार से शादी कर ली। यह धक्का हाइने को बड़े ज़ोर से लगा। जिस आमाली के पीछे वह पागल था, जिसकी मोहनी मूरत ने उसे मुसलमान से बुतपरस्त बना दिया, जिसका नख-शिख-वर्णन करने में हाइने अपना सौभाग्य समझता था, जिसने उसकी आत्मा को पूरी मात्रा में जाग्रत् कर दिया था, उसका यह विश्वासघात गोयटे के वेरटर के संताप की तरह ही था। हाइने को पूरा भरोसा था कि आमाली उससे ब्याह करेगी; क्योंकि उसने हाइने से सदा प्रेम दिखाया था। किंतु उसने दग़ा की, और एक ज़मींदार से शादी कर ली। यह चोट कवि कभी न भूल सका। दाग़ ने अपनी कविता में ऐसी व्यथा का करुण चित्र खींचा है। दाग़ कहता है—

> "बातें सुनिए तो फड़क जाइएगा;
> गरम हैं दाग़ के अशआर ये क्या।"

यह बात हाइने पर पूरी घटती है। दाग़ या अन्य उर्दू-कवि फ़ारसी की नक़ल करते हैं। मुझे मालूम नहीं, कितने उर्दू के कवि 'दिल-लगी' कह गए हैं; किंतु यहाँ हृदय की यंत्रणा, हृदय का आनंद बहता है। सुनिए, कवि प्रिया के विषय में कहता है—

> "Wenn ich bie meiner Liebsten bin.
> Dann geht das Herz mir auf;
> Dann bin ich reich in meinem Sinn,
> Ich bieti die Walt in Kauf.
> Doch wenn ich wieder scheiden muss
> Aus ihren schwanen arm.
> Dann schwindet all mein uberfluss,
> undich bin bettel arm."

> प्यारी के सँग में मेरा मन मस्त, उल्लसित रहता है;
> नव निधि मैं ठुकरा सकता हूँ, हृदय धनी नित रहता है।
> जब त्यागना मुझे पड़ता है, वह आलिंगन सुधा-समान;
> चित्त चोर-सा हो जाता है, मैं हूँ तत्क्षण दीन महान।

क्या प्रेम है! सच है, इसके सामने संसार की क्या हक़ीक़त? कवि प्रेयसी के पास प्रेम में इतना मग्न है कि उसे अन्य सब सुख कौड़ी-मोल लगते हैं। यह कोई अत्युक्ति नहीं, अक्षरशः सत्य और आप-बीती है। प्रेम—सत्य प्रेम के सामने किसकी प्यास बुझती है? "नीर-भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय।", "यह नशा वह नहीं, जिसे तुरशी उतार दे।" ख़ुद ज़ौक़ ने क्या अच्छा कहा है —

> "वह सुबह को आए, तो करूँ बातों में दोपहर;
> और चाहूँ कि दिन थोड़ा-सा ढल जाय तो अच्छा।
> ढल जाय जो दिन भी, तो उसी तरह करूँ शाम;
> और फिर कहूँ गर आज से कल जाय तो अच्छा।
> अज़ाकिस्मत नहीं चाहता मैं, जाय वह याँ से;
> दिल उसका यहीं गरचे बहल जाय तो अच्छा।"

किंतु हाइने आमाली का दिल न बहला सका, और उसे भिखारी बनना पड़ा। जो हीरा उसने अमूल्य हृदय दे ख़रीदकर गाँठ में बाँध रक्खा था, वह खो गया, या छीना गया। फिर भिखमंगा बनने में क्या बाक़ी रहा? इस घटना के बाद हाइने की कविता में विषाद

और मंत्रणा की मोहर लग जाती है। यदि वह फूल देखता है, उसे उनमें प्यारी का ही रूप दिखता है, और वह विकल हो उठता है। जिसके लिये उसने गाया था—

"No heaven do I believe in—
Though parson's creed it be:—
Thine eyes do I believe in
Their light is heaven for me.
No God do I believe in—
The parson's I deny:
Thine heart do I believe in,
No other God have I *

उसके लिये उसे कहना पड़ा—

No devil I believe in,
Nor, hell where sinners smart!
Thine eyes do I believe in,
An in thy devils heart.

बिहारी की तरह हाइने प्रेममय—सांसारिक प्रेममय था। इश्क़ हक़ीक़ी नहीं, बल्कि मजाज़ी उसका आदर्श था। इसलिये पहले पदों में उसने वही गान गाया है, जो बिहारी ने

"ताहि देखि मन तीरथनि बिकटान जाय बलाय ;
जा मृगनैनी के सदा बेनी परसति पाय।"

में अलापा है। किंतु इस मृगनैनी के विश्वासघात ने उसे बेचैन कर दिया, इसलिये उसने इस दुज़दीदा नज़र और फ़रेबी दिल को पहचाना, और उसे खोल दिया। उसने लिखा है—

Oh! the lies that lurk in kisses!
Oh! the bliss of make-believe!
Oh! to be deceived! for this is
Sweeter yet than to deceive †

चुंबन में सब झूठ भरा है, आलिंगन दिखलाऊ है :
आह! मधुर है धोका देना, धोका खाना अनुपम है।

यह उस आमाली के लिये है, जिसने हाइने को जीवित अवस्था में मुर्दा बना दिया।

* ज़ौक एक जगह कहता है—"जो दिल कमारखाने में बुत से लगा चुके, वह काबतैन छोड़कर काबे को जा चुके" यह भाव सब उर्दू कवियों में मिलता है; किंतु उन पर इस प्रकार न बीतने पर भी उन्होंने आत्मज्ञान से ताड़ लिया था—"अच्छा किया, वफ़ा के एवज़ तूने की जफ़ा; बस, अब सितम न कर, कि किया अपना पा चुका।"

† "तेरा भी तो हुस्न है दग़ाबाज़": (दाग़)

शिकस्ता दिले इश्क़ की जान क्या।
नज़र तुमने फेरी कि वह मर गया।

यह हाइने में चरितार्थ होता है।

'जिससे किया है आपने इक़रार' जी गया ;
जिसने सुना है आपसे इनकार, मर गया।

यह भाव हाइने ने स्वयं कहा है—

Glaub mir due wunderschones,
Du wunderholdes kind,
Ich lebe und bin noch starker
Als all Totan sind!

तू अतिरम्य सुंदरी नारी, मैं तुझसे सच कहता हूँ?
जीता हूँ, पर सब मुर्दों से, मुर्दापन में आगे हूँ!

किंतु इन पदों में मुबालग़ा—अत्युक्ति—नहीं है। यहाँ कवि अपनी आत्मा का चित्र खींचता है। हाइने ज़िंदा है; किंतु उसका दिल मुर्दा है, ज़िंदादिली उससे भाग गई है। अब मरने में बाक़ी क्या रहा? यही कि उसकी प्रेम-वेदना छूट जायगी। दूसरे स्थान पर हाइने इस भाव को दूसरी तरह प्रकट करता है। वहाँ कहा गया है—

Du bist gestorben und weisst es nicht.

अर्थात् "मर चुका है तू कभी, तुझको ख़बर नहीं।" कैसा पक्का सिद्धांत है। हाइने ही नहीं, संसार में असंख्य जीव मर चुके हैं; पर उन्हें इस बात का पता नहीं है *। माया के इस जाल को चीरने के लिये आत्मज्ञान चाहिए। यह आत्मबोध कवि को ही होता है। ज़ौक़ ने कहा है—

"अब तो घबराके ये कहते हैं कि मर जाएँगे ;
मरके भी चैन न पाया, तो किधर जाएँगे।"

यह मरके भी चैन न पाने की दशा हाइने की हुई थी। सुनिए, हाइने लिखता है—

Upon mine eyes the night lay,
Upon mine mouth lay lead;
With frozen brain and bosom
I lay among the dead.

नेत्रों में रजनी सोती थी, मुख पर शीशा पड़ा हुआ ;
ठंडे दिल-दिमाग़ से मैं भी, मुर्दों में था पड़ा हुआ!

यानी हाइने मर गया था। वहाँ उसकी प्रेमपात्री आई, और उसने उससे उठने को कहा। इस पर हाइने ने अपनी

* फिर फटा ज़ख़्म का अंगूर मुबारक ऐ ज़ौक़,
दिले ज़ख़्मी को तेरे बादहे अशरत के मज़े (ज़ौक़)

दुर्दशा का वर्णन किया कि वह रोते-रोते अंधा हो गया है— "नैनन सों सब नीर गयो ढरि;" प्रेयसी के शब्द-रूपी बाणों ने उसका दिल किस तरह छेद-छेदकर छलनी कर दिया है, और उसकी खोपड़ी चकनाचूर हो गई है। किंतु प्यारी ने जब कहा कि मैं इनका इलाज कर दूँगी, तो हाइने फिर उठा, और उठते ही—

But all my wounds reopened,*
From breast and head outbrake
A wilder, mightier blood-stream—
And lo ! I was awake.

घाव ताज़ा हो गए सब, हृदय और मस्तिष्क से—
रक्तधारा बह चली अनगिनत उद्धत वेग से।
लो ! और मैं भी जग उठा !

बोलिए, मरने के बाद भी चैन न पाकर अब हाइने किधर जाय? ज़ौक इस मसले को हल न कर सके, और हाइने ने अमली जवाब दे दिया। यह सब अपनी चचेरी बहन आमाली हाइने की बदौलत, जिसके कारण 'मरिबो भयो असीस' ग़लत सिद्ध हो गया।

कुछ समय तक हाइने को यह वियोग असह्य जँचने लगा था; किंतु काल ने उसका तीव्रापन कम कर दिया। तब हाइने गाता है—

Once I thought 'twas past all bearing
And was nigh despair : but now
I have borne it, undespairing,
Only never ask me : How ?

उसने वह यातना, जो कभी असह्य लगती थी, पार कर ली। किंतु ऐसा करने में उस पर जो बीती, वह (उसका अंतिम पद प्रच्छन्न होने पर भी) कवि का हृदय स्पष्ट रूप से प्रकट कर रही है। इसके बाद तो हाइने फिर नई आशाएँ बाँधता है। गाता है—

Herz ! mein Herz sei nicht beklommen,
und ertrage dein Geschick,
Never Freehling giebt es rurnck,
Was der Winter dir genommen.

ऐ मन ! मेरे हृदय !! न दुख कर, धीरज से सह दैव-प्रकोप;
नव वसंत देने आया है, जो कुछ किया शीत ने लोप।

प्रेमिका को फिर से पाने की यह नव आशा बिहारी के

"यहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल;
ह्वै है बहुरि बसंत ऋतु, इन डारन वे फूल।"

की याद दिलाती है। किंतु वे भाव बने नहीं रहते। हाइने को वसंत बड़ा कष्ट देता है। जो ऋतुराज प्रकृति को उल्लासमय कर देता है, वह हाइने को शूल की तरह बेधता है। गुल-बनफ़्शा प्रेयसी की आँखों की और लिली का फूल उसके हाथों की याद दिलाता है। नाइटिंगेल पपीहे की भाँति 'पी कहाँ'-'पी कहाँ' की रट लगाता है; विरही को विरह अधिक सताता है, और हाइने व्याकुल हो उठता है। क्या वह प्रसन्नहृदय पक्षियों की तरह गा सकता है? नहीं—

Ich kann nicht singen und springen
Ich liege krank in Gras.

"मैं न गा सकता हूँ, न फुदक सकता हूँ, मैं रोगग्रस्त घास में पड़ा हूँ।"

यह विरह-व्यथा उसे जीवन-भर चैन नहीं लेने देती।

"कभी अफ़सोस है, कभी रोना आता;
दिले-बीमार के हैं दो ही अयादतवाले।"

यह वेदना हाइने से गवाती है—

'Tis thou, proud heart, wouldst have it so !
For thou,
Wouldst make the the sum of every joy thine own,
Or else, proud heart the sum of every woe—
And now, all woe is thine*

"ऐ घमंडी दिल, तू सुख-ही-सुख लूटना चाहता था, या तो दुख-ही-दुख। अब तुझे तेरे किए का फल मिल गया। समस्त विपत्ति तेरी है।"

किंतु हाइने अपनी प्रेयसी को वे गालियाँ नहीं देता, जो उर्दू के कवि देते हैं। उसने अपनी प्रेयसी को क्षमा किया है—

I blame thee not, love ever lost to me !
Nay, though my heart doth break, I
blame not thee.

यह क्षमा वास्तव में प्रेम का लक्षण है। प्रेमिका से बदला लेना या उसे खरी-खोटी (बुरी नियत से) सुनाना कृत्रिम या नीच भाव के सूचक हैं। हिंदी-साहित्य में विशुद्ध प्रेम का यही लक्षण है, और इसका आधार अनुभव है। चूँकि हाइने को यह अनुभव प्रत्यक्ष हुआ था, इसलिये उसने उर्दू की कृत्रिम शैली नहीं पकड़ी। इसीलिये उसने उर्दू या

* दाग़ भी कहता है—ऐ दाग़, तुझको रिज़्क की ख्वाहिश है गैर से;
इतना वह ग़म खिलायगा, खाया न जायगा।

'रक़ीब' की परवा कम की, और समझा कि उसकी प्यारी का दिल भी चैन में नहीं है। इसीलिये उसने लिखा है—

I saw the worm that doth consume thy heart;
I saw my loves how desolate thou art.

उसे अपनी प्रेमिका की स्थिति पर दया आती है, समवेदना होती है। यह स्वाभाविक है। जो हो, इस महान प्रेम और महान् व्यथा ने हाइने को महाकवि बना दिया। उसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक "Buch der Lieder" इस विशुद्ध प्रेम और महान् मर्म-यंत्रणा का सौंदर्य प्रकट करनेवाले उद्‌गार हैं। कवि के कथनानुसार उसके आँसू, उसकी व्यथाएँ संगीत में परिणत हो गई हैं। वह तो चाहता था कि वे संगीत फूल बनकर माशूक़ के पास पहुँच जाते, उसकी यह कथा वायु द्वारा उसका चुंबन करती; किंतु फिर भी वदना वेदना ही रहती, प्रेम प्रेम ही बना रहता। पुस्तक क्या है, कवि के शब्दों में सुनिए—

Ah! my heart is cold and troubled,
Since that flame no longer flashes;
And this little book the urn is,
Where are laid my loves cold ashes.

"हाय! मेरा हृदय क्षुब्ध और ठंडा है, जब से वह आग (प्रेम की) नहीं जलती, और वह छोटी पुस्तक वह कुल्हड़ है, जिसमें मेरे प्रेम की ठंडी राख रक्खी हुई है। अर्थात् वह ग्रंथ मेरे प्रेम का चैत्य है, स्तूप है। पर कौन कह सकता है कि यह ताजमहल से कम है? हाँ, उससे अधिक पवित्र और स्वच्छ है।"

हांबुर्ग में हाइने डेढ़ साल रहा। फिर घर वापस आ गया। उसके चचा ने उसे प्रायः हज़ार रुपया सालाना सहायता दी, जिससे वह क़ानून सीख सके। इसके लिये हाइने बॉन के विश्वविद्यालय में गया। वहाँ उसे कई अच्छे मित्र मिले, जिन्होंने उसकी प्रतिभा को उत्तेजित किया। वहाँ से वह गॉटिंगन पहुँचा। यहाँ भी वह ज़्यादा दिन न ठहर सका, और बर्लिन के नए विश्वविद्यालय में भरती हो गया। यहाँ उसका अच्छा सम्मान हुआ। उसे कई सच्चे मित्र प्राप्त हुए। यहीं उसकी पहली पुस्तक Gadichte (कविताएँ) नाम से छपी। इसने उसका नाम कर दिया। यहाँ वह क़ानून पढ़ने आया था; किंतु उसे दिलचस्पी थी साहित्य और इतिहास में। प्रोफ़ेसर "बॉप" के 'संस्कृत' पर भाषण भी वह बड़ी रुचि से सुनता था। इनका उस पर प्रभाव पड़ा है। उसकी कई कविताओं में उसकी यह प्रबल कामना प्रस्फुटित हुई है कि वह दक्षिण को भागना चाहता है, जहाँ सूरज पूरे तेज से तपता है। गंगा का आसरा ले उसने एक प्रसिद्ध कविता लिखी है—

Where holy Ganges floweth,
Heart's dearest, I'll bear thee along
To a spot that my heart well knoweth,
Bear thee on wings of song.

ऐ प्यारी! तुझको ले जाऊं, जहाँ जाह्नवी बहती है;
(कविता के पंखों पर बिठला) मेरा मन वह हरती है।

इसमें एक स्थान पर कहा है—

सुंदरनैनी चंचल गिलहरियाँ जल क्रीड़ा करती हैं;
कलकल रव से नाच-कूदती, जहाँ जाह्नवी बहती है।

हाइने की एक कविता भर्तृहरि की नक़ल है। उसका संशोधित रूप है; किंतु भाव वही हैं, पाठक पढ़ें—

A youth doth love a maiden,
But she doth another prefer;
This other loveth another,
And straightway weddeth her

भर्तृहरि ने नीतिशतक में लिखा है—

"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।"

हाइने ने ये भाव अपने नहीं बताए हैं। लिखा है—

It is a time worn story,
Yet it is ever new.'

"यह प्राचीन कहानी है, पर सदा नई ही रहती है।"

इससे मालूम पड़ता है, हाइने ने 'बॉप' के भाषण ध्यान से सुने थे। अस्तु। बर्लिन में भी हाइने अधिक काल तक न टिक सका। वहाँ से सन् १८२१-२३ तक उसकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हुईं—(१) कविताएँ, (२) अलमनसूर, (३) राटक्लिफ़। पिछले दो नाटक हैं। इनमें हाइने सफल न हुआ। समालोचकों ने भी इन्हें अच्छा न बताया। दर्शकों ने भी पसंद न किया। कुछ दिन हाइने अपने मा-बाप के साथ रहा। फिर एक बंदरगाह को स्वास्थ्य ठीक करने गया। वहाँ उसने 'सागर-संगीत' लिखा, जो जर्मन-भाषा में नवीनता थी। इसमें भी कवि का प्राण लहरें मारता है। सन् १८२४ में हाइने गॉटिंगन से डॉक्टर की उपाधि से विभूषित किया गया। उसके चचा और घरवालों ने समझा, अब बेटा नामी वकील होगा, और

सोने से घर भर देगा। किंतु उन्हें निराश होना पड़ा। प्रबल चेष्टा करने पर भी वह 'वैषयिक' न बन सका। किंतु पास होते ही चचा ने हाइने के पास कुछ रुपए कहीं स्वास्थ्य-कर स्थान में जाने को भेज दिए थे। हाइने तुरंत नोर्द-नाइ नामक स्नान-तीर्थ को चल दिया। वहाँ उसने जो कविताएँ लिखीं, वे 'Nordseebilder' नाम से प्रकाशित हुईं। इससे नवयुवक कवि की प्रतिष्ठा और भी बढ़ी। इधर हाइने को फ़िक्र पड़ी कि दो-एक ऐसी पुस्तकें लिखनी चाहिए, जिससे घरवालों पर धाक जम जाय, और वे फिर उसे 'अर्थकरी विद्या' वकालत का काम करने को बाध्य न करें। यह पुस्तक 'Reisebilder' यानी 'भ्रमण के चित्र' नाम से निकली, और इसने जर्मनी में तहलका मचा दिया। इन दिनों हाइने ने और कई पुस्तकें लिखीं। वह अब विख्यात हो गया। सन् १८२७ में उसकी एक पुस्तक छपी, जिसमें साहित्यिक आलोचना थी। इससे कई विद्वान् असंतुष्ट हो गए, और यह पुस्तक आस्ट्रिया तथा जर्मनी की कई रियासतों में ज़ब्त कर ली गई। इस समय कुछ लोग हाइने से इसलिये भी नाराज़ हो गए कि उसने अपनी पुस्तक 'Buch le Grand' में नेपोलियन की बड़ी तारीफ़ की थी। जो हो, उसे पुस्तकों से पैसे मिले, और वह इँगलैंड चला गया। इँगलैंड के बारे में हाइने ने जो कुछ लिखा, उससे मालूम होता है कि उसे वह देश और इसके निवासी उनका रहन-सहन तथा साहित्य, कुछ भी पसंद न आया। अँगरेज़ों से उसे कितनी घृणा थी, इसका वर्णन उसके शब्दों में ही पढ़िए—पेरिस से १७ सितंबर, सन् १८४२ के पत्र में वह लिखता है—"मैं बलोन-स्यूर मेर से आ रहा हूँ। वहाँ अँगरेज़ ही दिखाई देते हैं, और अँगरेज़ी ही सुनाई पड़ती है। × × × चार सप्ताह तक मैंने यही फुस-फुसाहट सुनी, जिसके प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक शब्द से स्वार्थ की ध्वनि निकलती है। अवश्य ही सारी जाति को स्वार्थी बताना अन्याय है; किंतु अँगरेज़ों के विषय में मेरी उनके प्रति सामयिक वितृष्णा यही कहला रही है। × × × जनता—स्टाक इँगलैंडर—से मेरी आत्मा को घोर घृणा है, और बहुधा मैं उन्हें मनुष्य नहीं समझता, बल्कि हानिकारी आटोमाट या मशीन समझता हूँ, जो स्वार्थ की शक्ति से चलती है। × × × सबसे घृणित मुझे उनका कल के पुर्ज़े की तरह गिर्जे जाना लगता है। इतवार की बढ़िया पोशाक पहन, बग़ल में सुनहरी बाइबिल दबाए, झूठा धरम करने जाना मुझे पागल कर देता है। इसके साथ उनमें विनय का नाम भी नहीं है। इन लाल दाढ़ीवाले अंग-लियों को देख उन चीनियों को कितनी घृणा हुई होगी, जिनका सारा जीवन नम्रता का आचरण है। × × × इनमें रोमनों की भाँति संसार हड़प जाने की भेड़िया-प्रवृत्ति है, और साथ ही कार्थेजियनों की तरह साँप का-सा शैतानी स्वभाव। पहली प्रवृत्ति के विरुद्ध निश्चिंत और परीक्षित दवा है; किंतु दूसरी के काटे का कोई इलाज नहीं। उसके सामने हम निस्सहाय हो जाते हैं।"

लंदन से लौटने पर हाइने उत्तरी सागर के स्नान-तीर्थों में गया। इस समय उसने फिर एक बार वकील बनने की सोची; पर पुनः उसे इस व्यवसाय से अनिच्छा हो गई। इसी बीच उसका सर्वप्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ "Buchder Lieder" (गान) प्रकाशित हुआ, जिसमें उसकी अब तक की सब कविताएँ एकत्र छापी गईं। इस पुस्तक के निक-लने से उसका नाम हो गया, और कई जगहों से उसके पास नौकरी के निवेदन आए। उसने पाँच हज़ार मार्क सालाना तनख़्वाह पर एक पत्र में काम करना क़बूल किया। किंतु काम में जुते रहने की आदत न होने के कारण वह वहाँ अधिक दिन न रह सका। इतने में उसे म्यूनिच में प्रोफ़ेसरी मिलने लगी। इस उम्मीद में वह इटली चला गया। किंतु वह काम उसे न मिला। सन् १८३० में उसकी पुस्तक "Reisebilder" का तीसरा खंड निकला। इससे उसके मित्र घट गए, शत्रु बढ़ गए। कारण यह था कि काउंट प्राफ़न-नामक एक विद्वान् ने हाइने के विरुद्ध लिखा और कहा था। हाइने ने इस पुस्तक में इस काउंट की ख़बर ली थी। ईसाई धर्म ग्रहण करने पर भी प्राटन ने लिखा—"बिनजामिन के वंश के कवि को", "उसके चुंबन से लहसन का रस टपकता है" (यहूदी बहुत लहसन खाते हैं) आदि। हाइने ने इसका मुँहतोड़ जवाब दिया। इस पर जर्मन बिगड़ गए। उस पर चारों तरफ़ से आक्रमण होने लगे। वह हेलगोलैंड चला गया। वहाँ उसे पेरिस के जुलाई-विप्लव का समाचार मिला। उसके बदन में बिजली दौड़ गई। दिल में उत्साह उत्ताल तरंगों की भाँति उछलने लगा। जिन पत्रों में उसने यह समाचार पढ़ा था, उनके विषय में उसने लिखा है—"वे सूर्य की रश्मियाँ थीं, जो छपे कागज़ में बंद की गई थीं, और इन्होंने मेरे दिल की आग को दावानल

की भाँति धधका दिया। मुझे मालूम होने लगा, मानो मैं सारे महासागर में अपने उमंग और पगली ख़ुशी की अग्नि-शिखाओं से आग लगा दूँगा।" इसी समय उसने वह वाक्य लिखा था जो इस लेख के आरंभ में उद्धृत किया गया है। हाइने ने अपने लेखों में विप्लव के विचार फैलाए, और सन् १८३१ की पहली मई को वह फ़्रांस पहुँच गया। वहाँ उसने पेरिस में अड्डा जमाया, जहाँ से वह दूसरी बार जर्मनी को वापस लौटा। यहाँ हाइने का एक जीवन समाप्त होता है।

हेमचंद्र जोशी

आह !

निकल मन बाहर दुर्बल आह !
लगेगा तुझे हँसी का शीत।
शरद्-नीरद-माला के बीच;
तड़प ले चपला-सी भयभीत।
पड़ रहे पावन प्रेम-फुहार,
जलन कुछ-कुछ है मीठी पीर;
सँभाले चल, कितनी है दूर,
प्रलय तक व्याकुल हो न अधीर !
अश्रुमय सुंदर विरह-निशीथ
भरे तारे न ढुलकते, आह !
न उफना दे, आँसू हैं भरे,
इन्हीं आँखों में उनकी चाह।
कलेजा पास, साँस की राह,
चले आना, जाना चुपचाप;
अरे छाया बन छू मत उसे,
भरा है तुझमें भीषण ताप।
काकली-सा बनने की तुझे
लगन लग जाय न हे भगवान !
पपीहा का पी सुनना कभी ?
अरे कोकिल की देख दशा न।
हिलाकर धड़कन से अविनीत
जगा मत, सोया है सुकुमार;
देखता है स्मृतियों का स्वप्न,
हृदय पर कर मत अत्याचार !

जयशंकर "प्रसाद"

स्व-जीवनी

(मुक्त-वृत्त)

(१)



र्ष पैंसठ हुई आज अपनी वयस, हर्ष-पूरित हुई स्व-गृह-जन-मंडली, मन हुआ मुदित अति उदित रवि-दरस सँग प्रात के समय ज्यों सरस सरसिज-कली।

"मंडली" शब्द पर्यंत इस पद्य की पंक्ति उत्सव-सुलभ विमल-मंगलमयी जनवरी मास तारीख़ तेईस उन्नीस-पचीस सन बीच विरचित हुई।

बहुत-से मित्र अनुरोध अति कर रहे कीजिए शीघ्र लिपि-बद्ध निज जीवनी। न अतिविस्तृत न अति-लघु न अत्युक्ति-युत किंतु सब सत्य सुव्यक्त स्व-व्यक्ति-



श्रीमत्पंडित लीलाधरजी महाराज
(७३ वर्ष की अवस्था में)

गत सकल घटना-घटित सरलता से वलित सुभग सुंदर ललित सुघर साहित्य संस्थान से अस्खलित सुलभ कल कोकिला-काकली सी भली ।

किंतु मम जीवनी वस्तु ऐसी नहीं, जो कि हो जगत के जानने योग्य । अतएव इस ओर मति अतिव आती नहीं चित्त में सुरुचि समुचित समाती नहीं । पर सुजन वृंद या सुहृद् जन संघ की ओर से की गई प्रबल यों प्रार्थना विवशता विवश स्वीकार्य होती हुई जगत के बीच है प्राय देखी गई ।

अतः लिखना उचित जीवनी का हुआ शक्ति-अनुसार कुछ सार-संयुक्त यद्यपि लगे कार्य यह निपट एक भार ही ।

आगरा प्रांत की फ़िरोज़ाबाद तहसील में जोंधरी नाम एक ग्राम है । जहाँ पिछले समय में कुछक काल तक किंवदंती-कथित विप्र-वर-वंश एक नृ-कुल-अवतंस अघ-संघ-विध्वंस-कर भूमिपति था सकल अंश में सुकुल-आचार परिपूत सुविचार-संभूत-गुण-आढ्य शुचि-भावना-भरित-शुभ-चरित परिवार-परिपूर्ण मतिमान-मूर्धन्य अज्ञान-तम-शून्य विद्वान-जन-मान्य राजन्यगण-पूज्य बहु-देश-विख्यात अवदात-यश-राशि-कृत-वित्त अतिहृष्ट प्रतिपत्ति-संपन्न अतिभद्र अविपन्न सुमनस्क सुवयस्क शुचि-वृत्त सात्त्विक बली । देश पंजाब था आद्य उसका सुभग ज्ञाति पट्कुल विदित सुघर सारस्वत-प्रवर पाठक सुविख्यात विप्राग्रणी ।

एक-से-एक बढ़ उद्दित नर-वर हुए उस विशद वंश में जो सुयश धाम हैं, उन्हीं में इस विनत-दीन-जन के पुनः पुनः स्मरणीय अति समादरणीय नमनीय-आचरण सुरवंद्य पितृ चरण का परम पावन अतिव-श्रुति-सुहावन सुजन-हृदय-भावन दुरित-द्रुत-नसावन प्रयत-शांति-लावन सतत-सकल-जग-पूज्य आराध्य शुभ नाम है ।

सुगुण-संपन्न थे वह महामहिम मृदु-शील सौंदर्य-सौजन्य शुचि मूर्ति कमनीय-वपु-कांति-तेजस्विता-स्फूर्ति-मंडल-अलंकृत अखंडल अटल कीर्ति अतिसदय शुचि-हृदय शुभ-उदय धृति-निलय धृत अखिल-आचरण-हित-यम-नियम-नीति । कृत-निगम-आगम-सुगम-अनुगमन-रीति त्यों शुचि-समागम-सुजन-साधु-जन-प्रीति ।

अति सुदृढ़-संकल्प थे सरल ऋषि कल्प नर-ऋषभ अवि-कल्प-मति अमित-आनंद-अनुभूत शुचि-सुघर-सात्त्विक-प्रकृति सुहित-पर सुकृत-घर अनघ-गति सुलभ-रति वचन-रचना-चतुर विमल-वाणी-विशद-कल्पना-पूत ।

गोपाल-पद-भक्त गृह-बाल अनुरक्त द्विज-कृत्य-कटिबद्ध सद्भाव-प्रेरित-सुकृत-सतत-सन्नद्ध बहु-दोष-प्रतिपाद्य जग-जाल-सु-विमुक्त । पर निपट धन-हीन थे गूढ़ व्यवहार में तदपि अक्षीण थे शुभ पथ-अनुसरण में न अणु दीन त्यों त्रिजग-प्रिय-प्रेम-पथ-पथिक सु-प्रवीण थे ।

नाम था कलित कमनीय-गुण-ग्राम माधुर्य-सम्मिलित-महनीयता-धाम शुचि आर्य सूचार्य श्रुति-सुख उर-धार्य बुधवर्य लीलाधर अतीव अभिराम * ।

भरिंगार, मसूरी
ता० २२-५-२६　　　　श्रीधर पाठक

तामिल-प्रांत में हिंदी-प्रचार

आज हमारे भारतवर्ष को राष्ट्रभाषा की कितनी आवश्यकता है ? इसके लिये सभी अनुभवी नेता, सभी प्रांत तथा सभी समाज बलंद आवाज़ से चिल्ला रहे हैं । कांग्रेस अपनी सभी बैठकों में इस पर किसी-न-किसी रूप में कोई-न-कोई घोषणा किए बिना नहीं रहती । अभी गत दिसंबर में, कानपुर में भी, उसके पक्ष में एक प्रस्ताव पास हो चुका है । यही नहीं, एक राष्ट्रभाषा-कानफ़्रेंस भी श्रीनागेश्वरराव पंतुलुजी की अध्यक्षता में हुई थी ; पर मालूम नहीं उसका उद्देश्य क्या था ; क्योंकि उसका कुछ भी विवरण हमें पत्रों द्वारा नहीं मिलता । कुछ भी उसमें हुआ हो, पर पूज्य महात्माजी ने इस आवश्यकता और कमी के दूर करने के लिये १९१८ ई० ही से अपना हाथ इस ओर विशेष रूप से बढ़ा रक्खा है । उन्हीं के परिश्रम तथा आशीर्वाद से आज भी जिस किसी रूप में मदरास-प्रांत में हिंदी-प्रचार देख पड़ रहा है । यद्यपि इस पुनीत कार्य का पूर्ण भार उन्हीं

---

* यह पद्य ४० मात्रा के चरणोंवाला दंडक है । परंतु इस-की रचना में यति और चरणों के नियमों का निर्वाह नहीं किया गया, अतः यह गद्य की भाँति सुगमता से पढ़ा जा सकता है । अतएव इसको मैंने "मुक्त-वृत्त" के नाम से अभिहित करने की धृष्टता की है । ऐसी धृष्टता सहृदय साहित्यिकों के समीप क्षम्य होगी या नहीं अनुमान किया जा सकता—

श्री० पा०

के कंधों पर रहा है, और भविष्य में भी रहेगा, फिर भी इसके प्रबंध की बागडोर द० भा० हिं० सा० सं० कार्यालय के हाथ में है। प्रत्येक विषय की लिखा-पढ़ी, स्वीकृति अस्वीकृति के लिये आवश्यक आयोजनाएँ, मासिक तथा वार्षिक बजट, रिपोर्ट आदि, सभी बातों के उक्त कार्यालय की नज़रों से गुज़रने पर ही कार्य-संचालन होता है। उसकी ओर से निरीक्षक भी अपना दौरा वर्ष में एक बार करते हैं। फिर भी सं० का०, दूरस्थ होने के कारण, कार्य की सच्ची स्थिति तथा मदरास-कार्यालय की आंतरिक नीति से पूर्णतः परिचित नहीं रहता, और न उसकी निरीक्षण-रेपोर्ट द्वारा ही कभी ऐसी बातों पर प्रकाश डाला गया है। शायद निरीक्षक महानुभावों को प्रचारकों और स्थानीय सज्जनों से जहाँ-तहाँ मिलकर उक्त बातों पर विचार या पूछताछ करने की सुविधा ही नहीं प्राप्त हुई, या उनकी ऐसी इच्छा ही नहीं हुई। और, न स्थानीय समाचारपत्रों में ही हिंदी-प्रचार के लिये काफ़ी आंदोलन एवं लिखा-पढ़ी ही की जाती है। इन्हीं सब कारणों से जनता—क्या मदरास प्रांत की और क्या उत्तर-भारत की—ख़ासकर तामिल हिंदी-प्रचार से तो बिलकुल ही अनभिज्ञ एवं अपरिचित है। ऐसी अवस्था में प्रचार-कार्यालय तथा जनता को पूर्णतया मदरास-कार्यालय पर ही निर्भर रहकर, उसकी प्रत्येक बात पर अक्षरशः विश्वास कर, चुप्पी साधनी पड़ती है।

उक्त कार्य को प्रारंभ हुए लगभग ७ वर्ष पूरे हो रहे हैं। उसके लिये लगभग एक लाख से अधिक रुपए के ख़र्च का हिसाब बहीखाते में है, और उसमें, उसकी स्थिति तथा आंतरिक नीति-रीति एवं प्रबंध में भी भारी परिवर्तन होता रहा है, तथा हुआ है। शुरू में जब कि कार्य-भार श्रीयुत देवदासजी गांधी के सिर पर था, कुल ३ या ४ उत्तर भारत के प्रचारक ही थे, जिनके द्वारा कार्य की जड़ जमी थी। परंतु १९१९से कुछ प्रचारक दक्षिण से उत्तर को शिक्षा-प्राप्ति के लिये भेजे गए। ये लोग प्रयाग में एक-एक वर्ष के अध्ययन के बाद आंध्र और तामिल-प्रांतों में कार्य करने लगे। इस अवसर पर भी उत्तर-भारत से बराबर प्रचारक आते-जाते रहते थे, और अधिकांश केंद्रों का कार्य उन्हीं के द्वारा प्रारंभ हुआ था। यह सब उस अवस्था का लेख था, जब मदरास कार्यालय में धन का धाराप्रवाह बह रहा था। आंध्र-प्रांत अपने प्रचारकों से भर गया कोकनाडा-कांग्रेस भी समीप आ गई। कुल कार्य का आंध्र-प्रांत ही केंद्र-बिंदु बन गया। जितने प्रचारक उत्तर से आए थे, या प्रयाग से शिक्षा प्राप्त कर आए थे, उनकी अधिक से अधिक संख्या इसी प्रांत के हिस्से पड़ी। प्रतिफल स्वरूप आंध्र-प्रांत वासियों ने राष्ट्रभाषा प्रचार से पूर्ण लाभ उठाया। यही नहीं, उसी वर्ष ज़बरदस्ती आंध्र-प्रांतीय हिंदी प्रचार-कार्यालय स्वतंत्र हो गया, और उसने अपना भार स्वयं उठा लिया।

अब हमें यह देखना है कि जब आंध्र प्रांत इतना कर चुका है, तो बाक़ी और मदरासी प्रांतों की क्या दशा है, उन्होंने क्या-क्या किया है? उनमें क्या किया गया या क्या हुआ है? मदरास-शहर विशेष कर तामिल-प्रांत में ही गिना जाता है। यही शेष सभी प्रांतों में बड़ा भी है। इसी में और केरल में हिंदी-प्रचार की सबसे अधिक आवश्यकता थी, और है। शेष कर्नाटक तथा आंध्र को तो दो एक और भी लाभ प्राप्त हैं, जिनसे यदि वहाँ हिंदी प्रचार जल्दी एवं सुलभ हुआ, तो आश्चर्य ही क्या? वहाँ एक ओर मराठी, निज़ामी उर्दू और दूसरी ओर मध्य-भारत की हिंदी, उड़िया तथा बँगला का सामीप्य ही नहीं, प्रत्युत अच्छा प्रचार तथा ज्ञान होने के कारण हिंदी-प्रचार बड़ी आसान बात थी, और है भी।

बेचारे तामिल-प्रांत और केरल को न तो कोई उक्त लाभ ही प्राप्त हैं, न यहाँ की जनता में काफ़ी जागृति तथा राष्ट्र-भाषा की दिलचस्पी पैदा करनेवाला अच्छा प्रचार ही किया गया है, और न उन पर हिंदी-प्रचार-कार्यालय ही की कोई विशेष कृपा पहले से हुई।

तामिल-प्रांत का केंद्र त्रिचिनापल्ली को कहा जा सकता है। यहीं पर वर्तमान तामिल-प्रांतीय हिंदी-प्रचार-कार्यालय भी है। इसी स्थान पर दक्षिण-हिंदी प्रचार के प्राण श्रीदेवदासजी के दाहने हाथ और परम मित्र स्वर्गीय पंडित प्रतापनारायणजी वाजपेयी प्रचार-कार्य करते रहे थे, जिनके विद्यार्थी कॉलेजों से निकलकर एक त्रिची ही में नहीं, तामिल तथा केरल आदि के सभी शहरों में मौजूद हैं, जिनके द्वारा हिंदी की पुकार इस लंबे-चौड़े क्षेत्र में प्रत्येक कोने पर पहुँच गई है, और जिन वाजपेयीजी को हम आज स्वप्न में भी नहीं भूल सकते। परंतु अपनी उदासीनता तथा अपने बड़प्पन के सामने ज़रूर हम उनका नाम लेना या उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना घोर पाप समझते हैं। हममें से कुछ चाहे अपनी प्रांतीयता पर आयें, चाहे कुछ मातृभाषा

के प्रचार में प्रीति एवं उत्साह का राग अलापें, और चाहे कुछ राष्ट्रभाषा-प्रचार को अपना कर्तव्य-मात्र ही समझें, पर वे सब अवश्य उन आत्माओं के उद्देश्य से दूर भाग जाते हैं, जिन्होंने अपने प्राण निछावर कर इस वृक्ष को लगाया था। उस त्रिची में तो अवश्य ही हिंदी की पताका उस तपस्वी के तप के बल पर अब भी फहरा रही है; परंतु अन्य स्थानों की दशा हृदय-विदारक ही है।

पहले तो, जैसा ऊपर कहा गया है, इस ओर कार्यालय की दृष्टि ही नहीं के बराबर रही। दूसरे जहाँ कहीं उत्तरीय प्रचारक आए, उनके लिये यह प्रांत भाषा, भेष, भूषा, सभी में विलक्षण था। पर वे लोग, कार्यालय की थोड़ी-सी विचार-हीन दृष्टि होने से, अपनी असुविधाओं और कष्टों का अनुभव कर, एक ही वर्ष में वापस चले गए।

कार्यालय ने फिर कभी प्राण-पण से कार्य करनेवालों को उत्तर-भारत से बुलाने और उनकी उपस्थिति में प्रचार-कार्य से होनेवाले लाभ तथा उन्नति एवं परिस्थिति पर प्रभाव का अनुमान तक शायद नहीं किया। उनके ध्यान में शायद यह कभी नहीं आया कि जिसकी मातृभाषा ही राष्ट्रभाषा होने जा रही है, उसे उसके प्रचार में कितना हार्दिक प्रेम, उत्साह तथा मार्मिक ममता होगी। वह एक मिशनरी की भाँति अपने दुस्साध्य इष्ट की पूर्ति के लिये कौन-सा काम बिना किए छोड़ेगा? वह 'मरता क्या न करता' के अनुसार अपने उद्देश्य (सिद्धांत) के लिये, आवश्यकता पड़ने पर, अपना सर्वस्व तक निछावर करने के लिये उद्यत रहेगा। परंतु उनका ध्यान तथा विश्वास सिर्फ़ स्थानीय युवकों को तैयार कर नौकरी पर ही लक्ष्य रखनेवाले वेतनभोगी प्रचारक रखने की ओर आकृष्ट हुआ। नौकर, स्वेच्छा-प्रेरित प्रचारक या मिशनरी में कितना अंतर होता है, यह तो सभी लोग आसानी से समझ सकते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे इस तामिल-प्रांत में हिंदी प्रचार की वर्तमान परिस्थिति है। जहाँ कहीं उत्तर-भारत से आए हुए ये पुराने प्रचारक एक या दो साल रहे कि कार्य अपनी गति से दिन-दूना बढ़ता रहा। परंतु उनके ग़ायब होते ही, यद्यपि उनके स्थान इन नवशिक्षितों से भर गए, तथापि, कार्य वहीं अमावस का चंद्रमा-सा देख पड़ने लगा। आज तामिल प्रांतीय कार्यालय की जो रिपोर्ट प्रकाशित हो रही है, वह इसी अंधकार का इतिहास-मात्र है।

क्या हमने विचार करके इन त्रुटियों के कारण खोज निकालने की कभी कोशिश की है? हम आपस में तो बहुत अधिक एक दूसरे के दोष निकालते हैं, एक दूसरे के अधिकारों पर उँगली उठाते हैं; किसी की स्पष्टवादिता पर आपत्ति करते हैं, किसी के किसी को न बुलाने पर गाल फुलाते हैं, किसी को षड्यंत्रकार कहते और किसी को बेकार बतलाते हैं; पर क्या कभी यह भी किसी से पूछते हैं कि हमारे काम में कौन-सी कमी या ग़लती हो रही है? अपने को बड़ा कहने, पत्रों में नाम निकाल देने या किसी पद पर नियत हो जाने-भर ही से हम बड़े नेता या प्रधान कार्यकर्ता नहीं हो सकते। हाँ, काग़ज़ों या ज़बानों पर भले ही हमारा नाम मशहूर हो जाय, भले ही किसी से कुछ समय के लिये बड़ाई पा लें। पर इस आडंबर अथवा कारस्तानी से क्या लाभ? क्या इससे हमारा उद्देश्य सिद्ध होगा? क्या बड़ा पद हथियाकर या बड़ी तलब पाकर ही हम अपना कर्तव्य पूरा कर चुके? यदि ऐसा करना है, तो हमारे लिये दूसरे क्षेत्र भी मौजूद हैं। सरकारी नौकरियाँ हमें मिल सकती हैं; वहाँ हम अपनी ऐसी इच्छाओं को अच्छी तरह पूर्ण कर सकते हैं, अपने मित्रों, स्नेहियों तथा नातेदारों का भी ख़ूब भला कर सकते हैं। हमें इस राष्ट्रीय कार्य में पदार्पण न करना था। यदि किया है, तो इस तरह सुस्त होकर काम न करना चाहिए। सोचना चाहिए, दर-दर घूमना चाहिए, मन-मन का भाव जानना चाहिए, पता लगाना चाहिए कि किस कारण से इतने दिनों में इतना ख़र्च करके भी न जनता में जागृति हुई, न ऐसा हिंदी-शिक्षित समाज ही तैयार हुआ, जो इस ओर अपना हाथ बढ़ावे, और हमारा हाथ बँटावे, न पाठशाला में विद्यार्थियों को हिंदी की पढ़ाई ही सुलभ हुई। फिर भला कैसे कहा जाय कि उक्त संस्था ने सात वर्ष काम करके और एक लाख रुपए की रक़म ख़र्च करके कोई सफलता पाई है?

क्या सब दोष पेट के लिये आए हुए बेचारे प्रचारकों के ही सिर मढ़ा जायगा? उनका तो इसमें कोई दोष नहीं देख पड़ता। दोष अन्य बातों में है, दोष हम सबमें है—ख़ासकर हममें, जो कार्य और संस्था का दिमाग़ बनते और संचालन करते हैं।

किंतु बहस के लिये हम प्रचारकों को ही अगर दोषी मान लें, तो भी कार्य-संचालक कार्यालय का ही पूरा दोष प्रतीत होगा कि उसने ऐसे प्रचारक क्यों पैदा किए, जो पूरी तौर

से भाषा को समझ ही नहीं पाए हैं, न उनका ज्ञान दूसरों के सिखाने के लिये काफ़ी है। वे जब हिंदी-साहित्य के सर्वस्व भक्त-शिरोमणि सूरदास, तुलसीदास, कबीर आदि से स्वयं अच्छी तरह परिचित नहीं हैं, तो फिर बेचारे शिक्षार्थी शिष्यों को क्या सिखलावेंगे? जनता उनसे कौन-सा लाभ उठाने की आशा रक्खेगी, किस तरह आकृष्ट होगी? साधारण बोलचाल की भाषा तो लोग पुस्तकों के सहारे घर-बैठे सीख सकते हैं। इसके लिये तो एक डाक-पत्र आदि—द्वारा सिखाने का ही रास्ता काफ़ी था। वह अधिक सफल भी होता। इन तीस-चालीस रुपए मासिक पानेवाले शिक्षकों से कौन विशेष लाभ है? ये तो शिक्षार्थी के लिये साधारण एक-दो रुपए के कोष या व्याकरण की पुस्तक से भी कम उपयोगी हैं। फिर इन्हें जनता या शिक्षार्थी क्यों धन दें?

इसे भी जाने दीजिए। कार्यालय ने स्वतंत्र रूप से प्रचार के लिये क्या क्या किया है? कौन-सी स्कीम ख़ास तौर से प्रचारकों के सामने अमल करने के लिये रक्खी है? कौन-सा क्षेत्र-विशेष उनको दिखाया है? कौन-सा रास्ता उनके कार्य को सुगम या सफल करने के लिये निकालकर बताया है? कौन-सा सुगम पढ़ाई का ढंग निकाला तथा पढ़ाई की कठिनाइयाँ दूर करने का तरीक़ा सोचा है? शिक्षार्थियों को उनके अध्ययन में कौन-कौन-सी कठिनाइयाँ आम तौर से होती हैं, यह जानकारी कब और किस रूप में प्राप्त की गई है? हमें सात वर्षों में प्रांतीय भाषा के पत्रों या कार्यालय के मुखपत्र-विशेष में शायद एक भी ऐसा लेख नहीं मिला, जिसका संबंध उक्त किसी बात से हो, या जिसमें हिंदी-प्रचार-कार्य की प्रगति एवं उन्नति का वर्णन हो। न हम ऐसे पैंफ्लेट ही पाते हैं, जो स्थानीय जनता में राष्ट्रभाषा के प्रति श्रद्धा-भक्ति तथा उत्साह उत्पन्न करने में सहायक हों, उनमें जागृति पैदा करें। यह तो हमारा राष्ट्रीय आंदोलन है। अन्य देशों आंदोलनों के लिये पत्रों द्वारा कैसी चिल्ल-पुकार मचाई जाती है! स्थान-स्थान पर व्याख्यान दिए जाते हैं। सुसंगठित आंदोलन से निर्जीव संस्थाएँ भी उथल-पुथल मचा देती हैं। और तो और, यह संस्था तो अपना संगठन भी इस प्रांत में पक्की नींव पर नहीं जमा पाई। कहाँ से जमे? इस ओर किसी का ध्यान भी रहा हो? संगठन करने के लिये प्रमुख प्रांतीय तथा उत्तरीय नेताओं के सम्मिलित डेपुटेशन के दो-तीन बार भ्रमण की परमावश्यकता है। ये लोग स्थान-स्थान पर ठहरें, स्थानीय प्रमुख सज्जनों को अनुकूल बनावें। शिक्षणालय आदि के अधिकारीवर्ग को यह बात सुझावें कि उनका तथा संस्था का क्या उद्देश्य है। उनके चित्त का भ्रम तथा भय दूर करें, और दिखावें कि यह संस्था किसी दल-विशेष की नहीं है, दलों के दलदल से अलग है। इसकी सहायता स्थानीय सज्जन किस प्रकार कर सकते हैं, उनके साथ कार्यालय का स्थायी घनिष्ठ संबंध कैसे स्थापित किया जाय, इस कार्य की उन्नति के लिये कौन मार्ग सुलभ एवं मज़बूत है, कौन कार्य इसे स्वावलंबी बना सकेंगे, इन सभी बातों पर विचार और तदनुसार कार्य किया जाय।

सात समुद्र-पार से यहाँ धर्म-प्रचारार्थ आनेवाले मिशनरियों के तरीक़े देखिए। हमारे लिये कैसी-कैसी सुंदर मनोहर पुस्तकें तैयार कर मुफ़्त में वितरण करते हैं। हमारा चित्त हरने के लिये नाटक, गान आदि आकर्षक उत्सव करते हैं। समय कुसमय हमारी सहायता करते, हमारी बीमारी, ग़रीबी आदि दशाओं पर दया दिखाते और वज़ीफ़े देते हैं। हमको लुभाने के लिये अनेक कार्य करते हैं। परंतु क्या हमारी संस्था इतनी भारी रक़म लुटाकर भी उनके समान एक भी ऐसा काम कर सकी है, जो जनता को हिंदी की ओर खींचने में समर्थ होता? पुस्तकें, जो बेचने के लिये तैयार की गईं, वे भी तो ऐसी नहीं कि उन्हें देखते ही किसी को ख़रीदने का आग्रह हो। बच्चे उनमें न ऐसा कोई आकर्षण, न चित्र और न सौंदर्य ही देख पाते हैं कि वे माता-पिता की गोद में जाकर मचल पड़ें और उन्हें ख़रीदने के लिये मजबूर करें। पढ़नेवाले, जो पैसा देकर पढ़ने लगते हैं, स्वयं दोष निकालने लगते हैं। भाषा भी तो अनेक स्थानों पर विशुद्ध एवं सरल या मुहावरेदार नहीं है। हमारे 'हिंदी-प्रचारक' का पूर्ण परिचय सिर्फ़ एक बात से मिल जायगा।

अब तक मैंने पाठक महानुभावों के सामने सिर्फ़ तामिल-प्रांतीय हिंदी-प्रचार की बातें ऊपर-ऊपर रक्खी हैं। अगर कार्य के अंदर कुछ और भी हों, जिनसे हम लोग परिचित नहीं रहते, तो आश्चर्य नहीं। ऐसी अवस्था में देश का क्या कर्तव्य है, यह मैं अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार निश्चित नहीं कर सकता। सिर्फ़ दो शब्दों में आप सब उत्तर-भारतीयों, तथा हिंदी-भाषा-प्रेमियों तथा राष्ट्रभाषा का स्वप्न देखनेवालों का ध्यान इस ओर

आकर्षित करता हूँ कि इस ओर दया की दृष्टि से देखिए। इस नवजात पौदे की रक्षा कीजिए, इसे अच्छा खाद और स्वच्छ हवा दीजिए, ताकि यह लहलहा उठे, इसमें शाखा पड़ें, इससे फूल और फलों की आशा हो। और कुछ नहीं।

रघुवरदयालु मिश्र

अमीर खुसरो

उपक्रम

भारतवर्ष में जो अनेक प्रसिद्ध मुसलमान कवि, लेखक और विद्वान् हुए हैं, अमीर खुसरो उन सबके शिरोमणि थे। स्वर्गीय मौलाना 'शिबली' ने उनकी जीवनी में लिखा है—× × × "हिंदोस्तान में छै सौ बरस से आज तक इस दर्जे का जामे-कमालात—(सर्वगुण-संपन्न विद्वान्) नहीं पैदा हुआ, और सच पूछो, तो इस क़दर मुख़्तलिफ़ और गूनागूँ औसाफ़ के जामा (जिसमें इतनी विविध प्रकार की विशेषताएँ हों) ईरान और रूम की ख़ाक (भूमि) ने भी हज़ारों बरस की मुद्दत में दो ही चार पैदा किए होंगे।"

मिर्ज़ा ग़ालिब की नाज़ुकख़्याली मशहूर है, उनकी परख और नज़र बहुत ऊँची थी, वह अमीर खुसरो के सिवा किसी हिंदोस्तानी फ़ारसी-लेखक या कवि के क़ायल नहीं थे, केवल खुसरो ही को आदर्श मानते थे। उन्होंने किसी विवादास्पद प्रसंग में अपने एक मित्र को लिखा है—

"× × × मैं अहले-ज़बान का पैरो (अनुयायी) हूँ और हिंदियों में सिवा अमीर खुसरो देहलवी के सबका मुनकिर (न माननेवाला) हूँ।" यही बात उन्होंने फिर एक दूसरे पत्र में लिखी है—

"× × × ग़ालिब कहता है कि हिंदोस्तान के सुख़नवरों (कवियों) में अमीर-खुसरो देहलवी के सिवा कोई उस्ताद मुसल्लिम-उस् सबूत (माननीय प्रामाणिक विद्वान्) नहीं हुआ।" ग़ालिब को जाननेवाले जानते हैं कि इस सम्मति का कितना महत्त्व और मूल्य है। वह व्यक्ति सच-मुच धन्य है, जिसे ग़ालिब इस तरह सराहते हैं! फ़ारस के विद्वानों ने भी अमीर खुसरो की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है, उनकी उस्तादी के सामने सिर झुकाया है। खुसरो फ़ारसी ही के नहीं, अन्य कई भाषाओं के भी पारंगत विद्वान् थे। गान-विद्या के भी वह आचार्य थे। बहुत से नए राग और रागिनियाँ उनके बनाए हुए मशहूर हैं। वीणा का परिवर्तित रूप सितार उन्हीं का ईजाद है। इसके अतिरिक्त वह एक शूर-वीर सैनिक भी थे। शस्त्र-विद्या उनकी कुल-विद्या थी। वह उम्र-भर शाही दरबारों में बड़े-बड़े पदों पर रहे। उन्होंने ११ बादशाहों को दिल्ली के तख़्त पर उतरते और बैठते देखा, और ७ बादशाहों के स्वयं दरबारी रहे। इस प्रकार रात-दिन राजसेवा में संलग्न रहते हुए जितनी साहित्य-सेवा खुसरो ने की, उसे देखकर आश्चर्य होता है। बड़े-बड़े एकांत-सेवी साहित्य-सेवी भी इतना न कर सके होंगे। बाईस-तेईस ग्रंथों के अतिरिक्त हज़ारों फुटकर पद्य भी उनके प्रसिद्ध हैं। उनके पद्यों की संख्या कई लाख लिखी है। 'तज़किरए-इरफ़ात' में लिखा है—"अमीर साहब का कलाम (कविता) जिस क़दर फ़ारसी में है, उसी क़दर ब्रजभाषा में।" पर दुर्भाग्य से अमीर खुसरो की हिंदी-कविता, कुछ फुटकर पद्यों को छोड़कर, इस समय नहीं मिलती, यद्यपि खुसरो हिंदी-कविता के नाते ही सर्वसाधारण में प्रसिद्ध हैं। खुसरो की हिंदी-कविता के विनाश का 'श्रेय' मुसलमानों की हिंदी-विषयक उपेक्षा ही को है। इस दुर्घटना के लिये मौलाना मुहम्मद अमीन चिड़ियाकोटी ने मुसलमानों को उपालंभ दिया और हिंदुओं की गुणग्राहिता को सराहा है कि खुसरो और दूसरे मुसलमान हिंदी-कवियों की जो थोड़ी-बहुत हिंदी-कविता अब तक नष्ट होने से बची हुई है, यह हिंदुओं ही की कृपा का फल है। मुसलमानों ने हिंदी और हिंदुओं को मिटाने में कभी कमी नहीं की। अरब और तुर्किस्तान की मामूली-मामूली बातों की मुसलमानों को जितनी चिंता है—अरब का ऊँट किस तरह जुगालता है और हुदीख़्वाँ (ऊँट हाँकनेवाला) किस तरह बलबलाता है, गाता है—इसका जितना महत्त्व उनकी दृष्टि में है, उसका सहस्रांश भी यदि खुसरो की हिंदी-कविता का मान या अभिमान उन्हें होता, तो यह अनर्थ न हो पाता। यदि आज अमीर खुसरो की हिंदी-कविता अपने असली रूप में और पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हुई होती, तो भाषा-साहित्य के इतिहास-ज्ञान में कितनी सहायता पहुँची होती।

मुसलमानों में इस व्यापक नियम के अपवाद-स्वरूप कुछ सहृदय सज्जन हुए हैं सही, जैसे मीरगुलामअली 'आज़ाद' बिलग्रामी, (जिन्होंने 'सर्व आज़ाद' में बिलग्राम

के मुसलमान हिंदी-कवियों का विस्तृत वर्णन करके अपनी भावुकता का परिचय दिया है); पर बहुत ही कम, ऐसे ही जैसे अँगरेज़ों में भारतभक्त, उदाहरणार्थ एंड्रूज़ साहब, या स्वराजिस्टों में हिंदुत्व का पक्षपाती एकआध हिंदू। अस्तु। अमीर ख़ुसरो जन्मसिद्ध कवि थे—मा के पेट से कवि पैदा हुए थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि मेरे दूध के दाँत अभी न टूटे थे कि मैं शेर कहता था, और मुँह से कविता के मोती झड़ते थे। 'सेरुल औलिया' और 'सीरउल् आरफ़ीन' में लिखा है कि अमीर ख़ुसरो अभी पाँच ही बरस के थे कि दिल्ली में पहुँचे। बाप बचपन ही में मर गए, नाना ने इन्हें पाला। जब यह दिल्ली गए, तो उन दिनों दैवयोग से निज़ामुद्दीन औलिया का डेरा इनके ननिहाल में था। निज़ामुद्दीन सूफ़ी-सम्प्रदाय के पक्के मुसल्लम फ़क़ीर थे (दिल्ली के हसन निज़ामी उन्हीं की दरगाह के मुजाविरों में एक हैं). मुरीद बनाना यानी चेले मूँडना इनका धार्मिक व्यवसाय था। ख़ुसरो के पिता और नाना भी उनके भक्तों में थे। ख़ुसरो को इसी अवस्था में इनके चरणों में चढ़ा दिया गया, दीक्षा दिला दी गई। प्रेम-पंथ की शृंगारिक कविता का उपदेश ख़ुसरो को इन्हीं रसिया गुरु से मिला। इन्होंने इस विषय में यह मंत्र दिया—"बतर्ज़ सफ़ा हानियान् बिगो" यानी इश्क़-अंगेज़ व ज़ुल्फ़ो-ख़ाल-आमेज़। अर्थात् इश्क़िया शायरी करो।

ख़ुसरो के पाँच दीवान (कवितासंग्रह ग्रंथ) हैं, जिनमें सबसे पहला 'तोहफ़तुस्सिग़िर' है। इसमें १६ वर्ष की उम्र से १९ वर्ष तक की कविताओं का संग्रह है। इसकी भूमिका में ख़ुसरो ने अपनी कविता का मनोरंजक और शिक्षाप्रद प्रारंभिक वर्णन किया है। लिखा है—"ईश्वर की दया से मैंने १२ बरस की उम्र में बैत और 'रुबाई' कहनी शुरू की। उस समय के कवि विद्वान् सुन सुनकर आश्चर्य प्रकट करते थे। उनकी आश्चर्य-पूर्ण प्रशंसा से मेरा उत्साह बढ़ता था। वे मुझे उभारते थे। मेरी यह दशा थी कि साँझ से सबेरे तक चिराग़ के सामने कविता लिखने-पढ़ने में तल्लीन हो अभ्यास करता और मस्त रहता था। अभ्यास करते-करते दृष्टि सूक्ष्म हो गई, कविता की बारीकियाँ सूझने लगीं। कविता-प्रेमी साथी मेरी बुद्धि की परीक्षा लेते थे, इससे हृदय में और भी उमंग बढ़ती थी—दिल गरमाता था,—और दिल की गर्मी ज़बान में उतरकर कविता को चमकाती थी। इस समय तक कोई गुरु न मिला था, जो कविता की दुर्गम घाटियों में कुशलता से चलने की राह बताता क़लम को उलटे रास्ते चलने से रोकता, दोषों से बचाकर गुणों का उत्कर्ष दिखाता। मैं स्वाभ्यासी तोते की तरह अपने ही ख़्याल के दर्पण के सामने बैठा-बैठा कविता का अभ्यास करता था—कविता का मर्म और कविता करना सीखता था,—दिल के लोहे को अभ्यास की 'सान' पर रगड़-रगड़ तेज़ करता रहा। प्राचीन सत्कवियों के ग्रंथों का स्वाध्याय निरंतर करता था। इस प्रकार करते-करते कविता के मर्म को समझने लगा, भावुकता प्राप्त हो गई। 'अनवरी' और 'सनाई' की कविता को विशेष रूप से आदर्श मानकर देखता था। जो अच्छी कविता नज़र आती, उसी का जवाब लिखता। जिस कवि की कविता का मनन करता, उसी के ढंग पर स्वयं लिखता। बहुत दिन तक 'ख़ाक़ानी' (ईरान का एक प्रसिद्ध कवि) की कविता से लिपटा रहा। उसकी कविता में जो ग्रंथियाँ थीं, उन्हें सुलझाता। यद्यपि उसके दुरूह स्थलों पर नोट लिखता था, पर लड़कपन और स्वाभ्यास के कारण कठिन कविता का भाव अच्छी तरह न खुलता था। मेरा उत्साह और कल्पना-शक्ति आकाश में उड़ती थी; पर उस्ताद ख़ाक़ानी की कविता इतनी उच्च कोटि की थी कि उस तक मेरी बुद्धि नहीं पहुँचती थी। तथापि अनुकरण करते-करते तबियत बढ़ने लगी। मेरी कविता का कोई विशेष आदर्श नियत न था, हर उस्ताद के रंग में कहता था, इसलिये इस संग्रह (तोहफ़तुस्सिग़िर) में नया-पुराना सब रंग मौजूद है।"

"बचपन में बाप ने पढ़ने के लिये मकतब में बिठाया। वहाँ यह हाल था कि क़ाफ़िए की तकरार थी—क़ाफ़िया ढूँढने से काम था। मेरे उस्ताद मौलाना सादुद्दीन ख़त्तात सुलेख के अभ्यास की आज्ञा देते थे; पर मैं अपनी ही धुन में था। वह पीठ पर कोड़े लगाते, और मुझे ज़ुल्फ़ो-ख़ाल (अलक, तिलक) का सौदा था। इसी उधेड़-बुन में यहाँ तक नौबत पहुँची कि मैं इसी छोटी उम्र में ऐसे शेर और ग़ज़ल कहने लगा कि जिन्हें सुनकर बड़े-बूढ़ों को आश्चर्य होता था। एक बार सुबह के वक़्त मेरे उस्ताद को ख़्वाजा असील नायब कोतवाल ने ख़त लिखने के लिये बुलाया। मैं दवात-क़लम लेकर साथ गया। असील के घर में ख़्वाजा अज़ीज़ुद्दीन नज़रबंद थे। ख़्वाजा साहब बहुत

बड़े विद्वान् और कविता के पूरे पारखी थे। जब हम वहाँ पहुँचे, तो वह स्वाध्याय में संलग्न थे—मुताला-ए-किताब में मसरूफ़ थे। किताब देखते-देखते जब कभी वह कुछ कहने लगते थे, तो उनके मुँह से मोती झड़ते थे। जवाहर आबदार ज़बान से निकलते थे। मेरे उस्ताद ने उनसे कहा कि 'यह मेरा ज़रा-सा शागिर्द (छोटा-सा शिष्य) इस बचपन में कविता का बड़ा प्रेमी है, शेर पढ़ता भी ख़ूब है, किताब इसे देकर इम्तहान लीजिए।' ख़्वाजा अज़ीज़ ने फ़ौरन् किताब मुझे देकर सुनाने की फ़रमाइश की। मैंने शेर मधुर गीत के स्वर में पढ़ने आरंभ किए। उसके प्रभाव से सुननेवालों की आँखें डबडबा आईं, चारों ओर से शाबाश की आवाज़ें आने लगीं। फिर मेरे उस्ताद ने कहा कि 'पढ़ना सुन लिया, अब कोई मिसरा (समस्या) देकर कविता-शक्ति की परीक्षा लीजिए।' ख़्वाजा साहब ने चार अनमिल चीज़ों के नाम लेकर कहा कि इन्हें सार्थक पद्यबद्ध करो। वे नाम मू (बाल), बैज़ा (अंडा), ख़रबूज़ा और तीर (बाण) थे। मैंने तत्काल इन्हें 'रुबाई' में बाँधकर सुनाया*। जिस वक़्त मैंने यह रुबाई पढ़ी, ख़्वाजा ने बहुत ही प्रशंसा की, और नाम पूछा। मैंने कहा—'ख़ुसरो'। फिर बाप का नाम-धाम और अता-पता पूछकर कहा कि तुम अपना तख़ल्लुस (कविता का उपनाम) 'सुलतानी' रक्खो। इसके पीछे बहुत-सी बातें मेरा दिल बढ़ाने की कीं, और कवित्व-कला के संबंध में बहुत-सी भेद की बातें बता दीं, जिन्हें मैं दिल में रखता गया। उस दिन से मैंने अपना उपनाम 'सुलतानी' रक्खा। इस दीवान के प्रायः पद्यों में वही नाम काम में आया है। इसके बाद मैं बारीक मज़मूनों के पीछे पड़ा रहा। यह सब कुछ हुआ, पर ज़माना लड़कपन का था, इसलिये कभी अपना कलाम (कविता) जमा करने का ख़्याल नहीं किया। मेरा भाई ताजुद्दीन ज़ाहिद, जिसकी विवेचना-शक्ति कविता-कामिनी का सिंगार करने में समर्थ है, मेरे पद्यों का संग्रह कर लेता था, और जो कुछ मैंने १६ बरस की उम्र से १६ बरस की उम्र तक कहा, उस सबका उसने संग्रह बना डाला। मैंने उसे देखकर कहा कि यह तो पानी में डुबो देने क़ाबिल है। पर उसने न माना और कहा कि इसे सिलसिलेवार कर दो। भाई के आग्रह से मैंने संग्रह का विभाग करके प्रत्येक परिच्छेद के आरंभ में परिच्छेद-सूचक एक-एक पद्य लगा दिया। क्रमविभाग का यह प्रकार मेरा आविष्कार (ईजाद) है, मुझसे पहले किसी ने यह सिलसिला क़ायम नहीं किया। इस दीवान का नाम 'तोहफ़तुस्सिग़िर' (लड़कपन का कलाम) है। निस्संदेह यह कविता बहुत ऊटपटाँग है, मैंने बहुत चाहा कि यह जमा न की जाय, पर यार-दोस्तों ने और ख़ासकर भाई ताजुद्दीन ने न माना, बराबर आग्रह करते रहे। मैं भाई के कहने को न टाल सका। स्नेह ने हम दोनों भाइयों में अभेद-बुद्धि उत्पन्न कर दी है, अभिन्न-हृदय बना दिया है—दोनों को एक कर दिया है—

"बस कि जानम् यगाना शुद बाऊ,
दर गुमानम् कि ईं मनम् या ऊ।"

—"मेरी आत्मा इस प्रकार उसमें मिल गई है कि मैं सोचने लगता हूँ, मैं यह हूँ या मैं वह हूँ!"—भाई का अभिप्राय इस तुकबंदी के जमा करने से यह था कि यह भी किसी शुमार में आ जाय। मैं कहता था कि लोग एतराज़ (आक्षेप) करेंगे। भाई कहता था कि बुद्धिमान् यह समझकर कि (जैसा इस संग्रह के नाम से प्रकट है) यह लड़कपन का कलाम है, एतराज़ (आक्षेप) न करेगा, और अनभिज्ञ के आक्षेप का मूल्य ही क्या। मैं कहता था कि इसमें 'शुतरग़ुरबा' (ऊँट-बिल्ली का-सा साथ, वैषम्य दोष) बहुत है। उसका उत्तर था कि लोग इसे तावीज़ बनाकर बाज़ू (बाहु) पर बाँधेंगे। निदान भाई के आग्रह से इस संग्रह को सहृदयों की सेवा में समर्पित करता हूँ, आशा है, वे इसे स्वीकार करेंगे।"

यह ख़ुसरो की उस भूमिका का भावार्थ है, जो उसने अपने पहले दीवान 'तोहफ़तुस्सिग़िर' पर लिखी है। इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि अमीर ख़ुसरो को कवि-सम्राट् किस चीज़ ने बनाया। स्वाभाविकी प्रतिभा, स्वाध्यायशीलता, उत्साहसंपन्नता, निरंतर अभ्यास और लगन, यही सब बातें अमीर ख़ुसरो को कवि-सम्राट् बनाने में कारण थीं। समझदार सोसाइटी, साथियों की छेड़छाड़, बड़ों की उत्साह-वर्द्धक समालोचना, इन सबने मिलकर

---

* वह फ़ारसी 'रुबाई', जिसमें इन चार अनमिल चीज़ों को मिलाया है, अस्पष्ट है। मौलाना 'शिबली' लिखते हैं कि "जिस पुरानी पुस्तक से यह रुबाई नक़ल की है, वह ग़लत थी, मैंने (शिबली ने) उससे वैसी ही नक़ल कर दी है।"

लेखक के प्रमाद से मूल पाठ अशुद्ध है। इस दशा में अर्थ सुतरां अस्पष्ट है। इससे यहाँ दोनों का उल्लेख किया है।—लेखक

उन कारणों को और कार्यक्षम बना दिया, ख़ुसरो की कविता को चमका दिया। फिर क़द्रदान भी ऐसे मिले कि न मिले होंगे किसी को। ख़ुसरो को कई बार कविता के पुरस्कार में हाथी-बराबर तोलकर रुपए मिले थे।

अमीर ख़ुसरो ने अपनी तरक़्क़ी का जो गुर लिखा है, वह बहुत ही उपादेय है, उन्नति-मार्ग के पथिकों का पाथेय (तोशा) है। ख़ुसरो के उन पद्यों का भाव यह है—"जो कोई मेरी प्रशंसा करता है, यद्यपि वह सच हो, तो भी, मैं उस पर कान नहीं देता ; क्योंकि प्रशंसा आदमी को अभिमत्त बनाकर रास्ते से दूर हटा देती है, मिथ्या स्तुति धोके में डालकर हानि पहुँचाती है, जैसे नादान बच्चे गुड़ से फुसलाकर ठग लिए जाते हैं। जो सचमुच कविता-रत्न के पारखी हैं, उनकी निंदा भी प्रशंसा है। मैं स्वयं अपनी कविता के गुण-दोषों पर ध्यान-दृष्टि रखता हूँ, अच्छी कविता की कोई प्रशंसा न करे, परवा नहीं, मैं ख़ुद उसे सराहता हूँ।"

इस प्रकार निरंतर लगन के साथ अभ्यास करते-करते अमीर ख़ुसरो ने वह कमाल हासिल किया कि शेख़ सादी और हाफ़िज़-जैसे 'बुलबुले-शीराज़' भी इस 'तूतिए-हिंद' (यह ख़ुसरो का ख़िताब था) के सम्मोहन स्वर से मोहित होकर प्रशंसा करते थे। एक लेखक ने तो यहाँ तक लिखा है कि शेख़ सादी शीराज़ी ख़ुसरो से मिलने के लिये शीराज़ से दिल्ली में आए थे। पर शेख़ सादी का हिंदोस्तान में आना इतिहास से सिद्ध नहीं होता। हाँ, इस पर सब इतिहास-लेखक सहमत हैं कि जब सुलतान शहीद ने 'सादी' को शीराज़ से बुलाया, तो उन्होंने बुढ़ापे के कारण आना स्वीकार न किया, और लिख भेजा कि "ख़ुसरो का सम्मान कीजिए, वह एक आदरणीय रत्न हैं।" उस समय ख़ुसरो की उम्र बत्तीस के लगभग थी। इसी अवस्था में सादी-जैसे महाकवि से प्रशंसा का सार्टिफ़िकेट पा जाना ख़ुसरो की महत्ता का सूचक है।

प्रारंभिक अवस्था में ख़ुसरो अपनी कविता किसी कविता-गुरु को न दिखाते थे, प्राचीन महाकवियों को गुरु मानकर उन्हीं के आदर्श पर रचना करते थे। पर आगे चलकर उन्होंने 'शहाब' को कविता-गुरु बना लिया था। 'शहाब' की 'अमीर' ने बहुत तारीफ़ की है। ख़ुसरो ने 'निज़ामी' के जवाब में जो अपनी पाँच मसनवियाँ लिखी हैं, वे 'शहाब' की देखी—शोधी—हुई हैं, और इसके लिये ख़ुसरो ने अपने उस्ताद का बहुत उपकार माना है। कैसा आश्चर्य है कि उसका आज कोई नाम भी नहीं जानता, जिसे कवि-सम्राट् अमीर ख़ुसरो के काव्य-गुरु होने का गौरव प्राप्त था !

अपनी माता से अमीर ख़ुसरो को अनन्य प्रेम था। बड़ी उम्र में भी वह इस तरह माता से मिलते थे, जैसे छोटे बच्चे मा को मुहब्बत से लिपट जाते हैं। ख़ुसरो ने अवध के सूबे की नौकरी का ऊँचा पद केवल इसी कारण छोड़ दिया था कि माता दिल्ली में उन्हें याद करती थी। अवध से आकर जब दिल्ली में मा से मिले हैं, तो उस मुलाक़ात का हाल इस जोश से लिखा है, जिसके एक-एक शब्द से प्रेम का मधु टपकता है।

जब माता का देहांत हुआ, तो ख़ुसरो की अवस्था ४८ वर्ष की थी। माता की मृत्यु के मरसिए में इस तरह विलाप किया है, जैसे छोटा बच्चा मा के लिये बिलखता है। भाई का मरसिया भी बड़ा करुणाजनक लिखा है।

ख़ुसरो कहीं बाहर किसी मुहिम पर थे कि पीछे अचानक कुछ आगे-पीछे माता और भाई, दोनों का एक-साथ देहांत हो गया। दोनों का मरसिया "लैला-मजनूँ"-मसनवी के अंत में बड़ा ही करुणा-पूर्ण है, पढ़कर दिल पर चोट लगती है।

अमीर ख़ुसरो के दो संतान थीं, एक पुत्र एक पुत्री। पुत्र का नाम 'मलक अहमद' था। यह भी कवि और समालोचक थे; इन्हें कविता में तो प्रसिद्धि प्राप्त न हुई, पर अपने समय में यह समालोचना के लिये प्रसिद्ध थे। कविता-कला के पूरे मर्मज्ञ थे, बड़े-बड़े कवियों की कविता में उचित संशोधन कर डालते थे जिन्हें कवि विद्वान् पसंद करते थे। मलक अहमद सुलतान फ़ीरोज़शाह के दरबारी थे।

जब ख़ुसरो साहब ने मसनवी 'लैला-मजनूँ' लिखी है, उस वक़्त इनकी पुत्री ७ वर्ष की थी। स्त्रियों की बेक़द्री उस समय भी ऐसी ही थी। ख़ुसरो को भी खेद था कि पुत्री क्यों पैदा हो गई। पुत्री को लक्ष्य करके जो उपदेश-वाक्य आपने लिखे हैं, उसमें अफ़सोस के साथ पुत्री से कहते हैं—"क्या अच्छा होता कि तुम पैदा ही न होतीं या पुत्री न होकर पुत्र होतीं।" फिर सोच-समझकर दिल को तसल्ली देते हैं कि ईश्वर जो दे, उसे कौन टाल सकता है।

"पिदरम् हमज़ मादर अस्त आख़िर ;
मादरम् नीज़ दुख़्तर अस्त आख़िर।"

—"मेरा बाप भी तो आख़िर माँ ही के पेट से पैदा हुआ था, और मेरी माँ भी तो किसी की लड़की ही थी !"

चर्ख़े का उपदेश

पुत्री को जो आपने उपदेश दिया है, वह बिलकुल भारतीय ढंग का और महत्त्व-पूर्ण है—

"दोकों सोज़न गुज़ाश्तन् न फ़न अस्त ;
कालते-परदापोशीए-बदन अस्त ।
पाबदामाने-आफ़ियत् सर कुन् ;
रू बदीवारो पुश्त बर दर कुन् ।
दर तमाशाए-रोज़नत् हवस अस्त ;
रोज़नन् चश्मे-सोज़ने तो बस अस्त ।"

—अर्थात् चर्ख़ा कातना और सीना-पिरोना न छोड़ना—इसे छोड़ बैठना अच्छी बात नहीं है; क्योंकि यह परदा-पोशी का – शरीर ढँकने का—साधन है। स्त्रियों को यही उचित है कि घर में दरवाज़े की ओर पीठ फेरकर और दीवार की ओर मुँह करके शांति से बैठें। इधर-उधर ताक-झांक न करें। झरोखे में से झाँकने की साध सुई के झरोखे (छिद्र) को देखकर पूरी करें।

पुत्री के प्रति ख़ुसरो के इस उपदेश पर मौलाना 'शिबली' लिखते हैं—"××× इस नसीहत से मालूम होता है कि उस ज़माने में औरतों की हालत निहायत पस्त थी। अमीर साहब इस क़दर साहबेदौलत व सर्वत (ऐश्वर्यवान्) थे, लेकिन बेटी से कहते थे कि ख़बरदार, चर्ख़ा कातना न छोड़ना, और कभी मोखे के पास बैठकर इधर-उधर न झाँकना।"

अफ़सोस है कि मौलाना शिबली का स्वर्गवास चर्ख़ा-आंदोलन के युग से पहले हो गया, वर्ना वह अमीर की इस सुनहरी नसीहत पर वज्द करते ! और देखते कि जिसे वह 'पस्ती' का सबब समझते हैं, वह संसार के सबसे बड़े नेता महात्मा के मत में उन्नति का एक-मात्र साधन है—मुक्ति का उपाय है. चर्ख़ा ही सुदर्शन चक्र है, कामधेनु गौ है, चिंतामणि है और कल्पवृक्ष है ! इस समय संसार चर्ख़े की महिमा के गीत गा रहा है, राजकुमारियाँ और रानियाँ ही नहीं, बड़े-बड़े राजकुमार और राजा महाराजा तक चर्ख़ा कात रहे हैं, वृद्ध रसायनाचार्य प्रफुल्लचंद्र राय रसायन-शास्त्र को भूलकर चर्ख़े की रसायन के पीछे पागल हो रहे हैं !

अमीर ख़ुसरो की इस दिव्य दृष्टि की दाद देनी चाहिए कि छै सौ बरस पहले चर्ख़े का उपादेय उपदेश दे गए, जिसकी उपयोगिता संसार मुक्तकंठ से आज स्वीकार कर रहा है !

ख़ुसरो की कविता

ख़ुसरो की कविता अत्यंत चमत्कार-पूर्ण, सरस और हृदय-हारिणी है। यद्यपि उन्होंने अनेक ऐतिहासिक कहानियाँ अपने आश्रयदाता बादशाहों के कारनामे और प्रशस्तियाँ लिखी हैं, जो उन्हें दरबारदारी के दबाव से लिखनी पड़ती थीं, पर उनका मुख्य रस शृंगार था। वह स्वभाव से ही सौंदर्योपासक प्रेमी पुरुष थे। फिर उन्हें दीक्षागुरु (हज़रत निज़ामुद्दीन) से भी यही उपदेश मिला कि "बतर्ज़े सफ़ाहानियान बिगो"—यानी शृंगार रस की कविता करो। ख़ुसरो उपदेशक या सूफ़ी कवि नहीं थे। कवियों के कितने भेद हैं, और कवियों में कितनी बातें होनी चाहिए, इस विषय पर लिखते हुए ख़ुसरो ने लिखा है—"शायर की तीन क़िस्में हैं, १—उस्ताद तमाम (काव्य के सब अंगों का पूर्ण आचार्य), जो किसी ख़ास तर्ज़ का मूजिद हो—प्रकार-विशेष का प्रवर्तक हो—जैसे हकीम सनाई, अनवरी, निज़ामी, ज़हीर। २—उस्ताद नीम तमाम (अर्धाचार्य !), जो किसी ख़ास तर्ज़ का मूजिद नहीं, पर किसी तर्ज़ का सफल अनुयायी है। ३—सारिक़ (चोर), जो दूसरों के मज़मून चुराता है। फिर लिखते हैं कि उस्तादी की चार शर्तें हैं—१—तर्ज़ ख़ास का मूजिद हो उसका कलाम शायरों के अंदाज़ पर हो, सूफ़ियों (वेदांतियों) और वाइज़ों (उपदेशकों) के ढंग का न हो, कविता निर्दोष हो, ग़लतियाँ न करता हो, इत्यादि लिखकर कहते हैं कि मैं दरहक़ीक़त उस्ताद नहीं; क्योंकि चार शर्तों में से मुझमें सिर्फ़ दो शर्तें पाई जाती हैं, यानी मैं मज़मून नहीं चुराता और दूसरे मेरा कलाम सूफ़ियों और वाइज़ों के अंदाज़ पर नहीं। शेष दो शर्तें मुझमें नहीं हैं, अव्वल तो मैं किसी तर्ज़ का मूजिद नहीं, दूसरे मेरा कलाम ग़लतियों से ख़ाली नहीं होता।"

साहित्य-संसार में इससे अधिक विनय और सत्यशीलता का उदाहरण कम मिलेगा ! आज संसार जिसे उस्ताद कामिल मान रहा है, वह इस तरह अपनी दीनता की घोषणा करता है। "विद्या ददाति विनयं" में सचमुच सचाई है। अस्तु।

ख़ुसरो की स्वीकारोक्ति से स्पष्ट है कि उनका कलाम

सूफ़ियाना नहीं है, और चाहे जो कुछ हो; पर आश्चर्य है कि सूफ़ी-संप्रदाय में ख़ुसरो की कविता बड़े आदर की दृष्टि से देखी जाती है, और ख़ालिस सूफ़ियाना कलाम समझकर पढ़ी जाती है, जिसे सुनकर सूफ़ी साधु आपे में नहीं रहते, सिर धुनते-धुनते बावले हो जाते हैं, अक्सर मर भी जाते हैं! इसका कारण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि ख़ुसरो का सूफ़ी-संप्रदाय से संबंध विशेष था। वह एक सूफ़ी गुरु के शिष्य थे, इसलिये ख़्वाहमख़्वाह उनका कलाम भी ख़ालिस सूफ़ियाना समझ लिया गया। शुद्ध सांसारिक शृंगार को भी परमार्थ प्रेम बतलाकर टट्टी की आड़ में शिकार खेलना सूफ़ियों के बाएँ हाथ का खेल है। खुले हुए इश्क़ मजाज़ी को छिपा हुआ इश्क़ हक़ीक़ी ज़ाहिर करना छिपे रुस्तम सूफ़ियों ही का काम है। बड़े-बड़े रिंद मशरब, शराबी और अनाचारी फ़क़ीरों और शायरों को पहुँचा हुआ सूफ़ी कहकर इन्हीं लोगों ने पुजवाया है।

मौलाना शिबली ने उमर-ख़य्याम के बारे में लिखा है—"× × × साफ़ साबित है कि वह दरहक़ीक़त शराब पीता था और यही ज़ाहरी शराब पीता था। अफ़सोस है कि वह फ़िलसफ़ी और हकीम (दार्शनिक) था, सूफ़ी न था, वर्ना हाफ़िज़ की तरह यही शराब शराबे-मार्फ़त बन जाती!" कहने को तो सूफ़ी समदर्शी और एकात्मवादी होते हैं, उनकी दृष्टि में सब धर्म और सब जातियाँ समान हैं, उन्हें किसी से राग-द्वेष नहीं होता, पर मुसलमान सूफ़ियों के आचरणों को देखते हुए यह एकात्मवाद भोले-भाले भिन्न धर्मियों को फुसलाकर भ्रष्ट करने का एक बहाना है। ख़्वाजा चिश्ती और निज़ामुद्दीन औलिया से लेकर जितने बड़े-बड़े अव्वल सूफ़ी हुए हैं। वही लोग भारतवर्ष में इस्लाम की जड़ जमानेवाले हुए हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद है—ख़्वाजा हसन निज़ामी भी तो एक प्रसिद्ध सूफ़ी हैं, और उनकी करतूतें किसी से छिपी नहीं हैं।

शेख़ सादी ने क्या पते की कही थी—

मोहतसिब दरक़फ़ाए-रिंदानस्त,
ग़ाफ़िल अज़ सूफ़ियाने-शाहिदबाज़।

—कोतवाल बेचारे रिंदों के पीछे पड़ा है, और इन बदकार सूफ़ियों के हथखंडों से बेख़बर है, इन्हें नहीं पकड़ता।

मतलब यह नहीं कि सब सूफ़ी ऐसे ही होते हैं (जैसों को शेख़ सादी पकड़वाना चाहते हैं!) या अमीर ख़ुसरो के कलाम में सूफ़ियाना रंग है ही नहीं। नहीं, यह बात नहीं है, सूफ़ियों में कहीं सच्चे सूफ़ी भी हुए होंगे और होंगे, और ख़ुसरो के कलाम में भी सूफ़ियाना रंग है और हो सकता है।

कहना यह है कि ख़ुसरो सूफ़ी भले ही हों, पर वह 'सूफ़ी शायर' नहीं थे, जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है, और जैसा कि उनका कलाम ख़ुद पुकारकर कह रहा है। अस्तु, अतिप्रसंग हो गया, सूफ़ी साधु क्षमा करें। कविता प्रेमी हर कविता को सूफ़ियों के कहने से सूफ़ियाना रंग की न समझ लिया करें, यही इस निवेदन का तात्पर्य है।

अमीर ख़ुसरो की विशेषता

ख़ुसरो में कविता की दृष्टि से यों तो बहुत-सी विशेषताएँ हैं, पर उनकी एक विशेषता मुसलमान-लेखकों में बहुत प्रसिद्ध है, जिसका उल्लेख मौलाना आज़ाद, हाली और शिबली ने कई जगह जी खोलकर किया है। वह विशेषता ख़ुसरो की कविता में 'भारतीयपन की छाप' है। फ़ारसी के जितने कवि हिंदोस्तान में हुए, वे हिंदू हों या मुसलमान, भारत-निवासी हों या प्रवासी ईरानी, सारे-के-सारे फ़ारस का ही समा बाँधते रहे, वही गुल और बुलबुल का रोना रोते रहे, हिंदोस्तान के कमल और भौंरे को, कोयल और पपीहे को कहीं भूलकर भी उन भले आदमियों ने याद नहीं किया। ऋतुओं का वर्णन है, तो वहीं की ऋतुओं का, जंगल और पहाड़ों के दृश्य हैं, तो वहीं के, उपमान और उपमेय सब वहीं के। आँख की उपमा देंगे, तो 'नर्गिस' से या 'बादाम' से। भारतीय सौंदर्य की दृष्टि से यह उपमा कितनी विरूप है, इस पर शायद ही किसी उर्दू-फ़ारसी के कवि ने ध्यान दिया हो। बहुतों ने 'नर्गिस' को आँख से देखा भी न होगा, यह आँख का उपमान कैसे बना, इसका पता भी बहुत कम कवियों को होगा। मौलाना शिबली ने लिखा है कि "××× आँख की तशबीह (उपमा) 'नर्गिस' से आम (प्रसिद्ध) है, लेकिन नर्गिस को देखा, तो उसका फूल एक गोल-सी कटोरी होती है, जिसको आँख से मुनासिबत (सादृश्य संबंध) नहीं। खोज से मालूम हुआ कि इब्तदाए-शायरी में (फ़ारसी-कविता के प्रारंभिक काल में) तुर्क माशूक़ थे। उनकी आँखें छोटी और गोल होती हैं, इसी बिना (आधार) पर पुराने शायर आँखों के छोटे होने की तारीफ़ करते हैं।"× × ×

पुराने शायर जो तारीफ़ करते थे, वह देख-भालकर करते थे। ईरान में तुर्क माशूक़ों की आँखें छोटी-छोटी और गोल-गोल होती थीं। वहाँ के लिये 'नर्गिस' की उपमा अनुरूप हो सकती है। पर भारतीय आँख के सौंदर्य का जो आदर्श है, उससे नर्गिस को क्या निसबत!

इसी तरह बुलबुल का रोना-गाना फ़ारस में तो कुछ अर्थ रखता है, पर यहाँ की बुलबुल में वह बात कहाँ? फिर भी यहाँ की फ़ारसी-उर्दू की कविता बुलबुल के तरानों से भरी पड़ी है। इस प्रसंग में मौलाना आज़ाद के एक अनुभव का, उन्हीं के शब्दों में, उल्लेख किए बिना आगे नहीं बढ़ा जाता। स्वर्गीय मौलाना आज़ाद ने फ़ारस की बहार (वसंत) का वर्णन करते हुए लिखा है—

"× × × इधर गुलाब खिला, उधर बुलबुल हज़ार-दास्तों उसकी शाख़ पर बैठी नज़र आई। बुलबुल न फ़क़त फूल की टहनी पर, बल्कि घर-घर दरख़्तों पर बोलती है और चहचहे करती है। और, गुलाब की टहनी पर तो यह आलम होता है कि बोलती है, बोलती है, बोलती है; हद से ज़्यादा मस्त होती है, तो फूल पर मुँह रख देती है, और आँखें बंद करके ज़मज़मा करते रह जाती है। तब मालूम होता है कि शायरों ने जो इसके और बहार के और गुलोलाला के मज़मून बाँधे हैं, वे क्या हैं, और कुछ असलियत रखते हैं या नहीं। वहाँ (फ़ारस में) घरों में नीम काकर के दरख़्त तो हैं नहीं; सेब, नाशपाती, बिही, अंगूर के दरख़्त हैं। चाँदनी रात में किसी टहनी पर आन बैठती है, और इस जोश व ख़रोश से बोलना शुरू करती है कि रात का काला गुंबद पड़ा गूँजता है, वह बोलती है और अपने ज़मज़मे में तानें लेती है, और इस ज़ोर शोर से बोलती है कि बाज़ मौक़े पर जब चह-चह करके जोश व ख़रोश करती है, तो यह मालूम होता है कि इसका सीना फट जायगा। अहले-दर्द के दिलों में सुनकर दर्द पैदा होता है, और जी बेचैन हो जाते हैं। मैं (आज़ाद) एक फ़सले-बहार में उसी मुल्क में था। चाँदनी रात में सहन के दरख़्त पर आन बैठती थी, और चहकारती थी, तो दिल पर एक आलम गुज़र जाता था; कैफ़ियत बयान में नहीं आ सकती। कई दफ़ा यह नौबत हुई कि मैंने दस्तक दे-देकर उड़ा दिया × × ×।"

यह है फ़ारस की बुलबुल का हाल, जिसका बयान वहाँ की बहार (वसंत) के मुनासिब-हाल है। हिंदोस्तान में ऐसी बुलबुल किसी ने कहीं देखी है! यहाँ जो चिड़िया बुलबुल के नाम से मशहूर है, उस ग़रीब पर तो किसी का यही शेर सादिक़ आता है—

"मालूम है हमें सब, बुलबुल तेरी हक़ीक़त;
एकमुश्त उस्तख़्वाँ * है, दो पर लगे हुए हैं।"

भारत के वसंत में कोकिल का कलकूजन ही आनंद देता है।

ख़ुसरो ने फ़ारसी-साहित्य के कवि-समय को सब जगह आदर्श नहीं माना। उन्होंने बहुत-सी बातों का वर्णन भारतीय ढंग से किया है। ख़ुसरो का एक फ़ारसी शेर है—

"जाह ख़रामश् आँ नाज़नीं ब अग्यारी;
कबूतरे न निशात आमदस्त पिंदारी।"

इसमें ख़ुसरो ने किसी मदमाती युवती की गति को कबूतर की मस्ताना चाल से उपमा दी है। इस पर 'शिबली' कहते हैं कि "अमीर साहब चूँकि हिंदी ज़बान से आशना (परिचित) थे, इसलिये तशबीहात (उपमाओं) में उनको ब्रज-भाषा के सरमाए से बहुत मदद मिली होगी। यह शेर ग़ालिबन् इसी ख़िरमन की ख़ोशाचीनी है। फ़ारसी-शायर माशूक़ की रफ़्तार को कबक (चकोर) की रफ़्तार से तशबीह देते थे, हिंदी में हंस की चाल आम तशबीह (प्रसिद्ध उपमा) है; लेकिन कबूतर मस्ती की हालत में जिस तरह चलता है, वह मस्ताना ख़िराम (मदमंथर गति) की सबसे अच्छी तसवीर है।"

सबसे बड़े मार्के की बात जो ख़ुसरो ने की, वह प्रेम-प्रकाशन में भारतीय साहित्य के आदर्श का अनुकरण है, अर्थात्—

"आदौ वाच्यः स्त्रियो रागः पश्चात् पुंसस्तदिङ्गितैः।"

—प्रेम का प्रारंभ पहले स्त्री की ओर से होना चाहिए, फिर स्त्री की प्रेम-चेष्टाओं को देखकर पुरुष की ओर से।

इसके औचित्य को किसी समझदार फ़ारसी-शायर ने दृष्टांत द्वारा सिद्ध किया है—

"इश्क़ अव्वल दर दिले-माशूक़ पैदा मीशवद;
ता न सोज़द शमा के परवाना शैदा मीशवद।"

अर्थात्—

"पहले तिय के हीय में उमगत प्रेम-उमंग;
आगे बाती बरति है, पाछे जरत पतंग।"

फ़ारसी-साहित्य में इसके बिलकुल उलटा होता है। वहाँ

* एक मुट्ठी हड्डियाँ।

प्रेम-प्रसंग में स्त्री का अधिकार ही नहीं। प्रेमी पुरुष प्रेम-पात्र पुरुष पर आसक्त होता है, जो बहुत ही अस्वाभाविक, प्रकृति-विरुद्ध व्यापार है। फ़ारसी का साहित्य इसी घृणित 'रसाभास' के वर्णन से भरा पड़ा है। मौलाना हाली और मौलाना शिबली ने इस पर बहुत बहस की है, फ़ारसी-साहित्य के इस प्रकार को उन्होंने निंदनीय बताया है। इस विषय में फ़ारसी-कवियों में ख़ुसरो ने भी भारतीय आदर्श का अनुकरण किया है। मौलाना 'आज़ाद' ने ख़ुसरो के संबंध में लिखते हुए लिखा है—"× × × इसमें यह बात सबसे ज़्यादह क़ाबिल लिहाज़ है कि इन्होंने (ख़ुसरो ने) बुनियाद इश्क़ की औरत ही की तरफ़ से क़ायम की थी, जो कि ख़ासा नज़्म हिंदी का है।"

मौलाना हाली ने इस संबंध में एक मनोरंजक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख किया है, जो सुनने लायक़ है—

"××× एक मौक़े पर जहाँगीर (बादशाह) के रूबरू क़व्वाल अमीर ख़ुसरो की ग़ज़ल गा रहा था, और बादशाह उसको सुनकर बहुत महज़ूज़ (आनंदित) हो रहा था। जब क़व्वाल ने यह शेर गाया—

"तो शबाना मी नुमाई ब बरे के बूदी इमशब ;
कि हनोज़ चश्मे-मस्तम् असरे-ख़ुमार दारद।"*

बादशाह दफ़तन् बिगड़ गया, और क़व्वाल को फ़ौरन् पिटवाकर निकलवा दिया, और इस क़दर बरहम (क्रुद्ध) हुआ कि तमाम नदीम (दरबारी) और ख़वास (नौकर-चाकर) ख़ौफ़ से लरज़ने लगे और फ़ौरन् मुल्ला नक़शी मोहरकन को जिनका बादशाह बहुत लिहाज़ करता था, बुलाकर लाए, ताकि वह किसी तदबीर से बादशाह के मिज़ाज को धीमा करें। जब वह सामने आए, तो बादशाह को निहायत ग़ैज़ो-ग़ज़ब में भरा हुआ पाया। अर्ज़ किया, हुज़ूर! ख़ैर बाशद! बादशाह ने कहा, देखो, अमीर ख़ुसरो ने कैसी बेग़ैरती का मज़मून शेर में बाँधा है। भला कोई ग़ैरतमंद आदमी अपनी महबूबा (प्रिया) या मनकूहा (विवाहिता) से ऐसी बेग़ैरती की बात कह सकता है? मुल्ला नक़शी ने एक निहायत उम्दा तौजीह (कारण-निर्देश) से उसी वक़्त बादशाह का ग़ुस्सा फ़रो कर दिया। उन्होंने कहा—अमीर ख़ुसरो ने चूँकि हिंदोस्तान में नशो-नुमा पाया था, इसलिये वह अक्सर हिंदोस्तान के उसूल के मुवाफ़िक़ शेर कहते थे। यह शेर भी उन्होंने उसी तरीक़े पर कहा है—गोया 'औरत अपने शौहर (पति) से कहती है कि तू रात को किसी ग़ैर औरत के यहाँ रहा है ; क्योंकि अब तक तेरी आँखों में नशे का या नींद का ख़ुमार पाया जाता है।' यह सुनकर बादशाह का ग़ुस्सा जाता रहा, और फिर गाना-बजाना होने लगा।"

मालूम होता है, जहाँगीर उस दिन कुछ ज़्यादा पिए हुए थे, तभी ज़रा-सी मामूली बात पर इस तरह बरस पड़े ; वर्ना फ़ारसी-शायरी का माशूक़ हद दर्जे का हरजाई, बे-वफ़ा, झूठा और ज़ालिम होता है। रक़ीब का रोना, हरजाईपन की शिकायत, यही तो फ़ारसी-शायरी के आशिक़ का 'क़ौमी गीत' है। अस्तु।

अमीर ख़ुसरो की इस विशेषता का वर्णन प्रायः मुसलमान कवि लेखकों ने बड़े आश्चर्य से किया है। 'सर्वे आज़ाद'-नामक फ़ारसी-ग्रंथ के लेखक ने भी इस संबंध में ख़ुसरो का उल्लेख किया है। उन्होंने अकबर बादशाह के समय की एक सतीकी घटना लिखी है कि "××× अकबर के समय में एक नौजवान हिंदू-वर की बरात आगरे में छत्ते के बाज़ार होकर लौट रही थी। अचानक बाज़ार के छत्ते की कड़ी टूटकर वर के ऊपर गिर पड़ी, जिसकी चोट से बेचारे वर की वहीं मृत्यु हो गई। अभागी वधू (दुलहिन), जो अत्यंत रूपवती युवती थी, वर के साथ सती होने लगी। जब इस घटना की ख़बर अकबर को मिली, तो दुलहिन को अपने सामने बुलाकर समझाया-बुझाया, और तरह-तरह के लालच देकर उसे सती होने से रोकना चाहा। पर सती वधू अपने व्रत से न डिगी, और पति के साथ चिता में जलकर सती हो गई *।" इस घटना का उल्लेख करके मीर ग़ुलामनबी आज़ाद लिखते हैं—

"अज़ ईं जास्त कि शोअराए-ज़बाम हिंद दर अशआर ख़ुद इश्क़ अज़ जानिबे-ज़न बयां मी कुनद् कि ज़ने हिंद् हमीं यक शौहर मी कुनद् व ओरा सरमायए ज़िंदगी मी शुमारद् व बाद मुर्दने-शौहर ख़ुदरा बा मुर्दा शौहर मी सोज़द्, अमीर ख़ुसरो मी गोयद्—

---

* इसी प्रसंग का यह बिहारी का दोहा है—
"पल सोहैं पगि पीक-रँग छल सोहैं सब बैन,
बल सोहैं कत कीजियतु, यह अलसौहैं नैन।"

* इस घटना पर शाहज़ादा दानियाल की आज्ञा से नौई शायर ने मसनवी सोज़ो-गदाज़ लिखी थी।—लेखक

खुसरवा दरइश्क़बाज़ी कमज़ हिंदूज़न मबाश,
कज़बराए मुर्दा सोज़द ज़िंदा जाने खेशरा।"

—अर्थात् यही बात है कि हिंदी-भाषा के कवि अपनी कविता में स्त्री की ओर से प्रेम का वर्णन करते हैं; क्योंकि हिंदू-स्त्री बस एक ही पति को वरती है, और उसे ही अपना जीवनसर्वस्व समझती है। पति के मरने पर मृत पति के साथ वह भी जल मरती है। अमीर ख़ुसरो ने कहा है—

—ऐ ख़ुसरो! प्रेम-पंथ में हिंदू स्त्री से तू पीछे मत रहः उसकी बराबरी कर कि वह मुर्दा पति के साथ अपनी ज़िंदा जान को जला देती है।

इसी भाव को एक और फ़ारसी-कवि ने इन शब्दों में प्रकट किया है—

"हमचु हिंदूज़न कसेदर आशक़ी मरदाना नेस्त :
सोख़्तन बरशमा मुर्दा कार हर परवाना नेस्त।"

—यानी प्रेम में हिंदू-स्त्री की तरह कोई मर्द मर्द-मैदान नहीं। मरी हुई (बुझी हुई) शमा (मोमबत्ती) के ऊपर जल मरना हर परवाने का काम नहीं है। एक उर्दू-कवि ने इस भाव को और भी चमत्कृत कर दिया है—

"निसबत् न 'सती' से दो 'पतंगे' के तई,
इसमें और उसमें इलाक़ा भी कहीं!
वह आग में जल मरती है मुर्दे के लिये,
यह गिर्द बुझी शमा के फिरता भी नहीं।"

अफ़सोस है, भारतवर्ष की एक बहुत बड़ी विशेषता, जिसे शत्रु भी मुक्तकंठ से सराहते थे, ज़माने के हाथों मिट रही है। 'सिविल मैरिज' प्रचलित हो गया, तलाक़ की प्रथा के लिये प्रस्ताव हो रहे हैं! पाश्चात्य शिक्षा की आँधी ने सबकी धूल उड़ा दी!

"ता सहर वह भी न छोड़ी तूने ऐ बादेसबाः
यादगारे-रौनक़े-महफ़िल थी परवाने की ख़ाक।"

ख़ुसरो की कविता में चमत्कार के साथ हृदय पर अधिकार करने की अद्भुत शक्ति भी है। इसके दो-एक ऐतिहासिक उदाहरण देखिए—

एक लड़ाई में ख़ुसरो सुलतान मोहम्मद (ग़यासुद्दीन बलबन के बेटे) के साथ थे। ख़ुसरो तातारियों के हाथ क़ैद हो गए, और सुलतान मोहम्मद मारा गया। दो वर्ष के बाद किसी तरह छूटकर ख़ुसरो दिल्ली पहुँचे। ख़ान शहीद (सुलतान मोहम्मद) की मृत्यु पर जो मर्सिया (करुण कविता) इन्होंने लिखी थी, दरबार में बादशाह को सुनाई, जिसे सुनकर दरबार में हाहाकार मच गया, लोग रोते-रोते बेसुध हो गए। बादशाह (ग़यासुद्दीन बलबन) तो इतना रोया कि ज्वर चढ़ आया, और तीसरे दिन मर गया।

एकबार ख़्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया यमुना के किनारे एक कोठे पर बैठकर हिंदुओं के स्नान-पूजा का तमाशा (!) देख रहे थे। ख़ुसरो भी पास बैठे थे। ख़्वाजा साहब ने कहा, देखते हो—

"हर क़ौम रास्तराहे, दीने व क़िबलागाहे।"

—अर्थात् प्रत्येक जाति अपने धर्म और ध्येय को ठीक समझकर चल रही है, सबका मार्ग सीधा है।

उस समय ख़्वाजा साहब की टोपी ज़रा टेढ़ी थी। अमीर ख़ुसरो ने तिरछी टोपी की ओर इशारा करके फ़ौरन् कहा—

"मा क़िबला रास्त करदेम बरतरफ़ कजकुलाहे।"

जहाँगीर बादशाह ने 'तुज़क-जहाँगीरी' में लिखा है कि "मेरी मजलिस में क़व्वाल यह शेर गा रहे थे। मैंने इसका शाने-नज़ूल (प्रकरण और प्रसंग, जिस पर इस कविता की रचना हुई थी) पूछा। मुल्ला अलीअहमद मोहरकन ने उक्त घटना सुनाई। इस अंतिम पद के समाप्त होते-होते मुल्ला की हालत बदलनी शुरू हुई, बेहोश होकर गिर पड़े, देखा तो दम न था!"

भावुकता ने बेचारे मुल्ला की जान ले ली। ख़ुसरो की इस उक्ति में कौन-सा विष का बुझा बाण छिपा है, यह ज़रा सोचने की बात है।

'क़िबला'-शब्द का अर्थ है ध्येय पदार्थ की प्रतीक, जिसे सामने रखकर ध्येय वस्तु का ध्यान करें। मुसलमान लोग काबे की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते हैं, इसलिये वह 'क़िबला' कहलाता है। पूज्य व्यक्ति गुरु, पिता आदि को भी क़िबला कहते हैं। ख़्वाजा साहब (टेढ़ी टोपीवाले) ख़ुसरो के गुरु थे, अर्थात् 'क़िबला' थे। क़िबले की टोपी टेढ़ी थी; ख़ुसरो ने विनोद से कहा, हमने भी तो क़िबला सीधा ही किया—हमारा क़िबला सीधा था, टोपी टेढ़ी क्यों है? टोपी टेढ़ी नहीं, गोया क़िबला ही टेढ़ा हो गया। इसे एक ओर करो, नहीं तो ऐसे टेढ़े क़िबले को सलाम है! टेढ़ा क़िबला दरकार नहीं। यदि ख़ुसरो की इस उक्ति का यही भाव है—जैसा शब्दों से प्रकट होता है—तो इस मीठे मज़ाक़ में एक बाँकपन है, जिससे ख़ुसरो की सूझ,

हाज़िरजवाबी और ज़िंदादिली का सबूत मिलता है । पर इतनी-सी बात पर मुल्ला क्यों मर गया ? बात कुछ गहरी और पते की है । मरनेवाला मुल्ला सच्चा और सहृदय था । इसलाम के एक बहुत बड़े प्रचारक हज़रत ख़्वाजा साहब के मुँह से यह सुनकर कि हर एक क़ौम का दीन, ईमान सीधा और सच्चा है, हर मज़हब अपने-अपने रास्ते पर ठीक है, मुल्ला के ध्यान में इसलाम का ख़ूनी इतिहास फिर गया, जिसने कि दूसरे धर्मवालों को 'गुमराह' कह-कर दीन के नाम पर ख़ून की नदियाँ बहाई हैं, "या तो दीन इसलाम क़बूल करो, नहीं तो मरने को तैयार हो : सिर्फ़ एक दीन-इसलाम ही सच्चा है, उसके सिवा सब कुफ़्र है ; काफ़िरों को हक़ नहीं कि ज़िंदा रहें"—इसलाम को इस मतांधता ने करोड़ों निरपराध प्राणियों की हत्या कर डाली । यदि ख़्वाजे की बात सच्ची है कि "हर क़ौम रास्तराहे दीने व क़िबलागाहे"—हर क़ौम सीधे रास्ते पर है, सबका दीन और क़िबला (तीर्थ-स्थान, प्रतीक) सच्चे हैं, तो फिर दीन के नाम पर इतनी लूट-मार और नृशंस हत्याएँ क्यों की गईं ? इसका पाप किसके सिर आयगा ? वे मतांध मुल्ला और बादशाह, जिन्होंने धर्म के नाम पर बड़े-बड़े अधर्म किए, किस नरक में ढकेले जायँगे ? सब दीन सच्चे हैं, तो फिर इसलाम का विधर्मियों पर ख़ूनी जहाद क्यों जारी है ?

हम समझते हैं, यही सोचते-सोचते सहृदय मुल्ला का हृदय फट गया ! जो कुछ भी कारण रहा हो, मुल्ला के मरने में और ख़ुसरो के कलाम की तासीर में कलाम नहीं !

* * *

ख़ुसरो के कलाम की तासीर के ये दो उदाहरण मारने के हुए । एक उदाहरण जिलाने का भी सुनिए—

कहते हैं कि नादिरशाह ने क्रुद्ध होकर जब दिल्ली में क़त्लेआम का हुक्म दिया और ख़ुद तमाशा देखने के लिये सुनहरी मसजिद में डटकर बैठ गया । हज़ारों आदमी गाजर-मूली की तरह काट डाले गए, दिल्ली के गली-कूचे आदमियों की लाशों से भर गए, ख़ून की नदी बह निकली*, क़त्ल बराबर जारी था, नादिरशाह की रुद्रमूर्ति देखकर किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि कुछ प्रार्थना करे, तब मोहम्मदशाह (दिल्ली के बादशाह) का एक बूढ़ा वज़ीर डरता-काँपता, जान पर खेलकर, नादिरशाह के सामने पहुँचा, और अमीर ख़ुसरो का यह शेर पढ़कर सिर झुकाए हाथ जोड़े हुए खड़ा हो गया—

"कसे न माँद कि दीगर ब तेग़-नाज़ कुशी ;
मगर कि ज़िंदा कुनी ख़ल्क़रा व बाज़ कुशी।"

—अर्थात् कोई आदमी नहीं बचा, सब तुम्हारी क़हर की निगाह के शिकार हो गए, निगाहे-नाज़ की तलवार से सबको मार डाला, अब लोगों को लुत्फ़ की निगाह से ज़िंदा करो और फिर मारो * ।

जब शिकारगाह के वध्य पशु समाप्त हो जाते हैं, तो नए जानवर पाले जाते हैं, और तब तक शिकार खेलना बंद रहता है ।

यह अन्योक्ति काम कर गई ; नादिरशाह सुनकर तड़प गया, और फ़ौरन् क़त्लेआम बंद करने का हुक्म दे दिया । उसी दम हत्या बंद हो गई ।

इस तरह ख़ुसरो के इस एक शेर ने लाखों आदमियों की जान बचा दी ।

ख़ुसरो की कविता के कुछ नमूने

प्रेम-पंथ के पचड़ों के चमत्कृत वर्णन को फ़ारसी में 'वक़ूअगोई' कहते हैं । उर्दूवालों ने इसका नाम 'मामला-बंदी' रक्खा है । संस्कृत-कवियों ने तो शृंगार-रस में इसका बहुत ही चमत्कृत वर्णन किया है, पर फ़ारसी में इस रीति के प्रवर्तक अमीर ख़ुसरो ही हुए हैं । मौलाना गुलामनबी आज़ाद ने अपने एक ग्रंथ में इसका उल्लेख किया है, और मौ० शिबली ने इस मत की पुष्टि की तथा ख़ुसरो की फ़ारसी-कविता से इस विषय के कुछ उदाहरण भी उद्धृत किए हैं—

"चूँ रस्तम् बर दरश बिसियार दरबाँ गुफ़्त ई मिसकीं,
गिरफ़्तारस्त शायद, कीं तरफ़ बिसियार मी आयद।"

---

* इस क़त्लेआम में एक लाख से ऊपर आदमी क़त्ल किए गए थे ।

* लुत्फ़ और क़हर की निगाह की तासीर के फ़र्क़ पर ख़ुसरो का एक और शेर है—

"गुफ़्तम् चगूना मी कुशी वो ज़िंदा मी कुनी ;
अज़ यक निगाह कुश्तो निगाहे दिगर न कर्द ।"

—अर्थात् मैंने कहा, तुम किस तरह मारते और जिलाते हो ? उसने एक ही निगाह से मार तो दिया, पर दूसरी निगाह (जिलानेवाली) न की ।

—मुझे उसके (प्रेमपात्र के) दरवाज़े पर बारबार आता देखकर दरबान ने कहा, शायद यह भी कोई 'गिरफ़्तार' है ; क्योंकि अक्सर इधर आता है।

"मस्त आँ ज़ौक़म् कि शब दर कूए ख़ेशम् दीदो-गुफ़्त।
कीस्तईं, गुफ़्तहं मसकीने गदाई मी कुनद।"

—मैं उस घटना को याद करके मस्त हूँ। रात जब उसने मुझे गली में देखकर कहा कि यह कौन है? किसी ने कहा कि कोई ग़रीब है, भीख माँगता है।

"वादा मी ख़्वाहमो दरबंद वफ़ा नीज़ नीयम् ;
ग़रज़ आनस्त कि बारे ब तक़ाज़ा बाशम्।"

—मैं वादा चाहता हूँ, वफ़ा की शर्त नहीं कराता— वादा पूरा हो, इस पर ज़ोर नहीं देता—इस बहाने से तक़ाज़ा करने का तो मौक़ा मिलता रहेगा।

"अज़ कुजा आमदी ऐ बाद! कि दीवाना शुदम ;
बूए-गुल नेस्त कि मी आयदम् ईं बूए-कसेस्त।"

—ऐ हवा! तू कहाँ से आ रही है? जो ख़ुशबू तू ला रही है, यह किसी फूल की तो है नहीं। इसे सूँघकर मैं दीवाना (मस्त) हो गया। सच बता, यह सुगंध किसकी है?

"गुफ़्ती अंदर ख़्वाब गह गह रूए ख़ुद बिनुमायमत् ;
ईं मुख़न बेगानारा गो आशनारा ख़्वाब नेस्त।"

—तू जो कहता है कि मैं तुझे सपने में कभी-कभी सूरत दिखा दिया करूँगा, यह बात किसी ग़ैर से कह, दोस्त को नींद कहाँ! जो सपने में तुझे देखेगा!

"मन कुजा ख़ुसपम् कि अज़ फ़रयादे मन ;
शब न मी ख़ुसपद कसे दर कूए-ता।"

—मुझे तो भला नींद क्यों आती! मेरे रोने के रौले से तो मेरे मुहल्ले में भी रात कोई न सो सका!

"ऐ आशना कि गिरियाकुनी पंद मीदिही :
आब अज़ बिरूँ मरेज़ कि आतिश बजाँ गिरफ़्त।"

—ऐ दोस्त, तुम आँसू बहाते हो और मुझे समझाते हो ; यह पानी बाहर मत गिराओ ; आग तो अंदर लगी हुई है, उसे बुझाओ।

"गुफ़्तम् असीर गर्दी ऐ दिल :
दीदी कि बआक़िबत् हमाँ शुद।"

—ऐ दिल, मैं कहता न था कि पकड़े जाओगे : देखा, आख़िर वही हुआ न?

"बलबम् रसीदा जानम् तो बिया कि ज़िंदा मानम् :
पस अज़ाँ कि मन न मानम् बचेकार ख़्वाही आमद।"

—जान होठों पर आई हुई है, तू आ कि मैं ज़िंदा बचा रहूँ। उसके बाद जब कि मैं न रहूँगा, तो तेरा आना फिर किस काम का होगा।

"मी रवी वो गिरिया मी आयद मरा :
साअते बिनशीं कि बाराँ बुगज़रद।"

—तुम जा रहे हो और मुझे रोना आ रहा है। इतने तो ठहरे रहो कि यह आँसुओं की झड़ी बंद हो जाय। बारिश बंद होने पर चले जाना।

अच्छा चकमा है। जाना ही तो रोने का कारण है। जब आयगा तभी रोना आयगा। न कभी यह झड़ी बंद होगी, न वह कभी जा सकेगा।

"गुफ़्तम ऐ दिल मरौ आँजा कि गिरफ़्तार शवी ;
आक़िबत रफ़्ती हमा गुफ़्तए-मन पेश आमद।"

—ऐ दिल, मैंने कहा था कि वहाँ मत जा, नहीं तो गिरफ़्तार हो जायगा। आख़िर तू न माना, वहाँ गया, और जो मैंने कहा था, वह सामने आया।

"जांज नज़्ज़ारा ख़राबी नाज़ेऊ ज़ अंदाज़ा बेश ;
मा बबूए मस्तो साक़ी मी दिहद पैमानारा।"

—मैं तो दर्शन-मात्र से ही मस्त हूँ और उसके नाज़ व अदा अंदाज़े से बढ़े हुए हैं, मैं तो मद्य की गंध से ही मस्त हो रहा हूँ और साक़ी प्याले-पर-प्याला दिए जाता है! यह कृपा मार डालेगी।

"ख़्वाही ऐ जाँ बिरौ ख़्वाह बमन बाश कि मन ;
मुर्दनी नेस्तम् इमरोज़ कि जानाँ ईंजास्त।"

—ऐ जान (प्राण), चाहे तो तू चली जा, चाहे मेरे पास रह। तू चली जायगी तो भी मैं आज मरूँगा नहीं; क्योंकि जानाँ (प्यारा) पास है।

अत्युक्ति

"बख़ानए तो हमारोज़ बामदाद बुवद ;
कि आफ़ताब नियारद शुद न बुलंद ईं जा।" *

—तुम्हारे घर में तो तमाम दिन प्रातःकाल ही का समय रहता है ; क्योंकि वहाँ सूर्य ऊँचा नहीं हो सकता।

फ़ारसी-कवि मुख की सूर्य से उपमा देते हैं।

* इसी भाव का बिहारी का यह प्रसिद्ध दोहा है—
"पत्रा ही तिथि पाइयतु वा घर के चहुँपास;
नित प्रति पून्योई रहत आनन-ओप-उजास।"
—लेखक

"रवम् ज ज़ोफ़ बहर जानिबे कि आह रवद ;
चूँ अनकबूत कि बर तारे ख्वेश राह रवद ।"

—कृशता के कारण उधर ही चल देता हूँ, जिधर आह (दुःखोच्छ्वास) जाती है, जैसे कि मकड़ी अपने तार पर उड़ी फिरती है । शरीर इतना कृश हो गया है कि वह आह के साथ उड़ा फिरता है ।

श्लेष

"ज़बाने शोख़े मन तुर्की व मन तुर्की न मीदानम् ;
च ख़ुशबूदे अगर बूदे ज़बानश् दर दहाने मन ।"

—उस चंचल की ज़बान (भाषा) तुर्की है, और मैं तुर्की नहीं जानता । क्या अच्छा होता कि उसकी ज़बान मेरे मुँह में होती ।

ज़बान-शब्द श्लिष्ट है, भाषा और जिह्वा । इसी का इस शेर में मज़ा है !

स्वर्गीय सैयद अकबरहुसैन ने भी इस भाव को अच्छे ढंग से अपनाया है—

"दिल ! उस बुते-फ़िरंग से मिलने की शक्ल क्या ;
मेरा तरीक़ और है, उसकी है शान और ।
क्योंकर ज़बाँ मिलाने की हसरत बयाँ करूँ ;
उसकी ज़बान और है, मेरी ज़बान और ।"

"शमा अज़ दिले उश्शाक़ निशाँ मीआरद ;
जाँ अज़ सरे-सोज़ दरम्याँ मीआरद ।
ख़ुशमी सोज़द् लेक ऐबश् ईनस्त ;
कि सोज़िशे ख़ेश बर ज़बाँ मीआरद ।"

—शमा ने आशिक़ों के दिल से जलना सीखा है । यह भी अच्छी जलती है; पर इसमें एक ऐब (दोष) है कि अपने जलने को ज़बान पर लाती है | ख़ुद ज़ाहिर करती है । आशिक़ के दिल की तरह चुपचाप बेमालूम नहीं जलती !

ज़बान पर लाना, ज़ूमानी (द्व्यर्थक) है । इसी ने शेर में जान डाल दी है, शमा की लौ को भी ज़बान कहते हैं ।

मरने के बाद भी किसी का एहसान नहीं चाहता—

"न ख़्वाहम् बादे-मुर्दन हेचकस बर मन कफ़न पोशद ;
कि आतिश चूँ बमीरद ख़्वेश रा अज़ ख़्वेश-तन पोशद ।"

—मैं नहीं चाहता कि मरने के बाद कोई मुझे कफ़न उढ़ावे, कफ़न से ढँके । आग जब मरती (बुझती) है, तो ख़ुद अपने आपे को छिपा लेती है ।

बुझने पर जो राख रह जाती है, वही आग का कफ़न है ।

कविता का महत्त्व

"आँकि नामे-शेर ग़ालिब मीशवद बर नामे-इल्म ;
हुज्जते अक़्ली दरीं गोयम् अगर फ़रमाँ बुवद ।
हर चे तकरारश् कुनी आदम बुवद उस्तादे आँ ;
आँचे तसनीफ़ेस्त उस्ताद, एज़दे सुबहाँ बुवद ।
पस चरा बर दानशे कज़ आदमी आमोख़्ते ;
नायदाँ ग़ालिब कि तालीमे वे अज़ यज़दाँ बुवद ।
इल्म कज़तकरार हासिल शुद चूँ आबे दर ख़ुमस्त ;
कज़ वे अरदह दल्व बाला बरकशी नुक़्साँ बुवद ।
लेक तबए-शाहराँ चश्मास्त जाइंदा कज़ो ;
गरकशी सद दल्व बेरूँ आब सद चंदाँ बुवद ।"

—कविता सब विद्याओं से श्रेष्ठ है, आज्ञा हो, तो इस पर कुछ युक्तियाँ सुनाऊँ । कविता का आदिगुरु, जिसने इसकी चर्चा की, आदम * हुआ है, और जिसने सबसे प्रथम कविता में ग्रंथ लिखाया, वह स्वयं ईश्वर है (इलहामी किताबें एक प्रकार की कविता ही हैं) । फिर उन विद्याओं पर, जो आदमी की बनाई हुई हैं, मनुष्यों ने मनुष्यों से सीखी हैं, यह ईश्वर-प्रदत्त विद्या (कविता) क्यों न अधिकार जमावे !

और विद्याएँ ऐसी हैं, जैसा मटके में भरा हुआ पानी । यदि उसमें से दस डोल पानी निकालोगे, तो मटका ख़ाली हो जायगा । पर कवि की प्रतिभा एक ऐसा चश्मा (स्रोत) है कि उसमें से सौ डोल पानी खींचो, तो पानी कम होने की जगह और सौगुना बढ़ जायगा ।

उपदेश और नीति

ख़ुसरो ने एक क़सीदे में नीति और ज्ञान का उपदेश दिया है, हरएक वाक्य को दृष्टांत से दृढ़ किया है । दावा और दलील साथ-साथ मौजूद हैं । इसके कुछ नमूने लीजिए—

"मर्द पिनहाँ दरगली मे बादशाहे-आलमस्त ;
तेग़-ख़ुफ़िया दरनियामे पासबाने किशवरस्त ।"

—मर्द आदमी कंबल में छिपा हुआ भी संसार का राजा है; तलवार म्यान में बंद हो, तो भी (अपने आतंक से) राज्य की रक्षक है ।

"राहरो चूँ दर रिया कोशद मरांद शहवतस्त ;
बेवा ज़न चूँ रुख़ बिआरायद बबदे-शौहरस्त ।"

---

* अरबी-फ़ारसीवाले, वाल्मीकि की तरह, हज़रत आदम को कविता का आदि-प्रवर्तक मानते हैं, और आदम से ही आदमी (मनुष्य) उत्पन्न हुए हैं । —लेखक



कृष्ण-यशोदा

[श्रीदुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से]

खेलत गोद विनोद-जुत सुत—माता को प्यार ;
करत मुदित मन मैं मनो मयूर विचार विहार ।

दुलारेलाल भार्गव

N. K. Press, Lucknow.

—भक्ति-मार्ग का पथिक यदि दंभ का आचरण करता है, तो वह विषय-वासना का दास है ! विधवा स्त्री, यदि शृंगार करती है, तो समझो पति करना चाहती है ।

"नफ़्स ख़ाकेगुश्त हरगह नूरेबाला बरतो ताफ़्त ;
साया जेरे पा शवद हरगह फ़िबर तारक ख़ुरस्त ।"

—जिस समय तेरे ऊपर परम ज्योति का प्रकाश होगा, तो मन ख़ुद ख़ाक होकर रह जायगा; जब सूर्य का प्रकाश सिर पर होता है, तो छाया पैरों पर आ जाती है ।

"ना कशीकश हर कि हिरसे-माल दारद दोज़ख़ीस्त ;
ऊदो सरगीं हर चंदर आतिश फ़ितद ख़ाकिस्तरस्त ।"

—मूर्ख हो या विद्वान्, जो माया के मोह में फँसा है, नरक का अधिकारी है । अगर और गोबर, जो आग में गिरेगा, जलकर राख हो जायगा ।

"ऐ बिरादर मादरे दहर अर ख़ुरद ख़ूनत मरंज ;
चूँ तुरा ख़ूने-बिरादर बिहज़ शीरे-मादरस्त ।"

—ऐ भाई ! पृथिवी माता तेरा ख़ून पी जाय, तो रंज क्यों करता है, जब कि तू भाई के ख़ून को माता के दूध से मीठा समझता है !

'अश्कम बिरूँ मी अफ़गनद राज़े-दरूने पर्दारा ;
आरे शिकायत हा बुवद मिहमाने-बेरूँ कर्दारा ।"

—आँसुओं ने ीतर का भेद बाहर ज़ाहिर कर दिया । घर से बाहर किया हुआ महमान (पाहुना-अभ्यागत) बाहर जाकर शिकायत करता ही है ।

लेख बहुत बढ़ गया, इससे और अधिक उदाहरण देने का लोभ संवरण करना पड़ा । ख़ुसरो की हिंदी-कविता पर किसी दूसरे लेख में विचार किया जायगा ।

इस लेख की प्रायः सामग्री मौलाना शिबली, मौ० हबीबुलरहमान शिरवानी और मौलाना 'आज़ाद' के लेखों और ग्रंथों से ली गई है, और कुछ इधर-उधर से भी ।

पद्मसिंह शर्मा

गौरव-गर्विता

(मनहरण)

(१)

अखिल छबीले हैं छबीली-छबि-अनुरागी,
रसमयी रसिका के रसिक बसेरे हैं ;
मधुमय मधु की मधुरता पै मोहित हो,
मधु-लोभी करते मधुप-सम फेरे हैं ।
"हरिऔध" कैसे नारि-समता करेगा नर,
रूपसी में रत रूपवाले बहुतेरे हैं :
लाख-लख लोचवाले लोचन के लालची हैं,
कामुक सकल काम-कामिनी के चेरे हैं ।

(२)

भामिनी के लोचवाले भाल के विमल भाव,
तमवाले मानस के विभव अथोर हैं ;
घन-रुचि-रुचिर-चिकुरवाली कामिनी के,
कामुक-निकर कमनीय-तन-मोर हैं ।
"हरिऔध" सकल सरस चितवाले लोग,
सरसा के प्रचुर रसों में सराबोर हैं :
चखन के कोर चित-चोर के हैं चित-चोर,
चंद-मुखवाले चंद-मुखी के चकोर हैं ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

ग्राम का द्वंद्व

(१)

सावन के श्याम-घन-शोभित गगन में ,
धरा में हरे कानन विमुग्ध करते हैं मन ;
बकुल-कदंब की सुगंध से समीर सना ,
पूरब से आकर प्रमत्त करता है तन ।
पर दूसरे ही क्षण आकर कहीं से, घूम
जाते हैं नयन में अकिंचन किसान जन ;
सारे सुख-साज बन जाते हैं विषाद-रूप ,
दुखद सदा है पराधीनता में ग्राम धन ।

(२)

देखते हैं मृग, याद आती मृगलोचनी है ,
फिर भूले भारत के दृग याद आते हैं ;
केकी के कलाप कोकिला के कल गान में ,
विलाप विधवा का सुन अति अकुलाते हैं ।
अत्याचार-पीड़ित किसान के रुदन में ,
पयोद के विनोद हम भूल-भूल जाते हैं ;
भोग सकते न सुख, त्याग सकते न दुख ,
योंहीं दुबधा में पड़े जीवन बिताते हैं ।

रामनरेश त्रिपाठी

समय का फेर



शेरशाह सूर की राव मालदेव पर चढ़ाई

शेरशाह, जिसका असली नाम फ़रीद था, हिसार का रहनेवाला था। उसका पिता हसन, सूर-ख़ानदान का अफ़ग़ान था, जिसको जौनपुर के हाकिम जमालख़ाँ ने ससराम और टाँडे के ज़िले, ५०० सवारों से नौकरी करने के एवज़ में, दिए थे। फ़रीद कुछ समय तक बिहार के स्वामी मुहम्मद लोहानी की सेवा में रहा, और एक शेर को मारने पर उसका नाम शेरख़ाँ रक्खा गया। वीर प्रकृति का पुरुष होने के कारण उसकी शक्ति दिन-दिन बढ़ती गई। उसने तारीख़ ६, सफ़र, सन् ९४६ हिजरी (वि० सं० १५९६, आषाढ़-शुक्ला द्वितीय १०=ता० २६ जून, सन् १५३ ई०) को बादशाह हुमायूँ को चौसा-नामक स्थान (बिहार) में परास्त किया; और दूसरी बार ता० १० मुहर्रम, ९४७ हि० (वि० सं० १५९७, ज्येष्ठ-सुदि १२=ता० १७ मई, सन् १५४० ई०) को क़न्नौज में हराकर आगरे, लाहौर आदि की तरफ़ उसका पीछा किया, जिससे हुमायूँ सिंध की तरफ़ भाग गया। इस प्रकार हुमायूँ पर विजय पाकर शेरख़ाँ उसके राज्य का स्वामी बना, और शेरशाह नाम धारण कर ७ शव्वाल, ९४८ (वि० सं० १५९८, माघ-शु० ८=ता० २४ जनवरी, सन् १५४२ ई०) को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

राव मालदेव का जन्म वि० सं० १५६८ पौष-कृ० १ (ता० ५ दिसंबर, सन् १५११ ई०) को हुआ था। संवत् १५८८, ज्येष्ठ-सुदि ५ (ता० २४ मई, सन् १५३१ ई०) को उसने अफ़ीम की पीनक में बैठे हुए अपने पिता राव गाँगा को झरोखे से गिराकर मार डाला, और ख़ुद जोधपुर-राज्य का स्वामी बन गया। मालदेव से पूर्व मारवाड़ का राज्य नाम-मात्र का था, और राव आस्थान से लगाकर राव गाँगा तक मारवाड़ के राजा छोटे-से इलाक़े के स्वामी रहे। प्रकृति से वीर और साहसी होने के कारण, मालदेव ने अड़ोस-पड़ोस के इलाक़ों को अपने राज्य में मिलाकर एक बड़ा राज्य स्थापित कर लिया, और ५०,००० सैनिक अपने साथ रखने के बराबर शक्ति बढ़ा ली। मारवाड़ की ख्यात में उसकी प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा हुआ है; परंतु प्रत्येक रियासत की ख्यातें आत्मश्लाघा और अपने-अपने राज्य का महत्त्व बतलाने की दृष्टि से लिखी हुई होने से हम उन पर विशेष विश्वास नहीं कर सकते। तो भी यह तो निश्चित है कि मालदेव ने बीकानेर के राव जैतसी को मारकर उसका देश (जांगल), वीरा सिंघल से भाद्राजून, डूँगरसिंह जैतमालोत से सिवाना, वीरमदेव से मेड़ता और ऐसे ही अजमेर आदि इलाक़े लेकर उन पर अपना अधिकार जमा लिया था।

शेरशाह ने हि० सन् ९५० (वि० सं० १६००=सन् १५४३ ई०) में क़रीब ८०,००० सेना[1] के साथ मालदेव पर चढ़ाई की[2], और वह अजमेर के निकट आ पहुँचा। उधर मालदेव भी ५०,००० सेना लेकर लड़ने को आया। बादशाह जहाँ ठहरा था, वहाँ, ज़मीन रेतीली होने के कारण, सैनिकों की रक्षा के लिये न तो खाई ही खुद सकती थी, और न कोई दीवार खड़ी की जा सकती थी। यह स्थिति देखकर बादशाह के पोते महमूदख़ाँ ने सम्मति दी कि सेना की रक्षा के लिये रेत से भरवाकर बोरियों की आड़ कर दी जाय, तो अच्छा होगा। बादशाह को यह सलाह पसंद आई, और इसके लिये उसने महमूदख़ाँ की प्रशंसा की[3]। इस सलाह के अनुसार बादशाह ने बनजारों को आज्ञा दी कि रेत से भरकर बोरियाँ सेना के चारों तरफ़ जमा दो[4]। शेरशाह एक महीने तक वहाँ ठहरा रहा; पर लड़ाई न हुई। वह चाहता था कि शत्रु उस पर हमला करे; परंतु जब मालदेव ने उस पर आक्रमण न किया तब बादशाह ने यह चाल चली कि मालदेव के सरदारों के नाम से झूठे ख़त लिखवाकर किसी तरह उसके पास

---

१. मालदेव पर चढ़ाई करते समय शेरशाह के साथ कितनी सेना थी यह बहुधा फ़ारसी तवारीख़ों में लिखा नहीं मिलता। केवल फ़िरिश्ता ८०,००० सेना होना बतलाता है। (ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० २, पृ० १२२)।

२. तारीख़ इ-शेरशाही, अब्बासख़ाँ शेरवानी-कृत। इलियट; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, जि० ४, पृ० ४०४।

३. इलियट; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, जि० ४, पृ० ४०५।

४. अल्-बदायूनी की 'मुंतख़बुत्तवारीख़'; डॉक्टर एम्० ए० रैंकिंग-कृत अँगरेज़ी-अनुवाद, जि० १, पृ० ४७७।

पहुँचाए। उनमें यह लिखा था कि यदि हमें अमुक-अमुक जागीरें दी जायँ, तो हम मालदेव को पकड़कर आपके सिपुर्द कर देंगे और आपको लड़ने की कोई आवश्यकता न रहेगी। ऐसे पत्र पाकर मालदेव का अपने सरदारों पर से विश्वास उठ गया, और वह भागने लगा, तो सरदारों ने शपथ खाकर विश्वास दिलाया कि ये कृत्रिम पत्र शेरशाह ने लिखवाए हैं। इस पर भी मालदेव का संदेह दूर न हुआ, और वह अपनी सेना सहित भाग निकला। उसके सरदारों में से जैता (कन्हैया) कूँपा[1] (कुंभा, गुहा) आदि वीर चार हज़ार से अधिक सेना के साथ ठहर गए, और रात्रि के समय शत्रु पर आक्रमण करने चले। परंतु मार्ग भूल जाने के कारण, सबेरे शत्रु से उनकी मुठभेड़ हुई। बादशाह ने हाथियों को आगे किया, और तोपख़ाने तथा तीरंदाज़ों को पीछे रक्खा। फिर घमासान युद्ध हुआ, जिसमें सब-के-सब राजपूत वीर-गति को प्राप्त हुए[2]।

फ़िरिश्ता लिखता है—"कूँपा आदि सरदारों के साथ १०-१२ हज़ार आदमी थे, और उन्होंने शेरशाह की फ़ौज को कई-बार हटाया। पर इतने में जलालख़ाँ मदद लेकर आ गया, जिससे राजपूतों के पैर उखड़ गए, और वे सब-के-सब लड़कर काम आए[3]। बादशाह ने इस विजय की ख़बर सुनकर कहा—मैं एक मुट्ठी-भर बाजरे के लिये हिंदुस्तान की सल्तनत खो बैठता; क्योंकि मालदेव के राज्य में खेती की भूमि और पानी की कमी होने के कारण, गेहूँ, चावल, मटर, शक्कर, पान आदि हिंदुस्तान की चीज़ें पैदा नहीं होतीं; केवल बाजरा ही होता है[1]।"

सच्ची स्वामिभक्ति के कारण उक्त सरदारों के इस प्रकार आत्मोत्सर्ग करने के समाचार मालदेव के पास पहुँचने से पहले ही शेरशाह ने उसका जोधपुर में ठहरना भी असंभव कर दिया। मेड़ते से शेरशाह ने अपनी सेना का एक भाग ख़वासख़ाँ और ईसाख़ाँ नियाज़ी की अध्यक्षता में जोधपुर भेजा, और दूसरा स्वयं लेकर अजमेर पर चढ़ा। अजमेर बिना लड़ाई हस्तगत हो गया। उधर मालदेव ने जोधपुर छोड़कर सिवाने के क़िले में शरण ली[2]। राव कल्याणमल ने बीकानेर और वीरमदेव ने मेड़ते पर क़ब्ज़ा कर लिया, और बादशाह के लौट जाने पर, वि० सं० १६०२ में, मालदेव ने जोधपुर को फिर अपने अधिकार में कर लिया।

इस लेख में हमें न तो शेरशाह का और न राव मालदेव का इतिहास लिखने की आवश्यकता है, और न उसकी चढ़ाई का वर्णन करने की। तो भी इन बातों का प्रसंगवश संक्षेप में वर्णन करना आवश्यक समझकर ऊपर कुछ परिचय दिया गया है। अब हम इस लेख के मुख्य उद्देश्य अर्थात् उक्त चढ़ाई के कारण का विवेचन करते हैं।

फ़ारसी-तवारीख़ों में उस चढ़ाई का कोई स्पष्ट कारण लिखा नहीं मिलता। तो भी शेरशाह की यह चढ़ाई बड़ी सेना के साथ हुई, जिसका कुछ-न-कुछ कारण अवश्य होना चाहिए। किसी बड़े राजा या बादशाह की दूसरे छोटे राजा पर चढ़ाई मुख्यतः दो कारणों से हुआ करती है। प्रथम तो यह कि वह अपना राज्य बढ़ाने की इच्छा से उसे छीनकर अपने अधीन करे। दूसरा यह कि वह अपने विरुद्ध की हुई किसी कार्यवाही अथवा अपने शत्रु को दी हुई सहायता का बदला लेने के लिये आक्रमण करे। हमें यह निर्णय करने की आवश्यकता है कि शेरशाह की इस चढ़ाई के लिये ऐसा कोई कारण उपस्थित हुआ था अथवा नहीं।

मालदेव का देश, रेगिस्तान होने से, मालवे अथवा युक्तप्रांत-जैसा उपजाऊ नहीं कि जिसकी प्राप्ति से जेता को किसी विशेष लाभ की संभावना हो। मरुभूमि होने

१. वर्णमाला की अपूर्णता के कारण फ़ारसी-तवारीख़ों में पुरुषों तथा स्थानों आदि के नाम ठीक-ठीक पढ़े नहीं जाते। मालदेव के इन दोनों सरदारों के नाम कूँपा और जैता थे। कूँपा के स्थान में कुंभा या गुहा और जैता के स्थान में कन्हैया या खींवा लिखा मिलता है। परंतु हमने ऊपर शुद्ध नाम देने का यत्न किया है। कूँपा और जैता दोनों रिश्ते में भाई थे। उम्र में कूँपा बड़ा और जैता छोटा था। कूँपा जोधपुर के राव रिड़मल का प्रपौत्र, अखैराज का पौत्र और महैराज का पुत्र था। कूँपा से राठोड़ों की कूँपावत शाखा चली। कई कूँपावत-सरदार इस समय भी जोधपुर-राज्य में विद्यमान हैं, जिनमें मुख्य आसोप का सरदार है। जैता उक्त अखैराज का पौत्र और पंचायण का पुत्र था। उससे राठोड़ों की जैतावत-शाखा चली। जैतावत-सरदारों में बगड़ी का ठिकाना मुख्य है।

२. अल-बदायूनी की 'मुंतख़बुत्तवारीख़' का रौकिंग-कृत अँगरेज़ी अनुवाद; जि० १, पृ० ४७८।

३. ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० २, पृ० १२३।

१. ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० २, पृ० १२३।

२. कानूँगो; 'शेरशाह', पृ० ३२९-३०।

के कारण, इस प्रदेश पर चढ़ाई करते समय, अन्न तथा रसद का प्रबंध करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना अनिवार्य था। मालदेव के राज्य में कई सुदृढ़ दुर्ग भी विद्यमान थे, और शेरशाह को इस बात का भी पूरा अनुभव था कि हुमायूँ की अधिकांश शक्ति चुनार का क़िला लेने ही में क्षीण हुई थी। ऐसी स्थिति में अपनी तख़्तनशीनी से दो वर्ष के अंदर ही ऐसे विकट प्रदेश पर—आपत्तियाँ सहते हुए—राज्य-वृद्धि के लिये तो शेरशाह का चढ़ाई करना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता।

दूसरी बात यह है कि मालदेव पर शेरशाह द्वारा चढ़ाई किए जाने का यह भी कारण नहीं पाया जाता कि मालदेव ने शेरशाह के शत्रु हुमायूँ की किसी प्रकार सहायता अथवा शेरशाह के विरुद्ध कोई कार्यवाही की हो, जैसा कि निम्न-लिखित अवतरणों से ज्ञात होता है—

अबुलफ़ज़ल अपने अकबरनामे में लिखता है—"बादशाह हुमायूँ शेरशाह से हारकर भागता हुआ हिजरी सन् ९४९ (वि० सं० १५९९=सन् १५४२ ई०) में बीकानेर से १२ कोस पर पहुँचा। बादशाह के सेवकों को मालदेव की तरफ़ से खटका था, जो बादशाह को प्रकट किया गया। उस पर बादशाह ने बुद्धिमान् मीर समंदर[1] को मालदेव के पास भेजा। उसने आकर सूचित किया कि मालदेव ऊपरी दिल से तो शुद्ध भाव प्रकट करता है, परंतु वास्तव में उसके मन में दग़ा है। जब हुमायूँ की सेना नागौर के पास पहुँची, तब मालदेव का एक विश्वास-पात्र पुरुष, जिसका नाम संकाई (साँगा) था, हीरे ख़रीदने की इच्छा से हुमायूँ की फ़ौज में आया। उसकी आकृति एवं हाव-भाव से उसकी सचाई पर विश्वास न हुआ। तब हुमायूँ ने कहा, ऐसे रत्न या तो तलवार के बल से या बादशाहों की कृपा से प्राप्त होते हैं, वे बिकते नहीं। इस छली पुरुष के आने से बादशाह और भी सावधान हो गया, और उसने समंदर की सचाई की प्रशंसा की। फिर बादशाह ने रायमल सोनी को मालदेव का भेद लेने भेजा, और उसे यह समझाया कि यदि लिखने का अवसर न हो, तो इस संकेत से सूचना देना—यदि मालदेव का मन शुद्ध हो, तो पाँचों उँगलियाँ हाथ से दबावे, और इसके विपरीत हो, तो केवल तर्जनी को ही। जब हुमायूँ का पड़ाव फ़लोदी से तीन मंज़िल दूर जोगीतलाव (कृष्णगढ़ के पास) पर हुआ, तब रायमल का एक दूत वहाँ पहुँचा, और उसने तर्जनी दबाई। इससे निश्चय हो गया कि मालदेव के मन में कपट है[1]।"

मुंतख़बुत्तवारीख़ में लिखा है—"जब हुमायूँ शेरशाह से हारकर मारवाड़ की तरफ़ आया, तो उसने अत्काख़ाँ को मालदेव के पास भेजा, और ख़ुद जोधपुर के निकट ठहर गया। मालदेव ने अत्काख़ाँ को अपने पास रोक लिया, और स्वयं इस विचार से सेना एकत्र करता रहा कि हुमायूँ को पकड़कर शेरशाह के सिपुर्द कर दे; क्योंकि नागौर उस समय शेरशाह के अधीन हो गया था। इसके अलावा मालदेव शेरशाह से डरता भी था। अत्काख़ाँ मालदेव के यहाँ से किसी प्रकार भागकर हुमायूँ के पास आ गया, और यह सूचना उसे दे दी[2]।"

निज़ामुद्दीन अहमद ने अपनी 'तबक़ात-इ-अकबरी'-नामक पुस्तक में लिखा है—"जब हुमायूँ भागकर मालदेव के राज्य में आया, तब उसने शम्सुद्दीन मुहम्मद अत्काख़ाँ को जोधपुर भेजा, और स्वयं अत्काख़ाँ के आने की राह देखता हुआ मालदेव के राज्य की सीमा पर ठहर गया। जब मालदेव को हुमायूँ की कमज़ोरी और शेरशाह से मुक़ाबला करने-योग्य सेना का उसके पास न होना ज्ञात हुआ, तब उसे भय हुआ; क्योंकि शेरशाह ने अपना एक दूत मालदेव के पास भेजकर बड़ी-बड़ी आशाएँ दिलाई थीं, और उसने भी शेरशाह से प्रतिज्ञा कर ली थी कि यथासंभव मैं हुमायूँ को पकड़कर आपके पास भेज दूँगा। इधर नागौर पर शेरशाह ने अधिकार कर लिया था, अतः मालदेव ने भय में आकर हुमायूँ पर फ़ौज भेज दी। हुमायूँ को इस बात की सूचना न मिल जाय,

१. अबुलफ़ज़ल मालदेव के पास भेजे हुए हुमायूँ के दूत का नाम मीर समंदर लिखता है। अल्-बदायूनी अपनी पुस्तक "मुंतख़बुत्तवारीख़" में उसी का नाम अत्काख़ाँ होना बतलाता है, और निज़ामुद्दीनअहमद अपनी तबक़ात-इ-अकबरी में उसका पूरा नाम 'शम्सुद्दीनमुहम्मद अत्काख़ाँ' लिखता है। अनुमान होता है, फ़ारसी-वर्णमाला के दोषों के कारण शम्सुद्दीन के स्थान में अबुलफ़ज़ल के अकबरनामे में 'समंदर' पढ़ा गया होगा

१. अबुलफ़ज़ल के 'अकबरनामे' का बेवरिज-कृत अँगरेज़ी-अनुवाद; जिल्द १, पृ० ३७२-७३।

२. अल्-बदायूनी की 'मुंतख़बुत्तवारीख़' का रैंकिंग-कृत अँगरेज़ी-अनुवाद; जि० १, पृ० ५६२-६४।

इसके लिये उसके दूत अल्काज़ों को वहीं रोक लिया; परंतु वह मौक़ा पाकर हुमायूँ के पास पहुँच गया, और उसे यह सब ख़बर दे दी[1]।"

निज़ामुद्दीन ने यह भी लिखा है—"हुमायूँ के एक पुस्तकाध्यक्ष ने, जो क़न्नौज की लड़ाई के बाद भागकर मालदेव की सेवा में रह गया था, हुमायूँ को लिख भेजा कि मालदेव धोके से आपको पकड़ा देगा, अतः आप इसके राज्य की सीमा से अति शीघ्र बाहर चले आइए[2]।"

निज़ामुद्दीन और अल्-बदायूनी ने यह भी लिखा है—"मालदेव के दो गुप्तचर हुमायूँ के यहाँ पकड़े गए। भेद लेने के लिये जब उनको मारने का हुक्म दिया गया, तब उन्होंने हुमायूँ के आदमियों से ही छुरा और ख़ंजर छीनकर, मारे जाने से पहले, ऐसा हमला किया कि मर्द, औरत या घोड़ा, जो कोई सामने आया, उसे मार डाला। १७ जीव उनके हाथ से मारे गए, जिनमें हुमायूँ की सवारी का एक ख़ासा घोड़ा भी था। मालदेव के इस बर्ताव को देखकर हुमायूँ उमरकोट की तरफ़ चला गया[3]।"

इन अवतरणों से स्पष्ट है कि मालदेव ने हुमायूँ की कुछ भी सहायता नहीं की। इतना ही नहीं, वह तो उसे पकड़कर शेरशाह के सिपुर्द करने को उद्यत था। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि वह शेरशाह का शत्रु नहीं, किंतु एक प्रकार से सहायक ही था। ऐसी दशा में यह भी संभव नहीं कि शेरशाह शत्रुता का बदला लेने की इच्छा से उस पर चढ़ाई करे। इसलिये इस चढ़ाई का कुछ और ही कारण होना चाहिए।

'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्'-नामक संस्कृत ऐतिहासिक पुस्तक से, जिसकी रचना अकबर के राज्य के ३८वें वर्ष, अर्थात् वि० सं० १६५० में[4] राजगच्छ[1] के प्रमोदमाणिक्यगणि के शिष्य जयसोम ने लाहौर में की थी,[2] इस चढ़ाई के कारण का पता चलता है। उसमें लिखा है—

"किसी समय मालदेव सेना के साथ जांगलदेश (बीकानेर-राज्य) पर अधिकार जमाने की इच्छा करने लगा। तब जैतृसिंह (जैतसिंह) ने मंत्री (नगराज[3]) से कहा कि मंत्रिराज, मालदेव बलवान् है; हम लोगों से जीता नहीं जा सकता। इसलिये उसके साथ लड़ाई की इच्छा करना फलदायक नहीं। सुना जाता है, वह यहाँ पर चढ़ाई करनेवाला है, इसलिये उसके चढ़ आने के पहले ही उपाय की मंत्रणा करनी चाहिए। फिर आ जाने पर क्या हो सकता है? तब निपुण मंत्री ने यह सलाह दी कि शेरशाह का आश्रय लेना चाहिए। इसके बिना हमारा काम न निकलेगा; क्योंकि समर्थ की चिंता समर्थ ही मिटा सकता है—हाथी के सिर की खुजलाहट बड़े वृक्ष से ही मिट सकती है। यह सुनकर जैतसिंह ने कहा—वाह, महामंत्री, अपना काम सिद्ध करने के लिये तुमने अच्छा उपदेश दिया। अपने से बढ़कर गुणवान् की सेवा निष्फल होने पर भी अच्छी है; सफल होने पर तो कहना ही क्या! इसलिये तुम्हीं सोत्साह मन से शाह के समीप जाओ; क्योंकि मानस-सरोवर के बिना हंस प्रसन्न नहीं होते। फिर, नज़राने के उपायों में चतुर, बलवान् मंत्री नगराज, जो पर्वतराज की तरह युद्ध में शत्रु-रूपी वायु से न डिगनेवाला था, 'जो आज्ञा' कहकर क्षत्रियों की सेना लेकर, (अच्छे) शकुनों से अपने अर्थ के सिद्ध होने का अनुमानकर, बादशाह के पास पहुँचा। मंत्रणा में निपुण नगराज ने हाथी, घोड़े, ऊँट आदि भेंट करके शूर-वीरों की

१. तबक़ात-इ-अकबरी: इलियट : हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ५, पृ० २११-१२।

२. वही; जि० ५, पृ० २१२।

३. वही; जि० ५, पृ० २१२; और अल्-बदायूनी की पुस्तक का रैंकिंग-कृत अँगरेज़ी-अनुवाद; जि० २, पृ० ५६४।

४. श्रीजैनचंद्रसुगुरौ राज्ये विजयिनि विपत्तबलजयिनि;
क्रमतो नृपविक्रमतः खभूतरसशशि(१६५०)मिते वर्षे ॥५२६॥
साहिश्रीमदकब्बरराज्यदिनादखिललोकसुखहेतोः;
अष्टत्रिंशे संवति लाभकृते लाभपुरनगरे ॥ ५२७ ॥
(कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्)

१. कलिकालकेवलीति ख्यातिं प्राप्तास्ततश्च जिनचंद्राः;
बोधितभूपचतुष्टयकृतसेवा राजगच्छाख्याः ॥ ५१४ ॥

२. श्रीजिनकुशलाम्नाये श्रीमत्क्षेमकीर्तिशाखायाम्;
श्रीक्षेमराजशिष्यप्रमोदमाणिक्यगणिशिष्यैः ॥ ५२९ ॥
श्रीजयसोमैर्विहिता धीसखवंश्यावली गुरोर्वचसा।
... ... ॥ ५३० ॥
(कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्)

३. जोधपुर के राव जोधा ने अपने पुत्र बिक्रम (बीका) को जांगल-देश-विजय कर नवीन राज्य स्थापन करने को भेजा। उस समय मंत्री वत्सराज को भी बीका के साथ भेजा था। नगराज उक्त मंत्री वत्सराज के दूसरे पुत्र वरसिंह का पुत्र था।

रक्षा करनेवाले सुल्तान को प्रसन्न किया। [अपनी अनुपस्थिति में] शत्रु की चढ़ाई के डर से (राजकुमार) कल्याण (जैतसिंह का पुत्र कल्याणमल्ल) सहित सब राजपरिवार को इस (नगराज) ने सारस्वत (सिरसा) नगर में छोड़ा था। मालदेव के मरुस्थल लेने के लिये आने पर जैतसिंह क्रोध से विकराल-मुख होकर युद्ध करने के लिये शत्रुओं के सम्मुख आया। युद्ध आरंभ होने पर मंत्री भीम[1], योद्धाओं के साथ लड़ता हुआ, शुद्ध ध्यान-पूर्वक, राजा के सामने स्वर्ग को प्राप्त हुआ। संग्राम में जैतसिंह के मारे जाने पर मालदेव जांगल देश को छीनकर गुफा के समान अपनी पुरी (जोधपुर) को चला गया। [इधर नगराज] बादशाह से सादर प्रार्थना कर उसकी सेना के साथ ही शत्रुमंडल को नष्ट कर, उनके योद्धाओं का रण में विनाश कर, अपने देश पर अधिकार जमा और वैरियों से बदला लेकर शोभा सहित शाह के साथ लौटा। स्वामिधर्म के पालन में धुरंधर नगराज ने राजा कल्याणमल को शाह के हाथ से साम्राज्य-तिलक दिलवाया, उसे विक्रमपुर (बीकानेर) भेजा, और आप बादशाह के साथ गया; क्योंकि सज्जन स्वार्थी नहीं हुआ करते। गुप्त मंत्रणा के बल से अनेक बलवान् शत्रुओं को दबानेवाले इस (नगराज) का शाह शेरशाह ने अधिक सम्मान किया। फिर किसी समय बादशाह की आज्ञा पाकर संतोष ही से तृप्त मंत्रिराज अपने देश की ओर चला। शीघ्र आता हुआ पूर्ण-मनोरथ मंत्री मार्ग में, अजमेर में, पंडितों के सदृश मृत्यु से स्वर्ग को प्राप्त हुआ[2]।"

इस अवतरण से निश्चय होता है कि मालदेव का बीकानेर पर हमला करने का विचार सुनकर वहाँ के राव जैतसिंह ने अपने मंत्री नगराज को शेरशाह के पास भेंट सहित भेजा। नगराज बादशाह से मेल-मिलाप बढ़ाकर

---

१. भीम (भीमराज) मंत्री वत्सराज के तीसरे पुत्र नरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था।

२. मालदेवेऽन्यदा सेनासनाथे जांगलावनीम् ;
जिघृक्षति महामात्यं जैतुसिंहोऽवदत्तराम ॥ २०५ ॥
मंत्रिराज बली राजा मालदेवोऽस्मदादिभिः ;
असाध्यस्तेन नानेन सार्द्धं स्पर्द्धा गुणावहा ॥ २०६ ॥
श्रूयतेऽत्र समागंता यावन्नायाति स स्वयम् ;
तावत्पुरैव मंत्रोऽत्र कार्यः किं पुनरागते ॥ २०७ ॥
गूढमंत्रस्ततो मंत्री राज्ञा मंत्रितवानिति ;
सेरसाहिरिनाराभ्यो विना तं न स्वकामितम् ॥ २०८ ॥
समर्थानां यतश्चिंता समर्थैरपनीयते ;
महाद्रिणेव कण्डूया गजगंडस्य नश्यति ॥ २०९ ॥
साधुसाधु महामंत्रिन्मंत्रितं स्वार्थसिद्धये ;
गुणायाधिगुणा सेवा मोघापि सफला किम् ॥ २१० ॥
तेन साहिसमीपे त्वं याहि सोत्साहमानसः ;
मानसेन विना येन न हंसानां मनोरतिः ॥ २११ ॥
तथेत्युक्त्वा ततो मंत्री नगराजो बलाधिकः ;
नगराज इवाक्षोभ्यो रणे वैरिसमीरणैः ॥ २१२ ॥
राजन्यसैन्यमादाय दानोपायविशारदः ;
शकुनानुमितस्वार्थसिद्धिः साहिमुपेयिवान् ॥ २१३ ॥
गज इवकरमभ्रातमुपदीकृत्य सेवया ;
शरत्राणं सुरत्राणं प्रीणयामास मंत्रवित् ॥ २१४ ॥
शात्रवागममाशंक्य सकल्याणस्ततोऽखिलः ;
राजलोकोऽमुना मुक्तः श्रीसारस्वतपत्तने ॥ २१५ ॥
मालदेवे समायाते समादातुं मरुस्थलीम् ;
जैतसिंहोऽभ्यमित्रीणः समभूद्विमुखो रुषा ॥ २१६ ॥
आयोधने समारब्धे नृपाग्रे भीममंत्रिवत् ;
युद्ध्यमानो भटैः सार्द्धं शुद्धध्यानो दिवं ययौ ॥ २१७ ॥
मालदेवोऽपि संग्रामे जैतसिंहे मृते सति ;
जं (जां) गलं देशमादाय दरीमिव पुरीं गतः ॥ २१८ ॥
साग्रहं साहिमभ्यर्थ्य सममेवास्य सेनया ;
वैरिमंडलमुद्रास्य रणे हत्वा च तद्भटान् ॥ २१९ ॥
स्वदेशमात्मसात्कृत्वा शोभामासाद्य वैरिषु ;
वैरनिर्यातनं कृत्वा व्यावृत्तोऽथ स्वसाहिना ॥ २२० ॥
साम्राज्यतिलकं साहिकरेणाकारयत्तराम् ;
कल्याणमल्लराजस्य स्वामिधर्मधुरंधरः ॥ २२१ ॥
राजानं प्रेषयामास विक्रमाख्यं पुरं प्रति ;
स्वयं त्वनुययौ साहेर्न संतः स्वार्थलंपटाः ॥ २२२ ॥
गूढमंत्रबलाक्रांतदुर्दान्तरिपुसंततिः ;
संमानितोऽधिकं योऽत्र साहिना सेरसाहिना ॥ २२३ ॥
आज्ञामासाद्य साहेर्यामन्यदा मंत्रिनायकः ;
संतोषपोषभृज्जातः स्वदेशमभिगामुकः ॥ २२४ ॥
तूर्णं पथि समागच्छन्मंत्री पूर्णमनोरथः ;
अजमेरपुरे स्वर्गमगात्पंडितमृत्युना ॥ २२५ ॥
(कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्)

जैतसिंह के मारे जाने के पश्चात् उसको मालदेव पर चढ़ा लाया। शेरशाह की चढ़ाई का यही ठीक कारण अनुमान किया जा सकता है।

मारवाड़ की ख्यात में लिखा है—"वि० सं० १५९८ में राव मालदेव की फ़ौज बीकानेर पर चढ़ गई, जिसका सरदार कूँपा था। इस लड़ाई में राव जैतसी (जैतसिंह) लड़कर काम आया। अब जैतसी का पुत्र कल्याणमल वीरमदेव दूदावत के साथ सूर बादशाह शेरशाह के पास दिल्ली गया। पहले बादशाह से मिलना न हो सका। परंतु पीछे से जब मिलना हुआ, तब बहुत कुछ ख़ुशामद करके बादशाह को वे मारवाड़ पर चढ़ा लाए[1]। जैतसिंह के मारे जाने के पीछे कल्याणमल के दिल्ली के बादशाह के पास जाने का कथन मानने-योग्य नहीं है, क्योंकि यह ख्यात सं० १७०० वि० से भी बहुत पीछे की बनी हुई है।

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास-कृत 'वीरविनोद' में लिखा है कि राव मालदेव ने बीकानेर और मेड़ता अपने भाइयों से छीन लिए थे। इससे बीकानेर का राव कल्याणमल और मेड़ते का राव वीरमदेव शेरशाह के पास दिल्ली पहुँचे, और मदद के लिये उसको चढ़ा लाए[2]। यह सारा वृत्तांत भी मारवाड़ की ख्यात से लिया गया है। इसलिये हम इसे महत्त्व का न समझकर जयसोम के कथन को अधिक विश्वास-योग्य मानते हैं; क्योंकि 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' उक्त चढ़ाई से केवल ५० वर्ष पीछे लिखा गया है। यह पुस्तक जयसोम ने मनगढ़ंत नहीं लिखी। उसका कथन है कि प्रायः अनुरागवाला पुरुष किए हुए से भी अधिक वर्णन करता है, और द्वेषी (गुणों को) छिपाने के लिये व्याकुल होकर किया हुआ भी सब-का-सब नहीं कहता। अपने से पहले के पुरुषों को तो मैंने देखा नहीं, इससे उनसे मेरा राग या द्वेष नहीं है, और देखे हुओं का तो मैंने जैसा देखा, वैसा वर्णन किया है। बाक़ी वंशावली-वाचक (वंशावली लिखनेवाले—जागा) पुण्यसार से जो कुछ सुना, उसकी जाँच करके लिखा है[3]। ऐसी दशा में उसका कथन अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। उसके कथनानुसार, मालदेव चढ़ाई करनेवाला है, यह ख़बर पाकर मंत्री नगराज का दिल्ली जाना और उसके जाने के अनंतर युद्ध होकर जैतसिंह का मारा जाना अधिक विश्वास-योग्य है।

बीकानेर की रीजेंसी कौंसिल के एडीशनल मेंबर मुंशी सोहनलाल ने ई० सन् १८८५ से कुछ वर्ष पीछे 'तारीख़-बीकानेर' लिखी, जिसमें लिखा है कि राव जैतसी मालदेव के साथ की लड़ाई में सं० १५९८, चैत्र-वदि ११ को मारा गया। उस समय उसका पुत्र कल्याणसिंह वहाँ मौजूद न था, जिससे यह हाल उसे मालूम न हुआ; क्योंकि अपने पिता की विद्यमानता में ही वह राणा साँगा के साथ बाबर की लड़ाई में बयाने गया हुआ था[1]।

बयाने जाने का उपर्युक्त कथन भी विश्वास-योग्य नहीं है; क्योंकि राणा साँगा और बाबर की लड़ाई वि० सं० १५८४ में हुई थी, न कि १५९८ के आसपास। परंतु इस कथन से यह अभिप्राय निकल सकता है कि राव जैतसी की मालदेव के साथ जो लड़ाई हुई, उसके समय कल्याणसिंह (कल्याणमल) बीकानेर में नहीं था; क्योंकि जयसोम के कथनानुसार मंत्री नगराज राजपरिवार सहित उसे सिरसे में छोड़ आया था।

उसी किताब में आगे चलकर यह भी लिखा हुआ है कि अब इन्होंने (कल्याणमल आदि ने) सिरसे में मुक़ाम किया, और वे अपने पैतृक राज्य को मालदेव से छुड़ाने का यत्न करने लगे। यहाँ से राव कल्याणसिंह (कल्याणमल) का भाई भीमराज पचास सवार लेकर दिल्ली गया, और बादशाह हुमायूँ की नौकरी में दाख़िल हो गया। इधर वीरमदेव मेड़तिया भी सिरसे में कल्याणमल से आ मिला। भीमराज वज़ीर से मेल बढ़ाकर उसके द्वारा हुमायूँ बादशाह तक पहुँच गया, और वीरमदेव भी भीमराज के पास दिल्ली आ पहुँचा। इसके बाद लेखक ने शेरशाह के दिल्ली के राज्यसिंहासन पर

१. हस्त-लिखित मारवाड़ की ख्यात; जि० १, पृ० ६६।

२. वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १० के अंत में दिए हुए जोधपुर के इतिहास में राव मालदेव का वृत्तांत।

३. रक्तमतिर्वदतितरां यस्मादधिकं कृतादपि प्रायः;
द्विष्टः कृतमपि सकलं न वदति यदपलपनाकुलितः ॥५३२॥
पूर्वजानामदृष्टत्वाद्रागद्वेषौ न तेषु मे;
दृष्टानां तु यथादृष्टं वर्णना विदधे मया ॥ ५३३ ॥
वंश्यावलीवाचकपुण्यसार-
मुखाद्यथाश्रावि तथा विविच्य;
अस्माभिरप्यादरसारचित्तै-
र्लिपीकृतेऽयं कृतिनां सुखाय ॥ ५३४ ॥
(कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्)

१. तारीख़-बीकानेर; पृ० ११५-१६।

आरूढ़ होने तथा भीमराज और वीरमदेव के बादशाह को ससैन्य मालदेव पर चढ़ा लाने का विवरण दिया है[1]।

इस कथन के अनुसार वि० सं० १५९८ के बाद भीमराज का हुमायूँ के पास दिल्ली जाना पाया जाता है, जो संभव नहीं ; क्योंकि उस समय से पूर्व ही हुमायूँ दिल्ली छोड़कर इधर-उधर भागा फिर रहा था। मुंशी सोहनलाल की पुस्तक, कर्नल पाउलेट-कृत बीकानेर के गैज़ेटियर तथा ख्यातों एवं चारणों-भाटों आदि के कथन के आधार पर लिखी हुई होने से, इस प्रसंग में मारवाड़ की ख्यात-जैसी ही अविश्वसनीय है।

ऊपर उद्धृत किए हुए प्रमाणों से निश्चित है कि मालदेव का बीकानेर पर चढ़ाई करने का विचार प्रकट होने पर राव जैतसिंह ने अपने मंत्री नगराज को अपनी सहायता करने के लिये शेरशाह को चढ़ा लाने के वास्ते भेजा था ; और जैतसिंह की मृत्यु के अनंतर नगराज उसे मालदेव पर चढ़ा लाया था। इस प्रकार बीकानेरवालों के आत्म-रक्षणार्थ बुलाने पर ही शेरशाह ने मालदेव पर चढ़ाई की थी, अन्य किसी कारण से नहीं।

गौरीशंकर-हीराचंद ओझा

जीवाणुवाद

संसार में निर्जीव और सजीव पदार्थों की दो मुख्य श्रेणियाँ हैं। प्रत्येक वह वस्तु, जो सजीव नहीं है, निर्जीव कहलाती है। सजीवत्व के तीन गुण माने गए हैं, जो प्रत्येक सजीव पदार्थ को निर्जीव से पृथक् करते हैं। इनके नाम ये हैं—अंगी-करण, आत्मरक्षण और उत्पादन। हम लोग विविध प्रकार के भक्ष्य, पेय, चोष्य आदि पदार्थों को खाते-पीते तो हैं, किंतु उन्हें पचाकर रुधिर, मांस आदि बना लेते हैं। इसी प्रकार विविध प्रकार के वृक्ष, घास आदि मूलों तथा पत्तियों द्वारा जलांश तथा अन्य पदार्थ खींचकर उनसे अपने-अपने कलेवर की वृद्धि करते हैं। इसी पाचन-शक्ति को आत्मीकरण अर्थात् अन्य पदार्थों को अपना बनाकर अपनी वृद्धि करना कहते हैं। यदि किसी सजीव पदार्थ में किसी प्रहार द्वारा कोई क्षत हो जाय, तो उसमें ऐसी स्वाभाविक शक्ति है कि या तो सक्षत शरीर को अक्षत बनाने के प्रयत्न में वह मर ही जायगा, अथवा अंत में अपने शरीर को अक्षत ही बना लेगा। क्षत के असाध्य होने अथवा परिस्थितियों द्वारा असाध्य हो जाने से ही मृत्यु होती है, अन्यथा नहीं। साधारणतः प्रत्येक जीवधारी अपने सक्षत शरीर को अक्षत बना ही लेता है। यदि किसी वृक्ष में कहीं कुल्हाड़ी मार दी जाय, तो कुछ दिनों में वृक्ष उस क्षत को ठीक कर लेगा। किंतु यदि किसी पत्थर में छोटा-सा भी चिह्न बना दिया जाय, तो बड़े-से-बड़ा पत्थर भी उसे पूरा न कर सकेगा। और, जब तक पाषाण का उतना अंश घिस न जायगा या दूसरी तरह नष्ट न हो जायगा, तब तक प्रलय-पर्यंत वह क्षत बना ही रहेगा। यही जीवधारियों की आत्मसंरक्षण-शक्ति है, जो निर्जीव पदार्थों में नहीं पाई जाती। तीसरी शक्ति उत्पादन की है, अर्थात् प्रत्येक जीवधारी अपना-सा दूसरा जीवधारी उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखता है। किसी-किसी व्यक्ति में कुछ कारणों से इस शक्ति का अभाव-सा पाया जाता है ; किंतु यह व्यक्ति-गत दोष है, जाति-संबंधी नहीं। प्रत्येक स्वस्थ जीवधारी में उपर्युक्त तीनों गुण रहते हैं ; किंतु किसी भी निर्जीव पदार्थ में ये तीनों गुण नहीं पाए जाते। इस प्रकार विचार करने से प्रकट होगा कि वनस्पति-वर्ग की भी संज्ञा जीवधारियों में है।

निर्जीव पदार्थ के छोटे-से-छोटे खंड को परमाणु कहते हैं। यह इतना छोटा भाग है कि फिर इसके खंड नहीं हो सकते। हाल में वस्तु को शक्ति-समुदाय माननेवालों ने परमाणु का भी आयन और इलेक्ट्रन में विश्लेषण किया है, जिससे परमाणु शक्ति के केंद्र-मात्र रह जाते हैं। इस विषय पर जाना अनावश्यक है। वैज्ञानिकों का मत है कि संसार परमाणु-ही-परमाणु से बना है, अतः सरल पदार्थों के मिश्रण से विविध पदार्थ बनते गए। यहाँ तक कि उन्नति होते-होते क्रमशः पूरा संसार बन गया। यह उन्नति अब भी चल रही है, और संसार दिनोंदिन श्रेष्ठतर होता जा रहा है। इसी सिद्धांत को संस्कृत में परिणामवाद कहते हैं। निर्जीव पदार्थों में जैसा परमाणु है, सजीवों में वैसा ही घटक है, जिसे अँगरेज़ी में सेल (Cell) कहते हैं। यह छोटे-से-छोटा जीवधारी है। विज्ञान ने यह खोज निकाला है कि प्रत्येक घटक में कौन-कौन-से तत्त्व (Elements) हैं। किंतु उन्हीं

---

१. तारीख़-बीकानेर ; पृ० ११६-१२०।

तत्वों को मिलाकर विज्ञान यथावधि घटक बनाने में असमर्थ रहा है। प्रत्येक घटक सजीव होने से जीवाणु-युक्त कहा जा सकता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० वसु आदि महाशयों ने यह विचार प्रकट किया है कि किसी दशा में कुछ ख़ास संपीड़नों के प्रभाव से, निर्जीव तत्वों से, जीवाणु का विकास हो सकता है, और प्रत्येक निर्जीव वस्तु में छिपा हुआ जीव बीज है। यह अभी तक विचार-मात्र है पूर्णतः दृढ़ नहीं हुआ। अद्यावधि यही मानना चाहिए कि विज्ञान निर्जीव और सजीव पदार्थों के बीच की खाई पार नहीं कर सका। इसीलिये अब तक निर्जीव और सजीव पदार्थों की दो पृथक् श्रेणियाँ हैं।

जीवाणु-युक्त घटक (Cell) का इतना ही मुख्य काम है कि वह उचित दशा में रहने से बढ़ता है। यहाँ तक कि उसके दो भाग हो जाते हैं, और प्रत्येक भाग एक नवीन जीवाणु-युक्त घटक होकर बढ़ने लगता तथा फिर दो घटक बनाता है। ये नवीन घटक भी बढ़कर अन्य घटक बनाते हैं। इन घटकों में एक दूसरे से मिलने की भी शक्ति उचित दशाओं में है। इस मिश्रण-शक्ति के ही द्वारा इन घटकों से अन्य देहधारी बनते और वृद्धि पाते हैं। घास के एक छोटे-से टुकड़े में भी सैकड़ों-हज़ारों घटक रहते हैं। संसार में जीवधारियों की दो प्रकार की क्रियाएँ मुख्य हैं—सहज क्रियाएँ और इच्छा-शक्ति द्वारा उत्पन्न क्रियाएँ। प्रत्येक जीवधारी में ऐसी सहज क्रियाएँ होती हैं, जिनसे आत्मरक्षण, अंगीकरण और उत्पादन के कार्य चलते हैं। ऊँची श्रेणी के देहधारियों में इन क्रियाओं में इच्छा-शक्ति भी बहुत कुछ मिल जाती है। यदि किसी नवजात बच्चे के मुख में स्तन लगा दिया जाय, तो वह उसे पीने लगता है। यदि किसी की आँख के सामने आक्रमण की मुद्रा में उँगली आदि ले आइए, तो ऐसा जानते ही आँख आप-से आप बंद हो जाती है। ये सहज क्रिया के उदाहरण हैं। वनस्पति वर्ग का इच्छा-शक्ति से संबंध नहीं है, और उनके सब काम सहज क्रियाओं ही पर अवलंबित हैं। वायु का झोंका जिस ओर ले जायगा, उसी ओर को उनकी शाखाएँ झुकेंगी, प्रतिकूल नहीं। इधर हमारा हाथ इच्छानुसार झुकेगा, झोंका चाहे जिधर जाता हो। निम्न श्रेणी के पशु-पक्षियों में सहज क्रियाएँ प्रधान हैं; किंतु उनमें न्यूनाधिक इच्छा-शक्ति भी है। जीवित शरीरों की श्रेणी जैसे-जैसे ऊँची होती जाती है, वैसे-ही-वैसे उसमें इच्छा-शक्ति की प्रधानता बढ़ती जाती है।

प्रत्येक घटक, अन्य शरीर का अंग होने पर भी, सजीव रहता है, और परिस्थितियों के अनुसार जीता-मरता है, चाहे वह पूरा शरीर न भी जिए-मरे। यदि कोई उँगली काटकर फेंक दी जाय, तो कुछ देर तक वह सजीव रहेगी, और पीड़ा के कारण उछलती भी रहेगी। जब कुछ देर में उसके घटकों में उछलने की शक्ति न रहेगी, तो वह स्थिर हो जायगी, और जब वे घटक जीवाणु-शून्य होकर मर जायँगे, तब और तभी वह कटी हुई उँगली मरेगी, यद्यपि उस शरीरधारी का शेष शरीर सजीव होगा। इसी प्रकार फोड़े आदि में जो पीब निकलती है, वह भी शरीर ही में वर्तमान मृत-घटकों का शव-समूह है।

अब यह प्रश्न उठता है कि जीवात्मा क्या वस्तु है, और जीवाणुओं से उसका क्या संबंध है? प्रत्येक घटक सजीव है, इसलिये उसमें जीवात्मा की कल्पना की जा सकती है। किंतु प्रत्येक घटक में जीवात्मा मानने से हरएक बड़े शरीर में अरबों-खरबों जीवात्माएँ माननी पड़ेंगी, जो प्रकट ही उपहासास्पद है। अतएव प्रत्येक घटक (Cell) में जीवात्मा मानना ठीक नहीं। उसमें जीवाणु-मात्र मानने चाहिए। इसी से हम घटक को जीवाणु-युक्त कहते आते हैं। अब यदि घटक में जीवात्मा की कल्पना अनुपयुक्त है, तो प्रश्न यह उठता है कि वह छोटे-से-छोटा कौन शरीर है, जिसमें जीवात्मा की कल्पना आरोपित होनी चाहिए? हम देखते हैं, मनुष्य के शरीर में असंख्य घटक होने से उसमें असंख्य जीवाणु हैं। लाखों-करोड़ों घटक मिलकर उसके प्रत्येक अंग को बनाते हैं। मनुष्य शरीर में अस्थि का एक भाग है, और मांस, रुधिर, त्वचा आदि का दूसरा। वैद्यक-शास्त्र का कथन है कि मनुष्य का शरीर प्रतिक्षण बदलता रहता है, अर्थात् उसके कुछ घटक मरकर निकलते और नए घटक उनका स्थान लेते रहते हैं। इस प्रकार प्रति ४० दिनों में अस्थि को छोड़कर मनुष्य-शरीर का शेष भाग नया हो जाता है, और प्रति सात वर्षों में उसकी अस्थियाँ भी बिलकुल नई हो जाती हैं, अर्थात् सात वर्ष के पीछे हर बार मनुष्य के प्राचीन शरीर का कोई भी अंश उसके नवीन शरीर में नहीं रह जाता। अतः प्रत्यक्ष में तो मनुष्य का शरीर वही बना रहता है, किंतु वास्तव में उसमें प्रतिक्षण सैकड़ों-हज़ारों नवीन जीवाणु-युक्त घटक आते और प्राचीन मरते रहते हैं। अतएव मनुष्य की जीवित अवस्था में भी उसके शरीर में जीने-मरने का काम प्रतिक्षण होता ही रहता है।

आजकल उपर्युक्त डॉक्टरी विचार शिक्षित लोगों में संपूर्ण सत्य माने जाते हैं। अतएव मनुष्य-शरीर के घटकों के जीवन-मरण का पूरे शरीर के जीवन-मरण से बहुत कम संबंध है। इतना अवश्य है कि मनुष्य के मर जाने पर, तीन घंटे के अंदर, उसके शरीर के सारे घटक भी मर जाते हैं; क्योंकि तीन घंटे तक भोजन का आधार न मिलने से कोई घटक जीवित नहीं रहता। ऐसा ही अन्य शरीरों के जीवाणुओं का भी हाल है। जीवात्मा के विषय में अपने यहाँ निम्न-लिखित विचार ग्राह्य माना गया है—

"सूक्ष्मं मनो बुद्धिदशेन्द्रियैर्युतं प्राणैरपञ्चीकृतभूतसंभवम् ;
भोक्तुः सुखादेरपि साधनं भवेच्छरीरमन्यद्विदुरात्मनो बुधाः ।"

इससे प्रकट है कि जीवात्मा पार्थिव पदार्थ नहीं, कोई दैवी वस्तु-मात्र है। यही या ऐसा ही विचार अन्य मत-वालों का भी है। अस्तु, जब जीवात्मा पार्थिव नहीं, तो वह शरीर के अवयवों के साथ बनता-मिटता भी न होगा। ऐसी दशा में शरीर से उसका संबंध कैसे मानना चाहिए, इसका विचार सुगम नहीं है; क्योंकि विचार करने से वह कल्पना-मात्र रह जाता है। यह कल्पना एक धार्मिक विचार-मात्र समझ पड़ती है, जिसका मानना-न मानना केवल विश्वास पर निर्भर है, तर्क पर नहीं। फिर यह सोचना पड़ता है कि शरीरों के संबंध में जीवात्मा की कल्पना किस दर्जे से उचित है? ऊपर कहा जा चुका है कि घटक में आत्मा मानने से विचार-शैली युक्ति-युक्त नहीं रहती। घटक के ऊपर वनस्पति का नंबर है। अब तक घास आदि में जीवात्मा का होना सर्वसम्मति से नहीं माना गया है। गुलाब आदि की प्रत्येक डाली काटकर यदि अलग लगा दी जाय, तो पेड़ तैयार हो जाता है। यदि वृक्ष में एक जीवात्मा माना जाय, तो डालियाँ पौदा कैसे बन जाती हैं, और उनमें जीवात्मा कहाँ से आ जाता है? ऐसी दशा में हरएक डाली में जीवात्मा की कल्पना करनी पड़ेगी। इसी भाँति ऊख की हर गाँठ से जब पौदा हो सकता है, तो प्रत्येक गाँठ में एक जीवात्मा की कल्पना आ पड़ेगी। फिर बीज से उत्पन्न होनेवाले वृक्षों के हरएक बीज में एक-एक जीवात्मा की कल्पना होगी। यदि वनस्पति में जीवात्मा न मानें, तो केंचुए को लीजिए। यदि उसे बीच से, एक ख़ास जगह से, काटकर उसके दो टुकड़े कर डालिए, तो दोनों भाग एक-एक केंचुआ बनकर जीवित रह सकते हैं। ऐसी दशा में केंचुए में दो जीवात्माओं की कल्पना होगी। वीर्य द्वारा उत्पन्न होनेवाले प्राणियों के बारे में और भी कठिनता होती है। एक बार के मैथुन में जितना वीर्य स्खलित होता है, उसमें इतने स्पर्मेटोज़ुआ (बीज-कीट) होते हैं कि उनसे सारे संसार की स्त्रियों के गर्भ रह सकता है। तो क्या प्रत्येक मनुष्य के शरीर में करोड़ों जीवात्माएँ होती हैं? वीर्य वृषणों द्वारा उत्पन्न होता है, और साधारणतः उसका जितना व्यय किया जाता है, उतना ही, सरूया-नुसार, वह नया बनता रहता है। यदि व्यय न हो, तो एक सीमा के बाद उसका बनना बंद हो जाता है, और नवीन व्यय होने से फिर उतना ही पूरा हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य का प्रत्येक बीज-कीट जीवित शरीर है। वीर्य के दो भाग होते हैं—एक बीज-कीटों का, और दूसरा उस द्रव पदार्थ का, जिसमें बीज-कीट चल-फिरकर जीवित रहता है। शरीर से बाहर निकलकर हरएक बीज-कीट उपयुक्त दशा में रहने पर चौबीस घंटे तक बाहर जीवित रह सकता है। अतएव मनुष्य में बीज-कीटों की संख्या के अनुसार करोड़ों जीवात्माओं की कल्पना करनी पड़ेगी। अस्तु, इन विचारों के अनुसार प्रत्येक शरीर में एक प्रधान जीवात्मा की कल्पना ठीक नहीं समझ पड़ती।

मालूम यह पड़ता है कि संसार में एक जीवन-धारा है, जिसका प्रवाह जीवित शरीरों में होकर जारी है। वही धारा प्रत्येक जीवित शरीर का पालन-पोषण करती है, और अन्न, जल, वायु आदि उपयुक्त वस्तुओं की सहायता से उसे जीवित रखती है। मनुष्य, विचारवान् प्राणी होने के कारण, प्रकृति के मुक़ाबले अपने को उचित से अधिक प्रभाव-शाली एवं सत्ता-युक्त मानता है। यहाँ तक कि जीवन के पूर्व तथा मरणानंतर भी उसे अपनी कल्पित सत्ता को मिथ्या मानने में हिचकिचाहट होती है। वास्तव में सारा संसार प्रकृति की संतान है; रज-वीर्य से सबकी उत्पत्ति है; सबका पालन-पोषण प्राकृतिक शक्तियों द्वारा, प्राकृतिक पदार्थों से, प्राकृतिक नियमों के अनुसार होता है। कोई किसी का पिता, पुत्र, भाई, बहन आदि नहीं। सारा संसार प्रकृति का खेल है। अपने जाने हुए जीवधारियों में अच्छा विचार करने की शक्ति एक मनुष्य-जाति ही में है। इसी से मनुष्य अपने को अन्य शरीरधारियों की अपेक्षा बहुत गरिमा-युक्त मानता और अपने शरीर के कल्पित प्रतिनिधि जीवात्मा के अस्तित्व-संबंधी विचारों से जन्म-

मरण के पहले-पीछेवाली दशाओं पर भी अनुमान लड़ाता है। इस अनुमान से मरणासन्न प्राणियों को संसार में कुछ धैर्य मिल सकता है। और, जीवित अवस्था में भी न्याय-पथ पर चलने की कुछ प्रेरणा मिलती है। इसीलिये धार्मिकों ने उचित ही किया, जो जीवात्मा-संबंधी विचारों की पुष्टि की है। किंतु प्राकृतिक नियमों पर विचार करने से इनमें कोई दृढ़ता नहीं जान पड़ती।

इस लेख के लेखकों ने इस विषय पर बहुत दिन विचार किया है, और बड़े-बड़े पंडितों से इस पर पूछ-ताछ भी की है। जीवात्मा को दृढ़ मानने की हमारी इच्छा बलवती है; किंतु विचार करने पर निराशा ही आ घेरती है। यदि कोई सज्जन हमें इस संबंध में विश्वास दिला सकें, तो उनके हम बहुत कृतज्ञ होंगे। हमारा विश्वास जीवात्मा के अस्तित्व पर अवश्य है, और परमात्मा को हम तर्क से भी सिद्ध मानते हैं। किंतु दुर्भाग्य-वश जीवात्मा के अस्तित्व के संबंध की तर्क-परंपरा हमें बहुत निर्बल समझ पड़ती है। आशा है, पंडित लोग इस जटिल प्रश्न पर कुछ विचार करेंगे।

जीवात्मा के अस्तित्व-संबंधी विचारों को प्रेत-योनि से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। यदि प्रेत के अस्तित्व का विचार दृढ़ हो, तो मरणानंतर मनुष्य का जीवात्मा बना रहता है; और ऐसा मानने से जीवित अवस्था में भी उसकी कल्पना दृढ़ हो जाती है। फिर भी प्रेतों के अस्तित्व का अब तक कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल सका है। प्रेत-दर्शन बहुत करके नेत्र-दोष अथवा भयाधिक्य से सत्य समझ पड़ने लगता है। हम लोग जादू के खेलों में बहुत-सी ऐसी बातें देखते हैं, जो प्रत्यक्ष ही प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल देख पड़ती हैं। किंतु प्रत्यक्ष होने पर भी वास्तव में वे असत्य होती हैं, एवं उनका तमाशा केवल चालाकी से दिखलाया जाता है। यही हाल प्रेत-दर्शन का होता है। या तो प्रेत-दर्शन भयाधिक्य से होता है, या नेत्र-दोष से, अथवा देखने का काफ़ी मौक़ा न मिलने या किसी की धोकेबाज़ी से। स्पष्ट रूप से अच्छी तरह प्रेत-दर्शन अद्यावधि किसी को नहीं हुआ। आजकल बहुत-से लोग पाश्चात्य प्रदेशों में जीवात्मा-दर्शनवादी कहे जाते हैं। अपने देश में भी कुछ प्रकट हुए हैं, जो विविध प्रकार से जीवात्मा-संबंधी खेल दिखलाते हैं। इन लोगों ने यहाँ तक जाल रचा है कि प्रेतों के फ़ोटो तक बनाकर दिखा दिए हैं। समझदार लोगों का कहना है कि ये सब कारस्तानियाँ धोके की टट्टी-भर हैं। कहते हैं, ऐसे किसी प्रेत का फ़ोटो अब तक नहीं उतरा, जिसका कोई चित्र संसार में मौजूद न हो। मेज़, प्लैंचेट आदि के द्वारा प्रेतों से प्रश्नों के उत्तर दिलाए जाते हैं। हमने भी यह लीला देखी है। इसमें बहुत करके देखने या लिखनेवाले की अर्द्धोद्बुद्ध मानसिक शक्ति ही काम करके उचित उत्तर दे देती है। जब ऐसे प्रश्न किए जाते हैं, जिन्हें लिखने तथा मेज़ पर हाथ रखनेवाले नहीं जानते, तब कुछ उत्तर अकस्मात् ठीक बैठ जाते हैं, और कुछ अशुद्ध भी। ये सब आकस्मिक घटनाएँ हैं, वास्तविक नहीं।

थियासफ़ीवाले भी अपने योग-बल से बहुत-सी बातें बतलाते हैं। उनमें फ़ी सैकड़े नब्बे लोग धोकेबाज़ समझे जाते हैं; और शेष ऐसे, जो अर्द्धोद्बुद्ध अवस्था-संबंधी कारणों से अपने ही को धोके में डाल देते हैं। जहाँ इस प्रकार की बातें प्रायः हुआ करती हैं, वहाँ के बच्चे भी कभी-कभी कह बैठते हैं कि मैं उस जन्म में अमुक व्यक्ति था। उस व्यक्ति के संबंध की वे अनेक बातें बक जाते हैं, जिनमें दो-चार ठीक भी निकल आती हैं, और जिन्हें लोग बहुत प्रसन्न होकर सत्य कहने लगते हैं। उन्हीं बातों को ये बच्चे अज्ञान-वश पकड़ लेते हैं, और शेष बातें, जो ग़लत होती हैं, छूटती जाती हैं। इसी प्रकार अधिकाधिक बातचीत होने से धीरे-धीरे अधिकांश ठीक बातें दृढ़ होकर, बच्चे को बातों में अज्ञात-रूप से बहुत-सी ऐसी सच्ची बातें आ जाती हैं, जिन्हें लोग पूर्व-जन्म का सच्चा प्रमाण मानने लगते हैं। थियासफ़ी से संबंध रखनेवाले आजकल के योगियों ने यहाँ तक योग-बल का बढ़ना लिखा है कि वे चंद्रमा में नर-जाति के रहने तथा डूबे हुए एटलांटिस-द्वीप की घटनाओं तक का वर्णन करते हैं। जिस व्यक्ति में ऐसी-ऐसी बातों को भी सही मानने की श्रद्धा हो, उसके लिये सभी कुछ प्रमाणित हो सकता है। किंतु, वास्तव में, अब तक प्रेत-योनि के अस्तित्व का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मिला।

तो भी योग-बल की कुछ सिद्धियाँ सत्य सिद्ध हो चुकी हैं। बहुत-से पहुँचे हुए लोग अप्रकट विचारों को अवश्य पढ़ सकते हैं। धार्मिक ग्रंथों में लिखा है कि विचार भी कर्म हैं, चाहे उनके अनुसार कोई कार्य न भी किया जाय। विचारों का कुछ अस्तित्व अवश्य है। यद्यपि अब तक विज्ञान से यह सिद्ध नहीं हो पाया है, फिर भी यह ठीक है कि योग-बल से कुछ लोग परोक्ष विचार पढ़ लेते हैं। यदि किसी कोरे

कागज़ पर कोई भाव-चित्र दृढ़ता-पूर्वक मानसिक क्रिया से ही अंकित कर दिया जाय, तो उस कोरे कागज़ ही को देखकर पहुँचे हुए व्यक्ति मानसिक चित्र अंकित होने के बाद कुछ काल तक उस चित्र का वर्णन कर सकते हैं। ये सब विचार-पठन के उदाहरण हैं। इसी प्रकार हिप्नॉटिज़्म के द्वारा विचार पहुँचाकर भी कुछ कार्य कराए जा सकते हैं, एवं कुछ सिद्धियाँ भी प्रकट की जा सकती हैं। फिर भी, इतनी बातों के सिद्ध होने पर भी, विचारों का ही स्वतंत्र अस्तित्व-भर सिद्ध होता है, जीवात्मा का नहीं।

सबसे कठिन प्रश्न यह उठता है कि संसार में जब असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती, तब घटकों के मिश्रण में आप-से-आप, उनसे अतिरिक्त, कोई जीवात्मा कहाँ से आ जाता है? प्रत्येक घटक में जीवाणु है, और बड़े शरीरों में असंख्य जीवाणु हैं। किंतु उनसे बढ़कर एक जीवात्मा कहाँ से आया, जो माना जाय? गुलाब के पौधे में जीवाणु प्रचुरता से हैं, किंतु एक जीवात्मा नहीं है; क्योंकि ऐसा मानने से प्रत्येक शाखा में एक जीवात्मा मानना पड़ेगा। पौधों में नई नई डालियाँ हुआ करती हैं। अतः एक पौधे में प्रतिक्षण साथ-ही-साथ अनेक जीवात्माएँ हुआ करेंगी। इसी भाँति पेड़ों के बीज प्रतिक्षण बना करते हैं। ऐसी दशा में प्रत्येक बीज में एक जीवात्मा आवेगा; क्योंकि प्रत्येक बीज सूक्ष्म रूप से वृक्ष है, और उससे वृक्ष बन सकता है। फिर जीवात्मा मानने से पेड़ों की क़लम चढ़ाने में गड़बड़ होगी; क्योंकि एक जीवात्मा में दूसरा जीवात्मा आ पड़ेगा। यह भी हो सकता है कि कटहल के पेड़ पर आम की क़लम चढ़ सके। हमारे ही बग़ीचे में एक ऐसी क़लम हाल में लगी है, जो फलती भी है। इस दशा में जीवात्माओं के मानने से पूरी गड़बड़ होगी। एक यह भी प्रश्न उठता है कि बीज बनने में किस अवसर पर जीवात्मा आता है? बीज एकबारगी तो बन नहीं जाता। वृक्ष के रस तथा अन्य अंशों से धीरे-धीरे वह बनता है। उन सब भागों में घटकों के होने से जीवाणु-समूह हैं सही; किंतु बीज तैयार होने से किस दशा में उसमें जीवात्मा आता है? यह प्रश्न जटिल है, और इसका कोई उत्तर नहीं मिलता।

यह तो हुई वनस्पति की दशा। अब अंडों पर विचार कीजिए। जैसे घटक में कलल-रस तथा केंद्र-रस होता है, वैसे ही अंडों में भी। अंडे के भीतर जो श्वेत रस है, वह कलल रस (Protoplasm) के समान है, और पीत भाग जीवन का मुख्यांश होने के कारण केंद्र-रस (Neucloplasm) कहा जा सकता है। यहाँ तक अनुभव हुआ है कि यदि किसी युक्ति से मुर्ग़ी के अंडे का केंद्र-रस निकालकर, उसके कलल रस में कबूतर के या किसी अन्य ऐसे ही पक्षी के अंडे का केंद्र रस युक्ति से रख दिया जाय, तो समय पर बच्चा ज़िंदा निकलेगा, और वह उसी पक्षी का होगा, जिसका केंद्र रस। अर्थात् एक पक्षी के कलल रस में दूसरे का केंद्र-रस जीकर बच्चा बना सकता है। यदि अंडे में जीवात्मा हो तो वृक्षों की क़लम की भाँति इस कलल-रस और केंद्र-रस की अदला-बदली में जीवात्माओं की कल्पना को धक्का पहुँचता है। इसी भाँति प्रत्येक घटक में कलल-रस और केंद्र-रस रहता है, और घटक की क्रिया से मनुष्य की मानसिक तथा दैहिक शक्तियों की समता का पूर्व रूप मिलता है। अतएव घास पात, पक्षिवर्ग, पशु-वर्ग तथा मनुष्यों का पूर्व-जन्म एक ही प्रकार से होना सिद्ध होता है। इन कारणों से यदि उनमें जीवात्मा नहीं है, तो मनुष्य में भी न होगा। जैसे गुलाब की शाखाओं, गन्ने की गाँठों, वृक्ष के बीजों तथा पक्षियों के अंडों में, किसी ख़ास मौक़े पर, जीवात्मा का प्रवेश अनुचित समझ पड़ता है, और यह जान पड़ता है कि वृक्ष के घटकों की उन्नति होते-होते, बिना जीवात्मा से संबंध जोड़े, धीरे-धीरे बीज आदि बन जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य शरीर के रुधिरादि से बीज-कीट बनते हैं, जिनका जीवाणुओं से तो पूरा संबंध है किंतु जीवात्मा से नहीं। यदि प्रेत-योनि को सत् मानें, तो मनुष्य का जीवात्मा भी सत् होगा। उसी के साथ पशुओं, पक्षियों, वृक्षों व घास पौधों आदि में भी जीवात्मा की कल्पना होगी; क्योंकि यदि एक प्रकार के जीवधारी जीवात्मा के बिना पूरा काम कर सकते हैं, तो मनुष्य ही के लिये उसकी आवश्यकता क्यों पड़ती है? यदि मनुष्य में जीवात्मा मानें, तो बीज कीटों में भी उसे मानना पड़ेगा, जिससे एक-एक मनुष्य में करोड़ों जीवात्मा आ जायँगे। यहीं नहीं, अंत को घटक तक में जीवात्मा की स्थिति माननी पड़ेगी; क्योंकि उसमें मनुष्य की दैहिक और मानसिक सभी क्रियाओं का पूर्व-रूप मिलता है। ऐसी दशा में जीवाणु ही जीवात्मा हो जायगा। किंतु हम देखते हैं, प्रत्येक शरीर के असंख्य घटक नित्य जिया-मरा करते हैं, यद्यपि पूरा शरीर बहुत काल तक जीवित रहता है। अतः पूरे शरीर के लिये असंख्य जीवाणु तो

मानने ही पड़ते हैं, जिन्हें चाहे जीवाणु कहिए या जीवात्मा। किंतु प्रत्येक शरीर के लिये एक-एक जीवात्मा की कल्पना सुदृढ़ नहीं जँचती। कठिनाई यह है कि कहीं-न-कहीं जाकर शृंखला टूट जाती है। मनुष्य से घटक तक पहुँचने में चाहे जहाँ शृंखला को तोड़िए, उसके नीचेवाले शरीरों में जीवात्मा का विचार न मानने का कोई अच्छा दृढ़ कारण नहीं मिलेगा।

प्रत्येक शरीर की जीवन और मरण, दो ही अवस्थाएँ हैं। जब तक शरीर पूर्ण है, तब तक वह जीवित रहेगा। मरणावस्था में पहुँचने के पूर्व शरीर की पूर्णता अवश्य नष्ट हो जायगी, अर्थात् वह पूर्ण शरीर न रहकर किसी मुख्यांश में अपूर्ण हो चुकेगा। उसका कोई ऐसा आवश्यक अवयव विकृत हो जायगा, जिसके कारण वह पूर्ण शरीर न रहकर अपूर्ण एवं मृत शरीर की दशा को पहुँच जायगा। अतएव वास्तव में पूर्ण शरीर जीवित अवस्था में ही रहेगा; मृत अवस्था में पहुँचने के पूर्व किसी मुख्य अंश में उसकी पूर्णता नष्ट हो चुकेगी, और वह सच्चा शरीर ही न रहेगा। अतएव सच्चे शरीर के लिये उसका जीवित होना भी एक आवश्यक गुण है। कहा जा सकता है कि एक घटक तो जीवाणु है; किंतु जब एकाधिक घटक मिलकर कोई बड़ा शरीर बनाते हैं, तब उस शरीर में जीवात्मा होता है; क्योंकि उसके अनेक घटक पृथक्-पृथक् कार्य न करके सहयोग के साथ कार्य करते हैं। अतः उनके पार्थक्य में जो ऐक्य है, वही जीवात्मा का साक्षी है। जीवात्मा के अस्तित्व का सबसे बड़ा प्रमाण है भी यही। किंतु इससे भी प्रत्येक शरीरधारी के लिये एक जीवात्मा की सिद्धि या उपलब्धि (Proof) नहीं होती। जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है, प्रत्येक पौदे, पेड़ और मनुष्य की शाखाओं, गाँठों, बीजों तथा बीज-कीटों के अनुसार असंख्य जीवात्माओं का अस्तित्व आरोपित होगा, जो अनुचित होगा। इसके अतिरिक्त रुधिरादि मिलकर प्रतिक्षण बीज-कीट बनाया ही करते हैं; और वे बीज-कीट क्रमशः बनते हैं। अर्थात् घटक समूह के रुधिरादि की दशा से बीज-कीट की दशा में पहुँचने में क्रमशः उनकी अनेक दशाएँ या रूप होते हैं, जो प्राकृतिक नियमानुसार हुआ करते हैं। उस प्रत्येक दशा में घटक-समूह जीवित अणुओं का समुदाय अवश्य रहता है; किंतु उनमें एकबारगी जीवात्मा किस दशा में कहाँ से आ जाता है? अतएव समझ पड़ता है कि जैसे प्रत्येक घटक स्वतंत्र अवस्था में एक शरीर है, जो आत्मरक्षण, आत्मीकरण तथा उत्पादन के काम करता है, उसी भाँति घटक-समूह मिलकर बड़ा शरीर बनाने में भी वही काम मिलकर किया करते हैं। प्रत्येक पूर्ण शरीर जीवित होगा, और प्रत्येक जीवित शरीर एक है ही। अतः उसमें जीवन के तीनों मुख्य गुण पाए जायँगे। जीवित शरीर के लिये यह आवश्यक नहीं कि उसके अवयवों के ऐक्य के कारण, उसमें एक जीवात्मा की कल्पना की जाय; क्योंकि एक तो उस शरीर की बनावट में कोई ऐसा ख़ास मौक़ा हमें नहीं मिलता, जब जीवात्मा उससे संबंध जोड़े; और दूसरे, बीजों के बाहुल्य के कारण, शरीर के जीवात्मा के लिये ऐक्य का विचार आप-से-आप नष्ट हो जाता है। जब युवा शरीर में बीजों आदि के कारण असंख्य जीवात्माओं की कल्पना करनी पड़ती है, तो एक जीवात्मा की महत्ता नष्ट हो जाती है। अतएव यही मानना पड़ता है कि शरीर का ऐक्य एक प्राकृतिक धर्म-मात्र है जिससे जीवात्मा का कोई सरोकार नहीं है। इन कारणों से यही जान पड़ता है कि जीवाणु का विचार तो दृढ़ है, किंतु जीवात्मा का कथन कल्पना-मात्र है।

"मिश्रबंधु"

भारत में खद्दर-प्रचार

भारतीय मिलों तथा जुलाहों द्वारा भारत में प्रतिवर्ष इतना सूती कपड़ा तैयार नहीं होता, जिससे देश की कपड़े-संबंधी सब आवश्यकताएँ पूरी हो जायँ। हमें प्रतिवर्ष ६० से ८० करोड़ रुपयों का, क़रीब १५० करोड़ गज़ सूती कपड़ा विदेशों से मँगाना पड़ता है। स्वदेशी आंदोलन की पूर्ण सफलता के लिये यह आवश्यक है कि कम-से-कम १५० करोड़ गज़ अधिक कपड़ा भारत में प्रतिवर्ष तैयार किया जाय। कपड़े की यह वृद्धि तीन प्रकार से हो सकती है—एक तो मिल में कपड़ों की उत्पत्ति बढ़ाने से, दूसरे जुलाहों द्वारा मिल में कते हुए सूत से बुने कपड़े की उत्पत्ति बढ़ाने से, और तीसरे जुलाहों द्वारा शुद्ध खद्दर की उत्पत्ति बढ़ाने से।

मिल में कपड़ों की उत्पत्ति बढ़ाने से अधिक लाभ केवल उन भारतीय पूँजीपतियों को होगा, जो मिलों के मालिक हैं, या होंगे। मिलों की वृद्धि से कुछ मज़दूरों की संख्या अवश्य बढ़ जायगी, परंतु अधिक नहीं। जुलाहों द्वारा मिल में कते हुए सूत से बुने कपड़े की उत्पत्ति बढ़ाने से अधिक व्यक्तियों को लाभ होगा; परंतु यह लाभ उतना न होगा, जितना कि शुद्ध खद्दर के प्रचार से। शुद्ध खद्दर-प्रचार से केवल जुलाहों को ही लाभ न होगा, वरन् उन असंख्य ग़रीब कुटुंबों को भी लाभ होगा जो अपने फ़ुरसत के समय में चरख़े पर सूत कातने लगेंगे। इस प्रकार देश को सबसे अधिक लाभ खद्दर-प्रचार से ही होगा, बशर्ते कि यह कपड़ा सस्ती क़ीमत पर तैयार किया जा सके।

कपड़ों की मिलों के भारत में स्थापित होने से भारत-वासियों को लाभ तो बहुत हुआ, परंतु साथ ही कुछ हानि भी हुई। पुराने ज़माने में देश के असंख्य गाँवों में उत्तम प्रकार का बहुत सूत काता जाता था, और उसका उपयोग कपड़े बुनने के लिये किया जाता था। जैसे-जैसे मिलों की संख्या बढ़ती गई, वैसे-वैसे उनमें अधिक सूत काता जाने लगा, और सस्ता कपड़ा तैयार होने लगा। हाथ से सूत कातना दिन-पर-दिन कम होता गया। उधर जुलाहों की दशा भी ख़राब होने लगी। लाखों जुलाहों ने अपना पेशा छोड़कर खेती की शरण ली। जिन्होंने कपड़ा बुनना नहीं छोड़ा, वे भी मिल में कते हुए देशी अथवा विदेशी सूत का उपयोग करने लगे। हाथ से कते सूत की माँग हो न रही। हाथ से सूत कातना बंद होने से भारतीय किसानों को, जो कि संपूर्ण जनता के ७२ फ़ी सैकड़े से भी अधिक हैं, बहुत हानि हुई। किसानी एक ऐसा धंधा है, जिसमें वर्ष में कई दिनों तक किसानों को खेती-संबंधी कोई विशेष काम नहीं रहता। उन दिनों उनको ख़ूब फ़ुरसत रहती है। पुराने ज़माने में ये किसान, ख़ासकर उनकी स्त्रियाँ, फ़ुरसत के दिनों में चरख़ा चलाकर काफ़ी सूत कात लेते थे। इस सूत को वे अपने गाँव के जुलाहे को देकर बहुत सस्ती क़ीमत में कपड़े तैयार करा लेते थे। परंतु कपड़े बुनने में मिल के सूतों का अधिक उपयोग किए जाने के कारण, हाथ से कते सूत की माँग कम होते-होते लुप्त हो गई, और किसानों को उसका कातना बंद कर देना पड़ा। इससे करोड़ों किसानों की जीविका का एक बड़ा साधन बंद हो गया, और उनकी आमदनी, जो कि पहले ही बहुत कम थी, और भी घट गई।

उपर्युक्त असुविधा को दूर करने और हाथ से कते सूत की माँग बढ़ाने के उद्देश्य से महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में चरख़े और खद्दर के प्रचार का कार्य सन् १९२० में आरंभ हुआ। इस आंदोलन ने थोड़े ही समय में बहुत सफलता प्राप्त कर ली। शुद्ध खद्दर (हाथ से कते हुए सूत से बुना हुआ कपड़ा) का प्रचार बढ़ा, और इससे हाथ से कते सूत की माँग बढ़ी। लाखों घरों में चरख़े का मनोहर गान सुनाई देने लगा। लाखों ग़रीब देशवासियों को फ़ुरसत के समय का उचित उपयोग कर अपनी आमदनी बढ़ाने का अवसर मिल गया। जुलाहों की दशा भी सुधरने लगी। पर इस समय जो काम हुआ, वह बहुत व्यवस्थित रूप से नहीं हुआ। उसमें जोश की मात्रा अधिक थी। एक-दो वर्षों के अंदर हो इतना काम हो गया, जितना साधारण तौर पर कई वर्षों में न हो पाता। परंतु शीघ्र ही राजनीतिक आंदोलन की शिथिलता के साथ-साथ लोगों का खद्दर-संबंधी जोश भी कम हो गया, और स्वदेशी आंदोलन में भी कुछ शिथिलता आ गई।

खद्दर-प्रचार का कार्य व्यवस्थित रूप से करने के लिये कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने अपनी १३ मई, सन् १९२२ की बैठक में खद्दर-प्रचार की एक योजना तैयार की, उसके लिये १७ लाख रुपए स्वीकार किए, और खद्दर-विभाग का सब कार्य सेठ जमनालालजी बजाज को सौंपा। खद्दर-विभाग के अंतर्गत चार उपविभाग—औद्योगिक शिक्षा-विभाग, उत्पत्ति विभाग, क्रय-विभाग और प्रचार-विभाग—स्थापित किए गए। औद्योगिक शिक्षा-विभाग को साबरमती के खादी-विद्यालय में सब प्रांतों के विद्यार्थियों को उत्तम खादी बनाना सिखाने का कार्य सौंपा गया। इस विभाग का कार्य-भार श्रीयुत मगनलालजी गांधी को दिया गया। उत्पत्ति विभाग का यह काम दिया गया कि वह भिन्न-भिन्न प्रांतों में खद्दर की उत्पत्ति बढ़ाने का प्रयत्न करे, योग्य व्यक्तियों या संस्थाओं को खद्दर-प्रचार के लिये कांग्रेस से रुपया क़र्ज़ दिलाने की सिफ़ारिश करे और जहाँ तक हो सके, एक स्टैंडर्ड का खद्दर देश-भर में सस्ती क़ीमत पर तैयार किए जाने का प्रयत्न करे। इस विभाग का कार्य-भार श्रीयुत लक्ष्मीदासजी-पुरुषोत्तम को

सौंपा गया। क्रय-विभाग को यह काम दिया गया कि वह खादी की बिक्री में हर प्रकार से सहायता दे, और जिन प्रांतों में प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी ने खादी-स्टोर न खोले हों, वहाँ पर खादी-स्टोर खोलें। इस विभाग का भार श्रीयुत विट्ठलदास-जसनजी को दिया गया। खद्दर-विभाग के स्थापित होने पर तिलक-स्वराज-फ़ंड से ५ लाख रुपए दिए गए, और १२ अगस्त, सन् १९२२ तक १ लाख २५ हज़ार रुपए चंदे से इकट्ठे हुए। इस प्रकार इस विभाग का कार्य ६ लाख २५ हज़ार रुपयों की पूँजी से आरंभ हुआ। साबरमती के खादी-विद्यालय में भिन्न-भिन्न प्रांतों के ५२ विद्यार्थियों को खद्दर तैयार किए जाने की शिक्षा दी जाने लगी। सिंध, आंध्र और उत्कल-प्रांतों की कांग्रेस-कमेटियों को खादी-प्रचार के लिये क्रमशः ५० हज़ार और डेढ़-डेढ़ लाख रुपयों का क़र्ज़ दिया गया। कई प्रांतों में प्रांतीय कांग्रेस-कमेटियों द्वारा खद्दर-स्टोर स्थापित किए गए, और उनमें शुद्ध खद्दर सस्ती क़ीमत पर बेचे जाने की व्यवस्था की गई।

सन् १९२३ की कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार अखिल भारतवर्षीय खद्दर-बोर्ड की स्थापना हुई। इस बोर्ड को कांग्रेस के खद्दर-विभाग का सब कार्य सौंपा गया। इस बोर्ड में आठ सदस्य थे। श्रीयुत जमनालालजी बजाज सभापति थे, और मंत्री श्रीयुत शंकरलालजी बैंकर। इस बोर्ड ने भी औद्योगिक शिक्षा-विभाग, उत्पत्ति-विभाग, क्रिया-विभाग और प्रचार-विभाग स्थापित किए, और प्रांतीय खद्दर-बोर्डों को क़र्ज़ देने के अतिरिक्त १ जनवरी, सन् १९२४ से खादी-भंडारों को नीचे-लिखे नियमों के अनुसार आर्थिक सहायता (Bounty) देना आरंभ किया—

(१) सहायता केवल उन खादी-भंडारों को ही दी जाय, जो केवल शुद्ध खद्दर बेचते हों, और जिनकी वार्षिक फुटकर बिक्री १५ हज़ार रुपयों से कम न हो।

(२) खद्दर की वार्षिक बिक्री भंडार में लगी हुई पूँजी की दूनी रक़म से कम न होनी चाहिए।

(३) केवल उसी खद्दर की बिक्री पर आर्थिक सहायता दी जाय, जो १ रु० ४ आ० गज़ से कम क़ीमत पर बेचा गया हो, और जो लागत से ६¼ प्रति सैकड़ा से अधिक क़ीमत पर न बेचा गया हो।

(४) खद्दर की बिक्री पर दो फ़ी सैकड़ा की दर से आर्थिक सहायता दी जाय।

आर्थिक सहायता की उपर्युक्त योजना से कई खादी-भंडार लाभ न उठा सके। वे वर्ष-भर में १५ हज़ार रुपयों की फुटकर बिक्री करने में असमर्थ रहे। २३ अगस्त, सन् १९२५ से अखिल भारतवर्षीय खद्दर-बोर्ड ने उन भंडारों को भी आर्थिक सहायता, उपर्युक्त नियमों के अनुसार, देना स्वीकार कर लिया, जिनमें वर्ष-भर में कम-से-कम एक हज़ार रुपयों की शुद्ध खादी बिक चुकी हो। १५ ऑक्टोबर, सन् १९२५ तक उपर्युक्त नियमों के अनुसार खादी-भंडारों को केवल ४,७१० रुपयों की आर्थिक सहायता दी जा चुकी थी।

अखिल भारतवर्षीय खादी-बोर्ड ने रुपया क़र्ज़ देने के लिये जो नियम बनाए हैं, उनमें मुख्य ये हैं—

(१) क़र्ज़ साधारणतः उन्हीं स्थानों के व्यक्तियों या संस्थाओं को दिया जाय, जहाँ ऐसे कुटुंबों में चरखे का प्रचार करना हो, जो कि भूखे मर रहे हों, अथवा आधे-पेट खाकर रहते हों, या जिनको काम न मिलता हो, या जहाँ पर ६ नंबर का एक पौंड सूत कातने की मज़दूरी पाँच आने से अधिक न हो।

(२) क़र्ज़ साधारणतः ऐसी वस्तुओं की ज़मानत पर दिया जाय, जिनका मूल्य क़र्ज़ की रक़म से अधिक हो। क़र्ज़ की रक़म पर केवल एक रुपया फ़ी हज़ार प्रतिवर्ष की दर से ब्याज लिया जाय।

(३) क़र्ज़ केवल उन व्यक्तियों और संस्थाओं को ही साधारणतः दिया जाय, जिनको खद्दर-व्यवसाय का कुछ अनुभव हो, और जिन्होंने भूतकाल में इस संबंध में कुछ काम करके दिखाया हो। १५ ऑक्टोबर, सन् १९२५ तक अखिल भारतवर्षीय खद्दर-बोर्ड नीचे लिखे भंडारों को निम्न-लिखित रक़म क़र्ज़ दे चुका था—

सिंध-प्रांतीय खद्दर-बोर्ड				३२,०००	रुपए
आंध्र	,,	,,	,,	१,६०,०००	,,
युक्त	,,	,,	,,	५,०००	,,
आसाम	,,	,,	,,	४,६००	,,
गुजरात	,,	,,	,,	७६,१७६	,,
कर्नाटक	,,	,,	,,	५०,०००	,,
केरल	,,	,,	,,	१५,०००	,,
बिहार	,,	,,	,,	३०,७७७	,,
उत्कल	,,	,,	,,	५६,१८३	,,
तामिल-नायड	,,		,,	१,२५,०००	,,

पंजाब प्रांतीय खद्दर-बोर्ड	३५,०००	रुपए
महाराष्ट्र ,, ,, ,,	२५.०००	,,
अखिल भारतवर्षीय खद्दर-भंडार, बंबई	४२,०००	,,
गांधी-कुटीर (बिहार)	४३,६६५	,,
कानपुर-भंडार	२,५००	,,
गांधी-आश्रम, बनारस	४,८५८	,,
खादी-प्रतिष्ठान	५०,०००	,,
अन्य क़र्ज़, जो दिया गया	६४,६४६	,,
मीज़ान	८२६,००८	रुपए

अखिल भारतवर्षीय खद्दर-बोर्ड ने प्रांतीय खद्दर-बोर्डों को सस्ती क़ीमत पर उत्तम कपास प्राप्त करने में भी सहायता पहुँचाई। भारतवर्षीय खद्दर-बोर्ड फ़सल के समय प्रांतीय खद्दर-बोर्डों की आवश्यकता के अनुसार कपास ख़रीद-कर अपने गोदाम में रख लेता था, और उसका बीमा भी करा देता था। फिर प्रांतीय खद्दर-बोर्ड अपनी आवश्यकता के अनुसार भारतवर्षीय खद्दर-बोर्ड से लागत की क़ीमत पर कपास ख़रीद लेते थे। इससे उनको वर्ष-भर सस्ती क़ीमत में उत्तम कपास काफ़ी मिल जाता था। १५ ऑक्टोबर, सन् १९२५ को भारत-वर्षीय खद्दर-बोर्ड के पास भिन्न-भिन्न प्रांतीय खद्दर-बोर्डों के लिये नीचे-लिखे मूल्य का कपास आता था—

प्रांतीय खद्दर-बोर्ड	कपास का मूल्य	
बिहार	४८,७७३	रु०
उत्कल	३,०००	,,
बंगाल-उत्कल	७४.५००	,,
बनारस	१४ ८००	,,
ताड़पत्री	४,०००	,,
युक्तप्रांत	२,७००	,,
आंध्र	१,६५५	,,
मीज़ान	१,४६,४२८	रुपए

अन्य प्रांतीय खद्दर-बोर्डों को भी इस योजना से लाभ उठाना चाहिए।

अखिल भारतवर्षीय खद्दर-बोर्ड के औद्योगिक विभाग ने साबरमती के खादी-विद्यालय में विद्यार्थियों को खद्दर-संबंधी शिक्षा देने के अतिरिक्त नए तरीक़े के चरख़ों की ईजाद करने का भी प्रयत्न किया है, जो कि सस्ते हैं, और जिन पर आसानी से अधिक काम हो सकता है। सूत का बंडल बनाने के लिये एक नए तरीक़े का प्रेस भी तैयार किया गया है, जो कि मज़बूत होने के साथ ही सस्ता भी है। अन्वेषण का कार्य जारी है।

भारतवर्षीय खद्दर-बोर्ड ने म्युनिसिपलिटियों और ज़िला-बोर्डों के अधिकारियों को खद्दर-प्रचार में सहायता देने के लिये अनुरोध किया। हरद्वार, अतरौली, लखनऊ, हरदोई और सीतापुर की म्युनिसिपलिटियों ने सन् १९२४-२५ में खद्दर पर चुंगी कम करने या उठा लेने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बंबई, प्रयाग, लखनऊ, कराँची, अहमदाबाद और बनारस की म्युनिसिपलिटियों ने तथा बाराबंकी, जालौन, बाँदा, परतापगढ़, गोंडा, सीतापुर और मेरठ के ज़िला-बोर्डों ने अपने कर्मचारियों की वर्दी के लिये खद्दर ख़रीदने का प्रस्ताव स्वीकार किया। अन्य म्युनि-सिपलिटियों और ज़िला-बोर्डों को भी खद्दर-प्रचार के कार्य में सहायता देनी चाहिए।

सितंबर, सन् १९२५ में कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने अखिल भारतवर्षीय खद्दर-बोर्ड का सब कार्य अखिल भारतवर्षीय सूत कातनेवालों के संघ को सौंप दिया। भारतवर्षीय खद्दर-बोर्ड के सब लेन देन इस संघ को सौंप दिए गए, और प्रांतीय खद्दर-बोर्ड इस संघ के अधीन कर दिए गए। इस संघ के दो तरह के सदस्य हैं, एक तो अ दर्जे के, जो हमेशा शुद्ध खद्दर धारण करते हैं, और प्रतिमास अपने हाथ का कता हुआ कम-से-कम एक हज़ार गज़ सूत संघ के दफ़्तर में बराबर भेजते रहते हैं; और दूसरे ब दर्जे के, जो हमेशा शुद्ध खद्दर पहनते हैं, और प्रतिवर्ष अपने हाथ का कता हुआ कम-से-कम २००० गज़ सूत संघ के दफ़्तर में भेजते हैं। जो सज्जन हमेशा शुद्ध खद्दर धारण करते और प्रतिवर्ष १२ रुपए संघ को चंदा देते हैं, वे उसके सहायक समझे जाते हैं। इस संघ की, निम्न-लिखित सदस्यों की, एक कार्यकारिणी समिति सितंबर, सन् १९२५ में स्थापित हो गई है, जो कि पाँच वर्षों (सन् १९३०) तक संघ का सब कार्य सुचारु रूप से चलावेगी—

(१) महात्मा गांधीजी (सभापति)
(२) मौलाना शौकतअली
(३) श्रीयुत राजेंद्रप्रसादजी
(४) ,, सतीशचंद्र दास गुप्त
(५) ,, मगनलाल गांधी
(६) ,, जमनालालजी बजाज

(७) श्रीयुत एस्० कुरैशी
(८) ,, शंकरलाल बैंकर } (मंत्री)
(९) ,, जवाहरलाल नेहरू }

इस समिति को अधिकार है कि वह अपने में नए सदस्य मिलाकर उनकी संख्या १२ तक बढ़ा ले। चार सदस्यों की उपस्थिति में कार्य हो सकता है। पाँच वर्षों के बाद कार्यकारिणी समिति का चुनाव होगा। दोनों दर्जे के सदस्यों को निर्वाचन का अधिकार रहेगा ; परंतु अ दर्जे के सदस्य ही कार्यकारिणी समिति के लिये चुने जा सकेंगे। जून, १९२५ में इस संघ के अ दर्जे के सदस्यों की संख्या ३,२५१ थी, और ब दर्जे के सदस्यों की संख्या ८५८। इस संघ के सदस्यों की संख्या अभी बहुत कम है। ऐसे विशाल देश में, जिसकी जन-संख्या ३१ करोड़ से भी अधिक है, ऐसे देश-हितैषी संघ के केवल ४,१०९ ही सदस्य होना बड़े खेद की बात है। देश-प्रेमी सज्जनों को अधिक संख्या में इस संघ के सदस्य होकर खद्दर-प्रचार के पवित्र कार्य में सहायता पहुँचानी चाहिए। इस संघ से खद्दर-प्रचार के संबंध में हमें बड़ी आशा है।

यह हिसाब लगाना बहुत कठिन है कि देश में हाथ के कते सूत से बना हुआ कितना शुद्ध खद्दर प्रतिवर्ष तैयार किया जाता है। कुछ लोगों का अनुमान है कि आजकल भारत में क़रीब दो करोड़ रुपयों का सूत प्रतिवर्ष चरख़ों पर हाथ से काता और उसका खद्दर तैयार किया जाता है। यह केवल अनुमान-मात्र है। संभव है, इससे भी अधिक परिमाण में खद्दर तैयार किया जाता हो। हाँ, प्रांतीय खद्दर बोर्डों द्वारा जो खद्दर तैयार किया या बेचा जाता है, उसका पूरा हिसाब रक्खा जाता है। नीचे के कोष्ठक में हम यह बतलाते हैं कि पहली ऑक्टोबर, सन् १९२४ से तीस सितंबर, सन् १९२५ तक (१२ ही महीनों में) केवल प्रांतीय खद्दर-बोर्डों द्वारा कितने मूल्य का शुद्ध खद्दर तैयार कराया गया, और कितने मूल्य का बेचा गया—

प्रांत	कितने मूल्य का खद्दर १९२४-२५ में तैयार हुआ	कितने मूल्य का खद्दर १९२४-२५ में बेचा गया
तामिल-नायडू	८,१२,७८७ रु०	९,५२,१३६ रु०
आंध्र	३,८८,९४० ,,	६,३६,५९९ ,,
बंगाल	२,४७,६२६ ,,	२.११,०७७ ,,
गुजरात	४२,४२३ ,,	३,७६,१४१ ,,
बंबई		४,२४,१७९ रु०
बिहार	१,६८,४६४ रु०	२,४२,४२१ ,,
कर्नाटक	७९,५६५ ,,	१,२०,०४१ ,,
पंजाब	६५,५७५ ,,	८०,९७४ ,,
महाराष्ट्र	९,५६५ ,,	७८,९१६ ,,
युक्तप्रांत	२७,४९८ ,,	६६,९०६ ,,
अजमेर	२६,४७४ ,,	२५,६७८ ,,
केरल	३,८७७ ,,	२६,४२० ,,
सिंध	११,३५० ,,	१५,०६१ ,,
उत्कल	४,७०३ ,,	२१,११७ ,,
बर्मा		२३,१६५ ,,
दिल्ली	१०,८०७ ,,	२०,८२७ ,,
मध्यप्रांत (हिंदी)	३ ३८० ,,	१९,७९३ ,,
मध्यप्रांत (मराठी)		१५,६४० ,,
मीज़ान	१९,०३,०३४	३३,६१,०६१

इस कोष्ठक से मालूम होता है कि संपूर्ण भारत में एक वर्ष में अखिल भारतवर्षीय सूत कातनेवालों के संघ द्वारा रक्षित खद्दर-बोर्डों ने केवल १९ लाख रुपयों का खद्दर तैयार किया, और क़रीब ३३½ लाख रुपयों का बेचा। देश की आवश्यकता देखते हुए यह परिमाण बहुत कम है। इस संघ ने अपना काम अभी आरंभ ही किया है। जब यह कार्य इस सुंदर व्यवस्था के साथ आरंभ हुआ है, तो हमें आशा है कि यदि देशवासियों की उसे पूर्ण रूप से सहायता मिलती रही, तो कुछ वर्षों के अंदर ही देश में ख़ूब खद्दर का प्रचार करने में यह अवश्य सफल होगा।

यह जानना बहुत कठिन है कि आजकल भारत में कितने चरख़ों पर सूत काता जाता है। जब से महात्मा गांधी के नेतृत्व में चरख़ा-प्रचार का आंदोलन आरंभ हुआ है, तब से इनकी संख्या बहुत बढ़ गई है। कुछ महाशयों का यह मत है कि चरख़ा-आंदोलन आर्थिक दृष्टि से सफल नहीं हो सकता। वे कहते हैं, सूत कातने की मज़दूरी इतनी कम रहती है कि केवल उसके ज़रिए से ही जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता। यह कुछ अंशों में ठीक भी है। परंतु ये महाशय इस बात को भूल जाते हैं कि भारत की ७२ फ़ी सदी से अधिक जनता खेती से जीवन-निर्वाह करती है। किसानों को वर्ष-भर में कुछ दिनों तक खेती-संबंधी कोई काम नहीं रहता। उद्योग-धंधों के ह्रास के कारण न उनको उस समय और भी कोई अन्य उपयोगी

कार्य मिलता है। इस कारण वे लोग वे दिन आलस्य में बिता देते हैं। यदि इसी फ़ुरसत के समय में वे चरख़ा चलाने लगें, तो उससे उनकी आमदनी बढ़ जाय। परंतु यह तभी हो सकता है, जब उनके हाथ से कते सूत की काफ़ी माँग हो। यदि उनका काता हुआ सूत बिक नहीं पाया, तो उससे उनको अधिक लाभ न होगा। हाँ, कम-से-कम वे उससे अपनी आवश्यकता के लिये गाँव के जुलाहे द्वारा थोड़े ख़र्च में ही कपड़े अवश्य बनवा ले सकेंगे। परंतु अब तो खद्दर-प्रचार के कारण हाथ से कते सूत की माँग भी काफ़ी अधिक बढ़ गई है, और यदि सूत एक-सा महीन काता जाय, तो उसकी क़ीमत भी अच्छी मिलती है। चरख़े द्वारा बहुत महीन सूत काता जा सकता है। आजकल भी भारत में कहीं-कहीं ऐसा महीन सूत काता जाता है, जैसा कि मिलों में नहीं काता जा सकता। १००० नंबर तक का सूत हमारे देखने में आया है। परंतु हमारे साधारण खद्दर के लिये बहुत महीन सूत की आवश्यकता नहीं है। अपने फ़ुरसत के समय में चरख़े का उपयोग करने के कारण असंख्य ग़रीब कुटुंबों की आमदनी बढ़ गई है। अभी हाल में तामिल-नाडु-प्रांत में कांग्रेस के कर्मचारियों द्वारा कुछ चुने हुए ग्रामों में रहनेवाले कुटुंबों की आर्थिक दशा की जाँच की गई थी। उनके पारिवारिक आय-व्यय का भी हिसाब लगाया गया। इस जाँच से मालूम हुआ कि केवल चरख़ा चलाने के कारण ही सब परिवारों की आमदनी १४ से २० सैकड़ा तक बढ़ गई है। ग़रीब भारतवासियों के लिये आमदनी की यह वृद्धि कम नहीं है। चरख़ा-प्रचार से उन करोड़ों भारतवासियों को, जो कि आधे पेट भोजन पाकर ही अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, भर-पेट भोजन प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। आवश्यकता इस समय इस बात की है कि किसानों को चरख़े से एक-सा बारीक सूत निकालना सिखाया जाय, और उस कते हुए सूत को इकट्ठा ख़रीदकर जुलाहों को उचित क़ीमत पर दिए जाने की व्यवस्था की जाय। प्रांतीय तथा ज़िला-खद्दर-बोर्डों को अब इस तरफ़ विशेष ध्यान देना चाहिए। उनको अपने क्षेत्र में केवल चरख़ों की संख्या बढ़ाने से ही संतोष न कर लेना चाहिए; इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ये चरख़े बराबर चलाए जाते हैं या नहीं, और इन चरख़ों द्वारा जो सूत काता जाता है, वह किसानों के पास तो पड़ा न रह जाता। इस सूत के बेचे जाने की पूरी व्यवस्था की जानी चाहिए।

प्रत्येक ग्रामीण तथा नागरिक पाठशाला में लड़के-लड़कियों को चरख़ा चलाना सिखाया जाना चाहिए। इससे यह लाभ होगा कि पाठशालाएँ छोड़ने पर ये विद्यार्थी अपने फ़ुरसत के समय में चरख़ा चलाकर आमदनी बढ़ाने में समर्थ होंगे। म्युनिसिपलिटियों और ज़िला-बोर्डों को अपनी पाठशालाओं में विद्यार्थियों के लिये चरख़ा चलाना सीखना अनिवार्य कर देना चाहिए, और उसके सिखाने की पूरी व्यवस्था कर देनी चाहिए। सन् १९२४-२५ में निम्न-लिखित म्युनिसिपलिटियों और ज़िला-बोर्डों ने अपनी पाठशालाओं में चरख़े को स्थान दे दिया या दिए जाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है—

म्युनिसिपलिटी	ज़िला-बोर्ड
(१) अहमदाबाद	(१) बस्ती
(२) कोकनाडा	(२) बलासोर
(३) तिरपुटी	(३) पुरी
(४) बनारस (काशी)	(४) कटक
(५) लखनऊ	(५) संबलपुर
(६) इलाहाबाद (प्रयाग)	(६) गया
	(७) शाहाबाद
	(८) पटना
	(९) सारन
	(१०) चंपारन

भारत की अन्य म्युनिसिपलिटियों और ज़िला-बोर्डों को अपनी पाठशालाओं में चरख़े को शीघ्र स्थान दिए जाने का प्रबंध करना चाहिए।

सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार भारत में ऐसे व्यक्तियों की संख्या, जो सूती कपड़े बुनकर अपना जीवन निर्वाह करते थे, ४७ लाख थी। इनमें काम करनेवाले पुरुषों की संख्या १५ लाख थी, और काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या ७ लाख। शेष आश्रित थे। कुछ प्रांतों और रियासतों में मनुष्य-गणना के समय यह भी पता लगाया गया कि कितने करघों पर जुलाहों द्वारा कपड़े बुने जाते थे। करघों की संख्या नीचे-लिखे अनुसार पाई गई—

प्रांत या राज्य	सन् १९२१ में करघों की संख्या
अजमेर-मेरवाड़ा	१,५८७
आसाम	४,२१,३६७

बंगाल	२,१३,८८६
बिहार और उड़ीसा	१,६४,५६२
बर्मा	४,७६,६३७
दिल्ली	१,०६७
मद्रास	१,६१,४०३
पंजाब	२,७०,५०७
बरोदा-राज्य	१०,८२१
हैदराबाद-राज्य	१,१५,४३४
राजपूताना	८६,७४१
मीज़ान	१६,३८,०७२

युक्तप्रांत, बंबई-प्रांत, मध्यभारत और मध्यप्रांत में करघों की संख्या मालूम नहीं। यदि हम यह मान लें कि इन प्रांतों में सब मिलाकर ६ लाख करघों पर काम होता होगा, तो संपूर्ण भारत में करघों की संख्या क़रीब २५लाख होगी। इन २५ लाख करघों से इतना कपड़ा तैयार नहीं हो सकता, जिससे कि देश की कपड़ों की सब माँग पूरी हो जाय। देश में कपड़ों की उपज की वृद्धि के लिये यह आवश्यक है कि करघों की संख्या बढ़ाई जाय, और केवल उत्तम प्रकार के करघों का ही उपयोग किया जाय। यह जुलाहों की आर्थिक दशा सुधारे बिना नहीं हो सकता। आजकल अधिकांश जुलाहे क़र्ज़दार हैं। वे महाजनों के चंगुल में बुरी तरह से फँसे हुए हैं। वे कपड़े बुनने के लिये महाजनों से सूत उधार लेते हैं, और उस पर उन्हें अत्यधिक ब्याज देना पड़ता है। उनको कहीं-कहीं प्रायः इस शर्त पर सूत उधार दिया जाता है कि कपड़ा तैयार होने पर वह उस महाजन को ही एक निर्द्धारित क़ीमत पर दिया जाय। यह क़ीमत बाज़ार की क़ीमत से कुछ कम रहती है। इस प्रकार जुलाहों को अपनी मेहनत की मज़दूरी भी बराबर नहीं मिल पाती, और महाजन लोग मालामाल हो जाते हैं। पूर्व खान-देश-ज़िले के परोला-गाँव में जाँच करने से मालूम हुआ कि वहाँ के साहूकार प्रत्येक जुलाहे को प्रायः २०० रुपए का सूत मास के आरंभ में इस शर्त पर उधार देते हैं कि मास के अंत तक कम-से-कम सोलह साड़ियाँ उन्हें ५३ फ़ी सदी की दर से दे दी जायँ। जितनी साड़ियाँ कम दी जायँ, उतने ही रुपए दंड के रूप में दिए जायँ, और क़र्ज़ की शेष रक़म रुपयों में चुकाई जाय। यदि जुलाहे अपने पास से रुपए ख़र्च कर बाज़ार में सूत ख़रीदलें, तो उन्हें उतना ही सूत १८४ रुपयों में मिल जाता; अर्थात् एक महीने के लिये उन्हें १८४) के सूत पर ब्याज के १६ रुपए देने पड़ते हैं, जो कि ६६ प्रति सैकड़ा प्रतिवर्ष ब्याज से भी अधिक है। सूद की यह दर कितनी अधिक है, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। इतना ब्याज देने के अतिरिक्त उनको कम-से कम सोलह साड़ियाँ बाज़ार की दर से एक रुपया कम क़ीमत पर अपने साहूकार को देनी पड़ती हैं। इन सब बातों के कारण ये जुलाहे अपनी पूरी मज़दूरी नहीं पाते, और हमेशा ऋण-ग्रस्त बने रहते हैं। अन्य स्थानों में भी जुलाहों की बहुत कुछ ऐसी ही दशा है। इस दशा को सुधारने के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि उनको साधारण ब्याज पर रुपए उधार दिलाने के लिये सहकारी साख-समितियाँ शीघ्र स्थापित की जायँ। उनके कपड़े बेचने के लिये भी सहकारी थोक-समितियाँ या सहकारी स्टोर की स्थापना शीघ्र की जाय। नवयुवकों को कपड़ा बुनना सिखाने के लिये अधिक संख्या में पाठशालाएँ भी खोली जायँ। प्रांतीय तथा ज़िला-लहर बोर्डों को इन कार्यों की तरफ़ उचित ध्यान देना चाहिए। प्रांतीय सरकार के सहकारी विभाग को भी जुलाहों के लाभ के लिये अधिक संख्या में सहकारी समितियाँ स्थापित करने का दत्तचित्त होकर प्रयत्न करना चाहिए। प्रांतीय सरकार के औद्योगिक विभाग को अधिक संख्या में ऐसी पाठशालाएँ शीघ्र स्थापित करना चाहिए, जिनमें नए प्रकार के उत्तम करघों द्वारा कपड़ा तैयार करने-संबंधी सब काम सिखाए जाते हों।

यदि हमारे जुलाहे महाजनों के चंगुल से निकाल लिए जायँ, और उनके बुने हुए कपड़ों के बेचने की पूरी व्यवस्था हो जाय, और वे नए प्रकार के उत्तम करघों तथा हाथ से कते सूत का उपयोग करने लगें तो हमें पूर्ण विश्वास है कि शीघ्र ही ये लोग सस्ती क़ीमत पर अच्छा कपड़ा और शुद्ध खद्दर इतने परिमाण में तैयार कर सकेंगे, जिससे देशी कपड़े और खद्दर का प्रचार बढ़ेगा, बिना मिलों की संख्या बढ़ाए भारत के कपड़े-संबंधी सब आवश्यकताएँ भारत में तैयार किए कपड़ों द्वारा ही पूरी हो जायँगी, और आजकल जो ६० से ८० करोड़ रुपए प्रतिवर्ष विदेशी कपड़ों के लिये बाहर चले जाते हैं, वे देश में ही रहकर देश के असंख्य ग़रीब कुटुंबों की आर्थिक दशा सुधारने में सहायक होंगे *।

दयाशंकर दुबे

* खद्दर-प्रचार-विभाग से प्राप्त रिपोर्टों के आधार पर।

वर्षा-वर्णन

(वाल्मीकि-रामायण के आधार पर)

दोहा

धूरि दबी, गरमी मिटी, चल्यौ सुसीतल पौन ;
रुकी चढ़ाई नृपन की, फिरे बिदेसी भौन ।
चकवा सों चकई मिली, मानस चले मराल ;
चल्यो जात नहिं पंथ मैं, बूँद परैं सब काल ।
बिखरे बादर गगन महँ, कहुँ तम, कहुँ परकास ;
सोहै थिर सागर-सरिस, कहुँ गिरि-ओट अकास ।
बहत बेग सों कदम लै, नदियन गँदलो नीर ;
बोलत हरखित मोरगन, बैठे दोऊ तीर ।
लाग रसीले खात हैं, जामुन अलि-सम स्याम ;
टपकत भू पै बायु सों, पाके बहुबिध आम ।
बकमाला दामिनि सहित, ऊँचे सैल-समान ;
गरजत कारे मेघ झुमि, जिमि गयंद बलवान ।
घास बढ़ी, केकी नचे, मेघ चुके झरि लाय ;
संध्या कों या बिपिन की, सोभा अधिक लखाय ।
जलधर जल-धारन किए, बकदल सों सरसात ;
ऊँचे परबत-सृंग पै, गरजत ठहरत जात ।
बक-पाँती घन-चाह सों, उड़ती परम सुहाइ ;
पुंडरीक-माला मनहुँ, घन-हित दई बनाइ ।
बीरबहूटी घास महँ, सोभा देत अपार ;
मनहुँ भूमि दुलही नई, बैठी चूनरि धार ।
निद्रा हरि, बक मेघ ढिंग, सरिता सागर माहिं ;
काम सताई कामिनी, निज नायक ढिंग जाहिं ।
फूली डार कदंब की, बृच्छ गए ढिंग गाइ ;
कानन नाचत मोरगन, तृन सों भूमि सुहाइ ।
घन बरसत, सरिता बहति, गरजत मत्त गयंद ;
बन सोहै, नाचैं सिखी, चुप हैं बानरबृंद ।
सूँघि केतकी-गंध गज, मत्त होय हरखात ;
बन-झरना को सबद सुनि, मोरन सँग चिल्लात ।
लटकि कदम के फूल अलि, मस्त पिएँ मधु प्रात ;
पै बूँदन की चोट सों, मस्ती सब झरि जात ।
कोला-सो कारौ बड़ो, फल रस-भरो सुहाइ ;
मानों जामुन-डार पै, बैठे मधुकर आइ ।
सोभित बिज्जु धुजान सों, गरजत बादर घोर ;
मानो रन उत्साह सों, कपि धावत करि सोर ।
घन-रव करि-रव जानिके, मतवारो गजराइ ;
लड़न चल्यौ, पाछे फिर्यौ, नाहिं अब कोउ लखाइ ।
कहुँ गूँजत है भौंरदल, कहुँ नाचत हैं मोर ;
कहुँ झूमत करिराज, बन सोभित भाँति करोर ।
अरजुन, रंभा, कदम-तरु सोभित साल, रसाल ;
पूरित है मधु, बारि सों, बन धरती इहि काल ।
नाचत, बोलत मस्त अति, ह्वै मयूर हरखाइ ;
सुरा-पान के भवन-सो, कानन परत लखाइ ।
मोती-सो निरमल सलिल, गिरत पात महँ आइ ;
भींगे प्यासे बिहगगन, पीवत मोद बढ़ाइ ।
अलिगन बीन बजावहीं, बानर गावैं गीत ;
मेघ मनहुँ मिरदंग लै, करत बिपिन संगीत ।
कबहुँ बैठि तरुबर-सिखर, कबहुँ नाचि करि सोर ;
मनहुँ गान बन महँ करत, बड़ी पूँछ के मोर ।
घन-रव सुनि कपि उठत जो रहे देर लौं सोइ ;
करत नाद बहु रूप के बूँदनि घायल होइ ।
एक तीर सों लपटिकै, दूजो तीर बिहाइ ;
निज पिय सागर सों मिलन, नदी चलीं इतराइ ।
जल सों पूरे नील घन, सटे एक-सों-एक ;
झुलसे मनौं दवागि के, गिरिवर जुरे अनेक ।
बीरबहूटी रेंगती, कूकत माते मोर ;
फैली गंध कदंब की, गज घूमत चहुँ ओर ।
धोए बारिद बूँद सों, कमलन कों तजि देत ;
केसर सहित कदंब के, मधु को मधुकर लेत ।
मुदित गयंद्र, गजेंद्र मद-माते, बली मृगेंद्र ;
रम्य नगेंद्र, नरेंद्र चुप, घन सों सुखी सुरेंद्र ।
घन बरसाऊ गरजते रहे गगन महँ छाइ ;
नदी, बावली, कूप महि भरत बारि बरसाइ ।
बूँद परति अतिबेग सों, बायु चलत झकझोर ;
पथ छाड़ति, तोरति तटन, नदी बहत अतिजोर ।
दयो इंद्र, लायो पवन घन गागर मैं तोय ;
ह्वै अभिसिक्त नगेंद्रबर नृप-सम सोभित होय ।
तारा, भानु न दीखते, छाए मेघ अकास ;
भूमि तृप्त, तम लिप्त है, होत न कहूँ प्रकास ।
मोतिन की माला-सरिस, झरना बहे सुहात ;
तासों धोए गिरि-सिखर, सुंदर अधिक लखात ।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

अधिक रुकावट नहीं होगी। वह सुगमता-पूर्वक छनता रहता है। किंतु छने हुए पानी की मात्रा में कमी-ज़्यादती का होना केवल मिट्टी की गहराई पर ही निर्भर नहीं है, वरन् अन्य बातें भी अपना प्रभाव डालती हैं। १९१० से १९१७ तक के अनुसंधानों से यह स्पष्ट ज्ञात हुआ है। इस काल में ३ फ़ीट गहरे मापकों से फ़सल बोकर भी प्रयोग किए गए। इससे यह ज्ञात हुआ कि पानी का छनना मिट्टी की गहराई उसकी बनावट तथा वर्षा और फ़सल पर निर्भर है। भिन्न-भिन्न मापकों द्वारा छने हुए पानी की मात्रा में २ इंच से अधिक अंतर नहीं होता; किंतु अतिवर्षा होने पर यह अंतर कभी-कभी ६ इंच तक पहुँच जाता है।

१९१० से १९२४ तक १४ वर्ष में ११-३५ इंच से ४८·४१ इंच तक की वर्षा हुई। इसीलिये गत २१ वर्षों में जो अनुसंधान हुए, उनके अतिवर्षा तथा सूखा, दोनों प्रकार की ऋतुओं में करने का अवसर प्राप्त हुआ। १९१८ में केवल ११.४५ इंच वर्षा हुई और मापकों में पानी छनकर इकट्ठा नहीं हुआ। कारण, जब पानी थोड़ा बरसता है, तब वह मिट्टी में छनकर अधिक गहराई तक नहीं जा पाता; कुछ भाप बनकर उड़ जाता है और थोड़ा मिट्टी में ही रुक रहता है, नीचे नहीं जा सकता।

जिन खेतों में ये मापक बने हैं, उनमें फ़सलें बोकर प्रयोग करने से ज्ञात हुआ कि फ़सलों के होने से पानी कम छनता है। कम वर्षा के समय फ़सलों की उपस्थिति में इतना कम पानी छन पाता है कि उसको 'नहीं' के बराबर समझना चाहिए। पौदों की वजह से पानी के छनने में रुकावट पड़ती है; साथ ही पौदों की प्रकृति भी अपना प्रभाव डालती है। भिन्न-भिन्न फ़सलें छने हुए पानी की मात्रा में कमी-ज़्यादती होने की उत्तरदाता हैं।

पानी के छनने पर तापक्रम (Temperature) का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। जून के महीने में वर्षा तथा पानी का छनना, दोनों बातें शुरू हो जाती हैं। इस महीने में तापक्रम अधिक होता है; क्योंकि यह अधिक गरमी का समय है। वर्षा होते रहने के कारण तापक्रम क्रमशः घटता रहता है, और छने हुए पानी की मात्रा बढ़ने लगती है। छने हुए पानी की मात्रा अगस्त-सितंबर में अधिक-से अधिक होती है, ऑक्टोबर में एकबारगी कम हो जाती है और नवंबर में सबसे कम होती है। तत्पश्चात् पानी का छनना बंद हो जाता है; क्योंकि शेष महीनों में वर्षा बहुत कम होती है।

छने हुए पानी की मात्रा वर्षा पर अवश्य निर्भर है; किंतु भाप बनकर उड़ जानेवाले पानी की मात्रा का वर्षा से कुछ संबंध नहीं। वर्षा के आरंभ में पानी अधिक मात्रा में भाप बन-बनकर उड़ता है। परंतु ज्यों-ज्यों वर्षा की मात्रा बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों भाप बनकर उड़नेवाले पानी की मात्रा घटती रहती है। जब हवा में नमी अधिक होती है, तब भाप कम बनती है। ख़ाली खेतों की अपेक्षा बोए हुए खेतों से अधिक पानी भाप बनकर उड़ता है; क्योंकि पौदों से भी पानी भाप बनकर निकला करता है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ है कि ३ फ़ीट गहरे मापकों की अपेक्षा ६ फ़ीट गहरे मापकों से अधिक मात्रा में पानी भाप बनकर उड़ता है। अधिक गहरे मापकों में मिट्टी की मात्रा अधिक होती है अस्तु, उसमें पानी भी अधिक मात्रा में रुका रहता है। यह पानी क्रमशः ऊपर आकर उड़ा करता है, और अधिक गहरे मापकों से उड़े हुए पानी की मात्रा बढ़ाता है।

जो पानी छन-छनकर नीचे जाता है, वह अपने साथ पौदों के खाद्य पदार्थ भी ले जाता है। पौदों के मुख्य खाद्य पदार्थ जो पानी के साथ घुलकर नीचे जाते हैं, वे नत्रजन के सम्मेलन (Nitrogenous Compounds) हैं। नत्रजन-युक्त पदार्थों पर ही पौदों की वृद्धि निर्भर है, और इनके नीचे बह जाने से उपज पर बहुत प्रभाव पड़ता है। नत्रजन के अंतिम सम्मेलन नत्रित (Nitrates) हैं। पौदे अधिकतया इन्हीं नत्रित द्वारा अपना पालन करते हैं। मिट्टी में भी इन्हीं की अधिकता होती है। मापकों द्वारा किए हुए अनुसंधानों से भी ज्ञात हुआ है कि छने हुए पानी में नत्रजन के अन्य सम्मेलनों की मात्रा शून्य के बराबर होती है, किंतु नत्रित की मात्रा अधिक पाई जाती है।

लेदर महाशय के कथनानुसार १९०३ से १९०९ तक सात साल में छने हुए पानी में नत्रजन-युक्त पदार्थों की औसत मात्रा इस प्रकार मिली थी। इस काल में खेत बोए नहीं गए थे—

मापक		नत्रजन की मात्रा प्रति एकड़ पौंड में
१	६ फ़ीट गहरे	६२·१
२		८१·१

३	३ फ़ीट गहरे	४७·८
४		३३·२

लेदर महाशय का कहना था कि छने हुए पानी में नत्रजन के सम्मेलनों की मात्रा वर्षा के साथ बढ़ती-घटती रहती है। अतिवर्षा में वह २०० पौंड प्रति एकड़ तक पहुँच जाती है। किंतु १९०६ के उपरांत जो अनुसंधान हुए, वे इस बात की पुष्टि नहीं करते। छने हुए पानी में नत्रजन की मात्रा सदैव ११ पौंड प्रतिएकड़ और ६४ पौंड प्रतिएकड़ के भीतर ही मिली है। १९१० से १९२४ तक १४ वर्ष में इस नत्रजन की मात्रा में बहुत कमी हुई। इस काल का औसत प्रतिएकड़ मापक नं० १ में १४·८२ पौंड, नं० २ में २४·०७ पौंड, नं० ३ में ३०·४७ पौंड और नं०४ में १७·७२ पौंड है।

अब भी बिना बोए हुए खेतों में पानी के साथ घुलकर बह जानेवाले नत्रजन की मात्रा में प्रतिवर्ष अधिक अंतर मिलता है। किंतु यह इतना नहीं है, जितना कि लेदर महाशय को अनुसंधान के आरंभ में प्राप्त हुआ था। अनुसंधान के कुछ आरंभिक वर्षों में इस प्रकार नत्रजन की बहुत हानि हुई, और यह हानि ८१·१४ पौंड प्रतिएकड़ तक पहुँची; किंतु अंतिम पाँच साल में नं० २ और नं० ३ मापकों में क्रम से २४·२७ और २६·०२ पौंड प्रतिएकड़ ही रह गई। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, नत्रजन की हानि में कमी होती रहती है। कारण, खेतों में नत्रजन की मात्रा जितनी अधिक होगी, छने हुए पानी में भी उतनी ही अधिक मिलेगी। अनुसंधान के आरंभ में खेतों में नत्रजन अधिक था; क्योंकि प्रयोग आरंभ करने के पूर्व खेतों में यथेष्ट खाद दी गई थी। अस्तु, आरंभ में छने हुए पानी के साथ नत्रजन अधिक निकल गया। क्रमशः खेतों में नत्रजन की मात्रा कम होती गई, और इसी कारण छने हुए पानी में इसकी मात्रा कम मिली। छने हुए पानी में नत्रजन की मात्रा का क्रमशः घटना राथमस्टेड के अनुसंधानों से भी सिद्ध हुआ है। गत २१ वर्षों में (१९०३ से १९२३) नत्रजन की समस्त मात्रा, जो छने हुए पानी में बह गई, इस प्रकार है—

मापक		नत्रजन प्रतिएकड़ पौंड में
१	६ फ़ीट	६४२·०८
२		७४६·२७
३	३ फ़ीट	७४४·१२
४		४५७·५०

मापक नं० २ और नं० ३वाले खेतों में अनुसंधान के काल में कोई फ़सल नहीं बोई गई। ये भिन्न-भिन्न गहराई के हैं, किंतु इनमें प्राप्त नत्रजन की मात्रा लगभग बराबर है। मापक नं० १ और नं० ४वाले खेत कभी बोए गए और कभी ख़ाली रहे। इनके द्वारा प्राप्त नत्रजन की मात्रा भी भिन्न-भिन्न है। ३ फ़ीट गहरे और ६ फ़ीट गहरे, दोनों प्रकार के मापकों में नत्रजन का बराबर मात्रा में मिलना यह सिद्ध करता है कि नीचे आई हुई मात्रा पर गहराई का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, और यह कि नत्रजन ऊपरी तल से ही आता है।

मापक नं० १ और नं० ४वाले खेत १९१० से १६ के काल में लगातार बोए गए। इस काल में इनके द्वारा निकले हुए नत्रजन की मात्रा ३०·३७ और ३१·०६ पौंड प्रतिएकड़ हुई। नं० २ तथा नं० ३वाले खेत ख़ाली रहे। इन मापकों से उसी काल में (१९१०-१६) कुल नत्रजन क्रम से २१५·५५ और २२६·७४ पौंड प्रतिएकड़ निकला। इससे यह स्पष्ट है कि बोए हुए खेतों की अपेक्षा ख़ाली खेतों से ७गुना अधिक नत्रजन छनकर निकल जाता है। यद्यपि बोए हुए खेतों का नत्रजन थोड़ा-बहुत पौदों के पालन-पोषण में काम आ जाता है, तथापि यह कहना अनुचित नहीं कि खेतों का ख़ाली रखना नत्रजन की दृष्टि से अत्यंत हानिकारक है। यदि वर्षा-काल में खेत बोए रहें, तो कुछ नत्रजन पौदों के काम आ जाय, शेष का अधिक अंश, जो ख़ाली रखने से नीचे बह जाता है, ऊपरी तल में मौजूद रहे, और आवश्यकता के अनुसार काम में आता रहे। इस प्रकार खाद पर अधिक व्यय न करना पड़ेगा।

नीचे के कोष्ठक से ज्ञात हो जायगा कि वर्षा-काल में ही अधिक नत्रजन पानी के साथ व्यर्थ चला जाता है। जून से नत्रजन का पानी के साथ नीचे जाना आरंभ होता है, अगस्त में अधिक-से-अधिक हो जाता है, तत्पश्चात् कम होने लगता है, और नवंबर में सबसे कम होता है। नत्रजन की इस प्रकार हानि वर्षा तथा छने हुए पानी की मात्रा के साथ घटती-बढ़ती रहती है। जब अधिक वर्षा होती है, तब अधिक पानी छनता है, और नत्रजन भी अधिक मात्रा में नीचे बह जाता है।

मास	वर्षा इंच में	छने हुए पानी की मात्रा मापक १ गहरे ६ फ़ीट	२ ६ फ़ीट	३ ३ फ़ीट	३ ३ फ़ीट	नत्रजन पौंड प्रतिएकड़ मापक १ ६ फ़ीट	२ ६ फ़ीट	३ ३ फ़ीट	४ ३ फ़ीट
जून	३.४६	०.०१०	.०००२	०.३१	०.५०	०.८८	०.००२	१.६८	१.११०
जुलाई	८.१०	०.६३०	१.०४००	१.४६	१.३६	१.७४	२.६४०	४.३५	४.४००
अगस्त	११.४१	३.२८०	४.७६००	५.४७	४.१४	८.२०	११.११०	१५.१३	९.४८०
सितंबर	७.४७	२.३४०	४.२४००	३.७५	३.०३	४.६७	९.८१०	९.७८	२.५३०
ऑक्टोबर	१.३८	०.०९०	०.०९००	.०७	०.११	०.११	०.४१०	.०१७	०.१२०
नवंबर	.४१	०.००१	०.००६०	.०२	०.१०	०.०१	०.००४	०.०६	०.००२

सारांश

(१) साल भर में जितना पानी छनता है, वह सब जून से ऑक्टोबर तक वर्षा-ऋतु में ही नीचे जाता है। इस काल में साल-भर की ३४ इंच वर्षा में से ३२ इंच पानी बरसता है। शेष महीनों की वर्षा का औसत .५ इंच प्रतिमास है।

(२) छने हुए पानी तथा वर्षा, दोनों की मात्रा में यही संबंध है कि दोनों साथ-साथ बढ़ते-घटते हैं। वर्षा जितनी अधिक होती है, पानी भी उतना ही अधिक छनता है।

(३) समान आकार के मापकों द्वारा छने हुए पानी की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है; किंतु यह अंतर दो इंच से अधिक नहीं होता। छः फ़ीट गहरे मापकों की अपेक्षा तीन फ़ीट गहरे मापकों में अधिक अंतर होता है।

(४) अधिक गहरे मापकों की अपेक्षा कम गहरे मापकों से ज़्यादा पानी छनता है।

(५) फ़सल बोने से छने हुए पानी की मात्रा कम हो जाती है।

(६) अगस्त और सितंबर के महीने में अधिक-से-अधिक मात्रा में पानी छनता है।

(७) वर्षा की अधिकता होने पर भाप बनकर उड़ने-वाले पानी की मात्रा कम हो जाती है।

(८) ख़ाली खेतों की अपेक्षा बोए हुए खेतों से अधिक पानी भाप बनकर उड़ता है।

(९) गहरे मापकों से अधिक पानी भाप बनकर उड़ता है।

(१०) ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, छने हुए पानी के साथ घुलकर आनेवाले नत्रजन-युक्त पदार्थों की मात्रा कम होती जाती है।

(११) ख़ाली खेतों के भिन्न-भिन्न आकारवाले मापकों में छने हुए पानी के साथ गए हुए नत्रजन-युक्त पदार्थों की मात्रा बराबर होती है। अस्तु, नत्रजन ऊपरी तल से ही आता है।

(१२) बोए हुए खेतों की अपेक्षा ख़ाली खेतों से सात-गुना अधिक नत्रजन बहकर नीचे चला जाता है।

(१३) अगस्त-महीने में नत्रजन का व्यय अधिक-से-अधिक होता है।

(१४) पानी जितना अधिक बरसता है, उतना ही अधिक छनता है, और नत्रजन की मात्रा भी उतनी ही अधिक नीचे बह जाती है।

हरनारायण बाथम
श्रीपालसिंह

लांछन

(१)

मुंशी श्यामकिशोर के द्वार पर मुन्नू मेहतर ने झाड़ू लगाई, गुसलखाना धो-धाकर साफ़ किया, और तब द्वार पर आकर गृहिणी से बोला—माजी, देख लीजिए, सब साफ कर दिया। आज कुछ खाने को मिल जाय सरकार।

देवी रानी ने द्वार पर आकर कहा—अभी तो तुम्हें महीना पाए दस दिन भी नहीं हुए। इतनी जल्द फिर माँगने लगे?

मुन्नू—क्या करूँ माजी, ख़र्च नहीं चलता। अकेला आदमी, घर देखूँ कि काम करूँ।

देवी—तो ब्याह क्यों नहीं कर लेते?

मुन्नू—रुपए माँगते हैं सरकार! यहाँ खाने से नहीं बचता, थैली कहाँ से लाऊँ?

देवी—अभी तो तुम जवान हो, कब तक अकेले बैठे रहोगे?

मुन्नू—हज़ूर की इतनी निगाह है, तो कहीं-न-कहीं ठीक हो ही जायगी; सरकार कुछ मदद करेंगी न?

देवी—हाँ-हाँ, तुम ठीकठाक करो, मुझसे जो कुछ हो सकेगा, मैं भी दे दूँगी।

मुन्नू—सरकार का मिजाज बड़ा अच्छा है। हजूर इतना ख़याल करती हैं। दूसरे घरों में तो मालकिनें बात भी नहीं पूछतीं। सरकार को अल्लाह ने जैसी सकल सूरत दी है, वैसा ही दिल भी दिया है। अल्लाह जानता है, हजूर को देखकर भूख-प्यास जाती रहती है। बड़े-बड़े घर की औरतें देखी हैं, मुदा हजूर के तलुओं की बराबरी भी नहीं कर सकतीं।

देवी—चल झूठे! मैं ऐसी कौन बड़ी ख़ूबसूरत हूँ।

मुन्नू—अब सरकार से क्या कहूँ। बड़ी-बड़ी खत्रानियों को देखता हूँ, जिनके गोरेपन के सिवा और कोई बात नहीं। उनमें यह नमक कहाँ सरकार।

देवी—एक रुपए में तुम्हारा काम चल जायगा?

मुन्नू—भला सरकार दो रुपए तो दे दें।

देवी—अच्छा, यह लो और जाओ।

मुन्नू—जाता हूँ सरकार। आप नाराज न हों, तो एक बात पूछूँ?

देवी—क्या पूछते हो, पूछो; मगर जल्दी। मुझे चूल्हा जलाना है।

मुन्नू—तो सरकार जायँ, फिर कभी कहूँगा।

देवी—नहीं-नहीं, कहो, क्या बात है? अभी कुछ ऐसी जल्दी नहीं है।

मुन्नू—दालमंडी में सरकार के कोई रहते हैं क्या?

देवी—नहीं, वहाँ तो कोई नातेदार नहीं है।

मुन्नू—तो कोई दोस्त होंगे। सरकार को अकसर एक कोठे पर से उतरते देखता हूँ।

देवी—दालमंडी तो रंडियों का महल्ला है।

मुन्नू—हाँ सरकार, रंडियाँ बहुत हैं वहाँ। लेकिन सरकार तो सीधे सादे आदमी मालूम होते हैं। यहाँ रात को देर से तो नहीं आते?

देवी—नहीं शाम होनेसे पहले ही आ जाते हैं, और फिर कहीं नहीं जाते। हाँ, कभी-कभी लाइब्रेरी अलबत्ता जाते हैं।

मुन्नू—बस-बस, यही बात है हजूर। मौका मिले, तो इशारे से समझा दीजिएगा सरकार कि रात को उधर न जाया करें। आदमी का दिल कितना ही साफ हो, लेकिन देखनेवाले तो सक करने लगते हैं।

इतने ही में बाबू श्यामकिशोर आ गए। मुन्नू ने उन्हें सलाम किया, बालटी उठाई और चलता हुआ।

श्यामकिशोर ने पूछा—मुन्नू क्या कह रहा था?

देवी—कुछ नहीं, अपने दुखड़े रो रहा था। खाने को माँगता था; दो रुपए दे दिए हैं। बातचीत बड़े ढंग से करता है।

श्याम—तुम्हें तो बातें करने का मरज़ है। और कोई नहीं, मेहतर ही सही। इस भुतने से न-जाने तुम कैसे बातें करती हो!

देवी—मुझे उसकी सूरत लेकर क्या करना है। ग़रीब आदमी है। अपना दुख सुनाने लगता है, तो कैसे न सुनूँ।

बाबू साहब ने बेले का गजरा रूमाल से निकालकर देवी के गले में डाल दिया। किंतु देवी के मुख पर प्रसन्नता का कोई चिह्न न दिखाई दिया। तिरछी निगाहों से देखकर बोली—आप आजकल दालमंडी की सैर बहुत किया करते हैं?

श्याम—कौन? मैं?

देवी—जी हाँ, तुम। मुझसे तो लाइब्रेरी का बहाना करके जाते हो, और वहाँ जलसे होते हैं।

श्याम—बिलकुल झूठ, सोलहों आने झूठ। तुमसे कौन कहता था? यही मुन्नू?

देवी—मुन्नू ने मुझसे कुछ नहीं कहा; पर मुझे तुम्हारी टोह मिलती रहती है।

श्याम—तुम मेरी टोह मत लिया करो। शक करने से आदमी शक्की हो जाता है, और तब बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं। भला मैं दालमंडी क्यों जाने लगा? तुमसे बढ़कर दालमंडी में और कौन है? मैं तो तुम्हारी इन मद-भरी आँखों का आशिक़ हूँ। अगर अप्सरा भी सामने आ जाय, तो आँख उठाकर न देखूँ। आज शारदा कहाँ है?

देवी—नीचे खेलने चली गई है।

श्याम—नीचे मत जाने दिया करो। इक्के, मोटरें, बग्घियाँ दौड़ती रहती हैं। न-जाने कब क्या हो जाय। आज ही अरदलीबाज़ार में एक वारदात हो गई। तीन लड़के एक साथ दब गए।

देवी—तीन लड़के!! बड़ा ग़ज़ब हो गया। किसकी मोटर थी?

श्याम—इसका अभी तक पता नहीं चला। ईश्वर जानता है, तुम्हें यह गजरा बहुत खिल रहा है।

देवी—(मुसकिराकर) चलो बातें न बनाओ।

(२)

तीसरे दिन मुन्नू ने श्यामा से कहा—सरकार, एक जगह सगाई ठीक हो रही है; देखिए, कौल से फिर न जाइएगा। मुझे आपका बड़ा भरोसा है।

देवी—देख ली औरत? कैसी है?

मुन्नू—सरकार, जैसी तकदीर में है, वैसी है। घर की रोटियाँ तो मिलेंगी; नहीं तो अपने हाथों ठोकना पड़ता था। है क्या कि मिजाज की सीधी है। हमारे जात की औरतें बड़ी चंचल होती हैं हजूर। सैकड़े पीछे एक भी पाक न मिलेगी।

देवी—मेहतर लोग अपनी औरतों को कुछ कहते नहीं?

मुन्नू—क्या कहें हजूर। डरते हैं कि कहीं अपने आसना से चुगली खाकर हमारी नौकरी-चाकरी न छुड़ा दे। मेहतरानियों पर बाबू साहबों की बहुत निगाह रहती है सरकार।

देवी—(हँसकर) चल झूठे। बाबू साहबों की औरतें क्या मेहतरानियों से भी गई-गुज़री होती हैं!

मुन्नू—अब सरकार कुछ न कहलावें। हजूर को छोड़कर और तो कोई ऐसी बहुआइन नहीं देखता, जिसका कोई बखान करे। बहुत ही छोटा आदमी हूँ सरकार, पर इन बहुआइनों की तरह मेरी औरत होती, तो उससे बोलने को जी न चाहता। हजूर के चेहरे मुहरे की कोई औरत मैंने तो नहीं देखी।

देवी—चल झूठे, इतनी खुशामद करना किससे सीखा।

मुन्नू—खुसामद नहीं करता सरकार, सच्ची बात कहता हूँ। हजूर एक दिन खिड़की के सामने खड़ी थीं। रजा मियाँ की निगाह आप पर पड़ गई। जूते की बड़ी दूकान है उनकी। अल्लाह ने जैसा धन दिया है, वैसा ही दिल भी। आप को देखते ही आँखें नीचे कर लीं। आज बातों-बातों में हजूर की सकल-सूरत को सराहने लगे। मैंने कहा, जैसी सूरत है, वैसा ही सरकार को अल्लाह ने दिल भी दिया है।

देवी—अच्छा वह लाँबा-सा साँवले रंग का जवान।

मुन्नू—हाँ हजूर, वही। मुझसे कहने लगे किसी तरह एक बार फिर उन्हें देख पाता। लेकिन मैंने डाँटकर कहा, खबरदार मियाँ, जो मुझसे ऐसी बातें कीं। वहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी।

देवी—तुमने बहुत अच्छा किया। निगोड़े की आँखें फूट जायँ; जब इधर से जाता है, खिड़की की ओर उसकी निगाह रहती है। कह देना, इधर भूलकर भी न ताके।

मुन्नू—कह दिया है हजूर। हुकुम हो, तो चलूँ। और तो कुछ साफ नहीं करना है? सरकार के आने की बेला हो गई, मुझे देखेंगे, तो कहेंगे, यह क्या बातें कर रहा है।

देवी—ये रोटियाँ लेते जाओ। आज चूल्हे से बच जाओगे।

मुन्नू—अल्लाह हजूर को सलामत रक्खे। मेरा तो यही जी चाहता है कि इसी दरवाजे पर पड़ा रहूँ और एक टुकड़ा खा लिया करूँ। सच कहता हूँ, हजूर को देखकर भूख-प्यास जाती रहती है।

मुन्नू जा ही रहा था कि बाबू श्यामकिशोर ऊपर आ पहुँचे। मुन्नू की पिछली बात उनके कानों में पड़ गई थी। मुन्नू ज्यों ही नीचे गया, बाबू साहब देवी से बोले—मैंने तुमसे कह दिया था कि मुन्नू को मुँह न लगाओ, पर तुमने मेरी बात न मानी। छोटे आदमी एक घर की बात दूसरे घर पहुँचा देते हैं; इन्हें कभी मुँह न लगाना चाहिए। भूख-प्यास बंद होने की क्या बात थी?

देवी—क्या जानें, भूख-प्यास कैसी? ऐसी तो कोई बात न थी।

श्याम—थी क्यों नहीं, मैंने साफ़ सुना।

देवी—मुझे तो ख़याल नहीं आता। होगी कोई बात। मैं कौन उसकी सब बातें बैठी सुना करती हूँ।

श्याम—तो क्या वह दीवार से बातें करता है? देखो, नीचे कोई आदमी इस खिड़की की तरफ़ ताकता चला जाता है। इसी महल्ले का एक मुसलमान लौंडा है। जूते की दूकान करता है। तुम क्या इस खिड़की पर खड़ी रहा करती हो?

देवी—चिक तो पड़ी हुई है।

श्याम—चिक के पास खड़े होने से बाहर का आदमी तुम्हें साफ़ देख सकता है।

देवी—यह मुझे न मालूम था। अब कभी खिड़की खोलूँगी ही नहीं।

श्याम—हाँ, क्या फ़ायदा? मुन्नू को अंदर मत आने दिया करो।

देवी—गुसलख़ाना कौन साफ़ करेगा?

श्याम—ख़ैर आवे, मगर उससे तुम्हें बातें न करनी चाहिए। आज एक नया थिएटर आया है। चलो, देख आवें। सुना है इसके ऐक्टर बहुत अच्छे हैं।

इतने में शारदा नीचे से मिठाई का एक दोना लिए दौड़ती हुई आई। देवी ने पूछा—अरी, यह मिठाई किसने दी?

शारदा—राजा-भैया ने तो दी है। कहते थे तुमको अच्छे-अच्छे खिलौने ला दूँगा।

श्याम—राजा-भैया कौन हैं?

शारदा—वही तो हैं, जो अभी इधर से गए हैं।

श्याम—वही तो नहीं, जो लंबा-सा साँवले रंग का आदमी है।

शारदा—हाँ-हाँ, वही-वही। मैं अब उनके घर रोज़ जाऊँगी।

देवी—क्या तू उसके घर गई थी?

शारदा—वही तो गोद में उठाकर ले गए।

श्याम—तू नीचे खेलने मत जाया कर। किसी दिन मोटर के नीचे दब जायगी। देखती नहीं, कितनी मोटरें आती रहती हैं।

शारदा—राजा-भैया कहते थे, तुम्हें मोटर पर हवा खिलाने ले चलेंगे।

श्याम—तुम बैठी-बैठी किया क्या करती हो, जो तुमसे एक लड़की की निगरानी भी नहीं हो सकती।

देवी—इतनी बड़ी लड़की को संदूक़ में बंद करके नहीं रक्खा जा सकता।

श्याम—तुम जवाब देने में तो तेज़ हो, यह मैं जानता हूँ। यह क्यों नहीं कहतीं कि बातें करने से फ़ुरसत नहीं मिलती।

देवी—बातें मैं किससे करती रहती हूँ। यहाँ तो कोई पड़ोसन भी नहीं?

श्याम—मुन्नू तो है ही।

देवी—(ओठ चबाकर) मुन्नू क्या मेरा कोई सगा है, जिससे बैठी बातें किया करती हूँ। ग़रीब आदमी है, अपना दुख रोता है, तो क्या कह दूँ। मुझसे तो दुतकारते नहीं बनता।

श्याम—ख़ैर, खाना बना लो, ६ बजे तमाशा शुरू हो जायगा। ७ बज गए हैं।

देवी—तुम जाओ, देख आओ, मैं न जाऊँगी।

श्याम—तुम्हीं तो महीनों से तमाशे की रट लगाए हुए थीं। अब क्या हो गया। क्या तुमने क़सम खा ली है कि यह जो बात कहें, वह कभी न मानूँगी।

देवी—जाने क्यों तुम्हारा ऐसा ख़याल है। मैं तो तुम्हारी इच्छा पाकर ही कोई काम करती हूँ। मेरे जाने से कुछ और पैसे ख़र्च हो जायँगे, और रुपए कम पड़ जायँगे, तो तुम मेरी जान खाने लगोगे, यही सोचकर मैंने कहा था। अब तुम कहते हो, तो चलो चलूँगी। तमाशा देखना किसे बुरा लगता है।

(३)

नौ बजे श्यामकिशोर एक ताँगे पर बैठकर देवी और शारदा के साथ थिएटर देखने चले। सड़क पर थोड़ी ही दूर गए थे कि पीछे से एक और ताँगा आ पहुँचा। इस पर रज़ा बैठा हुआ था, और उसके बग़ल में—हाँ उसके बग़ल में बैठा था मुन्नू मेहतर, जो बाबू साहब के घर की सफ़ाई करता था। देवी ने उन दोनों को देखते ही सिर झुका लिया। उसे आश्चर्य हुआ कि रज़ा और मुन्नू में इतनी गाढ़ी मित्रता है कि रज़ा उसे ताँगे पर बिठाकर सैर कराने ले जाता है! शारदा रज़ा को देखते ही बोल उठी—बाबूजी देखो, वह राजा-भैया आ रहे हैं। (ताली बजाकर) राजा-भैया, इधर देखो, हम लोग तमाशा देखने जा रहे हैं।

रज़ा ने मुसकिरा दिया; मगर बाबू साहब मारे क्रोध के तिलमिला उठे। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि ये दुष्ट केवल मेरा पीछा करने के लिये आ रहे हैं। इन दोनों में ज़रूर साँठ-गाँठ है। नहीं तो रज़ा मुन्नू को साथ क्यों लेता? उनसे पीछा छुड़ाने के लिये उन्होंने ताँगेवाले से कहा—और तेज़ ले चलो, देर हो रही है। ताँगा तेज़ हो गया। रज़ा ने भी अपना ताँगा तेज़ किया। बाबू साहब ने जब ताँगे को धीमा करके

को कहा, तो रज़ा का ताँगा भी धीमा हो गया। आख़िर बाबू साहब ने झुँझलाकर कहा—तुम ताँगे को छावनी की ओर ले चलो, हम थिएटर देखने न जायँगे। ताँगेवाले ने उनकी ओर कुतूहल से देखा, और ताँगा फेर दिया। रज़ा का ताँगा भी फिर गया। बाबू साहब को इतना क्रोध आ रहा था कि रज़ा को ललकारूँ; पर डरते थे कि कहीं झगड़ा हो गया, तो बहुत से आदमी जमा हो जायँगे और व्यर्थ ही झेंप होगी। लहू का घूँट पीकर रह गए। अपने ही ऊपर झुँझलाने लगे कि नाहक़ आया। क्या जानता था कि ये दोनों शैतान सिर पर सवार हो जायँगे। मुन्नू को तो कल ही निकाल दूँगा। वारे रज़ा का ताँगा कुछ दूर चलकर दूसरी तरफ़ मुड़ गया, और बाबू साहब का क्रोध कुछ शांत हुआ; किंतु अब थिएटर जाने का समय न था। छावनी से घर लौट आए।

देवी ने कोठे पर आकर कहा—मुफ़्त में ताँगेवाले को २) देने पड़े। श्यामकिशोर ने उसकी ओर रक्त-शोषक दृष्टि से देखकर कहा—और मुन्नू से बातें करो और खिड़की पर खड़ी हो-होकर रज़ा को छवि दिखाओ। तुम न-जाने क्या करने पर तुली हुई हो!

देवी—ऐसी बातें मुँह से निकालते तुम्हें शर्म नहीं आती। तुम मेरा व्यर्थ ही अपमान करते हो, इसका फल अच्छा न होगा। मैं किसी मर्द को तुम्हारे पैरों की धूल के बराबर भी नहीं समझती, उस अभागे मेहतर की क्या हक़ीक़त है। तुम मुझे इतना नीच समझते हो?

श्याम—नहीं मैं तुम्हें इतना नीच नहीं समझता, मगर बेसमझ ज़रूर समझता हूँ। तुम्हें इस बदमाश को कभी मुँह न लगाना चाहिए था। अब तो तुम्हें मालूम हो गया कि वह छटा हुआ शोहदा है, या अब भी कुछ शक है?

देवी—मैं उसे कल ही निकाल दूँगी।

मुंशीजी लेटे; पर चित्त अशांत था। वह दिन-भर दफ़्तर में रहते थे। क्या जान सकते थे कि उनके पीछे देवी क्या किया करती है। वह यह जानते थे कि देवी पतिव्रता है, पर यह भी जानते थे कि अपनी छवि दिखाने का सुंदरियों को मरज़ होता है। देवी ज़रूर बन-ठनकर खिड़की पर खड़ी होती है, और महल्ले के शोहदे उसको देख-देखकर मन में न-जाने क्या-क्या कल्पना करते होंगे। इस व्यापार को बंद करना उन्हें अपने क़ाबू से बाहर मालूम होता था। शोहदे वशीकरण की कला में निपुण होते हैं। ईश्वर न करे, इन बदमाशों की निगाह किसी भले घर की बहू-बेटी पर पड़े! इनसे कैसे पिंड छुड़ाऊँ?

बहुत सोचने के बाद अंत में उन्होंने वह मकान छोड़ देने का निश्चय किया। इसके सिवा उन्हें कोई दूसरा उपाय न सूझा। देवी से बोले—कहो, तो यह घर छोड़ दूँ। इन शोहदों के बीच में रहने से आबरू बिगड़ने का भय है। देवी ने आपत्ति के भाव से कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा।

श्याम—आख़िर तुम्हीं कोई उपाय बताओ।

देवी—मैं कौन-सा उपाय बताऊँ, और किस बात का उपाय? मुझे तो घर छोड़ने की कोई ज़रूरत नहीं मालूम होती। एक दो नहीं, लाख-दो लाख शोहदे हों, तो क्या। कुत्तों के भूकने के भय से कोई अपना मकान छोड़ देता है?

श्याम—कभी-कभी कुत्ते काट भी तो लेते हैं।

देवी ने इसका कोई जवाब न दिया। और, तर्क करने से पति की दुश्चिंताओं के बढ़ जाने का भय था। वह शक्की तो हैं ही, न-जाने उसका क्या आशय समझ बैठें।

तीसरे ही दिन श्याम बाबू ने वह मकान छोड़ दिया।

(४)

इस नए मकान में आने के एक सप्ताह पीछे एक दिन मुन्नू सिर में पट्टी बाँधे, लाठी टेकता हुआ आया, और आवाज़ दी। देवी उसकी आवाज़ पहचान गई; पर उसे दुतकारा नहीं। आकर किवाड़ खोल दिए। पुराने घर के समाचार जानने के लिये उसका चित्त लालायित हो रहा था। मुन्नू ने अंदर आकर कहा—सरकार, जब से आपने वह मकान छोड़ दिया, कसम ले लीजिए, जो उधर एक बार भी गया हूँ। उस घर को देखकर रोना आने लगता है। मेरा भी जी चाहता है कि इसी महल्ले में आ जाऊँ। पागलों की तरह इधर-उधर मारा फिरा करता हूँ सरकार, किसी काम में जी नहीं लगता। बस, हर घड़ी आप ही की याद आती रहती है। हज़ूर जितनी परवरिस करती थीं, उतनी अब कौन करेगा। यह मकान तो बहुत छोटा है।

देवी—तुम्हारे ही कारन तो वह मकान छोड़ना पड़ा।

मुन्नू—मेरे कारन! मुझसे कौन-सी खता हुई सरकार?

देवी—तुम्हीं तो ताँगे पर रज़ा के साथ बैठे मेरे पीछे चले आ रहे थे। ऐसे आदमी पर आदमी को शक होता ही है।

मुन्नू—अरे सरकार, उस दिन की बात कुछ न पूछिए। रज़ा मियाँ को एक वकील साहब से मिलने जाना था।

वह छावनी में रहते हैं। मुझे भी साथ बिठा लिया। उनका साईस कहीं गया हुआ था। मारे लिहाज़ के आपके ताँगे के आगे न निकालते थे। सरकार उसे सोहदा कहती हैं। उसका-सा भला आदमी महल्ले-भर में नहीं है। पाँचों वक्त की नमाज़ पढ़ता है हुज़ूर, तीसों रोज़े रखता है। घर में बीबी-बच्चे सभी मौजूद हैं। क्या मजाल कि किसी पर बदनिगाह हो।

देवी—ख़ैर होगा, तुम्हारे सिर में पट्टी क्यों बँधी है?

मुन्नू—इसका माजरा न पूछिए हुज़ूर। आपकी बुराई करते किसी को देखता हूँ, तो बदन में आग लग जाती है। दरवाज़े पर जो हलवाई रहता न था, कहने लगा, मेरे कुछ पैसे बाबूजी पर आते हैं। मैंने कहा, वह ऐसे आदमी नहीं हैं कि तुम्हारे पैसे हज़म कर जाते। बस, हुज़ूर, इसी बात पर तकरार हो गई। मैं तो दूकान के नीचे नाली धो रहा था। वह ऊपर से कूदकर आया, और मुझे ढकेल दिया। मैं बेख़बर खड़ा था, चारों खाने चित सड़क पर गिर पड़ा। चोट तो आई, मगर मैंने भी दूकान के सामने बचा को इतनी गालियाँ सुनाईं कि याद ही करते होंगे। अब घाव अच्छा हो रहा है हुज़ूर।

देवी—राम! राम! नाहक लड़ाई लेने गए। सीधी-सी बात तो थी। कह देते, तुम्हारे पैसे आते हैं तो जाकर माँग लाओ। हैं तो शहर ही में, किसी दूसरे देश तो नहीं भाग गए।

मुन्नू—हुज़ूर, आपकी बुराई मुझसे नहीं सुनी जाती। फिर चाहे वह अपने घर का लाट ही क्यों न हो, भिड़ पड़ूँगा। वह महाजन होगा, तो अपने घर का होगा। यहाँ कौन उसका दिया खाते हैं।

देवी—उस घर में अभी कोई आया कि नहीं?

मुन्नू—कई आदमी देखने आए हुज़ूर, मगर जहाँ आप रह चुकी हैं, वहाँ अब दूसरा कौन रह सकता है? हम लोगों ने उन लोगों को भड़का दिया। रज़ा मियाँ तो हुज़ूर, उसी दिन से खाना-पीना छोड़ बैठे हैं। बिटिया को याद कर-करके रोया करते हैं। हुज़ूर को हम ग़रीबों की याद काहे को आती होगी?

देवी—याद क्यों नहीं आती? क्या मैं आदमी नहीं हूँ। जानवर तक थान छूटने पर दो-चार दिन चारा नहीं खाते। यह पैसे लो, कुछ बाज़ार से लाकर खा लो। भूखे होगे।

मुन्नू—हुज़ूर की दुआ से खाने की तंगी नहीं है। आदमी का दिल देखा जाता है हुज़ूर, पैसों की कौन बात है। आपका दिया तो खाते ही हैं। हुज़ूर का मिज़ाज ऐसा है कि आदमी बिना कौड़ी का गुलाम हो जाता है। तो अब चलूँगा हुज़ूर, बाबूजी आते होंगे। कहेंगे, यह शैतान यहाँ फिर आ पहुँचा।

देवी—अभी उनके आने में बड़ी देर है।

मुन्नू—ओहो, एक बात तो भूला ही जाता था। रज़ा मियाँ ने बिटिया के लिये ये खिलौने दिए थे। बातों में ऐसा भूल गया कि इनकी सुध ही न रही। कहाँ है बिटिया?



"रज़ा मियाँ ने बिटिया के लिये ये खिलौने दिए थे।"

देवी—अभी तो मदरसे से नहीं आई। मगर इतने खिलौने लाने की क्या ज़रूरत थी? अरे! रज़ा ने तो ग़ज़ब ही कर दिया। भेजना ही था, तो दो-चार आने के खिलौने भेज देते। अकेली मेम ३-४) से कम की न होगी। कुल मिलाकर ३०-३५) से कम के खिलौने नहीं हैं।

मुन्नू—क्या जानें सरकार, मैंने तो कभी खिलौने नहीं ख़रीदे। ३०-३५) के ही होंगे, तो उनके लिये कौन बड़ी बात है? अकेली दूकान से ५०) रोज़ की आमदनी है हुज़ूर।

देवी—नहीं, इनको लौटा ले जाओ। इतने खिलौने लेकर वह क्या करेगी? मैं एक मेम रख लेती हूँ।

मुन्नू—हुज़ूर, रज़ा मियाँ को बड़ा रंज होगा। मुझे तो जीता ही न छोड़ेंगे। बड़े ही मुहब्बती आदमी हैं हुज़ूर। बीबी दो-चार दिन के लिये मैके चली जाती हैं, तो बेचैन हो जाते हैं।

सहसा शारदा पाठशाला से आ गई, और खिलौने देखते

ही उन पर टूट पड़ी। देवी ने डाँटकर कहा—क्या करती है, क्या करती है! मेम ले ले, और सब लेकर क्या करेगी?

शारदा—मैं तो सब लूँगी। मेम को मोटर पर बैठाकर दौड़ाऊँगी। कुत्ता पीछे-पीछे दौड़ेगा। इन बरतनों में गुड़िया के खाने बनाऊँगी। कहाँ से आए हैं अम्मा? बता दो।

देवी—कहीं से नहीं आए; मैंने देखने को मँगवाए थे। तू इनमें से कोई एक ले ले।

शारदा—मैं सब लूँगी, मेरी अम्मा न, सब ले लीजिए। कौन लाया है अम्मा?

देवी—मुन्नू, तुम खिलौने लेकर जाओ। एक मेम रहने दो।

शारदा—कहाँ से लाए हो मुन्नू, बता दो?

मुन्नू—तुम्हारे राजा-भैया ने तुम्हारे लिये भेजे हैं।

शारदा—राजा-भैया ने भेजे हैं। ओहो! (नाचकर) राजा-भैया बड़े अच्छे हैं। कल अपनी सहेलियों को दिखाऊँगी। किसी के पास ऐसे खिलौने न निकलेंगे।

देवी—अच्छा, मुन्नू तुम अब जाओ। रज़ा मियाँ से कह देना फिर यहाँ खिलौने न भेजें।

मुन्नू चला गया, तो देवी ने शारदा से कहा—ला बेटी, तेरे खिलौने रख दूँ, बाबूजी देखेंगे, तो बिगड़ेंगे। कहेंगे, रज़ा मियाँ के खिलौने क्यों लिए। तोड़-ताड़कर फेंक देंगे। भूलकर भी उनसे खिलौनों की चरचा न करना।

शारदा—हाँ अम्मा, रख दो। बाबूजी तोड़ देंगे।

देवी—उनसे कभी मत कहना कि राजा-भैया ने खिलौने भेजे हैं नहीं तो बाबूजी राजा-भैया को मारेंगे, और तुम्हारे कान भी काट लेंगे। कहेंगे, लड़की भिखमंगी है, सबसे खिलौने माँगती फिरती है।

शारदा—मैं उनसे कुछ न कहूँगी अम्मा। रख दो सब खिलौने।

इतने में बाबू श्यामकिशोर भी दफ़्तर से आ गए। भौंहें चढ़ी हुई थीं। आते-ही-आते बोले—वह शैतान मुन्नू इस महल्ले में भी आने लगा! मैंने आज उसे देखा। क्या यहाँ भी आया था?

देवी ने हिचकिचाते हुए कहा—हाँ, आया तो था।

श्याम—और तुमने आने दिया। मैंने मना न किया था कि उसे कभी अंदर क़दम न रखने देना?

देवी—आकर द्वार खटखटाने लगा, तो क्या करती।

श्याम—उसके साथ वह शोहदा भी रहा होगा?

देवी—उसके साथ और कोई नहीं था।

श्याम—तुमने आज भी न कहा होगा यहाँ मत आया कर?

देवी—मुझे तो इसका ख़याल न रहा। और, अब वह यहाँ क्या करने आवेगा।

श्याम—जो करने आज आया था, वही करने फिर आवेगा। तुम मेरे मुँह में कालिख लगाने पर तुली हुई हो।

देवी ने क्रोध से ऐंठकर कहा—मुझसे तुम ऐसी ऊट-पटाँग बातें मत किया करो, समझ गए! तुम्हें ऐसी बातें मुँह से निकालते शर्म भी नहीं आती। एक बार पहले भी तुमने कुछ ऐसी ही बातें कही थीं। आज फिर तुम वही बात कर रहे हो। अगर तीसरी बार ये शब्द मैंने सुने, तो नतीजा बुरा होगा, इतना कहे देती हूँ। तुमने मुझे कोई वेश्या समझ लिया है।

श्याम—मैं नहीं चाहता कि वह मेरे घर आवे।

देवी—तो मना क्यों नहीं कर देते? मैं तुम्हें रोकती हूँ।

श्याम—तुम क्यों नहीं मना कर देतीं?

देवी—तुम्हें कहते क्या शर्म आती है?

श्याम—मेरा मना करना व्यर्थ है। मेरे मना करने पर भी तुम्हारी इच्छा पाकर उसका आना-जाना होता रहेगा।

देवी ने ओंठ चबाकर कहा—अच्छा अगर वह आता ही रहे, तो इससे क्या हानि है? मेहतर सभी घरों में आया-जाया करते हैं।

श्याम—अगर मैंने मुन्नू को कभी अपने द्वार पर फिर देखा, तो तुम्हारी कुशल नहीं, इतना समझाए देता हूँ।

यह कहते हुए श्यामकिशोर नीचे चले गए, और देवी स्तंभित-सी खड़ी रह गई। तब उसका हृदय इस अपमान, लांछन और अविश्वास के आघात से पीड़ित हो उठा। वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसको सबसे बड़ी चोट जिस बात से लगी, वह यह थी कि मेरे पति मुझे इतनी नीच, इतनी निर्लज्ज समझते हैं। जो काम वेश्या भी न करेगी, उसका संदेह मुझ पर कर रहे हैं।

(५)

श्यामकिशोर के जाते ही शारदा अपने खिलौने उठाकर भाग गई थी कि कहीं बाबूजी तोड़ न डालें। नीचे आकर वह सोचने लगी कि इन्हें कहाँ छिपाकर रक्खूँ। वह इसी सोच में खड़ी थी कि उसकी एक सहेली आँगन में आ गई। शारदा उसे अपने खिलौने दिखाने के लिये आतुर हो गई। इस प्रलोभन को वह किसी तरह न रोक सकी। अभी तो बाबूजी ऊपर हैं, कौन इतनी जल्दी

नीचे आए जाते हैं ! तब तक क्यों न सहेली को अपने खिलौने दिखा दूँ ? उसने सहेली को बुला लिया, और दोनों नए खिलौने देखने में इतनी मग्न हो गईं कि बाबू श्यामकिशोर के नीचे आने की भी उन्हें ख़बर न हुई । श्यामकिशोर खिलौने देखते ही झपटकर शारदा के पास आ पहुँचे, और पूछा—तूने ये खिलौने कहाँ पाए ?

शारदा की घिग्घी बँध गई । मारे भय के थर-थर काँपने लगी । उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला ।

श्यामकिशोर ने फिर गरजकर पूछा—बोलती क्यों नहीं, तुझे किसने ये खिलौने दिए ?

शारदा रोने लगी । तब श्यामकिशोर ने उसे फुसलाकर कहा—रो मत, हम तुझे मारेंगे नहीं । तुझसे इतना ही पूछते हैं, तूने ऐसे सुंदर खिलौने कहाँ पाए ?

इस तरह दो-चार बार दिलासा देने से शारदा को कुछ धैर्य बँधा । उसने सारी कथा कह सुनाई । हा अनर्थ ! इससे कहीं अच्छा होता कि शारदा मौन ही रहती । उसका गूँगी हो जाना भी इससे अच्छा था । देवी कोई बहाना करके बला सिर से टाल देती । पर होनहार को कौन टाल सकता है ? श्यामकिशोर के रोम-रोम से ज्वाला निकलने लगी । खिलौने वहीं छोड़ वह धम-धम करते हुए ऊपर गए, और देवी के कंधे दोनों हाथों से झँझोड़कर बोले—तुम्हें इस घर में रहना है या नहीं । साफ़-साफ़ कह दो । देवी अभी तक खड़ी सिसकियाँ ले रही थी । यह निर्मम प्रश्न सुनकर उसके आँसू ग़ायब हो गए । किसी भारी विपत्ति की आशंका ने इस हलके-से आघात को भुला दिया, जैसे घातक को तलवार देखकर कोई प्राणी रोग-शय्या से उठकर भागे । श्यामकिशोर की ओर भयातुर नेत्रों से देखा; पर मुँह से कुछ न बोली । उसका एक-एक रोम मौन भाषा में पूछ रहा था—इस प्रश्न का क्या मतलब है ?

श्यामकिशोर ने फिर कहा—तुम्हारी जो इच्छा हो, साफ़-साफ़ कह दो । अगर मेरे साथ रहते रहते तुम्हारा जी ऊब गया हो, तो तुम्हें अख़्तियार है । मैं तुम्हें क़ैद करके नहीं रखना चाहता । मेरे साथ तुम्हें छल-कपट करने की ज़रूरत नहीं । मैं सहर्ष तुम्हें बिदा करने को तैयार हूँ । जब तुमने मन में एक बात निश्चय कर ली, तो मैंने भी निश्चय कर लिया । तुम इस घर में अब नहीं रह सकतीं, रहने के योग्य नहीं हो ।

देवी ने आवाज़ को सँभालकर कहा—तुम्हें आजकल क्या हो गया है । जो हर वक़्त ज़हर उगलते रहते हो । अगर मुझसे जी ऊब गया है तो ज़हर दे दो, जला-जलाकर क्यों मारते हो ? मेहतर से बातें करना तो ऐसा अपराध न था । जब उसने आकर पुकारा, तो मैंने द्वार खोल दिया । अगर मैं जानती कि ज़रा-सी बात का बतंगड़ हो जायगा, तो उसे दूर ही से दुतकार देती ।

श्याम—जी चाहता है तालू से ज़बान खींच लूँ । बातें होने लगीं, इशारे होने लगे, तोहफ़े आने लगे । अब बाक़ी क्या रहा ?

देवी—क्यों नाहक़ घाव पर नमक छिड़कते हो ? एक अबला की जान लेकर कुछ पा न जाओगे !

श्याम—मैं झूठ कहता हूँ ?

देवी—हाँ, झूठ कहते हो ।

श्याम—ये खिलौने कहाँ से आए ?

देवी का कलेजा धक-से हो गया । काटो, तो बदन में लहू नहीं । समझ गई, इस वक़्त ग्रह बिगड़े हुए हैं, सर्वनाश के सभी संयोग मिलते जाते हैं । ये निगोड़े खिलौने न-जाने किस बुरी साइत में आए । मैंने लिए ही क्यों, उसी वक़्त लौटा क्यों न दिए ? बात बनाकर बोली—आग लगे, वही खिलौने तोहफ़े हो गए ! बच्चों को कोई कैसे रोके, किसी की मानते हैं । कहती रही, मत ले ; मगर न मानी, तो मैं क्या करती । हाँ, यह जानती कि इन खिलौनों पर मेरी जान मारी जायगी, तो ज़बरदस्ती छीनकर फेंक देती ।

श्याम—इनके साथ और कौन-कौन-सी चीज़ें आई हैं, भला चाहती हो, तो अभी लाओ ।

देवी—जो कुछ आया होगा, इसी घर ही में तो होगा । देख क्यों नहीं लेते ? इतना बड़ा घर भी तो नहीं है कि दो-चार दिन देखते लग जायँ ।

श्याम—मुझे इतनी फ़ुरसत नहीं है । ख़ैरियत इसी में है कि जो चीज़ें आई हों, लाकर मेरे सामने रख दो । यह तो हो ही नहीं सकता कि लड़की के लिये खिलौने आवें और तुम्हारे लिये कोई सौग़ात न आवे । तुम भरी-गंगा में क़सम खाओ, तो भी मुझे विश्वास न आवेगा ।

देवी—तो घर में देख क्यों नहीं लेते ?

श्यामकिशोर ने घूँसा तानकर कहा—कह दिया, मुझे फ़ुरसत नहीं है । सीधे-से सारी चीज़ें लाकर रख दो; नहीं तो इसी दम गला दबाकर मार डालूँगा ।

देवी—मारना हो, तो मार डालो, जो चीज़ें आईं ही नहीं, उन्हें मैं दिखा कहाँ से दूँ।

श्यामकिशोर ने क्रोध से उन्मत्त होकर देवी को इतनी ज़ोर से धक्का दिया कि वह चारों ख़ाने चित ज़मीन पर गिर पड़ी। तब उसके गले पर हाथ रखकर बोले—दबा दूँ गला! न दिखावेगी तू उन चीज़ों को?

देवी—जो अरमान हों, पूरे कर लो।

श्याम—ख़ून पी जाऊँगा! तूने समझा क्या है?

देवी—अगर दिल की प्यास बुझती हो, तो पी जाओ।

श्याम—फिर तो उस मेहतर से बातें न करेगी? अगर अब कभी मुझू या उस शोहदे रज़ा को इस द्वार पर देखा, तो गला काट लूँगा।

यह कहकर बाबूजी ने देवी को छोड़ दिया, और बाहर चले गए। लेकिन देवी उसी दशा में बड़ी देर तक पड़ी रही। उसके मन में इस समय पति-प्रेम, और मर्याद-रक्षा का लेश भी न था। उसका अंतःकरण प्रतिकार के लिये विकल हो रहा था। इस वक़्त अगर वह सुनती कि श्यामकिशोर को किसी ने बाज़ार में जूतों से पीटा, तो कदाचित् वह ख़ुश होती। कई दिनों तक पानी से भीगने के बाद, आज यह झोंका खाकर प्रेम की दीवार भूमि पर गिर पड़ी, और मन की रक्षा करनेवाली कोई साधना न रही। अब केवल संकोच और लोक-लाज की हलकी-सी रस्सी रह गई है, जो एक झटके में टूट सकती है।

(६)

श्यामकिशोर बाहर चले गए, तो शारदा भी अपने खिलौने लिए हुए घर से निकली। बाबूजी खिलौनों को देखकर कुछ नहीं बोले, तो अब उसे किसकी चिंता और किसका भय! अब वह क्यों न अपनी सहेलियों को खिलौने दिखावे। सड़क के उस पार एक हलवाई का मकान था। हलवाई की लड़की अपने द्वार पर खड़ी थी। शारदा उसे खिलौने दिखाने चली। बीच में सड़क थी, सवारी-गाड़ियों और मोटरों का ताँता बँधा हुआ था। शारदा को अपनी धुन में किसी बात का ध्यान न रहा। बालोचित उत्सुकता से भरी हुई वह खिलौने लिए दौड़ी। वह क्या जानती थी, मृत्यु भी उसी तरह उसके प्राणों का खिलौना खेलने के लिये दौड़ी आ रही है। सामने से एक मोटर आती हुई दिखाई दी। दूसरी ओर से एक बग्घी आ रही थी। शारदा ने चाहा, दौड़कर उस पार निकल जाय। मोटर ने बिगुल बजाया; पर शारदा उसके सामने आ चुकी थी। ड्राइवर ने मोटर को रोकना चाहा, शारदा ने भी बहुत ज़ोर मारा कि सामने से निकल जाय, पर होनहार को कौन टालता! मोटर बालिका को रौंदती हुई चली गई। सड़क पर केवल एक मांस की लोथ पड़ी रह गई। खिलौने ज्यों-के-त्यों थे। उनमें से एक भी न टूटा था। खिलौने रह गए, खेलनेवाला चला गया। दोनों में कौन स्थायी है और कौन अस्थायी, इसका फ़ैसला कौन करे!

चारों ओर से लोग दौड़ पड़े। अरे! यह तो बाबूजी की लड़की है, जो ऊपरवाले मकान में रहते हैं। लोथ कौन उठावे। एक आदमी ने लपककर द्वार पर पुकारा—बाबूजी! आपकी लड़की तो सड़क पर नहीं खेल रही थी? ज़रा नीचे आ जाइए।

देवी ने छज्जे पर खड़े होकर सड़क की ओर देखा, शारदा की लोथ पड़ी हुई थी। चीख़ मारकर बेतहाशा



"शारदा की लोथ पड़ी हुई थी।"

नीचे दौड़ी, और सड़क पर आकर बालिका को गोद में उठा लिया। उसके पैर थर-थर काँपने लगे।

इस वज्राघात ने स्तंभित कर दिया। रोना भी न आया।

महल्ले के कई आदमी पूछने लगे—बाबूजी कहाँ गए हैं? उनको कैसे बुलाया जाय?

देवी क्या जवाब देती। वह तो संज्ञाहीन-सी हो गई थी। लड़की की लाश को गोद में लिए, उसके रक्त से अपने वस्त्रों को भिगोती, आकाश की ओर ताक रही थी, मानो देवतों से पूछ रही हो—क्या सारी विपत्तियाँ मुझी पर?

अँधेरा होता जाता था; पर बाबूजी का कहीं पता नहीं। कुछ मालूम भी नहीं, वह कहाँ गए हैं। धीरे-धीरे नौ बजे; पर अब तक बाबूजी न लौटे। इतनी देर तक वह कभी बाहर न रहते थे। क्या आज ही उन्हें भी ग़ायब होना था। दस भी बज गए। अब देवी रोने लगी। उसे लड़की की मृत्यु का इतना दुःख न था, जितना अपनी असमर्थता का। वह कैसे शव की दाह-क्रिया करेगी? कौन उसके साथ जायगा? क्या इतनी रात गए कोई उसके साथ चलने पर तैयार होगा? अगर कोई न गया, तो क्या उसे अकेले जाना पड़ेगा? क्या रात-भर लोथ पड़ी रहेगी?

ज्यों-ज्यों सन्नाटा होता जाता था, देवी को भय होता था। वह पछता रही थी कि मैं शाम ही को क्यों न इसे लेकर चली गई।

११ बजे थे। सहसा किसी ने द्वार खोला। देवी उठकर खड़ी हो गई। समझी, बाबूजी आ गए। उसका हृदय उमड़ आया, और वह रोती हुई बाहर आई। पर आह! यह बाबूजी न थे। ये पुलीस के आदमी थे, जो इस मामले की तहक़ीक़ात करने आए थे। ९ बजे की घटना। तहक़ीक़ात होने लगी ११ बजे। आख़िर थानेदार भी तो आदमी है, वह भी तो संध्या-समय घूमने-फिरने जाता ही है।

घंटे-भर तक तहक़ीक़ात होती रही। देवी ने देखा, अब संकोच से काम न चलेगा। थानेदार ने उससे जो कुछ पूछा, उसका उत्तर उसने निस्संकोच भाव से दिया। ज़रा भी न शरमाई, ज़रा भी न झिझकी। थानेदार भी दंग रह गया।

जब सबके बयान लिखकर दारोग़ाजी चलने लगे, तो देवी ने कहा—आप उस मोटर का पता लगावेंगे?

दारोग़ा—अब तो शायद ही उसका पता लगे।

देवी—तो उसको कुछ सज़ा न होगी?

दारोग़ा—मजबूरी है। किसी को नंबर भी तो मालूम नहीं।

देवी—सरकार इसका कुछ इंतज़ाम नहीं करती? ग़रीबों के बच्चे इसी तरह कुचले जाते रहेंगे।

दारोग़ा—इसका क्या इंतज़ाम हो सकता है? मोटरें तो बंद नहीं हो सकतीं!

देवी—कम-से-कम पुलिसवालों को यह तो देखना चाहिए कि शहर में कोई बहुत तेज़ न चलावे? मगर आप लोग ऐसा क्यों करने लगे। आपके अफ़सर भी तो मोटरों पर बैठते हैं। आप उनकी मोटरें रोकेंगे, तो नौकरी कैसे रहेगी।

थानेदार लज्जित होकर चला गया। जब लोग सड़क पर पहुँचे, तो एक सिपाही ने कहा—मेहरिया बड़ी टनमन दिखात है।

थानेदार—अजी, इसने तो मेरा नातक़ा बंद कर दिया। किस ग़ज़ब का हुस्न पाया है। मगर क़सम ले लो, जो मैंने एक बार भी उसकी तरफ़ निगाह की हो। ताकने की हिम्मत ही न पड़ती थी।

बाबू श्यामकिशोर बारह बजे के बाद नशे में चूर घर पहुँचे। उन्हें यह ख़बर रास्ते ही में मिल गई थी। रोते हुए घर में दाख़िल हुए। देवी भरी बैठी थी। सोच रक्खा था, आज चाहे जो हो जाय; पर फटकारूँगी ज़रूर। पर उनको रोते देखा, तो सारा ग़ुस्सा ग़ायब हो गया। ख़ुद भी रोने लगी। दोनों बड़ी देर तक रोते रहे। इस विपत्ति ने दोनों के हृदयों को एक दूसरे की ओर बड़े ज़ोर से खींचा। उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ कि उनमें फिर पहले का-सा प्रेम जाग्रत् हो गया है।

प्रातःकाल जब लोग दाह-क्रिया करके लौटे, तो श्यामकिशोर ने देवी की ओर स्नेह से देखकर करुण स्वर में कहा—तुम्हारा जी अकेले कैसे लगेगा?

देवी—तुम दस पाँच दिन की छुट्टी न ले सकोगे।

श्याम—यही मैं भी सोचता हूँ। पंद्रह दिन की छुट्टी ले लूँ।

श्याम बाबू दफ़्तर छुट्टी लेने चले गए। इस विपत्ति में भी आज देवी का हृदय जितना प्रसन्न था, उतना इधर महीनों से न हुआ था। बालिका को खोकर वह विश्वास और प्रेम पा गई थी, और यह उसके आँसू पोंछने के लिये कुछ कम न था।

आह ! अभागिनी ! ख़ुश मत हो। तेरे जीवन का वह अंतिम कांड होना अभी बाक़ी है, जिसकी आज तू कल्पना भी नहीं कर सकती।

(७)

दूसरे दिन बाबू श्यामकिशोर घर ही पर थे कि मुन्नू ने आकर सलाम किया। श्यामकिशोर ने ज़रा कड़ी आवाज़ में पूछा—क्या है जी, यह तुम क्यों बार-बार यहाँ आया करते हो ?

मुन्नू बड़े दीन भाव से बोला—मालिक कल की बात जो सुनता है, उसी को रंज होता है। मैं तो हजूर का गुलाम ठहरा। अब नौकर नहीं हूँ तो क्या, सरकार का नमक तो खा चुका हूँ। भला वह कभी हड्डियों से निकल सकता है ? कभी-कभी हर-हवाल पूछने आ जाता हूँ। जब से कलवाली बात सुनी है हजूर, ऐसा कलक हो रहा है कि क्या कहूँ। कैसी प्यारी-प्यारी बच्ची थी कि देखकर दुख दूर हो जाता था। मुझे देखते ही मुन्नू मुन्नू करके दौड़ती थी ; जब गैरों का यह हाल है, तो हजूर के दिल पर जो कुछ बीत रही होगी, हजूर ही जानते होंगे।

श्याम बाबू कुछ नर्म होकर बोले—ईश्वर की मरज़ी में इंसान का क्या चारा ? मेरा तो घर ही अँधेरा हो गया। अब यहाँ रहने को जी नहीं चाहता।

मुन्नू—मालकिन तो और भी बेहाल होंगी।

श्याम—हुआ ही चाहें। मैं तो उसे शाम-सवेरे खिला लिया करता था। मा तो दिन-भर साथ रहती थी। मैं तो काम-धंधों में भूल भी जाऊँगा। वह कहाँ भूल सकती हैं। उनको तो सारी ज़िंदगी का रोना है।

पति को मुन्नू से बातें करते सुनकर देवी ने कोठे पर से आँगन की ओर देखा। मुन्नू को देखकर उसकी आँखों में बेअख़्तियार आँसू भर आए। बोली—मुन्नू, मैं तो लुट गई !

मुन्नू—हजूर अब सबर कीजिए, रोने-धोने से क्या फ़ायदा ?

यही सब अंधेर देखकर तो कभी-कभी अल्लाह मियाँ को ज़ालिम कहना पड़ता है। जो बेईमान हैं, दूसरों का गला काटते फिरते हैं, उनको अल्लाह मियाँ भी डरते हैं। जो सीधे और सच्चे हैं, उन्हीं पर आफ़त आती है।

मुन्नू देर तक देवी को दिलासा देता रहा। श्याम बाबू भी उसकी बातों का समर्थन करते जाते थे। जब वह चला गया, तो बाबू साहब ने कहा—आदमी तो कुछ बुरा नहीं मालूम होता।

देवी ने कहा—मोहब्बती आदमी है। रंज न होता, तो यहाँ क्यों आता।

देवी ने समझा, इनका दिल मुन्नू की ओर से साफ़ हो गया।

(८)

पंद्रह दिन गुज़र गए। बाबू साहब फिर दफ़्तर जाने लगे। मुन्नू इस बीच में फिर कभी न आया। अब तक तो देवी का दिन पति से बातें करने में कट जाता था। लेकिन अब उनके चले जाने पर उसे बार-बार शारदा की याद आती। प्रायः सारा दिन रोते ही कटता था। मोहल्ले की दो-चार नीच जाति की औरतें आती थीं; लेकिन देवी का उनसे मन न मिलता था। वे झूठी सहानुभूति दिखाकर देवी से कुछ ऐंठना चाहती थीं।

एक दिन कोई चार बजे मुन्नू फिर आया, और आँगन में खड़ा होकर बोला—मालकिन, मैं हूँ मुन्नू, ज़रा नीचे आ जाइएगा।

देवी ने ऊपर ही से पूछा—क्या काम है ? कहो तो।

मुन्नू—ज़रा आइए तो।

देवी नीचे आई, तो मुन्नू ने कहा—रज़ा मियाँ बाहर खड़े हैं, और हजूर से मातमपुरसी करते हैं।

देवी ने कहा—जाकर कह दो, ईश्वर की जो मरज़ी थी, वह हुई।

रज़ा दरवाज़े ही पर खड़ा था। ये बातें उसने साफ़ सुनीं। बाहर ही से बोला—ख़ुदा जानता है, जब से यह ख़बर सुनी है, दिल के टुकड़े हुए जाते हैं। मैं ज़रा दिल्ली चला गया था। आज ही लौटकर आया हूँ। अगर मेरी मौजूदगी में यह वारदात हुई होती, तो और तो क्या कर सकता, मगर मोटरवाले को बिना सज़ा कराए न छोड़ता, चाहे वह किसी राजा ही की मोटर होती। सारा शहर छान डालता। बाबू साहब चुपके होके बैठ रहे, यह भी कोई बात है। मोटर चलाकर क्या कोई किसी की जान ले लेगा ! फूल-सी मासूम बच्ची को ज़ालिमों ने मार डाला। हाय ! अब कौन मुझे राजा-भैया कहकर पुकारेगा ? ख़ुदा की क़सम उसके लिये दिल्ली से टोकरी-भर खिलौने लाया हूँ। क्या जानता था कि यहाँ यह सितम हो गया।

मुन्नू, देख यह तावीज़, ले जाकर बहूजी को दे दे। इसे अपने जूड़े में बाँध लेंगी। खुदा ने चाहा, तो उन्हें किसी तरह की दहशत या खटका न रहेगा। उन्हें बुरे-बुरे ख़्वाब दिखाई देते होंगे, रात को नींद उचट जाती होगी, बदन में कमज़ोरी मालूम होती होगी, दिल घबराया करता होगा। ये सारी शिकायतें इस तावीज़ से दूर हो जायँगी। मैंने एक पहुँचे हुए फ़क़ीर से यह तावीज़ लिखाया है।

इस तरह रज़ा और मुन्नू उस वक़्त तक एक-न-एक बहाने से द्वार से न टले, जब तक बाबू साहब आते न दिखाई दिए। श्यामकिशोर ने उन दोनों को जाते देख लिया। ऊपर आकर बड़े गंभीर भाव से बोले—रज़ा क्या करने आया था?

देवी—यों ही मातमपुरसी करने आया था। आज दिल्ली से आया है। यह ख़बर सुनकर दौड़ा आया था।

श्याम—मर्द मर्दों से मातमपुरसी करते हैं या औरतों से?

देवी—तुम न मिले, तो मुझी से शोक प्रकट करके चला गया।

श्याम—इसके यह माने हैं कि जो आदमी मुझसे मिलने आवे, वह मेरे न रहने पर तुमसे मिल सकता है। इसमें कोई हरज नहीं, क्यों?

देवी—सबसे मिलने मैं थोड़े ही जा रही हूँ।

श्याम—तो रज़ा क्या मेरा साला है या ससुरा?

देवी—तुम तो ज़रा-ज़रा-सी बात पर कल्लाने लगते हो।

श्याम—यह ज़रा-सी बात है! एक भले घर की स्त्री, एक शोहदे से बातें करे, यह ज़रा-सी बात है! तो बड़ी-सी बात किसे कहते हैं? यह ज़रा-सी बात नहीं है। यह इतनी बड़ी बात है कि यदि मैं तुम्हारी गरदन घोट दूँ, तो भी मुझे पाप न लगेगा। देखता हूँ, फिर तुमने वही रंग पकड़ा। इतनी बड़ी सज़ा पाकर भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलीं। अब की क्या मुझे ले बीतना चाहती हो?

देवी सन्नाटे में आ गई। एक तो लड़की का शोक! उस पर यह अपशब्दों की बौछार और मीषण आक्षेप! उसके सिर में चक्कर-सा आ गया। बैठकर रोने लगी। इस जीवन से तो मौत कहीं अच्छी! केवल यही शब्द उसके मुँह से निकले।

बाबू साहब गरजकर बोले—यही होगा, मत घबराओ, यही होगा। तुम मरना चाहती हो, तो मुझे भी तुम्हारे अमर होने की आकांक्षा नहीं है। जितनी जल्द तुम्हारे जीवन का अंत हो जाय, उतना ही अच्छा। कुल में कलंक तो न लगेगा!

देवी ने सिसकियाँ लेते हुए कहा—क्यों एक अबला पर इतना अन्याय करते हो? तुम्हें ज़रा भी दया नहीं आती!

श्याम—मैं कहता हूँ, चुप रह।

देवी—क्यों चुप रहूँ? क्या किसी की ज़बान बंद कर दोगे?

श्याम - फिर बोले जाती है। मैं उठकर सिर तोड़ दूँगा।

देवी—क्यों सिर तोड़ दोगे, कोई ज़बरदस्ती है?

श्याम—अच्छा तो बुला, देखें तेरा कौन हिमायती है।

यह कहते हुए बाबू साहब झल्लाकर उठे, और देवी को कई थप्पड़ और घूँसे लगा दिए। मगर वह न रोई, न चिल्लाई, न ज़बान से एक शब्द निकाला, केवल अर्थ-शून्य नेत्रों से पति की ओर ताकती रही, मानो वह निश्चय करना चाहती थी कि यह आदमी है या कुछ और।

जब श्यामकिशोर मार-पीटकर अलग खड़े हो गए, तो देवी ने कहा—दिल के अरमान अभी न निकले हों, तो और निकाल लो। फिर शायद यह अवसर न मिले।

श्यामकिशोर ने जवाब दिया—सिर काट लूँगा, सिर, तू है किस फेर में?

यह कहते हुए वह नीचे चले गए, झटके के साथ किवाड़ खोले, धमाके के साथ बंद किए, और कहीं चले गए।

अब देवी की आँखों से आँसू की नदी बहने लगी।

(६)

रात के दस बज गए, पर श्यामकिशोर घर न लौटे। रोते-रोते देवी की आँखें सूज आईं। क्रोध में मधुर स्मृतियों का लोप हो जाता है। देवी को ऐसा ज्ञात होता था कि श्यामकिशोर को उसके साथ कभी प्रेम ही न था। हाँ, कुछ दिनों वह उसका मुँह अवश्य जोहते रहते थे। लेकिन वह बनावटी प्रेम था। उसके यौवन का आनंद लूटने ही के लिये उससे मीठी-मीठी प्यार की बातें की जाती थीं। उसे छाती से लगाया जाता था, उसे कलेजे पर सुलाया जाता था। वह सब दिखावा था, स्वाँग था। उसे याद ही न आता था कि कभी उससे सच्चा प्रेम किया गया। अब वह रूप नहीं रहा, वह यौवन नहीं रहा, वह नवीनता नहीं रही। फिर उसके साथ क्यों न अत्याचार किए जायँ। उसने सोचा—कुछ नहीं! अब इनका दिल

मुझसे फिर गया है, नहीं तो क्या इस ज़रा-सी बात पर यों मुझ पर टूट पड़ते । कोई-न-कोई लांछन लगाकर मुझसे गला छुड़ाना चाहते हैं । यही बात है । तो मैं क्या इनकी रोटियों और इनकी मार खाने के लिये इस घर में पड़ी रहूँ । जब प्रेम ही नहीं रहा, तो मेरे यहाँ रहने को धिक्कार है । मैके में कुछ न सही, यह दुर्गति तो न होगी । इनकी यही इच्छा है तो यही सही । मैं भी समझ लूँगी कि विधवा हो गई ।

ज्यों-ज्यों रात गुज़रती थी, देवी के प्राण सूखे जाते थे । उसे यह धड़का समाया हुआ था कि कहीं वह आकर फिर न मार-पीट शुरू कर दें । कितने क्रोध में भरे हुए यहाँ से गए । वाह री तक़दीर ! अब मैं इतनी नीच हो गई कि मेहतरों से, जूतेवालों से आशनाई करने लगी । इस भले आदमी को ऐसी बातें मुँह से निकालते शर्म भी नहीं आती ! न-जाने इनके मन में ऐसी बातें कैसे आती हैं । कुछ नहीं, यह स्वभाव के नीच, दिल के मैले, स्वार्थी आदमी हैं । नीचों के साथ नीच ही बनना चाहिए । मेरी भूल थी कि इतने दिनों से इनकी घुड़कियाँ सहती रही । जहाँ इज़्ज़त नहीं, मर्यादा नहीं, प्रेम नहीं, विश्वास नहीं, वहाँ रहना बेहयाई है । कुछ मैं इनके हाथ बिक तो गई ही नहीं कि यह जो चाहें करें, मारें या काटें, पड़ी सहा करूँ । सीता-जैसी पत्नियाँ होती थीं, तो राम-जैसे पति भी होते थे ।

देवी को अब ऐसी शंका होने लगी कि कहीं श्यामकिशोर आते-ही-आते सचमुच उसका गला न दबा दें, या छुरी न भोंक दें । वह समाचारपत्रों में ऐसी कई हरजाइयों की ख़बरें पढ़ चुकी थी । शहर ही में ऐसी कई घटनाएँ हो चुकी थीं । मारे भय के वह थरथरा उठी । यहाँ रहने से प्राणों की कुशल न थी ।

देवी ने कपड़ों की एक छोटी-सी बुक़ची बाँधी, और सोचने लगी, यहाँ से कैसे निकलूँ ? और, फिर यहाँ से निकलकर जाऊँ कहाँ ? कहीं इस वक़्त मुन्नू का पता लग जाता, तो बड़ा काम निकलता । वह मुझे क्या मैके न पहुँचा देता । एक बार मैके पहुँच-भर जाती । फिर तो लाला सिर पटककर रह जायँ, भूलकर भी न आऊँ । यह भी क्या याद करें । रुपए क्यों छोड़ दूँ, जिसमें यह मज़े से गुलछर्रे उड़ावें ! मैंने ही तो काट-कपटकर जमा किए हैं । इनकी कौन-सी ऐसी बड़ी कमाई थी । ख़र्च करना चाहती, तो कौड़ी न बचती । पैसा-पैसा बचाती रहती थी ।

देवी ने जाकर नीचे के किवाड़ बंद कर दिए । फिर संदूक़ खोलकर अपने सारे ज़ेवर और रुपए निकालकर बुक़ची में बाँध लिए । सब-के सब करेंसी नोट थे, विशेष बोझ भी न हुआ ।

एकाएक किसी ने सदर दरवाज़े में ज़ोर से धक्का मारा । देवी सहम उठी । ऊपर से झाँककर देखा, श्याम बाबू थे । उसकी हिम्मत न पड़ी कि जाकर द्वार खोल दे । फिर तो बाबू साहब ने इतने ज़ोर से धक्के मारने शुरू किए, मानो किवाड़ ही तोड़ डालेंगे । इस तरह द्वार खुलवाना ही उनको चित्त की दशा को साफ़ प्रकट कर रहा था । देवी शेर के मुँह में जाने का साहस न कर सकी ।

आख़िर श्यामकिशोर ने चिल्लाकर कहा—ओ डैम ! किवाड़ खोल, ओ उल्लो ! किवाड़ खोल ! अभी खोल ।

देवी की रही-सही हिम्मत भी जाती रही । श्यामकिशोर नशे में चूर थे । होश में शायद दया आ जाती, इसलिये शराब पीकर आए हैं । किवाड़ तो न खोलूँगी चाहे तोड़ ही डालो । अब तुम मुझे इस घर में पाओगे ही नहीं, मारोगे कहाँ से । तुम्हें ख़ूब पहचान गई ।

श्यामकिशोर पंद्रह-बीस मिनट तक शोर मचाने और किवाड़ हिलाने के बाद ऊलजलूल बकते हुए चले गए । दो-चार पड़ोसियों ने फटकार भी सुनाई—आप भी तो पढ़े-लिखे आदमी होकर आधी रात को घर चलते हैं । नींद ही तो है, नहीं खुलती, तो क्या कीजिएगा । जाइए, किसी यार-दोस्त के घर लेट रहिए, सवेरे आइएगा ।

श्यामकिशोर के जाते ही देवी ने भी बुक़ची उठाई, और धीरे-धीरे नीचे उतरी । ज़रा देर उसने कान लगाकर आहट ली कि कहीं श्यामकिशोर खड़े तो नहीं हैं । जब विश्वास हो गया कि वह चले गए, तो उसने धीरे से द्वार खोला, और बाहर निकल आई । उसे ज़रा भी क्षोभ, ज़रा भी दुःख न था । बस, केवल एक इच्छा थी कि यहाँ से बचकर भाग जाऊँ । कोई ऐसा आदमी न था, जिस पर वह भरोसा कर सके, जो इस संकट में काम आ सके । था तो बस वही मुन्नू मेहतर । अब उसी के मिलने पर उसकी सारी आशाएँ अवलंबित थीं । उसी से मिलकर वह निश्चय करेगी कि कहाँ जाय, कैसे रहे । मैके जाने का अब उसका इरादा न था । उसे भय होता था कि मैके में श्यामकिशोर से वह अपनी जान न बचा सकेगी । उसे वहाँ न पाकर वह अवश्य उसके मैके जायँगे, और उसे ज़बरदस्ती खींच लावेंगे । वह सारी

यातनाएँ, सारे अपमान सहने को तैयार थी, केवल श्याम-किशोर की सूरत नहीं देखना चाहती थी। प्रेम अपमानित होकर द्वेष में बदल जाता है।

थोड़ी ही दूर पर चौराहा था। कई ताँगेवाले खड़े थे। देवी ने एक इक्का किया और उससे स्टेशन चलने को कहा।

(१०)

देवी ने रात स्टेशन पर काटी। प्रातःकाल उसने एक ताँगा किराए पर किया और परदे में बैठकर चौक जा पहुँची। अभी दूकानें न खुली थीं। लेकिन पूछने से रज़ा मियाँ का पता चल गया। उसकी दूकान पर एक लौंडा झाड़ू दे रहा था। देवी ने उसे बुलाकर कहा—जाकर रज़ा मियाँ से कह दे कि शारदा की अम्मा तुमसे मिलने आई हैं, अभी चलिए। दस मिनट में रज़ा और मुन्नू, दोनों आ पहुँचे।

देवी ने सजल-नेत्र होकर कहा—तुम लोगों के पीछे मुझे घर छोड़ना पड़ा। कल रात को तुम्हारा मेरे घर जाना ग़ज़ब हो गया। जो कुछ हुआ, वह फिर कहूँगी। मुझे कहीं एक घर दिला दो। घर ऐसा हो कि बाबू साहब को मेरा पता न मिले। नहीं, वह मुझे जीता न छोड़ेंगे।

रज़ा ने मुन्नू की ओर देखा, मानो कह रहा है—देखा, चाल कैसी ठीक थी। देवी से बोला—आप निशाख़ातिर रहें, ऐसा घर दिला दूँगा कि बाबू साहब के बाबा साहब को भी पता न चले! आपको किसी बात की तकलीफ़ न होगी। हम आपके पसीने की जगह ख़ून बहा देंगे। सच पूछो तो बहूजी, बाबू साहब आपके लायक़ थे ही नहीं।

मुन्नू—कहाँ की बात भैया, आप रानी होने-लायक हैं। मैं मालकिन से कहता था कि बाबूजी को दालमंडी की हवा लग गई है; पर आप मानती ही न थीं। आज ही रात को मैंने उन्हें गुलाबजान के कोठे पर से उतरते देखा। नशे में चूर थे।

देवी—झूठी बात। उनकी यह आदत नहीं। ग़ुस्सा उन्हें ज़रूर बहुत है, और ग़ुस्से में आकर उन्हें नेक-बद कुछ नहीं सूझता, लेकिन निगाह के बुरे नहीं।

मुन्नू—हजूर मानती ही नहीं, तो क्या करूँ। अच्छा कभी दिखा दूँगा, तब तो मानिएगा।

रज़ा—अबे दिखाना पीछे, इस वक़्त आपको मेरे घर पहुँचा दे। ऊपर ले जाना। जब तक मैं एक मकान देखने जाता हूँ। आपके लायक़ बहुत ही अच्छा है।

देवी—तुम्हारे घर में बहुत-सी औरतें होंगी।

रज़ा—कोई नहीं है बहूजी, सिर्फ़ एक बुढ़िया मामा है। वह आपके लिये एक कहारिन बुला देगी। आपको किसी बात की तकलीफ़ न होगी। मैं मकान देखने जा रहा हूँ।

देवी—ज़रा बाबू साहब की तरफ़ भी होते आना। देखना घर आए कि नहीं।

रज़ा—बाबू साहब से तो मुझे चिढ़ हो गई। शायद नज़र आ जाएँ, तो मेरी उनसे लड़ाई हो जाय। जो मर्द आप-जैसी हुस्न की देवी की क़दर नहीं कर सकता, वह आदमी नहीं।

मुन्नू—बहुत ठीक कहते हो भैया। ऐसी शरीफ़ज़ादी को न-जाने किस मुँह से डाँटते हैं। मुझे इतने दिन हजूर की गुलामी करते हो गए, कभी एक बात न कही।

रज़ा मकान देखने गया, और ताँगा रज़ा के घर की तरफ़ चला।

देवी के मन में इस समय एक शंका का आभास हुआ—कहीं ये दोनों सचमुच शोहदे तो नहीं हैं? लेकिन कैसे मालूम हो? यह सत्य है कि देवी ने जीवन-पर्यंत के लिये स्वामी का परित्याग किया था; पर इतनी ही देर में उसे कुछ पश्चात्ताप होने लगा था। वह अकेली एक घर में कैसे रहेगी, बैठी-बैठी क्या करेगी, यह कुछ उसकी समझ में न आता था। उसने दिल में कहा—क्यों न घर लौट चलूँ? ईश्वर करे, वह अभी घर न आए हों। मुन्नू से बोली—तुम ज़रा दौड़कर देखो तो, बाबूजी घर आए कि नहीं।

मुन्नू—आप चलकर आराम से बैठें, मैं देखे आता हूँ।

देवी—मैं अंदर न जाऊँगी।

मुन्नू—ख़ुदा की कसम खाके कहता हूँ, घर बिलकुल ख़ाली है। आप हम लोगों पर शक करती हैं। हम वह लोग हैं कि आपका हुक्म पावें, तो आग में कूद पड़ें।

देवी इक्के से उतरकर अंदर चली गई। चिड़िया एक बार पकड़ जाने पर भी फड़फड़ाई; किंतु परों में लासा लगे होने के कारण उड़ न सकी, और शिकारी ने उसे अपनी झोली में रख लिया। वह अभागिन क्या फिर कभी आकाश में उड़ेगी? क्या फिर उसे डालियों पर चहकना नसीब होगा?

(११)

श्यामकिशोर सबेरे घर लौटे, तो उनका चित्त कुछ शांत हो गया था। उन्हें शंका हो रही थी कि कदाचित् देवी घर में न होगी। द्वार के दोनों पट खुले देखे, तो कलेजा सन-से

हो गया। इतने सबेरे किवाड़ों का खुला पड़ा रहना अमंगल-सूचक था। एक क्षण द्वार पर खड़े होकर अंदर की आहट ली। कोई आवाज़ न सुनाई दी। आँगन में गए, वहाँ भी सन्नाटा। ऊपर गए, चारों तरफ़ सूना! घर काटने को दौड़ रहा था। श्यामकिशोर ने अब ज़रा सतर्क होकर देखना शुरू किया। संदूक़ में रुपए नदारद ; गहने का संदूक़ भी ख़ाली। अब क्या भ्रम हो सकता था। कोई गंगा-स्नान के लिये जाता है, तो घर के रुपए नहीं उठा ले जाता। वह चली गई। अब इसमें लेश-मात्र भी संदेह नहीं था। यह भी मालूम था कि वह कहाँ गई है। शायद इसी वक़्त लपककर जाने से वह वापस भी लाई जा सकती है। लेकिन दुनिया क्या कहेगी?

श्यामकिशोर ने अब चारपाई पर बैठकर ठंडे दिल से इस घटना की विवेचना करना शुरू की। इसमें तो उन्हें कोई संदेह न था कि रज़ा शोहदा है और मुन्नू उसका पिट्ठू। तो आख़िर बाबूजी का कर्तव्य क्या था? उन्होंने वह पुराना मकान छोड़ दिया, देवी को बार-बार समझाया। इसके उपरांत वह क्या कर सकते थे? क्या मारना अनुचित था? अगर एक क्षण के लिये अनुचित ही मान लिया जाय, तो क्या देवी को इस तरह घर से निकल जाना चाहिए था। कोई दूसरी स्त्री, जिसके हृदय में पहले ही से विष न भर दिया गया हो, केवल मार खाकर घर से न निकल जाती। अवश्य ही देवी का हृदय कलुषित हो गया है।

बाबू साहब ने फिर सोचा, अभी ज़रा देर में महरी आवेगी। वह देवी को घर में न देखकर पूछेगी, तो क्या जवाब दूँगा? दम-के-दम में सारे महल्ले में यह ख़बर फैल जायगी। हाय भगवान! क्या करूँ! श्यामकिशोर के मन में इस वक़्त ज़रा भी पश्चात्ताप, ज़रा भी दया न थी। अगर देवी किसी तरह उन्हें मिल सकती, तो वह उसकी हत्या कर डालने में ज़रा भी पसोपेश न करते। उसका घर से निकल जाना, चाहे आवेश के सिवा उसका और कुछ कारण न हो, उनकी निगाह में अक्षम्य था। वह अपमान वह किसी तरह न सह सकते थे। मर जाना इससे कहीं अच्छा था। क्रोध बहुधा विरक्ति का रूप धारण कर लिया करता है। श्यामकिशोर को संसार से घृणा हो गई। जब अपनी पत्नी ही दग़ा कर जाय, तो किससे क्या आशा की जाय! जिस स्त्री के लिये हम जीते भी हैं और मरते भी, जिसको सुखी रखने के लिये हम अपने प्राणों का बलिदान कर देते हैं, जब वह अपनी न हुई, तो फिर दूसरा कौन अपना हो सकता है। इस स्त्री को प्रसन्न रखने के लिये उन्होंने क्या-क्या नहीं किया। घरवालों से लड़ाई की, भाइयों से नाता तोड़ा, यहाँ तक कि वे अब उनकी सूरत भी नहीं देखनी चाहते। उसकी कोई ऐसी इच्छा न थी, जो उन्होंने पूरी न की हो, उसका ज़रा-सा सिर भी दुखता था, तो उनके हाथों के तोते उड़ जाते थे। रात-की-रात उसकी सेवा-सुश्रूषा में बैठे रह जाते थे। वही स्त्री आज उनसे दग़ा कर गई, केवल एक गुंडे के बहकाने में आकर उनके मुँह में कालिख लगा गई। गुंडों पर इलज़ाम लगाना तो एक प्रकार से मन को समझाना है। जिसके दिल में खोट न हो, उसे कोई क्या बहका सकता है। जब इस स्त्री ने धोका दिया, तो फिर समझना चाहिए कि संसार में प्रेम और विश्वास का अस्तित्व ही नहीं। यह केवल भावुक प्राणियों की कल्पना-मात्र है। ऐसे संसार में रहकर दुःख और दुराशा के सिवा और क्या मिलना है। हा दुष्टा! ले, आज से तू स्वतंत्र है, जो चाहे कर, अब कोई तेरा हाथ पकड़नेवाला नहीं रहा। जिसे तू 'प्रियतम' कहते नहीं थकती थी, उसके साथ तूने यह कुटिल व्यवहार किया! चाहूँ, तो तुझे अदालत में घसीटकर इस पाप का दंड दे सकता हूँ। मगर क्या फ़ायदा! इसका फल तुझे ईश्वर देंगे।

श्यामकिशोर चुपचाप नीचे उतरे, न किसी से कुछ कहा न सुना, द्वार खुले छोड़ दिए, और गंगातट की ओर चले।

प्रेमचंद

छली पवन!

प्रातःकाल वाटिका में तुम,
प्रेमी बनकर आते हो ;
फूलों को, मुख चूम-चूमकर,
अपना स्नेह जताते हो।
पर इस मिस से ओस-कणों से,
उनकी गोद छुड़ाते हो ;
छल से सकल स्नेह उनका, हा!
पवन! लूट ले जाते हो।

जगन्नाथप्रसाद खत्री 'मिलिंद'



मानिनी

[श्रीदुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से]

तिय-रतननि हीरा यहै, यह सांचो ही सोर :
जेती उज्जल देह-दुति, तेती हियो कठोर ।

दुलारेलाल भार्गव

N. K. Press, Lucknow.

रानीगंज 'कोयला'-क्षेत्र की यात्रा

उपक्रम

गत नवंबर-मास की 'माधुरी' में हमने अपनी गिरनार-पर्वत की यात्रा का कुछ वृत्तांत लिखा था, आज उस यात्रा का वर्णन करेंगे, जो हमने गत वर्ष कोयले तथा अबरक की खानें देखने के लिये की थी। इस औद्योगिक युग में कोयला कितनी आवश्यक वस्तु है, इसका अनुमान प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। किसी देश में कोयले के व्यय का परिमाण एक प्रकार से उसकी सभ्यता की माप कहा जा सकता है। संसार में यदि आज कोयले का अभाव हो जाय, तो हमारा जीवन असंभव हो जाय। भारतवर्ष में, सन् १९२४ ई० में, कोयले की उपज २ करोड़ १२ लाख टन थी, जिसका मूल्य लगभग १५ करोड़ रुपए होता है। अन्य वस्तुओं के समान खनिज पदार्थों में भी हमारा देश किसी देश से पीछे नहीं है। हमारी मातृभूमि सचमुच ही रत्न-गर्भा कहलाने की अधिकारिणी है। आधुनिक काल के दो मुख्य खनिज पदार्थों को ही लीजिए। लोहा और फ़ौलाद बनाने के लिये यह आवश्यक है कि लोहे की खानों के पास कोयला भी मिलता हो। परमात्मा की कृपा से यह बात इस देश में पाई जाती है। अभी हाल में भौगर्भिक अनुसंधानों से पता चला है कि उत्तम गुणवाली लौह-खनिज कोयले की खानों के पास ही इतने परिमाण में वर्तमान है कि उससे ताता कंपनी जैसे कम-से-कम छः कारख़ाने कई शताब्दियों तक चल सकते हैं।

रानीगंज का 'कोयला'-क्षेत्र आधुनिक काल के भारतीय क्षेत्रों में सबसे बड़ा है। गत वर्ष इस क्षेत्र में कोयले की उपज ६ लाख टन थी, जो भारतीय कोयले की उपज का २८.५ प्रतिशत भाग होता है। रानीगंज-क्षेत्र कलकत्ते से उत्तर-पश्चिम में लगभग १२० मील के फ़ासले पर है। यह क्षेत्र ई० आई० आर० की ग्रांड कार्ड लाइन पर, 'मगमा'-स्टेशन से चार मील पश्चिम से आरंभ होकर ई० आई० आर० के 'ओंडाल'-जंक्शन के तीन मील पूर्व में समाप्त हो जाता है। इसका क्षेत्रफल लगभग ५०० वर्ग-मील है। ईस्ट इंडियन रेलवे और बंगाल-नागपुर-रेलवे के अतिरिक्त इस क्षेत्र में कोयले की भिन्न-भिन्न खानों को मिलाने के लिये रेलवे की अनेक शाखाएँ और उपशाखाएँ लगी हुई हैं। अब हम सरल भाषा में इस क्षेत्र का कुछ भौगर्भिक दिग्दर्शन कराते हुए कोयले की उत्पत्ति और उस समय की भारतवर्ष की अवस्था का वर्णन करेंगे।

कोयलेवाले शिला-समूह की उत्पत्ति

बंगाल, बिहार और उड़ीसे का कोयला जिस भौगर्भिक शिला-समूह में मिलता है, उसका नाम भारतीय भौगर्भिक इतिहास में "गोंडवाना-शिलासमूह" (Gondwana Formation) है। यह नाम दक्षिण की प्राचीन 'गोंड'-जाति के नाम पर रक्खा गया है। जिस समय इस शिला-समूह की सामग्री समुद्र के अधस्तल में एकत्रित हो रही थी, उस समय भारतवर्ष आफ़्रिका, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण-अमेरिका से मिला हुआ था। इन्हीं देशों से निर्मित महाद्वीप का नाम गोंडवाना रक्खा गया है। भौगर्भिक समय-विभाग के अनुसार कोयलेवाले शिला-समूह का बनना प्रथम कल्प (Primary of Palaeozoic Era) के कार्बनीफ़ेरस (Carboniferous) तथा परमियन (Permian) युगों में शुरू हुआ। इन युगों को व्यतीत हुए लगभग ५ करोड़ वर्ष हुए हैं। इस शिला-समूह में कई आश्चर्य-जनक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

(१) ऊपर से नीचे तक यह हज़ारों फ़ीट मोटा शिला-समूह एक सजातीय (homogeneous) समूह है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि इसके बनने में जो समय लगा, उसमें जल और स्थल के स्थानों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

(२) गोंडवाना-महाद्वीप के इतना विशाल होने पर भी इसके फ़ासिल-पौदों तथा फ़ासिल-वृक्षों द्वारा पूर्वोक्त शिला-समूह ने उस समय की भूमि का इतिहास सुरक्षित रक्खा है।

(३) यद्यपि कोयले को बने ५ करोड़ वर्ष के लगभग हो गए, परंतु सौभाग्य से पृथ्वी के इस भाग पर कोई दुर्घटना नहीं हुई—उदाहरण-स्वरूप भूपटल (earth's

crust) का आकुंचन (wrinkling) तथा व्याकर्त्तन (folding)। यदि ऐसा होता, तो गरमी और दबाव से कोयले का नाश हो जाता।

गोंडवाना-शिलासमूह तीन प्रकार के हैं। कुछ तो गहरे समुद्र में बनी हुई (marine) शिलाओं के समूह हैं। कुछ छोटे-छोटे जल के क्षेत्रों तथा सरोवरों में बनी हुई (estuarine) और कुछ नदी और नालों की वादियों में एकत्रित कणों से बनी हुई (fluviatile) शिलाओं के समूह हैं। पहले प्रकार के शिला-समूह में उस समय के समुद्रीय जीवों की फ़ासिलों का बाहुल्य है। दूसरे प्रकार की शिलाओं में झील इत्यादि के तलछटों (Deposits) की विशेषताएँ मिलती हैं, उदाहरण-स्वरूप झीलों के किनारे पर कांग्लोमरेट (Conglomerate—नदी द्वारा लाए हुए भिन्न-भिन्न पत्थरों के बड़े-बड़े टुकड़ों से बनी हुई शिला) बनता है, और उनके केंद्र की ओर शिलाओं के कणों का आकार छोटा होता जाता है। यहाँ तक कि झीलों के केंद्र में प्रायः चिकनी मिट्टी के कणों की शिलाएँ मिलती हैं। सांपत्तिक दृष्टि से उपर्युक्त शिला-समूहों में अंतिम प्रकार की शिलाएँ ही अधिक महत्त्व की हैं। इन्हीं का समूह कोयले का भांडार है।

गोंडवाना-काल का भौगोलिक चित्र गोंडवाना-काल के भारत के भूगोल का दिग्दर्शन कराता है। इस समय—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है—दक्षिण-भारत अफ़्रिका इत्यादि से मिला हुआ था, और हिमालय-पर्वत का जन्म भी न हुआ था। उस समय हिमालय के स्थान पर एक सागर था, जिसको भूगर्भ-वेत्ताओं ने टेथिस महासागर (Tethys Ocean) नाम दे रक्खा है। ऊपर दिए हुए चित्र से तीनों प्रकार के गोंडवाना-शिलासमूह के विवरण का पता चलता है। परिवाह-क्षेत्र में बने हुए (fluviatile) शिला-समूह का स्थान उस समय बड़ी-बड़ी नदियों की वादियाँ थीं, जिनमें इस समूह की शिलाओं की सामग्री एकत्र हो रही थी। तब गोंडवाना-महाद्वीप वनस्पतियों तथा वृक्षों और लताओं से परिपूर्ण था। उस समय मनुष्य जाति की तो बात ही क्या, पक्षिवर्ग का भी जन्म न हुआ था, जो इन वृक्षों और लताओं की शोभा निरख सकते। हाँ, उस समय साँप, बिच्छू तथा अन्य भयानक जीवों का अवश्य बाहुल्य था। आधुनिक काल के समान, उस समय भी पृथ्वी की सतह का क्षय करनेवाली प्राकृतिक शक्तियाँ अपना-अपना कार्य कर रही थीं। बड़ी-बड़ी नदियाँ तथा नाले, प्रधानतः वर्षा-ऋतु में, वृक्षों और लताओं को बहा ले जाते थे। उस समय के वृक्षों के आकार का पता एक उदाहरण से भली भाँति चल जायगा। गत वर्ष आसनसोल के पास एक फ़ासिल वृक्ष-कांड (trunk) पाया गया है, जिसकी लंबाई ७२ फ़ीट है। जिस वृक्ष का कांड इतना लंबा हो, उस की लंबाई कितनी होगी, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं।

ये बड़े-बड़े वृक्ष बालू और मिट्टी के साथ नदी की चौड़ी वादियों में एकत्र होने लगे। हज़ारों फ़ीट मोटे शिला-समूह का इस प्रकार एकत्र होना अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है; परंतु इसका कारण यह था कि जिन चौड़ी वादियों में नदियाँ बहती थीं, उनकी तली धीरे-धीरे नीचे बैठती जाती थी; अर्थात् ज्यों-ज्यों नदियों और नालों से लाई हुई सामग्री एकत्र होती जाती थी, त्यों-त्यों उसके बोझ अथवा उस काल से पहले के कुछ आंतरिक आंदोलनों से ये नदी-पात्र अंदर धँसते जाते थे। यह दशा बहुत काल तक रही। जब उस समय के अनेक वृक्षों का नाश हो गया, और उनके मृत शरीर इन श्मशान-रूपी वादियों में बालू तथा मिट्टी के साथ एकत्र हो गए, तब फिर हज़ारों वर्षों तक केवल बालू और मिट्टी ही आकर उनके ऊपर जमा होती रही। तत्पश्चात् यह शिला-समूह पृथ्वी की आंतरिक शक्तियों द्वारा जल के बाहर निकलने लगा। धीरे-धीरे जो वादियाँ बड़ी-बड़ी नदियों के बहने का स्थान थीं, वे समतल भूमि हो गईं, और जल वहाँ से हट गया। जितना समय इस परिवर्तन में लगा, उतने समय में वृक्षोंवाली शिलाओं की तहों के नीचे धँस जाने और उनके ऊपर की हज़ारों फ़ीट मोटी अन्य शिलाओं के बोझ के कारण, अथवा अन्य किसी प्रकार से, अंतर्दाह उत्पन्न हो जाने से उन वृक्षों, लताओं तथा अन्य वनस्पतियों का कोयले में रासायनिक परिवर्तन हो गया। इस प्रकार गोंडवाना-शिलासमूह तथा कोयले की उत्पत्ति हुई।

रानीगंज-क्षेत्र की शिलाओं का भौगर्भिक वृत्तांत

गोंडवाना-शिलासमूह तीन भागों में विभक्त किया जाता है—



गोंडवाना-काल का भौगोलिक चित्र

(१) ऊर्ध्व गोंडवाना-उपशिलासमूह,

(२) मध्यगोंडवाना-उपशिलासमूह,

(३) अधःगोंडवाना-उपशिलासमूह ।

रानीगंज में प्रायः अधःगोंडवाना समूह की ही शिलाएँ मिलती हैं । हाँ, मध्यगोंडवाना-उपशिलासमूह की निम्न-तम शिलाएँ भी एक-दो स्थानों पर दृष्टिगोचर होती हैं । इन शिलाओं को 'पंचेत' समुदाय की शिलाएँ कहते हैं । अधःगोंडवाना-उपशिलासमूह के दो समुदाय हैं—

(१) दामोदर समुदाय की शिलाएँ,

(२) तलचीर समुदाय की शिलाएँ ।

पंचेत—मध्य गोंडवाना के 'पंचेत' समुदाय की शिलाएँ मोटे कणों के लाल बालू के पत्थर, कांग्लोमरेट तथा कुछ हरी और भूरी मिट्टी के पत्थर हैं। इस समुदाय का नाम 'पंचेत'-पहाड़ी के नाम पर रक्खा गया है, जहाँ इस समुदाय की शिलाएँ पृथ्वीतल पर दिखाई देती हैं। पंचेत-शिलाएँ फ़ासिल-विज्ञान की दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण हैं। इनमें रीढ़वाले अनेक जीवों की फ़ासिलें मिलती हैं, जिनके द्वारा प्राचीन गोंडवाना-द्वीप के जीवों के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। ये फ़ासिलें बड़े-बड़े रेंगनेवाले सर्प-तुल्य जंतुओं तथा नदी में रहनेवाली मछलियों इत्यादि के दाँत, जबड़े और हड्डियों के रूप में पाई जाती हैं।

दामोदर—अधःगोंडवाने के 'दामोदर' समुदाय का नाम 'दामोदर'-नदी के नाम पर रक्खा गया है। इस समुदाय की शिलाएँ प्रायः दामोदर-नदी की घाटी में ही उत्तम रीति से दृष्टिगोचर होती हैं। दामोदर समुदाय की शिलाएँ तीन श्रेणियों में विभक्त की जाती हैं—

(क) रानीगंज-श्रेणी की शिलाएँ,

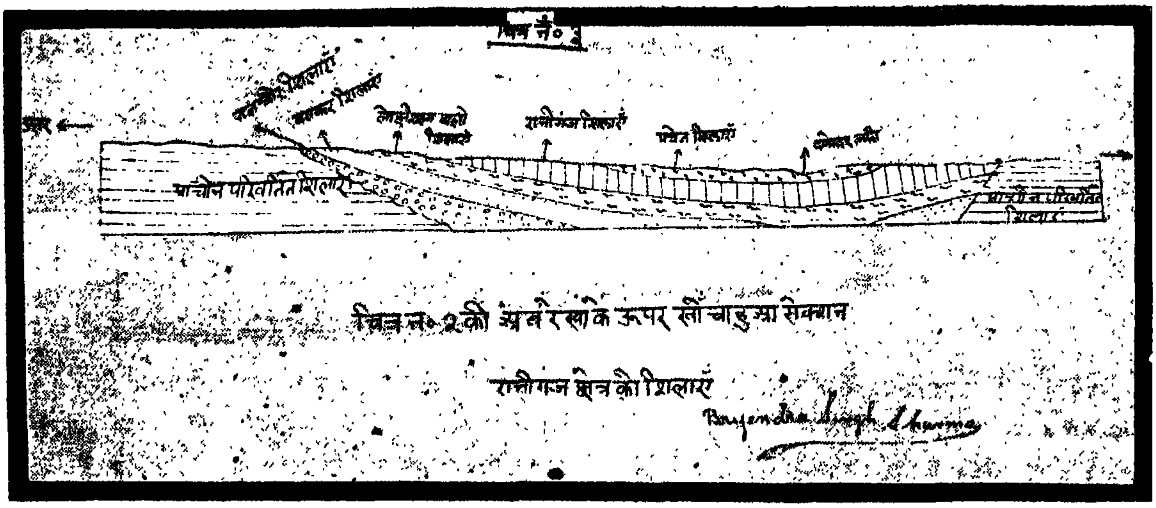
(ख) लौह-शिलावाली मिट्टी की शिलाएँ,

(ग) बराकर-श्रेणी की शिलाएँ।

दामोदर-शिला-समुदाय भारत के लिये एक बड़े महत्त्व का समुदाय है, जिसने भारतीयों के लिये कोयले के रूप में एक अमित भांडार छिपा रक्खा है। भारत की सबसे बड़ी और उत्तम कोयले की खानें इसी समुदाय की शिलाओं से कोयला निकाल रही हैं। इस समुदाय की रानीगंज और बराकर-श्रेणियों की शिलाओं में ही कोयला मिलता है। परंतु तीसरी श्रेणी की शिलाएँ कुछ लोहा देकर भारतवर्ष का उपकार करती हैं। रानीगंज-क्षेत्र में कोयला अधिकतर पहली श्रेणी की शिलाओं से ही निकाला जा रहा है। इस कारण दूसरे नक़्शे के चित्र से विदित होगा कि रानीगंज-श्रेणी की शिलाओं के स्थान में ही प्रायः सब कोयले की खानें वर्तमान हैं।

रानीगंज-श्रेणी की शिलाएँ—ये शिलाएँ पहलेपहल रानीगंज-नगर ही के पास देखी गई थीं। इस श्रेणी की शिलाएँ पंचेत समुदाय की शिलाओं के नीचे मिलती हैं। ये प्रायः मोटे अथवा बारीक कणोंवाले स्थूलाकार (Massive) बालू के पत्थर और लाल, भूरी और काली मिट्टी के पत्थर (Shales) हैं, जिनमें कोयले की कई तहें भी पाई जाती हैं। इस श्रेणी का कोयला उत्तम गुणोंवाला है, और उसमें ५२ प्रतिशत तक कार्बन (Carbon) की मात्रा है।

लौह-शिलावाली मिट्टी की शिलाएँ—ये मिट्टी की प्रायः कार्बन-सम्मिलित शेलें (Shale) हैं, जिनमें लोहे के कुछ जलज खनिज-पदार्थ (लोहे का कार्बोनेट और ऑक्साइड) पिंडाकार (Nodules) रूप में पाए जाते हैं। इनसे खनिज का संस्कार करके कुछ लोहा निकाला जाता



रानीगंज-क्षेत्र की शिलाएँ

है। ये शिलाएँ रानीगंज-श्रेणी की शिलाओं के नीचे मिलती हैं।

बराकर-श्रेणी की शिलाएँ—इस श्रेणी का नाम दामोदर-नदी की 'बराकर'-नामक उप-नदी के नाम पर रक्खा गया है। बंगाल के अतिरिक्त अन्य गोंडवाना-तल-छटों में—उदाहरण-स्वरूप सतपुरा, महानदी तथा गोदावरी के परिवाह-क्षेत्रों में—उपर्युक्त पहली और दूसरी श्रेणी की शिलाओं का अभाव है। परंतु बराकर-श्रेणी की शिलाएँ वहाँ भी मिलती हैं। बराकर-श्रेणी की शिलाएँ दूसरी श्रेणी की शिलाओं के नीचे और 'तलचीर' समुदाय की शिलाओं के ऊपर पाई जाती हैं। ये शिलाएँ अधिकतर मोटे कणों के मुलायम, सफ़ेद, स्थूलाकार बालू के पत्थर और मिट्टी की तहदार शेलें हैं, जिनके बीच में कोयले की मोटी तहें पाई जाती हैं। भिन्न-भिन्न तहों के कोयले के गुणों में अंतर होता है। कहीं तो कोयले में कार्बन का परिमाण अधिक होता है, और कहीं, कोयले के मिट्टी के साथ मिले रहने के कारण, कार्बन की मात्रा इतनी कम रह जाती है कि उसे कार्बन-सम्मिलित शेल कहना उपयुक्त होगा।

तलचीर समुदाय की शिलाएँ—दामोदर समुदाय की बराकर-श्रेणी की शिलाओं के नीचे तलचीर समुदाय की शिलाएँ मिलती हैं। तलचीर उड़ीसा में एक रियासत है, जहाँ इस प्रकार की शिलाएँ पहलेपहल मिली थीं; इस समुदाय की मुटाई ३-४ सौ फ़ीट है। यह प्रायः पतली-पतली परतवाली हरी शेलों और छोटे कणोंवाले बालू के पत्थरों से बना है। बालू के पत्थरों के खनिजात्मक अवयव (constituent), फ़ेल्सपार (felspar) में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। समुद्री शिलाओं का फ़ेल्सपार जल और वायु के प्रभाव से प्रायः चीनी मिट्टी (kaolin) में परिवर्तित हो जाता है। इस शिला-समुदाय के फ़ेल्सपार का परिवर्तित न होना इस बात को प्रमाणित करता है कि गोंडवाना-काल के प्रारंभ में तलचीर-परिवाह-क्षेत्र के चारों ओर बर्फ़ जमी हुई थी। यह कल्पना और भी कई प्रकार से सत्य प्रतीत होती है। जैसे इस शिला-समुदाय के सबसे नीचे भाग में पत्थर के बड़े-बड़े ढोकों (boulders) की एक तह मिलती है। इन ढोकों में हिमानी-नद (glacier) से लाए हुए अन्य स्थानों के ढोकों के समान चिह्न पाए जाते हैं। इस समुदाय की शिलाओं में उस समय के प्रधान पौदों की फ़ासिलों के अतिरिक्त अन्य फ़ासिलों का अभाव है।

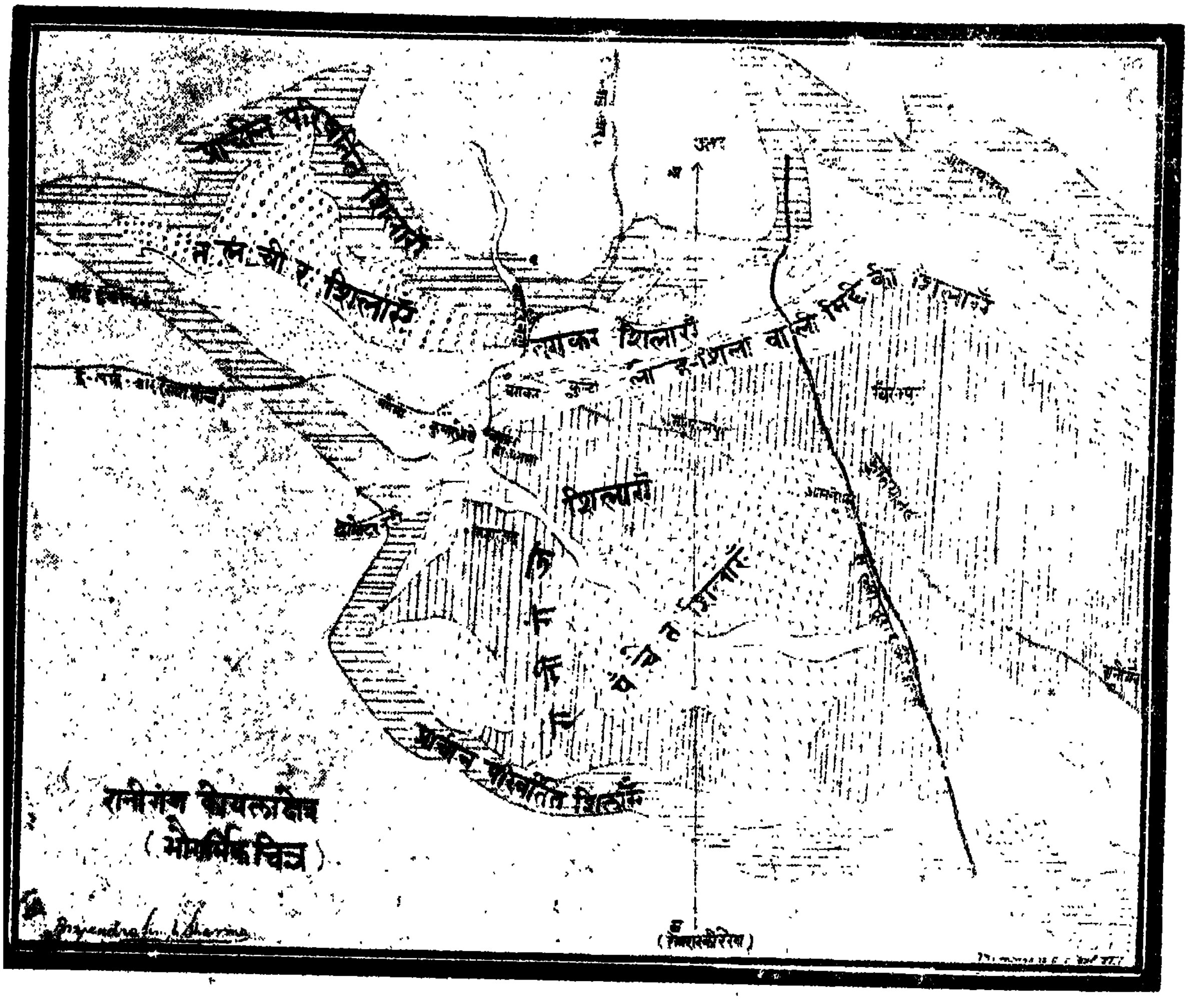
रानीगंज-क्षेत्र की रूपांतरित शिलाएँ—उपर्युक्त समुद्रीय शिलाओं (अर्थात् तलचीर समुदाय की शिलाओं) के नीचे बहुत प्राचीन शिलाएँ मिलती हैं। ये शिलाएँ समुद्री अथवा आग्नेय शिलाओं में से किनके रूपांतर से बनी हैं, इस बात का इस समय पता चलाना कठिन है। ये शिलाएँ 'हार्न ब्लेंड-शिस्ट' (Hornblende-schist) के नाम से परिचित हैं। हार्न-ब्लेंड एक खनिजात्मक पदार्थ है, जो प्रायः काली आग्नेय और रूपांतरित शिलाओं में मिलता है। ये शिलाएँ पृथ्वी की उत्पत्ति के समय ही बनी थीं। इस शिला-समूह से पुराना कोई समूह अभी तक संसार में कहीं भी नहीं मिला। इन शिलाओं का विस्तार दो नंबर के चित्र से विदित हो जायगा।

सल्मा दरारी-शिला (Salma DykeRock)—रानीगंज-क्षेत्र में स्थान-स्थान पर आग्नेय शिलाएँ भी पाई जाती हैं। ये शिलाएँ प्रायः अर्द्ध-पातालीय (hypabyssal) श्रेणी की हैं, जो पृथ्वीतल से कुछ नीचे लंबी-लंबी धारियों (Veins) तथा दरारों (dykes) में बनी थीं। ऐसी धारियों ने जहाँ कहीं कोयले की किसी तह को पार किया है, वहाँ उनकी शिलाओं के प्रभाव से कोयला ख़राब हो गया है। सबसे बड़ी और मुख्य दरारी-शिला सल्मा दरारी-शिला कहलाती है। 'सल्मा दरार' आसनसोल-स्टेशन के पास नुनिया-नदी में एक ओर से दूसरी ओर जाती हुई दिखाई देती है। यह आग्नेय दरारी-शिला काले रंग की है, जो जल और वायु के प्रभाव से विच्छिन्न होकर गोलाकार खंडों में परिवर्तित हो जाती है।

चित्र नं० ३ रानीगंज-क्षेत्र की भिन्न-भिन्न प्रकार की शिलाओं का परस्पर संबंध तथा उनका निर्माण बताने के लिये खींचा गया है। यह सेक्शन (Section) इस क्षेत्र के केंद्र में वर्तमान उत्तर-दक्षिण रेखा के ऊपर बनाया गया है। नीचे की शिलाएँ पृथ्वीतल पर क्यों और कैसे निकल आती हैं, इसका कारण इस चित्र से सहज ही विदित हो जायगा।

रानीगंज-क्षेत्र के कुछ दर्शनीय स्थान

अब हम संक्षेप में कुछ प्रधान-प्रधान स्थानों का वर्णन



रानीगंज कोयला-क्षेत्र

देकर लेख समाप्त करेंगे। इस यात्रा में हमारी पार्टी के विश्राम का स्थान बराकर-नगर का डाक-बँगला था। यह डाक-बँगला बराकर-नदी के किनारे बना हुआ है। इस नदी के उथली और इसका जल स्वच्छ होने के कारण डाक-बँगले के पास के पुल की शोभा देखने-योग्य है। बराकर-स्टेशन से उतरते ही वहाँ का वायुमंडल कोयले की धूल से परिपूर्ण प्रतीत होता है, जिससे यात्री को यह जानने में कुछ भी विलंब नहीं होता कि उसने किसी आधुनिक सभ्यता के नगर में प्रवेश किया है। कोयले की खानों के नगर में आनेवाले यात्री को वस्त्र पर्याप्त संख्या में ले आने चाहिए; क्योंकि वहाँ वस्त्र बहुत जल्द मैले हो जाते हैं।

कोयले की खान

बराकर-डाक-बँगले के पास ही बगानिया की कोयले की खान है। इसका आकार ऊपर से बहुत छोटा दिखाई देता है; पर अंदर जाकर इसका सच्चा स्वरूप प्रकट हो जाता है। कुछ पाठकों को यह जानकर अचरज होगा कि इस खान की सुरंगें (tunnels) बराकर-नदी को नीचे से पार करती हैं। अतएव ऊपर तो नदी बहती और नीचे कोयला खोदा जाता है। खान के अंदर जो कोयला खोदा जाता है, उसको मज़दूर ट्रालियों द्वारा खनि-कुंड (mine shaft) के नीचे तक ले आते हैं। वहाँ वह कोयला एक पिंजड़े (cage) में भर दिया जाता है। यह पिंजड़ा खनि-कुंड में से बिजली द्वारा

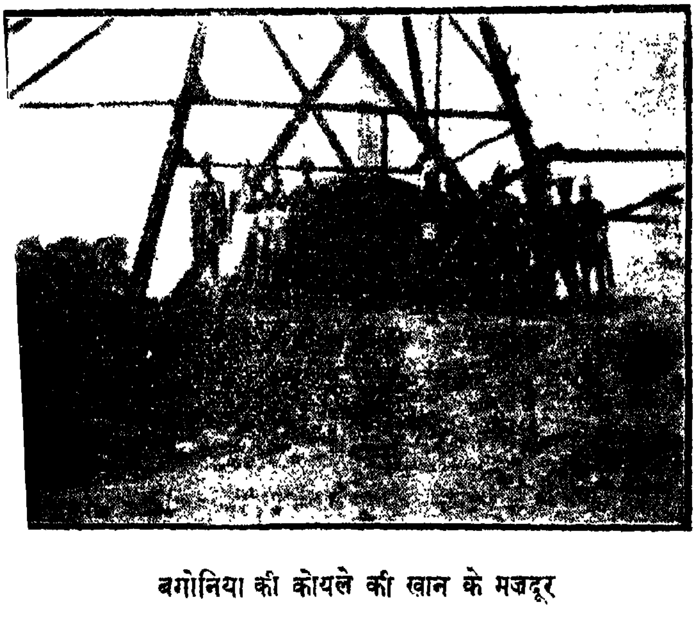


बगोनिया "कोयले की खान" और हिंदू-विश्वविद्यालय की पार्टी

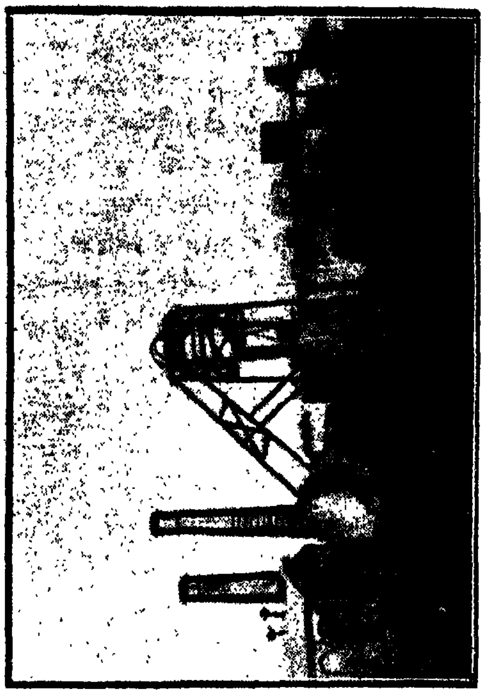
ऊपर खींच लिया जाता है। खनि-कुंड का आकार इतना बड़ा होता है कि उससे दो पिंजड़े एक साथ निकल जा सकते हैं। प्रत्येक पिंजड़ा बस, इतना ही बड़ा होता है कि यदि उसमें मनुष्य खड़े हों, तो पाँच से अधिक नहीं आ सकते। पिंजड़े के ऊपरी भाग से एक फ़ौलाद की रस्सी बँधी होती है। इस रस्सी का दूसरा सिरा दूसरे पिंजड़े के ऊपर बँधा रहता है, और यह रस्सी एक चक्कर (pulley) के ऊपर लिपटी रहती है। ऐसा प्रबंध रहता है कि जब नीचे से एक पिंजड़ा ऊपर को खींचा जाता है, तो उसी क्षण रस्सी के दूसरे सिरे से दूसरा पिंजड़ा नीचे स्वयं उतरने लगता है। पिंजड़ा खींचने अथवा उतारने के समय एक घंटी बजती है, ताकि नीचे कोई खड़ा न रहे। इन पिंजड़ों में बैठकर एक क्षण में सैकड़ों फ़ीट नीचे उतरने में एक अद्भुत अनुभव होता है, जिसका शब्दों में वर्णन करना कठिन है। बगोनिया की खान सबसे बड़ी खान नहीं है। बड़ी-बड़ी खानें 'तिशरगढ़' तथा 'चरणपुर' की हैं। चरणपुर बराकर से १९ मील पूर्व में और तिशरगढ़ लगभग ६ मील दक्षिण में है। तिशरगढ़ में कोयले की तह की मुटाई १२ फ़ीट के क़रीब है, और यह अनुमान किया जाता है कि यहाँ पर ३० करोड़ टन कोयला मौजूद है।

बंगाल-कंपनी का लोहे का कारख़ाना

कोयले की अनेक खानों के सिवा एक और स्थान विशेष महत्त्व का है। वह है कुल्टी में बंगाल-कंपनी का लोहे का कारख़ाना। कुल्टी बराकर से केवल २½ मील की दूरी पर है। यह कारख़ाना कुल्टी-स्टेशन के पास ही है। रात्रि के समय बराकर से कुल्टी की तरफ़ देखने से ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कहीं आग लग गई हो। यह प्रकाश कुल्टी के कारख़ाने की भट्ठियों का होता है। कारख़ाने में रात-दिन काम होता है। यहाँ हज़ारों मनुष्य काम करते हैं। लोहा बनाने के लिये यहाँ कई वात-भट्ठे (blast furnace) हैं, जिनमें दो-एक हर घड़ी जलते रहते हैं। संसार में जितने लोहे का प्रयोग होता है, वह पहले लोह-खनिजों को



बगोनिया की कोयले की खान के मजदूर



तिशरगढ़ कोयले की खान



कुल्टी "लोहे का कारखाना"



चरणपुर कोयले की खान

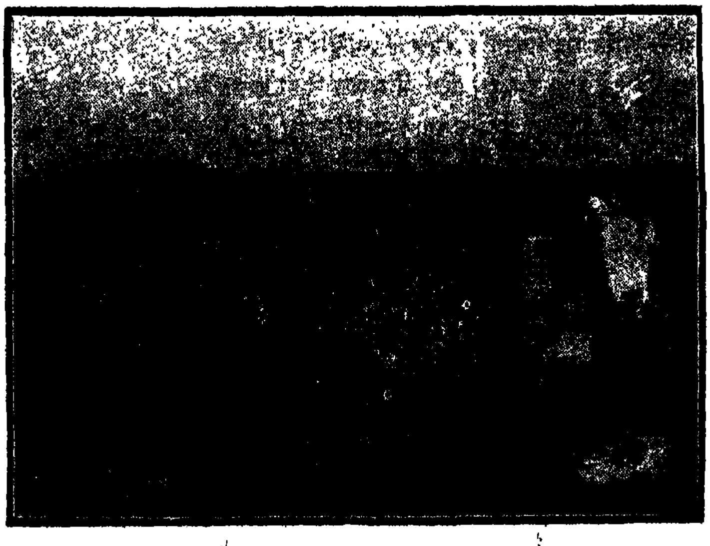
बात-भट्ठों में गलाकर मिलवाँ लोहे (pig iron) के रूप में बनता है। बाद को मिलवाँ लोहे से ढलवाँ लोहा (cast-iron), पिटवाँ लोहा (wrought iron) अथवा फ़ौलाद बना लिया जाता है। लौह-खनिज से ढलवाँ लोहा और फ़ौलाद बनाने की कुछ अन्य रीतियाँ भी हैं। परंतु बात-भट्ठों द्वारा बने हुए मिलवाँ लोहे से बनाने की रीति इतनी सरल तथा सस्ती है कि अन्य रीतियाँ इससे प्रतियोगिता नहीं कर सकतीं।

बात-भट्ठे में लोहा बनाने की रीति संक्षेप में इस प्रकार है—ईंधन, लौह खनिज और कोई द्राविक पदार्थ, इन तीनों का मिश्रण बात-भट्ठे में ऊपर से डाला जाता है, और उसी समय गरम वायु मशीन द्वारा नीचे से ऊपर की ओर फूकी जाती है। वायु की उपस्थिति में ईंधन जलता है, जिससे ताप इतना उत्पन्न हो जाता है कि लौह-खनिज तथा द्रावक पदार्थों का रासायनिक परिवर्तन हो सके और वे गल सकें। इस दाह-क्रिया में जो गैसें (gases) बनती हैं, वे लौह-खनिज से ऑक्सीजन (oxygen) निकाल लेती हैं, जिससे लौह-खनिज का लौह-धातु के रूप में संस्कार हो जाता है।

द्रावक पदार्थ (flux) लौह-खनिज से मिली हुई मिट्टी अथवा अन्य मैल को गली हुई अवस्था में रखने का काम करता है। इस क्रिया में जो गैसें उत्पन्न होती हैं, वे भट्ठे के ऊपर से निकलती हैं, और पिघला हुआ लोहा और धातु-मैल (Slag) भट्ठे के तले में आ जाते हैं, जहाँ से वे उसी दशा में बाहर निकाल लिए जाते हैं। भट्ठे से बाहर निकलनेवाली गैसें ज्वलन-शक्ति (combustible) होती हैं, और वे नलों द्वारा वाष्पजनक (boiler) अथवा बड़ी-बड़ी अँगीठियों (Stoves) में ले जाई जाती हैं। वहाँ पर इन गैसों का भाप बनाने या भट्ठों में जानेवाली वायु को गरम करने में प्रयोग होता है।



कुल्टी "लोहे का कारख़ाना"



बराकर-नदी का पुल

(डाक-बँगले के समीप का दृश्य)

कुल्टी के कारख़ाने में लौह-खनिज हेमेटाइट (Hematite=अधिक लोहे की मात्रावाला गेरू) से लोहा निकाला जाता है। परंतु, जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है, दामोदर समुदाय की दूसरी श्रेणी की शिलाओं से लौह-शिला (Iron stone के पिंडाकार टुकड़ों को भी उपयोग में लाया जाता है। ईंधन के लिये त कोयले की कमी है ही नहीं। हाँ, द्रावक पदार्थ, जो प्रायः चूने का पत्थर (lime stone) होता है, उसका इस क्षेत्र में अभाव है। इस कारण कारख़ानेवाले सतने (मध्य-भारत) से मँगाकर चूने के पत्थर का प्रयोग करते हैं। ये पदार्थ मिलाकर ट्रालियों में भर दिए जाते हैं, और ऐसा प्रबंध होता है कि ट्रालियाँ इस मिश्रण को वात-भट्ठे के मुँह पर ले जाकर स्वयं भीतर गिरा देती हैं।

इस कारख़ाने में एक ओर कोयले से कोक (Coke) बनाया जाता है। कोक साधारण कोयले से श्रेष्ठ होता है; क्योंकि उसमें कार्बन की मात्रा अधिक और गैसें कम होती हैं, जिससे कोक में कोयले से अधिक गरमी देने की शक्ति होती है। वात-भट्ठों में कोयले का

कोक ही के रूप में लौह-खनिज के साथ प्रयोग होता है। कोयले को वायु की अनुपस्थिति में जलाने से कोक बन जाता है। कोक बनाने के भट्टों को बैटरी (battery) या कोक ओविन (Coke-oven) कहते हैं। कुल्टी के लोहे के कारख़ाने में कुछ गंधकाम्ल (Sulphuric Acid) बनाने का भी प्रबंध है।

अदहनशील ईंटों का भट्टा

इन स्थानों के अतिरिक्त एक और स्थान विशेष उल्लेखनीय है। वह है 'कुमारधूबी' का अदहनशील ईंटों (fire-bricks) का भट्टा। कुमारधूबी बराकर से ४ मील पश्चिम में है। अधःगोंडवाना-शिलासमूह में कहीं-कहीं कुछ अदहनशील-मिट्टी मिलती है। अदहनशील-मट्टी (fire-clay) में लोहे, सोडे तथा पोटाश के साल्ट (salts) का अभाव होता है। साधारण चिकनी मिट्टी से इसका इतना ही भेद है। अदहनशील-मिट्टी अधिक ताप को सहन कर सकती है; अर्थात् जितनी गरमी से साधारण चिकनी मिट्टी में दरारें हो जाती और उससे बनी हुई ईंटें टूट जाती हैं, उतनी गरमी को अदहनशील ईंटें भली भाँति सह सकती हैं। इस कारण इस प्रकार की ईंटों का बड़े-बड़े भट्टों तथा अँगीठियों में प्रयोग किया जाता है। कुमार धूबी में इन्हीं ईंटों के बनाने का कारख़ाना है।

हमने रानीगंज-क्षेत्र के कुछ ही स्थानों का वृत्तांत दिया है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त हमको उस समय बिहार-प्रांत की कुछ अबरक की खानें भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। परंतु लेख बड़ा हो गया है। अतएव इनका वृत्तांत पाठकों की सेवा में फिर कभी उपस्थित किया जायगा।

निरंजनलाल शर्मा

मनोरमा-संपादकों की काव्य-मर्मज्ञता

ज्येष्ठ की माधुरी में पहले ही पृष्ठ पर श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठीजी की यह कविता प्रकाशित हुई है—

सर के कपोल के उजाले में दिवस, रात,
केशों के अँधेरे में निकल भागी पास से;
संध्या बालपन की, युवापन की आधीरात,
मैंने काट डाली क्षणभंगुर विलास से।
श्वेत केश चमके प्रभात की किरण-से तो,
आँखें खुलीं काल के कुटिल मंद हास से;
मेरे करुणानिधि का आसन गरम होगा,
कौन जाने कब मेरे शीतल उसास से।



रानीगंज श्रेणी की शिलाओं के परत
(दक्षिण की ओर झुके हुए)

इसका अर्थ जो मैंने समझा है, वह यह है कि कोई व्यक्ति अपनी गत आयु के संबंध में पश्चात्ताप कर रहा है। पहले चरण में वह अपनी प्रेमिका के गालों और बालों को दिन और रात से तुलना करता है। प्रेमिका के गाल ऐसे प्रभामय और दिव्य थे कि उनके प्रकाश में उस व्यक्ति को पता ही न चला कि दिन कब बीत गया। वह गालों पर ऐसा मुग्ध रहा कि उसके जीवन के दिन चुप-चाप सरक गए। इसी प्रकार

प्रतिका के बाल इतने काले थे कि उनके अंधकार में रात का आना-जाना मालूम ही नहीं हुआ।

गालों और बालों का कितना सुंदर वर्णन इस पंक्ति में आ गया है, सहृदय पाठक ही इसका अनुभव कर सकते हैं। अब दूसरी पंक्ति लीजिए। इसमें बालपन की तुलना संध्या से की गई है। जिस प्रकार संध्या में दिन और रात का मिश्रण रहता है, उसी प्रकार बालपन में स्वाभाविक निर्मलता और अनजानपन की मलिनता मिली हुई रहती है। संध्या की तरह यह अवस्था भी क्षणभंगुर है। इसके बाद युवावस्था आती है, जो काम क्रोध आदि मनोविकारों की प्रधानता से ऐसी अंधकारमयी होती है कि उसमें ज्ञान का प्रकाश रहता ही नहीं। बालपन और युवापन, दोनों अवस्थाओं को उस व्यक्ति ने क्षणभंगुर भोग-विलासों में बिता डाला। इन दोनों अवस्थाओं में उसे करुणानिधि की याद ही नहीं आई। युवावस्था के समाप्त होते-होते उसके बालों में सफ़ेदी दिखाई पड़ी। उसने समझा, अब उसके ज्ञानमय जीवन का प्रभात हो रहा है। ये सफ़ेद बाल उसी प्रभात की किरणें हैं। काल के कुटिल मंद हास में, अर्थात् सवेरे, उसकी आँखें खुलीं। उसे ज्ञान हुआ कि वह अब तक कैसे अंधकार में था, उसके जीवन का अधिकांश किस प्रकार अनजानपन और मनोविकारों की तरंगों में बीत गया। ऐसी दशा में पश्चात्ताप होना स्वाभाविक है। वह वृद्धावस्था को मनुष्य के ज्ञानमय जीवन का प्रभात समझता है। कवि की दृष्टि से वृद्धावस्था को प्रभात की उपमा हास्यास्पद नहीं, वरन् बहुत मनोहर और उपदेशप्रद है। तीसरी पंक्ति में यही भाव वर्णित है। अब चौथी पंक्ति में वह व्यक्ति पश्चात्ताप करके कह रहा है कि कौन जाने मेरे करुणानिधि का आसन कब मेरी ठंडी आहों से गरम होगा। इस पंक्ति में ठंडी आहों से आसन का गरम होना बड़ा कवित्वपूर्ण है।

विचार करने से इस कवित्त की चारों पंक्तियों में नए-नए भाव मिलेंगे। पश्चात्ताप इसका नाम बहुत सार्थक है, और माधुरी-संपादकों ने इसे सबसे प्रथम स्थान देकर अपनी उत्कृष्ट काव्य-मर्मज्ञता का परिचय दिया है। यदि इससे भी कोई अच्छा स्थान होता, तो मैं उसीके लिये सिफ़ारिश करता।

इस कवित्त को लेकर 'पंचजन्य' ने अनर्गल बातों से मनोरमा के कई कालम रँगे हैं। संपादकद्वय इतने स्थान में अपने पाठकों के लिये कोई और महत्त्व-पूर्ण रचना दे सकते थे। उन्होंने अपने पाठकों के धन और समय का दुरुपयोग किया है—साथ ही अपनी काव्य-संबंधी अनभिज्ञता भी प्रकट की है। लिखा गया है कि सरके और कपोल के बीच में एक कामा चाहिए। मेरी समझ में बात नहीं आती। यदि यहाँ विराम होता, तो संपादकद्वय उसका क्या अर्थ करते। इसी प्रकार प्राचीन प्रयोग की दुहाई देकर बालपन की संध्या से उपमा दिए जाने की भी हँसी उड़ाई है। हँसना, ताने मारना सहज है; पर कवि के भाव को समझना आसान नहीं। ऐसे मामले में हम उन संपादकों को क्या कहें, जो कविता का अर्थ न समझकर अपने हज़ारों पाठकों में अपनेको हास्य का पात्र बना लेते हैं। हँसी-मज़ाक, ताने या गाली-गलौज में कोई सार-युक्त बात उड़ाई नहीं जा सकती। जो काव्य-मर्मज्ञ हैं, चाहे वे माधुरी के पाठक हों, चाहे मनोरमा के, त्रिपाठीजी की उस कविता की प्रशंसा करेंगे ही, और साथ ही मनोरमा-संपादकों के काव्य-ज्ञान पर हँसेंगे भी। व्यक्तिगत मनोमालिन्य को इस प्रकार प्रकट करना साहित्य-जगत् में नितांत गर्हित है। यदि त्रिपाठीजी

माधुरी और सरस्वती को कविताएँ और लेख देते हैं, और मनोरमा को नहीं देते, या किसी की जीवनी को कविताकौमुदी में स्थान नहीं देते, तो उनके इन अपराधों का बदला उनकी अच्छी रचना को भी बुरी बताकर निकालना सभ्य-समाज में कैसा समझा जायगा, यह विचार करने की बात है।

'हृषीकेश'

कौन ?

मग-विहीन इस सघन विपिन के बीच कौन आ पावेगा ?
'तिमिर-लोक' से 'ज्योति-जगत्' की ओर मुझे ले जावेगा ?
स्मृति-चिंता में रत—बेसुध हो भूल गया मग मैं अपना !
कौन पकड़ अब पाणि प्यार से फिर उस पर पहुँचावेगा ?
बैठ बाट मैं जोह रहा हूँ इस आकुलता से किसकी ?
'स्वप्न-जगत्' में सतत देखता हूँ छविमय छाया किसकी ?
नीरवता की मृदुल सेज पर सो जाऊँ ?—पर क्या यह देव !
कौन यहाँ आ गया चरण-ध्वनि यह इतनी मीठी किसकी ?
पथिक कौन यह क्यों पग-आहट दे चट यों छिप जाता है ?
किस अतीत का गीत करुण यह कंपित स्वर में गाता है ?
मृदुल वेदना-व्यथित प्रणय-पथ के मुग्ध दीवाने को कौन—
इस निशीथ में खींच विकलता के पथ पर ले आता है ?
जलन-भरी उर-आकुलता में मादकता भरनेवाला,
सारभूत सौंदर्य-सृष्टि का सम्मुख आ धरनेवाला—
अमर कांति-धर, नंदन-वन के पारिजात सा है यह कौन—
पथिक निराला अंतस्तल में घर मेरे करनेवाला ?
हृदय विकल जानें न इसी की ओर खिंचा क्यों आता है ?
है कितना आकर्षण ? तन्मय कर देता जब गाता है !
याद दिलाती है इसकी मृदु स्वर-लहरी 'अपने जन' की;
कौन बतावेगा यह मुझको क्यों इस भाँति रिझाता है ?
आह ! बना डाला जिसने मुझको इतना आनंद-विभोर,
जान नहीं पाता वह पावन कौन, लिए जाता किस ओर ?
"मिलन वहीं होगा उनसे—" कह ले चलनेवाला यह कौन ?
"—जहाँ जलधि की विकल तरंगें हँस-हँस छूतीं अंबर-छोर !!"

श्रीजनार्दनप्रसाद झा "द्विज"

स्वराज्य





स्वरकार—पं० धर्मानंद त्रिपाठी]   [**शब्दकार**—पं० गोविंदवल्लभ पंत

भैरवी—तीन ताल

गीत

गाओ वीणे ! पराजय-गान ।
सुललित गति से, सुमधुर श्रुति से,
प्रतिध्वनित हो विश्व महान ।
गाओ वीणे ! पराजय-गान ।
सदय-अभय हो, क्षय संशय हो,
मिलन-विरह में एक समान ;
मान वही, जो है अपमान ।
गाओ वीणे ! पराजय-गान ।

स्थायी

३	×	२	०
नि सा ग म	ध –– प —	रे ग म म	सा ग सा रे
गा — ओ —	वी — णे —	प रा — ज	य गा — न
रे सा ध नि	सा रे सा —	ग रे ग म	ग रे सा —
सु ल लि त	ग ति से ..	सु म धु र	श्रु ति से —
सा ध प ध	म प ग म	निध पम ग म	ग रे सा —
प्र ति — ध्व	नि त हो —	वि– –– श्व म	हा — न —

अंतरा

निध गम ध नि	सां रें सां —	सां गं रें गं	सां रें सां —
स– द– य अ	भ य हो —	क्ष य सं —	श य हो —

प प ध नि	ध प ग म	ध प ग म	ग रे सा —
भि ल न खि	र ह में —	थ — क स	मा — न —
सां नि सां ध	नि प ध म	रे ग मं म	सा ग सा रे
म — न य	हां — ओ —	है — अ प	मा — न —

स्वर-लिपि के संकेत

(स्वर)

१. जिन स्वरों के नीचे बिंदु हो, वे मंद्र-सप्तक के, जिनमें कोई बिंदु न हो, वे मध्य-सप्तक के, तथा जिनके शीर्ष में बिंदु हो, वे तार-सप्तक के समझे जावें। जैसे—सा, सा, सां।

२. जिन स्वरों के नीचे लकीर हो, उन्हें कोमल समझिए। जैसे—रे, गा, धा, नि। जिनमें कोई चिह्न न हो वे तीव्र हैं। जैसे—रे, गा, धा, नि।

३. मध्यम कोमल का चिह्न 'मा' और मध्यम तीव्र का चिह्न 'मां' है।

(ताल)

१. सम का चिह्न × है, ताल के लिये अंक समझिए, और ख़ाली का द्योतक ० है।

२. ‿ इस चिह्न में जितने स्वर रहें, वे एक मात्रा में गाए या बजाए जायँगे। जैसे—सारे।

३. —यह दीर्घ मात्रा का चिह्न है। जिस स्वर या वर्ण के आगे यह चिह्न हो, उसे एक मात्रा-काल तक अधिक गाइए या बजाइए।



१. श्रीयुत तारकनाथ दास एम्० ए०, पी० एच्० डी०

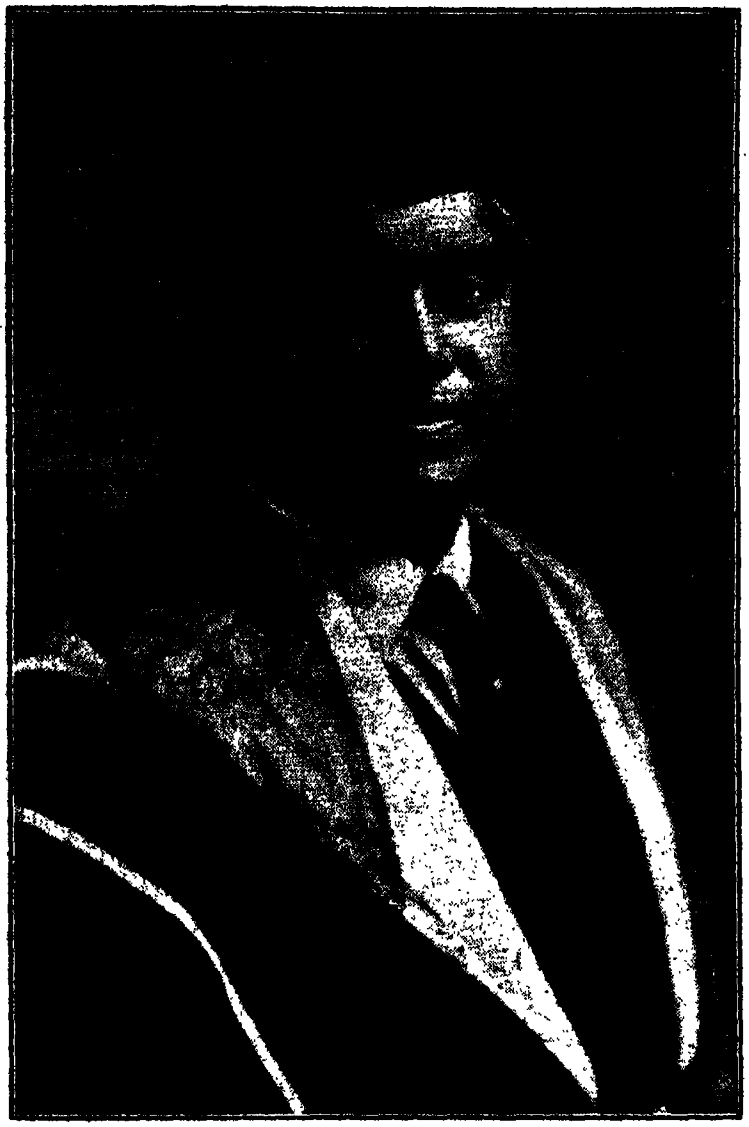
जिन भारतीय नवयुवकों ने अनेक संकटों का सामना करते हुए देश-विदेश की यात्रा की और अपने परिश्रम तथा योग्यता द्वारा मातृ-भूमि की कीर्ति को बढ़ाया है, उनमें श्रीयुत तारकनाथ दास का नाम उल्लेख-योग्य है। आपका जन्म १५ जून, सन् १८८४ को, बंगाल के माजीपाड़ा-नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम था श्रीकालीमोहनदास और माता का श्रीमती विराजमोहिनी। आपकी शिक्षा कलकत्ते के आर्य-मिशन-इंस्टीट्यूशन में हुई थी। आपके जीवन पर विशेष कर चार शिक्षकों का प्रभाव पड़ा है। श्रीयुत रामग्राहि चक्रवर्ती ने आपको भारतीय इतिहास पढ़ाया और स्वदेश-सेवा करने के लिये उत्साहित किया। साधु रामदयाल मजूमदार ने, जो उस कॉलेज के प्रिंसिपल थे, हिंदू-धर्म के उच्च आदर्शों की ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया। श्रीयुत देवकिशोर मुकर्जी ने, जो हेडमास्टर थे, संयम, सत्साहस तथा न्याय-प्रियता की शिक्षा दी; और पंडित अविनाशचंद्र मुकर्जी ने अपने आदर्शों पर दृढ़ रहना सिखलाया। इनके अतिरिक्त अपने माता, पिता तथा बड़ी बहन के धार्मिक जीवन का भी आप पर बहुत कुछ असर पड़ा। जिन्होंने श्रीतारकनाथ दास को राजनीतिक कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करने के लिये उत्साहित किया, उनके नाम हैं—स्वर्गीया भगिनी निवेदिता, श्रीअरविंद घोष, स्वर्गीय पी० मित्र बैरिस्टर और श्रीसखाराम-गणेश देउस्कर इत्यादि।

सन् १९०१ ई० में कलकत्ते की चैतन्य-लाइब्रेरी से आपको विश्वंभर सेन-पदक मिला। यह पदक एक निबंध के लिये मिला था, जिसका विषय था "भारतीय विश्वविद्यालय और वर्तमान शिक्षा-पद्धति। क्या ये भारतीय जनता के लिये उपयुक्त हैं?"

सन् १९०२ में आपको "भारतीय कृषि, उद्योग तथा व्यापार की पूर्व तथा वर्तमान स्थिति और उसके सुधार के उपाय" विषय पर निबंध लिखने के लिये सरस्वती-लाइब्रेरी-पदक मिला था।

श्रीतारकनाथ दास ने स्काटिश चर्च-कॉलेज, अलबर्ट-कॉलेज और प्रमथ-मन्मथ-कॉलेज में तीन वर्ष तक अध्ययन किया; पर कलकत्ता विश्वविद्यालय की बी० ए०-परीक्षा पास न कर सके। इसके बाद दो वर्ष तक आप ब्रह्मचारी के वेष में स्वदेशी आंदोलन का उपदेश देते हुए इधर-उधर घूमते रहे। बंग-भंग के दिनों में, रंगपुर में, जो राष्ट्रीय स्कूल क़ायम हुआ था, उसमें आपने कुछ दिनों तक शिक्षक का भी काम किया था।

सन् १९०५ में आप सीलोन, मलाया तथा चीन होते हुए जापान पहुँचे, और सन् १९०६ में जापान से अमेरिका को चल दिए। वहाँ आपने केलीफ़ोर्निया के



श्रीयुत तारकनाथ दास एम्० ए०, पी-एच्० डी०

विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। उस समय आप नौकरी करके अपनी गुज़र करते और विद्यालय की पढ़ाई का ख़र्च चलाते थे। पर इस विद्यालय में आप अधिक दिन तक न टिक सके; क्योंकि शीघ्र ही आपको इमीग्रेशन-विभाग में हिंदू दुभाषिए का काम मिल गया, और साल-भर तक आप वेंकोवर में इसी पद पर काम करते रहे। वहाँ पर आपनें प्रवासी हिंदुस्तानियों की पढ़ाई के लिये नाइट-स्कूल खोले; और वहीं पर आपने Free Hindustan (स्वतंत्र भारत)-नामक पत्र की स्थापना की। यह पत्र भारत की पूर्ण स्वाधीनता का उपासक था, और अमेरिका के संयुक्त-राज्यों की तरह भारत में भी प्रजा-तंत्र राज्य स्थापित करने का पक्ष-पाती। ब्रिटिश-सरकार को आपकी यह कार्य-प्रणाली पसंद न आई, और उसके अधिकारियों ने ज़ोर डालकर आपको वेंकोवर से निकलवा दिया। फिर आपने नार्विच-विश्वविद्यालय में साल-भर तक शिक्षा प्राप्त की। सन् १९०९ में आप सिएटल (वाशिंगटन) में आए। आपने अलास्का की अंतरजातीय प्रदर्शिनी भी देखी। फिर वाशिंगटन-युनिवर्सिटी में प्रवेश किया। ब्रिटिश गवर्नमेंट के दबाव के कारण सन् १९१० में आपको अपना पत्र—फ़्री हिंदुस्तान—बंद कर देना पड़ा। सन् १९१० में आप राजनीति-विज्ञान में वाशिंगटन की युनिवर्सिटी के ग्रेजुएट हुए। साथ ही आपको एक साल के लिये ४१६ डालर का स्कालरशिप भी मिला। सन् १९११ में आपने एम्० ए० की उपाधि और विश्व-विद्यालय के शिक्षक का सार्टिफ़िकेट भी प्राप्त किया। १९११ और १९१४ के बीच में आप पी-एच्० डी० की डिग्री के लिये केलीफ़ोर्निया-विश्वविद्यालय में पढ़ते रहे। सन् १९१५ में सैन फ़्रांसिस्को की पनामा-प्रदर्शिनी में आप अंतरजातीय विद्यार्थी-परिषद् के सभापति बने। इसके एक वर्ष पूर्व आप अमेरिका के नागरिक बन चुके थे। तदनंतर आपने नार्वे, स्वीडन, डैनमार्क, हालैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्विट्ज़रलैंड, बलगेरिया, टर्की, अरब इत्यादि की यात्रा की। कुछ दिनों तक बर्लिन के विश्वविद्यालय में भी पढ़ते रहे, और १९१६ में फिर अमेरिका लौट आए।

तारकनाथ दास यात्रा द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के हैं, और 'संसार की राजनीति' विषय के आप विद्यार्थी हैं। इसलिये आपने जापान, कोरिया, मंचूरिया, मंगोलिया और चीन की फिर यात्रा की। इस यात्रा में आपका चीन और जापान के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के साथ परिचय हुआ। इसी समय आपने Is Japan a menace to Asia? (क्या जापान एशिया के लिये भयप्रद है?)-नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक की भूमिका माननीय टौंगशो ई (चीनी प्रजा-तंत्र के भूतपूर्व प्रधान मंत्री) ने लिखी थी। इस पुस्तक में आपने एशिया की स्वाधीनता का पक्ष-समर्थन किया था, और इसके लिये चीन, जापान और भारत के सहयोग की आवश्यकता बतलाई थी। सन् १९१७ में कई महीने तक आप जापान के एक विद्यालय में पूर्वीय राजनीति पर व्याख्यान देते रहे। इसी वर्ष के अगस्त में आप अमेरिका को फिर लौटे। इसी समय संयुक्त-राज्य, अमेरिका की सरकार ने आप पर यह अभियोग लगाया कि आप युद्ध में संयुक्त-राज्य की तटस्थ रहने की नीति को तोड़ने के प्रयत्न में लगे हुए हैं, और इसी उद्देश्य से भारत में क्रांति कराने का उद्योग कर रहे हैं। अभियोग में आप २२ महीने के लिये जेल में ठेल दिए गए। ऑक्टोबर, १९१९ में वहाँ से छूटे। उस समय संयुक्त-राज्य, अमेरिका के कुछ अधिकारियों की यह सम्मति थी कि हिंदुस्तान के राजनीतिक शरणागतों को अमेरिका से निकाल दिया जाय। इसके विरुद्ध श्रीयुत तारकनाथ दास ने बहुत कुछ आंदोलन किया। कुछ समय तक आप Friends of Freedom for India-नामक संस्था के अंतरजातीय मंत्री रहकर भारतीय प्रश्नों पर भिन्न-भिन्न नगरों में व्याख्यान देते रहे। कितनी ही अंतरजातीय परिषदों में आप, भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से, शामिल हुए। वाशिंगटन की अर्नेलिस्ट कानफ़्रेंस में भी आप इसी हैसियत से सम्मिलित हुए थे।

सन् १९२२ में आपने Friends of Freedom for India तथा अन्य राजनीतिक संस्थाओं से अपना संबंध तोड़ दिया, और फिर अध्ययन करने की ठानी। वाशिंगटन की जॉर्ज टाउन-युनिवर्सिटी में आपने प्रवेश किया। सन् १९२३ में "संसार की राजनीति में भारत का स्थान" (India in world Politics) नामक पुस्तक लिखी; और जून, सन १९२४ में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

श्रीयुत तारकनाथ दास अच्छे लेखक और उससे भी बढ़िया प्रचारक हैं। अफ़ीम के बारे में भारत-सरकार की नीति के विषय पर आपने अमरीका तथा विदेशों के अनेक पत्रों में पचासों लेख लिखे हैं। संयुक्त-राज्य, अमेरिका ने अफ़ीम के विषय में जो जाँच कराई थी, उसके सामने आपने भारतीय जनता का पक्ष रक्खा था।

श्रीयुत तारकनाथ दास ने एक सुशिक्षित अमेरिकन महिला से विवाह किया है। श्रीमतीजी बड़ी विदुषी हैं, भारत के प्रति उनके हृदय में बहुत प्रेम है, और आपने पति के प्रचार-कार्य में विशेष रूप से सहायता देती हैं।

इस समय श्रीतारकनाथ दास योरप की यात्रा और अपने प्रिय विषय 'संसार की राजनीति' का अध्ययन कर रहे हैं। आप लिखते हैं—"मुझे अपनी स्त्री से अपने जीवन को उपयोगी बनाने में बड़ी सहायता मिलती है।" एक जगह आपने लिखा है—"सच बात तो यह है कि जितनी मदद मुझे अपने कार्य में अमेरिकन लोगों से मिली है, उतनी अपने देशवासियों से नहीं।"

श्रीयुत तारकनाथ के राजनीतिक विचारों से कोई भले ही सहमत न हो, पर उनके परिश्रम तथा प्रचार-कार्य की हमें प्रशंसा ही करनी पड़ेगी। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के इस योद्धा को परमात्मा चिरंजीव करे, यही हमारी प्रार्थना है।

बनारसीदास चतुर्वेदी

× × ×

१. दुख में सुख

हे श्री अतीम आपदा-आकर,
रचा आपने जो मेरा घर;
इससे लाभ हुआ है मुझको,
उगे भाग आये हैं खूब।
दुख की अति सुख में परिणति है,
अति दुर्गति ही शुचि सद्गति है;
चाहे मारो या कुचलो हरि,
हरी सदा रहती है दूब।
गर्मी आग उगलती है जब,
सहते उसे सहज में हम सब;
हिम-पर्वत के चिर-अधिवासी,
जाड़ों में क्या मरते हैं।
मछली पानी में तरती है,
खा, पी, कलक्रीड़ा करती है;

विष के कीड़े विष पीकर ही,
सुख संतोष मनाते हैं।
नाथ ! नाग जीवित रहते हैं,
हालाहल मुँह में रखते हैं;
बिना वायु-जल क्या जलते हैं,
भूमि-गर्भ नभ के वासी।
तब मुझको ही क्यों दुख होगा,
अपना भाग सभी ने भोगा;
दुख के चिर-आनंद-अमृत-
अंबुधि का, बना प्रभो ! वासी।

हेमचंद्र जोशी

× × ×

३. धर्मान्धता से हानि

यों तो सभी प्रकार की अन्धता हानिकर है, परन्तु धर्मान्धता सबसे बढ़कर घातक है। कारण, यह अपने साथ अन्य निष्पक्ष लोगों को भी चैन से नहीं बैठने देती। इससे देश-व्यापी घातक परिणाम उपस्थित होते देर नहीं लगती।

एक समय था, जब चालाक लोग मूर्ख और उजड्ड जनता को इसी भूलभुलैया में फँसाके देश-देशान्तरों में आतंक जमाते थे, और नेता, ख़लीफ़ा या ऐसे ही कुछ बन बैठते थे। धर्म का सबसे बड़ा अङ्ग ज्ञान और सहिष्णुता है। जो धर्म—यदि उसे धर्म कहा जा सके—इससे रहित है, जो अपने पड़ोसियों के अज्ञान और कमज़ोरियों के बल पर ही फलता-फूलता है, जिसमें बुद्धि, तर्क, तथा क्षोदक्षम विचारों का द्वार बंद है, जहाँ 'मज़हब में अक़्ल को दख़ल नहीं है' वहाँ धर्मान्धता की बेल बराबर बढ़ा ही करती है।

आज पुराना युग बीत गया। संसार ने राष्ट्रीयता का नया पाठ पढ़ा और उसका अभ्यास भी कर लिया; परन्तु दुर्भाग्य से भारत अब तक धर्मान्धता के—उसी मरी हुई धर्मान्धता के—कड़वे फल चख रहा है। तुर्की की काया पलट चुकी, ख़लीफ़ा का समूल उच्छेद हो चुका, संसार में ख़िलाफ़त का ध्वंस हो चुका; परन्तु भारत में अब भी ख़िलाफ़त के नाम पर बड़े-बड़े चंदे वसूल करने का जाल बिछाया जा रहा है। किस लिये? ख़लीफ़ा की पुनः प्रतिष्ठा के लिये? जी नहीं, यह किया जा रहा है हिन्दुओं के ख़ून की नदियाँ बहाने के लिये, "इसलाम के नाम पर युद्ध करनेवाले १० हज़ार" क़ातिल तैयार करने के लिये, और 'दो घंटे के अन्दर' तलवार के ज़ोर से 'लाला लोगों' (लाला लाजपतरायजी की ओर ख़ास तौर से इशारा है) को 'हाथ बाँधकर' बुलाने और सुलह के लिये विवश करने के लिये! ख़िलाफ़त-कमेटी की दिल्लीवाली बैठक के प्रधान वक्ता मौलाना, नवीन हाजी के यही विषमय उद्गार हैं। इसी पुण्य-कार्य के लिये मौलाना मुहम्मदअली ने मुसलमानों से अधिक-से-अधिक चंदा देने की अपील की है, और महात्मा गांधी को मुसलमान बना लेने का सब्ज़ बाग़ दिखाकर मूर्ख मुसलमानों की निःसार सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा की है।

हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य को अपने लिये हितकर समझकर अधिकांश अँगरेज़ भेद-नीति के पक्षपाती हो सकते हैं; परन्तु मुसलमानों को इतना शक्तिशाली होने देना, जिससे कि वे हिन्दुओं को पद-दलित करके अँगरेज़ों को भी ललकारने लायक़ हो जायँ, कोई अँगरेज़-शासक पसन्द नहीं कर सकता। यह निर्विवाद सिद्ध है कि ये १० हज़ार क़ातिल मौलाना मुहम्मदअली की अध्यक्षता में यदि क़ानून का उल्लंघन करेंगे, तो एक ही आज्ञा में गोरखा राजपूतों की खुखड़ी के घाट उतार दिए जाएँगे, या किसी मशीनगन की बाढ़ से भून दिए जाएँगे। यह बात नहीं है कि नेता कहानेवाले और कमेटियों में लेक्चर बघारनेवाले मौलाना लोग इन बातों को न समझते हों; परन्तु अशिक्षित और मूर्ख जनता को भड़काने में ही, न-जाने क्यों, वे अपना स्वार्थ समझते हैं।

तुर्कों ने आज राष्ट्रीयता की घातक क़ुरान की आज्ञाओं को मानना छोड़ दिया, और भारत के मुसलमानों की धर्मान्धता-पूर्ण आशा को ठुकरा दिया। देश-भक्त जगलुलपाशा ने भारत के मुसलमानी डेपुटेशन से साफ़ कह दिया कि राष्ट्रीयता के आगे धर्मान्धता का कोई मूल्य नहीं। परन्तु यहाँ के मौलाना लोग फिर भी अपनी 'डेढ़ ईंट की मसजिद' अलग बनाने से बाज़ नहीं आते।

यह बात सब जानते हैं कि ख़िलाफ़त-कमेटी के प्रधान सूत्रधार मौलाना मुहम्मदअली अब तक इब्नसऊद के समर्थकों और वहाबी नीति के पोषकों में रहे हैं। कई प्रतिष्ठित मुसलमानों को इसकी तह में और भी कई बातों को बताते सुना है। परन्तु आज हेजाज़ से लौटा हुआ प्रतिष्ठित मुसलमानों का एक डेपुटेशन मौलाना हसरत मुहानी

के साथ शहरों-शहरों घूमकर वहाबी नीति की पोल खोल रहा है। इब्नसऊद के द्वारा तुड़वाई गई मसजिदों के चित्र भी दिखा रहा है। इतना ही नहीं, बल्कि इब्नसऊद मुसलमानी तीर्थों के ध्वंस करने, भ्रष्ट करने और भिन्न मतवाले मुसलमानों को क़त्ल कर डालने का गर्व है। यह बात भी ये लोग बताते हैं। जो लोग इन सब बातों को प्रत्यक्ष देख आए हैं और वहाँ के चित्र तक ले आए हैं, उनके कारण ऐसे लोगों की स्थिति बड़े ख़तरे में पड़ गई थी, जो अब तक इब्नसऊद के समर्थक रहे थे। भारतीय मुसलमान जनता में उन लोगों की प्रतिष्ठा धूल में मिल चुकी थी। उसके लिये कोई चाल चलना ज़रूरी था। उसी के लिये दिल्ली की ख़िलाफ़त-कमेटी में महात्मा गांधी को मुसलमान बनाने की पुरानी धुन अलापी गई, और उसी के लिये ग़ैरज़िम्मेदार लोगों के मुँह से हिन्दुओं की क़त्ल करनेवाले १० हज़ार मुसलमानों की सेना बनाने की बात कहला दी गई। धर्मान्धता के कारण विवेक हीन जनता इस प्रवाह में बह गई, और यह मोटी बात भी न समझ सकी कि कलकत्ते की घटनाओं को प्रत्यक्ष करनेवाले मौलाना अबुलकलाम आज़ाद-जैसे सच्चे मुसलमान इसके सभापतित्व से क्यों हट रहे हैं?

आज संसार का पट-परिवर्तन हुआ है। सब देशों ने अपनी रक्षा के लिये राष्ट्रीयता का बाना धारण करना आवश्यक समझा है; परन्तु यहाँ के मुल्ला लोग स्वार्थवश धर्मान्धता का ही उपदेश दिया करते हैं। इसका प्रत्यक्ष दुष्परिणाम यह हुआ है कि जो लोग इसी देश की सन्तान हैं, यहीं पैदा हुए हैं, यहीं के अन्न-जल से पाले-पोसे गए हैं, जिनकी रग-रग में इसी देश का नमक भिदा हुआ है, मरने के बाद भी जिन्हें इस देश के सिवा और कहीं ठिकाना नहीं, वे ही इस धर्मान्धता के कारण विदेश को स्वदेश और स्वदेश को विदेश समझने लगे हैं, अपरिचित विदेशियों से नाता जोड़ने की व्यर्थ चेष्टा करने लगे हैं और अपने चिर-परिचित प्राचीन सम्बन्धियों से मुँह मोड़ने लगे हैं। मौलाना ज़फ़रुलमुल्क ने दिल्ली की ख़िलाफ़त-कमेटी में भारतवर्ष को अपना ननिहाल अर्थात् अपने पिता को ही 'मामा' कहने की धृष्टता की है।

केवल धर्मान्धता के नाते आज कोई देश किसी की सहायता नहीं कर सकता। सबको अपने-अपने पड़ोसी की—फिर वह चाहे किसी धर्म या मत का माननेवाला हो—सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है, और राष्ट्रीय झंडे को अपने-अपने मतों से ऊँचा स्थान देना पड़ता है। यदि धर्मान्धता के नाते आज सहायता मिलना संभव होता, तो यह संभव न था कि फ्रांस रीफ़ी और ड्रुज़ लोगों का कचूमर निकाले और तुर्की तथा क़ाबुल बैठे-बैठे मुँह ताका करें। जब बाहर का मुसलमानी जगत्—अब्दुलकरीम-जैसे वीर—मुसलमान की विपत्ति दूर करने में असमर्थ हो, तो यह कैसे संभव है कि भारत के इन ग़ुलाम मुसलमानों की पुकार सुनते ही संसार के समस्त मुसलमान भारत में घुस पड़ेंगे, और संसार की सर्वश्रेष्ठ शक्ति ब्रिटेन हर साल अरबों रुपए देनेवाली अपनी इस कामधेनु (भारत) को छोड़कर अलग खड़ी हो जायगी? बात साफ़ है। परन्तु धर्मान्धता इस पर विचार नहीं करने देती।

जो प्रतिष्ठा एक पतिव्रता की दृष्टि में किसी कुलटा की हो सकती है, और जो इज़्ज़त एक सच्चरित्र पुरुष की दृष्टि में किसी चरित्र-हीन की हो सकती है, वही इज़्ज़त एक देश-भक्त की दृष्टि में किसी देशद्रोही की हो सकती है, फिर वह देशद्रोही चाहे धर्मान्धता के कारण हो या किसी अन्य कारण से। देश-भक्त का सर्वप्रथम आराध्य उसका देश है, अन्य सब बातें पीछे हैं। आज अब्दुलकरीम अपना सर्वनाश करने पर क्यों तुले थे? अपने देश के लिये। तुर्कों ने अपने प्राणों को संकट में क्यों डाला? अपने देश के लिये। जिस पुरुष की रग-रग में किसी देश का नमक बसा हुआ है, वह यदि अपने जन्मदाता देश की दशा के विपरीत कोई आयोजन किसी अन्य देश-भक्त के सामने पेश करता है, तो स्वभावतः उसे इसकी बातों से घृणा और दुःख होता है। वह निःसंदेह यह समझता है कि जो आदमी अपने जन्मदाता देश का साथी नहीं, वह हमारा कब साथी हो सकता है। उसके हृदय की गहरी तह में एक छिपी हुई आवाज़ उठती है न...म...क...ह...रा...म..।

यही कारण है कि जगलुलपाशा ने हिन्दोस्तान के धर्मान्ध मुसलमानों की बात को यह कहकर ठुकरा दिया कि "मुझे धार्मिक विषयों से बिलकुल दिलचस्पी नहीं है।" यही कारण है कि इन धर्मान्धों को इब्नसऊद ने टका-सा जवाब दे दिया, और इन्हें मदीना तक जाने की भी आज्ञा नहीं दी।

सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि वह सब देखते हुए

श्री आप मौलाना मुहम्मदअली साहब 'हेजाज से नया जीवन लेकर लौटने' की बात कहकर धर्मान्ध मुसलमानों को फुसला रहे हैं। क्या सचमुच मुसलमान-जनता इतनी मूर्ख है कि इस भुलावे में आ जाय? या मौलाना मु० अ० पागल हो गए हैं? ख़िलाफ़त-कमेटी के रुपयों के ग़बन की बाबत पूछे जाने पर आपने जो बेतुका जवाब दिया था, उसकी हम यहाँ याद दिलाना नहीं चाहते; और न इब्नसऊद से रिशवत पाने की अफ़वाह को ही दुहराना चाहते हैं। हम तो सिर्फ़ यह जानना चाहते हैं कि आप हिन्दोस्तान में यह आग लगाकर यहाँ से भागे क्यों जा रहे हैं? इब्नसऊद के नष्ट-भ्रष्ट किए तीर्थों की तसवीरें आते ही आप हिन्दुओं पर इस क़दर आगबबूला होकर "तब रावण निज रूप दिखावा" को क्यों चरितार्थ कर रहे हैं?* क्या समझदार मुसलमान जनता इन घटनाओं के कार्य-कारण-भाव पर विचार करेगी? यदि सचमुच ऐसा हो है, तब तो आज आप भारत के मुसलमानों को एक ऐसे गहरे कुए में ढकेल रहे हैं, जहाँ से निकलना फिर उनके लिये असंभव हो जायगा। आप हेजाज से नया जीवन लेकर लौटने की आशा पर भारत के मुसलमानों को हिन्दुओं का जानी दुश्मन बना रहे हैं, और हिन्दुओं की सहायता तथा सहानुभूति से उन्हें सदा के लिये वंचित कर रहे हैं। हेजाज से आप अपने घर में रखने के लिये भले ही बहुत कुछ सामान ले आवें; परन्तु हिन्दोस्तान के मुसलमानों के लिये उससे अधिक कुछ न ला सकेंगे, जो अभी लौटा हुआ डेपुटेशन लाया है। यदि अधिक सिर उठावेंगे, तो फिर लौटकर शायद हिन्दोस्तान का मुँह भी न देखने पावें। यह निश्चय है कि मौलाना मुहम्मदअली इन सब बातों को जानते हैं, इसीलिये आपकी हरकतों को देखकर हमारे मन में सन्देह होता है कि या तो आपका दिमाग़ ख़राब हो गया है, या फिर आप धर्मान्धता के कारण भारत के मुसलमानी इतिहास का अन्तिम पृष्ठ याद कर रहे हैं। हम तो अब भी चाहते हैं कि ईश्वर आपकी बुद्धि की शुद्धि करे।

वह दिन भारतीय इसलाम के इतिहास का अन्तिम पृष्ठ समझा जायगा, जब हिन्दोस्तान की समस्त जनता की सहानुभूति से यहाँ के मुसलमान लोग वंचित हो जायँगे, और बाहरी मुसलमान-जगत् की सहायता से निराश हो बैठेंगे। ख़िलाफ़त के नाम पर भारत के लाखों रुपए बाहर भेज दिए गए; परन्तु तुर्कों ने हिन्दोस्तान के मुसलमानों की धर्मान्धता को ठुकरा दिया, जगलूलपाशा ने दुतकार दिया, और इब्नसऊद ने फटकार दिया। इधर ख़्वाजा हसन निज़ामी की धोकेबाज़ी और चालबाज़ी के कार्यों से हिन्दू-जनता सशंक, सतर्क, भयभीत होकर मुसलमानों को अविश्वास की दृष्टि से देख रही है। यह संभव नहीं कि हिन्दोस्तान में रहकर मुसलमान लोग अपने से कहीं अधिक शिक्षित, सभ्य तथा धन-जनसंपन्न प्राचीनतम जाति की सहानुभूति और सहायता के बिना सुख से रह सकें। ऐसे समय, जब कि संसार-भर का इसलाम भयंकर भँवर में पड़ा है, उचित तो यह था कि मुसलमान नेता अपने अनुयायियों को हिन्दुओं के साथ अधिक विश्वास और मेल-जोल से रहने की शिक्षा देते; परन्तु दुर्भाग्य-वश इन लोगों ने दिल्ली की ख़िलाफ़त-कमेटी में बिलकुल उलटा रास्ता दिखाया है, घर में ही भरपूर आग लगाने का पाप किया है। १० हज़ार क़ातिल जमा करने, दंगा-फ़साद बढ़ाने और लूट-मार मचाने की धमकियाँ देकर ये लोग सरकार तथा हिन्दुओं को भयभीत करके अपना मतलब गाँठना चाहते हैं। मसजिद के सामने बाजे आदि के नए प्रश्न खड़े करके ऐंग्लो-इण्डियन पत्रों की सहानुभूति भी खो रहे हैं। यदि धर्मान्धता का यही दौरदौरा जारी रहा, और समय रहते भारत की मुसलमान-जनता हिन्दुओं के साथ मिल-जुलकर स्वराज्य के मार्ग पर अग्रसर न हुई, तो वह दिन दूर नहीं, जब इब्नसऊद, जगलूलपाशा और तुर्कों की तरह हिन्दू लोग भी मुसलमानों की इस अनुचित धर्मान्धता को ठुकरावेंगे, और फिर भारत में मुसलमानी इतिहास का अन्तिम पृष्ठ आरम्भ होते देर न लगेगी। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह यहाँ की मुसलमान-जनता — विशेषकर मुल्लाओं और नेताओं—को सुबुद्धि दे, जिससे वे अपने भाइयों को भाई और विदेशियों को विदेशी समझना सीखें, जननी-जन्मभूमि के लिये मरना-जीना सीखें, सम्पत्ति में मौज उड़ाना और विपत्ति के समय हिजरत के नाम से विदेशों में धक्के खाकर लौट आना भूल जायँ।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

* यह लेख मौलाना साहब के भारत से हेजाज जाने के समय लिखा गया था।—मा० सं०

४. बाँसुरी

बाँसन की फाँसन सों गाँसति गरेसनि है,
साँसन की साँसति रहति नितप्रति है ;
प्रीति औ प्रतीति अनरीति-रीति नीति भीति,
जीति कै जहान बिचरति न रुकति है ।
दाहति, दहति न बुझाए हू बुझाति अरी,
आली आजु आज्यौ आगि बाँस में बलति है ;
आँगन में, बागन में, कानन-बितानन में,
नैनन "नरेस" बरे बाजतै रहति है ।
सूरति बिसूरति हौं कानि-कुलकीरति दै,
हेरति, हिराति न बिसारे बिसरति है ;
मूँदति "नरेस" आँखि मींचति न मींकति हौं,
आँसुन सों सींचति सराए न सरति है ।
मानी हार जानी मैं बिकानी-सी बिरानी भई,
टेरति, न टूटति, न टारे तें टरति है ;
सोचति हौं, सोचि-सोचि मूरति निकारति ,
उतारति उतारे न निकारे निकरति है ।

मातादीन शुक्ल

× × ×

५. मुसलमानों के त्योहार

हर जाति में, हर देश के लोगों में किसी-न-किसी प्रकार का कोई-न-कोई त्योहार प्रचलित है । लोग त्योहार के बहाने अपने पुराने गौरव की याद किया करते हैं । क्या हिंदू, क्या जैन, क्या बौद्ध, क्या पारसी, क्या अँगरेज़, क्या जापानी और क्या मिसरियन—सभी जातियों में किसी-न-किसी प्रकार के त्योहार अवश्य प्रचलित हैं – वे चाहे धार्मिक हों, चाहे राजनीतिक, चाहे सामाजिक । मुसलमान लोग भी इन त्योहारों से बचे नहीं हैं । मुहम्मद के बाद इस धर्म में अनेक त्योहार प्रचलित हो गए, जिन्हें सभी जगह के मुसलमान—चाहे वे टर्की, एशिया माइनर, मिसर, फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान, चीन, भारत, जावा, मलाया, लंकाद्वीप के अथवा ख़ास अरब के ही क्यों न हों—अवश्य मानते और समान उत्सव मनाते हैं । मुसलमान अपनी सभ्यता को, हिंदुओं के समान, बहुत प्राचीन बतलाते और मुहम्मद साहब को ख़ुदा का भेजा हुआ आख़िरी रसूल या पैग़ंबर मानते हैं । ये एक ईश्वर पर विश्वास रखते हैं । बहिश्त (स्वर्ग) और दोज़ख़ (नरक) को भी ये लोग मानते हैं । इनके पहले के पैग़ंबर हज़रत जिब्राईल, हज़रत इस्राईल, हज़रत मूसा और हज़रत ईसा भी इनकी दृष्टि में पूजनीय हैं ।

इसलाम का प्रचार थोड़े ही दिनों में अधिक हो गया । ये लोग तलवार के ज़ोर से अपने धर्म का प्रचार करते थे । ज्यों-ज्यों इसलाम का प्रचार दूर-दूर फैलता गया, त्यों-त्यों भिन्न-भिन्न जातियाँ उसमें शामिल होने लगीं । शेख़, सैयद, मुग़ल और पठान, ये भेद बाद के हैं । उनसे और जाति-विचार से कोई संबंध नहीं । भेद-भाव उनके सम्मिलन में बाधा नहीं पहुँचाता । धार्मिक दृष्टि से शिया और सुन्नी, ये दो भेद माने जाते हैं । यह भेद-भाव अरब से ही उत्पन्न होकर संसार के मुसलमानों में फैल गया है । मुसलमान-जाति में ऊँच-नीच अथवा छोटे-बड़े का भी कोई विचार नहीं पाया जाता । इसलाम में स्त्रियों का अधिकार भी सुरक्षित है । दोनों के अधिकार समान समझे जाते हैं । मुसलमानों में एकता का अंकुर बड़ी दृढ़ता के साथ ज़ोर पकड़ चुका है, और इसी एकता के बल से मुसलमानों ने सैकड़ों वर्षों तक अन्य देशों पर अपनी विजय-वैजयंती फहराई है ।

अब मैं अपने मुख्य विषय त्योहार पर आता हूँ । इनके यहाँ भी अनेकों तरह के त्योहार हैं । उनमें मुख्य ये हैं—ग्यारहवीं शरीफ़, रमज़ानशरीफ़, मुहर्रम, बकरीद, शबरात और बारावफ़ात ।

ग्यारहवीं शरीफ़ हज़रत ग़ौस अब्दुलक़ादिर जिलानी की स्तुति में होता है । रबी उस्सानी महीने में यह त्योहार मनाया जाता है । रमज़ानशरीफ़ इनके यहाँ का सबसे पवित्र त्योहार है । रमज़ान-महीने के प्रारंभ से ही यह त्योहार शुरू होता है । 'रोज़े' इन्हीं दिनों रक्खे जाते हैं । इससे इन लोगों का मतलब यह है कि अमीर इस बात को समझ जायँ कि भूख, प्यास अथवा ग़रीबी किसे कहते हैं । 'रोज़े' के दिनों में इबादत (प्रार्थना) करने का ख़ूब मौक़ा मिलता है । मनुष्य का बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य भी लगातार भूख सहने के कारण अच्छा हो जाता है । रमज़ान के महीने में रोज़ शाम को मुसलमान, 'तरावी' या 'बीस रक़त' नमाज़ पढ़ते हैं । २७वीं रात को ख़ुदा इनकी नमाज़ को स्वीकार करता है । इन लोगों का विश्वास है कि उस रात को फ़रिश्ते मुसलमानों के कार्य को देखने के लिये आसमान से ज़मीन पर आते हैं । रमज़ान के बीसवें रोज़ ईद का पवित्र त्योहार

मनाया जाता है। उसमें सब मुसलमान मसजिद में एकत्र होते हैं। पहले ग़रीबों को ख़ैरात दी जाती है। यह रक़म ढाई सेर से कम नहीं होनी चाहिए। इसका मतलब यह कि ग़रीब लोगों को भी 'रोज़े' के बाद अच्छा भोजन करने का अवसर मिले, और वे अच्छी तरह से दिन काट सकें। बकरीद के त्योहार में भी प्रायः इसी तरह की नमाज़ होती है। पर बकरीद में क़ुरबानी या बलिदान करना महापुण्य माना जाता है। कहा जाता है, मुहम्मद साहब के जन्म लेने के पहले भी ये त्योहार अरब में जारी थे। क़ुर्बानी का रवाज़ प्राचीन काल में बौद्ध और जैन-धर्म को छोड़ सर्वत्र प्रचलित था। मनुष्यों का बलिदान, पशु-पक्षियों अथवा पुत्र-पुत्रियों की क़ुर्बानी भी अतिप्राचीन काल में प्रचलित थी। नर-बलि के स्थान पर पशु-बलि देने की प्रथा भी मुसलमानों के यहाँ एक ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। हज़रत इबराहीम से एक फ़रिश्ते ने आकर स्वप्न में कहा कि "क़ुर्बानी कर, इससे तेरा भला होगा।" उसने अनेकों ऊँटों की क़ुर्बानी की ; पर स्वप्न बंद नहीं हुआ। अंत को वह अपने पुत्र की क़ुर्बानी करने के लिये एक पुत्र को साथ ले जंगल गया। मोह के कारण पुत्र की क़ुर्बानी के समय उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। जब क़ुर्बानी के बाद अपनी आँखें खोलीं, तो पुत्र को अपने पीछे खड़ा पाया, और उसके स्थान पर एक पशु को मरा हुआ देखा। उसी दिन से मुसलमानों में पशु-वध करने की प्रथा चली। इसी भित्ति पर आज दिन तक बकरीद का उत्सव मनाया जाता है। क़ुर्बानी नमाज़ के बाद की जाती है। चाँद देखने के दस दिन बाद यह त्योहार मनाया जाता है। किंतु भारत में बकरीद के अवसर पर हिंदू और मुसलमानों के बीच कहीं-न-कहीं झगड़े अवश्य पैदा होते हैं, जिनका परिणाम बड़ा ही भयंकर होता है।

इनका तीसरा प्रसिद्ध त्योहार 'मुहर्रम' है। यह मातमी त्योहार है। ९वीं तारीख़ तक इसमें मातम है। परंतु दसवीं को शुभ पर्व मानते हैं। इसी दिन 'अली और हसन' शहीद हुए थे। यह त्योहार प्राचीन माना जाता है। इसी दिन हज़रत इबराहीम आग से बचे थे। हज़रत मूसा को इसी दिन पैग़ंबरी मिली थी। इसी दिन हज़रत ईसा आसमान पर चढ़ाए गए थे। हज़रत यूनिस का जन्म इसी दिन मछली के पेट से हुआ था। हज़रत इमाम ज़ख़्मों से इसी दिन आराम हुए थे। इन सब कारणों से यह त्योहार मुसलमानों में बड़े महत्त्व का माना जाता है। भारतवर्ष में मुसलमान लोग 'ताज़िए' बनाते हैं, और दसवें दिन बड़े उत्सव और बाजे-गाजे के साथ उन्हें किसी नदी या तालाब में डुबा देते अथवा किसी इमामबाड़े में रख देते हैं।

शबरात का त्योहार पंद्रहवीं रात को मनाया जाता है। इसकी उत्पत्ति मुहम्मद साहब के समय से है। कहा जाता है, मुहम्मद के दो दाँत अहद् की लड़ाई में टूट गए। उनके एक भक्त हज़रत पैसकरनी ने भी, जिन्हें आशिक़े-रसूल कहते हैं, यह देखकर सभी दाँत तोड़ डाले थे।

दाँत तोड़ने के कारण उनका मुँह स्वभावतः ही सूज गया। उस रात्रि में उनको हलुआ खिलाया गया। मुसलमानों ने उस दिन को त्योहार मान लिया, और नमाज़ के बाद हलुआ बाँटने की प्रथा जारी कर दी।

बारावफ़ात मुहम्मद साहब के जन्म-दिन अथवा मृत्यु-दिन का त्योहार है। मुहम्मद साहब जिस दिन पैदा हुए थे, उसी दिन मरे भी थे। उन्हीं की स्मृति में यह त्योहार मनाया जाता है।

मुसलमानों के यहाँ प्रत्येक सप्ताह में दो दिन बहुत पवित्र माने जाते हैं—एक जुमेरात (बृहस्पतिवार), दूसरा जुम्मा (शुक्रवार)। मुसलमानों का यह विश्वास है कि जुमेरात को क़यामत (प्रलय) होगी। अतएव जब जुमेरात बीत जाती है, तो वे ख़ुदा को धन्यवाद देते हैं कि क़यामत (प्रलय) नहीं हुई ; और वे लोग ख़ुशी से मिल-कर नमाज़ पढ़ते हैं। शुक्रवार मुसलमानों का महापवित्र दिन है, जैसा कि ईसाइयों का रविवार। मुसलमानों में नमाज़ को सर्वश्रेष्ठ कार्य बताया गया है। वे लोग समझते हैं कि बिना नमाज़ के बहिश्त (स्वर्ग) नहीं मिल सकता। कम-से-कम पाँच बार नमाज़ पढ़नी चाहिए। सबेरे चार बजे की नमाज़ को 'फ़ज़र' की नमाज़ कहते हैं। दूसरी नमाज़ दो बजे होती है। उसे 'ज़ुहर' की नमाज़ कहते हैं। तीसरी 'असर' की नमाज़ है, जो चार बजे शाम को पढ़ी जाती है। चौथी 'मग़रिब' की नमाज़ है, जो शाम को पढ़ी जाती है। पाँचवीं नमाज़ 'ईशा' की है, जो नव बजे पढ़ी जाती है। सब मुसलमान इकट्ठे होकर या अपने-अपने घर में नमाज़ पढ़ते हैं। सबका मुँह मक्के की मसजिद की ओर रहता है। नमाज़ में ईश्वर की प्रार्थना, उसकी भयंकर शक्ति और उसके गुण गाए जाते हैं।

मुसलमानों के यहाँ क़ुरान और हदीस, ये दो ही शास्त्रीय

ग्रंथ हैं । क़ुरान को मुसलमान आसमान से उतरा हुआ समझते हैं, जैसे हिंदू लोग 'वेद' को मानते हैं। इंजील में बयान किए हुए त्योहारों, रीति-रस्मों तथा आचार-विचारों पर ही यहाँ विचार किया गया है।

नृसिंह पाठक "अमर"

× × ×

६. तुलसी-रामायण

प्रेम-प्रवाहनि की सरिता तुलसी-गिरि-कंदर सों निकसी है,
पावन भक्ति सुकानन माँहि मनौं नव कंज-कली बिकसी है;
नौ रस-पूरित सृष्टि किधौं तुलसी-बिधि के कर सों सु लसी है,
राम-कथा-रस-सींची मनौं तुलसी थल मानस की तुलसी है।

अतुल-अमोघ-अघ-तिमिर बिनासी मनौं,
चंद की कला-सी "व्रजचंद" नव नीकी है;
कैधौं मातु सारदा की बीन-रागिनी है मंजु,
अमल-अमंद-रस धार ज्यों अमी की है।
कैधौं लहिवे कौं परमारथ-सुआरथ कौं,
सरस-सुकल्प तरु-साखा अवनी की है;
भूरि-भव-ताप कैधौं तुरत मिटाइवे कौं,
औषधि अमोल तुलसी-सी तुलसी की है।
तुलसी मयंक-अंक-आनन अमंद हूँ तैं,
अमिय अपार पारावार सी ढरत है;
संतनि-समाजनि मैं भक्ति भावना की मंजु,
लहकि सपुंज बर बेलि लहरत है।
लोचन उघारे इकटक ह्वै निहारे सबै,
दावा दुख-ज्वालनि की माल बगरत है;
तुलसी सों चंद अकलंक "व्रजचंद" एते,
दीन-हीन ह्वै कै नभ-चंद निदरत है।

पांडेय गजानन शर्मा "व्रजचंद"

× × ×

७. "बिखरा फूल"

विगत विभव की केवल स्मृति है, या जीवन का मृत्यु-मिलन;
सूख गई है सुरसरि, अथवा धूलि-धूसरित नंदन-वन।
सुधा-विहीन सुधाकर है, या कंटकमय कालिंदी-कूल;
संध्या है सुखमय प्रभात की, या पृथ्वी पर बिखरा फूल?

चंद्रनाथ मालवीय "वारीश"

× × ×

८. गो० तुलसीदासजी के विषय में मि० विन्सेंट स्मिथ की सम्मति

पाश्चात्य ऐतिहासिकों में स्मिथ साहब का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने बहुत कुछ खोज के साथ भारत का इतिहास लिखा है। आपका सिद्धांत है कि 'अकबर महान्' के समय में गोस्वामीजी सर्वश्रेष्ठ महापुरुष थे। आप लिखते हैं—"अभी तक तो हम फ़ारसी की तुकबंदीवाली, दोष-भरी, तुच्छ अपवित्र कविताओं का ही विचार करते थे। परंतु अब एक बड़े हिंदू-कवि के सत्य-पूर्ण पवित्र ग्रंथ की ओर अपना ध्यान आकर्षित हुआ देख चित्त को कुछ आनंद है। यह ग्रंथ माध्यमिक हिंदी-कवितारूपी नंदन-वन में कल्पतरु के समान है। इन महात्मा का नाम 'आईने-अकबरी' अथवा किसी मुसलमान इतिहासकार या उन पाश्चात्य विद्वानों के ग्रंथों में न मिलेगा, जिन्होंने अपने ग्रंथ फ़ारसी-इतिहासों के आधार पर लिखे हैं। तथापि यह भारतीय पुरुष अपने समकालीन समस्त पुरुषों से श्रेष्ठ था, यहाँ तक कि स्वयं 'अकबर महान्' से भी बढ़कर। कारण, इस कवि-केसरी की विजय सम्राट् की विजयों से कहीं बढ़कर है। इन महात्मा की कविता पढ़-सुनकर असंख्य स्त्री-पुरुष आज भी मोहित हो जाते हैं, और कवि को भक्ति-सहित प्रणाम करते हैं। यद्यपि आमेर के राजा मानसिंह और ख़ानख़ाना रहीम गो० तुलसीदासजी के मित्र थे, और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे, तथापि सम्राट् तथा अबुलफ़ज़ल से उनकी भेंट न हो पाई थी, न उनकी चर्चा दरबार में ही हुई थी। इसका कारण संभवतः यह होगा कि उक्त दोनों सरदारों की भेंट (जो सम्राट् के अंतिम दिनों में सबसे अधिक प्रतापशाली थे) गोस्वामीजी से सन् १६०५ ईसवी में, सम्राट् के स्वर्गारोहण के पश्चात्, हुई हो। अन्यथा मैत्री तथा स्वयं सम्राट् हिंदुओं के विरोधी न थे, वरन् गुण-ग्राहक थे। यदि उन्हें इस बात का पता चलता कि ऐसे महापुरुष वाराणसी में शांति-पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तो वह बिना उनका सम्मान किए अथवा पुरस्कार दिए न रहते, जिससे उनके नित्य स्थायी श्रम को उत्तेजना मिलती।

"इन महात्मा का नाम तुलसीदास था। यह साधारण ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए थे। यह न तो धनी थे, न अधिक शिक्षित। इनके माता-पिता ने बाल्यावस्था ही से इन्हें निराश्रय कर दिया था; क्योंकि इनका जन्म अशुभ लग्न में हुआ था। भाग्यवश किसी विचरते हुए साधु ने इन्हें देखा। वह इन्हें लिवा ले गए, इनका भरण-पोषण किया, और श्रीरामचंद्रजी की पौराणिक कथा से इन्हें

परिचित किया। बालक गोस्वामीजी साधु के पास रहते और उनके साथ घूमा करते थे। वह बाँदा-ज़िले के कभी चित्रकूट-गाँव में और कभी राजापुर में निवास करते थे। परंतु गोस्वामीजी के जीवन का बहुत-सा अंतिम समय बनारस में ही बीता, और वहीं पर उन्होंने अपनी कविता का बहुत बड़ा भाग रचा। चालीस वर्ष की अवस्था के बाद उन्होंने ग्रंथ लिखना आरंभ किया और सन् १५७४ ई० से १६१४ ई० (अर्थात् ४० वर्ष) तक निरंतर लिखते रहे। सन् १६२३ ई० में, नब्बे वर्ष की अवस्था में, आपने गोलोक-यात्रा की। यद्यपि आपका जीवन बड़ा सीधा-सादा है; परंतु कविता तथा लेख इत्यादि बड़े मार्के के हैं।

"मुख्य ग्रंथ जो गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा और जिसके कारण उनकी कीर्ति-पताका आज तक संसार में फहरा रही है, वह सात कांडों में लिखित ऐतिहासिक कथा रामायण है। उसका मुख्य नाम 'राम-चरित-मानस' है। इस ग्रंथ का नाम प्रकट करता है कि जिस प्रकार मानसरोवर के पुनीत जल में अवगाहन करने से यात्री के पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार इस ग्रंथ के पढ़ने से पाठकों के पापों का नाश होता है। पुस्तक इतनी बड़ी है कि ग्राउज़ साहब के अँगरेज़ी-गद्यानुवाद से ५६२ पृष्ठों की एक बड़ी पुस्तक बन गई है। इस पुस्तक में श्रीरामचंद्रजी का वर्णन है, और उनको ईश्वर का अवतार माना है। कुछ भी क्यों न मानें, इतना तो निःसंदेह सिद्ध है कि इसकी तत्त्व-ज्ञान की बातें ईसाई-धर्म की बातों से ऐसा सादृश्य रखती हैं कि बहुत-से स्थलों में केवल राम के स्थान पर ईसा लिख देने ही से काम चल जाता है। ग्रियर्सन साहब ने एक बड़ा भजन लिखा है, और ठीक कहा है कि वह किसी भी ईसाई-भजन-ग्रंथ में प्रकाशित हो सकता है। इस काव्य के उच्च विचार वेदांत के तत्त्वों की समानता रखते हैं। इसमें आदि से अंत तक एक भी अपवित्र विचार या शब्द नहीं आने पाया। श्रीरामचंद्र की धर्म-पत्नी सीताजी एक आदर्श-रमणी दिखलाई गई हैं। सारांश यह कि रामायण उत्तरीय भारत के हिंदुओं के लिये वैसी ही या उससे बढ़कर है, जैसी अँगरेज़ ईसाइयों की दृष्टि में बाइबिल। अपने देश के साहित्य-ग्रंथों में इसका स्थान सबसे ऊँचा है। इसका इतना प्रभाव है कि इसका जितना वर्णन किया जाय, थोड़ा होगा। यह प्रभाव नित्य स्थायी है। इस पुस्तक में भगवद्भक्ति का उपदेश मिलता है, और यह दिखलाया गया है कि ईश्वर मनुष्य-रूप से इस संसार में अवतार लेकर यहाँ अपने बालकों की रक्षा करता है और उन्हें पालता है। यह काव्य अयोध्या और उसके आसपास के प्रदेशों में प्रचलित प्राचीन हिंदी में लिखा गया है। अतः योरपियन् विद्वानों के लिये अतीव कठिन है, और विरले ही पाश्चात्य विद्वान् इसे निजी भाषा में सुगमता से पढ़ सकते हैं। ग्रियर्सन साहब उन विरले पुरुषों में से हैं, जिनका पूर्ण विश्वास है कि यह काव्य बड़े प्रतिभाशाली पुरुष का रचा हुआ है। आपका कथन है कि पाश्चात्य विचारों के विरुद्ध इस काव्य में बहुत-सी अतर्कणाओं तथा शिथिल विचारों के होने पर भी काव्य उत्तम है। इसकी लेख-शैली विषय-वर्णन के अनुसार बदलती रहती है। यथा कहीं करुण-रस के पद्यों में करुण-रस टपकता है, और हिंदी-ग्रंथकारों के नियमानुसार शृंगार-रस के स्थलों में शृंगार स्पष्ट रूप से प्रकट है। इस काव्य के चरित्र-नायक स्त्री-पुरुष सब यथावस्थित हैं, और वे तत्कालीन वीर पुरुष इस समय जीते-जागते प्रतीत होते हैं।"

अन्यान्य सुयोग्य विद्वान् भी ग्रियर्सन साहब से सम्मत हैं। यद्यपि मैं स्वयं इस ग्रंथ के विषय में बिलकुल थोड़ा जानकार हूँ, तथापि हृदय से उनका अनुमोदन करता हूँ। ता० ३० जनवरी, सन् १९१६ ई० के पत्र में सर जॉर्ज ग्रियर्सन साहब ने और भी इस विषय को पुष्ट करते हुए लिखा है—

"मेरा विश्वास है कि गोस्वामी तुलसीदासजी का स्थान भारत के साहित्यज्ञों में सबसे ऊँचा है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भारत के प्राचीन कवियों की भाषा तो उद्धृत की है, परंतु उपमाओं में विशेषता यह है कि उनका काव्य स्वयं प्रकृति से ली हुई उपमाओं से भरा है, न कि प्राचीन कवियों की झूठी उपमाओं से और अतएव वे कालिदास की उत्तमोत्तम उपमाओं से, बढ़कर है।" आप अपने लेख का समर्थन करने के लिये उदाहरण रूप से तीन चौपाइयों का अँगरेज़ी-पद्यानुवाद भी देते हैं (१) नम्रता पर, (२) दुःखित हृदय पर, (३) गुरूपदेश।

भोलानाथ शर्मा

× × ×

९. तिलक-दिवस

कहाँ छिपा है मधुप मनोहर, आ जा-आ जा दरस दिखा जा;
हृदय पुष्प खिल-खिल रह जाता, मधुर देश की तान सुना जा।

है स्वराज्य अधिकार हमारा, गरज-गरज अब कौन कहेगा ;
न्याय-शत्रु-गज-दर्प-विदारक, हमको केहरि-नाद सुना जा ।
दुसह दासता-दुख-दरिद्र का, दारुण देश दुकाल पड़ा है ;
तृषित सभी स्वातंत्र्य सुधा के, घटा घोर घन-सा बरसा जा ।
राष्ट्र-भाव भारत में फूँका, तुही स्वदेशी का निर्माता ;
तूने ही था प्रथम बजाया, बहिष्कार का सुंदर बाजा ।
उदधि दासता, स्वार्थ ग्राह त्यों, राज-दंड-भय बड़वानल है ;
दमन-भँवर बिच देश-तरणि है, कर्णधार बन पार लगा जा ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-निशा में, देश-भाग्य-रवि छिपा हुआ है ;
गीता का उपदेश हमें कर, कर्म-योग की ज्योति जगा जा ।
दर्शन शंकर-मुख करते ही, दिग्गज त्यों रवि डोल गए थे ;
जन्म लोक में हुआ, मास शुचि, देव कंजपद-दरस करा जा ।
वसु अकाश हो गया खंड शशि छः वर्षों का ग्रहण सुना जा ;
कर भारत का ग्रहण-निवारण, उन्नति-दिनकर आ चमका जा ।
निज कारागृह-कथा सुनाकर, जेलों को तू स्वर्ग बना दे ;
हथकड़ियों को कंज-माल कर, बेड़ी को तू मोम बना जा ।
अकाश आँखें लगी हैं ग्रह शशि बरस-बरसकर बता रही हैं ;
अगस्त*मुनि मृत्यु-तिथि बताते, पता न चलता, पता बता जा ।
देश-हृदय-नृप-वंश अधारा, बिना तिलक का था तू राजा ;
भारत-माता के हाथों से, आकर तिलक, तिलक करवा जा ।

वंशगोपाल

× × ×

१०. अकबर की धन-संपत्ति

हिंदी के विज्ञ पाठकों को मुग़ल-सम्राट् अकबर का परिचय देने की आवश्यकता नहीं । आज हम उसी सम्राट्-शिरोमणि की धन-संपत्ति का वर्णन अपने पाठकों की भेंट करना चाहते हैं । इसका विवरण तत्कालीन तीन योरपियन यात्रियों ने प्रकाशित कराया था । उसी का अनुवाद सन् १६१५ ई० के एप्रिल-मास में ग्रेट ब्रिटेन व आयर्लैंड की एशियाटिक सोसायटी के मुखपत्र में प्रकाशित हुआ था । उसी के आधार पर यह लेख लिखा गया है ।

अकबर के साम्राज्य-भर में सात स्थानों में प्रधान कोषागार थे । आगरे का कोषागार सबसे प्रधान था ; क्योंकि वह साम्राज्य की राजधानी था । उसके बाद ग्वालियर या उनरवर में, जो स्थान अब ग्वालियर-राज्य में है, तथा मारवाड़ की ओर रणथंभौर में, असीरगढ़ में, जो स्थान अब मध्यप्रदेश के नीमाड़-ज़िले में सम्मिलित है । छठा बिहार के रोहतास में और सातवाँ लाहौर में था । इन सभी कोषागारों में धन-संग्रह रहा करता था । उसका विवरण इस प्रकार है —

१. मुहर, अर्थात् स्वर्णमुद्रा, ६६७००००×१४
= ९७५८००००) रु०
२. अकबरी रुपया = १००००००००) रु०
३. काँसे (Bronze) या ताँबे का पैसा = ७६६६६६) रु०
४. मुद्राधन कुल = ११८३४६६६६) रु०

उपर्युक्त धन के सिवा और जो अस्थायी संपत्ति आगरे में थी, जिसकी गणना भी धन में हो सकती है, उसका हिसाब यों है —

१. हीरा, मणि, मुक्ता आदि ६०५२०५२१) रु०
२. स्वर्ण व मणि-मुक्तादि के आभूषण और सजावट के सामान = १९०७७४५) रु०
३. स्वर्ण के बर्तन आदि और हाथी-घोड़ों के शृंगार के सामान = ९५०७९९२) रु०
जोड़— ७१९३६२५८) रु०
४. चाँदी का सामान = २५२५८३८) रु०
५. ताँबे, पीतल और काँसे का सामान = ५१२२५) रु०
६. अन्य धातुओं के अर्थात् काँच आदि के सामान = २५०७७४७) रु०
जोड़ दोनों का— ७६७२१०६८) रु०
७. देश और विदेश के बने हुए कारचोबी के वस्त्रादि = १५५०९९७९) रु०
८. ऊनी सामान = ५०३२५२) रु०
९. डेरे, ख़ीमे, छाते, यात्रा और गृहों की सजावट के सूती सामान = ९९२५५४५) रु०
१०. हस्त-लिखित ग्रंथ, जिनकी जिल्दें बहुमूल्य थीं = ६४६३७३१) रु०
११. तोप, गोला, बारूद आदि शस्त्र = ८५७५९७१) रु०
१२. ढाल, तलवार, कटार आदि अस्त्र = ७५५५५२५) रु०
१३. घोड़ों के ज़ीन आदि = २५२५९४६) रु०
१४. मकानों की सजावट के अन्य सामान और हाथी घोड़ों की झूलें आदि = ५००००००) रु०
जोड़— ५,६०,५९६४८) रु०

सातवें छंद में—दर्शन=६, शंकर-मुख=५, दिग्गज=८, रवि=१, लोक=१, देव=३, कजपद=२—जन्म-दिवस=२३-७-१८५६ हिंदी में तारीख़ उलटी पढ़ी जाती है । आठवें छंद में वसु=८, अकाश=०, खंड=९, शशि=१—६. वर्ष के लिये जेल-यात्रा वर्ष= १९०८ ग्यारहवें छंद में अकाश=० आँखें=२, ग्रह=९, शशि=१—*अगस्त = मास, मृत्यु=१ ।

उस समय भारतीय रौप्यमुद्रा (अर्थात् रुपए) का मूल्य दो शिलिंग से लेकर दो शिलिंग नौ पेंस प्रति मुद्रा तक रहा करता था; पर उपर्युक्त विवरण में यह कहीं नहीं लिखा गया कि उक्त यात्रियों ने कौन-सा भाव लगाया था। इस कारण सबसे नीचे का भाव दो शिलिंग प्रति रुपए का ही यहाँ पर लिया गया है। यदि उससे अधिक माना जाय, तो उपर्युक्त रक़म तदनुसार बढ़ जायगी; क्योंकि उन लोगों ने पौंडों में ही कुल हिसाब लिखा था। आजकल रुपए का मूल्य एक शिलिंग चार पेंस है।

कहने को तो भारत में मुग़ल-साम्राज्य की स्थापना अकबर के पितामह बाबर ने की थी; किंतु वह तथा उसका पुत्र हुमायूँ न तो अधिक समय तक जीवित ही रह सके, और न शांति-पूर्वक राज्य ही कर सके। अतः साम्राज्य-स्थापना या राजधानी-निर्माण आदि सभी कार्य अकबर को करने पड़े थे। फ़तेहपुर-सीकरी के राजप्रासाद बनवाने में अकबर को असंख्य धन व्यय करना पड़ा था। इसी प्रकार सैन्य-संगठनादि अन्य आवश्यक कार्यों में भी अपार धन ख़र्च करना पड़ा था। इन सबके सिवा अकबर को सदैव किसी-न-किसी से युद्ध में लगे रहना पड़ा था। इन सभी कार्यों में उसका अपार धन उड़ता रहता था। इन सब बातों का विचार कर यही निश्चय होता है कि उक्त संख्या से बहुत अधिक धन अकबर के पास रहा होगा। किंतु सभी आवश्यक कार्य कर चुकने के पश्चात् ही अंत में इतना धन रहा होगा। इँगलैंड में उस समय महारानी एलिज़बेथ का शासन था। उसके मरने पर एक प्रसिद्ध दरबारी ने लिखा था कि वह धन के स्थान में वस्त्र छोड़ गई थी। उसको वस्त्र पहनने का विशेष शौक़ था; वह नित्य नवीन वस्त्र धारण करती थी। उससे पूर्व उसके पितामह हेनरी सप्तम सन् १५०९ ई० में इँगलैंड के राजकीय कोष में कुल अट्ठारह लक्ष पौंड छोड़ मरे थे।

इधर मुग़ल-सम्राटों का कोष शाहजहाँ के समय में तीन अरब तक पहुँच गया था; किंतु उसके पश्चात् ही उसके पुत्र औरंगज़ेब के समय से उक्त कोष घटने लगा था।

भारत में उन दिनों एक रुपए के तीस टके अर्थात् अकबरी पैसे चलते थे; एक पैसा तौल में तोला-भर होता था। एक अकबरी मुहर चौदह अकबरी रुपए में आती थी। अशर्फ़ी का मूल्य तीस रुपया लिखा है। इससे विदित होता है कि अशर्फ़ी कोई पृथक् तथा अधिक तौल का सिक्का हुआ करता था; अन्यथा मुहर, दीनार और अशर्फ़ी एक ही सिक्के को कहते हैं।

अकबर ने अपने से पूर्वकालीन यवन बादशाहों के समान प्रजा को लूटा न था, और न राज-कर ही कठोरतर लगाया था; किंतु जज़िया-नामक महाघृणित कर उठा लिया था। अतः उसके इतने धन-संग्रह कर लेने से देश की तत्कालीन समृद्धिशाली दशा सूचित होती है। अकबर के पश्चात् साम्राज्य की आय बढ़ने का कारण पाश्चात्य देशों के साथ व्यापार-वृद्धि का कारण बताया जाता है। सो ठीक भी है; क्योंकि उस समय भारत ही विदेशों को प्रायः वस्त्रादि सभी आवश्यक सामान देता था। उन दिनों यह निरा कृषि-देश न था। विदेशियों की प्राचीन कविताओं में यहाँ के बने पदार्थों की प्रशंसा देखी जाती है।

मुग़ल-सम्राटों का व्यय भी उनकी आय से कम न हुआ करता था। उनकी बनवाई हुई इमारतों के सिवा वे लोग साहित्योन्नति में भी लाखों रुपए ख़र्च किया करते थे। अकेले अकबर के समय में ही लगभग पैंसठ लाख रुपए इस कार्य में लग चुके थे। शोक है कि उन लोगों के लिखाए हुए ग्रंथों के दर्शन तक अब नहीं होते।

इसके सिवा वे लोग जो कुछ व्यय करते थे, उसका अधिकांश देश ही में रहा करता था, जिससे देश का भी उपकार होता था, और यह हरा-भरा दिखाई पड़ता था।

अमरनाथ दंडया

× × ×

११. मंदिर

काई ने रंगत लाई है, पट की लकड़ी घुन खाई है;
कुछ घास लटकती छाई है, ईंटों में जो उग आई है।
मंडप ऊपर फैला के सोर, बट-वृक्ष पनप करता है ज़ोर;
टूटी छत में ऊपर-ऊपर, छोटो चोंचों में लाकर पर।
कुछ अबाबील आकर-आकर, निष्कंटक बना रहे हैं घर;
आ कभी गगन में गाते हैं, उड़ कभी पतंगे खाते हैं।
लटका है इक घंटा काला, जिस पर कुछ लपटा है जाला;
मधुमक्खी ने नव रस ला-ला, घंटे का मुँह है भर डाला।
कुछ मधु के कोश बनाती हैं, कुछ मोम लगा चिकनाती हैं;
इस जर्जर मंदिर के भीतर लपटाए व्याल तन में विषधर।
बम भोलानाथ भयहर शंकर, हैं रमे हुए मूरत बनकर;
कलरव वन-विहग मचाते हैं, शंकर की महिमा गाते हैं।
यह नश्वर जर्जर तन मेरा, यह भग्न हृदय माया-घेरा;

आशा. तृष्णा का यह डेरा, सिर पड़ा विषय विषधर फेरा।
इस टूटे मंदिर में आकर, क्या नहीं बनाओगे निज घर?

गुरुभक्तसिंह "भक्त"

× × ×

१२. याचना

"तोहि माँगे माँगनो न माँगनो कहायो;
सुनि सुभाव सील सुयश याचन जन आयो।"

विनयपत्रिका

सर्वेश्वर! आपके ज्ञानी भक्त का ज्ञान-मद चूर हो गया। आज वह आपके द्वार पर भिक्षा के लिये हाथ पसारे आया है। यद्यपि आपने अपने भक्तों में ज्ञानी को श्रेष्ठता दी है, तथापि मैं स्वाभिमान के लिये क्षमा-प्रार्थना करता हुआ यही कहूँगा कि ज्ञानी आर्त की तुलना को नहीं पहुँच सकता। मुझे अब आर्त होने का पूर्ण अभिमान है। जब मैं आपकी इस उदारता को देखता हूँ कि आप आर्त भक्त को भी उदार कहते हैं, तो आपकी इस अनुपम उदारता के सामने कामना-रहित ज्ञानी होने के वृथा अभिमान को तुच्छ समझता हूँ। भगवन्! आपकी उदारता ने मेरे जीवन में बड़ा परिवर्तन कर दिया है। इसके पूर्व मैं याचना करने में अपनी गौरव-हानि समझता था। आज मैं भिखारी बनने को अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। यह आप ही की कृपा का फल है।

प्राणाधार! पहले मैं अपने अज्ञान-वश आपके ऐश्वर्य को ही प्रधानता दे उसी की उपासना करता था—आपके ऐश्वर्य का भय इतना बलवान् था कि मुझे आपके पास आने ही न देता था। आपके निकट आना तो अलग रहा, दूर से नेत्र उठाकर देखना भी कठिन था। जब ज्ञानी बना, तब तत् और त्वम् का भेद मिट गया, अहम्-ही अहम् अवशिष्ट रह गया। आप तब भी न मिले।

हृदयेश! इस प्रकार अज्ञानांधकार में भटकते हुए देख आपने अपने अलौकिक माधुर्य का परिचय दिया—उस समय मेरी मोह-निद्रा भंग हुई। तब मेरी समझ में आया कि रणांगण में दिखाए हुए विराट् रूप का सर्वाभिमानी ऐश्वर्य अहीर की छोहरियों के आगे छछिया-भर छाछ पर नाचने के माधुर्य की तुलना में तुच्छ है। जब मैंने विचारा कि कंस-जैसे मानी दानव के दलन करनेवाले उसकी दासी के प्रेम-पाश को नहीं तोड़ सकते, तब मैंने प्रेम-पथ में पदार्पण किया। फिर भी ज्ञानी होने का अभिमान न छूटा, और निष्काम-सकाम के प्रपंच में पड़ा रहा। जब मेरे सचित पुण्य जागे, और मेरे ऊपर आपकी कृपा हुई, तब मेरा मोह-तिमिर ध्वंस हुआ, और हृदय की ग्रंथि खुल गई। सर्वसंशय शमित हो गए, और सकाम-निष्काम की समस्या हल हो गई।

जब मैं अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में आपकी प्राप्त हुई अयाचित विना कृपाओं से लाभ उठाता हूँ, तब आपके सम्मुख भिखारी न बनने का वृथाभिमान और ज्ञानी होने का हठ करना कृतघ्नता है। जब आप उषाकालीन अरुणोदय की मधुर लालिमा में एवं शुक्लपक्षीय शुभ्र ज्योत्स्ना द्वारा अपनी प्रसन्नता की सूचना देते हैं, और सद्यःप्रस्फुटित कलिकाओं द्वारा अपना प्रेम-संवाद भेजते हैं, तब आपकी कृपाओं के लिये मैं उदासीन नहीं रह सकता। उदासीनता कृतघ्नता है। मैं त्यागी बनने का अभिमान नहीं कर सकता।

जब आप विना याचना के भी मेरे हित-साधन में कमी नहीं रखते, तब याचना से क्या लाभ? ऐसा प्रश्न करनेवाले मूर्ख हैं। वे लोग याचना का सुख नहीं जानते। जो विना माँगे भीख देने की कृपा करे, उसके आगे नतमस्तक हो दीनता से विनय न करना मूर्खता और हठवाद है। मैं याचना करना अपना सरल कर्तव्य समझता हूँ। याचना फल की ईप्सा से नहीं करता; आप ऐसे उदार स्वामी से फलेप्सा रखने की आवश्यकता नहीं। यही मेरी निष्कामना है। आपके सामने हाथ पसारने का सुख और आपको अपना स्वामी और दाता बनाने के गौरवार्थ मैं सकाम भक्त होना ही श्रेय समझता हूँ। यही सकाम और निष्काम भक्ति का परम रहस्य है। आपकी कृपा की तुलना में कोई वस्तु मूल्य नहीं रखती। संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसके लिये मैं याचक बनूँ। यदि कोई वस्तु ऐसी है, जो मुझे याचक बना सकती है, तो वह आपके सम्मुख भिखारी बनकर खड़े होने का सुख। मुझे कर्तव्य-पथ में लगाके आप कहेंगे कि विना माँगे भिखारी बनने का सुख प्राप्त नहीं हो सकता। विना पानी में पैर डाले तैरने का आनंद नहीं मिल सकता। यदि हाथ पसारा है, तो कुछ माँग भी ले। मैं केवल यही माँगता हूँ कि आप मुझे कर्तव्य-पथ में लगाए रहिए। किंतु मैं कर्तव्य को शुष्क कर्तव्य के अर्थ न करूँ, और न फल-प्राप्ति के लिये, वरन् आपकी प्रसन्नता के हेतु। इतना अवश्य चाहूँगा कि आप समय पर अपने प्रसन्नता-सूचक चिह्नों द्वारा मेरे भीरु हृदय को संतोष देते रहिए; ताकि मैं हताश हो कर्तव्य-पथ से न हट जाऊँ। मैं आपकी भाँति सर्वज्ञ नहीं हूँ। गुप्त



१ काम की अदला-बदली

किसी गाँव में एक किसान रहता था, जो बड़े चिड़चिड़े स्वभाव का था। वह अपनी स्त्री पर सदैव क्रोध किया करता और ज़रा ज़रा-सी बातों पर उसे बहुत डाटता-डपटता था। एक दिन उसने स्त्री से कहा—"तुम अजब बेवक़ूफ़ औरत हो। घर का ज़रा-सा काम तुमसे नहीं होता, और मैं अकेला खेत का सारा काम देख लेता हूँ। कल से मैं घर का काम देखूँगा और तुम खेत का।" स्त्री ने उसकी बात स्वीकार कर ली।

अगले दिन प्रातःकाल उसकी स्त्री उठकर खेत को चली गई, और आप बेफ़िक्र होकर चारपाई पर करवटें बदलते रहे। जब अच्छी तरह दिन चढ़ आया, तो आपने चारपाई छोड़ी। देर से उठने के कारण आपको इतनी सुस्ती आई कि आपका जी फिर चारपाई की शरण लेने को चाहने लगा। पर घर का काम भी तो करना था। इससे बेचारे की इच्छा मन-की-मन ही में रह गई।

सबसे पहले उसने मट्ठा फेरना शुरू किया। मट्ठा फेरते-फेरते उसे प्यास लग आई। हाँडी और मथानी को ज्यों-का-त्यों छोड़ वह उठ खड़ा हुआ, और दालान में आकर शरबत घोलने लगा। शक्कर घोलकर वह उसे छानने के लिये छन्ना ढूँढ़ने लगा। इतने में एक बिल्ली ने मट्ठे की हाँडी लुढ़का दी। हाँडी के लुढ़कने का शब्द सुनकर वह इतनी तेज़ी से बाहर आया कि उसका पैर लोटे में लगा, और सारा शरबत ज़मीन पर हो रहा। उधर मट्ठे की हाँडी का भी बुरा हाल था। बिल्ली की दया से उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए थे, और आँगन में मट्ठे की एक छोटी-मोटी नदी बह निकली थी।

अभी वह मट्ठे की हालत पर विचार कर ही रहा था, इतने में उसने बकरियों के मिमियाने का शब्द सुना। अब उसे याद आया कि बकरियों के चारे-पानी का समय हो गया। उसने झट डोल में रस्सी फाँसी, और पानी भरने लगा। वह डोल कुएँ से निकाल ही रहा था कि उसका छोटा लड़का, जो अब तक पड़ा सो रहा था, चारपाई पर से नीचे गिर पड़ा, और बड़े ज़ोर से रोने लगा। उसका रोना सुनते ही किसान के होश-हवास उड़ गए, और वह रस्सी

छोड़कर उसे उठाने के लिये दौड़ पड़ा। इधर रस्सी का छोड़ना था कि डोल और रस्सी, दोनों कुएँ में आ पड़ीं।

बच्चे को उठाकर उसने देखा, तो कोई चोट नहीं लगी थी। पर वह रोता इतने ज़ोर से था, मानो दम निकाले देता है। किसान ने बहुत पूछा कि क्यों रोते हो; पर उसने कुछ न कहा, और रोता ही रहा। अंत को मालूम हुआ कि वह भूखा है, और इसी कारण रोता है। अब किसान को खाना पकाने की सूझी।

उसने चूल्हा जलाया; पर बड़ी मुश्किल से। लकड़ियाँ गीली थीं, इससे कई बोतल मिट्टी का तेल पीने के बाद वे किसी प्रकार जलीं। किसान ने बच्चे को चुप करने के लिये चटपट खिचड़ी डाल दी। अब फिर उसे बकरियों की याद आई; पर पानी निकलना तो अब असंभव ही था। उसने सोचा कि चलो तब तक चारा ही डाल दें; पर बहुत ढूँढ़ने के बाद मालूम हुआ कि घर में चारा भी नहीं है। अब वह क्या करता, उसकी समझ में न आया।

पर एकाएक उसका चेहरा खिल उठा। बरसात के दिन थे, और घर की छत पर ऊँची-ऊँची घास खड़ी हुई थी। उसने सोचा, आज बकरियों को वहीं छत पर छोड़ दूँ, तो बिना प्रयास ही उनका पेट भर जायगा। यह सोचकर वह सब बकरियों को ज़ीने पर से घसीट-घसीटकर छत पर कर आया, और फिर नीचे आकर खिचड़ी पकाने लगा। थोड़ी देर बाद उसे एक बकरी के छत से नीचे गिरने का शब्द सुनाई पड़ा। वह दौड़कर बाहर गया। देखता क्या है, एक बकरी छत से नीचे गिरी पड़ी मिमिया रही है। उसने उसे उठाकर खड़ा किया; पर खड़े होते ही वह फिर गिर गई। बात यह थी कि उसका एक पैर टूट गया था।

किसान ने सोचा, यदि कहीं इसी प्रकार और भी बकरियाँ गिरकर लँगड़ी हो गईं, तो बड़ी हानि होगी। इससे पहले तो वह उन्हें उतारने पर आमादा हो गया; पर बाद को उसे एक उपाय सूझ गया। उसने चट घर से ढूँढ़कर एक लंबी रस्सी निकाली। फिर सब बकरियों का एक-एक पैर उसी रस्सी में बाँध दिया। रस्सी का एक सिरा रोशनदान से छत के नीचे डालकर उसे किसी मज़बूत चीज़ में बाँधने का इंतज़ाम करने लगा। पर उसकी समझ ही में न आया कि किसमें बाँधे। निदान उसे उसने अपने ही पैर में बाँध लिया। सोचा, किसी बकरी के गिरने पर झटके से उसे तुरंत उसका खिंचना मालूम हो जायगा, और वह तुरंत उस रस्सी को खींचकर गिरने से रोक रक्खेगा।

इस प्रकार रस्सी का दूसरा सिरा अपने पैर में मज़बूती से बाँधकर वह चूल्हा फूँकने में लगा। थोड़ी देर में छत से किसी बकरी का पैर फिसला, और वह धम से नीचे आ गिरी। उसके बोझ से और सब बकरियाँ भी एक-एक करके नीचे आ रहीं। कुछ ज़मीन पर आ गिरीं, और कुछ हवा में झूलती रह गईं। इधर बेचारे किसान पर भी मुसीबत आ गई। वह चूल्हा फूँकते-फूँकते एकाएक सिर के बल खड़ा हो गया और जाकर छत में टँग रहा। रस्सी के खिंचने से बेचारे की यह दशा हुई।

उधर दोपहर के बाद उसकी स्त्री घर आई। दरवाज़े पर पहुँचते ही उसने क्या देखा कि कुछ बकरियाँ ज़मीन पर पड़ी हैं, और कुछ हवा में झूल रही हैं। उसके हाथ में हँसिया तो था ही; उसने चट रस्सी काट दी। सारी बकरियाँ नीचे आ रहीं। उधर घर में भी ज़ोर का धमाका हुआ। वह शीघ्रता से घर पहुँची, तो क्या देखती है, उसका स्वामी अपना सिर टटोल-टटोलकर कराह रहा है। जब उसे सारा हाल मालूम हुआ, तो उसके होंठों पर हँसी की एक हलकी-सी रेखा दौड़ गई। पर वह कुछ बोली नहीं। उसके बाद उसे कभी खेत में काम करने जाने की ज़रूरत न पड़ी।

भूपनारायण दीक्षित

× × ×

२. सोने का पानी

किसी देश में एक राजा था। उसकी रानी की आँखें हमेशा दुखा करती थीं। इससे राजमहल के सभी लोग बहुत परेशान रहते थे। पर सबसे ज़्यादा दुख और रंज राजकुमार को होता था। राजकुमार की उमर की तो बारह-तेरह बरस की ही, पर था वह बहुत समझदार। वह अपने माता-पिता को बहुत चाहता और उनकी सेवा भी ख़ूब करता था। राजकुमार को हमेशा यही फ़िक्र लगी रहती थी कि किसी प्रकार माता की आँखें अच्छी हो जातीं।

राजा ने कितने ही उपाय किए, कितने ही वैद्यों तथा हकीमों की दवा कराई और दिल खोलकर पानी की तरह धन बहाया; पर रानी की आँखें अच्छी न हुईं। राजा, रानी और राजकुमार, सभी मन मारकर बैठ रहे। एक दिन एक

वैद्य आया। उसने रानी की आँखें देखकर कहा—"इनका अच्छा होना मुश्किल है। हाँ, अगर सोने का पानी मिल जाय, तो उससे आँखें अच्छी हो सकती हैं।" यह कहकर वैद्य चला गया।

अब सब लोग बड़ी चिंता में पड़े। सोने का पानी कहाँ मिलेगा—यह बात कोई न जानता था। तब उसे लेने जाता ही कौन? परंतु राजकुमार बोला—"कोई सोने का पानी लेने नहीं जाता, तो न जाय। मैं तो जाऊँगा, उसका पता लगाऊँगा और जैसे बनेगा, वैसे लेकर ही लौटूँगा।" उसकी बातें सुनकर माता-पिता बोले—"बेटा, यह विचार छोड़ दो, अभी तुम बच्चे हो, तुम्हें सोने के पानी का पता मालूम नहीं, तुम कैसे कहाँ फिरोगे? आराम से घर बैठो।" राजकुमार ने जवाब दिया—"यदि मुझे उसका पता मालूम नहीं, तो मैं उसका पता लगाऊँगा। मैं जो कह चुका हूँ, वही करूँगा। आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिए।" सबने उसे बहुत समझाया—बहुत रोका, पर वह न माना। एक शीशी लेकर घर से बाहर निकल पड़ा।

राजकुमार चलते-चलते कई दिन के बाद एक घने जंगल में जा पहुँचा। वहाँ एक झोपड़ी बनी हुई थी। राजकुमार ने सोचा, इसमें ज़रूर कोई रहता होगा। शायद वह सोने के पानी का पता भी जानता हो। बस, वह झोपड़ी के दरवाज़े पर जा पहुँचा। उसमें एक बूढ़े महात्माजी रहते थे। उस समय महात्माजी आँखें मूँदे ईश्वर का ध्यान कर रहे थे। उनके आगे धूनी जल रही थी। राजकुमार बड़ी आशा से वहाँ बैठ गया। थोड़ी देर बाद महात्माजी ने आँखें खोलीं। उन्होंने राजकुमार से पूछा—"बच्चे, तुम कौन हो? यहाँ क्यों आए हो?" तब राजकुमार ने उन्हें अपना सब हाल सुना दिया।

राजकुमार की कथा सुन महात्माजी ख़ुश होकर बोले—"बेटा, तुम बहुत अच्छे लड़के हो। माता-पिता की सेवा तो सभी को करनी चाहिए, और यदि उसके लिये कुछ कष्ट भी सहना पड़े, तो ख़ुशी से सह लेना चाहिए। जो माता-पिता की सेवा करता है, उस पर भगवान् प्रसन्न होते और उसकी आशा भी पूरी करते हैं। तुम्हें सोने का पानी मिल तो जायगा, पर कुछ कठिनाई ज़रूर होगी। यहाँ से उत्तर की ओर, कोई २० कोस की दूरी पर, राक्षसों का एक महल है, उसी में सोने के पानी का कुंड है। तुम्हें वहाँ जाना पड़ेगा। राक्षसों का रूप बड़ा ही डरावना है, वे मनुष्य को खाते भी हैं। आज तक वहाँ से कोई लौटकर नहीं आया। पर डर की कोई बात नहीं है। थोड़ी हिम्मत से काम लेना। जब तुम वहाँ पहुँचो, तब यदि राक्षस मिलें, तो उसे 'मामा' कहकर और यदि उनकी बुढ़िया मा मिले, तो उसे 'नानी' कहकर प्रणाम करना। फिर कोई डर न रहेगा। वे तुम्हारा आदर भी करेंगे और तुम्हें सोने का पानी भी देंगे।"

बस, राजकुमार उत्तर की ओर चल पड़ा। वह राक्षसों की बातें सुनकर ज़रा भी न डरा। मंज़िल-पर-मंज़िल तय करता हुआ कई दिन के बाद वह उस महल के पास पहुँच ही तो गया। जिस समय वह वहाँ पहुँचा, उस समय शाम होने हो वाली थी। राक्षसों की माता चरखा कातकर उठी ही थी कि राजकुमार ने आगे बढ़कर उससे कहा—"नानी, राम-राम।" नानी ने उसे बड़े प्रेम से अपने यहाँ ठहराया और भोजन कराया। राजकुमार रास्ते का थका तो था ही, आराम पाने से थोड़ी ही देर बाद उसे नींद ने आ दबाया।

थोड़ी रात बाद राक्षस भी आ गए। राजकुमार को देखकर बहुत ख़ुश हुए। उन्होंने बुढ़िया नानी से कहा—"मा, यह मनुष्य का बालक कहाँ से आया? तुमने इसे यहाँ ठहरा लिया, यह अच्छा ही किया। हमने बहुत दिन से आदमी का मांस नहीं खाया था। अभी यह बच्चा है, इसका मांस तो ख़ूब स्वादिष्ट होगा। आज तो बड़ा मज़ा रहेगा।" बुढ़िया ने उन्हें जवाब दिया—"बेटा, यह अभी बालक है; न-जाने कहाँ का मारा-मारा यहाँ आ पहुँचा है। मुझे इस पर दया आ गई, और मैंने इसे अपने यहाँ ठहरा लिया। आहा! बेचारा थककर कैसी सुख की नींद सो रहा है। बेटा, इसे खाने का इरादा छोड़ दो। इसने आते ही मुझे 'नानी' कहा था। सो अब तो हमें इसकी सहायता ही करनी चाहिए, अब तो यह अपना ही बालक है।" राक्षसों ने माता की बात मान ली, और भोजन कर थोड़ी देर बाद वे भी सो गए।

सवेरा हुआ। राजकुमार सोकर उठा। वह राक्षसों का भयावना रूप देखकर ज़रा भी न डरा। उसने मुसकिराकर उनसे कहा—"मामा, राम-राम!" राक्षसों ने उसे आशीर्वाद दिया, और उससे वहाँ आने का सब हाल पूछा। उसने राक्षसों को अपना सब हाल सुना दिया। उसका हाल सुनकर वे भी बहुत ख़ुश हुए।

उन्होंने राजकुमार से कहा—"हम तुम्हें सोने का पानी देंगे तो, पर अभी नहीं। थोड़ा ठहरो। दिवाली आनेवाली है, उस दिन हम देवी की पूजा करेंगे, और तुम्हें सोने का पानी भी देंगे।"

थोड़ी देर बाद राक्षस अपनी माता को साथ लेकर कहीं चले गए। जाते समय वे राजकुमार को महल की चाबियाँ दे गए, और उससे कह गए कि तुम्हारा जी चाहे, तो बग़ीचे में घूमना, महल की सब चीज़ें देखना, पर उस उत्तरवाली कोठरी में भूलकर भी न जाना। राजकुमार दिन-भर बग़ीचे में घूमा किया। उसने एक-एक करके महल के सब कमरे देख डाले। उनमें रक्खी हुई सुंदर-सुंदर वस्तुएँ देखकर उसका जी बहुत ख़ुश हुआ। उसने सोचा, उस उत्तरवाली कोठरी में ज़रूर कोई बहुत अच्छी चीज़ होगी, तभी तो वे मुझे उसमें जाने को रोक गए हैं। पर यहाँ कौन देखता है, ज़रा देखूँ तो, उसमें है क्या? बस वह उस कोठरी का दरवाज़ा खोल उसमें जा पहुँचा। देखता क्या है, कोठरी के बीचोबीच एक पक्का बँधा हुआ कुंड है, और उसमें सोने का स्वच्छ पानी लहरा रहा है। कुंड के बीचोबीच एक फ़व्वारा है, जिससे सोने का पानी कोठरी में चारों ओर उड़ता और फिर उसी कुंड में आ पहुँचता है। उस पानी के उजेले से कोठरी जगर मगर हो रही है। यह देखकर राजकुमार बहुत ख़ुश हुआ। उसने सोचा – चलो सोने का पानी तो मिल ही गया। अब यहाँ क्यों ठहरूँ? एक शीशी पानी लेकर क्यों न घर की राह लूँ? यह सोचकर ज्यों ही उसने कुंड में हाथ डाला, त्यों ही उसका हाथ कुंड में चिपक गया। राजकुमार के सौ-सौ बिच्छुओं के काटने-जैसा दर्द होने लगा। वह ज्यों-ज्यों हाथ छुड़ाने की कोशिश करता था, त्यों-त्यों दर्द बढ़ता था। अंत को मारे दर्द के बेचारा छटपटाने लगा, और छटपटाते-छटपटाते बेहोश हो गया।

शाम होते-होते राक्षस महल में लौट आए। वे राजकुमार की करतूत जान गए। उन्होंने नाराज़ होकर कहा—"उसने हमारा कहना नहीं माना, उसको वहीं चिपका रहने दो।" पर बुढ़िया न मानी। उसने अपने बेटों से कहा—"मुझे उस बालक पर दया आती है। भूल से वह ऐसा कर बैठा है। जब तक तुम उसे छुड़ा न दोगे, तब तक मुझे चैन न पड़ेगी।" तब एक राक्षस कुंड के पास गया। उसने कुछ मंत्र पढ़कर थोड़ा-सा जल कुंड में डाला। जल डालते ही सोने का पानी उबलने लगा, और फिर शांत हो गया। उसके शांत होते ही राजकुमार का हाथ छूट गया। वह उठकर खड़ा हो गया। तब राक्षस ने उसे एक चपत जमाकर कहा—"क्यों बच्चू, हमारा कहना न माना! कहो, कैसा मज़ा आया? ख़बरदार, अब ऐसी नादानी न करना!" फिर उस दिन से राजकुमार ने कुछ गड़बड़ न की।

जब दिवाली का दिन आया, तब राक्षसों ने देवी की पूजा की, और राजकुमार को एक शीशी सोने का पानी दिया। पानी लेकर राजकुमार ख़ुशी-ख़ुशी अपने घर लौट आया। उसे देखकर सब लोगों को बड़ी ख़ुशी हुई। सोने के पानी ने रानी की आँखें बहुत जल्द अच्छी कर दीं। उस दिन से राजा-रानी राजकुमार को और भी प्यार करने लगे। राज्य-भर में राजकुमार की बड़ाई होने लगी।

ज़हूरबख़्श



विज्ञान-वाटिका

१. मनुष्यों का शत्रु चूहा

मनुष्य अपने को बहुत बड़ा शिकारी समझता है। जिस समय मनुष्यों के पास अस्त्र-शस्त्र नहीं थे, उस समय भी वे जीविकोपार्जन के लिये पशुओं का शिकार किया करते थे। अब तो उनके पास नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र हो गए हैं, वे जंगल के भयंकर जानवरों से भी नहीं डरते, और बात-की-बात में उनका शिकार कर डालते हैं। सिंह, बाघ आदि जंगली जानवर मनुष्यों के इतने प्रिय शिकार हैं कि मैं समझता हूँ, कुछ दिनों में ये जानवर इस संसार से नेस्त-नाबूद हो जायँगे। मनुष्य की शारीरिक शक्ति तो इतनी ही है, किंतु वह अपने बुद्धि-बल से बड़े-बड़े मदमस्त हाथियों को भी वशीभूत कर लेता है। अपनी बुद्धि के ही प्रभाव से वह आज इस पृथ्वी पर अखंड राज्य कर रहा है। किंतु कहावत मशहूर है कि किसी के सब दिन बराबर नहीं जाते। कौन जानता है कि मनुष्य का आधिपत्य पृथ्वी पर भविष्य में भी आज-सा ही बना रहेगा। मनुष्यों के यों तो प्रायः सभी पशु, कीड़े आदि दुश्मन हैं; किंतु शायद उनमें सबसे बड़ा-चढ़ा चूहा है। चूहा जंगली पशुओं-जैसा भयानक या हिम्मतवर तो नहीं होता; किंतु चालाक, चतुर, तेज़, फ़ुर्तीला, बेफ़िक्र और साहसी होता है। वह कमीना, लोभी, कंजूस, मैला और नफ़रत करने योग्य पशु है। इसलिये उसकी ओर मनुष्यों का ध्यान बहुत कम जाता है। किंतु मनुष्यों का सबसे बड़ा शत्रु यही छोटा-सा जानवर है। स्वास्थ्य और आर्थिक दृष्टि से विचार करने पर हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि चूहा मनुष्य-जाति को इस संसार से हमेशा के लिये विदा कर देगा। जिन लोगों ने चूहों के आचार-व्यवहार और उनकी आदतों का अध्ययन किया है, उनका कहना है कि इस पशु ने मनुष्य-जाति पर, सिखाए हुए सैनिकों की भाँति, सुसंगठित दल में बँधकर, धावा बोल दिया है। लड़ाई बड़ी ही घमासान होनेवाली है। भविष्य का इतिहास ही बतलावेगा कि विजय-श्री किसको मिलेगी। इस विषय को यहीं छोड़कर मैं चूहों के विषय में माधुरी के पाठकों को कुछ सुनाना चाहता हूँ।

संसार में जितनी आबादी मनुष्यों की है, उससे कहीं अधिक चूहों की। अर्थात् इस समय पृथ्वी पर जितने मनुष्य रहते हैं, उनसे ज़्यादा—बहुत ज़्यादा—चूहे हैं। कहा जाता है कि अमेरिका के युनाइटेड स्टेट्स में अन्यान्य देशों से कम चूहे हैं; किंतु प्रो० हेरी एच० डोनाल्डसन् ने पता लगाया है कि वहाँ जितने मनुष्य रहते हैं, प्रायः उतने ही चूहे भी। वहाँ चूहों की संख्या १२,००,००,००० से कम नहीं है। चूहे कितनी जल्दी बढ़ते हैं, इसे भी सुन



मचान से चूहे अंडे चुरा रहे हैं

की गए। असल में चूहे अमेरिका के निवासी नहीं हैं। कोई डेढ़ सौ वर्ष हुए कि वे पहलेपहल वहाँ पहुँचे, और अब उनकी संख्या बारह करोड़ तक पहुँच गई है। आश्चर्य करने की बात नहीं है; क्योंकि एक मनुष्य ने अपनी प्रयोगशाला में चूहों के केवल एक जोड़े से केवल १६ महीनों में, ३,८०० चूहे होते देखा है। पेनसिलवैनिया-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर जी० ओ० चेंबर्स ने हिसाब लगाया है कि चूहों के एक जोड़े से साधारण हालत में, दस वर्षों में, २३,००,००,००,००,००,००,००,००० चूहे हो सकते हैं! भाग्य वश चूहों की मृत्यु-संख्या भी बड़ी-चढ़ी हुई है। डॉ० सी० एल्० विलियम्स, जो संसार के चूहों के विषय का १४ वर्ष से भी अधिक समय से अध्ययन कर रहे हैं, कहते हैं—"चूहों-जैसा अद्भुत जीव हमने दूसरा कोई नहीं देखा। वे सब जगह, सब प्रकार की आब-हवा में, रह सकते हैं। वे कोई भी पदार्थ खा सकते हैं। वे बस्ती बनाकर रहते हैं। अपने जीवन को आनंद में बिताते हैं, और साथियों के साथ रहने में उन्हें मज़ा आता है। अपने शत्रु को वे तुरत पहचान जाते हैं।" डॉ० विलियम्स का यह भी कहना है कि पहले तो चूहों को चूहेदानी में पकड़ना आसान होता है; किंतु पीछे ज़रा मुश्किल हो जाता है। कहीं आप चूहा फँसाने के लिये जाल या चूहेदानी रख छोड़िए। आप देखिएगा कि पहले दिन जितने चूहे फँसते हैं, उतने दूसरे, तीसरे या चौथे दिन नहीं। चूहे किसी बात को बड़ी जल्दी सीख लेते हैं। इसलिये चूहेदानी से पकड़कर उन्हें नेस्त-नाबूद करना संभव नहीं।

चूहों को नष्ट करने के लिये कुछ लोग बिल्ली पालने की सलाह दिया करते हैं। किंतु यह तरीक़ा भी कार्यकारी होते नहीं देखा जाता। जिन लोगों ने चूहों को नष्ट करने के लिये बिल्लियाँ पाली हैं, उनका कहना है कि शुरू-शुरू में भले ही कुछ चूहे बिल्ली के शिकार बनते हैं; किंतु थोड़े ही दिन पीछे बेचारी बिल्ली को कुछ भी हाथ नहीं लगता। बात यह है कि जब एक बार सब चूहे बिल्ली की उपस्थिति को जान जाते हैं, तो वे सतर्क हो जाते हैं, और जब तक बिल्ली किसी घर में रहती है, तब तक वे उसमें नहीं जाते।

चूहों के साहस की एक उत्तम कहानी यों है—एथिल-हिल्डा-नामक बोझ ढोनेवाला अँगरेज़ी जहाज़ जब आफ़्रिका से न्यूआर्लियन्स पहुँचा, तब वहाँ के अधिकारियों को उसमें चूहों की गंध मिली। इसलिये उन्होंने उसे धूनी देकर साफ़ करना चाहा; किंतु जहाज़ के कप्तान ने एक पाली हुई बिल्ली से ही चूहों को नष्ट करने का काम लेना चाहा। इसलिये उसने एक बड़ा-सा बिलाव जहाज़ पर रख छोड़ा। किंतु दूसरे दिन उसे मरा हुआ पाकर लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। उसके चारों ओर चौबीस मृत चूहे पड़े थे। बिलाव का क्षत-विक्षत शरीर यह प्रमाणित कर रहा था कि चूहों और बिलाव में युद्ध हुआ होगा, और बिलाव को यह संसार छोड़ना पड़ा होगा। इससे हमें मालूम होता है कि बिल्ली पालकर ही हम चूहों को नष्ट नहीं कर सकते। चूहों पर विषैली गैसों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

कुछ दिन हुए, न्यूजर्सी-स्टेशन के पास का सिगनेल ख़राब हो गया था। लाल रोशनी के बदले हरी और हरी के बदले लाल रोशनी दिखाई देने लगी। इससे स्टेशनवालों को बड़ा भय हो गया; क्योंकि रात को इन्हीं रोशनियों पर रेल-

गाड़ियों का आना-जाना और उस पर चढ़े हुए हजारों लोगों के जान-माल की रक्षा निर्भर करती है। जल्दी से कारण ढूँढा जाने लगा। पता लगा कि चूहों ने कुछ तारों के ऊपर लपेटे हुए कपड़े को काटकर तारों को 'शार्ट-सर्किट' कर दिया है। केवल यही एक उदाहरण यह प्रमाणित करने के लिये काफ़ी है कि किसी भी पदार्थ को काटते रहना चूहों का स्वभाव है। इस घटना को सुनकर डॉ० विलियम्स ने कहा था—"चूहे हमेशा भूखे रहते हैं, और वे हमेशा कोई-न-कोई चीज़ काटते रहते हैं। वे हमेशा खाना चाहते हैं। जब वे कोई चीज़ खाते नहीं रहते, उस समय अपने आगे के दाँतों को तेज़ करते रहते हैं। उनके सामने के दाँत बड़े तेज़ और विचित्र होते हैं। मैंने चूहे को एक पत्थर की दीवाल में चार इंच लंबा और तीन इंच चौड़ा सूराख़ करते देखा है। पत्थर में न तो कोई स्वाद ही होता है, न उसमें कोई पुष्टिकारक पदार्थ ही है। ऐसे पदार्थों को चूहे क्यों काटते हैं, यह मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता। यह कहना कि वे अपने दाँतों को तेज़ करने के लिये ही ऐसा करते हैं, संतोष-जनक उत्तर नहीं जान पड़ता।"

चूहे 'काफ़ी' नहीं पसंद करते। किंतु उस पर भी वार करने से बाज़ नहीं आते। एक बार एक जहाज़ 'काफ़ी' के बीस हज़ार बोरे लेकर अमेरिका चला। सब बोरे सावधानी से बँधे थे। बाईस दिन बाद जब जहाज़ अमेरिका पहुँचा, तब प्रत्येक बोरा कटा हुआ मिला। जहाज़ के चूहों की संख्या केवल १०४ थी। एक दूसरे जहाज़ में काफ़ी के ४० बोरों को सिर्फ़ एक चूहे ने काटकर नष्ट कर दिया था। इससे कितनी बड़ी आर्थिक क्षति हुई!

चूहों से लोहा लेना कठिन काम है। विलियम्स साहब का कहना है कि वे मनुष्यों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। एकसाथ मिलकर रहते हैं, साथ मिलकर खेलते हैं और साथ ही शत्रु पर टूट पड़ते हैं। कभी वे टहलते हैं, कभी एक जगह से हटकर दूसरी जगह जाकर बस्ती बसाते और रहते हैं। कभी अपने लड़कों को साथ लेते जाते हैं, और कभी घर ही में छोड़ देते हैं। ईजिप्ट के केवल एक घर में १,००० और एक खलिहान में १०,००० चूहे मिले थे। ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी प्रकार की शासन-व्यवस्था मानकर नहीं चलते। उनका कोई अगुआ, पथ-प्रदर्शक या लीडर नहीं होता। डॉ० विलियम्स के कथनानुसार वे मनुष्यों-जैसे अपने मन के होते हैं। उन्होंने २,००० चूहों की परीक्षा की है, और वह उनके विषय में जितना जानते हैं, उतना और कोई नहीं। सबसे बड़ा चूहा न्यूयॉर्क में आपने पकड़ा था। उसकी लंबाई एक हाथ थी, और तौल ७८० ग्राम।

चूहे दो तरह के होते हैं। एक भूरे रंग के और दूसरे काले रंग के। भूरे रंग का चूहा वोल्गा-नदी को तैरकर सन् १७२७ ई० में योरप में पहुँचा था। इसके एक साल बाद वह इँगलैंड पहुँचा, और कुछ वर्षों के बाद अमेरिका में भी उसका पदार्पण हुआ। वह खुली जगहों में रहता है। यह काले चूहे से वज़न में भारी और भयानक होता है। इसलिये उन्हें जहाँ पाता है, खदेड़ देता है। वह साहसी होता है, डरने का तो नाम ही नहीं जानता। घिर जाने पर बड़ी मुस्तैदी के साथ लड़ता है। इस प्रकार एक काफ़ी बड़े चूहे को बिल्ली भी छेड़ने से डरती है। कभी-कभी ये चूहे लड़कों पर भी आक्रमण कर बैठते हैं।

काले रंग के चूहे भूरे रंग के चूहों से छोटे, कम भयंकर और कम मेहनती होते हैं। वे घर के छप्परों में ज़्यादातर पाए जाते हैं। वे बड़े चंचल होते हैं, और बड़ी जल्दी-जल्दी चल-फिर सकते हैं। ये स्वास्थ्य के लिये बड़े नुक़सानदेह होते हैं; क्योंकि इनके शरीर में बीमारी फैलानेवाले पिस्सू पाए जाते हैं। पिस्सुओं के विषय में आगे चलकर लिखेंगे।

डॉ० विलियम्स और अन्य मनुष्य, जो चूहों का अध्ययन कर रहे हैं, कहते हैं कि जब फ़सल खेत में पक जाती है, तब ये चूहे मनुष्यों का वास-स्थान छोड़कर खेतों में डेरा डालते हैं। रास्ते में अगर कोई छोटी-सी नदी या नहर होती है, तो उसे भी वे तैरकर पार कर जाते हैं। फ़सल कट जाने पर वे पुनः मनुष्यों के घरों में लौट आते हैं।

अंडे चूहों का प्रिय खाद्य हैं। इसलिये जो दूकानदार अंडे बेचता है, उसे बड़ी सावधानी से रहना पड़ता है। एक दूकानदार ने अंडों को बचाने के लिये एक विशेष प्रकार का मचान बना रक्खा था। इसका दीवाल से कोई संबंध नहीं था, और वह ऐसे चिकने 'पायों' पर खड़ा किया गया था कि चूहों का उस पर चढ़ना असंभव था। तो भी अंडों की चोरी होती ही रही। इससे तंग आकर दूकानदार एक दिन छिपकर बैठ गया। कुछ देर शांति रहने के बाद एक बड़ा-सा चूहा वहाँ पहुँचा। उसने चारों तरफ़ देखा, सूँघा और जाँचा। तुरत ही दूसरा चूहा आया।

बात-की-बात में बीसों चूहे आ पहुँचे । कुछ कूद-कूदकर मचान पर पहुँच गए, और एक दूसरे को पूँछ और पैर से इस प्रकार बाँध लिया कि मचान से ज़मीन तक ज़ंजीर की लड़-सी बन गई । उसके सहारे कुछ चूहे ऊपर मचान पर चढ़ गए, और एक-एक अंडा निकालने और अपने बिल में ले आकर रख आने लगे । ४० मिनट में सारी टोकरी ख़ाली हो गई । किंतु वाह रे चूहे ! एक भी अंडा ज़मीन पर गिरकर नहीं फूटा । सब-के-सब उनके घर पहुँच गए । चित्र पीछे देखिए ।

× × ×

२. पिस्सू

अनुभव और विज्ञान से यह बात सिद्ध हुई है कि हर साल पिस्सुओं द्वारा करोड़ों मनुष्यों की मृत्यु होती है । ये पिस्सू चूहों के शरीर में रहते, पलते और बढ़ते हैं । चूहों से संसार की आर्थिक हानि की रक़म का अंदाज़ा लगाकर एक वैज्ञानिक ने १८ करोड़ रुपए बतलाया है । अब देखिए, ये स्वास्थ्य के कितने भारी शत्रु हैं। इनके शरीरों पर पिस्सू पलते हैं । जब ये मर जाते हैं, तब इनका शरीर ठंडा पड़ जाता है । इसलिये पिस्सू इनके शरीर को छोड़कर पास में जो कोई गरम ख़ूनवाला जानवर मिलता है, उस पर आक्रमण करते हैं । अपना भोजन प्राप्त करने के लिये ये पिस्सू जानवर के शरीर में एक सूराख़ बनाते हैं, और उसके बदन में अपनी सूँड़ घुसेड़ देते हैं । मलेरिया के मच्छड़ों की तरह ये पिस्सू मनुष्यों के शरीर में रोग के विषैले कीड़ों का प्रवेश नहीं कराते । पिस्सू मनुष्य के शरीर से ख़ून चूसता है । जब उसका पेट भर आता है, तब वह अपने पेट से थोड़ा-सा ख़ून मनुष्य के शरीर पर उगल देता है । इससे खुजलाहट पैदा होती है, और उस स्थान पर गिलटी उठ आती है । इस प्रकार मनुष्य के शरीर में प्लेग के कीड़ों का प्रवेश कराया जाता है । यह बीमारी इस देश के प्रायः ४ लाख मनुष्यों को प्रतिवर्ष यमलोक पहुँचाती है । इसलिये हमें ऐसी चेष्टा करनी चाहिए कि मनुष्य-जाति के शत्रु चूहों को, जहाँ तक शीघ्र हो सके, अपने घरों से दूर कर दें । चौदहवीं शताब्दी में इन्होंने २५ करोड़ आदमियों को जानें ली थीं । उस समय प्लेग का प्रकोप चीन में हुआ था । चूहों को दूर करने का अभी तक कोई सफल तरीक़ा नहीं निकला ; किंतु चूहेदानी से पकड़कर उन्हें मार डालना चूहों को नष्ट करने का सबसे आसान तरीक़ा है । अहिंसावादी लोग मेरे इस कथन पर एतराज़ करेंगे; किंतु इस समय उनके सामने एक ही आवश्यकीय प्रश्न है—मनुष्य या चूहे । अगर मनुष्यों को, अपने भाइयों को, बचाना चाहते हैं, तो चूहों को नष्ट कीजिए ; और यदि चूहों को बचाना चाहते हैं, तो अपने भाइयों के अकाल विछोह का दारुण दुःख भोगिए । आप अपने कर्तव्य का स्वयं निश्चय कर लें ।



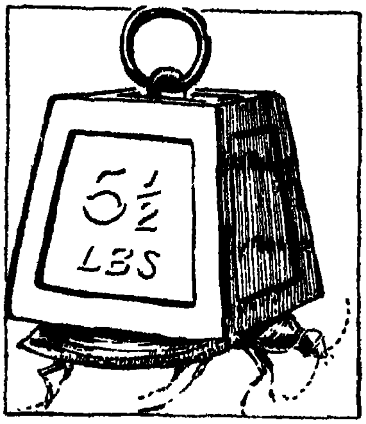
पिस्सू का बढ़ाया हुआ चित्र

× × ×

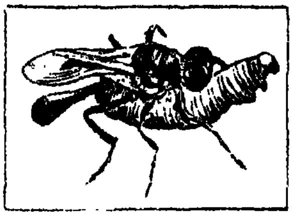
३. शक्तिशाली कीड़े

बहुत दिनों से सिंह पशुओं में सबसे अधिक शक्तिशाली समझा जाता है । किंतु यदि सच्ची बात पूछी जाय, तो चींटियों का मुक़ाबला करनेवाला कोई भी पशु नहीं है । जब वे दल बनाकर निकलती हैं, और 'युद्धं देहि' की आवाज़ उठाती हैं, तब कोई भी पशु उनका सामना करने का साहस नहीं करता । जो सामना करता है, उसे परास्त होना पड़ता है; और यदि वह युद्ध-क्षेत्र से भाग न गया, तो उसका मृत्यु-मुख में पड़ना अनिवार्य हो जाता है । बड़े-बड़े साँपों को, अजगरों को, वे केवल कुछ ही मिनट में मार डालती हैं । बात यह है कि वे बड़े से-

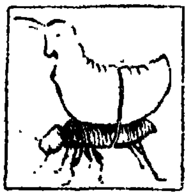
बड़े साँप के शरीर के चारों तरफ़ इस प्रकार लिपट जाती और काटना शुरू कर देती हैं कि बेचारे के प्राण-पखेरू बात-की-बात में निकल जाते हैं। चींटियों की शारीरिक शक्ति संसार में अद्वितीय है। एक चींटी अपने वज़न से तीन हज़ारगुना अधिक वज़न उठा सकती है। इसका अर्थ यह होता है कि यदि मनुष्य के दाँत चींटियों के दाँत के अनुपात में मज़बूत होते, तो वह अपने दाँतों



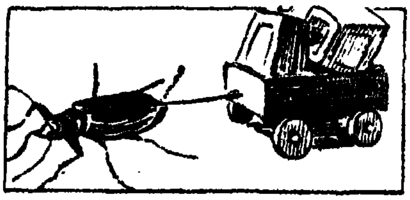
सबसे मजबूत गुबरैला अपने से ४००गुने अधिक वजन की वस्तु उठा लेता है



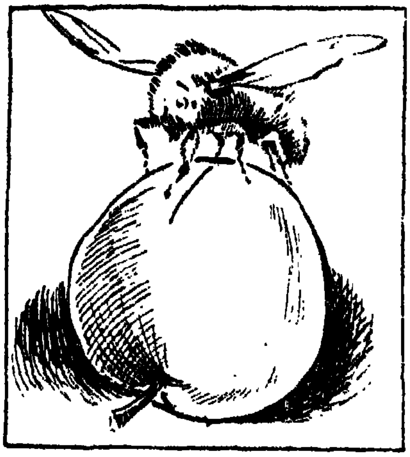
मक्खी अपने से कईगुने अधिक वजन के कीड़े को ले जाती है



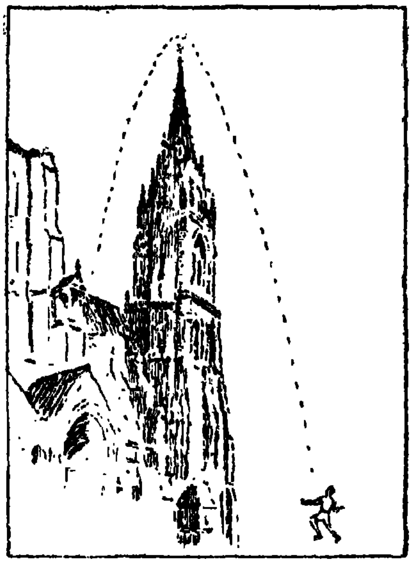
सबसे कमजोर गुबरैला भी पँचगुना वजन उठा सकता है



आधे ग्राम का गुबरैला २५ ग्राम और प्रयत्न करने पर उससे भी अधिक बोझ उठा सकता है



मधुमक्खी अपने वजन से बीसगुने अधिक वजन की वस्तु लेकर चल सकती है



मनुष्य में यदि पतिंगों की-सी कूदने की शक्ति होती, तो वह ३०० फ़ीट ऊँचा मकान फाँद जाता

से २७५ टन या ७,५०० मन से भी ज़्यादा वज़न का बोझ उठा सकता था। या यों कहिए कि अगर मनुष्य के शरीर में चींटियों के शारीरिक बल के अनुपात से बल होता, तो वह आजकल की दो बड़ी-बड़ी रेल-गाड़ियों को अपनी पीठ पर उठाकर आसानी से चल-फिर सकता। एक प्रयोग-शाला में एक चींटी के शारीरिक बल की परीक्षा की गई थी। वह अपने वज़न से १,२०० गुने अधिक वज़न का बोझ खींचते हुए देखी गई थी।



मनुष्य के जबड़े भी चींटियों के जबड़ों की तरह मज़बूत होते, तो वह आजकल की बड़ी-से-बड़ी दो रेल-गाड़ियों के वज़न को दाँतों से उठा लेता

गृह-कला-निर्माण को लीजिए। कुछ चींटियाँ केवल घर ही बनाया करती हैं। और, उन्हें २० फ़ीट ऊँचे मकान बनाते देखा गया है। मनुष्यों ने जो सबसे ऊँचा मकान पिरामिड ऑफ़् क्योप्स (Cheops) बनाया है, उसकी ऊँचाई ४८२ फ़ीट है। वह संसार के आश्चर्यजनक पदार्थों में से एक माना जाता है। यदि उस मनुष्य की ऊँचाई, जिसने उसे बनाया था, छः फ़ीट मान ली जाय, तो उसने अपनी ऊँचाई का केवल ८०गुना ऊँचा मकान बनाया। किंतु जो चींटी २० फ़ीट ऊँचा मकान बनाती है, वह अपनी ऊँचाई का कैगुना ऊँचा मकान बनाती है ? अगर चींटी की ऊँचाई ¼ इंच भी मान ली जाय, तो देखा जायगा कि अपनी ऊँचाई से ९६०गुना ऊँचा मकान वह बना सकती है। इजिपशियनों ने जितना ऊँचा मकान बनाया था, उसके अनुपात से १२गुना बड़ा ! सो भी बिना किसी मशीन की सहायता के !

वैज्ञानिकों का कहना है कि चींटियाँ एक प्रकार के कीड़े पालती हैं, जिनका वे दूध दुहती हैं। अब पता लगा है कि अमेरिका में एक तरह की चींटी पाई जाती है, जो ग़ल्ला भी पैदा करती है। ये खेत जोतती हैं, ज़मीन के ऊपर से ग़ल्ले के बीज लाती हैं, और अपने खेतों में बोती हैं।

चला था लिखने कीड़ों की शक्ति पर; किंतु बहक गया चींटियों की ओर। ख़ैर, चींटियों के बाद शायद गुबरैले का स्थान आता है। यह अपने वज़न से ४००गुने अधिक वज़न की वस्तु आसानी से खींच ले जा सकता है। वैज्ञानिकों ने यह पता लगाने की चेष्टा की कि किस प्रकार यह काम गुबरैले के लिये संभव है; किंतु वे अभी तक किसी निश्चित तथ्य तक नहीं पहुँच सके हैं। गुबरैले की शक्ति के अनुपात में यदि मनुष्यों की शक्ति होती, तो एक मन वज़न का मनुष्य ४०० मन का बोझ आसानी से ढो सकता था।

मधुमक्खियाँ अपने वज़न से बीसगुने अधिक वज़न की वस्तु लेकर उड़ सकती हैं। मनुष्य छः फ़ीट से कुछ ही ज़्यादा ऊँचा कूद सकता है; मगर यदि उसमें पतिंगों की-सी कूदने की शक्ति होती, तो वह ३०० फ़ीट ऊँचा मकान बात-की-बात में कूदकर पार कर जाता।

कीड़ों की इस अद्भुत शक्ति का कारण ढूँढने की चेष्टा बहुत-से वैज्ञानिकों ने की, किंतु कोई फल न निकला। मनुष्य कीड़ों से कमज़ोर है, यह बात वैज्ञानिकों ने भी मान ली है। कहा जाता है, सृष्टि के आरंभ में मनुष्यों और कीड़ों में एक ही अनुपात की शक्ति थी; किंतु मनुष्यों ने अपनी विवेक-शक्ति और बुद्धि से काम लेना आरंभ किया। उन्होंने अपनी शारीरिक शक्ति के अधिकांश हिस्से को अपर किसी दिशा में लगा दिया। इसलिये उनका मस्तिष्क तो अधिक शक्तिशाली हो गया, किंतु शारीरिक शक्ति घट गई। मनुष्यों के कमज़ोर होने का यही एक कारण इस समय दिया जा सकता है।

× × ×

४. साइकिल की उपयोगिता

भारतवर्ष में न-मालूम कितने मनुष्यों के घरों में साइकिल होगी ; पर चढ़ने के अलावा कोई भी आदमी उससे दूसरा कोई काम नहीं लेता । किंतु शिकागो-शहर का एक ताली मरम्मत करनेवाला लोहार—ऐलेक्स अर्ली—साइकिल ही के द्वारा जीविकोपार्जन करता है । शिकागो आदि शहरों में दूकान किराए पर लेना कोई आसान बात नहीं है । जिन लोगों के पास काफ़ी धन हो, या जिनको दूकान से काफ़ी लाभ हो, वे ही लोग स्थायी रूप से दूकान किराए पर ले सकते हैं । अर्ली के पास बहुत थोड़ा-सा सामान है, और उसके पेशे से उसे बहुत ज़्यादा नफ़ा नहीं है । बेचारा करे तो क्या करे ? भूखा तो रह नहीं सकता । भारतवर्ष का रहनेवाला होता, तो वह भी कर सकता था ; किंतु पाश्चात्य देशवाले निठल्ले बैठना या दूसरों की कमाई खाना हराम समझते हैं । जर्ली ने अपनी साइकिल में ही ऐसा प्रबंध कर लिया कि उस पर अपना सामान लेकर वह रास्ते-रास्ते घूमता है, और तालियाँ मरम्मत करने के समय साइकिल के 'पैडल' से ही ताली-मरम्मत करनेवाली मशीन को चलाता है । चित्र में जर्ली काम करते हुए दिखाया गया है ।

श्रीरमेशप्रसाद



साइकिल पर मिस्टर जर्ली

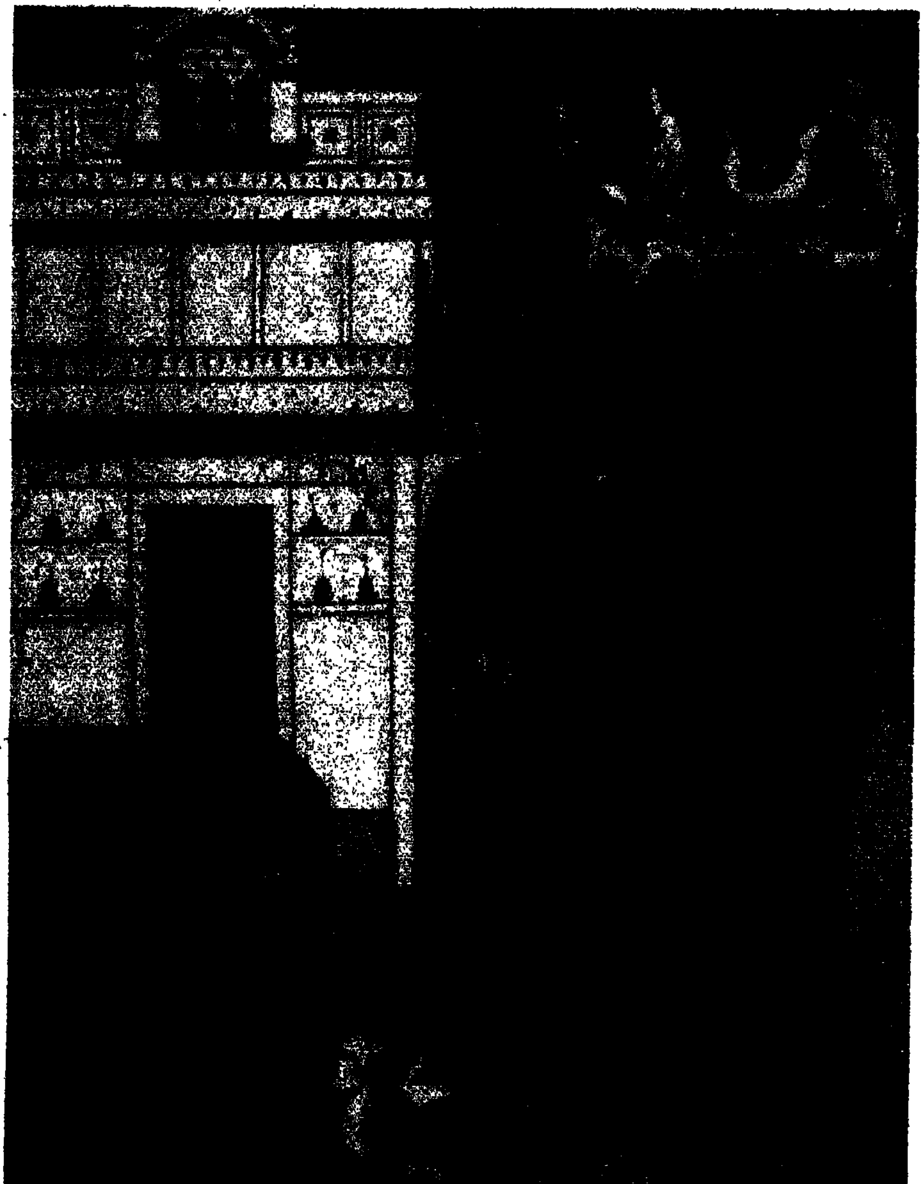


१. स्त्री और सौंदर्य

संसार में कौन ऐसा प्राणी है, जिसे सौंदर्य प्रभावित नहीं करता। सुंदर रंग-बिरंगे फूलों पर अलि मुग्ध होता है, मोर के सुंदर पंखों को देखकर मोरनी रीझती है, चंद्रमा के दर्शन से चकोर नाचने लगता है, और सुंदर बालक को सभी प्यार करते हैं। जीवन के सोपान में जितना उच्च कोई जीव है, उतना ही अधिक वह सौंदर्य द्वारा प्रभावित होता है। किसी अँगरेज़ कवि का कथन है कि सुंदर वस्तु से सदा आनंद मिलता है, और उसका कथन अधिकांश में सत्य ही है। मनुष्य, व्यष्टि-रूप से ही नहीं, समष्टि-रूप से भी, सदा सौंदर्य को चाहता रहा है। यूनानियों की जाति-की-जाति ही सौंदर्य की उपासक थी। वे अपने देश में कोई भी कुरूप वस्तु नहीं देखना चाहते थे। उन्होंने अपने शारीरिक सौंदर्य के विकास के लिये विशेष प्रयत्न किया था। फलतः उनकी जाति सौंदर्य की दृष्टि से आदर्शस्वरूप बन गई थी। और तो और, स्वयं वेद में हमें सौंदर्य-प्राप्ति के लिये प्रार्थनाएँ मिलती हैं।

स्त्री में सौंदर्य-प्रेम स्वाभाविक है। जहाँ वह आप सुंदर बनना चाहती है, वहाँ दूसरों को भी सुंदर देखना चाहती है। वह सौंदर्य-प्राप्ति के लिये नाना प्रकार के कष्ट सहर्ष सहन कर लेती है। प्रायः देखा गया है कि सुंदर स्त्री की ओर स्त्रियाँ अनायास खिंच आती हैं। वे उसे विशेष सम्मान की दृष्टि से देखती हैं। योरप की गौरांग रमणियाँ कलेवर की स्थूलता से बहुत घबराती हैं। अतएव वे मुटापे को दूर करने के लिये कई-कई दिन उपवास करती हैं। कमर पतली रहे, इस उद्देश्य से उन्हें कड़ा कोर्सेट पहनने में कोई कष्ट नहीं होता। ऊँची एड़ी का बूट पहनने से मोच आने का डर भले ही हो; पर वे सुंदरता के लिये इसे अवश्य पहनेंगी। रंगत को निखारने के लिये अनेक कृष्ण-वर्णा भारतीय युवतियाँ उपवास करती और मिट्टी तक खाती देखी गई हैं। गुदना गोदने में कितना कष्ट होता है! परंतु सौंदर्य के लिये वे सब चुपचाप सहन कर लेती हैं।

सच्चा सौंदर्य विधाता की एक अमूल्य कृपा है। उसके लिये स्रष्टा को जितना भी धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है। इसके लिये इत्र-फुलेल और पोमेड-पौडर की उतनी आवश्यकता नहीं। शरीर और मन के नीरोग होने से ही मनुष्य सच्चे अर्थों में सुंदर बनता है। एक काली स्त्री भी सुंदरी और एक गोरी भी कुरूपा हो सकती है। फूल का सौंदर्य किस चीज़ में है? उसकी पत्तियों के एक विशेष संगठन में ही सुंदरता है। इन पत्तियों को तोड़कर अलग-अलग कर दीजिए, सब सौंदर्य नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य के अंगों के सुडौलपन में ही सुंदरता है। जिसके शरीर में रक्त नहीं, जिसका मुखमंडल रोग के



रागिनी मधु-माधवी

[श्रीयुत एन्० सी० मेहता आई० सी० एस० की कृपा से प्राप्त]

यह रागिनी हरे वस्त्र पहने, अनेक आभूषण धारण किए सखियों के साथ खड़ी मोर को चारा खिला रही है। घनघटा घिरी हुई है; बिजली चमक रही है। और यह देखकर मोर मस्त हो रहा है।

K. Press, Lucknow.

कारण ढीला पड़ गया है, उसे सुंदर नहीं कहा जा सकता, चाहे उसने कितना ही शृंगार क्यों न कर रक्खा हो।

सौंदर्य का मुख्य उद्देश्य आकर्षण है। फूल को प्रकृति ने इसलिये सुंदर बनाया है कि उससे भौंरे उसकी ओर आकृष्ट होकर नर-पुष्प की धूल को मादा-पुष्प के बीज-कोष में पहुँचाने में सहायता दें। मोरनी के लिये मोर के पंख और मेंढकी के लिये मेंढक की टर-टर इसीलिये आकर्षक है कि उससे सृष्टि में संतानोत्पत्ति का कार्य निर्विघ्नता-पूर्वक चलता रहे। इसी प्रकार प्रत्येक पुरुष प्रत्येक सुंदर स्त्री को देखकर आकर्षित होता है, और प्रत्येक स्त्री प्रत्येक कांति-युक्त पुरुष को देखकर उसकी कामना करने लगती है। काम-शास्त्र के प्राचीन आचार्यों का ऐसा ही मत है। युवतियाँ गहने-कपड़े और बनाव-चुनाव से जो कुछ भी अपनी सजावट करती हैं, उसमें उनका भीतरी भाव अपनी आकर्षणशीलता को बढ़ाना होता है। विलक्षणता में ही सदा आकर्षण होता है। ग्रामीण स्त्रियाँ प्रायः देसी जूता पहनती हैं। यदि कोई स्त्री उनमें स्लिपर या बूट पहनकर चली जाय, तो वह बड़ी विलक्षण प्रतीत होगी, और सभी उसे शौक़ीन समझने लगेंगी। इसके विपरीत, नगरों में जहाँ प्रायः प्रत्येक स्त्री बूट पहनती है, उस "शौक़ीन" स्त्री की ओर संभवतः किसी का ध्यान भी न जायगा। आफ़्रिका और आस्ट्रेलिया की उन आदिम जातियों में, जो सदा नग्न रहती हैं, नंगा रहना एक स्वाभाविक बात है। वहाँ जो स्त्री अपने गुह्य अंगों को कपड़े से ढकती है, वह विलक्षण प्रतीत होने से आकर्षण का कारण बन जाती है। इसके विपरीत हमारे यहाँ, जहाँ सभी लोग शरीर को ढककर रखते हैं, नग्न शरीर अधिक आकर्षणकारी बन जाता है।

एक बड़े प्राणिशास्त्र-वेत्ता का कथन है कि घूँघट और बुर्क़े में छिपी हुई सूरतें नग्न की अपेक्षा काम-वासना को अधिक उत्तेजित करती हैं। श्रीयुत रूसो का कहना है कि बिलकुल नंगी फिरनेवाली जंगली स्त्रियों में रहते हुए विषय-वासना उतनी नहीं भड़कती, जितनी योरप के बड़े-बड़े नगरों की फ़ैशनेबल पोशाकें पहननेवाली रम-णियों के साथ मिलने-जुलने से। बुर्क़ा, जो अब लज्जा और धर्म का एक अंग समझा जाने लगा है, आदि में स्त्री के आकर्षण को बढ़ाने के लिये ही जारी हुआ प्रतीत होता है।

भिन्न-भिन्न जातियों में सौंदर्य की कल्पना भिन्न-भिन्न है। आस्ट्रेलिया के जंगली लोग हमारी लंबी नाकों को हँसते हैं। कोचीन-चायना के लोग सफ़ेद दाँतों को अच्छा नहीं समझते। कई जंगली स्त्रियाँ घुटनों के नीचे टाँगों को बाँधकर उन्हें सुजा लेती हैं। इसे वे सुंदरता का एक अंग समझती हैं। चीनी लोगों को अपनी स्त्रियों के छोटे-छोटे कुडौल पैर ही सुंदर लगते हैं। प्रत्येक जाति में सौंदर्य की कल्पना प्रायः उस जाति के आदर्श के नमूने के अनुरूप होती है। सामान्यतः पुरुष में पट्ठों की मज़बूती और स्त्री में चेहरे का भरा हुआ होना सुंदरता समझा जाता है। आफ़्रिका के हाटंटाट लोग स्त्री का सौंदर्य इसी में समझते हैं कि उनके स्तन इतने ढीले और लंबे हों कि वे उनको कंधों पर से पीछे की ओर फेंककर पीठ पर उठाए हुए बच्चे को दूध पिला सकें। योरप के लोग स्त्री के स्तन की उपमा हिम से और मलायी लोग स्वर्ण से देते हैं।

प्रेम शारीरिक सौंदर्य और विषय-वासना के आश्रित नहीं। लैली कितनी काली थी; परंतु मजनूँ उसकी ख़ातिर मर मिटा। अनेक स्त्रियाँ लँगड़े लूले और कुडौल पुरुषों के साथ भागती हुई देखी गई हैं। जो दो स्त्री-पुरुष केवल एक दूसरे पर ही आसक्त रहकर जीवन व्यतीत करते हैं, यदि उनमें से एक का देहांत हो जाय, तो दूसरा विषाद-सागर में डूब जाता है। जिसके साथ उसका प्रेम था, वह अब इस संसार में नहीं, और दूसरे किसी काम में दिलचस्पी लेना उसने सीखा नहीं, इसलिये उसके नैराश्य का पारावार नहीं रहता। विधवाओं की दुर्दशा का यही कारण है। इसीलिये न केवल ब्रह्मचारियों, विध-वाओं और विधुरों को, वरन् विवाहित जोड़ों को भी समाज-सेवा के काम में भाग लेते रहने की आवश्यकता है।

साधारण स्त्रियों में, विशेषतः जवान लड़कियों में, काम-वासना प्रेम के अधीन होती है। युवती स्त्री के प्रेम के भाव में दो बातें शामिल रहती हैं—एक तो पुरुष के उत्साह तथा ऐश्वर्य के प्रति प्रशंसा, और दूसरे ममता तथा मातृत्व की उत्कट लालसा। वह चाहती है कि बाहर से तो पुरुष का मुझ पर आधिपत्य रहे, परंतु उसके हृदय पर मेरा राज्य हो। इसी भावुकता के वशीभूत होकर उसमें एक ऐसा आनंदोन्माद उत्पन्न होता है, जो उसकी इच्छा और तर्क की सभी बाड़ों को तोड़ डालता है। वह उस पुरुष के हाथ, जिस पर वह मुग्ध हो चुकी है, या

जिसने उस पर अपना मोहिनी-मंत्र चलाया है, आत्म-समर्पण कर देती है। अब वह उसकी दासी होकर उसका अनुसरण करती है, और उसके लिये बड़ी-बड़ी मूर्खताएँ करने से भी नहीं हिचकिचाती।

पुरुष का प्रेम चाहे कितना ही प्रचंड और तीव्र क्यों न हो, वह स्त्री की अपेक्षा इस प्रकार विवेक-बुद्धि को बहुत कम दबाव देता है। एक बार मन चंचल हो जाने पर फिर स्त्री के लिये अपने को सँभालना कठिन हो जाता है। परंतु पुरुष किसी भी समय अपने को सँभाल सकता है। इसीलिये हम कहते हैं कि स्त्री का कार्य निष्क्रिय होने पर भी उसमें भावुकता पुरुष से अधिक होती है।

एक मर्तबा की बात है, मांटगुमरी की एक हिंदू-स्त्री जालंधर रेलवे-स्टेशन पर एक मुसलमान सिपाही के साथ भागी हुई पकड़ी गई। बहुत-से हिंदू वहाँ इकट्ठे हो गए। उन्होंने सिपाही को समझाया-बुझाया और धमकाया भी। सिपाही ने कहा, मैं इस विधवा से अपना संबंध तोड़ता हूँ। मैं इसको नहीं लाया। यह स्वयं ही मेरे साथ आई है। अब जहाँ आपकी इच्छा हो, इसे भेज दीजिए। मुझे इसमें कुछ भी कहना-सुनना नहीं। मैं तो आप इससे पीछा छुड़ाना चाहता हूँ। परंतु जब उस स्त्री से उसका पीछा छोड़ने को कहा गया, तो उसने एक न मानी। हिंदू-सभा के कर्मचारी बहुतेरा ज़ोर लगा चुके; परंतु उसने अपना हठ न छोड़ा। वह उस समय उस सिपाही के मोहन-प्रभाव (hypnotic influence) में होने के कारण अपना हिताहित विचारने में सर्वथा असमर्थ थी। उसकी विवेक-बुद्धि उस वक़्त उसे छोड़ गई थी।

सदा पुरुष के साहस और शौर्य के कार्य देखकर ही स्त्री के हृदय में उसके प्रति प्रेम का भाव नहीं उत्पन्न होता। सुंदरता और चारुता आदि पुरुष के बाह्य गुण भी उस पर प्रभाव डालते हैं, यद्यपि इनका प्रभाव उतना निर्णायक नहीं होता, जितना कि स्त्री की शारीरिक चारुता का पुरुष में उसके प्रति प्रेम पैदा करने में होता है। बौद्धिक श्रेष्ठता, उच्च नैतिक कार्य और मानसिक सद्गुण रमणी-हृदय को बहुत सुगमता से प्रभावित कर देते हैं, और वह उनके प्रभाव से उन्मत्त-सी हो जाती है। प्रत्येक प्रसिद्ध पुरुष, चाहे उसकी प्रसिद्धि किसी अच्छे काम के कारण हो चाहे बुरे के कारण, शौक़ीन नट (रासधारी या अभिनेता) और उत्तम वक्ता आदि होकर स्त्री के हृदय में प्रेम का भाव उत्पन्न करने की शक्ति रखता है। अशिक्षित या घटिया बुद्धिवाली स्त्रियाँ प्रायः पुरुष के शारीरिक बल या बाह्य रंग-रूप से अधिक प्रभावित होती हैं। अनेक स्त्रियाँ सुगमता से तंत्र-मंत्र के वशीभूत हो जाती हैं। इनको धर्म-प्रचारक, जादू-टोना करनेवाले लोग, ओझे और दंभी लोग झट विमोहित कर लेते हैं। ये हतज्ञान होकर उनको आत्मसमर्पण कर देती हैं।

स्त्री पति के आधिपत्य में रहने या कम-से-कम उसके द्वारा रक्षित होने में आनंद का अनुभव करती है। इसी के लिये वह प्रेम प्रकट करती है। स्त्री तभी सुखी हो सकती है, जब उसका पति ऐसा हो, जिसको वह सम्मान और पूजा के योग्य समझ सके, जिसमें उसे शारीरिक बल, साहस, स्वार्थत्याग या श्रेष्ठ बुद्धि का आदर्श दिखाई दे। ऐसा न होने पर पति झट ही स्त्री-दास हो जाता है, या स्त्री में उदासीनता और विराग का भाव उत्पन्न हो जाता है।

जिस घर में पति स्त्री-दास है (पत्नी-भक्ति होना दूसरी बात है), वहाँ सुख निवास नहीं कर सकता; क्योंकि वहाँ स्थिति बिलकुल उलटी हो जाती है, और स्त्री इसलिये शासन करती है कि पुरुष निर्बल है। परंतु स्त्री की स्वाभाविक इच्छा पुरुष के हृदय पर शासन करने की होती है, उसकी बुद्धि या संकल्प पर नहीं। स्त्री-दास पुरुष पर शासन करने से स्त्री को वृथा गर्व होना तो संभव है, परंतु उससे उसका हृदय संतुष्ट कभी नहीं होता। यही कारण है कि पति पर शासन करनेवाली स्त्री बहुत कम सदाचारिणी होती है। जिस सच्चे प्रेम की उसे तलाश थी, वह उसे उस वैवाहिक संबंध में नहीं मिलता। इसलिये उसे परपुरुष को ताकने की आवश्यकता होती है।

कुछ अज्ञानी लोग यह समझते हैं कि पुरुष तो रूपवती स्त्री चाहता है; परंतु स्त्री को चाहे कैसा ही कुरूप पुरुष मिल जाय, वह संतुष्ट रहती है। इसी भूल के कारण अनेक चंद्र-मुखी सुकुमारियाँ काले-कलूटे पुरुषों के साथ ब्याह दी जाती हैं। फिर उनको गृहस्थी में जकड़े रखने के लिये यह शास्त्राज्ञा सुनाई जाती है कि पति चाहे कोढ़ी, कलंकी, भद्दा, भोंडा, और दुराचारी ही क्यों न हो, जो उसका ईश्वर-तुल्य पूजन करती है, वही स्त्री स्वर्ग को जाती है। कुछ दिन हुए, इस विषय में स्त्रियों के हार्दिक भाव जानने के

उद्देश्य से मैंने अपनी आजीजी से पूछा, तो उन्होंने यह कथा सुनाई—

"एक रूपवती लड़की का विवाह एक महाकाले पुरुष से हो गया। विवाह के बाद जब लड़की ने पति को देखा, तो उसे अत्यंत दुःख और ग्लानि हुई। रात को सास जब दूध का कटोरा देकर उसे पति के पास भेजती, तो पति के निकट आकर वह चुपचाप खड़ी हो जाती। 'दूध लीजिए' आदि कोई भी शब्द मुख से न निकालती। पति आप दूध लेकर पी लेता। इसी प्रकार कई दिन बीत गए। एक दिन पति ने मन में सोचा कि यह मुझसे बोलती नहीं। आज मैं इसे बुलाकर छोड़ूँगा। चाहे यह कितनी ही देर क्यों न खड़ी रहे, जब तक अपने मुख से नहीं कहेगी, मैं दूध का कटोरा न लूँगा। रात को उसने ऐसा ही किया। वह हाथ में कटोरा लिए खड़ी रही। खड़े-खड़े सारी रात बीत गई। परंतु वह मुख से न बोली। तब पति ने सोचा—अहो! मेरे कारण इसे भारी मानसिक कष्ट हो रहा है। जब इसका हृदय ही मुझसे प्रसन्न नहीं, तो इसे यहाँ रखने से क्या लाभ! बस, वह उसे उसके मायके छोड़ आया। वह वहीं अंतर्वेदना से घुल-घुलकर मरने लगी। एक दिन किसी ज्योतिषी ने उसका हाथ देखकर कहा कि तू जैसे कर्म पिछले जन्म में कर आई है, उन्हीं का फल भोग रही है। तेरे पति का इसमें कुछ दोष नहीं। तूने पिछले जन्म में काले उड़दों का दान किया था, इसलिये तुझे काला पति मिला; तेरे पति ने सफ़ेद मोती दान दिए थे, इसलिये उसे रूपवती भार्या मिली। यह तो अपना-अपना कर्म-फल है। तेरे लिये अच्छा यही है कि पति के पास चली जा, और जो भाग्य में लिखा है, उसे संतोष और शांति से भोग। यह बात उस लड़की की समझ में आ गई, और वह मन मसोसकर ससुराल में चली गई।"

न-मालूम ऐसी और कितनी कथाएँ हिंदू-स्त्रियों में प्रचलित हैं, जो अभागे अनमेल जोड़ों को संतुष्ट रखने का व्यर्थ यत्न करती हैं। गत मई-मास में मुझे काशी जाना पड़ा। रास्ते में दो ऐसे ही जोड़े देखकर बेचारी स्त्रियों की दशा पर दया और उनके माता-पिता की मूर्खता पर क्रोध आया। रेल-गाड़ी में अमृतसर के स्टेशन पर एक श्वेत-वस्त्रधारी तवे से भी अधिक काला पुरुष चढ़ा। कदाचित् वह कुछ रुग्ण था। डिब्बे में प्रवेश करते ही बेंच पर लेट गया। उसने खड़ी में थूक-थूककर ढेर लगा दिया। उसके साथ एक अत्यंत रूपवती युवती और कोई तीन वर्ष की छोटी बालिका थी। बालिका भी बहुत सुंदर थी। मैंने समझा कि यह काला मनुष्य इस देवी के साथ कोई मारवाड़ी नौकर है। परंतु जब वे लुधियाना-स्टेशन पर उतरे, तो यह मालूम करके कि वह नौकर नहीं, पति है, मुझे बहुत दुःख हुआ।

फिर जब हरद्वार पहुँचे, तो वहाँ भी एक ऐसा ही मामला मिला। एक कृशांगी सुंदरी अपने गोल-मोल कुप्पे के सदृश फूले हुए पति के साथ 'हर की पैड़ी' पर गंगा में स्नान कर रही थी। जो भी मनुष्य उस अनमेल जोड़े को देखता, हँसे बिना न रहता। मैंने अनेक स्त्रियों को उस स्त्री की दशा पर दयार्द्र होते देखा। वे दंपति भी दर्शकों को अपने पर हँसते और संकेत करते देख मन-ही-मन अत्यंत लज्जित हो रहे थे। सुंदरी की दशा तो सचमुच ही दयनीय थी।

ऐसे विवाहों के परिणाम कभी-कभी अत्यंत भयंकर हो सकते हैं। बेचारी बेज़बान लड़कियों की जात पाँत और लक्ष्मी की वेदी पर बलि चढ़ा दी जाती है। वे आजन्म माता-पिता और अपने भाग्य को कोसा करती हैं। मानव-प्रकृति के स्वाभाविक नियमों को तोड़कर जो काम किया जायगा, उसका परिणाम हितकर न होगा। भाग्य और शास्त्रों का डराना अधिक काम नहीं दे सकता। मानव-प्रकृति उसके विरुद्ध विद्रोह करती है।

संतराम

× × ×

२. महिलाओं के अधिकार

(जनतंत्र-शासन-प्रणाली तथा महिलाएँ)

वर्तमान युग जनतंत्र-शासन-प्रणाली का युग है। सारे सभ्य संसार में मनुष्यों तथा महिलाओं के अधिक-से-अधिक अधिकार स्वीकृत किए जा रहे हैं। किसी भी उन्नत देश के आधुनिक इतिहास की आलोचना की जाय, यही सत्यता दृष्टिगोचर होती है। जनतंत्र-शासन-प्रणाली के विरोधी लोग चाहे कितना ही इसको दोष-पूर्ण सिद्ध करें, परंतु यह स्पष्ट है कि वे किसी अन्य इससे अधिक उपयोगी तथा क्रियात्मक शासन प्रणाली को उपस्थित नहीं कर सकते। यह मानने में कोई इनकार नहीं कि परिस्थितियों तथा अवस्थाओं के कारण जनता को शासन-

प्रणाली के संचालन में कई अपूर्णताएँ रह गई हैं, जिनका किसी देश की सर्वतोमुखी उन्नति पर घातक प्रभाव पड़ सकता है, और पड़ रहा है। परंतु इस तथ्य को स्वीकार किए बिना भी नहीं रहा जा सकता कि इस शासन-प्रणाली ने संसार में नए युग का प्रारंभ किया है, एक अधिक उन्नत तथा सभ्य विचार का विस्तार किया है।

इस शासन-प्रणाली का संसार के प्रति सबसे बड़ा उपकार स्वतंत्रता तथा समानता (Liberty & Equality) के भावों का प्रचार है। स्वतंत्रता तथा समानता के मौलिक सिद्धांतों पर ही वर्तमान सभ्यताभिमानी देशों का अभ्युदय आश्रित है। इन्हीं सिद्धांतों की पुष्टि योरप के भिन्न-भिन्न विचारकों ने भिन्न-भिन्न समयों में की है। ग्रीस के प्रारंभिक युग के आचार्य अरस्तू 'डिमोक्रेसी'-शब्द के विरोधी होते हुए भी स्वतंत्रता तथा समानता के सिद्धांतों के दृढ़ पक्षपाती थे। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The Politics' में इस प्रकार लिखा है—

'In such a democracy the law says that it is just for nobody to be poor and for nobody to be rich and neither should be master, but both equal. For if liberty and equality are to be chiefly found in democracy. They will be best attained when all persons alike share in the Government to the utmost!

अर्थात् स्वतंत्रता तथा समानता के सिद्धांतों पर ही जनतंत्र-शासन-प्रणाली की स्थापना हो सकती है। ग्रीस को राज्य-क्रांति को समकालीन रूसो, मौंटेस्क्यो, रोबेस्पीयरी आदि फ्रांसीसी लेखकों को ही श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने संसार में उक्त सिद्धांतों को सूर्य के प्रकाश में रक्खा, और उनका विस्तार किया। संसार स्वभावतः अत्यंत अनुदार है—उन्नति करने में सदा संकोच-प्रिय है। फ्रांस की वीर जाति को यह सम्मान प्राप्त है कि उसने संसार की अनुदारता की अपेक्षा न करते हुए एकदम उन्नति-पथ पर पग बढ़ाया, और स्वतंत्रता तथा समानता के उच्च आदर्श-सिद्धांतों को क्रियात्मकता में परिणत किया। अमेरिका ने १७७६ई० में इन्हीं सिद्धांतों के आश्रय पर स्वतंत्रता का युद्ध किया, देश में पूर्ण स्वाधीनता स्थापित की, और सारे संसार के सम्मुख मनुष्यों तथा महिलाओं के अधिकार-पत्र की उद्घोषणा कर दी। अमेरिकन जाति ने अपनी उस Declaration of Independence-नामक घोषणा में प्रत्येक व्यक्ति—चाहे वह पुरुष हो या स्त्री—की स्वतंत्रता तथा समानता का जन्म-सिद्ध अधिकार स्वीकृत किया। अमेरिका जनतंत्र-शासन-प्रणाली को अपने परीक्षण में अधिक-से-अधिक सफल बनाने में यत्नवान् हुआ, और आज यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि अमेरिकन जाति ही अधिक-से-अधिक स्वतंत्र है, और वही अन्य सब सभ्य जातियों से अधिक उन्नत तथा समृद्ध है। यह उन्हीं उक्त मौलिक सिद्धांतों के आश्रय का परिणामभूत फल है।

फ्रांस-देश से पीछे नहीं रहा गया। वहाँ एकदम जातीय जागृति का विकास हुआ। क्रांति हुई, विप्लव हुआ और सारे राष्ट्र में एकसाथ Declaration of Rights of Man (मनुष्य के अधिकारों का घोषणा-पत्र) प्रकाशित कर दिया गया, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के उक्त स्वतंत्रता तथा समानता के सुंदर सिद्धांत स्वीकार किए गए। Man का अर्थ केवल मनुष्य करना सर्वथा असंगत तथा युक्ति-शून्य प्रतीत होता है। इसका अभिप्राय मनुष्य-मात्र से है, जिसमें पुरुष तथा महिलाएँ, दोनों सम्मिलित हैं। यद्यपि रूसो ने अपनी पुस्तक Social contract में Man (मैन)-शब्द का ही प्रयोग किया है, तथापि उसका अभिप्राय मनुष्य-मात्र से है, जिसमें स्त्रियों का भी समावेश है। मनुष्य समाज महिलाओं के बिना अपूर्ण है, सर्वथा अपूर्ण है। भारतीय साहित्य में महिला को मनुष्य की अर्द्धांगिनी (The half of the Man) स्वीकृत किया गया है, और योरप के साहित्य में इसको उत्तम भाग (The better half) कहकर सम्मानित किया गया है। संक्षेप यह कि प्रारंभ से महिलाओं को मनुष्य-समाज से अविमुक्त—अभिन्न—माना गया है, और इसीलिये यह स्थापना रखना अधिक तर्क-पूर्ण है कि फ्रांस तथा अमेरिका के स्वतंत्रता-घोषणा-पत्रों में 'मैन' (Man)-शब्द का अर्थ पुरुषों तथा महिलाओं, दोनों में व्याप्त है।

महिलाओं की वर्तमान सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति से उनकी उपयुक्त, आदर्श स्थिति का अनुमान करना एक कल्पना-चतुर व्यक्ति के लिये भी भयंकर कार्य है। यदि अवस्थाओं को परिवर्तित कर दिया जाय—परिस्थितियों की प्रतिकूलता को कम कर दिया जाय—तो महिलाओं की स्थिति का चित्र बनाना, ऐतिहासिक क्रम

से उनका परिणाम प्रस्तुत करना, टेढ़ी खीर है। परंतु एक राजनीतिक या समाज-सुधारक का कुछ निश्चित आधारभूत कल्पनाओं पर, कुछ स्वयं निर्मित मौलिक तत्त्वों पर, परिवर्तन करने का यत्न करना कोई असंभव या कठिन बात नहीं है। महिलाएँ वर्तमान सभ्यता में आज अपने अधिकारों को पहचानने लगी हैं—वे मनुष्यों के साथ अपनी समानता का अनुभव करने लगी हैं—इस अवस्था में महिला-अधिकार के आंदोलनों का प्रारंभ होना सर्वथा स्वाभाविक तथा समयानुकूल है।

लेखक की सम्मति में इस कल्पना में कोई दोष नहीं कि भारतवर्ष में इस समय जनतंत्र-शासन-प्रणाली के भावों का पर्याप्त प्रचार हो चुका है। जनतंत्र-शासन-प्रणाली के विस्तृततम विचारों का यदि नहीं, तो इसके मौलिक तत्त्वों—अर्थात् स्वतंत्रता तथा समानता के सिद्धांतों—का अवश्य भारत के एक एक कोने में नाद पहुँच चुका है। आज भारतवर्ष इतना अशिक्षित—राजनीतिक दृष्टि से इतना अशिक्षित—नहीं है, जितना कुछ साल पूर्व था। महिलाओं ने भारतीय राजनीति में अपनी स्थिति को पहचाना है। उन्होंने अपने अधिकारों—जन्म-सिद्ध हक़ों—का अनुभव किया है, और एक स्वर से इस माँग को प्रस्तुत किया है कि हमें मर्दों के बराबर अधिकार दिए जाने चाहिए।

क्या आज भारतवर्ष के एक-एक कोने में यह आवाज़ सुनाई नहीं देती कि—"Rise up women, Have your rights" (उठो महिलाओ! अपने अधिकारों को ग्रहण करो।)

जनतंत्र-शासन-प्रणाली बहुत वेग से—कल्पनातीत वेग से—बहुत दूर तक पहुँच चुकी है। इसे नहीं रोका जा सकता। अत्याचारी अधिक समय तक अब अत्याचार नहीं कर सकते। मनुष्य-जाति ने अब तक स्त्री-जाति को गुलामी में घृणित, स्वयं कल्पित, स्वयं निर्मित, स्वयं स्थापित सामाजिक दासता में रक्खा है। अब स्त्री-जाति के विद्रोह का समय है। उनकी अपनी ज़बरदस्त माँग है—समान अधिकारों की प्राप्ति की माँग है—स्वतंत्रता की माँग है। मनुष्य-जाति कब तक इस माँग से इनकार कर सकती है? स्वयं झुकना होगा, और महिलाओं को उनके नैसर्गिक समानता तथा स्वतंत्रता के अधिकार देने होंगे।

अँगरेज़ी के 'Democracy' शब्द का तात्पर्य Rule of Demos or People अर्थात् जनता का राज्य है। क्या जनता—राष्ट्र की प्रजा (Subjects or People) में महिलाएँ सम्मिलित नहीं? उस जनतंत्र-शासन-प्रणाली का कोई अभिप्राय नहीं, जिसमें जनता के प्रत्येक व्यक्ति की—चाहे वह किसी लिंग की हो—आवाज़ न हो। उस जनतंत्र-शासन-प्रणाली का कोई अर्थ नहीं, जिसमें समाज के एक बड़े भाग के अधिकारों को पद-दलित किया गया हो—उसको समानता तथा स्वतंत्रता के हक़ देने से इनकार किया गया हो? डेमोक्रेसी का कार्य महिलाओं तथा मनुष्यों के ऊँचे नमूनों को पैदा करना है। यदि इस कार्य में वह असफल होती है, तो वह सर्वथा अनुपयोगी संस्था है।

डेमोक्रेसी में प्रत्येक नागरिक का समान होना आवश्यक है। यह सहन किया जा सकता है कि किसी विशेष व्यक्ति को—चाहे वह पुरुष हो या स्त्री—कुछ अधिक विशेष अधिकार दिए जायँ; परंतु यह सहन नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक व्यक्ति (Minimum Equal-rights) को कम-से-कम समान अधिकार न दिए जायँ। अधिक स्पष्ट करने के लिये इस कथन को इस उदाहरण से साफ़ किया जा सकता है कि मताधिकार-पद्धति में यह मान लिया जा सकता है कि किन्हीं व्यक्तियों को शिक्षा अथवा अन्य किसी योग्यता के आधार पर अधिक मत (Additional votes) देने का विशेष अधिकार मिल सके; पर साथ ही यह मान लेना आवश्यक होगा कि प्रत्येक व्यक्ति, मर्द या स्त्री, को एक मत देने का अवश्य अधिकार प्राप्त है। राजनीति के पारिभाषिक शब्दों में बहुमतवाद (Plurality of voter) स्वीकृत किया जा सकता है। परंतु साथ ही लोकमतवाद (Universal sufferage) को स्वीकृत कर लेना भी आवश्यक है। इसी में समानता के सिद्धांत का वास्तविक अर्थ में प्रकाश है, इसी में उसके उदार उच्च स्वरूप का विस्तार है।

अस्तु, इतना लिखना पर्याप्त है कि सभ्यता के वर्तमान युग में उचित तथा युक्ति-युक्त मात्रा तक महिलाओं को अधिकार देना आवश्यक है, और नितांत आवश्यक है।

इंद्र



१. विचित्र कवि

श्रीमान् पं० मथुराप्रसाद पांडेय उपनाम 'विचित्र' कवि का जन्म गोरखपुर-ज़िले के अंतर्गत सारूडाँड़-नामक गाँव (शुक्र-मौल) में हुआ था। आपका जन्मकाल विक्रम संवत् १९२० का चैत्र-मास माना जाता है। विचित्रजी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनके पिता पं० गयाप्रसाद पांडेय संस्कृत-साहित्य के प्रकांड पंडित थे। सुयोग्य पिता के प्रेम-पात्र पुत्र होने पर भी धनाभाव से सुकवि विचित्रजी की समुचित शिक्षा का प्रबंध न हो सका। बाल्यावस्था में इन्हें अपने पिता ही से संस्कृत और हिंदी की साधारण शिक्षा मिली थी। किंतु विचित्रजी विचित्र प्रतिभाशाली थे! बाल्यकाल से ही इनकी प्रतिभा का प्रकाश होने लगा। अतः आपने अपना जीवन साहित्य के लिये न्योछावर कर दिया।

दैवेच्छा से आपका विवाह-संबंध व्रजमंडल में हुआ। यहीं से विचित्रजी के जीवन-स्रोत-प्रवाह में परिवर्तन-युग प्रारंभ होता है। मथुरा के महान् प्रेमी पं० मथुराप्रसादजी व्रज-मंडल में व्रजवनिता-वल्लभ का ही बायस्कोप देखने लगे। भक्ति के प्रबल प्रवाह में विश्व-विपंची के विविध विधान बह गए, स्नेह-सिंधु में मन मग्न हो गया। उसी समय से विचित्रजी घर-बार त्याग सकुटुंब मथुरा में रहने लगे। विचित्रजी के स्वभाव का परिचय निम्न-लिखित पद्यांश में दिया जा सकता है—

चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह, नेही
नेह के दिवाने सदा सूरत निमानी के;
सरबस-रसिक के, दास-दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के।

निर्दय दैव ने आपको कतिपय दुर्दांत कष्टों का भाजन बनाया था। विचित्रजी की जीवित अवस्था में ही उनके युवक पुत्र परलोक-वासी हो गए। पिता-माता का विछोह इसके बहुत पूर्व ही हो चुका था। चिरसंगिनी भी साथ छोड़ चली। इस प्रकार पुत्र-हीन सुकवि विचित्रजी विरह-दुःख-जर्जरित हो, अपने प्रिय परिजनों को रोता हुआ छोड़, संवत् १९७९ विक्रमाब्द के समीप, व्रजचंद्र की रश्मि-राशि में विलीन हो गए। आपकी मृत्यु-तिथि का हमें पता नहीं। किंतु वर्ष के विषय में कोई विवाद भी नहीं। आपकी विधवा पुत्र-वधू अद्यावधि व्रजमंडल में विद्यमान हैं।

विचित्रजी की प्रायः सभी रचनाएँ व्रजभाषा में हैं। इनकी भाव-व्यंजना अत्यंत मर्मस्पर्शी और वर्णन-शैली समुचित भाषा में हृदयग्राहिणी है। विचित्रजी की काव्य-कृति-कुशलता, माधुर्य-मंडित मार्मिक रचना एवं सरस सहृदयता से मुग्ध हो गढ़वाल-प्रांत के अंतर्गत चंदापुराधीश ने अपने प्रणय-प्रदान द्वारा इनका सम्मान बढ़ाया था। सम्मानित मित्र समान यह उनके दरबार में रहते थे। राजा साहब के परलोक-वासी होने पर भी विचित्रजी का अधिक जीवन-काल उनकी रियासत के प्रबंध में ही व्यतीत होता था।

आपकी उपलब्ध रचनाओं की संख्या २०० पद्यों के लगभग है। किंतु खोज करने पर और पद्यों की भी प्राप्ति की संभावना की जाती है, जिनके संकलन से एक ख़ासा सुंदर संग्रह तैयार हो सकता है। ब्रजभाषा-प्रेमियों के लिये यह संग्रह मनोरंजन एवं अलौकिक आनंद-प्रदान में सफल होगा, इसमें संशय नहीं। दुःख है, अभी तक किसी प्राचीन रचना-रसिक ने इस काम में हाथ नहीं लगाया। दुर्भाग्य-वश मेरी दृष्टि में आई हुई आपकी रचनाओं की संख्या अत्यल्प है। किंतु आशा है, शीघ्र ही यह संकलन साहित्य-सेवियों के समक्ष समुपस्थित होगा।

अब मैं विचित्रजी की विचित्र रचना के दो-चार उदाहरण देकर ही इस चर्चा की अर्चना का उपसंहार करता हूँ। पाठक स्वयं उन्हें पढ़कर उनके मनोहारितामय माधुर्य, सरस सौंदर्य एवं सुललित शब्दों के चारु चयन का अनुमान करें। शब्द-माधुर्य और भाव-गांभीर्य का मणि-कांचन-योग विचित्रजी की रचना में विचित्र रूप से वर्तमान है।

कोई सुंदरी नायिका है। उसके अधरमंडल को बिंबाफल समझ कीर-कुल उस पर टूट पड़ा है। बेचारी घूँघट में भी मुख छिपाने नहीं पाती। इतना ही नहीं, मकरंद-मधुरिमा पान करने के लिये मधुप-मंडल भी सरस गुंजार सहित व्यस्त हो रहा है। उधर चातकों ने नायिका के मुख को मुदित मयंक मान सुधा-याचना की, राग अलापना प्रारंभ किया। बेचारी परेशान हो रही है। इनसे बचने के लिये वह अपने प्रियतम के अंक में जाती है; किंतु वहाँ भी उसे शांति नहीं। इसी भाव को कवि ने निम्नलिखित पद्य में कितनी सुंदरता के साथ व्यक्त किया है—

चोरन देत न घूँघुट मे मुख, मारो कोऊ इन कीर-किसोरन ;
सोरन जूभिकै मौरत भौंर, क्यों सूभि परी है कहा इन मोरन।
मोर न मानत कोऊ कही अब नाहक रार मचाई चकोरन ;
कोरन आनि 'विचित्र' छिपी, तौ लगे अबहूँ हियो नांचि निचोरन।

कितना बढ़िया वर्णन है! कितना सुंदर शब्द-विन्यास एवं कैसी सरसतामय सूक्ति है! कवि का काव्य-चमत्कार, सुललित भावों की भरमार और नायिका की दीन पुकार देखते ही बनती है।

विरहिणी नायिका से उसकी एक सखी पूछ रही है कि हे प्रिये, वसंत आ गया; किंतु तुम्हारे मन-वसंत क्यों नहीं आए? शायद वह तुम्हें भूल तो नहीं गए? इसका उत्तर नायिका ने जो दिया है, वह आदर्श प्रेम का आदर्श-उदाहरण है। वह कहती है, यद्यपि यहाँ लावण्य-माधुर्य से जड़-चेतन मदमत्त हो रहे हैं, तथापि हमारे मन-वसंत के यहाँ अभी वसंतागमन नहीं हुआ है, क्योंकि वसंत की बहार में वह बाहर नहीं रह सकते। इसी भाव को कवि ने बड़ी सुंदरता से साँचे में ढाला है। देखिए—

होतो वहाँ तरु जो, तो पत्र झरि जाते सबै,
आम वहाँ होतो, तऊ बौर लागि आवतो ;
गुनी वहाँ होतो, तो बखान करतोई गुन,
पंडित जो होतो, तऊ पंचमी बतावतो।
होतो जो हमारो, तो हमारी सुधि लेतो, या
समीरन के संग में परेवा होय आवतो ;
आजुकालिह आली वहाँ ह्वै है कोऊ और ऋतु,
होतो जो वसंत, तो हमारो कंत आवतो।

विरहिणी का अपने पति के प्रति कितना दृढ़ प्रेम एवं विश्वास है। किस प्रकार वह अपने विरह-ताप-उत्तप्त हृदय का प्रबोधन कर रही है! वह देखती है, वसंत आ गया, रसालकुल बौर गए हैं, ललित लतिकाएँ मंजुमंजरी-युक्त हो रही हैं, मिलिंदमाला सुमन-समूह-सुंदरता संवर्द्धन में संलग्न हो गई है, पपीहे पिहक रहे हैं, कोकिल-कुल की केलि का समय आ गया है, सभी दिशाएँ प्रसन्न प्रतीत होती हैं। किंतु उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं, सखी के कथन का ध्यान नहीं। उसके हृदय में यही विश्वास है कि वसंत आने पर मेरे प्रियतम विदेश में नहीं रह सकते। धन्य है वह प्रेम, और धन्य है वह प्रेमिका।

पुनः देखिए, विचित्रजी वियोग-वर्णन किस ख़ूबी से करते हैं। वियोगिनी कहती है कि ऐ सखी, प्रिय-विरह में मुझे शृंगार-कानन में पैठने पर पुष्प-भारावनत लतिकाओं से बचकर रहना पड़ता है; क्योंकि उन यौवन-मदमातियों को समीर के संग विलास में मग्न देखकर मेरा विरह-दुःख दूना हो जाता है। रजनी में चंद्रकला मेरे लिये कष्ट-कलाप का कारण होती है। क्या करूँ, कुछ ऐसा योग ही आ पड़ा है कि अनूठी सुधा भी मुझे विष-बूँद ही जान पड़ती है। सुनिए—

हूमें पैठि सिंगार के कानन में, उनई ससिकान सबैयो परै ;
लखि चौथ के चाँद की चोखी प्रभा, तन तापन ही सों तबैबो परै।
कछु ऐसोई जोग है आनि परयो, चित नाहक ही ललचैबो परै ;
बिष-बूँद-सी मीठी अनूठी सुधा, नित ही दृग मूँदि अँचैबो परै ।

विरह-विधुरा का उपर्युक्त कथन अत्यंत करुण है । कवि विचित्रजी ने भी इस विचित्र चित्र चित्रण में कलम तोड़ दी है, कमाल कर दिया है ।

अब एक सौंदर्य-वर्णन की बानगी लीजिए —

जोरन लागी सनेह नयो, लट छोरिकै लागी छुवै छिति छोरन;
छोरन लागी छपाकर की छबि, चंदमुखी मुख ही की मरोरन ।
रोरन रोकि रसालन को रसना करि लागी सुधा-सी निचोरन;
चोरन लागी 'विचित्र' चितै चित, कोरन दै अँखियाँ बरजोरन ।

अहा ! क्या ही सौष्ठव सहित सौंदर्य है ! कितनी चारु चितचोरी है । शाब्दिक सुषमा एवं सौंदर्य-वर्णन की कैसी छटा है ! हिंदी-साहित्य में सिंहावलोकन का इतना सुंदर उदाहरण मिलना दुस्तर है ।

विचित्रजी बड़े मानी कवि थे । इनके कतिपय पद्य प्रगल्भता-पूर्ण हैं । सुना है, एक बार बेतिया के प्रसिद्ध रईस पं० गोविंदनाथ त्रिपाठीजी ने आपको अपने यहाँ बुलाया था । त्रिपाठीजी ने विचित्रजी के जीवन-निर्वाह का भार अपने ऊपर लेने का वचन दे उन्हें बेतिया में ही रहने की भी राय दी थी । उस समय विचित्रजी मथुरा-मंडल में थे । कृष्ण-केलि-कुंज का त्याग कर जीवन-निर्वाह के लिये बस्ती में आकर रहना आपको भला क्यों रुचिकर होता ? देखिए, विचित्रजी ने त्रिपाठीजी को कैसा उत्तर दिया है—

भौंह के जाके इसारही तें यह जीवत सारे जहान के प्रानी ;
नेक निहारे त्रिलोक की संपदा, होत प्रयास बिना मनमानी ।
जाके अधीन सदा कर जोरे रहैं कर क्रीत-से सारँग पानी ;
जीविका को हमें सोच नहीं, यदि जीवति हैं कहूँ राधिका रानी ।

एक बार किसी अदालती काम से आप एक वकील साहब के यहाँ, जो कि आजकल हिंदू-जाति के कर्णधारों में हैं, गए । किसी विशेष कार्य में व्यग्र रहने के कारण उन्होंने इनकी ओर ध्यान न दिया । विचित्रजी भला इसे कब सहन करने लगे । उन्होंने उसी समय निम्न-लिखित पद्य बनाकर पढ़ा—

इन भारतबासी पतंगन के लिये, रंगबिरंग के दीए हुए ;
परमारथ छाँड़ि के स्वारथ की जो धनी गुदरीन में सीए हुए ।
तजि धर्मऽरु कर्मऽरु सर्म सबै, अपकर्म करैं जनु पीए हुए ;
पढ़ि के इसकूल में बी० ए० हुए, अबों आरे अनर्थ के बाए हुए ।

वकील साहब ने उपर्युक्त पद्य सुनकर विचित्रजी की बहुत प्रार्थना की ; किंतु सब निष्फल । वह उसी समय वहाँ से चल दिए ।

एक और—

के० सी० एस्० आई० आर० व्यर्थ का पुछल्ला बाँधि ,
पद्मा खोल लोगों का करोड़ों धन ले गए ;
बाकी जो रहे सो अक्रमंदन के बंदन में ,
लंदन में जाय छल-छंदन छले गए ।
दाह तें बचे जो , सो 'विचित्र' शोक-चिंता लोग ,
मित्र होय दिल्ली-दरबार में दले गए ;
दर्जन के दर्जन कितक महाराजन को ,
कर्जन ते लादि लाट कर्जन चले गए ।

सरकारी नीति का कैसा सच्चा वर्णन किया है । उपर्युक्त पद्य में दिल्ली दरबार का दार्शनिक दर्शन है । कर्जन की कलित कृति का उपयुक्त उदाहरण रक्खा है । मित्र बनाने का ढंग एवं उनके साथ अँगरेज़ों का व्यवहार आदर्श ही होता है ।

हरिश्चंद्रपति त्रिपाठी "कवींद्र"

× × ×

२. कंठाभरण के संकर

आषाढ़ की माधुरी में 'कंठाभरण के संकर'-नामक एक लेख निकला है । इस लेख के लेखक ने दूलह के 'हौंही मतिमंद वाहि मंद पै पढ़ाई' आदि पदों से प्रारंभ होनेवाले छंद में संकर-अलंकार के चारों भेदों के उदाहरण निकाल देने के लिये विद्वानों से प्रार्थना की है । लेखक महोदय ने यह भी प्रकट करने की कृपा की है कि मेरे पितृव्य स्वर्गवासी व्रजराजजी भी उक्त छंद में संकर के चारों भेदों के उदाहरण नहीं बतला सके थे । मैंने व्रजराजजी से कंठाभरण नहीं पढ़ा; पर मेरे पिताजी ने पढ़ा था । सो मैंने उनसे यह बात पूछी कि क्या स्वर्गीय व्रजराजजी ने आपको कंठाभरण के जिस छंद में संकर-अलंकार के चारों भेदों के उदाहरण हैं, वह नहीं बतलाया था ? क्या वे उक्त छंद में संकर के भेदों के उदाहरण नहीं निकाल सके थे ? पिताजी ने उत्तर दिया —"बतलाया था, और बहुत अच्छी तरह से बतलाया था; बल्कि उन्होंने आठों अलंकार मुझी से निकलवाए थे । उन्होंने मुझसे कहा—देखो, सब अलंकार

लक्षण-लक्ष्य सहित पढ़ चुके हो । इस संकरवाले छंद में जितने अलंकार आवेंगे, सो बुद्धि पर ज़ोर देकर तुम्हीं निकालो । यदि तुम्हारे निकाले अलंकारों में चूक होगी, तो उसे हम सुधार देंगे । तदनुसार मैंने अलंकार निकाले, और फिर उन्होंने ठीक कर दिया । अपने सभी विद्यार्थियों की वह इसी प्रकार से परीक्षा लेते थे; और बुद्धिमान् तथा योग्य विद्यार्थी ऐसी परीक्षा से लाभ भी उठाते थे ।" और, पिताजी से मुझे यह बात तो मालूम हो गई कि पूज्यवर स्वर्गीय पितृव्यजी ने उक्त छंद में आनेवाले संकरों के उदाहरण अपने विद्यार्थियों को बतलाए थे; पर वे आठों कौन-कौन-से अलंकार थे, पिताजी से यह बात पूछने की हिम्मत मुझे नहीं हुई; क्योंकि वे इधर दो वर्ष से उदर और हृदय-रोग से अत्यधिक बीमार हैं, और चिकित्सकों ने उन्हें आज्ञा दे रक्खी है कि वह ज़रा भी मानसिक परिश्रम न करें । यदि मैं इस छंद में उनसे अलंकार निकालने को कहता, तो उन्हें श्रम अवश्य करना पड़ता, जिसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव हो सकता है । इसलिये उनको कष्ट न देकर मैंने स्वयं संकर के चारों भेदों के उदाहरण उक्त छंद में निकाले हैं । कंठाभरण मुझे कोई ऐसा कठिन ग्रंथ नहीं जँचता, जिसकी टीका के लिये किसी असाधारण विद्वान् की ज़रूरत हो । जो हो, मैंने उक्त छंद में जो अलंकार निकाले हैं, वे नीचे देता हूँ । पिताजी को जिस समय अधिक स्वस्थ देखूँगा, उस समय उनसे पूछकर स्वर्गीय पितृव्य पूज्यवर ब्रजराजजी के बतलाए अलंकार भी लिखूँगा ।

मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार उक्त छंद में इस प्रकार से संकर के चारों भेद हैं—

पहला तुक—विषम + रूपकातिशयोक्ति = अंगांगिभाव

दूसरा तुक—पर्यायोक्ति + व्याज-स्तुति = समप्रधान

तीसरा तुक—उत्प्रेक्षा + परिवृत्ति = संदेह

चौथा तुक—अनुमान + अनुप्रास = एकवाचकानुप्रवेश

इसका विवरण विस्तार के साथ आगे दिया जाता है ।

दूलहजी संकर-अलंकार का लक्षण यह देते हैं—

"नीर-छीर-न्याय करि संकर प्रमानिए"

संकर के उन्होंने चार भेद माने हैं—

अंगांगिभाव, समप्रधान, संदेहऽरु एकवाचकप्रवेश चौविधि प्रमानिए ।

आगे लिखे छंद में उन्होंने संकर के इन चारों भेदों के उदाहरण दिए हैं—

हौं ही मतिमंद बड़ि मंद मैं पठाई, दोऊ
　　संकर को चाही चंदकला तैं लहाई है ;
कहै कवि 'दूलह' अपूरब प्रकास्यो हेतु,
　　नाहनि हमारी ठकुराइनि ह्वै आई है ।
चारौ भेद संकर के चारौ तुक मैं बिचारौ,
　　दै करि सुचाई मनौ निठुराई लाई है ;
पेखि मनमंदिर मैं पलकनि पीक पोंछौ,
　　सोई अरुनाई इन आँखिन मैं आई है ।

इस छंद के पहले तुक में 'अंगांगिभाव', दूसरे में 'सम-प्रधान', तीसरे में 'संदेह' और चौथे में 'एकवाचकानुप्रवेश' संकर के उदाहरण हैं—

१—अंगांगिभाव संकर

हौं ही..लहाई है ।

नायिका को प्रियतम से मिलकर रमण करने की इच्छा थी । इस इच्छा की पूर्ति के लिये उसने नायक को दूती के द्वारा बुलवा भेजा । पर जब दूती लौटी, तो नायक उसके साथ न था । हाँ, स्वयं दूती के शरीर में ऐसे चिह्न मौजूद थे, जिनसे नायिका को निश्चय हो गया कि स्वयं दूती ने ही उसके प्रियतम के साथ संभोग किया है । इसी अवसर की बात उपर्युक्त छंद में वर्णित है । नायिका अन्यसंभोग-दुःखिता है । दूती के शरीर में रति-चिह्न देखकर वह कहती है कि सचमुच मैं बड़ी मंदबुद्धि थी, जो अपने प्रियतम के पास इसे भेजा । नायक को मेरे पास बुला लाना तो दूर रहा, इसने सपत्नी के समान स्वयं उसके साथ रमण कर लिया ; अर्थात् जिस हित के लिये मैंने यत्न किया था (दूती द्वारा नायक को बुलवाकर उसके साथ रमण करना चाहा था), वह अहित हो गया (दूती नायक को बुलवाकर तो लाई नहीं, स्वयं उसके साथ रमण कर आई) । 'दोऊ संकर को चाही चंदकला तैं लहाई है' का यह अर्थ है कि युगल शंकर के समान शोभित दोनों कुचों में चंद्रकला के समान नख-क्षतों को लगवा आई है; अर्थात् दूती के उरोजों पर रतिसूचक नख-क्षत मौजूद हैं । नायिका ने जिस इच्छा की पूर्ति के लिये उद्योग किया था, वह तो विफल हुआ ही नहीं, साथ ही अनर्थ संभव हुआ, और हेतु के विरुद्ध कार्य हुआ । साहित्य-दर्पण में लिखा है—

गुणौ क्रिये वा चेत्स्यातां विरुद्धे हेतुकार्ययोः ;
यद्वारब्धस्य वैफल्यमनर्थस्य च संभवः ।
विरूपयोः संघटना या च तद्विषमं मतम् ।

इस प्रकार से छंद के प्रथम तुक में 'विषम'-अलंकार का उदाहरण मौजूद है। स्वयं सूरतजी का लक्षण-वाक्य भी इसी कथन का समर्थक है—

हित को जतन करै अहित ह्वै जाय तहाँ,
तीसरी बिषम रीति बरनि सुनाई है ;
लेन को कन्हाई हम दूती को पठाई,
यह दूती दुखदाई देखो आपै रमि आई है।

'दोऊ संकर को याही चंदकला तें लहाई है' इस अंश में उपमान में ही उपमेय का बोध कराया गया है। उपमान द्वारा उपमेय का निगरण होकर अध्यवसान हुआ है। यह रूपकातिशयोक्ति का रूप है। इस प्रकार से पूरे तुक में विषम और रूपकातिशयोक्ति, इन दो अलंकारों के उदाहरण हैं। पर ये दोनों अलंकार नीर-क्षीरवत् मिले हैं। अलग नहीं हो सकते। रूपकातिशयोक्ति अलग निकाल डाली जाय, तो विषम नहीं रह सकता। विषम का प्रधान समर्थन रूपकातिशयोक्ति ही करती है। वह विषम का अंग है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रथम पद में विषम और रूपकातिशयोक्ति का संकर है, और वह भी अंगांगिभाव-नामक प्रथम प्रकार का।

२—समप्रधान

कहै कवि दूलह अपूरब..................ठकुराइनि ह्वै आई है।

इस तुक में 'नाइन ठकुराइन होकर आई है' इस वाक्य का यह अर्थ है कि नाइन व्यभिचार करके आई है (यहाँ नाइन ठाकुर से रमण करने के कारण ठकुराइन कही गई है)। अपूर्व हेतु प्रकाशित करने से अभिप्राय धोका देने का है। नाइन को जो काम सौंपा गया था, उसमें उसने धोका दिया है। पर ये सब बातें प्रकट वाच्यार्थ से नहीं खुलतीं, वरन् गम्य वचन का अंतर्गत-राश्रय लेना पड़ता है। बात टेढ़ी रचना का आश्रय लेकर कही गई है। यह पर्यायोक्ति-अलंकार का रूप है।

'नाइन ठकुराइन होकर आई है, अपूर्व हेतु प्रकाशित हुआ है' आदि वाक्यों से प्रकट में नाइन की स्तुति लक्षक पड़ती है ; पर सहृदय जान सकते हैं कि इस संपूर्ण वाक्यावली की तह में नाइन की ओर निंदा भरी हुई है। अन्य-संभोगदुःखिता के ऐसे कथनों में व्याजस्तुति-अलंकार की सत्ता बड़े-बड़े कवियों ने स्वीकार की है। अतः इस तुक में पर्यायोक्ति भी है और व्याजस्तुति भी। दोनों नीर-क्षीरवत् मिले हैं, और दोनों समप्रधान भी हैं।

३—संदेह

चारौ भेद संकर के चारौ तुक मैं..................आई है।

दूती जब प्रियतम के पास संदेस लेकर गई थी, तो वह सिधाई की मूर्ति थी; पर वहाँ नायक के साथ रमण करके लौटने पर अब वही दूती नायिका को निठुरता की मूर्ति दिखलाई पड़ती है। नायिका कहती है कि मानो अपनी सिधाई दे करके वह निठुरता ले आई है। उरोजों पर नख-क्षतों को देखते हुए यहाँ निठुरता की संभावना की गई है—

संभावना स्यादुत्प्रेक्षा वस्तुहेतुफलात्मना।

इसलिये इस तुक में उत्प्रेक्षालंकार स्थापित होता है। पर जिस वाक्य में उत्प्रेक्षा है, उसी में परिवृत्ति भी है। सम, न्यून अथवा अधिक के साथ विनिमय (अदला-बदला) होने से परिवृत्ति-अलंकार होता है—

परिवृत्तिर्विनिमयः समन्यूनाधिकैर्भवेत्।

यहाँ पर दूती ने अपनी सिधाई देकर अत्यधिक निठुरता पाई है। इस प्रकार इस तुक में उत्प्रेक्षा और परिवृत्ति का संकर है; वे नीर-क्षीर के समान मिले हैं। जो कारण उत्प्रेक्षा के साधक हैं, वे परिवृत्ति के बाधक नहीं। और न परिवृत्ति के साधक कारण उत्प्रेक्षा के बाधक हैं। इसलिये इस तुक में उत्प्रेक्षा और परिवृत्ति का संदेह संकर है।

४—एकवाचकानुप्रवेश

पोंछि.............................इन आँखिन में आई है।

यह अनुमान किया गया है कि पलकों की पीक पोंछने से आँखों में लाली आई है। साधन के द्वारा साध्य का यह ज्ञान चमत्कार-पूर्ण है। इसलिये यह अनुमान-अलंकार है—

अनुमानं तु विच्छित्त्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्।

'मनि मंदिर मैं', 'पलकनि पीक पोंछी', 'सोई अरुनाई इन आँखिन आई' में अनुप्रास है। दोनों अलंकारों का—अनुमान और अनुप्रास का—वाचक (यहाँ शब्दावली से अभिप्राय है) एक है; दोनों नीर-क्षीर के समान मिले हैं; इसलिये चौथे तुक में एकवाचकानुप्रवेश-संकर है। एकवाचकानुप्रवेश-संकर प्रायः शब्दालंकार और अर्थालंकार का होता है। जिस शब्दावली में अर्थालंकार रहता है, उसी में शब्दालंकार भी विलसित होता है।

कृष्णबिहारी मिश्र



१. इतिहास

"भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार"—लेखक, प्रो० जयचंद्र विद्यालंकार; प्रकाशक, हिंदी-भवन, लाहौर; मूल्य ॥।); परिचय और शुद्धिपत्र को छोड़कर पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १०४ है।

पुस्तक में 'मनुष्य और प्रकृति', 'भौमिक परिवर्तन', 'भारतवर्ष के भाग', 'उत्तर-भारतीय मैदान', 'विंध्य-मेखला', 'दक्षिण-भारत', 'हिमालय और पश्चिमोत्तर की पर्वत-माला' और 'समुद्रतट'-नामक आठ विभाग हैं।

प्रथम परिच्छेद में लेखक ने यह बतलाया है कि इतिहास की प्रेरक शक्तियाँ मनुष्य और प्रकृति ही हैं, और इन्हीं की क्रिया और प्रतिक्रिया का नाम इतिहास है। आरंभ में ही लेखक ने उन ऐतिहासिक विवेचकों की आलोचना की है, जो केवल भौगोलिक स्थिति को ही किसी देश की सभ्यता, उसकी सामाजिक स्थिति और राजनीतिक संस्थाओं का आधार मानते हैं। आपकी यह आलोचना बहुत उचित है। मनुष्य-जाति की सभ्यता के विकास में आपने जीवन-संग्राम या रोटी की छीना-झपटी को एक बड़ा प्रवर्तक कारण बतलाया है। इसमें हम आपसे सहमत हैं। साथ ही आपका यह निर्देश करना भी बिलकुल ठीक है कि इन अवस्थाओं पर भौगोलिक स्थिति का किसी-न-किसी अंश में बड़ा प्रभाव पड़ता है।

द्वितीय परिच्छेद में इस बात का विचार किया गया है कि भारतवर्ष की भूमि-रचना का प्रभाव देश के इतिहास पर क्या पड़ा। इसमें विशेषतः कई परिवर्तनों का वर्णन किया गया है, और कई ज्ञातव्य बातें बतलाई गई हैं; किंतु नक़्शों का अभाव बेतरह खटकता है। यद्यपि लेखक ने दो-एक एटलासों का उल्लेख कर दिया है, किंतु पुस्तक के साथ ही मान-चित्रों का होना आवश्यक था। तीसरे परिच्छेद में चार स्वाभाविक विभागों का वर्णन किया गया है। बहुधा भारत के केवल तीन विभाग किए जाते हैं; पर आपने मध्य-भारत का एक नया विभाग किया है। इसमें आपको यह आशंका है कि आपके ऊपर नवीनता का दोष लगाया जायगा। आपने जिस दृष्टि से यह विभाग किया है, उसमें हमें कोई आपत्ति नहीं देख पड़ती।

चौथे परिच्छेद में उत्तर-भारतीय मैदान का वर्णन करते हुए, उस क्षेत्र के भिन्न-भिन्न रणांगणों पर, इस दृष्टि से विचार किया गया है कि वे भारतीय सेनाओं के लिये कहाँ तक उपयुक्त या अनुपयुक्त हुए हैं। इस परिच्छेद में सिंधु और गंगा-यमुना के सरिता-विभाग के मैदान का विवरण, ऐतिहासिक घटनाओं का स्मरण करते हुए, कुछ विस्तार से दिया गया है। लेखक ने औघम साहब के इस मत का ठीक ही खंडन किया है कि "किसी देश के भौतिक लक्षण उसके (केवल ?) आरंभिक इतिहास की गति पर बहुत प्रभाव डालते हैं।" आपने स्मिथ साहब के इस मत की पुष्टि की है कि "आधुनिक विज्ञान की

उन्नति ने केवल पर्वतों, नदियों और जंगलों की प्राकृतिक बाधाओं का ही राजनीतिक और सामाजिक मूल्य नहीं नष्ट कर दिया, बल्कि उसने उन प्राचीन क़िलों को भी निरर्थक कर दिया है, जो अभेद्य समझे जाया करते थे।×××" वर्तमान युग से परिचित कोई भी व्यक्ति इन बातों से सहमत होगा। पर साथ ही लेखक ने यह बहुत ठीक बतलाया है कि वर्तमान काल में स्वाभाविक विभाग दूसरे ही रूप में अपना प्रभाव दिखाते हैं।

पाँचवें परिच्छेद में विंध्याचल की मेखला और गुजरात की भूमि का वर्णन है। इसमें भी, चौथे परिच्छेद के समान, घटनाओं और स्थलों का सामंजस्य बतलाया गया है। इन परिच्छेदों से लेखक के ऐतिहासिक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। छठे परिच्छेद में दक्षिण-भारत का वर्णन है। उसमें आपने यह निष्कर्ष निकाला है कि भौगोलिक स्थिति के कारण दक्षिण और उत्तर-भारत की इतिहास-धाराओं के अलग-अलग बहने तथा दक्षिण के भी दो ऐतिहासिक खंड होने की कुछ-कुछ प्रवृत्ति अवश्य रही है; पर वह प्रवृत्ति अनुल्लंघित कभी नहीं रही। इसके पश्चात् सातवें परिच्छेद में हिमालय और पश्चिमोत्तर की पर्वत-माला और आठवें में समुद्र-तट का वर्णन देकर पुस्तक समाप्त की गई है।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि पुस्तक अपने ढंग की निराली है। इस विषय की हमें तो हिंदी में यह पहली ही पुस्तक देख पड़ी। कॉलेज के विद्यार्थियों के काम की चीज़ है। इस संस्करण में अशुद्धियों की भरमार के साथ-साथ नक़्शों के अभाव से पुस्तक की उपयोगिता कुछ घट गई है। आशा है, लेखक और प्रकाशक अगले संस्करण में इन त्रुटियों को दूर कर देंगे।

रामचंद्र संघी

× × ×

२. अर्थ-शास्त्र

कौटिलीय अर्थ-शास्त्र (हिंदी-अनुवाद-सहित)— अनुवादक, विद्याभास्कर, वेदरत्न, प्रोफ़ेसर उदयवीरजी शास्त्री, न्याय-वैशेषिक-सांख्य-योग-तीर्थ, वेदांत-विशारद इत्यादि। प्रकाशक, श्रीयुत मेहरचंद-लक्ष्मणदास, अध्यक्ष संस्कृत-पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर। पृष्ठ-संख्या ६६०। छपाई, कागज़ साधारण। मूल्य लायब्रेरी-एडीशन १०); साधारण आवृत्ति ७)

कौटिलीय अर्थ-शास्त्र संस्कृत में एक उच्च कोटि का ग्रंथ है। "पृथिवी के प्राप्त करने और प्राप्त की रक्षा करने के लिये जितने अर्थ-शास्त्र प्राचीन आचार्यों ने लिखे, प्रायः उन सबको संगृहीत करके यह एक अर्थ-शास्त्र बनाया गया है।" इसके लेखक राजनीति के आचार्य विष्णुगुप्त कौटिल्य, जिन्हें चाणक्य भी कहते हैं, सुप्रसिद्ध सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य के प्रधान अमात्य थे। इस उत्तम ग्रंथ को सन् १६०६ में सबसे प्रथम श्रीयुत शाम शास्त्री ने प्रकाशित कराया था। अब वही ग्रंथ सुबोध और सरल हिंदी-अनुवाद-सहित लाहौर के श्रीयुत मेहरचंद-लक्ष्मणदासजी द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसके अनुवादक संस्कृत के प्रकांड पंडित हैं।

मुझे कौटिलीय अर्थ-शास्त्र का अध्ययन करने की बहुत दिनों से इच्छा थी। परंतु संस्कृत-भाषा का ज्ञान न होने के कारण, और हिंदी में उसके उत्तम अनुवाद के अभाव से, वह इच्छा गत वर्ष तक पूरी न हो सकी। डॉक्टर प्राणनाथजी विद्यालंकार का अनुवाद इतना सरल न था कि आसानी से समझ में आ सके, इसलिये मैं उसका अधिक भाग न पढ़ सका। पीछे मुझे अपने मित्रों से यह भी मालूम हुआ कि कई स्थलों में प्राणनाथजी का अनुवाद शुद्ध भी नहीं है। केवल श्रीयुत उदयवीरजी का अनुवाद ही मुझे ऐसा मिला, जो कि बहुत सरल भाषा में लिखा गया है, और आसानी से समझ में भी आ जाता है। लखनऊ-विश्वविद्यालय के संस्कृत-अध्यापक हमारे माननीय मित्र श्रीयुत आद्यादत्तजी ठाकुर से मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि यह अनुवाद बहुत शुद्ध हुआ है। मैं प्रोफ़ेसर उदयवीरजी शास्त्री को इस उत्तम अनुवाद के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ, और आशा करता हूँ कि आप इस अर्थ-शास्त्र पर एक विस्तृत स्वतंत्र ग्रंथ, जिसमें ग्रंथकर्ता के समय, ग्रंथ की विशेषताओं तथा आलोचना और प्रत्यालोचना का समावेश होगा, शीघ्र ही लिखकर हिंदी-संसार को भेंट करेंगे।

कौटिलीय अर्थ-शास्त्र में १५ अधिकरण, १५० अध्याय, १८० प्रकरण और ६ हज़ार श्लोक हैं। यह राजनीति-शास्त्र और अर्थ-शास्त्र का एक उत्तम ग्रंथ है। इससे सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य के समय की कई महत्त्व-पूर्ण बातों का भी पता लगता है। इतिहास, राजनीति और अर्थ-शास्त्र के विद्यार्थियों को यह ग्रंथ-रत्न अवश्य ही पढ़ना चाहिए। प्रत्येक लायब्रेरी में इस ग्रंथ की एक प्रति अवश्य रहनी

चाहिए। आशा है, हिंदी-संसार इस ग्रंथ का उचित आदर करेगा।

दयाशंकर दुबे

× × ×

३. ज्योतिष

आकाश-तत्त्व-बोध—लेखक, प्रो० शंकरलाल एम० ए०, एल्-एल्० बी०, वकील हाईकोर्ट, मेरठ; प्रकाशक, पं० शिवदयालु मंत्री आर्यसंघ, मेरठ सदर। आकार डबलक्राउन १६पेजी; पृष्ठ-संख्या ४+११२+६; चित्र-संख्या ३; मूल्य आठ आने; मिलने का पता—मित्तल ब्रदर्स एंड कंपनी बुकसेलर्स, चौक बाजार, मेरठ।

आकाश में होनेवाली अनेक घटनाओं के संबंध में पढ़े-लिखे और अपढ़, दोनों प्रकार के मनुष्यों में साधारणतः जो प्रश्न उठते हैं, और उनके जो उत्तर हो सकते हैं, उनका संकलन, प्रश्नोत्तर के रूप में, इस पुस्तक में किया गया है। पुस्तक इस विचार से लिखी गई है कि इससे "अपने देश-भाइयों को लाभ ही होगा, और भारतवर्ष के माथे जो कलंक-कालिमा लगाई गई है, उसका भी निराकरण होगा।××× अतएव आशा की जाती है कि भारत-निवासी इस पुस्तक को प्रेम से पढ़ेंगे, और जो कुछ त्रुटि उसमें पाई जाय, उसकी सुहृद्-भाव से सूचना देने की कृपा करेंगे, जिससे दूसरे संस्करण में संशोधन कर दिया जाय।" [भूमिका पृष्ठ ग]

इस पुस्तक से प्रकट होता है कि लेखक महोदय को पाश्चात्य ज्योतिष के विषय में अच्छी जानकारी है, और इन्होंने भारतीय ज्योतिष का परिचय अँगरेज़ी में लिखी गई पुस्तकों के ही द्वार से पाया है, इसलिये इनको भारतवर्ष के माथे पर लगाई गई कलंक-कालिमा अधिक देख पड़ी है। मेरे मत से इस पुस्तक के कारण वह कालिमा, यदि सत्य भी हो, तो अधिक गहरी हो जाती है। इस ओर विद्वान् लेखक का अथवा आर्यसंघ के देश-हितैषी प्रकाशक का ध्यान नहीं गया, इसका मुझे बड़ा दुःख है।

मेरा यह दावा है कि तीन या चार सौ वर्ष पहले हमारे ज्योतिष की दशा पाश्चात्य ज्योतिष से कम उन्नत नहीं थी। पर आजकल इन दोनों में महान् अंतर हो गया है। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य ज्योतिषी अपने ज्ञान की उन्नति नए-नए वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से दिन-दिन करते गए, और हमारे ज्योतिषी उसी जगह खड़े ही नहीं रहे, वरन् उसको भी भूलते रहे। इसी से हमारे साहित्य में ज्योतिष के केवल उन शब्दों की कमी है, जो इधर तीन-चार सौ वर्षों से पाश्चात्य ज्योतिष में बढ़े हैं। इसलिये मातृभाषा के लेखकों का कर्तव्य है कि वे हमारे प्रचलित शब्दों का बहिष्कार करके उनकी जगह नए मनगढ़ शब्द न बनावें, और न अँगरेज़ी शब्दों का ही सीमा से अधिक प्रयोग करें। हाँ, जो शब्द हमारे साहित्य में अब तक नहीं बने, उनकी जगह नए शब्द गढ़ने की आवश्यकता है, और इस नए बने शब्दों के साथ-साथ यदि अँगरेज़ी शब्द भी कोष्ठक के भीतर रख दिए जायँ, तो कोई हर्ज नहीं; क्योंकि यदि शताब्दियों से प्रचलित शब्दों का बहिष्कार किया जायगा, और उनकी जगह अँगरेज़ी के शब्द व्यवहार में लाए जायँगे, तो पढ़नेवाले यही परिणाम निकालेंगे कि हमारे साहित्य में उन शब्दों और विचारों का अभाव है। इससे हमारे साहित्य का अपमान ही होगा, न कि गौरव।

नीचे उन शब्दों की सूची दी जाती है, जो हमारे ज्योतिष में कम-से-कम डेढ़ हज़ार वर्ष से प्रचलित हैं, परंतु जिनका बहिष्कार करके विद्वान् लेखक ने उनकी जगह अपने बनाए हुए अथवा केवल अँगरेज़ी के ही शब्दों का प्रयोग किया है—

भारतीय ज्योतिष के प्रचलित शब्द	लेखक के व्यवहार किए हुए शब्द
पात	नोड (Node)
अंश	दर्जा
कला	मिनट
विकला	सेकंड
अमावस्या	नया चाँद (New moon)
व्यास	परिधि
अक्षांश या शर	रक्षरेखा (Latitude)
सूच्याकार	सूँडाकार
छाया	अंधरा (Umbra)
चांद्र मास	साईनोडिकल मास
युति	कंजंक्शन
षड्भांतर	अपोज़ीशन
वातावरण	वायुगोला
ग्रह	सैयारे
नीच	Perihelion

उच्च	Aphelion
कोष्ठक	यंत्र
महाकाव्य	पद्-ग्रंथ (Epic Poem)
भोगांश	रेखा-अंतर
प्रतिपदा	New moon
स्वाती	ऐरीट्रस
हस्त	कारवस
धनिष्ठा	डैलफ़ीनस
श्रवण	एक्विल, गृद्ध
धनु	सैजीटैरियस
पुच्छल तारा या धूमकेतु	पूँछड़िया
उल्का	द्रुपुम् (Meteor)

विद्वान् लेखक ने व्यास के लिये प्रत्येक स्थान में परिधि शब्द का प्रयोग किया है। यह अशुद्ध है। गोल-क्षेत्र को दो समान भागों में बाँटनेवाली रेखा को व्यास और उसकी चारों ओर से सीमा बनानेवाली रेखा को परिधि कहते हैं, जैसा कि इनके अर्थों से भी सूचित होता है। अमावस्या को अँगरेज़ी में New moon कहते हैं। परंतु इस अँगरेज़ी शब्द का अर्थ नया चाँद करना अशुद्ध है ; क्योंकि हमारे यहाँ नया चाँद या बाल चंद्रमा उस चंद्रमा को कहते हैं, जो शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा या दूज के दिन पहलेपहल देख पड़ता है। इसलिये अमावस्या के लिये नया चाँद लिखना भ्रमात्मक है।

पुस्तक की भाषा अनेक स्थानों में बेढंगी, अस्पष्ट और भ्रमोत्पादक तथा उसके भाव भी अशुद्ध हैं। कहीं-कहीं अँगरेज़ी और हिंदी की ऐसी खिचड़ी है कि हिंदी जानने-वाले उसको पचा ही नहीं सकते। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

(१) किसी प्रकाशवाली वस्तु का अल्प समय के लिये ओझल हो जाना ग्रहण कहलाता है। (पृ० १)

(२) ग्रह पृथिवी से बहुत दूर हैं, यहाँ तक कि बिना दूर्बीन की सहायता के हमको दिखलाई नहीं देते। (पृ० २)

(३) हिंदुओं ने अर्थात् फलित ज्योतिषवालों ने जो नवग्रह माने हैं, उनमें यूरेनस और नैपच्यून की जगह राहु और केतु शामिल किए हैं। (पृ० १८ का संलग्न पत्र)

(४) एक नए चंद्रमा से दूसरे नए चंद्रमा के समय को Synodical Month कहते हैं। (पृ० २४)

(५) सूर्य और चंद्रमा के पृथ्वी एक ही ओर एक सीधी रेखा में होने को साइनौड (Synod) या कंजं-क्शन (Conjunction) कहते हैं। (पृ० २४)

(६) यदि प्रत्येक ल्यूनेशन (Lunation) के ३० बराबर के भाग किए जायँ, तो प्रत्येक भाग तिथि कह-लाएगा। (पृ० २५)

(७) कहीं-कहीं अमावस्या बीते हुए मास का अंतिम दिन माना जाता है, और कहीं-कहीं आगामी मास का प्रथम दिन। (पृ० २५)

(८) प्रत्येक तिथि २३ घंटे ३७$\frac{1}{2}$ मिनट की होती है। (पृ० २५)

(९) मार्च और अप्रिल के महीने में सूर्य अस्त के उपरांत ही दूर्बीन की सहायता बिना हम बुद्ध (बुध ?) को देख सकते हैं। (पृ० २८)

(१०) हिंदू ज्योतिष के जाननेवालों को छोड़कर प्राचीन काल में सब ही जातियों का × × × यह सिद्धांत था कि सूर्य के चारों ओर घूमनेवालों में शनि अंतिम तारा है। (पृ० ३१)

(११) हिंदू वर्ष वैशाख से आरंभ होता है, और चैत्र का महीना अश्विनी नक्षत्र से। (पृ० ४१)

(१२) जिन जातियों ने ज्योतिष-संबंधी गणित में कोई शोध तथा परिवर्तन नहीं किया है, उन जातियों में अभी तक २८ नक्षत्र चले आते हैं। (पृ० ५०)

(१३) ज्योतिष-शास्त्र में ओरायन एक प्रसिद्ध तारों का समूह है, जो वृश्चिक राशि के सामने देखा जाता है। (पृ० ५६)

(१४) निरक्षर भट्टाचार्यों ने तो शिवजी का रंग भी काला बना दिया, और साथ-साथ दुर्गा को काली कह-कर उसका रंग भी काला कर दिया। (पृ० ६०)

(१५) चंद्र-मास के नाम भी सूर्य-मास के नाम पर ही रक्खे गए हैं। (पृ० ६५)

(१६) फ़सली सन् जो बंगाल और संयुक्तप्रांत में प्रचलित है। यह सन् ईसवी से ५९२ वर्ष पश्चात् प्रच-लित हुआ। (पृ० ६७)

(१७) फ़सली सन् (दाक्षिणी) जो सन् ईसवी से ५९३ वर्ष पश्चात् शुरू हुआ। (पृ० ६७)

(१८) संयुक्तप्रांत में जहाँ कृष्ण-पक्ष प्रथम पक्ष माना जाता है वहाँ कृष्ण-पक्ष की पंचमी को नागपंचमी मानने लगे। (पृ० ८२)

(१६) उर्सा माइनर (Ursa Minor) × × × और जिसको हिंदू ज्योतिष आकाश में भ्रमण करनेवाली हिरनी कहता है। × × × शुक्र जनवरी में प्रतिदिन ७ बजे सायंकाल यह समूह भली भाँति दिखलाई देता है। (पृ० ८३)

(२०) ज्यों ही इनमें से कोई पृथ्वी के वायुगोले (Atmosphere) से टकरा जाता है, तो Meteor or Shooting Star का जन्म होता है। (पृ० १०१)

(२१) टालमी अनुमान (Ptolomy Hypothesis) ने १४ (सौ ?) वर्ष तक राज्य किया। (पृ० १११)

अवकाश और स्थान के अभाव से यह बतलाना असंभव है कि इन अवतरणों में क्या भूल है। आशा है, विद्वान् लेखक विचार करेंगे, तो उनको स्वयं उन भूलों का ज्ञान हो जायगा।

त्योहार और व्रत के लिये जो कुछ कहा गया है, और तिथि-वार त्योहारों की जो सूची दी गई है, वह इंडियन क्रॉनोलॉजी (Indian Chronology) के १६वें अध्याय का अनुवाद-मात्र है। परंतु इस ग्रंथ की चर्चा कहीं नहीं की गई।

प्रत्येक मास में दिखाई देनेवाले तारागण के संबंध में जो कुछ कहा गया है, वह इतना अपूर्ण है कि उससे कोई लाभ नहीं हो सकता। ऐसी बातें बिना चित्र के समझ में नहीं आ सकतीं।

अंत में विद्वान् लेखक तथा आर्यसंघ के प्रकाशक महोदय से मेरी विनीत प्रार्थना है कि वे इस बात की प्रतीक्षा न करें कि जब इस पुस्तक की सारी छपी हुई प्रतियाँ बिक जायँगी, तब दूसरा संस्करण शोधकर प्रकाशित करेंगे। देश और पाठकों का उपकार तो तभी हो सकता है, जब इस पुस्तक का क्रम और भाषा आदि से अंत तक सुधारी जाय, अनावश्यक बातें निकाल दी जायँ, चित्रों का उचित रीति से समावेश और भारतीय ज्योतिष के शब्दों का यथास्थान व्यवहार किया जाय। ऐसे शब्द काशी की नागरीप्रचारिणी सभा की साइंटिफ़िक ग्लासरी, आपटे की संस्कृत-अँगरेज़ी डिक्शनरी, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी से छपी आकाश की सैर, तथा विज्ञान-परिषद् की छपी हुई कुछ पुस्तकों से प्राप्त हो सकते हैं। यदि इसका दूसरा संस्करण इतनी जल्दी छपवाना असंभव हो, तो कम-से-कम एक परिशिष्ट तो अवश्य ही लगा देना चाहिए, जिसमें शुद्धि-पत्र के साथ-साथ शंका उत्पन्न करनेवाली बातों का भी समाधान रहे। कुछ आवश्यक चित्र भी लगा देने चाहिए।

आशा है, विद्वान् लेखक महोदय इस समालोचना को उदार भाव से पढ़ेंगे, और इस पर विचार करने की कृपा करेंगे। यहाँ जो कुछ लिखा गया है, वह केवल इस भाव से कि मातृभाषा का उपकार हो, और अशुद्ध विचारों का प्रचार रुके, जिसमें लेखक महोदय भी मुझसे सहमत होंगे।

× × ×

४. नाटक और उपन्यास

कर्मवीर नाटक—लेखक, पं० रेवतीनंदन "भूषण"। प्रकाशक, श्रीव्यास-साहित्य-मंदिर, ६६ मारकेन, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १६१; मूल्य सादी का १॥), रेशमी जिल्दवाली का २)

लेखक ने यह सचित्र नाटक अपने पूज्य गुरुदेव श्रीयुत पं० तुलसीदत्तजी "शैदा" को समर्पित किया है। गुरुजी का एक चित्र भी इसमें है। एक चित्र नाट्यकार का भी है; जिसमें वह गुरुजी का चित्र पास रक्खे तन्मय होकर उसको देखते-देखते ध्यान में मग्न हो गए हैं। इस कलियुग में इतनी गुरु-भक्ति अभी बची हुई है, यह देखकर हमें परम हर्ष हुआ। नाटक गद्य-पद्यमय है। इसके पद्य बहुत ही लचर हैं, गद्य की स्वाभाविकता को पारसी-कंपनीपन की बनावटी पोशाक पहनाकर कुछ-का-कुछ कर दिया है। विषय सामयिक है। लेखक का यह प्रथम प्रयत्न है। सुधार की गुंजाइश है। हर्ष की बात है कि लेखक स्वयं इस बात का अनुभव करते हैं। हमें पूरा विश्वास है कि पद्य-रचना की आधुनिक शिष्ट शैली—थिएटरबाज़ों की नहीं—का अभ्यास कर लेने तथा गद्य-शैली से बनावटीपन को दूर कर देने से कुछ समय में लेखक सचमुच सफल नाट्यकार बन सकेंगे, और हमारी मातृभाषा का मुख उज्ज्वल करने के कारण होंगे। रही चित्रों की बात, सो चार रंगीन और छः सादे चित्रों में से दो-एक को भले ही कुछ अच्छा कह लिया जाय, और सब तो वैसे ही हैं—रासधारियों-जैसे।

"स"

× × ×

वीर बागीश—लेखक, सालिकराम शर्मा; प्रकाशक, खुशीराम शर्मा, हाथरस (यू० पी०); मूल्य ।=)

यह एक नाटक है, जिसमें बागीश-नामक एक बालक की वीरता का वर्णन है। वर्णन का ढंग आकर्षक है। कविताएँ भाव-पूर्ण हैं, पर छंदोभंग आदि दोष खटकते

हैं। पुस्तक में प्रांतीय भाषा का समावेश है, अनिवार्य भले ही हो; पर उसके पढ़ने में अन्य प्रांतवाले को कठिनता अवश्य होती है। बालचर-साहित्य का यह एक मौलिक प्रयास है।

मुकुटधर

× × ×

मार-मारकर हकीम—लेखक, जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी०; प्रकाशक, बैजनाथ केडिया, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, १२६ हरीसनरोड, कलकत्ता; मूल्य १) ; पृष्ठ-संख्या १४४; स्कूली साइज़।

प्रस्तुत पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है। फ्रांस के प्रसिद्ध हास्य-रस के लेखक मोलियर के तीन प्रहसनों के आधार पर 'मार-मारकर हकीम', 'हवाई डॉक्टर' और 'आँखों में धूल' तीनों का संग्रह इसमें किया गया है। श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव हास्य-रस के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने मोलियर के प्रहसनों में अपना ख़ास रंग चढ़ाकर उन्हें एक नया ही रूप दे दिया है। पाठक हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। तीनों प्रहसन स्टेज पर भी अलग-अलग खेले जा सकते हैं, और थोड़ी देर के लिये अच्छा मनोरंजन भी हो सकता है।

मातादीन शुक्ल

× × ×

विपत्ति की कसौटी—लेखक, मेहता लज्जाराम शर्मा; प्रकाशक, खेमराज-श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर स्टीम-प्रेस, बंबई; पृष्ठ-संख्या ४७२; मूल्य २॥)

मेहता लज्जाराम शर्मा हिंदी के उन धुरंधर स्तंभों में हैं, जिनके लिये हिंदी-भाषा को अभिमान हो सकता है, जिनकी बदौलत हिंदीमाता की उन दिनों सेवा हुई है, जिन दिनों आज के कितने ही उसके भक्त भी उसकी ओर से विमुख थे। कितनी ही पुस्तकें आपने लिखीं, और न-जाने कितने दिनों तक श्रीवेंकटेश्वर-समाचार का संपादन किया। उन्हीं शर्माजी का यह एक उपन्यास है। और, भूमिका से जान पड़ता है कि कदाचित् राष्ट्र-भाषा के चरणों में उनकी यह अंतिम भेंट है। अच्छा होता, शर्माजी को यह लिखने का अवसर ही न मिलता कि "मेरा क़लम अब टूट गया है।" ईश्वर वह दिन न लावे कि शर्माजी की लेखनी विश्राम—स्थायी विश्राम—ले ले। अभी उनकी काँपती हुई उँगलियों से हिंदी-संसार को बहुत कुछ आशा है।

शर्माजी-रचित समालोच्य पुस्तक एक सामाजिक, मौलिक एवं शिक्षाप्रद उपन्यास है। मानव-जीवन का इसमें रहस्य भरा है। समाज में जिस प्रकार विचित्र-विचित्र प्रकृतियों और प्रवृत्तियों के लोग मिलते हैं; जिस प्रकार उनके विचारों और कार्यों में उच्चता और नीचता पाई जाती है, उसी प्रकार उनके जीवन की घटनाएँ प्रकृति-विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिये एक विचारणीय सामग्री भी हो जाती हैं। इसलिये इस उपन्यास में हमें एक ओर यदि सती गुणसुंदरी, वनसुंदरी, मनोरमा, लीलावती और सुकेशी-सरीखी पवित्र एवं उज्ज्वल चरित्रवाली स्त्रियाँ मिलती हैं, तो दूसरी ओर मुखिया और करोरी के निंद्य चरित्र भी मौजूद हैं। दोनों ही कोटि के पात्रों के चरित्र-चित्रण प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जीवन-संग्राम में पथ-प्रदर्शक एवं सहायक हो सकते हैं। इसी प्रकार पुरुष-पात्रों के चरित्र-चित्रण में काशीप्रसाद और बनारसीदास की कष्ट-सहिष्णुता, अयोध्याप्रसाद और विश्वभूषणदासजी का परोपकारी जीवन तथा रामाधीन की अपूर्व स्वाभाविक साधुता दर्शनीय है। उपन्यास और नाटकों में जब तक उच्च आदर्शों के निर्माण के लिये बाधाओं का वातावरण नहीं तैयार किया जाता, तब तक उन आदर्शों की यथेष्ट शोभा और महत्ता भी नहीं जान पड़ती। खरा सोना आग में ज्यों-ज्यों तपाया जाता है, त्यों-त्यों अधिक कांतिमय होता जाता है। इसीलिये उच्च आदर्शों के विरोधी पात्र भी आवश्यक होते हैं। विपत्ति की कसौटी में व्रजभूषणदास, मुरलीमनोहर एवं कुल-कलंक गुणमोहन के चरित्र इसी के उदाहरण होते हैं। ऐसे ही अनुकूल और प्रतिकूल पात्रों की जीवन-घटनाएँ 'विपत्ति की कसौटी' का निर्माण करती हैं।

किंतु इसकी भाषा आदि देखने से जान पड़ता है—जैसा कि शर्माजी ने लिखा भी है—इसकी रचना अवश्य ही २० वर्ष पीछे की है। आज हिंदी-संसार कला की दृष्टि से इस समय से बहुत आगे बढ़ गया है। इसलिये यह पुस्तक बहुत पीछे पड़ जाती है। साहित्य-कला का जो विकसित रूप आज वर्तमान है, उसकी दृष्टि से यह वर्ड क्लास की रचना कही जायगी। पर इस तर्ज़ की रचनाओं में इसे अच्छा स्थान मिलेगा। इस पुस्तक में दूसरी त्रुटि यह है कि पात्रों के मुँह से जो भाषा कहलाई गई है, उसमें कहीं-कहीं अश्लीलता और भोंडापन आ गया है।

यहाँ हम यह ज़रूर समझती हैं कि लेखक ने प्राचीन संस्कृत-रचनाओं का आदर्श सामने रक्खा है। कालिदास आदि ग्रंथकारों ने संस्कृत-नाटकों में, ग्रामीण एवं अपढ़ पात्रों के मुँह में, 'प्राकृत'-भाषा रख दी है, शर्माजी ने भी शायद उसी का अनुकरण किया है। पर अनुकरण का रूप बहुत बीभत्स है। बीस वर्ष पूर्व, संभव है, पाठक और समाज, दोनों ही शर्माजी की शब्दावली को रुचिकर समझते; किंतु आज वह न केवल अरुचिकर, अशिष्ट एवं अपठनीय ही है, वरन् घातक भी।

कुल ८३ प्रकरणों में कदाचित् १० ही ५ ऐसे होंगे, जिनमें '...नाथ' शब्द न आया हो। भाव-प्रवाह का ऐसी बुरी तरह से गला घोंटा गया है कि गुण-सुंदरी और मनोरमा-जैसी सती देवियों के श्रीमुखों से भी ऐसे ही अश्लील शब्द कहलाए गए हैं। पुनः ४५वें प्रकरण में भुवनमोहन के घर में निर्लज्जता-पूर्ण दृश्य दिखलाकर मानो शील को शूली दे दी गई है। बीस वर्ष पूर्व भी कदाचित् ऐसी रुचि को साहित्य-रसिक नापसंद करते।

एक तीसरी बात इस पुस्तक में यह खटकती है कि पूरी पुस्तक पढ़ जाने पर भी यह नहीं जान पड़ता कि लेखक के इस उपन्यास लिखने का उद्देश्य क्या है? इसमें कौन-सी विशेष पहेली सुलझाई गई है, इसका कहीं भी पता नहीं लगता। हाँ, घटनाएँ कुछ ऐसी बाँधी गई हैं कि 'विपत्ति की कसौटी' बन गई है। पर कला का उद्देश्य कहीं न तो प्रकट ही होता है, और न कहीं उसकी सिद्धि ही जान पड़ती है। इस कारण इसे निरुद्देश्य रचना कहें, तो कुछ अनुचित नहीं।

भाषा-संबंधी भोंडेपन की कुछ और बानगी लीजिए—

"ये भंगी नहीं, भंगी के जाम हैं। हरामज़ादी ने न-मालूम किस चांडाल से इन्हें जना है।" (पृष्ठ ६२)

"तुमसे कुछ होता-हुआता नहीं; इसलिये तुम ही इनको सिखाते हो।" (पृष्ठ ६३)

"गुलिया बीस वर्ष की पठिया थी।" (पृ० ६४)

ऐसे ही अनेकों उदाहरण दिए जा सकते हैं। व्याकरण-संबंधी त्रुटियाँ भी हैं। यथा—

"पंडिताइन कुरूपता की चोटी काट ली थी।" (पृ० १२४)

"मैं मुझसे भी अच्छी स्त्री से विवाह करा दूँगी।" (पृ० २६६)

"अभी यहाँ से निकल जा। काला मुँह करके जाना, तो फिर कभी तेरा मुँह मुझे न दिखलाना।"

इसी प्रकार "बाबू की तड़ाक-फड़ाक देखकर" (पृ० १२८) और "जा, तालाब में पड़ जा" आदि मुहावरों की भूलें हैं।

कहने का सारांश यह कि ऐसे अनेकों टाट के पैबंद उन जगहों पर भी मौजूद हैं, जहाँ पढ़ते समय कुछ यह आशा होने लगती है कि शायद अब यहाँ शालीनता मिलेगी।

इन्हीं सब बातों पर विचार करके मुझे दुःख से यह कहना पड़ता है कि पुस्तक सुसंपादित होकर निकलती, तो पढ़ने-योग्य होती, अथवा यह कि २० वर्ष पूर्व ही छपकर, फिर इसका दूसरा संस्करण न निकलता। हमारे समाज के लिये तो यह पुस्तक कदापि पढ़ने-योग्य नहीं। मुझे आशा है, पिता-तुल्य वयोवृद्ध लेखक मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे; क्योंकि साहित्य को आज कला की ज़रूरत है। कला-हीन साहित्य का ज़माना बहुत पीछे रह गया। अब प्रेम का स्वरूप 'प्यारी' और 'प्यारे' कहने अथवा लिखने में नहीं, प्रत्युत भावना और व्यंजना में है, जिसकी दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक का कुछ भी महत्त्व नहीं है।

कमलादेवी शर्मा

× × ×

प्रेम-पथिक—लेखक, श्रीरामचंद्र मिश्र; प्रकाशक, नंद-किशोर ऐंड ब्रदर्स, चौक, बनारस; पृष्ठ-संख्या २०८; मूल्य १)

यह एक सचित्र मौलिक उपन्यास है। किंतु रंग-बिरंगे मुखपृष्ठ के अतिरिक्त चित्रों का सर्वथा अभाव है। वास्तव में तो मुखपृष्ठ की सुंदरता (?) की अपेक्षा प्रेमचंदजी-लिखित भूमिका की शोभा अधिक है। मौलिकता तथा उत्साही लेखक की प्रथम कृति होने की दृष्टि से उपन्यास अच्छा है। रोचकता-पूर्ण वीर-रस के वर्णन तथा चरित्र-चित्रण में लेखक ने अनेक स्थलों पर अपनी नव जाग्रत् प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। उपन्यास के मुख्य पात्र कल्पित हैं; किंतु उन पर महाराष्ट्र-इतिहास का रंग चढ़ा दिया गया है। एकआध स्थल पर कथा का क्रम बिगड़ गया है, जो द्वितीय संस्करण में सुगमता-पूर्वक ठीक किया जा सकता है। भाषा सजीव है, और वर्णन रोचकता-पूर्ण। लेखक का परिश्रम सराहनीय है, और इनसे हिंदी के उपन्यास-साहित्य की वृद्धि की आशा की जा सकती है।

भवानीशंकर याज्ञिक

× × ×

'शाहज़ादा और फ़क़ीर' तथा 'उमरा की बेटी'—लेखक, रायसाहब पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए०; प्रकाशक, मिश्रबंधु-कार्यालय, जबलपुर; मूल्य ॥); पृष्ठ-संख्या ११२; स्कूली साइज़।

यह ऐतिहासिक 'कथा-माला' का प्रथम गुच्छ है। 'शाहज़ादा और फ़क़ीर' में मुग़ल-सम्राट् शाहजहाँ के प्रतिपक्षी शहरयार और दवीरबख़्श के प्रयत्नों का वर्णन है, और 'उमरा की बेटी' में शाहजहाँ के प्रतिपक्षी लोदीख़ाँ की वीर पुत्री जहाँनि(मा ?)रा की वीरता का। कुछ समय पूर्व द्विवेदीजी ने 'स्वदेश की कलिवेलिका' नाम की एक विस्तृत आख्यायिका लिखी थी। उसी तरह की ये दोनों भी हैं। नीरस ऐतिहासिक घटनाओं को इस पुस्तक में कहानियों का रूप देकर रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है। पर छपाई अच्छी नहीं है, और अशुद्धियाँ भी हैं। मुग़ल-ज़माने का इतिहास पढ़नेवाले इस पुस्तक से किसी अंश में लाभ उठा सकते हैं।

मातादीन शुक्ल

× × ×

उर्वशी (सचित्र उपन्यास)—लेखक, कविराज जयगोपालजी; प्रकाशक, चूनीलाल खन्ना, अध्यक्ष, शिरोमणि-पुस्तकालय, मोहनलाल रोड, लाहौर; आकार २०×३० सोलहपेजी; पृष्ठ-संख्या १२८

इसमें लेखक ने महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीय संस्कृत-नाटक को उपन्यास की पोशाक पहनाने का प्रयत्न किया है। जो सज्जनगण संस्कृत न जानने के कारण महाकवि कालिदास के उपर्युक्त ग्रंथ को नहीं पढ़ सकते, यह पुस्तक उनके काम की हो सकती है। पुस्तक अच्छी है, और सरल भाषा में लिखी गई है। प्रूफ़-संबंधी कई ग़लतियाँ रह गई हैं। भाषा भी कई स्थलों पर सुधारी जाने-योग्य है।

दयाशंकर दुबे

× × ×

नर-हत्या—लेखक, मुंशी दुबलाल, म्युनिसिपल ओवरसियर, मिर्ज़ापुर; पुस्तक मिलने का पता—नारायण-प्रदर्स, कंट्रेक्टर ऐंड कमीशन एजेंट, मिर्ज़ापुर; पृष्ठ-संख्या १२२; छपाई सुंदर; मूल्य १)

दहेज़ की घातक प्रथा और उससे पैदा होनेवाले वृद्ध-विवाह के अत्याचार इस नाटक में दिखाए गए हैं। आनंदी और सुशीला, दो कन्याएँ हैं। दोनों ही के बाप दरिद्र हैं। आनंदी का विवाह एक बूढ़े सेठ से होता है, लेकिन आनंदी सेठ के एक मुसाहिब द्वारा घर से निकाल दी जाती है। वह सेठजी की सारी जमा-जथा लेकर निकल आती है। फिर नाना प्रकार की दुर्गति के बाद गंगा में कूदकर प्राण त्याग देती है। सुशीला का पिता रामनाथ भी ग़रीब आदमी है। दहेज़ ही की चिंता में वह मर जाता है। सुशीला भी गंगा में कूदकर अपनी विपत्ति का अंत कर देती है। आनंदी के पिता ने सेठजी से रुपए लेकर उसका विवाह किया था। रामनाथ ने कन्या को क्वाँरी रक्खा, पर बेचा नहीं। वह दहेज़ देने की सामर्थ्य नहीं रखता, पर इतना नीच नहीं है कि कुछ लेकर कन्या को किसी बूढ़े के गले मढ़ दे। नाटक खेला जाने-योग्य है या नहीं, यह तो स्टेजवाले जानें; पर इसका दर्शकों पर प्रभाव अवश्य पड़ेगा। आनंदी के चरित्र में इतना दोष अवश्य आ गया है कि वह बड़ी आसानी से किशोर के प्रलोभन में पड़ जाती है। सुशीला के प्राण-त्याग करने की कोई ज़रूरत न थी। अगर वह बरातियों द्वारा निकाले जाने के बाद बच जाती, और उसका विवाह कृष्णचंद्र से हो जाता, तो नाटक सुखांत हो जाता और उसके प्रभाव में कोई बाधा न पड़ती। कहीं-कहीं लेखक महोदय ने भारतवासियों से दहेज़-प्रथा के संबंध में अपील की है। यह पुस्तक तो स्वयं अपील है, इन अपीलों की ज़रूरत न थी। इससे साहित्य का रूप प्रोपेगैंडा से मिल जाता है, जो वांछनीय नहीं।

× × ×

रामदुलारी या सदाचार की देवी—लेखक और प्रकाशक, बाबू सूरजमल, सार्टिफ़ वकील, देवबंद, सहारनपुर; मूल्य १); पृष्ठ-संख्या १८०; काग़ज़, छपाई साधारण।

इस पुस्तक में भी वैवाहिक विषमताओं ही के सुधारने की चेष्टा की गई है। रामदुलारी एक ग़रीब आदमी की लड़की है। उसका पिता रुपए लेकर उसकी शादी एक कुचरित्र सेठ से कर देता है। रामदुलारी इनकार करती है; पर उसका विवाह ज़बरदस्ती कर दिया जाता है। पतिगृह में आकर दुलारी सेठ से भागती रहती है। सेठ क्रोध में आकर उसे कष्ट देना शुरू करते हैं। दुलारी ३ महीने तक कष्ट झेलने के बाद अपनी दासियों की सहायता से हाकिम-ज़िले को सेठजी के अन्याय की शिकायत लिख भेजती है। नतीजा यह होता है कि दुलारी को सेठ के घर से छुटकारा मिल जाता है। दोनों दासियाँ

भी उसके साथ चली जाती हैं। इन दासियों के साथ दुलारी स्थान-स्थान घूमकर समाज के हाथों सताई जाने-वाली बालिकाओं का उद्धार करती फिरती है। सेठजी भी बाद को पछताते और अपना सर्वस्व वेश्याओं के सुधार पर अर्पण कर देते हैं। इसे उपन्यास तो नहीं कह सकते; पर इसमें सामाजिक समस्याओं के कितने हो मार्मिक चित्र अंकित किए गए हैं। रामदुलारी का चरित्र कुछ अस्वाभाविक हो गया है। साहित्य द्वारा समाज-सुधार का प्रयत्न करना स्तुत्य है—साहित्य का यह एक प्रधान कार्य है। लेकिन साहित्य का मुख्य विषय मनुष्य है, सामाजिक अत्याचारों की तालिका नहीं।

× × ×

ललित-मनोरमा—लेखक, ठा० अयोध्याप्रसादसिंह, मलयपुर; प्रकाशक, श्रीओंकारशरणसिंह, मलयपुर; मूल्य २।); पृष्ठ-संख्या ४१६

अँगरेज़ी-भाषा में कोई पुस्तक है "इंडियन मोंटो क्रिस्टो"। उसी के आधार पर 'ललित-मनोरमा' की रचना हुई है। अँगरेज़ी-आधार का विषय क्या है, इसका इस पुस्तक से कुछ पता नहीं चलता। एक युवक कुमार्ग में पड़ जाने के कारण पिता के क्रोध का पात्र बन जाता है, और इधर से कोई सहारा न पाकर जीविका की खोज में घर से निकल खड़ा होता है। कुछ दिन बाद उसकी भेंट एक योगी से होती है। योगिराज के पास अपार धन है। ललित से प्रसन्न होकर योगिराज वह सारी संपत्ति उसे दे देते हैं। इस धन को वह देशोद्धार में लगा देता है।

उधर ललित की नवविवाहिता युवती मनोरमा भी पति को खोजने घर से निकल खड़ी होती है, और एक पाखंडी साधु के फंदे में पड़कर आसाम के एक चा के बग़ीचे में आ पहुँचती है। वहाँ बग़ीचे के दुश्चरित्र दोगले मैनेजर से अपने सतीत्व की रक्षा करने में उसे बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अंत में ललित के ही हाथों—जो अब अतुल धन के स्वामी महंतजी हो गए हैं—उसका उद्धार होता है। पुस्तक रोचक है; पर इसमें एक बड़ा दोष यह है कि कथा वर्णनात्मक हो गई है। उपन्यास वही अच्छा समझा जाता है, जिसमें संभाषण अधिक और वर्णन कम हो। लंबे वृत्तांतों से पाठक का जी ऊब जाता है।

× × ×

आत्मत्याग की सुरस कथाएँ—अनुवादक, जी० ए० भालेराव; प्रकाशक, रामचंद्र भसा भालेराव, लकड़गंज, जबलपुर; मूल्य १); पृष्ठ-संख्या १७५

अँगरेज़ी में गोल्डेन डीड्स नाम की एक बहुत ही प्रसिद्ध पुस्तक है। उसमें कितनी ही गौरव-पूर्ण ऐतिहासिक कथाओं का संग्रह किया गया है। उसकी भाषा और शैली, दोनों ही बहुत परिमार्जित हैं। यह पुस्तक उसी अँगरेज़ी-पुस्तक के मराठी-अनुवाद का हिंदी-अनुवाद है। ऐसी शिक्षाप्रद और स्फूर्तिदायक पुस्तकों के अनुवाद का तो कोई विरोध नहीं कर सकता; लेकिन अनुवाद मूल-पुस्तक का होना चाहिए, न कि उसके अनुवाद का। मूल-पुस्तक की साहित्यिकता बहुत कुछ तो पहले ही, अनुवाद में ग़ायब हो जाती है, और बची-खुची दूसरे अनुवाद में उड़ जाती है। फ्रेंच, जर्मन या रूसी-भाषाओं की पुस्तकों के विषय में तो यह मजबूरी है कि उन भाषाओं को सीखने का यहाँ कोई साधन नहीं, हारकर हमें अँगरेज़ी-अनुवादों का आश्रय लेना पड़ता है। लेकिन गोल्डेन डीड्स के विषय में तो ऐसी कोई बाधा नहीं थी। अनुवाद नीरस हो गया है। और, अनुवाद नहीं, केवल उन कहानियों का सारांश-मात्र शेष रह गया है।

प्रेमचंद

× × ×

५. बालोपयोगी

गधे की कहानी—लेखक, पं० भूपनारायण दीक्षित, बी० ए०, एल्०टी०; पृष्ठ-संख्या ४+१२२; मूल्य ॥); काग़ज़, छपाई, सफ़ाई और बँधाई अत्युत्तम।

लेखक महाशय ने यह पुस्तक एक अँगरेज़ी-पुस्तक देखकर स्वतंत्र रूप से लिखी है। उन्होंने भारतीय वातावरण के ख़याल से ही ऐसा किया है, और अच्छा ही किया। हम बिना विचार किए, आँखें मींचकर अनुवाद करने के पक्षपाती भी नहीं; क्योंकि ऐसा करने से व्यर्थ ही हमारी मातृभाषा अन्य भाषाओं की ऋणी हो जाती है। और, कौन स्वभाषाभिमानी इस व्यर्थ ऋण को पसंद करेगा? पुस्तक बालकों के लिये लिखी गई है। बालकों की पुस्तकों पर राय देना लड़कों का काम नहीं। हमने यह पुस्तक पहले दो शिक्षकों को दिखलाई। एक महाशय ने सम्मति दी—"पुस्तक निःसार है। ऐसी पुस्तकें बालकों के हाथ में देने से लाभ?" दूसरे महाशय की सम्मति है—"पुस्तक की भाषा बहुत ही सरल

है। इसके पढ़ने से बालकों के भाषा-ज्ञान में क्या ख़ाक वृद्धि होगी ?" तब खिन्न होकर हमने पुस्तक अपनी कक्षा के बालकों को सौंप दी। अब इस पर कुछ बालकों की सम्मति देखिए—

भोलाशंकर—"बड़ी मज़ेदार किताब है। मुझे तो पढ़कर बड़ी हँसी आई। गुरुजी, ऐसी पुस्तकें हमें हमेशा दिया कीजिए।"

रामगोपाल—"गधा बड़ा चतुर था। जिन आदमियों ने उसे हैरान किया, वे बड़े ख़राब थे।"

अब्दुलहफ़ीज़—"किताब पढ़ने में ख़ूब जी लगता है। इस गधे के बराबर चतुर तो कोई आदमी भी न निकलेंगे। अच्छा, मैं भी चतुर बनूँगा।"

गिरिजाशंकर—"मैं तो कई घंटे तक पढ़ता रहा। जब किताब पूरी हो गई, तब चैन पड़ी।"

गोपालराव—"किताब समझ में ख़ूब आती है। आप जिस शब्द के मायने पूछें, मैं अभी बता दूँ।"

हम समझते हैं, बालकों की इन सम्मतियों ने लेखक, संपादक और प्रकाशक के परिश्रम को सफल कर दिया है। हमें तो इस बात से बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि जब शिक्षक तक बालकों के 'मनोविज्ञान' से परिचित नहीं हैं, तब मामूली लोगों का क्या कहना! इसीलिये हमारा कहना है कि बालकों की पुस्तकों की परीक्षा करना सबका काम नहीं—बालकों की पुस्तकों की परीक्षा बालक ही कर सकते हैं। पुस्तक में गधे ने मनुष्यों के प्रति जो व्यंग्य वचन कहे हैं, वे बड़े ही मूल्यवान् और शिक्षाप्रद हैं। पुस्तक सचित्र है। यद्यपि चित्रकला की दृष्टि से भी प्रशंसनीय है; पर बालक ऐसे चित्र अधिक पसंद नहीं करते। वे गहरे रंग के नेत्ररंजक चित्र ही अधिक पसंद करते हैं। यदि इस पुस्तक में ऐसे चित्र दिए जाते, तो उसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती।

× × ×

नटखट पाँड़े—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित; पृष्ठ-संख्या ४+१६५; मूल्य १॥) ; कागज़, छपाई, सफ़ाई और बँधाई अत्युत्तम।

दीक्षितजी ने इस पुस्तक की रचना भी स्वतंत्र रूप से एक अँगरेज़ी-पुस्तक देखकर की है। यह पुस्तक भी हमने पूर्वोक्त शिक्षक महाशयों को दी थी। एक साहब बोले—"यह तो गधे की कहानी से भी बढ़कर है।" दूसरे ने कहा—"ऐसी पुस्तकें बालकों के हाथ में देना उन्हें बरबाद करना है।" अब बालकों की राय सुनिए—

रामगोपाल—"हमारी कक्षा का सुखनंदन पाँड़े भी नटखट पाँड़े से मिलता-जुलता है। पर सुखनंदन ज़्यादा मूर्ख है—उस पर मार पड़नी चाहिए।"

सुखनंदन—"अब मैं 'नटखट' न बनूँगा; क्योंकि नटखट पाँड़े नटखटी करने से विद्या नहीं पढ़ सका!"

विश्वनाथ—"इसमें तो बड़ा ही मज़ा है। बड़ी हँसी आती है।"

गजाननराव—"जब मास्टर साहब बुरे काम करते हैं, तब लड़के क्यों न करें।"

बाबूलाल—"भई, विद्या पढ़ते समय नटखटी करना अच्छा नहीं; नहीं तो गधे ही बने रहोगे।"

बालकों की ये सम्मतियाँ भली भाँति पुस्तक की उपयोगिता को सिद्ध कर देती हैं। वास्तव में पुस्तक हास्य-रस से शराबोर है। हमें इसे पढ़ते समय बाज़-बाज़ दफ़ा तो इतनी हँसी आई कि हमसे बिना खिलखिलाए न रहा गया। इसे पढ़कर किसी भी व्यक्ति को अपने विद्यार्थी-जीवन के दृश्य याद आए बिना नहीं रह सकते। इस पुस्तक के चित्र पहली पुस्तक की अपेक्षा ज़्यादा बढ़िया और चित्ताकर्षक हैं।

इन पुस्तकों को लिखकर दीक्षितजी ने बाल-साहित्य की ही सेवा नहीं की है, हास्य-रस के भांडार को भी दो उपयोगी एवं मूल्यवान् रत्नों से समृद्धिशाली बनाया है। इन पुस्तकों की भाषा बहुत ही सरस और बामुहावरा है। ऐसी सुंदर भाषा हिंदी की बहुत कम पुस्तकों में मिलेगी। हम आशा करते हैं कि हिंदी के पाठक अपने बालकों के हाथों में ये उपयोगी पुस्तकें ज़रूर देंगे। इन पुस्तकों के सजिल्द संस्करण भी ॥) प्रति पुस्तक अधिक देने से मिल सकते हैं।

ज़हूरबख़्श

× × ×

खेल—लेखक, रमाशंकर सक्सेना; प्रकाशक, रामशरण सिंहल, हरप्रसाद-प्रेस, बुलंदशहर; पृष्ठ-संख्या २७२; मूल्य १॥)

इस पुस्तक में कुल मिलाकर ३७८ खेलों का वर्णन है। प्रारंभ में खेल खेलने की कुछ 'हिदायतें' भी हैं। लेखक का कहना है कि पुस्तक में "सिर्फ़ वही हिंदोस्तानी

खेल दिए गए हैं, जो सीधे-सादे, आसान और बच्चों को पसंद आते हैं। यह (?) खेल हिंदोस्तान के किसी-न-किसी हिस्से में भिन्न-भिन्न नामों से खेले जाते हैं"। भूमिका में तो हिंदोस्तानी खेलों के नाम की दुहाई दी गई है; पर पुस्तक में "फ़ुटबाल", "रगबी फ़ुटबाल", "वॉली बाल", "बास्केट बाल", "हैंड बाल", "राउंड बाल", "हाकी", "बैडमिंटन", "पिंगपांग", "टेनिस", "क्रीकेट", तथा "पुशबाल" आदि खेलों का भी वर्णन है। यदि ये खेल हिंदोस्तानी हैं, तब तो इँगलिस्तान को भी हिंदोस्तान कहना पड़ेगा।

लेखक ने इस पुस्तक की रचना क्यों की, इसका भी कारण सुनिए—एक बार आपको "एक पादरी साहब से बातचीत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। बातों-बातों में पादरी साहब ने कहा कि मुझे खेद है कि हिंदोस्तानी खेल बहुत कम हैं।......मैंने उनको बहुत-से हिंदोस्तानी खेल बतलाए, मगर वह (?) हद्दी (?) अँगरेज़ों की तरह संतुष्ट न हुए। उसी समय मैंने हिंदोस्तानी खेलों के संग्रह करने की प्रतिज्ञा कर ली।" इससे भी यही मालूम पड़ता है कि आरंभ में हिंदोस्तानी खेलों का संग्रह करना ही लेखक का एकमात्र उद्देश्य था। पर बाद को किसी कारण-वश अँगरेज़ी खेल भी अपना लिए गए।

पुस्तक के तीसरे खंड में स्काउटिंग से संबंध रखनेवाले खेल दिए गए हैं। ये भी प्रायः सभी विदेशी हैं। हाँ, उन्हें देशी पोशाक अवश्य पहना दी गई है। अन्य खंडों में भी जहाँ-तहाँ विदेशी खेल आए हैं।

पुस्तक अच्छी है। खेलों का वर्णन ऐसी सुगम भाषा में किया गया है कि साधारण हिंदी जाननेवाले भी उन्हें बख़ूबी समझ सकते हैं। पुस्तक क्या है, खेलों का कोष है। हिंदी में खेलों का इतना बड़ा संग्रह शायद यह पहला ही है। हम लेखक को इस पुस्तक की रचना के लिये बधाई देते हैं। किंतु पुस्तक की भाषा में कहीं-कहीं संशोधन की आवश्यकता है। छापे की भी कुछ भूलें रह गई हैं।

× × ×

सियार पाँड़े—लेखक, पं० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; पृष्ठ-संख्या ६६; मूल्य ।=)

यह बाल-मनोरंजन-माला का दूसरा पुष्प है। चार सादे चित्र हैं। कवर पर एक रंगीन चित्र भी है। पुस्तक नयनाभिराम है। इसमें एक सियार की आत्मकहानी है। सियारों को कितनी ही प्रचलित कहानियों को घटा-बढ़ा और तोड़-मरोड़कर इसकी रचना हुई है। पुस्तक का अंतिम भाग Reynard the fox-नामक एक अँगरेज़ी-पुस्तक के आधार पर लिखा गया है। अतएव उन पुस्तकों तथा कहानियों का अवश्य ज़िक्र होना चाहिए था, जिनके आधार पर पुस्तक की रचना हुई है। पुस्तक मनोरंजक है।

पुस्तक की भाषा सरल है, पर शुद्ध और मुहावरेदार नहीं। प्रांतीयता से भी ओतप्रोत है। हाँडी के कुछ चावल देखिए—

"उन्हें एक लड़की थी", "ख़बर मिला", "पिताजी ने यह घटना इसके पिता से कहा", "दिन में धूप लगी रहने पर", "हमारा वही लगन है", "मुझे एक लड़का हुआ", "जलदी", "दीया", "आवश्यकता पहुँच जाने पर", "घर की किवाड़ खटखटाई", "मेरा परिवार फैल गया", "अकिल", "कीचड़ भरी थी", "खढ़ोर", "भानस", "घलथरी", "गोपों", "टहाटही इँजोरिया थी।"

पुस्तक में एक कविता भी है। सियार पाँड़े के विवाह के अवसर पर उसकी रचना हुई है। वाक़ई अद्भुत रचना है। दो-चार पंक्तियाँ तो देख ही लीजिए—

बेंगदास ढोल बजाते सिर पर पगड़ी देकर।
झिंगुर मीयाँ पीपही टेरें बच्चा कच्चा लेकर॥
घँघरा पहिन गिलहरी नाचती, खिलिर देती ताल।
बंदरजी सारंगी रेतें भाल बजाता गाल॥
मगजोगनी लालटेन बालतीं चकमक सारी रात।
सब बरियतिया हँस-हँसकर खाते मट्ठा भात॥

ऐसी अपूर्व कविता पर कुछ लिखना व्यर्थ होगा।

यदि पुस्तक की भाषा शुद्ध होती, तो वह बालकों के लिये उपयोगी हो सकती थी। पर ऐसी हालत में तो यह बालकों को अशुद्ध भाषा सिखलाने का एक साधन होगा।

× × ×

शिवाजी—लेखक और प्रकाशक, उपर्युक्त; पृष्ठ-संख्या ७१; मूल्य ।)

यह शिवाजी का जीवन-चरित्र है। पुस्तक अच्छी है; पर कहीं-कहीं भाषा खटकती है।

रूपनारायण दीक्षित



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुभीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—

(१) "विपत्ति की कसौटी"—लेखक, श्रीयुत मेहता लज्जाराम शर्मा। मूल्य २॥)

(२) "त्रिधारा" (बँगला अनुवाद)—मूल्य १)

(३) "पद्य-पुष्पावली"—श्रीयुत पं० कामताप्रसादजी 'गुरु' की कविताओं का संग्रह। मूल्य ॥=)

(४) "बीरबल-विवेक"—पं० नारायणप्रसाद 'बेताब' द्वारा संगृहीत। मूल्य ।≈)

(५) "श्यामायन"—लेखक, श्रीयुत मुंशी मथुराप्रसादजी 'मथुरेस'। मूल्य ।-)

(६) "सहस्र-रजनी-चरित्र"—अनुवादकर्ता, श्रीयुत प्यारेलालजी गर्ग। मूल्य ३॥)

(७) "हिंदी-पद्य-रचना"—लेखक, श्रीयुत रामनरेशजी त्रिपाठी। मूल्य ।)

(८) "रानी सुंदरी"—लेखक, पं० ईश्वरीप्रसादजी शर्मा। मूल्य १।)

(९) "पौराणिक कथाएँ"—हिंदी-पुस्तक-एजेंसी द्वारा संगृहीत। मूल्य २॥≈)

(१०) "बारह बादाम"—श्रीयुत रमेशचंद्र त्रिपाठी द्वारा संपादित। मूल्य १॥)

(११) "पतिमंदिर"—लेखक, श्रीयुत नारायणचंद्र भट्टाचार्य। मूल्य १॥≈)

(१२) "सभाविज्ञान और वक्तृता"—लेखक, श्रीयुत देवकीनंदन एम्० ए०। मूल्य १॥)

(१३) "प्रेम-प्रतिमा"—रचयिता, श्रीयुत प्रेमचंदजी बी० ए०। मूल्य २)

(१४) "संतति-शास्त्र"—लेखक, अयोध्याप्रसादजी भार्गव। मूल्य १॥)

(१५) "काया-कल्प"—रचयिता, श्रीयुत प्रेमचंदजी बी० ए०। मूल्य ३॥)



१. सप्तदश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

अब की सप्तदश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन भरतपुर में होनेवाला है। भरतपुर-नरेश स्वयं हिंदी के बड़े प्रेमी हैं। राजपूताने के हिंदी-सेवक संख्या में कम नहीं हैं। इसलिये हिंदी-संसार का यह आशा करना कि भरतपुर का सम्मेलन अभूतपूर्व होगा, उसकी विशेषता उल्लेख-योग्य होगी, कोई आश्चर्य की बात नहीं; किंतु प्रकाशन-मंत्री की एक सूचना से यह विदित होता है कि राजपूताने के हिंदी-प्रेमी लोग यथोचित रूप से इस सम्मेलन की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। अभी वहाँ यथेष्ट सभ्य भी नहीं हो पाए हैं। अतएव विशेष सहायता प्राप्त करने के उद्योग की बात सुनाई पड़ रही है। यह राजपूताने के हिंदी-प्रेमियों के लिये लज्जा की बात है। अब सम्मेलन के अधिवेशन का समय समागतप्राय है। स्वल्प समय के भीतर ही अधिवेशन की तिथियों के निश्चय की गुंजाइश देख पड़ती है। हमारी समझ में अब भी यदि राजपूताने के हिंदी-प्रेमी सज्जन धन-जन से सहायता करना अपना कर्तव्य समझकर इस ओर दत्तचित्त हों, तो वे ही सब कुछ कर सकते हैं। उन्हीं की आर्थिक सहायता से यह सम्मेलन कुछ स्थायी, उपयोगी कार्य कर सकता है। किंतु यदि दुर्भाग्य-वश ऐसा न हो सके, तो स्वागतकारिणी समिति की सहायता के लिये धन और जन अर्पण करना प्रत्येक हिंदी-सेवक को अपना कर्तव्य समझना चाहिए। प्रत्येक प्रांत के हिंदी भाषाभाषी हिंदी-भक्त सज्जनों से हम सविनय प्रार्थना करते हैं कि वे इस कार्य को केवल राजपूताने के ही ऊपर न छोड़ दें। इस अधिवेशन की सफलता के लिये धन-जन की सहायता करना प्रत्येक प्रांत के प्रत्येक हिंदी-सेवक का प्रधान कर्तव्य है। हमें आशा है, प्रत्येक प्रांत के प्रसिद्ध हिंदी-सेवक सज्जन यथाशक्ति यथासंभव शीघ्र-से-शीघ्र भरतपुर की स्वागतकारिणी समिति के पास धन और जन की सहायता पहुँचाने की उदारता दिखावेंगे, जिसमें यह अधिवेशन सर्वथा सफलता के साथ सुसंपन्न हो सके। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि इस अधिवेशन में पिछले महत्त्व-पूर्ण प्रस्तावों की पूर्ति का पूर्ण प्रबंध किया जा सके; भारत का प्रकृत प्रकृष्ट इतिहास लिखवाने का प्रबंध हो सके, और बृहत् संग्रहालय के लिये प्रयोजनानुरूप आयोजन किया जा सके। अन्य अधिक-संख्यक प्रस्ताव न किए जाकर अगर इन पिछले दोनों महत्त्व-पूर्ण प्रस्तावों की पूर्ति का ही पूरा प्रबंध हो जाय, तो यह अधिवेशन स्मरणीय होगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि ऐसा ही हो।

× × ×

२. सप्तदश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति

आगामी सप्तदश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापतित्व

के लिये लोग अपनी-अपनी समझ के अनुसार नाम-निर्देश कर रहे हैं। हम भी गत मास की संख्या में अपनी सम्मति प्रकट कर चुके हैं। कई सज्जनों ने हमारे माननीय वयोवृद्ध पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के संबंध में यह लिखा है कि उन्हें अब की बार सभापति-पद स्वीकार करने के लिये विवश किया जाय। हमने इसके पहले ही यह बात लिखी थी। हमारा कहना था कि यदि बीमारी के कारण द्विवेदीजी वह पद और इस पद की ज़िम्मेदारी न स्वीकार करना चाहें, तो उन्हें नाम-मात्र सभापति बनाकर बिठा दिया जाय; बाक़ी सब काम अन्य कोई सज्जन कर देंगे। हमारा मतलब यह था कि द्विवेदीजी के प्रति हिंदी-प्रेमियों की जो भक्ति है, जो श्रद्धा और आदर की भावना है, उसकी पूर्ति इस प्रकार हो जायगी। किंतु उस दफ़े हमारे कहने के अनुसार उद्योग नहीं किया गया। केवल सभापति-पद स्वीकार करने की प्रार्थना ही की गई, जिसे श्रद्धेय द्विवेदीजी ने सधन्य-वाद अस्वीकृत कर दिया। इस बार यदि हमारे पूर्व-प्रस्ताव के अनुसार द्विवेदीजी को विशेष सभापति बनाने का प्रयत्न किया जाय, और कार्य-संचालन के लिये कोई दूसरे सज्जन चुन लिए जायँ, तो बहुत अच्छा हो। द्विवेदीजी प्रायः रुग्ण रहते हैं। आपकी आयु भी, आजकल के औसत को देखते, यथेष्ट हो चुकी है। अतएव हिं० सा० स० के सभापति के आसन को आपके चरणों की रज से पवित्र और गौरवान्वित करा लेना हिंदी-संसार का प्रथम और प्रधान कर्तव्य है। इसमें चूकने से बड़ा भारी पछतावा रह जायगा, जैसा कि पूज्यपाद पं० बालकृष्णजी भट्ट आदि एक-दो वंदनीय विद्वानों के संबंध में हो चुका है। हमारी हार्दिक इच्छा है कि इस बार विशिष्ट अध्यक्ष द्विवेदीजी बनाए जायँ। आशा है, हिंदी-जगत् अपने कर्तव्य का पालन कर द्विवेदीजी के ऋण से मुक्त होने की चेष्टा अवश्य करेगा।

× × ×

२. अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का द्वितीय अधिवेशन

कानपुर में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन जिस स्थिति और जिस रूप में गत वर्ष हुआ था, उसके बारे में हम कुछ लिखना नहीं चाहते। कवियों के समुदाय को उसका सारा इतिहास और उसकी भीतरी हालत अच्छी तरह मालूम है। ख़ैर, गत वर्ष कानपुर में कांग्रेस के साथ ही स्थानीय कवियों के परस्पर विरुद्ध और क्रुद्ध दो दलों की गंदी दलबंदी की दलदल में पड़कर अधिवेशन किसी तरह हो गया था। उसमें अंतिम दिन अगले वर्ष के लिये कार्यकर्ताओं और पदाधिकारियों का चुनाव भी हुआ था। साथ ही लखनऊ में द्वितीय अधि-वेशन होना निश्चित हुआ था—निमंत्रण स्वीकृत किया गया था। उसके बाद आज तक कोई कार्यवाही नहीं हुई। जहाँ तक हमें मालूम है, कानपुर के कार्यकर्ताओं ने (कारण, कानपुर में ही स्थायी समिति का कार्यालय रहना निश्चित हुआ था, और उसके अधिकांश कार्यकर्ता भी कानपुर के ही रहनेवाले चुने गए थे) आज तक कवि-सम्मेलन के आगामी अधिवेशन के संबंध में कोई काररवाई नहीं की, और न इस विषय की कोई सूचना ही निकाली। हम आज इसीलिये यह नोट लिखकर अपने मित्र कार्यकर्ताओं को सचेत करना चाहते हैं कि वे अब अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये सचेत हो जायँ, अपने ऊपर लिए हुए कर्तव्य को सुसंपन्न करने के लिये तत्पर हो उठें, अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन के भावी अधिवेशन की तैयारी में अपनी सारी शक्ति लगा दें, और लखनऊ की स्वागतकारिणी समिति का संगठन करनेवालों को सम्यक् सहायता करें। यदि कानपुर और लखनऊ के कविता-प्रेमी कार्यकर्ता अब भी न चेतेंगे, आलस्य-रहित होकर कर्मवीर होने का परिचय न देंगे, तो हमें विवश होकर यह मान लेना पड़ेगा कि कवि कहलानेवाले लोग केवल वचन-वीर होते हैं, कार्य-कुशल नहीं। साथ ही अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन के उज्ज्वल भविष्य के विषय में हमने जो कुछ सोच रक्खा था, उसके संबंध में भी हमें हताश होने के लिये लाचार होना पड़ेगा। आशा है, ऐसा अवसर न आने पावेगा।

× × ×

४. मनोरमा और पं० रामनरेशजी त्रिपाठी

प्रयाग से निकलनेवाली मासिक पत्रिका मनोरमा में प्रायः व्यक्तिगत आक्रमण हुआ करते हैं। उसकी फ़ौवारे की छींट में हम पर भी अक्सर अनुचित रूप से आक्रमण किए गए हैं। पर हमने अपनी नीति के अनुसार उसके असंगत आक्रमणों का प्रतिवाद करना या उत्तर देना उचित नहीं समझा। हम प्रायः ऐसे आक्रमणों की उपेक्षा ही करते रहे हैं, और आगे भी करते रहेंगे। हमारी धारणा है कि इस प्रकार व्यक्तिगत आक्रमणों का उत्तर देने में अन्य पक्ष को भी निंदनीय नीति का आश्रय लेना

अनिवार्य हो जायगा। इस दशा में साहित्य-संसार में तू-मैं-मैं की जो कीचड़ उछलेगी, वह कदापि वांछनीय नहीं। किंतु सभी लोग तो इस क्षमा-नीति अथवा उपेक्षा-प्रयोग के अनुगामी नहीं हो सकते। उक्त पत्रिका के किसी गत अंक में हमारे मित्र पं० रामनरेश त्रिपाठीजी के संबंध में एक ऐसी कविता प्रकाशित की गई थी, जिसे त्रिपाठीजी ने अपनी मान-हानि का कारण समझा है। उक्त त्रिपाठीजी ने उस कविता के लिये वकील की मार्फ़त उक्त पत्रिका के संपादकों और प्रकाशक को नोटिस दे दिया है कि वे उस कविता को प्रकाशित करने की ग़लती के लिये लिखित रूप से क्षमा-प्रार्थना करें; अन्यथा उन पर मान-हानि की क्षति-पूर्ति के लिये अदालत में दावा किया जायगा। इस समाचार को सुनकर वास्तव में हमें हार्दिक दुःख हुआ। हम नहीं चाहते कि हमारे घर की ऐसी बातें, जिन पर अन्यभाषा-भाषियों को हँसने का मौक़ा मिल सकता है, सर्वसाधारण में प्रकाशित हों। पहले तो ऐसी घटना होनी ही न चाहिए; और अगर दुर्भाग्य-वश ऐसा होने का अवसर उपस्थित ही हो जाय, तो उसका समझौता आपस में ही, घर में ही, चुपचाप हो जाना चाहिए। हम उक्त पत्रिका के संपादकों को मित्र-भाव से यह सलाह देते हैं कि वे, यदि उनसे ग़लती हो ही गई है तो, त्रिपाठीजी को संतुष्ट कर लेने का प्रयत्न करें—आपस में ही फ़ैसला कर लें; अदालत तक जाने की नौबत न आने दें। इसी में उनकी शोभा है। ग़लती हो जाना कोई असंभव बात नहीं। मनुष्य-मात्र से ग़लती हो जाती है। अपनी ग़लती को स्वीकार कर लेना ही उचित है। साथ ही त्रिपाठीजी से भी हमारा यही निवेदन है कि वह उक्त संपादकों की इस चूक को क्षमा कर दें। क्षमा करने में ही उनका गौरव है। आशा है, हमारी यह प्रार्थना निष्फल न होगी। इसी संख्या में अन्यत्र एक लेख त्रिपाठीजी की कविता पर अयथा-आक्रमण के प्रतिवाद में छपा है। हम अपनी नीति के अनुसार उसे भी न छापते। पर वह एक प्रतिष्ठित हिंदी-लेखक का लिखा हुआ है, और उनके विशेष आग्रह के कारण छापा गया है।

× × ×

५. चोर लेखक

बड़े ही खेद और लज्जा की बात है कि हिंदी के लेखकों और ग्रंथकारों में चोरी करके नाम कमाने की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। हमने दो-तीन बार माधुरी में ऐसे लेखकों के बारे में लिखा है—कड़े शब्दों में लिखा है। हमारे सिवा अन्यान्य पत्रों में भी कई सज्जनों ने ऐसे चोर-लेखकों की करतूत पर प्रकाश डाला है। फिर भी ऐसे महाशय अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आते। समझ में नहीं आता, ऐसे लोगों को होश में लाने का—उनकी चोरी करने की आदत छुड़ाने का—क्या उपाय किया जाय? यदि उनमें लज्जा का लेश होता, कुछ भी समझदारी की मात्रा होती, तो वे एक बार तिरस्कृत होकर, औरों की लांछना-भर्त्सना देखकर, सचेत हो जाते! ऐसे सज्जनों के संबंध में हम अधिक लिखना नहीं चाहते। कारण, अधिक लिखना व्यर्थ ही है। केवल इतनी ही प्रार्थना हम करते हैं कि चोरी के माल से कोई मालदार नहीं होता। वह चोरी का माल ज़ाहिर होने पर लोक-लज्जा का ही कारण होता है। निर्धन रहना अच्छा; लेखक, कवि या ग्रंथकार के गौरव से वंचित रहने में कुछ हेठी नहीं; पर पराए धन से धनी कहलाने की कामना, पराई रचना चुराकर अपने नाम से प्रकाशित करके कवि, लेखक या ग्रंथकार के नाम से यशस्वी होने की इच्छा अच्छी नहीं। आप अच्छा या बुरा, जैसा कुछ लिख सकते हैं, लिखिए। उससे यदि आप पर प्रतिकूल समालोचना का वार हो, तो वह भी आपके लिये गौरव-जनक होगा। आप धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते—अगर सच्ची लगन है तो—कभी लायक़ लेखकों की श्रेणी में स्थान पा सकेंगे। किंतु यदि औरों के दिमाग़ की दौलत की बदौलत दुनिया में वाहवाही लूटने की लटी लत लगा लेंगे, तो कहीं के नहीं रहेंगे। किंतु केवल हिंदी के लेखकों में ही यह दोष नहीं है। बँगला और अँगरेज़ी के लेखक भी इस कुप्रवृत्ति से नहीं बचे हैं। हाल में प्रवासी में एक ऐसे ही साहसी चोर साहित्यिक की कीर्ति प्रकाशित हुई है। एक साहब बँगला की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका मानसी ओ मर्मवाणी के कार्यालय में अक्सर आते-जाते थे। संपादकीय विभाग के लोगों से उन्होंने हेलमेल भी अच्छी तरह बढ़ा लिया था। यहाँ तक कि कार्यालय की डाक भी वह अकेले में खोलकर देख लिया करते थे, यद्यपि इसका पता संपादकीय विभाग के किसी कर्मचारी को नहीं लग पाता था। फल यह हुआ कि हज़रत ने कई लेखकों के लेख, कहानी,

उपन्यास आदि पर हाथ सफ़ा कर दिया । कुछ दिनों बाद प्रवासी में आपके नाम से एक सचित्र लेख प्रकाशित हुआ । तब भंडा फूटा । वह लेख अन्य लेखक का लिखा हुआ था, और मानसी की मर्मवाणी में छपने आया था । असली लेखक के लिखने पर जाँच करने से सारा रहस्य प्रकट हो गया । इतना ही नहीं, हज़रत ने एक पूरे उपन्यास की कॉपी उड़ा दी थी । इस दुस्साहस का कोई ठिकाना है ! इसी तरह एक अँगरेज़ ने एक बंगाली सज्जन पर यह दावा किया है कि उनका लिखा हुआ लेख बंगाली बाबू ने अपने नाम से इँगलिशमैन में छपाया और मेहनताने की रक़म वसूल कर ली है । साहब ने वह लेख उन्हें प्रकाशित कराने के लिये दिया था । हिंदी में अभी एक मज़ेदार मामला चल रहा है । देश-दर्शन के लेखक ठाकुर शिवनंदनसिंह ने दंपति-मित्र पुस्तक को अपनी रचना बताकर उसके प्रकाशक पर हर्जाने का दावा दायर किया है । मगर प्रकाशक का कहना है कि उक्त पुस्तक उसने श्रीयुत संतरामजी बी० ए० से लिखाई है। ठाकुर साहब से कोई सरोकार नहीं है ! कहाँ तक गिनावें, दिन-दहाड़े चोरी और सीनाज़ोरी हो रही है । ऐसे साहित्य-सेवियों से ईश्वर ही हिंदी के साहित्य की रक्षा करें ।

× × ×

६. सत्यदेवजी का अभियोग

हमारे पास स्वामी सत्यदेवजी का एक टाइप किया हुआ विस्तृत पत्र प्रकाशनार्थ आया है । उसमें स्वामीजी ने यह बतलाया है कि उन्हें जर्मनी जाने के लिये पासपोर्ट क्यों नहीं मिलता । आपका कथन है कि माधुरी-पाठकों के सुपरिचित सुलेखक पं० हेमचंद्रजी जोशी को आप ही, उनके प्रार्थना करने पर, अपने साथ जर्मनी ले गए थे। आपने जोशीजी को वहाँ, उनके माँगने पर, रुपए नहीं दिए थे, जिससे जोशीजी आपके शत्रु बन बैठे । जोशीजी पर स्वामीजी ने कुछ बुरी ख़त रखने और भारत-सरकार के लिये जासूसी का काम करने का दोषारोपण भी किया है । आप कहते हैं, पता लगाने पर मालूम हुआ कि बर्लिन से की गई रिपोर्टों के आधार पर ही सरकार उनको पासपोर्ट नहीं देती, और उन रिपोर्टों का लिखनेवाला जोशीजी के सिवा और कोई नहीं हो सकता । हम नहीं कह सकते कि जोशीजी के संबंध में स्वामीजी के लगाए हुए अभियोग कहाँ तक सत्य हैं । परंतु इतना हम अवश्य कहेंगे कि जोशीजी-जैसे सहृदय साहित्यिक द्वारा इतनी बड़ी नीचता होने की संभावना असंगत-सी प्रतीत होती है । हृदय नहीं क़बूल करने आता कि व्यक्तिगत ईर्षा-द्वेष के कारण वह इतना अपना पतन कर डाल सकते हैं । अस्तु, स्वामीजी के लगाए अभियोग बड़े संगीन हैं । हमें आशा करते हैं, जोशीजी (माधुरी में पढ़कर) अपनी काफ़ी सफ़ाई देकर स्वामीजी के भ्रम को दूर कर देंगे । और, अगर स्वामीजी का कहना सच ही है, तो निस्संदेह यह जोशीजी-जैसे सुशिक्षित के लिये बड़ी ही लज्जा की बात है ।

× × ×

७. हिंदू-मुसलिम दंगों से हानि

यह बात एक साधारण ज्ञान रखनेवाला आदमी भी समझ सकता है कि प्रचलित आईन के बंधनों को तोड़कर सांप्रदायिकता के कट्टर लचर हठ के वशीभूत होकर लड़ने-झगड़ने और मार-पीट करने में गुंडों को भले ही कुछ लाभ हो, या राजनीतिक नेतृत्व के इच्छुकों की अभिलाषा भले ही कुछ अंशों में पूरी हो सके, किंतु साधारणतः गृहस्थ और व्यवसायी हिंदू-मुसलमानों में से किसी को कुछ लाभ नहीं हो सकता । हाँ, हानि अवश्य होती है—जान-माल, दोनों की । पर कितने खेद और आश्चर्य की बात है कि हिंदू और मुसलमान, दोनों इस सत्य को जानकर भी आज कई वर्षों से ज़रा-ज़रा सी बात पर सिरफुड़ौवल कर बैठते हैं । हम यहाँ पर यह कहना नहीं चाहते कि इन दंगों का आरंभ करने का दोष किस दल के सिर मढ़ा जाना चाहिए; परंतु यह सिद्ध हो चुका है कि दोनों दलों की नादानी इन दंगों के लिये ज़िम्मेदार है । हम यहाँ पर सन् १९२३ से भारत-भर में होनेवाले ऐसे दंगों से होनेवाली प्राण-हानि का ब्योरा प्रकाशित करते हैं । आशा है, इसे पढ़कर हिंदू-मुसलमानों की आँखें खुल जायँगी, और वे आइंदा यथा-संभव ऐसी चेष्टा करेंगे, जिसमें दंगा न होने पावे । नीचे दिया हुआ विवरण गत १८ अगस्त को भारत के होम मेंबर (स्वराष्ट्र-सचिव) सर अलेग्ज़ांडर मुडीमैन साहब ने भारतीय व्यवस्थापक-सभा में, एक प्रश्न के उत्तर में, पेश किया था—

तारीख़-सन्	प्रांत व स्थान	घायल	मरे
२४।८।१९२३	गोंडा	२८	०
,,	सहारनपुर	११६	१०
२६-२८।८। ,,	आगरा	अज्ञात	२
६-७।९। ,,	सहारनपुर	अज्ञात	अज्ञात

तारीख़-सन्	प्रांत व स्थान	घायल	मरे
२१।३।१९२४	बघेलकोट (बंबई)	२०	०
१२।४। ,,	खंडला, मुज़फ़्फ़रनगर (यू० पी०)	२३	०
२-१५।४ ,,	हरपुर (यू०पी०)	अज्ञात	अज्ञात
१३।७। ,,	बिल्लीमारान (दिल्ली)	१५०	१७
१५।७। ,,	सरदारबाज़ार (,,)	१५०	१७
१६।७। ,,	जामामसजिद (,,)	१५०	१७
१।७। ,,	खिलुआ, बामनगाछी, बंगाल	२७	०
११।८। ,,	अमेठी (यू० पी०)	अज्ञात	अज्ञात
११।८। ,,	संभल (,,)	,,	,,
२३।८। ,,	भागलपुर	,,	१
३०।८। ,,	नागपुर	,,	१
९-१०।९। ,,	कोहाट	१४५	३६
१२।९। ,,	लखनऊ	३०	१
२२।९। ,,	सहारनपुर	१०४	६
७।१०। ,,	प्रयाग	११०	८
७।१०। ,,	सागर (सी० पी०)	३०	०
७।१०। ,,	कॉंकनारा (बंगाल)	६	०
८।१०। ,,	जबलपुर	८१	०
२५।१।१९२५	थाना सिटी, लुधियाना (पंजाब)	अज्ञात	अज्ञात
१३।२। ,,	फ़तेहपुर (यू०पी०)	८	०
९।३। ,,	मंडल, वीरमगाँव (बंबई)	३	०
१२।३। ,,	बघेलकोट, बीजापुर(बंबई)	अज्ञात	अज्ञात
१६।३। ,,	सरदारबाज़ार, खारी-बावली, नया बाँस (दिल्ली)	२१	१
२७।३। ,,	,,	३६	०
२।७। ,,	किंग जॉर्ज-डक, खिदिरपुर (बंगाल)	४२	१
४।७। ,,	तालीकोट, बीजापुर (बंबई)	अज्ञात	अज्ञात
२।८। ,,	शोलापुर (बंबई)	२१	०
१५।८। ,,	मीरगंज, गोपालगंज, सारन (बिहार-उड़ीसा)	अज्ञात	अज्ञात
२३।८। ,,	टीटागढ़ (बंगाल)	९	०
३०।८। ,,	खामगाँव (सी० पी०)	अज्ञात	अज्ञात
२८।९। ,,	बहराइच	२६	६ की अवस्था संकट-जनक
१३।१०। ,,	आर्वी, वर्धा (सी०पी०)	४०	०

तारीख़-सन्	प्रांत व स्थान	घायल	मरे
२०।१०।१९२५	उर्टगी, बेनारी	२७	३
२२।१०। ,,	अलीगढ़	११०	९
२६।१०। ,,	अकोला (बरार)	३२	०
२८।१०। ,,	सोनापुर (बंबई)	६२	२
फ़रवरी, १९२६	आगरा	अज्ञात	१
७।२। ,,	अहमदनगर (बंबई)	६	०
११।२। ,,	करांजी (बंबई)	२२	१
१२-१३।२। ,,	रेवाड़ी (पंजाब)	अनेक	१
२-१३।४। ,,	कलकत्ता	५८४	४४
१४-१६।४। ,,	ससराम, शाहाबाद, बिहार	२०	२
१२।४। ,, – ९।५। ,	कलकत्ता	३६१	६६
५-१७।५। ,,	खड्गपुर	६२	११
१।६। ,,	हाजीनगर-पेपरमिल (कलकत्ता)	४३	०
२२।६। ,,	दमोह (सी० पी०)	७	०
२२।६। ,,	दरभंगा (देहात)	५	०
२२।६। ,,	झूँसी (प्रयाग)	६	१
२२।६। ,,	मकसूदपुर, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर	४	०
२३।६। ,,	बनियापट्टी (दरभंगा)	४	०
२३।६। ,,	सुरसंड (मुज़फ़्फ़रपुर)	अज्ञात	अज्ञात
२३।६। ,,	बिहार महकुमा	,,	,,
२३।६। ,,	गया	,,	,,
२४।६। ,,	सिंहाली (बाराबंकी)	१७	०
२४।६। ,,	दिल्ली	६३	३
२४।६। ,,	गोविंदपुर (गया)	अज्ञात	अज्ञात
२४।६। ,,	कटरा (मुज़फ़्फ़रपुर)	२	०
१।७। ,,	पबना (बंगाल)	९	०
४।७। ,,	,,	१७	०
१५।७। ,,	कराची	११	०
१५।७। ,,	कलकत्ता	१०६	१३
१६।७। ,,	,,	०	२
१८।७। ,,	,,	६	०
२०।७। ,,	,,	०	१
२१।७। ,,	पुर्निया (बिहार)	१	०
२२।७। ,,	कलकत्ता	१०	३

(इनमें २ मर भी गए)

इस रिपोर्ट में जो संख्याएँ दी गई हैं, वे निश्चित नहीं हैं। कारण, पुलीस को बहुत से घायलों और मृतकों की ख़बर अक्सर ऐसे दंगों के अवसर पर नहीं मिलती। तथापि ये अधूरे अंक ही क्या कम हैं! आश्चर्य तो यह है कि कलकत्ता और दिल्ली, जो कि राजधानी हैं और जहाँ काफ़ी पुलीस और सेना के साथ ही उच्चराजकर्मचारी भी रहते हैं, वारंवार दंगे होते रहे, और हताहतों की संख्या भी अधिक रही। यह स्थिति हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों के लिये लज्जाजनक है!

× × ×

८. कुछ जानने-योग्य बातें

१—भारत के हाई कमिश्नर ने ब्रिटन की भिन्न-भिन्न युनिवर्सिटियों में पढ़नेवाले भारत के छात्रों की संख्या इस प्रकार बतलाई है—लंदन में ३६०, केंब्रिज में ११७, ऑक्सफ़ोर्ड में ८६, एडिनबरा में १६५, ग्लासगो में ६२, मैंचेस्टर में ५१, ब्रिस्टल में २४, शेफ़ील्ड में २१, लीड्स में १७, बेलफ़ास्ट में १३, एबरिस्टिथ में ४। इनके सिवा ५८३ भारतीय बैरिस्टरी पढ़ते हैं।

२—विदेशों में भारत से जो माल की रफ़्तनी होती है, उसका गत दो वर्षों (सन् १९२४-२५ तथा १९२५-२६) का एक विवरण ट्रेड-कमिश्नर की रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ है। उससे मालूम होता है कि भारत का अधिकांश माल जर्मनी ही गया है। सन् १९२४-२५ में कुल १०,३१० लाख का माल भारत से बाहर भेजा गया था, जिसमें जर्मनी ने २,८०९ लाख का, इटली ने २,३३४ लाख का और फ़्रांस ने २,०९१ लाख का माल ख़रीदा। योरप में भारत के रफ़्तनी माल का फ़ीसदी ८०-९० हिस्सा पाट, तिल, तीसी वग़ैरह तेलहन और ग़ल्ला था। इटली भारत की रुई का, जर्मनी पाट, चमड़े और चावल का और बेलजियम गेहूँ का प्रधान ख़रीदार है। अमेरिका के संयुक्त राज्य भी भारत के कच्चे माल का एक बहुत बढ़िया गाहक है। उसके बाद जापान का नंबर है। ट्रेड-कमिश्नर लिंडसे साहब का कहना है कि गत वेंबली-प्रदर्शिनी में अँगरेज़ों की दृष्टि भारत के वाणिज्य की ओर आकृष्ट हुई थी। चाय और तंबाकू के बाज़ार में भी भारत ने ब्रिटिश-साम्राज्य के बीच ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है।

३—मि० मार्कोनी ने हाल में एक नवीन यंत्र बनाया है। इसकी सहायता से २० मील दूर पर होनेवाली वक्तृता और लोगों की बातचीत साफ़-साफ़ सुन पड़ती है।

४—सन् १९१६ में भारत में को-ऑपरेटिव बैंकों की संख्या ३६० थी; अब ४७५ है। ऐसी सोसाइटियाँ पहले ३७,००० थीं; पर अब ६२,००० हैं। इनके मेंबर पहले १३ लाख थे; अब २३ लाख हैं। इनकी पूँजी १९ करोड़ थी; अब ४४ करोड़ हो गई है।

५—पंजाब केसरी महाराज रणजीतसिंह के वंशधर प्रिंस फ्रेडरिक दिलीपसिंह का परलोकवास योरप में हो गया। आप महाराज दिलीपसिंह के द्वितीय पुत्र थे। सन् १८६८ में लंदन में आपका जन्म हुआ था। यह केंब्रिज-युनिवर्सिटी के एम्० ए० थे। आप सन् १८९३ में लेफ़्टिनेंट, १८९८ में कैप्टेन, और १९०१ में मेजर बनाए गए थे। सन् १९१७ से आपने फ़्रांस के युद्ध-क्षेत्र में कार्य किया था।

६—पटियाला राज्य में एक भारी सोने की खान निकली है। इसका घेरा १२ से १६ वर्गमील अंदाज़ा जाता है।

७—किसानों के देश भारत से किस सन् में कितने मूल्य के कितने पशु विदेशों को भेजे गए, यह नीचे देखिए—

सन्	संख्या	क़ीमत
१९१३	३०.१८८	१५,७१,१६०)
१९१४	२९.९०६	१८,५८,५००)
१९१५	१७,७०८	९,४५.०५०)
१९१६	१४ २४५	६,५०,८३५)
१९१७	१४,६८१	८,५१,४००)
१९१८	९,१७७	७,२२,२०५)
१९१९	९,९५१	९,३१,४४५)
१९२०	१६,६८५	१९,१९,९१०)
१९२१	१९,०६५	२०,४४,६४०)
१९२२	२१.१७६	१६,७६,३२८)
१९२३	१३,६७५	८,२८,९१२)
१९२४	१२,५१७	८,७८,८०१)

८—भारत में २६ करोड़ १० लाख एकड़ ज़मीन में खेती की जाती है; पर यहाँ बैलों और भैंसों की संख्या केवल २ करोड़ ४० लाख है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक पशु को औसत हिसाब से ११ एकड़ ज़मीन जोतनी पड़ती है। इसी से अत्यधिक परिश्रम करने के कारण हमारे देश के पशुओं के शरीरों में हड्डियाँ बाहर निकली देख पड़ती हैं।

९—अन्य देशों के लोगों के हिस्से में दूध का औसत फ़ी आदमी ६ छटाँक पड़ता है ; पर हरएक भारतवासी के हिस्से में १½ छटाँक से अधिक दूध नहीं पड़ता। इसका मतलब यह नहीं कि सभी को दूध नसीब होता है। बहुतों को तो स्वप्न में भी दूध-घी के दर्शन नहीं होते ! गत ६० वर्ष के अंदर भारत में जहाँ अन्यान्य वस्तुओं का मूल्य सातगुना बढ़ गया है, वहाँ दूध का मूल्य ४०गुना बढ़ा है।

१०—आस्ट्रेलिया में औसत हिसाब से हर सौ मनुष्यों के पास खेती में काम आनेवाले बैल २५६ हैं। इसी तरह दक्षिण-अमेरिका के अर्जेंटाइन-प्रदेश में सैकड़े पीछे ३२२ बैलों का औसत पड़ता है। पर भारत में ५१ से अधिक नहीं !

११—जिन देशों में बच्चों को काफ़ी दूध मिल जाता है, उनमें शिशु-मृत्यु का औसत अपेक्षाकृत बहुत कम है। यथा नार्वे और स्वीडन में फ़ी सदी ६, अमेरिका में ५ और न्यूज़ीलैंड में ३ बच्चे मरते हैं । किंतु भारत में २५ फ़ी सदी बच्चे अकाल-मृत्यु के शिकार बननेको बाध्य होते हैं।

१२—न्यूयार्क के मि० चार्ल्स नेपियर केश-विशेषज्ञ माने आते हैं। उन्होंने हाल में एक ऐसी मशीन बनाई है, जिससे सिर के बाल गिन लिए जा सकते हैं। नाइयों की दूकानों में इस मशीन की ख़ूब खपत हो रही है। उक्त आविष्कारक का कहना है कि मनुष्य के सिर में एक लाख से लेकर ढाई लाख तक (छुटाई-बड़ाई के अनुसार) केश होते हैं। उनका यह भी कहना है कि सिर के बाल महीने में आधा इंच बढ़ते हैं।

१३—विलायत में एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक विद्वान् हैं। उनका नाम है मि० जॉन बेयार्ड। इन्होंने टेलीविज़न अर्थात् बेतार के तार की सहायता से चित्र दिखलाने का तरीक़ा ईजाद किया है। वह कहते हैं, एक ही साल के भीतर अपने यंत्र की सहायता से एकसाथ ही ख़बर और चित्र पहुँचाने की उनकी कोशिश पूरी तौर से कामयाबी हासिल कर लेगी। मान लीजिए, कोई दूर के अपने इष्ट-मित्र से बेतार के तार की सहायता से घर-बैठे बातचीत कर रहा है। उस समय इस यंत्र की सहायता से दोनों जने एक दूसरे की आकृति भी देख सकेंगे। बायस्कोप के चित्र की तरह आप घर-बैठे इस यंत्र की सहायता से यह देख सकेंगे कि दूर के रणांगण में किस पक्ष ने गोला गिराकर अपने शत्रु की सेना को किस तरह नष्ट किया, किसकी क्या दशा हुई, इत्यादि।

१४—सन् १९११ में भारत की जन-संख्या ३१,५१,५६,००० थी, और सन् १९२१ में बढ़कर ३१,८९,४२,००० हो गई है। इन दस वर्षों में ४०,००,००० लोग बढ़े हैं। यह बढ़ती १·१ के हिसाब से हुई। किंतु इतने ही समय में इँगलैंड और वेल्स में ४·८ और अमेरिका में १४·९ के हिसाब से आबादी बढ़ी है।

१५—बेलजियम में प्रत्येक वर्गमील में ६५८, इँगलैंड और वेल्स में ६४९, हालैंड में ५३६, इटली में ३१६, जर्मनी में ३११, जापान में ३२०, स्वीज़रलैंड में २३६ और भारत में १७७ आदमी बसते हैं।

१६—भारत में ९·५, इँगलैंड में ७·८, अमेरिका में ५१·४, फ्रांस में ४२·२, और जर्मनी में ४५·६ आदमी शहरों में रहते हैं।

१७—भारत में सब मिलाकर ७,३०,००० गाँव हैं।

१८—सन् १९२०-२१ में, भारत की भिन्न-भिन्न रेलवे लाइनों में, इतने यात्रियों ने सफ़र किया था—तीसरे दर्जे से ४९ करोड़, ड्योढ़े दर्जे से १ करोड़ १० लाख, दूसरे दर्जे से ७० लाख और पहले दर्जे से १० लाख। कुल ५० करोड़ ९० लाख आदमियों ने यात्रा की।

× × ×

९. भारत में कोढ़ियों की समस्या

बँगला के स्वास्थ्यसमाचार-पत्र में श्रीश्रीशरच्चंद्र गोस्वामी ने इस संबंध में एक तथ्य-पूर्ण लेख लिखा है। यह रोग जैसा भयानक और दुस्साध्य है, सो किसी से छिपा नहीं। सर्वसाधारण को इस विषय की जानकारी होने की बड़ी आवश्यकता है, जिसमें वे इस रोग की भयानकता का अनुभव कर उसका विस्तार कम करने की ओर ध्यान दें। हम यहाँ पर उक्त लेख की जानने-योग्य बातें देते हैं। सन् १९११ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि भारत में कुल कोढ़ियों की संख्या १,०९,०४४ है। उसके बाद सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी में देखा गया कि उक्त संख्या घटकर १,०२,५१३ रह गई। Frank Oldrieve साहब ने हिसाब लगाकर बतलाया है कि भारत की जन-संख्या में प्रत्येक लक्ष मनुष्यों में ३२ कोढ़ी हैं। वेद में भी कुष्ठ-रोग का उल्लेख है। हिंदुओं का विश्वास है कि

यह रोग पूर्व जन्म के महापातकी होने का चिह्न है। बाइबिल में ईसा ने कहा है—Cleanse the lapers; ग्रीक-भाषा में lepra शब्द चर्म-रोग के सूचक 'Tarath' शब्द के बदले प्रयुक्त होता था। अरिस्टाटल (अरस्तू) ने ईस्वी सन् से ३४५ वर्ष पूर्व कुष्ठ-रोग का वर्णन किया है, और Galen (80 A. D.) जर्मनी में इस व्याधि के होने की बात लिखी है। पुरातत्त्व के जाननेवाले पंडितों का कहना है कि यह रोग आफ़्रिका से योरप में और बाद को अमेरिका में फैला है। सारे ब्रिटिश साम्राज्य में ३० लाख कोढ़ी हैं। उनमें दो लाख के लगभग भारत में, ८ लाख के लगभग अँगरेज़ों के अधिकृत आफ़्रिका के प्रदेशों में और बाक़ी सिंहल, मारिशस, फ़िज़ी आदि द्वीपों में हैं। समग्र इँगलैंड में केवल ५० कोढ़ी हैं। सन् १६२० में Iceland में ६७ आदमी इस रोग से पीड़ित पाए गए थे। नार्वे में कुल १४० थे। संपूर्ण रूस-साम्राज्य में ३,००० से अधिक न थे। सबसे अधिक कोढ़ी शायद स्पेन में ही हैं। वहाँ की सन् १६०४ की मर्दुमशुमारी के अनुसार वहाँ ५२२ कोढ़ी थे। और हमारे भारत में २ लाख हैं। सन् १६२१ में प्रत्येक लाख आदमियों में बर्मा में ७४, आसाम में ५६, मध्यप्रदेश में ५०, मदरास में ३७, बंबई में ३६, बंगाल में ३३, बिहार में ३२, यू० पी० में २७ पंजाब और दिल्ली में ११ और पश्चिमोत्तर सीमा-प्रांत में ६ कोढ़ियों का औसत था। यह तो हुआ ब्रिटिश-भारत का हिसाब। अब देशी राज्यों का हिसाब लीजिए—प्रत्येक लाख आदमियों में ट्रावनकोर में ५१, कोचीन में ४८, कश्मीर में ४६, हैदराबाद में ३४, बरोदा में २६, ग्वालियर में १५, मैसूर में ५, राजपूताने और अजमेर में ४ रोगियों का औसत है। पृथक्करण (Segregation), चिकित्सा और रोग के प्रसार को रोकने (arrest of infection) की व्यवस्था होने से इस रोग की बाढ़ रुकती है। सन् १८६०-६५ में हवाई द्वीप-पुंज (Howai Islands) में फ़ी हज़ार में ११ कोढ़ी थे। लेकिन उन्हें जनता से अलग रखने का फल यह हुआ कि सन् १६११-१५ में फ़ी हज़ार में ३ ही आदमी कोढ़ी रह गए। भारत में अगर २ लाख कोढ़ी हैं, यह मान लिया जाय, तो उनमें केवल ६,००० की ही चिकित्सा की व्यवस्था हो रही है। सब मिलाकर भारत में ७३ ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनमें कोढ़ियों को चिकित्सा हो रही है। और, उनमें केवल ७,३११ ही रोगी हैं। नीचे ऐसी संस्थाओं का हिसाब दिया जाता है—

प्रांत	कुष्ठ-चिकित्सा के आश्रम	रोगियों की संख्या
यू० पी०	१४	८०२
बिहार-उड़ीसा	६	१,२२९
बंगाल	३	६४६
मध्यप्रदेश	६	१,३७३
बंबई	१४	१,०६१
मदरास	११	६७६
बर्मा	४	५५६
आसाम	३	६६
पंजाब	५	४७०

अभी रोगियों की संख्या को देखते भारत में कुष्ठ-चिकित्सा के आश्रम बहुत कम हैं।

× × ×

१०. वनस्पति-घृत

वनस्पति-घृत जो इधर कई वर्षों से भारत में आकर बिक रहा है, इसके संबंध में माधुरी में कई बार लिखा जा चुका है। घी भारतवासियों के लिये अन्न से बढ़कर आवश्यक पदार्थ है। हिंदुओं का तो भोजन ही नहीं, पूजा-पाठ आदि कोई भी कार्य इस घृत के बिना संपन्न नहीं हो सकता। अब तक तो मुर्दा पशुओं की चर्बी आदि अनेक अनिष्टकर पदार्थ ही घी में मिलाकर बेचे जाते थे; किंतु अब एक और यह वस्तु आकर घी में मेल का कारण बन गई है। कुछ लोग इसमें भी चर्बी का मेल बतलाते हैं, पर कुछ लोगों की राय यह है कि इसमें चर्बी बिलकुल नहीं है, यह ख़ास तौर से वनस्पतियों से बनाया जाता है। कुछ भी हो, इसमें घी की-जैसी चिकनाई और उसके गुणों का अभाव तो स्पष्ट ही है। यद्यपि इसमें अपकार करनेवाले पदार्थ न भी हों, तथापि इससे घी के समान स्वास्थ्य को लाभ कदापि नहीं पहुँच सकता। शुरू-शुरू में इसके विरोध में हिंदी के पत्रों ने कुछ आवाज़ उठाई थी। पर अब तो हम देखते हैं, बड़े-बड़े राष्ट्रीय पत्र भी इसका विज्ञापन धड़ल्ले के साथ छाप रहे हैं। कितने बड़े खेद की बात है कि हमारे भाई ही हमारा सर्वनाश कर रहे हैं। कुछ रुपयों के लोभ में पड़कर भारतीय भाई ही इसकी एजेंसियाँ लेकर शहरों में ही नहीं, गाँवों तक में इसका बहुत प्रचार कर रहे हैं। पहले यह था कि देहाती लोग देहात से अच्छा घी कभी-कभी ले आते

थे, और वह कुछ महँगा भी लोग ख़रीद लिया करते थे। पर अब तो देखते हैं, यह एक जालसाज़ी का ख़ासा रोज़गार बन गया है। शहरों के थोक बिक्री करनेवाले अथवा फुटकर बेचनेवाले दूकानदार तो घी में यह वनस्पति-घी मिलाकर बेचते ही हैं, देहाती व्यापारी भी यह करने लगे हैं। हम देखते हैं, नित्य बीसों आदमी 'देहाती घी' कनस्तर में लिए शहर की गलियों में दर्शन देते हैं. और देहाती घी बताकर यही वेजीटेबल प्रोडक्ट या उद्भिज्ज-घृत बेचते हैं। इस जालसाज़ी को रोकने का कोई उपाय नहीं देख पड़ता। हमारे घी के व्यापारी भाई इस लंबे मुनाफ़े को कभी छोड़ नहीं सकते। बहुत लोगों ने इस पर आयात-कर बढ़वाकर, सरकार से आईन बनवाकर, इसका प्रचार रोकने की बात सोची थी। किंतु सरकार का कहना यह है कि आईन बनाकर, कर बढ़ाकर इस घृत की आमदनी बंद करना अच्छा न होगा। दलील यह है कि उस हालत में घी में हानिकर पदार्थों का मेल और भी बढ़ जायगा। कारण, ज़रूरत-भर को काफ़ी घी इस देश में अब उत्पन्न नहीं होता। कितने खेद की बात है! जो देश गोवंश और गोरस का अक्षय आकर था, उसके संबंध में आज ऐसी बात सुन पड़ रही है! किंतु सरकार की यह दलील लचर है। अगर सचमुच यही बात है, तो इस घृत का आना रोकने की और भी सख़्त ज़रूरत है। हम घी न खायँगे, तो अच्छा। अथवा अवस्थानुसार थोड़ा ही घी का व्यवहार करेंगे। किंतु यदि यह नक़ली घी घी के स्थान में प्रचलित हो गया, तो हमारे देश की गउओं और गोशालाओं की अवस्था और भी शोचनीय हो उठेगी। इस नक़ली घी पर निर्भर करने पर अंत को ख़ालिस असली घी दवा के लिये देखने को भी दुर्लभ हो जायगा; साथ ही लोगों का ध्यान गउओं-भैंसों की रक्षा, उनकी नस्ल की तरक़्क़ी और गोशालाओं की सत्ता की ओर से हट जायगा, जिससे देश और देशवासियों की भारी अवनति होगी। गोघृत को हम हिंदू अमृत समझते हैं। उसके अभाव का घातक प्रभाव हमारे और हमारी संतान के स्वास्थ्य पर पड़े बिना नहीं रहेगा। इसलिये हमें सरकार का मुँह ताकना छोड़कर स्वयं कुछ प्रतिकार करना चाहिए।

× × ×

११. डॉक्टर बेणीप्रसादजी एम्० ए० को बधाई

स्वनामधन्य डॉ० बेणीप्रसादजी एक योग्य विद्वान् हैं। आप इतिहास के प्रकांड पंडित हैं। आपकी विशेषता यह है कि अँगरेज़ी के भारी विद्वान् लेखक होने पर भी आप अर्से से हिंदी की सेवा कर रहे हैं। आप हिंदी के उच्च कोटि के पत्रों में प्रायः सारगर्भ बहुमूल्य लेख लिखा करते हैं। सूरदासजी के पदों से अच्छे-अच्छे पद छाँटकर संक्षिप्त सूरसागर नाम से आपने एक अच्छा संग्रह करके प्रकाशित कराया है। आपकी लिखी हुई जहाँगीर नाम की पुस्तक बहुमूल्य है। आपके द्वारा हिंदी में इतिहास के प्रामाणिक ग्रंथ लिखे जाने की बड़ी आशा है। आप इलाहाबाद-युनिवर्सिटी में इतिहास के प्रोफ़ेसर हैं। अभी डॉक्टर की डिग्री प्राप्त करने के लिये विलायत गए थे। गत वर्ष इतिहास पर आपका लिखा हुआ निबंध न-जाने किस कारण से स्वीकृत नहीं किया गया था। हर्ष की बात है कि इस बार आपने अपने इस उद्योग में सफलता प्राप्त कर ली है। आपको डॉक्टर की डिग्री इस बार विलायती विद्वानों ने दे दी है। हम इस सौभाग्य के लिये आपको हृदय से बधाई देते और आशा करते हैं कि अब आप और भी अधिक दत्तचित्त होकर हिंदी की सेवा में संलग्न होंगे। हमारी प्रार्थना पर आपने माधुरी में भी अपने बहुमूल्य लेख बराबर भेजते रहना स्वीकार किया है।

× × ×

१२. जर्मनी की नंगी सभ्यता

प्रायः सभी सभ्य-देशों में स्त्री या पुरुष का नंगा रहना निर्लज्जता का सूचक समझा जाता है। किंतु पाश्चात्य देशों की सूझ और समझ निराली ही होती है। वे उन्नतिशील हैं, उनका सिक्का संसार में जमा हुआ है। इसीलिये शायद वे जो कुछ करें, वही ठीक है। कहा भी है—"समरथ को नहिं दोष गोसाईं।" विदेशी पत्रों में यह समाचार पढ़ने को मिला है कि जर्मनी में नंगे रहने का एक नए ढंग का आंदोलन शुरू किया गया है। बर्लिन के चारों ओर बिलकुल नंगे बहुत-से बालक तथा बालिकाएँ जलाशयों में एक-साथ दिन-दोपहर को नहाती और जल-विहार करती नज़र आती हैं। जान पड़ता है, वहाँ सत्ययुग का आरंभ हो गया है। इनका और इनके नेताओं का आदर्श अथवा ध्येय नंगी सभ्यता है। जर्मनी में इस मत के पोषक सौ-पचास आदमी ही नहीं हैं; उनकी संख्या हज़ारों तक पहुँच गई है। इन लोगों की एक सुप्रतिष्ठित संस्था है। वह बहुत अच्छी तरह नियमपूर्वक संचालित होती है। उस संस्था की ओर से एक मासिक पत्र भी निकलता है, जिसमें

पूर्वोक्त मत का समर्थन किया जाता है। इन लोगों के आदर्शों का संक्षेप में सारांश यह है कि "मनुष्य-जाति के लिये कपड़े पहनना अस्वाभाविक है; और यह कार्य गण-तंत्र के विरुद्ध है। नंगे रहने में शर्म की कोई बात नहीं, नंगे रहने से स्वास्थ्य उन्नत होता है, और सुंदरता बढ़ती है।" बर्लिन के निकट कारिंगस वेस्टर हासेन नाम का एक स्थान है। वहाँ एक बड़ी झील के किनारे नग्न सभ्यता-वादियों की एक बस्ती-की-बस्ती ही बसी हुई है। इसी जगह इस दल के लोग सप्ताह के अंतिम दिनों को बिताते हैं। वहाँ उक्त झील में छोटे बालक-बालिकाएँ और जवान मर्द-औरतें नंगे-नंगे एकसाथ नहाते हैं, दौड़ते धूपते हैं, टहलते हैं, धूप का सेवन करते हैं। इन लोगों के लिये एक सूत भी शरीर पर धारण करना पाप है। इन लोगों के रहने की जगह काठ के कटहरे से घिरी हुई है। उसमें वे ही लोग प्रवेश कर सकते हैं, जिन्होंने नग्न-सभ्यतावाद के घोषणा-पत्र में दस्तख़त कर दिए हैं, अन्य लोग नहीं। किंतु इन लोगों का तमाशा देखने के लिये झील के भीतर अनेक दर्शक नावों पर बैठकर उपस्थित होते हैं। इन पागलों की करतूत देखकर अनेक दर्शक हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। बात है भी ऐसी ही। कटहरे के भीतर इनके नंगे रहने में पुलीस की ओर से कोई रुकावट नहीं डाली जाती। हाँ, अगर ये शहर में सरेआम घूमें, तो अवश्य पुलीस इनका चालान कर दे। देखें, इन लोगों का पागलपन क्या रंग लाता है—इनकी यह सनक कब तक रहती है!

× × ×

१३. बंगाल की ब्राह्मण-सभा भी चेती

इस समय हिंदू-जाति पर कई ओर से आक्रमण हो रहे हैं। उसे हड़प जाने की कोशिश अर्से से जारी है। अब तक प्राचीन प्रथा के कट्टर समर्थक लोगों ने ऐसा कर रक्खा था कि कोई भी हिंदू भुलावे में आकर या दूसरों की ज़बरदस्ती से अगर मुसलमान या ईसाई हो जाता था, तो वह सदा के लिये जाति-बहिष्कृत रहने को बाध्य किया जाता था। धोके से मुसलमान या ईसाई का छुआ पानी पी लेने तक का यह परिणाम होता था कि वह प्रायश्चित्त करके भी हिंदू-जाति में नहीं शामिल होने पाता था। वह तो कहो आर्य-समाज के जन्म के बाद से इस क्षय की बाढ़ कुछ अंशों में रुक गई थी। पर वह उद्योग यथेष्ट न था। हमारे विराट् समाज की ग़लती से बहुत बड़ा अंश धर्म-परिवर्तन करता आ रहा है; उसे, उसकी इच्छा रहने पर भी, आर्य-समाज के सिवा और कोई समाज में स्थान देने को तैयार न होता था। इधर कुछ दिनों से हिंदुओं के इस ह्रास पर जाति-हितैषियों का ध्यान गया है, और उनके उद्योग से शुद्धि का आंदोलन ज़ोर पकड़ रहा है। परंतु इस शुद्धि-कार्य का समर्थन सनातनधर्मी कट्टर ब्राह्मणों के द्वारा अभी तक न हो पाया था; और इस आंदोलन की सफलता संपन्न होने में यही बड़ी बाधा थी। यह हिंदू-जाति के लिये आपत्काल है। इस समय आपद्धर्म का सहारा लिये बिना काम नहीं चल सकता। फिर पतित-परावर्तन या शुद्धि-कार्य कुछ नई बात नहीं है। बहुत प्राचीन समय से यह काम होता आ रहा है। हिंदू जाति ने अनेकों विधर्मी विदेशियों को अपने में मिला लिया है। इसके प्रमाण मिलते हैं। हर्ष का विषय है कि स्थिति की भीषणता को समझकर बंगाल की ब्राह्मण-सभा ने, जिसके सभी सदस्य विद्वान् और सनातनधर्मी हैं, शुद्धि के समर्थन में निम्न-लिखित व्यवस्था की घोषणा की है। हम इस अवस्था के अनुरूप व्यवस्था का हृदय से समर्थन और बंगाल की ब्राह्मण-सभा का, उसकी इस समझदारी और साहस के लिये, अभिनंदन करते हैं। ब्राह्मण-सभा के उक्त अधिवेशन में निम्न-लिखित प्रस्ताव पास हुए हैं—(१) अगर किसी हिंदू-स्त्री को कोई बदमाश हर ले जाय, बहँका ले जाय, या ज़बरदस्ती उसका सतीत्व-धर्म नष्ट करे अथवा अत्याचार करे, तो उसकी शरीर-शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करके उसे समाज में ग्रहण करना उचित है। ऐसी घटना होने पर धर्षिता स्त्री अगर श्रद्धा-भक्ति के साथ केवल गंगा-स्नान कर ले, तो वह भी उसकी शुद्धि के लिये यथेष्ट होगा। (२) अगर शालग्राम की शिला चक्र तक (किसी गुंडे के हाथों) टूट जाय, तो उसे किसी नदी में विसर्जन कर उसकी जगह दूसरी शिला स्थापित करनी होगी। अगर चक्र तक न टूटे, तो विसर्जन की कोई ज़रूरत नहीं है। अगर देवालय में स्थापित कोई देव-मूर्ति तोड़ी जाय, तो उसे भी उसी तरह विसर्जन करके शास्त्र-विधि के अनुसार नई प्रतिमा की स्थापना कर दी जाय। जिसे सामर्थ्य हो, उसे प्रायश्चित्त भी करना आवश्यक है। (३) केवल कलमा पढ़ लेने से कोई हिंदू धर्मभ्रष्ट न होगा। केवल कलमा पढ़ना हिंदू के लिये पाप न समझा जायगा। अगर किसी हिंदू को ज़बरदस्ती

किसी अन्य जाति का अन्न या अन्य कोई निषिद्ध पदार्थ खिला दिया जाय, तो प्रायश्चित्त करके वह समाज में मिला लिया जा सकता है। (४) अगर किसी को इस व्यवस्था के शास्त्र-संगत होने में संदेह हो, तो वह पत्र लिखकर बंगाल की ब्राह्मण-सभा से मुफ़्त शास्त्रीय प्रमाणों की कॉपी प्राप्त कर सकता है। कहना न होगा, यह व्यवस्था बहुत ही समयोचित और महत्त्व-पूर्ण है। आशा है, अन्य प्रांतों के विद्वान् ब्राह्मण भी इसका अनुमोदन करके हिंदू-जाति को विनाश के मुख में जाने से रोकेंगे।

× × ×

१४. टेलीग्राफ़ का आविष्कार करनेवाले मि० मार्श

टेलीग्राफ़ का आविष्कार करनेवाले मि० मार्श के संबंध में प्रवासी में एक नोट प्रकाशित हुआ है। उसमें लिखा है कि एक सौ वर्ष पहले साली नाम का एक जहाज़ हेवर से न्यूयार्क-बंदर में प्रवेश कर रहा था। अमेरिका के एक प्रसिद्ध चित्रकार सैमुएल फ़िनले ब्रीस मार्श कई प्रसिद्ध राष्ट्रनीतिज्ञ विद्वानों के साथ जहाज़ के भोजनालय में बैठे भोजन कर रहे थे। बहुत-सी बातों के उपरांत उसी समय नवीन आविष्कृत वैद्युतिक शक्ति की चर्चा चली, जिसमें इन बातों का वर्णन था कि पतंग उड़ाते समय किस तरह आम्पियर ने इलेक्ट्रो मैगनेट की परीक्षा की इत्यादि। एक आदमी ने कहा—"मैं जानना चाहता हूँ कि तार की लंबाई के अनुसार वैद्युतिक शक्ति में कमी या बेशी होती है कि नहीं।" बोस्टन शहर से आए हुए एक विद्वान् ने कहा—"ऐसा हो ही नहीं सकता। इसमें किसी को कुछ एतराज़ नहीं है कि तार की लंबाई चाहे जितनी हो, एक अखंड तार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक ही समय एक साथ वैद्युतिक प्रवाह परिचालित होता है।" इसके उत्तर में चित्रकार मार्श साहब सहसा कह उठे—"अगर यह बात ठीक है, यदि एक वैद्युतिक वृत्त के किसी भी एक स्थान में एक ही समय एक साथ विद्युत्प्रवाह संचालित होता है, तो बिजली को सहज में ही संवाद-वहन का एक श्रेष्ठ वाहन बनाया जा सकता है।" इस कथन के साथ ही मार्श साहब ने एक ऐसे अपूर्व आनंद का अनुभव किया, जिसका अनुभव इसके पहले उन्हें कभी नहीं हुआ था। उन्हें जान पड़ा, जैसे उन्होंने किसी अद्भुत तथ्य का आविष्कार कर लिया है। उनके मन में बहुत बड़ी आशा का संचार हुआ। उन्होंने मन में सोचा कि इस रहस्य के आविष्कार द्वारा वह ऐसी शक्ति प्राप्त करेंगे, जिसकी सहायता से जगत् के एक छोर से दूसरे छोर में ख़बर भेजना, संबंध स्थापित करना सहज-साध्य हो जायगा। अपने पूर्वोक्त कथन को उन्होंने एक प्रकार की दैववाणी समझा। परंतु उनके साथियों में से किसी के मन में इस भाव की कल्पना भी नहीं हो पाई। बाहरी डेक में खड़े होकर समुद्र की लहरें देखते-देखते वह सोचने लगे, और सहसा सागर के वक्षःस्थल में उन्होंने अपने टेलीग्राफ़ के 'कोड' का आविष्कार कर लिया। घड़ी हो भर में चित्रकार मार्श एक बड़े भारी वैज्ञानिक के रूप में बदल गए। टेलीग्राफ़ के जन्मदाता मार्श सोचने लगे—अगर एक अखंड तार के मार्ग में एक साथ ही एक ही समय में बिजली का प्रवाह दौड़ सके, और अगर उस प्रवाह को बंद करने पर चिनगारियाँ (spark) दिखलाई दें, तो उन्हें विद्युत्प्रवाह के दौड़ने का एक चिह्न माना जा सकता है। इन दोनों चिह्नों (डाट और डैश) को मिलाकर उनकी सहायता से मैं समाचार को एक जगह से दूसरी जगह भेज सकता हूँ। उन्होंने उसी दम अपनी स्केचबुक में डाट और डैश से कुछ शब्दों का निरूपण कर डाला। उस दिन उक्त जहाज़ में जगत् के एक महाविस्मयजनक आविष्कार की जड़ पड़ गई। उस दिन संसार के काम-काज में एक बड़ी भारी सुविधा का बीजारोपण हुआ। साली जहाज़ ने जब न्यूयार्क में प्रवेश किया, उस समय तक मिस्टर मार्श अपने पूर्वोक्त नवीन आविष्कार के बारे में विचार कर रहे थे। जहाज़ से उतरने के समय कप्तान से उन्होंने कहा था—"कप्तान, अगर किसी दिन बिजली के ज़रिए समाचार भेजने की ख़बर सुनना, तो याद रखना, तुम्हारे इस साली-जहाज़ पर ही उसका आविष्कार हुआ था।"

× × ×

१५. पूर्व के देशों में ब्रिटन का अधिकार

'जापान-वीकली-क्रानिकल'-नामक-पत्र जापान से निकलता है। यह एशिया के श्रेष्ठ साप्ताहिक पत्रों में गिना जाता है। हाल में इस पत्र में इसका एक विवरण प्रकाशित हुआ है कि जापान के समाचार-पत्रों का इस विषय में क्या मत है कि पूर्व के देशों में ब्रिटन का अधिकार कितना है और उसमें कितनी कमी होती जा रही है। प्रवासी की भाद्र की संख्या में उक्त पत्र के आधार पर एक नोट

निकला है। पाठकों के मनोरंजन की सामग्री समझकर उसी के आधार पर यह नोट लिखा जा रहा है। वह पत्र लिखता है कि जापान के अख़बारों में जब ब्रिटन की यंत्रणा (anguish) के संबंध में कोई आलोचना चलती है, तब प्रधान रूप से चीन में ब्रिटन के प्रभुत्व की हानि का ही उल्लेख किया जाता है। इस संबंध में होची-नामक जापानी समाचार-पत्र लिखता है कि वर्तमान समय में ब्रिटन के लिये पृथ्वी पर अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनाए रखना क्रमशः कठिन होता जा रहा है। ब्रिटन की शक्ति प्रधान रूप से एशिया के पूर्वी देशों में ही सुप्रतिष्ठित थी। उक्त देशों में लोगों की यही धारणा थी कि ब्रिटन की शक्ति अजेय है। संभवतः योरप का महायुद्ध अगर न होता, तो ब्रिटन की शक्ति और भी बहुत समय तक अक्षुण्ण बनी रहती; कम-से-कम उसके संबंध में लोगों की धारणा वैसी ही बनी रहती। किंतु ब्रिटन के दुर्भाग्य से महायुद्ध हो गया, और पृथ्वी की जातियों की शक्तियों में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। यह परिवर्तन एशिया के लोगों की दृष्टि में बहुत ही स्पष्ट हो उठा। यह बात अनायास ही प्रमाणित की जा सकती है कि युद्ध के पहले एशिया के बहुत ही थोड़े स्थानों के सिवा सर्वत्र ब्रिटिश प्रभुत्व पूरी मात्रा में विद्यमान था। युद्ध समाप्त होने के उपरांत इस अवस्था में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। टर्की में ब्रिटिश-विरोधी दल अपने आदर्श के अनुरूप काम करने में समर्थ हुआ है। फ़ारस में ब्रिटन का प्रभुत्व यद्यपि संपूर्ण रूप से नष्ट नहीं हुआ, तथापि इसमें संदेह नहीं कि अब वह पहले की तरह प्रबल नहीं रहा। भारतवर्ष में ब्रिटन का राज्य अब भी बना हुआ होने पर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वहाँ अब शासन का कार्य उतनी आसानी से—उस तरह बिना बाधा के—चलाना क्रमशः कठिन होता जा रहा है। ब्रिटिश शासकों के हाथ में आंतर्जातिक ख़बरें भेजने-न-भेजने की क्षमता इतनी अधिक है कि इस समय भारत की भीतरी दशा जानना बहुत कठिन है। किंतु यह तो ख़ूब अच्छी तरह कहा जा सकता है कि गत कई वर्षों के अंदर भारत में एक असाधारण राष्ट्रीय जागरण हुआ है। पार्लियामेंट में कुछ दिन पहले लेबर पार्टी की सहायता से श्रीमती एनीबेसंट के होमरूल बिल का प्रथम वाचन होने की अवस्था पार हो चुकी है। भारत की असेंबली में स्वराजी लोगों का व्यवहार शांति-पूर्ण होने पर भी उसके भीतर ब्रिटन के लिये विपत्ति का बीज छिपा हुआ है। गत मार्च मास में वे लोग सरकार से स्वराज्य-प्राप्ति के प्रश्न का उत्तर न पाकर कौंसिल-भवन से बाहर निकल आए थे। मतलब यह कि भारत-गवर्नमेंट के लिये विपत्ति की आशंका करने का यथेष्ट कारण मौजूद है। कहना न होगा, उक्त पत्र की इस आशंका में कितना तथ्य है।

× × ×

१६. ब्रिटन की हानि

हाल में हांगकांग, कैंटन और स्वाटो (Swatow) आदि स्थानों में चीनियों ने बिगड़कर ब्रिटिश बायकाट शुरू कर दिया है। ओसाका मायनीची (Osaka Mainichi) नाम के जापानी पत्र में यह प्रकाशित हुआ है कि इस बायकाट से ब्रिटन की कितनी हानि हुई है। संघाई और शामीन (Shameen) में चीनाओं की हत्या के उपरांत चीन में जापानियों के विरुद्ध बड़ी उत्तेजना फैली थी, और घोर आंदोलन शुरू हो गया था। किंतु अब वह उत्तेजना मिट गई है, और आंदोलन भी शांत हो गया है। बल्कि हाल में चीन में—ख़ासकर कैंटन में—जापानी माल का व्यापार पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। किंतु जापान के साथ ही ब्रिटन के विरुद्ध जो आंदोलन जारी हुआ था, वह अभी शांत नहीं हुआ। उसका फल अभी तक ब्रिटन को भोगना पड़ रहा है। ब्रिटन की ओर से जो अपनी हानि की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उसे देखने से मालूम होता है कि गत वर्ष हांगकांग की रफ़्तनी और आमदनी, दोनों में फ़ी सदी ५० हिस्से माल की कमी हो गई थी। हांगकांग के बंदरगाह में यात्रियों की संख्या भी आधी रह गई थी। वहाँ की आबादी में २ लाख लोगों की कमी हो गई है। ६०,००० कारीगर हांगकांग छोड़कर चल दिए हैं। हांगकांग से रफ़्तनी होने की प्रधान वस्तु चीनी है। उसकी रफ़्तनी में बहुत कुछ कमी हो गई है। जन-संख्या कम हो जाने के कारण हांगकांग में ज़मीन के दाम और मकानों का किराया इतना घट गया है कि वहाँ की सरकार के सामने कठिन आर्थिक समस्या उपस्थित है। ब्रिटिश सौदागरों में से बहुत-से दिवाला निकाल बैठे हैं। उनकी सहायता के लिये सरकार को ३० लाख पौंड उधार देने की व्यवस्था करनी पड़ी। फिर भी उससे कुछ सुविधा नहीं हुई। इस समय ऐसी अवस्था

उपस्थित है कि उक्त प्रदेश में ब्रिटिश लोगों के लिये रोज़गार करना असंभव हो रहा है। उनका माल कोई नहीं मोल लेता। ऐसी ही हालत अगर और कुछ दिन रही, तो हांगकांग में इतने दिन के परिश्रम से ब्रिटन की जो प्रतिष्ठा बद्धमूल हो चुकी थी, उसका व्यापार जो जड़ जमा चुका था, सो सब संपूर्ण रूप से मिट्टी में मिल जायगा। किस तरह यह हालत दूर की जाय, यही चिंता इस समय ब्रिटिश-सरकार के लिये प्रधान हो रही है।

× × ×

१७. जापान में शिक्षा-प्रचार

सहयोगी प्रताप में श्रीशिवनंदनप्रसाद मंडल बी० ए०, बी० एल्० नाम के एक सज्जन ने एक लेख प्रकाशित कराया है। उसमें उन्होंने जापान में शिक्षा-प्रचार का जो विवरण दिया है, वह हरएक शिक्षा-प्रेमी के लिये जानने-योग्य विषय है। हम उक्त लेख में से कुछ अंक यहाँ उद्धृत करते हैं। जापान में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य है। तीन वर्ष की उमर से बच्चों को किंडरगार्टन-पद्धति से शिक्षा दी जाने लगती है। उन्हें ६ से १२ वर्ष की अवस्था तक अनिवार्य रूप से पढ़ना पड़ता है। जापान के शिक्षा-विभाग ने सन् १९२०-२१ की जो रिपोर्ट प्रकाशित की थी, वह ४८वीं वार्षिक रिपोर्ट है। उसके देखने से मालूम होता है कि उक्त सन् में देश-भर में स्कूल जाने-योग्य आयु के लड़के १०,३१७,०८६ थे। उनमें ८८,६७,०२२ लड़के स्कूल जाते थे। इस वर्ष की अपेक्षा पहले वर्ष स्कूल जाने लायक़ लड़के २,२५,३३५ कम थे और स्कूल जा रहे लड़के २,२५,३२१ कम। इस वर्ष ४३,८२० स्कूल थे। शिक्षक २,२८,६८२ थे। विद्यार्थी १०,४२,५७,४२ थे। ग्रेजुएट ११,०६,१३७ थे। इस वर्ष पहले वर्ष की अपेक्षा १०६ स्कूल, १०,६४९ शिक्षक, ४,३८,४९५ विद्यार्थी और १,२०,५८० ग्रेजुएट अधिक थे। इस वर्ष जितने नए स्कूल खुले, उनमें ४ अंध-बहरों के स्कूल, १ नार्मल स्कूल, २३ मिडिल स्कूल, ५२ लड़कियों के हाई स्कूल, ३ उन्नतर स्कूल, १० कॉलेज, १ स्पेशल स्कूल, २ स्पेशल टेकनिकल स्कूल, ३८ मध्यम ग्रेड के टेकनिकल स्कूल, ५ प्राइमरी ग्रेड के टेकनिकल स्कूल तथा १,१०५ और-और प्रकार के टेकनिकल स्कूल थे। सन् १९२२ में स्कूल तथा उनमें पढ़नेवाले विद्यार्थी इस प्रकार थे—

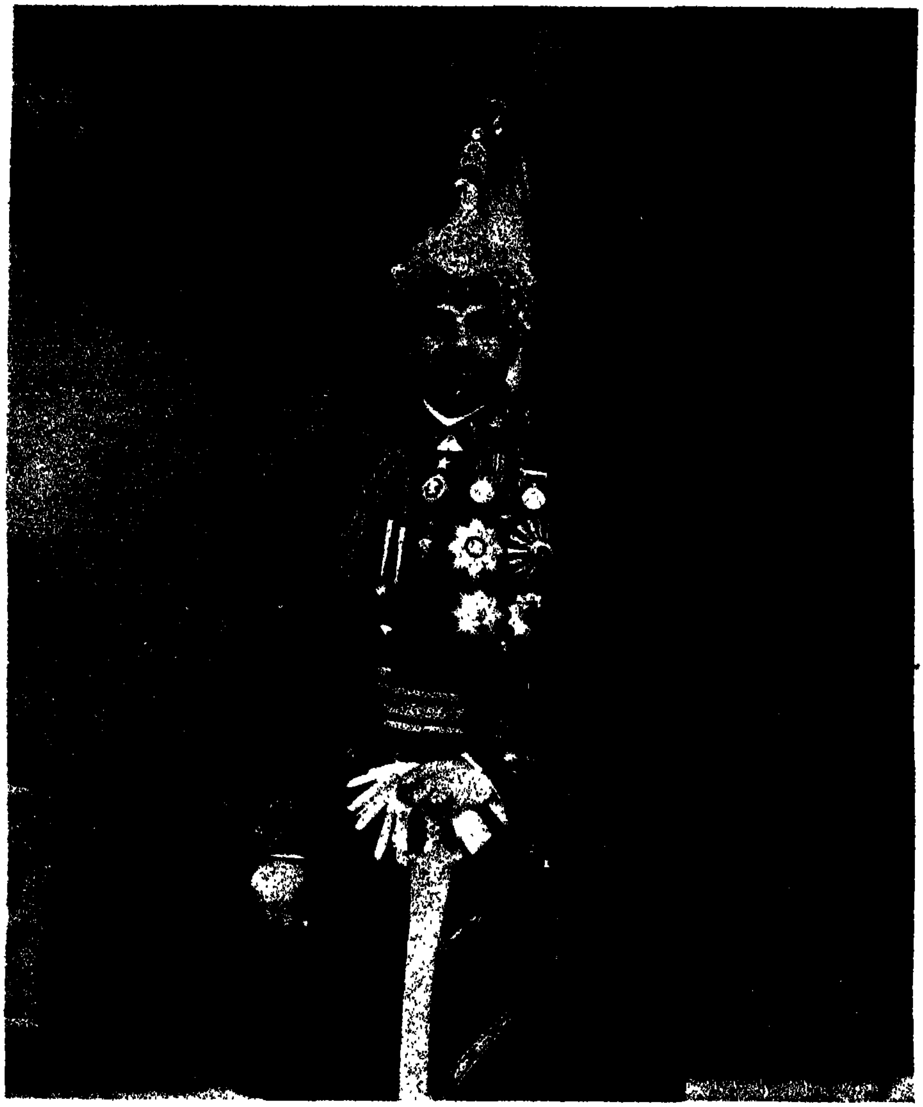
स्कूल	स्कूलों की संख्या	विद्यार्थियों की संख्या
प्राइमरी स्कूल	२५,५६२	८८,७२,००६
मिडिल स्कूल	३८५	१,९४,४४३
लड़कियों के हाई स्कूल	५८०	१,७६,७५९
व्यापार के स्कूल	६११	१,४९,९७०
व्यापार के सप्लीमेंटरी स्कूल	१४,८३६	९,९५,५३२
हाई स्कूल	१७	१०,५१२
विश्वविद्यालय	१८	२६,२०८
विद्यालय	७७	४१,४४२
व्यापार के कॉलेज	३१	१०,४९१
नार्मल स्कूल	९४	२८,९३२
टायर नार्मल स्कूल	२	१,३०५
लड़कियों के टायर नार्मल स्कूल	२	८०१
शिक्षकों का स्पेशल ट्रेनिंग स्कूल	१	२००
व्यापारिक शिक्षकों के ट्रेनिंग स्कूल	४	२६८
व्यापार-संबंधी स्कूल-शिक्षकों के सप्लीमेंटरी ट्रेनिंग स्कूल	१८	४२१
अंधे, बहरे तथा गूँगों के स्कूल	७४	४,१४८
अन्य स्कूल	१,९०६	२,२४,४४७
कुल	४४,३०२	१,०७,३७,९५९

इस संख्या में किंडरगार्टन स्कूल नहीं शामिल किए गए। अन्य स्कूलों से उन स्कूलों को समझना चाहिए, जो सरकारी नियमों से नहीं संचालित होते। सन् १९२२ में स्कूल जाने-योग्य लड़की-लड़कों की उपस्थिति इस प्रकार थी—स्कूल जाने-योग्य लड़कियाँ और लड़के ९०,८३,४७७ थे। स्कूल भेजे गए लड़की-लड़के ९०,०८,०३९ थे। न भेजे गए लड़की-लड़के ७५,४३८ थे। पहले जापान में स्त्री-शिक्षा नहीं प्रचलित थी। पर अब वहाँ लड़कियाँ भी काफ़ी तादाद में पढ़ाई जाती हैं। वहाँ सन् १९२२ में ९९,०३० लड़के और ९९,०७३ लड़कियाँ स्कूलों में पढ़ती थीं। जापान का क्षेत्र-फल और जन-संख्या भारत के बिहार-उड़ीसा-प्रांत के क्षेत्र-फल और जन-संख्या से भी कम है। तथापि स्वाधीन होने के कारण उसने ५०-६० वर्षों के अंदर ही शिक्षा-प्रचार में इतनी उन्नति कर ली है।

× × ×

१८. नेपाल में दास-प्रथा का अंत

माधुरी के पाठकों को यथासमय यह सूचना दी जा चुकी है कि नेपाल के महाराज ने अपने राज्य के लिये



महाराज चंद्रशमशेरजंगबहादुर राणा, ऑनरेरी जेनरल ब्रिटिश आर्मी

कलंक-स्वरूप दासत्वप्रथा के मूलोच्छेद का पूर्ण निश्चय कर लिया है, और तदनुसार घोषणा भी कर दी है। यह घोषणा महाराज ने २८ नवंबर, सन् १९२४ में की थी। हाल में काठमांडू (नेपाल की राजधानी) के एंटी-स्लैवरी ऑफ़िस से एक सरकारी ब्योरा प्रकाशित हुआ है। उससे मालूम हुआ कि अब नेपाल में कोई भी दास नहीं रह गया। महामाननीय महाराजाधिराज राणा श्रीमान् श्रीचंद्रशमशेरजंगबहादुर की भारी कोशिश का यह फल है कि सब मिलाकर ५७,८८१ गुलामों को गुलामी से छुटकारा मिल गया है। इस कार्य के लिये महाराजा साहब गत सन् १९२० से ही चेष्टा कर रहे थे। इस साल आपने गुलामी की चाल के ख़िलाफ़ कुछ क़ानून बनाए थे? आपने यह क़ानून पास कर दिया कि १० वर्ष से जो गुलाम नेपाल में रहते हैं, उन्हें छुटकारा दिया जायगा। और, जो लोग घर से बाहर और जगह तीन साल रह चुके हैं, वे भी अपने स्वामी को उचित धन देकर छुटकारा प्राप्त कर सकेंगे। एक क़ानून यह भी बनाया कि दासों की संतान अपने माता-पिता की धन-संपत्ति का उत्तराधिकार

प्राप्त कर सकेगी। अब तक नेपाल में दास का उपार्जित धन या संपत्ति उसके मालिक की ही होती थी। महाराज ने सन् १९२४ में जो घोषणा इस संबंध में की थी, वह बड़ी करुण थी। आपका कथन था कि यह निंद्य प्रथा रहने से देश और इस प्रथा के समर्थकों पर भगवान् का कोप पड़ेगा। कारण, इस प्रथा के कारण सैकड़ों-हज़ारों मनुष्यों (ग़ुलामों) के मा-बाप और बाल-बच्चे रो-रोकर दिन बिताते हैं। महाराज की इस घोषणा का फल यह हुआ कि देश-भर में इस प्रथा के विरुद्ध घोर आंदोलन उठ खड़ा हुआ। इस घोषणा-पत्र के निकलते ही कई महीने बाद ही ज्ञात हुआ कि पहले का यह नियम कि छुटकारा पानेवाले दासों को अपने मालिक का काम और सात साल तक करना पड़ेगा, रद् किया जा सकता है। महाराज ने इस प्रशंसनीय कार्य की पूर्ति के लिये सरकारी ख़ज़ाने से ४३ लाख रुपए भी ख़र्च करने मंज़ूर किए थे। जिनके पास ऐसे ज़रख़रीद ग़ुलाम थे, उन पर उन ग़ुलामों को छुटकारा देने के लिये महाराज की ओर से कुछ ज़ोर-ज़ुल्म नहीं किया गया। दासों के मालिक संख्या में १५,७१९ थे। इनमें से अधिकांश ने महाराज की इस इच्छा का सहर्ष समर्थन किया। इस समझदारी और राजभक्ति के लिये वे भी कुछ कम प्रशंसा और धन्यवाद के पात्र नहीं हैं। ३,२८१ स्वामियों ने अपने ग़ुलामों को विना कुछ क्षति-पूर्ति की रक़म लिए छुटकारा दे दिया है। जिन्होंने हर्जाना लिए विना दासों को मुक्ति देना अस्वीकार किया, उन्हें नेपाल-सरकार ने ग़ुलामों की अवस्था के हिसाब से हर्जाना भी दिया है। इन मुक्ति-प्राप्त दासों से खेती कराई जायगी। जंगल काटकर ज़मीन साफ़ कराई जा रही है। गत वर्ष नेपाल-सरकार ने दास ख़रीदने और रखने को क़ानून बनाकर वर्जित कर दिया है। सरकार की आज्ञा का उल्लंघन करके ग़ुलाम रखने या ख़रीदने-बेचनेवाले को सात साल सपरिश्रम कारावास का दंड भोगना पड़ेगा। महाराज की इस उदार जन-प्रवृत्ति और न्याय-निष्ठा के लिये हम उन्हें बधाई देते हैं।

× × ×

१९. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता

भारत में शिक्षा की बहुत कमी है। यहाँ प्राथमिक शिक्षा का तो देश-भर में अनिवार्य कर देना सरकार का सर्वप्रथम कर्तव्य है। पर देश के दुर्भाग्य से विदेशी सरकार के ध्यान में यह बात नहीं आती कि इस अभागे देश के लिये सैनिक ख़र्च बढ़ाने की अपेक्षा प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य और मुफ़्त करने में काफ़ी रुपए ख़र्च करने की कहीं अधिक आवश्यकता है। स्वर्गीय महात्मा गोखले ने अपने जीवन-काल में देश में मुफ़्त शिक्षा अनिवार्य करने के लिये बड़ा ज़ोर मारा था। पर सरकार की ओर से उनके प्रस्ताव का घोर विरोध किया गया, और कई भारतीय सदस्यों ने भी सरकार का साथ दिया! इधर यह आंदोलन बिलकुल ढीला हो गया है। देश-प्रेमियों को इसके लिये पुनः प्रयत्न करना चाहिए। ग़ैरसरकारी मेंबरों को कौंसिल में देश-भर में मुफ़्त प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करने का प्रस्ताव पास करके सरकार को उसका ख़र्च मंज़ूर करने के लिये विवश करना चाहिए। शिक्षा तो अब हस्तांतरित विभाग है। हमारे ही हाथ में है। इस पुनीत देश-हितकर कार्य के लिये धनाभाव का उज़्र बिलकुल बहाना है। इस प्रकार शिक्षा-प्रचार के लिये अगर थोड़ा-सा कर भी जनता को देना पड़े, तो कोई हानि नहीं। शिक्षा की कमी के कारण ही देश की जनता इतनी पिछड़ी हुई है।

× × ×

२०. श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर और संपादन-कार्य

लोग यही जानते हैं कि श्रीयुत रवींद्रनाथ ठाकुर एक प्रसिद्ध लेखक और कवि हैं। उनकी संपादन-कला-कुशलता के संबंध में हिंदी के बहुत कम लोगों को ज्ञान है। इस संबंध में माडर्नरिव्यू और प्रवासी के सुप्रसिद्ध संपादक श्रीरामानंद चट्टोपाध्याय एम्० ए० ने शांति-निकेतन पत्रिका में एक लेख लिखकर प्रकाश डाला है। आप लिखते हैं—श्रीरवींद्रनाथ ने लड़कपन से लेकर अब तक अनेक मासिक पत्रों का संपादन किया है। इस समय उनमें से कोई पत्र जीवित नहीं है। रवींद्र बाबू की पहली रचना ज्ञान-प्रकाश नाम के पत्र में छपी थी। उस समय 'भुवन-मोहिनी प्रतिभा'-नामक रचना किसी मर्द ने स्त्री-नाम से प्रकाशित कराई थी। रवींद्र बाबू ने इस रचना की समालोचना ज्ञान-प्रकाश में की थी। उस समय के अनेक प्रवीण साहित्यिक भी धोखा खा गए थे; पर तरुण रवींद्र बाबू ने जान लिया था कि यह रचना किसी स्त्री की नहीं है। रवींद्र ने बालक नाम का एक मासिक पत्र अपनी संपादकता में निकाला था। उसमें उच्च कोटि के लेख रहते थे। बाद को रवींद्र ने भारती, ओंकार, साधना और बंगदर्शन नाम के मासिक पत्रों का भी संपादन बड़ी निपुणता के साथ किया। रवींद्र की संपादकता में निकलने-



श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर

वाली साधना-पत्रिका में रवींद्र बाबू के अच्छे लेख तो निकलते ही थे, परंतु अन्य लोगों के जो लेख छपते थे, वे भी सुसंपादित होकर। रवींद्र बाबू लेखों के संशोधन व संपादन में कभी आलस्य नहीं करते थे। उनको प्रायः अनेक लेख एक प्रकार से फिर से ही लिखने पड़ जाते थे। पं० रामेंद्रसुंदर त्रिवेदी बँगला के एक प्रसिद्ध लेखक थे। उनकी रचनाओं का भी, छपने से पहले, यथेष्ट संस्कार कर दिया जाता था। रवींद्र ने इस तरह संपादक-रूप से अनेक अच्छे लेखकों को उत्कृष्ट और परिमार्जित लेख लिखने का मार्ग दिखलाया है। प्रवासी में एक 'संकलन' का कॉलम रहता है। रवींद्र बाबू ने कुछ दिन तक स्वतः प्रवृत्त होकर उसका संपादन किया था। रामानंद बाबू ने लिखा है कि वह अँगरेज़ी के विदेशी पत्र रवींद्र बाबू के पास भेज दिया करते थे। रवींद्र बाबू उनसे अच्छे-अच्छे प्रबंध छाँटकर शांति-निकेतन के ब्रह्मचर्य-आश्रम के छात्रों और अध्यापकों को उनके सार-संकलन और अनुवाद का कार्य सौंप देते थे। अनुवाद की कॉपी हाथ में आते ही रवींद्र बाबू उस पर अपनी क़लम चलाते थे। संक्षेप और संशोधन करने में रवींद्र बाबू कभी आलस्य न करते थे। यह सब इसलिये लिखा गया है कि नवीन संपादक इससे कुछ शिक्षा ग्रहण करें—वे संपादन के छोटे-से-छोटे काम को भी ड्रजरी (Drudgery) अर्थात् गधे की बेगार समझकर घृणा की दृष्टि से न देखें। रवींद्रनाथ में एक और विशेषता है। प्रायः पत्र-संपादक लोग अन्य लेखकों के लेखों पर ही विशेष निर्भर करते हैं। फल यह होता है कि लेखों की कमी के कारण कभी-कभी पत्र की संख्या देर को निकलती है, अथवा थर्ड क्लास के लेखों से पत्र की पूर्ति करनी पड़ती है। संपादक अगर ख़ुद ही तरह-तरह के लेख लिखने की शक्ति और योग्यता रखता है, तो उसे असुविधा नहीं होती। हम समझते हैं, भारत के पत्र-संपादकों में से बहुत थोड़े ऐसी शक्ति और योग्यता रखते हैं, और ऐसी शक्ति तथा योग्यता रखनेवालों में रवींद्रनाथ ठाकुर सर्वश्रेष्ठ हैं। रवींद्रनाथ की एक विशेषता यह भी है कि वह अपने संपादित एकाधिक पत्रों में नियमित यथेष्ट लिखकर भी अन्य पत्रों में लेख प्रकाशित कराते थे। कवि लोग अक्सर आलसी होते हैं। वे कोई काम नियमित नहीं कर पाते। किंतु रवींद्र बाबू में यह दोष नहीं पाया जाता। उनके कई बड़े-बड़े उपन्यास पत्रों में क्रमशः प्रकाशित हो चुके हैं। रामानंद बाबू का कहना है कि रवींद्र प्रति मास नियत तिथि को प्रकाशित होनेवाले लेख या उपन्यास का अंश भेज दिया करते थे। इसी तरह रवींद्र बाबू में अनेक विशेषताएँ हैं, और उन्हीं के कारण आज वह जगन्मान्य हो रहे हैं। ईश्वर उनको दीर्घजीवी करें।

× × ×

२१. प्रशंसनीय दान

धन का सबसे अच्छा उपयोग है, उसे किसी लोकोपयोगी आवश्यक कार्य में लगाना—विद्या-प्रचार, साहित्य-संवर्द्धन-जैसे कार्यों में देना। किंतु खेद की बात है कि हमारे हिंदी-भाषा-भाषी धनियों में बहुत कम लोगों की प्रवृत्ति इस ओर पाई जाती है। यदि हिंदी-भाषी धनी लोग जी खोलकर विद्या-प्रचार अथवा साहित्य-निर्माण के काम में धन की सहायता करते, तो अब तक

देश की यथेष्ट उन्नति हो गई होती। देशवासियों का यथेष्ट उपकार हो चुकता। हमारे अवध के रईसों, ज़मींदारों या ताल्लुक़ेदारों का हाल तो कुछ पूछिए ही नहीं। वेश्याओं को मालामाल कर देना, कौंसिल की मेंबरी के लिये इलेक्शन लड़ने में हज़ारों रुपए पानी की तरह बहाना उनके बाएँ हाथ का खेल है। अनेक दुर्व्यसनों में फ़िज़ूलख़र्ची करके क़र्ज़दार बन जाना भी उनकी आँखें नहीं खोलता। किंतु हिंदी-साहित्य की उन्नति, प्रचार और विस्तार के लिये साधारण धन देना भी उन्हें खल जाता है। यदि ऐसा न होता, तो हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को अब तक इतना धन मिल गया होता, जिससे वह आसानी से एक बड़ा पुस्तक-संग्रहालय स्थापित कर लेता, भारत का एक सर्वांग-पूर्ण इतिहास लिखवाने का पूरा प्रबंध कर डालता। अवध के ताल्लुक़ेदारों में से अगर आधे या चौथाई सज्जन भी इस ओर ध्यान देने की कृपा करें, तो हिंदी-साहित्य का भांडार रिक्त नहीं रह सकता। अन्य प्रांतों के साहित्य-रसिक विद्या-प्रेमी धनी लोग अपनी मातृभाषा के साहित्य की उन्नति के प्रति अपने कर्तव्य की ओर से इतने विमुख नहीं पाए जाते। इसके प्रमाण में हम इस समय आसाम के एक धनी सज्जन के दान का उदाहरण उपस्थित करते हैं। अभी हाल में जोरहाट (आसाम) के रायबहादुर श्रीराधाकांत हांदीक ने अपने स्वर्गीय दो पुत्रों के स्मारक के लिये जोरहाट-आसाम की साहित्य-सभा को ५०,००० रुपयों का दान दिया है। उक्त रायबहादुर पहले आसाम लैंडरिकर्ड्स ऐंड एग्रीकल्चरल डिपार्टमेंट के असिस्टेंट डाइरेक्टर थे। आपने कोई ताल्लुक़ेदार या राजा न होकर भी अपनी गाढ़ी कमाई की रक़म से इतना द्रव्य साहित्य की उन्नति के लिये देकर अन्य रईसों के सामने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। अभी हाल में लाला रघुमलजी खंडेलवाल का कलकत्ते में सहसा स्वर्गवास हो गया है। आप भी २० लाख रुपए की संपत्ति लोकोपयोगी कार्यों के लिये दान कर गए हैं, जिसके ट्रस्टी बा० घनश्यामदासजी बिड़ला-सरीखे सज्जन हैं। आशा है, आपके इस दान से अच्छी रक़म साहित्योन्नति और विद्या-प्रचार के काम में ख़र्च की जायगी। कम-से-कम हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को इससे इतिहास लिखवाने और पुस्तक-संग्रहालय की स्थापना के लिये काफ़ी रुपए प्राप्त होंगे। क्या हम अवध के ताल्लुक़ेदारों से भी यह आशा कर सकते हैं कि वे हिंदी साहित्य की उन्नति अथवा विद्या-प्रचार करनेवाली हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के समान संस्थाओं अथवा हिंदी के ग़रीब विद्वान् लेखकों तथा ग्रंथकारों को यथेष्ट धन देने की उदारता दिखावेंगे? ईश्वर करे, हमारी आशा सफल हो।

× × ×

२२. अशुद्धि-संशोधन

इस संख्या में पं० श्रीधर पाठक की 'स्व जीवनी' जो निकली है, उसमें प्रूफ़-संशोधक की ग़लती से दो ऐसी अशुद्धियाँ रह गई हैं, जिनका संशोधन आवश्यक है। पृष्ठ २५ पर छठी पंक्ति में 'श्रुतिसुख' के स्थान में 'श्रुतिसुखद' पढ़ना चाहिए। उसी पृष्ठ के फ़ुटनोट की अंतिम पंक्ति में 'था नहीं अनुमान' की जगह 'था नहीं, नहीं अनुमान' होगा। पाठकगण कृपा कर अपनी-अपनी प्रति में ये संशोधन अवश्य कर लें।

× × ×

२३. भारत के कुछ बंदरगाह

'व्यवसा औ वाणिज्य' पत्र में भारत और बर्मा के बंदरगाहों का विवरण प्रकाशित हुआ है। पाठकों की जानकारी के लिये उनमें से कुछ का विवरण यहाँ दिया जाता है। भारत के दक्षिण, पूर्व और पश्चिम उपकूल में ४१ बंदरगाह हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) कराची यह सिंध में है। भारत के अन्य बंदरगाहों की अपेक्षा कराची अधिक योरप के निकट है। गत डेढ़ सौ वर्षों से सिंध, उत्तर-पश्चिम भारत, बलूचिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान के विदेशी वाणिज्य का यही द्वार है। यहाँ की आबादी २ लाख १७ हज़ार है। इसे भारत का लिवरपूल कहते हैं। यह प्रथम श्रेणी का बंदरगाह है। सब बंदरगाहों में इसका ५वाँ नंबर है। सन् १८४३ में यह अँगरेज़ों के अधिकार में आया था। उस समय इस बंदरगाह में साल में १२ लाख रुपए का व्यवसाय होता था। सन् १८६३ में ६६६ लाख रुपए का कारबार हुआ था। इस बंदरगाह में रेलवे का कारख़ाना और ३ मैदे की कलें हैं। कराची शिल्प-पदार्थों को केंद्र-स्थान न होने पर भी बहिर्वाणिज्य का प्रधान बंदरगाह है। इस बंदरगाह का सब काम पोर्टट्रस्ट के द्वारा संपन्न होता है। इस ट्रस्ट की स्थापना सन् १८८७ में हुई थी। ट्रस्ट के मेंबर ११ हैं। कुछ मेंबरों का निर्वाचन कराची की वणिक्-सभा करती है, और बाक़ी को गवर्नमेंट चुनती है। सन् १८८७-

८८ में इस बंदरगाह की आमदनी ४,६३,६६५ रुपए थी और व्यय ५,११,१५९ रुपए। सन् १९१७-१८ में ६६,७६,९६५ रुपए आय और ५०,७७,२४५ व्यय था। सन् १९२२-२३ में आय ६,११५ हज़ार रुपए और व्यय ६,२७२ हज़ार रुपए हुआ। सन् १९१६ में ८½ लाख रुपए ख़र्च करके इस बंदरगाह का कार्यालय बनवाया गया था। सन् १९२४ में स्वेज़-नहर होकर जो चीज़ें योरप को भेजी गई थीं, उनमें फ़ीसदी ४५ हिस्से गेहूँ कराची-बंदर से ही भेजे गए थे। सन् १९२४ में सारे भारत से जितने गेहूँ बाहर भेजे गए थे, उनका फ़ीसदी ९० हिस्सा कराची से ही भेजा गया था। भारत से सन् १९२२ की अपेक्षा सन् १९२४ में २,१५१ हज़ार टन अधिक माल स्वेज़-नहर से भेजा गया था। उसमें कराची-बंदर से १,२५६ हज़ार टन अधिक भेजा गया था। साल-भर में ३,००० के लगभग जहाज़ इस बंदर से आते-जाते हैं। सक्कर-बाँध बँध जाने पर कराची से रफ़्तनी की मात्रा और भी बढ़ जायगी। सन् १९१७ में पोर्टट्रस्ट पर २६१ लाख रुपए का ऋण था। इस समय ऋण का परिमाण २½ करोड़ रुपए और संपत्ति का मूल्य ६ करोड़ रुपए है। ३ करोड़ रुपए ख़र्च करके बंदरगाह की उन्नति की जा रही है। कराची-बंदर में बाहर से आनेवाली चीज़ें सूत, पशमी कपड़े, चीनी, लोहा, इस्पात, केरोसिन तेल और कोयला हैं। कराची से बाहर रफ़्तनी होने की चीज़ें हैं गेहूँ, चने, जव, भुट्टा, सूत, बार्ली, तेलहन, पशम, चमड़ा और हड्डी।—(२) सूरत समुद्र के उपकूल से १४ मील की दूरी पर नदी के किनारे सूरत-शहर बसा हुआ है। ईस्ट-इंडिया कंपनी ने पहले यहाँ अपनी कोठी बनवाई थी। गत शताब्दी के प्रथम से ही यह नगर विदेशी वाणिज्य के लिये प्रसिद्ध था। रुई और अन्यान्य यहाँ उत्पन्न होनेवाली चीज़ें इस बंदरगाह से बाहर भेजी जाती थीं। सन् १८०१ में यहाँ से १½ करोड़ रुपए का कारबार हुआ था। सन् १९०१ में केवल ३० लाख रुपए का कारबार हुआ। इधर इसकी और भी अवनति हो गई है।—(३) बंबई का बंदरगाह। यह समुद्र के पश्चिम उपकूल में बंबई-द्वीप में है। यह बंदरगाह भौगोलिक अवस्था के अनुकूल है और यहाँ से बहिर्वाणिज्य में बड़ी सुविधा होती है। इसी से इस बंदरगाह की क्रमशः उन्नति होती चली आ रही है। द्वितीय चार्ल्स ने अपने ब्याह के दहेज़ में यह द्वीप पाया था। उन्होंने सन् १६६८ में ईस्ट-इंडिया कंपनी को वार्षिक १५०) रुपए पर इस द्वीप का प्रबंध दे दिया। इसके १५० वर्ष बाद जब अँगरेज़ों ने दक्खिन के राष्ट्र को जीत लिया, तब उक्त प्रदेश की राजधानी बंबई ही बनाई गई। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यभाग तक यह एक छोटा-सा बंदरगाह था। सन् १८३८ में इँगलैंड और बंबई के बीच में मिसर के रास्ते होकर नियमित भाव से डाक भेजने की व्यवस्था की गई थी। सन् १८६८ से सन् १८८८ तक के समय में इस बंदरगाह में १½ करोड़ रुपयों का माल बाहर से आया और यहाँ से बाहर भेजा गया था। सन् १९१८-१९ में २४६ करोड़ रुपयों के माल की आमदनी-रफ़्तनी हुई थी। यहाँ के अधिकांश कल-कारख़ाने भारतीयों के मूलधन से और भारतीयों की ही देख-रेख में चलते हैं। बंबई वास्तव में भारत के गौरव को बढ़ानेवाली है। इस बंदरगाह का कार्य भी पोर्टट्रस्ट के द्वारा संचालित होता है। इस बंदरगाह द्वारा गवर्नमेंट को सालाना २ करोड़ ६० लाख रुपए की आमदनी होती है। ट्रस्ट पर ऋण २,०७० लाख रुपए है। इस बंदरगाह की और भी उन्नति करने के लिये १५ करोड़ रुपयों की मंज़ूरी हो चुकी है। इस बंदरगाह में बाहर से ये चीज़ें आती हैं—केरोसिन और जलाने का तेल, कोयला, रुई, कपड़े, ईंट, टाली, बालू, चूना, अन्न, लोहा, इस्पात, चीनी, कल-क़ब्ज़े, रेलगाड़ी का सामान, लोहे के सामान, लकड़ी, काठ, सूत, फूस, कपास के बीज, पशम वग़ैरह। यहाँ से रफ़्तनी की चीज़ें ये हैं—केरोसिन तेल, रुई, बीज, manganeese ore, अन्न, चमड़ा, सूत, कपड़े, कोयला, मूँगफली, चीनी, हड़, लोहा, हड्डी अफ़ीम वग़ैरह।

माधुरी की पिछली संख्याएँ

माधुरी के प्रेमी पाठकों ने हमसे समय-समय पर पिछली संख्याएँ भेजने के लिये आग्रह किया है। पिछली संख्याओं के अभी कुछ सेट भी बाक़ी रह गए हैं। अतः ऐसी अवस्था में जिनके फ़ाइलों में निम्न-लिखित संख्याओं में जो संख्याएँ न हों, अभी मँगाकर अपना सेट पूरा कर लें। अन्यथा प्रतियाँ शेष न रहने पर हम देने से असमर्थ होंगे।

प्रथम वर्ष की संख्याएँ

फुटकर संख्याएँ

तीसरी (आश्विन की)	संख्या	२)
छठी (पौष की)	,,	२)
आठवीं (फाल्गुन की)	,,	२)
नवीं (चैत्र की)	,,	।।।)
दसवीं (वैशाख की)	,,	।।।)
ग्यारहवीं (ज्येष्ठ की)	,,	१)
बारहवीं (आषाढ़ की)	,,	१)

नोट—चारों संख्याएँ एकसाथ लेने से ३): इनमें बड़े ही मनोरंजक लेख और मनोहर चित्र निकले हैं।

प्रथम वर्ष

सजिल्द सेट

इनकी जिल्दें मज़बूत और सुंदर कपड़े की बनी हैं, जिन पर सुनहरे अक्षरों में माधुरी का नाम इत्यादि आवश्यक बातें लिखी हैं। सेट देखते ही हाथ में ले लेने को तबियत छटपटाने लगेगी। ये सेट क्या हैं, पुस्तकालयों और वाचनालयों की शोभा हैं। १० पुस्तकें और न रखकर एक सेट माधुरी का रक्खें, तो अधिक अच्छा होगा।

१ से ६ संख्याओं तक—२०); इन्हें प्रेमी पाठकों ने २४)-२५) प्रति सेट देकर ख़रीद लिया है। ७ से १२ संख्याओं तक—प्रति सेट मूल्य ६)

द्वितीय वर्ष की संख्याएँ

इस वर्ष की १२ संख्याओं में केवल प्रथम संख्या अप्राप्य है। बाक़ी संख्याओं की अधिक-से-अधिक ४० प्रतियाँ तक बाक़ी रह गई हैं। जिन प्रेमियों को जिस संख्या की आवश्यकता हो, लौटती डाक से लिखकर मँगा लें। मूल्य प्रत्येक संख्या का १)

द्वितीय वर्ष

इन संख्याओं के सुंदर जिल्ददार सेट भी मौजूद हैं। जिनमें प्रथम संख्या भी मौजूद है। ऐसे केवल प्रथम खंड के २३ और दूसरे के ४० सेट बाक़ी रह गए हैं। जो प्रेमी पाठक लेना चाहें, प्रत्येक के लिये ५) भेजकर शीघ्र मँगा लें। अन्यथा निकल जाने पर फिर न मिल सकेंगे।

तृतीय वर्ष की संख्याएँ

इस वर्ष की फुटकर संख्याओं में केवल पहली, तीसरी, चौथी और सातवीं से बारहवीं तक सभी मिल सकती हैं। प्रत्येक का मूल्य ।।।) जितनी या जिस संख्या की आवश्यकता हो, लौटती डाक से लिखकर मँगा लें।

तृतीय वर्ष

इनके सुंदर सेट भी लगभग ४० की संख्या में बाक़ी रह गए हैं। जो सज्जन चाहें ५) प्रति सेट के हिसाब से मँगवा सकते हैं। एकसाथ दोनों सेट लेने से ६) में ही दे दिए जायँगे। विलंब से ऑर्डर आने से, हम नहीं कह सकते कि दे सकेंगे।

नोट—हमारे प्रत्येक सेट ऐसे मनोहर, और मज़बूत बँधे हैं कि बाज़ार में ३) देने पर भी नहीं बँध सकते। सुंदर कपड़ा और उसके ऊपर स्वर्णाक्षरों का काम सुंदरता को दोबाला करता है। किसी बढ़िया-से-बढ़िया लाइब्रेरी में भी रखने से माधुरी की शोभा श्रेष्ठतम रहेगी। अतः प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि अपने इच्छित अंक और सेट फ़ौरन् मँगवा लें।

निवेदक—मैनेजर माधुरी, लखनऊ

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ७॥), छ मास का ४) और प्रति संख्या का ॥।) है। वी० पी० से मँगाने में =) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छ महीने का ५) और प्रति संख्या का ॥=) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है, और प्रति मास शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को पत्रिका प्रकाशित हो जाती है। लेकिन ग्राहक बननेवाले चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो अगले महीने के शुक्ल-पक्ष की सप्तमी तक कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उसको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। लेकिन उक्त तिथि के बाद सूचना मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा, और उस संख्या को ग्राहक ॥-) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना संचालक गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ या मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो इसका प्रबंध डाक-घर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १५ रोज़ पेश्तर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंजूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए। हाँ, चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक ख़र्च प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

पं० दुलारेलाल भार्गव

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	... ...	३०)	प्रति मास
½ ,, या १ ,, ,,	... ...	१६)	,, ,,
¼ ,, या ½ ,, ,,	... ...	९)	,, ,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,,	... ...	५)	,, ,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ४,०० ००० पढ़े-लिखे, धनी-मानी और प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार खूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। एक-एक प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०-५० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से अपेक्षाकृत कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो कीजिए।

मैनेजर माधुरी, लखनऊ



[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ५ } भाद्रपद-शुक्ल ७, ३०३ तुलसी-संवत् (१९८३ वि०)-- { संख्या २
खंड १ } १४ सितंबर, १९२६ ई० { पूर्ण संख्या ५०

भ्रमर-गीत

कजली]

(१)

बन में फूलि रहे गुड़हरवा भौंरा धाय-धाय फिरि आय :
दरसत अति सुकुमार, सरस अति, परसत मन न पत्याय ।

(२)

फिरि-फिरि फिरत निरत-हित थिरकत निरखत हित चित लाय :
चुंबन करत मधुर मधु मिलत न, मुरकत नव खिसियाय ।
बन में० ।

श्रीपद्मकोट }
२७।२।१९२५ } श्रीधर पाठक

पूर्ति-पीयूष

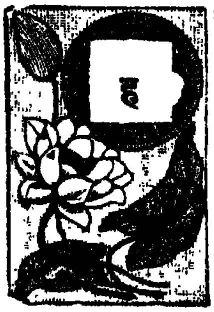
प्रेम की प्रतीति उर उपजी सुस्वाद सुख,
जानियो न भूलि याहि छलना अनंग की :
खींचि मनमोहन तें काट-पेंच कौन करै,
चली अब ढीली बाढ़ मन के पतंग की ।
मूँदै हम खोलें किन छाई छवि एक तैसी,
प्यासी भरी आँखें रूप-सुधा के तरंग की ;
उनतें रह्यो न भेद बिछुरे-मिले में, भई
बिछुरनि मीन की औ' मिलनि पतंग की ।

* * *

आवै इठलात जलजात-पात के-से बिंदु,
कैधौं खुली सीपी माहिं मुकता दरस है ;
कढ़ो कंज-कोस तें तरंगिनि के सीकर सों,
प्रात-हिमकन सों न सीतल परस है ।
देखे दुख दूनो उमगत अति आनँद सों,
जान्यो नहिं जाय याहि कौन सों हरस है ;
तातो-तातो कढ़ि रूखे मन को हरित करै,
ऐसे मेरे आँसू, तैं पियूष तें सरस है ।

जयशंकर "प्रसाद"

भारतवर्ष का एक राष्ट्रीय इतिहास



हमारी पाठशालाओं और विद्यालयों में हमारे विद्यार्थियों को अपने देश के इतिहास की जो पुस्तकें पढ़ने को मिलती हैं, वे हमारी जाति के लिये लज्जित होने की एक चीज़ हैं। हिंदोस्तानी माता-पिता संतान पैदा करते हैं; पर अपनी संतान के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की, उन्हें विज्ञ, विचारशील, स्वतंत्र और समर्थ बनाने की, उन्हें कोई चिंता नहीं रहती। उनके बालक स्कूल में सच पढ़ते हैं या झूठ, अच्छा पढ़ते हैं या बुरा, इससे उन्हें क्या मतलब, किसी प्रकार वे चाकरी करने लायक़ हो जायँ, बस, माता-पिता का मनोरथ पूर्ण हो जाता है।

देशी भाषाओं के साहित्य में भारतीय इतिहास की कोई नाम लेने लायक़ अच्छी पुस्तकें नहीं हैं। यही बात बतलाती है कि हमारे राष्ट्रीय, साहित्यिक तथा शिक्षा-संबंधी जीवन में कितना उथलापन, कितना थोथापन और कितना दिवालियापन है! हमारे राष्ट्रीय जीवन के विकास, हमारे साहित्य की पुष्टि और हमारे बालकों की ठीक-ठीक शिक्षा के लिये भारतीय इतिहास के भारतीय दृष्टि से अध्ययन, मनन और संकलन करने की अनिवार्य आवश्यकता है। भारतीय दृष्टि से भारतीय इतिहास के संकलन का अर्थ भारतवासियों के बड़प्पन की झूठी डींगें हाँकना नहीं है। हमारा ध्येय ख़ालिस सचाई है। किंतु भारतीय इतिहास में हम सचाई तक तभी पहुँच सकते हैं, जब उसे भारतीय दृष्टि से देखें। इस कथन को प्रमाणित करने के लिये हम यहाँ न रुकेंगे। हम अन्यत्र इस विषय पर विस्तार-पूर्वक लिख चुके हैं। (देखो भारतवर्ष में जातीय शिक्षा, पृ० २१-२२)

जब-जब हममें एक गहरी राष्ट्रीय भावना जगती है, जब-जब अपने साहित्य को समृद्ध देखने की एक सच्ची अभिलाषा उत्पन्न होती है, जब-जब सत्य की जिज्ञासा हमें अधीर करती है, तब-तब हम अपने राष्ट्रीय इतिहास के संकलन की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। यह अभाव हमें बार-बार हरएक क्षेत्र में बेचैन करता है। देहरादून हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के समय बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने इसी बेचैनी से प्रेरित होकर एक भारतीय इतिहास लिखवाने का सराहनीय प्रस्ताव रक्खा था। न-जाने कब उसके अनुसार कुछ कार्य होगा?

असहयोग-आंदोलन की जागृति के समय, जब राष्ट्रीय शिक्षा की भी एक नई लहर चली, हमने इस संबंध में बड़ी-बड़ी आशाएँ की थीं। किंतु असहयोग-आंदोलन में जितना विस्तार था, जितना उबाल और कोलाहल था, उतनी गहराई न थी। सच कहें, तो असहयोग-आंदोलन के प्रधान नेताओं ने राष्ट्रीय शिक्षा के भाव का उतना गहरा अनुभव कभी नहीं किया, जितना देश के आदर्श-परायण युवक करते हैं। केवल राष्ट्रीय नियंत्रण में आ जाने से, मातृभाषा को माध्यम बना लेने से, और चर्खे के समावेश से शिक्षा का रूप राष्ट्रीय नहीं हो जाता। भिन्न-भिन्न प्रांतों में महात्मा गांधी के जो अनेक सहयोगी नेता थे, जिनमें से बहुतों ने किसी आंतरिक विश्वास के कारण नहीं, प्रत्युत अपनी स्थिति को बनाए रखने की ग़रज़ से असहयोग और राष्ट्रीय शिक्षा के आंदोलनों का साथ दिया था, उनकी चलाई हुई संस्थाओं से कुछ आशा करना तो निरी दुराशा थी। इन शिक्षणालयों में टूटे-फूटे राष्ट्रीय नियंत्रण के सिवा कुछ भी राष्ट्रीय न था।

पाठ्य विषय और परीक्षा-पद्धति से लेकर कक्षाओं के नामों तक हर बात में वे मैकाले-शिक्षणालयों की नक़ल करते थे। ऐसे स्थानों से भारतीय इतिहास की वैसी ही पुस्तकें पैदा हुईं, जैसी हो सकती थीं।

ऐसा क्यों हुआ, और भविष्य में हमारे राष्ट्रीय प्रयत्नों का इससे अच्छा परिणाम कैसे निकल सकता है, इन सब प्रश्नों को अलग रखकर आज हम केवल यह दिखलाने का यत्न करेंगे कि भारतीय इतिहास का एक पाठ्य ग्रंथ किस प्रकार का होना चाहिए; प्रत्युत यह कहना अधिक ठीक होगा कि किस प्रकार का नहीं होना चाहिए। और, हम यह करेंगे आलोचना के बहाने। जिस पुस्तक की हम आलोचना करने चले हैं, शायद वैसे हम उस पर कभी अपना समय न गँवाते; पर वह हमारे एक पूज्य नेता की क़लम की उपज है, और असहयोग-आंदोलन के दिनों में राष्ट्रीय शिक्षणालयों की माँग पूरी करने के लिये लिखी

गई थी, और देश का एक राष्ट्रीय इतिहास समझी जाती है। हमारा मतलब श्रीमान् लाला लाजपतराय के लिखे "भारतवर्ष का इतिहास, प्रथम भाग" से है। लालाजी राष्ट्रीय शिक्षा के विषय में हमेशा से संदेहवादी रहे हैं। राष्ट्रीय दृष्टि से लिखे हुए इतिहास का अर्थ क्या है, और उस प्रकार के इतिहास से उनका ग्रंथ कितना कोसों दूर है, कितना नीचा है, यह बात उन्हें और उनके अनुयायियों को दिखा देने की सख़्त ज़रूरत है। यह काम यदि इस लेख से निकल सका, तो हमारा प्रयत्न सफल होगा। हमारी आलोचना तीन खंडों में विभक्त होगी। सबसे पहले हम लालाजी के इतिहास की सामान्य रूप-रेखा और ढाँचे को परखेंगे। फिर उसकी कुछ आंतरिक परीक्षा करेंगे, और अंत में उसके परिणामों पर विचार।

रूप-रेखा

एक सरसरी नज़र से भी जो लालाजी की पुस्तक को देख जायगा, उसे यह जानने में देर न लगेगी कि लालाजी की पुस्तक डॉ० विंसेंट स्मिथ की Oxford History of India का हूबहू आँख मूँदकर अनुसरण करती है।

(क) भौगोलिक भित्ति

पहले खंड में भारतीय भूगोल का वर्णन है। भारतवर्ष के इतिहास को समझने के लिये भारतीय भूगोल का कुछ ज्ञान आवश्यक है, यह तो हरएक लेखक समझता है। किंतु प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थी को अदन और बर्मा-सहित आधुनिक ब्रिटिश-भारत तथा देशी राज्यों का अलग-अलग क्षेत्रफल तथा भिन्न-भिन्न फ़िरक़ों की जन-संख्या जानने का क्या प्रयोजन है? जिस चीज़ की ज़रूरत है, वह है भारतीय भूगोल के बुनियादी और स्थायी नियम, जो भारतीय इतिहास के सब कालों पर प्रभाव करते रहे हैं। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के इतिहास को समझने के लिये भारत के स्वाभाविक परंपरागत विभागों को समझना आवश्यक है। इन पंक्तियों के लेखक ने हाल में भारतीय भूगोल के सिद्धांतों पर एक पुस्तक लिखी है, तथा वह उसी पुस्तक के दूसरे खंड में भारतवर्ष के परंपरागत प्रांतों का विवेचन करना चाहता है। वहाँ इस विषय का पूरा विवेचन हो चुका है, और होगा, इसलिये यहाँ हम उन बातों को दोहराएँगे नहीं। इतना कहना बस है कि भारतीय भूगोल का भारतीय इतिहास से जहाँ बड़ा गहरा संबंध है, वहाँ आधुनिक ब्रिटिश-भारत की जन-संख्या और विभागों के प्राचीन भारतीय इतिहास से कुछ भी ताल्लुक़ नहीं है। प्राचीन इतिहास की पुस्तक में इन वस्तुओं का वर्णन बिलकुल निरर्थक है। इस वर्णन में भी लालाजी ने आँख मूँदकर रूढ़ि का अनुसरण किया है। उदाहरण के लिये आपने लिखा है—"दक्षिण उस भाग को कहते हैं, जिसके उत्तर में विंध्याचल है…...।"

इस कथन में जो हेत्वाभास है, उसका निर्देश हम अपनी पूर्वोल्लिखित पुस्तक में कर चुके हैं। (देखो भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार, पृ० १३)

(ख) भारतवर्ष का इतिहास कहाँ से शुरू होता है—क्या बुद्ध के समय से ?

दूसरे खंड में "आर्यों के समय से पहले भारत की दशा" की, तीसरे खंड के पाँच परिच्छेदों में "वैदिक काल" की और चौथे खंड से "भारत के ऐतिहासिक काल" की कहानी कही गई है। यहाँ लालाजी ने सबसे बुरी ठोकर खाई है। किसी भारतीय इतिहास-लेखक ने आज तक यह लिखने का साहस नहीं किया था कि "भारतवर्ष का ऐतिहासिक काल ईसा के जन्म से सात सौ वर्ष पहले आरंभ होता है!" उन्होंने आँख मूँदकर विंसेंट स्मिथ के शब्दों का अनुवाद तो कर दिया; पर क्या लालाजी ख़ुद जानते हैं कि उनके इस कथन का अर्थ क्या है? इस महत्त्व-पूर्ण प्रश्न पर ज़रा विस्तार से विचार करने की ज़रूरत है।

योरपियन ऐतिहासिकों में से बहुत-से अवश्य इस बात को मानते हैं। अध्यापक राप्सन की (Ancient India) उठा लीजिए। भारतवर्ष की 'सभ्यताओं' (न कि सभ्यता) के आरंभिक वर्णन के बाद आप पहले वेदों और फिर ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों के समय की सभ्यता का वर्णन पावेंगे। उसके बाद बौद्ध-जैन-धर्मों के उत्थान की कहानी है, और फिर "पारसियों और यूनानियों द्वारा भारत के विजय (Persian and Macedonian Conquest of India)" की। फिर चंद्रगुप्त मौर्य का उल्लेख है। मानो भारतवर्ष के इतिहास में पहली राजनीतिक घटना पारसियों और यूनानियों द्वारा भारत (!) का विजय करना (!) ही था।

भारतीय मस्तिष्क को यह उक्ति एकदम बेहूदा प्रतीत होती है। यह कहना बिलकुल दूसरी बात है कि सातवीं शताब्दी से पहले के राजनीतिक इतिहास की अभी तक यथेष्ट खोज नहीं हुई। हमारी देशी भाषाओं में आज अनुवादकों की कमी नहीं, फिर भी भारतीय इतिहास पर बहुत ग्रंथ नहीं प्रकाशित हुए। इसका कारण यही है कि यदि

अँगरेज़ी ग्रंथों का सीधा अनुवाद करते हुए इस आरंभिक राजनीतिक इतिहास को बिलकुल छोड़ दिया जाय, तो अपने पूर्वजों की कहानियों को माता के दूध के साथ पीनेवाली भारतीय जनता एकदम कह उठे—हैं, यह कैसा भारतवर्ष का इतिहास है ! दूसरी तरफ़ ऐसे लेखक हमारे देश में थोड़े हैं, जो अपनी अक़्ल को तकलीफ़ देकर स्वयं उक्त इतिहास का स्वतंत्र संकलन कर सकें; और जो हैं भी, वे प्रतिकूल परिस्थिति और साधनों के अभाव से विवश हैं। इस दशा में जिन भारतीय लेखकों ने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास पर क़लम उठाई है उन्होंने या तो स्वर्गीय रमेशचंद्र दत्त की तरह स्पष्ट हो कह दिया है कि हम सभ्यता का ही इतिहास लिखेंगे, या अपनी योग्यता के अनुसार इस 'प्राग्‌ऐतिहासिक' काल का कुछ टूटा-फूटा इतिहास बनाया है। मिश्रबंधुओं के प्राचीन भारत के इतिहास का प्रथम खंड वैज्ञानिक दृष्टि से टूटा-फूटा और अप्रामाणिक है। फिर भी इस बात के लिये हम उन्हें सराहे विना नहीं रह सकते कि उन्होंने प्राग्बुद्ध-काल का इतिहास बनाने का कुछ यत्न तो किया है। यह हिम्मत लाला लाजपतरायजी के लिये बाक़ी थी कि इस काल को एकदम प्राग्‌ऐतिहासिक कह दें।

शायद लालाजी कहेंगे, उन्हें जातीय पक्षपात से क्या मतलब ? उन्हें तो शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से सचाई की खोज करना है। बेशक, हम भी शुद्ध सचाई के अन्वेषक हैं, और जातीय पक्षपात को ऐतिहासिक खोज में कोई जगह नहीं देना चाहते। किंतु वैज्ञानिक दृष्टि से हो लालाजी की उक्ति कहाँ ठहरने पाती है ?

भारतवर्ष का ऐतिहासिक काल सातवीं सदी से शुरू होता है। यह कथन केवल दो बातों के आधार पर हो सकता है—या तो यह कि उससे पहले काल में भारतवर्ष में कोई राजनीतिक घटना नहीं हुई, या यह कि घटनाएँ तो हुईं, पर उनका संकलन नहीं किया गया या अविश्वसनीय रूप से किया गया। योरपियन ऐतिहासिक जब उपर्युक्त कथन करते हैं, तो उनका यही अभिप्राय होता है। राम और सीता, कृष्ण और अर्जुन, दुष्यंत और भरत उनके लिये कल्पित नाम हैं, उनकी कहानियाँ निरी देव-गाथाएँ या मिथ्या-कथाएँ (Mythology) हैं ! क्या लालाजी भी ऐसा मानते हैं ? पाश्चात्य ऐतिहासिक जब उक्त बात कहते हैं, तो वे उसके इन परिणामों को साथ ही मानकर चलते हैं। पर लालाजी ने जब आँख मूँदकर यह बात दोहराई है, तब इसका अर्थ शायद वह ख़ुद नहीं समझे। नहीं तो रामायण और महाभारत की कहानी देने का क्या अर्थ है ? पर गोलमाल करने में भी वे इतने सिद्धहस्त हैं कि रामायण-महाभारत की समूची कहानी लिख जाने पर भी उन्होंने यह कहीं नहीं प्रकट होने दिया कि वह कल्पित काव्यों की कहानी-मात्र सुना रहे हैं या ऐतिहासिक घटनाओं का वृत्तांत।

हाँ, तो स्मिथ और राप्सन की उक्त दोनों बातें वैज्ञानिक कसौटी पर पूरी नहीं उतरतीं। उनकी सम्मति में आर्य लोग उत्तर-पश्चिम द्वार से भारतवर्ष में प्रविष्ट हुए हैं। प्राग्बुद्ध-काल तक हिमालय की तरहटी से विंध्याचल-पार महाराष्ट्र तक का प्रदेश आर्य हो चुका था। यह सब हो गया, और कोई राजनीतिक घटना नहीं हुई, यह कथन मख़ौल नहीं तो और क्या है ? पौराणिक सूत लोगों ने इन घटनाओं के वृत्तांत को सदियों तक सुरक्षित रक्खा, तथा उनकी मेहनत का फल पुराणों और महाभारत की वंशावलियों में अब तक लगभग पूर्ण रूप में विद्यमान है। इन सूतों की समाज में कैसी स्थिति थी, किस सावधानी से वे अपने ज्ञान का संग्रह और रक्षा करते थे, किस-किस क्रम से उसका ग्रंथ-रूप में संकलन होता गया और वह शिक्षा-परंपरा में किस प्रकार दिया गया, यह सब वृत्तांत भी उन्हीं वंशावलियों के साथ ही मौजूद है। वैदिक और पौराणिक साहित्य साथ-साथ बनते रहे (इस लेखक की सम्मति में तो उनकी भाषा का भेद भी समकालीन प्राकृतों का या शैली का भेद-मात्र है। एक ही भाषा के भिन्न-भिन्न जीवन-युगों को वह नहीं सूचित करता)। पौराणिक साहित्य को छोड़कर वैदिक साहित्य के आधार पर प्राचीन भारतीय इतिहास बनाना या वैदिक साहित्य के आधार पर पौराणिक साहित्य की बातों को ग़लत कहना ऐसा ही उपहासास्पद है, जैसा Theology के ग्रंथों के आधार पर प्राचीन योरप का इतिहास बनाना। ये सब बातें पार्जिटर महोदय ने अपने Ancient Indian Historical Tradition ग्रंथ में विस्तार-पूर्वक दिखलाई हैं। आपने पौराणिक अनुश्रुति (Tradition) की विस्तार से छान-बीन की है और उसकी सत्यता सिद्ध करने के लिये सात-आठ प्रबल युक्तियाँ दी हैं। आपकी सबसे बड़ी और अकाट्य युक्ति यह है कि प्राचीन अनुश्रुति बग़ैर आगे-बूझे ऐल(आर्य)-जाति के हिमालय से कृष्णा-नदी तक क्रमिक

फैलाव का वृत्तांत देती है। इस वृत्तांत के परिणाम भारतवर्ष की आधुनिक जाति-विषयक (Ethnological) और भाषा-विषयक (Linguistic) स्थिति से हूबहू मिलते हैं। यदि पौराणिक अनुश्रुति झूठ है, तो इतना बड़ा समन्वय कैसे हुआ ? और, यह झूठ की मीनार किसके हित, किसके स्वार्थ को पूरा करने के लिये, क्योंकर खड़ी की गई ? जो इसे झूठ कहें, उनके ऊपर इसे झूठ सिद्ध करने की ज़िम्मेदारी है। विपरीत प्रमाण के अभाव में हमें इसे सच मानना ही होगा।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने प्राग्बुद्धकालीन भारतीय इतिहास की चर्चा में कहीं-कहीं तो अनर्गलता की हद कर दी है। यदि आर्य-समाजी पंडितों का वैदिक मित्र और वरुण देवतों को Oxygen और Hydrogen मानना एक उपहासास्पद उच्छृंखल उन्मत्त कल्पना है, तो हर्मैन जैकोबी का राम और सीता की कहानी में आत्मा और देह का अलंकार देखना भी वैसी ही उपहासास्पद उच्छृंखल और उन्मत्त कल्पना है। जैकोबी महोदय की जैन-साहित्य के विषय में विद्वत्ता और प्रामाणिकता का सिक्का मानते हुए भी हम उक्त बात कहने को विवश हैं।

फलतः अध्यापक राप्सन, मैकडॉनल और उनके अन्य साथियों की स्थिति बिलकुल निराधार है। उनकी Ancient India एक इतिहास नहीं, केवल साहित्य का पर्यवेक्षण है और पुरातत्त्व की खोजों का संग्रह। पर एक बात है। जो स्थिति उन्होंने ली है, वह एक स्पष्ट स्थिति है। किंतु विंसेंट स्मिथ और उनके अनुयायी एक और उलझन में पड़ जाते हैं।

एक तरफ़ तो वे प्राग्बुद्ध-काल को प्रागैतिहासिक कहते हैं, दूसरी तरफ़ वैदिक और बौद्ध-काल के बीच में एक Epic Period (महाकाव्यों का काल) रखते हैं। ये दोनों बातें परस्पर-विरुद्ध हैं। यह Epic Period क्या है ? कहाँ से शुरू और कहाँ ख़तम होता है ?

रामायण, महाभारत और पुराण में जिन घटनाओं का वर्णन और जिन महापुरुषों का उल्लेख है, उन्हें तो ये सज्जन ऐतिहासिक नहीं मानते; किंतु इतना अनुभव करते हैं कि इन महाकाव्यों में जिस समाज का चित्र है, वह एक विशेष समय का समाज है; और एक विशेष युग की सभ्यता को सूचित करता है। इसी युग को वे Epic Period—महाकाव्यों का काल—कहते हैं। किंतु यह वर्णन किस युग की सभ्यता का—किस काल के समाज का है ? क्या उस युग का, जब कि ये काव्य लिखे गए या किसी पहले काल का ? पहली बात नहीं हो सकती; क्योंकि पुराण, महाभारत और रामायण विद्यमान रूप में मौर्य-काल के बाद लिखे गए हैं। निःसंदेह उस काल को कोई Epic Period नहीं कहता। फलतः दूसरी बात माननी पड़ेगी, अर्थात् पौराणिक साहित्य (महाभारत, रामायण, पुराण) यद्यपि मौर्य-काल के बाद लिखा गया, तो भी उसमें किसी पूर्व-काल का विश्वसनीय चित्र है। इस दशा में यह मानना ही होगा कि या तो इन पौराणिक लेखकों को इतिहास और पुरातत्त्व का इतना ज्ञान था, या इनके पास परंपरा से कुछ ऐसा इतिहास चला आता था, जिसके आधार पर ये एक सुदूर अतीत काल की सभ्यता का ठीक-ठीक वर्णन कर सकते थे। किंतु यदि ये अपने समय से बहुत पहले बीत चुके समय की सभ्यता का ठीक-ठीक वर्णन कर सकते थे, तो उसी समय की घटनाओं का ठीक-ठीक उल्लेख क्यों न कर सकते थे ? यदि उनका खींचा हुआ समाज का चित्र विश्वसनीय है, तो उनका किया हुआ घटनाओं का उल्लेख विश्वसनीय क्यों नहीं ?

यह पहली समस्या है, जिसका उत्तर हम इन महाशयों से माँगते हैं।

दूसरी बात महाकाव्य-युग को आप कौन-सा समय देते हैं ? वैदिक और बौद्ध-युग के बीच में न ? लेकिन दोनों के बीच में कोई समय बचता भी है ? वैदिक युग में आप वेदों, ब्राह्मण-ग्रंथों, आरण्यकों, उपनिषदों और वेदांगों के समय को शामिल करते हैं। वेदांगों में कल्प भी सम्मिलित हैं, जिनका एक भाग धर्म-सूत्र है। विंसेंट स्मिथ ने तो मनुस्मृति की वर्ण-व्यवस्था का भी वैदिक सभ्यता के अंग-रूप से वर्णन कर डाला है, जिसका यह अर्थ है कि मनुस्मृति भी वैदिक काल को सूचित करती है। धर्म-सूत्रों का समय बहुत कुछ निश्चित हो चुका है। डॉ० ओली ने अपनी पुस्तक (Rechteund Sitte) में जो परिणाम निकाले हैं, वे अभी तक इस विषय पर अंतिम समझे जाते हैं। उनके अनुसार प्राचीनतम धर्म-सूत्र अर्थात् गौतम-सूत्र ई० पू० ८वीं शताब्दी का है। दूसरे धर्म-सूत्र तो ठीक बौद्ध-काल तक जा पहुँचते हैं। इधर बुद्ध भगवान् का समय निश्चित है। इन दोनों के बीच में आपका महाकाव्यों की सभ्यता का युग कहाँ आ सकेगा ?

इतना ही नहीं कि वैदिक काल के बाद राम और कृष्ण के युग को घुसेड़ने की कोई जगह न हो, सच बात तो यह है कि वैदिक साहित्य का बड़ा अंश राम और कृष्ण के बाद का है। वैदिक साहित्य में रामायण और महाभारत के नायकों का उल्लेख है। इस दशा में वैदिक काल के बाद राम और कृष्ण के समय का वर्णन करना भारतीय इतिहास को औंधे सिर खड़ा करना है।

ब्राह्मण-ग्रंथों की रचना वेदों के संकलन के बिना नहीं हो सकती थी। निश्चित रूप से चार वेदों के पृथक्-पृथक् संकलन के बाद ही ब्राह्मण बने हैं, और उपनिषद् ब्राह्मणों के बाद। किंतु वैदिक ऋचाओं का चार भागों में संकलन, भारतीय इतिहास की गंध लेनेवालों को भी भली प्रकार मालूम है, कृष्णद्वैपायन वेदव्यास मुनि ने किया था। और वेदव्यास मुनि महाभारत-युद्ध के समकालीन थे। तब ब्राह्मण और उपनिषद् सब महाभारत के बाद के हुए। वेदव्यास ने भिन्न-भिन्न वेदों का ज्ञान भिन्न-भिन्न शिष्यों को दिया था। वैशंपायन, पैल आदि उनके शिष्य थे। उनके बाद की शिष्य-परंपरा का भी पूरा वृत्तांत मिलता है। ब्राह्मणों, उपनिषदों में बार-बार उल्लेख पानेवाले मुनि, याज्ञवल्क्य, श्वेतकेतु, नचिकेतस् आदि व्यास से कई पीढ़ी पीछे के हैं। उपनिषद् में केकय-देश के राजा अश्वपति का उल्लेख है। अश्वपति कैकेय-वंशावली के अनुसार महाभारत-युद्ध से कई पीढ़ी बाद होते हैं। उपनिषद् में सम्मिलित कुरु-पांचाल-जाति का उल्लेख है, और कुरुओं तथा पांचालों का सम्मिलन महाभारत-युद्ध के बाद की शताब्दी में होता है।

शायद आप कहें इन व्यक्तियों और घटनाओं का महाभारत युद्ध के बाद होना पौराणिक वंशावलियों के आधार पर कहा जाता है, और पौराणिक वंशावलियों को तो हम प्रामाणिक मानते ही नहीं।

लेकिन बुद्ध-काल के बाद के लिये आप उन वंशावलियों को कैसे प्रामाणिक मान लेते हैं?

ख़ैर, वंशावलियों को न मानिए। ब्राह्मण-ग्रंथों में पांडवों के वंशज राजा जनमेजय परीक्षित का उल्लेख है, क्या वैदिक साहित्य के आधार पर किसी तरह भी आप सिद्ध कर सकते हैं कि यह अर्जुन का वंशज जनमेजय परीक्षित नहीं, कोई पहला जनमेजय है? उपनिषदों में राजा जनक का उल्लेख है। हमारा विश्वास है, उससे अभिप्राय महाभारत-युद्ध के बाद के विदेह-देश के किसी राजा से है; क्योंकि जनक विदेह के समूचे राजवंश का उपनाम था, किसी विशेष राजा का नाम नहीं। आप यदि उपनिषदों के जनक को बहुत प्राचीन बनावेंगे भी, तो श्रीराम का समकालीन राजा जनक बना सकेंगे। फिर भी उपनिषदें श्रीराम के बाद की हुईं, उनसे पहले की नहीं।

ब्राह्मणों, उपनिषदों को जाने दीजिए। वेदों के अधिकांश को भी श्रीराम के समय से पहले का सिद्ध करना बहुत कठिन है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से आर्य विद्वानों का एक प्रबल संप्रदाय चला आता है, जिसे यास्क मुनि ने 'ऐतिहासिकाः' कहा है, और जो वेदों में आर्य-जाति के इतिहास का उल्लेख जगह-जगह देख पड़ता है। हम भी उसी ऐतिहासिक संप्रदाय के नवीन अनुयायी हैं। वैदिक ऋचाओं के कर्ता अनेक ऋषि - जैसे वशिष्ठ और विश्वामित्र—और अनेक वे ऋषि, जिनका ऋचाओं में उल्लेख है, श्रीराम के समय के कुछ ही पहले के या बाद के हैं। यह बात शायद विवाद-ग्रस्त हो, और उस विवाद को छेड़ना इस लेख में संगत न हो; पर देवापि का बनाया ऋग्वेद का वह सूक्त तो बिलकुल विवाद की गुंजाइश नहीं छोड़ता, जिसमें देवापि के राज्य छोड़ने और शांतनु के राज्य पाने का वृत्तांत है, तथा जिसमें दोनों भाइयों का स्पष्टतः नाम से उल्लेख किया गया है। देवापि और शांतनु की यह वैदिक कहानी ठीक वही है, जिसे हम महाभारत में पाते हैं। राजा शांतनु पांडवों से कितनी पीढ़ी पहले हुए थे, यह सबको मालूम है। फलतः यह सिद्ध है कि वेदों की कुछ ऋचाएँ महाभारत-युद्ध से कुछ ही पहले की हैं, और ब्राह्मण और उपनिषद् सब उस युद्ध के स्पष्टतः बाद के।

इस दशा में लाला लाजपतरायजी का यह कथन कि "उपनिषदों के विवादों और कथोपकथनों के आधार पर इन महाकाव्यों (रामायण-महाभारत) के समय में उस तत्त्वज्ञान की आधार-शिला रक्खी जा चुकी थी, जिसका परिणाम बुद्ध-धर्म हुआ" कितना उपहासास्पद है! रामायण-महाभारत के समय के लोगों को उपनिषदों का उतना ही पता था, जितना दीन-ए-इलाही का।

जातीय पक्षपात को दूर करके वैज्ञानिक दृष्टि से लिखे हुए इतिहास का यह नमूना है!

भारतवर्ष का इतिहास कहाँ से शुरू होता है, तथा दुष्यंत और भरत, राम और लक्ष्मण, कृष्ण और अर्जुन की इतिहास में कोई सत्ता थी कि नहीं, ये प्रश्न हमारे

जाति और हमारे इतिहास के लिये बड़े महत्त्व के हैं। इसीलिये हमने पाठकों से क्षमा माँगे बिना इन्हें इतना विस्तार दे दिया है। अब हम दूसरे प्रश्नों का ज़रा संक्षेप से दिग्दर्शन कर जायँगे।

(ग) 'ऐतिहासिक' काल का प्रथम युग—बुद्ध से हर्षवर्द्धन तक

चौथे से नवें खंड तक में लालाजी हमें हर्षवर्द्धन के युग तक पहुँचा देते हैं। सिकंदर के आक्रमण और मौर्यों के बाद शुंगों, काण्वों और आंध्रों का वृत्तांत है। उसके बाद "भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर (के) इंडो-बाख्तरीय और इंडो-पार्थियन राज्यों" तथा "शक और यूची-जाति के आक्रमणों" की कहानी है। फिर गुप्त-वंश के राज्य-वृत्तांत के बाद "गुप्त राजों के काल में हिंदू-साहित्य और कला की उन्नति" का उल्लेख है, और अंत में हूणों के हमलों, हर्ष और ह्यूनत्सांग का इतिहास है।

इस सारे सिलसिले में स्पष्टतः विंसेंट स्मिथ की पूरी-पूरी प्रतिलिपि है। भेद केवल इतना है कि स्मिथ के ऐतिहासिक सिद्धांतों से मतभेद रखते हुए भी हम उनके ग्रंथ में कोई तुच्छ ग़लतियाँ नहीं दिखा सकते। लालाजी की पुस्तक के प्रत्येक पन्ने में वे प्रकाशमान हैं। किंतु अभी हमें केवल ढाँचे की, रूप-रेखा की और ऐतिहासिक सिद्धांतों की ही आलोचना करनी है, साधारण कथनों की नहीं। विशेष विवाद में पड़े बिना हम स्मिथ और उनके अनुयायी के इस काल के इतिहास के ढाँचे पर निम्न-लिखित आपत्तियाँ उपस्थित करते हैं—

(१) मौर्यों और गुप्तों के साम्राज्य की शांति, व्यवस्था और सुशासन साहित्य और कला को जाग्रत् करती है, और गुप्तों के ज़माने की साहित्यिक और धार्मिक जागृति बौद्ध-भावों के विरुद्ध 'हिंदू' या 'Brahmanic' जागृति थी, यह विचार सूक्ष्म परीक्षा से ग़लत साबित होगा। इसी पूर्व-कल्पित विचार के प्रवाह में लालाजी तो यहाँ तक कह गए हैं कि "गुप्त-वंश के राजा ब्राह्मणों के धर्म के अनुयायी थे।" यद्यपि इतिहास जानता है कि उनमें से कई बौद्ध थे, और बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिये इतने सचेष्ट कि उन्होंने तिब्बत में बौद्ध-प्रचारक भेजे।

सच बात यह है कि मौर्य और गुप्त-काल की राजनीतिक शांति से पहले धार्मिक और साहित्यिक उत्क्रांति शुरू हो चुकी थी, और इसीलिये यह धार्मिक और साहित्यिक जागृति राजनीतिक उत्कर्ष का कारण थी, न कि परिणाम। गुप्त-काल का साहित्य राज-दरबारों का पाला-पोसा घिनौना साहित्य नहीं, प्रत्युत एक गहरी आंतरिक हलचल से पैदा हुआ जातीय जीवन से प्रणोदित और परिप्लावित साहित्य है।

(२) मौर्य और गुप्त-साम्राज्यों के बीच के ज़माने में बलख़ के यूनानी तथा फ़ारिस के पार्थव (पार्थियन) सम्राटों के सामंत शक तथा यूची आदि पंजाब के दरवाज़े को खट-खटाते हैं। किंतु पंजाब और उत्तर-पश्चिमी भारत में उस समय जो क्षुद्रक, मालव, मद्रक, शिबि, यौधेय आदि गण (Non-monarchical States) राज्य करते थे, उनका इतिहास इन आक्रांताओं के धावों की कहानी से कहीं अधिक महत्त्व का है। राज्य विस्तार की दृष्टि से, राज्य-काल की लंबाई-छुटाई की दृष्टि से, जनता पर होने-वाले शासन की दृष्टि से, जिस दृष्टि से भी हम देखें, इन गणों का जीवन तत्कालीन पंजाब के इतिहास की स्थायी वस्तु देख पड़ती है, और यूनानियों, शकों आदि के हमले सिर्फ़ एक सामयिक घटना। इन आक्रांताओं में से बहुत-से तो काबुल की घाटी के नीचे नहीं उतर पाए, अधि-कांश ने कोई स्थायी राज्य नहीं बनाया, और बहुतों के हमले दो-चार महीने या साल-छः महीने से अधिक नहीं चले। अधिकांश का केवल नाम मिलता है। यह भी पता नहीं कि वे कहाँ थे और कब थे। इस दशा में उनका विस्तृत उल्लेख करके अपने गणों के विषय में चुप्पी साध लेना एक बड़े ऐतिहासिक झूठ को पुष्ट करना है।

(३) यही वह ज़माना था, जब हिमालय, कराकोरम और क्युनलुन-पर्वतमालाओं के १६-१६, १८-१८ हज़ार फ़ीट ऊँचे दर्रों को पैरों-तले रौंदकर बंग-सागर और पोत-सागर को पार कर हज़ारों बौद्ध-भिक्षु भारतीय धर्म, भारतीय संस्कृति, भारतीय भाषा, भारतीय लिपि और भारतीय आचार-विचार को तिब्बत, चीन, अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान, जापान और जावा में ले गए थे। भारतीय सभ्यता के इस फैलाव की कहानी विश्व के इतिहास का एक अत्यंत महत्त्व-पूर्ण अंश है। किंतु जहाँ हमारे विद्वान् नेता वायव्य-सीमा के छोटे-छोटे धावों को इतना महत्त्व देते हैं, वहाँ भारतीय सभ्यता के विदेशों पर इतने बड़े आक्रमण के विषय में भी वैसा ही मौन साध लेते हैं, जैसा पंजाब के गणों के बारे में। ऐतिहासिक घटनाओं के तुल-

त्मक मूल्यों को न समझकर इस प्रकार एक बड़े ऐतिहासिक असत्य को सुझाने का उत्तरदायित्व उन पर आता है।

(घ) राजपूत-काल

पुस्तक के अंतिम दो खंडों में लालाजी ने क्रमशः उत्तर और दक्षिण-भारत के राजपूत-राज्यों का संक्षिप्त इतिहास दिया है। ग्यारहवें खंड में दक्षिण भारत का और दसवें खंड में क्रमशः नेपाल, आसाम, काश्मीर, क़न्नौज, पंजाब, अजमेर, देहली, ग्वालियर, बुंदेलखंड, मालवे, बिहार और बंगाल के राज्यों का उल्लेख है। किंतु मेवाड़, मारवाड़ और गुजरात कहाँ गए? क्या वे राजपूतों के ज़माने में अरब-सागर के अंदर थे? बाप्पा रावल के वंश की क्या कोई ऐतिहासिक सत्ता नहीं है? दूसरे राजपूत-राज्यों की तरह उनके भी शिला-लेख मिलते हैं, और सुदूर आगरे तक उनके सिक्के मिले हैं। विंसेंट स्मिथ ने जब अपना ग्रंथ लिखा था, तब तक बाप्पा रावल का समय निश्चित न हुआ था; पर लालाजी की पुस्तक लिखी जाने से पहले तो उसका वह सोने का सिक्का भी मिल चुका था, जिसके आधार पर श्रद्धेय ओझाजी ने उसकी तिथि खोज निकाली है। फिर चित्तौड़ के राज्य का उल्लेख न होने का कारण क्या? और, अनहिलवाड़े और सुराष्ट्र के सोलंकी-वंश के (जिसमें सिद्धराज, जयसिंह और कुमारपाल-जैसे पराक्रमी राजा हुए हैं) संबंध में तो इतनी ऐतिहासिक सामग्री—शिला-लेख, समकालीन काव्य, ताम्रपत्र आदि के रूप में—मिलती है, जितनी शायद और किसी वंश के लिये नहीं मिलती। इस दशा में भारतवर्ष के इतिहास में क्या उनका नाम भी न आना चाहिए? लालाजी ने यहाँ पर किस भद्देपन से "His masters' voice" की प्रतिध्वनि की है!

आंतरिक परीक्षा

किंतु अपनी पुस्तक की रूप-रेखा बनाने में जहाँ लालाजी ने अपने गुरु की आवाज़ का पूरा अनुकरण किया है, वहाँ शुद्ध और प्रामाणिक बात कहने में उनका अनुसरण करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। कहीं-कहीं तो वह ऐसी पोच ग़लतियाँ कर गए हैं, जो केवल स्कूल के बालकों को सोह सकती हैं।

अरबी-अक्षरों में 'राज्यपाल' का 'राय जयपाल' आसानी से बन सकता है, और इस प्रकार मुस्लिम इतिहास-लेखक पंजाब के राजा जयपाल और क़न्नौज के राज्यपाल में अकसर गोलमाल कर देते थे। लालाजी ने पंजाब के जयपाल को क़न्नौज के विजयपाल से मिलाकर दोनों के वंशों में गड़बड़ कर दी है।

एक तरफ़ तो सगर और भगीरथ, भरत और दुष्यंत, राम और कृष्ण को ही नहीं, प्रत्युत बाप्पा रावल और हम्मीर तक की भी लालाजी कोई ऐतिहासिक सत्ता नहीं समझते, दूसरी तरफ़ आप पृथ्वीराज, संयोगिता, जयचंद * और शहाबुद्दीन के बारे में उस सारी गप को सच समझते हैं, जिसे चंदबरदाई की कवि-कल्पना ने जन्म दिया है। लालाजी को शायद यह मालूम नहीं कि पृथ्वीराज-रासो में जिस राणा समरसिंह को पृथ्वीराज का बहनोई लिखा है, उसी का सं० १३२८ विक्रमी का एक शिलालेख मिला है। कम-से-कम संवत् १४४० तक के ऐतिहासिक ग्रंथों में चंदबरदाई की कल्पित कथाओं में से किसी एक की गंध भी नहीं पाई जाती। इसीलिये चंदबरदाई को पृथ्वीराज से दो-तीन शताब्दी पीछे का मानना पड़ता है। समकालीन लेखों में जयचंद्र के विश्वासघात का कहीं उल्लेख नहीं है। उलटा उसे उत्तर-भारत का सम्राट् बतलाया गया है और हिंदू-सभ्यता का एक बड़ा उद्धारक। बंगाल में कान्यकुब्ज ब्राह्मण भेजकर सनातन-धर्म को पुनरुज्जीवित करना उसी का काम था, और नैषधीय चरित के कर्ता श्रीहर्ष कवि उसी के दरबार में "ताम्बूलद्वयमासनञ्च" पाया करते थे।

राजा भोज के बारे में लिखते समय तो लालाजी ने हद कर दी है। धारा के प्रसिद्ध राजा मुंज के भतीजे भोज और क़न्नौज के मिहिर भोज में आप गोलमाल कर गए हैं, और पहले के संबंध में जो दंतकथाएँ प्रसिद्ध हैं, उन्हें मिहिर भोज के सिर पर थोप बैठे हैं। पर अंत में आपको याद आता है कि "एक राजा भोज मालवा में भी हुआ है।" शुक्र है, बेचारे का पता तो न मिटा! आगे चलकर आप फिर एक आविष्कारक के स्वर में कहते हैं—"चूँकि विक्रमादित्य और भोज, दोनों ही मालवा के राजा थे। इसलिये अधिक संभव है कि हिंदू कहानियों का राजा भोज मालवा का शासक था।" इस आविष्कार के लिये हिंदू-जाति को लालाजी का चिर-कृतज्ञ होना चाहिए।

* क़न्नौज के प्रसिद्ध गहरवार राजा का नाम जयचंद्र या जयतचंद्र था, न कि जयचंद।

लेकिन यह आविष्कार अकेला नहीं है, इसके-जैसे अनेक आविष्कार आपकी पुस्तक के प्रत्येक पन्ने में पाए जायँगे। भूमिका में आपने शिकायत की है कि बहुत से हिंदू-नवयुवकों को यह भी पता नहीं कि वेद कितने हैं! उनके इस अज्ञान को मिटाने के लिये आपने वेदों, वेदांगों, सूत्रों आदि का पूरा परिचय दिया है। उसी प्रसंग में आप लिखते हैं—"धर्मसूत्र तीन प्रकार के हैं—प्रथम श्रौतसूत्र××× द्वितीय धर्मसूत्र ××× तृतीय गृह्यसूत्र×××।"

धर्मसूत्रों के भेद बताने चले, और उन्हीं में फिर एक धर्मसूत्र निकल आया, इसका अर्थ कुछ समझ में नहीं आता। लालाजी यहाँ पर कल्पसूत्र और धर्मसूत्र में गड़बड़ कर गए हैं, और कल्पसूत्र के तीन प्रकारों को धर्मसूत्र के प्रकार कह गए हैं।

हिंदू-नवयुवकों पर और दया करके आगे आप बतलाते हैं—"इन सब सूत्रों के अतिरिक्त आर्यों के पद् शास्त्र हैं। दर्शन का अर्थ है आयना।" (!) भला इस पर हम क्या लिखें?

मध्यकाल के तिब्बत-प्रवासी बौद्ध लामा तारानाथ को आप उन्नीसवीं सदी का 'बाबू तारानाथ' समझ बैठे हैं! इस प्रकार का एक-न-एक लतीफ़ा या आविष्कार आपके इतिहास के हर दूसरे-चौथे पृष्ठ पर मिलेगा। ऊपर के नमूने दिग्दर्शन के लिये यथेष्ट होंगे।

जो ग़लतियाँ ख़ुद विंसेंट स्मिथ ने की हैं, उन्हें बाद की खोज के मुताबिक़ लालाजी सुधार लेते, यह तो निरी दुराशा है। एक नमूना हम पहले दे चुके हैं, एक-आध और सही।

समुद्रगुप्त के दक्षिण-विजय का वर्णन करते हुए आपने उसके दक्षिण के पश्चिमी भाग देवराष्ट्र और खानदेश जीतने का उल्लेख किया है। प्रयाग के जिस शिलालेख के आधार पर ऐसा माना जाता था, प्रो० दुब्रियाल उसके अर्थों के संबंध में कई भ्रमों को अपनी पुस्तक Ancient History of the Dekhan में दूर कर चुके हैं, और अब यह माना जाता है कि समुद्रगुप्त ने केवल पूर्वी दक्षिण को ही जीता था। प्रो० दुब्रियाल की उक्त पुस्तक का उल्लेख इस ग़रीब लेखक की लिखी उस पुस्तक-सूची में भी है, जो अनेक ग़लतियों के साथ और कई स्थलों में मूल हिंदी के अँगरेज़ी-अनुवाद का फिर से टूटा-फूटा हिंदी-अनुवाद करके लालाजी की पुस्तक के अंत में छापी गई है, पर लालाजी ने उससे लाभ उठाने की ज़रूरत नहीं समझी।

वैदिक काल की सभ्यता पर लिखते हुए लालाजी कहते हैं—"उस काल में बहुपत्नीत्व की प्रथा न थी।" बड़ी मात्रा में बहुपत्नीत्व तो प्राचीन भारत में कभी नहीं रहा, पर राजघरानों और अभिजात कुलीन लोगों में थोड़ी-बहुत मात्रा में भी वह नहीं रहा, यह कहना कठिन है। नहीं तो दशरथ की तीन स्त्रियों का क्या अर्थ है? और, ऋग्वेद और अथर्ववेद के उस सूक्त में सपत्नी का ज़िक्र क्या सिद्ध करता है, जिसका पहला मंत्र निम्न-लिखित है—

"इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमम् ;
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ।"

लेकिन एक तरफ़ जहाँ लालाजी अपने कट्टर आर्यसमाजी अनुयायियों को नाख़ुश करनेवाली बात नहीं कहना चाहते, वहाँ दूसरी तरफ़ यह भी नहीं भूल सकते कि वह कई बरस अमेरिका और योरप में रह चुके हैं, और इसलिये उन्हें आधुनिक वैज्ञानिक खोज को मानना चाहिए। चक्की के दोनों पाटों में बेचारी सचाई पर दुहरी मार पड़ती है।

वि० स्मिथ का अनुसरण करते हुए लालाजी फ़रमाते हैं कि भारतवर्ष में लिखने की प्रथा बुद्ध भगवान् के समय से कुछ ही पहले आई है। अर्थात् वेदों, ब्राह्मणों और उपनिषदों के ज़माने में आर्य लोग लिखना न जानते थे। श्रद्धेय पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा ने वैदिक काल से लेखन-कला की सत्ता के जो अकाट्य प्रमाण दिए हैं, उनका पता लालाजी को कैसे मिल सकता था?

किंतु शुद्धता और प्रामाणिकता का ध्यान रखने में लालाजी स्मिथ का अनुसरण करना फ़िज़ूल समझते हैं। ऐतिहासिक घटनाओं के भौगोलिक निर्देशों को शुद्ध रखने की स्मिथ को ऐसी फ़िक्र रहती है, जैसी हमारे सनातनी ब्राह्मणों को अपने शारीरिक शौच और चौके की सफ़ाई की। सिकंदर ने विहात (झेलम)-नदी को झेलम-शहर पर पार किया था या जलालपुर पर, इस समस्या को सुलझाने के लिये स्मिथ ने सात पृष्ठों का परिशिष्ट लिखा और एक नक़्शा भी उसके साथ दिया है। लालाजी ऐसे अंधविश्वासों में नहीं पड़ते। उनका भौगोलिक ज्ञान बड़ा मनोरंजक है। एक स्थान पर आप कलिंग-देश को समुद्र-तट से उठाकर नर्मदा

और गोदावरी के बीच के पथार में ला बसाते हैं (पृ० १६६)। दूसरी जगह झेलम-पार तक्षशिला के राज्य में नेपाल को शामिल कर डालते हैं! (पृ० १७०)

मगध की पुरानी राजधानी राजगृह और नई राजधानी पाटलिपुत्र को आप एक ही चीज़ समझ लेते हैं, यद्यपि आज भी राजगीर और पटना में चार दर्जन से अधिक मीलों का अंतर है; और महाभारत के पंचाल देश (अहिच्छत्रा=रामनगर, कांपिल्य=काँपिल तथा कान्य-कुब्ज=कन्नौज के आसपास के प्रांत) में पंजाब को शामिल बतलाते हैं! आप सुदूर दक्षिण में चार प्राचीन राज्यों का उल्लेख करते हैं—"एक पांड्य, दूसरा चेर या केरल, तीसरा चोल और चौथा केरलपुत्र।" केरलपुत्र में और चेर या केरल में क्या भेद था, सो आप नहीं बतलाते। शायद उन्हें मालूम नहीं कि चेर और केरल, दोनों मलाबार के नाम हैं, और जिसे उन्होंने केरलपुत्र लिखा है, वह वास्तव में सातियपुत्र है।

किंतु भौगोलिक ज्ञान का सबसे अधिक परिचय आपने सिकंदर के हमले का हाल लिखते समय दिया है। बक़ौल आपके जुलाई, सन् ३२७ ई० पू० में सिकंदर काबुल की घाटी को लाँघता हुआ भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर आ पहुँचा। वहीं पर तक्षशिला-नरेश अपनी सहायता लेकर आ उपस्थित हुआ, और 'अगस्त, सन् ३२७ ई० पू० में सिकंदर ने उस समस्त प्रांत को अधीन कर लिया, जो अटक और झेलम के बीच स्थित है।" इसके बाद उसके 'कोनार' और बाजौर की घाटियों में से लाँघकर 'निसा' शहर में पहुँचने का उल्लेख है, और फिर एस्पिया-जाति को जीतते हुए मसागा-नगर को लेने का, और अंत में जनवरी, सन् ३२६ ई० पू० में अटक से सोलह मील ऊपर रोहना-नामक स्थान पर पहुँचने का।

कुनार चितराल नदी का दूसरा नाम है। ग्रीकों ने जिस जाति को एस्पिया लिखा है, वह भी चितराल और पंजकौरा की घाटियों में ही रहती थी। बाजौड़-प्रदेश स्वात के तट पर है, और 'निसा' और 'मसागा' शहर भी उधर ही थे। चितराल, पंजकौरा और स्वात सिंध-नदी के पश्चिम में हैं, और उत्तर के पहाड़ों से निकलकर काबुल-नदी में आ मिलते हैं। भारतवर्ष की उत्तर-पश्चिमी सीमा तो, पता नहीं, लालाजी कहाँ रखते हैं, पर झेलम तक के प्रदेश को जीत लेने के बाद सिकंदर को अटक के पश्चिम में चितराल, पंजकौरा और स्वात की दुर्गम पहाड़ी घाटियों में वापस जाने की ज़रूरत कैसे पड़ी, और वह कैसे उड़कर वहाँ पहुँच गया, इसकी मीमांसा हमारी मंद बुद्धि नहीं कर पाई। अटक-शहर से सोलह मील ऊपर प्राचीन उद्भांडपुर ज़रूर था, जिसे आजकल ओहिंद या उंद कहते हैं। शायद उसी को लालाजी की किसी नई भौगोलिक भाषा में 'रोहना' कहते होंगे। इसी प्रसंग में लालाजी जगह-जगह "पहाड़ी राजा अभिसार" का ज़िक्र करते हैं। अभिसार देश का नाम था या राजा का, इन बारीकियों में पड़ने की क्या ज़रूरत?

भारतीय नामों और शब्दों को लिखने की भी एक नई शैली लालाजी ने ईजाद की है। आपके मौलिक उर्दू ग्रंथ को तो हम स्वयं पढ़ नहीं सकते, पर उसमें अपने पूर्वजों के नामों का जैसा क़ीमा किया गया है, उसका कुछ-कुछ पता हमें उर्दू जाननेवालों से मिला है। हिंदी-अनुवादक ने बहुत-से संशोधन स्वयं कर दिए हैं, फिर भी उर्दू का कुछ-कुछ रंग यहाँ भी हमें मिलता है। आप हाकड़ा-नदी को हक्रा कहते हैं, कोशल को कोसला, चेर को चेरा, धनकटक को धनककना, धनंजय को धनमजय और यशोधर्मन् को यशोधन!

कुछ तो इसमें उर्दू-लिपि का दोष है, जिसमें माधव और माध्व का, कोशल और कौशल का भेद ही नहीं किया जा सकता; ऐतरेय, वायव्य, कौशल्य, मौर्य और द्वैत-जैसे शब्द तो लिखे ही नहीं जा सकते; किंतु धनकटक और कोशल को धनककना और कोसला लिखने को तो बेचारी उर्दू भी नहीं कहती। अँगरेज़ी की रोमन-लिपि में अनेक नए चिह्नों की सहायता से हमारे भारतीय उच्चारणों की प्रत्येक बारीकी पूरी शुद्धता से दिखाई जा सकती है। पर बदक़िस्मती है उर्दूवालों की कि रोमन-लिपि के उन चिह्नों का अर्थ भी वही समझ सकता है, जिसे उनके मूल देवनागरी वर्णों का ज्ञान हो। लालाजी ने भूमिका में ठीक कहा है कि "कोई मनुष्य सुशिक्षित कहलाने का अधिकार नहीं रखता, जो कम-से-कम अपने देश और अपनी जाति के इतिहास से परिचित न हो।" क्या इसके साथ हम यह भी कह सकते हैं कि कोई भारतवासी अपने देश का इतिहास नहीं पढ़ सकता, जब तक वह देवनागरी-वर्णमाला न जानता हो—फिर चाहे वह उस वर्णमाला को देवनागरी-लिपि के रूप में सीखे या बँगला, गुजराती,

तेलुगु आदि में से किसी लिपि के रूप में? जो लोग 'हिंदोस्तानी' भाषा को उर्दू और हिंदी, दोनों रूपों में राष्ट्रभाषा बनाने की बातें करते हैं, उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा की इस समस्या को कभी नहीं समझा। फ़ारसी-लिपि को अपनी शिक्षा का आधार बनानेवाले स्वरों की ठीक स्थिति को कभी नहीं समझ सकते। उस लिपि में भारतीय शब्द और नाम कभी ठीक-ठीक नहीं लिखे जा सकते, और न उस भाषा में भारतीय विचार ठीक-ठीक प्रकट हो सकते हैं। यह शिकायत आज हमीं नहीं कर रहे हैं, मुस्लिम विद्वान् अलबरूनी के समय से चली आती है।

देवनागरी-वर्णमाला का अभ्यास किए बिना भारतवर्ष का इतिहास लिखने का यत्न करने से कैसी लचर ग़लतियाँ होती हैं, इसका बहुत अच्छा नमूना लालाजी ने पेश कर दिया है। एक स्थान पर आप लिखते हैं—

"सरस्वती वैदिक काल में उस नदी का नाम था, जो थानेश्वर के नीचे बहती थी। बौद्ध-काल में सरस्वती एक प्रदेश का नाम था, जो अयोध्या के उत्तर में राप्ती-नदी के तट पर था।"

इसे पढ़कर हमें अपने एक बचपन के सहपाठी की बात याद आ गई, जिसने यह पूछा जाने पर कि युक्तप्रांत में सबसे बड़ा दो नदियाँ कौन-सी हैं, उत्तर दिया था—एटा और इटावा!

लालाजी सरस्वती और श्रावस्ती में भी भेद नहीं कर सके!

राष्ट्रभाषा में लिखे गए एक राष्ट्रीय इतिहास में प्राचीन भारतीय संस्थाओं और व्यक्तियों के ग्रीक और अँगरेज़ी नाम देने की रीति भी चिंतनीय है। लालाजी ने चंद्रगुप्त की प्रिवी कौंसिल, कौंसिल आफ़ स्टेट, और कलेक्टर्स जनरल, तथा अनुज्ञापत्र (पासपोर्ट) की प्रथा का उल्लेख किया है। जब ये चीज़ें भारत में थीं, तो इनके कुछ नाम भी रहे होंगे। फिर अँगरेज़ी नाम देने का क्या अर्थ? इसमें न केवल भद्दापन है, प्रत्युत भ्रम भी होता है। आजकल की राजनीतिक संस्थाएँ और प्राचीन संस्थाएँ ठीक-ठीक कभी नहीं मिलतीं। प्राचीन संस्थाओं को नए नामों से पुकारना पाठकों को एक भ्रम-पूर्ण बात सुझाना है। पासपोर्ट चंद्रगुप्त के समय में ज़रूर होता था, पर उसे अनुज्ञापत्र नहीं, मुद्रा कहते थे। लेकिन इन नामों को मूल-पुस्तकों से ढूँढ़ने की तकलीफ़ कौन करे? अँगरेज़ गुरुओं ने अपनी अँगरेज़ी पुस्तकों में जो अनुवाद कर दिया है, वही हम ले लेते हैं। यही भारतवासियों की दास-मनोवृत्ति है, और खेद है कि राष्ट्रीय इतिहास लिखने का दम भरनेवाले लालाजी-जैसे राष्ट्रीय नेता भी इसे नहीं छोड़ सके।

शक, पार्थव आदि जो विदेशी आक्रांता भारत में आए थे, वे अपने सिक्कों पर एक तरफ़ ग्रीक-अक्षरों में, ग्रीक-रूप में, अपना नाम लिखते थे, और दूसरी तरफ़ प्राकृत अक्षरों में भारतीय रूप में। वि० स्मिथ और अन्य योरपियन लेखकों का, जो योरपियन पाठकों के लिये अपने ग्रंथ लिखते हैं, उन नामों को ग्रीक रूप में लिखना सहज और उचित है। पर एक राष्ट्रीय इतिहास में उनका ग्रीक-रूप क्यों रहे? Ages को एजस के बजाय अय क्यों न लिखा जाय, जैसा कि अय के सिक्कों पर लिखा है? जिस म्यूज़ियम में ये सिक्के मौजूद हैं, वह लालाजी के तिलक-स्कूल ऑफ़ पॉलिटिक्स से एक गोली की मार पर है। पर उन्हें पढ़ने का कष्ट कौन करे?

किंतु भद्देपन की हद तब हो जाती है, जब शुद्ध भारतीय नामों को ग्रीक-रूप में दिया जाता है। प्राचीन पंजाब में मालव नाम की एक जाति थी। ग्रीक लोग मालव-शब्द जिस तरह लिखते थे, उसका अँगरेज़ी-रूप है मालो (mallo)। mallo का बहुवचन है moleer। मालव-शब्द के स्थान में लालाजी ने इसी ग्रीक-शब्द का ग्रीक बहुवचनांत रूप में प्रयोग किया है। आप लिखते हैं—"इस ...समय मलोई और केथोई जातियों का पंजाब में प्रजासत्तात्मक राज्य था।" मलोई और केथोई नाम पढ़कर कौन समझेगा कि ये कोई आर्य-जातियाँ थीं?

ऐतिहासिक परिणाम

ऐतिहासिक घटनाओं की छान-बीन पुरातत्त्ववेत्ता करते हैं। असली ऐतिहासिक वह है, जो उन घटनाओं के विकास के सिद्धांतों को समझ सके, जो उनके उत्थान के सिलसिले को स्पष्ट कर सके। ऐतिहासिक के लिये जहाँ पुरातत्त्ववेत्ता की विश्लेषण-शक्ति आवश्यक है, वहाँ कवि की कल्पना भी उसकी प्रतिभा में मौजूद रहनी चाहिए। विस्तृत अध्ययन के अलावा उसे ऐतिहासिक मनोवृत्ति की भी ज़रूरत होती है। लेकिन जो व्यक्ति घटनाओं के अध्ययन के बिना केवल उच्छृंखल कपोल-कल्पनाओं से ऐतिहासिक परिणाम निकालना चाहे, वह ऐतिहासिक नहीं, लालबुझक्कड़ है।

लालाजी के अध्ययन का नमूना हम ऊपर पेश कर चुके हैं। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि की पूर्णता या अपूर्णता की परख पुस्तक की रूप-रेखा की आलोचना में कर चुके हैं। ऐसी दृष्टि और ऐसे अध्ययन से जो ऐतिहासिक परिणाम निकाले जायँगे, उनका मूल्य क्या होगा? जो व्यक्ति साधारण घटना-क्रम की भिन्न-भिन्न बातों का विवेचन नहीं कर सकता, वह मानव-सभ्यता और संस्थाओं के विकास की बारीकियों को कैसे समझ सकेगा!

इस बात को देखते हुए तो लालाजी के ऐतिहासिक परिणाम आलोचना के योग्य ही नहीं हैं। फिर भी प्रसंग-वश हम यहाँ दो-तीन दृष्टांत दिए देते हैं—

बुद्ध की शिक्षा पर विचार करते हुए आप लिखते हैं—बुद्ध जाति-पाँति के भेद को स्वीकार न करते थे। यह कथन ऐसा ही है, जैसा यह कहना कि बुद्ध बोल्शेविज़्म को न मानते थे! बात यह है कि बुद्ध भगवान् के समय तक जाति-भेद था ही नहीं, समाज में जो भेद उस समय था, और जिसे बुद्ध ने अस्वीकार किया, वह दर्जों का, श्रेणियों (Classes) का या कुलों (races) का भेद था।

हिंदू और योरपियन सभ्यता की लालाजी ने जो तुलना की है, वह बिलकुल तुच्छ है। कई दफ़ तो आप आधुनिक ग़ुलाम ब्रिटिश-भारत की संस्थाओं को योरपियन संस्था कहकर उसकी हिंदू-संस्थाओं से तुलना करने लगे हैं। यहाँ तक कि एक जगह भारत की स्वाभाविक एकता को सिद्ध करने के लिये आप ब्रिटिश-भारत की एकता को दलील के रूप में पेश करते हैं! हिंदू और योरपियन राज्य संस्था की तुलना और भी उपहासास्पद है। हिंदू-राजनीति की बारीकियों का अभी हमें इतना ज्ञान नहीं है कि उसकी योरपियन राजनीति से तुलना की जा सके; और ऐतिहासिक लोग इस समय इस विषय पर जितना ज्ञान-संग्रह कर चुके हैं, लालाजी उससे भी वंचित हैं। नमूने के लिये आप-ने हिंदू-राज्यों में क़ानून बनने-न बनने के बारे में जो लिखा है, वह आपके ज्ञान को एकदम उथला प्रकट करता है। यह ग़लत है कि हिंदू-राज्य-संस्था में क़ानून बनता न था, और शास्त्रों के क़ानून की केवल नई व्याख्या विद्वान् लोग कर सकते थे। प्राचीन कुलों, श्रेणियों (Guilds) और गणों तथा ग्राम और नगर के संघों के परस्पर किए हुए ठहरावों (संवित्=Contract) की वही स्थिति थी, जो श्रुति के क़ानून की।

राजमंत्री की योग्यता के संबंध में कौटिल्य से एक उद्ध-रण लालाजी ने दिया है। इसमें भी वह सब अच्छी बातों का अनुवाद कर गए हैं, पर मंत्री को "आथर्वणऽभिचार-कर्मणि कुशलः" (अथर्ववेद में प्रतिपादित अभिचार और कृत्या आदि में चतुर) होना चाहिए, यह छोड़ गए हैं। प्राचीन न्यायालयों का उल्लेख करते हुए आप राजा द्वारा नियुक्त और प्रजा द्वारा निर्वाचित न्यायाधीशों का भेद और उनका पारस्परिक संबंध समझ ही नहीं सके। गवाही के और कई प्रकार आपने गिनाए हैं, पर दिव्य (Ordeal) को भूल गए हैं। हिंदू-राजनीति के ऐसे ही अधूरे गोलमाल ज्ञान के आधार पर आप उसकी योरपियन राजनीति से तुलना करने चले हैं। वास्तव में भिन्न-भिन्न समय की संस्थाओं के एक नाम या रूप रहते हुए भी उनमें ज़मीन-आसमान का भेद हो जाता है। उनकी तुलना हो ही नहीं सकती।

आपकी सम्मति में "बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म का सामान्य प्रभाव भारत के राजनीतिक अधःपात का एक कारण हुआ है। जनता में संसार की असारता का विचार जिसको शंकर के वेदांत ने सहायता दी,.........फैल गया......।"

यह सस्ती, आसान फ़िलासफ़ी और यह सम्मति केवल बाज़ारू उपदेशकों को सुहाती है, न कि गंभीर ऐतिहासिकों को। भारतवासियों की नस-नस में आज अकर्मण्यता बसी हुई है, किंतु जिस बौद्ध जागृति ने भारतवर्ष के हज़ारों नव-युवकों को एक ऊँचे आदर्श की साधना में जान हथेली पर रखकर हिमालय, कराकोरम और क्युनलुन के गलों (Gla-ciers) और बीहड़ों को पार करने की प्रेरणा दी, और वह सदियों तक जारी रक्खी, क्या उसे हम अकर्मण्यता सिखाने-वाली कह सकते हैं? जिस वेदांत की प्रेरणा ने शंकर के अनुयायियों को, इतने बड़े बौद्ध संप्रदाय को, जिसके करोड़ों उपासक थे भारत की सीमाओं से निकाल भगाने की हिम्मत दी वह कर्तव्य की प्रेरणा थी या अकर्मण्यता की? आज तो भारतवासियों में यह साहस नहीं है कि वे करोड़ों अनु-यायियों के स्वीकार किए हुए किसी मज़हब को अपने देश से निकालने का सपना भी देख सकें, अथवा किसी राजनीतिक षड्यंत्र या आर्थिक लाभ की पूर्ति के लिये ही हिमालय और हिंदू-कुश को लाँघ सकें। आपने बौद्ध-जैन और वेदांत-धर्म की जो आलोचना की है, वह आलोचना वास्तव में आजकल के बाज़ारू वैरागियों के गाँजा-चरसवाद के लिये उचित है।

उन धर्मों के विषय में ऐसी सीधी बातें कहने से पहले अभी बहुत कुछ सोचना-समझना होगा।

भारतीय सभ्यता में हिंदू और मुस्लिम-सभ्यता के अंश के बारे में आपने जो कुछ लिखा है, वह सन् १९२१ की कांग्रेस की वेदी से बोलने में भले ही अच्छा लगता रहा हो, पर ऐतिहासिक दृष्टि से बिलकुल निराधार है। जहाँ शक, यूची, यूनानी आदि आक्रांताओं की सभ्यता आर्य-सभ्यता की बराबरी नहीं कर सकी, उसका अंश बन गई है, वहाँ इसलाम भी आर्य-सभ्यता के मुक़ाबले में, भारतीय सभ्यता में उसके बराबर का हिस्सेदार नहीं बन सका और न बन सकेगा। भारतीय सभ्यता का ताना-बाना मुख्यतः आर्य और द्राविड़ सभ्यताओं से बना है। यही भारतवर्ष के इतिहास का निचोड़ है। इसलाम ने अभी तक भारतवर्ष की भाषा, साहित्य, दर्शन, धर्म, समाज-संस्थान या सभ्यता और संस्कृति के किसी और अंश पर ऐसा कोई स्थायी प्रभाव नहीं डाला, जिसके बने रहने की आशा हो, और जिसने भारतीय सभ्यता के आर्यत्व या द्राविड़त्व को बदल दिया हो। आर्य-संस्कृति भारतीय सभ्यता की आत्मा है। इसलाम से भारत ने बहुत कुछ सीखा है, और बहुत कुछ अभी सीखेगा। आज हिंदुओं का शुद्धि को अपना लेना भी हिंदू-धर्म पर इसलाम की एक विजय है। पर इसलाम ने हिंदुत्व को जो कुछ सिखाया है, वह हिंदुत्व का अपना भूला हुआ पुराना पाठ है। जो नई बातें वह अपने साथ लाया है, उन्हें हिंदुत्व वहाँ तक अपना रहा है और अपना लेगा, जहाँ तक वे भारतीय मनोवृत्ति के प्रतिकूल नहीं हैं। गुजरात और मालवे की सम्मिलित मुस्लिम-शक्ति के दाँत तोड़नेवाले राणा कुंभ के कीर्तिस्तंभ पर जहाँ कुल हिंदू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं, वहाँ निराकार परमात्मा को याद करने के लिये "अल्लाह-अल्लाह" भी लिखा है। इसलाम भारत में अपने पवित्र स्थान स्थापित करे; भारतीय तीर्थों के सिलसिले में उसकी वही स्थिति हो सकती है, जो शैव और वैष्णव तीर्थों की है। अकबर और शेरशाह पर भारतीय बालक वैसा ही अभिमान कर सकते हैं, जैसा प्रताप और मालदेव पर; और वे लोग आपस में वीरता-पूर्वक लड़े थे, इसलिये वे हिंदू और मुसलमान, दोनों के और भी अधिक पूज्य हैं। किंतु इसलाम की कुछ बातें भारतीय सभ्यता—आर्य-सभ्यता के स्पष्ट विरुद्ध हैं। जैसे स्त्रियों की ग़ुलामी कुछ दिन के लिये भले ही भारतवर्ष के जीवन में शामिल हो गई हो, पर वह देर तक बनी रह सकेगी, इसकी हमें तो कोई आशा नहीं है। बेशक उनका निकलना बग़ैर कशमकश के न होगा। किंतु वे सब बातें, जो भारतीय सभ्यता में इसलामिक अंश के रूप में प्रविष्ट हो चुकी हैं, होंगी और बनी रहेंगी, भारतीय सभ्यता के शक, हूण या ग्रीक-अंश से अधिक होंगी, और उनके कारण इसलाम को हिंदुत्व के साथ-साथ भारतीय सभ्यता का आधा अंश माना जाय, यह बात हम नहीं मानते। भावी इतिहास हमारे कथन को प्रमाणित करेगा।

लाला लाजपतरायजी ने इस विषय पर उस समय जो कुछ लिख डाला है, उस पर शायद आप अब ख़ुद ही आश्चर्य करें। आप लिखते हैं—"गत पाँच-सात वर्ष की घटनाओं ने हिंदू-मुसलमानों की राजनीतिक एकता को ऐसा दृढ़ कर दिया है कि अब किसी को यह कहने की गुंजाइश नहीं रही कि भारत राजनीतिक दृष्टि से एक अभिन्न भूभाग नहीं है।"

आज लालाजी की इस पर क्या सम्मति है? घटनाओं के ऐतिहासिक महत्त्व और तारतम्य को वह कितना समझ सकते हैं, इसका यह अच्छा नमूना है।

अपने इतिहास के सिद्धांतों को समझना हमारा एक अत्यंत आवश्यक कर्तव्य है; पर प्रत्येक परिणाम निकालने से पहले बड़े अध्ययन, श्रवण और मनन की ज़रूरत है। जल्दबाज़ी में कोई परिणाम निकाल लेना बड़ा ही ख़तरनाक है।

अपने देश के एक ठीक-ठीक इतिहास की, जिसे हम सच्चा भारतीय इतिहास, राष्ट्रीय इतिहास कह सकें, हमारे लिये अनिवार्य आवश्यकता है। यदि संपूर्ण भारतीय इतिहास पर एक अच्छी पाठ्य पुस्तक तैयार हो जाय, तो वह हज़ारों-लाखों भारतीय बालक बालिकाओं को अपने देश का ठीक-ठीक परिचय दे सकती है। सांप्रदायिक दृष्टि से, भिन्न-भिन्न दलों की दृष्टि से और ऐंग्लो-इंडियनों की साम्राज्यकीय (Imperialistic) दृष्टि से अपने बालकों को भारतीय इतिहास पढ़ाकर हम देश के हज़ारों दिमाग़ों को बहका रहे हैं। किंतु भारतवर्ष का इतिहास भारतीय दृष्टि से लिखना केवल विद्यमान पुस्तकों की काट-छाँट और संग्रह-संकलन का ही सवाल नहीं है। उसके लिये बहुत स्वतंत्र खोज और अन्वेषण की आवश्यकता है। खोज की दिशा ही

बदलनी होगी। यह काम व्यक्तियों के करने का नहीं है, संस्थाओं से हो हो सकता है। यदि लाला लाजपतरायजी का तिलक-स्कूल ऑफ़ पॉलिटिक्स-जैसी संस्थाएँ यह काम न करेंगी, तो फिर वे किस मर्ज़ की दवा हैं? क्या हम आशा करें कि कोई राष्ट्रीय या साहित्यिक संस्था—जिसके खोज करनेवालों को किसी संप्रदाय या सरकार को ख़ुश करने का ख़याल न हो, कोई और चिंता न हो—इस पवित्र कार्य को हाथ में लेगी?

जयचंद्र

संतोष-धन

(१)



पं० रामभजन एक ग़रीब ब्राह्मण हैं। पंद्रह रुपए मासिक पर एक महाजन के यहाँ नौकर हैं। दो-चार रुपए मासिक ऊपर से दान-पुण्य में मिल जाता है। इस प्रकार केवल बीस रुपए मासिक में वह अपना परिवार जिलाते हैं। उनके परिवार में पाँच प्राणी हैं—वह, उनकी पत्नी, उनकी माता, और दो पुत्र। एक पुत्र की अवस्था दस वर्ष के लगभग है, और दूसरे की चार वर्ष के लगभग। ऐसे महँगी के समय में बीस रुपए मासिक में पाँच प्राणियों का भरण-पोषण किस प्रकार होता होगा, यह बात श्रीमानों की समझ में कठिनता से आ सकती है। दोनों समय रोटी दाल के अतिरिक्त और कोई वस्तु उन्हें नसीब नहीं होती। कभी-कभी कहीं से कोई सीधा मिल गया, तो मानो संपत्ति मिल गई। कहीं से कभी चार पैसे मिल गए, तो मानो चार रुपए मिले। इस प्रकार पं० रामभजन अपना परिवार चलाते हैं।

रात का समय था। पं० रामभजन अपनी नौकरी पर से लौटे थे, और भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर अपनी टूटी चारपाई पर पड़े हुए थे। उसी समय उनका छोटा पुत्र लल्लू उनके पास आया। रामभजन ने उसे अपने पास लिटा लिया, और उसे प्यार करने लगे। उनका संतप्त हृदय थोड़ी देर के लिये प्रफुल्लित हो गया। उनके अंधकारमय जीवन में ज्योति की केवल दो रेखाएँ थीं, वे रेखाएँ उनके दोनों पुत्र थे। उनका मुख देखकर और उन पर अपनी अनेक भावी आशाओं को अवलंबित करके रामभजन थोड़ी देर के लिये अपने सब कष्ट भूल जाते थे। इस समय भी लल्लू के आ जाने से वह अपनी दरिद्रावस्था को भूल गए।

लल्लू के आने के थोड़ी देर बाद ही लल्लू की माता भी उनके पास आकर बैठ गई। थोड़ी देर तक दोनों चुपचाप रहे। कुछ देर बाद लल्लू की माता बोली—लल्लू का मुंडन तो अब कर ही देना चाहिए। चार बरस का हो गया है।

रामभजन बोले—मुंडन में क्या कुछ ख़र्च न होगा?

पत्नी—ख़र्च क्यों न होगा। कम-से कम चार-पाँच रुपए लग जायँगे।

रामभजन—तो चार-पाँच रुपए आवें कहाँ से? एक एक पैसे की तो मुश्किल है।

पत्नी एक दीर्घ निःश्वास लेकर बोली—सारी उमर तो ऐसे ही बीत जायगी; कभी सुख से खाने-पहनने को नसीब न होगा।

रामभजन—तो क्या करें? भाग्य ही खोटे हैं। हमारे देखते-देखते जिनके घर में भूनी भाँग न थी, वे लखपती हो गए; पर हम जैसे-के-तैसे बने हैं।

पत्नी—लखपती हो गए! कहीं गड़ा धन मिला होगा।

रामभजन—हूँ! गड़ा धन मिलना सहज है!

पत्नी—तो फिर कैसे लखपती हो गए?

रामभजन—रोज़गार में लखपती हो गए। एक बनिए हैं, उनकी दशा हमसे भी ख़राब थी। न-जाने कहाँ से हज़ार-पाँच सौ रुपए मिल गए। उनसे उन्होंने घी का काम किया। वह काम उनका ऐसा चला, ऐसा चला कि आज रामजी की दया से चालीस-पचास हज़ार रुपए के आदमी हैं। अपना-अपना भाग्य है। भाग्य में होता है, तो सौ बहानों से मिल जाता है।

पत्नी—तुम भी ऐसा ही कोई रोज़गार क्यों नहीं करते? नौकरी में तो सदा वही गिने टके मिलेंगे।

रामभजन—रोज़गार के लिये रुपए भी तो चाहिए, बातों से तो रोज़गार होता नहीं।

पत्नी—कहीं से उधार ले लो।

रामभजन—पागल हो गई हो ! हमें कौन उधार देगा ?

पत्नी—क्यों, जिनके नौकर हो, वह न देंगे ?

रामभजन—हाँ, देंगे क्यों नहीं । ऐसे ही तो हम बड़े इलाक़ेदार हैं न ।

पत्नी—सदा इलाक़े से ही नहीं मिलता, विश्वास भी तो कोई चीज़ है । जो उन्हें तुम्हारा विश्वास होगा, तो दे ही देंगे ।

रामभजन—विश्वास कैसे हो ? आजकल कोरी बातों से विश्वास नहीं होता ।

पत्नी—जब कमा लेना, तो दे देना ।

रामभजन—और जो वह भी चले गए, तो फिर हमसे क्या ले लेंगे ।

पत्नी—चले क्यों जायँगे ?

रामभजन—रोज़गार है, रोज़गार में नफ़ा-नुक़सान लगा ही रहता है । नफ़ा हुआ, तब तो कोई बात नहीं; पर यदि घाटा हो गया, तो उनका रुपया डूबेगा कि रहेगा ?

पत्नी—तो ऐसा रोज़गार ही काहे को करो, जिसमें घाटा हो ?

रामभजन—तुम इन बातों को क्या जानो ? व्यर्थ बकवाद लगाए हो । ऐसा होता, तो सभी रोज़गार करके लखपती बन जाते ।

पत्नी ने पुनः एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—हमारे भाग में तो यही दलिद्दर भोगने बदे हैं । इतना गहना भी तो पास नहीं, जो उसी को बेचकर रोज़गार में लगा दें ।

रामभजन—इतना गहना धरा है । दो-डेढ़ सौ का गहना होगा, सो दो-डेढ़ सौ में कहीं रोज़गार होता है ?

पत्नी—न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेंगी ?

रामभजन—ऊँह, होगा भी । हमारा धन तो ये दो लड़के हैं, चिरंजीव रहेंगे, तो बहुतेरा धन हो जायगा ।

यह कहकर रामभजन लल्लू के सिर पर हाथ फेरने लगे ।

मनुष्य प्रत्येक दशा में अपने हृदय की सांत्वना का आधार ढूँढ़ लेता है । अत्यंत कष्ट तथा दुःख में फँसा हुआ मनुष्य भी कोई-न-कोई ऐसी बात ढूँढ़ लेता है, जिसका आश्रय लेकर वह सारे कष्टों को झेल लेता है । मनुष्य का यह स्वभाव है, उसकी प्रकृति है । यदि ऐसा न होता, तो मनुष्य का जीवित रहना कठिन हो जाता । रामभजन भी जब अपनी दरिद्रता से संतप्त होकर धैर्यहीन होने लगते थे, तो अंत को अपने पुत्ररत्नों की ओर देखकर ज्वाला-पूर्ण हृदय को शांत कर लेते थे । वह सोचने लगते थे कि यह कष्ट उसी समय तक है, जब तक कि दोनों लड़के जवान होकर चार पैसे पैदा करने के योग्य नहीं हो जाते । जिस दिन उनके दोनों लाल धनोपार्जन करने-योग्य हो जायँगे, उसी दिन उनके सारे कष्टों का अंत हो जायगा । इस समय भी वह यही सोच रहे थे ।

उनकी पत्नी ने विषाद-पूर्ण स्वर में कहा—हाँ, हमारे तो धन ये ही हैं । रामजी चाहेंगे, तो बड़े होकर चार पैसे कमावेंगे ही ।

रामभजन—हाँ, यह तो है ही । सबसे अधिक चिंता बुढ़ापे की है । जब हाथ-पैर थक जायँगे, तब ये ही लड़के कमा-कमाकर खिलावेंगे । बस, हमें यही चाहिए, हमें धन-दौलत लेकर क्या करना है ? पेट-भर भोजन और तन ढकने को कपड़ा मिले जाय, बस, यही बहुत है ।

उसी समय रामभजन की माता वहाँ आ गईं । उन्होंने कहा—अरे बेटा, लल्लू का मुंडन अब कर डालना चाहिए। इतना बड़ा हो गया—अपने पराए सब टोकते हैं ।

रामभजन—अम्माँ, ज़रा और ठहर जाओ, कहीं से रुपए मिलें, तो मुंडन हो, बिना पैसे-रुपए के कैसे होगा ?

माता—चार-पाँच रुपए लगेंगे—कुछ सौ-पचास का ख़र्च नहीं है ।

रामभजन—इस समय तो चार-पाँच रुपए भी मिलने कठिन हैं ।

माता—यह दशा तो सदा ही रहेगी—यह काम भी तो करना ही है ।

रामभजन—ख़ैर, जो ऐसी ही जल्दी है, तो तनख़्वाह मिलने दो—कर डालना ।

माता—अपने मालिक से क्यों नहीं कहते ? वह चार-पाँच रुपए दे सकते हैं ।

रामभजन—चार-पाँच क्या, वह चाहें, तो सौ-पचास दे सकते हैं; पर आजकल ब्राह्मणों को देने की श्रद्धा लोगों में नहीं रही । वाहियात कामों में लोग हज़ारों ख़र्च कर डालते हैं ।

माता—कलजुग है न ! कलजुग में गऊ-ब्राह्मण का मान नहीं रहा।

रामभजन—कलजुग क्या, अपना नसीब है—हमारे तो नसीब ही में दरिद्र भोगना लिखा है।

(२)

रामभजन जिनके यहाँ नौकर थे, उनके यहाँ कपड़े का काम होता था। दूकान का नाम जौनमल-हज़ारीलाल पड़ता था। रामभजन अधिकतर तक़ाज़ा वसूल करने का काम करते थे। हज़ारों रुपए नित्य रामभजन के हाथों से निकलते थे। वह ईमानदार प्रथम श्रेणी के थे, इसीलिये उनके मालिकों का उन पर पूर्ण विश्वास था। बाज़ार के अन्य लोग भी उनकी ईमानदारी के कारण उनका आदर करते थे।

जिस दिन रामभजन को वेतन मिला, उस दिन उन्होंने डरते-डरते लाला हज़ारीलाल से कहा—लाला, तुम्हारे ग़ुलाम का मुंडन है।

लाला हज़ारीलाल—किसका मुंडन, तुम्हारे लड़के का?

रामभजन—हाँ, छोटे लड़के का।

'हूँ" कहकर लाला चुप हो गए। थोड़ी देर बाद बोले—तो क्या चाहते हो?

रामभजन—कुछ सहारा लगा दीजिए, तो बड़ी दया हो।

लाला हज़ारीलाल—तनख़्वाह मिलो है, इसी में से क्यों नहीं ख़र्च करते।

रामभजन—अरे लाला, तनख़्वाह तो पेट ही-भर को नहीं होती—मुंडन में ख़र्च कहाँ से करें?

लाला रुखाई से बोले—तो महाराज, इस समय तो हम अधिक कुछ कर नहीं सकते। आजकल बाज़ार मंदा है, बिक्री-विक्री कुछ होती नहीं। ज़रा बाज़ार चेतने दो, तो फिर धूम से मुंडन करना। अभी एकआध महीने और ठहर जाओ।

रामभजन—लालाजी, हम तो साल-भर ठहर जायँ; पर घर में औरतें नाक में दम किए हुए हैं। आप जानते हैं, स्त्रियों का मामला बड़ा टेढ़ा होता है।

लालाजी—औरतों के मारे तो सबके नाक में दम रहता है। उन्हें कुछ मालूम पड़ता है—हुकुम चलाना-भर जानती हैं।

रामभजन—हाँ, यह तो ठीक है; पर करना ही पड़ता है—बिना किए प्राण बचते हैं?

लालाजी—तो महाराज, फिर करो, हम मना थोड़े ही करते हैं। हमारा सुबीता इस समय नहीं है—साफ़ बात है।

रामभजन—अरे लालाजी, आप राजा-महाराजा लोग हैं; आपको सब सुबीता है। भगवान् की दया से सब कुछ है।

लाला—ये लल्लो-पत्तो की बातें हमें नहीं आतीं—हम तो साफ़ आदमी हैं। सुबीता होता, तो अभी निकालकर दे देते। सुबीता नहीं है, तो साफ़ कह दिया कि नहीं है।

रामभजन—ख़ैर, आपकी इच्छा, हम अधिक कुछ तो कह नहीं सकते।

यह कहकर रामभजन उनके सामने से चले आए। एक दूसरे नौकर से आकर बोले—देखीं लाला की बातें! कहते हैं, सुबीता नहीं है।

नौकर—अरे ये सब टालने की बातें हैं भैया! अभी चंद्राजान सौ रुपए माँग भेजें, तो लाला आप लेकर दौड़े जायँ, दस-पाँच रुपयों के लिये कहते हैं, सुबीता नहीं है।

रामभजन—ऐसी ही बातों से जी खट्टा हो जाता है। बताओ, जान तोड़कर रात-दिन मेहनत करें—हज़ारों रुपए धरें-उठावें; पर कभी एक पैसे का फ़रक़ नहीं पड़ा—फिर भी यह दशा! एक रोज़ लाला गद्दी पर चार गिन्नियाँ फेंककर चले गए थे। दूकान में उस समय मैं ही था, और कोई न था। मैं चाहता, तो चारों गिन्नियाँ साफ़ घोट जाता। पर भैया, हमें तो भगवान् को मुँह दिखाना है—चार गिन्नी कितने दिन खाते? हमने तुरंत चारों गिन्नियाँ ले जाकर दे दीं। बड़े प्रसन्न हुए; एक रुपया मिठाई खाने को दिया; हमने चुपचाप ले लिया। अब जो आता है, उसी से कहते हैं, रामभजन बड़ा ईमानदार आदमी है। तारीफ़ों के पुल बाँध दिए। बताओ, इनकी तारीफ़ को ओढ़ें या बिछावें। यह नहीं होता कि कभी-कभी दस पाँच रुपए लेओ। यह भी न हुआ कि दो-चार रुपए तनख़्वाह में ही बढ़ा देते।

नौकर—ऐसी ही बातें देख-देखकर तो आदमी की नियत बिगड़ जाती है! ईमानदारी करने से क्या फ़ायदा? इनके साथ तो बस, यही बर्ताव रक्खे कि जो मिले, सो अपने बाप का—कभी रियायत न करे। तुम तो महाराज



"हमारे तो यहाँ दोनों धन हैं।"

पोंगा हो। मैं होता, तो गिन्नियाँ कभी न लौटाता। उनकी ऐसी-तैसी। काहे को लौटावें? जब हमारी मेहनत और ईमानदारी की कोई क़दर ही नहीं, तब काहे को ईमानदारी करें। आजकल वह समय है कि सोना-तुलसी मुँह में रख-कर काम करना बड़ा गधापन है—ऐसे आदमी भूखों ही मरा करते हैं। ये लाला भाई तो इस क़ाबिल हैं कि जहाँ तक हो, इनके चूना ही लगावे। हाँ, अपने हाथ-पैर बचाकर काम करे।

रामभजन—यह तो तुम्हारा कहना ठीक है; पर भैया, भगवान् को डरते हैं! लाला का क्या बिगड़ेगा? उनको समाई है। उनके सौ-पचास चले जायँगे, तो कुछ न होगा; पर अपना परलोक बिगड़ जायगा।

नौकर—अरे कहाँ का परलोक! तुम भी वही बाम्हनपने की बातें करने लगे। पहले यह लोक सँभालो, फिर परलोक की सोचना।

रामभजन—अरे भई, सोचना ही पड़ता है। उस जन्म पाप किए हैं, सो इस जन्म में भोग रहे हैं; अब इस जन्म में पाप करके अगला जन्म क्यों बिगाड़ें?

नौकर—इसी से तो कहा है कि बाम्हन साठ बरस तक पोंगा रहता है। बाम्हन को कभी बुद्धि नहीं आती, यह मानी हुई बात है।

रामभजन—चलो, हम बुद्धिहीन ही भले हैं। भैया, हमसे तो दग़ा-बाज़ी कभी नहीं हो सकती।

नौकर—दग़ाबाज़ी हो कैसे, बड़े घर का जो डर लगा है। बड़े घर का डर न हो, और फिर ईमानदार बने रहो, तो जानें कि बड़े ईमानदार हो।

रामभजन—वह चार गिन्नियाँ मैं ले लेता, तो मुझे कौन फाँसी पर टाँग देता? कुछ नोट तो थे नहीं, जो पकड़ लिए जाते। गिन्नी की क्या पहचान? लाला का उन पर नाम लिखा था? पर, हमने तो भगवान् का ख़ौफ़ खाया। वह घर बड़े घर से भी ज़बरदस्त है।

नौकर—तुममें हिम्मत ही नहीं है। ये सब काम हिम्मत से होते हैं। तुम्हारे-जैसे कच-पेंदियों में इतनी हिम्मत कहाँ से आ सकती है?

रामभजन—ख़ैर, ऐसा ही सही, भगवान् इसी तरह पार लगा दें। हम इसी में सुखी हैं।

नौकर—तो फिर काहे को लाला के आगे हाथ पसारते हो? अपनी तनख़्वाह में जो चाहो, करो।

रामभजन—आदमी उसी से कहता है, जिस पर कुछ ज़ोर होता है।

नौकर—लाला पर तुम्हारा क्या ज़ोर है?

रामभजन—हमारे मालिक हैं, उनका नमक खाते हैं, उन पर ज़ोर न होगा, तो किस पर होगा?

नौकर—ज़ोर का मज़ा भी तो मिल गया ! ऐसा टका-सा जवाब मिला कि तबियत हरी हो गई होगी ! अच्छा ज़ोर है ! इसी से तो कहता हूँ कि बाम्हन साठ बरस तक पोंगा रहता है। कहने लगे ज़ोर है, हुँह ! ऐसा ज़ोर होने लगे, तो फिर ये लाला भाई काहे को लखपती बने बैठे रहें ।

रामभजन—तो इससे क्या हुआ ? आज इनकार कर दिया है, तो कभी दे भी देंगे ।

नौकर—दे चुके ! जब देने का समय आवेगा, तब सदर-बाज़ार मंदा हो जायगा, यह याद रखना ।

रामभजन—तो बाज़ार तो सचमुच मंदा है, इसमें लाला ने कुछ झूठ तो कहा नहीं ।

नौकर—तो दस-पाँच रुपए के लिये मंदा है ? तुम भी वही पोंगेपन की बातें करते हो ! इतने पुराने नौकर, और इतने नमकहलाल ! तुम्हें दस-पाँच रुपए देने के लिये लाला महँगे नहीं हैं । ये सब न देने की बातें हैं ।

रामभजन—ख़ैर, चाहे जो हो । उनकी इच्छा ! हम अधिक तो कुछ कह सकते नहीं ।

नौकर—माँगने से कहीं कुछ मिला है ?

रामभजन—माँगने से नहीं मिलता, तो न मिले : हमसे चोरी-दग़ाबाज़ी नहीं हो सकती ।

(३)

उपर्युक्त घटना हुए एक मास व्यतीत हो गया । एक रोज़ लाला हज़ारीमल ने रामभजन को हज़ार रुपए दिए, और कहा—आओ, करेंसी से सौ-सौ रुपए के दस नोट ले आओ ।

रामभजन थैली कंधे पर रखकर करेंसी पहुँचे । वहाँ से नोट लिए । नोट लेकर सिर झुकाए धीरे-धीरे दूकान की ओर चले । करेंसी से जब कुछ दूर निकल आए, तो उन्हें सड़क पर एक छोटा-सा पैकट पड़ा हुआ दिखाई दिया । रामभजन ने उसे लात से ठुकराया—समझे, कोई रद्दी काग़ज़ का गोला पड़ा है । लात लगने से उन्हें ज्ञात हुआ कि उसमें तागा बँधा है । उठा लिया । उठाकर एक वृक्ष की छाया में आए । वहाँ आकर उसे खोला, तो देखते क्या हैं कि उसमें सौ-सौ रुपए के बीस नोट हैं । नोट बिलकुल ताज़े थे । जान पड़ता था, कोई व्यक्ति करेंसी से लेकर चला था—रास्ते में उसकी जेब से गिर गए ।

यह देखकर रामभजन कुछ देर तक मूर्ति की तरह खड़े रहे । सोचने लगे—ये किसके नोट हैं ? रास्ते में कोई आदमी जाता भी दिखाई न पड़ा, नहीं तो मैं पुकारकर दे देता । अब इन्हें क्या करूँ ? जिसके ये नोट हैं, उसे कहाँ ढूँढ़ूँ । इतना बड़ा शहर है—कहाँ पता चलेगा ? होंगे किसी बाज़ारवाले ही के । बाज़ार में पूछने पर शायद पता चल जाय ।

अचानक उसी समय उन्हें उस नौकर के शब्द याद आए—"आजकल वह समय है कि सोना-तुलसी मुँह में रखकर काम करना बड़ा गधापन है ।" यह ध्यान आते ही उन्होंने सोचा—इस चक्कर में पड़ने से कोई लाभ नहीं । ईश्वर ने ये हमीं को दिए हैं : नहीं तो भला दो हज़ार के नोट कहीं इस प्रकार मिलते हैं ? बेशक, ये हमारे ही भाग्य के हैं । यह ध्यान में आते ही उनका हृदय प्रसन्नता से भर गया । सोचे—चलो, भाग्य खुला । अब लाला की नौकरी छोड़ देंगे और कोई रोज़गार कर लेंगे । यह सोचते हुए रामभजन ख़ुशी-ख़ुशी चले । थोड़ी ही दूर चले थे कि उन्हें ध्यान आया—नोट सौ-सौ रुपए के हैं, ऐसा न हो कि इनके नंबर उसके पास लिखे हों । ऐसा हुआ, तो बड़ा घर देखना पड़ेगा । फिर ध्यान आया—अभी-अभी तो करेंसी से लिए गए हैं : इतनी जल्दी नंबर कहाँ से लिख लिए होंगे ? यह सोचकर फिर चले । परंतु दस क़दम चलकर ही उन्हें एक युक्ति सूझी । वह पुनः करेंसी की ओर लौटे, और करेंसी में आकर उन बीस नोटों में से दस निकाले, और उनके दस-दस रुपए के नोट बदल लिए । नोटों का गुट्ठा अपनी चादर में बाँध लिया । जो दस नोट अपने मालिक के लिये लिए थे, वे भी उन्हीं में मिला लिए । मिले हुए नोटों में से जो दस नोट शेष बचे थे, वे बाहर रख लिए । सोचे—ये नोट मालिक को दे देंगे । अगर पकड़े भी गए, तो उन पर पड़ेगी—हम अलग रहेंगे । हमारे पास एक हज़ार के तो दस-दस के नोट हैं, और एक हज़ार के सौ-सौ के—वे सौ-सौ के, जो हमने स्वयं अपने मालिक के लिये लिए थे । इसलिये हमें तो अब कोई पूछ नहीं सकता । मिले हुए नोटों में से दस तो करेंसी में ही लौट गए, और दस हमारे मालिक के पास पहुँच जायँगे । बस, आनंद है ।

यह सोचते और अपनी बुद्धिमत्ता पर गर्व करते हुए महाराज रामभजन पहले अपने घर पहुँचे । घर पहुँचते

ही उन्होंने पहले तो दो हज़ार के नोट अपनी संदूक में बंद करके ताला लगा दिया। अपनी माता तथा पत्नी से कोई ज़िक्र नहीं किया। इसके पश्चात् अपने बड़े लड़के से दो आने की मिठाई मँगाई—थोड़ी-थोड़ी दोनों लड़कों को देकर शेष स्वयं खाई, और एक लोटा पानी तानकर पिया। उनकी पत्नी विस्मित थी कि आज पति को यह कहाँ की फ़िज़ूलख़र्ची सूझी कि दो आने की मिठाई चट कर गए। पर कुछ कहने का साहस न हुआ। सोची—कहीं से पैसे मिल गए होंगे—जी न माना, मिठाई खा ली।

पानी पी चुकने के पश्चात् सीधे दूकान पहुँचे, और मालिक के हाथ में सौ-सौ रुपए के दस नोट दे दिए।

मालिक ने पूछा—आज बड़ी देर लगाई।

महाराज बोले—लाला, आज करेंसी में बड़ी भीड़ थी। महा मुश्किल में नोट मिले हैं। घंटा-भर खड़े रहना पड़ा।

लाला यह सुनकर चुप हो गए। उन्हें नोट कहीं बाहर भेजने थे, सो उन्होंने उसी समय उनका बीमा करा दिया। महाराज रामभजन ने निश्चिंतता की एक गहरी श्वास ली।

महाराज ने सोचा था कि आज ही नौकरी छोड़ देंगे। परंतु फिर ध्यान आया, ऐसा न हो कि किसी को कुछ संदेह हो जाय। अतएव चार-छः रोज़ ठहर जाना चाहिए।

रात को घर आए, और भोजन करके अपनी चारपाई पर लेटे। थोड़ी देर में उनकी माता उनके पास आईं और सिरहाने बैठकर पंखा डुलाने लगीं। थोड़ी देर तक रामभजन पड़े यह सोचते रहे कि माता से सब हाल कह दें; परंतु साहस न होता था। अंत को यह तय किया कि अभी न बताना चाहिए। स्त्रियों के पेट में बात नहीं पचती; कहीं इधर-उधर कह दिया, तो उलटे लेने के देने पड़ जायँगे। यह सोचकर बोले—अम्मा, अब तो हमारा जी नौकरी से ऊब गया। अब हमसे नौकरी नहीं होती। रात-दिन बैल की तरह जुते रहो, और मिलने को बीस रुपल्ली।

माता—बेटा, रोज़गार के लिये तो रुपए चाहिए; कहाँ से आवेंगे?

रामभजन—रुपए भी हो ही जायँगे। जब जी में डट जायगी, तो रुपए होते क्या देर लगेगी।

माता—कहाँ से हो जायँगे?

रामभजन—अरे अब इतने दिन से यहाँ काम करते हैं, तो क्या कोई हज़ार-दो हज़ार रुपए भी उधार न देगा? सैकड़ों बनिए-महाजनों से जान-पहचान हो गई है; जिससे माँगेंगे, वही दे देगा।

उनकी पत्नी बैठी भोजन कर रही थी। उसने जो महाराज की ये लंबी-लंबी बातें सुनीं, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी—अभी उस दिन तो कह रहे थे कि हमें कौन रुपए देगा। हमारे पास कौन इलाक़ा धरा है। लड़के के मुंडन के लिये मालिक से पाँच रुपए माँगे; वह तक नहीं मिले। पाँच रुपए न होने के कारण मुंडन रुका हुआ है। और, आज महाराज हज़ारों की बातें कर रहे हैं—कहते हैं, रुपया भी हो ही जायगा। यह मामला क्या है! कहीं आज भाँग तो नहीं पी आए!

उधर पत्नी यह सोच रही थी, इधर माता पुत्र से बोलीं—बेटा, सबसे पहले लड़के का मुंडन कर डालो—बड़ी बदनामी हो रही है।

रामभजन झल्लाकर बोले—बदनामी हो रही है, तो कर डालो। मना कौन करता है?

माता डरते-डरते बोलीं—कर काहे से डालें, रुपए भी तो हों?

रामभजन—कितने रुपए चाहिए?

माता—कम-से-कम पाँच रुपए तो हों। हेली-व्यवहारियों में बतासफेनी बटेंगी; नाऊ को कुछ दिया जायगा।

रामभजन—भला बतासफेनी क्या बाँटोगी? बाँटो, तो मिठाई बाँटो।

माता—मिठाई में दस रुपए से कम नहीं लगेंगे।

रामभजन—लगेंगे तो लग जायँगे, क्या किया जाय। यह काम भी तो करना ही है। कल हम तुम्हें दस रुपए दे देंगे।

यह सुनते ही माता की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

उधर पत्नी सोचने लगी—ओहो! कहाँ पाँच का ठिकाना न था, और कहाँ अब दस ख़र्च करेंगे। या तो आज भाँग अधिक पी गए हैं, या कहीं से रुपए मिल गए हैं।

यह सोचते ही पत्नी ने जल्दी-जल्दी भोजन समाप्त किया। इस समय उसके पेट में चूहे कूद रहे थे। वह वास्तविक बात जानने के लिये अत्यंत आतुर हो रही थी। उसने हाथ-बाथ धोकर सास से कहा—अम्मा, लल्लू को सुला दो।

माता समझ गई कि बहू अपने पति के पास जाना चाहती है। अतएव वह वहाँ से हट गई। पत्नी ने आते ही पहला प्रश्न यह किया—सच बताओ, रुपए कहाँ मिले?

इतना सुनते ही रामभजन का मुखमंडल श्वेत हो गया ; परंतु अँधेरा होने के कारण उनकी पत्नी उनकी दशा न देख सकी। रामभजन बोले—रुपए, कैसे रुपए?

पत्नी—मुझसे तो उड़ो नहीं। ये बढ़-बढ़कर बातें यों ही मार रहे थे? आज तो ऐसी बातें कर रहे थे, मानो लखपती हो। ऐसी बातें बिना रुपए के मुँह से कभी नहीं निकल सकतीं।

रामभजन काठ हो गए। सोचने लगे—निस्संदेह मैंने बड़ा गधापन किया, जो ऐसी बातें कीं। यह सोचकर तुरंत बोले—रुपया क्या ठीकरी है, जो मिल जायगा?

पत्नी—तो ये दस रुपए मुंडन के लिये कहाँ से आवेंगे?

रामभजन—आवेंगे कहाँ से? कहीं से उधार माँगकर लाऊँगा।

पत्नी—हमें उधार लेकर मुंडन नहीं करना। और, जो उधार लेना है, तो पाँच ही में काम चलाना चाहिए, दस ख़रच करने की क्या ज़रूरत है?

रामभजन—अरे हमने सोचा कि जब करना ही है, तो अच्छी तरह करें—जहाँ पाँच ख़र्च होंगे, वहाँ दस सही। एक रुपया महीना करके अदा कर देंगे।

पत्नी—और वह रोज़गार के लिये हज़ार-दो हज़ार कौन देगा?

रामभजन—तुम तो बात का बतंगड़ बनाती हो। कौन देगा? हज़ार-दो हज़ार कुछ होते ही नहीं?

पत्नी—अम्मा से तुम्हीं कह रहे थे कि हम जिससे चाहें, हजार-दो हजार ले लें।

रामभजन—हाँ, तो झूठ थोड़े ही है। अब इतने नाक़बिल भी नहीं गिर गए हैं, जो कहीं से हज़ार-दो हज़ार माँगे भी न मिलें। मैं तो इस डर से नहीं लेता कि घाटा हो गया, तो दूँगा कहाँ से?

पत्नी—हूँ, उस दिन मुझसे तो कुछ और ही कहते थे?

रामभजन—तुमने जैसा पूछा होगा, वैसा कह दिया होगा।

यह कहकर रामभजन ने नींद का बहाना करके अपना पिंड छुड़ाया।

दूसरे दिन जब महाराज रामभजन दूकान पहुँचे, तो उन्होंने नोटों की चर्चा सुनी। लाला हज़ारीमल अपने मुनीम से कह रहे थे—अजी, वह आदमी सरासर झूठ बोलता है। भला दो हज़ार के नोट कोई फेंक सकता है? घर धर आया होगा।

मुनीम ने कहा—लाला, यह कैसे कहा जा सकता है? उसका दीन-ईमान जाने। रही गिरने की बात, सो बहुधा ऐसा हो जाता है।

लालाजी—अजी, राम भजो! ऐसा नहीं हो सकता। वह ज़रूर खा गया। ख़ैर, पुलीस को इत्तिला दे दी गई है, वह मार-मारके सब कबुलवा लेगी।

यह सुनते ही रामभजन की नीचे की साँस नीचे और ऊपर की ऊपर रह गई। हृदय में सब वृत्तांत जानने की उत्कंठा पैदा हुई। थोड़ी देर में चित्त स्थिर करके लाला से पूछा—लाला, क्या बात है?

लाला—कल मुसद्दीलाल-रामसरन का आदमी करेंसी से दो हज़ार के नोट लाया था। दूकान पर आकर बोला कि नोट तो कहीं गिर गए। उसका कहना है कि उसने चादर के कोने में बाँध लिए थे। दूकान पर आकर जब नोट देने के लिये चादर देखी, तो गाँठ खुली पाई। अब इसमें दो ही बातें हो सकती हैं—या तो किसी ने खोल लिए, और या वह ख़ुद ग़बन कर गया। गिर जाने की बात समझ में नहीं आती।

रामभजन—तो अब क्या होगा?

लाला—होगा क्या, उन्होंने उस आदमी को पुलीस में दे दिया है। जहाँ पुलीस ने जूता बरसाया, सब क़बूल देगा।

रामभजन के हृदय में एक धक्का लगा ; वह सोचने लगे—बेचारा एक निरपराध मुसीबत में फँसा हुआ है, और नोट हमारे पास हैं। रामभजन यह बैठे सोच ही रहे थे कि लाला ने उन्हें एक काम बता दिया।

रामभजन वह काम करने के लिये चले। रास्ते में उत्सुकता उत्पन्न हुई कि चलो देखें, मुसद्दीलाल की दूकान पर इस समय क्या हो रहा है। यह सोचकर उधर ही से निकले। देखा, उनकी दूकान में दो-तीन पुलीस के आदमी बैठे हैं। सामने उनका नौकर खड़ा है। सबइंस्पेक्टर साहब उससे कह रहे हैं—अबे तूने लिए हों, तो ठीक-ठीक बता दे।

नौकर हाथ जोड़कर बोला—सरकार, भगवान् जानते हैं, मैंने नहीं लिए। मैं पाँच-पाँच हज़ार के नोट लाता रहा हूँ—लेता, तो पाँच हज़ार लेता, दो हज़ार क्यों लेता?

सबइंस्पेक्टर—अबे, यह तू हमें क्या पढ़ाता है? इंसान की नीयत हमेशा एक-सी नहीं रहती। मुमकिन है, इस वक़्त तुझे रुपयों की सख़्त ज़रूरत हो, इसलिये तूने ऐसा कर डाला हो।

नौकर—मालिक, अब मैं आपको कैसे समझाऊँ। ईश्वर देखनेवाला है। जिसने रुपए लिए हों, उसका बंस नास हो जाय, उसके आगे-पीछे कोई न रहे।

इतना सुनते ही रामभजन का कलेजा दहल गया। सब-इंस्पेक्टर ने लाला से कहा—हम इसे कोतवाली लिए जाते हैं—वहीं यह क़बूलेगा। सीधी तरह न बतावेगा।

यह कहकर इंस्पेक्टर ने एक कांस्टेबल से कहा—इसके हथकड़ी लगाओ और थाने पर ले चलो। बात-की-बात में उसके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ गईं। नौकर लाला के सामने नाक रगड़ने लगा। बोला—लाला, मुझे बचाओ; मैं जनम-भर तुम्हारी ग़ुलामी करूँगा। भगवान् जानते हैं, मैंने रुपए नहीं लिए। मेरे छोटे-छोटे बच्चे भूखों मर जायँगे, मेरी बुढ़िया मा यह ख़बर सुनते ही प्राण छोड़ देगी। तुम भागवान हो, तुम्हारे लिये हज़ार-दो हज़ार कुछ नहीं—ब्याह-शादी में इतने की लकड़ियाँ जल जाती हैं। सरकार मेरा जनम न बिगाड़ो।



"बात-की-बात में उसके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ गईं।"

लाला ने उसकी बात पर ध्यान न दिया—मुँह फेर लिया, और कांस्टेबलों से इशारा किया कि ले जाओ। कांस्टेबल उसे घसीटने लगे। वह लाला की ओर गिरा पड़ता था, और बिलख-बिलखकर रो रहा था। उसी समय एक कांस्टेबल ने उसके गाल पर एक ज़ोर का तमाचा मारा, और कहा—साले, फ़ैल मचाता है? अभी क्या है, ज़रा कोतवाली चल, देख, वहाँ तेरी क्या गत बनती है!

यह कहकर कांस्टेबल उसे घसीटता हुआ ले चला। रामभजन यह सब देख-सुनकर पाषाणमूर्ति-से हो गए। इस समय उसकी दशा पर रामभजन का हृदय रो रहा था। रामभजन सोच रहे थे—रामभजन, इसके छोटे-छोटे बच्चे भूखों मरेंगे! अभी हमारी ऐसी दशा हो, तो हमारा लल्लू और कल्लू किसके सहारे जिएँ? हमारी पत्नी और माता क्या खाकर रहें? धिक्कार है ऐसे रुपए पर! ऐसे रुपए से तो हम भिखारी ही भले। इस बेचारे की आत्मा इस समय कितनी दुखी है! कोतवाली में न-जाने बेचारे की क्या दुर्दशा की जाय। इसका शाप अवश्य हम पर पड़ेगा।

हमारे दो पुत्र हैं : उन पर इसकी आत्मा का शाप पड़ेगा । आँखों से इसकी दुर्दशा न देखते, तब भी ठीक था ; पर अब तो अपनी आँखों से देख लिया— अब भी जो हम चुप बैठे रहेंगे, तो हमें नरक में भी ठौर न मिलेगा। रामभजन, ऐसे रुपए पर लात मार दो ! एक का सर्वनाश करके यदि तुमने हज़ार-दो हज़ार ले ही लिए, तो वह फलेंगे नहीं—उलटा नाश कर देंगे । तुम्हारे दो लाल हैं—क्या रुपया तुम्हें उनसे अधिक प्यारा है ? उन्हें कुछ हो गया, तो यह रुपया किस काम आवेगा ?

रामभजन न-जाने कितनी देर तक खड़े यही सोचते रहे। उन्हें इस समय अपने तन-बदन का होश न था। हठात् एक गाड़ी की घड़घड़ाहट से उनकी नींद-सी टूटी । उन्होंने अपने चारों ओर देखा। इस समय उनके नेत्र अश्रु-पूर्ण हो रहे थे, और जान पड़ता था, अपने होश में नहीं हैं । हठात् वह तेज़ी के साथ एक ओर चल दिए ।

एक घंटे बाद रामभजन लाला मुसद्दीलाल के पास पहुँचे, और बोले—लाला, आपसे एक बात कहनी है ।

लाला मुसद्दीलाल रामभजन को पहचानते थे। उन्होंने कहा—कहो महाराज ।

रामभजन - तनिक एकांत में चलिए ।

मुसद्दीलाल एक कमरे में गए, और बोले—कहो, क्या बात है ?

रामभजन ने नोटों का बंडल निकालकर उनके हाथ में रख दिया।

मुसद्दीलाल चकित होकर बोले—यह क्या ?

रामभजन - ये आपके दो हज़ार रुपए हैं । आपका वह नौकर बेक़सूर है । नोट सचमुच गिर पड़े थे— रास्ते में मुझे पड़े मिले थे । मुझे मालूम न था, किसके हैं, इसलिये मैंने इन्हें अपने पास रख लिया था। अब आज मालूम हुआ, तो लाया ।

मुसद्दीलाल ने विस्मय, हर्ष तथा प्रशंसात्मक दृष्टि से रामभजन को देखा । इसके पश्चात् नोट गिने । नोट देखकर बोले—पर मैंने तो सब सौ-सौ के मँगाए थे—इसमें तो दस-दस के हैं ?

रामभजन—अब यह बात मत पूछिए—एक आदमी को सौ-सौ के नोटों की ज़रूरत थी, उसे मैंने इनमें से दे दिए और उससे दस-दस के ले लिए । चाहे दस-दस के हों चाहे सौ-सौ के, इससे आपको क्या मतलब ? दो हज़ार के तो हैं ।

लाला मुसद्दीलाल बोले—हाँ, पूरे दो हज़ार के हैं। यह कहकर उन्होंने दस-दस रुपए के दस नोट निकालकर रामभजन को दिए ।

रामभजन ने पूछा—इन्हें क्या करूँ ?

लाला—यह आपकी ईमानदारी का पुरस्कार है ।

रामभजन—नहीं-नहीं, इन्हें रहने दीजिए । मैं ऐसा पुरस्कार नहीं चाहता ।

लाला—नहीं, ये तो आपको लेने ही पड़ेंगे । आपकी बदौलत हमें ये मिले हैं । हम तो इनसे हाथ ही धो चुके थे। आप इन्हें न लेंगे, तो हमें रंज होगा ।

रामभजन—ख़ैर, जैसी आपकी इच्छा । अब ईश्वर के लिये अपने उस नौकर को छुड़वा दीजिए—पुलीस उसकी दुर्दशा कर डालेगी ।

लाला ने तुरंत अपना आदमी कोतवाली दौड़ा दिया ।

घर आकर रामभजन माता से बोले—अम्मा, लो ये २०) रुपए । इनमें लल्लू का मुंडन करो। साथ ही सत्यनारायण की कथा भी करा लेना ।

माता ने चकित होकर पूछा—ये रुपए कहाँ पाए बेटा ?

रामभजन—सत्यनारायण बाबा ने दिए हैं । सब उन्हीं का प्रताप है ।

इसके पश्चात् पत्नी के हाथ में ८०) रु० रख दिए । पत्नी आनंद से गद्गद् होकर बोली—कहाँ से ले आए ?

रामभजन—सब सत्यनारायण बाबा की दया है। आदमी की नीयत ठिकाने रहनी चाहिए। ईश्वर सब भला ही करता है।

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक

चित्रमय जोधपुर

(पूर्वार्द्ध)

यह नगर मारवाड़-राज्य की राजधानी है। इसका वर्णन करने के पूर्व मारवाड़ का कुछ उल्लेख कर देना उचित प्रतीत होता है। वाल्मीकीय रामायण के युद्ध-कांड के २२वें सर्ग में लिखा है कि जिस समय महाराज रामचंद्र ने लंका पर चढ़ाई की, और समुद्र ने मार्ग नहीं दिया, उस समय क्रोधित हो रामचंद्रजी ने बाण चढ़ाकर समुद्र

को सुखा देने का विचार किया। परंतु इतने ही में भयभीत समुद्र ने आकर उनका क्रोध शांत कर दिया, और उनके अमोघ बाण को उत्तर में स्थित द्रुम-कुल्य-भाग पर चलवाकर अपना पीछा छुड़वाया। कहते हैं, उसी दिन से वहाँ पर जल के सूख जाने से मरु-देश की उत्पत्ति हुई। जहाँ पर रामचंद्रजी का तीर गिरा था, वह स्थान "व्रणकूप" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आजकल शायद जिसे रामकुंड कहते हैं, वह यही स्थान हो। यह कुंड जैसलमेर-राज्य में है। आगे चलकर रामायण में यह भी लिखा है कि मरुकांतार-देश की दशा पर दया करके श्रीराम ने उसे वरदान दिया—"उस स्थान पर श्रेष्ठ मनुष्य, पशु-पक्षी और फल-फूल उत्पन्न होते रहेंगे।" इस उपर्युक्त आलंकारिक भाषा से यह अनुमान होता है कि उसी समय से मरु-देश का सिंध की तरफ़ का हिस्सा आर्य लोगों से आबाद होना आरंभ हुआ होगा। इसके बाद जब राजर्षि श्रीकृष्ण के समय में यादवों ने द्वारका को अपनी राजधानी बनाया, तब इस प्रदेश का गुजरात की तरफ़ का हिस्सा भी बहुत कुछ आबाद हो गया।



कुँअर जगदीशसिंह गहलोत एम्० आर० ए० एम्०

कहा जाता है, इस निर्जल और रेतीले भाग में पहले सागर था। परंतु भूकंप आदि से जल हट-कर समुद्र में मिल गया, और ख़ाली रेत का ढेर रह गया। यह किसी अंश में है भी ठीक। क्योंकि यहाँ सीप, शंख, कौड़ी आदि पाषाण-रूप Fossil में परिवर्तित हुए मिलते हैं, जो पहले यहाँ जल का होना बतलाते हैं। रेगिस्तान बन जाने के पीछे जिस समय यूनान के जगत्-विख्यात सम्राट् सिकंदर ने ख्रि० सं० से २६६ वर्ष पूर्व भारत पर आक्रमण किया था, उस समय भी सिंध की सहायक नदी घघर की एक धारा—जिसको राजपूताने में हाकड़ा कहते हैं—बीकानेर और जोधपुर-राज्यों में बहती हुई सिंध-प्रांत में आकर सिंध (इंडस)-नदी में मिल जाती थी। जोधपुर के मालानी आदि परगनों के कई गाँवों में ईख पेरने के पत्थर के कोल्हू अब तक पाए जाते हैं। उनके विषय में यह कहा जाता है कि पहले यहाँ हाकड़ा-नदी बहती थी, जिसके तट पर गुड़वाड़ याने सेलड़ी (गन्नों) की खेती बहुत होती थी, जिससे गुड़ बनाया जाता था। उस समय इस नदी से इस प्रदेश में बहुत आबादी और उपज थी, तथा मंडोर के राजा को भी हाकड़ा-नदी से बड़ी भारी आमदनी होती थी। यदि उक्त नदी यहाँ न बहती, तो इस रेतीले परगने में ऐसे बड़े कोल्हुओं की संभावना हो कैसे होती? पीछे ज़मीन ऊँची हो जाने के कारण हाकड़ा का बहना बंद हो गया। इतना ही नहीं, मूल घघर-नदी ही रेगिस्तान में रम गई। अब केवल उसके प्राचीन बहाव के मार्ग के चिह्न ही दिखाई देते हैं। उसका थोड़ा-सा जल बीकानेर-राज्य के हनूमानगढ़-इलाक़े तक ही आता है, जिसमें गेहूँ आदि पैदा होता है। वहाँवाले उसको घाघर-नदी कहते हैं।

इस नदी के बंद होने के विषय में मारवाड़ में अब तक यह कहावत है कि "वह पानी मुलतान गया।" जब कोई कार्य बिगड़ जाता या हाथ से निकल जाता अथवा उसका बनना कठिन होता है, तो उसका ज़िक्र आने पर कहते हैं—"वह (या वह) पानी मुलतान गया।" इसकी रोचक और उपदेश-पूर्ण कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है—किसी समय मंडोर के राजा ने एक लक्खी (लाख बैलों पर माल ढो ले आनेवाला व्यापारी) बनजारे की सुंदर स्त्री का हरण कर लिया, और बनजारे के बहुत प्रार्थना करने पर भी उसे न लौटाया। बनजारे ने इस अत्याचार



बालदिया बनजारे

का बदला लेने का बहुत सोच विचार करके यही ठीक समझा कि हाकड़ा का मारवाड़ में आना ही बंद कर दे, जिसका नुक़सान राजा और उसकी संतान भी उम्र-भर और पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक न भूलें, और प्रजा राजा के इस अन्याय से अपनी हानि होने को हमेशा याद करती रहे। अतः नदी जिस जगह से मारवाड़ में आती थी, वहाँ जाकर उसने अपने और स्वजातीय बंधुओं के लाखों बैल इसी काम पर लगा दिए कि नदी-प्रवाह में बालू डालकर इधर की भूमि ऊँची कर दी जाय। ख़ैर, उसका परिश्रम सफल हुआ, और नदी का प्रवाह दक्षिण में न होकर पश्चिम की तरफ़ होता हुआ मुलतान को चला गया। इस पर अपने प्रांत को उजड़ता देख मंडोर का राजा बहुत गिड़गिड़ाया, और उस बनजारे से कहलाया कि अपनी बनजारी तू ले जा। बनजारे ने कुछ नहीं सुना, और उत्तर में राजा को यह लिख भेजा—

अब प्रेम नहीं उस प्यारी से;
वह पानी मुलतान गया।

नहीं कह सकते, यह बात कहाँ तक ठीक है।

कथाओं से पता चलता है कि श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के समय उसका सामंत "गह"-नामक राजा इस मारवाड़-प्रदेश पर राज्य करता था। इन यादव-क्षत्रियों के बाद इस प्रदेश पर नाग-वंशियों का अधिकार होना पाया जाता है। लोगों का अनुमान है कि नगाना-गाँव, नागतालाब, नागादरी (एक बरसाती नदी) और नागोर-शहर इन्हीं नागवंशियों के स्मृति-चिह्न हैं।

इसके बाद इस देश पर पँवारों का अधिकार हुआ। इस वंश में धरणीवराह नाम का एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसका राज्य सिंध से लेकर गुजरात, मेवाड़, पंजाब और ढूढाड़ की सीमा तक था। कहते हैं, इसने अपने मारवाड़-राज्य के ९ समान भाग करके अपने भाइयों को बाँट दिए थे। उसी दिन से मारवाड़-प्रदेश 'नव कोटि मारवाड़' के नाम से प्रसिद्ध हुआ (नव कोटि से नव जुदा-जुदा क़िलों से आशय है)। इस विषय की एक प्रचलित प्राचीन कविता भी है—

मंडोवर सावंत हुओ अजमेर सिंध सू;
गढ़ पूँगल गजमल्ल हुओ लुद्रवे भान भू।
आल्हपाल अर्बुद भोजराजा जालंधर;
जोगराज धर धाट हुओ हंसू सु पारकर।

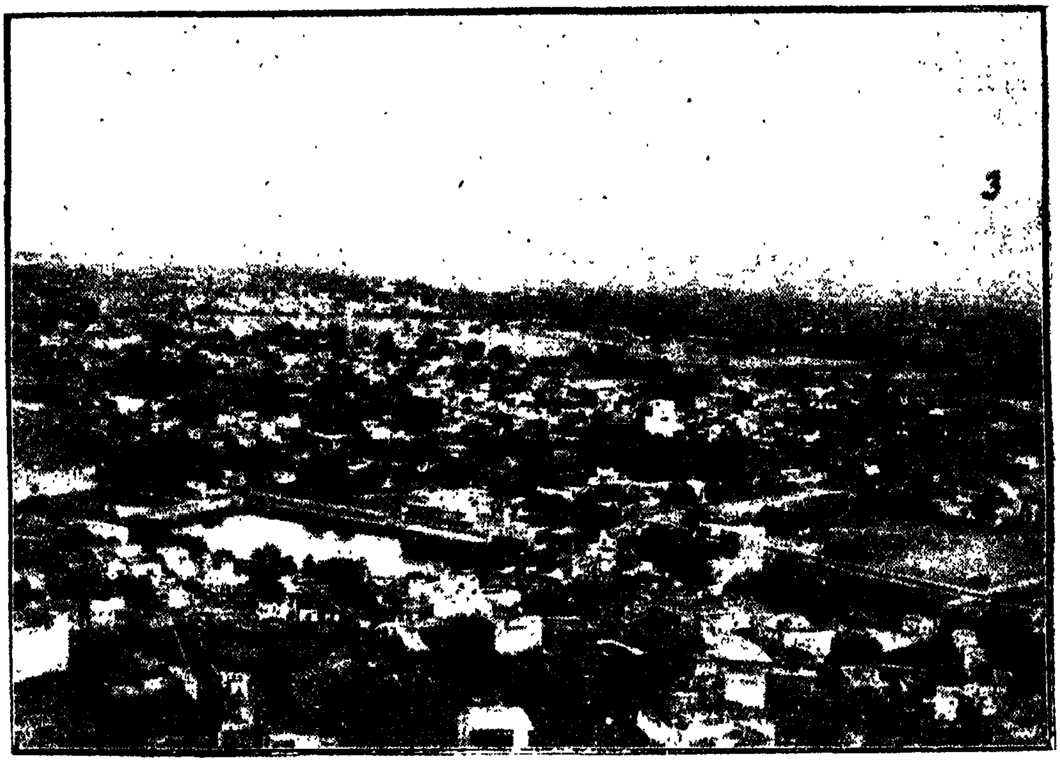
नवकोटि किराडू संजुगत थिर पंवारा थापिया ;
धरणीवराह धर भाईयाँ कोट बाँट जू-जू किया ।

अर्थात् परमार-राजा धरणीवराह ने अपने पैतृक राज्य को नव कोटों में बाँटकर अपने ९ भाइयों को अलग किया, तो मंडोर सामंत को, अजमेर[1] सिंधु को, पूँगल गजमल को, लुद्रवा भाव को, आबू आलपाल को, जालंधर (जालोर) भोजराज को, धाट (उमरकोट-प्रांत) जोगराज को और पारकर (थरपारकर) हंसराज को मिला। इस तरह उन्होंने एक-एक क़िला बाँट दिया, और किराड़ (बाड़मेर) कोट को अपने पास रक्खा।

इस बँटवारे से पँवारों का राज्य टुकड़े-टुकड़े होकर कमज़ोर हो गया। धरणीवराह के पौत्रों के समय विक्रम-संवत् ११०० के लगभग चौहानों ने उनके राज्य के दक्षिण-पश्चिम का भाग छीन लिया। इस प्रकार गहलोत और पड़िहार पूर्व का हिस्सा दबा बैठे। उत्तर का भाग भाटियों के हाथ लगा, जो पंजाब की तरफ़ से इधर की तरफ़ बढ़े चले आते थे। अतः पँवारों के अधिकार में केवल बाड़मेर के आसपास का ही भाग रह गया; जो अंत में विक्रम की १३वीं शताब्दी के अंतिम भाग में राठौरों द्वारा छीन लिया गया। पड़िहारों और चौहानों[1] के भाग पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया।

राजधानी

मारवाड़-राज्य की राजधानी जोधपुर है। यह नगर जोधपुर-रेलवे का सदर-मुक़ाम है, और २६ अंश १८ कला उत्तरांश तथा ७३ अंश १ कला पूर्व-देशांतर में स्थित है। इसका क्षेत्रफल २ वर्गमील है। रेल के मार्ग से यह दिल्ली से ३८०, बंबई से ५९०, कलकत्ते से १,३३० और आगरे से ३७५ मील के फ़ासले पर है। आबादी शहर-पनाह के भीतर ५२ हज़ार है; किंतु नगर से ५ मील तक



जोधपुर का विहंगम-दृश्य

१. अजमेर अजयदेव चौहान के समय बसा था। अजयदेव का समय सं० ११७६ के आसपास है। इससे यह छप्पय बाद में बना है।

१. दक्षिण-पश्चिम के चौहानों को अलाउद्दीन खिलजी ने परास्त किया था।—लेखक।

की आसपास की बस्ती को मिलाकर ७३,४८० है । इस नगर को राठौर राव जोधाजी ने जेठ-सुदि ११, सं० १५१६ वि० (१२ मई, सन् १४५९ ई०, शनिवार) को मैदान से ४०० फ़ीट ऊँची एक पृथक् पहाड़ी की तराई में बसाया था । इसी पहाड़ी पर उन्होंने अपने रहने के लिये एक



जोधपुर बसानेवाले राव जोधाजी राठौर

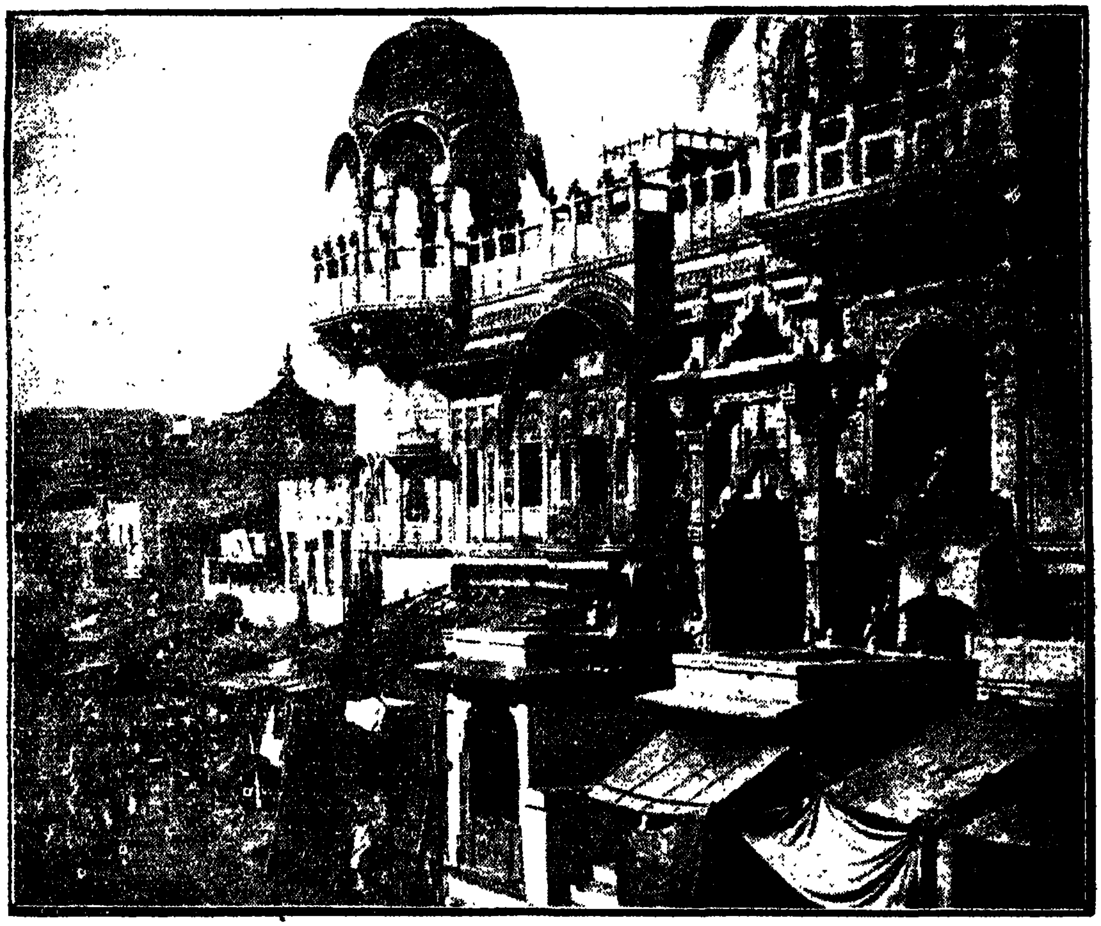
क़िला भी बनवाया था । जोधपुर-नगर को बसाते समय चार दरवाज़े और पुरानी दीवारें, जो जोधाजी ने बनवाई थीं, वर्तमान नवीन नगर के नैर्ऋत्य-कोण में आ गई हैं । यह नवीन नगर घोड़े के सुम की शक्ल में ढालू पथरीली भूमि पर बसा हुआ है । इसके चारों तरफ़ १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बनी हुई २४,६०० फ़ीट लंबी ३ से ९ फ़ीट तक चौड़ी और १५ से ३० फ़ीट तक ऊँची शहर-पनाह है । शहरपनाह के बीच में तोपें आदि रखने के लिये यथास्थान अनेक बुर्ज और बंदूक़ों की मारें बनी हुई हैं, और नगर में प्रवेश करने के लिये इसी शहरपनाह में ६ बड़े-बड़े द्वार हैं । इन द्वारों के फाटक लोहे के पत्रों से मढ़े हुए हैं, और इनके ऊपर के भाग में क़रीब आध फ़ुट लंबी लोहे की नुकीली कीलें लगी हुई हैं । प्राचीन समय में शत्रु लोग नगर में प्रवेश करने के लिये अपने हाथियों को मतवाला करके इन फाटकों को तुड़वाने का प्रयत्न करते थे, उन्हीं हाथियों की टक्कर से बचाने के लिये नगर के फाटकों पर ऐसी कीलें लगाई जाती थीं ।

इन द्वारों में पश्चिम की तरफ़ का द्वार, जिधर से नवीन चंद्र का उदय होता है, चाँदपोल के नाम से प्रसिद्ध है । बाक़ी दरवाज़े मारवाड़-राज्य के उन नगरों के नाम से विख्यात हैं, जिनका मार्ग उन द्वारों की तरफ़ से जाता है । जैसे— नागोरी, मेड़तिया, सोजती, सीवानची और जालोरी । नागोरी-दरवाज़े की शहरपनाह और उसके बुर्जों में जयपुर और बीकानेर की सेनाओं के गोलों के निशान अब तक विद्यमान हैं । ये सेनाएँ जोधपुर-नरेश महाराज मानसिंह के विरुद्ध धोकलसिंह की सहायता के लिये चढ़ आई थीं । कहते हैं, यह धोकलसिंह महाराज भीमसिंह का लड़का था, और उनके मरने के कुछ महीने बाद पैदा हुआ था । परंतु मारवाड़ के इतिहासज्ञ इस बात को बनावटी बताते हैं । देखा जाय, तो यह एक बहाना-मात्र था । असल में जयपुरवाले इसके द्वारा महाराज मानसिंह से अपना पुराना वैर भँजाना चाहते थे । इन सेनाओं के साथ ही उस समय का विख्यात पिंडारी लुटेरा अमीरख़ाँ भी अपनी सेना समेत आया था । परंतु अंत में जयपुर-वालों से झगड़ा हो जाने के कारण यह उनकी सेना से निकलकर जोधपुरवालों से मिल गया, और इसी से जयपुर और बीकानेर की सेनाओं को बहुत नुक़सान और बदनामी के साथ वापस लौटना पड़ा ।

इस नगर के बाज़ार बहुत ही तंग और टेढ़े-मेढ़े हैं । लेकिन सुधार का यथोचित प्रयत्न किया जा रहा है । नगर के आम रास्तों पर पत्थर की शिलाएँ जड़कर पक्की सड़कें बना दी गई हैं, और उन पर बिजली की रोशनी का प्रबंध है । नगर के मकान प्रायः पत्थर के बने हुए हैं । इनमें से बहुतों में खुदाई का बढ़िया काम भी किया हुआ है ।

यहाँ के मंदिरों में सबसे सुंदर और बड़ा 'कुंजबिहारी-जी' का मंदिर है, जो शहर के बीच में, कटला-बाज़ार में, है । इस मंदिर को सुप्रसिद्ध वैष्णव महाराज विजयसिंहजी

की पासवान गुलाबराय ने बनवाया था, जो जाट-जाति की महिला थी। यह मंदिर फाल्गुन-सुदि ८, सं० १८३५ वि० को बनकर तैयार हुआ था। यहाँ का गंगश्यामजी का मंदिर भी एक बड़ा और प्राचीन मंदिर है। इसमें श्रीकृष्ण की मूर्ति स्थापित है। यह मंदिर राव गांगाजी ने बनवाया था। किंतु मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब के समय में यह मसजिद के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था। अंत में जब महाराज अजीतसिंह ने फिर जोधपुर पर अधिकार किया, तब उन्होंने पुनः मूर्ति की स्थापना की। इस मंदिर की वर्तमान इमारत महाराज विजयसिंहजी ने बनवाई थी। इस मंदिर के पास ही २०-३० क़दम पर विशाल तरहटी का महल है, जिसे महाराज सूरसिंहजी ने बनवाया था। इस विशाल इमारत में अब सरकारी "जसवंत ज़नाना अस्पताल" और 'हियूनस गर्ल्स स्कूल' हैं।



श्रीमती तीजा-भाजी का मंदिर

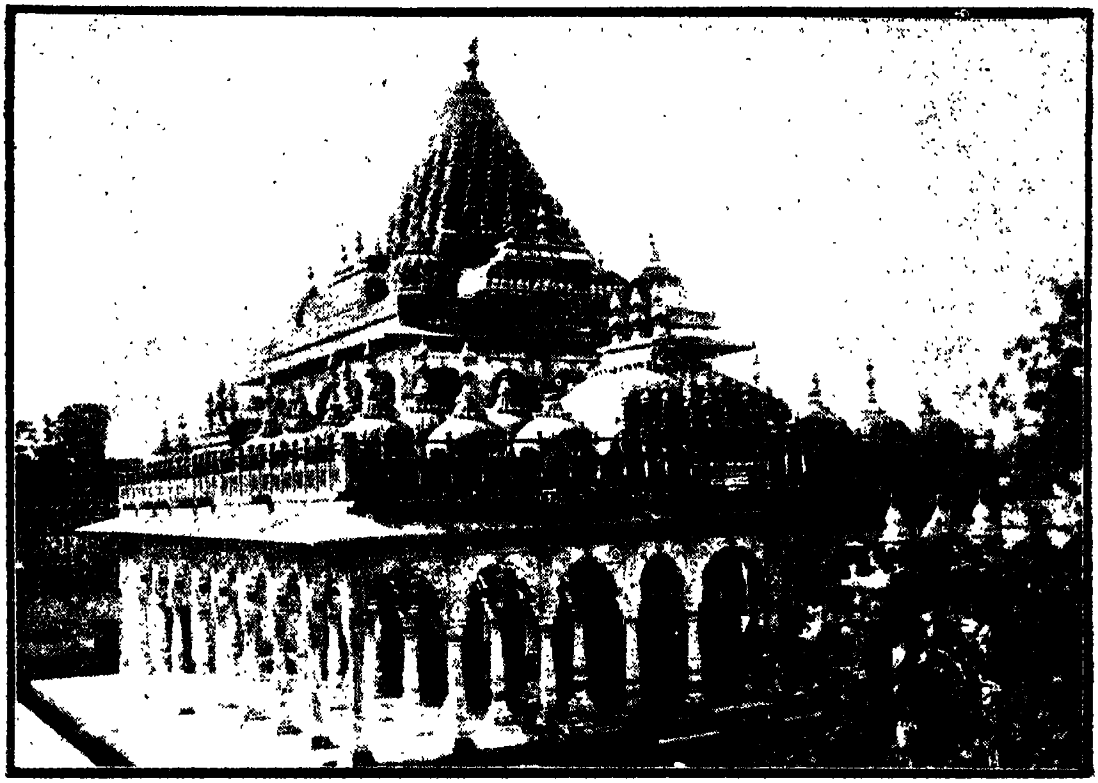
१. जोधपुर के राजों और उनके छुटभैयों में यह चाल चली आती है कि जिस किसी जाति की पर-स्त्री को सोना पाँव में पहनाकर परदे में रख लेते हैं, उसको 'पड़दायत' कहते हैं। और, जिस पड़दायत पर विशेष प्यार होता है, उसे 'पासवान' की पदवी देते हैं। जैसे—रानियों में 'महारानी' का उच्च पद होता है, वैसे ही पड़दायतों में 'पासवान' का दर्जा है। जनानख़ाने में दाख़िल करते समय पड़दायतों और पासवानों के असली नाम के साथ 'रायजी'-शब्द जोड़ दिया जाता है। इनसे जो पुत्र होते हैं, वे पहले 'बाभा' कहलाते थे; किंतु सं० १९१९ वि० की भादों-सुदि १० (ई० १८६२, ता० २२ सितंबर) से वे 'रावराजा' कहलाते हैं। ये महिलाएँ अधिकतर दरोगा-(रावणा)-जाति की होती हैं। (देखो मारवाड़-राज्य का इतिहास, पृष्ठ २४)

घंटाघर[१] के पास, धासमंडी-बाज़ार में, महाराज मानसिंह की महारानी तीजा भटियानीजी (प्रतापकुँअरि) का १ लाख रुपए की लागत का मंदिर है। इस मंदिर में एक विचित्रता यह है कि बहुत-से राजों, बादशाहों और देवतों के चित्र भीतों में बनवाकर काँच से जड़ दिए हैं।

घंटाघर से मेड़तिया-दरवाज़ा क़रीब २ फ़र्लांग पूर्व में है। इस दरवाज़े के पास भी सड़क पर तीन विशाल मंदिर हैं, जो पास-ही-पास कुछ क़दमों पर हैं। सड़क के दाएँ तरफ़ पहला मंदिर महाराज तख़्तसिंहजी की महारानी बाघेली रणछोड़कुँअरिजी का बनवाया हुआ राधा-वल्लभ का है। इसकी प्रतिष्ठा वैशाख-सुदि १२, सं० १६४७ को हुई थी। इसी पंक्ति में दूसरा मंदिर महाराज जसवंतसिंहजी के छोटे भाई महाराज किशोरसिंहजी की रानी श्रीमती बाघेली विष्णुप्रसादकुँअरिजी का बनवाया हुआ दीनानाथ का संगीन शिखर-बंद मंदिर है। इस मंदिर के सामने ही महाराज जसवंतसिंहजी की रानी रानावतजी (अजबकुँअरि-बाई शाहपुरी) का बनवाया सुंदर भव्य मंदिर है। उपरांत उल्लेखनीय एक विशाल मंदिर शहर के ईशान-कोण में, नागोरी-दरवाज़े के पास (शहर के बाहर), महामंदिर-नामक गाँव में है। इस गाँव की तीन हज़ार बस्ती है, और इसके चारों तरफ़ कोई सवा मील घेरे की पक्की पत्थर की शहरपनाह है। यहाँ महाराज मानसिंहजी ने अपने गुरु आयसदेवनाथ (नाथ-संप्रदाय के संन्यासी) की सम्मति से इष्टदेव जालंधरनाथजी का विशाल मंदिर और दो महल बनवाए थे। इस बड़े मंदिर के पीछे ही उस गाँव का नाम महामंदिर हो गया है। परंतु आजकल इस मंदिर की दशा शोचनीय है। यद्यपि इस मंदिर के साथ अब तक एक अच्छी जागीर चली आती है, फिर भी यहाँ के अधिकारी की उपेक्षा के कारण इसकी दशा दिन-दिन हीन होती जा रही है।

शहर के दक्षिण में सोजतिया और जालोरी-दरवाज़ों के बीच, रेलवे-स्टेशन के सामने, राजरणछोड़जी का सुंदर मंदिर है। यह मंदिर जामनगर-नरेश महाराज जाम श्रीविभाजी साहब की पुत्री और जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंहजी (द्वितीय) की पटरानी श्रीमती राजबा (राजकुँअरि) जाड़ेजीजी ने बनवाया था। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९६२ वि० की ज्येष्ठ-सुदि १० को बड़ी धूमधाम से हुई थी। यह मंदिर भी भव्य एवं दर्शनीय है। सावन के महीने में यहाँ पर झूलों का उत्सव बड़े ही समारोह के साथ होता है। इसी के पास इन्हीं स्वर्गीय महारानी जाड़ेजीजी साहिबा की बनवाई 'जसवंत जाड़ेजा-विलास'-नामक धर्मशाला है। इसकी प्रतिष्ठा माघ-सुदी १३, सं० १९५५ वि०, गुरुवार को जोधपुर-नरेश के उत्तराधिकारी महाराज सर सरदारसिंहजी साहब ने निज कर-कमलों से की थी। इस धर्मशाला में यात्री लोग तीन रोज़ तक बिना किसी प्रकार का कर दिए ठहर सकते हैं। इन दोनों संस्थाओं के निर्वाह के लिये पास ही में उसी धर्मात्मा महारानी का बनाया 'महारानी जाड़ेजाजी-राजभवन' है। इसमें बहुत-से मकान बने हैं, और उन्हीं के किराए से पूर्वोक्त दोनों संस्थाओं का ख़र्च मज़े से चला जाता है। पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि यह महारानी कितनी बुद्धिमती और दूरंदेश थीं कि अपने बनाए मंदिर और धर्मशाला (जसवंतसराय) को सदा के लिये स्थायी रखने का ऐसा सुंदर प्रबंध कर गईं। इससे महारानी की कीर्ति के साथ-साथ जोधपुर-स्टेशन की शोभा भी बहुत कुछ बढ़ गई है; क्योंकि स्टेशन के सामने तो एक ऊँचे टीले पर सुंदर मंदिर आ गया है, और वहीं पर सड़क के दोनों तरफ़ जसवंत-जाड़ेजा-विलास और महारानी जाड़ेजा-राजभवन की विशाल इमारतें भी बनी हैं, जो आए हुए नवीन यात्रियों के हृदय पर एक बार अपना प्रभाव अवश्य ही उत्पन्न कर देती हैं। इसके अलावा रेलवे-स्टेशन से सटा हुआ ही रेलवे का बड़ा पुतलीघर (कारख़ाना) है, जिसमें दो हज़ार से अधिक मनुष्य काम करते हैं। इसके पास ही रेलवे के सब दफ़्तर हैं। रेलवे-स्टेशन से सवा मील दूर

१. घंटाघर से सोजतिया-दरवाज़ा क़रीब ३ फ़र्लांग के फ़ासले पर है। इस राजपथ पर दुर्भाग्य से दोनों ओर 'सदा सोहागन' वेश्याओं के मकान हैं। इनको यहाँ से उठाकर अन्यत्र शहर के बाहर रखने का स्वर्गीय महाराज रीजेंट सर प्रताप का प्रस्ताव भी हो चुका था। परंतु कार्य-रूप में आज तक न आ सका। आम रास्ता और विशेषकर विद्यार्थियों के कॉलेज और स्कूलों का रास्ता होने से यह प्रश्न विचारणीय है। म्युनिसिपल बोर्ड और उच्च अधिकारी इस ओर ध्यान दें, तो अच्छा है। —लेखक।



महामंदिर का विशाल भवन



ब्रिटिश-रेजिडेंसी का भवन

अँगरेज़-राजदूत का आलीशान भवन (रेज़िडेंसी) है। वह रेज़िडेंसी पहले शहर से दो मील दूर सूरसागर-नामक स्थान में थी ; किंतु सन् १८६१ ई० के जून-महीने से इस नवीन इमारत में है।

राजधानी में ईसाइयों का एक गिरजाघर और मुसलमानों की मसजिदें हैं। सबसे बड़ी मसजिद शहर के बीच, गिरजाघर के पास, खाँडा-पलसा-बाज़ार की सड़क पर है। मसजिदों की संख्या बढ़ती ही जाती है।

शहर में पीने का शुद्ध जल पाँच तालाबों में रहता है, जो गुलाबसागर, फ़तेहसागर, रानीसर, पद्मसर और बाईजी का तालाब के नाम से प्रसिद्ध हैं। गुलाबसागर घंटाघर के पास है, और इसको महाराज विजयसिंह की पासबान श्रीमती गुलाबराय[१] ने बनवाया था। इसके बनने में सात वर्ष लगे थे, और यह बनकर आषाढ़-बदि ४, सं० १८३७ वि० बुधवार (ई० सं० १७८०, ता० २१ जून) को तैयार हुआ था। इस तालाब के पूर्वी किनारे पर 'राजमहल'-नामक एक पुराना राजभवन है। आजकल इस भवन में सरकारी संस्कृत-पाठशाला और वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल है। फ़तेहसागर-तालाब मेड़तिया-दरवाज़े के पास है, और इसे महाराज भीमसिंह ने अपने स्वर्गीय पिता महाराजकुमार फ़तेहसिंह की स्मृति में बनवाया था। इस तालाब पर रामानुज-संप्रदाय के वैष्णवों का रामानुज-कोट-नामक मंदिर भी दर्शनीय है। इसकी प्रतिष्ठा ज्येष्ठ-



जोधपुर का क़िला और गुलाबसागर-तालाब

सुदि ११, सं० १८२३ वि० को हुई थी। इन दोनों तालाबों में उत्तर की तरफ़ से बालसमंद-नामक बाँध से पत्थर की पक्की नहर द्वारा पानी पहुँचाने का प्रबंध है। बाईजी का तालाब महाराज मानसिंह की राजकुमारी सिरेकुँअरि बाई ने बनवाया था। इसके साथ भी पत्थर की पक्की नहर बनी है, और उसका संबंध कायलाना(प्रताप-सागर)-बाँध से है। रानीसर और पद्मसर-नामक तालाब क़िले के पास ही पश्चिम में हैं। रानीसर-तालाब राव जोधाजी की रानी जसमा (हरकुँअरि) हाड़ी ने सं० १५१६ में बनवाया था, और राव मालदेव ने उसे एक परकोटे से घेरकर

१. इसी ने जोधपुर में गिरदीकोट-नामक बाज़ार बनाया था, जो अब नए ढंग से बसकर 'सरदार-मारकेट' कहलाता है। इसकी संतानों में एक पुत्र बाबा तेजसिंह था, जिसका विवाह जयपुर-नरेश सवाई महाराजा पृथ्वीसिंहजी की खवास (पड़दायत) की पुत्री से हुआ था।

क़िले के साथ संबद्ध कर लिया था। कुछ वर्षों से इस तालाब पर एक एंजिन लगा दिया गया है, जिसके द्वारा पानी क़िले में चढ़ाया जाता है। पद्मसर को मेवाड़ के राणा साँगा की कन्या और राव गाँगा की रानी पद्मावती (सुसराल में उत्तमदेवी) ने बनवाया था। इसके सिवा क़रीब ३० बावलियाँ आदि और भी हैं, जिनका पानी पीने और नहाने के काम आता है।

क़िला

यह अपने ढंग का एक सुंदर, मज़बूत एवं विशाल दुर्ग है, जो एक पृथक् पहाड़ी पर, आसपास के मैदान से क़रीब ४०० फ़ुट ऊँचा, मोर की पूँछ के आकार का बना हुआ है। यह बहुत दूर से दिखाई देता है। इसका कोट २० से



जोधपुर का क़िला

१२० फ़ीट तक ऊँचा और १२ से २० फ़ीट तक मोटा है। क़िले की लंबाई १,५०० फ़ीट और चौड़ाई ७५० फ़ीट है। इसके अंदर अनेक महल और सिपाहियों के रहने के लिये स्थान आदि बने हुए हैं। इसमें अंदर आने के लिये दो द्वार हैं—एक तो उत्तर-पूर्व में, और दूसरा उत्तर में। यह नगर के भीतर से है। इसका उत्तर-पूर्व का जयपोल नामक द्वार वि० सं० १८६१ में महाराज मानसिंह ने जयपुर की सेना की विजय के उपलक्ष्य में बनवाया था, और इसमें जो विशाल लोहे का फाटक लगा हुआ है, वह नीवाज के ठाकुर अमरसिंह ऊदावत द्वारा, जब कि महाराज अमरसिंह ने आश्विन-सुदि १२, सं० १७८७ को अहमदाबाद फ़तेह किया था, लाया गया था। महाराज मान ने उन्हीं के वंशजों से यह फाटक लेकर यहाँ लगवाया था। इसके सिवा क़िले के भीतर और भी ६ द्वार हैं। इनमें से लोहापोल का अगला भाग सं० १६०५ में राव मालदेव ने बनवाया था। इसकी समाप्ति वि० सं० १८०६ के क़रीब महाराज विजयसिंह के समय में हुई थी। इस द्वार की दीवारों पर जो हाथ खुदे हुए हैं, वे उन सतियों की याद दिलाते हैं, जो इस असार संसार को छोड़कर धधकती हुई चिताओं में अपने स्वर्गवासी पतियों के साथ सहर्ष जल

भरी हैं । इसी पोल के पास के कमरे में राज्य का सिलहख़ाना है ।

पहलेपहल जब यह क़िला बना था, तब इसका विस्तार जिस सीमा तक था, उसे 'जोधाजी का फलसा' कहते हैं । महाराज के सिवा हरएक सरदार और राज कर्मचारी को इस स्थान पर सवारी से नीचे उतर जाना होता है ।

क़िले की इमारतें ऊँची और सुंदर, बढ़िया खुदाई के काम की पत्थर की जालियों से सुशोभित हैं, जिनसे उजेला आया करता है । कई महलों की दीवारों और छतों पर बढ़िया कारीगरी की चित्रकारी भी की हुई है ।

महलों में मोती-महल, फूल-महल और फ़तेह-महल प्रसिद्ध हैं । मोती-महल महाराज सूरसिंह के समय में, वि० सं० १६०२ में, बना था, और वि० सं० १६०० के क़रीब महाराज तख़्तसिंह ने इसकी दीवारों और छतों पर सोने का आवरण लगवा दिया था । इन छतों और दीवारों में चित्रकारी का काम है । यह एक बड़ा ही सुंदर और देखने लायक़ राजप्रासाद है । फूल-महल में खुदाई का काम देखने-योग्य है । यह महल महाराज अभयसिंह ने वि० सं० १७८१ के क़रीब बनवाया था । फ़तेह-महल उस समय की स्मृति में बनाया गया था, जब महाराज अजीतसिंह ने मुग़ल-सेना को निकालकर जोधपुर का क़िला, सं० १७६८ में, अधिकार में किया था । यहीं पर आजकल राज्य के जवाहरात रक्खे हुए हैं । इसी प्रकार ख़्वाबगाह का महल, तख़्त-विलास, दौलत-ख़ाना, चौकेलाव-महल, बिचला महल आदि और भी कई छोटे-बड़े महल समय-समय पर बनाए गए थे ; क्योंकि पहले के राजा लोग सपरिवार क़िले ही में रहा करते थे । परंतु अब समय ने पलटा खाया है, और आधुनिक नरेश क़रीब ५० वर्ष से नगर के बाहर विशाल महल बनवाकर रहने लगे हैं । सुना जाता है, वर्तमान नरेश महाराज सर उम्मेदसिंहजी साहब बहादुर क़रीब ८० लाख रुपए व्यय करके शहर से क़रीब १ मील दूर, रातानाडा-नामक पहाड़ी पर, एक विशाल प्रासाद बनवाने का विचार कर रहे हैं । इसके लिये विलायत से एक चतुर इंजीनियर नक़्शा बनाने को बुलाया गया था । यह महल क़रीब ८ वर्ष में बनकर तैयार होगा ।

क़िले में ज़नाना-महल, तोपख़ाना और सिलहख़ाना (शस्त्रालय) और 'पुस्तक-प्रकाश'-नामक राज्य का पुस्तकालय भी है । इस पुस्तकालय में बहुत-सी पुरानी अनमोल संस्कृत की पुस्तकें हैं । क़िले में, दौलतख़ाने के आँगन में, महाराज बख़्तसिंह की बनवाई 'सिणगार-चौकी' है । इसी पर जोधपुर के महाराजों का राजतिलक हुआ करता है ।

क़िले के ऊपर से शहर का दृश्य बड़ा ही अनोखा और सुंदर प्रतीत होता है ।

क़िले में चामुंडामाता, मुरलीमनोहर और आनंदघनजी के मंदिर भी हैं । चामुंडामाता का मंदिर पहलेपहल राव जोधाजी ने बनवाया था । परंतु भाद्रपद-कृष्ण ५ सं० १६१४ वि० को इसके निकट के बारूदख़ाने में बिजली के गिरने से यह मंदिर उड़कर शहर में आ पड़ा था, और उससे नगर के दो सौ मनुष्य घरों में दबकर मर गए थे । इसी से महाराज तख़्तसिंहजी ने यह मंदिर फिर से बनवाया था । आनंदघन और मुरलीमनोहर के मंदिर महाराज अभयसिंह ने बनवाए थे । आनंदघन के मंदिर में बिल्लौरी पत्थर की जो ५ मूर्तियाँ हैं, उनके विषय में कहा जाता है कि ये महाराज सूरसिंह को सम्राट् अकबर द्वारा प्राप्त हुई थीं । मुरलीमनोहर के मंदिर में महाराज गजसिंह ने ४ मन २२ सेर वज़न की चाँदी की मूर्तियाँ बनवाकर स्थापित की थीं ।

वैसे तो क़िले में छोटी-बड़ी बहुत-सी तोपें हैं, परंतु इनमें तीन मुख्य समझी जाती हैं । उनके नाम किलकिला, शंभूबाण और गजनीख़ान हैं । इनमें पहली तो महाराज अजीत ने, जिस समय वह अहमदाबाद के गवर्नर थे, बनवाई थी । दूसरी महाराज अभयसिंह ने अहमदाबाद के सूबेदार सर बलंदख़ाँ को फ़तेह कर प्राप्त की थी । और, तीसरी सं० १६६४ में, जब महाराज गजसिंह ने जालोर फ़तेह किया, हाथ लगी थी ।

शिक्षा-विद्या-प्रचार

जोधपुर-नगर राजपूताने में विद्या का दूसरा केंद्र है । यहाँ संवत् १६५० से बी० ए० तक अँगरेज़ी की पढ़ाई होती है । पहलेपहल वि० सं० १६२३ की चैत्र-बदि १२, सोमवार (१ एप्रिल, सन् १८६७ ई०) को जोधपुर-नगर में प्रजा की ओर से एक छोटा सा अँगरेज़ी स्कूल खोला गया था । देश-हितैषी मुंशी रसलाल मणिहार (माहेश्वरी) उसकी देख-भाल करते थे, जो अँगरेज़ी के सबसे पहले मारवाड़ी विद्वान् थे । स्कूल के साथ ही देशभक्त रावराजा मोतीसिंहजी बहादुर ने एक लीथो-

छापाख़ाना खोलकर 'मरुधर-मित्र'-नामक साप्ताहिक पत्र हिंदी-भाषा में उक्त मणिहारजी के संपादकत्व में वैशाख-सुदि २, सं० १९२४ (६ मई, सन् १८६७) से शुरू किया। संवत् १९२६ की आषाढ़-सुदि १, शनिवार (१० जुलाई, सन् १८६९) को यह स्कूल और प्रेस मय साप्ताहिक पत्र के राज्य ने अपना लिए, और उनके नाम बदलकर दरबार-स्कूल, मारवाड़-गज़ट और मारवाड़-स्टेट



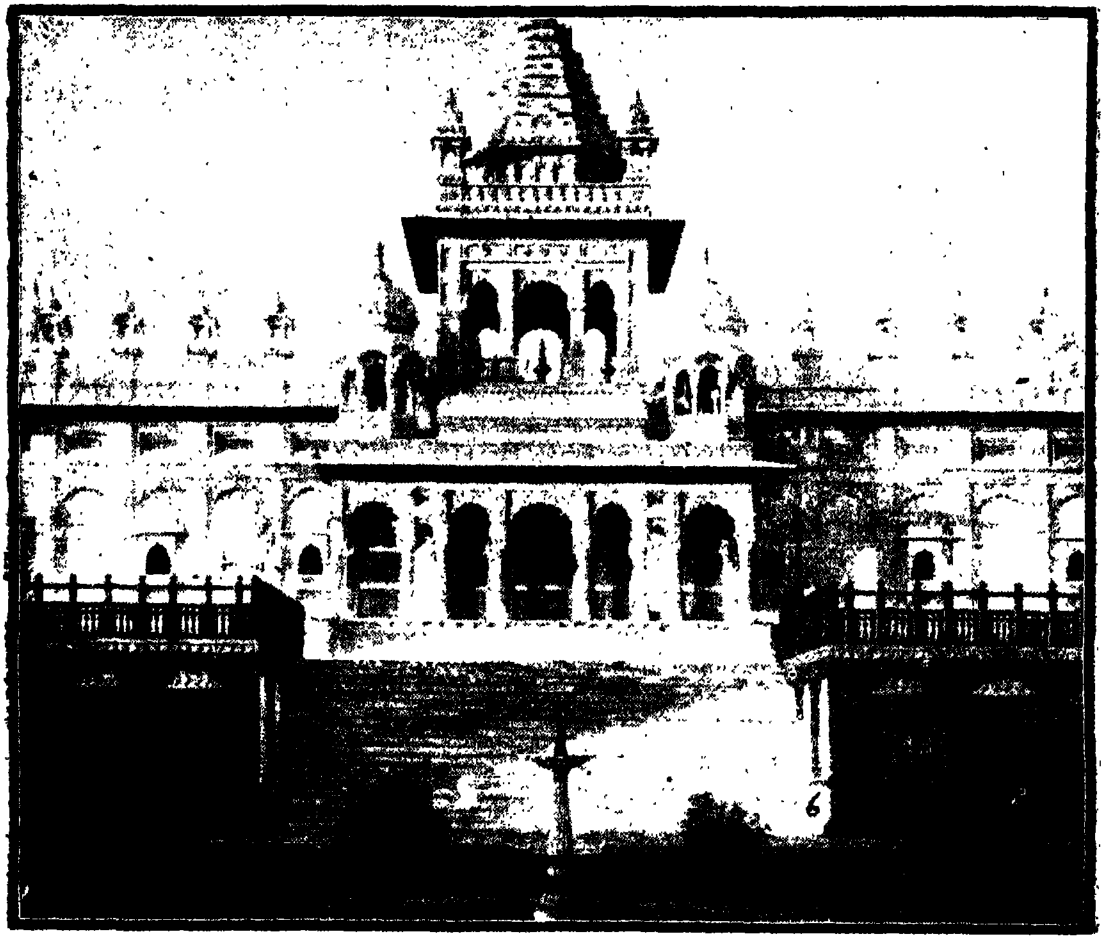
जोधपुर का दरबार-हाई स्कूल (नवीन भवन)

प्रेस कर दिए गए। उसके बाद यहाँ पर विद्यादान के लिये बराबर उन्नति होती रही। इसके फल-स्वरूप इस समय राज्य में १ आर्ट्स-कॉलेज, २ हाई स्कूल, ४ ऐंग्लो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, १४ ऐंग्लो-वर्नाक्युलर अपर प्राइमरी स्कूल, २ ऐंग्लो-वर्नाक्युलर लोअर प्राइमरी स्कूल, २ हिंदी-मिडिल स्कूल (कन्याओं के लिये) ५४ हिंदी-प्राइमरी स्कूल, १ संस्कृत-पाठशाला और १ टाइपराइटिंग तथा शॉर्ट हैंड क्लास है। इन सरकारी संस्थाओं के सिवा राज्य में १९ स्कूल ऐसे हैं, जो कुछ राजकीय सहायता लेते हैं। इनमें २ हाई स्कूल, १ हिंदी-कन्यापाठशाला और २ ऐंग्लो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल मुख्य हैं। इन मिडिल स्कूलों में ओसवाल-वैश्यों का 'सरदार-स्कूल' अच्छी उन्नति पर है। सहायता न लेनेवाले उल्लेख्य विद्यालय १०-१२ हैं, जिनमें 'माहेश्वरी ऐंग्लो वर्नाक्युलर ऐंड कमर्शियल स्कूल' (मिडिल तक) और आर्यसमाज का अछूतों के लिये राष्ट्रीय विद्यालय तथा अन्य ३ कन्या-पाठशालाएँ भी हैं। इन सब संस्थाओं में कुल ९ हज़ार विद्यार्थी हैं, और १८ लाख की आबादी में, राज्य-भर में, पढ़े-लिखे फ़ी सैकड़ा तीन हैं। शिक्षा-विभाग पर आजकल ३ लाख रुपए वार्षिक ख़र्च होते हैं। इसमें से लगभग १ लाख तो सरकारी राजपूत-हाई स्कूल में लगते हैं, और २४ हज़ार हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी को तथा ८ हज़ार मेयो-कॉलेज, अजमेर को चंदे में दिए जाते हैं। क़रीब २७ हज़ार रुपए प्रजा के एडेड स्कूलों को मिलते हैं। बाक़ी रक़म सरकारी विद्यालयों में ख़र्च होती है, जो वास्तव में बहुत कम है। यहाँ आरंभ से ही राज्य-भर में शिक्षा मुफ़्त है। किंतु मारवाड़ियों के अभाग्य के कारण गत वर्ष से कॉलेज में फ़ीस लगाने का सिलसिला जारी हो गया है। इस फ़ीस से राज्य को केवल १८०) की आय है। पर

राज्य की बड़ी बदनामी है। उक्त अधिकारियों को इस ओर पुनः ध्यान देना चाहिए। राज्य की अदालतों का सब काम, स्वामी दयानंद सरस्वती के सं० १९४० में राज्य-निमंत्रण पर पधारने तक, उर्दू में होता था। पश्चात् उनके सदुपदेश से, तत्कालीन प्रधान राजमंत्री महाराज सर प्रताप के प्रयत्न से, सब काम हिंदी में होने लगा है।

अन्य दर्शनीय स्थान

जसवंत स्मृति-भवन (थड़ा)—यह संगमरमर का बना सुंदर भवन है, जो वर्तमान महाराज साहब के पितामह महाराज जसवंतसिंहजी की यादगार में ४ लाख रुपए खर्च करके, देवकुंड की पहाड़ी पर, बनवाया गया था। महाराज जसवंतसिंहजी के पहले जोधपुर के राजों का अंतिम संस्कार मंडोरगढ़ में होता था; किंतु महाराज जसवंतसिंहजी की अंत्येष्टि-क्रिया इसी स्थान पर की गई, और वही सिलसिला अब तक बराबर चला आता है। यह स्थान क़िले के उत्तर-पूर्व में, उसके पास ही, बना हुआ है। इसे यहाँ के लोग महाराज जसवंतसिंहजी का थड़ा कहते हैं। इसके पास ही मीठे पानी का देवकुंड-नामक छोटा-सा तालाब है। बरसात के दिनों में जब यह भर जाता है, तो इसकी रौनक़ कुछ और ही हो जाती है। पूर्व के मैदान से देखने पर यह आकाश में श्वेत विमान-सा प्रतीत होता है।



महाराज जसवंतसिंहजी (द्वितीय) का थड़ा (स्मृति-भवन)

कुँअर जगदीशसिंह गहलोत

गौरव-गान

अपने अभाग पर रोते दिन-रात हम,
 सोते सुख-साथ न कदापि नींद भरके ;
वासना के वारिधि में बढ़ता अटिल ज्वार,
 जाता जग डूब, फिर जगता न मरके ।
कौन जानता है दुखियों की दयनीय दशा,
 मुख छिपा फिरता वनों में डर-डरके ,
मौन-महामंत्र धरणी में धीरता का यदि,
 फूँकते न आदि से दयालु दया करके ।
जगती न जीवन की ज्योति जीवधारियों में ;
 बंजर वसुंधरा में कौन सुधा सींचता ?
जननी के उर से न बहती मधुर धार,
 नदियाँ वियोगी नयनों से न उलीचता ।
काव्य-रस में न सुकुमारता का होता स्वाद,
 धन्य ध्रुव-धाम को धरा में कौन खींचता ?
एक क्षण को भी यदि साहब सरोष कहीं,
 स्नेह को समेट के दया के दृग मीचता ।
पापी पामरों को कहीं मिलता विराम नहीं,
 आग कभी बुझती बुझाए न हृदय की ;
पछतावे का न परिणाम पुण्य-धाम होता,
 होती न इति-श्री शरणागत के भय की ।
होता न सुधार अंत में भी आततायियों का,
 उड़ती पताका कहां पतितों के जय की ?
दीन-दुखियों को कहाँ मिलता सुगति-सार,
 क्षमा-मूँठ खुलती न साहब सदय की ?
कौन वन-बाग में बखेर अनुराग-जल,
 इंद्र हो सुभाग-भरी भूमि का सँवारता ?
लोक-अभिभावक-सा लेकर भरण-भार,
 शेष बन शीश पर धरणी उभारता ?
होके हरि कौन मदि-गर्भ रत्न-पूर्ण कर,
 ओषधि, समीर, नीर प्रचुर प्रचारता ?
होती जो न विविध प्रकार से अपार यहाँ,
 उदित उदार सरदार की उदारता ?
देखते जहाँ हैं सदाचार का प्रचार कहीं,
 अथवा विधान जप, योग, यज्ञ, दान का ;
संतत समागम है संत-मंडली का जहाँ,
 तथा है प्रकाश निगमागम के ज्ञान का ।
दृश्य कलि-कौतुक से शून्य हैं ज़रा भी जहां,
 किंवा है प्रवाह पुण्य-प्लाविनी के गान का ;
मूल में है वहीं मूर्तिमान मोक्ष-मूल भय,
 त्रयशूलधारी न्यायकारी भगवान का ।

रामनारायण मिश्र

अक्षयवट

"सगम सिंहासन सुठि सोहा ; छत्र अछयवट मुनि-मन-मोहा ।"

(तुलसीदास)

अक्षयवट का आज क्षय हो गया है । उसका नाम ही अब शेष है ; किंतु निशान कुछ भी नहीं । यात्रियों को धीरज देने के लिये पंडों ने क़िले के भीतर स्थित सुरंग के एक ओर में सूखी हुई लकड़ी का एक टुकड़ा स्थापित कर रक्खा है । उसी पर वे यात्रियों से पैसे चढ़वाते और अपनी जीविका चलाते हैं । पर्व के दिनों में उस काष्ठावशेष वस्तु में दो-चार किसलय लगाकर वे यह दिखाने की चेष्टा करते हैं कि अक्षयवट को लोग भ्रमवश निर्जीव वस्तु समझते हैं। अक्षयवट को यदि निर्जीव होना होता, तो उसका नाम 'अक्षय'-वट किस तरह रक्खा जाता ? किंतु उन्हें यह अच्छी तरह मालूम कि अक्षयवट सचमुच निःशेष हो गया है, और यह टहनी उस महान् न्यग्रोध के नाम को हिंदूधर्मावलंबियों में क़ायम रखने के लिये एक महज़ बहाना है । सुरंग के गंभीरतम के ठोस पर्दे को अपने क्षीण प्रकाश से छिन्न-भिन्न करनेवाले मिट्टी के दीपक की धुँधली रोशनी में यदि आप ध्यान से उन पंडों के आग्रह-रेखांकित मुख-मंडल की ओर देखें, तो जान पड़ेगा कि उन बेचारों का लक्ष्य अक्षयवट के अस्तित्व को दृढ़ता से स्थापित करने की ओर नहीं है ; प्रत्युत वे बड़े विनीत भाव से यात्री के हाथ से सर्वोत्तम ताम्र-मुद्रा की झनकार को सुनने के लिये ही लालायित हो रहे हैं ।

तो क्या सचमुच अक्षयवट का नाश हो गया ? निस्संदेह । उत्तर कठोर है; किंतु जो बात सच है, वह यदि कठोर है, तो भी कहनी ही पड़ती है । मृत्यु के इस अनंत आक्रमण से उस अनादि और अजन्मा के अतिरिक्त और कौन बचा

रह सकता है ? काल के इस दुर्गम प्रहार का आज तक कोई उल्लंघन या अतिक्रमण नहीं कर सका। महान् हो या मामूली, राजा हो या रंक; नभचर हो या थलचर-जलचर; अचल हो या चल—एक दिन सबको उस काल बली का कवल होना पड़ेगा। देखिए न, जिस महान् वृक्ष को भारत-वर्ष ने बड़ी भक्ति के साथ 'अक्षय' विशेषण से अलंकृत किया था, उसका अनलंकृत कंकाल भी देखने को नहीं मिलता। ख़ैर, इन बातों को जाने दीजिए। आइए, आज हम इस वट-वृक्ष के इतिहास पर एक दृष्टिपात कर यह जानने का प्रयत्न करें कि इसको ऐसा अविनाशी नाम किस तरह प्राप्त हुआ।

सबसे पहले हमें वाल्मीकि रामायण में इस वट-वृक्ष का उल्लेख मिलता है *। भरद्वाज मुनि के आश्रम में रात-भर विश्राम कर रामचंद्र प्रातःकाल उठकर उनसे विदा माँगते हैं। महर्षि भरद्वाज रामचंद्रजी का स्वस्त्ययन करके कहते हैं—

गङ्गायमुनयोः सन्धिमादाय मनुजर्षभ;
कालिन्दीमनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम्।
अथासाद्य तु कालिन्दीं प्रतिस्रोतः समागताम्;
तस्यास्तीर्थं प्रचरितं प्रकामं प्रेक्ष्य राघव।
तत्र यूयं प्लवं कृत्वा तरतांशुमतीं नदीम्;
ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम्।
समासाद्य च तं वृक्षं वसेद्वातिक्रमेत वा;
सपन्थाः चित्रकूटस्य गतस्य बहुशो मया।

उपर्युक्त उद्धरण में दो बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए—एक तो न्यग्रोध (वट) की वासस्थिति पर, और दूसरे यमुना-नदी के बहाव की दिशा पर। श्लोकों में यह स्पष्ट रूप से कथित है कि "*महान्तं हरितच्छदम् न्यग्रोधम्*" यमुना के उस पार अर्थात् कालिंदी के दक्षिण में था। किंतु आजकल अक्षयवट का जो स्थान निश्चित किया गया है, वह गंगा और यमुना के संगम पर स्थित क़िले के भीतर है। दूसरी बात, जिस पर हमें विशेष रूप से ध्यान देना है, यमुना को बहाव-दिशा है। वट-वृक्ष के पास आने के पहले रामचंद्रजी को "*पश्चान्मुखाश्रितां कालिन्दीम्*" के किनारे-किनारे जाने के लिये मुनि ने निर्देश किया है। इसका अर्थ यह है कि भरद्वाज मुनि जिस संगम की बात रामचंद्रजी से कह रहे थे, वह आजकल का संगम नहीं है। या तो संगम ऊपर रहा हो, या नीचे। इसका ठीक निश्चय पुरातत्त्वज्ञों को अवश्य करना चाहिए। संभव है, इसका निर्णय हो जाने पर वाल्मीकि-रामायण के निर्माण-काल का पता लग सके।

किसी को शायद यह शंका हो कि वट-वृक्ष की यमुना के दक्षिण की ओर की स्थिति के संबंध में वाल्मीकिजी ने कुछ भूल की हो। किंतु हमारी यह दृढ़ धारणा है कि रामायणकार वाल्मीकि ने आँखों-देखी स्थिति का वर्णन किया है। महाभारत के निर्माण-काल के संबंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कोई-कोई महाभारत का निर्माण-काल ईसवी सन से पूर्व ४०० से १७०० वर्ष तक मानते हैं। हमारी समझ के अनुसार महाभारत के काल-निर्णय में भी इस अक्षयवट के तट-परिवर्तन से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। खींच-तान करनेवाले महाशय उसके निर्माण-काल को ईसा के उस पार नहीं खींच सकेंगे।

लेखक

---

* यदि वाल्मीकि-रामायण से भी पहले के लिखे ग्रंथों में इसका उल्लेख हो, तो हमें उसका पता नहीं। इस लेख के किसी पाठक को यदि यह बात अवगत हो, तो कृपया प्रकाशित करने की कृपा करें। महाभारत में बहुत खोज करने पर भी हमें इसका उल्लेख नहीं मिला। संभव है, हमने खोजने में भूल की हो।

महाभारत के वनपर्व में तीन स्थलों पर तीर्थ-वर्णन है। महर्षि नारद और धौम्य मुनि ने क्रमशः युधिष्ठिर को भारत-वर्ष के सब तीर्थों का पुण्य-फल सुनाया है। नारदजी का वर्णन विशद है। वह चार अध्यायों में ८२ से ८५ तक समाप्त हुआ है। सैकड़ों तीर्थ-स्थलों के नाम इस अध्याय में आए हैं। धौम्य मुनि का तीर्थ-वर्णन भी चार अध्यायों में (८७-९० तक) समाप्त हुआ है। किंतु नारदवाले अध्याय धौम्यवाले अध्यायों से बहुत बड़े हैं। इसके बाद पांडव लोग तीर्थ-यात्रा करने जिन-जिन तीर्थों में गए हैं, उनका वर्णन है। इन तीनों वर्णनों में प्रयाग को विशेष गौरव का स्थान मिला है। इसी से जान पड़ता है कि तीर्थराज प्रयाग की महिमा उस समय भी प्रख्यात थी। किंतु अक्षयवट का कहीं नाम-निशान भी नहीं है। एक अक्षयवट का वर्णन अवश्य मिलता है। किंतु वह फल्गु-नदी के किनारे गया में था। इससे यह निश्चय होता है कि प्रयाग का अक्षयवट महाभारत-निर्माण-काल में यमुना के दक्षिण तट पर ही अवस्थित था। तब तक वह केवल महान् न्यग्रोध के ही नाम से प्रसिद्ध रहा होगा। पुरातत्त्व विशारद महाभारत का निर्माण-

किया है ; क्योंकि आगे चलकर वह इसी बात को फिर दुहराते हैं। यमुना-किनारे पहुँचकर राम और लक्ष्मण ने एक प्लव (बिरनई) तैयार किया, उस पर सीताजी के बैठने के लिये एक ख़ास आसन बनाया गया। उसके बाद—

> तत्र श्रियमिवाचिन्त्यां रामो दाशरथिः प्रियाम् ;
> ईषत्संलज्जमानां तामध्यारोपयत प्लवम् ।
> पार्श्वे तत्र च वैदेह्या वसने भूषणानि च ;
> प्लवे कठिनमाजं च रामश्चक्रे समाहितः ।
> आरोप्य सीतां प्रथमं संघाटं परिगृह्य तौ ;
> ततः प्रतेरतुर्यत्तौ प्रीतौ दशरथात्मजौ ।
> वृत्तपृ समनुज्ञाय प्रस्थाप्य यमुनावनात ;
> श्यामं न्यग्रोधमासेदुः शीतलं हरितच्छदम ।

ऊपर के श्लोकों में हमने बीच के कई श्लोक नहीं दिए। हमें तो यहाँ केवल यही दिखाना है कि यमुना पार करके रामचंद्र ने 'श्याम न्यग्रोध' को देखा। अब कोई यह नहीं कह सकता कि 'श्याम न्यग्रोध' का यमुना के दक्षिण-तट पर होना भ्रांति-मूलक है। हाँ, यहाँ पर केवल यह प्रश्न उठ सकता है कि वाल्मीकिजी ने जिस न्यग्रोध-वृक्ष का वर्णन किया है, वह हमारा 'अक्षयवट' नहीं है। हमारी समझ में भी यह प्रश्न उचित है, और हम इस प्रश्न की मीमांसा भी करना चाहते हैं।

हम समझते हैं कि महर्षि वाल्मीकि के ज़माने में हमारा 'अक्षयवट', जिसे महर्षिजी बार-बार न्यग्रोध कहते हैं, यमुना के दक्षिण-तट पर ही था। वट-वृक्ष की आयु बड़ी दीर्घ होती है, इसे प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी प्रकार के विरोध के स्वीकार कर लेगा। परमात्मा ने उसकी रचना जिस तरह से की है, तथा उसकी प्रत्येक शाखा में जीवन-मूल का जैसा आरोप उसने किया है, वह निस्संदेह विलक्षण है। इस प्रकार के जीवन-मूल से सन्निहित होकर यदि यह वृक्ष हज़ारों वर्ष तक स्वाभाविक जीवन बिता सके, तो उसके लिये यह कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं है। आजकल भी ऐसे अनेकों वट-वृक्ष लोगों को देखने को मिल सकते हैं, जिनकी अवस्था कम-से-कम दो हज़ार वर्ष से ऊपर भी होगी। लंका में बोधि-वृक्ष की एक संतान है; जिसकी उमर लोग दो हज़ार से ऊपर की बताते हैं। जब एक पीपल के पेड़ की उमर दो हज़ार वर्ष की हो सकती है, तब एक बरगद के वृक्ष का इस उमर का या इससे दूनी उमर का भी होना असंभव नहीं कहा जा सकता। जिस समय वाल्मीकिजी रामायण की रचना कर रहे थे, उस समय यमुना के दक्षिण-तट का न्यग्रोध काफ़ी पुराना हो चुका था। उसके लिये आदि-कवि ने जिन विशेषणों का प्रयोग किया है, वे विशेष रूप से देखने-लायक़ हैं। उस विशाल वृक्ष को उन्होंने श्याम भी कहा है, जिसका तात्पर्य यह है कि उसकी छाया बड़ी घनी होगी, और उसकी कई लटें ज़मीन में घुसकर वृक्ष के उपांगों के लिये स्तंभ का काम करती होंगी, तथा संपूर्ण वृक्ष को जीवन-प्रद द्रव्यों से परिपूर्ण करती होंगी।

एक तो वह यों ही पुराना था, दूसरे जब वाल्मीकिजी ने उसे रामचंद्रजी का स्मारक बना दिया, तब उस वट-वृक्ष का सम्मान पूर्ण रूप से होने लगा। हिंदू-धर्म के अनुयायी—मैं इसमें बौद्धों को भी शामिल करता हूँ – बड़े भावुक होते हैं। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का सिद्धांत उनकी नस-नस और रोम-रोम में व्याप्त हो गया है। इसी से वे जीवित वृक्ष की बात कौन कहे, पत्थर और सूखी लकड़ियों तक को स्नेह की दृष्टि से देखते हैं—बशर्ते किसी प्रिय वस्तु के साथ उनका सहयोग स्थापित कर दिया जाय। अन्य धर्माव-लंबियों में भी यह भावुकता अवश्य पाई जाती है; किंतु हिंदुओं को वे इसमें अतिक्रमण नहीं कर सकते। यदि किसी महानुभाव को मेरे ये विचार अग्राह्य जान पड़ें, तो वह मुझे क्षमा करेंगे। मैंने यहाँ अपनी धारणा लिखी है। संभव है, यह मेरी भ्रांति हो।

ख़ैर, मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि उस न्यग्रोध-वृक्ष पर प्राचीन आर्यों की ममता बढ़ गई। वाल्मीकि मुनि के ज़माने में भी वह सिद्धों से सेवित था, और उसके चारों ओर वेदियाँ बन गई होंगी। बाद को भी अनेक सिद्ध-मुनि वहाँ जाकर निवास करते होंगे। समय पाकर यमुना-नदी को अपना मार्ग बदलना पड़ा होगा। कुछ तो स्वभाव-वश और कुछ गंगाजी के उत्पात के कारण। गंगाजी तो अपने पथ-परिवर्तन में काफ़ी नाम कमा चुकी हैं। इस पथ-परिवर्तन के कारण यमुना की गंभीरता में अवश्य कुछ ख़लल पहुँचा होगा। मेरा अनु-मान है कि प्रयाग के पास यमुना अँगरेज़ी के एस् (S) अक्षर के आकार में बहती होगी। तभी वह पश्चिमा-भिमुखी हो सकेगी। गंगा-यमुना का संगम प्रयाग से नीचे पाँच-छः मील पर होता होगा। कहीं सौ वर्षों के

निरंतर परिश्रम के बाद गंगा ने वर्तमान त्रिवेणी पर यमुना से मिलाप किया होगा। इस मिलाप का ही यह परिणाम हुआ कि यमुना को भी अपना मार्ग बदलना पड़ा, और इस पथ-परिवर्तन से धीरे-धीरे उसकी कमर सीधी हो गई। परिणाम यह हुआ कि दक्षिण-किनारे का न्यग्रोध उत्तर किनारे आ गया।

हमारे इस कथन पर कुछ लोग संदेह प्रकट करेंगे, और उनका यह संदेह उचित भी है। किंतु एक विशाल वृक्ष का एक कूल से दूसरे कूल में आ जाना कोई असंभव बात नहीं। इसके संबंध में हम दो उदाहरण पाठकों के सामने उपस्थित करेंगे। राजिम, महानदी और पैरी नाम की दो नदियों के संगम पर, रायपुर-ज़िले में, एक तीर्थ-स्थान है। माघी-पूर्णिमा को वहाँ मेला लगता है। मेला एक महीने तक बराबर जारी रहता है। राजीव-लोचन भगवान् का एक प्राचीन मंदिर है, और एक मंदिर महादेवजी का ठीक संगम पर है। इस मंदिर के सामने पीपल का एक बहुत पुराना वृक्ष है। पीपल और मंदिर को नदियों की कुटिल धाराओं से बचाने के लिये किसी महापुरुष ने उन दोनों को एक ऊँचे पत्थर के मज़बूत चबूतरे से घेर दिया है। परिणाम यह हुआ है कि बरसात में जब दोनों नदियाँ बढ़ती हैं, और बरसाती पानी से किनारों तक लबालब पानी भरा रहता है, उस समय मंदिर और वृक्ष एक द्वीप के भीतर स्थित जान पड़ते हैं। क्रोधित जल-तरंगें केवल उस चबूतरे के पार्श्व को चाटती हुई बहा करती हैं—उन दोनों दिव्य वस्तुओं को वे छू भी नहीं सकतीं। यदि किसी कारणवश महानदी या पैरी अपना मार्ग बदल डालें, तो भी वे उस मंदिर और पीपल को क्षति नहीं पहुँचा सकेंगी। हाँ, तट-परिवर्तन भले ही हो सकता है।

दूसरा उदाहरण है हरद्वार का। हरद्वार में गंगा-नदी बाँधी गई है। उसका सब पानी गंगा-नहर में निकाल दिया जाता है। गंगा के वास्तविक स्रोतस्तल में बहुत कम पानी छोड़ा जाता है। यदि धार्मिक क्रोधवृत्ति की जागृति न होती, तो शायद उतना पानी भी न छोड़ा जाता। गंगा के उत्तर में और हरद्वार ख़ास के दक्षिण में रोड़ी नाम का एक स्थान है। वहाँ एक छोटा सा उपवन भी है। अब यदि मान लीजिए कि गंगा के अस्थायी बाँध को स्थायी बनाकर गंगा के पानी को बारहों महीने नहर में नहर-विभागवाले उतारने लगें, और यदि उस नहर को नहर न मानकर गंगा का परिवर्तित मार्ग मान लें, तो इसका परिणाम यह होगा कि रोड़ी नाम का जो उपवन गंगा के उत्तर में है, वह सहज ही गंगा के दक्षिण में हो जायगा। इससे यह निश्चय हो गया कि हम किसी ख़ास स्थान या वस्तु को अक्षुण्ण रखकर भी नदी के मार्ग को इच्छित दिशा में घुमा सकते हैं।

श्याम वट के संबंध में भी यही बात घटित होती है। इस प्राचीन वृक्ष के नीचे सिद्धेश्वरों की वेदियाँ थीं ही। जब यमुना-नदी ने प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपना मार्ग बदला, और जब श्याम न्यग्रोध पर आफ़त आने लगी, तब उन महर्षि-मुनियों ने वावैला मचाया होगा, जिससे राम-स्मृति-अंकित उस वृक्ष की रक्षा के लिये चारों ओर शोर मच गया होगा। उस भरे पुरे समय में अतीत काल के एक गौरव-स्मारक की रक्षा के लिये अनेक सेठ-साहूकार और राजे-महाराजे आगे बढ़े होंगे, और तरंगिनी यमुना की लपकती हुई जिह्वा से उस वृक्ष को बचा लिया होगा। यह किस समय की बात होगी, इसे निश्चय-पूर्वक हम अभी नहीं कह सकते; किंतु यह घटना इसी तरह पर हुई होगी, इसका हमें पूरा विश्वास है।

कवि कालिदास अपने रघुवंश के १३वें सर्ग में लिखते हैं—

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः
सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ;
राशिर्मणीनामिव गारुडानां
स पद्मरागः फलितो विभाति ।

रामचंद्रजी लंका-विजय के पश्चात् पुष्पक विमान में चढ़कर अयोध्या वापस आ रहे हैं। राह में सीताजी को सब चीज़ें दिखाते भी आ रहे हैं। संगम के पास जब वह आए, तब सीता से कहने लगे—"जिस श्याम वट की तुमने पूजा की थी, वही वट फूला हुआ गारुड़ मणि से युक्त पद्म के समूह के समान शोभित है।" कालिदास ने यहाँ पर इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया कि यह वट का वृक्ष यमुना के उत्तर-किनारे पर था, अथवा दक्षिण-किनारे पर। उन्होंने उसे केवल 'श्याम वट' कहा है। श्याम वट का उपयोग अर्थ-गर्भित है। क्या कवि-शिरोमणि कालिदास ने वाल्मीकि का अनुकरण कर उस वृक्षराज को श्याम-

विशेषण से अलंकृत किया है ? या उनके ज़माने में भी वह 'श्याम' ही नाम से पुकारा जाता था ? हमारा अनुमान है कि उस समय भी वह श्याम वट के नाम से मशहूर था। न्यग्रोध का उच्चारण क्लिष्ट है ; सर्वसाधारण सरल शब्दों को ही अधिकतर पसंद करते हैं । इसलिये न्यग्रोध के बदले उस वृक्ष को लोग 'वट' नाम से संबोधन करते रहे होंगे। किंतु वह श्याम-विशेषण ज्यों-का-त्यों बना रहा। कालिदास के समय में श्याम-शब्द विशेष रूप से सार्थक रहा होगा ; क्योंकि वृक्ष का विस्तार ज़्यादा बढ़ गया होगा, और उसकी छाया अधिक गंभीर एवं घनी हो गई होगी । साथ ही वृक्षवर के स्थान को भी श्याम-शब्द निश्चित कर रहा है, अर्थात् वह तब भी यमुना के दक्षिण-किनारे पर अवस्थित था।

अब यमुना के स्रोत की चपेट को सफलता-पूर्वक निवारण करके श्याम वट ने एक विजेता के समान उसके उत्तर-कूल पर अपना आसन जमाया, तब उसे 'अक्षय' की पदवी प्राप्त हुई। प्रकृति के इस निर्मम आक्रमण में—जीवन-संग्राम के इस भयानक युद्ध में—जब वह विजयी हुआ, तब सर्वसाधारण की कल्पना पर उसने असाधारण अधिकार भी जमा लिया। लोग समझने लग गए कि इस वृक्ष में अवश्य कोई दैवी शक्ति है, जिसकी सहायता से वह तट-परिवर्तन में समर्थ हो सका। परिणाम यह हुआ कि लोग उसे 'अक्षयवट' के नाम से संबोधन करने और पूज्य दृष्टि से देखने लगे ।

यदि हमारा यह अनुमान सही है, तो कालिदास के समय-निर्णय में भी इससे काफ़ी सहायता मिलेगी। कालिदास का समय सहज ही ईसा के पूर्व की प्रथम शताब्दी में स्थापित किया जा सकेगा, और वट-वृक्ष का कूल-परिवर्तन-समारंभ ईसा के प्रथम तीन शताब्दियों के भीतर संपादित हुआ होगा ; क्योंकि बाद के जितने प्रमाण हमें मिले हैं, उनमें वह वृक्ष 'अक्षयवट' या 'प्रयाग-वट' के ही नाम से लिखा गया है । नील और श्याम-शब्द जहाँ कहीं आए हैं, वहाँ वे नाम का अंग बनकर नहीं, किंतु अलंकार के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

प्रयाग-माहात्म्य बारह अध्यायों का एक छोटा-सा ग्रंथ है । मत्स्य-पुराण का वह एक उपांग है। उसमें प्रयाग के सब तीर्थ-स्थानों के नाम तथा उनके प्रभाव और फल का वर्णन है। प्रयाग के दर्शनीय स्थानों के नाम निम्न-लिखित श्लोक में दिए गए हैं—

> त्रिवेणीं माधवं सोमं भरद्वाजं च वासुकिम् ;
> वंदेऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम् ।

इस श्लोक में अक्षयवट का स्पष्ट उल्लेख है। इतना ही नहीं, उसके चौथे अध्याय में इस वृक्ष का गौरव इतना बढ़ाकर बताया गया है कि महाप्रलय में भी इस वट-वृक्ष का नाश नहीं होता। महाप्रलय में सब देवता ब्रह्मा-विष्णु-महेश के साथ इसी वट पर निवास करते हैं। इसी वट के पत्ते के दोने में 'बालमुकुंद' अपना अँगूठा चूसते हुए शयन करते हैं। जो वृक्ष यमुना के कठिन स्रोत के वेग को सह गया, वह महाप्रलय में अविनाशी रूप से अवश्य ही रह सकता है। इसी से शायद उक्त ग्रंथ में कहा गया है कि इस वट के मूल में प्राण-त्याग करने से मनुष्य को मुक्ति मिलती है। इसी आदेश के अनुसार शायद हिंदू लोग उस वृक्ष से कूद-कूदकर प्राण त्याग कर मुक्ति-लाभ करते थे।

तीर्थराज प्रयाग के छत्र और चमर का बड़ा अच्छा वर्णन प्रयाग-माहात्म्य में मिलता है—

> सितासिते यत्र तरंगचामरे
> नद्यौ विभाते मुनिभानुकन्यके ;
> नीलातपत्रं वट एव साक्षात्
> स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।

गंगा-यमुना-रूपी चमर और नील-वट-रूपी छत्र से सुशोभित प्रयाग तीर्थों का राजा न हो, तो और किसे यह पदवी प्राप्त हो सकती है ? इस वर्णन में एक बात पर ध्यान देना चाहिए। 'नीलातपत्र वट' इस बात की सूचना दे रहा है कि यही वट कालिदास का 'श्याम वट' और वाल्मीकि का 'श्यामहरितच्छदं न्यग्रोध' है । यहाँ से यही अक्षयवट का भी नाम धारण करता है।

प्रयाग-माहात्म्य का समय ईसा की सातवीं सदी के पूर्व है ; क्योंकि सम्राट् हर्षवर्द्धन के समय भारत-भ्रमण करनेवाले हुएनसंग ने प्रयाग का जो वर्णन किया है, उसके कई स्थलों में प्रयाग-माहात्म्य के उद्धरण पाए जाते हैं। इससे यह निश्चय हुआ कि ईसा की सातवीं सदी के पहले प्रयाग के वट को 'अक्षयवट' की पदवी मिल चुकी थी। इस वट के संबंध में हुएनसंग की राय भी देखने-योग्य है। वह लिखता है—

"इस शहर में (प्रयाग) एक मुख्य देव-मंदिर है। उसके संबंध में कुछ आश्चर्य-जनक बातें प्रसिद्ध हैं। उनके (हिंदुओं के, जिन्हें हुएनत्संग विधर्मी (heretics) कहता है) ग्रंथों के अनुसार यह स्थान परम फलदायक है। यहाँ जो कोई एक पैसा चढ़ाता है, उसे अन्य स्थानों में हज़ारों सुवर्ण-मुद्रा चढ़ानेवालों से अधिक पुण्य मिलता है। जो यहाँ अपना प्राणांत कर दे, उसे शीघ्र वैकुंठ मिलता है।

"इस मंदिर के सामने एक विशाल वट-वृक्ष है, जिसका विस्तार दीर्घ और छाया घनी है। एक राक्षस, यहाँ की प्रचलित प्रथा का अनुसरण कर, इस वृक्ष पर रहता था (है)। इसी से यहाँ मनुष्यों की हड्डियों के ढेर दोनों ओर लगे हैं। यहाँ जो कोई आता है, उसे प्राण-त्याग करने में उत्तेजित करने के अनेक साधन हैं। एक तो स्वयं पंडे उससे ऐसा करने का आग्रह करते हैं, दूसरे यहाँ का भूत (राक्षस) भी उनके मन को फेरने का प्रयत्न करता है। बहुत प्राचीन काल से यह प्रथा यहाँ प्रचलित है।"

प्राणांत की यह प्रथा केवल सर्वसाधारण ही में न थी, बड़े-बड़े राजे-महाराजे भी इस प्रथा के क़ायल थे। अक्षयवट का वातावरण इतना पवित्र और संस्कृत समझा जाता था कि महापापी भी यहाँ प्राण-त्याग कर मुक्ति-लाभ कर लेता था। हैहय-वंशी कोकल्लदेव के पुत्र गांगेयदेव ने, जिनके सौ रानियाँ थीं, इस अक्षयवट के नीचे आकर प्राण-त्याग किया था।

गांगेयदेव साधारण राजा नहीं थे। वह कुंतल देश पर चढ़ाई कर चुके थे। प्रशस्तिकारों ने उन्हें विक्रमादित्य की पदवी से विभूषित किया है। देखिए—

मरकतमणिपट्टप्रौढवक्षाः स्मितास्यो
नगरपरिघदीर्घौ लङ्घयन्दोर्द्वयेन ;
शिरसि कुलिशपातो वैरिणां वीरलक्ष्मी-
पतिरभवदपत्यं यस्य गांगेयदेवः।
सुवीरसिंहासनमौलिरत्नं
स विक्रमादित्य इति प्रसिद्धः ;
यस्मादकस्मादपयानमिच्छ-
न्न कुंतलः कुंतलतां बभार।
प्राप्ते प्रयागवटमूलनिवेशबंधौ
सार्धं शतेन गृहिणीभिरमुत्र मुक्तिम् ;
पुत्रोऽस्यखड्गदलितारिकरीद्रकुंभ-
मुक्ताफलैः स्म ककुभोऽर्चितकर्णदेवः।*

गांगेयदेव का समय ईसा की दसवीं शताब्दी है। इस समय तक अक्षयवट की छाया बहुत घनी हो गई होगी, और उसका विस्तार भी अधिक हो गया होगा। इसी से वह अपने गंभीर भाव से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता होगा। उसकी जड़ में जो काम्य कूप था, उसमें मुमुक्षुगण दिन-रात उचक-उचककर गिरते होंगे, पुण्य के अक्षय-भांडार को सहज ही प्राप्त कर लेते होंगे, तथा स्वर्ग के दरवाज़े तक बिना प्रयास पहुँच जाते होंगे। इसी से बंग-भाषा के प्रमुख कवि श्रीकृत्तिवास ने अपनी रामायण के बालकांडांतर्गत प्रयाग-माहात्म्य में लिखा है—

"संगम तट अक्षय-वट तीरा ; जोय सुकृतिजन तजहिं शरीरा।
विष्णुपारषद तेहि जन काहीं ; रथ चढ़ाय हरि-पुर ले जाहीं।†

पंडित कृत्तिवास का समय अभी पूर्ण रूप से निश्चित नहीं है ; किंतु सर्वसम्मति उन्हें विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी में रखती है। भक्तहृदय कृत्तिवासजी ने, हमारा विश्वास है, इस अपूर्व वट-वृक्ष को अवश्य ही देखा होगा। उस समय उसकी स्थिति ठीक संगम पर अवश्य ही होगी। कारण, कविजी लिखते हैं—"संगम तट अक्षयवट तीरा।" हुएनत्संग के समय में अक्षयवट ठीक संगम पर नहीं था, संगम से दूर शहर में पश्चिम की ओर था; किंतु गंगा-नदी पश्चिमी किनारे को काटने में पूर्ण रूप से संलग्न होगी। धीरे-धीरे सम्राट् हर्षवर्द्धन जिस स्थान पर प्रति पाँचवें वर्ष दान किया करते थे, और जिसे लोग दान-क्षेत्र कहा करते थे, उसे गंगाजी ने अपने क़ब्ज़े में कर लिया, और शहर की ओर अग्रसर होकर सात सौ वर्षों में वह अक्षयवट की जड़ के पास तक पहुँच गईं। कवि कृत्तिवास का वर्णन काफ़ी स्पष्ट है।

कविश्रेष्ठ भक्त-शिरोमणि तुलसीदासजी ने भी अपने रामचरित-मानस में दो स्थलों पर अक्षयवट का उल्लेख

* पं० माधवप्रसादजी शर्मा ने १९१४ की सरस्वती में 'कलचुरि-वंश की कुछ ऐतिहासिक बातें'-शीर्षक एक लेख प्रकाशित कराया था। उसी से इन श्लोकों को हमने उद्धृत किया है।

† कृत्तिवास-रामायण, बालकांड, पृष्ठ ३२३; हिंदी अनुवादक स्वर्गीय कालीप्रसन्नसिंह सब-जज, लखनऊ।

किया है। बालकांड के प्रारंभ में तीर्थराज-रूपी संत-समाज का उन्होंने जैसा विशद वर्णन किया है, और उसमें आदि से अंत तक रूपकालंकार का जैसा मनोरम पुट दिया है, वह निस्संदेह गोसाईंजी की अद्भुत कवित्व-शक्ति का स्पष्ट परिचायक है। इसी सिलसिले में वह कहते हैं—

बट बिस्वासु अचल निज धर्मा;
तीरथराज समाज सुकर्मा।

संत अपने धर्म में अचल विश्वास किस तरह रखते हैं, जिस तरह अक्षयवट निश्चल है। कवि-शिरोमणि ने कितनी दक्षता से एक ऐतिहासिक सत्य का उल्लेख किया है, इसे इस लेख के पाठक सहज ही समझ सकते हैं। प्रकृति की भीषण मार को और काल के निर्मम आघात को वह बूढ़ा वट किस निर्भीकता और निश्चल भाव से निवारण करता था, इसे सोचकर हृदय स्फुरित हो उठता है। संतों पर भी इसी प्रकार का आघात समय-समय पर पड़ा करता है; किंतु उन्हें अपने धर्म पर अटल श्रद्धा रहती है। सिर पर वज्र आ टूटने पर भी वे अपने पथ से नहीं डिगते, किस तरह?—जिस तरह अक्षयवट।

वन को जाते समय रामचंद्रजी जब प्रयाग पहुँचे, तब उन्होंने तीर्थराज को जिस रूप में देखा है, उसके वर्णन में श्रीगोसाईंजी ने रूपक बाँधा है। यह रूपक भी अनूठा हुआ है। एक राजा को राज-काज चलाने के लिये, राज-रूप धारण करने के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, प्रयागराज के पास वे सब थीं। सचिव, सखा, भांडार, स्त्री, देश, क़िला, सिंहासन, छत्र, चमर, बंदी, सेवक प्रभृति जितनी चीज़ें एक राजा के पास होनी चाहिए, वे सभी यहाँ वर्तमान हैं। बूढ़े वट को छत्र की उपमा प्राप्त हुई है।—

संगम सिंहासन सुठि सोहा;
छत्र अछयबट मुनि-मन-मोहा।

प्रयाग-माहात्म्य के उद्धृत श्लोक से यह मिलता-जुलता है—शायद उसी का अनुवाद भी हो। किंतु इसकी तैयारी ग़ज़ब की है। तुलसीदास प्रयाग, काशी, अयोध्या और चित्रकूट के बड़े प्रेमी थे। यह कभी संभव नहीं कि अक्षयवट से उनका साक्षात् परिचय न हो।

यों तो वाल्मीकि-रामायण में और तुलसीदास के राम-चरित-मानस में बहुत अंतर है। तुलसीदासजी ने वाल्मीकिजी की कई बातें ले ली हैं, और कई छोड़ भी दी हैं। किंतु प्रयाग से आगे जाने के विषय में दोनों एक दूसरे से नहीं मिलते। भरद्वाज से राह पूछने पर उन्होंने तुलसी के राम के साथ कुछ बटुकों को लगा दिया, वाल्मीकि के राम को तो केवल रास्ता बताया था। कुछ दूर जाने पर रामचंद्रजी ने—

बिदा किए बहु बिनय करि फिरे पाए मनकाम;
उतरि नहाए जमुन-जल, जो सरीर-सम स्याम।

इसके बाद न्यग्रोध आदि का वर्णन ही नहीं है। हो भी कैसे? वह स्थानांतरित जो हो गया है। इसी से तुलसीदासजी ने उसका वर्णन भरद्वाज से मिलने के पहले ही कर दिया है।

यह है संवत् १६३१ के आसपास की बात। तुलसीदासजी लिखते हैं—

संवत सोलह से इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा।

अर्थात् हमें वट-वृक्ष का संवत् १६३१ तक का इतिहास मिलता है। इसके आगे वह मौन है।

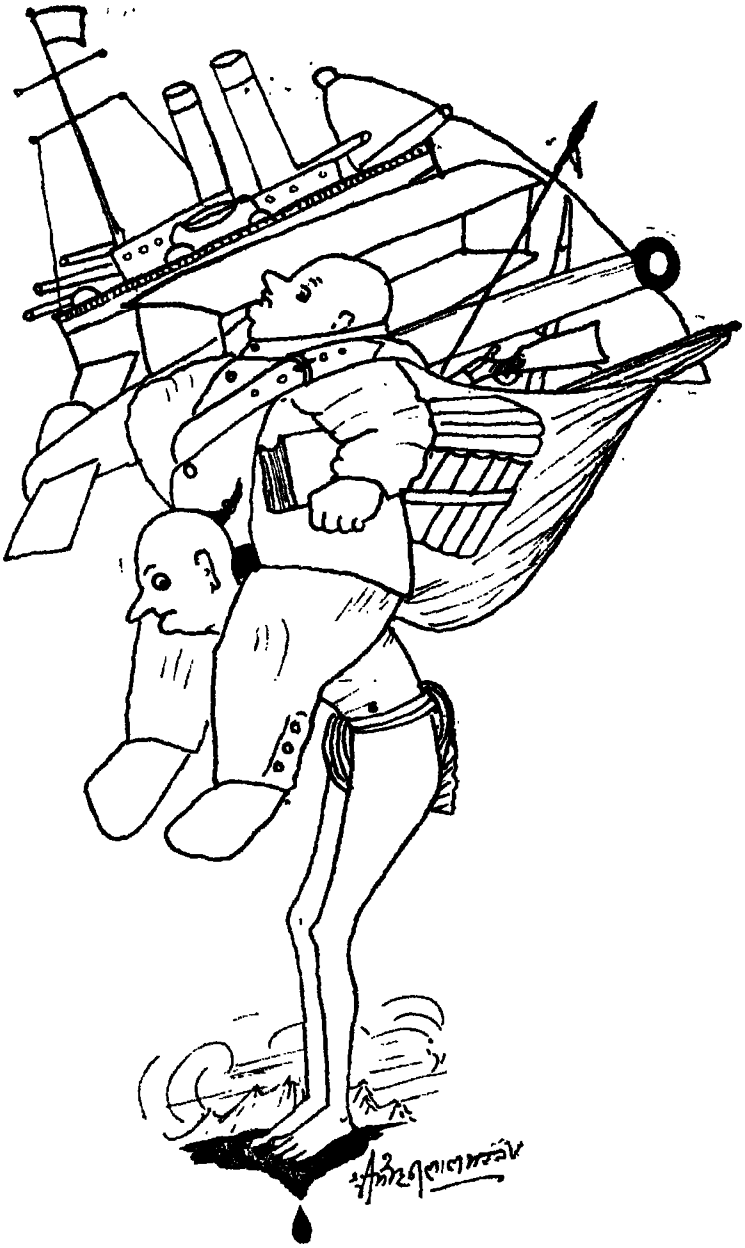
यहाँ तक हमने अक्षयवट की प्रतिष्ठा की कथा लिखी। अब इसके आगे उसके अवसान का वर्णन करते हैं। मनुष्य-जाति का यह स्वभाव है कि वह काल को प्रत्येक ध्वंस-कार्य का ज़िम्मेदार समझती है। जितनी चीज़ें नष्ट होती हैं, उनके नष्ट होने का अपराध वह काल के सिर मढ़ देती है। श्रीमद्भागवत में काल को काले और सफ़ेद चूहे के रूप में कल्पित किया है, जो दिन और रात के रूप में प्रत्येक सजीव या निर्जीव वस्तु के मूल को अपने पैने दाँतों से कुतरा करते हैं। किंतु सोचिए तो, काल क्या मनुष्य से भी ज़्यादा विध्वंसकारी है? मनुष्य के दाँत जितने पैने और कठोर होते हैं, मनुष्य के विध्वंसक अस्त्र जितने तीक्ष्ण एवं कठोर होते हैं, तथा उसके विनाशक विचार जितने शुष्क और निर्मम हैं, क्या काल के भी वैसे ही होते हैं? शिल्प की हज़ारों वस्तुओं को—और ऐसी वस्तुओं को, जिनका पुनरुद्धार केवल दुस्तर ही नहीं, असंभव है—मनुष्य ने अपनी विनाशकारी बुद्धि से प्रेरित हो एकदम धूल में मिला दिया। पुराने ज़माने के कितने भव्य मंदिरों को, कितनी दिव्य मूर्तियों को, शिल्पकला और चित्रकला के कितने अमूल्य रत्नों को इस पाषाणहृदयी मनुष्य-जाति ने अपनी पाशविक वृत्ति को संतुष्ट करने में तोड़-फोड़कर चूर्ण-विचूर्ण कर एक विशाल पथहीन मरुभूमि के रूप में परिणत कर दिया! इस काम को केवल विधर्मियों ने ही किया हो, यह बात नहीं, स्वधर्मी भी इस घृणित कार्य को द्वेष के वशीभूत हो सहज ही कर डालते हैं। योरप के महासमर में प्रलयकारी तोपों ने कैसा अनर्थ किया है, यह इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

हमारे बूढ़े वट-वृक्ष को भी मनुष्य के कठोर कुल्हाड़े का लक्ष्य बनना पड़ा। किंतु किस मनुष्य की आज्ञा से यह कार्य किया गया, इसका पूरा पता हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसके संबंध में हमें जो कुछ ज्ञात हुआ है, उसे हम यहाँ लिखे देते हैं। किंतु इसके पूर्व हम यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं। अक्षयवट के विनाश का अपराध, हमारे विचार के अनुसार, हिंदू-धर्म के अनुयायियों के ऊपर विशेष रूप से आ सकता है। प्रयाग-माहात्म्य से और हुएनसंग के आँखों-देखे वर्णन से यह अच्छी तरह मालूम पड़ता है कि अक्षयवट के ऊपर से लोग काम्य कूप में गिरकर प्राण-त्याग करते थे। इस धार्मिक आदेश के अनुसार हमेशा हज़ारों आदमी अपने इस भौतिक कलेवर को छोड़कर स्वर्गधाम की ओर प्रयाण करते रहे होंगे। सचमुच इसमें बेचारे अक्षयवट का कोई अपराध न था। वह मूक वृक्ष किसी को कूदकर प्राण देने से मना नहीं कर सकता था। संभव है, इन निशाचरी उपद्रवों से उसे दुःख होता हो, उसकी अंतरात्मा कष्ट पाती हो; किंतु वह बेचारा करता क्या, लाचार था। नतीजा यह हुआ होगा कि उस वट का वातावरण एकदम भयंकर हो गया होगा—इतना अधिक कि लोग वहाँ आकर प्राण-त्याग का संकल्प अनायास ही कर डालते रहे होंगे। हुएनसंग ने इस बात की ओर संकेत भी किया है। मनुष्यों के विचार और कार्यों का प्रभाव प्रकृति और वातावरण पर स्पष्ट रूप से पड़ता है, इसे सभी स्वीकार करेंगे। ऐसी अवस्था में यदि किसी समाज-सुधारक के ध्यान में अक्षयवट के विनाश की बात आ जाय, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अस्तु।

संवत् १६४१ में गंगा-यमुना के संगम पर उस क़िले की नींव पड़ी, जो आज तक अपने स्थान पर सिर ऊँचा किए खड़ा है। गंगा-यमुना के अहर्निश आघात-प्रतिघात को वह सहज ही निवारण करता है। इस कार्य में उसे बाँध से भी काफ़ी सहायता मिलती है। अकबर ने इस स्थान को चुनने में बड़ी बुद्धिमानी दिखाई। वह जिस तरह एक गंभीर राजनीतिज्ञ था, उसी तरह युद्ध-कला में प्रवीण और एक ज़बरदस्त समाज-सुधारक भी था। इतिहास के पाठक उसके इन दोनों गुणों से अच्छी तरह परिचित हैं। जिस सती-प्रथा के कारण अनेकों सुंदर स्त्रियाँ इच्छा न रहते भी आग में झोंक दी जाती थीं, अकबर ने उसे भी बंद करने का प्रयत्न किया था। ऐसे सहृदय नरेश से अक्षयवट से कूदकर प्राण-विसर्जन करने की प्रथा सचमुच न देखी जाती होगी, और इसी से उसने एक पत्थर से दो चिड़ियों को मारने का विचार किया। उन दिनों राजों के लिये क़िला एक अनुपम वस्तु समझी जाती थी। इसलिये जिस स्थान को राजा क़िले के लिये चुनता था, उस स्थान को लोग बिना ननुनच के शीघ्र ही उसे अर्पण कर देते थे। इसी से संगम पर, पूज्य वृक्षदेव के रहते भी, क़िला बनने के समय लोगों ने विशेष विरोध भाव न उपस्थित किया होगा। फिर उस समय 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' का सिद्धांत ज़ोरों से प्रचलित था। इसी तरह की अनुकूल परिस्थिति में प्रयाग के संगम का क़िला निर्मित हुआ था। उसी क़िले में अक्षयवट क़ैद कर लिया गया। बूढ़े वट को यह बंधन अनिच्छा-पूर्वक स्वीकार करना पड़ा। जिस बूढ़े अक्षयवट ने प्रकृति के कठोर प्रहारों को सहज ही निवारण करने में सफलता प्राप्त की थी, उसे मनुष्य ने साधारण बंधन में बिना विशेष प्रयास के बाँध लिया। इसके बाद क्या हुआ, यह अंधकार के गर्भ में है। वृक्ष को किसने कटवाया, किसके समय में उसका अवसान हुआ, यह, जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं, निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। संभव है, अकबर के राज्य-काल में वह अशरण भाव से एक विजित नरेश की तरह सिर झुकाए खड़ा रहा हो।

किंतु कुछ भी हो, इसके बाद से उस वयोवृद्ध अक्षयवट का कुछ भी पता नहीं चलता, जिसने प्राचीन भारतवर्ष की यज्ञ-भूमि को देखा था, जिसने उपनिषत्काल के महर्षियों का यमुना-किनारे ध्यानावस्थित दशा में अवलोकन किया था, जिसके सामने बौद्ध लोग विशाल वस्तुओं का निर्माण करते थे, जिसकी गंभीर छाया में बैठकर बड़े-बड़े धर्माभिमानी पंडित द्वैत-अद्वैत का मार्मिक विश्लेषण किया करते थे, पथ-क्लांत मुस्लिम फ़ौजों ने जिसकी ठंडी हवा के झोंके से स्वर्गीय सुख का अनुभव किया था। पृथ्वी के इस भू-भाग में जिसने अनेकों क्रांतियाँ, अनेकों उत्थान और पतन तथा अनेकों निर्माण और संहार के दृश्यों को एक निष्पक्ष साक्षी की तरह देखा था, उसी वट का आज नाम-भर शेष रह गया है। यदि आज दिन वह रहता, तो प्रकृति की इस अनुपम संतान को देखने के लिये लोग उसी तरह दूर-दूर से आते, जिस तरह मानव-निर्मित ताज को देखने के लिये लोग सात समुद्र पार से आते हैं। अवश्य ही आज वह भी चीन की दीवाल की तरह एक आश्चर्य पदार्थ होता। कुलदीपसहाय

शिकार और शिकारी



लिवरपूल का रुई का बाज़ार

इस संसार में हमारा तन ढकने के लिये सबसे सस्ती जो चीज़ मिलती है, वह रुई और उसके वस्त्र हैं। इस रुई की उत्पत्ति एवं वितरण में सभ्यता के विकास के साथ-साथ भारी परिवर्तन हो गए हैं। फिर भी यह कोई नहीं कह सकता कि इन परिवर्तनों का अब यहीं अंत है। दूर की बात जाने दीजिए, आप पिछले ७५ वर्षों के ही परिवर्तन पर ज़रा विचार कीजिए, और बताइए कि क्या रुई की तब इसी प्रकार ख़रीद-फ़रोख़्त हुआ करती थी, जैसी अब होती है? बात यह है कि जैसे-जैसे इसकी उपयोगिता बढ़ती गई है, संसार के अच्छे-से-अच्छे मस्तिष्कों ने इसके व्यापार में अपना सिर खपाकर आज इसको ऐसा विलक्षण बना दिया है कि अक़्ल हैरान होती है। यह व्यापार शायद इतनी तरक़्क़ी न कर पाता, यदि देश-देशांतरों की ख़बरें शीघ्रातिशीघ्र इधर-उधर देने के साधनों का आविष्कार न हुआ होता। इन साधनों का ही आज यह फल है कि लिवरपूल में बैठा हुआ एक व्यापारी केवल ३ ही मिनट में अमेरिका के बाज़ार में जितनी रुई चाहिए, उतनी ख़रीद सकता है। विचार तो कीजिए, कहाँ लिवरपूल और कहाँ अमेरिका। दोनों के बीच में हज़ारों कोसों का अंतर है। दिग्दिगंत-व्यापी विशाल महासमुद्र दोनों शहरों को एक दूसरे से पृथक् कर रहा है। इस समुद्र को, इस बीसवीं शताब्दी के वाष्प-संचालित जहाज़ों द्वारा पार करने में आज भी कम-से-कम एक सप्ताह लगता है। अस्तु। जैसे इन आवागमन के साधनों की सुलभता एवं शीघ्रता ने इस रुई के व्यापार को इतनी तरक़्क़ी देने में सहायता पहुँचाई है, वैसे ही 'वादे के सौदों' के आविष्कार ने इसे बढ़ाया है। इन वादे के सौदों को अँगरेज़ी में 'फ़्यूचर्स' (Futures) कहते हैं। फ़्यूचर का शब्दार्थ है भविष्य। परंतु इस व्यापार में इस शब्द से अभिप्रेत है वह व्यापार, जिसका पण भविष्य में माल भुगताने की शर्त पर लिखा जाय। अर्थात् जिसका माल आज नहीं, बरन् एक मुद्दत के बाद दिया जाय। आज के संसार में रुई के इस प्रकार के 'फ़्यूचर्स' के व्यापार के मुख्यतः तीन अंतरराष्ट्रीय बाज़ार हैं—न्यूयार्क, लिवरपूल और न्यू आर्लियंस। आज हम पाठकों को इन्हीं बाज़ारों में से एक बाज़ार याने लिवरपूल की सैर कराते हैं।

पूर्व-इतिहास

कहा जाता है कि दो सौ वर्ष पहले लिवरपूल में रुई का कोई चिह्न भी नहीं था। और न लंकाशायर में ही, जो अब संसार में रुई का सबसे बड़ा ग्राहक है, उस समय रुई की कुछ खपत थी। सबसे पहले १६ जून, सन् १७५७ में—जिस साल हमारे देश में सुप्रसिद्ध पलासी का युद्ध हुआ, और अँगरेज़ों के राजनीतिक चरण बंगाल-प्रांत पर सुदृढ़ हुए थे—पहलेपहल लिवरपूल में २८ बोरे जमैका की रुई, जिसका वज़न केवल १५० रतल याने १ मन ३३ सेर के लगभग प्रति बोरा था, आई थी। इसके पहले शायद विदेश से रुई की आयात वहाँ पर हुई हो; परंतु अब तक कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इसी समय को हम लंकाशायर के कपड़े के व्यापार का आदिकाल भी कह सकते हैं। इस समय अमेरिका में भी रुई की पैदावार आज की अपेक्षा किसी गिनती में न थी। सन् १७७० ई० में वहाँ की दक्षिणी रियासतों ने रुई की पैदावार पर कुछ ध्यान देना शुरू किया था। आज ये सारी बातें स्वप्न की-सी मालूम होती हैं। परंतु संसार का इतिहास ऐसी ही छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर आज इतना बढ़ गया है। कुछ भी हो, लिवरपूल ने रुई के व्यापार की इस असाधारण तरक़्क़ी एवं फैलाव में अग्र-गण्य, आवश्यक तथा सम्माननीय भाग लिया है। यहीं रुई का सबसे बड़ा ख़रीद-फ़रोख़्त करनेवाला पहले हुआ था, और अब भी है। एक ओर तो इस नगर ने अमेरिका की दक्षिणी रियासतों से रुई इकट्ठी की है, और दूसरी ओर लंकाशायर की मिलों को बेची है। लिवरपूल में रुई के आवागमन के अंक अधिकारियों की ओर से सबसे पहले सन् १७२१ ई० में एकत्र किए गए थे। इस वर्ष के अंकों से ज्ञात होता है कि वहाँ तब ३,७३,६७३ बोरे रुई की कुल आयात हुई थी, जिनमें से २,४०,२५७ बोरे तो अमेरिकन रुई के थे, और शेष में ३,२७३ भारतवर्ष की, ७०,००० ब्रेज़िल की और ५४,६७३ अन्यान्य स्थानों की रुई के थे। आज एक शताब्दी के

पश्चात् के इन्हीं अंकों की अब उनसे तुलना कीजिए। सन् १९११-१२ ई० में, मौसिम में, वहाँ की रुई की आयात ४१,०२,६३२ गाँठ थी, जो प्रत्येक ४८,००० पौंड वज़न में थी, याने प्रत्येक गाँठ बोरे की अपेक्षा वज़न में लगभग १०८गुना अधिक भारी थी। यही आज तक की सबसे बड़ी वहाँ की रुई की आयात है।

अमेरिका के गृह-युद्ध के समय योरप और अमेरिका का संबंध बड़े-बड़े पोतयानों से ही था, जो हवा के ज़ोर से चला करते थे। हाँ, इनके साथ-साथ इन दोनों भू-खंडों की डाक के लिये तब वाष्प की किश्तियाँ भी आविष्कृत हो गई थीं। इन किश्तियों को 'स्टीम पैकेट बोट' कहते थे। तब यदि किसी लिवरपूल के व्यापारी को अमेरिका में रुई ख़रीदने की इच्छा होती, तो उसे बहुत काल तक इंतज़ार करना पड़ता था। वहाँ से भावों का मँगाना, फिर अपनी आवश्यकता लिख भेजना और तब आवश्यक माल की ख़रीद होकर यहाँ को रवाना होना तथा पहुँचना। इसमें बहुत ज़्यादा समय लग जाता था। यदि कुछ आसमानी-सुलतानी बात उस अर्से में न हो पाती, तथा भाव एवं माल की ज़ात के संबंध में कोई पशोपेश न रहता, तो भी इच्छित माल के लिवरपूल तक पहुँचने में कई महीने लग जाते थे। और, इस अर्से में व्यापारी, माल कैसा आ रहा है, इस बात से बिलकुल ही अनजान रहता था। कभी-कभी तो यहाँ तक नौबत आ जाती थी कि किसी कंट्रैक्ट का 'जैसा का तैसा' भाव दिया जायगा अथवा नहीं यह भी जहाज़ के पहुँचने तक मालूम न हो पाता था। इसी भाँति अमेरिका के रुई-प्रदेशों के निवासियों को लिवरपूल एवं मैंचेस्टर में रुई का क्या भाव है, यह जानने-मात्र का भी यथेष्ट साधन न था। इसका परिचय उन्हें तभी हो पाता था, जब वहाँ से कोई ख़रीद आ जाती थी। राजनीतिक आदि घटनाओं की तो उन्हें सप्ताहों एवं महीनों पश्चात् ख़बर होती थी, जब कि ये घटनाएँ योरप में केवल स्मरण-मात्र रह जाती थीं। अटलांटिक-महासागर में तार डालने के पहले व्यापारी लोग स्थान की दूरी के हिसाब से व्यापार करते थे। पर अब वे 'समय' के हिसाब से व्यापार करते हैं। यह तुलना निस्संदेह आश्चर्य जनक है। तार, टेलीफ़ोन, बेतार के तार और बड़े-बड़े स्टीमरों आदि के आविष्कार ने इस व्यापार में आज ऐसी विलक्षणता ला दी है कि उसे देखकर हमारे पूर्वज शायद ज़िंदा हों, तो विश्वास न करें। अब 'समय' और 'स्थान' की समस्या इतनी हल हो चुकी है कि ये हमारे व्यापार में बिलकुल ही बाद दिए जा सकते हैं।

वादे के सर्वप्रथम सौदे

'वादा' याने 'फ़्यूचर्स' का सबसे पहला सौदा सन् १८५५ ई० में हुआ था, और इसके लिये न्यूयार्क में एक व्यापारी ने १,००० गाँठें रुई की 'मिडलिंग' को आधार मानकर 'करोलिना-प्रांत से १० दिन के भीतर पहुँच जाने की' शर्त पर बेची थीं। इस सौदे का कुछ माल तो दिया जा सका; परंतु उस प्रांत में पानी न गिरने के कारण वहाँ की नदियाँ नेवीगेशन के योग्य न रहीं, इसलिये शेष न भेजा जा सका। इसके बाद ही अमेरिका का सुप्रसिद्ध गृह-युद्ध प्रारंभ हो गया। फिर इस प्रकार के ऐसे कोई सौदे हुए या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसके बाद का सबसे पहला प्रमाण सन् १८६५ का मिलता है, जो सौभाग्य से अमेरिका में गृह-युद्ध समाप्त होने एवं योरप से उसका तार का संबंध खुल जाने का भी समय है।

तत्पश्चात् ऐसे सौदों की जोखिम से बचने के लिये कई युक्तियाँ भी समय समय पर सोची गई थीं; क्योंकि इनकी जोखिम तार के आविष्कार एवं तरक़्क़ी के कारण असह्य होती जाती थी। एक तो यह तरकीब सोची गई कि माल चढ़ाते समय उसमें से एक नमूना क्वे (Qway) पर निकाला जाय, और वह मोहर-चपड़ा लगाकर न्यूयार्क में भेज दिया जाय। वहाँ पर इन नमूनों पर 'लिवरपूल अथवा किसी अन्य बाज़ार में पहुँचनेवाले' माल की शर्त पर सौदा किया जाने लगा। अगर यह माल न्यूयार्क में न बिक सका, तो वे ही नमूने लिवरपूल को ज्यों-के-त्यों मोहरबंद भेज दिए जाने लगे, और वहाँ इन नमूनों पर उसी समय, जब कि माल जहाज़ में आ रहा था, सौदे किए जाने लगे। यह पद्धति सफल हुई, और तभी से इस प्रकार जहाज़ में चलते हुए (Afloat) बिकने का रिवाज चल पड़ा। कालांतर में भावों की घटा-बढ़ी इतनी तीव्र एवं शीघ्र होने लगी कि इस प्रकार चलता हुआ माल बेचना भी लोगों को अत्यंत जोखिम का काम समझ पड़ने लगा। परिणाम यह हुआ कि तब माल To arrive की शर्त पर बेचा जाने लगा।

लिवरपूल में सबसे पहले जॉन र्‌यू (John Rew) नामक किसी व्यापारी ने To arrive की शर्त पर माल बेचा,

और भाव की घटा-बढ़ी से अपनी रक्षा करने के लिये इसके एवज़ में न्यूयार्क में इसी शर्त पर माल की ख़रीद न करके, उसने अमेरिका की दक्षिणी रियासतों के बाज़ार में हाज़िर माल मिडलिंग के आधार पर, ख़रीद कर लेने का तार दे दिया। 'मिडलिंग' की रुई को अपने सौदे के लिये आधार मानने का यह कारण था कि यह लगभग मध्यमजाति थी। बस, अन्य व्यापारी भी इसी भाँति फिर व्यापार करने लगे; यहाँ तक कि भविष्य में मिल-मालिकों तक को यह विश्वास हो गया कि इस प्रकार रुई ख़रीदने से वे अपने को भावों की घटा-बढ़ी से होनेवाली हानि से भली भाँति सुरक्षित रख सकते हैं। वे लोग कपड़ा एवं सूत भी अगाऊ बेचने लगे। इस संरक्षण को पाकर इस प्रकार के सौदे, जिनका पहले ख़याल करते लोग डरते थे, संभव ही नहीं, वरन् धड़ाधड़ किए जाने लगे।

लिवरपूल-कॉटन-एसोसिएशन

जब रुई के व्यापार ने अपना संकुचित रूप छोड़कर विस्तृत एवं विश्वव्यापी रूप धारण करना शुरू किया, तो इसके सुसंगठित एवं सुनियमित करने की लोगों को चिंता पड़ी। सबसे पहले अमेरिका ने ही इस ओर हाथ बढ़ाया; क्योंकि वह रुई का संसार में सर्वप्रथम पैदा करनेवाला था। तदनुसार सन् १८७० ई० में वहाँ न्यूयार्क-कॉटन-एक्सचेंज-नामक संस्था स्थापित हुई, जिसका नवीन विशाल एवं अप-टु-डेट साधनों से सुसज्जित गगनचुंबी भवन करोड़ों की लागत लगकर, दो ही वर्ष हुए, तैयार हुआ है। दस-बारह वर्षों में इस व्यापार के नियम आदि का संकलन एवं नवीन संगठन हो गया।

'लिवरपूल-कॉटन-एसोसिएशन' इसके १२ वर्ष बाद स्थापित हुआ, और इसने लिवरपूल में इस व्यापार को संगठित किया। इसके पहले वहाँ पर 'लिवरपूल-कॉटन ब्रोकर्स-एसोसिएशन' नाम की दलालों की एक संस्था सन् १८४१ ई० से स्थापित थी। यह संस्था भी तब उसमें सम्मिलित हो गई, जिसमें दलाल, व्यापारी आदि सभी सम्मिलित हुए। इस संस्था के सदस्य बनने के लिये अब सर्वप्रथम इसका एक 'हिस्सा' (Share) ख़रीदना होता है, और इसके बाद बैलट द्वारा सदस्य को चुनाई होती है। आज इस संस्था के लगभग ६०० सदस्य हैं, जिनमें व्यापारी, दलाल, मिलवाले आदि सभी लोग हैं। इस एसोसिएशन के नवीन भवन का उद्घाटन सम्राट् पंचम जॉर्ज के कर-कमलों द्वारा ३० नवंबर, १९०६ में, जब कि वह 'प्रिंस ऑफ़् वेल्स' थे, हुआ था। यह भवन संसार के रुई के एक्सचेंज के भवनों में तब तक सर्वश्रेष्ठ गिना जाता था, जब तक कि न्यूयार्क-कॉटन-एक्सचेंज के नवीन भवन का निर्माण नहीं हुआ था। इस भवन का वर्णन करते हुए 'मैंचेस्टर गार्जियन' ने अपने साप्ताहिक व्यापारी संस्करण में लिखा था कि "एक्सचेंज का सेंट्रल हाल ही, जिसकी छत काँच की है, अब रुई के बाज़ार का जिगर है। यह भवन इस प्रकार निर्मित हुआ है कि इसमें कॉटन बैंक, क्लियरिंग हाउस, डाक, तार, विदेशी तार, टेलीफ़ोन आदि की हरएक प्रकार की सुविधा का प्रबंध है। इसकी प्रत्येक मंज़िल में व्यापारालय, विक्रयालय, आर्बिट्रेशन रूम आदि की क़तारें लगी हैं। सबसे ऊपर क्लब-भवन है, जहाँ हरएक प्रकार की खान-पान आदि की सुविधा है।"

यहाँ का रुई का बाज़ार इस एक्सचेंज-भवन में ही समाया हुआ हो, यह समझना भूल होगा; क्योंकि इस बाज़ार के साथ ही तो बैंक एवं बीमे की सहूलियत, डाक और वेअर-हाउस की सहूलियत, माल के उठाने, इधर-उधर करने, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने आदि, सभी प्रकार की सहूलियतें हैं, जो दूर-दूर तक फैली हुई हैं। लिवरपूल में लगभग ७०० वेअर-हाउस याने गोदाम हैं, जिनमें २० से २५ लाख गाँठें तक संग्रह की जा सकती हैं।

एसोसिएशन के भवन में इसी हेतु इतने अधिक रुई की ख़रीद-फ़रोख़्त के पृथक्-पृथक् भवन बने हुए हैं, जिनमें बैठकर मिल-मालिक अपनी आवश्यकता के ठीक अनुरूप रुई की बैठे-बैठे ख़रीद कर सकते हैं, और उन्हें इच्छित माल के लिये व्यापारी के गोदाम अथवा घर पर नहीं घूमना पड़ता। बेचनेवाले स्वयं अपने माल के नमूने ला-लाकर दिखाते रहते हैं जिन्हें ख़रीदने का उस पर तनिक भी ज़िम्मेदारी नहीं रहती। चूँकि वहाँ पर हर समय अत्यधिक स्टॉक रहता है, इसलिये मिल-मालिकों को हर समय जैसी चाहिए, वैसी रुई प्राप्त होने में तनिक भी कठिनाई नहीं उठानी पड़ती।

दूसरी बात यह है कि लिवरपूल-आर्बिट्रेशन रुई के लिये सर्वमान्य हो गया है। यह तो जानी हुई बात है कि रुई में ऐसी हज़ारों बातें हुआ करती हैं, जिनके होने-न-होने से माल के अच्छे-बुरे अथवा बट्टे-चट्टे के संबंध में भिन्न-भिन्न मत पाए जाते हैं। रुई की इस बहुरूपिता का अनुमान कराने के लिये हमारा यही कहना पर्याप्त होगा कि लिवरपूल

में रुई के १८ प्रकार के कंट्रैक्ट प्रचलित हैं, जिनके लगभग ७२४ नियम-उपनियम हैं, जो समयानुसार परिवर्द्धित, संशोधित एवं परिवर्तित होते रहते हैं। इसके सन् १६२४ई० के प्रेसीडेंट श्रीयुत ए० आइसेम्यूर (सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफ़ेसर रेमज़े म्यूर के भाई) थे। इन्हीं नियमों को आदर्श मानकर हमारे यहाँ ईस्ट-इंडिया-कॉटन-एसोसिएशन लि० के नियम—जिनके अनुसार अब बंबई में रुई का व्यापार होता है—बनाए गए हैं। लिवरपूल, न्यूयार्क और न्यू आर्लिअंस तो रुई के अंतरराष्ट्रीय बाज़ार हैं। इनके अलावा अन्य तीन स्थानों में भी रुई के वादे के सौदों के बाज़ार हैं, जिनका प्रयोग प्रायः स्थानीय होता है। ऐसे बाज़ारों में एक बाज़ार है हावरे (Havre) का। इस बाज़ार में भी अमेरिकन रुई के वादे के सौदे किए जाते हैं। युद्ध के पहले ऐसा ही एक बाज़ार ब्रेमेन (Bremen) में भी था। परंतु तब से यह बाज़ार बंद हो गया है। मिसर के सुप्रसिद्ध बंदरगाह एलेक्ज़ेंड्रिया में भी मिसर की रुई का वादे का सौदा हुआ करता है। इस रुई के सौदे दो भिन्न-भिन्न जातियों के अलग-अलग होते हैं, जिनमें से एक लंबे तारवाली रुई का, और दूसरा छोटे तारवाली रुई का। मिसर की रुई के वादे के दोनों ही सौदे लिवरपूल के बाज़ार में भी किए जाते हैं। बंबई में भी रुई के वादे के सौदों का बाज़ार है, यह हम सब जानते ही हैं। हमारे यहाँ भारतीय रुई के ही केवल वादे के सौदे होते हैं। और, वे चार प्रकार के हैं—एक ब्रोच रुई का, जिसे लोग जीन का सौदा भी कहते हैं, दूसरा बंगाल, तीसरा उमरा, और चौथा सदर्न्स (Southerns) का।

हमारे यहाँ जीन के साल में दो वादे के सौदे होते हैं, जिनमें से बड़ा एप्रिल-मई का और दूसरा जुलाई-अगस्त का होता है। उदाहरणार्थ, इस समय विगत अगस्त-महीने से एप्रिल-मई का* सौदा चल रहा है, जो आगामी २५ तारीख़ (मई) को ख़तम हो जायगा। बंगाल और उमरा का दिसंबर-जनवरी का सौदा बड़ा होता है। इसके अलावा मार्च, जुलाई और सितंबर के भी वादे के सौदे होते हैं।

वादे के सौदे

लिवरपूल में वादे के सौदों (Futures) का बाज़ार इतना सुसंगठित हो गया है कि उसमें तराज़ू की भाँति संसार की रुई की खपत एवं भाव की परिस्थिति भली भाँति एवं स्पष्ट प्रतिबिंबित होती रहती है। प्रतिदिन की ही नहीं, प्रत्युत घंटे-घंटे की 'वादे' के भावों की घट-बढ़ का प्रभाव समस्त संसार के हाज़िर रुई के बाज़ारों के भाव पर पड़ता है। और, वे सब उसी प्रकार साधारणतः घटते-बढ़ते रहते हैं। लिवरपूल का वादे का कंट्रैक्ट ४८,००० पौंड की १०० गाँठों का अमेरिकन रुई का होता है। इस कंट्रैक्ट के लिये अमेरिका की औसत ग्रेड की औसत रुई (average grade of the averag--merican Crop) मूलाधार मानी गई है। अमेरिका का युनिवर्सल मिडलिंग स्टैंडर्ड (Universal Middling Standard) लिवरपूल की फ़ुली मिडलिंग ग्रेड (Fully Middling Grade) के बराबर माना जाता है। जिस महीने के वादे का सौदा किया गया हो, उस महीने में रुई लिवरपूल में दो जानी चाहिए। माल टेंडर करने इत्यादि बातों के वहाँ पर बहुत ही विशद एवं पूर्ण नियम बने हुए हैं। जितने-भर सौदे वहाँ होते हैं, सब लिवरपूल-कॉटन-एसोसिएशन के नियमों के मुताबिक़ किए जाते हैं। विक्रेता इस सौदे में ऊँची-से-ऊँची एवं मूलाधार (Basis) से छोटी जाति की रुई भी टेंडर कर सकता है। परंतु छोटी जाति की रुई के लिये एक सीमा बाँध दी गई है। ख़रीदार को दिया हुआ माल उस रोज़ के भाव के अनुसार भाव (Relative Value) में लेना पड़ता है। कंट्रैक्ट के भाव से ऊँचा-नीचा जो भाव-फ़र्क़ हो, उसका हानि-लाभ परस्पर पीछे भुगत जाता है। दी हुई रुई का भाव नियमित परीक्षकों (Professional arbitrators) द्वारा निश्चित किया जाता है। इनके निश्चय की अपील विशेषज्ञों की एक उपसमिति में की जा सकती है, जो एसोसिएशन के ही सदस्यों की चुनी हुई होती है। इन वादे के सौदों का मूल-आधार औसत ग्रेड की औसत रुई कर देने से ख़रीदार और बेचनेवाला, दोनों ही के लिये वह समान है।

मिलवाला यदि सूत की बिक्री के सामने उतनी ही रुई जैसे-जैसे उसने सूत बेचा है, वैसे वैसे ख़रीदना चाहे, तो सूत के बिक्री के भावों से रुई के भावों की पड़ताल मिलाकर रुई ख़रीद सकता है। ऐसा करके वह अपने-आपको भविष्य में होनेवाले भावों की घट-बढ़ की हानि से बिलकुल ही बचा सकता है; क्योंकि सूत की बिक्री के भाव वह उसी पड़ताल से निश्चित करेगा, जिस भाव में उसे रुई मिलने की आशा हो। ज्यों-ज्यों वादे का महीना निकट आता जाता

* यह लेख २५-२-२६ को लिखा गया था।

है, त्यों-त्यों वादे का माल बेचता हुआ वह ठीक वही माल, जिसकी खपत उसके मिल में होती है, ख़रीद कर लेता है। इस हाज़िर रुई का दाम भी तब वह इसी बात को ध्यान में रखकर लगाता है, जिस भाव में उसका पोते का 'वादा' बिकता हो। यदि इस अर्से में बाज़ार तेज़ हो जाय, तो एक ओर तो उस हाज़िर माल के ख़रीदने में पहले से ज़्यादा दाम देने पड़ते हैं, दूसरी ओर पोते का 'वादा' भी उतना ही ऊँचा बिकता है; क्योंकि 'हाज़िर' और 'वादा', दोनों ही का बाज़ार, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, साथ-साथ चला करते हैं। अस्तु, जितने अधिक दाम उसे हाज़िर माल के ख़रीद करने में देने पड़ते हैं, लगभग उतने ही का 'वादा' बेचने में लाभ रह जाता है। पक्षांतर में यदि इसी प्रकार बाज़ार गिर जाय, तो उसे हाज़िर माल सस्ता मिलता है, और 'वादा' भी पहले की अपेक्षा सस्ता बिकता है। अस्तु, यह हानि हाज़िर माल के लगे हुए मूल्य में जोड़ देने से वह उतना ही पड़ जाता है, जिस पड़ते पर हमने सून बेचा था। अतएव जब तक हम 'वादा' की ले-बेची कर हाज़िर माल को ख़रीद करते जायँ, हम अपने-आपको इस अवधि के भावों की घट-बढ़ से होनेवाली हानि से बचा लेते हैं।

जो व्यापारी रुई की आयात अथवा खपत आदि किसी भी प्रकार का व्यापार करते हों, वे सब इस युक्ति से, भावों की घट-बढ़ से होनेवाली हानि से, अपनी रक्षा कर सकते हैं। इस प्रकार हानि के बीमे को अँगरेज़ी में हेजिंग (Hedging) कहते हैं। और, वे वादे, जिनके द्वारा व्यापारी ऐसा कर पाते हैं, अँगरेज़ी में हेज कंट्रैक्ट (Hedge Contract) कहलाते हैं। अब रुई के व्यापारियों में, हानि से रक्षा करने के लिये, इन कंट्रैक्टों का उपयोग करने का एक रिवाज-सा चल पड़ा है। वादों का यह उपयोग सर्वथा उचित एवं जायज़ ही है; क्योंकि इनसे सुरक्षित रहकर व्यापारी लोग बहुत थोड़ी जोखिम उठाते हुए भी अत्यधिक व्यापार करने में समर्थ होते हैं। यह बात सच है कि इनके कारण अब मुनाफ़ा भी बहुत ही कम रह गया है; परंतु इनके कारण अब भावों का जोखिम तो दूर ही हो गई है, ऐसा कहा जा सकता है। वादों के इतने व्यापक उपयोग का ही यह कारण है कि इनका बाज़ार बहुत ही चुस्त एवं बाधा-रहित रहता है।

यहाँ पर हमारे मन में यह शंका उपस्थित होना स्वाभाविक ही है कि यह व्यापार तभी कार-आमद हो सकता है, जब छूट से 'वादे' के सौदे करनेवाले हर समय तैयार रहें। केवल यही नहीं, थोड़े-से-थोड़े भाव-फ़र्क़ में जितनी आवश्यकता हो, वादा ख़रीदा अथवा बेचा भी जा सके। केवल इसी दशा में तो यह 'हेजिंग' का व्यापार संतोष-जनक रह सकता है। इस प्रकार छूट के 'वादे' का व्यापार वे लोग किया करते हैं, जिन्हें व्यापारी लोग 'साहूरमी'वाला (Professional operator) कहते हैं। ये लोग उपर्युक्त सहूलियतें मुहैया करने ही में जीवन बिता देते हैं। परंतु वे ऐसा किसी निःस्वार्थ दृष्टि से नहीं करते, प्रत्युत यह तो उनकी आजीविका का एक-मात्र साधन बना हुआ है। जैसे शेयर और स्टॉक-बाज़ार में 'जाबर' (Jobber) होते हैं, वैसे ही ये हैं।

जाबर एवं सटोरिए

इस बाज़ार के जाबरों की ले-बेची के कारण वादा जब चाहे, तब ख़रीदा अथवा बेचा जा सकता है; क्योंकि जब इनकी दृष्टि में बाज़ार बहुत नरम देख पड़ने लगता है, तो ये लोग छूट से 'वादा पोते' करने लगते हैं, याने ख़रीद करते हैं। पक्षांतर में बाज़ार ऊँचा मालूम पड़ने पर ये लोग छूट से 'माथेबेचाण' कर देते हैं। ये जाबर प्रचलित वादों में से कोई भी वादा ख़रीदने अथवा बेचने के लिये तैयार रहते हैं। इन्हीं के द्वारा हेजिंग का व्यापार, बदलाई का व्यापार अथवा एक खरी तेज़ी-मंदी का व्यापार संभव होता है।

इनके अलावा ऐसे भी व्यापारी बहुत हैं, जो केवल बदलाई का व्यापार करते हैं। इन्हें रुई के व्यापार में स्ट्रैडलर्स (Straddlers) कहते हैं। भिन्न-भिन्न जाति की रुई के भावों में अथवा भिन्न-भिन्न बाज़ारों में एक ही जाति के माल के भाव में जब असाधारण अंतर देख पड़ने लगता है, तो ऐसे व्यापारी सस्ता माल अथवा जहाँ भाव सस्ता हो, वहाँ ख़रीदकर, उतनी ही तादाद में, वह दूसरा वादा, अथवा दूसरे स्थान में वही वादा, जिसका भाव-फ़र्क़ कुछ विशेष मालूम पड़ता हो, बेच दिया करते हैं। इस प्रकार बदलाई का व्यापार करने के कई कारण हो सकते हैं। कभी दो देशों की हुंडी की घटा-बढ़ी अथवा कभी माल की आमद एवं खपत आदि की संभावना इत्यादि बातें लोगों को ऐसा व्यापार करने के लिये ललचाती हैं। यह व्यापार केवल सिद्धहस्त व्यापारी



गो-दोहन

[चित्रकार—श्रीयुत गोविंदराम-उदयराम]

N. K. Press, Lucknow.

ही करते हैं। अमेरिका और लिवरपूल के बाज़ारों में इस प्रकार का बदलाई का व्यापार प्रचुर परिमाण में होता है।

सर्वोपरि हरएक देश में कुछ ऐसे भी भाग्यशाली व्यक्ति हैं, जो केवल 'अकस्मात्' पर ही व्यापार करते हैं। ऐसे लोगों को अँगरेज़ी-भाषा में स्पेक्यूलेटर (Speculators) और हम लोग सटोरिए कहते हैं। ये सटोरिए भी दो प्रकार के कहे जा सकते हैं—एक तो वे, जो अकस्मात् के साथ सामयिक परिस्थितियों तथा गणना आदि का भी ध्यान रखते हैं। इनके अलावा वे व्यक्ति हैं, जो केवल अकस्मात पर ही बिट लगाते रहते हैं। पिछली श्रेणी के लोगों का उदाहरण हैं शरियत से खेलनेवाले (Races)। यह तो सब कोई स्वीकार करता है कि प्रत्येक व्यापार में किसी-न-किसी अंश में सट्टेबाज़ी तो ज़रूर ही रहती है। माल ख़रीदनेवाला भविष्य में माँग कैसी रहेगी, इसका अनुमान बाँधकर ही तो इकट्ठा माल ख़रीदता है। परंतु जो इस भविष्य-चिंतन में दीर्घ दृष्टि से काम लेता है, वही सफल होता है। इन दोनों प्रकार के सट्टों में अन्य किसी प्रकार का भेद कोई स्वीकार करे अथवा नहीं; परंतु यह तो सबको स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सिद्धहस्त सटोरिए बाज़ार में भावों की सुरम्यता एवं स्निग्धता तथा शनैः-शनैः परिचालन-वृत्ति पैदा करता है, जब कि दूसरा एकदम से विप्लव मचा देता है।

लिवरपूल में रुई का भाव पेंस प्रति पौंड (रतल) और उसके शततमांश में कहे जाते हैं। भाव में छोटी-से-छोटी घटा-बढ़ी $\frac{1}{100}$ पेनी की हो सकती है, और इस घटी-बढ़ी में प्रति गाँठ २ पौंड याने सावरिन का फ़र्क़ पड़ता है; क्योंकि प्रत्येक गाँठ वज़न में ४८० रतल की मानी जाती है, और २४० पेंस का एक पौंड होता है। साधारण समयों में प्रति पौंड पेनी के एक शततमांश भाव-फ़र्क़ से ले-बेची का सौदा किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि हम आज रुई का भाव १७·४० पेनी प्रति पौंड मानें, तो जितनी चाहें, उतनी गाँठें आपको १७·४१ पेनी प्रति पौंड के भाव में मिल सकती हैं, और १७·४१ में बिक सकती हैं। इससे कम भाव-फ़र्क़ में ले-बेची का सौदा उतरे, यह शायद ही कोई चाहेगा। उपर्युक्त उदाहरण से हम समझ सकते हैं कि 'ताराणी' करनेवाला १०० गाँठ के सौदे में ले-बेची करके केवल २ पौंड का ही लाभ उठा सकेगा। इस विवेचन से यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि इन वादों के सौदों के उतरने में कैसी असाधारण एवं विलक्षण छूट है। इसका एक-मात्र कारण, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह है कि प्रत्येक रुई अथवा रुई से संबंध रखनेवाले व्यापार को करनेवाला व्यापारी इनके द्वारा अपना नुक़सान सुरक्षित रखता है।

रुई के अलावा अन्यान्य व्यापारों में भी अब इसी प्रकार के वादे के सौदों का प्रयोग किया जा रहा है, क्योंकि उन लोगों को अब यह स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि भाव की घटा-बढ़ी से अपनेआपको सुरक्षित रखकर, इनकी सहायता से, अपना व्यापार थोड़े-से थोड़े (Minimum Profit) मुनाफ़े पर चलाया जा सकता है। हम भारतवासी इस प्रकार का व्यापार करना अभी नहीं सीखे हैं।

क्या वादे का सौदा करना सट्टा है?

जो लोग वादे के सौदों के सिद्धांत से भली भाँति परिचित नहीं हैं, वे इनकी बहुत बुरी टीका करते हैं। यही नहीं, इन्हें बहुत बदनाम भी किया है। यहाँ तक कि इनकी चर्चा विलायत की पार्लियामेंट (House of Commons) और अमेरिका की सीनेट-सभा में भी की जा चुकी है। दोनों ही स्थानों में इस बात की अज़हद कोशिश की गई थी कि ये सौदे एकदम बंद ही कर दिए जायँ। इनके लिये निषेधक आईन का भी विधान हो चुका था। इस आंदोलन का मूल कारण लोगों की यह भावना थी कि ये सच्चे व्यापार के घातक हैं। परंतु लोग इनके मर्म को बिलकुल ही भूल जाते हैं। यहाँ तक कि विरोध करते हुए एक ही साथ दो ऐसी परस्पर-विरोधी बातें कहते हैं कि जिसकी कुछ हद नहीं। उनका यह कहना है कि वादे के सौदे करनेवाले सटोरिए एक ओर तो बलिहाज़ किसानों के रुई का भाव घटा देते हैं, जिससे किसानों को हानि उठानी पड़ती है, और दूसरी ओर भोक्ता लोगों की अपेक्षा रुई के दाम बढ़ा देते हैं, जिससे कपड़ा आदि महँगा मिलता है।

इस संबंध में एक और आक्षेप यह किया जाता है कि बीच के व्यापारी इसे हानि पहुँचाते हैं। इस संबंध में हम पाठकों को, श्रीयुत ए० ब्राइस म्यूर ने जो कुछ समस्त संसार की रुई-परिषद् (World Cotton Conference) में कहा था, वही बता देना पर्याप्त समझते हैं। आपने कहा था—"हमें इन बीच के व्यापारियों की टीका करने की आदत हो गई है। हम उन्हें पैरेसाइट

(Parasites)-जैसे प्राणनाशक कीड़े तक कहने में नहीं हिचकते। पर बात यह है कि इनके बिना रुई के संसार की गति एकदम मंद हो जायगी। ये ही लोग तो फ़सल पर माल खेत से ख़रीद करते हैं, और उसे वहाँ से उठवाकर बाज़ार में लाने में मुख्य भाग लेते हैं। ये ही इसके लिये धन देते और इसे फिर समस्त संसार में चारों ओर भेजते हैं। ये ही इसकी ग्रेड (Grade) नियत करते, इसे छाँटते और इसकी बिक्री का बंदोबस्त करते हैं। यही नहीं, जब तक रुई, कपड़ा अथवा सूत बनने के लिये, मिल में न चली जाय, तब तक इसका संग्रह कर लेते रहते हैं।

"यह बात सच है कि और किसी भी व्यापार में और किसी भी माल के इतने अधिक बीच के व्यापारी नहीं हैं, जितने इस रुई के व्यापार में। पर, फिर भी, मेरी राय में इनकी सेवाओं का, जो ये क्या किसानों और क्या भोक्ता लोगों की करते हैं, बहुत ही संकुचित रूप से इन्हें पुरस्कार मिलता है। इस व्यापार में प्रतिद्वंद्विता इतनी ज़बरदस्त है कि कस (Potential Profits) बहुत ही थोड़ा रह गया है। मंद व्यापार में, जैसे कि पिछले कई वर्षों से हमारे व्यापार की हालत चली आ रही है, इस बात को कौन कह सकता है कि न-जाने कब सारी उमर की कमाई नुक़सान में स्वाहा हो जाय।"

लिवरपूल का बाज़ार और महायुद्ध

जब गत महायुद्ध छिड़ गया था, तो लिवरपूल में रुई का यह 'वादे' का बाज़ार ३१ जुलाई, सन् १९१४ ई० को एकदम बंद कर दिया गया था। यह केवल लिवरपूल में ही बंद किया गया हो, यह बात न थी; क्योंकि तब अमेरिका में भी वादे का बाज़ार बंद कर दिया गया था। इसका कारण यह था कि दोनों ही अंतरराष्ट्रीय बाज़ार हैं; इनमें संसार-भर के लोगों के वादे के सौदे उतरते हैं। युद्ध के छिड़ जाने पर इन सौदों के सलटाने और उनको हानि-लाभ वसूल करने के साधन विच्छिन्नप्राय हो चुके थे। इस दृष्टि से इनमें व्यापार करना असंभव ही था। अस्तु, ये बाज़ार कई महीनों तक बंद रहे, और तब तक न खुले, जब तक पहले के सब सौदे राज़ी-ख़ुशी अथवा जबरन् न सलटा दिए गए, और वहाँ पर फिर व्यापार करना बाधा-रहित न हो गया। विलायत में 'बोर्ड ऑफ़ ट्रेड' ने लिवरपूल-कॉटन एसोसिएशन पर वादे के सौदे पुनः खोल देने के लिये बहुत कुछ दबाव डाला था; क्योंकि लंकाशायर के मिलवाले सभी इस बोर्ड ऑफ़ ट्रेड पर दबाव डाल रहे थे, और कह रहे थे कि 'वादे' के सौदों के खोले बिना वे लोग सुरक्षित एवं विश्वस्त रूप से व्यापार करने में असमर्थ हैं। यह बात इस बात का एक ज़बरदस्त प्रमाण है कि कपड़े के व्यापारी भी इनका उपयोग अपनी रक्षा के लिये करते हैं।

वादे के सौदे दरहक़ीक़त व्यापारियों की हानि-लाभ के बीमे का काम दें. इसके लिये पहली बात तो यह है कि इनका उपयोग उन सब व्यापारियों द्वारा होना चाहिए, जो ऐसे व्यापार में लगे हों; क्योंकि इनसे भावों की घटा-बढ़ी से होनेवाली हानि की ६५ से १०० प्रतिशत तक रक्षा की जा सकती है।

रुई के भावों में घटा-बढ़ी विशेष क्यों होती है ?

रुई का पौदा एक बहुत नाज़ुक-मिज़ाज पौदा है। यह न ठंडा और न गरम ऐसे अर्द्धोष्ण (Semi-tropical) प्रदेशों में उगता है। इसकी उपज जल-वायु के तनिक परिवर्तन से बुरी तरह घट-बढ़ सकती है। बरसात की खींच और लगभग ३१ डिग्री की ठंड तो इसे बिलकुल मार ही देती है। पिछले कुछ वर्षों से बालवीवल (Bolweevil) आदि कीड़ों ने तो इसकी पैदावार को भारी क्षति पहुँचाई है। मौसिम-भर में यह बात बिलकुल अनिश्चित रहती है कि कुल फ़सल अंत में कितनी होगी ? यह तो इसकी पैदायश की हालत है। अब रुई की खपत की ओर जब हम निगाह दौड़ाते हैं, तो देखते हैं कि इसके कपड़े तो समस्त सभ्य-संसार पहनता ही है, परंतु इसके अलावा भी वह इसका अन्य कितनी ही तरह उपयोग करता है। युद्ध के लिये मोटे-मोटे गोले तैयार करने में भी यह काम आती है। मोटर-टायर भी इसी से रबर की सहायता से बनाए जाते हैं। इसकी खपत इसके भाव, राजनीतिक परिस्थिति और देश-देशांतरों की बहबूदी पर निर्भर है। भारतवर्ष और चीन, दोनों ही देश सूती माल की खपत के बड़े देश हैं। इन देशों की क्रयात्मक शक्ति, रुई की साख के अच्छे दाम उपजने पर ही नहीं, वरन् सब कच्चे माल की पैदायश, चाँदी के भाव और राजनीतिक परिस्थिति पर निर्भर करती है। पैदायश और खपत की इस अनिश्चितता के कारण ही रुई के भावों में असाधारण एवं बहुत घटा-बढ़ी हुआ करती है। इसी भाव की घटा-बढ़ी से किसानों को,

रुई का निर्यात करनेवाले शिपरों (Shippers) की, आयात करनेवाले व्यापारियों की, सूत और कपड़ा तैयार करनेवाले कारख़ानदारों की रक्षा करने के लिये ही रुई के 'वादे' के सौदों का अस्तित्व है। ये सौदे इस व्यापार के समुचित एवं परिपक्व रीति से चलने के लिये इतने अधिक मूल्यवान हैं कि अब इनके द्वारा 'रक्षा' करना (Hedging) एक रिवाज ही हो गया है।

हाज़िर (Spot) रुई का कंट्रेक्ट याने सौदा

इस सौदे में माल डिलीवरी देने के लिये गोदाम में मौजूद होना है, और उसके तत्काल अथवा किसी निश्चित दिन दिए जाने की शर्त की जाती है। यह सौदा रुई के नमूनों पर किया जाता है, और गोदाम में पड़ी हुई रुई की गाँठों को फाड़कर इसके लिये नमूने लिए जाते हैं।

पीछे बाद डिलीवरी दी जानेवाली (Deferred Delivery) रुई का सौदा

यह सौदा भी उस रुई के लिये किया जाता है, जिसको गोदाम से ही डिलीवरी दी जाती है। परंतु तत्काल ही नहीं, आगे किसी निश्चित तारीख़ को अथवा अवधि में यह माल दिया जाता है। यह सौदा नमूने के समान ग्रेड और तार (Staple) में होने की शर्त पर किया जाता है। इसके लिये रुई चाहे समुद्र से आ रही हो, जहाज़ में चढ़ा दी गई हो, अथवा अब चढ़ाई जानेवाली हो, उसका नमूने से हर बात में एक-सा होना अनिवार्य है।

सी० आई० एफ़० सौदे

इस सौदे की रुई चाहे जहाज़ में चढ़ा दी गई हो, चाहे जहाज़ से उतरती हो, और चाहे वह Quay याने किनारे पर पड़ी हो, अथवा तत्काल या किसी निश्चित तारीख़ तक जहाज़ में चढ़ाई जानेवाली हो, यह सौदा साधारणतः विवरण (Description) पर अथवा किसी टाइप के बराबर (Equal to a type) अथवा मौजूद नमूनों के समान जो अमेरिका अथवा लिवरपूल अथवा बंबई आदि किसी भी स्थान में निकाले जाकर लाए गए हों, होने की शर्त पर किया जाता है। इस सौदे का माल Quay पर डिलीवरी लेना होता है।

उपर्युक्त सौदे ५ गाँठ, ३० गाँठ, ६० गाँठ, ५०० गाँठ आदि चाहे जितनी छोटी अथवा मोटी तादाद में किए जा सकते हैं। इनके लिये तादाद की न कम-से कम की ही क़ैद है, और न यही कि १०० गाँठ अथवा उसकी दुगने-तिगने की तादाद में ही सौदा हो। इनमें एक ही क़िस्म के माल की डिलीवरी का सिर्फ़ उल्लेख रहता है। अस्तु, इस उल्लिखित जाति के माल के सिवा और दूसरी जाति का माल दिया ही नहीं जा सकता। अब आप इसी दृष्टि से वादे के सौदों का भी विचार कीजिए।

वादे के सौदे

सबसे पहली बात तो यह है कि यह सौदा केवल अमेरिकन रुई का होता है। दूसरे इसकी गाँठों की कम-से-कम तादाद १०० और इससे अधिक कईगुना हो सकती है। अर्थात् १०० के बाद २००, २०० के बाद ३००, ३०० के बाद ४०० इत्यादि गाँठों का ही यह सौदा किया जा सकता है। इस सौदे के लिये प्रत्येक गाँठ ४८० रतल (पौंड) की वज़न में मान ली गई है। जिस महीने का यह सौदा किया जाय, उसी महीने में माल की डिलीवरी दी जानी चाहिए। डिलीवरी महीने में किस दिन दी जाय यह बेचनेवाले की मरज़ी पर निर्भर है। ख़रीदार को, जब माल डिलीवरी किया जाय, तभी लेना पड़ता है। यह डिलीवरी चाहे महीने की पहली अथवा अंतिम तारीख़ को; और चाहे इस बीच में किसी सोमवार, बुधवार अथवा शुक्रवार को दोपहर तक दी जा सकती है। डिलीवरी की १०० गाँठ का वज़न १,००० पौंड से अधिक ऊँचा अथवा नीचा नहीं होना चाहिए; याने कुल १०० गाँठें अधिक-से-अधिक ४९,००० पौंड और कम-से-कम ४७,००० पौंड वज़न में उतरनी ही चाहिए। इससे ऊँचा-नीचा वज़न उतरने पर डिलीवरी देनेवाले को जुरमाना देना पड़ता है, जो ख़रीदार को दिया जाता है। इस प्रकार माल डिलीवर करने को अँगरेज़ी में Taking up or Tendering of Dockets कहते हैं।

प्रत्येक सौदे में हाज़िर रुई टेंडर की जानी चाहिए, और ख़रीदार को वह लेनी चाहिए। ख़रीदार से ख़रीदार को टेंडर बारी-बारी से भुगताए जा सकते हैं, और अंतिम ख़रीदार को ही माल टेंडर करनेवाले से तुलवाना पड़ता है। प्रत्येक १०० गाँठ का एक-एक टेंडर किया जाता है। किसी एक टेंडर में तीन से अधिक मार्के अथवा क़िस्म की रुई टेंडर नहीं की जा सकती, और न सब माल दो से अधिक गोदामों में से डिलीवरी लेने का ख़रीदार ज़िम्मेदार

है। टेंडर किए हुए माल की प्रत्येक गाँठ में से क्रेता और विक्रेता, दोनों ही एक-एक नमूना निकालते हैं, और वे नमूने दो पंचों (Arbitrators) के सामने मूल्य-निर्णय के लिये पेश किए जाते हैं। टेंडर करने के समय माल गोदाम में इस प्रकार रक्खा रहना चाहिए कि उसमें से नमूना निकाला जा सके। साथ ही वह मरचेंटेबुल (Merchantable) हालत में भी होना चाहिए। ख़रीदार को डिलीवरी का ऑर्डर मिलते ही नक़द दाम देने पड़ते हैं। कंट्रैक्ट और डिलीवरी ऑर्डर के भाव-फ़र्क़ का भुगतान क्लियरिंग हाउस के मार्फ़त लिया-दिया जाता है। ये सौदे बहुत बारीकी के साथ किए जाते हैं, और बहुत सूक्ष्म एवं पूर्ण रूप से नियम-बद्ध हैं। शर्त का ज़रा-सा भी उल्लंघन करने से विक्रेता को केवल जुरमाना ही नहीं भुगतना पड़ता, कभी-कभी माल तक लौटा दिया जाता है। यह सौदा फ़ुली मिडलिंग ग्रेड की अमेरिकन रुई (Fully middling grade of American Cotton) का होता है। इसमें तार की लंबाई एवं रंग भी 'फ़ेयर' (Fair Staple & Fair Colour) होना चाहिए। जिन पंचों के सामने टेंडर किए हुए माल के नमूने जाते हैं, उन्हें सबसे पहले यह निर्णय करना होता है कि टेंडर किया हुआ माल 'मिडलिंग क्वालिटी फ़ेयर स्टेपल और फ़ेयर कलर' है, अथवा नहीं। और, यदि वह मिडलिंग का नहीं है, तो लो मिडलिंग (Low middling) जाति से नीची जाति का तो नहीं है। यदि माल मिडलिंग का फ़ेयर स्टेपल और फ़ेयर कलर मालूम पड़े, तो भाव-के-भाव में पास कर दिया जाता है। यदि वह दूसरी जाति का मालूम पड़े, तो उसका भाव उस जाति के हाज़िर माल के भाव से निश्चित किया जाता है, और जो बट्टा अथवा बढ़ती नियत करनी हो, कर दी जाती है। उदाहरणार्थ, मिडलिंग जाति की असली रुई, मान लीजिए, वादे के भाव से हाज़िर में ३० पाइंट ऊँची बिकती है। अब यदि टेंडर किया हुआ माल मिडलिंग की ही परीक्षा में उतरे, तो पंच लोग ३० पाइंट की बढ़ती इसलिये नामंज़ूर कर देते हैं कि सौदे की शर्त के मुताबिक़ मिडलिंग का माल ही दिया जाना चाहिए। परंतु दूसरी जाति के माल का बट्टा-चट्टा करते समय यह हाज़िर मिडलिंग का बट्टा-चट्टा ख़याल में रक्खा जाता है।

ऊपर 'ग्रेड' और 'स्टेपल'-शब्दों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। इन शब्दों का क्या अभिप्राय है, यह उन लोगों की समझ में, बिना विशद व्याख्या किए, आना कठिन है, जो रुई की पहचान आदि नहीं जानते। अस्तु। 'ग्रेड' से अभिप्राय है रुई में पत्ती और धूल-रेत आदि अनेक प्रकार की अशुद्धियों का कम-बेश होना, एवं रंग का मंदापन अथवा तेज़ी। लिवरपूल के बाज़ार में अमेरिकन रुई की १० ग्रेड का भाव रोज़ कमेटी की ओर से छापा जाता है। ये ग्रेड निम्न-लिखित हैं, और उत्तरोत्तर चढ़ते हुए हैं।

(Ordinary) ऑर्डिनरी, (Good Ordinary) गुड ऑर्डिनरी, (Fully good Ordinary) फ़ुली गुड ऑर्डिनरी, (Low middling) लो मिडलिंग, (Fully Low Middling) फ़ुली लो मिडलिंग, (Middling) मिडलिंग, (Fully Middling) फ़ुली मिडलिंग, (Good Middling) गुड मिडलिंग, (Fully good Middling) फ़ुली गुड मिडलिंग, (Middling Fair) मिडलिंग फ़ेयर।

पूर्व की तीन जाति की रुइयाँ इस कंट्रैक्ट में नहीं दी जा सकतीं; परंतु लो मिडलिंग ग्रेड से ऊपर की हरएक ग्रेड की रुई टेंडर के योग्य होती है, और उसके ख़रीदार को दाम फ़ुली मिडलिंग फ़ेयर स्टेपल जाति की रुई के दाम के अनुपात से देने पड़ते हैं; क्योंकि सौदा फ़ुली मिडलिंग ग्रेड (Fully Middling) का होता है।

दूसरे शब्द स्टेपल (Staple) से अभिप्राय है तार की लंबाई और गुण। जितना अधिक लंबा एवं मज़बूत तार होता है, उतने ही अधिक दाम उस रुई के बाज़ार में लगते हैं। अमेरिकन रुई के तार की लंबाई १ इंच से लेकर १$\frac{1}{16}$ इंच और १$\frac{1}{8}$ इंच तक होती है। यदि तार की लंबाई एक इंच के छोटे-से-छोटे भाग से भी अधिक हो, तो छोटे तारों की अपेक्षा ऐसे तार की सूत बनाने की शक्ति पर्याप्त रूप से ज़्यादा रहती है। इसीलिये इसके दाम भी विशेष लगते हैं। उदाहरणार्थ, १$\frac{1}{8}$ इंच लंबे तारवाली रुई एक इंच लंबे तार की रुई की अपेक्षा लगभग $\frac{1}{2}$ पेनी प्रति पौंड महँगी बिकती है। जिस रुई का तार पूर्णतः १$\frac{1}{8}$ इंच हो, वह इससे भी $\frac{1}{2}$ पेनी विशेष दाम पाती है।

कंट्रैक्ट की शर्तों के मुताबिक़ चाहे कितनी ही लंबाई के तार की रुई कंट्रैक्ट के पूरा करने में टेंडर की जा सकती है। परंतु यदि तार १$\frac{3}{16}$ इंच से अधिक लंबा हो, तो उसके एवज़ में ऐसी रुई की अधिक क़ीमत का $\frac{1}{2}$ अंश ही मुजरे दिया जाता है। 'फ़ेयर स्टेपल' किसे कहते हैं, इसकी व्याख्या कहीं की ही नहीं गई। परंतु इससे क्या अभिप्राय है, यह रुई के व्यापार करनेवाले भली भाँति समझते हैं। यदि हम व्याख्या करने की चेष्टा करें, तो यह कह सकते हैं कि व्यवहार में तार की वह छोटी-से-छोटी लंबाई 'फ़ेयर स्टेपल' समझी जा सकती है, जिसे लंकाशायर की मिलें साधारणतः अपने उपयोग में लाती हैं। अमेरिकन फ़ुली मिडलिंग ग्रेड की रुई इन सौदों के लिये आधार-रूप इसीलिये चुनी गई है कि इस जाति की रुई अमेरिकन रुई की औसतन रुई समझी जाती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि माल की जाँच के लिये प्रत्येक गाँठ में से क्रेता-विक्रेता दोनों रुई निकालकर नियमित पंचों (Professional arbitrators) द्वारा फ़ैसला कराते हैं। यदि इन पंचों द्वारा दिए गए बट्टे अथवा बत्थी से क्रेता विक्रेता में से कोई भी असंतुष्ट रहे, तो इसकी अपील एसोसिएशन की अपील-कमेटी में की जा सकती है। परंतु अपील की सुनवाई तभी होती है, जब इसकी इत्तिला फ़ैसले के २४ घंटे के भीतर दे दी जाय। इस कमेटी के फ़ैसले पर भी यदि कोई क्रेता-विक्रेता यह समझे कि उसके साथ अन्याय हो रहा है, तो इस अपील की अपील भी एसोसिएशन के संचालक मंडल (Board of Directors) में की जा सकती है। प्रत्येक ख़रीदार को वादे के अपने प्रत्येक सौदे के माल की डिलीवरी कंट्रैक्ट के नियमों के अनुसार तब तक लेनी ही पड़ती है, जब तक उसने वही वादा उसके सामने किसी अन्य व्यापारी को न बेच दिया हो, और इस दशा में उसके एवज़ में टेंडर किए हुए माल की डिलीवरी सबसे अंतिम ख़रीदार को लेनी पड़ती है। वह तो तब केवल बीच की पार्टी रह जाता है, जिसका काम प्राप्त ऑर्डर को अपने ख़रीदार को सौंप देना-भर रह जाता है।

उपर्युक्त वादे के सौदों के इतने सूक्ष्म नियमों से बँधे हुए होने पर भी सहज ही हमारे मन में यह शंका हो सकती है कि मिलवाले इनका उपयोग रुई की ख़रीद के लिये क्यों नहीं करते। यह बात सच है कि इसके कंट्रैक्ट में एक निश्चित ग्रेड एवं स्टेपलवाली रुई का कंट्रैक्ट किया जाता है। परंतु उपनियमों के अनुसार माल टेंडर करने के अधिकार इतने विस्तृत बना दिए गए हैं कि साधारण समयों में लिवरपूल में हर समय रहनेवाले रुई के स्टॉक में से ६० प्रतिशत के लगभग रुई टेंडर की जा सकती है। फलतः मिलवाले को इस रुई में लो मिडलिंग से मिडलिंग फ़ेयर के ग्रेड तक की और १$\frac{1}{8}$ इंच लंबाई तक की सब प्रकार की रुई लेने को बाध्य होना पड़ता है। यह विभिन्न प्रकार की रुई उसके उपयोग में सारी-की-सारी नहीं आ सकती। और, यह तो कथित ही होता है कि टेंडर किए हुए वादे के माल में इच्छित रुई प्राप्त हो जाय। इसीलिये वे लोग 'वादे' की रुई नहीं ख़रीदते, वरन् इसके भावों के आधार पर कुछ बत्थी देकर जिस जाति की रुई की उन्हें ज़रूरत होती है, वह ख़रीद लेते हैं। यह भाव की बत्थी लिवरपूल में जाति-विशेष की रुई के स्टॉक पर निर्भर है।

गत २-३ वर्षों में 'वादे' के भावों से फ़ुली मिडलिंग जाति की रुई १० से ७५ पाइंट तक ऊँची बिकी थी। परंतु इस माल के वादे के सौदों में टेंडर करने से उन्हें वह बत्थी मुजरे नहीं मिल सकी। अस्तु, लोगों ने इसे हाज़िर के बाज़ार में बेचकर लाभ उठाया, और कंट्रैक्ट में वह रुई देने की योजना की, जिसको माँग बाज़ार में ताक़ीद की हुई थी। परिणाम यह हुआ कि फ़ुली मिडलिंग के अलावा सब जातियों की रुई की माँग उपस्थित हो गई, जिससे बाज़ार की बराबर मज़बूती रही। अस्तु, अब कोई विक्रेता हाज़िर में ऊँचे दाम पाने के इरादे से माल डिलीवर देना न चाहे, तो उसके लिये यही अच्छा होता है कि वह मौजूदा महीने का वादा पीछा ख़रीद कर ले, और इसके बजाय किसी आगामी महीने का वादा बेच दे।

व्यवहार में ऐसा देखा गया है कि वादा ख़रीदनेवालों में माल की डिलीवरी लेनेवालों की ही संख्या अधिक रहती है। वादा ख़रीद लेने से उन्हें अपना इच्छित माल उस जाति के हाज़िर के भावों से सस्ता मिल जाता है। पक्षांतर में वादा बेचनेवालों में ऐसे विक्रेता थोड़े ही होते हैं, जो पाव पेनी बत्थी का लोभ संवरण कर सकें। इसी स्थिति का परिणाम यह होता है कि रुई के खपानेवाले ख़रीदार वादा ख़रीदना पसंद करते हैं।

वादों के सौदों के उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि इनमें और डिफ़र्ड डिलीवरी आदि कंट्रैक्टों में एक ख़ास अंतर होता है। दोनों ही प्रकार के कंट्रैक्ट 'अमुक अवधि के पश्चात् माल देने' की शर्त से किए जाते हैं। परंतु इन पिछले के कंट्रैक्टों में दिए जानेवाले माल की क़िस्म एवं तार की लंबाई निश्चित रहती है। वादे के सौदों की भाँति इनमें तीन जातियों तक का माल डिलीवर नहीं दिया जा सकता, और न इनका आधार (Basis) फ़ुली मिडलिंग फ़ेयर स्टेपल जाति की अमेरिकन रुई ही होती है। इनके अलावा भी एक और ख़ास अंतर इन वादों के सौदों में और हाज़िर अथवा डिफ़र्ड डिलीवरी अथवा सी० आई० एफ़० की शर्त पर बेची गई रुई के कंट्रैक्टों में होता है। वह यह है कि वादे के सौदे के भाव-फ़र्क़ का भुगतान लिवरपूल में साप्ताहिक हुआ करता है। प्रति सोमवार को सुबह ११ बजे एसोसिएशन की भाव की कमेटी (Arrival Quotation Committee) वादे के प्रत्येक महीने के सौदे के भाव छापकर एसोसिएशन के बोर्ड पर लगा देती है। शनिवार तक के जितने वादे के सौदे खड़े हों, उनका इस भाव से हानि-लाभ का भुगतान कर देना सदस्यों के लिये अनिवार्य है। यह भुगतान सब-क्लियरिंग हाउस के द्वारा लिया-दिया जाता है। और, इस-के लिये गुरुवार को दोपहर तक जितनी हानि चुकानी हो, वह क्लियरिंग हाउस में भर देनी पड़ती है। लेनी-देनी (Profit and Loss) में वादे के शेष दिनों का व्याज ५) प्रति सैकड़ा प्रति वर्ष के हिसाब से मुजरे दिया जाता है। प्रत्येक महीने की १०वीं तारीख़ उस महीने के वादे की ड्यू डेट (Due date) मानी जाती है। ११ महीने का वादा साथ-साथ चलता है। जब वादे का महीना आवे, और माल टेंडर किया जाय, तो टेंडर की तारीख़ ही माल के बीजक की तारीख़ गिनी जाती है।

इस साप्ताहिक भुगतान का मुख्य हेतु यह है कि क्रेता-विक्रेता, दोनों ही की हानि-लाभ की ज़िम्मेदारी केवल एक सप्ताह की घटा-बढ़ी के हेर-फेर में रह जाय। अन्यथा हानि-लाभ वादा ख़तम होने पर ही दिया जा सकता है। सौदा चाहे किसी का हो, परंतु वह केवल लिवरपूल-कॉटन एसोसिएशन के सदस्यों के बीच ही खड़ा रह सकता है। ये सदस्य ही परस्पर हानि-लाभ देने के ज़िम्मेदार रहते हैं। दलालों का अपने व्यापारियों से हानि-लाभ लेने का पृथक् बंदोबस्त रहता है। उनका व्यापारी चाहे क्लियरिंग का भुगतान समय पर उन्हें दे, अथवा नहीं; परंतु उन्हें अपना भुगतान नियत दिन पर क्लियरिंग हाउस में भर देना पड़ता है, अन्यथा वे डिफ़ाल्टर अथवा दिवालिए क़रार दे दिए जाते हैं। इसके भी नियम बने हुए हैं। जहाँ तक कि इस एसोसिएशन के सदस्यों के पारस्परिक संबंध से तअल्लुक़ है, वे दोनों बहैसियत ख़ुद के सौदा करनेवाले माने जाते हैं, और ऐसे सौदों के हानि-लाभ के लिये वे ही अन्य सदस्यों के सामने ज़िम्मेदार रहते हैं।

वादे के सौदों और वादे की डिलीवरी आदि के सौदों की परिभाषा एवं विभिन्नता ऊपर दिखाई जा चुकी है। साथ ही यह भी बताया जा चुका है कि ये सौदे डिफ़र्ड डिलीवरी आदि सौदों से कितने और कैसे पृथक् हैं। अब हमें यह देखना है कि ये वादे के सौदे रुई के भावों की घटा-बढ़ी से होनेवाली हानि-लाभ से रक्षा करने के लिये किस प्रकार प्रयुक्त किए जा सकते हैं? कैसे कोई व्यापारी अथवा मिल-मालिक व्यापार करने में भावों की घटा-बढ़ी का हिसाब लगाए बिना ही थोड़े से मुनाफ़े पर व्यापार करने की हिम्मत कर सकता है? इस प्रकार हानि-लाभ से रक्षा करने को अँगरेज़ी में हेजिंग कहते हैं, और इसीलिये फ़्यूचर्स के सौदे हेज कंट्रैक्ट भी कहे जाते हैं। इनका यह प्रयोग समझने के लिये हमें एक उदाहरण लेना ठीक होगा। कल्पना कीजिए, लिवरपूल के किसी व्यापारी को अक्टोबर में अमेरिका से १०० गाँठ रुई की फ़ुली मिडलिंग जाति अच्छे रंग और फ़ेयर स्टेपल की तुरंत चढ़ाई जाने की दर १२ पेंस प्रति पौंड सी० आई० एफ़० की ऑफ़र मिली है। अब मान लीजिए कि जहाज़ से उतारकर गोदाम में माल रखने तक का ख़र्च पाव पेनी प्रति पौंड और पड़ जाता है। सब मिलाकर ये १०० गाँठें उसे १२¼ पेनी प्रति पौंड में आकर पड़ेंगी। अब इसी भाव में यह हाज़िर में यदि बिक जाय, तो उसे हानि नहीं रहेगी। परंतु अक्टो-बर का चला हुआ माल जब तक लिवरपूल पहुँचे, तब तक बाज़ार यदि गिर जाय, तो उसे हानि उठानी पड़ेगी। अब कल्पना कीजिए, यदि यह व्यापारी जनवरी का वादा १२½ पेनी प्रति पौंड के भाव में बेच पावे, तो फिर उसे हानि उठाने का किसी प्रकार का डर नहीं रह

सकता ; क्योंकि इस महीने में वह अपना हाज़िर माल डिलीवरी दे सकता और सौदा पूरा कर सकता है। दोनों का ख़रीद-बिक्री का भाव एक ही है। पक्षांतर में वह व्यापारी इस बात का भरोसा रख सकता है कि हाज़िर माल वादे के भावों से कुछ-न-कुछ बत्थी में अवश्य बिक सकेगा। अब उसे कोई ख़रीदार इस रुई का ऐसा मिले, जो जनवरी के वादे के भाव से पाव पेनी प्रति पौंड बत्थी देने को तैयार हो, तो वह हाज़िर माल 'टु अराइव' आदि किसी शर्त पर बेचकर जनवरी का वादा पीछा ख़रीद कर लेगा, और इस प्रकार ५० पौंड का सुरक्षित लाभ कमा सकेगा। पहले तो यह मान लीजिए कि बाज़ार में इस अर्से में कुछ भी घटा-बढ़ी नहीं हुई है। इस दशा में जनवरी का वादा तो उसको पीछा १२$\frac{1}{2}$ पेनी प्रति पौंड में ही मिल जायगा। परंतु उसकी रुई १२$\frac{3}{4}$ पेनी पौंड में बिकेगी, और इस प्रकार प्रति पौंड चौथाई पेनी बढ़ती के हिसाब से १०० गाँठों में, जिनका वज़न ४८,००० पौंड के लगभग होगा, उसे ५० पौंड मुनाफ़ा रह जायगा। पक्षांतर में यदि बाज़ार एक पेनी तेज़ चला जायगा, तो उसको जनवरी का वादा १३$\frac{1}{2}$ पेनी में पीछा मिलेगा। परंतु हाज़िर गाँठ के दाम भी १३$\frac{3}{4}$ पेनी मिलेंगे; क्योंकि वह माल जनवरी के भावों से बढ़ती की शर्त पर बेचा गया है। इस प्रकार वादे का १ पेनी प्रति पौंड का हानि हाज़िर माल की बिक्री के १ पेनी प्रति पौंड के लाभ से पूरी हो जायगी। इसी प्रकार १ पेनी प्रति पौंड की बाज़ार में मंदी आने पर उसे जनवरी का वादा १ पेनी मंदा मिलेगा। परंतु हाज़िर माल भी ११$\frac{3}{4}$ पेनी में ही बिकेगा। अस्तु, वादे का १ पेनी प्रति पौंड का लाभ हाज़िर माल की १ पेनी प्रति पौंड की हानि पूरी कर देगा, अर्थात् हरएक दशा में उसका लाभ उसे मिल ही जायगा, और हानि का रंच-मात्र भी भय नहीं रहेगा। पक्षांतर में यदि यह व्यापारी वादा बेचकर अपने को सुरक्षित न करता, तो उसकी गर्दन पर बाज़ार के भाव की तलवार हर घड़ी लटकती रहती, जिससे न-जाने कब उसे हानि हो जाती।

इस प्रकार की जोखिम के संबंध में एक बात यह भी है कि प्रत्येक जोखिम वहीं रहने की चेष्टा करती है, जहाँ वह आसानी के साथ उठाई जा सकती है। कई बातों की जोखिम तो स्वयं किसान उठाते हैं, कुछ कपड़े के खुदरा व्यापारी भोगते हैं, और शेष की जितनी जोखिम बचती है, वह लिवरपूल के रुई के बाज़ार के व्यापारी अपने ऊपर ले लेते हैं। रुई की आयात करने और वादा बेचने की जोखिम का सारा भार या तो उन तारुणी करनेवालों के सिर रहता है, जिन्होंने इसको अपनी आजीविका का साधन बना रक्खा है, अथवा उन सटोरियों के सिर, जो बरजानी मर-जानी-सा आँख मींचकर धंधा करते हैं।

अब ज़रा मिलवालों का विचार कीजिए कि वे इस वादे के बाज़ार का किस प्रकार हानि-लाभ से बचने के लिये उपयोग कर सकते हैं। सूत अथवा कपड़ा बेचते समय यदि मिलवालों का जैसी चाहिए, वैसी रुई न मिले, अथवा वे उस समय न ख़रीदना चाहें, तो वे इसके बजाय उतना ही वादा ख़रीद कर सकते हैं। और, इस प्रकार ऊपर बताए हुए उदाहरण की भाँति आगे होनेवाले भावों की घटा-बढ़ी से अपने को सुरक्षित रख सकते हैं। यदि वे इसी प्रकार महीने महीने की डिलीवरी का सूत अथवा कपड़ा आज इकट्ठा बेच दें, परंतु इनके एवज़ में रुई की उस समय ख़रीद न करें, तो वादा ख़रीद कर सकते हैं। भविष्य में जब उन्हें अपने मन की रुई मिले, अथवा बाज़ार ठीक जँचे, तब वादा बेचकर रुई ख़रीद सकते हैं।

यह वादे का बाज़ार-भावों की घटा-बढ़ी से रक्षा करने का काम तो कर देता है, परंतु इसी भाँति इसके द्वारा 'बत्थी' के घटने-बढ़ने से रक्षा नहीं की जा सकती। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भिन्न-भिन्न जातियों एवं तारों की रुई वादे के भावों से 'बत्थी' अथवा 'बट्टे' (Points on, & Points off) की शर्त पर बेची जाती है। यह बत्थी अथवा बट्टा जाति विशेष की रुई की आय एवं खपत पर निर्भर है। जाति-विशेष की रुई की पैदावार कम होने पर इसके भाव दुष्काल की-सी ऊँचाई को पहुँच सकते हैं। इसी प्रकार यह बत्थी बट्टे में भी परिवर्तित हो सकती है। सिवा अपनी विवेचना-शक्ति एवं दूर-दर्शिता के इससे बचने का और कोई उपाय है ही नहीं।

इस विवेचन एवं विस्तृत उपयोग के कारण यह अत्यंत आवश्यक है कि वादे के सौदे पूरी छूट के साथ किए जा सकें। इनका बाज़ार एकदम खुला (Free market) हो। इसी के लिये यह आवश्यक है कि इस बाज़ार में तारुणीवाले (Jobbers) रहें, जो हर घड़ी हरएक वादा

लेने अथवा बेचने को तैयार रहें। कभी-कभी बाज़ार में सटोरियों की धूम से ऐसी उथल-पुथल हो जाया करती है कि लोग इसकी बुरी तरह टीका करने लगते हैं। परंतु वे टीका करते समय यह भूल जाते हैं कि ऐसी स्थिति अस्थिर ही होती है। अमेरिका का 'पाक' प्रति वर्ष ३५ से ४० करोड़ पौंड याने ५ से ६ अरब रुपयों का होता है। इस दशा में किसी की ताब नहीं हो सकती कि इतना माल ख़रीदकर खेला कर ले और जीत जाय।

अब हम इस लेख को, मैंचेस्टर-गार्जियन से एक अंश इस विषय का उद्धृत कर, यहीं समाप्त करते हैं। आशा करते हैं, हमारे पाठकगण इससे लाभ उठावेंगे।

"लगभग १६४ वर्ष से लिवरपूल रुई की आयात कर रहा है। ३१ वर्षों से तो इसकी भिन्न-भिन्न एवं विस्तृत प्रगति लिवरपूल-कॉटन एसोसिएशन में केंद्रीभूत हो गई है। इस लंबी अवधि में बहुसंख्यक मस्तिष्कों ने रुई-संबंधी पत्रों एवं तारों की रचनाएँ की हैं। हज़ारों शिपमेंट लिवरपूल में उतरे हैं। करोड़ों गाँठें इधर-उधर हुई हैं। अगणित टेंडर किए जा चुके हैं, और उन पर क्लेम वग़ैरह तय हो चुके हैं। कई घर बिगड़ तथा बन गए हैं। बड़े-बड़े व्यक्ति, जो कभी मंडियों द्वारा यह व्यापार करते थे, इस संसार को छोड़कर चल बसे हैं। कहाँ तक कहें, पीढ़ियाँ बीत चुकीं। परंतु रुई कभी दीवाली नहीं हुई। कहा जाता है, एक बार यह बिलकुल ही पैदा नहीं हुई थी। आज भी यह हमारे तन को ढकने के लिये सबसे सस्ती चीज़ है, और जैसे-जैसे इसकी आवश्यकता बढ़ती जाती है, वैसे-ही-वैसे इसकी पैदावार भी बढ़ रही है। समाज की नींव में यह गुँथी हुई है। मनुष्य के भाग्य के साथ भी यह बट रही है। इसने अपनी एक विशेष सभ्यता जमा की है। पीढ़ियों का संचित धन इसमें खिंच आता है। संसार के ऊँचे-से-ऊँचे मस्तिष्क भी इसमें आ जुटते हैं।"

कस्तूरमल बाँठिया

पाश्चात्य विद्वानों का पूर्वी साहित्य से प्रेम

"चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।" इस नियम से किसी वस्तु का सदैव एक ही रूप धारण किए रहना कठिन ही नहीं, वरन् असंभव है। कोई दिन था, जब हमारे यहाँ के ऋषि, मुनि तथा आचार्य लोगों ने अपने संपूर्ण सांसारिक आनंद को तिलांजलि दे बड़े-बड़े ग्रंथों की रचना की थी। फिर कुछ समय के उपरांत यह देखने में आया कि उन्हीं ग्रंथों ने, ईंधन-रूप में, यवन-आक्रमणकारियों की सेवाएँ कीं। धन्य है उस जगन्नियंता को, जिसने इतने घोर अत्याचार होने पर भी उन ग्रंथों को एकबारगी ही इस भारत-भूमि से लुप्त नहीं होने दिया। इससे मालूम होता है कि उसे भारत का प्राचीन गौरव नष्ट करना इष्ट नहीं है।

तप्त अंगारों पर राख जमने पर जैसे वे निस्तेज हो जाते हैं, ठीक वैसी ही दशा हमारे यहाँ के रहे-सहे ग्रंथों की हो गई, अर्थात् वे नींव आदि के नीचे दबा दिए गए। इस तरह हमारे पूर्वी साहित्य का एक प्रकार से लोप ही हो गया। फिर इसी समय पाश्चात्य रवि रश्मि ने अपना प्रकाश फैलाया। उन अंगारों के ऊपर की राख हटाने का श्रेय इन्हीं पाश्चात्यों को है। आज भी हम प्राचीन ग्रंथों की खोज के लिये अपनी गवर्नमेंट द्वारा स्थापित एक प्रशस्त खोज-विभाग पाते हैं, जो अपना काम टुटरूँ-टूँ चलाए आ रहा है, और "टूटो हाथी, फिर भी नव लाख"-वाली कहावत की तरह अब भी हम लोग उसी बची-खुची पूँजी द्वारा "तृणवन्मन्यते जगत्" को ही चरितार्थ करते हैं। विशेष क्या कहें, यहाँ हम अपनी कृति न कहकर थोड़े में उन्हीं पाश्चात्य नर-पुंगवों का परिचय देना चाहते हैं, जिन्होंने हमारी ऐसी पूर्वी विद्या को अपनाकर समुचित गुणग्राहकता का परिचय दिया और साथ ही अपने देश को भी गौरवान्वित किया है।

पाश्चात्य देश के सर विलियम जोंस का नाम भारत के पठित-समाज में छिपा नहीं है। यह संस्कृत, अरबी

तथा फ़ारसी के एक बड़े प्रसिद्ध पंडित हो गए हैं। बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना करनेवाले यही महाशय हैं। यद्यपि इनके पहले भी कई योरपियनों ने थोड़ी-बहुत संस्कृत सीखी थी, पर इनकी तरह कठिनाइयाँ झेलकर विद्या सीखे, ऐसा कोई न निकला। एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना कर इन्होंने इस देश में एक आदरणीय कार्य किया है। अब तक कई एक अलभ्य प्राचीन ग्रंथ इसी सोसाइटी की बदौलत प्रकाशित हो चुके हैं, और अनेक अज्ञातपूर्व कला-कौशल की बातें भी सीखने में आई हैं। यदि सर विलियम जोंस संस्कृत सीखकर बहुत-से ग्रंथों का अनुवाद न करते, तो संस्कृत-भाषा तथा उसके साहित्य का मूल्य योरपियन विद्वानों पर शीघ्र प्रकट न होता।

सर विलियम जोंस स्वभाव से ही तीव्र बुद्धि के थे। पाठशाला में ग्रीक-भाषा सीखते हुए यह अपने सहपाठियों से अभ्यास में सदैव आगे बढ़े रहते थे। त्योहारों की छुट्टी भी फ्रेंच और लैटिन-भाषा के सीखने में बिता देते थे। सन् १७६४ में इन्होंने ऑक्सफ़ोर्ड-युनिवर्सिटी को अपने कुछ गुणों का परिचय दिया। नवयुवक, विचारवान् एवं उत्साही होने के कारण यह विद्याभ्यास में सदैव दत्तचित्त रहा करते थे। इनकी प्रकृति में यह भी वैचित्र्य था कि यह केवल कॉलेज की पाठ्य-पुस्तकों का ही कीड़ा होना पसंद न करते थे। यह नवीन पुस्तकों और कलाओं की खोज में भी तत्पर रहा करते थे। वनस्पति-शास्त्र में इनकी हार्दिक रुचि थी। खेल-कूद में भी इनका बहुत चित्त लगता था; क्योंकि यह घोड़े की सवारी और नाच आदि करने के लिये सदा तैयार रहा करते थे। जब कि यह विश्वविद्यालय ही में रहे, तभी इनसे अलेप्पो-नगर से आए हुए एक शामी (सीरियन) से जान-पहचान हो गई। उससे इन्होंने अरबी-भाषा का अभ्यास आरंभ कर दिया, और ज्यों-त्यों करके लंदन में पहुँचते ही उसका उच्चारण भी ठीक कर लिया। सर विलियम की सहायता से उसने ऑक्सफ़ोर्ड में किसी तरह अपने दिन बिताए। पर वहाँ से निकलने पर फिर भी सर विलियम ने उसकी सहायता के लिये बड़ा यत्न किया; क्योंकि पूर्वी मनुष्य के साथ उनका यह प्रथम परिचय या सम्मिलन था। इसके बाद ही इनका ध्यान फ़ारसी, हिब्रू, स्पैनिश तथा पोर्चुगीज़ की ओर गया। ऑक्सफ़ोर्ड छोड़ने पर इनका परिचय रेवज़्की नाम के एक परदेशी अमीर से हो गया, जो अपने मुसद्दीपने के साथ ही साथ पूर्वी भाषाओं में भी अत्यंत श्रद्धा और प्रेम रखता था। सर विलियम और यह परदेशी, दोनों परस्पर पत्र-व्यवहार में कभी लैटिन और कभी फ्रेंच-भाषा का उपयोग करते रहे। सर विलियम ने अपने प्रथम पत्र में ही इस बात को बहुत ज़ोर देकर लिखा है कि "मैं अत्यंत बाल्यावस्था में ही ग्रीक (यूनानी)-काव्य की मोहिनी शक्ति पर मुग्ध हो गया था; पर अब मैं भली भाँति यह कह सकता हूँ कि अरबी तथा फ़ारसी-कवियों की शक्ति उनसे कहीं बढ़कर है।"

सन् १७७० में इन्होंने बैरिस्टरों की परीक्षा चलाई। बर्क साहब के बंगाल बिल के समय इनकी बड़ी चर्चा हुई है। सबसे पहले इन्हीं ने ही उसे परखा। अंत में, १७८३ ई० में, सर विलियम ही फ़ोर्ट-विलियम की बड़ी कचहरी के न्यायाधीश नियुक्त किए गए, और उसी समय सर और नाइट की पदवी से भी विभूषित हुए। इस समय इनकी अवस्था सैंतीस वर्ष से कुछ ऊपर थी। हिंदोस्तान में बहुत दिन तक हिंदोस्तानी भाव से रहकर इन्होंने बहुत ही आनंद प्राप्त किया। वारेन् हेस्टिंग्ज़, जो फ़ारसी और बँगला-भाषा से परिचित था, सर विलियम के संस्कृत-अभ्यास के विचार और उद्योग को जानकर बहुत प्रसन्न हुआ। अब क्या था, लोगों से प्रशंसा सुनकर सर विलियम ने शीघ्रता-पूर्वक संस्कृत सीखना आरंभ कर दिया।

सर विलियम ने हिंदोस्तान में आने के पहले ही कुछ हिंदी सीख ली थी। उसी से यहाँ पर आते ही अपने नौकर-चाकरों से बोलने का काम चलाने लगे। इसके बाद उनको संस्कृत जानने की उत्कंठा हुई। इसके लिये इन्हें एक संस्कृत के पंडित की खोज करनी पड़ी; क्योंकि वह समय आजकल का-सा न था। कोई भी ब्राह्मण वेद तथा शास्त्रों की पवित्र संस्कृत-भाषा एक यवन तथा म्लेच्छ को सिखाने के लिये राज़ी न होता था *। आजकल के पंडित तो यवनों तथा म्लेच्छों की

* यही विवाद काशी राजकीय संस्कृत-कॉलेज की स्थापना के पश्चात् उसमें अध्यापक नियुक्त करने के समय उपस्थित हुआ था। कितने ही पंडितों ने तो जबरदस्ती किए जाने के भय से संन्यास ही धारण कर लिया था।—लेखक

चरण-रज स्पर्श करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं, इसी से ऊँची से ऊँची आचार्य परीक्षा पास करने पर भी २०-२५ रुपयों पर इधर-उधर जूतियाँ चटखाया करते हैं। अस्तु। कृष्णनगर के महाराज शिवचंद्र सर विलियम के परम मित्र थे। उन्होंने इसके लिये बहुत यत्न किया; पर सब व्यर्थ हुआ। उनके कहने पर लोग यही कह उठते— "संस्कृत शिक्षा, यवन को! शिव-शिव!"

सर विलियम के भारी वेतन देने का लोभ दिलाने पर भी किसी ने इसको स्वीकार न किया। साहस करके दो-एक पंडितों ने इनके पास जाकर वेतनादि की बात पूछी। पर यह बात छिप न सकी और उनके पड़ोसियों ने उनसे बड़ी घृणा के साथ कहा—"क्या तुम लोग यवनों के हाथ हमारी पवित्र देववाणी बेचोगे? ठीक है. जाओ आज से तुम लोग जाति और भाई-बंधुओं के वर्ग से पृथक् किए गए! तुम्हारे हाथ का जल भी स्पर्श न किया जायगा।"

इस प्रकार का शिष्टाचार किए जाने से उन पंडितों का उत्साह ठंडा पड़ गया, और फिर कभी उन लोगों ने सर विलियम के दरवाज़े पैर नहीं रक्खा। उनके सिवा और किसी ने भी बंगाल में सर विलियम के पास जाने का साहस नहीं किया। "अब क्या करना चाहिए। कलकत्ते से न हो सका, तो किसी अन्य स्थान से इसका प्रबंध हो जाय, तो अच्छा हो"। इतना मन में विचार कर विलियम साहब संस्कृत के विख्यात केंद्रस्थान—नवद्वीप—में पहुँचे। वहाँ भी इसके लिये बहुत यत्न किया; पर किसी ने भी अंगीकार नहीं किया। जो हो, इन्होंने अपनी आशा नहीं छोड़ी: अंत को ब्राह्मण तो नहीं, पर वैद्य-जाति के एक पंडित को १००) रु० मासिक पर नियुक्त किया। इनका नाम पं० रामलोचन कविभूषण था। यह पंडितजी महाराज संसार में एकाकी ही थे; न इनके स्त्री थी, न कोई संतति। हव ? के पास इनका निवास-स्थान था। इनका किसी के साथ कोई संबंध भी न था। इसी से यह सर्वथा निर्भय और स्वच्छंद थे। यह वैद्यक भी जानते थे, इसीलिये अड़ोस-पड़ोस के लोग औषध और चिकित्सा आदि के लिये इनको बुलाया करते थे। कभी-कभी इनके यहाँ बहुत-से रोगी भी आते थे। इससे इन्होंने निश्चय कर लिया कि हम यवन को संस्कृत सिखलाते हैं, यह देखकर भी हमें कोई छोड़ दे, ऐसी बात नहीं हो सकती। औषध की आवश्यकता पड़ने पर उनके यहाँ सभी आते थे। उनको बड़ा आराम था। एक तो १००) रु० महीना, दूसरे सलकिया से चौरंगी तक मुफ़्त पालकी की सवारी। उस समय पालकी में कम-से-कम ३०) रु० मासिक व्यय पड़ता था।

पंडितजी ने विलियम साहब से बड़ी-बड़ी शर्तें कराई थीं, और अत्यंत उदार होने के कारण सर विलियम ने सभी शर्तों को स्वीकार भी कर लिया था। पहले उनके बँगले के नीचेवाले खंड में, शिक्षा देने के समय बैठने के लिये, एक कमरा पसंद किया गया। उस कमरे के फ़र्श पर संगमरमर लगाया गया। एक हिंदू नौकर रक्खा गया, जिसके ज़िम्मे शिक्षण के ऊपरी आवश्यक कार्य सौंपे गए। उसको हुगली-नदी से जल लाकर कमरे का फ़र्श और थोड़ी दूर तक दीवार भी धोनी पड़ती थी। दो-चार लकड़ी की कुर्सियों तथा एकआध टेबिल के सिवा कमरे की सब वस्तुएँ निकालकर बाहर रख दी जातीं। लकड़ी की मेज़ तथा कुर्सियाँ भी प्रतिदिन अवश्य ही धोई जातीं। पढ़ने का समय आ जाने पर एक सवार उनके यहाँ समय की सूचना दे जाता। सर विलियम के विनय करने पर, पाठ-प्रारंभ करने के पूर्व, केवल एक प्याला चा पीने की ही पंडितजी ने उन्हें अनुमति दी थी। कविभूषणजी की आज्ञा थी कि किसी प्रकार का भी मांस घर-भर में न आने पावे। सर विलियम ने इसे मंजूर कर लिया। एक कोठरी पंडितजी को कपड़ा बदलने के लिये दे दी गई। यह भी धोकर साफ़ की जाती थी। पंडितजी ने दो जोड़े कपड़े रक्खे थे, उनमें एक जोड़ा इस कोठरी में रहता था। प्रतिदिन सबेरे जिस कपड़े को पहनकर पंडितजी साहब के यहाँ आते, उसको इसी कोठरी में छोड़ जाते, और वहाँ के रक्खे हुए दूसरे कपड़े पहनकर पढ़ाने बैठते। जाते समय पहना हुआ कपड़ा पूर्वस्थान में रखकर रक्खे हुए वस्त्रों को पहनकर तब यहाँ से जाते।

इतने सुप्रबंध (बखेड़े) के बाद सर विलियम ने 'रामः, रामौ, रामाः' प्रारंभ किया। न तो सर विलियम संस्कृत जानते थे, और न पंडितजी अँगरेज़ी। पठन-पाठन हो, तो कैसे हो? बात इतनी अच्छी थी कि साहब थोड़ी-बहुत टूटी-फूटी हिंदी बोल लेते थे। इसी के सहारे पाठ प्रारंभ हुआ। भाग्य से गुरु तथा शिष्य, दोनो ही बुद्धिमान् थे; नहीं तो इतनी हिंदी से यह काम आगे न चलता। सर विलियम ने बड़ा परिश्रम किया, इससे वह एक ही वर्ष में सहज संस्कृत द्वारा अपना मतलब निकाल लेने लगे।

एक दिन सर विलियम और पंडितजी में बातचीत होते-होते नाटक पर आ भिड़ी। संस्कृत में नाटक हैं, यह बात उन्हें अब तक मालूम न थी। पंडितजी से साहब ने 'अभिज्ञान-शाकुंतल' नामक नाटक पढ़ना प्रारंभ कर दिया। उस नाटक पर अत्यंत मुग्ध होकर साहब ने उसका अँगरेज़ी-भाषा में अनुवाद कर डाला। यद्यपि यह अनुवाद मनोहर न हुआ, फिर भी योरपियनों को मंत्रमुग्ध करने के लिये काफ़ी था। जर्मन-कवि गोयटे तो इस अनुवाद को पढ़कर इतना प्रसन्न हुआ कि इसकी प्रशंसा में उसने एक कविता ही रच डाली।

कहा जाता है सर विलियम के यह गुरु महाराज अति उग्र स्वभाव के थे। जो बात सर विलियम समझ न सकते, उसे गुरुजी से पूछ लेते। गुरुजी की पाठ्य-पद्धति पुरानी अथच भिन्न होने के कारण कोई-कोई बात साहब को दो-दो तीन-तीन बार पूछनी पड़ती। एक बार बतलाने से वे बातें समझ में न आतीं, तो दुबारा बतलाते समय गुरुजी का मिज़ाज गरम हो जाता। वह तुरंत ही बोल उठते—"यह विषय बहुत ही कठिन है। ......मांसभक्षियों को यह ठीक-ठीक समझ में आवे, ऐसा असंभव ही देख पड़ती है!" सर विलियम अपने गुरु का बड़ा आदर करते थे, अतः इन सब बातों को हँसी में उड़ा देते थे।

सर विलियम की मृत्यु १७९४ ई० में, हिंदोस्तान ही में, हुई। उन्होंने अरबी, फ़ारसी और संस्कृत की कई पुस्तकों का अनुवाद किया है। सब मिलाकर वह अट्ठाईस भाषाएँ जानते थे। आठ के तो वह पूर्ण पंडित ही थे, जिनमें अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, ग्रीक और लैटिन भी हैं। इसके अतिरिक्त यह रशियन, वेल्स और चीनी भी जानते थे।

सर विलियम के बाद ही, पूर्व की भाषाओं के जानने-वालों में, सर विलियम के चरित्र-लेखक, लार्ड टेनमाउथ का नाम आता है। एक बार इन्होंने, नीचे दी हुई उर्दू-भाषा में, एक शेर की पंक्ति लिखी। किसी मुसलमान कवि ने इसी की पूर्ति में एक दूसरा टुकड़ा कहा। साहब की बनाई सतर यह है—

'दीने-इसलाम घटे, दीने-मसीहा बढ़ जाय।'

[अर्थात्, इसलामी-धर्म घटे, और ईसाई-धर्म की वृद्धि हो।]

इसके उत्तर में एक मौलवी ने नीचे-लिखी हुई शेर की पंक्ति पढ़ी—

'गर बुराक़े-नबी से, ख़रे-ईसा बढ़ जाय!'

[अर्थात्, अगर मुसलमान पैग़ंबर की सवारी बुराक़ घोड़े से ईसाई पैग़ंबर ईसा मसीह की सवारी का गधा बढ़ जाय, तो!]

इनके बाद पूर्वी साहित्य से प्रेम रखनेवाले कई पाश्चात्य विद्वानों के नाम आते हैं; पर स्थानाभाव के भय से आगे हम केवल उन्हीं का उल्लेख करेंगे, जो प्रधान-प्रधान हैं। इनमें पहला नाम जो आता है, वह श्रीमती महा-रानी विक्टोरिया का है।

सन् १८४३ ई० में श्रीमती महारानी विक्टोरिया के पति प्रिंस अलबर्ट ने पूर्वी भाषाओं का अपने देश में प्रचार करने के लिये बहुत प्रयत्न किया था। उन्हें इस बात की कल्पना तक न थी कि मेरी पत्नी ही स्वयं मुग़लों से बख़्शी हुई अरबी, फ़ारसी और संस्कृत से मिली हुई उर्दू-भाषा का उपयोग अपनी दैनिक दिनचर्या में करेंगी।

महारानी के सद्गुणों में नियम का पालन विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसके कारण उन्होंने बिना किसी विघ्न बाधा के इतनी अधिक अवस्था में उर्दू-भाषा सीख ली। उर्दू भाषा सीखने के समय इनकी अवस्था साठ वर्ष की थी। इसे वह एक आवश्यक कर्तव्य समझती थीं, इसीलिये दैनिक राजकीय कामों को देखते और बहुत-से चिंता-जनक कार्यों का भार रहते हुए भी उर्दू का लिखना-पढ़ना बराबर जारी रखती थीं, यहाँ तक कि रोज़-रोज़ की डायरी भी उर्दू ही में लिखती थीं।

सन् १८८८ ई० में ईरान के शाह ने इँगलैंड की सैर की थी। उस समय वह महारानी से भी मिले थे। इस समय की मुलाक़ात को महारानी ने अपने उर्दू भाषा के ही रोज़नामचे में लिखा है, जो लोगों के विनो-दार्थ नीचे दिया जाता है—

"आज का दिन बहुत अच्छा रहा। शाहे-परशिया आज हमारी मुलाक़ात को मय चंद वज़ीरों के आए थे, और खाना भी हमराह खाया, और सवा तीन बजे लंदन वापस गए।"

महारानी ने अपने प्रिय पौत्र ड्यूक ऑफ़ क्लेयरेंस की शोकजनक मृत्यु के विषय में भी अपने रोज़नामचे में लिखा है। वह इस तरह है—

"आज जिस क़दर सदमा और रंज हमको और हमारी औलाद को है, वैसा कभी नहीं हुआ ; क्योंकि हमारे ज्वान नवासे प्रिंस अलबर्ट विक्टर ऑफ़ वेल्स आज नौ बजे फ़जर फ़ौत हो गए।"

श्रीमती महारानी के बेटे ड्यूक ऑफ़ कनाट अच्छी उर्दू में, बड़ी आसानी से, बातचीत कर सकते हैं। यह लगभग दो वर्ष पूर्व भारत में आए थे, और कौंसिल का उद्घाटन किया था। यह हमारे देश में कई बार आ चुके हैं, और यहीं कई पदों पर आरूढ़ रहते हुए अपने जीवन का अधिकांश बिताया है।

हमारे वर्तमान सम्राट् पंचम जार्ज भी हिंदोस्तान में कई बार पदार्पण कर चुके हैं। आप गत योरपियन महासमर के समय, यहाँ से नमक अदा करने के लिये गए हुए सैनिकों से हिंदोस्तानी ही में बातचीत करते थे।

अवस्ता भाषा के प्रवीण प्रोफ़ेसर मिल्स और कोलंबिया युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर जॉक्सन ने ईरान में रहकर बड़ा परिश्रम किया। कैप्टन विलवरफ़ोर्स क्लार्क की उत्तम फ़ारसी-पुस्तकों का अँगरेज़ी-अनुवाद और उसमें विस्तृत रूप से दी हुई टीका भी फ़ारसी सीखने और उसका साहित्य ढूँढ़नेवालों के लिये एक अचूक सहायक है।

हिंदी-भाषा का अच्छी तरह अभ्यास रखने के कारण फ़्रेडरिक पिनकाट का नाम उत्तर-भारत में बहुत प्रसिद्ध है। यह इँगलैंड की डबल्यू० एच० एलेन की पुस्तक-प्रकाशन करनेवाली कंपनी के मैनेजर थे। इन्होंने पहले संस्कृत का अभ्यास ख़ानगी तौर से किया। संस्कृत में अच्छी तरह प्रवेश पा लेने के पीछे इनका मन हिंदी की ओर भी आकृष्ट हुआ। पर सुगम रीति से और जल्दी पत्र-व्यवहार करने के लिये इन्होंने पहले उर्दू ही का अभ्यास किया था। इसके पीछे इन्होंने गुजराती और बँगला सीखी। तैमिल, तैलंगी, मलयालम, कनाड़ी आदि दक्षिणी भाषाओं की तरफ़ भी इन्होंने अपनी सहानुभूति दिखलाई। अंत में उनका सबसे अधिक ध्यान हिंदी ही की ओर था। हिंदी के सुप्रसिद्ध जीर्णोद्धारक और पोषक भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र से उनकी बड़ी घनिष्ठता थी। इनके साथ उनका बराबर पत्र-व्यवहार भी होता था। एक पत्र उन्होंने बाबू साहब को हिंदी-पद्य में लिखा था, जो उनके हिंदी भाषा के ज्ञान का परिचायक है—

"वैश्य वंश-अवतंस, श्रीबाबू हरिचंदजू ;
छीर-नीर-कलहंस, टुक उत्तर लिखि देहु मोहि।
पर-उपकार में उदार अवनी में एक,
भाषत अनेक यह राजा हरिचंद हैं ;
विभव, बड़ाई, वपु, वसन, विलास लखि,
कहत इहाँ के लोग बाबू हरिचंद हैं।
चंद जैसी अमिय अनंदकर भारत को,
कहत कबिंद यह भारत को चंद हैं ;
कैसे अब देखें, को बतावे, कहाँ पावैं हाय,
कैसे उहाँ आवैं हम कोई मतिमंद हैं।
श्रीयुत सकल कबिंद कुल-नुत बाबू हरिचंद,
भारत-हृदय सतार नभ, उदय रहो जनु चंद।"

हिंदोस्तान के मुज़फ़्फ़रनगर में जन्मे हुए, पर योरप ही में शिक्षा-दीक्षा पानेवाले जर्मनी की गार्टिंजन और इँगलैंड के ऑक्सफ़ोर्ड-युनिवर्सिटी में ऊँचा पद प्राप्त करनेवाले प्रोफ़ेसर मैकडॉनेल्ड का नाम अत्यंत प्रसिद्ध है। वैदिक साहित्य में इनके द्वारा बहुत बड़ी खोज हुई है। इनकी दो पुस्तकों को यहाँ की युनिवर्सिटियों ने भी अपनी पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित किया है, जिनमें एक है संस्कृत का व्याकरण, और दूसरी संस्कृत भाषा का इतिहास। बॉन फिराट और मैक्समूलर ही इनके वेदों की शिक्षा देनेवालों में हैं।

मैक्समूलर साहब जर्मन और काशी के क्वींस कॉलेज के प्रधानाध्यापक थे। संस्कृत के पूर्ण विद्वान् होने के कारण, अन्यान्य संस्कृत-पुस्तकों का अनुवाद करते हुए, इन्होंने वेदों का भी अनुवाद किया है।

मि० ग्रिफ़िथ भी संस्कृत के एक बड़े विद्वान् थे। इन्होंने वाल्मीकीय रामायण का पद्य-बद्ध अनुवाद किया है।

मि० ग्राउज़ ने तुलसी-कृत रामायण का अँगरेज़ी-गद्य में अनुवाद किया है।

डॉक्टर वेनिस भी काशी के क्वींस कॉलेज के प्रिंसिपल थे। यह भी संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान् थे। अभी इनकी मृत्यु को हुए सात वर्ष के लगभग हुए होंगे।

यहीं के एक पादरी मि० जॉनसन—जिन्हें गत हुए अभी तीन ही वर्ष हुए होंगे—संस्कृत के बड़े ही रसिक थे।

जिसको वह संस्कृत का अच्छा ज्ञाता समझ लेते थे, उसके पास जाकर वह घंटों संस्कृत में वार्तालाप किया करते थे।

प्रोफ़ेसर ई० जी० ब्राउन का नाम आज भी फ़ारसी और अरबी भाषाओं के प्रसिद्ध ज्ञाताओं में गिना जाता है। उन्होंने वैद्यक की शिक्षा ग्रहण कर एम्० बी० की परीक्षा पास की थी; पर यह व्यवसाय नहीं किया। पूर्वी भाषाओं ने इन पर ऐसी मोहिनी डाली कि इन्होंने अरबी और फ़ारसी भाषा की प्रोफ़ेसरी स्वीकार कर ली। इन्होंने कई बार ईरान की यात्रा की, और इसी कारण ईरान और ईरानियों के प्रति मान और प्रेम इनके हृदय में विशेष रूप से बना रहा। फ़ारसी भाषा का पंडित होने के कारण इनका नाम सर्वमान्य है। इनकी ईरान की यात्रा-संबंधी, ईरान के अन्यान्य विषयों पर और फ़ारसी के इतिहास-संबंध में दो बृहत् पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं।

पूर्वी भाषाओं के वर्तमान अभ्यास करनेवालों में पूर्व-खानदेश के लोकप्रिय कलेक्टर मि० ओटो रॉथफ़ील्ड का नाम स्मरणीय है। सिविलियनों के लिये नियत फ़ारसी-भाषा का कोर्स उन्होंने सम्मान-पूर्वक पास किया था। इन्होंने फ़ारसी-भाषा अच्छी तरह जानने के लिये ईरान से मौलवी बुलवाया था। यह बहुत शीघ्रता-पूर्वक फ़ारसी लिख और बोल सकते हैं। गुजराती-भाषा पर तो इन्होंने बड़ी आसानी से अधिकार पा लिया है। इनकी फ़ारसी-कविता और उसका अनुवाद इस प्रकार है—

"रोज़ए यक मुशुदो ईद आमदो दिलहा बरख़ास्त ;
मय व मयख़ानह बजोश आमदो मय बायद ख़्वास्त।"

[अर्थात्, उपवास के दिन पूरे हो गए, ईद का त्योहार आया और सबके मन प्रफुल्लित हो उठे, शराब तो मयख़ाने में जोशीली हो गई है ! अब तो उसे अवश्य पीना चाहिए।]

उन्होंने हाल ही में, हिंदोस्तान की स्त्रियों पर, एक सरस लेख सुंदर चित्रों-समेत तैयार किया है, जो संभवतः प्रकाशित हो चुका होगा। हिंदोस्तान में उन्होंने जैसा शासन किया है, उसका भी बड़े विशद रूप से वर्णन किया है। उन्होंने भारतीय दर्शन-शास्त्र की शिक्षा के लिये भी एक संस्था Indian Institute of Philosophy (इंडियन इंस्टीट्यूट) नाम की स्थापित की है। यह कला-कौशल की भी उत्तरोत्तर वृद्धि चाहनेवालों में हैं। जिन दिनों यह कोलाबा-ज़िले के कलेक्टर थे, उन्हीं दिनों एक दिन घोड़े पर घूमते-घूमते किसी गाँव में पहुँचे, और वहाँ के एक घर की भीत पर कुछ खींचे हुए हिंदू-देवतों के चित्रों को देखकर रुक गए। उनके रुकते ही कुछ ग्रामीण लोग चारों ओर खड़े हो गए। उन चित्रों में कई बातों की नवीनता देखकर उन्होंने पूछा—"ये किसने बनाए हैं ?" लोगों ने समझा, साहब इन चित्रों को देखकर नाराज़ हो गए हैं, और खींचनेवाले का नाम दंड देने ही की इच्छा से पूछ रहे हैं। लेकिन इसी समय एक चौदह वर्ष का बालक सामने आकर बोला—"मैंने ही तो खिलवाड़ में बनाए हैं।" मि० रॉथफ़ील्ड ने उस लड़के में चित्रकार की शक्ति अंकुरित पाकर उसे अपने डेरे पर बुलाया। लड़के के डेरे पर पहुँचने पर उन्होंने उसे उसकी चित्रकला की उन्नति के लिये आदेश दिया, और उसकी अनुकूल परिस्थिति न देखकर उसे अपने पास से काफ़ी छात्रवृत्ति देकर, बंबई के आर्ट-स्कूल में भरती करा दिया। इतना ही नहीं, अपनी मित्र-मंडली से भी उसकी सहायता के लिये विशेष ज़ोर देकर कहा। आज वह लड़का उनकी कृपा से एक कुशल शिल्पी हुआ है। इस शिल्पी का नाम मि० करमरकर है। इसने अपने शिल्प-विषयक चमत्कार-प्रदर्शन से अनेकों प्रदर्शिनियों में अनगिनती सम्मान-पत्र और पदक प्राप्त किए हैं। इस मनुष्य को इस स्थिति में पहुँचाने का श्रेय मि० रॉथफ़ील्ड ही को है।

पूना के डेकन कॉलेज के प्रिंसिपल प्रोफ़ेसर वेन भी संस्कृत के प्रेमी और उन्नायक हैं। पचीस वर्ष के कुछ पूर्व उनके द्वारा कुछ छोटी-छोटी कहानियाँ अँगरेज़ी में लिखी गईं। उनकी वर्णन-शैली से स्पष्ट ही झलकता है कि वे संस्कृत ही से अनूदित हैं। इन्होंने उन कथाओं को अत्यंत सरस और मनोमुग्धकर बनाने का प्रयत्न किया है। अधिक क्या कहें, ये कथाएँ इतनी विचित्रता और विद्वत्ता-पूर्ण पौराणिक विषयों से सराबोर हैं कि उमर ख़य्याम और रविबाबू की रचनाओं के भक्तों की तरह इन कथाओं के प्रेमियों का भी एक दल बनने लगा है; क्योंकि प्रथमावृत्ति में इस पुस्तक का मूल्य तीन रुपए से ज़्यादा नहीं था, पर वही आज सात-आठ पौंड है। इसने

पर भी वह अलभ्य-सी हो गई है। इनकी पुस्तकों का नाम विशेष करके 'डिजिट ऑफ़् दि मून' और 'हिफ़र ऑफ़् दि सन्' की तरह ही है। इनकी नवीन एवं मनोहर कथाएँ संस्कृत का भाषांतर हैं, ऐसा समझकर ब्रिटिश म्यूज़ियम के क्यूरेटर ने इनके पास एक पत्र भेज-कर पूछा कि उस पुस्तक की प्रति कहाँ है, जिसका अनुवाद आपने किया है; क्योंकि मैं उसकी नक़ल करना चाहता हूँ। इसके उत्तर में बेन साहब ने लिखा—
"It is in the Moon (वह चंद्रलोक में है।)"

फ़ारसी के अन्य अभ्यासियों में मि० जॉर्ज रो का भी नाम है, जिन्होंने 'उमर ख़य्याम' बहुत ही सुंदर अक्षरों में लिखा है। मेसर्स लेनपूल, वॉन हेमर, मिल्स, जॉनसन, लिटनर, ब्यूलर, पिटमैन, वेंस, सर टी० सी० होप और कर्नल टॉड आदि महानुभावों का नाम भी पूर्वी भाषाओं के प्रेमियों की सूची में बतलाया जाता है। उपर्युक्त ब्यूलर साहब की ही कृपा से 'विक्रमांकदेवचरित'-नामक महा-काव्य उपलब्ध हुआ है।

वर्तमान विद्याभ्यासियों में मि० किनकेड, जस्टिस वालचर, कैप्टेन वेल, डॉक्टर वानलेस आदि तो यहीं के रहनेवालों ही में गिने जाते हैं।

स्वर्गीय लॉर्ड किचनर अरबी-भाषा अच्छी तरह जानते थे। यह जब मिसर में सेनापति के पद पर थे, तब कई बार मिसरी पोशाक पहनकर, शत्रु के ख़ेमे से बड़ी महत्त्व की ख़बरें लाए थे। बंबई-शहर में भी कितने लोगों ने इन्हें धारा-बद्ध अरबी बोलते हुए सुना है।

हमारे भूतपूर्व वाइसराय लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड की विदुषी पत्नी हिंदोस्तान में पदार्पण करने के साथ ही उर्दू-भाषा सीखने में इस प्रकार दत्तचित्त हो गई थीं कि कुछ महीनों के बाद ही इन्होंने शिमले की एक स्त्री-समाज के सामने उर्दू-भाषा ही में व्याख्यान दिया था।

रेवरेंड ग्रीव्ज़ भी हिंदी के अच्छे जानकार हैं। यह स्वधर्म की वृद्धि के लिये बहुत दिनों काशी में रहे, और वहीं से स्वदेश लौट गए।

मि० ग्रियर्सन अन्यान्य पूर्वी भाषाओं के जानकार होते हुए हिंदी के भी अनन्य भक्त हैं, और आजकल इँगलैंड में रहकर भी काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के सहायक तथा सदस्य हैं।

भूतपूर्व बंगाल के गवर्नर स्वर्गीय लॉर्ड कारमाइकेल भी बड़ी सुगमता से बँगला में व्याख्यान दे सकते थे।

इतने ही से इति न समझ लेनी चाहिए। पूर्वी भाषा-भिज्ञ पाश्चात्यों के नाम यदि गिनाए जायँ, तो एक बृहत् स्वतंत्र पुस्तक बन सकती है।

सूर्यप्रसाद चतुर्वेदी

शिक्षा का माध्यम और मध्यप्रदेश का अनुभव

(१)

शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिए ?



र साल से ऊपर होने आए कि मध्यप्रदेश में शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन किया गया था, और चार वर्ष के उपरांत अब समय आया है कि इस बात को जाँच करें कि क्या क्या अनुभव इस प्रदेश को प्राप्त हुए। परंतु इस विषय को लेने के पहले अन्य प्रदेशों के निवासियों के लाभार्थ यह बतलाया जाना आव-श्यक है कि इस प्रदेश की पुरानी प्रथा क्या थी, परिवर्तन क्यों किया गया, और परिवर्तन के समय जो अंकुश लगाए गए, वे किस कारण से। मध्यप्रदेश में ही पहलेपहल अधि-कारियों की यह हिम्मत हुई कि हाई स्कूलों में देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनावें और अब संयुक्तप्रांत, बिहार, बंगाल आदि प्रदेशों में भी देखादेखी परिवर्तन करने का साहस हुआ है। मेरा संबंध इस विषय से आरंभ से अभी तक रहा है, और कदाचित् मेरा अनुभव लोगों को लाभदायी हो, इस हेतु से यह लेख दिया गया है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए, इस विषय में लोगों में मतभेद होना उचित नहीं। परंतु तो भी अच्छे-से-अच्छे कार्य में बाधा अवश्य आती है। अतः विद्वानों का धर्म है कि कठिनाइयों से भयभीत न हों, दूसरों के अनुभवों का उपयोग करके स्वतः विचार कर, दृढ़ संकल्प से, कठि-नाइयों को दूर करें।

सन् १९२२ तक इस प्रदेश में हाई स्कूल-कक्षाओं के विद्यार्थियों को सब विषयों में अँगरेज़ी में ही शिक्षा दी जाती थी। यहाँ तक कि संस्कृत और हिंदी की पढ़ाई भी इसी भाषा द्वारा होती थी। मिडिल स्कूलों की ऊँची कक्षाओं में गणित की शिक्षा भी अँगरेज़ी में होती थी। तारीफ़ तो यह कि इन बेचारे विद्यार्थियों का अँगरेज़ी का ज्ञान इतना चढ़ा-बढ़ा रहता था कि मैट्रिक्युलेशन तक वे कठिनाई से दो वाक्य शुद्ध लिख सकते थे। पिछले दस-पंद्रह वर्षों से उद्योग यह चला था कि अँगरेज़ी पढ़ाने की पद्धति में जो दोष हैं, उन्हें दूर किया जाय। इसलिये डाइरेक्ट मेथड आदि पद्धतियों का उपयोग किया गया और उससे अँगरेज़ी भाषा के ज्ञान में कुछ उन्नति भी हुई। परंतु तब भी अँगरेज़ी बोलने, लिखने या समझने की शक्ति संतोषप्रदायक न हुई। यदि अँगरेज़ी उत्तम प्रकार सीखना हो, तो कुछ समय अँगरेज़ों में रहो; यदि बंगाली सीखना हो, तो कुछ समय शिक्षित बंगाली-समाज में रहो—विदेशी भाषा सीखने की उत्तम रीति यही है। किताबें पढ़कर या अन्य भाषा-भाषियों की संगति में रहकर कभी किसी ने किसी विदेशी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है? न अँगरेज़ी का शुद्ध उच्चारण आवेगा, न मुहाविरों का उपयोग। हिंदुस्तानी स्कूलों में बेचारे विद्यार्थियों को वर्षों में किसी अँगरेज़ से बात करने का मौक़ा मिलता है, न सुनने का। उनके संसर्ग में आने की बात तो दूर रही, यदि किसी पादरी-स्कूल में अथवा सरकारी शाला में, जहाँ अँगरेज़ हेडमास्टर हैं, कोई विद्यार्थी पढ़े, तो कुछ मौक़े अँगरेज़ों से बात करने के मिल जाते हैं। परंतु विद्यार्थी का प्रायः संपूर्ण जीवन अपने देशवासियों में ही व्यतीत होता है। ऐसी दशा में अँगरेज़ी का ज्ञान कभी अच्छा हो नहीं सकता। पढ़-पढ़कर लोग सारी ज़िंदगी बिता दें; पर उनकी अँगरेज़ी की हँसी अँगरेज़-समाज में होगी ही।

यहाँ बहुधा अँगरेज़ी के पीछे लोग ऐसे पड़ जाते हैं कि मातृभाषा की ओर से उनका लक्ष्य ही हट जाता है। नतीजा यह हुआ कि न तो अँगरेज़ी ही आई, और न देशी की रक़्त रही। "दुविधा में दोऊ गए, माया मिली न राम", "धोबी का कुत्ता, न घर का न घाट का।" पं० प्रतापनारायण मिश्र ने सच ही कहा है—

> बने पढ़कर गौरंड-भाषा द्विजाती ;
> मुर्दादाने पीर मुर्दा कैसे-कैसे।

यह संभव नहीं कि मामूली आदमी किसी विदेशी भाषा का ऐसा ज्ञान उपार्जन कर ले कि उसके लिखने का प्रभाव उस भाषा के साहित्य पर पड़े, उसके बोलने का प्रभाव उस भाषा के जाननेवालों पर अधिक पड़े। मुसलमानी राज्य-काल में कायस्थ लोगों ने निरंतर परिश्रम से फ़ारसी सीखने का उद्योग किया। फ़ारसी में लियाक़त पैदा करना ही ज़िंदगी की प्यारी मुरादों का पूरा होना समझा, यहाँ तक कि हिंदूपन भी प्रायः विसर्जन कर दिया। इस जाति की बुद्धि भी ऐसी-वैसी न थी। उत्तर भारत में उसकी तरह कुशाग्रबुद्धिवाली शायद ही कोई जाति मिले। हिंदोस्तान की क्या बात, दूर-दूर देशों में भी ऐसी तेज़ बुद्धिवाले कम ही मिलेंगे। पर तो भी मुग़ल-दरबार में लालाजी की फ़ारसी की धूल उड़ती ही रहती थी। फ़ारसी-साहित्य पर उनकी बुद्धि का प्रायः कुछ भी असर न हुआ। इसमें उनकी बुद्धि का कोई दोष नहीं। सार यह कि विदेशी भाषा सीखकर कोई उस भाषा का पूर्ण विद्वान् नहीं हो सकता। अलबत्ता काम चलाने-लायक़ ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यदि कायस्थों सरीखी तीव्र बुद्धिवाली जाति ने जितना परिश्रम, उद्योग और मनोवासनाएँ और सैकड़ों वर्ष फ़ारसी के सीखने में ख़र्च किए, उनका आधा भी अपनी भाषा के पीछे ख़र्च करती, तो साहित्य-भांडार उनकी विद्वत्ता से भर जाता। शेख़ सादी, उमर ख़य्याम, हाफ़िज़ की टक्कर के अनेक विद्वान् देशी भाषा के साहित्य में उनमें भी देख पड़ते।

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के कारण यही हाल हम लोगों का भी हो रहा है। सबेरे से शाम तक अँगरेज़ी, स्वप्न में भी अँगरेज़ी, खाने-पीने, उठने-बैठने में अँगरेज़ी के ही मदमाते रहते हैं। पर तो भी अँगरेज़ी अच्छी तरह आती नहीं। अच्छे से अच्छे ग्रेजुएट की अँगरेज़ी भी दूषित रहती है। कुछ साल हुए, टाइम्स ऑफ़ इंडिया में पीकूलाल बी० ए०-नामक एक बनावटी व्यक्ति की अँगरेज़ी के नमूने छापकर हिंदोस्तानी अँगरेज़ी का बुरा फ़ज़ीता किया गया था। साहब लोगों के क्लब-घरों में रोज़ ही इसकी धूल उड़ती है। यह माना कि कुछ लोग अँगरेज़ी-भाषा अच्छी तरह से बोलना और लिखना सीख जाते हैं। पर बहुधा इसका फल यह होता है कि वे अपनी जातीयता खो देते हैं, मातृभाषा भूल जाते हैं। बेटा बाप को अँगरेज़ी में चिट्ठी लिखने लगता है, धर्म के संस्कार दूर हो जाते हैं। आचार-विचार इतने भिन्न

हो जाते हैं कि देशी समाज से प्रायः संबंध टूट जाता है। वे केवल काले साहब बन जाते हैं। देशी घोड़ा और विलायती ज़ीन की बातें दिखाई पड़ती हैं। यदि इतना त्याग करने पर कुछ अँगरेज़ी पाई भी, तो उससे लाभ क्या हुआ?

जब से अँगरेज़ी-राज्य हुआ, तब से लाखों मनुष्यों ने अँगरेज़ी सीखने का निरंतर प्रयत्न किया है। उनके परिश्रम का प्रभाव अँगरेज़ी-साहित्य पर क्या हुआ? तरुदत्त और श्रीमती सरोजिनी नायडू के कुछ काव्य, आर० सी० दत्त के एक दो ग्रंथ स्थायी साहित्य में स्थान भले ही पा जायँ; लेकिन बाक़ी इतिश्री है। सर फ़ीरोज़शाह मेहता, डबल्यू० सी० बनर्जी, लालमोहन घोष, सर सुरेंद्रनाथ बनर्जी-सरीखे अँगरेज़ी के नामी वाग्मी हो गए। उनका प्रभाव थोड़े-से अँगरेज़ी जाननेवालों पर भले ही पड़ा था, पर जनता पर कुछ नहीं। कारण, वे देशी भाषा में बोल नहीं सकते थे। यदि उनकी वाचा-शक्ति किसी देशी भाषा द्वारा प्रकट होती, तो ये ही लोग सारे हिंदोस्तान को हिला देते। लोकमान्य तिलक मराठी में अपने विचार प्रकट कर सकते थे, संस्कृत के विद्वान् थे। उनमें वाचा-शक्ति अधिक न थी, तो भी महाराष्ट्र-देश में उनका प्रभाव कितना अधिक पड़ा। महात्मा गांधीजी हिंदोस्तानी में अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। यही कारण है कि जनता को उन्होंने अपनी मुट्ठी में कर लिया। पंडित मदनमोहन मालवीयजी अँगरेज़ी में अच्छा बोलते हैं; पर देशी भाषा में और भी अच्छा बोलते हैं; उनकी रहन-सहन, उनकी पोशाक, उनका खान-पान, सभी देशी है। इसी कारण उनका समाज पर इतना प्रभाव पड़ रहा है। क्या कोरी अँगरेज़ी में गिटपिट करनेवालों का ऐसा प्रभाव पड़ सकता है?

अँगरेज़ों में अँगरेज़ों के समान बोलने या लिखनेवाला लाखों में एक होगा। यह योग्यता उसमें तभी आती है, जब वह अपनी मातृभाषा भूल जाय, अथवा जातीयता खो बैठे। इस दशा में यदि अँगरेज़ी आई भी, तो किस काम की? समाज पर उसकी विद्वत्ता का बहुत कम प्रभाव पड़ता है। परंतु मातृभाषा में योग्यता बहुत अधिक लोग प्राप्त कर सकते हैं, और वे देश, समाज और साहित्य की बहुत अधिक सेवा कर सकते हैं। अँगरेज़ी माध्यम रहने से मातृभाषा की ओर अनिच्छा-सी हो जाती है; उस ओर लक्ष्य ही नहीं जाता। शिक्षा-विज्ञान के आचार्य इसी कारण से माध्यम को बदलना चाहते हैं।

अँगरेज़ी का माध्यम रहने से दूसरी त्रुटि यह उत्पन्न होती है कि बातचीत करने अथवा लिखने पढ़ने के समय शिक्षित-समाज व्यर्थ खिचड़ी भाषा का प्रयोग करने लगता है, जिसे सुन बेचारे अपढ़ यही कहते हैं कि यह न-जाने क्या बक रहे हैं। 'गणित' न कह 'अरिथमेटिक' कहते हैं; 'कोण'-शब्द के रहते हुए 'एंगिल' ही कहेंगे। अँगरेज़ी जाननेवालों की बातचीत के कुछ नमूने लिखने-योग्य हैं —

"एंजिनीयरिंग क्वालिफ़िकेशंस जब तक न हों, तब तक पी० डबल्यू० डी० में अपाइंट नहीं हो सकते।"

"अपनी क्लास में फ़र्स्ट रहना तुम्हारी ड्यूटी है, थर्ड क्लास ब्रेन के मनुष्य के लिये युनीवर्स में जगह नहीं है।"

"जब पोस्ट-प्यून ने वी० पी० देने के पहले रुपया माँगा, तो मुझे बहुत अनॉयंस हुआ, और मैंने पोस्टल अथारिटीज़ को रिपोर्ट दी।" इत्यादि।

इस बेरहमी से देशी भाषा का संहार करनेवालों से तो क़साई लाख दर्जे अच्छे। वे एकदम छुरी चलाकर काम तो पूरा कर देते हैं; पर ये महानुभाव तो घोल-घोलकर प्राण ले रहे हैं। इतना ही नहीं, शुद्ध हिंदी-शब्दों का रूप भी तोड़-मरोड़कर बदल देते हैं। 'संस्कृत' को 'सेंस्क्रत' 'जैन धर्म' को 'जेन धर्म' 'नर्मदा' को 'नेर-मदा' आदि अनेक शब्दों को अँगरेज़ी उच्चारण से लिख कर कुरूप कर देते हैं। वाक्यों की बनावट भी अँगरेज़ी तर्ज़ पर होने लगती है। उदाहरणार्थ - "मैं नहीं कह सकता कि वह ऐसा करेगा।", 'वह मनुष्य, जो कल बाज़ार में व्याख्यान देता था, आज मुझसे मिला।' इसी तरह अँगरेज़ी काल के विशेष अर्थ प्रकट करने के लिये हिंदी के कालों का रूप मरोड़ा जाता है। यदि इसी प्रकार के कुठाराघात होते रहे, तो वर्णमाला के ४६ अक्षरों से काम न चलेगा, नए अँगरेज़ी उच्चारणों को नए वर्ण तैयार करने पड़ेंगे। अँगरेज़ी कालों के भावों को दर्शाने के लिये नए काल तैयार होंगे। अभी सब लोग हिंदोस्तानी भाषा अल्प कष्ट से सीख लेते हैं, और इसी कारण उसके राष्ट्रभाषा होने की संभावना भी है। पर उप-र्युक्त परिवर्तन होने से वह क्लिष्ट हो जायगी। फिर इतनी

सुगमता से अन्य भाषा-भाषी न सीख सकेंगे। फ़ारसी और हिंदी के सम्मिश्रण से जैसे उर्दू-भाषा तैयार हुई, वैसे ही अँगरेज़ी जाननेवालों की कृपा से एक नवीन भाषा तैयार हो रही है, जो न हिंदी के समान होगी, न उर्दू के। अगर भाषा में केवल विकास ही होता, तो भी हर्ज न था। पर यहाँ तो सरासर विप्लव हो रहा है, और यह हानिकारक है।

मनोविज्ञान का अनुभव-पूर्ण एक सिद्धांत है कि मनुष्य की बुद्धि एक समय केवल एक कार्य कर सकती है। यदि भाषा के समझने में ही मानसिक शक्ति ख़र्च हो जाय, तो जो बात कही जाय, वह सत्य है या नहीं, इस पर विचार करने की शक्ति नहीं रहती। अँगरेज़ी या अन्य कोई विदेशी भाषा में जब वार्तालाप होता है, तो सुननेवाले की सारी मानसिक शक्ति यह समझने में ख़र्च हो जाती है कि कहा क्या गया। इस बात के विचार करने की शक्ति कम हो जाती है कि जो कहा गया, उसमें सत्य की मात्रा कितनी है। नतीजा यह निकलता है कि स्कूलों और कॉलेजों के विद्यार्थी विद्याभ्यास के समय, अँगरेज़ी-माध्यम होने के कारण, बात के सत्यासत्य पर विचार करने का बहुत कम प्रयत्न करते हैं। छोटी उमर में यदि इसकी आदत न पड़ जाय, तो बड़े होने पर शक्ति नष्ट हो जाती है। हमारे देश के बेचारे विद्यार्थियों की सारी शक्ति इसी बात के समझने में लग जाती है कि क्या कहा गया, कैसे कहा गया, और उच्चारण कैसा किया गया। बात में सार क्या है, यह सोचने का अवकाश ही कहाँ मिलता है। किंतु बुद्धि का विकास तभी होता है, जब तथ्यासथ्य पर विचार करने का अभ्यास रहे। यही कारण है कि विद्या का इतना प्रचार होने पर भी, शिक्षित समाज में अन्वेषण तथा मौलिकता की इतनी कमी है।

फिर विचार करने की बात है कि किसी भी भाषा के शब्दों तथा मुहावरों का पूरा अर्थ उसी की समझ में आवेगा, जिसकी वह मातृभाषा हो, अथवा जो जन्म से उस देश में रहा हो, और शिक्षा पाई हो। विदेशी मनुष्य को उस भाषा के पूरे भाव ग्रहण होना प्रायः कठिन हो जाता है। संस्कृत और हिंदी में घनिष्ठ संबंध है; पर तो भी संस्कृत के ग्रंथों का अनुवाद देखिए। जैसे, कालिदास का शकुंतला-नाटक, विशाखदत्त का मुद्रा-राक्षस अथवा भवभूति का उत्तर-रामचरित और उनके हिंदी-अनुवादों का एक-एक वाक्य या श्लोक मिलाइए, मौलिक ग्रंथों का लालित्य, शब्द-माधुर्य, हाव-भाव प्रायः तीन-चौथाई अनुवाद में लुप्त मिलेंगे। यदि मिलें भी, तो गंधहीन। कहाँ गुलाब का इत्र और कहाँ गुलाब-जल ? साधारण मनुष्य, जो अँगरेज़ी पढ़ता है, उस भाषा में लिखे हुए विचारों का पूरा अर्थ न तो समझ सकता है, न कह सकता है; कुछ-न-कुछ कमी अवश्य रह जाती है। मातृ-भाषा में जो कुछ पढ़ा जायगा, उसके समझने तथा कहने में पूर्णता की मात्रा कहीं अधिक रहती है। इसी कारण यह बात अनुभव-सिद्ध है कि सर्वसाधारण के लिये ज्ञान के उपार्जन का एक ही द्वार है, और वह है मातृ-भाषा। जो ज्ञान उसके द्वारा प्राप्त न हो सके, उसके लिये दूसरी भाषा की शरण लेना उचित कहा जा सकता है।

स्कूलों में बहुधा देखा जाता है कि अँगरेज़ी-माध्यम द्वारा पढ़नेवाले स्कूलों के विद्यार्थी, जो कुछ बताया जाता है, उसे भाषा की कठिनाई के कारण पूरा समझते नहीं। यदि न समझने के कारण कुछ पूछने की इच्छा हुई, तो शब्द-सामग्री तुरंत न उपजने के कारण पूछते नहीं। जो कुछ समझे हैं, उसे भी ठीक शब्दों में नहीं कह सकते; और जो कहते हैं, वह ऐसी दूषित भाषा में कि सुननेवाला यह नहीं कह सकता कि कितना समझे, और क्या नहीं समझे। समझी हुई बात को पूरे तौर पर कहनेवाला विरला ही विद्यार्थी मिलता है। यही बात कॉलेजों में, कुछ कम मात्रा में, यहाँ तक कि पोस्ट-ग्रेजुएट विद्यार्थियों में देखने में आती है। हम लोगों में बुद्धि की कमी नहीं है, समझने की शक्ति है, बोलने की शक्ति है, शुद्धता से भाव प्रकट करने की शक्ति है; पर माध्यम विदेशी भाषा होने के कारण न तो बात को पूर्ण समझ सकते हैं, और जो समझ भी गए, तो उसे पूर्णतः प्रकट नहीं कर सकते। अँगरेज़ों के सामने वाचाल देशी आदमी मूक हो जाता है, वाग्मी की ज़बान लड़खड़ाने लगती है। यदि कुछ कहता है, तो अपूर्ण विचार, तरतीबवार नहीं। किसी एक विशेष अर्थ में उपयोग होनेवाले शब्द कोई दूसरा अर्थ प्रकट करने के लिये उपयोग में आते हैं। इत्यादि। साहब बहादुर समझते हैं कि देशी आदमी की अक़्ल में ख़ामी है। परंतु यदि किसी साहब से देशी भाषा में विचार प्रकट करने को कहा जाय, तो उसका भी ऐसा ही फ़ज़ीता होगा।

यदि किसी जलसे, व्याख्यान तथा कमेटी में अँगरेज़ लोगों का बारीकी से अवलोकन करें, तो यह बात ध्यान में

आवेगी कि एकाग्रचित्त होने के कारण वार्तालाप सुनने की उनकी शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है। मुझे अनेक बार अँगरेज़ी-समाज में जाकर व्याख्यान सुनने, कमेटियों में वार्तालाप करने का मौक़ा मिला है। वहाँ देखा है कि जब तक काम होता है, तब तक न तो पैरों की आहट, न खखारने का शब्द सुनाई देता है, न कोई इधर उधर देखता है, न कोई देर करके आता है। प्रायः प्रत्येक मनुष्य एकाग्रचित्त होकर बात सुनता है। यही कारण है कि जो बात एक बार कह दी जाती है, उसे दुहराना नहीं पड़ता। यदि किसी भी हिंदोस्तानी सभा में जायँ, तो दूसरा ही दृश्य नज़र आता है। कोई खखारता है, कोई जूते रगड़ता आता है, कोई बेंच-कुरसी को ठोकर देता है, कोई इधर देखता है, कोई उधर, किसी को नींद आ रही है, तो किसी को पान लगाने की सूझी है। विरला ही मनुष्य एकाग्रचित्त होकर सुनता है। देर से आनेवालों की गड़बड़, लोगों की हलचल तथा चें पों के कारण बोलनेवाले को एकाग्रचित्त होकर बात कहने का अवकाश नहीं मिलता, बात को फिर-फिर से कहना पड़ता है, बहुत समय ख़र्च करके वह थोड़ी बात कह सकता है। इसके अनेक कारण हैं, और उनका विषय से कोई संबंध नहीं। परंतु एक कारण यह भी है कि विदेशी माध्यम होने से एकाग्रचित्त होने की शक्ति बहुधा क्षीण हो जाती है। बालकों में तो यह शक्ति प्रायः नहीं भी रहती है। जैसे-जैसे उमर बढ़ती है, और ठीक शिक्षा मिलती है, एकाग्रचित्त होने की शक्ति बढ़ती जाती है। परंतु यदि ऐसी अवस्था में हमेशा वार्तालाप ऐसी भाषा में हो, जिसे बालक पूरे तौर पर नहीं समझ सकता, और प्रयत्न करने पर भी उसके कुछ अंश बिना समझे रह जाते हैं, तो उसे मानसिक ग्लानि पैदा हो जाती है, और वह एकाग्रचित्त होने का प्रयत्न छोड़ देता है। जो समझ में आया, तो ठीक; नहीं तो, सुभान-अल्ला। इस तरह का ढीलापन कुछ दिन और रहा, तो मानसिक विकास बंद हो जाता है, और बड़े होने पर भी बालकों की अस्थिर-चित्तता बनी रहती है। अँगरेज़ी माध्यम होने के कारण स्कूलों में बालकों का यही हाल होता है। अँगरेज़ी में बतलाई हुई बात को वे पूरी नहीं समझ सकते। प्रयत्न करने से थोड़ी यहाँ समझ जाते हैं, थोड़ी वहाँ। बीच में सफ़ाई रहती है। इस प्रकार कई साल अभ्यास पड़ जाने से एकाग्रचित्त हो, पूरी बात समझने की कोशिश करने की आदत नहीं रहती। इसी कारण बहुतेरे लोग बड़े होने पर भी सभाओं, कमेटियों में लगातार ध्यान देने में असमर्थ हो जाते हैं।

अस्तु, स्कूलों में अँगरेज़ी-माध्यम होने के कारण जो दुष्परिणाम देखने में आते हैं, वे सारांश में इस प्रकार हैं—

(१) मातृभाषा की ओर उदासीनता हो जाती है, (२) निरंतर परिश्रम करने पर भी अँगरेज़ी में योग्यता नहीं आती, (३) जिनमें योग्यता आ भी जाती है, वे बहुधा अपनी जातीयता खो बैठते हैं, (४) केवल अँगरेज़ी में योग्यता प्राप्त महाशयों का प्रभाव अपने देश के अशिक्षित-समाज पर बहुत कम पड़ता है; जनता उनके ज्ञानोपार्जन से लाभ नहीं उठा सकती, (५) अँगरेज़ी-साहित्य में भी ऐसे लोगों को मान नहीं मिलता, (६) देशी भाषाओं का नाश हुआ जाता है, देशी भाषाओं में शब्द रहते हुए भी अँगरेज़ी-शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा है, (७) सारी मानसिक शक्ति भाषा के समझने तथा उच्चारण सीखने में ख़र्च हो जाती है, सत्यासत्य के निर्णय करने का अवकाश नहीं मिलता—इस पद्धति से 'पढ़े पर्वते गंगाराम' ही तैयार होते हैं, (८) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की आदत नहीं पड़ती, अधूरे ज्ञान से संतुष्ट रहने की आदत पड़ जाती है, (९) एकाग्रचित्त होकर पढ़ने, सुनने या बात कहने की शक्ति का विकास नहीं होने पाता।

दूसरे लेख में यह बतलाने की कोशिश की जायगी कि अँगरेज़ी-माध्यम के पक्षपाती क्या कहते हैं, और उनके मत को कहाँ तक मान दिया जा सकता है।

लज्जाशंकर झा

लंदन में पार्लियामेंट का उद्घाटन



रप के उन देशों में, जहाँ पुराने वंश के राजा राजसिंहासनों पर अब भी बैठे हैं (यह लिखना सर्वथा सत्य न होगा कि जहाँ राजा राज करते हैं), वहाँ कुछ ऐसे उत्सव अब भी मनाए जाते हैं, जो सैकड़ों वर्षों से प्रचलित हैं। इन उत्सवों में ऐतिहासिक गौरव तथा समारोह है। हमारे देश के कई रजवाड़ों में जिन्होंने

महाराणा और महाराज लोगों के दरबार देखे हैं, उन्हें योरप की यात्रा में भी इस रस को चखने की इच्छा होती है।

लंदन में दो ऐसे उत्सव प्रतिवर्ष होते हैं, जिन्हें देखने के लिये लाखों की भीड़ सड़कों, खिड़कियों और झरोखों पर जमा होती है। एक तो उस दिन, जब लंदन के प्रमुख नागरिक लॉर्ड मेयर अपने नए पद को ग्रहण करने जाते हैं, मेंशन-हाउस से (जो कि उनका निवास-स्थान है) वह सरकारी कचहरी में नियमित शपथ-संस्कार के बाद लिए जाते हैं, तब बड़े ठाठ का जलूस निकलता है) और, दूसरा जलूस शाही होता है, जब सम्राट् श्रीमहाराणी के साथ समारोह से पार्लियामेंट का उद्घाटन करने के लिये बकिंघम-पैलेस से (जो उनका महल है) वेस्ट-मिनिस्टर के पार्लियामेंट-भवन को प्रस्थान करते हैं।

इस वर्ष पार्लियामेंट का उद्घाटन ता० २ फ़रवरी को पंचम जॉर्ज महोदय ने यथाक्रम किया। कई वर्षों से हमने भी सुन रक्खा था कि बड़ा उत्सव होता है, देखने तथा सराहने-योग्य। बस, फिर क्या था। थोड़े दिन रह गए, तभी से तदबीरें सोचने लगे। तीन-चार अँगरेज़ महाशयों से कहा कि किसी तरह भीतर जाने की अनुमति दिलवाइए। भारत-मंत्री के पास भी चिट्ठी भेजी; किंतु कहीं भी पहुँच नहीं हुई। इसका कारण यह है कि हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के दर्शकों का झरोखा बहुत बड़ा नहीं है। कोई सौ के लगभग वहाँ बैठ सकते हैं। वह परिमित स्थान लॉर्डों की लेडियों से ही भर जाता है। और, उनसे कुछ कुर्सियाँ बच रहें, तो हाउस ऑफ़ कामंस के इच्छुक सदस्यों के नाम की चिट्ठियाँ डाली जाती हैं। जिसका भाग्य प्रबल हो, वही उस देव-दृश्य को उपलब्ध कर सकता है। भारत-सचिव के यहाँ से उत्तर मिला कि थोड़े-से टिकट मिलते हैं; यदि बच रहेंगे, तो सूचित करेंगे। उन टिकटों के पानेवाले हमारे राजा, नवाब आदि हमेशा लंदन में मौजूद ही रहते हैं। और, यह यात्री न तो किसी लॉर्ड की धर्मपत्नी, और न किसी रजवाड़े का नवाब। फिर भला आश्चर्य ही कौन-सा है कि हमें भीतर जाने का टिकट न मिले। किंतु मेरे एक अँगरेज़ मित्र के प्रयत्नों द्वारा बाहर का टिकट मिल गया। उनके मित्र पार्लियामेंट-दफ़्तर में काम करते हैं। उन्होंने मेरे और मेरे मित्र के लिये दो सफ़ेद टिकट भेज दिए। इन्हें बताकर हम वहाँ खड़े रह सकते थे, जहाँ पार्लियामेंट के सदस्यों के मित्र खड़े रहते हैं, और जहाँ से होकर सम्राट् महोदय तथा राजकुल के अन्य राजकुमार अथवा कुमारियाँ अंदर जाती हैं। अंदर जाने का आसमानी टिकट होता है।

हम वैसे ही भारतवासी ठहरे, हमारी रोटी कोई छीनकर उसी में से आधी दे दे, तो उसी के गीत गावें, और उसका उपकार मानें। फिर भला यहाँ तो हमारा वैसे भी कोई अधिकार नहीं था। बड़े संतुष्ट थे कि हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के बाहर के चबूतरे पर खड़े होने का टिकट मिल गया। और, यों भी हम खुश थे कि यदि अंदर चले भी जाते तो फिर बाहरी छटा कैसे देखने को मिलती। जहाँ हाउस ऑफ़ कामंस के सदस्यों को भी जाना मयस्सर नहीं, वहाँ यदि नहीं पहुँच पाए, तो निराश होने की क्या बात।

झटपट भोजन से निपटकर बड़े चाव से बस में सवार हुए। मेरे मित्र ने अपना टिकट भी मुझे दे दिया था, जिससे मैं अपने एक मेरठ के नवयुवक मित्र को भी साथ ले सका। हम दोनों ही वेस्ट-मिनिस्टर के विशाल घंटाघर के पास, जिसकी विश्व-विख्यात घड़ी का शुभ नाम "बिग-बेन" है, उतर पड़े। यहाँ का पार्लियामेंट-भवन टेम्स-नदी के किनारे खड़ा है, और एक बड़ी ही विशाल एवं विचित्र इमारत है। इस भवन में पार्लियामेंट के बड़े-बड़े महल हैं, जहाँ कामंस (प्रजा-मंडल) तथा लॉर्ड्स (कुलीन-मंडल) की बैठकें होती हैं; कामंस के सभापति (स्पीकर) महोदय का निवास-स्थान है; पार्लियामेंट के दफ़्तर हैं, और इसके अतिरिक्त कई बड़े-बड़े कमरे, कमेटियाँ, सभाएँ तथा भोजनागार हैं। इनमें वेस्ट-मिनिस्टर-हाल ऐतिहासिक रूप से दर्शनीय है, जहाँ चार्ल्स प्रथम, वारेन हेस्टिंग्ज़ और अन्य कई प्रसिद्ध मनुष्यों के अभियोग सुने गए थे। उनके स्थानों पर, जहाँ वे लोग खड़े हुए थे, पीतल के पत्र जड़े हैं। उन पर तारीख़ और नामादि अंकित हैं। इमारत का निर्माण बड़ी कारीगरी से हुआ है। पुराना गौथिक ढंग है। उसकी मीनारें नदी के तट पर दूर-दूर से दिखाई देती हैं। विक्टोरिया-टावर के पास एक बड़ा ऊँचा दरवाज़ा है। यह पार्लियामेंट के पहले मि पर बना है। यह दरवाज़ा केवल सम्राट् महोदय के लि खोला जाता है।

तीन-चार पुलीस के सिपाहियों को अपने टिकट दिखाते हुए हम शाही दरवाज़े तक पहुँच गए। वहाँ जाते समय हमें कई दरवाज़ों के पास होकर निकलना पड़ा। पहले तो

कामंस के मेंबरों के कई दरवाज़े, उसके बाद लॉर्ड्स के प्रवेश होने का छोटा-सा दरवाज़ा—जिसमें होकर लॉर्ड्स तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र (छोटे लड़के नहीं !) आ सकते हैं—उसके बाद वैसा ही और दरवाज़ा था, जिसमें वे प्रतिष्ठित दर्शक जाते हैं, जिनका विवाह किसी लॉर्ड-घराने में हुआ है, अथवा किसी लॉर्ड की प्रिय पुत्री अथवा पुत्र-वधू होने का जिन्हें संयोग प्राप्त है, और जो लोग विदेशी प्रतिनिधि अथवा सचिव हैं। बस, हम यहीं खड़े हो गए।

अभी सम्राट् के आने में पौन घंटे से अधिक की देर थी, किंतु हम खड़े-खड़े उकताए नहीं। कारण यह कि आँखों के सामने रंग-बिरंग सोने-चाँदी और मोती-हीरों का इस वेग से नाच हो रहा था कि हमें एक क्षण भी भारी न प्रतीत हुआ।

इस देश में सूर्य भगवान् के दर्शन विरले ही होते हैं। उनका प्रकाश बीच-बीच में हो रहा था। ठीक ११ बजे राजमहल से पार्लियामेंट-भवन तक सड़क के दोनों ओर फ़ौज जम गई थी। अँगरेज़ी फ़ौज को देखा होगा, ऐसे उत्सवों के दिन अँगरेज़ सिपाही अपनी पक्की वर्दी पहनते हैं। उनके टोप बड़े विकट दिखलाई देते हैं। सिपाहियों के चेहरे उसके नीचे छोटे जान पड़ते हैं, और प्रत्येक सिपाही कराल काल की मूर्ति बन जाता है। उसका वज़न भी बहुत ज़्यादा होता है।

भारत में तो ऐसे जलसों और जलूसों के पहले सड़कों पर छिड़काव होता है, ताकि मिट्टी न उड़े। यहाँ हम अपने सामने यह देख रहे थे कि शाह साहब पधारें, तो उसके पहले सड़कों पर मिट्टी छिड़की जा रही थी, जिससे सड़क गीली न रहे। घोड़ों के पैर न फिसलें, कीचड़ न दिखाई दे। विश्व की विचित्र लीला है !

क्षण-क्षण में मोटरकार पर मोटरकार आ रही थी। ज्यों ही गाड़ी आई, पास में जो भी पुलीस का सिपाही खड़ा हुआ था, वह बड़ी नम्रता से फाटक खोलता था, और एक से एक बढ़िया पोशाकवाले स्त्री-पुरुष उनमें से निकलते थे। इस देश में मनुष्यों की साधारण पोशाक बड़े गहरे रंगवाली रहती है, हमेशा ही काले, बादामी रंग को देखते हैं (हाँ, यहाँ की महिलाएँ, विशेषकर सायंकाल में, तथा नाच और भोज में जो सुनहले, चमकीले वस्त्र पहनती हैं, उन्हें देखकर तो हमारे यहाँ के राजा-रानियों के भी नेत्र टिमटिमाने लगें) । बूढ़े-बूढ़े लॉर्ड, बड़े पादरी तथा श्वेत केशवाले फ़ौजी अफ़सरों की वर्दियाँ क्या ही सुहावनी थीं। उनकी ये वर्दियाँ सब सुनहले काम से जड़ी थीं। पतलूनों पर दोनों तरफ़ सुनहले फ़ीते थे। कोटों का तो कहना ही क्या। कंधों पर तो मानो सोने का ढेला ही रक्खा हो। सबके लंबी दुमवाले (Tail) कोट थे। अधिकांश की वर्दी लाल थी। कुछ लोगों की नीली और कुछ की काली भी थी।

जब ये लोग निकलते थे, तो इनके किरचों की कट-कट की जो ध्वनि पृथ्वी पर टकराने से होती थी, उससे दिलों पर बड़ी चोट पहुँचती थी। ये किरचें केवल उत्सव की शोभा ही नहीं हैं, शत्रुओं के दमन करने तथा अन्य देशों को क़ाबू में रखने में भी बड़ी सबल हैं ! महिलाओं की पोशाक में आज विशेषता नहीं थी, किंतु जवाहरात की चमक बड़ी तेज़ थी। किसी के गले में मोती की माला है, तो किसी के कानों में हीरे चमक रहे हैं। बहुतों के मस्तक पर मोती के मुकुट जड़े थे, मानो धन और ऐश्वर्य का भांडार ही सामने खुला हो। दो-चार लॉर्ड तो घोड़े-गाड़ियों में पधारे थे। उनके घोड़ों की साज, उनके कोचवान और सईसों की वर्दियाँ, सभी बड़ी रँगीली थीं।

हम इस छटा को देख ही रहे थे कि सामने से दो बड़ी-बड़ी मोटर-लारियाँ आईं, और हमारे सामने ही आकर रुकीं। एक-एक में से कोई पचीस-पचीस जवान उतरे। ये लोग सम्राट् के शरीर-रक्षक थे। इनके टोप पीतल और क़लई के थे, जिनकी नोक आधी नाक पर लगती है। छाती और पीठ पर उसी प्रकार पीतल के चमकते हुए बख़्तर जड़े थे। कोट लाल और पतलून सफ़ेद थे। काले बूट जाँघों तक पहुँचते थे। ऐसी रँगीली पोशाक होने पर भी ये उस डरावने टोप के कारण भीषण दिखाई देते हैं। उसी मोटर में दो मामूली ख़ाकी वर्दी में दो उनके नौकर थे, जिनका काम यह था कि उनके बूट, जिरह-बख़्तर तथा तलवार को ख़ूब पोंछ-पाँछकर चमका दें। मनचले अख़बार-वालों ने उस वक़्त की तसवीरें भी लीं, और उन्हें भी अपने पत्र में छाप दिया—"Final polish of the Life guards !" ये लोग तुरंत अपनी वर्दी ठीक-ठाक करके भीतर भवन में चले गए।

अब सम्राट् के जुलूस की प्रतीक्षा हो रही थी। कभी-कभी धूप में सिपाहियों की वर्दी और उनकी संगीनें चमकने लगती थीं। फ़ौजों के झंडों से बड़ी प्रतिभा टपक रही

थी। बैंड बड़ी मधुर ध्वनि से गायन सुना ही रहे थे कि इतनी ही देर में एक और नया दृश्य सामने आया।

बीस के लगभग भाले लिए हुए लाल, पीली और सुनहली वर्दी में कुछ वृद्ध सैनिक आए। इनकी पोशाक तीन सौ-साढ़े तीन सौ वर्ष पुराने समय की थी। उनके गले में वही Ruffle लगे थे, कोट और पाजामे भी वैसे ही थे, जैसे उस ज़माने में पहने जाते थे। और, इन मसखरों ने अपनी सूरत भी वैसी ही बना रक्खी थी। इनमें से कइयों की वैसी ही दाढ़ी थी, जैसी इँगलैंड में ढाई सौ वर्ष पहले रखने की प्रथा थी। पूछने पर पता लगा कि ये एक बड़ी पुरानी सेना के हैं, जिनको बीफ़-ईटर्स Beaf-Eaters-गोमांस खानेवाले) कहते हैं। ये Tower of London (जो यहाँ का पुराना राज कारागृह रहा है) में रहते हैं।

इसी प्रकार का एक इनसे भी प्रतिष्ठित सैन्यदल और भी है, जिसको Gentlem n at-Arms कहते हैं। *वह भी बड़ी पुरानी रोशनी का दल है। कहते हैं, बीफ़-ईटर्स सम्राज्ञी एलिज़बेथ के समय से स्थापित किए गए हैं।*

सम्राट् के आने में पाँच मिनट और रह गए थे कि एक सजी हुई गाड़ी आई, जिसमें लॉर्ड सैलिसबरी और लॉर्ड लंडनडरी थे। इस गाड़ी में राजमुकुट तथा शाही लबादा उन दोनों लॉर्डों के लिये लाए गए थे। उनके निकलने पर सब फ़ौज ने सलामी की।

सम्राट् के आने का समय निश्चित था। महल से लगाकर भवन तक वह किस-किस जगह, किस-किस समय पहुँचेंगे, यह मिनटवार पहले से पत्रों में छप चुका था। और, सब शांति का सन्नाटा था। समाचार-पत्रों के चित्र खींचनेवाले अपने कैमरे लिए चारों ओर घूम रहे थे। इनको कहीं रोक नहीं; चाहे जिसकी तसवीर उतार लें।

घड़ी पर बारह का डंका बजा कि सामने शाही जुलूस दिखाई दिया। धीरे-धीरे आगे आया। पाँच गाड़ियाँ थीं, जिनमें राजाधिराज सम्राट् तथा सम्राज्ञी के निजी पदाधिकारी थे। ये गाड़ियाँ हाउस ऑफ़् लॉर्ड्स के दरवाज़े के सामने हो गईं। इनके पीछे सम्राट् का रथ था। उनके आगे और पीछे कई घुड़सवार तथा रथ के चारों ओर बीफ़-ईटर्स की पलटन थी। जिस रथ में पंचम जॉर्ज महोदय और उनकी सम्राज्ञी विराजी थीं, वह एक संदूक़नुमा सुंदर विशाल सुवर्ण-रथ था। आठ कुम्मैत उसमें घोड़े लगे थे, जिनके चार हाँकनेवाले बाईं ओर के घोड़ों पर सवार थे। आठों साईस घोड़ों के साथ साथ पैदल चल रहे थे। उनकी पोशाक भी वही लाल और सुनहली थी।

सम्राट् अंदर पधारे। इकतालीस तोपों की भेंट जेम्स पार्क से सलामी दी गई।

हाउस ऑफ़् लॉर्ड्स में देश के अमीर-उमरा और विदेशी प्रतिनिधि, महाराज कुमार हेनरी, चारों बड़े पादरी, न्यायालय के जज, लॉर्ड मेयर आदि सब अपने स्थान में डटे थे। सुनते हैं, कमरा चमचमा रहा था। सम्राट् के पधारते ही बिजली की रोशनी कर दी गई। फिर तो कैसी शोभा बढ़ गई होगी। सम्राट् जब सिंहासन पर विराज जाते हैं, तब कामंस के सदस्यों को बुलाया जाता है। स्पीकर तथा कामंस के जितने सदस्य हों, सब वहाँ आते हैं। स्पीकर के सामने उनका चिह्नधारी (Man-bearer) और उनके पीछे प्रधान सचिव मि० बाल्डविन तथा मज़दूर-दल के नेता एवं इसी प्रकार और लोग आकर खड़े हो जाते हैं। पुराने मेंबर यह तमाशा देखने के लिये उत्सुक नहीं होते। इससे बहुधा तीन बजे, जब पार्लिया-मेंट की काररवाई शुरू होती है, पहुँचते हैं। अब की बार भी न तो मि० लायड जॉर्ज थे, और न मि० मैकडॉनेल्ड ही पहुँचे थे। प्रत्येक दल के थोड़े-थोड़े सदस्य उप-स्थित थे।

जब ये लोग वहाँ पहुँच जाते हैं, तब सम्राट् को हाउस ऑफ़् लॉर्ड्स के सभापति लॉर्ड चैंसलर उनका भाषण-पत्र भेंट करते हैं। सम्राट् उसे लॉर्ड्स और कामंस को संबोधन करके, (My Lords and Members of the House of Commons) अपना भाषण पढ़ते हैं। अब की बार सम्राट् का भाषण, कहते हैं, उस विशाल भवन में, साफ़-साफ़ सबको सुनाई दिया। उनके भाषण के पढ़ने में दस मिनट लगे। नए वर्ष की पार्लियामेंट में जो मंतव्य पेश किए जायँगे, उनकी घोषणा सम्राट् के भाषण द्वारा मंत्रिमंडल देश को करता है। उद्घाटन के एक सप्ताह पूर्व मंत्रिमंडल में इस पर पूरी बहस हो जाती है, और अंत में प्रधान सचिव सम्राट् का भाषण बनाकर पेश करते हैं। अब की बार के भाषण में कुछ भी विशेषता नहीं थी, और

पाठकों को यह जानकर तो कुछ आश्चर्य ही न होना चाहिए कि तैंतीस करोड़वाले भारत का भूलकर भी वहाँ किसी कोने में नाम न था! क्यों होता? वहाँ शांति है, सुराज्य है, लॉर्ड बर्कनहेड हमारे विधाता हैं, फिर भला चिंता किस बात की है। प्रधान विषय, जिन पर सम्राट् ने कुछ-न-कुछ कहा, ये थे—

टर्की और ईराक से इँगलैंड का परामर्श, निरस्त्रीकरण सम्मेलन, राष्ट्रीय किफ़ायतशारी, कोयले के व्यवसाय की गति, भूमि-सुधार, मज़दूरों के लिये घरों की समस्या, कृषि-सुधार, देश में बिजली पहुँचाने के संबंध में नया क़ानून इत्यादि-इत्यादि।

ज्यों ही अपना भाषण पढ़ चुके कि श्रीसम्राट् तथा महारानी लौट पड़ते हैं। उसी प्रकार से जुलूस राजप्रासाद को वापस होता है। उनके बाहर आते ही दुंदुभी बजती है। वैसे ही उनके सामने पाँच गाड़ियाँ और आगे तथा पीछे रिसाला और पल्टन हो जाती है। पार्लियामेंट-भवन से राजप्रासाद तक लाखों की भीड़ सड़कों के दोनों तरफ़ खड़ी रहती है।

पाठकों को यह मालूम रहे कि यहाँ ऐसे विशेष उत्सवों के लिये कॉलेज, स्कूल, कारख़ाने, दूकानें बंद नहीं होतीं। सब अपना काम वैसे ही करते रहते हैं। भारत में अगर कलेक्टर साहब की बीबी की जन्म-गाँठ हो, तो भी छुट्टी और इंस्पेक्टर साहब का पदार्पण हो, तो भी छुट्टी। यहाँ ऐसा नहीं होता।

हमारा इस जलसे के देखने में आधा दिन गया। सम्राट् के दर्शन हुए। इँगलैंड के ऐसे उत्सवों को अपने देशी ठाठ से यदि उपमा दी जाय, तो यहाँ के उत्सव फीके हैं। हाँ, यहाँ की फ़ौज और परेड तो देखने-योग्य होती है। किंतु वैसे ठाठ और समारोह में मदियों के पुराने भारतीय राज-दरबार अथवा उत्सव यहाँ के उत्सवों से शोभा और प्रतिभा में अधिक नहीं, तो किसी प्रकार न्यून भी नहीं हैं। पर ऐसे मामलों में तुलना करना व्यर्थ है। अपने-अपने स्थान में दोनों ही समुचित हैं।

लंदन
ता० ४।२।१९२६

एक भारतीय यात्री

पथिक

कामदेव-सा घूम रहा हूँ पुष्प-वाटिका में सानंद;
नव यौवन उद्दाम वेग से उड़ा रहा हूँ कोमल छंद।
श्याम-मेघ-सा मुझे देखकर चातक-दल इठलाता है;
फूलों की बाँसुरी बजाकर भृंग पराग उड़ाता है।
कलियों की मजलिस में बैठा हूँ मैं बादशाह बनकर;
चंपा घूँघट खोल खड़ी है कांत कुंज मुख दर्शन कर।
जुही पिलाती मुझे सोमरस, लता फूल बरसाती है;
मौलसिरी के साथ मालती नाच-नाचकर गाती है।
प्रकृति-सभा में हँसता हूँ मैं सोने के सिंहासन पर;
मेरे चरणों पर गिरती है कुसुम मालिनी झर-झरकर।
ले आया हूँ इंद्र-सभा के उत्सव की आनंद-घड़ी;
होता हूँ बेहोश, विश्व में सब्ज़ परी सज मौन खड़ी।
त्रिभुवन का आनंद-निमंत्रण आज कर चुका हूँ स्वीकार;
ज़ाफ़रान के खेतों में मैं घूम रहा हूँ राजकुमार।
शकुंतला की मधुर कहानी तपोभूमि से कहता हूँ;
पंचवटी में रामचंद्र-सा मैं सुख से सो रहता हूँ।
पैदल ही हूँ चला जा रहा छोटी-सी पगडंडी पर;
वट-निकुंज झालर में सुख से झूल रहा हूँ हँस-हँसकर।
पंचम स्वर से वधू कोकिला मेरा कीर्तन करती है;
मेरी रूप-राशि पर रीझी उषा सुंदरी मरती है।
मैं सुधांशु-झरने में धोकर कोमल-कुमुद-किशोर शरीर;
करता हूँ विहार गंगा-तट, खो आलस्य-भरी तन-पीर।
आयु-वधू के भव्य भाल पर मैं सिंदूर चढ़ाता हूँ;
नव मंजरी लता-पत्रों के साथ भैरवी गाता हूँ।
कभी हिमालय की चोटी में फूल गूँथता हूँ चंचल;
कभी अतिथि मैं बन जाता हूँ किसी द्वार का महासरल।
कभी-कभी सुंदरता-मद में कवि-सा मुग्ध मचलता हूँ;
कृषक-बालिका से बातें कर खेतों-बीच टहलता हूँ।
संध्या को मैं दे लेता हूँ दृग में अंधकार-अंजन;
आँख-मिचौनी खेल, भोर मैं करता हूँ संध्या-वंदन।
जादूगर के खेल अनोखे दुनिया को दिखलाता हूँ;
हवा-योगिनी से हिल-मिलकर उड़ा अमर-सा जाता हूँ।
दुर्गम गिरि, कांतार, मरुस्थल के सुंदर माणिक्य बटोर,
इस पागल प्रदेश से अब मैं आता हूँ अनंत की ओर।
पूजा के कुछ फूल चयन कर पंच-प्रदीप जलाऊँगा;
पद्मासन में बैठ कहीं मैं आज समाधि लगाऊँगा।

"गुलाब"

विज्ञान की प्रगति में बाधाएँ

सत्य की प्रगति का मार्ग विघ्न-बाधाओं से भरा हुआ है। पग-पग पर इस मार्ग के पथिक को अनेक कठिनाइयों और रुकावटों का सामना करना पड़ता है। सत्य के दीपक को स्वार्थी और मंद-बुद्धि लोग सभी कालों में बुझाने की व्यर्थ चेष्टा करते रहे हैं। पदार्थ-विज्ञान और अध्यात्म-विज्ञान, दोनों का इतिहास सत्य-भक्तों के रक्त से रंजित है। कोई दो हज़ार वर्ष हुए, यूनान में सुक़रात ने एक नवीन सत्य का प्रकाश किया था। उस पर युवकों का आचार बिगाड़ने का दोष लगाकर उसे विष का प्याला पिलाया गया। जो महात्मा प्रकृति-धर्म का प्रवर्तक था, जो आचार-शास्त्र का जन्म-दाता था, वही पाखंड और दुश्चरित्र के लिये दंडित हुआ। इसी प्रकार ईसा और दयानंद को भी सत्य-शोधन के अपराध में प्राणों की आहुति देनी पड़ी। पश्चिम में जिन लोगों ने पहलेपहल यह घोषणा की कि सब मनुष्य भाई हैं, परमपिता के सामने अमीर और ग़रीब, दोनों समान हैं, और प्रत्येक मनुष्य अपनी रुचि के अनुसार, जिस ढंग से चाहे, भगवान् की उपासना कर सकता है, उनको समाज के शत्रु ठहराकर पीड़ित किया गया। विपक्षियों का कहना था कि ऐसे सिद्धांत दार्शनिकों और थोड़े-से चुने हुए ब्रह्मज्ञानियों के विवेचन के योग्य भले ही हों; परंतु यदि इनको समाज का मूलाधार बनाकर इनका सर्वसाधारण में प्रचार किया जायगा, तो ये समाज के लिये अहितकर होंगे। विचार के विकास और सत्य की उपलब्धि का इतिहास एक-सा ही है। चाहे हम जादू-टोना, पाखंड या किसी दूसरे ऐसे विषय को लें, जिसके पाप या पुण्य होने के संबंध में मनुष्य ने विचार किया है, तो हमें उसका इतिहास ऐसी ही घटनाओं से भरा-पुरा मिलेगा। साधारण लोग नवीन सत्य को सुनकर पहले उसका घोर विरोध करते हैं, फिर उसे सहन-मात्र करते हैं, और तब उस पर खुला विवाद करने का अधिकार स्वीकार करते हैं। जिन महात्माओं ने संसार को कल्याण का मार्ग दिखलाया है, उनको संसार ने पहले यातनाएँ दी हैं। फिर कुछ पीढ़ियों के बाद वह उनको सचाई के लिये कष्ट झेलने और प्राण देनेवाले धर्म-वीर परोपकारी मानकर उनकी पूजा करता रहा है।

आज सब कोई जानता है कि सूद लिए बिना व्यापार की उन्नति नहीं हो सकती। ईसाइयों को जाने दीजिए, क़ुरान में सूद लेने का स्पष्ट निषेध होने पर भी आज मुसलिम-बैंक खुले हुए हैं। परंतु श्रीयुत लॅकी का कथन है कि सन् १३३८ में एक मनुष्य केवल इसीलिये ज़िंदा जला दिया गया था, क्योंकि वह कहता था कि "ब्याज लेने में कोई पाप नहीं"। उसके विरुद्ध युक्ति यह दी गई थी कि सूद चाहे कितना ही कम क्यों न हो, हत्या और डाका डालने के सदृश एक ऐसा अपराध है, जो प्रत्यक्ष-रूप से सृष्टि-नियम के विरुद्ध है।

धार्मिक असहिष्णुता का एक और उदाहरण लीजिए। जिन दिनों स्पेन-देश में पाखंड-शासन-सभा का बोलबाला था, पुर्तगाल में दो नदियों को एक नहर के द्वारा मिला देने का प्रस्ताव हुआ। परंतु सभा ने उसे इसलिये अस्वीकृत कर दिया कि यदि ईश्वर को दो नदियों का

मिलाना मंजूर होता, तो वह अपनेआप ही उन्हें मिला देता।

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में थियासॉफ़िकल सोसाइटी की श्रीमती एनी बीसेंट (वर्तमान डॉक्टर बीसेंट) और श्रीयुत ब्रॉडला पर गर्भ-विरोध के कृत्रिम उपायों का प्रचार करके, जनता का आचार बिगाड़ने का दोष लगाकर इँगलैंड की सरकार ने मुक़दमा चलाया। इस मुक़दमे में दोनों अभियुक्तों को बड़ा कष्ट और हानि उठानी पड़ी। परंतु आज हम देखते हैं कि गर्भ-विरोध की वैज्ञानिक विधियों और साधनों के प्रचार को क़ानून अपराध नहीं समझता! आज विचारकों का एक बड़ा दल ऐसा है, जो गर्भ-विरोध-विद्या को एक लोकोपकारी विज्ञान समझकर सर्वसाधारण में इसके प्रचार की आवश्यकता पर ज़ोर देता है।

कैज़ेनोवा नाम का एक पर्यटक योरप में हो गया है। वह कदाचित् इटली का रहनेवाला था। उसने योरप-महाद्वीप के प्रत्येक देश में घूमकर वहाँ की स्त्रियों का काम-शास्त्र-संबंधी अनुभव प्राप्त किया था। उसने उन देशों की स्त्रियों के मैथुन-संबंधी विशेष गुणों और स्वभावों का सविस्तर वर्णन अपने 'वृत्तांत' में लिखा है। उसके इस वृत्तांत का फ़्रेंच, जर्मन और कदाचित् अँगरेज़ी में भी अनुवाद हो चुका है। फ़ोरल, क्राफ़्ट एबिंग, और हैवेलाक एलिस आदि पाश्चात्य काम-शास्त्र के विशेषज्ञों ने कैज़ेनोवा के इस वृत्तांत से स्त्रियों का मनोभाव समझने में बड़ी सहायता ली है। परंतु इस समय इस वृत्तांत का मिलना सुगम नहीं रहा।

गत वर्ष अमेरिका में एक पुस्तक-प्रकाशक ने "होम कमिंग ऑफ़ कैज़ेनोवा" (कैज़ेनोवा का स्वदेश आगमन) नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। 'वृत्तांत' में कैज़ेनोवा ने अपने प्रवास का वर्णन किया था, इसलिये यह पुस्तक एक प्रकार से उसका उपसंहार थी। अमेरिका के एक जज ने शिकायत की कि यह पुस्तक युवक और युवतियों के आचार को बिगाड़नेवाली है। मेरी दो पुत्रियों ने इसे पढ़ा है, और उन पर इसका बहुत बुरा असर पड़ा है। इस पर वहाँ की सरकार ने इसे ज़ब्त कर लिया। तब प्रकाशक ने सीनेट में इस आज्ञा के विरुद्ध अपील की। उसने पूछा कि मेरी सारी पुस्तक अश्लील है या इसके कुछ अंश? उत्तर मिला कि कुछ अंश। तब उसने ईसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबिल से भी वैसे ही कुछ अंश निकालकर दिखला दिए, और कहा कि बाइबिल की ज़ब्ती की भी आज्ञा होनी चाहिए। परंतु बाइबिल को अश्लील ठहराने का कौन साहस कर सकता था? तब उसने कहा—फिर मेरी पुस्तक भी अश्लील नहीं है। यदि जज महाशय की कन्याओं पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा है, तो इसका यह अर्थ नहीं कि पुस्तक दुराचार का प्रचार करती है, वरन् वे कन्याएँ बुराई की ओर पहले ही से झुकी हुई हैं। इसलिये जज महाशय को चाहिए कि मेरी पुस्तक को ज़ब्त कराने पर ज़ोर देने के बजाय अपनी कन्याओं को सम्हालकर रक्खें। बस, पुस्तक की ज़ब्ती की आज्ञा रद्द हो गई, और वह पुस्तक अब खुल्लमखुल्ला बिक रही है।

एक और उदाहरण लीजिए। आस्ट्रिया में डॉ० स्टोनक (Stenach) नाम के एक बहुत बड़े वैज्ञानिक हैं। आपने बूढ़ों को जवान बना देने की विधि निकाली है। वह एक छोटा-सा 'आपरेशन' करते हैं। उससे मनुष्य का बुढ़ापा दूर होकर नए सिरे से जवानी आ जाती है। उन्होंने गर्भस्थ लड़की को लड़का और लड़के को लड़की बना डालने की

विधि का भी आविष्कार किया है। अपनी परीक्षा मेंढकों, चूहों, कुत्तों, सुअरों और घोड़ों आदि पर करके, अपने परीक्षणों का जनता में प्रचार करने के लिये, डॉक्टर महाशय ने उनकी एक फ़िल्म (सिनेमा में दिखलाने की चित्रावली) तैयार की है। उसमें उपर्युक्त नर और मादा जंतुओं का आपस में समागम करना, शुक्रकीट और गर्भांड का संयोग होना, गर्भ में भ्रूण का बनना आदि सभी गुप्त क्रियाएँ चित्रित की गई हैं, वह फ़िल्म उन्होंने सिनेमा में दिखलाने के लिये इँगलैंड भेज दी। परंतु वहाँ वह अश्लील ठहराई गई, और दिखलाने की आज्ञा नहीं मिली। तब आपने सोचा कि अमेरिका में अधिक स्वतंत्रता बतलाई जाती है, वहीं फ़िल्म भेजना चाहिए। परंतु अमेरिका में भी उसे दिखलाने की आज्ञा नहीं मिली।

गत वर्ष मेरे दो मित्र जर्मनी से लौटे हैं। उनमें एक राजनीति के डॉक्टर और दूसरे एक कॉलेज के वाइस प्रिंसिपल हैं। उन्होंने मुझे बतलाया कि डॉक्टर स्टीनक की जिस फ़िल्म के दिखलाने की अमेरिका ने आज्ञा नहीं दी थी, जर्मनी ने उसकी आज्ञा दे दी है। जिन दिनों हम बर्लिन में थे, यह फ़िल्म दिखलाई जा रही थी। दर्शकों की यह अवस्था थी कि यद्यपि यह फ़िल्म दिन में तीन बार दिखलाई जाती थी, तो भी मारे भीड़ के स्थान नहीं मिलता था। योरप में भारत की तरह ऐसे अवसरों पर धक्के मारने की कुरीति नहीं। जैसे भारतवासी रेल का टिकट खरीदते समय एक दूसरे को धक्के मारते हैं, वैसा योरप में नहीं होता। वहाँ यात्री ज्यों-ज्यों आते-जाते हैं, अपने नंबर पर पंक्ति बाँधकर खड़े होते जाते हैं। फिर अपनी-अपनी बारी पर सबको टिकट मिलता जाता है। परंतु इस फ़िल्म के तमाशे के लिये जनता की उत्सुकता इतनी बढ़ी हुई थी कि हमने देखा कि लोग एक दूसरे से आगे जाने के लिये धक्के खा रहे हैं। इस फ़िल्म की जर्मनी में इतनी लोकप्रियता देखकर विश्वास होता है कि अब शीघ्र ही इँगलैंड और अमेरिका में भी इसके दिखलाने की आज्ञा अवश्य मिल जायगी।

उपर्युक्त थोड़े से उदाहरणों से इसी परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि संसार विज्ञान के—सत्य के—प्रचार में स्वभाव ही से बाधाएँ उपस्थित करता है। वह उसे ग्रहण करने के लिये शीघ्र तैयार नहीं होता, वरन् यथाशक्ति दंड का भय दिखलाकर, उसके प्रचारकों की जीभ पर ताला लगाने की चेष्टा करता है। परंतु सत्य को दबाना संभव नहीं। सूर्य के सामने बादल आ जाने से जैसे उसका प्रकाश कुछ काल के लिये छिप भले ही जाता है, परंतु बादल सदा के लिये सूर्य को छिपाए नहीं रख सकते; वैसे ही सदाचार के ठेकेदारों की धमकियाँ और अविद्यामूलक रूढ़ियाँ विज्ञान के प्रकाश को अल्प काल के लिये अवश्य छिपा सकती हैं, परंतु सदा के लिये उसे छिपाए रखना—प्रकट न होने देना—उनकी शक्ति के बाहर है।

दुःख की बात है कि सचाई का विरोध जितना 'मज़हबवालों' की ओर से हुआ और होता है, उतना और किसी की ओर से नहीं। बात यह है कि शासन सदा से पादरियों, मुल्लाओं और पंडितों के अधीन रहा है। ये लोग उससे सत्य को दबाने का काम लेते रहे हैं। किसी भी नए सत्य को ये सहन नहीं करते, झट उसे दबाने की चेष्टा करते हैं। 'बाइबिल इन इंडिया' के लेखक फ़्रेंच चीफ़ जस्टिस म० जकालियट ने ठीक ही लिखा है कि राष्ट्र की उन्नति के लिये उसका इन धर्म के ठेकेदारों की दासता से मुक्त होना परम आवश्यक है। इनकी दासता में रहकर कोई भी राष्ट्र वास्तविक उन्नति नहीं कर

सकता। कदाचित् इसी सचाई का अनुभव करके तरुण टर्की ने खलीफ़ा और उसके साथ ही क़ुरानी दंड-विधान को स्वदेश से निर्वासित कर दिया है।

वैदिक धर्म में दूसरे मज़हबों से, इस विषय में, एक बड़ी विशेषता है। वैदिक धर्म लोगों को विचार की पूर्ण स्वतंत्रता देता है। वह किसी को उसके विचारों के लिये दंडित नहीं करता। वह मनुष्य के अच्छे और बुरे कर्मों के अनुसार ही उसे पुरस्कार या दंड का भागी ठहराता है। यदि एक मनुष्य ईश्वर को नहीं मानता, परंतु ऐसा कोई कुकर्म नहीं करता, जिससे समाज की हानि हो, तो वह आर्य लोगों में बे-खटके रह सकता था। इसके विपरीत ईश्वर को मानने, परंतु कुकर्म करनेवाले के लिये दंड है। किंतु आजकल हिंदू-समाज की दशा इससे बिलकुल उलटी है। आज ऐसे व्यक्ति को समाज से बाहर निकालने का किसी को ख़याल तक नहीं आता। परंतु यदि कोई कहे कि मैं मुसलमान के हाथका खाने को बुरा नहीं समझता, तो उसे समाज में रहना मुश्किल हो जायगा। दूसरे शब्दों में आधुनिक हिंदू-समाज व्यक्ति को उसके कर्म के लिये नहीं, वरन् उसके विचार के लिये दंडित करने की चेष्टा करता है, और इसका यह कार्य प्राचीन आर्य-परंपरा के सर्वथा विरुद्ध है।

संतराम

सहृदय, रसिक और भावुक

अलंकार-शास्त्र का विषय यदि इतना संकुचित होता, जितना उसके नाम से प्रतीत होता है, तो यह शास्त्र निःसंदेह अतीव नीरस रहता। परंतु हर्ष की बात है कि इस शास्त्र में आरंभ से लेकर अंतिम अवस्था तक अलंकारों के लक्षण और उदाहरण के सिवा अन्य विषयों पर भी विचार किया गया है। भारतीय नाट्यशास्त्र-जैसे अतिव्यापक ग्रंथों को अपनी संकुचित दृष्टि के अनुसार अलंकार-शास्त्रांतर्भूत ग्रंथ न समझनेवालों की संख्या अधिक है या स्वल्प, यह मैं नहीं कह सकता। परंतु जो ग्रंथ सबकी सम्मति से अलंकार-शास्त्र-संबंधी हैं, उनमें इतने भिन्न-भिन्न विषयों पर विचार किया गया है कि मेरा उपर्युक्त कथन निर्मूल नहीं है। काव्य क्या है, शब्द के कौन-कौन व्यापार हैं, इन व्यापारों का संबंध, साधुकाव्य के पठन से जो आनंद पैदा होता है, उसके साथ क्या है, मनुष्य-जीवन पर किन-किन भावों का प्रभाव पड़ता है, इन प्रश्नों पर और तादृश अन्य प्रश्नों पर भी, इस शास्त्र में विचार किया गया है, और शास्त्रकारों ने इनका यथाशक्ति उत्तर देने का भी प्रयत्न किया है। शास्त्रकार की बुद्धि जितनी सूक्ष्म होती है, उतना ही गंभीर और तत्त्व-प्रकाशक उसका उत्तर भी होता है। परंतु उत्तर चाहे गंभीर हो या साधारण, यह स्वयं स्पष्ट है कि अलंकार-शास्त्र में जो सरसता है, वह इन उत्तरों ही के कारण।

इन उत्तरों के विषय में दो प्रकार के लोगों को सदैव कुतूहल रहता है। वे हैं पाठक और लेखक। कवि और सहृदय इन्हीं के परिष्कृत रूप हैं। यही नहीं, जिस शैली के अनुसार शास्त्रकारों ने इन प्रश्नों पर विचार और समाधान किया है, उससे यह भी मालूम होता है कि कविपदोत्सुक जनों ही के लिये इन्होंने इतना कष्ट उठाया है। कवित्व का हेतु क्या है? क्या हरएक आदमी कवि हो सकता है? इस विषय पर प्रायः सभी आलंकारिकों ने अपना मत प्रकट किया है। यद्यपि इनमें कवित्व के प्रधान हेतु को बतलाकर अपने कर्तव्य को समाप्त समझनेवाले शास्त्रकारों ही की संख्या अधिक है, तथापि ऐसे ग्रंथकार भी मिलते हैं, जिन्होंने अपनी कृतियों में कवि-पद पर पहुँचानेवाले मार्ग और अभ्यास का भी सविस्तर वर्णन किया है। इस बात पर शास्त्रकारों का पूरा मतैक्य है कि कवित्व का प्रधान कारण प्रतिभा है। लेकिन प्रतिभा है क्या चीज़? प्रतिभा के लक्षण प्रस्तुत शास्त्र में जितने मिलते हैं, उनमें अगर भेद है, तो केवल शब्दों ही का; अर्थ तो वही है। अतएव उसके एक प्रसिद्ध लक्षण को मैं यहाँ उदाहरण-रूप में देता हूँ—"प्रज्ञानवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभोच्यते।" अर्थात् प्रतिभा कोई अंतर-ज्ञानमय शक्ति अथवा प्रज्ञा है, जिसका यह शील है कि वह

नई-नई बात पैदा करती है। वामन-कृत 'काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति' की अपनी कामधेनु-टीका में गोपेंद्र त्रिपुरंदर भूपाल ने इस लक्षण को भामह का बतलाया है। पर यह लक्षण भामह के प्रकाशित काव्यालंकार में नहीं मिलता।

वह प्रतिभा है। इसके सिवा व्युत्पत्ति अभ्यास आदि के होने पर भी अच्छी कविता नहीं उत्पन्न होती।

यह तो कवियों की बात हुई। परंतु पाठक अथवा उसी के परिपक्व रूप सहृदय की बात क्या है? सहृदय किसी प्रकार का समालोचक ही है। प्रस्तुत शास्त्र भी किसी प्रकार का समालोचना-शास्त्र है। अतएव यह प्रश्न सहज ही उठता है कि इस समालोचना-शास्त्र में काव्य-समालोचक को क्या स्थान दिया गया है? यहाँ यह अवश्य कहना पड़ता है कि जैसे सभी आलंकारिकों ने कवि के विषय में कुछ-न-कुछ स्पष्ट लिखा है, वैसे सहृदय के विषय में भी लिखा दृष्टिगोचर नहीं होता। आलंकारिक लोग स्वयं समालोचकवर्ग के अंतर्गत हैं, परंतु इस बात का इन्होंने ध्यान नहीं रक्खा। हर्ष की बात है कि ऐसे भी लेखक मिलते हैं, जो इस नियम के अपवाद होते हैं। उनमें कर्पूर-मंजरी आदि ग्रंथों के रचयिता कवि राजशेखर भी एक हैं। इनका रचा हुआ काव्य-मीमांसा नाम का एक ग्रंथ हाल में बड़ोदा-रियासत से प्रकाशित किया गया है। सहृदय के विषय में जो-जो बातें राजशेखर ने अपने इस ग्रंथ में लिखी हैं, उनका निर्देश इस लेख के अंत में किया जायगा। इससे पहले काव्य-मीमांसा की अपेक्षा प्राचीन ग्रंथों में सहृदय के विषय में जो लिखा है, उस पर कुछ कहना अनुचित न होगा।

संस्कृत में समालोचक के लिये अनेक शब्द मिलते हैं, उनमें इन तीनों का प्रयोग कुछ व्यापक होता है। सहृदय, रसिक और भावुक, ये शब्द अन्योन्यविरुद्ध नहीं, अन्योन्य-पूरक हैं। इनमें से प्रत्येक शब्द समालोचक के किसी विशेष गुण पर प्रकाश डालता है। 'सहृदय' एक पुराना शब्द है। यह कहे बिना भी स्पष्ट है कि इसका प्राचीनतम अर्थ यौगिक होता है, अर्थात् 'हृदय के साथ'-सहृदयोऽग्नि-राधेय:"। * तैत्तिरीय ब्राह्मण के इस वाक्य में सहृदय शब्द का यही अर्थ है—"कुरु साधु प्रमादं मे बालि सहृदया ह्यसि"† वाल्मीकि-रामायण के इस श्लोक में इस शब्द का अर्थ यौगिक नहीं है। हृदय का अर्थ मांसमय हृदय नहीं, 'अनुकंपा' अथवा 'सहानुभूति' है। यहाँ हम आलंकारिकों के अर्थ के पास पहुँच गए हैं, लेकिन ज़रा-सा और चलना है। प्रसिद्ध आलंकारिक अभिनवगुप्ताचार्यजी ने इस शब्द का जो अर्थ दिया है, वह बहुत गंभीर है। इसलिये उन्हीं के शब्दों को मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ —

"येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः।"

इस लक्षण में दो बातें स्मरणीय हैं। पहली बात तो यह कि सहृदय वही है, जिसके मनोदर्पण में वर्णनीय वस्तु प्रतिबिंबित हो जाती है, अर्थात् जिसके मन को वर्णनीय वस्तु से मिलकर एक होने की शक्ति प्राप्त है। दूसरी बात यह कि सहृदय में हृदय-संवाद होता है, अर्थात् उसके हृदय में किसी प्रकार का विकास अथवा व्यापकता पैदा हो जाती है। आचार्य अभिनवगुप्त के मत में सहृदयत्व और हृदय-संवाद में एक घनिष्ठ संबंध है; क्योंकि वह अन्य अवसरों पर भी इसी बात की ओर पाठक की दृष्टि को आकर्षित करते हैं। यह देखिए—अपि तु हृदयसंवादापरपर्यायसहृदयत्व-परवशीकृततया पूर्णीभविष्यद्रसास्वादाङ्कुरीभावेनानुमान-स्मरणादिसरणिमनारुह्यैव तन्मयीभवनोचितचर्वणाप्राणतया*। उनका यह भी मत है कि यह हृदय-संवाद प्रायः रसास्वादन के अवसर पर होता है; क्योंकि वह कहते हैं—"प्राक्संविदितं परत्रानुमितं च चित्तवृत्तिजातं संस्कार-क्रमेण हृदयसंवादमादधानं चर्वणायामुपयुज्यते×। इसी बात को सिद्ध करने के लिये आचार्यजी ने अधो-लिखित श्लोक को उद्धृत किया है —

'योऽर्थो हृदयसंवादी तस्य भावो रसोद्भवः।
शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना॥'‡

इससे यह सिद्ध होता है कि हृदय-संवाद रसास्वाद के संबंध में होता है, और जिसका यह होता है, वही सहृदय भी है, अर्थात् जिसमें रसास्वादन की शक्ति है, वही सहृदय है। यह बात केवल अनुमान-सिद्ध नहीं, बल्कि 'ध्वन्यालोक' के रचयिता आनंदवर्द्धनाचार्य ने स्पष्ट शब्दों में कही है — 'किमिदं सहृदयत्वं नाम ······················ द्वितीय-

* तैत्तिरीय ब्राह्मण—२, २, ४, २२

† वाल्मीकि-रामायण—२, २, ३, २२

* ध्वन्यां, पृष्ठ ७७

× ध्वन्यां, पृष्ठ २८

‡ ध्वन्यां, पृष्ठ २२

स्मिंस्तु पक्षे रसज्ञतैव सहृदयत्वम् ।" यहाँ आचार्य ने रसज्ञता को सहृदयत्व का पर्याय कर दिया है। इसका कारण यह है कि वह ध्वनिवाद के पक्षपाती थे। परंतु सहृदय का गौरव वस्तुतः अधिक है। वामन के मतानुसार काव्य की आत्मा रीति होती है; क्योंकि यही सहृदय का अनुभव है। कुंतक कहते हैं कि वक्रोक्ति ही काव्य की जान है। क्यों? क्योंकि सहृदय का यही अनुभव है। इससे यह सिद्ध होता है कि साधुकाव्य के पठन से जो आनंद पैदा होता है, उसका अनुभव सहृदय ही करता है। इस आनंद का जो सूक्ष्म तत्त्व है उसका यथार्थ ज्ञान भी उसी को होता है। यह आनंद रीति पर निर्भर है अथवा ध्वनि पर, इस बात को आप किसी सहृदय से पूछिए, आपको यथार्थ उत्तर मिलेगा।

हरएक आदमी सहृदय नहीं हो सकता। प्रस्तुत शास्त्र में बार-बार लिखा है कि इस संसार में ऐसे भी लोग हैं, जिनमें वर्णनीय वस्तु से मिलकर एक होने की शक्ति का नैसर्गिक अभाव है। वैयाकरण और मीमांसक इस न्याय के प्रसिद्ध उदाहरण होते हैं। जिन लोगों का पूरा जीवन शब्दों का प्रकृति-प्रत्यय-विभाग करने में कट जाता है, उनको सुंदर एवं असुंदर शब्दों का भेद कैसे मालूम हो? जो लोग उमर-भर वैदिक कर्मों की अचिंतनीय जटिलता में फँसे रहते हैं, उनमें काव्य-सौंदर्य के भोग करने की शक्ति कैसे न मर जायगी? इन लोगों के विषय में यह बात कितने ही बार कही जा चुकी है, तथापि आजकल ऐसे भी विद्वान् दिखाई देते हैं, जो हरएक काव्य को पाणिनि मुनि की अष्टाध्यायी का उदाहरण समझते हैं। इस काम के लिये क्या अकेला भट्टिकाव्य काफ़ी नहीं?

जब यह सर्वमान्य हुआ कि मनुष्य-जीवन के भिन्न-भिन्न भावों का प्रकटीकरण ही कविता का मुख्य प्रयोजन होना उचित है, तब समालोचक का नाम रसिक रक्खा गया। रसिक वही है, जिसमें रसास्वादन की शक्ति है। रस उस आनंद का नाम है, जो साधुकाव्य के पठन या चारु नाटक के दर्शन से पाठक या प्रेक्षक के मन में उत्पन्न होता है। इस रसवाद का विकास नाट्य के संबंध में हुआ। धीरे-धीरे अन्य प्रकार के काव्यों पर भी इसका प्रभाव फैलने लगा। आख़िर यह हुआ कि रस ही काव्य का प्राण या आत्मा माना गया। 'रसिक'-शब्द भगवान् पतंजलि मुनि के महाभाष्य में मिलता है — "रसिको नटः"। यह कोई आकस्मिक बात नहीं कि इस वाक्य में 'रसिक'-शब्द नट का विशेषण है; क्योंकि जैसे ऊपर दिख-लाया गया है, रसवाद पहले नाट्य ही के संबंध में कल्पित किया गया था। दशरूपक आदि अर्वाचीन ग्रंथों में लिखा है कि नट रस का अनुभव नहीं कर सकता। अगर करना चाहे, तो उसको अपने नटत्व को छोड़कर केवल प्रेक्षक होना चाहिए। इस दृष्टि से रसिक-शब्द नट का विशेषण कैसे हो सकता है? क्या पतंजलि मुनि के समय में यह मत स्वीकृत नहीं किया गया था? इस बात पर कोई निर्णय होना कठिन है। चाहे जैसे हो, महाकाव्य में रसिक-शब्द का वही अर्थ है, जो अर्वाचीन ग्रंथों में रक्खा गया है, अर्थात् जिसमें रस को अनुभव करने की शक्ति हो।

अब रस क्या है? आलंकारिकों ने इस विषय पर बहुत लिखा है। उसका संक्षेप यहाँ दिया जाता है। हम संसार में मनुष्य के भिन्न-भिन्न भावों की लीला हमें दृष्टिगोचर होती है। आलंकारिकों के मतानुसार इन भावों में आठ भाव प्रधान होते हैं—रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय। इनकी लीला को बार-बार देखने से हमारे हृदय में इनका संस्कार जम जाता है। इसके बाद हम लोगों को ऐसे ग्रंथों का पठन अथवा ऐसे नाटकों का दर्शन करने का अवसर मिलता है, जिनमें राम, सीता आदि विशिष्ट पात्रों के संबंध में इन्हीं भावों का वर्णन होता है। इस दशा में हमारे हृदय में 'साधारणीकरण' नाम के व्यापार की चेष्टा होती है, जिसका फल यह होता है कि राम सीता आदि पात्रों से संबंध होने के कारण इन भावों में जो विशिष्टता है, उसको हम लोग नहीं देखते। राम अपने रामत्व को छोड़-कर कामुक-मात्र मालूम होते हैं। सीता भी अपने सीतात्व को छोड़कर केवल कामिनी मालूम होती हैं। पाठक अथवा प्रेक्षक में रामत्व अथवा सीतात्व के न होने पर भी कामुकत्व-मात्र या कामिनीत्व-मात्र होता अथवा हो सकता है। इसलिये इन भावों का जो संस्कार पहले ही पाठक आदि में पड़ा था, उसी का अब उद्बोधन होता है। इसी उद्बोधन को अलंकार-शास्त्र में व्यंजन कहते हैं। इस उद्बोधन के कारण पाठक या प्रेक्षक में वासना-रूप भावों का आस्वादन होता है। इस दशा में इन भावों का रस-रूप में परिणाम होता है।

सहृदयत्व की भाँति रसिकत्व भी कोई सर्वसाधारण धर्म नहीं है। यह भी पूर्वजन्म-कृत कर्मों का फल अथवा किसी देवता के प्रसाद से होता है।

समालोचक का तीसरा नाम है भावुक। यद्यपि यह शब्द प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता, तथापि उनमें इस शब्द के संबंधियों का बार-बार प्रयोग आया है। भाव, विभाव, अनुभाव, भावित, भावयति, भावकत्व आदि शब्दों का और प्रस्तुत शब्द का कुटुंब एक ही है। भरत मुनि-कृत नाट्यशास्त्र में इनमें से कई शब्दों का न केवल प्रयोग, परंतु व्याख्या भी है। इन भावों का विशेष वर्णन ही उपर्युक्त ग्रंथ के सप्तम अध्याय का प्रधान विषय है। मैं इस अध्याय से दो-तीन वाक्य उद्धृत करके भरत मुनि का मत स्पष्ट किए देता हूँ। भाव-शब्द के विषय में भरत मुनि कहते हैं—

१. वागङ्गसत्त्वोपेतान काव्यार्थान भावयन्तीति भावाः

२. वागङ्गमुखरागैश्च सत्त्वेनाभिनयेन च ;
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते।

३. नानाभिनयसंबद्धान् भावयन्ति रसानिमान् ;
यस्मात्तस्मात् अमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः।

इन तीनों वाक्यों में 'भावयन्ति'-शब्द का प्रयोग है। प्रथम वाक्य के संबंध में भरत मुनि स्वयं कहते हैं—"भू इति करणे धातुः" यथा, भावितं कृतमित्यनर्थान्तरम्। सार यह कि जो करता अथवा बनाता है, वह भाव है। द्वितीय वाक्य में इस शब्द का अर्थ 'प्रकटन' अथवा 'स्पष्टीकरण' मालूम होता है। तृतीय वाक्य में उसका वही अर्थ है, जो प्रथम वाक्य में है। विभाव के बारे में भरत मुनि कहते हैं—"विभावो नाम विज्ञानार्थः.........विभावितं विज्ञातमित्यनर्थान्तरम्"। 'प्रकटीकरण' और 'विज्ञान' में जो सादृश्य है, वह सबके लिये स्पष्ट है। अतः यह सिद्ध होता है कि यह भावुक-शब्द, जिसका अर्थ काव्य-समालोचक है, उस धातु से उत्पन्न है, जिसका अर्थ भरत मुनि ने 'करण, उत्पादन, प्रकटीकरण या विज्ञान' समझा है।

अब यह देखना है कि इन अर्थों में और 'समालोचन' में कोई सादृश्य है कि नहीं। इसके लिये हमको भावुकत्व-शब्द पर कुछ विचार करना उचित होगा। भट्टनायक के मत के अनुसार भावुकत्व उस शब्द व्यापार का नाम है, जिसकी शक्ति से उपर्युक्त 'साधारणीकरण' सिद्ध होता है। परंतु इस 'साधारणीकरण' नाम के व्यापार का मर्म क्या है? भरत मुनि के प्रकटीकरण अथवा विज्ञान से क्या इसका कोई संबंध है? कई विद्वानों के मतानुसार संबंध अवश्य है। इनका कहना है कि भरत मुनि के पूर्वोद्धृत प्रथम वाक्य में इसी 'साधारणीकरण' अथवा भावुकत्व से मतलब है। यह बात अच्छी तरह मेरी समझ में नहीं आती। अब यह देखना है कि 'साधारणीकरण' और काव्य-समालोचना में कोई संबंध है कि नहीं। आलंकारिकों का कथन है कि यह 'साधारणीकरण' रसास्वादन की अपेक्षा पहले का व्यापार है, अतएव इन दोनों में कार्य-कारण संबंध भी है। साधारणीकरण नाम के व्यापार का नाम है भावुकत्व। जो इस व्यापार का संपादन करता है, वह भावुक है। इसके संपादन से रसास्वाद होता है। जो रस का आस्वादन करता है, वह रसिक है, अर्थात् भावुक ही आगे चलकर रसिक हो जाता है।

परंतु भावुक-शब्द का यह व्याख्यान किसी ग्रंथ में नहीं मिलता। कवि राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में भावुक के विषय में जो कुछ लिखा है, वह मुझे सरस मालूम होता है। अतएव उसका परिचय पाठकगण को नीचे देता हूँ—

राजशेखरजी अपने ग्रंथ के चतुर्थ अध्याय में कहते हैं कि प्रतिभा दो प्रकार की है—एक है 'कारयित्री', जो कवियों की सेवा करती है। इसी के सद्भाव के कारण मनुष्य कवित्व को प्राप्त करता है। द्वितीय प्रकार की प्रतिभा 'भावयित्री' है, जो भावुक की सेवा करती है। पर क्या सेवा करती है? "सा हि कवेः श्रममभिप्रायं च भावयति"। कवि ने काव्य-संपादन में जो कष्ट उठाया है, उसकी ओर उसने अपनी कविता में जो-जो अभिप्राय प्रकट किए हैं, उनकी भावना अथवा तुलना या समालोचना यही भावयित्री प्रतिभा कर सकती है। भावुक की इस तुलनाशक्ति को प्रतिभा बतलाने का फल यह है कि कवि की प्रतिभा के समान यह भी प्रतिभा जन्मांतर-कृत पुण्यकर्मों का फल है। हरएक आदमी भावुक नहीं हो सकता।

अभियोगे समानेऽपि विचित्रो यदयं क्रमः ;
तेन विद्मः प्रसादोऽयं नृणां हेतुरमानुषः।

संसार में जितने भावुक होते हैं, वे सब एक ही प्रकार के नहीं होते। कोई भावुक अरोचकी होता है, अन्य-कृत कविता में उसकी प्रीति मुश्किल से पैदा होती है। उसकी दृष्टि से कोई भी त्रुटि नहीं छिपी रह सकती। उसका यह

गुण कभी नैसर्गिक होता है, कभी अपने ज्ञान का फल। जब नैसर्गिक होता है, तब उसको छोड़ना भी बहुत कठिन बात होती है। हर प्रकार के काव्य की समालोचना के अवसर पर उसका प्रभाव दिखाई देता है। गुणयुक्त रसमय काव्य भी उसके प्रभाव से नहीं बच सकता। परंतु जब यह अरोचकिता भावुक के ज्ञान का फल है, तब साधुकाव्य की रक्षा होती है; क्योंकि भावुक को उससे प्रीति पैदा होती है। कोई भावुक सतृणाभ्यवहारी अर्थात् विवेक-शून्य होता है। जैसे कोई मूढ़जन भोजन में पड़े तिनके तक खा लेता है, वैसे ही यह भावुक सब पसंद कर लेता है। राजशेखरजी कहते हैं कि यह दोष सर्वसाधारण है। उनका यह कथन आज भी यथार्थ है क्योंकि आरंभ में कभी भावुक अपनी सरलता और साधुता के कारण सभी प्रकार के काव्यों को पढ़कर आनंद पाते हैं; कुछ विलंब ही से उनमें विवेक उत्पन्न होता है। तीसरे प्रकार का भावुक मत्सरी होता है। दूसरे की रची अच्छी कविता को देखकर उसके हृदय में असूया पैदा हो जाती है। उपर्युक्त दो प्रकार के भावुकों से इसका भेद यह है कि इसमें नैसर्गिक प्रतिभा तो है, इसलिये गुण-दोष-ज्ञान भी है; परंतु असूया के कारण गुणों का प्रकटन नहीं करता, बल्कि दोषों का ही प्रकाशन करता रहता है। राजशेखरजी कहते हैं—"मत्सरिणः प्रतिभातमपि न प्रतिभातं परगुणेषु वाचंयमत्वात्।" अर्थात् मत्सरी भावुक के लिये जो प्रतिभा ही से उत्पन्न है, वह भी साधु नहीं है; क्योंकि दूसरों के गुणों के विषय में वह अपनी ज़बान बंद किए रखता है। ऐसे भावुक बहुत कम मिलते हैं, जो मत्सरी न हों, और जिनको ज्ञान भी हो। इनके अभाव के कारण कवि लोग भी निराश हो जाते हैं। किसी कवि ने इस विषय में यह श्लोक भी लिख डाला है—

कस्त्वं भोः कविरस्मि काप्यभिनवा सूक्तिः सखे पठ्यताम्,
त्यक्ता काव्यकथैव सम्प्रति मया कस्मादिदं श्रूयताम्;
यः सम्यग्विविनक्ति दोषगुणयोः सारं स्वयं सत्कविः,
सोऽस्मिन् भावुक एव नास्त्यथ भवेद्दैवान्न निर्मत्सरः।

"तुम कौन हो? मैं कवि हूँ। हे मित्र, अपनी कोई नई सूक्ति तो सुना दो। आजकल मैंने काव्य-कथा ही छोड़ दी है। यह क्यों? सुनो, जो गुण-दोषों का ख़ूब विवेचन करे, और जो स्वयं कवि हो, ऐसा कोई भावुक संसार में दिखाई ही नहीं देता। यदि मिल भी जाय, तो दैव की कृपा से वह मत्सरी निकलता है।"

अंतिम प्रकार का भावुक तत्त्वाभिनिवेशी होता है, अर्थात् वह सभी बातों को ढूँढ़कर उनकी प्रशंसा करता है। "तत्त्वाभिनिवेशी तु मध्ये सहस्रं यद्येकः।" इस प्रकार का भावुक हज़ार में एक होता है।

काव्य-मीमांसा में न केवल राजशेखर के परंतु अन्य कवियों के भी मत लिखे गए हैं। इसीलिये यह ग्रंथ इतिहास की दृष्टि से अतीव मनोरंजक है। भावुक के विषय में विचार करते हुए राजशेखरजी पूछते हैं कि जो कवि समालोचना का काम करता है, और जो भावुक कविता रचता है, इन दोनों में क्या भेद है? इनमें परस्पर कोई संबंध है कि नहीं? उत्तर यह है—

प्रतिभातारतम्येन प्रतिष्ठा भुवि भूरिधा;
भावकस्तु कविः प्रायो न भजत्यधमां दशाम्।

जैसी प्रतिभा होती है, वैसी ही प्रतिष्ठा भी होती है। परंतु जो भावुक कविता करे, उसकी दशा बहुत अधम नहीं हो सकती है।

परंतु कालिदास कहते हैं कि यह मत ठीक नहीं है। उनके मतानुसार भावुकत्व और कवित्व में परस्पर स्वरूप और विषय का भेद है। इस बात को सिद्ध करने के लिये यह श्लोक दिया गया है—

कश्चिद्वाचं रचयितुमलं श्रोतुमेवापरस्तां,
कल्याणी ते मतिरुभयथा विस्मयं नस्तनोति;
नह्येकस्मिन्नतिशयवतां सन्निपातो गुणाना-
मेकः सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षाक्षमोऽन्यः।

"कोई कविता की रचना में समर्थ है, और कोई उसके सुनने में। तुम्हारी मति तो हमारा विस्मय पैदा करती है; क्योंकि तुम इन दोनों काम में समर्थ हो। प्रायः एक ही शक्ति में उत्तमोत्तम गुणों का सद्भाव नहीं होता। यह देखो, सोने की उत्पत्ति किसी पाषाण से होती है; किंतु उसकी परीक्षा तो और किसी पाषाण से की जाती है।"

परंतु राजशेखरजी के मतानुसार कवित्व और भावुकत्व का एक ही शक्ति में मौजूद होना असंभव नहीं।

के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर

"दुलारे-दोहावली" का एक दोहा

"तिय-रतननि हीरा यहै, यह साँचो ही सोर ;
जेती उज्जल देह-दुति, तेतो हियो कठोर ।"

यह किसी मानवती नायिका का चित्र है । दोहे का भावार्थ इस प्रकार है—

"यह बात जो बड़े ज़ोर-शोर के साथ फैल रही है कि रमणी-रत्नों में यह स्त्री हीरा के समान सर्व-श्रेष्ठ है, सो बिलकुल सच है । देखो, ऊपर से देखने में जैसे हीरा खूब उज्ज्वल होता है, वैसे ही इस स्त्री का शरीर भी खूब गोरा है; तथैव हीरा जैसे सब रत्नों में कठोर होता है, वैसे ही इस स्त्री का हृदय भी बड़ा ही कठोर है । नायक के हज़ार खुशामद करने पर भी—ज़रा भी—नहीं पसीजती । सचमुच इसकी हीरा से समता बड़ी सुंदर है ।"

'तिय-रतननि हीरा यहै', यह वाक्यांश महावरेदार है, और भाव-पूर्ण भी । यह लोक-कथन आज भी खूब प्रचलित है कि 'भई, यह आदमी तो हीरा है ।' 'साँचो ही सोर' में भी महावरे का ज़ोर है । इन दोनों वाक्यांशों में अनुप्रास की भी अच्छी बहार है, तथा टवर्ग आदि श्रुति-कटु अक्षरों का भी बचाव है । 'तिय-रतननि हीरा यहै' में 'वाचक-लुप्तोपमा' का निर्वाह हुआ है । 'हीरा'-शब्द यहाँ साभिप्राय भी है ।

'जेती उजल देह-दुति, तेतो हियो कठोर' इस अंश में 'विषम'-अलंकार का निर्वाह अच्छे ढंग से हुआ है । कहाँ ऐसी उज्ज्वल देह, और कहाँ इतना कठोर हृदय ! संबंधियों का यह अत्यंत वैधर्म्य संबंध-घटना को प्राप्त न कराता हुआ विषमालंकार की सुंदर सत्ता को प्रकट करता है । 'देह-दुति' में अनुप्रास-चमत्कार है । पर हमारी राय में संपूर्ण दोहे में 'व्याजस्तुति'-अलंकार ही विशेष चमत्कार-पूर्ण है । स्त्री की ऊपर से यह जो कुछ प्रशंसा की गई है—उसकी हीरे से तुलना की गई है—उसके अंग उज्ज्वल बताए गए हैं—यह सब इसलिये किया गया है कि उसके कठोर-हृदया कहे जाने का विशेष प्रभाव पड़े । नायिका प्रकट में यह भी न जान सके कि हमारी निंदा हो रही है, और निंदा हो भी जाय । संपूर्ण दोहा 'व्याजस्तुति' का खासा उदाहरण है । 'उजल' में संयुक्त 'ज' और 'कठोर' में 'ठो' वर्ण श्रुति-कटु तो हैं, पर अधिक मधुर-पदावली में खप जाते हैं । शृंगार-रस तो दोहे में है ही । यदि दोहे की उक्ति सखी या नायक के मुख से हो, और नायिका को सुनाकर कही गई हो, तो उसमें वाच्यार्थ के अतिरिक्त व्यंग्यार्थ भी ढूँढना पड़ेगा । नायिका को सुनाकर कहने में यह अभिप्राय है कि वह मान छोड़-कर नायक को सनाथ करे । हीरे के तीन गुण सब-से अधिक प्रसिद्ध हैं—अर्थात् उज्ज्वलता, कठोरता और बहुमूल्यता । ये तीनों ही गुण रमणी-रत्न में आरोपित किए गए हैं । दोहा अनेक गुणों से अलंकृत है, और सत्काव्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है ।

कृष्णविहारी मिश्र

"तीज-परब"

(बरवै—अवधी-भाषा)

सुनौं कहिन हैं 'अइहौं, भए भिनुसार" ;
रतिया बढ़वत ग्वैवा, खाए खार ।
रहिहौं ठगी दुअरिया, परखौं राह ;
बिछी परति हैं अँखियाँ, बढ़ि-बढ़ि चाह ।
चहूँ दिसि घोर अँधेरवा, छायसि आय ;
काके डीठि-पँयड़वा, कवन उपाय ?
बीतत जनु दुइ घरिया, दुइ जुग होत ;
आखिर आय चनरमा, भए उदोत ।

सीतल ह्वै हैं अँगवा, धीरज दीन्ह ;
ये तौ उलटै हमका, औरै कीन्ह ।
बगिया मोर बढ़ावत बिढ़वत सूल ;
झौसघपल इन्ह सबै, कहल निरमूल ।
ठाढ़-ठाढ़ तन दुखिया, औ थकि आउँ ;
कैसियु आय डेवढ़िया, मैं परि आउँ ।
खुरकति जबै कॅंवरिया, जानौं खोलि ;
बैरिन आय बयरिया, करत ठठोलि ।
होत बिहान लोहवॅंवा, लागै लाग ;
मोर धिरत्र अंधेरिया, भागै लाग ।
अस पौ फाटत, हियरा, दरकत जात ;
आवैं कै अब आसियौ, छूटो जात ।
अब तौ ह्वै गय तिजिया, भा परकास ;
दुइ इक घरी कै नाहीं, खाँढ़ा साँस ।

भानुप्रसाद

१. नभलालमा ।

आश्रय





स्वरलिपिकार—श्रीलालबहादुरसिंह]

[**शब्दकार**—महात्मा सूरदास

इमन—तीन ताल

गीत

जित देखो तित श्याममई है ।

श्याम कुंज-बन, यमुना श्यामा ; श्याम गगन घन-घटा छई है ।
सब रंगन में श्याम भलो है ; लोग कहत यह बात नई है ।
मद बौराने लोगन की हो ; श्याम पुतरिया बदल गई है ।
नीलकंठ को कंठ श्याम है : मृगमद श्याम काम विजयी है ।
चंद्र सूर को हृदय श्याम है ; जलधि जगत सब श्याममई है ।
श्रुति के अच्छर श्याम देखिए ; दीप-सिखा पर श्याममई है ।
नर देवन की कौन कथा है ; अलख ब्रह्म-छबि श्याम मई है ।

स्थायी

०				३				×				२			
ग	रे	ग	रे	सा	रे	नि	सा	ग	—	ग	रे	ग	म॑	प	ध
जि	त	दे	—	खो	·	नि	त	श्या	—	म	म	ई	—	है	—
सां	—	सां	सां	—	सां	सां	सां	नि	ध	नि	ध	प	म॑	प	—
श्या	—	म	कुं	—	ज	ब	न	य	मु	ना	—	श्या	—	मा	—
ग	—	ग	रे	ग	म॑	प	ध	ग	रे	ग	रे	सा	रे	नि	सा
श्या	—	म	ग	ग	न	घ	न	घ	टा	—	छ	ई	—	है	—

अंतरा

सा सा ग ग	प प ध —	सां — सां सां	सां — सां —
स ब रं —	ग न में —	श्या — म म	लो — है —
ध — नी नी	नी नी सां रें	सां — गं रें	सां नि ध प
लो — ग क	ह त थ ह	बा — न न	ई — है —
ग रे ग रे	सा रे नि सा	नी ध नी ध	प ध मं प
म द् धौ —	रा — ने —	लो — ग न	की — हो —
ग — ग रे	ग मं प ध	ग रे ग रे	सा रे नि सा
प्या — म पु	त रि या —	ब द् ल ग	ई — है —

स्वर-लिपि के संकेत

(स्वर)

१. जिन स्वरों के नीचे बिंदु हो, वे मंद्र-सप्तक के, जिनमें कोई बिंदु न हो, वे मध्य-सप्तक के, तथा जिनके शीर्ष में बिंदु हो, वे तार-सप्तक के समझे जायँ। जैसे—सा, सा, सां।

२. जिन स्वरों के नीचे लकीर हो, उन्हें कोमल समझिए। जैसे—रे, गा, धा, नि। जिनमें कोई चिह्न न हो वे तीव्र हैं। जैसे—रे, ग, ध, नि।

३. मध्यम कोमल का चिह्न 'मा' और मध्यम तीव्र का चिह्न 'मं' है।

(ताल)

१. सम का चिह्न × है, ताल के लिये अंक समझिए, और खाली का द्योतक ० है।

२. ‿ इस चिह्न में जितने स्वर रहें, वे एक मात्रा में गाए या बजाए जायँगे। जैसे—सारे।

३. —यह दीर्घ मात्रा का चिह्न है। जिस स्वर या वर्ण के आगे यह चिह्न हो, उसे एक मात्रा-काल तक अधिक गाइए या बजाइए।



१. सचित्र परिचय

(क) आयर्लैंड का चरखा

महात्मा गांधी के प्रयत्न से अब हम भारतवासी भी चरखे का महत्त्व समझने लगे हैं। किसी ज़माने में सारा संसार चरखे के महत्त्व से भली भाँति परिचित था। उस ज़माने में घर घर चरखे दिखाई भी देते थे। आज पाठकों को आयर्लैंड के चरखे का चित्र भेंट करते हैं। ऐसे चरखे आज से क़रीब सवा दो सौ वर्ष पूर्व आयर्लैंड में चलते थे।

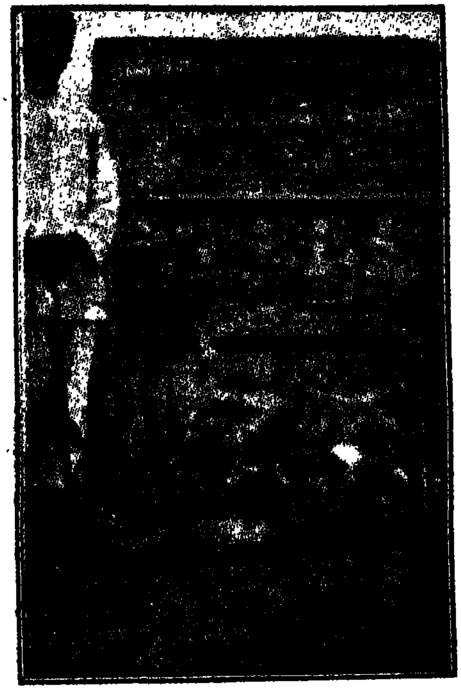
(ख) वीर कल्लू

अति प्राचीन काल में प्रत्येक देश में एक जाति दूसरी जाति के साथ युद्ध में निमग्न रहती थी। हारी हुई जाति के धन, जन और पशुओं का अपहरण करना तथा स्त्री-पुरुषों और बच्चों को अपना गुलाम बना लेने का रिवाज सर्वत्र प्रचलित था। प्राचीन काल की इन लड़ाइयों का हाल वृत्त-कथाओं और कहानियों के रूप में मिलता है।

कहीं-कहीं युद्ध में काम आए हुए वीरों की यादगार में युद्ध-क्षेत्र में पत्थर भी गाड़े जाते थे। चित्र में ऐसा ही एक पत्थर दिखाया गया है। उसके नीचे के भाग में युद्ध-क्षेत्र का दृश्य अंकित है, और ऊपर के भाग में युद्ध-क्षेत्र में काम आए हुए वीरों को मिलनेवाले स्वर्गीय सुख और आनंदोप-भोग का दृश्य दिखाया गया है। यद्यपि भिन्न-भिन्न पत्थरों पर



आयर्लैंड का २०० वर्ष का पुराना चरखा



वीर कल्लु (Hero Stones)

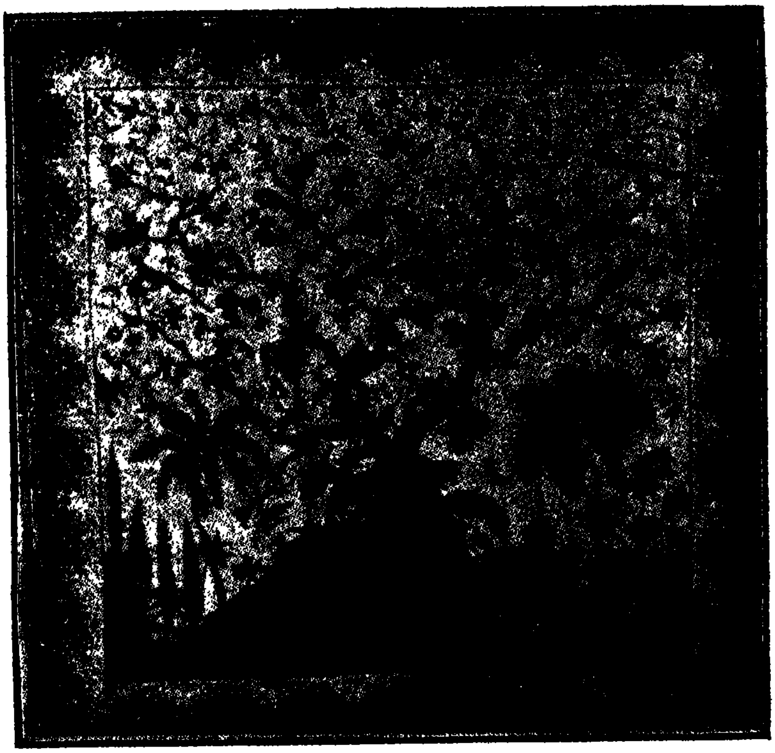
भिन्न-भिन्न दृश्य अंकित किए हुए पाए जाते हैं, तथापि लड़ाई में काम आए हुए वीरों को स्वर्ग में मिलनेवाले सुख और आनंद के विचारों में सर्वत्र ही समानता दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन युद्ध-कला पर यह चित्र अच्छा प्रकाश डालता है।

(ग) भारत की कारीगरी

वेंबले (इँगलैंड) की प्रदर्शिनी के भारतीय विभाग में भारत के माल की इतनी खपत हुई कि माल मिलना मुश्किल हो गया। फ़ैशन के गुलाम विदेशी भारत के छपे हुए कपड़ों को देखते ही लट्टू हो गए। साथ के चित्र में एक छपे हुए कपड़े का नमूना दिखाया गया है। यह उस रूमाल का चित्र है, जो श्रीमान् प्रिंस ऑफ़ वेल्स को संयुक्तप्रांत के व्यापारियों की तरफ़ से उस वक़्त भेंट किया गया था, जब कि वह प्रदर्शिनी के उस अवसर पर संयुक्तप्रांतीय चौक में तशरीफ़ लाए थे। फ़र्रुख़ाबाद के एक व्यापारी ने इसे श्रीमान् को भेंट किया था। इसमें रेशम पर छपाई का काम कितनी ख़ूबी और बारीकी के साथ किया गया है! जी चाहता है, कारीगर का हाथ चूम लें। यह हमारा दुर्भाग्य है कि भारतवासी तो फ़ैशन की नष्ट चीज़ें विदेशों से ख़रीदें, और विदेशी भारत की चीज़ों पर लट्टू हो जायँ। हमारे राजे-महाराजे और धनी सज्जन चाहें, तो उन्हें उत्तमोत्तम पदार्थ भारत में ही मिल सकते हैं। पर कहते लज्जा आती है कि हम भारतीय विदेशी पदार्थों को ख़रीदकर ही अपने को कृतकृत्य मानते हैं, उन चीज़ों को बड़े चाव से मित्रों को दिखाते हैं। और बड़ी ऐंठ और गर्व के साथ कहते हैं कि 'ख़ास विलायती हैं।'

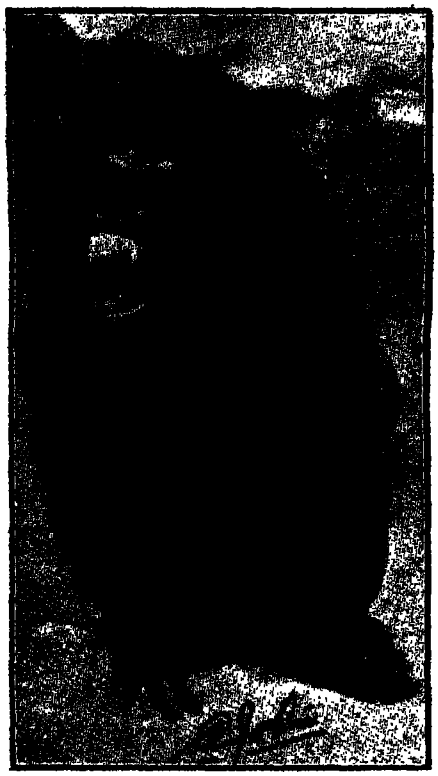
(घ) शूर बंदर

यह बंदर क़रीब सात वर्ष पूर्व ब्रह्मदेश के मरग्वे-ज़िले में, बहुत छोटी अवस्था में, पकड़ा गया था। एक औरत ने इसको पुत्रवत् पाला था। यह बंदर ही उसकी एक-



फ़र्रुख़ाबाद के छपे हुए कपड़े का नमूना

मात्र संतति थी । वह प्राणी कुरूप और डरावना था। मगर अपने सद्व्यवहार और प्रेम के कारण इसने शीघ्र ही लोगों के हृदय में स्थान पा लिया। क़रीब १८ महीने के बाद वह लोगों को तंग करने लगा। किसी के मुर्गे-मुर्गी मार डालता, बछड़े-बछड़ी को नोच लेता, और लड़कों को काट खाता। इससे लोग उसकी मालकिन से अक्सर लड़ा-झगड़ा करते थे। रोज़ के उलाहनों से तंग आकर मालकिन ने उसको ज़ंजीर से बाँध दिया। क़रीब ३ महीने क़ैद



ब्रह्मदेश का शूर बंदर

रखने के बाद वह छोड़ दिया गया। छूटते ही उसने गाँव के मुखिया को काट खाया, जिसने उसके क़त्ल किए जाने का हुक्म दे दिया। उसी दिन शाम को एक व्यापारी उधर से आ निकला। उसने दो सौ रुपए में उस बंदर को ख़रीद लिया। × × × उसी रोज़ रात को लुटेरों ने उस गाँव पर धावा किया। कौड़ी लूट लेने के बाद लुटेरों ने व्यापारी की नाव पर हमला किया। अहकूट (उस बंदर का नाम) इसी नाव पर मौजूद था। लुटेरे मशालें लेकर नाव के पास पहुँचे। लुटेरों के नाव के पास पहुँचते ही अहकूट ने एकदम उनके नायक पर हमला किया, और उसके कंधे पर इतने ज़ोर से घूँसा मारा कि वह ज़मीन पर गिर पड़ा। फिर तीन लुटेरों को और घायल किया। शेष पाँच जान लेकर भाग गए। घायलों को अहकूट ने ख़ूब नोचा-काटा।

अहकूट आजकल मेंडाले में एक बढ़िया मकान में रक्खा गया है। व्यापारी उसके आराम का पूरा ख़याल रखता है। अब वह व्यापारी दस हज़ार रुपए में भी अपने इस प्यारे नमकहलाल और शूर मित्र को बेचने के लिये राज़ी नहीं। कभी-कभी अहकूट अपने मालिक के साथ घूमने को भी जाता है।

शंकरराव जोशी

× × ×

२. धिक् जयचंद

(दोहा)

खोलि बिदेसिन को दियौ, देस-द्वार मतिमंद।
स्वारथ-हित कीनों कहा, अरे अधम जयचंद ॥ १ ॥
रतन-देस लुटवाय, शठ ! कियो कनक तें छार।
फूट-बीज इत ब्वै गयौ, जयचंद जाति-कुठार ॥ २ ॥
दियौ बिदेसिन सौंपि धन, धरती, धरम स्वछंद।
हमैं फूट अब देत तू, धिक दानी जयचंद ॥ ३ ॥
हैं ठाढ़े जेहि डार पै, तेहि काटत मतिमंद।
घर-घर नित या देश मैं, उपजि रहे जयचंद ॥ ४ ॥
अपने ही कर आपने, गरे गेरि जम-फंद।
पराधीन ह्वै मरत नित, इत केते जयचंद ॥ ५ ॥

वियोगी हरि

× × ×

३. "रामायण में जंगली नाम"

माधुरी, वर्ष ४, संख्या १ में रायबहादुर श्री० हीरालालजी बी० ए०, एम्० आर० ए० एस्० ने जयपुर (मद्रास) हाई स्कूल के हेडमास्टर श्री० बाबू रामदासजी के लेख के आधार पर "रामायण में जंगली नाम"-शीर्षक एक लेख प्रकाशित कराया है। उस लेख में आपने पहली बात यह बतलाई है कि रामायण में अनेक आर्यों के नाम संस्कृत-रूप में बतलाए और उनके मनमाने अर्थ लगा लिए गए हैं; परंतु यथार्थ में वे अनार्य-भाषा से लिए गए थे। जिन नामों का आप निर्देश करते हैं, उन्हें आपने अपने लेख में आर्य होना स्वीकार किया है। फिर आर्यों के नाम तो आर्य-

भाषा से ही लिए जा सकते हैं, न कि अनार्य-भाषा से ? और, फिर क्या आर्य-भाषा में नामों की न्यूनता थी, जो वे अनार्य-भाषा में अपना नाम ढूँढ़ने गए ?

आपने अनार्य-भाषा से नाम लेने की पुष्टि के लिये रामायण के मूल लेखक, संस्कृत के आदिकवि वाल्मीकि को भी अनार्य कह डाला है। इसके उत्तर में निवेदन है कि रामायण-काल में अनार्यों के शिक्षित होने के कोई प्रमाण ही नहीं मिलते। फिर मैं नहीं कह सकता कि ऐसे समय में भी एक अनार्य संस्कृत-जैसी उत्कृष्ट भाषा में इतना श्रेष्ठ कवि कैसे उत्पन्न हो गया, जिसने राम-जन्म के पूर्व ही रामायण-ऐसा महाकाव्य रच डाला। रायबहादुर साहब तथा बाबू रामदासजी की दृष्टि में आर्य और अनार्य शब्द के क्या अर्थ हैं, और उन्होंने किस अर्थ के अनुसार महर्षि वाल्मीकि को अनार्य बतलाया है, यह वे ही जान सकते हैं।

लेखक महोदय ने दूसरी बात यह लिखी है कि शावरी भाषा में 'लंका' का अर्थ 'बहुत ऊँचा' है। जैन-ग्रंथ में भी ६ योजन ऊँचे और ५० योजन चौड़े पर्वत का उल्लेख है। ६ योजन ऊँचा कोई पर्वत नहीं है। परंतु ऐसा कहने का अर्थ यही होता है कि पर्वत बहुत ऊँचा था, मानो आकाश को छूता था।

जैन-ग्रंथ में लिखे पर्वत की सत्यता तथा असत्यता के संबंध में मुझे कुछ कहना नहीं है। पर यह अवश्य कहूँगा कि इसका जो अर्थ लेखक समझते हैं, वह नहीं है; क्योंकि जो आलंकारिक वर्णन होता है, उसकी निश्चित संख्या लिखी नहीं होती, जैसा कि ऊपर बतलाया है।

श्रीयुत हीरालालजी ने यह भी लिखा है कि रावण की सेना खर की अध्यक्षता में, खलौटी में रहती थी। उसका नाम रामायण में 'जनस्थान' लिखा है, जो पक्का संस्कृत-नाम जान पड़ता है। परंतु वह असल में शावरी-भाषा के जैतान का संस्कृत-रूप है। शावरी-भाषा में जैतान का अर्थ खलौटी होता है। अमरकंटक के निकटस्थ मंडला-ज़िला और उसके आसपास के लोग इस जनस्थान को अब भी खलौटी कहते हैं।

यह मेरी समझ में नहीं आता कि जैतान से 'जनस्थान'-शब्द कैसे बन गया ? यदि जैतान का अर्थ खलौटी मान भी लिया जाय, तो जहाँ कहीं की भी भूमि ढालू होती है, उसे लोग खलौटी कहने लगते हैं। ऐसी भूमि प्रत्येक जंगली ज़िले में है, और लोग उसे खलौटी कहते भी हैं। फिर यह निश्चय-पूर्वक कैसे कहा जा सकता है कि अमरकंटक के निकटस्थ स्थान में ही खर रावण की सेना लेकर रहा करता था ?

दंडक-वन की व्युत्पत्ति के विषय में आपने लिखा है कि "दंडक-शब्द भी जंगली भाषाओं से बना है। शावरी-भाषा में 'दान' कहते हैं पानी को, और उससे निकली हुई अन्य बोलियों में पानी को 'डाक' कहते हैं। शावरी-भाषा में 'आ' प्रत्यय संबंध-कारक का चिह्न है। इस प्रकार दान+डाक+आ=दांडा का अर्थ होता है पानी अथवा पानी का स्थान या वन। दंडकारण्य में पानी की अधिकता बेशक थी, उसमें महानदी और गोदावरी के समान विपुल जल-वाली, यदा-कदा प्रलय करनेवाली नदियाँ बहती थीं। इसलिये उसे पानी का जंगल कहना अति ही उपयुक्त जान पड़ता है।"

संभव है, दंडक-शब्द जंगली भाषाओं से बना हो। पर दंडक का अर्थ बतलानेवाला जो दांडा-शब्द बना है, उसमें एक शब्द (दान) तो शावरी-भाषा का है, और एक शब्द (डाक) उससे निकली हुई अन्य बोली का। इन्हीं दोनों शब्दों के मेल से एक तीसरा शब्द बन गया है। यह एक आश्चर्य की बात है कि एक भाषा के शब्द में दूसरी भाषा का शब्द कैसे मिल गया ? संस्कृत-भाषा सब भाषाओं की जननी मानी जाती है। पर हमने अभी तक संस्कृत-शब्द के साथ में अँगरेज़ी या फ़ारसी के शब्द का मेल नहीं देखा।

बाबू रामदास पंपा की उत्पत्ति शावरी 'पपारा' (बतख या हंस) से बतलाते हैं। वह कहते हैं कि "इस सरोवर में पक्षियों की बहुतायत के ही कारण उसका नाम पंपा पड़ गया था।"

पक्षियों की अधिकता तो सभी सरोवरों में हुआ करती है। फिर पक्षियों की अधिकता के कारण केवल इसी सरोवर का नाम पंपा पड़ना युक्ति-संगत नहीं जान पड़ता।

बाबू रामदासजी ने पंपा के निकटस्थ ऋष्यमूक-पर्वत का नाम भी शावरी राजिमूक से बतलाया है, जिसका अर्थ है "हाथियों का झुंड"। रामायण में शिशु-हाथियों का ज़िक्र भी आया है।

किंतु राजिमूक से ऋष्यमूक नाम पड़ना ठीक नहीं जान

पड़ता। अनुमान से ऋषि (मतंग) की तपोभूमि होने के कारण इस पर्वत का नाम ऋष्यमूक पड़ना प्रतीत होता है। वालि के पर्वत पर न आने का कारण क्या है, इसके संबंध में ऋषि के शाप का वर्णन है। इससे यही कारण अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

आपने यह भी लिखा है कि ऋष्यमूक के दूसरी ओर किष्किंधा थी, जहाँ वानर-सेना सोया करती थी। सोए हुए मृत-समान गिने जाते हैं। शावरी में 'किअस' मृत्यु को कहते हैं, और किंदान का अर्थ होता है 'पीछे को'। इस प्रकार किअस+किंदान (किष्किंधा) का अर्थ होता है, (पंपा के) पीछे मृत्यु (का स्थल) है।

एक तो 'मृत्यु का स्थल'-शब्द से किष्किंधा के ठीक अर्थ का बोध ही नहीं होता। यदि अर्थ ठीक मान भी लिया जाय, तो क्या बाबू रामदासजी यह भी बता सकेंगे कि जब वानर-सेना किष्किंधा पर सोया करती थी, तो वह रहने के लिये कहाँ जाती थी? रामायण तो किष्किंधा को वानरों के रहने का स्थल ही बताती है। क्या रामायण के रचना-काल में संस्कृत-साहित्य इतना संकीर्ण था कि महर्षि वाल्मीकि को अपनी रचना पूर्ण करने के लिये ज़बरदस्ती खींच-तानकर शावरी-भाषा के शब्द को संस्कृत-भाषा में परिणत करना पड़ा? आपकी यह युक्ति तो बिलकुल ही निर्मूल जान पड़ती है।

लेखक महोदय ने त्रिशिरा का अर्थ, शावरी-भाषा के अनुसार, ऊँचा दानव लिखकर रामायण में शावरी-भाषा से शब्द लेने की बात को पुष्ट किया है। पर वह अपने इस कार्य में सफल नहीं हो सकते।

शावरी-भाषा में त्रिशिरा का चाहे जो अर्थ होता हो, पर यहाँ त्रिशिरा-शब्द के अर्थ से वही मतलब है, जो रावण के पर्यायवाची 'दशानन'-शब्द से है।

कबंध को रामायण में एक चलता-फिरता दानव बतलाया है। फिर शावरी भाषा के अनुसार 'कबंध' का मृत-चट्टान अर्थ करने से आपका क्या अभिप्राय है, यह मेरी समझ में नहीं आया।

आपने अपने लेख के एक स्थान में यह भी लिखा है—"उत्तरकांड में लिखा है कि रावण संध्या की दुहिता सालकटंकट का वंशज था। शावरी में सालीन कहते हैं दुहिता को, और तिलंगी में कटिक का अर्थ अँधेरा होता है। इसलिये सालकटंकट का अर्थ हुआ अँधेरे की लड़की। अतः उसे संध्या की लड़की कहना अनुचित नहीं।"

संध्या और दुहिता, दोनों ही संस्कृत-भाषा के शब्द हैं। फिर आपके सालकटंकट का अर्थ शावरी और तिलंगी भाषा के आधार पर अँधेरे की लड़की कैसे हो गया? यदि वाल्मीकि ने सालकटंकट-शब्द शावरी से ही लिया है, तो फिर उन्हें सालकटंकट के पूर्व संध्या की दुहिता लिखने की क्या आवश्यकता थी; क्योंकि जो अर्थ संध्या की दुहिता का है, वही सालकटंकट का भी। फिर उन्हें एक शब्द व्यर्थ दो बार लिखकर अपनी रचना में पुनरुक्ति-दोष लाने की क्या आवश्यकता थी? वह दोनों शब्दों में से कोई भी एक शब्द लिखकर अपना भाव प्रकट कर सकते थे।

श्री० हीरालालजी ने अपने लेख के अंतिम अवतरण में बतलाया है कि विभीषण की स्त्री का नाम सरमा लिखा पाया जाता है। वह मृदुभाषिणी या बल्गुभाषिणी बतलाई गई है। गदबा-बोली में सरमो का अर्थ मुख होता है। इससे जान पड़ता है कि उसका नाम (मृदु) मुखी था, जिसका अनुवाद मृदुभाषिणी या बल्गुभाषिणी कर दिया गया है।

यदि यह मान लिया जाय कि रामायण के रचयिता ने सरमो-शब्द गदबा-बोली से लिया है तो उस भाषा में सरमो का अर्थ केवल मुख होता है। फिर आपने कौन-सी जंगली भाषा के व्याकरण के अनुसार मृदु-शब्द उसमें मिलाकर मृदुमुखी शब्द बना दिया?

संभव है, मेरा लिखा हुआ पाठकों को युक्ति-संगत न जँचे; पर मैंने उसे सर्वथा उचित जानकर ही लिखा है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि संस्कृत-साहित्य कभी भी जंगली भाषा के साहित्य से पिछड़ा हुआ न था, और न उसका शब्द-कोष ही इतना संकीर्ण था, जिससे महर्षि वाल्मीकि को रामायण महाकाव्य के लिखने के लिये किसी दूसरी भाषा का आश्रय लेना पड़ा हो। दूसरे यदि महर्षि वाल्मीकि अनार्य होते, तो उन्हें जंगली भाषा (शावरी, तिलंगी, गदबा) से प्रेम क्यों न होता? वह उसी भाषा में काव्य-रचना करते; क्योंकि मातृभाषा सभी को प्रिय होती है। खेद है, उन भाषाओं में लिखी वाल्मीकि-रामायण अप्राप्य है।

किशनलाल सरमों दे

× × ×

४. हृदयोद्गार

मलिन नीलिमा उन नयनों की नहीं नयन-भर लख पाते ;
अतः आर्द्र आकुल थे निर्मम, नयन अभागे भर आते ।
कलित कथन कांता का कभी न, कान कान कर पाते हैं ;
सूक्ति-सुधा-रस प्यासे, माते, कलप न पल कल पाते हैं ।
दयिता के आलिंगन-सुख से वंचित हो, कृश हुआ शरीर ;
मुख-मयंक की मंजु मधुरिमा-मधुप अधर हो रहा अधीर ।
किंतु हृदय ! तू प्राणप्रिया से कभी न भूल विलग होता ;
मुझ दुखिया को जला-जला, निर्दय ! तब क्यों संज्ञा खोता ।
प्रणय-मग्न बन हृदयहारिणी के सँग मचा हर्ष-हिल्लोल ;
सुख-सागर की तरल तरंगों के नालों पर कर कल्लोल ।

*　　　*　　　*

बहुत दे चुका है दारुण दुख, शांति-सरसता से सन जा ;
वह निष्ठुर है, तो रहने दे, तू तो आज सदय बन जा ।

"कवींद्र"

×　　　×　　　×

५. वसुबंधु

वसुबंधु का नाम बहुत कम लोगों ने सुना होगा । वह एक बड़े भारी दार्शनिक पंडित थे । बौद्धधर्म के साहित्य में उनका शुभनाम प्रसिद्ध है । वह पुरुषपुर (पेशावर) में कौशिकगोत्रीय ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए थे । वह तीन भाई थे—

वसुबंधु, असंग (बड़े)
वसुबंधु (हमारे चरित-नायक)
वसुबंधु, विरंचि-वत्स (छोटे)

तीनों-के-तीनों प्रकांड पंडित और ग्रंथकार थे ।

कुलनाथ या परमार्थ-नामक एक विद्वान् ने 'वसुबंधु' का जीवन-चरित्र लिखा है । परमार्थ का समय सन् ४६६ से सन् ५६६ ई० तक है । वह उज्जयिनी के धुरंधर विद्वान् थे । सन् ५३६ में चीन-देश के सम्राट् वूटि (Wu Ti) ने मगधराज की सभा में अपना एक दूत इसलिये भेजा कि वह 'महायान' सूत्रों की खोजकर उन्हें अपने स्वामी के लिये प्राप्त करे । साथ ही बौद्ध दर्शन के एक प्रतिभावान् बहुश्रुत विद्वान् को भी समुचित सम्मान के साथ चीन की राजसभा में भेजने का उपाय करे । उस समय परमार्थ मगध में निवास करते थे । मगध राजसभा के पंडितों ने परमार्थ को चीन-सम्राट् के निमंत्रण की रक्षा के लिये चीन जाने को चुना । परमार्थ ने सैकड़ों तालपत्र के बड़े-बड़े ग्रंथों के साथ यथासमय चीन की यात्रा की, और सन् ५४६ ई० में वह ननहाई (Nan-hai) पहुँचे । दो वर्ष के पश्चात् वह उस समय की राजधानी में पहुँचे । सम्राट् ने उनका बड़े प्रेम से सम्मान-स्वागत किया । चीन-देश के हज़ारों बौद्ध-धर्मावलंबी उनके उपदेश सुनने के लिये नित्य उपस्थित हुआ करते थे । उनके उपदेश का मुख्य विषय था—वसुबंधु और उनके ज्येष्ठ भ्राता असंग के "विज्ञान-मात्र" (Buddhistic Idealism) । परमार्थ अपने धर्मप्रचार में पूरी तरह सफल हुए ।

परमार्थ ने अनेकों बहुमूल्य ग्रंथों का संस्कृत से चीनी-भाषा में अनुवाद किया था । उनके स्वतंत्र ग्रंथों में "वसुबंधु का जीवन-चरित्र" प्रधान है । कुछ लोगों का कहना है कि यह जीवन-चरित्र भी अनुवादित है । पर यह ठीक नहीं ।

वसुबंधु बड़े स्वतंत्र विचार के दार्शनिक थे । वह महायान-पंथ के होने पर भी विचार-स्वाधीनता के प्रबल पक्षपाती और प्रेमी थे । "अभिधर्म-कोष"-नामक उनके ग्रंथ से उनके विचारों का पता लगता है ।

वसुबंधु पहले "हीनयान"-पंथ के अनुयायी थे । पर उनके ज्येष्ठ भ्राता असंग ने उन्हें उचित उपदेश देकर महायान-पंथावलंबी बना लिया । वसुबंधु कालिदास के 'मेघदूत' में वर्णित दिंगनाग के गुरु थे । दिंगनाग एक बौद्ध-नैयायिक थे । निचुल कालिदास के मित्र और दिंगनाग उनके प्रतिपक्षी थे । विक्रमादित्य-नामक अयोध्या के एक महाराज ने वसुबंधु को अपनी सभा में आह्वान करके उनसे बौद्ध-धर्म की शिक्षा अपने पुत्र (बालादित्य) और पत्नी को दिलवाई । पहले राजा विक्रमादित्य 'सांख्यदर्शन' के मतानुयायी और पोषक थे । पर पीछे वसुबंधु के पांडित्य की महिमा देखकर उनकी रुचि बौद्ध-धर्म की ओर हो गई । यह विक्रमादित्य पाटलिपुत्र के गुप्तवंशी राजा स्कंदगुप्त के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं । स्कंदगुप्त का शासन सन् ४५२ से सन् ४८० ई० तक था । यह क्रमादित्य और विक्रमादित्य की उपाधि धारण करते थे । उनके पुत्र बालादित्य के शासन के अंत के साथ गुप्त-वंश की भी इतिश्री हो गई ।

विंध्यवास-नामक एक वैयाकरण एवं विद्वान् ने, अयोध्या के राजा विक्रमादित्य की उपस्थिति में, वसुबंधु के गुरु से शास्त्रार्थ कर तीन लाख स्वर्णमुद्रा का पुरस्कार उक्त राजा से प्राप्त किया था । शास्त्रार्थ के पश्चात्

विंध्यवासजी स्वर्ग सिधार गए। उनकी मृत्यु के पश्चात् वसुबंधु ने अपना 'परमार्थ-सप्तति'-ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ के निर्माण पर उन्हें विक्रमादित्य से तीन लाख स्वर्ण-मुद्रा का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। परमार्थ ने लिखा है—विंध्यवास के गुरु का नाम था वार्षगण्य। यह सांख्यशास्त्र के अद्वितीय ज्ञाता थे। विंध्यवास ने वसुबंधु के गुरु बुद्धमित्र को एक बार शास्त्रार्थ में हरा दिया था। उस समय वसुबंधु अयोध्या में न थे। इस विजय के बाद विंध्यवास विंध्य-पर्वत की ओर चले गए, और वहीं उनका शरीरपात हो गया। वसुबंधु जब अयोध्या को लौटकर आए, तब अपने गुरु के पराजय की बात सुनकर बेतरह बिगड़े। उन्होंने विंध्यवास का पता लगाया। जब पता लगा कि अब वह इस संसार में नहीं रहे, तब वसुबंधु ने विंध्यवास के सांख्यशास्त्र के विरोध में "परमार्थ-सप्तति"-ग्रंथ की रचना की। उसके द्वारा उन्होंने विंध्यवास के सांख्य-सिद्धांतों की जड़ें उखाड़ फेंकीं।

वसुबंधु सन् ईसवी के ४२०-५०० ही के भीतर हुए हैं। वह नागार्जुन, आर्यदेव, पार्श्व, वसुमित्र, चरक, अश्वघोष आदि के समान एक प्रख्यात विद्वान् हो गए हैं। परमार्थ-नामक पंडित ने उनके सिद्धांत का प्रचार चीन देश में किया, और उनकी जीवनी भी लिखी। आज चीन देश के साहित्यसेवी-मंडल में 'वसुबंधु' का नाम सुपरिचित है। पर भारत के कितने विद्वान् उनका शुभनाम तक जानते हैं!

लोचनप्रसाद पांडेय

× × ×

६. प्रेम

किस कमनीय कामिनी की हो मनोहारिणी मृदु मुसकान?
किस गुण-गर्वित गायक की हो सहज सुरीली सुखमय तान?
हो किस कवि के कोमल उर के चमत्कारमय उज्ज्वल भाव?
किस सहृदय सुकुमार चपल शिशु के हो सुंदर-सरल-स्वभाव?
अविरल गति से बहनेवाले हो किस नद के निर्मल नीर?
किस बाधक के तीक्ष्ण तीर हो, जाते हो उर को यों चीर?
सौरभ हो किस सरस सुमन के, हो किस मधु के मीठे स्वाद?
किस अनंत की गौरव-गरिमा किस विस्मृत अतीत की याद?
किस मानी के मान मनचले, हो किस विरही के उन्माद?
किस पराग की मादकता हो, किस वादी के वाद-विवाद?
कानों को प्रिय लगनेवाली हो किस वीणा की झंकार?
नीरवता हो किस निशीथ की, हो किस शुचि सरिता के ज्वार?
* * *
मतवाला करनेवाले मद मुक्ति-मार्ग के अनुपम द्वार!
दिखलाई देता है हमको तुममें जब सारा संसार।

"कंटक"

× × ×

७. एक शंका

ओसवाल-जाति की उत्पत्ति-विषयक कुछ पुस्तकें पढ़ने से ज्ञात हुआ कि यह जाति, उनके मतानुसार, विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व बनी थी, और उनके पुरोहितों के हिसाब से सं० २२२ में। यह २२२ सं० कौन-सा है? यदि विक्रम-संवत् है, तो मेरी समझ में ये दोनों ही संवत् ग़लत हैं।

इनकी उत्पत्ति के विषय में कहा जाता है कि जैनाचार्य श्रीरत्नप्रभु सूरिजी, जो श्रीमहावीर स्वामी के छठे पट्ट पर हुए थे, मासक्षमण करते हुए, कतिपय श्रद्धालुओं के अनुरोध से, एक चेले के साथ ओसिया-नगरी (मारवाड़-प्रांत) पधारे। यह नगरी उस समय उपकेश-पट्टन के नाम से पुकारी जाती थी, और यहां के राजा-प्रजा आदि सभी नास्तिक मतानुयायी अर्थात् वाममार्गी (कुंडा-पंथी) देवी के उपासक थे। जैन-धर्म-प्रचार के हेतु आचार्यजी ने एक मायावी सर्प बनाकर उससे उस नगरी के राज-पुत्र को डसवाया, और उसको मृतकवत् समझ श्मशान-भूमि में लाए जाने पर, उसे जिलाकर राजा तथा सारी नगरी को जैन-धर्म धारण कराया। इत्यादि। और, ओसिया-नगरी ही उनका आदिस्थान होने के कारण उस जैन-जाति का नाम भी ओसवाल पड़ा।

अब सवाल यह उठता है कि विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व, जब कि अहिंसात्मक बौद्ध-मत ही भारतवर्ष का धर्म था, सिर्फ़ मरुभूमि ही उसके पंजे से कैसे बची? और, जब कि ओसिया का उन दिनों का प्रचलित नाम उपकेश-पट्टन था—जैसा कि ओसवालों की पुस्तकों में लिखा हुआ है—तो जाति का नाम 'उपकेशवाल' या उपकेश-पट्टन से संबंध रखनेवाला कोई नाम न पड़कर 'ओसवाल' (ओसियों से संबंध रखनेवाला) नाम क्यों पड़ा? मेरा अनुमान तो यह है कि यह जाति ईसा की लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में बनी होगी; क्योंकि जब श्रीशंकराचार्यजी बौद्ध तथा जैन-मत के प्रति अपनी विजय का डंका बजा चुके थे, उस समय इस ओसवाल-जाति का ज्यों-का-त्यों ही बना रहना असंभव-सा प्रतीत होता है। दूसरे, इनके गोत्रों में सबसे

पहला " संचेती (सचेती)"-गोत्र, इन्हीं की पुस्तकों के अनुसार, वि० सं० १०२६ में बना, और बाक़ी के सब गोत्र इसके बाद। ओसवाल-जैसी एक बृहद् जाति का १४२५ वर्ष तक विना किसी गोत्र के रहना भी असंभव-सा है।

क्या इतिहास-प्रेमी सज्जन इस विषय पर प्रकाश डाल-कर मेरा भ्रम निवारण करेंगे? रायबहादुर पं० गौरी-शंकरजी ओझा तथा अन्य राजस्थान-इतिहासवेत्ताओं से मेरा यह भ्रम दूर करने के लिये विशेष आग्रह है।

घीसूलाल

× × ×

८. जीवन-संग्राम

जगत् में कैसा भीषण दृश्य, हुआ सब ओर उपस्थित आज;
आचरण पशुओं का सर्वथा, कर रहा पतित मनुष्य-समाज।
हुआ परमार्थ-भाव का लोप, हृदय में बसा स्वार्थ का प्यार :
सबल निर्बल को प्रतिक्षण आह! निगल जाने को है तैयार।
मनुज होकर पर्याप्त सुविज्ञ, बना है अज्ञ सृष्टि का दास :
दिखा अज्ञता स्वयं कर रहा, सहज मानवता का उपहास।
सृष्टि का हिंसामय संघर्ष, मनुष्यों में भी करता काम :
अत: जीवन-चर्या का नाम, पड़ा है अब 'जीवन-संग्राम'।
यही संग्राम मुख्य है हेतु, कि है वैषम्य-पूर्ण संसार;
कहीं तो है हिंसा की चोट, कहीं है प्रतिहिंसा का वार।
मची है जग में घोर अशांति, नहीं मिलता दुःखों का अंत;
दयामय जगदीश्वर की भूमि, नरक-सी बनी आज हा हंत!
कुचाली यों ही जन-समुदाय, रहा है अघ-सागर में डूब;
अवस्था ही के कारण, किंतु, निपट वह आप उठा है ऊब।
उसे क्रमशः अब है हो चला, दशा का अपनी किंचित् बोध;
रहा है वैसी विधि वह खोज, कि पापों का कुछ हो प्रतिशोध।
प्रकट कर अब हे भारतवर्ष! वही अपना पिछला उत्साह;
जगत् को धो, कर वही प्रदान, लगी है जिसकी उत्कट चाह।
उसे, हाँ, दुःखों से कर मुक्त, सुखों के प्रस्तुत कर सब साज;
दिखा आध्यात्मिकता का मार्ग, जगद्गुरु होने की रख लाज।
अभी है जग को थोड़ा ज्ञान, अतः बतला दे तू सुस्पष्ट;
कि उसका यह जीवन-संग्राम, उसे निश्चय कर देगा नष्ट।
उसे यदि है लड़ना स्वीकार, करे निज दोषों से संग्राम;
कि जिसमें आत्मा करती प्राप्त, सदा ही शांति-जन्य विश्राम।
मनुष्यों का जो है निज धर्म; उसी में हो उनका विश्वास;
मिटे पशुता, मानवता पुनः दिखाए अपना पूर्ण विकास।
शीघ्र हो—जिससे शीघ्र समाप्त, सर्वनाशक जीवन-संग्राम;
रहे मानव-मंडल में शेष, न उसका नाम, न उसका काम।

इक़बाल वर्मा 'सेहर'

× × ×

९. "बुद्धिप्रकाश"

हिंदी-भाषा के समाचारपत्रों के संबंध में लिखते हुए मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक 'मिश्रबंधु-विनोद' के पृष्ठ १,२४० पर लिखा है कि हिंदी का सबसे पहला समाचारपत्र श्रीराजा शिवप्रसाद की सहायता से 'बनारस-अख़बार' के नाम से बनारस से, संवत् १९०२ में, प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ। इसका संपादन रघुनाथ पंतजी करते थे। इसकी भाषा खिचड़ी थी, और सभ्य-समाज ने इसका आदर नहीं किया। इसके पश्चात् वे 'सुधाकर' का उल्लेख करते हैं। किंतु एक पुराने साप्ताहिक पत्र की कुछ प्रतियाँ मिली हैं, जो सुधाकर से अधिक प्राचीन हैं। इस पत्र का नाम 'बुद्धिप्रकाश' है। जिल्द २ के नंबर १० से ५० तक की इसकी प्रतियाँ मिली हैं। इसका पृष्ठांक ७३ से प्रारंभ होता है, जिससे पता चलता है कि जिल्द-भर में एक अंक संख्या चलती थी, और एक जिल्द एक वर्ष के पूर्ण अंकों की होती थी। जिल्द २, नंबर १० पर बुधवार, ९ मार्च, सन् १८५३ लिखा हुआ है, और यह नियमित रूप से प्रति बुधवार को आगरे से प्रकाशित हुआ करता था। वर्ष-भर में इसकी ५२ प्रतियाँ निकलती थीं, और प्रत्येक प्रति ८ पृष्ठों की होती थी। पृष्ठ का आकार १२$\frac{१}{२}$×७$\frac{३}{४}$ इंच है। काग़ज़ सफ़ेद, किंतु बहुत पतला है। यह पत्र दो-दो कालम करके लीथो पर छपता था, और प्रत्येक अंक के अंत में "मुंशी सदासुखलाल मुहतमिम नूरुल अबसार छापेख़ाने के एहतमाम से आगरे के मुहल्ले मोती-कटरे में छपा" लिखा है। इस पत्र में समाचारों के अति-रिक्त लेख भी रहते थे। हिसाब लगाने से मालूम होता है कि संभवतः इस पत्र का प्रकाशन १ली जनवरी, सन् १८५२ से प्रारंभ किया गया होगा। परंतु यह पता नहीं चलता कि यह अख़बार कब तक चलता रहा। इस पत्र की चर्चा बाबू राधाकृष्ण दास के हिंदी-पत्रों के इतिहास में भी नहीं मिलती।

सत्यजीवन वर्मा
अयोध्यानाथ शर्मा

× × ×

१०. मुसकान

तरुण तरुणी के लोचन कोर ;
झलक झलकाती हो छवि छान ।
मृतक की देह-गेह में दौर ;
तुम्हीं देती हो जीवन-दान ।
सरल शिशु के अधरों की प्रभा ;
बढ़ाती हो शैशव का मान ।
कुसुम के कुसुमित होते समय ;
तुम्हारी सुन पड़ती है तान ।
वियोगी के वियोग को दाह ;
हृदय के कपट-भाव की भ्रांति ।
तुम्हारी ही पा करके भेंट ;
सदा को हो जाती है शांति ।
भूमि पर ऋतुपति का आगमन ,
तुम्हारा ही सौंदर्य महान् ;
प्रवाहित होकर मलय-समीर ,
तुम्हारा करता है गुण-गान ।
कलित-कुसुमावलि कल-कल-नाद ,
सरित की उमड़ी हुई तरंग ;
तरंगित होती, आकर तभी ,
छिरकती हो अधरों का रंग ।
प्रेम के उपवन की सुख-शांति ;
ऐक्य की उज्ज्वल मंजुल डोर ।
हृदय की विकसितप्रमुदित ज्योति ;
तुम्हारी ही है पावन कोर ।
मृदुल वीणा की हो झंकार ;
मस्त मधुकर का प्यारा गान ।
वह्नि की लपटों पर कर नृत्य ,
निशा का करती हो अवसान ।
सौख्य दे, जीवन कर दो सुखद ;
कहाँ होती हो अंतर्द्धान ?
रहूँ मैं सदा देखता, देवि ,
तुम्हारी मंद-मंद मुसकान ।

'सम्राट'

× × ×

११. अछूत

वह शरत्पूर्णिमा थी । चंद्रग्रहण स्नान होने के कारण प्रयाग के त्रिवेणी-संगम पर उस दिन यात्रियों की कुछ विशेष भीड़ थी । इसी जन-समूह में एक ओर कुछ लोग, स्नानादि से निवृत्त हो, पूजा की सामग्री लिए मंदिरों की ओर जा रहे थे । वे अपने इष्टदेव को अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने जा रहे थे । सभी के मुख से प्रसन्नता झलक रही थी । × × × मंदिर से कुछ ही दूर हटकर एक व्यक्ति यह सब कौतुक लालायित दृष्टि से देख रहा था । उसके हृदय में ईश्वर के अस्तित्व पर केवल विश्वास ही नहीं, पूर्ण श्रद्धा थी । वह भी अपने उपास्यदेव को अपनी भेंट चढ़ाने के लिये उत्सुक हो रहा था । पर मंदिर में पदार्पण करने का उसे साहस नहीं होता था । इस पूजा में भाग लेने से वह सर्वथा वंचित था । धार्मिक तथा सामाजिक बंधनों की उसे रोक थी । उसका मंदिर में प्रवेश करना अशुभ समझा जाता था । इसीलिये बेचारा मन मारे खड़ा हुआ था ।

वह इस मेले में एक स्वतंत्र व्यक्ति की तरह भाग नहीं ले सकता था । जिस कुल में वह जन्मा था, वह हिंदू-समाज द्वारा बहिष्कृत था । वह अस्पृश्य था । उसकी छाया-मात्र का स्पर्श अपवित्र समझा जाता था । वह नीच कुलोत्पन्न था, अपवित्र था, अछूत था !

समाज-च्युत होने के कारण वह गाँव में नहीं रह सकता था । गंगा के किनारे, श्मशान के समीप ही, उसकी एक टूटी-फूटी झोपड़ी थी । वहीं वह रहता था । उसका कोई ख़ास पेशा न था । यात्री अपने आत्म-संबंधियों के "फूल" सिराने त्रिवेणी आया करते हैं, उन्हीं से भीख माँगकर तथा उनकी फेंकी हुई 'खारी' (अस्थि प्रभृति) में से सोना वग़ैरह निकालकर किसी प्रकार वह अपनी जीविका चलाता था । उसके ऐसे जीवन का एक-मात्र कारण हिंदू-समाज ही था ।

* * *

संध्या हो चली थी, फिर भी यात्रियों का अभाव कम नहीं हुआ था । जाड़े की ऋतु थी । सर्दी धीरे-धीरे बढ़ने लगी । इसी समय एक युवक और एक युवती, चलते चलते थक जाने और सर्दी बढ़ जाने से, हताश होकर एक पत्थर पर बैठ गए । देर से आने के कारण उन्हें किसी धर्मशाला में ठहरने की जगह भी नहीं मिली थी । युवती कुछ सुंदरी थी । एकाएक किसी मनचले ने चलते-चलते उसका अंचल पकड़कर खींचना चाहा । बेचारी सहम गई । उसका पति यह देखकर कुछ क्रोधित तथा लज्जित हुआ ;

लेकिन परदेश का मामला सोचकर चुप हो रहा। उन दुष्टों से दो-दो बातें करने में उसे ज़रा हिचक हुई। बेचारा असहाय होने के कारण, अपमान का घूँट पीकर रह गया। उसकी मुद्रा म्लान हो गई, और आँख से एक आँसू टपक पड़ा।

सहसा एक ओर से 'टन-टन' की आवाज़ सुनाई दी। उसे सुनते ही सब सचेत हो गए। एक व्यक्ति 'अछूत-अछूत' चिल्लाता हुआ वहाँ आता देख पड़ा। उसका बदन कसा हुआ था, चेहरे से सहानुभूति टपक रही थी। गले में उसके एक घंटी पड़ी हुई थी, उसी की यह आवाज़ थी। जहाँ कहीं वह जाता, घंटी की आवाज़ उसका आगमन सूचित कर देती। लोग उसे आते देखकर यों कटने लगे, जैसे किसी ने साँप छोड़ दिया हो (एक राजपुरुष के आने पर भी शायद लोग इतनी आसानी से मार्ग न छोड़ते)। उसे आगे बढ़ने में किसी तरह की तकलीफ़ नहीं हुई। वह आकर इन्हीं दुःखित यात्रियों के पास खड़ा हो गया। दुराचारी भय से तुरंत इधर-उधर दुबक-कर रह गए। युवक ने इस मनुष्य को हृदय से शतशः धन्यवाद दिया। अछूत ने इशारे से उन्हें पीछे पीछे चलने को कहा और स्वयं आगे बढ़ने लगा। उसे और पति-पत्नी को भीड़ से बाहर होने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। कुछ ही देर में वे तीनों झोपड़ी के द्वार पर पहुँचे। अछूत ने भीतर जाकर आग जला दी, और पति-पत्नी के रात-भर वहीं ठहरने की व्यवस्था कर स्वयं नदी की ओर चला गया।

सारी रात वह नदी के तट पर घूमता रहा। उसके हृदय में तरह-तरह के विचार उठते रहे। आज तक लोगों के कहने से वह स्वतः को नीच और पतित समझता था। आज सहसा उसका वह परदा हट गया। उसमें आत्म-विश्वास की मात्रा बढ़ गई। वह अब अपने को एक अभागा पुरुष न समझकर एक स्वतंत्र और उन्नत व्यक्ति समझने लगा। "अछूत (?) कुल में मेरा जन्म हुआ है। इसीलिये समाज मुझे अपनाने से इनकार करता है! मेरा कुल समाज की कुत्सित दृष्टि में भले ही अछूत हो; पर परमेश्वर की दृष्टि में नहीं।" सहसा उसका हृदय बोल उठा—नहीं, मैं अशुद्ध नहीं हूँ, मेरा हृदय उनसे कहीं अधिक शुद्ध है, मैं पावन हूँ।

सर्दी बढ़ गई थी, बाहर ठहरना असह्य हो गया था। उसकी देह जाड़े के मारे ठिठुर गई, और वह चेतना रहित-सा होने लगा। उसने आँखें मींच लीं। सहसा उसे एक दिव्य प्रकाश देख पड़ा, और ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कोई उसे अपनी ओर बुला रहा हो। उसे कुछ सांत्वना मिली। साहस करके वह खड़ा हुआ, और एकबारगी नदी में कूद पड़ा। पानी के भीतर से एक धीमी और गंभीर आवाज़ निकली—परमात्मा, तू ही पतित-पावन है।

* * *

कुछ देर तक तो पानी में बुदबुदे निकलते रहे, फिर वे भी बंद हो गए; और गंगा फिर सदा की नाईं स्वच्छं-दता से हिलोरें लेती हुई बहने लगी।

ऑक्सफ़ोर्ड, इँगलैंड कामताप्रसाद सागरीय

× × ×

१२. यूनियन ऑफ़् साउथ आफ़्रिका में एशिया-निवासी

सन् १८६१ ईसवी में एशियावासी ४२८४२ की संख्या में संयुक्त दक्षिण-आफ़्रिका में निवास करते थे, और आजकल १,६५,७३१ हैं, जिनमें से १,४१,६४६ तो केवल नेटाल में ही हैं। सन् १८६१ और १६०४ के बीच में एशिया-निवासियों की संख्या वहाँ पर अत्यधिक बढ़ी; किंतु सन् १६११ और १६२१ के बीच में ८.८६ प्रतिशत अर्थात् १ प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब से ही वृद्धि हुई। इस समय १,६५,७३१ एशिया-निवासियों में से १,६१,३३६ तो केवल भारतीय ही हैं।

'दरबन' की म्युनिसिपल भूमि में ४७,३२८ गोरे और १६,८६३ एशियाई अर्थात् प्रत्येक १,००० योरपियनों के अनुपात में ३६५ एशियाई निवास करते हैं। ख़ास 'दरबन' और उसके समीपस्थ गोरे ५७,०६५ और एशियाई ४७,८११ हैं, अर्थात् प्रत्येक १,००० योरपियनों के अनुपात में ८३७ एशियाई हैं। अधिकांश एशियाई नवयुवक हैं; क्योंकि ५२.१६ प्रतिशत २१ वर्ष की आयु से अधिक नहीं।

भारतवासियों के अतिरिक्त एशिया निवासियों में बर्मी, चीनी, जापानी, अफ़ग़ान और सिरियन भी हैं।

यहाँ 'यूनियन' से बाहर जन्मे हुए लोगों के लिये रह सकने का समय १० से १६ वर्ष-पर्यंत है, और मुख्य कार्य खेती है, जिसमें प्रायः १६,४७८ एशियाई काम करते हैं। १६,०२३ तो केवल नेटाल में ही कार्य कर रहे हैं।

नवलकिशोर अग्रवाल चौधरी



१. भोंदू

नारियल लटकते देखकर भोंदू का मन जो ललचाया, तो झट पेड़ पर चढ़ गया। पर जैसे ही उतरने लगा कि उसके पैर फिसल गए।

नारियल के ऊँचे पेड़ से भोंदू ने जो धरती की ओर देखा, तो उसके प्राण सूख गए। उसने सोचा, अब प्राण नहीं बचते, नारियल के पीछे आज जान जाती है।

उसी समय उधर से एक सवार ऊँट पर निकला। भोंदू के गिड़गिड़ाने पर उसको दया आ गई। उसने ऊँट पर खड़े होकर भोंदू के पैर पकड़े और चाहा कि भोंदू के पैर नारियल के पेड़ से अटका दें कि इतने ही में ऊँट चल पड़ा। ऊँट-सवार भोंदू के पैर पकड़कर लटक रहा।

ऐसा न हो कि भोंदू हाथ छोड़ दे, तो हम भी गिरें, और हड्डी-पसली चूर हो जायँ, यह सोचकर ऊँट-सवार ने भोंदू से कहा—भई, मजबूत पकड़े रहना, हम तुमको हजार रुपए देंगे।

उसी समय उधर से एक घुड़सवार निकला। ऊँट-सवार ने घुड़सवार को अपनी सब कथा सुनाई, और सहायता माँगी। घुड़सवार ने अपने घोड़े पर खड़े होकर जैसे ही ऊँट-सवार के पैर पकड़े कि घोड़ा भी आगे बढ़ गया, और वह भी लटक गया। अब घुड़सवार ने सोचा कि भोंदू के हाथ में हमारी जान है। उसने कहा—अरे ऊपरवाले भैया, जरा मजबूती से पकड़े रहना; हम भी तुमको हजार रुपए देंगे।

भला भोंदू को कब इनकार था। उसने हजार रुपए का नाम-ही-नाम सुना था, कभी देखे न थे। हजार तो बहुत होते हैं, उसने सौ रुपए भी इकट्ठे



घुड़सवार ने अपने घोड़े पर खड़े होकर, जैसे ही ऊँट-सवार के पैर पकड़े कि घोड़ा आगे बढ़ गया और वह भी लटक गया।

कभी न देखे थे। हज़ार का नाम सुनकर उसने किसी तरह अपने को सँभाला था, अब फिर जो हज़ार का नाम सुना, तो वह अपने को न सँभाल सका। वह किलक पड़ा, और हाथ छोड़कर जो ऊपर की ओर दोनों हाथ फैलाकर "हज़ार-हज़ार! इतने-से ढेरों रुपए!" बोला कि हाथ छोड़ते ही तीनों आदमी धम-धम ज़मीन पर गिर पड़े। किसी का हाथ टूटा, किसी का पैर; किसी की खोपड़ी फट गई, और किसी की छाती में चोट आई।

गाँव-भर के लोग भोंदू को 'हज़ार रुपए की बात' कहकर चिढ़ाने लगे।

जगमोहन "विकसित"

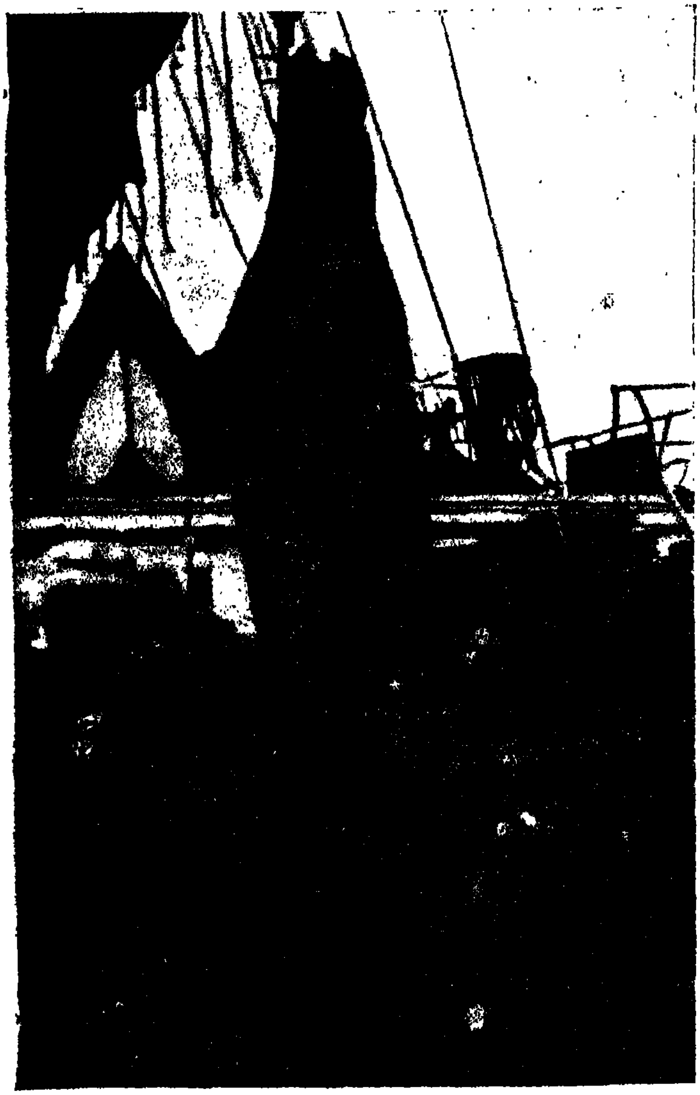
× × ×

२. 'वालरस' का शिकार

उत्तरीय ध्रुव-प्रदेश के विचित्र जीवधारियों में वालरस सबसे विचित्र है। वहाँ का यही सबसे बड़ा जानवर है। अपनी रुचि के अनुसार ध्रुव-प्रदेश के यात्रियों ने उसके अनेक नाम रख लिए हैं। 'समुद्री घोड़ा', 'समुद्री बैल', 'ध्रुव-प्रदेश का सिंह' इत्यादि उसके अनेक नाम हैं। पर यदि इसे आर्कटिक-महासागर का हाथी कहा जाय, तो भी कुछ अनुचित न होगा। वह पंद्रह फ़ीट से लेकर २०-२२ फ़ीट तक लंबा और घेरे में १० से १६ फ़ीट तक होता है। उसका शरीर पीपे के आकार का गोलाकार होता है। वज़न उसका तीस से चालीस मन तक होता है। कोई-कोई तो इससे भी भारी होते हैं। उसके मुँह के इर्द-गिर्द दाढ़ी के स्थान पर बड़े, मोटे और घने बाल होते हैं। हाथियों की तरह उसके दो बड़े-बड़े लंबे-लंबे दाँत भी होते हैं। ये दाँत पचीस से लेकर चालीस इंच तक लंबे होते हैं। उसके तथा हाथियों के दाँतों में केवल इतना ही अंतर है कि हाथियों के दाँत तो ऊपर की ओर झुके रहते हैं, लेकिन उसके नीचे की ओर। नीचे झुके होने के कारण इनके द्वारा उसे बड़ी सहायता मिलती है। इनकी सहायता से वह बर्फ़ की बड़ी ऊँची चट्टानों पर चढ़ जाता है। जिन चट्टानों पर अनेक यत्न करने पर भी मनुष्य नहीं चढ़ सकता, उन पर वह अपने दाँतों की बदौलत अनायास ही घूमा करता है।

उसका चमड़ा एक इंच के लगभग मोटा होता है, और उसके ऊपर घने और मोटे बाल होते हैं। चमड़े के नीचे चर्बी की एक मोटी तह होती है। उसका सिरा बड़ा, मोटा और चौरस-सा होता है। थूथन उसका चौड़ा होता है, और उसके इर्द-गिर्द स्याही के काँटों के समान मोटे तथा कड़े बाल होते हैं। उन बालों के कारण वह और भी भयानक मालूम होता है।

वालरस ज़्यादातर समुद्र ही में रहते हैं। अपने खाने का सामान ये समुद्र ही में पाते हैं। अपना भोजन पाने के लिये इन्हें समुद्र की तह तक जाना पड़ता है। वहाँ इन्हें कई प्रकार की वनस्पतियाँ, कौड़ी तथा घोंघे मिल जाते हैं। इन्हीं को खाकर ये अपना गुज़र करते हैं। जाड़े में जब आर्कटिक सागर जमकर बर्फ़ बन जाता है, तब ये अपने रहने के लिये गड्ढे बना लेते हैं। इन गड्ढों में जब तक ये मौजूद रहते हैं, इनके शरीर की गरमी के कारण बर्फ़ नहीं जमती, और यदि जमती है, तो ये अपने दाँतों से उसे तोड़ डालते हैं। जाड़े में बर्फ़ के इन कुओं में इन्हें बड़ा सुख मिलता है। जब चाहते हैं, समुद्र में चक्कर लगाते



वालरस सिर निकाले हुए

ऐसी हालत में वालरस पहले तो बर्फ़ तोड़ने का ख़ूब प्रयत्न करता है। यदि वह आठ इंच से कम मोटी हुई, तब तो उसे तोड़ लेता है। पर इससे अधिक मोटी बर्फ़ को तोड़ने की शक्ति उसके दाँतों में नहीं होती। वह निराश होकर कहीं दूसरे स्थल पर खुले समुद्र की खोज में जाता है। यदि मिल गया, तो ग़नीमत है नहीं तो वहीं बर्फ़ पर पड़े-पड़े कुछ दिनों में मर जाता है।

वालरस डरपोक जानवर है। इसकी सूँघने और सुनने की शक्ति बड़ी प्रबल होती है। मीलों की दूरी से जहाज़ के धुएँ को सूँघकर ये भाग खड़े होते हैं। मनुष्य को देखकर या उसकी आवाज़ सुनकर भी भाग जाते हैं। जब कोई उन पर वार करता है, तब वे उसका सामना तो करते हैं; पर भाग जाने का विचार तब भी उनके मन से दूर नहीं होता।

एस्किमो लोग भाले से उसका शिकार करते हैं। भाला वालरस की ही हड्डी का बना होता है, और उसके एक सिरे पर वालरस के दाँत का एक पैना टुकड़ा लगा रहता है। उसके दूसरे सिरे पर एक छेद होता है, जिसमें वालरस के चमड़े की मोटी रस्सी पड़ी रहती है। रस्सी के एक दूसरे सिरे पर सील-मछली के चमड़े का एक बड़ा थैला बँधा रहता है। इस थैले या मशक में मुँह से फूँककर हवा भर देते हैं। ज्यों ही कोई वालरस दिखाई पड़ता है, एक एस्किमो दौड़कर, और यदि जल में हुआ, तो नाव चलाकर उसके निकट पहुँच जाता है। इसके बाद वह उसके शरीर के किसी विशेष स्थल पर भाले का प्रहार करता है। भाले के लगते ही वह ज़ोर से चिंघाड़ता और पानी में डुबकी लगाता है। यदि डुबकी में हुआ, तो भाले के लगते ही निकटवर्ती जल में कूद पड़ता है। भाला, रस्सी और मशक उसी के साथ चली जाती है। थोड़ी देर बाद जब वह फिर जल पर आता है, उस पर दूसरे भाले का प्रहार होता है। वह फिर

हैं, और जब चाहते हैं, बर्फ़ की हवा खाते हैं। पर नींद इनको बहुत सताती है। इससे बहुधा ये धोखा खाते हैं। बहुधा जब ये उन गड्ढों से निकलकर बाहर बर्फ़ पर बैठते हैं, तब बैठे-ही-बैठे सो जाते हैं। इधर ये सोने लगे, उधर गड्ढा बर्फ़ से ढक गया। यदि कहीं जल्दी ही जग पड़े, तब तो महीन बर्फ़ को तोड़कर फिर घर में पहुँच गए। पर यदि देर हो गई, और मोटी बर्फ़ जम गई, तब तो मुसीबत आ पड़ी।



महाराज रणवीरसिंह (जंवू)
[जागीरदार मियाँ वसंतसिंह की कृपा से प्राप्त]

N. K. Press, Lucknow.



वालरस का शिकार

हैं। कभी-कभी तो ये बड़ी-बड़ी नावों को अनायास ही उलट देते हैं।

एक अमेरिकन यात्री ने वालरस के शिकार का बड़ा ही मनोरंजक हाल लिखा है। वह लिखता है—

"वालरस का शिकार अन्य सब जानवरों के शिकार की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्या यह कमाल का काम नहीं कि कोई चालीस या पचास वालरसों का एकसाथ सामना करे, जब कि वे सब एकसाथ—चाहे उनके गोली लगी हो या न लगी हो—शिकारी पर वार करते अथवा उसकी नाव को उलटाने या उसमें छेद कर देने का यत्न करते हैं? क्या उन एक-एक टन और दो-दो टनवाले दीर्घकाय पशुओं का सामना करना कमाल का काम नहीं है, जो अपने दाँतों के सहारे बड़ी-बड़ी चट्टानों को उलट देते हैं, और आठ इंच के लगभग मोटी बर्फ़ में छेद कर सकते हैं?

"......हम लोग झुंड से लगभग बीस गज़ की दूरी पर थे कि इतने में एक वालरस जग पड़ा, ज़रा-सा गुर्राया, और पास ही पड़े हुए दूसरे वालरस को थूथन से कोंचकर जगा दिया। इतने में हम लोगों ने भी गोली चलाना शुरू कर दिया। हमारे साथी के पास ऑटोमेटिक विंचिस्टर रायफल थी, उन्होंने दनादन् पाँच फ़ायर किए। पाँचों गोलियाँ एक बड़े वालरस के जाकर लगीं, और वह फ़ौरन से पानी में जा गिरा। मैंने भी दो को गोलियाँ मारीं, और वे भी क्रोध और पीड़ा से बँबाते हुए पानी में कूद पड़े। मेरे मित्र ने जिस वालरस को मारा था, उसके पास झट से नाव पहुँच गई। केवल पाँच गज़ का अंतर रह गया। तब हमारे साथ के एक एस्किमो ने उस पर भाला चलाया, और साथ ही उसमें बँधी हुई सील की मशक भी समुद्र में डाल दी। इसी अवसर पर दूसरे वालरस, जो चालीस के लगभग थे, और अब समुद्र के नीचे चारा खा रहे थे,

भागता है। इस प्रकार प्रहार होते-होते वह मर जाता है। सील के चमड़े की मशकों के कारण, जो प्रत्येक भाले में बँधी रहती हैं, उसकी लाश डूबने या खोने नहीं पाती और तुरंत निकाल ली जाती है।

बहुधा ये बड़ी संख्या में एक साथ रहते हैं। उस समय इनका शिकार जोखिम का काम है। खुश्की में इनका शिकार उतना कठिन नहीं, जितना जल में। पर जैसा हम पहले कह चुके हैं, प्रहार होते ही और कभी-कभी मनुष्यों को देखते ही ये तुरंत पानी में डूब जाते

यह देखने को कि क्या शोर-गुल हो रहा है, फुसकारते और कौड़ियाँ उगलते हुए ऊपर आ गए। वे हमारे आस-पास के जल को चारों ओर से घेरे हुए थे। कुछ तो हमारी नाव के इतने निकट थे कि हम उन्हें पतवारों से मार सकते थे। एक दूसरे के भी भाला भोंक दिया गया। इतने में मेरी बंदूक ख़ाली हो गई, और मामला भी संगीन हो गया।

"एकाएक तीन ज़ख़्मी वालरस लगभग बीस गज़ की दूरी पर उछले, और ज़ोर से चिंघाड़कर हमारी नाव पर टूट पड़े। हमारे साथ के एस्किमो यह देखकर घबड़ा गए। वालरसों को भगाने के लिये उन्होंने पतवार हाथ में लेकर पटकना और ज़ोर से चिल्लाना शुरू किया। इधर हम लोग गोलियों की वर्षा करने लगे। बंदूकों की आवाज़, एस्किमो के चिल्लाने तथा खटखटाने और वालरसों के चिंघाड़ने से ऐसा मालूम होता था कि मानो किसी ज्वालामुखी का सिर उड़ा आ रहा है। हम लोगों ने एक वालरस को डुबा दिया, दूसरे को इतना घायल किया कि वह बेकाम सा हो गया; पर तीसरा हमारे क़ाबू में न आया। उसने ग़ोता लगाया, और क्षण-भर में घुरघुराता हुआ नाव के इतने निकट आ निकला कि उसके उड़ाए हुए पानी की छींटे हम लोगों पर आ पड़े। हम लोगों ने उसके सिर में नली सटाकर बंदूक दागना शुरू किया। ख़ैर, वह भी डूबने लगा। उसके भी भाला भोंक दिया गया।

"तब हमने अपने जहाज़ को वहाँ आने का सिगनल दिया। बचे हुए वालरस धुएँ की बू पाते ही वहाँ से चल दिए।"'

"एक बार हम लोगों ने पचास वालरसों का झुंड बर्फ़ पर सोते हुए देखा। उस समय हवा तेज़ी से चल रही थी, और नाव के हिलने-डुलने से हमारे निशाने ठीक नहीं बैठते थे। वालरसों के नज़दीक पहुँचकर लगभग बीस गज़ की दूरी से हम लोगों ने फ़ायर करना शुरू किया। मैंने दो को घायल किया; पर उन्हें मार न सका। वे ज़ोर से घुरघुराकर लड़खड़ाते हुए समुद्र में कूद पड़े, और हमारी नाव की ओर लड़े। पहले की तरह इस बार भी हम लोगों ने डंडे पटककर तथा चिल्लाकर उनका स्वागत किया।

"एकाएक 'ऊक-ऊक' शब्द करता हुआ एक ज़ख़्मी वालरस मेरे निकट ही नाव के पास पानी के बाहर निकला। उसने उछलते समय जो पानी फेंका, उससे हम सब तर हो गए। सिर को ऊपर उठाकर उसने अपने दोनों दाँत नाव की कोर में अड़ा दिए। यदि वह ज़रा-सा ज़ोर लगाता, तो बहुत संभव था कि नाव उलट गई होती, पर ऐसा नहीं हुआ।

"मैं सोच रहा था कि क्या करूँ। आर्कटिक सागर के यात्रियों का ख़याल है कि यदि कोई वालरस अपने दाँत नाव की कोर में डालकर लटक जाय, तो उसे उस समय मारना उचित नहीं है; क्योंकि ऐसी हालत में ज्यों ही वह डुबकी लगावेगा, नाव उलट जायगी। पर मुझे उसके विरुद्ध करना पड़ा। मैंने बंदूक की नली उसके मुँह पर सटाकर फ़ायर करना शुरू किया। फिर क्या था, ठंडे पड़ गए।

"उसके थोड़ी देर बाद एक दूसरे ने दूसरी ही चाल चली।

"एक एस्किमो ने एक बड़े वालरस को भाले से छेद दिया। उस वालरस ने हम लोगों पर ध्यान न देकर सील-चमड़े की मशक पर वार किया, और उसे तोड़-मरोड़ डाला। उसके बाद भाला और रस्सी के साथ वह भाग खड़ा हुआ। इसी बीच में मैंने उस पर गोली चलाई। वह ग़ोता लगा गया, पर गोली लग गई। हम लोग उसके निकलने का रास्ता देख ही रहे थे कि हमारी नाव में नीचे की ओर से ज़ोर का धक्का लगा। यह धक्का उसी वालरस ने दिया था। धक्का देकर वह फिर ग़ोता लगा गया। थोड़ी देर बाद लगभग पचास गज़ की दूरी पर वह फिर निकला। मैंने गोली मारी, और वह फिर ओझल हो गया। थोड़ी देर बाद नाव में नीचे की ओर से फिर धक्का लगा। नाव के पेंदे में एक बड़ा-सा सूराख़ हो गया, और पानी अंदर आने लगा। हममें से कुछ लोग गिरते-गिरते बचे। ख़ैर, फटे-पुराने कपड़े उस छेद में भर दिए गए, और जैसे-तैसे पानी का आना रोका गया।

"क्षण-भर के बाद ही एक और धक्का लगा। इस बार नाव का एक सिरा दूर तक ऊपर की ओर उठ गया, और पेंदे में एक और छेद हो गया।......संभव था, हम लोग विपत्ति में पड़ जाते; पर गोलियों की बौछार ने उसका काम तमाम कर दिया।"

रूपनारायण दीक्षित



१. चंद्रलोक की यात्रा

कहा जाता है कि भारतवासी अनुकरणशील होते हैं। यह विचार देशी तथा विदेशी, सभी विद्वानों ने प्रकट किया है। किंतु यदि ऊपर लिखे वाक्य में भारतवासी-शब्द के बदले 'मनुष्य'-शब्द रख दिया जाय, तो हमारी समझ में ठीक हो। मनुष्य-मात्र ही अनुकरण-प्रिय हैं। वे जो कुछ दूसरों को करते देखते हैं, आप भी करने लगते हैं। अस्तु। माधुरी के किसी गत अंक में मैंने प्रो० आर० एच० गोडार्ड द्वारा उद्भावित एक यंत्र के विषय में लिखा था, जिसे वह चंद्रमा तक भेजना चाहते थे। मैंने यह भी उस नोट में बतलाया था कि आरंभिक परीक्षाओं और सिद्धांतिक हिसाब-किताब लगाकर प्रो० साहब ने यह बतलाया है कि उनका यंत्र औसत दो मील प्रति सेकंड के हिसाब से चलकर ३६ घंटे में पृथ्वी से चंद्रमा तक पहुँच जायगा। जिन्हें इस विषय में अधिक जानने की इच्छा हो, वे मेरे उस नोट को पढ़ें।

यह युक्ति American Association for the Advancement of Science के सामने पेश की गई थी, और उस संस्था ने इसे संभव बताया। Smithsonian Institute ने इसे कार्य में परिणत करने के लिये धन से सहायता करने का वचन दिया। किंतु अभी तक प्रो० गोडार्ड के यंत्र ने अपनी २,४०,००० मील की यात्रा को प्रारंभ नहीं किया है, और शायद कुछ दिनों को अभी और देर है। प्रो० साहब ने अपने यंत्र को, प्रायः पाँच साल हुए, संसार के सामने रक्खा था।

प्रो० गोडार्ड का अनुकरण कर और उनसे राय-मशविरा लेकर एक जर्मन वैज्ञानिक हर वान् हरमैन आवर्थ ने एक खलबली पैदा करनेवाली युक्ति, प्रायः दो वर्ष हुए, संसार के सामने उपस्थित की। आपका यंत्र दो मनुष्यों को अपने उदर में बैठाकर चंद्रमा तक ले जाने के लिये बननेवाला था। यंत्र को चलाने के लिये आपने तरल हाईड्रोजन, पानी तथा आलकोहल के मिश्रण की व्यवस्था की थी। यंत्र के नीचे कई पतले सूराख हैं, जिनसे गैस निकलेगी, और उसी से यंत्र आगे की ओर बढ़ेगा। एक यात्रा में ३० टन ईंधन लगेगा, पूरे यंत्र का वज़न (दो मनुष्यों के वज़न के साथ) ४०० टन है, और उसमें १५,००,००० रुपयों का खर्च पड़ेगा। पहले तो कठिनाई यह उपस्थित हुई कि कौन दो मनुष्य इस यंत्र में चढ़कर चंद्रमा तक जायँ। किसी प्रकार दो मनुष्य मिले भी, तो गोडार्ड के यंत्र की दशा को यह भी प्राप्त हुआ, अर्थात् इसकी भी यात्रा आरंभ होने में अभी देर जान पड़ती है।

अब समाचार मिला है कि एशिया के कई वैज्ञानिकों ने उक्त दो वैज्ञानिकों के बतलाए हुए पथ पर चलकर तथा उनके बतलाए हुए यंत्रों के आधार पर अपना एक यंत्र बनाया है, जिसमें ग्यारह मनुष्य बैठ सकते हैं। यह यंत्र कुछ ही दिनों में चंद्रलोक की यात्रा आरंभ करनेवाला है। मास्को को इस ख़बर में इससे अधिक कुछ भी नहीं बताया गया है। किंतु यदि यह ख़बर सच हो, तो इससे संबंध रखनेवाली और भी कुछ बातें बतला देना ज़रूरी जान पड़ता है। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रति सेकंड ७ मील की आरंभिक चाल काफ़ी होगी; और यदि इसी हिसाब से यह यंत्र चलता गया, तो चंद्रमा तक पहुँचने में इसे दस घंटे से भी कम समय लगेगा। किंतु पृथ्वी के निकट के वायु-मंडल में इस चाल से चलनेवाला यंत्र कुछ ही समय में जलकर ख़ाक हो जायगा। इसलिये इस यंत्र को अपनी आरंभिक गति धीमी चाल से आरंभ करनी पड़ेगी; और जब वह पृथ्वीतल से २०० मील की दूरी पर पहुँचेगा, तब उस चाल अर्थात् सेकंड में ७ मील की गति से चलने पर भी उसके जलने का डर जाता रहेगा। इस दूरी में यह ख़याल रखने की बात है कि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति यंत्र को अपनी ओर खींचती रहेगी; किंतु बीच-बीच में निकलती हुई गैस, जिसकी व्यवस्था इस यंत्र में भी की गई है, इसे रुकने नहीं देगी, और यह अपने पथ पर अग्रसर होता जायगा।

ऐसे उपायों द्वारा चंद्रमा तक पहुँचना कल्पना के भीतर की बात है; किंतु जो मनुष्य चंद्रमा पर पहुँचेंगे, उनकी अवस्था क्या होगी, यह कल्पनातीत है। चंद्रमा में वायु-मंडल का अभाव है। यदि एशिया के वैज्ञानिक चंद्रमा तक पहुँचने में सफल भी हुए, तो उन्हें अपने साथ ऑक्सिजन और हवा से भरे हुए पीपे ले जाना पड़ेगा। उनकी सहायता से वे साँस लेने और कुछ देर तक बचे रहने में समर्थ हो सकेंगे। चंद्रमा का तापक्रम पृथ्वी के तापक्रम से मिलता-जुलता न होने के कारण भी यात्रियों को कष्ट उठाना पड़ेगा। इसके अलावा लौटने का प्रश्न भी उन यात्रियों के सामने रहेगा। लौटते समय जब वे पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की हद में पहुँचेंगे, तो उनके यंत्र की चाल बेहद बढ़ जायगी और वह ज़ोरों से पृथ्वीतल पर गिरकर चकनाचूर हो जा सकता है। मैं समझता हूँ, रशियन वैज्ञानिक ऐसे बेवकूफ़ नहीं हैं कि बिना इन सब बातों का कोई उपाय निकाले ही उन्होंने यात्रा आरंभ कर दी हो। गत २०-२५ वर्षों की वैज्ञानिक उन्नतियों को देखते हुए चंद्रलोक की यात्रा असंभव नहीं कही जा सकती। किंतु जब तक हम यह नहीं सुनेंगे कि उन लोगों ने सचमुच यात्रा आरंभ कर दी है, तब तक हमें यही डर बना रहेगा कि कहीं यह कल्पना भी गोडार्ड और आवर्थ की कल्पना-सी केवल कल्पना-मात्र ही न रह जाय।

× × ×

२. क्या हम गंजे हो रहे हैं?

आफ़्रिका को Dark Continent या 'अँधेरा महाद्वीप' कहते हैं। इसका कारण यह है कि इस महादेश के बहुत-से हिस्सों में सभ्य मनुष्यों का प्रवेश नहीं हो सका है, और वहाँ के रीति-रवाज, चाल-ढाल, रहन-सहन आदि की जानकारी पूर्ण रूप से हमें नहीं प्राप्त हो सकी है। अस्तु, आफ़्रिका में एक जाति के मनुष्य रहते हैं, जो मनुष्य-हत्यारे का सिर मूँड़ देते हैं। कई शताब्दियों तक लोगों का ऐसा विश्वास था, और अब भी कुछ लोगों का है कि बाल शारीरिक शक्ति के साधन हैं। ऐसे विश्वास का यह कारण है कि प्राचीन काल के बलशाली पशु और आदमी लोम-युक्त होते थे। आज के कुछ लोगों का विश्वास है कि बाल शक्ति के साधक नहीं हैं, और इनका अभाव शक्ति-ह्रास का कारण नहीं हो सकता। किंतु पीछे की बातों पर विचार कीजिए। हाथी के पूर्वज 'मैंडटाडन'-नामक पशु का शरीर घने बालों से ढका रहता था। मनुष्य के पूर्वज बंदरों का शरीर बालों से आच्छादित रहता है, और ये आजकल के हाथी या मनुष्यों से बलवान् होते थे। ख़ैर, इससे हमें कुछ मतलब नहीं कि बालों में शक्ति संचार करने का गुण है, या नहीं। हमें यह बतलाना है कि मनुष्य क्रमशः केश-रहित होते जा रहे हैं।

बाल के बीच में एक पतली-सी नली है, जिसे 'मेडुला' (Medulla) कहते हैं। इसके चारों ओर की भीतरी परत Crtex और बाहरी Cuticle कहलाती है। ये तीन विभाग चमड़े के तीन विभागों से मिलते-जुलते होते हैं। जिनके बाल सफ़ेद और पतले होते हैं, उनके सिर के प्रति वर्ग इंच में प्रायः ७०० बाल, भूरे रंग के बालवाले मनुष्यों के सिर के प्रति वर्ग इंच में ६९० बाल और काले बालवाले मनुष्यों के सिर पर प्रति वर्ग

इंच में प्रायः ६०० बाल होते हैं। काले केशवाली स्त्रियों के सिर पर १,१०,००० बाल और भूरे रंग के केशवाली स्त्रियों के सिर पर केवल ३०,००० बाल होते हैं। बालों की औसत वृद्धि प्रायः २ इंच है, और उनकी वृद्धि का समय छः साल तक है। इस समय के बाद बाल टूटकर गिरते और उनके स्थान में नए बाल पैदा होते जाते हैं। बहुत-से लोग यह नहीं जानते कि बरौनी का जीवन-काल केवल-मात्र १३० दिन होता है। साल-भर में तीन बार बरौनियाँ टूटती और नई पैदा होती हैं। बाल स्पर्शानुभव की एक सूक्ष्म इंद्रिय हैं। ये बिजली के चालक और फेफड़ों की तरह हवा से तत्त्व के सोखने की शक्ति रखते हैं। बाल एक मनुष्य के शरीर से उखाड़कर दूसरे मनुष्य के शरीर में रोपा जा सकता है, और मनुष्य के मर जाने पर भी बाल कुछ घंटों तक बढ़ते जाते हैं।

बालों की परीक्षा कर मनुष्यों का जाति-निर्णय किया जा सकता है। यद्यपि सभी जाति के मनुष्यों के बालों में बाहरी रंग रूप और आकार प्रकार में बहुत कम अंतर होता है, तथापि अणुवीक्षण-यंत्र से देखने पर उनकी असलियत का पता चल जाता है। निग्रो-जाति के मनुष्यों के बाल छोटे और कड़कीले होते हैं; मंगोल-जाति (जिसमें लाल इंडियन, जापानी, चीनी और भारतीय हैं) के मनुष्यों के बाल सीधे, लंबे और रूखे होते हैं। योरप-निवासियों के बाल छल्लेदार, लाल भूरे या काले रंग के होते हैं। बाल जितना ही चिपटा होगा, उतना ही वह मरोड़ा जा सकता है, और उसमें आधुनिक फ़ैशन की तरह-तरह की लहरें पैदा की जा सकेंगी। गोल बाल सीधे और कड़े होते हैं।

अभी हाल में एक सिद्धांत प्रतिपादित हुआ है कि कृत्रिम शिरस्त्राण के प्रचार से असली शिरोरक्षक केश की ज़रूरत कम होती जाती है। प्रकृति से यह बात छिपी नहीं है। अब वह हमारे सिर में कम बाल पैदा करेगी, और एक समय ऐसा उपस्थित होगा, जब हम लोग सर्वथा गंजे हो जायँगे। प्रकृति परिस्थिति के अनुसार ही कार्य करती है। आरंभ में हम लोगों का शरीर बालों से ढका रहता था; किंतु जब से हम लोगों में कपड़े का चलन हुआ, तब से बालों का जमना भी कम हो गया; और अब ऐसा समय आ पहुँचा है कि हमारे शरीर में नाम-मात्र को बाल रह गए हैं। इसी प्रकार टोपी, पगड़ी, हैट, कैप आदि शिरस्त्राणों के प्रचलन से हमें केशों की आवश्यकता ही नहीं रही। ये शिरो-रक्षक ही सूर्य की गरमी या सर्दी से हमारे मस्तक की रक्षा किया करते हैं। हमारा गंजा होना कुछ लोगों को आश्चर्य-जनक प्रतीत हो सकता है; किंतु यह असंभव नहीं। सभी वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ और प्रकृति-परिवर्तन धीरे-धीरे होते हैं। इसलिये हम एकाएक, एक-दो दिन, मास या वर्ष में गंजे हो जायँगे, यह समझ लेना भूल है। हम लोग धीरे-धीरे उसी पथ पर अग्रसर हो रहे हैं, जिस समय सभी गंजे होने लगेंगे, उस समय सिर पर बाल होना ही एक आश्चर्य-जनक बात मानी जायगी। मैं कुछ लोगों को जानता हूँ, जो बाल कटाना, बाल झाड़ना समय की बर्बादी समझते हैं। प्रायः सभी देशों की स्त्रियाँ बाल झाड़ने तथा



भविष्य का एक विवाह

सिंगार करने में बहुत-सा समय नष्ट किया करती हैं। सिर में जब बाल ही नहीं रहेंगे, तो ये लोग जो समय बाल सँवारने में लगाते हैं, उसे किसी उपयोगी काम में लगाने लगेंगे। समय ही बतलावेगा कि हमारी गति किस ओर है, गंजे होने का सिद्धांत ठीक है या ग़लत।

तब तक पाठकों के मनोरंजनार्थ भावी विवाह के एक दृश्य का काल्पनिक चित्र दिया जाता है।

× × ×

३. गरमी का कौन अनुभव करता है?

साधारणतः देखा जाता है कि गरमी के दिनों में मोटे लोगों को जितनी तकलीफ़ उठानी पड़ती है, उतनी दुबले-पतले लोग नहीं उठाते। गरमी के दिनों में मोटे पसीने से तर-बतर होते रहते हैं, और दुबले-पतले आराम से मौज उड़ाते हैं। इस से पता लगता है, दुबले-पतले लोग जितनी गरमी बरदाश्त करते हैं, उतनी मोटे लोग नहीं कर सकते। इस वैज्ञानिक युग में कोई बात बिना परीक्षा के सिद्ध नहीं मानी जाती। इसकी भी परीक्षा हुई, और नतीजा बड़ा ही मनोरंजक निकला। परीक्षा यों आरंभ हुई—एक घर में कुछ लोगों को बैठा दिया गया—इनमें सब तरह के मोटे, मँझोले, पतले मनुष्य थे और उनसे कह दिया गया कि उस कमरे में पानी की गरम भाप पहुँचाई जायगी। थोड़ी ही देर भाप आई थी कि दुबले-पतले लोग घबरा गए, उन्हें असुविधा जान पड़ने लगी, और कमरे को छोड़कर बाहर आने के लिये वे बाध्य हो गए। लेकिन मोटे लोग वहीं बैठे रहे। उनके शरीर से पसीना चूता रहा, उनका वज़न कम होता रहा, और वे गरमी सहन करते रहे। यह देखकर परीक्षकों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा; क्योंकि लोगों के विश्वास के विपरीत यह बात थी। इसके बाद शरीर के वज़न की परीक्षा हुई। जो आदमी सबसे हलका था, उसने सबसे कम वज़न खोया था, और जो सबसे मोटा था, उसके शरीर का बहुत ज़्यादा वज़न घट गया था। मोटे मनुष्य क्यों अधिक गरमी बरदाश्त कर सकते हैं, इसका कोई कारण नहीं बतलाया जा सकता। इसकी परीक्षा चल रही है।

रमेशप्रसाद

× × ×

४. टेलिफ़ोन के आविष्कर्ता

अंटोनियो म्यूसी (Antorno Meucei) का वृत्तांत अनेक आविष्कर्ताओं के जीवन-जैसा आश्चर्यमय तथा सहानुभूति-पूर्ण है। सन् १८०८ ईसवी में इटली के फ़्लोरेंस-नगर में एक दरिद्र-परिवार के घर इनका जन्म हुआ था। बड़े होने पर कुछ दिनों तक यह किसी 'थिएटर' में विदूषक का कार्य कर जीविकोपार्जन करते रहे। पश्चात् अपनी पत्नी के साथ स्वदेश त्यागकर अमेरिका के संयुक्त-राज्य में चले गए। वहाँ इन्होंने पियानो तथा मोमबत्ती का एक कारख़ाना खोला, परंतु कुछ विशेष लाभ न हुआ। अंत में स्टेटन-द्वीप में इनका घर इटालियन आश्रयहीन राजनीतिक शरणागतों (Political Refugees) का केंद्र बन गया। सन् १८५१ ई० के पश्चात् जब गैरीबाल्डी इटली से भागकर अमेरिका पहुँचे, तब इस परिवार ने इन महात्मा का हृदय से स्वागत किया। गैरीबाल्डी तथा उनके आश्रयदाता म्यूसी ने अपने एक अद्भुत आविष्कार—जिसके द्वारा शब्दों को दूर तक स्थानांतरित किया जाय—की परीक्षा करने लगे। निःसंदेह टेलिफ़ोन का आविष्कार इटली के निर्वासितों के ही परिश्रम तथा उद्योग का फल है, तथा उन्हीं को इसके आविष्कार का श्रेय है; क्योंकि इन्हीं लोगों ने इसे व्यावहारिक रूप दिया।

म्यूसी ने अपने नवीन आविष्कृत यंत्र को बहुत ही उत्तम तथा योग्य समझा, और बाद को न्यूयार्क की 'पोस्ट तथा टेलिग्राफ़-कंपनी' के प्रेसिडेंट के पास परीक्षा के लिये उपस्थित किया। परंतु वहाँ कुछ उत्साह न पाकर सन् १८७१ ई० में 'वाशिंगटन के पेटेंट ऑफ़िस' में इन्होंने अपने आविष्कार को 'पेटेंट' करा लिया। पर दरिद्रता देवी की कृपा से यह अपने इस नवीन आविष्कार के स्वत्व की रक्षा नहीं कर सके। पाँच वर्ष के पश्चात् टेलिफ़ोन के आविष्कार का मुकुट ग्राहम बेल (Graham Bell)-नामक एक स्कॉच इंजीनियर के माथे रख दिया गया। इसने इसको सन् १८७६ ई० में पेटेंट करा लिया। इसके यंत्र तथा म्यूसी के यंत्र में नाम-मात्र का कुछ भेद था। इससे म्यूसी का शेष जीवन अपने पुराने स्वत्व की रक्षा की निष्फल चेष्टाओं में बीता। इन्होंने ख़ूब उद्योग किया; परंतु दरिद्रता के कारण सब निष्फल हुआ। अंत को इसी चिंता के कारण निराश होकर यह महात्मा सन् १८८९ ई० में इस कपटी संसार को त्याग सदा के लिये चल बसा।

इतने दिनों के पश्चात् उनके जन्मस्थान फ़्लोरेंस के 'पोस्ट तथा टेलिग्राफ़-ऑफ़िस' में इनकी स्मृति-रक्षा के लिये इनकी एक मूर्ति रक्खी गई है।

जोखू पांडेय



१. स्त्री की अनुकूलता से ही पुरुष का कल्याण है

कवियों ने स्त्री की निंदा और प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है, और जब तक यह संसार है, स्त्री उनकी कविता का विषय बनी ही रहेगी। स्त्री एक शक्ति है, जिसका उपयोग अच्छे और बुरे, दोनों प्रकार के कामों में हो सकता है। स्त्री की सहानुभूति और सहयोग से पति यश और सांसारिक सुख-लाभ कर सकता है, और उसका विरोध तथा असहयोग पति के लिये अपयश और परम दुःख का कारण बन सकता है। संतुष्ट भार्या दरिद्र पति को भी संसार में संतुष्ट बनाए रखती है, और असंतुष्ट पत्नी धनी-से-धनी पुरुष को भी लोक में निंदित कर देती है। जिस प्रकार बिजली स्वयं छिपी रहती है, केवल उसके द्वारा संपादित कार्य ही देख पड़ते हैं, इसी प्रकार नारी-शक्ति भी स्वयं अदृष्ट रहकर पुरुष के कार्यों में अपने अस्तित्व का परिचय दिया करती है। स्त्री द्वारा उत्साहित किए जाने पर पुरुष बड़े-बड़े अद्भुत कार्य कर डालता है—वह युद्ध में अपने प्राण तक दे डालता है; और उसके द्वारा तिरस्कृत होने से भी वह चुल्लू-भर पानी में डूब मरता है। तुलसीदास, कालिदास और भर्तृहरि आदि के जीवनों को स्त्री ने ही बदला दिया था। पंजाब में कहावत है कि स्त्रियों की मार से अनेक लोग फ़क़ीर हो जाते हैं; और यह बात है भी बिलकुल सत्य। इसलिये जो पुरुष इस शक्ति को अपने अनुकूल बनाकर जीवन-यात्रा करता है, वह सदा सुख पाता है, और जो दुर्भाग्य से इसे अपना विरोधी बना लेता है, वह इसी संसार में नरक भोगता है।

आगे हम कुछ ऐसी सत्य घटनाएँ देते हैं, जिनसे पता लगेगा कि स्त्री किस प्रकार पति के यश-अपयश और सुख-दुःख का कारण होती है—

मेरे एक मित्र एक कॉलेज में प्रोफ़ेसर हैं। उनमें धर्म-प्रचार की बड़ी लगन है। एम्० ए० पास करने के बाद आपने हिंदी और थोड़ी-बहुत संस्कृत का अभ्यास किया है। धर्म-प्रचार के लिये भी बाहर उत्सवों में जाते हैं। कर्म-कांड में भी पूरे हैं। परंतु दुर्भाग्य से आपकी गृहिणी का स्वभाव अच्छा नहीं, अथवा उन्होंने उसे अच्छा बनाया नहीं। पति-पत्नी और सास-बहू में प्रायः खटपट रहती है; कभी-कभी तो मार-पीट तक की भी नौबत पहुँच जाती है। परंतु जो स्त्री आँख के इशारे से नहीं डरती, उसे मार-पीट भी भयभीत नहीं कर सकती। इस घरेलू कलह के कारण प्रोफ़ेसर महाशय बहुत दुखी रहते हैं। कभी-कभी तो उन्हें अपना सारा जीवन ही अंधकारमय जान पड़ता है। स्त्री, बच्चा और पागल, इनके साथ तर्क करना व्यर्थ है। इनसे प्रेम तथा चतुराई से ही काम लिया जा सकता है। एक समय की बात है, प्रोफ़ेसर महाशय ने एक प्रतिष्ठित मित्र को अपने यहाँ भोजन करने का

निमंत्रण दिया। परंतु दुर्भाग्य से दूसरे दिन पति-पत्नी में झगड़ा हो गया। पत्नी ने भोजन बनाने से इनकार कर दिया, और कोप-भवन में जाकर लेट रही। उधर भोजन का समय हो गया; अतिथि महाशय घर में आ गए। परंतु यहाँ तो आज चूल्हा ही नहीं जला था। प्रोफ़ेसर महाशय बड़े असमंजस में पड़े। इस समय की उनकी मानसिक दशा का अनुमान पाठक स्वयं करें, उसका वर्णन करना कठिन है। अब वह सोचने लगे कि क्या किया जाय, जिससे अतिथि को घर की अवस्था का भी पता न लगे, और काम भी हो जाय। यह सोचकर वह अतिथि से बोले—आज आपको बाज़ार की पूड़ियाँ और हलवा खिलाऊँगा। वह बोला—नहीं महाशय, मुझे बाज़ार की पूरी की ज़रूरत नहीं; मैं तो घर की रोटी-दाल ही खाना चाहता हूँ। प्रोफ़ेसर ने कहा—अजी, घर की रोटी तो आप रोज़ खाते ही हैं, आज पूड़ियाँ-कचौड़ी उड़ने दीजिए; देखिए, कैसा आनंद आवेगा। अतिथि के बार-बार मना करने पर भी उन्होंने ज़बर्दस्ती बाज़ार से पूड़ियाँ मँगा ही लीं। अतिथि बड़े आश्चर्य में था कि यह कैसा आतिथ्य है! मैं घर में भोजन करने आया हूँ, बाज़ार की पूड़ियाँ क्या मैं स्वयं लेकर नहीं खा सकता था? फिर मुझे निमंत्रण देने का प्रयोजन ही क्या था? पर उसे क्या मालूम कि गृह-देवी की अप्रसन्नता के कारण आज उनके मित्र घर से बहिष्कृत हैं। वह बेचारे पूड़ी खाकर आश्चर्य में डूबे हुए वहाँ से लौट आए।

इसी प्रकार कलकत्ते की एक बात है। वहाँ एक पंजाबी सज्जन कार-बार करते थे। काम बहुत अच्छा चल रहा था। आप बड़े जोशीले समाज-सुधारक भी थे। एक बार उनका एक मित्र बर्मा से सपरिवार वहाँ आया, और एक धर्मशाला में आकर ठहरा। उन्होंने उसे सपरिवार भोजन के लिये निमंत्रण दिया। मित्र ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। परंतु जब भोजन का समय हुआ, तो उन्हें बुलाने के लिये कोई न आया। उन्होंने समझा, शायद काम के कारण देर हो गई होगी। दस-पंद्रह मिनट देख लें, कोई-न-कोई ज़रूर लिवा ले जाने के लिये आवेगा। परंतु पंद्रह मिनट की तो बात ही क्या, जब ढाई घंटे बीत गए, तो उन्हें संदेह हुआ कि पता तो लें, बात क्या है, शायद वह भूल ही न गए हों। अब मित्र महाशय उनकी दूकान पर पहुँचे। उन्हें देखकर भी उन महाशय ने खाने की कोई बात न की; इधर-उधर की बातों में ही टाल दिया। मित्र को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कल इसने मुझे आग्रह-पूर्वक निमंत्रण दिया था, आज यह उसको ऐसे भूल गया है, मानो कोई बात ही नहीं हुई। अस्तु, वह दूकान से उठकर चले आए। शाम को बाज़ार में उनकी फिर भेंट हो गई। अब मित्र ने उससे पूछ ही लिया कि भले आदमी, निमंत्रण देकर इस प्रकार न बुलाना यह कहाँ का शिष्टाचार है? उसने साफ़ कह दिया कि आपको निमंत्रण देने के बाद रात्रि को मेरी स्त्री के साथ झगड़ा हो गया था। उसने मुझसे डाँटकर कह दिया था कि ख़बरदार, जो किसी पाहुने को मेरे यहाँ लाए। मुझसे उनकी आव भगत नहीं हो सकती। यदि अब भी तुम उन्हें ले आए, तो अपना किया पाओगे। यह सज्जन ऊपर से लोगों में बड़े धर्मात्मा प्रसिद्ध थे।

इसी प्रकार एक डॉक्टर की बात है। उन्होंने भी अपने एक मित्र को सपरिवार भोजन के लिये निमंत्रण दिया। देने को तो वह सपरिवार निमंत्रण दे चुके; परंतु बाद को घबराए, और यत्न करने लगे कि केवल उनका मित्र ही खाना खाने आवे, उसका परिवार न आवे। जब मित्र महाशय खाना खाने गए, तो डॉक्टर ने उन्हें अपने घर में न ले जाकर दूकान पर ही भोजन मँगा दिया। यह देख मित्र महाशय बहुत बिगड़े। उन्होंने कहा—भले आदमी, मैं तेरी रोटी का भूखा नहीं था। रोटी तो मैं बाज़ार में भी खा सकता था। मैं तो तेरे प्रेम के कारण आया हूँ। दूकान पर रोटी मँगाकर तूने मेरा बड़ा अपमान किया। तेरा यह स्वादिष्ट भोजन भी मुझे विष के समान कड़वा जान पड़ता है। तब डॉक्टर बड़ा दुखी होकर बोला—भाई, क्या करूँ, स्त्रियाँ बड़ी ख़राब होती हैं। घर में सास-बहू की लड़ाई रहती है। मैं कुछ बोलता हूँ, तो मुझ पर डाँट-डपट हो जाती है।

और लीजिए, काशी में एक सज्जन थे, घर के अच्छे संपन्न थे। उन्होंने नगर से कुछ दूर एक रम्य वाटिका बनवाई थी। उसमें जल का एक सुंदर कुंड था। सड़कों के किनारे-किनारे हरियाली के अक्षरों में सुंदर वेद-मंत्र लिखे हुए थे। वाटिका की सफ़ाई और सजावट बहुत चित्ताकर्षक थी। नगर छोड़कर रईस महाशय उसी में रहा करते थे। भजन और भक्ति के बिना उनका कोई और काम न होता। जो भी कोई वहाँ आता, वाटिका की प्रशंसा के साथ-

साथ रईस महाशय के सुखी जीवन की भी प्रशंसा करता। लोग कहते, सेठजी, आप वाटिका में नहीं, स्वर्ग में रहते हैं। एक दिन उनके एक पंजाबी मित्र को काशी जाने का संयोग हुआ। वह भी उनकी उस वाटिका में उनसे मिलने गए। उनकी कोठी में किसी स्त्री को न देख उन्होंने ताड़ लिया कि सेठ महाशय का एकांत-वास रहस्य-पूर्ण है। उन्होंने उनसे कहा, सेठजी, आपका यह बाग़-बग़ीचा और महल-अटारी, सब नरक है। गृहस्थ होकर इस प्रकार अकेले रहने का मतलब क्या? गृहस्थ को तो विनोदमय होना चाहिए। बाल-बच्चे, पति-पत्नी, सब मिल-जुलकर खेलें-कूदें, और हँसें-हँसावें। यह श्मशान-घाट क्या बना रक्खा है? सेठ ने कहा—मैं घर में स्त्री के कारण ब्रह्मचर्य नहीं रख सकता, इसी से अकेला वाटिका में रहता हूँ। इस पर मित्र ने फिर डाँटा, और बताया कि एकपत्नीव्रती ऋतुगामी पुरुष ही सच्चा ब्रह्मचारी है। तुम्हारी तरह एकाकी रहने से तो तुम्हारे पतन का भारी भय है। अस्तु, उस समय तो सेठ ने लोगों के सामने उनकी बात स्वीकार न की। परंतु जब वह उन्हें स्टेशन पर छोड़ने आया, तो धीरे से कहने लगा—आपका कथन है तो सर्वथा सत्य। मुझे भी यह मकान नरक-धाम मालूम होता है। पर क्या करूँ, घर से तंग हूँ। मुझे भी गृहस्थी को स्वर्ग-धाम बनाने की कोई विधि बताइए। मित्र ने दो-चार बातें बताईं। वे सेठ के मन में जम गईं। तभी से उसके जीवन में भारी परिवर्तन हो गया, और वह स्त्री-बच्चों के साथ सुख-पूर्वक रहने लगा।

इसी प्रकार दिल्ली की एक बात है। प्रौढ़ अवस्था के एक कारबारी लाला थे। अपने व्यवसाय में ख़ूब चतुर थे। एक समय की बात है, उनके एक परिचित सज्जन कई वर्ष के बाद उनसे मिलने गए। उन्होंने देखा, लालाजी की प्रकृति में बड़ा अंतर आ गया है। वह आजकल भक्त बन रहे हैं। लोग भी उन्हें 'भक्तजी, भक्तजी' कहकर पुकारते हैं। घर आना उन्होंने बिलकुल छोड़ दिया है। रोटी भी दूकान पर ही मँगाते हैं। भक्तों में उनका ख़ूब नाम हो रहा है। उस सज्जन ने लाला के किसी मित्र से हँसी में कह दिया—"यह कब से भक्त बन गए हैं? स्त्री के साथ खटपट रहती होगी। बड़े भक्त वही बनते हैं, जिनके घर में अनबन रहती है, और जिन्हें गृहस्थी में आनंद नहीं मिलता।" ये बातें उस मित्र ने लाला तक पहुँचा दीं। लालाजी अपनी भगतई पर बट्टा लगते देख बहुत बिगड़े। लोगों ने भी कहा कि नहीं, लालाजी की भगतई सच्ची है; इन पर यह झूठा लांछन लगाया जा रहा है। अस्तु, बात गई-आई। एक दिन लालाजी अपनी दूकान से कुछ काल के लिये अनुपस्थित हुए। उनकी दूकान के सामने एक सुनार बैठता था। वह उनके घर का भेदिया था। जिन महाशय ने उनकी भगतई पर संदेह किया था, उन्होंने उस सुनार से उनकी पारिवारिक अवस्था पूछी, तो उसने बताया कि लालाजी के यहाँ घर में भयंकर अशांति फैल रही है; उनकी स्त्री अनेक बार दूकान पर आकर भी उन्हें खरी-खरी सुना जाती है। तब लालाजी के श्रद्धालुओं को, जो दूसरे बाज़ार में रहने के कारण उनकी भीतरी दशा से अनभिज्ञ थे, बड़ा आश्चर्य हुआ।

उपर्युक्त घटनाओं से स्त्रियों को कलह-प्रिय और झगड़ालू समझकर उनकी निंदा करना मूर्खता होगा। इस अनबन में पुरुष उनसे कम दोषी नहीं होते। पुरुष को बर्ताव का ढंग न आने से ही स्त्री लड़ाका बन जाती है। बुद्धिमान् पुरुष अपनी स्त्री को और बुद्धिमती स्त्री अपने पति को चतुराई से अपने अनुकूल बना सकती है। पर दुःख तो यह है कि पुरुष अपने को ज्ञानवान्, बुद्धिमान्, चतुर और सर्वांग-पूर्ण समझते हैं। वे समझते हैं, हमें गृहस्थी के संबंध में कुछ भी सीखने की आवश्यकता नहीं। त्रुटियाँ केवल स्त्री ही में होती हैं। उसी को गृहस्थी-संबंधी पुस्तकें पढ़नी चाहिए, उसे ही अपना सुधार करना चाहिए। हम तो जो कुछ बनना था, बन चुके। मेरी यह धारणा निराधार नहीं। गत वर्ष मैंने स्त्रियों के लिये 'आदर्श पत्नी' और पुरुषों के लिये 'आदर्श पति' नाम की पुस्तकें लिखी थीं। विशेषज्ञों की सम्मति है कि 'आदर्श पत्नी' की अपेक्षा 'आदर्श पति' अधिक अच्छा लिखा गया है। परंतु 'आदर्श पत्नी' का तो एक वर्ष में दूसरा संस्करण भी हो गया है, और 'आदर्श पति' की अभी आधे के लगभग प्रतियाँ पड़ी होंगी। कारण स्पष्ट है।

मेरे जाने हुए सज्जनों में एक वृद्ध महाशय हैं। आप आर्य-समाज के पक्के भक्त हैं। सरकारी नौकरी करते हुए भी आप आर्य-समाज के प्रधान रहे हैं। पहली स्त्री के मर जाने पर आपने दूसरा विवाह किया था। दूसरी स्त्री से कई बच्चे हैं। परंतु स्त्री धार्मिक कामों में उनका साथ नहीं देती; वैदिक संस्कार कराने में बाधा डालती है। अब

लालाजी कहते हैं कि घूँघट मत निकालो, तो वह और डेढ़ गज़ लंबा निकाल लेती है। आर्य-समाज की प्रथा चाहती है कि यज्ञ में पति-पत्नी, दोनों सम्मिलित हों, और पत्नी ने परदा न किया हो। परंतु लालाजी की देवीजी बिलकुल नहीं मानतीं। कुछ महीनों की बात है, आर्य-समाज-मंदिर में कोई यज्ञ था। समाज के सभासदों ने यह नियम बना रक्खा है कि यज्ञ में सभी लोग सपत्नीक शामिल हों। बिना स्त्री के कोई पुरुष उसमें नहीं बैठ सकता। लालाजी से भी उसमें सपत्नीक पधारने के लिये कहा गया। उन्होंने यह कहकर साफ़ इनकार कर दिया कि मेरी स्त्री न तो घूँघट छोड़ सकती है, और न यज्ञ में ही शामिल होगी। समाज के मंत्री एक बड़े चतुर सज्जन थे। उन्होंने लालाजी से कहा कि यज्ञ में आने के लिये मैं आपकी धर्मपत्नी को मना लूँगा, केवल आपकी आज्ञा होनी चाहिए। लालाजी ने कहा, मेरी ओर से तो आज्ञा है; पर देखना, कहीं उलटी-सीधी बातें करके मेरे घर में लड़ाई-झगड़ा न करा देना। मंत्रीजी ने कहा—विश्वास रखिए, कोई झगड़ा न होगा।

मंत्री महाशय लालाजी के घर गए। वहाँ जाकर उन्होंने बड़े आदर से गृहपत्नी को 'नमस्ते' किया। फिर कहा—आप मेरी माता के तुल्य हैं, मैं आपके पुत्र के समान हूँ। देखिए, जब तक आप न पधारेंगी, यज्ञ कभी पूर्ण नहीं हो सकता। आपके बिना लालाजी भी सम्मिलित नहीं हो सकते। और भी कई स्त्रियाँ और पुरुष आवेंगे। आप यज्ञ में सम्मिलित होने की अवश्य कृपा कीजिए। देवीजी उनके शब्दों से बड़ी प्रसन्न हुईं, और बोलीं—मेरे अहोभाग्य हैं, मैं अवश्य यज्ञ में आऊँगी। तब मंत्रीजी ने कहा—हमारे यहाँ यज्ञ में घूँघट निकालने की रीति नहीं है। वहाँ कोई भी स्त्री घूँघट नहीं निकालेगी। इस पर देवीजी बोलीं—घूँघट की भी कोई बात नहीं, मैं नहीं निकालूँगी। मंत्रीजी देवी की स्वीकृति लेकर चले आए। जब उन्होंने इस स्वीकृति की सूचना लालाजी को दी, तो वह प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले—आपने सचमुच जादू कर दिया। कहना न होगा, दूसरे दिन पति पत्नी, दोनों विधि-पूर्वक उस यज्ञ में सम्मिलित हुए। जो स्त्री प्रत्येक बात में पति का विरोध करती थी, वही एक युक्ति से सब बातें करने पर उद्यत हो गई।

और सुनिए, अमृतसर के एक सिख महाशय की बात है। वह कचहरी में नौकर थे। घर में अच्छी रूपवती भार्या थी; परंतु कचहरी से आकर वह अपना सारा समय बाज़ार ही में बिताया करते थे। केवल आध घंटे के लिये भोजन करने घर आते थे। इस प्रकार आवारा रहने से उन्हें मदिरा-पान की भी बान पड़ गई। कुछ दिन बाद उनकी स्त्री का देहांत हो गया। उन्होंने दूसरा विवाह किया। दैवयोग से स्त्री काली मिली। परंतु वह थी बड़ी चतुर। उसके आते ही सिख महाशय के जीवन ने पलटा खाया। स्त्री ने उनको अपने क़ाबू में कर लिया। अब वह कचहरी के बाद प्रायः सारा समय घर पर ही बिताते हैं। आप उन्हें पूर्ववत् बाज़ार में लोगों की दूकानों पर समय नष्ट करते नहीं पावेंगे। मदिरा-पान की लत भी जाती रही है, गृहस्थी में लीन हैं। कहते हैं, बड़ा प्रसन्न हूँ।

अब एक और वृत्तांत देकर हम इस लेख को समाप्त करना चाहते हैं। एक मारवाड़ी सेठ के तीन लड़के हैं। कलकत्ता, रंगून और चीरन में उनकी तीन दूकानें हैं। पिता ने तीनों को अलग-अलग काम दे रक्खा है। सेठजी लड़कों और बहुओं को खान-पान से ख़ूब संतुष्ट रखते हैं। उनको खाने और पहनने को बढ़िया चीज़ें देते हैं, आप घटिया चीज़ों पर ही निर्वाह कर लेते हैं। लड़के फ़िटन और मोटर की सवारी करेंगे, तो सेठजी पैदल घूमेंगे। बहुओं को नाना प्रकार के स्वादिष्ट फल और मिष्टान्न दिए जायँगे, तो सेठजी ख़ुद रूखी-सूखी रोटी खाकर ही गुज़र कर लेंगे। लड़के भी पिता का बहुत सम्मान करते हैं। घर में ख़ूब शांति है। जब कोई बहू किसी प्रकार का घर में कलह करती है, तो सेठजी दंड-स्वरूप तुरंत उसके पति को आठ-दस दिन या महीने-भर के लिये, पत्नी से अलग होकर, दूकान पर रहने की आज्ञा दे देते हैं। इस दंड से बहू एकदम काँप उठती है, और यथासंभव कलह करने से बचती है। सेठजी को घर में शांति रखने का बहुत अच्छा मंत्र मिल गया है। कलह का यह अमोघ अस्त्र है।

सन्तराम



१० तुलसीदास और घट-रामायण

संवत् १६१८ की बनाई हुई 'घट-रामायण'-नामक एक अच्छी मोटी पुस्तक है। उसके खोजी देवीजी का कथन है कि यह पुस्तक गोस्वामी तुलसीदासजी की लिखी हुई है। जब वह काशी में रहते थे, उसी समय उन्होंने इस पुस्तक की रचना की थी। रामचरित-मानस के पहले यह पुस्तक बनी थी; पर, जनता के तीव्र विरोध के कारण इसका प्रचार रुक गया। इसके पीछे आप (देवीजी) ने बड़े परिश्रम से खोजकर इसे प्रकाशित कराया। अतएव उसके पारिश्रमिक-स्वरूप आपने इसके सर्वाधिकार सुरक्षित रक्खे हैं।

उपर्युक्त अवतरणों में कितना सत्यांश है, यह तो सहज में ही मालूम हो जाता है। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि किसी तुक्कड़ ने इसकी रचना कर इसे तुलसीदासजी के पवित्र नाम से प्रकाशित किया है। परंतु इसमें संदेह नहीं कि पुस्तक में, कुछ अंशों को छोड़कर, सारी बातें तथ्य की भरी पड़ी हैं। यह पुस्तक संत-मत की कट्टर समर्थक है। सारी पुस्तक दोहे-चौपाई आदि में वर्णित है। पर, इसमें रामचरित-मानस की तरह न सरसता है, न सरलता और न अर्थ-गंभीरता। छंदोभंग की त्रुटियों से सारी पुस्तक खचाखच भरी पड़ी है। हो सकता है कि यह उनकी प्राथमिक रचना हो; पर, ऐसा सहसा परिवर्तन होना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। फिर भी, जो राग गोस्वामी तुलसीदासजी ने घट-रामायण में अलापा है, उसी का, स्वयं ही अच्छी तरह रामचरित-मानस में विरोध किया है। ऐसी दशा में, एक मनुष्य का दो परस्पर विरुद्धात्मक मतों का समर्थक होना इस ईश्वरीय सृष्टि में सचमुच अनोखी बात है। एक स्थान पर घट-रामायण में लिखा है—

"तुलसी नाम एक साधु गुसाँई, ग्रंथ कीन एक भाव बनाई।
तामें वेद किताब न राखा, दश औतार कछू नहिं भाषा।
तीरथ बरत एक नहिं मानें, नो कछु और और विधि ठानें।
पंडित हिरदे में भयो झगरा, और भेष जग काशी नगरा।"

यह अवतरण-भेद 'राम-रामायण' प्रकरण का है। इस प्रकरण में घट-रामायण और राम-रामायण का पारस्परिक भेद वर्णन किया गया है। आश्चर्य है! घट-रामायण के रचना-काल में उनके कथनानुसार, राम-रामायण का पता भी नहीं था; फिर तुलसीदासजी ने घट-रामायण में ही राम-रामायण का भेद कैसे लिख डाला? गोस्वामी तुलसीदासजी ने व्यक्त रूप से अपना जीवन-चरित नहीं लिखा है, इसी लिये उनके जीवनचरित-संबंधी कईएक बातों में अब तक कुछ-न-कुछ अंधपरंपरा का अनुसरण हो हो रहा है। पर, घट-रामायण में गोस्वामीजी ने विशेष कृपा दिखाकर अपना जीवन-चरित भी वर्णन किया है। प्रेमी पाठक उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ भी सुन लें—

अब अपनी विधि कहूँ विशेषा, तुलसी नीच कीच कर लेखा।
मैं अति अधम अचेत अबूझा, संत चरण कृछ मोहि को सूझा।

* * *

राजापुर जमुना के तीरा, जहाँ तुलसी का भया शरीरा।
विधि बुंदेलखंड वोही देशा, चित्रकूट के बीच दश कोसा।
संवत पंद्रह से नवासी, भादों सुदी मंगल एकादशी।
भया जनम विधि कहीं बुझाई, बाज बुड सुधि-बुधि दरसाई।

* * *

हिंदी-प्रेमी व्यर्थ ही गोस्वामीजी के जीवन-चरित के लिये इधर-उधर भटक रहे हैं। अच्छा होता, वे इसी से लाभ उठाते। उनका यह दोष (?) लगाना कि तुलसीदासजी ने अपना परिचय व्यक्त रूप से एक पंक्ति में भी नहीं दिया, सरासर अन्याय है! इस अनौचित्य का बदला कभी-न-कभी वे अवश्य लेंगे। भगवान् तुलसीदासजी के ऐसे भक्तप्रवर (संग्रहकर्ता) को दीर्घायु करें। यदि वह लौकिक लीला-संवरण कर चुके हों, तो कम-से-कम उनके लिये स्वर्ग-द्वार अवश्य खुला रक्खें।

इस पुस्तक में कई प्रकरण हैं। उनका संक्षिप्त प्रकरण-नाम हम यहाँ उद्धृत करते हैं—भेद-पिंड और ब्रह्मांड, नीर-भेद, पवनभेद, गगनभेद, सूक्ष्म त्रिकुटीभेद, नालभेद, मुक्तिभेद, जोगभेद, सिद्धों के नाम, द्वारभेद और प्रकृतिभेद आदि कई प्रकरण हैं। संत-मत के प्रचार के समय बहुतों ने इसका घोर विरोध किया था, और तुलसीदासजी (?) ने उनका समुचित खंडन किया था! उन विरोधी पुरुषों के शुभनाम और विवाद-संवाद भी इस पुस्तक में संकलित हैं। उन लोगों के कुछ ये नाम हैं—नक्की मियाँ, मानगिरि संन्यासी, फूलदास, कबीरपंथी, गुसाईं प्रियेलाल, पलकराम नानकपंथी आदि।

तुलसीदासजी इस पुस्तक के मतानुसार संत थे, और कबीरपंथी तो संत हैं ही। फिर संत संत में धार्मिक विवाद कैसा? जैसे-तैसे एक ही बात की बार-बार आवृत्ति कर पुस्तक की कलेवर-वृद्धि की गई है। हमारी समझ में यह पुस्तक गोस्वामीजी के पवित्र नाम में कलंक लगानेवाली है।

अस्तु, जो हो। अब पुस्तक के काम की बातों पर एक सिंहावलोकन-दृष्टि डाल लीजिए। नीरभेद-प्रकरण में पुस्तक-प्रणेता ने इस प्रकार लिखा है—

जल अजीत प्रथम कर गाऊं, करता जल दूसर कर नाऊं।
और अनूप तीसर जल कीना, चौथा मुक्ति नीर को चीना।
नीर पाँच पुरइनि परमाना, अंबुज षष्ठम नीर बखाना।
नीर सात बिषियाभर होई, नीर आठ अटलासुर सोई।

* * *

इसी प्रकार नीर के भेद कहे गए हैं।

पवन-प्रकरण में रजलाई, केदार, बिलंब, समीर, पुरभी, कलूल, श्रुतिअंध, नखपति, ब्रह्मराज, मंदोप, सकलतेज, मनसोत, अगजोति, उपजोत, अगजोत, बारून, कुंभेर, बंधुंध, सकलुंध, त्रिक्रोध, किवलास, अजसार, शब्दाल, रूपाल, सरभो, सोराठ, लैजोर, पदमूर, तितरंत, उबमीत, ताईत, करूनाद आदि पचासी नाम हैं।

पवन पचासी भाषि सुनाई, कोई साधु घट भीतर पाई;
घट में पवन पचासी जाना, निरषि नैन सैन धरि ध्याना।

गगन-भेद में लिखा है—

प्रथम गगन निमाधर मोषा, दूसर गगन अर्धा पद पोषा;
तीसर गगन त्रून (?) सोषा, चौथा गगन दिलभी गोषा।
पंचम गगन हिरापद श्यामा, षष्टम गगन निरंजन नामा;
सप्तम गगन पुलंधर चीना, अष्टम गगन सफानल कीना।

* * *

नाल-भेद में लिखा है—

प्रथम नाल की विधी बताऊं, अभिया तेज ताहि कर नाऊं।
दूसर रहस नाल जो गावा, चौदल कँवल फूल तेहि ठावा।
कवल चारदल भँवर उड़ाना, चांद अकाश त्रिधि जाइ समाना।
कनक नाल तीसर कर नामा, चौसठ जोगिनी बसै तेहि ठामा।

* * *

सिद्धों के नाम-प्रकरण में अजीनी, अजरदया, उदद-कँवल, पेपनादार, नालीवर, कांमार, नालपाजरी, उदया, उपमजार, झकझेला, सरपसोप, जंभीरनागर, बापजार, सुलोचन, पिगोभ, डंभिर आदि चौरासी नाम हैं।

चौरासी सिध देख, घट रामायण में कहे;
अंतर काया पेष, भिन्न-भिन्न दरसाइया।

मुक्ति-भेद-प्रकरण में मुक्तन के धुंधार, शब्दार, नौनार, अक्षरद, चौभंड, परमोष, खिरकाट आदि बाईस नाम हैं।

बाइस मुनि मत मान, जानि संत कोई परिखिहै;
गगन-गगन पर जान, मुनि-मुनि भिनि भिनि लेष।

प्रकृति पच्चीस हैं। उनका स्वभाव-सहित संक्षिप्त परिचय हम नीचे उद्धृत करते हैं। हमने उद्धृत अवतरणों में कहीं *फेरफार नहीं किया है। जैसा है, वैसा ही उद्धृत किया है।*

प्रकृति के नाम और स्वभाव—

१. भाव...आलस, निद्रा, जम्हाई।
२. क्रूता...काम, क्रोध, विकार।
३. उपमजार...मार नीर निद्रा।

४. मुखमजार...उचाट, भय, त्रास, और दंड ।

५. केदारपंड...कामिनि सुख ।

६. उदासमुद्र...चित चंचल, कुगुनिया टेढ़ा चलै ।

७. उचालभ ...ज्ञान ध्यान गुरु शब्द न रक्खे ।

८. अभियानंद...तीरथ, बरत मठ बनावे ।

प्रकृति पचीस यहाँ है साधो, सब जीवन कोई नहीं बाँधो ।
सत्य-सत्य मैं भाषूँ भाई, इनकर भेद कहूँ समझाई ।
पचीसौं का घर हम भाषा, सत्य शब्द हिरदे में राखा ।
प्रकृति पचीस कहौं समुझाई, मूढ़ जीव ज्ञानी होइ जाई ।

अब हम प्रेमी पाठकों को जोग-भेद के कुछ प्रश्नोत्तर सुनाते हैं । निम्न-लिखित जोग-भेद की तरह अनेकों प्रश्नोत्तर घट-रामायण में लिखे हैं । उनमें से प्रधान-प्रधान छाँटकर हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

जोग-भेद के प्रश्न और उत्तर—

१. पृथ्वी का माथा कहाँ है ? मैनागिरि देश में है ।

२. सूर का तेज कहाँ है ? उदयागिरि पर्वत में है ।

३. चंद्र की ज्योति कहाँ है ? चंद्रागिरि पर्वत में है ।

४. पानी का मूल कहाँ है ? निरंजन के ढोंढ़े में है ।

५. कँवल का फूल कहाँ है ? अछैदीप में है ।

६. वायु की नाभी कहाँ है ? रंभा के पेड़ में है ।

७. समुद्र का सोत कहाँ है ? समीरूप में है ।

८. ज्ञान की मूरति कहाँ है ? ब्रह्मंड कँवल में है ।

९. सुमेर की जड़ कहाँ है ? नाग के कलेजे में है ।

१०. गगन का कलेजा कहाँ है ? राग के आकार में है ।

सांप्रदायिक संकीर्णता का विचार त्यागकर यदि यह पुस्तक ध्यान-पूर्वक मनन की जाय, तो इससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है । 'घट'-शब्द इसके लिये बहुत ही सार्थक है; पर 'रामायण' से कुछ विशेष प्रयोजन नहीं । शायद, जहाँ तक हमें याद है, लेखक ने रामचरित-वर्णन करने में केवल एक ही चौपाई खर्च की है । वह भी इतनी मितव्ययिता से कि राम के साथ उनके परिवार-वर्ग भी उसी एक ही चौपाई में अँट गए हैं । यद्यपि इसके कुछ अंशों से हम सहमत नहीं हैं, तथापि हमें यह कहते तनिक भी संकोच नहीं होता कि मननशील पाठकों के लिये यह पुस्तक विशेष-रूप से पठनीय है ।

कहा जाता है, हिंदी-संसार में 'तुलसी' नाम के दो कवि हो गए हैं । ऐसी दशा में, एक दूसरे तुलसी का भ्रम होना साधारण-सी बात है । अस्तु, क्या हम विद्वज्जनों से इस पुस्तक के विषय में विशेष जानने की आशा कर सकते हैं ?

लक्ष्मीनारायणसिंह "सुधांशु"

× × ×

२. पातंजल योग-दर्शन और हिंदी-कवि

मैं आज 'माधुरी' के पाठकों के निकट अपने एक मित्र के उद्योग की बानगी उपस्थित करता हूँ । इसके उपस्थित करने का कारण न मेरे मित्र की प्रेरणा है, न उनकी ख्याति की इच्छा । यथार्थ बात यह है कि यह उद्योग लाभप्रद है या नहीं, इससे हिंदी-साहित्य का गौरव बढ़ता है या नहीं, इन बातों पर हिंदी-प्रेमी विचार करें, और उद्योग में जो कमी देख पड़े, उसे बताने की कृपा करें ।

इस उद्योगकर्ता का संक्षिप्त परिचय देना मेरे विचार से अनुचित न होगा । उनका संक्षिप्त परिचय नीचे देता हूँ—

आपका शुभनाम है मुंशी नंदकिशोरलाल दास । आप कर्ण कायस्थ हैं । आपकी अवस्था ४०-५० वर्ष की होगी । आपने कभी किसी स्कूल में जाकर शिक्षा नहीं प्राप्त की है । पहले आप कंवटसा (मुज़फ़्फ़रपुर) ड्योढ़ी में दीवान थे । इन दिनों मुज़फ़्फ़रपुर-कचहरी में सिमरा के एक ज़मींदार की ओर से पैरवीदार का काम कर रहे हैं ।

आपको हिंदी-साहित्य से बड़ा प्रेम है । आप हिंदी में कविता भी किया करते हैं । समस्या-पूर्ति करने में पूरे निपुण हैं । आपकी समस्या-पूर्ति-संबंधी कविताएँ पहले 'रसिकमित्र' और 'कवींद्र', कानपुर में निकला करती थीं, और अब भी कवि गोरखपुर में निकला करती हैं ।

आपको हिंदी के पुराने कवियों में बड़ी श्रद्धा है । उन कवियों की बहुत-सी कविताएँ आपने कंठाग्र कर रक्खी हैं, जिसके फल-स्वरूप यह बानगी उपस्थित है । एक बार आपने "गोस्वामी तुलसीदास और संस्कृत-कवि"-शीर्षक लेख बाँकीपुर की 'शिक्षा' में प्रकाशित कराया था, जो बहुत ही रोचक एवं लाभप्रद प्रमाणित हुआ था । अब नीचे मैं इष्ट विषय को अंकित करता हूँ—

२-योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

भावार्थ—चित्त की वृत्तियों के रुक जाने का नाम योग है ।

यथा—

जानकीजीवन की बलि जैहौं ।
चित कहै राम-सीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं ।

उपजी उर प्रतीति सपनेहु सुख प्रभुपद-बिमुख न पैहौं ;
मन समेत या तन के बासिन इहै सिखावन देहौं।
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं ;
रोकिहौं मैन बिलोकत औरहि, सीस ईस ही नैहौं।
नातो नेह नाथ सों करि-करि नातो नेह बहैहौं ;
यह छरभार ताहि तुलसी, जग जाको दास कहैहौं।

(गो० तुलसीदास)

मन के बहुतक रंग हैं, छिन-छिन बदलै सोय ;
एकै रँग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय।
मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक ;
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक।
तन को जोगी सब करे, मन को बिरला कोय ;
सहजै सब बिधि पाइए, जो मन जोगी होय।

(कबीरदास)

संकल्पन सों कामना, जे उपजे तिन त्याग ;
मन सों रोकै इंद्रियन, योग करै तजि राग।

(श्री भ० गी०, अ० ६-२४)

३—तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्

भावार्थ—जिस पुरुष की चित्त-वृत्ति रुक जाती है, वह सब कुछ देखनेवाला हो जाता है, अर्थात् अपनी आत्मा को सब प्राणियों में और संपूर्ण प्राणियों की आत्मा को अपनी आत्मा में देखने लग जाता है।

यथा—उमा जो रामचरन रत, बिगत काम, मद, क्रोध ;
निज प्रभुमय देखहि जगत, कासन कवन बिरोध।

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भवनिसा सिरानी जागे पुनि न डसैहौं।
पायो नाम चारु चिंतामनि उर कर ते न खसैहौं ;
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहि कसैहौं।
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं ;
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं।

(गो० तुलसीदास)

साधन सून्य लिए सरनागत, नैन रँगे अनुराग नसा है ,
भूतल, व्योम, जलानिल, पावक भीतर बाहर रूप बसा है ;
चितवन हम बाढ़िमयो मधु ज्यों मखियाँ मधु मोह फँसा है ,
बैज सुनाथ सदा रस एकहि या बिधि सो संभ्रम दसा है।

(बैजनाथजी मैनपुरी)

आत्मा को सबमें लखै, सबको आतम माहिं ;
समदर्शी योगी सदा, भेद दृष्टि करि नाहिं।

(गीतानुवाद)

२१ तीव्रसंवेगानामासन्नः

भावार्थ—तीव्र विरागवाले को असंप्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है।

यथा—मातु चरन सिर नाइ, चले तुरत संकित हिये ;
बागुर बिषम तुराइ, मनहु भाग मृग भागबस।
नव गयंद रघुबंसमनि, राज अलान समान ;
छूट जान बन गवन सुनि, उर आनँद अधिकान।

(गो० तुलसीदास)

दुनिया के परपंचों में हम मजा नहीं कछु पाया है ;
भाई बंधु पिता माता पति सब सों चित अकुलाया है।
छोड़-छाड़ घर गाँव नाँव कुल यही पंथ मन भाया है ;
'ललितकिशोरी' आनँद घन सों अब हठि नेह लगाया है।
जंगल में अब रमते हैं दिल बस्ती में घबराया है ;
मानुष-गंध न भाती है सँग मरकट, मोर सुहाता है।
चाक गरेबाँ करके दम-दम आहें भरना आता है ;
'ललितकिशोरी' इश्क रैन-दिन ये सब खेल खेलाता है।

(श्रीललितकिशोरी)

अर्पै मोको कर्म करि, अरु संदेह धार दूरि ;
ज्ञानी बँधे न कर्म सों, लहै सदा सुख भूरि।

(गीता-अनुवाद) हरिनंदनसिंह



१. साहित्य

बिहारी-रत्नाकर (सुकवि-माधुरीमाला का प्रथम पुष्प)—प्रणेता, श्रीयुत जगन्नाथदास रत्नाकर बी० ए०; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव; आकार माधुरी का; पृष्ठ-संख्या ३१+२२६+४६; मूल्य सजिल्द ५)

पंडित पद्मसिंहजी शर्मा ने *'बिहारी-सतसई'* पर संजीवन-भाष्य के नाम से जो टीका की है, उसे मैंने नहीं देखा। इसलिये नहीं कह सकता कि जिसके लिये 'भाष्य'-शब्द का प्रयोग किया गया है, वह टीका कैसी हुई है। किंतु अब उस पर 'मंगलाप्रसाद'-पारितोषिक देकर सम्मान प्रदर्शित किया जा चुका है, तब उसके विषय में मीन-मेष लगाने की आवश्यकता ही क्या है? वह हिंदी के धुरंधर विद्वानों की कसौटी से सर्वोत्तम सिद्ध हो चुकी, और हिंदी-जनता ने भी इस निर्णय को स्वीकार कर लिया। किंतु मेरी अल्प बुद्धि में यह समझ में न आया कि इतना बढ़िया भाष्य प्रकाशित होने के बाद वर्ष-दो वर्ष में ही 'बिहारी-रत्नाकर' प्रकाशित करने की क्यों आवश्यकता आ पड़ी? 'भाष्य' और 'रत्नाकर' दोनों की तुलनात्मक समालोचना करने का यदि किसी को शौक़ हो, तो वह इस रहस्य पर कुछ प्रकाश डाल सकता है। किंतु यह कार्य बड़े झगड़े का है, और झगड़ा खड़ा करने का आजकल ज़माना नहीं है। देव और बिहारी की तुलना करते हुए हिंदी-लेखकों में परस्पर जो गहरी 'तू-तू-मैं-मैं' हुई, उसकी अभी आग बुझी नहीं है। ऐसे अवसर पर मैं उचित नहीं समझता कि एक नया बखेड़ा खड़ा किया जाय। हिंदी-साहित्य-सेवियों की जो इस समय प्रगति है, उसे देखते हुए भय लगता है कि कहीं एक दूसरे की टीकाओं के गुण-दोष दिखलाते-दिखलाते व्यक्ति-गत आक्षेपों की पारी न आ जाय।

बाबू जगन्नाथदासजी रत्नाकर बी० ए०-कृत *'बिहारी-रत्नाकर'* इस समय मेरे सामने है। इसके विषय में मैं कह सकता हूँ कि टीका बहुत बढ़िया, पांडित्य-पूर्ण और आदरणीय है। सचमुच बाबू साहब ने इसके लिये बहुत परिश्रम किया है, और इसे सर्वांगसुंदर बनाने में कुछ उठा नहीं रक्खा। यद्यपि मुझे इसे सरसरी तौर पर पढ़ने का ही अभी अवकाश मिला है, परंतु जितना मैं जान पाया हूँ, उसके आधार पर कह सकता हूँ कि मेरी दृष्टि में इसमें कोई दोष नहीं पाया गया। 'बिहारी-सतसई' का आद्योपांत अवलोकन करने से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कविवर बिहारीलालजी चाहे कैसे ही पंडित क्यों न हों, उन्हें 'परकीया' अधिक प्यारी थी। सतसई-भर में थोड़े बहुत अंश को छोड़कर जहाँ देखो, वहाँ परकीया है! ऐसे ही ग्रंथों की बदौलत हिंदी-साहित्य, ब्रजभाषा और पुराने कवि बदनाम हुए हैं। ख़ैर, कुछ भी हो। इसमें *मान्यवर रत्नाकरजी का क्या दोष?* उन्होंने जैसा मसाला था, वैसा जनता के सामने रख दिया। और, वह भी इस तरह पर रक्खा, जिसमें असल भाव प्रकट हो जाने के अतिरिक्त पाठक-पाठिकाओं के विचारों में विकार न पैदा होने पावे।

इस समय इस टीका के विषय में मुझे दो बातें याद दिलानी हैं—एक, कविवर बिहारीलालजी ने अपनी रचना में जहाँ शब्दों को तोड़-मरोड़ की है, अथवा जहाँ अप्रचलित, क्लिष्ट शब्द आ गए हैं, वहाँ अवश्य ही रत्नाकरजी ने अपनी पूर्ण योग्यता का परिचय दिया है, उनको अच्छी तरह से समझाया है। यदि इसके साथ परिशिष्ट में वर्णमाला के क्रम से एक छोटा-सा कोष दे दिया जाता, तो यह निश्चय है कि वह कोष अन्यान्य ग्रंथों के समझने में भी काम आ सकता।

दूसरे सतसई के संख्या ३८वाले दोहे के विषय में कुछ लिखना है। वह इस तरह पर है—

"नहिं पराग, नहिं, मधुर मधु, नहिं बिकास इहि काल,
अली कली ही सौं बँध्यो आगे कौन हवाल ?"

इसके विषय में एक जनश्रुति यह है कि मिर्ज़ा राजा जयसिंहजी किसी सुंदरी ललना के प्रेम-पाश में बँधकर इतने मुग्ध हो गए थे कि उनका ज़नानख़ाने से बाहर आना तक बंद हो गया था। राज-काज में विघ्न पड़ता देखकर जयपुर के अधिकारी सरदार उमरा घबड़ाए। दासियों के द्वारा बहुत कुछ अर्ज़ें करवाईं, रानियों से सिफ़ारिश करवाई; किंतु महाराज बिलकुल बाहर न निकले। काम-काज बंद हो गए, शाही फ़रमानों और राजा-महाराजों के पत्रों का उत्तर तक न जाने लगा। तब सब लोगोंने और कोई उपाय न देखकर कविवर बिहारीलालजी से सहायता माँगी। उन्होंने यही दोहा बनाकर भीतर अंतःपुर में भेजा। दोहा मिर्ज़ा राजा की प्रेयसी पर बिलकुल फबता हुआ था। महाराज इसे पाकर बहुत प्रसन्न हुए। बाहर निकलकर अपना काम-काज सँभाला। प्रजा ने कविराजजी को आशीर्वाद दिया, मंत्रिमंडल ने धन्यवाद दिया, और महाराज ने प्रसन्न होकर उस दिन से बिहारीलालजी को प्रत्येक दोहे पर एक-एक अशर्फ़ी पारितोषिक देना तय किया। 'सतसई' की रचना का इसी दोहे से सूत्रपात होना बतलाया जाता है। इस जनश्रुति में ऐतिहासिक सत्य कितना है, यह मैं नहीं कह सकता। किंतु रत्नाकर महाशय का यह कर्तव्य है कि वह इसकी खोज करके पुस्तक में उचित स्थान पर इसका दूसरे संस्करण में उल्लेख करें। संभव है, इसमें जो अंश अभी प्रकाशित होना शेष रह गया है, उसमें इसका प्रसंग आवे। किंतु मेरी राय में इतना अंश इस दोहे के पास देना आवश्यक था। जब तक इसका अवशिष्ट भाग जनता के सामने न रक्खा जाय, पाठक अवश्य कहेंगे कि इसकी अपेक्षा है।

लज्जाराम शर्मा

× × ×

साहित्य-प्रभाकर—संपादक, श्रीयुत रामशंकर त्रिपाठी; प्रकाशक, ओसवाल-प्रेस १९ सीनागोगा स्ट्रीट, कलकत्ता; मूल्य सजिल्द ४), सादी ३॥); पृष्ठ-संख्या ५६०; कागज़ चिकना; छपाई-सफ़ाई सुंदर; आकार डबलक्राउन सोलहपेजी।

यह एक संग्रह ग्रंथ है। इसमें महाकवि चंदवरदाई से लेकर आज तक के २२१ कवियों की कविता के नमूने दिए हैं। अंत के ४० पृष्ठों में 'साहित्यपुंज'-शीर्षक देकर कुछ ख़ास-ख़ास छंदों की रचनाओं का संग्रह है। अंत में ३२ पृष्ठों के 'साहित्यपुंज' में कुछ फुटकल रचनाओं का संग्रह, २ पृष्ठों में गूढ़ दोहे और इसके बाद सवा सौ लोकोक्तियाँ हैं। संपादक के शब्दों में "यह संग्रह संगृहीत होने पर भी औरों से मिलता और कुछ विशेषता रखता है। महाकवि चंदवरदाई से लेकर आज तक हिंदी-कविता की अवस्था कैसी रही, उसमें कैसे-कैसे परिवर्तन और उलट-फेर हुए, कवियों और जनता की रुचि में क्या क्या तबदीलियाँ हुईं, इन बातों को एक ही ग्रंथ में पाठक देख सकें" यही इस संग्रह का उद्देश्य है। पुनः "अधिकांश संग्रह" मूल-ग्रंथों को पढ़कर किया गया है, संग्रहों से संग्रह बहुत कम किया गया है। आगे चलकर संपादकजी लिखते हैं कि "प्राचीन कवियों का समय मिश्रबंधु-विनोद से और आधुनिकों का कविता-कौमुदी के दूसरे भाग से लिखा गया है। अवकाश के अभाव से समय खोजने के लिये मैं दूसरे ग्रंथों से सहारा नहीं ले सका इत्यादि।"

उपर्युक्त उद्धरणों से यह प्रकट ही है कि किस उद्देश्य से यह ग्रंथ संग्रह किया गया, और कहाँ-कहाँ से सामग्री ली गई है। अब जब हम इसके अंतरंग पर विचार करते हैं, तो हमें जान पड़ता है कि त्रिपाठीजी इन कवियों की रचनाओं की कुछ अधिक खोज करते, तो अच्छे नमूने मिल जाते। इससे ग्रंथ उतना अच्छा नहीं बन सका, जितनी कि संग्रह-ग्रंथों के अच्छे होने की आशा की जाती है। संग्रह देखकर तो हमें यही कहना पड़ता है कि मूल-ग्रंथ प्राप्त होने पर भी संपादकजी ने कविता की कसौटी पर नमूनों को नहीं कसा; नहीं तो अधिक अच्छे उदाहरण दे सकते थे। संभव है, इसका कारण समयाभाव

हो। रह गई कवियों के समय की बात। इस संबंध में इस पुस्तक के विषय में कुछ लिखना व्यर्थ है। त्रिपाठीजी ने यहाँ "महाजनो येन गतः स पन्थाः" का अनुसरण किया है। किंतु इतना यहाँ अवश्य कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक के कई स्थलों पर माधुरी से हो उदाहरण लिए गए हैं; परंतु इसका उल्लेख तक नहीं किया गया। दूसरे संस्करण में इसका उल्लेख अवश्य हो जाना चाहिए। फिर भी एक उपयोगी संग्रह-ग्रंथ और तैयार हो गया, यह अवश्य कहा जा सकता है। आशा है, दूसरे संस्करण में इन कवियों की कुछ काव्य-चमत्कार-पूर्ण रचनाएँ संगृहीत होंगी।

× × ×

हिंदी-महाभारत (प्रथम खंड का प्रथम भाग)—प्रकाशक, इंडियन-प्रेस, प्रयाग; मूल्य १।); आकार माधुरी का; पृष्ठ-संख्या १०४; रंगीन चित्र ४ तथा कई सादे चित्र।

यह उसी महाभारत का प्रथम अंक है, जिसकी चर्चा बहुत दिनों से हिंदी-संसार में हो रही थी। प्रकाशक के शब्दों में इसके अनुवाद में "उसी अर्थ को प्रधानता दी गई है, जिसे महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकंठ पंडित ने माना है।" मूल से मिलान करने की इच्छा रखनेवालों के लिये श्लोकांक भी दे दिए गए हैं। पूरे अंक में ४८ अध्याय हैं, और सूतजी के पास शौनक आदि मुनियों के आने की कथा से लेकर आस्तीक की उत्पत्ति तक का वर्णन है। इस अंक से जान पड़ता है कि महाभारत का यह विस्तृत संस्करण अच्छा निकलेगा, अतएव प्रत्येक हिंदू गृहस्थ के घर में रहने की चीज़ होगा। जो लोग संस्कृत में महाभारत की कथा नहीं समझ सकते, उनके लिये भाषा में इसका निकलना एक प्रशंसनीय उद्योग है।

किंतु हमें यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि अंक-भर में आदि से अंत तक कहीं भी संपादक अथवा अनुवादक के नाम की कौन कहे, उसे धन्यवाद देने तक का भी उल्लेख नहीं है। इसका कारण प्रकाशक जानें। हमको विश्वस्त सूत्र से पता लगा है—यहाँ तक कि हमने मूल-कॉपी भी देखी है—कि महाभारत का यह संस्करण माधुरी-संपादक पंडित रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न की कृति है। फिर हमारी समझ में नहीं आता कि प्रकाशकों ने पांडेयजी का नाम न देने में कौन-सा स्वार्थ समझा है? इस प्रकार किसी के गुण तथा कृति को छिपाना नैतिक दृष्टि से भी तो अन्याय है। पांडेयजी की अन्य पुस्तकों पर तो उक्त प्रेस बराबर उनका नाम दे दिया करता है। इसकी भाषा ही इसके पांडेयजी की कृति होने की घोषणा करती है यद्यपि कहीं-कहीं उसमें भी परिवर्तन देखने में आता है। किंतु भाषा में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर देना उतना विचारणीय नहीं, जितना कि रचयिता, संपादक अथवा अनुवादक का नाम छिपाना। हमारा विश्वास है कि पांडेयजी का नाम उस पर रहने से (जो सर्वथा उचित एवं न्यायसंगत है) प्रकाशकों को कुछ अधिक लाभ भी होगा। आशा है, आगे के अंकों में प्रकाशक इस भूल का मार्जन करते रहेंगे।

प्रत्येक हिंदू को चाहिए कि इस 'महाभारत' का पूरा सेट अपने घर में रक्खे, और अपनी संतान को अपने पूर्वजों से परिचित कराने की सुविधा दे।

मातादीन शुक्ल

× × ×

विश्वामित्र—लेखक, श्रीशहज़ादासिंह निकुम्भ; स्कूली साइज़; छपाई, कागज़ संतोषजनक; पृ० सं० २५०; मूल्य १॥); ठा० नरसिंहजी बी०ए०, क्षत्रिय-हाई स्कूल, तिर्वा, ज़ि० फ़र्रुख़ाबाद से प्राप्त।

यह खड़ी बोली—हिन्दी—में महर्षि विश्वामित्र का जीवन-चरित्र है। भाषा पद्य-बद्ध, किंतु साधारण एवं परिमार्जनीय है। संभव है, लेखक महाशय इसे कविता समझते हों। प्रेषक महोदय को धन्यवाद।

× × ×

श्रीगीतार्थ-चन्द्रिका—स्कूली साइज़; छपाई आदि संतोषजनक; पृ० सं० ३०७; मू० १।); सनातनधर्म-महामंडल, कानपुर से प्राप्य।

सनातनधर्म के प्रसिद्ध वक्ता श्रीयुत स्वामी दयानन्दजी की बनाई गीता की इस टीका के प्रथम खंड की आलोचना माधुरी के किसी पिछले अंक में हम कर चुके हैं। प्रकृत पुस्तक उसी का अवशिष्ट अंश है। इसमें समस्त गीता समाप्त कर दी गई है। आशा है, हिन्दी-जगत् में यह पुस्तक समुचित सम्मान प्राप्त कर सकेगी।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

वियोग-कथा—लेखक, साहित्य-रत्न पं० जगन्नाथ मिश्र "कमल"; प्रकाशक, कीर्तन-कला-निधि, काव्य-कला-भूषण, पं० राधेश्याम कविरत्न, अध्यक्ष श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली, पृ०-सं० ५२; मूल्य ।)

लेखक महोदय भूमिका में लिखते हैं—"वियोग-कथा एक साधारण खंड-काव्य है। इसकी रचना बहुत थोड़े समय में की गई है। इस कारण इसके पद्यों में किसी नए भाव का समावेश नहीं हो सका है।" रचना अच्छी है।

× × ×

विपंची—रचयिता, श्रीरामनाथलाल 'सुमन'; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय; पृष्ठ १८; छपाई और कागज़ बढ़िया; मूल्य ।)

छायावादी कविता के प्रेमियों को इसे अवश्य देखना चाहिए।

× × ×

लोकोक्ति-शिक्षक—लेखक, अध्यापक देवनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, रामसुंदरराम, प्रोप्राइटर, राम एंड कंपनी, गहमर, गाज़ीपुर; पृष्ठ १०६; मूल्य ।=)

इस पुस्तक में भावार्थ, प्रयोग और उदाहरण सहित लोकोक्तियाँ दी हुई हैं। लोकोक्तियों के अर्थ तथा प्रयोग के संबंध में कई जगह लेखक से हमारा मतभेद है। संभव है, 'पूरब' में उनका वही अर्थ समझा जाता हो। अस्तु, पुस्तक विद्यार्थियों के काम की हो सकती है। "स०"

× × ×

राजपूतों का आदर्श—लेखक, कप्तेन ठाकुर केसरीसिंह-मालसिंह देवड़ा; प्रकाशक तथा मुद्रक, पं० सत्यव्रत शर्मा, शांति-प्रेस, मदनमोहन-दरवाज़ा, आगरा; पृष्ठ-संख्या १००

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महाशय ने अनेक शास्त्रीय वाक्यों तथा राजपूतों के कर्तव्य-विषयक राजनीतिक व्याख्यानों के अवतरण देकर राजपूत-सरदारों तथा राजों को सुमार्ग पर लाने का प्रयत्न किया है। आपका उद्देश्य तथा प्रयत्न सराहनीय है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि राजपूत-वंशज नवयुवक अपने कर्तव्य को समझने लगें, तो देश का बहुत कुछ हित कर सकते हैं; क्योंकि वे अब भी शासक-श्रेणी में हैं। लेखक महाशय के लिये, राजपूतों के विषय में जो ऐतिहासिक खोज हुई है, उसके खंडन-मंडन का प्रयत्न करना अनावश्यक था। न तो इसमें कोई शर्म की बात है कि राजपूत विदेशीय हूणों के वंशज हैं, और न यह कोई गौरव की बात है कि वे प्रातःस्मरणीय राम या कृष्ण के वंशज हैं। उनका सम्मान इस बात पर निर्भर है कि वे इस समय क्या हैं। इस संबंध में, मालूम होता है, लेखक महाशय का ध्यान इस ओर नहीं गया कि आजकल के राजे जिन दुर्व्यसनों के शिकार हो रहे हैं, उनके लिये बहुत कुछ उनका शिक्षा-प्रणाली ही उत्तर-दायिनी है। जो ऊँचे घराने के लड़के हैं, वे राजकुमार कॉलेजों या ताल्लुक़ेदार-स्कूलों में शिक्षा पाते हैं, और जो साधारण वृत्ति के हैं, उनके लिये बलवंत-राजपूत-स्कूल-जैसी संस्थाएँ खुल गई हैं। इससे उन्हें अन्य जातियों और अन्य श्रेणियों के लड़कों से मुठभेड़ करने का मौक़ा नहीं मिलता। फल यह होता है कि घर में 'जी हुज़ूर' उन्हें ख़राब करते हैं, और शिक्षालयों में उनका विचार-क्षेत्र संकीर्ण बना रहता है। जब संसार-क्षेत्र में वे उतरते हैं, तब न तो वहाँ उन्हें "जी हुज़ूर" ही मिलते हैं, और न जोड़ के ठाकुर ही। जब कुछ कार्य करने के अयोग्य हुए, तो दुर्व्यसनों में पड़ गए। आवश्यकता इस बात की है कि राजपूतों की शिक्षा के सुधार का प्रयत्न किया जाय। तभी हम इन्हें कर्तव्यशील बना सकेंगे। ऐसी पुस्तकों का प्रचार होना भी आवश्यक है; परंतु यहीं हमारे कर्तव्य की इतिश्री न हो जानी चाहिए।

कालिदास कपूर

× × ×

भारतीय नीति-कथा—लेखक, शिवसहाय चतुर्वेदी; प्रकाशक, हिंदी-हितैषी कार्यालय, देवरी (सागर), म० प्र०; मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक में महाभारत की कथा के आधार पर अनेक शिक्षाप्रद उपाख्यान लिखे गए हैं, जिनसे भारतीय छात्र विशेष लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक में तीन परिच्छेद हैं, और तीनों ही समान रूप से राजनीति, धर्मनीति तथा समाजनीति की शिक्षा से पूर्ण हैं। ऐसी पुस्तकों का प्रचार होना चाहिए, जिनसे अपरिपक्व-बुद्धि बालकगण भारतीय आदर्श को समझकर अपने चरित्र का गठन कर सकें। पुस्तक सर्वथा उपादेय है, और मूल्य भी अधिक नहीं। वास्तव में हिंदी-हितैषी-कार्यालय ने इसे प्रकाशित करके हिंदी जाननेवाले छात्रों का बड़ा हित किया है। मध्य-प्रांत के शिक्षा-विभाग ने इसे हिंदी-स्कूलों में, लायब्रेरी में रखने तथा पुरस्कार में देने के लिये मंज़ूर करके इस पुस्तक के गौरव को बढ़ाया है। आद्यादत्त ठाकुर

× × ×

२. नाटक

उत्तर-रामचरित-नाटक (हिंदी-अनुवाद)—अनु-

वादक, श्रीयुत कृष्णचंद्र ; श्रीलक्ष्मीनारायण-प्रेस, काशी में मुद्रित; मूल्य १) ; मिलने का पता—बाबू कुमुदचंद्र, चौखंभा, काशी ।

महाकवि भवभूति संस्कृत-साहित्य के समुज्ज्वल रत्नों में से एक हैं । शृंगार और वीर-रस में इनका काव्य अत्यंत उच्च कोटि का है ही; परंतु करुण-रस के वर्णन में तो भवभूति अद्वितीय ही माने जाते हैं । "कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते" यह उक्ति सर्वथा सर्वजनानुमोदित है । अन्य विषयों में मत-भेद हो सकता है; परंतु करुण-रस में उनका एकाधिपत्य मानने में किसी को विप्रतिपत्ति नहीं है । उत्तर-चरित में तो भवभूति ने करुण-रस का स्रोत ही बहा दिया है । कवि ने तो यहाँ तक कह डाला है कि वास्तव में एक-मात्र करुण ही रस है, अन्य रस उसी के रूपांतर हैं । अस्तु । स्वनामधन्य भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के भ्रातुष्पुत्र श्रीयुत कृष्णचंद्रजी ने उसी उत्तर-चरित का अनुवाद गद्य और पद्य में किया था, और यह संवत् १९७३ में छपा था । गद्य खड़ी बोली में है और पद्य ब्रजभाषा में । कहीं-कहीं गान करने योग्य पद्यानुवाद भी फ़ुटनोट में दिया गया है । नाटक खेलनेवालों की सुविधा के लिये दृश्य आदि के संबंध में भी फ़ुटनोट में संकेत दिए गए हैं । अनुवाद साधारणतः अच्छा हुआ है । संस्कृत-श्लोकों का पद्यानुवाद करना कितना कठिन कार्य है, इस पर विचार करने से यही कहना पड़ता है कि अनुवादक अवश्य कृतकार्य हुए हैं । कहीं-कहीं कुछ शैथिल्य भी आया है; पर वह कार्य की गुरुता देखते हुए क्षम्य है । कहीं-कहीं मूल में से कुछ अंश छूट गया है । उदाहरणार्थ द्वितीय अंक में वासंती और आत्रेयी जहाँ आपस में वार्तालाप कर रही हैं, शनैः-शनैः प्रसंग-वश आत्रेयी ने सीता-निर्वासन का दारुण व्रत वासंती से कहा है,, वहाँ आत्रेयी से वासंती ने पूछा है, यह सीता देवी का घोर अमंगल क्या है ? इसके उत्तर में आत्रेयी कहती है —"केवल अत्यंत अमंगल ही नहीं, अप-वाद सहित भी ।" इसके अनंतर ही अनुवाद में ' वासंती— (कुछ चैतन्य होकर) हा प्यारी सखी" इत्यादि है ।

आत्रेयी—"केवल अत्यंत अमंगल ही नहीं, अपवाद सहित भी" इसके आगे मूल में है "(करुणं एवमेवम्)", इसके आगे है "वासंती—अहह दारुणो दैवनिर्घातः" (मूर्च्छति)

आत्रेयी — भद्रे ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।"

मूल में मूर्च्छति आने के बाद ही "कुछ चैतन्य होकर " संगत हो सकता है । आगे एक स्थान में मूल में आया है "कठोरीभूतस्तु दिवसः", इसका सीधा अर्थ है "दिन बहुत चढ़ गया है, कठोर हो गया है ।" पर इसका अर्थ किया गया है "यह दिन प्रचंड धूप से असह्य हो रहा है ।" यह भावार्थ हो सकता है । सुप्रसिद्ध श्लोक "किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगात्" इत्यादि का अनुवाद बड़े मनोरम शब्दों में हुआ है; परंतु इसमें "आसत्तियोगात्" का अर्थ छूट गया है—

> इक में सटे कपोल परस्पर बदन मिलावत,
> मंद-मंद कछु-कछुक बिनहिं क्रम क्रम बतरावत ।
> गाढ़ आलिंगन सों इक में इक बाहु मिलाई,
> जाम सिरात जनात नाहिं रजनीहिं सिराई ।

इसी प्रकार एक स्थल में—पृष्ठ २०, श्लोक ६६ में—"प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः" के अनुवाद में किमु मदः का अर्थ नहीं आया—

हैं प्रमोह ? निद्रा कै है यह ? जहर-लहर अथवा है ?

यह सब होते हुए भी पद्यों में सरसता है, और अनुवाद में भी काव्य का आनंद आता है । ४१ पृष्ठ की विद्वत्ता-पूर्ण प्रस्तावना से इस पुस्तक की महत्ता और अधिक हो जाती है ।

आद्यादत्त ठाकुर

× × ×

सत्यहरिश्चंद्र—लेखक, भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र; संपादक, धर्मचंद्र विशारद; प्रकाशक, हिंदी-भवन, लाहौर ; पृष्ठ-संख्या १२४; छपाई साधारण; मूल्य लिखा नहीं ।

यह विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी होगा; क्योंकि इसमें टिप्पणियाँ दी हुई हैं ।

× × ×

तक़दीर का फ़ैसला—लेखक, श्रीमथुराप्रसाद शर्मा; प्रकाशक, रामानंद शर्मा, गंटूर; पृष्ठ १०८; मूल्य ॥)

इसमें हिंदू-मुसलिम-प्रश्न पर विचार किया गया है । पद्य-भाग में फ़ारसी शब्द प्रचुर हैं, जिन्हें साधारण हिंदी पढ़ा लिखा शायद अच्छी तरह न समझ सके । उद्देश्य अच्छा है । फ़ारसी-शब्दों का विकृत रूप कहीं-कहीं खटकता है । जैसा, 'शुभानअल्ला', 'बुल्बुले' ('बुलबुलें' की जगह) इत्यादि । आशा है, अगले संस्करण में इस प्रकार की त्रुटियाँ दूर हो जायँगी ।　　"म०"

× × ×

३. उपन्यास

नवीन संन्यासी—संपादक, लल्लीप्रसाद पांडेय; प्रकाशक, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य २॥); पृष्ठ-संख्या ४४१; काग़ज़-छपाई संतोष-जनक।

इस पुस्तक के मूल-रचयिता श्रीयुत प्रभातकुमारजी मुखोपाध्याय बार-ऐट-लॉ बँगला-साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक हैं। प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं के एक उपन्यास का अनुवाद है। इसमें एक पारिवारिक दृश्य बड़ी उत्तमता से खींचा गया है। बाबू मोतीलाल एम्०ए०, एल्-एल्० बी० का संसार को दुःखमय समझकर संन्यासी होने का विचार, अपने सहपाठी एवं हितैषी मित्र रामनारायण के यहाँ आकर आतिथ्य-ग्रहण, रामनारायण और सुशीला का प्रेमालाप, रामनारायण की बहन सुधा के सुधा-वर्षण से अपनी चित्त-वृत्ति को चंचल होते देख संन्यासी होना, आजकल के धूर्त संन्यासियों की लंपटता से दुःखित होकर संन्यास का परित्याग करके, फिर गृहस्थ होना तथा मोतीलाल के ज्येष्ठ विमात्र-बंधु गोपीकांत का विषयासक्त हो ग्वाल-पत्नी विधवा लीलावती को फँसाना, लीला का सब सुखों पर लात मारकर स्वधर्म-पालन तथा रौनक़ की चतुराई से सती का बाल-बाल बचकर निकल आना, पुलीस के भय से गोपीकांत का गृह त्याग करके अनेक कष्ट उठाना, रौनक़लाल का भोली बसंती को झूठा प्रेम दिखाकर भाँति-भाँति के प्रयत्नों द्वारा धनोपार्जन, तथा हरिदास की दुर्दशा एवं धर्म-मूर्ति धर्मपालसिंह का धूर्त रौनक़ के पंजे से निर्दोष हरिदास का छुड़ाना, पुलीस के भय से अधर्म से कमाए हुए रुपए लेकर रौनक़ का रफ़ूचक्कर होना, अंत में मणि-कांचन के संयोग के समान मोती और सुधा के विवाह इत्यादि का चित्रण है।

उपन्यास की लेखन-शैली सुंदर होने के साथ-ही-साथ पुस्तक शिक्षा-प्रद भी है। रोचकता का भी अभाव नहीं है। वैद्युतिक हिंदू-धर्मप्रचारिणी सभा के सदस्यों की एलेक्ट्रीसिटी-संबंधी विचित्र उपज को पढ़कर पाठकगण बिना हँसे नहीं रह सकते। लेखक महोदय का परिश्रम प्रशंसनीय है। पुस्तक पठन-योग्य है। पर अनुवाद अच्छा नहीं हुआ। यदि प्रूफ़-संबंधी अशुद्धियाँ और मुहावरों के उलटफेर को दूसरे संस्करण में सुधारने का ध्यान रक्खा जाय, तो उत्तम हो।

कमलादेवी शर्मा

× × ×

शीलादेवी—अनुवादक, पं० लल्लीप्रसाद पांडेय; प्रकाशक, इंडियन-प्रेस प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ३०५; मूल्य २) सजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तक बंगाल के इतिहास के आधार पर लिखे गए एक ऐतिहासिक एवं शिक्षाप्रद बँगला-उपन्यास का अनुवाद है। ज़िला बागुड़ा के पास करतोया-नदी के निकट महास्थान तथा थाल्सा-प्रदेश के हिंदू राजा परशुराम बड़े प्रतापशाली थे। वे नाम-मात्र के लिये गौड़ाधिपति बौद्ध राजा जयमल के करद थे। परशुराम के राज्यांतर्गत एक प्रदेश मालता के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ के संबंध का कथानक है। इसमें जीवन के कुछ आदर्शों का चित्रण किया गया है। कुछ समय पूर्व सरस्वती में यही उपन्यास क्रमशः निकला था। उसी का यह पुस्तक-रूप में संस्करण है। अनुवाद में मूल के ओज और सौंदर्य की रक्षा नहीं की जा सकी। कहीं-कहीं कुछ शब्दों का प्रयोग ग़लत किया गया है, और कहीं भी मुहावरेदार हिंदी न लिखकर मूल-भाषा का ज्यों-का-त्यों अनुवाद कर दिया है। उदाहरणार्थ "आकाश से गले मिल रहा महल।" इसी तरह "हिफ़ाज़त और सेवा" कानों को खटकता है। "पैने तीरों से सैकड़ों हिंदू भाइयों का कलेजा चीर डाला।" तीरों से कलेजा चीरा नहीं, छेदा जाता है। ये भाषा-संबंधी दोष हैं, और अनुवाद में यही देखने की चीज़ है। कथानक और साँचा तो मूल-पुस्तक से प्राप्त हो जाता है। भाषा संशोधनीय है।

देवदत्त मिश्र

× × ×

मनोरंजक कहानियाँ—पृष्ठ २०८; मूल्य ॥); दोनों पुस्तकों के लेखक अध्यापक 'ज़हूरबख़्श'जी हिंदी-कोविद हैं और प्रकाशक चाँद-कार्यालय, प्रयाग।

हिंदी-संसार इधर कुछ दिनों से 'बाल-साहित्य' तैयार करने का अच्छा उद्योग कर रहा है, और सौभाग्य से इसे इस ओर अच्छी सफलता प्राप्त हुई, और हो रही है। हिंदी के प्रायः सभी बड़े-बड़े प्रकाशक एक-से-एक बालोपयोगी पुस्तकें दनादन् प्रकाशित करते जा रहे हैं। ऐसी पुस्तकों में भाषा अत्यंत ही सरल और विषय बच्चों की रुचि के अनुकूल होने चाहिए, ताकि लड़कों का पढ़ने में जी लगे, और उन्हें वे आप-से-आप पढ़ें। प्रस्तुत दोनों पुस्तकें इसी ढंग की हैं। लेखक को अपने उद्देश्य में पूरी सफलता प्राप्त हुई है; क्योंकि इन पुस्तकों की भाषा बहुत ही सीधी-सादी

है। कहानियाँ बच्चों के मन को मोहनेवाली हैं, उनमें नीति, शिक्षा और ज्ञान की बातें ऐसी रोचकता के साथ बतलाई गई हैं कि उनका प्रभाव बालचित्त पर आप-से-आप पड़ता जायगा। साथ ही कुछ ऐतिहासिक चरित्रों की भी जानकारी होती जायगी। इसमें शक नहीं कि ये दोनों पुस्तकें बालकों के लिये बड़ी उपयोगी हैं।

ओ० पी० श्रीवास्तव

× × ×

४. विज्ञान

शर्बत—लेखक, प्रोफ़ेसर नरायनप्रसाद मेढ़ बी० एस्-सी०; 'प्रकाशक', हुनर ग्रंथमाला, गोरपाड़ा, मथुरा; मूल्य १)

इस पुस्तक में असली और नक़ली अथवा देशी और विदेशी शरबतों के बनाने के सरल तरीक़े दिए हैं। इस पुस्तक के लेखक जोधपुर-कॉलिज में साइंस के अध्यापक हैं, और इनके बनाए दोनों प्रकार के शरबत अनेक वर्षों से जोधपुर में बराबर बिकते रहे हैं। इसी से आपकी लिखी पुस्तक की उपयोगिता प्रकट हो सकती है। आपने इसमें कुछ देशी और विदेशी दवा बेचनेवालों के पते भी दे दिए हैं, जिससे लोगों को एसेंस आदि मँगवाने में सुबीता रहे। यदि इसमें एसेंसों और रंगों के नाम भी अँगरेज़ी में लिखे गए होते, तो और भी अच्छा होता। फिर भी पुस्तक शरबत का व्यापार करने की इच्छावालों के बड़े काम की है। हाँ, इसकी क़ीमत १) कुछ खटकती है।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

× × ×

५. जैन-साहित्य

आदर्श मुनि—संग्रहकर्ता, मुनि श्रीप्यारचंदजी महाराज; प्रकाशक, श्रीजैनोदय पुस्तक-प्रकाशक-समिति, रतलाम।

यह श्रीमुनि महाराज चतुर्थमलजी का जीवन-चरित्र है। चतुर्थमलजी का जन्म संवत् १९३४ में हुआ था, अब उनकी अवस्था ४९ वर्ष की है। आपके जन्म, बालपन, कुल, विद्योपार्जन, उदासीन भावों और प्रभावशाली व्याख्यानों का परिचय विस्तार-सहित भली प्रकार दिया गया है। पुस्तक पाठकों को वैराग्योत्पादक और हितकर होगी। चरितनायक का विवाह १९५० में, १६ वर्ष की उम्र में, हुआ था। किंतु आप विषय-भोगों से ऐसे उदासीन थे कि गृहस्थ-जीवन को तिलांजलि देकर संवत् १९५२ में दीक्षा ले ली, और सं० १९६७ में आपकी धर्मपत्नी ने भी यही किया। इस पुस्तक का विशेष महत्त्व यह है कि इसमें जैन-धर्म की प्राचीनता के प्रमाण भली भाँति संगृहीत किए गए हैं। बेहतर होता, यदि उन प्रमाणों में पुस्तकों का पृष्ठ, अध्याय, किस सन् में, कहाँ छपी आदि पूरा ब्योरा लिख दिया जाता।

× × ×

सीता-समाचार—लेखक, कविवर पंडित रामचरित उपाध्याय। प्रकाशक, श्रीआत्मानंद-जैन-ट्रैक्ट-सोसाइटी, अंबाला। सभ्यों को मुफ़्त।

यह छोटा-सा गद्य-पद्यरचनात्मक ट्रैक्ट बच्चों और स्त्रियों को विशेष लाभ-प्रद है। सीताहरण, लक्ष्मण-पराक्रम, खरपराजय, विराध, सुग्रीव, गंधर्वराज, महेंद्र आदि का शरणागत होना, हनुमान् का सीताजी की तलाश में जाना, अपना तेज-बल दिखलाकर रावण को लज्जित करके सीता का शुभ-संवाद श्रीराम को पहुँचाना, मंदोदरी की कुटिलता आदि विषय सरल और हृदयग्राही ढंग से लिखे गए हैं।

अजितप्रसाद

× × ×

६. गुजराती

श्रीसमकित कौमुदी रास—रचयिता, श्री १००८ नानचंद स्वामी के शिष्य स्वर्गस्थ श्रीसूर्यमलजी। प्रकाशक, मेघजी हीरजी, पायधुनी, बंबई। पृष्ठ-संख्या २००; मूल्य १॥)

गुजराती-भाषा में जैन-साहित्य का विस्तार दिन-दिन बढ़ रहा है। इस पुस्तक में जैन-मतानुसार रोचक कथा द्वारा आत्मा के सम्यक् गुण का दिग्दर्शन कराया है। कवि ने कथा की रोचकता बढ़ाने अथवा कथानक का पूर्वापर-संबंध दिखाने के हेतु कई स्थलों पर मूल संस्कृत का आधार छोड़कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। भाषा में राजस्थानी का मिश्रण अधिक होने के कारण साहित्यिक दृष्टि से यह पुस्तक उच्च कोटि की चाहे न हो, परंतु सांप्रदायिक दृष्टि से बड़े काम की है। भाषा सरल है, और वर्णन सुबोध। कठिन शब्दों का अर्थ भी दिया गया है। इस पुस्तक में संस्कृत के मूल-ग्रंथ के तीन खंडों का ६७ ढालों (संगीत-काव्य में कथानक तथा राग, दोनों के अनुसार विभाजित कथा का भागविशेष)

में संकलन किया गया है ; और प्रत्येक ढाल में कथा की रोचकता के साथ-साथ संगीत का भी आनंद मिलता है।

भवानीशंकर याज्ञिक

× × ×

७. महिलोपयोगी

सती पार्वती—लेखक, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, प्रकाशक, आर० एल्० बर्मन् एंड को०, ३६७, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १४५ ; मूल्य २) ; कागज़ मोटा, छपाई सुंदर।

शंभु-प्रिया सती पार्वती का चरित्र कितना आदर्श, कितना पवित्र, कितना उज्ज्वल एवं हमारी रमणियों के लिये कितना शिक्षा-प्रद है, इसके कहने की आवश्यकता नहीं। देवी सती ने शिवजी की कैसी भक्ति की, उस भक्ति के उन्मेष में किस प्रकार उन्होंने अपने राजसी सुखों का त्याग कर दिया, किस प्रकार पूज्य-पति के घोर अपमान से क्षुब्ध होकर यज्ञ-कुंड में आत्म-बलिदान कर दिया, एवं पार्वती के रूप में अवतार लेकर किस प्रकार घोर तप कर संसार-त्यागी शिवजी को अपनी ओर खींच लिया इत्यादि बातों से हिंदू-समाज खूब परिचित है। सच पूछो, तो सती पार्वती महिला-मुकुट-मणि थीं। उन्होंने अपने उज्ज्वल आदर्श से समस्त रमणी-मंडल का मस्तक अनंत काल के लिये उन्नत कर दिया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं शंभु-प्रिया की पवित्र कथा रोचक ढंग से लिखी गई है। कथा-भाग सुसंबद्ध है—कोई आवश्यक बात नहीं छूटने पाई। भाषा सुंदर है—हृदयग्राही है—कहीं-कहीं काव्यानंद देती है ; परंतु दुःख इस बात का है कि ऐसी महिलोपयोगी पुस्तक की भाषा जैसी सरल होनी चाहिए, वैसी भाषा इस पुस्तक की नहीं है—वह कहीं-कहीं तो बहुत ही क्लिष्ट हो गई है। हम इसे बड़ा दोष मानते हैं, और हमारे विचार से इस दोष ने पुस्तक की उपयोगिता बहुत कम कर दी है। इस पुस्तक में एक दर्जन रंग-बिरंगे सुंदर चित्र भी हैं।

१४५ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य २) कितना अधिक है, यह सभी जान सकते हैं। हमारे विचार से व्यापारी प्रकाशक ने पुस्तक को बड़ी तथा मूल्यवान् बनाने के विचार से ही मोटा काग़ज़ लगाया है, और अंत में लगभग ४० पृष्ठों का विज्ञापन लगाकर उसकी मोटाई और भी बढ़ा दी है। पुस्तक के प्रारंभ में दई पृष्ठों में उसकी प्रशंसा-पूर्ण—संपादकों आदि की—सम्मतियाँ भी छाप दी गई हैं। हम इन बातों को बहुत अनुचित समझते हैं। इस पुस्तक के कवर-पेज पर लेखक का नाम देखकर आश्चर्य हुआ—यह इसलिये, कि कीर्ति-लोलुप बाबू रामलाल वर्मा बहुधा प्रकाशक के नाते से अपने यहाँ से प्रकाशित की हुई पुस्तकों के कवर या जिल्द पर अपना ही नाम छाप डालते हैं। कभी-कभी तो आप अपना नाम दूसरे लेखकों की पुस्तकों पर इस तरह छापते हैं कि लोग आप ही को उनका लेखक समझ बैठते हैं।

× × ×

पार्वती—लेखक, श्रीनवजादिकलाल श्रीवास्तव ; प्रकाशक, आर० डी० बाहिती एंड को०, ४ चोरबागान, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १५० ; मूल्य २) ; कागज़ मोटा, छपाई साधारण।

इस पुस्तक में शंभु-प्रिया देवी सती के पार्वती-अवतार की कथा लिखी गई है। लेखक महाशय ने कथा को रोचक बनाने की चेष्टा अवश्य की है ; पर उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। शायद इसका कारण कथा को विस्तृत करना ही हो। इस पुस्तक की भाषा भी 'सती पार्वती' के समान रोचक और हृदयहारी नहीं। ऊपर से क्लिष्टता ने तो पूरा बनाव ही बना दिया है। हाँ, यह 'सती पार्वती' की अपेक्षा विशेष शिक्षा-प्रद अवश्य है। इस पुस्तक में भी १० रंग-बिरंगे चित्र दिए गए हैं। पर उनमें दो-एक को छोड़कर बाक़ी बिलकुल भद्दे हैं। न-मालूम ऐसे रद्दी चित्र देने से प्रकाशक लोग क्या लाभ सोचते हैं। पैसा पैदा करना ही तो नहीं ?

यह पुस्तक भी 'सती पार्वती' के समान ही व्यापारी ढंग से निकाली गई है। इसके प्रकाशक भी बर्मन महाशय के समान ही कीर्ति-लोलुप हैं।

× × ×

सती पार्वती—लेखक, पं० उमादत्त शर्मा ; प्रकाशक, राष्ट्रीय-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, २, सेंट्रल एविन्यू (साउथ), कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या ७० ; मूल्य ॥) ; कागज़-छपाई सुंदर।

इस पुस्तक में भी 'पार्वती' के समान ही पार्वती-अवतार की कथा लिखी गई है। हमारे ख़याल से यह 'पार्वती' को काट-छाँटकर ही तैयार की गई है। कहीं-

कहीं तो पैरे-के-पैरे तक ज्यों-के त्यों नक़ल कर लिए गए हैं। पुस्तक में रोचकता का तो अभाव है ही, पर भाषा भी ख़ूब क्लिष्ट रक्खी गई है। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह पुस्तक कन्याओं के लिये विशेष उपयोगी (विज्ञापनों में) बताई आ रही है। इसमें भी ४ रंग-बिरंगे चित्र दिए गए हैं—पर वे हमें पसंद नहीं आए। हाँ, मूल्य की दृष्टि से यह उपर्युक्त दोनों पुस्तकों से सस्ती अवश्य है। यही क्या कम लाभ की बात है?

हमारे विचार से इन पुस्तकों का प्रकाशक उस अभाव की पूर्ति नहीं कर सका, जिस विचार से ये प्रकाशित की गई हैं। स्त्रियोपयोगी पौराणिक आख्यानों के प्रकाशित होने की बड़ी ही आवश्यकता है। उनकी भाषा ऐसी सरल, सुबोध तथा रोचक होनी चाहिए कि उन्हें सुनते ही पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ और कन्याएँ ही नहीं, अपढ़ स्त्रियाँ तक आसानी से समझ जायँ। तभी उनसे पूरा-पूरा लाभ हो सकता है। मूल्य भी कम होना चाहिए। चित्र चाहे कम दिए जायँ, पर हों सुंदर तथा भाव-पूर्ण! क्या गंगा-पुस्तकमाला के संचालक इस अभाव की पूर्ति करने की ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे?

प्रकाशदत्त

× × ×

८. वैद्यक

नेत्र-रक्षा का आयुर्वेदिक उपाय—यह स्कूली साइज़ के ३२ पृष्ठों की पुस्तिका "पं० लक्ष्मीनारायण कौल नेत्रवैद्य, काश्मीरी मुहल्ला, लखनऊ" का सूचीपत्र है। कौलजी ने इसमें कुछ सम्मतियाँ भी छापी हैं।

× × ×

निम्न-लिखित पुस्तकें प्राप्त हुईं। प्रेषक महाशयों को धन्यवाद।

(१) **'अर्शरोग-चिकित्सा'**—(?)

(२) **श्वासरोग-चिकित्सा**—(?) लेखक, श्रीमनोहरदासजी राजवैद्य; प्रकाशक, पं० विश्वेश्वरदयालुजी वैद्यराज, बरालोकपुर, इटावा। मूल्य यथाक्रम ॥) और ।)

(३) **स्त्रीरोग-चिकित्सा**—मू० ॥)

(४) **वैद्यक-शब्द-कोष**—मू० ॥)

(५) **राजयक्ष्मा**—मू० ≈)

(३) **हरिधारित ग्रंथरत्नम्**—मू. ।≈); प्रकाशक पूर्वोक्त। इन सब पुस्तकों का विषय उनके नाम से ही स्पष्ट है, और आकार आदि उनके मूल्य से। अंतिम पुस्तक भी आयुर्वेदिक चिकित्सा-संबंधी है।

× × ×

९. फुटकल

सटीक समश्लोकी गीता—टीकाकार, प० गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री। प्रकाशक, पं० बालमुकुन्दजी त्रिपाठी, जबलपुर। आकार छोटा पृ० सं० ११; छपाई आदि साधारण; मूल्य -)

लेखक महाशय का कहना है कि 'भारतवासी गोरक्षा के नाम पर आवश्यकता से कहीं अधिक रो-धो चुके। रोने से कार्य सिद्ध नहीं होता।" कार्य सिद्ध होने के लिये कुछ सेठ लोगों से आर्थिक सहायता पाकर आपने "ज्ञानयज्ञ की सामग्री"—कुछ पुस्तकें तैयार की हैं। प्रकृत पुस्तक उसी में से एक है। यह विशेषतः सेठ लोगों को लक्ष्य करके लिखी गई है। इसमें गीता के ज्ञानपरक सात श्लोक लिखकर उनके आधार पर अपना मत-समर्थन करने की चेष्टा की गई है। यदि धनिक लोग आपके इस ज्ञानयज्ञ में मुक्तहस्त होकर आहुतियाँ देना शुरू कर दें, तो आपके कथनानुसार गोरक्षा हो जायगी। आपने किसानों को गोरक्षा के जो-जो लाभ बताए हैं, और जिनके भरोसे आप 'ज्ञानयज्ञ' की पूर्ति की आशा करते हैं, हमारी राय में, भारत के किसान उससे कहीं अधिक जानते हैं। उन्हें अक्षरों का ज्ञान हो या न हो, दलीलें करना और बातें बनाना आता हो या न आता हो, परंतु गोरक्षा के लाभों को वे लेखक महाशय की अपेक्षा कहीं अधिक समझते हैं। किसान गऊ-बैलों को प्राणों से प्रिय समझता है। अपना वश रहते वह उन्हें कभी अलग करना नहीं चाहता। ज़िमींदार के नीलाम और महाजन की कुरक़ी की 'उभयतः पाशारज्जु' में फँसा हुआ क्षीणदेह किसान कलेजे पर पत्थर रखकर दुर्बल कपाल में धुसी हुई मंद ज्योति आँखों से पत्थर को पिघलानेवाले और वज्र को दहलानेवाले आँसुओं की धारा बहाता हुआ अपने प्राणदाता पशुओं को बिदा करता है। जिन लोगों ने कभी यह दृश्य अपनी आँखों देखा है, वे समझ सकते हैं कि भारत के किसान को गोरक्षा के लाभ सुनाना उसका अपमान करना है।

लेखक महाशय का कहना है कि "उचित गोपालन की शिक्षा के प्रचार से गोचर भूमि आदि बहुत सुलभता से प्राप्त होगी"—हम इसका रहस्य समझने में असमर्थ हैं।

× × ×

महागीता—"श्रीगोसाईं स्वामीदयालजी आत्मदर्शी के उर्दू ग्रंथ का" लाला राममरोसेलालजी-कृत अनुवाद। प्रकाशक, योगाश्रम, छिंदवाड़ा (सी० पी०); स्कूली साइज़, छपाई साधारण; कागज़ संतोषजनक, पृ० सं० १४४; मूल्य १)

इसमें स्वामीजी ने कुछ उर्दू के पद्य लिखकर उनकी मनमानी उपदेशात्मक व्याख्या की है। भाषा प्रायः अशुद्ध और भ्रामक है।

× × ×

पं० भगवानदीन मिश्र—स्कूली साइज़, कागज़ छपाई आदि साधारण; पृ० सं० १४६; मूल्य ॥); आर्यसमाज, हरदोई से प्राप्य।

यह पं० भगवानदीन मिश्र का प्रशंसात्मक जीवन-चरित है।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

लंगटसिंह—लेखक और प्रकाशक, वही। पृष्ठ संख्या ५६; मूल्य ।)

इसमें बिहार के उद्योगी तथा दानवीर सज्जन बाबू लंगटसिंह के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं का वर्णन है। देश में न-जाने कितने ऐसे महापुरुष हो गए हैं, जो यदि किसी दूसरे देश में पैदा हुए होते, तो उनका नाम अवश्य अमर हो जाता। पर उन्हें हमने अपनी अकर्मण्यता-वश भुला रक्खा है। ऐसे लोगों की जितनी ही जीवनियाँ निकलें, उतना ही अच्छा। बाबू लंगटसिंह की जीवनी लिखकर लेखक ने स्तुत्य कार्य किया है। पुस्तक की भाषा क्लिष्ट और कहीं-कहीं अशुद्ध भी है।

× × ×

विद्यापति—लेखक और प्रकाशक, वही। पृष्ठ-संख्या ४५; मूल्य ।)

प्रारंभ के ३७ पृष्ठों में विद्यापति का परिचय है, और शेष आठ पृष्ठों में उनकी पदावली पर एक छोटा-सा निबंध। पुस्तक पढ़ने से विद्यापति का बहुत कुछ हाल मालूम हो सकता है।

× × ×

दुलहिन—लेखिका, श्रीमती चंद्रमणि देवी। प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय। पृष्ठ-संख्या ७६; मूल्य ।)

विवाह के बाद ससुराल आने पर नव-वधू को अपने पति से दूसरे संबंधियों तथा नौकर-चाकरों से कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसकी इसमें शिक्षा दी गई है। पुस्तक के अंत में 'माता के उपदेश'-शीर्षक एक कविता भी है। टाइप मोटा होने से पुस्तक कम पढ़ी-लिखी स्त्रियों को उपहार में देने योग्य है। पुस्तक में भाषा की अशुद्धियाँ बहुत हैं।

रूपनारायण दीक्षित

× × ×

१०. पत्र-पत्रिकाएँ

गृहलक्ष्मी (सतीदर्शन-अंक—मासिक)—संपादक, पं० सुदर्शनाचार्य बी० ए० और श्रीमती गोपालदेवी; वार्षिक मूल्य ३)

यह स्त्रियों के लिये उपयोगी मासिक पत्रिका गत १७ वर्षों से निकल रही है। स्त्रीसमाज में पठन-पाठन का जो प्रचार इस पत्रिका के द्वारा हुआ है, तथा जो साहित्य की सेवा इसने की है, वह वर्णनातीत है। शायद ही कोई पढ़ा-लिखा ऐसा गृहस्थ हो, जिसके घर में इसका प्रवेश न हो। और, हमें यह लिखते हर्ष होता है कि इसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती जा रही है।

समालोच्य संख्या इसका सतीदर्शन अंक है। पहले भी इसके विशेषांक निकल चुके हैं, और प्रायः सभी अच्छे रहे हैं। इस अंक में गद्य-पद्य सब मिलाकर ३७ शीर्षक हैं। पुराणकालीन सती स्त्रियों के जो चित्र हैं, वे सोने में सुगंध का काम करते हैं। पर ये सभी सादे एकरंगे हैं। प्रायः पूरा अंक पठनीय है। पाठकों को इस पत्रिका के संचालकों का उत्साह बढ़ाना चाहिए।

शौंडिक मित्र (मासिक)—संपादक, श्यामसुंदर गुप्त और महेश्वरप्रसाद गुप्त; प्राप्तिस्थान—रोसड़ा, ज़िला दरभंगा; वार्षिक मूल्य २)

इस पत्र के मुखपृष्ठ पर भगवती लक्ष्मी का सुंदर चित्र है। यह एक जाति विशेष का पत्र है, और इस दृष्टि से सराहनीय है। जाति संबंधी पत्र प्रायः इतनी सज-धज से नहीं निकलते। किंतु संपादन साधारण है। अच्छा हो कि सभी जातीय पत्र वर्तमानकालीन विश्वव्यापी सामाजिक क्रांति में भाग लें। हम इसकी उन्नति चाहते हैं।



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे लिखी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई—

(१) "भ्रमरगीतसार", (महात्मा सूरदास-प्रणीत), पं० रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित। मूल्य १)

(२) "हिंदी-महाभारत", (प्रथम अंक), इंडियन-प्रेस द्वारा प्रकाशित। मूल्य १।)

(३) "दमयंती", लेखिका, प्रयाग-प्रवासिनी; अनुवादक, भगवानदीन पाठक। मूल्य ।)

(४) "नव विधान", लेखक, शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय; अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय। मूल्य १)

(५) "बालचर-जीवन", बाबू लालबहादुरसिंहजी-लिखित। मूल्य १)

(६) "अजातशत्रु", (द्वितीय संस्करण), श्रीजयशंकर "प्रसाद"-लिखित। मूल्य १)

(७) "शाही दृश्य", अर्थात् समरू और बेगम समरू का जीवनचरित। लेखक, मक्खनलाल गुप्त "गार्क"। मूल्य १।)

(८) "मौत का नज़ारा", अनुवादक, श्रीजगमोहन "विकसित"। मूल्य १)

(९) "हिंदी के मुसलमान कवि", श्रीगंगाप्रसाद सिंह 'विशारद' द्वारा अनुवादित। मूल्य १॥)

(१०) "काम-विज्ञान", श्रीयुत शिवशंकर मिश्र-लिखित। मूल्य सादी ३), सजिल्द ३॥)

(११) "मैकबेथ", (शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक का हिंदी-अनुवाद), अनुवादक, लाला सीतारामजी बी० ए०। मूल्य १)

(१२) "सुधा", अनुवादक, श्रीजीवनशंकर याज्ञिक एम्० ए०, एल्-एल्० बी० तथा केदारनाथ भट्ट एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य २)



१. भारत के किसान

भारत के किसानों की दशा वास्तव में बड़ी ही शोचनीय हो रही है। उनके दुःख-कष्टों के संबंध में सर्वसाधारण को बहुत ही कम ज्ञान है। जनता के नेता भी उनकी सुध नहीं लेते। हाल में सरकार ने खेती का सुधार करने का बीड़ा उठाकर किसानों की हितैषणा की घोषणा कर दी है। आज हम किसानों के संबंध में कुछ ज्ञातव्य बातें अपने पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। गणवाणी नाम की पत्रिका में इस विषय पर एक सुंदर गवेषणा-पूर्ण लेख निकला है। उसी का यह सार-संकलन है। उक्त लेख के लेखक लिखते हैं—भारतवर्ष की आबादी ३१ करोड़ ६० लाख है। उसमें २१ करोड़ १० लाख (फ़ी सदी ७० के लगभग) आदमी खेती करके अपनी जीविका चलाते हैं। खेतिहर, खेतों में मज़दूरी करनेवाले तथा उनके परिवार के लोग भी इस गणना के अंतर्गत हैं। जिस देश में किसानों की संख्या इतनी अधिक है, उसकी उन्नति या छुटकारा किसानों की उन्नति और छुटकारा हुए बिना कभी नहीं हो सकती, यह समझने के लिये शायद अधिक बुद्धि ख़र्च करने की ज़रूरत नहीं। किसानों को अलग करके देशोद्धार की सारी चेष्टा—जैसी कि अब तक की गई और हो रही है—व्यर्थ आडंबर-मात्र है। भारत की जातीय संस्था इंडियन नेशनल कांग्रेस ४० वर्ष से सिरतोड़ परिश्रम और प्रयत्न करके भी जो आज तक देश-व्यापी अमोघ प्रभाव नहीं प्राप्त कर सकी, इसका यही एक-मात्र कारण है। अगर हम उनकी सहायता अब भी न लेंगे, उन्हें अपने साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर काम करने के लिये आमंत्रित न करेंगे, तो हमें हर बार हताश ही होना पड़ेगा। किंतु किसानों की सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न से पहले यह देख लेना भी बहुत ही ज़रूरी है कि देश में जो स्वाधीनता का संग्राम चल रहा है, उसमें शामिल होने में किसानों के लिये कोई बाधा है या नहीं। इसके सिवा यह भी सर्वथा विचारणीय है कि किसानों को किस तरह साथ लेकर, किस तरह का सहायक बनाकर, यह संग्राम चलाने से हमारी कामना सफल होगी। इसके बाद उक्त लेखक लिखता है कि भारत के किसानों के संबंध में सबसे मुख्य और सबसे कठिन समस्या उनकी घोर ग़रीबी है। वे इतने ग़रीब हैं कि उनकी सालाना आमदनी कुछ नहीं के बराबर ही है। ज़मीन का लगान और महाजन का क़र्ज़ अदा करने में ही उनकी आमदनी का अधिकांश चला जाता है। वे और उनके परिवार दो बेला भर-पेट रूखा-सूखा भोजन भी नहीं पाते, तन ढकने को काफ़ी कपड़े भी उन्हें नसीब नहीं होते। हिसाब लगाने से मालूम हुआ है कि भारत के किसानों पर व्यक्तिगत ऋण

का औसत ६१० करोड़ रुपयों के लगभग—अर्थात् बच्चे-बूढ़े, और औरत-मर्द सबको मिलाकर आदमी पीछे ३०) रुपए—है। और, परिवार के हिसाब से हर गृहस्थ किसान पर २००) रुपए का ऋण है। इसमें उस ऋण का शुमार नहीं किया गया, जो देश के ऊपर जातीय ऋण है। किसानों के इस तरह क़र्ज़दार होने का कारण यही है कि खेती करके उससे उन्हें काफ़ी फ़सल नहीं मिलती। एक तो लोक-संख्या जितनी है, उसके हिसाब से भारत में जोती-बोई जानेवाली ज़मीन की तादाद बहुत कम है। भारत का क्षेत्रफल ६६ करोड़ ७७ लाख एकड़ है। किंतु जोती-बोई जानेवाली भूमि का परिमाण केवल २२ करोड़ २५ लाख एकड़ ही है। इसके सिवा अनेक कारणों से, अन्य देशों की तुलना में, यहाँ एक एकड़ ज़मीन में जितनी फ़सल पैदा होनी चाहिए, उतनी किसान नहीं पैदा कर पाते। यहाँ ज़मीन में काफ़ी फ़सल न पैदा होने के जो कारण हैं, उनमें प्रधान कारण यही है कि जिस ज़मीन को किसान जोतता-बोता है, उस पर उसका कोई अधिकार नहीं रहता। वह एक किराए का टट्टू-भर है। सारी ज़मीन सरकार के या ज़मींदार के दख़ल में है। ज़मीन पर किसान का कोई स्वत्व न रहने के कारण अगर किसान उस ज़मीन को बनाने या तैयार करने में पूरा परिश्रम नहीं करता, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। मेहनत करके फ़सल तो किसान पैदा करे, चोटी का पसीना एँड़ी तक तो वह बहावे, लेकिन उसके फल का लाभ उठाने के समय और लोग सिर पर सवार होकर अधिकांश अन्न अपने क़ब्ज़े में कर लें, यह अंधेर नहीं, तो और क्या है? लेकिन यह अंधेर केवल भारत ही में है। यहाँ पर लेखक ने केवल बंगाल का हिसाब लगाकर इस अंधेर पर विशेष प्रकाश डाला है। अन्यान्य प्रदेशों के या केवल यू० पी० के ही किसानों का हिसाब हमें उपलब्ध नहीं; नहीं तो हम उसे भी यहाँ उद्धृत कर देते। तथापि यह निश्चित है कि अन्यान्य प्रदेशों के किसानों की दशा बंगाल के किसानों से बुरी ही है, अच्छी नहीं। अस्तु, बंगाल का ही हिसाब देखिए। बंगाल के ज़मींदार लोग सरकार को सालाना तीन करोड़ रुपए मालगुज़ारी के देते हैं। मार्ग-कर का हिसाब देखने से जान पड़ता है कि बंगाल के ज़मींदार 'आईन के अनुसार' 'उचित तरीक़ों' से रैयत से इस मद में सालाना १३ करोड़ रुपए वसूल करते हैं। इन रुपयों के सिवा नियम-विरुद्ध उपायों से भी ज़मींदार लोग बहुत कुछ हथिया लेते हैं। यह रक़म भी ८-१० करोड़ रुपयों के लगभग सालाना वसूल की जाती है। बंगाल में जोती-बोई जानेवाली भूमि २ करोड़ १० लाख एकड़ है। लेकिन उसकी मालगुज़ारी २२ करोड़ रुपए हैं। जब किसान को फ़ी एकड़ ११) रुपए के हिसाब से लगान देना पड़ता है, तो उसकी ऐसी बुरी दयनीय दशा क्यों न हो? किसान लोग जो फ़सल पैदा करते हैं, उसमें केवल ज़मींदार ही थोड़े हिस्सा लगाते हैं, और भी अनेक लोग हाथ मारते हैं। फिर लगान की दर भी तो कुछ निश्चित नहीं है। दिन-दिन ज़मींदार ज़मीन का लगान बढ़ाते ही जा रहे हैं। पचास साल पहले जो ज़मीन ४) रुपए बीघे पर उठती थी, आज वह २०-२५ रुपए बीघे से कम में नहीं मिल सकती? किसान ने जहाँ खेत को अच्छा बनाया, वहाँ ज़मींदार ने उसका लगान बढ़ाया। गत सन् १९२३ में सारे भारत में इज़ाफ़ा लगान के २४,००० के लगभग मुक़दमे अदालतों में हुए थे। लेकिन इस तरह लगान का इज़ाफ़ा बहुत अधिक लोगों के खेतों पर किया गया होगा। यहाँ के किसान अत्यंत ग़रीब होने के कारण धनी ज़मींदार के मुक़ाबले में मुक़दमा नहीं लड़ सकते, चुपचाप बढ़ा हुआ लगान देने के लिये तैयार हो जाते हैं, चाहे उन्हें खेती से कुछ भी न बचे। बढ़िया अथवा सूखा पड़ने के कारण इधर कई वर्षों में फ़सल एकदम मारी गई अथवा रुपए में आने-दो आने-भर हुई होगी। ऐसी हालत में अथवा अन्य किसी कारण से फ़सल नष्ट हो जाने पर भी ग़रीब किसानों को सरकार का पैसा पूरा-पूरा देना ही पड़ता है। वे सपरिवार भले ही भूखों मरें, लेकिन बैल-बधिया बेचकर सरकार और ज़मींदार को लगान देना ही पड़ेगा! यही यहाँ का न्याय है—यही यहाँ का क़ानून है। सन् १९२३ में इस तरह के लगान बाक़ी के दावे सारे भारत में ४ लाख २३ हज़ार किसानों पर किए गए थे। अस्तु, यह पहले ही लिखा जा चुका है कि ज़मीन पर किसान का कुछ भी दावा नहीं है। यही कारण है कि बहुत-सी खेती के लायक़ ज़मीन पड़ती पड़ी हुई है, और किसान उसे बनाने में मेहनत नहीं करना चाहते। भारत के वर्तमान वायसराय लॉर्ड आर्विन महाशय पहले विलायत में कृषि-विभाग के मंत्री थे। आप अब तक अपना झुकाव भारतीय किसानों और किसानों के

सुधार की ओर प्रकट कर चुके हैं। पर बहुत लोगों का यह ख़याल है कि सरकार के इस उद्योग से भारत के किसानों की दशा सुधरने के बदले और भी ख़राब हो जायगी। फल केवल यही होगा कि यहाँ की ज़मीन के बड़े-बड़े तख़्ते देसी किसानों के हाथ से निकालकर विलायती खेतिहर फ़र्मों के हाथ चले जायँगे। हाँ, विलायत के बने खेती के औज़ारों की बिक्री अवश्य बढ़ जायगी। ईश्वर ही जानें, लोगों की इस आशंका में कहाँ तक सत्य का अंश है। माननीय वायसराय ने एक रॉयल कमीशन की नियुक्ति इसलिये कर दी है कि उसके मेंबर जाँच करके खेती के तरीक़ों की उन्नति के उपाय खोज निकालें। शायद इस कमीशन ने यहाँ के कृषि-विशेषज्ञों की गवाहियाँ लेना शुरू भी कर दिया है। किंतु हमारी राय में इस कमीशन की नियुक्ति भारत के रुपए व्यर्थ ख़र्च करने का साधन-मात्र ही सिद्ध होगी। क्या यह दुःख की बात नहीं कि यह कमीशन किसानों के भूमि-संबंधी स्वत्व के बारे में कुछ भी विचार नहीं करेगा? यहाँ के ग़रीब किसानों के सामने एक कठिनाई और भी रहती है। खेती करने के लिये पूँजी की ज़रूरत होती है, और वह पूँजी अक्सर किसानों को लंबे सूदख़ोर महाजनों से ही प्राप्त करनी पड़ती है। सबसे पहले इस बात की ज़रूरत है कि किसानों को मुफ़्त या कम सूद पर काम चलाने-भर की रक़म मिल सके। कहीं-कहीं को-ऑपरेटिव बैंकों की स्थापना अवश्य हुई है; पर वे एक तो संख्या में बहुत थोड़े हैं, दूसरे उनका कार्य भी यथेष्ट संतोषजनक नहीं है। इन बैंकों से क़र्ज़दार किसानों को सहायता नहीं मिलती। अन्य किसी बैंक या महाजन से किसानों को बड़े-बड़े सूद पर रुपए मिलते हैं। बहुधा सूद ही चुकाए नहीं चुकता, और फ़ी सदी ७०-८० किसानों का सर्वस्व इसी ऋण के चुकाने में स्वाहा हो जाता है। ये महाजन भी अधिकांश स्थलों में ज़मींदार या उसके सगे-संबंधी ही होते हैं। खेत की अधिकांश पैदावार लगान और क़र्ज़ चुकाने में ही चली जाती है, और जो बचती है, उससे किसान रूखी-सूखी मोटी रोटी आधे पेट भी, पाँच छः महीने भी, नहीं खा सकता। कहीं-कहीं तो इतनी भी पैदावार नहीं बचती। ऊपर से अदालत की लत और भी किसानों के सर्वनाश का कारण बन रही है। ज़मींदार, महाजन और अदालत के चक्कर में पड़कर सैकड़े पीछे ८०-९० किसानों को घर, बाग़, ज़मीन, बैल-बधिया वग़ैरह गँवाकर या छोड़कर गाँव से भाग खड़े होना पड़ता है। ऐसे बेचारे किसान शहरों में आकर या तो मज़दूरी करते हैं या कुलीगीरी। इसी प्रकार से दुर्दशा-ग्रस्त भगोड़े किसान ही अधिकतर मिलों में कुली का काम करते हैं। नीचे के हिसाब से यह बात स्पष्ट हो जायगी। सन् १८९२ में भारत की फ़ैक्टरियों में ३,१६,७१५ मज़दूर थे। सन् १९०० में ४,६८,९५३ हो गए। उसके बाद ऐसे गृहहीन मज़दूर बढ़ते ही गए हैं। यथा — सन् १९१० में ७,९२,५११ और सन् १९१८ में ११,२३,०७२ के हो गए। सन् १८९२ से सन् १९१८ तक ऐसे बेघरबार के कुली फ़ी सदी २५४ के हिसाब से बढ़े हैं। अतएव यह समस्या सबसे पहले सुलझानी चाहिए।

× × ×

२. प्राचीन पाश्चात्य ग्रंथों में भारत की चर्चा

पाश्चात्य देशों से भारत का संबंध बहुत प्राचीन काल से चला आता है। मासिक वसुमती में इस संबंध में एक सुंदर लेख निकला है। उसकी ज्ञान-गर्भ ज्ञातव्य बातों का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है। ईसा से प्रथम नवीं शताब्दी में ग्रीकों के आदि कवि होमर ने ओडिसी नाम का एक महाकाव्य रचा था। उसमें दो इथिओपियन जातियों का उन्होंने वर्णन किया है—एक पश्चिम देश की अर्थात् आफ़्रिका-निवासी जाति और दूसरी पूर्व देश की अर्थात् दक्षिण-भारत के द्रविड़-देश के काले रंग के आदमियों की जाति। ईसा से पूर्व पाँचवीं शताब्दी में फ़ारस के बादशाह दारा ने भारत पर अपना अधिकार जमाने का इरादा किया था, और वह बलात् से कंधार में आकर उपस्थित हुए थे। उनका एक ग्रीक कर्मचारी स्काइलाक्ष था, जिसे उन्होंने सिंधु-नद होकर समुद्र-मार्ग से फ़ारस आने की राह खोजने का काम सौंपा था। उक्त कर्मचारी सिंधु-नद की राह अरब-सागर में पहुँचा, और तरह तरह की विपत्तियाँ झेलकर ३० महीने बाद स्वेज़ में पहुँच सका था। उसने मार्ग के बाँधे हुए उपकूल की आकृति-प्रकृति के विवरण के साथ भारत का एक भू-वृत्तांत लिखा था। यह पुस्तक इस समय अलभ्य है। मिलिटस-नगर के निवासी प्रसिद्ध ऐतिहासिक और भौगोलिक विद्वान् हेकटेयस् ने ई० पू० पाँचवीं या छठी शताब्दी में एक भू-वृत्तांत की पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक का भी अधिक अंश नष्ट हो चुका है। बहुत ही थोड़ा-सा जो

भाग बाक़ी है, उसमें निम्न-लिखित सात भारतीय नाम पाए जाते हैं—(१) इंडस (The Indus), (२) इंडिया (India), (३) कासपापिरस (The city of Kaspapirus), (४) गांधार देश (The country of the Gandarie), (५) श्रोपिए श्रौर कालिए-टिक (The Opiae and Kalliaetic), (६) स्कियापडी (The Skiapades), श्रौर (७) अर-गांटी (The city of Arganti)। ग्रीक ऐतिहासिक हेरोडोटस सुप्रसिद्ध हैं। इनका जन्म ई० पू० ४८४ सन् में हालीकर्नासस (Halikarnassus) नगर में हुआ था। इन्होंने भी भारत का एक विवरण लिखा है। उसमें लिखा है कि पृथ्वी की पूर्व-दिशा में जितनी जातियाँ रहती हैं, उनमें भारतवासी सबसे अंतिम जाति के लोग हैं। पंजाब के बाद राजपूताने की मरुभूमि पृथ्वी के छोर तक फैली हुई है। भारत में अनेक भाषाएँ बोलनेवाले लोग बसते हैं। इस लेखक ने भारतीयों को दो श्रेणियों में बाँटा है। एक श्रेणी के लोगों को काले रंग का, असभ्य और गृह-हीन घूमने-फिरनेवाला लिखा है, और दूसरी श्रेणी के लोगों को उत्तर भारतीय कश्यपपुर और पाख्तन् (Pakhtu) निवासी सुसभ्य आर्यों की संतान माना है। इनके सिवा हेरोडोटस ने भारत के सुदूर दक्षिण भाग के निवासी ईथियोपियन लोगों के अनुरूप अन्य एक जाति का भी उल्लेख किया है। जान पड़ता है, ये द्राविड़ लोग होंगे। भारत की असभ्य जातियों के संबंध में इसने लिखा है कि सिंधु-नद की तलहटी में जो सब आदिम जातियाँ निवास करती हैं, वे कच्चा मांस खातीं, तृण और घास-फूस से तन ढकतीं और नदी-तीर के बाँस नामक वृक्षविशेष की नाव बनाकर उसका व्यवहार करती हैं। इनके निकट ही और एक असभ्य जाति रहती है, जो बीमार आत्मीयों को मारकर उनका मांस खा जाने की आदी है। उक्त लेखक ने अपनी पुस्तक में भारत के एक धर्मसंप्रदाय का हाल लिखा है। इस संप्रदाय के लोग जीव-हिंसा नहीं करते, केवल अन्न और साग-फल-फलहरी खाकर रहते हैं। ये न घर वग़ैरह बनाते हैं, और न ब्याह करके गृहस्थ बनना चाहते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि बौद्ध लोगों के संप्रदाय को लक्ष्य करके यह सब लिखा गया है। गौतम बुद्ध ने ई० पू० ४०८ सन् में, हेरोडोटस के पैदा होने के ४ साल पहले, शरीर-त्याग कर दिया था। इसी पुस्तक में भारत की पूर्वी सरहद पर स्थित दरद (Dardistan) देश की एक प्रकार की चींटियों का भी हाल लिखा है। ये चींटियाँ आकार में कुत्ते से कुछ छोटी होती हैं, और शिकार करके अपना पेट पालती हैं, ऐसा लिखा है।

अपने रहने का स्थान बनाने के लिये ये जिस मिट्टी को खोदती हैं, उसमें सोना मिला रहता है। इसके लिये ये विशेष सावधान रहती हैं कि कोई उस मिट्टी को उठा न ले जाय। किंतु दोपहर को जब ये गढ़े के भीतर सो जाती हैं, तो कुछ लोग तेज़ दौड़नेवाले ऊँटों पर चढ़कर वह स्वर्ण-मृत्तिका ले भागते हैं। पर अगर चींटियों को उस चोरी की ख़बर लग जाती है, तो वे पीछा करके चोरों की जान ले लेती हैं। इसके उपरांत सिंधु-देश की प्रचंड गर्मी और जाड़े का, घोड़े आदि विविध पशुओं का, विभिन्न आकृति-प्रकृति के पक्षियों का और मगर का वर्णन उस पुस्तक में किया गया है। हेरोडोटस के पहले ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के शेष भाग में फ़ारस के सम्राट् आर्ट-ज़ाराकसिस का कर्मचारी केसियस (ktesias) भारत के बारे में एक पुस्तक लिख गया है। इस पुस्तक का भी अब पता नहीं है। हेरोडोटस आदि ऐतिहासिकों ने इस विवरण से जो संक्षिप्त सार-संकलन किया था, वही इस समय मिलता है। ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के प्रथम भाग में सेल्युकस निकेटस ने महाराज चंद्रगुप्त की सभा में मेगा-स्थिनीज़ को ग्रीक राजदूत के रूप में भेजा था। मेगास्थि-नीज़ ने भी भारत का एक सुंदर विवरण लिखा था, जो अब नहीं मिलता। उसके कुछ अंश ही मिलते हैं, जिन्हें स्ट्राबो, प्लिनी, एरियन, डायोडोरस और फ़ोर्सियस आदि प्रसिद्ध लेखकों ने अपनी पुस्तकों में उद्धृत कर सुरक्षित बना दिया था। इन अंशों का संग्रह करके एक पुस्तक बना दी गई है, और उसका अनुवाद हिंदी में भी मेगास्थिनीज़ का भारत-विवरण नाम से प्रकाशित हो गया है। इसके अतिरिक्त एशिया माइनर के अंतर्गत अमेशिया-नामक स्थान के निवासी स्ट्राबो नाम के ग्रीक पंडित ने भी भारत का भौगोलिक वर्णन किया है। उसमें उसने भारत के वाणिज्य का जो विवरण दिया है, उससे जान पड़ता है कि वह जिस समय माइज-हरमज नाम के बंदरगाह में उपस्थित था, उस समय वहाँ से १२० जहाज़ वाणिज्य के लिये भारत गए थे। ई० पू० तीसरी व चौथी शताब्दी के भारत का विवरण

उसकी पुस्तक में दिया हुआ है। पर वह अलेग्ज़ेंड्रिया के निवासी प्रसिद्ध पंडित इराटस्थिनीज़, सिकंदर शाह के अनुचर मेगास्थिनीज़ अरिस्टाबुलस और आनिसिक्रीटस की बातों की पुनरुक्ति-मात्र है। प्लिनी ने ई० पू० ७७ सन् में 'प्राकृतिक वृत्तांत' नाम की एक पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होंने भारत का भू-वृत्तांत, जीव-जंतुओं, उद्भिदों, खनिज पदार्थों और दवाओं वग़ैरह का ब्योरा दिया है। इस पुस्तक के प्रचार के प्रायः समान समय में ही पेरीप्लस मारिस इरिथेरी (Pariflus, maris Erythrari) नाम की एक छोटी-सी और पुस्तक लिखी गई थी। पुस्तक के नाम का तर्जुमा होगा अरब-समुद्र का दिग्दर्शन। यह पुस्तक किसकी रचना है, यह अब तक नहीं मालूम हो सका। किंतु जान पड़ता है, लाल सागर के किनारे के बंदरगाह, अरब और भारत का पश्चिमी भाग, जिसे ग्रंथकार ने स्वयं अपनी आँखों से देखा था, इन्हीं सब स्थानों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। पेरीप्लस-पुस्तक में लिखा है कि लालसागर के किनारे के बंदरगाहों में से जिन बंदरों से भारत के साथ वाणिज्य किया जाता था, उनमें मोज़ा (शायद वर्तमान मोचा) ही का प्रथम स्थान था। दूसरा नंबर ओर्फ़ीलिस-बंदर का था। बाबेल-मांडव नहर के किनारे पर के केन (hane) बंदरगाह से दक्षिण-भारत की यात्रा करनेवाले खाने और पीने की सामग्री प्राप्त करते थे। इस स्थान से कोई-कोई सौदागरी जहाज़ एकदम सकोट्रा-द्वीप को नाँघकर समुद्र-मार्ग में चलते थे, और कोई कोई किनारे-किनारे यात्रा करते थे। इस ग्रंथकार ने अपने देखे बंदरगाहों में सिंधु-नद के मोहाने के मध्यस्थल में एक बंदरगाह का उल्लेख किया है। इस बंदर को ग्रीक लोग बारबारिकन कहते थे। यहाँ पर का माल सौदागरी जहाज़ों से नावों पर उतारकर सिंध की राजधानी मीन-नगर में भेजा जाता था। दक्षिण-राष्ट्र के संबंध में उक्त ग्रंथ में लिखा है कि वहाँ आंध्र-राजों का राज्य था। घाट और पर्वत-माला के बाहर की भूमि जंगलों से परिपूर्ण, निर्जन और बाघ, वानर तथा अजगर, सर्प आदि जीवों का निवास-स्थान थी। नगर, शूर्पारक, प्रतिष्ठान और कल्याण-नामक स्थानों में मध्य-भारत से सौदागरी के सामान आते थे। दौलताबाद से हैदराबाद तक जो सड़क है, वह पूर्वोक्त चारों नगरों के बीच से होकर गई है। उक्त ग्रंथकार ने पश्चिम तामिल-राज्य के केरलपुत्र-देश में मूजिरिस नाम का नगर, पांड्य-राज्य में नीलकुंड नामक स्थान, कुमारी-अंतरीप में कुमारीदेवी का मंदिर, चोलमंडल के उपकूल में कमारा, पांडिचेरी, सुपाटन या सप्तम (Saptam) आदि स्थानों को अपनी आँखों से देखा था। चोलमंडल (वर्तमान-करमंडल)-उपकूल से बहुत-से पण्य पदार्थ रोम-राष्ट्र में भेजे जाते थे। मछलीपट्टन में महीन सूती कपड़ों का और दरशन में हाथी-दाँत का बहुत बड़ा व्यापार होता था। इस लेखक ने गंगा के मोहाने पर स्थित एक बंदरगाह का भी ज़िक्र किया है। यह शायद तामलूक होगा, जिसका पुराना नाम ताम्रलिप्ति है। सन् १५० में टालेमी के भूगोल की रचना हुई थी। उसमें किसी देश का विवरण विशेष रूप से नहीं दिया गया। केवल भारत की ही क्यों, भिन्न-भिन्न अन्य अनेक देशों को अक्षरेखा, चौड़ाई आदि का वर्णन करके उक्त ग्रंथकार ने अपने ग्रंथ को गणित के काम का बना दिया है। इसी तरह इसके बाद भी पाश्चात्य लेखकों ने अपने ग्रंथों में भारत का ब्योरा दिया है; पर दिग्दर्शन के लिये इतना ही काफ़ी है।

× × ×

३. बुढ़ापा और काम करने की शक्ति

हमारे देश में वृद्धों की कौन कहे, अनेक नौजवान ऐसे देख पड़ते हैं, जो काम करने की शक्ति का दिवाला निकाले हुए नज़र आते हैं। किंतु योरप और अमेरिका में यह बात नहीं है। वहाँ के अनेक बूढ़े अब भी ७०-८० वर्ष की अवस्था में वहाँ के नौजवानों के कान काटते हैं, और स्वदेश के नौजवानों से भी किसी परिश्रम के करने में कम नहीं हैं। हाल में हमने एक ६० वर्ष के शिकारी का हाल विलायती पत्रों में पढ़ा था। इसी तरह एक बुड्ढे के पैदल विश्वभ्रमण का संकल्प भी पत्रों में प्रकाशित हुआ है। आजकल के विलायती बुड्ढों की बात जाने दीजिए, प्राचीन काल के विलायती बुड्ढों के शारीरिक और दिमाग़ी परिश्रम के अनेक उदाहरण मौजूद हैं। विलायत का जेम्स नाम का लेखक वृद्धावस्था तक ग्रंथ रचना करता रहा। वह अकेले ८० उपन्यास लिख गया है। इँगलैंड के डॉक्टर अल्फ्रेड रसेल वालेश ने ६० वर्ष की अवस्था में अपनी रचनाओं में सबसे श्रेष्ठ और सबसे बड़ी पुस्तक लिखी थी। टेनीसन ने बुढ़ापे में ही उत्कृष्ट और अधिक कविताएँ लिखी हैं। क्रासिंग दि बार (Crossing the Bar) नाम का सुप्रसिद्ध गीति-काव्य उन्होंने ८३ वर्ष की अवस्था

में लिखा था। लैंडर ने ८४ वर्ष की आयु में एक श्रेष्ठ ग्रंथ की रचना समाप्त करके ८७ वर्ष की अवस्था में फिर Hervie Idylls-नामक ग्रंथ का शेष अंश लिखकर उसे संपूर्ण किया था। जमन-कवि गेटे ने ८० वर्ष की अवस्था में फ़ास्ट नाम के प्रसिद्ध काव्य की रचना पूरी की थी। रैंके ने इसी अवस्था में 'जगत् का इतिहास' लिखना शुरू किया था, और ९१ वर्ष की आयु में इस ग्रंथ के १२ खंड लिखकर पूरे कर दिए थे। प्रधान मंत्री ग्लैडस्टन की कार्यनिष्ठा और श्रमशीलता जगत्प्रसिद्ध है। इन्होंने ८० वर्ष की आयु में चौथी बार इँगलैंड के प्रधान मंत्री का पद स्वीकार कर सारा काम-काज बड़ी होशियारी के साथ सुसंपन्न किया था। न्यूटन ८३ वर्ष की आयु में किसी सुस्थ सबल नवयुवक से कम उत्साह और तत्परता से काम न करते थे। हर्बर्ट स्पेंसर ८३ वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुए थे, और वह जीवन की अंतिम तिथि तक ग्रंथ-रचना से निवृत्त नहीं हुए। फ्रांस के कवि साइमन डिश ने ९१ वर्ष की अवस्था में कविता लिखकर पुरस्कार पाया था। फ़्रेंच प्राणितत्त्वज्ञ बफ़न (Buffon) ने ८१ वर्ष की अवस्था में अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना का आरंभ किया था। वर्जिल ने बुढ़ापे में ११ वर्ष तक लगातार घोर परिश्रम करके अपने इनिड-नामक काव्य को समाप्त किया था। वाल्टेयर वृद्धावस्था तक ग्रंथ-रचना करते ही रहे; पर उन्हें संतोष नहीं हुआ। टर्की के सम्राट् सलीम का बुढ़ापे में भी यही नियम था कि वह दिन भर काम में जुटे रहते थे; रात को ज़रा देर सोते थे; और फिर जागकर सारी रात पढ़ते-लिखते रहते थे। जीवन-भर उन्हें काम करने ही का शौक़ रहा; काम करने से बढ़कर और किसी बात में उन्हें आनंद या सुख नहीं मिलता था। माइकेल एंजिलो का यह स्वभाव था कि उन्हें काम करने को न मिलता, तो वह उद्विग्न हो उठते। अक्सर आधी रात को भी उठकर वह काम शुरू कर देते थे। इस प्रकार देखा जाता है कि वृद्ध होने से ही मनुष्य की काम करने की शक्ति नष्ट नहीं हो जाती, बल्कि अभ्यास रहने से वह विशेष बढ़ती है। कामकाज में लगे रहनेवाले लोग बुढ़ापे तक सबल और सुस्थ रहते हैं। हमें आशा है, हमारे माननीय वृद्ध पाठक इन उदाहरणों का विवरण पढ़कर कार्य-क्षेत्र में आने का उत्साह दिखावेंगे। हम देखते हैं, हमारे हिंदी-साहित्य के अनेक धुरंधर साहित्यिक पुरुष युवावस्था पार करते ही अपनी लेखनी को विश्राम दे देते हैं। इस तरह के साहित्य-क्षेत्र से हट जानेवाले महोदय इस समय भी मौजूद हैं। हमारी उनसे प्रार्थना है कि वे पुनः साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण कर मातृभाषा को अपनी प्रतिभा के अमूल्य उपहारों से अलंकृत करें। अधिकतर संसार का अनुभव पूरा-पूरा प्राप्त कर चुकनेवाले प्रवीण प्रौढ़ मस्तिष्क ही स्थायी साहित्य की सृष्टि कर सकते हैं। कम से-कम हमारी तो यही धारणा है।

× × ×

४. सूर्य की किरणों से चिकित्सा

सूर्य की किरणों में, सूर्य के उत्ताप में, रोग नष्ट करने की शक्ति का पता पाश्चात्यों को इधर हाल में ही लगा है, और अब वे इस चिकित्सा की उपयोगिता पर ध्यान देकर इसकी उन्नति और विस्तार की चेष्टा कर रहे हैं। किंतु हमारे पूर्वजों को सूर्य-किरणों की रोगनाशिका शक्ति का हज़ारों वर्ष पहले ही पूरा पता था। यदि उन्हें इसका पता न होता, तो वे कुष्ठ-रोग की शांति के लिये सूर्यदेव की उपासना की व्यवस्था न करते। हमारे यहाँ प्रातःकाल सूर्य के सामने बैठकर सन्ध्योपासन आदि नित्यकर्म करने की व्यवस्था का भी यही रहस्य जान पड़ता है। हमारे यहाँ की स्त्रियाँ तक सूर्य-ताप की उपकारिता का यथेष्ट ज्ञान रखती हैं, और इसीलिये वे नवजात शिशुओं के शरीर में तेल मलकर उन्हें घंटे-दो घंटे धूप में लिटाए रखती हैं। पाश्चात्य चिकित्सकों को अब से सूर्य किरणों की रोग-नाशक विशेषता का पता लगा है, तब से वे सूर्य-किरणों की चिकित्सा से दुरारोग्य रोगों को भी निर्मूल करने में अद्भुत कृतकार्यता का परिचय दे रहे हैं। योरप के अनेक स्थानों में धूप-चिकित्सालय स्थापित हो गए हैं। इस चिकित्सा-प्रणाली को अँगरेज़ी में Heliotherapy कहते हैं। पाश्चात्य डॉक्टरों अथवा वैज्ञानिकों को सूर्य किरणों के इस गुण का पता गत शताब्दी तक नहीं था। न शुद्ध वायु-सेवन के गुणों से ही वे पहले परिचित थे। अभी गत शताब्दी में ही योरप के चिकित्सकों को यह मालूम हो पाया है कि विशुद्ध वायु का सेवन भी रोग नष्ट करने की शक्ति रखता है। सूर्य-किरणों के रोगनाशक गुण को तो अब तक सर्वसम्मत सिद्धांत का रूप नहीं प्राप्त हो पाया है। केवल कुछ ही डॉक्टर ऐसे हैं, जिन्हें इधर कई वर्षों से सूर्य-किरणों की विशेषता का ज्ञान हुआ है, और वे ही सूर्य-किरणों की सहायता से चिकित्सा का कार्य चला रहे हैं।

स्वास्थ्य समाचार में इस चिकित्सा के बारे में एक लेख निकला है। उसे पढ़ने से मालूम हुआ कि डॉक्टरों ने सूर्य की किरणों की जाँच करके उनमें से चिकित्सा के लिये उपयोगी किरणों का एक ख़ास रंग छाँट लिया है। जिस जगह धूप या सूर्य की किरणें सुलभ नहीं होतीं, वहाँ वे कृत्रिम उपाय से सूर्य का प्रकाश पैदा करके काम चलाते हैं। सूर्य के इस नक़ली प्रकाश के जिस अंश से चिकित्सा का काम चलाया जाता है, उसे Ultra-violet-light अर्थात् तीक्ष्ण बैंगनीप्रकाश कहते हैं। सूर्य की किरणों में सात मूल-वर्ण और कईएक मिश्र-वर्ण देख पड़ते हैं। इंद्र-धनुष में सूर्य की किरणों के रंगों की छवि हरएक आदमी देख सकता है। इन रंगों में जो किरण-रेखा तीव्र बैंगनी-प्रकाश देती है, उसी में रोगों के नष्ट करने की विशेष शक्ति है। सूर्य-किरणों में जीवाणुओं को नष्ट करने की शक्ति का परिचय तो बहुत समय पहले प्राप्त हो गया था। अभी हाल में यह बात जानी गई है कि गहरे घाव में, जहाँ साधारणतः किसी दवा की पहुँच नहीं हो पाती, वहाँ भी सूर्य-किरण पहुँचकर दुष्ट जीवाणुओं का नाश कर सकती है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक डॉक्टरों ने परीक्षा करके देखा है कि सूर्य की किरणें मनुष्य-शरीर के चमड़े को भेद-कर रुधिर को ऐसा तेजस्वी बना देती हैं कि रुधिर में जो रोग के बीजाणुओं को नष्ट करने की स्वाभाविक क्षमता होती है, वह कई सौगुनी बढ़ जाती है। अस्त्र-चिकित्सा से साध्य क्षय-रोग और रिकेट्स-रोग को आराम करने के बारे में सूर्य-किरणें अद्भुत क्षमता रखती हैं। साधारण घावों की चिकित्सा में भी सूर्य-किरणों का प्रयोग करके विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इसके सिवा कमज़ोर बच्चों के लिये सूर्य का प्रथम प्रकाश विशेष लाभदायक होता है। डॉक्टर रोलियर स्वीज़रलैंड के रहने-वाले हैं, और सूर्य-किरण-चिकित्सा के एक विशेषज्ञ माने जाते हैं। वह १८ वर्षों से इसी प्रणाली से चिकित्सा कर रहे हैं। स्वीज़रलैंड के Leysin-प्रदेश में ऊँचे आल्प्स-पहाड़ पर इनका चिकित्सा-भवन (Clinics) बना हुआ है। पृथ्वीतल के बाद ही उससे मिला हुआ जो वायु-मंडल है, वह उतना विशुद्ध नहीं है। फिर योरप में सूर्य की किरणें या प्रकाश भी यहाँ की तरह सुलभ नहीं है। इन्हीं दोनों कारणों से उक्त डॉक्टर ने ऐसे उच्च स्थान में अपना चिकित्सालय बनवाया है। एक बात और है। सूर्य-मंडल से पृथ्वी-तल पर आते समय सूर्य की किरणों को कई वायु-मंडल पार करने पड़ते हैं। इनमें किरणों का बहुत सा हिस्सा अटक रहता है। इसलिये समतल भूखंड पर जो सूर्य-किरणें पहुँचती हैं, उनमें Ultra-Violet-rays का अंश बहुत कम रह जाता है। डॉक्टर रोलियर का यह दृढ़ विश्वास है कि ऊँची जगह पर स्थित धूप-चिकि त्सालय में चिकित्सा करके अस्त्र-चिकित्सा से साध्य यक्ष्मा-रोग—वह शरीर के चाहे जिस स्थान में हो, और चाहे जितना पुराना हो—आराम किया जा सकता है। पहले डॉक्टरों का ख़याल यह था कि अस्त्र-चिकित्सा से साध्य यक्ष्मा रोग शरीर के जिस अंश में होता है, उसी में रहता है। किंतु अब यह धारणा भ्रांत सिद्ध हुई है। किसी स्थान पर उक्त रोग ज़ाहिर होने के पहले साधारणतः शरीर कमज़ोर हो जाता है, और उसी कमज़ोरी के सुयोग में रोग भी प्रबल हो उठता है। मनुष्य के शरीर में बचपन से ही यक्ष्मा के बीजाणु मौजूद रहते हैं। किंतु शरीर में जो रोग-प्रतिषेधक शक्ति होती है, उसी के ज़ोर से वे बीजाणु शांत बने रहते हैं। पर जब शरीर कमज़ोर हो जाता है, तो वह उन्हें रोक नहीं सकता। ऐसी अवस्था में सूर्य-किरणों की चिकित्सा ही उक्त रोग को समूल नष्ट कर सकती है। मनुष्य के शरीर का चमड़ा एक अद्भुत पदार्थ है। रोमछिद्रों के द्वारा इससे केवल शरीर के भीतर का मल ही नहीं बाहर निकलता, बल्कि यह चमड़ा उक्त छिद्रों द्वारा बाहर की अनेक वस्तुओं को भी भीतर सोख लेता है। वायुमंडल से अम्लजन और जलकणों को भी चमड़े के द्वारा शरीर सोख लेता है। वायु में और भी एक पदार्थ है तेज Energy। चमड़ा इस Atmospheric energy को भी सोख लेता है। खुली हवा में रहकर इस तेज को सोखकर बहुत दिनों से पलँग पकड़े हुए रोगी भी शीघ्र ही बल-वीर्य प्राप्त करलेते हैं। इस चिकित्सा का विवरण बहु-विस्तृत है। उसे जानने की इच्छा रखनेवालों को इस विषय की पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए।

× × ×

५. असभ्य जातियों में विवाह की चाल

आजकल स्त्री-स्वतंत्रता के युग में सभ्य समुन्नत फ़्रांस और अमेरिका महादेश की बहुत-सी स्त्रियाँ और पुरुष विवाह की आवश्यकता नहीं समझते। उनकी राय में विवाह एक व्यर्थ का बंधन है, वह स्त्री और पुरुष की

स्वाधीन इच्छा का विघातक है। सोवियट रूस की जनता में भी विवाह के विरुद्ध ख़यालात ज़ोर पकड़ते जा रहे हैं। पश्चिम की देखादेखी हमारे देश के भी कुछ अनुकरण-प्रिय स्त्री-पुरुष विवाह-संस्कार को पराधीनता-पाश का एक सूत्र मानने लगे हैं। परंतु वास्तव में यह भारी भूल है। हम हिंदुओं के यहाँ तो विवाह एक मुख्य और आवश्यक संस्कार माना जाता है। इस संबंध का संबंध स्त्री और पुरुष की आत्मा से भी होता है, केवल शरीर से ही नहीं। यही कारण है कि हमारे यहाँ यह संबंध आजन्म अविच्छेद्य होता है। जिन जातियों में तलाक़ की प्रथा प्रचलित है, वे हमारे आध्यात्मिक संबंध के महत्त्व को नहीं समझ सकतीं। विवाह वास्तव में संयम सिखलाता है, मानव-प्रकृति की उच्छृंखल प्रवृत्तियों को कुपथ की ओर नहीं जाने देता। विवाह ही समाज को बाँधनेवाला सुदृढ़ बंधन है। अस्तु, आज हम विवाह की उपयोगिता अथवा आवश्यकता पर विशेष न लिखकर यह दिखलावेंगे कि विवाह की प्रथा संसार की सभी जातियों में किसी-न-किसी रूप में पाई जाती है। यहाँ तक कि बर्बर असभ्य जातियों में भी विवाह होता है। उनके विवाह की प्रथाएँ भी प्रायः विचित्र पाई जाती हैं। कुछ असभ्य जातियों की विचित्र विवाह-प्रथा के कुछ नमूने, यहाँ पर, प्रकृति-पत्रिका के एक लेख के आधार पर, दिए जाते हैं। केप ऑफ़ गुड होप में हाटेनटेट नाम की एक जाति रहती है। उस जाति में यह प्रथा प्रचलित है कि स्वामी और स्त्री, दोनो परस्पर एक दूसरे को प्रीति या अनुराग की दृष्टि से नहीं देखते। वे परस्पर एक दूसरे से दूर अलग रहना ही पसंद करते हैं। काउसा निवासी हबशियों के विवाह में भी प्रणय या अनुराग का पता नहीं चलता। मध्य आफ़्रिका के अरोवा-प्रदेश के रहनेवाले लोग विवाह के बारे में बिलकुल ही अनुराग नहीं रखते। उनके निकट विवाह एक साधारण काम है, उसमें कुछ विशेषता नहीं। ब्याह करना और घास काटना, दोनो उनके लेखे एक-से काम हैं। मैनडिन जाति के लोग विवाह का अर्थ दासता समझते थे। उनके यहाँ स्वामी और स्त्री का एक जगह रहना या आपस में प्रेमालाप तथा हँसी-मज़ाक करना एक बड़ा भारी अपराध गिना जाता था। आस्ट्रेलिया में भी कुछ पहाड़ी असभ्य जातियाँ रहती हैं। उनमें भी स्त्री-पुरुषों के बीच प्रणय या अनुराग का अत्यंताभाव रहता है। हमारे देश भारत की भी कुछ नीच जातियों में स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम-पदार्थ की अत्यंत अल्प मात्रा पाई जाती है। सुमात्रा-द्वीप में वहाँ के असभ्य निवासियों के बीच पहले ज़माने में तीन प्रकार के विवाह प्रचलित थे। जुंडर —इसमें स्वामी स्त्री को ख़रीदता था। अंबेनानक—इसमें स्त्री स्वामी को मोल ले लेती थी। सिमांडो—इसमें स्त्री और स्वामी, दोनो समान रूप से विवाह-बंधन में आबद्ध होते थे। अंबेनानक-नामक विवाह में कन्या का बाप किसी एक युवक को अपनी कन्या के लिये वर पसंद करता था। अक्सर वह युवक कन्या के पिता के वंश की अपेक्षा नीच वंश का लड़का होता था, और वह जिस वंश का लड़का होता था, विवाह के उपरांत, उस वंश के लोगों का उस पर कुछ अधिकार नहीं रहता था। ब्याह के बाद लड़के को भी ससुराल में ले आते थे। कन्या का पिता एक भैंसे का बलिदान करता था। युवक के आत्मीय-स्वजन लोग कन्या के पिता को २० डालर पण-स्वरूप देते थे। विवाह हो जाने के बाद से उक्त युवक के भरण-पोषण या भले-बुरे की सब ज़िम्मेदारी कन्या के पिता के ऊपर हो आ पड़ती थी। सिमांडो-नामक विवाह में स्वामी स्त्री के संबंध का स्पष्ट ही निर्णय हो जाता है। इस विवाह में वर कन्या के आत्मीयों को १२ डालर पण-स्वरूप देता है। वर और कन्या, दोनो में संपत्ति का बराबर का बटवारा होता है—अर्थात् वर के धन का आधा हिस्सा कन्या को और कन्या के धन का आधा हिस्सा वर को मिलता है। जुंडर विवाह में स्त्री भी स्वामी की एक प्रकार की संपत्ति समझी जाती है। सीलोन में दो तरह के विवाह प्रचलित हैं। एक डिगा-विवाह और दूसरा बीना विवाह। पहले विवाह में स्त्री स्वामी के आश्रय में जाकर रहती है। किंतु दूसरे विवाह के अनुसार स्वामी स्त्री के आश्रय में अपना सारा जीवन बिताता है। सीलोन के विवाह को अस्थायी विवाह कहना ही ठीक होगा। क्योंकि विवाह के पंद्रह दिन बाद तक स्वामी स्त्री के साथ सहवास करता है। अगर दोनो में नहीं पटी, तो उसी समय विवाह-विच्छेद हो जाता है। जापान में ऊँची जाति के लोगों में यह प्रथा है कि घर का बड़ा लड़का ब्याह करके बहू को घर ले आता है, और बड़ी लड़की ब्याह करके अपने पति को घर ले आती है। मतलब यह कि बड़े लड़के की स्त्री और बड़ी लड़की का वर परिवार में शामिल कर लिया जाता है। यही कारण

है कि वहाँ एक वंश का बड़ा लड़का दूसरे वंश की बड़ी लड़की से शादी नहीं कर सकता। दक्षिण-भारत में एक रेडिस-जाति है। उसके विवाह की प्रथा भी विचित्र है। सोलह या बीस वर्ष की जवान लड़की का ब्याह पाँच या छः साल के बालक के साथ कर दिया जाता है। किंतु वह युवती पति के साथ नहीं, बल्कि उसके भाई, मामा अथवा पिता के साथ रहती है। पर फल-स्वरूप उसके अगर संतान उत्पन्न होती है, तो उसका पिता वह बालक ही माना जाता है। टरकोमैन एक जाति है, जिसके यहाँ ब्याह के बाद दो साल तक वर या कन्या कोई एक दूसरे का मुँह नहीं देख पाता। कुछ ऐसी भी जातियाँ हैं, जिनमें विवाह की चाल ही नहीं है। यथा—बंगाल के चटगाँव-ज़िले में एक पहाड़ी जाति रहती है। उसमें ब्याह के बाद सात दिन तक वर या कन्या, कोई एक दूसरे का मुँह नहीं देख पाता। भारत की रडलान-जाति में विवाह करने की चाल एकदम नहीं है। नीलगिरि-पहाड़ की कुसंब-जाति का भी यही हाल है। मध्यभारत की कोंटिया-जाति की भाषा में विवाह-शब्द के अर्थ का सूचक कोई शब्द ही नहीं है। भुटिया लोगों में नारी-जाति का कुछ भी सम्मान नहीं है। अमेरिका के संयुक्तराज्य में एक रेडस्किन नाम की जाति रहती है। उनके विवाह की पद्धति अन्य प्रकार की है। वर और कन्या के राज़ी होने से ही ब्याह हो जाता है। उनके यहाँ न कोई नियम है, न कोई उत्सव ही किया जाता है। एक द्वीप क्वीन चार्लटी नाम का है। वहाँ के रहनेवालों में भी ब्याह करने की चाल नहीं है। स्त्रियाँ सभी पुरुषों के साथ पत्नी का-सा व्यवहार करती हैं। किंतु वे और स्त्रियों की अपेक्षा संयम रखती हैं। नीलगिरि-पहाड़ की टोडा-जाति में एक विचित्र प्रथा प्रचलित है। जब कोई युवक किसी युवती के साथ विवाह करता है, तो उसके अन्यान्य भाई भी उसके पति के समान होते हैं, और उस युवती की अन्यान्य बहनों का ब्याह भी उन लोगों के साथ होता है। भारत में एक टोटिया-जाति रहती है। उसमें यह चाल है कि एक ही स्त्री के साथ भाई, भांजा, चचा, फूफा आदि अनेक संबंधी एकसाथ ब्याह कर सकते हैं, और वह स्त्री सभी की पत्नी होती है। उस पर सभी का समान अधिकार होता है। भारत के मध्य-प्रदेश में एक गोंड-जाति रहती है। उस जाति के लोग स्त्री की बड़ी बहन के साथ तो ब्याह नहीं कर सकते; किंतु उसकी दादी या नानी के साथ कर सकते हैं। कोल-जाति के लोगों में विवाह-योग्य लड़की की क़ीमत लगाई जाती है। गारो लोगों के विवाह की चाल अन्य प्रकार की है। युवक पुरुष और युवती स्त्री विवाह के लिये जब राज़ी हो जाते हैं, तो युवती कई दिन का भोजन और अन्यान्य आवश्यक सामग्री लेकर पहाड़ पर जाती है, और युवक उसके पीछे चलता है। कई दिनों के बाद स्वामी और स्त्री पहाड़ पर से चले आते हैं। फिर बड़ी धूमधाम के साथ विवाह किया जाता है। मलाया-पेनिनशुला में जो जाति रहती है, उसके यहाँ विवाह की बैठक के लिये एक गोलाकार मँडवा तैयार किया जाता है। एक वृद्ध आदमी कन्या को लेकर उस बैठक में आता है, और कन्या उस मँडवे के चारों ओर दौड़ती है। अगर वर लड़की को छू लेता है, तो उनका ब्याह होता है, अन्यथा नहीं। भारत की खंद-जाति में स्त्रियों के सतीत्व का कुछ महत्त्व नहीं माना जाता। दस-बारह वर्ष का बालक पंद्रह सोलह साल की जवान औरत से ब्याहा जाता है, और स्त्रियाँ प्रायः अपने धर्म की रक्षा नहीं करतीं। पति-पत्नी के सिवा अन्य स्त्री-पुरुषों का परस्पर सहवास इस जाति के लोगों में कोई दोष नहीं माना जाता। यहाँ तक कि ब्याह के पहले अगर स्त्री के कोई संतान पैदा हो जाती है, तो उसमे उनका कुछ अपमान नहीं माना जाता। भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रांत में मेरिस नाम की एक जाति रहती है। उस जाति की एक-एक स्त्री के कई-कई पति होते हैं। पिता की मृत्यु के उपरांत पुत्र अपने पिता की सभी स्त्रियों का स्वामी होता है, केवल अपनी सगी माता को छोड़कर। हरएक विवाह-योग्य बालिका अपना मूल्य निश्चित करती है। सबसे बढ़कर सुंदरी बालिका का मूल्य कम-से-कम ३ मुहर होता है। अरब लोगों में भी एक स्त्री के कई पति होने की चाल मौजूद है। लेकिन उनके यहाँ वर और कन्या के अभिभावक ही संबंध ठीक करते हैं। ब्याह में उनके यहाँ कोई उत्सव नहीं होता, केवल एक भोज दिया जाता है। इस भोज में वर-पक्ष की ओर से चूहे, गिलहरी वग़ैरह का मांस विशेष रूप से उत्तम खाद्य-पदार्थ के रूप में पकाया जाता है। मिशमी लोगों में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित है। जिसके जितनी ज़्यादा स्त्रियाँ होती हैं, वह उतना ही बड़ा धनी समझा जाता है। कैरिब-देश के लोग अपने निकटवर्ती देशों में जाकर वहाँ के लोगों की औरतों को पकड़ लाते और उनके साथ मनमाना व्यवहार करके

उन्हें छोड़ देते थे। फिर उनके साथ कोई संबंध नहीं रखते थे। इस प्रकार भिन्न-भिन्न असभ्य जातियों में विवाह की विचित्र रीतियाँ प्रचलित हैं। उनमें से कुछ का यहाँ दिग्दर्शन कराया गया है।

× × ×

६. प्राचीन काल के क्रीड़ा-कौतुक

कुछ मन बहलाने के लिये और कुछ शारीरिक बल तथा स्वास्थ्य बढ़ाने के लिये खेल खेलने की प्रथा बहुत पुरानी है। खेल इस समय भी खेले जाते हैं, पर उनका ढंग कुछ और ही है। आजकल के खेलों को तो प्रायः सभी लोग जानते होंगे। यहाँ हम प्राचीन काल के कुछ मुख्य क्रीड़ा-कौतुकों का परिचय अपने पाठकों को देते हैं। भारती में श्रीमन्मीषिनाथ वसु ने ऐसे २३ खेलों का वर्णन किया है। यथा—

(१) घटा-निबंधन। देवता के उद्देश से यात्रा का उत्सव करने को घटा कहते हैं। पूर्व समय में पक्ष या महीने के किसी प्रज्ञात दिन को सरस्वती-गृह में नियुक्त नटों का समाज अथवा सम्मिलन होता था। जो तिथि जिस देवता की पूजा के लिये प्रसिद्ध है, वही उस देवता का प्रज्ञात दिन है— जैसे गणेशचतुर्थी, सरस्वती-पंचमी, दुर्गाष्टमी, रामनवमी, वामनद्वादशी, नृसिंहचतुर्दशी इत्यादि। सरस्वती देवी विद्या-कला की अधिष्ठात्री हैं, इसी कारण ऐसे यात्रा-महोत्सवों (अर्थात् मेलों) के अवसर पर सरस्वती-मंदिर में नट आकर जमा होते थे। पहले दिन नटगण अपने-अपने कौशल और उस्तादी के काम दिखाते थे, और दूसरे दिन उन्हें जनता से पुरस्कार मिलता था।

(२) समस्या-क्रीड़ा। (क) यक्षरात्रि अथवा सुखरात्रि। कार्तिक की पूर्णिमा को रात के समय लोग द्यूत-क्रीड़ा करते थे। इसी दिन दिवाली भी जलाई जाती थी। (ख) कौमुदी-जागर। क्वाँर की पूनो को खूब स्वच्छ और अधिक चाँदनी होती है, इसी से उसे कौमुदी कहते थे। अब उसी को शरद्-पूनो कहते हैं। इस दिन भी लोग रात को जागकर द्यूत-क्रीड़ा करते थे। हिंडोले पर बैठकर झूलते भी थे। (ग) सुवसन्तक या मदनोत्सव। इसमें लोग नाचते-गाते और बाजे बजाते थे।

(३) सहकार-भंजिका। दलबल सहित आम के बाग़ में जाकर आम के फलों को तोड़कर खाना।

(४) अभ्युषखादिका। जथा बाँधकर वृक्षों से कच्चे फल तोड़ना और उन्हें आग में भुलभुलाकर खाना।

(५) बिसखादिका। सरोवर-तीरनिवासी लोगों का जथा बाँधकर कमल की जड़ खोदना और उसे खाना।

(६) नवपत्रिका। प्रथम वर्षा होने के बाद वृक्षों में जब नई कोंपलें निकलती हैं, तब वन में जाकर घूमना-फिरना और आमोद-प्रमोद करना।

(७) उदकक्ष्वेड़िका। बाँस की नलियों में पानी भरकर परस्पर एक दूसरे पर डालना। एक प्रकार का पिचकारी का खेल।

(८) पांचालानुमान। अनेक प्रकार के आलाप करना, अनेक प्रकार की भावभंगी बनाना। यह एक प्रकार का मसख़रापन था। पांचाल-देश में भाँडों का जो नाच होता था, उसी का अनुकरण होने के कारण इसका नाम पांचालानुमान पड़ा।

(९) एकशाल्मली। किसी बड़े भारी फूले हुए सेमर के पेड़ के नीचे जाकर उसके फूलों के आभूषण बनाकर पहनने की क्रीड़ा।

(१०) कदंब-युद्ध। कदम के फूल को ठुकराते हुए दो समान-संख्यक दलों का क्रीड़ा करना। यह फुटबाल की श्रेणी का खेल था।

(११) मेष-युद्ध। भेड़े लड़ाना।

(१२) कुक्कुट-युद्ध। मुर्गे लड़ाना। संस्कृत में दश-कुमार-चरित नाम की एक पुस्तक है। उसमें लिखा है कि नालिकजातीय प्राच्यवाट कुक्कुट (मुर्गा) बलाका-जाति के ताम्रचूड़ कुक्कुट से अधिक बलवान् होता है।

(१३) षंड-युद्ध। साँड़ों की लड़ाई।

(१४) दंष्ट्रा युद्ध। दाढ़ों से प्रहार करनेवाले यानी काटनेवाले प्राणियों का युद्ध।

(१५) प्रेक्षा। इसे आजकल के थिएटर के समान समझना चाहिए।

(१६) यात्रा और प्रवहण। आजकल के स्वाँग के समान जानिए।

(१७) कंदुक क्रीड़ा। गेंद उछालकर उसे थपकियों से इधर-उधर ले जाना।

(१८) अक्षक्रीड़ा। पासों का खेल। दशकुमार-चरित में लिखा है कि द्यूत-संबंधी कला के २५ भेद हैं। इस खेल में नीचे बिछानेवाली बिसात और हाथ के फेर से बहुत कुछ कारसाज़ी की जाती थी: पर उसे सहज में पकड़ लेना कुछ आसान न था। धन या संपत्ति दाँव में

रखकर यह खेल खेला जाता था। लोक-व्यवहार, युक्ति और ढिठाई के सहारे बहुत कुछ बेईमानी की जाती थी, और अपना काम बना लिया जाता था। कमजोर खिलाड़ी पाकर उसे डाँट-डपटकर उसकी आँखों में धूल झोंकी जाती थी, धाँधली की जाती थी। तरह-तरह के प्रलोभन दिखाकर और लोगों को मिलाकर भी बाज़ी जीत ली जाती थी। ऐसे अवसर पर अनेक अश्लील शब्दों का भी प्रयोग होता था। जिस जगह पर यह अक्षक्रीड़ा होती थी, वह एक निर्दिष्ट स्थान होता था। राजा की ओर से एक द्यूताध्यक्ष नियुक्त होता था। वह अक्षशाला की देख-भाल करता था। कोई छिपकर अन्यत्र खेलता था, तो उसे दंड दिया जाता था। बाज़ी के धन पर फ़ी सदी ५ मुद्रा के हिसाब से राजा को कर दिया जाता था। खेल में बेईमानी पकड़ ली जाने पर बेईमानी करनेवाले को दंड भी दिया जाता था।

(१९) क्रीड़ोपस्कर। प्राचीन काल में यह क्रीड़ा होती थी। लकड़ी के बने भेड़े, घोड़े आदि के द्वारा यह क्रीड़ा की जाती थी।

(२०) जल-क्रीड़ा या जल-विहार। महाभारत के आदिपर्व में १२८वें अध्याय में इस क्रीड़ा का पूर्ण रूप से वर्णन किया गया है। स्त्री और पुरुष मिलकर यह क्रीड़ा करते थे।

(२१) घुड़दौड़। यह खेल बहुत प्राचीन है। वैदिक साहित्य तक में इसका उल्लेख पाया जाता है।

(२२) इंद्रजाल-भोजविद्या। तरह-तरह के आश्चर्य-जनक कर्म नज़र बाँधकर दिखलाना। किंवदंती यह है कि विद्यानुरागी सुप्रसिद्ध राजा भोज ने इस अपूर्व विद्या की उन्नति के लिये विशेष यत्न किया था। उन्हीं की पृष्ठ-पोषकता में पंडितों ने अथर्व आदि वेद, पुराण, तंत्र-शास्त्र के ग्रंथों से संग्रह करके इस करतब को अलग एक विद्या का रूप दिया था। इसी से इसका एक नाम भोजविद्या भी है। कहते हैं, राजा भोज की कन्या भानुमती ने इस विद्या में विशेष पारदर्शिता प्राप्त कर ली थी। सिंहासन-बत्तीसी में इस विद्या का विशेष वर्णन किया गया है।

(२३) ताश का खेल। अकबर बादशाह के विद्वान् मुसाहब अबुलफ़ज़ल ने लिखा है कि प्राचीन ऋषियों के ज़माने में भी यह खेल प्रचलित था। उस ज़माने में बारह रंग होते थे।

इन खेलों के अलावा शतरंज आदि खेल भी अपेक्षाकृत पुराने ही हैं। इन सब खेलों में पाँसों का खेल ही सबसे पुराना खेल है। ऋग्वेद के दसवें मंडल में चौंतीसवें सूक्त में उसके ऋषि कहते हैं—"बड़े-बड़े पाँसे जब बिसात के ऊपर इधर-उधर चलाए जाते हैं, तो उन्हें देखकर मुझे बड़ा आनंद होता है। मुंजवान् नाम के पर्वत पर जो बढ़िया सोमलता उत्पन्न होती है, उसका रस पीकर जैसी प्रसन्नता होती है, बहेड़े के काठ के बने पाँसे मुझे वैसी ही प्रसन्नता देते और उत्साह बढ़ाते हैं।" इतनी प्रशंसा करने के बाद आगे चलकर उन्हीं ऋषि ने पाँसा खेलने के अनेक दोषों का भी उल्लेख किया है। लिखा है—"पाँसे खेलनेवाला जुआरी अपनी सुंदरी स्त्री का भी त्याग कर देता है। जो आदमी पाँसे खेलता है, उसकी सास उस पर नाराज़ होती है, उसकी स्त्री उसे ताने देती है। वह अगर किसी से कुछ माँगता है, तो कोई उसे पतियाता नहीं। पाँसे खेलने का आकर्षण बहुत बुरा और बड़ा ही कठिन होता है। अगर किसी के धन पर पाँसों की कृपा होती है, तो एक समय ऐसा आता है कि उसकी पत्नी पर औरों के हाथ पड़ते हैं। उसके मा-बाप और भाई तक उसकी ओर से नज़र फेर लेते हैं, मानो पहचानते ही नहीं। पाँसे धनुष के रोदे से छूटे हुए तीर की तरह छेदते हैं, छुरी की तरह काटते हैं, और आग की तरह जलाते हैं। जो दाँव जीतता है, उसे तो पुत्रजन्म का-सा सुख मिलता है। पाँसे के खिलाड़ी की स्त्री दीन रहती है। पुत्र का पता नहीं रहता। वेद में लिखा है कि वैदिक युग में पाँसों के ५३ दल थे। लिखा है, पाँसे छूने में ठंडे होते हैं, लेकिन हृदय को जलाते हैं। अप्सराएँ द्यूत की अधिष्ठात्री देवता हैं। अथर्ववेद में अप्सराएँ द्यूत-कुशल कही गई हैं। वैदिक युग में नृत्य-गीत आदि का भी चलन था। शैलूष-शब्द का उल्लेख शुक्ल-यजुर्वेद में है। पाणिनि के व्याकरण में नट-शब्द विद्यमान है। प्राचीन संस्कृत में और बौद्ध-साहित्य में भी प्रेक्षा-शब्द अनेक बार आया है। प्रेक्षागृह के वर्णन से ज्ञात होता है, उसमें सभी शामिल होते और चंदा देते थे। दशकुमार-चरित के बारे में प्रो० पीटर्सन की राय है कि उसके प्रणेता दंडी ईसवी सन् के अष्टम शतक में विद्यमान थे। पर वसु महाशय का मत है कि उनका समय छठी शताब्दी है। अतएव दशकुमार-चरित में वर्णित क्रीड़ाएँ छठी शताब्दी से भी पुरानी हैं। अन्य

क्रीड़ाओं का वर्णन वात्स्यायन के कामसूत्र और कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र आदि ग्रंथों में किया गया है। कुछ लोग वात्स्यायन और चाणक्य, दोनों नाम एक ही पुरुष के मानते हैं। डॉक्टर जूलियस जाली का कहना है कि कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी में और काम-सूत्र चौथी शताब्दी में रचा गया था, अर्थात् दोनों भिन्न-भिन्न विद्वानों की रचनाएँ हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ऊपर जिन क्रीड़ाओं का ज़िक्र किया गया है, वे बहुत पुरानी हैं।

× × ×

७. दक्षिण-भारत में आर्यों का उपनिवेश

प्राचीन काल के आर्य बड़े वीर और अध्यवसायशील थे। उन्होंने दूर-दूर जाकर अपने उपनिवेश बसाए थे। एक समय दक्षिण-भारत घोर वन था, जैसा कि वाल्मीकि-रामायण में दंडकारण्य आदि का वर्णन पढ़ने से मालूम होता है। भारती-पत्रिका में प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रीज्ञानेंद्र-मोहन दास ने दक्षिण-भारत में आर्यों के उपनिवेश-स्थापन पर अच्छा प्रकाश डाला है। आप लिखते हैं — बहुत प्राचीन समय में आर्य लोग विन्ध्याचल को बीच की सीमा मानकर उसके उत्तर-भाग को उत्तर-भारत और दक्षिण-भाग को दक्षिण-भारत कहते थे। इन दोनों भू-भागों को उत्तरापथ और दक्षिणापथ के नाम से भी पुकारा जाता था। विंध्याचल और हिमालय के बीच के भू-भाग को आर्यावर्त और विंध्याचल से दक्षिण और भारत-महासागर के उपकूल तक फैले हुए भू-भाग को दक्षिणावर्त या दाक्षिणात्य भी कहा जाता था। दक्षिण-भारत में आर्यों से बहुत पहले काले रंग की कोलारी-जाति रहती थी। वे लोग वर्तमान अंडमान-टापू में रहनेवालों के सजातीय या उन्हीं के समान जाति के थे। इन आदिम अधिवासियों के रहने के बहुत दिन बाद उत्तर-भारत से आकर द्राविड़-जाति ने वहाँ अपना अड्डा जमाया। उनके भी बहुत दिन बाद, रामायण-काल के कुछ ही पहले, उक्त प्रदेश में आर्यों के आकर रहने का सूत्रपात हुआ। इन जातियों के साथ संघर्ष का फल यह हुआ कि क्रमशः कोलारी लोग द्राविड़ों और आर्यों में लीन हो गए, कुछ मारे गए, और कुछ मध्य-भारत आदि अनेक स्थानों में फैल गए। उत्तर-भारत में आर्यों की और दक्षिण-भारत में द्राविड़ों की प्रधानता स्थापित हो गई। कलिंग के दक्षिण से कन्याकुमारी तक का भू-भाग द्राविड़-देश के नाम से प्रसिद्ध हो गया, और ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक दक्षिण-भारत में द्राविड़ और आर्यभाषाएँ प्रचलित हो गईं। ईसा के जन्म के सात सौ वर्ष पहले दक्षिणापथ के अश्वक के सिवा वैयाकरण पाणिनि ने शायद और किसी स्थान का नाम नहीं सुना था। कारण, उन्होंने कच्छ, अवंती, कोशल, कारूष, और कलिंग को भारत के ठीक दक्षिण के देश कहकर इनका उल्लेख किया है। पाणिनि के ३१० वर्ष बाद के कात्यायन ऋषि दक्षिणापथ के अनेक स्थानों से परिचित थे। उन्होंने अपने वार्तिक में यह दिखलाया है कि पाणिनि ने दक्षिण के पांड्य, चोल आदि देशों का उल्लेख नहीं किया। उनसे २०० वर्ष बाद पतंजलि हुए, जो भाष्यकार के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने माहिष्मती, विदर्भ आदि विंध्याचल के दक्षिण में स्थित प्रदेशों का भी नामोल्लेख किया है। यहाँ तक कि उन्होंने दक्षिण की शेष सीमा में स्थित कांचीपुरम् और केरल तक का उल्लेख किया है। किंतु दक्षिण में आर्यों का उपनिवेश इस समय से भी बहुत पहले स्थापित हो चुका था। इसका प्रमाण ऋग्वेद में पाया जाता है। रामायण के युग में दक्षिणापथ के अनेक स्थानों में आर्यों के रहने के बहुत-से निदर्शन मिलते हैं। दक्षिण-भारत में आर्यों की सभ्यता का सबसे पहले प्रचार करनेवाले हैं महर्षि अगस्त्य, सुत्तनिपात के ब्राह्मण गुरु बभरिण, और ऋचाओं की रचना करनेवाले विश्वामित्र ऋषि के वंशधरगण। किंतु इसका सबसे अधिक श्रेय अगस्त्य ऋषि को ही दिया जा सकता है। वही सबसे पहले जाकर बसे थे। सुग्रीव ने सीता को खोजने के लिये जिन अपने अनुचर वानरों को भेजा था, उनसे दक्षिण के देशों का विस्तृत विवरण कहकर यह बतलाया था कि वे मध्यदेशस्थ सरस्वती-नदी के उपकूल से होकर यात्रा करें। उन्होंने इस अंश को तीन भागों में विभक्त किया था—दंडकारण्य का उत्तर-भाग और विंध्याचल के पास का देश, समुद्र के पूर्व-उपकूल से कृष्णा-नदी तक का भू-भाग और कृष्णा-नदी के दक्षिण का भाग। सुग्रीव ने विंध्याचल के दक्षिण में द्वितीय भू-भाग के एक ओर विदर्भ, ऋषीक और माहीषक देशों का तथा दूसरी ओर कौशिक, कलिंग और बंग-देशों का उल्लेख किया है। उसके बाद दंडकारण्य की स्थिति का वर्णन है।। उसके बीच में गोदावरी-नदी के बहने का भी ज़िक्र है। दंडकारण्य

की अवस्थिति विंध्याचल और शैवल नाम के पहाड़ों के बीच बतलाई गई है। ये सब स्थान आर्यों के उपनिवेश थे, और इन्हें बड़ा परिश्रम करके उन्होंने बसाया था।

× × ×

८. कुछ जानने-योग्य बातें

१—हाल में मिस गारड (Miss Garrod) नाम की एक महिला ने जिब्राल्टर में एक पूरी खोपड़ी (skull) खोज निकाली है। उन्हें यह खोपड़ी डेविल्सटावर में प्राप्त हुई है। सर आर्थर कीथ ने इसे देखकर बतलाया है कि यह एक नियानडरथल बच्चे की खोपड़ी है, जिसकी अवस्था १८ वर्ष से अधिक न थी। इससे पहले इस जाति की ऐसी संपूर्ण खोपड़ी कोई नहीं मिली थी, अतएव इस खोपड़ी को बहुमूल्य वस्तु कहना चाहिए। प्रायः २०,००० वर्ष पहले योरप में इस जाति के लोग रहते थे, इसमें कोई संदेह नहीं। उनकी आकृति आजकल के मनुष्यों की आकृति से बिलकुल विभिन्न थी। सर विलियम ने बतलाया है कि नियानडरथल-जाति के लोगों के चेहरे पर ठोड़ी नहीं थी, और वे सीधे तनकर खड़े भी नहीं हो सकते थे।

२—इस बार संपूर्ण भारतवर्ष में ३ करोड़ ४७ लाख एकड़ ज़मीन में गेहूँ की खेती हुई थी। यह पहले वर्ष की अपेक्षा फ़ी सदी ४ एकड़ कम थी। इससे कुल ४७ लाख ४ हज़ार टन गेहूँ पैदा हुआ। यह फ़सल पहले वर्ष की अपेक्षा फ़ी सदी दो टन कम थी।

३—एक वैज्ञानिक ने हिसाब लगाकर बताया है कि पृथ्वी-भर में हर साल १,६०,००,००० बार वज्रपात होता है। अर्थात् प्रतिदिन ४४,००० का औसत पड़ता है। सबसे अधिक वज्रपात जावा-द्वीप में हुआ करता है।

४—नाइल-नदी में सबसे ज़्यादा मछलियाँ हैं। अब तक उसमें ६,००० जातियों की मछलियाँ मिल चुकी हैं।

५—ह्वेल मछली में सुनने की शक्ति इतनी तेज़ है कि ४फ़र्लांग के फ़ासले पर किसी नाव या जहाज़ का पहुँचना उसे मालूम हो जाता है, और वह फ़ौरन् डुबकी मार लेती है।

६—तीन बंगाली नवयुवकों ने साइकिल की सवारी पर सारी पृथ्वी का भ्रमण कर आने का इरादा किया है। यह उनका पहला अभियान नहीं है। गत वर्ष वे साइकिल पर चढ़कर कलकत्ते से काश्मीर तक ४,००० मील घूम आ चुके हैं। इस बार के भ्रमण में उन्हें कुल ३०,००० मील साइकिल पर चलना पड़ेगा।

७—अब तक हवाई जहाज़ पर बैठकर कोई उड़ाका ३२,००० फ़ीट से अधिक ऊँचे पर नहीं जा सका है। पर एक फ़्रेंच उड़ाके ने ४०,००० फ़ीट की ऊँचाई तक चढ़ने की घोषणा की है।

८—चीन में किसी-किसी जगह यह नियम है कि अगर कोई ऋण लेकर उसे चुकता नहीं कर पाता, तो महाजन आकर उसके सदरदरवाज़े के किंवाड़े उतार ले जाता है। मतलब यह कि—चीनियों के विश्वास के अनुसार—किंवाड़े न रहने से उस घर में भूत-प्रेत आदि आकर अनायास ही प्रवेश कर सकेंगे।

९—एक फ़्रेंच गाड़ीवान के शरीर में १२० तरह का गोदना गोदा हुआ है। इससे अधिक गोदना आज तक संसार के किसी भी शौक़ीन ने नहीं गोदवाया।

१०—एक बड़ा सा सूरजमुखी का फूल एक दिन में २ पिंट जल खींच लेता है, और एक प्रकार की ज़मीन ऐसी होती है, जिसमें बोई हुई काफ़ी की फ़सल चार महीने में ४७५ गैलन पानी पी जाती है।

११—सुना गया है, पेरिस की एक नाचनेवाली स्त्री रोज़ बहुत सा दूध स्नान करने में नष्ट कर डालती है। इसके लिये उस पर मुक़द्दमा भी चला है। एक ही नहीं, अनेकों फ़्रांस की फ़ैशनेबुल औरतें इसी तरह दूध से नहाती हैं। मज़ा तो यह है कि फ़्रांस में दूध बहुत महँगा है और बच्चों के पीने को भी काफ़ी नहीं मिलता।

१२—हमारे देश में बेहद साँप निकलते और मार डाले जाते हैं। पर उनसे हमें कोई लाभ नहीं होता। किंतु योरपवाले ऐसे व्यापारी हैं कि वे साँप के चमड़े को भी काम का बनाकर उससे बहुत कुछ लाभ उठा रहे हैं। योरप में दस्ताने, मनीबेग, यहाँ तक कि जूते तक साँप के चमड़े के बनने लगे हैं। अजगर के मोटे चमड़े के ओवरकोट तक बनते हैं, और शौक़ीन लोग उन्हें बड़े शौक़ से पहनते हैं। इसलिये उनकी माँग भी बाज़ार में काफ़ी है।

१३—कनाडा में कृषि-कौंसिल के मेंबरों ने किसानों को ऋण देने की एक व्यवस्था तैयार की है। यह मसविदा शीघ्र ही कनाडा-सरकार के सामने पेश होगा। मसविदे का सारांश यह है कि सरकार कुछ बांड बेचकर सर्वसाधारण से रुपए प्राप्त करेगी। उसके बाद बांडों पर सरकार जो सूद देगी, उससे सिर्फ़ एक रुपया अधिक सूद

पर कई वर्षों के लिये किसानों को बे-हवए दिए जायँगे। प्रांतीय सरकार अथवा कनाडा की डोमिनियन सरकार उक्त बांडों की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेगी। उक्त मसविदे की कार्य-प्रणाली का भार प्रांतीय सरकार के हाथ में रहेगा। क्या हमारे यहाँ की सरकार भी किसानों के लिये ऐसा बंदोबस्त करने की कभी कृपा करेगी?

१४—प्रत्येक मनुष्य को शरीर की रक्षा के लिये कितना आहार नित्य आवश्यक है, यह कोलंबिया-युनिवर्सिटी के अध्यापक डॉक्टर शार्मैन ने इस प्रकार बतलाया है—मछली व मांस फ़ी सदी १२ भाग, दूध और अन्य गोरस फ़ी सदी १४ भाग, रोटी और अन्य अन्न फ़ी सदी १३ भाग, सब्ज़ी फ़ी सदी ६ भाग, चीनी फ़ी सदी ३ भाग, विविध पदार्थ फ़ी सदी ५ भाग।

× × ×

१. संयुक्त-प्रांत में प्रारंभिक शिक्षा

अक्सर सुन पड़ता है कि शिक्षा में हिंदुओं से मुसलमान बहुत पिछड़े हैं। और, इसीलिये वे सरकार से रियायती नौकरियाँ माँगते हैं। परंतु वास्तव में क्या यह सत्य है कि मुसलमान हिंदुओं से शिक्षा में पिछड़े हैं? हम यहाँ पर संयुक्त-प्रांत की प्रारंभिक शिक्षा का हाल सहयोगी अभ्युदय के एक अंक से उद्धृत करते हैं। पाठक देखें, प्रारंभिक शिक्षा में हिंदू पिछड़े हैं या मुसलमान। अच्छा, नीचे की तालिका देखिए—

ज़िले का नाम	हिंदू: कुल आबादी में फ़ी हज़ार	हिंदू: स्कूलों के विद्यार्थियों में फ़ी हज़ार बालक	हिंदू: पढ़े लिखों की संख्या फ़ी हज़ार (बालक)	मुसलमान: कुल आबादी में फ़ी हज़ार	मुसलमान: स्कूलों के विद्यार्थियों के हज़ार बालक	मुसलमान: पढ़े लिखों की संख्या फ़ी हज़ार में
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)
देहरादून	८६७	८७५	१५१	१०३	१२५	१४६
सहारनपूर	६८८	६६०	६२	३१२	३१०	६४
मुज़फ़्फ़रनगर	७२५	७७८	५५	२७५	२२२	४६
मेरठ	७६३	८१५	७४	२०७	१८५	५४
बुलंदशहर	८२८	८३०	७१	१७२	१६०	५७
अलीगढ़	६०३	८४६	८६	६७	१५१	६६
मथुरा	६१३	६०५	८६	८७	६५	६४
आगरा	६३७	८७६	६६	६३	१२४	११३
मैनपुरी	६५१	८८६	४७	४६	११४	६६
एटा	६०८	८६८	५३	६२	१३२	५४
बरेली	७७१	३७१	५५	२२६	६२६	६४
बिजनौर	६६८	६४७	५८	३३२	३५३	५५
बदायूँ	८५६	७१४	३६	१४४	२८६	५६
मुरादाबाद	६८०	४४१	५७	३२०	५५६	५६
शाहजहाँपुर	८६२	७०२	५६	१०८	२६८	७३
पीलीभीत	८४३	७२३	५१	१५७	२७७	७१
फ़र्रुख़ाबाद	६०१	८४८	७४	६६	१५२	८५
इटावा	६५६	६२५	७२	४४	७५	६४
कानपुर	६४०	८७६	६५	६०	१२४	१२६
फ़तहपुर	८६२	८४६	८६	१०८	१५४	६३
इलाहाबाद	८६१	७८२	६८	१०६	२१८	१३०
बाँदा	६४६	८८७	८०	५१	११३	१२२
हमीरपुर	६३५	८८७	८६	६५	११३	१४३
झाँसी	६७२	८८६	६५	२८	११४	१७०
जालौन	६५२	८७३	१२२	४८	१२७	१२७
बनारस	६४५	८६२	१५६	५५	१०८	१३५
मिर्ज़ापुर	६५१	८४३	७७	४६	१५७	१७१
जौनपुर	६२१	८६६	८३	७६	१३४	११६
ग़ाज़ीपुर	६१६	८२६	६०	८४	१८०	१६२
बलिया	६३६	८७६	६६	६१	१२१	१६५
गोरखपुर	६०२	८७७	५०	६८	१२३	४४
बस्ती	८३१	७६५	५७	१६६	२०५	३८
आज़मगढ़	८८२	८१०	६४	११८	१६०	१०७
नैनीताल	८०३	८२६	१३५	१६७	१७४	६१
अलमोड़ा	६६७	६६०	१३२	०३	१०	१६१
गढ़वाल	६६३	६६३	१४७	०७	७	१०५
लखनऊ	८८३	६४६	८८	११७	३५१	१५८
उन्नाव	६१८	८५८	७०	८२	१४२	८१
रायबरेली	६१७	८३३	७७	८३	१६७	१३६
सीतापुर	८५८	७२०	५३	१४२	२८०	५०
हरदोई	६०१	८३०	५५	६६	१७०	६६
खेरी	८५४	८१५	४२	१४६	१८५	४२
फ़ैज़ाबाद	६०५	८१५	५२	६५	१८५	८०
गोंडा	८३७	७५७	४६	१६३	२४३	४३
बहराइच	८०६	७१६	४१	१६४	२८१	४५
सुलतानपुर	८८६	७८०	४५	११४	२२०	५६
परतापगढ़	८६३	८१०	६५	१०७	१६०	८६
बाराबंकी	८३१	७१०	४१	१६६	२६०	७०
संयुक्त-प्रांतीय जोड़	७७४	८१६	७०	१२६	१८४	७४

(अ) २, ४, ५ और ७वें ख़ानों के अंक संयुक्त-प्रांत की सन् १६२१ की मर्दुमशुमारी के पहले और दूसरे भागों से लिए गए हैं।

(ब) ३रे और छठे ख़ानों के अंक डिस्ट्रिक्ट

बोर्ड की शिक्षा-रिपोर्ट सन् १९२३ और २४ से लिए हैं।

(स) ४वें और ७वें ख़ानों के हिंदसों को छोड़कर अन्य सब ख़ानों के हिंदसे डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के अधिकार में रहने-वाले ग्रामों से संबंध रखते हैं। यानी कंटूनमेंट और म्युनिसिपलिटी को छोड़कर।

(द) ४वें और ७वें ख़ाने के हिंदसों में कंटूनमेंट और म्युनिसिपलिटी सम्मिलित हैं।

× × ×

१०. भारत के दुर्भिक्ष

भारत में ही क्या, संसार के सभी देशों में दुर्भिक्ष पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं। अतिवृष्टि या अनावृष्टि ही के कारण प्रायः दुर्भिक्ष पड़ते हैं। भारत में लेकिन पहले इतनी जल्दी-जल्दी दुर्भिक्ष नहीं पड़ते थे, और न वे आजकल की तरह एक साथ कई-कई प्रांतों में व्याप्त होते थे। ब्लेयर साहब ने 'भारत में दुर्भिक्ष' नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसमें से हम भारत के गत दुर्भिक्षों का सूची यहाँ देते हैं—

सन्	स्थान	सन्	स्थान
९४२	उत्तर-भारत	१७९०	बंबई
१२००	उड़ीसा	१७९२	उड़ीसा
१३४५	दिल्ली	१७९४	बंबई
१३९६	दक्खिन	१७९९-१८०१	मदरास
१४७१	उड़ीसा	१८०३	पश्चिमोत्तर-प्रदेश व पंजाब
१५२१	बंबई	१८०७	बंबई
१५४०	,,	१८१०	,,
१५५६	दिल्ली	१८१२	,,
१५९६	मध्यप्रदेश	१८१३	पश्चिमोत्तर-प्रदेश व राजपूताना
१६३१	दक्खिन		
१६६१	पश्चिमोत्तर-प्रदेश और पंजाब	१८१९	पश्चिमोत्तर-प्रदेश
		१८२०-२२	बंबई
१७०३	बंबई	१८२५-२७	पश्चिमोत्तर-प्रदेश
१७३३	,,	१८३२	पश्चिमोत्तर-प्रदेश व मदरास
१७३९	×	१८३४	बंबई
१७४४	×	१८३६	बंबई व मदरास
१७५२	×	१८३७	पश्चिमोत्तर-प्रदेश
१७५९	बंबई और सिंध	१८५३	मदरास
१७६५	,,	१८६०	पश्चिमोत्तर-प्रदेश, पंजाब और बंबई
१७७०	बंगाल	१८६५	उड़ीसा व बंगाल
१७७३	बंबई	१८६८-७०	पश्चिमोत्तर-प्रदेश और राजपूताना
१७८३	पश्चिमोत्तर-प्रांत व पंजाब	१८७३	बंगाल
१७८६	बंबई		
१७८९-९२	मदरास		

यह सूची पूर्ण नहीं है। सरकार की स्वार्थ-पूर्ण लापरवाह शासन-प्रणाली के कारण अथवा शत्रुओं के आक्रमण से जो दुर्भिक्ष पड़े हैं, उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जाता।

SANYASI ASHRAM SARGODHA'S

पत्रावली

[illegible]

[illegible] M. L. Sargodha (India)

४२ वर्ष

से क्यों अपना नाम रोशन कर रहा है ?

महासुगंधित, सर्व-जन-प्रशंसित, महोपकारी

डॉक्टर एस्० के० बर्मन का

केशराज तैल

का व्यवहार करते ही सभी आपसे पूछेंगे

कि इस तैल का नाम क्या है ?

यदि आप वसंत ऋतु का आनंद अपने कुंज-कुटीर में लेना चाहते हैं, तो नित्य व्यवहार के लिये और अपने इष्टमित्रों को "केशराज तैल" उपहार दीजिए।



देखिए।

'केशराज तैल' पर "माधुरी" की राय—

'केशराज तैल' का इस्तेमाल हमने खुद किया, और बाजार के सभी केश-तैलों से सुगंध आदि गुणों में बढ़कर पाया।

केशराज तैल—वास्तव में तैलों का राजा ही है। शौक़ीनों को एकबार मँगाकर इस की परीक्षा अवश्य करनी चाहिए।

यह कार्यालय अपनी सच्चाई और योग्यता के लिये **भारत-भर में प्रसिद्ध** हो चुका है यहाँ से कोई चीज़ मँगाने में ठगे जाने का ज़रा भी खटका नहीं है।

संपादक 'माधुरी'
जुलाई १९२५ ई०

मूल्य प्रति शीशी १) डा० म० ।=)

७६

पता:—डॉक्टर एस्०के०बर्मन, पोस्टबक्स नं० ५५४ (विभाग नं० ११०) कलकत्ता

एजेंट-लखनऊ (चौक) में सारी दवाएँ तथा 'यह तैल' नेशनल मेडिकलहाल में डॉ० गंगाराम जे तिवारी के पास मिलेंगी

क्या आप विज्ञापन छपाकर लाभ उठाना चाहते हैं ?

तो

माधुरी में अपना विज्ञापन छपाइए ।

क्यों

माधुरी लोक-प्रिय पत्रिका है और इसके विज्ञापकों को सबसे अधिक लाभ होता है ।

इसके सबूत के लिये माधुरी के विज्ञापन पृष्ठ गिनिए

अस्तु, आज ही अपना विज्ञापन भेजिए

विज्ञापन छपाने के नियम

(क) विज्ञापन छपाने के पूर्व कँट्रैक्ट-फ़ार्म भरकर भेजना चाहिए। कितने समय के लिये और किस स्थान पर छपेगा इत्यादि बातें साफ़-साफ़ लिखना चाहिए ।

(ख) झूठे विज्ञापन के ज़िम्मेदार विज्ञापनदाता ही समझे जायँगे । किसी तरह की शिकायत साबित होने पर विज्ञापन रोक दिया जायगा ।

(ग) साल-भर का या किसी निश्चित समय का ठेका तभी पक्का समझा जायगा, जब कम-से-कम तीन मास की विज्ञापन-छपाई पेशगी जमा कर दी जायगी और बाक़ी भी निश्चित समय पर अदा कर दी जायगी । अन्यथा कँट्रैक्ट पक्का न समझा जायगा ।

(घ) अश्लील विज्ञापन न छापे जायँगे ।

ख़ास रियायत

साल-भर के कँट्रैक्ट पर तीन मास की पेशगी छपाई देने से ६।) फ़ी सदी, ६ मास की देने से १२॥) और साल-भर की पूरी छपाई देने से २५) फ़ी सदी, इस रेट में, कमी कर दी जायगी ।

विज्ञापन-छपाई की रेट

साधारण पूरा	पेज	३०)	प्रति	बार
,, ½	,,	१६)	,,	,,
,, ¼	,,	१०)	,,	,,
,, ⅛	,,	६)	,,	,,
कवर का दूसरा	,,	५०)	,,	,,
,, तीसरा	,,	४५)	,,	,,
,, चौथा	,,	६०)	,,	,,
दूसरे कवर के बाद का	,,	४०)	,,	,,
प्रिंटिंग मैटर के पहले का	,,	४०)	,,	,,
,, ,, बाद का	,,	४०)	,,	,,
प्रथमरंगीनचित्रकेसामनेका	,,	४०)	,,	,,
लेख-सूची के नीचे आधा	,,	२४)	,,	,,
,, ,, चौथाई	,,	१५)	,,	,,
प्रिंटिंग मैटर में आधा	,,	३०)	,,	,,

पता—मैनेजर माधुरी, लखनऊ ।

माधुरी की पिछली संख्याएँ

माधुरी के प्रेमी पाठकों ने हमसे समय-समय पर पिछली संख्याएँ भेजने के लिये आग्रह किया है। पिछली संख्याओं के अभी कुछ सेट भी बाक़ी रह गए हैं। अतः ऐसी अवस्था में जिनके फ़ाइलों में निम्न-लिखित संख्याओं में जो संख्याएँ न हों, अभी मँगाकर अपना सेट पूरा कर लें। अन्यथा प्रतियाँ शेष न रहने पर हम देने से असमर्थ होंगे।

प्रथम वर्ष की संख्याएँ

फुटकर संख्याएँ

तीसरी (आश्विन की) संख्या		२)
छठी (पौष की)	,,	२)
आठवीं (फाल्गुन की)	,,	२)
नवीं (चैत्र की)	,,	॥।)
दसवीं (वैशाख की)	,,	॥।)
ग्यारहवीं (ज्येष्ठ की)	,,	१)
बारहवीं (आषाढ़ की)	,,	१)

नोट—चारों संख्याएँ एकसाथ लेने से ३); इनमें बड़े ही मनोरंजक लेख और मनोहर चित्र निकले हैं।

प्रथम वर्ष

सजिल्द सेट

इनकी जिल्दें मज़बूत और सुंदर कपड़े की बनी हैं, जिन पर सुनहरे अक्षरों में माधुरी का नाम इत्यादि आवश्यक बातें लिखी हैं। सेट देखते ही हाथ में ले लेने को तबियत छटपटाने लगेगी। ये सेट क्या हैं, पुस्तकालयों और वाचनालयों की शोभा हैं। १० पुस्तकें और न रखकर एक सेट माधुरी का रक्खें, तो अधिक अच्छा होगा।

१ से ६ संख्याओं तक—२०); इन्हें प्रेमी पाठकों ने २५)-२४) प्रति सेट देकर ख़रीद लिया है। ७ से १२ संख्याओं तक—प्रति सेट मूल्य ६)

द्वितीय वर्ष की संख्याएँ

इस वर्ष की १२ संख्याओं में केवल प्रथम संख्या अप्राप्य है। बाक़ी संख्याओं की अधिक-से-अधिक ५० प्रतियाँ तक बाक़ी रह गई हैं। जिन प्रेमियों को जिस संख्या की आवश्यकता हो, लौटती डाक से लिखकर मँगा लें। मूल्य प्रत्येक संख्या का १)

द्वितीय वर्ष

इन संख्याओं के सुंदर जिल्ददार सेट भी मौजूद हैं। जिनमें प्रथम संख्या भी मौजूद है। ऐसे केवल प्रथम खंड के २३ और दूसरे के ४० सेट बाक़ी रह गए हैं। जो प्रेमी पाठक लेना चाहें, प्रत्येक के लिये ५) भेजकर शीघ्र मँगा लें। अन्यथा निकल जाने पर फिर न मिल सकेंगे।

तृतीय वर्ष की संख्याएँ

इस वर्ष की फुटकर संख्याओं में केवल पहली, तीसरी, चौथी और सातवीं से बारहवीं तक सभी मिल सकती हैं। प्रत्येक का मूल्य ॥।) जितनी या जिस संख्या की आवश्यकता हो, लौटती डाक से लिखकर मँगा लें।

तृतीय वर्ष

इनके सुंदर सेट भी लगभग ५० की संख्या में बाक़ी रह गए हैं। जो सज्जन चाहें ५) प्रति सेट के हिसाब से मँगवा सकते हैं। एकसाथ दोनों सेट लेने से ९) में ही दे दिए जायँगे। विलंब से आर्डर आने से, हम नहीं कह सकते कि दे सकेंगे।

नोट—हमारे प्रत्येक सेट ऐसे मनोहर, और मज़बूत बँधे हैं कि बाज़ार में ३) देने पर भी नहीं बँध सकते। सुंदर कपड़ा और उसके ऊपर स्वर्णाक्षरों का काम सुंदरता को दोबाला करता है। किसी बढ़िया-से-बढ़िया लाइब्रेरी में भी रखने से माधुरी की शोभा श्रेष्ठतम रहेगी। अतः प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि अपने इच्छित अंक और सेट फ़ौरन् मँगवा लें।

निवेदक—मैनेजर माधुरी, लखनऊ

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ७॥), छ मास का ४) और प्रति संख्या का ॥) है। वी० पी० से मँगाने में =) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ९), छ महीने का ५) और प्रति संख्या का ॥=) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है, और प्रति मास शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को पत्रिका प्रकाशित हो जाती है। लेकिन ग्राहक बननेवाले चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो अगले महीने के शुक्ल-पक्ष की सप्तमी तक कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। लेकिन उक्त तिथि के बाद सूचना मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा, और उस संख्या को ग्राहक ॥-) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना संचालक गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ या मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाक-घर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १५ रोज़ पेश्तर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंज़ूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए। हाँ, चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक ख़र्च प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

पं० दुलारेलाल भार्गव

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई			...	...२०)	प्रति	मास
½ ,, या १	,,	,,	...	... १६)	,,	,,
¼ ,, या ½	,,	,,	...	... १०)	,,	,,
⅛ ,, या ¼	,,	,,	...	... ६)	,,	,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ४,००,००० पढ़े-लिखे, धनी मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्व-श्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एवं प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या १०-२० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से अपेक्षाकृत कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो कीजिए।

मैनेजर माधुरी, लखनऊ



[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ५	आश्विन-शुक्ल ७, ३०३ तुलसी-संवत् (१९८३ वि०)—	संख्या ३
खंड १	१३ ऑक्टोबर, १९२६ ई०	पूर्ण संख्या ५१

तुमसे

नव पल्लव कंपित अधरों पर,
विकल वेदना मड़राने लगती बन जब मुसकान —
आह ! उस मूक रुदन का मर्म,
समझ तब मैं जाता तत्काल ।
(छिपाकर रखते हो दिन-रात,
जिसे तुम उर में —परदा डाल !)
और, बरबस करना पड़ता मुझको अपने दुख का अवसान !
सजल नयनों में भरकर एक,
सजग करुणा की करुण पुकार !
व्यथित हो, भर-भर गरम उसास—
शीश निज नत कर, वारंवार—,
रखते रहते, किस गंभीर भाव से, हो मुख मेरा म्लान !
चपल मन के सब खेल बिगाड़—
विफल आशा का रुदन अधीर,
सृष्टि कर उर में हाहाकार—
जगाए रहना क्योंकर पीर !
चाहते हो करना क्या लाभ इसी का, बन अजान अब, ज्ञान ?
जलन-ज्वाला यह अपनी ओर—
अधिक मत धधकाओ, सुकुमार !
झुलस जाएगा, सोया पड़ा—
पड़ा जो शिशु-सा है वह प्यार !
बंद कर दो यह निर्दय द्वंद, त्याग मेरे सुख-दुख का ध्यान
सघन इस कोलाहल में कौन,
किसी का सुनता हाहाकार ?
वेदना का विक्षिप्त विनोद,
समझ ही क्या सकता संसार ?
रहे निज नंदन-वन को नोच बना तुम क्यों फिर नग्न मसान ?
क्षीण यह अंतिम लौ किस भाँति
दिखावे अब छवि अरुण-सहास ?
स्नेह-विरहित दीपक की साँस—
बद करती है अनिल-उसास !
आह ! अब रहे व्यर्थ इसके ऊपर अचल अपना तुम तान !

श्रीजनार्दनप्रसाद झा "द्विज"

श्रीरघुनाथजी की मिथिला-यात्रा

गत वर्ष की माधुरी की तीसरी संख्या में आप लोगों ने अहल्या-उद्धार की कथा पढ़ी थी। आज हम आपको श्रीराम-जानकी-विवाह की कथा सुनाते और साथ ही-साथ मिथिला की सैर भी कराते हैं।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्रजी के साथ सरयू के दक्षिण-तट पर चलते-चलते अयोध्या से जब डेढ़ योजन (अध्यर्द्धयोजन *) निकल गए, तब विश्वामित्रजी ने रघुनाथजी को बला और अतिबला-विद्याएँ सिखाईं, और रात को तीनों वहीं तृण-शय्या पर (पयाल बिछाकर) सो रहे। दूसरे दिन सवेरे उठकर, नित्य-कर्म करके, चल खड़े हुए, और सरयू गंगा के संगम पर उस स्थान को देखा, जहाँ शिवजी ने काम को अनंग किया था।

इस पवित्र स्थान पर बहुत-से तपस्वी रहते थे। विश्वामित्रजी ने कहा — चलो आज रात को दोनों नदियों के बीच इसी आश्रम में रहें : कल सवेरे हम लोग नदी (गंगा) पार करेंगे। इससे यह ध्वनि निकलती है कि विश्वामित्रजी अयोध्या से चलकर दो ही दिन में सरयू-गंगा के संगम पर पहुँचे थे। आजकल सरयू-गंगा का संगम छपरा-ज़िले में रेविलगंज के पास है, और आजकल के अयोध्या-नगर से, जल-मार्ग से, १५० मील दूर है। यदि हम चार कोस (८ मील) का योजन मानें, तो पहले दिन की यात्रा ६ कोस की हुई, और दूसरे दिन उन लोगों को ६६ कोस (१३८ मील) चलना पड़ा होगा। एक महर्षि और महायोगीश्वर हरि के अवतार के लिये यह कोई बात असंभव नहीं है : परंतु मानुषी लीला के प्रतिकूल अवश्य है। प्रथम तो पहले दिन की यात्रा को देखिए। यदि राजभवन से डेढ़ योजन अयोध्या की सीमा के भीतर ही हो जाय, तो कोई न कहेगा कि अयोध्या से डेढ़ योजन पर ठहरे। हमने अयोध्या-शीर्षक अँगरेज़ी लेख* में दिखा दिया है कि अयोध्या-नगर तीन योजन चौड़ा और बारह योजन लंबा था, और उसके पूर्व की सीमा सरवा † थी, जो सरयू-तट पर, आजकल की अयोध्या से २२ मील दूर है। परंतु यहाँ से भी संगम १२० मील रह जाता है। पुराना संगम बलिया के पास है, और नए संगम से ५० मील पश्चिम है। यदि यह वाल्मीकि के समय का संगम मान लिया जाय, तो दूरी में २० ही मील का अंतर पड़ जाता है। बलिया-ज़िले में एक स्थान कारों है, जिसे लोग पुराना 'कामारण्य' बताते हैं। आजकल यह स्थान पुरानी सरयू के तट पर बक्सर से ९ मील उत्तर है। संभव है, उस समय यहीं संगम रहा हो : और गंगाजी कुछ दक्षिण हटीं, इससे संगम बलिया के पास चला गया। हज़ारों वर्ष पीछे सरयू-नदी ने अपनी धारा पूर्व की ओर चलाई, और संगम ५० मील पूर्व चला गया। बलिया में एक बहुत बड़ा ताल सुरहा के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है, जिन दिनों सरयू की धारा यहाँ बहती थी, यहाँ एक बड़ा भारी कुंड था। धारा हट गई, और कुंड में जल भरा रह गया, जो अब तक है।

दूरी के विचार से हम यही अनुमान करते हैं कि पहले दिन सरवा से ६ कोस पर ठहरे, और दूसरे दिन गंगा-तट पर नहीं पहुँचे, वरन् जिस स्थान पर विद्या दी गई थी, वहाँ से चलकर लिखने-योग्य मंज़िल कामारण्य में हुई। बीच में वे जहाँ जहाँ ठहरे, वे कोई प्रसिद्ध स्थान नहीं थे, इसलिये उनका उल्लेख नहीं किया गया।

कामारण्य से चलकर गंगा पार की, और एक घने वन में पहुँचे, जहाँ पहले मलद और कारूप-प्रांत थे, जिन्हें ताड़का ने उजाड़ दिया था। आजकल इस प्रांत का प्रसिद्ध नगर डुमराँव है। ताड़का ताड़-गाँव की रहनेवाली बताई जाती है। यह गाँव ईस्ट इंडिया के रघुनाथपुर-स्टेशन से ५ मील दक्षिण है, और अब भी वहाँ एक

---

* वाल्मीकीय रामायण, बालकांड, २२—११८ निर्णय-सागर-प्रेस—शाके १८२४। योजन की लंबाई का विचार आगे किसी अवसर पर किया जायगा।

* इसका हिंदी-अनुवाद सम्मेलन-पत्रिका में छप चुका है।

† यह स्थान फ़ैज़ाबाद-ज़िले में सरयू-तट पर दिलासीगंज के पूर्व है, और प्रसिद्ध है कि ऋष्यशृंग ने यहीं पुत्रेष्टि यज्ञ किया था। वैदिक यज्ञ सदा नगर के बाहर हुआ करते थे। आजकल यहाँ चैत्र और कार्तिक में मेला लगता है।

टीला दिखाया जाता है, जिस पर, कहते हैं, ताड़का रहती थी। यहाँ पहुँचने पर विश्वामित्र ने श्रीरघुनाथजी को समझाया कि ताड़का यद्यपि स्त्री है, फिर भी उसके मारने में गऊ-ब्राह्मणों का हित है। इससे तुम पर कोई कलंक न लगेगा। विश्वामित्र ने कई उदाहरण भी दिए, जिनमें पुरुषों द्वारा अधर्मी स्त्रियों के वध का वर्णन किया। इस पर श्रीरघुनाथजी ने धनुष चढ़ाकर टंकार किया, जिससे ताड़का-वन के रहनेवाले सब लोग चौंक पड़े। ताड़का क्रोध करके गर्जती हुई उन पर भी दौड़ी, और धूल बरसाकर उनको बेसुध कर दिया। श्रीराम और लक्ष्मण ने बाणों की वर्षा से उसके हाथ काट दिए; परंतु ताड़का उन पर पत्थरों की वर्षा करती ही रही। अंत को जब सूर्य अस्त होने लगा, तो विश्वामित्र ने कहा, राक्षस लोग रात को बड़े प्रबल हो जाते हैं। इस पर श्रीराम ने उसकी छाती में ऐसा बाण मारा कि वह गिर पड़ी, और मर गई।

ताड़का के मारे जाने से प्रसन्न होकर विश्वामित्रजी ने श्रीरामजी को अनेक अस्त्र-शस्त्र दिए, और सिद्धाश्रम को पहुँचे, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा कर (अध्यात्मरामायण के अनुसार) अहिरौली पहुँचकर श्रीराम ने अहल्या का उद्धार किया। परंतु वाल्मीकीय रामायण के अनुसार विश्वामित्र के साथ दोनों भाई सोन-तट पर पहुँचे, और वहाँ नाव पर चढ़कर गंगा पार की। पटने के सामने हाजीपुर में आजकल श्रीरघुनाथजी का एक मंदिर बना हुआ है। कहते हैं, इसी स्थान पर गंगा पार करके उन्होंने विश्राम किया था। इसके उपरांत तीनों नाव पर चढ़कर गंडकी-नदी में चलते-चलते विशाला पहुँचे, जिसे आजकल 'बिसाढ़' कहते हैं। यहाँ सुमति नाम का एक इक्ष्वाकु-वंशी राजा था। सुमति ने इनका अतिथि-सत्कार किया। विशाला में नाव छोड़ दी गई, और पैदल यात्रा हुई। यहाँ इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्हीं दिनों महाराज जनक जनकपुर से चौदह मील उत्तर, पहाड़ के नीचे, यज्ञ कर रहे थे, और उन्होंने विश्वामित्रजी को अपने यज्ञ में आने के लिये निमंत्रण दे रक्खा था। विश्वामित्रजी वहीं जा रहे थे। अपने आश्रम को चलते समय उन्होंने राजकुमारों से उस अपूर्व धनुष की चर्चा भी कर दी थी, जिसके तोड़नेवाले को राजा जनक ने अपनी बेटी सीता देने की प्रतिज्ञा की थी। जिस स्थान पर यज्ञ हो रहा था, उसको वाल्मीकिजी का यज्ञवाट कहते हैं। विशाला से यज्ञवाट जाते हुए रास्ते में जिस स्थान पर अहल्या का उद्धार हुआ, उसको आजकल 'अहियारी' कहते हैं।

अहियारी एक छोटा-सा गाँव है, जो कमतौल के दक्षिण-पूर्व-कोने में हरलखा या सिमरी की सड़क के किनारे बसा हुआ है। पिछली मर्दुमशुमारी के समय इसकी आबादी २,१०८ थी। वहाँ चैत्र के महीने में अहल्या स्थान या सिंहेश्वर-थान के नाम का मेला लगता है। यात्री पहले फ़िरसत-परगने के देवकली-कुंड में स्नान करके अहल्या-स्थान के मंदिर में श्रीसीताजी के चरण-चिह्नों के दर्शन करते हैं। इसी के पास एक बहुत बड़ा मंदिर (ठाकुर-बाड़ी) है, जो दूर से देख पड़ता है। यह मंदिर दरभंगा-राज का बनवाया हुआ है, और वहीं से इसका प्रबंध किया जाता है।

विशाला-राज्य बहुत बड़ा न था, और ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन अहल्या-आश्रम (वाल्मीकि के अनुसार) या तो मिथिला के अंतर्गत था, या उसके सिवाने पर। यहाँ हम यात्रा-वर्णन को रोककर मिथिला का वर्णन करते हैं।

मिथिला का प्रसार दक्षिण की ओर गंगाजी तक, उत्तर में हिमालय तक, पूर्व में कोसी तक और पश्चिम में गंडकी तक माना जाता है, जैसा एक फ़ारसी-वाक्य से प्रकट है—

از کوسی تا گوس واز گنگ تا سنگ

इससे वह राज्य, जो वैशाली के नाम से गंगा और दोनों गंडकों के बीच में था, अलग था। कोसी-नदी के तट का वन चंपारण्य कहलाता था। शक्ति-संगम-सूत्र में मिथिला की सीमाएँ यों लिखी हैं—

गण्डकीतीरमारभ्य चम्पारण्यान्तके शिवे।

गंडकी-तीर से चंपारण्य तक का देश विदेह कहलाता है, और इसको तीरभुक्ति भी कहते हैं। आजकल के ज़िले चंपारन, मुज़फ़्फ़रपुर, दरभंगा, कुछ-कुछ मुंगेर, भागलपुर, पुर्निया और नेपाल की तराई का वह टुकड़ा, जो इन ज़िलों और हिमालय की तलहटी के बीच में है, मिथिला के अंतर्गत थे। परंतु वैशाली राज्य मिथिला से सदैव अलग था। जब चीनी यात्री हुएनसांग

सातवीं शताब्दी में भारतवर्ष आया था, तब इस देश में समवज्जी राज्य करते थे। परंतु इससे उसके मिथिला से पृथक् होने में कोई बाधा नहीं पड़ती।

वैशाली के पश्चिम में बड़ी गंडक, पश्चिम-पूर्व में छोटी गंडक और दक्षिण में गंगा थी। छोटी गंडक, जिसको बूढ़ी गंडक भी कहते हैं, चंपारन-ज़िले में सुमिरमों पहाड़ी से निकलती है, और मुज़फ़्फ़रपुर-ज़िले से बहकर घोसवर-गाँव में पहुँचती है। फिर पश्चिम की ओर चली जाती है। मुज़फ़्फ़रपुर इसी के दक्षिण-तट पर बसा हुआ है। फिर यह बाघमती-नदी के समानांतर बया के किनारे दरभंगा-ज़िले में बहती है, और मुंगेर के सामने गंगा में जा मिलती है। इससे स्पष्ट है कि वैशाली-राज्य में चंपारन, मुज़फ़्फ़रपुर और दरभंगे के कुछ भाग सम्मिलित थे। मिथिला को 'तीरभुक्ति' भी कहते हैं, जिसका अपभ्रंश तिरहुत है। तीरभुक्ति तीर और भुक्ति से बना है, और इससे अभिप्राय उस देश से है, जो गंगा के किनारे बसा हुआ है। महामहोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्री का मत है कि ईसवी सन् की ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में सेन-वंश के राजों के शिलालेखों में भुक्ति-शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जिसमें आजकल सूबा। परंतु भुक्ति का यह अर्थ सेनों से बहुत पुराना है। भुक्ति के शासक को भोगपति कहते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि शुद्ध शब्द त्रिभुक्ति है, और इस प्रांत का यह नाम इसीलिये पड़ा कि यहाँ तीन यज्ञ किए गए थे—एक सीतामढ़ी में, जहाँ यज्ञभूमि से श्रीसीता निकली थीं; दूसरा हिमालय के तट पर धनुखा में, जहाँ धनुष तोड़ा गया; और तीसरा सीताजी के विवाह के समय। परंतु इस अर्थ के निकालने के लिये तीरभुक्ति को तोड़-मरोड़कर त्रिभुक्ति करना पड़ेगा, और यज्ञ के अर्थ में भुक्ति का प्रयोग कभी देखा भी नहीं गया।

विष्णुपुराण में मिथिला, विदेह और जनकजी की कथा यों लिखी है—

"इक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने हज़ार वर्ष का एक यज्ञ ठाना, और वसिष्ठजी से कहा कि तुम यज्ञ करा दो। वसिष्ठजी ने उत्तर दिया कि हम इंद्र का एक यज्ञ करा रहे हैं, जो पाँच सौ वर्ष में पूरा होगा। तुम तब तक ठहरे रहो। निमि ने न माना, और गौतम आदि अन्य ऋषियों को बुलाकर यज्ञ का प्रारंभ कर दिया। वसिष्ठजी इंद्र का यज्ञ पूरा कराकर निमि के पास गए, और गौतम को यज्ञ कराते देखकर आग-बबूला हो गए *। इस पर उन्होंने निमि को शाप दिया कि अब तुम देहधारी न रहो। निमि ने ऐसा ही शाप वसिष्ठजी को भी दिया, और दोनों ने मानव-शरीर त्याग दिया। इसके पीछे वसिष्ठ का जन्म उर्वशी के पेट से हुआ। निमि की लोथ यज्ञ समाप्त होने तक रक्खी रही। देवतों ने उन्हें फिर जिलाना चाहा; परंतु उन्होंने न माना। तब ऋषियों ने उनके शरीर को मथा, और इस रीति से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम, एक अद्भुत जन्म के कारण, जनक रक्खा गया। और, विदेह इस कारण रक्खा गया कि उसका पिता देहधारी न था। उसको मिथिल भी इसलिये कहते हैं कि वह मथने से उत्पन्न हुआ था। वाल्मीकीय रामायण में † केवल इतना ही लिखा है कि निमि नाम के एक बड़े धर्मात्मा राजा थे। उनके बेटे निमि हुए, और मिथि के जनक। जनक से मिथिला में जनक-वंश चला। कई पीढ़ी पीछे राजा ह्रस्वरोमा के दो पुत्र हुए—एक सीरध्वज, दूसरे कुशध्वज। ह्रस्वरोमा बड़े बेटे सीरध्वज को राज्य देकर वन को चले गए।"

पाणिनि ने मिथिला की उत्पत्ति और ही तरह लिखी है—

मिथिलादयश्च। १। ४७।

मथ्यन्ते रिपवो मिथिला-नगरी। अर्थात्—"जहाँ वैरी मथ डाले जायँ, उसको मिथिला-नगरी कहते हैं।"

पाणिनि का कथन हमको ठीक जचता है। अयोध्या के सूर्यवंशी राजों के पूर्व पुरुष इक्ष्वाकु थे। निमि उनके पुत्र थे। उनके एक भाई विशाला में जाकर बसे, और वैशाली-राज्य स्थापित किया। दूसरे पहाड़ के नीचे चले गए, और अपनी राजधानी का नाम अपने कुल की प्राचीन राजधानी अयोध्या के जोड़ का मिथिला रख दिया; क्योंकि अयोध्या का अर्थ है जिसे कोई जीत न सके। मथने की कथा पीछे से गढ़ ली गई है।

दरभंगा गज़ेटियर में लिखा है—"मिथिला वह देश है, जहाँ विदेह लोग पंजाब से आकर

* हम समझते हैं, तीर्थराज के प्रयागवाला का यह स्वभाव वसिष्ठ ही से मिला है। भेद इतना ही है कि वसिष्ठजी यजमान ही से बिगड़े, गौतम से न बोले। यहाँ गौतम ही का सिर फोड़ा जाता है।

† बालकाण्ड, सर्ग ७१।

बसे थे। उनके साथ सरस्वती-नदी के तट से अग्निदेव गए थे। जब गंडकी-नदी पर पहुँचे, तो देवता ने उनसे कहा कि इस नदी के पूर्व तुम लोग बस जाओ। तब से विदेह लोग गंडक के पूर्व रहने लगे, जहाँ उन्होंने दलदल साफ़ किया, धरती जोती, और एक बड़ा राज्य स्थापित किया।"

शतपथ-ब्राह्मण के बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि राजा जनक एक सिद्धांत के लिये अपने गुरु याज्ञवल्क्य को एक हज़ार गउएँ देना चाहते थे।

उनके यहाँ विद्वानों का अभाव देखकर पड़ोस का राजा अजातशत्रु उनसे ईर्षा करने लगा। जनक अपनी प्रजा के जनक (पिता) तो थे ही, ब्रह्मज्ञानी भी थे। यदि इन जनक या इनके किसी पूर्वज ने विदेह की पदवी पाई, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। 'विदेह'-शब्द का वही अर्थ है, जो जीवन्मुक्त का है। भारत में अशोक आदि अनेक ऐसे राजा हो गए हैं, जो साधुवृत्ति से रहकर बड़ी योग्यता से राजशासन भी करते थे। ऐसे राजा राजर्षि कहलाते थे। एक राजा ने विदेह की पदवी उपार्जित की, तो उसके वंशज भी अपने को वैदेह कहने लगे। इन्हीं के एक वंशज जनक वैदेह थे, जिनका उल्लेख बृहदारण्यक में है, और जो अपने गुरु याज्ञवल्क्य के साथ उस वेदांत के मूल-आचार्य हुए, जिसको उनके बहुत पीछे बादरायण ने परिणत किया गया।

हमारा यहाँ मिथिला के भूगोल से अभिप्राय है, न कि पुराने इतिहास से। पहले हम यज्ञवाट का वर्णन करेंगे, जहाँ रामचंद्रजी अहल्या का उद्धार करने गए थे। अस्तु, हमको यह निश्चय करना है कि यज्ञवाट कहाँ है। महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि यज्ञवाट अहल्य-स्थान से उत्तर-पूर्व की ओर है। इससे प्रकट है कि यह यज्ञवाट वह यज्ञस्थल नहीं हो सकता, जिसमें श्रीसीताजी का जन्म हुआ था। सीताजी का जन्मभूमि सीतामढ़ी में बताई जाती है, जो अहियारी से दक्षिण-पश्चिम है। यह दूसरा ही स्थान है। वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि जनकजी विश्वामित्र से भेंट करने आए, और उनसे कहा कि बारह दिन ठहरिए; इस बीच में यज्ञ पूरा हो जायगा। फिर पूछा कि ये कुमार कौन हैं, जो आपके साथ आए हैं? विश्वामित्र ने कहा, ये राजा दशरथ के पुत्र हैं। जो राक्षस हमारे यज्ञ का विध्वंस करते थे, उनका इन्हीं ने वध किया, और अहल्या का उद्धार करके उसे उसके पति को सौंप दिया है।

विश्वामित्र के आने का समाचार सुनकर शतानंद बहुत प्रसन्न हुए, विशेषकर जब उन्होंने जाना कि उनके पिता गौतम ने उनकी माता अहल्या का अपराध क्षमा कर दिया। फिर उन्होंने राजकुमारों से महर्षि की बड़ी प्रशंसा की। अगले दिन जनकजी ने इन सबको यज्ञ में बुलाया। यहाँ विश्वामित्र ने राजा से कहा कि राजकुमार शिवजी का धनुष देखना चाहते हैं। जनकजी ने उत्तर दिया, हमने प्रण किया है कि सीता को उसी को देंगे, जो धनुष तोड़ेगा। उन्होंने यह भी कहा कि कई पुरुषों ने धनुष को आज़माया; परंतु निराश होकर चले गए। विश्वामित्र जानते थे कि रघुनाथजी में अद्भुत शक्ति है, और इसलिये धनुष लाने का आग्रह किया। जनकजी ने अपने सेवकों को आज्ञा दी, और वे लोहे के संदूक़ में बंद धनुष ले आए। इससे प्रकट है कि धनुष यज्ञवाट में तोड़ा गया। यह स्थान आजकल धनुग्वा नाम से प्रसिद्ध है, और नेपाल-राज्य में जनकपुर से चौदह मील पर है। इसका सविस्तर वर्णन आगे किया जायगा।

विश्वामित्रजी का यज्ञ में निमंत्रण था, इसी से वह सीधे यज्ञभूमि को गए। यज्ञ होता रहा; किंतु यह वैदिक यज्ञ था, धनुष-यज्ञ नहीं। जब यहाँ धनुष तोड़ा गया, तब से जनक के वैदिक यज्ञ का नाम धनुष-यज्ञ पड़ गया।

यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि तीन यज्ञों की कथा निर्मूल हो गई; परंतु इसमें संदेह नहीं कि धनुष तोड़ने के समय दूसरा यज्ञ किया गया था।

विश्वामित्रजी यज्ञवाट में ठहर गए, और राजा जनक ने राजा दशरथ के पास दूत भेजे। यज्ञ पूर्ण होने के पीछे ये लोग राजधानी में चले आए, और बरात की प्रतीक्षा करने लगे।

इस यात्रा के संबंध की एक घटना और है, जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में नहीं है। यह फुलवाड़ी-लीला है। जिस स्थान पर यह लीला की गई, वह दरभंगा-ज़िले के बेनीपट्टी-थाने के ईशान-कोण में फुलहर-गाँव बताया जाता है।

मिथिला राजधानी की स्थिति के विषय में कोई विवाद नहीं है। विद्वानों का मत है कि उसी स्थान पर आजकल जनकपुर बसा हुआ है। जनकपुर नेपाल-राज्य के

मिथारी-ज़िले के कोरबी-परगने में, बी० एन्० डब्लू० रेलवे के जनकपुर-रोड पुपरी-स्टेशन से २४ मील और दरभंगे से ३२ मील है । ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री हुएनसांग के ब्रजियों की राजधानी चिंसुना की स्थिति इससे मिलती-जुलती है । यही मिथिला-नगरी थी, जहाँ से जनक के दूत चार दिन में अयोध्या पहुँचे थे, यद्यपि रामायण में यहाँ तक लिखा है कि उनके घोड़े थक गए थे —"क्लांतवाहाः"। अयोध्या से मिथिला सीधी राह से २२० मील और रेल से ३०० मील है । अयोध्या-घाट से गोरखपुर तक १९+७७= ९६ मील, गोरखपुर से नरकटियागंज होकर जनकपुररोड पुपरी तक ८९+९२=१८१ मील और जनकपुररोड से जनकपुर को २४ मील कच्ची सड़क है । हुएनसांग ने यहीं एक प्राचीन नगर का उल्लेख किया है, जिसमें बुद्धदेव अपने किसी पूर्व-जन्म के चक्रवर्ती राजा थे। कनिंघम केसरिया को यह स्थान बतलाते हैं, जो वैशाली से तीस मील पश्चिम-उत्तर है । यहाँ इस ज़िले की दोनों प्रधान सड़कें मिलती हैं—एक पटने से बेतिया को गई है, और दूसरी छपरे से गंडक पार करती हुई नेपाल को। हमारा यह अनुमान है कि अयोध्या से मिथिला की सड़क नेपाल की सड़क से केसरिया में मिलती थी और इसी से हमारे इस विचार की पुष्टि होती है कि मिथिला-राजधानी अयोध्या से २५ मील पूर्व थी, तथा जनक के दूतों ने अच्छे घोड़ों की सवारी से एक दिन में ६० मील की यात्रा की, जो कोई बड़ी बात नहीं ।

इस प्रकार मिथिला की स्थिति निश्चित हो गई। अब इसका विस्तार देखना चाहिए। तीर्थ-स्थानों की सीमा जानने के लिये परिक्रमा से बड़ी मदद मिलती है । परिक्रमा वह रास्ता है, जिस पर यात्री किसी स्थान के चारों ओर घूमते हैं । मिथिला की तीन परिक्रमाएँ होती हैं—

बृहत्, मध्यम, लघु । पहली परिक्रमा मिथिला की है, जिसकी सीमा ऊपर बताई गई है । यह परिक्रमा अगहन और उसके बाद किसी पाँच महीनों में होती है । यात्री पहले कोसी में स्नान करके सिंहेश्वर-शिवलिंग की पूजा करते हैं । फिर दक्खिन की ओर चलकर कोसी और गंगा के संगम में स्नान करते हैं, और वहाँ से पश्चिम चलकर गंगा और गंडक के संगम पर पहुँचते हैं । फिर गंडक के किनारे-किनारे उत्तर की ओर चलते हुए हिमालय पर्वत की तलहटी में पहुँचते हैं, और फिर पूर्व कोसी को जाते हैं । रास्ते में कोसी तट पर, एक वन में, रास्ते के जंगल में महादेव की पूजा और सिंहेश्वर-महादेव के दर्शन करके परिक्रमा समाप्त करते हैं । यह सीमा मिथिला-प्रांत की है, जो महर्षि विष्णु-पुराण और शक्ति संगम-मंत्र में दी है । दूसरी परिक्रमा फागुन-सुदि प्रतिपदा को विहारकुंड में स्नान करके उठाई जाती है, और यात्री लोग तीर्थों के दर्शन करके चतुर्दशी की संध्या को फिर वहीं पहुँच जाते हैं। पूर्णिमा को जनकपुर की परिक्रमा कर यह परिक्रमा समाप्त की जाती है ।

मध्यम-परिक्रमा अगहन, माघ और चैत्र में की जाती है । यह दरभंगा-ज़िले में भाखा-परगने के कलना ग्राम में कल्याणेश्वर का दर्शन करके शुरू होती है। यात्री वहाँ से दक्षिण ओर चलकर, रात को फुलहर में ठहरकर, भगवती गिरिजा के दर्शन करते हैं। फिर महतरी-परगने के भरी-गाँव में जलेश्वर-मंदिर को जाते हैं । वहाँ से कोराड़ी के जंगल में क्षीरेश्वर के दर्शन करते हैं, और फिर धनुषा में ठहरकर कल्याणेश्वर को लौट जाते हैं । इस परिक्रमा में पाँच दिन लगते हैं, और पुरानी राजधानी इसमें आ जाती है ।

लघु परिक्रमा बड़े महत्त्व की नहीं है । इसमें केवल मिथिला के मंदिरों का दर्शन किया जाता है ।

मिथिला की राजधानी जनकपुर का वर्णन करने से पहले मिथिला-प्रांत के अंतर्गत प्रसिद्ध प्राचीन स्थानों का वर्णन करना आवश्यक है । इनमें पहला स्थान सीतामढ़ी है । इस स्थान पर रघुनाथजी नहीं गए थे । सीतामढ़ी जनकपुर से २६ मील दक्षिण-पश्चिम, लखनौती के उत्तर-तट पर बसा हुआ है, और मुज़फ़्फ़रपुर-ज़िले के एक सब-डिवीज़न का सदर है । यहाँ चैत्र की रामनवमी को बड़ा मेला लगता है ।

यहीं यज्ञभूमि * में सीताजी की उत्पत्ति बताई जाती

* अद्भुत-रामायण के अनुसार श्रीसीताजी का जन्म कुरुक्षेत्र में हुआ था । उसका भी नाम देवयजन है । शतपथ-ब्राह्मण में लिखा है—

"देवा ह वै सत्रं निषेदुः । तेषां कुरुक्षेत्रं देवयजनमास ।" —"देवतों ने यहाँ यज्ञ किया । उनके यज्ञ का स्थान कुरुक्षेत्र था ।" परंतु हम सीतामढ़ी ही को यह श्रेय देंगे ; क्योंकि यह स्थान मिथिला के पास है ।

है, इसी से उनका नाम देवयजनसंभवा भी है। यज्ञभूमि की जगह एक घेरा है, जिसमें एक कुंड है, और राजा जनक के हल की कूंड़ के स्थान में एक पक्की नाली बनी हुई है। परंतु यह बनावटी है। वहीं पास ही मिथिला-किशोरीजी का एक सुंदर मंदिर भी है। इस मंदिर के अतिरिक्त यहाँ चार-पाँच मंदिर और भी हैं। सीतामढ़ी से तीन मील दक्षिण पनौरा को भी कुछ लोग सीताजी की जन्मभूमि बताते हैं। वहाँ भी एक ताल और एक मंदिर है।

धनुखा—धनुखा का नाम ऊपर आ चुका है। यही वाल्मीकि का यज्ञवाट है। यह तीर्थ आजकल नेपाल-राज्य में कोरड़ी-परगने के कुसुमा-गाँव में है। यहाँ विकट वन में एक पत्थर की लाट-सी पड़ी हुई है, जिसके विषय में कहा जाता है कि यह धनुष-खंड है, इसकी लंबाई दिन-दिन घटती जाती है, तथा यह धरती में धँसती जाती है। हमारे एक मित्र ने इस धनुष-खंड को बड़े ध्यान से देखा था। वह कंकड़ का बना हुआ धरती से निकला-सा है। यहाँ आसपास दूर तक कंकड़ नहीं हैं, और इसका रंग चमकता हुआ काला है। यह धनुष-खंड २५ गज़ लंबे एक घेरे के भीतर पड़ा है। इसके बीच में एक पीपल का पेड़ भी निकल आया है। इसी के चारों ओर कुछ साधुओं की कुटियाँ हैं। हम ऊपर लिख चुके हैं कि यह स्थान बृहत् परिक्रमा में पड़ता है। यहाँ एक रात को मेला ठहरता है, और यात्री धनुष-कुंड में स्नान करके धनुष-खंड की पूजा करते हैं। माघ के महीने में हर इतवार को मेला होता है। इससे कुछ दूर पर मिथिलेश्वर महादेव, परशुराम-कुंड, सीता-सर और जनक-सर हैं।

बाग-तड़ाग—तुलसीकृत रामायण में लिखा है—

बाग-तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरखे बंधु समेत ;
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत।

साधारण पाठकगण इसका यह अर्थ करते हैं कि उस स्थान पर एक बाग़ और एक तड़ाग (तालाब) था। परंतु उस स्थान का नाम ही यह है। तुलसीदासजी ने इसके दर्शन किए थे, इसी से उसी नाम से उसका उल्लेख किया है। यह स्थान जनकपुर से दस मील है, और दरभंगा-ज़िले के बेनीपट्टी थाने में फुलहर के नाम से प्रसिद्ध है। यहीं वह बाग़ था, जिसमें जनक के पुजारी पूजा करने के लिये फूल तोड़ा करते थे। यहाँ ताल के किनारे गिरिजा का एक मंदिर भी बना हुआ है। कहा जाता है कि विवाह से पहले श्रीसीताजी ने गिरिजा की यहीं पूजा की थी। मंदिर पुराना है, और इसके भीतर तीन फ़ीट ऊँची गिरिजा की पाषाण-मूर्ति है।

मिथिला-मंडल में अनेक ऋषियों के आश्रम बताए जाते हैं। इन ऋषियों में प्रधान याज्ञवल्क्य हैं, जो किसी राजा जनक के गुरु थे। याज्ञवल्क्य का आश्रम बी० एन्० डब्लू० रेलवे के कमतौल-स्टेशन के पास जगबन में एक बरगद के नीचे माना जाता है; परंतु मिथिला-तीर्थ-प्रकाश के अनुसार उनका आश्रम नेपाल-राज्य के कुसमा-गाँव में धनुखा के निकट है।

गौतम के आश्रमों का उल्लेख पहले हो चुका है। यहाँ इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि गौतम पहले अहल्या के साथ अहियारी में रहते थे। परंतु जब वह आश्रम अहल्या के अपराध से दूषित हो गया, तो अहल्या को वहीं छोड़कर वह वहाँ से कुछ दूर दूसरे आश्रम को चले गए। यह स्थान आजकल अहियारी से थोड़ी दूर ब्रह्मपुर में बतलाया जाता है।

सांख्य-शास्त्र के आचार्य कपिल भी यहीं रहते थे। उनका आश्रम जनकपुर ही में है, जहाँ कपिलेश्वर का मंदिर है। परंतु बंगाल-डिस्ट्रिक्ट-गज़ेटियर के अनुसार मधुबनी के पश्चिम कमला और करैया-नदियों के संगम पर ककरौल-गाँव में उनका आश्रम था। यहीं कपिल ने एक शिवलिंग स्थापित किया था, जो अब तक मंदिर में विराजमान है। ऋष्यशृंग भी, जिन्हें महाराज दशरथ ने पुत्रेष्टि-यज्ञ करने के लिये बुलाया था, मिथिला-प्रांत के रहनेवाले थे। मिस्टर डे उनका आश्रम भागलपुर-ज़िले के मधुपुर सबडिवीज़न में सिंहेश्वर को बतलाते हैं। राघोपुर-राज्य दमय से ६० मील पूर्व है, और सिंहेश्वर उससे २४ मील दक्षिण। यहाँ एक हाते के भीतर शिवजी का मंदिर है। परंतु मिथिला-तीर्थ-प्रकाश जरयल-परगने के अहियारी-गाँव के पास योगिबन (जगबन) में उनका आश्रम कहता है। यहाँ इसका नाम विभांडक-आश्रम है। परंतु विभांडक ऋष्यशृंग के पिता थे, और उनका दूसरा आश्रम मानने की आवश्यकता नहीं है।

पूर्व-मीमांसा के आचार्य जैमिनि का आश्रम भी बागमती और कमला के संगम पर बतलाया जाता है।

इन बातों का पूरा प्रमाण हमको नहीं मिला ; परंतु इसमें संदेह नहीं कि मिथिला-प्रांत सदा से विद्या और ज्ञान का बहुत बड़ा केंद्र रहा है। हम इस स्थान पर मिथिला का इतिहास लिखने नहीं बैठे हैं। इतना ही कहना बहुत है कि ईसवी सन की तीसरी और चौथी शताब्दी में महाप्रबल लिच्छवनी-वंश राज्य करता था, जिसके कुल की राजकुमारी कुमारदेवी के साथ प्रथम चंद्रगुप्त का विवाह होते ही काया-पलट हो गई, और भारत में गुप्त-साम्राज्य की नींव पड़ गई।

छोटे स्थानों और तीर्थों में मुख्य-मुख्य का वर्णन करके अब जनकपुर की छटा दिखाई जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

बसइ नगर जिहि लच्छि करि कपट नारिबर बेषु ;
तेहि पुर कै सोभा कहत, सकुचहिं सारद-सेषु।

परंतु अब न जनकराज की मिथिला है, और वज्जियों (लिच्छवियों) की राजधानी आज का जनकपुर एक छोटा-सा गाँव है। जनकपुर कब नष्ट-भ्रष्ट हुआ, इसका पता नहीं लगा। साढ़े तीन सौ वर्ष हुए, यह सूने वन में उजड़ा हुआ पड़ा था, और रामानंद-संप्रदाय के एक महात्मा सूरकिशोरजी, जो जयपुर के पास गलता-गाँव के रहनेवाले और श्रीजानकीजी के अनन्य भक्त थे, दुष्टों के अत्याचार से पीड़ित होकर यहाँ आए। मिश्रबंधु-विनोद में किशोरसूर का जन्म १७६१ और कविता-काल १७८९ लिखा है। मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदोस्तान में इतना और बढ़ाया हुआ है कि उन्होंने छप्पय-छंद में बहुत-सी कविता की है। मिश्रबंधु इनको हीन श्रेणी का कवि बतलाते हैं ; परंतु इनका नाम सरदार कवि ने अपने शृंगार-संग्रह में और बाबू हरिश्चंद्र ने सुंदरी-तिलक में दिया है। संभव है, यही महात्मा सूरकिशोरजी हों। साढ़े तीन सौ वर्ष की किंवदंती का कोई विशेष प्रमाण नहीं। अतएव इनका जन्म-काल सवा दो सौ वर्ष पहले मानने में कोई विशेष आपत्ति भी नहीं है।

कथा प्रसिद्ध है कि दुष्टों से पीड़ित होकर किशोरजी पाँच-छः दिन तक बिना अन्न-जल के पड़े रहे, और यह छप्पय रचा—

जहँ तीरथ तहँ दुष्ट-बास जिविका नहिं लहिए ;
असन-बसन जहँ मिलै, तहाँ सत्संग न पाइए।
राह चोर, बटपार, कुटिल, निर्दइ दुख देहीं ;
सहबासिन सों बैर दूरि कहु बसैं सनेही।
कह सूरकिशोर मिलै नहीं, यथायोग्य चाहिय जहाँ ;
कलिकाल ग्रस्यो अति प्रबल है, हाय राम रहिए कहाँ।

उसी रात को स्वप्न में श्रीजानकीजी ने उनको आज्ञा दी कि तुम हमारी जन्म-भूमि मिथिला में आकर रहो। इस पर सबेरा होते ही महात्माजी ने यह सवैया रचा—

काल कराल चढ़यो दल साजि, सु बेद-पुरान भए सिथिला ;
साधु के ठौर असाधु बसैं, सुथिला जेहि ठौर भए कुथिला।
बरनासम धर्म अचार गए, द्विज, तीरथ, देव भए निथिला ;
रहि और न ठौर कहूँ जग में, तब सूरकिसोर तकी मिथिला।

सूरकिशोरजी मिथिला की खोज में पूर्व की ओर चले, और चित्रकूट, प्रयाग होते हुए फ़ैज़ाबाद के पास जनौरा-गाँव में आकर रहे, जिसका वर्णन हमने अपने 'अयोध्या'-शीर्षक अँगरेज़ी लेख में दिया है। यह स्थान राजा जनक का बसाया हुआ बताया जाता है, और दंतकथा यह है कि राजा जनक अयोध्या में जाना अनुचित समझकर यहीं ठहर गए थे। आजकल भी मिथिला-प्रांत के साधु अयोध्यावासी साधुओं से साले-बहनोई का-सा नाता लगाते और गाली खाते हैं। फिर साधुओं से पता पूछते हुए महात्माजी उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ अब जनकपुर बसा है, और जो उस समय विकट वन था। वन साफ़ करते हुए कुछ मूर्तियाँ मिलीं, और अनेक चिह्न देखे गए, जिनसे सूरकिशोरजी को निश्चय हो गया कि जनकजी की मिथिला यहीं थी। इस काम में उनको नेपाल-दरबार से भी कुछ सहायता मिली थी।

सबसे पहले महात्माजी ने यहाँ श्रीसीताजी का एक मंदिर बनवाया, जो अब तक उनके शिष्यों के अधिकार में रहा। परंतु बीस वर्ष हुए, वर्तमान महंत की अनुमति से महाराज टीकमगढ़ ने उसी स्थान पर बहुत बड़ा मंदिर बनवा दिया। इसके बनाने में ९ लाख रुपए लगे थे, इसलिये यह नौलखा-मंदिर कहलाता है। यह मंदिर अयोध्या के कनकभवन के आकार का है ; परंतु है उससे छोटा। इस मंदिर का प्रबंध आजकल टीकमगढ़-दरबार की ओर से होता है, और यहाँ एक अन्न-सत्र भी है।

उसी समय नेपाल की महारानी ने भी श्रीरघुनाथजी का एक मंदिर बनवाकर सूरकिशोरजी को दे दिया था, जो अब तक उनके शिष्यों के अधिकार में है।

विहारकुंड, दशरथसर, पुरंदरसर, रत्नसर आदि भी प्रसिद्ध

हैं, और कहा जाता है कि ये उस समय बने थे, जब बारात ठहरी थी। मिथिला में यों तो रामनवमी के दिन भी मेला लगता है, परंतु सबसे बड़ा उत्सव अगहन-सुदि पंचमी को मनाया जाता है, जो श्रीराम-जानकी के विवाह की तिथि है। उस दिन उस प्रांत के राजा-बाबू अपने घोड़े-हाथी लेकर आते और बारात की शोभा बढ़ाते हैं।

तीसरा प्रसिद्ध मंदिर रत्नमंडप है, जो श्रीराम-जानकी के विवाह का मंडप (मँड़वा) कहलाता है।

यहाँ और भी मंदिर हैं। परंतु मिथिला में कुंडों की महिमा विशेष है। कुंड यहाँ बहत्तर हैं, जिनमें मुख्य ये हैं—

धनुष-सागर—यह कुंड सबसे पवित्र है, और कहा जाता है कि इसमें साल में एक बार धनुष देख पड़ता है। धनुष प्रकट होने के पहले जल स्थिर हो जाता है, और साधु लोग, जो कुटियों में इसके आसपास रहते हैं, नगाड़ा बजाते हैं। इसका शब्द सुनकर आसपास के साधु वहाँ इकट्ठे होते और फूल-धूप दीप आदि से धनुष की पूजा करते हैं। इधर कई वर्षों से धनुष के दर्शन नहीं हुए। इस कुंड से १२० गज़ की दूरी पर एक पाकर का पेड़ है। कहा जाता है, यहाँ स्वयंवर हुआ था। परंतु इसका प्रमाण क्या?

गंगासागर—यह बहुत बड़ी पुष्करिणी है। निमि का शरीर यहीं मथा गया था।

कपालमोचन सर—इसी में स्नान करने से शिवजी का ब्रह्महत्या का दोष छूटा था।

अब विवाह का प्रसंग सुनिए—

विश्वामित्र ने राजा जनक से कहा कि ये दोनों कुमार महाराज दशरथ के हैं, और आपके यहाँ एक अनोखा धनुष है, उसे देखना चाहते हैं। इस पर राजा जनक ने उत्तर दिया कि यह वही धनुष है, जिससे दक्ष-प्रजापति का यज्ञ विध्वंस करते समय शिवजी यज्ञ में अंश न पाने से बुरा मानकर देवतों के हाथ-पाँव काटना चाहते थे। देवतों ने दुखी होकर विनती की, तब शिवजी ने प्रसन्न होकर यह धनुष उन्हीं को दे दिया। फिर सबने निमि के पुत्र देवराज को इसे सौंपा। पीछे यज्ञभूमि में हल चलाते समय सीता प्रकट हुई। जब यह सयानी हुई, तो उसे अनेक राजों ने हमसे माँगा। हमने उनसे कहा कि यह कन्या उसी को दी जायगी, जो यह धनुष चढ़ा सके। बहुतेरे राजा आए; परंतु यह धनुष किसी के उठाए नहीं उठा। इस पर क्रोध करके राजों ने मिथिलापुरी घेर ली, और नाना प्रकार के दुःख दिए। तब हमने तपस्या करके देवतों को प्रसन्न किया, और उनसे चतुरंग-बल पाकर राजों को मार भगाया।

विश्वामित्रजी ने कहा कि वह धनुष श्रीराम को भी दिखलाइए। इस पर राजा जनक ने अपने मंत्रियों को आज्ञा दी कि धनुष को माला-फूल चढ़ाकर यहीं ले आओ। जनक की आज्ञा पाकर मंत्री नगर को चले गए, और उस धनुष को आठ पहिए की गाड़ी में रखकर, पाँच हज़ार बली मनुष्यों से खिचवाकर, यज्ञवाट में लाए। राजा जनक ने विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण को धनुष दिखाकर कहा कि वही धनुष है, जिसे आज तक कोई नहीं उठा सका।

जनक के वचन सुनकर विश्वामित्रजी ने श्रीराम से कहा कि देखो, धनुष यही है। इस पर श्रीरघुनाथजी ने संदूक खोला, और धनुष को देखकर कहा कि हम भी इसके उठाने का यत्न करना चाहते हैं। जनक और विश्वामित्र ने कहा—बहुत अच्छा। इस पर श्रीरघुनाथजी ने धनुष को चट उठा लिया, और प्रत्यंचा चढ़ाकर ज्यों ही खींचा, त्यों ही धनुष टूट गया।

राजा जनक ने विश्वामित्र से कहा कि यह बात कभी हमारे ध्यान में भी न आई थी कि राम ऐसे वीर हैं। हम अपनी बेटी को धन्य समझते हैं, जिसको ऐसा वीर पति मिला। अब आप आज्ञा दें कि हमारे मंत्री तुरत रथों पर सवार होकर अयोध्या जायँ, और महाराज दशरथ को यह समाचार सुनाकर बुला लावें।

जनक की आज्ञा पाकर दूत अयोध्या पहुँचे। राजा दशरथ उनका संदेशा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, और मंत्रियों से कहने लगे कि यह संबंध आप लोगों को अच्छा लगे, तो तुरंत जनकपुर चलना चाहिए। मंत्रियों ने राजा का अनुमोदन किया। दूसरे दिन बारात सज-धजकर अयोध्या से चल खड़ी हुई, और चार दिन में मिथिला पहुँच गई। जनक ने सबका यथोचित सत्कार किया, और दूसरे दिन अपने पुरोहित शतानंद से बोले कि हमारे छोटे भाई कुशध्वज को सांकास्य से बुलाना चाहिए। शतानंद से अनुमति लेकर दूत सांकास्य को भेजे गए।

कुशध्वज के मिथिला पहुँचने पर दोनों भाई सभा में बैठे, और महाराज दशरथ को महर्षियों और मंत्रियों के साथ बुला लिया। कुलगुरु वसिष्ठ ने महाराज दशरथ की वंशावली सुनाकर राम-लक्ष्मण के लिये राजा जनक की दोनों बेटियों को माँगा। इसके उत्तर में राजा जनक ने भी

अपनी वंशावली सुनाई, और अपने छोटे भाई के सांकास्य-राज्य पाने की भी कथा कही। कहा कि हम बहुत प्रसन्न होकर राम को सीता और लक्ष्मण को उर्मिला समर्पण करते हैं, आप गोदान * करके नांदीमुख-श्राद्ध पीछे विधि-पूर्वक विवाह करा दीजिए।

इसके बाद विश्वामित्रजी कहने लगे—एक बात हम भी कहना चाहते हैं। राजा जनक के छोटे भाई कुशध्वज के भी दो बेटियाँ हैं; उन्हें हम भरत और शत्रुघ्न के लिये माँगते हैं। जनकजी ने स्वीकार कर लिया, और महाराज दशरथ के चारों बेटों का विवाह हो गया।

श्रीअवधवासी सीताराम

हिमालय का पथिक

"गिरि-पथ में हिम-वर्षा हो रही है। इस समय तुम कैसे यहाँ पहुँचे? किस प्रबल आकर्षण से तुम खिंच आए?" खिड़की खोलकर एक व्यक्ति ने पूछा। अमल धवल चंद्रिका तुषार से घनीभूत हो रही थी। जहाँ तक दृष्टि जाती है, गगन-चुंबी शैल-शिखर, जिन पर बर्फ़ का मोटा लिहाफ़ पड़ा था, ठिठुरकर सो रहा था। ऐसे ही समय पथिक उस कुटीर के द्वार पर खड़ा था। वह बोला—"पहले भीतर आने दो, प्राण बचें।"

बर्फ़ जम गई थी, द्वार परिश्रम से खुला। पथिक ने भीतर जाकर उसे बंद कर लिया। आग के पास पहुँचा, और उष्णता का अनुभव करने लगा। ऊपर से और दो कंबल डाल दिए गए। कुछ काल बीतने पर पथिक होश में आया। देखा, शैल गर्भ में एक छोटा-सा गृह धुँधली प्रभा से आलोकित है। एक वृद्ध है, और उसकी कन्या। बालिका युवती हो चली है।

वृद्ध बोला—"कुछ भोजन करोगे?"

पथिक—"हाँ, भूख तो लगी है।"

वृद्ध ने बालिका की ओर देखकर कहा—"किन्नरी, कुछ ले आओ।"

किन्नरी उठी, और कुछ खाने को ले आई।

पथिक दत्तचित्त होकर उसे भोजन करने लगा। किन्नरी चुपचाप आग के पास बैठी देख रही थी। युवक पथिक को देखने में उसे कुछ संकोच नहीं था। पथिक भोजन कर चुकने के बाद घूमा, और देखा। किन्नरी सचमुच हिमालय की किन्नरी है। ऊनी लंबा कुरता पहने है, खुले हुए बाल, एक कपड़े से बँधे हैं, जो सिर के चारों ओर टोप के समान बँधा है। कानों में दो बड़े-बड़े फ़ीरोज़े लटकते हैं। सौंदर्य है जैसे हिमानी-मंडित उपत्यका में वसंत की फूली हुई वल्लरी पर मध्याह्न का आतप अपनी सुखद कांति बरसा रहा हो। हृदय को चिकना कर देनेवाला रूखा यौवन प्रत्येक अंग में लालिमा की लहरी उत्पन्न कर रहा है। पथिक देखकर भी अनिच्छा से सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा।

---

* आजकल गोदान का अर्थ गऊ का दान बतलाकर लोभी विवाह करानेवाले कम-से-कम एक रुपया ले लेते हैं। पद्धति में ऐसे गोदान का नाम भी नहीं है, जो गोदान विवाह के पहले किया जाता। रघुवंश में लिखा है—

अथास्य गोदानविधेरनन्तरं
विवाहदीक्षां निरवर्तयद् गुरुः। सर्ग ३, श्लोक ३३

इसमें गोदान की टीका मल्लिनाथ ने यों की है—

गौर्नादित्ये बलीवर्दे क्रतुभेदर्षिभेदयोः।
स्त्री तु स्याद् दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि।

पुंस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमसु इति केशवः। गावो लोमानि केशा दीयन्ते खण्ड्यन्तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या गोदानं नाम ब्राह्मणादीनां षोडशादिवर्षेषु कर्तव्यं केशान्ताख्यं कर्मोच्यते। तदुक्तं मनुना—

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः॥ २।६५॥

गोदान एक विशेष रीति का मुंडन है, और मनु इसे केशांत कहते हैं। उसका नियम यह है कि ब्राह्मण को सोलहवें वर्ष, क्षत्रिय को बाइसवें वर्ष और वैश्य को चौबीसवें वर्ष करना चाहिए।

वृद्ध ने पूछा—"कहो तुम्हारा आगमन कैसे हुआ ?"

पथिक—"निरुद्देश्य घूम रहा हूँ, कभी राज-मार्ग, कभी खाई, और कभी सिंधु-तट, कभी गिरि-पथ देखता फिरता हूँ। आँखों की तृष्णा मुझे बुझती नहीं दिखाई देती। यह सब क्यों देखना चाहता हूँ, कह नहीं सकता।"

वृद्ध—"तब भी भ्रमण कर रहे हो ?"

पथिक—"हाँ, अब की इच्छा है कि हिमालय में ही विचरण करूँ। इसी के समान दूर तक चला जाऊँ।"

वृद्ध—"तुम्हारे पिता-माता हैं ?"

पथिक—"नहीं।"

किन्नरी—"तभी तुम घूमते हो। मुझे तो पिता-जी थोड़ी दूर भी नहीं जाने देते।" वह हँसने लगी।

वृद्ध ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर कहा—"बड़ी पगली है।"

किन्नरी खिलखिला उठी।

पथिक—"अपरिचित देशों में एक रात रमना और फिर चल देना। मन के समान चंचल हो रहा हूँ, जैसे पैरों के नीचे चिनगारी है।"

किन्नरी—"हम लोग तो कहीं जाते नहीं; सब-से अपरिचित हैं, कोई नहीं जानता। न यहाँ कोई आता है। हिमालय की निर्जन शिखर-श्रेणी और बर्फ़ की झड़ी, कस्तूरी मृग और बर्फ़ के चूहे, ये ही मेरे स्वजन हैं।"

वृद्ध—"क्यों री किन्नरी! मैं कौन हूँ ?"

पथिक—"तुम आगंतुक तो नहीं हो बाबा। तुम्हारा कोई नया परिचय तो नहीं है। वही मेरे पुराने बाबा बने हो।"

वृद्ध—"फिर क्या बनूँ ?"

किन्नरी—"कुछ दूसरे बनो।"

पथिक हँसने लगा। किन्नरी अप्रतिभ हो गई। वृद्ध गंभीर होकर कंबल ओढ़ने लगा।

पथिक को उस कुटीर में रहते कई दिन हो गए। न-जाने किस बंधन ने उसे यात्रा से वंचित कर दिया है। पर्यटक युवक आलसी बनकर चुप-चाप, खुली धूप में, बहुधा देवदारु की लंबी छाया में बैठा हिमालय-खंड की निर्जन कमनीयता की ओर एकटक देखा करता है। जब कभी अचानक आकर किन्नरी उसका कंधा पकड़कर हिला देती है, तब उसके तुषार-शीतल हृदय में बिजली-सी दौड़ जाती है। किन्नरी हँसने लगती है। जैसे बर्फ़ गल जाने पर लता के फूल निखर आते हैं।

एक दिन पथिक ने कहा—"कल मैं जाऊँगा।"

किन्नरी ने पूछा—"किधर ?"

पथिक ने हिम-गिरि की ऊँची चोटी दिखलाते हुए कहा—"उधर, जहाँ कोई न गया हो।"

किन्नरी ने पूछा—"वहाँ जाकर क्या करोगे ?"

"देखकर लौट आऊँगा।"

अभी से क्यों जाना नहीं रोकते, जब लौट ही आना है ?"

"देखकर आऊँगा, तुम लोगों से मिलते हुए देश को लौट जाऊँगा। वहाँ जाकर यहाँ का सब समाचार सुनाऊँगा।"

"वहाँ क्या तुम्हारा कोई परिचित है ?"

"यहाँ पर कौन था ?"

"चले जाने में तुमको कुछ कष्ट नहीं होगा ?"

"कुछ नहीं; हाँ, एक बार जिसका स्मरण होगा, उसके लिये जी कचोटेगा। परंतु ऐसे कितने ही हैं ?"

"कितने होंगे ?"

"बहुत-से, जिनके यहाँ दो घड़ी से लेकर दो-चार

दिन तक आश्रय ले चुका हूँ, उन दयालुओं की कृतज्ञता से विमुख नहीं होता।"

"मेरी इच्छा होती है कि उस शिखर तक मैं भी तुम्हारे साथ चलकर देखूँ। बाबा से पूछ लूँ।"

"ना, ना, ऐसा न करना।" पथिक ने देखा, बर्फ़ की चट्टान पर श्यामल दूर्वा उगने लगी है। मतवाले हाथी के पैर में फूली हुई लता लिपटकर साँकल बनना चाहती है। वह उठकर फूल के मुख पर कोई भाव न था। वह चुपचाप बैठी थी। किसी ने पुकारा—"किन्नरी!"

दोनों ने घूमकर देखा, वृद्ध था। वृद्ध का मुख लाल था। उसने पूछा—"पथिक! तुमने देवता का निर्माल्य दूषित करना चाहा। तुम्हारा दंड क्या है?"

पथिक ने गंभीर स्वर से कहा—"निर्वासन।"

"और भी कुछ?"



"किन्नरी के सिर का बंधन खोलकर वहीं माला अटका दी।"

बीनने लगा। एक माला बनाई। फिर किन्नरी के सिर का बंधन खोलकर वहीं माला अटका दी। किन्नरी

"इससे विशेष तुम्हें अधिकार नहीं; क्योंकि तुम देवता नहीं, जो पाप की वास्तविकता समझ लो।"

"हूँ"

"और, मैंने देवता के निर्माल्य को और भी पवित्र बनाया है। उसे प्रेम के गंध-जल से सुरभित कर दिया है। उसे तुम देवता को अर्पण कर सकते हो।" इतना कहकर पथिक उठा, और गिरि-पथ से जाने लगा।

वृद्ध ने पुकारकर कहा—"तुम कहाँ जाओगे? वह सामने भयानक शिखर है।"

पथिक ने लौटकर खड्ड में उतरना चाहा। किन्नरी पुकारती हुई दौड़ी—"हाँ-हाँ, मत उतरना, नहीं तो प्राण न बचेंगे।"

पथिक एक क्षण के लिये रुक गया। किन्नरी ने वृद्ध से घूमकर पूछा—"बाबा, क्या यह देवता नहीं है?" वृद्ध कुछ न कह सका। किन्नरी और आगे बढ़ी।

उसी क्षण एक लाल और धुँधली आँधी के सदृश बादल दिखाई पड़ा। किन्नरी और पथिक गिरि-पथ से चढ़ रहे थे। वे अब दो श्याम-बिंदु की तरह वृद्ध की आँखों में दिखाई देते थे। वह रक्त-मलिन मेघ समीप आ रहा था। वृद्ध कुटीर की ओर पुकारता हुआ चला—"दोनों लौट आओ। खूनी बर्फ़ आ रही है।"

परंतु जब पुकारना था, तब वह चुप रहा। अब वे सुन नहीं सकते थे।

दूसरे ही क्षण में खूनी बर्फ़ वृद्ध और उन दोनों के बीच में था।

जयशंकर "प्रसाद"

आसाम की खसिया-जाति

आसाम-प्रदेश भारतवर्ष के पूर्वोत्तर-कोने में है। प्रायः सौ वर्षों से यहाँ अँगरेज़ों का शासन है। परंतु आसाम की प्रजा को इन सौ वर्षों में जैसी उन्नति होनी चाहिए, वैसी नहीं हुई; क्योंकि आसाम-प्रदेश प्रायः जंगली (नागा) जातियों का प्रदेश है; जिनमें डफला, मिरीआका, अबर, खामती, सिंगफो तथा पटकाई, गारू, लसाई, खसिया और जयंतिया इत्यादि कई सम्मिलित जातियाँ हैं। इस लेख में खसिया जयंतिया-जाति का ही वर्णन किया जाता है। यह जाति आसाम-प्रदेश की राजधानी शिलांग-पहाड़ में रहती है। शिलांग पहाड़ के एक भाग में खसिया-जाति का आदिम निवास होने से यह भाग खसिया-पहाड़ कहलाता है। इसी पहाड़ के दूसरे भाग में जयंतिया-जाति का आदि-निवासस्थान होने से यह भाग जयंतिया-पहाड़ कहलाता है। किंतु यथार्थ में खसिया और जयंतिया एक ही पहाड़ हैं।

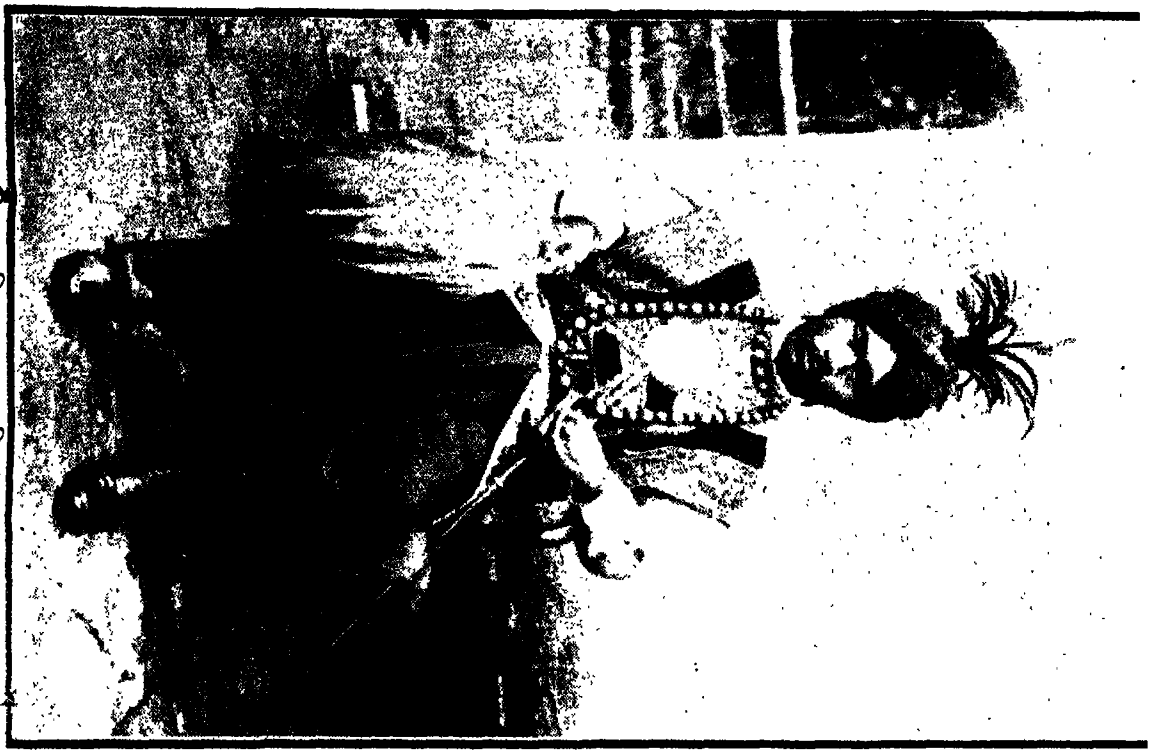
ये दोनों जातियाँ कोल, भील, साउताल प्रभृति जातियों के समान ही सत्यवादी, परिश्रमी, सरल और आत्म-विश्वासी हैं। इनकी स्त्रियाँ सतीत्व धर्म से विभूषित हैं। किंतु बड़े दुःख से लिखना पड़ता है कि काल-क्रमानुसार इस जाति में भी परिवर्तन हो रहा है। पहले यह अपने पैतृक धर्म में विश्वास करती थी। वह धर्म हिंदुओं के सनातनधर्म के सदृश था, और इस जातिवाले प्रायः हिंदुओं का ही अनुकरण किया करते थे। इनके धर्म में अन्य अनेक दोष क्यों न हों, पर इन्होंने अपने प्राचीन आचार-विचार नहीं छोड़े थे, पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रँगकर विलासिता को अपना आदर्श नहीं बनाया था, आत्म-विश्वास को तिलांजलि देकर दासता का आश्रय नहीं ग्रहण किया था। स्त्रियाँ पवित्र सतीत्व-धर्म की मर्यादा रखती आती थीं। आजकल के अनुसार बहुजन-अंकशायिनी अथवा श्वेतांगों की उपपत्नी बनने में अपना गौरव नहीं समझती थीं। किंतु शोक है कि ईसाई धर्म-प्रचारक धर्म का नाम लेकर इन लोगों में प्रवेश करके इनमें अधर्म का बीज बो रहे हैं, जिससे ये लोग आज अपने प्राचीन



खसियों की दावत



खसियों का गार्हस्थ्य जीवन



खसिया राजा (शिलांग)



एक खसिया-स्त्री और उसका बच्चा



खसिया-लड़कियों का नाच



खसियों की बस्ती



खसिया लोग घास ले जा रहे हैं

और पवित्र बल-वीर्य तथा सद्गुणों का परित्याग कर रहे हैं। मिशनरी प्रचारक लोग भाषाओं और पुस्तकों द्वारा ऊपर से तो नीति के उपदेश देते हैं, किंतु भीतर-ही-भीतर ऐसी कुशिक्षा और बुरा आदर्श दिखाते हैं कि उससे किसी भी जाति की उन्नति नहीं हो सकती। खसियों की संख्या सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार २,४३,२६३ है, जिनमें २७ हज़ार ईसाई हैं। १९११ की मनुष्य-गणना में इस प्रदेश में कुल २ हज़ार ईसाई थे। बीच के दस वर्षों में ईसाइयों की संख्या १२-१३ गुनी हो गई है। यदि इस प्रकार ईसाइयों की संख्या बढ़ती गई, तो इस जाति का लोप शीघ्र ही हो जायगा। प्रायः तीन वर्षों से अखिल भारतवर्षीय हिंदू-महासभा हिंदू-जाति के उद्धार का कार्य कर रही है; परंतु इन पिछड़ी हुई जातियों के उद्धार की ओर हिंदू-महासभा ने बिलकुल ध्यान नहीं दिया। हम महासभा के अधिकारियों से प्रार्थना करते हैं कि शीघ्रातिशीघ्र इस ओर ध्यान देकर हिंदू-धर्म-प्रचारकों द्वारा आसाम-प्रदेश में इस जाति और इसके साथ अन्य जातियों का उद्धार करें। यदि अब भी हिंदू-जाति घोर निद्रा में सोती रही, तो आसाम-प्रदेश में हिंदू-जाति का लोप ही हो जायगा।

इस प्रांत में ईसाई-मिशनरियों के द्वारा ईसाई-धर्म का प्रचार तो ख़ूब तेज़ी से हो ही रहा है, पर इधर कुछ दिनों से मुसलमान मौलाना लोग भी इस्लाम-धर्म का प्रचार बड़ी तेज़ी से करने लग गए हैं, जिसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हो रही है। क्या हमारी हिंदू-जाति इतने पर भी सोती रहेगी? क्या हमारे आचार्य और पंडित लोग बैठे मुँह ताकते रहेंगे? भारतवर्ष में धार्मिक आंदोलन खड़ा हो चुका है। सब जातियाँ अपने-अपने धर्म-प्रचार की चेष्टा कर रही हैं। तब क्या हमारी हिंदू-जाति इस धार्मिक आंदोलन में भाग नहीं लेना चाहती? क्या वह प्राचीन आर्य-जाति का अस्तित्व रखना नहीं चाहती? लाखों और करोड़ों वर्ष पहले जिन आर्य-ऋषियों ने वेद, शास्त्र, ज्ञान-विज्ञान का आविष्कार किया था, सारे संसार को सभ्यता का पाठ पढ़ाया था, आज उन्हीं के धर्म का लोप होता जा रहा है। इसलिये खसिया-बंधुओं को हिंदू-धर्म की शिक्षा देकर उन्हें पुनः धार्मिक हिंदू तथा सुशिक्षित बनाने की आवश्यकता है।

इस लेख के चित्रों से पाठक खसिया-जाति के स्वाभाविक जीवन और सभ्यता का बहुत कुछ परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

युगलकिशोर केडिया

मेरी टेक

तेरा वार—तेरी टेक—

सह सकता हूँ, रख सकता हूँ—देख विश्व में मैं हूँ एक :
नहीं मिलेंगे तुझे जगत में मेरे-जैसे कहीं अनेक।
तांडव है या बड़वानल है,
चल चपला या प्रलयानल है,
रोम-रोम से उठा धुआँ, जल रहे देख तेरे ही केश ;
आँखों की धारा से मैं ही इसे बुझा सकता परमेश।
निर्गुण है, तुझमें दुर्गुण है,
सगुण रूप में जो कि निपुण है,
निर्दयता की मूर्ति, किंतु करुणा का ऊपर सुंदर वेश :
छला छली ! तूने दुखियों को कहला-कहलाकर करुणेश।
अपनी रीति, अपनी नीति,
पलटाने में तुझको प्रीति,
किंतु उसे मैं तोड़ रहा हूँ देख—देख मेरा अविवेक :
आत्ममान, विश्वास हृदय हो, बोल—धन्य है मेरी टेक।
तेरा ही विश्वास किया था,
सिंहासन अधिवास दिया था,
डसा बाँह के साँप और बन रहा व्यर्थ को है विश्वेश :
रचा, बिगाड़ा तूने—तेरी धिक धिक ईश्वरता अखिलेश।
रक्त-बिंदु जल-बिंदु हो गया,
शुष्क सरोवर सिंधु हो गया,
धो डालेगा श्रीचरणों से निर्दयता का हो लवलेश :
दुखियों का रोदन जिससे फिर बाधक हो न सके कमलेश।

मातादीन शुक्ल

वर्तमान चीन

ची न-देश की जन-संख्या इतनी अधिक और उसकी सभ्यता इतनी पुरानी है कि वह संसार के उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट राष्ट्रों में भी प्रतिष्ठा पा सकता है। जिस समय वर्तमान योरप के बहुत-से राष्ट्र केवल जंगल में रहकर ही असभ्य की तरह जीवन व्यतीत करते थे, उस समय भी चीन में सभ्यता का पूर्ण विकास हो गया था। जीवन के हर क्षेत्र में चीनवालों ने तरक़्क़ी की थी। 'चीन की हिकमत' यहाँ अब तक प्रसिद्ध है। महात्मा कनफ़्यूशियस के उपदेश का पालन चीनियों ने पूर्ण रूप से किया, और एक बार सबल होते हुए भी उन्होंने कभी निर्बल राष्ट्र को नहीं सताया। चीनियों की यह शांति-प्रियता संसार में सबको विदित है। जब तक चीन का मुक़ाबला किसी स्वार्थ-परायण राष्ट्र से नहीं हुआ था, तब तक उसको अपनी शांति-प्रियता के कारण कोई हानि नहीं उठानी पड़ी। किंतु जब पश्चिम के छली राष्ट्रों से उसका सामना हुआ, तब उसकी यह नीति उसके लिये हानिकर प्रतीत होने लगी।

सत्रहवीं शताब्दी के पश्चात् अपने गृह-कलह से अवकाश पाकर योरप के राष्ट्रों ने अपना व्यापार बढ़ाना आरंभ किया। इस कार्य के लिये अमेरिका, आफ़्रिका तथा एशिया आदि महाद्वीपों में उन्होंने अपने उपनिवेश क़ायम किए। वहाँ के निवासियों को तरह-तरह के आश्वासन दे, झूठी बातों द्वारा अपना मतलब गाँठ, ये लोग अपने-अपने पैर फैलाने लगे। चीनी बड़े सरल प्रकृति के होते हैं। वे इनकी मीठी-मीठी बातों में आकर इनकी हर तरह से सहायता करने लगे। फलतः उन्नीसवीं सदी के मध्य काल तक चीन में रूस, अमेरिका, फ़्रांस, जर्मनी और इँगलैंड के कई अड्डे क़ायम हो गए। इन विदेशियों ने चीन-सरकार से, प्रजा-हित के विरुद्ध, व्यापार में तरह-तरह की सुविधा देने के लिये कई पट्टे लिखा लिए थे। चीनी इनकी बातों में आ बुराई की आशंका नहीं करते थे। पश्चिमी राष्ट्रों के पाशविक बल पर भरोसा कर, चीन में विदेशियों के प्रभुत्व को स्थायी रूप से क़ायम रखने के उद्देश्य से, पादरी लोग भी ईसाई-मज़हब का झंडा ले इस समृद्धिशाली एवं शांति-प्रिय देश में प्रवेश करने लगे। यद्यपि चीनी इनके धर्म को उत्तम नहीं मानते थे, तथापि इनके प्रवेश करने में उन्होंने किसी तरह की अड़चन नहीं डाली।

ज्यों-ज्यों चीन में इन विदेशियों का प्रभुत्व बढ़ता गया, त्यों-त्यों चीनियों के प्रति इनकी उद्दंडता बढ़ती गई। पादरियों को अपने देश-वासियों के बल का इतना गर्व हुआ कि वे खुल्लमखुल्ला चीनी-मज़हब और चीनी-देवतों को, उन्हीं के स्थान में, पूजा के समय तथा लाखों चीनियों के समक्ष, हँसने और अपमानित करने लगे।

यद्यपि पश्चिमी राष्ट्रों के शिकंजे में चीन पूरा कसा जा चुका था, फिर भी उसे अपनी इस निस्सहाय स्थिति का ज्ञान न था। अतएव कुछ चीनी नवयुवकों ने ऐसे तकरारी पादरियों के अनुचित कार्य का प्रतिवाद किया। इसमें कुछ पादरी मारे गए। अब क्या था, योरप और अमेरिका की क्रोधाग्नि भभक उठी। यद्यपि इसमें चीन सरकार का कुछ अपराध न था, तथापि उसने अपराधियों को दंड देने और क्षति पूर्ण करने का वचन भी दे दिया। पर ये लोग तो चीनियों को मटियामेट कर देने का बहाना ही ढूँढ़ते थे। चीन-सरकार की प्रार्थना को अनसुनी कर योरप के सब सभ्य राष्ट्रों ने निस्सहाय चीन पर, ईसाई मज़हब की दुहाई देते हुए, सम्मिलित आक्रमण कर ही दिया। जब एक सभ्य राष्ट्र दूसरे सभ्य राष्ट्र पर चढ़ाई करता है, तब सभ्यता की दृष्टि से उसके लिये कुछ अंतरराष्ट्रीय नियमों का पालन करना अनिवार्य माना जाता है। वर्तमान योरपियन महासमर में जर्मनी ने कुछ ऐसे ही नियमों की अवहेलना की थी। जर्मनी के शत्रु इस पर घृणित-से-घृणित लांछन लगाने लगे। जब सभ्यता के इन ठेकेदारों ने चीन पर, सन् १७०० में, हमला किया, तब सब तरह से इन नियमों के विरुद्ध आचरण किया। लाखों निहत्थे, निरपराध ग्रामीण मारे गए। स्त्रियाँ अपमानित की गईं, और उनकी मर्यादा भंग की गई। ग़रीब लूट लिए गए, प्राचीन काल के कला के उत्तम नमूने या तो चुरा लिए गए, या नष्ट कर डाले गए। कहाँ तक कहा जाय, पेकिन-शहर का प्रसिद्ध प्राचीन पुस्तकालय भी असंख्य अमूल्य पुस्तकों-सहित जला डाला गया। कुछ अँगरेज़ों का ही कहना है कि संसार के साहित्य और कला की जैसी हानि योरपियन सभ्यता के उपासकों के इस कार्य से हुई, उसका दूसरा उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता। चीन-सरकार को विवश कर करोड़ों रुपए बतौर हर्जाने के वसूल किए गए, और चीन में ही इन विदेशियों को कई विशेष अधिकार देने की घोषणा की गई। "ज़बरदस्त का ठेंगा सिर पर"-वाली नीति पूर्ण रूप से चरितार्थ की गई।

इस प्रकार के अमानुषिक व्यवहार से चीन स्तंभित हो गया। प्रत्येक चीनी समझने लगा कि विदेशियों का पदार्पण उसे अपमानित करने तथा उसका धन किसी बहाने से ले उसे ग़ुलाम बनाने ही के लिये हुआ है। इसको रोकने का वे प्रयत्न करने लगे। जिन बुराइयों के कारण उनके देश की दुर्दशा और उनका अपमान हुआ था, उन्हें दूर करने के लिये वे पूर्ण प्रयत्न करने लगे। परंतु ये विदेशी उनके इस कार्य में भी रुकावटें डालने लगे। इँगलैंड उनको विवश करने लगा कि प्रतिवर्ष, क़ायदे के मुताबिक़, उन्हें इतनी अफ़ीम ख़रीदनी ही होगी, चाहे उसके व्यवहार से चीनियों की स्थिति अत्यंत हीन हो क्यों न हो जाय। चीनियों ने बड़े धैर्य से इन अत्याचारों को सहा, और धीरे-धीरे अपने समाज में प्रचलित सामाजिक तथा राजनीतिक बुराइयों को दूर करने में बद्ध-परिकर हो गए।

उन्हें यह अनुभव हुआ कि जब तक उनकी शासन-पद्धति में कुछ वास्तविक फेरफार न होगा, तब तक वे अपना सुधार न कर सकेंगे। अतएव नवयुवक चीनी इसी चिंता में पड़ गए कि पुराने मंचू-बादशाह तख़्त से उतार दिए जायँ, और चीन में प्रजा-सत्ताक शासन क़ायम किया जाय। बहुत कष्ट से महात्मा सनयाटसेन-सरीखे देशभक्त नेता के नेतृत्व में चीनियों की यह आशा पूरी हुई, और मंचू-बादशाह तख़्त से उतार दिए गए। सन् १९११ ई० में चीन में प्रजा-तंत्र राज्य की स्थापना हुई, और सर्व-सम्मति से यान-शु-काई राष्ट्र-पति चुने गए।

यद्यपि चीन के नवयुवक बुराइयों को दूर करने में अविरत परिश्रम कर रहे थे, तथापि चीन में गृह-कलह तथा विरोध के लिये काफ़ी गुंजाइश थी। भौगोलिक कारणों से चीन के बड़े-बड़े प्रांतों का एकीकरण अच्छी तरह नहीं हुआ था। पेकिन नाम-मात्र की राजधानी तो बना रहा, लेकिन तब भी प्रत्येक प्रांत अपने मन की करने लगा। यह प्रयत्न होने लगा कि एक प्रांत दूसरे प्रांत पर अपना प्रभुत्व जमा ले। विदेशियों ने इस प्रवृत्ति को उत्तेजित किया; क्योंकि चीन का संगठित होना उनके लिये अहितकर था। अतएव चीन में इस सत्यानाशी घरू लड़ाई का सूत्रपात हुआ। स्वार्थी और देश-द्रोहियों के कुचक्र चलने लगे। विदेशी भी प्रसन्न हो अपना जाल फैलाने लगे। इस तरह का पारस्परिक विरोध होते देख सनयाटसेन-सरीखे देश-सेवी अलग होने लगे। अब क्या था? यान-शु-काई को मौक़ा मिला, और उसने अपने बादशाह होने की घोषणा कर दी।

क्रांति के पूर्व चीनी देश-भक्त नवयुवकों के प्रयत्न से थोड़े ही समय में चीन में घोर परिवर्तन हो गया। सामा-

जिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक, सभी क्षेत्रों में सुधारकों ने कार्य करना आरंभ किया, और चीन में अभूतपूर्व जागृति पैदा कर दी। १० ही वर्ष में चीन में कितना परिवर्तन हुआ, इसका अंदाज़ा चीन में बहुत समय से निवास करनेवाले डब्लू० आर० मैनिंग के लेख से ही लग सकता है। इतने थोड़े समय में चीन के इस परिवर्तन को देख उन्होंने यह लिखा था —

'Could the Sage Confucius have returned a decade ago he would have felt almost as much at home as when he departed twenty-five centuries before. Should he return a decade hence he would feel himself almost as much out of place as Rip Van Winkle, if the recent rate of progress continues."

इसका भावार्थ यह है कि यदि महात्मा कनफ़्यूशियस १० वर्ष पूर्व चीन में आते, तो २,५०० वर्ष पूर्व चीन को जिस स्थिति में छोड़ गए थे, उसी स्थिति में पाते। किंतु यदि वे १० वर्ष के पश्चात् आवें, तो उन्हें प्रत्येक बात बदली हुई मिलेगी, और यहाँ की स्थिति पूर्व से नितांत भिन्न होगी। हार्डन पी० बाच साहब भी चीनी स्थिति से पूर्णतः परिचित हैं। उन्होंने भी चीन के इस परिवर्तन के संबंध में अपनी राय इस तरह दी है —

"Those, who like myself, compare the China of 25 years ago with the China of this year, can hardly believe our senses."

भावार्थ यह है कि मेरे समान व्यक्ति, जिसे चीन का कुछ अनुभव है, यदि पचीस वर्ष पूर्व के चीन की आज के चीन से तुलना करे, तो चीन ने इतने समय में जो तरक़्क़ी की है, उस पर विश्वास ही न होगा।

विदेशी साम्राज्य-वादियों ने यह निश्चय कर लिया कि चीन सँभलने न पावे, नहीं तो अन्याय-पूर्ण उपायों से जो विशेष अधिकार उन्होंने पा लिए हैं, वे सुरक्षित न रह सकेंगे। अतएव वे पुराने विचार के भिन्न-भिन्न प्रांतों के फ़ौजी शासकों को आपस में भड़काने और मौक़े-मौक़े पर गुप्त सहायता द्वारा गृह-कलह के लिये उत्तेजित भी करने लगे। कई इनकी चाल में आ गए, और पेकिन-सरकार से बग़ावत करने लगे। चीन का हित चाहनेवाला राष्ट्रवादी दल पेकिन-सरकार के पक्ष का समर्थन करने लगा, जिससे देश-भर में एक शासन स्थापित होकर देश आगे बढ़े।

इतना होते हुए भी चीनी यह अनुमान करने लगे कि उनका देश इँगलैंड, फ़्रांस प्रभृति देशों के समान वास्तविक स्वतंत्र नहीं है, और न भारत, मिसर या कोरिया के समान एक ही राष्ट्र के हाथ में उसके भाग्य का निपटारा है। वे जान गए हैं कि सभी राष्ट्र यहाँ अपनी-अपनी चालों से अपना प्रभुत्व जमाना चाहते हैं। उन्हें अब यह प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा है कि जब तक इन विदेशियों की चाल का प्रतिरोध न किया जायगा, तब तक किसी तरह की तरक़्क़ी करना असंभव है। इसके विपरीत कुछ प्रांतों के फ़ौजी अफ़सर अपने स्वार्थ से प्रेरित हो, विदेशियों के बहकाने में आकर, चीन में अपना ही प्रभुत्व जमाने की फ़िक्र में लगे हैं। राष्ट्रवादी चीनी ऐसे देश-द्रोही स्वार्थियों का भी पूर्णतः विरोध कर रहे हैं। देश-भक्त सनयातसेन वास्तविक प्रजावाद का आदर्श रखना चाहते थे, और वह राष्ट्रपति यान-शी-काई की चालों से दुखी भी थे। अतएव चीन के हित के लिये उन्होंने यह अनिवार्य समझा कि किसी प्रांत में तो प्रजा-सत्तात्मक शासन अवश्य हो जाय। अतएव उन्होंने सन् १९११ में कैंटन-प्रांत में ऐसा शासन स्थापित किया। उन्होंने न तो यान-शी-काई के एकाधिपत्य-शासन को ही स्वीकार किया, न किसी प्रांत के फ़ौजी अफ़सर की ही अधीनता मानी। यद्यपि विदेशियों ने स्वभावतः इस शासन को स्वीकार नहीं किया, तथापि चीनी नवयुवकों की इच्छा के अनुसार ही इसका संचालन होता रहा। विदेशियों को सनयातसेन की यह काररवाई बराबर खटकती रही, और उन पर आक्रमण करने के लिये वे किसी-न-किसी को बराबर उभारते आ रहे थे। इस शासन का मुख्य ध्येय यह है कि विदेशियों को चीन में जितने विशेष अधिकार प्राप्त हैं, वे रद कर दिए जायँ। चीन को स्वतंत्र राष्ट्रों के सब अधिकार प्राप्त हो जायँ, और अंतरराष्ट्रीय बातों में उसका समुचित सम्मान हो। तात्पर्य यह कि जिन सिद्धांतों के आधार पर चीनी नवयुवकों ने अपने राष्ट्र के उद्धार का कार्य अपने हाथ में लिया था, उन्हीं की पूर्ति के लिये यह शासन क़ायम किया गया है।

यद्यपि चीन में क्रांति हुए आज १५ वर्ष हो गए, तथापि वहाँ अब तक शांति स्थापित नहीं की जा सकी है। कई योरपियन लेखक लोगों को धोका देने के लिये इसका यह निष्कर्ष निकालते हैं कि पूर्वी राष्ट्र प्रजातंत्र-शासन के

योग्य नहीं हैं। जिस घोर परिस्थिति में चीनी अपने देश को पाते हैं, उस परिस्थिति में कोई भी राष्ट्र कुछ नहीं कर सकता। चीन में जितने बंदरगाह हैं, वे विदेशियों के हाथ में हैं। चीनियों को आयात निर्यात शुल्क लगाने की पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है। विदेशियों पर चीनी क़ानून लागू नहीं होता, और वे लोग चीन में रहकर भी चीनी शासन से मुक्त हैं। इसके अतिरिक्त ये चीनी प्रांतों के पुराने विद्वेष को भड़काकर आपस में कलह कराते रहते हैं। ऐसी दशा में यह कहाँ संभव है कि चीन किसी भी तरह की उन्नति करे। चीनियों के हृदय में यह बात समा गई है कि उनके अधःपतन के मुख्य कारण विदेशी ही हैं, और जब तक वे उनका प्रतिवाद न कर लेंगे, तब तक उनके लिये यह असंभव है कि वे किसी भी तरह की उन्नति करें। अतएव चीनी राष्ट्रवादी अब केवल इसी बात पर तुले हुए हैं। हांगकांग में चीनी-मज़दूरों पर अँगरेज़ों ने गोली चलाकर उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें काम करने पर विवश किया। अँगरेज़ों के हांगकांग और शंघाई में किए गए आधुनिक कृत्यों से चीनी और भी विचलित हो गए हैं। जनरल चिंग-कई-शक इस पर कहते हैं—

"Formerly Britain, exploited China politically and economically. Now they have added such outrages as shootings in Shanghai, Hong-Kong and elsewhere. They treat the Chinese like dogs.

अर्थात् इसके पूर्व इँगलैंड ने चीन को राजनीतिक तथा आर्थिक चालों से तबाह किया; किंतु अपने इन कृत्यों में शंघाई, हांगकांग और अन्य स्थानों में गोली चलाकर उसने एक नया अध्याय और जोड़ दिया है। सच तो यह है कि वे हमें कुत्ते की तरह मानते हैं। उक्त जनरल का यह कथन है कि सब बुराइयों को दूर करने के केवल दो मुख्य उपाय हैं—एक तो यह कि अँगरेज़ लोगों ने अन्याय-पूर्ण उपायों से जो कुछ चीनियों के अधिकार छीन लिए हैं, वे उन्हें वापस दे दें, ताकि चीनी अपनी तरक्क़ी कर सकें। या स्वयं चीनी ही अपना संगठन इस तरह करें कि अपने सब अधिकार इनसे, इन्हें मजबूर करके, छीन लें। उनका कहना है कि ज्यों ही विदेशियों के इन अन्याय-पूर्ण अधिकारों का अंत हुआ, त्यों ही चीन का यह गृह-कलह आप-ही-आप बंद हो जायगा; क्योंकि इसके चलानेवाले उत्तेजक ये ही हैं। जनरल चिंग-कई-शक ने जो विचार प्रकट किए हैं, वे अधिकांश चीनियों के हैं। अँगरेज़ तो स्वयं देना कुछ नहीं चाहते, और न देंगे। मगर साथ-साथ इनकी इच्छा यह भी है कि चीनी इतने योग्य न हो सकें कि कुछ ले सकें। अतएव कई प्रकार के षड्यंत्र करके वहाँ पर गृह-कलह जारी रखने में ही इन्होंने अपनी भलाई समझी है। जनरल चिंग-सो-लिन और जनरल वू पइ-फ़ू मिलकर रूसियों के आक्रमण को रोक रहे हैं। आसार ऐसे नज़र आते हैं कि ये लोग भी इन विदेशियों की करतूत को समझ गए हैं, और राष्ट्रवादियों के साथ सम्मिलित होकर इन विदेशियों के पंजों से अपने देश को मुक्त कर लेंगे। चीन की वर्तमान स्थिति से हताश होने की कोई आवश्यकता नहीं। चीनियों के लिये यह बड़े गौरव की बात है कि इस संकटापन्न स्थिति में भी, जब कि विदेशी उनकी स्वतंत्रता नष्ट करने के लिये इतना कुचक्र रच रहे हैं, उन्होंने चीन के उत्थान के आंदोलन को जारी रक्खा है। यदि वे अपने कार्य पर डटे रहे, तो निश्चय ही अपने देश का उद्धार कर लेंगे।

ठाकुर छेदीलाल

महाकोसल के राजा रत्नदेव (द्वितीय) का ताम्र-शासन



छत्तीसगढ़ में हैहय-वंशीय क्षत्रियों का राज्य सैकड़ों वर्ष तक रहा। उनकी राजधानी पहले तुम्माण (वर्तमान 'तुमान') और पीछे रत्नपुर (वर्तमान रतनपुर) में थी।

इस वंश में कई बड़े प्रताप-शाली राजा हो गए हैं, जिन्होंने कई देशों को जीतकर वहाँ अपनी विजय-वैजयंती फहराई थी। इन्हें इतिहासवेत्ता लोग महाकोसल, रत्नपुर के हैहय या कलचुरि-वंशीय राजे कहा करते हैं। छत्तीसगढ़ में इस वंश की कई प्रशस्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये सब प्रशस्तियाँ शिलाओं पर हैं। आज से दो-तीन वर्ष पहले इस राजवंश

का एक भी ताम्र-शासन नहीं प्राप्त हुआ था। पर अब इस वंश के दो राजों के ताम्र-शासन प्राप्त हुए हैं। इनमें से प्रथम सरखोंवाला ताम्र-शासन है, जो संवत् १९७२ में मिला था; पर छत्तीसगढ़-गौरव-प्रचारक मंडली को गौरव प्रदान करने के लिये कहिए, अथवा राजा रत्नदेव की विप्र-भक्ति और दानशीलता प्रकट करने के लिये कहिए, वह तमेर के हथौड़े से चूर-चूर होने से बचा रहा।

ता० १६-१-२५ को इस ताम्र-शासन का हाल इन पंक्तियों के लेखक को मिला। ता० ६-२-२५ को सरखों के हेडमास्टर पंडित गोवर्द्धनप्रसादजी ने, जिज्ञासा करने पर, सूचित किया कि ताम्र-पत्र सुरक्षित हैं। तब छत्तीसगढ़-गौरव-प्रचारक मंडली, बिलासपुर के लिये दोनों ताम्र-पत्र सरखों से प्राप्त कर लिए गए, और अब वे उसी मंडली के अधिकार में हैं। उनकी प्राप्ति के संबंध में पं० गोवर्द्धनप्रसादजी ने जो सूचना दी थी, वह यों है—

ये ताम्र-पत्र सं० १९७२ के ज्येष्ठ में मिले थे। इनके पानेवाले घासीराम तेली और शिवा तेली, दोनों स्वर्ग सिधार गए हैं। जाँजगीर-तहसील ज़िला-बिलासपुर में सरखों नाम का एक गाँव है। उस गाँव में 'गधिया'-नामक एक पुराना तालाब है जो बहुत गहरा है। उसमें चारों तरफ़ पचरी' (सीढ़ियाँ) बँधी हुई हैं। इनमें बड़े-बड़े पत्थर 'पचरी' में लगे हैं कि २० आदमियों से एक पत्थर उठना कठिन है। पचरी में ६ सीढ़ियों तक का पता लगा है। इस तालाब के ईशान-कोण में ये ताम्र-पत्र मिले थे। जिस जगह पर ये थे, वहाँ मिट्टी के दिए और पात्र (पोरहा चुकिया) हज़ारों की संख्या में पड़े हुए थे।

दूसरे ताम्र-शासन पृथ्वीदेव (प्रथम) के समय के हैं। वे जाँजगीर-तहसील के अमोदा-गाँव में एक मकान की नींव खोदते वक़्त सन् १९२१ में, मई महीने में, मिले थे। वे सब पत्र संख्या में आठ हैं। ये आठों ताम्र-पत्र अब नागपुर के अजायबघर में पहुँच गए हैं। उन्हें पढ़कर रायबहादुर हीरालाल साहब ने कई लेख लिखे हैं, जो यथासमय अँगरेज़ी-पत्रों में प्रकाशित होंगे। उनमें से एक का समय चेदि-संवत् ८३१ है (देखो रायपुर-रश्मि)।

सरखों के ताम्र-पत्र की तिथि

हमारे सरखोंवाले ताम्र-शासन का समय चेदि या कलचुरि-सं० ८८० है। यथा—

तेनाशी(शी)त्यधिकाष्टवत्सरशते जाते दिनं गोःस्प(ष्प)तेः
कार्त्तिक्यामथ रोहिणीसमसमये रात्रेश्च यामत्रये :
श्रीमद्रत्ननरेश्वरस्य सदसि ज्योतिर्विदामग्रतः
सर्वग्रासमनुष्णगोः प्रवदता तेषां प्रतिज्ञानदां ॥ १६ ॥

श्रीयुत बाबू महावीरप्रसादजी श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, बी० टी० विशारद ने कृपा-पूर्वक गणना करके सूचित करने की उदारता दिखाई है कि उस दिन अँगरेज़ी सन् ११२८ के नवंबर की आठवीं तारीख़ थी। दिन गुरुवार था। उस दिन विक्रम-संवत् ११८५ की कार्त्तिक-पूर्णिमा थी, और सर्वग्रास चंद्रग्रहण भी लगा था।

लिपि और भाषा

ताम्र-पत्र की लिपि बारहवीं सदी की नागरी लिपि है, और भाषा संस्कृत। लेख पद्य-बद्ध है। कुल २५ श्लोक हैं, जो आगे उद्धृत किए गए हैं।

आकार-प्रकार

ताम्र-पत्र दो हैं। दोनों के एक-एक ओर ही अक्षर खोदे गए हैं। बीच में एक छेद है। पत्रों की लंबाई-चौड़ाई फ़ुलस्केप काग़ज़ की लंबाई-चौड़ाई के सदृश है, अर्थात् १८ अंगुल × १२ अंगुल। प्रति पत्र में १८ पंक्तियाँ हैं। प्रथम पत्र में १४ श्लोक पूरे और १५वें श्लोक के १½ चरण हैं। दूसरे पत्र में शेष सब श्लोक हैं।

ताम्र-शासन का उद्देश

पद्मनाभ-नामक एक ज्योतिर्विद् ब्राह्मण को 'चिञ्चातलाई' नाम का ग्राम 'शासन' में दिया गया था। यह ग्राम अनर्घवल्ली-मंडल में था। सरखों के निकट 'बोरतलाई'-नामक एक तालाब है, उसके आसपास बस्ती बसने के चिह्न हैं। संभवतः वहीं 'चिंचातलाई'-नामक गाँव रहा होगा। सरखों से चार कोस पर हसदो नदी के किनारे 'बोरतराई' नाम का एक अन्य गाँव है। तलाई (तागानलाई) तथा पंडरतलाई आदि कई गाँव जाँजगीर-तहसील में हैं।

'अनर्घवल्ली'-मंडल का पता नहीं लग सका है। संभवतः वह जाँजगीर-तहसील का ही प्राचीन नाम था। ख़ास जाँजगीर का नाम 'जाजल्लपुर' था, ऐसा कहा जाता है। और, 'जाजल्लपुर'-शब्द रतनपुर के संवत् ८६६-वाले शिलालेख में आया भी है। उस लेख की २५वीं

पंक्ति के अंत में २६वें श्लोक के पश्चात् 'श्रीआजल्लपुरं' लिखा है।

ताम्र-शासन के कवि और लेखक

ज्ञात होता है, ज्योतिर्विद् पद्मनाभ ने ही श्लोकों की रचना की थी ; क्योंकि उन्होंने अपने संबंध में कई श्लोक लिखे हैं। अंत के ३५वें श्लोक से जाना जाता है कि जेंडेर-ग्राम के अधिपति श्रीकीर्तिधर ने उस लेख को लिखा था। यथा—

तस्यामेवानर्घवल्ल्यां श्रीमत्कीर्तिधरः सुधीः ;
जेंडरग्रामनाथोऽयं लिलेखाक्षरशासनम् ॥ ३५ ॥

जेंडेर-ग्राम का कुछ पता नहीं लगता।

इस ताम्र-शासन की विशेषता

हैहय तथा कलचुरियों के सभी शिलालेखों का श्रीगणेश 'ओं नमः शिवाय' से हुआ है ; पर इस ताम्र-शासन में वह बात नहीं पाई जाती। इसमें 'ओं नमो ब्रह्मणे' से लेख का आरंभ है, और प्रथम श्लोक में भी 'ब्रह्मणे नमः' है। यथा—

निर्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परमकारणम् ;
भावग्राह्यं परं ज्योतिस्तस्मै सद्ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

इन दोनों मंगलाचरणों से यह सिद्ध होता है कि इस ताम्र-लेख के कवि शैव न थे ; पर वह 'ब्रह्म' और 'शिव' में भेदभाव माननेवाले भी न थे।

इस लेख में विशेषत्व-पूर्ण दूसरी बात यह है कि प्रशस्तिकार ने इस हैहय-वंश की उत्पत्ति सूर्य और मनु से मानी है। दूसरे श्लोक में लिखित है—

यदेतदग्र्यमम्बरस्य
ज्योतिः स पूषा पुरुषः पुराणः ।
अस्त्यस्य पुत्रो मनुरादिराज-
स्तदन्वयेऽभूद् भुवि कार्तवीर्यः ॥ २ ॥

ऐसी बातें अन्य ग्रंथों में भी मिलती हैं, और शंका का कोई कारण नहीं रह जाता। महाभारत के अनुशासन-पर्व के १४७वें अध्याय में श्रीकृष्णचंद्र महाराज की वंशावली यों दी गई है—

१ दक्ष-कन्या दाक्षायणी
२ (विवस्वान्) आदित्य
३ मनु
४ इला
५ पुरूरवा
६ आयु
७ नहुष
८ ययाति
९ यदु
१० क्रोष्टा
११ वृजिनीवान्
१२ उषंगु
१३ शूर
१४ वसुदेव
१५ श्रीकृष्ण

आदिपर्व के ७६वें अध्याय के आरंभ में ययाति प्रजापति से १०वाँ पुरुष बतलाया गया है। उसे स्वयं ब्रह्मदेव से मानना चाहिए। (देखिए महाभारत-मीमांसा, पृष्ठ १०२)

खैरहा (रींवा-राज्य) में प्राप्त यशःकर्णदेव के ताम्र-शासन में कलचुरियों की वंशावली निम्न-लिखित प्रकार से दी गई है। यह ताम्र-शासन चेदि-संवत् ८२३ का है। इसका भी आरंभ 'ओं नमो ब्रह्मणे' से किया गया है—

जयति जलजनाभः तस्य नाभीसरोजं
जयति जयति तस्माज्जातवानब्जसूतिः ;
अथ जयति स तस्यापत्यमत्रिस्तदक्ष्णि-
स्तदनु जयति जन्मप्राप्तवानब्धिबन्धुः ॥ १ ॥

अथ बोधनमादिराजपुत्रं
गृहजामातरमब्जबान्धवस्य ;
तनयं जनयांबभूव राजा
गगनाभोगतडागराजहंसः ॥ २ ॥

पुत्रं पुरूरवसमौरसमापसूनुः
देवस्य सप्तजलराशिरसायनस्य ;
आसीदनन्यसमभाग्यशतोपभोग्या
यस्योर्वशी च सुकलत्रमिहोर्वरा च ॥ ३ ॥

अत्रान्वये किल शताधिकसप्तमेध-
यूपोपरुद्धयमुनोक्तविविक्तकीर्तिः ;
सप्ताब्धिरत्नरशनाभरणाभिराम-
विश्वम्भराशुभरतो भरतो बभूव ॥ ४ ॥

हेलागृहीतपुनरुक्तसमस्तसत्रो
गोत्रे जयत्यधिकमस्य स कार्तवीर्यः ;
अत्रैव हैहयनृपान्वयपूर्वपुंसि
राजेति नाम शशलक्ष्मणि यत्समे यः ॥ ५ ॥

अर्थात् विष्णु के नाभि-कमल से पैदा हुए

|

ब्रह्मा

|

अत्रि

|

चंद्रमा (अब्धि-बंधु)

चंद्रमा से बोधन या बुध हुए, जो सूर्य के गृह-जामाता हैं।

|

बुध

|

पुरूरवा (पत्नी उर्वशी)

इनके वंश में भरत हुए, जिन्होंने सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ किए—

In this family forsooth was born Bharath, whose pure name is proclaimed by the Yamuna, hemmed in by more than hundred posts of horse sacrifices (offered by him), Bharat, who delighted in the welfare of the earth, made lovely, by the ornament the jewelled girdle of the seven seas.

इन्हीं भरत के वंश में कार्तवीर्य हुए। 'महाभारत' की भित्ति पर उद्धृत वंशावली से पुरूरवा, ययाति आदि की उत्पत्ति आदित्य, मनु आदि से मानी गई है। और, यही बात वर्तमान ताम्र-शासन में भी है।

कुछ अन्य बातें

यह ताम्र-शासन तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम में मंगलाचरण और हैहय-राजा रत्नदेव की वंशावली, द्वितीय में ग्राम-दान-ग्रहणकारी द्विजवर और उनके वंशधरों का परिचय और तृतीय भाग में भूमि-दान-हरण के भीषण परिणाम और पालक-विषयक श्लोक हैं।

हम पहला और दूसरा श्लोक उद्धृत कर चुके हैं। चौथे श्लोक से लेकर ११वें श्लोक तक हैहय-राजों का उल्लेख है।

कोकल्ल (कोकल)

कोकल के १८ पुत्र हुए। सबसे बड़े त्रिपुरी के राजा हुए। अन्य १७ भिन्न मंडलों के पति हुए। फिर कलिंग-राज हुए। उनके पुत्र हुए कमलराज। उनके पुत्र रत्नराज (या रत्नदेव प्रथम) हुए। इनकी पत्नी नोनल्ला से पृथ्वी-देव उत्पन्न हुआ। इन्हीं पृथ्वीदेव (प्रथम) के दिए हुए अमोदा में प्राप्त ताम्र-शासन हैं।

पृथ्वीदेव (प्रथम) की पत्नी राजल्लदेवी से जाजल्लदेव (प्रथम) नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी जाजल्लदेव के पुत्र-रत्न थे हमारे ताम्र-शासन के देनेवाले राजा रत्नदेव (द्वितीय)—

तस्यात्मजः सकलकोसलमंडनश्रीः
श्रीमान्समाहृतसमस्तनराधिपश्रीः ।
सर्वक्षितीश्वरशिरोविहिता हि सेव-
सेवामृतां निधिरसौ भुवि रत्नदेवः ॥ ११ ॥

जान पड़ता है, चेदि-संवत् ८८० तक राजा रत्नदेव चोड़गंग राजा पर विजय-प्राप्ति के यश से मंडित नहीं हुए थे; नहीं तो इसका उल्लेख ताम्र-शासन में अवश्य मिलता। मलारवाले शिलालेख (संवत् ६१६ चेदि) के चौथे श्लोक में इन रत्नदेव की प्रशंसा यों है—

तद्वंशे नृपचोडगङ्गविसरत्प्राद्भ्रतापानल-
ज्वालासन्ततिशान्तिसगद्दजलदः श्रीरत्नदेवोऽभवत् ।
भूपालोऽखिलवैरिवारवसुधाधीशा इन्द्राविलरी
दर्पकद्रुमदाहदावदहनश्रामंदिर सुंदरः ॥ ४ ॥

रत्नपुरवाले अन्य शिलालेख में (समय विक्रम-संवत १२०७ : चेदि सं० ६०१) भी चोड़गंग पर विजय पाने का हवाला है—

तस्माच्चेदिनरेन्द्रदुर्दमचमूचक्रैकवारानिधेः
तीर्थ्याद्भव्यरत्नोऽजनिष्ट तनयः
...र्वा खल्वित चोड़गंगसुभटस्फारेन्दुबिंबग्रह-
ग्रासे राहुरनन्तशौर्यमहिमाश्रयो महीमंडले ॥ ५ ॥

डॉक्टर कीलहार्न Ph.D. C.I.E ने ऊपर के श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है—

From him there was born a son, (the illustrious Prince Ratnadeva) who was a fierce submarine fire of the unique ocean of the array of the difficult to be sub-dued armies of the *Chedi* Princes; who to the *Cheda* and *Ganga* Champions, elated with [conceit] was, what Rahu is to the full orb of the moon, when he seizes and swallows it, (and) the marvellous might of whose heroism had no bounds on the orb of the earth.

तथा खरौद के लखनेश्वर मंदिरस्थ शिलालेख में (समय चेदि संवत् ६३३) लिखित है—

यश्चोड़गङ्गनृपतिं कलिङ्गदेशाधिपं
रणाङ्गणे शासितवान् ... कृतकाञ्चमानाधानं चक्रे ।

इन रत्नदेव (द्वितीय) के पहले के जो ताम्र-पत्र और शिलालेख मिले हैं, उनकी तिथियाँ इस प्रकार हैं—

रत्नेश या रत्नराज—(समय सं० ८३१ के पूर्व)

पृथ्वीश देव पृथ्वो या (प्रथम) अमोदा ताम्र-पत्र चेदि सं० ८३१ सन् १०७९

जाजल्लदेव (प्रथम) रतनपुर का शिलालेख चेदि सं० ८६६ सन् १११४

रत्नदेव (द्वितीय) सरखोंवाला ताम्र-पत्र चेदि सं० ८८० सन् ११२८

पृथ्वीदेव (द्वितीय) रतनपुर का* शिलालेख चेदि सं० ९०१ सन् ११५०

जाजल्लदेव (द्वितीय) मलार का शिलालेख चेदि सं० ९१९ सन् ११६८

रत्नदेव (तृतीय) खरौद का शिलालेख चेदि सं० ९३३ सन् ११८१

१२वें श्लोक से लेकर २०वें श्लोक तक द्विजवर पद्मनाभ के आदि निवास-स्थल तथा पूर्वजों का वर्णन है।

इलावर्त में भारत उत्तम है। वहां मध्यप्रदेश उत्तम है, और मध्यदेश में वह स्थल, जहाँ शोणभद्र है, उत्तम है।

महाशोण के पुत्र सोमेश्वर हुए। उनके कुलचंद्र और उनके फिर पद्मनाभ हुए। यह बड़े ज्योतिष के विद्वान थे। *यथा*—

य: सिद्धान्तद्वयं वेत्ति होरासागरपारग:।
संहिताशास्त्रतत्त्वज्ञो वराहमिहिरोपम: ।

२१वें श्लोक से ३४वें श्लोक तक ब्रह्मस्वहरण-विषयक पातक के श्लोक हैं। क्या आजकल के राजे-महाराजे, जो "स्वदत्तां या परदत्तां" भूमि या ग्राम को छीन लेने में किंचित् भी नहीं हिचकते, ऐसे ताम्र-पत्रों के इन श्लोकों को व्यर्थ ही मानते हैं? तब फिर इनके उद्धृत किए जाने में पूर्व काल के राजा लोगों ने क्या लाभ सोच रक्खा था, कुछ समझ में नहीं आता।

यहाँ ताम्र-शासन के समस्त श्लोक उद्धृत कर हम लेखनी को विश्राम देते हैं—

* यह शिलालेख विक्रम-संवत् १२०७ का है। कीलहार्न साहब ने इसे ४० वर्ष पीछे का (अर्थात् विक्रम-संवत् १२४७ का) माना है। पर यह उनकी भूल है : क्योंकि जिस लेख में संवत् १२०७ है, उसमें रत्नदेव (द्वितीय) के पुत्र पृथ्वीदेव (द्वितीय) तक ही राजनामावली है। —लेखक

सरखों (ज़िला बिलासपुर) में प्राप्त रत्नदेव (द्वितीय) का चेदि-संवत् ८८०वाला ताम्र-शासन—

ॐ नमो ब्रह्मणे ।

निर्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परमकारणम्।
भावग्राह्यं परं ज्योतिस्तस्मै सद्ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥
यदेतदग्रेसरमम्बरस्य
ज्योतिः स पूषा पुरुषः पुराणः।
अस्यस्य पुत्रो मनुरादिराज-
स्तदन्वयेऽभूद्भुवि कार्तवीर्यः ॥ २ ॥
देवः श्रीकार्तवीर्यः क्षितिपतिरभवद्भूषणं भूतधात्र्या
हेलालिप्ताद्रिबिम्बप्रतिहिमगिरिसुताश्लेषसन्तोषिवेश्मः
दोर्दण्डाकाण्डसंतुप्रतिगमितमहावारिरेवाप्रवाह-
व्याधूतस्त्र्यक्षपूजागुरुजनितरुषं रावणं यो बबन्ध ॥ ३ ॥
तद्वंशप्रभवा नरेन्द्रपतयः ख्याताः क्षितौ हैहया-
स्तेषामन्वयभूषणं रिपुमनोविन्यस्ततापानलः।
धर्मत्यागनधनानुसंचितयशाः शश्वत्सतां सौख्यकृत्
प्रयात्सर्वगुणान्वितः समभवत् श्रीमानसौ कोकलः ॥ ४ ॥
अष्टादशारिकरिकुम्भविभङ्गसिंहाः
पुत्रा बभूवुरतिशौर्यपराश्च तस्य।
तत्रानुजो नृपवरस्त्रिपुरीश आसीत्
शेषांश्च मण्डलपतीन् स चकार बन्धून् ॥ ५ ॥
तेषामनुजस्य कलिङ्गराजः
प्रतापवह्निस्तापितारिराजः।
जातोऽस्य द्विट्रिपुप्रवीरः
प्रियाननाम्भोरुहपार्वणेन्दुः ॥ ६ ॥
तस्मादपि प्रततनिर्मलकीर्तिकान्तो
जातः सुतः कमलराज इति प्रसिद्धः।
यस्य प्रतापतरलास्युधिनेत्रजन्मा
जातानि पंकजवनानि विकासभाञ्जि ॥ ७ ॥
तेनाथ चन्द्रवदनोऽजनि रत्नराजो
विश्वोपकारकरणार्जितपुण्यभारः।
येन स्वबाहुयुगनिर्मितविक्रमेण
नीतं यशास्त्रभुवने विनिहत्य शत्रून् ॥ ८ ॥
नोनल्लाख्या प्रिया तस्य शूरस्येव हि शूरता।
तयोः सुतो नृपश्रेष्ठः पृथ्वीदेवो बभूव ह ॥ ९ ॥
पृथ्वीदेवसमुद्भवः समभवद्राजल्लदेवीसुतः
शूरः सज्जनवांछितार्थफलदः कल्पद्रुमः श्रीफलः।
सर्वेषामुचितार्चने सुमनसां तीक्ष्णद्विषत्कण्टकः

पश्यत्कान्ततरांगना सुवदनो आनन्ददेवो नृपः ॥१०॥
तस्यात्मजः सकलकोशलमण्डनश्रीः
श्रीमान्समाहृतसमस्तनराधिपश्रीः ;
सर्वक्षितीश्वरशिरो विहितां हि सेव
सेवाभृतां निधिरसौ भुवि रत्नदेवः ॥ ११ ॥
इलावर्तादिवर्षाणां मध्ये भारतमुत्तमम् ;
मध्यदेशस्ततोऽपि शोणभद्रोऽस्ति यत्र सः ॥ १२ ॥
श्रीशोणभद्रनिर्यातः पंचाणो वत्सगोत्रजः ;
महाशोण इति ख्यातो बभूव द्विजवंशजः ॥ १३ ॥
यश्चन्द्रार्ककलाकलापकुशलो निःशेषविद्यागमः ;
ज्ञाता ब्रह्मसमः समस्तजनताला(?)दरः सर्वदा;
यः पंचाब्दहानि चाष्टसमये व्यक्तासनं शांचवन् (?)
तीर्थप्राणविमुक्तिमाप निपुणो वेदान्तसिद्धान्तगः ॥१४॥
प्रज्ञानिधिः सकलवेदविदां वरिष्ठो
नानाविधाम्बरविधानविशुद्धबुद्धिः ;
तस्यात्मजो द्विजसमाजविभूषणश्रीः
सोमेश्वरः समभवद्भुवनप्रसिद्धः ॥ १५ ॥
श्रुतिसमुचितशीलस्तत्त्वविद्यागमानां
निरवधिगुणराशिर्व्यासकल्पो जनेषु ;
इह हि जगति शापानुग्रहाभ्यां समर्थ-
स्तदनु च कुलचन्द्रस्तस्य सूनुर्बभूव ॥ १६ ॥
प्रज्ञामञ्जुलवेश्मविस्मयकराभ्यासः समस्तागमे
पुण्यात्मा मलकर्मकर्मनिपुणः प्रावीण्यवान् ज्योतिषी ;
तस्याशेषगुणाकरस्य मतिमान्पुत्रः पवित्रात्मनो
ब्रह्माभ्यासनिवेशपेशलमतिः श्रीपद्मनाभोऽभवत् ॥१७॥
यः सिद्धांतद्वयं वेत्ति होरासागरपारगः ;
संहिताशास्त्रतत्त्वज्ञो वराहमिहिरोपमः ॥ १८ ॥
तेनाशीत्यधिकाष्टसप्तशते जाते दिने गोप्पनेः
कार्त्तिक्यामथ रोहिणीभिगमये रात्रेश्च यामत्रये ;
श्रीमद्रत्ननरेश्वरस्य सदसि ज्योतिर्विदामग्रतः
सर्वग्रासमनुष्णगोः प्रवदता तीर्णा प्रतिज्ञा नदी ॥ १९ ॥
इन्दोर्मुक्तिं कुर्वताथं तदानीं
सान्द्रोदार्गमैण्डलेनपत्रवल्ल्यां ;
राज्ञा तुष्टेनाथ चिंचातलाई-
ग्रामस्तस्मै शासनीकृत्य दत्तः ॥ २० ॥
तपति न तपनः प्रखरो मरुदपि नो वाति शासने तीव्रः ;
ब्रह्मस्वस्तेयः पातकमतिशयभीमं समालोच्य ॥ २१ ॥
चन्द्रार्कौ गगने यावत् तपतो लोकसाक्षिणौ ;
तावदभ्याहतं स्थेयाद्दानमेतन्महीपते ॥ २२ ॥
द्विजाश्च नावमन्तव्या त्रैलोक्यास्थितिहेतवः ;
देववत् पूजनीयाश्च दानमानार्चनादिभिः ॥ २३ ॥
यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ;
क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत् प्रकुप्य तान् ॥ २४ ॥
शंखं भद्रासनं छत्रं गजाश्ववरवाहनम् ;
भूमिदानस्य चिह्नानि फलं स्वर्गः पुरन्दर ! ॥ २५ ॥
बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ;
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ २६ ॥
यथाप्सुपतितं शक्र तैलबिंदुर्विसर्पति ;
एवं भूमिकृतं दानं शस्ये शस्ये प्ररोहति ॥ २७ ॥
भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यस्तु भूमिं प्रयच्छति ;
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥ २८ ॥
पूर्वदत्तां द्विजातीनां यत्नाद्रक्ष पुरन्दर ! ;
महीं महीभृतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो हि पालनम् ॥ २९ ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधराम् ;
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते ॥ ३० ॥
अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतेन च ;
गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुध्यति ॥ ३१ ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः ;
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके व्रजेत् ॥ ३२ ॥
इष्टं दत्तं हुतं चैव यत्किंचिद्धर्मसंचितम् ;
अर्धाङ्गुलेन सीमाया हरणेन प्रणश्यति ॥ ३३ ॥
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ;
विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रिकम् ॥ ३४ ॥
तस्यामेवानपत्रवल्ल्यां श्रीमत्कीर्तिधरः सुधीः ;
जेंडरग्रामनाथोऽयं लिलेखाक्षरशोभनम् ॥ ३५ ॥

लोचनप्रसाद पांडेय

कहाँ ?

ना मंदिर में, ना मसजिद में, ना गिरजे के आसपास में ;
ना पर्वत में, ना नदियों में, ना घर बैठे, ना प्रवास में ।
ना कुंजों में, ना उपवन के शांति-भवन या सुख-निवास में ;
ना गाने में, ना बाने में, ना आँसू में, नहीं हास में ।
ना छंदों में, ना प्रबंध में, अलंकार ना अनुप्रास में ;
खोज ले कोई राम मिलेंगे दीन जनों की भूख-प्यास में ।

रामनरेश त्रिपाठी

मेरी शरण आओ



प्राचीन भारत में स्वाधीनता का भाव *

(२)

मुसलमान-काल

मुसलमान-काल को, ऐतिहासिक दृष्टि से, प्राचीन काल न कहकर, मध्य-काल कहना ही ठीक है। ब्रिटिश समय से पूर्व के संपूर्ण काल को एक नाम से निर्दिष्ट करने के लिये ही हमने उसे प्राचीन काल का उत्तरार्द्ध मान लिया है। वस्तुतः वह प्राचीन और अर्वाचीन के बीच में एक शृंखला है।

हमने देख लिया कि मुसलमानों से पूर्व के इतिहास में भारतवासी स्वाधीनता के भाव से रहित नहीं थे। यह ठीक है कि अभी काश्मीर से लेकर रासकुमारी तक के भारतवासी अपने को एक राष्ट्रीय सूत्र में बँधा हुआ नहीं पाते थे; परंतु संस्कृति, धर्म और भाषा की समानताएँ इतनी ज़बर्दस्त थीं कि विदर्भ का काशी, या काशी का विदर्भ को जीतना पराधीनता में शामिल नहीं समझा जाता था। उत्तर-दिशा से धर्म और संस्कृति में भिन्नता रखनेवाली जातियों के प्रवाह आए, और इस महासागर में न-जाने कहाँ विलीन हो गए। यूनानी, सीथियन, शक या हूण देर तक विदेशी रहकर राज्य न कर सके। या तो वे यहाँ से निकाले गए या यहीं के बन गए।

अब हम ऐसे समय में प्रवेश करते हैं, जिसमें विदेशी विजेता न तो शीघ्र ही इस देश से निकाले जाते हैं, और न यहाँ के बन जाते हैं। वे लगभग १ हज़ार वर्ष तक भारत में राज्य करते हैं। यदि मुसलमानों के भारत प्रवेश का प्रारंभ अब्दुलक़ासिम से करें, तो भारत में मुसलमानों के राजकीय हैसियत से निवास का समय और भी अधिक बढ़ जाता है। सामान्यतया इतिहास-लेखक इस काल को मुसलमान-काल के नाम से निर्दिष्ट करते हैं। स्थूल दृष्टि से इस काल के इतिहास का अवलोकन करने से मनुष्य पर यही असर पड़ता है कि—

(१) मुहम्मद ग़ोरी ने पृथ्वीराज को परास्त करके जब इसलाम का झंडा दिल्ली में गाड़ा, तब से लेकर अँगरेज़ों के आने तक देश में मुसलमानों का शासन रहा।

(२) भारतवासी शीघ्र ही पराधीन हो गए, और आज भी पराधीन हैं। उस समय से आज तक भारतवासी राजनीतिक दृष्टि से शून्य के समान रहे हैं। उनमें राजनीतिक स्वाधीनता का विचार शेष नहीं रह गया है।

(३) अँगरेज़ों ने भारतवर्ष को मुसलमान-बादशाहों से जीता। भारत ने केवल मालिक बदल लिया, और कुछ नहीं।

साधारण दृष्टि से वर्तमान लिखित इतिहासों के पढ़ने से मन पर यही असर होता है; परंतु मैं इस निबंध में दिखाना चाहता हूँ कि इतिहास का गहरा और पक्षपात-हीन अनुशीलन हमें दूसरे ही परिणाम पर पहुँचाता है। यदि हम रंगीन ऐनक उतारकर भारत के इतिहास का अध्ययन करें, तो निम्न-लिखित परिणामों पर पहुँचेंगे—

(१) भारत में १ हज़ार से अधिक वर्ष तक रहकर भी मुसलमान कभी पूरे देश के स्वामी नहीं हुए।

(२) किसी भी मुसलमान-बादशाह का राज्य ऐसा नहीं गुज़रा, जिसमें उसे हिंदुओं के साथ लड़ना न पड़ा हो, जिसका अभिप्राय यह है कि किसी समय भी भारत-वासियों के हृदय से स्वाधीनता का भाव लुप्त नहीं हुआ।

(३) भारतवासी सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से पूरी तरह से स्वाधीन रहे।

(४) विदेशियों और भारतवासियों के सदियों तक चलते हुए राष्ट्रीय युद्ध में अंतिम विजय भारतवासियों की हो चुकी थी, जब कि एक और विदेशी शक्ति बीच में कूद पड़ी।

यहाँ पर इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अँगरेज़ों का राज्य होने से पूर्व मुसलमान भारतवर्ष में विदेशी बनकर ही रहते थे। धर्म, वेष, संस्कार और भाषा में उस समय वे भारतवासियों से उसी प्रकार भिन्न रहते थे, जैसे आज अँगरेज़ रहते हैं। देश के असली निवासी हिंदुओं के साथ मुसलमानों का व्यवहार उस व्यवहार की अपेक्षा अच्छा नहीं था, जो दक्षिण-आफ्रिका के गोरे वहाँ के आदिम निवासियों के साथ कर रहे हैं। उस समय हिंदू

* इसका प्रथम अंश वर्ष ४, खंड २ की द्वितीय संख्या में निकल चुका है।

संपादक

भारतवासी, और मुसलमान सदियों तक यहाँ रहकर भी विदेशी थे। इस निबंध में भारतवासी से हिंदू और विदेशी से मुसलमानों का ग्रहण होना चाहिए।

मैंने प्रथम स्थापना यह की है कि किसी समय मुसलमान सारे भारतवर्ष के स्वामी नहीं हुए। चलिए, हम एक सरसरी नज़र डालकर देखें कि यह स्थापना कहाँ तक सत्य है।

७१२ ई० में मुहम्मद क़ासिम ने सिंध पर धावा किया। राजा दाहिर को परास्त करके वह मुल्तान तक बढ़ आया। कुछ समय तक उसने ख़लीफ़ा के नाम पर राज्य किया। परंतु शीघ्र ही उसे अरब लौट जाना पड़ा, जिससे भारत में इस्लाम का झंडा गड़कर उखड़ गया।

१००० ईसवी के समीप ग़ज़नी के महमूद ने भारतवर्ष पर धावे आरंभ किए। २६ वर्ष तक वह बराबर आक्रमण करता रहा। इस बीच में उसने कम-से-कम १६ धावे किए। उसे किन कारणों से सफलता प्राप्त हुई, इस प्रश्न का उत्तर देने का यह स्थान नहीं है। हमें इतना ही देखना है कि वह जिस ओर भी गया, हिंदू-राजों को परास्त करता गया। परंतु आश्चर्य यह है कि १६वें धावे तक भी उसे लड़कर ही जीतना पड़ा—कभी अबाधित प्रवेश नहीं मिला। अस्तु। महमूद जीतकर और लूट-मार करके चला गया; परंतु अपने पीछे सिवा पंजाब के और कहीं अपना प्रतिनिधि तक न छोड़ गया। पंजाब का पहला गवर्नर अरियारुक था, उसके पीछे अहमद नियल्तगीन गवर्नर बना। इसी अहमद नियल्तगीन ने पहलेपहल बनारस पर धावा किया था; पर स्वयं घिर जाने के डर से कुछ घंटों में ही उसे छोड़कर भागना पड़ा। उस समय ग़ज़नी में महमूद का लड़का मसूद राज्य करता था। वह नियल्तगीन से असंतुष्ट हो गया। उसे गवर्नरी से हटाने के लिये उसने तिलक नाम के हिंदू को चुना। तिलक जाति का नाई था, परंतु था बड़ा बहादुर। उसने एक ही लड़ाई में नियल्तगीन को हटा दिया। नियल्तगीन का सिर जाटों ने काट डाला, जो तिलक के हाथों एक लाख रुपए में बिक गया। कुछ समय पीछे मसूद भारत पर चढ़कर आया, और हाँसी के क़िले को जीतकर अपने देश को वापस चला गया। १०४३ में हिंदुओं ने मुसलमानों से लाहौर वापस ले लिया। इस प्रकार इस दूसरे आक्रमण का भी कोई स्थायी प्रभाव नहीं हुआ। पंजाब के कुछ भाग को छोड़ शेष सारा देश स्वतंत्र ही रहा। इसके पीछे लगभग १०० वर्षों तक किसी मुसलमान विजेता ने भारतवर्ष की ओर मुँह नहीं मोड़ा।

अब हम मुहम्मद ग़ोरी पर आते हैं। मुहम्मद ग़ोरी ने ११७५ ई० में भारत पर पहला आक्रमण किया। मुल्तान लाहौर और स्यालकोट एक दूसरे के पीछे उसके वश में आ गए। कुछ वर्ष पीछे उसने सरहिंद को जीतकर क़िला बना लिया, जिसके कारण दिल्ली के चौहान राजा पृथ्वीराज से उसका संघर्ष हुआ। राजा पृथ्वीराज के साथ मुहम्मद के दो युद्ध हुए, जिनमें से पहले में वह बुरी तरह परास्त हुआ, परंतु दूसरे में विजयी हुआ। पृथ्वीराज बंदी होकर जान से मारा गया। इस युद्ध की सफलता के कारण दिल्ली, आगरा, अजमेर और हाँसी मुसलमान-सेनापतियों के हाथ में आ गए, और धीरे-धीरे कुछ स्वयं ग़ोरी के और कुछ उसके सेनापतियों के युद्धों द्वारा क़न्नौज, बनारस, बिहार और बंगाल भी हिंदू राजों के हाथ से निकल गए। १२०६ में मुहम्मद ग़ोरी गक्खड़ों के हाथ से मारा गया। भारतवर्ष का वह भाग, जो उसने और उसके सेनापतियों ने जीता था, उसके सेनापति ऐबक के अधिकार में आ गया। ऐबक और बख़्तियार ने गुजरात और बंगाल के विजय को पूरा कर लिया। इस प्रकार इतिहास-लेखक लिखते हैं कि १२१० में ऐबक की मृत्यु के समय हिमालय और विंध्याचल के मध्य का भारत मुसलमान-राजों के अधीन हो चुका था।

अब हम इस स्थापना की परीक्षा करते हैं कि किसी देश को जीतने का अभिप्राय होता है उसकी स्वाधीन सत्ता को नष्ट कर दिया जाना। लड़ाई में जीतना एक वस्तु है, और जीतना दूसरी वस्तु। यहाँ प्रारंभिक स्थिति में मुसलमान लड़ाई में जीत गए थे, परंतु जीते नहीं थे; क्योंकि अगले इतिहास में हम लगभग हरएक मुसलमान-राजा को अपने राज्य की रक्षा के लिये हिंदू-राजों से लड़ता हुआ पाते हैं। ऐबक के पीछे अल्तमश गद्दी पर बैठा, जिसे मालवा जीतने के लिये हिंदू-राजों से लड़ना पड़ा। फ़ीरोज़शाह और रज़िया बेगम के टूटे-फूटे और नाम-मात्रों के शासनों को छोड़कर जब हम बलबन के शानदार शासन पर आते हैं, तब हमें इतिहास के लेखक बतलाते हैं कि उसका सारा राज्य-काल 'काफ़िरों' के साथ लड़ने में ही

व्यतीत हुआ। राज्यारोहण से पूर्व दुआब, रनथंभोर के रास्ते मालवा, कालिंजर और ग्वालियर के हिंदू-राजों से वह बराबर युद्ध करने जाता रहा। मुसलमान इतिहास-लेखक लिखते हैं कि वह हमेशा विजयी होता रहा, परंतु आश्चर्य है कि उसे फिर-फिर वहीं जाकर लड़ना पड़ा। बल्बन के पीछे खिलजी-वंश का पहला राजा जलालुद्दीन दिल्ली की गद्दी पर बैठा; परंतु वह असल में अलाउद्दीन के लिये भूमिका-मात्र था। अलाउद्दीन १२९६ में बादशाह बना। अलाउद्दीन को विंध्य से उत्तर के निम्न-लिखित हिंदू-राजों से युद्ध करना पड़ा। गुजरात का हिंदू-राजा, जो फ़ीरोज़ के समय में स्वतंत्र हो गया था, रणथंभोर के लेने में अलाउद्दीन को महीनों तक मेहनत करनी पड़ी। चित्तौड़ की लड़ाई तो मशहूर ही है। इन लड़ाइयों के अतिरिक्त उत्तरीय भारत में कई स्थान ऐसे भी थे, जिन्हें अभी तक मुसलमान नहीं जीत सके थे। चांदेरी, मालवा, धार और उज्जैन अब भी हिंदुओं के हाथ में थे। दक्षिण में देवागिरि और वारंगल के राजों को परास्त करके अलाउद्दीन ने अवश्य ही दक्षिण का मार्ग खोल दिया था; परंतु वहाँ पर उसका अधिकार बहुत ही अस्थिर था। यह स्पष्ट है कि उत्तरीय भारत के हिंदुओं के साथ मुसलमान-शासकों का युद्ध अभी बंद नहीं हुआ था। अलाउद्दीन के पीछे मुबारिक गद्दी पर बैठा। वह एक नामर्द, व्यसनी और तेजहीन, अत्याचारी था। गुजरात के एक हिंदू अछूत ने उस पर इतना अधिकार प्राप्त कर लिया था कि वह शून्य से भी कम क़ीमत का समझा जाने लगा। अंत में उस हिंदू ने रात में मुबारिक को मार डाला, और खुसरो के नाम से स्वयं राजगद्दी सँभाल ली। खुसरो ने कुछ दिनों तक खूब धाम का सिक्का चलाया। मस्जिदों में मूर्तियाँ रख दीं, अछूतों को मरे हुए सुल्तान की औरतें बाँट दी गईं, और मुसलमान-नवाबों की भरपेट हत्या की गई। परंतु वह एक अंत्यज हिंदू था, इसलिये मुसलमान उससे नाराज़ थे, और वह मुसलमान हो गया था, इसलिये हिंदुओं का उस पर विश्वास नहीं था। परिणाम यह हुआ कि दोनों ओर से धोखा खाकर वह शीघ्र ही मारा गया। उसके पीछे ग़ाज़ी तुग़लक राजगद्दी पर बिठाया गया।

तुग़लक-वंश में तीन प्रसिद्ध राजा हुए। तुग़लक या ग़ाज़ी तुग़लक एक समझदार और दूरदर्शी राजा था। उसका पुत्र मुहम्मद तुग़लक कवि, फ़िलासफ़र, सिपाही और पागल का मेल था। उस समय के एक लेखक ने लिखा है कि उसका द्वार कभी संतुष्ट, अर्थी, और निर्जीव लाश से शून्य नहीं होता था। वह जितना ही दान देता था, उतनी ही हत्याएँ करता था। उसके पश्चात् फ़ीरोज़शाह तुग़लक गद्दी पर बैठा। उसके शरीर में एक हिंदू-राजकुमारी का रुधिर बहता था, और उसका मंत्री भी एक हिंदू नौमुसलिम था। फ़ीरोज़ का शासन नर्म और उदार था। फ़ीरोज़ की मृत्यु पर दिल्ली के सिंहासन पर कुकुरमुत्ते मिट्टी के माधो आरूढ़ हुए, जिनकी रही-सही शक्ति को तैमूर की अक्षौहिणियों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

तुग़लक-वंश के राज्यकाल के विस्तृत विवरण में न जाकर हम उसके अंतिम परिणाम पर ही दृष्टि डालेंगे। जिस समय तुग़लक-वंश का अंत हुआ, उस समय क्या मुसलमान भारत के हिंदुओं को जीत चुके थे? उस समय के भूगोल पर साधारण दृष्टि डालकर भी आप समझ सकते हैं कि उस समय मुसलमानों और हिंदुओं का संग्राम जारी था, समाप्त नहीं हुआ था। इटावा, ग्वालियर आदि छोटे-छोटे कितने क़िले ऐसे थे, जो हिंदू-राजों के अधिकार में थे। राजपूताना अभी तक बिलकुल स्वाधीन था। उस पर दिल्ली के बादशाहों का नाम-मात्र का भी अधिकार नहीं था। विंध्याचल से उस ओर विजयनगर का विस्तृत और समृद्धिशाली हिंदू-राज्य मुसलमानों को चुनौती दे रहा था। वारंगल की हिंदू-रियासत स्वतंत्र थी। इस प्रकार हिंदू-शक्ति लुप्त नहीं हुई थी। हिंदुओं के स्वाधीन होने की कामना क्षीण नहीं हुई थी। ज़रा-सा मौक़ा पाकर वह कामना झट सिर उठा लेती थी, और गहरी चोट से मूर्च्छित होकर भी मरती नहीं थी। रणथंभोर, ग्वालियर और वारंगल आदि क़िले दसों बार जीते गए, परंतु फिर हरएक नए राज्य में वह स्वतंत्र हिंदू-राजों के हाथ में हो पाए जाते हैं। तुग़लक-वंश तक के मुसलमान बादशाह देश के बादशाह नहीं कहे जा सकते। वे एक प्रकार से सैनिक शासन द्वारा भारत के कुछ भाग को अपने अधीन कर सके थे, जिसे वे निरंतर अत्याचारों द्वारा वश में रखना चाहते थे, पर रख नहीं सकते थे। उन्होंने हिंदुस्तान के कुछ भाग को हथियारों से जीत लिया था; परंतु हिंदुओं की स्वाधीन राज्य करने की कामना को नहीं जीता था।

अब हम मुग़ल-समय पर आते हैं। बाबर ने तुग़लकों के उत्तराधिकारी लोदी-वंश को पानीपत के मैदान में

परास्त कर दिया, परंतु वह केवल भारत-विजय की भूमिका-मात्र थी। उसे असली युद्ध सीकरी के मैदान में करना पड़ा। राणा साँगा के सेनापतित्व में राजपूत-शक्ति विदेशियों के आक्रमण को रोकने के लिये खड़ी हुई थी। यह लड़ाई १५२७ ई० में हुई। महमूद ग़ज़नवी को भारत में आए लगभग ५०० वर्ष हो चुके थे। जो लोग कहते हैं कि मुसलमानों ने भारत में ७०० साल तक राज्य किया, और हिंदू १००० वर्षों से गुलाम हैं, वे आँखें खोलकर पढ़ें। भारत में मुसलमानों के आने से ५०० वर्ष पश्चात् मुसलमान-योद्धा को आगरे के समीप ८० हिंदुस्तानियों के साथ लड़ाई करनी पड़ती है। हिंदुस्तानी अब तक भी अपनी स्वाधीनता के लिये लड़ रहे हैं। जंग जारी है, समाप्त नहीं हुआ। भारतवासी लड़ाई हारे हैं, परंतु परास्त नहीं हुए, और पराधीनता को 'अंतिम निर्णय' समझकर नहीं बैठ गए। बाबर हुमायूँ के रोग को लेकर इस लोक से चल दिया। हुमायूँ भाग्य का खोटा था। उसे भारत छोड़कर भागना पड़ा। वर्षों तक भटककर जब वह फिर भारत लौटा, तो उसके भाग्य का चंद्रमा उदय होने लगा। परंतु जो जन्म-भर भाग्य की सीढ़ियों से फिसलता रहा, वह अंत में भी सीढ़ियों से फिसलकर ही मरा।

अकबर ने अपनी बहादुरी और दूरदर्शिता-पूर्ण नीति से भारत के अधिकांश को अपने वश में कर लिया; परंतु क्या इससे कोई इनकार कर सकता है कि उसके समय में भी इधर मेवाड़ की पहाड़ियों में और उधर दक्षिण के पर्वतों की उपत्यकाओं में हिंदुस्तानी स्वाधीनता का झंडा लहरा रहा था, जो संसार को सूचना दे रहा था कि हिंदुस्तान के निवासी एक छोटी लड़ाई में हारकर भी जीवन-मृत्यु के दीर्घ संग्राम में परास्त हो नहीं हारे हैं। जहाँगीर और शाहजहाँ के राज्यकाल अकबर के राज्यकाल के परिशिष्ट-मात्र हैं। उन्होंने हिंदुस्तानी स्वाधीनता के संग्राम को रोकने के लिये हिंदुओं की चापलूसी जारी रक्खी, जिससे संग्राम का अंत तो नहीं हुआ, परंतु हाँ, कुछ समय के लिये वह शिथिल अवश्य हो गया।

औरंगज़ेब ने फिर एक बार हिंदुस्तानियों को यह अनुभव कराया कि वे एक विधर्मी विदेशियों की जाति के पंजे में हैं। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के दूरदर्शिता-पूर्ण राज्यों ने हिंदुओं को इस भ्रम में डाल दिया था कि शायद मुसलमान-शासक भी हिंदुस्तानी बन गए हैं; पर औरंगज़ेब ने इस भ्रम को नष्ट कर दिया। उसने हरएक संभव उपाय से हिंदुस्तानियों को यह बताने का यत्न किया कि तुम्हें हम गुलाम समझते हैं। परिणाम यह हुआ कि भारतीय स्वाधीनता का जो झंडा सुदूर कोनों में फहरा रहा था, वह मैदान में आ गया, और स्वाधीनता का संग्राम पूरे ज़ोर से फिर जारी हो गया।

औरंगज़ेब के राज्यकाल में हिंदू-जागृति का जो दौर आरंभ हुआ, वह मुग़ल-साम्राज्य को भस्मीभूत करने में समर्थ हुआ। वह दौर उस दीर्घ संग्राम का अंतिम परिच्छेद था, जो हिंदुस्तानियों और आक्रमणकर्ताओं में कई सदियों से चल रहा था। यह कहना कि औरंगज़ेब की पक्षपात-पूर्ण नीति ने देश में अग्नि उत्पन्न कर दी, ठीक नहीं है। अग्नि की आँच विद्यमान थी, जिस पर राख का आवरण आया हुआ था। यह असंभव है कि एक ही राज्य के राज्यकाल में बिलकुल मुर्दा स्वाधीनता की ज्वाला शिवालक की चोटियों से लेकर सह्याद्रि की घाटियों तक भड़क उठे। सिख, जाट और मराठे हिंदुस्तानी धर्म और हिंदूपन के झंडे को हाथ में लेकर खड़े हो जाते हैं, और सारे देश में अग्नि का ज्वालामुखी फट उठता है। हिंदुस्तानियों का विदेशी-आक्रमणकारियों के साथ घोर संघर्ष होता है, जिसका अंतिम परिणाम इतिहास के पृष्ठों में लिखा हुआ है। महाराष्ट्र के सेनापति दिल्ली के नाम-मात्र के मुग़ल-बादशाह को कठपुतली की तरह नचाते हैं। मुग़ल-साम्राज्य का अंत हो जाता है, और एक हिंदुस्तानी-शक्ति पंजाब से लेकर मदरास तक के राजनीतिक पर्दे पर सूबों और सूबेदारों के पाँसे फेंककर शतरंज खेलती है। जब एक तीसरी शक्ति समुद्र के रास्ते से आकर भारत को जीतने के लिये अग्रसर होती है, तब उसे भारत की राजसत्ता मरहठों के हाथों से छीननी पड़ती है, मुसलमानों के हाथों से नहीं। पंजाब को जीतने के लिये अँगरेज़ों को सिखों से युद्ध करने पड़ते हैं—अफ़ग़ानों या मुग़लों से नहीं।

शायद हमारे इस ऐतिहासिक सिंहावलोकन पर यह आक्षेप किया जाय कि इसमें मुसलमानों को हिंदुस्तानी कोटि से निकालना, और केवल हिंदुओं को हिंदुस्तानी कहना उचित नहीं। हम मानते हैं कि उस समय बहुत मुसलमान हर प्रकार से हिंदुस्तानी थे। वे भाव, भाषा और भेष में भी हिंदुस्तानी बन गए थे। परंतु जो मुसलमान

भारत के एक भाग पर राज्य करते थे उन्होंने अकबर और उसके दो उत्तराधिकारियों के परिमित समय को छोड़कर कभी हिंदुस्तानी बनने का यत्न नहीं किया। भारत में शासन करने और लड़नेवाले पठान तुर्क या मुग़ल भाव, भाषा और भेष में विदेशी बनकर ही राज्य करते रहे। इस कारण हम उन्हें हिंदुस्तानी नहीं कह सकते। यहाँ रहते हुए भी उन्होंने कभी हिंदुस्तान को अपना घर नहीं समझा। यदि कुछ समझा, तो क़ाफ़िरों को लूटने का और ग़ाज़ी बनकर मज़े उड़ाने का क्षेत्र ही समझा। इस कारण यद्यपि यह ७ सदियों तक चलनेवाला संग्राम देखने में हिंदू-मुसलिम-संग्राम है, पर वस्तुतः वह हिंदुस्तानियों का विदेशी-आक्रमणकर्ताओं के साथ हा संग्राम है।

इस ऐतिहासिक निरीक्षण से हमें विदित हो गया कि आदि से अंत तक मुसलमान विजेता भारत की राजनीतिक अधीश्वरता के लिये युद्ध ही करते रहे, पर कभी उसे पूरी तरह प्राप्त न कर सके। वे स्वाधीनता की भावना को देश से निर्वासित न कर सके। वे देशवासियों को स्वयं परास्त न कर सके, और दीर्घ संग्राम के अंत में पूरी तरह पराजित हो गए। अब हम राजनीतिक क्षेत्र को छोड़कर सामाजिक या धार्मिक क्षेत्र में आते हैं, तब भारतवासियों की स्वाधीन सत्ता को और भी अधिक उग्र रूप में खड़ा पाते हैं। जब दो विचार-धाराएँ एक दूसरे से टकराती हैं, या कुछ समय तक मिलकर चलती हैं, तब यह तो असंभव है कि वह एक दूसरे पर कोई प्रभाव उत्पन्न न करें। इस्लाम की यह नीति पुरानी है कि जहाँ राजनीतिक विजय प्राप्त हो, वहाँ धार्मिक विजय प्राप्त करने के लिये अवश्य ही यत्न करना। फ़ारिस, सीरिया, मिसर, अफ़ग़ानिस्तान और मध्य-एशिया में इस्लाम को सफलता प्राप्त हुई। उन देशों में वहाँ के असली धर्म सर्वथा लुप्त हो गए। वे इस्लाम की टक्कर को न सह सके। पहले ही दो-चार धक्कों में उनके प्राण निकल गए। यहाँ तक कि कई ऐसे प्रांत, जो ईसाइयत के प्रभाव में आ चुके थे, इस्लाम के घेरे में आ गए। इस्लाम की सेनाओं में ईश्वर-विश्वास, आत्मविश्वास और साहसिकता का ऐसा अद्भुत मेल था कि साधारण राजनीतिक शक्ति उनका सामना नहीं कर सकती थी। जो देश राजनीतिक दृष्टि से हार जाता था, उसे धार्मिक हार भी माननी पड़ती थी।

भारत ने ७०० वर्ष तक की लड़ाई में कभी मुसलमान-विजेताओं से हार नहीं मानी, इसकी सबसे स्थूल, परंतु अकाट्य, युक्ति आर्यधर्म की वर्तमान जीवन-शक्ति के रूप में विद्यमान है। यह ठीक है कि मुसलमानों ने भारत के भाषा, भेष और धार्मिक परिस्थिति पर भी बहुत-सा असर डाला, पर इसमें भी संदेह नहीं कि मुसलमानों के जातीय कवि हाली के शब्दों में—

वह डूबा दहाने में गंगा के आकर।

७०० सात सौ साल तक सिर मारकर भी इस्लाम हिंदू-धर्म को न जीत सका। हिंदुस्तान में मुसलमानों की एक बड़ी संख्या पैदा हो गई; पर वह हिंदू-गढ़ को न तोड़ सकी। दिल्ली और आगरे के मैदानों में मुसलमान नवाब इस्लामी झंडा गाड़कर मौज मारते रहे, पर शिवालक, अरावली और सह्याद्रि की घाटियों में हिंदू-संस्कृति, हिंदू-राजसत्ता और हिंदुस्तानी स्वाधीनता के भाव कभी सुलगते, कभी प्रचंड रूप में देदीप्यमान होते, और कभी भूकंप की तरह उभरते हुए दृष्टिगोचर होते रहे। यदि हिंदुस्तान हार जाता या हार मान जाता, तो आज वह फ़ारिस या अफ़ग़ानिस्तान की तरह मुसलमान देश होता। जिस समय अँगरेज़ों ने भारतवर्ष को जीता, उस समय हिंदुस्तान का अधिकांश हिंदुस्तानी राजसत्ता के अधीन था, और हिंदू-संस्कृति उग्र रूप में विद्यमान थी। हिंदू-संस्कृति का जीवित रहना और इस्लाम का उसके दबाने में असमर्थ होना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि हिंदुस्तानियों ने ७०० वर्ष तक विदेशियों से जो लड़ाई की, उसमें वे परास्त नहीं हुए।

हिंदुस्तान को मुसलमान-विजेता पूरी तरह न जीत सके, यह स्थापना दो प्रकार की तुलनाओं से समझाई जा सकती है। इस समय भारतवर्ष को अँगरेज़ों ने राजनीतिक दृष्टि से जीत लिया है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि काश्मीर से कन्याकुमारी तक, और बर्मा से बंबई तक कोई भी ऐसा प्रदेश या नगर नहीं है, जो अँगरेज़-सरकार को अधीनता को स्वीकार न करता हो। मुसलमानों के राज्य में ऐसा एक बार भी नहीं हुआ। सम्राट् अकबर ने भारत को राजनीतिक दृष्टि से और सब मुसलमान-राजों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से जीत लिया था; परंतु वह भी दक्षिण में असफल हो रहा। यह एक दृष्टांत है। दूसरा दृष्टांत किसी इस्लामी देश का ले लीजिए। अफ़ग़ानिस्तान में मुहम्मद ग़ोरी के आक्रमण से कुछ

समय पूर्व तक ब्राह्मण-राजों का राज्य था, और जो पठान आज क़ाफ़िरों के कट्टर शत्रु समझे जाते हैं, वे हिंदू थे। इस्लाम ने अफ़ग़ानिस्तान के ब्राह्मण-राजों को परास्त करके देश को सचमुच जीत लिया। उस दिन से आज तक अफ़ग़ानिस्तान में कई बादशाहों के वंश आए और गए, परंतु उसके इस्लाम की विजय असंदिग्ध रही। हिंदुस्तान को मुसलमान-विजेता न तो उस प्रकार से जीतने में सफल हुए, जैसे भारत को अँगरेज़ों ने जीत लिया है, और न उसी प्रकार सफल हुए, जैसे उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान को जीत लिया है।

यह लेख हिंदुओं की झूठी मर्यादा को बढ़ाने के लिये नहीं लिखा गया। हिंदू-जाति में कई ऐसे दोष आ गए थे, जिनके कारण राजपूतों की वीरता, ब्राह्मणों की विद्या, कृषकों की मेहनत और व्यापारियों की संपत्ति का मालिक हिंदुस्तान अखंड और निर्द्वंद परंतु सामाजिक गुणों से युक्त आक्रमणकारियों को मुँहतोड़ जवाब न दे सका। यह इस पुराने और जन-धन-पूर्ण देश के लिये लज्जा की बात है कि उसे पराधीनता का अपमान अनुभव करने में ७०० वर्ष लगे। यदि यह देश मुर्दा न हो गया होता, तो राय पिथौरा, राणा साँगा और प्रातःस्मरणीय प्रताप को इस जाति के लिये बेमौत न मरना पड़ता। जैसे शिवाजी के सिंहनाद पर सह्याद्रि की शिलाएँ जानदार होकर उमड़ पड़ी थीं, यदि उन वीरों के सिंहनाद पर भी भारत की मिट्टी आग होकर जल उठती, तो ग़ज़नवी और ख़िलजी, औरंगज़ेब और नादिरशाह-जैसे अत्याचारियों को इस देश की प्रजा पर अमानुषिक अत्याचार करने का मौक़ा न मिलता। यह लज्जा और दुःख की बात है कि जो संग्राम जयपाल द्वारा काबुल की सीमा पर या पृथ्वीराज द्वारा नारायन के मैदान में समाप्त हो जाना चाहिए था, वह १७८४ में माधोजी सिंधिया को समाप्त करना पड़ा, जब उस मराठे सेनापति ने दिल्ली के लाल क़िले को मराठा-फ़ौजों से घेरकर नाम-मात्र के मुग़ल सम्राट् को क़ैदी कर लिया। जहाँ ये ७०० साल हिंदुस्तान के निवासियों के लिये एक तरह से लज्जाजनक हैं, वहाँ साथ ही कई अंशों में आशाजनक भी हैं। जिस जातीय देह ने ग़ज़नवी, ग़ोरी, तैमूर, बाबर, नादिरशाह और अब्दाली के कुल्हाड़ों की चोटें सहकर भी स्वाधीनता की आशा नहीं छोड़ी, युद्ध को जारी रक्खा, संस्कृति को सुरक्षित दशा में बचा लिया, और अंत में बतला दिया कि वह परास्त नहीं है, उसे अब भी मरा हुआ नहीं समझना चाहिए। वह अब भी जीवित है। यदि उसे योग्य नेता मिले, तो अब भी वह संग्राम को जारी रख सकता है, और निश्चय है कि अंतिम विजय उसे प्राप्त हो सकती है। किं बहुना, अब भी भारतवर्ष स्वाधीन हो सकता है।

ईश

ऋग्वेद का निर्माण-काल

संस्कृत का विस्तृत साहित्य दो मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) वैदिक तथा (२) लौकिक अथवा वैदिक से उत्तर काल का (Post vedic)। वैदिक साहित्य के अंतर्गत वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा सूत्र-ग्रंथ हैं, और लौकिक साहित्य से तात्पर्य वैदिक काल के पश्चात् बने लौकिक विषय संबंधी ग्रंथों से है। वैसे तो दोनों ही प्रकार के ग्रंथों का काल-निर्णय करना एक कठिन पहेली है, तथापि भारत के प्राचीन इतिहास के अनवरत स्वाध्याय, हस्त-लिखित पुस्तकों और भूमि खोदकर निकाले हुए शिलालेखों तथा विदेशी यात्रियों के वर्णनों के आधार पर लौकिक ग्रंथों का आनुमानिक काल बताना पूर्वापेक्षा आसान हो गया है। परंतु वैदिक ग्रंथों और विशेषतया ऋग्वेद के निर्माण-काल का पता लगाना अभी विद्वानों की पहुँच से परे है। प्रो० मैक्समूलर के वे शब्द, जो उन्होंने आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व अपने ग्रिफ़ोर्ड लेक्चर्स में कहे थे, अब भी उतने ही सत्य प्रतीत होते हैं। उनका कहना था—"Whether the vedic hymns were composed 1000, 1500, 2000, or 3000 years before Christ, no power on earth will ever determine"—अर्थात् "वैदिक सूक्त ईसा से १०००, १५००, २००० या ३००० वर्ष पूर्व बनाए गए थे, दुनिया की कोई शक्ति कभी निर्णय न कर सकेगी।" ऋग्वेद का निर्माण-काल जानने की उत्सुकता कहीं अधिक हो जाती है, जब यह कहा जाता है कि "वह संसार के पुस्तकालय की सबसे प्राचीन पुस्तक है," या कि "वह इंडो-

जर्मनिक (Indo-Germanic) वंश की सबसे पुरातन खिखित-स्मृति (Monument) है," अथवा कि "वह मनुष्य-जाति की बुद्धि के इतिहास का प्रथम अध्याय है, और भाषा, धर्म तथा सभ्यता का इतिहास जानने के लिये ऋग्वेद से बढ़कर कोई अन्य उपयोगी साधन नहीं।" कहने का तात्पर्य यह कि जितना ही ऋग्वेद का महत्त्व अधिक है, उतनी ही उसके निर्माण-काल आदि के बारे में जानने की उत्सुकता है, और दुर्भाग्य से उतना ही उसका निश्चय करना कठिन है। विद्वान् लोग अपनी-अपनी युक्तियाँ लेकर आगे आते हैं, लेकिन अंत को या तो स्वयं अपने प्रयत्न से संतुष्ट नहीं होते, या अन्य विद्वान् उनकी युक्तियों का युक्ति-युक्त खंडन कर देते हैं। परिणाम यह है कि इस समय ऋग्वेद के समय के बारे में ऐसा कोई मत नहीं, जिसकी सत्यता पर अँगुली न उठाई जा सके। सम्मतियों में शताब्दियों का ही नहीं, सहस्राब्दियों का भेद है। समय के बीतने के साथ नए-नए अन्वेषणों के आधार पर ऋग्वेद का समय पीछे ही हटता जाता है।

प्रस्तुत समस्या को हल करने के लिये भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न आधारों का आश्रय लिया है, जो आसानी के लिये संक्षेप में इस प्रकार गिनाए जा सकते हैं—

१. इतिहास का आधार
२. भाषा का आधार
३. ज्योतिष का आधार
४. भूगर्भ-विद्या तथा प्राचीन शिलालेखों का आधार
५. हिंदुओं का धार्मिक विश्वास।

इस लेख में हम प्रत्येक युक्ति पर विचार करने का यत्न करेंगे *।

* यहाँ यह कह देना उचित जान पड़ता है कि लेखक पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों के वेद-संबंधी मत से भिन्न मत रखता है। लेखक वेदों को ईश्वरीय ज्ञान अतएव इतिहास-रहित ग्रंथ मानता है। वह आधुनिक विद्वानों द्वारा किए गए वैदिक मंत्रों के अर्थों को भी दोष-पूर्ण समझता है; उसकी सम्मति में वैदिक अर्थ लौकिक कोषों की सहायता से न होकर शब्दों को यौगिक मानकर निरुक्त के आधार पर होने चाहिए इत्यादि। प्रस्तुत लेख में आधुनिक विद्वानों की सम्मतियों पर विचार, उन्हीं के मत को सामने रखते हुए, उन्हीं की युक्तियों द्वारा, करने का प्रयत्न किया गया है। लेखक के मत में योरपियन विद्वान् वेदों को उतने उच्च भाव से नहीं देख सकते, जितने से कि उन्हें देखा जाना चाहिए।

१. ऐतिहासिक आधार से हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं कि ऐतिहासिक पुस्तकों में ऋग्वेद का कौन सा समय दिया हुआ है। संस्कृत-ग्रंथों के बारे में इतिहास से इतनी सहायता की आशा करना भूल होगी; क्योंकि संस्कृत में ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं के बराबर हैं। ऐतिहासिक साक्षी से यहाँ तात्पर्य केवल उन युक्तियों से है, जो किन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर अवलंबित हैं, अथवा जो ऋग्वेद का समय निश्चित करने में ऐतिहासिक मार्ग का अवलंबन करती हैं। इस प्रकार की युक्तियों द्वारा ऋग्वेद का काल निर्धारित करनेवालों में प्रो० मैक्समूलर प्रथम हैं। सन् १८५९ में उन्होंने यह दावा पेश किया कि ऋग्वेद के मंत्र ईसा से पूर्व १००० और १२०० वर्ष के बीच बनाए गए थे। यह जान लेना चाहिए कि प्रारंभ में वेदों के मंत्र अलग-अलग थे, जिन्हें 'मंत्रपाठ' कहा जाता था। पीछे से उनको सुव्यवस्थित कर पुस्तक का रूप दिया गया, और वे 'संहिता' कहे जाने लगे। इसलिये आधुनिक विद्वानों के मतानुसार स्वाभाविकतया 'मंत्रपाठ' 'संहितापाठ' से प्राचीन है। उनका कहना है कि ग्रीक यात्रियों का संड्राकोटस (Sandracottus of Palibothra) पाटलिपुत्र का राजा चंद्रगुप्त मौर्य (३१५ बी० सी०) ही है, जिसका वर्णन पुराणों में भी पाया जाता है। इतिहास से पता लगता है कि उसके समय में बौद्ध-धर्म फैलने लगा था, इसलिये गौतम बुद्ध उससे पहले हुआ था। बौद्ध-ग्रंथों तथा अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर वे बुद्ध के निर्वाण का समय ईसा से ५८३ वर्ष पूर्व मानते हैं। बुद्ध के उपदेशों से पता लगता है कि उसे वैदिक साहित्य—विशेषकर उपनिषदों—का ज्ञान था, क्योंकि उसका धर्म ही एक प्रकार से पुरातन ब्राह्मण-धर्म और उसके मान्य ग्रंथों के विरुद्ध आंदोलन था। इसलिये उपनिषद् तथा सूत्र-ग्रंथ (जो कि उपनिषदों के बाद ही बने) बुद्ध से पहले बनने शुरू हो चुके थे, यद्यपि कुछ एक उसके बाद भी बनते रहे। जैसा कि प्रारंभ में कहा जा चुका है, वैदिक साहित्य से तात्पर्य वेद (मंत्र तथा संहिता), ब्राह्मण (आरण्यक तथा उपनिषद्-समेत) और सूत्र-ग्रंथों से है। इनके निर्माण का क्रम भी इसी प्रकार है; क्योंकि प्रत्येक उत्तरकालीन ग्रंथ अपने से पूर्व की सत्ता स्वीकार करता है। प्रो० मैक्समूलर का कहना है कि उपर्युक्त प्रत्येक विभाग

के निर्माण तथा एक भाग के विचार और भाषा के दूसरे भाग के विचार एवं भाषा में परिवर्तित होने के लिये कम-से-कम २०० वर्ष का समय होना चाहिए। अर्थात् ६००-२०० बी० सी० के बीच उपनिषदों तथा सूत्र-ग्रंथों की रचना हुई, उससे पूर्व ८००-४०० बी० सी० ब्राह्मण-ग्रंथों का समय है, तथा १०००-८०० बी० सी० और १२००-१००० बी० सी० क्रमशः संहितापाठ और मंत्रपाठ का निर्माण-काल है *। यह प्रोफ़ेसर साहब की युक्ति का सारांश है, जो कि बहुत समय तक आदरणीय समझी गई थी, परंतु वे स्वयं इससे संतुष्ट न थे, जैसा कि ऊपर उद्धृत उनके वाक्य से ज्ञात होता है। साथ ही उनका कहना था कि यह ऋग्वेद की सबसे इधर की हद है, अर्थात् इससे नवीन नहीं हो सकता, पुराना भले ही हो। इस समय एक-दो विद्वानों को छोड़ कोई इसे प्रामाणिक नहीं मानता। युक्ति के देखने से ही पता लग जाता है कि उसकी आधार-शिला अनुमान है, और उसका उद्देश्य वेद को जितना अर्वाचीन सिद्ध किया जा सके, सिद्ध करना है।

युक्ति के विरुद्ध अनेक आक्षेप उठाए जा सकते हैं। सबसे पहली बात यह है कि प्रत्येक विभाग के लिये २०० वर्ष का ही समय क्यों लिया जाय? क्या उन्हीं आधारों पर और उतनी ही प्रबल तर्कणा के साथ २०० के स्थान पर ५००, १००० या इससे अधिक वर्ष नहीं माने जा सकते? यह बिलकुल असंभव है कि इतना विस्तृत वैदिक साहित्य केवल ८०० वर्ष के काल ही में जन्म लेकर, प्रौढ़ावस्था को पहुँच समाप्त हो गया हो। जब यह ध्यान में आता है कि उस समय लिखने या पुस्तकें छपवाने के साधन नहीं (?) थे और पुस्तकें केवल सुनकर ही (श्रुति ?) स्मरण रक्खी जाती थीं, तब तो युक्ति की विश्वसनीयता और भी कम हो जाती है। उदाहरण के लिये वेद और ब्राह्मणों के बीच के समय को लीजिए। यह बात निर्विवाद है कि वेद की भाषा तथा उसके विचार ब्राह्मणों की भाषा व विचारों से बहुत भिन्न हैं। ब्राह्मणों की भाषा वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के मध्य की श्रेणी है। वैदिक संस्कृत की बहुत-सी विशेषताएँ ब्राह्मणों में नहीं पाई जातीं, और जो कुछ पाई जाती हैं, वे लौकिक संस्कृत से बिलकुल अनुपस्थित हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्र ब्राह्मणों की भाषा में काम दे सकते हैं, लेकिन उनका वैदिक प्रयोगों से नहीं के बराबर संबंध है *। दोनों कालों की विचार-धारा (विषय) के बारे में यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मणों का निर्माण ही वैदिक मंत्रों की व्याख्या करने तथा उनके विशुद्ध विनियोग को जताने के लिये हुआ। यही नहीं, ब्राह्मणों के देखने से पता चलता है कि उनके समय में वैदिक मंत्रों के वास्तविक अर्थों के बारे में विवाद आरंभ हो गया था। मंत्र या शब्दों के दो या अधिक अर्थ इस बात की साक्षी हैं। यास्क मुनि-कृत निरुक्त के देखने से भी इसी बात की पुष्टि होती है। महर्षि यास्क का समय निश्चित रूप से पाणिनि मुनि से पहले ईसा से पूर्व ८वीं शताब्दी है। वे अपने ग्रंथ में लगभग १७ वैदिक टीकाकारों का नाम-निर्देश करते हैं, जो कि एक दूसरे से बहुत भिन्न सम्मतियाँ रखते हैं। इससे बढ़कर निरुक्त से पता लगता है कि यास्क से पूर्व कुछ ऐसे पुरुष भी थे, जो वैदिक मंत्रों को निरर्थक समझते थे †। ऐसी दशा में क्या यह अनुमान ठीक न होगा कि महर्षि यास्क और ऋग्वेद के बीच एक लंबे समय का अंतर है।

यही नहीं, ब्राह्मणों में कई ऐसे स्थल हैं, जिनके देखने से पता लगता है कि ब्राह्मणों ने वैदिक मंत्रों के वास्तविक अभिप्राय को समझने में भूल की है। ऋग्वेद के समय में यज्ञ का इतना आडंबर न था, जितना कि ब्राह्मणों में पाया जाता है। ब्राह्मण उस समय बने, जब कि मनुष्य-जीवन का एक-मात्र उद्देश्य 'यज्ञ' था। नियमानुकूल यज्ञ द्वारा ही देवतों को प्रसन्न कर स्वर्ग-प्राप्ति की चेष्टा की जाती थी। परंतु वेद का समय इस प्रकार के वायुमंडल से पूर्व का है। यही कारण है कि ब्राह्मणों को वेद के प्रत्येक शब्द में यज्ञ की गंध आती है। प्रो० मैक्समूलर लिखते हैं —

"But there is throughout the Brahmanas such a complete misunderstanding of the original intention of Vedic hymns, that we can hardly understand how such an estrangement could have taken place. ....and the stream of tradition flowing from the fountain head of the original poets, has, like the waters

* Max Møller: 'A History of Sanskrit literature' and Preface to Rigveda Vol. IV, P. V-VIII.

* R. G. Bhandarkar: Wilson Philological lectures P.

† निरुक्त अ० १, पा० ५।

of the Saraswati, disappeared in the sands of desert. Not only was the true nature of gods, as conceived by the early poets, completely lost sight of, but new gods were actually created out of words which were never intended as names of divine beings*

अर्थात् "ब्राह्मणों में आदि से अंत तक वैदिक सूत्रों के मौलिक विचारों के समझने में इतनी भ्रांति है कि हम यह नहीं सोच सकते कि इस प्रकार की गड़बड़ कैसे हो गई। × × × और, प्रारंभिक (वैदिक) कवियों के आदि-स्रोत से बहनेवाली विचार-धारा सरस्वती की जल-धारा के समान मरुस्थल के रेत (अर्थात् ब्राह्मणों) में लुप्त हो गई है। यही नहीं कि पुरातन कवियों द्वारा मनोनीत देवतों का वास्तविक रूप ही बिलकुल भुला दिया गया हो, अपितु उन शब्दों में, जो किसी प्रकार देवतों के नामों के लिये न थे, सचमुच नवीन देवतों की कल्पना कर ली गई।" क्या इससे यह नहीं पता लगता कि वेद और ब्राह्मणों के बीच में एक लंबे काल का व्यवधान है, अर्थात् वेदों की भाषा और विचारों को ब्राह्मणों की भाषा और विचारों का रूप धारण करने में बहुत समय लगा? ऋग्वेद में वर्णित भौगोलिक, सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति भी ऋग्वेद और ब्राह्मणों के बीच एक दीर्घ काल की ओर संकेत करती है। ऐसा ही समय ब्राह्मणों, उपनिषदों तथा सूत्र-ग्रंथों के बीच होना चाहिए। उपनिषदें एक प्रकार से ब्राह्मणों के विचारों का खंडन करती हैं। यज्ञ, जो कि ब्राह्मणों की जान है, उपनिषदों में उतना महत्त्व नहीं रखता। उपनिषदें तो एक प्रकार यज्ञ के विरुद्ध आंदोलन करनेवाली हैं; उनमें तो ब्रह्म को पाने के और साधनों की ओर भी इशारा है। उनकी भाषा भी ब्राह्मणों की भाषा से भिन्न है। इस भाषा तथा विचार के परिवर्तन के लिये बहुत समय अपेक्षित है। यही बात उपनिषद् तथा सूत्र-ग्रंथों के बारे में सत्य प्रतीत होती है। उनकी भाषा और विषय भी एक दूसरे की भाषा तथा विषय से भिन्न हैं। सूत्र-ग्रंथ तो भाषा के एक नवीन रूप को प्रकट करते हैं, जो कि उनसे पूर्व के ग्रंथों में नहीं पाया जाता। हमारा तात्पर्य भाषा के संक्षेप से है, जो कि सूत्र-ग्रंथों में उसकी चरम सीमा तक पहुँचा दिया गया है।

* Max Muller: A History of Ancient Sanskrit literature P. 432-33.

इससे यह तो स्पष्ट हो जाना चाहिए कि वैदिक साहित्य के प्रत्येक भाग के बीच एक लंबा काल बीता होगा; परंतु प्रत्येक विभाग के लिये भी २०० वर्ष का समय पर्याप्त है, या नहीं, यह अभी देखना है। प्रथम वेदों को ही लीजिए। वेदों को मनुष्य-कृत माननेवाले विद्वानों का मत है कि वे एक समय में नहीं बने। ऋग्वेद ही एक काल का बना हुआ नहीं है। उसके छः मंडल (अर्थात् दूसरे से सातवें तक) सबसे प्राचीन हैं, दसवाँ मंडल सबमें अर्वाचीन तथा शेष मंडल मध्यकालीन हैं। इसकी युक्ति में भाषा और विचारों में भेद आ जाना प्रस्तुत किया जाता है। प्राचीन मंडलों में वैदिक प्रयोगों तथा शुद्ध वैदिक शब्दों (जो कि लौकिक संस्कृत में बिलकुल व्यवहृत नहीं होते) का अधिक व्यवहार किया गया है। वैदिक व्याकरण की विशेषताएँ अधिक संख्या में हैं। लेकिन पिछले काल के मंडलों में ये बातें शनैः-शनैः कम होती जाती हैं। विषय की दृष्टि से प्राचीन मंडलों में देवतों की स्तुति ही मुख्य रूप से है; परंतु दशम मंडल में लौकिक विषयों का भी समावेश है : जैसे विवाह, अंत्येष्टि-क्रिया आदि। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में अनेक मंत्र हैं, जो पुरातन तथा नूतन ऋषियों में भेद करते हैं; यथा—"ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये०।", "अस्माकमत्र पितरस्त आसन् *।" साथ ही ऋग्वेद में पुनरावृत्तियाँ भी हैं। एम्० ब्लूम फ़ील्ड साहब अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Rigveda Repititions' में लिखते हैं कि ऋग्वेद की ७०,००० पंक्तियों में ५,००० पंक्तियाँ पुनरुक्ति के रूप में हैं। एक समय में बनी पुस्तक में इतनी पुनरुक्तियाँ नहीं हो सकतीं। यदि हम इन्हीं तीन बातों को दृष्टि में रखते हुए ऋग्वेद तथा अन्य तीनों वेदों के समय का निश्चय करें, तो हमको यह मानना पड़ेगा कि अन्य वेद ऋग्वेद से बहुत पीछे बने। उनके विषय भिन्न हैं, उनकी भाषा अधिक उत्तर काल की है तथा उनमें ऋग्वेद के बहुत-से मंत्र हैं। सामवेद में कुल ७५ मंत्र नए हैं, शेष ऋग्वेद से लिए गए हैं। अथर्ववेद तथा ऋग्वेद के विषयों में महान् अंतर है। इससे सहज ही पता लग सकता है कि चारों वेदों के निर्माण में कितना समय लगा होगा।

अब ब्राह्मणों की ओर आइए। उनकी संख्या वेदों से अधिक है, और सब मिलाकर वेदों से कहीं बड़े होंगे। उनमें भी प्राचीन और नवीन ब्राह्मण हैं। प्राचीन ब्राह्मणों में अनेक

* ऋग्वेद १।४८।१४ व ४।४२।८।

परिवर्तन किए गए, जो उनकी शाखाओं के रूप में विद्यमान हैं। ब्राह्मणों के विषय तथा उनके पारस्परिक भेद को देखने से पता लगता है कि इतने विस्तृत साहित्य की रचना में पर्याप्त समय लगा होगा। तीन प्रकार के यज्ञ-कर्मों का विधान, भिन्न-भिन्न ब्राह्मणों का निर्माण, ब्राह्मण-चरणों का बनना, प्राचीन तथा नवीन चरणों में भेद होना और उनके नाना संग्रह – इन सब बातों के लिये २०० वर्ष किसी प्रकार पर्याप्त नहीं कहे जा सकते। यही बात उपनिषदों तथा सूत्र-ग्रंथों के विस्तृत साहित्य के बारे में ठीक प्रतीत होती है।

इसी संबंध में एक और भी बात विचारणीय है। वैदिक चरणों, शाखाओं तथा शिलालेखों के देखने से पता लगता है कि ईसा से ३०० वर्ष पूर्व वैदिक सभ्यता भारत के दक्षिण में भी फैल चुकी थी। आपस्तंब और बौधायन सूत्र दक्षिण के हैं। उस समय, जब कि यात्रा के साधन इतने अधिक न थे, इतने बड़े देश में फैलकर वैदिक सभ्यता स्थापित करने में बहुत काल लगा होगा। जब कि भारत में पैर रखने के समय से लेकर वैदिक साहित्य के लगभग अंतिम काल तक आर्य लोग केवल पंजाब ही जीत पाए थे (जैसा कि पुस्तकों में आए देश आदि के नामों से पता लगता है), तो संपूर्ण भारत में अपनी सभ्यता फैलाने में तो न-जाने उन्हें कितना समय लगा होगा। और, यह निर्विवाद है कि ३०० बी० सी० से पूर्व भारत में सर्वत्र वैदिक सभ्यता फैल चुकी थी। इससे यह अनुमान होता है कि ऋग्वेद, जो कि वैदिक ऋषियों की भारत में पदार्पण करने के बाद बनाई हुई पहली पुस्तक है, ईसा से बहुत वर्ष पूर्व बनाई गई होगी : क्योंकि ईसा से पूर्व ही वैदिक सभ्यता का संदेश सारे भारत में पहुँच चुका था, और हम तो कहेंगे कि उससे बाहर बहुत दूर देश-देशांतरों में भी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रो० मैक्समूलर की गणना बिलकुल काल्पनिक है, और इच्छानुसार बढ़ाई जा सकती है। डॉ० हाग ने इसी प्रकार की गणना कर वेदों का समय २४००-२००० बी० सी० बताया है *। उन्होंने चीनी साहित्य की चाल को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक भाग के लिये २०० के स्थान पर ५०० वर्ष का समय निश्चित किया है। इन गणनाओं से हमारी समझ में तो एक बात सिद्ध हो जाती है कि वेद इस काल से इधर के नहीं; परंतु कितने पहले के हैं और वास्तव में उसी काल के हैं, इसका निश्चय इन गणनाओं से नहीं हो सकता।

दूसरा आधार, जिस पर हमें विचार करना है, 'भाषा का आधार' है। अर्थात् ऋग्वेद का समय निर्णय करने में ऋग्वेद तथा उससे पीछे बने ग्रंथों की भाषा का स्वाध्याय हमें कहाँ तक सहायता दे सकता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर प्रथम और द्वितीय आधार में बहुत समानता है—यहाँ तक कि उनका अलग-अलग करना कठिन ही है—तथापि हमने आसानी के लिये ही इस प्रकार का विभाग करने का साहस किया है। इस साक्षी द्वारा ऋग्वेद का काल निश्चित करने का प्रयत्न प्रो० मैक्डॉनल ने अपनी पुस्तक 'History of Sanskrit literature' तथा 'Hastings Encyclopaedia' में किया है। उनका कहना है कि पारसियों की धर्म-पुस्तक 'अवस्ता' और ऋग्वेद की भाषा में बहुत गहरी समानता है: भाषा के सादृश्य के साथ-साथ भावों का सादृश्य भी है। इस सादृश्य को देखकर उनका अनुमान है कि इन दोनों ग्रंथों के बीच अधिक काल न बीता होगा। वह कहते हैं..."that the language of the Avesta, if it were known at a stage some five centuries earlier, could scarcely have differed at all from that of the Rigveda ! *" अर्थात् 'यदि अवस्ता की भाषा उसके लगभग पाँच शताब्दी पूर्व की दशा में मिल जाय, तो उसमें और ऋग्वेद की भाषा में कठिनता से कोई भेद हो सकता है ; दूसरे शब्दों में, ऋग्वेद की भाषा अवस्ता की भाषा का ६०० या ७०० वर्ष पूर्व का रूप है ; या उन दोनों ग्रंथों के बीच छः या सात शताब्दियों का अंतर है ; क्योंकि 'अवस्ता' का निर्माण ईसा से ८०० वर्ष पूर्व हुआ, और ऋग्वेद की रचना १३०० बी० सी० के आसपास होनी चाहिए। "यही प्रो० ए० बी० कीथ का मत है †।

विचार करने पर पता लगता है कि इस युक्ति का मूल्य पहली युक्ति के मूल्य से अधिक नहीं। इस युक्ति के विरुद्ध प्रथम आक्षेप यह होगा कि अभी तक अवस्ता का समय ही निश्चित नहीं हो पाया। अवस्ता को ८०० वर्ष पूर्व का बताना केवल आनुमानिक है, और वह भी अवस्ता की

* Introduction to the Aitareya Brahmana, P. 48

* 'A Vedic Reader'—Introduction.

† Cambridge History of India P. 112

सबसे इधर की हद है; अर्थात् वह किसी दशा में भी इससे अर्वाचीन काल का नहीं हो सकता। इस अनुमान के आधार पर ऋग्वेद के काल का अनुमान क्या मूल्य रख सकता है? दूसरी बात यह है कि अवस्ता और वैदिक भाषा की समानता हमको उन दोनों के बीच लंबे समय के बीत जाने की कल्पना से नहीं रोक सकती। यह असंभव नहीं कि एक भाषा बहुत लंबे काल तक उसी दशा में रहती आवे। भारतीय आर्य तथा ईरानियों के एक दूसरे से अलग हो जाने पर भी, संभव है, उनकी भाषा बहुत समय तक वैसी ही बनी रही हो। लिथुएनियन (Lithuanian), भाषा, जो कि बहुत अर्वाचीन काल की है, इंडो-ईरानियन (Indo-Iranian) भाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। वह योरप में होते हुए भी कैंटम् (Cantum) समूह से संबंध न रखती हुई पूर्वीय शतम् (Satem) समूह के अंतर्गत है। धार्मिक भाषाओं में तो बहुत कम भेद आता है; क्योंकि वे केवल धार्मिक कृत्यों में ही प्रयुक्त होती हैं, और लोग उनके उच्चारण आदि की शुद्धता के बारे में बहुत सचेत रहते हैं। अपने संस्कृत के व्याकरण में तो उच्चारण की अशुद्धता एक पाप माना गया है; स्वर तथा छंद की नाम-मात्र अशुद्धि भी याज्ञिक के लिये असह्य है। यही कारण है कि वेदों की भाषा, उनके स्वर तथा छंद अभी तक वही हैं। कहने का तात्पर्य यह कि धार्मिक भाषा और व्यवहार की भाषा में परिवर्तन की गति एक-सी नहीं होती। पिछली का शीघ्र बदलना स्वाभाविक है; परंतु पहली का नहीं। इस बात की पुष्टि करने के लिये लेटिन भाषा को देखिए। लगभग १,६०० वर्ष से लेटिन धार्मिक और विद्वान् लोगों की भाषा रही है; परंतु फिर भी, यदि कुछ उच्चारण-संबंधी भेदों को अलग कर दिया जाय, तो आज लेटिन वही है, जो सीज़र के बाद थी। मैत्रायणीयोपनिषद् को लीजिए। उसकी भाषा के आधार पर ही कुछ विद्वान् उसे प्राचीन बताते हैं, तथा कुछ नवीन। इससे पता लगता है कि ऐसे प्रश्नों के हल करने में भाषा अधिक सहायता नहीं दे सकती।

तीसरी बात यह है कि सब भाषाएँ एक ही चाल से नहीं चलतीं। अर्थात् एक के परिवर्तन को देखकर हम दूसरे के परिवर्तन का ठीक अनुमान नहीं कर सकते। भाषाओं में परिवर्तन देश और काल के अनुसार हुआ करता है, और देश-काल प्रत्येक भाषा के लिये एक-से नहीं होते। आइसलैंड की भाषा उतनी तेज़ी से नहीं चली, जितनी तेज़ी से कि इँगलिश। ईजिप्ट की भाषाओं में हज़ारों सालों के बाद नहीं के बराबर भेद देख पड़ता है। असीरिया के बादशाह सर्गों की भाषा और उससे २,००० वर्ष पीछे की भाषा बहुत अंशों में एक-सी है। चीन की भाषा की गति बहुत धीमी रही है। भाषाओं की आजकल की गति को देखकर वैदिक समय की भाषा की गति का अनुमान लगाना भूल होगी।

चौथी बात यह है कि ईसा से कम-से-कम ३०० वर्ष पूर्व लौकिक संस्कृत का वर्तमान रूप प्रचलित था। पतंजलि का महाभाष्य, भास तथा कालिदास के नाटक इसके प्रमाण हैं। यह लौकिक संस्कृत वैदिक संस्कृत का ही दूसरा रूप है, अर्थात् उसी से निकली है। यदि यह अनुमान ठीक है कि वैदिक भाषा धार्मिक भाषा होने के कारण बहुत धीरे-धीरे बदली होगी, तो उसको लौकिक का रूप धारण करने में कितना समय लगा होगा और फिर वैदिक भाषा का प्रारंभ ३०० बी० सी० से कितना पूर्व होना चाहिए? इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। यह मानने की अपेक्षा कि पहले भारतीय आर्य और ईरानी एक ही जगह पर रहते थे, और फिर अलग होकर अपने-अपने देशों में आ बसे, हम यह क्यों न मानें कि ईरानी भी भारत से ही गए, और साथ में वैदिक धर्म, भाषा तथा सभ्यता ले गए, जो बहुत काल तक वैसे ही बनी रहीं, लेकिन पीछे से देश-काल के अनुसार बदल गईं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा के आधार पर ऋग्वेद के निर्माण-काल का पता नहीं लग सकता। उसके आधार पर का आनुमानिक महल आसानी से ही गिराया जा सकता है।

तीसरी युक्ति ज्योतिष के आधार पर है। यह संतोष की बात है कि ज्योतिष के आधार पर ऋग्वेद का निर्माण-काल निश्चय करनेवाले विद्वान् अन्यों की अपेक्षा उसे कहीं पीछे ले जाते हैं। परंतु शोक इस बात का है कि उनकी युक्तियों का मूल्य अन्यों से अधिक नहीं, और उनके माननेवाले स्वयं ही उन्हें आनुमानिक बतलाते हैं।

डॉ० हाग 'वेदांग-ज्योतिष' के एक श्लोक *

* "प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा।"
ऋग्वेद ज्यो०, श्लोक ६।

के आधार पर उस ग्रंथ का समय ११८६ बी०सी० निश्चित करते हैं, और कहते हैं—(१) ईसा से १२ शताब्दी पूर्व ही भारतीयों ने ज्योतिष में इतनी उन्नति कर ली थी कि वे नक्षत्रों की गति तथा स्थिति का इतना सूक्ष्म वर्णन कर लेते थे, तथा (२) उस समय से पूर्व ही ब्राह्मणों का संपूर्ण यज्ञ कर्मकांड पूर्णतया स्थापित हो चुका था। इसी प्रकार वह ब्राह्मणों का समय १४००-१२०० बी० सी० के बीच रखते हैं, और मंत्र तथा संहिताभाग का समय २४००-१४०० बी० सी० के बीच।

पं० शंकर-बाल कृष्ण दीक्षित अपने ग्रंथ 'भारतीय ज्योतिःशास्त्र' में शतपथ-ब्राह्मण के एक वाक्य * के आधार पर शतपथ-ब्राह्मण का समय ईसा से ३,००० वर्ष पूर्व बताते हैं। यह बात कि कृत्तिका हमेशा पूर्व में ही उदय होती थीं (जब कि आजकल वे पूर्व दिशा से कुछ हटकर उत्तर की ओर उदय होती हैं), अतः वे ईसा से ३,००० वर्ष पूर्व के समय को बताती हैं, और इसके आसपास ही शतपथ-ब्राह्मण का समय होना चाहिए। तैत्तिरीय संहिता (यजुर्वेद, जिसका कि यह ब्राह्मण है) स्वाभाविकतया और पहले की है और ऋग्वेद उससे भी पूर्व का।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् जैकोबी वैदिक काल को ईसा से पूर्व ४५००-२५०० वर्ष तक बताते हैं। गृह्यसूत्रों में विवाह के समय वर-वधू को ध्रुव तारा दिखाने के विधान को देखकर वह कहते हैं कि इस प्रकार की विधि तभी चली होगी, जब कोई चमकता हुआ तारा ध्रुव के पास आया हो, और ऐसा २७८० बी० सी० में हुआ था। उस समय Alpha Draconis-नामक तारा पोल के समीप था, जो ध्रुव तारा का काम दे सकता था; क्योंकि वेदों में यह विधि नहीं पाई जाती। इसलिये उनका समय ३,००० बी० सी० से पूर्व का है।

पं० बाल-गंगाधर तिलक की गणना ऋग्वेद को और भी अधिक प्राचीन सिद्ध करती है। वह अपनी पुस्तक 'Orion' में लिखते हैं कि ऋग्वेद का समय ४५०० बी० सी० से पूर्व होना चाहिए, और साथ ही कुछ सूक्त ६,००० बी० सी० तक पहुँचने चाहिए। उनकी गणना का क्रम इस प्रकार है—ब्राह्मणों के काल में कृत्तिका (Pleiades) महाविषुवत् (Vernal Equinox) के साथ मेल खाती थीं; परंतु वैदिक जंत्री से पता लगता है कि महाविषुवत् (Vernal Equinox) मृगशिरा (Orion) नक्षत्र में था। ज्योतिष की गणनाएँ बतलाती हैं कि प्रथम बात ईसा से २५०० वर्ष पूर्व की है, और द्वितीय ४५०० वर्ष पूर्व की। प्राचीन ग्रंथों में आई हुई कुछ ज्योतिष-संबंधी बातों के सहारे पर उन्होंने वैदिक काल, के ये चार भाग किए हैं—प्रथम सबसे प्राचीन काल, जिसमें महाविषुवत् पुनर्वसु के पास था, और जिसका समय ६०००-४५०० बी० सी० है। इस काल में वैदिक रचना का प्रारंभ ही हुआ था, रचना सूक्तों के रूप में न थी; अपितु देवतों की स्तुतिपरक मंत्र (निविद्) ही बने थे। द्वितीय मृगशिरा-काल (Orion Period) ४५००-२५०० बी० सी० तक है—अर्थात् उस समय से, जब कि महाविषुवत् आर्द्रा-नक्षत्र के साथ मेल खाता था, तब तक जब कि महाविषुवत् कृत्तिका से संबंधित हुआ। यही मुख्य वैदिक काल है, जब कि सूक्तों का निर्माण हुआ। तृतीय कृत्तिका-काल है, जिसका समय २५००-१४०० बी० सी० तक है, और जिसका वर्णन वेदांग-ज्योतिष में है। यह तैत्तिरीयसंहिता तथा कुछ ब्राह्मणों का निर्माण-काल है। इस समय तक ऋग्वेद के अधिकतर मंत्रों का अर्थ अस्पष्ट हो चुका था, और उनके वास्तविक अर्थों को जानने के लिये नाना प्रकार के अनुमान किए जाने लगे थे। चतुर्थ काल १४००-५०० बी० सी० तक है, जो कि सूत्र-ग्रंथों का समय है*।

यह ज्योतिष के आधार पर दी गई साक्षी का सार है। इसके विरुद्ध कहा जा सकता है कि वैदिक काल में वर्ष किसी विशेष ऋतु के साथ शुरू न होता था। शतपथ-ब्राह्मण में लिखा है कि प्रत्येक ऋतु वर्ष का आरंभ कर सकती है †, प्रत्येक मध्य में पड़ सकती है, और प्रत्येक अंत में। यदि यह सत्य है, तो यह बात इस युक्ति के मूल पर ही कुठाराघात करेगी। द्वितीय बात जैकोबी के ध्रुवतारे के विषय में कही जा सकती है कि ध्रुवतारे का काम

---

* "एक द्वे त्रीणि चत्वारीति वा अन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव भूयिष्ठा यत्कृत्तिकास्तद्भूमानमेवैतदुपैति तस्मात्कृत्तिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते।"—शतपथ-ब्राह्मण २।१।२।

* B. G. Tilak: 'Orion' P. 206—208.

† XII. 8-2-35.

अन्य किसी चमकीले तारे से, जो पोल के पास हो, निकाला जा सकता है। तीसरी बात यह है कि उन्हीं मंत्रों या शब्दों के दूसरे अर्थ भी हो सकते हैं, जिन पर कि युक्ति का आश्रय है। इसके अतिरिक्त यह बात भी विचारणीय है कि ज्योतिष के आधार पर गणना करनेवाले सब एक ही परिणाम पर नहीं पहुँचते।

तीन साक्षियों पर विचार करने के बाद अब हम चौथे आधार पर आते हैं, जिसका श्रेय कलकत्ता-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर डॉ० अविनाशचंद्र दास को है। वह अपनी पुस्तक 'Rigvedic India' में लिखते हैं कि ऋग्वेद सैकड़ों या हज़ारों वर्ष पुराना ही नहीं, अपितु इससे भी अधिक पूर्व का है—"...And Rigveda is as old as the Miocene or Pliocene epochs". उनका सिद्धांत ऋग्वेद में वर्णित भूगोल के आधार पर है, अर्थात् उनकी सम्मति में ऋग्वेद में आए हुए कुछ शब्द बहुत पुराने भूगोल का वर्णन करते हैं। उदाहरण के लिये ऋग्वेद के नदी-सूक्त में पंजाब की शतुद्रि (सतलज) तथा विपाट् (व्यास)-नदियों का समुद्र में गिरना बताया गया है, परंतु वर्तमान समय में ये किसी समुद्र में न गिरकर सिंधु-नदी में जा मिलती हैं। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि उस समय ये नदियाँ समुद्र में ही गिरती थीं, इनके समाप्त होने के स्थान पर समुद्र था, और वह समुद्र आजकल के थार के रेगिस्तान की जगह पर था, जिसका अवशेष हम साँभर-झील के रूप में देखते हैं। यदि यह सत्य सिद्ध हो जाय, तो ऋग्वेद बहुत पीछे चला जाय; क्योंकि समुद्र का रेगिस्तान में परिवर्तित होना प्रकृति की बड़ी घटना है, जिसके लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता है।

लेकिन अभी यह युक्ति प्रारंभिक अवस्था में ही है, और अन्य विद्वान् यह कहकर इसका खंडन कर देते हैं कि अब तक यही निश्चय नहीं कि मायोसीन या प्लायोसीन कालों में भूमि पर कोई आबादी थी।

इसी प्रकरण में हम एशियामाइनर में पाए हुए उन प्राचीन त्रिभुजाकार शिलालेखों का वर्णन भी उचित समझते हैं, जिनके द्वारा कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद के समय पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। १९वीं शताब्दी के अंतिम भाग में मेसोपोटेमिया में कुछएक चेल्डियन-साहित्य के लेख मिले थे, जिनका समय ईसा से ५,००० वर्ष पूर्व निश्चित किया जा चुका है। उन ईंटों पर खुदे हुए लेखों से चेल्डियन लोगों के धार्मिक विचार और सभ्यता का कुछ पता लगता है। यह देखकर फ्रेंच विद्वान् M. Lenorment ने उन्हें चेल्डियन वेदों के नाम से पुकारा है। इन शिलालेखों के मिलने के समय से ही विद्वानों ने उनकी उपयोगिता को समझकर उनसे भाँति-भाँति के परिणाम निकालने के प्रयत्न किए हैं। M. Lenorment का कहना है कि वैदिक आर्य दयालु तथा कल्याणकारी देवतों की प्रार्थना किया करते थे, और मंगोलियन नस्ल (चेल्डियन भी उसी नस्ल के हैं) के लोग हमेशा हानिकर तथा दुष्ट जीवों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते रहते थे। इसीलिये हम वेदों में यज्ञ और चेल्डियन धर्म में इंद्रजाल-विद्या आदि को धर्म का प्रधान अंग पाते हैं। इस बात तथा समय की समानता को देखकर बाल-गंगाधर तिलक को अपने वेदों और चेल्डियन-वेदों में समानता ढूँढने का साहस हुआ *। जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है, ज्योतिष के आधार पर तिलकजी वेद का समय ४५०० बी० सी० से पूर्व बताते हैं। वही समय चेल्डियन वेदों का है। उनका कहना है कि यह बहुत संभव है कि उस समय इन दोनों जातियों में व्यापारिक या अन्य कोई संबंध हो। अपने अनुमान को पुष्ट करने के लिये उन्होंने कुछ शब्द भी एकत्र किए हैं, जो एक दूसरे से लिए गए प्रतीत होते हैं। कुछ शब्द ही नहीं, अपितु ऋग्वेद का इंद्र-वृत्र युद्ध चेल्डियन-वेद में तायामक-मर्डूक (Tiamat-Marduk) के युद्ध के रूप में विद्यमान है। चेल्डियन-वेद की इंद्रजाल-विद्या, सर्प का विष उतारना आदि बातों का प्रतिबिंब उन्हें अथर्ववेद के सूक्तों में मिलता है। अथर्ववेद के कांड ५, सूक्त १३ के 'तैमान', 'आलिगी', 'विलगी' 'उरुगूला', 'ताबुवं' आदि शब्द उनकी सम्मति में चेल्डियन-भाषा से लिए गए हैं, जिसमें कि ये शब्द कुछ भिन्न रूप में, प्रायः इन्हीं अर्थों में, प्रयुक्त हुए हैं। इन बातों से लोकमान्य का तो यही अनुमान है कि वैदिक ऋषि और चेल्डियन, दोनों समकालीन थे, अर्थात् ईसा से ५००० वर्ष पूर्व के। लेकिन क्या यह अनुमान नितांत निर्मूल होगा कि एक उनमें से पहले का हो, और वह श्रेय अपने वेदों को ही प्राप्त हो?

* Tilak: 'Chaldean and Indian Vedas' in Bhandarkar Commemoration Volume.

इसके अतिरिक्त ह्यूगो विंकलर द्वारा किए गए बोगाज़कोई (एशियामाइनर) के अन्वेषणों का ज़िक्र ऋग्वेद का समय-निर्णय करने में रोचक ही नहीं, अपितु आवश्यक है। वहाँ पर उन्हें कुछ लेख मिले हैं, जिनका समय १४०० बी० सी० है। उनमें हिताइत-(Hittitas) तथा मितानी (Mitani) बादशाहों की संधि की शर्तों का उल्लेख है; संधि के अंत में उसकी रक्षा तथा स्थिरता के निमित्त कुछ देवतों का आह्वान भी है। वे देवता और कोई न होकर इंद्र, मित्र और नासत्यौ हैं, जिनसे कि वैदिक विद्यार्थी भली भाँति परिचित होंगे। यदि यह समय और लेख का पठन ठीक है, तो हम कह सकते हैं कि ये वैदिक देवता ईसा से १४०० वर्ष पूर्व एशियामाइनर में भी माननीय थे। बात समझ में आ जाती है, जब यह मान लिया जाय कि वैदिक ऋषि बहुत प्राचीन काल में भारत से वैदिक सभ्यता का झंडा लेकर इधर-उधर जा बसे थे। यह घटना भी हमारे पूर्व अनुमान की पोषक है, जैसा कि प्रसिद्ध विद्वान् एच० जैकोबी का कहना है कि ईसा से १४०० वर्ष पूर्व मेसोपोटेमिया में वैदिक सभ्यता तथा वैदिक स्तुति प्रचलित थी *। गो० रा० भांडारकर भी इस अन्वेषण से इसी परिणाम पर पहुँचे हैं। उनका कहना है कि यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में आए 'असुर्या नाम ते लोकाः' के असुर्य-शब्द पर ही एशियामाइनर के एक प्रदेश का नाम असीरिया पड़ा।

पंजाब के हरप्पा और सिंध के मोहनजोदड़ो स्थानों पर भूमि खोदने से भी आश्चर्यमय बातों का पता लगा है। पता लगा है कि ईसा से ५,००० वर्ष पूर्व भी वहाँ पर ऐसी जाति थी, जो पक्के मकानों में रहती, और धातुओं का प्रयोग करती थी। इससे प्राचीन भारतीय इतिहास के मौलिक सिद्धांतों का खंडन हो जाता है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि अभी हमारे पास इसके पर्याप्त साधन नहीं कि हम प्राचीन काल के बारे में कुछ निश्चित सिद्धांत स्थिर कर सकें। क्या पता, कल ही कोई अन्वेषण उसे निर्मूल सिद्ध कर दे ?

इतना विचार करने के बाद अब हम पाठकों के सामने एक विचित्र, परंतु अति प्राचीन वेद-विषयक धारणा रखना चाहते हैं। वेद हिंदुओं के धार्मिक ग्रंथ हैं। प्राचीन काल से ही अनेक मनुष्य उन्हें 'ईश्वरीय ज्ञान' अर्थात् 'ईश्वर के बनाए हुए' मानते चले आए हैं, और इस समय भी ऐसे मनुष्यों की संख्या कम नहीं। प्राचीन दर्शनकार तथा मध्यकालीन वेद-भाष्यकारों की भी यही धारणा थी। आधुनिक काल में फिर नए सिरे से ऋषि दयानंद ने इस बात को विद्वानों के आगे युक्ति-पूर्वक रक्खा है। उनका कहना है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं और वह सृष्टि के आदि में दिया गया था; क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान का उपयुक्त समय वही है। योरप के विद्वान् इस धारणा को यह कहकर निर्मूल क़रार देते हैं कि यह केवल धार्मिक पक्षपात का फल है। प्रत्येक धर्मवाला अपनी धार्मिक पुस्तक और उसकी भाषा को ईश्वरीय या उसकी प्रेरणा का फल समझता है। परंतु हमारी सम्मति में इस सिद्धांत का मूल्य इससे अधिक है।

इस सिद्धांत को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—प्रथम वेद ईश्वरीय ज्ञान है; द्वितीय वह सृष्टि के आदि में दिया गया था। यद्यपि हमारे लेख का विषय सिद्धांत के दूसरे भाग से संबंध रखता है, तथापि युक्ति के दोनों भाग एक दूसरे से इतने संबद्ध हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। यही नहीं, प्रत्युत दूसरा भाग युक्ति के प्रथम भाग पर अवलंबित है, अर्थात् प्रथम बात की सत्यता प्रकट हो जाने पर दूसरी बात उतनी कठिन नहीं रहती। इसलिये यहाँ हम पूरे सिद्धांत पर ही कुछ विचार करेंगे।

वेद को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने के लिये भिन्न-भिन्न ऋषियों ने भिन्न-भिन्न युक्तियों का अवलंबन किया है। मीमांसाकार का कहना है कि मनुष्य को ईश्वर की सहायता के बिना प्रारंभ में धर्म, कर्म और आचार का ज्ञान नहीं हो सकता था। पतंजलि मुनि लिखते हैं— "स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" अर्थात् वह ईश्वर प्राचीन से भी प्राचीनों का गुरु है; क्योंकि वह (मनुष्य की तरह) समय से परिमित नहीं। कतिपय ऋषियों का मत है कि मनुष्य के अल्पज्ञ होने से उसे सृष्टि का यथार्थ ज्ञान और अंत में 'ब्रह्म' का ज्ञान नहीं हो सकता था। उपनिषदों के देखने से पता लगता है कि ज्ञान की इतनी वृद्धि हो जाने पर भी 'ब्रह्म' कोई सामान्य प्रहेलिका नहीं है। वह मनुष्य की इंद्रियों और मन की पहुँच

* H. Jacobi Journal of Royal Asiatic Society July, 1909.

से परे है। कुछ लोगों का विश्वास है कि सांसारिक व्यवहार के जानने के लिये ईश्वरीय सहायता की आवश्यकता है। ऋषि दयानंद का कथन है * कि बिना ईश्वरीय ज्ञान के मनुष्य को ज्ञान ही नहीं हो सकता, अधिक उन्नति करना तो दूर रहा। इस युक्ति को विचारते समय हमें अपने सामने वर्तमान स्थिति न रखकर सृष्टि की प्रारंभिक दशा की कल्पना करनी चाहिए। क्या यह संभव है कि बिना दूसरे की सहायता के कोई मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर ले? दूर जाने की आवश्यकता नहीं, बादशाह अकबर का परीक्षण बहुतों को ज्ञात होगा। यह जानने की उत्कंठा से कि बालक दूसरों की सहायता के बिना भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है या नहीं, उसने कुछ नव-जात शिशु मनुष्य-समाज से दूर रखवाए थे। अंत में देखा गया कि उन मनुष्य के बच्चों और पशुओं में बाह्य रूप, आकार के अतिरिक्त और कोई भेद न था। उन्हें मनुष्यों की भाषा भी न आई। इसी प्रकार की एक घटना असीरिया के बादशाह असुर बैनीपाल के बारे में भी प्रसिद्ध है। यदि ऐसे परीक्षणों को बड़ी संख्या में देखने की इच्छा हो, तो आजकल भी आफ़्रिका, दक्षिणी अमेरिका और आस्ट्रेलिया के द्वीपों की अनेक जंगली जातियों को देखिए। वे अनंत काल से सभ्य समाज से न मिल सकने के कारण जंगली बनी हुई हैं। उनमें किसी प्रकार की उन्नति नहीं। परंतु यदि किसी हबशी के बच्चे को प्रारंभ से ही सभ्य गृह में पाला जाय, तो वह सब बातें वैसी ही सीख लेगा, और इसके विपरीत एक सभ्य गृह का शिशु जंगली जातियों के बीच पलने से जंगली बन जायगा। कहने का तात्पर्य यही है कि मनुष्य अल्पज्ञ होने से किसी की प्रेरणा के बिना ही स्वयं उन्नति नहीं कर सकता। सृष्टिकर्ता का ज्ञान उसकी परिमित प्रतिभा से परे है। हमारा आत्मा और प्रकृति हमें यथेष्ट ज्ञान देने में असमर्थ हैं। प्रारंभ में जब ज्ञान मिल जाता है, तब अधिक उन्नति करना उतना कठिन नहीं होता। सृष्टि के प्रारंभ में सृष्टि के साथ-साथ उसका यथार्थ ज्ञान भी आवश्यक था।

विकासवाद (Evolution) के इस प्रसिद्ध सिद्धांत कि मनुष्य धीरे-धीरे स्वयं ही उन्नति करता है, तथा वह प्रारंभ में जंगली था, धीरे-धीरे सभ्य हुआ, उसकी बुद्धि तथा आचार की उन्नति भी प्रकृति के द्वारा उत्तरोत्तर अधिक होती गई आदि पर भी प्रकरण-वश दो शब्द लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। कम-से-कम वर्तमान इतिहास उपर्युक्त सिद्धांत की पुष्टि नहीं करता। प्राचीन सभ्य जातियों के इतिहास ले लीजिए। उस काल के पुरुष मानसिक तथा धार्मिक दृष्टि से अधिक उन्नत देख पड़ेंगे। भारत तथा अन्य सुदूरवर्ती टापुओं में हरिश्चंद्र और राम के नाम उनके आचार के कारण ही अभी तक पूजे जाते हैं। योरप में भी प्लेटो तथा अफ़लातूँ-जैसे सदाचारी पुरुष फिर नहीं मिलते। प्राचीन ऋषियों की बनाई उपनिषदें आज भी सबकी प्रशंसा की पात्र हैं। क्या ब्राह्मणादि ग्रंथों के बनानेवाले ऋषि आजकल के पुरुषों से कम बुद्धिमान् थे? यह कथन निर्मूल है कि प्राचीन समय में मानसिक तथा सदाचार की उन्नति नहीं हुई थी, और प्रकृति ने ही धीरे-धीरे मनुष्यों को उन्नत किया। उन्नति तो ईश्वर के ज्ञान से होती थी, और वह उस समय भी मिल चुका था।

यदि इस युक्ति को यहाँ पर बढ़ाया जाय, तो एक स्वतंत्र लेख बन सकता है; क्योंकि विषय बहुत विवादास्पद तथा रोचक है। यदि यह मान भी लिया जाय कि ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता थी, तो कौन-सी पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान है? ईश्वरीय ज्ञान की परीक्षा क्या है? क्या वह सृष्टि के आदि की तरह मध्य में, आवश्यकता होने पर, नहीं दिया जा सकता? ये प्रश्न लेख को बढ़ा देंगे, और साथ ही प्रस्तुत विषय की सीमा से परे ले जायँगे। इसके अतिरिक्त युक्ति का दूसरा भाग कि ईश्वरीय ज्ञान वेद सृष्टि के आदि में प्रकट हुए, इसलिये उनका निर्माण-काल सृष्टि के निर्माण के समकालीन है, यह प्रश्न छेड़ देता है कि सृष्टि कब हुई थी? यहाँ इस पर विचार करना भी अनुपयुक्त ही होगा। हाँ, केवल इतना कहा जा सकता है कि हिंदू-शास्त्रों की गणना के अनुसार इस सृष्टि की आयु इस समय १,९६,०८,५३,०२४ वर्ष की है * । हमने यहाँ पर युक्ति का केवल दिग्दर्शन-मात्र करा दिया है। यदि हो सका, तो इस पर एक स्वतंत्र लेख लिखने का प्रयत्न करेंगे।

इसमें संदेह नहीं कि संस्कृत का एक विद्यार्थी इन सब बातों को देखकर चकरा जायगा; उसकी बुद्धि उसका साथ न देगी। एक ओर तो वेदों को इतना अर्वाचीन कहना, दूसरी ओर इतना प्राचीन। परंतु हमें शोक से स्वीकार

* ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृष्ठ १५।

* मनुस्मृति, प्रथम अध्याय, श्लोक ६८-७३ । ७९-८० ।

करना पड़ता है कि इस प्रकार के जिज्ञासु हृदय के लिये अभी तक ऐसे साधन नहीं, जो एक निश्चित सिद्धांत निर्द्धारित कर सकें। अंत में हम प्रो० एम्० विंटरनिट्ज़ के इन्हीं शब्दों में संतोष पाते हैं —

But it is a greater service to Science to confess our ignorance than to deceive ourselves and others by producing dates which are no dates. And after all it is comfort to know that we can set up at least some limits not only to our knowledge but also to our ignorance ?

अर्थात् "ऐसी तारीख़ें बताकर, जो वास्तव में नहीं हैं, अपनेआप तथा औरों को धोका देने की अपेक्षा अपनी अज्ञानता को स्वीकार कर लेना साइंस की बड़ी सेवा है। और, अंत में यह जानकर भी कुछ संतोष ही होता है कि हम केवल अपने ज्ञान को ही नहीं, अपितु अपने अज्ञान को भी सीमित कर सकते हैं।"

महेंद्रप्रताप शास्त्री

बिजली

प्रलयंकरी पापमयी घृणा-सी,
　　अति-कर्कशा आहुति यंत्रणा-सी;
तलवार या तोप भयंकरी है,
　　किस नर्क की तू पतिता परी है?
विकराल-सा तूर्य-निनाद तेरा,
　　थर-थर कँपाता मृदु गात मेरा :
सुकुमार यौवन झकझोरती क्यों?
　　तम का कलेजा दृढ़ चीरती क्यों?
ऋतु जीवनी में जल जी रही है,
　　चंडालिनी शोणित पी रही है;
तू योगिनी काल करालिनी है,
　　शैतान की अद्भुत रागिनी है।
आँधी ज़हर खाकर डोलती है,
　　क्यों तू मरण-जय-रथ खोलती है?
हँसती कुटिल हास्यमयी कुपात्री,
　　मूर्च्छित पड़ा है पथ-भ्रष्ट यात्री।
तू सिंधु-वक्षःस्थल नाँघ क्षण में,
　　है बम चलाती मद-मत्त रण में;
क्यों नाचती प्राण-पियासिनी-सी,
　　है पीटती ढोल पिशाचिनी-सी।
चुन ले चली तू नभ के सितारे,
　　क्षण में गई लील अरुण इशारे;
उन्मादिनी वारिद से लिपटती,
　　क्यों सिंहिनी क्रोध-भरी झपटती?
तेरी तड़प कौन सराहते हैं?
　　घायल पड़े फूल कराहते हैं;
भय खा गई लाजवती थकी है,
　　कुम्हला गई कोमल केतकी है।
मर-सी गई चातक की दुलारी,
　　अब दादुरी बोल रही न प्यारी;
बधिरा बनी कुंज-नटी मयूरी,
　　है रागिनी कोकिल की अधूरी।
री शंकरी! तान त्रिशूल अपना,
　　किसका करेगी कह, भंग सपना?
क्या ध्वंस का सत्य प्रमाण देगी?
　　किस प्राण में झोंक कृपाण देगी?
अभिसार हा-हा कर रो रहा है,
　　यमराज तंद्रा निज खो रहा है;
डमरू कुटिल क्रूर बजा रही है,
　　भूतेश का रक्त सुखा रही है।
रोमांच लख लोलुप के बदन में,
　　सो डाकिनी प्रेत-पुरी सदन में;
मजलिस मदन की न उजाड़ कर दे,
　　संसार के हाड़ न फाड़ भर दे!
छिप जा प्रलय-ज्योति ज्वलंत गोरी,
　　छूँछी यहाँ दौड़ न औ छिछोरी!
कवि-प्राण में फूँक न रौद्र-शंका,
　　हत्यारिनी! खोज सुवर्ण-लंका।

"गुलाब"

"दुलारे-दोहावली"

हिंदी में दोहा-छंद में कई कवि-रत्नों ने कविता की है। कवि-कुल-चंद्र बिहारीलाल ने अपनी सतसई दोहों में लिखकर अटल कीर्ति उपलब्ध की है। तुलसी-दोहावली भी एक महाकवि की कीर्ति है। रहीम, रसनिधि, रसलीन आदि कवियों ने भी इसी छंद में अपनी रचनाएँ करके हिंदी-साहित्य-गगन में देदीप्यमान नक्षत्रों के स्थान प्राप्त किए हैं। वैसे तो प्रायः सभी बड़े-बड़े कवियों ने अपनी रचनाओं में इस छंद का आश्रय लिया है।

दोहा हिंदी-जगत् में इतना प्रचलित है कि छोटे-छोटे बालक भी दो-चार-दस दोहे सीखे रहते और अपनी तोतली वाणी में पढ़ा करते हैं। हमारी अपढ़ स्त्रियों के मुख से भी कभी-कभी इसकी मंजुल ध्वनि कर्ण-गत होती है। निरक्षर कृषक भी, और नहीं तो, भड्डरी के सौ-पचास दोहे जानता ही है। हमें आशा है, हमारे वर्तमान कविगण भी इसका उपयोग करते ही जायँगे।

सतसई के दोहे के विषय में कहा गया है—

सतसइया को दोहरा, ज्यों नाविक को तीर ;
देखत में छोटो लगै, घाव करै गंभीर।

सतसइया ही का नहीं किसी भी कवि-हृदय से निकला भाव-पूर्ण दोहा गंभीर घाव किए बिना न रहेगा।

ये विचार श्रीमाधुरी-संपादक बाबू दुलारेलालजी भार्गव-रचित दोहावली के प्रथम खंड की कुछ बानगी देखकर हमारे हृदय में उत्पन्न हुए हैं। इनमें से कई तो माधुरी में मुद्रित चित्र-परिचय के हैं, और शेष स्वतंत्र लिखे गए हैं। इनकी संख्या तो हमें विदित नहीं हुई ; पर हम इतना कह सकते हैं कि यदि ये दोहे पुस्तकाकार प्रकाशित होंगे, तो कविता-प्रेमी इनका स्वागत अवश्य करेंगे।

कहीं-कहीं जहाँ भाव अवगत करने में कठिनाई पड़ना संभव है, वहाँ पाद-टिप्पणियों द्वारा स्पष्टीकरण आवश्यक है।

न तो हम कवि ही हैं, और न काव्य-शास्त्र के ज्ञाता; पर कविता-प्रेमी अवश्य हैं। जो रचना हमारे हृदय पर प्रभाव डालती है, हमारे हृदय की तंत्री बजा देती है, उसे हम उत्तम कविता मानते हैं। बस, हमारे पास काव्यालोचन की यही एक कसौटी है। इसी कसौटी पर कसकर हमने दुलारे-दोहावली की परीक्षा की है, और वह चोखी उतरी है। कोई-कोई दोहे तो सतसई के दोहों का स्मरण कराते हैं। लीजिए कुछ बानगी—

(१) परोपकार

ऊँच जनम नरवर हरत नित नमि-नमि पर-पीर ;
सींचति सिखरी सों निकसि नदी निम्न बहि तीर।

(२) दृग-तुरग

गुरु-जन-लाज-लगाम, सखि-सिख-साँटो हू निदरि ;
टरत न प्रिय-मुख-ठाम, चरत अरीले दृग-तुरग।

(३) रात्रि-रसायन

दिन-नायक ज्यों-ज्यों बढ़त कर अनुरागि पसारि ;
त्यों-ही-त्यों सिमटति, हटति निसि नवनारि निहारि।

बस, इतनी ही बानगी बहुत है। हाँडी के एक चाँवल से ही परीक्षा हो जाती है।

रघुवरप्रसाद द्विवेदी

नर-व्याघ्र अब्दुलहमीद

नेरोबी (पूर्व आफ़्रिका) के एक गोआ-निवासी डॉक्टर डि सोज़ा ने श्रीमती सरोजिनी देवी को, जब कि वह ईस्ट-आफ़्रिकन इंडियन नेशनल कांग्रेस की सभानेत्री बनकर वहाँ गई थीं, एक भोज दिया था। डॉक्टर साहब ने शाकाहारियों के लिये एक मेज़ अलग रखवा दी थी, और इसी मेज़ पर एक सिख महाशय के साथ मैं भी बैठा हुआ था। इन महाशय का केनिया-सरकार के ख़ुफ़िया-विभाग से संबंध था। पर यह थे बड़े सभ्य। आफ़्रिका के सिंहों के विषय में बातचीत चल पड़ी। मैंने उन सिख सज्जन से पूछा—"क्या आपने लेफ़्टिनेंट कर्नल पैटरसन की मशहूर किताब "The Man eaters of Tsavo", अर्थात् "सावो * के शेर" पढ़ी है?" उन्होंने उत्तर दिया—"मि० पैटरसन ने तो कुल-जमा आठ ही शेर मारे थे; पर यहाँ ऐसे-ऐसे हिंदोस्तानी पड़े हुए हैं, जिन्होंने बीसियों शेर मारे हैं। दो सिख भाइयों ने तो मिलकर १८० शेर मार डाले थे।" मैंने कहा—"एक सौ अस्सी! मैं इन बहादुर भाइयों के दर्शन अवश्य करूँगा।" सिख ने उत्तर दिया—"वे लोग तो अब केनिया में रहे नहीं, हिंदोस्तान को लौट गए। हाँ, एक अब्दुलहमीद नाम का पठान है, जिसने अकेले ही एक सौ बीस शेर मारे हैं।"

मैंने कहा—"सरदारजी, आप मुझे उनसे ज़रूर मिलाइए। वह रहते कहाँ हैं, और क्या करते हैं?" सरदारजी बोले—"वह 'सुलतानहमूद'-नाम के स्टेशन पर 'सब-पर्मानेंट वे इंस्पेक्टर' हैं। यह स्टेशन यहाँ से कोई पाँच घंटे की रेल-यात्रा के बाद पड़ता है।"

मैंने सुलतानहमूद जाने का निश्चय कर लिया।

इस भोज के दो-तीन दिन बाद एक हृष्ट-पुष्ट आदमी मुझसे मिलने के लिये आया। नाम पूछा, तो मालूम हुआ कि आप ही अब्दुलहमीद हैं। किसी कार्य-विशेष के लिये आप नैरोबी आए हुए थे, और वहाँ उन सिख महाशय ने उनसे मेरे पास आने के लिये कह दिया था। अब्दुलहमीद



श्री नर-व्याघ्र अब्दुलहमीद

को मैंने वहाँ बिठलाया, और बहुत देर तक बातचीत की। इसके बाद मैंने स्वयं सुलतानहमूद-स्टेशन की यात्रा की, और लगभग एक दिन उनके साथ रहा। मैंने उनसे कहा—"आप अपना सब हाल मुझे बतलाइए। मैं हिंदोस्तानी अख़बारों में आपके बारे में लिखूँगा।" मेरे विशेष आग्रह करने पर अब्दुलहमीद ने मेरे सवालों का जवाब देना मंज़ूर कर लिया। यह लेख उन्हीं जवाबों का क्रमबद्ध विवरण है।

* युगांडा-रेलवे पर 'सावो' नाम का एक स्टेशन है।

अब्दुलहमीद का जन्म सीमांत-प्रदेश के ज़िला हज़ारा के इच्छकियाँ-नामक ग्राम में हुआ था। इस वक़्त आपकी उमर क़रीब ४० साल की होगी। सन् १९०० में आप बारह रुपए महीने और ख़ुराक पर कुलीगीरी का काम करने के लिये पूर्व-आफ़्रिका गए थे। आज आपकी तनख़्वाह ३८० शिलिंग माहवार है, जो आपकी ईमानदारी और मिहनत का फल है। अब्दुलहमीद में काफ़ी नम्रता है, और घमंड तो उन्हें छू भी नहीं गया। आफ़्रिका के सैकड़ों भयंकर जंगली जानवरों का मुक़ाबला आपने बड़ी बहादुरी से किया है। पर इन शिकारों का हाल आप इतनी सादगी के साथ बतलाते हैं कि मानो इनमें आपको कुछ परिश्रम या वीरता की आवश्यकता ही न पड़ी हो। अब्दुलहमीद ने अब तक लगभग सवा सौ आफ़्रिकन सिंहों का शिकार किया है। यह कोई थोड़ी संख्या नहीं है। मुझे तो इसी बात में संदेह है कि किसी दूसरे आदमी ने इतनी कठिनाइयों का सामना करते हुए अकेले ही इतने शेर मारे होंगे।

मैंने अब्दुलहमीद से कहा—"आप मुझे बतलाइए कि आपका पहला मुक़ाबला आफ़्रिका के किसी जंगली जानवर के साथ कैसे हुआ?" अब्दुलहमीद ने जवाब दिया—"सन् १९०१ की बात है। मज़दूरों के साथ मैं युगांडा-रेलवे पर काम कर रहा था। इतने में एक सोहाली (आफ़्रिका का आदिम निवासी) भागता हुआ आया, और बोला—'सिंबा! सिंबा!!' मैं नहीं समझ सका कि वह क्या कह रहा है। वह कुछ टूटी-फूटी उर्दू भी जानता था। जब उसने उर्दू में मुझे समझाया, तो मैं समझ गया कि वह शेर या चीते के बारे में कुछ कह रहा है। पंद्रह-बीस आदमियों के साथ मैं उस तरफ़ गया। देखा, तो लाइन से २५-३० गज़ की दूरी पर एक चीता पड़ा हुआ है, और पास ही आधा खाया हुआ एक हिरन भी। पानी का एक गड्ढा नज़दीक ही था। मेरे साथी कुछ आदमियों ने कहा—अरे! यह तो मरा हुआ पड़ा है। मेरे पास उस वक़्त कोई हथियार भी न था। हाँ, मेरे साथियों में से किसी-किसी के पास एकआध लकड़ी ज़रूर थी। इस मौक़े पर एक आदमी को बेवक़ूफ़ी सूझी। उसने यह जानने के लिये कि चीता मरा हुआ है या ज़िंदा, एक पत्थर फेंककर उसे मारा। वह भड़भड़ाकर उठा, और हम लोगों की ओर लपका। हमारी लाइन ज़मीन से सात-आठ गज़ की ऊँचाई पर थी। पर उसने एक ही छलाँग में इसे पार कर लिया, और उसके पंजे मेरे कोट पर आकर पड़े। मेरे साथी डर के मारे पीछे भाग गए। उस वक़्त मैंने एक होशियारी की, याने जल्दी से पीछे घूमकर उस चीते की गर्दन दोनों हाथ से ज़ोर के साथ पकड़ ली। क़रीब आधघंटे तक हम दोनों झगड़ते रहे। पर डर के मारे मैंने उस चीते की गर्दन नहीं छोड़ी। उसने अपने पंजों से मेरे शरीर को लहू-लुहान कर दिया था। मेरे साथी सब भाग गए थे, और दो-एक पास के लट्ठों पर चढ़ गए थे। आधघंटे तक मैं उस चीते की पीठ पर बैठा रहा। उसी वक़्त एक इंस्पेक्टर रेल की लाइन पर निकला। मेरी हालत देखकर उसे ताज्जुब हुआ, और उसने कहा—तुम इस चीते को छोड़ दो। मेरे मुँह से उस वक़्त आवाज़ भी नहीं निकलती थी। बड़ी हिम्मत करके मैंने कहा—यह ज़िंदा है अगर मैं इसे छोड़ दूँगा, तो यह मुझे खा जायगा। इंस्पेक्टर बोला—तुम इसे छोड़कर भागो। अगर यह तुम्हारा पीछा करेगा, तो मैं इसे फ़ौरन् ही बंदूक़ से मार दूँगा। मैं उस चीते को छोड़कर भागा। पर वह अपनी जगह से उठा ही नहीं। दम घुटकर उसकी जान निकल गई थी। इंस्पेक्टर ने मेरी पीठ ठोंकी। उस वक़्त मेरे सब कपड़े फटे हुए थे, और मैं बिलकुल नंगा था। वह इंस्पेक्टर मुझे अपने कमरे में ले गया, और अपने पास से मुझे कपड़े दिए।

मैं—आपने पहली बार शेर कब मारा था?

अब्दुलहमीद—यह तो मैं आपको ठीक-ठीक नहीं बतला सकता कि मैंने पहला शेर कब मारा। लेकिन इतना मुझे ज़रूर याद है कि उन दिनों मैं जमादार था। सबेरे सात बजे थे। क़रीब ५० क़दम पर मेरे सामने ही लाइन पर एक शेर खड़ा हुआ था। मैंने निशाना ठीक करके एक गोली मारी, जो उसकी छाती में लगी। वह बड़े ज़ोर से गरजकर उछला, और वहीं गिरकर मर गया।

मैं—आपके पास बंदूक़ कौन-सी है?

अब्दुलहमीद—मेरे पास ३०३ नंबर की बंदूक़ है। इसे मैंने १७ साल पहले ख़रीदा था। इसकी गोली बिलकुल बारीक है। अब सरकार मुझे अच्छी बंदूक़ ख़रीदने की इजाज़त नहीं देगी; क्योंकि सरकारी अफ़सरों को इस बात का डर है कि कहीं ज़्यादा जानवर मारकर मैं शिकार कम न कर दूँ। जब किसी साहब के पास मैं

अच्छी बंदूक़ देखता हूँ, तो कहने लगता हूँ, काश कहीं वह बंदूक़ मेरे पास होती !

मैं—आपने अब तक कितने जंगली जानवरों का शिकार किया है ?

अब्दुलहमीद—मैंने अब तक एक सौ बीस * शेर मारे हैं। इनके सिवा २५ चीते और एक हाथी भी। भैंसों की मैंने कोई तादाद अपने पास नहीं रक्खी। जंगली भैंसे भी बहुत-से मारे हैं। पहले तो लैसंस लेने की ज़रूरत नहीं थी, और हर आदमी मन-चाहा शिकार खेल सकता था। ये सब मैंने इसी पुरानी बंदूक़ से, जो सामने कोने में रक्खी हुई है, मारे हैं।

मैं—इन शिकारों में तो कई बार आपकी जान ख़तरे में पड़ गई होगी ?

अब्दुलहमीद—हाँ, कितनी ही बार। एक बार तो एक जंगली भैंसे ने मेरा काम ही तमाम कर दिया था। इतवार का दिन था। क़रीब बारह बजे थे। कुछ किसान लोग मेरे पास आकर बोले—दो जंगली भैंसे हमारे खेतों में घुस आए हैं। उन्होंने हमारी मक्का भी ख़राब कर दी है, और हमारा घर भी गिरा दिया है। आप ही हमें इनसे बचा सकते हैं। एक योरपियन गार्ड और कुछ आफ़्रिकन लोगों को साथ लेकर मैं वहाँ पर पहुँचा। देखा, तो वहाँ भैंसे के पाँव के निशान बने हुए हैं। हम लोग उन्हीं निशानों के सहारे आगे बढ़े। नज़दीक ही एक जंगल में भैंसा पड़ा हुआ था। मैंने साहब से कहा—आप यहीं खड़े रहिए, मैं दरख़्त पर चढ़कर फ़ायर करूँगा। उसके शोर से जब वह बाहर निकले, तब आप उसे अपनी गोली का निशाना बनाना। जब मैं दरख़्त पर चढ़ने लगा, तो मेरे चढ़ने की आवाज़ से वह भैंसा, जो नज़दीक ही पड़ा हुआ था, चौकन्ना हो गया, और मैदान की ओर भागा। मैं दरख़्त से उतर पड़ा, और बंदूक़ उठाकर उसका पीछा किया। साहब भी साथ ही थे। साहब ने उस भागते हुए भैंसे पर तीन गोलियाँ चलाईं, और दो मैंने। हमारा अंदाज़ था कि इन पाँच गोलियों में से एकआध उसके ज़रूर लगी होगी। साहब ने कहा—तुम इसके पीछे जाओ; हम एक मील आगे जाकर उसे रोकेंगे। मैं उसके पैरों के निशानों पर आगे बढ़ा, तो एक जंगल मिला। मुझे इस बात का शक था कि कहीं वह भैंसा आगे बढ़कर, मुड़कर और घूमकर उसी जगह न पहुँच गया हो। मैं उसके निशानों के पीछे-पीछे आ रहा था। ज्यों ही मैंने झुककर देखा, तो वह पीछे की ओर खड़ा था। भैंसे ने मुझ पर एकसाथ हमला किया। मैं फ़ौरन् ज़मीन पर लेट गया। इसलिये उसका हमला ख़ाली गया, और वह ज़ोर के साथ थोड़ी दूर आगे निकल गया। पीछे लौटकर वह फिर आया। उस वक़्त तक मैं सँभल गया था। बिलकुल नज़दीक से मैंने उसके दो गोलियाँ मारीं। उसने फिर भी हमला किया, और मुझे गिरा दिया। फिर वह हटकर थोड़ी दूर पर खड़ा हो गया। मैं यह देखकर भागा। उसने पीछे से आकर टक्कर दी, और फिर पाँव लगाकर मुझे फेंका, तो मैं पास की झाड़ी में जा गिरा। मेरा सिर नीचे था, और पैर ऊपर। फिर उसने अपने सिर से टक्कर दी, जिससे मैं बेहोश हो गया। होश आने पर देखा, तो एक तरफ़ मैं पड़ा हुआ था, और दूसरी तरफ़ वह। मेरी दोनों गोलियाँ अपना काम कर चुकी थीं, और वह भैंसा मर रहा था। वह अपनी दुम हिला रहा था, और वह दुम मेरी पीठ पर आकर लगती थी। इसलिये मुझे शक था कि वह अब भी उठ सकता है। मैं उठकर भागा; सामने एक पेड़ था। उसकी टक्कर लगी और मैं गिर पड़ा। थोड़ी देर में देखा, तो वह भैंसा बिलकुल मरा हुआ पड़ा था।

मैं—आपने ज़्यादा-से-ज़्यादा कितने शेर एक बार मारे हैं ?

अब्दुलहमीद—एक दिन मैंने तेरह शेर इकट्ठे ही मारे थे। मैं उस वक़्त एक ठेले पर लाइन देखने के लिये जा रहा था। देखा, तो कुछ दूर पर १३ शेर एक ज़िराफ़ को खा रहे हैं। शेर का यह क़ायदा है कि वह भागता नहीं। एक के गोली लग जाय, तो दूसरा उसके नज़दीक देखने को आता है। मैंने इस तरह पाँच मिनट के अंदर बारह शेर मार दिए। तेरहवीं मादा थी। उसके पेट में जब गोली लगी, तो उसने सीधे मुझ पर हमला किया। मैंने फिर गोली मारी, लेकिन वह ख़ाली गई। ज्यों ही उसने फिर हमला किया, मैंने बंदूक़ उसके मुँह में डाल दी, और उसके मुँह में ही गोली चल गई। वह बंदूक़ लेकर गिर पड़ी, और मर गई। उसके मरने के बाद, बड़ी मुश्किल से, मैंने अपनी बंदूक़

* नैरोबी के डेमाक्रेट-नामक पत्र से ज्ञात हुआ कि अभी अब्दुलहमीद ने दो शेर और मारे हैं। इस प्रकार कुल योग १२२ हुआ।—लेखक

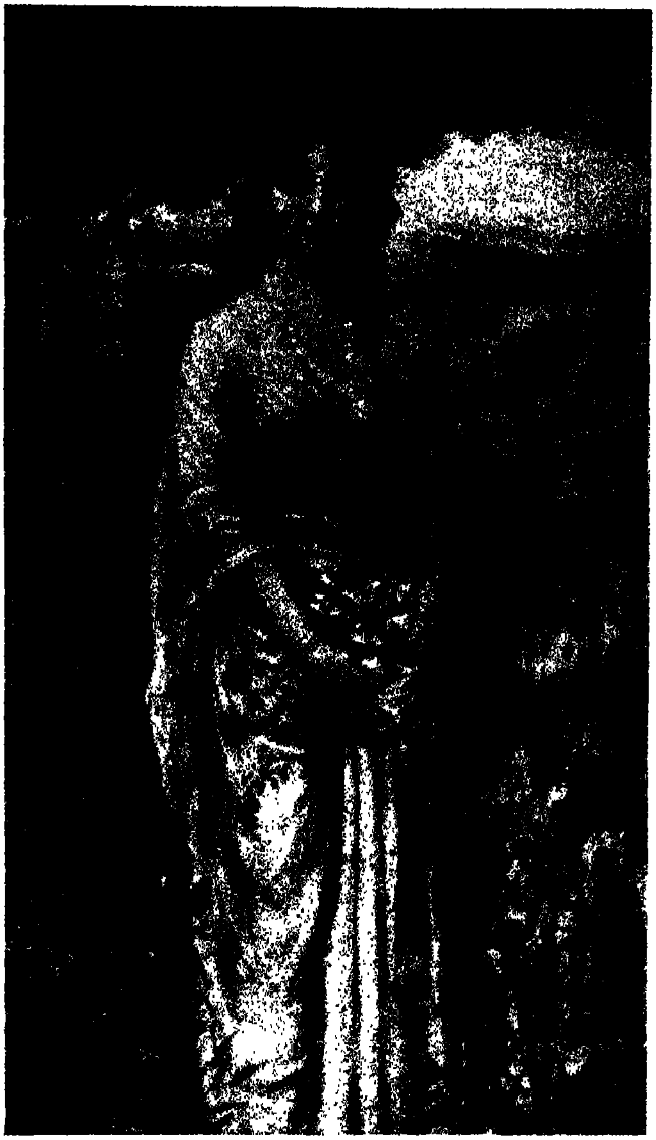
उसके मुँह से निकली । उसने बंदूक को खूब चिथकिया-कर दाँतों से जकड़ लिया था ।

एक बार एक शेर ने मुझे ख़त्म ही कर दिया होता । वह ज़ख्मी होकर जंगल में भाग गया था । मैंने उसका पीछा किया । क़रीब चार मील पर उसे पाया । वह एक झाड़ी में था । मुझे देखते ही उसने हमला किया । मैंने उसके गोली मारी, जिससे वह ज़मीन पर गिर पड़ा । लेकिन गिरते वक़्त वह बड़े ज़ोर से गरजा, और उसकी गरज से मेरा दिल दहल गया; क्योंकि वह बिलकुल नज़दीक ही था । उसने दूसरी बार फिर हमला किया । मैंने फिर गोली मारी । वह फिर गिर गया । अब तीसरी बार उसने हमला किया, तो मेरी हिम्मत बिलकुल छूट गई । पर एकाएक मेरे हाथ से गोली चल गई, और वह शेर के लगी । वह गिर पड़ा । मेरा दिमाग़ चक्कर खा रहा था, इसलिये बेहोश होकर मैं भी गिर पड़ा । होश आने पर मैंने देखा कि हम दोनों नज़दीक-नज़दीक पड़े हुए हैं ! फ़र्क़ इतना ही था कि मैं कुछ ऊँची ज़मीन पर था, और वह नीचे एक गड्ढे में लुढ़क गया था । पर मरा अब भी न था । मेरी गोलियाँ अपना काम कर रही थीं और उसमें ऊपर चढ़ने की ताक़त नहीं रही थी । हाँ, वह खिसक-खिसककर कई गज़ आगे आ रहा था । उठकर मैंने फिर गोली मारी, और वह मर गया ।

एक बार नैरोबी के जज मि० वार्टन की ज़िंदगी अब्दुलहमीद ने बचाई थी । एक जंगली भैंसे ने उन्हें झाड़ी के नीचे दबा लिया था । अब्दुलहमीद ने उस भैंसे के कंधे में गोली मारकर उसको गिरा दिया, और जज साहब की जान बचा ली । अब्दुलहमीद ने एक साहब बहादुर के शिकार का बड़ा मनोरंजक क़िस्सा मुझे सुनाया । एक अँगरेज़ अफ़सर को शिकार का शौक़ हुआ । उन्होंने अब्दुलहमीद को साथ लिया । एक गड्ढा खोदा गया, उसके नीचे वह अफ़सर और अब्दुलहमीद दोनों बैठ गए । गड्ढा ढक दिया गया; पर उसमें बंदूक के लिये दो छेद रक्खे गए । एक मरा हुआ जानवर भी उस गड्ढे के पास रख दिया गया । शेर आया; पर उसे इस बात का शक था कि शायद दुश्मन नज़दीक ही होगा । इसलिये उसने उस गड्ढे के छेदों पर आकर सूँघना शुरू किया । पहले तो उसने मेरे सूराख़ पर साँस ली । मैंने गोली नहीं चलाई; क्योंकि मैं साहब से वादा कर चुका था कि मैं तीसरी गोली चलाऊँगा, पहली दो गोलियाँ आप चला लेंगे । फिर उस शेर ने साहब के छेद के ऊपर आकर लंबी साँस ली । उसकी बदबू साहब की नाक के अंदर चली गई, और वह बेहोश हो गए । मैंने उन्हें इशारा किया कि आप गोली चलावें । लेकिन उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया, और ख़र्राटा भरने लगे ! तब मैंने ख़ुद उस शेर को गोली मारी, और वह एक ही गोली लगने से मर गया । साहब को जब डेढ़ घंटे बाद होश आया, तब उन्होंने मुझसे कहा— अगर तुम्हें कोई उज़्र न हो, तो मैं यह कह दूँ कि मैंने शेर मारा है ।

मैंने कहा— अगर आप मुनासिब समझें, तो बेशक कह दें । मुझे कोई एतराज़ नहीं; क्योंकि मैंने बहुत-से शेर मारे हैं । उस अफ़सर ने दूसरे दिन ही नैरोबी के एक अख़बार में कई कालम का एक मज़मून छपवा दिया, और उसमें अपनी बहादुरी का क़िस्सा लिखा कि मैंने इस तरह शेर मारा । पीछे जब असली बात लोगों को मालूम हुई, तो कई मेरे पास भी आए, और बोले कि तुम इसके ख़िलाफ़ क्यों नहीं अपना बयान छपवाते ? मैंने कहा, मैं ऐसा हर्गिज़ नहीं कर सकता ।

एक बार अब्दुलहमीद ने एक अँगरेज़ लड़के की जान बचाई थी । उसका ज़िक्र करते हुए अब्दुलहमीद ने कहा— "एक अँगरेज़ अपनी मेम और १५ साल के लड़के के साथ शिकार करने के लिये आफ़्रिका आया था । मुझे अपने ऑफ़िस से हुक्म मिला कि मैं १०-१२ दिन तक उनको शिकार खिलाऊँ । कोई बारह दिन तक मैं उसके साथ शिकार खेला । एक दिन हम चारों घने जंगल में जा रहे थे । साहब और उसकी मेम एक तरफ़ से गए और मैं और वह लड़का दूसरी तरफ़ से । आगे हम लोगों को और भी घना जंगल मिला । वह लड़का मुझसे बोला — मैं इस रास्ते से जाता हूँ, तुम उस रास्ते से आओ । आगे चलकर हम दोनों मिल जायँगे । मैंने उसका कहना मान लिया, और हम लोग जुदा-जुदा हो गए । मैं थोड़ी ही दूर जाने पाया था कि इतने में मुझे बंदूक की आवाज़ सुनाई दी, और उसी के साथ लड़के की चिल्लाहट भी मैंने सुनी । मैं फ़ौरन् दौड़कर उसकी तरफ़ गया । देखा, तो उस लड़के को गैंडे ने झाड़ी के नीचे डाल दिया है । मैंने उस गैंडे के ऊपर गोली चलाई । एक ही गोली में वह गिर पड़ा । फिर मैंने उस लड़के को निकाला । इस तरफ़ से मैं लड़के को साथ लिए आ रहा था, और उस तरफ़ से उस लड़के के मा-बाप गोली की



यौवनागमन

[श्रीदुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से]

नव तन-देसहिं जीति जनु पटु जोबन-नृपराज ;
खड़े किए कुच-कोट द्वै आपुन रच्छा-काज ।
दुलारेलाल भार्गव

N. K. Press, Lucknow.

आवाज़ सुनकर घबराए हुए चले आ रहे थे। उस लड़के ने मेरा हाथ चूमकर अपना सब हाल मा-बाप को सुनाया, और हिंदोस्तानी ज़बान में बहुत शुक्रिया अदा किया। लड़के ने कहा, अगर अब्दुलहमीद न होता, तो मेरी जान चली गई थी।

हम लोगों की पराधीनता के क्या-क्या परिणाम होते हैं, इस बात को अब्दुलहमीद ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं। केनिया के गोरे लोगों के दिमाग़ में तो किसी हिंदोस्तानी की इज़्ज़त करने का ख़याल आना ही नामुमकिन है। पर साथ ही हम लोग भी अपने आदमी का सम्मान करना नहीं जानते। पूर्व-आफ़्रिका के हिंदोस्तानियों ने आज तक अब्दुलहमीद की बहादुरी के लिये उनका कोई सम्मान नहीं किया, यद्यपि उन्होंने बीसों आदमियों की जानें बचाई हैं, और बीसों बार अपनी जान को ख़तरे में डाला है। हाँ, आफ़्रिकन लोगों ने अवश्य ही अब्दुलहमीद को 'सिंबा बोली' * (दो शेर की ताक़त रखनेवाला) की उपाधि देकर अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय अवश्य दिया है।

पूर्व-आफ़्रिका के गोरे लोगों के हृदय से न्याय-प्रियता का भाव कितना अधिक जाता रहा है, इसका एक दृष्टांत यहाँ दिया जाता है—

जनवरी, सन् १९२४ में ब्रिटिश-जहाज़ी बेड़े के कुछ आदमी अपने जहाज़ों पर आफ़्रिका को गए। वहाँ उन्होंने शिकार करने की ठानी। रेल-विभाग के उच्च अधिकारियों ने अब्दुलहमीद को हुक्म दिया कि तुम इन लोगों के साथ जाकर इन्हें शिकार खिलाओ। तीन अफ़सर थे। ये लोग आठ बजे तो सोकर उठते हैं। उस वक़्त काफ़ी गर्मी हो जाती थी, और जानवर जंगल में भीतर की ओर अपनी-अपनी जगह पर चले जाते थे। अब्दुलहमीद ने तीन दिन तक इन लोगों के लिये शिकार तलाश किया; पर कोई भी शिकार न मिला। सुना जाता है, इस पर इन लोगों ने केनिया-सरकार के शिकार विभाग के अफ़सरों से शिकायत कर दी कि अब्दुलहमीद ने तमाम शिकार ख़तम कर दिया है, इसलिये हम लोगों को शिकार नहीं मिला। ये साहब लोग थोड़ी-थोड़ी दूर चलकर हाँफ जाते थे, और खा माँगने लगते थे। तीन दिन तक बेचारे अब्दुलहमीद को बहुत तंग होना पड़ा, और भारी मुसीबत उठानी पड़ी। नतीजा यह हुआ कि उलटी उनकी शिकायत कर दी गई! शिकार-विभाग ने अब्दुलहमीद के रेल-विभाग के अधिकारियों को लिखा, और उन अधिकारियों ने अब्दुलहमीद से जवाब तलब किया। सौभाग्य से अब्दुलहमीद के ऊपर का अफ़सर मिस्टर क्रॉसबी एक भला अँगरेज़ था। उसने अब्दुलहमीद पर अन्याय नहीं होने दिया; नहीं तो अब्दुलहमीद का तबादला हो गया होता, और बंदूक़ का लैसंस भी छिन गया होता! मिस्टर क्रॉसबी की चिट्ठी की नक़ल यहाँ दी जाती है। इससे पाठकों को केनिया के गोरों की मानसिक प्रवृत्ति का पता लग जायगा, और साथ ही मि० क्रॉसबी की न्याय-प्रियता भी प्रकट होगी—

From

P. W. I.

M. K. U.

To

D. E.

N. E. D.

N. R. B.

Ref. No. 30-21 of 22-1-24

In reply to your 419-8 of 18-1-24 attached.

Subject—Trapping lions.

Sir,

Referring to the attached, I have translated the contents to S. P. W. I. (Abdul Hamid) and beg to state on his behalf that he has never in his life trapped a lion. He has killed 120 lions during fifteen years and last year he shot six, which were all shot within five or six days and this at my instigation and in response to the pleadings of the staff at Simba. His custom has always been to sit up a tree or in a covered pit with a dead bait near by. The six lions were shot during the time we were putting in the bridges between Simba and mile 231, and he spent several nights in pits and up trees. On one occasion he counted 22 lions together. Every one who shoots at Simba adopts the same method. Indeed I have only heard of one occasion, on which a lion was trapped on my section and that was by a settler.

* स्वाहिली भाषा में सिंबा का अर्थ सिंह है, और बोली दो को कहते हैं।

I know that leopards are trapped on the Kenani and Mackinow Road section, but not in mine. If it is intended that Abdul Hamid should be forbidden to shoot, I will tell him so and he can ask for the return of his license money. As for transferring him I do not mind in the least as long as I get another sub-inspector equally capable to replace him. I am not interested in shooting myself and have given him no encouragement (except on the occasion referred to when lions were frequenting the station near by) but I must speak the truth and respectfully suggest that the C. E. has on this occasion been misinformed

Abdul Hamid wishes to be confronted with his accusers, but I have told him that it is impossible, as the matter is confidential.

Trusting this is satisfactory and awaiting your further orders.

I am, Sir,
Yours obediently,
W. CROSBY,
P. W. I.

इस चिट्ठी का भावार्थ यह है—

"आपकी चिट्ठी का तर्जुमा मैंने अब्दुलहमीद को सुना दिया है, और उसकी तरफ़ से मैं यह कहना चाहता हूँ कि उसने आज तक एक भी शेर फँसाकर नहीं मारा। पिछले पंद्रह सालों में उसने १२० शेर मारे हैं, और गत वर्ष ६ मारे थे। ये ६ शेर पाँच या छः दिन के अंदर मारे गए थे, और यह काम अब्दुलहमीद ने मेरे कहने और सिंबा स्टेशन के नौकरों की प्रार्थना पर किया था। अब्दुल-हमीद का तरीक़ा हमेशा से यही रहा है कि वह या तो गढ़े में नीचे बैठकर या पेड़ के ऊपर चढ़कर और पास में कोई मरा हुआ जानवर रखकर शिकार करता है। जिस वक़्त हम सिंबा-स्टेशन और २३१वें मील के बीच में पुल बना रहे थे, उस वक़्त अब्दुलहमीद ने कई दिन और रात गढ़ों के नीचे और पेड़ों के ऊपर बिताए थे। और, तब कहीं उसने ६ शेर मार पाए थे। एक बार तो उसने २२ शेर इकट्ठे ही गिने थे। सिंबा स्टेशन के आसपास जो कोई शिकार खेलता है, वह इसी तरीक़े से काम लेता है। मैंने सुना है, सिर्फ़ एक बार मेरी लाइन पर किसी ने शेर को फँसाकर मारा था, और यह काम किसी गोरे अधिवासी ने किया था। मैं यह जानता हूँ कि केनानी और मैकीनन-रोड के विभाग पर तेंदुए फँसाकर मारे जाते हैं; पर मेरी लाइन पर ऐसा कभी नहीं होता। अगर आप यह चाहते हैं कि अब्दुलहमीद को शिकार खेलने की मनाई कर दी जाय, तो मैं उसे मना कर दूँगा। और, तब वह अपना रुपया, जो उसने लैसंस के लिये दिया था, वापस माँग सकता है। रही उसके तबादला करने की बात, सो मुझे इसकी कुछ पर्वा नहीं, बशर्ते कि उतना ही क़ाबिल कोई दूसरा सबइंसपेक्टर उसकी जगह पर काम करने के लिये मेरे पास भेज दिया जाय। मुझे ख़ुद शिकार का कुछ भी शौक़ नहीं है, और न मैंने कभी अब्दुलहमीद को शिकार खेलने के लिये उत्साहित किया है। हाँ, सिर्फ़ एक-बार जब शेर आसपास के स्टेशनों पर चक्कर मारते थे, मैंने अब्दुलहमीद से शिकार करने के लिये ज़रूर कहा था। यहाँ पर मैं सच कहे बिना नहीं रह सकता—और सम्मान-पूर्वक मैं यह कह देना चाहता हूँ—कि इस बार सी० ई० को किसी ने ग़लत बातें लिख भेजी हैं।

अब्दुलहमीद चाहता है कि उसे उन लोगों के नाम बतला दिए जायँ, जिन्होंने उस पर ये जुर्म लगाए हैं। लेकिन मैंने उससे कह दिया है कि ऐसा नामुमकिन है; क्योंकि यह मामला गोपनीय है।

विश्वास है, आपको यह उत्तर संतोष-जनक मालूम होगा, मैं आपके दूसरे हुक्मों की राह देखूँगा।

आपका सेवक,
डबल्यू० क्रॉसबी"

अगर क्रॉसबी साहब ने सचाई और ईमानदारी से काम न लिया होता, तो बेचारा अब्दुलहमीद बेक़सूर मारा जाता।

जब मि० पैटरसन ने ८ शेर मारे थे, तो तमाम दुनिया में उनकी प्रशंसा हुई थी, और उनकी बहादुरी की तारीफ़ अमेरिका के प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट तक ने की थी। पर १२२ शेर मारने पर भी अब्दुलहमीद को कोई पूछता तक नहीं! क़दर करने के बजाय अफ़सर लोग उसको सज़ा देने, लैसंस छीनने और तबादला करने की फ़िक्र में रहते हैं! ऐसा क्यों न हो? आख़िर पैटरसन स्वाधीन जाति का एक अँगरेज़ है, और अब्दुलहमीद ग़ुलाम क़ौम का हिंदोस्तानी। दोनों की स्थिति में यही अंतर है।

बनारसीदास चतुर्वेदी

शिक्षा का माध्यम और मध्य-प्रदेश का अनुभव

(२)

अँगरेज़ी माध्यम के पक्ष में क्या कहा जाता है, और उसमें सत्य की मात्रा कहाँ तक है

विद्वानों का धर्म है कि दोनों तरफ़ की बातें सुनें, और पक्ष-विपक्ष में जो कुछ कहा जाय, उस पर विचार तथा मनन करें। एक पक्ष की बात को ही सुनने से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होने की संभावना है। अंध-विश्वास पर ज़िद करनेवाले को विचारवान् मनुष्य नहीं कह सकते। अब ज़रा यह देखना चाहिए कि अँगरेज़ी माध्यम के संबंध में उसके पक्षपाती क्या कहते हैं, और उनका कहना कहाँ तक माननीय है।

भाषा सिखाने का मुख्य अभिप्राय यह रहता है कि शिक्षित मनुष्य, जितने अधिक समुदाय में हो सके, अपने विचारों को प्रकट कर सके, समाज के विचारों को ग्रहण कर सके। यदि मान लिया जाय कि पश्चिम संयुक्त-प्रदेश में केवल व्रजभाषा में ही शिक्षा दी जाय, और अवध की प्राइमरी पाठशालाओं में केवल बैसवाड़ी में ही शिक्षा हो, तो व्रज-प्रांत का शिक्षित मनुष्य अवध के शिक्षित मनुष्य से सुगमता-पूर्वक विचार-परिवर्तन न कर सकेगा। दोनों जगह के बालकों को साधु भाषा में लिखना अथवा बोलना सिखला दिया जाता है, इसलिये परस्पर व्यवहार सुगम हो जाता है। सुबीता यहाँ तक बढ़ जाता है कि यदि हिंदी पढ़ा हुआ मनुष्य थोड़ी उर्दू भी सीख ले, तो पेशावर से लेकर कलकत्ते तक और काश्मीर से लेकर हैदराबाद (दक्खिन) तक सुबीते से यात्रा कर सकता और लोगों से वार्तालाप कर अपना काम चला सकता है। केवल मराठी, गुजराती, तैलंगी या तामिल-भाषा जाननेवाले का व्यवहार-क्षेत्र केवल हिंदी जाननेवाले के क्षेत्र की अपेक्षा बहुत संकुचित रहता है। बहुत दूर जाने पर उसकी भाषा का ज्ञान काम नहीं देता। ऐसा कहना अनुचित न होगा कि हिंदी-उर्दू (हिंदुस्तानी) का ज्ञान हो जाने से एक विस्तृत क्षेत्र में मनुष्य अपना काम चला सकता है। भारत की अन्य भाषाएँ जाननेवालों का क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं रहता। यही हाल योरप की छोटी-मोटी भाषाओं के जाननेवालों का है, जैसे डच, इटलियन, स्पेनिश, पोर्चुगीज़ आदि। परंतु जो उपयोगिता हिंदुस्तानी भाषा की इस देश में है, वही उपयोगिता अँगरेज़ी और फ़्रेंच की सारी दुनिया में है। अँगरेज़ी जाननेवालों के विचार-परिवर्तन का क्षेत्र बहुत ही अधिक बढ़ जाता है। वे इँगलिस्तान, उत्तर-अमेरिका, आस्ट्रेलिया अथवा ब्रिटिश-साम्राज्य के किसी भी भाग के निवासियों से पत्र-व्यवहार कर सकते हैं; वहाँ से प्रकाशित अँगरेज़ी-पुस्तकों तथा अख़बारों को पढ़ सकते, वहाँ अपने विचार फैला सकते हैं। इस देश के निवासी अब कूप-मंडूक नहीं रह सकते। उन्हें दुनिया-भर के लोगों से संसर्ग रखना पड़ता है, और भविष्य में और भी अधिक रखना पड़ेगा। अँगरेज़ी जाननेवाला ब्रिटिश-साम्राज्य के बाहर योरप, मिसर, चीन, जापान, यूनाइटेड स्टेट्स आदि में सुगमता से भ्रमण कर सकता है, वहाँ अपना काम अँगरेज़ी द्वारा चला सकता है। अँगरेज़ी माध्यम के पक्षपातियों का कहना है कि ऐसी उपयोगी भाषा का ज्ञान जितना अधिक हो, उतना ही लाभकारी होगा।

यह हम मानने को तैयार हैं कि आधुनिक स्थिति को देखते हुए प्रत्येक शिक्षित हिंदुस्तानी को अँगरेज़ी जाननी चाहिए। देशी भाषा को माध्यम बनाने के कट्टर-से-कट्टर पक्षपाती को यह कहते हमने तो नहीं सुना कि अँगरेज़ी पढ़ाई न जाय। योरप में मातृभाषा में ही शिक्षा दी जाती है; पर प्रत्येक मिडिल या हाईस्कूल के विद्यार्थी को अँगरेज़ी, फ़्रेंच या जर्मन को द्वितीय भाषा मानकर सीखना पड़ता है। इसी प्रकार देशी माध्यम के पक्षपाती अँगरेज़ी भाषा को आवश्यक, पर द्वितीय भाषा के रूप में, पढ़ाना चाहते हैं। यह भी हम मानने को तैयार हैं कि इस देश के निवासी अब कूप-मंडूक नहीं रह सकते। उनको सारे संसार के संसर्ग में आना है। इसलिये उन्हें अँगरेज़ी का थोड़ा-बहुत ज्ञान होना ही चाहिए। परंतु ध्यान रहे कि प्रत्येक शिक्षित मनुष्य की आवश्यकताएँ एक-सी नहीं होतीं। कोई योरप-अमेरिका के विद्वानों से मिलकर ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, अपने विचार प्रकट करना चाहता है, वहाँ के विद्यालयों में अध्ययन करना चाहता है। ऐसों को अँगरेज़ी का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। कुछ ऐसे भी हैं, जो वहाँ जाकर व्यापार करना चाहते हैं। उन्हें व्यावहारिक अँगरेज़ी अच्छी आनी चाहिए। कुछ ऐसे भी हैं, जिन्हें अँगरेज़ी का ज्ञान इतना चाहिए कि रेल के स्टेशन पर टाइम-टेबिल पढ़ लें, तार का अर्थ समझ जायँ, टिकट के दाम जान

जायँ, चिट्ठियों पर पता लिख सकें आदि। सबकी आवश्यकता एक-सी नहीं है। सभी को इँगलैंड-अमेरिका जाने की आवश्यकता अथवा मौक़ा न मिलेगा; सभी इतने विद्वान् नहीं हो सकते कि अन्य देशों के विद्वान् उनके विचारों को सुनना चाहें। जिनको अधिक ज्ञान की आवश्यकता पड़ेगी, वे उस भाषा का ज्ञान स्वतः उपार्जन कर लेंगे। सब प्रकार के विद्यार्थियों को ठूँस-ठूँसकर उत्तम श्रेणी की अँगरेज़ी सिखाने का प्रयत्न करना सार्थक नहीं। अँगरेज़ी भाषा सीखना एक बात है, और उसे माध्यम बनाना दूसरी बात। ऊपर बतला आए हैं कि योरप के सभी देशों में बालकों को कोई मुख्य विदेशी भाषा सीखनी पड़ती है। परंतु स्वप्न में भी कोई यह नहीं कहता कि उसे माध्यम बना दो। फिर इसी देश में क्यों ऐसा अनर्थ किया जाय?

इस प्रश्न के उत्तर में निम्न-लिखित कारण दिए जाते हैं—

(१) देशी भाषाएँ अपरिपक्व हैं; उनका साहित्य कमज़ोर है, उनका शब्द-समूह न्यून है, उनमें अच्छी पुस्तकों का अभाव है, पारिभाषिक शब्द मिलते नहीं। पर योरप की कई भाषाओं पर भी यही लांछन लगा दिया जा सकता है। किंतु कौन माई का लाल होगा, जो वहाँ जाकर यह उपदेश करे कि ऊँचे दर्जे के कॉलेजों तथा माध्यमिक शालाओं में शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी या फ़्रेंच हो जाय। यह माना कि इन दो भाषाओं का शब्द-भांडार पाँच लाख तक पहुँचा है, और हिंदुस्तान की उत्तम-से-उत्तम भाषा के कोष में ५० हज़ार से ऊपर शब्द-संख्या नहीं मिलती। पर योरप की माध्यमिक शालाओं में जब कामिनियस के उद्योग से लेटिन के बदले मातृभाषा का माध्यम शुरू हुआ, तब वहाँ की भाषाओं के शब्द-समूह का क्या हाल था? क्या उनकी स्थिति बँगला, मराठी, गुजराती, हिंदी, उर्दू की अपेक्षा कुछ अधिक परिपक्व थी? जब तक शिक्षित-समाज में उच्च विचारों के प्रकट करने में किसी भाषा का उपयोग न किया जायगा, तब तक उसका विकास कैसे होगा? आजकल शिक्षित-समाज अँगरेज़ी में ही गिटपिट किया करता है। यह अँगरेज़ी माध्यम का प्रभाव है। जैसे-जैसे शिक्षित-समाज का लक्ष्य मातृभाषा की ओर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे गूढ़ विषयों पर व्याख्यान, लेख, पुस्तकें आदि भी बढ़ रही हैं। यह भी माना कि भिन्न-भिन्न विषयों पर उत्तम पुस्तकों का अभाव है। परंतु जब तक किसी वस्तु की खपत बाज़ार में नहीं, तब तक व्यापारी क्या बेवक़ूफ़ है जो माल लाकर सड़ावे? माध्यम के परिवर्तन से जब पुस्तकों की माँग होगी, तब उनकी पूर्ति भी, एकदम तो नहीं, पर धीरे-धीरे अवश्य होगी। यह भी हम स्वीकार करते हैं कि हिंदी में पारिभाषिक शब्दों की कमी अवश्य है। विशेष कर वैज्ञानिक विषयों में। यही कठिनाई अँगरेज़ी को भी किसी समय पर हुई थी। पर उसने लेटिन, ग्रीक भाषाओं से शब्द लिए और वे अब तक प्रचलित हैं। वैज्ञानिक शब्द एकदेशीय नहीं हैं, और न वे किसी की बपौती हैं।

योरप की प्रायः सब भाषाओं में वैज्ञानिक शब्द एक ही हैं। यहाँ की भाषाएँ भी उनको ग्रहण कर लेंगी, और ऐसा करने से उनकी जाति न चली जायगी।

(२) अँगरेज़ी-भाषा का प्रचार बहुत होने के कारण, उसमें पुस्तकें लिखने से लाभ अधिक होता है। इसलिये उत्तम-से-उत्तम लेखक उस भाषा में पुस्तकें लिखते हैं। देशी भाषाओं में लिखी पुस्तकें न इतनी बिक सकतीं, न उनमें लिखनेवालों को उचित पुरस्कार ही मिल सकता, और न देशी भाषाओं के जाननेवालों में ऐसे विद्वान् ही हैं, जो इँगलैंड या अमेरिका के ग्रंथ लिखनेवालों से टक्कर ले सकें। इँगलैंड और अमेरिका सभ्यता के केंद्र हैं, तथा ज्ञान प्राप्त होते ही अथवा नया आविष्कार होते ही, अथवा नई शैली का प्रचार होते ही वहाँ के लोगों को उसकी सूचना तुरंत मिल जाती है। वे परमोत्तम ग्रंथ लिख सकते हैं नई-से-नई शिक्षण-पद्धति, नए-से-नए ज्ञान अथवा आविष्कारों का ब्योरा दे सकते हैं।

परदेशी भाषा की पुस्तकों में पुराना ज्ञान रहेगा, और उस भाषा की पुस्तकें पढ़नेवाले जीवन-दौड़ में पिछड़ जायँगे—इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि अँगरेज़ी-भाषा का पठन अनिवार्य करने का उद्देश्य ही यही है कि उस भाषा के ग्रंथ प्रत्येक विद्यार्थी पढ़ सके। देशी भाषा माध्यम बनाने का अर्थ यह तो नहीं है कि बालक अँगरेज़ी की पुस्तकें न पढ़ें। फिर नए-से-नए ज्ञान या आविष्कार का ज्ञान कॉलेजों में तुरंत पहुँचना चाहिए। स्कूलों में तो कई साल के उपरांत अब भी पहुँचता है, और फिर भी पहुँचेगा। कॉलेजों में माध्यम बदलने का प्रश्न तो अभी उठा ही नहीं। अब रहा शिक्षण-पद्धतियों का उपयोग, सो शिक्षक पढ़ाते समय मज़े में कर सकते हैं। और, समयोचित ग्रंथों का अनुवाद भी तुरंत करा दिया जा सकता है।

अँगरेज़ी-भाषा में भाव-व्यंजकता अधिक है, अर्थात् गूढ़-से-गूढ़ विचार बारीकी से प्रकट किए जा सकते हैं, और सो भी बहुत थोड़े शब्दों में। उदाहरण के लिये भूगोल में दो शब्द हैं, जिनका प्रयोग बहुधा होता है। वे हैं—वैदर (अस्थिर मौसम) और क्लाइमेट (बारहों महीने की वर्षा, उष्णता, सर्दी, तापमान आदि का विचारकर जो कुछ स्थिर रूप से माना जाय)। इन दोनों भावों को प्रकट करने के लिये हिंदी में एक शब्द है आब-हवा। मौसम या ऋतु के कुछ और माने हैं। दिन-प्रतिदिन जो कुछ परिवर्तन होता है, उसे प्रकट करने के लिये शब्द नहीं। इसी प्रकार साइंस में हीट टेंपरेचर, हीट यूनिट आदि शब्द हैं, जिन्हें बारीकी से हिंदी में बताना कठिन है। इसमें कोई शक नहीं कि शब्द गढ़ लिए जा रहे हैं; परंतु जब तक सुनने या बाँचनेवाले के मन में वही भाव न उत्पन्न हो, जो कहनेवाले या लिखनेवाले के मन में है, तो दुबधा अथवा भ्रम उत्पन्न होने लगता है। बहुधा देखने में आया है कि जो बात अँगरेज़ी की १०० पन्नों में कही गई है, वही बात पूरी तौर से यदि कही जाय, तो हिंदी की उसी आकार और समान टाइप की पुस्तक में १२५ से लेकर १५० पन्नों में कही जायगी, और फिर भी कदाचित् उतनी स्पष्टता-पूर्वक नहीं कही जाती है। कारण केवल यही है कि जो भाव अँगरेज़ी में केवल एक शब्द या पद में कहा जा सकता है, उसे कहने के लिये हिंदी या अन्य देशी भाषा में शब्द-समूह, पद या बड़े वाक्य की ज़रूरत होती है। इन सब आक्षेपों के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि भाषा की भाव-व्यंजकता का लाभ कौन उठा सकता है? जो उसका आचार्य है अथवा वह, जो टूटी-फूटी भाषा में ही अपने विचार प्रकट कर सकता है। स्कूलों के विद्यार्थियों को अँगरेज़ी का ज्ञान इतना कम रहता है कि वे उक्त गुणों का लाभ बहुत कम उठा सकते हैं। ऊपर यह कह आए हैं कि पारिभाषिक शब्द किसी की बपौती नहीं; उनका उपयोग देशी भाषाओं में भी हो सकता है।

(३) अंतिम कारण यह बतलाया जाता है कि यदि स्कूलों में अँगरेज़ी माध्यम कर दिया जायगा, तो विद्यार्थियों को कॉलेजों में अँगरेज़ी माध्यम द्वारा अभ्यास करने में कठिनाई होगी, उनको अँगरेज़ी का ज्ञान कम रहेगा, वे प्रोफ़ेसरों के लेक्चर कम समझ सकेंगे, और फिर यदि कोई विद्यार्थी विलायत जाय, तो और भी अधिक तकलीफ़ें उसको होंगी। इन आक्षेपों के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि माध्यम कभी-न-कभी बदलना ही पड़ता है। प्रायः सब प्रदेशों में मिडिल-कक्षा में अथवा उसके उपरांत ही बदलता है। इस समय बालकों का अँगरेज़ी का ज्ञान बहुत ही न्यून रहता है। वे सीधे-सादे वाक्य अँगरेज़ी में शुद्ध नहीं कह या लिख सकते। इस समय माध्यम बदलना अधिक हानिकारक है, अथवा स्कूल लीविंग या मैट्रिक्युलेशन-परीक्षा के उपरांत, जब विद्यार्थियों को समझ भी अधिक आ जाती है, और अँगरेज़ी का ज्ञान भी उन्हें अधिक हो जाता है। फिर सभी विद्यार्थी मैट्रिक्युलेशन अथवा स्कूल लीविंग-परीक्षा पास करने के उपरांत कॉलेजों में नहीं जाते। कम-से-कम दो-तिहाई से अधिक अन्य व्यवसाय में लग जाते हैं। थोड़ों के लिये सबको सज़ा देना कहाँ की अक़्लमंदी है? जिनको कॉलेज में जाना हो, वे भले ही अँगरेज़ी में विशेष परिश्रम करें; परंतु बाक़ी सबको क्यों दलेल दी जाय?

यह भी कुछ आवश्यक नहीं कि देशी भाषा का माध्यम होने से अँगरेज़ी के ज्ञान में कमी हो। मातृभाषा माध्यम होने से गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान थोड़े समय में और अधिक हो सकेगा। समय की बचत जो इस प्रकार हो जायगी, वह अँगरेज़ी के अधिक अभ्यास में व्यतीत हो सकती है।

अब रहा विलायत-गामियों का प्रश्न। वहाँ के विद्यालयों में केवल हिंदुस्तान से ही विद्यार्थी नहीं जाते, वरन् चीन, जापान, स्याम, मिसर और योरप के अन्य देशों से भी पहुँचते हैं। वे अपने देश में मातृभाषा द्वारा पढ़े थे। अँगरेज़ी को द्वितीय भाषा की तरह सीखकर जाते हैं। उन सबका काम वहाँ चल जाता है। बेचारे हिंदुस्तानियों ने क्या अपराध किया है कि उन्हें अँगरेज़ी माध्यम द्वारा ही शिक्षा मिले, तभी योग्य हों? फिर तमाशा यह कि यही हिंदुस्तानी विद्यार्थी इस देश में फ़्रेंच या जर्मन बिना सीखे इँगलिस्तान चले जाते हैं; वहाँ थोड़ी फ़्रेंच अथवा जर्मन सीख फ़्रांस या जर्मनी के कॉलेजों में जा घुसते हैं, और अपना काम भी चला लेते हैं। मेरे पास फ़्रांस, जर्मनी, पोलैंड, मिसर आदि देशों को गए हुए विद्यार्थियों की (जो ब्रिटिश-महाविद्यालयों में शिक्षा पा चुके या पा रहे हैं) अँगरेज़ी के नमूने रक्खे हुए हैं, जिन्हें देखने से साफ़ मालूम होता है कि मामूली हिंदुस्तानी विद्यार्थी, जो विलायत जाता है, कहीं बढ़कर अँगरेज़ी लिख सकता है।

सार यह कि यदि अँगरेज़ी की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय, और इसकी चिंता कर ली जाय कि उस भाषा में छपी हुई सब विषयों की पुस्तकों का अवलोकन करने-योग्य विद्यार्थी हो जायँ, तो मातृभाषा के माध्यम से ही स्कूलों में अधिक लाभ हो सकता है । कॉलेजों में अभी माध्यम बदलने की चेष्टा करना उचित न होगा। कुछ समय उपरांत (ईश्वर करे वह समय भी शीघ्र आवे) कालेजों में भी शिक्षा का माध्यम बदलना होगा। अभी तक स्कूलों में यह हाल है कि माध्यमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह हो गया है कि अँगरेज़ी-भर विद्यार्थी सीख लें। अन्य विषयों का ज्ञान बहुत कम होने पाता है । अँगरेज़ी के पीछे तन, मन, धन, सबका हरण हो जाता है। फिर भी टूटी-फूटी अँगरेज़ी सीख पाते हैं, नैतिक विकास पूरा नहीं होता, मानसिक विकास रुक जाता है, पढ़ते-पढ़ते शरीर का ह्रास हो जाता है, आँखें कमज़ोर हो जाती हैं, पाचन-शक्ति क्षीण, हाथ पैर बल-हीन। मनुष्य न दीन का रहता है न दुनिया का। इन कारणों से शिक्षा-विशारदों का मन इस ओर झुक रहा है कि शिक्षा का माध्यम बदलना चाहिए।

आगे के लेख में यह बतलाया जायगा कि मध्य-प्रदेश में शिक्षा का माध्यम किस प्रकार बदला गया, और परिवर्तन के समय क्या-क्या अनुभव प्राप्त हुए।

लज्जाशंकर झा

विद्यापति की कविता पर एक समालोचनात्मक दृष्टिपात

प्राक्कथन

मैथिली भाषा के लिये विद्यापति ठाकुर की पदावली एक अनमोल रत्न है । विद्यापति ने अपनी अनुपम कविता तथा अन्यान्य रचनाओं से मैथिली भाषा को जिस प्रकार विभूषित किया है, वह किसी भी साक्षर मैथिल से छिपा नहीं । जिन्हें परमात्मा ने काव्य के मर्मों को समझने की बुद्धि दी है, वे विद्यापति की कविता में अपूर्व रसास्वादन करते हैं, उसमें अद्भुत कवित्व-शक्ति का परिचय पाकर चमत्कृत होते हैं । जो निरक्षर हैं, जिन्हें परमात्मा ने ज्ञानालोक से वंचित रक्खा है, वे मंदिरों, तीर्थस्थानों तथा शुभ उपलक्ष्यों में विद्यापति की पदावली को गाकर आनंद का उपभोग करते हैं । सारांश यह कि मिथिला में विद्यापति की कविता प्रत्येक मनुष्य के लिये—चाहे वह साक्षर हो चाहे निरक्षर—आनंद की वस्तु है, आदर की तो है ही । हाँ, खेद का विषय है कि अभी तक भारतवर्ष के अन्य हिंदी-भाषा-प्रधान प्रांतों में ठाकुरजी की पदावली का प्रचार नहीं हुआ है । भारत में इनकी कविता का यथोचित सम्मान अभी तक दो ही प्रांतों में हुआ है, एक मिथिला में, दूसरा बंगाल में । फिर मैथिली भाषा हिंदी का ही एक अंग है, बँगला का नहीं । अस्तु ।

गुण-विवेचन

विद्यापति की कवित्व-शक्ति ईश्वरप्रदत्त थी । चेष्टा करने से कोई तुकड़ भले ही हो जा सकता है, पर कवि नहीं । कवि के हृदय में एक ऐसी विलक्षण शक्ति निवास करती है, जो लाख चेष्टा करने पर भी दूसरे के यहाँ नहीं जाती । इसी अद्भुत शक्ति की अनुकंपा से कवि कविता करता है, इसी के प्रसाद से वह जगत् में अमृत-वर्षा करता है, जिससे सभी का पिपासित हृदय आप्यायित होता है । विद्यापति की यह शक्ति बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी । इसका प्रमाण उनकी कविताओं से मिलता है । कालिदास की उपमा अनुपमेय है ।

(१) उपमा

उस तरह की उपमाएँ साहित्य-क्षेत्र में और नहीं पाई जातीं । कहा भी है—"उपमा कालिदासस्य" । पर कालिदास के बाद यदि किसी ने उपमा का चमत्कार दिखलाया है, तो विद्यापति ने ही । उनकी उपमाएँ इतनी मर्मस्पर्शी होती हैं, उनमें सौंदर्य की मात्रा इतनी अधिक है, वास्तविकता की ऐसी गाढ़ी छाप है कि पढ़ते ही बनता है । यदि विद्यापति के काव्य में सौंदर्य का विकास देखना हो, तो उनकी उपमाओं की ओर ध्यान दीजिए ।

अपनी नायिका श्रीराधिकाजी के रूप-वर्णन में कवि ने जिस विलक्षण शक्ति का परिचय दिया है, उनके अंग-प्रत्यंग के सौंदर्य-निदर्शन में जो चातुर्य प्रदर्शित किया है, वह अकथनीय है । यहाँ, कुछ उदाहरणों से उनके इस कला-कौशल तथा वर्णन चातुरी का परिचय दिया जाता है । सुनिए—

राधिका के नेत्रद्वय का वर्णन करते हुए विद्यापति ने लिखा है—

नीरे निरंजन लोचन राता ;
सिंदूर मंडित जनु पंकज-पाता ।

अर्थात्—'कज्जल-सुशोभित सलिलार्द्र नेत्र कुछ रक्त-वर्ण हो गए, मानो पद्म दल पर सिंदूर का लेप पड़ गया हो।" फिर भी—

चंचल लोचन बंक नेहारनि, अंजन शोभन ताय ;
जनु इंदीवर पवनें ठेलल, अलि भरें उलटाय ।

अर्थात्—"कज्जल-युक्त नेत्र के तिरछे कटाक्ष से कृष्णतारका एक ओर हट गई है—मानो मधुमत्त भ्रमर पवन से ठेले जाने के बाद इंदीवर से अलग हो एक ओर हो गया है।"

लोचन जनु थिर भृंग अकार ;
मधु मातल किए उड़इ न पार ।

अर्थात्—"राधिका के नेत्र की तारका स्थिर है। वह हिल डुल नहीं सकती, जिस प्रकार मधु में विभोर हो भ्रमर निश्चल हो जाता है, ज़रा भी हिल नहीं सकता।"

ऐसी-ऐसी उपमाओं की संख्या नहीं है। आश्चर्य की बात तो यह है कि विद्यापति ने प्रत्येक अंग का वर्णन भिन्न-भिन्न स्थलों में भिन्न-भिन्न रूप से किया है। इससे सिद्ध होता है कि विद्यापति का ज्ञान सीमाबद्ध न था। उसका विस्तार बढ़ा-चढ़ा था, उसकी परिधि विस्तृत थी। नीचे के कुछ पदों को देखिए—

(२)
रूप-वर्णन

जलधर, चामर, तिमिर जिनि कुंतल, अलका, भृंग, शैवाले ;
भौंह मदन-धनु, भ्रमर, भुजंगिनि जिनि आध निधुवर भाले ।
नलिनि, चकोर, सफरि, रत्र मधुकर, मृगि, खंजन जिनि आँखि ;
नासा तिल फुल, गरुड़-चंचु जिनि गिधिनि श्रवण विशेखी ।
कनक-मुकुर, शशि, कमल जिनिय मुख जिनि बिंब अधर पवारे ;
दशन मुकुता-पाँति, कुंद करग बीज जिनि कंबु कंठ अकारे ।
उरुयुग कदलि, करिवर-कर जिनि थल पंकज जिनि थल पानी ;
नख दाड़िम-बीज, इंदु रतन जिनि पिक अमिय जिनि बानी ।

यह "राधा रूप अपारा" का कैसा मनोहर, सुंदर तथा हृदय-स्पर्शी वर्णन है? यह वर्णन क्या, रूप का जीता-जागता चित्र है—उसका फ़ोटो है। फिर भी किसी दूसरे स्थल पर नायक (माधव) ने कैसा अच्छा वर्णन किया है—

"ससनै परस खसु अंबर रे देखल धनि देह ;
नव जलधर तरे संचर रे जनि बीजुरि रेह ।
आज देखलि धनि जाइत रे मोहि उपजल रंग ;
कनक-लता जनि संचर के महि निरअवलंबे ।

कहिए, कैसा अच्छा वर्णन है! भावों में कितनी सूक्ष्मता है! कितना माधुर्य है!! पदों में कैसा संगीत है!!!

(३)
शब्द-योजना

पर कहीं-कहीं सिर्फ़ दो पंक्तियों में कवि ने दस पंक्तियों का काम निकाल लिया है। जैसे—

कि आरे नव जौवन अभिरामा ;
जत देखल तत कहहि न पारिअ छओ अनुपम एक ठामा ।
हरिन इंदु अरविंद करिणि हिम पिक बुझ अनुमानी ;
नयन बयन परिमल गति तनु रुचि ओ अति सुललित बानी ।

इन दोनों पंक्तियों में कवि ने छः चीज़ों का कैसा सुंदर वर्णन किया है। कवि का कहना है—"क्या कहूँ? जितना देखा, उतना क्या कह सकता हूँ? छः चीज़ें मैंने एक ही साथ देखीं।" अब पढ़िए निशान किया हुआ पद्य। पहली पंक्ति के प्रत्येक शब्द को क्रमशः दूसरी पंक्ति के शब्द के साथ पढ़िए। देखिए, कैसा अर्थ निकलता है! हाँ, कवि ने क्या देखा—

(१) हरिन (तुल्य) नयन ; (२) इंदु बयन ; (३) अरविंद परिमल ; (४) करिणिगति ; (५) हिम तनु-रुचि और (६) पिक (सम) सुललित बानी ।

इन दो पंक्तियों में विद्यापति ने जिन भावों का ख़ासा चित्र सुंदरता से खींचा है, वह साधारण कवि शायद बीस लाइन में खींच सकेगा। इतने कम शब्दों में, केवल दो पंक्तियों में, छः अंगों का वर्णन करना—सो भी सुगमता तथा सुंदरता से—कोई साधारण प्रतिभा का काम नहीं है। यहाँ पर कवि की विलक्षण शब्द-योजना दर्शनीय है। पद्यों को निबद्ध करने में उन्होंने कितनी सावधानता से काम लिया है! तनिक भी भूल नहीं होने पाई। ठीक एक शब्द के नीचे वही शब्द है, जिसका संबंध उस (पहले) शब्द से है। इन दो पंक्तियों को हम विद्यापति की शब्द-योजना का उदाहरण मान सकते हैं।

यहाँ तक हम लोगों ने देखा कि विद्यापति ठाकुर की

---

१. श्वसन=पवन । २. स्पर्श=छूना । ३. बिना अवलंबन के ।

कविता में अपूर्व उपमा, अद्भुत वर्णन-शक्ति, आश्चर्य-जनक शब्द-चित्र और विलक्षण शब्द-योजना आदि गुण प्रचुर रूप में विद्यमान हैं। इन सब गुणों के कुछ उदाहरण भी हमने देख लिए, अब उनके और गुणों पर विचार करना उचित है।

कवि के प्रासादिक गुणों में वाक्य-सौष्ठव का स्थान बहुत ऊँचा है। कविता का प्राण है भाव और भाव का आधार है भाषा। बिना भाषा के भाव व्यक्त नहीं हो सकता। अतएव कवि को भाषा पर अच्छा अधिकार होना चाहिए। अधिकार के साथ-साथ भिन्न-भिन्न रचनाओं की जानकारी भी होनी चाहिए, जिससे स्वच्छंद और अबाध सौंदर्य की सृष्टि हो सके। ऐसी सौंदर्य सृष्टि में—जो काव्य का एक कर्तव्य है, और उद्देश्य भी—वाक्य-सौष्ठव का हाथ बहुत है। विद्यापति ने अपने सुंदर, सुगम तथा ललित पद्यों में इस गुण का अच्छा परिचय दिया है। एक उदाहरण लीजिए—

सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज
की सरसिज बिनु सूर।
जौबन बिनु तन तनु बिनु जौबन
की जौबन पिय दूरे।

× × ×

मंद पवन बह पिक कुहु-कुहु कह
सुनि बिरहिनि कइसे जीवइ।

अहा! देखिए, कैसा विशद भाव है! कैसे ललित पद हैं!! कितना श्रुति-मधुर!! अनुप्रास की कैसी ध्वनि है!!! मैथिल-कोकिल की ऐसी सुरीली तान सुनकर किसका हृदय आनंद से न नाच उठेगा?

(४) अनुप्रास

उल्लिखित उदाहरण के पाठ करने से ज्ञात होगा कि विद्यापति की कविता में अनुप्रास के साथ-साथ मधुरता कूट-कूटकर भरी है। कहीं-कहीं तो पद्य इतने श्रुति-मधुर हैं कि यदि उनमें भाव न रहता, तो भी केवल उनकी अंतरंग ध्वनि के लिये रसिक जन उन्हें सौ-सौ बार पढ़ते। ऐसे पद्य विद्यापति की पदावली में एक नहीं, हज़ारों हैं। इस स्थल पर कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

मधु ऋतु मधुकर पाँति; मधुर कुसुम मधुमाति।
मधुर वृंदावन माझ; मधुर-मधुर रस-राज।
मधुर युवतीगण संग; मधुर-मधुर करताल।
मधुर नटन गति भंग; मधुर नटनी नटरंग।
मधुर-मधुर रस गान; मधुर विद्यापति भान।

अनुप्रास के अतिरिक्त इन पद्यों में कैसी अनुपम मधुरिमा है! छंदों के मंद-मंद तरंगों का कैसा मादक उल्लास है!!

निसि निसिअर भम भीम भुअंगम
जलधर बिजुरि उजोर।
तरुन तिमिर निसि तइअओ चललि जासि
बड़ सखि साहस तोर।
गमने गमाओलि गरिमा अगमने जिवन-संदेह;
दिने-दिने तनु अवसन भेल हिम कमलिनि सम नेह।

(५) रस-प्राचुर्य

बदन चाँद तोर नयन चकोर मोर
रूप अमिय रस पीवे।
अधर मधुरि फूल पिया मधुकर तूल
बिनु मधु कत खन जीवे।

इन पंक्तियों में फिर भी उपमा की भरमार है, रस की प्रचुरता तो है ही। और भी कुछ उदाहरण लीजिए—

नव वृंदावन, नवीन तरुगण,
नव-नव विकसित फूल।
नवीन बसंत नवीन मलयानिल
मातल नव अलिकुल।
विहरइ नवलकिशोर।
कालिंदी-पुलिन कुंज नव शोभन,
नव-नव प्रेम विभोर।
नवीन रसाल मुकुल मधुमातिया
नव कोकिल कुल गाय।

(६) ऋतुओं का ज्ञान और वर्णन

उदाहरण तो यों सहस्रों दिए जा सकते हैं, पर इतने ही पर्याप्त होंगे। इन सब पद्यों में जो लालित्य, जो सुंदरता, जो उल्लास और भाव-तरंग विद्यमान हैं, वे कवि की असाधारण प्रतिभा का परिचय देते हैं।

उल्लिखित उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि विद्यापति को ऋतुओं का अति सूक्ष्म ज्ञान था। नहीं तो वह भिन्न-भिन्न ऋतुओं का शुद्ध, मनोहर तथा वास्तविक वर्णन कैसे कर सकते थे?

वसंत-वर्णन तो हमने देख लिया, मधुमास की मधुरता तो हमने चख ली, अब और किसी ऋतु की ओर दृष्टिपात करना समुचित है।

इस संबंध में यह लिखना आवश्यक जान पड़ता है कि ऋतु-वर्णन एक गौण पदार्थ है, मुख्य वस्तु तो विरह-वेदना को प्रकाशित करना है। जब मनुष्य का हृदय किसी व्यथा से दब जाता है, तो उसे किसी भी चीज़ में सुंदरता नहीं दिखाई देती। मधुमय वसंत भी अच्छा नहीं लगता। यही कारण है कि विरह-वेदना से पीड़ित राधिका कहती हैं—

हिम हिमकर तापे तपायल,
भै भेल काल वसंत।
कांत काक मुखे नहिं सवादइ,
किए करु मदन दुरंत।

एक वह भी वसंत होता है, जो स्त्रियों के लिये सर्व-प्रिय वस्तु है और एक यह भी वसंत है, जो राधिकाजी के लिये 'काल' के समान है! तो क्या वसंत कई प्रकार का होता है? नहीं, मनुष्य का हृदय कई प्रकार का होता है, उसकी चित्तावस्था बदलती रहती है, और अवस्थानुसार ही मनुष्य का सौंदर्य-ज्ञान होता है। कवि की चातुरी तभी है, जब वह नर-नारियों के हृदय-मंदिर में प्रवेश कर उनके चित्त के अनुकूल वर्णन करे। विद्यापति ने राधिका की विरह-वेदना को प्रकट करने में असाधारण सफलता प्राप्त की है। अब और इससे बढ़कर कोई क्या कह सकता है कि वसंत 'काल' हो गया और 'हिमकर' का 'हिम' ताप से तपा रहा है। इस प्रत्यक्ष विरोधाभास में कवि ने कवित्व-शक्ति का तो परिचय दिया ही है, साथ साथ राधिकाजी की आंतरिक अवस्था का—उनके विरह-पीड़ित हृदय का—भी अपूर्व दिग्दर्शन कराया है। अब ऋतु-वर्णन के साथ ही राधिका की व्याकुल चित्तावस्था पर ध्यान दीजिए—

गगने अब घन मेह दारुण सघन दामिनिझलकई;
कुलिश-पातन शब्द झन-झन पवन खरतर बलगई।
सजनि आज दुरदिन भेल;
कंत हमरि नितांत अगुसरि संकेत कुंजहि गेल।

यह तो क्षणिक विरह-यातना है। अब क्रमशः गंभीर यातना की ओर बढ़िए—

झर-झर बरिस सघन जलधार;
दश दिश सबहुँ भेल अँधियार।
ए सखि किए करब परकार;
अब जनु बारए हरि अभिसार।
झलकइ दामिनि दहन समान;
झन-झन शब्द कुलिश झन-झान।
× × ×
आएल पाउस निविड अँधार;
सघन नीर बरसए जलधार।
घन हन देखि अ-बिघटित रंग;
पथ चलिते पथिकहु मन भंग।
कओने परि आओत बालमु हमार;
आगुन चल अभिसारिनि पार।

यह विरह-वेदना की परा काष्ठा है। जब तक सहने की शक्ति रहती है, तब तक तो सहनेवाला सह लेता है, पर जब वेदना एकदम असह्य हो जाती है, तब हृदय रो उठता है, प्राण व्याकुल होकर शरीर से भाग जाना चाहते हैं। विद्यापति ने इस भाव का कैसा अच्छा दिग्दर्शन कराया है। देखिए, कैसा करुण क्रंदन है, कैसा शोकमय विलाप है—

कत-कत सखि मोहि विरहे भै गेल तीता;
गरल भखि मोजे मरब रचि देह न चीता।
सुरसरि-तीरे सरीर तेजब साधब मनक सिधि;
दुलह पहु मोर सुलह होयब अनुकूल होयब विधि।
× × ×
नारि परखि नेह बडाबय सुनह पुरुख थोरा।

अंतिम पंक्ति में कैसा उलाहना है! पुरुष-जाति के प्रेम पर कैसा व्यंग्य है!

और देखिए—

गगन गरज घन घोर; हे सखि, कखन आओत पहु मोर;
उगलान्ह पाँचो बान; हे सखि, अब न बचत मोर प्रान।

वास्तव में विरह-व्यथा के दिखाने में कवि ने कमाल किया है। नीचे दिए हुए पद्य में जो वेदना छिपी हुई है, वह हृदय को हिला देती है।

हे सखि हमर दुखक नहिं ओर रे;
ई भर बादर माह-भादर सून मंदिर मोर रे।
झंपि घन गरजंति सतति भुवन भर बरसंतिया;
कंत पाहुन काम दारुण सघने खर शर हंतिया।
कुलिश कत शत पात मुदित मयूर नाचत मातिया;
मत्त दादुरि डाके डाहुकि फाटि जाओत छातिया।

इस ललित पद्य में विरह-व्यथा के मर्म-भेदी वर्णन के

साथ-साथ पावस-वर्णन भी है। फिर भी एक अपूर्व संगीत-ध्वनि से भाव पूर्ण हो जाता है। यदि विरह की असह्य वेदना से राधिका की "छाती फटी जाती" है, तो उसके वर्णन के पढ़नेवालों की छाती दहल तो ज़रूर उठती होगी।

संगीत-ज्ञान

विद्यापति का संगीत-ज्ञान भी सराहनीय है। उनके कई पदों से मालूम होता है, कि उन्हें इस विद्या की पूरी अभिज्ञता थी। ऊपर दिए हुए पदों से इस बात का पता चलेगा, और नीचे के पदों से इसकी परिपुष्टि होगी—

बाजत द्रिगि-द्रिगि धोद्रिम द्रिमिया ;
नटत कलावती श्याम संगे माति करे करु ताल प्रबंधकधनिया।
झमझम डंफ डिमिमि डिमि मादल रुणु झुनु मंजीर बोल ;
किंकिणि रणरणि बलया कनकनि निधुवने रास तुमुर उतरोल।

ऋतुपति राति रसिक रसराज ;
रसमय रास रभस रस साज।
रसवति रमणी रतन धनि राहि ;
रास-रसिक सह रस अवगाहि।
रंगिनिगण सब रंगहि नटई ;
रणरणि कंकण किंकिणि रटई।
रहि-रहि रास रचय रसवंत ;
रति-रत रागिनि रमन बसंत।

इन दोनों पदों से साफ़ झलकता है कि विद्यापति को संगीत-विद्या का ही नहीं, नृत्य-कला का भी पूरा ज्ञान था। नहीं तो वह रासलीला का ऐसा सुंदर और यथार्थ वर्णन नहीं कर सकते थे। यहाँ उद्धृत दूसरे पद में अनुप्रास का अच्छा समावेश है। संगीत-ज्ञान के कारण ही इँगलैंड के प्रख्यात कवि मिल्टन ने अपनी अमर रचना (पैराडाइज़ लॉस्ट) में अपूर्व सरसता की परा काष्ठा दिखाई है; और इसी कारण विद्यापति की कविता में इतनी मधुरता और इतनी रस की प्रचुरता है। पूर्वोक्त कारण से ही आजकल के सर्वश्रेष्ठ कवि श्रीमान् रवींद्रनाथ ठाकुर की कविताएँ इतनी श्रुति-मधुर होती हैं। कवि के लिये संगीत-शास्त्र की अभिज्ञता (यदि वह अपनी रचना में एक स्वाभाविक सौंदर्य लाना चाहता है) परम आवश्यक है। छंद की गति कविता का एक मुख्य अंग है, और वह अधिकतर कवि के संगीत-ज्ञान पर निर्भर करती है। मतलब यह कि विद्यापति को संगीत-शास्त्र का पूरा ज्ञान था, और इसी-लिये उनकी रचना का सौंदर्य अनुपमेय है। ऐसे बहुत ही कम कवि हैं, जिन्हें संगीत का पूरा ज्ञान है। एक तो विद्यापति की कविता में स्वाभाविक सौंदर्य है—उसके रचना-कौशल और रस-प्राचुर्य आदि गुणों के कारण तो एक प्रकार का सौंदर्य है—उसके सिवा दूसरा सौंदर्य उसके काव्य में छंद की निराली गति (Rhythm) से उत्पन्न होता है। इस गति का उद्भव कवि के संगीत-ज्ञान से हुआ है। अतः यह कहना असंगत न होगा कि विद्यापति की कविता में उनके संगीत-ज्ञान का ख़ूब ही प्रभाव है।

यहाँ तक इस लेख में हम लोगों ने विद्यापति के गुणों पर ही विचार किया है। अनेकानेक उदाहरणों से सिद्ध करने की चेष्टा की है कि विद्यापति एक श्रेष्ठ कवि थे। उनकी कवित्व-शक्ति की अद्भुत छटा हमारी आँखों में चकाचौंध पैदा कर देती है। पर कोई भी कवि दोषों से पूर्ण रहित नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है, कवि भी तो मनुष्य ही है। और, मनुष्यों से दोष होना स्वाभाविक ही नहीं, अनिवार्य भी है। अतः अब उनके दोषों पर विचार करना युक्ति-संगत समझ पड़ता है। पर ऐसा करने के पहले यहाँ दो-एक पद और भी दिए जाते हैं। इन विरहात्मक पदों से विद्यापति की श्रेष्ठता की और भी पुष्टि होगी—

अंकुर तपन ताप जदि जारब कि करब वारिद मेहे ;
इ नव जौवन विरह गमाओब कि करब से पिया नेहे।
हरि हरि के इह दैव दुराशा ;
सिंधु-निकटे जदि कंठ शुखायब के दूर करब पियासा ;
चंदन तरु जब सौरभ छोड़ब शशिधर बरिखब आगी ,
चिंतामणि जब निज गुण छोड़ब कि मोर करम अभागी।

*　*　*

जलउ जलधि जल मंदा ; जहां बसे दारुण चंदा।
बचन नहिं के परनाणे ; समय न सह पचबाणे।
कामिनी पिया विरहनी ; केवल रहिलि कहिनी।
अवधि समापित भेला ; कइसे हरि बचन चुकेला।

*　*　*

कुसुम रचल सेज मलयज पेयसि सुमुखि समाजे ;
कत मधु मास विलासे रमाओल अवपर कहइ तें लाजे।
सखि हे दिन जनु काहु अवगाहे ;
सुरतरु तर सुखे जनम गमाओल धुथुरा तर निरबाहे।

*　*　*

ये विद्यापति के काव्य-समुद्र के चुने हुए नहीं, विकीर्ण रत्न हैं। इन रत्नों की अमूल्यता उनसे छिपी नहीं रहेगी, जो काव्य-मर्मज्ञ हैं।

दोष-निरूपण

(१) वीर-रस का अभाव

आप विद्यापति की पदावली पढ़िए—कहीं शृंगार-रस का आस्वादन होगा, कहीं संगीत-ध्वनि से हृदय नाच उठेगा, कहीं नायिका की विरह-वेदना से मन पिघल जायगा। पर यदि इन सब भावों से ऊब जाने पर आप ऐसी कविता की खोज कीजिए, जिससे आपकी भुजाएँ फड़क उठें, आपकी धमनियों में तीव्रता से रक्त प्रवाहित होने लगे, तो आपको निराश ही होना पड़ेगा। विद्यापति की कविता में वीर-रस का सर्वथा अभाव है। ऐसा मालूम होता है कि कवि ने इस ओर कभी ध्यान नहीं दिया। और यदि एक आध बार दिया भी, तो उसे सफलता नहीं प्राप्त हुई। नीचे के एक उदाहरण से ज्ञात होगा कि विद्यापति ने शब्दों की तोड़-मरोड़ से अपने पदों में वीरता का भाव लाने का प्रयास किया है; पर वह बेतरह निष्फल हुए हैं। हाँ, केवल शब्दों के उच्चारण-मात्र से यदि वीरता का भाव उत्पन्न होता हो, तो शायद इनके पदों में वीरता की कुछ मात्रा मानी जा सकती है। अब ज़रा इस कविता पर दृष्टिपात कीजिए—

दूर दुग्गम दमसि भंजेओ;
गाड़-गड़ गूढ़ेओ गंजेओ।
पातिसाह ससीम सीमा समर दरसेओ रे।
ढोल तरल निशान सद्दहि,
भेरि काहल संख नद्दहि;
तीनि भुअन निकेत केतकि सन भरिओ रे।
मेरु कनक-सुमेरु कंपिय, धरणि पूरिय, गगन झंपिय,
हाति, तुरय, पदाति पयभर कमन सहिओ रे।
तरलतर तरवारि रंगे, विज्जुदाम घटा तरंगे,
धीर घन संघात बारिस काल दरसेओ रे।
अंध कुअ कबंध लाइअ फेरवि फफ्फरिस गाइअ,
रुहिर मत्त परेत भूत बेताल बिछलिओ।

इस पद्य में यदि कहीं वीरता का भाव आता भी, तो शब्दों में; पर विद्यापति ने प्राकृत शब्दों के प्रयोग से उसको भी नष्ट कर दिया। हाँ, यह दोष अंशतः भाषा का भी है। मैथिली भाषा में स्वभावतः इतनी मधुरता है कि उसमें वीरता का समावेश होना टेढ़ी खीर है। पर यदि विद्यापति की कविता में केवल यही एक अभाव रहता, तो कोई बड़ी बात न थी। उसमें और भी कमी है।

कवि का ज्ञान परिमित न होना चाहिए। भाव और भाषा पर उसका पूरा अधिकार होना चाहिए। ऐसा न होने से उसकी कल्पना अबाध विचरण नहीं कर सकती; उसकी गति अवरुद्ध हो जायगी। इस दशा में—जब कल्पना की गति कुछ रुक-सी जाती है—भाव एक ही तरह के होने लगते हैं, और उनकी अभिव्यक्ति भी वैसी ही होने लगती है। इसे ही पुनरुक्ति-दोष कहते हैं। विद्यापति की कविता में यह दोष विद्यमान है। विस्तार-भय से यहाँ केवल कुछ ही उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर बन कोकिल पंचम गाव रे;
मलयानिल हिम-शिखर सिधारल पिया निज देश न आव रे।
(२) फुटल कुसुम सकल बन अंत; मिलल अब सखि समय वसंत।
कोकिल कुल कलरव विचार; पिया परदेश हम सहए न पार।
(३) दखिन-पवन विरह-वेदन निठुर कंत न आव।
(४) दखिन-पवन सउरभ उपभोगल पिअल अमियरस सारे।
(५) दखिन-पवन बहसे कइसे युवति सहकर कवल तिनहु अनंगे।
(६) दखिन-पवन घन आँग उभारए किसलय-कुसुम-परागे।
(७) दखिन-पवन बह मदन धनुषिगह तेजल सखी जन मेरी।
(८) सरस बसंत समय भल पाओलि दखिन पवन बह धीरे।

विद्यापति की पदावली में 'दखिन (अथवा दछिन) पवन' का अत्यधिक प्रयोग है। आश्चर्य की बात तो यह है कि आधुनिक समय के सर्वश्रेष्ठ कवि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर की कविता में भी 'दखिन हवा' का प्रयोग विद्यापति से किसी तरह कम नहीं। संभव है, रवींद्र बाबू पर विद्यापति का प्रभाव पड़ा हो। पर इस तरह की पुनरुक्ति कोई बड़ा दोष नहीं है। दोष तो है वहाँ, जहाँ एक ही भाव और एक ही भाषा दो जगह भिन्न-भिन्न पद्यों में व्यवहृत होती है। जैसे—

निसि निसिअर भम भीम भुअंगम
जलधर बिजुरि उजोर।

× × ×

निसि निसिअर भम भीम भुअंगम
गगन गरज घन मेह।
दुतर जुगन नारि सेअ हलि बहु तरि
रतना ? हर नेह।

पर यदि ठाकुरजी की कविता में इतना ही दोष रहता, तो कोई बड़ी बात न थी। उसमें एक भारी दोष है विशदता का अभाव। कवि की कीर्ति में यह एक धब्बा है। यदि यह दोष विद्यापति की कविता में न रहता, तो वह भी विश्व के श्रेष्ठ कवियों में गिने जा सकते थे।

कवि की प्रतिभा का उच्चतम विकास मानव-जाति की अज्ञात एवं अज्ञेय व्यथा की अभिव्यक्ति में ही है। जब कवि अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा हमारे अंतर्गत भावों को सुंदर पदों में प्रकट करता है, तो हमारे भीतर वैसा ही आनंदमय स्पंदन होता है, जैसा कि एक अबोध शिशु के सरल हृदय में, जब वह तुतलाते-तुतलाते अपनी इष्ट वस्तु को भाषा में व्यक्त कर देता है। वास्तव में मानव-जाति एक व्यथित श्रेणी है। न-जाने एक कौन ऐसी सुदूर क्षीण और मलिन ध्वनि है, जो सर्वदा हम लोगों को अपनी ओर खींच रही है। यह जगत् उसी अपूर्व ध्वनि की अभिव्यक्ति है। हमारे कर्म उसी अद्भुत स्वर के भिन्न-भिन्न आलाप हैं। सारा संसार उसी एक महान् स्वर से व्याप्त है। हम लोगों के अंतःप्रदेश में भी वह ध्वनि बज रही है; पर हम लोग सुनकर भी नहीं सुनते। बधिर की भाँति अपने ही में मस्त रहते हैं। कवि हमारी इस उदासीनता को दूर कर देता है; वह हमें उस अपूर्व संगीत को सुनने के योग्य बना देता है। अतएव उसकी कविता इस संसार में भूले को राह दिखाती है, और सभी के लिये पथ-प्रदर्शक का काम करती है। ऐसी ही कविता के पढ़ने से हृदय-तंत्री बज उठती है, और हम एक ऐसे अपूर्व कानन में विचरण करने लगते हैं, जहाँ कँटीले फूलों में भी अद्भुत सुगंध है। ऐसी कविता मनुष्य की उस दशा को प्रकट करती है, जब वह विषाद में भी आनंद का अनुभव करता है, जब उसके आँसू में भी एक छिपी हुई हास्य रेखा रहती है। यह एक विचित्र भाव है। इसे कोरे शब्दों में व्यक्त करना—सो भी सफलता के साथ—कोई साधारण बात नहीं। ऐसे ही भाव को विशद भाव (Sublimity) कहते हैं। विद्यापति की कविता में ऐसे भावों का सर्वथा अभाव है।

विषय की संकीर्णता

पहले तो यह ज्ञात होता है कि विद्यापति की कविता में विषय की संकीर्णता है। उन्होंने विशेष रूप से राधिका के प्रेम को ही अपने पदों में व्यक्त किया है। और विषयों पर उन्होंने विशेष कुछ नहीं लिखा। इस प्रेम की भी आलोचना करने पर स्पष्ट होगा कि इसमें भी विशदता का अभाव है। विद्यापति द्वारा वर्णित प्रेम प्रारंभिक प्रेम है, प्रौढ़ नहीं। उसमें सुख है, सौंदर्य है, संभोग है; पर स्थिरता नहीं। वह उषा की प्रथम किरण के समान चंचल है। यौवन का प्रथमोच्छ्वास होने के कारण उसमें अविमिश्र सुख, अव्याहत संगीत-ध्वनि और अद्भुत पद-लालित्य तो है, पर कहीं भी विशद वेदना का लेश नहीं, और न महान् गंभीरता का अटल स्थैर्य ही है।

महाकवि रवींद्रनाथ ने इस भाव को बहुत ही सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है। उनके कथनानुसार ऐसा प्रेम समीर-चंचल समुद्र के बाह्य रूप के समान है। उसमें चंचलता, गति की तीव्रता और विलासिता की मात्रा यथेष्ट है। पर समुद्र के अंतःप्रदेश में जो गंभीरता, विश्व-विस्मृत ध्यान-लीला और अटल निस्तब्धता पाई जाती है, उसमें से कोई भी विद्यापति की कविता में नहीं पाई जाती। विद्यापति रूप, रस, शृंगार आदि विषयों में इतने मग्न हो गए कि उन्हें अन्य गंभीर तत्त्वावधानों को मनन करने का अवसर ही नहीं मिला। यही कारण है कि उनकी कविता में भाव की विशदता और भाषा की प्रगल्भता नहीं पाई जाती। अपने जीवन के शेष अंश में उन्होंने इस बात को समझा था। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई; पर उस समय उसे दूर करने का समय ही न था। अंतिम काल के पदों से पश्चात्ताप टपकता है। उन्होंने लिखा है—

जावत जनम हम तुम (हरि) पद न सेवल;
युवति मति मजि मेलि।
अमृत तेजि कय हलाहल पीयल;
संपदे बिपदहि भेल।

× × ×

तातल सैकत वारिबिंदु-सम सुत-मित-रमणी-समाजे;
तोहे बिसरि मन ताहे संपल अब मझु हब कोन काजे।

इन पंक्तियों से साफ़ झलकता है कि अंतिम समय में कवि की प्रतिभा ने एक दूसरा ही पथ ग्रहण करने की ठानी थी। पर समयाभाव से वह कुछ कर नहीं सकी। अस्तु।

जैसा कि कई बार कहा गया है—दोष होना स्वाभाविक ही है। अतएव विद्यापति की कविता में यदि कुछ दोष हैं,

कुछ त्रुटियाँ हैं, तो उन सभी की पूर्ति उनके अनुपम गीति-काव्य में (Inlyrics) हो जाती है। उनके दोष चंद्रमा में कलंक की भाँति हैं, जिनसे उनकी कीर्ति छिपती नहीं, वरन् और भी स्पष्ट होती है।

लेख समाप्त करने के पहले हम एक पद और भी उद्धृत करते हैं। भाव के ख़याल से यह बड़े मार्के का है—

सखि कि पुछसि अनुभव मोय;
सेहो पिरिति अनुराग बखानइ तिले-तिले नूतुन होय।
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल;
× × ×
सेहो मधुर बोल श्रवणहि सुनल श्रुतिपथे परश न गेल।
× × ×

यह वह प्रेम है, जिसकी तृप्ति नहीं होती। यह मानुषिक अनुराग नहीं, ईश्वरीय भक्ति है। मानव-हृदय की उच्चतम आकांक्षा का कैसा अच्छा शब्द-चित्र है! असीम सौंदर्य का कैसा आनंदमय वर्णन है!! जो सीमा-रहित है, अनादि है, अनंत है, उसका सौंदर्य मास-दो मास देखने की वस्तु नहीं, वह सब काल के लिये है! सचमुच विद्यापति ने सिर्फ़ एक लाइन में (जनम ······ भेल) समस्त मनुष्य-जाति की आंतरिक अभिलाषा को अपूर्व सुंदरता से व्यक्त किया है। यदि हम एक बार क्यों, सौ बार भी माधव के मधुर नेत्रों को देखें तो क्या तृप्ति होगी? नहीं, कभी नहीं। जो अशेष है, असीम है, उसमें तृप्ति कैसी। आइए, एक बार फिर भी विद्यापति के साथ हम लोग कहें—

"जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।"

कृपानाथ मिश्र

गजेंद्र-मोक्ष *

(श्रीदुलारेलाल भार्गव-कृत दोहे पर कुंडलिया)

"ग्राह गहत गज-राज को गरज गहत ब्रजराज;
भजे गरीबनिवाज को बिरद बचावन काज।"
बिरद बचावन काज लाज-पत भक्त रखावन;
दीन-दुखी-दुख टारि ग्राह गुरु गर्व-नसावन।
हरि टेरत हरि भजे धवाये पाँव गरुड़ तज;
पल महँ लयो बचाय प्रभु ज्यों ग्राह गहत गज।

दामोदरदास चतुर्वेदी

* यह एक बालक की रचना है। उसे उत्साहित करने के लिये हम इसे छापते हैं। —संपादक

उसकी छवि

उसके समान छविमान कुछ भी है नहीं,
कैसे कहूँ कैसी मंजु उसकी लुनाई है?
परम मनोहर मनोज्ञ वस्तु जो है जहाँ,
सबका निचोड़ बस, वह सुघराई है।
उषा प्रति दिवस प्रभात में प्रभाकर को
लाकर उसी की प्रभा देती मनभाई है;
है लगी मयंक में कलंक की इसी से छाप,
चारु चंद्रिका जो मुख-चंद्र की चुराई है ॥१॥
उसके रुचिर रूप रंग की रसीली छवि
देती दिखलाई सब ओर मनभाई है;
मुख की सुगंधि, सुकुमारता सरोज में है,
सुषमा शरद के शशांक में समाई है।
छाई है गगन में दृगों की नीलिमा-ललाम,
लाल मणियों में पद-पद्म की ललाई है;
अकथ, अनूप मान निज उच्च शीश पर
गात की गोराई हिम-गिर ने चढ़ाई है ॥२॥

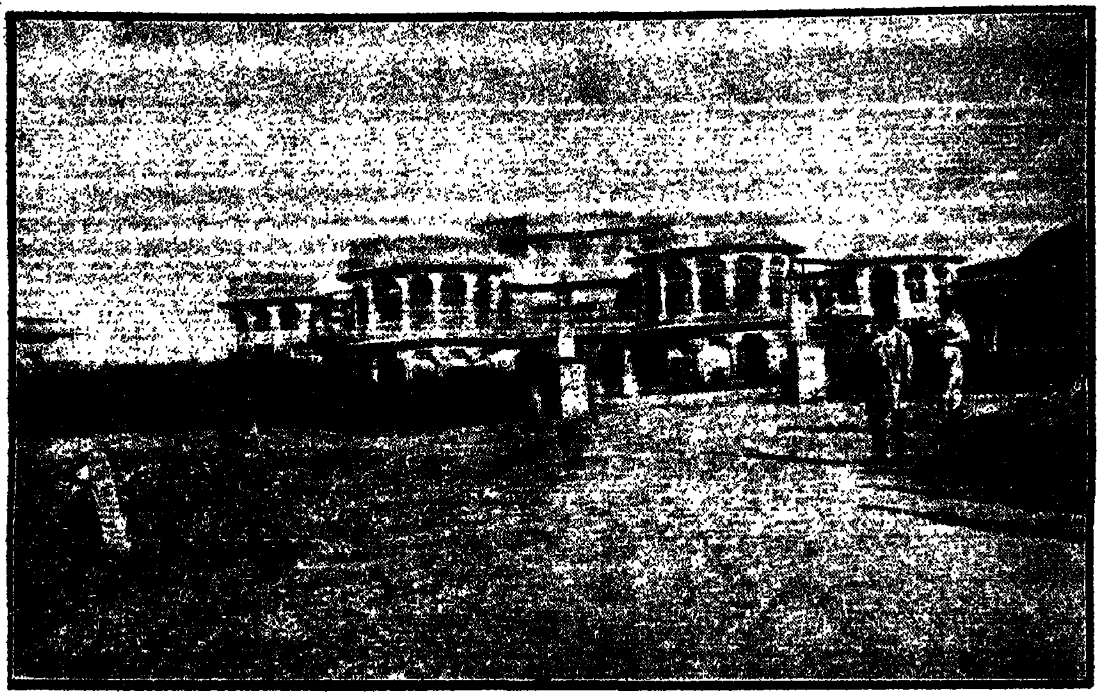
गोपालशरणसिंह

चित्रमय जोधपुर

(उत्तरार्द्ध)

राई का बाग़

नगर के पूर्व मेड़तिया-दरवाज़े के बाहर, क़रीब ३ फ़र्लांग की दूरी पर, राई का बाग़-नामक महल है। यह महाराज जसवंत-सिंह (द्वितीय) का प्रिय स्थान था। वह यहीं अधिकतर रहते थे। इसे महाराज जसवंतसिंहजी (प्रथम) की रानी हाडीजी ने बनवाया था। यह महल बड़ा ही सुंदर है। इसके



राई का बाग राजमहल
(यहाँ पर महाराज जसवंतसिंह (द्वितीय) महर्षि दयानंद सरस्वती से उपदेश सुना करते थे)



जोधपुर का महकमा खास (सदर-कचहरी)

सामने ही 'राई का बाग़-पैलेस' रेलवे-स्टेशन है । इसी के पास 'जुबली-कोर्ट'-नामक विशाल इमारत बनी है । इसी में राज्य की सब अदालतें बैठती हैं । यह इमारत राजपूताने-भर में अपने ढंग की एक ही है ।

सरदार-अजायबघर और सुमेर-पबलिक-लाइब्रेरी — शहर के उत्तर में चाँदपोल-दरवाज़े से १ मील पर सूरसागर-नामक रमणीक एवं सुंदर स्थान है । यहाँ महाराज सूरसिंह का बनवाया हुआ सूरसागर-तालाब, बाग़ और महल है । जोधपुर-राज्य और अँगरेज़-सरकार के बीच में संधि होने पर जब सन् १८३६ ई० में गवर्नमेंट का राजदूत (पोलिटिकल एजेंट) यहाँ नियत हुआ, तब उसका निवासस्थान यहीं रक्खा गया था। आजकल इसी सूरसागर के बँगलों में अजायबघर है । यद्यपि पहलेपहल अजायबघर की स्थापना वि० सं० १९६६ में हुई थी, तथापि इसका प्रबंध जंगलात के महकमे के साथ था । अतः योग्य व्यक्ति के निरीक्षण के अभाव से यह एक मज़ाक़ ही था । परंतु वि० सं० १९७१ के लगभग हमारे मित्र साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ एम्० आर० ए० एस्० (लंदन) को इसका प्रबंध सौंपा गया । इन्होंने कुछ ही काल में इसकी काया पलट दी, और इसमें पुरातत्त्व-विषयक विभाग भी जोड़ दिया । आपके प्रबंध से संतुष्ट होकर भारत-सरकार ने भी इसे सं० १९७३ वि० से रेकग्नाइज़्ड अजायबघरों की सूची में दर्ज कर लिया है । इससे अनेक प्रकार की पुरातत्त्व-विषयक सामग्री भी इस अजायबघर को मुफ़्त ही में मिलने लगी है । इस समय इसके प्राचीन मुद्राओं के संग्रहालय में अनेक दुष्प्राप्य मुद्राएँ एकत्र की गई हैं । राजपूताने में इस अजायबघर का दूसरा नंबर है । साहित्याचार्यजी के ही उद्योग से वि० सं० १९७३ में इस अजायबघर के साथ, राज्य की ओर से, एक सार्वजनिक पुस्तकालय भी खोला गया । इस समय इस पबलिक पुस्तकालय में भिन्न-भिन्न भाषाओं और विषयों की ५००० से ऊपर पुस्तकें संगृहीत हो चुकी हैं । विद्या प्रेमी सर्वसाधारण जनता को इससे बहुत कुछ लाभ पहुँचता है; क्योंकि यहाँ पर बिना किसी प्रकार की फ़ीस दिए पुस्तकें पढ़ने को मिल सकती हैं । यद्यपि अभी यह अजायबघर और पुस्तकालय नगर के बाहर, क़रीब २ मील के फ़ासले पर, सूरसागर में रक्खा गया है, तथापि आश्विन, सं० १९८३ वि० तक ये संस्थाएँ रेलवे-स्टेशन के पास वर्तमान दरबार-हाई स्कूल के विशाल भवन में आ जायँगी ।



पंडित विश्वेश्वरनाथ रेउ एम्० आर० ए० एस्०

आर्य-समाज — सोजती-दरवाज़े के पास ही आर्य-समाज-मंदिर है । यह यहाँ की एक पुरानी जीती-जागती धार्मिक संस्था है, जिसको वि० सं० १९४० की श्रावण-बदि १० (सन् १८८३, ता० २९ जुलाई) रविवार को वेदों के महान् प्रचारक स्वामी दयानंद सरस्वती ने जोधपुर में स्थापित किया था, जब कि स्वामीजी के राजपूताने के भ्रमण और धर्म-प्रचार की धूम तथा विद्वत्ता को सुनकर तत्कालीन महाराज सर जसवंतसिंह बहादुर ने भक्ति-पूर्वक उनको मेवाड़-राज्य से यहाँ बुलाया, और राज्य में वैदिक धर्म का प्रचार कराया । जोधपुर के राजा और प्रजा की उस

समय की शोचनीय दशा को देखकर स्वामीजी ने राज्य के प्रधानमंत्री महाराज प्रतापसिंह को जो उपदेश पूर्ण पत्र लिखा था, उससे पता लगता है कि इस देश के उद्धार के लिये उनको कितनी चिंता थी। वह पत्र इस प्रकार है—

"श्रीयुत माननीय शूरवीर महाराज श्रीप्रतापसिंह, आनंदित रहो।

यह पत्र बाबा साहब (रावराजा तेजसिंहजी) को भी दृष्टिगोचर करा दीजिए।

मुझको इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीयोधपुराधीश आलस्य आदि में वर्तमान हैं, और बाबा साहब (तेजसिंहजी) रोगयुक्त शरीरवाले हैं। अब कहिए, इस राज्य का कि जिसमें सोलह लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते हैं, उनकी रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं, सुधार और बिगाड़ भी आप ही तीनों महाशयों पर निर्भर है। तथापि आप लोग अपने शरीर का आरोग्य-संरक्षण और आयु बढ़ाने के काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं। यह कितनी शोचनीय बात है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग अपनी दिनचर्या मुझसे सुनकर सुधार लेवें, जिससे मारवाड़ का क्या, अपने आर्यावर्त देश-भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें। आप-जैसे योग्य पुरुष जगत् में बहुत कम जन्मते हैं। और जन्मकर भी बहुत कम चिरंजीवि, शतायु होते हैं। इसके हुए बिना देश का सुधार कभी नहीं होता। उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवे, उतनी ही देश की उन्नति होती है। इस पर आप लोगों को अवश्य ध्यान देना चाहिए। और, आगे जैसी आप लोगों की इच्छा हो, वैसा कीजिए।" अलमतिविस्तरेण महामान्यवर्येषु। मिति आषाढ़-बदि ३, शनिवार सं० १६४० वि० (२३ जून, सन् १८८३ ई०)"

दयानंद सरस्वती—स्थानिक आर्य-समाज का कार्य यद्यपि पूर्व की अपेक्षा शिथिल हो गया है, परंतु उसके कार्य की ओर देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यही एक संस्था है, जिसने प्रथम सब जातियों को मारवाड़ में जगाया और उनको कर्तव्य-ज्ञान सिखाया। उसका बहुत कुछ श्रेय जोधपुर-नरेश महाराज सर जसवंतसिंह के सिवा प्रधानमंत्री महाराज सर प्रतापसिंह को दिया जा सकता है, जिन्होंने ऋषि के उपदेश को मानकर राज्य में सामाजिक व राजनीतिक कई सुधार किए, जिनके लिये मारवाड़-राज्य उनका अब तक आभारी है।

मंडोवर—जोधपुर-शहर के उत्तर में, पाँच मील पर, मारवाड़ की पुरानी राजधानी मंडोवर (मंडोर) है। जोधपुर-रेलवे की जो शाखा राई का बाग़-पैलेस और महामंदिर-स्टेशन होकर फलोदी गई है, उसी ओर यह स्थान है। इसके बसने का ठीक समय किसी को ज्ञात नहीं। कहते हैं, किसी समय मांडव्य ऋषि इस पहाड़ पर तपस्या करते थे, जिससे इसका नाम मांडव्यपुर पड़ा, और कालांतर में इसी का अपभ्रंश मंडोवर प्रसिद्ध हुआ। मंडोवर से तीन मील दूर एक स्थान पर मंडलेश्वर महादेव का एक मंदिर है। उसमें वि० सं० १७८८ का एक शिला-लेख है। कहा जाता है, इसी मंडोवर के पास मंडू ऋषि का आश्रम था, जिसका नाम मांडव्य आश्रम था, और यहाँ ही मेड़ता(मेडतक)-नगर के प्राचीन अधिपति पड़िहार राजा ताता ने अपने छोटे भाई भोज को राजपाट सौंपकर तपस्या की थी।

यह भी सुना जाता है कि अति प्राचीन काल में मंडोवर का राजा मंदोदर (मय-दानव)-नामक था, और उसी ने अपने नाम पर इसे बसाया था। उसकी बेटी मंदोदरी लंका के राजा रावण को ब्याही थी। वह जगह, जहाँ रावण और मंदोदरी का विवाह हुआ था, अब तक रावण की चँवरी कहलाती है। वहाँ कुछ निशान इमारत के भी विद्यमान हैं। परंतु यह पिछला कथन भाट और चारणों की दंतकथाओं को छोड़कर और कुछ आधार नहीं रखता। हाँ, दूसरे कथन की पुष्टि एक हज़ार वर्ष पुराने राजा बाउक के समय के संवत् ८९४ के शिला-लेख से स्पष्ट होती है। यहाँ पहले परमार-वंश का राज्य था, पश्चात् पड़िहारों का हुआ। पड़िहारों में राजा नरभट के ज्येष्ठ पुत्र कक्कुक (कक्कुत्स्थ) की तीसरी पीढ़ी में नागभट बड़ा पराक्रमी हुआ, जिसने राजा चक्रायुध को हराकर क़न्नौज का महाराज्य छीना। इसने आंध्र, सैंधव, विदर्भ (बरार), कलिंग और बंगाल के राजों को भी जीता था, तथा आनर्त, मालवा, किरात, तुरुष्क, वत्स, मत्स्य आदि देश के राजों के पहाड़ी क़िले भी छीन लिए थे। इसके राज्य का एक शिला-लेख विक्रमीय संवत् ८७२ (सन् ८१२ ई०) का मिला है। मारवाड़ में नाहड़राव पड़िहार का नाम प्रसिद्ध है। वह शायद यही नागभट (नाहड़) हो,

क्योंकि 'नाहड़' नागभट का ही प्राकृत रूप है। नाहर-राव ने सिंध से लगाकर बंगाल की हद तक कुल भारतवर्ष पर राज्य किया था। उसने पुष्करतीर्थ की मरम्मत कर-वाई, और घोट बँधवाए। यहाँ के पुराने गढ़ के खँडहर अब तक मौजूद हैं, और वे बहुत कुछ देखने योग्य भी हैं। इसकी दीवारों के देखने से इसकी प्राचीनता का प्रमाण मिलता है। असल में यह बौद्ध-काल का बना हुआ है। यह खँडहर बरसाती नदी नागादरी के पास है और इसके खँडहर के भीतर एक स्थान पर राव नाहरराव पड़िहार की मूर्ति भी खुदी रक्खी है। इस स्थान के ऊपर एक जगह गुप्त-वंश के राजों के समय के अक्षरों में लिखे कुछ अक्षर पाए जाते हैं। ठीक बाहर की तरफ़ एक ऊँचे चबूतरे पर १०वीं शताब्दी के एक लेख का टुकड़ा मिला है, जिसमें पड़िहार वंश के कक्कुक के पुत्र का वर्णन है। आसपास की भूमि पुराने मंदिर के खँडहरों से भरी पड़ी है। उनमें दो खंडों का एक जैन-मंदिर भी है, जो उत्तर की तरफ़ है, और उसमें एक चौरस मकान के तीन तरफ़ छोटी-बड़ी कोठरियाँ हैं। मंदिर के सामने खंभे भी हैं। वे १०वीं शताब्दी के प्रतीत होते हैं। इस क़िले से थोड़ी दूर पर एक ऊँचा चौरस मैदान है, जिसको 'पंचकुंड' कहते हैं, और यहाँ स्थानीय हिंदू लोग तीर्थ-यात्रा के लिये आया करते हैं। पंचकुंड के पास ही राठौर-वंश के पुराने राजों की श्मशान भूमि (याने देवल) है। राव गाँगा के देवल (Cenotaph) की नक़्क़ाशी का काम बहुत बढ़िया है।

मंडोवर में जहाँ पुरानी कारीगरी के कई उत्तम चिह्न रह गए हैं, वहाँ नई कारीगरी के भी कुछ अच्छे नमूने, मारवाड़ के अगले राजों के देवलों में, देखे जाते हैं। ये आलीशान देवल नागादरी-नदी के तट पर एक पंक्ति में दक्षिण से उत्तर तक बने हुए हैं, जिनके बनने में लाखों रुपए ख़र्च हुए हैं। इन शानदार इमारतों से वीरभूमि मारवाड़ की धूमधाम का समय याद आता है।

वह भूमि, जो इन देवलों के नीचे तथा पड़ोस में है, यद्यपि श्मशान-भूमि है, जहाँ चार सौ वर्ष से राठौर-राजों और राजकुमारों की दाह-क्रिया होती आ रही है, तो भी अपने स्वाभाविक दृश्य से वह बहुत रमणीय और सुहावनी जान पड़ती है। यहाँ ईश्वर की अगाध लीला का कुछ भास होता है। बहुत-से देशी-विदेशी लोग सदा ही इसकी शोभा देखने आया करते हैं; क्योंकि यहाँ पानी, हरियाली, पहाड़, वृक्षों, फल-फूलों की अच्छी छटा है, और कारीगरी की नई-पुरानी कला का चमत्कार भी देखने में आता है।

पुरानी कारीगरी के सब निशान टूटे-फूटे और गिरे-पड़े हैं। उनमें ऐसा कोई भी नहीं है, जो नख-शिख से साबुत हो। परंतु नई कारीगरी के नमूने, जिनमें मुख्य ये देवल हैं, प्रायः सभी ठीक बने हैं, और जो किसी में कुछ कमी भी हो गई है, तो वह ऐसी नहीं है कि उससे उनका रूप ही बिगड़ गया हो। ये देवल गिनती में छः हैं, और ऊँची-ऊँची कुरसियों पर बने हुए हैं। इनमें एक-से-एक लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई और कारीगरी में क्रम से बढ़ता गया है। इससे क्रमशः उन राजों के ऐश्वर्य की उन्नति का पता चलता है। इन छः पीढ़ियों में जो राजा-महाराजा हुए हैं, वे अपनी वीरता और योग्यता से पीढ़ी-दर-पीढ़ी उन्नति करते गए हैं, अर्थात् ये राव से राजा, राजा से महाराज और महा-राज से राजराजेश्वर के उच्च पद पर पहुँचे थे।

इन सब देवलों में महाराज अजीतसिंहजी का देवल ऊँचा और बड़ा है। इसके दक्षिण तरफ़ इनके पिता महाराज जसवंत (प्रथम) का देवल और बग़ीचा है। पीछे नागादरी-नदी बहती है। आगे रास्ता चलता है, और इसके उत्तर की तरफ़ क़िले का रास्ता, नागादरी का बाँध और पहाड़ है। आसपास आम के पेड़ भी हैं। इस विशाल देवल की कारीगरी, पत्थरों की जुड़ाई और खुदाई प्रशंसनीय है। और एक ही पत्थर की सीढ़ियाँ, जो इसके ऊपर के खंडों पर चढ़ाई गई हैं, बहुत ही विख्यात हो गई हैं। यह देवल श्रीमान् राजराजेश्वर महाराजाधिराज अभयसिंहजी के राजत्व काल (१७८०—१८०६ वि०) में बनना शुरू हुआ था, और महाराज भीमसिंह के समय में समाप्त हुआ। यह बात इतिहास से भी जानी जाती है, और इसके एक शिला लेख से भी, जो बाहर की सीढ़ियों से चढ़कर अंदर आते हुए दाहने हाथ की तरफ़ दरवाज़े की एक पट्टी पर बड़े-बड़े अक्षरों में खुदा मिलता है। उसमें इस प्रकार लिखा है —

महाराजाधिराज श्रीअजीत
सींघजी रो देवल (१)



महाराज अजीतसिंहजी का विशाल देवल (मंडोर में)

की कोठरी के बराबर का मकान भी नहीं बना है । केवल एक टूटे-फूटे बरामदे में उनकी तसवीर काग़ज़ पर बनी हुई रक्खी है। ऊपर लिखे देवलों में किसी भी राजा की पत्थर की मूर्ति नहीं पाई गई । परंतु उसी समय के दूसरे देवलों और छतरियों में सतियों की मूर्तियाँ मिलती हैं। ये सब देवल ख़ाली पड़े हैं। इनमें अब लंगूर और चिमगादड़ बसेरा लेते हैं। राज्य की तरफ़ से मरम्मत और सँभाल तो होती रहती है; परंतु इन जानवरों का पालन-पोषण और वंश-विस्तार भी यहीं हुआ करता है।

इन देवलों की पंक्ति के पूर्व में महाराज अभयसिंह और महाराज बख़्तसिंह की छोटी-छोटी छतरियाँ हैं। महाराज विजयसिंहजी की भी एक छोटी छतरी मौजूद है। महाराज मानसिंहजी और तख़्तसिंहजी सी० एस० आई० के बड़े सुंदर एवं अच्छे हैं। महाराज तख़्तसिंहजी के बाद से इस कार्य के लिये देवकुंड नियत किया गया है, जैसा कि ऊपर लिखे वर्णन से मालूम हुआ होगा।

मंडोवर में देवलों के पास ही एक मनोरंजक 'वीर-भवन' है, जिसको यहाँ के लोग तेंतीस करोड़ देवतों का स्थान कहते हैं । इस वीर-भवन में १६ बड़ी-बड़ी, क़रीब दस-दस फ़ीट ऊँची, मूर्तियाँ हैं, जो एक ही-एक खड़ी चट्टान में खुदी हुई हैं। इनमें ६ मूर्तियाँ तो हिंदू-देवतों की और ७ राजपूत-वीरों की हैं, जिनमें कुछ घोड़ों पर भी सवार हैं। ये विशाल मूर्तियाँ पुरातत्त्व-वेत्ताओं के काम की तो नहीं हैं; पर हिंदू कारीगरों की खुदाई का अच्छा नमूना हैं। ये मूर्तियाँ महाराज अभयसिंहजी के शासन-काल में बनी थीं, और इसी समय में मंडोवर का पत्थर का सदर-दरवाज़ा भी बना था । इन मूर्तियों से ज्ञात होता है कि वीर पुरुषों को हिंदू लोग कितने प्रेम

महाराजा श्रीभीवासिंघजी
करायो दरोगो श्रीराय तेगो (२)
गजधर वीरा "महस" मती।
कार्तीवद १२ संवत १८६० रा (३)
संवत १९८६ मास भद्रवा।
सुद १४ सरू हुवो ।

इस लेख के खोदे जाने के एक हफ़्ते बाद ही कार्तिक-सुदि ४, सं० १८६० को महाराज भीमसिंह का अकस्मात् स्वर्गवास हो गया । यह महाराज अजीतसिंह की ४वीं पीढ़ी में थे। खेद है, अपने पूर्वज का इतना बड़ा देवल बनानेवाले महाराज के दाहस्थान पर इस देवल की एक छोटी-

और मान से पूजते थे । वीरों की मूर्तियों का संक्षिप्त वृत्तांत यह है—

राव मल्लीनाथजी—यह राव सलखाजी राठौर के पुत्र और राव कानड़देव के भतीजे थे। इनका जन्म सं० १३८९ के लगभग हुआ था । इनकी माता मंडोर के पड़िहारों की पुत्री थी । इनके पिता मुसलमानों से लड़ते हुए मारे गए । इन्होंने सं० १४३५ में मांडू के बादशाह को हराया था । यह बड़े करामाती रईस थे । मारवाड़ में जोधपुर से पश्चिम में जो मालानी नाम का परगना है, उसका नाम इन्हीं के नाम पर मालानी हुआ है । इन्हें हिंदू महात्मा समझकर पूजते हैं ।

रामदेवजी—यह दिल्ली के तुँवर राजा अनंगपाल के वंशज और मारवाड़ के जुँआल-गाँव के निवासी एक सत्यवादी वीर थे । इनके पिता का नाम अजमाल था, और माता का मानदे । पिता आनंदकंद श्रीकृष्णचंद्र के बड़े भक्त थे । रामदेवजी ने तरुणावस्था में भैरव-नामक एक राक्षस (दुष्ट) को बाबा बालनाथ की आज्ञा से मारा, जिसने पोकरण (पुष्करण) और उसके निकट के गाँव उजाड़ दिए थे । इस राक्षस को मारने से रामदेवजी का बड़ा नाम हुआ । मुसलमान, हिंदू, सभी उन्हें पूजने लगे । इन्होंने सं० १५१५ वि० में जीते-जी पोकरण (मारवाड़) से १० मील उत्तर में रुणेचा (रामदेवरा)-गाँव में समाधि ले ली । वहाँ हर वर्ष भाद्रपद-मास में एक बड़ा मेला लगता है । गुजरात, मालवा, सिंध, राजपूताना और दूर-दूर से सैकड़ों की संख्या में यात्री आते हैं । रामदेवजी बड़े महात्मा समझे जाते हैं । रुणेचा-गाँव में एक बड़ा मंदिर इनका तैयार हो रहा है, जिसके लिये बीकानेर-नरेश सर गंगासिंहजी ने ६० हज़ार रु० दिए हैं ।



महात्मा रामदेवजी तुँवर (रामशाह पीर)

मेहाजी—यह माँगलिया-उपशाखा के गहलोत-वंशी क्षत्रिय और इंसेन के जागीरदार थे । जैसलमेर के राजा ने एक भारी सेना लेकर इन पर चढ़ाई की, जिसमें बहादुरी से यह काम आए । चारण लोग इस गहलोत-वीर की बड़ी प्रशंसा गाते हैं ।

हड़बूजी—यह मारवाड़ के फलोदी-ज़िले के बंगती-गाँव के साँखला-राजपूत और जोधपुर नगर बसानेवाले राव जोधाजी राठौर के समकालीन थे । जोधाजी इन्हें बड़ा महात्मा मानते थे । कहते हैं, इन्होंने रावजी से पहले ही कह दिया था कि तुम्हारा राज्य मेवाड़ से बीकानेर तक फैलेगा ।

जाँभाजी (जंभदेव)—यह बीकानेर-राज्य के हरसौर-गाँव के पँवार-राजपूत थे, और इनका जन्म भादों-बदि ८, सं० १५०८ वि० सोमवार, को बीकानेर-राज्य के पीपासर-गाँव में हुआ था । इनके पिता का नाम लोट था । कहा जाता है , यह मवेशी बकरियों को चराया करते थे, और बड़े करामाती संत-स्वभाव के पुरुष थे । सं० १५४२ में मवेशी चराना छोड़कर यह बीकानेर राज्य के तालवे-गाँव में जा बैठे, और जनता को सदुपदेश देने लग गए । दैववशात् इसी वर्ष अकाल ने भीषण रूप धारण कर लिया, जिससे मारवाड़ के किसान नदी-नाले-वाले अन्य-प्रांतों में जाने लगे । किंतु जाँभाजी ने अपने आसपास के जाटों से कहला दिया कि वे उनके

पास आकर सुख से दिन व्यतीत करें, और धर्मोपदेश सुनें। जाट लोग तुरंत महात्मा जाँभाजी की सेवा में पहुँच उनके शिष्य हो गए और उनसे धर्मोपदेश की २९ बातें ग्रहण कीं, जिससे उनका नाम बिशनोई (बीस+नौ) हो गया। पश्चात् जाटों के सिवा अन्य कृषक जातियों के लोग भी इस यशुवा-पंथ में आने लगे। जिन जातियों ने महात्मा जंभदेव के पवित्र उपदेश को ग्रहण किया, उन सबने अपने जाति-पाँति के बंधन को त्याग करके धर्माचार्य के उपदिष्ट धर्म-पंथ को ही अपना निश्चयात्मक धर्म-लक्ष्य बनाया, और उन समस्त धर्मावलंबियों की एक ही जाति हो गई। सब एक धर्मियों का परस्पर खान-पान शादी-व्यवहार का भेद भी जाँभाजी ने दूर कर दिया। जाँभाजी ने केवल सर्वशक्तिमान्, निराकार विष्णु अर्थात् ईश्वर की उपासना करने का उपदेश किया। ये बिशनोई मारवाड़, सिंध, मालवा, गुजरात, पंजाब, ज़िला मेरठ, मुज़फ़्फ़रनगर, सहारनपुर, देहरादून, नैनीताल, कानपुर, लखनऊ, प्रयाग बिजनौर, इटावा, बरेली, पटना, लंका, नेपाल, काबुल आदि में आबाद हैं। जाँभाजी ने मारवाड़ के फलोदी-परगने में एक जंगल देखकर बड़ा तालाब बनवाया, और अपने नाम से जाँभ-गाँव बसाया। इनका स्वर्गवास मगसर-बदि ८, सं० १५८३ में हुआ। हर वर्ष फाल्गुन बदि ३५ को इनकी यादगार में एक बड़ा भारी मेला होता है, जिसमें सम्मिलित होने के लिये दूर-दूर से बिशनोई आते हैं और बड़े-बड़े होम करते हैं, जिनमें सैकड़ों मन घी की आहुति होती है। इस अवसर पर उनके आपस के झगड़ों की पंचायतें भी ख़ूब होती हैं। बिशनोइयों में छुआछूत के विचार अधिक हैं। वे ब्राह्मण के हाथ की भी कच्ची और पक्की नहीं खाते। बिशनोई लहसुन, मांस दारू, गाँजा-भाँग या चरस-तंबाकू आदि नहीं खाते-पीते और पूरे वैष्णव हैं। वे बाज़ार की मिठाई भी नहीं खाते। मारवाड़-राज्य में उनकी संख्या कोई ५० हज़ार है।

गो.ग..ी—यह बीकानेर-राज्य के दादरेरा-गाँव के अधिपति और गोगा महेरी गाँव के बसानेवाले चौहान राजपूत थे। जब १३५३ वि० सं० में द्वितीय फ़ीरोज़शाह (देहली) ने इन पर चढ़ाई की, तब यह बड़ी वीरता से लड़कर काम आए।

पाबूजी—इनका जन्म मालानी-परगने के कोलू मंड-गाँव में, संवत् १३५१ में, हुआ। इनके पिता का नाम धाँधल और दादा का राव आसथानजी राठौर था। यह गढ़ की रक्षा करते हुए खीची जोंदराव जायलवाले के हाथ से मगसर-बदि ३, सं० १३८३, को मारे गए। इन्होंने एक मत भी चलाया, जिसके माननेवाले थोरी आदि अब तक पाए जाते हैं। थोरी ही पाबूजी के पुजारी हैं, जो सारंगी पर पाबू का उसी प्रकार गुण-कीर्तन करते फिरते हैं, जिस प्रकार दूसरे प्रांतों में जोगी बाबा गोरखनाथ और राजा भरथरी के गीत गाते हैं। उन थोरियों के साथ एक बड़ी चादर होती है, जिस पर वीरवर पाबू के जीवनकाल की अनेक घटनाएँ भी चित्रित होती हैं। पाबूजी के वंशवालों की बड़ी और ताज़ीमी जागीर केरू (मारवाड़) में है।

इस वीर-भवन के पड़ोस में और आसपास पुराने समय के बने कुछ कुएँ और बावलियाँ भी हैं, जिनमें प्रसिद्ध ये हैं —

१—भैरोंजी की बावली, वीर-भवन के पड़ोस में।

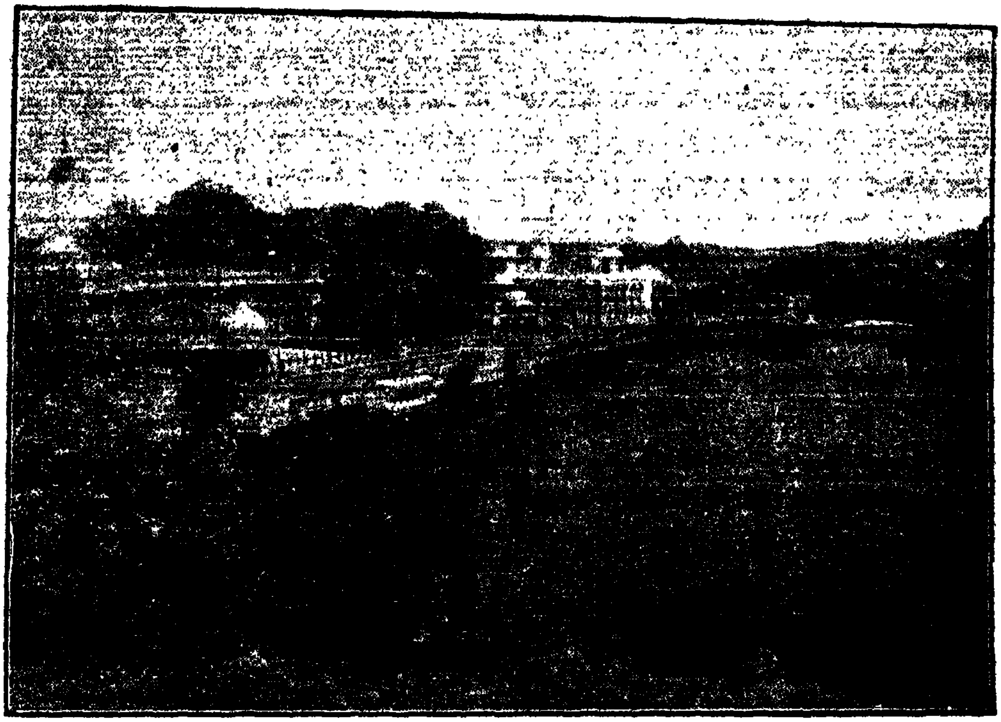
२—झलराव (झालीजी) की बावली, देवलों के पास।

३—रामनामी की बावली, शहर के खंडहरों के पास।

४—गहलोत कालूजी की बावली, गाँव के मार्ग में।

मंडोर में थंभ-स्वरूप एक महल है, जो 'एकथंबा महल' कहलाता है। यह महल महाराज अभयसिंह ने बनवाया था। यहाँ प्रतिवर्ष श्रावण-मास में बड़े भारी मेले लगते हैं, जिन्हें श्रावण के सोमवार के मेले कहते हैं।

बालसमंद—जोधपुर-शहर से ४ मील पर, मंडोर के रास्ते में, बाएँ हाथ की ओर, पक्की सड़क पर, 'बालसमंद'-नामक एक सुंदर बाँध है। इसे पड़िहार राजा नाहड़राव के भाई बालकराव ने, सं० १२१६ ई० में, बनवाया था। महाराज सूरसिंहजी ने इस जलाशय के बाँध को पहलेपहल बढ़ाया और इस पर एक सुंदर महल बनवाया। इसके पश्चात् महाराज जसवंतसिंह (प्रथम) के समय में यह महल और बाँध और भी बढ़ाया गया। यहाँ से शहर के गुलाबसागर फ़तहसागर और सरदार-सागर (नया तालाब) नामक जलाशयों को पत्थर की पक्की नहर द्वारा पानी पहुँचाया जाता है, और यहीं से रेलवे आदि को भी पानी के नल गए हैं। इस झील में आसपास के पहाड़ों से बरसाती पानी इकट्ठा होता है। आजकल यहाँ पर एक सुदक्ष अँगरेज़ की अध्यक्षता में फ्रेंच गार्डनों के ढंग का विशाल बग़ीचा तैयार किया



बालसमंद-झील

ज रहा है। इसके लिये एक महल भी गिरा दिया गया है। कहते हैं, यहाँ पर एक ज़नाना बग़ीचा भी बनेगा, जिसमें केवल स्त्रियाँ ही आ सकेंगी।

हियूसन-अस्पताल राज्य-भर में सबसे बड़ा अस्पताल हियूसन-हॉस्पिटल है। यह जोधपुर में गुलाबसागर के पास 'मायलाबाग़'-नामक राजभवन में है। इस विशाल राज-भवन व बाग़ को महाराजा विजयसिंह की पासवान (उपपत्नी) श्रीमती गुलाबराय ने बनवाया था। इसमें मीठे पानी का एक झालरा (बावड़ी=बावली) है। यह महल और झालरा पौष-वदि ६ सं० १८३७ (१७८० ई० की ता० १७ दिसंबर, रविवार) को बनकर तैयार हुए थे। सं० १९१० वि० में जब पहलेपहल अँगरेज़ी ढंग का छोटा-सा शफ़ाख़ाना खोला गया था, तब वह इसी भवन के एक कोने में स्थापित हुआ था। उस समय अस्पताल के अधीन केवल हॉस्पिटल-असिस्टेंट सर्जन के रहने के लिये एक क्वार्टर, एक छोटा-सा जर्राही का तथा दो बीमारों के कमरे थे। सं० १९२२ में बाहर पाली-नगर में दूसरा अस्पताल खुला। उस वक़्त तक यही (हियूसन) अस्पताल राज्य-भर में एक था। इसी अस्पताल का नाम फाल्गुन-सुदि ३, सं० १९४४ (ता० १५—२—१८८८) को हियूसन-अस्पताल रक्खा गया। हियूसन नाम के अँगरेज़-अफ़सर राज्य के चुंगी-महकमे में लगभग ७ महीने की सर्विस के बाद मर गए। इस पर उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में यह नाम यादगार के तौर पर राज्य की ओर से रक्खा गया है।

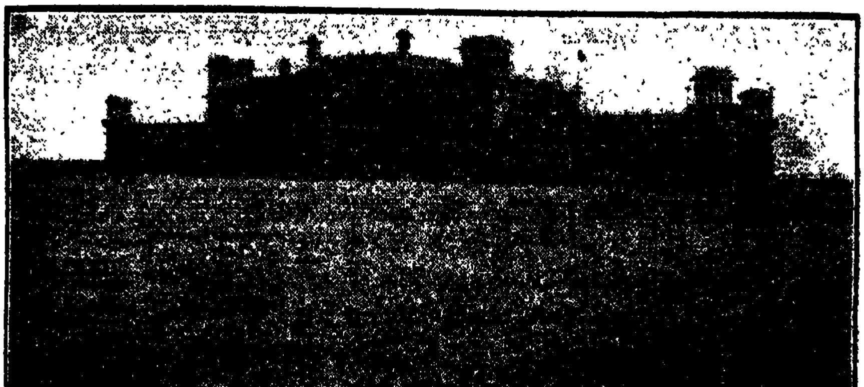
कायलाना—यह बाँध शहर के पश्चिम में २ मील के फ़ासले पर है। यहाँ महाराज भीमसिंह और तख़्तसिंहजी के बनवाए हुए महल और बाग़ थे। किंतु उन्हीं के स्थान पर, सं० १९४९ वि० में, यह तैयार किया गया। इससे नगर में पानी का बड़ा सुबीता हो गया है। आजकल यह प्रतापसागर के नाम से भी पुकारा जाता है; क्योंकि इसके बनवाने में महाराज सर प्रतापसिंह ने मुख्य भाग लिया था, और ६२,०००) रु० अपनी जेब से ख़र्चे थे। इस तालाब में १ अरब १६ करोड़ गैलन पानी आता है। इसके आसपास की पहाड़ी में सुअर बहुत पाए जाते हैं। राज्य की तरफ़ से उनको समय पर

खाना दिया जाता है, और यहीं पर उनके शिकार आदि का भी अच्छा प्रबंध है।

बिजलीघर—जोधपुर रेलवे-स्टेशन के हाते के पास ही बहुत बड़ा बिजलीघर बना है। इसको महाराज सर सुमेरसिंहजी साहब ने बनवाया था। इसमें १४ जनवरी, सन् १६१७ ई० से बिजली की रोशनी शुरू हुई है। इस पावर-हाउस में ३ विशाल एंजिन लगे हैं। इनमें से दो तो नित्य ही बराबर चला करते हैं। परंतु एक इसलिये बंद रक्खा जाता है कि बारी-बारी से उनकी भीतरी सफ़ाई हो सके। इसकी बिजली की शक्ति से राजधानी में और उसके आसपास, ६ मील के घेरे में, रोशनी होती है, और बर्फ़ का कारख़ाना, आटे की चक्की आदि भी चलती है। टेलीफ़ोन का प्रबंध भी यहीं से किया गया है। परंतु अभी तक इसका प्रचार राजकीय दफ़्तरों आदि में ही है।

चौपासनी—यह चौपासनी-ग्राम राजधानी से ६ मील पर दक्षिण-पश्चिम में है। यहाँ गोकुल के गुसाँइयों का बड़ा मंदिर है। ये गुसाँई ब्राह्मण यहाँ सं० १७२८ वि० में आए थे। पहले ये लोग मथुरा के पास गोवर्द्धन-पर्वत पर श्रीनाथजी के मंदिर के पुजारी थे। मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब ने इन गुसाँइयों के पास एक आदमी भेजकर यह कहलाया कि यदि तुम लोगों में कुछ करामात हो, तो दिखलाओ; वर्ना वहाँ से चले जाओ। इससे गुसाँई लोग विट्ठल-दास के पुत्र गिरधारीजी के बेटे दामोदरजी और श्रीनाथजी की मूर्ति को एक रथ में बिठाकर अपने काका गोविंदजी, बाल-कृष्ण, वल्लभजी और गंगा-बाई के साथ मथुरा से वि० सं० १७२६ आश्विन-सुदि १५ (१० ऑक्टोबर, सन् १६६६ ई०) को निकल गए, और वहाँ से आगरे पहुँचे। १६ दिन तो वहीं छिपे रहे। इसके बाद कृष्णगढ़ (राजपूताना) गए; परंतु वहाँ के राजा ने कहा कि मेरे राज्य में आप लोग छिपकर ही रह सकते हैं। इस पर कुछ दिन कृष्णगढ़ में रहकर ये लोग वहाँ से जोधपुर चले गए, और कुछ महीने यहाँ रह-कर वि० सं० १७२८ कार्त्तिक-सुदि १५ (१७ नवंबर, १६७१ ई०) को उदयपुर (मेवाड़) की तरफ़ चले गए। वहाँ पर इन्होंने उदयपुर से २४ मील उत्तर की तरफ़ बनास-नदी के तीर पर सिहाड़-ग्राम के पास एक मंदिर बनवाया, और फाल्गुन बदि ७ (ता० २० फ़रवरी, सन् १६७२ ई०) शनिवार को उसमें श्रीनाथजी की मूर्ति स्थापित की। परंतु जोधपुर-नरेश महाराज विजयसिंह के समय उनके वैष्णव-मत ग्रहण कर लेने से फिर इन गोकुल के गुसाँइयों का मारवाड़ में आगमन हुआ, और चौपासनी-नामक यह गाँव इनको जागीर में मिला।

इस चौपासनी-गाँव के पास ही सरकारी राजपूत-हाई स्कूल की विशाल दर्शनीय इमारत है। इस बड़ी भारी इमारत की नींव सं० १६६६ के कार्त्तिक-मास में रक्खी गई थी, और स्कूल का उद्घाटन माघ-सुदि १३, सं० १६७७ (८ फ़रवरी, १६१४ ई०) को वाइसराय लॉर्ड हार्डिंज महोदय के कर-कमलों से हुआ था। इस सुंदर भवन के बनने में राज्य का लगभग ५ लाख रुपया व्यय हुआ है। यहाँ मैट्रिक तक की पढ़ाई होती है, और ३५० से अधिक राजपूत विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं, जिनके खान-पान आदि का सब ख़र्च राज्य से दिया जाता है। इस प्रकार इस हाई स्कूल पर राज्य का लगभग १ लाख रुपया वार्षिक व्यय



जोधपुर का श्रीराजपूत-हाई स्कूल (चौपासनी)

होता है। स्कूल के प्रिंसिपल एक अँगरेज़ हैं, जिन्हें क़रीब क़रीब हज़ार रुपए मासिक मिलता है।

मारवाड़ के सर्वसाधारण शुद्ध राजपूत बालकों की शिक्षा के लिये पहलेपहल यह स्कूल मंडोवर में 'एलगिन राजपूत स्कूल' के नाम से स्थापित हुआ था, और इसका उद्घाटन मगसिर बदि ६, सं० १९५३ वि० को लॉर्ड एलगिन के द्वारा किया गया था। उस समय इसके हेडमास्टर पंजाब के देवतास्वरूप भाई परमानंद एम० ए० थे। कुछ समय पश्चात् यह संस्था वहाँ से राजधानी में लाई गई, और सन् १८९९ ई० में यह पाउलेट-नोबल स्कूल में सम्मिलित कर दी गई। लेकिन ३-४ वर्ष बाद रईसज़ादों के नोबल स्कूल से यह अलग कर दी गई, जो १९११ ई० में ईडर-नरेश महाराज सर प्रताप के दुबारा रिजेंट बनकर यहाँ आने पर फिर नोबल स्कूल में सम्मिलित कर दी गई।



प्रसिद्ध महात्मा देवीदान संन्यासी

अस्तु, सं० १९७० में जब इस संस्था के लिये विशाल इमारत तैयार हो गई, तब यह चौपासनी में लाई गई।

यहीं पर एक चौपासनी के तालाब का सुंदर और बड़ा बाँध है। बाज़ वक्त इसका पानी बहुत कुछ सूख जाता है। उस समय उसमें खेती करने से भी अच्छा लाभ होता है।

देवीदान-देवस्थान — जोधपुर रेलवे-स्टेशन से जो सड़क चौपासनी-गाँव को गई है, उसी पक्की सड़क के पास पहाड़ों में यह 'देवीदान देवस्थान' है। यहाँ से चौपासनी-गाँव कोई २ फ़र्लांग दूर होगा। यहाँ पहाड़ में एक रमणीय सरोवर है, जो तापड़ियों के तालाब के नाम से प्रसिद्ध है। इसी तालाब पर जोधपुर के सुप्रसिद्ध परोपकारी ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी महात्मा देवीदानजी महाराज विराजते हैं। आप एक पहुँचे हुए त्यागी साधु हैं। भक्ति-भाव से आए हुए लोगों का आप हर्ष-पूर्वक स्वागत करते हैं, और उनके मन की दशा के अनुसार उतना ही उपदेश देते हैं, जितना वे ग्रहण कर लाभ उठा सकते हैं। ख़ास जोधपुर-शहर में तो आपके शिष्य असंख्य हैं ही ; परंतु आपकी विश्व-प्रेम-दायक शिक्षा के लिये लोग विश्वास-पूर्वक दूर-दूर से आते हैं, जिनमें क्या भारतीय और क्या योरपियन, विद्वान् और धर्म में रुचि रखनेवाले सभी सज्जन होते हैं। यहाँ एक बार आया हुआ आदमी बिना शांति सुख प्राप्त किए नहीं रहता। आपमें लोगों की श्रद्धा दिन-दिन बढ़ती आ रही है। ज्ञान-शिक्षा के सिवा वैद्यक से भी आप काम लेते रहते हैं। जो रोगी बड़े-बड़े डॉक्टरों, सर्जनों और हकीमों से आराम नहीं हुए, वे विद्वान् परमहंस महात्माजी की कृपा (चिकित्सा) से थोड़े ही दिनों में चंगे होकर दौड़ते-कूदते घर लौट गए। कंठमाला, जलंधर, भगंदर, कुष्ठ (कोढ़) आदि भयंकर एवं असाध्य रोगों से पीड़ित मनुष्यों का यहाँ स्वामीजी द्वारा कई बार अचूक इलाज हुआ है।

महात्माजी दिन में एक ही बार भोजन किया करते हैं, जो बहुत ही सादा होता है। आपके वस्त्रों में केवल एक काली कमली है, जिसे आप रात-दिन लपेटे रहते हैं। योगाभ्यास में आप बड़े सिद्धहस्त हैं। आप कई घंटों की समाधि लगाया करते हैं, और इस प्रकार का अभ्यास करने की दूर-दूर से आपके पास जिज्ञासु और शिष्यगण आते हैं।

जगदीशसिंह गहलोत

रामलीला

(१)

इधर एक मुद्दत से रामलीला देखने नहीं गया। बंदरों के भद्दे चेहरे लगाए, आधी टाँगों का पाजामा और काला रंग का ऊंचा कुरता पहने आदमियों को दौड़ते, हू-हू करते देखकर अब हँसी आती है; मज़ा नहीं आता। काशी की लीला जगद्विख्यात है। सुना है, लोग दूर-दूर से देखने आते हैं। मैं भी बड़े शौक़ से गया। पर मुझे तो वहाँ की लीला और किसी वज्र देहात की लीला में कोई अंतर न दिखाई दिया। हाँ, रामनगर की लीला में कुछ साज़-सामान अच्छे हैं। राक्षसों और बंदरों के चेहरे पीतल के हैं, गदाएँ भी पीतल की; कदाचित् बनवासी भ्राताओं के मुकुट सच्चे काम के हों। लेकिन साज़-सामान के सिवा वहाँ भी वही हू-हू के सिवा और कुछ नहीं। फिर भी लाखों आदमियों की भीड़ लगी रहती है।

लेकिन एक ज़माना वह था, जब मुझे भी रामलीला में आनंद आता था। आनंद तो बहुत हलका-सा शब्द है। वह आनंद उन्माद से कम न था। संयोग-वश उन दिनों मेरे घर से बहुत थोड़ी दूर पर रामलीला का मैदान था; और जिस घर में लीला-पात्रों का रूप-रंग भरा जाता था, वह तो मेरे घर से बिलकुल मिला हुआ था। दो बजे दिन से पात्रों की सजावट होने लगती थी। मैं दोपहर ही से वहाँ जा बैठता और जिस उत्साह से दौड़-दौड़कर छोटे-मोटे काम करता, उस उत्साह से तो आज अपनी पेंशन लेने भी नहीं जाता। एक कोठरी में राज-कुमारों का शृंगार होता था। उनकी देह में रामरज पीस-कर पोती जाती, मुख पर पाउडर लगाया जाता और पाउडर के ऊपर लाल, हरे, नीले रंग की बुँदकियाँ लगाई जाती थीं। सारा माथा, भौंहें, गाल, ठोड़ी बुँदकियों से रच उठता था। एक ही आदमी इस काम में कुशल था। वही बारी-बारी से तीनों पात्रों का शृंगार करता था। रंग की प्यालियों में पानी लाना, रामरज पीसना, पंखा झलना मेरा काम था। जब इन तैयारियों के बाद विमान निकलता, तो उस पर रामचंद्रजी के पीछे बैठकर मुझे जो उल्लास, जो गर्व, जो रोमांच होता था, वह अब लाट साहब के दरबार में कुरसी पर बैठकर भी नहीं होता। एक बार जब होम-मेंबर साहब ने व्यवस्थापक सभा में मेरे एक प्रस्ताव का अनुमोदन किया था, उस वक़्त मुझे कुछ उसी तरह का उल्लास, गर्व और रोमांच हुआ था। हाँ, एक बार जब मेरा ज्येष्ठ पुत्र नायब-तहसीलदारी में नामज़द हुआ, तब भी कुछ ऐसी ही तरंगें मन में उठी थीं। पर इनमें और उस बाल-विह्वलता में बड़ा अंतर है। तब तो ऐसा मालूम होता था कि मैं स्वर्ग में बैठा हूँ।

निषाद-नौका लीला का दिन था। मैं दो-चार लड़कों के बहकाने में आकर गुल्ली-डंडा खेलने लगा था। आज शृंगार देखने न गया। विमान भी निकला; पर मैंने खेलना न छोड़ा। मुझे अपना दाँव लेना था। अपना दाँव छोड़ने के लिये उससे कहीं बढ़कर आत्मत्याग की ज़रूरत थी, जितनी मैं कर सकता था। अगर दाँव देना होता, तो मैं कब का भाग खड़ा होता। लेकिन पदाने में कुछ और ही बात होती है। ख़ैर, दाँव पूरा हुआ। अगर मैं चाहता, तो धाँधली करके दस-पाँच मिनट और पदा सकता था, इसकी काफ़ी गुंजाइश थी; लेकिन अब इसका मौक़ा न था। मैं सीधे नाले की तरफ़ दौड़ा। विमान जल-तट पर पहुँच चुका था। मैंने दूर से देखा, मल्लाह किश्ती लिए आ रहा है। दौड़ा, लेकिन आदमियों की भीड़ में दौड़ना कठिन था। आख़िर जब मैं भीड़ हटाता, प्राणपण से आगे बढ़ता घाट पर पहुँचा, तो निषाद अपनी नौका खोल चुका था। रामचंद्र पर मेरी कितनी श्रद्धा थी। मैं अपने पाठ की चिंता न करके उन्हें पढ़ा दिया करता था, जिसमें वह फ़ेल न हो जायँ। मुझसे उम्र में ज़्यादा होने पर भी वह नीची कक्षा में पढ़ते थे। लेकिन वही रामचंद्र नौका पर बैठे इस तरह मुँह फेरे चले जाते थे, मानो मुझसे जान-पहचान ही नहीं। नक़ल में भी असल की कुछ-न-कुछ बू आ ही जाती है। भक्तों पर जिनकी निगाह सदा ही तीखी रही है, वह मुझे क्यों उबारते? मैं विकल होकर उस बछड़े की भाँति कूदने लगा, जिसकी गरदन पर पहली बार जुआ रक्खा गया हो। कभी लपककर नाले की ओर आता, कभी किसी सहायक की खोज में पीछे की तरफ़ दौड़ता। पर सब-के-सब अपनी धुन में मस्त थे; मेरी चीख़-पुकार किसी के कानों तक न पहुँची। तब से बड़ी-बड़ी



"निषाद अपनी नौका खोल चुका था।"

विपत्तियाँ झेलीं पर उस समय जितना दुःख हुआ, उतना फिर कभी न हुआ।

मैंने निश्चय किया था कि अब रामचंद्र से कभी न बोलूँगा, न कभी खाने की कोई चीज़ ही दूँगा; लेकिन ज्यों ही नाले को पार करके वह पुल की ओर से लौटे, मैं दौड़कर विमान पर चढ़ गया, और ऐसा खुश हुआ, मानो कोई बात ही न हुई थी।

(२)

रामलीला समाप्त हो गई थी। राजगद्दी होनेवाली थी। पर न-जाने क्यों देर हो रही थी। शायद चंदा कम वसूल हुआ था। रामचंद्र की इन दिनों कोई बात भी न पूछता था। न तो घर जाने की छुट्टी ही मिलती थी, न भोजन का प्रबंध ही होता था। चौधरी साहब के यहाँ से एक सीधा कोई तीन बजे दिन को मिलता था। बाक़ी सारे दिन कोई पानी को भी न पूछता। लेकिन मेरी श्रद्धा अभी तक ज्यों-की-त्यों थी। मेरी दृष्टि में वह अब भी रामचंद्र ही थे। घर पर मुझे खाने की जो चीज़ मिलती, वह लेकर रामचंद्र को दे आता। उन्हें खिलाने में मुझे जितना आनंद मिलता था, उतना आप खा जाने में कभी न मिलता। कोई मिठाई या फल पाते ही मैं बेतहाशा चौपाल की ओर दौड़ता। अगर रामचंद्र वहाँ न मिलते, तो उन्हें चारों ओर तलाश करता, और जब तक वह चीज़ उन्हें न खिला लेता, मुझे चैन न आता था।

ख़ैर, राजगद्दी का दिन आया। रामलीला के मैदान में एक बड़ा-सा शामियाना ताना गया। उसकी खूब सजावट की गई। वेश्याओं के दल भी आ पहुँचे। शाम को रामचंद्र की सवारी निकली, और प्रत्येक द्वार पर उनकी आरती उतारी गई। श्रद्धानुसार किसी ने रुपए दिए, किसी ने पैसे। मेरे पिता पुलीस के आदमी थे, इसलिये उन्होंने बिना कुछ दिए ही आरती उतारी। उस वक़्त मुझे जितनी लज्जा आई, उसे बयान नहीं कर सकता। मेरे पास उस वक़्त संयोग से एक रुपया था। मेरे मामाजी दशहरे के पहले आए थे, और मुझे १) दे गए थे। उस रुपए को मैंने रख छोड़ा था। दशहरे के दिन भी उसे ख़र्च न कर सका। मैंने तुरंत वह रुपया लाकर आरती की थाली में डाल दिया। पिताजी मेरी ओर कुपित नेत्रों से देखकर रह गए। उन्होंने कुछ कहा तो नहीं, लेकिन मुँह ऐसा बना लिया, जिससे प्रकट होता था कि मेरी इस धृष्टता से उनके रोब में बट्टा लग गया। रात के दस बजते-बजते यह परिक्रमा पूरी हुई। आरती की थाली रुपयों और पैसों से भरी हुई थी। ठीक तो नहीं कह सकता, मगर अब ऐसा अनुमान होता है कि ४-५ सौ रुपयों से कम न थे। चौधरी साहब इससे कुछ ज़्यादा ही ख़र्च कर चुके थे। उन्हें इसकी बड़ी फ़िक्र हुई कि किसी तरह कम-से-कम २००) और वसूल हो जायँ। और, इसकी सबसे अच्छी तरकीब उन्हें यही मालूम हुई कि वेश्याओं द्वारा महफ़िल

में वसूली हो। जब लोग आकर बैठ जायँ, और महफ़िल का रंग जम जाय, तो आबादीजान रसिक जनों की की कलाइयाँ पकड़-पकड़कर ऐसे हाव-भाव दिखावे कि लोग शरमाते-शरमाते भी कुछ-न-कुछ दे ही मरें। आबादी-जान और चौधरी साहब में सलाह होने लगी। मैं संयोग से उन दोनों प्राणियों की बातें सुन रहा था। चौधरी साहब ने समझा होगा, यह लौंडा क्या मतलब समझेगा। पर यहाँ ईश्वर की दया से अक़्ल के पुतले थे। सारी दास्तान समझ में आती जाती थी।

चौधरी—सुनो आबादीजान, यह तुम्हारी ज़्यादती है। हमारा और तुम्हारा कोई पहला साबक़ा तो है नहीं। ईश्वर ने चाहा, तो यहाँ हमेशा तुम्हारा आना-जाना लगा रहेगा। अब की चंदा बहुत कम आया, नहीं तो मैं तुमसे इतना इसरार न करता।

आबादी०—आप मुझसे भी ज़मींदारी चालें चलते हैं, क्यों? मगर यहाँ हुज़ूर की दाल न गलेगी। वाह! रुपए तो मैं वसूल करूँ, और मूछों पर ताव आप दें। कमाई का यह अच्छा ढंग निकाला है। इस कमाई से तो वाक़ई आप थोड़े दिनों में राजा हो जायँगे। उसके सामने ज़मींदारी झक मारेगी! बस, कल ही से एक चकला खोल दीजिए। ख़ुदा की क़सम, मालामाल हो जाइएगा।

चौधरी—तुम तो दिल्लगी करती हो, और यहाँ क़ाफ़िया तंग हो रहा है!

आबादी०—तो आप भी तो मुझी से उस्तादी करते हैं। यहाँ आप-जैसे काँइयों को रोज़ उँगलियों पर नचाती हूँ।

चौधरी—आख़िर तुम्हारी मंशा क्या है?

आबादी०—जो कुछ वसूल करूँ, उसमें आधा मेरा और आधा आपका। लाइए, हाथ मारिए।

चौधरी—यही सही।

आबादी०—अच्छा, तो पहले मेरे १००) गिन दीजिए। पीछे से आप अलसेट करने लगेंगे।

चौधरी—वाह, वह भी लोगी और यह भी।

आबादी०—अच्छा! तो क्या आप समझे थे कि अपनी उजरत छोड़ दूँगी? वाह री आपकी समझ! ख़ूब, क्यों न हो। दीवाना ब कारे ख़्वेश हुशियार।

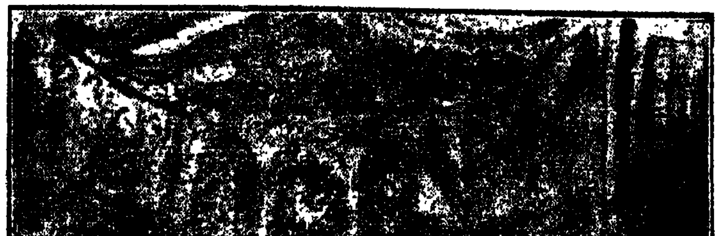
चौधरी—तो क्या तुमने दोहरी फ़ीस लेने की ठानी है?

आबादी०—अगर आपको सौ दफ़े ग़रज़ हो, तो! वरना मेरे १००) तो कहीं गए ही नहीं। मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो लोगों की जेब में हाथ डालती फिरूँ।

चौधरी की एक न चली। आबादी के सामने दबना पड़ा। नाच शुरू हुआ। आबादीजान बला की शोख़ औरत थी। एक तो कमसिन, उस पर हसीन। और, उसकी अदाएँ तो इस ग़ज़ब की थीं कि मेरी तबीयत भी मस्त हुई जाती थी। आदमियों को पहचानने का गुण भी उसमें कुछ कम न था। जिसके सामने बैठ गई, उससे कुछ-न-कुछ ले ही लिया। पाँच रुपए से कम तो शायद ही किसी ने दिए हों। पिताजी के सामने भी वह आ बैठी। मैं मारे शर्म के गड़ गया। जब उसने उनकी कलाई पकड़ी, तब तो मैं सहम उठा। मुझे यक़ीन था कि पिता उसका हाथ झटक देंगे, और शायद दुत्कार भी दें। किंतु यह क्या हो रहा है! ईश्वर! मेरी आँखें धोका तो नहीं खा रही हैं! पिताजी मूछों में हँस रहे हैं। ऐसी मृदु हँसी उनके चेहरे पर मैंने कभी नहीं देखी थी। उनकी आँखों से अनुराग टपका पड़ता था। उनका एक-एक रोम पुलकित हो रहा था। मगर ईश्वर ने मेरी लाज रख ली। वह देखो, उन्होंने धीरे से आबादी के कोमल हाथों से अपनी कलाई छुड़ा ली। अरे! यह फिर क्या हुआ। आबादी तो उनके गले में बाँहें डाले देती है। अब की पिताजी ज़रूर उसे पीटेंगे। चुड़ैल को ज़रा भी शर्म नहीं!

एक महाशय ने मुस्किराकर कहा—यहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी आबादीजान! और दरवाज़ा देखो।

बात तो इन महाशय ने मेरे मन की कही, और बहुत ही उचित कहा, लेकिन न-जाने क्यों पिताजी ने उनकी ओर कुपित नेत्रों से देखा, और मूछों पर ताव दिया। मुँह से तो वह कुछ न बोले, पर उनके मुख की आकृति चिल्ला-कर सरोष शब्दों में कह रही थी—तू बनिया मुझे समझता क्या है? यहाँ ऐसे अवसर पर जान तक निसार करने को तैयार हैं, रुपए की हक़ीक़त ही क्या! तेरा जी चाहे आज़मा ले। तुझसे दूनी रक़म न दे डालूँ, तो मुँह न दिखाऊँ। महान् आश्चर्य! घोर अनर्थ! अरे ज़मीन, तू फट क्यों नहीं जाती? आकाश, तू फट क्यों नहीं पड़ता? अरे मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती! पिताजी जेब में हाथ डाल रहे हैं। वह कोई चीज़ निकाली, और सेठजी को दिखाकर आबादीजान को दे डाली। आह! यह तो अशर्फ़ी है। चारों ओर तालियाँ बजने लगीं। सेठजी उल्लू बन गए।



"लेकिन न जाने क्यों पिताजी ने उनकी ओर कुपित नेत्रों से देखा, और मूछों पर ताव दिया।"

था, उसकी रिपोर्ट अम्मा से ज़रूर करता था। पर इस मामले को मैंने उनसे छिपा रक्खा। मैं जानता था, उन्हें यह बात सुनकर बड़ा दुःख होगा।

रात-भर गाना होता रहा। तबले की गमक मेरे कानों में आ रही थी। जी चाहता था, चलकर देखूँ; पर साहस न होता था। मैं किसी को मुँह कैसे दिखाऊँगा? कहीं किसी ने पिताजी का ज़िक्र छेड़ दिया, तो मैं क्या करूँगा?

प्रातःकाल रामचंद्र की बिदाई होनेवाली थी। मैं चारपाई से उठते ही आँखें मलता हुआ चौपाल की ओर भागा। डर रहा था कि कहीं रामचंद्र चले न गए हों। पहुँचा, तो देखा, तायफ़ों की सवारियाँ जाने को तैयार हैं। बीसों आदमी हसरत नाक-मुँह बनाए उन्हें घेरे खड़े हैं। मैंने उनकी ओर आँख तक न उठाई। सीधा रामचंद्र के पास पहुँचा। लक्ष्मण और सीता बैठे रो रहे थे, और रामचंद्र खड़े काँधे पर लुटिया-डोर डाले उन्हें समझा रहे थे। मेरे सिवा वहाँ और कोई न था। मैंने कुंठित स्वर में रामचंद्र से पूछा—क्या तुम्हारी बिदाई हो गई?

रामचंद्र—हाँ, हो तो गई। हमारी बिदाई ही क्या? चौधरी साहब ने कह दिया, जाओ, चले जाते हैं।

'क्या रुपए और कपड़े नहीं मिले?'

"अभी नहीं मिले। चौधरी साहब कहते हैं, इस वक़्त बचत में रुपए नहीं हैं। फिर आकर ले जाना।"

"कुछ नहीं मिला?"

"एक पैसा भी नहीं। कहते हैं, कुछ बचत नहीं हुई। मैंने सोचा था, कुछ रुपए मिल जायँगे, तो पढ़ने की किताबें ले लूँगा। सो कुछ न मिला। राह-ख़र्च भी नहीं दिया। कहते हैं, कौन दूर है, पैदल चले जाओ।"

मुझे ऐसा क्रोध आया कि चलकर चौधरी को ख़ूब आड़े हाथों लूँ। वेश्याओं के लिये रुपए, सवारियाँ सब कुछ; पर बेचारे रामचंद्र और उनके साथियों के लिये कुछ भी

पिताजी ने मुँह की खाई, इसका निश्चय मैं नहीं कर सकता। मैंने केवल इतना देखा कि पिताजी ने एक अशर्फ़ी निकालकर आबादीजान को दी। उनकी आँखों में इस समय इतना गर्व-युक्त उल्लास था, मानो उन्होंने हातिम की क़ब्र पर लात मारी हो। यही पिताजी तो हैं, जिन्होंने मुझे आरती में ।) डालते देखकर मेरी ओर इस तरह से देखा था, मानो मुझे फाड़ ही खायँगे। मेरे उस परमोचित व्यवहार से उनके रोब में फ़र्क़ आता था, और इस समय इस घृणित, कुत्सित, निंदित व्यापार पर वह गर्व और आनंद से फूले न समाते थे।

आबादीजान ने एक मनोहर मुसकान के साथ पिताजी को सलाम किया, और आगे बढ़ी। मगर मुझसे वहाँ न बैठा गया। मारे शर्म के मेरा मस्तक झुका जाता था। अगर मेरी आँखों-देखी बात न होती, तो मुझे इस पर कभी एतबार न होता। मैं बाहर जो कुछ देखता-सुनता

नहीं ! जिन लोगों ने रात को आबादीजान पर दस-दस, बीस-बीस रुपए न्योछावर किए थे, उनके पास क्या इनके लिये दो-दो चार-चार आने पैसे भी नहीं हैं ? पिताजी ने भी तो आबादीजान को एक अशर्फ़ी दी थी। देखूँ, इनके नाम पर क्या देते हैं ! मैं दौड़ा हुआ पिताजी के पास गया। वह कहीं तफ़तीश पर जाने को तैयार खड़े थे। मुझे देखकर बोले—"कहाँ घूम रहे हो ? पढ़ने के वक़्त तुम्हें घूमने की सूझती है ?"

मैंने कहा—"गया था चौपाल। रामचंद्र विदा हो रहे थे। उन्हें चौधरी साहब ने कुछ नहीं दिया।"

"तो तुम्हें इसकी क्या फ़िक्र पड़ी है ?"

"वह जायँगे कैसे ? पास राह-ख़र्च भी तो नहीं है।"

"क्या कुछ ख़र्च भी नहीं दिया ? यह चौधरी साहब की बेइंसाफ़ी है।"

"आप अगर २) दे दें, तो मैं उन्हें दे आऊँ। इतने में शायद वह घर पहुँच जायँ।"

पिताजी ने तीव्र दृष्टि से देखकर कहा—"जाओ, अपनी किताब देखो। मेरे पास रुपए नहीं हैं।"

यह कहकर वह घोड़े पर सवार हो गए। उसी दिन से पिताजी पर से मेरी श्रद्धा उठ गई। मैंने फिर कभी उनकी डाँट-डपट की परवा नहीं की। मेरा दिल कहता, आपको मुझे उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। मुझे उनकी सूरत से चिढ़ हो गई। वह जो कहते, मैं ठीक उसका उलटा करता। यद्यपि इससे मेरी ही हानि हुई, लेकिन मेरा अंतःकरण उस समय विप्लवकारी विचारों से भरा हुआ था।

मेरे पास दो आने पैसे पड़े हुए थे। मैंने पैसे उठा लिए, और जाकर शरमाते-शरमाते रामचंद्र को दे दिए। उन पैसों को देखकर रामचंद्र को जितना हर्ष हुआ, वह मेरे लिये आशातीत था। टूट पड़े, मानो प्यासे को पानी मिल गया।

वही दो आने पैसे लेकर तीनों मूर्तियाँ विदा हुईं। केवल मैं ही उनके साथ क़स्बे के बाहर तक पहुँचाने आया।

उन्हें विदा करके लौटा, तो मेरी आँखें सजल थीं; पर हृदय आनंद से उमड़ा हुआ था।

प्रेमचंद

बादशाह औरंगज़ेब और शाहज़ादे अकबर का पत्र-व्यवहार *

जिस समय जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंहजी प्रथम का स्वर्गवास होने पर बादशाह औरंगज़ेब ने मारवाड़ पर अधिकार कर लिया था, उस समय राठौड़-वीरों ने अपने बालक महाराज अजीतसिंहजी को पहाड़ों में छिपाकर मारवाड़ में आए हुए मुसलमान-अधिकारियों पर आक्रमण शुरू कर दिया। धीरे-धीरे जालौर आदि पर राठोड़ों का अधिकार हो गया। यह देख वि० सं० १७३६ में स्वयं औरंगज़ेब को अजमेर आना पड़ा। कुछ दिन बाद उसने अपने पुत्र शाहज़ादे अकबर को मारवाड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। उसी के अनुसार जब उक्त शाहज़ादा अपने दलबल-सहित मारवाड़ में पहुँचा, तब राठोड़ों ने उसे बादशाह बनाने का प्रलोभन देकर अपनी तरफ़ मिला लिया। उस समय बादशाह के पास बहुत ही कम सेना थी, और उसके दूसरे पुत्र भी, जिनको उसने राठोड़ों को दबाने के लिये पहले से ही बुला भेजा था, अब तक दक्खिन और बंगाल से नहीं आए थे। यह देख उसने पहले तो पत्र द्वारा अकबर को धोका देने की कोशिश की, परंतु जब इसमें सफलता नहीं हुई, तब उसने एक कपट-पूर्ण पत्र लिखकर राठोड़ों की सेना में पहुँचवा दिया। इससे वे लोग असमंजस में पड़ गए, और अकबर को दक्षिण होते हुए ईरान की तरफ़ भागना पड़ा।

उस समय होनहार बाप और सपूत बेटे में जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसका अनुवाद माधुरी के पाठकों के अवलोकनार्थ आगे दिया जाता है—

बादशाह औरंगज़ेब का पत्र शाहज़ादे अकबर के नाम

"प्यारा बेटा आँखों का उजाला प्राणों के समान अथवा उनसे भी अधिक प्यारा विशेष कृपाओं से परिपुष्ट होकर

* इन पत्रों की नक़लों के प्राप्त करने में हमें कुं० जगदीशसिंह गहलोत से बहुत सहायता मिली है।

जाने, परमेश्वर साक्षी है कि हम उस पुत्र को सब पुत्रों से विशेषकर प्यार करते थे, और उसके धन तथा प्राणों की भलाई और सुख-शांति सदा हमारे उदार चित्त की अभीष्ट थी; परंतु वह अपनी कुपुत्रता से राक्षसी काम करनेवाले राजपूतों की धोकेबाज़ी से आदम के समान मा की गोद और बाप की बग़ल से निकलकर कंबख़्ती के जंगल और पहाड़ में भटकने लगा है, और कहता फिरता है कि क्या उपाय करूँ, और कौन-सा षड्यंत्र रचूँ । उसके व्याकुल फिरने, भटकने और भूकों मरने का दुःखद और बुरा हाल सुनकर मन में बहुत ही शोक और संताप होने लगता है। यहाँ तक कि शरीर का मज़ा भी कड़वा हो गया है । हाय-हाय ! बादशाही और शाहज़ादगी का मान और गौरव तो कहीं रहा, हज़ार शोक और संताप है कि उस भोले-भाले बेटे को अपनी जवानी पर भी तरस नहीं आया, और न जोरू-बच्चों का ही मोह किया, जो अपने को पशुओं की-सी आकृति और हिंसक जंतुओं की-सी प्रकृतिवाले राजपूतों की क़ैद में डालकर गँवारों के वश में पड़े गेंद के समान गिरता-पड़ता भटकता हुआ चारों तरफ़ लुढ़कता है । पिता की प्रीति पुत्रों के प्रति स्वाभाविक ही होती है । उस पुत्र से बड़े अपराध हुए हैं, तब भी हम नहीं चाहते कि वह अपनी करनी के अनुसार दंड का भागी हो ।

'यदि पुत्र राख का ढेर है (तब भी) मा-बाप के आँखों का अंजन ही है[1] ।'

हो गया सो हो गया । पर अब भी जो भाग्य का मार्ग दिखाने से अपने कुकर्मों का पश्चात्ताप करके सेवा में उपस्थित हो जाय, तो उसके अपराधों के दफ़्तर पर क्षमा की क़लम फिरा दी जायगी, और जिन कृपाओं और पुरस्कारों का विचार भी उसके मन में न हुआ होगा, वे ही उसके लिये प्रकट होंगे । यद्यपि उन कृपाओं के प्रकाशित होने के लिये उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है, तथापि उसके अपयश का भंडा फूट गया है, और उसकी आवाज़ सब छोटे-बड़े पुरुषों के कानों में पहुँच चुकी है, इसलिये उचित यह है कि एक बार हुज़ूर में हाज़िर होकर इस बदनामी का कलंक अपने सिर से उतार दे । जसवंत ने, जो इन लोगों का सरदार था, जो कुछ बर्ताव दाराशिकोह के साथ किया, और जैसा साथ दिया, वह इतना प्रकट है कि उसके कहने की आवश्यकता नहीं है । उस पुत्र ने उनके कहने के भरोसे जो ख़याली पुलाव पकाया है, उसका फल पछताने के अलावा और कुछ न मिलेगा । इसको निश्चय समझ ले । अधिक श्रद्धा और सुमार्ग (उसको) प्राप्त हो ।"

शाहज़ादे अकबर का औरंगज़ेब को उत्तर

"सब पुत्रों से छोटा मोहम्मद अकबर विनय-पूर्वक दोनों लोकों में पूज्य (पिताजी) की सेवा में निवेदन करता है कि बहुत बड़ा फ़रमान, जो इस सबब से छोटे पुत्र के नाम लिखा गया था, बहुत अच्छे समय और शुभ मुहूर्त में पहुँचा । अधीनता की विधि का प्रतिपादन करके उसकी कालस को अंजन के समान ज्ञान की ज्योति में आँज लिया, और उसके कृपामय आशय को जानकर हृदय को प्रकाशित किया । शिक्षा देनेवाली कृपालु लेखनी से जो कई उपदेश टपके थे, उनमें से प्रत्येक के उत्तर में कुछ थोड़ा-थोड़ा निवेदन किया जाता है, जो यथार्थ ही है, और न्याय से मिलान करने पर भी (उससे) दूर न होगा । (आपने) लिखा था कि हम उसको सब पुत्रों से अधिक प्रीति से रखते थे । उसी ने अपनी कुपात्रता से अपने को इस बड़ी उदारता से विमुख करके अज्ञान के भँवर में डाल दिया । (पर) बाहर और भीतर के बादशाह सलामत ! जैसे पिता को प्रसन्न रखना और उसकी सेवा करना पुत्र का कर्तव्य है, वैसे ही पालन-पोषण करने, शिक्षा देने और धन तथा प्राणों का भला चाहने के कई हक़ पुत्र के भी पिता के ऊपर हैं । परमेश्वर को धन्यवाद है कि अब तक मैंने सेवा और अधीनता में कुछ कसर नहीं रक्खी है । पर हज़रत की कृपाओं का कहाँ तक वर्णन किया जाय, हज़ार में से एक और बहुत में से थोड़ा-सा निवेदन किया जाता है कि छोटे पुत्र की सहायता और पक्षपात पूज्य पिता का मुख्य कर्तव्य सदा और सब जगह है । परंतु हज़रत ने उसके विरुद्ध सब पुत्रों की प्रीति को त्यागकर और बड़े पुत्र को शाह की पदवी देकर युवराज बना लिया है । यह बात कौन-से न्याय में समझी जाय ? पिता के धन में सब पुत्रों का समान भाग होता है । केवल एक को बढ़ाना और दूसरे को गिराना किस धर्म का विधान है । सच्चा और सर्वज्ञ बादशाह तो दूसरा ही है, जिसके बल और विज्ञान के कार्यालय में तर्क-वितर्क का प्रवेश नहीं है । बढ़ाना और गिराना उसकी आज्ञा के अधीन है । यह चातुरी

---

[1] ' ' कामाओं में दिए हुए वाक्य पत्रों में कविता के रूप में हैं ।

से ख़ाली नहीं होती। परंतु हज़रत की धर्म-निष्ठा न्याय और ज्ञान-दृष्टि का क्या कहना है, वह तो जगत्प्रसिद्ध है।

'देखिए, प्रियतम किसको चाहता है, और किसकी तरफ़ झुकता है।'

इस मार्ग के गुरु और आचार्य वास्तव में हज़रत ही हैं। जो मार्ग हज़रत ने निकाला है, वह क्योंकर कुमार्ग कहा जा सकता है?

'जब मेरे पिता ने स्वर्ग के बग़ीचे को दो गेहूँओं में बेचा, तब यदि मैं उसे एक जौ में न बेचूँगा, तो कपूत ठहरूँगा।'[1]

'सपूत पूत वही है, जो ठीक पिता के मार्ग का अनुसरण करे'। 'यदि पिता की संपत्ति चाहता है, तो पिता की-सी शिक्षा ग्रहण कर[2]।'

हज़रत सलामत, मर्दों ने दुःख और कष्ट ही सहे हैं। हज़रत साहब किराँ[3] और अर्श[4] आशियानी-जैसे अगले बादशाह कष्ट उठाकर ही अपनी मनोकामनाओं को प्राप्त हुए हैं।

'जो कोई दुःख न सहेगा, किसी सुख का अधिकारी न होगा।'

ऐतिहासिक ग्रंथों से प्रकट होता है कि जब तक अँधेरे का कष्ट न सहे, अमृत का स्वाद न ले। जो दुःख न सहे सुख का फल न खावे; क्योंकि फूल बिना काँटे के और ख़ज़ाना बिना सर्प के नहीं होता।

'राजलक्ष्मी को वही अपनी बग़ल में लेकर दबाता है, जो तीक्ष्ण खड्ग के ओष्ठ का चुंबन करता है।'

जब कि प्रत्येक दुःख के पीछे सुख होता है, तब दीन-दयालु कर्ता (परमात्मा) की कृपा से पूर्ण आशा है कि कुछ ही दिनों में मनोकामना पूर्ण होने का ढंग प्रकट हो तथा व्याकुलता और दौड़-धूप मनोरथ-सिद्धि और प्रसन्नता में बदल जाय।

लिखा था कि जसवंत ने, जो उस जाति का नायक था, दाराशिकोह का जैसा साथ दिया, वह जगत्-प्रसिद्ध है, और इस जाति की प्रतिज्ञा और कथन विश्वास करने लायक़ नहीं है, सो हज़रत ठीक ही फ़रमाते हैं। परंतु बात के वास्तविक मर्म को नहीं पहुँचते; क्योंकि स्वयं मस्तिष्क ही नहीं रखते। दाराशिकोह वास्तव में इस जाति से द्वेष रखता था। इसी के परिणाम-स्वरूप उसने जो देखा, ठीक ही देखा। यदि प्रारंभ से ही वह इन लोगों से मेल-मिलाप रखता, तो उसका काम कभी उस अंतिम सीमा तक नहीं पहुँचता। वैकुंठवासी हज़रत अकबर शाह ने इन लोगों के साथ दृढ़ संबंध करके इन्हीं के बल-विक्रम से हिंदुस्तान-देश को विजय कर दृढ़ किया है, और यह वह जाति है कि जिसकी सहायता से महावतख़ाँ ने हज़रत जहाँगीर बादशाह को अपने वश में किया। इन लोगों की वीरता से ज़ाहिर है कि जब हज़रत (आप) राजधानी में मुकुट और सिंहासन की शोभा बढ़ा रहे थे, तब ३०० राजपूतों के हाथ से रुस्तम-जैसा और शूर-वीरों के अनुरूप जो काम हुआ है, वह सब लोगों में प्रकट और प्रसिद्ध है। जसवंत तो वही था, जो ऐन लड़ाई में हज़रत के साथ बहुत-सी बेअदबियाँ कर चुका था, और हज़रत ने जब अपने में उससे बदला लेने की ताक़त न देखी, तब जान-बूझकर टाल गए। यही जसवंत था कि हज़रत ने कितने ही मंत्रों और बहानेबाज़ियों से उसका मन मनाकर (उसे) दाराशिकोह का साथ देने से रोक रक्खा। इसी से आपकी विजय हुई। इन लोगों की नमक-हलाली (स्वामि-सेवा) धन्य है कि अपने साहबज़ादे[1] के वास्ते अपना मस्तक अर्पण करते हैं, और प्राण देने में भी कृपणता नहीं करते।

हिंदुस्तान के बादशाह! बड़े-बड़े शाहज़ादे और अमीर तीन वर्षों से सेवा[2] की खोज में हैं; परंतु अभी पहला ही दिन है। ऐसा होना उचित ही है; क्योंकि

---

१. मुसलमानों के धर्म में लिखा है कि ईश्वर ने आदम को उत्पन्न करके स्वर्ग में रक्खा था, और कह दिया था कि गेहूँ का फल न खाना। परंतु उसने गेहूँ खा लिया। इससे नाराज़ होकर ख़ुदा ने उसे मृत्युलोक में भेज दिया। फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि हाफ़िज़ शीराज़ी ने इसी आशय का एक शेर कहा है। उसका तात्पर्य यह है कि जब मेरे पिता ने ऐसा किया है, तब यदि मैं उससे बढ़कर न करूँ, तो कुपूत कहलाऊँ। हाफ़िज़ का वही शेर अकबर ने अपने पत्र में दिया है।

२. यह शेख़ सादी की शिक्षा है।

३. अमीर तैमूर।

४. अकबर बादशाह।

१. महाराज अजीतसिंहजी।

२. छत्रपति शिवाजी।

हज़रत के राज्य में वज़ीर बेबस हैं, अमीर अविश्वासी हैं, सैनिक अकर्मण्य हैं, मुंशी बेकार हैं, व्यापारी कंगाल हैं, और प्रजा नष्ट-भ्रष्ट है। दक्षिण-जैसा पृथ्वी पर का स्वर्ग का-सा देश पहाड़ और जंगल के समान निर्जन और उजड़ा हुआ है, और प्रसन्नता का घर बुरहानपुर, जो पृथ्वी के कपोल के तिल के समान है, लुटा-खुसा-सा हो रहा है। औरंगाबाद, जो हज़रत का नामराशी होने से सब नगरों में प्रधान है शत्रु-सेना[1] की लूट-मार से पारे के समान काँप रहा है। हाकिम घर पर और शत्रु प्रजा के सिर पर है। जहाँ इस प्रकार का अत्याचार होता हो, वहाँ की प्रजा बादशाह को आशीर्वाद देने और भला कहने में क्यों न असमर्थ होगी? पुराने घराने के तथा भले और कुलीन आदमी तो अज्ञात हैं, और राज्य के कार-बार और सलाह देनेवालों की डोर नीच और कमीने लोगों के हाथ में है। धुनियों, जुलाहों, साबुन बेचनेवालों और झाड़ू देनेवालों का ज़ोर है। ढीले कपड़े और छल-कपट के चोले पहननेवाले माला के नाम से शैतान का जाल हाथ में लेकर कई मसले (धर्म-कार्य) कहते हैं, और हज़रत उनको जिबराईल, मेकाईल और इसराफ़ील (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) के समान सखा, सचिव, मंत्री और मित्र मानकर अपना अधिकार उनके अधीन छोड़ बैठे हैं। वे गेहूँ दिखाने और जौ बेचनेवाले (ठग) इस प्रसंग से क़ाबू पाकर कबूतर के पर को सुरख़ाब का पर और घास को पहाड़ बताते हैं।

'शाह आलमगीर ग़ाज़ी की बादशाही में साबुन बेचनेवाले क़ाज़ी और सदर[2] हो गए हैं।'

'धुनियों और जुलाहों को यह घमंड है कि हम बादशाह की सभा के भेदों को जानते हैं।'

'कमीनों का यह ज़ोर है कि विद्वान् उनके द्वार पर शरण लेते हैं।'

'मूर्खों के हाथ में वह भुजबल है कि पंडित को भी कभी प्राप्त नहीं हुआ था।'

'परमेश्वर रक्षा करे—इस उपद्रव के समय घोड़े गधों की लातें खाते हैं।'

आपका हुक्म हवा में उड़ जाता है। न्याय और ज्ञान लुप्त हो गया है। राज्य के कर्मचारी बनिज और व्यापार करने लगे हैं, जो पदों को रुपयों से मोल लेते हैं, और कुवासनाओं के लिये बेचते हैं। जो कोई नमक खाता है, वही नमक-दान तोड़ता है। निकट है कि राज्य की नींव में छेद हो जाय। जब इस तरह का हाल देखने में आया और आपका स्वभाव सुधरते न देखा, तब लाचार होकर बादशाहों के-से उद्योग ने यह प्रेरणा की कि हिंदुस्तान के देश को दुष्ट और उपद्रवी लोगों के कूड़े-काँटों से साफ़ कर और विद्वानों को आगे बढ़ाकर अन्याय की जड़ उखाड़ दे। जिससे ईश्वर की सृष्टि सुखी और निश्चिंत होकर शांत चित्त से अपने-अपने कामों में लग जाय, तथा कीर्ति, जो दूसरा जीवन और अमर-पद है, संसार में बनी रहे। क्या ही अच्छा हो, जो हज़रत की ऐसी श्रद्धा उत्पन्न हो जाय कि हज़रत इस काम को अपने सबसे छोटे लड़के के अधिकार में छोड़कर मक्के-मदीने की परिक्रमा का पुण्य प्राप्त करने को तशरीफ़ ले जायँ, और संसार-निवासियों को अपनी प्रशंसा करनेवाला व आशीर्वाद देनेवाला बनावें। सारी उम्र तो हज़रत संसार के लोभ में, जो स्वप्न से अधिक अविश्वस्त और बादल की छाया से बढ़कर अस्थिर है, ख़र्च कर चुके हैं। अब यह ऐसा समय है कि कुछ परलोक की पूँजी भी जोड़ें, जिससे पिछले कर्मों का, जो तरुणावस्था में इस असार संसार के लोभ से पूज्य पिता और भरे-पूरे भाइयों के साथ किए गए हैं, प्रायश्चित्त हो जाय।

'साठ वर्ष हो गए हैं कि तू सो रहा है। यह कई दिन तो प्राप्त कर ले।'

इसके अलावा दूसरे उपदेशों के लिखने में जो कष्ट (आपकी) सुंदर लेखनी को हुआ है, उस साहस की बलिहारी है।

'तूने अपने बाप के लिये क्या भला किया है, जो अपने बेटे से वही आशा रखता है।'

'तू लोगों को तो बुद्धि सिखाता है, पर जो कुछ तू जगत् से कहता है, उसे (पहले) आप ही सुन।'

'जब तू अपना इलाज नहीं करता है, तब परोपदेश में चुप रह।'

और जो मेरे आने के विषय में लिखा, सो आने में तो पूरा सौभाग्य है। परंतु बाप और भाइयों के साथ क्या-क्या हुआ है, इस संबंध के हज़रत के बचपन से ही होनेवाले बड़े-बड़े उद्योगों का ध्यान आ जाने से अकारण कोप-

१. मरहठों की।

२. धर्माध्यक्ष।

भाजन हुए (मुफ़) को भय और संशय अपने स्थान पर उचित ही है। जो हज़रत ही कुशल-पूर्वक अपने चरणों को कष्ट दें, तो ये शंकाएँ शांति और मनस्तुष्टि में बदल जायँ।

'हम उस ऊँचे द्वार पर नहीं पहुँच सकेंगे; परंतु हाँ, जो बादशाहों की कृपा कई पैंड आगे बढ़ावे (तो उचित हो)।' (श्रीमान् के) आने पर जब चित्त शांत हो जायगा, तब शाही आज्ञाओं के पालन में दिलोजान से एहसान माना जायगा। उस अज्ञात दशा में—

'मार या क्षमा कर, मैं तो तेरी चौखट पर सिर रक्खे हूँ।'
मेरा क्या हुक्म, जो तेरा हुक्म हो, उसी पर हूँ।'
आगे आदर की सीमा है। बादशाही का सूर्य चमकता रहे।"

इन पत्रों से औरंगज़ेब के समय की राज्य-दशा का भी बहुत कुछ पता चलता है, और इससे मुग़लों की सल्तनत के पतन के कारणों का भी अनुमान किया जा सकता है।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

बेकारी





स्वरकार—कवि देवस्वामी] [शब्दकार—श्रीबलदेवजी

ध्रुपद—चौताला (विलंबित)

गीत

श्रीगणेश विघन-हरन, मंगल-सुखकारी ;
आदि-मंत्र को स्वरूप नाद-बिंदु-धारी।
नाग-बदन, एक-रदन, सिंदुर-सिंगारी ;
सिद्धि-बुद्धि चँवर करत भँवर गुंज भारी।
बुद्धिनाथ भाल चंद्र सोहत भुज चारी ;
बिधि-हरि-हर-रूप प्रगट तेरी छवि न्यारी।
देव-देव आनन धर जीव धरनिधारी ;
दोउन के मिलन ऊपर त्रिभुवन बलिहारी।

स्थायी

×		०		२		०		३		४	
नि		नि	सं								
ध	नि ध	सं	नि	ध	प	प		प	प	म	ग
श्री	ऽऽ	ग	णे	ऽ	श	वि	घ	न	ह	र	न

म											
ग	—	रे	ग	म	प	ग	—	रे	—	स	—
मं	ऽ	ग	ल	सु	ख	का	ऽ	ऽ	ऽ	री	ऽ

							|		नि		
स	—	स	म	ग	म	प	म	प	ध	सं	सं
आ	ऽ	दि	मं	ऽ	ग	को	ऽ	स्व	रू	ऽ	प

सं			म॑			म					
ध	—	प	म॑	प	ध	ग	म	रे	ग	म	प
मा	ऽ	दि	विं	ऽ	दु	धा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	री

अंतरा

×		०		२		०		३		४	
						नि	नि	नि			
प	ध	प	सं	सं	सं	सं	ध	सं	सं	सं	सं
ना	ऽ	ग	ब	द	न	ए	ऽ	क	र	द	न

								नि		म॑	
सं	—	सं	सं	सं	रें	सं	—	ध	—	प	—
सिं	ऽ	दु	र	सिं	ऽ	गा	ऽ	ऽ	ऽ	री	ऽ

					म॑					·	
म		ग									
ग	—	म	प	ध	प	सं	सं	ध	सं	सं	सं
सि	ऽ	द्धि	बु	ऽ	द्धि	च	व	र	क	र	त

ध	नि	प	म॑	प	प	ग	रे	ग	म	प	—
भँ	व	र	गुं	ऽ	ज	आ	ऽ	ऽ	ऽ	री	ऽ

(संगीत-समुच्चय से)

स्वर-लिपि के संकेत

(स्वर)

१. जिन स्वरों के नीचे बिंदु हो, वे मंद्र-सप्तक के, जिनमें कोई बिंदु न हो, वे मध्य-सप्तक के, तथा जिनके शीर्ष में बिंदु हो, वे तार-सप्तक के समझे जायँ। जैसे—सा, सा, सां।

२. जिन स्वरों के नीचे लकीर हो, उन्हें कोमल समझिए। जैसे—रे, गा, धा, नि। जिनमें, कोई चिह्न न हो वे तीव्र हैं। जैसे—रे, गा, धा, नि।

३. मध्यम कोमल का चिह्न 'मा' और मध्यम तीव्र का चिह्न 'मा' है।

(ताल)

१. सम का चिह्न × है, ताल के लिये अंक समझिए, और ख़ाली का द्योतक ० है।

२. ‿ इस चिह्न में जितने स्वर रहें, वे एक मात्रा में गाए या बजाए जायँगे। जैसे—सारे।

३. —यह दीर्घ मात्रा का चिह्न है। जिस स्वर या वर्ण के आगे यह चिह्न हो, उसे एक मात्रा-काल तक अधिक गाइए या बजाइए।



१. रूढ़ि में तथ्यांश

गुजरात, काठियावाड़, कच्छ और भारतवर्ष के ओर से छोर तक बसनेवाले नागर ब्राह्मणों में लड़के-लड़की के विवाह के समय एक रस्म अदा की जाती है। गुजराती भाषा में इस क्रिया को 'पूँखवूँ' कहा जाता है। वधू जिस समय विवाह कर जनवासे में प्रथम बार आती है, तब वर की माता यदि सौभाग्यवती हुई, तो वह दूलह-दुलहिन को पूँखती है। उसके अभाव में भौजाइ, चाची इत्यादि। गठजोड़ा बाँधे वर-वधू जनवासे के द्वार पर खड़े रहते हैं। सधवा माता उस समय परिछन की अन्यान्य रीति-भाँति के सिवा तीर, तकुआ, मूसल, गाड़ी का जूड़ा और रई—इन पाँच पदार्थों को—अनुक्रम से एक-एक को—एक के बाद दूसरे को—अपने आँचल—साड़ी के छोर—से ढाँककर उसकी नोक सात बार पहले अपनी नाक से लगाकर दूलह की नाक से और फिर इसी तरह अपनी नाक से लगाकर दुलहिन की नाक से लगाती है। ये पदार्थ-विशेष इस कार्य में आने के लिये बहुत छोटे-छोटे बनाए जाते हैं, और गृहस्थ के यहाँ पीढ़ियों तक रक्खे रहते हैं। काम आ पड़ने पर एक दूसरे से माँग भी लेता है। मैं नहीं कह सकता कि यह केवल लौकिक रूढ़ि है अथवा शास्त्र-मूलक; किंतु मैंने इसके साथ गुरुजी को जब मंत्रोच्चारण करते नहीं सुना, तब मान लेना चाहिए कि यह एक रूढ़ि है। यह सर्ववादिसम्मत सिद्धांत है कि हिंदुओं की कोई रूढ़ि बेमतलब नहीं होती। इसका उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट है। इस नई जोड़ी के गृहस्थाश्रम का प्रारंभ बस, उसी घड़ी से होता है। गृहस्थी के लिये इन पाँच चीज़ों की आवश्यकता होती है। जिसके घर में ये पाँचों पदार्थ काम में न आते हों, वह अधूरा है। तीर इस बात को प्रकट करने के लिये है कि गृहस्थ को आत्मरक्षा के लिये, अपनी गृहिणी की रक्षा के लिये, शस्त्र-विद्या में निपुण होना चाहिए, ताकि उसकी इज़्ज़त, उसके धन-धान्य और उसके शरीर पर किसी को हाथ उठाने का अवसर न मिले। इतिहास इसकी साक्षी देते हैं कि सैकड़ों वर्षों से "क़लम, करछी और बरछी"—ये तीन नागरों के जीविका उपार्जन करने के मुख्य पेशे हैं। देशी रजवाड़ों में—शाही ज़माने में—क़लम और शस्त्र की नौकरी करने के हज़ारों उदाहरण हैं। अब भी यही ख़ास पेशा है। करछी से मतलब रसोईदारी से है, और अब भी जो अपढ़ होते हैं, वे अपने जाति-भाइयों के यहाँ इस काम पर नौकरी करते हैं। ब्राह्मणों के छः कर्मों में से वेद पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना, इन तीन कर्मों के अनुसार वर्णाश्रम-धर्म पर दृढ़ता के साथ चलने के सिवा स्वजाति के सिवा अन्य का स्पर्श किया हुआ भोजन न करना—यह नागरों का अटल सिद्धांत है। और, इसीलिये यह पेशा भी एक पेशा मानना पड़ा है।

पाँच पदार्थों में से दूसरा नंबर तकुए का है। महात्मा गांधी के सिद्धांत के अनुसार इस रूढ़ि के ब्याज से सास अपनी पुत्र-वधू को यह शिक्षा देती है कि गृहस्थाश्रम के अन्यान्य आवश्यक कामों से निवृत्त होने के बाद यथा-वकाश उसे थोड़ा-बहुत सूत अवश्य कातना चाहिए। अँगरेज़ी की एक मसल है—"जो कुछ काम नहीं करता, वह पाप करता है।" यद्यपि इन दिनों मेरे देखने और सुनने में नहीं आया, और पुराने समय की जो बातें बड़े बूढ़े या बड़ी बूढ़ियों से सुनने में आई हैं, उनसे भी कहीं पता नहीं चलता कि सिद्धांत के सिवा कभी नागरों में सूत कातने का रिवाज रहा हो। हाँ, इतना जानने में अवश्य आया है कि जब सास किसी कार्यवश बहू-बेटी को घर पर छोड़कर कहीं बाहर जाती थी, तब दाल और चावल मिलाकर उनके लिये छोड़ जाती थी, और कह जाती थी कि इनको अलग-अलग बीन रखना, ताकि घर में अन्य आवश्यक कार्य न होने की दशा में बहू-बेटियाँ ख़ाली पड़ी-पड़ी नींद में ख़र्राटे न लें।

गृहस्थ के यहाँ मूसल रखना इस बात का द्योतक है कि खाने के पदार्थों के कूटने-पीटने की बहू-बेटियाँ अभ्यस्त रहें। उन्हें घर के काम के लिये दूसरों का मुँह न ताकना पड़े। गाड़ी का जूड़ा (जिसे कंधों पर रखकर गाड़ी में बैल जोते जाते हैं) इस वास्ते है कि गृहस्थ के लिये सवारी घर की रखनी चाहिए। दही बिलोने की रई इस बात की शिक्षा देती है कि वास्तव में असल गृहस्थ वही है, जिसके यहाँ गो-पालन होता है। बिना गो-पालन के जिसके घर में गऊ नहीं, वह अधूरा है। श्रौत और स्मार्त कर्मों के लिये, वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा के लिये, आचार की पवित्रता के लिये और देश का—घर का—पैसा बचाने के लिये घर में एक-दो-चार गउएँ अवश्य रखना चाहिए। मेरे मित्र पंडित गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री का सतत उद्योग यद्यपि अभी तक अरण्य-रुदन की सीमा को पार नहीं कर पाया है, तथापि मुझे भरोसा है कि उनका उद्योग हार्दिक है; उन्हें अवश्य सफलता मिलेगी, और वह हिंदुओं का, देश का, सच्चा उपकार करके अपना नाम भारतवर्ष के इतिहास में अमर कर जायँगे।

इन पाँचों चीज़ों के लिये यह मेरी अटकल है। मैं नहीं कह सकता कि यह ख़याल कहाँ तक सही है। यदि पत्र के पाठक-पाठिकाओं में से कोई महाशय इसका और मतलब निकालें, तो उन्हें प्रकाशित करना चाहिए। मेरे विचार से यही इस रूढ़ि का तथ्यांश है।

लज्जाराम मेहता

× × ×

२. तू

मिला न तू, तेरी तसवीर समाई दिल में ;
आरज़ू-दीद तेरी दिल ने जगाई दिल में।
हिज्र में तेरे परेशाँ न करें मुझको रक़ीब ;
तेरी तसवीर ही जब दिल ने बनाई दिल में।
क्यों कहें, किससे कहें, भाता है तू क्यों मुझको ?
तेरी तसवीर ही जब दिल ने चुराई दिल में।
तू है बेनाज़, मगर मैं हुआ नाज़ाँ तुझ पर ;
पस, इसी से तेरी तसवीर चुराई दिल ने।
यह सही है कि तू कहलाता है चितचोर बड़ा ;
पर किसी ने तेरी तसवीर चुराई दिल में।
मुकट की शान पै क़ुरबान हो गया काफ़िर ;
डर ही क्या यार की तसवीर चुराई दिल ने।

बलभद्र

× × ×

३. साध

तेरी वीणा की स्वर-लहरी कानों को खींचे निज ओर;
जिसे श्रवण करते-करते ही नाच उठे मेरा मन-मोर।
अंधकार से युक्त निशा जब तेरी नीरव महिमा को—
गाती हो, तब मैं भी गाऊँ हो करके आनंद-विभोर।
जब अनंत अंबर में आकर ढूँढ रहा हो तुमको चंद्र;
तब मैं भी उसका साथी हो प्राप्त करूँ तव करुणा-कोर।
जब विकसित सौंदर्य तुम्हारा फूलों पर हो बरस रहा;
तब मेरी प्यासी आँखों में तेरी छवि की उठे हिलोर।

"चातक"

× × ×

४. आ

(१)

आ, इन आँसू की झड़ियों में आ मेरी हरियाली आ ;
आ, इस कंटकमय डाली में फूल खिलानेवाली आ।
आ, विपदा की घोर घटा में मार्ग दिखानेवाली आ ;
अंतरतम के अंधकार में दीप जलानेवाली आ।

(२)

देख न पाए सुख क्या है, उस सुख की मृदु घड़ियाँ हैं क्या ;
देख न पाए, पाटल क्या, पाटल की पंखड़ियाँ हैं क्या ?

उस अतीत की मधुर स्मृति में आ आँसू की झड़ियाँ आ ;
झुकी हुई निर्धन की ग्रीवा में मोती की लड़ियाँ आ ।

(३)

कब से बहता ही आता है, देखो, पुतली श्वेत हुई ;
गुप्त हीर * की खेल, कनक-रज, देखो कैसे रेत हुई ।
आ मेरे विप्लव-गीतों की जलती अंतिम कड़ियाँ आ ;
प्रेम-राज्य का अपराधी हूँ कंचन की हथकड़ियाँ आ ।

रामसिंहासनसहाय श्रीवास्तव्य "मधुर"

× × ×

५. मिस्टर 'क' का भारी भ्रम

कुछ दिनों से कुछ पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान हिंदी-साहित्य के अध्ययन की ओर आकर्षित हुआ है, यह बड़े हर्ष की बात है। इनमें कुछ विद्वान् तो ऐसे हैं, जिन्होंने स्वयं हिंदी-भाषा एवं उसके साहित्य का अवलोकन भली भाँति किया है। पर कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने स्वयं तो अध्ययन नहीं किया; परंतु उत्साही इतने हैं कि अन्य ग्रंथों के आधार पर हिंदी-साहित्य पर आलोचनात्मक ग्रंथ लिखने का परिश्रम स्वीकार कर लेते हैं। इन सज्जनों में मिस्टर एफ़० ई० के०, एम्० ए० (F. E. Keay, M. A.) भी एक हैं। आपने दि हेरिटेज ऑफ़ इंडिया सिरीज़ (The Heritage of India Series) में हिंदी-साहित्य के इतिहास पर एक पुस्तक अँगरेज़ी में प्रकाशित की है। यह पुस्तक अपने ढंग की अच्छी है, और पाश्चात्य विद्वानों के बड़े काम की है। आपका प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है।

हमें केवल अपने यहाँ के पाठकों से निवेदन करना है। इसमें संदेह नहीं कि पाश्चात्य विद्वान् बहुत ही विचार तथा विवेक से काम लेते हैं, और अनेक असुविधाएँ होने पर भी अच्छा काम कर डालते हैं। पर उनका निर्णय हमारे लिये सदा और सर्वथा अनुकरणीय नहीं होता। कारण स्पष्ट है।

मिस्टर के ने हिंदी-साहित्य का इतिहास अच्छा लिखा है, और बहुत अंशों में उनकी समालोचना माननीय है। पर उन्होंने स्वयं तो साहित्य-ग्रंथों का अध्ययन किया नहीं, और न उन्हें हिंदी-साहित्य से विशेष रूप से परिचित होने का सौभाग्य ही प्राप्त हुआ। उन्होंने जो कुछ लिखा, वह अन्य ग्रंथों के आधार पर। अतः उनकी पुस्तक में अनेक स्थलों पर भ्रम हो जाना अप्रासंगिक नहीं। हम उनके विचारों तथा उनकी समालोचनाओं से अनेक स्थलों पर भिन्न मत रखते हैं। उन सबका यहाँ उल्लेख करना उनकी पुस्तक पर समालोचना हो जायगी, जो यहाँ असंबद्ध और असंगत होगी। यहाँ हमें केवल मिस्टर के का एक भारी भ्रम ही दिखाना अभीष्ट है।

अपनी पुस्तक 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' (History of Hindi literature) के पृष्ठ ४४ पर 'बिहारी' के संबंध में लिखते हुए आप 'बिहारी' के नाम पर एक 'पहेली' (Riddle) का उल्लेख करते हैं, जिसका अनुवाद आपने इंपीरियल गज़ेटियर ऑफ़ इंडिया, भाग २, पृष्ठ ४२३ से इस प्रकार उद्धृत किया है—

At even came the rogue, and with my tresses
Toyed with a sweet audace-with never a 'Please.'
Snatched a rude kiss-then wooed me with caressos
'who was it, dear?' Thy love? No, dear, the breeze.

यह पहेली तो अमीर ख़ुसरो की मुकरनी के ढंग की है। इसकी अंतिम पंक्ति का अर्थ है कि "हे प्रिये, वह कौन था, क्या तेरा प्रियतम ? नहीं प्रिये, वह हवा का झोंका था।"

अंतिम पंक्ति से ही यह भली भाँति स्पष्ट है कि बिहारी ने इसे लिखने का कभी प्रयत्न नहीं किया था। अब तक बिहारी के लिखे हुए केवल ७०० के लगभग दोहे और सोरठे मिलते हैं। परंतु उनमें कहीं किसी मुकरनी का पता नहीं चलता। बिहारी-सतसई के अतिरिक्त बिहारी का कोई अन्य ग्रंथ न अब तक मिला है, और न उसका नाम ही सुनने में आया है। ऐसी अवस्था में हमें यही मानने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि जिन पंक्तियों का अनुवाद गज़ेटियर से के महोदय ने उद्धृत किया है, वे किसी दूसरे कवि की लिखी हुई हैं, न कि बिहारी की। और, यदि के महाशय को बिहारी के किसी दूसरे ग्रंथ का पता लगा हो—जहाँ उनको बिहारी लिखित उपर्युक्त मुकरनी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो – तो हमारा उनसे अनुरोध है कि वह कृपा कर उसे प्रकाशित कर हिंदी का वास्तविक उपकार करने में सहायक हों।

* गुप्त हीर—यह एक खेल है। सोने की धूल में एक हीरे को छिपा देते थे, तब सब बालक अपनी-अपनी आँखें खोलते और हीरे को खोजते थे। निर्धनता से इस खेल का लोप हो गया। अब काठ की गुल्ली और धूल से खेलते हैं। और इसे 'धुस्सा' कहते हैं।—लेखक

हिंदी-पाठकों से हमारा यही निवेदन है कि पाश्चात्य विद्वानों के मत को आदर्श तथा संपूर्ण निर्भ्रांत न समझ लिया करें।

सत्यजीवन वर्मा
अयोध्यानाथ शर्मा

× × ×

६. कृष्ण-छवि-वर्णन

सुमन-सुरभि उतै, अंगराग-गंध इतै,
उतै छवि भारी, इतै मोरपख धारे री ;
बाँसुरी की धुनि तैसी बाजै "शितिकंठ" इतै,
जैसी उतै कैलिया कुहू-कुहू पुकारे री।
छूटि रहीं अलकैं पियारी घुँघरारी इतै,
झूमैं उतै मिलिकै मिलिंद मतवारे री ;
माँचोई मनोज उपजावत हिए मैं आजु,
आयो ब्रजराज ऋतुराज बेश धारे री।
उतै घनघटा, इतै तन की सलोनी छटा,
बीजुरी उतै है, इतै पीत पट भ्राजै री ;
केकिन के बृंद उतै, इतै मोरपच्छ धरे,
उतै घन-नाद, इतै बंसी धुनि गाजै री।
कहै "शितिकंठ" उतै बारि-बुंद, स्वेद इतै,
उतै बग पाँति, इतै मोती माल राजै री ;
को नहीं निहाल होत वाकी रूपरासि देखि,
बरसा को साजु घनस्याम आजु साजै री।
उतै नभ नील, इतै साँवरो सरीर, उतै,
मंजुल मयंक, इतै चंद्रिका सुहावै है ;
उतै नखतावलि, इतै हू बन-फूल धरे,
बाँसुरी बजाइ हिए हर्ष उपजावै है।
"शितिकंठ" बाग, बन सकल निकुंज माहिं,
मंद हँसी मिस चारु जोति बगरावै है ;
रचि रासमंडल तरनितनया के तीर,
सरद निसा से स्याम होड़-सी लगावै है।

ज्वालाप्रसाद मिश्र "शितिकंठ"

× × ×

७. संस्कृत-साहित्य में कामशास्त्र

बहुत दिन पहले माधुरी में श्री० संतरामजी बी० ए० के दो लेख छपे थे। एक था "नागरसर्वस्वम्" और दूसरा "संस्कृत साहित्य में कामशास्त्र का स्थान"। यों तो ये लेख मैं सरसरी तौर से पहले ही पढ़ चुका था; परंतु रद्दी बाज़ार से ख़रीदी हुई कुछ पोथियों को देखकर आज फिर उनका स्मरण हो आया। कहीं इस ढेर में कामशास्त्र की एकआध पुस्तक मिल जाय। आख़िर निराश होकर उठ ही रहा था कि एक पन्ना मिल गया। पहला श्लोक ठीक वही है, जिसे संतरामजी ने "कामसार"-ग्रंथ का प्रारंभिक श्लोक माना है। मेरे ग्रंथ का पहला श्लोक है—

इति परिमलसिन्धुः कामिनीकेलिबन्धु-
विदितभुवनमोदः साध्यमानप्रमोदः ;
जयति मकरकेतुर्मोहनस्यैकहेतु-
विरचितबहुसेवः कामिभिः कामदेवः।

एक या दो स्थान पर वर्ण-भिन्नता अवश्य है; परंतु उसे हम पाठांतर कह सकते हैं। अस्तु। इस प्रकार मैं यही समझ बैठा कि मुझे इसी कामसार-ग्रंथ का कुछ अंश मिला है। परंतु आगे बढ़ने पर भ्रम दूर हुआ। संतरामजी के कामसार में दूसरे ही श्लोक से विषय-विवेचन आरंभ हो जाता है। मेरी पोथी में दो और परिचयात्मक श्लोक हैं, और मैं समझता हूँ, कामशास्त्र के इतिहास की दृष्टि से वे अत्यंत महत्त्व पूर्ण हैं—

अस्ति प्रत्यहमर्थितापहरणस्तत्त्वैकदीक्षागुरुः
श्रीकण्ठार्चनतत्परो भुवि चतुःषष्टिः कलानां निधिः ;
सङ्गीतागमसत्प्रमेयरचनाचातुर्यचूडामणिः
प्रख्यातः कविशेखराश्रितपदः श्रीज्योतिरीशः कृती ॥२॥
दृष्ट्वा मन्मथतन्त्रमीश्वरकृतं वात्स्यायनीयं मतं
गौणापुत्रकमूलदेवभणितं बाभ्रव्य वा—(ग ?) मृतम्।
श्रीनन्दीश्वररंतिदेवभणितं मात्स्येन्द्रविद्यागमं
तेनानन्यत पञ्चसायक इति प्रीतिप्रदः कामिनाम् ॥ ३ ॥

इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि ग्रंथ के लेखक कोई ज्योतिषीश कविशेखर हैं। अंतिम चरण से ग्रंथ का नाम पंचसायक है, यह भी मालूम हो जाता है। पंचसायक का उल्लेख संतरामजी ने किया अवश्य है; परंतु उसके कुछ परिचयात्मक श्लोक नहीं दिए। मैंने स्वयं छपी पुस्तक देखी नहीं, अतः ऊपरी दो श्लोक यहाँ दे दिए गए हैं। इन श्लोकों से कामशास्त्र के छः आचार्यों के नाम मालूम होते हैं — ईश्वर, वात्स्यायन, मूलदेव, बाभ्रव्य, रंतिदेव तथा मत्स्येंद्रनाथ।

इनमें से वात्स्यायनाचार्य के प्रसिद्ध कामसूत्रों का वर्णन संतरामजी विस्तार-पूर्वक कर चुके हैं। आधार-

स्वरूप नव आचार्यों की जो सूची दी है, उसके 'नंदिन्' और मेरी पोथी के 'श्रीनंदीश्वररंतिदेव' एक ही होने चाहिए। इसी प्रकार सूची के 'गोणिकापुत्र' और श्लोक के 'गोणापुत्रकमूलदेव' भी एक ही जचते हैं। बाभ्रव्य का नाम दोनों स्थान पर एक ही-सा मिलता है। ईश्वर तथा मत्स्येंद्रनाथ, ये दो नाम वात्स्यायन-सूत्र के आधार-स्वरूप आचार्यों की सूची में नहीं हैं। और हों भी कैसे? मत्स्येंद्रनाथ विक्रम की नवीं शताब्दी के पहले तो हुए ही नहीं। खेद है कि इन मत्स्येंद्रनाथ का कामशास्त्र-विषयक कोई भी ग्रंथ न मिल सका। ईश्वराचार्य के मन्मथ-तंत्र का उल्लेख तो श्लोक ही में है। संभव है, संतरामजी ने जिस 'ईश्वरकामित' ग्रंथ का उल्लेख किया है, वह भी इन्हीं ईश्वर का बनाया हो।

संतरामजी ने नव आचार्यों की जो सूची दी है, उसमें एक नाम है 'कुचुमार'। इनका कामशास्त्र-विषयक एक ग्रंथ मदरास में उपलब्ध हुआ है। इसमें बीस-बीस पंक्तियों के १२ पृष्ठ हैं। लिपि तेलुगु होने के कारण रिपोर्ट में जो एक-दो अवतरण दिए हैं, वे पढ़ नहीं सका। एक स्थान पर देवनागरी में कुछ अवतरण मिले। उनसे ज्ञात होता है कि कुचिमार ने यद्यपि यह ग्रंथ संसार से विरक्त होने पर लिखा है, तो भी पूर्वाश्रम में आपने गृहस्थाश्रम भी खूब निबाहा होगा।

मदरास ही के प्राचीन ग्रंथ-संशोधकों को मिली हुई अन्य कुछ पुस्तकें भी संतरामजी की प्रस्तावित पुस्तक के लिये बहुत उपयोगी होंगी। उदाहरण के लिये मैं दो का उल्लेख किए देता हूँ। एक तो 'ईश्वराध्वरिणः पुत्र' वरदाचार्य-प्रणीत 'कामानंद' ग्रंथ है। यह पुस्तक 'बालबोधार्थम्' लिखी गई है। झूठी लज्जा और मर्यादा के वश हो अप्रत्यक्ष रूप से सहस्रों नवयुवकों का भविष्य बिगाड़ने-वाला हमारा समाज इस परम उपयोगी पुरातन प्रथा का पथिक कब बनेगा, परमेश्वर ही जाने।

हरिहर-कृत 'शृंगारभेदप्रदीपिका' का भी उल्लेख आवश्यक है। यह हरिहर वही हैं, जिन्होंने 'रतिरहस्यम्' लिखा है। दोनों 'रामविद्वन्मणिकुमारहरिहरनाम कविः' हैं।

इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध कवि बिल्हण का चरित्र तथा क्षेमेंद्र कवि-लिखित 'समयमात्रिक' भी कामशास्त्र ही संबद्ध पुस्तकें हैं।

हाँ, संतरामजी का एक कथन हमें ठीक नहीं जचता। 'अनंग-रंग' का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं कि इसका लेखक कल्याणमल्ल कलिंगदेशवासी ब्राह्मण था, और उस समय वहाँ अनंगभीम (उपनाम लदृदीव)-नामक राजा था। इस राजा ने सं० १२२६ में एक मंदिर बनवाया था। पहले तो हम कल्याणमल्ल और कलिंग ही का संबंध न जोड़ सके। बुद्धि को जचा नहीं कि उस समय कलिंगवासी अपने नाम के आगे मल्ल लगाते हों। परंतु यह कोई आधार तो है ही नहीं। अनंग-रंग पुस्तक की हस्त लिखित प्रति का एक दूसरा वर्णन मैंने पढ़ा तो मालूम हुआ कि मेरा संदेह निराधार नहीं है। उसमें 'लोदी वंश', 'अहमद पुत्र', 'लाड खाँ'-जैसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अतः स्पष्ट है कि कल्याणमल्ल किसी विलास-लोलुप यवन राजा को ही सिखाकर 'राजर्षि महाकवि कल्याणमल्ल' बने थे। संभवतः यह यवन राजा प्रसिद्ध लोदी वंश की किसी शाखा में उत्पन्न हुआ हो।

संभव है, संतरामजी को उपर्युक्त सब ग्रंथों का पता लग गया हो। परंतु एकाएक किसी नए क्षेत्र में उतरना कितना कठिन होता है, यह साहित्यसेवियों से छिपा नहीं है। फिर संदेह हो आने का एक कारण और भी है। संतरामजी का पिछला लेख छपे आज दो वर्ष से अधिक हो गए। इस बीच में आपका कोई अन्य लेख भी इस विषय पर नहीं देख पड़ा, और पुस्तक प्रकाशित होने की सूचना भी कहीं से नहीं मिली। अतः हमने अपना कर्तव्य समझा है कि जो ज्ञातव्य बातें हमें मिल सकीं, वे उनके सामने रख दें।

गोविंद-रामचंद्र चाँदे

× × ×

८. बरसात

संभु-सनमान सों कुपित कामदेव आजु,
नरन दलन चले दल के सहारे हैं;
बीजुरी कटार तोपगन नद नारे सब,
मोर-सोर मीत दल बजत नगारे हैं।
बान बुंद, पैदर हैं पादप प्रफुल्ल, पौन
सैन चतुरंग के तुरंग रथ सारे हैं;
बाजदार दादुर, मसालची प्रवीन इंदु,
मेघ मनमथ के मतंग मतवारे हैं।

श्रीसंत

× × ×

६. उन्मादरोग-चिकित्सा के विशेषज्ञ हकीम अशरतहुसैन साहब मालगुज़ार

पागलपन या उन्माद एक बड़ा भयंकर रोग है। मनुष्य की सुख-शांति विशेष कर उसके मन की आरोग्यावस्था पर ही निर्भर रहती है। मन के विकृत हो जाने से उसका जीवन भार-स्वरूप हो जाता है। मनुष्य-जीवन की सफलता के लिये स्वस्थ मन का होना अत्यंत आवश्यक है। पागल-पन या उन्माद मानसिक रोग है। यह महारोग है। इस रोग का रोगी स्वयं तो कष्ट पाता ही है, पर उसके कारण घर-भर के लोगों को भी कुछ कम कष्ट नहीं मिलता। वे पुरुष धन्य हैं, जो इस रोग की चिकित्सा करने में मनोयोगी हैं। वे विकृत मस्तिष्क को स्वस्थ बनाकर मानव-जीवन का जो कल्याण करते हैं, वह वर्णनातीत है। आज हम एक ऐसे ही परोपकारी पुरुष-रत्न का सचित्र संक्षिप्त परिचय माधुरी के पाठकों को दे रहे हैं। आपका शुभनाम हकीम सैयद अशरतहुसैन साहब है। मध्यप्रदेश के बिलासपुर-ज़िले के पूर्वी छोर में मोहनपुरा-नामक एक छोटा-सा ग्राम है। यही ग्राम आपका निवासस्थान है। इस ग्राम के स्वामी आप ही हैं। आपके पिता सैयद फ़रहतहुसैन साहब औरंगाबाद, गया से सन् १८५७ के बलवे के बाद संबलपुर आए। आप वहाँ डिप्टीकमिश्नर के सरिश्तेदार थे। उस समय मोहनपुरा-ग्राम ज़िला संबलपुर में ही लगता था। पर अब सन् १९०५ ई० से, जब बंग-भंग हुआ, संबलपुर ज़िले का यह भाग बिलासपुर के ज़िले में लग गया है।

सैयद अशरतहुसैन साहब की अवस्था लगभग ६५ वर्ष के होगी। आप उर्दू के सिवा हिंदी और उड़िया-भाषाएँ जानते हैं। उड़िया अंचल में रहने के कारण उड़िया-भाषा पर आपका अच्छा अधिकार है। उड़िया की कितनी ही कविताएँ आपको कंठस्थ हैं। आप बड़े ही विनयी, सरल, मृदुभाषी, अध्यवसायी एवं उद्योगशील हैं। आपको बचपन से ही चिकित्सा-कार्य में अनुराग है। आप यूनानी और आयुर्वैदिक, दोनों प्रकार की चिकित्साएँ करते हैं। यों तो आप प्रत्येक रोग की चिकित्सा कर सकते हैं; पर उन्माद-रोग की चिकित्सा के आप विशेषज्ञ हैं। आपने अपने यहाँ उन्मादरोगियों के लिये एक छोटा आश्रम-सा खोल रक्खा है। एक मकान है, उसमें दो-तीन कोठरियाँ हैं। जो रोगी आपके यहाँ चिकित्सार्थ आते हैं, वे वहीं रक्खे जाते हैं। ग़रीब रोगियों की चिकित्सा आप



उन्मादरोग-चिकित्सा के विशेषज्ञ हकीम अशरत-हुसैन साहब मालगुज़ार

मुफ़्त करते हैं। बल्कि उनके भोजनादि की व्यवस्था भी आप अपने ही ख़र्चे से कराते हैं। ग़रीबों पर उदार हकीम साहब की इस दया की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। रोगी चाहे हिंदू हो या मुसलमान, आप दोनों को एक ही दृष्टि से देखते हैं।

हकीम साहब कोई बहुत बड़े धनी व्यक्ति नहीं हैं, एक मध्यवित्त गृहस्थ ही हैं। फिर भी आप ग़रीबों की भलाई के लिये सदैव सचेष्ट रहते हैं, और परोपकार के इस महत् कार्य में यथाशक्ति व्यय भी करते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि प्रचुर-धन-संपन्न न होने पर भी लोक-हित की विशद इच्छा और प्रवृत्ति रखनेवाला मनुष्य बहुत कुछ लोकोपकार कर सकता है। पाठक देखें,

एक हकीम साहब हैं, और एक हमारे राजे-महाराजे, जो ऐश्वर्य और वैभव के अच्य विलासिता के पर्यंक पर लेटे हुए हज़ारों नहीं, लाखों का एक छिन में वारा-न्यारा किया करते हैं, रंडी भडुओं के लिये अपने को कल्पवृक्ष सिद्ध करते हैं। किंतु लोकोपकार और दीन-हित के ऐसे पुण्य-कार्यों के लिये इनके ख़ज़ाने में द्रव्य का हमेशा अभाव रहा करता है। यह कितने दुःख और परिताप का विषय है। इन्हीं के लिये कवि की यह उलहना है—संपति पूरे, अधूरे विवेक के, शान के कूरे विधान भुलावैं।

इस अंचल में हकीम साहब उन्मादरोग-चिकित्सा के लिये प्रसिद्ध हैं। इस प्रसिद्धि का कारण आपकी चिकित्सा की सफलता ही है। अनेक रोगी आपकी चिकित्सा से आरोग्य होते देखे गए हैं। आप घर पर आए हुए रोगियों का इलाज तो करते ही हैं, बुलाने पर बाहर भी जाते हैं। पर आप रोगी को अपने यहाँ पहुँचाने का विशेष आग्रह प्रकट करते हैं। जो कोई आपसे पत्र-व्यवहार करना चाहे, नीचे लिखे पते पर कर सकता है। सैयद अशरतहुसैन साहब हकीम और मालगुज़ार ग्राम मोहनपुरा डा० घ० पथुर Via जमगाँव, B.N.Ry., ज़िला बिलासपुर म० प्र०)। हकीम साहब के तीन पुत्र हैं। उनको भी चिकित्सा-विषय में बड़ा अनुराग है। वे अपने पिता को उनके कार्य में सब प्रकार की सहायता पहुँचाते हैं। हकीमजी अपने बड़े पुत्र को भी उन्मादरोग-चिकित्सा की शिक्षा दे रहे हैं।

ईश्वर इन उपकारी पिता-पुत्रों को दीर्घायु प्रदान करे, और उनको सब प्रकार सुखी एवं उन्नत बनावे, ताकि वे लोक-सेवा करने में सदा समर्थ हों, और पीड़ित ग़रीब-दुखियों का उनके द्वारा कल्याण साधित हो। यह अंतःकरण से प्रार्थना और शुभकामना है।

माधुरी का एक प्रेमी पाठक

× × ×

१०. माधुरी मूर्ति

मधुर मधुर मुसुकान मनोहर, मानव मुद-मन मोहत ;
श्याम, शुभ्र, शशि, शेष, शारदा, शार्ङ्ग-पाणि शुक शोभत।
अत्यानंद, अशोक, अकातर, अनुपम, अलख, अगोचर ;
मन-मंदिर में मन-मोहन, मानो मन-मथन मनोहर।
प्रेम पुंज, पयनिधि पर पौढ़त, पालक परम प्रफुल्लित ;
सत्यसिंधु, सुखसदन सदा, सानंद सौख्य सुर संचित।
जग-जीवन जल-जात-जात जो, जनक जानते जैसे ;
काल काल, कलिकाल-काल कर, काम काम के कैसे।
मधुर माधुरी मूर्ति मनन, मधु सूदन मधुवारि ;
हेरे हृदय हो हर्ष, हरे होनावस्था हरि।

"हृदय"

× × ×

११. प्रतिज्ञा-भंग *

रहिहौं अब गहाय, हरि ! रखि निज प्रन की लाज ;
कै अब भीषम ही यहाँ, कै तुम ही जदुराज।
सरनि ढाँपि रवि-मंडलहिं, सोनित-सरित अन्हाय ;
तेरी ही सौं, तोहिं, हरि ! रहि हौं अब गहाय।
तेरी ही सौं, युद्ध महँ, तेरे हो बल आज ;
हौं सांतनु-सुत मेटिहौं प्रन तेरो जदुराज।
इत पारथ-रथ सारथी, उत भीषम रनधीर ;
निलहु नाहिं टारे टरत, यह दोऊ प्रनबीर।
मुख स्रम-सीकर, अरुन दृग, रन-रज-रंजित केस ;
फहरत पट, गहि चक्र हरि, धायो सुभट सुवेस।
रज-रंजित कच, रुधिरजुत, झलकत स्रम-कन अंग ;
फहरत पट, गहि चक्र हरि, धायो करि प्रन-भंग।
समसरि कासों कीजिए, मिलत नाहिं उपमान ;
भीषम-सो भीषम भयो, इक भीषम ब्रतवान।

वियोगी हरि

× × ×

१२. लंदन का पत्र

प्रिय महाशय,

मेरे यात्रा-संबंधी लेख माधुरी में छप रहे हैं। उनके विषय में आपके पाठकों के जो पत्र मुझे मिले हैं, उन्होंने मुझे अपनी यात्रा के संबंध में एक पुस्तक लिखने के लिये उत्साहित किया है। इस पुस्तक में मेरा विचार अपनी इँगलैंड, योरप के भिन्न-भिन्न देशों तथा मिसर की यात्रा का वर्णन लिखने का है। यह पुस्तक मैं साधारण पाठकों तथा विद्यार्थियों के मनोरंजन एवं ज्ञान-वृद्धि के लिये लिखना चाहता हूँ। आपकी सुप्रसिद्ध पत्रिका के द्वारा मैं हिंदी-पाठकों से निवेदन करता हूँ कि वे कृपया अपनी सम्मति मेरे पास भेजें कि इस पुस्तक में किन-किन विषयों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। संभवतः मैं अधिकांश योरप बाइसिकिल पर घूमूँगा, जिससे मुझे

* अप्रकाशित 'वीर-सतसई' से।

वहाँ की जनता के रहन-सहन, आचार-व्यवहार, शील-स्वभाव का अधिक परिचय प्राप्त हो सके। जो सज्जन चाहें, वे निम्न-लिखित पते पर मुझसे पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। विलायती पत्रों पर ढाई आने का टिकट लगता है।

भवदीय

श्रीनारायण चतुर्वेदी

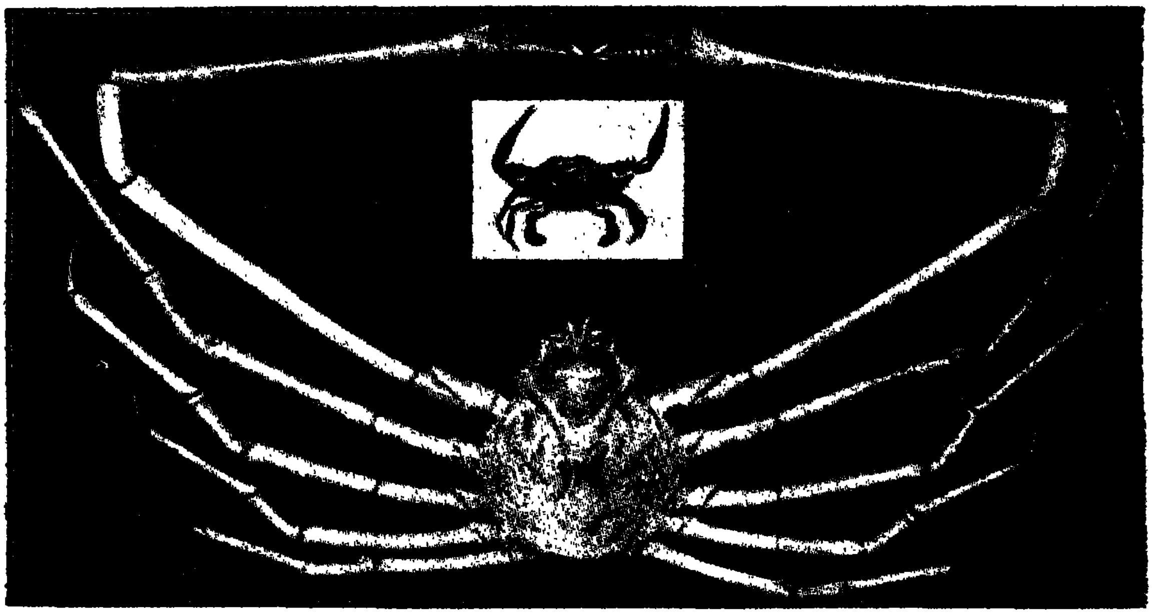
S. CHATURVEDI,
108 Bridge Lane.
Golders Green,
London, N. W. 11

× × ×

१३. सबसे बड़ी मकड़ी

मकड़ियाँ अनेक प्रकार की होती हैं, और वे भिन्न-भिन्न प्रकार से अपना भोजन प्राप्त करती हैं। जापान में एक मकड़ी होती है, जिसको केंकड़ा-मकड़ी कहते हैं। वह संसार की सबसे बड़ी मकड़ी कही जाती है। इस नोट के साथ जो चित्र है, वह उसी मकड़ी का है। मकड़ी के साथ एक केंकड़े का भी चित्र लिया गया था। दोनों की तुलना कीजिए, और अनुपात निकालकर सोचिए कि मकड़ी कितनी बड़ी होगी। स्मरण रहे, केंकड़ा स्वयं काफ़ी बड़ा होता है। इस मकड़ी की एक विशेषता उसकी मज़बूत काटनेवाली तथा विकराल पंजुलदार भुजाएँ हैं। वे १५-१५ फ़ीट लंबी होती हैं, और उनमें भयंकर घाव करने की शक्ति है। भुजाओं को छोड़कर उसके प्रत्येक ओर चार-चार टाँगें होती हैं, और उनके सिरों पर एक-एक काँटा भी। उसका मुख्य शरीर एक ओर की टाँगों की जड़ों से दूसरी ओर की टाँगों तक डेढ़ फ़ीट का होता है। यह मकड़ी उथली खाड़ियों के विशेष स्थानों में पकड़ी जाती है, और एक को पकड़ने में आधे दर्जन प्रवीण मछुओं की आवश्यकता होती है। सायंकाल को ज्वार के समय यह स्थल पर आती है, और भाटे के समय जालों में पकड़ी जाती है। कभी-कभी चतुर जापानी मछुए एक लंबे बाँस के सिरे पर एक फंदा-सा बना लेते हैं और उस पर रखकर बिना किसी भय के इसको किनारे ले आते हैं।

श्रीराम शर्मा



जापान की भयंकर केंकड़ा-मकड़ी

(इसके दो मज़बूत, काटनेवाली तथा विकराल भुजाएँ १५-१५ फ़ीट लंबी होती हैं)

× × ×

१४. प्राचीन आर्य ऋषियों का धर्म-प्रचार

भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनि इसी बात से संतुष्ट नहीं रहते थे कि वे अपने धर्म-ज्ञान को केवल अपने देश तक ही सीमा-बद्ध रक्खें। उनकी जीवनियों के पढ़ने से पता लगता है कि वे अपने धर्म-ज्ञान को विश्वव्यापी करना चाहते थे। राजों को जो यज्ञ कराए जाते थे, उनमें संसार के दूर-दूर देशों के विद्वान् और बलशाली मनुष्य आहूत होते थे। वहाँ के प्रतापी राजों को भी यही उपदेश होता था कि तुम अपने प्रताप को विश्वव्यापी बनाओ। अश्वमेध-यज्ञ इसी बात को तो पुष्ट करता है।

बौद्ध-भिक्षुकों ने तो भारतवर्ष से बाहर जाकर जावा, सुमात्रा, चीन, जापान तक अपना धर्म-प्रचार किया ही था; परंतु बुद्धदेव के बहुत समय पूर्व भी व्यास, काश्यप और शांडिल्य आदि ऋषि-मुनियों ने भारत से बाहर जाकर वैदिक धर्म का प्रचार किया था।

प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता विद्वान् एम्० ए० स्टीन ने मध्य-एशिया का भ्रमण किया। वहाँ बहुत-सी प्राचीन पुस्तकें तथा सिक्के आदि उन्होंने प्राप्त किए। उन्होंने Exploration in Central Asia नाम का एक बड़ा उत्तम ग्रंथ लिखा है। उन्होंने अपने एक लेख में लिखा है कि एक समय मध्य-एशिया में व्यास नाम का एक भारतीय विद्वान् आया था। उसने वहाँ के लोगों को शास्त्रार्थ में परास्त किया।

मुसलमानों की एक इतिहास की पुस्तक 'तवारीखे हबीबुल्ला' है। उसके पृ० ४८ में लिखा है कि मोहम्मद साहब की ३७वीं पीढ़ी-पूर्व मदीना में 'शांबल' नाम का विद्वान् अपने चार सौ शिष्यों समेत आया। उसने एक उपदेश-पत्र लिखकर दिया। इसी उपदेश-पत्र को लेकर मोहम्मद साहब ने क़ुरान का ज्ञान प्राप्त किया। यह उपदेश-पत्र 'ईमाननामा' (गुरुमंत्र) कहलाता है। यही ईमाननामा क़ुरान की प्रथम सूरत है। इसके नीचे समाप्ति में एक शब्द 'अलम्' लिखा है। इस शब्द के संबंध में अनेक टीकाकारों ने यही कहा है कि हम इस शब्द का अर्थ नहीं जानते। इस सूरत को सूरते फ़ातिहा कहते हैं। इसमें केवल ईश्वर से प्रार्थना है। यह बहुत छोटी सूरत है। इसमें ईश्वर को संसार का मालिक बताया गया है, और उससे प्रार्थना की गई है कि हम आपके ही सामने सिर झुकावें, आपसे ही सहायता माँगें। आप हमको दिखाओ सीधा रास्ता। इसी सूरत को 'उम्मुल क़ुरान' (क़ुरान की माता) भी कहते हैं।

अब विद्वानों का मत होने लगा है कि यह शांबल विद्वान् शांडिल्य ऋषि थे। ऋषि लोग प्राचीन काल में अपने शिष्यों समेत दूर-दूर घूमा करते थे। यह ईमाननामा (गुरुमंत्र) गायत्री-मंत्र का ही अर्थ है, जो उस समय की भाषा में लिखा गया था। गायत्री-मंत्र का अर्थ तथा इस उम्मुल-क़ुरान सूरते फ़ातिहा का अर्थ भी मिलता-जुलता है। हमारे ऋषि-मुनि भी गायत्री-मंत्र को वेदों की माता कहते हैं। 'छंदसां मातः' कहकर गायत्री की प्रार्थना की जाती है। अलम्-शब्द हमारे ऋषि-मुनि किसी लेख की समाप्ति में लिखा करते थे। इन सब बातों से पता लगता है कि 'शांबल' अवश्य शांडिल्य ऋषि ही होंगे। दूसरी बात यह भी है कि उस समय आर्यधर्म ईरान, काबुल, अरब और एशियामाइनर तक फैला हुआ भी था।

ईरान में तो प्राचीन काल में ठीक आर्य लोगों की भाँति चारों वर्ण माने जाते थे। 'दबिस्ताने-मज़ाहिब' नाम की फ़ारसी भाषा की एक पुरानी पुस्तक है। उसके पृष्ठ ८ पर लिखा है। यथा—

प्राचीन ईरानी जाति चार भागों में विभक्त थी। वे लोग इन विभागों को ईश्वर-कृत मानते थे। चार विभाग इस प्रकार थे—

प्रथम विभाग ज्ञानियों और विद्वानों का है। इनका यह कर्तव्य है कि धर्म की रक्षा करें, धार्मिक नियमों की मर्यादा बनाए रक्खें। इनका नाम 'बरमान' और 'बरमन' है। ये लोग एक प्रकार के उच्च कोटि के देवता के तुल्य होने से बरमान कहलाते हैं।

द्वितीय विभाग पहलवानों और राजों का है। ये लोग संसार की रक्षा एवं राज्य तथा न्याय के लिये उत्पन्न किए गए हैं। इनको 'चत्रमान', 'चत्रमन', और 'चत्री' कहते हैं। 'चत्र' का अर्थ वह चिह्न होता है, जो बड़े लोग रखते हैं। इसका अर्थ छाया करनेवाला भी है।

तृतीय विभाग उन लोगों का है, जो खेती तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के शिल्प-कार्य करते हैं। ये गुणी मनुष्य होते हैं। इन-का नाम 'बास' है। यह शब्द 'बिसयार'-शब्द से बना है, जो बहुत का वाचक है। ये लोग संख्या में बहुत होते हैं, और बहुत मनुष्यों से आगे रहते हैं।

'बास' का अर्थ बस्ती का भी है। बस्ती जो बनती है, वह इन्हीं लोगों से बन सकती है।

चतुर्थ विभाग अन्य लोगों की सेवा करनेवालों का है। इस भेदवाले मनुष्यों को 'सूदैन', 'सूदी' और 'सूद' कहते हैं। सूद-शब्द का अर्थ सुख है। चूँकि अन्य लोगों को इनसे सुख मिलता है, इसलिये इनका 'सूद' है।

इन शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत-शब्दों से होती है, इस बात को चाहे 'दबिस्ताने-मज़ाहिब' के कर्ता ने न जाना हो, परंतु एक संस्कृत का जानकार ठीक-ठीक बता सकता है कि ये शब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और वर्णरीयान के अपभ्रंश हैं।

उसी पुस्तक के पृष्ठ २० पर लिखा है—

प्राचीन ईरानी लोग कैवान आज़र, हरमुज आज़र, बहराम आज़र आदि सात प्रधान अग्नि-पूजा के बड़े-बड़े स्थान मानते थे। ये वही स्थान हैं, जिनको मक्का, मदीना, नजफ़, करबला, बग़दाद, सना और बलख़ बोला जाता है। मक्का में चाँद देवता की एक बड़ी मूर्ति थी, इसीलिये फ़ारसी लोग इसको 'माहगाह' कहते थे (माह का अर्थ है चाँद और गाह का अर्थ है गृह)।

अरब लोगों में 'ग' अक्षर नहीं होता, इसलिये ये लोग इसको शनैः-शनैः मक्का कहने लगे। इससे पता लगता है कि प्राचीन काल में आर्य वैदिक धर्म बहुत दूर तक फैला हुआ था, और वहाँ पर हमारे ऋषि-मुनि बराबर आते थे। अब से जाने में शिथिलता हुई, तभी हमसे वे देश गए।

बंबई के पारसी, जो प्राचीन ईरानियों की संतानें हैं, बंबई में बड़े-बड़े अग्नि-गृह रखते हैं। इनको ये लोग 'अग्यारी' कहते हैं। इन स्थानों के आसपास चंदन की लकड़ी की बहुत दूकानें रहती हैं; क्योंकि पारसी लोग चंदन को 'अग्यारियों' में ले जाकर जलाया करते हैं। वहाँ की अग्नि कभी बुझने नहीं पाती। परंतु खेद है कि हम वर्तमान के वर्णाश्रमी आर्य लोग ऐसा कोई स्थान नहीं रखते, जहाँ अग्नि हर समय प्रज्वलित रहे।

यहाँ के पारसी अपनी कमर में यज्ञोपवीत-रूपी एक डोरी भी बराबर रखते हैं।

क्या हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम पुनः अपने ऋषि-मुनियों की भाँति देश-देशांतरों में जाकर लोगों को शुद्ध करते हुए उन्हें आर्य-धर्म की दीक्षा दें?

भविष्यपुराण में काश्यप मुनि के संबंध में लिखा है। यथा—

मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपेनैव शासिताः।
संस्कृताः शूद्रवर्णेन पुनः ब्रह्मत्वमागताः।

(अर्थ) मिश्र-देश में होनेवाले म्लेच्छ लोग काश्यप मुनि द्वारा शुद्ध किए गए। उन्होंने शूद्र-वर्ण से ब्रह्मत्व प्राप्त किया। ये लोग इसी काश्यप मुनि के शासन में भी रहे।

यह भी लिखा है कि इन लोगों ने १० सहस्र की संख्या में शुद्ध होकर, शिखा-सूत्र धारण करके एवं वेदों को पढ़कर इंद्र देवता को यज्ञ द्वारा प्रसन्न किया। ये लोग इन्हीं ऋषि के साथ आकर आर्य-देश में बस गए। इनकी संख्या ४ कोटि तक बढ़ गई। काश्यप मुनि ने इनको शुद्ध करने की अभिलाषा से सरस्वती देवी से वर माँगा था। इन काश्यप मुनि के दश पुत्र उपाध्याय, अग्निहोत्री, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी और पांड्य 'यथानाम तथागुण' थे। इस समय यह भी पता नहीं चलता कि मिश्र-देश से आनेवालों की संतानों का क्या चिह्न है?

श्रीराम शर्मा

× × ×

१५. वेद में गोवध का निषेध

कभी-कभी हिंदुओं के विपक्षी यह तर्क करते हैं कि वेदों में गोवध का प्रतिबंध नहीं है। यदि निषेध होता, तो गोघ्न आदि शब्द क्यों पाए जाते? कभी-कभी इस प्रकार की शंका स्वयं भी उत्पन्न हो सकती है; परंतु यह निर्मूल है। वेदों में गोवध का स्पष्ट रूप से निषेध किया गया है। देखिए ऋग्वेद (अ० ६, अ० ७ व० ६ म० ८, अ० १० सू० १०२)—"माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।"

भाष्य—अस्मिन्नृचे गोः स्तूयते—या गौः रुद्राणां मरुतां माता जननी, वसूनां दुहिता पुत्र्यादित्यानां स्वसा भगिन्य-मृतस्य पयसो नाभिरावासस्थानं तामनागामनागसमदितिं मदीनां गां गोरूपां देवीं मा वधिष्ट हे जनाः मा हिंसिष्टेति चिकितुषे चेतनावते जनाय निवदानीं प्रवोचं। अहं प्रवोचं इति शुश्रूषमाणेभ्य उपदेशः।

इस मंत्र १५ में गौ की प्रशंसा करते हुए स्पष्ट उपदेश

है कि गऊ को हरगिज़ मत मारो । उसकी हिंसा मत करो । यह उपदेश आधुनिक नहीं, वेदों के समय से चला आता है ।

खड्गजीत मिश्र

× × ×

१६. जातीय व्यवहार में शिष्टाचार

जातिवालों और संबंधियों के साथ शिष्टाचार का पूरा पालन न करने से बहुधा आपस में वैमनस्य हो जाता है; इसलिये इन लोगों के साथ उचित व्यवहार करने में बड़ी दूरदर्शिता और सावधानी की आवश्यकता है। लोगों को चाहिए, जहाँ तक हो, अपनी जातिवालों और संबंधियों में धन, पदवी और विद्या के कारण ऊँचाई-निचाई का विशेष अंतर न मानें ; और सबके साथ प्रायः एक ही-सा प्रेम पूर्ण व्यवहार करें । जाति के साधारण-से-साधारण मनुष्य को भी इस बात का भान न होने पावे कि दूसरा मनुष्य मेरी हीनता के कारण मुझे तुच्छ समझता है । जातीय सभाओं में भी यथासंभव ग़रीब, अशिक्षित तथा साधारण स्थितिवाले व्यक्तियों को जान-बूझकर नीचा स्थान न दिया जाय । जाति के बड़े लोगों का यह कर्तव्य है कि वे अपने साधारण स्थितिवाले भाइयों को सुख-दुःख में उनके घर जाकर अपने प्रेम का परिचय दें । यदि ऐसा न किया जायगा, तो जाति-बंधन दृढ़ नहीं रह सकता ।

जातिवालों के यहाँ से किसी आवश्यक कार्य का निमंत्रण आने पर उसका पालन अवश्य किया जाय । यदि किसी विशेष कारण से निमंत्रण स्वीकृत करना इष्ट न हो, तो इसकी सूचना नम्रता-पूर्वक दे देनी चाहिए । किसी के यहाँ निमंत्रण में भोजन करते समय अथवा उसके पश्चात् रसोई के विषय में कोई कटाक्ष करना उचित नहीं, चाहे वह भोजन तुम्हारी रुचि के अनुकूल न हो । धनाढ्य लोगों को साधारण स्थिति के लोगों के यहाँ रुपए-पैसे का व्यवहार देने में सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि व्यवहार का परिमाण दूसरे मनुष्य की स्थिति के अनुसार हो, जिससे उसे यह न जान पड़े कि उस पर धन का व्यर्थ दबाव डाला जाता है । उसको दिए जानेवाले वस्त्र और दूसरे पदार्थ भी इतने बहुमूल्य न हों कि वह साधारण मनुष्य उनको धनवान् के धन की प्रदर्शिनी समझे । बातचीत में भी ऐसा कोई भेद-भाव न दिखाई दे, जिससे किसी को अपनी हीनता का अनुभव होने लगे, और उसके मन में खेद उत्पन्न हो । जातिवालों के यहाँ कम-से-कम दो एक महीने में एक बार अवश्य जाना चाहिए । उस मनुष्य के यहाँ हमें विशेषकर जाना आवश्यक है, जो हमारे यहाँ बहुधा आया करता है । यद्यपि किसी के यहाँ बार-बार जाना अशिष्ट समझा जाता है, तथापि उसके यहाँ कभी न जाना और अशिष्ट है ।

जातिवालों के यहाँ ग़मी में एक-दो बार अवश्य जाना चाहिए, और उनसे सहानुभूति-सूचक वार्तालाप करना चाहिए । यदि उनके यहाँ स्त्रियों के भी आने जाने का संबंध हो, तो ऐसे अवसर पर स्त्रियों का जाना भी आवश्यक है । इस अवसर पर किसी के यहाँ सवारी में बैठकर जाना उचित नहीं । पर यदि सवारी के बिना काम न चल सके, तो उसे उस स्थान से कुछ दूर पर छोड़ देना चाहिए, और वहाँ से उसके यहाँ पैदल जाना चाहिए । सारांश यह कि ऐसा काम न किया जाय, जिसमें बनावट या दिखावट दिखाई दे ।

त्योहारों के अवसर पर जातिवालों के यहाँ जाना बहुत आवश्यक है । ऐसे समय में इस बात की राह न देखना चाहिए कि जब कोई हमारे यहाँ आवेगा, तब हम उसके यहाँ जायँगे । यदि दोनों पक्षों के मन में ऐसे ही विचार एक ही समय उत्पन्न हों, तो उनका मिलना संभव भी नहीं हो सकता । त्योहारों में जातिवालों को भोजन कराना भी बहुत उपयुक्त है । विशेष कर बड़े लोगों को इन अवसरों पर छोटों को निमंत्रित करना चाहिए । इस प्रकार के सम्मेलन में जाति के मुखिया अपने जातिवालों को आवश्यक उपदेश भी दे सकते हैं, जिससे उनमें प्रचलित कुरीतियों का परिहार हो सके ।

यदि जाति में किसी मनुष्य पर संकट उपस्थित हो जाय, तो जातिवाले प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी शक्ति के अनुसार तन, मन, धन से उसकी सहायता करे । इस उपाय से अकाल, रोग, विप्लव, राज-दंड आदि के समय किसी भी जाति के लोग रक्षा पा सकते और अपने सहायक सजातीयों को पुण्य का भागी बना सकते हैं ।

यद्यपि जातीय पक्षपात कुछ सीमा तक उचित और शिष्ट समझा जाता है तथापि सीमा के बाहर इसका प्रचार त्याज्य है । कोई-कोई लोग यहाँ तक जातीय पक्ष-

बात करते हैं कि यदि उन्हें कोई पद या अधिकार प्राप्त हो जाता है, तो वे अपनी ही जातिवालों को नौकरियाँ दिलाते हैं। इस पक्षपात से केवल अनीति ही उत्पन्न नहीं होती, किंतु दूसरे लोगों का हक़ मारा जाता है, और बहुधा योग्य व्यक्तियों के बदले अयोग्य लोगों की नियुक्ति हो जाती है। इस प्रकार के पक्षपात के कारण कई लोगों को हानि उठानी पड़ी है।

जातिवालों और संबंधियों के यहाँ जाने के समय छोटे लड़कों के लिये कुछ मिठाई, खिलौने अथवा कपड़े आदि ले जाना आवश्यक है। पूज्य नातेदारों को रुपए की भेंट करना चाहिए। जहाँ बड़े लोगों के चरण छूने की चाल है वहाँ इस प्रथा का पालन किया जाय। यदि नातेदार के यहाँ उत्सव के अवसर पर जाने में कोई अड़चन आ जाय, तो उसके यहाँ किसी उपाय से व्यवहार का रुपया और कपड़ा अवश्य भिजवा दिया जाय। ऋतु के अनुसार, संबंधियों के यहाँ फल-मेवा आदि भेजना भी शिष्टाचार का लक्षण है। यदि धनाढ्य लोग अपने निर्धन जातिवालों और संबंधियों का विवाह और बालकों का यज्ञोपवीत करा दिया करें, अथवा उनकी शिक्षा में उचित सहायता दिया करें, तो ये काम केवल शिष्टाचार ही के नहीं, किंतु परम पुण्य के प्रकाशक भी होंगे।

किसी सगोत्रीय अथवा संबंधी के यहाँ कोई मृत्यु हो जाय, तो कम-से-कम एक बार उसके यहाँ प्रबोध करने के लिये शीघ्र और अवश्य जाना चाहिए। यदि कोई जातिवाला अथवा संबंधी किसी कठिन रोग में ग्रस्त हो जाय, तो उसकी ख़बर पूछने और चिकित्सा में यथाशक्ति सहायता देने के लिये भी दो-चार बार जाना आवश्यक है। ये बातें केवल शिष्टाचार की हैं; परंतु जो लोग किसी दुखित व्यक्ति के साथ अधिक भलाई करना चाहते हैं, उनका यह काम पुण्य, परोपकार और नीति का होगा।

अंत में एक बात विशेष महत्त्व की है, और वह यह है कि मनुष्य को मनसा, वाचा, कर्मणा किसी सजातीय का अपमान न करना चाहिए। कुछ लोग इस अनाचार की सफलता के लिये जी-जान से परिश्रम करते हैं, और उसकी सिद्धि पर फूले नहीं समाते। ऐसे लोगों को स्मरण रखना चाहिए कि "यद्यपि जग दारुण दुख नाना; सबतें कठिन जाति अपमाना।" लोग इस अपमान को सहसा नहीं भूलते, और उसका कड़ा बदला लेते हैं, जो कभी-कभी दूसरी पीढ़ी पर पहुँच जाता है। कहा भी है—

दुख-सुख से यह जग भरा, देखि हँसो मत कोय;
अजहुँ नाव दरियाव में, ना जाने क्या होय।

कामताप्रसाद गुरु



१. मधु-मक्खियों का राजा

मधु-मक्खी परिश्रम, कर्तव्यपरायणता, आज्ञापालन और संघटन की मूर्ति है। संसार का शिक्षित तथा सभ्य समाज मधु-मक्खी से सेवा भाव, शासन-पद्धति और अखंड ब्रह्मचर्य की शिक्षा ले सकता है। संसार में यदि राज्य शासन-प्रणाली कहीं लोक-प्रिय और आदर्श-स्वरूप है, तो मधु मक्खी के छत्ते में। रानी-मक्खी के सिवा बाक़ी सब मक्खियाँ बौद्ध भिक्षुओं की भाँति ब्रह्मचर्य-पालन करने का व्रत करती हैं। वे उस व्रत को अंत तक निभाती हैं, और कर्तव्य पर अपना जीवन होम देती हैं। रानी और प्रजा का पारस्परिक व्यवहार देखिए। प्रजावर्ग प्रतिक्षण अपने उपनिवेश-छत्ते के लिये मर मिटने को उद्यत है, और रानी की समृद्धि के लिये शहद एकत्र करने में सर्वदा तल्लीन रहता है। और, रानी? ऐसा आदर्श-शासक संसार में कहीं भी न मिलेगा। यद्यपि शहद की संपूर्ण राशि उसी की है, और यदि वह सब सामग्री को स्वयं ही व्यय कर दे, तो भी उसकी प्रजा कुछ न कहेगी; पर रानी अपनी प्यारी प्रजा के पसीने और ख़ून की कमाई का वही भाग लेती है, जितना उसे पेट भरने के लिये प्रतिदिन चाहिए। वह निरंकुश है; पर वह निरंकुशता धार्मिक और नैतिक है। छत्ते—उपनिवेश में न कोई क्रांतिकारी है, और न राज-विद्रोही। वहाँ पर न पुलिस का राज्य है, और न नरम और गरम का वादविवाद। तुलनात्मक राजनीति के अध्यापकों और जिज्ञासुओं ने न-मालूम इस शासन-प्रणाली को क्यों छोड़ दिया। हाँ, तो छत्ता एक छोटा पूरा राज्य है। छत्ते में तीन वर्ग हैं। छत्ते में रानी-मक्खी, काम करनेवाली मक्खियाँ और निखट्टू नर रहते हैं, जो कुछ कार्य नहीं करते और जो घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। शहद की मक्खियों पर अनेक पुस्तकें हैं। अमेरिका और इँगलैंड से अनेक पत्र-पत्रिकाएँ शहद की मक्खी के पालने और शहद के व्यापार पर निकलती हैं। भारतवर्ष से कदाचित् कोई भी पत्र इस विषय पर नहीं निकलता। हाँ, दो-एक किताबें तो हिंदी में इस विषय पर देखी गई हैं। पहाड़ी-प्रांतों में शहद की मक्खी को लोग पालते भी हैं। शहद की मक्खी कई प्रकार की होती है। इस लेख



दीपक-राग

[श्रीयुत न्हानालाल-चिम्मनलाल मेहता आई० सी० एस्० की कृपा से प्राप्त]

N K. Press, Lucknow.

में मैं शहद की मक्खी के भेद और उनके पालने के ढंग और शहद के व्यापार पर नहीं लिखता । इसमें तो केवल एक ऐसे व्यक्ति का सूक्ष्म वर्णन है, जो हज़ारों मक्खियों को अपने शरीर पर बैठा लेता है, अपने टोप में मधु-मक्खियाँ भरकर उसको अपने सिर पर रख लेता है, और वे उसको तनिक भी नहीं काटतीं । कितनी कट्टर और कैसी ही भयंकर मधु-मक्खियाँ हों, उस व्यक्ति से कुछ नहीं कहतीं । उनके छत्ते में वह हाथ डाल सकता है । वह उनको अपनी मुट्ठी में रख लेता है । नाक, कान और आँख तक पर बैठा लेता है । इसीलिये उसको शहद की मक्खियों का राजा कहते हैं । उसका नाम ई० आर० रूट है । संयुक्त-राज्य, अमेरिका में उसे 'मधु-मक्खियों का राजा' कहते हैं । वह कोई जादू-टोना नहीं करता । उसका मूल मंत्र है—"मधु-मक्खियों को अपनी सद्भावनाओं का निश्चय करा दो, और फिर उनसे बिल्ली के बच्चों की भाँति खेल लो ।" रूट साहब ने पंद्रह वर्ष तक ओहियो-युनिवर्सिटी में शहद की मक्खियों और शहद पर व्याख्यान दिए हैं, और अध्यापन का कार्य किया है । वह "ग्लीनिंग्ज़ इन बी-कलचर" पत्रिका के संपादक भी हैं । कहा जाता है, रूट महाशय ने सैकड़ों मक्खियों से हाथ धोए हैं । प्रायः वह मधु-मक्खियों को उठाकर अपने मुँह में रख लेते हैं, और मक्खियाँ उनके डंक नहीं मारतीं । लोगों ने जब रूट साहब की यह ख्याति सुनी, तो उन्होंने सहसा उस पर विश्वास न किया, और कहा कि रूट की मधु-मक्खियाँ विशेष ढंग से पाली गई होंगी । लोगों ने रूट को चैलेंज किया, और एक मक्खी पालनेवाले ने अपनी कट्टर मधु-मक्खियों पर प्रयोग करने को कहा । रूट कटिबद्ध हो गए । जनता के सम्मुख उन्होंने उस व्यक्ति की मधु-मक्खियों को उठाया, उठाकर टोप में और हाथों पर रक्खा । पर उन मधु-मक्खियों में से किसी ने उन्हें नहीं काटा । एक बार रूट ने घोषणा की कि किवानिस-नामक समिति को वह एक बार मधु-मक्खी द्वारा काटे जाने पर एक डालर देंगे । एक व्यक्ति अत्यंत कट्टर और ज़हरीली मधु-मक्खियों का झुंड लाया । रूट ने सबको पालतू बना लिया, उन्हें छुआ और उसे एक भी डालर नहीं देना पड़ा । रूट जब चाहते हैं तब मधु-मक्खियों को उड़ा देते हैं, और हाथ



मधु-मक्खियों के राजा मि० ई० आर० रूट

(दोनों चित्रों में रूट महाशय का टोप, कान, भुजा और सिर मक्खियों से आच्छादित है)

बैसनजी ह कहते—"बच्चो, मुझको देख हँसोगे ;
हँसते-हँसते पेट फटेगा लोट-पोट रो दोगे।
हँसने का तुम काम न करना कभी भूलकर भाई ;
अपना तो है काम बिगड़ता, होती बड़ी हँसाई।
उतनी ही बातें करो, जितनी है औक़ात ;
बिसनजी बदनाम हैं, कह-कह बढ़-बढ़ बात।

गुरुराम "भक्त"

× × ×

३. छोटे कल्लू और बड़े कल्लू

एक बार एक गाँव में दो आदमी एक ही नाम के रहते थे। दोनों का नाम कल्लू था। गाँववाले उनकी उम्र के हिसाब से उन्हें 'छोटे कल्लू' और 'बड़े कल्लू' कहकर पुकारा करते थे। छोटे कल्लू के पास केवल एक ही बैल था ; पर बड़े कल्लू के पास चार थे। खेत जोतने के लिये एक बैल से काम नहीं चल सकता, इस कारण छोटे कल्लू को बड़े कल्लू से बैल माँगने पड़ते थे। बड़ा कल्लू अपने चारों बैल छोटे कल्लू को सप्ताह में एक दिन के लिये दे देता था, और बदले में शेष छः दिन उसका बैल जोतता था।

एक दफ़ा छोटे कल्लू और बड़े कल्लू में झगड़ा हुआ। बड़े कल्लू को जो गुस्सा आया, तो उसने छोटे कल्लू के बैल को इतना पीटा कि वह बेचारा मर गया। छोटा कल्लू अपने बैल को बहुत चाहता था, इससे उसे उसके मरने का बड़ा दुःख हुआ। कई दिन तक वह उसके लिये रोता-पीटता रहा।

फिर वह उसकी खाल लेकर उसे बेचने के लिये दूसरे देश को गया।

एक दिन शाम हो गई ; पर उसे ठहरने के लिये कहीं बस्ती न दिखलाई पड़ी। देर तक भटकने के बाद उसे एक घर दिखलाई दिया। उसके बाहर सूखी घास के अंबारे लगे हुए थे, इससे मालूम होता था कि यह किसी किसान का घर है। छोटे कल्लू ने दरवाज़े की साँकल खटखटाई। एक औरत ने दरवाज़ा खोला, और आगंतुक से वहाँ आने का कारण पूछा। छोटे कल्लू ने कहा—"मैं एक थका बटोही हूँ। यदि आज रात-भर के लिये मुझे तुम्हारे यहाँ ठहरने का स्थान मिल जाय, तो बड़ी कृपा हो।" उस पर उसने कहा—"मेरा आदमी घर में नहीं है। मैं तुम्हें नहीं टिका सकती।" वह इतना थका हुआ था कि आगे बढ़ना उसके लिये असंभव था, इस कारण वह वहीं बाहर सूखी घास के ढेर पर पड़ रहा।

जिस स्थान पर वह पड़ा हुआ था, वहाँ से झोपड़े के टूटे छप्पर से भीतर का सारा हिस्सा दिखलाई पड़ता था। उसने देखा कि वह स्त्री बैठी खीर-पूड़ी उड़ा रही है। यह हाल देखकर उसकी लार टपक पड़ी ; पर उसे वह सामान भला कब नसीब था ?

थोड़ी देर बाद किसी ने बाहर की साँकल खट-खटाई। आवाज़ सुनकर उस स्त्री ने खीर-पूड़ी उठाकर चूल्हे के पीछे छिपा दी, और जल्दी से दरवाज़ा खोल दिया। इतने में आनेवाले का ध्यान छोटे कल्लू की ओर गया। उसने उससे घास पर लेटने का कारण पूछा। सारा हाल सुनकर उसने उसे भी झोपड़ी के अंदर बुला लिया। मालूम पड़ा कि वह घर का मालिक था। कल्लू अपना बोरा साथ लिए, जिसमें उसके बैल का चमड़ा था, भीतर गया।

थोड़ी देर बाद उस स्त्री ने कल्लू तथा अपने पति के सामने भोजन परोस दिया। पर अब खीर-पूड़ी का कहीं नाम भी न था। उसका स्थान बाजरे

उनको बुला लेते हैं। यह कोई रहस्य नहीं …हना है कि वह रानी-मक्खी को संदूक में ही …लिये अन्य मधु-मक्खियाँ दूर नहीं उड़तीं। …नी प्रतीत होती हैं, तब वह हाथ का इशारा देते हैं। मधु-मक्खियाँ हाथ के इशारे के कारण नहीं लौटतीं, वरन् इसलिये कि रानी उनके साथ नहीं होती। फिर भी पाँच हज़ार मक्खियों को पालना, बुलाना और अपने शरीर और टोप में बिना डंक खाए हुए रखना बड़ा ही आश्चर्यजनक है। यह ऐसा कार्य है, जिसको प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर सकता।

दूसरी विशेष बात रूट का मधु-मक्खियों का खिलाना है। वह उनको एक बाहन में खड़ा कर लेते और उनसे मीठा रस चटाते हैं। वे लगभग पाँच छटाँक रस को पंद्रह मिनट में चाट जाती हैं। उनके भोजन के उपरांत वह उन्हें नचाते हैं। जीवन-भर में केवल एक ही बार मधु-मक्खियों ने उन्हें काटा था। एक बार वह क्लीवलैंड में भाषण दे रहे थे। नियमानुकूल उन्होंने उपस्थित जनता में से किसी से टोप माँगा। उन्होंने अपने टोप का इसलिये उपयोग नहीं किया कि लोग यह न समझें कि उनके टोप में कुछ विशेष बात होगी। ज्यों ही उन्होंने उस टोप को अपने सिर पर रक्खा कि सैकड़ों डंक उनकी खोपड़ी में घुस गए। डंक मारने का कारण यह था कि उस टोप से तेल की गंध आती थी, और वह मैला था। रूट का कहना है कि रानी-मक्खी का स्वभाव स्त्रियों से किन्हीं अंशों में बहुत मिलता-जुलता है। दो रानी-मक्खियाँ साथ-साथ एक ही छत्ते में शांति-पूर्वक नहीं रह सकतीं। यह संभव है कि रानी और उसकी पुत्री कुछ सप्ताह तक शांति-पूर्वक एकसाथ रह लें। जब दो रानी-मक्खियाँ आपस में लड़ती हैं, तब वे एक दूसरे के केवल डंक ही नहीं मारतीं, वरन् स्त्रियों की भाँति एक दूसरे के बाल भी नोचती हैं।

रानी-मक्खी की शान मध्यकालीन इतिहास के शासकों तथा भारतीय देशी नरेशों की-सी होती है। उसके चारों ओर, छत्ते में, मुसाहबों और दरबारियों की भाँति मक्खियाँ सेवा के लिये रहती हैं। ये रानी की परिचारिकाएँ होती हैं। एक रानी मक्खी एक दिन में तीन सौ से तीन हज़ार तक अंडे देती है, और एक रानी एक॰ लाख मक्खियों की माता हो सकती है। रूट का कहना है कि मधु-मक्खियाँ फूलों से मधु नहीं लातीं। वे एक प्रकार का रस लाती हैं, जिसमें पानी मिला होता है। उसको लिए हुए वे कुछ देर उड़ती रहती हैं, फिर उसको छत्ते के छिद्रों में जमा कर देती हैं। मध्याह्न के उपरांत वे अपने पंखों से हवा करती हैं, जिससे रस का पानी भाप बनकर उड़ जाता है, और उनके शरीर की गरमी से मधु पक जाता है। तब वे आवश्यकतानुसार उस छेद को बंद कर देती हैं। आध-सेर फूलों का रस लाने के लिये लगभग बीस हज़ार मधु-मक्खियों की आवश्यकता होती है।

श्रीराम शर्मा

× × ×

२. "बित्तनजी"

बित्ता-भर के बित्तनजी हैं तीन हाथ की दाढ़ी,
चलने लगते जब बित्तनजी धूल चाटती दाढ़ी।
चूहे हैं दो बढ़िया घोड़े घास-पात की गाड़ी,
चढ़कर चलते जब बित्तनजी उड़ती फिरती दाढ़ी।"



बित्तनजी

की सूखी रोटी ने ले लिया था। किसान तो उसे बड़े चाव से खाने लगा, पर कल्लू को वह पसंद न आई। थोड़ी देर तक बैठे-बैठे वह टाल-मटोल करता रहा। अंत को उसने एक बड़ी अच्छी चाल चली। वह किसान से बोला—

"मित्र! जानते हो, मेरे बोरे में क्या है?"

किसान—"नहीं"

कल्लू—"उसमें एक जादूगर बंद है।"

किसान—"सचमुच? यह तो तुमने बड़े अचरज की बात सुनाई। उसकी मदद से कोई करतब भी दिखा सकते हो?"

कल्लू—"क्यों नहीं? अच्छा यह बाजरे की रोटी हटा दो। मैं तुम्हें अभी खीर-पूड़ी बनवाए देता हूँ।"

किसान ने रोटी फेंक दी, और बोला—"लो, मैंने तुम्हारा कहा किया, अब जल्दी खीर-पूड़ी दिलवाओ।"

कल्लू ने बोरे पर हाथ पटकना शुरू किया, और उसके अंदर से सूखे चमड़े के खड़खड़ाने का शब्द होने लगा। फिर वह बोला—"जादूगर कहता है कि चूल्हे के पीछे देखो।"

किसान ने जो चूल्हे के पीछे देखा, तो सचमुच खीर-पूड़ी निकली। दोनों ने भर-पेट खाई।

दूसरे दिन कल्लू जब चलने लगा, तो किसान ने उससे हाथ जोड़कर कहा—"भाई, मेरे ऊपर एहसान करो, अपना जादूगर मुझे दे दो। बाजरे की रोटी खाते खाते तो मेरा जी ऊब गया है। अपनी कमाई के सौ रुपए मैंने एक जगह पर गाड़ रक्खे हैं। वे सब तुम्हारी नजर कर दूँगा।" कल्लू ने उसका कहना स्वीकार कर लिया और रुपए लेकर चलता बना। गाँव पहुँचकर उसने उन रुपयों से दो बैल मोल लिए, और खेती करने लगा।

बड़े कल्लू ने जब यह हाल देखा, तो दिल में बहुत जला। जब उसने यह सुना कि बैल की खाल बेचने से उसे इतना लाभ हुआ है, तब उसके मुँह में पानी भर आया, और उसने सोचा कि यदि मैं भी अपने बैलों को मारकर उनकी खाल बेच डालूँ, तो बहुत-सा रुपया पा सकता हूँ। इस विचार से उसने अपने चारों बैल मार डाले, और उनकी खालें निकालकर बेचने चला।

चलते-चलते वह एक शहर में पहुँचा, जहाँ मोचियों की अनेक दूकानें थीं। उसके सिर पर खालें लदी देखकर मोची उससे मोल-तोल करने लगे। किसी ने एक रुपया लगाया, किसी ने दो; पर सौ रुपयों का किसी ने ज़िक्र भी न किया।

वहाँ से आगे चलकर कल्लू दूसरे शहर पहुँचा। यहाँ चमारों की बड़ी बस्ती थी। जब उन लोगों ने उससे चमड़ा बेचने के लिये कहा, और उसका मूल्य पूछा, तो बड़े कल्लू ने कहा—"हर चमड़े के सौ रुपए से कम न लूँगा।" उसका उत्तर सुनकर लोगों ने जोर का कहकहा लगाया और सबने उसे पागल समझा। फिर क्या था, सब-के-सब उसे तंग करने और बनाने लगे, और लड़के तालियाँ पीट-पीटकर उसे मुँह चिढ़ाने लगे। इस पर उसे जो गुस्सा आया, तो वह सबको गालियाँ देने लगा। यह बात भला चमार कब सह सकते थे? वे सब उस पर पिल पड़े, और लगे उसकी मरम्मत करने। बेचारा चमड़ा फेंककर भाग खड़ा हुआ।

भूपनारायण दीक्षित



१. नवयुवकों की मृत्यु

प्रायः देश के नवयुवकों की मृत्यु-संख्या वृद्धि पर है। लोगों का ध्यान शिशु-मृत्यु-निवारणार्थ तो गया है, किंतु नवयुवकों की मृत्यु-संख्या को घटाने का विचार न तो बहुत लोगों के मस्तिष्क में उठा हो है, और न इस दिशा में कोई विशेष चेष्टा ही हो रही है। लोग पूछ सकते हैं कि नवयुवकों का इस मृत्यु-वृद्धि का कारण क्या है? इस प्रश्न का पूरा-पूरा उत्तर देना असंभव है। वैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य के मस्तिष्क की उत्तेजना तथा शारीरिक कार्य-कलाप पर उसका जीवन-मरण निर्भर करता है। यों तो नवयुवकों की मृत्यु के कई कारण पेश किए जा सकते हैं, किंतु इस सभ्यता के ज़माने में हमारी पाँच इंद्रियों को जो-जो पदार्थ प्रभावान्वित करते हैं, वे सब हमें मृत्यु की ओर ले जाते हैं। यह भी जान रखना चाहिए कि ऐसे पदार्थों की संख्या अपरिमित है। किंतु कुछ ऐसे भी कारण हैं, जिनके प्रतिकार से मृत्यु कुछ काल के लिये दूर की जा सकती है —

मृत्यु के कारणों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। (१) शारीरिक और (२) मानसिक। शारीरिक कारणों में लड़कपन, यौवन या बुढ़ापे में स्वास्थ्य-हानि है। स्वास्थ्य नष्ट हो जाने पर बल और क्षमता, दोनों का ह्रास होता है। अधिक भोजन या कसरत का फल हृदय, अँतड़ी या पेट की बीमारी है। इसलिये इन दोनों से बचना चाहिए। परिमित भोजन और व्यायाम ही मनुष्य को दीर्घायु दे सकते हैं। जिन लोगों की ऐसी धारणा है कि जितना ही अधिक खायँगे और कसरत करेंगे, उतने ही अधिक दिन बचेंगे, वे भूलते हैं। मानसिक कारणों में ये प्रधान हैं—

(१) जीवन भारस्वरूप हो जाना।

(२) व्यापार का हठात् नष्ट हो जाना।

(३) लक्ष्य-प्राप्ति में बाधा और आशा पर पानी फिरना।

(४) यह सोचते रहना कि जीवन क्षण-भंगुर है।

(५) अत्यधिक इंद्रियपरायण होना।

(६) कुछ लोगों के जीवन का केवल एक ही उद्देश्य या अभिलाषा होती है। किसी कारण उसकी प्राप्ति न होना।

(७) रास्ते पर या अन्य किसी जगह सदा मृत्यु-दृश्य का देखते रहना।

(८) दूसरे की, विशेषतः युवा मनुष्य की मृत्यु।

(९) बहुत तेज़ी के साथ काम करना या खेलना।

(१०) परिवारवालों या मित्रों की बिना समय पदार्थों की अधिक माँग।

(११) जीवन-निर्वाह का व्यय।

(१२) 'आत्महनन' या अंतःकरण को चोट पहुँचाना।

इसके अतिरिक्त डॉ० मेयर्सन सुखानुभूति के सर्वथा लुप्त हो जाने को भी युवाओं की मृत्यु का कारण समझते हैं। जब जीवन का आनंद ही जाता रहता है, तब जीना बेकार है, ऐसा सोचनेवाले लोग ही आत्महत्या किया करते हैं। इसमें ज़रा भी शक नहीं कि सौ साल पहले के और आज के जीवन में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। आज सभ्यता के चपेटों में पड़कर हम लोग बड़ी तेज़ी के साथ क़ब्र की ओर पैर बढ़ाते चले जा रहे हैं। कहने को तो हम लोग सभ्य हो रहे हैं; किंतु यह सभ्यता दिखाऊ है। हमारा जीवन अधिक सुखमय होने के बजाय अधिक दुःखमय हुआ जाता है। हम मरीचिका-जैसे सुख के पीछे पड़े रहते हैं, और असली सुख न मिलने के कारण आत्मघात कर लेते हैं।

जल्दबाज़ी और चिंता ने हमें इस प्रकार दबाया है कि हमारे मन से असली संतुष्टि या आनंद मनाने का भाव सर्वथा लुप्त हो गया है। अत्यधिक उत्तेजना उत्तेजना का अनुभव करनेवाली हमारी क्षमता को नष्ट कर देती है। यह सब आधुनिक सभ्यता का फल है, जो अपने मूल्य को बड़ी कड़ाई के साथ वसूल करती है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों के सामने असफलता भिन्न-भिन्न रूप रखकर आती है—मानो वह बहुरूपिया हो। असफलता क्या है? अपनी इच्छित वस्तु को न प्राप्त कर सकना या प्राप्त किए हुए पदार्थ को खो देना। व्यापारी अपना धन खोने में, युवा अपना यौवन नष्ट हो जाने में, स्त्रियाँ अपना सौंदर्य गँवाने में, वैज्ञानिक अपनी परीक्षा को अपने मनोनुकूल न पाने में, साहित्यिक अपनी बेक़दरी होने में असफलता मानते हैं। अर्थात् इच्छित, मनोभिलषित वस्तु के प्राप्त न होने के कारण न-मालूम कितने मनुष्यों ने असमय में अपना जीवन नष्ट किया है। निराशा, बेइज़्ज़ती या समाज में नीचा देखने के कारण कुछ लोगों के मन में ऐसी ग्लानि उठती है कि वे उसे ज़िंदगी-भर नहीं भूलते, और इसके कारण उनकी मानसिक अवस्था ख़राब होती जाती है। उसका प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है, और उसका अंतिम फल अकाल मृत्यु है। डॉ० मेयर्सन का कहना है कि बेइज़्ज़ती एक प्रकार की असाध्य बीमारी है। इसका प्रभाव नवयुवकों के हृदय पर बड़ा बुरा पड़ता है। चिंता, डर, शोक, क्रोध या अन्यान्य उत्तेजनाएँ मनुष्यों के हृदय और मन पर अपना बुरा प्रभाव तो डालती ही हैं, साथ ही मनुष्यों को मृत्यु-पथ पर अग्रसर भी करती जाती हैं। अस्तु, यों तो मृत्यु के लाखों-करोड़ों कारण हैं, किंतु सब का प्रतिकार एक वैज्ञानिक के मतानुसार एक ही है—और वह है—"Back to the old days"—आजकल की नक़ली सभ्यता को तिलांजलि दे बाबा आदम के ज़माने को पृथ्वी पर पुनः बुलाना है।

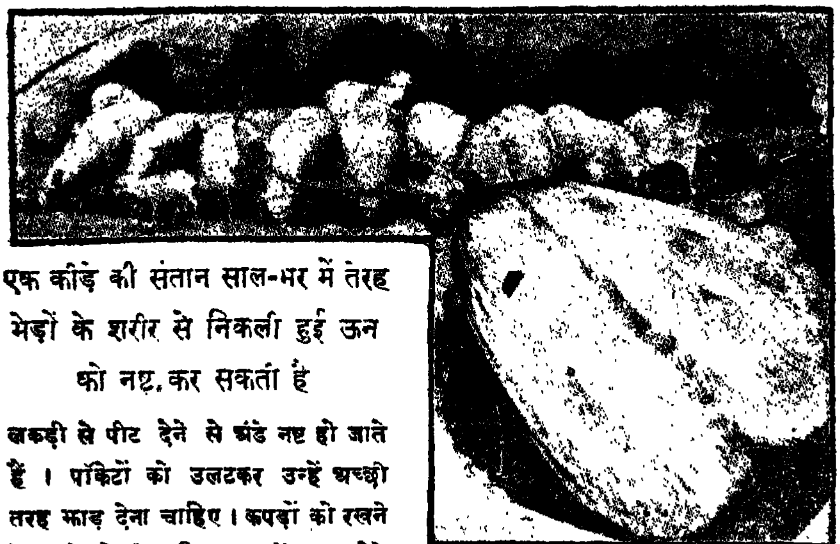
× × ×

२. कपड़े के कीड़े

जाड़ा समाप्त होते ही लोग अपने गरम कपड़ों को धूप दिखलाकर बक्स के हवाले कर देते हैं। किंतु दूसरे साल जाड़े में कपड़ों को बक्स से निकालते ही उन्हें पता लग जाता है कि उनके कपड़ों में कुछ को कीड़ों ने नष्ट कर डाला है—यहाँ, वहाँ, कई जगह काटकर उनमें कई सूराख़ कर डाले हैं। एक कीड़े की संतान एक साल में सौ पौंड ऊन नष्ट कर सकती है। सौ पौंड ऊन तेरह भेड़ों के शरीर से निकलता है। युनाइटेड स्टेट्स, अमेरिका में हिसाब लगाकर देखा गया है कि वहाँ एक साल में ये कीड़े प्रायः ७० करोड़ रुपए का कपड़ा नष्ट कर डालते हैं। इस प्रकार नुक़सान किए हुए कपड़ों का मूल्य दूसरे देशों में उपरि-लिखित संख्या से कहीं अधिक है। केवल ऊन के कपड़े ही इन कीड़ों के खाद्य नहीं हैं; इनके अलावा, बालदार कपड़ों पर भी वे चोट करते हैं। किंतु सौभाग्यवश भारतवासी बालदार-कपड़ों का बहुत कम व्यापार करते हैं। हमें इन कीड़ों से बचने का यथासाध्य प्रयत्न करना चाहिए।

आपको मकान के अँधेरे कोने में पीले या बादामी रंग के कीड़े मिलेंगे। इनकी लंबाई आधे इंच से अधिक नहीं होती; इनके पंख फैलाने पर इनकी चौड़ाई भी, अर्थात् इस पंख के छोर से उस पंख तक, ½ इंच होती है। यह कीड़ा निर्दोष होता है। इससे आपके कपड़ों को किसी प्रकार का डर नहीं रहता; क्योंकि यह अपना मुँह चबाने या काटने के काम में नहीं लगा सकता है। किंतु यह कपड़ों में घुस आता है, और उसमें अंडे देता है, जो चार से आठ दिनों में कीड़े का आकार ग्रहण करते और आपके कपड़े को भयंकर हानि पहुँचाते हैं। ज्यों ही अंडे फूटते और उनसे बच्चे निकलते हैं, वैसे ही वे कपड़ों पर चोट करते हैं।

इनसे बचने के कुछ तरीक़े नीचे दिए जाते हैं। कपड़ों को बक्स में बंद करने के पहले यह देख लो कि उनमें कीड़े के अंडे तो कहीं छिपे हुए नहीं पड़े हैं। कपड़ों क



एक कीड़े की संतान साल-भर में तेरह भेड़ों के शरीर से निकली हुई ऊन को नष्ट कर सकती है

लकड़ी से पीट देने से अंडे नष्ट हो जाते हैं। पॉकेटों को उलटकर उन्हें अच्छी तरह झाड़ देना चाहिए। कपड़ों को रखने के पहले दो-तीन दिन धूप में सुखा देने से भी काम चल जायगा। देवदार या सनोबर के संदूक ऐसे कपड़े रखने के लिये उपयुक्त होते हैं; क्योंकि उसकी गंध कीड़ों के बच्चों को नष्ट कर देती है। इन संदूकों को केवल कपड़े रखते और निकालते समय खोलना चाहिए, अन्यथा उन्हें सर्वदा बंद रखना चाहिए। कपड़े दबा-दबाकर रखने चाहिए। हवा-रहित कागज़ के थैलों में कपड़ों को रखने से भी वे सुरक्षित रहते हैं। यदि कागज़ के थैले न मिल सकें या बनाने में तरद्दुद जान पड़े, तो पुराने अख़बारों की कई तहें करके उसी में कपड़ों को लपेटकर रखना चाहिए। कपड़े पुराने हो जाने पर उन्हें किसी को दे डालो; क्योंकि उनके साथ रहने से आपके नए कपड़े भी शीघ्र नष्ट हो जायँगे। नैपथलीन को कपड़ों के साथ रखने से कीड़े नष्ट हो जाते हैं। गाँवों में या जहाँ नैपथलीन न मिल सके, नीम की पत्ती इस काम को कर सकती है। अब भी देखा जाता है कि हमारे गाँववाले अपने कपड़ों के साथ नीम की पत्ती रक्खा करते हैं।



कपड़ा नष्ट करनेवाले कीड़े (ऊपर) और उनके बच्चों (नीचे) का आकार (एक बटन की तुलना में)

× × ×

३. अनंत-शक्ति का भांडार सूर्य

सूर्य को लोग अनंत-शक्ति का भांडार कहते हैं। इस बात को प्रमाणित करने के लिये एक वैज्ञानिक ने नया ढंग बतलाया है। पाठकों की जानकारी के लिये उसे यहाँ दे रहा हूँ। यदि सूर्य को दो मील मोटी बर्फ़ के ढक्कन से ढक देना संभव हो, तो सवा दो घंटे में सारी बर्फ़ गल जायगी। अगर हम लोग सूर्य और पृथ्वी के बीच सवा दो मील घास की एक मोटी दीवाल खड़ी कर सकें, और सूर्य की सारी गरमी को उसी पर केंद्रीभूत कर सकें, तो केवल एक सेकंड में सारी दीवाल गलकर जल बन जायगी, और सात सेकंड में वह जल भाप बन जायगा। ९३०,००,००० मील मोटी बर्फ़ की दीवाल का कुछ ही सेकंड में पता तक नहीं रहेगा। इसके साथ ही हमें यह भी ख़याल रखना चाहिए कि पृथ्वी पर सूर्य की गरमी का केवल बहुत थोड़ा-सा भाग—$\frac{१}{२००}$ करोड़वाँ भाग—पहुँच पाता है। अब कहिए, सूर्य अनंत-शक्ति का भांडार है या नहीं? किंतु इतनी शक्ति बरबाद हो जाती है। वैज्ञानिक उसे इस्तेमाल में लाने की चेष्टा में हैं।

× × ×

४. इंजीनियरों की करतूत

अमेरिका में सिएटल एक स्थान है, उसके पास वाशिंगटन झील के किनारे पर एक स्कूल बना था। किसी कारण से लोगों ने उसे हटाकर एक द्वीप में ले जाने का विचार किया। इंजीनियरों की बुलाहट हुई, और उनसे कहा गया कि पाठशाला को ज्यों-का-त्यों एक स्थान से दूसरे स्थान को



स्कूल नावों पर लदकर जा रहा है

पहुँचा दो। एक 'फ़र्म' ने ठेका लिया। इंजीनियरों ने उसे मिट्टी से काटकर अलग किया। कई नावों पर लादा और 'पगेट साउंड'-नामक नहर की दूसरी ओर (जो सात मील चौड़ी है) उसके नए स्थान पर पहुँचा दिया। स्कूल की इस यात्रा में किसी प्रकार का नुक़सान नहीं हुआ।

× × ×

५. नए तर्ज़ का वायुयान

पतिंगों, कीड़ों और पक्षियों को हवा में उड़ते देखकर ही मनुष्यों के मस्तिष्क में वायु में उड़ने का ख़याल पैदा हुआ था। इसलिये अगर वायुयान पतिंगे या पक्षी की शकल के बन सकें, तो वे आजकल के वायुयानों से अधिक कार्यक्षम होंगे। इसी बात को ध्यान में रखकर एक फ्रेंच इंजीनियर ने एक वायुयान बनाया है, जो देखने में एक पतिंगे-सा है। इसे चालक के हाथ-पाँव की शक्ति ही चलाने के लिये काफ़ी है। किसी मशीन आदि की आवश्यकता नहीं है। वज़न में यह वायुयान सौ पौंड है; किंतु इसके पंखों की सतह प्रायः ३०० वर्गफ़ीट स्थान को छेकती है। पक्षी जैसे अपने पंखों को फड़फड़ाकर उड़ते हैं, वैसे ही यह यान भी उड़ाके के हाथ के इशारे पर उड़ता है। इसमें ज़मीन पर चलने के लिये बाइसिकिल के पहिए भी लगे हुए हैं। बाइकिल में पैर मारने के लिये जैसा 'पैडेल' लगा रहता है, वैसा ही 'पैडेल' इसमें भी लगा है, जिसके चालक द्वारा चलाए जाने पर यह वायुयान आकाश में उड़ता है।



नए तर्ज़ का वायुयान

× × ×

६. समुद्र के कुछ अद्भुत जीव

समुद्र के जल की सतह के सैकड़ों फ़ीट नीचे के अंधकारपूर्ण स्थान में, जहाँ जल का दबाव बहुत ज़्यादा होता है, कुछ बहुत ही आश्चर्यजनक प्राणी रहते हैं। इन प्राणियों का कोई ख़ास नाम नहीं दिया जा सकता; क्योंकि जल-सतह के जितना ही नीचे मनुष्य जाते हैं, उतने ही भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणियों का उन्हें पता लगता जाता है। इनमें कुछ बड़े ही विचित्र, अद्भुत और सुंदर होते हैं। जल-जीवों को देखकर ईश्वर की कारीगरी का कुछ-कुछ पता लगता है। यहाँ कुछ जीवों के चित्र दिए जाते हैं। नं० १ को छाता-मछली कहते हैं; क्योंकि वह छाते से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। छाते को खोलने पर वह जो आकार ग्रहण करता है, उसी आकार की यह मछली होती है। नं० २ बैलून-मछली कहलाती है। इसमें यह गुण है कि क्रोध करने के समय यह अपने साधारण आकार से कई-गुना फूल जाती है। नं० ३ की मछली को मछुओं ने 'समुद्र का बाघ' नाम दिया है। इस मछली का पकड़ना टेढ़ी खीर है। ये भयानक लड़ाकू होती हैं, और जब तक इनका शरीर लड़ाई में क्षत-विक्षत नहीं हो जाता, तब तक ये पकड़ाने का नाम नहीं लेतीं।

४ और ६ नं० के प्राणी समुद्र के सबसे नीचे के हिस्से में पाए जाते हैं। पाठक देखेंगे कि उनके शरीर में बत्तियाँ जल रही हैं। ये बत्तियाँ उन्हें अँधेरे में राह दिखलाने का काम करने के अलावा शिकारों को उनकी ओर आकर्षित करने का भी काम करती हैं। ५ नं० का जीव देखने में बड़ा ही भयानक जान पड़ता है। ७ नं० की मछली, अगर उसे मछली कह सकें, बहुत कम पाई जाती है।

इन प्राणियों के अलावा समुद्र में तरह-तरह के पौदे भी पाए जाते हैं। इनमें कुछ तो समुद्र की सतह पर, कुछ समुद्र-तल में और कुछ समुद्र के भिन्न-भिन्न हिस्सों में पैदा होते हैं। पृथ्वी-तल के जंगलों में कहीं भी उतने तरह के प्राणी या पौदे नहीं पाए जाते, जितने



समुद्र के प्राणी

(ऊपर प्राणियों के और नीचे पौदों के चित्र हैं)

तरह के समुद्र में मिलते हैं। समुद्र अनुसंधानकारियों के लिये एक विस्तृत क्षेत्र है। इसके प्रायः सभी हिस्सों में अनेकानेक प्रकार के जीव भरे पड़े हैं। सुंदर मछलियों, कीड़ों और पौदों की सभी समुद्रों में भरमार है। इन प्राणियों का जीवन, रहन-सहन, पसंद-नापसंद, विचित्रताओं आदि का अध्ययन बड़ा ही मनोरंजक विषय है। गोताख़ोरों ने आधुनिक साधनों से समुद्र की जिस गहराई तक की डुब्बी लगाई, उसके बहुत नीचे भी प्राणी रहते हैं। शायद वे दृष्टिशक्ति-विहीन होते हैं; क्योंकि उस अंधकार-प्रदेश में दृष्टि उनको कोई भी सहायता नहीं कर सकती। हाँ, उनके बड़े-बड़े ठुंगुरे (feeler) अवश्य होते होंगे, जिनके सहारे वे अनुभव कर अपने शिकार और शत्रु को पहचान जाते होंगे। ये उन्हें राह चलने में भी सहायता करते होंगे।

× × ×

७. जीविका के लिये सिगरेट पीना

आजकल लोग शौक़िया ही सिगरेट पिया करते हैं। कुछ सिगरेट पीनेवालों का कहना है कि वे ज़ुकाम या रेआह की दवा के रूप में इसे व्यवहार करते हैं। किंतु अमेरिका में एक ऐसे पुरुष हैं, जो जीविकोपार्जन के लिये सिगरेट पीते हैं। आपका नाम है बेन्जामिन डी० हिल।



जीविका के लिये सिगरेट पीना

आप अमेरिका के डिपार्टमेंट ऑफ़् कामर्स में काम करते हैं। अमेरिका के सिगरेट-व्यवसायियों को विदेश के व्यवसायियों द्वारा बनाए हुए सिगरेटों का गुण बताना आप ही का काम है। चित्र में आप देख सकते हैं कि उनके सामने भिन्न-भिन्न प्रकार के सिगरेट पड़े हैं। आप एक-एक को लेकर परीक्षा करते जाते हैं।

× × ×

८. बालक के सिर से भी छोटा बंदर

लंदन के चिड़ियाख़ाने में संसार का सबसे छोटा बंदर ब्रेजिल से पकड़कर लाया गया है। वह क़द में



बालक के सिर से भी छोटा बंदर

बालक के सिर से भी छोटा है। चित्र में वह बालक के सिर पर बैठाकर दिखलाया गया है।

× × ×

६. हथेली के बराबर मोटर-साइकिल

लंदन के सी० डब्लू० डिकर ने एक मोटर-साइकिल बनाई है। कहा जाता है, संसार की वह सबसे छोटी साइकिल है। मनुष्य की हथेली से वह थोड़ी ही बड़ी है। इसमें बड़ी साइकिल के सभी हिस्से लगे हुए हैं, और बड़ी साइकिल-सी चलती भी है।



हथेली के बराबर मोटर-साइकिल

श्रीरमेशप्रसाद



१. स्त्रियों के समानता के अधिकार

(२)

संसार के सुप्रसिद्ध विचारक हर्बर्ट स्पेंसर का कथन है—

"The position of women supplies a good test of the civilization of a people !"

अर्थात् किसी समाज की उन्नति या अवनति का परिचायक चिह्न उसकी स्त्रियों की स्थिति तथा संस्कृति है। इसी प्रकार कर्नल टॉड की सम्मति इन शब्दों में है—

"It is universally admitted that there is no better criterion of the refinement of nation than the condition of the fair sex therein !"

अभिप्राय यह कि किसी जाति के सभ्य तथा शिक्षित होने की कसौटी उसकी महिलाओं की अवस्था है।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि जिस देश की महिलाएँ शिक्षित, सभ्य तथा उत्तम होंगी, उस देश की संतान—दूसरे शब्दों में उस देश में निवास करनेवाली जाति या जनता—शिक्षित, सभ्य तथा उन्नत होगी। महिलाएँ जाति के विकास का बीज हैं। किसी भी राष्ट्र की उन्नति या अवनति इन्हीं महिलाओं से प्रारंभ होती है। माताओं में एक दिव्य शक्ति है, जो मनुष्य-समाज को हिला देती है। उनमें एक अलौकिक चमत्कार है, जिससे वे सारे राष्ट्र का नियंत्रण करती हैं। उनका प्रभाव अनिवार्य है, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या परोक्ष। महिलाओं को राजनीतिक प्रत्यक्ष अधिकार देना राष्ट्र की भलाई के लिये ही है; क्योंकि इन अवस्थाओं में उनका प्रभाव सीधा तथा सरल होता है, जो अवश्य राष्ट्र की उन्नति में सहायक बनता है। विचारणीय प्रश्न यही है कि क्या समाज के लिये महिलाओं को समानता के अधिकार देना उचित तथा अधिकतम हित का संपादक है, या नहीं? इसका उत्तर यदि केवल युक्ति से अपेक्षित होता, तो आज तक मनुष्य-समाज उदारता से महिलाओं को समानता के पूर्ण अधिकार दे चुका होता। परंतु यहाँ भावों का झगड़ा है। मनुष्य-समाज के हृदय में ये भाव बहुत गहराई तक घुस चुके हैं कि महिलाएँ स्वभावतः पुरुष से नीच जाति की हैं, वे राजनीतिक पदों के लिये सर्वथा असमर्थ हैं। उनको प्रकृति ने ही पुरुष की सेवा-सुश्रूषा-मात्र के लिये पैदा किया है; उनका एक-मात्र कार्य संतानोत्पत्ति है; उनमें मनुष्य की स्वतंत्र प्रवृत्तियाँ पैदा करने की योग्यता तथा क्षमता नहीं, वे समानता की अधिकारिणी नहीं हैं, इत्यादि। इन भावों को तर्क से दूर नहीं किया जा सकता। यह समझना कठिन हो जाता है कि समान परिस्थितियों तथा समान अवस्थाओं के उत्पन्न कर देने पर क्या वास्तव में महिलाएँ मर्दों के समान योग्यता न रख सकेंगी?

भारतवर्ष में तो यह समझना भी प्रायः कठिन हो

आता है कि वेद पढ़ने का सबको अधिकार है, या नहीं ? बाल विवाह उचित है, या नहीं ? अस्पृश्यता की व्यवस्था उपयोगी है, या नहीं ? महिलाओं के अधिकारों के विषय में पुरुष-समाज की सम्मति लेना महिलाओं की आश्रितता तथा दासता का सूचक है। पुरुष-समाज केवल एशिया में ही नहीं, योरप में भी बड़ी कठिनता के बाद स्त्रियों की दासता की घृणित प्रथा को दूर कर सका है। तब भारत के बारे में कब आशा की जा सकती है कि यह शीघ्रता से महिला-पराधीनता को हटाकर उनको पूरे समानता के अधिकारों को स्वीकृत करने के लिये तैयार होगा। अब्राहम लिंकन के तीव्र आंदोलन के बाद ही दासत्व-प्रथा अमेरिका से हटाई जा सकी; हालैंड में बड़े-बड़े ईसाई सुधारकों तथा राजनीतिक नेताओं के परिश्रम के बाद वहाँ से उक्त घृणित प्रथा दूर की जा सकी।

महिला-अधिकार-आंदोलन के विषय में भी यही बात है। हालैंड में निरंतर जे० सी० मिल-सदृश बड़े-बड़े विचारकों तथा महिलाओं की तरफ़ से संस्थापित महिला-संघों के शताब्दियों के प्रयत्नों के बाद महिलाओं के राजनीतिक अधिकार स्वीकृत हुए हैं। स्त्रियों ने ग्लेडस्टन के समय राजनीतिक प्रगतियों में पूरा भाग लिया, गवर्नमेंट के संचालन में सहयोग दिया, और अपनी कार्य-क्षमता तथा योग्यता को प्रमाणित कर दिया। अमेरिका में तो स्त्रियों का राजनीतिक जीवन इतना उन्नत है कि वे इस समय ७ स्टेटों की गवर्नर नियोजित हैं, और अच्छी तरह शासन का कार्य कर रही हैं।

अब अनुदार विरोधियों से एक प्रश्न है कि वे किस आधार पर स्त्रियों को समानता के पूर्ण अथवा आंशिक अधिकार देने में संकोच करते हैं ? क्या उनके तर्क का आश्रय महिलाओं की शारीरिक हीनावस्था है, या कल्पित मानसिक अयोग्यता ? क्या वे वर्तमान शरीर-शास्त्रवेत्ताओं की सम्मति से यह पूरी तरह प्रमाणित कर सकते हैं कि स्त्रियों की शारीरिक स्थिति इतनी कमजोर है कि समान अवस्था और समान स्थिति उत्पन्न कर देने पर भी वे मर्दों के बराबर शरीर में दृढ़ तथा समर्थ नहीं हो सकतीं ? लेखक की सम्मति में कोई भी शरीर-शास्त्रवेत्ता इतना साहस नहीं कर सकता कि स्त्रियों की स्थिति सर्वथा अपरिवर्तनीय बतलावे।

केवल ऐतिहासिक साक्षी से यह सिद्ध किया जा सकता है कि स्त्रियाँ भी स्वतंत्र, समान अवस्था में आकर मर्द के समान शरीर में पुष्ट तथा मज़बूत हो सकती हैं। राजपूताने की वीरांगनाओं के नाम गिनाना उनकी महत्ता को कम करना है। सारा संसार साक्षी है कि भारतवर्ष में ऐसी क्षत्रिय-स्त्रियाँ थीं, जो न केवल संतानोत्पत्ति करती थीं, बल्कि मर्दों की तरह सेना का कार्य करतीं, युद्धों में अग्रसर होतीं और राज-कार्य में सहायता देती थीं। वर्तमान समय में देवी ताराबाई का उदाहरण आँखों को खोलनेवाला हो सकता है। योरप में फ्रांस की देवी जॉन ऑफ़ आर्क का नाम इतिहास-प्रसिद्ध है। क्या यह साहस-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि महिलाओं को समानता के अधिकार दे दिए जाने पर ऐसी कितनी ही अन्य वीरांगनाएँ उत्पन्न होंगी, जिनसे समाज की सर्वतोमुखी उन्नति में सर्वथा सहायता मिलेगी ?

प्राचीन स्पार्टा की शासन-पद्धति में स्त्रियों को मर्दों के बराबर पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। यही कारण है कि तत्कालीन स्त्रियाँ आदर्श महिलाएँ थीं, जिनकी संतानें राष्ट्र का आवश्यक अंग होती थीं। वे युद्धों में भाग लेतीं, सामाजिक विनोदों में सम्मिलित होतीं, तथा अन्य स्वतंत्रता के अधिकारों का उपयोग करती थीं। इसीलिये सभ्यता के प्रारंभिक विकास की अवस्था में भी स्पार्टा इतना उन्नत हो गया, और सारे ग्रीस में एक अग्रसर नगर राज्य (City State) बन गया।

इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं कि यदि एक बार समाज महिलाओं के समानता के अधिकार स्वीकार कर ले, तो उसकी उन्नति-ही-उन्नति है।

विरोधी लोगों का प्रायः यह युक्ति होती है कि यदि पति-पत्नी में समानता का सिद्धांत स्वीकृत कर लिया जाय, तो पत्नी का पति के प्रति सम्मान कम हो जायगा। उस समय पत्नी अपने को पति की बराबर की स्थिति का अनुभव करेगी। प्लेटो ने इसी बात को एथेंस की शासन-पद्धति में उद्धृत किया है।

परंतु वास्तव में यदि अधिक विचार किया जाय, तो एक निष्पक्ष आलोचक इसी परिणाम पर पहुँचेगा कि पारस्परिक सम्मान का भाव राजनीतिक अधिकारों आदि की अपेक्षा समाज की धार्मिक प्रगति पर अधिक निर्भर है। एक धार्मिक पतिव्रता पत्नी, राजनीतिक मताधिकार प्राप्त करने पर भी, वैसी ही सती-साध्वी और पतिभक्त रह सकती है, जैसी उन विशेष अधिकारों के बिना भी। उदाहरण चीन तथा जापान की महिलाएँ हैं। जापान में

महिलाओं को बड़े-बड़े राजनीतिक अधिकारों के मिल जाने पर भी वे वैसा ही पति के प्रति सम्मान तथा आदर का भाव प्रकट करती हैं, जैसा उन्हें धर्म आज्ञा देता है। एशिया धर्म-प्रिय है, भारतवर्ष विशेषतः धर्मप्रधान देश है। यहाँ महिलाओं के निरंकुश अथवा पति पराङ्मुख होने का सर्वथा भय नहीं है। ऐसा भय तो अब तक योरप तथा अमेरिका में भी उत्पन्न नहीं हुआ। भारतवर्ष में इसकी आशंका करना सर्वथा निर्मूल तथा युक्ति-रहित है।

इसी तर्क के आधार पर विरोधियों का यह कथन भी सर्वथा असंगत है कि समानता के अधिकार देने से परिवार का शासन ठीक तरह सुव्यवस्थित न रहेगा। जब दो बराबर के भाई प्रेम तथा सौहार्द से इकट्ठे रह सकते हैं, मतभेद पर कभी पहला दूसरे की बात मान लेता है, कभी दूसरा पहले की बात मान लेता है—इस प्रकार पारस्परिक विश्वास तथा समझौते पर परस्पर सहवास हो जाता है—तो क्या आशा नहीं कि पति तथा सहधर्मिणी पत्नी में भी, समानता के भाव आ जाने पर, पारस्परिक एकता तथा जीवन की मधुरता बनी रहेगी? पति-पत्नी तो जीवन के साथी हैं; इनमें स्नेह तथा प्रेम और भी अधिक स्वाभाविक तथा अन्योन्य आश्रित है। इसी सभ्यता पर वर्तमान सभ्य संसार में, महिलाओं को मताधिकार मिल जाने पर भी, पुरुष तथा महिलाएँ सहयोगात्मक, सरल जीवन व्यतीत कर रही हैं। इन तीव्र आंदोलनों तथा क्रांतियों के युग में एक लिखित प्रमाण उपलब्ध होता है। एक बार नेपोलियन बोनापार्ट ने कोंडर्सेंट की धर्मपत्नी से कहा था—

"Madam, I do not like women to meddle in politics.?"

मिसेज़ कोंडर्सेंट ने कहा—"You are right General, but in a country where it is the custom to cut off the heads of women, it is natural that they should wish to know the reason why."

बस, यही युक्ति हमारे सारे संघर्ष का सार है। जिस शासन में महिलाओं के जीवन का, उनके प्राणों का, उनके एक-एक दिन के भाग्य का संबंध है, उस शासन में क्या यह उचित नहीं कि उन महिलाओं की कुछ आवाज़ हो, उस शासन के संचालन में उनका प्रत्यक्ष भाग हो?

क्या यही उचित था कि फ्रांस में महिलाओं का राज-दंड से वध होता जाता, उनका निरंतर फाँसी आदि नृशंस अत्याचारों से ख़ातमा होता जाता, और वहाँ का स्त्री-समाज सर्वथा इन घटनाओं के कारणों से अपरिचित रहता? प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह कारणों तथा राजनीतिक घटनाओं से अपने को परिचित रक्खे, राष्ट्र के कार्यों में अपनी आवाज़ रक्खे, और उससे संबंध रखनेवाली सत्यता को जाने। महिलाएँ राष्ट्र का उतना ही मुख्य अंग हैं, जितना पुरुष। महिलाओं के हितों की रक्षा उतनी ही आवश्यक है, जितनी पुरुषों के हितों की। इसीलिये महिलाओं का भी पूरा अधिकार है कि वे राष्ट्र के शासन में अपनी आवाज़ को निश्चित रक्खें।

यह आग्रह का विषय नहीं कि महिलाओं को मर्दों से अधिक स्थान पार्लियामेंट में मिलें। आग्रह इस बात का है कि उन्हें अपनी आवाज़ बलंद रखने का पूरा अधिकार मिले। निर्वाचन का सिद्धांत योग्यता पर आश्रित है, न कि लिंग-विशेष पर। यदि पुरुष योग्य हैं, तो उन्हें निर्वाचित करना निर्वाचकों का कर्तव्य है। परंतु यदि महिला भी योग्य है, तो उसे भी—लिंग-भेद दृष्टि में न रखते हुए—निर्वाचित करना निर्वाचकों का परम कर्तव्य है। लिंग-तत्त्व को दूर करना ही महिला-अधिकार-आंदोलन का मुख्य प्रयोजन है।

यदि समाज महिलाओं को समानता के पूर्ण अधिकार देने के सिद्धांत को स्वीकार कर ले, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि समाज की अवस्था सर्वथा उन्नत हो जायगी। आधी मनुष्य जाति को दासता की बेड़ियों में बाँध रखना, आधे सभ्य संसार को प्रारंभिक अधिकारों से वंचित रखना, समाज के लिये कदापि कल्याण-कर नहीं। अधिकतम हित-संपादन की दृष्टि से मर्दों के साथ महिलाओं के अधिकार स्वीकृत करना नितांत आवश्यक है; क्योंकि इसी पर संसार का सर्वोपरि सुख (Greatest happiness) निर्भर है।

इंद्र

× × ×

२. हिंदू-कन्या

श्रीमान् संपादको, हिंदी-संसार के विधाताओ, यह क्या कर रहे हो! क्यों हिंदू-बालाओं पर अत्याचार कर रहे हो! ओहो! वज्रपात कर रहे हो! हिंदू-कन्या के

लिये, किसी युवा से प्रेम करना, किसी युवा को प्रेम-भरी दृष्टि से देखना भी पाप है, कुल को कलंक लगाना है, सात पीढ़ियों को नरक में डुबाना है। हिंदू वृद्ध तथा युवा से पूछ लो, यह सत्य है कि नहीं ? फिर क्यों प्रेम-कथाएँ पत्रिकाओं में छापी जाती हैं ? क्यों हिंदू-कन्याओं को यह सोचने का अवसर दिया जाता है कि प्रेम में रस है ? क्यों हिंदू-कन्याओं को प्रेम की शिक्षा दी जाती है ? आह ! वह शिक्षा, जिसका अंकुर प्रत्येक हृदय में वर्तमान है, और समय पाते ही फूट पड़ता है। प्रेम की कली विकसित होते ही हिंदू-कन्या का जीवन उसके लिये बोझ हो जाता है । उसका अंतरात्मा उसे एक ओर खींचता है, और प्रेम का उन्माद दूसरी ओर। प्रेम वास्तव में अंधा है। सत्य कहा है —Love is blind. पत्रिकाओं आदि में प्रेम-गल्पें अर्द्धविकसित हृदय को प्रेम के पथ की ओर खींच ले जाती हैं, जो कि हिंदू-कन्याओं के सर्वनाश का कारण होती हैं। हिंदू-संसार सब प्रेम के भी विरुद्ध है, फिर 'शैलबाला', 'उस पार', 'नौका-डूबी' तथा अन्य प्रेम-कथाओं की हिंदी-संसार में क्या आवश्यकता ? क्या हिंदू-समाज यह देख सकता है कि एक कन्या अपने हृदय में एक पुरुष को स्थान दे ? नहीं, कदापि नहीं। हिंदू-कन्याओं के लिये मीरा-बाई आदर्श है।

× × ×

२. प्रेम

यह देखकर हैरान होना पड़ता है कि वर्तमान समय के युवक तथा युवतियों को दिन-रात प्रेम की रट लगी हुई है। यह संसार प्रेम बिना उन्हें शून्य दिखाई पड़ता है। प्रेमी की जुदाई उनके लिये मृत्यु से भी बढ़कर है। अपने सुखमय पवित्र विद्यार्थि जीवन को वे स्वयं अति दुखी, अपवित्र बना लेते हैं। दिन-रात मारे चिंता के शरीर का तो नाश ही हो जाता है। जिन बातों से घृणा करनी चाहिए, उन्हें वे प्रेम के नाम से पुकारते हैं। एक युवती एक युवा से जब प्रेम करती है, तो अपने मोह को प्रेम के नाम से पुकारती है, और उस नाशकारी मोह को अपने हृदय में बड़ा ऊँचा स्थान देती है। चुंबन, आलिंगन आदि को, जिन्हें कि हृदय से घृणा करनी चाहिए, बड़े गौरव से अपने हृदय में स्थान देती है। क्या एक दूसरे की ओर टकटकी लगाकर देखते रहना ही प्रेम है ? कदापि नहीं। प्रेम स्वर्गीय वस्तु है; प्रेम का सिंहासन अति उच्च है। मेरी कारेली का 'Treasure of Heaven'* वास्तव में प्रेम का उच्च आदर्श है।

वही तो वास्तव में प्रेम है, जिसमें पवित्रता है, जिसमें स्वर्गीयता है, जिसमें उच्च आदर्श है। बाक़ी सब मोह-माया का जाल है, झंझट है, दुःख है, अपवित्रता है, उच्च पद से गिरना है।

रात्रि का समय है। चाँदनी छिटकी हुई है। समुद्र में अभी ज्वार आ चुका है। भीषण वृष्टि अभी थमी है। एक कुमारी अपनी कुटिया में विस्मित खड़ी है। उसके कानों में धीरे-धीरे कभी कहीं से कुत्ते के भूँकने की आवाज़ पड़ जाती है । तनिक देर बाद उसे श्वेत वस्त्र दूर पर दिखाई देता है । वह उसी क्षण उस वस्त्र तथा आवाज़ को अपने लक्ष्य में रख वहाँ पहुँचती है, और एक वृद्ध को मूर्च्छित अवस्था में पाती है। नन्हा-सा कुत्ता प्रेम में पागल हो मालिक के पास भटक रहा है। कुमारिका परिश्रम के साथ वृद्ध तथा कुत्ते को अपने घर ले जाती है । प्रेम में पागल वह उस बूढ़े की सेवा में कई महीने लगी रहती है। यही है प्रेम, प्रेम का वास्तविक स्वरूप ऐसे स्थानों पर ही देखने को मिलता है। क्या एक दूसरे को आलिंगन करना प्रेम है ? नहीं, कदापि नहीं। यह Passion है। यह Passion तो पशुओं में भी है। फिर मनुष्य और पशु में क्या अंतर ? मनुष्य स्वयं अपनी उच्च आत्मा को अपवित्र कर डालता है। यदि एक दफ़े उन बातों से उसे घृणा हो जाय, जिन्हें वह मोह-वश 'प्रेम' के नाम से पुकारता है, तो भवसागर से बेड़ा पार है। सेहत (health) का सत्यानाश न होगा। आत्मा का नाश न होगा। बहुत लोग कहेंगे, हमारा सत्यानाश होता है, तो होने दो, प्रेम तो हमारे वश में नहीं है; क्योंकि Love is blind. पर प्रेम हो, तब न ? किसी कवि ने सत्य कहा है—

इश्क़ होवे तो हक़ीक़ी इश्क़ होना चाहिए ;
और सब जितने हैं आशिक़, उन पे रोना चाहिए।

कौशल्यादेवी

---

* यदि लेखिका महाशया इस पुस्तक का स्वतंत्र अनुवाद करने की कृपा करें, तो हम उसे अपनी गंगा-पुस्तकमाला में छापने को तैयार हैं।—माधुरी-संपादक



१. समस्याऽष्टक

कैसे आश्चर्य और खेद की बात है कि मिश्रबंधुओं ने अपने 'विनोद' अथवा 'इतिहास' में न-जाने किस कारण, सब कुछ जानते हुए भी, पं० देवदत्तजी बाजपेयी 'पुरंदर कवि' का पूर्ण परिचय नहीं दिया, तथा उनका एक छंद तक नहीं लिखा। यही क्यों ? काशी के सुप्रसिद्ध लेखक और कवि श्रीजयशंकर 'प्रसाद' का, जिन्हें बीस वर्ष से हिंदी-संसार भली भाँति जानता है, तथा गत आषाढ़-मास की माधुरी के प्रथम पृष्ठ पर जिनका सुललित पद्य प्रकाशित हुआ है, नाम तक 'मिश्रबंधु-विनोद' में कहीं ढूँढ़े नहीं मिलता, जब कि उसमें ऐसों के नाम भी पाए जाते हैं, जो न हिंदी के लेखक या कवि ही हैं, और न हिंदी-जगत् में उन्हें कोई जानता ही है।

उक्त दोनों महानुभावों का पूर्ण परिचय तो कभी सुभीते से पाठकों को भेंट किया जायगा, किंतु आज पुरंदरजी का समस्याऽष्टक पाठकों के विनोदार्थ उपस्थित है। इसमें यह विशेषता है कि ये समस्याएँ एक मुसलमान रईस की दी हुई उर्दू-भाषा की हैं, तथा फ़ारसी-उर्दू से अपरिचित कवि द्वारा हिंदी के छंदों में तत्काल समस्या-पूर्ति करने का नमूना हैं।

२५-३० वर्ष पूर्व लखनऊ में हिंदी साहित्य तथा काव्य की विशेष चर्चा रहती थी। उस समय बहुसंख्यक उर्दू-हिंदी के कवि तथा साहित्य-प्रेमी वर्तमान थे। अब तो यहाँ कवि तथा काव्य-पाठियों की कोई गोष्ठी दृष्टिगत नहीं होती। उस समय यहाँ प्रायः नित्य ही साहित्य-चर्चा तथा समस्या पूर्ति के सम्मेलन एवं उर्दू-कवियों के मुशायरे हुआ करते थे। हिंदी-कवियों के कई जथे थे। होली के पश्चात् भिन्न-भिन्न मोहल्लों के वार्षिक मेलों में भाट-भाटिन के स्वाँग निकाल उनके साथ लड़ीबंद कवित्त पढ़े जाते थे। इन जथों के एक-एक शिष्य को एक-एक विषय के सैकड़ों छंद कंठ थे। इनमें मुख्य श्रीजगन्नाथ स्वर्णकार, पुराना चौतरा; लाला गुल्लामल खत्री, चौपटियाँ; पं० रामलाल शुक्ल, तोप-दरवाज़ा; लाला हनुमानप्रसाद कायस्थ, कवाई-टोला के अखाड़े थे। चौपटियाँ के लाला बालचंद्र जैन 'सुदाम कवि' की दूकान पर तो हमेशा ही कवित्तबाज़ों का जमघट रहता था।

इनके अतिरिक्त नगर में लावनी या ख़्यालबाज़ों की संख्या भी कम न थी, जिनमें उल्लेख-योग्य शंभू शायर, मुंशी क़ादिरबख़्श, भैरोंसिंह, फ़क़ीरचंद, बदरीसिंह, दिग्‍गे गोस्वामी आदि के नाम थे। उर्दू के शायरों का तो कहना ही क्या ? नगर में उनके कई साप्ताहिक तथा मासिक ज़ोरदार मुशायरे होते थे। राय छिक्कूराम की बारहदरी, चौपटियाँ में भी एक बड़ा मुशायरा हुआ करता था, जिसमें केवल नागरिक ही नहीं, प्रत्युत बाहर के भी बड़े-बड़े कवि,

रईस, साहित्य-सेवी, काव्य-प्रेमी, उर्दू-फ़ारसी के विद्वान् सम्मिलित होते थे।

एक बार महमूदाबाद के राजा स्वर्गीय अमीरहसनख़ाँ साहब उक्त मुशायरे में पधारे थे। उसी समय संयोगवश पं० देवदत्तजी वाजपेयी 'पुरंदर कवि' भी किसी कार्य को चौपटियाँ गए थे। मार्ग में भेंट तथा साधारण परिचय हो जाने पर राजा साहब ने वाजपेयीजी को अपने स्थान क़ैसरबाग़ में बुलाया। वहाँ आप उसी दिन सायंकाल को उपस्थित हुए।

साधारण साहित्य-चर्चा के पश्चात् राजा साहब ने कविजी से समस्या-पूर्ति करने को कहा। वाजपेयीजी ने प्रथम स्पष्ट ही कह दिया कि मैंने उर्दू-फ़ारसी का एक अक्षर भी नियमानुसार कभी नहीं पढ़ा; पर लखनऊ का पुश्तैनी निवासी होने के कारण शीन-क़ाफ़ से नितांत अपरिचित एवं अनभिज्ञ भी नहीं हूँ। राजा साहब ने कहा—कविजी, आप क्या कहते हैं? मैं ख़ूब जानता हूँ, "जहाँ न जाय रवि तहाँ जाय कवि"। कृपया आप अभी इन समस्याओं की पूर्तियाँ करें। राजा साहब एक-एक कर समस्या देते गए, तथा वाजपेयीजी उन्हीं की लेखनी से पूर्ति लिखते गए, जो निम्नांकित हैं—

१ धो ले सनम्

हुस्न ज़ाहिर में दो दिन की है चाँदनी,
गौर कर तुख़्म उलफ़त का बो ले सनम्;
ख़ुशमनम् आशिक़े ज़ार मिस्त कुनम्,
प्यार के चश्म से ख़ुब गो ले सनम्।
क़द्रदानी तुम्हारी अयाँ हो चुकी,
साथ ही अब 'पुरंदर' के हो ले सनम्;
गुफ़्त-ा-दम न दीदम शुनीदम न शुद,
बहते दरिया में अब हाथ धो ले सनम्।

२ छिपाता है अब

सच ये बतला दे ज़ालिम, क़सम है तुझे,
मुझसे बढ़कर किसे आज़माता है अब;
किसने सिखलाया ज़ौरो-जफ़ा में नफ़ा,
जो ख़फ़ा होके रसवा जताता है अब।
ख़ूब बातें बनाकर 'पुरंदर' से फिर
किस गुनहगार का दिल दुखाता है अब;
ढंग दिखलाके यह रंग लाता नया
संगदिल, क्यों दहन को छिपाता है अब।

३ दिखा ही दिया

लब से लब, सीना सीना से, पहलू से दिल,
चश्म से चश्म मिलकर सिखा ही दिया;
कहना माना न मेरा ज़रा भी कभी,
आख़िरश ग़मज़दों में लिखा ही दिया;
किसको मानूँ 'पुरंदर' मैं अपना सनम्
क्या अयाँ कर मज़े को चखा ही दिया;
नाज़-अंदाज़ से अपनी जलवागरी
इश्क़ तेरे ने मुझको दिखा ही दिया।

४ वारूँगी मैं

शान-शौकत से क़ुरबान हो जान-दिल
उस मुकुट की अदा को निहारूँगी मैं;
पीत पट की, लकुट की, सु लट की लटक
देख दिल की हवस को निकालूँगी मैं।
'श्रीपुरंदर' सु अब जाके यमुना-निकट
वंशीवट ही के तट ध्यान धारूँगी मैं;
लखके मीनाकृती कुंडलों की झलक
नंद-फ़रज़ंद पर दिल को वारूँगी मैं।

५. आह भरने लगी

जाके ख़िलवत में देखा न महबूब को,
डूबकर इश्क़ में ही हरने लगी;
होके बदहोश अफ़सोस करके अयाँ
ग़म में घुट तन-बदन से गुज़रने लगी।
क्या कहूँ मैं 'पुरंदर' जो हो कैफ़ियत
वह परीरू हवस पस्त करने लगी;
चाह से हस्बेदिलख़्वाह पाया नहीं
माह को देखकर आह भरने लगी।

६. ले आया है यह

पैदा होते ही चट पूतना को हना
फिर बकासुर का मद झार लाया है यह;
बाएँ कर पर उठाकर गोवर्द्धन को फिर
दिल के अंदर 'पुरंदर' को भाया है यह।
ब्रज के लोगों के आनंद का कंद है,
नँदे-फ़रज़ंद सबमें समाया है यह;
कालिंदी के दहेर में सेहर करके सच
कालिया को पकड़कर ले आया है यह।

७. समाया है यह

ख़ूब ख़ुशरूय ख़ुशादाम ख़ुशगुफ़्त ख़ुशनुमा

चार वेदों के मकतब में गाया है यह ;
राधा रानी का प्यारा है मशहूर फिर,
देवकी का दुलारा कहाया है यह ।
कोई बलवीर इसको तसौवर करे,
गोपियों का सु महबूब साया है यह ;
खुश एकबाल श्रीश्यामसुंदर,
'पुरंदर' के नैनों में हरदम समाया है यह ।

८ निसार हूँ मैं

प्रिय पावन ऐ बुते माहेलका,
हर बार तेरा गुनहगार हूँ मैं ;
कर याद तुम्हें शबोरोज सनम,
दिल अपने से तो गमख्वार हूँ मैं ।
खमे अबरूए-तेग से घायल हूँ,
लबे-शीरीं बचश्मेनिगार हूँ मैं ;
मन मानि 'पुरंदर' प्रीति अयाँ,
दिलोजान से तुझ पै निसार हूँ मैं ।

पूर्तियाँ सुनकर राजा साहब बड़े प्रसन्न हुए। उपस्थित मुसलमान मुसाहबों ने पुरंदरजी की मुक्त कंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की। राजा साहब ने विप्रलब्धावाले छंद (संख्या ५) का भाव कहने को कहा, जिसके स्पष्ट करने में पुरंदरजी ने महाकवि देवजी का निम्न-लिखित छंद सुनाया—

सुखद सखी के संग सुख दै बलाई 'देव'
मिल्यो सुखदायक न, देख्यो दुख-दंदरा ;
नारकेम तरनि, जुन्हाई ज्यों तरनि-तेज
तरुनी तपी ज्यों तरुन ज्वर की तंदरा।
सीस के सरासन पै साधे सर पंचसर,
कोप्यो ज्यों धनुष धारि व्रज पै पुरंदरा ;
सरद निदाघ, मलि-अली बान बंदरा-से
मंदिर भए ज्यों मंदराचल की कंदरा।

इस छंद में 'पुरंदरा'-शब्द सुन स्वर्गीय राजा साहब ने संदेहवश प्रश्न किया कि क्या यह छंद भी आप ही का कहा हुआ है? उत्तर में देवदत्तजी ने कहा कि नहीं। यह महाकवि देवजी का है। उदाहरणार्थ श्रीमान् को सुना दिया। चलते समय श्रीमान् राजा साहब ने कविवर को बड़े आदर-सम्मान-सहित ८ जयपुरी मोहरें नज़र कीं। ५) सवारी-ख़र्च भेंट किए, और कहा कि आप कभी महमूदाबाद पधारें, तो आपका पूर्ण सत्कार होगा। परंतु पुरंदरजी अद्यावधि फिर कभी वहाँ नहीं गए।

यदि अवकाश हुआ, तो पुरंदरजी की अन्य बहुसंख्यक समस्या-पूर्तियाँ तथा स्वतंत्र कविता का रसास्वादन सहृदय पाठकों को फिर कभी कराने का उद्योग किया जायगा। इनका पद्यमय 'इँगलैंड का इतिहास' तो बड़ा ही हृदयग्राही है।

आजकल पुरंदरजी कानपुर में हैं। इनकी आयु इस समय साठ वर्ष के लगभग है। इनका घर माधुरी-संपादक श्री पं० रूपनारायणजी पांडेय के पड़ोस में है।

गत आषाढ़ की माधुरी में विविध विषय की एक टिप्पणी (हिंदी में अन्य भाषाओं के शब्द) में सुकवि भिखारीदास के एक दोहे के आधार पर जो विचार प्रकट किए गए हैं, उनकी पुष्टि भी पूर्णतया उपर्युक्त समस्याऽष्टक से होती है।

राधेनारायण वाजपेयी 'प्रज्ञावैद्य'

× × ×

२. कवींद्र 'प्रभाकर' और उनकी कविता *

आपका नाम श्रीरामप्रतापजी था। कविता के लिये उपनाम 'प्रभाकर' रखते थे। आपका जन्म सं० १९१३ में और मृत्यु १९६० में हुई। आपके पिता का नाम पं० लक्ष्मीधर, उपनाम श्रीधर था। प्रभाकरजी तैलंग ब्राह्मण और सुप्रसिद्ध कविवर पद्माकरजी के प्रपौत्र थे। आपका जन्म जयपुर में ही हुआ था, और अपने प्रपितामह 'पद्माकर' की पाई हुई जायदाद का उपभोग करते थे। संस्कृत और अँगरेज़ी-भाषा का आपको अच्छा ज्ञान था। व्रजभाषा के आप उच्च कोटि के कवि थे। आपका दतिया, शाहपुर, दरभंगा, बूँदी तथा राजपूताने की अन्य अनेक रियासतों में अच्छा सम्मान हुआ। आपने निम्न-लिखित ग्रंथों की रचना की है—(१) लोकेंद्र-विनोद, (२) माधव-विनोद, (३) मसनंद-महोत्सव, (४) शांति-शतक, (५) काव्यावलंब, (६) शिकार-शतक, (७) षट्-ऋतु-चंद्रिका, (८) अग्निवेश रामायण का भाषानुवाद, (९) शिव-प्रादुर्भावोत्सव, (१०) आनंद-चंद्रिका, (११) प्रताप-कीर्ति-चंद्रोदय।

पन्ना-नरेश श्रीमाधवसिंहजी के नाम पर इन्होंने 'माधव-विनोद' की रचना की। टीकमगढ़ के महाराजा प्रतापसिंहजी के नाम पर आपने 'प्रतापकीर्ति-चंद्रोदय' बनाया। इनके प्रायः समस्त ग्रंथ इनके सुपुत्र पं० गोविंदरावजी

* लेखक सन् १९१८ में जयपुर गया था। उसे इस लेख की सामग्री मित्रवर स्वर्गीय श्रीसोमदेवजी शर्मा गुलेरी से प्राप्त हुई थी।

तैलंग, जयपुर के पास अप्रकाशित पड़े हैं। आपको गिद्धौर-राज्य से 'कवींद्र' की उपाधि मिली थी।

'आनंद-चंद्रिका' बिहारी-सतसई की एक अत्युत्तम टीका है। इसकी लेखन-शैली बड़ी परिष्कृत एवं सरस है। बड़ी गंभीरता के साथ दोहों के अनेक अर्थ किए गए हैं। आपकी टीका लल्लूजी की लालचंद्रिका से कहीं अच्छी बन पड़ी है। अन्य ग्रंथों में 'काव्यावलंब' एक अपूर्व ग्रंथ है। आपका स्थान भाषा-कवियों में सर्वोत्तम नहीं, तो उच्च अवश्य ही है। भावों की उड़ान और माधुरी-मंत्री की तान से तबियत फड़क उठती है। भावों में गंभीरता और भाषा में सरसता और सजीवता दिल में गुदगुदी पैदा किए बिना नहीं रहती। हम आपकी स्फुट कविता के कुछ उदाहरण देते हैं। पाठक देखेंगे, इन पद्यों में रस-प्रवणता की कितनी पुट है—

मोहन, तिहारे बर-बिरह बिथानल की,
हाल कहिबे में बिथानल की सिराती-सी;
कहत कबींद्र 'परमाकर' बिचारी ब्रज-
बालन के हाल पर ज्वालन जगाती-सी।
बेई कुंज, कोकिल, कलिंदनंदिनी के तीर,
बानी कलहंसन की लागती किराती-सी;
छाती फोर जाती उतपाती प्रानघाती अनी,
किरनैं कलानिधि की लागैं काम-काती-सी।

इस पद्य में यतिभंग आ गया है। यही एक दोष मालूम पड़ता है। किंतु श्रीपति आदि अन्य महाकवियों की कविताओं में भी ऐसा अनेक बार हुआ है। वास्तव में बात यह है कि उच्च कोटि के कवियों का ध्यान शब्दों की ओर कम और भावों की ओर अधिक रहता है। उल्लिखित पद्य में प्रभाकर'जी ने बड़ी ही मार्मिकता और विदग्धता के साथ विरह-दशा का चित्र खींचा है।

आगे देखिए, फाग का वर्णन है—

फागु फगुहारन मचायो जाय गोकुल में,
गोकुल उमंग गलवारिन में आँकरी;
'प्रभाकर' कहै तहाँ कीरति-किसोरी लिए,
पिचक सुबर्न चोट गोबिंद पै जा करी।
पाइके अकेलो हंस बली-सी नबेली तिया,
पीतम समेटि भुज नेह की निसा करी;
मैन-लाज-मानी सम सुखमा सुहाती बाल,
साँकरी गली में कछु हाँ करी, न ना करी।

पद्य कितना सरस है! उपमा, अनुप्रास, गूढ़ोक्ति और उदात्तादि अलंकारों की कैसी मजलिस-सी लगी हुई है! "साँकरी गली में कछु हाँ करी, न ना करी" को सुनकर हमारे परम मित्रयुगल पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी और पं० श्रीधरजी पाठक की तबियत तो ज़रूर फड़क उठेगी।

किसी सरोजदृगी के नोकदार नयनों से सौतों पर कैसी अच्छी मार्के की चोट कराई गई है—

मुदित मरालन में मोहत सरोजदृगी,
महत मृगीन, मीन, खंजन उतारिगे;
सरबर-तीर-तीर तरबर धीर सीत,
सौरभ समीर सेन कुंज पुंज मारिगे।
उघर उरोज जग अचल उदत मन,
मानुक मनोभव के नायक उघारिगे;
नोकदार नैन मन-भावन के पास ह्वैके,
उर में असर चोट सौतिन पै करिगे।

हमारी सम्मति में स्वाधीनपतिका मुग्धा नायिका का यह सुंदर चित्र है। अब ज़रा वसंत की बहार भी देख लीजिए—

जैसे कुंज-कुंजन प्रपुंज पुहुपालिन पै,
संगुर बिलंज मंजु गुंजन भ्रमर के;
लागे लोम मोलि के महीतल मरंद मंद,
सीतल सुगंध गंधबाह कोल सर के।
मत्त पिक पूरित प्रमोद सहकार सुख,
घोष सुख राति है कपोत कीर कर के;
बिकसे बिराव माव अमृत अनूप चंद्र,
चंद्रिका चकोर मधु दूत पंचसर के।

यही नहीं, आगे चलकर बड़ी सहृदयता दिखलाते हुए आप वसंत का वर्णन करते हैं—

लाल-लाल लहरैं पलासन की कोरकै जे,
कोरी बैठ आसन सुरोपे रोख रुख है;
बौरे बौर भारन भकोरे भौर-भौरन से,
डोरै गंधबाह लै सुगंध सौरे सुख है।
आवती अकोरैं पुहुपालिन पराग-पूर,
मोरैं मोर-मौरन सुदोरैं मन-मुख है;
बिथित बियोगिन की बात हा कहा है बीर,
सोखन संजोगिन को दूनो आज दुख है।

यह तो हुई वसंत की बहार। अब शरद् का वर्णन भी सुन लीजिए—

सरस सुहाई सरसीरुह सरस सोभ,
सोमा सरसाई सारसन की सरस पर ;
'प्रमाकर' कहै लपाकर छबि जौन्ह वारि,
सारदासि नीकी हँसि हार दी हरस पर ।
दंपति रमत सुख-संपति-सनेह-साने ,
मनमाने लूटे मजा मौज के परस पर ;
अँखियाँ बरस परीं तरुनी तरस ताक ,
आज रस-मंदिर के अंदर फरस पर ।

आगे चलकर आपके गंगाजी के वर्णन की भी झाँकी झाँकी कर लीजिए—

त्रिजग त्रितापन के दिग्गज डिगाए तुव ,
भरम भगाए भव-सागर समूह के ;
'प्रमाकर' सुधाकर से दीने तन दिव्य-दु ,
जाइ के सुनाए नाम गंगाजल व्यूह के ।
कागद नसाए चित्रगुप्त घबराए जम-
राज-उर आप त्यों पताके अग्नि-लूह के ।
पाए शिवलोक, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक दाम ,
आसन उठाए पाकसासन समूह के ।

यद्यपि कविवर पद्माकरजी के वंशज होने से आपने गंगाजी का सुंदर वर्णन किया है, तथापि कविवर लेखराजजी का गंगा-वर्णन आपसे कहीं बढ़-चढ़कर है ।

उपसंहार में केवल इतनी ही प्रार्थना है कि आपके अप्रकाशित ग्रंथों की ओर नागरीप्रचारिणी-सभा के संचालकों तथा 'गंगा-पुस्तकमाला' आदि के मालिकों को ध्यान देना चाहिए । उन्हें चाहिए कि वे इस महाकवि के ग्रंथ-रत्नों को भी अपनी माला में पिरोएँ । इसके लिये उनके पौत्र कवीश्वर पं० गोविंदरावजी तैलंग से पत्र-व्यवहार करना चाहिए ।

रामस्वरूप शर्मा "शार्दूल"



१. साहित्य

मतिराम-ग्रंथावली—संपादक, कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या २६४+२४४; मूल्य सजिल्द ३), अजिल्द २)

यह ढाई रुपए मूल्यवाली "अजिल्द" ग्रंथावली मेरे पास "समालोचनार्थ" भेजी गई है। परंतु मैं कवि मतिराम की कविता का मर्मज्ञ तो क्या, ज्ञाता भी नहीं। और, यदि मति-अनुरूप कुछ लिखना भी चाहूँ तो मुझमें विशेष लिखने की शक्ति भी नहीं। अतएव इस पुस्तक के विषय में दो ही चार बातें लिखकर मैं पुस्तक-प्रेषक, गंगा-पुस्तक-माला के अधिकारियों, के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ।

एक समय था, जब मैं मतिराम, पद्माकर और बिहारी-लाल आदि कवियों की कविता की ओर अधिक आकृष्ट था। उसे मैं पढ़ता ही नहीं, कंठ तक करता था। परंतु गुण-दोष-विवेचन की ओर मेरी दृष्टि न थी। कालांतर में जब मेरा मन अन्य भाषाओं के कवियों के काव्य की ओर आकृष्ट हुआ तब हिंदी के पुराने कवियों के विषय में मेरा मन उदासीन-सा हो गया। यह उदासीनता यहाँ तक बढ़ी कि संस्कृत के कवियों की उक्तियों की तुलना में हिंदी-कवियों की उक्तियाँ बिलकुल हीन जँचने लगीं। कभी-कभी तो इन पिछले कवियों की कोई-कोई उक्ति उनका उपहास तक करने के लिये यदा-कदा मेरे मुँह से निकल जाने लगी। अपनी इस मनोवृत्ति का एक उदाहरण या प्रमाण मुझे अब तक याद है। मतिराम का एक सवैया है, जिसका अंतिम चरण है—

"कान्ह की बात पै कान न दीन सुगेह की देहरी पै धरि आई।"

इसका पहला चरण मुझे लिखना चाहिए था, पर जान-बूझकर मैंने उसे नहीं लिखा; क्योंकि वह विशेष उद्वेग-जनक है।

मैंने मतिराम के केवल दो ग्रंथ देखे थे। एक रसराज, दूसरा ललितललाम। उनमें उस समय मुझे कोई विशेषता नहीं ज्ञात हुई और विवेचना-शक्ति का कुछ थोड़ा-सा आविर्भाव मेरे हृदय में, होने पर फिर मैंने कभी इन पुस्तकों को पढ़ा नहीं। परंतु प्रस्तुत पुस्तक की कॉपी मिलने पर मैंने जो उसकी भूमिका पढ़ी और मूल-ग्रंथों को उलट-पलटकर देखा तो मुझे अपने पूर्व-संस्कार बहुत कुछ भ्रांत मालूम हुए। मतिराम ने अपने समय के अनु-रूप नायिका-भेद और अलंकार-विषय पर जो कुछ लिखा है उसके लिये वह प्रशंसा ही के पात्र माने जा सकते हैं। वह समय ही वैसा था। तब इन्हीं बातों की—इन्हीं विषयों की कविता की—चाह थी। और वह इस प्रकार की कविता-रचना में अवश्य ही सफल हुए हैं। मतिराम की कविता में उनके पूर्ववर्ती—हिंदी और संस्कृत दोनों ही के—कवियों की कृतियों की छाया ही नहीं, कहीं-कहीं उनके प्रायः अनुवाद तक पाए जाते हैं। तथापि उनकी कविता का बहुत कुछ अंश उनकी निज की भी

उपज मालूम होता है। उनकी कोई-कोई उक्तियाँ बहुत ही मनोहारिणी हैं। यथा, सतसई के ये दोहे—

अंग अंगनि पिय संग मैं बरसत हुते पियूष ;
ते बीछू के डंक-से भए मयंक-मयूख ॥ ५१८ ॥
लाल, तिहारे चलन की सुनी बाल यह बात ;
सरद-नदी के सोत लौं प्रतिदिन सूखत जात ॥ ६१७ ॥

आजकल की विशेष परिमार्जित रुचि को देखते मतिराम की कितनी ही उक्तियाँ अश्लील नहीं तो उद्वेगजनक ज़रूर ही हैं; परंतु जिस समय उनका जन्म हुआ था उस समय वे वैसी न समझी जाती थीं। इस बात को हमें न भूलना चाहिए। पुराने कवियों की कृति का विचार करते समय उनके आविर्भाव-काल और परिस्थिति का ज़रूर विचार करना चाहिए। यदि उन्होंने समयानुकूल रचना न भी की हो तो भी उनकी पुस्तकों का योग्यता-पूर्वक संपादन करके उन्हें सर्वसाधारण के लिये सुलभ कर देना विचारवान और साहित्य-हितैषी पुस्तक-प्रकाशकों का कर्तव्य है। अतएव लखनऊ की गंगा पुस्तकमाला के मालिकों ने इस ग्रंथावली का प्रकाशन करके अपने कर्तव्य का प्रशंसनीय पालन किया है।

इस पुस्तक में कोई ५०० पृष्ठ हैं। पूर्वार्द्ध में २५० पृष्ठों की एक भूमिका है और उत्तरार्द्ध में मतिराम के तीन ग्रंथ—रसराज, ललितललाम और सतसई—हैं। पिछली पुस्तक अब तक दुष्प्राप्य थी। उसकी प्राप्ति अभी कुछ ही समय पहले हुई है। इन तीनों पुस्तकों के नीचे पाद-टीकाओं में उचित टिप्पणियाँ भी संपादक ने दे दी हैं। उनकी लिखी भूमिका बहुत विस्तृत है। उसमें उन्होंने मतिराम के जीवन-चरित के सिवा उनकी कविता की आलोचना अनेक दृष्टियों से की है। आरंभ में उन्होंने कविता के प्रयोजन, कविता की भाषा, रस, अलंकार, नायिका-भेद आदि का भी विस्तृत वर्णन किया है। उसका कुछ अंश अप्रासंगिक और अनावश्यक-सा मालूम होता है। परंतु जिन्होंने इन विषयों का ज्ञान अन्य मार्गों से नहीं प्राप्त किया उनके लिये वह भी ज्ञानवर्द्धक हो सकता है। इस पुस्तकावली के संपादक पंडित कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० हैं। आपकी लिखी भूमिका इस बात का प्रमाण है कि आप हिंदी के पुराने कवियों की कविता के विशेषज्ञ हैं।

दौलतपुर, रायबरेली, }　　　महावीरप्रसाद द्विवेदी
२४। ६। २६ }

× × ×

बिहारी-रत्नाकर—प्रणेता, श्रीजगन्नाथदास रत्नाकर बी० ए०; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव; आकार माधुरी का-सा; पृष्ठ-संख्या ३२+२६६+४६; मूल्य ५) सजिल्द।

बिहारी-रत्नाकर बिहारी-सतसई की सबसे नवीन टीका है, जिसको बाबू जगन्नाथप्रसाद उपनाम रत्नाकर कवि ने प्रस्तुत और पंडित दुलारेलाल भार्गव ने अपनी नूतन सुकवि-माधुरी-माला का प्रथम पुष्प बनाकर प्रकाशित किया है। भार्गवजी ने अपने संपादकीय निवेदन में सुकवि-माधुरी-माला के प्रकाशन के विषय में अपने विचार प्रकट करते समय लिखा है कि उसमें हिंदी के सभी मुख्य कवियों के काव्य आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक भूमिका, आवश्यक टीका-टिप्पणी, अवतरण, शब्दार्थ, पाठांतर आदि समेत सुचारु रूप से छपेंगे और पाठ-शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया जायगा। जिन प्रधान कवियों के ग्रंथ छापने का निश्चय किया गया है, उनकी नामावली को 'चंद' से लेकर 'पूर्ण' तक सौ ऊपर सोलह कलाओं में परिमा कर दी है, और इस महाकार्य के संपादन के लिये 'महावीरप्रसाद' से 'हर्षदेव' तक दस ऊपर सोलह विद्वानों के नाम प्रकट कर दिए हैं। आशा है, 'महावीर के 'प्रसाद' से अंत में 'हर्ष' ही प्राप्त होगा, विशेषकर जब भृगु के 'दुलारे' यह प्रण करते हैं कि हम माला को सफल बनाने में अपनी ओर से कोई कोर-कसर न रक्खेंगे।

भार्गवजी ने अपने प्रथम पुष्प की समालोचना हमसे तलब की है। हमारी समझ में इसके लिये चार ही शब्द काफ़ी हैं—"शुद्ध पाठ, सरल अर्थ।" सतसैया के दोहरों की भी समालोचना चार ही शब्दों में की गई है—"ज्यों नावक के तीर"; परंतु आपने लिखा है कि समालोचना विस्तृत होनी चाहिए। समझ में नहीं आता कि यथार्थ में आप क्या चाहते हैं? शब्दाडंबर या इन चार शब्दों का स्पष्टीकरण। सतसैया की समालोचना का स्पष्टीकरण ७ शब्दों में किया गया है—"देखत के छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।" उसी के अनुसार हम अपने चार शब्दों के स्पष्टीकरण में इतना ही कह सकते हैं—"झलकत यामें कठिन श्रम, लोजहु यथासमर्थ।" बिहारी-रत्नाकर के प्राक्कथन में दिए हुए वर्णन से जान पड़ता है, बाबू जगन्नाथप्रसाद ने बिहारी की प्राचीन-से-प्राचीन प्रतियों के उपलब्ध करने में कुछ उठा नहीं रक्खा। उन्होंने राजा-महाराजों द्वारा जयपुराधीश को पत्र लिखवाकर उनके निजी पुस्तकालय से

प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों की नक़ल करवाने की मंज़ूरी प्राप्त की, और अयोध्या से अपना पंडित भेजकर चौकसी के साथ नक़ल करवाई, तथा अन्य प्राचीन प्रतियों की भी खोज करवाई। पश्चात् बड़े परिश्रम से अनेक प्रतियों का शब्द-वार मिलान कर बिहारी के लिखे हुए प्रत्येक मूल-शब्द का तर्क के साथ निश्चय किया, जिससे इस पुस्तक का पाठ सबसे अधिक प्रामाणिक बन गया है। टीका भी ऐसी सरल और मनोहर कर दी गई है कि उसकी बानगी देखकर बिहारीबिहार के रचयिता बैकुंठवासी पं० अंबिकादत्त व्यास के समान सतसैया-मर्मज्ञ ने दो पीढ़ियों के पूर्व उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। इतना करने पर भी भृगु के दुलारे उन्हें आलसी बतलाते हैं। बाबू जगन्नाथप्रसाद ने बिहारी-रत्नाकर का बीज—वैद्यक-मतानुसार—२५ वर्ष की प्रौढ़ अवस्था में बोया था, उसका फल सठिया जाने पर विकसित हुआ। 'अब पराग रह मधुर मधु, अब विकास को काल। अब निकस्यो नहिं बिंध रह्यो, बीती साठईं साल।" इसी हाल-हवाल को देखकर पंडित दुलारेलाल ने पैंतीस वर्ष का अंतर अक्षम्य मान उनके "अलसौंहैं सब गात" ठहराकर अनेक आवश्यक कार्य व बाधाओं के बतलाने पर भी "तुम सौंहैं कत खात" कहकर अपना ही सिद्धांत स्थिर रक्खा। कदाचित् यह तुलारालंकार का उदाहरण देने के हेतु से किया गया हो। युवावस्था में स्फूर्ति विशेष रहती है, इसलिये युवकों को बहुत-से 'धिरंजन' के कार्य शिथिल देख पड़ते हैं। भार्गवजी ने शिथिलता की बौछार बपुरी नागरी-प्रचारिणी सभा पर भी फेंकने की कृपा की है। आप अपने संपादकीय सिंहावलोकन में लिखते हैं— 'उसकी चाल इतनी मंद है और कार्य का परिमाण इतना स्वल्प कि उसके द्वारा प्राचीन कविता-मणियों के पूर्ण प्रकाश का कठिन कार्य शीघ्र संपन्न होते नहीं दिखाई पड़ता।" नींव खोदना और मकान बनाना एक बात है, और छपाई-पुताई करना दूसरी बात। पहली के अभाव में दूसरी का संपादन असंभव है। परंतु भृगुपुंगवों को निस्संदेह अधिकार है कि वे मनमानी टीका करें। भृगुनाथ परशुराम ने भी तो राम की अच्छी ख़बर ली थी। जगन्नाथ राम के दूसरे रूप ही हैं। तब तो पूर्वजों के समसामयिक प्रतिनिधियों में उनके समय का एक दृश्य कुछ असंगत नहीं जान पड़ता। रामजी ने कहा था—"मारत हू पाँ परिय तुम्हारे।" जगन्नाथजी कहते हैं—'हम उनको अनेकानेक धन्यवाद देते हैं।"

संपादकीय व्याख्या में ग्रंथकर्ता का थोड़ा-सा जीवन-चरित्र लिख दिया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि कॉलेज में आपकी द्वितीय भाषा फ़ारसी थी। हमारे सहपाठी राय देवीप्रसाद का भी यही हाल था। इसलिये जगन्नाथप्रसाद का जन्म-संवत् १९२३ पढ़कर हमको कुतूहल हुआ कि यह देवीप्रसाद के 'सहवासी' तो न हों, अर्थात् इन्होंने राय देवी-प्रसाद के साथ-साथ बी० ए० पास किया हो। परंतु उनके पास होने का साल १८९१ बतलाया गया है, और राय देवी-प्रसाद संवत् १९२३ के पीछे जन्म पाकर भी सन् १८८८ में पास हो चुके थे। अस्तु, दोनों में निदान यह साम्य है कि वे फ़ारसी के स्कॉलर होकर हिंदी के अग्रगण्य कवि हो गए, और स्वयं रक्खे हुए उपनाम 'पूर्ण' और 'रत्नाकर' को पूर्ण रूप से सार्थक किया। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। जब पहले-पहल राय देवीप्रसाद ने अपनी हिंदी की पद्य-रचना हमारे पास भेजी, तो हमें विश्वास ही नहीं होता था कि उन्होंने वह स्वयं लिखी होगी। यहाँ तक कि हमने अपनी शंका उन पर प्रकट भी कर दी। परंतु उन्होंने शांति-पूर्वक पूर्ण रूप से हमारा समाधान कर दिया। यों तो अरबी-तुर्की-फ़ारसीदाँ रहीम ने हिंदी में वे बढ़िया दोहे लिखे हैं, जिनकी समता करना बहुत ही कठिन काम है, तथापि हमें अपने युग में पूर्ण के अनुरूप दूसरा कवि-शिरोमणि देखकर विशेष आनंद मालूम होता है। बाबू जगन्नाथप्रसाद का बिहारी-रत्नाकर अभी अधूरा है, जिसकी विज्ञप्ति उन्होंने उस पुस्तक में ही दे दी है। वह अभी इस ग्रंथ की भूमिका लिख रहे हैं, जो एक स्वतंत्र पुस्तक के बराबर होगी, और अलग छपेगी। जब तक वह छप न जाय, तब तक इस ग्रंथ की समालोचना असामयिक जान पड़ती है।

किंतु हम यहाँ पर इस ग्रंथ की एक विशेषता का उल्लेख कर देना अभीष्ट समझते हैं. वह है बिहारी का रंगीन चित्र। यह उनकी आकृति का प्रामाणिक प्रतिरूप बतलाया जाता है। कहते हैं, यह जयपुर के महल के किसी अंतः-पुर में खिंचा है। उसमें उस समय का दृश्य दिखलाया गया है, जब बिहारी ने "नहिं पराग, नहिं मधुर मधु" इत्यादि लिखकर महाराजा जयपुर के पास भेजा था। बिहारी के चित्र दो जगह पर हैं। एक खड़ी अवस्था में, उनके आते समय किसी राजकर्मचारी के द्वारा उनके स्वागत का, और दूसरा बैठी अवस्था में उक्त दोहा लिखकर भीतर भेजने

का। पुस्तक का चित्र खड़ी अवस्था की अनुकृति है। परिधान मारवाड़ी है। पगड़ी, जामा, पटका, जूता अथवा अकबरी शब्दावली में शीश-शोभा, सर्वगाती, कटिज़ेब और चरम-चरण मारवाड़ी फ़ैशन या यों कहिए, तत्कालीन कोर्ट फ़ैशन का अनुकरण करते हैं। बिहारी के जामे की किनारी लहँगे की किनारी के समान ज़रीदार है, जो महाराज जयसिंह के जामे में भी नहीं पाई जाती, जैसा कि इसी ग्रंथ में दिए हुए उनके चित्र से जान पड़ेगा। बिहारी विपरीत रति के बड़े शौक़ीन थे, कदाचित् इसीलिये उनके सर्वगाती में लहँगे की बहार दिखला दी गई है, अथवा "झीन झगा यों झल-मले" का बोध करा दिया गया है। बिहारी-जैसे शृंगारी कवि के लिये यह उचित ही था। सूरत भी सुरत-सूचक मेहराई लिए जान पड़ती है। बिहारी कदाचित् इसे देख पाते, तो निम्न-लिखित दोहा जोड़कर सतसैया में ७१३ के बदले ७१४ दोहे कर देते —"जुमकल ही साठहूँ बरस, मानुस सठिया जात; बुढ़ई-बुढ़वा जानहीं का सिंगार की बात।" अब आगे बढ़ते डर मालूम होता है; क्योंकि 'खिन-खिन में खटकत हिए खरी भीर मैं जात। लोचा ऐसो भीर को कह न देय कहुँ बात।" जिस भीर या विस्तार का आदि में इतना बड़ा अभाव था, वही अब भय-जनक हो रहा है, इसलिये अब हम यहीं पर समाप्ति कर देना उचित समझते हैं।

रसिक-रसाल ग्रंथ की, जे रस जाननहार;
कहत रसीली चाहिए, रसालोचना भार।

क्या करें, यारों की तृप्ति के लिये हमारे पास सामग्री ही नहीं है।

अंत में यह बताना आवश्यक जान पड़ता है कि पुस्तक की सज-धज प्रशंसनीय है; परंतु विशेष प्रशंसनीय श्रीदुलारेलाल का उद्योग है, जिसने भव्य शृंगार-सहित बिहारी के अमूल्य ग्रंथ-शिरोमणि का कवि शिरोमणि के करों द्वारा हिंदी-रसिकों को सरलता से मर्म जानने का मार्ग खुलवा दिया।

हीरालाल

× × ×

रहीम-कवितावली—संपादक, सुरेंद्रनाथ तिवारी; प्रकाशक, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या लगभग १००; मूल्य।≈)

इस पुस्तक में रहीम-कृत अद्यावधि उपलब्ध सभी सामग्री का संग्रह है। हमारी खोज द्वारा प्राप्त रहीम का चित्र तथा नगर-शोभा और बरवै के माधुरी एवं सरस्वती में प्रकाशित कुछ छंद भी इस कवितावली में दिए गए हैं। पुस्तक-प्रकाशक की जल्दी के कारण संपादक महाशय इन पुस्तकों के समस्त छंद हमसे लेकर नहीं छाप सके। रहीम की कविता में पाठ-भेद अधिक मिलता है। यदि इस पुस्तक में पाठांतर-समेत शुद्ध कर दिया जाता, तो अच्छा था। पाद-टिप्पणी में अनेक आवश्यक शब्दों का अर्थ नहीं दिया गया। रहीम के नाम से जो तीन मदनाष्टक प्रसिद्ध हैं, उनमें वास्तव में रहीम-कृत कौन-सा है, इस विषय पर मतभेद हो सकता है। परंतु हमें इस पुस्तक में प्रकाशित मदनाष्टक के रहीम-कृत होने में संदेह है। बरवै-नायिका भेद का जो पाठ १०० वर्ष की प्राचीन हस्ताक्षर-शोधित प्रति के आधार पर दिया गया है, वह भी सर्वथा शुद्ध नहीं प्रतीत होता। पुस्तक के आरंभ में रहीम की जीवनी तथा उनकी कविता पर एक छोटी-सी आलोचनात्मक टिप्पणी भी दी है; परंतु उसकी समस्त बातों से हम सहमत नहीं हैं। रहीम की कविता का प्रचार दिन-दिन बढ़ रहा है, और आशा है, यह कवितावली भी इस प्रचार की गति को और भी बढ़ावेगी।

भवानीशंकर याज्ञिक

× × ×

२. इतिहास और राजनीति

गोरा चाम—काले काम—लेखक, पं० बालमुकुंद बाजपेयी। प्रकाशक, प्रताप-कार्यालय कानपुर, पृष्ठ-संख्या २२६; मू० १)

श्रीयुत ई० डी० मोरेल-कृत 'ब्लैक मैंस बर्डेन'-नामक पुस्तक के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। परिचय में लेखक महाशय ने काली-जाति पर गोरी जाति ने जो कुछ अत्याचार किए हैं, उन पर विवेचना की है। अँगरेज़ों ही ने नहीं, जितनी गोरी-जातियों ने उपनिवेशों पर अधिकार जमाया, काली-जातियों को, जिनकी भूमि पर वे जा बसे थे, नेस्त-नाबूद करने में कोई कसर नहीं रक्खी। दक्षिणी अमेरिका में स्पेन-निवासियों ने, और आफ्रिका में जर्मनों और फ़्रांसीसियों ने अपने उपनिवेशों के प्राचीन निवासियों के साथ जो सलूक किया, वह अँगरेज़ों के अपने उपनिवेशों में बसे हुए भारतीयों तथा प्राचीन निवासियों के प्रति किए गए सलूक से कम न था। जहाँ देखो, वहाँ 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरि-

सार्थ होती है। गुलामी-प्रथा के विरुद्ध क़ानून तथा धर्म से निषेध है। तो भी धर्म और क़ानून निर्बलों की रक्षा करने में असमर्थ रहे। हम इस समय निर्बल जाति होने के कारण उपनिवेशों के गोरों को अपने तथा अन्य काली, पीली और भूरी जातियों के प्रति अत्याचार होते देखकर त्राहि-त्राहि की घोषणा करते हैं। परंतु अपने ही देश में अपने आर्य-पूर्वजों के अनार्यों के प्रति किए हुए अत्याचार को भूल जाते हैं। उस अत्याचार की इतनी गहरी जड़ उन्होंने गाड़ दी कि जन्म-जन्मांतर के लिये उन पर आर्य द्विजों की सेवा करने का भार डाल दिया। वाजपेयीजी ने आजकल के ही गोरे चाम-वालों के काले कामों का विवरण दिया है। यदि इधर दृष्टि डालते, तो कुछ हमारे लिये सबक़ होता, कुछ उनके लिये। हमारे लिये यह कि कोई क़ानून, कोई धर्म का आदेश निर्बलों की रक्षा नहीं कर सकता, जब तक अपनी रक्षा वे स्वयं न कर सकें। उनके लिये यह कि अत्याचार करनेवाली जाति के संगठन और चरित्र पर उसके पापों का भार लदता रहता है, जिसके बोझ से स्वतंत्र जातियाँ समय पाकर परतंत्र हो जाती हैं। हमारे देश में आर्य-जाति का और योरप में इटली और स्पेन का पतन आने-वाली दुर्घटनाओं की सूचना दे रहे हैं। गोरी और काली जातियों को संसार में, द्विजों और शूद्रों को हिंदू-समाज में, हिंदुओं और मुसलमानों को भारतवर्ष में चेतने की आवश्यकता है। रहो और रहने दो, नहीं तो रहनेवालों और न रहनेवालों, दोनों का पतन होगा।

× × ×

निर्वाचन-नियम—लेखक, श्रीदयाशंकर दुबे तथा श्रीभगवानदास केला; प्रकाशक, व्यवस्थापक, भारतीय ग्रंथमाला, वृंदावन; पृष्ठ-संख्या १३० ; मूल्य ।=)

लेखक महोदयों ने यह पुस्तक बड़े उपयुक्त समय पर लिखी है। प्रांतीय और भारतीय व्यवस्थापक सभाओं का निर्वाचन-काल निकट आ रहा है। ऐसे समय इस बात की बड़ी आवश्यकता थी कि किसी छोटी-सी पुस्तक में निर्वा-चन-नियम तथा उसके सिद्धांतों की विवेचना हो। पुस्तक में निर्वाचक तथा उम्मेदवार, दोनों के लिये यथेष्ट नियम तथा उपदेश दिए गए हैं। आशा तो नहीं है कि इन उपदेशों का अभी निर्वाचकों या उम्मेदवारों पर कुछ भी असर पड़ेगा। परंतु इससे कोई हर्ज नहीं। लेखक महोदयों ने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। एक कमी खटकती है। कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनके हिंदी-भावांतर अपरिचित-से मालूम होते हैं। यदि एक सूची में अँगरेज़ी-शब्द और उनके हिंदी-रूपांतर दे दिए जाते, तो अच्छा होता। यदि भारत की प्राचीन निर्वाचन-पद्धति का कहीं उल्लेख मिले, और उसका इस पुस्तक में संक्षिप्त रूप में विवरण दे दिया जाय, तो इतिहास-प्रेमियों को भी संतोष हो।

× × ×

शिवहरे-जाति का इतिहास—लेखक, पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार; संपादक तथा प्रकाशक, श्रीमथुराप्रसाद शिवहरे, अजमेर; पृष्ठ-संख्या ८०; मूल्य ।)

लेखक महाशय ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि शिवहरे, जिन्हें मामूली बोलचाल में कलवार कहते हैं, चंद्रवंशी क्षत्रिय हैं। धीरे-धीरे वे व्यवसाय करने के कारण वैश्य समझे जाने लगे। इनमें से कुछ ने मद्य बेचना शुरू कर दिया, इसलिये इनकी जाति का उतना सम्मान नहीं रहा, जितना इनके प्राचीन गौरव की हैसियत से होना चाहिए था। कुछ लोग इस प्रकार की खोज पर टीका-टिप्पणी करते हैं, लेखकों के विचारों की हँसी उड़ाते तथा उन्हें झूठा प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं। हम इसके विरुद्ध हैं। हमारी समझ में यदि किसी जाति के लोग अपने को क्षत्रिय समझें, तो हमें उनके इस विचार में सहायता देनी चाहिए। अपनी जाति को ऊँचा मानकर ही वे अपना सुधार कर सकते हैं। हमें प्रस्तुत पुस्तक को पढ़कर बड़ा आनंद हुआ कि शिवहरों में भी जागृति आरंभ हुई है। हमें आशा है कि वे इस इतिहास का मनन और अपने पूर्वजों के उच्च आदर्शों तक पहुँचने का प्रयत्न करेंगे।

कालिदास कपूर

× × ×

३. जीवन-चरित

सेठ श्रीजमनालाल बजाज़—लेखक, श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक, हिंदी-मंदिर, प्रयाग। मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक में देश के गौरव सेठ जमनालालजी बजाज़ का परिचय दिया गया है। यों तो किसी व्यक्ति का जीवन-चरित्र लिखने में बड़ी असुविधा रहती है, जब तक कि उस जीवन का अंत भी न देख लिया जाय। हम चरित्र का तभी सच्चा अनुसंधान कर सकते हैं, हम तभी

उसके विषय में निष्पक्ष राय दे सकते हैं, जब उसका जीवन-काल समाप्त हो जाय। परंतु कुछ ऐसे महानुभाव होते हैं, जिनके जीवित उदाहरण को देश के सामने रखने की आवश्यकता पड़ती है, जिससे हम नवयुवक समाज का चरित्र सुधारने में योग दे सकें। ऐसे महानुभावों की जीवितावस्था में ही उनके उदार हृदय, उनकी अविचल देशभक्ति, और उनकी कार्यपरायणता की सूचना देना आवश्यक है। महात्मा गांधी तथा सेठ जमनालाल बजाज़ देश के ऐसे ही महानुभाव हैं। रामनरेशजी ने प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे महानुभाव का परिचय देकर देश-सेवा का कार्य किया है।

मुझे कुछ समय हुआ, रोम्याँ रोलाँ का लिखा महात्मा गांधी का जीवन-चरित पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस पुस्तक में लेखक ने महात्माजी के जीवन-सिद्धांतों की ख़ूब विवेचना की है। मालूम नहीं, सेठजी के जीवन-चरित्र में लेखक महाशय को इसके लिये यथेष्ट सामग्री क्यों नहीं मिली। प्रस्तुत पुस्तक से हमें सेठजी का पारिवारिक परिचय तो बहुत अच्छा मिलता है, पर उनके असीम आत्मत्याग, उनकी सरलता और उनके मनोबल की यथेष्ट विवेचना नहीं की गई है। शायद इसका कारण स्थानाभाव रहा हो। पुस्तक की छपाई अच्छी है। चित्र यथेष्ट हैं, और अच्छे छपे हैं। हम लेखक महाशय को, उनके इस सेवा-कार्य के लिये, साधुवाद देते हैं।

कालिदास कपूर

× × ×

४. महिला-साहित्य

ज़च्चा—लेखक, श्रीप्रतापसिंह वैद्य विशारद; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; आकार डबलक्राउन; पृष्ठ-संख्या १६० मूल्य ॥=)

स्त्रियों के जीवन में प्रसव-वेदना की जैसी पीड़ा होती है, वह उन्हीं का दिल जानता होगा। पुरुष कितना ही अनुभवी क्यों न हो, पर वह इस कष्ट का अनुमान नहीं कर सकता। कुछ तो इस वजह से, और कुछ इसकी अश्लीलता के कारण, इस तरफ़ बहुत कम ध्यान दिया जाता है। यही नहीं, बल्कि इस विषय को डॉक्टरी पुस्तकों की सीमा के बाहर देखते ही लोग नाक-भौं भी सिकोड़ने लगते हैं। नतीजा यह होता है कि इसकी अज्ञानता दिन-दिन बढ़ती जाती है, और प्रसव का दुःख मिटाने के बदले और भी कष्टदायक होते जाते हैं। यहाँ तक कि अब बच्चा पैदा होना तो दूर रहा, ज़च्चा के प्राण बच जायँ, तो यही बड़ी बात है। पहले घर की बूढ़ी स्त्रियाँ और दाइयाँ इस विषय में ऐसी होशियार होती थीं कि शायद ही प्रसव के समय कभी लेडी-डॉक्टर के बुलाए जाने की ज़रूरत पड़ती हो। मगर अब तो बिना लेडी-डॉक्टर साहबा की कृपा के बच्चे के मुख का दर्शन दुर्लभ है। अगर औज़ारों की मदद ली गई, तो पैदा होना-न होना, दोनों बराबर हो गए। डॉक्टरों की फ़ीस भी इन अवसरों बड़ी लंबी-चौड़ी होती है। किसी बेचारे के पास इतने रुपए न हुए, तो पुत्रोत्सव के स्थान पर ज़च्चा की मरण-सेज की तैयारी होने लगती है। यों तो मरना-जीना भाग्य ही के अधीन है, फिर भी उचित उद्योग द्वारा मनुष्य के दुःख बहुत कुछ दूर हो सकते हैं। पहले घर की बूढ़ी स्त्रियों को इन बातों में अच्छी जानकारी होती थी। वे अपनी गर्भवती युवतियों को शुरू ही से अपनी देख-रेख में रखती थीं, जिसका उत्तम फल यह होता था कि प्रसव की घड़ी में बच्चा और ज़च्चा की जानों पर बहुधा इतनी साँसत नहीं होती थी, जितनी अब होती है। पुरुषों की उदासीनता इस विषय पर सदा ही थी। इधर युवतियाँ घर की बूढ़ियों का आदर-सत्कार छोड़कर फ़ैशन पर एकदम टूट पड़ीं, तो उधर बूढ़ियाँ भी अपने कर्तव्यों को भूल-भालकर केवल लड़ाई और कलह पर संतोष करने लगीं। फिर क्यों न ऐसे अवसरों पर लेडी-डॉक्टर मिज़ाज दिखावें, और ग़रीबों के घर आबाद होने के बदले बरबाद हों। ईश्वर की कृपा से अश्लीलता के पाखंड को त्यागकर लेखक महोदय ने इस प्रस्तुत पुस्तक में मासिक धर्म से लेकर पुत्रोत्पत्ति तक का संपूर्ण हाल, और अज्ञानता और असावधानियों से जो भयंकर परिणाम गर्भवती को झेलने पड़ते हैं, उनसे बचने के उपाय, लिखकर स्त्रियों का बड़ा उपकार किया है। इसके द्वारा इस विषय की जनता को अच्छी जानकारी होगी, और हर तरह से लाभ पहुँचेगा। पुस्तक सभी के पढ़ने-योग्य है। विशेषकर स्त्रियों को तो इसे बार-बार पढ़कर इस विषय का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।

× × ×

गुप्त संदेश (प्रथम भाग, द्वितीय संस्करण)—लेखक, डॉक्टर युद्धवीरसिंहजी पी० ई० एन० एम०, आई० एम० पी०;

प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ ; आकार डबलक्राउन ; पृष्ठ ८४ ; मूल्य ।=)

प्रस्तुत पुस्तक विवाहित युवतियों के लिये बहुत सरल ज़बान में लिखी गई है, और इसमें मासिक धर्म-संबंधी रोगों का वर्णन, कारण और निवारण दिए हुए हैं। आजकल दुनिया-भर के रोगों का, मालूम होता है, भारत-वर्ष ने ठेका ले रक्खा है ; क्योंकि ऐसा मनुष्य पुरुष या स्त्री विरला ही कोई हो, तो हो, जो अपने कलेजे पर हाथ रखकर कह सके कि मुझे कोई रोग नहीं है। कोई बाहरी रोग से ग्रसित है, तो किसी को भीतरी कुछ-न-कुछ शिकायत है, जिनमें बहुत-सी शिकायतें तो ऐसी हैं, जो हमारी ही अज्ञानता, असावधानी या मूर्खता के कारण जवानी में दुम के पीछे लग जाती हैं, और ज़िंदगी-भर पीछा नहीं छोड़तीं। यही हाल स्त्रियों का भी है। परंतु वे बेचारी अपना दुःख किसी पर प्रकट नहीं कर सकतीं, और न उसे स्वयं ही समझ पाती हैं, जिसका भयंकर परिणाम किसी-न-किसी रूप में धीरे-धीरे उनकी जान का ग्राहक हो जाता है। इन्हीं सब युवावस्था की असावधानियों द्वारा उत्पन्न होनेवाले गुप्त रोगों का ब्योरा इस पुस्तक में है। उनकी औषधियाँ भी दी हुई हैं। मगर होमियोपैथिक। अगर लेखक महोदय हिंदुस्तानी दवाइयों के भी नुसख़े देते, जिनको हमारे घरों की स्त्रियाँ बिना पुरुषों की मदद के स्वयं समझ सकतीं और पंसारी के यहाँ से मँगवा सकतीं, तो और भी उत्तम होता। पुस्तक विवाहित युवतियों के लिये लाभदायक और अत्यंत ही आवश्यक है।

× × ×

वनिता विलाप—लेखक, भूतपूर्व सरस्वती संपादक श्रीमान् महावीरप्रसाद द्विवेदी ; प्रकाशक, गंगा पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ ; आकार डबलक्राउन; पृष्ठ-संख्या ९० ; मूल्य ॥); सचित्र, दूसरा संस्करण।

प्रस्तुत पुस्तक में द्विवेदीजी के लिखे १२ वीरों के चरित दिए हुए हैं। पहले संस्करण से इस संस्करण में दो चरित अधिक हैं। भाषा और शैली अच्छी है।

जी० पी० श्रीवास्तव

× × ×

५. फुटकल

माइकेल मधुसूदनदत्त—लेखक, साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल "सुमन"; प्रकाशक, हिंदी पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (दरभंगा); मूल्य ।)

चारु चरित-माला का यह द्वितीय सुमन है। माइकेल मधुसूदनदत्त लोकोत्तर प्रतिभा-संपन्न थे, यह सर्वमान्य बात है। उनकी कवित्व-शक्ति अत्यंत उच्च कोटि की थी, और बँगला-काव्यक्षेत्र में उन्होंने एक नवीन पथ का प्रवर्तन किया है। उनका जीवन-चरित्र लिखकर सुमनजी ने हिंदी-संसार के समक्ष रखकर अच्छा काम किया। मधुसूदन बाबू की सरस्वती का रसास्वाद तो यथार्थ में वे ही लोग कर सकते हैं, जो बँगला-भाषा से अभिज्ञ हैं। परंतु उनकी 'जीवनी' से सभी लोग अवश्य लाभ उठा सकते हैं, और उनकी कमज़ोरियों को जानकर उनसे बचने की चेष्टा कर सकते हैं। मधुसूदन बाबू ईसाई हो गए थे, और अंत तक उसी धर्म में रहे भी। उन्हें समाज में फिर से लेने की चर्चा भी अवश्य हुई; पर उन्होंने स्वीकार न किया। जिस भावुकता के कारण अपने कुल-परंपरागत पवित्र धर्म का उन्होंने परित्याग किया, उसी के कारण उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़े, और यह जानकर दुःख होता है कि उनका जीवन सुखमय कदापि न हो सका। अपव्यय के कारण वह सदैव दरिद्र रहे, और अंत भी उनका बड़ा दुःखमय हुआ। जो हो, उनके जीवन से अनेक प्रकार की शिक्षाएँ मिलती हैं। उनके गुणों का अनुकरण और दोषों का निराकरण करने से ही पाठकगण इस जीवन-चरित से यथार्थ लाभ उठा सकते हैं।

× × ×

कपिला-क्रंदन—लेखक, शोभाराम धेनुसेवक ; प्रकाशक, आनुलर्मा-ग्रथमाला, लखनादौन (सिवनी), मध्य-प्रदेश; मूल्य =)धर्मार्थ बाँटनेवालों के साथ विशेष रियायत।

प्रस्तुत पुस्तक में गोमाता के दुःखों की गाथा मनोहर पद्यों में गाई गई है, जिसे पढ़कर पाषाणहृदय भी फड़कने लगेगा। गोसेवा की उपयोगिता इस समय लोग समझने लगे हैं। ऐसी दशा में इस पुस्तक से और अधिक लाभ की संभावना है। लोगों का चित्त गोमाता के दुःखों की ओर आकृष्ट करने के लिये यह पुस्तक बड़े काम की है। गोभक्तों को चाहिए, इस पुस्तक का जनता में प्रचार और हमारे उन हिंदू-भाइयों की आँखें खोलने का प्रयत्न करें, जो हिंदू होकर भी गोसेवा के महत्त्व से सर्वथा अनभिज्ञ

शहरों में तो गउओं की दशा और भी अधिक शोचनीय है। घोसी और ग्वाले तो निर्दयता के साथ, उनके बच्चों का हिस्सा तक खींच लेते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि थोड़े समय में ही बेचारे बच्चे अस्थिपंजर होकर अकाल ही काल-कवल में विलीन हो जाते हैं। तब ये हमारे हिंदू—घोसियों की बात जाने दीजिए—मृत वत्स के चमड़े में भूसा भरकर, गोमाता की प्रतारणा करके, निष्ठुरता के साथ, दूध निकालते हैं, और हम लोग आँखें बंद करके उसी दूध को अमृत के समान पीते हैं। कम-से-कम म्युनिसिपैलिटी के हिंदू सदस्य चाहें, तो इस कुप्रथा को रोक सकते हैं। पर उन्हें इसके लिये अवकाश कहाँ? हम पुस्तक का प्रचुर प्रचार चाहते हैं।

× 　　　× 　　　×

आडी-संग्रह (पहेलियाँ)—संग्रहकर्ता, पं० अयोध्याप्रसाद शर्मा विशारद। प्रकाशक,महेंद्र-प्रेस, बीकानेर; मूल्य ।)

रुक्मिणी-ग्रंथमाला का यह प्रथम पुष्प है। इसमें राजपूताने में प्रचलित राजस्थानी भाषाओं की पहेलियों का संग्रह है। पहेलियाँ चित्र-काव्य के अंतर्गत मानी जाती हैं, और काव्य की दृष्टि से वे अधम हैं। परंतु समय-समय पर मनोविनोद तथा चमत्कार के लिये विज्ञजन उन्हें अपनाते थे। अब चित्र-काव्यों की ओर लोगों का ध्यान नहीं जाता, और वे उन्हें निरर्थक समझते हैं; परंतु एक समय था, जब पहेली और बुझौवल-जाननेवाले का भी समाज में समुचित समादर था। राजस्थान के चारणगण अपने आश्रय-दाताओं को प्रसन्न करने के लिये उनका विनोद करने के लिये, इन पहेलियों की रचना किया करते थे। उन्हीं चारणों की रचनाओं का यह संग्रह है, और जैसा कि वक्तव्य में कहा गया है—इससे राजस्थानी शब्दों व मुहावरों की जानकारी होने से प्राचीन डिंगल-भाषा-काव्यों के समझने में लोगों को सहायता मिलेगी। इस दृष्टि से संग्रह काम का है।

× 　　　× 　　　×

वास्तवचंद्रशृंगोन्नतिसाधनम्—रचयिता, स्व० म० म० सुधाकर द्विवेदी। प्रतापगढ़ मेहता-संस्कृत-विद्यालय के प्रधान संस्कृताध्यापक, ज्योतिषाचार्य तीर्थ-रत्न-काव्यतीर्थ पं० श्रीगंगाधर मिश्र मैथिल कृत निरभ्रा-नाम्नी टीका-सहित। पुस्तक मिलने का पता—कृष्णदास गुप्त, ठठेरी-बाजार, बनारस सिटी।

वेद के छः अंगों में ज्योतिष भी एक अंग है, और उसे वेद-पुरुष का नेत्र माना गया है। जिस प्रकार नेत्रों के द्वारा पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, उसी प्रकार ज्योतिष-शास्त्र भी प्रत्यक्ष ज्ञान का साधन है। अन्यान्य शास्त्रों के सत्यासत्य-निर्णय के लिये प्रमाणांतर का प्रयोजन है; परंतु ज्योतिष और आयुर्वेद ही ऐसे शास्त्र हैं, जिनका चमत्कार प्रत्यक्ष प्रतिभासित होता है।

किसी ने कहा भी है—

> अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्।
> प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।

भारत कर्मभूमि है। यज्ञ-याग-व्रतोपवासादि श्रौत-स्मार्त कर्मों के सम्यगनुष्ठान के लिये ज्योतिष-शास्त्र आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। ज्योतिष-शास्त्र के गणित और फलित, दो विभाग हैं। इनमें से प्रधान गणित-शास्त्र ही है; किंतु फलित भी यथार्थ में उसका उपजीवक है। गणित ज्योतिष-शास्त्र पर प्राचीन आर्यों के द्वारा लिखे गए अनेक ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। ज्योतिर्विदों में स्वर्गीय महामहोपाध्याय सुधाकरजी द्विवेदी का स्थान बहुत ऊँचा था। उनके अनेक ग्रंथों में से प्रस्तुत पुस्तक भी एक है। इसकी टीका विद्वद्वर्य श्रीगंगाधर मिश्रजी ने की है। टीका का नाम आपने रक्खा है निरभ्रा। जिस प्रकार अभ्र अर्थात् मेघ के दृष्टिपथ में आ जाने के कारण चंद्र-सूर्य भी घनच्छन्न प्रतीत होते हैं—जैसा कि भगवान् शंकराचार्य ने कहा है—'घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं यथा मन्यते निष्प्रभं मूढचेताः"—और मेघावरण के हट जाने पर वे ही स्पष्ट प्रतिभासित होते हैं, इसी प्रकार यह निरभ्रा-टीका अज्ञान-रूपी मेघ को हटाकर यथार्थ अर्थ को हृदयंगम कराने में समर्थ है। चंद्रमा में जो प्रकाश देख पड़ता है, वह चंद्रमा का नहीं, प्रत्युत सूर्य की कृपा से उसे प्राप्त है, यह सिद्धांत सर्वमान्य समझा जाता है। सूर्य की किरणें चंद्रमा पर पड़ती हैं, उनसे चंद्रमा भी प्रकाशित होता है, और अन्य पदार्थों को प्रतिभासित करने में भी समर्थ होता है। आचार्य वराहमिहिर इसे बड़े अच्छे ढंग से कह गए हैं। वह कहते हैं—"सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्। क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः।" अर्थात् जल-मय चंद्रमा पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तो वे रात्रि के अंधकार का नाश करती हैं, जैसे दर्पण में पड़ी हुई सूर्य की किरणें मकान के अंदर का अंधकार दूर करती हैं। परंतु

चंद्रमा में सूर्य की किरणों का किस अनुपात से संयोग होता है, अथच उनका प्रकाश भूमंडल में किस प्रकार से कितना आता है, यह सर्वसाधारण की बुद्धि के बाहर का विषय है। भूमंडल से चंद्रबिंब को देखने से उसका आधे से कम भाग हम लोगों के दृष्टि-पथ में आता है। प्रस्तुत पुस्तक में इसी प्रकाश तारतम्य का समीचीन विवेचन है। यह पुस्तक ज्योतिष की उच्च कक्षाओं में परीक्षा के लिये नियत है, और इस पर बहुत अच्छी टीका का अभाव था। श्रीमान् मिश्रजी ने इस अभाव की पूर्ति कर दी है और उपपत्ति, आकृति आदि के द्वारा मूल को हृदयंगम कराने का प्रयत्न किया है। भाषा भी सरल है। छात्रगण सहज ही—थोड़े-से श्रम से ही—इसे समझ सकते हैं। ऐसी सुंदर टीका लिखकर मिश्र महोदय ने वास्तव में छात्रवृंद का बड़ा उपकार किया है। छात्रगण तो इससे विशेष उपकृत होंगे ही, पर अन्यान्य ज्योतिर्विद् भी इससे अवश्य लाभ उठा सकेंगे। आशा है, इस टीका का समुचित समादर करके गणितज्ञ लोग मिश्रजी का श्रम सफल करेंगे। मिश्रजी की सर्वतोमुखी विद्वत्ता के सर्वथा अनुरूप ही यह टीका हुई है, और इसके लिये हम मिश्रजी का अभिनंदन करते हैं। आशा है, मिश्रजी और भी पुस्तकें लिखकर छात्र-संसार को उपकृत करेंगे।

आद्यादत्त

× × ×

६. पत्र-पत्रिकाएँ

विभूति (मासिक)—संपादक, महंत शिवगुलाम भारती ; रजादेपुर-मठ, पोस्ट सगरी, ज़िला आज़मगढ़ ; वार्षिक मूल्य ३)

यह पत्रिका पहले तो यही सूचित करती है कि जहाँ डाकघर तक नहीं, वहाँ भी अब हिंदी की विजय-वैजयंती फहराने लगी है। अवश्य ही इसके प्रकाशकों का उद्योग प्रशंसनीय है। दूसरी बात यह है कि इसके संपादक एक मठ के महंत हैं। यह और भी हर्ष की बात है। यदि हमारे देश के अन्य मठाधीश भारतीजी के आदर्श का अनुकरण करें, तो साहित्य के विकास में बहुत कुछ सहूलियत हो सकती है। अधिकतर यही देखा जाता है कि धन के बिना ही ऐसे कार्य रुक जाते हैं। मठाधीशों के तो जागीरें लगी हैं। फिर अन्य महाशय भारतीजी का अनुकरण क्यों न करें ! समालोच्य संख्या ज्येष्ठ की और पत्रिका की ४वीं संख्या है। संपादन भी कुछ बुरा नहीं है। मुख-पृष्ठ पर भगवान् भूत-नायक का सुंदर चित्र भी है, जो पत्रिका के नाम को सार्थक करता है। हम इसकी उन्नति चाहते हैं।

× × ×

मोहन (मासिक)—संपादक, छबीलेलाल गोस्वामी और श्रीराधाकृष्ण भार्गव ; प्रकाशक, एल्० पी० नागर-प्रेस, मथुरा ; वार्षिक मूल्य २)

इस पत्र के मुख-पृष्ठ पर भगवान् श्रीकृष्ण का रंगीन चित्र है। गत मार्च से यह निकल रहा है। प्राचीन कवियों की कविता की भी झलक इसमें देखने में आती है। मोहन के लिये यह ठीक ही है। पत्र साधारणतः अच्छा निकल रहा है।

× × ×

आलोक (मासिक)—संपादक, आयुर्वेदाचार्य कवि-रत्न पं० कालीप्रसाद शास्त्री ; प्रकाशक, शुक्ल-प्रेस, एलनगंज, प्रयाग ; वार्षिक मूल्य ३)

यह पत्र सादगी का नमूना है। समालोच्य संख्या इसकी पाँचवीं (श्रावण की) किरण है। इसके अब तक के प्रायः सभी अंक हमने देखे हैं। संपादन अच्छा होता है। वर्तमान संख्या में श्रीयुत रत्नाकरजी का कवित्त बड़ा अच्छा है। संपादकीय विचारों की संख्या कुछ अधिक एवं उनमें प्रौढ़ता होनी चाहिए। अच्छा हो कि प्रेमी पाठक इसके संचालकों को सहायता पहुँचाकर उत्साहित करें। भविष्य में इससे कुछ अधिक आशा की जा सकती है।

× × ×

विद्या (मासिक)—संपादक, श्रीगोपीवल्लभ उपाध्याय ; प्राप्तिस्थान—विश्राम-कुटी, देवास-रोड (सी० आई०); वार्षिक मूल्य २)

मालूम नहीं, यह पत्रिका अब निकल रही है, या बंद हो गई। प्रथम किरण हमें समालोचनार्थ मिली थी। पत्रिका उन्नतिशील जान पड़ती है। यदि इसका प्रकाशन बंद हो गया हो, तो संचालकों को फिर निकालना चाहिए।

× × ×

गुलहरे-वैश्य-हितकारी (मासिक)—संपादक, प्रद्युम्न-कृष्ण गुलहरे ; प्रकाशक, चुन्नीलाल गुप्त, बादशाही नाका, कानपुर ; वार्षिक मूल्य २)

यह एक जातीय पत्र है। जाति-बंधुओं को इसे अपनाना चाहिए।

× × ×

महिला-सर्वस्व—संपादिका, लेडी-डॉक्टर उमादेवी शर्मा एल्० एम्० पी०; प्रकाशक, देवदत्त शर्मा राजवैद्य एम्० डी० अलीगढ़; मूल्य २)

पत्रिका का उद्देश्य नाम ही से प्रकट है। इसकी समालोचना करते हुए एक बार हमने आशा प्रकट की थी कि अच्छा हो, स्त्री द्वारा स्त्रियों के संबंध की पत्रिकाओं का संपादन हुआ करे। हुआ तो वैसा ही; लेकिन अभी यह गृहस्थों के काम की नहीं बन सकी। इस ओर संचालकों को ध्यान देना चाहिए।

× × ×

शाकद्वीपीय पत्रिका (मासिक)—पत्र-व्यवहार का पता—मैनेजर, बस्ती।

यह शाकद्वीपीय ब्राह्मण-महासभा की मुखपत्रिका है। जाति-बंधुओं को अपनाना चाहिए।

× × ×

भारत-विजय (मासिक)—संपादक और प्रकाशक, वैद्यरत्न पं० चिरंजीलाल शास्त्री, मेन-रोड, दादर, बंबई; वार्षिक मूल्य ४)

समालोच्य संख्या पत्र की पहली संख्या है, जिसे देखने से जान पड़ता है कि १) मूल्य का भी नहीं है।

× × ×

जैन-महिलादर्श (मासिक)—संपादिका, श्रीमती पंडिता चंदाबाई, आरा; पत्र-व्यवहार का पता—मैनेजर, जैन-महिलादर्श, चंदाबाड़ी, सूरत; वार्षिक मूल्य २≈)

यह भारतवर्षीय दिगंबर-जैन-महिला-परिषद् की पत्रिका है, और साधारणतः अच्छी निकलती है। स्त्रियों के काम की चीज़ है।

× × ×

प्रभात (मासिक)—संपादक, धर्मेंद्रनाथ शास्त्री एम्० ए०, तर्क-शिरोमणि; मेरठ से प्रकाशित; वार्षिक मूल्य ३)

यह पत्र पहले साप्ताहिक निकलता था; लेकिन हिंदी-पाठकों की कृपा से अब मासिक निकलने लगा है। यदि चलता रहे, तो अच्छा निकलेगा। संपादन में त्रुटि नहीं है।

× × ×

शिक्षक (मासिक)—संपादक, रामप्रीत शर्मा त्रिपाठी विशारद तथा श्रीयुत वैद्यनाथसहाय; प्राप्ति-स्थान—शिक्षक कार्यालय, आरा; वार्षिक मूल्य ३)

है तो यह शिक्षा-संबंधी सचित्र मासिक पत्र, लेकिन शिक्षा-संबंधी चित्र एक भी नहीं। ऐसे पत्र से तो पत्र का न निकलना अच्छा।

× × ×

अनुभूत योगमाला (पाक्षिक)—संपादक और प्रकाशक, पं० विश्वेश्वरदयालुजी वैद्यराज, बरालोकपुर, इटावा (यू० पी०); वार्षिक मूल्य ३)

यह पत्र ४ वर्ष से निकल रहा है। गृहस्थों के लिये अच्छा है। वैद्यक-संबंधी बातें इसमें रहती हैं। समय आने पर एक घरू वैद्य का काम दे सकता है।

× × ×

हिंदू-पंच (साप्ताहिक)—संपादक, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा; प्रकाशक, मुकुंदलाल वर्मा, बर्मन-प्रेस, ८४अपरचीतपुर-रोड, कलकत्ता; वार्षिक मूल्य केवल २)

यह सचमुच सचित्र साप्ताहिक पत्र है, और इसका संपादन एक पुराने संपादक द्वारा बड़ी योग्यता से किया जाता है। हम इसके कई अंक देख चुके। कृष्णाष्टमी के अवसर पर इसका कृष्णांक निकल चुका, और अब विजय-दशमी के उपलक्ष्य में विजयांक निकलेगा। पत्र में मज़ेदार भाषा, भाव-पूर्ण व्यंग्य चित्रों और कभी-कभी चटपटी चटनी का मज़ा आता है, उसी के साथ-साथ चित्रों की छटा भी देखने में आती है। इसका कृष्णांक ही इस बात का प्रमाण है। सस्तेपन की तो इसने हद ही कर दी है। लेकिन ख़ास और मार्के की बात यह है कि यह सचमुच हिंदू जाति का प्रतिनिधि है। हमारी इच्छा है कि यह सचमुच हिंदू-पंच बने। और, इस बात के लिये आवश्यक यह होगा कि सामाजिक प्रश्न कुछ अधिक गवेषणा के साथ हल किए जाया करें। भाषा की लोच इस समय ग़ज़ब ढावेगी। इतना अच्छा और सस्ता पत्र देने के लिये हम वर्माजी और शर्माजी, दोनों को बधाई देते हैं।

× × ×

विवेक (साप्ताहिक)—संपादक और प्रकाशक, श्रीयुत रघुपतिसहाय बी० ए०; पत्र-व्यवहार का पता—मैनेजर 'विवेक', प्रयाग-स्ट्रीट, इलाहाबाद; वार्षिक मूल्य ३॥)

हमारे पाठक श्रीयुत रघुपतिसहाय से अच्छी तरह परिचित होंगे। आप ही के संपादन में यह पत्र बड़ी

योग्यता-पूर्वक निकल रहा है। कहना न होगा कि यदि पत्र का यही ध्येय बना रहेगा, तो बहुत शीघ्र हिंदी और राजनीति-संसार में अपना स्थान प्राप्त कर लेगा। अभी तो केवल ८ ही संख्याएँ निकली हैं। रघुपतिसहायजी की लेखनी में काफ़ी ज़ोर है, उनके त्याग ने उनमें उच्च भावनाएँ उत्पन्न कर दी हैं। विवेक में उनकी भावना का प्रतिबिंब झलकता है। हमारी इच्छा है कि हिंदी-प्रेमी इस पत्र के शीघ्र ग्राहक बनकर इसके उचित स्थान प्राप्त करने का मार्ग निष्कंटक कर दें।

× × ×

भारतवर्ष (साप्ताहिक)—सपादक, श्रीयुत दीनदयालु श्रीवास्तव बी० ए०; पत्र-व्यवहार का पता—मैनेजर, भारतवर्ष, झाँसी, वार्षिक मूल्य ३॥)

यह एक सचित्र साप्ताहिक पत्र है। मुखपृष्ठ पर भारत-माता का चित्र है। संख्याएँ देखकर तो यही कहना चाहिए कि यह विचार-पत्र और समाचार-पत्र, दोनों ही है। संपादन भी अच्छा है। हम इसकी उन्नति चाहते हैं।

× × ×

व्यापार (दैनिक)—संपादक और प्रकाशक, लाला रोशनसिंह; वार्षिक मूल्य ४)

यह पत्र लीथो में फ़ुल्स्केप आकार के दो पृष्ठों में हापड़ (ज़िला-मेरठ) से प्रतिदिन निकलता है। बाज़ार-भाव, स्टाक, एक्सचेंज आदि बहुत-सी व्यापारियों के काम की बातें इसमें रहा करती हैं।

× × ×

७. प्राप्ति-स्वीकार

निम्न-लिखित संस्थाओं से जो रिपोर्ट, पुस्तिकाएँ तथा भाषण प्राप्त हुए हैं, उनके लिये धन्यवाद।

१. सप्तम बिहार-प्रादेशिक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति के सभापति पं० भुवनेश्वर मिश्र का भाषण।

२. श्रीवृंदावन-वाटिका—प्रकाशक, मुंगेर-राज्याधिपति श्रीगुरुगौरपदानुरागी श्रीमन्महाराज राजा रघुनंदनप्रसादसिंहजी एम्० एल्० ए०।

३. मनोरथगंगा—रचयिता, पांडेय हृदयनारायण शर्मा "हृदयेश"; प्रकाशक, पं० देवीदीन दीक्षित "दिवाकर", रसिक समाज-कार्यालय, १२-२६ सिविल लाइन्स, कानपुर।

४. अछूत-पचीसी—लेखक और प्रकाशक, शंभुदयाल दीक्षित "द्विज शंभु" ए० इ० एच्०, अध्यापक, लखनऊ। मूल्य ‌-)

५. श्राद्ध-गुण-विवरण—अनुवादक, पं० रामचरित उपाध्याय, बा० कृष्णलाल वर्मा। प्रकाशक, मंत्री, श्रीआत्मानंद जैन ट्रैक्ट सोसायटी अंबाला-शहर। मूल्य ≈)

६. कुमार रणंजयसिंह वर्मा का प्रारंभिक भाषण—लेखक और प्रकाशक, स्वयं कुमार रणंजयसिंह वर्मा, अमेठी-राज्य, सुलतानपुर, अवध।

७. प्रांतीय विद्यार्थी-परिषद् का प्रथम अखिल अधिवेशन कार्य विवरण और व्याख्यान—लेखक, बाबू प्यारेलालजी श्रीवास्तव। प्रकाशक, उक्त अधिवेशन की स्वागतकारिणी समिति।

८. श्रीमद्भगवद्गीता—अनुवादक, सरयूप्रसाद शुक्ल, सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, रायबरेली। प्रकाशक, गंगाधर-प्रेस, रायबरेली। मूल्य ≈)

९. पौधों में कड़वा-रोग और उसका इलाज—लेखक, पं० शिवनारायण देशश्री, D. A. L. A G. (ऑनर्स) on. I. B. S. प्रकाशक, कृषि-प्रबोधक कार्यालय, बनेड़ा (मेवाड़) राजपूताना। मूल्य -)॥

१०. ढोरों के गोबर व पेशाब का खाद—पं० शिवनारायण D. A. L. A G. (ऑनर्स); प्रकाशक, कृषि-प्रबोधक कार्यालय, बनेड़ा (मेवाड़), राजपूताना।

११. ढोरों में माता-रोग की विशेषता और उनकी रक्षा के उपाय—पं० शिवनारायण D. A. L. A. G. (ऑनर्स); प्रकाशक, कृषि-प्रबोधक कार्यालय, बनेड़ा (मेवाड़) राजपूताना।

१२. भारत में खेती की तरक़्क़ी के तरीक़े (तीन भाग)—लेखक, शिवनारायण D. A. L. A. G. (ऑनर्स); प्रकाशक, कृषि-प्रबोधक कार्यालय, बनेड़ा (मेवाड़), राजपूताना।

१३. संकल्प-विधि—लेखक, जगन्नाथ पुष्करत F. T. S; प्रकाशक, चरणदास बुकसेलर नमकमंडी, अमृतसर (पंजाब)। मूल्य ≈)

१४ मृतात्माओं से बातचीत उसका वैज्ञानिक विवेचन और साधन—लेखक धर्मेंद्रनाथ शास्त्री एम्० ए०, मेरठ-कॉलेज। प्रकाशक, प्रभात-पुस्तक-भंडार, मेरठ। मूल्य -)



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे लिखी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—

(१) "अंतर्नाद" (गद्य-काव्य), प्रणेता, श्रीयुत वियोगी हरि। मूल्य ।॥)

(२) "दुर्योधन-वध", लेखक, श्रीयुत जगदीशनारायण तिवारी; काव्य। मूल्य ।॥)

(३) "पद्य-पारिजात", संयोजक, श्रीयुत ब्रह्मचारी भद्रजित् 'भद्र'। वृंदावन सा० सं० का कार्यविवरण। मूल्य ।)

(४) "कौटिल्य अर्थशास्त्र-मीमांसा", प्रथम खंड। लेखक, श्रीयुत गोपाल-दामोदर तामस्कर एम्० ए०; मूल्य १॥)

(५) "मनोव्यथा", लेखक, पंडित हृदयनारायण शर्मा "हृदयेश"; गद्य-काव्य। मूल्य ≈)

(६) "जर्मनी का दाँव-पेंच", अनुवादक, श्रीगंगाधर-हरीखान वलकर; जासूसी उपन्यास। मूल्य ।॥≈)

(७) "पल्लव", श्रीसुमित्रानंदन पंत द्वारा लिखित; काव्य। मूल्य २)

(८) "फव्वारा", बालकोपयोगी पुस्तक। मूल्य १)

(९) "संसार की असभ्य जाति की स्त्रियाँ", लेखक, श्रीयुत विश्वंभरनाथजी कौशिक। मूल्य २॥)

(१०) "रणबाँकुरा चौहान", लेखक, मनसुखलाल सोजतिया; नाटक। मूल्य १।)

(११) "तरंगित हृदय", प्रथम भाग। लेखक, श्रीयुत अभय विद्यालंकार। मूल्य ॥)

(१२) "राजा सर रामपालसिंहजू देव", लेखक, ठाकुर बाबू नंदनसिंह; जीवन-चरित्र। मूल्य १॥।)

(१३) "कूट चंद्रोदय", लेखिका, श्रीमती ठकुराइन सर्फ़राज़ कुँअरि साहिबा; काव्य-संग्रह। मूल्य ॥)



१. हमारा इतिहास

प्रायः आधुनिक अँगरेज़ी पढ़े-लिखे विद्वान् हिंदुस्तानी भाई भी अँगरेज़ विद्वानों के स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं कि भारत का कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं है। कुछ लोग तो यहाँ तक बढ़ जाते हैं कि हमारे पूर्वज इतिहास लिखना ही नहीं जानते थे। इसमें संदेह नहीं कि इस ज़माने में 'इतिहास' का जो अर्थ लिया जाता है, आजकल जिस क्रम से इतिहास लिखे जाते हैं, ठीक उसी अर्थ और क्रम के अनुसार प्राचीन काल के इतिहास इतिहास नहीं कहे जा सकते। किंतु हमारे पूर्वजों ने अपनी परिपाटी के अनुसार अवश्य इतिहास की रचना की है, और वह इतिहास हमारे पुराण हैं। महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री एक ख्यातनामा विद्वान् हैं। आपने बंगीय साहित्य-परिषद् पत्रिका में इस विषय पर एक सुंदर लेख लिखा है। आप लिखते हैं—हमें अपने देश का इतिहास फिर से सजाकर लिखना होगा। अब तक हम जिस इतिहास को पढ़ते रहे हैं, उससे अब काम नहीं चलेगा। यह किसी अंश में सत्य है कि हमारा इतिहास नहीं था, योरपियन लोगों ने हमें इतिहास की ओर आकृष्ट किया है। उन्होंने हमें जो राह दिखलाई और अब तक दिखला रहे हैं, उसी पर हम चल रहे हैं। किंतु अब समय आ गया है कि उनकी बातों को—उनके कथन को—आँख मूँदकर मान लेना ठीक नहीं। इधर अर्से से जहाँ-तहाँ खुदाई का काम हो रहा है। जगह-जगह ढेर-के-ढेर ताम्रपत्र, दानपत्र आदि निकलने लगे। उन्हें देखकर साहब लोग चौंक उठे। महाराज अशोक के कुछ प्रस्तर-लेख प्राप्त हुए। हमारे यहाँ के विद्वान् पहलेपहल उस लिपि को पढ़ नहीं पाते थे। साहब लोगों ने उसे पढ़ा। अंत को तय हुआ कि वे लेख महाराज चंद्रगुप्त के पौत्र महाराज अशोक के समय के हैं। किंतु उस समय से लेकर मुसलमानी राजत्व-काल तक के इतिहास का कुछ हाल मालूम न हो पाया। विक्रमादित्य, शालिवाहन आदि के अस्तित्व पर साहबों ने विश्वास नहीं किया। अतएव लगभग १,६०० वर्ष का समय अंधकारमय रह गया। उसके बाद ताम्रपत्रों और पत्थरों पर लिखे हुए अनुशासनों का पढ़ना एक विद्या में शामिल हो गया। बहुत लोग समझते हैं, यह विद्या साहब लोग पहले ही से जानते थे, और हमारे देश के लोग नहीं जानते थे। लेकिन यह समझना ठीक नहीं। साहब लोगों ने जो कुछ हमारे यहाँ के प्राचीन प्रस्तर-लेख आदि के पाठों को पढ़ने की योग्यता दिखलाई है, वह उनकी अपनी करामात नहीं है। वे इस विषय में हमारे ही देश के पंडितों की सहायता लेते थे, उन्हीं से पढ़ाते थे। कितने ही विद्वान् बुद्धिमान् भारतीय पंडितों के

मस्तिष्क का उपयोग ऐसे प्राचीन ताम्रपत्रों और प्रस्तर-लिपियों के पाठोद्धार में हुआ है। अभी हाल ही में मुझे मालूम हुआ है कि सुप्रसिद्ध विल्सन साहब और प्रिंसेप साहब ने जिन शिलालेखों का पाठोद्धार किया है, उनकी लिपियाँ पढ़नेवाले पं० प्रेमचंद्र तर्क-वागीश महाशय थे! क्रमशः इन सब प्राप्त प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों और सिक्कों के लेख पढ़ने से मालूम हुआ कि भारत में अनेक राजों का राज्य था—स्वाधीन राजा लोग ऐसे दानपत्र, शिलालेख आदि लिखवाते थे। उनकी प्रजा भी अपने-अपने दानपत्रादि में उनके नामों का उल्लेख करती थी। सभी स्वाधीन नरपति अपने सिक्के ढलवाते थे, और उन पर उनका नाम रहता था। इस तरह देखा गया कि इन १,६०० वर्षों के बीच प्रायः २,००० राजा हो गए हैं। धीरे-धीरे उनकी वंशावली भी मिल गई। लेकिन इसका पता नहीं चला कि वे किस देश-विशेष के राजा थे, अथवा उनका समय क्या था। उनका परस्पर का सिलसिलेवार संबंध न मालूम होने से इस समय का धारावाहिक इतिहास नहीं लिखा जा सका। दो-चार देशों के दो-चार छोटे-बड़े इतिहास भी पाए गए; पर उनसे इतिहास का क्रम पूरा नहीं बैठा। इतिहास के धुरंधर ज्ञाताओं ने इस क्रम को ठीक करने के लिये इतने बड़े विशाल संस्कृत के साहित्य की ओर फिर भी दृष्टिपात करने की आवश्यकता नहीं समझी। ऐतिहासिक साहब लोगों ने कहना शुरू किया—'भारत की सभ्यता का उद्भव इन्हीं गुप्त-वंश के नरपतियों के समय—यही १३-१४ सौ वर्ष पहले—हुआ है। इसके पहले इनके यहाँ न कोई काव्य था, न दर्शनशास्त्र थे, न अलंकार-ग्रंथ थे, न नाटक थे, न नाट्यगृह थे। मतलब यह कि सभ्यता का विशेष निदर्शन कोई न था। हाँ, अशोक के ज़माने में व्याकरण की कुछ चर्चा अवश्य हुई थी। किंतु चर्चा होने से क्या होता है।' मैक्समूलर साहब ने फ़रमाया—'बुद्धदेव का जन्म होने के बाद ही संस्कृत सो गई, और उसकी वह नींद फिर नहीं खुली। हाँ, गुप्त-वंशी राजों ने अपने समय में किसी तरह थोड़ा-बहुत उसे अवश्य जगाया। बुद्धदेव के पहले भारतीयों का इतिहास-वितिहास कुछ नहीं पाया जाता। सब अंधकार है। प्रकाश अगर कुछ है, तो केवल वेद। सो उस वेद का भी बहुत कुछ अंश बुद्धदेव के बाद का लिखा हुआ है। कुरुक्षेत्र का युद्ध, जान पड़ता है, ईसा से ११-१२ सौ वर्ष पहले हुआ था। ख़ैर, इस तरह हमारा इतिहास क्रमशः पीछे हटते-हटते ईसा से १२-१३ सौ वर्ष पहले के समय तक पहुँच गया। उसमें भी बुद्धदेव के बाद से वह सिलसिलेवार क्रमबद्ध समझा गया। उसके पहले वह क्रमहीन और शिथिल माना गया। इसी तरह का हमारा इतिहास अब तक पढ़ाया जा रहा है। संस्कृत-साहित्य को अच्छी तरह पढ़ने और उसके सब पहलुओं पर दृष्टिपात करने की चेष्टा किसी ने नहीं की। और, सच तो यह है कि ऐसा करने की योग्यता और शक्ति ही बहुत कम लोगों में थी। अगर संस्कृत-साहित्य का अच्छी तरह अध्ययन और मनन करके निष्पक्ष गवेषणा की जाती, तो भारत के इतिहास की जो दुर्दशा हुई है, वह कभी न होती। अनेक शास्त्र ऐसे हैं, जिनका प्रमाण के रूप में उपयोग किया जाता है। प्रमाण देते समय उस शास्त्र में पहले के ग्रंथकारों का नामोल्लेख करना पड़ता है। इस तरह उन शास्त्रों से ग्रंथकारों की समयानुसार एक पूर्वापरशृंखला तैयार हो जाती है। हमारे यहाँ की स्मृतियाँ इसी तरह का प्रामाणिक शास्त्र हैं। किसी विधान के बारे में स्मृतिशास्त्र का अखंडनीय प्रमाण पाए बिना लोग उस पर विश्वास नहीं लाते, श्रद्धा भी नहीं करते। जितनी स्मृतियाँ हमारे यहाँ रची गई हैं, उनकी एक सर्वांग-पूर्ण सूची अभी तक किसी ने नहीं तैयार की। और, ऐसी सूची के निर्माण से इतिहास-रचना में साहाय्य पाने की धारणा ही कोई नहीं कर पाया। किंतु स्मृतियों की ऐसी सूची बनाने पर देख पड़ता है कि किसी नवीन राजा का राज्य स्थापित होने पर एक नई स्मृति की रचना की गई है। ऋषियों की बनाई स्मृतियाँ भिन्न-भिन्न देशों और समयों में बनी हैं, और भिन्न-भिन्न टीकाकारों ने भी भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न समयों में उनकी टीका की है। उसके बाद एक समय ऐसा आया, जब मुसलमान लोग इस देश में आने लगे। तभी से ऋषियों की स्मृतियों और उनकी टीकाओं का चलन कम हो गया। उस समय ब्राह्मणों ने प्रत्येक देश के लिये अलग-अलग एक-एक निबंध लिखना शुरू कर दिया। मुसलमानी अमल में जहाँ हिंदुओं को थोड़ी-सी भी राजनीतिक क्षमता प्राप्त हुई, वहाँ उन्होंने पूर्वोक्त प्रकार के निबंधों की रचना की है। इन निबंधों में और भी थोड़ी-सी विशेषता है। जिस स्थान में हिंदू लोग स्वाधीन थे, वहाँ के निबंधों का एक भाग राजनीति पर भी लिखा गया है। किंतु जो देश

मुसलमानों के संपूर्ण अधिकार में था, वहाँ लिखे गए निबंध में राजनीति की गंध भी नहीं है। अनेक ऐसे स्थानों में, जहाँ मुसलमानों का अधिकार था, हिंदुओं के दीवानी मुक़दमों का फ़ैसला हिंदू ही करते थे। उन स्थानों के निबंधों में व्यवहार-शास्त्र पर भी एकआध पुस्तक लिखी गई है। जहाँ मुसलमानी अमलदारी के बाद हिंदुओं ने अपने को स्वाधीन कर लिया है, उन देशों में राज्याभिषेक पर भी एकआध पुस्तक लिखी गई है। पहले ही कह आया हूँ कि स्मृति की पुस्तक लिखनेवाले को अपने विधान की व्यवस्था के संबंध में अपने से पहले के ग्रंथकारों के वचन उद्धृत कर प्रमाण देने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के प्राचीन प्रमाणों की जाँच करने पर यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि कौन स्मृति किस समय लिखी गई। और, अगर हमें अपने देश के भिन्न-भिन्न विभागों के आचार-व्यवहार का वैसा ज्ञान हो, तो हम यह भी कह सकते हैं कि किस देश में उसकी रचना की गई थी। अतएव यह निश्चित है कि अच्छी तरह ध्यान देकर स्मृतियों का अध्ययन करने से पक्का इतिहास लिखकर तैयार किया जा सकता है। मैं जिस प्रकार के ज्ञान की बात कह रहा हूँ, वैसा ज्ञान (अर्थात् वैसी दृष्टि से अध्ययन और मनन करना) प्राचीन काल में न होने पर भी, पहले इस देश में जो बड़े-बड़े पंडित हो गए हैं, उनके हृदय में अस्पष्ट रूप से अवश्य था। इसी से डॉक्टर राजेंद्रलाल मित्र ने एशियाटिक सोसाइटी के द्वारा 'हेमाद्रि' के बहुत बड़े निबंध की संपूर्ण प्रति छपाने की चेष्टा की थी। हेमाद्रि का निबंध दो भाग छप गया है, एक भाग बाक़ी है। हेमाद्रि का समय भी मालूम हो चुका है। मित्र महाशय स्वयं लिख गए हैं कि हेमाद्रि देवगिरि के राजा रामचंद्र के सभापंडित थे और बड़े-बड़े राजकाज वही करते थे। उनका समय १२५० से लेकर १३०० ईसवी सन् तक है। सुतरां हेमाद्रि ने अपने निबंध में जिन पुस्तकों से प्रमाण उद्धृत किए हैं, वे उक्त समय से पहले की ही बनी हो सकती हैं। कारण, हेमाद्रि स्वयं बड़े भारी पंडित थे, एक बड़े भारी राजा के सभासद् थे। उन्होंने किसी पुस्तक को देखे बिना उसमे प्रमाण नहीं उद्धृत किया होगा। इसी तरह बंबई के मांडलिक साहब ने मनुस्मृति के ऊपर मेधातिथि की की हुई टीका छपाई है। मेधातिथि ने जिन पुस्तकों से प्रमाण उद्धृत किए हैं, उन्हें भी उन्होंने देखा है। ब्यूलर साहब का कथन है कि गौतम का बनाया हुआ धर्मशास्त्र ईसामसीह के जन्म से १,००० वर्ष पहले का है, यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं। गौतम का धर्मशास्त्र वैदिक संस्कृत में नहीं लिखा गया—पाणिनि ने जिस संस्कृत के लिये अपने व्याकरण की रचना की है, उस संस्कृत में भी वह नहीं लिखा गया है। वह इन दोनों के बीच की एक प्रकार की संस्कृत में लिखा गया है। पाणिनि का समय इस समय एक प्रकार से निश्चित हो चुका है। पाणिनि का समय ई० पू० ५०० है, और गौतम का समय उससे भी ५०० वर्ष पहले। गौतम की भाषा के साथ पाणिनि की भाषा की तुलना करने से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। गौतम ने भी अपने से पहले के स्मृतिकारों की पुस्तकें पढ़ी थीं। वे सब पुस्तकें इस समय उपलब्ध नहीं हैं, नष्ट हो गई हैं। गौतम ने भी स्मृतियों के ही प्रमाण दिए हैं। अतएव यह सिद्ध हुआ कि गौतम के पहले भी स्मृतियाँ थीं। किंतु स्मृतियाँ कोई स्वतंत्र शास्त्र नहीं हैं। वे श्रुति अर्थात् वेद की अनुगामिनी हैं। लोगों का संस्कार यह है कि वेद के अनेक अंश लुप्त हो जाने पर ऋषियों को जो बातें स्मरण रहीं, उन्हें ही एकत्र करके स्मृतियों की रचना की गई। इसी से उन्हें स्मृति कहते हैं। श्रुति के विरुद्ध स्मृति का प्रमाण मान्य नहीं समझा जाता। इससे यह सिद्ध हुआ कि पहले वेद थे। वेदों का लोप होने पर स्मृतियाँ बनीं। इस प्रकार भारत की सभ्यता का इतिहास और भी पीछे चला जायगा। कितना पीछे चला जायगा, इसका भी कुछ आभास देने की मैं चेष्टा करता हूँ। पुराण में एक जगह लिखा है कि महाभारत-युद्ध के बाद मगध में एक के बाद एक ५६ राजों ने राज्य किया। उसके बाद नंद नाम के राजा राज्य करने लगे। नंद नाम के राजों ने ईसा से ४०० वर्ष पहले मगध में राज्य करना शुरू किया था। पर्जिटर साहब ने अनेक पुस्तकों से खोज-कर इन ५६ राजों के नाम प्राप्त किए थे। साधारणतः एक शताब्दी में ४ राजों का होना अगर मान लिया जाय, तो ६० राजों के लिये १,५०० वर्ष चाहिए। ४०० और १,५०० के जोड़ने से १,६०० होते हैं। किंतु पर्जिटर साहब ने १०० वर्ष में ४ राजा नहीं माने। उन्होंने इतने समय में अर्थात् एक शताब्दी में १०-१२ राजों का होना माना। कुरुक्षेत्र के युद्ध को वह ईसा से १,२०० वर्ष पहले अथवा उससे भी इधर ही खींच लाए हैं। किंतु

वास्तव में उस समय के मनुष्य आजकल के मनुष्यों की अपेक्षा दीर्घजीवी हुआ करते थे। इस हिसाब से हम १०० वर्ष में ३ राजों का होना मान सकते हैं। इस प्रकार कुरुक्षेत्र के युद्ध का समय और भी पीछे चला जायगा। काश्मीर का इतिहास, जिसे राजतरंगिणी कहते हैं, उसमें लिखा है कि कुरुक्षेत्र का युद्ध ईसा से २,५०० वर्ष पहले हुआ था। कारण, ग्रंथकार का कहना है कि कलियुग के लगने के ६०० वर्ष उपरांत कुरुक्षेत्र का युद्ध हुआ था, और कलि का आरंभ अब से ३,१०१ वर्ष पहले हुआ था। इस हिसाब से भी कुरुक्षेत्र युद्ध का ईसा से २,५०० वर्ष पहले होना सिद्ध होता है। उस काल में ऋषियों का असीम प्रभाव था। उसी समय, देख पड़ता है, वेद के कुछ अंश लुप्त हो चले थे। महाभारत में उस काल के यज्ञों का जो वर्णन है, उसमें अधिकतर धूम धाम का ही विवरण मिलता है। यज्ञ की विधि, प्रयोग और पद्धति का कुछ भी परिचय नहीं प्राप्त होता। इसी से जान पड़ता है, उस समय याग-यज्ञ कम होते जा रहे थे, और इसी कारण क्रमशः वेदों का भी लोप होता जा रहा था। उस समय वेद के चार भाग हो गए थे—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व। इस हिसाब से वेदों का काल और भी पीछे हट जाता है। महाभारत में लिखा है कि राजा धृतराष्ट्र के एक कन्या थी दुःशला। उसका ब्याह राजा जयद्रथ के साथ हुआ। यह जयद्रथ सिंधु-सौवीर का राजा था। सिंधु-देश में सौवीर-वंश ने बहुत काल तक राज्य किया है। उसी वंश के राजा के साथ दुःशला का ब्याह हुआ था। अभी कुछ ही समय हुआ, सिंधु-देश में सिंधु-नद के सूखे हुए गर्भ में, एक बहुत बड़े नगर का भग्नावशेष खोदकर निकाला गया है (इसका हाल माधुरी में भी प्रकाशित किया जा चुका है)। उसमें सुमेर-नाम की जाति की सभ्यता और कारीगरी के बहुत-से नमूने प्राप्त हुए हैं। भारत के अन्य किसी स्थान में अब तक सुमेरियन-जाति का कोई निदर्शन नहीं प्राप्त हुआ। जो कुछ मिला था, वह पारस्य-उपसागर के किनारे। कुछ लोगों का कहना है कि सुमेरियन लोग और उनकी सभ्यता मिस्र और मिस्री लोगों की सभ्यता से भी प्राचीन है। कुछ लोग कहते हैं—नहीं, सुमेरियनों की सभ्यता मिस्र की सभ्यता से प्राचीन नहीं, नई है। मेरा कहना यह है कि सुमेर-जाति का इतना बड़ा निदर्शन जब सिंधु-नद के किनारे पाया गया है, तब यह भी हो सकता है कि सुमेर-जाति के लोग भारत से ही पारस्य-उपसागर के किनारे जाकर बसे हों, अथवा यह भी संभव है कि उनका आदिस्थान पारस्य-उपसागर का तट ही हो, और वे वहाँ से भारत के सिंधु-देश में आए हों। कुछ भी हो, मेरी समझ में ये सुमेरियन लोग और कोई नहीं, भारत की ही सौवीर-जाति के लोग थे। और, उनका समय ईसा से पूर्व ३-४ हज़ार वर्ष है। कुरुक्षेत्र का युद्ध अगर उनके समय में हुआ था—क्योंकि वे उसमें शामिल हुए थे—तो भारत की सभ्यता का समय कहाँ जाकर पहुँचता है, यह ध्यान देने की बात है। ख़ैर, वेद (श्रुति) और स्मृति को छोड़ दीजिए, और भी एक बात हमारे लिये ध्यान देने योग्य है। कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त होने के बाद महाराज परीक्षित् हस्तिनापुर की राजगद्दी पर बैठे थे। उनकी ४-५ पीढ़ियों के बाद हस्तिनापुर गंगा की बाढ़ में डूबकर नष्ट-भ्रष्ट हो गया था, और परीक्षित् के वंश के नरपति ने कौशांबी-नगरी को जाकर बसाया। हस्तिनापुर गंगा के किनारे आजकल के मेरठ-ज़िले में बसा हुआ था। कौशांबी प्रयाग के पश्चिम ओर १५-१६ कोस पर यमुना के किनारे थी। प्रायः इसी समय परीक्षित् के वंश में अधिसीमकृष्ण नाम के एक राजा हुए थे। उनके राजत्व-काल में भारतवर्ष का एक इतिहास लिखा गया था। उसमें उक्त महाराज के पहले की घटनाएँ लिखते समय भूत काल की क्रियाओं का व्यवहार किया गया है। उनके राजत्व-काल में जो घटनाएँ हुईं, उनमें वर्तमान काल की क्रियाओं का और उनके बाद की घटनाओं के लिये भविष्य काल की क्रियाओं का व्यवहार देखा जाता है। पुराणों के पढ़नेवालों का ख़याल है कि ये सब पुराण उक्त राजा अधिसीमकृष्ण के ही समय में लिखे गए हैं। भविष्य काल के अयोध्या, मगध आदि देशों के राजों की वंशावली अनेक पुराणों में (भविष्य-काल की क्रिया के साथ) पाई जाती है, और उसी वंशावली से पर्जिटर साहब ने मगध के पूर्वोक्त ४१ राजों के नाम प्राप्त किए हैं। इतिहास का अर्थ है पुरानी घटना—इति-ह-आस (ऐसा था, या हुआ था)। इतिहास भूत काल का हुआ करता है। वर्तमान का भी समावेश उसमें हो सकता है। किंतु भविष्य का उल्लेख उसमें कैसे हो सकता है? वास्तव में बात यह है कि पुराण का माहात्म्य बढ़ाने के लिये परवर्ती लोगों ने परवर्ती राजों के नाम और घटना आदि को

(भविष्य काल की क्रिया का व्यवहार करके) पीछे से उसमें जोड़ दिया है। इसलिये पुराण-वर्णित भविष्य घटनाएँ और नाम आदि सब सही हैं। आजकल के लोग भविष्य का इतिहास नहीं लिख सकते। वे ऐसा करने को मूर्खता या जुआचोरी कहेंगे। किंतु पुराण-ग्रंथों में भविष्य का व्यवहार अधिक किया गया है, भविष्य इतिहास भी अधिक दिया गया है (जिसका कारण ऊपर लिखा जा चुका है), और वह इतिहास प्रामाणिक है, यह बात पर्जिटर साहब ने स्वयं स्वीकार की है, तथा अन्य लोगों से भी स्वीकार करने का अनुरोध किया है। कहा जा चुका है कि राजा अधिसीम-कृष्ण के समय पुराण लिखे गए हैं। उससे पहले का इतिहास खोजने के लिये वेदों का अध्ययन करना चाहिए। पर्जिटर साहब ने यह चेष्टा भी की थी। वह ज़िंदगी-भर पुराणों का अनुशीलन करते रहे। इन्हीं सब कारणों से मैंने कहा है कि भारत का इतिहास अच्छी तरह खोज करके फिर से लिखना पड़ेगा। एक सौ वर्ष हुए, जब एक साहब ने दशकुमार-चरित पुस्तक को ईसा की छठी शताब्दी की रचना बतलाया था। किंतु मैंने दशकुमार-चरित को अच्छी तरह पढ़ा है, और मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि वह ईसा से २०० वर्ष पहले की रचना है। पाणिनि, कात्यायन व्याडि, पतंजलि इत्यादि वैयाकरणों के समय के संबंध में भिन्न-भिन्न योरपियन विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए हैं। एक ने पाणिनि को ईसा से ६०० वर्ष पहले का बतलाया है, दूसरे ने २०० ही वर्ष पहले का माना है। पतंजलि को कोई ईसा से २०० वर्ष पहले का मानता है, तो दूसरा उन्हें ईसा से ६०० वर्ष बाद का बतलाता है। किंतु संस्कृत साहित्य की एक पुस्तक में मैंने देखा है कि आज से १,२०० वर्ष पहले राजशेखर ने अपनी काव्य-मीमांसा में एक जगह लिखा है—पाणिनि, कात्यायन, व्याडि, पतंजलि आदि, सबने पाटलिपुत्र में परीक्षा देकर प्रसिद्धि प्राप्त की है। पाटलिपुत्र-नगर ईसा से ५०० वर्ष पहले राजधानी बनाया गया था। इसी तरह संस्कृत-साहित्य के अध्ययन से हमारा यथार्थ इतिहास जाना जा सकता है। केवल अँगरेज़ी और अँगरेज़ों की लिखी किताबें पढ़कर भारत का इतिहास न जाना जा सकता है, और न लिखा ही जा सकता है। किंतु आजकल के ऐतिहासिक सज्जन संस्कृत के नाम से कोसों भागते हैं। बहुत-से ऐसे भी हैं, जो १५-२० रुपए महीने पर एक साधारण पंडित को नौकर रखकर उसकी सहायता से संस्कृत-साहित्य के अध्ययन का फल प्राप्त करना चाहते हैं। पंडितजी जो कह देते हैं, उसी पर उन्हें विश्वास करना पड़ता है। इस तरह काम नहीं चल सकता। ऐतिहासिक विद्वानों को स्वयं संस्कृत पढ़कर उसके विशाल साहित्य का अध्ययन करना चाहिए।" शास्त्रीजी का यह लेख बड़ा होने पर भी हमने यह समझकर उनका संपूर्ण वक्तव्य यहाँ उद्धृत कर दिया है कि हमारी हिंदी में भी भारत का एक इतिहास लिखने का प्रस्ताव पास हो चुका है। इतिहास लिखने का काम करने और करानेवाले यदि शास्त्री महोदय के इस वक्तव्य को आद्यंत पढ़कर उनकी निर्धारित शैली पर कार्यारंभ करेंगे, तो हम अपने इस परिश्रम को सफल समझेंगे। हमारा अनुरोध है कि इतिहास-निर्माण के काम में महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्रीजी को अवश्य सम्मिलित कर लेना चाहिए।

× × ×

२. मिश्रबंधु-विनोद का नया संस्करण

माधुरी की गत किसी संख्या में हम यह सूचना प्रकाशित कर चुके हैं कि मिश्रबंधु-विनोद का दूसरा परिवर्द्धित संस्करण गंगा-पुस्तकमाला के संचालक निकाल रहे हैं। 'विनोद' के बारे में प्रायः इस तरह की शिकायतें सुनने में आती हैं कि उसमें अमुक कवि का नाम नहीं है, अमुक कवि का यथेष्ट परिचय नहीं दिया गया। इसी शिकायत को दूर करने के लिये हमने, प्रकाशकों की ओर से, यह सूचना निकाल दी थी कि जिन सज्जनों को ऐसी शिकायत हो, या जिनके पास ऐसी सामग्री हो, वे कृपा कर उसे प्रकाशकों के पास भेज दें। इस सूचना को पढ़कर कुछ सज्जनों ने कई ऐसे कवियों का परिचय आदि लिख भेजने की कृपा की है, जिनका उल्लेख मिश्रबंधु-विनोद के प्रथम संस्करण में नहीं हो पाया था। पर हमारा अनुमान है कि अभी बहुत-से उल्लेख-योग्य कवियों का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। प्रकाशकों का विचार है कि विनोद का यह संस्करण सर्वांग-पूर्ण और सर्वांग-सुंदर निकले; अब की बार किसी को यह शिकायत न रह जाय कि उसके परिचित किसी हिंदी-कवि का नाम छूट गया है। इसीलिये इस बार फिर यह सूचना प्रकाशित की जाती है कि हमारे कृपालु पाठकों और ग्राहकों में से जिन सज्जनों को ऐसे किन्हीं जीवित या मृत हिंदी-कवियों का परिचय मालूम

हो, जिनका उल्लेख 'विनोद' में नहीं हो सका था, तो वे उनका नाम, जन्म-संवत, मृत्यु-संवत्, कविता-काल, स्थान, जाति, ग्रंथों के नाम, संख्या, उनकी रचना का समय और कविता के कुछ नमूने लिखकर गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय में शीघ्र भेजने की कृपा करें। मिश्रबंधु-विनोद का प्रथम भाग तो प्रायः छप चुका है। दूसरा और तीसरा भाग भी शीघ्र ही छपने लगेगा। इसलिये उक्त भागों के वास्ते जो सज्जन कुछ सामग्री भेजना चाहें, वे यथासंभव शीघ्र ही भेजें। इस बार रह जाने से फिर शीघ्र ऐसा अवसर हाथ न आ सकेगा। जो सज्जन हमारी इस सूचना को पढ़ें, उन्हें उचित है कि वे अपने इष्ट-मित्रों से भी पूछकर इस विषय में उनसे भी सहायता लें। आशा है, हिंदी-भाषा-भाषी जनता इस कार्य में गंगा-पुस्तकमाला के संचालकों और ग्रंथकर्ताओं को यथेष्ट सहायता पहुँचाने में पश्चात्पद न होगी।

× × ×

३. स्वर्गवासी धार-नरेश

जयपुर, ग्वालियर और काश्मीर-नरेश-जैसे प्रजावत्सल और न्यायपरायण राजों का वियोग अभी हम भूले न थे, इतने ही में श्रीमंत लेफ़्टिनेंट कर्नल महाराजा सर उदाजी राव पँवार साहब बहादुर के० सी० एस० आई०, के० सी० वी० ओ०, के० बी० ई० धार-नरेश भी स्वर्गलोक सिधार गए। आपका जन्म ३० सितंबर, १८८६ ई० में हुआ था। आप संभाजी राव उर्फ़ बाबा साहब के पुत्र थे। स्वर्गवासी महाराज आनंदराव (तृतीय) के स्वर्ग सिधारने के पश्चात् १२ वर्ष की अवस्था में, सन् १८९८ ई० में, आप सिंहासनारूढ़ हुए। सिंहासनासीन होने के कुछ दिन पश्चात् ही अँगरेज़ी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये आप इंदौर के डेली कॉलेज में पधारे। १९०३ ई० तक वहाँ विद्याध्ययन करते रहे, और अँगरेज़ी, हिंदी, मराठी तथा उर्दू की उच्च शिक्षा प्राप्त की। आपकी नाबालिग़ी में राज्य का कारबार अँगरेज़-सरकार की ओर से एक सुपरिंटेंडेंट की निगरानी में होता रहा। सरकार ने आपको ६ दिसंबर, १९०६ ई० को राज्य के समस्त अधिकार दे दिए। राज्याधिकार मिलने के दो महीने पश्चात् ही सावंतवाड़ी के महाराजा की राजकुमारी श्रीमती लक्ष्मीबाई साहबा के साथ आपका विवाह हुआ। आपके समय में राज्य के कार्यों में बहुत सुधार हुए। वीरान जगहों को आबाद करना, काश्तकारों की उन्नति तथा प्रजा को हर तरह से सुखी रखना आदि ही आपके मुख्य ध्येय थे। आप जिस प्रकार प्रजा की, उसी प्रकार अपने सहयोगी सरदारों की भी शुद्ध अंतःकरण से भलाई चाहते थे। फैले हुए अविद्यांधकार तथा ऋण आदि के कठिन दुःखों से मुक्त कर आपने अपने राज्य में इन्हें अच्छे-अच्छे पद दिए थे। भविष्य में राज्य-प्रबंध और भी उत्तमता से चलाने की इच्छा से आपने ९ मई, १९११ ई० को अपने यहाँ एक कौंसिल की स्थापना की, जिसके सभापति-पद को आपने ही सुशोभित किया। स्वर्गीय श्रीमान् दीवान बहादुर टी० काजूरामजी महोदय, सी० आई० ई० * को उपसभापति के पद पर नियुक्त किया। जनता को सुशिक्षित बनाने की आपको सदा धुन लगी रहती थी। आपके राज्य में प्राइमरी शिक्षा तो पहले से ही मुफ़्त दी जाती थी, परंतु कुछ समय से हाई स्कूल के केवल एक-दो ऊँचे क्लासों के अतिरिक्त सब क्लासों की सब तरह की फ़ीस भी माफ़ कर दी थी। ख़ास शहर धार में एक हाईस्कूल, एक हिंदी-मिडिल स्कूल, कन्याशाला, उर्दू-मराठी-संस्कृत स्कूल, हिंदी ए० वी० स्कूल और हिंदी ब्रांच स्कूल है, जिनमें जनता की इच्छा के अनुसार शिक्षा दी जाती है। इनके अतिरिक्त देहात में ७२ पाठशालाएँ तथा १० कन्याशालाएँ हैं। लिखने का तात्पर्य यह कि धार-राज्य की आमदनी को देखते हुए यदि मध्य-भारत की और-और रियासतों से तुलना की जाय, तो यही ठहरेगा कि राजपूताने आदि की कोई भी रियासत अपनी आमदनी का इतना अंश शायद ही व्यय करती होगी, जितना धार-रियासत अपनी प्रजा को सुशिक्षित बनाने में व्यय करती है। आपने अपने यहाँ के भील जैसे जंगली मनुष्यों को भी शिक्षित बनाने में सफलता प्राप्त की थी।

आपकी बुद्धिमत्ता तथा कार्य-दक्षता पर मुग्ध होकर १२ दिसंबर, १९११ ई० को देहली-दरबार के समय श्रीमान् राजराजेश्वर पंचम जॉर्ज महोदय ने के० सी० एस० आई० की

---

* जिस समय आप दतिया-राज्य में दीवान थे, उस समय आपको आपकी बुद्धिमत्ता तथा कार्य-कुशलता पर मुग्ध होकर, सन् १९१४ ई० में, अँगरेज़-सरकार ने आपके सम्मानार्थ यह पद दिया था। आपके जीवन में बड़ी-बड़ी सारगर्भित और शिक्षा-प्रद बातें हैं। इनका संक्षिप्त जीवन-चरित भी कभी पाठकों की भेंट किया जायगा।



स्व० धार-नरेश महाराजा उदाजीराव के० सी० एस्० आई०, के० सी० वी० ओ०, के० बी० ई०, लेफ़्टिनेंट कर्नल

बहुमानास्पद पदवी से आपको सुशोभित किया था। महासमर के समय भी आपने भारत-सरकार की अच्छी सहायता की थी। आपकी दयालुता और न्यायपरायणता को देखकर सरकार ने क्रमशः के० सी० एस्० आई०, के० सी० वी० ओ०, के० बी० ई० और लेफ़्टिनेंट कर्नल आदि पदवियों से आपको सम्मानित किया। आप सर्वदा अपना विशेष समय प्रजा हित के कार्य में ही व्यतीत किया करते थे। अकाल के समय अपनी अकाल-पीड़ित दीन प्रजा के लिये नाज का भी अच्छा प्रबंध कर दिया करते थे। लोक-हित के कार्य, जैसे म्युनिसिपल-कमेटी और अस्पताल आदि की भी उत्तम व्यवस्था रखते थे। आपको क्षय-रोग ने क़रीब डेढ़ साल से घेर लिया था। आपके इलाज के लिये श्रीमती महारानी साहबा ने भरसक प्रयत्न किया, और मि० मैथ्यू-सरीखे संसार-प्रसिद्ध डॉक्टर को १,००० रुपए रोज़ाना पर कई महीनों तक वहाँ रखकर आपका इलाज करवाया, तथा अनेक तरह के व्रतानुष्ठान वग़ैरह भी जारी रक्खे; परंतु कुछ भी लाभ न हुआ। कराल क्षय रोग बढ़ता ही गया। यह देख डॉक्टरों की सम्मति से आपको सोलन ले जाने का निश्चय किया गया। अंत को प्रजा के दुर्भाग्य से ३० जुलाई, १९२६ ई०, शुक्रवार को प्रातःकाल पाँच बजे सोलन ही में आप स्वर्गवासी हुए। हमारी परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह स्वर्गीय महाराज की आत्मा को सद्गति प्रदान कर, राज-परिवार तथा दीन प्रजा को संतोष दे, और आपके उत्तराधिकारी श्रीमंत महाराजा साहब आनंदराव (चतुर्थ) को यशस्वी, प्रजावत्सल और अपनी वंशपरंपरा की मर्यादा की रक्षा के लिये समर्थ बनावे। प्रमार-कुलभूषण महाराज भोज की गद्दी का गौरव अब आप ही के हाथ में है।*

× × ×

४. बकरी का विचित्र बच्चा

कभी-कभी प्रकृति द्वारा ईश्वर की अपूर्व सृष्टि का परिचय प्राप्त होता है, जिसे देखकर बड़े-बड़े वैज्ञानिक दंग रह जाते हैं। ऐसी अपूर्व सृष्टि अभी लखनऊ में हमें देखने



बकरी का विचित्र बच्चा

* हमें इस नोट की सामग्री पं० माँगीलाल मिश्र विशारद धार-निवासी से प्राप्त हुई है। तदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं।—माधुरी-संपादक।

को प्राप्त हुई है। बकरी का एक विचित्र मरा हुआ बच्चा अभी हाल में सिविल वेटेनरी-विभाग के रिसर्च-डिपार्टमेंट में लाया गया था। उसका चित्र यहाँ पर दिया जाता है। इसका मुँह आदमी का-जैसा है, गाल फूले हुए हैं, पूँछ रीछ की-जैसी है, कान बकरी के-जैसे हैं, हाथों का अग्रभाग यानी पंजे आदमी के-जैसे हैं, जिनमें उँगलियों की जगह फटे हुए खुर हैं। इसके शरीर पर का चमड़ा लाल है; परंतु उस पर बाल नहीं हैं। मस्तक के बीच में बालों का एक गुच्छा-सा है। ईश्वर की यह विचित्र मिश्रित सृष्टि उसकी महत्ता और अघटन-घटना-पटीयसी प्रकृति के सामने सिर झुकाने के लिये विवश करती है। यहीं पर मनुष्य की बुद्धि चक्कर में आ जाती है, और उसका ज्ञान कुंठित हो जाता है। दर्शक नर-नारी हज़ारों की संख्या में इसके दर्शन करने आते थे। कुछ लोग—खासकर स्त्रियाँ—इसे देवता समझकर श्रद्धा-भक्ति के साथ प्रणाम करते थे। यह चित्र और परिचय हमें श्रीयुत भगवंतसहाय माथुर विद्यार्थी से प्राप्त हुआ है। तदर्थ हम उन्हें धन्यवाद देते हैं।

× ×

५. बाजे का प्रश्न

बड़े खेद की बात है कि मुसलमान-भाइयों के दुराग्रह से भारत में सर्वत्र मसजिद के सामने बाजे बजने का प्रश्न बड़ा जटिल रूप धारण कर रहा है। बंगाल में तो यहाँ तक नौबत पहुँची है कि नमाज़ के समय ही नहीं, किसी भी समय मसजिदों के सामने हिंदुओं के धार्मिक जलूसों के बाजे बजना कठिन हो गया है। कहीं-कहीं से तो यह भी खबर आई है कि आम सड़कों पर ही नहीं, अपने घर के भीतर भी हिंदुओं के बाजे बजने पर मुसलमानों ने आपत्ति करना शुरू कर दिया है। इटावे में, प्रयाग में और अन्य दो-एक स्थानों में भी रामलीला ही नहीं की गई, और उसका कारण यही बाजे का झगड़ा था। हमारी समझ में नहीं आता कि मुसलमान-भाइयों को यह दुराग्रह क्यों इधर कई वर्षों से सूझा है कि मसजिदों के सामने हिंदुओं को बाजे न बजाने देना ही उचित है? माना कि कुछ धर्मांध मुल्ला-मौलाना उन्हें यह कहकर भड़काते हैं कि हिंदुओं के बाजे मसजिदों के सामने बजने से मसजिदों का अपमान होता है; परंतु वे क्यों नहीं समझ से काम लेते? वे क्यों नहीं उन मौलानाओं से पूछते कि जनाब, यह क़ुरान की आज्ञा क्या इधर चंद सालों से ही आपको सूझी है? इतने दिनों से आपको क्यों नहीं सूझी? मसजिदों के सामने हिंदुओं के बाजे न बजने देने की उपज इधर शुद्धि-आंदोलन के बाद ही की है। इसके पहले—यहाँ तक कि मुसलमानी अमलदारी में भी—मसजिदों के सामने होकर बराबर हिंदुओं के जलूस निकलते और उनमें बराबर बाजे बजते थे। इसे भी जाने दीजिए। मुसलमान-भाई क्या अपने लीडरों की बात भी सुनना नहीं चाहते। जनाब ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब, मौ० शौक़त-अली और महम्मदअली (हज से लौटने के बाद), मौ० ज़ियाफ़तहुसैन आदि कई प्रतिष्ठित मुसलमान यह घोषणा निकाल चुके हैं कि मसजिद के सामने बाजे न बजने देने का दावा ठीक नहीं। मसजिदों के सामने बाजे बजने में मुसलमानों की कोई हानि नहीं है। अभी मिसर-देश की विदुषी महिला श्रीमती ज़किया सुलेमान भी यह बतला गई हैं कि मिसर में मसजिद के सामने बाजे न बजने देने की मूर्खता नहीं है। टर्की, अफ़ग़ानिस्तान आदि स्वतंत्र मुसलमानी राज्यों में मसजिदों के सामने और भीतर भी बराबर बाजे बजते हैं। मुसलमान-जनता से हमारी प्रार्थना है कि वह किसी के बहँकाने में आकर अपनी हानि न करे। इस व्यर्थ के आंदोलन से हिंदुओं को परेशान करने में या दंगा-फ़साद और मार-पीट करने में मुसलमान-भाइयों की भी हानि होगी और होती है, केवल हिंदुओं को ही नहीं। मुसलमान-भाइयों को याद रखना चाहिए कि आज वे कई स्थानों में सरकारी कर्मचारियों के सहारे और सहायता के बल पर भले ही कुछ दिन हिंदुओं के धार्मिक जलूसों को रोकने या बंद करने में सफलता प्राप्त कर लें; पर उनकी या सरकारी अधिकारियों की यह धींगाधींगी हमेशा कभी नहीं चल सकती। हिंदुओं के लिये यह धार्मिक अधिकार का प्रश्न है। इसकी रक्षा के लिये वे बड़ी-से-बड़ी हानि उठाने में भी पश्चात्पद न होंगे। इस संबंध में सरकार या उसके कुछ कर्मचारियों की नीति पर हम विशेष कुछ लिखना नहीं चाहते। वह बिलकुल स्पष्ट है। सरकार चाहे अपनी किसी गूढ़ पालिसी के कारण हो, चाहे गुंडे-मुसलमानों की उपद्रव-प्रियता से दबकर हो, इस समय हिंदुओं को हर तरह से दबा रही है, और उसके इस कार्य से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपद्रवी मुसलमानों को प्रोत्साहन मिल रहा है। हम सरकार से केवल यही नम्र निवेदन करना चाहते हैं कि वह इस रुख़ को छोड़ दे। इससे आगे

चलकर उसे बड़े असमंजस में पड़ना होगा। इस तरह एक जाति के अनुचित हठ को जो प्रश्रय मिल रहा है, उसका परिणाम बहुत ही बुरा होगा। हम अंत में अपने हिंदू-भाइयों और लीडरों से भी कुछ कहना चाहते हैं। वह यही कि उन्हें छुद्रपन छोड़कर अपने न्याय-संगत अधिकार की रक्षा के लिये डटकर मैदान में खड़े हो जाना चाहिए। किसी पर आक्रमण करना या जोश में आकर क़ानून के ख़िलाफ़ काम करना हिंदुओं को शोभा न देगा। यह उनकी प्रकृति के ही विरुद्ध है। उन्हें सच्चे धर्मप्राण बनकर सब प्रकार के आक्रमण और अत्याचार सहते हुए वह आत्मिक बल प्राप्त करना चाहिए, जिसका लोहा संसार में बड़े-से-बड़े गुंडे मान जाते हैं। उन्हें अपने धर्म और अधिकार की रक्षा के लिये वीर की तरह आगे आना चाहिए, और बंगाल के पटुआखाली-स्थान की तरह अहिंसामय शांत सत्याग्रह करके अपने बहँके हुए मुसलमान भाइयों को सत्पथ पर लाने की चेष्टा करनी चाहिए। बस, यही एक-मात्र उपाय है।

इसी संबंध में हमारे पास श्रीयुत टहलराम-गिरिधारी-दास समंत शिकारपुरी सनातनी सहजधारी सिख का निम्न-लिखित वक्तव्य प्रकाशनार्थ आया है—"आजकल हिंदू-मुसल-मान नेताओं की बुद्धि ऐसी कुंठित हो गई है कि उलटे को सीधा और सीधे को उलटा समझ रहे हैं। लखनऊ ता० १७। ६। २६ के 'आनंद' और अन्य पत्रों में लिखा था कि लखनऊ में पंडित मोतीलाल नेहरू ने व्याख्यान देते हुए यह भी कहा कि सड़क पर बाजा बजाते हुए जुलूस निका-लना हिंदुओं का अधिकार है; परंतु दूसरों के दिलों को न दुखाना चाहिए (?), और आप कहते हैं, जैसा हिंदुओं को बाजा बजाने का हक़ है, वैसा मुसलमानों को गोवध करने का।

"परंतु मैं तो समझता हूँ, आप पैग़ंबर साहब के विरुद्ध उपदेश कर मुसलमानों को अधिक पाप में डुबोते हैं। क्या आप ऐसा समझते हैं कि हिंदुओं के जुलूस रास्ते से निक-लने पर किसी का दिल दुखता है? मैं कहता हूँ कि उससे दूसरों का दिल ख़ुश होता है। यदि आप मुसलमान भाइयों के पक्ष में कहना चाहते हैं, तो मैं कहता हूँ कि मुसल-मान-भाइयों को पैग़ंबर साहब की बाजा बजाने की मनाही नहीं है।

"बुख़ारी हदीस में लिखा है कि पैग़ंबर और उनकी स्त्री हज़रत आयशा, दोनों मक्के की मसजिद में बाजा बजवाकर धार्मिक संगीत सुनते थे। फिर बाजा बजाने का निषेध कहाँ रहा?

"मुसलमान-भाई यदि कहें कि नमाज़ के वक़्त मस-जिद के बाहर बाजा बजने से नमाज़ में ख़लल होता है, तो यह बात भी निःसार है; क्योंकि क़ुरान शरीफ़ में पैग़ंबर साहब ने नमाज़ ऐसे आहिस्ते पढ़ने का आदेश नहीं दिया है, जिससे नमाज़ में ख़लल हो (देखो सूरे-बनी-इसराइल १७, आयत १०६)। इसमें बाजा बजानेवालों का क्या गुनाह है? उलटे जुलूस निकालनेवाले हज़ारों आदमियों का बाजा बजाने से रोककर उनका दिल दुखाया जाता है।

"दूसरी बात यह है कि मुसलमान भाइयों को पैग़ंबर साहब ने क़ुरान शरीफ़ में मांस खाने और पशुओं की क़ुरबानी करने की आज्ञा नहीं दी; बल्कि गऊ का स्मरण करने की आज्ञा है। यह क़ुरान शरीफ़ का सूरे-बकर (गो) वे रोज़ पढ़ते हैं। मैं पंडित मोतीलाल नेहरूजी को चैलेंज करता हूँ कि आप दुनिया-भर के मौलवियों में से किसी को भी बुलाकर, बंबई में कोर्ट की मारफ़त कमीशन नियुक्त कर, क़ुरान शरीफ़ में पशु की क़ुरबानी करने और मांस खाने का सबूत दिला दें। मैं उसको १,००१ रुपए मय ख़र्च दूँगा, और अपनी भूल सुधारने के वास्ते उसका आजन्म उपकार मानूँगा। परंतु मौलवी वह हो, जिसको मुसल-मान क़ौम माने।

"वास्तव में आजकल क़ौमी अगुआ लोग धर्म-शास्त्र की आज्ञाओं का विचार न कर लोगों की रुचि के अनुसार उप-देश दे रहे हैं, जिससे दोनों जातियों का अहित और झगड़े-फ़साद बढ़ रहे हैं, इस प्रकार क़ुरान शरीफ़ और पैग़ंबर साहब की आज्ञाओं के विरुद्ध उपदेश करनेवाले मौलवी साहब क़ुरान शरीफ़ की आज्ञा के अनुसार क़यामत के रोज़ जवाबदेह होंगे। पैग़ंबर साहब उनकी सहायता न करेंगे।

"मैं दावे के साथ फिर भी कहता हूँ कि मुसलमानों का क़ुरान शरीफ़ की दुहाई देकर बाजे और गो-रक्षा का विरोध करना ग़लती है। उनके विरोध का कारण कोई दूसरा ही है जिसको ढूँढ निकालना कांग्रेसी नेताओं का काम है, जो स्वराज्य लेना चाहते हैं।'

× × ×

६. मदरास में हिंदी-प्रचार के कार्य की प्रगति

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ने मदरास में अपना एक प्रचार-कार्यालय स्थापित कर रक्खा है। इस कार्यालय की ओर

से हर साल हर छमाही में मदरास के आंध्र, तामिल, केरल और कर्नाटक-प्रांतों में, लगभग ४०-५० केंद्रों में, प्राथमिक, प्रवेशिका, राष्ट्र-भाषा और हिंदी-प्रचारक परीक्षाएँ हुआ करती हैं। इस साल से दक्षिण-भारत के लोगों में तुलसी-कृत रामचरित-मानस के प्रचार के उद्देश्य से तुलसी-जयंती के दिन श्रीरामायण-परीक्षा का भी श्रीगणेश कर दिया गया है। यह परीक्षा भी हर साल ली जाया करेगी। इसमें सर्वप्रथम दो सज्जनों को क्रमशः ५०) और ३०) का पुरस्कार दिया जायगा। प्रथम एक सज्जन को सुवर्णपदक एवं 'रामायण-भूषण' की उपाधि भी प्राप्त होगी। प्राथमिक, प्रवेशिका और राष्ट्रभाषा-परीक्षाओं में हर प्रांत में सर्वप्रथम उत्तीर्ण विद्यार्थी को क्रमशः १०), १५) और २०) का पुरस्कार दिया जाता है। संवत् १९८० से चैत्र और आश्विन में ये परीक्षाएँ नियमित रूप से हुआ करती हैं। अब तक ४,००० के लगभग * मदरासी हिंदी-प्रेमी इन परीक्षाओं में पास हो चुके हैं। इन परीक्षार्थियों में समाज की सभी श्रेणियों के पढ़े-लिखे वकील-बैरिस्टर, प्रोफ़ेसर, शिक्षक, म्युनिसिपल-चेयरमैन, स्कूल-कॉलेजों के छात्र, सरकारी व ग़ैरसरकारी सम्मानित भद्रपुरुष, किसान, अंतःपुरवासिनी महिलाएँ तथा छोटी-छोटी बालिकाएँ तक शामिल होती हैं। मैसूर, ट्रावनकोर, विजयनगर जैसी उन्नत, सभ्य, शिक्षित रियासतें भी इन हिंदी-परीक्षाओं के केंद्रों में शामिल हैं। बड़े-बड़े शहरों से लेकर छोटे-छोटे ग्राम तक इन परीक्षाओं के केंद्र हैं। कार्यालय की ओर से प्रचारक भाई जहाँ-जहाँ कार्य करते हैं, या स्वतंत्र रूप से हिंदी का पठन-पाठन होता है, अथवा जहाँ से तीन भी परीक्षार्थी उपलब्ध होते हैं, उन केंद्रों में परीक्षा-स्थान नियत कर दिया जाता है। किंतु श्रीरामायण-परीक्षा अथवा प्रचारक-परीक्षा दायित्व-पूर्ण केंद्रों, प्रांतीय प्रचार-कार्यालयों या किसी निश्चित स्थान पर ही होती है। इन परीक्षाओं का सारा श्रेय मुख्यतः प्रचारक भाइयों को ही प्राप्त होना चाहिए। इन्हीं के सतत परिश्रम, अद्भुत उत्साह और तत्परता से ऐसी सफलता मिल रही है। यह परीक्षा-विभाग भी प्रचार-संस्था का एक मुख्य अंग है। अब की बार गत रविवार, आश्विन-शुक्ल ४, १९८३ (तदनुसार तारीख़ १० । १० । २६ को मदरास-प्रांत के कोई ४२ केंद्रों में उल्लिखित परीक्षाएँ ली गई थीं। परीक्षार्थियों की संख्या का विवरण आगे दिया जाता है—

प्रांत	परीक्षाएँ					
	श्रीरामायण-परीक्षा	प्रचारक	राष्ट्र-भाषा	प्रवेशिका	प्राथमिक	जोड़
आंध्र	१	१	३६	३५	७८	१५१
तामिल	×	×	८	१६	८५	१०९
केरल	×	×	२	३३	१०७	१४२
कर्नाटक	१	×	४	८	५२	६५
	२	१	५०	९२	३२२	४६७

इनमें देवियाँ भी सम्मिलित हुई थीं। ब्योरा इस प्रकार है—

राष्ट्रभाषा में	प्रवेशिका में	प्राथमिक में
१०	१६	२१

× × ×

* परीक्षा में बैठना हिंदी सीखनेवालों के लिये अनिवार्य नहीं है। पढ़नेवालों में से बहुत थोड़े लोग ही परीक्षा में बैठते हैं। कार्यालय की गत श्रावण-मास की रिपोर्ट के अनुसार २,२४७ मदरासी सज्जन इस समय हिंदी सीख रहे हैं। आंध्र-प्रांत के हिंदी सीखनेवालों की संख्या नहीं प्राप्त हो सकी। इस नोट की सामग्री हमारे पास हिंदी-प्रचारक के संपादक मित्रवर पं० हृषीकेश शर्मा विशारद ने भेजने की कृपा की है। तदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं।—मा०-सं०।

७. कपड़े की विचित्र कारीगरी

अर्से हुआ, हमारे पास कपड़े के फूल, गजरे आदि बनानेवाले श्रीयुत लक्ष्मीनारायण-शिवनारायण (गुड़बाज़ार, पोस्ट दाऊदनगर, ज़िला गया) ने अपनी कारीगरी का बहुमूल्य नमूना समालोचनार्थ भेजा था। हम यहाँ पर आपकी और आपकी कारीगरी का चित्र देते हैं। इस गुलूबंद में कपड़े ही के फूल और पत्तियाँ काटकर लगाई गई हैं। बीच में कपड़े ही के अंश काटकर "माधुरी" का नाम दिया गया



श्रीयुत लक्ष्मीनारायण-शिवनारायण

है। रूप-रंग में फूल बिलकुल स्वाभाविक फूल मालूम पड़ते हैं। वास्तव में यह देशी कारीगरी का बढ़िया नमूना है। हम शौक़ीन लोगों से अनुरोध करते हैं कि वे घर सजाने अथवा ब्याह-शादी के अवसर पर काम में लाने के लिये उक्त महाशय से कपड़े के फूल, गुलदस्ते, हार, गजरे आदि मँगवाने की अवश्य कृपा करें। कारीगरी देख-कर उनका चिन्त प्रसन्न हो जायगा। दाम भी सस्ते पड़ेंगे।

× × ×

८. नर्मदा का तांडव

माता, तूने यह क्या किया? इतना प्रकोप, इतना अधिक रोष, और वह भी अपने भक्तों पर, अपने आश्रितों पर, किनारे बसनेवालों पर! आज तक संसार में यह नहीं सुना गया था कि माता भी कभी कुमाता होती है; किंतु तूने उसको प्रत्यक्ष करके दिखला दिया! न-जाने कितने तेरे भक्त, तेरी रेणुका को अपने मस्तक पर श्रद्धा से चढ़ाने-वाले, तेरे जलकण को मृत्यु का अमोघ प्रतिकार मानने-वाले आज इस संसार से उठ गए। तू ने ही उन्हें उठा दिया। तेरे कारण आज कितनों को अन्न का दाना नहीं, नसीब हो रहा है। कितने ही तेरे कारण आज इस सभ्य



कपड़े के कटाव का गुलूबंद

संसार में असभ्यकालीन नग्नता के चित्र हो रहे हैं, कितने अनाथ और सुकुमार बालक के नाम ले-लेकर अपने आश्रयदाताओं का नित्य-प्रति स्मरण करते हैं, इसका तुझे कुछ अनुमान है ?

अभी पिछले दिनों नर्मदा की बाढ़ के कारण मध्य-प्रांत के कितने ही गाँव-क़स्बे चौपट हो गए, न-जाने कितने स्त्री-पुरुषों का भाग्य-सूर्य अस्त हो गया। वह करुण दृश्य वर्णनातीत है। हमें स्वयं इन्हीं दिनों उस ओर जाने का मौक़ा आया था, और हमने देखा है कि नर्मदा की बाढ़ का कैसा भयंकर परिणाम हुआ है ! कितने ही वीर-हृदयों ने बाढ़-पीड़ितों की रक्षा के लिये अपने प्रिय जीवन का बलिदान कर दिया, तब कहीं यह प्रकोप शांत हुआ। किंतु उसका परिणाम उन गृह-विहीन वृद्ध-बालक और स्त्री-पुरुषों के लिये उससे भी अधिक भयंकर हो रहा है। आवश्यकता इस समय देश के उन धनी-मानियों के आगे आने की है, जिनके दान का हाथ कभी पीछे नहीं रहता। देश के नाम पर हम, देश के भूख-मरे ग़रीबों से नहीं, मख़मल के गद्दों पर सोनेवाले धन-कुबेरों से अपील करते हैं कि वे इस विपत्ति के समय अपनी सहायता का हाथ बढ़ावें, और भूख से तड़पते हुए भले घर के भिखमंगों की हालत पर कुछ तरस खायँ। मनुष्यत्व और हृदय की उदारता का परिचय ऐसे ही समय दिया जा सकता है। इस दुर्दशा का वर्णन हम अधिक नहीं करना चाहते। हिंदी के ख्यातनामा कवि पं० कामताप्रसादजी गुरु के आर्द्र हृदय से इन विपद्ग्रस्तों के प्रति जो उद्गार निकले हैं, वे ही यहाँ पर दिए जाते हैं। उन्हें पढ़कर पाठकों को इस विपत्ति का पूरा अनुमान हो जायगा। आज महारानी दुर्गावती की राजधानी का ध्वंसावशेष भी धूलि-धूसरित हो गया है ! समय उस प्रातःस्मरणीया महारानी की छत्रछाया में शताब्दियों से बसे हुए कुटुंबों की रक्षा करने के लिये आह्वान कर रहा है, रोते हुए दरिद्रों के आँसू पोछने के लिये बुला रहा है। मनुष्यत्व की परीक्षा का यही समय है। हमें विश्वास है कि देश के धनी-मानी इस परीक्षा में हृदय से, उत्साह से भाग लेंगे —

हे माता, नर्मदे, तुम्हारी है क्या लीला ;
निष्करुणा हो गईं, सदा रह करुणाशीला।
दया-वृत्ति निज पूर्व अचानक तुमने त्यागी ;
लगता है ज्यों प्रेम स्वजन का अटल विरागी।
निराधार-आधार तुम आदि-काल से ही रहीं ;
पर छीना सर्वस्व ही, पल-भर में ऐसी बहीं।
कहाँ-कहाँ से खींच प्रबल जल-राशि बटोरी ;
सबसे ऊँची भूमि तली में तुमने बोरी।
देख तुम्हारा कोप कौन भय-भ्रांत न होता ;
सूर्य-चंद्र छिप गए, रहा नभ-मंडल रोता।
जो न जानते थे कभी, उन्हें प्रलय दिखला दिया ;
अब भी उसकी याद से कंपित होता है हिया।
योजन-भर निज देह उभय तट ओर बढ़ाई ;
पहाड़ियों पर प्रबल वारि की राशि चढ़ाई।
बनी रहीं वारीश तीन दिन तुम थल-ऊपर ;
नौका चलने लगीं यान के बदले भू पर।
क्या-क्या अनर्थ तुमने किए, इसका कुछ लेखा नहीं ;
पर सर्वनाश ऐसा कभी, कहीं गया देखा नहीं।
शंकर के समकक्ष जहाँ मंडन रहते थे ;
वेद-ऋचाएँ जहाँ सारिका-शुक कहते थे।
जिसे सदा, सर्वत्र तुम्हारा ही आश्रय था ;
तुमसे घिरकर जहाँ, दुर्ग नृप का निर्भय था।
ऐसे रक्षित नगर का तुमने मेटा नाम है ;
क्या मा का इतना निठुर पुत्रों के प्रति काम है ?
जिस रानी ने युद्ध किया था घोर मुग़ल से,
पावन थी यह धरा हुई उसके पगतल से।
जिस पर अपना रक्त बहाया था रानी ने ;
उसी भूमि को आज डुबोया है पानी ने।
माता, ऐसी भूमि को तुम्हें न करना नष्ट था ;
क्या उससे कोई कभी पहुँचा तुमको कष्ट था ?
पेड़ों पर चढ़ कई जनों ने प्राण बचाए ;
बैर भूलकर कई शत्रुओं के घर आए।
कई छतों पर रहे, कई टीलों पर भागे ;
सोते हुए अनेक दूसरी बार न जागे :
बालक, अबला, वृद्ध का संकट ऐसा घोर था ;
मानो यम सेना लिए फिरता चारों ओर था।
भय के मारे बात न कर सकते थे बच्चे ;
खा लेते थे कभी भूख में दाने कच्चे।
मा-बापों को दुखी देख हो गए मूढ़ थे ;
उन भोलों के लिये दृश्य ये सभी गूढ़ थे।
पुत्रों का मुख चूमकर, माताएँ साहस किए ;
धर लेती थीं धीर कुछ, गोदी में उनको लिए।

कहीं पुत्र से अलग पड़ी माता रोती थी ;
पति-वियोग में कहीं विकल पत्नी होती थी ;
कहीं निराश्रय वृद्ध, कहीं था बाल अकेला ;
कहीं पुत्र से दूर पिता ने संकट झेला।
वृद्धा रोती थी कहीं, कहीं बालिका थी पड़ी ;
सभी ओर थी दिख रही मृत्यु लिए विपदा खड़ी।
तन पर गीले वस्त्र और ऊपर से पानी ;
फिर जाड़े का कोप, भीति से कुंठित बानी।
इधर भूख का कष्ट, उधर जन-हानि-निराशा ;
घटती थी प्रति-निमिष सभी की जीवन-आशा।
विकट समय था रात का, अँधियारी छाई हुई ;
चपला आती थी चमक आशा-सी आई हुई।
निर्बल ने भी खड़े-खड़े सब रात बिताई ;
प्रलय भयानक देख नींद को नींद न आई।
घन-गर्जन, जल-नाद, शोर वर्षा का भारी ;
कर देता था शांत गिरा रोदन की सारी।
और किसी की ख़बर क्या, अपनी ही सुध थी नहीं ;
कहीं अन्न था, धन कहीं, कहीं वस्त्र, बर्तन कहीं।
रहे तीन दिन-रात बाल-बूढ़े सब भूखे ;
केवल जल से कंठ भिगो लेते थे सूखे।
इस अवसर पर मोल न था चाँदी-सोने का ;
अन्न-वस्त्र है मुख्य लाभ इनके होने का।
जब वे ही मिलते नहीं, तब धन है किस काम का ?
बिना वस्तु के हाट में, रुपया नहीं छदाम का।
आ सूर्य का उदय, किरण आशा की फैली ;
पर अब दिखने लगी नदी की नाशक शैली।
बहते घर पर चढ़े लोग बहते जाते थे ;
सबसे अंतिम राम-राम कहते जाते थे।
कोई भी ऐसा न था, जो उनको लेता बचा ;
मनुज-बुद्धि से अति परे रास प्रकृति ने था रचा।
जल, थल, नभ के जीव सहस्रों बहते आए ;
मरते-मरते कष्ट उन्होंने घोर उठाए।
वारि चिता पर साथ धनी-कंगाल पड़े थे ;
भेद न था कुछ, कौन हीन थे, कौन बड़े।
अंतर है कुछ समय का, और भेद है चाल का ;
पर निश्चित सबके लिये, एक मार्ग है काल का।
संकट के पश्चात सहारा जिनका होता ;
वे पदार्थ भी प्रलय बहा ले गया डुबोता।

बहे अन्न, धन, वस्त्र, पात्र, उपकरण सभी के ;
कुटी, भवन, गृह, धाम नष्ट हो गए कभी के।
किसका क्या था कब, कहाँ, इसका कुछ लेखा न था ;
घर को जब तजने लगे, तब कुछ भी देखा न था।
इसी समय कुछ साधु दिव्य-देही व्रतधारी ;
दिखे तैरते हुए, रखे सिर गठरी भारी।
था न प्राण का मोह, उन्हें उपकारमोह था ;
मित्र-पक्ष था नहीं, नहीं कुछ शत्रु-द्रोह था।
जहाँ-जहाँ जो थे पड़े नर-नारी जीते-मरे ;
उनके आगे प्रेम से, भोग उन्होंने ला धरे।
इतने में अब शांत हुई रेवा की धारा ;
क्रमशः दिखने लगा नदी का दूर किनारा।
दो घंटे उपरांत पूर ने पकड़ी सीमा ;
मानो दबकर हुआ क्रोध करुणा से धीमा।
आशा अब होने लगी लोगों को कुछ प्राण की ;
पर चिंता बढ़ने लगी सबको भावी त्राण की।
घुटने तक जल हुआ, और पिंडली तक आया ;
घर फिरने का चाव सभी के चित्त समाया।
पर अब घर थे कहाँ ? वहाँ तो ढेर रचे थे ;
कहीं-कहीं भय-पूर्ण ऊपरी भाग बचे थे।
कहीं मनुष्यों के, कहीं पशुओं के शव थे पड़े ;
जो आए घर देखने, रहे वहाँ वैसे खड़े।
कुटिल क्रिया अब लगी दीखने विधि की ऐसी,
समय-फेर से सदा देख पड़ती है जैसी।
जो कल राजा रहे, आज वे रंक हुए हैं ;
सच्चे सबके हाय ! भाल के अंक हुए हैं।
अन्न नहीं, धन भी नहीं, वस्त्र नहीं, बर्तन नहीं।
कहाँ जायँ, कैसा करें, ठौर नहीं दिखता कहीं ;
गया किसी का पुत्र, किसी ने पुत्री खोई ;
कोई हुआ अनाथ, हीन भाई से कोई।
कोई माता मरी पुत्र की रक्षा करती;
कोई मरती मिली अंत की साँसें भरती।
एक, दूसरा, तीसरा, चौथा संकट आ गया ;
सफल वही जीवन हुआ, जो पार सभी से पा गया।
कृषकों की दुर्दशा और भी है दुखदायी ;
खड़ी फ़सल बह गई, नहीं है घर में पाई।
ढोर, बैल बह गए, घरों का अन्न बहा है ;
केवल कटि में एक वस्त्र का खंड रहा है।

ये वैसे ही रंक थे, और रंक अब हो गए;
जीवन के साधन सभी वारि-राशि में खो गए।
श्रवण-योग्य है कथा घातकी इस घटना की;
पर मुझमें अब शक्ति नहीं है कुछ रटना की।
भेज रहे हैं अन्न-वस्त्र यद्यपि उपकारी,
तो भी अब तक व्याप रहा है संकट भारी।
हे प्रभु, प्रेरित कीजिए सब लोगों को देश में;
जो वे संवेदी बनें, 'भँडवा' के इस क्लेश में।

× × ×

९. आचार्य गिडवानी के उपदेश

आचार्य गिडवानी महाशय देश के एक स्वार्थत्यागी नर-रत्न हैं। आप जैसे विद्वान् हैं, वैसे ही दूरदर्शी और सदाचारी भी। आप-जैसे पुरुष रत्न अगर थोड़े भी हों, तो वे देश का उद्धार कर सकते हैं! आपने राष्ट्रीय शिक्षा और राष्ट्र की उन्नति के लिये जो आर्थिक क्षति उठाई है, वह आदर्श है। आपने अभी सोमवार, सौर ४, आश्विन १९८३ वि० को काशी-विद्यापीठ के तृतीय समावर्तन-संस्कार के समय, जो विचार-पूर्ण भाषण अँगरेज़ी में दिया है, वह बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है। हम यहाँ पर उसके दो परमोपयोगी अंशों का हिंदी-अनुवाद पाठकों के लाभ के लिये देते हैं—"भिन्न-भिन्न प्रांतों की पारस्परिक सहानुभूति को अधिक दृढ़ बनाना और साहित्य तथा कलाओं की उन्नति के उन नूतन प्रयत्नों को परस्पर संबद्ध करना अत्यंत आवश्यक है जो प्रायः प्रत्येक प्रांत में हो रहे हैं, और जो हमारे उज्ज्वल भविष्य के अत्यंत आशा-पूर्ण लक्षण हैं। यह समझने की भूल न कीजिए कि केवल हिंदी-भाषा का ही और अधिक प्रचार हो जाने से प्रांतों में एकता स्थापित हो जायगी। इसमें संदेह नहीं कि हिंदी का सर्वदेशीय प्रचार राष्ट्रीय शिक्षा—सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा—के कार्य-क्रम का सब से निर्विवाद अंश है। किंतु राष्ट्रीय शिक्षा के कार्य-क्रम का यह आशय नहीं है, और न हो सकता है कि भिन्न-भिन्न प्रांतों की भाषाओं और उनके साहित्य का बहिष्कार कर दिया जाय; क्योंकि 'प्रांतीय भाषाएँ' कही जाने से ही उनका महत्त्व कम नहीं हो जाता। भारतीय सभ्यता की उन्नति का मार्ग प्रांतीय सभ्यताओं को अधिक पुष्ट करना और उनमें वैसा ही घनिष्ठ संबंध स्थापित करना है, जैसा योरप की सभ्यता में पश्चिम के देशों का हुआ है। जिस वस्तु के बहिष्कार की आवश्यकता है, वह है प्रांतीय लिपि, प्रांतीय भाषा नहीं। मराठी की तरह बँगला, गुजराती, पंजाबी और सिंधी भाषाओं को भी शीघ्र ही देवनागरी-लिपि स्वीकार कर लेनी चाहिए। ऐसा करने से उक्त भाषाओं का प्रचार भी अधिक हो जायगा, साथ ही देशवासियों के लिये भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रचलित सभ्यता की जानकारी प्राप्त करना भी सुलभ हो जायगा।

"घनिष्ठता स्थापित करने का इससे भी सरल, किंतु इतना ही आवश्यक, उपाय यह है कि हिंदी-भाषा-भाषी प्रांतों में भी परस्पर और अधिक मात्रा में सहयोग किया जाय। यों तो आदर्श की दृष्टि से यदि देखा जाय, तो ज्ञान के प्रसार के लिये पृथक्-पृथक् संस्थाओं द्वारा स्वतंत्र रूप से पाठ्य-क्रम और पाठ्य पुस्तकें निर्द्धारित करने के प्रयत्न से लाभ ही होगा; किंतु हमारे पास कार्यकर्ताओं और द्रव्य की इतनी कमी है कि हम इस लाभ का उपभोग नहीं कर सकते। बिहार-विद्यापीठ, काशी-विद्यापीठ, प्रेम-महाविद्यालय तथा पंजाब और मध्य-प्रांत के उन विद्यालयों को, जिन्होंने हिंदी को ही शिक्षा का माध्यम बनाया है, हिंदी-भाषा बोलनेवालों के लिये उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें निर्द्धारित करने का सम्मिलित प्रयत्न करना चाहिए, जिससे राष्ट्रीय शक्ति के व्यय में किफ़ायत हो सके। वे पाठ्य-पुस्तकें सभ्यता और शिक्षा के सिद्धांतों की वर्तमान उन्नति की समकक्ष होनी चाहिए। इस प्रयत्न से देश के बच्चों की उस सत्यानाशी पाठावली से रक्षा हो सकेगी, जो उन्हें आजकल सरकार के आदेश से पढ़ाई जाती और उन्हें अधःपतित बना रही है।"

फिर आप कहते हैं—

"अब यहाँ पर राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप और उसके क्षेत्र का प्रश्न उपस्थित होता है। मैं आपसे आग्रह-पूर्वक अनुरोध करता हूँ कि आप इस प्रश्न पर समुचित रूप से विचार करें। गुजरात, बिहार, पंजाब तथा अन्यान्य स्थानों के विद्यापीठों की तरह इस विद्यापीठ का भी जन्मदाता असहयोग-आंदोलन है। लगभग सभी विद्यापीठों की नींव महात्मा गांधी के कर-कमलों द्वारा रक्खी गई थी। सर्वसाधारण की समझ में महात्माजी के आंदोलन के साथ राष्ट्रीय शिक्षा का अच्छेद्य संबंध है। फिर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रीमती बेसेंट के होमरूल-आंदोलन में इसी नाम का एक ज़ोरदार

कार्य-क्रम शामिल था, और श्रीयुत अरविंद घोष तथा उनके मित्रों के उत्साह से संचालित बंगभंग-आंदोलन के कार्य-क्रम में भी राष्ट्रीय शिक्षा को स्थान दिया गया था। गुरुकुल-स्थापन की प्रणाली इससे भी अधिक पुरानी और स्वतंत्र चेष्टा की सूचक है। इनके अतिरिक्त डॉक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर महोदय का बोलपुर-विद्यालय भी उल्लेखनीय है। पूर्व आंदोलनों के समय में जो संस्थाएँ क़ायम हुई थीं, वे अभी तक बनी हुई हैं, और सभ्यता तथा स्वतंत्रता-प्राप्ति के उद्योग में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सहायक हो रही हैं। यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने-योग्य है, ख़ासकर इस समय जब कि असहयोग-आंदोलन कांग्रेस और देश का कोई लक्ष्य नहीं रह गया है।

"असहयोग-आंदोलन का आरंभ जिस मूल सत्य के आधार पर हुआ था, वह यह है कि विदेशियों के अन्याय के साथ, जिसने भारत पर उस वस्तु के द्वारा, जिसे वे क़ानून कहते हैं, अधिकार जमा लिया है, भारतीय प्रजा का, जो इसका शिकार बनी हुई है, अनिवार्य विरोध है। यदि इसकी तात्कालिक उपयोगिता का ख़याल न किया जाय, तो भी मेरा विश्वास है कि देश के सभी दलों के लोग इससे सहमत हैं। गत कई मासों के बाद की कई घटनाओं से प्रकट है कि जिस अमन-चैन क़ायम रखने की ग़रज़ से ही सरकार प्रधान शक्ति अपने हाथ में रखने का बहाना करती है, उसी के संबंध में उसने जान-बूझकर अपने आरंभिक कर्तव्यों का पालन करने में त्रुटि दिखलाई है। इससे उच्च अधिकारियों ने हाल में सरकार के संकेत से जो भाषण किए हैं, उनके होते हुए भी, लोगों की यह धारणा और भी पुष्ट हो गई है।

"इस धारणा के हो जाने पर भी इस बात की तात्कालिक उपयोगिता विचारणीय है कि हमारे लिये राष्ट्र की शक्ति और दृढ़ता का अंदाज़ा लगाकर सभी तरह के सहयोग को तिलांजलि देते हुए खुल्लमखुल्ला युद्ध जारी कर देना उचित है, या उससे कम प्रतिरोध के मार्ग पर, जिसका रूप न्यूनतम प्रतिरोध का मार्ग होना ज़रूरी नहीं, चलना उचित है। भारत में जो असहयोग-आंदोलन आरंभ किया गया था, वह पहले प्रकार का था, यद्यपि उसमें सहयोग की केवल मुख्य-मुख्य बातों का ही, जिनमें शिक्षा का विषय भी प्रधान रूप से शामिल था, परित्याग करने की बात थी। इसमें संदेह नहीं कि स्वार्थत्याग की गुरुता का ख़याल करते हुए राष्ट्र की इस पुकार का जो उत्तर दिया गया, वह प्रशंसनीय था। युद्ध के शीघ्र समाप्त हो जाने की आशा भी इस उत्साह का एक कारण थी। नवयुवकों ने एक या दो वर्ष तक हर्ष और उत्साह के साथ त्याग किया, और कांग्रेस की ध्वजा के नीचे एकत्र हुए। किंतु वर्ष समाप्त होते ही युद्ध का तरीक़ा बिलकुल बदल गया। अब क्रांतिकारी आंदोलन के आरंभ की फुर्ती और निश्चय के बदले कम अवरोधवाले दूसरे मार्ग का अवलंबन किया गया। स्वराज्य-दल की उत्पत्ति तथा वृद्धि और कट्टर असहयोगियों के स्वराजियों का सामना न करने के निश्चय ने असहयोग-आंदोलन के मूल रूप का ही, जिसमें अदालत और स्कूलों का बहिष्कार भी शामिल था, काया-पलट कर दिया। असहयोग-आंदोलन स्थगित करनेवाले निश्चय में राष्ट्रीय पुकार पर दौड़ आनेवालों को अपनी वकालत और पढ़ाई बंद कर देने के कारण बधाई देनी चाहिए थी, और भविष्य के लिये उन्हें इस शर्त से मुक्त कर देना चाहिए था। साथ ही इस बात के लिये अपील की जानी चाहिए थी कि जिनसे बन पड़े, वे सार्वजनिक सेवा में अपना पूरा समय देनेवालों की पंक्ति में स्थायी रूप से आ मिलें। ऐसी कोई घोषणा न होने के कारण उन्नमना सज्जनों और उदार नवयुवकों को अप्रिय आलोचना का शिकार बनना पड़ा।

"शिक्षा के संबंध में मूल-पुकार किसी प्रकार मेरे अंतःकरण के विरुद्ध नहीं है; पर आंदोलन ने आज कल जो रूप धारण कर लिया है, उसे देखते हुए मेरा यह तुच्छ, पर सुनिश्चित मत है कि वर्तमान अवस्था में पूर्व पुकार पर ज़ोर नहीं दिया जा सकता। इसका यह अभिप्राय नहीं कि इस प्रकार के विद्यालय बंद कर दिए जायँ। मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह यह है कि ये संस्थाएँ अपने शिक्षा-संबंधी उद्देश्य पर डटी रहें और जो युवक सरकारी विद्यालयों से सदा के लिये मुँह मोड़ चुके हैं, उनकी शिक्षा का भी साथ-साथ प्रबंध करती रहें। दूसरी प्रणालियों का विरोध करने के बजाय उनसे स्वतंत्र रहना ही हमारे वर्तमान कार्य-क्रम के लिये अधिक उपयुक्त है। इस समय दूसरे विद्यालयों के बहिष्कार का कोई अर्थ ही नहीं है। इस विषय पर विचार करना आवश्यक है कि क्या शिक्षा के क्षेत्र में भी कांग्रेस का प्रभाव बढ़ाने का

कोई उपाय नहीं निकाला जा सकता, जिससे ऐसे विद्यालय भी उस क्षेत्र के भीतर आ जायँ, जो अपेक्षाकृत कुछ कम स्वतंत्र विधि से चलते रहे हैं।

"इस बात को अच्छी तरह ध्यान में रखते हुए हमें अपना कार्य-क्रम ऐसा बनाना चाहिए, जिससे प्रचलित संस्थाओं की तुच्छ प्रतिलिपियों का प्रादुर्भाव न होकर हमारी संस्थाएँ ऐसी बनें, जो अनुभूत राष्ट्रीय आवश्यकता-पूर्ति या प्रत्यक्ष तथा बुद्धिग्राह्य राष्ट्रीय आवश्यकता को जाग्रत् करनेवाली हों। यही कारण है कि मैं इस प्रश्न की प्रधान बातों के संबंध में पुनर्विचार करने पर ज़ोर देता हूँ।

"राष्ट्रीय शिक्षा के विधायक कार्य-क्रम में मुख्यतः इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है— समाज-सेवा का कार्य और उसका वातावरण उत्पन्न करना, शिक्षा के प्रांतीय माध्यम की वृद्धि, हिंदी का व्यापक प्रचार, जीविकोपार्जन योग्य शिक्षा, कला-कौशल की शिक्षा, गृहशिल्प का—विशेषतः चरखे का—प्रचार, शारीरिक सुधार और जीवन का ऐसा सामंजस्य, जिसमें ब्रह्मचर्य के आदर्श सफल हों; क्योंकि इसी से हममें वह शक्ति उत्पन्न होगी, जो राष्ट्रीय उद्धार के लिये आवश्यक है। मैंने इन बातों का इसलिये उल्लेख किया है कि प्रचलित शिक्षा-संस्थाओं में इनकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता, अथवा बहुत कम दिया जाता है। यदि हम अपनी सुविधाओं के अनुसार इनमें से एक या एकाधिक बातों पर अपनी सारी शक्ति लगाते रहें, तो देशमें ऐसी और भी शत-शत संस्थाओं के लिये यथेष्ट कार्यक्षेत्र मिलेगा। यह स्मरण रहे कि मैंने जिन विशेष बातों की ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया है, उन्हें वर्तमान साहित्य-प्रधान विद्यालयों की मामूली पढ़ाई के साथ ही, उसे अधिक आकर्षक बनाने के लिये, अतिरिक्त विषयों की तरह जोड़ देने से काम न चलेगा। इनमें कई विषय इतने महत्त्व-पूर्ण हैं कि उनके लिये पृथक् विद्यालयों की आवश्यकता पड़ सकती है। कुछ विद्यालय तो प्रयोगात्मक शालाओं का काम देंगे, और कुछ पवित्र कार्यों के केंद्र बन सकेंगे, किंतु सभी सेवा और आत्मत्याग के आदर्श से प्रेरित होंगे। जो साधन हम प्राप्त कर सके हैं, हमारे द्वारा उनका अपव्यय होगा, अथवा राष्ट्रीय उद्योग का नवीन तथा बहुत आवश्यक मार्ग दिखाने में हम उसका सदुपयोग कर सकेंगे, यह हमारी ही दूरदर्शिता और संघटन-शक्ति पर निर्भर है। यदि हमने अपनी अभिलाषा को विचार से अधिक महत्त्व दिया, और अपने उद्योग को सुचिंतित सीमा के भीतर ही न रक्खा, तो हमें विफलता अवश्य प्राप्त होगी।

"अगर सरकारी विश्वविद्यालयों का इस स्थल पर हवाला दिया जाय, तो उनके संबंध में भी यही कहना पड़ता है कि उन्हें भी कुछ अंतर के साथ इस सावधानता की आवश्यकता है। सैडलर-कमीशन का यह फल हुआ कि देश में स्थानीय विश्वविद्यालयों की भरमार तो हुई, पर कार्य-क्रम में न तो स्थानीय विषयों के अध्ययन पर ज़ोर दिया गया, और न प्रांतीय सभ्यता को उन्नत करने के संबंध में ही कुछ कहा गया। हाँ, एक बात अवश्य हुई है, वह यह कि कॉलेज के प्रथम तथा द्वितीय वर्ष के वर्गों की पढ़ाई इतनी घटा दी गई है कि वह स्कूल की पढ़ाई के समकक्ष हो गई है, और कमेटियों तथा कौंसिलों की इतनी वृद्धि कर दी गई है कि अध्यापकों का ध्यान पठन-पाठन की ओर से हटकर व्यर्थ के तुच्छ झगड़ों की ओर आकृष्ट हो जाता है। मैं कुछ नए विश्वविद्यालयों के विषय में जानता हूँ, जो संबद्ध कॉलेजों से उच्च सभ्यता के निमित्त पाठ्य क्रम बनाने में सहयोग प्राप्त करने के बदले, उनके लिये मानो एक रंग भूमि-सी तैयार कर देते हैं, जहाँ वे भिन्न-भिन्न प्रकार के दलों का निर्माण करते हुए भारतीय व्यवस्थापक सभा के राजनीतिज्ञों की तरह कूटनीति की चालें चलने में गर्व प्रकट करते हैं।

"इन स्थानीय विश्वविद्यालयों को हमारे राष्ट्रीय विद्यालयों की तरह ही विशेष विषयों के अध्ययन पर अधिक ज़ोर देकर अपने अस्तित्व का औचित्य प्रमाणित करना पड़ेगा। वे इस अनुचित मार्ग का अनुसरण करते हैं कि पहले तो आजकल के प्रचलित और एक ही साँचे में ढले हुए आर्ट-कॉलेजों से कार्य का प्रारंभ करते हैं, और बाद को क़ानून की पढ़ाई भी शामिल कर देते हैं। इसके बाद वे आश्चर्य-चकित होकर सोचने लगते हैं कि आधुनिक उन्नतियों के लिये रुपया कहाँ से आवेगा। अब इस प्रकार की और सहूलियत करने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि सच पूछिए, तो इससे लाभ ही होगा कि आजकल के कुछ कॉलेजों को तोड़कर रुपया बचाया जाय, और वह अधिक उपयोगी कला-कौशल तथा चिकित्सा के विद्यालय खोलने के लिये, बड़े-बड़े पुस्तकालय और प्रयोगशालाएँ स्थापित करने के लिये, खोज और पुस्तक प्रकाशन के लिये, हिंदी-प्रचार के लिये एवं प्रांतीय भाषाओं की उन्नति के लिये व्यय

किया जाय। सब विश्वविद्यालय इन्हीं में से एक-एक को लेकर अपना कार्य प्रारंभ करें ? वे एक निश्चित प्रणाली में पड़ गए हैं, और सर माइकेल सैडलर ने उन्हें उससे बाहर निकालने का प्रयत्न नहीं किया। वे विश्वविद्यालय कुँभार के बनाए हुए बर्तनों की तरह एक के बाद एक अपनी पहले की सूरत और शक्ल में उत्पन्न होने जा रहे हैं।

कार्य-क्रम की उन मुख्य-मुख्य बातों का मैं उल्लेख कर चुका, जो हमें सदा अपने सामने रखनी चाहिए। पर हे युवको, आज आप विद्यापीठ का प्रमाणपत्र लेकर संसार में जा रहे हैं। स्मरण रखिए, इस पीठ का अस्तित्व आपके जीवन में होनेवाले परिवर्तन में ही सफल होगा। यदि आप अपने जीवन में राष्ट्रीयता के उस उदार आदर्श को सफल करें, जिसमें न विदेशों के प्रति घृणा है, और न भिन्न जाति तथा भिन्न धर्मवालों के प्रति विरोध, और जिस प्रेमादर्श में बड़े-छोटे, सबका समान रूप से समावेश होता है, यदि आप अपने धर्मबल से सब प्रकार की विपत्तियों के झेलने के लिये प्रस्तुत रहकर दृढ़ता और निर्भयता के साथ अपने सिद्धांतों की रक्षा करते रहें, तथा किसी भी कारणवश झुकने से इनकार करें, तो अमृतसर की उस गली की स्मृति को, जिसमें भारत-संतानों को पेट के बल रेंगना पड़ा था, और जो गली भारत की वर्तमान दशा की उपयुक्त प्रतिमा है, आप मिटा सकेंगे।

"आप ऐसे समय संसार में प्रवेश कर रहे हैं, जब संकुचित और सांप्रदायिक पूर्व संस्कारों पर विजय-लाभ करना सहज नहीं है। यह कठिनाई भिन्न-भिन्न दलों और गुटों के जघन्य झगड़ों से और भी बढ़ गई है। इन झगड़ों का मनुष्य को नीतिच्युत करनेवाला फल आपको उन लोगों के भी भाषणों में मिला होगा, जो इसके पहले अपनी संस्कृति और शालीनता का गौरव किया करते थे। मैं आपको संघर्ष से मुँह मोड़ने की सलाह नहीं दे रहा हूँ। आप भी अपने नाम योद्धाओं की सूची में लिखाइए; पर धर्म-युद्ध के नियमों का सदा पालन करते रहिए। स्मरण रखिए, हमारा लक्ष्य स्वराज्य है, और जब तक हम उसे प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक राष्ट्र दुःख से कराहता रहेगा।"

हमें आशा है, देश के विद्यार्थी जनता और शिक्षादाता आचार्य गिडवानी की इन बातों पर अवश्य ध्यान देंगे।

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ७॥), छ मास का ४) और प्रति संख्या का ॥।) है। वी० पी० से मँगाने में ।=) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ९), छ महीने का ५) और प्रति संख्या का ॥।=) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है; और प्रति मास शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को पत्रिका प्रकाशित हो जाती है। लेकिन ग्राहक बननेवाले चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो अगले महीने के शुक्ल-पक्ष की सप्तमी तक कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकखाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। लेकिन उक्त तिथि के बाद सूचना मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा, और उस संख्या को ग्राहक ॥।=) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना संचालक गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ या मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो इसका प्रबंध डाक-घर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १५ रोज़ पेश्तर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंज़ूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए। हाँ, चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक व्यय प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

पं० दुलारेलाल भार्गव

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कॉलम की छपाई	... ...	२०)	प्रति मास
१/२ ,, या १ ,, ,,	... ...	१२)	,, ,,
१/४ ,, या १/२ ,, ,,	... ...	१०)	,, ,,
१/८ ,, या १/४ ,, ,,	... ...	६)	,, ,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ४,००,००० पढ़े-लिखे, धनी-मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्व-श्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एवं प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०-५० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से अपेक्षाकृत कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो कीजिए।

मैनेजर माधुरी, लखनऊ



[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

मिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह मोहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ४ खंड १	कार्त्तिक-शुक्ल ९, ३०३ तुलसी-संवत् (१९८३ वि०) — १२ नवंबर, १९२६ ई०	संख्या ४ पूर्ण संख्या ५२

छबीली छटा

(१)

आवे इठलात नंद महर-लड़ैतो लखि,
पग-पग भाय-भार अटकति आवै है ;
रूप-रस-माती चारु चपल चितौनि कुल-
गैल गहिबै कौं हठि हटकति आवै है ।
अवनि-अकास-मध्य पूरि दिगछोरनि लौं,
छहरि छबीली छटा छटकति आवै है ।
मटकत आवै मंजु मोर कौ मुकट माथैं,
बदन सलौनी लट लटकति आवै है ।

(२)

काहू मिसि आज नंद-मंदिर गुबिंद आगैं,
लेनहि तिहारौ नाम धाम रस-पूर कौ ;
सुनि बहराइ लगे जदपि सराहन-पै,
दीन्हि कला करन कपोल अति दूर कौ ।
मृग-मद-बिंदु चारु चटक दुचंद भयौ,
मंद भयौ खौर हरिचंदन-कपूर कौ ;
थहरन लागे कल कुंडल कपोलनि पैं,
छहरन लाग्यौ लास मुकट मयूर कौ ।

"रत्नाकर"



[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

[illegible] { कार्तिक-शुक्ल ५, ३०६ तुलसी-संवत् (१९८६ वि०) — १५ नवंबर, १९२९ ई० } संख्या ४ — पूर्ण संख्या [illegible]

छबीली छटा

(१)

आवै हुलसात नंद महर-लड़ैतौ लाल,
　　पग पग भाव-भार अटकनि आवै है ;
कंद-रस-माते चारु चपल चितौनि कुल-
　　नैन गहिबे कौं हठि हटकनि आवै है ।
अवनि-अकास-मध्य पूरि दिगछोरनि लौं,
　　छहरि छबीली छटा छटकनि आवै है ।
लटकन आवै मंजु मोर कौ मुकुट माथै,
　　बदन सलौनी लट लटकनि आवै है ।

(२)

काहू मिसि आज नंद-मंदिर गुबिंद आगे,
　　खेलहिं निहारी नाम भाम रस-पूर कौ ;
त्यौं ही महरात लगे उदधि मराहन के,
　　दीन्हि कला करन कपोल आनि नूर कौ ।
सुर-मद-बिंदु चारु चढ़त दुचंद भयौ,
　　मंद भयौ ग्यौर हरिचंदन-कपूर कौ ;
भहरन लागे कल कुंडल कपोलनि पै,
　　छहरन लाग्यौ साम मुकट मयूर कौ ।

"रत्नाकर"

भाषा का विकास

(पूर्वार्द्ध)

आदिम आर्य-भाषा कैसी थी, इसका पता तो कुछ ठीक-ठीक नहीं चलता; पर इसमें संदेह नहीं कि आर्यों की भाषा उनकी एक शाखा के पश्चिम जाने के पूर्व ही प्ररोहित अवस्था को पहुँच चुकी थी। यही कारण है कि पाश्चात्य और प्राच्य आर्य-भाषाओं में अनेक नामों, सर्वनामों, विभक्तियों और धातुओं में ध्वनि आदि की समता देखने में आती है। ज़ंद और संस्कृत में तो इतनी समता है कि हम दोनों को एक ही शाखा की दो पत्तियाँ कह सकते हैं। हम यहाँ प्राच्य और पाश्चात्य आर्य-भाषाओं के शब्दों की तुलना करके इस विषय को अधिक बढ़ाना नहीं चाहते, आगे यथावकाश उनको दिखलाते जायँगे; पर धातु के संबंध में इतना अवश्य बतला देना चाहते हैं कि इस विषय पर कि आरंभ में नाम-धातुओं की कल्पना हुई या भाव-धातुओं की, विद्वानों में बहुत प्राचीन काल से मतभेद चला आता है।

सबसे पहले यह प्रश्न निरुक्त में उठाया गया है। निरुक्त (अध्याय ३, पाद ४, खंड १) में यास्काचार्य लिखते हैं—"काक इति शब्दानुकृतिस्तदिदं शकुनिषु बहुलम्। न शब्दानुकृतिर्विद्यत इत्यौपमन्यवः। काकोऽपकालयितव्यो भवति" इत्यादि। अर्थात् 'काक' यह शब्दानुकृति है। 'का-का' करने से काक यह नाम रक्खा गया। इस प्रकार पक्षियों के नाम प्रायः अनुकृति पर रक्खे गए हैं, ऐसा अनुमान होता है; पर उपमन्यु-नामक नैरुक्त आचार्य का इसमें मतभेद है। उसका कथन है कि अपकार करने से काक का काक-नाम पड़ा। वह पदार्थों को खोद-खादकर नष्ट कर देता है इत्यादि।

इसी विचार से मिलती-जुलती हुई पाश्चात्य शब्द-शास्त्र-विशारदों की भी सम्मतियाँ हैं। उनमें सबसे बड़ा मतभेद तो इस बात पर है कि आरंभ में व्यक्ति-वाचक शब्द उत्पन्न हुए या भाव-वाचक। लॉक, कांडिलक, आदम स्मिथ, ब्राउन, डुगाल्ड स्टिवर्ट आदि शाब्दिकों का मत है कि शुरू में मनुष्य को एक का ज्ञान होता है, और वह उसका नाम रख लेता है। फिर जब दूसरा वैसा ही उसे मिलता है, तो उसको भी उसी नाम से अभिहित करता है। इस प्रकार नाम व्यक्ति-वाचक से जाति-वाचक हो जाते हैं। लेबनिज़ का मत इसके विपरीत है। उसका कथन है कि भाषा के संगठन के लिये सामान्य शब्दों का होना नितांत आवश्यक है। वह कहता है कि बच्चों को देखिए, उनको अपनी भाषा का अत्यंत अल्प ज्ञान होता है। उनको उन विषयों का भी यथावत् बोध नहीं होता, जो भाषा के विषय हैं; फिर भी वे व्यक्ति-वाचक नामों को—जिन्हें वे जानते ही नहीं—न कहकर सामान्य शब्दों का व्यवहार करते हैं; वे सब पदार्थों को 'चीज़', सब वृक्षों को 'पेड़' और सब पशुओं को 'जानवर' कहते हैं। उनको उनके नाम ही मालूम होते हैं। यह निश्चित है कि सब व्यक्ति-वाचक शब्द आरंभ में सामान्य-वाचक शब्द थे। वह यह भी कहता है कि मैं तो गर्व से कह सकता हूँ कि सब शब्द आदि में सामान्य ही थे। कारण, यह बहुत कम संभव है कि मनुष्य नामकरण कर सका हो, और उसने अकारण ही एक व्यक्ति को दूसरे से अलग करने के लिये उनके नामों की कल्पना की हो। अतएव हम यह कह सकते हैं कि व्यक्तियों के नाम भी जाति-वाचक थे, जो उनके किसी गुण-विशेष के कारण रक्खे गए *। अध्यापक मैक्समूलर का मत है कि आरंभ में पदार्थों का ज्ञान सामान्य होता है। इसी सामान्य ज्ञान के आधार पर आगे

---

* "Children and those who know but little of the language which they attempt to speak, or little of the subject on which they would employ it, make use of general terms, as thing Plant, animal, instead of using proper names, of which they are destitute—And it is certain that all proper names have been originally appellative or general.—Thus I would make bold to affirm that almost all words have been originally general terms, because it would happen very rarely that man would invent a name, expressly and without reason, to denote this or that individual. We may, therefore, assert that the names of individual things were names of species, which were given par excellence or otherwise to some individual.

चलकर हम पदार्थ-विशेषों को, जिनमें कोई सामान्य भाव पाया जा सकता है, जानते और उनका नामकरण करते हैं। फिर तीसरी अवस्था में पहुँचकर इन्हीं पदार्थ-विशेषों के नाम जाति-वाचक हो जाते हैं, और उनका व्यवहार उन सब पदार्थों के लिये होता है, जिनमें साधर्म्य पाया जाता है *।

अब किसी का नाम कैसे रक्खा जाता है, इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। पदार्थों के ऊपर नाम तो लिखा नहीं रहता कि देखनेवाला झट पढ़कर उनका उस नाम से निर्देश करने लग जाय; और न वे आप अपना नाम ही बतलाते या बतला सकते हैं। नामकरण के पूर्व हमारे भीतर कितने ही मनोविकारों का आविर्भाव और तिरोभाव होता है। हमारे अंदर भीतरी और बाहरी कितने ही विकार उत्पन्न होते हैं, हमें कितने ही व्यापार करने पड़ते हैं। सबसे पहले तो वह पदार्थ हमारी इंद्रियों के आयतन में आता है, जिसे हम प्रत्यक्ष करना कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'रूप' भी है। हम किसी पदार्थ के एक बार अपनी इंद्रियों के आयतन में आने ही से उसे सर्वतोभावेन प्रत्यक्ष तो कर नहीं सकते। हम उसे अंशतः प्रत्यक्ष कर पाते हैं। इंद्रियायतन में आने से हममें वेदना उत्पन्न होती है। वह वेदना हमारे इंद्रिय-गोलकों में होती है। फिर वह वेदना इंद्रियों द्वारा हमारे मन या मस्तिष्क में पहुँचती है। तब हमारे मन में संज्ञा उत्पन्न होती और उसका हमें बोध होता है। संज्ञा के उपरांत हमारे मन में उसका संस्कार रह जाता है, और उसी संस्कार से (चाहे वह पदार्थ हमारे सामने रहे, या न रहे) हमें उसका 'ज्ञान' रहता है। यही ज्ञान पुनः अनुकूल परिस्थिति पाकर स्मृति के रूप में प्रकट होता है। देखिए, इस प्रकार किसी पदार्थ का ज्ञान होने के लिये कितने विकारों के होने की आवश्यकता है। पुनः उस ज्ञान को स्मृति द्वारा जानकर, अन्य ज्ञानों के साथ साधर्म्य और वैधर्म्य द्वारा विवेचना करके उसके वैधर्म्य के अनुसार, उसका द्योतक शब्द ढूँढना पड़ता है, और तब वही शब्द भाषा में उसका वाचक या नाम होता है। भाषा में नाम या शब्द अपने वाच्य का रूप हो जाता है, और निरंतर अभ्यास से दोनों में इतना अभेद या साम्य हो जाता है कि दोनों एक ही-से माने जाते हैं। पर नामकरण तो तभी हो सकता है, जब भाषा में भावों के द्योतक शब्द होते हैं। बिना भाव-द्योतक शब्द के नामकरण किया कैसे जायगा? इसी कारण सभी शब्द-शास्त्रविशारदों को भाषा का मूल धातुओं को मानना पड़ा है। ये धातुएँ कब उत्पन्न हुईं, इनका आरंभ कैसे हुआ, इनमें क्या-क्या और कैसे-कैसे विकार उत्पन्न हुए, इसका कुछ पता नहीं। चीनी भाषा के सदृश भाषा में भी (जो अब तक अत्यंत प्रारंभिक दशा में ही पड़ी है) कितने ही शब्द ऐसे हैं, जिनका धातुत्व नष्ट हो गया। पर यह बात सभी भाषाओं में देख पड़ती है कि उनकी प्रकृति कुछ परिमित शब्द-बीज या धातुएँ हैं, जिनमें कोई न-कोई भाव निहित है। इस प्रकार की धातुएँ * संस्कृत में १,७०६, अँगरेज़ी में ४६१, गाथिक में ६००, जर्मन में २५०, स्लेविक में १,६०५, इब्रानी में ५०० और चीनी में ४५० हैं। यद्यपि पाश्चात्य विद्वानों ने भिन्न-भिन्न जातियों की भाषाओं की धातुओं को मिलाने की चेष्टा की है, पर उनमें उनको इतनी कम समता मिली है कि वे "सब भाषाओं की प्रकृति एक नहीं हो सकती", इस सिद्धांत को मानने के लिये विवश हुए हैं।

पाश्चात्य आर्य-भाषाओं की बात कुछ और है। उनमें और संस्कृत-भाषा में तो इतनी ही समता है कि हम उनको देखकर यह कह सकते हैं कि ये भाषाएँ भी संस्कृत से कुछ मिलती-जुलती हैं। पर इनका और संस्कृत का बहुत दूर का संबंध है। किंतु ज़ंद-भाषा का संस्कृत से इतना साम्य है कि दोनों, मिलाकर देखने से, एक ही वृक्ष के दो स्कंध या एक ही शाखा के दो अंकुर जान पड़ती हैं। हम पहले धातुओं की समता दिखलाने के लिये दोनों की कुछ धातुएँ लिख देते हैं—

* The first thing really known is the general. It is through it that we know and name afterwards individual objects of which any idea can be predicated; and it is only in the third stage that these individual objects, thus known and named, become again the respresentative of whole classes and their names or proper names, are raised into appellatives. Science of language P. 519.

* डॉ० मरे का मत है कि भाषा के मुख्य बीज नव हैं— अग्, बग्, दग्, स्वग्, लग्, मग्, नग्, रग् और स्वग्। डॉ० श्मिट का कथन है कि यूनानी भाषा का बीज 'ए' और लातनीक 'हि' है।

ज़ंद	संस्कृत	अर्थ
अह	अस्	भुवि
कर्	कमु	कांतौ
कृ	कृ	करणे
ख्नु	×	×
गम्	गम्	गतौ
गर (जागर)	जागृ	निद्राक्षये
गृज्	गृज्	शब्दार्थे
गृब्	ग्रह् (भृ)	ग्रहणे
चि	चीक्	आमर्षणे
चित्	चिती	संज्ञाने
जन	हन्	हिंसायाम्
ज़ी	जीव्	प्राणधारणे
ज़न	जन्	जनने
ज़ा	हा	त्यागे
ज़ु	हु	दानादानयो:
ज़्वा	ह्वे	आह्वाने
तर	तॄ	तरणे
तु	तुज्	बले
तष	तक्ष्	तनूकरणे
त्विष	तुज्	हिंसायाम्
	त्विष्	अप्रीतौ
धा	धा	धारणपोषणयो:
दर	दृ	विदारणे
दा	दा	दाने
	ज्ञा	अवबोधने
दज़्	धृ	धारणे
दी, दस्	दृशि	दर्शने
धर्	धृ	धारणे
नस्	णश्	अदर्शने
निक्ष	णिजि	शुद्धौ
पर	पृ	व्यायामे
पृत्	पृत्	हिंसायाम्
फ्रा	प्रा	पूरणे
बर्	भृ	भरणे
बि	भी	भये
बू	भू	सत्तायाम्
मन्	मन्	ज्ञाने
मरश	मश्क्	गतौ
मृंत	मृ	मरणे
यत्	यती	प्रयत्ने
रम्	रमु	क्रीडायाम्
रष्	रिष्	हिंसायाम्
रित्	ऋ	गतौ
रिथ	रिह्	हिंसादानेषु
रुथ	रुह्	प्रादुर्भावे
वच्	वच्	परिभाषणे
विद्	विद्	ज्ञाने
वृज्	अर्ज्	अर्जने
	अर्ह्	पूजायाम्
शु	शु	गतौ
स्ता	स्था	×
स्पस्	स्पश्	बाधनस्पर्शने
स्रु	श्रु	श्रवणे
हन	शंसु	स्तुतौ
हर	हृ	संवरणे
इष	इष्	इच्छायाम्

उपसर्ग भी धातुओं के आगे ज़ंद-भाषा में संस्कृत ही की भाँति लगते हैं, और प्राय: वे ही हैं—

संस्कृत	ज़ंद	
प्र	फ्र	फ्रयज् (प्रयज) फ्रबृ (प्रभृ) फ्रवृ (प्रवृ)
परा	परा	परहित्, परकथ
अप	अपा	अपथ, अपाश्तु
सम	हेम्	हेंकार, हंजमन्, हेंगम्, हेंयत्
अनु	अनु	अनुमन, अनुवच्, अनुवृज्
अव्	अव	अवबृ, अवकृन्, अवरुध्, अविमिथि
निस्, निर्	निश्, निःष्	निश्बृ, निःष्हदु
दुस्, दुर्	दुश्	दुश्नामन, दुश्मन्
	दुःष्	दुःष्वरर्त, दुःष्क्त
वि	वी, वि	वीमनो, वीभाव, विमयेम्
आङ्	आ, अ	आगम्, आयंतु, अज्येति, आफ्रीन्
नि	नि	निकन्, निधा, निफ्रीन्
अधि	×	×

संस्कृत	ज़ंद	
अपि	अपि	अपिजन्, अपिवा, अपिवत्
अति		
सु	हु	हुरोध, हुशत, हुफ्रीन
उद्	उस्, उज़्	उस्रुच्, उस्जस्, उज़्हू
अभि	अबी, अवि.	अविरुच्, अविचन्, अविगम्, अविस्मृत
प्रति	पति	पतिवच्, पतिसंह
परि	परि	परिवृस्, परिवृज़्
उप	उप	उपजम्

जिस प्रकार संस्कृत में आत्मनेपद और परस्मैपद, दो प्रकार के धातु होते हैं, वैसे ही ज़ंद में भी आत्मनेपद और परस्मैपद होते हैं, यथा पृसति पृसते: कृष्णुःधि, कृष्वा। उसमें, संस्कृत के समान ही, धातुओं के भ्वादि, अदादि आदि दस गण भी होते हैं। लकार भी उसमें संस्कृत के ही समान होते हैं, और विभक्तियों में एकवचन, द्विवचन, बहुवचन भी। उसमें तद्धित, कृदंत और समास संस्कृतवत् होते हैं। यहाँ हम ज़ंद का एक पद्य देते हैं—

तत्थ्वा पेरेसा अरेश् मोइ वओचा आहुरा,
कस्ना जांथा पता अषह्या पोउरुयो?
कस्ना खेंग स्तरेम्चा दात् अद्वानेम?
के या माओ उख्येइती नेरेफ्सइती?
थ्वत्ताचीत् मज़दा वसेमी अन्याचा विदुये।

अर्थ—तत् (वह) थ्वा (तुझसे) पेरेसा (पूछता हूँ) अरेश् (सत्य) मोइ (मुझसे) वओचा (कह) आहुरा (असुर)। कस्ना (कौन) जांथा (उत्पन्न करनेवाला) पता (पालनेवाला) अषह्या (सत्य का) पोउरुयो (प्रारंभ में) था? कस्ना (कौन) खेंग (सूर्य) स्तरेम्चा (तारा) को दात् (दिया) अद्वानेम् (मार्ग)? के (कौन) था या (जो) माओ (चंद्रमा) उख्येइती (बढ़ता) नेरेफ्सइती (घटता) है? थ्वत् (तुझसे) ताचीत् (उस) मज़दा (मज़दा को) वसेमी (इच्छा करता हूँ) अन्याचा (दूसरे को) विदुये (जानने के लिये)।

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि यदि संस्कृत की कोई सहजात भाषा है, तो ज़ंद की भाषा ही। ज़ंद की भाषा और वैदिक भाषा में इतना साम्य है कि दोनों एक-सी जान पड़ती हैं। फ़ारसी-भाषा का मूल ज़ंद-भाषा है। फ़ारसी-शब्दों की व्युत्पत्ति का ज्ञान बिना ज़ंद-भाषा के ज्ञान के हो ही नहीं सकता। यद्यपि यहाँ पर कुछ फ़ारसी-शब्दों का निर्वचन करना विषयांतर ही आता है, फिर भी इस विचार से कि हिंदी भाषा में अनेक फ़ारसी शब्द आते हैं, दो-चार शब्दों का निर्वचन उदाहरण-स्वरूप नीचे दिया जाता है—

फ़ारसी-भाषा में आफ़रीन और नफ़रीन शब्द प्रशंसा और निंदा के लिये प्रयुक्त होते हैं; पर इन दोनों का वास्तविक अर्थ जानने के लिये हमें संस्कृत और ज़ंद के धातु को देखना चाहिए। संस्कृत में 'प्रीङ् प्रीणने' धातु का पाठ दिवादिगण में है, और वही ज़ंद में फ्रीन हो जाता है। उसी फ्रीन में 'आङ्' उपसर्ग लगने से 'आफ़रीन' और निषेधार्थक 'नञ्' अव्यय लगने से नफ़्रीन शब्द बनते हैं, जिनका अर्थ अनुकूल और प्रतिकूल या स्तुति और निंदा होता है। फ़ारसी में 'ज़न' का अर्थ होता है 'स्त्री' और 'मारना'। पर पहले ज़ंद भाषा में वे इन अर्थों के दो पृथक्-पृथक् शब्द थे—जन् और ज़न्! मुसलमानों के आने पर, और उनकी लिपि में लिखे जाने के कारण, दोनों एक ही प्रकार से लिखे जाने लगे। शेख़ सादी-जैसे विद्वान् को भी यह भ्रम हो गया कि दोनों पृथक्-पृथक् शब्द न थे। वह लिखते हैं—

اگر نیک بودی سر انجام زن
زنان را مزن نام بودے نه زن

अर्थात् यदि स्त्री का परिणाम अच्छा होता, तो उनका नाम मज़न (मतमार) होता, ज़न (मार) नहीं।

पर ज़ंद में 'ज़न्' और 'जन्' दो धातु हैं, जिनसे इन दोनों मारणार्थक और स्त्री-वाचक (ज़न् और जन्) शब्दों की सिद्धि होती है। ज़न् संस्कृत धातु 'हन् हिंसागत्योः' और जन् 'जनी प्रादुर्भावे' का रूप है।

यद्यपि यह बतलाना बहुत कठिन है कि वैदिक काल की बोलचाल की भाषा अथवा उसके पूर्व की भाषा कैसी थी, तथापि वेदों के कुछ विलक्षण प्रयोगों का, जो उस समय लुप्तप्राय हो रहे थे, अध्ययन करने से वैदिक काल के पूर्व के और उस समय के बोलचाल की भाषा के दो-चार प्रयोगों के संबंध में जो अनुमान होता है, उसे यहाँ लिखना आवश्यक जान पड़ता है—

(१) 'अस्मे' शब्द का प्रयोग उत्तमपुरुष के सभी कारकों में समान रूप से होता था। यह अस्मे शब्द 'अस्मत्', 'अस्माकम्' आदि उत्तमपुरुष के सर्वनाम की प्रकृति है। यथा—

(प्रथमा) अस्मेते बंधु पुवेयम् (य० अ० ४ । २२)

(द्वितीया) अस्मे यातं नासत्या सजोषाः (ऋ० १ । ८ । १६ । ६)

(तृतीया) अस्मे समानेभिर्वृषभपौंस्येभिः (ऋ० २ । ३ । २१ । २)

(चतुर्थी) अस्मे वीराच्छाश्वन इंद्रशिप्रिन् (ऋ० ३ । २ । २० । ५)

(पंचमी) सत्रुत्रामा स्ववाँ इंद्र अस्मे आराच्चिद्द्वेषं सनुतर्युयोतु (ऋ० ४ । ७ । ३२ । ३)

(षष्ठी) ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे (ऋ० ३ । २ । ४ । ४)

(सप्तमी) अस्मे धत्त वसवो वसूनि (य० ८ । १८)

इसी प्रकार 'युष्मे'-शब्द भी प्रायः सभी कारकों में प्रयुक्त होता था। यथा—"न युष्मे वाजबन्धवः" इत्यादि।

(२) 'त्व', जिसके रूप 'त्व', 'त्वया' इत्यादि मध्यमपुरुष के एकवचन हैं, विशेषणवत् आता और प्रथमपुरुष माना जाता था। यथा—"उतत्वः पश्यन्नददर्शवाचम्" (ऋ० ८ । २ । २३ । ४), "उतत्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुः" (ऋ० ८ । २ । २४ । ५), "उतत्वस्मै तन्वं विसस्रे" (ऋ० ८ । २ । २३ । ४)

(३) अकारांत, इकारांत और उकारांत पुंलिंग और नपुंसकलिंग शब्दों के तृतीया-विभक्ति में 'न' और 'ना' न होकर 'आ' लगता था। यथा—स्वप्न से 'स्वप्नया', हरि से 'हरिया', मधु से 'मध्वा' बाहु से 'बाहवा' इत्यादि।

(४) धातु से 'तु' प्रत्यय लगकर 'पितु' के ढंग के शब्द बनते थे, जिनका रूप अब केवल द्वितीया और तृतीया का 'तुम्' और 'क्त्वा' प्रत्ययांत कृदंत शब्दों में रह गया है, शेष का लोप हो गया। केवल वेदों में कहीं-कहीं 'सूतवे', 'कर्तवे', 'ग्रातवाउ'-शब्द देखने में आते हैं, जिन्हें पाणिनि ने 'तवे' और 'तवै' प्रत्ययांत माना है।

(५) अकारांत पुंलिंग के प्रथमा द्विवचन, नपुंसकलिंग के बहुवचन और इकारांत स्त्रीलिंग के तृतीया एकवचन के रूपों में अंत का स्वर दीर्घ कर दिया जाता था। यथा—"येनेमाविश्वा च्यवना कृतानि" (ऋ० २ । १२ । ४), "अश्विना पुरुदससामरा" (ऋ० १ । ३ । २), "नविद्ययामती" (ऋ० १ । ८२ । २)

(६) 'तुम्' प्रत्ययांत के स्थान में 'से', 'ध्यै', 'तवे' और 'तवै' प्रत्ययांत शब्दों का व्यवहार होता था। यथा—"शरदो जीवसेधा", "जठरं पृणध्यै", "दातवाउ", "सूतवे" इत्यादि।

(७) धातु से भाव-वाचक शब्द 'नु' 'तनु' और 'त्नु' प्रत्यय लगाकर बनते थे, जिनके उदाहरण वेदों में 'हत्नु' 'कृत्नु' और छंद में 'तक्नु' आदि मिलते हैं।

(८) धातुओं का भेद 'आत्मनेपद' और 'परस्मैपद' धातुओं में रूढ़ि न था, अपितु जिस धातु से क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त होता था, उसमें आत्मनेपद प्रत्यय और जिससे फल अन्य को प्राप्त होता था, उसमें परस्मैपद प्रत्यय लगता था।

(९) 'अः' एक सर्वनाम था, जिसके प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी और सप्तमी के रूप छंद में (१) अयम् (२) ईम्, (३) 'अन', अना, (४) एभ्यो अस्मै एभ्योः, (५) अस्मात् अस्मात एभ्यो, (६) अस्य अस्या, (७) एषाम्, एषु मिलते हैं, और संस्कृत में क्रमशः अस्मै, अस्मात्, एभ्यः, अस्य, एषाम्, अस्मिन्, एषु रह गए हैं। संस्कृत से प्रथमा और द्वितीया के रूप जाते रहे हैं।

(१०) 'चित्' और 'वतु' आदि प्रत्यय प्रायः सभी नामों और सर्वनामों में यथेच्छ लगाए जाते थे। यथा—'माचि.न्यदिशंसत' (ऋ० ५।७।१०।१), "होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत ।" (ऋ० ८।४।२६।२), "अश्नश्चिद्यःश्रुधीहवं नचिद्दधिष्वमेगिरः । इंद्रस्तोममिमं मम कृष्वायुजश्चिदंतरम्" (ऋ० १।१।२०।३), "थाहिराजेवामवाँ इभेन" (ऋ०३।४।२३।१), "त्वावते पुरूरवसो", "नत्वावाँ अन्यः", "यज्ञे विप्रस्य मावतः" इत्यादि।

इससे प्रतीत होता है कि वैदिक काल में तिङंत के रूप बनकर एक प्रकार से ढाँचे पर आ रहे थे, जो ब्राह्मण-काल में पूर्णता को प्राप्त हो गए; कृदंत और तद्धित डावाँडोल दशा में थे, और ब्राह्मण-काल में उनको ढाँचे पर चढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। ब्राह्मण-ग्रंथों में क्रियाओं के तिङंत-रूप का प्रयोग अधिकांश मिलता है, ऐसे ही कहीं कृदंतादि लाए गए हैं; यही कारण है कि उनमें वाक्य छोटे-छोटे हैं। पाणिनि और यास्काचार्य के समय तक की भाषा में कृदंत, तद्धित और बड़े-बड़े समासों का प्रयोग बहुत कम देख पड़ता है। आगे चलकर संस्कृत-भाषा में कृदंत और तद्धितांत शब्दों तथा बड़े-बड़े समासों की भरमार हो चली, और तिङंत का प्रयोग नाम-मात्र रह गया।

वैदिक भाषा में न केवल आर्य-भाषा के ही शब्द हैं, बल्कि कहीं-कहीं अनार्य-भाषा के शब्द भी इतस्ततः खोजने से मिल जाते हैं। इस बात को स्वयं मीमांसाकार और मीमांसा के भाष्यकार शबर स्वामी ने स्वीकार किया है। ब्राह्मण-ग्रंथ देखने से पता चलता है कि उस समय भी 'प्राकृत' बोलचाल की भाषा थी; पर अधिकतर लोग संस्कृत ही बोलते थे। ऐतरेय-ब्राह्मण में 'मृत्यु'-शब्द का निर्वचन करते समय उसका 'मुच्यु' शब्द से विकृत होकर बनना लिखा गया है। यथा — "तं वै मुच्युं सन्तं मृत्युमित्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः।" इससे अनुमान होता है कि उस समय 'प्राकृत' को लोगों की भाषा देखकर ब्राह्मणकार की यह धारणा हो गई थी कि प्राकृत ही से सुधारकर संस्कृत बनी है।

'ब्राह्मण-ग्रंथों' की भाषा देखने से पता चलता है कि उस समय कितने ही ऐसे प्रयोग, जो वैदिक काल की भाषा में कहीं-कहीं देख पड़ते थे, लुप्त हो गए थे। उस समय की भाषा में अकारांत पुंलिंग शब्द की तृतीया और प्रथमा विभक्ति के बहुवचन 'देवेभिः' और 'देवासः' इत्यादि, जो कहीं-कहीं मंत्रों में मिलते हैं, वे न रह गए थे, और उनके स्थान में 'देवैः' और 'देवाः' रूपों का प्रयोग होने लगा था। 'लेट्'-लकार का प्रयोग इतना कम हो गया था कि ढूँढ़ने से ही कहीं-कहीं मिलता है। भाव-वाचक शब्द केवल 'तुम्'-प्रत्ययांत शब्द (*यथा* कर्तुं, पातुं आदि) रह गए थे, अन्य शेष प्रत्ययांत पदों के प्रयोग का प्रचार उठ गया था; केवल इने गिने प्राचीन प्रयोग बच रहे थे।

निरुक्त-काल में भाषा और परिमार्जित हो गई थी। उस समय यद्यपि उपजन, भिल्म आदि शब्दों के विलक्षण प्रयोग देखने में आते हैं, पर ब्राह्मण-काल की अपेक्षा उस समय ऐसे प्रयोगों की कमी ही हो रही थी। यास्काचार्य की भाषा का बिलकुल ढाँचा ही बदल गया। तद्धितांत तथा कृदंत एवं समस्त पदों का, जिनका व्यवहार पाणिनि के समय की भाषा में हो चला था, प्रचार दिन-दिन बढ़ता गया, और तिङंत क्रियाओं का घटता गया। छोटे-छोटे वाक्यों की जगह बड़े-बड़े वाक्यों का प्रयोग होने लगा। भावों को ग्रथित करने में बड़े-बड़े वाक्यों के रखने की प्रथा प्रचलित हो पड़ी। इस प्रकार उस संस्कृत का आरंभ हुआ, जिसमें हमारे पुराण, काव्य और नाटकादि लिखे गए, और व्याकरण के नियमों में जकड़ी हुई भाषा लिखी जाने लगी। ऐसे ग्रंथों में, जो उस काल में लिखे गए, केवल कहीं-कहीं क्रिया देखने में आती है। क्रिया का काम कृदंत पदों से बहुधा लिया गया है। वाक्यों के स्थान पर समस्त और तद्धितांत पद रक्खे गए हैं, और कितने ही भाव गूँथ-गूँथकर बड़े-बड़े वाक्यों में संगृहीत हुए हैं। ऐसे बड़े-बड़े वाक्यों का नमूना बाण भट्ट की कादंबरी और दंडी के दशकुमार-चरित में विद्यमान है। उसी समय से हमारी भाषा में कर्ता और क्रिया में लिंग की समता का आरंभ हुआ, जो अन्य किसी भाषा में प्रायः नहीं देख पड़ती।

इस काल में अनेक अनार्य-भाषा के शब्द संस्कृत में ले लिए गए, और कितने ही शब्द, जो संस्कृत से बिगड़कर अपभ्रंश हो गए थे, फिर से अपने भाई-बंदों के बीच बराबर बैठने-योग्य होकर संस्कृत-रचनाओं में स्थान पाने लगे। इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग पुराणों से लेकर नाटकों तक में भरे पड़े हैं। अनार्य-भाषावाले शब्दों के अंत में प्रायः 'क' लगाकर उनको संस्कृत का जामा पहना दिया गया है। *यथा*—घोटक, चटक, महवक, धान्यक इत्यादि। ये नाम प्रायः वृक्ष, वनस्पति और पशु-पक्षियों के हैं। संस्कृत में अपभ्रंश शब्द या तो ज्यों-के-त्यों ही ले लिए गए हैं, और या उनमें कुछ सुधार-संस्कार करके संस्कृत का रूप दे दिया गया है। और, इस प्रकार उनका यह दूसरा रूप उनके प्रथम रूप से भिन्न हो गया है। *यथा*—*मरंद, गोविंद, मकरंद* और *गोपेंद्र* के अपभ्रंश रूप ज्यों-के-त्यों ले लिए गए हैं, और श्रमण, समण का (जो 'शर्मन्' का अपभ्रंश रूप था) संस्कार करके उसे बौद्ध भिक्षु के अर्थ में ले लिया गया।

ईसवी सन् के इधर बने हुए संस्कृत-ग्रंथों—विशेषतः ज्योतिष के ग्रंथों—में अनेक शब्द यूनानी-भाषा से लिए गए। *यथा*—आर, केंद्र, तवुरि, होरा इत्यादि। इसी प्रकार 'पाखंड' शब्द फ़ारसी-भाषा से संस्कृत में आया है, जिसका अर्थ आदि में '*यथाभिरुचि धर्म*' था (अर्थशास्त्र और अशोक के अभिलेखों में इसी अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है), और पीछे उसके आडंबर, धर्मध्वजीपन आदि अर्थ होने लगे। इसी प्रकार दिविर, दीनार आदि शब्द फ़ारसी से ही लिए गए हैं। इनका प्रयोग राज-तरंगिणी और अन्य ग्रंथों में भी मिलता है। सारांश यह कि जिन-जिन विदेशियों के साथ भारतीयों का संपर्क घनिष्ठ

होता गया, उनके दो-चार शब्द संस्कृत साहित्य में प्रविष्ट होते गए। विशेषकर बहुत-से ऐसे शब्द बोलचाल की भाषा में खपते गए।

संस्कृत-भाषा से मिलती-जुलती हुई जिन भाषाओं के ग्रंथ देखने में आते हैं, उनमें सबसे प्रधान 'गाथा' संस्कृत है, जिसमें बौद्धों का ललित-विस्तर ग्रंथ लिखा गया है, और अनेक सूत्र-ग्रंथ भी हैं, जिनके कुछ अंश गोबी की मरुभूमि में प्राप्त हुए हैं। उनकी भाषा एक प्रकार से संस्कृत ही है; पर बीच-बीच में कितने ही बोलचाल के प्रयोग और शब्द आते गए हैं। इस भाषा में संस्कृत से कुछ विशेष भेद नहीं है, केवल कहीं-कहीं संधि के नियमों का, आत्मने-पद-परस्मैपद के नियम का तथा अन्य व्याकरण-नियमों का उल्लंघन पाया जाता है। हम यहाँ गाथा के कुछ उदाहरण देते हैं—

सो बोधिसत्वो हि पुरतो नृपतिमवोचत्
    मा भूयु विघ्नप्रकरो हि मा चैव खेदन्;
नैष्क्रम्यकालसमयो यथा देवपुत्रो
    हन्त क्षमस्व नृपते सजनः सराष्ट्रः।
तमश्रुपूर्णनयनो नृपतिर्बभाषे
    किंचित्प्रयोजन भवेद्विनिवर्तने ते;
किं याचसे मम वरं वद सर्व दास्ये
    अनुगृह्य राजकुल मां च इदं च राष्ट्रम्।
वद बोधिसत्व अवची मधुरप्रलापी
    इच्छामि देव चतुरो वर तान्मे देहि;
यदि शक्यते ददितु मह्य वसेति तत्र
    तद्द्रक्ष्यसे सहगृहे न च निष्क्रमिष्ये।
पृच्छामि देवजर मह्य न आक्रमेया
    शुभवर्णयौवनस्थितो भविनित्यकालम्;
आरोग्य प्राप्तु भविनो च भवेत व्याधि-
    रमितायुषश्च भविनो च भवेत मृत्युः।
सम्पत्तितश्च विपुला न भवेद्विपत्ती
    राजा श्रुणित्व वचनं परमं दुखार्तो;
अस्थान याचसि कुमार न मेत्र शक्तिः
    जरव्याधिमृत्युभयतश्च विपत्तितश्च।
कल्पस्थितोऽपि ऋषयो हि न जातु मुक्ताः
    श्रुत्वा पितुर्वचनमत्र कुमार बोधी;
यदि दासि देव चतुरो वर नो ददासि
    जरव्याधिमृत्युभयतश्च विपत्तितश्च।
हन्त शृणुष्व नृपते अपरं वरैकम्
    अस्याच्युतस्य प्रतिसन्धि न मे भवेयाः;
श्रुत्वैवमेव वचनं नरपुङ्गवस्य
    तृष्णा तनुश्च करि छिन्दति पुत्रस्नेहम्।
अनुमोदमी हितकरा जगति प्रमोक्षम्
    अभिप्राय तुभ्य परिपूर्यतु यन्मतं ते;

ऊपर की गाथाओं से प्रकट है कि व्याकरण के नियमों का उसमें अधिक उल्लंघन किया गया है। कितने ही ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो व्याकरण के नियमानुसार अशुद्ध हैं।

गाथा के अनंतर संस्कृत से विकृत हुई दूसरी भाषा जो ग्रंथों में मिलती है, वह है पाली-भाषा। हीनयान-मार्ग का त्रिपिटक (जिसके माननेवाले बर्मा, स्याम और लंका के बौद्ध हैं) इसी भाषा में है। त्रिपिटक के अति-रिक्त उक्त भाषा के जातक, दीपवंश, महावंशादि अनेक साहित्य-ग्रंथ लंका आदि देशों में मिलते हैं। पाली-भाषा का व्याकरण, कोष और धातुपाठ अलग है। व्याकरण मुख्य दो हैं। कच्चायन और मोग्गलायन। इनमें कच्चायन बड़ा प्रामाणिक माना जाता है। उस पर अनेक टीका-न्यासादि बने हैं, और पाली-भाषा उनके कारण इतनी परिपूर्ण हो गई है कि बिना संस्कृत का अध्ययन किए ही उसमें पारंगत हो सकते हैं। इसी कारण विदेश के—बर्मा और स्यामवाले—भिक्षु (जिनकी भाषा मंगोल है) तथा लंका के बौद्ध लोग संस्कृत का अध्ययन बिना किए भी पाली-भाषा में भारी योग्यता प्राप्त कर लेते और उस भाषा में ग्रंथों की रचना करते हैं। पर इतना पार्थक्य रखने पर भी पाली-भाषा की संस्कृत के साथ प्राकृत-भाषाओं से (जो सब प्रकार से संस्कृत के आश्रित हैं) अधिक सान्निध्य और आत्मीयता है। यहाँ हम पाली-भाषा की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण-स्वरूप देकर फिर कुछ उन बातों का उल्लेख करेंगे, जिनमें संस्कृत और पाली-भाषा का भेद कुछ साधारण रूप से बोधगम्य हो सकेगा—

"बोधिसत्तो कामावचरलोके धम्मो नाम देवपुत्तो हुत्वा निब्बत्ति, देवदत्तो अधम्मो नाम। तेसु धम्मो दिब्बा-लंकारमंडितो दिब्बं रथवरं अभिरुय्ह अच्छरागणपरि-वुतो मनुस्से दस कुसल कम्मपथे समादपेन्तो जम्बुदीपं पदक्खिणं करोति। अधम्मो अकुसल कम्मपथे समादपेन्तो जम्बुदीपं वामं करोति। अथ तेसं आकासे रथा सम्मुखा

अहेसुं। अथनेसं परिसा तुम्हे कस्स तुम्हे कस्सासि पुच्छित्वा अयं अम्हाकं सामि, अयं धम्मस्सामि अधम्मस्सामिभूत्वा मग्गा उक्कमित्वा द्विधा जाता। धम्मोपि अधम्मं आमन्तेत्वा सम्मत्वं अधम्मा अहं धम्मो मग्गो मय्हं अनुच्छविको तव एवं ओक्कामेत्वा मय्हं मग्गं देहीति पठमं गाथमाह—

यसो करो पुञ्ञकरोऽहमस्मि
सदत्थुतो समण ब्राह्मणानं ;
मग्गा रहो देवमनुस्सपूजितो
धम्मो अहं देहि अधम्म मग्गन्ति।
ततोपरा अधम्मयानं दव्हं मरुहित्वा
असन्त सन्तो बलवाहमस्मि :
सकिस्स हेतुम्हि तवज्जदज्जं
मग्गं अहं धम्म अदिन्न पुब्बं।
धम्मो हवे पातुर होसि पुब्बं
पच्छा अधम्मो उदपादि लोके ;
जेट्ठो च सेट्ठो च सनन्तनोच
उय्याहि जेट्ठस्स कनिट्ठमग्गा।
न याचनाया नपि पाति रूपा
न अरहति वोऽहं ददेय्य मग्गं ;
युद्धञ्च के हेतु उभिन्न मज्ज
युद्धस्मिम्पि जेस्साति तस्समग्गो।
सब्बा दिसा अनुविसटोऽहमस्मि
महब्बलो अमितयसो अतुल्लो :
गुणे हि सब्बे हि उपेतरूपो
धम्मो अधम्मत्वं कथं विजेस्ससि।
लोहेन वेहञ्जति जातरूपं
न जातरूपेन हनन्ति लोहं ;
सचे अधम्मो हञ्जति धम्मं मज्ज
अयो सुवसं वियदस्सनेय्यं।
सचेतुवं युद्धबलोऽसऽधम्म
न तुम्ह वड्ढा च गरू च अत्थि ;
मग्गं च तेदम्मि पियाप्पियेन
वाचा दुरुत्तानि ते खमामीति।
इदं च सुत्वा वचनं अधम्मो
अवंसिरो पतितो उद्धपादो ;
युद्धत्थिको चेन लभामि युद्धं
एतावता होति हतो अधम्मो।
खतीबलो युद्ध बलं विजेत्वा
हंत्वा अधम्मं निहनित्व भूम्या ;
पायासि वुत्तो अभिरुय्ह सन्दनं,
मग्गेनेव अतिबलो सच्च निक्कमो।
माता पिता समण ब्राह्मणा च,
असम्मानिता यस्स सके अगारे ;
इधेव निक्खिप्प सरीर देहं,
कायस्सभेदा निरयं वजन्ति।
[यथा अधम्मो पतितो अवंसिरो]
माता पिता समण ब्राह्मणा च,
सुसम्मानिता यस्स सके अगारे ;
इधेव निक्खिप्प सरीर देहं,
कायस्सभेदे सुगतिं वजन्ति।
[यथापि धम्मो अभिरुय्ह सन्दनं ति]

स्व० जगन्मोहन वर्मा

वैरागी

पहाड़ की तलहटी में एक छोटा-सा समतल भूमिखंड था। मौलसिरी, अशोक, कदम और आम के वृक्षों का एक हरा-भरा कुटुंब उसे आबाद किए हुए था। दो-चार छोटे-छोटे फूलों के पौदे कोमल मृत्तिका के थालों में लगे थे। सब आर्द्र और सरस थे। तपी हुई लू और प्रभात का मलय-पवन एक क्षण के लिये इस निभृत कुंज में विश्राम कर लेते। भूमि लिपी हुई स्वच्छ, एक तिनके का कहीं नाम नहीं, और सुंदर वेदियों और लता-कुंजों से अलंकृत थी।

यह एक वैरागी की कुटी थी, और तृण-कुटीर—उस पर लता-वितान, कुशासन और कंबल, कमंडल और वल्कल उतने ही नयनाभिराम थे, जितने किसी राजमंदिर में कला-कुशल शिल्पी के उत्तम शिल्प।



"परंतु बैरागी अटल, अचल था।"

एक शिलाखंड पर बैरागी पश्चिम की ओर मुँह किए ध्यान में निमग्न था। अस्त होनेवाले सूर्य की अंतिम किरणें उसकी बरौनियों में घुसना चाहती थीं। परंतु बैरागी अटल, अचल था। वदन पर मुसकिराहट और अंग पर ब्रह्मचर्य की रूक्षता थी। यौवन की अग्नि निर्वेद की राख से ढकी थी। शिलाखंड के नीचे ही पगडंडी थी। पशुओं का झुंड उसी मार्ग से पहाड़ी गोचरभूमि से लौट रहा था। गोधूलि मुक्त गगन के अंक में आश्रय खोज रही थी। किसी ने पुकारा—"आश्रय मिलेगा?"

बैरागी का ध्यान टूटा। उसने देखा, सचमुच मलिनवसना गोधूलि उसके आश्रम में आश्रय माँग रही है। अंचलछिन्न बालों की लटें, फटे हुए कंबल के समान मांसल वक्ष और स्कंध को ढकना चाहती थीं। गैरिक वसन जीर्ण और मलिन। सौंदर्य-विकृत आँखें कह रही थीं कि उन्होंने उमंग की रातें जगते हुए बिताई हैं। बैरागी अकस्मात् आँधी के झोंके में पड़े हुए वृक्ष के समान तिलमिला गया। उसने धीरे से कहा—'स्वागत अतिथि! आओ।'

रजनी के घने अंधकार में तृण-कुटीर, वृक्षावली, जगमगाते हुए नक्षत्र धुँधले चित्रपट के सदृश प्रतिभासित हो रहे थे। स्त्री अशोक के नीचे वेदी पर बैठी थी, बैरागी अपनी कुटीर के द्वार पर। स्त्री ने पूछा—"जब तुमने अपना सोने का संसार पैरों से ठुकरा दिया, पुत्र-मुख दर्शन का सुख, माता का अंक, यश-विभव—सब छोड़ दिया, तब इस तुच्छ भूमिखंड पर इतनी ममता क्यों? इतना परिश्रम, इतना यत्न किस लिये?"

"केवल तुम्हारे-जैसे अतिथियों की सेवा के लिये। जब कोई आश्रयहीन महलों से ठुकरा दिया जाता है, तब उसे ऐसे ही आश्रय-स्थान अपने अंक में विश्राम देते हैं। मेरा परिश्रम सफल हो जाता है, जब कोई कोमल शय्या पर सोनेवाला प्राणी इस मुलायम मिट्टी पर थोड़ी देर विश्राम करके सुखी हो जाता है।"

"कब तक तुम ऐसा किया करोगे?"

"अनंत काल तक प्राणियों की सेवा का सौभाग्य मुझे मिले।"

"तुम्हारा आश्रय कितने दिनों के लिये है?"

"जब तक उसे दूसरा आश्रय न मिले।"

"मुझे इस जीवन में कहीं आश्रय नहीं, और न मिलने की संभावना है।"

"जीवन-भर?" आश्चर्य से बैरागी ने पूछा।

'हाँ।" युवती के स्वर में विकृति थी।

"क्या तुम्हें ठंड लग रही है?" बैरागी ने पूछा।

"हाँ।" उसी प्रकार उत्तर मिला।

बैरागी ने कुछ सूखी लकड़ियाँ सुलगा दीं। अंध-कार-प्रदेश में दो-तीन चमकीली लपटें उठने लगीं। एक धुँधला प्रकाश फैल गया। बैरागी ने एक कंबल लाकर स्त्री को दिया। उसे ओढ़कर वह बैठ गई। निर्जन प्रांत में दो व्यक्ति! अग्नि-प्रज्वलित पवन ने एक थपेड़ा दिया। बैरागी ने पूछा—"कब तक बाहर बैठोगी?"

"रात बिताकर चली जाऊँगी, कोई आश्रय खोजूँगी। क्योंकि यहाँ रहकर बहुतों के सुख में बाधा डालना ठीक नहीं। इतने समय के लिये कुटी में क्यों आऊँ!"

बैरागी को जैसे बिजली का धक्का लगा। वह प्राण-पण से बल संकलित करके बोला—"नहीं-नहीं, तुम स्वतंत्रता से यहाँ रह सकती हो।"

"इस कुटी का मोह तुमसे नहीं छूटा। मैं उसमें समभागी होने का भय तुम्हारे लिये न उत्पन्न करूँगी।" कहकर स्त्री ने सिर नीचा कर लिया। बैरागी के हृदय में सनसनी हो रही थी। वह न-जाने क्या करने जा रहा था, सहसा बोल उठा—

"मुझे कोई पुकारता है, तुम इस कुटी को देखना।" यह कहकर बैरागी अंधकार में विलीन हो गया। स्त्री अकेली रह गई।

पथिक लोग बहुत दिन तक देखते रहे कि एक पीला मुख उस तृण-कुटीर से झाँककर प्रतीक्षा के पथ में पलक-पाँवड़े बिछाता रहा।

जयशंकर "प्रसाद"

जिनेवा की यात्रा

(पूर्वार्द्ध)

जब से मैं इंगलैंड आया, मुझे जिनेवा देखने की बड़ी इच्छा थी। मेरे मित्र श्रीयुत निहालसिंहजी ने मुझसे कई बार जिनेवा आने का अनुरोध भी किया। संयोग-वश वह लीग के काम से जनवरी के तीसरे सप्ताह में लंदन आए, और चूँकि मेरी भी बड़े दिन की छुट्टी होनेवाली थी, इसलिये यह निश्चय हुआ कि हम दोनों साथ ही जिनेवा चलें।

सोमवार (२१ दिसंबर) को ग्यारह बजे की गाड़ी से चलना निश्चय हुआ। रविवार की रात को कार्यवश अधिक जागना पड़ा, इससे सोमवार को सुबह उठने में देर हो गई। उठते-उठते साढ़े आठ बज गए। स्नान आदि नित्यक्रिया से निवृत्त होते-होते साढ़े नव बजे। इसलिये यही निश्चय रहा कि भोजन न बने। मैंने थोड़ी-सी मेवा (जिसमें यहाँ प्रायः अप्राप्य पिस्ते भी थे, जो श्रीयुत पं० काशीरामजी की कृपा का फल थे) अपने सूट-केस में रख ली। टैक्सी करके कोई सवा दस बजे विक्टोरिया-स्टेशन पहुँचे। मैंने टिकट नहीं लिया था; इसलिये श्रीयुत सिंह से टिकट आदि लेने को कहकर, और उन्हें स्टेशन ही पर छोड़कर, मैं उसी टैक्सी में ग्रोवनर गार्डन (हाई कमिश्नर के दफ़्तर) पहुँचा। उस दिन सोमवार था, और भारत की डाक सुबह आई थी, उसे लेना था। वहाँ गया, तो प्रायः दो दर्जन पत्र, माधुरी का मार्गशीर्ष का अंक और यू० पी० टीचर्स एसोसिएशन का पत्र 'Education' मेरी राह देख रहे थे। उन्हें लेकर, दफ़्तर में अपना जिनेवा का पता देकर मैं विक्टोरिया स्टेशन आया। यहाँ हिंदोस्तान की तरह गाड़ीवाले से झगड़ा करने की ज़रूरत नहीं पड़ती; क्योंकि हरएक टैक्सी में मीटर लगा रहता है। हाँ, 'बख़्शीश' की चाल यहाँ भी है। अब किराया देकर मैं चलने लगा, तो ज़रा आगे बढ़कर टैक्सी-ड्राइवर ने 'गुड मॉर्निंग सर' किया। उसका मतलब मैं समझ गया, और एक सिक्स पेंस से उसके गुड मॉर्निंग की रसीद दी।



जिनेवा और स्विस रिपब्लिक के मिलन के उपलक्ष्य में



जिनेवा में आर्व और रोन का संगम

निहालसिंहजी ठहरे लीग ऑफ़् नेशन्स के बड़े अफ़सर। उन्हें पहुँचाने के लिये लीग की लंदन-शाखा का कोई अँगरेज़ कर्मचारी आया हुआ था। ग्यारह बजे विक्टोरिया-स्टेशन से डोवर को, योरप के जहाज़ लिए, तीन गाड़ियाँ छूटती हैं। उनमें एक का नाम है Train de-lux. उसे स्पेशल समझिए। उसमें फ़र्स्ट क्लास के किराए से कुछ

अधिक लगता है। निहालसिंहजी के ख़ैरख़्वाह साहब ने उसी गाड़ी के टिकट ख़रीदकर मेरा और उनका, दोनों के सूट-केस' सीधे जिनेवा के लिये 'बुक' कराकर 'ब्रेक' में दे दिए। अब मैं अकेली डाक लिए स्टेशन पहुँचा, और यह हाल देखा, तो मुझे बड़ी परेशानी हुई। व्यर्थ के लिये रुपए बर्बाद हुए। लेकिन कुछ बोलने से रहा। संतोष की बात यही थी कि मेरा टिकट पेरिस तक ही का था। इसमें डोवर तक 'डि-लूक्स' और डोवर से पेरिस तक फ़र्स्ट क्लास था। योरप और इँगलैंड में रेल की यात्रा बड़ी महँगी है। सभी लोग प्रायः थर्ड क्लास में चलते हैं। एक बार एक योरपियन से किसी ने पूछा कि आप फ़र्स्ट क्लास में क्यों नहीं चलते, तो उसने जवाब दिया—"Duly rich men and Americans travel in first class. इसपर पास खड़े हुए एक दूसरे महाशय बोल उठे—"No, only fools and Americans travel in fist class." मैं अमेरिकन तो हूँ नहीं, अतएव इस व्यक्ति के मतानुसार मेरी गणना मूर्खों में ही होने-योग्य थी।

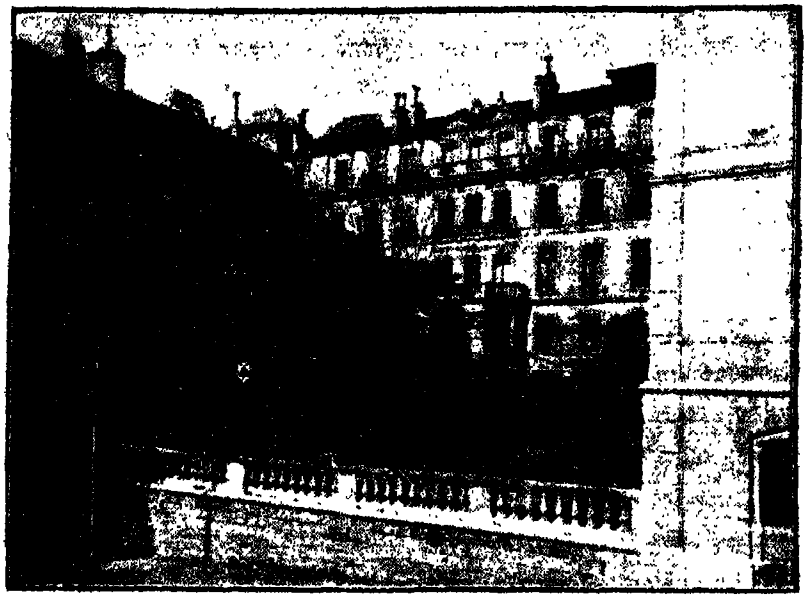
बड़े दिन की छुट्टी के कारण बहुत-से लोग 'कांटिनेंट' अर्थात् योरप जा रहे थे, इससे यह 'डि-लूक्स' गाड़ी भी भरी हुई थी। 'डि-लूक्स' गाड़ी में हरएक कुर्सी के आगे मेज़ भी रहती है, और यात्रियों के लिये 'डेली मेल' की एक नई प्रति भी उनकी कुर्सियों पर रक्खी रहती है। इसके सिवा उनको गाड़ी में चाय भी मिल जाती है। इसके लिये प्रायः ढाई या तीन शिलिंग फ़र्स्ट क्लास के किराए से (लंदन से डोवर तक के लिये) अधिक चार्ज किए जाते हैं।

लंदन से डोवर तक मैं बराबर अपनी चिट्ठियाँ पढ़ता आया। एक तो चिट्ठियों की संख्या ही काफ़ी थी, दूसरे कुछ लोग ऐसे ख़राब अक्षर लिखते हैं कि उनको देखकर मियाँ ग़ालिब का यह शेर याद आ जाता है—"मगर अपना लिखा वह आप समझें या ख़ुदा समझे।" अस्तु, उनके पढ़ने में विशेष परिश्रम करना पड़ा। अतएव उन महाक्षरों से लड़ते-झगड़ते डोवर आ पहुँचे।

धीमी-धीमी बूँदें पड़ रही थीं। ट्रेन से उतरकर, 'पासपोर्ट' दिखलाकर, हम लोग जहाज़ पर पहुँचे। जहाज़ में फ़र्स्ट क्लास के यात्री इतने थे कि फ़र्स्ट क्लास के विशाल 'हालों' में बैठने तक की जगह न थी। इसमें थर्ड क्लास था ही नहीं। सेकिंड क्लास के यात्री ऊपर डेक पर थे। हम लोगों ने पहले तो आकर जहाज़ पर बैठे हुए फ्रेंच पासपोर्ट-ऑफ़िसर से अपने पासपोर्ट पर 'विज़ा' कराया, और फ़्रांस में उतरने का टिकट लिया। फिर कुछ देर तक फ़र्स्ट क्लास के भिन्न-भिन्न भागों में चहलक़दमी करते रहे। थोड़ी देर में जहाज़ चल दिया। निहालसिंहजी को चक्कर आने लगे। वह तो Lounge में जाकर लेट रहे। पर मुझसे वहाँ उस घिरी हुई जगह में न बैठा गया। मैं ऊपर डेक पर चला आया। चैनल में उस समय कुहरा छाया हुआ था। जल और आकाश एक-रंग हो रहे थे। थोड़ी दूर की भी वस्तु नहीं दिखलाई देती थी। इससे हमारा जहाज़ रह-रहकर 'पंचम स्वर' में अपना मेघनाद कर दिया करता था। ऊपर तेज़ और ठंडी हवा चल रही थी। मैं अपने ओवरकोट का कालर चढ़ाकर डेक पर ही आ डटा। ख़ैरियत इतनी ही थी कि हवा तेज़ तो थी, पर बहुत तेज़ न थी। इससे लहरें नहीं उठ रही थीं। कोई तीन बजे हम लोग कैले पहुँच गए।

कैले में फ़्रांस में उतरने का टिकट देकर हम लोग जहाज़ से उतरे। 'कस्टम'-ऑफ़िस में जाना पड़ा। मेरे पास तो सिवा एक कंबल के कुछ था नहीं। निहालसिंहजी के पास हैंडबैग थे। पर चूँकि वह लीग ऑफ़ नेशन्स के कर्मचारी हैं, इसलिये वह सारे संसार में 'कस्टम' से मुक्त हैं। जैसे ही उन्होंने अपना 'लीग ऑफ़ नेशन्स' का सर्टिफ़िकेट दिखलाया, वैसे ही 'कस्टम-ऑफ़िसर' ने चुपचाप उनके बैगों पर सही कर दी। इस तरह वहाँ से सस्ते छूटकर हम लोग ट्रेन में आकर बैठे। कैले का स्टेशन बाज़-बाज़ हिंदुस्तानी स्टेशनों की ही तरह गंदा है। और, आज न-मालूम क्यों, हमारी गाड़ी भी समय से नहीं छूटी थी।

यह गाड़ी, जिससे हम यात्रा कर रहे थे, रेपीड (Rapide) कहलाती है। इसमें केवल फ़र्स्ट क्लास ही होता है। योरप में 'नॉन-स्टाप' (non-stop) गाड़ियों का बहुत रिवाज है; अर्थात् कैले से जो गाड़ी पेरिस जा रही है, उसमें केवल पेरिस के ही यात्री होंगे; बीच के यात्री लोकल ट्रेनों से जायँगे। 'रेपीड-नॉन-स्टाप' कैले से चलकर पेरिस ही में खड़ी होगी। यह गाड़ी बहुत तेज़ जाती है। बाज़-बाज़ जगहों पर तो इसकी रफ़्तार अस्सी मील फ़ी घंटे से भी अधिक हो जाती है। यात्रियों के आराम का ध्यान इतना रक्खा जाता है कि यद्यपि बाहर कड़ाके



जिनेवा का अंतरराष्ट्रीय स्कूल

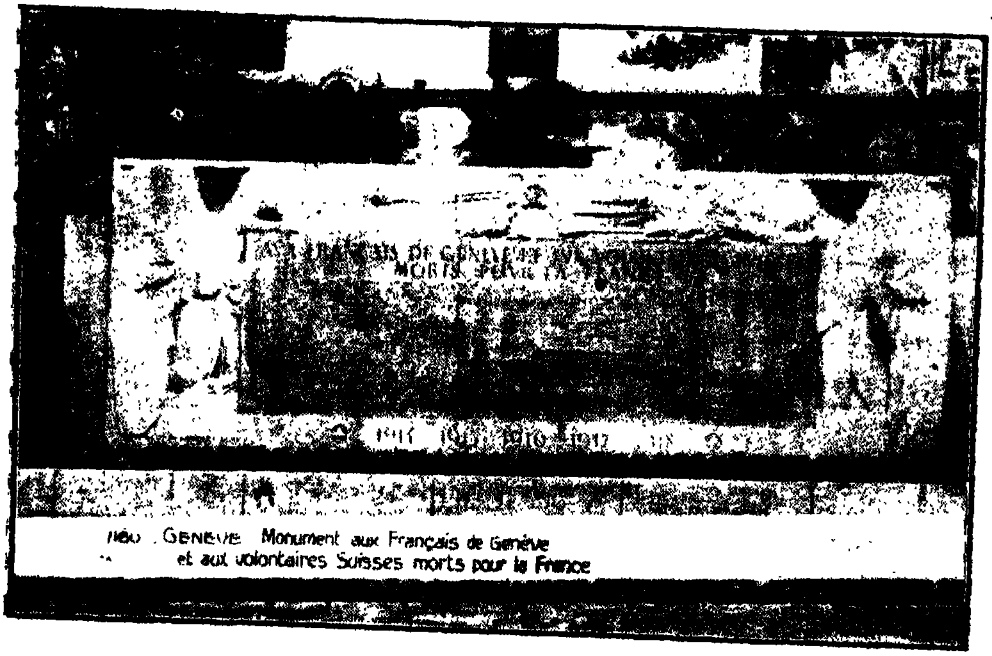


योरप के धार्मिक सुधार-आंदोलन का अंतरराष्ट्रीय स्मारक

की सर्दी पड़ रही थी, तथापि गाड़ी के अंदर इतनी गरमी थी कि ओवरकोट उतार देने पर भी थोड़ी देर बाद निहालसिंहजी के और मेरे सिर में दर्द होने लगा। निहाल-सिंहजी एक कंपार्टमेंट में जाकर बैठ गए। पर मैं कुछ देर तक स्टेशन में घूमता रहा। जब गाड़ी के चलने का समय आया, तब मैं वहाँ पहुँचा, तो क्या देखता हूँ कि उनके कंपार्टमेंट में जगह ही नहीं है। आख़िर मैं एक दूसरे कंपार्टमेंट में जा डटा।

जिस समय मैं निहालसिंहजी के कमरे में उनसे बातें कर रहा था, वहाँ एक लड़का 'लंच इन बास्केट' (Lunch in basket) कहता हुआ घूम रहा था। निहालसिंहजी ने उसे बुलाया, और १५ फ्रैंक में एक 'बास्केट' ले ली। वह काग़ज़ के पुट्ठे का बना हुआ एक बक्स था। इसे जब निहालसिंहजी ने खोला, तो कहने लगे—"भई, ठग गए!" मैंने पूछा—"क्या हुआ?" वह बोले—"देखो, इसमें दो रोल तो रोटी के हैं। एक सड़ा हुआ सेब है, एक अद्धा शराब और भुनी हुई मुर्ग़ी है। यह मेरे किसी काम की नहीं।" उनके भले ही किसी काम की न हो; पर यहाँ के लोगों के लिये यह बहुत अच्छा भोजन है। इसमें हरएक चीज़ के लिये अलग-अलग ख़ाने बने थे, और इन चीज़ों के सिवा टीन का काँटा, चम्मच और छुरी तथा शराब की बोतल खोलने के लिये एक कार्क-स्क्रू भी था। हमारे यहाँ स्टेशनों पर जो भोजन मिलता है, उसकी 'नफ़ासत' का ध्यान करना तो बहुत दूर की बात है, जिन पत्तों में वह दिया जाता है, वे भी कभी धोए या पोंछे नहीं जाते। उनमें मिट्टी तो ज़रूर ही लगी रहती है। कभी-कभी मकड़ी के जाले भी दिखलाई पड़ जाते हैं। यदि काग़ज़ हुआ, तो ज़्यादातर वही होता है, जो असली वेस्टपेपर बास्केट से निकलकर आता है।

मुझे भी बहुत भूख मालूम हो रही थी। मैंने तो सेब ले लिया, और अपने कंपार्टमेंट में आकर, चाक़ू से काट-काटकर उसे खाने लगा। इसमें एक महाशय पहले ही से बैठे हुए थे। थोड़ी ही देर में एक और युवक महाशय मेरे सामने की सीट पर बैठ गए। मैं चुपचाप अपना सेब योरपियन ढंग से अर्थात् अति धीरे-धीरे खाता रहा। फिर मैं माधुरी निकालकर पढ़ने लगा। मेरे सामने जो महाशय बैठे थे, वह उठकर थोड़ी देर के लिये कहीं चल दिए। मेरी बग़लवाले महाशय ने कई बार मेरी ओर देखा; किंतु मैं तो लंदन के 'एटिकेट' में 'शराबोर' था। मैंने उधर ध्यान ही नहीं दिया। अंत में उनसे न रहा गया। उन्होंने मौन-भंग करके आधे अमेरिकन और आधे कांटिनेंटल उच्चारण से कहा—"It seems the train is late to day." मैंने माधुरी से ज़रा-सा सिर उठाकर अपनी 'रिस्टवाच' को देखा, और कहा—"Yes it seems we are not starting in time. इतना कहकर मैंने अपनी निगाह फिर माधुरी में गड़ा ली। वह बेचारे हताश-से होकर फिर चुप हो रहे। थोड़ी ही देर में उन्होंने अपना क़ीमती सिगरेट-केस निकालकर मुझे सिगरेट 'ऑफ़र' (offer) किया। मैंने 'धन्यवाद' देकर उनसे यह कहकर क्षमा माँग ली कि मैं सिगरेट पीता ही नहीं। और, इतना कहकर फिर माधुरी में मग्न हो गया। उन्हें फिर हताश होना पड़ा। अब गाड़ी चल दी थी, और अच्छी 'स्पीड' पर आ रही थी। इतने ही में 'डाइनिंग-कार' का छोकरा घंटी बजाता हुआ ट्रेन के 'कारिडर' में घूमने लगा। उन महाशय ने फिर कहा—"Is this bell for tea?" मैंने सभ्यता के अनुसार ज़रा सिर उठाकर उत्तर दिया—"presume it is." अब उन महाशय से न रहा गया। वह बोल उठे—"Oh, these English people! their one meal is not over when another is ready. God knows, they always seem doing nothing but eating." इतने ही में मेरे सामनेवाले महाशय भी आकर बैठ गए। मैंने भी समझ लिया कि इन महाशय को इस समय 'गप्पाज़' लगी है। अतएव मैंने उनकी यह उक्ति सुनकर माधुरी को बंद कर दिया। मैंने उनकी उक्ति पर कोई टीका-टिप्पणी किए बिना ही उनसे यह प्रश्न कर दिया कि आपके देश में लोग कितनी बार भोजन करते हैं? अब तो उन्हें बातचीत का सिलसिला मिल गया। उन्होंने फिर अपना क़ीमती सिगरेट-केस खोला। उसमें से एक सिगरेट निकाली, फिर मेरे सामने 'सिगरेट-केस' पेश किया। मैंने "No thanks" कहकर फिर टाला। अब वह सिगरेट-केस मेरे सामने बैठे हुए महाशय के सामने पेश किया गया। उन्होंने thanks कहकर एक सिगरेट निकाल ली, और अब सिगरेट के साथ ही गप भी उड़ने लगी। योरप में शराब या सिगरेट के बिना संसार का कोई काम नहीं हो सकता। फ्रेंच जनरल फ़ॉक ने एक जगह कहा है—"जब युद्ध में मुझे कोई बड़ी जटिल समस्या हल करनी होती है, तब मैं तेज़ काफ़ी पीकर, सिगरेट लेकर अपने सोने के कमरे में चला जाता हूँ।" अब तो बाज़-बाज़ योरपियन विश्वविद्यालयों में भी सिगरेट का इतना प्रचार है कि एक परम प्रसिद्ध अँगरेज़ी विश्वविद्यालय के बारे में एक महाशय ने लिखा है—"Students in that university are less coached and more smoked." वहाँ तो साम्यवाद की परा काष्ठा को प्राप्त महि-

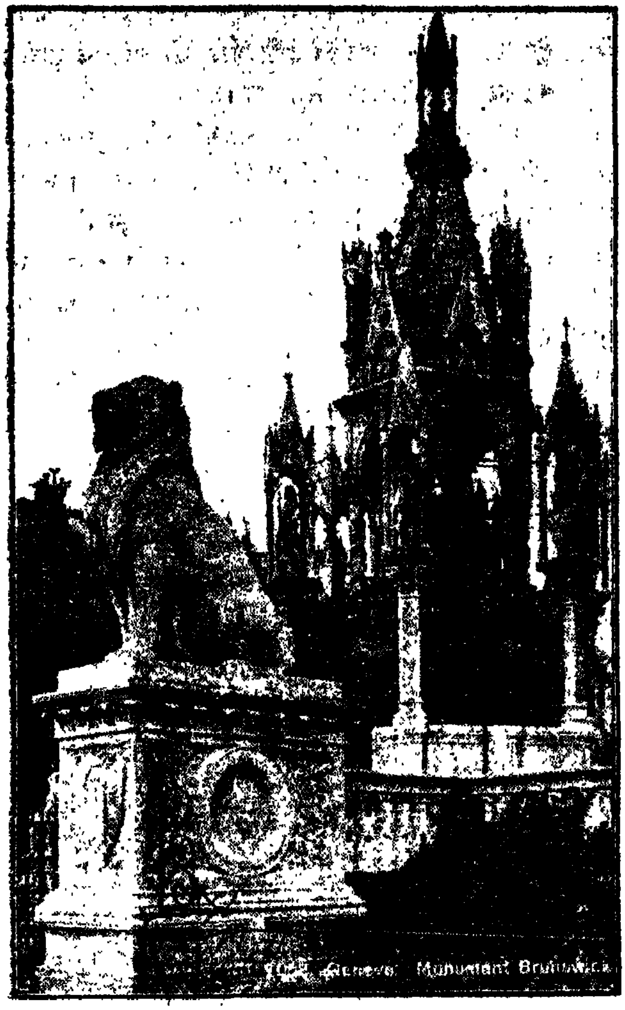


फ्रांस की ओर से युद्ध में लड़नेवाले जिनेवा के मृत वालंटियरों का स्मारक



स्विज़रलैंड की गउएँ
(भैंस की तरह इनके कुंभ नहीं होता)

ओएँ भी अब सिगरेट की शौक़ी हो गई हैं। यदि मर्द सिगरेट पीते हैं, तो स्त्रियाँ क्यों न पिएँ? जो मर्दों के लिये उचित है, वह स्त्रियों के लिये क्यों उचित नहीं? सो उस सर्वव्यापी सिगरेट के धुएँ के साथ-साथ हम लोगों की गप्प भी उड़ने



ड्यूक ऑफ़ ब्रुंसविक का स्मारक

लगी । ज्यों-ज्यों हमारी 'रेपीड' वायु-वेग से उड़ती हुई पेरिस की ओर बढ़ी, त्यों-त्यों हमारी गप भी अधिक तेज़ी पकड़ने लगी ।

बातचीत करने पर पता लगा कि हमारी बग़ल में बैठे हुए महाशय अमेरिकन हैं; किंतु रूमानिया में पैदा हुए थे, और छोटी अवस्था में—प्राय: २५-३० वर्ष हुए—अमेरिका चले गए थे । अतएव अब वह रूमानियन-अमेरिकन हैं, व्यापार करते हैं, और धनी भी मालूम पड़ते हैं; क्योंकि जैसा ऊपर कह आए हैं, केवल 'मूर्ख और अमेरिकन' ही फ़र्स्ट क्लास में चलते हैं । और, योरप में 'ज्यू' (यहूदी) और 'अमेरिकन', यही दोनों 'धनी' के पर्याय समझे जाते हैं । पाठकों की शान को ख़ुश करने के लिये मैं यह भी कह सकता हूँ कि 'इंडियन राजा' शब्द भी योरप में कुछ ऐसे ही अर्थ रखता है । इनके धनी होने का अंदाज़ मैंने और भी तीन बातों से किया—एक तो इनका सिगरेट-केस, दूसरे इनका 'फ़रलाइंड ओवरकोट (ऐसा क़ीमती ओवर-कोट साधारण अच्छे भले आदमी भी नहीं पहनते), और तीसरे उस होटल का नाम, जिसमें वह लंदन में ठहरे थे । वह जब से अमेरिका गए हैं, तब से पहली ही बार अपनी मातृभूमि जा रहे हैं । लंदन सैर करने गए थे । शुक्रवार की शाम को पहुँचे । अभाग्य-वश लंदन अतिथि-सत्कार में ऐसा असभ्य है कि शुक्रवार, शनिवार और रविवार को कुहरा, धुआँ और हलकी बूँदा-बाँदी के कारण लोगों का बाहर निकलना मुश्किल था । शुक्रवार को वह होटल के झगड़े में रहे । शनिवार को खा-पीकर निकले, तो एक बजे सब दूकानें बंद हो गईं । रविवार को लंदन में सन्नाटा रहता ही है । एक तो अजनबी, दूसरे अँगरेज़ों के देश में, जो बिना 'परिचय' बात ही नहीं करते, तीसरे एक उच्च श्रेणी के अँगरेज़ी होटल में निवास । वह कहने लगे—"कल मैं दिन-भर होटल के 'लाउन' में बैठा रहा । मेरे पास ही एक अँगरेज़ भी बैठा था । लेकिन वह अपनी किताब में सिर भिड़ाए रहा । मुझे बात तक करने के लिये कोई नहीं मिला । कल सब बाज़ार बंद थे । फिर कुहरा और पानी । होटल में क़ैद रहा । इतना जी ऊब गया कि लंदन बिना देखे ही वहाँ से वापस भागा आ रहा हूँ ।" इस पर मैं उनको अँगरेज़ों के चरित्र का कुछ हाल बतलाने लगा । मैंने कहा—"अँगरेज़ थोड़े-बहुत 'रिज़र्व' होते हैं; किंतु यदि एक बार आपसे उनकी मैत्री हो जाय, तो फिर बड़े सच्चे मित्र हो जाते हैं ।" इसके सिवा मैंने ऐसी ही और भी कुछ बातें कह डालीं । इस पर मेरे सामने बैठे हुए महाशय ने (जो, मुझे पीछे मालूम हुआ कि फ़्रेंच हैं, किंतु लंदन में व्यापार करते हैं) मुझसे पूछा—"आप कितने दिनों से इँगलैंड में हैं ?" मैंने कहा—"तीन महीने से ।" इस पर उन्होंने कहा—"It is impossible to know the English people even after

years' residence in their county. It is very difficult to know what is hidden under those tender blue eyes."

इस पर मुझे कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। क्योंकि अँगरेज़ लोग प्रकृति ही से कुछ ऐसे होते हैं कि लोग ऊपरी परदे के कारण उनके आंतरिक हृदय को कठिनता से समझ सकते हैं। फिर फ़्रेंच के लिये तो अँगरेज़ों को समझना अत्यंत ही कठिन है। दोनों की प्रकृति में आकाश-पाताल का अंतर है। फ़्रेंचमैन की इस उक्ति को अमेरिकन ने बड़े स्वाद के साथ पान किया। और मुँह से सिगरेट के धुएँ को धीरे-धीरे लंबे आकार में निकालते हुए बोला— "Oh! all of them have blue eyes! How strange!"

इसके बाद दूसरे विषयों पर बातचीत होने लगी। उसने एक यह प्रश्न किया कि मैं किस जाति का हूँ। मेरे यह कहने पर कि मैं हिंदोस्तानी हूँ, मुझसे दोनों सहयात्री भारत के रत्नों का हाल पूछने लगे। इसमें एक फ़्रेंच तो जौहरी था। उसने हीरा, पन्ना, नीलम, लाल आदि रत्नों की खानों का हाल पूछा। मेरे यह कहने पर कि भारत में इनकी खानें नहीं हैं, उसे एकाएक विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि उसने बार-बार यही कहा कि हिंदोस्तान के रत्न बड़े अच्छे होते हैं। मैंने उसे समझाने की चेष्टा की कि लाल तो बर्मा में अब भी पाए जाते हैं; किंतु भारत में अब कोई रत्न नहीं मिलता। कभी हीरा पन्ना आदि मिलते थे। इस पर उसने कहा— "Oh! see. The mines have been worked out and exhausted."

दूसरा विषय छिड़ा मेरे सिगरेट न पीने पर। निहालसिंहजी तो लोगों से कह देते हैं कि मि० चतुर्वेदी को डॉक्टर ने सिगरेट पीने, मांस आदि खाने की मनाही कर दी है। वह मुझसे कहते हैं कि लोगों से यही कहकर अपना पिंड छुड़ाया करो; क्योंकि यहाँ के लोग तुम्हारे नैतिक कारणों को कुछ नहीं समझेंगे। किंतु मैं उनकी राय नहीं मानता। अवसर आने पर यदि कोई इसका पूछता है, तो मैं स्पष्ट बतला देता हूँ कि मुझे उसका उपयोग करने में धार्मिक आपत्ति है। मेरे इस उत्तर से अवश्य ही बहुत-से लोग चौंक उठते हैं। जब मैंने इनसे सिगरेट न पीने का कारण बतलाया, तो भोजन की बात आ गई, और मैंने उनसे कहा कि मैं मांस, अंडा, शराब आदि कुछ नहीं खाता। तब तो उन्हें और भी आश्चर्य हुआ। वह तरह-तरह के प्रश्न करने लगे।

इतने ही में निहालसिंहजी आ गए, और मुझसे कहने लगे—"चलो चाय पी आवें।" मैंने कहा—"मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा?" उन्होंने कहा—"वहाँ फल खाना।" अतएव हम चारों 'डाइनिंग कार' में गए। वहाँ मांस इत्यादि तो कुछ था नहीं; रोटी, बिस्कुट, मार्मलेड, चाय और फल थे। मैंने सेब और नारंगियों पर हाथ साफ़ किया।

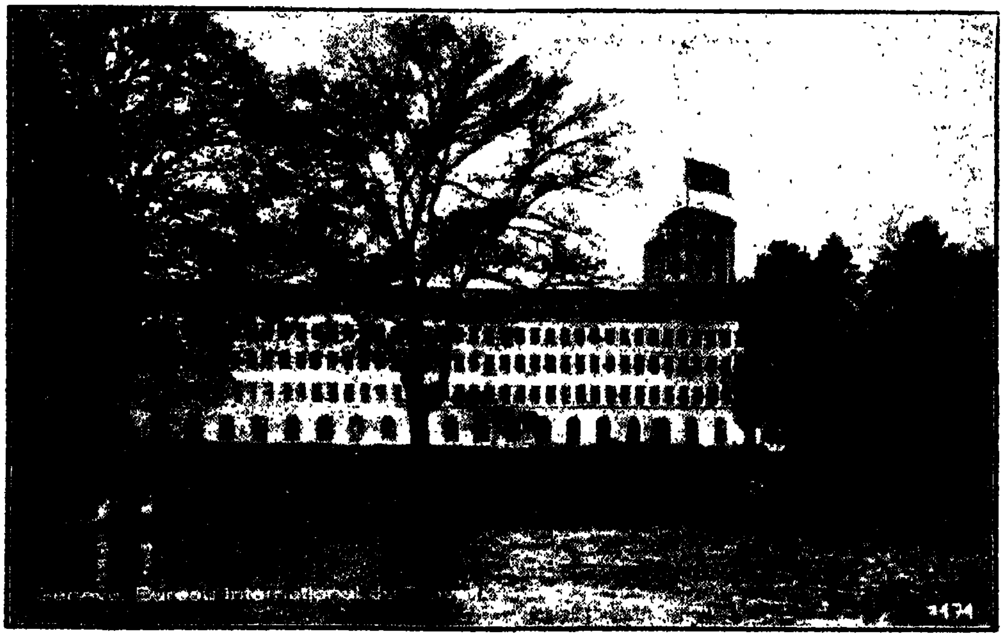
प्रायः सात बजे पेरिस पहुँचे। हमारी गाड़ी 'गार डि नार्ड' स्टेशन पर पहुँची थी। जिनेवा के लिये हमें 'गार डि लियों'-स्टेशन जाना था। अतएव टैक्सी करके हम उस स्टेशन को चले। पेरिस में टैक्सियाँ लंदन की अपेक्षा कहीं सस्ती हैं। बड़े दिन की तैयारियों के कारण इस समय पेरिस में अच्छी चहल-पहल थी। एक बार तो इरादा हुआ कि एक दिन यहाँ ठहर जायँ। पर फिर सीधे जिनेवा जाना ही तय किया। गाड़ी ८ बजकर ४० मिनिट पर छूटती थी। प्रायः डेढ़ घंटे स्टेशन पर ठहरना पड़ा। निहालसिंहजी के लिये टिकट का प्रबंध पहले ही से था। उनके लिये International Sleeping Car Company की गाड़ी में (जो 'डि-लूक्स' की तरह फ़र्स्ट क्लास से कुछ अधिक महँगी है) एक जगह पहले ही से रिज़र्व थी। उन्होंने मुझसे फ़र्स्ट क्लास का टिकट लेने को कहा। पर मैं दुबारा 'मूर्ख' बनने को तैयार न था। अतएव मैंने सीधे थर्ड क्लास का टिकट ख़रीदा।

कुछ-कुछ भूख लग रही थी। स्टेशन पर कोई चीज़ न थी। बहुत कुछ तलाश करने पर निहालसिंहजी को एक जगह नारंगियाँ मिलीं। वह मेरे लिये उन्हें ले आए। पर जब मैंने उन्हें खाया, तो स्वाद में उन्हें खट्टे नींबू से भी बढ़कर पाया।

पेरिस-स्टेशन पर एक आदमी ठेले पर तकिए और कंबल लादे उन्हें किराए पर दे रहा था। दो फ़्रैंक देने से दो तकिए और कुछ अधिक देने से एक कंबल रात-भर के लिये किराए पर मिल रहा था। मेरे पास अपना कंबल था। तकिए की मुझे आदत नहीं है। इससे मैंने तकिया नहीं लिया। मैंने एक बार कंबल लेने का इरादा किया। किंतु जब गाड़ी में गया, तो वह इतनी गर्म थी कि मैंने समझ लिया, मुझे उसकी आवश्यकता न पड़ेगी। मैंने



पिछली लीग ऑफ़ नेशन्स की बैठक में उपस्थित भारतीय प्रतिनिधि—बाईं ओर से—सर अतुलचंद्र चटर्जी महाराज पटियाला, सर रशब्रुक विलियम्स



अंतरराष्ट्रीय श्रमजीवी संस्था का कार्यालय, जिनेवा

ओवरकोट भी उतारकर टाँग दिया था, और केवल अपना खास हुमलों का कंबल ओढ़े रहा। थर्ड क्लास होने पर भी गाड़ी इतनी गर्म थी कि और किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं पड़ी।

मेरे डब्बे में एक फ्रेंच पुरुष, एक स्विस नवयुवक तथा एक स्विस युवती थी। उस युवती को छोड़कर और कोई अँगरेज़ी न जानता था। वह भी बहुत कम—बिलकुल टूटी-फूटी अँगरेज़ी जानती थी। किंतु ये लोग बड़े सभ्य और सलीक़ेदार थे। इन यात्रियों को अपने साथ के यात्रियों के आराम का पूरा-पूरा ध्यान रहता है। वह स्वार्थपरता, जो अपने देश के यात्रियों में देखने में आती है, इधर शायद ही कभी दिखलाई पड़े।

पेरिस से चलने के कुछ ही देर बाद मैं सो गया। ऐसा सोया कि प्रायः सूर्योदय के समय मेरी आँख खुली। उस समय यह rapide गाड़ी कुलो (Culoy) पर पहुँचकर ठहर रही थी। यह एक reversible स्टेशन है, अर्थात् यहाँ गाड़ी का रुख़ बदला जाता है। हमारी गाड़ी पहाड़ियों के नीचे खड़ी थी। उस दृश्य को देखकर मुझे सहसा हरद्वार के स्टेशन की याद हो आई। वहाँ भी कई बार इसी समय ऐसी ही पहाड़ियों के नीचे मेरी गाड़ी पहुँची थी। बड़ा सुहावना समय और बड़ा लुभावना दृश्य था। गाड़ी का रुख़ बदला गया, और वह चलने लगी। बेलगार्डस्टेशन पर फ्रांस की सरहद समाप्त होती है। अतएव यहाँ पर फ्रेंच कस्टम ऑफ़िसरों ने लोगों के असबाब देखे, और पासपोर्टों का निरीक्षण किया। असबाब न होने के कारण मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। पासपोर्ट दिखाकर छुट्टी मिल गई। और, लोग अपना सामान लेकर स्टेशन के अंदर पहुँचे, और उनका सामान जाँचने के कारण गाड़ी प्रायः एक घंटे वहाँ रुकी। अंत में वहाँ से चले। अब आल्प्स का दृश्य दिखलाई पड़ने लगा। हमारी गाड़ी रोन नदी के किनारे-किनारे चल रही थी। छोटे-छोटे साफ़-सुथरे गाँव, जिनके सुव्यवस्थित और सुंदर मकान देखकर चित्त प्रसन्न हो उठता था, थोड़ी-थोड़ी दूर पर मानो बिखरे हुए थे। खेतों में या तो हरियाली छाई हुई थी, या वे श्वेत बर्फ़ की हरी चादर से ढके हुए थे। स्थान-स्थान पर स्विज़रलैंड की हृष्ट-पुष्ट गउएँ चर रही थीं। इस समय हमारा व्रज तो नाम का ही व्रज है। सच्चा व्रज तो इस समय स्विज़रलैंड है, जहाँ वास्तव में आजकल दूध-मक्खन की धाराएँ बहती हैं। हमारी रेल द्रुत वेग से चक्कर खाती हुई चढ़ रही थी। हरएक मोड़ पर नया सीन, नया नज़ारा, नवीन दृश्य, नूतन चित्र दिखलाई पड़ते थे। कहीं रोन-नदी का सर्प-गति के समान भीलों का दृश्य, कहीं उसका सुंदर चित्रोपम पुल, कहीं आकाशचुंबी श्वेत मुकुट धारण किए हुए पर्वतों के शृंग, कहीं नीचे मीलों लंबे-चौड़े हरे मैदान, कहीं सुरंगों के पाताली रास्ते। इन सब चित्ताकर्षक दृश्यों को देखते-देखते जिनेवा की बस्ती सामने आ गई। गाड़ी इस तेज़ी से चल रही थी कि जिनेवा-नगर अभी शुरू ही हुआ था, इतने ही में 'गार दि कार्नवाँ' पर वह खड़ी हो गई। मैं ओवरकोट पहनकर और कंबल लेकर उतर पड़ा। देखा, तो निहालसिंहजी मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम दोनों पासपोर्ट पर 'विज़ा' कराकर बाहर आए, और एक 'टैक्सी' करके निहालसिंहजी के निवास-स्थान 'रयू दि शान फले' जा पहुँचे।

इस प्रकार मैं जिनेवा के इतिहास-प्रसिद्ध नगर में पहुँचा।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

जन्मभूमि

(१)

विश्व-वाटिका में करती हो मद-विलासिनी! मधुर विहार ;
रूप तुम्हारा अति सुंदर है, मुग्ध कर रहा है शृंगार।
मधु पी-पी विक्षिप्त समान:
खेल रहे अलिकुल अनजान।
कुसुम-मालिनी! तुम पगली-सी किसे रही हो विहँस निहार ?
रूप तुम्हारा अति सुंदर है, मुग्ध कर रहा है शृंगार।

(२)

भाँति-भाँति के द्रुम हँसते हैं लदे हुए फल-फूलों से ;
शीतल हवा उड़ी आती है नदियों के लघु कूलों से।
प्रकृति सहेली-सी छवि कौन ?
नाच रही छम-छम-छम मौन।
कोड़ कुसुम-रथ उतर पड़ा है पथिक प्रेम से—भूलों से ;
शीतल हवा उड़ी आती है नदियों के लघु कूलों से।

(३)

जुही-कुंज में थिरक रहे हैं देख मेघदल मत्त मयूर ;
विहग तुम्हारे गुण गाते हैं नीड़ों में सुख से भर पूर।
जल-सिंचित खेतों के पार ;
चरते हैं मृग-झुंड उदार।

चकित किसान खड़ा है मग में, मन में नूतन चाल बिसूर ;
विहग तुम्हारे गुण गाते हैं नीड़ों में सुख से भरपूर ।

(४)

संध्या-समय फूल चुनती हैं तव वन में गज-गामिनियाँ ;
शिव-मंदिर में शंख बजातीं नित्य कृशांगी कामिनियाँ ।
सुंदर शिशु-तारों के साथ ;
रजनी नई, पसारे हाथ—
आलिंगन करती है सखि-सी, सुख पाती हैं भामिनियाँ ;
शिव-मंदिर में शंख बजातीं नित्य कृशांगी कामिनियाँ ।

(५)

स्वर्ण बरसता है खेतों में, है लक्ष्मी की कृपा अपार ;
सरस्वती रस बरसाती है बजा-बजाकर मधुर सितार ।
तृण-तृण में झलमल-झलमल ;
झलक रही नव छवि श्यामल ।
दिगंबरो ! तव मधु माया में हम मोहित हैं पुत्र उदार ;
सरस्वती रस बरसाती है बजा-बजाकर मधुर सितार ।

(६)

छः ऋतुओं के साथ खिलौने खेल रहे हैं बारह मास ;
पढ़ते हैं कवित्त पद्माकर, देव, बीरबल, तुलसीदास ।
राधावर के प्रिय पथ पर—
अंकित चरण-चिह्न सुंदर ।
भाव समुद्र बहा करता है, भर उर-पुर में मृदु उल्लास ;
पढ़ते हैं कवित्त पद्माकर, देव, बीरबल, तुलसीदास ।

(७)

अन्नपूर्णा तुम हो, तुमसे अमर बना है नव-यौवन ;
भिखारिणी कहकर मा ! कैसे करें तुम्हारा संबोधन ?
जिधर भटकती है कवि-दृष्टि ;
है सुहासिनी जीवित सृष्टि ।
बैठ स्वर्ण-सिंहासन पर तुम करती हो जग में शासन ;
भिखारिणी कहकर मा ! कैसे करें तुम्हारा संबोधन ?

"गुलाब"

शिक्षा का माध्यम और मध्य-प्रदेश का अनुभव

(३)

परिवर्तन-काल

सन् १९२०-२१ ई० में असहयोग-आंदोलन उठा । उसका एक अंग यह था कि सरकारी पाठशालाओं, कॉलेजों तथा सरकार के निरीक्षण में कार्य करनेवाली संस्थाओं का बहिष्कार करना चाहिए । आंदोलन के नेता कहते थे कि संस्थाओं में दास-वृत्ति की शिक्षा मिलती है; वहाँ के पढ़े मनुष्यों की चित्त-वृत्ति दासों के समान हो जाती है; इन संस्थाओं से विद्यार्थियों को उठाकर जातीय शालाओं में भेजना चाहिए, जहाँ देशी भाषाओं में शिक्षा दी जाय, जातीयता अथवा देश-भक्ति की शिक्षा दी जाय । उपदेशक गाँव-गाँव, क़स्बे-क़स्बे घूम-फिरकर बालकों तथा उनके वारिसों को बहकाते या समझाते फिरते थे । अनेक पाठशालाओं तथा कॉलेजों से विद्यार्थि-गण निकल भागे । कुछ समय तक ऐसा भी जान पड़ने लगा कि कदाचित् सरकारी पद्धति से चलनेवाले स्कूलों तथा कॉलेजों की जड़ ही न उखड़ जाय । ख़ैर, असहयोग की बाढ़ का ज़ोर धीरे-धीरे कम होने लगा, बहककर निकले हुए विद्यार्थी धीरे-धीरे वापस आए । फिर भी अनेकों का जीवन बिगड़ गया । जो नेशनल स्कूल आंदोलन के समय खुले थे, वे स्वतः सहायता न पाकर धीरे-धीरे बंद होने लगे । शिक्षा-खाते के स्कूल-कॉलेज फिर भर गए । इस प्रकार आफ़त टल गई ।

परंतु विचारवान् पुरुषों का धर्म है कि जो कुछ दुनिया में होता हो—अपने पक्ष में या विपक्ष में—सबसे कुछ-न-कुछ शिक्षा अवश्य ग्रहण करें । शिक्षा-विभाग के कर्मचारियों तथा अन्य विचारवान् सज्जनों से बार-बार प्रश्न होने लगे—क्या कारण है कि शिक्षा-विभाग के विरुद्ध इतना प्रबल आंदोलन उठा, और उससे एक बार शिक्षा खाता-रूपी इमारत हिल गई ? क्या कारण है कि बाहर से आए हुए अनजान उपदेशकों के कहने में इतने विद्यार्थी

आ गए, और अपने चिरपरिचित गुरुजनों की बात न मानो ? अस्तु, अपने तथा अपनी संस्थाओं के दोषों की ओर प्रत्येक अधिकारी का ध्यान जाने लगा।

इसी असहयोग-आंदोलन के समय मांटेग्यु-चेम्सफ़ोर्ड-रिफ़ार्म शुरू हुए। मध्य-प्रदेश में भी दो मंत्री नियुक्त हुए। इनमें से एक रावबहादुर नारायणराव केलकर शिक्षा-खाते के मंत्री हुए। हिंदोस्तानी ग़ैरसरकारी सदस्यों की राय का मंत्रीजी पर प्रभाव पड़ने लगा। हिंदोस्तानियों में उस समय सरकारी शिक्षा-प्रणाली पर असंतोष था ; सहयोगी लोग भी उसमें बहुत कुछ हेर-फेर करना चाहते थे। निदान सन् १९२० ई० की वर्षा-ऋतु में रावबहादुर केलकर साहब ने बीस सज्जनों की एक कमेटी बनाई, और उसके सदस्यों से कहा गया कि मध्य-प्रदेश की पाठशालाओं में जो शिक्षण-क्रम (करीक्युलम) जारी है, उसमें क्या परिवर्तन होने चाहिए, इस पर विचार किया जाय। इस कमेटी में ६ अँगरेज़, ५ देशी कर्मचारी और शेष ग़ैर-सरकारी सज्जन थे। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट जाड़े के दिनों में तैयार कर दे दी।

इस कमेटी के सामने अनेक प्रश्न आए। उनमें मुख्य यह था कि हाईस्कूलों में शिक्षा का माध्यम कौन भाषा होनी चाहिए। असहयोग-आंदोलन को लोग भूले नहीं थे, और कमेटी ने अनेक परिवर्तनों की आवश्यकता बतलाई। परंतु सर्वसम्मति से यह भी कहा गया कि शिक्षा का माध्यम, अँगरेज़ी को छोड़ बाक़ी सब विषयों में, मैट्रिक्युलेशन तक, देशी भाषा ही होनी चाहिए। केवल वैज्ञानिक शब्दों की कमी देख यह भी कहा गया कि जहाँ देशी भाषा में प्रचलित शब्द न मिलें, वहाँ अँगरेज़ी शब्दों का प्रयोग किया जाय। इस मंतव्य पर अँगरेज़ सरकारी और ग़ैरसरकारी सदस्य, सबकी एक राय हुई कि माध्यम देशी भाषा होनी चाहिए।

मध्य-प्रदेशीय सरकार ने इस कमेटी की सिफ़ारिशों को मान देकर और प्रदेश की कठिनाइयों पर विचार करके निम्न-लिखित रूप में माध्यम-संबंधी प्रश्न को तय किया —

(१) मध्य प्रदेश में आठ ज़िले बिलकुल मराठी हैं दो-तीन ज़िले आधे मराठी और आधे हिंदी हैं, और शेष सब १२ १३ हिंदी। मिडिल स्कूलों में अभी तक सिवा गणित और भूगोल के बाक़ी सब विषयों के शिक्षण का माध्यम ज़िले की भाषा थी। कुछ मुसलमानी स्कूलों में उर्दू-माध्यम था। सन् १९२२ के जुलाई से गणित और भूगोल की शिक्षा भी देशी भाषा में ही दी जाने लगी।

(२) हाईस्कूलों की कक्षाओं (नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं) में देशी माध्यम इस प्रकार आरंभ किया गया कि जिस सरकारी हाईस्कूल में एक ही कक्षा थी, वहाँ ज़िले की भाषा नवीं कक्षा में माध्यम की जाय, और जैसे-जैसे विद्यार्थी ऊपर की कक्षा में चढ़ते जायँ, वैसे-वैसे ऊँची कक्षाओं में भी माध्यम बदलता जाय। परंतु जहाँ दो या दो से अधिक खंड किसी कक्षा के हों, वहाँ एक में तो अँगरेज़ी माध्यम द्वारा पढ़ाई हो, और शेष में देशी भाषा द्वारा।

मध्य-प्रदेश में बहुत ही कम सरकारी हाईस्कूल ऐसे हैं जहाँ एक ही खंड प्रत्येक कक्षा का है, वह भी केवल पहाड़ी, जंगली और हिंदी-ज़िलों में है। मराठी-ज़िलों में—विशेषकर बरार में—एक-एक कक्षा के ५-६ खंड तक हैं। एक खंड अँगरेज़ी माध्यमवाला रखने का कारण यह है कि यह प्रदेश मध्य-देश है, यहाँ हिंदोस्तान के प्रायः सब प्रांतों के लोग आकर बस गए हैं। जिस संस्था से मेरा संबंध है, उसमें निम्न-लिखित भाषाएँ बोलनेवाले छात्र विद्याभ्यास कर रहे हैं—हिंदी, उर्दू, मराठी, बंगाली, गुजराती, पंजाबी, तामिल, तैलंगी, मारवाड़ी, उड़िया, गोंड़ी आदि। इनमें अनेक ऐसे हैं, जो टूटी-फूटी हिंदी बोलते हैं। उन्हें साहित्यिक भाषा आती नहीं। इनके लिये जैसी कठिनाई अँगरेज़ी माध्यम में है, वैसी ही हिंदी-माध्यम में। ऐसे ही विद्यार्थियों के लिये अँगरेज़ी-माध्यम रक्खा गया था, और परवानगी दी गई कि यदि इनसे कोई खंड पूरा न भरे, तो हिंदी-मातृभाषावाले वे विद्यार्थी ले लिए जावें, जिनके वारिस अँगरेज़ी-माध्यम चाहते हों।

(३) प्राइवेट स्कूलों को यह स्वतंत्रता दी गई कि वे जैसा चाहें, वैसा करें।

(४) हिंदी, मराठी और उर्दू-भाषाओं में भिन्न-भिन्न विषयों पर उपयुक्त ग्रंथों की तलाश करने के लिये तीन कमेटियाँ मुक़र्रर हुईं। इन्होंने कुछ समय में ही प्रकाशकों के पास से काम की जो पुस्तकें पाईं, उन्हें स्वीकृत करा दिया। खेद की बात है कि काम चलाने लायक़ पुस्तकें न मिलने पर नई पुस्तकें बनवाने का उद्योग न किया गया। यह समझा गया कि आवश्यकता पड़ने पर पुस्तकें आप ही तैयार हो जायँगी।

दूसरी जो बात निगाह से रह गई, वह थी देशी माध्यम द्वारा शिक्षा देने-योग्य शिक्षकों को तैयार करने की आवश्यकता। इस प्रदेश में विचित्रता यह है कि मराठी-ज़िले विद्या, धन, राजनीतिक दृष्टि आदि में बहुत बढ़े-बढ़े हैं। वहाँ के लोगों में मातृभाषा से प्रेम है। वे मातृभाषा को माध्यम बनाने के महत्त्व को समझते हैं। वहाँ के शिक्षक प्रायः सभी महाराष्ट्र हैं। सभी विषयों में योग्य मराठी जाननेवाले शिक्षक मिल जाते हैं। परंतु हिंदी-ज़िलों में लोगों को मातृभाषा से प्रेम कम है, माध्यम के महत्त्व को बहुत कम लोग समझते हैं, हिंदी जाननेवाले ग्रेजुएट शिक्षक अभी तक मिलते रहे, इसलिये हिंदी-ज़िलों के हाईस्कूलों में शिक्षकगण अन्य प्रदेशों से अर्थात् बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात आदि से बुलाकर मुक़र्रर किए गए। खेद की बात है, १९१४-२० तक यह भरती हुई, पर संयुक्त-प्रदेश के ग्रेजुएटों ने इस ओर लक्ष्य न दिया, केवल दो ही-तीन आए। नतीजा यह हुआ कि अन्य-भाषा-भाषी शिक्षकों के द्वारा ही हिंदी-माध्यम की शिक्षा शुरू की गई। यह बात सहर्ष स्वीकार करनी पड़ेगी कि इन्होंने देशी भाषा के महत्त्व को समझकर अपना भरपूर उद्योग किया, और कई तो अपना काम अच्छी रीति से करने लगे हैं; परंतु, फिर भी, बहुत-से इस योग्य न निकले कि हिंदी भाषा में सुगमता-पूर्वक काम कर सकें। ये आधी हिंदी आधी अँगरेज़ी, आधी मराठी या बंगाली ऐसी खिचड़ी भाषा का प्रयोग करने लगे जिससे न विद्यार्थियों को आनंद मिलता है, न लाभ होता है। ऐसे शिक्षकों द्वारा अँगरेज़ी माध्यम ही में पढ़ाना बेहतर होता। यदि ऐसे शिक्षकों को कुछ दिन किसी ट्रेनिंग-कॉलेज में भेजकर हिंदी की उत्तम शिक्षा दे दी जाती, तो वे लोग काम अधिक सुगमता से कर सकते।

अब ज़रा उन लोगों का हाल देखना चाहिए, जिनकी मातृभाषा हिंदी है। उनमें बहुत कम ऐसे थे, जिन्हें भाषा से प्रेम हो, या जिन्होंने उसका साहित्य देखा हो, हिंदी में छपी मासिक पत्रिकाएँ या समाचार-पत्र पढ़ते हों। बाज़-बाज़ तो मातृभाषा पढ़ाने में अपनी तौहीन समझते थे। कोई-कोई यहाँ तक कह बैठते थे कि हमसे हिंदी में पढ़ाते न बनेगा।

इसी प्रकार के हिंदी-भाषी अथवा अन्य-भाषा-भाषियों द्वारा हिंदी-माध्यम का काम लिया जाने लगा। आरंभ में बड़े ही तमाशे की भाषा स्कूलों में सुनने में मिलती थी। कुछ नमूने देने से कदाचित् कुछ आभास पाठकों को हो जाय—

(१) ग्लास रिटार्ट में एमुक प्रकार से सलफ्युरिक एसिड काँच का पोंगरे द्वारा (फ़नेल) डालना उचित होगा।

(२) एक ठो फ़्लानेल का टुकड़ा लेकर ग्लास राड घीसने से विद्युत उत्पन्न होऐंग। (बंगाली-हिंदी)।

(३) इस कक्षा के जूने विद्यार्थी लोक बहोत तरहा से तंग करते है, और उनको शिक्षा मिळाली चाहिए। (मराठी-हिंदी)।

(४) अरब-देश में ऊँट लोग जब ज़ादा जाता है, तब घुटना टेक होने का बात होता है।

(५) श्रम के बार बोला, तुम खैरियत तुम खैरियत नहीं। कोरबो की ?

(६) परियतन करने से बिरामन लोगों में संसकीरत का दुसम बद गया होर उयादे नेड़े गिरंथ उत्तम परकार दे मौजूदा होवे लगे। (पंजाबी-हिंदी)।

इस प्रकार की विषम हिंदी सुनने से विद्यार्थियों में अनेक प्रकार के कुतूहल होते थे, कक्षा का इंतिज़ाम भी गड़बड़ हो जाता था। पर सबसे अधिक दुःख की बात तो यह होती कि विद्यार्थियों में सगुण नागरी से प्रेम होने के बदले उसके प्रति अवज्ञा होने लगी। परंतु फिर भी कुछ समय उपरांत जब शिक्षकों को हिंदी बोलने और उस भाषा की पुस्तकें बाँचने का अभ्यास होने लगा, तो पहले की अपेक्षा अच्छी हिंदी का प्रयोग होने लगा।

एक समय की बात है, एक योग्य बंगाली शिक्षक ग़दर का इतिहास किसी कक्षा को पढ़ा रहे थे। उन्होंने इस बात के सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया कि कारतूसों के कारण बंगाल अहाते की फ़ौज में बग़ावत हुई। पर बात उनकी समझ में न आई, और समझे तो क्या कि संयुक्त-प्रांत-निवासी पुरबिए बड़े ही बेवक़ूफ़ थे कि ज़रा-सी उन्नति को ग्रहण न कर सके। इतने में मैं जा पहुँचा, तो एक विद्यार्थी पूछने लगा कि पुरबिए लोग ऐसे मूर्ख थे कि छोटे-से आविष्कार से बिगड़ खड़े हुए ? विद्यार्थी बुंदेलखंडी वंश का था, उसके बाप-दादे गंगा-पार से आकर मध्य-प्रदेश में बस गए थे। उसके मन में ऐसा भ्रम देखकर मैंने उससे पूछा कि तुम्हारे बाप-दादे कहाँ से आए थे ?

उत्तर मिला—अवध से। फिर पूछा कि क्या करते रहे? उसने कहा—फ़ौज में नौकर थे। तब मैंने बैसवाड़ी का प्रयोग करके पूछा कि तुहका गाय की चर्बी मिलै, तो काट लेव? उत्तर—नहीं साहब! हमारी ज़ात चली जायगी। धर्म नष्ट हो जायगा। तब मैंने तड़ाका जवाब दिया कि तुहार बाप-दादा का चिपांत रहे, जौन कारतूस काटै से नाहीं कर दिहेन? हिंदुओं का—ख़ासकर ब्राह्मणों का—सारा समय चूल्हे-चौके के झगड़ों में व्यतीत होता है, धरम तो बात-बात में भ्रष्ट हुआ करता है। पर विदेशी भाषा के माध्यम होने के कारण संयुक्त-प्रांत से आए हुए लोगों की संतति यह समझ न सकी कि ग़दर होने के ये ही कारण थे, जो आजकल की हिंदू-समाज को ग्रस्त कर रहे हैं। देश की ठेठ बोली बोलते ही उनकी समझ में बात तड़ाके से आ गई।

ख़ैर, जुलाई, सन् १९२२ ई० से नवीन पद्धति का आरंभ हुआ। मराठी-ज़िलों में तो कोई विशेष कठिनाई न हुई, शिक्षक, विद्यार्थी, वारिसों में प्रायः सबने परिवर्तन सहर्ष स्वीकार कर लिया; पर हिंदी-ज़िलों में कठिनाई विशेष पड़ी। बिरला ही विद्यार्थी हिंदी-माध्यम लेने को तैयार होता। वारिस लोगों ने हेड मास्टरों को घेरना शुरू किया। कोई कहता था कि मेरा लड़का कॉलेज में जानेवाला है, मातृभाषा माध्यम होने से आगे बेकाम हो जायगा। दूसरा कहता था कि लड़के की अँगरेज़ी ख़राब हो जायगी, तो वह किस मसरफ़ का रहेगा? तीसरा कहता था कि मैं सरकारी नौकर हूँ, यदि कल मराठी-ज़िले में बदली हो जाय, तो हिंदी-माध्यम कहाँ मिलेगा? एक हज़रत बोले कि मेरा लड़का न कॉलेज जायगा, न मुझे मराठी-ज़िले में जाने की संभावना है, न उसे नौकरी करना है; पर तो भी अँगरेज़ी-माध्यम चाहिए। मैंने पूछा, यह क्यों? कहने लगे—अजी साहब, अँगरेज़ी पर तो सारा दारोमदार है, हिंदी की चिंदी उड़ाकर क्या करेगा? एक खादीपोश देवता आए—सिर से पैर तक खादी। फिर भी राग वही अलापते थे। मैंने कहा—यदि आप-सरीखे देश-प्रेमी, कट्टर असहयोगी भी अँगरेज़ी के मदमाते रहेंगे, तो हिंदी-माध्यम किसके बच्चे लेंगे? वह बड़ी नम्रता से कहने लगे—हुज़ूर, आपको हमारी पोशाक अथवा राजनीतिक मत से मतलब नहीं, आप लड़के को हमारे कहने के अनुसार माध्यम दीजिए। सबसे बढ़कर एक और हज़रत आए। वह एक दूसरी संस्था की कार्यकारिणी कमेटी के मेंबर थे। वहाँ उनका उद्योग इस बात का था कि वह संस्था सरकारी ग्रांट न ले, सरकारी शिक्षा-क्रम के अनुसार पढ़ाई न हो, जातीय शिक्षा दी जाय। परंतु अपने लड़के को वहाँ से उठाकर सरकारी स्कूल में लाना चाहते थे, और तुर्रा यह कि हिंदी-माध्यम लेने की अनुमति नहीं देना चाहते थे। कहाँ तो दासत्व-वृत्ति सिखाने और जातीयता नष्ट करनेवाली शिक्षा के विरुद्ध घोर आंदोलन, और कहाँ बच्चे को सरकारी शाला में ले आकर अँगरेज़ी-माध्यम पर आग्रह!! These be thy Gods, O Israel. ऐ हिंदोस्तानी भाइयो, यह तुम्हारे खादी-पोश देवता बन गए थे।

मैं प्रत्येक व्यक्ति से सवाल पूछता था कि क्या आप हिंदी-माध्यम नहीं होने देना चाहते? उत्तर यही मिलता था कि हाँ, अवश्य होना चाहिए। पर दूसरे के लड़कों के लिये—हमारे लड़के का 'स्पेशल केस' कर दीजिए। उसे तो अँगरेज़ी माध्यम ले लेने दीजिए।

छाँड़ नागरी सगुन आगरी अँगरेज़ी रंग भीने;
घर की खाँड़ ख़ुरखुरी लागै चोरी को गुड़ मीठो।

लोगों की ऐसी चित्तवृत्ति देख बहुत ही क्लेश होता था, और बार-बार प्रतापनारायण मिश्र के वचन याद आते थे—

ज़मीं पर किसके हो हिंदू रहे अब;
ख़बर ला दे कोई तहतुस्सरा की।

नतीजा यह हुआ कि लाचार होकर प्रायः सब जगह यह नियम करना पड़ा कि जिनके नंबर अधिक हैं, वे अँगरेज़ी-माध्यम के सेक्शन में कर दिए जायँ, और कम नंबरवाले राज़ी हों या न हों, हिंदी-माध्यम की श्रेणी में रख दिए जायँ। यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है। कारण, आगे के परीक्षा-फलों से विदित होगा कि ये ही कमज़ोर लड़के कई विषयों में अँगरेज़ी-माध्यम के उन्नततर विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक उन्नति कर गए।

सरकार के इस हुक्म के जारी होने पर प्राइवेट स्कूलों ने देशी माध्यम हो को अधिकतर स्वीकार किया। परंतु पादरी लोगों ने अपने स्कूलों तथा रियासतों के स्कूलों में अँगरेज़ी माध्यम ही रक्खा। कारण, अँगरेज़ी-माध्यम रहने से बंगाल में मदरास से कम तनख़्वाह पर सस्ते ग्रेजुएट मिल सकते हैं। ईसाई हिंदी जाननेवालों की संख्या बहुत कम है, और वे बहुत ज़्यादा तनख़्वाह माँगते तथा हिंदू को

अधिक वेतन पर ही मिलते। अंजुमन-स्कूलों ने पहले तो उर्दू-माध्यम स्वीकार किया ; परंतु जब देखा कि उर्दू-माध्यम होने से हिंदू-लड़के निकल रहे हैं, और फ़ीस से आमदनी कम हो रही है, तो वे अँगरेज़ी-माध्यम पर आ गए। उर्दू-भाषा में वहाँ के शिक्षा-क्रम के अनुसार, पुस्तकें भी न मिल सकती थीं। केवल एक गवर्नमेंट मुसलमानी हाईस्कूल में अब उर्दू-माध्यम रह गया है।

हमारे इसलामी भाई एक तमाशे की चीज़ हैं। उनके दिमाग़-शरीफ़ की जितनी तारीफ़ की जाय, थोड़ी है। जब उन्होंने देखा कि अंजुमन हाईस्कूलों में उर्दू-माध्यम नहीं चल सकता, तब चिल्ल-पों मचाने लगे कि देशी-माध्यम हो जाने से मुसलमानों की तालीम में बाधा होने लगी, और हिंदुओं ने शरारत की। उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात हो गया होगा कि मुसलमानों का कोई नुक़सान संभव नहीं। कारण, जिनकी मातृभाषा हिंदी या मराठी नहीं, वे अँगरेज़ी-माध्यम ले सकते हैं, और उनका उस खंड में लिए जाने का पहला हक़ है। इस प्रदेश में तीन हाईस्कूल मुसलमानों के लिये हैं। पर वे बहुत कुछ ख़ाली रहते हैं। मुसलमान नेता कुछ भी कहें-सुनें, पर बहुत-से मुसलमान वारिस ऐसे हैं, जो अपने लड़कों को हिंदू-स्कूलों में रखना चाहते हैं। उनका ख़याल है—ग़लत हो या सही—कि मुसलमानी स्कूल में जाने से लड़के बिगड़ जाते हैं। इस कारण कई अपने बच्चों को हिंदी पढ़ाते हैं, और दो-चार ऐसे विद्यार्थी भी निकल आते हैं, जो संस्कृत भी ले लेते हैं। पर इस प्रदेश में विरले ही हिंदू-बालक मिलेंगे, जो उर्दू या फ़ारसी पढ़ते हों।

सार यह कि जो मुसलमान-विद्यार्थी हिंदी-माध्यम नहीं ले सकते, वे अँगरेज़ी-माध्यम ले सकते हैं। जो हिंदी जानते हैं, वे किसी भी माध्यम को ले सकते हैं, नुक़सान उनका क्या होता है, सो कुछ समझ में नहीं आता। लेकिन "हज़रते दाग़ जो अकड़ गए सो अकड़ गए।" बहुत चिल्ल-पों मची, कौंसिल में मंत्रीजी पर कटाक्ष हुआ, गवर्नर साहब तक शिकायतें हुईं। लड़क्की-क़ात भी शुरू हुई। मालूम हुआ कि जंगली ज़िलों के चार-पाँच हाईस्कूलों में केवल हिंदी माध्यम है। कारण, दो खंड नहीं हो सके। वहाँ प्रत्येक हाईस्कूल में दो-चार ही मुसलमान-विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। उनके लिये अलग खंड खोलना असंभव था। वे चाहें, तो नागपुर, जबलपुर के अंजुमन हाईस्कूलों में आ सकते हैं। वहाँ की कक्षाएँ ख़ाली हैं। बोर्डिंग ख़ाली हैं, वहाँ कोई गया कि नहीं, इसकी ख़बर अभी तक नहीं मिली। दो-चार मुसलमान-सज्जनों से बातचीत हुई, तो मालूम हुआ कि वे यह चाहते हैं कि एक-दो विद्यार्थी मुसलमान हों, तो उनके लिये भी अलग खंड खोला जाय? नहीं तो दीन-इसलाम की आबरू ही क्या रहेगी! इसी सिद्धांत पर यहाँ की अंजुमन-कमेटी ने गवर्नर साहब को एक एड्रेस परसाल दिया था। उसमें यह कहा गया कि चूँकि जबलपुर-सर्किल में बीस-पचीस उर्दू प्राइमरी स्कूल हैं, इसलिये उनके निरीक्षण के वास्ते दो असिस्टेंट-इंस्पेक्टरों में एक मुसलमान होने ही चाहिए। इस सर्किल में १२-१३ सौ प्राइमरी पाठशालाएँ हैं, उनके निरीक्षण के लिये दो असिस्टेंट-इंस्पेक्टर हैं। उनमें से एक उर्दू-शालाओं के लिये चाहिए, ठीक ही है!

इस सादगी पै कौन न मर जाय या ख़ुदा ;
अकड़े हैं पै अकड़ने का सामान भी नहीं।

इस सबका सार मुझे तो यही मालूम हो रहा है कि हिंदी जाननेवाले शिक्षकों को यदि थोड़ा-सा उर्दू का भी ज्ञान हो जाय, तो हिंदू-मुसलमान-विद्यार्थियों की शिक्षा एकसाथ सुगमता से हो सकती है। हिंदी और उर्दू कोई दो भाषाएँ नहीं हैं, एक ही भाषा के दो रूप हैं। यहाँ के हिंदी जाननेवाले शिक्षकों को थोड़ी उर्दू सिखाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। मराठी-ज़िलों में एंग्लो उर्दू-स्कूल अलग हैं। वहाँ मुसलमान-विद्यार्थी पढ़ते हैं। एंग्लो-मराठी शालाओं में विशेषकर हिंदू जाते हैं।

सारांश यह कि देशी भाषा को माध्यम बनाते समय मध्यप्रांतीय सरकार ने प्रायः सब बातों का विचार किया, और जहाँ तक बन सका, किसी जाति को हानि होने की संभावना न रक्खी। जो त्रुटियाँ अब देख पड़ती हैं, वे ये हैं—

(१) देशी भाषाओं में पुस्तकें तैयार नहीं कराई गईं।

(२) शिक्षकों को हिंदी-माध्यम द्वारा पढ़ाने-योग्य करने का प्रयत्न ठीक तौर से नहीं हुआ।

(३) हिंदी-माध्यम द्वारा पढ़ानेवाले शिक्षकों को थोड़ी उर्दू सीख लेने को बाध्य नहीं किया गया। शेष कठिनाइयाँ जो हुईं, उनका दोष हिंदी-जनता के मत्थे मढ़ा जा सकता है।

लज्जाशंकर झा

परदा



'पारसी-धर्म' की उत्पत्ति का कारण

पाश्चात्य लेखकों का कथन है कि किसी अज्ञात भूत काल में आर्य लोग किसी अज्ञात भू-भाग में एकत्र रहा करते थे। अवस्थाओं ने उन्हें वहाँ से ढकेला, और वे जीवन-यात्रा में भिन्न-भिन्न जल तथा स्थल के स्थानों में पहुँच गए। आर्य-जाति की एक शाखा फ़ारस की तरफ़ बढ़ रही थी, और बहुत दिनों तक उसकी अवांतर शाखाएँ नहीं फूटी थीं। जब इस शाखा के लोग ऑक्सस और यक्सार्टीज़-नदियों से घिरे हुए प्रांतों और बैक्टीरिया-जैसे समुन्नत तथा सुरम्य भू-प्रदेशों में पहुँचे, तो उनमें से कुछ की इच्छा वहाँ बसने की हो गई। वे घूमने-फिरने के जंगली जीवन से तंग आ चुके थे। इन्हीं स्थानों पर रहकर उन्होंने खेती शुरू कर दी, और घर बनाकर रहने लगे। धीरे-धीरे इन लोगों के पास सामग्री जुटने लगी। अपने कुछ साथियों को इस प्रकार संपन्न होते देख दूसरे आर्यों के भी हृदय में डाह उत्पन्न हुई। उन्होंने इन पर धावे बोलने शुरू कर दिए। इस झगड़े के कारण उनके दो दल हो गए—एक दल घर-बार बनाकर, एक जगह टिककर, रहने लगा। दूसरा गउएँ-भेड़ें चराता हुआ रात को एक जगह और दिन में दूसरी जगह टिकने लगा। इनमें से जो बैक्टीरिया में बस गए, वे ही वर्तमान पारसी हैं; और जो उनकी संपत्ति पर छापे मारते रहे, वे हम लोग हैं, जो पीछे आकर पंजाब में बस गए। पारसियों की 'यस्न हसन्हैति'-नामक पुस्तक के १२वें प्रकरण में उनके शुद्धि-संस्कार का वर्णन पाया जाता है। उसमें दीक्षित होता हुआ व्यक्ति कहता है—"मैं अब से 'देव-पूजक' नहीं रहा। 'असुर-धर्म' के अनुयायियों के घरों को जो लोग लूटते हैं, उन्हें मैं घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। मैं गौ-बकरियों को खुला छोड़ता हूँ; वे स्वतंत्र विचरण करें।" इन वाक्यों से यह परिणाम निकाला जाता है कि अवश्य ही आर्यों में दो दल उत्पन्न हो गए होंगे, जिनमें घर-बार बनाकर फ़ारस में बैठ जानेवालों को लूटा जाता होगा। कहते हैं, आर्यों के इस परस्पर कलह का परिणाम यह निकला कि एक दूसरे के देवतों को गालियाँ देने लगे। दूसरा दल शांतिभंग करनेवाले, चरवाहे आर्यों के धार्मिक संस्कारों को भी घृणा की दृष्टि से देखने लगा। संभवतः उस समय यह समझा जाता था कि 'देव-धर्म' माननेवाले आर्यों की कृतकार्यता का मुख्य कारण उनका 'इंद्र' देव को 'सोम-रस' पिलाना और मंत्रोच्चारण करना है। इसीलिये फ़ारस में घर बनाकर रह जानेवाले लोगों ने चिढ़कर अपनी धर्म-पुस्तक—'ज़िंदावस्था'—में आर्यों के मुख्य देवता 'इंद्र' को दैत्यों में गिना, सोम-रस की भरपेट निंदा की, मंत्रोच्चारण को गर्हित ठहराया। पारसी लोग देवतों की एक नियामक सभा में विश्वास करते थे, जिसका नाम 'अमेशस्पंत' था। यह भी कल्पना की गई थी कि इनके मुक़ाबले में पारसियों के शैतान 'अंगिरामन्यु' ने अपनी एक नियामक सभा तैयार की है। चूँकि 'देव'-शब्द का आर्यों के यहाँ अच्छा अर्थ था, अतः पारसियों ने 'देव'-शब्द का बुरे अर्थ में प्रयोग करना शुरू किया, और शैतान का नाम 'देवानां देवः' (सबसे बड़ा देव) रक्खा। आर्यों के जो बड़े-बड़े देवता थे, उन्हें शैतान (अंगिरामन्यु) की कौंसिल का सदस्य बनाया गया। ये थे इंद्र, सौर्व (शिव) और नाहत्य (नासत्य)। पारसी-धर्म का नाम 'वि-देव-धर्म' (देवतों का विरोधी धर्म) और उनकी धर्म-पुस्तक—'ज़िंदावस्था'—के मुख्य भाग का नाम 'वेंदीदाद' (वि-देव-दत्त—देवतों के विरोध में दी गई) रक्खा गया। पारसी-पुस्तकों में नरक का नाम 'द्रुज देमान्' है। उनमें लिखा है कि इस नरक में 'देव-धर्म' के अनुयायी कवि, पुरोहित, ब्राह्मण और ऋषि जाते हैं। विद्वानों का कथन है कि प्राचीन काल में 'कवि'-शब्द का बड़े उत्तम अर्थ में प्रयोग होता था। और, आर्यों में उच्च व्यक्ति के लिये इस शब्द का समान प्रयोग होता था। जब आर्यों में लड़ाई छिड़ गई, तब पारसियों ने 'कवि' का 'कवा' कर लिया, और अपने पूज्य व्यक्तियों को 'कवि' के नाम से नहीं, 'कवा' के नाम से याद करने लगे। मामला यहीं नहीं समाप्त हुआ। जब 'कवा' का अर्थ पारसियों में पूज्य समझा जाने लगा, तब ब्राह्मणों ने उसी शब्द का प्रयोग बुरे अर्थ में करना शुरू कर दिया। इसीलिये निरुक्त में कवा—कपूयः, निंदितः लिखा है। इंद्र का नाम वेदों में 'कवारि'—कवा को मारनेवाला—रक्खा गया। इसी प्रकार आर्यों में पहले 'असुर'-शब्द का 'जीवन-प्रद' अर्थ में प्रयोग होता था। ऋग्वेद

३-२४-१४, ४-२-५, ७-२-३, १-३५-७, ५-४२-११, ५-४१-३, ३-१३१-१, ५-८३-६ और ३-२६-१४ में सब जगह इंद्र, अग्नि, सावित्री, वायु आदि देवतों को 'असुर' नाम से स्मरण किया गया है। आर्यों में लड़ाई होने के बाद जब पारसियों ने 'असुर'-शब्द को अपना लिया, अपने धर्म को 'असुर-धर्म'—'अहुर-धर्म'— 'अहुर्मुज़्द' का धर्म कहने लगे, तब इतर आर्यों ने उस शब्द का बुरे अर्थ में प्रयोग करना आरंभ कर दिया। इस प्रकार फ़ारस में आर्यों की पारस्परिक लड़ाई के कारण 'देवासुर-संग्राम'-शब्द की उत्पत्ति हुई। पारसी अपने को 'असुर-धर्म-पूजक' या 'देव-धर्म-नाशक' कहने लगे, और दूसरे लोग अपने को 'देव-धर्म-पूजक' एवं 'असुर-धर्म-नाशक'। इसीलिये वेदों में कम, परंतु (आगे चलकर) ब्राह्मण-ग्रंथों में अधिक देवासुर-संग्राम का वर्णन पाया जाता है। ऋग्वेद के ऐतरेय-ब्राह्मण (१-२३) में इस संग्राम का बड़ा रोचक तथा विस्तृत विवरण दिया गया है। सारांश यह कि पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति के अनुसार प्राचीन आर्यों की उस शाखा में, जो अविभक्त रूप से फ़ारस तक पहुँच चुकी थी, कोई भारी कलह उत्पन्न हो गया था, जिसका परिणाम यह निकला कि वे एक दूसरे के देवी-देवतों, रीति-रवाजों तथा संस्कारों को बुरा-भला कहने लगे। इस कलह का कारण उनमें से कुछ लोगों का घुमक्कड़-जीवन (Pastoral Life) छोड़कर कृषि-जीवन (Agricultural Life) को स्वीकार करना था।

पाश्चात्य लेखकों के इस परिणाम का आधार मुख्यतः विकासवाद का विचार है; क्योंकि विकासवाद सत्य का सार है, यह पहले ही से मानी हुई बात है। चूँकि फ़ारस तथा भारत की तरफ़ बढ़ती हुई आर्यों की शाखा में किसी प्रकार का कलह उत्पन्न हो गया दिखाई देता ही है, और चूँकि पारसियों की धर्म-पुस्तक 'ज़िंदावस्था' में जगह-जगह कृषि के लिये प्रेरणा की गई है, इसलिये यह परिणाम निकाल लिया गया है कि 'इतर आर्य' अवश्य ही पशु चराते फिरते होंगे, कभी-कभी अपने पारसी भाइयों पर छापे मारकर उन्हें लूटा करते होंगे, और इस प्रकार दोनों की लड़ाई शुरू हो गई होगी। हमारी सम्मति में पाश्चात्य विचारकों की यह भूल है। हम यह तो मानते हैं कि इधर पैर बढ़ाती हुई आर्यों की शाखा में किसी समय मतभेद अवश्य उत्पन्न हुआ; परंतु साथ ही हमारी यह भी दृढ़ धारणा है कि उसका कारण एक दूसरे की मार-काट अथवा लूट-खसोट नहीं था। उसका कारण 'प्राचीन आर्यों का कृषि से अनभिज्ञ होते हुए मवेशी चराते रहना' न था। वैदिक साहित्य का जिसने थोड़ा-सा भी अनुशीलन किया है, वह कह सकता है कि यदि वेदों को मनुष्य-कृत भी मान लिया जाय, तो भी उनमें वह अवस्था दिखाई ही नहीं देती, जिसे घुमक्कड़ जीवन या Pastoral Life कहा जाता है। अथर्ववेद का 'कृषि-सूक्त' तो प्रसिद्ध ही है; परंतु चूँकि पाश्चात्य विद्वान् उसे पीछे का बना हुआ मानते हैं, इसलिये हम उन्हीं के पुराने माने हुए ऋग्वेद में से ही निम्न-मंत्र पाठकों के सम्मुख रखते हैं—

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानुगच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥
शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्॥
(ऋग्वेद ४-५७-७,८)

इन मंत्रों में कृषि का बड़े स्पष्ट शब्दों में वर्णन है। इसी प्रकार १०वें मंडल का १०१ सूक्त भी कृषि-सूचक ही है। किंतु वेदों में कहीं-कहीं गाय-बकरी-भेड़ का ज़िक्र आ जाने से ऋषियों को गाय-बकरी चरानेवाला नहीं कहा जा सकता। इनका वर्णन तो इस बीसवीं सदी की अच्छी-से-अच्छी पुस्तक में भी पाया जा सकता है। यह बुरी आदत है कि जहाँ गाय-बकरी का नाम आया, वहाँ झट विकासवाद के गीत अलापने शुरू कर दिए। पाश्चात्य विचारकों को अपनी यह बुरी आदत छोड़ देनी चाहिए। हम तो वैदिक सभ्यता को कृषिमय पाते हैं। वेदों में कृषि का 'विकास हो रहा' नहीं दिखाई देता; प्रत्युत वह तो 'विकसित अवस्था' में देख पड़ती है। वेदों की-सी उच्च सभ्यता को पारसियों के 'ज़िंदावस्था' की सभ्यता से वही नीचे ठहरा सकता है, जिसमें या तो पक्षपात हो, अथवा जो वेदों से सर्वथा अनभिज्ञ हो। पाश्चात्य विचारक वैदिक काल की सभ्यता को कृषि से अनभिज्ञ मानने की दुरूह कल्पना इसीलिये करते हैं कि उन्होंने कई मनमाने स्वयंसिद्ध सिद्धांत मान रक्खे हैं, जिनके विरुद्ध वे त्रिकाल में भी नहीं जा सकते। उदार-हृदय पाश्चात्य विचारकों की यही सबसे बड़ी अनुदारता है!

पश्चिम के विद्वानों का कहना है कि जिन कारणों का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, उन्हीं से आर्यों की परस्पर

लड़ाई हुई, और इसलिये चिढ़कर उन्होंने एक दूसरे के देवतों को बुरा कहना शुरू किया। इसीलिये 'असुर'-शब्द का अर्थ पारसियों में अच्छा है, और दूसरों में बुरा। परंतु प्रश्न यह उठता है कि जब लड़ाई से पहले दोनों एक ही थे, दोनों के पूज्य देवता, संस्कार आदि भी एक ही थे, तब यह बात कैसे घट सकती है? यदि परस्पर कलह के पूर्व भी उनमें दो दल होते, और उनमें एक 'असुर-पूजक' और दूसरा 'देव-पूजक' होता, तब तो कलह के अनंतर एक दूसरे के देवतों को बुरा-भला कहने का कुछ मतलब निकल आता है, अन्यथा नहीं। इसके अतिरिक्त हम यह भी देखते हैं कि आर्यों के दो भेद होने के पूर्व 'असुर', 'कवा' आदि शब्दों के अच्छे तथा बुरे, दोनों अर्थ वेदों में पाए जाते हैं। यदि यही मान लिया जाय कि परस्पर लड़ाई होने के बाद ही 'असुर'-शब्द का पंजाब में आकर बसनेवाले आर्यों ने बुरे अर्थों में प्रयोग किया, तो इसका क्या कारण है कि ऋग्वेद के दूसरे मंडल (२-२३-४) में तो 'असुर'-शब्द बुरे अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, और सातवें मंडल (७-२-३) में अच्छे अर्थ में? यदि पहले 'असुर'-शब्द का अच्छा अर्थ होता था, और पीछे छेड़-छाड़ के बाद बुरा शुरू हुआ, तो दूसरे मंडल में उसका बुरा और सातवें में अच्छा अर्थ किया जाना समझ में नहीं आ सकता। एक बात और है। यजुर्वेद से पहले आर्य लोग आपस में लड़ चुके थे, यह पाश्चात्यों का मत है। परंतु यजुर्वेद में 'गायत्री-आसुरी', 'उष्णिक्-आसुरी', 'पंक्ति-आसुरी' छंद पाए जाते हैं, और ठीक ऐसे ही छंद 'ज़िंदावस्था' के 'गाथा'-भाग में भी मिलते हैं। 'गाथा-अहुन्वैति' में 'गायत्री-आसुरी', 'गाथा-वोहुक्षत्र' में 'उष्णिक्-आसुरी', 'गाथा-उष्टवैति' और 'स्पेंतामन्यु' में 'पंक्ति-आसुरी' छंद मिलते हैं, और इसी प्रकार के छंदों का प्रयोग यजुर्वेद में भी पाया जाता है। यदि 'असुर'-शब्द का 'देव-धर्मोपासक' आर्यों में छेड़-छाड़ और लूट-मार के बाद बुरा अर्थ ही चल पड़ा था, तो फिर छंदों के इन नामों में उसका अच्छे अर्थों में प्रयोग क्यों किया गया?

'कवा' शब्द पर जो बड़े-बड़े लंबे-चौड़े सिद्धांत निकाले गए हैं, वे भी हमें आश्चर्य में डालते हैं। इसमें संदेह नहीं कि 'कवा' का पारसियों में अच्छे तथा इतर आर्यों में बुरे अर्थ में प्रयोग हुआ है; परंतु दोनों साहित्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि यह शब्द इतना प्रचलित नहीं था कि दोनों दलों के आपसी वैमनस्य को सूचित करे। इसके अतिरिक्त यदि सचमुच आर्य लोगों में ऐसी फूट पड़ गई थी कि वे एक दूसरे की जान और माल पर हमला करने लगे थे, और इसी से एक दूसरे से चिढ़कर पारसियों ने 'कवि'-शब्द का अपभ्रंश 'कवा' बना लिया तथा वैदिक-आर्यों ने 'कवा' के कुत्सित अर्थ करना प्रारंभ किया, तब तो उनकी संपूर्ण देव-माला, संस्कारों तथा अन्य कार्यों में कोई समानता न पाई जानी चाहिए, सब जगह भेद-ही-भेद दृष्टिगोचर होना चाहिए। यह भेद इतना प्रबल होना चाहिए कि जो-जो देवता एक तरफ़ अच्छे माने गए हैं, वे सब दूसरी तरफ़ बुरे माने जाने चाहिए। पूर्णरूप से नहीं, तो पर्याप्त मात्रा में यह नियम घटना चाहिए। परंतु ऐसा नहीं है। 'इंद्र', 'शिव' और 'नासत्यौ' को छोड़कर अन्य किसी देवता का बुरे अर्थ में स्मरण नहीं किया गया; वेद के सब अच्छे देवतों का शिष्ट अर्थों में स्मरण किया गया है। अपने कथन की पुष्टि में हम दोनों धर्मों के समान देवतों का साधारण-सा विवरण यहाँ देते हैं—

(१) मित्र—ज़िंदावस्था में फ़रिश्तों के लिये 'यज़त'-शब्द का प्रयोग हुआ है। वेदों के 'मित्र'-देवता को पारसी-धर्म पुस्तकों में 'यज़त' गिना गया है। वेदों में तो मित्र का वर्णन प्रायः 'वरुण'—जिसे ग्रीक लोग उरेनस (Uranus) कहते हैं—के साथ आया है; परंतु ज़िंदावस्था में दोनों देवतों का पृथक्-पृथक् वर्णन है। ज़िंदावस्था के एक भाग को 'मिहिर-यष्ट' कहते हैं। यह 'मिहिर-यष्ट' पारसियों के 'मिथ्र'—मित्र—देवता पर ही लिखा गया है। पारसियों का 'मिथ्र' और वेदों का 'मित्र' एक ही है। दोनों के वर्णनों में भी समानता है। ऋग्वेद ३-५१ की 'मिहिर-यष्ट' के वर्णन से पूरी-पूरी तुलना की जा सकती है। दोनों जगह 'मित्र' सूर्य के लिये प्रयुक्त हुआ है।

(२) अर्यमन्—'मित्र' और 'वरुण' के साथ संबद्ध देवता वेदों में 'अर्यमन्' है, जो कि ज़िंदावस्था में 'ऐर्यमन्' है। दोनों धर्म-पुस्तकों में 'अर्यमन्' के दो अर्थ हैं—स्नेही और विवाहादि का अध्यक्ष प्रधान देवता। पारसियों में उसे जो मुख्यता दी गई है, वह निराधार नहीं है। भगवद्गीता (१०-२९) में भी पितरों में 'अर्यमा' को प्रधानता दी गई है, और "पितॄणां अर्यमा चास्मि" कहा है।

(३) भग—'भग' परमात्मा का नाम है; क्योंकि

वह हमारे भाग को, हिस्से को, देनेवाला है। इसीलिये मनुष्य के हिस्से में जो परमात्मा देता है, उसे 'भाग्य' कहते हैं। ज़िंदावस्था में 'बघ'-शब्द का प्रयोग 'भाग्य' के लिये आया है, और 'भाग्य से नियमित' इस भाव का द्योतन करने के लिये 'बघोबख्त', पद का प्रयोग हुआ है। रशियन, पोलिश आदि स्लैवोनिक भाषाओं में भी 'बोग' (Bog)-शब्द का प्रयोग परमात्मा के लिये ही पाया गया है।

(४) अरमति — वेदों का यह स्त्री-देवता ज़िंदावस्था में 'अर्मैति' कहलाता है। ज़िंदावस्था में 'अर्मैति' के दो अर्थ हैं—पृथिवी तथा भक्ति। यही दोनों अर्थ 'अरमतिः' के ऋग्वेद (१०, ६२-४-२; ७, १ ६; ७, ३४-२१) में पाए जाते हैं। 'प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्य दस्मे अरमतिर्वसूयुः'—इस मंत्र में 'अरमतिः' का अर्थ पृथिवी तथा भक्ति, दोनों किया जा सकता है।

(५) नाराशंस—'अग्नि', 'पूषन्', 'ब्रह्मणस्पति' (निरुक्त, ८-६) आदि देवतों के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है, ख़ासकर 'अग्नि' के लिये। यह ज़िंदावस्था का 'नैर्योसंह' है, जो 'अहुर्मुज़्द' के दूत का काम करता है। वेदों में 'अग्नि' और 'पूषा' भी दूत ही का काम करते हैं।

(६) वायु — ज़िंदावस्था के 'राम-यश्ट' में 'वायु' उस शक्ति का नाम है, जो सर्वत्र विचरण करती रहती है। वह वेदों का और ज़िंदावस्था का 'वायु'-देवता एक ही है।

(७) वृत्रहा—'वृत्र' को मारनेवाले 'इंद्र' के अनेक नामों में यह भी एक नाम है। यह नाम दूसरे नामों की अपेक्षा प्रधान है, और वेदों में अनेक स्थलों में प्रयुक्त हुआ है। 'बहराम-यश्ट' में इसे 'वृत्रघ्न' नाम दिया गया है। हम आश्चर्य से देखते हैं कि जिस 'इंद्र' को पारसियों ने राक्षसों की श्रेणी में गिना, उसी के दूसरे नाम वृत्रघ्न को अच्छे अर्थों में प्रयुक्त कर लिया। डॉ० हॉग की सम्मति में इसका कारण यह है कि 'वृत्रघ्न'-शब्द वेदों में केवल 'इंद्र' के लिये ही नहीं, अपितु 'त्रित' के लिये भी आता है। यह 'त्रित' पारसियों के यहाँ 'थ्रित' रूप से पूजा जाता था। अतः 'वृत्रघ्न'-शब्द का प्रयोग 'इंद्र' को लक्ष्य में रखकर नहीं, किंतु 'थ्रित' को लक्ष्य में रखकर किया गया है। परंतु इससे कुछ हल नहीं होता; क्योंकि एक ही देवता को दो-तीन नामों से मानने का रवाज पारसियों के यहाँ नहीं पाया जाता, और न एक देवता को दो बार पढ़ लेने में कोई विशेष अभिप्राय दृष्टिगोचर होता है। हमारा मत है कि पारसी लोग अपने समय में प्रचलित वैदिक धर्म को गिरते हुए और उस समय के मुख्य देवता 'इंद्र' को देव-माला में उच्च स्थान पर चढ़े हुए देखकर जब प्राचीन वैदिक धर्म के पुनः प्रतिष्ठान का प्रयत्न कर रहे थे, तब उन्होंने 'इंद्र' का बहिष्कार तो किया; परंतु जैसे अन्य देवतों को स्वीकार कर अपनी देव-माला का अंग बना लिया, वैसे 'इंद्र' को भी उसके दूसरे नाम वृत्रघ्न के रूप में अपनाना चाहा।

(८) तेंतीस देवता—अथर्ववेद और ब्राह्मण-ग्रंथों में अनेक स्थलों पर 'त्रयस्त्रिंशद्देवाः' अर्थात् ३३ देवतों का वर्णन पाया जा[illegible] वे हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, प्रजापति और वषट्कार। इसी प्रकार ज़िंदावस्था में लिखा है कि 'अहुर्मुज़्द' ने अपने धर्म की स्थापना के लिये 'ज़रथुश्त्र' द्वारा तेंतीस 'रतुओं' की पूजा चलाई। ज़िंदावस्था में इन तेंतीस की गिनती नहीं दी गई। इससे डॉ० हॉग अनुमान करते हैं कि 'तेंतीस' संख्या पहले से पवित्र समझी जाती होगी, और ज़रथुश्त्र तथा उसके अनुयायियों ने उसे अपना लिया होगा।

(९) यम राजा — वेदों [illegible] 'यम' का पारिवारिक नाम 'वैवस्वत' अर्थात् 'विवस्वान्' का पुत्र, है। ज़िंदावस्था के 'यिम-क्षेत', का पिता भी 'विवन्वान्हो' है। 'क्षेत' का अर्थ है 'राजा'। 'यिम-क्षेत' का अपभ्रंश आगे चलकर 'जमशेद' हो गया। ज़िंदावस्था के अनुसार 'यिम' ने पशु-पक्षियों को इकट्ठा किया, और जब बहुत बर्फ़ पड़ी, तब चुने हुए जानवरों को लेकर एक स्थान पर जाकर रहने लगा। ऋग्वेद १०—१४ १, २ के अनुसार 'यम' भी लोगों को इकट्ठा करनेवाला, रास्ता दिखानेवाला, नीची तराई से ऊँचाई पर ले जानेवाला तथा विश्राम-स्थान का सबसे पूर्व पता लगानेवाला है। वर्तमान कथानकों में यम को मृत्यु का राजा बना दिया गया है। ज़िंदावस्था तथा शाहनामे की कथाओं के अनुसार 'यिम' उनके स्वर्णीय युग का शासक था। हम शब्द-शास्त्र के प्रमाणों द्वारा कभी यह भी दिखावेंगे कि 'नूह' तथा 'मनु' के जल-प्लावन की कथा तथा 'यिम' की बर्फ़ पड़ने की कथा का आधार एक ही है।

(१०) त्रित, त्रैतन—ज़िंदावस्था के अनुसार 'थ्रित' और 'थ्रैतन' (फ़रदून) 'साम'-परिवार के माने जाते हैं, जो 'अहिर्मान' की उत्पन्न की हुई सब बीमारियों को दूर करते हैं। अथर्ववेद (६—११३,१) में भी 'त्रित' को रोगों को शांत करनेवाला कहा है। बुराई को भी (ऋक् ८-४७,१२) वही दूर करता है। ज़िंदावस्था में 'थ्रित' को 'साम'-वंश का मानने से यही प्रतीत होता है कि वे भी इसके शांत करने के गुण में विश्वास करते हैं। 'त्रित' का पुत्र 'त्रैतन' है। वेदों में 'त्रित' के लिये 'आप्त्य'-शब्द का भी प्रयोग पाया जाता है। ज़िंदावस्था में 'थ्रैतन' के पिता, 'थ्रित' के लिये 'आथ्व्य'-शब्द का प्रयोग मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि ज़िंदावस्था के 'थ्रित' और 'थ्रैतन' वेदों के 'त्रित' और 'त्रैतन' ही हैं।

(११) काव्य उशना—ऋग्वेद में (४—२६,१) इंद्र अपने को 'अहं कविरुशना' कहता है। कवि का जो हो, उसे 'काव्य' कहेंगे, और वही 'काव्य उशना' कहा जायगा। इसने 'अग्नि' को मनुष्य-जाति का होता नियुक्त किया है—'उशना काव्यस्त्वा निहोतार मसादयत्'(ऋक् ८—२३,१७)। इसने बादलों को जीत लिया है—'आ गाः आजत् उशना काव्यः' (ऋक् १—८३,५)। ये सारे काम 'इंद्र' के हैं, अतः 'काव्य उशना' भी इंद्र ही का नामांतर है। पहले हम यह देख ही आए हैं कि 'इंद्र' के नाम 'वृत्रघ्न' को पारसियों ने अच्छे अर्थों में प्रयुक्त किया है और यहाँ फिर देखते हैं कि 'इंद्र' के 'उशना' नाम को भी उन्होंने अच्छे ही अर्थ में रक्खा है, बुरे में नहीं।

(१२) दानव—वेदों तथा ज़िंदावस्था में 'दानव'-शब्द का प्रयोग उन शत्रुओं के लिये आया है, जिनसे युद्ध करना आवश्यक है। ऋग्वेद में तो यह 'इंद्र' के शत्रु 'वृत्र' का नाम है। यदि सचमुच पाश्चात्य विद्वानों का कथन सत्य है, तो पारसियों ने 'इंद्र' के शत्रु 'दानव' का बुरे अर्थ में प्रयोग क्यों किया? 'इंद्र' उनके यहाँ बुरा देवता माना जाता है, उसका शत्रु तो उनके लिये बहुत अच्छा होना चाहिए था!

(१३) तिष्ट्य और इंद्र—वेदों के कथानक के अनुसार 'इंद्र' तब तक वर्षा नहीं ला सकता, जब तक उसे 'बृहस्पति' की सहायता न मिले। ज़िंदावस्था के अनुसार 'तिष्ट्य' 'वूरुकाश'-नामक समुद्र से तब तक वृष्टि नहीं ला सकता, जब तक मनुष्यों की प्रार्थना की उसे सहायता न मिले। संभवतः वेद में बृहस्पति की सहायता का अभिप्राय 'मनुष्यों की प्रार्थना' ही है। इस प्रकार इस कथानक में भी इंद्र के समान ही कार्य करनेवाले एक देवता को, जो इंद्र का ही प्रतिनिधि प्रतीत होता है, ज़िंदावस्था में प्रतिष्ठित माना है।

इन समानताओं को छोड़कर ज़िंदावस्था तथा वेदों की भाषा में, छंदों में, संस्कारों में इतनी समानता है कि यह मानना कठिन हो जाता है कि चूँकि पारसी लोगों के खेतों पर आर्य लोग छापा मारा करते थे, इसीलिये दोनों धर्म अलग-अलग हो गए। भाषा आदि की समानता पर हम फिर कभी लिखेंगे; परंतु जो समानता हमने लिखी है, उसे भी देखकर यही मानना पड़ता है कि पारसी-धर्म का उदय गिरते हुए वैदिक धर्म को फिर से अपने आदर्श की तरफ़ लाने के लिये ही हुआ था। श्रीयुत राजेंद्रलाल मित्र का कथन है कि जिस समय आर्यों में गो-मांस खाया जाने लगा, उस समय उनमें दो वृंद हो गए, और एक वृंद यह कहने लगा कि 'गो-मेध' का अभिप्राय मांस खाना नहीं, अपितु कृषि करना है। इसीलिये उनके ग्रंथों में कृषि पर इतना ज़ोर दिया गया है। पं० गंगाप्रसाद का कथन है कि चूँकि 'देव'-शब्द का प्रायः बहुवचन में प्रयोग पाया जाता है, और 'असुर' का एकवचन में, इसलिये एक-देवतावाद का पुनः स्थापन तथा बहु-देवतावाद का खंडन करने के लिये पारसी-धर्म उत्पन्न हुआ, जिसने 'असुर' को परमात्मा और 'देवतों' को राक्षस बना दिया। डॉ० हॉग तथा उन-सरीखे अन्य पाश्चात्य विद्वानों का कथन, जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं, यह है कि पारसी आर्यों के एक जगह घर बनाकर बस जाने से इतर आर्य, जो अभी जगह-जगह फिरते रहते और कृषि से अपरिचित थे, अपने पड़ोसियों पर आक्रमण करने लगे, और इस प्रकार जो कलह उत्पन्न हुआ, उसका परिणाम पारसी-धर्म का उदय है। हमारे विचार में तो इसमें संदेह नहीं कि किसी समय आर्यों में परस्पर कलह अवश्य हुआ उसमें दो पार्टियाँ भी बनीं; परंतु उसका कारण वह नहीं, जो डॉ० हॉग बतलाते हैं। उसका कारण था गिरते हुए वैदिक धर्म का पुनरुज्जीवन, एक-देवतावाद की पुनः प्रतिष्ठा तथा गो-मांस-भक्षण का निषेध और समाज का मूलतः सुधार। इस दृष्टि को सम्मुख रखते हुए यह समझ में आ जाता है कि 'देव-धर्म' का इतना खंडन करते हुए भी क्यों 'पारसी-धर्म' ने मूलतः 'देव-धर्म' ही को अपनाया, उन्हीं देवताओं को अपना पूज्य माना, उन्हीं संस्कारों को अपने यहाँ भी प्रचलित किया। वैदिक धर्म के इतिहास में

यह घटना नवीन नहीं है। जब-जब इस पवित्र धर्म का ह्रास हुआ, तब-तब किसी असाधारण प्रतिभाशाली महात्मा का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने पतनोन्मुख धर्म की रक्षा की। जब से आर्य भारत में रहने लगे, तब से कई बार धर्म-संकट उपस्थित हो चुका, और तत्काल दिव्य-शक्ति-संपन्न महात्माओं का प्रादुर्भाव भी हुआ। कृष्ण, बुद्ध, शंकर, दयानंद—सब इसी कोटि की उच्च आत्मा हैं। संभवतः भारत में पहुँचने के पूर्व भी वैदिक धर्म अनेक संकटों में से गुज़र चुका था, और उन्हीं में से एक संकट का समय वह था, जब इस धर्म की रक्षा के लिये महात्मा ज़रथुश्थ् का जन्म हुआ। ज़िंदावस्था के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय वैदिक धर्म के एकेश्वरवाद का पवित्र स्वरूप बहु-देवपूजा से कलंकित होने लगा था, यज्ञों में पशुओं की बलि दी जाने लगी थी, और मंत्रों का दुरुपयोग होना प्रारंभ हो गया था। ज़रथुश्थ् ने इस अधःपतन के विरुद्ध आवाज़ उठाई, पुराने लुप्त धर्म की तरफ़ इशारा किया, उसी को फिर से जीवित करना चाहा। इसके लिये एक 'शुद्धि-संस्कार' भी प्रचलित किया गया। इस संस्कार में यह भी लिखा मिलता है कि ज़रथुश्थ् स्वयं पहले 'देव-पूजक' था। जिस प्रकार उसने स्वयं धर्म के अधःपतन की बातों को छोड़कर प्राचीन धर्म को अपनाया, उसी प्रकार अपने प्रबल प्रचार से सैकड़ों और हज़ारों को पवित्र वैदिक धर्म की शरण में लाता रहा। यदि खेती करने और डाके डालने ही से झगड़ा खड़ा हुआ था, तो इस 'शुद्धि-संस्कार' का क्या अभिप्राय है? आगे चलकर वैदिक धर्म में नव-जीवन संचार करनेवाला यह संप्रदाय भी, जैसा सदा से चला आया है, जिन बुराइयों को दूर करने के लिये उत्पन्न हुआ था, उन्हीं का शिकार बन गया। परंतु जब तक ज़रथुश्थ् जीवित रहा, तब तक डॉक्टर के नश्तर की तरह रुग्ण वैदिक धर्म के शरीर-स्थित मल को दूर करता रहा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। यह भी संभव है कि इस कार्य में कोई गरम बात हो गई हो, और शब्दों को परस्पर भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाने लगा हो। परंतु इस मतभेद का वह कारण बिलकुल नहीं, जो पाश्चात्य विचारकों ने बतलाया है। हम समझते हैं, हमने अपने पक्ष की पुष्टि में यथेष्ट युक्तियाँ और प्रमाण दे दिए।

सत्यव्रत

भारत में शक्कर की पैदावार

उपक्रम

शक्कर, जिसको संस्कृत में शर्करा कहते हैं, भारतवासियों को बहुत प्राचीन काल से मालूम थी। वैदिक काल और उसके पश्चात् आर्य लोग उसका उपयोग यज्ञों और औषधियों में प्रचुरता से करते थे। परंतु भोजन में शक्कर (बूरा) को केवल उच्च कक्षा के धनी-मानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग ही खाते थे; ग़रीब तो मीठे की भूख केवल गुड़ और शक्कर (गुड़ को कूटकर बनाते हैं) खाकर ही बुझाते थे। और, आज भी ८० प्रतिशत से अधिक मनुष्य इस देश में गुड़ और शक्कर को ही बूरे के स्थान पर खाते हैं। सैकड़ों वर्षों के पीछे वेनिसवालों ने गन्ने के रस और गुड़ से शक्कर या बूरा बनाने की रीति लगभग १५वीं शताब्दी में सीखी। परंतु चीन के निवासियों ने शक्कर बनाने की रीति वेनिसवालों के बहुत पहले ढूँढ निकाली थी। ज्ञात होता है कि इन सब लोगों ने भारतीय शर्करा के ही अपभ्रंश रूप शक्कर, शकर, सुगर आदि अपनी भाषा में रख लिए थे। शक्कर खाने का प्रचार योरप के देशों में १७वीं-१८वीं शताब्दी तक केवल राजों-महाराजों के महलों तक ही था; साधारण जनता इससे बहुत ही कम परिचित थी। परंतु आज २०वीं शताब्दी में शक्कर (बूरा) योरप के ग़रीब से ग़रीब आदमी के प्रतिदिन के साधारण भोजन का एक अत्यंत आवश्यक एवं सस्ता अंश हो गई है, जब कि भारतवर्ष में इसका उपयोग केवल प्रमोद की वस्तु के रूप में होता है, और वह भी केवल शहरों और क़स्बों में। ग्रामों में तो कोई-कोई मनचले सज्जन त्योहारों पर ही शक्कर या बूरा को व्यवहार में लाते हैं, अन्यथा नहीं। यद्यपि इस देश में गन्ने की ज़मीन दुनिया-भर में सबसे अधिक है, और शक्कर भी केवल घर के खाने के लिये पैदा की जाती है, तथापि भारतवर्ष में प्रति मनुष्य शक्कर की खपत यूनाइटेड किंगडम के प्रति मनुष्य पर शक्कर की खपत की एक तिहाई-मात्र है, और संयुक्त-राज्य अमेरिका की एक चौथाई। आगे के नक़्शे से पता चल जायगा कि भारतवर्ष का

स्थान, शक्कर खाने में, सभ्य देशों के बीच कौन-सा है—

देश	खपत प्रति मनुष्य एक वर्ष में
डेन्मार्क	५० सेर
यूनाइटेड किंगडम	३१½ सेर
फ्रांस	२१ सेर
संयुक्त-राज्य अमेरिका	४४½ सेर
जर्मनी	२२ सेर
भारतवर्ष	½ सेर से कम

(११ सेर गुड़, शीरा, शक्कर सब मिलाकर)

शक्कर जिन वनस्पतियों से निकाली जाती है, उनमें प्रायः मुख्य ये हैं—गन्ना, चुकंदर की जड़, खजूर, फल और चरी (मक्का अथवा ज्वार का डंठल)। परंतु संसार-भर में गन्ने की भूमि सबसे अधिक है। भारतवर्ष में तो ६५ से अधिक फ़ी सदी भूमि गन्ने ही की है। केवल ५ प्रतिशत सारी शक्कर देनेवाली वनस्पतियों से घिरी है। अनुभव से यह भी ज्ञात हुआ है कि जितनी शक्कर प्रति सेर गन्ने से निकाली जा सकती है, उतनी चुकंदर आदि पदार्थों से नहीं प्राप्त हो सकती।

भारत तो गन्ने का घर है। गन्ना इस देश में चिरकाल से पैदा होता आया है। आजकल भी संसार के समस्त गन्ना-उत्पादक देशों में भारतवर्ष में ही गन्ने का क्षेत्र-फल सबसे अधिक है। संसार में गन्ने के लिये ५०,४०,००० एकड़ भूमि में से आधी हमारे ही देश के भीतर है। इस देश के प्रायः प्रत्येक प्रांत में ईख होती है। पश्चिमोत्तर-प्रदेश की मरुभूमि से लेकर बंगाल और बर्मा आदि उष्ण-प्रदेशों की उपजाऊ भूमि तक में गन्ना बहुतायत से पैदा होता है। परंतु गन्ने की उत्तम पैदावार के लिये कुछ विशेषताओं की भी आवश्यकता है। उप-जाऊ भूमि में चूने का अंश अधिकता से होना सोने में सुहागे का काम देता है। पानी की अधिकता और आब-हवा का अच्छा होना भी ज़रूरी है। परंतु खेतों के भीतर पानी का रुक जाना सर्वथा हानिकारक है। इसलिये खेतों से आवश्यकता से अधिक पानी को निकाल देने का अच्छा प्रबंध होना चाहिए। जहाँ वर्षा पर्याप्त नहीं होती, वहाँ आबपाशी के साधन उत्तम होने चाहिए। हमारे देश में ईख की लगभग ३० लाख एकड़ भूमि में से क़रीब २० लाख एकड़ भूमि में सिंचाई से पैदावार होती है। विशेष-कर पंजाब और मदरास के प्रांतों में आबपाशी की अधिक आवश्यकता है। नीचे दिए हुए अंकों से भारत में गन्ने की खेती के अंतर्गत भूमि तथा आबपाशी की आवश्यकता का अनुमान हो जायगा। निम्न-लिखित अंक १९२२-२३ के हैं—

	ईख की भूमि एकड़ों में	सिंचाई की भूमि
संयुक्त-प्रांत	१३,४६,८८१	६,६७,३२४
पंजाब	४,६६,४६५	४,३६,३४२
बिहार-उड़ीसा	३,०५,५००	१,५५,०८६
बंगाल	२,७०,६००	६१,६४१
मदरास	१,३१,०६५	१,२३,५०५
बंबई	६३,८६६	६३,४६५
आसाम	४२,४७२	
पश्चिमोत्तर-प्रदेश	३६,२४२	३६,१८४
बर्मा	३१,५४२	२,३११
मध्य-प्रदेश	१६,२७८	१८,००५
अन्य प्रदेश और देशी रियासतें	२,३५,६६६	१२,६६५
योग	२६,१६,०००	१६,०४,८६२

इससे पता चलेगा कि हमारे ही संयुक्त-प्रदेश में गन्ने की उपज का क्षेत्र अधिक है। समस्त भारतवर्ष की ईख की भूमि का ४४·८ प्रतिशत हमारे ही सूबे में है। पंजाब-प्रदेश का नंबर दूसरा है, और वह संयुक्त-प्रांत की भूमि के क्षेत्रफल का केवल एक-तिहाई है। देशी रियासतों में से बड़ोदा-राज्य में ईख सबसे अधिक होती है।

गन्ना चार वर्ष में एक बार पैदा होता है। सबसे पहले चैत्र और बैसाख में खेतों में पानी भर दिया जाता है। जहाँ वर्षा का सुबीता है, वहाँ सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। इसके बाद खाद डाली जाती है, साधारणतः खाद में गोबर, विष्ठा, कूड़े-कर्कट का ही अधिक उपयोग होता है। मूत्र को तो इकट्ठा करने का कभी उद्योग किया ही नहीं जाता, यद्यपि अनुभव से यह बड़ा लाभ-प्रद सिद्ध हुआ है। खल का भी उपयोग कहीं-कहीं होता है। इसका कारण प्रायः कृषकों की कंगाली और अनभिज्ञता ही कहना उचित होगा। हरी खाद और खनिज पदार्थों से निकाली हुई खाद भी कभी प्रयोग में नहीं लाई जाती। बहुधा कृषक-जनता का यह विश्वास है कि जितनी अधिक खाद खेतों में डाली जाती है, अथवा जितने गहरे खेत जोते जाते हैं, उतना लाभ खेती में नहीं होता। इसी बात को लेकर अर्थ-शास्त्र के बहुत-से

विद्यार्थियों ने उत्तम खादों के उपयोग के विपरीत कुछ लिखा भी है। हमारे विचार में इसके अन्वेषण की आवश्यकता है। मोटे गन्ने के लिये तो लगभग एक फ़ुट गहरी भूमि को जोतना अत्यंत आवश्यक है। गन्ना दो या तीन फ़ीट के अंतर से क्यारियों में बोया जाता है। क़रीब ५०० से ८०० मन तक गोबर की खाद और ३० से ४० मन तक खली की खाद भी प्रति एकड़ दी जाती है। जहाँ वर्षा नियत समय पर होती है, वहाँ वर्षा आने तक—जुलाई और अगस्त के महीने तक—सिंचाई का होना ज़रूरी है; क्योंकि गन्ने की खेती के लिये बहुत-सी खाद, जल और गरमी की आवश्यकता होती है। समस्त खेती को तैयार करने में लगभग १०-१२ महीने तक लग जाते हैं। इस प्रकार काम करने से लगभग १० टन प्रति एकड़ गन्ने की उपज साधारण रूप से प्राप्त होती है। परंतु बंबई-प्रांत में कहीं-कहीं अच्छी उपज लगभग ४० से ५० टन प्रति एकड़ भी मंजरी(Manjri)-रीति से हुई है। गन्ने की क़तारें क्यारियों में बजाय २½ फ़ीट की दूरी ५ फ़ीट की दूरी पर लगाई जाती हैं, और बरहे और डोरे १० फ़ीट के अंतर के बजाय १०० फ़ीट के अंतर से बनाए जाते हैं। जो कृषक गन्ने की खेती करते हैं, उन्हें स्वयं बंबई-प्रांत में तथा अन्य-अन्य स्थानों पर, जहाँ सरकारी खेत जनता के लाभार्थ खुले हुए हैं, जाकर निरीक्षण से अनुभव प्राप्त करना चाहिए। यद्यपि मंजरी-रीति से गन्ने की कृषि करने में पानी, परिश्रम और व्यय की बचत होती है, तथापि बुद्धिमत्ता और देख-भाल की बड़ी आवश्यकता रहती है। हमारे संयुक्त-प्रांत में गन्ने की उपज शाहजहाँपुर में ही अधिक होती है। वहाँ साधारणतः ८३८ मन (३०८ टन) गन्ना प्रति एकड़ होता है, जिसमें से ९३ मन या ३·४ टन प्रति एकड़ शक्कर अथवा १०० मन गुड़ निकाला जा सकता है। गन्ने में रस लगभग ११·१ के अनुमान से निकलता है। दूसरे सरकारी प्रयोग-क्षेत्रों पर भी गन्ना पैदा करने में सफलता प्राप्त हुई है। परंतु जब तक कि सूबे-भर में उन रीतियों की सफलता का प्रदर्शन कृषकों को न कराया जाय, प्रांत में गन्ने की उपज प्रति बीघा या एकड़ कभी अधिक नहीं हो सकती। और, न गन्ने की जाति में भी कोई उन्नति हो सकती है। बंगाल में गन्ने की खेती की दशा और भी अधिक गिरी हुई है। वहाँ तो प्रति एकड़ केवल १·०८ टन ही गुड़ प्राप्त होता है। वहाँ कृषक गन्ने की खेती को अच्छा बनाने का उद्योग भी नहीं करते; क्योंकि उनको जूट की खेती से ही अधिक लाभ होता है।

हमारी अंतरराष्ट्रीय अवस्था

यद्यपि हमारे देश में दुनिया-भर की गन्ने की पैदावार की आधी भूमि है, फिर भी हम संसार का समस्त गन्ने की शक्कर का केवल पाँचवाँ हिस्सा ही पैदा करते हैं, जैसा कि नीचे दिए हुए अंक से ज्ञात होगा—

संसार-भर की गन्ना-शक्कर की पैदावार

(१९१९-२० ई० में)

(बड़े टनों में)

क्यूबा	३७,३०,०००
भारतवर्ष (बर्मा-सहित)	२६,९१,०००
जावा	१३,३५,०००
हवाई-द्वीप-समूह	५,०५,५००
पोर्टोरिको	४,३३,८००
ब्रिटिश गायना	३,५०,०००
वेस्ट इंडीज़	२,३१,०००
पेरू	२,६२,१००
जापान और फ़ार्मूसा	२,८३,५००
मारीशस	२,३५,०००
दूसरे देश, जहाँ २ लाख टन से कम उपज है	१२,३०,६००
योग	१,१२,७७,८००

आजकल जावा ४, २५, ००० एकड़ गन्ना-क्षेत्र में से लगभग २० लाख टन शक्कर पैदा करता है, जब कि भारतवर्ष में २७,००,००० एकड़ गन्ना-क्षेत्र में से केवल २७ टन गुड़ पैदा होता है। यदि १०० टन गुड़ से ४० टन शक्कर निकाली जाय, तो केवल १०,८०,००० टन शक्कर भारतवर्ष (देशी रियासतों को छोड़कर) में पैदा होती है। अथवा यों कहिए कि भारतवर्ष में प्रति एकड़ केवल ०·४० टन साफ़ बूरा (शक्कर) पैदा होती है, जब कि जावा में ४·६० टन शक्कर प्रति एकड़ उत्पन्न होती है। न केवल जावा, बल्कि दूसरे राष्ट्रों के मुक़ाबले में भी भारत का स्थान सबसे नीचा है, जैसा कि नीचे के अंकों से विदित होगा—

प्रति एकड़ गन्ने की पैदावार

हवाई-द्वीप-समूह	४४ टन
जूज़ियाना	१८ ,,

पोर्टोरिको	२०½	टन
क्यूबा	२१	,,
आस्ट्रेलिया	१०½	,,
भारतवर्ष	लगभग १०	,,

नीचे के अंकों से प्रकट होता है कि १ टन खाँड़ निकालने में कितने टन गन्ना लगता है—

हवाई	८ टन
पोर्टोरिको	६ ,,
लूज़ियाना	१४ ,,
क्यूबा	८½ ,,
भारतवर्ष	१२½ टन से २० टन तक

जावा-द्वीप की नाईं भारतवर्ष में १,२०० और १,४०० एकड़ के खेत नहीं हैं, और न इस देश में जावा के सदृश प्रतिवर्ष नए खेतों में गन्ना लगाया ही जाता है। जावा में शक्कर के उद्योग की उन्नति के लिये जो सुबीतें हैं, वे भारतवर्ष में नहीं हैं। उदाहरण के लिये, जावा में प्रत्येक खाँड़ के कारख़ाने के पास एक प्रयोगशाला और प्रयोग-क्षेत्र है, जहाँ पर नई-नई गन्ने की क़िस्मों और गन्ने से सुगमता से शक्कर निकालने की रीतियों का सदा अन्वेषण होता रहता है। वहाँ प्रत्येक कारख़ाने से लगी हुई भूमि और गन्ना उत्पन्न करनेवाली रियासतें होती हैं, जिनके कारण वहाँ के कारख़ानों को नियमित रूप से ठीक समय पर गन्ना मिल जाता है। भारतवर्ष के कारख़ानों की नाईं उन्हें गन्ने के लिये दूसरे कृषकों का मुँह नहीं देखना पड़ता। साथ-ही-साथ उनकी मशीनें और औज़ार बिलकुल आधुनिक ढंग के हैं। वे भारतीय व्यवसायियों की नाईं गए-गुज़रे ज़माने की मशीनों से संतुष्ट नहीं रहते; बल्कि नियमित रूप से विशेष काल के अनंतर समस्त औज़ारों को बदल देते हैं। जावा में समस्त शक्कर के व्यवसाय की रक्षा एक जनरल सिंडिकेट और रिसर्च एसोसिएशन (A General Syndicate of Manufacturers and the Research Association.) करता है। सरकार केवल अपनी सहानुभूति प्रकट करने के रुपए-पैसे की सहायता नहीं देती। शक्कर के व्यवसाय का इतना उत्तम संगठन निज उद्योग और परिश्रम का ही फल है। किसान और शक्कर बनानेवाले, दोनों ही हमेशा नई रीतियों और नए ढंग को स्वीकार करने के लिये बड़े उत्सुक रहते हैं। क्या भारतवासी भी अपने आर्थिक संगठन को दृढ़ करने का पाठ इन मुट्ठी-भर द्वीप-निवासियों से सीखेंगे?

समस्त भारतवर्ष के गन्ना-क्षेत्र की ३० लाख भूमि में साधारणतः ३ करोड़ १० लाख टन गन्ना पैदा होता है। इसमें कुल खाने-योग्य सामग्री का विवरण इस प्रकार है—

गुड़	१८,००,००० टन
शक्कर हाथ से बनाई हुई	२,५०,००० ,,
राब या शीरा	२,५०,००० ,,
शक्कर कारख़ानों में बनी	३०,००० ,,
	२३,३०,००० टन

हमारे यहाँ गुड़ प्रायः झोपड़ियों में बनाया जाता है। तीन बेलनों का लोहे का कोल्हू ही बहुधा प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार केवल ५५ फ़ी सदी ही रस निकाला जा सकता है। किंतु एक आधुनिक मशीन से ८८.४ फ़ी सदी रस निकाला जा सकता है। इस प्रकार हिसाब लगाने से प्रतिवर्ष १०,००,००० टन से अधिक रस ख़राब होकर बेकार जाता है। रस से गुड़ और राब बनाने के लिये रस को उबालना पड़ता है। उसमें भी अधिक भाग नष्ट हो जाता है। पुनः राब या गुड़ से खाँड़ और शक्कर बनाने में भी बहुत-सा हिस्सा ख़राब हो जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक औज़ारों के उपयोग में न लाने के कारण देश को बहुत ही हानि होती है।

इतने बड़े देश में समस्त शक्कर के कारख़ानों की संख्या केवल २२ है, जब कि जावा-जैसे एक छोटे-से द्वीप में १६६ शक्कर की फ़ैक्टरियाँ हैं। भारत में सबसे बड़ी फ़ैक्टरी केवल २.२५० टन बूरा तैयार करती है। साधारण रूप से तो हमारी फ़ैक्टरियों की पैदावार केवल १,२८० टन ही है, जब कि जावा में एक अच्छा कारख़ाना लगभग ४४,००० टन शक्कर निकालता है। भारतवर्ष के इन कारख़ानों में से १० तो बिहार में, ५ संयुक्त-प्रांत में, ३ मदरास-प्रांत में, १ आसाम में, १ पंजाब में, १ मैसूर में और १ बड़ोदा में है। अब कुछ कारख़ाने गुड़ बनाने के लिये भी खुल गए हैं, जिनमें ५ तो संयुक्त-प्रांत में, ३ मदरास-प्रांत में, १ बिहार और १ पंजाब में है। कलकत्ते के निकट काशीपुर के शक्कर के कारख़ाने में जावा की खाँड़ पर ही काम होता है। इन समस्त शुगर-फ़ैक्टरियों में थोड़ी-सी ही

सीधे गन्ने से शकर निकलती है, और बाक़ी गुड़ से ही बूरा बनाते हैं। कुछ कारख़ाने मिथीलेटड स्प्रिट या अन्य शराबें, जो शकर बनानेवाले कारख़ानों में लाभ से बनाई जा सकती हैं, नहीं बना सकते; क्योंकि उनके मालिकों के विचार में ऐसा करना धर्म के विपरीत है। धार्मिक कारणों से ही वे कारख़ाने हड्डी का सस्ता कोयला शकर साफ़ करने के लिये नहीं प्रयोग कर सकते, और चार कोल (पत्थर के कोयले को) ही उपयोग में लाते हैं। भारतीय कंपनियाँ धन की कमी के कारण पुरानी मशीनों की जगह नई मशीनें भी नहीं लगा सकतीं, न इन कारख़ानों के पास ठीक समय पर गन्ना मोल लेने को खेत ही हैं। मेसर्स जमाल-ब्रॉदर्स ने अपने शकर के कारख़ाने का प्लांटेशन स्थापित करना चाहा था; परंतु धन के अभाव के कारण इसको अपना उद्योग बंद करना पड़ा। हमारे देश में जैसे दूसरे धंधों में निर्मित वस्तुओं को ले जाने में असुविधाएँ होती हैं, वे इसमें भी हैं, और ये हमारे होनहार व्यवसायियों के उत्साह को ठंडा कर देती हैं। यह बात शकर के व्यवसाय में भी विचारणीय है।

पहले बताया जा चुका है कि शकर गन्ने के सिवा दूसरे पदार्थों से भी निकाली जाती है। भारतवर्ष में लगभग ३०,००० टन शकर पामीरा या ताड़ से प्राप्त होती है। इसको खजूर भी कहते हैं। भारतवर्ष में यह वृक्ष स्थान-स्थान पर पैदा होता है। इससे ताड़ी या दारू नाम की शराब भी निकाली जाती है। ताड़ और खजूर की पैदावार विशेषकर टिनेवली, पीकोकू, थिंडविन और मियंगयांग के प्रांतों में होती है।

शकर का व्यापार

१६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से भारतवर्ष में शकर का व्यवसाय बहुत कुछ घट गया है। किसी समय हमारे यहाँ इतनी शकर पैदा होती थी कि देश में खपत के अनंतर हम अच्छी तादाद में शकर दूसरे देशों को भेजते थे। १८४८ ई० तक भारतवर्ष ही इँगलैंड की शकर की एक-चौथाई माँग को पूरा करता था। परंतु आज यह अपनी माँग ही पूरी नहीं कर सकता। आजकल भारतवर्ष को प्रतिवर्ष ६ लाख टन शकर जावा और मारीशस से मँगानी पड़ती है। विदेशी शकर के आयात का मूल्य लड़ाई के समय से सन् १९२१ तक निरंतर बढ़ता ही रहा है। इधर १९२२ से विदेशी शकर के मूल्य में कमी होने लगी है। इसका कारण यह है कि मारीशस को बजाय भारतवर्ष के यूनाइटेड किंगडम को भेजने में अधिक फ़ायदा होता है। नीचे हम कुछ वर्षों का शकर का मूल्य भी बतलाते हैं—

यह मूल्य करोड़ रुपयों में है—

१९१९-२०	१९२०-२१	१९२१-२२	१९२२-२३	१९२३-२४
१६	१७	२३$\frac{१}{३}$	१४·८९	१४·७८

योरप का महायुद्ध प्रारंभ होने से पहले बड़ी तादाद में चुक़ंदर की शकर भारत में आती थी। बीसवीं शताब्दी की प्रथम दशाब्दी में तो बाउंटीफ़ेड (Bountifed) अर्थात् राज्य से सहायता किए गए चुक़ंदर-शकर के व्यवसाय ने संयुक्त-राज्य अमेरिका, जावा और भारतवर्ष के शकर के व्यवसायों को जड़ से हिला दिया था। परंतु ब्रूसेल्स कानफ़्रेंस में अंतरराष्ट्रीय समझौता हो गया, और नाशकारी कंपिटीशन बंद हो गया। इस कारण महासमर से योरप की शकर का व्यवसाय बड़ी टूटी-फूटी अवस्था में हो गया है। अतएव पूर्वावस्था को पुनः लाने के लिये बड़े उद्योग और समय की आवश्यकता होगी। इसलिये अभी समय है कि गरम देश अपने-अपने गन्ना-शकर के व्यवसाय को सुसंगठित कर लें। भारतवर्ष से बहुत थोड़ी शकर और केवल १० हज़ार टन गुड़ लंका, फ़ीजी और पूर्वी द्वीप समूहों को जाता है।

भारतीय शकर-व्यवसाय की अवनत अवस्था में होने के मुख्य कारण संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१. बंदोबस्त की ख़राबी।
२. खेतों के टुकड़े-टुकड़े होकर बहुत छोटा हो जाना।
३. किसानों में धन और शिक्षा का अभाव।
४. किसानों का पुरानी लकीर का फ़क़ीर रहना और आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगों का उपयोग न करना।
५. निर्द्धनता के कारण कृषकों और व्यापारियों तथा किसानों में परस्पर घृणित, नाशकारी अविश्वास का व्यवहार, और उससे ऋणी कृषकों की संख्या-वृद्धि।
६. बड़े-बड़े कारख़ानों में नई मशीनों का अभाव।
७. उन कारख़ानों में नियमित रूप से गन्ने को लाने का कोई उत्तम प्रबंध न होना।
८. किसानों के लिये उत्तम बीज, खाद और औज़ार नहीं मिलते; क्योंकि उनके स्टोर स्थान-स्थान पर देश में स्थापित नहीं हुए।
९. वैज्ञानिक शिक्षा का अभाव।
१०. प्रचार और प्रदर्शिनियों का अभाव।

शुगर-कमेटी के विशेष प्रस्ताव

१. शुगर-ब्यूरो का स्थापित करना, जिसका काम गन्ने की खेती, शक्कर के बनाने और क्रय-विक्रय आदि पर उत्तम विचार जनता के सामने रखना होगा (हर्ष का विषय है कि पूसा में ऐसा एक ब्यूरो स्थापित हो गया है, वहाँ से कोई भी शक्कर संबंधी विषयों पर बातचीत कर सकता है)।

२. गन्ने का बीज पैदा करने के लिये एक बड़े खेत का स्थापित करना (कोयंबटूर में ऐसा खेत स्थापित हो गया है, जहाँ पर उत्तम गन्ना बीज-योग्य पैदा किया जाता है। उनमें से कंपनी २१०, २१३ और २१४ कुछ गन्नों के नाम हैं, जो कि अब लगभग ५,००० एकड़ क्षेत्रफल में उत्तरीय भारत में पैदा होते हैं)।

३. भारतीय सरकार द्वारा एक शुगर-स्कूल, एक शुगर रिसर्च इंस्टीट्यूट और एक बड़ी डिमांस्ट्रेशन फ़ैक्टरी स्थापित होना। ऐसे स्कूल का ढाँचा इस ढंग पर होगा—

(क) लूजियाना-स्टेट युनिवर्सिटी का अडबन शुगर-स्कूल (Audubon Sugar School of the Louisiana State University)

(ख) हवाई का कॉलेज।

(ग) रॉयल टेक्निकल कॉलेज, ग्लासगो।

(घ) टेक्निकल हाईस्कूल चार्लटनबर्ग, बर्लिन।

(ङ) दी फ्रइलिंग एंड शुल्ट्ज़ शुगर-स्कूल, ब्रंजविक।

४. केंद्रों में कारख़ाने क़ायम करना, जिनके पास गन्ने के कुछ खेत हों।

५. केवल एक क़िस्म के गन्ने एक खेत में बोना ; क्योंकि मिश्रित फ़सल का बोना लाभदायक नहीं होता।

६. ट्रेक्टर, मेस्टन, सिंधिया आदि हलों द्वारा गहरी जुताई और गोबर तथा खल की खाद देना।

७. पौदों का एक सीध में लगाना और क़तारों के बीच में कम-से-कम दो फ़ीट का अंतर रखना। एक एकड़ भूमि में १५,००० पौदों से ज़्यादा न लगाना चाहिए।

८. चक्र-रूप में फ़सल बोना। कपास की खेती के बाद तुरंत गन्ना बोना हानिकारक है।

शुगर-ब्यूरो और गन्ना-क्षेत्र के कोयंबटूर में स्थापित करने के अनंतर भी पुरानी ख़राब क़िस्मों को निकाल बाहर करने में उद्योग उस उत्तमता, परिश्रम और शीघ्रता से नहीं हुआ, जितना कि जावा-द्वीप में। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि उनके स्थापित करने से कोई फ़ायदा नहीं हुआ। उन्हीं के प्रयत्न से पंजाब और मध्य-प्रदेशों में उत्तम क़िस्मों के गन्ने लगाए जाने लगे हैं। हमारे प्रतिनिधियों द्वारा जनता के मंतव्यों का सरकार पर प्रबल प्रकाश करना, कृषक-विभाग के कार्य-क्षेत्र का विस्तृत होना, कृषक-कमीशन का बैठना, शुगर-कमेटी के प्रस्ताव और उन पर कार्यवाही तथा भारतीय सरकार की बागडोर का एक उत्तम किसान वायसराय के हाथ में होने से हमें इस क्षेत्र में उन्नति की भविष्य में प्रबल आशा है। गन्ने की खेती के क्षेत्रफल में भी नई नहरों के पूरे होने से एक लाख एकड़ भूमि तो ईख के नीचे आ जायगी। पंजाब में नई नहरों के बन जाने पर नहरवाले प्रांतों में २० हज़ार एकड़ भूमि गन्ने के नीचे आ जायगी। सक्खर बैरेज (Sukkar Barrage) का निर्माण होने से भी बहुत-सी भूमि गन्ने के पैदा करने के काम में आ जायगी। आसाम और बर्मा में जंगल साफ़ करने से गन्ने की खेती का क्षेत्रफल बहुत ही विस्तृत हो जायगा। इससे हमें गन्ने के व्यवसाय का भविष्य बड़ा उत्तम दिखाई पड़ता है ; क्योंकि बाहर की चढ़ा-उपरी और आयात-कर से भी, जो अब २५ फ़ी सदी के है, अच्छी तरह रक्षा होगी।

हमको योरप से भी अब कोई भय नहीं रह गया ; क्योंकि योरप के चुक़ंदर की शक्कर के व्यवसाय की बिगड़ी हुई अवस्था सुधारने में बड़ा समय लगेगा। हाँ, यदि भारत के शक्कर-व्यवसाय को कोई भय है, तो हवाई-द्वीपों से, जहाँ अमेरिका ने बहुत-सा अपना धन वहाँ के शक्कर के व्यवसाय को उन्नत करने में लगाया है। परंतु भारतीय शक्कर-फ़ैक्टरियों के लिये घर का बाज़ार बड़ा विस्तृत होने के कारण, हमें आशा है, हवाई-द्वीपों से मुक़ाबला बहुत प्रबल न होगा। अब यदि सरकार की नीति भारत की उन्नति और उसके शक्कर-व्यवसाय की वृद्धि के लिये अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के विपरीत सहानुभूति-पूर्ण और साधना-युक्त रही, तथा भारतीय जनता ने भी अकर्मण्यता त्यागकर उद्योग और परिश्रम की शरण ली, तो निश्चय ही शक्कर के व्यवसाय में बड़ी भारी उन्नति होगी।

जयदेवप्रसाद गुप्त

हिंदी-प्रेमी डॉक्टर 'के'

हिंदी-प्रेमी योरपियन विद्वानों में डॉक्टर के का नाम बड़े आदर से लिया जायगा ; हिंदी-साहित्य के इतिहास में के साहब का उल्लेख बड़े सम्माननीय शब्दों में किया जायगा। आप बड़े ही हिंदी-प्रेमी हैं। गत आश्विन की 'माधुरी' (पृ० ४१७) में आपके हिंदी की वर्तमान और भविष्य अवस्था-संबंधी विचारों की चर्चा हो चुकी है। यहाँ आपका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

डॉक्टर साहब हमारे घनिष्ठ और प्रिय मित्र हैं। आपके हिंदी-संबंधी विचार सुनकर हमारा हृदय गद्गद हो जाता है। कोई डेढ़-दो वर्ष का समय हुआ, हमने आपसे आपके जीवन-चरित्र-संबंधी नोट माँगे थे, और कहा था कि हमारी इच्छा है, हम आपके इस हिंदी-प्रेमी की चर्चा हिंदी की श्रेष्ठ पत्रिका 'माधुरी' में करें। आपको हमारा इरादा पसंद न आया। पर हम आपसे बार-बार प्रार्थना करते ही रहे। अंत में आपने अपने जीवन-विषयक अत्यंत संक्षिप्त नोट देने की कृपा की। इस उल्लेख से पाठकों को मालूम हो जायगा कि के साहब नामी विद्वान् होने पर भी कीर्ति के इच्छुक नहीं। कीर्ति से आप कोसों दूर भागते हैं।

के साहब का उपाधि-सहित पूरा नाम है डॉक्टर फ्रैंक अरनेस्ट के एम्० ए०, डी० लिट्०। आपके पिता लंदन के पास ही रिचमंड-नामक स्थान के रहनेवाले थे। उनका नाम था जे० ओ० के। वह बड़े ही विद्वान् और अनुभवशील थे। शहर में इनका बड़ा ही सम्मान था। वह उस नगर के ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट थे। सरकार ने उन्हें 'जस्टिस ऑफ़् दि पीस' की उपाधि दी थी। वह वहाँ की 'युवा क्रिश्चियन एसोसिएशन' की लोकल ब्रांच के सभापति थे, और इस सभा में रहकर उन्होंने चर्च-संबंधी कितने ही उपयोगी कार्य भी किए थे।

डॉक्टर साहब का जन्म रिचमंड में २९ मार्च, सन् १८७९ ई० को हुआ था। आपने प्राइवेट स्कूल में मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। पर आपको विद्या से बड़ा ही प्रेम था। आप घर पर ही परिश्रम करते रहे, और अंत में आपने लंदन-विश्वविद्यालय से बी० ए० की डिग्री भी प्राप्त कर ली।

इसके बाद आपने सरकारी नौकरी कर ली। आप बड़े ही कर्तव्यशील थे। धीरे-धीरे आप इँगलैंड की सिविल-सर्विस में भरती हो गए, और उच्च पद प्राप्त किया। पर आपको नौकरी करना पसंद न था। आरंभ ही से आप धर्म-प्रेमी थे। धार्मिक कार्य करने में आपका मन विशेष लगता था। सिविल-सर्विस में रहते हुए भी आपने कई धार्मिक और सामाजिक कार्य ऐसे किए, जिनसे ग़रीब लोगों को बड़ा ही लाभ हुआ। धीरे-धीरे आपका मन नौकरी से हटता गया। अंत को आपने इस्तीफ़ा दे दिया।

इसके बाद के साहब ने धार्मिक और शिक्षा-संबंधी कार्य करने का निश्चय किया। तब आप मिशनरी-कॉलेज में भरती हो गए। वहाँ दो वर्ष तक शिक्षा प्राप्त कर इँगलैंड के धार्मिक गुरु बनाए गए। आप 'रेवरेंड' कहलाने लगे। धार्मिक सेवा के लिये आपका उत्साह और भी बढ़ गया, और आप सन् १९०८ ई० में हिंदुस्तान चले आए। सन् १९०९ ई० में आप चर्च-मिशन हाईस्कूल, जबलपुर के प्रिंसिपल बनाए गए। आप बहुत वर्षों तक इस पद पर रहे। आपके अध्यवसाय और सुप्रबंध से इस स्कूल की बहुत उन्नति हुई।

सन् १९११ ई० में आपने विवाह किया। आपकी धर्मपत्नी भी बड़ी धर्मात्मा हैं। उन्हें अपने धर्म पर बड़ा ही प्रेम है। ईसामसीह पर उनकी बड़ी ही श्रद्धा है। वह उनके सिद्धांतों की कट्टर अनुयायिनी हैं। आप भी बड़ी ही विदुषी हैं। विद्वत्ता में आप डॉक्टर साहब से कम नहीं। ऐसे ही पति-पत्नी में सच्चा दांपत्य प्रेम देखा जाता है। मेम साहब अपने धर्म की सेवा करने के लिये सन् १९०६ में ही हिंदुस्तान को चली आई थीं।

डॉक्टर साहब में एक बड़ा भारी गुण है। उनके विद्या-प्रेम की प्रशंसा नहीं हो सकती। जिस समय हम लोग तरुणाई पाकर विषय-भोग में लिप्त हो जाते हैं, उस समय डॉक्टर साहब-जैसे योरपियन विषय-भोग से दूर रहकर विद्या की चर्चा में लीन रहते थे। घर गृहस्थी के पचड़े में पड़कर भी डॉक्टर साहब पूरे विद्या-प्रेमी बने रहे। आपका विद्याभ्यास बराबर जारी रहा। फल-स्वरूप सन् १९१६ में आपने लंदन-विश्वविद्यालय की टीचर्स-परीक्षा का डिप्लोमा प्राप्त किया, और दूसरे ही वर्ष, ३८ वर्ष की आयु में, उसी विश्वविद्यालय से एम्० ए० की परीक्षा भी पास की। सन् १९२२ ई० में आप लंदन-विश्वविद्यालय के 'डॉक्टर ऑफ़् लिटरेचर' हो गए। प्रगाढ़ विद्या-प्रेम का कैसा उत्तम आदर्श है!

सन् १९२२ और २३ में कुछ महीनों तक डॉक्टर साहब चर्च-मिशन हाईस्कूल, मेरठ के प्रिंसिपल रहे। इसके बाद आप सागर चले आए। अब आपने इसी नगर को स्थायी रूप से अपना निवास-स्थान बना लिया है। आपने निज के बँगले वग़ैरह भी तैयार करा लिए हैं।

इस तरह विद्याभ्यास और शिक्षा-प्रचार में लगे रहने पर भी डॉक्टर साहब कुछ-न-कुछ साहित्य-सेवा भी करते रहते हैं। सन् १९१८ में आपने 'प्राचीन भारतीय शिक्षा'-नामक पुस्तक लिखी। वह ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी-प्रेस से प्रकाशित हो चुकी है। इसमें यह बतलाया गया है कि प्राचीन भारत में शिक्षा का मूल, उत्पत्ति और आदर्श वैदिक काल से लेकर पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली प्रचलित होने तक कैसा रहा है। सुनते हैं, यह पुस्तक बहुत उत्तम समझी गई, और लंदन-विश्वविद्यालय में पाठ्य-पुस्तक बना दी गई है।

सन् १९२० में डॉक्टर साहब ने अँगरेज़ी-भाषा में हिंदी का कोई सौ-सवा सौ पृष्ठों का एक छोटा-सा इतिहास लिखने की कृपा की। यह पुस्तक (एसोसिएशन-प्रेस, कलकत्ता और ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी-प्रेस से) प्रकाशित हो गई है। हिंदी-पत्रों में इसकी कुछ चर्चा भी हो चुकी है। जिन दो-चार पत्र-पत्रिकाओं ने इसकी चर्चा की थी, खेद है, वे इसकी रचना के उद्देश्य को न समझ सकीं। हमने डॉक्टर साहब से एक दिन प्रश्न किया—"हिंदी में 'मिश्रबंधु विनोद'-जैसा हिंदी-भाषा का विस्तृत इतिहास मौजूद है। फिर आपने इस छोटे-से इतिहास की रचना किस उद्देश्य से की है?" डॉक्टर साहब ने उत्तर दिया—"हिंदी हिंदुस्तान की प्रधान भाषा है। परंतु हमारे नवीन योरपियन भाई उसके संबंध में कोई विशेष जानकारी नहीं रखते, न उसके महत्त्व ही को समझते हैं। दूसरी बात यह है कि अधिकांश उच्च शिक्षा-प्राप्त भारतवासी, जिनकी मातृभाषा हिंदी है, अँगरेज़ी ही के पीछे प्राण दिये फिरते हैं—उसी के साहित्य का अध्ययन करते और उसी के गीत गाते हैं। अपनी भाषा पर वे प्यार करना जानते ही नहीं। वे उसे मूर्खों की भाषा समझते हैं। वे अपनी भाषा को कुछ समझें, उन्हें भी मालूम हो जाय कि हमारी भाषा के साहित्य में भी कुछ जान है, इन्हीं सब कारणों से प्रेरित होकर मैंने इस इतिहास की रचना की है। फिर इस इतिहास से हमारी मातृभाषा के भांडार में भी एक नवीन ऐतिहासिक ग्रंथ की वृद्धि होती है। तब इसकी रचना करने में क्या हानि थी?" कितना सारगर्भ कथन है! पर नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ सुनता कौन है? हिंदी-सेवक इन उच्च शिक्षा-प्राप्त अँगरेज़ी-भाषा के गुलामों से निवेदन और आग्रह करते-करते झख मारकर बैठ गए; पर इन हज़रतों के कानों पर जूँ भी न रेंगी। एक दिन हमारे हाथ में 'माधुरी' का अंक देखकर एक एम्० ए०, एल्-एल्० बी० महाशय बोले—"यह तो 'मॉडर्न-रिव्यू' से छोटी है!" मैंने उत्तर दिया—"शायद आपने पृष्ठों की गिनती की होगी!" तब आपने छूटते ही कहा—"शायद पृष्ठों में कम न हो; पर लेखों में तो 'मॉडर्न-रिव्यू' का मुक़ाबला ज़रूर नहीं कर सकती। सुभान-अल्लाह! 'मॉडर्न-रिव्यू' में कैसे उत्तम और रोचक लेख आते हैं। हिंदीवाले अभी क़लम चलाना तक नहीं जानते!" ये इन विद्वानों की तक़रीरें हैं। हमें उन महाशय की इस तक़रीर से बड़ा क्षोभ हुआ। हमने उनसे कह दिया—"तो जनाब, आप यह सुनाते किसको हैं। हिंदी क्या आपकी भाषा नहीं है? आप क्यों नहीं उत्तम-उत्तम लेख लिखकर उसकी तरक़्क़ी कर डालते?" तब आपने चट से जवाब दिया—"क्या करें भाई, जब समय मिले, तब न?" सो आपको समय नहीं मिलता—आप कुछ करेंगे नहीं, और कहेंगे, हिंदी में रक्खा ही क्या है! इन मूर्खों के सड़े दिमाग़ों में यह ज़रा-सी बात नहीं आती कि किसी भी भाषा का भांडार तभी उत्तमोत्तम ग्रंथों या लेखों से परिपूर्ण होता है, जब उसके बोलनेवाले उसकी सेवा में दत्तचित्त रहते हैं। आशा है, ऐसे महाशय डॉक्टर के-जैसे विद्वान् और साहित्याचार्य का अनुकरण करने में कुंठित न होंगे!

डॉक्टर साहब ने एक और पुस्तक का संपादन किया है। उसका नाम है—"भारतीय महिलाओं की कविताएँ।" इस पुस्तक के तैयार करने में आपको आपकी धर्म-पत्नी ने विशेष सहायता दी थी; क्योंकि उनका ध्यान भी साहित्य-सेवा की ओर रहता है। इस पुस्तक में भारतीय महिलाओं की उत्तमोत्तम कविताओं का संग्रह है, जो भिन्न-भिन्न भाषाओं से अँगरेज़ी में अनुवादित की गई हैं। डॉक्टर साहब की धर्म-पत्नी ने बहुत-सी सुंदर कविताओं का संग्रह कर उनका अनुवाद स्वयं अँगरेज़ी में किया, जो इसी पुस्तक में सम्मिलित है। वास्तव में यह एक अच्छा संग्रह है। इससे केवल भारतीय महिलाओं के गौरव की वृद्धि



डॉक्टर एफ़० ई० के साहब और उनकी धर्मपत्नी

ही नहीं होती, उनकी प्रखर प्रतिभा और विद्वत्ता का भी प्रकाश हो जाता है। इस सत्कार्य के लिये इस दंपति-युग्म का भारतीय महिला मंडल चिरकृतज्ञ रहेगा।

के साहब हिंदी-भाषा बहुत अच्छी तरह समझ लेते हैं। यहाँ तक कि बिहारी की कविता का अर्थ भी आप लगा लेते हैं। आपको हिंदी की पुस्तकों के संग्रह का भी शौक़ है। एक बार हमने आपको अपनी 'पहेली-बुझौवल'-नामक पुस्तक भेंट में दी। एक नामी हिंदी-लेखक इस पुस्तक के कारण हम पर कटाक्ष कर चुके थे। पर डॉक्टर साहब ने उसकी प्रशंसा की, और कहा—"यह अवश्य हिंदी भाषा की अच्छी संपत्ति है।" यहाँ हमारा मतलब अपनी पुस्तक की तारीफ़ करने का नहीं है। हमने सोचा था कि डॉक्टर साहब-जैसे विद्वान् के यहाँ इस छोटी-सी पुस्तक का क्या सम्मान होगा। पर जब साल-भर बाद हमने देखा कि डॉक्टर साहब ने एकाएक उक्त पुस्तक अपनी आलमारी से निकाली, और कहा—"झाँसी का पादरी साहब इसको बड़ी तारीफ़ करता था। उसे एक दर्जन प्रतियों की आवश्यकता है।", तब हमारे आश्चर्य की सीमा न रही। पुस्तक ज्यों-की-त्यों रक्खी थी।

आजकल के साहब कबीर पर एक बड़ा ही खोज-पूर्ण ग्रंथ लिख रहे हैं। इसके लिये आपने कबीर-संबंधी बहुत-सी सामग्री एकत्र की है। आप कबीर के चरित्र की विशेष खोज करने के लिये काशी, मगहर आदि स्थानों में भी गए थे। इसमें कबीर का जीवन-चरित्र रहेगा, और उनकी कविता पर भी यथेष्ट विचार किया जायगा। हमारा विश्वास है, यह ग्रंथ बहुत सुंदर और मूल्यवान् होगा।

अब हम डॉक्टर साहब के संबंध की दो-एक बातें लिखकर यह लेख समाप्त करेंगे। सन् १९२१ में हम 'ऐतिहासिक कथा-माला'-नामक एक पुस्तक लिख रहे थे। उसके लिये हमें हज़रत ईसा से संबंध रखनेवाली दो-एक कथाओं की बड़ी ही आवश्यकता थी। एक दिन हम अपने एक साहित्य-प्रेमी मित्र के साथ बाज़ार को जा रहे थे। डॉक्टर साहब सपत्नीक भाषण करके लौट रहे थे। इसके पहले डॉक्टर साहब से हमारा परिचय न था। वह उस समय सागर में नए ही आए थे। हमारे मित्र ने हमसे कहा—"इन्हीं साहब से क्यों नहीं पूछ लेते?" हमने फ़ौरन् साहब से कहा—"क्या आप कृपा करके हज़रत ईसा के संबंध की दो-एक ऐतिहासिक घटनाएँ बतला सकेंगे?" साहब ने प्रेम से जवाब दिया—"अगर आप बँगले पर आने की कृपा करें, तो मैं आपकी सेवा के लिये तैयार हूँ।" हमने इतवार का वादा किया। पर उस इतवार को न जा सके। उस नासमझ मित्र ने हमें ज़बरदस्ती बीच ही में चौपड़ खेलने के लिये रोक लिया, और हमारे बार-बार आग्रह करने पर कहा—"योरपियन लोगों को ऐसी कहाँ याद रहती है। उन्हें बीसों काम लगे रहते हैं। अगले इतवार को देखा जायगा।" ख़ैर, अगले इतवार को हम दोनों मित्र साहब के बँगले पर पहुँचे। साहब ने हमारा आदर तो किया, पर साथ ही कहा—"हम उस दिन आपकी प्रतीक्षा करते-करते थक गए। आप जानते हैं, प्रतीक्षा का समय बड़ी बेचैनी से कटता है। उस दिन हमारा बहुत समय नष्ट हुआ। आपने ऐसा क्यों किया? खेद है, भारतवासी समय और वादे का मूल्य नहीं जानते!" कैसी खरी बात थी! लज्जा से हम लोगों के सिर नीचे हो गए, और हमें क्षमा-प्रार्थना करनी पड़ी। सचमुच हम लोग समय का मूल्य नहीं जानते, और प्रतिज्ञा पूर्ण न करने में तो हम अपना बड़प्पन तक

समझने लगे हैं ! लोग योरपियनों की निंदा भले ही किया करें ; पर अभी हमें अनेक बातों में तो उनसे ही शिक्षा लेनी पड़ेगी ।

डॉक्टर साहब बड़े ही मिलनसार हैं । एक बार हम कई मित्र कारण-वश कचहरी गए । काम से जल्दी छुट्टी पा गए । अब के साहब के यहाँ चलने की ठहरी । थोड़ी ही दूरी पर बँगला था । गरमी के दिन थे—कड़ाचूर गरमी पड़ रही थी । दो पहर का समय था । सनसनाती हुई लू चल रही थी । किसी-किसी ने कहा—ऐसे समय साहब का मिलना कठिन है । बँगले में पड़े आराम करते होंगे । पर हैं अल्हड़ मित्र न माने, बढ़ते ही चले गए । अंत में साहब के बँगले के पास आ पहुँचे । देखा, तो चारों ओर सन्नाटा था ; कुली पंखा खींच रहा था । उसने कहा—"साहब अभी न मिलेंगे, आराम कर रहे हैं ।" तब हम लोग सुस्ताने के विचार से दालान में पड़ी हुई कुर्सियों पर आ डटे, और लगे आपस में गप-शप लड़ाने । दूसरे ही क्षण क़मीज़ पहने हुए साहब आ पहुँचे, और हम लोगों से हाथ मिलाया । बात तो मामूली है ; पर इससे के साहब की मिलनसारी और निरभिमानता प्रकट होती है ।

डॉक्टर साहब का स्वभाव बड़ा ही सरल है । आपको गान-वाद्य से भी प्रेम है । कभी-कभी आप पत्नी-सहित बेला बजाते और गाते हुए मिलते हैं । तब आप हमसे कहने लगते हैं—"मि० ज़हूरबख़्श, तुम बाजा बजाना जानता है ? गाना गाएगा ?" हम जवाब देते हैं—"हमें यह कला मालूम नहीं !" दुबारा मिलने पर आप फिर वही सवाल करते हैं; गोया हम इन कलाओं को सीख आए हों ! कभी-कभी आप हमें गाना-बजाना स्वयं सुनाने लगते हैं । इन साधारण बातों से के साहब की प्रकृति का अच्छा परिचय मिलता है ।

हम बाबू श्यामसुंदरदासजी से प्रार्थना करते हैं कि यदि वह कभी हिंदी-कोविद-रत्न-माला का तृतीय भाग तैयार करें, तो उसमें अपूर्व हिंदी-प्रेमी डॉक्टर के साहब को स्थान देने का ख़याल अवश्य रक्खें ।

हाँ, एक बात रह गई । डॉक्टर साहब 'माधुरी' को उच्च कोटि की पत्रिका ही नहीं, विलायती मासिक पत्रों के मुक़ाबले की समझते हैं ।

ज़हूरबख़्श

उद्गार

स्नेह चाहिए सत्य, सरल !
कैसा ऊँचा-नीचा पथ है ;
मा ! उस सरिता का अविरल,
तेरे गीतों को वह जिसमें
गाती है टल्-टल् छल्-छल् !
मैं भी उससे गीत सीखने
आज गई थी उसके पास,
उसके कैसे मृदुल भाव हैं,
उज्ज्वल तन, मन भी उज्ज्वल !
कितने छंदों में लहराकर
गाती है वह तेरे गीत,
एक भाव से अपने सुख-दुख
तुझे सुनाती है कल्-कल्
मा ! उसको किसने बतलाया
उस अनंत का पथ अज्ञात,
वह न कभी पीछे फिरती है,
कैसा होगा उसका बल !
एक ग्रंथि भी नहीं पड़ी है
उसके सरल, मृदुल उर में,
उसका कैसा कर्म-योग है,
वह चंचल है, या अविचल !

श्रीसुमित्रानंदन पंत

टर्की से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

टर्की में एक नए युग का आविर्भाव हो रहा है । हर तरफ़ परिवर्तन की हवा चल रही है । पुराने ख़यालात, पुराने रस्म-रवाज, पुरानी चाल-ढाल, पुरानी बातें, सब हवा हो रही हैं । उनके बदले नए विचार, नए क़ानून-क़ायदे, नई संस्थाएँ और नए रहन-सहन के ढंग जारी हो रहे हैं । टर्की की हरएक

दिशा से—हर कोने से—परिवर्तन की पुकार आ रही है। आज से १५ वर्ष पहले वहाँ सुल्तान अब्दुलहमीद का निरंकुश शासन था। आज वहाँ न ख़लीफ़ा है, न सुल्तान। आज वहाँ संसार का सबसे आधुनिक प्रजातंत्र राज्य स्थापित है, और तुर्क लोग किसी ख़लीफ़ा या सुल्तान के ग़ुलाम नहीं, बल्कि स्वयं अपने मालिक हैं। पहले की टर्की और आजकल की टर्की का मुक़ाबला करने से ज़मीन-आसमान का अंतर दिखाई पड़ेगा। जो टर्की पहले योरप का 'सिकमैन' (बीमार आदमी) गिना जाता था, और अपनी ज़िंदगी के आख़िरी दिन गिन रहा था, वही आज नए परिवर्तन के झकोरों से हिलकर अपना घर सँभाल रहा है; दुनिया की आज़ाद क़ौमों के बीच बैठने के लायक़ बन रहा है। आज वहाँ न पुरानी काहिलों की ज़िंदगी है, न पुराने दक़ियानूसी ख़यालवाले मुल्लाओं का दौरदौरा है, न पुराने मज़हबी विचारों और रस्म-रवाजों का अनियंत्रित शासन है। जो कुछ भी है, वह सब परिवर्तन के रंग में रँगा हुआ। टर्की का यह परिवर्तन वर्तमान समय में एशिया की—विशेष करके मुसलमानी संसार को—सबसे बड़ी घटना कही जाय, तो अत्युक्ति नहीं। टर्की के इस परिवर्तन का असर केवल टर्की पर ही नहीं पड़ा। इसके क्रांतिकारी असर से मिसर, अफ़ग़ानिस्तान, एशियामाइनर, सीरिया और फ़लस्तीन भी अछूते नहीं बचे। हिंदुस्तान के मुसलमानों पर प्रकट में इसका कोई बड़ा असर पड़ा हुआ नहीं दिखाई पड़ता। पर बहुत दिनों तक वे इसके असर से नहीं बच सकते। जल्दी हो या देर में, उन पर भी एक-न-एक दिन इस क्रांतिकारी परिवर्तन का प्रभाव अवश्य पड़ेगा। आइए देखें, इस नवीन युग में टर्की में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं, और मज़हब के दीवाने, पुराने ख़यालों के शहीद, ग़ुलामी में पगे हुए हम अभागे हिंदुस्तानियों को उनसे क्या शिक्षा मिलती है।

वर्तमान टर्की की सबसे बड़ी बात जो सहसा ध्यान को आकर्षित करनेवाली है, वह है राष्ट्रीयता की लहर। राष्ट्रीयता का भाव तुर्कों के जीवन का प्राण-वायु हो रहा है। उनके जीवन का हरएक विभाग, उनकी ज़िंदगी का हरएक पहलू राष्ट्रीयता के रंग से रँगा हुआ है। जिस बात से उनकी राष्ट्रीयता की रक्षा हो, वही उनका धर्म, वही उनका कर्म। जिस बात से उनका मुल्क आज़ाद रहे, वही उनका मज़हब है। वे तुर्क पहले हैं, मुसलमान बाद को। मुल्क की आज़ादी के लिये, राष्ट्रीयता की रक्षा के लिये वे मज़हब की परवा करने को तैयार नहीं। इस समय तुर्कों के जीवन का सबसे बड़ा उद्देश अपनी नई पाई हुई राष्ट्रीयता की रक्षा करना और उसको बढ़ाना है। इसके लिये वे अपने मज़हब को भी तर्क करने के लिये तैयार हैं। इसी राष्ट्रीयता के भाव की बदौलत आज तुर्क योरप के स्वतंत्र देशवालों के सामने अपना सिर ऊँचा करके चल सकता है। जिस समय टर्की राष्ट्रीयता की लहर में बह रहा है, उस समय हमारा देश सांप्रदायिकता का शिकार और मज़हबी लड़ाइयों का अखाड़ा हो रहा है। राष्ट्रीयता, देश-भक्ति या नैशनलिटी किस चिड़िया का नाम है—यह लोग जानते भी नहीं। यहाँ धर्म के आगे राष्ट्रीयता या देश-भक्ति की कोई इज़्ज़त नहीं। हिंदू-मुसलमान मज़हब के पीछे देश का सत्यानाश कर रहे हैं। याद रहे, जब तक यह मज़हब की बू हिंदू-मुसलमानों में ज़रा भी बनी रहेगी, तब तक मुल्क में क़ौमियत का पैदा होना न सिर्फ़ बहुत ही मुशकिल, बल्कि नामुमकिन है। हिंदू-मुसलमानों में एकता एवं राष्ट्रीयता तभी पैदा हो सकती है, जब दोनों अपने-अपने धर्म को तुर्कों की तरह हमेशा के लिये तलाक़ दे दें, या कम-से-कम धर्म का दर्जा राष्ट्रीयता या देश-भक्ति के नीचे रक्खें। जिस देश के लोग मज़हब की छोटी छोटी-सी बातों के लिये एक दूसरे का सिर फोड़ते हों, जो इस बात के लिये एक दूसरे का ख़ून करते हों कि किसी जगह के सामने बाजा न बजाया जाय, या जो जाति-पाँति की हज़ारों टुकड़ियों में बँटे हों, जो खानपान और छुआछूत के असंख्य बंधनों से जकड़े हुए हों, उनमें राष्ट्रीयता की कल्पना करना क्या दिमाग़ ख़राब करना नहीं है? यदि आप चाहते हैं कि हममें भी राष्ट्रीयता पैदा हो, हम भी आज़ाद बनें, तो तुर्कों की तरह आप भी मज़हब और संप्रदाय के तंग उसूलों को हटाकर राष्ट्रीयता को अपने हृदय की अधिष्ठात्री देवी बनाइए। तभी आप आज़ाद क़ौमों के बीच बैठने-लायक़ बन सकते हैं।

टर्की के इस परिवर्तनमय युग की दूसरी मार्के की बात स्त्रियों की स्वाधीनता है। टर्की की स्त्रियों ने १० वर्षों में जितनी उन्नति की है, उतनी शायद ही किसी दूसरे देश की स्त्रियों ने की हो। आज से १० वर्ष पहले तुर्की महि-

जाएँ बिना बुर्क़ा डाले मकान के बाहर न निकल सकती थीं। पर्दा करना मुसलमानी धर्म का एक अंग माना जाता था। पर आज ये सब पुरानी बातें बदल गई हैं। आज वहाँ न बुर्क़ा है, न पर्दा। तुर्की स्त्रियों ने सदा के लिये पर्दे को तलाक़ दे दी है। आज वहाँ स्त्रियाँ बिना किसी पर्दे के, मुँह खोले, आम सड़कों पर, बाग़ों और बाज़ारों में घूमती नज़र आती हैं। स्त्रियाँ प्रत्यक्ष में टेनिस खेलती हैं, कुश्ती लड़ती और खेल-तमाशों में हिस्सा लेती हैं। पुराने विचार के खूसट बुड्ढे सिर धुनते हैं; पर सुधार का जो प्रवाह बह चुका, वह अब नहीं रुक सकता। पहले वहाँ ट्रामगाड़ियों का एक हिस्सा स्त्रियों के लिये अलग रहता था, और उसमें जालीदार पर्दे पड़े रहते थे। पर अब वे सब पर्दे और जालियाँ निकाल दी गई हैं। अब स्त्रियाँ जीवन के हर विभाग में, सरकार के हर महकमे में घुस रही हैं। वहाँ स्त्रियाँ दफ़्तरों, दूकानों, बैंकों, अस्पतालों और पोस्ट ऑफ़िसों में बिना बुर्क़े के काम करती दिखाई पड़ती हैं। स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में बड़ी-बड़ी उम्र की लड़कियाँ और लड़के हज़ारों की तादाद में पढ़ते नज़र आते हैं। विद्यार्थिनियों और विद्यार्थियों में कोई भेद नहीं रक्खा जाता। तुर्की स्त्रियों ने अपनी पोशाक में भी बड़ा भारी परिवर्तन कर दिया है। उसमें पूर्व और पश्चिम का बड़ा अच्छा सम्मिश्रण किया गया है। पर स्त्रियों की सामाजिक स्वतंत्रता के संबंध में सबसे मार्के की जो बात वहाँ हुई है, वह है बहुविवाह के विरुद्ध क़ानून का पास होना। अब से पहले एक पुरुष एक से अधिक स्त्रियों के साथ शादी कर सकता था। पर यह प्रथा अब क़रीब-क़रीब उठ गई है। स्त्रियाँ पुरुषों की ग़ुलाम नहीं, बल्कि ख़ुदमुख़्तार बन रही हैं। सारांश यह कि तुर्की स्त्रियाँ अपने को राष्ट्रीय जीवन में उचित स्थान प्राप्त करने के योग्य बना रही हैं। वर्तमान टर्की इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि जो जाति स्त्रियों का उचित आदर करती है, उन्हें सम्मान और स्वतंत्रता के अधिकार देती है, वही संसार में स्वाधीनता की अधिकारिणी हो सकती है। अब ज़रा इन तुर्की स्त्रियों से अपनी स्त्रियों का मुक़ाबला करिए। पर्दे ही को ले लीजिए। जिस समय तुर्की महिलाएँ पर्दे और बुर्क़े को तलाक़ देकर स्वतंत्रता के पवित्र वायु-मंडल में विचरती हुई अपनी शारीरिक और मानसिक उन्नति में लगी हुई हैं, उस समय आपकी स्त्रियाँ पर्दे के क़ैदख़ाने में बंद रहकर सूर्य और चंद्रमा को भी अपने मुख-दर्शन से वंचित कर रही हैं। आप बंबई और अन्य दो-एक नगरों को छोड़कर हिंदुस्तान के किसी भी शहर में चले जाइए, आपको स्त्रियाँ कहीं भी नज़र न आवेंगी। स्कूल और कॉलेज उनके लिये विद्याध्ययन के स्थान नहीं हैं। पुस्तकालयों में बैठकर वे लाभ नहीं उठा सकतीं। बाग़-बग़ीचों में जाकर वे स्वच्छ वायु का सेवन नहीं कर सकतीं। भोजन में भी मर्दों के खाने के बाद जो बच जाता है, वे उसे खाने की अधिकारिणी होती हैं। अच्छा भोजन, साफ़ हवा और उपयोगी शिक्षा, ये तीन चीज़ें मनुष्यों के शारीरिक और मानसिक विकास के लिये अत्यंत आवश्यक हैं। हमारे यहाँ की स्त्रियाँ इन तीनों चीज़ों से वंचित हैं। न वे अच्छा भोजन पाती हैं, न साफ़ हवा में घूम-फिर सकती हैं और न शिक्षा ही से लाभ उठा सकती हैं। इस पर्दे की प्रथा के कारण ही साफ़ हवा न पाने से न-जाने कितनी स्त्रियाँ असमय में ही मौत और बीमारी का शिकार हो जाती हैं। प्रायः देखा गया है कि हमारे देश में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक तपेदिक़ या क्षयरोग का शिकार होती हैं। इसका कारण यही पर्दे का रवाज है, जिसके कारण स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी में बंद रहकर जानती भी नहीं कि साफ़ हवा में साँस लेना किसे कहते हैं। जिस देश की आधी आबादी इस तरह पर्दे की बेड़ी में जकड़ी हुई अविद्या और सामाजिक कुरीतियों के अंधकार में पड़ी हो, उससे आप क्या उन्नति की आशा कर सकते हैं? इसी से तो बड़े-बड़े समाज-सुधारक और देश-भक्त घर के बाहर समाज-सुधार और देश-सुधार पर बड़े लंबे-लंबे लेक्चर झाड़ते हैं, पर घर के अंदर पैर रखते ही उनका सब जोश काफ़ूर हो जाता है, समाज-सुधार के सब प्रस्ताव ताक़ पर रक्खे रह जाते हैं। गृहलक्ष्मी के सामने एक भी नहीं चलती। क्या करें, लाचार होकर बैठ जाते हैं। अंधकार के सामने प्रकाश को, अज्ञान के सामने ज्ञान को और कायरता के सामने वीरता और साहस को हार खानी पड़ती है। अस्तु, जिस समय टर्की में १८-१८, २०-२० वर्ष की लड़कियाँ हज़ारों की तादाद में स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा-लाभ करती हैं, उस समय यहाँ ८-८, १०-१० वर्ष की लड़कियाँ विवाह के बंधन में जकड़ दी जाती हैं। जिस देश में ८ वर्ष में लड़कियाँ पत्नी बन जाती हों, १२-१३

या १४ वर्ष में माताएँ कहलाने लगती हों, उस देश की रक्षा ईश्वर ही कर सकता है। १३-१४ वर्ष की माताओं की जो संतानें होंगी, वह क्या आप समझते हैं, भीम, अर्जुन, शिवाजी, गुरु गोविंदसिंह, राममूर्ति, कणाद, गौतम या कपिल होंगी। बीजू आम के पेड़ से क्या आपने कभी लँगड़ा आम पैदा होते देखा है? शृगाली के पेट से क्या सिंह पैदा होते आपने कभी सुना है? इस बचपन की शादी के कारण ही, मैंने देखा है, अक्सर १०० में ८० हालतों में हिंदुस्तानियों की पहली संतान जाया जाती है, और अगर मौत से बच भी गई, तो ज़िंदगी-भर बीमारियों का शिकार बनी रहती है। अब ज़रा उन स्त्रियों की हालत पर आँसू बहाइए, जो विधवाएँ कहलाती हैं। टर्की में जिस तरह पति को पत्नी के मर जाने पर विवाह का अधिकार है, उसी तरह पत्नी को भी पति के मर जाने पर विवाह करने या न करने का अधिकार है। पर हिंदुस्तान में १ वर्ष से लेकर १८ वर्ष तक की लाखों विधवाएँ वैधव्य-यातना को भोगती हुई हिंदू-जाति और हिंदू-धर्म को रो रही हैं। पुरुष तो एक स्त्री के मरने पर दूसरा, दूसरी के मरने पर तीसरा और तीसरी के मरने पर चौथा विवाह करता चला जाता है (मैंने तो एक मनुष्य को एक दूसरे के बाद पाँच-पाँच विवाह करते देखा है), पर स्त्री बेचारी, चाहे वह किसी भी उम्र में ब्याही गई हो, फिर दूसरा विवाह नहीं कर सकती। इन विधवाओं की दुःख-भरी दशा ऐसी नहीं है, जो साधारण शब्दों में लिखी जा सके। पत्थर का हृदय भी उनकी हालत पर पसीज सकता है। पर हिंदू-जाति का हृदय पत्थर से भी कड़ा है। हिंदू-जाति बात-बात पर दया और अहिंसा की दुहाई देती है; परंतु उसकी इस दया और अहिंसा पर विधवाओं का कोई अधिकार नहीं है। धर्म का ठेकेदार हिंदू छोटे-छोटे कीड़ों पर दया कर सकता है; पर विधवाओं के लिये वह अपने हृदय में दया को स्थान नहीं दे सकता। अस्तु। टर्की की तरह हिंदुस्तान भी यदि उन्नति करना चाहता है, तो उसे अपनी स्त्री-जाति को स्वतंत्र शिक्षित, बलिष्ठ और तेजस्वी बनाना होगा।

शिक्षा के संबंध में भी टर्की आशातीत उन्नति दिखा रहा है। विज्ञान और कला-कौशल की शिक्षा पाने के लिये हर साल अनेकों विद्यार्थी विदेशों को जाते हैं। वहाँ से लौटकर अपने देश में उन-उन बातों का प्रचार करते हैं। एक हमारा देश है, जहाँ समुद्र-यात्रा करने ही से धर्म कोसों दूर भागता है। ऐसी हालत में विदेशों में शिक्षा पाने के लिये हम जा ही कैसे सकते हैं। टर्की में हर प्रकार की शिक्षा का प्रबंध हो रहा है। यहाँ तक कि नाट्यकला की शिक्षा देने के लिये भी वहाँ की सरकार की सहायता से एक कॉलेज खुल गया है। क्या इस तरह का एक भी कॉलेज हिंदुस्तान में है? कुस्तुंतुनिया का मिलिटरी (सैनिक) कॉलेज और मेडिकल कॉलेज विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी शिक्षा का ढंग और प्रबंध बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है। मुस्तफ़ा कमालपाशा और अनवरपाशा इसी मिलिटरी कॉलेज के पढ़े हुए छात्र हैं। वहाँ शिक्षा के लिये एक नया जोश लोगों में पैदा हो गया है, और हर तरफ़ शिक्षा-प्रचार की ओर लोग दत्तचित्त हो रहे हैं। वहाँ सबसे बड़ी ध्यान देने-योग्य बात यह है कि स्कूलों और कॉलेजों में स्त्रियाँ उसी तरह स्वतंत्रता के साथ और बड़ी संख्या में पढ़ती हैं, जिस तरह पुरुष। हमारे यहाँ जब पुरुषों की ही शिक्षा का काफ़ी प्रबंध नहीं है, तब स्त्रियों की शिक्षा का ज़िक्र ही क्या?

टर्की के संबंध में एक ख़ास ध्यान देने-योग्य बात वहाँ के लोगों का उत्साही जीवन है। जो तुर्क पहले आलसी होते थे, ऐयाशी की ज़िंदगी बिताते थे, हुक़ा पीते और हूरों का स्वप्न देखते थे, वे ही आज अव्वल नंबर के खिलाड़ी, साहसी और कसरती हो गए हैं। वे घुड़दौड़ करते हैं, शिकार खेलते हैं, दौड़ते हैं, कसरत करते हैं, फ़ुटबाल, हाकी और टेनिस खेलते हैं। पहले वहाँ लोग हिंदुस्तानियों की ही तरह ढीली-ढाली पोशाक पहनते थे; पर अब योरपियन ढंग का कोट और पैंट पहनने का आम रवाज हो गया है। स्कूल-कॉलेजों में विद्यार्थियों के लिये यह लाज़िमी है कि वे कोट-पैंट पहनकर आवें। सारांश यह कि टर्की ने योरप की पाश्चात्य सभ्यता को अपना आदर्श बना लिया है, और वह यह देखता है कि यदि हमें जीवन-संग्राम में योरप के मुक़ाबले में ठहरना है, तो उन्हीं की तरह साहसी और उद्योगी बनना पड़ेगा, उन्हीं की तरह जीवन को आनंदमय बनाने की योग्यता हासिल करनी होगी। एक तुर्क हैं, जो संसार को असार और माया का खेल न समझकर जीवन को यथाशक्ति सुखी, आनंदमय और उत्साहमय बनाने की चेष्टा में लगे हुए हैं, और एक हम हैं, जो संसार को असार और मिथ्या मानकर उत्साह, उद्योग और साहस से कोसों दूर जा रहे हैं। हम यह विश्वास करते हैं कि

मनुष्य-जीवन दुःखमय है, और इस दुःखमय जीवन से मोक्ष पाना ही मनुष्य-जीवन का परमोच्च उद्देश्य है। तमाम उत्साह पर पानी फेरनेवाली यह वैराग्य की शिक्षा हमें माता के दूध के साथ साथ मिलती है। हमारे यहाँ के उपदेशक, विद्वान् और साधु-संन्यासी, सब यही शिक्षा देते हैं कि यह संसार असार और मिथ्या है। इस वैराग्य की शिक्षा का ही यह फल है कि उत्साह हमारे जीवन से बिलकुल जाता रहा; जीवन हमें बोझ मालूम होने लगा; अकर्मण्यता, आलस्य तथा निरुत्साह हमारे साथी बन गए; हमारा व्यापार नष्ट हो गया; हमारे बच्चों के लिये पेट-भर अन्न घर में न रहा; दूसरों के पैरों की जूतियाँ हम बन गए; संसार की असभ्य जातियों के बीच हमारा शुमार होने लगा। सचमुच जब सांसारिक उन्नति हमारा उद्देश्य हो न रहा, और हम संसार को तुच्छ तथा मिथ्या एवं जीवन को दुःखमय समझने लगे, तब हमारी दुनियावी तरक्की हो, तो कहाँ से ? नतीजा यह हुआ कि हम दिन-पर-दिन गिरते गए। जिस जाति के छोटे-छोटे बालक भी वैराग्य के ग्रंथों या उपनिषदों का पाठ करते और समझते हों कि यह संसार असार और मिथ्या है, समस्त सांसारिक पदार्थ तुच्छ और हेय हैं, उसकी ऐसी दुर्दशा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

वर्तमान टर्की की सबसे बड़ी बात वहाँ के लोगों की धार्मिक स्वतंत्रता है। जो तुर्क पहले दुनिया-भर में सबसे ज़्यादा तंगदिल, कट्टर और मज़हबी गिने जाते थे, दुनिया-भर को इस्लाम के झंडे के नीचे लाने का स्वप्न देख रहे थे, वे ही आज मुसलमानों में सबसे ज़्यादा आज़ाद-ख़याल हो रहे हैं। मज़हब की कोई बड़ी पर्वा अब वे नहीं करते। उन्हें एक तरह से ला-मज़हब कहा जाय, तो ग़लत नहीं। इस बात में उन्होंने योरप को अपना आदर्श बना लिया है। उन्होंने देखा कि तंग-मज़हबी उसूलों और रस्म-रवाजों के क़ायम रखने से राष्ट्रीयता में विघ्न पड़ता है। बस, फ़ौरन् ही उन्होंने मज़हब को राष्ट्रीयता के मुक़ाबले में दूसरा दर्जा दे दिया। अगर मज़हब से उनकी राष्ट्रीयता को हानि पहुँचती है, तो वे उस मज़हब को फ़ौरन् उठा देने के लिये तैयार हैं। बड़ी-से-बड़ी चीज़ भी, चाहे वह मज़हब ही क्यों न हो, अगर उन्हें एक राष्ट्र होने से रोकती है, तो वे उसे क़ायम रखने के लिये तैयार नहीं। उन्होंने देखा, ख़लीफ़ा के रहने से मुल्क की आज़ादी में फ़र्क़ आता है। बस, बात-की-बात में ख़लीफ़ा को निकाल बाहर किया। उन्होंने इस बात की पर्वा नहीं की कि ख़िलाफ़त छः सौ बरस की पुरानी प्रथा है। हिंदुस्तान के मुसलमान शायद उन्हें रिंद, काफ़िर और ला-ईमान कहें, पर विदेशियों की जूतियाँ चाटकर भी पाक बने हुए हिंदुस्तानी मुसलमानों से अपने मुल्क की आज़ादी के लिये काफ़िर और आज़ाद बने हुए तुर्क हज़ारगुने अच्छे हैं। जिस तरह आज से १० वर्ष पहले टर्की में लोग धर्म के पीछे दीवाने हो रहे थे, उसी तरह आज इस नए युग में भी धर्म का पागलपन हम लोगों पर सवार है। हमारी ज़िंदगी का हरएक पहलू मज़हब के रंग में रँगा हुआ है। पग-पग पर धार्मिक बंधन आगे बढ़ने से हमें रोकता है। बात-बात में धर्म जाने का डर हमें लगा रहता है। प्रचलित रीति-रवाज के विरुद्ध ज़रा भी सिर उठाने की चेष्टा किसी ने की कि धर्म की दुहाई दी जाने लगी। समुद्र-पार गए कि धर्म छोड़कर भागा; किसी दूसरे मनुष्य का छुआ भोजन किया कि धर्म ने इस्तीफ़ा दिया; किसी एक जाति के बनिए ने किसी दूसरी जाति के बनिए के यहाँ शादी की कि धर्म ने जाने का अल्टिमेटम दिया। कहाँ तक कहें, धर्म के आधार पर हमारे सामाजिक बंधन हमें ऐसा जकड़े हुए हैं कि कभी आज़ादी का ख़याल भी हमें नहीं आ सकता।

आज से पहले टर्की में क़ुरान और नमाज़, दोनों अरबी भाषा में पढ़े जाते थे, जिसका एक अक्षर भी तुर्क लोग न समझते थे। उनके लिये अरबी भाषा वैसी ही अपरिचित है, जैसे ग्रीक और लैटिन। जिस तरह हिंदुस्तान में लोग संस्कृत को देववाणी और पवित्र भाषा मानते हैं, उसी तरह पहले तुर्क लोग अरबी भाषा को देववाणी मानते थे, पर आजकल अरबी भाषा का स्थान तुर्की भाषा ने ले लिया है। क़ुरान का अनुवाद तुर्की भाषा में हो गया है, और उसी में क़ुरान पढ़ा-पढ़ाया जाता है। नमाज़ भी तुर्की भाषा ही में पढ़ी जाती है। इसके अलावा और भी जितने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक कार्य होते हैं, सब तुर्की भाषा ही में किए जाते हैं। इसीलिये तुर्की भाषा दिन-पर-दिन तरक़्क़ी करती जा रही है। पर हम अब भी वेद, उपनिषद् और गीता को संस्कृत-भाषा ही में रटते हैं। कैसे आश्चर्य की बात है कि जो भाषा सर्वसाधारण के लिये उतनी ही कठिन है, जितनी ग्रीक या लैटिन, वह तो देव-

जाती गिनी जाय, उसको सबसे ऊँचा स्थान दिया जाय, यावत् धार्मिक कृत्य उसी के द्वारा किए जायँ ; पर मातृभाषा को, जिसे माता के दूध के साथ पीते हैं, जिसके द्वारा अपने सब भाव ठीक-ठीक प्रकट कर सकते हैं, उसे हम तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं—संस्कृत के मुक़ाबले में नीचा स्थान देते हैं। हम लोगों में यह अंधविश्वास जम गया है कि जब तक संस्कृत-भाषा के मंत्रों द्वारा ईश्वर-प्रार्थना न की जायगी, तब तक हमारी आवाज़ ईश्वर तक पहुँच ही नहीं सकती। यह अंधविश्वास हमारी बुद्धि को संकुचित बनाए हुए है, इसी से हम लोगों में स्वयं सोचने की शक्ति का ह्रास हो गया है। इसी से मातृभाषा की उन्नति में भी रुकावट पड़ रही है। हमारी दिमाग़ी तरक़्क़ी, हमारे साहित्य की उन्नति, हमारा यथेष्ट मानसिक विकास तब तक पूरी तरह नहीं हो सकता, जब तक हम उसी तरह संस्कृत-भाषा की ग़ुलामी से अपना पिंड छुड़ाकर मातृभाषा को न अपनावेंगे, जिस तरह टर्की ने अरबी-भाषा को हटाकर तुर्की-भाषा को अपनाया है।

प्यारे नवयुवको! वर्तमान टर्की का इतिहास इस बात का जीता-जागता उदाहरण है कि वही जाति दुनिया में क़ायम रह सकती है, वही मुल्क आज़ादी हासिल कर सकता है जो समय के अनुसार चलने को तैयार है, जो राष्ट्रीयता के लिये धर्म या मज़हब की भी पर्वा नहीं करता, और जो मुल्क की आज़ादी के लिये प्राचीन-से-प्राचीन संस्थाओं को भी उठा देने से मुँह नहीं मोड़ता। तंग मज़हबी के ख़याल टर्की को हमेशा से ग़ुलाम बनाए हुए थे, उसकी तरक़्क़ी के रास्ते में रोड़े अटका रहे थे। यही हाल हिंदुस्तान का भी है। धर्म या मज़हब यहाँ भी हमारी ग़ुलामी का कारण हो रहे हैं। जब तक हिंदू और मुसलमान अपने-अपने मज़हब के तंग उसूलों पर डटे रहेंगे, जब तक वे राष्ट्रीयता के मुक़ाबले में मज़हब को छोटा दर्जा न देंगे, जब तक वे धर्म के नाम पर चलनेवाली अनेक हानिकारक संस्थाओं और प्रथाओं को न हटावेंगे, तब तक हिंदू-मुसलमानों में एका नहीं हो सकता, और न तब तक स्वराज्य या स्वाधीनता ही मिल सकती है। प्यारे नवयुवको! टर्की का उदाहरण तुम्हारे सामने मौजूद है। जिस मार्ग पर चलकर टर्की ने तरक़्क़ी की है, उसी मार्ग पर चलकर आप भी संसार की उन्नत जातियों के बीच बैठने के लायक़ बन सकते हैं। आपके लिये कोई दूसरा रास्ता नहीं है। आपका देश तीन लोक से न्यारा नहीं है। यदि टर्की के उदाहरण से भी आप न चेतेंगे, तो सिवा इसके और क्या कहा जा सकता है कि "उनसे बढ़कर अंधा कौन है, जो देखकर भी नहीं देखते।"

जनार्दन भट्ट

शिमला

शिमला एक अत्यंत सुंदर नगर है। कोई और अन्यत्र पहाड़ पर बसी हुई बस्ती तो शायद इतनी मनोहर हो भी ; पर कदाचित् दूसरा कोई शहर नीचे इतना न रमणीक होगा।

तारादेवी-स्टेशन पहुँचते ही पर्वत के लावण्य-पूर्ण रूप के दर्शन होने लगते हैं। चीड़ के लंबे वृक्ष, जो नीचे रहनेवालों को कभी देखने को नहीं मिलते, बहुत ही भले प्रतीत होते हैं। मंद-मंद शीतल वायु ग्रीष्म से तपे हुए शरीरों को शांति पहुँचाती है, मानव-हृदय एक नई उमंग तथा नवजीवन का अनुभव करता है। स्थान-स्थान पर रक्तवर्ण बड़े-बड़े पुष्प पेड़ों में दृष्टि-गोचर होते हैं, जो जंगल की शोभा को मानो सहस्रगुना बढ़ाए देते हैं।

शिमला-स्टेशन तो मामूली-सा है, किंतु स्टेशन से बाहर निकलते ही वास्तविक शिमला दिखाई देने लगता है। नवीन व्यक्ति के लिये तो यह स्थान बहुत ही रुचिकर प्रतीत होता है। स्टेशन से कुछ आगे चलकर गारटन-कैसल मिलता है। यह एक बड़ा सुंदर और भारी मकान है। इसमें वायसराय का दफ़्तर है। तनिक आगे बढ़ने पर कौंसिल-चैंबर मिलता है। ये दोनों भवन मालरोड के ऊपर हैं। इस जगह पर मालरोड बहुत ही रमणीक है। यहाँ खड़े होकर मनुष्य दूर के पर्वत देख सकता है। हिम से आच्छादित पहाड़ भी यहाँ से दिखाई देते हैं।

इस जगह के आसपास जितनी छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं, उन पर कौंसिल के मेंबरों के बँगले हैं। सब पहाड़ियों पर शिमले की बस्ती है।

आगे चलकर एक बेंच मार्ग के एक ओर पड़ी हुई मिलती है। यहाँ से अनंडेल का मैदान दिखाई देता है।



शिमले का क्राइस्ट-चर्च



शिमले का पोस्ट ऑफ़िस



पश्चिमी शिमला



माल-रोड

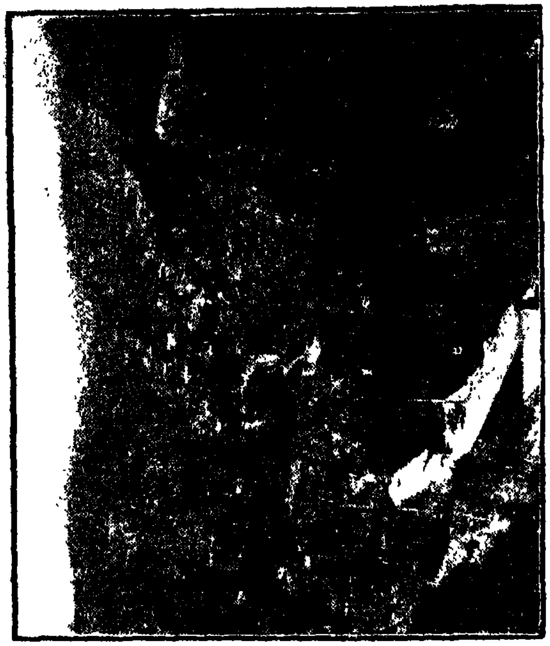
इस बेंच पर बैठकर बहुत लोग यहाँ से घुड़दौड़ देखा करते हैं।

अनंडेल कईएक पहाड़ों के बीच में एक मैदान है, जो कि लाखों रुपए ख़र्च करके घुड़दौड़ के लिये बनवाया गया है, और शिमले से बहुत नीचा है। यहाँ एक कंपनीबाग़ भी है। घुड़दौड़ देखने के लिये मैदान के एक ओर कुछ मकान बने हुए हैं।

पिकनिक के लिये यह स्थान बहुत ही हृदयाकर्षक है। ग्रीष्म-ऋतु में सबेरे पाँच बजे उठकर दो-चार संगियों के साथ यहाँ आकर सारा दिन व्यतीत करने में बड़ा ही



इलीज़ियम



शिमले का विहंगम-दृश्य



जाड़े के दिनों में शिमला



शिमले का तुषारपात

आनंद आता है। ज्यों-ज्यों नीचे उतरिए, भाँति-भाँति के सुंदर वृक्ष मिलते तथा पक्षियों की चहचहाहट सुनाई देती है। संगी-साथियों के साथ क्रीड़ा करते, दौड़ते, ठहरते, कल्लोलें करते हुए समय हर्ष से व्यतीत हो जाता है। बात-की-बात में व्यक्ति अनंडेल की घाटी में पहुँच जाता है।



रूपगर्विता

[श्रीदुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला में]

कहा भयौ पिय कौं, कहत मो मुख मुकुर-उदोत ;
यह तौ मुख-छबि-कर लहत आप मुर्दीपित होत ।

दुलारेलाल भार्गव

N. K. Press, Lucknow

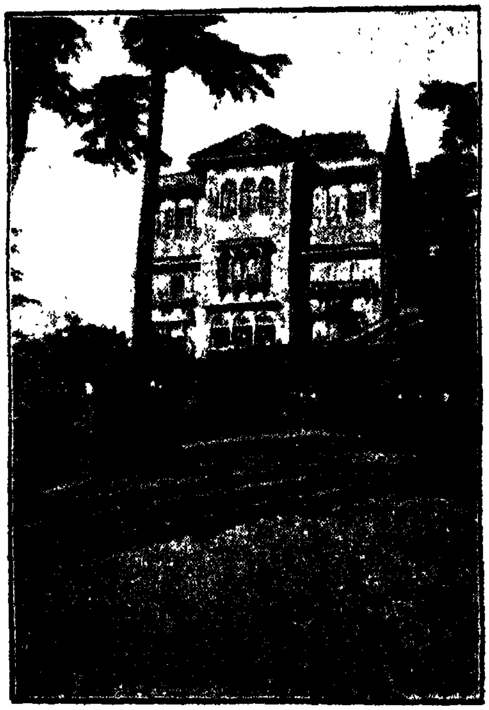


फ़ीट (मेला) का एक दृश्य
(श्रीमती हेली द्वारा स्थापित)

गॉरटन-कैसल और कौंसिल-चेंबर से आगे रेलवे-बोर्ड का दफ़्तर है। दूसरी ओर पोस्टऑफ़िस है। कुछ आगे चलने पर अँगरेज़ी दूकानें हैं। शिमले की दूकानें भी मनोहरता तथा स्वच्छता में एक ही हैं। एक अँगरेज़ गहनेवाले की दूकान बहुत ही सुंदर है। दूकान एक तरफ़ पहाड़ के ऊपर बनी हुई है, और सफ़ेद वार्निश से चमक रही है। छत के ऊपर बरामदे में जगह-जगह जेरेनियम तथा और फूलों के गमले लटकाए हुए हैं। इन विदेशियों ने जीवन को समझा है। वे धन का सदुपयोग जानते हैं। हमारी हिंदू-जाति ने अपना इहलोक और परलोक, दोनों ही खो दिए हैं। बड़े-बड़े सेठ-साहूकारों को देखिए, धन होते हुए भी तंग, गंदे शहरों में रहते और अपना जीवन हकीमों और वैद्यों की कृपा के ऊपर छोड़ रखते हैं। बहुत हुआ, तो फ़िटन में बैठकर दिल्ली-जैसी जगह में चाँदनी-चौक की सैर कर ली। नहीं तो सेठानीजी को गहने बनवा दिए। और, इन परदेशियों को देखो, पैसे का अच्छी तरह व्यवहार करते और जीवन का आनंद उठाते हैं। वर्षा-ऋतु का आरंभ होते ही शिमले में एक अद्भुत आनंद तथा छटा आ जाती है।



फ़ीट (मेला) का दूसरा दृश्य
(श्रीमती हेली द्वारा स्थापित)



भारत-सरकार की राजधानी

माल पर घूम रहे थे, और आ पहुँचे अनंडेल। खैर, फिर माल पर ही चलिए।

माल रोड से ऊपर चढ़कर 'रिज' है। सड़क के एक किनारे बड़े खूबसूरत फूल लगे हुए हैं। अगस्त-महीने में 'डलियाह' अपनी विशेष छटा दिखाता है। इसका रंग बहुत चमकीला तथा सुंदर होता है। मैदान में फूलों का इतना अच्छा रंग देखने में नहीं आया।

जब आकाश स्वच्छ होता है, तो रिज पर से हिमाच्छादित शृंग-श्रेणियाँ दिखाई देती हैं। वर्षा के पश्चात् संध्या के समय, सूर्य जब पश्चिम को प्रस्थान करते हैं, तब नील गगन की शोभा अवर्णनीय होती है। सुनहले, रुपहले तथा भाँति-भाँति के मेघ पश्चिम दिशा का शृंगार करने में तन्मय हो जाते हैं। इतनी लावण्य-पूर्ण छटा, यह आभा, यह कांति, यह सौंदर्य मैदानों में डूबते हुए सूर्य के चारों ओर नहीं होता। यहाँ तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रकृति-देवी ने अपनी कला तथा चातुरी का भांडार यहीं खोलकर रख दिया है! कैसा मनोमोहक दृश्य होता है! मानव-हृदय इतना संकुचित है कि उसके लिये प्रकृति की इस अनंत शोभा को संपूर्ण ग्रहण कर लेना कठिन ही नहीं, बल्कि असंभव है। फिर भी न-मालूम मस्तिष्क के किस कोने में वह शक्ति भरी पड़ी है, जिसके द्वारा मनुष्य इस प्राकृतिक सौंदर्य को काग़ज़ और रंगों के मेल से संसार को दिखला देता है।

जाखू-चोटी, जो माल से दिखाई देती है, अत्यंत सुंदर स्थान है। माल से होकर ही जाखू जाते हैं। किंतु तनिक ही ऊपर चढ़ने पर कुछ थकावट प्रतीत होती है; क्योंकि चढ़ाई बड़ी बेढब है। परंतु ज्यों-ज्यों शीतल, मंद पवन शरीर को स्पर्श करता है, त्यों-त्यों नई शक्ति तथा स्फूर्ति शरीर में दौड़ने लगती है, और वह मंद-मंद शीतल वायु मनुष्य को ऊपर आने को उत्साहित करती है। चीड़ के वृक्षों की घनी छाया में थकावट कम होती जाती है, और मनुष्य अनायास ही ऊपर की ओर बढ़ता चला जाता है।

रास्ते में बड़े-बड़े आदमियों के बँगले हैं, जिनमें सबसे सुंदर और बड़ा रौथनी-कैसल है। यह मकान दिल्ली के एक रईस का है। इसे एक अँगरेज़ ने बहुत रुपए ख़र्च करके बनवाया था, और बर्मा के शिल्पकारों ने बड़ी मिहनत से बनाया था। इसका बाल-रूम शिमले में एक ही है। लोग कहते हैं, इस महल में पहले एक बड़ा भारी फ़िलॉस्फ़र रहता था। उसे इस महल से इतना प्रेम था कि उसकी प्रेतात्मा अब भी यहीं रहती है। यह भवन ऐसा सुंदर है कि इसे दूर-दूर से लोग देखने आते हैं।

शिमले में वर्षा-ऋतु की शोभा तथा छवि निराली ही होती है। प्रातःकाल पक्षियों का मधुर स्वर बहुत ही अच्छा मालूम होता है। कैसी निर्मल ऋतु है। मंद-मंद, स्वच्छ, सुगंधित, सुखदायी समीर निरंतर चलकर तन-मन को शीतल कर देती है। जो सुख तथा आनंद इस अमूल्य पवन से प्राप्त होता है, वह अवर्णनीय है। ऐसी हृदय को आनंद देनेवाली त्रिविध समीर मैदानों में मयस्सर नहीं। यहाँ प्रकृति-नटी उन्माद में मग्न हो भाँति-भाँति के रंग दिखाती है।

चैडोवक-फ़ाल भी अत्यंत मनोहर स्थान है। यह शिमला से पाँच-छः मील की दूरी पर है। यहाँ समर-हिल होकर जाना पड़ता है। समर-हिल तक तो रास्ता सीधा है, पर आगे पगडंडी है।

जहाँ ये सब सुंदर स्थान हैं, उसी शिमले में क्लर्कों की बुरी दशा है। एक क्लर्क का मकान देखकर तो आँखों में आँसू आ गए। शोक इस बात का होता था कि हम भारतवासियों की दशा कितनी हीन होती चली जा रही है! अपने गाँवों में बड़े-बड़े, खुले, अच्छे मकान छोड़कर हम लोग नौकरियों के पीछे दौड़ते हैं। हमारा सुंदर, पवित्र ग्राम्य जीवन नष्ट होता चला जा रहा है, और जिन चीज़ों के पीछे हम दौड़ते हैं, वे भी हमें नहीं मिलतीं। क्लर्क का मकान क्या था, छोटी-छोटी दो कोठरियाँ थीं, जो बिलकुल अँधेरी थीं। उनमें सील की बदबू आ रही थी। गाँवों में एक बहुत ही ग़रीब का मकान भी इससे अच्छा होता है।

शिमले के निवासी बड़े ही हँसमुख हैं। इन लोगों के चेहरे हर वक़्त ख़ुश दिखाई देते हैं। ये लोग अपनी ओर से आपसे बातें करते और बड़े ही मिलनसार होते हैं। स्त्रियाँ भी बड़ी ही स्वतंत्र प्रकृति की मालूम होती हैं। ये पहाड़ों में ख़ूब आनंद से गाती चली जाती हैं। इन लोगों का रंग मामूली होता है। हाँ, नीचे बसनेवालों से ये कुछ अधिक उज्ज्वल होते हैं। स्त्रियों में बिलकुल परदा नहीं है, जो बहुत ही अच्छा मालूम होता है। यहाँ की स्त्रियाँ घुड़दौड़ की बड़ी शौक़ीन होती हैं। घुड़दौड़ देखने ख़ूब सज-धजकर जाती हैं। पहाड़ी लोग बाँसुरी बहुत ही मधुर बजाते हैं।

शिमले में जितने लोग सैर करने आते हैं, सभी यहाँ से संतुष्ट होकर जाते हैं। स्वास्थ्य तो यहाँ बहुत ही अच्छा हो जाता है। अक्सर लोगों की इच्छा यहाँ वापस आने की बनी ही रहती है।

कौशल्यादेवी

राजमंत्र

(१)

राजा पुष्कर ने अपने चतुर मंत्री खांडिल्य से कहा—सुनो मंत्री, देश में धार्मिकता की बड़ी आवश्यकता है। देश की प्रत्येक आत्मा धार्मिकता के रंग में रँगी हो।

मंत्री ने "हूँ" करके प्रस्ताव की स्वीकृति दी!

राजा ने फिर कहा—राजा वही है, जो देश में धर्म का प्रचार करे।

उसका गौरव-पूर्ण मुख-मंडल मद से तमतमा उठा। उसने भरी सभा को अपने मतवाले नेत्रों से निरखा।

उस समय सभा-मंडप में नृप-नेत्र-युग-चंद्र-चाँदनी की छटा छा रही थी। सभी मुग्ध थे या मूक। "सत्य है राजन्" की ध्वनि सज्ञान की थी, या निरे वाद्य-यंत्र की तान।

बूढ़े मंत्री ने पूछा—राजन्, धर्म से आपका मतलब क्या है?

राजा ने उत्साह से कहा—अपने विधर्मियों को विजयी करना।

मंत्री ने गंभीरता से कहा—महाराज, इसमें धर्म के यथार्थ मूल से बहुत विभिन्नता है।

राजा ने कुछ देर चुप रहने के बाद कहा—यथार्थ धर्म क्या है?

मंत्री ने उत्तर दिया—जो सार्वभौम कल्याणकारक हो, शांति-स्थल में भी वीरता का उद्दीपक हो, जिसके द्वारा रक्त-पात से घृणा-पूर्ण हृदय भी रक्त को लालायित हो।

राजा कुछ न समझ सका। उसने आग्नेय नेत्रों से देखते हुए उस बूढ़े मंत्री से कहा—क्या शरीर के जीर्ण होने से मस्तिष्क भी जीर्ण हो गया? मंत्री रहने की आशा न करो।

चिनगारी ने धुएँ का रूप पकड़ा। उसकी लपट धधकने लगी। वह लपट भयंकर थी। काले काले बाल उस लपट की कालिमा का अनुभव नहीं कर सकते; पर सफ़ेद बाल इस धधक में पड़नेवाले न थे।

मंत्री अभिवादन करके राजसभा से चल दिया।

मंत्री की सच्ची आत्मा ने राजलक्ष्मी को भविष्य की आनेवाली घोर अग्नि में "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" की एक ज्वलित लव की ओर पाया।

(२)

खांडिल्य के स्थान पर क्षपणक का नाम घोषित किया गया। पुरवासियों ने मंत्री के रथ पर क्षपणक को मूछें ऐंठते हुए देखा, अश्रुपात किया। राजद्वार पर रथ के पहिए हिल-हिलकर राजलक्ष्मी की अस्थिरता का दृश्य दिखलाने लगे। उनकी खड़खड़ाहट भविष्य की अग्र-सूचना थी—गरुड़ध्वज की हिलती पताका "कुछ नहीं, कुछ नहीं" की घोषणा थी।

बूढ़े मंत्री का मन टूट गया। उसने वन जाना ही उचित समझा। उसके होम की ज्वाला सायं-प्रातः आकाश तप्त करने लगी, उसके मंत्र सूर्य-चंद्र-तारों को बेधकर अनंत प्रभु के चरणारविंद में हार्दिक प्रेम की धारा प्रवाहित करने लगे।

क्षपणक ने राजमंत्र का ढिंढोरा सारे राज्य में पीट दिया।

बीस वर्ष का समय व्यतीत हो गया। खांडिल्य का नाम तथा कार्य-प्रणाली लुप्त हो गई। राजमंत्र की मोहर प्रत्येक आत्मा पर क्षपणक लगाने लगा। खांडिल्य के शांतिमय विधान का विनाश हो गया। मूर्ख राजा और उसका मंत्री इसे न समझ सका।

चिरशांति भंग हो गई। अनेक मत-मतांतरों के कलह-कलरव से देश कंपित होने लगा।

हूणों के गुप्त चर हेवान ने पत्र लिखा।

उसने लिखा—"देश पर चढ़ाई करने का इससे अच्छा सुयोग और क्या होगा? एकता की रज्जु में पूर्णतः ऐंठनें पड़ गई हैं। दोनों सिरों को पकड़कर एक बार खींच देना होगा। टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। शांति-स्थापक, एकता-चिंतक भी बिना गाँठ के इसे जोड़ न सकेगा।"

प्रजा-मंत्र में एक शिक्षित हूण दीक्षित किया गया। उसने राजमंत्र के विरोध-स्वरूप जनता में अनेक तर्क-वितर्क, भ्रम-जंजाल और कपोल-कल्पित बातों की सृष्टि की।

दो वर्ष बीत गए। बिना मेघ के देश विपद्-मेघ से आच्छन्न हो गया।

सीमा-प्रांत पर विजयी हूण वीरों की विजय-ललकार, उनके उत्साह के डंके की भीषण गर्जना राजसभा के मंडप को कंपायमान करने लगी।

(३)

राजा ने कहा—देश डूब जायगा। वीरो, उठो, हूणों की गर्जना का उत्तर अपने तीक्ष्ण असि से दो।

जनता ने शांति से कहा—राजन्, रक्त-पात महापाप है।

राजा ने घबराकर कहा—कैसे कायर हो, उठो, लड़ो, और परास्त करो। विधर्मी देश में आते हैं।

जनता ने कहा—आने दो। स्वदेशी विधर्मी का मान-मर्दन विदेशी विधर्मी करेंगे।

राजा ने कहा—कैसे नेत्र-हीन, बुद्धि-हीन हो? क्या वे तुम्हें छोड़ देंगे?

जनता के विभिन्न दलों ने चिल्लाकर कहा—मूर्ख! नहीं जानता, हमारे ईश्वर आप उतर आवेंगे। तू अपनी रक्षा का उपाय कर।

राजा का हृदय फटने लगा। उसने हाथ जोड़कर कहा—कैसे अंधे हो? मेरी ही रक्षा तो तुम्हारी रक्षा है, और तुम्हारी ही रक्षा मेरी रक्षा। मैं तुमसे और तुम मुझसे विभिन्न नहीं हो। तुम्हीं मैं और मैं ही तुम हूँ।

होनहार की कराल काली ठठाकर हँस पड़ी—"ये राज-नीतिक बातें अब व्यर्थ हैं।"

कुल-मर्यादा ने कहा—"कैसी पिशाचिनी है! तू साथ न छोड़।"

राजलक्ष्मी ने हँसकर कहा—"मूर्ख, मैं वीरों की संगिनी हूँ, कायरों और बुद्धुओं की नहीं।"

दूर—दूर—अति दूर से साहस ने चिल्लाकर कहा—"आ, मेरे गले विजय-माल डाल।"

मर्यादा दीनता से हाथ जोड़कर विनती करने लगी, रोने लगी, लक्ष्मी के पैरों पर लोटने लगी।

प्रकृति ने डाटकर कहा—"मूर्ख, दूर हो, हट। नियम नहीं बदलता।"

मर्यादा ने रोकर कहा—"क्या तुम इतनी दयाहीन हो?"

प्रकृति ने अपने पहले ही तेज से कहा—"तू भूलती है। मेरे यहाँ, मेरे राज्य में, प्रबंध में न दान है, न दया; कठोरता है न नम्रता।"

राजलक्ष्मी उस दीन की दशा पर हँस रही थी।

दीन राजा के हृदय में हँसी की एक-एक रेखा तप्त लोह-शलाका बनकर बेध रही थी।

उसने उत्तेजित होकर कहा—री पिशाचिनी! राक्षसी! कलंकिनी! फिर पहले क्यों रो रही थी? आज मेरी रुलाई पर हँस-हँसकर हृदय को चिता बना रही है!

राजलक्ष्मी की हँसी उड़ गई। उसकी भौंहें तन गईं। उसने गंभीरता से कहा—"सुनो, पहले मेरा कर्तव्य समझाना था। रोकर समझाया, हर तरह समझाया। पर तू निरा बुद्धू न समझ सका। अब क्यों रोता है?"

मर्यादा के हृदय की चिता ज़ोर से जल उठी।

(४)

देवालयों के घंटे गरजने लगे। भिन्न-भिन्न मत-पोषक देव-निकेतन अपनी अनेक रंग-रंजित ध्वजाओं को हिला-हिलाकर, देश को शत्रु-घना छन्न करने के हेतु, अपने मान-मर्दन के लिये, साहसियों का आह्वान करने लगे।

बौद्ध-मठ का उच्च शृंग चिल्ला रहा था—"हूण भी बौद्ध हैं। बौद्धों को आने दो। रक्त-पात महापाप है। सारे बौद्धों में शाक्यसिंह की आत्मा का निवास है। बौद्ध-हूणों के विपक्षी को रौरव-नरक।"

मठ का विपक्षी घड़ियाल हूणों की बौद्धता पर ठहाका लगा रहा था।

क्षपणक ने वीर सेनापति महामल्ल को पुकारा।

महामल्ल ने अभिवादन करके शीघ्रता से कहा—आज्ञा शिरोधार्य है।

क्षपणक (उदासीनता से)—युद्ध की भेरी बज चुकी। गरुड़ध्वज तुम्हारे हाथ में है। ध्वजा आकाश में फहराती रहे।

महामल्ल विचार में पड़ गया। उसने ठंडी साँस लेकर उत्तर दिया—हूण-कटक को रोकना असाध्य-सा प्रतीत हो रहा है।

क्षपणक (घबराकर)—क्या सैन्य सुसज्जित नहीं?

महामल्ल आकाश को देखता हुआ बोला—सैन्य सुसज्जित है; पर सैनिकों का मन सुसज्जित नहीं।

क्षपणक (कौतूहल से)—यह क्यों?

महामल्ल कुछ उत्तर न दे सका।

मुंजचंद्र सैनिक ने कहा—पीछे हटना पाप है।

उसके संगी ने उत्तर दिया—जहाँ विजय की आशा न हो, वहाँ व्यर्थ प्राण गँवाना कौन-सी वीरता है? वहाँ अपने प्राणों को बचा लेना ही बुद्धिमानी है। जड़वादी लोग व्यर्थ प्राण गँवाकर आत्महत्या का पाप सिर पर लेते हैं। प्राण वहाँ गँवाओ, जहाँ कुछ लाभ हो। इन्हें ऐसे समय में उत्सर्ग करें, जिस समय इनकी आवश्यकता हो।

मुंजचंड असमंजस में पड़ गया। उसने कुछ ठहरकर कहा—हाँ, ठीक है पर जिसका अनुभव 'एक' नहीं कर सकता, उसका भविष्य संदिग्ध है।

संगी ने कहा—नहीं, कुछ मनुष्य भी सोच सकता है।

मुंजचंड एक घपले में पड़ गया। इस विवाद पर कुछ सोचने लगा। कुछ समय बाद उसने कहा—"पर जो हो, ऐसी बात हृदय का सच्चा हाल प्रकट करती है।"

दूसरे ने कहा—क्या?

मुंजचंड ने रोष से कहा—निरुत्साह, कायरता! और क्या?

संगी का मन फिर गया। वह कुछ खिसियाना-सा हो गया। उसने क्रोधित होकर कहा—हैं!

मुंजचंड ने ज़ोर से कहा—ऐं क्या, इस स्थल पर ऐसी बात!

उसके संगी ने उसी के स्वर में स्वर मिलाकर कहा—यह वक्तव्य सारे हृदय का वक्तव्य है।

दशा ने भी इसकी स्वीकृति की।

सेनापति ने कहा—इस प्रपंच को छोड़ो।

सैन्य ने कहा—यह नहीं हो सकता; पहले धर्म, फिर और कुछ।

सेनापति ने सिर पीटकर कहा—कैसे मूर्ख हो? यहाँ तुम्हारा धर्म क्या है? भेद-भाव भूलकर देश पर बलिदान होना।

इस कान से सुना, और उस कान से सैनिकों ने निकाल दिया।

एक जैन एक सैनिक के समीप खड़ा था। उसे देख एक अन्य सैनिक ने, एक धक्का देकर गिराते हुए, कहा—पापी, नराधम! घुसा आता है। तेरी परछाईं पड़ने से अपवित्र हो गया।

सैनिकों के इसी तरह के धक्कों से राज्य की दृढ़ प्राचीर अररर करके गिरने लगी।

सेनापति सिर पीटता रह गया। वह इन प्रश्नों को हल न कर सका।

(५)

चारुचंद्र की अमृत किरणें नदी-तट-स्थित दूर्वा पर



"कैसे मूर्ख हो? यहाँ तुम्हारा धर्म क्या है? भेद-भाव भूलकर देश पर बलिदान होना।"

अमृत बरसा रही थीं। उनके साहस का आह्वान प्रत्येक पल्लव कर रहा था।

एक सुसज्जित सैनिक ने अपने पास खड़े दूसरे सैनिक से कहा—भाई, प्राण भले ही जायँ, पर आत्मा विजय-लाभ का सुख भोगे।

पड़ोसी ने प्रफुल्लता से कहा—परमात्मा जानता है, सच्चे मन से कहता हूँ। सुनो, विजय-लाभ के परमानंद में जंगली जीवों, वन-पक्षियों को सारा शरीर समर्पित कर दूँगा। मेरी आत्मा स्वर्ग की ड्योढ़ी में खड़ी होकर आनंद के घंटे बजावेगी, जब वह देखेगी कि जिस शरीर को उसने देश-जाति-मर्यादा के लिये अर्पित कर दिया है, कौए, चीलहें, गिद्ध आनंद से मस्त होकर उसके अमूल्य, सुकुमार नेत्रों पर चोंचों से बार-बार ठोकरें मारते हैं, वन के जीव-जंतु, गीदड़ उसके पुष्प-सदृश अंगों से मांस को खींचते हुए अपने को भूले जाते हैं, भाई-बंधु विजय की ललकार में अपने पवित्र पदों से शव को कुचलते हुए चले आते हैं।

उसी उत्साह में उसने तलवार खींच ली, और अपने पैरों पर रखकर बोला—जिस समय देखूँगा कि ये कायर रण-क्षेत्र छोड़कर भागे जाते हैं, उस समय इन पैरों को काटकर फेंक दूँगा। न पैर रहेंगे, न भागूँगा। दूसरे सैनिक का भी उत्साह बढ़ने लगा। उसने उसे गले लगा लिया।

दुर्गा का पुजारी अपने शिविर में बैठा कह रहा था—देव सुनो! आप पर मेरी कितनी श्रद्धा है, यह हृदय की बात है। हृदय आपसे छिपा नहीं। पर रण-क्षेत्र में आपको हम भूल जाते हैं। जिह्वा पर रण के गीत, मन में विजय की लालसा, नेत्रों में विजय का उत्साह। धर्म-युद्ध का आह्वान हो रहा है। जीवन-भर आपकी जय-जयकार की, आपके गीत गाए। आप मुझको भूल रहे। आज मैं आपको भूलता हूँ। आज आप मुझे देखें। अगर विजय आपके कारण रुकती है, तो मैं निःसंकोच आपके खंड-खंड कर दूँगा। आपके वे टुकड़े शत्रु पर वज्र होकर बरसेंगे। पश्चात् विजय आपका विशाल चैत्य शत्रु के हृदय पर आकाश तक ऊँचा बनावेगी। उसने एक अचल प्रेम-दृष्टि से देखते हुए नेत्र बंद कर लिए।

आकाश से छूटी बूँद कब तक न बरसती, आ बरसी। दोनों पक्षों ने बड़े उत्साह के साथ रण-देवी का स्वागत किया।

महाबल-नामक सैन्य ने एक पक्ष को रोका। पर रुई के भीतर आग की चिनगारी कैसे छिपे? बिना महाबल के रक्त के रण-देवी तृप्त होनेवाली न थी।

भिन्नधर्मी घड़ियाल ने चिल्लाकर महाबल से कहा—चलो, एक विधर्मी की कमी हुई।

प्रातः से संध्या तक और संध्या से प्रातःकाल तक रण-क्षेत्र में रण ठना रहा। मानव के कलरव की पूर्ति जीव-जंतु करने लगे।

युद्ध में जो होना चाहिए, सब कुछ हुआ। राज-लक्ष्मी ने दूसरे के गले में जयमाल डाल दी।

पाँच वर्ष व्यतीत हो गए। इतिहास ने नए पन्ने खोले। कहानी पुरानी हुई।

(६)

वयोवृद्ध जटाजूटधारी तेजस्वी ऋषि ने कहा—राजन्, इस घनघोर वन में किस लिये आए हो?

ऋषि के समक्ष बैठे पुरुष के नेत्रों में जल भर आया। वह ठंडी साँस लेते हुए अस्पष्ट शब्दों में कहने लगा—क्या संसार में अब भी मुझे राजन् कहनेवाले हैं?

कुछ देर की निःस्तब्धता के बाद उसने पुनः कहा—राजा नहीं, पथ का अभागा भिखारी हूँ।

ऋषि ने कुछ नहीं कहा।

कुछ देर फिर निःस्तब्धता रही। पर यह निःस्तब्धता अधिक देर तक न टिक सकी। ऋषि ने उसे तोड़ते हुए कहा—राजन्......

उस पुरुष के हृदय की गुफा में छिपा हुआ सलिल-स्रोत फूटकर निकल पड़ा। उसने भरे हुए कंठ से कहा—ऋषिवर, मैं राजा नहीं, दरिद्र, दुखी, दीन, अभागा हूँ।

आगे वह कुछ न कह सका।

ऋषि ने प्रेम से कहा—जो हुआ, सो हुआ।

वह पुरुष ऋषि के चरणों में गिर पड़ा। फिर अपने अश्रु-जल से उनके चरणों को धोते हुए बोला—हे देव-तुल्य ऋषिवर, यह अभागा तुम्हारी शरण में आया है। दया करो, दया।

उस वृद्ध तपस्वी ने झपटकर उस पुरुष का माथा थाम लिया, और भरे हुए स्वर कहा—हाँ, हाँ, यह क्या करते हैं? उठिए, उठिए। मैं तो अब भी आपका वही पुराना अनुचर हूँ।



"ऋषिवर, यह अभागा तुम्हारी शरण में आया है। दया करो, दया।"

राजा के अश्रु-पूर्ण नेत्रों ने तपस्वी के मुख-मंडल के दिव्य तेज को देखा। ऋषि ने राजा को वक्षःस्थल से लगा लिया।

ठीक वही समय था, वही बेला। वही विषय था, वही वार्तालाप। आकाश का हँसता चंद्र अमृत के स्रोत बहा रहा था। सब कुछ वही था। नहीं था, तो राजा का वह भव्य मुकुट, हाथ का कठोर शासन-दंड, सिंहासन के चमकते हुए मोतियों का चंचल नृत्य, राजप्रासाद का उच्च शृंग, जनरव की हलचल। यहाँ तो शांति का अटल पहरा था। प्रकृति की अनोखी छटा, समीर की सोहावनी सनसनाहट, नाना वन-विहंगों का अद्भुत प्रलाप, अरण्य पशुओं का सिंहनाद, प्रत्येक पल्लव का चंचल नृत्य आदि प्रत्येक क्षण पथिक का आह्वान कर रहे थे। वन की नृत्यशाला में बाँस का अपूर्व सितार, वन-जंतुओं का अद्भुत ठेका, पवन की मनोहर ठुनकी, सुंदर चिड़ियों का मधुर अलाप और नालों का विचित्र नृत्य प्रभु-प्रेम-अंध को मतवाला बना रहा था।

राजा ने पुनः युग-युगांतर के बाद पूछा—ऋषिवर, राजधर्म क्या है?

आज प्रश्न में न वह ओज था, न वह शासन-मत्तता। आज तो गुरु-शिष्य-संबंध की प्रेम-धारा बह रही थी।

ऋषि ने पुनः वही उत्तर दिया—देश को धर्म-प्राण बनाना।

राजा ने साश्चर्य पूछा—धर्म क्या? धर्म का मूल क्या, धर्म का प्राण क्या है?

ऋषि ने प्रेम-पूर्वक शांति से कहा—धर्म का प्राण देश है, देश का प्राण ऐक्य है, ऐक्य का प्राण प्रेम है, प्रेम का प्राण निःस्पृहता है। बिना इसके कुछ नहीं हो सकता। जो देश, समाज शृंखला-बद्ध है, उसकी एक कड़ी को दृढ़ न करना ग़लती है। वह शृंखला टूट जायगी। किनारे से बँधी नौका डाँवाडोल होकर बह चलेगी, और भँवर की उत्ताल तरंग में सारे समाज को लेकर डूब जायगी।

राजा एकटक से उपदेश-सुधा का पान कर रहा था। मंद, सुगंध, समीर मुकुल-कलियों से सुंदर, वृक्षों से अठखेलियाँ करती हुई डोल रही थी। वन-जंतुओं के भिन्न-भिन्न मधुर रव से सारा वनखंड गूँज रहा था। शशि चंद्रलोक से दौड़ा हुआ इस मनोरम स्थल को चला आ रहा था।

ऋषि ने बात-ही-बात में कहा—भिन्न-भिन्न समाज की कड़ियों को नाथकर एक बृहत् दृढ़ शृंखला बनाना ही देश के शुभचिंतक का काम है। देश-धर्म वह वस्तु है, जो कड़ियों के खुले हुए मुख को जोड़कर इस योग्य बनाता है कि वे सब एक दूसरे से पृथक् होती हुई भी सभी शृंखला कहलाती हैं, और मत्त गज शत्रु को लाचार करती हैं।

ऋषि ने फिर कहा—अग्नि से संसार का बड़ा उपकार है। पर अग्नि अपने ऊपर लात मारनेवाले को भस्म कर देती है। हममें दया का अंश ऐसा ही होना चाहिए। रक्त-पात से प्रेम यही है।

राजा पुष्कर ने अनेकों राजनीतिक बातें वहाँ सीखीं। बहुत-सी गूढ़ मंत्रणाएँ हुईं।

राजा पुष्कर मंत्री—नहीं, ऋषि के चरणों में गिर पड़ा। उन्होंने झपटकर गले से लगा लिया।

कुछ ही दिन बाद देख पड़ा, हूणों का बल घटने लगा।

रामजी अग्रवाल

प्रतिध्वनि

(तेरे प्रति, तेरे प्रति।)

जानता है, विश्व का अकेला हूँ भूपति ?
मैं हूँ, मुझसे तू है,
नाहक़ बनता तू है,
मेरा लेकर ही बना घूमता है श्रीपति।
क्या कहकर लाया था,
मुझको अपनाया था,
किसका सौंदर्य यह—शोभा-श्री, रतिपति ?
किसकी श्री, किसकी वृद्धि,
किसकी सारी समृद्धि,
किसकी यह वैभव वितान-तनी कीरति ?
स्वर्ग सुख तेरे लिये,
कुछ भी नहीं मेरे लिये ?
तेरा सा स्वरूप अब तेरी-सी मूरति।
महलों पर ताने पड़ा;
देखता है, कौन खड़ा ?
तुझको क्या कहेगा कभी कोई भी विचार-पति ?
शिशुता का विकास,
यौवन का विलास,
वृद्धा की तृष्णा-मृगतृष्णा की प्यासी रति ?
आया—वह अतीत हुआ,
चलता—वह प्रतीत हुआ,
आवेगा कौन ?—कौन जानता है इसकी गति।
मद में अस्त व्यस्त,
ढूँढ़ता क्या किसी का अस्त ?
वासना के वासी, अरे कामना के कामी पति !
लय है—प्रलय आँखों में,
मेरी इन्हीं आँखों में,
धोखे में रहा है, कभी माना था गिरिजापति"
देख, विश्व काँपता है,
अंग-अंग हाँफता है,
हो रही सभी की आज जीवन से विरति।
भीषण उपत्यकाएँ,
निर्जल मरीचिकाएँ,
टूट-टूट बनतीं-बिगड़तीं; गई मारी मति।
शस्त्र-क्रिया जानता है ?
हाथ तेरा काँपता है।
देखता हूँ, आती हँसी, ताने खड़ा मेरे प्रति।
नीच, दासता के दास;
सुनता नहीं अट्टहास ?
श्वास-श्वास उठती और कहती जाती है नियति।
निर्झर-सी रोती भूमि,
बुझती नहीं, लेती चूम,
धूम्र-धार में है लुप्त होती चंचला की गति।
आ आ—ये भुजाएँ हैं,
फैली हुई बाहें हैं,
आहों से लिपटी हुई आती चली उन्नति—
तेरे प्रति, तेरे प्रति, तेरे प्रति, तेरे प्रति।

मातादीन शुक्ल

विक्रय-कला

प्रत्येक व्यापारी के लिये यह जानना आवश्यक है कि माल किस प्रकार बेचा जाना चाहिए। हम भारत-वासियों के लिये तो इस कला से परिचित होना नितांत आवश्यक है। इस गिरी दशा में भी—इस परतंत्रता के ज़माने में भी—भारत की प्राचीन कारीगरी और हस्त-कौशल पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हो पाया है। हाथीदाँत की कारीगरी, छपे हुए कपड़े, रेशम और ज़री का काम आज भी संसार में भारत का नाम बनाए हुए हैं। गत साम्राज्य-प्रदर्शिनी ने संसार को दिखा दिया है कि इस

गई-बीती दशा में भी भारत एक विशेष स्थान रखता है, उसमें कुछ विशेषता है। पर अक्सर देखा जाता है कि विक्रय-कला का ज्ञान न होने के कारण भारतीय माल नहीं बिकता। कहावत है—"बोले उसका भूसा बिके; न बोले उसका चावल न बिके।" अतएव भारतीय व्यापारियों को इस कला का ज्ञान अवश्य ही प्राप्त करना चाहिए। दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि राष्ट्रभाषा हिंदी में व्यापार-विषयक ग्रंथों की बड़ी कमी है। कुछ दिन हुए, डॉक्टर श्रीवेंकटराव केतकर एम्० ए०, पी-एच्० डी० ने अपने अमेरिका के अनुभव के आधार पर एक लेख लिखा था। आपके उसी लेख के आधार पर हम आज विक्रय-कला की कुछ बातों पर स्थूल दृष्टि से विचार करते हैं।

हम जानते हैं कि ज्यों-की-त्यों पाश्चात्य-पद्धति स्वीकार करना भारत के लिये लाभदायक नहीं। यह लेख हम केवल इसी हेतु से लिख रहे हैं कि इसे पढ़कर लोगों का—ख़ासकर व्यापारियों का—ध्यान इधर आकृष्ट हो।

माल की खपत ज़्यादा होने और माँग बढ़ने के लिये केवल उसका उत्तम श्रेणी का होना ही आवश्यक नहीं। वरन् उसकी बिक्री बढ़ाने, लोगों को सुलभ रीति से उसे प्राप्त करा देने का प्रबंध करना भी अत्यंत आवश्यक है। अगर माल को बाज़ार में रखने और बेचने का अच्छा प्रबंध किया जाय तो साधारण कोटि का माल भी चटपट बिक जाता है। कारख़ाने या धंधे का दारमदार भी इसी पर है। बेचने का प्रबंध अच्छा न होने पर उत्तम-से-उत्तम माल भी नहीं बिकता।

अमेरिका में अनेक तरह के लोग माल बेचने का धंधा करते हैं, और प्रत्येक धंधे के अनुरूप ही माल बेचने का प्रबंध किया जाता है। यही कारण है कि बेचनेवालों के भिन्न-भिन्न वर्ग बन गए हैं। कुछ व्यापारी या कारख़ानेवाले अपना माल कई दूकानों पर रखते हैं। कुछ फेरीवाले मुक़र्रर करके गली-गली और घर-घर माल पहुँचाने का प्रबंध करते हैं। दोनों ही ढंग अच्छे हैं। मगर उनमें से किसे ग्रहण करना चाहिए, यह निर्णय धंधे और माल पर निर्भर है। हमारे ख़याल से फेरीवाले मुक़र्रर करके माल बेचने का प्रबंध करना भारत के लिये अच्छा होगा।

अमेरिका में कारख़ाना खुलते ही माल की बिक्री के लिये एक अलग विभाग खोला जाता है। उस कारख़ाने में तैयार किए जानेवाले माल की बिक्री के लिये देश-देशांतर में संगठन कार्य का आयोजन भी किया जाता है। विक्रय-विभाग के प्रबंधक (मैनेजर) की जगह विशेष महत्व-पूर्ण और गौरव की मानी जाती है। कारण, माल की खपत पर ही कारख़ाने का अस्तित्व निर्भर रहता है। विक्रय-विभाग का सूत्र अनुभवी, कार्य-कुशल, होशियार आदमी के ही हाथ में दिया जाता है। इस विभाग के प्रबंधक के काम में कारख़ाने का मालिक अकारण हस्तक्षेप नहीं करता। प्रबंधक की नियुक्ति बहुत सोच-विचारकर की जाती है। उससे प्रतिज्ञा करा ली जाती है कि इतना माल अवश्य ही वह खपावेगा। उसके सार्टीफ़िकेट देखे जाते हैं। उम्मेदवार प्रतिज्ञा कर लेता है, तो भी इस बात पर गंभीरता से विचार किया जाता है कि वह अपने वचन को कार्य-रूप में परिणत कर सकेगा, या नहीं। परंतु उम्मेदवार से कोई यह नहीं पूछता कि इतने माल की खपत किस तरह की जायगी। नियुक्ति हो जाने पर अपने विभाग का कार्यक्षेत्र और कार्य-पद्धति निश्चित करने का काम उस व्यक्ति पर ही छोड़ दिया जाता है। अमेरिकन लोग यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि नियमों से बाँध देने पर श्रेष्ठ कोटि के नौकर भी अपना काम उत्तम रीति से नहीं कर सकते। सुप्रसिद्ध अमेरिकन धन-कुबेर मि० कार्नेगी ने कारनेल-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को एक व्याख्यान में यह उपदेश दिया था—"तुममें से बहुत-से व्यापारी लोगों के ऑफ़िसों में नौकरी करेंगे। प्रारंभ में तुमको नीचे दर्जे की नौकरी मिलेगी; परंतु शीघ्र ही अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार तुम ऊँचे पद भी पा सकोगे। मैं तुमको उन्नति का मूल-मंत्र बताता हूँ। उसको जन्म-भर मत भूलना। मालिक के बताए हुए काम को ही करनेवाले नौकर कभी मत बनो। उस काम को करो ज़रूर, मगर ख़ूब सोच-समझकर और आगा-पीछा देखकर। अगर तुमको यक़ीन हो जाय कि मालिक का नुक़सान होना मुमकिन है, तो अपने मन के विरुद्ध उस काम को कभी मत करो। ऐसा कभी न सोचो कि आँखें मूँदकर मालिक के हुक्म की तामील करना ही तुम्हारा फ़र्ज़ है। मालिक के हुक्म को मानना हरएक नौकर का फ़र्ज़ है; परंतु याद रक्खो, हुक्म की तामील मालिक के भले के लिये ही की जानी चाहिए। मालिक के हित की रक्षा प्रथम श्रेणी का कर्तव्य है, और आज्ञा-पालन करना दूसरी श्रेणी का। किसी ख़ास नियम या आज्ञा का पालन

करने से नुक़सान होगा यह बात दिखा देने से मालिक ख़ुश होगा, नाराज़ नहीं; और ऐसा करने से तुम्हारे ऊपर उसका विश्वास जम जायगा। नियम मूर्खों के लिये बनाए जाते हैं, न कि बुद्धिमानों के लिये। बुद्धिमानों को नियम बनाने भी पड़ते हैं, और मौक़ा आने पर तोड़ने भी पड़ते हैं।" कितना अमूल्य उपदेश है !

विक्रय-विभाग का प्रबंधक अगर नियमों से जकड़ा हुआ न होगा, तो वह माल की बिक्री के लिये अनेक युक्तियाँ काम में ला सकेगा, और यदि उसे मालूम हो जायगा कि मालिक का उस पर पूर्ण विश्वास है, तो वह अधिक उत्साह से काम करेगा। सारांश यह कि मालिक यदि यह चाहता हो कि नौकर अच्छा काम करें, और उनके परिश्रम का उत्तम फल प्राप्त हो, तो उसे चाहिए कि वह ख़ुद व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करे। व्यवहार-ज्ञान-शून्य मालिक नौकरों से अच्छा काम नहीं करा सकता, और न नौकरों के ज्ञान और गुण का उत्तम फल ही प्राप्त कर सकता है। व्यवहार-ज्ञान-शून्यता के कारण ही आज तक कई भारतीय कल कारख़ाने, धंधे और दूकानें बैठ चुकी हैं।

अमेरिका में विक्रय-विभाग का संगठन बहुत उत्तम प्रकार का होता है। इस विभाग का प्रबंध सिर्फ़ एक आदमी के हाथ में रहता है। वही सारे विभाग की देख-रेख करता है। यदि सहायक की आवश्यकता जान पड़ी, तो वह रख लिया जाता है। सहायक को इस विभाग का कुछ काम सौंप दिया जाता है। ये दोनों ही एजेंट मुक़र्रर करके अपना काम चलाते हैं। एजेंट या माल खपानेवाले प्राप्त करने का काम बहुत कठिन है; क्योंकि एजेंट का काम सरल नहीं। अक्सर लोग इस काम को ज़्यादा दिन तक भी नहीं करते। बहुत-से लोग थोड़े ही दिनों में उकताकर एजेंट का धंधा छोड़ देते हैं। इन्हीं कारणों से एजेंट बनाना, उनका उत्साह बढ़ाना, उनमें महत्त्वाकांक्षा जाग्रत् करना, उनको योग्य शिक्षा देना, हर तरह से ख़ुश रखना आदि काम विक्रय-विभाग के सहायक-प्रबंधक को करने पड़ते हैं। एजेंटों को जितने भी पत्र लिखे जायँ, वे ऐसी भाषा में होने चाहिए, जिनसे उनको विश्वास होने लगे कि विक्रय-विभाग का प्रबंधक उनका हितचिंतक है। ऐसे पत्रों के नमूने अमेरिका में छपे हुए मिलते हैं। इसके अलावा प्रतिदिन ६०-७० पत्र लिखना कठिन भी नहीं; क्योंकि अमेरिका में प्रत्येक विभाग की प्रत्येक शाखा के पत्रों के फ़ार्म छपवाकर रख लिए जाते हैं। टाइप-राइटर से थोड़ा-सा मज़मून जोड़कर, दस्तख़त करके, पत्र भेज दिए जाते हैं। इसके अलावा टाइप-राइटर, साइक्लोस्टाइल वग़ैरह साधनों से भी इस काम में बहुत मदद मिलती है।

जब एजेंट को मालूम हो जायगा कि विक्रय-विभाग का अध्यक्ष उसके साथ स्नेह और सभ्यता का व्यवहार करता है, और उसके भले के लिये प्रयत्नशील है, तो वह दूने उत्साह से काम करेगा। सारांश यह कि हर तरह से एजेंट को ख़ुश रखना और उसके उत्साह को बढ़ाते रहना चाहिए।

अनुभवी एजेंट नए माल खपानेवाले व्यापारी प्राप्त करा देने में बहुत सहायता पहुँचाते हैं। जो एजेंट जितने ही अधिक माल खपानेवाले व्यापारी प्राप्त करा देता है, उसे उतनी ही अधिक दलाली मिलती है। दलाली प्रति सैकड़ा ५ से १६ तक दी जाती है। जो मनुष्य ज़्यादा जवानों को इस ओर झुकाने में समर्थ होता है, उसे ज़्यादा दलाली या ज़्यादा वेतन दिया जाता है। ऐसे आदमी भारी वेतन देकर भी नौकर रख लिए जाते हैं। माल खपानेवालों और ग्राहकों को हर तरह ख़ुश रखकर अपने माल का प्रचार करने का काम बहुत कठिन और महत्त्व का है।

जो कारख़ानेदार घर-घर और गली-गली माल बेचने का प्रबंध करना चाहता है, उसको बहुत अधिक माल खपानेवाले नियुक्त करने पड़ते हैं। परंतु जो कारख़ानेदार ग्राहकों तक माल पहुँचाना नहीं चाहता, उसके लिये थोड़े-से उत्तम और अनुभवी व्यापारी ही काफ़ी होते हैं। देश में हज़ारों शहर और गाँव हैं, और लाखों आदमी रहते हैं। परंतु ख़ास-ख़ास दूकानें बड़े-बड़े नगरों और क़स्बों में ही पाई जाती हैं। इसलिये दूकानदारों की मार्फ़त माल बेचना इष्ट हो, तो सैकड़ों होशियार एजेंट मुक़र्रर करने की अपेक्षा थोड़े-से श्रेष्ठ और अनुभवी व्यापारियों को ही मुक़र्रर करना अच्छा है।

अमेरिका में घर-घर कनवेसर (माल खपानेवाले) भेजे जाते हैं। पहले लोगों की यह धारणा थी कि ग्राहकों को ग़रज़ होगी, तो दौड़ते हुए दूकान पर आवेंगे; किंतु अब ये विचार बदलने लगे हैं। अधिकांश कारख़ानेदारों और व्यापारियों को यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई है कि अगर ग्राहक दूकान पर न आवें, तो माल उनके घर पर पहुँचाया जाना चाहिए। अधिकांश व्यापारी और कारख़ानेदार अब ऐसा करने भी लगे हैं। कनवेसर लोगों को

समझा दिया जाता है कि अगर लोगों को किसी माल की ज़रूरत न जान पड़े, तो उनको उस माल की ज़रूरत बतला देनी चाहिए। और इस प्रकार माँग बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। अमेरिका में ऐसी अनेक पुस्तकें मौजूद हैं, जिन्हें पढ़कर और अपने अनुभव के बल पर कनवेसर लोग अपना काम करते हैं। अपने माल की तारीफ़ करते और उनको अपना माल ख़रीदने को कहते समय ग्राहक जितने आक्षेप करते हैं, उनका निराकरण करके उनको अपने माल की उत्तमता जँचा देना कनवेसर का मुख्य काम है। परंतु यह काम वाद-विवाद द्वारा करने से सब काम चौपट हो जाता है। यदि ग्राहकों को मूर्ख सिद्ध करने का प्रयत्न किया जायगा, तो वे नाराज़ होकर उसे घर से बाहर निकाल देंगे, और दूसरी बार बात तक नहीं करेंगे। कनवेसर को हर तरह से प्रयत्न करके लोगों के मन में माल ख़रीदने की इच्छा उत्पन्न करनी चाहिए। ज़रूरत हो या न हो, किसी-न-किसी प्रकार माल ग्राहक के गले मढ़ देने ही में ख़ूबी है। हरएक व्यापारी या माल खपानेवाले को इस बात पर पूर्ण विचार और मनन करना चाहिए कि ग्राहक उसके माल को क्यों ख़रीदे। हरएक व्यापारी को अपनी दूकान के प्रत्येक पदार्थ के गुणों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

कनवेसर का चलतापुर्ज़ा होना अत्यंत आवश्यक है। दिन-भर में जितने ही अधिक लोगों से मुलाक़ात की जा सके, उतना ही अच्छा। जितने ही ज़्यादा घंटे काम किया जाय, उतना ही ज़्यादा फ़ायदा कनवेसर प्राप्त कर सकता है। समय को व्यर्थ न खोना ही होशियारी है। ग्राहकों से नम्रता और विनय-पूर्वक शांत चित्त से बातचीत करके माल ख़रीदने की ओर उनके मन को झुकाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस काम में जल्दी करना ठीक नहीं। मगर माल बिक जाने पर ज़्यादा न ठहरना चाहिए।

असफलता, कष्ट और विघ्नों से न घबराकर जो आदमी धैर्य के साथ दत्तचित्त होकर काम करता रहता है, वह अवश्य ही सफल-मनोरथ होता है। कनवेसर में इन गुणों का होना बहुत ज़रूरी है। स्मरण रखना चाहिए कि बिना कष्ट और विघ्नों का सामना किए नामवरी नहीं प्राप्त हो सकती। दो-दो, तीन-तीन दिन तक और कभी-कभी दो-तीन अठवारों तक ग्राहक नहीं मिलते। किंतु इससे निराश न होना चाहिए। एक बार स्वीकार किए हुए काम को कभी न छोड़ने का गुण अमेरिका के लोगों की नस-नस में बसा हुआ है। श्रीमान् कार्नेगी ने एक बार विद्यार्थियों को उपदेश देते हुए कहा था—"डाक के टिकट की तरफ़ देखो, और उसे अपना गुरु बनाओ। यह टिकट उद्दिष्ट स्थान पर पहुँचने तक चिपका रहता है।" भारतीय विद्यार्थियों के लिये यह उपदेश हृत्पटल पर अंकित करने-योग्य है।

कनवेसर को मानापमान की कल्पना को पास न फटकने देना चाहिए। यदि ग्राहक असभ्यता-पूर्ण व्यवहार करे, तो उसके लिये कनवेसर को दुखी होने की क्या आवश्यकता है? मनुष्य-स्वभाव का ज्ञान होना भी ज़रूरी है। लोग देखादेखी माल ख़रीदते हैं। एक मनुष्य के माल ख़रीदने पर दूसरी जगह उसका नाम लेने से भी कभी-कभी फ़ायदा होता है। कुछ लोगों की यह हार्दिक इच्छा होती है कि उनका नाम सारे गाँव में फैले। कनवेसर को इससे फ़ायदा उठाना चाहिए। गाँव के भले और बड़े आदमियों के पास ज़रूर जाना चाहिए। उनसे बातचीत करना और कहना चाहिए कि फ़लाँ गाँव के लोग आपके संबंध में ऐसा-ऐसा कहते थे। मैंने सुना है कि अगर आप मेरा थोड़ा-सा भी माल ख़रीदेंगे, तो सहज में बहुत-सा माल बिक जायगा। ऐसा कहने से वे ख़ुश हो जाते हैं, और कभी-कभी प्रत्यक्ष रीति से माल बिकवाने में मदद देते हैं।

अब यहाँ इस बात पर विचार करेंगे कि एजेंट और कनवेसर (प्रचारक) किस प्रकार प्राप्त किए जाते हैं। इस काम के लिये नवयुवक ही उपयुक्त होते हैं। वृद्ध और कमज़ोर आदमियों से मिहनत का काम नहीं हो सकता। जवान आदमियों के लिये अख़बारों में इश्तिहार छपाए जाते हैं। प्रार्थना-पत्र आने पर उनको इस काम की ओर झुकाने की कोशिश की जाती है। एजेंट लोग विश्व-विद्यालयों में आकर विद्यार्थियों के पते मुख्य कार्यालय को भेज देते हैं। वहाँ से दो-दो, तीन-तीन हज़ार विद्यार्थियों को ख़त लिखे जाते और प्रार्थना की जाती है कि हमारा फ़लाँ प्रतिनिधि फ़लाँ स्थान पर रहता है, उससे मिलिए। पत्र मिलने पर विद्यार्थी उससे मिलते हैं, और वह उनको अपनी ओर करने का प्रयत्न करता है। अमेरिका में साधारणतः जून से ऑक्टोबर के प्रारंभ तक कॉलेज बंद रहते हैं।

विद्यार्थी इस छुट्टी में धन कमाने का प्रयत्न करते हैं। एजेंट का काम बहुत जल्दी मिल जाता है। अमेरिका में धनी लोगों के लड़के भी अपनी निज की कमाई से विद्योपार्जन करते हैं।

एजेंटों के संबंध में कुछ ख़ास बातें यहाँ लिखना भी अप्रासंगिक न होगा। एजेंटों और प्रचारकों की पोशाक स्वच्छ और सभ्यता के अनुकूल होनी चाहिए। स्वच्छ पोशाक का लोगों के मन पर अच्छा असर पड़ता है। ऐसे व्यक्ति हर जगह आ-जा सकते हैं। हँसमुख रहना इनके लिये निहायत ज़रूरी है। चीनी भाषा में एक कहावत है, जिसका मतलब है—"जिसके मुख पर हास्य न हो, उसे दूकान न खोलनी चाहिए।" इसके अलावा जिसे स्त्रियों से काम पड़ता हो, उसके लिये तो स्मित, सभ्य पोशाक तथा मधुर संभाषण बहुत ज़रूरी है। यदि स्त्री के साथ छोटा बच्चा हो, तो उसका नाम पूछना और उसे प्यार करना चाहिए। इन गुणों के कारण माल ज़्यादा और जल्दी खपता है, और ग्राहकों पर भी इसका अच्छा असर पड़ता है।

विद्यार्थियों द्वारा कारख़ाने के मालिकों को भी बहुत लाभ पहुँचता है। जब लोगों को मालूम हो जाता है कि यह विद्यार्थी है, और अपनी उन्नति के लिये कोशिश करता है, तो उसे सहायता पहुँचाने की सद्बुद्धि से लोग थोड़ा-बहुत माल ज़रूर ही ख़रीदते हैं, और इसका फ़ायदा कंपनी को मिल जाता है।

प्रचारकों से जो शर्तनामा लिखाया जाता है, उसका नमूना यहाँ दिया जाता है। इसको पढ़ने से पाठकों को शर्त की कुछ कल्पना हो जायगी। हरएक कंपनी और कारख़ानेवाले अपनी-अपनी सहूलियत और फ़ायदे को नज़र में रखकर शर्तें ठहराते हैं।

शर्तनामा

प्रथम —जॉर्ज डकवर्थ कंपनी, शिकागो, इलिनाय स्टेट।

दूसरा पक्ष—जॉर्ज डब्ल्यू० किंगसबरी मेर ब्होल, न्यूयार्क स्टेट। हाल मुक़ाम जिनेवा, न्यूयार्क, धंधा विद्यार्थी होबर्ट कॉलेज।

(१) दूसरा पक्ष इक़रार करता है कि मैं तारीख़ १५ जून से तारीख़ १५ सितंबर (अर्थात् तीन मास) तक उक्त कंपनी जिस विभाग में मुझे मुक़र्रर करेगी, उस विभाग काम करूँगा।

(२) और यह भी इक़रार करता हूँ कि काम सिखाने के लिये जो व्यवस्था की जायगी, उससे फ़ायदा उठाकर मन लगाकर काम सीखूँगा।

(३) प्रतिदिन सात घंटे काम करूँगा, और अपनी डायरी रोज़ाना कंपनी को भेजता रहूँगा।

(४) इक़रार करता हूँ कि मैं कंपनी के विक्रय-विभाग के मैनेजर की हिदायतों के मुताबिक़ काम करता रहूँगा।

(५) तीन महीने के लिये कंपनी मुझे जिस प्रांत में मुक़र्रर करेगी, उसे छोड़कर धंधे के लिये दूसरे प्रांत में न जाऊँगा।

प्रथम पक्ष—(जॉर्ज डकवर्थ कंपनी, शिकागो, इलिनाय स्टेट) इक़रार करता है कि—

(१) दूसरा पक्ष हमसे जो माल ख़रीदेगा, उस पर ४० सैकड़े कमीशन दिया जायगा।

(२) दूसरे पक्ष को माल बेचने के लिये शिक्षा और हिदायत (सूचना) द्वारा योग्य सहायता दी जायगी।

(३) हम यह गारंटी देते हैं कि यदि दूसरा पक्ष हमारे नियमों के अनुसार काम करेगा, और उसको तीन महीने में दो सौ डालर न प्राप्त होंगे, तो जितनी रक़म कम पड़ेगी, वह हम पूरी कर देंगे। यदि दो सौ डालर से ज़्यादा की आमदनी हुई, तो हम उसमें से एक छदाम भी न लेंगे।

(४) यदि बीमारी या अन्य कारणों से दूसरा पक्ष अठवाड़े में छः दिन से कम काम करेगा, तो उस कमी को पूरी करने के लिये और भी मदद दी जायगी। परंतु हिसाब तभी किया जायगा, जब दिन पूरे हो जायँगे।

दस्तख़त पहला पक्ष
जॉर्ज डकवर्थ कंपनी

दस्तख़त दूसरा पक्ष
जॉर्ज डब्ल्यू० किंगसबरी

ऐसे इक़रारनामे की एक-एक प्रति दोनों अपने-अपने पास रखते हैं। कई कंपनियाँ जो कम रक़म मिले, तो वह घटी पूरी करने की शर्त नहीं करतीं; क्योंकि वे जानती हैं कि मन लगाकर मिहनत से काम करने पर घटी होना संभव नहीं। रोज़ की डायरी से इस बात का पता लग जाता है कि प्रतिदिन सात घंटे काम किया गया, या नहीं। प्रतिदिन के काम की विस्तृत रिपोर्ट मँगवाते रहने से धोका होने की

संभावना नहीं रहती; क्योंकि जो झूठा नाम और पता डायरी में लिख दिया, और अगर उस नाम का आदमी उस गाँव में न हुआ, तो फ़ज़ीहत होगी, यह भय रहता है। शर्तनामे में एक ख़ूबी और भी है। आमदनी कम होने पर मियाद ख़तम होने के पहले कंपनी हिसाब ही नहीं करती, और न पैसा ही चुकाती है। घटी पूरी करने की हामी लेने से एक फ़ायदा यह भी है कि एजेंट माल सस्ता नहीं बेच सकता। कल्पना कीजिए, किसी पदार्थ की क़ीमत १०० सेंट है (१ सेंट=आध आना), और वह एजेंट को ६० सेंट में मिलती है। यदि एकआध एजेंट वह पदार्थ १०० सेंट में न बेचकर ६० सेंट में बेच देगा, तो उसकी हानि होगी। पर घटी की गारंटी न होने से एजेंट को वह पदार्थ दस सेंट कम में बेचने का मोह पैदा हो जाता है। किंतु क्षति-पूर्ति की गारंटी होने से वह सहसा ऐसा कदापि नहीं करेगा; क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि हिसाब करते समय मुझे ४० सेंट फ़ायदा मिला है, ऐसा ही सोचकर कंपनी मेरा हिसाब चुकता करेगी। यदि १०० सेंट में ही बेचने का निश्चय कर लिया, और माल न बिका, तो एजेंट का कुछ भी नुक़सान नहीं होता। कंपनी को घटी तो पूरी ही करनी पड़ेगी। क़ीमत घटाने-बढ़ाने का मोह नए आदमी को बहुत जल्दी पैदा हो जाता है; क्योंकि वह यह तो जानता ही नहीं कि क़ीमत घटाने से फ़ायदा नहीं होता। इसलिये कंपनी बार-बार एजेंटों को लिखती रहती है कि क़ीमत घट ई न जाय। परंतु हमारे मत से अनुभव प्राप्त किए बिना गारंटी देने का धंधा कदापि न करना चाहिए।

यहाँ यह भी बता देना चाहिए कि ठहरी हुई मुद्दत तक बहुत कम लोग काम करते हैं। बहुत-से लोग घबराकर बीच में ही काम छोड़कर भाग जाते हैं।

अमेरिका में कई बड़े-बड़े आदमी भी यह धंधा करते हैं। अनुभवी व्यापारियों का कहना है कि यह धंधा व्यापार की पाठशाला है। बहुत लोग अपने लड़कों को ऐसे धंधे में प्रवृत्त कराते हैं। इस धंधे को करनेवाले जवान आदमियों के ध्यान में यह बात अच्छी तरह आ जाती है कि ग्राहक ग़रीब हो या धनी, स्त्री हो या पुरुष, विद्वान् हो या मूर्ख, सीधा-सादा हो या घमंडी, कैसा ही क्यों न हो, सबसे प्रेम-पूर्वक और सभ्यता से बोलकर अपना काम निकाल लेना चाहिए। वे धीरे-धीरे सद्गुणी बन जाते हैं। द्रव्योपार्जन के लिये भटकते समय किसने कब किस प्रकार सहायता दी, और उस समय अपने को कितना आनंद हुआ, यह बात वे नहीं भूलते, और तब दूसरों की मदद करने की इच्छा करने लगते हैं। कभी-कभी इस धंधे के कारण अच्छे-अच्छे आदमियों से भेंट हो जाती है, स्नेह-संबंध स्थापित हो जाते हैं। सारांश यह कि नागरिकता के लिये आवश्यक गुण प्राप्त करने को एजेंट का धंधा एक उत्तम साधन है।

परंतु सभी प्रकार के पदार्थ फेरीवालों द्वारा बेचे जाना संभव नहीं, और न यह पद्धति सर्वत्र स्वीकार ही की जा सकती है। रोज़ के व्यवहार के पदार्थ घर-घर माल पहुँचाने की रीति से ही बेचे जाने चाहिए। चित्र, पुस्तक, अख़-बार, मिट्टी के बर्तन, खिलौने, साबुन, जालीदार कपड़े, फ़ीते, सुई, धागा आदि पदार्थ इस पद्धति से बेचे जा सकते हैं। स्त्री और पुरुष, दोनों ही यह धंधा कर सकते हैं। अमेरिका में करते भी हैं।

भारत में आज बहुत-से ऐसे पदार्थ मौजूद हैं, जिनको गाँव के बाहर कोई जानता ही नहीं। ताश, शतरंज, देसी साबुन, देशी खिलौने, मोम के खिलौने आदि देशी सामान भारत के देहातों में फेरी की पद्धति से अच्छी तरह बेचे जा सकते हैं। यदि भारतीय युवक चाहें, तो फेरीवाले का धंधा स्वीकार करके धनी हो सकते हैं; साथ ही देशी माल की बिक्री बढ़ जाने से देश का भी बहुत कुछ भला हो सकता है। आज हम देखते हैं, बहुत-से देशी कारख़ाने माल की खपत न होने के कारण बंद पड़े हैं, और कुछ के मरने की घड़ी बीत रही है। इसका एक-मात्र कारण माल को खपाने की रीति का न जानना ही है। भारतीय युवक बातें मारने और डींगें हाँकने में बहुत आगे बढ़े हुए हैं; मगर काम करना नहीं जानते। हम प्रतिदिन देखते हैं कि मारवाड़ी महाजन भूखों मरता हुआ शहर में आता है, और धीरे-धीरे लखपती बन जाता है। यह क्यों? अपने परिश्रम के बल से। आजकल भारतीय स्वराज्य के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। कौंसिल में जाना या नहीं जाना, मंत्री का पद स्वीकार करना या नहीं करना आदि निरर्थक झगड़ों में जनता को फँसाकर हमारे नेता लोग गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। चार रोज़ एक जगह पर एकत्र होते हैं, गरमागरम लेक्चर झाड़कर वाहवाही लूटकर घर का रास्ता नापते और इन चार दिनों में देश का हज़ारों रुपया स्वाहा कर डालते हैं। जनता को भूल-भुलैया में डालने से

नामधारी नेताओं का फ़ायदा भी तो है। सेकिंड क्लास में सफ़र होता है, मोटर की सवारी मिलती और माल-टाल गले के नीचे उतरता है। अपने घर में चाहे चूहे डंड पेलते हों, मगर जनता की सेवा के नाम से बाहर निकलेंगे, तो सोडा-लेमोनेड और सेकिंड क्लास के बिना एक क्षण भी न चलेगा। कांग्रेस के आज तक के अधिवेशनों में लाखों रुपए स्वाहा हो गए; मगर ग़रीब किसानों और मज़दूरों को क्या लाभ पहुँचा! अस्तु, इस विषयांतर के लिये पाठक क्षमा करें। हमारा मतलब तो यह है कि हमें माल खपाने के लिये एजेंट और कनवेसर की शिक्षा समुचित रीति से दी जानी चाहिए। कॉलेजों की छुट्टी के दिनों में विद्यार्थियों को यह धंधा करने के लिये उत्साहित करना चाहिए। देशव्यापी संगठन द्वारा देशी माल की खपत बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। हम जानते हैं, और हमारा निज का अनुभव है कि देश में हज़ारों व्यक्ति स्वदेशी चीज़ों का व्यवहार करना चाहते हैं; मगर उनको माल ही नहीं मिलता, और तब उन्हें लाचार होकर विदेशी चीज़ों से काम चलाना पड़ता है। लेखक स्वयं स्वदेशी का भक्त है। महँगी मिलने पर भी वह देशी चीज़ ख़रीदना चाहता है; मगर माल मिलता ही नहीं। बड़े-बड़े शहरों में देशी चीज़ों की दूकानें हैं; मगर उनका पता देहात में किसी को मालूम नहीं। लुधियाने का हाथ का बुना कपड़ा, खादी, देशी दियासलाई, देशी काँच का सामान, बंगाल होम-इंडस्ट्रीज़ के कंघे-कंघी आदि सामान, आसाम आदि के बने अंडी-टसर आदि रेशमी कपड़े, किशनगढ़, देहली आदि के बने साबुन, देशी तेल और सेंट, निब-होल्डर-पेंसिल, देशी सर्व का सामान, फ़ीते, गोटा, काग़ज़ आदि सैकड़ों प्रकार के देशी सामान ऐसे हैं, जो हमें घर-गिरिस्ती के लिये रोज़ दरकार होते हैं। ये पदार्थ भारत में अनेकों जगह तैयार भी होते हैं; किंतु देहातों में माल बिलकुल ही नहीं मिलता। अख़बार पढ़नेवाले यह बात अच्छी तरह जानते होंगे कि अधिकांश भारतीय कारख़ाने बहुत बुरी हालत में हैं। कारण, माल नहीं बिकता। सोचने की बात है कि कारख़ाने में पटक रखने से या शहरों में दूकानें खोल देने से ही माल की खपत कैसे हो सकेगी? माल की खपत तो तभी होगी, जब वह देहातों में पहुँचाया जायगा। देहातों में विदेशी पदार्थ बिकते हैं, और शहरों में देशी पदार्थ भरे पड़े हैं, कोई ख़रीदनेवाला ही नहीं मिलता। इसलिये हम भारतीय व्यापारियों और कारख़ानेवालों से अपील करते हैं कि भाइयो, अगर यह चाहते हो कि देशी पदार्थों का प्रचार हो, तुम्हारा माल घर-घर पहुँच जाय, तो अमेरिका का अनुकरण करो, और अमेरिकन पद्धति में योग्य एवं आवश्यक परिवर्तन करके तदनुसार अपने माल के प्रचार का यत्न करो। अवश्य ही सफलता मिलेगी।

शंकरराव जोशी

दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश और अलाउद्दीन ख़िलजी

किसी ने सच कहा है—"संसारोऽत्यंतीव विचित्रः"—यह संसार बहुत ही विचित्र है। इसमें कैसी-कैसी विचित्र घटनाएँ संघटित होती, कैसी-कैसी क्रांतियाँ अकस्मात् हो उठती, कैसे-कैसे विप्लव जन-समाज में उथल-पुथल कर डालते हैं, इसका कुछ ठिकाना है! साधारण परिवर्तन तो नित्य नए होते ही रहते हैं, जिससे संसार परिवर्तनशील कहलाता है; पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से इनके कारणों की परीक्षा की जाती है, तो यह विचित्रता और भी बढ़ जाती है। यदि हम किसी महत्त्व-पूर्ण घटना को देखते हैं, तो उसका कारण बहुत ही क्षुद्र मालूम पड़ता है; पर गहरा ग़ोता लगाने से देख पड़ता है कि उस घटना का यही एक कारण नहीं है, वरन् वह कारणरूपी शृंखला की अंतिम कड़ी है। सन् १८५७ में बारकपुर के एक कुएँ पर एक चमार के दो शब्दों ने मंगल पाँड़े की क्रोधाग्नि भड़काकर कैसा विप्लव खड़ा कर दिया, कैसी दावाग्नि प्रज्वलित कर दी कि सैकड़ों अँगरेज़ तथा हिंदोस्तानी उसमें बात-की-बात में भस्म हो गए!

प्रत्येक देश के इतिहास में ऐसे ही अनेक विप्लवों के उल्लेख मिलते हैं, जिनके कारण ऊपर से देखने में तो अत्यंत क्षुद्र थे, पर उनका फल बहुत ही महत्त्व-पूर्ण हुआ। इस लेख में हम इसी प्रकार की एक घटना का संक्षिप्त वर्णन करना चाहते हैं, अर्थात् यह बतलाना चाहते हैं कि दक्षिण में मुसलमानों का पदार्पण पहले पहल कैसे हुआ।

सन् १२८६ में ग़यासुद्दीन बलबन की मृत्यु के बाद उसके पोते, कैक़ोबाद, के मारे जाने पर सन् १२६० में उसका सुयोग्य मंत्री जलालुद्दीन ख़िलजी देहली का सुल्तान हुआ। इस समय वह बूढ़ा हो गया था; पर बड़ा शूरवीर और दयालु था। इसके तीन सयाने बेटे और दो भतीजे थे। इन तीन बेटों में से एक अपने पिता के ही समान शूर-वीर था, और भतीजा अलाउद्दीन बड़ा साहसी और महत्त्वाकांक्षी था। वह अपने स्वार्थ-साधन में पाप-पुण्य का विचार तनिक भी नहीं रखता था, और घृणित-से-घृणित कार्य करने में इसको संकोच न था। बूढ़े सुल्तान ने अपनी एक शाहज़ादी अलाउद्दीन को और दूसरी उसके छोटे भाई को ब्याह दी थी। बड़ी शाहज़ादी अपने पति अलाउद्दीन से भी अभिमान-पूर्ण बर्ताव करती थी। दुर्भाग्य-वश सास मलकाजहाँ भी अपनी बेटी ही का पक्ष लेती थी, जिससे उस मानिनी को और भी उत्साह मिलता, और वह अपने स्वामी को नीचा दिखाने का अवसर खोजती रहती थी। मियाँ भी बीबी से कुछ कम अभिमानी न थे, जिससे इन दोनों के बीच ख़ासी छूट-आँठ रहा करती थी।

अलाउद्दीन जब तक देहली में रहा, उसकी कुछ न चली। वह भी इसी बात का अवसर ताकता रहता था कि इस मानिनी का मान-मर्दन किस प्रकार करूँ। एक बार उसे अपने अभीष्ट की सिद्धि का अवसर अनायास ही मिल गया। अवध और कड़े के सूबे में राजविद्रोह की ज्वाला धधक उठी, जिसके दमन के लिये बूढ़े सुल्तान ने अलाउद्दीन को ही योग्य समझ वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया। इसने वहाँ जाकर शांति स्थापित कर दी; पर इस सफलता के कारण उसके अभिमान का पारा और ऊँचा चढ़ गया। साथ ही उसकी महत्त्वाकांक्षा ने भी ज़ोर पकड़ा। अब उसे निरी सूबेदारी से संतोष न रहा, सुल्तान बनने की सूझी। उसने देखा, अपनी स्त्री के साथ बदला लेने का भी यही एक उपाय है। उस सूबे में असंतोष तो फैला ही था। वहाँ के अमीरों ने सूबेदार साहब के चित्त की प्रवृत्ति इस ओर देख उन्हें ख़ूब उल्टी पट्टी पढ़ाई।

यह सूबा उन दिनों देहली से बहुत दूर पड़ता था, इस-लिये सुल्तान भी उसकी यथोचित देख-भाल नहीं कर सकता था। साथ ही उसे अपने भतीजे पर पूर्ण विश्वास था। इसी से इस विश्वासघाती को अपनी अभिलाषा पूरी करने के प्रबंध का मनमाना अवसर मिला। वह स्वतंत्रता-पूर्वक तैयारियाँ करने लगा। उस पर बूढ़े सुल्तान के बड़े-बड़े एह-सान थे। उसने अपने पुत्रों के समान इसका लालन-पालन किया था, अपनी बेटी इसे ब्याह दी थी, और एक उच्च पद पर बैठा दिया था। पर वह इन सब उपकारों को भूलकर कृतघ्न बन बैठा। उसकी महत्त्वाकांक्षा तथा बदला लेने की वासना इतनी प्रबल हो उठी कि उसने उसके सब सद्गुण दबा लिए।

जब और सब तैयारी हो चुकी, मनमाने सहायक भी मिल गए, तो उसने देखा, अब सिर्फ़ धन की कसर है। उसने सोचा, यदि मैं अपने सूबे में ही धन-संचय करने का उद्योग करता हूँ, तो यह बात सुल्तान से छिपी नहीं रह सकती; और यदि सुल्तान को संदेह हुआ, तो बात बिगड़ जायगी। मैं इस सूबे से हटा दिया जाऊँगा, और देहली में रहकर फिर उस मानिनी की झिड़कियाँ सुननी पड़ेंगी।

उन दिनों दक्षिण के देवगिरि आदि कई हिंदू-राज्य बहुत उन्नति पर थे, और उनकी धन-संपत्ति प्रसिद्ध थी। अलाउद्दीन देवगिरि-राज्य की ओर शनि की दृष्टि से देखने लगा। इतने में सुल्तान की आज्ञा से उसे भेलसा पर चढ़ाई करने का मौक़ा मिला। भेलसा तक जाने पर दक्षिण में उतर पड़ना कोई कठिन बात न थी। उसने सोचा, यदि सफलता न मिली, तो भी सुल्तान के रुष्ट हो जाने का कोई भय नहीं। एक हिंदू-राज्य पर आक्रमण करना मुसलमानों का धार्मिक कर्तव्य है। सुल्तान को समझा लिया जायगा। और, जो सफलता मिली, तो अभीष्ट की पूर्ण सिद्धि हो जायगी, देवगिरि की अपार धन-संपत्ति पाकर देहली का सुल्तान बन जाना कोई कठिन बात न होगी।

बस, अलाउद्दीन अपनी सेना लेकर दक्षिण में जा घुसा। दक्षिण के हिंदू-राज्यों का भाग्य भी अब फूटने को आया। दक्षिण की स्वतंत्रता नष्ट होकर मुसलमानी राज्य के सूत्रपात का समय आ ही गया। अलाउद्दीन ने इस बार देवगिरि का राज्य लेने के लिये नहीं चढ़ाई की। इस बार उसका एक-मात्र उद्देश्य इस हिंदू-राज्य की अपार धन-संपत्ति लूट लेना ही था। तो क्या बूढ़े सुल्तान को इन सब बातों की कोई ख़बर ही न थी? ख़बर थी, उसका मंत्री अलालुद्दीन फ़ीरोज़ अपने जासूसों से जो ख़बर पाता था, वह सुल्तान को बतला देता था, और उसे सजग भी करता था; पर बुड्ढे को इन ख़बरों पर विश्वास ही न होता था। वह यही कहता था कि अलाउद्दीन तो मुझे अपने

बेटों से बढ़कर प्रिय है । मैंने उसके साथ ऐसा क्या बुरा सलूक किया है, जो वह मेरी सब मोहब्बत और एहसान भुलाकर मेरा दुश्मन बन जायगा ? जो लोग दिल के अच्छे होते हैं, वे बहुधा इसी तरह धोका-खाया करते हैं । सुलतान से इतनी नीचता और ऐसा विश्वासघात नहीं हो सकता था । अतएव उसने समझा कि ऐसा किसी भी मनुष्य से न हो सकेगा । उसने दयालुता दिखाकर जिन विरोधियों को जीवदान दिया था, वे भी उसका उपकार न मानकर अलाउद्दीन के सहायक बन बैठे थे । एक बात और थी । अलाउद्दीन का भाई देहली में ही रहता था । मंत्री आदि जब अलाउद्दीन के विरुद्ध सुलतान को सचेत करना चाहते, तो वह भाई झूठी-सच्ची बातों से उसके संदेह को दूर कर देता था।

निदान भेलसा में पहुँचकर अलाउद्दीन को ख़बर मिली कि पर्वतों के उस पार थोड़ी ही दूर पर महाराष्ट्र-देश में देवगिरि का हिंदू-राज्य धन-संपत्ति से परिपूर्ण समझा जाता है । वहाँ का राजा रामचंद्र या रामदेव बहुत समय से राज्य कर रहा है, और उसके राज-कोष में अपार धन-संपत्ति संचित है । उसने यह भी सुना कि इन दिनों रामचंद्र (रामदेव) की सेना उसके राजकुमार शंकरदेव के सेनापतित्व में इयशाल-नरेश के साथ लड़ने को गई है । मौक़ा बहुत अच्छा है । रामचंद्र की जितनी सेना बच रही है, वह बहुत थोड़ी होने के कारण हमारा सामना न कर सकेगी ।

उसने देखा, मौक़ा तो बहुत अच्छा मिला है, पर यदि सुलतान को मालूम हो गया कि मैं देवगिरि लूटकर बहुत धन लाया हूँ, तो कदाचित् वह उसे ले लेना चाहे । यदि धन दे देना पड़ा, तो सब प्रयत्न व्यर्थ जायगा, और जो देना अस्वीकार किया, तो सुलतान को संदेह हुए बिना न रहेगा । यही सोचकर देवगिरि पर चढ़ाई करने के पूर्व उसने ऐसा प्रबंध कर लिया कि उसके कार्यों के विषय में सुलतान को कोई ख़बर न मिलने पावे । इतना सब करके उसने सुलतान से आज्ञा माँगी कि मुझे चंदेरी-राज्य पर चढ़ाई करने दीजिए । वहाँ के काफ़िर राजा को शिक्षा देने की बड़ी आवश्यकता है । वह इतना अभिमानी है कि मुसलमानों को पासंग के बराबर भी नहीं समझता । सुलतान ने आज्ञा दे दी । इस पर अलाउद्दीन खुल्लमखुल्ला चंदेरी की ओर बढ़ा । वहाँ उसने अपनी सब सेना छोड़ दी, और केवल कुछ चुने हुए सवारों को लेकर चुपके-से वह एलचपुर की ओर बढ़ा । एलचपुर पहुँचकर उसने विश्राम किया । वहाँ से देवगिरि-राज्य की सीमा दूर न थी । यथेष्ट विश्राम करके उसने लजूरा-घाटी की ओर कूच कर दिया । वहाँ से देव-गिरि-नगर केवल १२ मील था ।

प्रश्न हो सकता है कि उसके इतने समीप पहुँचने पर भी राजा रामचंद्र ने उसके आगे बढ़ने में बाधा क्यों नहीं डाली ? इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उसने पहले से ही यह अफ़वा फैला दी थी कि अला-उद्दीन अपने चचा से रूठकर राजमहेंद्री के राजा के यहाँ नौकरी करने जा रहा है । तो भी रामदेव अचेत नहीं रहा । उसने जो कुछ सेना इधर-उधर फैली थी, उसे एकत्र करके मुसलमानों को लजूरा-घाटी में ही रोक देना उचित समझा, और २ या ३ हज़ार सवारों को इस काम के लिये भेजा । अलाउद्दीन ने बात-की-बात में इस क्षुद्र दल को मार भगाया । वे लोग तो देवगिर की ओर भागे, और अलाउद्दीन उनके पीछे लगा दौड़ा । यह देख राम-देव ने अपने दुर्ग में शरण ली । पर उसकी रक्षा करना उस-के लिये बहुत कठिन था । उसके साथ न तो यथेष्ट योद्धा थे, और न सामग्री । फिर ऐसे प्रबल पराक्रमी शत्रु को वह रोकता, तो कैसे रोकता ? बात तो यह थी कि देवगिरि की राज्य श्री उससे रूठ गई थी; नहीं तो ऐसा विकट संयोग आता ही क्यों ? क्या रामदेव के पास इतने जासूस न थे, जिनके द्वारा वह आसपास क्या हो रहा है, कौन आता, कौन जाता है, इन बातों की ख़बर रखता ? शत्रु जब राजधानी से केवल १२ मील की दूरी पर आ पहुँचा, तब उसकी नींद खुली ! प्रायः सब सेना सीमांत को भेज देना भी राजनीति के विरुद्ध कार्य था । दुर्भाग्य-वश क़िले के बाहर खाईं भी न थी, और न क़िले के भीतर इतने थोड़े रक्षकों के लिये भी पर्याप्त भोजन-सामग्री । उसी समय एक टाँडा मुसलमानों के आने की ख़बर सुनते ही अपने बोरे वहीं छोड़ भाग गया था । उन बोरों को नाज के बोरे समझकर रामदेव ने क़िले में रखवा लिया था, और इसी के भरोसे दुर्ग-रक्षा का साहस किया था । अलाउद्दीन ने एकाएक क़िले पर धावा नहीं किया । उसने यह ख़बर उड़ा दी कि अभी मेरे २० हज़ार सवार और शीघ्र ही पहुँचनेवाले हैं, उनके आ जाने पर मैं बात-की-बात में क़िला ले लूँगा ।

यह ख़बर सुन रामदेव घबरा गया। उसने इसी में बुद्धिमानी समझी कि शत्रु के साथ मेल कर लिया जाय। ऐसा निश्चय करके उसने अलाउद्दीन के पास संदेश भेजा कि आपको युद्ध करने में क्या लाभ होगा? राजकुमार शंकरदेव के सेना-सहित लौटने में अब कुछ देर नहीं है। हमारी विशाल सेना के पहुँच जाने पर आप कभी न जीतेंगे। फिर आपको भागते रास्ता न मिलेगा। यहाँ तो हमारी सेना पीछा करेगी, वहाँ, ख़ानदेश, गोंड़वाना आदि देशों के वीर राजा आपका मार्ग रोकेंगे। इसका फल यही होगा कि आप और आपके सैनिक जीते-जी घर न लौट पावेंगे। यह अच्छा होगा, या मेल कर लेना? अलाउद्दीन इन कठिनाइयों को भली भाँति समझता था। वह विजय के लिये आया भी तो न था; केवल धन-लिप्सा उसे खींच लाई थी, इसलिये उसने देखा कि यदि मेल करने से अभीष्ट की सिद्धि हो जाय, तो और भी अच्छा। उसने उत्तर दिया कि यदि आप मेल चाहते हैं, तो मेल ही सही; पर यह तभी हो सकेगा, जब आप लूट का सब माल तथा ५० मन सोना, ७ मन मोती, ४० हाथी, इतने ही हज़ार घोड़े तथा और कुछ माल देने को तैयार हो जायँ। यह बातचीत चल ही रही थी कि कुमार शंकरदेव दिन और रात चलकर सेना-सहित देवगिरि पहुँच गया। रामदेव ने उसे ख़बर भेजी कि मुसलमानों से लड़ने में भलाई नहीं है। इनकी सेना अभी तो थोड़ी है, पर न-जाने किस वक़्त २० हज़ार सवार और आ जायँ। उस समय इन्हें जीत लेना कठिन हो जायगा।

वीर शंकरदेव को पिता की यह सलाह निरा कायरपन मालूम हुई। उसने अलाउद्दीन को कहला भेजा कि आपके पास देवगिरि की लूट का जो माल है, उसे सीधे लौटा दीजिए, और घर का रास्ता पकड़िए; नहीं तो एक भी मुसलमान को जीता न छोड़ूँगा। यह सुन अलाउद्दीन मारे क्रोध के आग-बबूला हो गया। उसने शंकरदेव के भेजे हुए दूतों का काला मुँह किया, और गधों पर चढ़ाकर उन्हें वापस भेजा। साथ ही एक हज़ार सवारों को क़िले की रखवाली के लिये छोड़ शेष ७ हज़ार के साथ उसने हिंदू-सेना पर आक्रमण किया। ख़ूब घमासान युद्ध हुआ। अंत में मुसलमानों के पैर उखड़ गए। वे भागने पर ही थे कि नसरतख़ाँ, जो क़िले को घेरे हुए था, अपने एक हज़ार सवारों के साथ आकर भागनेवाले सवारों में मिला। देवगिरि के दुर्दैव ने शंकरदेव की बुद्धि हर ली। २० हज़ार नए सवार आने की किंवदंती ने उसे साहस-हीन बना दिया। विजय पराजय में परिणत हो गई। दक्षिण की स्वतंत्रता खो जाने का सूत्रपात हो गया। हिंदू वीर घूहे से डरनेवाली स्त्रियों के समान भाग पड़े। क्षण-भर में खेत साफ़ हो गया।

जो होता है, हमारे कर्मों का फल है। व्यक्तिगत दुर्भाग्य के समान जातिगत दुर्भाग्य होता है। बड़ी पराक्रमशीला जाति भी जब विलासिता के फंदे में पड़कर अपना प्राचीन गौरव खो बैठती है, तब परमात्मा उसे स्वतंत्रता का उपभोग करने के योग्य न समझकर उसके हाथ-पैर दासता की शृंखलाओं से जकड़ देता है, जिससे वह सँभले या रसातल को जाय। सच कहा है—"जाको विधि दारुण दुख देहीं; ताकी बुधि पहले हर लेहीं।" मुसलमानों के आने के समय इस वीर-भूमि भारतवर्ष की बुद्धि अवश्य ही विधि ने हर ली थी; नहीं तो क्या सिंध में उनके घुस आने पर भारतीय नृपतिगण सचेत न होते? ग़ोरी के बहुत समीप आ जाने पर पृथ्वीराज अंतःपुर में ही पड़े रहते, और रानी संयोगिता को उन्हें युद्ध के लिये उत्साहित करना पड़ता? यदि विधि ने जयचंद्र की बुद्धि न हरी होती, तो क्या वह ग़ोरी को भारत में प्रवेश करके पृथ्वीराज का—अपने वीर जामाता का—नाश करने को आमंत्रित करता, और युद्ध के समय अपने बंधु को सहायता न देता? रामदेव आदि दक्षिण के हिंदू-राजों को ही देखिए। विधर्मी और विदेशी शत्रु ने तो सारा उत्तरीय भारत अपने अधिकार में कर लिया था, और बहुत काल से उनके बंधुओं पर राज्य कर रहा था। उन शत्रुओं का दक्षिण में घुस आना कौन कठिन था? पर नहीं, इनके दुष्कर्मों से रुष्ट होकर विधि ने इनकी बुद्धि हर ली थी, जिससे शत्रु से मुठभेड़ करना दूर, शंकरदेव अपनी विशाल सेना लेकर और राजधानी को अरक्षित छोड़कर अपने ही एक बंधु से लड़ने को चढ़ गए। यह समय आपस की कलह का नहीं, संगठन का था; पर करे कौन? न तो विलासिता से फ़ुर्सत थी, और न आपस के वैर-भाव और कलह से। उन दिनों इन राजों की कलह ने सारे देश को स्वतंत्रता खो दी; आजकल की दलबंदी अब और क्या करेगी, सो कहना कठिन है। हिंदू होकर भी हम हिंदू-संगठन से विमुख हैं!

अब तो अलाउद्दीन के उत्साह का कहना ही क्या था! उसने क़िले का विकट मुहासरा किया। धनो-मानी हिंदू को

वह बेड़ियों से जकड़कर क़िले के सामने खड़ा करता, जिससे क़िले के रक्षक डर जायँ कि एक दिन हमारी भी यही दशा होगा, और आत्मसमर्पण कर बैठें। हिंदू-बंधुओं का भी क़िले के सामने इसी अभिप्राय से बड़ी निर्दयता से वध करवाता था। इस पर भी राजा रामदेव और मुट्ठी-भर वीर योद्धाओं ने बड़े साहस से क़िले की रक्षा की। पर भारत का दुर्दैव तो उसके पीछे पड़ा था! दुर्ग-प्रवेश के समय जो बोरे नाज के समझकर उठवा लिए गए थे, वे जब खोले गए, तो उनमें नमक-ही-नमक निकला। इसे असावधानी कहें या दुर्भाग्य। क़िले में उन बोरों के अतिरिक्त एक दाना नाज भी न बचा था। बाहर शत्रु और भीतर दुर्भिक्ष। अब वे लोग कैसे साहस रख सकते थे? भीतर और बाहर मृत्यु ही दिखाई देती थी।

ऐसी शोचनीय अवस्था में राजा रामदेव ने सिर पटककर फिर से मेल कर लेने की बातचीत चलाई। अब तो अलाउद्दीन ताड़ गया कि दुर्ग की रक्षा सफलता-पूर्वक करते हुए इन वीरों ने संधि का प्रस्ताव फिर से जो उपस्थित किया है, उसका गंभीर कारण अवश्य होगा। हो न हो, इनके पास अन्न नहीं बचा, जिससे ये ऐसा प्रस्ताव कर रहे हैं—"बुभुक्षितः किं न करोति पापं!" यह सोचकर इस दैव के दुलारे पठान ने अपने हाथ-पैर ख़ूब पसारे। उसने उत्तर दिया कि तुम एक बार संधि का प्रस्ताव करके मुझे धोखा दे चुके हो, इसलिये पुरानी शर्तों पर अब मेल नहीं हो सकता। इतिहास-लेखक फ़रिश्ता लिखता है कि इस बार अलाउद्दीन ने रामदेव से ६०० मन सोना, ७ मन मोती, २ मन रत्न, १ हज़ार मन चाँदी और एलचपुर प्रांत की वार्षिक आय पाने पर संधि करने की बात छेड़ी। रामदेव को विवश हो ये शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं। मालामाल होकर अलाउद्दीन अपने सूबे को लौटा। वह अपार संपत्ति गई सो तो गई, पर मुसलमानों के लिये दक्षिण का रास्ता साफ़ हो गया। "बुढ़िया मरी सो तो मरी, पर यमराज घर देख गए।" ऐसी दुर्घटना हो जाने पर भी दक्षिण के हिंदू-राजाओं की आँखें न खुलीं, उन लोगों ने शत्रु के धावों को रोकने के लिये आपस में मिलकर तैयारी नहीं की।

अब देहली की बात सुनिए। अलाउद्दीन के उत्तम प्रबंध से एलचपुर छोड़ने के बाद की कोई ख़बर बूढ़े सुल्तान को नहीं मिली। जब वह अपार धन-संपत्ति लिए हुए उत्तर की ओर बढ़ रहा था, तब सुल्तान को उसकी करतूतों का हाल मालूम हुआ। एक बार फिर उसके मंत्रियों तथा शुभचिंतकों ने उसे सचेत किया कि आप अपने इस महत्त्वाकांक्षी भतीजे से अब भी होशियार हो जायँ, नहीं तो किसी दिन बड़ा धोखा खायँगे। उसके परम भक्त मंगरी महम्मद चाप ने उसे इस तरह समझाया—अब अलाउद्दीन के पास अपार धन-संपत्ति हो गई है। सोना-चाँदी, जवाहर, हाथी-घोड़े, सभी उसके पास हैं। आपने तो ज़माना देखा है, और आप स्वयं बुद्धिमान् हैं, इसलिये मेरे यह कहने की ज़रूरत नहीं कि दौलत इंसान को अंधा कर देती है। जिसके पास बेशुमार दौलत हो जाती है, उसका हौसला हद से ज़्यादा बढ़ता है; वह ऊँचे-से-ऊँचे दर्जे को पहुँचने की कोशिश किए बिना नहीं रहता। पाप पुण्य का ख़याल उसे नहीं रहता। पहले भी मलिक छज्जू के साथ बग़ावत करनेवाले जिन बेईमानों को आपने रहम कर छोड़ दिया था, वे शाहज़ादे अलाउद्दीन को घेरे रहते और सलाह देते थे कि आप देहली की मसनद पर क़ब्ज़ा कर लें। उस वक़्त उसके पास था ही क्या, जो वह आपसे भिड़ने की हिम्मत करता; पर अब उसे किसी बात की कमी नहीं है, इसलिये न-जाने किस दिन वह हमला कर बैठे। इसी से मैं अर्ज़ करता हूँ कि अब आप उससे होशियार हो जायँ। अच्छा तो यह होगा कि आप शाही फ़ौज लेकर चलें, और रास्ते में उससे मिलें। दुनिया को मालूम हो कि आप उसे मुबारकबादी देने के लिये गए हैं। जब आप उससे इस तरह मिलेंगे, तो शर्माशर्मी या शाही फ़ौज के डर से वह अपनी सारी कमाई आपके क़दमों पर रख देगा। आप ख़ुशी से उसे क़बूल कर लें और शाही ख़ज़ाने में रख दें। इसमें आपकी भी भलाई है, और उसकी भी। साँप का ज़हरीला दाँत निकाल देना ही अच्छा है। आप बतौर इनाम के उसे मामूली रक़म और कुछ जागीर इनायत कीजिए, और बड़ी ख़ातिर से उसे देहली ले आइए। शाहज़ादे अलाउद्दीन का अलग रहना ख़तरे से ख़ाली नहीं है।

सलाह तो बहुत अच्छी थी, पर बूढ़े सुल्तान के कोमल हृदय पर उसका प्रभाव कुछ भी न पड़ा। अपने प्यारे भतीजे के प्रति ऐसा अविश्वास प्रकट करना सुल्तान के लिये बड़ी कठिन बात थी। उसने यही उत्तर दिया कि मैंने अलाउद्दीन का क्या बिगाड़ा है, जो वह मेरे साथ

ऐसी दया करेगा, और लूट का माल, जिस पर मेरा हक़ है, मुझे न देगा ?

बूढ़े सुल्तान का ऐसा भोलापन देख अलाउद्दीन के एक पक्षपाती उमरा ने उसकी बहुत सराहना की, और कहा कि शाहज़ादा ऐसा बेवफ़ा नहीं है। वह तो ख़ुद क़ायल है कि आपकी इजाज़त लिए बिना मैंने देवगिरि पर धावा किया। आप उसके सुल्तान ही नहीं, पिता से भी बढ़कर हैं, इसलिये आप चलकर उसे तसल्ली दीजिए, जिससे उसके दिल का रंज दूर हो जाय। मारे शर्म के वह देहली आने की हिम्मत नहीं करता, इसलिये आप ही कड़े चलकर उसे गले से लगाइए। इस विश्वासघाती उमरा की सलाह सुल्तान ने मान ली, और वह कड़े को गया। वहाँ पहुँचते ही नर-पिशाच अलाउद्दीन की इच्छा से उसका वध किया गया, और वह देहली-पति बन बैठने का प्रयत्न करने लगा।

अलाउद्दीन का भाग्य बड़ा प्रबल था। ठीक मौक़े पर जहाँ कहीं बाधा आती, वहीं दैव अपने बुहारे के कंटकाव-कीर्ण मार्ग को परिष्कृत कर देता था। बूढ़े सुल्तान के मारे जाने पर देहली में बेगम मल्काजहाँ ने एक बड़ी मूर्खता कर डाली। उसने बड़े शाहज़ादे को, जो सब तरह योग्य था, अलग करके उसके छोटे भाई अर्कलीख़ाँ रुक-नुद्दीन को मसनद पर बैठा देना चाहा। रुकनुद्दीन शासन करने के बिलकुल अयोग्य था। ऐसे योग्य उत्तराधिकारी के रहते बेगम ने रुकनुद्दीन-सदृश अयोग्य व्यक्ति को इस भार के उठाने के लिये क्यों चुना ? कदाचित् इस उद्देश्य से कि वह उसकी सम्मति के विरुद्ध कोई कार्य न करेगा, जिससे उसका अधिकार बना रहेगा। जो हो, सबसे बड़ा कारण तो अलाउद्दीन का सौभाग्य ही देख पड़ता है। फल यह हुआ कि देहली के प्रायः सभी अमीर और उमरा रुकनुद्दीन के विरुद्ध खड़े हो गए। इसी समय अलाउद्दीन देहली की ओर बढ़ा। मार्ग में उसने देवगिरि का सोना-चाँदी कौड़ियों के समान लुटाया, जिससे उसकी दान-वीरता का यश देहली में पहले से ही फैल गया, और उसकी कीर्ति-पताका फहराने लगी। ऐसे धनी से सभी को आशा हो गई। लोभ में पड़कर बड़े-बड़े अमीर और मलिक अला-उद्दीन के सब पापकर्म भूल गए। वर्षा-काल में कड़े से देहली आने में उसे ४ मास लगे। जब उसने देहली में प्रवेश किया, तो उसका बड़ा स्वागत हुआ। उसके सोने-चाँदी ने विचित्र काम कर दिखाया। ऐसे विश्वास-घाती नर-पिशाच को देहली के अमीर और सरदारों ने पवित्र देवता मान लिया। सब-के-सब अर्कलीख़ाँ को भूल इसी के पक्षपाती बन बैठे। कहीं कोई ज़रा-सी भी खटपट न हुई। बात तो यह थी कि अलाउद्दीन के सौभाग्य से उस समय न तो मल्काजहाँ ही देहली में थी, और न अर्कलीख़ाँ। कहावत है—"आँखिन देखे चेतना, मुँह देखे व्यवहार।" सो जो लोग पहले इन लोगों के पक्ष में थे, वे भी अलाउद्दीन के सोने-चाँदी के वश में होकर अपना कर्तव्य भूल गए। सारांश यह कि अलाउद्दीन देहली का सुल्तान बन बैठा, और किसी ने उसके विरुद्ध चूँ न की। पाठकगण, भारत-इतिहास के पठान-काल में अला-उद्दीन सबसे बड़ा सुल्तान हुआ है। इसी ने दक्षिण के हिंदू-राज्यों को नष्ट करके मुसलमानी-साम्राज्य में मिलाया।

रघुवरप्रसाद द्विवेदी

"बिहारी-रत्नाकर"

विहारी-रत्नाकर को देखकर असीम आनंद प्राप्त हुआ। बाबू जगन्नाथ-दास मेरे बड़े प्राचीन मित्र हैं। इनसे मेरा पहला परिचय सन् १८८६ ई० में हुआ था, जब यह क्वींस कॉलेज, बनारस में, एंट्रेंस क्लास में, पढ़ते थे, और मैं दर-भंगे से एंट्रेंस पास करके फ़र्स्ट इयर क्लास में आया था। इनकी जीवनी पढ़ने से मालूम होता है कि बाल्यावस्था ही से इनको कविता करने का शौक़ था। उन दिनों तो यह बात हम लोगों को नहीं ज्ञात थी, पर इतना अब भी स्मरण है कि इनके स्वरूप में अलौकिक प्रतिभा और बातों में अपूर्व सरसता थी। इधर आकर तो रत्नाकरजी हिंदी-काव्य-संसार के एक अपूर्व रत्न हो गए हैं, और मेरे-जैसे प्राची-नता के पक्षपाती के लिये यह एक बड़े संतोष की बात है कि उन्होंने अभी तक अपनी कविता में व्रजभाषा का परित्याग नहीं किया। हिंदी-काव्य को व्रजभाषा से पृथक् करना मुझे एक महा अनर्थ मालूम होता है। यदि

काव्य का (संस्कृत पढ़ा हुआ मैं उर्दू के आदर्श पर 'आत्मा'-शब्द को स्त्रीलिंग नहीं बना सकता) आत्मा 'रस' है, तो ब्रजभाषा के हट जाने से हिंदी-काव्य आत्मा-शून्य ही मालूम होता है।

संभव है, यह मेरा ख़याल ग़लत हो ; पर रत्नाकर-जी-जैसे प्रतिष्ठित कवि के आश्रय से इतना लिखने का साहस होता है।

प्राचीन काल से कवित्व-शक्ति और टीका-शक्ति परस्पर विरुद्ध समझी गई हैं। इस प्रसंग में एक अच्छी कथा याद आ गई। एक दिन एक राजा शाम को बग़ीचे में घूम रहे थे। प्राचीन काल के राजा होने से साथ में कुत्ते-बिल्ली न रहकर पंडित और कवि थे। एक कवि और टीकाकार के बीच में विवाद होने लगा—

कवि ने कहा—यदि कवि के काव्य में सरस अर्थ न रहेगा, तो टीकाकार कहाँ से ले आवेगा ?

पंडित ने कहा—यदि टीकाकार सहृदय है, तो नीरस पद्यों से भी सरस अर्थ निकाल सकता है।

राजा ने कहा—इस विवाद का अभी निपटारा कर दीजिए। कविजी, आप इस आम के वृक्ष का वर्णन कीजिए। उसका अर्थ पंडितजी करेंगे।

कवि ने यह श्लोक बनाया—

"इयं सम्प्राप्ता दूरादहमुपगतोऽहन्तमलयात्
तवैकान्ते गेहे तरुणि वत नेष्यामि रजनीम् ;
समीरेणोक्तैवं नवकुसुमिता चूतलतिका
धुनाना मूर्द्धानं नहि-नहि-नहीत्येव कुरुते।"

पंडित—कविजी, इस श्लोक का आशय वर्णन कीजिए।

कवि—आशय तो स्पष्ट ही है—

एक पथिक (वायु) दूर देश (मलय-पर्वत) से आया है, और नायिका (चूत-लतिका) से कहता है मैं दूर से आया हूँ, और थका हूँ। रात-भर तेरे घर में ठहरूँगा। इस पर नायिका 'नहीं' कर देती है। बस, यही इसका अर्थ है। हवा में जो वृक्ष हिल रहा है, वही मानो 'नहीं' कर रहा है।

पंडित—यह तो बताइए कि (१) 'नवकुसुमिता' विशेषण आपने क्यों दिया ? (२) 'नहि' पद का तीन बार क्यों प्रयोग किया ? (३) और 'एकान्ते' पद से आपका क्या तात्पर्य है ?

कवि—(१) नवकुसुमिता से यह तात्पर्य है कि आम के पेड़ में नए बौर निकले हैं, और (२) 'एकान्ते' पद का प्रयोग और 'नहि' पद का तेहराना छंद के पूरा करने के लिये है।

पंडित—क्षमा कीजिए कविजी ! आप अपने कवित्व के ऊपर लांछन लगा रहे हैं। श्लोक का तो असल आशय यह है—'नहि' पद का जो तीन बार प्रयोग किया गया है, इसका यह अर्थ है कि "तीन दिन तक मैं आपके सत्कार करने योग्य नहीं होऊँगी"—क्यों नहीं होऊँगी, इसी को सूचित करने के लिये 'नवकुसुमिता' यह विशेषण दिया गया है। इसका अर्थ सरस पाठक स्वयं समझ लेंगे। स्पष्ट लिखना उचित न होगा। कुछ ऐसा ही गूढ़ आशय नायक का भी था, इसी की सूचना 'एकान्ते' पद से होती है। अब देखिए, आपके नीरस पद में कितनी सरसता आ गई ?

इस बात को कवि ने मान लिया।

इस कथा की संगति यहाँ यह है कि रत्नाकरजी ने इस प्रसिद्ध विरोध को अपने ग्रंथ के द्वारा दूर कर दिया है। इस ग्रंथ के देखने से स्पष्ट है कि रत्नाकरजी केवल सरस कवि ही नहीं, बड़े सरस टीकाकार भी हैं। मल्लिनाथ ने अपनी टीकाओं में प्रतिज्ञा की है कि वह अपनी टीकाओं में आवश्यक बात एक भी न छोड़ेंगे, और अनावश्यक बात एक भी न लिखेंगे। मल्लिनाथ ने इसको निबाहा कि नहीं, इसमें तो प्रायः कुछ लोग (ख़ासकर हमारे युनि-वर्सिटियों के विद्यार्थी) संदेह भी करते हैं, पर 'बिहारी-रत्नाकर' में यह प्रतिज्ञा पूर्णरूप से निबाही गई है।

बिहारी के दोहे ऐसे हैं कि इनमें से तोड़-मरोड़कर नाना अर्थ निकाले जा सकते हैं। इस लाभ में प्रायः सभी टीकाकार पड़ जाया करते हैं। पर हमारे रत्नाकरजी अपने को इस लोभ से बचाने में सफल हुए हैं।

दृष्टांत के लिये दोहा नं० २८८ लीजिए, जिसके दो अर्थ प्रायः सभी 'बिहारी' पढ़नेवाले जानते हैं। परंतु दूसरा अर्थ, जिससे यह विदग्धा नायिका की उक्ति हो जाता है, पदों का गला घोट कर ही निकाला जाता है। यह देखकर बड़ा संतोष होता है कि ऐसे अर्थों का समावेश रत्नाकरजी ने अपने ग्रंथ में नहीं होने दिया।

गंगानाथ झा

भारतीय गान-विद्या का संक्षिप्त अर्वाचीन इतिहास

आधुनिक अनुसंधानकर्ताओं की खोज से ज्ञात हुआ है कि भारतीय गान-विद्या का अस्तित्व 'ब्राह्मण'-काल में (अर्थात् विक्रम-संवत् से १,४०० वर्ष से अधिक और २,४०० वर्ष से कम पूर्व के काल में) स्थापित हुआ था।

लगभग सौ वर्ष से योरपियन व भारतीय संगीतज्ञ भारतीय गान-विद्या की अर्वाचीन खोज करते आ रहे हैं। कैप्टेन विलार्ड साहब ने सन् १८३४ में भारतीय गान-विद्या के विषय पर एक निबंध सोसाइटी ऑफ़् आर्ट (लंदन) को भेजा था। सर विलियम जोंस ने 'हिंदी म्यूज़िकल स्केल्स' और मि० बोजंक्वेट ने 'हिंदू डिवि-ज़न् ऑफ़् दि ऑक्टेव' नाम के दो निबंध रॉयल सोसाइटी ऑफ़् आर्ट को सन् १८७७ में भेजकर भारतीय गान-विद्या की खोज में वृद्धि की थी। तदुपरांत मि० पैटर्सन और कैप्टेन डे नाम के दो विद्वानों ने 'म्यूज़िक ऑफ़् सदर्न इंडिया' और मि० एलिस ने 'म्यूज़िकल स्केल्स ऑफ़् दि वर्ल्ड',नामक दो उपयोगी निबंध सन् १८८५ में सोसाइटी ऑफ़् आर्ट के पास भेजे थे।

योरपियन पंडितों की खोज के उपरांत बंगाल के प्रसिद्ध पंडित राजा सुरेंद्रमोहनजी ठाकुर और मदरास के मि० चिन्ना स्वामीजी मुदलियार एम्० ए० ने भारतीय गान-विद्या की खोज की, और अँगरेज़ी में इसी विषय पर दो ग्रंथ लिखकर प्रकाशित किए। इनके उपरांत भारतीय गान-विद्या का प्रचार करनेवाले मि० पिंगले, सहस्रबुद्धे, कुंटे, बनहट्टी इत्यादि अनेक पंडित महाराष्ट्र में हुए। १६०७-८ में रावबहादुर देवलजी (रिटायर्ड डु० डि० कलेक्टर) ने 'म्यूज़िक ईस्ट ऐंड वेस्ट' नाम का छोटा-सा ग्रंथ लिखकर प्रसिद्ध किया। फिर आपने १६१० में कठिन परिश्रम के उपरांत 'हिंदू-म्यूज़िकल स्केल ऐंड दी ट्वेंटीटू श्रुतीज़' नाम का और एक ग्रंथ पाश्चात्य और प्राच्य पंडितों के सम्मुख उपस्थित किया। आप ही के समकालीन मित्र मि० ई० क्लेमेंट (डि० जज) साहब ने, जो कि इँगलिश गान-विद्या के प्रोफ़ेसर हैं, पूने के प्रो० अब्दुलकरीम के पास भारतीय गान-विद्या का थोड़ा-सा अभ्यास करके 'इंट्रोडक्शन् टु दि स्टडी ऑफ़् इंडियन् म्यूज़िक'-नामक ग्रंथ प्रकाशित किया था। देवलजी ने व आपने मिलकर 'फ़िल् हार्मोनिक्' नाम की एक संस्था स्थापित की। भारतीय गान-विद्या के नियमानुसार बाईस श्रुतियों (स्वरों) का एक हार्मोनियम और डायाकॉर्ड-नामक एक श्रुति-वीणा भी बनवाई। आपके इन दोनों बाजों में बाईस श्रुतियाँ बराबर बजती हैं। गान-विद्या सीखनेवालों को स्वर का अभ्यास करने के लिये ये बाजे बहुत ही लाभदायक और उत्तम हैं।

हमारी गान-विद्या की हालत हमारे देश में ही बिलकुल गिरी हुई है। पाश्चात्य देशों में संगीत-कला का पालन-पोषण प्रायः राजा व प्रजा, दोनों के ही द्वारा हुआ करता है। उन देशों में प्रजा व सरकार के उत्साह से अनेक संगीत के विद्यालय, विश्वविद्यालय व संगीत-शास्त्र की अनेक संस्थाएँ स्थापित हुआ करती हैं। अनेक पुस्तकें व मासिक पत्र भी इन विषयों पर निकला करते हैं, और वे सब संगीत-कला की वृद्धि के लिये अत्यंत लाभदायक होते हैं। इतना ही नहीं, वहाँ की संगीत-कला में प्रवीण मनुष्यों को जो सम्मान मिलता है, वह लॉर्ड को भी दुर्लभ होता है। पर हमारे देश में तो सब उलटा ही दिखाई देता है। जो सम्मान एक ओहदेवाले धनी के श्वान को देते हैं, उतना भी सम्मान हमारे देश-भाई भारतीय संगीत-कला के प्रवीण प्रोफ़ेसरों को देने में हिचकते हैं। कहिए, यह कितनी लज्जा की बात है?

कैप्टेन डे साहब ने अपने म्यूज़िक ऑफ़् सदर्न इंडिया ग्रंथ में लिखा है—स्ट्रैबो का यह मत है कि ग्रीक गान-विद्या का भारतीय गान-विद्या के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा है, और भारतीय शास्त्र-गत विषय को उससे अधिक लाभ भी हुआ है। कैप्टेन साहब और स्ट्रैबो के मतों पर वाद-विवाद करने की हमें आवश्यकता नहीं। भारतीय गान-विद्या की खोज करते समय योरपियन और भारतीय उक्त पंडितों में से, देवलजी के अतिरिक्त, मेरे मतानुसार, सबने भूल की है। शायद मेरी ही भूल हो। पर अपना मत प्रकाशित न करने के लिये मुझे कोई बाध्य नहीं कर सकता। देवलजी व अन्य विद्वानों की खोज में क्या भ्रम है, यह जानने की इच्छा प्रत्येक व्यक्ति

को अवश्य होगी। अपनी भारतीय गान-विद्या संस्कृत-भाषा में लिखी जाने के कारण सारे शास्त्र की रचना श्लोक-बद्ध हो गई है। इसलिये अन्वयार्थ, विभक्ति, प्रत्यय इत्यादि देखकर और गणित-शास्त्र के अनुसार सब विषय की कसौटी पर कसकर जिस प्रकार देवल साहब ने शास्त्र-विवरण किया है, वह अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता। भारतीय गान-विद्या की स्वतंत्र विशेषता जानने की इच्छा की पूर्ति केवल देवल साहब के ग्रंथ से ही हो सकती है।

संगीत-शब्द की शास्त्रीय व्याख्या यह है—

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।" संगीत का मुख्य विषय तो गान-विद्या है, और गान-विद्या की इमारत बाईस श्रुतियों (स्वरों) पर खड़ी है। गान-विद्या में यदि कोई महत्त्व का और कठिन विषय है, तो यही। ये बाईस स्वर कौन-से हैं, प्रत्येक स्वर में गणित के अनुसार कितना अंतर होता है, प्रत्येक स्वर को नाद-लहरें (व्हायब्रेशंस) कितनी होती हैं, किस राग-रागिनी में कौन-कौन स्वरों का समावेश होता है, ये सब नियम भारतीय गान-विद्या की पुस्तकों में श्लोकबद्ध हो चुके हैं। ये सब बातें देवल साहब के ग्रंथ में, दूसरे आधुनिक ग्रंथों की अपेक्षा, विशेष शुद्ध रूप में मिलती हैं। यह निर्विवाद है कि इस विद्या का अंत नहीं; और यह भी सत्य है कि "बहुरत्ना वसुंधरा।" परंतु यह भी अवश्य मानना पड़ेगा कि भारतीय गान-विद्या की आधुनिक खोज में देवलजी का सबसे ऊँचा स्थान है। अस्तु।

पंडित प्रायः दो प्रकार के होते हैं। एक तो शास्त्र जानने-वाले, दूसरे उसके अनुसार क्रिया करनेवाले। इस नए युग की बलिहारी है! आजकल सत्य का तो कहीं पता ही नहीं लगता। फिर दंभ, अहंकार इत्यादि की छाप जनता के हृदयों पर गहरी बैठी है। लोग सत्य की ओर से मुँह मोड़कर असत्य को अपनाते हैं। इस अधःपतन का कारण ढूँढे मिलना कठिन है। भारतीय गान-विद्या में बाईस श्रुतियाँ होती हैं, और इन्हीं से राग-रागिनियाँ बनती हैं, यह हमारे देश के आधुनिक गवैयों को ज्ञात नहीं, या यों कहिए कि जो स्वयं अपने को स्वाभाविक जन्मसिद्ध बुद्धिमान् समझते हैं, उनकी पैठ ही कितनी? जिन्हें अपनी गान-विद्या के विषय में कुछ ज्ञान नहीं, वे दूसरों (पाश्चात्यों) की कला को क्या समझें?

पुनः उनकी अपनी कलाओं के अंतर्गत कौन विषय कम और कौन अधिक हैं। यह समझना तो और भी कठिन है। यदि उनको बतलाया भी जाय, तो उससे क्या लाभ? ऐसे तो हमारे भारत में गवैयों और बजवैयों की कमी नहीं है; और न गान-विद्या के ऊपर ग्रंथ व लेख लिखनेवालों का ही अभाव है। इसके अतिरिक्त नाटक-कंपनियाँ भी कुछ थोड़ी नहीं हैं। पर इन सबका गाना बारह श्रुतियों पर होता है। कहिए, हमारे संगीत-शास्त्र में हमारे गवैयों की कहाँ तक पहुँच है?

भारतीय गान-विद्या में बाईस श्रुतियों से युक्त राग-रागिनियों की रचना की ही विशेषता है। भारतवर्ष के सिवा किसी अन्य देश में आपको राग-रागिनियों का पता न मिलेगा। हमारे शास्त्रकारों ने दिन को चौबीस घंटों में विभक्त कर, किस समय कौन राग गाना उचित है, यह बता दिया है। उन्होंने उषःकाल, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायं-काल, उत्तर रात्रि आदि समयों में, कौन-कौन स्वरों (श्रुतियों) का नवरस-युक्त परिणाम मानव प्राणियों के हृदय पर अंकित होगा, इसे दृष्टि में रखकर राग-रागिनियों की रचना की है। हरएक का नाम भी अलग रक्खा है। राग-शब्द की व्याख्या शास्त्रकारों ने इस प्रकार की है—"स्वरवर्णभूषितो यो ध्वनिभेदोरंजकः स राग इह।"

भारतवर्ष को छोड़ अन्य सब देशों में १२ श्रुतियों में ही गाना हुआ करता है। यह पाश्चात्य प्रणाली है। परंतु इस प्रथा को भारतीयों ने अपना लिया है। लगभग पौन सौ वर्ष पहले से पाश्चात्य हार्मोनियम बाजे को हम लोगों ने अपना लिया है। और, सच तो यह है कि तभी से हम अपनी बाईस श्रुतियों को धीरे-धीरे भूल गए। कहिए, हमारी गान कला की वृद्धि हो रही है या अवनति? क्या भारतीय सुशिक्षित समाज अपना कर्तव्य-पालन कर इस ओर ध्यान देगा? हार्मोनियम बाजे के स्वरों की रचना अँगरेज़ी प्रणाली पर हुई है। देवलजी ने हिंदी म्यूज़िकल स्केल ऐंड ट्वेंटीटू श्रुतीज़-पुस्तक में भारतीय म्यूज़िकल स्केल और योरपियन म्यूज़िकल स्केल का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—

That there are two kinds of tones—the tones of the natural scale and those of the tempered scale. According to Blaserna the vibrations of these notes are as follows—

(Natural scale or just Major.)

C	D	E	F	G	A	B	C
240	270	300	320	360	405	450	480
सा.	री.	गा.	मा.	पा.	धा.	नी.	सा.

Tempered Scale.

C	D	E	F	G	A	B	C
240	269 3/8	302 3/8	320 3/8	359 5/8	403 3/5	453	480
सा.	री.	गा.	मा.	पा.	धा.	नी.	सा.

भारतीय गान-विद्या में मुख्य सप्त स्वर माने हैं। यथा सा, री, गा, मा, पा, धा, नी, इनके संपूर्ण नाम हैं षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद। योरपियन संगीत-शास्त्र में सप्त स्वरों के नाम दो प्रकार के होते हैं—डो, रे, मी, फ़ा, सोल्, ला, सी, इनको टॉनिक सोल्फ़ा और सी, डी, ई, एफ़्, जी, ए, बी, इनको ओल्डनेशन कहते हैं। डो, रे, मी इत्यादि नामों की प्रथा का अब लोप हो गया है। प्रचलित नाम सी, डी, ई इत्यादि प्रचार में हैं। योरपियन लोग टेंपर्ड स्केल का उपयोग करते हैं, और भारतीय लोग नेचरल स्केल का। ऊपर दोनों तालिकाओं का निरीक्षण करने से विद्वानों को यह भली भाँति विदित हो जायगा कि भारतीय और योरपियन सप्त स्वरों के स्थान भिन्न-भिन्न हैं। टेंपर्ड स्केल के हिसाब से ही हार्मोनियम बाजे के स्वरों की रचना हुई है। भारतवर्ष में आजकल भी ऐसे गवैयों के वंश हैं, जिन्हें वंश-परंपरागत गान-विद्या की शिक्षा गुरु के द्वारा हो मिली है, और जिन्होंने अपना जीवन गान-विद्या के अध्ययन-अध्यापन में ही बिताया है। गान-विद्या के आचार्य रहमतख़ाँ साहब, प्रसिद्ध बीनकार बंदे अलीख़ाँ साहब, सौ० मुन्ना, बड़ोदा सरकार के दरबारी-रत्न मौलाबख़्श, कोल्हापूर-दरबार के मियाँ अल्लादियाख़ाँ, मियाँ हैदरबख़्श, अंतोबा साधले, पंडित पलुस्कर के गुरु बालकृष्ण बुआइचल करंजीकर, भैया साहब जोशी, फ़ैज़महम्मदख़ाँ साहब (बड़ोदा), इनके पट्टशिष्य भास्कर बुआ बखले, मिरज के पंडित गोखले-बंधु, नासरख़ाँ, इनके शिष्य विष्णुपंत जोशी, मैसूर-दरबार के शेषरणा, निज़ाम-दरबार के इनायतहुसेन, तानरसख़ाँ, और छज्जूख़ाँ, ग्वालियर-दरबार के हमदादख़ाँ, इंदौर-दरबार के मुरादख़ाँ बीनकार, पूने के प्रो० अब्दुलकरीम, प्रो० विष्णुपंत छत्रे (रहमतख़ाँ के गुरुभाई) इत्यादि ऐसे ही हैं। इनके अतिरिक्त भी बहुत-से गवैए हो गए हैं। ये सब गान-विद्या-विशारद बाईस श्रुतियों के अनुसार गाते-बजाते थे। इन्होंने आजन्म कभी हार्मोनियम बाजा नहीं बजाया। इन लोगों का यह कथन है कि हार्मोनियम अपूर्ण बाजा है। इसमें बहुत-से स्वर हैं ही नहीं, और जो हैं, वे भी अशुद्ध। यहाँ तक कहते हैं कि यदि वे हार्मोनियम के साथ गावें, तो उनका स्वर ही अपस्वर (बेसुरा) हो जायगा। तंबूरा, सारंगी, फ़िडल इत्यादि तंतुवाद्य संपूर्ण होते हैं।

देवलजी ने भारतीय गान-विद्या के अनुसार २२ श्रुतियों का इस प्रकार विवेचन किया है। परंतु इसके पहले यह बता देने की आवश्यकता है कि गान-विद्या के अनुसार स्वर कितने प्रकार के होते हैं, जिनसे राग-रागिनियाँ बनती हैं। भारतीय शास्त्रकारों ने स्वर की व्याख्या इस प्रकार की है—

आत्मा मनो मनो वह्निं वह्निः प्रेरयते क्रमात्।
मारुतं मारुतो ब्रह्म ग्रंथीस्तद्र्पमेचरन्।

हमारे यहाँ स्वर के प्रकार ये हैं—शुद्ध, कोमल, अतिकोमल, तीव्र, तीव्र-तर। योरपियन संगीत में नेचरल, फ़्लैट, शार्प, बस इतने ही स्वर हैं। गाते समय कौन स्वर अपने स्थान पर है, अथवा नहीं, इसे ग्रहण करनेवाली इंद्रिय केवल श्रोत्र है। बाजों में अलगोज़ा, बाँसुरी, सहनाई इत्यादि सुषिर बाजे छोड़कर सरोद, सारंगी, फ़िडल ये अंध बाजे होते हैं। कारण, इनमें बिना किसी ऊपरी सहायता के, तत्काल ही स्वरों की सृष्टि करनी पड़ती है। दूसरे बाजे व्यक्त हैं, अर्थात् उनमें हरएक स्वर स्थापित करने के लिये परदे रक्खे गए हैं, जैसे सितार इत्यादि। इस दृष्टि से देखा जाय, तो सितार इत्यादि बाजे भी हार्मोनियम की श्रेणी में ही गणना करने-योग्य हो जाते हैं। भेद है तो केवल इतना ही कि हार्मोनियम के स्वरों में कोई स्थानांतर किया ही नहीं जा सकता; पर सितार में स्वरों का स्थान नियत होने पर भी वे इच्छानुसार कम या अधिक किए जा सकते हैं। यह बात तो हुई १२ श्रुतियों की। पर सितार इत्यादि की विशेषता यह है कि मींड़-माँड़ (अथवा खींच-खाँच) करने से उन्हीं १२ पर्दों पर बाईस श्रुतियाँ बख़ूबी बोल सकती हैं। यह बात हार्मोनियम में नहीं है। यद्यपि तंतु-वाद्य (सितार, सारंगी इत्यादि) में यह विशेषता अवश्य है, तथापि, इनमें भी शुद्धाशुद्ध स्वरों की पहचान केवल कर्णेंद्रिय के अधीन है, और यही उसका अंतिम प्रामाणिक आधार है। अतएव यह अत्यंत परिश्रम तथा अभ्यास का काम है।

कुछ लोगों का सुरीलापन स्वाभाविक होता है। पर ऐसे लोग इने-गिने ही होते हैं। हार्मोनियम की सहायता से १२ श्रुतियाँ पहचाननेवालों की संख्या आजकल बढ़ी-चढ़ी है। पर शेष श्रुतियों के जाननेवाले उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। इसका कारण यही है कि अपूर्ण १२ श्रुतियाँ व्यक्त करनेवाले हार्मोनियम का प्रचार भारत में आजकल घर-घर हो गया है। परंतु पूर्ण श्रुतियाँ व्यक्त करनेवाले दूसरे किसी बाजे का उतना प्रचार नहीं रहा। योग्य संगीतज्ञ गुरु के मुख से इस कला का ज्ञान प्राप्त करने की प्रणाली उठ-सी गई है। बिना परिश्रम किए ही गवैए-बजैए बन बैठने की प्रणाली बढ़ती जा रही है। आधुनिक अपूर्ण संगीत-विषयक पुस्तकों के अध्ययन से ही लोग आजकल अपने को संगीताचार्य (प्रोफ़ेसर ऑफ़ म्यूज़िक) मानने लगते हैं। इन पुस्तकों में प्रत्येक लेखक की स्वर-लिपि (नोटेशन) जुदी जुदी है, सो भी अपूर्ण। केवल इनके देख लेने से काम नहीं चल सकता। अनेक कारणों से शेष स्वरों का ज्ञान धीरे-धीरे लोप होता जा रहा है। देवलजी ने भारतीय संगीत-शास्त्रानुसार बनाई हुई बाईस श्रुतियों की तालिका इस प्रकार दी है—

संख्या	श्रुतियों के नाम	नाद-लहर (कंपन-संख्या)	कोमल, तीव्र	स्वरनाम
१	छंदोवती मध्या	२४०	शुद्ध	सा
२	दयावती करुणा	२५२	अति कोमल	री
३	रंजनी मध्या	२५६	कोमल	री
४	रतिका मृदु	२६६ २/३	मध्य	री
५	रौद्री दीप्ता	२७०	तीव्र	री
६	क्रोधा आयता	२८४ ४/९	अतिकोमल	गा
७	वज्रिका दीप्ता	२८८	कोमल	गा
८	प्रसारिणी आयता	३००	तीव्र	गा
९	प्रीति मृदु	३०३ ३/४	तीव्रतर	गा
१०	मार्जनी मध्या	३१५	अतिकोमल	मा
११	क्षिति मृदु	३२०	कोमल	मा
१२	रक्ता मध्या	३३७ १/२	तीव्र	मा
१३	संदीपनी आयता	३४१ १/३	तीव्रतर	मा
१४	अलापिनी करुणा	३६०	शुद्ध	पा
१५	मदंती करुणा	३७८	अतिकोमल	धा
१६	रोहिणी आयता	३८४	कोमल	धा
१७	रम्या मध्या	४००	मध्य	धा
१८	उग्रा दीप्ता	४०५	तीव्र	धा
१९	क्षोभिनी मध्या	४२६ २/३	अतिकोमल	नी
२०	तीव्रा दीप्ता	४३२	कोमल	नी
२१	कुमुद्वती	४५०	तीव्र	नी
२२	मंदा मृदु	४५५ ५/८	तीव्रतर	नी
२३	छंदोवती (ऊपर की)	४८०	दूसरे सप्तक में की	सा

जिनका आजकल प्रचार है, वे ये १२ श्रुतियाँ हैं—

संख्या	श्रुतियों के नाम	नाद-लहर	कोमल, तीव्र	स्वर-नाम
१	छंदोवती	२४०	शुद्ध	सा
२	रंजनी	२५६	कोमल	री
३	रौद्री	२७०	तीव्र	री
४	वज्रिका	२८८	कोमल	गा
५	प्रसारिणी	३००	तीव्र	गा
६	क्षिती	३२०	कोमल	मा
७	रक्ता	३३७ १/२	तीव्र	मा
८	अलापिनी	३६०	शुद्ध	पा
९	रोहिणी	३८४	कोमल	धा
१०	उग्रा	४०५	तीव्र	धा
११	तीव्रा दीप्ता	४३२	कोमल	नी
१२	कुमुद्वती	४५०	तीव्र	नी
१३	छंदोवती (दूसरे सप्तक की)	४८०	शुद्ध	सा ऊ०की

इन १२ स्वरों में ही आजकल के गाने-बजानेवाले सब राग-रागिनियाँ गाते-बजाते हैं। इससे पता लग सकता है कि हमारी संगीत-कला किस गिरी हुई दशा में है। इसका अर्थ यह नहीं कि उक्त २२ स्वरों को गाने-बजानेवाला कोई भारत में है नहीं। हैं; पर बहुत कम। इन २२ स्वरों में से १० स्वरों के लुप्तप्राय हो जाने से राग-रागिनियों का स्वरूप कैसा विकृत हो गया है, यह निम्न-लिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

(१) टोड़ी, काफ़ी और भीमपलासी रागिनियों में कोमल गांधार का प्रयोग होता है। पर वही गांधार श्रुति-भेद से उपर्युक्त तीनों रागिनियों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। परंतु आजकल इन तीनों में एक ही गांधार का उपयोग

किया जाता है। टोड़ी-राग का शास्त्रोक्त गांधार २८५$\frac{४}{९}$ नाद-लहरों का होता है; परंतु इस रागिनी में आजकल २८८ नाद-लहरों के गांधार का उपयोग होता है। हार्मोनियम के कोमल गांधार से इसकी परीक्षा भली भाँति हो सकती है।

(२) आसावरी का ऋषभ और ईमन, शंकराभरण और भूप इन रागों का ऋषभ एक-सा ही गाया-बजाया जाता है। आसावरी का ऋषभ २६६$\frac{२}{३}$ नाद-लहरों का होता है, पर २६०वाले ऋषभ का ही प्रयोग किया जाता है।

(३) भैरव, पूर्वी और परज का धैवत एकसरीखा ही गाया-बजाया जाता है। भैरव-राग का धैवत ३७८ नाद-लहरों का होना चाहिए; पर गाते हैं ३८४ नाद-लहरों का धैवत।

(४) ईमन और भूप का गांधार भी एकसरीखा गाया-बजाया जाता है। पर ईमन का गांधार अलग ३०० नाद-लहरों का है, और भूप का ३०२$\frac{२}{७}$ का।

ये तो मामूली रागों के उदाहरण हैं। परंतु कंदाहारी, गौवरहारी, डागारी, नोहारी, मुलारी, हंसध्वनि, करहरप्रिया इत्यादि अनेक राग अच्छे-अच्छे गवैए गाते हैं (इनकी संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जाती है), और इनमें जो श्रुतियाँ लगतीं हैं, वे १२ श्रुतियों में नहीं मिलतीं। भारतीय संगीत-साहित्यज्ञों ने यदि अभी से शास्त्र के मूल-तत्त्वानुसार उत्साह-पूर्वक इस प्रणाली का प्रचार न किया, तो भारतीय गान-विद्या की विशेषता एवं स्वतंत्रता भविष्य में उठ जाने की पूर्ण संभावना है।

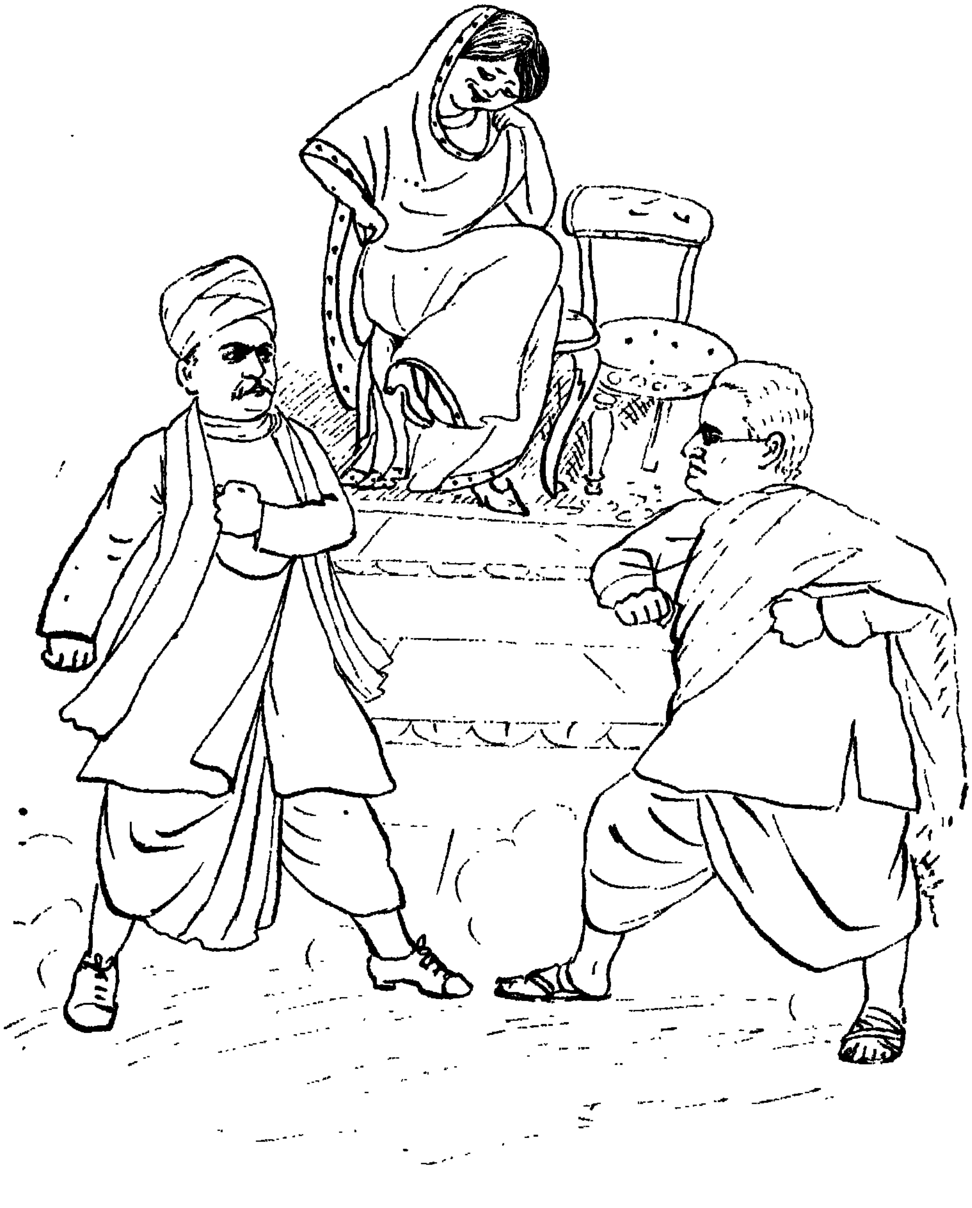
आजकल भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में, हिंदी, मराठी, गुजराती, तेलगू, कानड़ी इत्यादि भाषाओं में गाने की स्वर-लिपि (नोटेशन) ग्रंथों में प्रसिद्ध कर द्रव्य कमाने का धंधा ख़ूब ज़ोर से जारी है। ऐसे समय इस छोटे-से निबंध द्वारा जनता जनार्दन का ध्यान स्वर-लिपि (नोटेशन) की ओर खींचने का प्रयत्न करना यद्यपि अशक्य है, तथापि भविष्य में कुछ लिखने का प्रयत्न करूँगा। इँगलैंड, जर्मनी, फ़्रांस, अमेरिका, जापान आदि सभी पाश्चात्य या प्राच्य स्वतंत्र राष्ट्रों की संगीत-नोटेशन-पद्धति एक ही है। इसलिये उसको युनिवर्सल स्टाफ़—नोटेशन कहते हैं। जिस प्रकार भारत की भाषा एक होनी चाहिए, उसी प्रकार गान-विद्या की स्वर-लिपि भी एक-सी होनी चाहिए। इसलिये हिंदी के सुशिक्षित संगीत-साहित्यज्ञ पंडितों से प्रार्थना है कि प्रयत्न करके किसी भी विद्या के मूल तत्त्व-ज्ञान प्राप्त किए बिना अध्ययन और अध्यापन का मार्ग सुलभ न समझें। सुशिक्षित पंडितों द्वारा भारतीय गान-विद्या के मूल-तत्त्वों का अभ्यास किए बिना वर्तमान मासिक पत्रों में गान-विद्या-संबंधी टूटे-फूटे लेख लिखना और भारतीय गाने के अपूर्ण नोटेशन लिखने की प्रणाली कभी बंद न होगी। गाने का नोटेशन लिखने का विषय पाश्चात्यों का है। इस विषय में भारतवासी लोग पाश्चात्यों का अनुकरण कर रहे हैं। यह विषय पूर्ण रीति से समझने के लिये युनिवर्सल स्टाफ़ नोटेशन का ही अभ्यास करना आवश्यक है।

इंगलिश नोटेशन-पद्धति का स्वरूप कैसा है, यह पद्धति अपनी भारतीय गान-विद्या के लिये लाभदायक होगी या नहीं, नोटेशन कैसा लिखना चाहिए, नोटेशन से गीत और वाद्य की कला सीखनेवाले जिज्ञासु को कुछ लाभ होगा या नहीं, इत्यादि विषयों का बहिरंग विवेचन करने की जैसी आवश्यकता है, वैसी ही भारतीय गान-विद्या के अंतरंग के विषयों का विवेचन करना भी ज़रूरी है। अंतरंग विषय की रूप-रेखा इस प्रकार है—नोटेशन लिखने के लिये स्वर, ताल, मात्रा, लय (मोशन), सप्तकों का दिग्दर्शन अर्थात् कौन-सा स्वर कौन-से सप्तक का होता है, प्रत्येक स्वर का समय की बनावट, संक्षिप्त तान, प्रसरणशीलतान, (दो, तीन, चार आवर्त की तान) मीड़, मुरकी, खटके, मृदु और कठोर स्वर कैसे दिखलाना, विश्राम $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{८}$ मात्रा के स्वर कैसे दिखलाना, कोमल तीव्र आदि स्वर कैसे बताना, भाषा और कवित्व शास्त्र के नियम—जो नोटेशन के लिये काम आते हैं वे बतलाना। इन सब अंतरंग के विषयों के नोटेशन की ज़रूरत होती है। उल्लिखित वर्णन से पाठकगण यह कल्पना कर सकेंगे कि भारतीय गान-विद्या के नोटेशन लिखने का विषय कितना गहन है। ऐसे महत्त्व के विषय का प्रतिपादन करने के लिये दूसरा निबंध लिखने की ही आवश्यकता है।

यदि लोग मेरे इस लेख को पसंद करेंगे, तो मैं फिर भारतीय गान-विद्या की स्वर-संकेत चिह्न-लिपि पर दूसरा लेख लिखूँगा। इस लेख को उस लेख की प्रस्तावना-मात्र समझना चाहिए।

महादेव-रामचंद्र खंडकर

कौंसिल-सुंदरी



पूने का अनाथ-विद्यार्थी-गृह

संसार में जिनके पास धन है, उनके लिये सर्वत्र माता-पिता, भाई-बहन, काका-मामा, मित्र-हितैषी सब कोई मिल जाते हैं, किंतु जिनके पास धन नहीं है, उनका संसार में कोई नहीं। प्रायः ऐसा ही देखा जाता है। और इसके बाद यह भी देखने में आता है कि जिनका कोई सहायक नहीं, उनमें से ही कई महापुरुष होते हैं। किंतु ऐसा सदैव नहीं होता। पर ऐसे लाल तभी मिल सकते हैं, जब उन्हें खोजकर उनके जीवन-निर्माण के साधन उन्हें दिए जायँ। देश में ऐसी कितनी सार्वजनिक संस्थाएँ हैं, जो ऐसे छिपे हुए नर-रत्नों की खोज करती तथा उनके लिये साधन एकत्र करती हैं? भारतवर्ष-सरीखे देश में अनाथों की कमी नहीं। जहाँ प्रतिवर्ष न-जाने कितने माता-पिता अपनी संतान को अकाल काल-कवलित होने के कारण अनाथ छोड़ जाते हैं, जहाँ नैतिक पतन होने के कारण सबल मनुष्य, संबंधी या पड़ोसी, कम उम्रवाले माता-पिता-विहीन बालकों की बची-खुची संपत्ति का अपहरण कर लेते हैं, वहाँ अनाथों की संख्या का क्या पूछना। जो छोटे-छोटे बच्चे गली-गली, द्वार-द्वार भीख माँगते हुए दिखाई देते हैं, वे ईश्वर की ऐसी ही अनाथ संतानों में से हैं, जिन्हें या तो समय ने निराधार बना दिया है, या समाज ने उनकी संपत्ति का अपहरण कर उन्हें ऐसी अवस्था पर पहुँचा दिया है। पर उनमें क्या दैविक गुणों का अभाव है? नहीं, उनमें भी ईश्वर की देनगी छिपी हुई पड़ी है। ऐसे ही अभाग्य-प्रताड़ित दुखियों के लिये कोई उदारचेता महापुरुष प्रेरित होता है। वह उनके लिये साधन एकत्र करने की प्रेरणा मनुष्य-हृदयों में करता है और दस-पाँच दयालु हृदय उनके लिये कोई ऐसा आयोजन कर देते हैं, जिससे उनका भरण-पोषण हो। इन्हीं प्रेरणाओं के फल-स्वरूप अनाथालय, शिक्षालय, धर्मालय तथा अन्य ऐसे कितने ही आलय देखे जाते हैं। पूना का अनाथ-विद्यार्थी-गृह इसी प्रकार के आलयों में से एक है।

यों तो उदारचेता हिंदुओं में इस प्रकार के धर्म-कार्य करने की इच्छा संस्कार से ही रहती है, चाहे वह सामूहिक न हो, केवल वैयक्तिक हो, पर इस दिशा में वर्तमान काल में सिर्फ़ प्रचारकों से हिंदुस्तान को बहुत शिक्षा मिली है। हिंदुस्तान के प्रायः बहुत-से स्थानों में ईसाइयों के अनाथालय देखे जाते हैं। उनके इन अनाथालयों में वे हिंदू और अन्य जातीय बालक रहते हैं, जिन्हें संसार में जीवित रखने के लिये हिंदू-समाज अथवा अन्य समाज अपने को उत्तरदायी नहीं समझते। ईसाई अनाथालयों के ये बालक वय प्राप्त होने पर उनके समुदाय की वृद्धि करते हैं। ईसाई जन-संख्या जो इतनी बढ़ी हुई दिखाई देती है, वह बहुत कुछ ऐसे ही अनाथों से बढ़ी है। इन अनाथों में भी न-जाने कितने अपने गुण, संस्कार एवं परिश्रम से बड़े आदमी हो गए और होते जा रहे हैं। यदि अन्य अनाथालयों का ऐसा ही प्रबंध हो, जैसा कि पूना-अनाथ-विद्यार्थी-गृह का प्रबंध किया जाता है, तो अनेक हिंदू अनाथों में से भी उच्च कोटि के महापुरुष निकलना कोई आश्चर्य नहीं है। स्वर्गीय लोकमान्य तो पूना के विद्यार्थी गृह को देखकर इतने प्रसन्न हुए थे कि उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा था कि 'भविष्य में इस अनाथ-गृह से देश का नेता उत्पन्न हो सकता है'। अनेक महापुरुष दरिद्रता की कोख में ही पैदा हुए हैं। अस्तु। पूना-अनाथ-गृह की स्थापना सन् १९०९ में हुई थी। उस समय कहीं से ढूँढ-ढाँढकर ५ अनाथ बालक इसमें लाए गए थे। किंतु सन् १९२४ में अर्थात् १५ वर्षों में इस गृह ने इतनी उन्नति की है, जिसे देखकर चकित रह जाना पड़ता है। इस समय ७५ विद्यार्थियों तक अनाथों की संख्या पहुँच गई है। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य ही यह है कि जो अनाथ बुद्धि होने पर भी दरिद्रता के कारण उपयुक्त मनुष्यत्व से वंचित रह जाते हैं, उन्हें यहाँ एकत्र कर उपयुक्त साधनों से युक्त किया जाय।

पूना एक प्रकार से कोंकणस्थ महाराष्ट्रों का केंद्र है। महाराष्ट्रों में कट्टरता अधिक देखी जाती है। यह उनका जातीय गुण है। किंतु इस संस्था के उदारचेता संचालकों के सामने अनाथों के संबंध में ब्राह्मण-अब्राह्मण अथवा और किसी प्रकार का झगड़ा नहीं। अनाथ-गृह में प्रवेश पाने की कसौटी जाति या धर्म नहीं, वरन् बुद्धि और दरिद्रता है। जो अनाथ जितना ही दरिद्र और बुद्धिमान् है, उसका इस संस्था में प्रवेश पाना उतना ही अधिक

निश्चित है। दरिद्रता के आघातों से जर्जरित होनहार आत्माओं के लिये ही वास्तव में यह आश्रम है। यहाँ वे अपने ही भविष्य जीवन के लिये योग्य नहीं बनाए जाते, प्रत्युत देश के बृहत् जीवन के लिये उनका निर्माण होता है। बुद्धिमान् बालकों को एकत्र कर उन्हें यथासाध्य उत्तम-से-उत्तम रीति से संसार के लिये सुसज्जित कर देना ही उस संस्था का लक्ष्य है। जिस देश में ऐसे कितने ही होनहार सुमन दरिद्रता की ज्वाला से झुलस जाते हैं, उस देश में ऐसी संस्था की कितनी अधिक आवश्यकता है—यह विचार करने की बात है। यदि ऐसे बालक उचित ढंग से हृष्ट-पुष्ट बनाए जायँ, शिक्षित किए जायँ, तो वे राष्ट्र के लिये कितने अमूल्य अथच उपयोगी सिद्ध होंगे—इसके लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं। भारतवर्ष को वास्तव में जन-संख्या-वृद्धि की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि वर्तमान संतान को बलिष्ठ, स्वावलंबी एवं शिक्षित करने की है। इसीलिये इस अनाथ-गृह का प्रधान कर्तव्य शिक्षा ही रक्खा गया है।

पश्चिम के सभ्य देशों में जहाँ व्यभिचार की अधिकता से वर्णसंकर संतान की अधिक उत्पत्ति है, वहाँ ऐसी संतान का उपयोग राष्ट्र के निमित्त होता है। देश की सरकार की ओर से उनकी रक्षा का प्रबंध किया जाता है। मनुष्य की प्रवृत्ति तो रोकी जा नहीं सकती, और ख़ासकर पश्चिमी सभ्यता के गुरु-तुल्य देशों में, जहाँ कि दिन-दहाड़े खुले ख़ज़ाने व्यभिचार होता है। ऐसी अवस्था में अवांछनीय गर्भाधान भी हो जाते हैं। अस्तु, उन देशों में ऐसे स्थान निर्द्धारित हैं, जिनमें लोक-लाज से डरनेवाली स्त्रियाँ अविवाहित अवस्था में प्रसव होने पर अपनी संतान को पहुँचा देती हैं। और ऐसी संतान की रक्षा का आयोजन सरकार करती है। देश पर युद्ध, अथवा कोई अन्य घोर विपत्ति पड़ने पर ये लावारिस संतानें राष्ट्र के लिये निस्संकोच प्राण देती हैं; क्योंकि वे राष्ट्र की संपत्ति हैं। भारतवर्ष के अनाथालयों में पालित एवं शिक्षित बालक भी राष्ट्र की संतान हैं और यदि उनके भरण-पोषण एवं रक्षा का प्रबंध देश कुछ करता है, तो उन पर देश का अधिकार भी तो हो जाता है। इसलिये भावी राष्ट्र की कल्पना करनेवालों को तो ऐसी संस्थाओं—विशेषतः पूना के अनाथ-विद्यार्थी-गृह-सदृश आश्रम—की सहायता तन, मन, धन से जिस प्रकार हो, करना चाहिए।

पूना-अनाथ-गृह का मुख्य कर्तव्य इस समय शिक्षा देना है। शिक्षा की ही आवश्यकता और उसी का सुधार वर्तमान काल में अपेक्षित है। मनुष्य-जीवन के लिये जो पूर्ण शिक्षा उपयोगी है, उसी की ओर आश्रम अग्रसर हो रहा है। वर्तमान सरकारी शिक्षा में यह त्रुटि है कि बौद्धिक एवं व्यावहारिक अर्थकरी शिक्षा का सम्मिश्रण न होने से बालक भावी जीवन में स्वावलंबी नहीं हो पाते। आश्रम के शिक्षा-क्रम से इस त्रुटि को दूर कर दिया गया है। पूना-अनाथ-गृह का शिक्षा-क्रम इस प्रकार है—

१—मातृ-भाषा माध्यम।

२—पाठ्य पुस्तकों का इच्छानुकूल चुनाव।

३—हाई स्कूल के ७ वर्षों का कोर्स ६ वर्षों में साथ-साथ योग्यता और शिक्षा के परिमाण की रक्षा।

४—विश्वविद्यालय के मैट्रिक परीक्षा में बैठ सकने की संभावना। इससे बंबई-विश्वविद्यालय के कॉलेज कोर्स के लिये मार्ग खुल जाता है।

५—बौद्धिक विकास की पूर्ति व्यावहारिक शिक्षा से करना।

औद्योगिक शिक्षा का भी प्रबंध आश्रम की ओर से है। नगर की दूकानों और कारख़ानों में इच्छा एवं रुचि रखनेवाले विद्यार्थियों को जुलाहगीरी, सिलाई, मोची का काम, सुनारी, छापे का काम, जिल्द-साज़ी और मिट्टी के काम, तथा टाइप से लिखने के रीति सिखाने का बंदोबस्त है। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों की विवाद-सभा है, तथा उनकी पत्रिका निकलती है, जिसे विद्यार्थी ही स्वयं लिखते और निकालते हैं। आश्रम के विद्यार्थियों का प्रोग्राम इस प्रकार है—

साढ़े चार बजे सुबह उठना और भूपाली या प्रातःकाल की प्रार्थना करना; साढ़े चार से ६ तक नित्यकर्म; ६ से साढ़े ६ तक संध्या-वंदन; साढ़े ६ से ७ तक झाड़ना बुहारना; ७ से साढ़े १० तक स्कूल; १½ घंटा भोजन आदि, विश्राम तथा समाचार-पत्र-अवलोकन; १२ से ३ तक घर के लिये जो काम दिया गया हो, उसे करना; ३ से साढ़े ५ तक स्कूल और औद्योगिक शिक्षा; साढ़े ५ से साढ़े ६ तक क़वायद और खेल; साढ़े ६ से सात तक संगीत; फिर आधे घंटे तक प्रार्थना, आरती आदि; साढ़े सात से साढ़े आठ तक भोजन; उपरांत १ घंटे अध्ययन और ७ घंटे शयन।

दैनिक कार्य-क्रम से ज्ञात पड़ता है कि विद्यार्थी कितना अधिक नियमित रहते हैं। यहाँ दैनिक क्रम की विशेषता स्वावलंबन और सहयोग है। अपना काम और परस्पर सहायता करना मनुष्य-जीवन के लिये प्रधान बातें हैं। दैनिक अर्चन एवं संध्या-वंदन दूसरी विशेषता है; और सब में महत्त्व-पूर्ण समाज-सेवा की भावना तथा खान-पान की एकता है। धर्म उनके जीवन का एक अंग है, और व्यायाम भोजन के लिये साधन। आश्रम का नियम है कि जो व्यायाम न करे, उसके लिये भोजन नहीं है। आश्रम की व्यवस्था को देखकर लाला लाजपतरायजी को कहना पड़ा था—"मुझे आश्चर्य है कि आप लोग किस प्रकार इतने वृहत् गृह का संचालन करते हैं।"

बात यह है कि गृह की आमदनी तो केवल ५००) मासिक चंदे और दान से हो जाती है; पर ख़र्च खाने-पीने का सब मिलाकर १५००) मासिक होता है। ऐसी स्थिति में वास्तव में यह आश्चर्य की ही बात है कि ख़र्च चलाकर भी अनाथ-गृह उन्नति करता जा रहा है। पिछले १५ वर्षों से इसी प्रकार कठिनाई से काम चलता आ रहा है, किंतु संस्था के संचालकों ने पब्लिक के सामने कभी अपील नहीं की। आजकल इस संस्था के सेक्रेटरी श्रीयुत वी० जी० केलकर हैं।

अनाथ-गृह के विकास का इतिहास भी कौतूहलप्रद है। सन् १९०६ में इस गृह के श्रीगणेश-संस्कार के समय कदाचित् किसी को इसकी उन्नति की कल्पना भी न हुई होगी। नीचे दिए गए अंकों से विदित होगा कि गृह के विद्यार्थियों की संख्या में किस प्रकार वृद्धि होती गई है—

सन्	विद्यार्थी
१९०६	५
१९१२	१२
१९१५	२५
१९१७	३५
१९२०	४०
१९२१	५०
१९२२	६०
१९२३	७५

इन १५ वर्षों में आश्रम ने अपनी ओर से कई शाखाएँ खोल दीं। इसके विकास का सबसे अधिक प्रमाण इस बात से मिलता है कि आश्रम के कुछ विद्यार्थी एम० ए० पास करके औद्योगिक विषयों का अधिक अध्ययन करने के लिये अमेरिका में मौजूद हैं। निम्न-लिखित अन्य संस्थाएँ भी आश्रम के अंतर्गत चल रही हैं—

(१) पार्वती-निःशुल्क-वाचनालय—यह वाचनालय सन् १९१२ में स्थापित किया गया था। पूने में अपने ढंग का यह एक ही वाचनालय है। इसमें अमेरिका, इँगलैंड तथा भारतवर्ष के सब मिलाकर २०० पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं, और प्रायः मुफ़्त। आश्रम के विद्यार्थियों के अतिरिक्त सर्वसाधारण को भी इससे लाभ उठाने का मौक़ा दिया जाता है।

(२) शालोपयोगी ग्रंथ-संग्रह—यह पुस्तकालय सन् १९१७ में खुला था। इसमें कॉलेज की और स्कूली किताबें एकत्र की जाती तथा नगर के अन्य विद्यार्थियों को भी पढ़ने के लिये मुफ़्त दी जाती हैं। सब मिलाकर कुल ५००) की लागत की पुस्तकें प्रतिवर्ष गृह के बाहर इतर दीन विद्यार्थियों को दी जाती हैं।

(३) महाराष्ट्र-विद्यालय (हाई स्कूल)—यह सन् १९२१ में खोला गया था। विद्यालय का कार्य-क्रम विशेष ढंग से तैयार किया गया है। नगर के जो विद्यार्थी दिन में पढ़ने आते हैं, वे निःशुल्क प्रवेश पाते हैं।



डॉ० डी० ए० पटवर्धन, रिटायर्ड स्टेट-सर्जन

(४) नूतन विद्यार्थी-बस्ती-गृह—संस्था के आदर्श संचालन को देखकर बहुत-से अभिभावकों एवं पालकों को, अपने-अपने बालकों को यहाँ भेजने की इच्छा रहा करती है। उन्हीं के लिये यह प्रबंध किया गया है।



२१० श्रीमती सरस्वती बाई (डॉ० पटवर्धन की धर्मपत्नी)
(आप ही की स्मृति-रक्षा के लिये डॉ० पटवर्धन ने २०,०००) की लागत का भवन अनाथ-विद्यार्थी-गृह को दिया है)

जिन ७९ विद्यार्थियों का उल्लेख ऊपर किया गया है, उनका भरण-पोषण गृह की ओर से किया जाता है। वे सब एक बड़े भवन में रहते हैं। पालनपुर-राज्य के श्रीयुत डॉ० डी० ए० पटवर्धन, रिटायर्ड स्टेट-सर्जन ने २०,०००) की क़ीमत का वह भवन अपनी मृत धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती बाई पटवर्धन के स्मृति-रक्षार्थ प्रदान किया है। गृह के संचालकों का विचार अब नगर के बाहर आश्रम बनवाने का हो रहा है। ज़मीन मिल गई है, और वह नगर से ३ मील दूर है। इस नवीन भवन में २०० विद्यार्थियों के निवास का आयोजन होगा। यहीं पर उसका कृषि-विभाग भी रहेगा। गृह की वर्तमान उन्नति का श्रेय डॉ० पटवर्धन को है।

विद्यार्थी जगन्नाथप्रसाद चमड़िया

युद्ध

किसके ऊपर उमड़ पड़े तुम लिए आँसुओं की सेना ?
तुम्हें किसी का कुछ देना था, या तुमको कुछ था लेना ?
रार ठान ही दी मन तुमने, सारा दल-बल ले धाए ;
हृदय-ढाल को आगे लेकर युद्ध-हेतु आगे आए।
इतना कोमल शत्रु कौन है, जिसे आज ललकारा है,
जिसके वार झेलने आया कोमल हृदय तुम्हारा है ?
है यह हृदय, जिसे पहले ही चिंता ने लेकर भाला,
छेद-छेदकर नित्य-नित्य ही चलनी-सा है कर डाला।
इसको लेकर युद्ध करोगे ?—हाथ दूसरा ख़ाली है ;
कैसे विजय मिलेगी तुमको—कैसी मति मतवाली है ?
आँसू बड़े जोश में अपने ही घर में तो फिरते हैं ;
किंतु बढ़े ज्यों ही आगे को औंधे-मुँह हो गिरते हैं।
इनके बल पर युद्ध करोगे, तो निश्चय ही हारोगे ;
इन अबलों के बल पर कब तक तुम रण में हुंकारोगे ?

* * *

हाँ, ज़हरीली आह तुम्हारी कहीं शत्रु पर चल जावे ;
तो वह अपना असर कदाचित् "कुसुमाकर" कुछ दिखलावे।

देवीप्रसाद गुप्त (कुसुमाकर)

देशी राजा और धर्म

संसार में जितने धर्म हैं, उनमें प्रायः सभी को राजाश्रय प्राप्त हुआ है, और उसी के सहारे वे बढ़े भी हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब किसी धर्म को आश्रय देनेवाले राजों का पराभव अथवा नाश हो गया है, तब उस धर्म का भी अधिकांश में लोप हुआ है। भारतवर्ष ही का उदाहरण लीजिए। यहाँ बौद्धधर्म का प्रचार करानेवाले नरेशों के लोप के साथ ही वह धर्म भी भारत से निर्वासित हो गया। मुसलमानी शासन-काल में भी बादशाहों के आश्रय से मुहम्मदी मज़हब का इतना प्रचार हुआ कि हमारे देश में उस धर्म के आज लगभग ८ करोड़ अनुयायी हैं। मध्य-काल में ईसाई धर्म योरप तथा अन्य देशों में राजों के ही

सहारे बढ़ा। और, प्रायः राजाश्रय के कारण ही हमारे देश में ईसाई धर्म की आज तक उन्नति हो रही है। कहने का तात्पर्य यह कि किसी एक धर्म के प्रचार में राजाश्रय का इतना महत्त्व है कि प्रजा राजा को उसी धर्म का पालन करने के लिये बाध्य करती है, जिसका पालन अधिकांश देशवासी करते हैं। इँगलैंड में अनेक संप्रदायों के होते हुए भी प्रोटेस्टेंट (प्रतिवादक) धर्म ही राजा का धर्म होता है, और उसे इस धर्म को, प्रजा के सामने, शपथ-पूर्वक स्वीकार करना पड़ता है।

राजा को प्रजा के धर्म का पालन बड़ी कठोरता से करना पड़ता है। प्राचीन समय में दूसरे धर्मवालों पर बड़े-बड़े अत्याचार किए गए। इँगलैंड में कैथॉलिक (उदार) धर्मवाले, मुसलमानी देशों में मूर्ति-पूजक और भारत में बौद्ध लोग धर्मांधता का फल भोग चुके हैं। प्रजा के धर्म का, और उसके साथ ही अपने धर्म का पालन करने के लिये हमारे प्राचीन राजों ने अनेक कष्ट सहे हैं। तुलसीदासजी ने लिखा है—

सिबि, दधीचि, हरिचंद नरेसा,
सहे धर्म-हित कोटि कलेसा।

वर्तमान काल में भी जयपुर के भूतपूर्व महाराज ने विलायत-यात्रा के लिये अपने जहाज़ ही में एक छोटा-सा हिंदू-नगर बसा लिया था, और उसमें व्यवहारोपयोगी भारतीय सामग्री एकत्र की थी। हाल ही में प्रजा के प्रतिवाद की परवा न कर हैदराबाद के निज़ाम ने पदच्युत ख़लीफ़ा को कई हज़ार की मासिक पेंशन देकर, अपने धर्म-पालन का परिचय दिया है। लॉर्ड सिंह और नाभा-नरेश ने भी, धर्म की रक्षा के लिये, गद्दियाँ त्यागकर प्रशंसनीय आत्मत्याग दिखाया है।

अब हमें यह देखना चाहिए कि वर्तमान देशी राजा—विशेषकर सनातनधर्मी राजपूत नरेश—अपने धर्म के प्रति कैसा व्यवहार कर रहे हैं। खेद है, ये लोग अपने पूर्वज श्रीरामचंद्रजी की कठिन धर्म-परायणता को भूलकर, एक से अधिक रानियों के साथ विवाह करते और इस तरह वर्णसंकरों की संख्या बढ़ाकर धर्म को हानि पहुँचाते हैं। साथ ही ये राज्य-संबंधी अनेक बखेड़ों को उत्पन्न कर प्रजा-पीड़न में परोक्ष रीति से सहायता भी देते हैं। कोई-कोई तो विलायती मेमों से विवाह कर प्रजा के पसीने से प्राप्त की हुई संपत्ति को पानी की तरह बहाते हैं, और विजातियों तथा विधर्मियों के साथ बैठकर अभक्ष्य-भक्षण करने में उन्हें कोई संकोच अथवा विचार नहीं होता। मदिरा-पान और प्रजा की बहू-बेटियों के साथ सहवास करना तो इनका नित्य नियम-सा हो गया है। इनमें अधिकांश वे राजा हैं, जिनके पूर्वजों ने मुग़ल राज्य के समय मुसलमानों को अपनी बहन-बेटियाँ ब्याहने में भी कोई अपमान नहीं समझा था। लाट साहब के साथ भोजन करने और अँगरेज़ अफ़सरों के साथ अपनी रानियों को नचवाने में ये लोग अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं!

इन राजों के ख़ज़ाने में जो धन है, उसे ये अपनी ही पैतृक संपत्ति समझकर व्यर्थ लुटाने में कोई अधर्म नहीं समझते; पर अपनी भाषा की उन्नति के लिये कवियों और लेखकों को आश्रय देना तथा प्रजा के उपयोगार्थ विद्या-मंदिर बनवाना इनके ध्यान ही में नहीं आता। खेद है, हमारे सनातनधर्मी राजा निज़ाम का अनुकरण भी नहीं करते, जिन्होंने अपनी उर्दू-भाषा और अपने इस्लाम के प्रचारार्थ हिंदू-प्रजा के करोड़ों रुपयों के ख़र्चे से हैदराबाद में उस्मानिया-विश्वविद्यालय स्थापित कर रक्खा है। इसके विपरीत हमारे अधिकांश देशी नरेश इतने पतित हो हो गए हैं कि प्रजा से मनमानी घूस लेकर उसके पक्ष में अन्याय-पूर्ण निर्णय भी कर देते हैं।

जो कुछ हिंदू-नरेशों के विषय में ऊपर कहा गया है, वही अधिकांश में अन्य धर्मवाले नवाबों और सरदारों के विषय में भी कहा जा सकता है। इनमें से किसी-किसी के राज्य में तो प्रजा का धर्म बल-पूर्वक भ्रष्ट किया जाता है, और वहाँ के निवासी अपना सनातनधर्म छोड़ने के लिये बाध्य किए जाते हैं। इनके राज्य में दूसरे धर्मवालों की बहू-बेटियाँ तथा लड़के गुलामों की तरह बेचे अथवा अनुचित एवं अस्वाभाविक भोग-विलास के लिये महलों में भरती कर लिए जाते हैं। अभी थोड़े ही दिनों की बात है, हमारे एक उच्च स्थानवाले युवराज ने (जिनको अब राज्याधिकार मिल गए हैं) विलायत में जाकर, एक गौरांग स्त्री के कारण प्रजा की कमाई के कई करोड़ रुपए लुच्चों के फेर में पड़कर बहा दिए।

ऐसे अन्यायी राजों को उचित दंड देने के लिये प्रजा ने भी पूर्वकाल में उचित व्यवहार किया है। भारत में राजा वेणु और विलायत में दूसरे चार्ल्स के साथ प्रजा ने जो व्यवहार किया, वह उनके प्रचंड पापों का उचित प्रायश्चित्त

था। जिस देश की प्रजा शिक्षित होती और अपना तथा राजा का कर्तव्य समझती है, वहाँ वह राजा को नियंत्रित रखने के लिये अवश्य उद्योग करती है। पर हमारे अनेक देशी राजा यहाँ तक स्वार्थांध हो गए हैं कि वे प्रजा को शिक्षित होने ही नहीं देते। उनका यह विचार रहता है कि यदि प्रजा पढ़-लिखकर चतुर और चालाक हो जायगी, तो राजा और राजकाज की समालोचना साहस-सहित प्रकट रूप से करने लगेगी, जिससे मन-मौजी और अयोग्य राजा को स्वेच्छाचारिता करने के लिये अवसर न प्राप्त होगा। इसी विचार से ये लोग नए-नए स्थानों में पाठशालाएँ नहीं खोलते, उच्च शिक्षा का पर्याप्त प्रबंध नहीं करते, प्रजा को कार्यानुभव की शिक्षा के द्वारा बढ़ने का अवसर नहीं देते और उनकी बढ़ती हुई प्रतिभा को राजदंड से दबा देते हैं। सारांश यह कि ये राजा लोग अपने कर्तव्य से इतने गिर गए हैं कि इन्हें राजा कहना उस शब्द का उपहास करना है। कई राजा अपने भोग-विलास में इतने लिप्त रहते हैं कि उन्हें 'पंच मकारों' से घड़ी-भर का अवकाश नहीं मिलता, और वे केवल वायसराय, ऍंगीजाट अथवा एजेंट के आगमन के समय ही महलों से बाहर निकलते हैं। उन्हें प्रजा के मरने या जीने की परवा नहीं; सिर्फ़ परवा है अपने ख़र्च के लिये आवश्यक धन की। ऐसी अवस्था में मंत्रियों और मुसाहबों को मनमानी करने के लिये अच्छा अवसर मिलता है। और, यदि प्रजा अपने ऊपर किए गए अत्याचारों का प्रतिवाद करती है, तो उस पर गोलियाँ तक चलाई जाती हैं!

कितने खेद की बात है कि प्रजा जिसको धर्म का अवतार, अपने मत का रक्षक एवं मा-बाप समझे, जिसके भोग-विलास की चाह के लिये अपनी गाढ़ी कमाई दे, वही राजमद में मत्त होकर अपने धर्म को यहाँ तक भूल जाय कि प्रजा को भेड़-बकरी समझ उसके संकटों से विचलित न हो! पूर्वकाल में प्रजा राजा को ईश्वर का अंश मानती थी, तथा उसके प्रति भारी श्रद्धा एवं भक्ति प्रकट करती थी, जिसका बदला आजकल के हमारे राजा इस प्रकार दे रहे हैं कि बड़े-से-बड़ा एक नागरिक भी राजा के सामने जाकर अपना दुःख नहीं प्रकट कर सकता।

हमारे आधुनिक राजाओं ने ऍंगरेज़ी पोशाक स्वीकार करने में भी अपना गौरव माना है। जो केसरिया बाना पहनकर इनके पूर्वज रण-क्षेत्र में जाते थे, उसका कदाचित् इन्हें स्मरण भी नहीं। इनमें अब केवल नाम की राजपूती रह गई है। कदाचित् यही बड़े सौभाग्य की बात है, जो वे लोग अपने अभिषेक के समय अपने पूर्वजों की पोशाक पहनते हैं। यदि इनकी प्रचलित पोशाक एवं रहन-सहन महाराज रामचंद्र और महाराणा प्रतापसिंह आकर देखें, तो इन्हें अपनी संतान अथवा वंशज मानने में भी संकोच करें।

सरकार की प्रेरणा से इन देशी राजाओं ने एक नरेंद्र-मंडल स्थापित किया है। भगवान् जानें, उस मंडल में किन बातों पर विचार किया जाता है। क्या ही अच्छा हो, यदि उसमें निम्न-लिखित कुछ बातों पर विचार किया जाय—

(१) प्रत्येक राजा अपने सनातनधर्म का पूर्ण पालन करे—उसके प्रतिकूल कोई भी आचरण न करे।

(२) संतान-हीनता अथवा प्रेमाभाव की अवस्था के अतिरिक्त और किसी भी दशा में वह दूसरा विवाह न करे, तथा विजातियों से यह संबंध न जोड़े।

(३) राजा अपनी भाषा और धर्म की वृद्धि के लिये सतत प्रयत्न करता रहे; परंतु दूसरी भाषा एवं धर्म को हानि न पहुँचावे।

(४) कोई राजा अपनी पोशाक यहाँ तक न बदले कि उसकी जाति अथवा राष्ट्रीयता की पहचान तक मिट जाय।

(५) राजकोष को प्रजा की धरोहर समझकर कोई राजा उसमें से एक कौड़ी भी व्यर्थ ख़र्च न करे।

(६) राजा के पास तक प्रजा को अपनी गुहार पहुँचाने में कोई रोक-टोक न रहे।

(७) प्रजा की निज की संपत्ति और बहू-बेटियों पर राजा कुदृष्टि न डाले।

(८) वह अपनी प्रजा को शिक्षित और अनुभवी बनाने का प्रयत्न करे।

(९) राजा को शिक्षा, शूरता आदि गुणों से युक्त होना चाहिए।

(१०) उसे राज्य की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे कर्मचारियों को बेगार या घूस लेने का साहस न हो।

रामचंद्र शर्मा

वोट का भिखारी





स्वरकार—विष्णु-अण्णाजी कशालकर, संगीत प्रवीण] [**शब्दकार**—पं० श्रीधर पाठक

राग भूपाली—तीन ताल*

गीत

जय-जय प्यारा भारत-देश ।
जय-जय प्यारा, जग से न्यारा,
शोभित सारा, देश हमारा,
जगत-मुकुट, जगदीश दुलारा,
जग-सौभाग्य सुदेश ।
स्वर्गिक शीशफूल पृथिवी का,
प्रेम मूल प्रिय लोकत्रयी का,
सुललित प्रकृति-नटी का टीका,
ज्यों निशि का राकेश ।
जय-जय शुभ्र हिमाचल शृंगा,
कलरव-निरत कलोलिनि गंगा,
भानु प्रताप-चमत्कृत अंगा,
तेज-पुंज तप-वेश ।
जग में कोटि-कोटि जुग जीवे
जीवन सुलभ अमी रस पीवे,
सुखद वितान सुकृति का सीवे,
रहे स्वतंत्र हमेश ।

(भारत-गीत से)

* इस राग में मध्यम और निषाद नहीं हैं । पांच स्वरों का राग होने से इसको 'औडव' कहते हैं । यह शुद्ध स्वरों का राग है, और पूर्व-रात्रि में गाया जाता है । इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

आरोह — सा रे ग प ध सां

अवरोह — सां ध प ग रे सा

स्थायी

तार		
मध्य	ग ग ग रे ग ध प	ग रे ग रे सा सा
मंद		

ज य ज य प्या . रा भा . र त दे श
३ २ १ २

तार		सा सा सा सा रे सा
मध्य	ग ग ग ग प ध	ध ध ध
मंद		

अ य ज य प्या रा ज ग से न्या . रा शो भि त
३ २ १ २ ३

तार	सा रे	ग रे सा रें सा	सा सा ग ग रे रे ग ग
मध्य		ध प	
मंद			

सा रा दे . श ह मा . रा अ ग मु कु ट ज ग
२ १ २ ३ २

तार	सा रे रें सा सा रे सा
मध्य	ध ग ग रे ग प ध ध ध
मंद	

दी श दु ला रा ज ग सी भा . ग्य सु दे . . .
१ २ ३ २ १

तार	
मध्य	ग ग रे सा
मंद	

. . . श

बाकी अंतरे भी इसी तरह गाए जाने चाहिए ।

इस गीत के लिखने में जिन चिह्नों का उपयोग किया गया है, उनका खुलासा यह है —

तार, मध्य, मंद—ये तीन सप्तकों के नाम हैं । जिसके खाने में जो स्वर लिखा है, उसे उसी सप्तक में बजाना और गाना चाहिए ।

— = एक मात्रा

० = आधी मात्रा

—, = डेढ़ मात्रा

गीत के शब्द के नीचे ताल के चिह्न दिए हैं, उनका खुलासा यह है —

१ = सम

२ = सम के सिवा कोई भी ताल

३ = खाली



१. डॉक्टर सुधींद्र बोस एम० ए०, पी-एच्० डी०

आज से २२ वर्ष पहले एक बंगाली नवयुवक जहाज़ पर मल्लाह का काम करते हुए अमेरिका के लिये रवाना हुआ था। उसके मन में देश-देशांतरों में भ्रमण करने के लिये अदम्य उत्साह था, और हृदय में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की विचित्र धुन लगी हुई थी। मार्ग में इस नवयुवक को जिन-जिन संकटों का सामना करना पड़ा, और शिक्षा प्राप्त करने के लिये जिन जिन कठिनाइयों से गुज़रना पड़ा, उनकी कथा बड़ी शिक्षा-प्रद है। आज वही युवक अमेरिका के विश्वविद्यालयों से उच्चातिउच्च डिग्री प्राप्त करके, वहाँ की एक युनिवर्सिटी में राजनीति-विज्ञान का अध्यापक है। इस नवयुवक का नाम सुधींद्र बोस है।

सुधींद्र बोस का जन्म बंगाल के ढाका-ज़िले में हुआ था। कोमिल्ला-विक्टोरिया-स्कूल से आपने एंट्रेंस की परीक्षा पास की। इसके बाद आप कोमिल्ला-विक्टोरिया-कॉलेज में पढ़ते रहे। आपके भाई श्रीसत्येंद्रनाथ बोस वहाँ प्रिंसिपल थे। सन् १९०४ ई० में आप भारत से अमेरिका के लिये रवाना हुए, और तब से वहीं पर हैं। सन् १९०७ ई० में आपने इलीनोइस-विश्वविद्यालय से बी० ए०-परीक्षा पास की। तत्पश्चात् आपको शिकागो-युनिवर्सिटी में ग्रेजुएट-स्कॉलरशिप मिला। वहाँ पर आपने 'डेली मेरून'-नामक पत्र के संपादकीय विभाग में काम किया। सन् १९०९ में आपने इलीनोइस-युनिवर्सिटी से एम्० ए० की डिग्री प्राप्त की। तदनंतर आपने अमेरिका की दक्षिणी रियासतों में साल-भर भ्रमण किया। सन् १९१० में आपने आयोवा-युनिवर्सिटी में प्रवेश किया, और अन्वेषण-संबंधी काम करने लगे। वहाँ पर आप Political Science (राजनीति-विज्ञान) के फ़ेलो निर्वाचित हुए। कुछ समय बाद इसी विश्वविद्यालय ने आपको 'पूर्वी राजनीति और सभ्यता' के विषय का अध्यापक नियुक्त किया। सन् १९१३ में आयोवा-युनिवर्सिटी ने आपको 'डॉक्टर ऑफ़् फिलॉसफ़ी' की उपाधि दी। जिन-जिन विषयों को आप पढ़ाते हैं, उनके नाम ये हैं—संसार की राजनीति, औपनिवेशक राज्य, पूर्वी राजनीति तथा पूर्वी सभ्यता।

आपने हिंदुस्तान एसोसिएशन-नामक एक संस्था की स्थापना की है, जिसका उद्देश्य अमेरिका आनेवाले हिंदुस्तानी विद्यार्थियों के मार्ग की कठिनाइयाँ दूर करना है। इस संस्था से अमेरिका आनेवाले विद्यार्थियों को बहुत कुछ सुविधा प्राप्त होती है। सन् १९१४ में पैसफ़िक-कोस्ट की खालसा-दीवान-सभा ने 'हिंदू-निर्वासन-क़ानून' का विरोध करने के लिये आपको प्रतिनिधि बनाकर वाशिंगटन भेजा था, और वहाँ पर आपने बड़ी योग्यता-पूर्वक भारतीयों का पक्ष-समर्थन किया था।

डॉक्टर बोस को देश-विदेशों की यात्रा करने का बड़ा शौक़ है। कुछ वर्ष पहले आपने इँगलैंड, योरप के कई अन्य देश, चीन, जापान, सोकोन, श्याम, कोरिया, मंचूरिया, स्ट्रेट सेटिलमेंट्स, इंडो-चाइना तथा हवाई-द्वीपों की यात्रा की थी। अपनी यात्रा में आप मिसर के जगलुल पाशा, कंबोडिया के राजा, चीन के डॉक्टर सन-यात-सेन, जापान के मार्किस ओकूमा, श्याम के प्रिंस दमरांग तथा चीन के वू-टिंग-फैंग (जो पहले अमेरिका में चीनी राजदूत थे) इत्यादि से मिले थे।

डॉक्टर बोस एक अच्छे व्याख्यानदाता हैं। अमेरिका में वह सैकड़ों व्याख्यान दे चुके हैं, और अमेरिकन श्रोताओं ने उन व्याख्यानों को बहुत पसंद किया है। आपकी भाषण शैली बड़ी चित्ताकर्षक है। जब आप वाशिंगटन की



डॉक्टर सुधींद्र बोस

इमीग्रेशन-कमेटी के सामने गवाही देने गए थे, तो कमेटी ने आपको केवल ३० मिनट दिए थे। पर आपने अपना कथन इतने चित्ताकर्षक ढंग से उस कमेटी के सम्मुख रक्खा कि कमेटी ने तीस मिनट के बजाय दो घंटे तक आपका भाषण सुना।

डॉक्टर बोस एक अच्छे लेखक तथा ग्रंथकार भी हैं। आपके लेख अमेरिका तथा भारत के मुख्य-मुख्य पत्रों में प्रायः छपा करते हैं। आपने कई पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनके नाम हैं— (१) Some aspects of British Rule in India, (२) Fifteen years in America इत्यादि। इनके सिवा आपने Volume Library-नामक ग्रंथमाला के प्राच्य विभाग का भी संपादन किया है।

१६ वर्ष अमेरिका में रहने के बाद डॉक्टर सुधींद्र बोस के हृदय में अपनी माता तथा मातृभूमि के दर्शन करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। उनकी वृद्धा माता की तबियत बहुत ख़राब थी, और उसके हृदय में अपने पुत्र को देखने की बड़ी इच्छा थी। डॉक्टर बोस ने शिकागो में रहनेवाले ब्रिटिश-राजदूत से पासपोर्ट माँगा। लंदन तक का पासपोर्ट मिल गया। ब्रिटिश-राजदूत ने डॉक्टर बोस को विश्वास दिला दिया कि तुम्हें लंदन में, इंडिया-ऑफ़िस से, हिंदुस्तान का पासपोर्ट बड़ी आसानी से मिल जायगा। इसी विश्वास पर डॉक्टर बोस प्रसन्नता-पूर्वक अमेरिका से चल पड़े। लंदन पहुँचकर उन्होंने पासपोर्ट के लिये प्रार्थना की, पर इंडिया-ऑफ़िस ने पासपोर्ट नहीं दिया! माननीय जे० आर० क्लाइंस ने भारत-सचिव मि० मांटेगु से पार्लियामेंट में पूछा—"क्या भारत सचिव का ध्यान डॉक्टर सुधींद्रनाथ बोस के मामले की ओर आकर्षित हुआ है? क्या उन्हें यह बात मालूम है कि डॉक्टर बोस की माता बहुत बीमार हैं, और वह उनसे मिलने के लिये भारत जाना चाहते हैं, पर इंडिया-ऑफ़िस ने उन्हें पासपोर्ट देना अस्वीकार कर दिया है? क्या भारत-सचिव यह जानते हैं कि डॉक्टर बोस किसी राजनीतिक संस्था के मेंबर नहीं हैं? क्या वह इस मामले की जाँच कराकर उनके भारतवर्ष वापस जाने की सुविधा कर देंगे?" मि० मांटेगु ने उत्तर दिया—"हाँ जनाब मैंने इस मामले की पूरी-पूरी जाँच कराई है। यह भारतीय महाशय अमेरिका के संयुक्त-राज्यों के नागरिक हैं। महायुद्ध के कुछ दिनों बाद ही इन्होंने ब्रिटिश-नागरिकता छोड़ दी थी। मैं इनकी भारत-यात्रा के लिये सुविधा करने को तैयार नहीं।"

वह बात ध्यान देने-योग्य है कि मि० मांटेगु भी डॉक्टर बोस के राजनीतिक जीवन के विरुद्ध कोई बात नहीं कह सके। रही उनके अमेरिकन नागरिक होने की बात, सो उसके लिये वह युद्ध से कई वर्ष पूर्व से प्रयत्न कर रहे थे; पर तब तक उन्हें सफलता नहीं मिली थी। अकस्मात् युद्ध के पूर्व वह नागरिक बना दिए गए। इस प्रकार विफल-प्रयत्न होकर सन् १९२१ में वह विलायत से अमेरिका को लौट गए। सन् १९२४ में उन्होंने भारतवर्ष आने के लिये फिर प्रयत्न किया; पर उन्हें फिर भी सफलता नहीं मिली! थोड़े दिन पूर्व हमने समाचार पत्रों में पढ़ा था कि ब्रिटिश-सरकार उन्हें अमेरिका से सीधे भारत को आने के लिये आज्ञा-पत्र देने को तैयार है। पर डॉक्टर बोस योरप के देशों में होते हुए आना चाहते हैं। और यह बात सरकार को नापसंद है। इस विषय पर टीका-टिप्पणी करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। संक्षेप में मूल बातें लिख दी गई हैं।

निरंतर परिश्रम और असाधारण उत्साह से एक भारतीय विद्यार्थी अपने को कितना योग्य बना सकता है, डॉक्टर बोस का जीवन इस बात का एक दृष्टांत है। आशा है, उन्हें शीघ्र ही माता और मातृभूमि के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

बनारसीदास चतुर्वेदी

× × ×

२. वह

जिसके तरल नयन से स्वर्गिक आभा झलका करती है,
जिसकी मधु-छवि दुखित हृदय के दुख को हलका करती है,
जिसके कोमल कर स्पर्श से पीड़ित जन पाता विश्राम,
जिसकी सत्ता शून्य सदन को कर देती है शोभाधाम,
जिसका मुख-उल्लास स्वर्ग को धरणी पर ले आता है,
जिसका दुख संपन्न सदन को रौरव नरक बनाता है,
जिसकी मृदु फटकार भीरु में भर देती धीरोचित भाव,
जिसका प्रणय जीत लेने का ऋषि-मुनि भी रखते हैं चाव,
मातृ-रूप में जो धरणी पर स्नेह-सुधा सरसाती है,
रमणी बन जो सकल विश्व में प्रेम-प्रभा बरसाती है,
जिसका हृदय दिव्य भावों का एक-मात्र उद्गम संस्थान,
जिसकी पुण्यमयी सत्ता का कवि-कोविद सब करते गान,
जिसके मुख की ललित लालिमा हृदय प्रफुल्लित करती है,
जिसकी सरल निसर्ग-चपलता विविध ताप को हरती है,
जिसके स्वच्छ शुभ्र मानस पर नहीं व्यक्त छल की छाया,
जिस पर प्रतिबिंबित होती है परमपिता की प्रिय माया,
जिसका व्यंग्य-वचन सुनकर जन बनता कालिदास या व्यास,
जिसके प्रेम-तिरस्कृत जन भी बने सूर या तुलसीदास,
जिसकी मृदु मुसकान शत्रु का हृदय विजय कर सकती है,
जिसकी सरल दृष्टि पापों का क्षण में क्षय कर सकती है,
जिसकी मधुर गिरा से जग ने सुनी स्वर्ग की रसमय तान,
आशा-सागर के हित शशि-सम है जिसकी मीठी मुसकान,
जो शिशु के शुचि कांत रूप में अपनी कांति निरखती है,
जिसकी कुटिल भृकुटि कुटिलों को सरल, प्रेममय करती है,
जिसके अश्रु-बिंदु में जग का सुख-समुद्र हो जाता लीन,
सुख में सरल, दुःख में देवी, वैभव में रहती मद-हीन,
जिसकी छवि से बना हुआ है अखिल विश्व शोभा का धाम,
पुण्यमयी उस प्रणय-मूर्ति की रज को सौ-सौ बार प्रणाम।

श्रीप्रभातकुमार

× × ×

३. हिंदी का एक सिद्धांत

"लड़के और लड़कियाँ खेलती हैं।" आजकल इस ढंग का वाक्य पुस्तकों तथा समाचार-पत्रों में दृष्टिगोचर होता है। यह अशुद्ध है। इस अशुद्धि के कारण हिंदी-व्याकरण हैं। उनमें यह एक नियम है कि अंतिम कर्ता के अनुसार क्रिया का लिंग होना चाहिए। यदि कोई वर्तमान लेखकों से उस वाक्य की अशुद्धता की चर्चा करता है, तो उसके आगे श्रीयुत स्वर्गीय भारतेंदु हरिश्चंद्र का निम्न-लिखित वाक्य प्रमाण-रूप से उपस्थित किया जाता है—

"राजा-रानी उसको वैसा ही प्यार भी करते हैं।"

(विद्यासुंदर-नाटक)

इस वाक्य में राजा करता है, और रानी करती है, यह अन्वय होता । करता है और करती है, दोनों के लिखने से वाक्य बड़ा अथवा नीरस हो जाता है। नीरसता दूर करने के लिये क्रियाओं में एकशेष होता है। स्त्रीलिंग तथा पुंलिंग क्रिया में पुंलिंग का रहना आवश्यक है; क्योंकि पुरुष प्रधान और स्त्री अप्रधान है। अचेतन अथवा मनुष्येतर प्राणियों में प्रधानाप्रधान का विचार चाहे कोई न करे; पर उसे मनुष्य-जाति में उक्त प्रधानता स्वीकृत करनी ही पड़ेगी। महर्षि पाणिनिजी ने "पुमान् स्त्रिया" इस सूत्र के द्वारा पुंलिंगों का रहना आवश्यक समझा है। स्त्री जग शब्द पुंलिंग के अर्थ को कहते हैं। यह बात एकशेष में

होती है। अब हरिश्चंद्रजी का उक्त वाक्य मूक की अवय-धानता का नमूना है; क्योंकि उन्होंने यह लेख-शैली मानी है कि मनुष्य जाति में पुरुष-कर्ता प्रधान है। उसके अनुसार क्रिया का लिंग होना चाहिए, चाहे वह आदि में ही हो। स्त्री-लिंग-कर्ता के अंत में होने पर भी स्त्रीलिंग क्रिया अन्य जेय अथवा मनुष्य-भिन्न प्राणियों के संपर्क से होती है, मनुष्य जाति में नहीं। भारतेंदुजी ने 'हरिश्चंद्र'-नाटक में एक वाक्य-उक्त सिद्धांत का लिखकर अपना मत अभिव्यक्त किया है—

"हरिश्चंद्र और शैव्या प्रणाम करते हैं।"

(हरिश्चंद्र-नाटक)

यदि कोई कहे कि और तथा अथवा आदि शब्द होने पर उक्त सिद्धांत लागू होता है, तो उससे हमारा कहना है कि यह काम ठीक नहीं; क्योंकि श्रीयुत गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—"रूप देखि मोहे नर नारी।" इस पद्य में 'मोहे' क्रिया 'नर' के अनुसार है, यद्यपि अंत में 'नारी' स्त्रीलिंग है। आजकल के लेखकों की शैली के अनुसार 'मोहीं', यह क्रिया होनी चाहिए। यदि गोस्वामी-जी वैसा लिखते, तो कविता अशुद्ध हो जाती।

मनुष्य जातिस्थ पुरुष-कर्ता के अनुसार ही क्रिया के लिंग की कल्पना उचित है। इसके लिये मैं हिंदी के दो आचार्यों के वाक्य उद्धृत करता हूँ—

"आसन पर बैठे हुए कश्यप और अदिति दीखते हैं।"

(शकुंतला, श्रीराजा लक्ष्मणसिंह)

"कश्यप और अदिति सिंहासन पर बैठे हैं।"

(संगीत-शाकुंतल, श्रीप्रतापनारायण मिश्र)

जिस वाक्य में मनुष्य-जाति-बोधक पुरुष तथा अन्य-जातीय स्त्रीलिंग-कर्ता हों, वहाँ भी पुरुष के अनुसार पुंलिंग क्रिया होगी—

"वह चला, जान चली, दोनों यहाँ से खिसके"

(लाला श्रीनिवासदास)

उक्त वाक्य में 'वह' सर्वनाम कुँअर रणधीर के लिये आया है। 'दोनों'-शब्द में रणधीर की प्रधानता है। अब एक 'खिसके' क्रिया पुंलिंग है। उक्त पद्य 'रणधीर-प्रेममोहिनी' का है।

आशा है, हिंदी-वैयाकरण नए संस्करणों के समय इस सिद्धांत पर ध्यान रक्खेंगे कि अंतिम कर्ता के अनुसार क्रिया का लिंग होता है, यह नियम मनुष्य-जातीय कर्ता के लिये नहीं है।

सकलनारायण शर्मा

× × ×

४. अकथ

देखी एक ज्योति-सी जग में,
छिटकी थी आभा भी मग में,
शून्य गगन के एक कक्ष में करती थी विश्राम।
दबे पाँव मैंने जा देखा,
कैसा है वह दृश्य अनोखा,
स्वच्छ, दिव्य, अति विशद, मनोहर था दृग-सुखकर ठाम।
दीपशिखा-सी लौ जिसकी थी,
नहीं, कहीं उपमा जिसकी थी,
चारों ओर रूपमय दृग थे वातायन-से द्वार।
पवन वहाँ आती-जाती थी,
किंतु नहीं हमको भाती थी,
डर था हमें न बुझ जावे यह खा मारुत की मार!
साँस रुकी आती थी मेरी,
रूप-राशि पर आँखें फेरीं,
हक्का-बक्का, चित्र-लिखित-सा हुआ एकटक देख।
ऐसा दृश्य इसी काया में!
कहाँ भटकता हूँ माया में?
बीते कल्प देखते इसको जैसे एक निमेष।
ध्यान-भंग हो गया हमारा,
था वैसा ही यह जग सारा,
किंतु हमारा नव जीवन था, नव मंगलमय साज!
सोचा, दृश्य सभी के आगे,
रख दूँ, जिससे भव-भय भागे,
कहा जगत से, कहो, अनिर्वचनीय दृश्य देखोगे आज?
विज्ञ हँसे, मानव चकराए,
किंतु सभी जन दौड़े आए,
बौड़म-सा जग ने तब पूछा—है वह कैसा रूप?
खूब टटोला अपने मन में,
एक बार फिर गया भवन में,
आखिर कहना पड़ा मौन बन, है वह अकथ स्वरूप!

"अक्षि"

× × ×

५. हिंदी का दर्शन-साहित्य

भारतवासियों को दर्शन-शास्त्र से सदैव प्रेम रहा है, यहाँ तक कि पाश्चात्य विद्वान् इन पर "सुषुप्त" (dream) होने का लांछन लगाते हैं। बहुतों का कहना (या उलाहना) है कि भारतवासी व्यावहारिक बातों को त्यागकर

काल्पनिक बातों की ओर अधिक ध्यान देते हैं। यह बात वस्तुतः सत्य हो या असत्य; परंतु इसमें संदेह नहीं कि हम कभी तो सीमा के बाहर और कभी मर्यादा के भीतर दर्शन या फ़िलॉसफ़ी में सदैव रत रहे हैं। संस्कृत का दर्शन-शास्त्रीय साहित्य किसी नवीन या प्राचीन जाति के साहित्य से कम नहीं है। जो बात ह्यूम या बर्कले को गत एक या दो शताब्दियों में सूझी, वह कई शताब्दियों-पूर्व के संस्कृत-साहित्य में मिलती है। यूनान के आरंभिक दर्शन में जगत् की जटिल समस्या के समाधान के जो प्रारंभिक प्रयत्न पाए जाते हैं, उनसे विचित्र बात यह मालूम होती है कि वे एक प्राचीन विशाल भवन के खँडहर हैं, जिनका कुछ शताब्दियों-पूर्व भारतवर्ष से संबंध रहा होगा।

परंतु इन सब बातों के होते हुए भी हम देखते हैं कि हमारा हिंदी-साहित्य सर्वथा दर्शन-शास्त्रों से शून्य है। केवल षट् दर्शनों के दस-बीस अनुवाद या भाष्य मिलते हैं, जिनमें भाष्यकारों ने अपने मतों की चाशनी गोतम-कणाद आदि के ऊपर चढ़ाने का यत्न किया है। या फिर गीता के अगणित भाष्य या टीकाएँ हैं, जिनमें दर्शन को छोड़कर भक्ति का अधिक परिचय दिया गया है। अथवा, कुछ उपनिषदों के भाष्य हैं, जिनमें संप्रदायों की अधिक गंध आती है। परंतु हिंदी में दर्शन का कोई मौलिक ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया। यदि षट् दर्शनों को देखा जाय, या मध्यकालीन न्याय-वेदांत या सांख्य की पुस्तकों पर दृष्टि डाली जाय, या बौद्ध तथा जैन-शास्त्रों का अवलोकन किया जाय, तो पता चलेगा कि ये सब अपने-अपने ढंग के विशाल ग्रंथ हैं, और इनमें मौलिकता भरी पड़ी है। दर्शनकार जिस समय किसी जटिल प्रश्न का समाधान करते हैं, तो स्वतंत्र रीति से। दासता की शृंखलाओं को वे तोड़ देते हैं; और कल्पना-शक्ति को उच्च-से-उच्च शिखर पर चढ़ा देते हैं, बिना खाल के बाल की भी खाल निकाल देते हैं। चाहे वे व्यावहारिक न रहें, परंतु मानवी मस्तिष्क के विकास को परा काष्ठा तक पहुँचा देते हैं। लेकिन ये सब पिछले समय की बातें हैं। वर्तमान समय के हिंदी-भाषा-प्रेमियों में क्या अपने पूर्वजों का मस्तिष्क नहीं? अन्यथा कब संभव था कि हिंदी-भाषा में दर्शन पर कोई ग्रंथ न लिखा जाता।

हमको इसके दो विशेष कारण प्रतीत होते हैं, और वे दोनों ही हमारी दासता को सिद्ध करते हैं। हम दास तो हैं ही; 'दास' लिखने में हमको अभिमान है। हम हर किसी को 'आपका दास,' 'आपका अनुचर' लिख देते हैं। हमारे शरीर दास हैं, हमारी संपत्ति दास है; परंतु सबसे कठिन दासता हमारे मस्तिष्कों की है, जो हमको कभी स्वतंत्र होने ही नहीं देती। यह बात नहीं कि हममें दार्शनिक न हों। परंतु वे या तो संस्कृतज्ञ हैं, या अँगरेज़ी जाननेवाले। संस्कृतज्ञों का विचार है कि दर्शन-शास्त्र-जैसा रत्न संस्कृत के संदूक़ से बाहर आते ही दूषित हो जायगा। दूसरे, उनका विचार यह है कि जो कुछ लिखना था, वह लिखा जा चुका। अब उसमें 'ननु नच' की जगह ही नहीं है। अँगरेज़ीवाले बेचारों के पास अँगरेज़ी के सिवा रह ही क्या गया है। कांट, रीड और हेगिल को वे पढ़ते तो हैं; परंतु जो कुछ पढ़ते हैं, वह केवल शब्दों तक ही रह जाता है। इतना अवश्य भान हो जाता है कि पाश्चात्य फ़िलॉसफ़ी बड़ी विशद तथा विशाल है। परंतु अपने में हाज़मे की शक्ति नहीं कि उसमें से किसी अंश को भी अपनाकर उसको विकसित कर सकें।

हिंदी-भाषा में आजकल बहुत-सी पुस्तकें लिखी जा रही हैं। उपन्यासों का तो कहना ही क्या, छोटे से लेकर बड़े तक, सभी समाचार-पत्र उनके आश्रय पर जीते और उन्हीं के आश्रय पर चलते-फिरते हैं। विज्ञान-संबंधी कुछ किताबों का भी केवल अनुवाद होना ही आरंभ हुआ है। किंतु दर्शन-शास्त्र के विषय में अब तक कोई तुलनात्मक पुस्तक नहीं लिखी गई। पं० रामावतारजी का छोटा-सा 'पाश्चात्य दर्शन', श्रीकन्नोमलजी के 'अज्ञेयवाद' आदि पर एक दो लेख तथा श्रीडॉक्टर गंगानाथ झा की न्याय और वैशेषिक पर दो पुस्तिकाएँ, यही भाषा का दर्शन-कोष है। संस्कृत में 'सर्व-सिद्धांत-संग्रह' तथा 'सर्व-दर्शन-संग्रह' ये दो अच्छी तुलनात्मक पुस्तकें हैं, यद्यपि दोनों ही एक विशेष मत की पुष्टि के लिये लिखी गई हैं। परंतु भाषा में ऐसी भी कोई पुस्तक नहीं, जो इस प्रकार की आवश्यकता पूरी कर सके। पाश्चात्य दर्शन के विषय में तो अभी आरंभ भी नहीं हो पाया। जो मनुष्य केवल अँगरेज़ी जानता है, वह संसार-भर के दार्शनिक विचारों से अभिज्ञ हो सकता है, परंतु जो केवल भाषा जानता है, उसका मस्तिष्क चाहे कितना ही उच्च कोटि का क्यों न हो, उसके विकास के लिये कोई सामग्री उपस्थित नहीं है। आवश्यकता है कि हिंदी के धुरंधर

लेखक इस ओर अपना ध्यान दें, और इस अत्यावश्यक विभाग को भरने का यत्न करें।

गंगाप्रसाद उपाध्याय

× × ×

६. अज्ञात का अन्वेषण

दिव्यालोक उषा महान छवि में, तारावली दीप्ति की —
शोभा मंजुल में मयंक महती, आलोक-युक्ता क्षपा ;
आभा में अभिराम नील नभ की, वारीश-गांभीर्य में,
ढूँढा, किंतु न क्लांत होकर महा, पाया कहीं भी तुझे।
संध्या की नभ-लालिमा ललित में, चांचल्य विद्युच्छटा,
व्याघ्रों के भय-युक्त घोर रव में, सौंदर्य में शैल के ;
देखा सांध्य-समीरमंजु सुषमा, उत्फुल्ल अंभोज में,
ढूँढा होकर व्यग्र, किंतु फिर भी तेरा न पाया पता।
पुष्पों का सु-छटा-विकास प्रिय में, झंकार भृंगावली,
स्वेच्छा-युक्त विहंग व्योम-गति में, स्रोतस्वती ऊर्मि में ;
शोभा शांत मयूख मंजु विधु की, नीहार के शैत्य में,
ढूँढा आकुल-युक्त, किंतु तुझको पाया कहीं भी नहीं।
कांता के कमनीय हास्य मृदु में, वात्सल्य में मातु के,
बालों की प्रिय काकली कलित में, सांगीत-लालित्य में ;
स्वेच्छा में कवि-कल्पना ललित की, माधुर्य में शब्द के,
ढूँढा, किंतु हताश होकर कहीं तेरा न पाया पता।

श्यामविहारीलाल त्रिपाठी

× × ×

७. संशोधन

श्रावण की माधुरी में, कवि-चर्चा के अंतर्गत, मेरे लेख के एक सवैया का पाठ अशुद्ध छप गया है। कृपया उसे इस प्रकार ठीक कर लीजिए। मुझे भी पाठ अशुद्ध मिला था—

हैं पठि सिंगार के कानन मों, (नई) लतिकान बँबेबो पर ;
नहिं चैत के चंद की चोखी प्रभा, तन ताड़न हूँ सो तचैबो पर।
कछु ऐसो कुजोग है आन पर्यो, इन लोयन हीं ललचैबो पर ;
बिष-बुंद सी मीठी अनूठी सुधा नित ही दृग मूँदे अँचैबो पर।

श्रीहरिश्चंद्रपति त्रिपाठी

× × ×

८. रूस में संस्कृत-भाषा का अध्ययन

भारतवर्ष की सभ्यता की प्राचीनता सर्वत्र मान्य है। इस लोक और परलोक में, जीव-मात्र को सुखी बनाने के लिये, जिन साधनों को यहाँ के प्राचीन ऋषि और मुनियों ने सोचा, विश्व को गूढ़ तत्त्वों के समझाने और तदनुसार कार्य करने में जितना आत्मत्याग किया, उतना संसार के किसी अन्य देश ने कदाचित् ही किया होगा। इसका अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि दर्शन-शास्त्र के जितने अंग तथा सूक्ष्म विचार सोचने में यहाँ के प्राचीन निवासी समर्थ हुए, उतने और किसी देश के नहीं हुए। यहाँ के दर्शन के केवल एक अंग अद्वैतवाद ही को लेकर अरब में सूफ़ी मत का आविर्भाव हुआ। इसी मत को योरप में प्लैटो ने ग्रहण किया; और अब अधिकतर यही मत मान्य है।

संसार ने पाश्चात्य सभ्यता का, जो विद्युत्-गति के समान दौड़ी चली जा रही थी, असली रूप गत महायुद्ध के रूप में देखा। जो विचारवान् मनुष्य थे, उन्होंने इस महाप्रलय की भविष्य-वाणी पहले ही कर दी थी। परंतु उस समय शराब का-सा नशा चढ़ा हुआ था। साइंस के शराब के नशे में शक्तिशाली देश अंधे हो रहे थे। युद्ध के पश्चात् वह नशा उतरा, और संसार के विचारशील मनुष्यों का ध्यान भारतवर्ष की प्राचीन मानव-समस्या को हल करने की ओर आकृष्ट हुआ। इसी के फल-स्वरूप संस्कृत-साहित्य की ओर संसार के विचारवान् मनुष्य कुछ झुके हुए मालूम होते हैं।

यों तो संस्कृत का अध्ययन अब लगभग सभी देशों में होने लगा है; परंतु इस भाषा का जो आदर जर्मनी, इटली और रूस में होता है, वह कदाचित् ही कहीं होता हो। जर्मनी अभी अपनी हार से सँभला नहीं है, और इसीलिये इस समय संस्कृत-साहित्य ही क्या, सभी विद्याओं की ओर वह उत्साह नहीं दिखलाता, जैसा कि युद्ध के पूर्व था। इटली के बारे में अच्छी तरह से ज्ञात है कि वहाँ ऐसा कोई प्रसिद्ध विश्वविद्यालय नहीं है, जहाँ पर संस्कृत का अध्ययन न होता हो। संस्कृत सीखने के लिये ही एक इटली का प्रोफ़ेसर श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर की 'विश्वभारती' में ठहरा हुआ है। रूस में संस्कृत-अध्ययन के संबंध में जो प्रयत्न हो रहा है, उसका अनुमान पाठकों को निम्न-लिखित लेख से हो सकता है। यह लेख 'माडर्न रिव्यू' के एक लेख के आधार पर लिखा जाता है—

रूस में संस्कृत के अध्ययन का श्रीगणेश सन् १८८० ई० से आरंभ होता है, जब कि प्रोफ़ेसर जे० कॉसोविज़ ने संस्कृत-महाभारत के कुछ अंशों

का संस्कृत में संपादन किया। उनके शिष्य मिनयफ़ (Minayeff) भी संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। उन्होंने कई संस्कृत-पुस्तकों का अनुवाद किया, और कुछ मौलिक ग्रंथ भी लिखे। उन्होंने 'प्रतिमोक्ष'-सूत्र का अनुवाद छपवाया; पाली का एक व्याकरण भी लिखा। बौद्धमत और उसका उद्गम-स्थान' और 'महाव्युत्पत्ति', ये दो ग्रंथ और लिखे। उन्होंने इनके सिवा और भी दो-एक ग्रंथ लिखे। इनके पश्चात् एक जर्मनी के विद्वान् प्रोफ़ेसर ओ० बोथ लिंक का नंबर आता है। उन्होंने 'सेंट पीटर्सबर्ग'-नामक एक कोष सन् १८५५ में, सात भागों में, रूस की विद्वत्परिषद् के व्यय से छपवाया। यह कोष संस्कृत के अन्य सब कोषों में श्रेष्ठ है। उन्होंने अपने बड़े कोष के नमूने पर एक और कोष लिखा, पाणिनि की दो आवृत्तियाँ छपाईं, और मृच्छकटिक तथा कुछ उपनिषदों का भी अनुवाद किया। रूस का एक और प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ प्रोफ़ेसर वी० वासी लीफ़ था, जिसने बौद्धमत का एक इतिहास लिखा, और 'तारानाथ' की पुस्तक का अनुवाद छपाया। इनके पश्चात् और कई एक संस्कृतज्ञों का नाम आता है, जिन्होंने बौद्धमत पर कई ग्रंथ लिखे हैं। परंतु रूस में, वर्तमान काल में, सबसे प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वान् प्रोफ़ेसर Th. Stcherbatsk हैं। इन्होंने भारतवर्ष में दो वर्ष रहकर 'न्याय' का अध्ययन किया है, और वह जिस आसानी से जर्मन, फ्रेंच, इटालियन और अँगरेज़ी-भाषा बोल सकते हैं, उसी प्रकार संस्कृत भी; इस समय वह महायान बौद्धमत के दर्शन के अध्ययन में लगे हुए हैं। उनके मुख्य-मुख्य ग्रंथ जो छपे हैं, वे ये हैं—

१. बौद्ध और योग की विचार-पद्धति,

२. धर्म-कीर्ति का दर्शन,

३. न्याय-बिंदुलि के अंश और टीका-टिप्पणी,

४. उक्त ग्रंथ का तिब्बती-भाषा में अनुवाद,

५. धर्म-कीर्ति के संतनंतर-सिद्धि का तिब्बती-भाषा में मूल,

६. बौद्धमत में आत्मा का सिद्धांत,

७. रूस के विश्व-कोष में 'भारतवर्ष' नाम का एक लेख,

८. प्राचीन हिंदुओं के वैज्ञानिक पराक्रम, इत्यादि।

सन् १९२५ के सितंबर में रूस की वैज्ञानिक विद्वत्परिषद् ने अपनी अर्द्धशताब्दी मनाई। रूस-निवासी विज्ञान में संस्कृत के अध्ययन को भी सम्मिलित करते हैं। भारतवर्ष में तीन पुरुष विशेष रूप से निमंत्रित हुए। वे ये हैं—प्रोफ़ेसर सी० वी० रमन, बंबई के प्रोफ़ेसर मोदी और प्रेसीडेंसी-कॉलेज के प्रोफ़ेसर एस्० एन्० दास गुप्त। रूस-सरकार इन विद्वानों के आने-जाने का व्यय देने को तैयार थी। प्रोफ़ेसर दास गुप्त कई कारणों से वहाँ न जा सके। परंतु वैज्ञानिक परिषद् ने उनके संस्कृत-ज्ञान का इतना सम्मान किया कि उनको 'पीटर्सबर्ग-संस्कृत-जर्मन-कोष' पारितोषिक रूप में प्रदान किया। यह पुस्तक अब छपती नहीं है, और इसी कारण यह पुस्तक बहुमूल्य हो गई है। अब हम एक पत्र से, जिसे प्रोफ़ेसर Stcherbasky ने प्रोफ़ेसर दास गुप्त को लिखा है, कुछ अंश उद्धृत करते हैं। इससे परिषद् की अर्द्धशताब्दी की सफलता तथा उस संस्कृत-अध्ययन का, जिसमें प्रोफ़ेसर साहब लगे हुए हैं, अनुमान हो जायगा—

"मेरे प्रिय प्रोफ़ेसर दास गुप्त,

मुझको अत्यंत खेद है कि आप हमारी अर्द्धशताब्दी में न आ सके। प्रोफ़ेसर सी० वी० रमन और बंबई के मि० मोदी आए। उनसे संभवतः आप पूर्ण विवरण सुनेंगे। सभा में बड़े-बड़े विद्वान् एकत्र हुए। जर्मनी के विश्वविद्यालयों से छः विद्वान् आए; इटली के प्रतिनिधि भी बहुत बड़ी संख्या में थे। इससे यह भली भाँति प्रकट हो जाता है कि हमारी सभा का राजनीति से कोई संपर्क नहीं है। कैंब्रिज से प्रोफ़ेसर केनीज़ आए, और ब्रिटिश-म्यूज़ियम से बेटसन। रॉयल सोसाइटी और ऑक्सफ़ोर्ड ने बधाइयाँ भेजीं। पाँच दिन लेनिनग्रेड में और पाँच दिन मास्को में व्यतीत हुए। हम लोगों के पास अपने अतिथियों को दिखलाने के लिये बहुत अधिक सामान था। हमारे अजायबघर इतने भरे हुए हैं, इतने विस्तृत तथा भली भाँति प्रबंधित हैं कि पेग के प्रोफ़ेसर मिज़की के कथनानुसार लेनिनग्रेड योरप की और सब राजधानियों से बढ़कर है। और, चूँकि अब उसका राजधानी का जो प्राचीन पद था, वह उससे छीन लिया गया है, इसलिये अब यह वैज्ञानिकों तथा कला-कुशलों के लिये तीर्थक्षेत्र हो गया है। × × × एक बार और मैं आपकी अनुपस्थिति पर खेद प्रकट करता हूँ। चूँकि अब अनुष्ठान समाप्त हो चुका है, अतः हम लोगों को कार्य में लग जाना चाहिए। मेरे पास न्याय-बिंदुलि का पूर्ण अनुवाद तैयार है, और धर्मनीति तथा

दिंगनाग के दर्शन पर एक पुस्तक । आप मेरे भाव इन महान् आत्माओं के संबंध में जानते हैं । इन महात्माओं को मैं भारतवर्ष ही का नहीं, वरन् सारे संसार के दार्शनिकों से बड़ा समझता हूँ ।"

चमनलाल गर्ग

× × ×

९. भग्न हृदय

मेरी कोमल हृत्तंत्री का टूट गया है कोई तार ;
इसके साथ न गावेगा अब भाव-गीत भावुक-संसार ।
अवनी-तल पर अब न बहेगी सुधा-सरस अविरल स्वर-धार ;
रीझेगा फिर कैसे गायन-प्रेमी प्रियतम प्राणाधार !

जगन्नाथप्रसाद खत्री "मिलिंद"

× × ×

१०. पूर्तियाँ

हिंदुन को जस कैधौं कारिख तें पूरि रह्यौ,
कैधौं निसा-नारी तम-पुंज बिसतारें हैं ;
कैधौं हिंदू लीडर भटकि रहे इत-उत,
जहाँ-तहाँ जोति कैधौं जुगनू पसारे हैं ।
कैधौं आँखि बंद किए हिंदू बने निद्रित हैं,
रवि के वियोग कैधौं कंज मन-मारें हैं ;
कैधौं आर्य-रीति उड़ि नभ में छिपी है जाय,
कैधौं नभ बीच टिम-टिम होत तारे हैं ।
धरम करम बेद सास्त्र निज जानैं नाहिं,
मद्य मांस महिला पै प्रान हू गँवाए देत ;
जाति-हित दान देत जूड़ी चढ़ि आवति है,
द्यूत खेलि-खेलि कुल-संपति बहाए देत ।
उरदू औ फ़ारसी के नाम पै बिकानें फिरैं,
नागरी के नाम हू पै कारिख लगाए देत ;
ऐसे ही कपूत आर्य-धर्म को मिटाए देत,
हिंदुन की मरजाद छार में मिलाए देत ।

"एकलव्य"

× × ×

११. सम्राटों का वार्षिक वेतन

अभी कुछ दिन हुए, जर्मनी में एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी, जिससे पता चलता है कि श्याम-देश के नरेश संसार में सबसे अधिक वेतन-भोगी सम्राट् हैं । इसके बाद इटली के शाह विक्टर एमैनुएल का नंबर आता है । विशाल ब्रिटिश-साम्राज्य के एकच्छत्र सम्राट् जॉर्ज पंचम का नंबर तीसरा है । नीचे दिए हुए अंकों से पाठकों को संसार-भर के सम्राटों के वेतन का ठीक-ठीक पता चल जायगा—

देश		वार्षिक वेतन
श्याम के महाराज को		३५,००,०००)
इटली	,,	३२,००,०००)
इँगलैंड	,,	२६,००,०००)
जापान	,,	२२,५०,०००)
स्पेन	,,	१७,७५,०००)
बेल्जियम	,,	१०,७५,०००)
रूमानिया	,,	५,००,०००)
स्वीडन	,,	४,६३,६००)
बलगेरिया	,,	४,००,०००)
डेनमार्क	,,	३,००,०००)
नारवे	,,	२,४४,०००)

संयुक्तराज्य अमेरिका और फ़्रांस में राजशाही है ही नहीं ; प्रति तीसरे वर्ष राजकीय सभा का सभापति चुन लिया जाया करता है । रूस में तो ज़ारशाही-राजशाही का नाश ही हो चुका है ।

शिवनारायण टंडन

× × ×

१२. संसार-समस्या

छोटी क्षुद्र तरंग चली थल ओर को—
"भेटूँ उनको, पुनः सराहूँ भाग्य मैं ।"
किंतु हुई लय बीच, वीचि पा दूसरी ;
अंतिम उसके शब्द बड़े करुणीय थे—
"गई ! निराशा ! हाय न उनको पा सकी !"
उड़ी चकोरी चंद्र-मिलन-आशा किए,
हृत्तंत्री की तान छोड़ती मग्न हो ;
किंतु शून्य में अधिक कहाँ वह जायगी ?
पतन अंत को हुआ ; करुणतम आह में
कहा—"दूर है दूर, बड़ी ही दूर है ।
निश्चय छोटी लहर लीन हो जायगी ;
पा सकती कब दीन चकोरी चंद्र को !
पूर्व-भाग से 'पवन' ठठोली कर उठा,
दोनों से निर्देश-भाव में यों कहा—
"आशा फल की छोड़, करो कर्तव्य निज ।"

श्रीधर वात्सल्य

× × ×

१३. हिंदी-लेखकों से निवेदन

आप लोग स्वयं समझदार हैं । अपने-पराए का ज्ञान आप अन्य मनुष्यों से अधिक रखते हैं । किस काम के करने में नफ़ा और किसके न करने में नुक़सान है, यह बात भी आपके दिलचस्प मज़मूनों में शामिल है । कोई ऐसी बात नहीं, जो आपसे छूट गई हो । यह तो आम लोग आपके विषय में राय रखते हैं । आपने स्वयं अपने लिये क्या सोच रक्खा है, इसको आप जानें, और आपका काम जाने । मेरी तो केवल एक ही बात की ओर आपका ध्यान दिलाने की इच्छा है । वह है परस्पर का वैमनस्य ।

वैमनस्य बढ़ने के दो ही कारण हो सकते हैं—एक यश की प्रतिस्पर्द्धा, और दूसरे धन का प्रलोभन ।

अस्तु, यश और धन, दोनों के विषयों में आत्मपरीक्षा करने से काम चल जायगा, और वैमनस्य के लिये हृदय में स्थान नहीं रहेगा ।

जो लोग अच्छे विद्वान् हैं, सुलेखक हैं, उनका यश अवश्य होगा । वे चाहे लड़के हों, चाहे वृद्ध । हाँ, इतनी गुंजाइश रखनी पड़ेगी कि सुलेखक और विद्वान् होने ही के कारण से दूसरों को तुच्छ समझने के रोग में न फँसना चाहिए ।

मुझे तो मालूम नहीं ; क्योंकि किसी भाषा का भी अच्छा ज्ञान मुझे नहीं । पर सुनता हूँ, अँगरेज़ी का साहित्य बहुत ऊँचा है, और वहाँ परस्पर धींगाधींगी ऐसी नहीं होती । वहाँ हो या न हो; पर हम लोग इस रोग में दिन-ब-दिन क्यों फँसते जा रहे हैं ।

हम लोग बिगड़ते हैं, तो जी-जान से ; ग्रामीण स्त्रियों की तरह दूसरे लेखकों के दादा-परदादा, सबकी ख़बर ले लेते हैं । यह बात विचारने की है ।

इधर हिंदी-लेखकों में व्यक्तिगत आक्रमणों की धूम है । इस विषय में माधुरी ने कई बार लिखा है, और साथ ही उसने अपना उदाहरण भी सामने रक्खा है । उसने जैसा कहा, वैसा किया भी है । पर और पत्रों ने इधर कम ध्यान दिया है । मैं समझता हूँ, इस रोग को शीघ्र ही दूर कर देना चाहिए ; नहीं तो इसके बढ़ने का डर है ।

अब तो मुक़दमेबाज़ी की भी बातें सुनी जा रही हैं । मालूम नहीं, संपादक-समिति कहाँ है, और क्या कर रही है ? इससे बढ़कर दूसरा कौन-सा काम होगा ? मेरी विनम्र विनती है कि आप लोग इधर ध्यान दीजिए, जिससे पढ़े-लिखे आदमी तो प्रतिकूल मार्ग पर न चलें ।

उदित मिश्र

× × ×

१४. अनुरोध

देख, मत फिर-फिर मेरी ओर,
चुभाए जा निष्ठुर हो तीर ;
किंतु रखना इसका भी ध्यान,
न हो जावे खाली तूणीर ।
देख, विचलित हो जाय न लक्ष्य,
काँपता क्यों, हो आज अधीर ?
देख, मत घबड़ा अश्रु-प्रवाह;
हैं नहीं ये पीड़ा के नीर ।
हैं हुए उर में कितने घाव ।
देखता क्या है बारंबार ?
मूँदता क्यों नयनों को ? देख—
तीर हैं गए न उर के पार ।

श्यामापति पांडेय (श्याम)

× × ×

१५. भारतीय लिपि

भारतवर्ष में लिखने की चाल कब और कहाँ से चली, इसका पता लगाना अत्यावश्यक है । इस विषय में प्राचीन भारत का इतिहास और साहित्य बहुत कम बता रहा है । केवल मुँह से सब कहते आए हैं कि लिखने की प्रथा पुरातन से चली आ रही है; पर पता नहीं, कब से ? कहीं-कहीं शिला-लेखों द्वारा लेखन-कला का कुछ आदि इतिहास मिलता है । इनमें सबसे पुराने अशोक के समय के लेख हैं । कई पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि भारत में दो प्रकार की लिपियाँ प्रचलित थीं—खरोष्ठी और ब्राह्मी । खरोष्ठी पूर्व-अफ़ग़ानिस्तान और उत्तरीय पंजाब में ईसा के पूर्व लगभग २०० सन् में फैल गई थी ; परंतु सन् ३०० में यह भारत से लुप्त हो गई । पर तो भी कुछ दिनों तक चीनी-तुर्किस्तान में, जो ईसा की पहली सदी में महाराज कनिष्क के भारतीय साम्राज्य का एक अंश था, यह प्रचलित रही । ईसा के पूर्व ५वीं शताब्दी में अरमेनियाँ-देश में जो लिपि व्यवहृत होती थी, उसी से इसका जन्म हुआ था । यह फ़ारसी-अरबी की तरह दाहने से बाएँ लिखी जाती थी । इसका एक उदाहरण

दिया जाता है, जो मथुरा के सिंह स्तूप के लेख से उद्धृत है। इसका पता मथुरा के परम विद्वान् पं० भगवानलाल इंद्रजी ने लगाया था, और उन्हीं ने पहलेपहल उस पर लिखे खरोष्ठी-अक्षरों को पढ़ा था। उसका एक अंश नागरी में लिखा जाता है—

"महा क्षत्रपस रजुलस अग्रमहिषी अयासिओ-कोमूसा धिता खर ओष्टस-युवाराणा माता नदसि-अकस।"

अर्थात् महाक्षत्रपति रजुल की प्रधान महिषी आयसी-कोमूसा की पुत्री और युवराज खरोष्ठ की माता, जिसका नाम नदसि-अकसा है, उसके द्वारा (स्थापित)

ब्राह्मी भारतवर्ष की सच्ची जातीय लिपि है; क्योंकि पश्चात् यावत् वर्णमालाएँ निकलीं, सब इसी से उत्पन्न हुईं, यद्यपि आज उनके आकार-व्यवहार में महान् अंतर है। ये बाएँ से दाहने लिखी जाती थीं। पाश्चात्य विद्वान् डॉ० बुल्हर ने प्रमाणित किया है कि यह लिपि फ़िनिशियन लिपि के आधार पर है, जिसका आरंभ-काल ईसा के पूर्व सन् ८६० के लगभग है। उनका कथन है कि संभवतः यह लिपि मेसोपोटेमिया होकर आनेवाले व्यापारियों द्वारा भारत में चलाई गई। इस मत को कई विद्वानों ने प्रमाणित किया है। एक विद्वान् का कथन है कि इसमें बौद्ध संन्यासियों की सब काल की दिनचर्या का उल्लेख है; पर कहीं कोई चर्चा नहीं मिलती कि वे अपने धर्म-ग्रंथ पढ़ रहे अथवा लिख रहे हैं। कहीं किसी प्रकार के लिखने की बात नहीं पाई जाती। इनका भी यही मत है। अशोक के समय के शिला-लेखों से पता चलता है कि अधिकांश अक्षरों के ९ या १० रूप हुआ करते थे। प्रथम २२ संकेतों को ४६ अक्षर संयुक्त-पूर्ण ब्राह्मी वर्णमाला का रूप धारण करने में अधिक काल लगा होगा। इस वर्णमाला का प्रथम दर्शन पाणिनीय में प्राप्त होता है। जिसका प्रणयन ईसा के पूर्व चौथी सदी में हुआ था। वह आज तक ज्यों-की-त्यों है। इसमें संस्कृत की समस्त ध्वनियाँ विद्यमान हैं। स्वर-वर्णों की रचना सर्वप्रथम, पश्चात् संयुक्त वर्ण, अंत में व्यंजन रक्खे गए। ये भी उच्चारण-अंग के स्थानानुसार। जैसे कंठ, तालु इत्यादि।

ब्राह्मी-भाषा का भी कुछ उदाहरण देना अनुचित न होगा। अतएव ग्वालियर के दक्षिण बेसनगर-स्तूप के, जो विष्णु के उपलक्ष में हेलियोडोरस द्वारा स्थापित हुआ था, एक ब्राह्मी-लेख को उद्धृत करता हूँ—।

"देव देवस वासुदेवस गरुड़ध्वजे अयम् कारिते हेलियो-डोरेण भागवतेन दियस पुत्रेण तखसिलाकेन योन दूतेन आग-तेन महाराज अंतलिकितस उपंता सकासम् रयो कासी पुत्रस भागभद्रस त्रातारस वसेन-(चतु) दसेन्न राजेन वधमानस।"

अर्थात् देव-देव वासुदेव का यह गरुड़ध्वज तक्षशिला के डियन के पुत्र विष्णुभक्त हेलियोडोरस के द्वारा स्थापित किया गया, जो ग्रीक राजदूत की हैसियत से महाराज अंटियल किडास से त्राणकर्ता राजा काशिपुत्र भागभद्र के पास, जो उस समय अपने राज्य के चौदहवें वर्ष में समुन्नति के साथ शासन कर रहे थे, आया था।

ब्राह्मी-लिपि के दो भेद पाए जाते हैं—उत्तरीय और दाक्षिणात्य। पहले उत्तरीय लिपि की व्युत्पत्ति हुई, जो समयांतर में भारत की भाषाओं में व्याप्त हुई। इन सबमें प्रधान नागरी-लिपि है, जिसमें आजकल सब हिंदी-संस्कृत आदि के ग्रंथ लिखे जाते हैं। सबसे पुरानी नागरी-लिपि सातवीं सदी में पाई जाती है। दूसरी लिपि से भारत की दक्षिणी भाषा की लिपि बनी, जो संप्रति विंध्याचल के नीचे के भाग में व्यवहृत होती है।

भारत में लिखने की चाल के विषय में भी मतभेद पाया जाता है। अध्यापक विल्सन का मत है कि साहित्य-काल से ही हिंदुओं के यहाँ लिखने की परिपाटी है। इसका व्यवहार केवल शिला-लेखों में ही नहीं, वरन् सामान्य कामों में भी था। कौंट के मत से ईसा के २८०० वर्ष पूर्व के लिखे ग्रंथ हिंदुओं के पास थे। अजमेर के सदरआला श्रीहरविलास शारदाजी अपने परम अमूल्य ग्रंथ 'हिंदू-सुपीरियारिटी' में लिखते हैं कि "जब रेखागणित और ज्योतिष इस उन्नत रूप में ईसा के ३००० वर्ष पूर्व भारत में प्रचलित थे, तब क्या यह विचार में आ सकता है कि ईसा के ३५० वर्ष पूर्व भारत में लिखने की चाल न थी। सन् १८८३ में, लीडन में, पूर्वी-भाषा-विशारदों की एक विराट् सभा हुई थी, जिसमें 'प्राचीन भारत में लेखन-प्रयोग' पर लेख पढ़ा गया था, जो बड़ी ही विद्वत्ता के साथ प्रमाणित करता है कि वेद के समय से ही भारत में लिपि-प्रणाली है। क्या यह विश्वास की बात है कि नियम-बद्ध गद्यात्मक ग्रंथ, जो पाणिनि के बहुत काल पूर्व तथा उनके समय में तैयार हो गए थे, लेख के साहाय्य बिना कभी बनाए जा सकते थे? वेदों में कांड और पटल-शब्द का व्यवहार ही लेख-बद्ध ग्रंथ का रहना सिद्ध करता है। इस विषय में तीर्थश्च विद्याभूषण

वयोवृद्ध श्रीयुत पं० लक्ष्मणनारायण शर्माजी २२ जून की शिक्षा में लिखते हैं—"ऋषि वैदिक काल में लिखना जानते थे।"

वैदिक काल में ताड़ के पत्तों पर लिखा जाता था। इसीलिये काग़ज़ का नाम पत्र (पत्ते) है। नामकरण-संस्कार में जिह्वा पर 'ॐ' लिखने का विधान है। यदि ऋषिगण लिखना न जानते, तो नामकरण कैसे होता?

इन सब बातों से पता चलता है कि भारतीय आरंभ-काल से ही लिखना जानते थे। अक्षर कई रेखाओं के योग से बनते हैं; वे यज्ञ-वेदियों पर कई प्रकार की रेखाएँ खींचते थे, जो लिपि का मूल हैं। यज्ञ की रेखाओं ने लिपि की उत्पत्ति में बड़ी सहायता दी है।

श्रीयुत श्याम शास्त्रीजी ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के विषय में यह नया सिद्धांत प्रकट किया है कि प्राचीन समय में देवतों की पूजा प्रतिमा बनने के पूर्व कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा, होती थी। ये त्रिकोण-यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। त्रिकोण यंत्र आदि 'देवनागर' कहलाते थे। ये ही देवनागरी के मध्य लिखे जानेवाले चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे, इसी कारण नागरी अक्षरों का नाम पड़ा। अतएव देवनागरी-लिपि भारत की राष्ट्र-लिपि पुरातन काल से है, और यही राष्ट्र-लिपि के सर्वथा योग्य है*।

राजेश्वरप्रसाद सिंह

× × ×

१६. प्रतिवाद

माधुरी के श्रावण-अंक में मुझे चोर लेखकों की श्रेणी में रखकर मुझ पर भारी अन्याय किया गया है। अब तो वह मुक़द्दमा ख़ारिज भी हो चुका है। वह बिलकुल झूठा अभियोग था। मेरी पुस्तक 'दंपति-मित्र' का प्रकाशक अब श्री० शिवनंदनसिंह पर हरजाना, रुपए ऐंठने, और कपट का अभियोग चलानेवाला है।

श्री० शिवनंदनसिंह ने प्रकाशक महाशय राजपाल पर दो मुक़द्दमे दायर किए थे। एक तो यह कि मैंने कई वर्षों के परिश्रम से 'दंपति-मित्र'-नामक पुस्तक लिख कर सन् १६२० के अंत में समाप्त की, और जनवरी, सन् १६२१ में बिना रजिस्ट्री कराए पेड पैकेट से म० राजपाल के पास भेज दी, और उसका उर्दू-अनुवाद छापने की आज्ञा दी। म० राजपाल ने उस हस्त-लेख को कई वर्ष तक दबाए रक्खा, और फिर सन् १६२४ में, इसके उर्दू-अनुवाद के स्थान में, किसी दूसरे लेखक के नाम पर, मूल हिंदी ही छाप दिया। इससे मेरी दस सहस्र रुपए की हानि हुई। दूसरा अभियोग यह था कि "म० राजपाल ने दंपति-मित्र में एक जगह लिख दिया कि श्री० शिवनंदनसिंह अविवाहित होते हुए भी लंपट हैं। उनके कान में देश के दुःखी भाइयों की पुकार नहीं पहुँचती।" इस प्रकार उनकी मानहानि की गई है।

म० राजपाल ने अदालत में बयान दिया कि मेरे पास ठाकुर शिवनंदनसिंह की लिखी दंपति मित्र-नामक कोई पुस्तक नहीं पहुँची। मैंने अब उन्हें लिखा कि यदि आपने दंपति-मित्र लिखी है, तो उसकी कुछ प्रतियाँ मेरे पास कमीशन पर बेचने के लिये भेज दीजिए; क्योंकि 'देश-दर्शन' में उसका नोटिस पढ़कर लोग उसे माँगते हैं, और यदि उचित हो, तो उसका उर्दू-अनुवाद छापने की भी आज्ञा दे दीजिए। उसके उत्तर में ठाकुर साहब ने लिखा कि मैंने दंपति-मित्र नाम की पुस्तक अभी तक नहीं लिखी। वह कहते हैं कि उन्होंने जनवरी सन् १६२१ में, दंपति-मित्र का हस्त-लेख मेरे पास भेजा। यदि उन्होंने कोई हस्त-लेख भेजा होता, तो इतने वर्ष उसे दबा रखने के लिये वे मुझे कोई नोटिस ही देते; क्योंकि देश-दर्शन के उर्दू-अनुवाद में इनके नाम के साथ 'ठाकुर'-शब्द न छपने के कारण उन्होंने मुझे रजिस्टर्ड नोटिस दिया था।

श्री० शिवनंदनसिंह ने अदालत में म० राजपाल का एक कार्ड पेश किया। उसमें लिखा था कि "देश दर्शन के साथ की एक दूसरी पुस्तक अनुवाद के लिये मिल गई"। बस, इसी के आधार पर वह कहते थे कि दंपति-मित्र के पहुँचने की रसीद मेरे पास है। म० राजपाल ने इसके उत्तर में कहा कि 'देश-दर्शन के साथ की' इसके अब पंजाबी मुहावरे में दो हैं—(१) देश-दर्शन के विषय की कोई दूसरी पुस्तक, या (२) देश-दर्शन की एक दूसरी प्रति। ठाकुर शिवनंदनसिंह देश-दर्शन के उर्दू-अनुवाद का पुरस्कार मुझसे अधिक माँगते थे, मैं कम देना चाहता था। इसलिये मैंने व्यापारी ढंग से लिखा था कि आपको अपना अनुवाद देना हो तो दीजिए; नहीं तो मुझे इसी विषय की एक

*सं० सा० के आधार पर।

दूसरी पुस्तक उर्दू-अनुवाद के लिये मिल गई है। उन दिनों वह श्री० सुखसंपत्तिराय भंडारी से उनके 'भारत-दर्शन' का उर्दू-अनुवाद लेने की बातचीत कर भी रहे थे। इसलिये 'के साथ की पुस्तक' से उनका अभिप्राय दंपति-मित्र' से नहीं, वरन् भारत-दर्शन से था।

मुक़दमे के आरंभ में ही म० राजपाल ने Jurisprudence का सवाल उठाकर कहा था कि यह मुक़दमा काशी में नहीं चल सकता। परंतु मजिस्ट्रेट ने, इस प्रश्न का फ़ैसला आज करता हूँ और कल करता हूँ, करते-करते सारा मुक़दमा सुन डाला। फिर जब अंत में फ़ैसला देने लगे, तो कौन सच्चा और कौन झूठा, इसका कुछ भी निर्णय न करके, इस बात पर मुक़दमा ख़ारिज कर दिया कि यह काशी में नहीं चल सकता। बेचारे मुलज़िम के बारह सौ से अधिक रुपए ख़र्च हो गए, लाहौर से काशी आने-जाने का कष्ट और कार-बार की हानि अलग रही। जो सवाल उसने पहले ही दिन उठाया था, उसका फ़ैसला उन्होंने उसी समय के बदले सारा मुक़दमा सुन लेने के बाद करके, अपनी अद्भुत योग्यता का ख़ूब परिचय दिया।

मानहानि के अभियोग के संबंध में म० राजपाल का अदालत में बयान था कि झूठे मुक़दमे चलाना ठाकुर साहब का पेशा ही है। उन्होंने एक लाल काग़ज़ छाप कर आप ही 'दंपति-मित्र' में चिपका दिया है, और मुझ पर मुक़दमा चलाकर, मुझे तंग करने के उद्देश्य से उस काग़ज़ पर मेरे नाम से अपमान-जनक शब्द लिख दिए हैं। यदि वह काग़ज़ मैं छापकर लगाता, तो क्या वह अदालत में पेश की गई केवल इन्हीं की प्रति में होता? मैंने दंपति-मित्र की लगभग डेढ़ हज़ार कापियाँ बेची हैं। ग्राहकों के नाम मेरे रजिस्टर में हैं। उनमें से किसी से भी उसकी कापी मँगाकर देखी जा सकती है। यदि उसमें भी वह लाल काग़ज़ चिपका हुआ हो, तो मैं अपराधी हूँ, नहीं तो यह जालसाज़ी है। परंतु पहला मुक़दमा ख़ारिज हो जाने पर ठाकुर साहब ने यह मानहानि का मुक़दमा अपने-आप वापस ले लिया।

यह तो हुआ मुद्दई और मुलज़िम के बयानों का सारांश। अपने संबंध में मुझे इतना ही कहना है कि मुझे इन दोनों के झगड़े से कुछ सरोकार नहीं। मैंने दंपति-मित्र की पुस्तक सन् १९२४ में ख़ुद लिखी है। मेरी पुस्तक का दो-तिहाई से भी अधिक भाग दो ऐसी पुस्तकों का शाब्दिक अनुवाद है, जो अमेरिका और इँगलैंड में सन् १९२२ और सन् १९२३ में छपी हैं। उनमें से एक Woman morality and British control (by Mrs. Sanger, New York, 1922) है। इस सारी पुस्तक का शाब्दिक अनुवाद मेरी पुस्तक में मौजूद है। दूसरी पुस्तक है Contraception by Dr. Stopes. यह लंदन में जून, १९२३ में, छपी है। इसके चार अध्यायों का पूरा अनुवाद मेरी पुस्तक में है। अब सोचने की बात है कि श्री० शिवनंदनसिंह ने जिस पुस्तक की रचना सन् १९२० में की थी, उसमें सन् १९२२ तथा सन् १९२३ में, विदेश में, छपी पुस्तकों का अनुवाद कैसे हो सकता है! जिन तीन-चार पुस्तकों से मैंने अपनी पुस्तक के लिये सामग्री ली है, उनके विषय में ठाकुर साहब ने अदालत में बयान दिया है कि मैंने उन पुस्तकों से अपनी रचना में कोई सहायता नहीं ली। म० राजपाल के वकील ने उपर्युक्त दोनों अँगरेज़ी-पुस्तकें अदालत के हाथ में देकर दंपति-मित्र में से उनका हिंदी-अनुवाद पढ़कर सुनाया था, और अदालत ने स्वीकार भी किया था। यदि अदालत मुक़दमे के विषय में कोई निर्णय देती, तो ठाकुर साहब को लेने के देने पड़ जाते, और सारी पोल खुल जाती। इसीलिये मैं कहता हूँ कि अदालत ने उन्हें बचा दिया। मैं ठाकुर साहब को ललकार कर कहता हूँ कि वह दंपति-मित्र को अपनी रचना सिद्ध करके दिखावें। बाक़ी रहा यह प्रश्न कि यदि इसमें कुछ सत्यांश न था, तो वह ऐसा निराधार मुक़दमा कैसे चला सकते थे? इस संबंध में मुझे इतना ही कहना है कि काशी के गण्य-मान्य बाबू शिवप्रसादजी गुप्त, बाबू श्यामसुंदरदासजी बी० ए०, बाबू भगवानदासजी एम० ए०, बाबू रामचंद्रजी वर्मा आदि विद्वानों से पूछ लेना ही पर्याप्त होगा।

मैंने जो बातें ऊपर लिखी हैं, वे सब अदालत के काग़ज़ों में आ चुकी हैं। अपनी ओर से मैंने कुछ भी नहीं लिखा। यदि आप मेरे साथ न्याय करना उचित समझें तो इस पत्र को माधुरी में प्रकाशित करने की कृपा करें, क्योंकि आपके नोट से मुझ पर जो धब्बा लगा है, उसको धोने का मेरे पास और कोई उपाय नहीं।

संतराम



१. जीवन

जीवन में एक टेव पड़ गई थी। वह तड़के उठकर चुपके-से घर के आले-ताख ढूँढ़ा करता था। एक-आध बार उसे मिठाई मिल गई थी, तब से बचा को ढूँढ़-ढाँढ़ का मानो चस्का लग गया था।

एक दिन जो तड़के उठा, तो घर में तो कुछ पाया नहीं, बाहर बैठक के आगे दालान में देखा कि पूरब की ओर, किनारे पर, कोई चादर ताने सो रहा है। पास ही पिटारी रक्खी है।

उजेला अब भी वहाँ अच्छी तरह न पहुँचा था। जीवन चुपके-चुपके वहाँ पहुँचा। जैसे ही उसने पिटारी का ढकन ऊपर उठाया कि भीतर से दो बड़े-बड़े साँप निकल आए। एक जीवन के दाएँ हाथ में लिपट गया, और दूसरा बाएँ में। दोनों ने फन काढ़ दिए। जीवन ज़ोर से चीखकर पीछे हटा—अरे दइया रे! साँपों ने फार खाया!

जीवन के पिता, भाई-बहन सब चीख सुनकर दौड़ पड़े। जीवन की भाभी दौड़कर दरवाज़े ..



एक जीवन के दाएँ हाथ में लिपट गया, और दूसरा बाएँ में



मुगल-सम्राट् हुमायूँ

[पं० हनूमान शर्मा की कृपा से प्राप्त]

N. K. Press, Lucknow

किवाड़ों के पास आ खड़ी हुई।

भड़भड़ में उस सोते हुए आदमी की भी नींद खुल गई। उसने देखा कि एक लड़का चिल्ला-चिल्लाकर रो रहा है। घर के और सब लोग भी चिल्ला रहे हैं। पिटारी खुली है, और साँप उसके हाथों में लिपटे हैं।

वह आदमी और कोई नहीं, मदारी था। वह रात हो जाने पर जीवन के पिता से पूछकर दालान में सो गया था। उसने मौहर (तोमड़ी) बजाई, और साँपों को झट पिटारी में बिठा दिया।

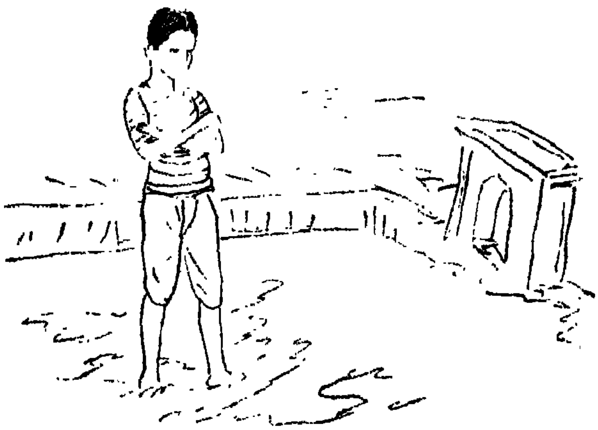
भय के मारे जीवन का कलेजा अभी ज़ोर से धड़क रहा था। उसकी देह पसीने-पसीने हो रही थी। बड़ी देर तक पंखा हाँका गया। मा गोद में लिए उसे बड़ी देर तक छाती से लगाए रही। तब जाकर कहीं उसका जी ठिकाने हुआ।

जीवन की उस दिन से चुपके-चुपके ढूँढ़-ढाँढ़ की आदत छूट गई। उसने सोच लिया कि बिना पूछे, बिना समझे-बूझे कोई चीज़ न छुऊँगा, और न किसी चीज़ में हाथ डालूँगा।

× × ×

२. पहलवान

हम पहलवान ;
हम पहलवान।
हम ताल ठोंककर कहते हैं, हम नहीं किसी से डरते हैं।
हम पहलवान ;
हम पहलवान।
हो बली अगर, तो आ जाओ। बल देखो, बल दिखला जाओ।
हम पहलवान ;
हम पहलवान।
हम रोज़ अखाड़े आते हैं, फिर घर तक दौड़ लगाते हैं।



हम ताल ठोंककर कहते हैं।
हम नहीं किसी से डरते हैं।

हम पहलवान ;
हम पहलवान।
जब भइया गेंद खेलते हैं, तब हम भी डंड पेलते हैं।
हम पहलवान ;
हम पहलवान।

जगमोहन "विकसित"

× × ×

३. विचित्र बातें

(क) चींटी की चाल

लोगों का ख़याल है कि चींटी बहुत धीरे चलती है। पर यह बात नहीं। वह मनुष्य की अपेक्षा बहुत तेज़ चलती है। चलते समय जितनी फ़ुर्ती से चींटी पैर उठाती और रखती है, यदि उतनी ही तेज़ी से मनुष्य भी पैर चलावे, तो एक घंटे में आठ सौ मील चल सकता है।

(ख) मगर का शरीर

मगर या घड़ियाल के सारे शरीर में एक भी हड्डी नहीं होती। हड्डी के स्थान पर एक दूसरी ही चीज़ होती है, जो 'कार्टिलेज' कहलाती है। यह वही चीज़ है, जिससे हमारी नाक का अगला भाग तथा कान बने होते हैं।

(ग) टिड्डे की आवाज़

टिड्डे को भैंसफोड़ा या हरा झींगुर भी कहते हैं। इसकी आवाज़ दूर तक सुनाई पड़ती है। पर यह हम लोगों की तरह मुँह से नहीं बोलता, बल्कि जिस प्रकार

सारंगी के तार रगड़ने से शब्द उत्पन्न होता है, उसी प्रकार यह भी अपने पैरों को पंखों पर रगड़-रगड़ कर शब्द करता है।

टिड्डे की सुनने की शक्ति भी अद्भुत है। जब कोई टिड्डा बोलता , तो उसका साथी उससे चाहे कितनी ही दूर क्यों न हो, सुन लेता है, और ख़ुद भी बोलने लगता है।

अभी हाल की बात है कि एक आदमी ने दो टिड्डे पकड़े। एक को टेलीफ़ोन के एक सिरे पर रख दिया, और दूसरे को वहाँ से बहुत दूर—टेलीफ़ोन के दूसरे सिरे पर। दो में से जब कोई बोलता था तो दूसरा अवश्य उत्तर देता था। इससे मालूम हुआ कि टिड्डे टेलीफ़ोन के ज़रिए से भी एक दूसरे की आवाज़ सुन लेते हैं।

(घ) कौए की खेती

कौए तो तुम रोज़ ही देखते होगे, पर शायद तुम्हें यह न मालूम होगा कि वे खेती भी करते हैं। बात यह है कि कौआ ज़रा लोभी होता है, उसके खाने-पीने से जो कुछ बच रहता है, उसे वह ज़मीन खोदकर गाड़ देता है। उसके खाने के सामान में सभी चीज़ें होती हैं—अनेक प्रकार के बीज भी होते हैं। उन्हें भी वह गाड़ देता है। पर सुध भी बहुत भूलता है। इससे बहुत-से गड़े हुए बीजों तथा दूसरी चीज़ों का उसे ख़याल ही नहीं रहता। दूसरी चीज़ें तो गड़े-गड़े सड़ जाती हैं, पर वर्षा आने पर ये बीज पौदे बनकर लहलहा उठते हैं।

(ङ) मुर्ग़े की उदारता

मुर्ग़ा बड़ा उदार पक्षी है। जब उसे खाने की कोई चीज़ मिल जाती है, तो वह उसे स्वयं नहीं खाता, बल्कि अपनी मुर्ग़ियों में से किसी एक को बुलाकर दे देता है। बिना मुर्ग़ियों को भर-पेट खिलाए वह स्वयं कुछ नहीं खाता।

(च) भालू का शिकार

उत्तरीय ध्रुव के आसपास के बर्फ़ीले स्थानों में सफ़ेद रंग के भालू रहते हैं। वहाँ के रहनेवाले एस्किमो लोग उनका शिकार बड़े विचित्र ढंग से करते हैं।

शिकारी पहले एक पतली हड्डी लेता है, और उसे झुकाकर कमान की शकल की बना लेता और ताँत से बाँध देता है। फिर उसे चर्बी में रखकर छिपा देता है, और खुली हवा में छोड़ देता है। इससे चर्बी जमकर पत्थर से भी अधिक कड़ी हो जाती है। फिर वह हड्डी में बँधी हुई ताँत को काट देता है। ऐसा करने पर भी जमी हुई चर्बी से जकड़ी होने के कारण हड्डी धनुष के आकार की बनी रहती है—सीधी नहीं होती। फिर इसी चर्बी के ढेले को लेकर वह भालू का शिकार करने चल देता है।

भालू के दिखाई पड़ते ही वह उस पर तीर चलाता है। भालू इस गुस्ताख़ी का दंड देने के लिये उसकी ओर झपटता है, और वह चर्बी छोड़कर भाग खड़ा होता है। भालू चर्बी देखते ही झट उसे खा जाता है—पर साथ ही धनुषाकार हड्डी को भी, जो उसके अंदर पेट में पहुँचते ही चर्बी पिघल जाती है, और चर्बी के पिघलते ही हड्डी सीधी हो जाती है, जिससे उसका पेट फट जाता है, और वह तुरंत मर जाता है।

(छ) मेढक की उपयोगिता

मेढक देखने में तो बहुत गंदा लगता है, पर है बहुत उपयोगी। खेतों और बग़ीचों में पौदों को हानि पहुँचानेवाले जो कीड़े-मकोड़े आते हैं, उन्हें वह नहीं टिकने देता। एक-एक करके सबको खा जाता है। लंदन और पेरिस में मेढक आसानी से नहीं मिलते। इससे वहाँ के रईस मूल्य देकर अपने बग़ीचों में रखने के लिये दूर-दूर से मेढक मँगवाते हैं। पार्सलों में बंद करके भी मेढक एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जाते हैं।

(ज) ऊँट का गोदाम

प्रायः हरएक जीव-जंतु का कहीं-न-कहीं गोदाम होता है। कोई अपने खाने-पीने का सामान पेड़ पर छिपाकर रखता है, तो कोई बिल में। पर ऊँट रेगिस्तान का जानवर है, जहाँ सैकड़ों कोसों तक बालू के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। फिर भला वह अपना गोदाम बनावे, तो कहाँ बनावे?

इसी से तो ईश्वर ने उसके शरीर में ही दो बड़े-बड़े गोदाम बना दिए हैं। उसकी पीठ पर जो बड़ा कूबड़ देखते हो, वही उसके भोजन का गोदाम है। ऊँट जो कुछ खाता है, उसका एक भाग चर्बी के रूप में कूबड़ में जमा होता रहता है, और कूबड़ दिन-दिन फूलता जाता है। जब उसे कई दिन तक कुछ खाने को नहीं मिलता, तब यह जमा किया हुआ भोजन काम में आता है, और कूबड़ पिचक जाता है।

दूसरा गोदाम उसके पेट में है। वहीं पानी जमा रहता

है। इसी के बल पर वह हफ़्तों बिना पानी पिए रह सकता है।

(झ) भेड़ों की मूर्खता

भेड़ बड़ी मूर्ख होती है। भेड़ों के प्रत्येक दल में एक अगुआ भेड़ होती है। वह जो काम करती है, वही काम उसके दल की सारी भेड़ें बिना सोचे-विचारे करने लगती हैं। यदि उनके बाड़े में आग लग जाय, और मुखिया-भेड़ किसी कारण वहाँ से न भाग खड़ी हो, तो सारी भेड़ें चाहे जलकर मर भले ही जायँ, पर अपना स्थान न छोड़ेंगी। यदि गड़रिया उन्हें पकड़कर बाहर घसीट भी लावे (पर मुखिया-भेड़ को अंदर ही रहने दे), तो छूटते ही वे भागकर फिर भीतर चली जायँगी। यदि कभी धोखे में मुखिया-भेड़ किसी टीले से नीचे कूद-कर मर जाय, तो सारा दल उसी प्रकार कूदकर प्राण दे देगा।

भूपनारायण दीक्षित



१. आज से हज़ार वर्ष बाद

आज से हज़ार वर्ष आगे के सभी मनुष्य गंजे होंगे। पुरुषों और स्त्रियों की पोशाकों में बहुत कम फ़र्क़ होगा। उनके कपड़े कृत्रिम ऊन या रुई के होंगे। लोग दूसरों के ध्यान को आकर्षित करने के लिये कपड़े न पहनकर स्वास्थ्य और सुविधा के लिये कपड़े पहना करेंगे। ये कपड़े ऐसे बने होंगे कि उनमें रेडियो की तरंगों को ग्रहण करने की शक्ति होगी। उस समय के मनुष्य आजकल के मनुष्यों की तरह अपने जीवन का एक-तिहाई समय सोकर नहीं बरबाद करेंगे। उस समय के लोगों के लिये निद्रा भूतकाल की एक वस्तु समझी जायगी। सबसे मज़े की बात होगी मनुष्यों का भोजन। आजकल की तरह उन्हें भोजन करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। टेबिल पर सभी खाद्य पदार्थों के अर्क़ रक्खे रहेंगे, और उनसे लगी हुई नली रहेगी। लोग 'बटन' दबाकर जिस पदार्थ का अर्क़ चाहेंगे, खा सकेंगे। प्रायः सभी खाद्य पदार्थ कृत्रिम रूप से बनाए जायँगे, और वे बहुतायत से तथा सस्ते मिलेंगे।

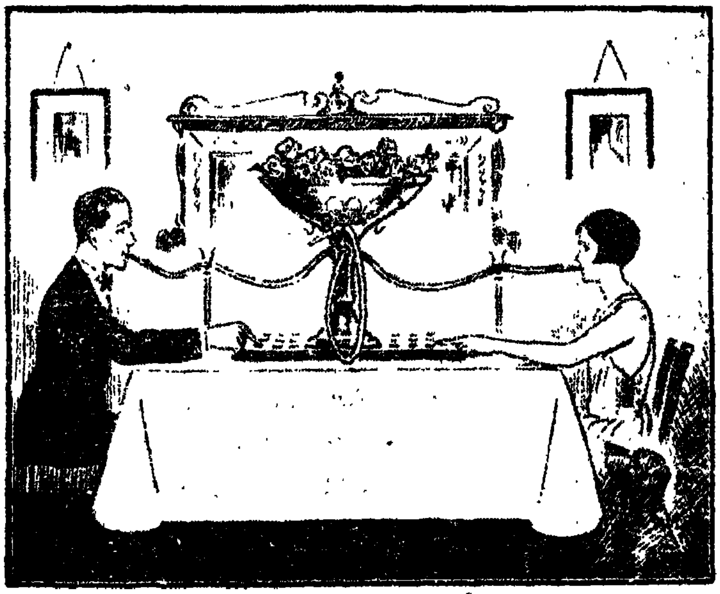
ऊपर लिखी भविष्य-वाणी करनेवाले प्रो० ए० एम० लो ने अपनी पुस्तक 'The Future' में लिखा है—"मेरी भविष्य-वाणियाँ व्यर्थ के स्वप्न ही नहीं हैं, वे उन तथ्यों पर अवलंबित हैं, जिनका आश्रय ग्रहण कर आधुनिक सभ्यता मनुष्यों को भविष्य के पथ पर आगे बढ़ा रही है। तीस वर्ष पहले बेतार के तार का कोई नाम भी नहीं जानता था, और आज लोग मंगल-ग्रह से बातें करने की चेष्टा कर रहे हैं। कल की बात कौन कह सकता है!"

मनोविज्ञान के ज्ञाताओं ने अर्द्ध-चेतन मस्तिष्क (Subconscious mind) की कार्यवाहियों का अध्ययन करके यह बतलाया है कि निद्रा व्यर्थ है। मधु-मक्खियाँ और चींटियाँ कभी नहीं सोतीं; तब मनुष्य क्यों सोवें? निद्रा का काम मनुष्य-शरीर के नष्ट हुए कोषों और मस्तिष्क के गांग्लिया (Ganglia)-नामक मस्तिष्क-संबंधी एक स्नायु में पुनः नई शक्ति का संचार करना है। मनुष्य-शरीर को जो जीवनी-शक्ति चलाती है, वह एक प्रकार की विद्युत् है। यदि कोई ऐसा साधन निकाला जाय, जिसकी सहायता से यह जीवनी-शक्ति शरीर में प्रविष्ट कराई जा सके, तो सोने की आवश्यकता न होगी। प्रो० लो का विश्वास है कि भविष्य में हमारे कपड़े अंशतः धातव-पदार्थों के बने होंगे, जो रेडियो की तरंगों को ग्रहण कर सकेंगे। जब-जब आदमी थक जाया करेंगे, तब-तब वे इन्हीं कपड़ों द्वारा विद्युत् ग्रहण कर पुनः ताज़े हो जाया करेंगे।

आजकल की स्त्रियाँ जिस प्रकार अपने चेहरे पर बालों का जमना कुरूपता समझती हैं, उसी प्रकार हज़ार वर्ष

आगे की स्त्रियाँ अपने सिर के बालों को कुरूपता का कारण समझेंगी। सभी मनुष्य गंजे होंगे। इस भविष्य-वाणी का कारण यह है कि आज भी हमारे बाल पहले से पतले और कम हो गए हैं। गंजे मनुष्यों की संख्या तरक़्क़ी पर है। आज भी हम अपने पूर्वपुरुष बंदरों से अपने शरीर की तुलना कर देख सकते हैं कि हज़ार वर्ष बाद हमारी क्या अवस्था होगी? स्त्रियों के विषय में भी वे ही बातें कही जा सकती हैं, जो मनुष्यों के विषय में लागू हैं।

भविष्य का आकाश एक विचित्र दृश्य दिखलावेगा। जिधर आँख फेरकर हम देखेंगे, मनुष्यों को पक्षियों की भाँति छोटे-छोटे वायुयानों पर उड़ते पावेंगे। बड़े और शक्तिशाली वायुयानों का तो कुछ पूछना ही नहीं। वे तो भविष्य में दूर जाने के साधन होंगे।



भविष्य के भोजन-गृह का एक दृश्य

घड़ियाँ दो दिन पूर्व ऋतु को बतलाने में समर्थ होंगी। किंतु मनुष्य जितना आजकल ऋतु परिवर्तन पर ध्यान देते हैं, उतना उस समय नहीं देंगे। क्योंकि उस समय विज्ञान इतना उन्नत हो जायगा कि किसी प्रकार के ऋतु-परिवर्तन से लोगों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। लोग सूर्य की गरमी को पकड़ रखने का भी तरीक़ा जान जायँगे, और उसे जाड़े के दिनों में काम में लावेंगे। उसे उत्तरीय ध्रुव को भेजकर वहीं रहने और खेती-बारी करने-योग्य बनावेंगे। विद्युत्-किरणें बादल को मरुभूमि की ओर झुका देंगी, और वहाँ पानी बरसाकर नए-नए अन्न पैदा करने में सहायता देंगी। वैज्ञानिक लोग अन्न पैदा करने के भी नए तरीक़े ढूँढ निकालेंगे। वे पौधों को खाद आदि देकर जल्दी-जल्दी बढ़ने के लिये बाध्य करेंगे। आजकल ही कई ऐसे तरीक़े निकाले गए हैं, जिनसे खेतों में पहले से ३० से ६० फ़ी सैकड़ा अधिक पैदावार होने लगी है।

कलेवे के समय लोगों को अख़बार पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहेगी। शायद दैनिक अख़बारवालों की जीविका मारी जाय, तो आश्चर्य नहीं; क्योंकि एक बटन के दबाते ही लोग चाहे जहाँ का समाचार ही नहीं सुन सकेंगे, बल्कि वहाँ की घटनाएँ भी अपनी आँखों देख सकेंगे। बैठे-ही-बैठे, बिना किसी कष्ट के, सारी ख़बरें इस प्रकार जब मिल जाया करेंगी, तब कौन अख़बार पढ़ने का कष्ट करेगा? 'टेलिविज़न' या बेतार की आँख का आविष्कार हो चुका है; अब उसे सुचारु रूप से काम में लाने की देर है।

× × ×

२. विवाह के तरीक़े

पुरुष और स्त्री के हृदय के मिलने ही को हम विवाह का नाम नहीं देते, दो व्यक्तियों के प्रणय सूत्र में बँधने ही को विवाह नहीं कहते। पुरुष और स्त्री का मिलन या प्रणय-सूत्र का बंधन जब तक डंके की चोट से घोषित नहीं किया जाता, तब तक उसे विवाह नहीं, व्यभिचार कहते हैं। मान लीजिए, कोई पुरुष किसी स्त्री पर आसक्त हो गया, बदले में स्त्री ने भी उसे अपना हृदय समर्पण किया; किंतु जब तक यह बात और लोगों के सामने प्रकाशित नहीं की जायगी, और दस मनुष्यों के सामने पाणिपीडन नहीं होगा, तब तक उन दोनों का संबंध नाजायज़ माना जायगा, तथा लोग उनकी ओर उँगली उठाया करेंगे। इसलिये प्रायः प्रत्येक देश में विवाह की रस्म प्रचलित है, जिसमें दो प्राणियों के मिलन के साक्षी कई लोग उप-

स्थित रहते हैं। गवाह रहित विवाह नाजायज़ माना जाता है, चाहे वर और कन्या का हृदय एक दूसरे को कितना ही अधिक क्यों न समर्पित हो। घोषणा का एक तरीक़ा दावत देना भी है। शादियों में इसीलिये दावतों की भरमार होती है। अस्तु, भिन्न-भिन्न देशों में विवाह के समय की प्रचलित रीतियाँ भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। कहीं-कहीं की स्त्रियाँ विवाह के समय रोया करती हैं। यह प्रथा उस समय से चली आ रही है, जब लोग कन्याओं को ले भागते थे, और ज़बरदस्ती शादी कर लिया करते थे। अपने संबंधियों से बिछुड़ जाने से लड़कियाँ रोया करती थीं। वही प्रथा आज तक चली आती है, गोकि आजकल शादी दोनों पक्ष की रज़ामंदी से होती है। कहीं-कहीं के लोगों का विश्वास था कि रोने से वैवाहिक जीवन सुखमय होता है। कहावत भी प्रचलित है—"Laughing bride weeping wife, weeping brides, happy wife रूस में कुछ साल पहले तक, और अब भी, किसी-किसी भाग में दुलहिन का रोना अत्यावश्यक समझा जाता है। जितना ही कन्या रोती है, उतनी ही उसकी सखियाँ उसकी प्रशंसा करती हैं।

लड़कियाँ बिकती भी हैं। विवाह के इच्छुक उन्हें ख़रीद-कर शादी किया करते हैं। लड़कियों का मूल्य उनके गुण तथा बेचने और ख़रीदनेवालों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। कहीं-कहीं लड़कियों के लिये केवल नाम-मात्र का मूल्य लिया जाता है। अँगूठी बदलकर भी कुछ देशों में विवाह की रस्म अदा की जाती थी। आजकल पाश्चात्य देशों में जो wedding cake बनता है, उस रीति की उत्पत्ति पुराने समय में, रोम में, हुई थी। रोम में शादी के समय एक ख़ास तरह की रोटी बनाई जाती थी, जिसे दंपति साक्षियों के सम्मुख बैठकर खाते थे। एक ही थाली में या एक ही रोटी को खाने की रीति प्राचीन काल में बहुत-से योरपियन देशों में प्रचलित थी।

बोहेमिया या सिलेसिया में वर-दुलहिन पर मटर या दूसरा कोई अन्न फेंकने की रस्म है। दुलहिन के कपड़ों पर जितने अन्न के दाने पड़े रहेंगे, उतनी ही उसके संतानें होंगी—ऐसा ही वहाँ के लोगों का विश्वास है। रूस में वर-दुलहिन पर अन्न फेंकने का अर्थ उनके वैवाहिक जीवन को फलदायक बनाना है। अन्न फेंकने का अर्थ, अधिकांश



विवाह के बाद जूते पड़ रहे हैं

में, यह लगाया जाता है कि इससे सुख-समृद्धि की वृद्धि होगी; नव दंपति का घर संतान तथा धन-धान्य से पूर्ण होगा। जिन देशों में अंगूर, मिठाई आदि दुलहिन पर फेंकी जाती है, उसका मतलब यह लगाया जाता है कि वर-परिवार को दुलहिन अपने व्यवहार से प्रसन्न रक्खेगी। चावल फेंकने की प्रथा सबसे ज़्यादा प्रचलित है। इसका अर्थ सुख-धन और संतान-वृद्धि माना जाता है।

ख़ैर, साहब, आपने यह भी सुना होगा कि कहीं-कहीं शादी के बाद वर-कन्या का सत्कार उन पर पुराने जूते फेंक-कर किया जाता है। लोग इसका मतलब यह लगाते हैं कि ऐसा करने से वर-कन्या बुरे लोगों की कुदृष्टियों से बचते या सौभाग्यशाली होते हैं। जो पुरोहित विवाह कराते थे, उनका कन्या का चुंबन करने की प्रथा प्राचीन काल में स्कॉटलैंड में प्रचलित थी। लोगों का विश्वास था कि पुरोहित के चुंबन करने ही में दुलहिन का भावी सुख है।

× × ×

३. पशु-जासूस

जापानी बहुत पुराने समय से, लड़ाई में, पशुओं से जासूस का काम लिया करते हैं। जासूसी के लिये कुत्ते, बिल्ली, लोमड़ी और चूहे पाले तथा शिक्षित किए जाते थे।

अब तो इस जंगलों में कई पक्षियों के भी काम लिए जा सकते हैं। पशु-विद्या-विशारदों का कहना है कि लोमड़ी को यदि सिखाया जाय, तो वह मनुष्यों की बोली भी बोल सकती है। पाले हुए कुत्ते और बिल्लियाँ हमारी बातों और भावों को आसानी से समझ लेती हैं। अगर आप किसी कुत्ते को दंड देने के लिये बुलावेंगे, तो वह तुरंत आपका मतलब समझकर आपके पास आने में आनाकानी करने लगेगा। इससे जान पड़ता है कि वह केवल आपकी बातें समझने में समर्थ नहीं है, प्रत्युत आपके भावों को भी समझ लेता है। किंतु पशुओं का विश्वास प्राप्त करने तथा उन्हें शिक्षा देने के लिये यह ज़रूरी है कि हमारा उनके साथ दया और प्रेम का व्यवहार हो। प्यार का पशुओं के हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है।

जापानी जंगली जानवरों में लोमड़ी सबसे चालाक होती है। पुराने समय में जब कभी शत्रु के शिविर या क़िले की भौगोलिक अवस्था का पता लगाना होता था, तब इसी जानवर से काम लिया जाता था। जापान जब कई हिस्सों में विभक्त और प्रत्येक भिन्न-भिन्न सरदारों के अधीन था, तब अपनी-अपनी सरहदों की रखवाली के लिये ये सरदार लोमड़ियों को पाला करते थे। पहाड़ी और समतल रास्तों में तो मनुष्य-संतरी पहरा दिया करते थे, किंतु जंगलों की रखवाली का काम इन लोमड़ी-जासूसों ही पर था। लोमड़ी छोटी होने के कारण जल्दी देख नहीं पड़ती। इसके अलावा जंगलों में वह रहती ही है। इसलिये शत्रु-पक्ष के किसी जासूस को इस बात का पता लगाना मुश्किल था कि लोमड़ी जासूस है या नहीं। पशु-जासूस मनुष्य-जासूसों का छिपकर पीछा किया करते थे। शक पैदा होते ही वे एक प्रकार का शब्द करते थे, जिसे सुनकर उसका मालिक होशियार हो जाता था। लोमड़ी कई प्रकार के शब्द कर सकती है, जिनका भिन्न-भिन्न अर्थ होता है। जब किसी लोमड़ी का स्वामी जंगल में रास्ता भूल जाता था, तब वह लोमड़ी की बोली की नक़ल करता था। लोमड़ी उस बोली को सुनकर आवाज़ देती और उसी आवाज़ की ओर चलकर उसका स्वामी जंगल से बाहर निकल आता है। अगर जंगल में लोमड़ी के शब्द का पीछा करना संभव न हो, तो उसका स्वामी चिल्लाना और भूकना आरंभ कर देता है। लोमड़ी उसका आशय समझकर उसके पास आती और उसे जंगल के बाहर कर देती है।

पुराने समय के जापानी सरदार चूहों से भी जासूस का काम लिया करते थे। जासूस अपने पालतू चूहे को अपनी आस्तीन में छिपा रखता था, और शत्रु-पक्ष के शिविर या क़िले के पास जाकर उसे छोड़ देता था। चूहे को ऐसी शिक्षा मिलती थी कि वह शत्रु के काग़ज़-पत्रों को उठा लाया करता था। इस प्रकार शत्रु की बहुत-सी गुप्त बातों का पता लग जाता था।

गत महायुद्ध में पशु-पक्षियों ने कैसे-कैसे कार्य किए हैं, यह पाठकों से छिपा नहीं। पुराने समय की जासूसी का कुछ हाल लिखने के इरादे से यह नोट लिखा गया है।

× × ×

४. टेबिल-लैंप में फ़ोनोग्राफ़

नीचे के चित्र में देखिए, टेबिल-लैंप और फ़ोनोग्राफ़ का कैसा मेल है। टेबिल पर रख देने और रोशनी जला देने पर कोई भी नहीं कह सकेगा कि उसमें फ़ोनोग्राफ़ भी है।



टेबिल-लैंप में फ़ोनोग्राफ़

किंतु उसके पेंदे में जो ख़ूबसूरत ऊँचा बॉक्स लगा हुआ है, उस पर आप किसी प्रकार की चूड़ी चढ़ाकर बजा सकते हैं। इसी बॉक्स में सुइयों के रखने के भी स्थान बने हुए हैं। बिजली द्वारा इसमें चाबी दी जाती है।

× × ×

५. चश्मे का नया फ़ैशन

जर्मनी में चश्मे का एक नया फ़ैशन निकला है। इस फ़ैशन में लोग गोल शीशे चश्मे के लिये नहीं व्यवहार करते। अब गोल शीशे का ज़माना गया, और चौखूँटे शीशे का ज़माना आया है। भारत के लोग अब तक अमेरिकन फ़ैशन ही का अनुकरण कर रहे थे, जिसमें शीशा तो गोल ही होता था, किंतु पहले से बड़ा होता था। फ्रेम भी कई प्रकार के होने लगे थे; किंतु अब चौखूँटे चश्मों की बारी है। देखें, भारतवर्ष में उसका कब से प्रचार आरंभ होता है?



चौखूँटे चश्मे का फ़ैशन

× × ×

६. अबला या सबला ?

आजकल स्त्रियाँ ऐसी-ऐसी करतूतें कर दिखलाती हैं, जिन्हें देखकर दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है, और कहना पड़ता है कि वे अबला नहीं, सबला हैं। पाठकों ने अख़बारों में पढ़ा होगा कि अभी हाल में एक स्त्री ने इँगलिश-चैनेल तैरकर पार किया है। स्त्रियाँ और भी ऐसे-ऐसे कार्य कर रही हैं, जो मनुष्य नहीं कर सकते। न्यूयार्क में एक स्त्री है, जिसका नाम मिस एल्ज़िक टॉन इयाक है। वह अपने सिर पर लकड़ी के दो बड़े-बड़े बल्लों को उठा सकती है। उसके सिर पर इस समय जो बल्ले हैं, उनमें एक १० फ़ीट लंबा तथा १ फ़ुट चौड़ा और उतना ही मोटा है। दूसरा ४½ फ़ीट लंबा तथा चौड़ा और मोटा पहले ही-जैसा है। बोझ उठाने में इसने कमाल कर दिया है।



मिस एल्ज़िक टॉन इयाक

× × ×

७. सूर की करामात

भारतवर्ष के अंधे समाज का भार-स्वरूप बनने के अतिरिक्त और क्या करते हैं? किंतु-कांटन (ओहियो) के एक अंधे, जॉन टेलर, ने गत २८ वर्षों में ६ मकान बनाए हैं। वह बढ़ई का काम करता है, और कील पर हथौड़ी से जितनी बार चोट करता है, उतनी ही बार वे ठीक कील के मत्थे ही पर पड़ती हैं। आँखवाले बढ़इयों का भी वार कभी-कभी ख़ाली पड़ता है, किंतु वाह रे टेलर! उसका एक भी वार आज तक ख़ाली नहीं गया। हाल ही में उसने अपने मकान के साथ ६ और कोठियाँ बनाई हैं। कहा जाता है, इसका सारा



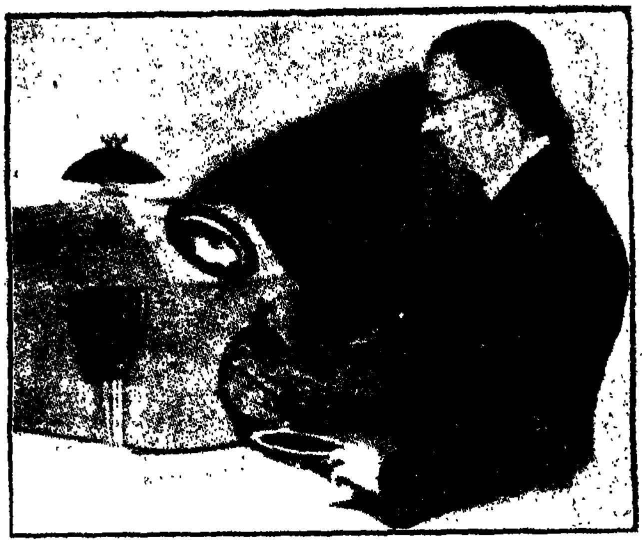
जॉन टेलर अंधा होने पर भी अपनी आँखों पर ऐनक लगाए हुए हैं

काम उसने अपने ही हाथों किया है। धन्य हैं ऐसे अंधे, और धन्य है वह देश !

× × ×

८. लाइफ़-बोट में रेडियो

जहाज़ों पर जब विपत्ति आती है; तब वे उसकी सूचना बेतार के तार द्वारा भेजते हैं, और यथासंभव शीघ्र समीपवर्ती स्थानों से उनके पास सहायता आ पहुँचती है। किंतु ख़ुदानख़्वास्ता इसके पहले ही यदि जहाज़ डूब जाता है, तो यात्री लाइफ़-बोट में उतार दिए जाते और समुद्री लहरों की कृपा पर छोड़ दिए जाते हैं। इसलिये एक ऐसे लाइफ़-बोट की आवश्यकता थी, जो लाइफ़-बोटों में लगाया जा सके, और पानी उसको कोई हानि न पहुँचा सके। इसके पहले कई ऐसे लाइफ़-बोट बने, जिनमें रेडियो लगा होता था। किंतु कोई भी परीक्षा में सफल नहीं उतरा। सुना है, एक अँगरेज़ ने ऐसी लाइफ़-बोट बनाई है, जिससे ऊपर लिखी त्रुटि दूर हो जाती है। इस बोट की परीक्षा लंदन की एक इंजिनियरिंग-प्रदर्शिनी में हुई है, और वह सफल भी हुई है।



लाइफ़-बोट में लगाने का रेडियो-सेट

श्रीरमेशप्रसाद



१. क्रोशिए की दस्तकारी*

कई प्रकार की दस्तकारी का काम स्त्रियाँ प्रायः अपने नित्यकर्म, भोजन बनाने इत्यादि से निपटकर सदा से करती आई हैं, जैसे कि पंजाब में चरख़ा कातना, खजूर के पट्टों के मोढ़े, सीकों की टोकरियाँ आदि बनाना, फुलकारिएँ काढ़ना और संयुक्त-प्रांत में कसीदा काढ़ना, गोटा मोड़ना, सलमे का काम बनाना इत्यादि। समय के प्रवाह से इन चीज़ों के अतिरिक्त और भी कई वस्तुओं के बनाने का काम बढ़ता जाता है। यह कहना अत्युक्ति नहीं कि कपड़ों की साधारण सिलाई के पश्चात् सिलाई और क्रोशिए के काम का स्थान है। यह स्त्री-मात्र के लिये बड़ी आवश्यक और उपयोगी शिल्प-कला है। इसके द्वारा वे अपने घरों को सजा सकती हैं, अपने बच्चों तथा प्रियजनों के नाना प्रकार के सुंदर तथा लाभदायक वस्त्र बना सकती हैं, जो बाज़ारू मशीन के बने वस्त्रों और लैस-फ़ीते इत्यादि से कहीं सुंदर एवं मज़बूत होते हैं। इसलिये मैं अपनी बहनों के हितार्थ भाँति-भाँति की कारीगरी के नमूने और उनके बनाने की विधि, यथा-शक्ति सरल रूप में, माधुरी द्वारा, उनकी सेवा में उपस्थित करूँगी। आशा है, वे उनके काम के होंगे।

क्रोशिया की परिभाषा तथा संकेत

१. क्रोशिया तो प्रायः सभी स्त्रियाँ और बालिकाएँ जानती हैं। यह एक टेढ़ा हुकदार, चोंचवाला औज़ार होता है। यह सूत और रेशम के काम के लिये प्रायः लोहे का और ऊन के काम के लिये हड्डी या एलुमीनियम का होना चाहिए।

२. क्रोशिए और सूत से एक फंदा बाँधकर, उसमें चोंच डालकर और एक-एक बार सूत चढ़ाकर निकालते जाने से जो 'ज़ंजीरा' बनता है, उसे हम 'चेन' कहेंगी।

३. क्रोशिए पर एक फंदा सदा रहता ही है। हम अपने कार्य में क्रोशिए को चेन के अंदर डालकर और उस पर सूत चढ़ाकर निकाल लेते हैं, तो दो फंदे क्रोशिए पर बन जाते हैं। जब हम एक बार सूत चढ़ाते हैं, तो तीन बन जाते हैं। इस तीसरे को दोनों में से निकाल लेते हैं, तो क्रोशिए पर जो अंतिम बार सूत चढ़ाया गया था, वही फंदे के रूप में रह जाता है, अन्य दो बुन जाते हैं। इस बुनावट को हम 'दोहरा क्रोशिया' कहेंगी।

४. क्रोशिए पर एक फंदा है। हम इस पर एक बार सूत चढ़ा लेते हैं, तो दो बन जाते हैं। फिर क्रोशिए को एक चेन के अंदर से डालकर, सूत चढ़ाकर निकाल लेते हैं, तो तीन फंदे बन जाते हैं। फिर क्रोशिए पर सूत चढ़ाकर अगले दो फंदों में से निकाल लें, तो दो फंदे रह जायँगे।

---

* यह सचित्र लेखमाला आगामी संख्या से प्रकाशित होगी। दस्तकारी-संबंधी पारिभाषिक शब्द लेखों में जगह-जगह आए हैं, इसलिये यह आवश्यक समझा गया कि पहले उनका परिचय दे दिया जाय। — मा० सं०

फिर सूत चढ़ाकर बाक़ी दो फंदों में से निकाल लें, तो केवल एक ही रह जायगा, और एक ऊँचा घर बुन जायगा। इसको हम 'तेहरा क्रोशिया' कहेंगी।

५. इसी प्रकार क्रोशिए पर आरंभ के फंदे के बाद दो बार सूत चढ़ाकर तीन बार में दो-दो फंदे उतारने से जो तेहरा बनता है, उसे 'लंबा तेहरा' कहते हैं।

६. और यदि ३ बार सूत चढ़ाकर, ४ बार में दो-दो फंदे उतारे जायँ, तो 'दीर्घ लंबा तेहरा' बनता है।

७. क्रोशिए को चेन के अंदर डालकर और सूत चढ़ाकर चेन और क्रोशिए पर रहनेवाले फंदे दोनों में से एक-दम निकाल लें, तो चेन से या घरों से चिपटा हुआ फंदा बन जायगा। इसको हम 'सादा फंदा' कहेंगी।

८. जहाँ कहीं एक तेहरा क्रोशिया बनाने के बाद दो चेन करें, और नीचे दो चेन छोड़कर तीसरी चेन में एक तेहरा क्रोशिया बुनें, तो एक चौखूँटा छेद पड़ जायगा। इसको हम 'ख़ाना' कहेंगी।

९. जहाँ कहीं बीच में या कोने में बहुत-सी चेन बनी हुई हों, उसमें कुछ और बुनना या उसका उदाहरण देना हो, तो उसको 'छल्ला' कहेंगी।

१०. जहाँ कहीं १ तेहरा बनाने के बाद * २ चेन, २ घर छोड़ो, पिछली पंक्ति में १ दोहरा अगले घर में, २ चेन, २ घर छोड़ो, १ तेहरा। अगले में × यह एक 'लैस्पट' बन गया। इस प्रकार * से × तक और बनाने के लिये करना चाहिए।

इनके ऊपर १ तेहरा लैस्पट के पहले तेहरे पर, ५ चेन, १ तेहरा दूसरे तेहरे पर. ये अवश्य बनते हैं। इनको 'बार' या खुला लैस्पट कहते हैं। जहाँ लैस्पट होता है, वहाँ बार ज़रूर होते हैं।

११. 'कँगूरा' बनाने के लिये ४ चेन और ५ चेन करो, और फिर क्रोशिए को पहली चेन में डालकर एक सादा फंदा या दोहरा फंदा, जैसा छोटा-बड़ा कँगूरा चाहिए, उसके अनुसार बनाओ। ४ चेन करने के बाद पहली चेन में २ तेहरे बुनने से भी ख़ूब नोकदार बड़े-बड़े कँगूरे बनते हैं।

ऊपर दी हुई परिभाषाओं के संकेत ये हैं—

क्रोशिए="क्रो", चेन="चे", सादा क्रोशिया="सादा", दोहरा क्रोशिया="दोरा" या "दो", तेहरा="ते", लंबा तेहरा="ल०ते", दीर्घ लंबा तेहरा="दी०ल० ते०" ख़ाना="ख़ा" "छल्ला", लैस्पट, बार="लै", "बार", "कँगूरा"।

ओमवती देवी

× × ×

२. मिस शिलोमिथ विंसेंट एम्० ए०

मिस शिलोमिथ विंसेंट एक भारतीय ईसाई महिला हैं। आपके पिता का नाम रेवरेंड विंसेंट है। आप संयुक्त-प्रांत की रहनेवाली हैं। लखनऊ के आसपास के क़स्बों में आपका पालन-पोषण हुआ है। लखनऊ के इसाबेला-थोबर्न-कॉलेज में आपको शिक्षा मिली और वहीं से आपने लखनऊ-विश्वविद्यालय की बी० ए० की उपाधि प्राप्त की है। इसके उपरांत आप उक्त कॉलेज के अमेरिकन मिशन की सहायता से अमेरिका चली गईं, और हावर्ड-



मिस शिलोमिथ विंसेंट एम्० ए०

विश्वविद्यालय में दो वर्ष अध्ययन करके एम्० ए० की उपाधि प्राप्त की। कुछ दिन हुए, आप लखनऊ-विश्वविद्यालय (स्त्री-विभाग) में इतिहास की रीडर नियुक्त की गई हैं। हम आपको, आपकी इस नियुक्ति पर, और विश्वविद्यालय को, उसकी गुणग्राहकता पर, बधाई देते हैं। भारतवर्ष में आप ही ऐसी सर्वप्रथम महिला हैं, जिन्होंने विश्वविद्यालय के इस उच्च एवं उत्तरदायित्व के पद को सुशोभित किया है। आपका शिक्षा-जीवन बहुत उज्ज्वल रहा है। इतनी उच्च विदेशी शिक्षा प्राप्त करके भी आप अपनी भारतीय प्रकृति के अनुसार अत्यंत योग्य, नम्र एवं उदार हैं। शिक्षा-विभाग को भी आपसे बहुत कुछ आशा है।

सी० एस्० आचार्य आर्टिस्ट

× × ×

३. एक निवेदन

"स्त्रियों के लिये परदा-प्रथा उत्तम है या हानिकारक", इस विषय पर जो महिला सर्वोत्तम लेख ३० दिसंबर, सन् १९२६ तक भेजेंगी, उन्हें स्वर्ण-पदक और द्वितीय श्रेणी के लेख पर रजत-पदक पुरस्कार-रूप में दिया जायगा। लेख माधुरी के छपे हुए ५ पृष्ठों से अधिक न होना चाहिए। पुरस्कार देने के बाद लेख माधुरी में प्रकाशित कर दिए जायँगे। लेख नीचे लिखे पते पर भेजना चाहिए—

पं० रामनाथ सम्मू
मंत्री हिंदी-प्रचारिणी सभा,
कटरा-बिजनबेग, लखनऊ

× × ×

४. लंदन में भारतीय स्त्री

भारत-सचिव लॉर्ड बर्कनहेड की स्त्री लेडी बर्कनहेड ने भारतीय स्त्रियों के संबंध में 'पायोनियर'-पत्र में एक लेख लिखा है, जिसका सारांश नीचे दिया जाता है—

विगत कितने ही वर्षों से मुझे अनेक भारतीय विदुषी महिलाओं से परिचय प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। उनमें कितनी ही अभी लंदन में विद्यमान हैं, और कितनी ही भारत को लौट गई हैं। उनकी किसी बात की आलोचना करते समय सर्वप्रथम भोपाल की भूतपूर्व बेगम की याद आती है। अभी थोड़े दिनों की बात है, भोपाल की गद्दी पर उनका एक-मात्र पुत्र बैठा है। बेगम साहबा यहाँ अपने राज्य-संबंधी किसी आवश्यक विषय पर सरकार से परामर्श लेने के लिये आई थीं; किंतु शिक्षा, स्वास्थ्य तथा समाज की सब प्रकार की भलाई की बातों पर भी वार्तालाप हुआ था। उनकी असाधारण विद्वत्ता और विलक्षण बुद्धि का परिचय पाकर मैं तो मुग्ध हो गई थी। विलायत की आम हलचल और आधुनिक अँगरेज़-जाति के संबंध में उन्होंने जो अपना मंतव्य प्रकट किया था, वह सचमुच ही अपूर्व है। हमारा विश्वास है कि यदि भारत की सभी शिक्षित स्त्रियाँ इस विदुषी महिला को अपना आदर्श मानकर अपनी उन्नति करने में प्रयत्नशील हों, तो वे थोड़े ही दिनों में समस्त संसार के नारी-समुदाय में एक उच्च स्थान प्राप्त करने का दावा करने लगेंगी।

परदा-प्रथा में जकड़ी हुई भारतीय स्त्रियाँ उन्नति के मार्ग में कहाँ तक अग्रसर होती हैं, इसका निर्णय करना हमारे लिये संभव नहीं। वे अधिकतर चहारदीवारी से बाहर नहीं आतीं, इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं। उनमें किसी-किसी ने क़ानून-विभाग में अपनी हस्ती क़ायम कर रक्खी है—यथा, मिस कारनेलिया सोराबजी। राजनीतिक क्षेत्र में भी अब वे अपना अधिकार मानने लगी हैं। व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित होने का अधिकार भी उन्हें मिल गया है। विज्ञान में भी उनकी पहुँच कुछ-कुछ होने लगी है। प्रमाण-स्वरूप श्रीजगदीशचंद्र वसु की सहधर्मिणी लेडी बोस को ही ले लीजिए। अपने पति की विश्व-विख्यात वैज्ञानिक खोज में जिस प्रकार वह सहायता दे रही हैं, उससे उनकी उस विषय की पंडिता होने का पूरा प्रमाण मिलता है। संप्रति कितनी ही भारतीय महिलाओं से मेरा परिचय हुआ है। उनमें विजयनगर की राजकुमारी, काशीपुर की रानी, सुविख्यात सर राजेंद्रनाथ मुकर्जी की धर्म-पत्नी लेडी मुकर्जी तथा लेडी दादाभाई का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आगे चलकर लेडी बर्कनहेड ने कहा है, और अपनी स्वतंत्र राय दी है कि यह सभी स्वीकार करेंगे कि पाश्चात्य सभ्यता के संसर्ग में आना भारतीय महिलाओं के लिये आवश्यक है।

× × ×

५. टर्की की स्त्रियाँ

टर्की की स्त्रियाँ आजकल उन्नति के पथ में किस प्रकार अग्रसर हो रही हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं। वे अपने जीवन में सफलता की कितनी इच्छुक हैं, यह

सभ्य-समाज के व्यक्तियों से छिपा नहीं। थोड़े ही दिनों में साहित्य में उन्होंने असाधारण उन्नति की है; हालिदा आदिब ख़ानम, जो टर्की में साहित्य की प्रकांड पंडिता समझी जाती हैं, भारत में भी काफ़ी प्रसिद्धि पा चुकी हैं। केवल साहित्य में ही क्यों, अन्यान्य विषयों में भी तुर्की स्त्रियाँ कम महत्त्व नहीं रखतीं। कुछ दिन पहले तुर्की स्त्रियों ने लॉ-कॉलेज की परीक्षा पास कर जजी और मुंसिफ़ी के पदों के लिये प्रार्थना-पत्र भेजे थे। वहाँ पर अनेकों मोटर चलाना भी जानती हैं। प्रतिवर्ष अनेक तुर्की स्त्रियाँ स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई ख़त्म कर संसार-क्षेत्र में प्रवेश करती हैं। वर्तमान समय में खादिजा उजरा ख़ानम तथा सजिरा यूसुफ़ ख़ानम इन दोनों महिलाओं ने दाँत की चिकित्सा में विशेष पारदर्शिता लाभ कर ली है।

× × ×

६. चीन की महिलाएँ

कांटन के डॉक्टर लगचीमूई नाम की एक महिला ने स्त्रियों तथा लड़कों के लिये केऊंग लीमेंस हॉस्पिटल नाम का एक बड़ा अस्पताल खोल रक्खा है। डॉ० मैरी स्टोन भी शंघाई में वैसे ही एक बड़े अस्पताल का प्रबंध करती हैं। पेकिंग के डॉ० यामेई किन (Dr. Yamei Kin) एक और दूसरी प्रसिद्ध डॉक्टर हैं।

× × ×

७. वेतन-भोगी जापानी महिलाएँ

होम ऑफ़िस सोशल ब्यूरो की रिपोर्ट से मालूम होता है कि जापान में ६० लाख महिलाएँ कृषि-कार्य करती और १० लाख लड़कियाँ उद्योग-धंधे सीखती हैं। ११लाख स्त्रियाँ दूसरे-दूसरे कार्य करके धन पैदा करती हैं। ५० प्रतिशत धनोपार्जन करनेवाली स्त्रियाँ टोकियो में रहती हैं।

जापान-भर में डॉक्टर, धाई तथा ऐसी ही और काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या ६८ हज़ार है। हाई गर्ल्स स्कूल तथा प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ानेवाली अध्यापिकाओं की संख्या प्रायः ७८ हज़ार कूती गई है। गवर्नमेंट ऑफ़िस में काम करनेवाली ४,५०० हैं। व्यापार-विभाग में काम करनेवाली स्त्रियों की संपूर्ण संख्या ६०,७,००० है, जिनमें ६३,००० दूकान और टाइपिस्ट के कामों में हैं, और ५,१४,००० बाकरी तथा नाटक घरों में काम करती हैं। कारख़ानों, खानों तथा ऑफ़िसों में काम करनेवाली महिलाओं की संख्या ११ हज़ार है। टोकियो-म्युनिसिपलिटी की ओर से क़िस्म का काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या ६२० है।

× × ×

८. मिसर में महिलाओं की प्रगति

जातीय आंदोलन के साथ-ही-साथ पहलेपहल मिसर में महिलाओं का आंदोलन भी चला। सन् १९१९ ई० के आरंभ में जातीय नेताओं ने जगलूलपाशा के मिसर से एक डेलिगेशन लेकर इँगलैंड जाने का घोर प्रतिवाद किया। किंतु फ़ौज की सहायता से जनता का दमन किया गया। इस पर वहाँ की परदे में रहनेवाली एक हज़ार स्त्रियों ने रोष में आकर एक सार्वजनिक सभा की, और कैरो की सड़क से प्रतिवाद-दमन के विरुद्ध चल पड़ीं। सिपाहियों ने उन्हें रोककर तितर-बितर कर दिया। किंतु जो अनुभव उन्होंने वहाँ पर प्राप्त किया, उसे वे कभी नहीं भूलीं, और उसी दिन से उनमें परिवर्तन देख पड़ने लगा। सर्वप्रथम वे सामाजिक सूत्र में बद्ध हुईं। तदनंतर वे शिक्षा-विषयक, सामाजिक तथा राजनीतिक सफलता के प्रयत्न में दत्तचित्त हुईं। आज दिन मिसर में तीन स्कूल पूर्णतः महिला-संगठन द्वारा संचालित हैं। इनमें एक बालिका-विद्यालय है, जिसमें दो सौ बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं, जिन्हें प्राथमिक शिक्षा के साथ व्यवसाय-संबंधी, सीने-पिरोने तथा बेल-बूटे काढ़ने और कारचोबी और दरी आदि बुनने का काम बतलाया जाता है।

× × ×

६. पैलेस्टाइन की स्त्रियाँ

सन् १९२५ ई० में १ लाख स्त्रियों की आबादी में २८ स्त्रियाँ पैलेस्टाइन-नेशनल एसेंबली के लिये चुनी गई थीं। उनमें १४ समान नागरिकता के ध्येय को लक्ष्य में रखकर पैलेस्टाइन-ज्यूइश-वीमेंस-ईक्वल-राइट्स-एसोसिएशन द्वारा निर्वाचित की गई थीं। १४ को भिन्न-भिन्न लेबर एसोसिएशन ने निर्वाचित किया था। २३ पुरुषों के साथ ४ स्त्रियाँ एसेंबली की कार्यकारिणी-समिति में बैठती थीं।

आजकल उक्त एसोसिएशन, रैबिनिकल कोर्ट (Rabbinical Court) अर्थात् महिलाओं को अपनी संतान पर समान स्वत्व रखने तथा पैतृक संपत्ति पर पुरुषों की भाँति समान हक़ रखने पर दिलोजान से लड़ रहा है। ऐसा भी प्रयत्न हो रहा है कि पुरुष उन्हें तलाक़ भी न दे सकें।

गोपीनाथ वर्मा



१. महाकवि अमरुक और पद्माकर

किसी का कथन है—

भाखा साखा जानिए, संसकिरित है मूल ;
मूल धूल में रहत है साखा में फल-फूल ।

यदि दोहे की आलंकारिकता, अन्युक्ति और अतिरंजना को छोड़कर केवल उसके अंतर्निहित तथ्य पर ध्यान दिया जाय, तो मालूम होगा कि दोहा बड़ा मार्मिक है । सच-मुच हिंदी पर संस्कृत का प्रभाव उपेक्षा का विषय नहीं । संस्कृत के समृद्ध भांडार से हिंदी-काव्य की यथेष्ट श्री-वृद्धि हुई है । यह बात हिंदी के प्रसिद्ध कवियों की कृतियों के आलोचनात्मक अनुशीलन से प्रकट है । हिंदी के कितने ही कवियों ने संस्कृत के सुंदर अनूठे भावों को निःसंकोच हो अपनाया है । उन्होंने उन भाव-रत्नों को अपनी प्रखर प्रतिभा की 'सान' पर चढ़ाकर उनमें एक नई चमक पैदा करने की कोशिश की है, अपने उर्वर मस्तिष्क की सहायता से संस्कृत के 'मूल' को 'पल्लवित' करने की चेष्टा की है ।

आज हम ऐसे ही उपजीव्य और उपजीवक, दो कवियों के कुछ पद्य-रत्न-पारखी पाठकों के सामने रखना चाहते हैं । उनमें उपजीव्य महाकवि अम-रुक संस्कृत के एक परम प्रसिद्ध कवि हो गए हैं । संस्कृत-साहित्य में उनका बड़ा मान है । उनके एक-मात्र ग्रंथ 'अमरु-शतक' को संस्कृत-सरस्वती का देवच्छंद (सौलड़ा) हार कहना चाहिए । संस्कृत में साहित्य-शास्त्र-विषयक शायद ही ऐसा कोई ग्रंथ हो, जिसमें उनके पद्य-रत्न या ध्वनि के उदाहरण में उद्धृत न किए गए हों । शृंगार-रस की जैसी सुंदर, सरस, उत्कृष्ट एवं ध्वनि-पूर्ण रचना अमरुक ने की है, वैसी शायद ही किसी ने की हो । रस का पूर्ण परिपाक जैसा उनके पद्यों में हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । उनकी रचना शृंगार से शराबोर, रस से परिप्लुत, ध्वनि से धन्य और गुणों से गर्भित है । मानव-हृदय के सूक्ष्म कोमल भावों के चित्रण में तो उन्होंने कमाल ही कर दिया है । शब्द-सौष्ठव देखते ही बनता है । प्रसाद तो ऐसा है, जैसे किसी स्वभाव-रमणीय कुसुम का प्रसरणशील सौरभ । तात्पर्य यह कि क्या भाषा, क्या भाव, क्या रस, क्या ध्वनि, क्या गुण, क्या छंद, सभी दृष्टि से उनकी कविता अत्युत्कृष्ट ठहरती है । यद्यपि अम-रुक ने किसी बृहत्काय महाकाव्य की रचना नहीं की है, तथापि जो कुछ किया है, उस पर सैकड़ों महाकाव्य निछावर हैं—

"अमरुककवेरेकः श्लोकः प्रबन्धशतायते ।"

फिर भला ऐसे उत्कृष्ट कवि की कविता को हिंदी के शृंगारी कवि कब बिना अपनाए छोड़ते ? हिंदी के प्रधान शृंगारी महाकवि बिहारी ने अमरुक के भावों से मज़मून लड़ाया ही है, जिसका प्रदर्शन हिंदी के प्रसिद्ध समा-लोचक पं० पद्मसिंह शर्मा अपने 'संजीवन-भाष्य' की भूमिका में कर चुके हैं (यद्यपि शर्माजी का यह प्रदर्शन

पूर्ण नहीं कहा जा सकता ; क्योंकि बिहारी के और भी कतिपय दोहे ऐसे हैं, जिन पर अमरुक की स्पष्ट छाया पड़ी है। विषयांतर होने के कारण उनका दिग्दर्शन किसी दूसरे लेख में किया जायगा)। पर इस अलौकिक कवि की कविता को केवल बिहारी ही अपनाकर छोड़ देते, और हिंदी के किसी अन्य कवि का ध्यान इस ओर न जाता, यह संभव न था। अन्य प्रसिद्ध शृंगारी कवियों के काव्यों की छान-बीन करने पर ज्ञात हुआ कि बिहारी के अतिरिक्त केशव, मतिराम, दास और पद्माकर ने भी अमरुक के भावों को अपनाया है। पर इस 'मीरास' में 'ज्येष्ठांश' कविवर पद्माकर को ही प्राप्त है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य पद्माकर के उन्हीं पद्यों का निदर्शन कराना है, जिनमें अमरुक के पद्यों का स्पष्ट प्रतिबिंब दृष्टिगोचर होता है। पर इस निदर्शन के पूर्व अमरुक के विषय की थोड़ी-सी ऐतिहासिक जानकारी कदाचित् अप्रासंगिक न होगी।

अमरुक का समय

महाकवि अमरुक कौन थे ? कब और कहाँ हुए थे ? इन प्रश्नों के उत्तर ऐसे गाढ़ अंधकार में छिपे हैं कि ऐतिहासिक अनुसंधान की क्षीण प्रभा उन्हें प्रकाशित करने में असमर्थ है। किंवदंती प्रसिद्ध है कि भगवान् शंकराचार्य ने जब मंडन मिश्र को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया, तो मंडन मिश्र की धर्मपत्नी उभय-भारती ने उनसे 'कलाः कियत्यो वद पुष्पधन्वनः' इत्यादि कुछ ऐसे प्रश्न किए, जिनका जवाब देने के लिये उन्हें अमरुक-नामक राजा के मृत शरीर में प्रवेश करना पड़ा, और इस 'अमरु-शतक' की रचना करनी पड़ी। पर यह किंवदंती कोरी कल्पना ही मालूम होती है ; क्योंकि 'अमरु-शतक' कोई प्रश्नोत्तर-माला नहीं बल्कि एक मुक्तक काव्य है। अतः अमरुक कौन थे, और कहाँ हुए थे, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। हाँ, कब हुए थे, इस विषय में केवल इतना ज्ञात होता है कि कम-से-कम ईसा की नवीं शताब्दी के पूर्व इनका आविर्भाव हो चुका था ; क्योंकि श्रीआनंदवर्द्धनाचार्य ने, जिनका स्थितिकाल सन् ८४० ई० से ८७० ई० तक निश्चित हो चुका है, अपने 'ध्वन्यालोक' के तृतीय उद्योत में इनकी बड़ी तारीफ़ की है—

"मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते। तथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृंगाररसस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव।"

इसी के आधार पर अमरुक के समय की यह अर्वाचीन सीमा निर्धारित हुई है।

कुछ विद्वानों की राय है कि अमरुक जाति के सुनार थे। डॉक्टर पीटर्सन ने 'अमरु-शतक' की एक टीका के आधार पर यह बात लिखी है। उक्त टीका के आरंभ में अमरुक की प्रशस्ति में एक श्लोक है, जिसका एक चरण यह है—

"विश्वप्रख्यातनाडिंधमकुलतिलको विश्वकर्मा द्वितीयः।"

बस, इसी 'नाडिंधम'-शब्द के आधार पर अमरुक सुनार मान लिए गए ! अस्तु, अमरुक चाहे सुनार रहे हों या राजा, पर यह निश्चित है कि वह महाकवि अवश्य थे—

"रसध्वनेरूपनिबंधसमा अमरुकप्राया एव महाकवयः।"

अमरुक के विषय की उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री का उल्लेख करके अब हम पाठकों को अमरुक और पद्माकर के बिंब-प्रतिबिंब भाववाले पद्यों की सैर कराना चाहते हैं।

अमरुक और पद्माकर

(१)

तद्वक्त्राभिमुखं मुखं विनमितं दृष्टिः कृता पादयो-
स्तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोत्रे निरुद्धे मया ;
पाणिभ्यां च तिरस्कृतः सपुलकः स्वेदोद्गमो गण्डयोः
सख्यः किं करवाणि यान्ति शतधा यत्कञ्चुके संधयः।

अनुरागवती नायिका को सखियों ने मान के बहुत-से पाठ पढ़ाए, बहुत कुछ उलटा-सीधा समझाया, पर कुछ भी कारगर न हुआ। ऐन वक़्त पर क़लई खुल गई। "सिखवति बुधि उपराजति माया अंत करावत हाँसी।" बेचारी लाचार होकर लगी कहने—एजी ! तुम लोगों की कही करने में मैंने कोई बात उठा न रक्खी। उनके 'सौंहे' होते ही मैंने मुँह लटका लिया। आँखें नीचे - पैरों की ओर—गड़ा लीं। उनकी रस-भरी बातों को सुनने के लिये आकुल इन कानों को बंद कर लिया। कपोलों पर रोमांच या पसीना हो आया, तो हाथों से पोंछ डाला। पर, सब बेकार ! चोली निगोड़ी धोखा दे गई। ऐसी मसकी कि बंद-बंद उसड़ गए। भला बताओ, अब मान रहे, तो कैसे रहे !

कैसा सुंदर भाव है ! कैसी लाचार बेबसी है ! देखिए, कविवर पद्माकर ने इन्हीं भावों को कैसे सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है—

जाके मुख सामुहे भयाई जो चहत मुख,
लीन्हों सो नवाइ डीठि पयन लगाई री ;

बैन सुनिबे को अति व्याकुल हुते जे कान ,
तेऊ मूँदि राखे मजा मनहूँ न माँगी री ।
झारि डार्यो पुलक, प्रसेद हू निवारि डार्यो ,
रोकि रसना हूँ त्यों भरी न कछु हाँगी री।
एते पै रह्यो न मान मोहन लला पै मट्ट ,
टूक-टूक ह्वै के ज्यों छटूक भई आँगी री ।

अब इन दोनों पद्यों को मिलाइए और देखिए, कविवर पद्माकर ने अमरुक के भावों को कैसी ख़ूबी से अपनाया है ! एक बार मूल पढ़िए, फिर पद्माकरजी का कवित्त । कवित्त में मूल का भाव कहीं से भी विकल नहीं होने पाया । क्रम का भी कैसा सुंदर निर्वाह हुआ है ! तीसरे चरण में पद्माकरजी ने 'रोकि रसना हूँ त्यों भरी न कछु हाँगी री' एक नया भाव अपनी ओर से जोड़कर अपनी भावुकता का परिचय दिया है । सखियों को शंका हो सकती थी कि शायद नायिका ने ज़बान से ही कुछ ऐसी बात कह दी हो, जिससे नायक को उसके इस मानाभिनय का पता चल गया हो । पर पद्माकरजी इस शंका को भी क्यों रहने देने लगे ? उन्होंने चट अपनी ओर से इस शंका का भी निवारण कर दिया— "रोकि रसना हूँ त्यों भरी न कछु हाँगी री' इस स्थल पर पद्माकरजी की सहृदयता सराहनीय है । कवित्त का अंतिम चरण तो बहुत ही सुंदर है ! अनुप्रास की छटा निरखते ही बनती है ।

(२)

कोपात्कोमललोलबाहुलतिकापाशेन बद्ध्वा दृढं
नीत्वा वासनिकेतनं दयितया सायं सखीनां पुरः।
भूयोऽप्येवमिति स्खलन्मृदुगिरा संसूच्य दुश्चेष्टितं
धन्यो हन्यत एव निह्नुतिपरः प्रेयान् रुदन्त्या हसन् ।

अधीरा-प्रगल्भा कोप में आकर अपने अन्य संभोगचिह्नित नायक के गले में ढीली हो-हो जाती कोमल बाहु-लता का ज़बर्दस्त फंदा डाल सायंकाल ही रंगमहल में घसीट ले गई । न आव देखा न ताव, लगी सखियों के सामने ही फटकारने—'क्यों ? फिर भी वही ? ' पर इतना ही कहा था कि सिसकी बँध गई, और गला भर आया । अधिक कुछ भी न कह सकी । इधर नायकजी भी थे पूरे हज़रत । काहे को मानने लगे । लगे हँस-हँसकर बातें बनाने और इनकार करने । तब तो उसका कोप आँसुओं की धारा के रूप में उमड़ आया, और वह झल्लाकर लगी इन्हें (गुलाब की छड़ियों से) पीटने ।

रसिक-शिरोमणि अमरुक कहते हैं—"वाह ! वह पुरुष भी बड़ा ही भाग्यशाली है, जो अपनी प्रेयसी से इस प्रकार ताड़ित किया जाय ।"

इस पद्य में भी अनेक पदों से मार्मिक ध्वनि व्यंजित हो रही है पर विस्तार-भय से उसका विवेचन नहीं किया जाता। सहृदय पाठक स्वयं समझ लेंगे ।

अब देखिए, पद्माकरजी ने इन्हीं भावों को कैसी सुंदरता से व्रजभाषा की पोशाक पहनाई है—

रोष करि पकरि परोस तें लियाई घरै ,
पी को प्रानप्यारी भुज-लतनि भरै-भरै;
कहै 'पद्माकर' ए, ऐसो दोस कीजै फेरि ,
सखिन समीप यों सुनावति खरै-खरै ।
त्यों छल छपावै, बात हँसि बहरावै, तिय
गदगद कंठ दृग आँसुन झरै-झरै ;
ऐसो धनी धन्य, धनी धन्य है सो ऐसो, जाहि ,
फूल की छरी सों खरी हनति-हरै-हरै ।

(३)

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः ।
मिथ्यावादिनि दूति ! बान्धवजनस्य ज्ञातपीडागमे !
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ।

नायिका ने नायक को बुलाने के लिये दूती भेजी । वह गई और लौट भी आई; पर नायक को साथ न ले आई । चतुर नायिका दूती के रंग-ढंग देखकर ताड़ गई कि माजरा कुछ और है । उसने कहा—"क्यों ? देख तो, यह तेरे स्तनतट का चंदन बिलकुल पुछ गया है, अधर की लाली मिट गई है, आँखों का काजल ग़ायब है, और तेरे सारे तन में पुलकावलियाँ उठ रही हैं । अरी झूठी ! तू कोरी बातें बनाती है ! तुझे आत्मीय के दुख-दर्द की कुछ परवा नहीं । अरी निर्मोही ! तू सीधे बावली नहाने चली गई और उस शठ के पास न गई ?"

काव्य-प्रकाश के कर्ता ध्वनि प्रस्थापन परमाचार्य मम्मट ने इस श्लोक को ध्वनि-काव्य के उदाहरण में उद्धृत किया है । श्लोक का 'अधम' पद प्रधानतया यह व्यंजित कर रहा है कि "तू उस शठ के पास रति के लिये ही गई थी ।"

अब पद्माकर का कवित्त देखिए, और अमरुक के पद्य से उसकी तुलना कीजिए—

धोइ गई केसरि कपोल कुच गोलन की ,
पीक-लीक अधर अमोलन लगाई है ;

कहै 'पदमाकर' त्यों नैन हूँ विरंजन में,
तजत न कंप देह पुलकन आई है।
बाद मति ठानै भूठ बादिनि भई री अब,
दूतपनो छोड़ धूतपन में सुहाई है।
आई तोहिं पीर न पराई महापापिनि तू,
पापी लों गई न कहूँ बापी न्हाइ आई है।

(४)

ऐसी ही 'धूतपन मैं सुहाई' एक और दूती की करामात देखिए—

खिन्नं केन मुखं दिवाकरकरैस्ते रागिणी लोचने
रोषात्तद्वचनोदितास्फुलिलिता नीलालका वायुना।
अंगे कुङ्कुममुत्तरीयकषणात् क्लान्तासि गत्यागते-
रुक्तं तत्सकलं किमत्र वद हे दूति क्षतस्याधरे।

नायिका ने नायक को बुलाने के लिये दूती को भेजा। दूती लौट आई जरूर; पर साथ में नायक को तो नहीं, हाँ संभोग-चिह्न लेती आई। नायिका शक्ल देखते ही भाँप गई कि इस दुष्टा ने मुझसे विश्वासघात किया है। वह लगी उसके शरीर पर के एक-एक संभोग-चिह्न का कारण पूछने। चतुर दूती भी एक-एक बहाना करके लगी उन्हें छिपाने। पर अंततोगत्वा नायिका एक ऐसा प्रश्न कर बैठती है कि दूती की सारी क़लई खुल जाती है—

नायिका—तेरा मुँह इतना मुरझाया क्यों है?

दूती—धूप से।

नायिका—और, आँखें क्यों लाल हो रही हैं?

दूती—उनकी (नायक की) बातों पर गुस्सा आने से।

नायिका—भला बाल क्यों बिखरे हैं?

दूती—देखती नहीं हो, हवा कैसी तेज़ चल रही है!

नायिका—अच्छा सही; पर चंदन कैसे पुँछा?

दूती—चादर की रगड़ से।

नायिका—इतनी शिथिल क्यों हो रही है?

दूती—वाह! इतनी दूर गई और आई; क्या थका नहीं?

नायिका—अच्छा, मान लिया; पर यह तो बता मेरी आली, तेरे यह होंठ कैसे कटे?

दूती ने देखा, अब तो क़लई खुल गई। उसे और कोई बहाना न सूझा। लाचार, लज्जित हो चुप रही।

पद्माकरजी ने अमरुक के इस पद्य को भी अपनाया है, पर शब्दशः नहीं। इसी भाव को उन्होंने थोड़ा-सा फेर-फार करके यों कहा है—

बोलति न काहे एरी? पूछे बिन बोलौं कहा,
पूछति हौं कहा भई स्वेद अधिकाई है?
कहै 'पदमाकर' सुमारग के गए-आए,
साँची कहु मोसों आज कहाँ गई-आई है?
गई-आई हौं तो पास साँवरे के; कौन काज?
तेरे लिये ल्यावन सु तेरियै दुहाई है।
काहे ते न ल्याई फिर मोहन बिहारी जू को?
कैसे वाहि ल्याऊँ? जैसे वाको मन ल्याई है।

(५)

दृष्ट्वैकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-
देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः।
ईषद्वक्रितकन्धरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसा-
मन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुम्बति।

किसी 'दक्षिण' नायक की दो नायिकाएँ एक ही स्थान पर बैठी परस्पर विनोदालाप कर रही हैं। इतने में कहीं से नायक आ जाता है; पर दबे-पाँव। वह चुपके-से उनके पीछे आकर उनमें से बड़ी की—ज्येष्ठा की—आँखें आँखमिचौनी के बहाने मीच देता है। ज्येष्ठा ने समझा, नायक मुझी पर अधिक प्रीति रखता है, तभी तो छोटी की आँखें न मीचकर मेरी ही आँखें मीचीं। पर बात कुछ और ही थी। चतुर नायक थोड़ा झुककर बग़ल में बैठी हुई छोटी—कनिष्ठा—का अनवरत चुंबन करके, पुलकित हो रहा है। नायक की यह लीला देखकर छोटी नायिका मन-ही-मन खूब प्रसन्न होती और हँसती है।

अमरुक ने कैसा सुंदर और सजीव चित्र खींचा है! अब देखिए, पद्माकर ने इसे किस प्रकार स्पष्ट कर खोल दिया है—

दोऊ छवि छाजनी छबीली मिलि आसन पै,
जिनहिं बिलोकि रह्यो जात न जिते-जितै;
कहै 'पदमाकर' पिछौहैं आइ आदर सों,
छलिया छबीलो छैल बासर बितै-बितै।
मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सु दृग-मिचाउनी के ख्यालन हितै-हितै;
नेसुक नवाइ ग्रीउ धन्य-धन्य दूसरी कों,
औचक अचूक मुख चूमत चितै-चितै।

(६)

बाले! नाथ! विमुञ्च मानिनि रुषं, रोषान्मया किं कृतं?
खेदोऽस्मासु, न मेऽपराध्यति भवान् सर्वेऽपराधा मयि;

तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा ? कस्याग्रतो रुद्यते ?
नन्वेतन्मम, का तवास्मि ? दयिता, नास्मीत्यतो रुद्यते।

महाकवि अमरुक का यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है। नायक मानिनी को मनाने की चेष्टा कर रहा है। आरजू-पर-आरज़ू और मिन्नत-पर-मिन्नत हो रही है। नायक और नायिका के बीच जो विविध प्रश्नोत्तर होते हैं, उन्हीं का यथावत् सन्निवेश इस पद्य में हुआ है—

नायक ने डरते-डरते पुकारा—प्रिये !

उत्तर मिला—नाथ !

नायक—अब तो रोष छोड़ो मानिनि !

नायिका—क्यों ? रोष करके मैंने कर ही क्या लिया ?

नायक—मुझे खेद पहुँचाया।

नायिका—आपने क्या अपराध किया कि आपको खेद होने लगा ? सारे अपराधों की जड़ तो मैं हूँ।

नायक—तो फिर सिसक-सिसककर रो क्यों रही हो ?

नायिका—कहाँ ? किसके सामने रो रही हूँ ?

नायक—मेरे, और किसके ?

नायिका—भला मैं आपकी कौन हूँ कि आपके आगे रोऊँगी।

नायक—वाह ! मेरी प्रियतमा, मेरी दयिता।

नायिका—रहने दीजिए, यदि प्रियतमा ही होती, तो आज रोती ?

कैसा सुंदर और स्वाभाविक संलाप है, मानव-हृदय के कोमल भावों का कैसा सूक्ष्म विश्लेषण है, प्रणय का कैसा सजीव चित्र है ! देखिए, कविवर पद्माकर ने इसी मज़मून को कैसी ख़ूबसूरती से बाँधा है—

ए अलि कहो हो किन, का कहत कंत, अरी
रोस तज, रोस के किये मैं का अचाहे कौ ;
कहै 'पदमाकर' यहै तो दुख दूरि करो,
दोस न कछू है तुम्हें नेह निरबाहे कौ।
तो पै इत रोवति कहा हौ ? कहौ कौन आगे ?
मेरेई जु आगे किए आँसुन उमाहे कौ ;
को हौं मैं तिहारी ? तू तौ मेरी प्रानप्यारी अजू,
होती जो पियारी तब रोती कहौ काहे कौ ?

पद्माकर के समस्त ग्रंथों की छानबीन करने पर उनके जितने पद्यों के साथ 'अमरु-शतक' के पद्यों का बिंब-प्रतिबिंब-भाव दृष्टि-गोचर हुआ, उनमें से कुछ प्रस्तुत लेख में दे दिए गए हैं। पर वे ही पद्य दिए गए हैं, जिन पर 'अमरु-शतक' की स्पष्ट और पूर्ण छाया पड़ी है। कहीं-कहीं जिनके एकआध चरण पर कुछ आभा-सी पड़ गई है, ऐसे पद्य नहीं दिए गए। जैसे—

सुमुख मोरि बरसन लगी लै उसाँस अँसुवान।

पद्माकर के इस दोहार्द्ध में अमरुक के निम्न-लिखित श्लोकार्द्ध की कुछ छाया झलकती है—

इति निगदति नाथे तिर्यगामीलिताक्ष्या,
नयनजलमनल्पं मुक्तमुक्तं न किंचित्।

इस लेख में पद्माकर के जितने पद्य उद्धृत हैं, वे सभी उनके 'जगद्विनोद' से लिए गए हैं। उनके और किसी शृंगार रसात्मक ग्रंथ में—बहुत ढूँढने पर भी—कोई ऐसा पद्य नहीं मिला, जिस पर 'अमरु शतक' की झलक पड़ी हो। 'जगद्विनोद' उनका नायिका-भेद और रस-विषयक लक्षण-ग्रंथ है। अतः प्राचीन संस्कृत-आलंकारिकों के समान उन्होंने भी अपने लक्षण-ग्रंथ में उदाहरण के लिये अमरुक के पद्य पेश किए हैं। सच तो यह है कि अमरुक के पद्यों के सदृश सजीव उदाहरण और मिल कहाँ सकते थे ? पर अमरुक के भावों को अपनाने में पद्माकर ने जिस कवित्व का परिचय दिया है, वह सर्वथा श्लाघ्य है। यह बात उपर्युक्त दिग्दर्शन से प्रत्यक्ष है। *संस्कृत के मूल भाव को इन्होंने कहीं से विकल या विकृत* नहीं होने दिया है, बल्कि जहाँ कहीं कुछ कोर-कसर जान पड़ी, वहाँ अपनी ओर से कुछ सन्निवेशित कर उसे और चमका दिया है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि पद्माकर अमरुक से कोसों आगे बढ़ गए हैं, या ज़बर्दस्ती मज़मून छीन लिया है। नहीं, अमरुक के शब्द और अमरुक के भाव अमरुक के ही हैं। हाँ, यह अवश्य है कि उनके भावों को अपनाने में पद्माकर ने उनकी मौलिकता पर आँच नहीं आने दी है। यद्यपि उन्होंने अमरुक के पद्यों का अधिकांश स्थलों पर अविकल अनुवाद ही कर डाला है, फिर भी उनके अनुवाद में अनुवाद की गंध नहीं। यही उनकी ख़ूबी है, और यही है उनकी मौलिकता !

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः॥

चंद्रशेखर पांडेय



१. विज्ञान

प्रेतलोक—लेखक, पं० रामनारायण पाठक । प्रकाशक, पं० राधेश्याम कविरत्न, श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, बरेली । मूल्य १) ; पृष्ठसंख्या १८६ ।

'अमर' के जन्मदाता कविरत्न श्रीराधेश्यामजी कथा-वाचक ने माधुरी को समालोचनार्थ 'प्रेतलोक' भेजी, और उसने हमें । हमने इसमें बहुत-से प्रेतों की बातें सुनीं । कुछ समझ में आईं, कुछ नहीं आईं । इसके तीन खण्ड हैं । पहले के दो खण्डों में विलायती प्रेतों ने बातचीत की है, और तीसरे में कुछ हिन्दोस्तानी प्रेतों की कथा सुनने को मिलती है ।

विलायत में मिस्टर जान लेव और सर ओलीवर लॉज अत्यन्त प्रसिद्ध प्रेताचार्य समझे जाते हैं । दूसरे सज्जन विज्ञान के भी बड़े भारी विद्वान् हैं । इन्होंने सैकड़ों प्रेतों से बातें की हैं । उन्हीं की रामकहानियों के आधार पर यह पुस्तक हिन्दी में लिखी गई है । किसी मेज़ का पाया खटखटाकर या किसी मध्यस्थ के शरीर में आविष्ट होकर प्रेतों ने जो-जो बातें कही हैं, उन्हीं का उल्लेख करके, यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि प्रेत-विद्या धोखा या मन-गढ़न्त नहीं है । अन्त में कुछ यहाँ के प्रेतों की भी बातें हैं।

इससे पहले इसी विषय की एक और पुस्तक की समालोचना माधुरी में निकल चुकी है । पाठक-गण उससे इस विषय में हमारी सम्मति जान चुके होंगे । भारत में देव, असुर, गन्धर्व आदि अनेक देव-योनियाँ अति प्राचीन समय से मानी जाती हैं । प्रेत भी उनमें से एक है । परन्तु पश्चिमी लोगों को अभी प्रेतों से ही पाला पड़ा है । इससे इन्होंने स्वर्ग, नरक को भी उड़ाना शुरू कर दिया है । पहली पुस्तक में भी यही बात थी, और इसमें भी यही है । साथ ही यह भी लिखा है कि जो प्रेत जहाँ रहता है, वहाँ की बातें बता सकता है, अन्यत्र की नहीं । फिर भला ये प्रेत स्वर्ग की बातें क्या जानें ? इसमें और भी बहुत-सी चिन्तनीय बातें हैं । पृष्ठ ४४ में लिखा है—"प्रेतलोक में आते ही बूढ़े तगड़े हो जाते हैं, और बच्चे तरुण; एवं समय का कोई प्रभाव उन पर नहीं पड़ता, अर्थात् अधिक आयु के कारण शरीर और शक्ति में क्षीणता नहीं आने पाती ।" आगे पृष्ठ ४७ पर लिखा है—"पतित आत्माओं को सुधारने के लिये बालक-आत्माएँ 'मधुर गीत' गाने को भेजी जाती हैं ।" पृष्ठ ७३ पर लिखा है—"प्रेतात्माएँ अगर चाहें, तो अपना समय बालकों की प्रेतात्माओं को सँभालने, सुधारने और सिखाने में लगा सकती हैं ।" स्त्री-प्रेतों का तो यही प्रधान काम बताया है (?) । क्या ये सब 'तरुण बालकों' (?) का सुधार किया करती हैं ? एक जगह लिखा है कि "प्रेतों के दिल नहीं होता, इसी से वे पीले होते हैं ।" परन्तु आगे ही (पृष्ठ ७२) लिखा है कि "प्रेत लोग मनुष्य के शरीर की नाईं पूरा शरीर बना लेते हैं । इत्यादि ।"

हमें इसमें यह देखकर संतोष हुआ कि प्रेतलोक में दैवों की बड़ी क़दर होती है, और गवैयों की भी । और क्रास न

मिलेगी, तो न सही; इज़्ज़त तो ज़रूर होगी । यही क्या कम है ?

पृष्ठ २२ पर लिखा है कि "प्रेतलोक के सात विभाग या दर्जे हैं ।" पुस्तक-प्रणेता महाशय का अनुमान है कि "शायद यही विभाग मुसलमानों के सात आसमान कहलाते हैं ।" परन्तु यह "शायद" ग़लत है । यदि पाश्चात्य जगत् ने वैज्ञानिक रीति से प्रेतात्मवाद को सिद्ध कर दिखाया, तो सबसे बड़ा धक्का इस्लाम-धर्म को ही लगेगा । इसके सात आसमानों का जो वर्णन क़ुरान शरीफ़ ने बताया है, उसका कहीं पता न चलेगा; प्रत्युत मुसलमानी धर्म के विरुद्ध आवागमन सिद्ध होने लगेगा, मुहम्मद और अली के नाम पर जनता में धाक जमानेवालों की शान शौक़त धूल में मिल जायगी, क़ुरानी बहिश्त और दोज़ख़ के हवाई क़िले का धुआँ उड़ जायगा, और मरने के बाद शराब की नहरों में 'हूरो-गिलमान' का सुख-स्वप्न देखनेवाले मौलाना तथा अन्य धर्मांध मुसलमान पेट पकड़कर बैठ जायँगे । हाँ, पोपजी की बन आवेगी । इनकी श्राद्ध-पद्धति निर्बाध सिद्ध हो जायगी, और पुराणों की अनेक बातें ठीक जचने लगेंगी । पोपजी के पेट में पहुँचे हुए पूरी-पकवानों से प्रेतों का पारस्परिक संबंध प्रतिष्ठित हो जायगा । आर्यसमाजी महाशय भी इन बातों को मन मसोसकर सुनेंगे, और सकपकाकर रह जायँगे।

ख़ैर, यह सब तो जब कभी होगा, तब होगा । हम प्रेतात्मावादियों का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। अभी थोड़े ही दिनों की बात है, हमारे एक मित्र की आत्मा को किसी मनचले ने मेज़ के पाए में ठेलकर 'खटाखट' बातें करा लीं । यह अभी जीवित हैं, और यहीं लखनऊ के एक कॉलेज में प्रोफ़ेसर हैं । जो चाहे, देखकर इनकी जाँच कर सकता है । जैसे प्रेतों की आत्मा मेज़ में खींची जाती है, इसी प्रकार यदि जीवित पुरुषों की आत्माएँ भी आकर बातें करने लगें तब तो एक नया ही गुल खिलेगा। फिर तो यह पृथ्वी भी प्रेतलोक के अन्तर्गत आ जायगी, और यहाँ के सब लोग प्रेत समझे जा सकेंगे, या कुछ और ही सिद्ध होगा ।

पृष्ठ ६२ पर लिखा है —"प्रेतलोक में धर्मान्ध कट्टर व्यक्तियों की बड़ी बेक़दरी और अवहेला होती है ।" क्या ही अच्छा होता, यदि कोई प्रेत आकर आजकल के मुल्लाओं के दिमाग़ में यह बात अंकित कर जाता ।

प्रकृत पुस्तक में प्रेतों से बात करने की प्रक्रिया तो नहीं है, पर प्रेतों और प्रेतलोक से संबंध रखनेवाले अनेक प्रश्नों का, प्रेतों के ही द्वारा दिया हुआ, उत्तर अच्छी तरह संगृहीत है । भाषा रोचक है, पढ़ने में जी लगता है ।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

२. तर्क-शास्त्र

तर्क-शास्त्र (पहला भाग)—लेखक, आ० गुलाबराय एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ; प्रकाशक, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ; पृष्ठ-संख्या, ११४ ; मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महोदय ने तर्क-शास्त्र के पाश्चात्य सिद्धांतों की व्याख्या की है , और भारतीय तर्क के नियमों का भी कहीं-कहीं विवरण दिया है । पुस्तक ऐसे विश्वविद्यालयों के लिये, जहाँ हिंदी द्वारा शिक्षा दी जाती हो, या उन पाठकों के लिये, जो अँगरेज़ी से अनभिज्ञ हों, उपयोगी है ।

कालिदास कपूर

× × ×

३. साहित्य

विद्यापति की पदावली—संकलयिता, श्रीरामवृक्ष शर्मा, बेनीपुरी ; संपादक, श्रीरामलोचनशरण बिहारी ; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरिया-सराय (बिहार) ; पृष्ठ-संख्या लगभग ४०० ; मूल्य २)

समालोच्य पुस्तक में मैथिल-कोकिल विद्यापति के २६५ पदों का संग्रह है । 'अभिनव जयदेव' की कृति का अभी हिंदी-प्रेमियों में यथेच्छ प्रचार नहीं हुआ । इसी कारण विद्यापति की कविता को जो स्थान प्राप्त होना चाहिए था, वह अभी तक नहीं प्राप्त हुआ । किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि शृंगारी कवियों में उनका उच्च स्थान है । इसी कारण तीन-तीन प्रांतों में उनकी कविता का आदर है । आशा है, वे 'सफल समालोचक, जिनको यह पुस्तक 'सभय' समर्पित है, अपनी 'चूरन चटनी-मसालेदार' समालोचना में तथा कवियों को श्रेणी-प्रदान करने में विद्यापति का भी ध्यान रक्खेंगे । आजकल तुलनात्मक समालोचना की रीति चल निकली है, जिसमें एक-दो छंदों के आधार पर ही एक कवि को आकाश में चढ़ा दिया जाता है, और उसके प्रतिपक्षी को पाताल में गिरा दिया जाता है । इस प्रकार की समालोचना में जो दोष हैं, वे प्रायः सभी हिंदी-साहित्य के समा-

लोचनात्मक अंग को दूषित कर रहे हैं। यह बात अवश्य है कि विद्यापति की भाषा में जो माधुर्य है, वह अलंकृत काल के अनेक कवियों में, अस्वाभाविक रूप से प्रयत्न करने पर भी, नहीं आया। विद्यापति की कविता में स्वाभाविकता का सर्वत्र प्रमाण मिलता है। हिंदी के अनेक शृंगारी कवियों में 'हृदय-हीनता' का जो दोषारोपण किया जाता है, उससे विद्यापति सर्वथा विमुक्त हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में, आरंभ के ५० पृष्ठों में, विद्यापति का परिचय दिया है। एकआध स्थान में भाषा की शिथिलता अवश्य है; परंतु कवि विद्यापति के संबंध में जितनी जानने-योग्य बातें हैं, उन सबका बहुत अच्छी तरह विवेचन किया गया है। इसी 'भंडार' से तुलनात्मक-समालोचना-संबंधी एक स्वतंत्र पुस्तक भी प्रकाशित होनेवाली है।

कविवर अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'मैथिल-कोकिल'-शीर्षक प्राक्कथन में हिंदी-साहित्य-कानन के कोकिल की काकली का मधुर वर्णन करते हुए लिखते हैं—"मैं एक वृहत् भूमिका द्वारा इस महान् कवि की रचनाओं पर समुचित प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगा।" आशा है, यह भूमिका भी 'कबीर-वचनावली' की भूमिका की तरह हिंदी-प्रेमियों में अवश्य समादृत होगी।

भारतीय कला के सुप्रसिद्ध चित्रकार धुरंधर महाशय के ९ चित्रों ने इस पुस्तक की शोभा को कईगुना बढ़ाकर काव्य तथा चित्र-कला का परस्पर गहन संबंध पूर्ण रीति से प्रकट कर दिया है। धुरंधर महाशय के 'मेघदूत' तथा उमर खय्याम के चित्रों की तरह ये विद्यापति के चित्र भी बंबई-कला की अपूर्व संपत्ति हैं! अस्तु, पुस्तक का मूल्य अवश्य बढ़ जाता, परंतु ये चित्र कम-से-कम तिरंगे अवश्य छपने चाहिए थे।

यह संस्करण बहुत ही अच्छा निकला है। पाद-टिप्पणियाँ बहुत ही उपयोगी हैं। इस संस्करण की उपयोगिता के विषय में हम यही कहते हैं कि हमारे एक मित्र, जो हिंदी-साहित्य से सर्वथा विरक्त थे, इन पाद-टिप्पणियों की सहायता से विद्यापति का अध्ययन करके ही हिंदी-साहित्य के उपासक हो गए हैं। विद्यापति के समय की मैथिल-भाषा के शब्दों के रूप स्पष्ट करने के लिये व्याकरण-संबंधी छोटी-छोटी टिप्पणियाँ और होतीं, तो अच्छा था। हम प्रकाशकों के परिश्रम की सराहना करते हैं, और आशा करते हैं कि इस भंडार से इसी प्रकार की अन्य पुस्तकें भी शीघ्र ही प्रकाशित होंगी।

× × ×

बिहार का साहित्य (पहला भाग)—संपादक, रामलोचनशरण बिहारी; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरिया-सराय (बिहार); पृष्ठ-संख्या लगभग २००; मूल्य १।।)

इस पुस्तक में बिहार-प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के प्रथम पाँच सभापतियों तथा स्वागताध्यक्षों के भाषणों का सचित्र एवं सुसंपादित संग्रह है। इस संग्रह से बिहार के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य की अच्छी जानकारी हो सकती है। वास्तव में 'सुंदर-साहित्य-माला' की इस पुस्तक में हिंदी-साहित्य-प्रेमियों के मनन करने के लिये अनेक आवश्यक बातों का समावेश है। छपाई-सफ़ाई की सुंदरता की दृष्टि से मूल्य अधिक नहीं है।

× × ×

नवीन बीन या नदी में दीन—लेखक, लाला भगवानदीन; संपादक, रामलोचनशरण बिहारी; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरिया-सराय (बिहार); पृष्ठ-संख्या लगभग १५०; मूल्य ।/)

यह 'सुंदर-साहित्य-माला' का नवम पुष्प है। इसमें कविवर दीनजी की ४२ स्फुट कविताओं का सचित्र संग्रह है। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई 'सुंदर-साहित्य-माला' नाम को सार्थक करती है। इसकी बहुत-सी कविताएँ बालकों के लिये तो हैं; किंतु पुस्तक सर्वथा बालकोपयोगी नहीं है। दीनजी की कविता से हिंदी-संसार परिचित है। उर्दू-शैली की कविता के प्रेमियों को यह संग्रह जानदार प्रतीत होगा। ह्रस्व को दीर्घ अथवा दीर्घ को ह्रस्व करने तथा अनुप्रास आदि काव्य-नियमों में स्वतंत्रता से काम लेने के कारण दीनजी की कविता में स्वाभाविकता की झलक दिखाई देती है। किंतु कहीं-कहीं ब्रजभाषा, खड़ी बोली तथा उर्दू के मिश्रण से काव्य-कामिनी को 'त्रिदोष-ज्वर' का विकार हो गया है। उर्दू के कुछ कठिन शब्द भी खटकते हैं; यथा कोह, बाजुवाँ, जुल, मामृ इत्यादि। इस संग्रह में २० चित्र भी दिए हैं।

× × ×

पद्य-पुष्पावलि—रचयिता, पं० कामताप्रसाद गुरु; संपादक, पं० नर्मदाप्रसाद मिश्र; प्रकाशक, मिश्रबंधु-कार्यालय, जबलपुर; पृष्ठ-संख्या १००; मूल्य ॥=)

प्रस्तुत पुस्तक में हिंदी के सुप्रसिद्ध व्याकरण-पटु पं० कामताप्रसाद गुरु की ३० चुनी हुई कविताओं का संग्रह

है। कुछ पद्य अँगरेज़ी के आधार पर भी हैं। भूमिका बा० जगन्नाथ 'भानु'-कृत है। उसमें आप लिखते हैं—"आपकी (गुरुजी की) रचनाएँ जैसी सरस, शुद्ध और प्रसाद-गुण से पूरित रहती हैं, वैसी बहुत कम कवियों की रहती होंगी। आप विख्यातनामा कवि हैं। आपकी कविता या लेख का एक-एक शब्द ऐसा तौल-तौलकर बिठाया जाता है कि कुछ कहा नहीं जाता।" इस उक्ति की सत्यता का थोड़ा-बहुत प्रमाण पुस्तक के पढ़ने से मिल जाता है। कहीं-कहीं दीर्घ को ह्रस्व कर देने की छूट ले ली गई है, और खड़ी बोली की कविता में इसकी आवश्यकता भी दिन प्रतिदिन प्रतीत होती जाती है। अनेक रचनाएँ बालकोपयोगी हैं।

भवानीशंकर याज्ञिक

× × ×

४. शिक्षा

शिक्षा-समस्या—श्रीयुत स्वामी भारती कृष्णतीर्थजी का विद्वत्ता-पूर्ण भाषण; प्रकाशक, श्रीरामप्रसाद ऐंड ब्रादर्स, आगरा; पृष्ठ-संख्या ७१; मूल्य ।)

श्रीस्वामी भारती कृष्णतीर्थजी ने सं० १९७८ में, संस्कृत में, ज्वालापुर-महाविद्यालय के विद्यार्थियों के सामने शिक्षा पर एक व्याख्यान दिया था। इस पुस्तक में उस व्याख्यान का हिंदी-अनुवाद प्रकाशित किया गया है।

व्याख्याता महाशय बड़े गंभीर विद्वान् हैं। आपको अँगरेज़ी तथा संस्कृत-साहित्य, दोनो का परिचय प्राप्त है। इसलिये आपके वक्तव्य पर हमें और भी आश्चर्य है। यह कौन कहता है कि शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी ही रहे। सच पूछिए, तो हमारी देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देने की पद्धति आगे बढ़ती जा रही है। फिर यह कौन कहता है कि प्राचीन भारत में विद्या और कला का प्रचार नहीं था? व्याख्याता महाशय ने योरपियन विद्वानों को, जिन्होंने संस्कृत समझने और अध्ययन करने का प्रयत्न किया है, आड़े-हाथों लिया है। पूछना यह है कि जिस समय आज से १०० वर्ष पहले योरपियन विद्वानों ने वेदों को ढूँढ़कर इकट्ठा किया, और संस्कृत-साहित्य की खोज में तत्पर हुए, उस समय काशी और नवद्वीप के पंडितों को संस्कृत-साहित्य तथा प्राचीन धर्म-ग्रंथों का कितना ज्ञान था? जब पढ़े-लिखे लोग भी आँखें बंद करके 'इमचुनी दीगरे-नेस्त' का राग अलापने लगते हैं, तो बड़ा शोक होता है। कृपया अपने प्राचीन साहित्य और धर्म की अवहेलना न कीजिए, उन्हें आदर की दृष्टि से देखिए। परंतु पाश्चात्य विद्वान् विज्ञान-सागर की जो कुछ खोज कर चुके हैं, उसके भी समझने की कोशिश कीजिए। आपका व्याख्यान केवल हमें अपने प्राचीन साहित्य तथा धर्म की कोरी प्रशंसा करना सिखाता है। यदि इसी से हमारा उद्धार हो जाय, तो जय हो स्वामीजी की! आपने शिक्षा-समस्या को ख़ूब हल किया!

कालिदास कपूर

× × ×

५. उपन्यास

स्वदेश की बलि-वेदिका—लेखक, "एक देश-भक्त"; प्रकाशक, नर्मदाप्रसाद मिश्र, बी० ए०, मिश्रबंधु कार्यालय, दीक्षितपुरा, जबलपुर; मूल्य ॥=); पृष्ठ-संख्या १००।

इस पुस्तक में जर्मन-जाति के रोम-साम्राज्य से स्वतंत्र होने की कथा दी गई है। प्राचीन समय में रोम का समस्त योरप पर आधिपत्य था। सभी जातियाँ रोमन वेष, भाषा और सभ्यता को अपनाती जाती थीं। पर कुछ ऐसे लोग भी थे, जो रोमन आधिपत्य से दिल-ही-दिल में जलते थे। उनमें कितने ही ऐसे भी थे, जो रोमन सेना में उच्चपदाधिकारी होकर भी अपने देश की परतंत्रता पर कुढ़ा करते थे। ऐसे ही जर्मनी में एक हरमान नाम का वीर था। उसी के प्रयत्नों से अंत को रोमन सेना का सर्वनाश हुआ, और जर्मनों ने आज़ादी हासिल की। कथा रोचक है; पर शैली कुछ शिथिल-सी है। चरित्रों को केवल चरित्रों की छाया-मात्र कह सकते हैं।

× × ×

प्रेम-बंधन—लेखक, वैद्यभूषण नाथूराम-शालग्राम 'गो-मुत्र'; प्रकाशक, श्रीदुर्गा-साहित्य-मंदिर, कनखल; पृष्ठ-संख्या १२४; मूल्य कुछ नहीं लिखा।

यह एक मराठी-उपन्यास का भावानुवाद है। कहानी बुरी नहीं है; पर भाषा इतनी लचर और अशुद्ध है, जितनी हो सकती है, और विराम-चिह्नों की तो आवश्यकता ही नहीं समझी गई है। 'आश्चर्यता, बारीक विराग, दिवानी बातें, मग़ज़ में विचार पैदा होते गए', ऐसी ही विचित्र भाषा के सैकड़ों नमूने मिल सकते हैं। छपाई और काग़ज़ तो ख़ैर, जैसा है, वैसा है; पर अंत में १६ पृष्ठों की एक औषधियों की सूची दी है, जिससे विदित होता है कि पुस्तक केवल विज्ञापन-मात्र है।

× × ×

६. नाटक

अछूतोद्धार-नाटक—लेखक, श्रीरामेश्वरप्रसाद 'राम'; प्रकाशक, हिंदी-सुलभ-साहित्य-प्रकाशन-मंदिर ; मूल्य ।|=) ; पृष्ठ-संख्या ६६ ।

साहित्य की दृष्टि से तो इस नाटक का स्थान ऊँचा नहीं, और कदाचित् लेखक का यह अभिप्राय भी नहीं ; हाँ, जिस विचार से इसकी रचना हुई है, वह अवश्य सराहने-योग्य है । हमें विश्वास है, जनता पर इस अभिनय का अच्छा असर पड़ेगा ।

× × ×

७. जीवन-चरित्र

राजा महेंद्रप्रताप—लेखक, श्रीगोविंद हयारण ; प्रकाशक, गोविंद-भवन, इटावा ; मूल्य ॥=) ; पृष्ठ-संख्या ७० ।

कौन ऐसा भारतवासी होगा, जो इस दान-कर्म-वीर के नाम से परिचित न होगा । आप उन पुरुषों में हैं, जिन्होंने भारत की उन्नति और उद्धार के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, और आज भी एशियाई जातियों का संगठन करने के लिये देश-देशांतरों में भ्रमण कर रहे हैं । इस कष्ट-साध्य कार्य में आपको कैसी बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है, कथा सुननेवालों के हृदय में सनसनी पैदा कर देगी । कहाँ अफ़ग़ानिस्तान, कहाँ पामीर, कहाँ तुर्किस्तान, कहाँ चीन-जापान, सभी प्रांतों की ख़ाक आपने छान डाली है । अभी कुछ ही दिन हुए, समाचार-पत्रों में ख़बर निकली थी कि जापान पहुँचे; पर जापानी पुलीस ने, पासपोर्ट न रहने के कारण, आपको ज़बरदस्ती जापान से निकाल दिया । आप हिंदी-भाषा के परम भक्त हैं । आपके विचार में हिंदी ही वह लिपि है, जो एशिया की व्यापक लिपि बन सकती है ; हाँ, वह भाषा हिंदी न होगी, बल्कि फ़ारसी होगी । पाठकों को यह जानकर कुतूहल होगा कि आपने अपना नाम बदलकर मुसलमानी नाम रख लिया है, और अफ़ग़ानिस्तान के नागरिक बन गए हैं । कुछ लोगों का कदाचित् यह विचार होगा कि राजा साहब अपराधी हैं, और सरकार के भय से स्वदेश नहीं आते । इस विषय में, १९२७ में, एक मेंबर ने एसेंबली में प्रश्न किया था । सरकार की ओर से उसका यही जवाब भी दिया गया था । राजा साहब ने इसका जो उत्तर प्रकाशित कराया था, उससे विदित होता है कि सरकार ने स्वयं कई बार राजा साहब को भारत आने के लिये प्रेरित किया, परंतु वह स्वयं नहीं आए । कारण, उनका दृढ़ विश्वास है कि "मैं या तो स्वतंत्र भारत में ही आऊँगा, या अमवा में ही अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर दूँगा ।"

प्रेमचंद

× × ×

८. गणित

अंक-चंद्रिका (पहला, दूसरा और तीसरा भाग)—लेखक, भवानीप्रसाद पुरोहित ; प्रकाशक, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ ; पृष्ठ-संख्या क्रमशः ४१८, ४७१ और ४१२; काग़ज़ तथा छपाई सुंदर ; मूल्य क्रमशः ॥।=), १), १)

ये तीनों अंकगणित की पुस्तकें हैं । मध्यदेश के डाइरेक्टर साहब ने इन्हें पसंद किया है, और मध्यदेश के छात्रों ही के लिये लिखी गई हैं । इन पुस्तकों के लिखने में रचयिता ने वास्तव में परिश्रम किया है, और इसके साथ ही इन्हें मौलिक बनाने का भी प्रयत्न किया है । इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं कि अंकगणित पर इतनी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं कि इसके साधारण विषयों में मौलिक होना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है । किंतु ग्रंथकर्ता का यह परिश्रम अवश्य ही प्रशंसनीय है । पुरोहितजी ने इन्हें अपने ढंग पर लिखा है ।

पुरोहितजी ने सब विषयों के समझाने का अच्छा प्रयत्न किया है । इन पुस्तकों की यह भी एक विशेषता है कि ये अध्यापक के बिना भी समझ में आ सकती हैं, यदि विद्यार्थी प्रतिभाशाली हो । हिंदी-भाषा में एक प्रकार से ऐसी पुस्तकों का अभाव-सा है, जिनकी सहायता से विद्यार्थी बिना किसी अध्यापक की सहायता के सब बातों को समझ लें । इस विचार से भी पुरोहितजी की यह कृति सर्वथा प्रशंसनीय है ।

पुरोहितजी ने अनेक रीतियों से सिद्धांतों का निरूपण किया है, और तब कई उदाहरण दिए हैं । इन पुस्तकों में कुछ उन बातों का भी वर्णन किया गया है, जिनका अधिक संबंध बीजगणित तथा रेखागणित से है । यह भी अच्छा ही है ।

अंत में छात्रों की परीक्षा के लिये अनेक उदाहरण दिए गए हैं, जिनसे पठन-पाठन का विषय सुलभ हो सकता है ।

इन पुस्तकों में कुछ ऐसे प्रश्न भी दिए गए हैं, जिनसे छात्रों का मनोरंजन भी हो सकता है। पहले ऐसे प्रश्न प्रायः गणित-संबंधी पुस्तकों में दिए जाते थे ; परंतु अब ऐसे प्रश्नों का अंकगणित की पुस्तकों में सर्वथा अभाव-सा रहता है। पुरोहितजी ने इन्हें रोचक भी बनाने का प्रयत्न किया है। सब बातों का विचार करके यह बात कही जा सकती है कि पुस्तकें अच्छी हैं।

इन पुस्तकों में कुछ साधारण त्रुटियाँ भी हैं, परंतु इनसे ग्रंथ की उपयोगिता में कोई बाधा नहीं पहुँचती। पूर्ण आशा है कि दूसरे संस्करण में ये सुधार दी जायँगी। उनमें से दो-एक का उल्लेख कर देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ—

(१) तीसरे भाग के पृष्ठ १३४ में लिखा है—

परिधि नापने से=व्यास $\times \frac{२२}{७}$ अथवा ३·१४१६...(१)

और वृत्त का क्षेत्रफल=$(\text{त्रिज्या})^{२}$ $\times$ गँ वा $\frac{२२}{७}$ अथवा ३·१४१६......(२)

फिर तीसरे भाग के पृष्ठ १३५ में लिखा है—

क्षेत्रफल=$(\frac{९}{२})^{२}$ गँ अथवा $\frac{२२}{७}$=५०·२६५६ वर्गफ़ुट......(३)

इस प्रकार की बातें पुस्तक में और स्थानों में भी मिलती हैं। किंतु यहाँ पर मैं केवल तीसरे उदाहरण के विषय में लिखूँगा। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए।

तीसरे उदाहरण से यह भी अर्थ निकल सकता है कि $\frac{२२}{७}$=५०·२६५६ वर्गफ़ुट।

लेकिन यह ग़लत है। यदि पुरोहितजी ने ऐसा लिख दिया होता, तो यह ग़लती न होती—

$$\text{क्षेत्रफल}=(\frac{९}{२})^{२} \text{ गँ}$$

$$=(४\frac{}{२})^{२} \times \frac{२२}{७}$$

$$\text{अथवा क्षेत्रफल } (४)^{२} \times ३·१४१६$$

इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए।

अवध उपाध्याय

× × ×

९. बाल-साहित्य

सच्ची कहानियाँ—लेखक, पं० नर्मदाप्रसाद मिश्र बी० ए०, साहित्य-शास्त्री ; प्रकाशक, मिश्रबंधु-कार्यालय, जबलपुर ; मूल्य ।।); पृष्ठ-संख्या ७० ; चित्र-संख्या १४ ; छपाई, काग़ज़ आदि सुंदर।

यह छोटी-छोटी ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह है। कुल १७ कहानियाँ हैं। भाषा सरल है, और कहानियाँ रोचक। बालकों के लिये पुस्तक बहुत उपयोगी है।

प्रेमचंद

× × ×

इतिहास की कहानियाँ—लेखक, श्रीयुत ज़हूरबख़्श ; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ ; आकार डबलक्राउन ; पृष्ठ-संख्या ८२ ; मूल्य ।।=) ; सचित्र।

प्रस्तुत पुस्तक में ३३ ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह है। प्रायः सभी कहानियाँ शिक्षाप्रद हैं। उनकी भाषा और शैली सरल है। पुस्तक बालकों के लिये उपयोगी और पढ़ाने-योग्य है।

× × ×

लड़कियों का खेल—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष ; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ ; आकार डबलक्राउन ; पृष्ठ-संख्या ७७ ; मूल्य ।।) ; सचित्र।

प्रस्तुत पुस्तक छोटी-छोटी बालिकाओं को स्कूलों में पढ़ाने-योग्य है। इसमें लड़कियों के खेलने योग्य बहुत-से खेल पदों में दिए हुए हैं, जिनको बालिकाएँ बड़े शौक़ से बरज़बानी याद करके आपस में खेल सकती हैं। पाठशाला के उत्सव आदि में यदि ये खेल बालिकाओं से खेलाए जाया करें, तो उत्सव की शोभा बढ़े, और लड़कियों को भी उनसे लाभ पहुँचे ; क्योंकि कंठस्थ काव्य छात्रों द्वारा स्कूल के जलसों में सुनाए जाने का रिवाज इसी आशय से निकाला गया था कि उनकी झिझक दूर हो, आदमियों के बीच में मुँह से बोल फूटे। वही बात इस पुस्तक में लड़कियों के लिये है। मगर इसमें लाभ अधिक है ; क्योंकि इसके पदों को तोते की तरह रटकर केवल सुनाना ही नहीं है, बल्कि उनको समझकर कार्य-रूप में स्वयं कर दिखाना भी है। इससे पढ़ने, समझने और उन पर अमल करने का बालिकाओं को खेल-ही-खेल में आप-से-आप अभ्यास होता आयगा।

× × ×

खिलवाड़—लेखक, श्रीभूपनारायण दीक्षित ; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ ; आकार डबलक्राउन ; पृष्ठ-संख्या ३० ; मूल्य ।) ; सचित्र।

यह छोटी-सी चित्रों से भरी हुई पुस्तक छोटे-छोटे बालकों के लिये है। इसमें २३ पाठ पदों में दिए

हुए हैं, जिनको बच्चे खिलवाड़ की तरह पढ़ जायँगे ; क्योंकि विषय उन्हीं के अनुकूल हैं, और भाषा सरल है।

जी० पी० श्रीवास्तव

× × ×

१०. फुटकल

हमारी विलायत-यात्रा—लेखक और प्रकाशक, केदार-रूप राय और शिवजीराम श्रमोलिया ; संपादक, प्रतापचंद्र माथुर ; पृष्ठ-संख्या २५६ ; १० सादे चित्र ; आकार डबल क्राउन सोलहपेजी ; मूल्य अजिल्द १।), सजिल्द २) ; कागज़, छपाई अच्छी।

पुस्तक का विषय नाम ही से स्पष्ट है। वर्णन शैली रोचक है, और भाषा सरल, क्रम भी प्रशंसनीय है। हमारी राय में इस पुस्तक को पढ़कर घरबैठे मनुष्य को लंदन की सैर का मज़ा मिल सकता है। पुस्तक मिलने का पता है—मैनेजर, राजपूताना-स्कूल-बुकडिपो, सिंघीजी का त्रिपौलिया, जोधपुर (मारवाड़)।

× × ×

बिजली—अनुवादक 'सुधा'-संपादक जगेश्वरनाथ वर्मा ; प्रकाशक, राजेश्वरनाथ वर्मा, आकाश-वाणी-ऑफ़िस विहारी-पुर, बरेली ; आकार २० × ३० = १६ ; पृष्ठ-संख्या १५२ ; मूल्य १।।) ; कागज़ और छपाई साधारण।

यह एक अज्ञातनामा बँगला-उपन्यास का अनावश्यक अनुवाद है। न तो पुस्तक ही कोई उच्च कोटि की जान पड़ती है, और न अनुवाद ही अच्छा हुआ है।

× × ×

रानी सुंदरी-नाटक—लेखक, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ; प्रकाशक, अनंतकुमार जैन, देवमंदिर, आरा ; पृष्ठ-संख्या १२४ ; छोटा साइज़ ; कागज़ ऐंटिक ; छपाई रंगीन ; मूल्य १)

यह शिक्षाप्रद सामाजिक संयोगांत नाटक है। लेखक हिंदी-संसार में अच्छी तरह परिचित हैं। आपके सूर्योदय और 'रँगीली दुनिया' नाटकों की हिंदी-प्रेमियों ने अच्छी क़दर की है। नाटक की प्रस्तावना पुरानी शैली के अनुसार लिखी गई है। गद्य-पद्य, दोनों भाग रोचक हैं। हिंदी-प्रेमियों को यह नाटक भी अपनाना चाहिए।

× × ×

प्रेम-लहरी—लेखक, प्रेमोन्मत्त ; प्रकाशक, चंद्रकुमार जैन, आरा ; साइज़ छोटा ; पृष्ठ-संख्या १०० के लगभग ; कागज़ चिकना ; छपाई रंगीन ; मूल्य ।।=)

यह पुस्तक प्रेम पर बहुत अच्छी बन पड़ी है : पढ़ने-योग्य है।

× × ×

भारतीय वीरांगनाएँ (प्रथम भाग)—लेखक, रामसिंह वर्मा ; प्रकाशक, एस्० आर० बेरी एंड कंपनी, २०१, हरीसन रोड, कलकत्ता ; पृष्ठ-संख्या ११२ ; आकार छोटा, कागज़ और छपाई अच्छी ; मूल्य ।)

यह 'आदर्श-रमणी-रत्नमाला' का दसवाँ पुष्प है। इसमें सीता, पार्वती, दमयंती, सावित्री और अनसूया के विस्तृत सुंदर चरित्र हैं। भाषा रोचक है। स्त्रियों के काम की चीज़ है।

× × ×

प्रेम-कली—रचयिता, श्रीशिवपूजनसहायजी हिंदी-भूषण ; प्रकाशक, अनंतकुमार जैन, वीर-मंदिर, आरा ; पृष्ठ-संख्या ११० ; साइज़ छोटा ; कागज़ चिकना ; छपाई रंगीन ; मूल्य ।)

यह पुस्तक स्वर्गीय देवेंद्रकुमार जैन की स्मृति में विकसित हुई है। तीसरा संस्करण है। इस संस्करण में और भी अच्छा चुनाव हुआ है। श्रीमैथिलीशरण गुप्त और पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय-सरीखे प्रतिष्ठित कवियों की कविताओं का भी संग्रह किया गया है। पुस्तक पढ़ने-योग्य है।

× × ×

अमरीका-भ्रमण—लेखक, स्वामी सत्यदेवजी ; प्रकाशक, सत्य-ग्रंथमाला-ऑफ़िस, राजापुर, ज़ि० देहरादून ; पृष्ठ-संख्या २४० ; मूल्य १) ; छपाई और कागज़ अच्छा ; पुस्तक सचित्र है।

स्वामीजी जब अमेरिका में घूमे थे, तभी का हाल इसमें सुंदर रूप से, ललित भाषा में, लिखा गया है। घर-बैठे अमेरिका की सैर कर लीजिए।

× × ×

सच्चा हिंदू-नाटक—लेखक, पं० तुलसीराम शर्मा ; प्रकाशक, बा० फूलचंद आर्य, दीनंद ; मूल्य =) ; पृष्ठ-संख्या ४२ ; छोटा साइज़ ; कागज़—छपाई अच्छी।

यह छोटी-सी, पर काम की पुस्तक है : इसे आपत्ति के समय हरएक हिंदू को पढ़नी चाहिए।

× × ×

सावित्री—लेखिका, स्व० शिवकुमारी देवी; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय, दरभंगा; मूल्य ।-); पृष्ठ-संख्या ४२ ; साइज़ छोटा ; छपाई रंगीन; कागज़ बढ़िया ।

पुराण-प्रसिद्ध देवी सावित्री की कथा सुंदर भाषा में लिखी गई है । स्त्रियों को अवश्य मँगाकर पढ़नी चाहिए ।

× × ×

कुरुक्षेत्र-नाटक—लेखक और प्रकाशक, बाबू हरद्वारप्रसाद जालान, आरा; पृष्ठ-संख्या ११२ ; आकार छोटा; मूल्य ॥); कागज़ ऐंटेक ; छपाई बढ़िया ।

बाबू हरद्वारप्रसाद जालान एक होनहार लेखक हैं । यह पौराणिक रूपक आपने सुंदर लिखा है । आपसे हमें और भी अच्छे नाटकों के लिखे जाने की आशा है । नाटककार का चित्र भी इसमें है ।

× × ×

निर्माल्य—लेखक, श्रीमोहनलाल महतो वियोगी साहित्यालंकार; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय, दरभंगा ; पृष्ठ-संख्या ११६; छपाई, कागज़ और जिल्द बहुत बढ़िया; मूल्य १)

वियोगीजी ने थोड़े ही समय में जैसी उन्नति कर दिखाई है, वह प्रशंसनीय है । आपकी कविताएँ प्रायः सभी प्रतिष्ठित पत्रों में निकलती रहती हैं । उनमें रस होता है, जान होती है । इस पुस्तक में आपकी ऐसी ही अनेक कविताओं का संग्रह है । हम वियोगीजी की और भी उन्नति चाहते हैं ।

× × ×

मानसहंस—लेखक, डॉ० के० ल० नाखरे । संपादक, या० श० जामदार ; पृष्ठ-संख्या २९४ ; आकार छोटा ; मूल्य २।); कागज़ और छपाई अच्छी ।

मूल पुस्तक मराठी में लिखी गई थी, उसका यह हिंदी-अनुवाद है । रामचरित-मानस के बहुत-से गूढ़ विषयों की जानकारी इसे पढ़ने से प्राप्त होती है । इसकी विस्तृत आलोचना माधुरी में शीघ्र ही निकलेगी । पुस्तक प्रकाशक से नागपुर (महल) के पते पर मिलती है ।

× × ×

११. प्राप्ति-स्वीकार

१. शृंगारी कवियों की निरंकुशता—लेखक, विंध्येश्वरीप्रसादसिंह ; प्रकाशक, भ्रातृ-मंडल-पुस्तकालय, बाँसडीह (बलिया); मूल्य =)

२. कथा अलरिया—लेखक और प्रकाशक, शालग्राम देव शुक्ल, स्थान अंबारा, पोस्ट मूड़ा सवारान (खीरी) ।

३. विवाह-संस्कार में कन्या का वाम भाग—लेखक-प्रकाशक, श्रीठाकुरदास मंत्री, आर्यसमाज, सहारनपुर ।

४. काशी-हिंदी-साहित्य-विद्यालय का निवेदन—प्रकाशक, श्रीमहताबराय, सरस्वती-प्रेस, काशी ।

५. श्रीआर्य-महिला-हितकारिणी महापरिषद्, काशी की सप्तम वार्षिक कार्यविवरणी—प्रकाशक, मंत्री, भारतधर्म-प्रेस, काशी ।

६ निर्वाह—लेखक, श्रीयुत अध्यापक ग० प्र० 'अनल'; प्रकाशक, मैनेजर, विद्याभवन, बलरामपुर (अवध) ।

७. श्रीहरिभक्ति-सुधानिधि—लेखक, मुंगेर-राज्याधिपति श्रीगौरपदानुरागी श्री १०८ श्रीमान् राजा रघुनंदनप्रसादसिंहजी ; प्रकाशक, गो० श्रीपन्नालाल-यमुनावल्लभशरणजी, श्रीचैतन्यभवन, बिहारीपुरा, वृंदावन (मधुपुरी); मूल्य हरिभक्ति ।

८. दास-पुष्पांजलि—लेखक, अयोध्याप्रसाद गोयलीय 'दास'; प्रकाशक, जैन-संगठन-कार्यालय, देहली ।

९ प्रेम-महिमा—लेखक, ठा० अयोध्यासिंह; प्रकाशक, राधा-प्रेस, भागलपुर ; मूल्य =)॥

१०. जय जगदंब—लेखक, अयोध्याप्रसादसिंह ; प्रकाशक, बिहार एंजल-प्रेस, भागलपुर; मूल्य -)

११. रसिक-मनरंजन—लेखक, स्वर्गवासी ठा० छत्रधारीसिंह; प्रकाशक, जैनाथलाल, पोस्ट मलयपुर, मुंगेर ।

१२ शेर का शिकार—रचयिता और प्रकाशक, कवि-भूषण संगीताचार्य पं० राधाकृष्ण मिश्र सरयूपारीण ; स्थान रायगढ़-स्टेट ।

१३ पंच-प्रपंच—लेखक, श्रीकमलनाथ अग्रवाल; प्रकाशक, अग्रवाल-बुकडिपो, चौखंभा, काशी ; मूल्य -)॥

१४. मुमुक्षु-मनोरंजन—प्रणेता, रायबहादुर अवधबिहारीलाल एम्० ए० ; प्रकाशक, भारतधर्म सिंडिकेट (लिमिटेड) का शास्त्र-विभाग ।

१५. हरिप्रसादाब्धि-भजन—रचयिता, हरिप्रसाददेव शर्मा; प्रकाशक, शुकदेवप्रसाद, स्थान बख्शीपुर, गोरखपुर ।

१६. श्रीगंगाप्रसाद एम्०ए० का व्याख्यान—प्रकाशक, मंत्री स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी ।

१७. श्रीवादीभकेशरी विद्यावारिधि न्यायालंकार पं० मक्खनलालजी शास्त्री का व्याख्यान—प्रकाशक, जैन-सिद्धांत प्रकाशक प्रेस, ९ विश्वकोष लेन, कलकत्ता ।

१८. मगरमच्छ का रिसाला—प्रकाशक, सुपरिंटेंडेंट गवर्नमेंट-प्रेस, संयुक्त-देश, इलाहाबाद।

१९. आर्य-अनाथालय-सभा, देहली की नियमावली—लेखक, नारायणदत्त, अधिष्ठाता, अनाथालय; प्रकाशक, सद्धर्म-प्रचारक-यंत्रालय, दरियागंज, देहली।

२०. संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन कानपुर का कार्य-विवरण—संपादक, दुर्गाचरण शुक्ल; प्रकाशक, कमर्शल-प्रेस, कानपुर, यू० पी०।

२१. वार्षिक रिपोर्ट श्रीआत्मानंद जैन-ट्रैक्ट-सोसायटी, अंबाला शहर—प्रकाशक, आत्मानंद जैन-ट्रैक्ट-सोसायटी, अंबाला शहर।

२२. प्रोसीडिंग्ज़ मजलिस आम ग्वालियर, संवत् १९८२—

२३. श्रीजीव-दया-प्रचारिणी-सभा, आगरा का षष्ठम विवरण वि० संवत् १९८२—प्रकाशक, बाबूराम बज़ाज़ मंत्री।

२४. श्रीऐलक पन्नालाल-दिगंबर-जैन-सरस्वती-भवन की चतुर्थवार्षिक रिपोर्ट (ग्रंथ-सूची और प्रशस्ति-संग्रह)—

२५. बिहार-प्रादेशिक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन (दरभंगा) के सभापति श्रीयुत राजेंद्रप्रसाद एम० ए०, एम्० एल्० का भाषण—

२६. भारतीय व्यवस्थापिका सभा और देशी राज्यों की प्रजा (अँगरेज़ी में)—श्री० गोविंदलाल, शिवलाल और मोतीलाल का एक निबंध—

२७. श्रीब्रह्मविद्योत्तेजक समाज की प्रथम रिपोर्ट

२८. दयानंद-एँगलो-वैदिक कॉलेज, लाहौर के खोज-विभाग की १९१७-२५ की रिपोर्ट—



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे लिखी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई—

(१) "मिश्रबंधु-विनोद" अथवा हिंदी-साहित्य का इतिहास तथा कवि-कीर्तन (प्रथम भाग, द्वितीयावृत्ति)—लेखक, श्रीयुत गणेशविहारी, श्यामविहारी तथा शुकदेवविहारीजी मिश्र ; मूल्य २)

(२) "परोपकारी हातिम" (सचित्र कहानी)—लेखक, श्रीयुत ज़हूरबख़्शजी ; मूल्य १।)

(३) "विदेशी विनिमय" (Foreign Exchange)—लेखक, श्रीयुत पं० दयाशंकरजी दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य १)

(४) "गीता-दर्शन" अथवा संसार के समस्त दार्शनिक सिद्धांतों का गीता में समन्वय (द्वितीयावृत्ति)—लेखक, लाला कन्नोमलजी एम्० ए० ; मूल्य २॥)

(५) "गो रक्षा-नाटक"—लेखक, श्रीयुत दुर्गाप्रसादजी गुप्त ; मूल्य १।)

(६) "अनुराग-वाटिका" (काव्य)—श्रीयुत वियोगी-हरिजी-लिखित ; मूल्य ।-)

(७) "आँख की किरकिरी" (चतुर्थ आवृत्ति)—डॉ० रवींद्रनाथ ठाकुर-कृत बँगला-उपन्यास का हिंदी-अनुवाद। अनुवादकर्ता, पं० रूपनारायणजी पांडेय ; मूल्य १॥)

(८) "पुष्पलता" (द्वितीयावृत्ति)—श्रीयुत सुदर्शनजी-लिखित मनोरंजक गल्पों का संग्रह ; मूल्य १)

(९) "निर्वाचन-नियम" (चुनाव-संबंधी)—लेखक, श्रीयुत दयाशंकरजी दुबे तथा भगवानदासजी केला; मूल्य ॥-)

(१०) "मेघदूत" (राजा लक्ष्मणसिंहजी-कृत मेघदूत का हिंदी-अनुवाद) ; मूल्य ॥)

(११) "काव्य-कल्पद्रुम" (अलंकार-संबंधी उत्कृष्ट पुस्तक)—श्रीयुत सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार द्वारा लिखित ; मूल्य २॥)

(१२) "ठाकुर-ठसक" (श्रीयुत कवि ठाकुर-कृत संपूर्ण कविताओं का संग्रह)—श्रीयुत लाला भगवानदीनजी द्वारा संपादित ; मूल्य ।=)



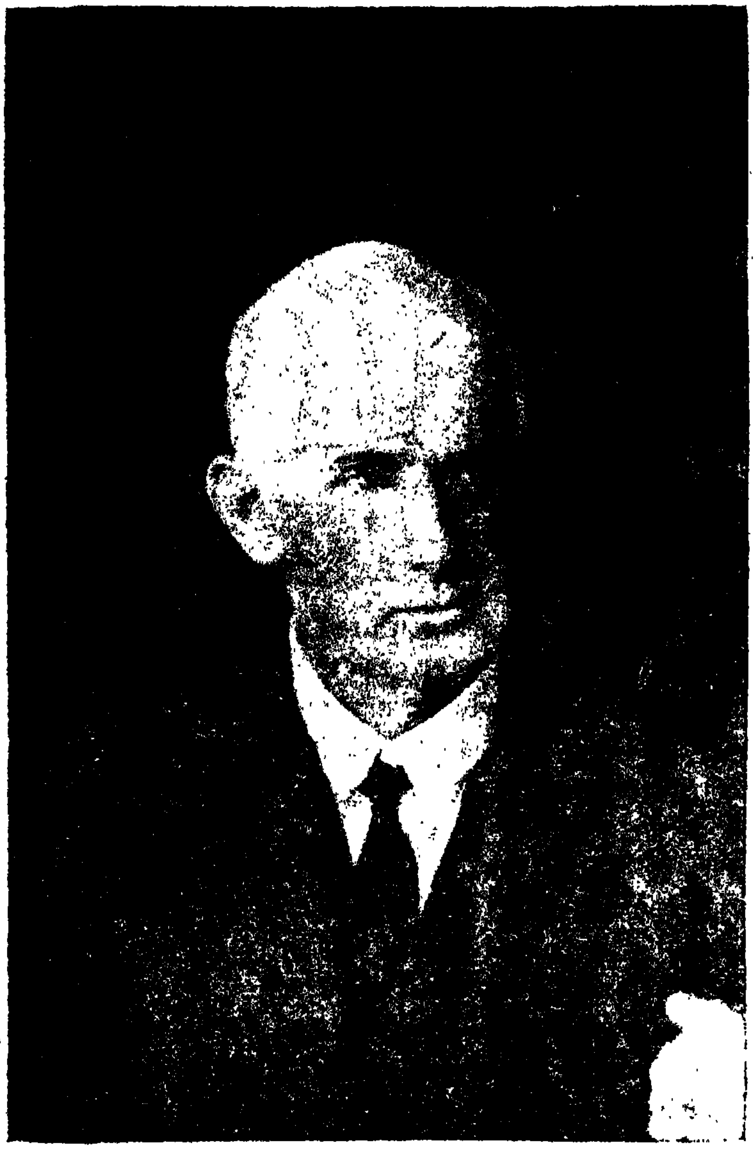
१. लखनऊ में मैरिस-संगीत-कॉलेज का उद्घाटन

जिस देश में विविध ललित कलाएँ जितनी ही उन्नत दशा में होंगी, उतना ही वह देश उन्नति के शिखर पर चढ़ेगा। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिस समय रोम, ग्रीस, भारतवर्ष आदि देशों में ललित कलाएँ उन्नतावस्था में थीं, उस समय इन देशों की सभ्यताएँ भी आदर्श मानी जाती थीं। फिर ज्यों-ज्यों भारतवर्ष में ललित कलाओं का ह्रास होने लगा, त्यों-त्यों हम भी अधःपतन के गहरे गड्ढे में गिरने लगे, और अब आज, हमारी उन उन्नत कलाओं के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने के कारण, हमारी गणना असभ्य जातियों में होने लगी है।

इधर कुछ वर्षों से हमारे देश में जातीय उत्थान के भाव उत्पन्न होने लगे हैं। यह एक सौभाग्य की बात है कि हमारे देशवासी देश की उन्नति के लिये अपनी प्राचीन कलाओं को पुनर्जीवित करने का महत्त्व समझने लगे हैं। जातीय उत्थान के लिये संगीत-कला की कितनी आवश्यकता है, इसका महत्त्व हमारे प्राचीन ऋषि-महात्मा भली भाँति जानते थे। उन्होंने ईश्वर की सृष्टि को संगीतमय पाया। यही कारण है कि हमारे विविध विषयों के प्राचीन ग्रंथ पद्य-रचना में मिलते हैं। हमारे दिन बिगड़े, और हम, अपने पतन के साथ ही, संगीत-कला को भी भूल गए। कुछ वर्ष हुए, इसी प्राचीन-कला का उद्धार करने के लिये बंबई में गांधर्व-महाविद्यालय की सृष्टि हुई है, इस विद्यालय ने इस कला को काल-कवलित होने से बहुत कुछ बचाया है; परंतु भारतवर्ष-जैसे बड़े देश में इस कला को फैलाने के लिये एक ही विद्यालय का होना पर्याप्त न था।

तीन वर्ष हुए, प्राचीन संगीत-कला के कतिपय उत्साही प्रेमियों के परिश्रम से अखिल-भारतवर्षीय संगीत-सम्मेलन की आयोजना की गई थी। पहली कानफ्रेंस महाराज बड़ौदा के निमंत्रण से बड़ौदा-राज्य में हुई। वहाँ देश के प्रसिद्ध-से-प्रसिद्ध गायक एकत्र हुए थे। उस कानफ्रेंस में एक अखिल-भारतवर्षीय संगीत-कॉलेज की स्थापना का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। देश में उस प्रस्ताव का स्वागत बड़े उत्साह के साथ हुआ, और प्रतिदिन एक कॉलेज शीघ्र स्थापित करने की इच्छा बलवती होने लगी। संगीत-कानफ्रेंस के दूसरे और तीसरे अधिवेशन सन् १९२५-२६ में लखनऊ में हुए, जिनमें अपनी प्राचीन कला की सुंदरता और मनोमोहकता का ध्यान दिलाते हुए वर्तमान काल में उसके ह्रास का भी दिग्दर्शन कराया गया। बड़ौदा कानफ्रेंस के प्रस्ताव-बीज ने अब वृक्ष का रूप धारण किया, और शीघ्र ही उसमें से फल-स्वरूप लखनऊ-मैरिस-संगीत-कॉलेज का प्रादुर्भाव हुआ।

लखनऊ-नगर मुग़ल-काल से संगीत का एक केंद्र-स्थान



संयुक्तप्रांत के वर्तमान गवर्नर
सर विलियम मारस
(आप ही के नाम से लखनऊ में संगीत-कॉलेज खोला गया है)

रहा है। इस कारण यहाँ संगीत-कला के उपयुक्त उर्वरा-भूमि पाकर संगीत-कॉलेज का खोला जाना ठीक प्रतीत हुआ। १६ सितंबर, सन् १९२६ ई० को इस कॉलेज का उद्घाटन किया गया। उस अवसर पर हमारे प्रांत के शिक्षा-मंत्री ऑनरेबुल राय राजेश्वरबली साहब ओ० बी० ई० ने, जिनको इस कॉलेज के खुलवाने का अधिकांश श्रेय है, उद्घाटित करते हुए बड़े गंभीर वाक्यों में इस प्रकार अपने विचार प्रकट किए—"आज हम यहाँ अपनी प्राचीन संगीत-कला का उद्धार करने के लिये ही एकत्र हुए हैं। इस संगीत-कला को हमने अपने पूर्वजों से पूँजी की तरह पाया है; हम इस पर ही अपने जातीय उत्थान का विशाल भवन खड़ा कर सकते हैं; इसके कारण ही हममें नए रक्त और उच्च भावों का संचार हो सकता है; इसी के कारण हम अपने इतिहास को बड़ी-बड़ी घटनाओं से पूरित कर समस्त संसार को सदा के लिये चमत्कृत कर सकते हैं, और इसी के द्वारा हमी अपने नवयुवकों को सोती हुई नींद से जगाकर देश के उत्थान में लगा सकते हैं। हम जब वैष्णव-धर्म की ओर दृष्टि डालते हैं, और इस बात का पता लगाते कि किस प्रकार उक्त धर्म का प्रचार थोड़े ही समय में अधिकांश भारत के भीतर हो गया, तो हमको मालूम होता है कि इसका कारण सूर, तुलसी और मीराबाई आदि के मधुर, स्वर्गीय गान ही थे, जिन्होंने पीयूष-वर्षिणी तान छेड़कर सारे देश को सोते से जगा दिया, और राजा तथा प्रजा तक वैष्णव-धर्म को पहुँचाया। इस अवस्था में क्या हमको यह उचित नहीं कि संगीत के द्वारा अपने भाइयों की धर्म-प्रवृत्ति जगावें, और उनकी स्वभावप्राप्त दुष्ट प्रवृत्तियों को दमन कर उन्हें देव-तुल्य बनावें? यह देखकर हमें खेद होता है कि हमारे पढ़े-लिखे विद्यार्थी इस कला को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। क्या यह अत्यंत दुःख की बात नहीं कि जिनको यह कला प्राप्त है, वे भजनों के भावों को नहीं जानते, और जिनमें उन भावों के समझने की शक्ति है, वे इस विद्या से दूर भागते हैं।"



ऑनरेबुल राय राजेश्वरबली साहब बी० ए०, ओ० बी० ई०
शिक्षा-मंत्री (यु० पी०)

इस ज्ञान-गर्भ वक्तृता को पढ़कर कौन ऐसा होगा, जिसे इन बातों की सत्यता पर संदेह रह जायगा ? याद रखिए, यह वह कला है, जिसको अर्जुन-जैसे शक्तिशाली पराक्रमी योद्धा ने सीखा था, और जो कला अज्ञात-वास में उसकी सहायक हुई थी। कुछ लोगों की यह धारणा हो गई है कि जो मनुष्य नाचना या गाना सीखता है वह सभ्य-समाज में बैठने-योग्य नहीं। किंतु यह धारणा केवल भ्रम-मात्र है।

अत्यंत आनंद की बात है कि इस कॉलेज के साथ-ही-साथ एक चित्रशाला भी बनेगी। चित्र-कला भी एक रोचक ललित कला ही है। हमारे यहाँ प्राचीन काल में भी चित्रशालाएँ थीं। उत्तररामचरित-नाटक में इसका उल्लेख मिलता है। आशा है, कॉलेज के इस विभाग द्वारा चित्रकला के पुनर्जीवन का प्रशंसनीय कार्य संपन्न होगा। चित्रशाला में श्रीयुत असित-कुमार हालदार का हाथ रहने से हमें उसकी उन्नति पर पूर्ण विश्वास है। कारण, हालदार बाबू एक उच्च कोटि के उदीयमान प्रतिभाशाली चित्रकार हैं।

हम अपने प्रांत के शिक्षा-मंत्री ऑनरेबुल राय राजेश्वरबली महाशय को साधुवाद से अभिनंदित करते हैं। कारण, आपके और आपके भाई मित्रवर श्रीउमानाथबली के अक्लांत परिश्रम और उत्साह के कारण ही आज हम इस संगीत-कॉलेज के निर्माण-कार्य को देख रहे हैं। श्रद्धेय राय राजेश्वरबली साहब हिंदी-साहित्य-सेवी और प्राचीन कलाओं के प्रेमी हैं। आपके पास प्राचीन चित्रों का एक संग्रह है, जो आपके कला-प्रेमी होने का पूर्ण रूप से परिचय देता है। काव्य-कला के भी आप विशेष मर्मज्ञ और प्रेमी हैं। हिंदी की शायद ही कोई उत्कृष्ट काव्य-पुस्तक आपके संग्रह में न हो। इस तरह तीनों ही ललित कलाओं के प्रति एकरस स्नेह बहुत कम देखने में आता है। आशा है, आगामी चुनाव के समय बाराबंकी-ज़िले के मतदाता आपको पुनः वोट देकर आपको कौंसिल के लिये अपना प्रतिनिधि चुनेंगे, और आप पुनः शिक्षा-मंत्री के पद को सुशोभित करेंगे। आपके मंत्रित्व में इस प्रांत में शिक्षा-प्रचार का कार्य कैसा हुआ है, यह किसी से छिपा नहीं।

× × ×

२. आगामी हिंदी साहित्य-सम्मेलन

कई कारणों से इस बार हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन आगामी फ़रवरी सन् १९२७ तक स्थगित कर दिया गया है। इसी कारण इधर हिंदी-समाचार-पत्रों में

भी इस संबंध की चर्चा नहीं हो रही है। श्रीमान् भरतपुर-नरेश एक हिंदी-प्रेमी नरेश हैं। आप विद्वान् भी हैं। आपने अभी हाल ही में हिंदी पर एक भाषण दिया था, जिससे मालूम होता है कि आपको हिंदी की वर्तमान प्रगति का अच्छा परिचय है, और आप हिंदी के साहित्य का अध्ययन भी करते रहते हैं। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि आपकी राजधानी में, आप ही की पृष्ठ-पोषकता में आगामी सम्मेलन बड़े समारोह के साथ होगा।



भरतपुर-नरेश सवाई श्रीकिशनसिंह

और, शायद इसीलिये वह फ़रवरी तक रोक भी दिया गया है कि इधर यथेष्ट आयोजन नहीं हो पाया था। एक बात और हमें इस संबंध में कहनी है। वह यही कि इस अधिवेशन के सभापति का चुनाव इधर ही हो जाना चाहिए, जिसमें निर्वाचित सभापति को अपना सुचिंतित भाषण लिख रखने का यथेष्ट अवसर प्राप्त हो। सभापति-निर्वाचन के संबंध में हम अपना मत गत संख्या में प्रकट कर चुके हैं। हमारा अन्य पत्र-संपादकों से भी यह निवेदन है कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के आगामी अधिवेशन के संबंध में वे समय-समय पर कुछ लिखते रहा करें।

× × ×

३. स्वर्गीय सप्रेजी की जीवनी

स्वर्गीय पं० माधवराव सप्रेजी ने अन्य भाषा-भाषी होकर भी हिंदी-साहित्य की जितनी सेवा और उन्नति की है, वह अन्य भाषा की बात तो क्या, किसी भी हिंदी-भाषा-भाषी के लिये गौरव की बात हो सकती है। आपने मराठी के कई उत्कृष्ट ग्रंथों का हिंदी-अनुवाद तथा संपादन किया है। आप समय-समय पर हिंदी की उच्च कोटि की पत्र-पत्रिकाओं में महत्त्व-पूर्ण लेख भी लिखते रहे हैं। आपका एक अच्छा जीवन-चरित्र लिखने और लेखों का संग्रह करने की बड़ी आवश्यकता है। हर्ष का विषय है कि मध्य-प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन (जबलपुर) में एक प्रस्ताव पास करके यह निश्चय किया गया है कि सप्रेजी की जीवनी और लेखों का संग्रह शीघ्र प्रकाशित किया जाय। इस काम के पूर्ण करने का भार भी रायपुर के श्रीयुत मावलीप्रसादजी श्रीवास्तव को, जो कि हिंदी के एक सुयोग्य लेखक हैं, और इधर आठ-नव वर्ष तक सप्रेजी के साथ रह चुके हैं, सौंपा गया है। इस काम के लिये आवश्यक धन प्राप्त हो चुका है, और साल भर के अंदर कम-से-कम जीवन-चरित्र प्रकाशित करने की बात भी तय हो चुकी है। खँडवे के कर्मवीर पत्र में एक खुली चिट्ठी प्रकाशित करके उक्त श्रीवास्तवजी ने हिंदी-संसार से इस कार्य में निम्न-लिखित सहायता माँगी है। आप लिखते हैं—

"जहाँ तक मैं जानता हूँ, मध्य-प्रांत में ऐसे कोई सज्जन नहीं हैं, जिन्हें सप्रेजी के जीवन की सारी अथवा बहुत-सी घटनाओं का ज्ञान हो। ऐसी दशा में लेखन-कार्य आरंभ करने के पहले उचित यही दिखलाई पड़ता है कि मैं सप्रेजी के नए-पुराने मित्रों, साहित्यिक सहयोगियों, समकालीन कार्यकर्ताओं, और जीवन-सूत्र को जाननेवाले अन्य सज्जनों से प्रार्थना करूँ कि उन्हें सप्रेजी के जीवन की जिन-जिन घटनाओं का स्पष्ट ज्ञान अथवा स्मरण है, उन्हें सन्-संवत्-सहित लिखकर वे मेरे पास शीघ्र ही—अधिक-से-अधिक एक महीने के भीतर—भेज देने की कृपा करें। यही प्रार्थना लेकर मैं उस प्रत्येक व्यक्ति की सेवा में भी उपस्थित हो रहा हूँ, जिसके जीवन में सप्रेजी के साथ प्रत्यक्ष संबंध का कभी भी अवसर आया हो। पूरी-पूरी जानकारी हासिल करने के लिये यही मार्ग शेष रह गया है। जो घटनाएँ उनके साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक जीवन पर किसी तरह प्रकाश डाल सकें, उन सबका संग्रह किया जाना आवश्यक है। तुच्छ समझी जानेवाली बातें भी चरित-नायक के आचरण और विचार-शैली को समझाने में समर्थ और महत्त्व-पूर्ण होती हैं।"

इसके सिवा सप्रेजी के बारे में जिसे जो कुछ याद हो, वह उसे भी श्रीवास्तवजी के पास लिख भेजे। अंत में श्रीवास्तवजी लिखते हैं कि यदि लेख भेजनेवाले लोग पहले यह सूचित कर दें कि वे जीवन-संबंधी घटनाएँ लेख भेजने, स्मृतियाँ लिखने अथवा साहित्यिक सामग्री के एकत्रित करने में एक महीने के भीतर उन्हें क्या सहायता दे सकते हैं, तो बड़ी कृपा हो। आशा है, हिंदी-संसार से श्रीयुत मावलीप्रसाद-जी को इस संबंध में बिना विलंब यथेष्ट सहायता प्राप्त होगी। सप्रेजी के साथ प्रत्यक्ष संबंध का केवल एक बार ही हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ था, और उसके बारे में हम माधुरी में लिख ही चुके हैं।

× × ×

४. प्रसिद्ध उड़ाका सर एेलन कोबम

समाचारपत्र-पाठकों को मालूम होगा कि सर एेलन कोबम एक प्रसिद्ध उड़ाके हैं, और अभी हाल में वह भारत में भी आए थे। इसी ऑक्टोबर के महीने में वह लंदन लौटे हैं। वहाँ की सरकार ने आपको नाइट का ख़िताब दिया है। हवाई जहाज़ के ज़रिए आकाश-मार्ग से जाने में उन्होंने जो विशेष उन्नति कर दिखलाई है, उसी के लिये उन्हें यह पुरस्कार मिला है। यही नहीं, सम्राट् पंचम जॉर्ज ने भी उन्हें 'नाइट कमांडर ऑर्डर ऑफ़ दि ब्रिटिश एंपायर' का ख़िताब दिया है। सर सैमुएल होर ने, जो कि इँगलैंड के विमान-मंत्री हैं, एेलन कोबम के सम्मान के लिये विमान-कौंसिल की ओर से उन्हें एक भोज दिया था। उसमें आए हुए लोगों ने सर एेलन कोबम का विशेष

उत्साह के साथ स्वागत किया। विमान-मंत्री और अन्य बहुत-से वक्ताओं ने अपने भाषणों में सर कोभम की बड़ी प्रशंसा की, और कहा— सर कोभम ने विमान-यात्रा की ऐसी उन्नति की है कि उससे जान पड़ता है, साम्राज्य की प्रत्येक राजधानी लंदन के निकट ही है। अब साम्राज्य की दूर-से-दूर की राजधानियों में भी एक पखवाड़े में हो आना-जाना हो सकेगा। सर ऐलन कोभम का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—इनकी अवस्था अभी ३१ वर्ष की है; लेकिन इसी आयु में वह कुल तेरह लाख मील आकाश की यात्रा कर चुके हैं। सन् १९२३ में वह योरप, उत्तर-आफ्रिका, मिस्र और पैलस्टाइन आदि देशों में गए, और १२ हज़ार मील आसमान पर चक्कर लगा आए। सन् १९२४ ई० में रंगून वग़ैरह में घूमते हुए १७ हज़ार मील आसमान में घूमे। सन् १९२५ में फिर दक्षिण-आफ्रिका गए, और १७ हज़ार मील का भ्रमण किया। अब की बार वह लंदन से ऑस्ट्रेलिया गए, और भारत भी आए। इस बार भी उन्होंने २८ हज़ार मील का भ्रमण कर डाला। इस तरह वह अनेक बार लंबी यात्रा कर चुके हैं। गत ७ ऑक्टोबर को वह लंदन से माथ नाम के हल्के हवाई जहाज़ पर चढ़कर दक्षिण-मैंचेस्टर को गए, और वहाँ के लोगों ने उनका सत्कार किया। उन्होंने रॉयल एलबर्ट-हाल में लंदन के स्कूली लड़कों के सामने अपने हवाई जहाज़ और आकाश की यात्रा के संबंध में बहुत-सी बातें कहीं। हम भी इस श्रेष्ठ साहसी पुरुष का अभिनंदन करते हैं। सचमुच इस वीर पुरुष का साहस, ख़ासकर हमारे देश के लिये, अवश्य ही अनुकरणीय है।

× × ×

५. एक नवीन धातु

बीस वर्ष पहले जब बिजली के लैंप में कार्बन फ़ीते (Cabon Fi n Flament) का काम धातु के फ़ीते (Metal Fiiament) से चल सकना संभव हुआ, तब टैंटलम (एक तरह की धातु) का नाम हरएक के मुँह से सुना जाता था। लेकिन पीछे जब ऑस्मियम, ओसरम आदि अन्यान्य धातुएँ उसी काम के लिये ठीक और अच्छी साबित हुईं, तब टैंटलम का नाम कोई न लेता था। किंतु टैंटलम का व्यवहार बिलकुल बंद न हुआ। इसमें रासायनिक रुकावट की ताक़त इतनी अधिक है कि इसको इस काम से एकदम हटा देना असंभव है। इसमें ऐसी विशेषता है कि अगर इसके बड़े-बड़े साँचे और पत्तर तैयार होते, तो इसकी ज़रूरत अवश्य बढ़ जाती। पहले कह चुके हैं कि टैंटलम एक तरह का धातव पदार्थ है। यह खान के टैंटलिट और कलॉबिट में लोहे के चूरे की शक्ल में मिलता है। यह सलफ़्यूरिक ऐसिड, नाइट्रिक ऐसिड और एकुआ रेजिया द्वारा गलता नहीं। किंतु नाइट्रिक ऐसिड और हाइड्रो-क्लोरिक ऐसिड के मिलाने से गलाया जा सकता है। अब जाँचकर देखा गया है कि जो धातुएँ सहज में नहीं गलतीं, और जिनका स्थायित्व ख़ूब अधिक है, ऐसी धातुओं की प्रयोजनीयता सबसे अधिक है। प्लाटिनम में जैसे गुण हैं, उनके देखते कड़ी धातुओं में वह अधिक प्रयोजनीय गिनी जाती है; किंतु इसमें इतना ख़र्च पड़ता है कि इसके बदले और किसी चीज़ की खोज करना अनिवार्य था। गत १० वर्षों के बीच प्लाटिनम का मूल्य छः गुना बढ़ गया है। यह सहज ही समझ में आ सकता है कि जिस लेबोरेटरी में टैंटलम को बिजली के लंपों में धातव फ़ीते के रूप में व्यवहार करने का आविष्कार किया गया था, उसी लेबोरेटरी में टैंटलम धातु की इतनी रासायनिक उन्नति की गई है कि इस समय इससे बड़े-बड़े साँचे और ढले हुए पत्तर तैयार हो सकते हैं। मेसर्स सीमसन और हाल्क की लेबोरेटरी में ही टैंटलम को चूर्ण के आकार से धातु के फ़ीते के रूप में बदल दिया जाता है। इस समय उक्त लेबोरेटरी टैंटलम से साँचे तैयार करने में सफलता प्राप्त कर पाई है। रासायनिक मामलों में इसका गौरव बहुत अधिक है। इसकी रासायनिक धारणा-शक्ति आग में लाल करने से चली जाती है। तीन हज़ार डिग्री से अधिक ताप पहुँचने से यह गल जाती है। सबसे बड़ी बात यह है कि इसका मूल्य उतने ही प्लाटिनम के मूल्य का बारहवाँ हिस्सा होता है। इससे बहुत ही रुकावट की शक्ति से सामान बनाना संभव होने से श्रम-शिल्प में भी बचत होगी, और बहुत-सा ख़र्च बच जायगा। यह नोट हंबर्ग के मशीन एंजीनियर डॉ० फ्रेस्टर के एक लेख के आधार पर लिखा गया है।

× × ×

६. अमेरिका के एक विश्वविद्यालय का आंतरिक जीवन

आजकल भारतवर्ष के नवयुवकों को किस प्रकार की शिक्षा दी जाय, जिससे वे अपना, अपने समाज का और देश का उद्धार कर सकें, यह प्रश्न बहुत-से लोगों को

चित्रित कर रहा है। हमारे भारत में नए-नए विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। हज़ारों विद्यार्थी प्रतिवर्ष डिग्रियाँ लेकर संसार-क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। परंतु वे कहाँ तक सफल होते हैं, यह जानकर व्यथा होती है। कितने ही विद्वान् तो प्रचलित शिक्षा-प्रणाली को भारतवासियों के लिये अहितकर बतलाते हैं, और कितने ही, पाश्चात्य सभ्यता पर लट्टू होने के कारण, इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। आज बीसवीं शताब्दी में, जब वैज्ञानिक आविष्कारों से प्रत्येक देश एक दूसरे से इस प्रकार जकड़ दिए गए हैं कि वे अब कूप-मंडूक की तरह नहीं रह सकते, एक देश का दूसरे देश पर प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता। 'यथा राजा तथा प्रजा'वाली कहावत ठीक ही है। भारत में विदेशी भाषा का पठन-पाठन एक प्रकार से अनिवार्य है। और यह भी प्राकृतिक नियम है कि जब एक देश अपनी स्वाधीनता खो बैठता है, तो उस पर विजेता-जाति का प्रभाव अधिक पड़ने लगता है। भारतवर्ष इसका एक जीता-जागता उदाहरण है। भारतवासियों के प्रत्येक सामाजिक, नैतिक और धार्मिक अंग पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव दिखलाई पड़ता है, शिक्षा पर प्रभाव पड़ना तो बहुत ही साधारण बात है।

आज यदि भारतवासी कहें कि हमारी प्राचीन सभ्यता, वर्णाश्रम-धर्म और सनातन-धर्म समस्त संसार के लिये आदर्श हैं, तो यह केवल उनका दंभ-मात्र होगा। गुण और दोष प्रत्येक प्राणी में विद्यमान हैं। इस अवस्था में समाज या जाति में, जो मनुष्य के समूहों से बनती है, गुण और दोषों का होना स्वाभाविक ही है। हमारे प्राचीन काल की जो शिक्षा-प्रणाली थी, वही आदर्श थी, और वही आज भी हमारे लिये अनुकरणीय है, ऐसा माननेवाले भूलते हैं। प्रकृति परिवर्तनशील देख पड़ती है। यह समझ बैठना कि किसी परिस्थिति के कारण किसी विशेष काल में जो प्रणाली ठीक थी, वही आज भी, जब कि परिस्थिति बिलकुल ही भिन्न हो गई है, ठीक रहेगी, बड़ी भारी भूल है। इसलिये बुद्धिमान् को उचित है कि वह अपने को देश और काल के अनुसार बनावे। हमारी शिक्षा-प्रणाली में भी इस नियम के अनुसार परिवर्तन होना आवश्यक है। 'पत्थौ अपावन ठौर में, कंचन तजै न कोइ' की भाँति का अवलंबन करते हुए अपने सामाजिक, नैतिक और धार्मिक जीवन के सुधार के लिये यदि हमें पाश्चात्य देशों से कुछ लेना या सीखना पड़े, तो निःसंकोच होकर वह ले लेना और सीख लेना चाहिए। यहाँ हम ए० के० सिद्धांत एम्० ए०, एस्० टी० एम्० (हार्वर्ड) के कुछ विचार अपने पाठकों के सामने रखते हैं। आशा है, वे शिक्षा-सुधार-प्रेमियों को अधिक उपयोगी प्रतीत होंगे।

सिद्धांत महाशय का कथन है कि विश्वविद्यालयों में सदा नवजीवन का संचार होते रहने के लिये यह आवश्यक है कि वे केवल शिक्षा-प्रदान करनेवाली एक संस्था हों, और परीक्षा लेना उनका गौण-काम हो। जो विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेकर विद्यार्थियों को संसार-क्षेत्र में भेजते हैं, उनमें और एक व्यापारिक संस्था में कुछ भेद नहीं रह जाता। अमेरिका में केवल शिक्षा-प्रदान करनेवाले ही विद्यालय हैं, और इसी कारण हम वहाँ के विद्यालयों को नवजीवन और चरित्र का एक केंद्र-स्थान पाते हैं। वहाँ के विश्वविद्यालयों में दो प्रकार की शिक्षा-प्रणालियाँ हैं। एक Lutonil प्रणाली, और दूसरी Elective। पहली प्रणाली के अनुसार थोड़े लड़के बारी-बारी से अपने प्रोफ़ेसरों के पास जाकर अपने विषय के निबंध दिखाते और उसके संबंध में तर्क वितर्क या चर्चा करते हैं। दूसरी प्रणाली के अनुसार विद्यार्थियों को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनने का अधिकार रहता है। इन प्रणालियों के प्रचार का श्रेय हार्वर्ड-विश्वविद्यालय के प्रेसीडेंट इलियट को है, जिन्होंने ४० वर्ष के अपने परिश्रम और अनुभव से इनकी श्रेष्ठता प्रमाणित की है। इन दोनों प्रणालियों का सम्मिश्रण ऐसे अच्छे ढंग से किया गया है कि अब अमेरिका के विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विशेषता अधिक बढ़ गई है। इसके अतिरिक्त वहाँ के विद्यार्थी बी० ए० की डिग्री लेने के पश्चात् ही किसी विशेष विषय में पूर्ण अभ्यस्त होने के अधिकारी होते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि अमेरिका का विद्यार्थी अन्य देशों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक विद्वान् और सांसारिक कार्यों में भी अधिक दक्ष होता है। वह संसार-क्षेत्र पदार्पण करने के पहले अपने को ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सदाचार और धार्मिक इतिहास के आवश्यकीय ज्ञान से संपन्न बनाता है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि प्रथम तो अमेरिका के विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी की विशेषता है, न कि कुल क्लास की ; दूसरे कॉलेज की

शिक्षा केवल पुस्तकों के पठन-पाठन तक ही नहीं है, वरन् वह विद्यार्थी को सांसारिक जीवन-निर्वाह के लिये उपयोगी बनाती है; तीसरे कॉलेज की शिक्षा सभी के लिये है। किसी प्रकार का जाति-भेद नहीं है, और सभी को हरएक प्रकार की शिक्षा—वैज्ञानिक, व्यापारिक, काव्य-कला-संबंधी—प्राप्त करने की सुगमता है। विद्यार्थी ही अपने कॉलेज की दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ निकालते हैं, जिनमें कॉलेज के विषय में टिप्पणियाँ और सुधार-संबंधी कुछ नए विचार रहते हैं। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि विद्यार्थियों की वे टिप्पणियाँ इतनी लाभदायक प्रतीत हुई हैं कि स्वयं प्रोफ़ेसरों ने आगे बढ़कर उनको सहर्ष स्वीकार किया, और वे सुधार किए गए। अमेरिकनों में यह एक विशेष गुण है कि वे कोई उपयोगी बात, चाहे वह एक छोटी अवस्था और संसार के अनुभव से रहित युवक के मुँह से ही क्यों न निकली हो, ग्रहण करने में तनिक भी संकोच न करेंगे। व्यायाम-संबंधी शिक्षा का भी अमेरिका के विश्वविद्यालयों में प्रमुख स्थान है। क्या बालक और क्या बालिका, सभी को स्कूलों और कालेजों में किसी-न-किसी खेल में भाग लेना ही पड़ता है और यही कारण है कि आज वे शारीरिक, मानसिक और आर्थिक क्षेत्र में समस्त देशों से आगे बढ़े हुए दिखाई देते हैं। यह जानकर भी हमारे पाठकों को आश्चर्य होगा कि अधिकतर विद्यार्थी विद्यालयों में स्वाधीन जीवन व्यतीत करते हैं। उनको अपनी शिक्षा के लिये माता-पिता या अन्य संबंधियों से कुछ सहायता नहीं लेनी पड़ती। इसका कारण यह है कि वहाँ के विद्यालयों ने धनोपार्जन के साधनों का प्रबंध कर रक्खा है। लाइब्रेरी के भिन्न-भिन्न विभागों में—पत्रिका, वाचनालय तथा ऑफ़िस में—उनको नौकरी दी जाती है। लड़कियाँ दफ़्तरों में छापने का काम करती हैं। और भी ऐसे कई साधन हैं, जिनके द्वारा विद्यार्थी अपना स्वाधीन जीवन व्यतीत करने में समर्थ होते हैं। अमेरिका में ऐसे साधनों की कमी नहीं है।

× × ×

७. कुछ जानने-योग्य बातें

१—प्रशिया की सरकार ने क़ैसर को पहले ३ करोड़ मार्क देने की घोषणा की थी; पर अब वह डेढ़ करोड़ मार्क ही देने को तैयार है। क़ैसर की १६७ एकड़ जो ज़मीन थी, जिसमें डेल-राजमहल भी है, वह उन्हें न दी जायगी। फ़िलहाल क्रॉउन-प्रिंस उस महल में रहेंगे। क़ैसर को बर्लिन के बहुत-से महल और जायदाद छोड़ देनी पड़ेगी। उस सारी जायदाद की क़ीमत छः करोड़ मार्क है।

२—सन् १९२५ की पार्लियामेंटरी-ब्लूबुक-लाइसेंस का हिसाब प्रकाशित हुआ है। उससे यही मालूम होता है कि ब्रिटेन में बदमस्त शराबियों की संख्या घट गई है। सन् १९०५ में इँगलैंड में दो लाख ७० हज़ार ऐसे बदमस्त शराबी गिरफ़्तार किए गए थे, जिन्हें दंड दिया गया; पर सन् १९२५ में ऐसे लोगों की संख्या केवल ७५ हज़ार रह गई थी।

३—गत जून-महीने के अंत तक जर्मनी में ३ करोड़ टन के माल ढोनेवाले जहाज़ बनाए गए। उनमें ३४ लाख ९३ हज़ार टन के सिर्फ़ मोटर-जहाज़ ही बने। १ करोड़ ३२ लाख ४३ हज़ार टन के जहाज़ स्टीम से चलेंगे। गत वर्ष जर्मनी ने १३ लाख ३० हज़ार टन के जहाज़ बनाए थे। उनमें ४ लाख २८ हज़ार टन के जहाज़ कोयले से और ९ लाख ६ हज़ार पेट्रोल से चलते हैं। ६ लाख २ हज़ार टन के मोटर-जहाज़ बने थे। इस तरह कुल १ लाख ९८ हज़ार टन के जहाज़ गत वर्ष जर्मनी ने बनाए थे।

४—अमेरिका में इस साल १ करोड़ ९० लाख एकड़ ज़मीन में गेहूँ बोए गए हैं, और ६७ लाख एकड़ ज़मीन में अलसी। परसाल १ करोड़ ९१ लाख ९६ हज़ार ९०० एकड़ में गेहूँ, और ६२ लाख १ हज़ार १०१ एकड़ में अलसी बोई गई थी।

५—सन् १९२५-२६ ई० में सरकारी रेलों की आमदनी ५१ करोड़ रुपए हुई। भारत-भर की लंबी रेलवे लाइनों में फ़ी सदी ७५ सैकड़े सरकारी लाइन है। इस साल ५९ करोड़ ९० लाख मुसाफ़िरों ने सफ़र किया। अब की २ करोड़ ३० लाख मुसाफ़िर पिछले सालों से अधिक गए। माल भी ९६ लाख १० हज़ार टन ज़्यादा गया, जो परसाल से २० लाख टन ज़्यादा है।

६—रिपोर्ट से पता चलता है कि गत वर्ष कोलार की सोने की खान के लिये २५ पट्टे दिए गए। पिछले सालों की तरह सोना निकालने का काम केवल ४ कंपनियों ने ही किया। इस साल ३ लाख ९२ हज़ार ६८३ औंस सोना निकला, जिसके दाम २ करोड़ ३१ लाख ६७ हज़ार ८८२ रुपए हुए। पिछले साल ३ लाख ८३ हज़ार ६११ औंस सोना निकला था, जिसके दाम

२ करोड़ ४८ लाख ६५ हज़ार ७७१ रुपए थे। मैसूर-सरकार को सोने से कुल १२ लाख ६८ हज़ार २६६ रुपए रॉयल्टी में मिले। पिछले साल १४ लाख ११६ रुपए मिले थे।

७—दुनिया में सबसे छोटा घोड़ा सेटलैंड का है। यह २६ इंच ऊँचा है और १ मन १० सेर भारी। यह १५ जुलाई, १९२५ ई० को पैदा हुआ था।

८—एम्० सी० प्लूमर बोस्टन शहर का रहनेवाला है। इसकी अवस्था ७१ वर्ष की है। इसने हाल ही में बोस्टन से सानफ्रांसिस्को तक ४,२०० मील बाइसिकल पर ही चढ़कर यात्रा की है। यह ६० से १२५ मील तक रोज़ दौड़ता था।

९—एक बीमा-कंपनी की सन् १९१४ से १९२४ तक की रिपोर्ट में भिन्न-भिन्न देशों के लोगों की औसत लंबाई इस प्रकार लिखी गई है—

देश	लंबाई
स्कॉटलैंड	५ फ़ुट ८ ३/४ इंच
आयर्लैंड	५ फ़ुट ८ इंच
इँगलैंड	५ फ़ुट ७ १/२ इंच
वेल्स	५ फ़ुट ६ १/२ इंच
पंजाब (हिंदू)	५ फ़ुट ६ इंच
भारतीय क्रिश्चियन	५ फ़ुट ६ इंच
पारसी	५ फ़ुट २ इंच
मुसलमान	५ फ़ुट २ १/२ इंच
बंगाली (हिंदू)	५ फ़ुट ४ १/२ इंच
सी० पी० (हिंदू) } यू० पी० (हिंदू) }	५ फ़ुट ५ १/२ इंच
मदरासी (हिंदू)	५ फ़ुट ५ इंच
बंबई (हिंदू)	५ फ़ुट ४ इंच

१०—अंदाज़ा किया गया है कि अगर सारे लंदन-शहर के कूड़े को नई वैज्ञानिक प्रक्रिया से जलाया जाय, तो उससे ३ करोड़ रुपए की लागत की बिजली की ताक़त हर साल मिल सकती है।

११—अभी तक यह पढ़ते थे कि विलायत में इंजीनियरों ने ऐसी तर्कीब निकाली है कि एक समूचा मकान एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा दिया जाता है। पर यह पढ़कर हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि समूचा शहर ६ १/२ मील के फ़ासले से उठा लाकर दूसरे शहर से मिला दिया गया है। स्कॉटलैंड के बेलफ़-नगर में ईकहेक-नगर मिला दिया गया है। इस कार्य के प्रधान संचालक का नाम है मि० चॉर्ल्स रेडाक। यह एक प्रसिद्ध व्यापारी भी है। अधिक अचंभे की बात तो यह है कि बेलफ़-नगर बहुत ऊँचे पहाड़ों पर बसा हुआ है।

१२—लंदन की प्रदर्शिनी में कई तरह की तराज़ुएँ रक्खी गई थीं। उनमें एक तराज़ू ऐसी भी थी, जो लोगों के दस्तख़तों का वज़न बतला देती थी। सादा काग़ज़ पहले तौलकर दस्तख़त कर चुकने के बाद फिर तौला जाता था। दस्तख़त का वज़न मालूम हो जाता था, जो १ ग्रेन के १०० हिस्से का कोई हिस्सा होता था।

× × ×

८. युक्तप्रांत की पुलीस में मुसलमानों की अधिक संख्या

युक्तप्रांत में बंगाल की अपेक्षा मुसलमान कम और हिंदू अधिक—८६ फ़ी सदी हैं। शिक्षा और योग्यता में भी मुसलमान हिंदुओं से पिछड़े हैं। तथापि यहाँ न-जाने किस नीति के अनुसार सरकारी नौकरियों में सुयोग्य हिंदुओं की अपेक्षा अयोग्य मुसलमानों का ही अधिक ख़याल किया जाता है। हम आज केवल पुलीस-विभाग में ही सरकार की इस नीति का नमूना पेश करते हैं। युक्तप्रांत की कौंसिल में, कुछ दिन हुए, रायबहादुर विक्रमाजीतसिंह ने इस विषय में एक प्रश्न किया था। उसका उत्तर जो सरकार की ओर से दिया गया, उसी के आधार पर यह नोट लिखा जा रहा है। युक्तप्रांत की पुलीस में ऐसे डिपुटी-पुलीस-सुपरिंटेंडेंट, जिन्होंने इंस्पेक्टरी से तरक़्क़ी पाई है, फ़ी सदी ३० हिंदू, ४० मुसलमान और ३० ईसाई हैं। सन् १९२० से सन् १९२५ तक के बीच हिंदू-डिपुटी-सुपरिंटेंडेंटों की संख्या फ़ी सदी ३४ से घटकर २१ ही रह गई है। परंतु मुसलमान-डिपुटी-सुपरिंटेंडेंटों की संख्या फ़ी सदी ३० से बढ़कर ३५ हो गई है। युक्तप्रांत में ऐसे भी स्थान हैं, जहाँ कोतवाल मुसलमान ही रक्खा जाता है। काशी में २८ वर्षों से मुसलमान कोतवाल ही रहता है। कानपुर में भी लगातार १८ वर्षों से कोतवाल मुसलमान ही नियुक्त होता आ रहा है। बरेली में भी १८ वर्षों से मुसलमान कोतवाल अधिकारी होता है। आगरे में १२ वर्षों से बराबर मुसलमान कोतवाल देख पड़ता है। हाँ, लखनऊ एक ऐसा स्थान अवश्य हमें मालूम है, जहाँ शायद १५-२० वर्षों से मुसलमान कोतवाल नहीं आता। सरकारी

उत्तर से यह भी मालूम हुआ कि एक मुसलमान-पुलीस-अफ़सर अपने पहले के ६ योग्य हिंदू-अफ़सरों को नाँघ-कर तरक्क़ी पा गया। इसी तरह एक दूसरे मुसलमान-पुलीस-अफ़सर को ४ हिंदू-अफ़सरों के हक़ की उपेक्षा करके तरक्क़ी दी गई। एक तीसरे मुसलमान-कर्मचारी को, ३ हिंदू-सर्किल-इंस्पेक्टरों का हक़ रहते हुए भी, तरक्क़ी दी गई। मज़ा यह कि पूर्वोक्त हिंदू-कर्मचारियों के संबंध में यह भी स्वीकार किया गया कि उनकी सर्विस में कोई दाग़ या बदनामी नहीं थी, और उनका चाल-चलन बहुत अच्छा था। इस पर होम-मेंबर से यह कहा गया कि उन मुसल-मान-कर्मचारियों का, जिन्हें हिंदू-कर्मचारियों पर तरजीह दी गई, चाल-चलन कैसा था—उनकी सर्विस का ब्योरा बताइए। उत्तर मिला कि यह बात गोपनीय है। प्रकट नहीं की जा सकती। हमारे पाठक इसका अर्थ अवश्य ही समझ गए होंगे। हम इस विषय में अधिक न लिखकर इतना ही कहना चाहते हैं कि सरकार को इस विषमता पर ध्यान देना चाहिए। इससे हिंदू-कर्मचारियों में असंतोष फैले बिना नहीं रह सकता।

× × ×

९. निज़ाम-राज्य में मुसलमानों का पक्षपात

यह तो सबको मालूम है कि निज़ाम-राज्य की अधि-कांश प्रजा हिंदू है, और हिंदुओं के ही दिए कर से राज्य का सारा काम चलता है। राज्य में १२ हिंदू पीछे १ मुसलमान का औसत पड़ता है। अतएव चाहिए यह था कि निज़ाम-राज्य के अधिकांश नौकर हिंदू ही होते। पर 'केसरी' के एक लेख से यह मालूम हुआ कि वहाँ बड़-बड़े ओहदों पर प्रायः मुसलमान ही नियुक्त हैं। छोटी नौक-रियों पर भी अधिकांश मुसलमान ही देखे जाते हैं। केसरी ने सन् १९२५ की निज़ाम-राज्य के सिविल डिपार्ट-मेंट की क्लासीफ़ाइड लिस्ट ऑफ़् ऑफ़िसर्स से नीचे लिखा विवरण उद्धृत किया है—

एग्ज़ीक्यूटिव और सेक्रेटरियट-विभागों पर प्रतिमास ८१,२५५) ख़र्च होते हैं। इनमें केवल ९,६२५) हिंदू, ४००) पार्सी, १६ ०००) ईसाई और १,४००) योरपियन जाति के कर्मचारी पाते हैं। शेष सब रक़म मुसलमान-कर्मचारी पाते हैं। एग्ज़ीक्यूटिव ऑफ़िस के प्रेसीडेंट के ऑफ़िस में ३२५) से लेकर १,२००) मासिक तक के चार पद हैं। कुल २,४२५) ख़र्च होते हैं। इन चारों पदों पर मुसलमान कर्मचारी नियुक्त हैं। लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रेसीडेंट मुसलमान हैं। एक्स-ऑफ़िसियो सभासदों में २ मुसलमान हैं और १ हिंदू। सरकारी मेंबरों में ९ मुसलमान हैं और १ हिंदू। ग़ैरसरकारी मेंबरों में ५ मुसल-मान हैं और ३ हिंदू। एग्ज़ीक्यूटिव-कौंसिल के मेंबरों के वेतन में २९,५००) ख़र्च किए जाते हैं। इसमें से केवल ६,०००) रुपए ही हिंदू पाते हैं। चीफ़ सेक्रेटरियट में ५ जगहें हैं, जिनका मासिक वेतन ५,५२०) है। इन सब जगहों में मुसलमान हैं। पोलिटिकल सेक्रेटरियट में ८ जगहें हैं, जिनका मासिक वेतन ४,६५०) है। इन जगहों पर एक भी हिंदू नहीं है। फ़ाइनेंस सेक्रेटरियट में ९ जगहें हैं, जिनका वेतन ६,४१०) है। इसमें केवल ८००) हिंदुओं को नसीब होते हैं। रेवेन्यू सेक्रेटरियट में १५ जगहें हैं। मासिक ख़र्च १०,६७०) है। कुल मुसलमान भर्ती हैं। जुडीशियल सेक्रेटरियट में ८ जगहें हैं। मासिक ख़र्च २,८५० है। सब जगहों पर मुसलमान हैं। पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट में १२ जगहें हैं। इसमें २ हिंदू नौकर हैं। कुल ख़र्च ४,६७५) रुपए होता है, जिसमें ७००) हिंदुओं के हिस्से में आते हैं। मिलिटरी सेक्रेटरियट की चारों जगहों में मुसल-मान ही हैं, जिन्हें मासिक ४,०५०) दिए जाते हैं। कामर्स इंडस्ट्री सेक्रेटरियट में ६ जगहें हैं। एक हिंदू है, बाक़ी सब मुसलमान। मासिक ख़र्च ३,२५०) है। इसमें १८००) हिंदू पाते हैं। धर्मखाते में मुसलमान ही नौकर है। इसे ९००) मासिक मिलता है। डेवलपमेंट में ४ जगहें हैं। सब पर मुसलमान हैं। वेतन ३,५००) से ऊपर है।

इस विवरण से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि निज़ाम-राज्य में जातीय पक्षपात कितना अधिक है। इस-के विपरीत काश्मीर, जयपुर, ग्वालियर आदि हिंदू-राज्यों को देखिए, वहाँ मुसलमान किन-किन ओहदों पर और कितने नियुक्त हैं। किंतु हम इस संबंध में निज़ाम की शिकायत क्या करें, जब हमारी सरकार ही मुसलमानों के साथ अकारण रियायत का रुख़ रखती है, जैसा कि इससे पहले के नोट में यू० पी० के पुलीस-महकमे का विवरण पढ़ने से मालूम होता है।

× × ×

१०. विलायत में कोयले की हड़ताल

समाचार-पत्र पढ़नेवाले जानते ही होंगे कि विलायत में श्रमिकों की ओर से पूँजीपतियों का ज़ोरदार विरोध बर्से से

जारी है। इसी आंदोलन का एक अंग वहाँ की कोयले की खानों के खनकों की हड़ताल भी है। यह आंदोलन गत मई-महीने से फिर शुरू हुआ है, और अब तक जारी है। परंतु अभी तक कोई समझौता होता नहीं नज़र आता। यह हड़ताल सहज में मिटती नहीं देख पड़ती। इस हड़ताल को असल में सिविल-वार या घरेलू युद्ध कहना ही ठीक होगा। एक ओर देश के धनी पूँजीपति खानों के मालिक हैं, और दूसरी ओर देश के करोड़ों मज़दूर स्त्री-पुरुष। देश की सर्वसाधारण जनता की, जिसमें अधिकांश श्रमिक ही हैं, यह माँग है कि ये सब खानें किसी व्यक्ति-विशेष की संपत्ति न रहकर देश के लोगों की अर्थात् राष्ट्र की संपत्ति मानी जायँ, और जो लोग इन खानों में काम करते हैं, उनकी मज़दूरी या वेतन बढ़ा दिया जाय। विलायत की सरकार इस माँग का समर्थन नहीं कर रही है। गत मई-महीने में ही इस हड़ताल से ३½ करोड़ पौंड का नुक़सान हो चुका था। सर ग्लूबेल साहब ने हिसाब लगाकर बतलाया था कि रोज़ाना ३० लाख पौंड की हानि होती है। मज़दूर और मालिक, दोनों की हानि होती है। यह भयानक हड़ताल अगर और भी जारी रही, तो कर देनेवालों पर और अधिक कर लगाया जायगा। व्यापार की हानि होने के कारण अगले साल के बजट में भी घाटा आवेगा। इस हड़ताल से रेलवे की बहुत अधिक हानि हुई है। गत पहली जनवरी तक ही रेलवे की दो करोड़ पौंड की हानि हो चुकी थी, जिसका ब्योरा इस प्रकार है—

रेलवे	हानि
जी० डब्लू० रेलवे	......३१,६५,००० पौंड
एल्० एम्० एस्० ,,	.........६०,२०,००० ,,
एल्० एन्० ई० ,,	......६८,०४,००० ,,
एस्० आर० ,,	.......१५,०१,००० ,,

लोहे और इस्पात का रोज़गार एक तरह से बंद ही हो गया था। गत एप्रिल में ५,३६,१०० टन लोहे का सामान तैयार हुआ था; लेकिन जून-महीने में केवल १३,६०० टन ही का सामान बना। यही हाल इस्पात की चीज़ों का रहा। एप्रिल में ६,६१,००० टन इस्पात का सामान बना था; पर जून में ३२,१०० टन ही बना। इस हड़ताल ने जहाज़ से बाहर माल भेजने के रोज़गार और कल-शिल्प को भी बड़ी हानि पहुँचाई है। ऊपर इँगलैंड के सौदागरों को बाहर ४ करोड़ टन कोयला बाहर रफ़्तनी करना चाहिए था; किंतु भेजा जा सका केवल ६ करोड़ पौंड। इस प्रकार कोयले की रफ़्तनी घटने से सौदागरों को ५ करोड़ ४० लाख पौंड का नुक़सान उठाना पड़ा। ब्रिटिश के शिल्प में भी बड़ी उथल-पुथल मच गई है। दूर के देशों में जितनी विलायती माल की रफ़्तनी होती थी, उतनी नहीं की जा सकी। बल्कि हड़ताल के कारण वह क्रमशः घटती ही गई। कहाँ तक गिनावें, इस हड़ताल से इँगलैंड को हानि-ही-हानि नज़र आ रही है। धनी और ग़रीबों का संघर्ष आज दिन संसार के सभी देशों में फैल रहा है। इँगलैंड की इस हड़ताल का जो परिणाम होगा, उसका असर संसार-व्यापी होगा, इसमें संदेह नहीं। संसार के सभी राष्ट्रों के राजनीतिकों की दृष्टि इस ओर लगी हुई है।

× × ×

११. एशिया पर योरप की शनिदृष्टि

एशिया के बहुत-से देश तो गोरी योरपियन जातियों के अधीन अथवा उनका मुँह ताकनेवाले हो ही चुके हैं, केवल जापान आदि कुछ देश स्वतंत्र हैं। वे ही योरपियनों और अमेरिकनों की दृष्टि में काँटे की तरह खटकते हैं। योरप के पाँच बड़े-बड़े राष्ट्रों ने जब हेग-कमेटी का संगठन किया था, तब उनकी आशा और आकांक्षा यही थी कि योरप की सब जातियाँ मिलकर एक ऐसा शक्तिशाली संघ या गुट बना लेंगी, जो समग्र योरप को अपने दबाव में रखकर गोरी जातियों के परस्पर के झगड़ों को पहले निपटावेगा। उसके बाद वही सम्मिलित शक्ति जगत् को जीतकर अपने अधीन कर लेगी, और तब सब श्वेतांग जातियाँ सबको पद-दलित कर निष्कंटक शासन और शोषण का कार्य एकसाथ चलावेंगी। हेग की शांति-सभा में इस विषय की बार-बार आलोचना हुई थी। इस विषय पर एक प्रसिद्ध राजनीतिक के विचार हम पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं। उक्त लेखक लिखता है—"नेपोलियन के अभ्युदय के साथ ही योरप में भयानक युद्ध की आग जल उठी। उस समय फ़्रांस के विरुद्ध सारे योरप ने धावा बोल दिया। किंतु रण-निपुण नेपोलियन ने अकेले ही समग्र योरप से मोर्चा लिया, और विपक्षियों के हाथ-पैर फुला दिए। उस समय नेपोलियन की प्रबल इच्छा थी कि वह छोटे-से टापू में रहनेवाली कूटबुद्धि बनिए को

जाति अँगरेज़ों को नेस्तनाबूद कर डाले। उस समय भी कुचक्र रचकर कूटनीति के बल से इँगलैंड ने योरप में अपनी प्रधानता स्थापित करनी चाही थी। उस समय इँगलैंड ही के कारण संसार की शांति नष्ट हुई थी। अकेले इँगलैंड को छोड़कर और किसी जाति ने अन्य देशों में अपने उपनिवेश स्थापित करने का उद्योग नहीं किया। पहले स्पेन का जब अभ्युदय था, तब उसने जैसे पृथ्वी की अनेक जातियों का सर्वनाश करना चाहा था, और बहुत जगहों में उसे सफलता भी प्राप्त हुई थी, वैसे ही, स्पेन ही के अनुकरण पर, इँगलैंड ने भी अपने साम्राज्य को बढ़ाना चाहा। उस समय स्पेन पूरी तौर से डाकेज़नी करता था। पर उसकी दृष्टि भारत की ओर नहीं, अमेरिका की उपजाऊ ज़मीन पर लगी थी। किंतु फ़्रांस और इँगलैंड ने भारत पर नज़र डाली। उस समय टर्की का भी प्रबल प्रताप था। मिसर भी शक्तिशाली था। भारत में भी उस ज़माने में मुग़ल-बादशाह शक्तिहीन न थे। उन दिनों फ़्रांसवालों ने भारत में सौदागरी करने ही के उद्देश्य से पदार्पण किया। अपना राज्य स्थापित करने की या मुग़लों की सल्तनत छीनने की कल्पना भी उस समय उनके मस्तिष्क में न आई होगी। फ़्रेंचों के बाद अँगरेज़ भी यहाँ आए। उनका भी प्रकट उद्देश्य व्यापार ही था। थोड़े ही दिनों में ईस्ट-इंडिया कंपनी ने सारे भारत में अपने व्यापार के केंद्र बढ़ाना शुरू कर दिया। इँगलैंड के लोग विशेष रूप से भारत की उस समय की भीतरी स्थिति को जाँचने लगे। उधर स्पेन की अवस्था शोचनीय हो उठी। फ़्रेंच लोग अँगरेज़ों की तरह भारत में शक्ति-संचय न कर पाए थे; पर व्यापार में उनका मुक़ाबला उन्हीं अँगरेज़ों से पड़ा। नतीजा यह हुआ कि भारत में भी अँगरेज़ों और फ़्रेंचों में परस्पर मनोमालिन्य बढ़ने लगा। मुग़ल-बादशाह उस समय गोरी जातियों के भारत में अपना व्यापार विशेष बढ़ाने पर तीक्ष्ण दृष्टि रखने लगे। किंतु भारत के भाग्य में तो कुछ और ही लिखा था। भारत में जिन दिनों अँगरेज़ों और फ़्रेंचों के बीच व्यापारिक आधिपत्य के बारे में शतरंज की-सी चालें चल रही थीं, उस समय चीन अपनी असीम क्षमता के बल पर पूर्व-एशिया का शासन कर रहा था। उस समय तक अँगरेज़ सौदागरों के पैर अच्छी तरह चीन में नहीं जम पाए थे। चीन के लोग भी उस ज़माने में गोरी जातियों से बड़ी नफ़रत रखते थे। चीन में इस समय जैसे गोरी जातियाँ तरह-तरह से उसे अपने क़ाबू में करने की कोशिशें कर रही थीं—जिसका परिणाम युवक चीन का गोरी जातियों के विरुद्ध वर्तमान घोर आंदोलन है—वैसे ही उस ज़माने में भारत पर उनकी कृपा-दृष्टि थी। अंतर यही है कि चीन को अब तक वे अच्छी तरह हड़प नहीं सकीं, अब भी वह स्वतंत्र ही बना हुआ है, किंतु भारत उनके चंगुल में फँस गया। कारण यही था कि चीनवाले इनके असली रूप को शुरू से ही पहचान गए थे, और भारतवाले नहीं पहचान पाए। चीन समझ गया कि ये गोरे बनिए पहले अपना व्यापार फैलाते हैं, और फिर उसे सुरक्षित रखने के लिये राजनीतिक शक्ति भी हथियाने का मौक़ा ढूँढ़ते हैं। मौक़ा मिलते ही चूकने-वाले ये जीव नहीं। ख़ैर, उसके बाद घटनाचक्र ऐसा फिरा कि नेपोलियन की शक्ति नष्ट कर डाली गई। साथ ही नेपोलियन को परास्त करने के कारण इँगलैंड की इज़्ज़त और दबदबा भी पहले से कहीं अधिक हो गया। उन दिनों भारत में अँगरेज़ यथेष्ट शक्ति प्राप्त कर चुके थे। मिसर में भी अँगरेज़ पैर फैला चुके थे। गृह-कलह और नेपोलियन के साथ विश्वासघात करने के कारण उस समय फ़्रांस का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। नेपोलियन के क़ैद हो जाने पर अँगरेज़ निष्कंटक और अप्रतिद्वंद्वी हो गए। सारे योरप और एशिया में उनका प्रभाव दिन-दिन बढ़ने लगा। उसके बाद अनेकों लड़ाइयाँ हुईं। क्रमशः अँगरेज़ लोग एशिया में शक्तिशाली होते गए। इसके बहुत दिनों बाद फ़्रांस ने अपनी शक्ति को फिर सुसंगठित किया। उधर जर्मन साम्राज्य भी नई शक्ति का संचय करने लगा। इसी समय फ़्रांस के साथ प्रशिया (जर्मनी) की सरकार का युद्ध छिड़ गया। फ़्रांस की गहरी हार हुई। फ़्रांस की इस हार से इँगलैंड को और भी अधिक लाभ हुआ। उस समय स्पेन, इटली आदि देश भी कमज़ोर हो पड़े थे। इधर इँगलैंड और जर्मनी, ये दोनों राष्ट्र शक्तिशाली हो उठे। वाणिज्य के कारण दोनों में भीतरी लाग-डाँट भी चलने लगी। उधर रूस का हाल यह था कि वहाँ का ज़ार अब तक अप्रतिहत प्रभाव से अपने राज्य का शासन कर रहा था। रूस की ताक़त के बारे में बहुत कम लोगों को यथार्थ ज्ञान था। ख़ासकर नेपोलियन ने चढ़ाई करके रूस का जो सर्वनाश कर डाला था, उसका हाल

योरप की सभी जातियों को मालूम था, और साधारणतः सबकी यही धारणा थी कि रूस सिर नहीं उठा सकता। इसी कारण रूस की ओर किसी की विशेष दृष्टि नहीं थी। रूस ने भी इधर कहीं अपना साम्राज्य बढ़ाने की कोई चेष्टा नहीं की थी। गत ५० वर्षों के बीच जब एशिया में कई शक्तियों ने अपना पुनर्गठन किया, और चीन कमज़ोर हो पड़ा, तब रूस ने एशिया के पूर्वी सिरे पर धीरे-धीरे अपना राज्य बढ़ाने की चेष्टा की। कारण, उसने सोचा कि ख़ासकर जापान के अभ्युदय से भविष्य में उसकी क्षति हो सकती है। रूस को यही चिंता सताने लगी। इधर पासिफ़िक महासागर में रूस के जितने बंदरगाह थे, उनको भी हानि पहुँचने की संभावना थी। यही सोचकर रूस ने मँचूरिया और मंगोलिया में अपनी प्रधानता स्थापित करने की चेष्टा की। इस बीच में जगत् में कई युद्ध हुए। तब योरप के राष्ट्रों ने सोचकर देखा कि उन सभी के लिये अपना-अपना राज्य बढ़ाने की विशेष आवश्यकता है। ख़ासकर इस समय एशिया के राष्ट्र कमज़ोर होते जा रहे हैं। केवल पश्चिम-एशिया में टर्की और पूर्व-एशिया में जापान, ये दो राष्ट्र शक्तिशाली होने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिये हम गोरी जातियों का आपस में लड़ना-झगड़ना बहुत बुरा है। उन्होंने विचारा कि इस तरह आपस में लड़ने-झगड़ने से हम अपने राज्य या योरप के साम्राज्य का विस्तार न कर सकेंगे, और भविष्य में एशिया का बँटवारा कर हड़प लेने का विचार भी कार्य रूप में परिणत न हो सकेगा। यही सोचकर योरप की गोरी जातियों ने हेग में एक बैठक करके लीग की स्थापना की।" उसके बाद परस्पर की प्रतिस्पर्द्धा के कारण जर्मनी से महायुद्ध ठन गया। इधर का इतिहास पाठकों को मालूम ही है। हमारे कहने का मतलब यही है कि सौ वर्ष पहले जिस उद्देश्य से योरप की जातियों ने हेग में बैठक की थी, वह उद्देश्य अभी तक बना हुआ है। हेग-कमेटी का लक्ष्य ही आज जेनेवा की शांति-कमेटी का लक्ष्य है। नोट बहुत बढ़ जाने के कारण आज हम यह नहीं दिखला सके कि योरप की गोरी जातियों ने एशिया को फँसाने के लिये कैसा षड्यंत्र रचना शुरू कर दिया है, और वे भविष्य में एशिया के राष्ट्रों को किस तरह आपस में बाँट लेना चाहती हैं। गोरी जातियाँ अपने इस उद्देश्य को छिपाने के लिये तरह-तरह की कोशिशें कर रही हैं; पर सिंगापुर में जहाज़ी अड्डा स्थापित करने आदि कई उनके संकल्पों से उनका भीतरी उद्देश्य स्पष्ट समझ में आ जाता है। योरप की एशिया को पदानत करने की नीति एशिया के राष्ट्रों के लिये बहुत भयानक है। इसका एक-मात्र उपाय यही है कि एशिया के राष्ट्र भी आपस में मिलकर संघबद्ध हों। संतोष की बात है कि चतुर जापान इस भीतरी रहस्य को समझ गया है, और उसने एशियाई राष्ट्रों का संघ बनाने का काम शुरू कर दिया है। मनुष्य का मनुष्य की स्वतंत्रता हरने की चेष्टा करना अन्याय और अस्वाभाविक भी है। अतएव हमें पूर्ण विश्वास है कि योरप के राष्ट्रों का यह अनुचित उद्योग कभी सफल न होगा। तथास्तु।

× × ×

१२. ईसाई-मत पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव

ईसाइयों के और बौद्धों के बहुत-से सिद्धांत इतना मिलते-जुलते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। कुछ दिनों से यह किंवदंती सुनने में आ रही है कि ईसामसीह भारतवर्ष में आए थे, और उसके बाद उन्होंने योरप में जाकर अपने मत का प्रचार किया। अभी आर्य-समाज की ओर से स्वामी दयानंदजी महाराज की जो जन्म-शताब्दी मनाई गई थी, उसमें जन्म-शताब्दी-सभा ने ईसा का अज्ञात चरित्र या Unknown Life of Christ नाम की एक पुस्तिका छपाकर प्रकाशित की थी। उसके पढ़ने से यह निश्चय हो जाता है कि ईसामसीह अवश्य भारत में आए थे, और उन पर भारत के धर्म का विशेष प्रभाव पड़ा था। अब एक और आविष्कार से यह प्रमाणित हो गया है कि ईसामसीह पर बौद्ध-धर्म की शिक्षा का विशेष प्रभाव पड़ा था। इसी कारण उनके उपदेशों में बौद्ध-मत का स्पष्ट आभास मिलता है। अभी कुछ ही दिन हुए, प्रोफ़ेसर रोरिच-नामक एक सज्जन ने इस ऐतिहासिक सत्य का अनुसंधान किया है। आप अमेरिका की ओर से मध्य-एशिया में ऐतिहासिक पुरातत्त्व की खोज कर रहे हैं। आपको तिब्बत जाने पर वहाँ के बौद्ध-मठों में कुछ ऐसे हाथ के लिखे लेख मिले हैं, जिनके पढ़ने से मालूम होता है कि ईसामसीह भारत में बौद्ध-धर्म का अनुशीलन एवं अध्ययन करने अवश्य आए थे। वह २१ वर्ष की अवस्था में उपदेश देते हुए जेरूसलम पहुँचे थे। अब यह स्पष्ट हो गया कि ईसाई-उपदेशकों का यह कहना कि ईसा की शरण

आए बिना आया नहीं हो सकता, उनका सरासर भ्रम है। ईसामसीह ने प्रकारांतर से भारत के ही एक शांतिप्रद धर्म का उपदेश योरप को किया है। अब अमेरिका के धर्मोपदेशकों को भारत के उद्धार की चिंता छोड़कर अपने ही देश-भाइयों के उद्धार में लग जाना चाहिए। इससे वे कुछ काम भी कर सकेंगे। भारत तो उनके गुरु का भी गुरु है।

× × ×

१३. देशी चिकित्सा के लिये सरकारी उद्योग

देशी चिकित्सा विलायती चिकित्सा से सहज, सस्ती और भारतवासियों के लिये उपयोगी है, यह बात सर्वमान्य है। पर हमारी सरकार देशी चिकित्सा की उन्नति के लिये कुछ करती तो थी नहीं, बल्कि वह प्रकारांतर से डॉक्टरी चिकित्सा को ही प्रोत्साहन और सहारा देकर देशी चिकित्सा-पद्धति को हानि पहुँचा रही थी। फल स्वरूप दिन-दिन अच्छे वैद्यों का अभाव होता जा रहा है। राजा का अनुकरण करनेवाली प्रजा से भी वैद्यों-हकीमों को कुछ प्रश्रय नहीं मिलता। हर्ष की बात है कि देश के हितैषियों की चिल्लाहट से कुछ काम होता दिखलाई पड़ता है। वैद्यक और तिब्बी की उन्नति के उपायों के विषय में जाँच और विचार करने के लिये युक्तप्रांत की सरकार ने कुछ दिन पहले एक कमेटी नियुक्त की थी। उस कमेटी ने जाँच करके अपनी रिपोर्ट पेश कर दी। उसकी सिफ़ारिशों पर विचार करके सरकार ने अपनी जो राय ज़ाहिर की है, उसका संक्षिप्त सारांश हम अपने पाठकों की जानकारी के लिये यहाँ पर देते हैं—

कमेटी ने सिफ़ारिश की है कि (१) वैद्यक और तिब्बी की पढ़ाई के लिये एक स्कूल खोला जाय, जिसे सरकार सहायता दे; (२) ऐसा ही एक कॉलेज भी खुले; (३) इस स्कूल और कॉलेज से उत्तीर्ण छात्रों को ख़िताब और सनदें दी जायँ; (४) देशी चिकित्सा-पद्धति के स्कूलों और अस्पतालों आदि को जो सहायता की रक़म मिलती है, वह बढ़ाई जाय; (५) वैद्यक और तिब्बी-दवाओं के बारे में विशेष खोज की जाय; (६) एक बोर्ड ऑफ़् इंडियन मेडिसिन बनाया जाय, उसमें अध्यक्ष के सिवा २२ सदस्य और हों। उनका कार्य-काल ३ वर्ष हो। अध्यक्ष का चुनाव सरकार करे। सदस्य कुछ चुने जावें, और पसंद कर लिए जायँ। इस बोर्ड के काम ये होंगे—वैद्यक और हकीमी की चिकित्सा-पद्धति की तरक़्क़ी और संगठन के सभी मामलों में यह सरकार को सलाह दे। परीक्षाओं के लिये कोर्स बनावे। परीक्षक नियुक्त करे, और परीक्षाओं का प्रबंध करे। सनद, डिप्लोमा और ख़िताब दे। वैद्यों और हकीमों की रजिस्ट्री करे। सरकार से मिली हुई सहायता को बाँट दे। ख़ास-ख़ास बातों के बारे में समिति को परामर्श देने के लिये उपसमितियों का संगठन करे। इनमें से कुछ सिफ़ारिशों पर सरकार को अभी विचार करना है। वैद्यक और हकीमी के कॉलेजों को खोलने के बारे में सरकार काशी के हिंदू-विश्वविद्यालय और अलीगढ़ की मुसलिम-युनिवर्सिटी से बातचीत कर रही है। उसका यह भी विचार हो रहा है कि हरद्वार का ऋषिकुल-आयुर्वेदिक कॉलेज अर्द्ध-सरकारी आयुर्वेदिक स्कूल और लखनऊ का किंग्स-यूनानी शफ़ाख़ाना अर्द्ध-सरकारी तिब्बी स्कूल बना दिया जाय, और इन दोनों संस्थाओं को मुनासिब आर्थिक सहायता दी जाय। यू० पी० की सरकार ने देशी चिकित्सा के स्कूलों और अस्पतालों को सहायता देने के लिये अब की साल के बजट में ५० हज़ार रुपयों की रक़म बढ़ा दी है। पूर्वोक्त बोर्ड ऑफ़् मेडिसिन के बारे में गवर्नर ने अपने मंत्रियों के साथ कमेटी की सिफ़ारिशें मंज़ूर कर ली हैं। बोर्ड का अध्यक्ष सरकार का चुना हुआ होगा। प्रस्तावित २२ सदस्यों की जगह १८ सदस्य रखना मंज़ूर हुआ है। उनका चुनाव इस प्रकार होगा—इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ और अलीगढ़ की युनिवर्सिटियों की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिलों से एक-एक सदस्य, प्रांत की आयुर्वेदिक शिक्षा की संस्थाओं के दो प्रतिनिधि (एक का सरकार से स्वीकृत स्कूलों के अध्यापक निर्वाचन करेंगे, और एक को सरकार नामज़द करेगी) निर्वाचित होंगे। यू० पी० की यूनानी-शिक्षा की संस्था के भी ऐसे ही चुने हुए और नामज़द दो प्रतिनिधि रहेंगे। प्रांत में जो हकीम और वैद्य रजिस्टर्ड होंगे, उनके दो-दो प्रतिनिधि रहेंगे। युक्तप्रांतीय वैद्य-सम्मेलन और यू० पी० की अंजुमन तिब्बिया से एक-एक निर्वाचित सदस्य लिया जायगा। युक्तप्रांत की व्यवस्थापक सभा से दो सदस्य चुने जायँगे। दो सदस्यों की नामज़दगी सरकार करेगी। गवर्नर और उनके मंत्रियों ने इस बार अवध-चीफ़ कोर्ट के जज माननीय पंडित गोकर्णनाथजी मिश्र को बोर्ड का अध्यक्ष नामज़द किया है। साथ

ही नीचे लिखे सज्जन सदस्य मनोनीत किए गए हैं—आयुर्वैदिक विद्यालयों के प्रतिनिधि—१. डॉक्टर गुप्ता (ऋषिकुल-आयुर्वैदिक कॉलेज, हरद्वार के प्रिंसिपल), २. पंडित हरदत्त पांडेय (ललिताप्रसाद-आयुर्वैदिक पाठशाला, पीलीभीत के प्रिंसिपल) ; यूनानी-स्कूलों के प्रतिनिधि—३. तक्मीलुत्तिब्ब (लखनऊ) के हकीम अब्दुलहमीद शफ़ाउलमुल्क और ४. मसनातउलउलूम (प्रयाग) के हकीम अहमदहुसेन साहब ; रजिस्टर्ड वैद्यों के प्रतिनिधि—५. काशी-हिंदू-युनिवर्सिटी की आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी के कविराज प्रतापसिंह और ६. लखनऊ के पंडित शालग्राम शास्त्री आयुर्वेदाचार्य; रजिस्टर्ड हकीमों के प्रतिनिधि—७. हकीम अब्दुलहमीद और ८. हकीम ख़्वाजा शम्सुद्दीन साहब, लखनऊ, ९. रायबहादुर पं० कन्हैयालालजी, प्रयाग-हाईकोर्ट के रिटायर्ड जज, १०. माननीय सैयद आलेनबी, आगरा-म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन। इनके अलावा ये सदस्य निर्वाचित हैं—व्यवस्थापक सभा से ख़ाँबहादुर हाफ़िज़ हिदायतहुसेन बार-एट-ला एम्० एल्० सी० और रायसाहब लाला जगदीशप्रसाद एम्० एल्० सी०, लखनऊ-युनिवर्सिटी से डॉक्टर एम्० ज़ेड्० सिद्दीक़ी एम्० ए०, पी-एच्० डी०, प्रयाग-युनिवर्सिटी से डॉक्टर डी० आर० भट्टाचार्य डी० एस्-सी०, अंजुमन तिब्बिया (लखनऊ) से हकीम ख़्वाजा कमालुद्दीन साहब। इसमें संदेह नहीं कि निर्वाचन उपयुक्त हुआ है। हम आशा करते हैं, सरकारी सहायता और प्रश्रय पाकर देशी चिकित्सा-पद्धति फिर शीघ्र ही लोक-प्रिय हो जायगी, और हमारे देश के वैद्यों और हकीमों को अपनी उपयोगिता प्रमाणित करने का सुअवसर प्राप्त होगा।

× × ×

१८. हिंदुओं का शारीरिक गठन

लोगों की प्रायः यह धारणा हो रही है कि हिंदू लोग निर्बल होते हैं, और वे इसी कारण अन्य मांसाहारी जातियों के मुक़ाबले में नहीं ठहरते। किंतु यह धारणा भ्रांति-पूर्ण है। हिंदू निर्बल नहीं, भीरु हो गए हैं; और सच तो यह है कि हो नहीं गए, बल्कि बनाए गए हैं। अस्त्र-आईन की कड़ाई के कारण उनमें आत्मरक्षा के उत्साह का अभाव पाया जाता है। इसके सिवा अपनी भ्रांत धारणा के कारण कुश्ती लड़ना, कसरत करना, लाठी चलाना आदि को वे गुंडों का काम समझ बैठे हैं; नहीं तो शारीरिक गठन में हिंदू-जाति किसी जाति की अपेक्षा हीन नहीं है। यदि हिंदू व्यायाम करके और भी बल बढ़ावें, अंगों में फ़ुर्ती लावें, तो आपत्ति के समय वे बड़े-बड़े गुंडों का अनायास सामना कर सकते हैं, अपने देव-मंदिरों और स्त्रियों को आए दिन होनेवाले अपमान से बचा सकते हैं। हम यहाँ पर ओरियंटल गवर्नमेंट-सेक्युरिटी जीवन-बीमा-कंपनी की सन् १९१४ से १९२४ तक की डॉक्टरी रिपोर्ट से कुछ अंश उद्धृत करके यह प्रमाणित करेंगे कि भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों के हिंदुओं का शारीरिक गठन किसी से निकृष्ट नहीं। पंजाब और दिल्ली के हिंदू वज़न में अन्य प्रांतों के हिंदुओं की अपेक्षा भारी होते हैं। उनका डील-डौल भी लंबा-चौड़ा होता है। हड्डियाँ भी मज़बूत होती हैं। बंबई, मदरास और गुजरात के हिंदुओं का शरीर अन्य सभी प्रांतों के हिंदुओं के शरीर से हल्का होता है। पंजाबी हिंदुओं के अंगों का गठन तो योरपियनों के शारीरिक गठन का मुक़ाबला करता है। भारत के मुसलमान, बंगाली हिंदू और पारसी शारीरिक गठन में प्रायः समान होते हैं। ३०-३५ वर्ष पहले मध्यप्रदेश और यू० पी० के हिंदू पारसी लोगों से वज़न में भारी होते थे। किंतु अब पारसी उनसे बाज़ी मार ले गए हैं। सी० पी० और यू० पी० के हिंदुओं के साथ बंगाल के हिंदुओं का शरीरगत कोई पार्थक्य नहीं है। लेकिन देखा जाता है कि सी० पी० और यू० पी० के हिंदू क़द में नाटे होने पर भी ३५ वर्ष की अवस्था के बाद शारीरिक गठन में ख़ूब उन्नति करते हैं, और बंगाल के हिंदू इतनी अवस्था के बाद प्रायः मोटे और भद्दे हो जाते हैं। पारसी और पंजाबी हिंदुओं की छाती का गठन अन्य सब प्रांतों के हिंदुओं तथा अन्य जातियों से अच्छा होता है। ५ फ़ीट ७ इंच लंबे आदमियों की छाती औसत हिसाब से २ इंच ऊँची मान ली जा सकती है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों के हिंदुओं की लंबाई का हिसाब इसी अंक के "जानने-योग्य बातें"-शीर्षक में पाठकों को मिलेगा। विदेशियों में स्कॉटलैंड के लोग ५ फ़ीट ८$\frac{3}{4}$ इंच, आयर्लैंड के ५ फ़ीट ८ इंच, इँगलैंड के ५ फ़ीट ७ इंच और वेल्स के ५ फ़ीट ६$\frac{1}{2}$ इंच ऊँचे होते हैं। अतएव हिंदुओं के हताश होने की कोई आवश्यकता नहीं। प्रत्येक हिंदू को अपने स्वास्थ्य की रक्षा, बल-संचय और आपत्ति के समय अपनी और परिवार-परिजन की रक्षा के लिये अवश्य शारीरिक

आराम करना चाहिए। शारीरिक बल के बिना आत्मिक बल (अर्थात् उत्साह, साहस, दृढ़ता आदि) भी नहीं प्राप्त होता। और, जिस जाति के लोग आत्मिक बल तथा शारीरिक बल से शून्य होते हैं, उसको पग-पग पर कष्ट झेलने पड़ते हैं—अपमान सहना पड़ता है, जिसका उदाहरण आजकल के हिंदू हो रहे हैं।

× × ×

१५. एक विचित्र गणितज्ञ बालक

हिंदू लोगों की यह धारणा है कि मनुष्य पूर्व-जन्म की विद्या-बुद्धि का अधिकारी दूसरे जन्म में भी हो सकता है। थोड़ी ही अवस्था में बिना शिक्षा प्राप्त किए अगर कोई मनुष्य किसी विषय में अद्भुत पारदर्शिता दिखलावे, तो उसका कारण और क्या हो सकता है ? हाल में ऐसे ही एक अद्भुत गणितज्ञ बालक का हाल अख़बारों में प्रकाशित हुआ है। इस बालक का नाम राजनारायण है। अवस्था केवल १५ वर्ष की है। दक्षिण-भारत का रहनेवाला है। इस बालक की गणित-संबंधी प्रतिभा का अपूर्व चमत्कार देखकर लोग दंग हैं। यह बालक मदरास के मदुरा-नामक स्थान में उत्पन्न हुआ है। इसने स्कूल में बाक़ायदा कोई शिक्षा नहीं पाई, तो भी गणित में इसका ऐसा दख़ल है कि मदरास के बड़े-बड़े गणित के विद्वान् दाँतों-तले उँगली दबाते हैं। जिन्होंने अंक-शास्त्र या गणित में परीक्षा देकर एम्० ए० पास किया है, यह १५ वर्ष का बालक ऊँचे दर्जे के गणित में उनसे भी बाज़ी मार ले जाता है। मदरास-सरकार इस बालक की प्रतिभा देखकर इतनी संतुष्ट हुई है कि उसने उसकी शिक्षा के लिये ७५) मासिक की एक ख़ास वृत्ति देना मंज़ूर किया है। यह बालक और भी कम अवस्था से बड़े-बड़े गणित के सवालों को सहज में ज़बानी हल करके लोगों को आश्चर्य में डाल रहा है। मैसूर के प्रसिद्ध गणितज्ञ प्रोफ़ेसर के० बी० माधव और डॉक्टर आर० पी० परांजपे वग़ैरह ने इस बालक की जी खोलकर प्रशंसा की है। उनका कहना है कि मदरास ही में रामानुजाचार्य के समान सुप्रसिद्ध गणितज्ञ का जन्म हुआ था। यह बालक भी अपने समय का दूसरा रामानुज होगा। राजनारायण केवल गणित ही में दख़ल नहीं रखता, वह साहित्य भी ख़ूब जानता है। मैसूर-युनिवर्सिटी-यूनियन के सामने इस बालक ने शेक्सपियर और कालिदास की तुलनात्मक समालोचना करके श्रोताओं को मुग्ध कर लिया था। काफ़ी सहायता मिलने पर उक्त बालक के पिता का विचार पुत्र को योरप में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजने का है। ईश्वर इस अद्भुत प्रतिभाशाली बालक को चिरायु करें, जिसमें वह अपनी उज्ज्वल प्रतिभा से भारत के गौरव को विश्व-विख्यात कर सके।

× × ×

१६. गोरी जातियों का शिक्षा-प्रेम

भारत में कुछ तो विदेशी सरकार की उदासीनता के कारण और कुछ यहाँ के धनी लोगों की उदासीनता एवं जनता में शिक्षा की चाह न होने के कारण अज्ञान का अंधकार पूर्ववत् ही बना हुआ है। सैकड़े-पीछे ५-६ मर्द भी मुश्किल से कुछ लिख पढ़ लेते होंगे। पर गोरी जातियों में इसके विपरीत अद्भुत शिक्षा-प्रेम पाया जाता है। वहाँ की सरकारें भी यथेष्ट प्रोत्साहन तथा सहायता देती हैं। इसके सिवा देश के धनी लोग अपनी कमाई का बहुत कुछ अंश देश में नई-नई पद्धति से—सरल-से-सरल और रोचक उपाय से—सर्वांग-पूर्ण सफल शिक्षा का प्रचार करने के लिये दे डालते हैं। योरप और अमेरिका के देशों में फ़ी सदी ९९ लोग पढ़-लिख सकते हैं। उच्च शिक्षितों की संख्या भी काफ़ी है। तथापि वहाँ के बड़े-बड़े मस्तिष्क यही सोचा करते हैं कि देश के बालक-बालिकाओं की शिक्षा में किस बात की कमी है, शिक्षा देने के काम में क्या उन्नति की जा सकती है। इस मामले में इँगलैंड और अमेरिका का ही नंबर सबसे बढ़ा-चढ़ा है। उक्त देश के लोगों की हार्दिक इच्छा और चेष्टा यही है कि जाति का प्रत्येक पुरुष और स्त्री एकसाथ ऊँची-से-ऊँची शिक्षा प्राप्त करके देश को और भी उन्नत बनाने में सहायक हो, देश को समृद्धिशाली बनावे। वहाँ के लोग इस तत्त्व को अच्छी तरह जानते हैं कि जैसे शरीर का एक अंग जब स्फूर्ति को प्राप्त करता है, तो उसके सहयोग से स्वभावतः अन्य अंग को स्फूर्ति होती है, वैसे ही पुरुषों की शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों के भी संपूर्ण रूप से शिक्षित होने पर ही समाज का पूर्ण अभ्युदय होता है। देखें, हमारे देश के लोग कब इस सरल सत्य को समझ सकेंगे। योरप इसी आदर्श को आगे रखकर आज अपने यहाँ के देशों में शिक्षा के प्रचार की चेष्टा कर रहा है। हाल में वहाँ शिक्षा का एक नया

उपाय निकाला गया है, जिसके द्वारा शिक्षार्थी छात्रों को संसार के देशों तथा स्थानों का प्रत्यक्ष ज्ञान सहज में कराया जा सकेगा। समुद्री कॉलेज जहाज़ पर स्थापित कर, उस पर शिक्षार्थियों को देश-विदेश में घुमाने और इस नई प्रणाली से शिक्षा देने की व्यवस्था सर्वप्रथम इँगलैंड ने ही की है। फ़िलहाल एक बड़े जहाज़ का बंदोबस्त किया गया है। इस पर १०० विद्यार्थी और कुछ अध्यापक रहेंगे। साम्राज्य के अंतर्गत प्रत्येक प्रधान स्थान में यह जहाज़ कुछ दिन ठहरेगा। इस अवसर में छात्रगण भूगोल, भिन्न-भिन्न समुद्रों की आब-हवा, रास्ता-घाट और भिन्न-भिन्न देशों की अवस्था आदि के संबंध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करेंगे। उन्नति की इच्छा रखनेवाले देश उन्नति के लिये कैसे-कैसे उद्योग करते हैं, इसका यह एक उत्तम उदाहरण है। किंतु खेद की बात तो यह है कि जो इँगलैंड अपने यहाँ के बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिये ऐसे-ऐसे उद्योग करता है, वही अपने अधीनस्थ भारत के बालक-बालिकाओं की साधारण शिक्षा की ओर से भी अत्यंत उदासीन है।

× × ×

१७. हिंदू-विश्वविद्यालय के लिये माननीय जस्टिस गोकर्णनाथ मिश्र की अपील

काशी का हिंदू-विश्वविद्यालय हिंदू-जाति के लिये गौरव और आशा का स्थल है। उसमें, उसके प्रबंध और पढ़ाई में दोष हो सकते हैं, लोगों का मतभेद हो सकता है; पर वे दोष ऐसे नहीं हो सकते, जिनसे उसकी उपयोगिता या गौरव घट जाय। महात्मना मालवीयजी के अक्लांत अध्यवसाय से संस्थापित हिंदू-विश्वविद्यालय प्रत्येक हिंदू के लिये अभिमान की वस्तु है, इसमें संदेह नहीं। हाल में पं० गोकर्णनाथजी मिश्र ने हिंदू-जाति के धनी-मानी सज्जनों से—सहायकों और दाताओं से—इस विश्वविद्यालय की आर्थिक सहायता करने के लिये एक अपील प्रकाशित की है। उस अपील के पढ़ने से मालूम हुआ कि विश्वविद्यालय की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। हर साल ८¾ लाख की आमदनी और ख़र्च १० लाख रुपए होता है। अर्थात् १¼ लाख घटते हैं। सरकार केवल १ लाख रुपए की सहायता देती है। बाक़ी ख़र्च जनता की सहायता से किया जाता है। १¼ लाख की रक़म के अलावा बाक़ी भवन-निर्माण आदि कार्यों के लिये राजा-महाराजों और जनता ने ही चंदा दिया है। सरकार से सहायता की रक़म दूनी कर देने के लिये प्रार्थना की गई है। विश्वविद्यालय पर १८ लाख रुपए का क़र्ज़ है, जिसका चुकाना बहुत ज़रूरी है। यह क़र्ज़ा ज़मीन के लिये (छः लाख), अध्यापकों के रहने के मकानात बनवाने के लिये (चार लाख) और आय से अधिक ख़र्च चलाने के लिये (शेष आठ लाख) लिया गया है। विश्वविद्यालय के लिये एक करोड़ से ऊपर चंदा देने की प्रतिज्ञाएँ अब तक प्राप्त हो चुकी हैं। उसमें केवल ३० लाख रुपए वसूल हुए हैं। इसका नतीजा यह है कि विश्वविद्यालय को हर साल क़र्ज़ के ब्याज के मद्दे ८० हज़ार रुपए देने पड़ते हैं। दाता लोग यदि अपने चंदे की रक़म हर साल वादे के माफ़िक़ दे दिया करें, और सरकार भी अधिक सहायता करे, तो सब काम बन जाय। अगर सालाना आमदनी में ३ लाख रुपयों की वृद्धि हो जाय, तो विश्वविद्यालय के संचालक साहित्य, विज्ञान, कृषि, व्यापार, संगीत आदि की शिक्षा का प्रबंध कर सकेंगे। मिश्रजी ने अंत में यह प्रार्थना की है कि दाता लोग हर साल अपने दान की रक़म दे दिया करें, और अन्य समर्थ सज्जन भी यथाशक्ति आर्थिक सहायता देने की कृपा करें। हम देश के धनी सज्जनों, राजा-महाराजों और रईसों से प्रार्थना करते हैं कि वे विश्वविद्यालय को इस अर्थ-संकट से बचाने की उदारता दिखावें। विद्या-दान से बढ़कर पुण्य-कार्य दूसरा नहीं।

× × ×

१८. प्राच्य विद्या-सम्मेलन

अभी हाल में इलाहाबाद-युनिवर्सिटी के सीनेट-हाउस में अखिल भारतीय प्राच्य विद्या-सम्मेलन का चौथा अधिवेशन हुआ था। इसका कार्यारंभ ५ नवंबर के दिन किया गया। इस सम्मेलन में प्राच्य विद्याओं के अनेक बड़े-बड़े धुरंधर पंडित पधारे थे, जिनमें कलकत्ते के म० म० हरप्रसाद शास्त्री एम्० ए०, मदरास के पंडित के० शास्त्री, लाहौर के प्रोफ़ेसर ए० सी० विलनर और प्रयाग-युनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर म० म० पं० गंगानाथ झा डि० लिट्० के नाम विशेष उल्लेख-योग्य हैं। बंबई के प्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर जे० जी० मोदी ने सभापति के आसन को अलंकृत किया था। सर तेजबहादुर सप्रू और प्रयाग के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ए० एच्० मेकेंज़ी भी इस अधिवेशन में उपस्थित थे। मेकेंज़ी साहब बड़े



मिस्टर ए० एच्० मैकेंज़ी एम्० ए०, बी० एस् सी०, एम्० एल्० सी०

(युक्तप्रांत के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर)

योग्य और शिक्षा-प्रेमी व्यक्ति हैं। आप इस प्रांत में शिक्षा-प्रचार का विशेष उद्योग कर रहे हैं। सभापति मोदी महाशय ने प्राच्य गवेषणा-समिति की ओर से सन् १९१९ से डॉक्टर भांडारकर द्वारा संपादित महाभारत का एक विशुद्ध संस्करण प्रकाशित करने का कार्य आरंभ किया है। परंतु अभी तक भारतीय राजा-महाराजों से इस कार्य के लिये यथेष्ट सहायता न पाने के कारण वह कार्य अधिक अग्रसर नहीं हो सका। इस काम में यथेष्ट धन ख़र्च होगा, और इसीलिये राजा-महाराजों की सहायता बिना उसका संपन्न होना असंभव है। हम आशा करते हैं, जहाँ भारत के राजा लोग विलायत की अकारण यात्रा में, मोटरें और कुत्ते ख़रीदने या विदेशों में जाकर अपनी शान-शौक़त दिखलाने में लाखों रुपए ख़र्च कर डालते हैं, वहाँ ऐसे अत्यावश्यक स्थायी साहित्य के कार्य के लिये भी लाख-पचास हज़ार रुपए दे डालेंगे। अभी केवल अयोध्या के महाराज ने एक लाख रुपए देकर इस कार्य में सहायता की है। इस सम्मेलन में कई योरपियन प्रोफ़ेसर भी उपस्थित थे। ऑक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालय के अध्यापक रेवरेंड आर्ली, हावर्ड-विश्वविद्यालय के डॉक्टर माखवल के अमेरिका के पेंसिलवेनिया-विश्वविद्यालय के मि० एडगार्टन और ग्लासगो-विश्वविद्यालय के मि० ट्रीलटन इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे। भाषातत्त्व, नृतत्त्व, शिल्प-विज्ञान आदि उच्च विषयों पर विद्वानों के लिखे गवेषणा-पूर्ण बहुमूल्य निबंध भी पढ़े गए थे। म० म० गंगानाथ झा और डॉक्टर मोदी के भाषण भी बहुत महत्त्व-पूर्ण हुए। यह सम्मेलन वास्तव में बहुत अच्छा काम करेगा। हम इसके द्वारा प्राच्य विद्याओं की उन्नति होने की आशा करते हैं। अभी इसका कार्य-क्षेत्र उतना विस्तृत नहीं हो पाया है, पर कुछ दिन में उसके और भी विस्तृत होने की आशा की जाती है। महाभारत हिंदू-जाति का परम पूज्य आदरणीय ग्रंथ है। उसका एक विशुद्ध संस्करण यदि इस सम्मेलन की ओर से प्रकाशित हो जायगा, तो उससे बड़ा उपकार होगा।

× × ×

१६. अमेरिका-प्रवासी भारतवासी

समाचार-पत्र पढ़नेवालों को यह मालूम होगा कि सन् १९२३ में अमेरिका की सुप्रीम कोर्ट ने यह फ़ैसला कर दिया था कि अमेरिका में भारतीय हिंदुओं को वहाँ के नागरिक होने का अधिकार नहीं मिल सकता। इसका कारण यही दिखाया गया था कि हिंदू लोग आर्य-जाति के अंतर्गत नहीं सिद्ध होते। अमेरिका एक समृद्धिशाली देश है। वहाँ भिन्न-भिन्न देशों के लोग जीविका के लिये आकर बस गए और अब वहीं के निवासी हो गए हैं। हिंदू लोग भी वहाँ कम संख्या में नहीं गए थे, और उन्होंने वहाँ ज़मीन-जायदाद वग़ैरह भी कर ली थी। पर अमेरिकन लोग यह देख नहीं सकते कि विदेशी लोग आकर उनके देश में अड्डा जमावें। इसीलिये साधारण जनता का रुख़ देखकर सुप्रीम कोर्ट ने इस तरह का फ़ैसला किया था। इससे अमेरिका-प्रवासी हिंदुओं को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ा। अपनी ज़मीन-जायदाद अमेरिकनों के हाथ बहुतों को बेच डालनी पड़ी होगी। किंतु हाल में यह ख़बर मिली है कि अमेरिका के वाशिंगटन-प्रदेश में पंडित सखाराम-गणेश नाम के एक हिंदू सज्जन को नीचे की अदालत से अमेरिका के नागरिक होने का अधिकारी मान लिया गया है। संयुक्तराज्य

की सर्किटकोर्ट नाम की अपील-अदालत ने भी उक्त व्यक्ति के नागरिक होने के अधिकार को स्वीकार किया है। अब संभवतः संयुक्तराज्य के विचार-विभाग से सुप्रीम कोर्ट में फिर अपील की जायगी। अब की बार सुप्रीम कोर्ट अपने पुराने फ़ैसले को उलटती है या नहीं, यह देखना है!

× × ×

२०. हिंदू-संगठन की शोचनीय स्थिति

हम लोगों में यह बड़ा भारी दोष है कि हम लोग सामयिक उत्तेजना में आकर कार्य का आरंभ तो कर बैठते हैं, पर उसे बहुत दिन तक नहीं चला पाते। हमारे उत्साह का पारा उतर पड़ता है। इधर आक्रमण होने पर हिंदुओं में संघबद्ध होने की प्रवृत्ति जग उठी थी, और हिंदू-संगठन की धूम सुन पड़ती थी। पर आज हिंदू-संगठन का नाम भी नहीं सुन पड़ता, यद्यपि सिर पर संकट की तलवार वैसी ही झूल रही है, और हिंदू-समाज के दोषों में से एक का भी सुधार नहीं हुआ, हिंदू-समाज की कमज़ोरियाँ जैसी-की-तैसी बनी हुई हैं। इसका एक बड़ा भारी कारण तो यह जान पड़ता है कि हिंदू-संगठन का कार्य सच्ची लगन से करनेवाले कर्मवीरों का अभाव है। कुछ नामधारी नेता पहले सुयोग देखकर उठ खड़े हुए थे। पर अब वे हिंदू-हितों की रक्षा का नाम लेकर कौंसिल-चुनाव के क्षेत्र में पिल पड़े हैं। हिंदू-जाति चाहे रसातल में चली जाय, उन्हें तो अपनी लीडरी से मतलब। हम महामना मालवीयजी लाला लाजपतरायजी, स्वामी श्रद्धानंदजी अथवा भाई परमानंदजी की बात नहीं कहते। इनकी सचाई पर संदेह करने की गुंजाइश नहीं है। हम उन बरसाती मेढकों की तरह यत्र-तत्र प्लेटफ़ार्मों पर खड़े होकर हिंदू-संगठन का शोर मचानेवाले स्थान-स्थान के स्वयंभू लीडरों की बात कहते हैं, जो धूम मचाकर अब बिलों में जा छिपे हैं। हिंदू-संगठन कोई हँसी-खेल नहीं है, जो दो चार सभाएँ करने से ही देशव्यापी बन जाय। हिंदू-जाति मुर्दा हो रही है। उसकी अकर्मण्यता को दूर करना, उसे होश में लाना, उसे उसके यथार्थ रूप और परिस्थिति का ज्ञान कराना समय और साधना की अपेक्षा रखता है। बरसों लगकर तत्परता के साथ अज्ञानांधकार में पड़ी हुई हिंदू-जनता के कानों में जब हिंदू-संगठन का मंत्र फूका जायगा, तब कहीं सिद्धि प्राप्त होगी। हिंदू-संगठन का उद्योग इसलिये नहीं था कि मुसलमानों का मुक़ाबला किया जाय। हिंदू-संगठन का अन्यतम सामयिक उद्देश्य शुद्धि, अत्याचारियों से— वे चाहे हिंदू हों क्यों न हों—आत्मरक्षा करना भी अवश्य था; परंतु मुख्य ध्येय हिंदू-समाज की कमज़ोरियाँ दूर करना, उसे कार्यक्षम बनाना ही था। हमारे लखनऊ-शहर में ही उस साल, जब हिंदू-मुसलमान दोनों भाई नासमझी के कारण आपस में लड़ पड़े थे, मौलूदों के जवाब में जगह-जगह नित्य सत्यनारायण की कथा होते देखी गई थी। उस समय यदि कोई कहता कि हिंदू लोग यह सब मुसलमानों को चिढ़ाने के लिये कर रहे हैं, तो शायद हिंदू लीडर उसे जाति-द्रोही कहकर पीटने ही लगते। पर हम आज उनसे पूछते हैं कि यदि ऐसी बात न थी, तो फिर अब महल्ले-महल्ले सत्यनारायण की कथा क्यों नहीं होती? वह धर्म का उत्साह, वह हिंदू-संगठन का चाव कहाँ चला गया? है कोई माई का लाल हमारे इस प्रश्न का उत्तर देनेवाला? हम माने लेते हैं कि मुसलमानों को चिढ़ाने के लिये प्रकाश्य स्थानों में सत्यनारायण की कथा नहीं कराई जाती थी; किंतु अब वह क्रम क्यों बंद कर दिया गया? उसमें तो कुछ विशेष ख़र्च भी नहीं पड़ता था। हम समझते हैं, हर महल्ले में चंदा करके भी यह काम आसानी से चलाया जा सकता है। क्या हम शहर के 'लीडरान' और हिंदू धर्म के "संरक्षकों" से यह आशा कर सकते हैं कि वे इस पुण्य-कार्य के अनुष्ठान को फिर से जारी करा देंगे, और बराबर जारी रक्खेंगे, जिससे सहज में ही हिंदू-संगठन का बहुत कुछ काम हो सकता है। अस्तु। यह तो अपने शहरवालों से हमारा निवेदन हुआ। रहे अन्य शहरों, ग्रामों और क़स्बोंवाले हमारे भाई। उनसे भी हमारा निवेदन है कि वे अपने-अपने स्थान में हिंदू-संगठन का काम बराबर जारी रक्खें। हिंदू-संगठन का प्रश्न हिंदुओं के जीवन-मरण का प्रश्न है। अपने-अपने पास के देवालय में— जैसे मुसलमान भाई मसजिद में नमाज़ के समय नित्य एकत्रित होकर उपासना करते और परस्पर मेल-जोल बढ़ाते हैं—प्रत्येक हिंदू को सुबह-शाम दर्शनों के लिये अवश्य जाना और वहाँ कुछ देर तक ठहरकर सार्वजनिक उपासना में शामिल होना अपना कर्तव्य समझ लेना चाहिए। वहाँ गए बिना अन्न-ग्रहण करना पाप समझना चाहिए। जो लोग विद्वान् और जाति-हितैषी हैं, उन्हें लीडरी की लालसा छोड़कर निष्काम भाव से नित्य देवालयों में

साधकर एकभाव समता और जनार्दन की उपासना करना अथवा सिखलाना बना देना चाहिए। वहाँ वे आए हुए भाइयों को धार्मिक उपदेश दें, हिंदू-धर्म की ख़ूबियाँ समझावें, उन्हें धर्माचरण पर आरूढ़ करें, उन्हें देश की परिस्थिति से आगाह करें, जाति की दशा से परिचित करें, समाज की कुत्सित रूढ़ियों के बंधन से उन्हें मुक्त करें। तभी आसानी से सर्वत्र देश-व्यापी हिंदू-संगठन सहज ही में हो सकेगा, अन्यथा साल में एक-दो बार कहीं विशेषाधिवेशन करके हिंदू-महासभा के नाम का डंका पीट देने और लेक्चर झाड़ने से कुछ भी न होगा—कुछ भी न होगा।

× × ×

२१. कुछ जीवों की परमायु

साधारणतः मनुष्य की परमायु १०० वर्ष की मानी जाती है, वह चाहे जीने को १०-२० ही वर्ष जिए। किंतु अन्य जीवों की परमायु के संबंध में साधारण लोगों को कुछ नहीं मालूम। अतएव हम बुक ऑफ़ नालेज नाम की पुस्तक से कुछ पशु-पक्षियों की आयु का परिमाण यहाँ पर लिखते हैं। स्थल और जल के रहनेवाले सभी जीवों में कच्छप की आयु सबसे अधिक होती है। न्यू यार्क (अमेरिका) की ब्रोंक्स-पशुशाला में एक कछुआ है। उसकी अवस्था इस समय ३०० वर्ष से भी अधिक है। कछुए की आयु ३०० से ४०० वर्ष तक होती है। मगर की आयु भी कम नहीं होती। वह भी जल में ३०० वर्ष से कम नहीं जीता। अगर हम कहानियों और कहावतों पर विश्वास करें, तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि जल और स्थल, दोनों में रहनेवाले जीवों में मेंढक की उमर सबसे अधिक होती है। कहा जाता है कि पहाड़, पेड़ या कोयले के ढेर के भीतर बंद रहकर मेंढक १००० वर्ष तक भूखा-प्यासा ज़िंदा रह सकता है। लेकिन इसका काफ़ी सबूत पाए बिना इस पर विश्वास करने को हमारा जी नहीं चाहता। हाथी को सयाने होने में बहुत दिन लगते हैं, और उसके मरने में भी बहुत दिनों का समय लगता है ख़ूब हिफ़ाज़त से रहने पर १०० वर्ष जी सकते हैं। ईगल पक्षी भी सौ वर्ष तक ज़िंदा रहता है, लेकिन किसी-किसी की राय में वह २०० साल तक जीता रहता है। ह्वेल मछली की उमर भी बहुत लंबी होती है। जाननेवालों का कहना है कि साधारणतः ह्वेल मछली ५०० वर्ष तक ज़िंदा रहती है। किसी-किसी पकड़ी गई ह्वेल मछली की उमर वैज्ञानिकों ने १००० वर्ष की अंदाज़ी है। आगे एक सूची दी जाती है, जिससे यह मालूम होगा कि साधारणतः कौन जीव कितने दिन ज़िंदा रहता है—

पशु—	आयु का परिमाण
ख़रगोश	५ वर्ष
भेड़ा	१२ ,,
बिल्ली	१३ ,,
कुत्ता	४० ,,
बकरा	१५ ,,
गऊ	२५ ,,
सुअर	१० ,,
घोड़ा	२७ ,,
ऊँट	४० ,,
सिंह	४० ,,
हाथी	१०० ,,
मगर	३०० ,,
कछुआ	३५० ,,
ह्वेल	५०० ,,

पक्षी—	आयु का परिमाण
मुर्ग़ा	१० वर्ष
तीतर	१५ ,,
कबूतर	२० ,,
केनारी	२४ ,,
सारस	२४ ,,
मोर	३० ,,
हंस (बत्तख़)	५० ,,
तोता	५० ,,
कौआ	१०० ,,
राजहंस	१०० ,,
ईगल	१०० ,,
पेलीकैन	५० ,,
राबिन	१० ,,

यह भी देखा गया है कि बहुत-से पशु, और पक्षी १०० वर्ष तक जीवित रहते हैं। किंतु मनुष्यों में, १०० वर्ष की आयु का परिमाण होने पर भी, १०० में १ भी आजकल १०० वर्ष नहीं ज़िंदा रहता। यह उसके शरीर पर अत्याचारों और असावधानता का ही परिणाम है।

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक व्यय सहित वार्षिक मूल्य ६॥), छ मास का ४) और प्रति संख्या का ॥) है। वी० पी० से मँगाने में ≈) रजिस्ट्री के और देने पड़ते । इसलिये ग्राहकों को मनीऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छ महीने का ५) और प्रति संख्या का ॥=) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है, और प्रति मास शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को पत्रिका प्रकाशित हो जाती है। लेकिन ग्राहक बननेवाले चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो अगले महीने के शुक्ल-पक्ष की सप्तमी तक कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उसको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। लेकिन उक्त तिथि के बाद सूचना मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा और उस संख्या को ग्राहक ॥=) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ, या मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाक-घर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १५ रोज़ पेश्तर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंज़ूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए। हाँ, चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक ख़र्च प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, चित्र समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

पं० दुलारेलाल भार्गव

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई ...	... २०)	प्रति	मास
½ ,, या १ ,, ,, ...	... १२)	,,	,,
¼ ,, या ½ ,, ,, ...	... १०)	,,	,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,, ...	... ६)	,,	,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ४,००,००० पढ़े-लिखे, धनी-मानी और मध्य श्रेणी पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एवं प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०-५० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से अपेक्षाकृत कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो कीजिए।

मैनेजर माधुरी, लखनऊ



[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ५ { मार्गशीर्ष-शुक्ल ७, ३०२ तुलसी-संवत् (१९८३ वि०)— } संख्या ५
खंड १ { १० दिसंबर, १९२६ ई० } पूर्ण संख्या ५३

प्रोषितपतिका

(१)

बीजुरी बिलसि घन-अंक में जो केलि कैहै,
तो मैं ताको फूटी आँखि हूँ ते ना निहारिहौं ;
सारे बारि-बूँदन को बारिधि मैं बोरि दैहौं,
बसुधा ते बरखा-बयारि को निकारिहौं।
"हरिऔध" बैर करिहैं जो मो वियोगिनी ते,
तो मैं मोर-कुल को मरोरि मारि डारिहौं ;
आदर न दैहौं कबौं कादर पपीहन को,
बजमारे बादर को उदर बिदारिहौं।

(२)

मंजुल रसाल-मंजरीन को बिथोरि दैहौं,
रसना-बिहीन कैहौं कोकिल नकारे को ;
कुसुम-समूह की कुसुमता निवारि दैहौं,
मारि दैहौं गुंजत मिलिंद मतवारे को।
एहो "हरिऔध", जो सतैहै, दुख दैहै मोहिं,
बिरस बनैहौं तो सरोज रसवारे को ;
अंतक लौं सारे सुख-संत को नसाइ दैहौं,
अंत करि दैहौं मैं बसंत बजमारे को।

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"



विविध-विषय-विभूषित, साहित्य-सम्बन्धी, सचित्र मासिक पत्रिका।

विकसित मधुर मधु-लिप्त-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित्य-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष [illegible] खंड [illegible] | मार्गशीर्ष [illegible] तुलसी-संवत् [illegible] ([illegible] वि०) [illegible] दिसंबर [illegible] ई० | संख्या [illegible] पूर्ण संख्या [illegible]

प्रोषितपतिका

(१)

बीतत बिताये पल-पल जो पिया के बिन,

तो वे ताको युग आधिकहूँ न मन निहारिहैं।

प्यारे बालिन्दन को नाहि मन बौरि देहौ,

उमगि ने अलक अवलि को निवारिहैं।

"हरिऔध" बैन कहिहैं और तो विवशित है,

तो मैं मोर-कुल की भरोंस मारि डारिहैं।

आदर न देहैं कबौ बादर पपीहन को,

उमगे बादर को उदर विदारिहैं।

(२)

कमल रसाल-मंजरीन को निचोरि देहौं,

कमल-विहीन कैहौं कोकिल समाज को।

कुमुद समूह की कुमुदता निवारि देहौं,

मारि देहौं गंजन मिलिंद-समुदाय को।

कहो "हरिऔध", और कहिहै, तुम दीहै मोहिं,

विरस बनेंहौं तो मनोज रसवार को।

चंचल करौं मारे सुख-नैन को जमाइ देहौं,

जोग करि देहौं मैं अपत ब्रजराज को।

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

महाकवि भास

(पूर्वार्द्ध)

महामहोपाध्याय पं० गणपतिजी शास्त्री लिखते हैं कि उन्होंने पद्मनाभपुर के सन्निकट, मणिलिकर ग्राम में, किसी मठ से, प्राचीन संस्कृत-पुस्तकों का संग्रह करते-करते, कुछ भूर्जपत्र पाए। उनकी लिपि अत्यंत प्राचीन थी। ऐसा प्रतीत होता था कि तीन सौ वर्ष से अधिक के वे पत्र थे। उनमें कोई दस 'रूपक' उनको मिले, जिनके नाम निम्न-लिखित हैं—

(१) प्रतिज्ञानाटिका	(६) अविमारकम्
(२) स्वप्ननाटकम्	(७) बालचरितम्
(३) पंचरात्रम्	(८) मध्यमव्यायोगः
(४) चारुदत्तम्	(९) कर्णभारम्
(५) दूतघटोत्कचम्	(१०) उरुभंगम्

ग्यारहवीं भी कोई पुस्तक थी, परंतु आधा ही पृष्ठ लिखकर छोड़ दिया गया था। इसी प्रकार दूसरी यात्रा में उन्हें कटिरुत्ती के समीप, कैलाशपुर में, गोविंदपिषारोटि-नामक ज्योतिषी के पास से 'अभिषेक-नाटक' और 'प्रतिमा-नाटक' ये दो पुस्तकें मिलीं। साथ ही यह भी ज्ञात हुआ कि इन्हीं दो पुस्तकों के प्रतिरूप राजकीय पुस्तकालय (Palace Library) में भी हैं। ये केरल-लिपि के ग्रंथ थे, और अनुमान से तीन-चार सौ वर्ष के पुराने लिखे हुए थे। इस प्रकार उन्हें एक-एक करके तेरह रूपक मिले, जिनके प्राप्त होने की किसी को भी संभावना न थी। पंडितजी की इस अद्वितीय गवेषणा को जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

नाटक-प्रस्थान-रीति

प्रायः अन्य नाटक-ग्रंथों में देखा जाता है कि कवि लोग प्रथम 'नांदी' का प्रयोग करके फिर कहते हैं—"नान्द्यन्ते सूत्रधारः"। परंतु हमारे महाकवि भास के नाटक-चक्र में "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" इत्यादि कहकर फिर मांगलिक श्लोक पढ़े जाते हैं। तथाच 'प्रस्तावना' के स्थान में 'स्थापना' है। कालिदास, शूद्रक, हर्ष प्रभृति कवियों के नाटकों में प्रस्तावना ही में उनके नाम, वंश, स्तुति-निंदा आदि का वर्णन किया हुआ है; परंतु भास के नाटकों की स्थापनाओं में यह बात नहीं पाई जाती। कवि न अपना, न अपने वंश का, और न किसी अन्य का, किसी का भी परिचय नहीं देता। "अस्माकं राजश्रेष्ठः महीं प्रशास्तु", 'अस्माकं राजा (राजसिंहः) भूमिं प्रशास्तु" इत्यादि 'भरत-वाक्य' ग्रंथ के अंत में प्रार्थना-रूप से कहे गए हैं। इनमें अन्य ग्रंथों की तरह किसी राजा या अन्य व्यक्ति का नाम नहीं लिया गया। इस प्रकार इस महाकवि के ग्रंथों में नाटक-प्रस्थान-रीति अद्यतनीय नाटकों से अत्यंत भिन्न और अद्भुत है। यह सब कुछ स्वप्न-नाटक तथा अन्य नाटकों को देखने से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है।

इन नाटकों की पारस्परिक समता

महाकवि भास के निबंधों को देखने से हमें प्रतीत होता है कि इनकी स्वभाव-सुंदर, ललित तथा अनुपम शैली ऐसी अद्भुत है कि उसने अन्य कवियों की शैली को मात कर दिया है। इन नाटकों में यदि कोई सबसे उत्तम नाटक है, तो यही 'स्वप्न-वासवदत्त' नाटक, और ठीक इसी के बराबर का दूसरा नाटक 'प्रतिमा-नाटक' हो सकता है। स्वप्न-नाटक में जहाँ अर्थ विप्रलंभ-शृंगारात्मक शृंगार-रस के अनुरूप है, तो ठीक उसके तुल्य प्रतिमा-नाटक में धर्मवीर, पितृपरायण नायक से अनुगत करुण-रस प्रधान है।

इन समस्त नाटकों की समता कोई साधारण नहीं, परंतु बहुत-से स्थानों पर कई नाटकों में कुछ शब्द तथा वाक्य एक-से ही लिख दिए गए हैं। यथा—"एवं आर्यमिश्रान् विज्ञापयामि। किन्तु स तु मयि विज्ञापन-व्यग्रे शब्द इव श्रूयते", "अङ्क पश्यामि", ये वाक्य स्वप्न-नाटक, पंचरात्र, दूतघटोत्कच, बालचरित, मध्यम-व्यायोग और उरुभंग, सबमें एक-से हैं।

"इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्;
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः।"

—यह 'भरत-वाक्य' स्वप्न-नाटक और बालचरित में एक-सा है।

"भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु;
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।"

—यह श्लोक प्रतिज्ञा-नाटक, अविमारक और अभिषेक-नाटक, इन सबमें 'भरत-वाक्य' के रूप में मिलता है।

"इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः" यह वाक्य पंचरात्र में भी है। जिस प्रकार स्वप्न-नाटक के—

"उदयनवेन्दुसवर्णां वासवदत्ता बलौ बलस्य त्वाम्।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसंतकम्रौ भुजौ पाताम्।"

—इस मांगलिक श्लोक में उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसंतक, इन विशिष्ट पात्रों का नाम आया है, उसी प्रकार प्रतिज्ञायौगंधरायण, पंचरात्र, और प्रतिमा-नाटक, इन तीनों में विशिष्ट पात्रों के नाम मंगलाचरण के श्लोक में ही प्रदर्शित हो जाते हैं।

"लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता।"

—यह श्लोक चारुदत्त और बालचरित के प्रथम अंकों में ही आता है। "किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे"—यह श्लोकांश स्वप्न-नाटक और अभिषेक-नाटक के चतुर्थ अंकों में आता है।

"धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता" यह श्लोकपाद प्रतिमा-नाटक के द्वितीयांक और अभिषेक-नाटक के चतुर्थांक में आता है। इस प्रकार बहुत-से पाठ हैं, जो कि इनमें से प्रत्येक नाटक में मिलते-जुलते देखे जाते हैं।

नाटक के कर्ता का निर्णय

इस प्रकार इनमें से प्रत्येक नाटक का पाठ तथा शैली इत्यादि मिलने से यह सिद्ध होता है कि इन सब नाटकों का कर्ता एक ही है। अन्य जितने नाटक हैं, उनकी प्रस्तावना में कवि का नाम, वंश इत्यादि आता है; परंतु इन नाटकों में इसके विरुद्ध इन बातों का आभास-मात्र भी नहीं। इससे प्रतीत होता है कि महाकवि भास के समय में प्रस्तावना में कवियों के नामादि लिखने की रीति प्रचलित न थी। और, प्रस्तावना की जगह 'स्थापना' लिखने से ज्ञात हुआ कि ये ग्रंथ अद्यतनीय प्रचलित ग्रंथों से बहुत कुछ पूर्व के हैं। कुछ समय पहले स्वप्न-वासवदत्त का नाम-ही-नाम ज्ञात था; क्योंकि इसका उल्लेख राजशेखर ने सूक्ति-मुक्तावलि में किया है—

"भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।"

आचार्याभिनवगुप्तादि ग्रंथों से भी यह आभास मिलता था कि वत्सराज उदयन के स्वप्न-विषयक स्वप्न-वासवदत्त नाम की कोई पुस्तक थी। इससे ज्ञात होता है कि इस नाटक-चक्र का निर्माता महाकवि भास ही है। मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में कालिदास ने "प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य" यह लिखा है, तथा बाणभट्ट ने भी "सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः" यह कहकर हमारी बात की अत्यंत पुष्टि की है। कारण, सूत्रधार का प्रथम आरंभ इन्हीं नाटकों में होता है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि इन नाटकों का कर्ता महाकवि भास के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं।

महाकवि भास के काल का निश्चय

महामहोपाध्याय श्रीगणपति शास्त्री ने महाकवि का काल-निरूपण करते हुए बहुत कुछ लिखा है। उसका बहुत कुछ अंश हम मानते हैं। परंतु उनकी एक बात हमें ठीक नहीं जँची, जिसके कारण हमें लेखनी उठानी पड़ी। वह यह कि उन्होंने भास को पाणिनि से भी पूर्व का माना है। इस बात का हम अच्छी तरह विवेचन करेंगे। निर्णय करना पाठकों के ऊपर निर्भर होगा। अब क्रमशः भास की स्थिति के निश्चय के लिये कुछ लिखते हैं—

वैसे तो प्राचीन किसी भी कवि ने अपनी पूरी स्थिति की तिथि अथवा काल आदि यथार्थ रूप से नहीं लिखा, इसलिये उनके ग्रंथों में आए हुए नाम-देशादि की गणना करके हमें उनसे ऊपर के या नीचे के काल की ओर आना पड़ता है, और उसी के अनुसार समय स्थिर किया जाता है। सन् ११५६ ई० में स्थित वंद्यघटीय सर्वानंद ने अमरकोष की टीका में "शृंगार-वीर-करुण" इत्यादि श्लोकी व्याख्या में "त्वविशमात्मसात्कर्तुं उदयनस्य पद्मावतीपरिणयोऽर्थशृङ्गारः स्वप्नवासवदत्ते, तृतीयस्यैव वासवदत्तापरिणयः कामशृङ्गारः" इत्यादि लिखकर अर्थ शृंगार में स्वप्न-वासवदत्त-नाटक का स्मरण किया है। और, श्रीभद्राचार्य-गुप्त आदि ने अपने 'भरतनाट्यवेदविवृत्ति'-ग्रंथ में "क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्ते" इत्यादि से कंदुक-क्रीड़ा के विषय में स्वप्न-वासवदत्त का निर्देश किया है। इसी प्रकार 'चारुदत्त' तथा 'दरिद्र चारुदत्त'-नाटक का भी वर्णन किया है। यह ईसा की दशम शताब्दी में हुए थे। इसी प्रकार ध्वन्यालोक के कर्ता ने प्राचीन वामनाचार्य की 'काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति' में, चतुर्थ अधिकरण के तृतीय अध्याय में, स्वप्न-नाटक के चतुर्थांक में आए हुए एक श्लोक का सन्निवेश किया है—

"शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनी।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम।"

फिर 'प्रतिज्ञायौगंधरायण' के चतुर्थांकगत पद्य का चतुर्थ पाद "यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युद्ध्येत्" यह लिखा है, तथा पंचम अधिकरण के प्रथम अध्याय में—

"यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः ।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु
बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ।"

'चारुदत्त' के प्रथम अंक के इस श्लोक को उद्धृत किया है। यह ईसा की नवम शताब्दी में हुए थे। छठी शताब्दी में रहनेवाले दंडी कविराज ने—

"लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ।"

इस 'बालचरित' और 'चारुदत्त' के प्रथम अंक में स्थित श्लोक को अपने 'काव्यादर्श' के द्वितीय परिच्छेद में इस प्रकार लिखा है—

"लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
इतीदमपि भूयिष्ठमुत्प्रेक्षालक्षणान्वितम् ।"

और, ध्वन्यालोक में—

"मालतपक्ष्मकपाटं नयनद्वारं स्वरूपताडनेन ।
उद्घाट्य सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा ।"

यह आर्या स्वप्न-वासवदत्त में कही हुई मानी है। परंतु स्वप्न-नाटक की चारों उपलब्ध प्रतियों में से किसी में भी यह नहीं है। इस विषय में गणपतिजी शास्त्री कहते हैं कि इसमें किसी देखी हुई ललना की नवीनाभिलाषा की प्रतीति है। सो क्या यह वासवदत्ता के विषय में है, अथवा पद्मावती के विषय में? परंतु यह बात नहीं हो सकती; क्योंकि उसमें पूर्व-विवाहित वासवदत्ता के प्रवास-विप्रलंभ का ही वर्णन है। पद्मावती के विषय में भी यह आर्या नहीं हो सकती; क्योंकि दर्शक ने वत्सराज के प्रति स्वयं ही परिचय दिया था। और, चूँकि वत्सराज उदयन वासवदत्ता की स्मृति में शोकाकुल था, इसलिये उसने पद्मावती के प्रति अभिलाषा जतलाते हुए कभी यह नहीं कहा होगा। इसलिये यह स्वप्न-वासवदत्त का श्लोक नहीं हो सकता।

इसी प्रकार साहित्य-दर्पण की आठवीं कारिका के विवरण में—

"उत्साहातिशयं वत्स तव बाल्यं च पश्यतः ।
मम हर्षविषादाभ्यामाक्रान्तं युगपन्मनः ।"

यह श्लोक बालचरित का कहा हुआ माना गया है, और साथ ही "दाशरथिं प्रति भार्गवस्योक्तिरियम्" यह भी कहा है। परंतु हमारे बालचरित में कृष्ण-लीला का वर्णन है। इससे इस श्लोक का हमारे बालचरित में न मिलना युक्तिसंगत है।

भामह ने ध्वन्यालोक के चतुर्थ परिच्छेद में न्याय-विरोध का वर्णन यों किया है—

"विजिगीषुमुपन्यस्य वत्सेशं वृद्धदर्शनम् ।
तस्यैव कृतिनः पश्चादभ्यधाच्चरशून्यताम् ॥ ४० ॥
अन्तः योधशताकीर्णं सांकलायननेतृकम् ।
तथाविधं गजच्छद्म नाज्ञासीत् स स्वभूगतम् ॥४१॥
यदि वोपेक्षितं तस्य सचिवैः स्वार्थसिद्धये ।
अहो नु मन्दिमा तेषां भक्तिर्वा नास्ति भर्तरि ॥४२॥
शरा दृढधनुर्मुक्ता मन्युमद्भिररातिभिः ।
मर्माणि परिकृन्तन्तस्य पतिष्यन्तीति का न मा ॥४३॥
हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम ।
मातुलो भागिनेयश्च रुषा संरब्धचेतसा ।
अस्यन्तो विविधान्याजावायुधान्यपराधिनम् ।
एकाकिनमरण्या (?) न हन्युर्बहवः कथम् ।
नमोऽस्तु तेभ्यो विद्वद्भ्यो येऽभिप्रायकवेरिमम् ।
शास्त्रालोकाः वयमेव नयन्ति नयवेदिनः ।
सचेतसां वनेभस्य चर्मणा निर्मितस्य च ।
विशेषं वेद बालोऽपि कष्टं किमु कथं नु तत् ।"

इस समस्त समालोचना का विषय 'प्रतिज्ञा-नाटक' ही में है। इस नाटक के प्रथमांक में "अणेण मम भादा हदो, अणेण मम पिदा, अणेण मम सुदो" इत्यादि जितने प्राकृत-वाक्य हैं, वे समस्त ही "हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम" इत्यादि श्लोक में भामह ने कह दिए हैं। इससे यह न्याय-विरोध लिखने के पहले अवश्य ही प्रतिज्ञा-नाटक देखा होगा। संभव है, नाटक का नाम भामह ने इसलिये न लिखा हो कि उस समय यह नाटक बहुत प्रसिद्ध होगा, और नाम लिखे बिना ही वह जाना जा सकता होगा। यदि कोई कहे कि बृहत्कथा में भी इसका वर्णन है, अतः भामह ने बृहत्कथा से ही इसे समुद्धृत किया होगा, तो यह भी ठीक नहीं; क्योंकि "हतोऽनेन मम भ्राता" यह पाठ प्रतिज्ञा-नाटक में ही आता है, बृहत्कथा में नहीं। और, भामह कालिदास से भी पूर्व का है, इस बात को शास्त्रीजी ने अपनी भूमिका में अच्छी

तरह दिखा दिया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि भास भामह से भी प्राचीन है।

बहुतों ने सुना होगा कि चंद्रगुप्त के समय में नंदों को उन्मूलित करके उसे राज्य दिलानेवाले कौटिल्य विष्णुगुप्त ने—जिसको चाणक्य भी कहते हैं—"कौटिल्य अर्थ-शास्त्र" नाम का एक ग्रंथ बनाया है। कौटिल्य ईसा की चतुर्थ शताब्दी में हुआ था। वह युद्ध का वर्णन करते समय मंत्री और पुरोहितों से सेना को युद्ध के लिये प्रोत्साहन मिलने के विषय का वर्णन करते हुए कहता है—"तुल्य-वेतनोऽस्मि, सहभोग्यमिदं राज्यम्, मयाभिहितः परोऽभिहन्तव्यः। वेदेष्वपि अनुश्रूयते समाप्तयज्ञानामवभृथेषु—'सा ते गतिर्या शूराणामिति।' अपीह श्लोकौ—

यान् यज्ञसंघैस्तपसा च विप्राः
　　स्वर्गैषिणः पात्रचयैश्च यान्ति।
क्षणेन तानप्यतियान्ति शूराः
　　प्राणान् सुयुद्धेषु परित्यजन्तः।
नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं
　　सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद्-
　　यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्।

इति मन्त्रिपुरोहिताभ्यामुत्साहयेद्योद्धॄन्।" इसका भाव यह है कि जो मनुष्य अपने स्वामी के हेतु अपना जीवन त्यागते हैं, उनको वह फल मिलता है, जो कि स्वर्गेच्छु मनुष्य अखंड तपस्या करने पर भी नहीं प्राप्त कर सकता। और, उस मनुष्य को, जो अपने स्वामी के हेतु युद्ध नहीं करता, पानी का पात्र भी पीने के लिये न मिले, और उसे सीधा नरक मिले, इत्यादि बातों से सेना को प्रोत्साहन देने के विषय में कहा गया है। 'नवं शरावं' यह श्लोक 'प्रतिज्ञा यौगंधरायण' में योद्धाओं के प्रति कहा गया है।

अब प्रश्न यह है कि क्या यह श्लोक अर्थ-शास्त्र से नाटक में लाया गया है, अथवा नाटक से अर्थ-शास्त्र में आया? इसके प्रमाण में हमें प्रसंग देखना चाहिए, जिससे पता लग जायगा कि किसने किससे लिया। प्रथम चाणक्य ने अपने ग्रंथ अर्थ-शास्त्र में योद्धा के लिये स्वामी के हेतु मर जाने के गांभीर्य तथा गौरव को दिखाते हुए "तुल्य-वेतनास्मि" इत्यादि कहा है, और फिर इसी बात का समर्थन करते-करते एक श्रुति का प्रमाण दिया है—"सा ते गतिः शूराणामिति।" पुनः इसका अधिक समर्थन के लिये आवश्यकता पड़ी कि वह किन्हीं अन्य शास्त्रों, नाटकों और स्मृतियों के प्रमाणों को कहे। इसीलिये उसने कहा—"अपीह श्लोकौ भवतः।" यहाँ 'अपि'-शब्द से पूर्वोक्त श्रुति के प्रमाणानुसार ये दो श्लोक भी प्रमाण-रूप से उपस्थित किए गए प्रतीत होते हैं। और, यज्ञसंघैरित्यादि श्लोक में 'यान्' (जिन अज्ञातफलों को), 'तान्' (उन अज्ञातफलों को)—अर्थात् जिन अज्ञातफलों को अमुक मनुष्य नहीं पाते, उनको अमुक मनुष्य आसानी से ग्रहण कर लेते हैं इत्यादि—यत् और तत्-शब्दों से किसी अन्य ग्रंथोक्त अज्ञात विशेष्य—कामलक्षण व लोकलक्षण—आकांक्षित फल ज्ञात होते हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये दो श्लोक चाणक्य के अपने नहीं हैं। साथ ही यदि कोई कवि या ग्रंथकर्ता किसी अन्य के श्लोकों को अपने ग्रंथ में निवेशित करता है, तो अनुवाद-चिह्न या निवेशित-चिह्न अवश्य ही किसी-न-किसी प्रकार दे देता है। यदि महाकवि भास ने इस श्लोक को अर्थ-शास्त्र से लेकर लिखा होता, तो वह अवश्य उसका नाम-निर्देश करता। इसलिये स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह श्लोक भास का अपना ही है, और यह चतुर्थ शताब्दी में स्थित अर्थ-शास्त्र के कर्ता चाणक्य से भी पूर्वभव है।

यहाँ तक हमारा और पं० गणपतिजी का मत एक है, और यह उन्हीं की भूमिका का अनुवाद-मात्र है। परंतु यहाँ से आगे हम उनकी एक बात भी नहीं मानते। उन्होंने भास का काल निरूपण करते-करते उसे व्याकरणकार पाणिनि से भी पूर्व का माना है। परंतु उसका काल पाँचवीं और छठी शताब्दी के अंतर्गत रक्खा है। भास को पाणिनि मुनि से पूर्व मानने के विषय में उन्होंने कोई अखंडनीय तथा प्रबल युक्ति नहीं दी, किंतु भास के आर्ष प्रयोगों को ही लक्षित करके इसी पर ज़ोर दिया है, और कहा है कि चूँकि ये प्रयोग प्रमाद-पठित नहीं हो सकते, इस कारण भास के समय पाणिनि का व्याकरण नहीं बना था, और इसी कारण उसने वाल्मीकि-व्यासादि के समान बहुत-से पाणिनीय व्याकरण के विरुद्ध आर्ष-पदों को अपने नाटकों में सन्निविष्ट किया। परंतु यह बात विचारने-योग्य है। हम अपने पाठकों का ध्यान प्रतिमा-नाटक की ओर आकर्षित करते हैं। प्रतिमा-नाटक के पंचमांक में कवि ने रावण के मुख से रामचंद्र के प्रति कहलाया है—

"ओः काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पमित्यादि ।" इसमें "मानवीयं धर्मशास्त्रं" और "मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं" इन दो वाक्यों पर विचार करना है। पंडितजी ने कहा है कि मनु का टीकाकार मेधातिथि उनके भास का वक्तव्य नहीं है ; क्योंकि इसका नाम बृहस्पति, प्राचेतस् और माहेश्वरादि ऋषियों के साथ आया है। मनु-टीकाकार मेधातिथि का संबंध इन ऋषियों के साथ नहीं हो सकता। इसलिये यह कोई और मेधातिथि होगा। हम इस बात को थोड़ी देर के लिये छोड़कर मनु महाराज की ओर आते हैं। मनु महाराज कब हुए, और उन्होंने मनु-संहिता कब बनाई ? बोथलिंक के मतानुसार मनु-संहिता को बौद्ध-धर्म-प्रचारक शाक्य मुनि से पहले तथा वार्त्तिककार कात्यायन से बाद की बनी हुई माना गया है। मनु के शाक्य मुनि से पूर्व होने के विषय में केवल एक बात कह देनी उचित है। मनु यदि शाक्य मुनि के पीछे होते, तो वह अहिंसा-धर्म का प्रचार करते ; क्योंकि गौतम के पीछे पाँच शताब्दी से भी अधिक अहिंसा-धर्म की लहर चली थी। उन्होंने जीवन-फलों को कहते हुए निर्वाण का नाम भी कहीं नहीं लिया, बल्कि—

"मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने ।"

यहाँ से तीस के लगभग श्लोकों में मांस के भक्षण का प्रतिषेध करके प्रवृत्तिवाले पुरुषों के लिये विधान किया है, और श्राद्ध-देव-पितृकृत्यों में मांस खाने के दोष को भी हटा दिया है। मधुपर्कादि में भी मांस का प्रयोग लिखा है, तथा वैदिकी हिंसा को भी अहिंसा करके लिखा है। इससे ज्ञात हुआ कि मनु-संहिता शाक्य मुनि से पूर्व बनी थी। इस विषय में और भी असंख्य युक्तियाँ हैं ; परंतु यह बात सर्वसम्मत होने से विस्तार-भय के कारण नहीं लिखी जाती। मनु-संहिता वार्त्तिककार कात्यायन के पीछे बनी, इसके प्रमाण में एक पाणिनीय सूत्र है—"अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः ।" इसका भाष्य यह है—"अस्तीत्यस्य मतिः आस्तिकः । नास्तीत्यस्य मतिः नास्तिकः ।" कात्यायन के काल में भी यह लक्षण प्रचलित था। परंतु बहुत काल व्यतीत होने पर जब लोगों का वेद पर विश्वास कुछ कम-सा होने लगा, तो मनु ने इस बात को हटाने के हेतु "नास्तिको वेदनिन्दकः" ऐसा लक्षण गढ़ दिया। यदि मनु कात्यायन से पीछे के न होते, तो वह भी पूर्वोक्त लक्षण कहते, और नवीन लक्षण बनाने की आवश्यकता न होती।

इस प्रकार इससे यह प्रतीत होता है कि मनु-संहिताकार कात्यायन से पीछे हुए। इस विषय में स्वामाजीजी ने और भी युक्तियाँ दी हैं, जो कि पढ़ने-योग्य हैं। अब कहना यह है कि "मानवीयं धर्मशास्त्रं" कहकर भास ने अपने को मनु से पीछे हुआ माना है। जब मनु वार्त्तिककार कात्यायन से पीछे हुए, तो पंडित गणपतिजी कैसे भास को पाणिनि से पूर्वभव कह सकते हैं ? कारण, पाणिनि के पीछे कात्यायन हुए, कात्यायन के पीछे मनु-संहिता बनी, मनु-संहिता के पीछे भास कवि हुए। इसलिये भास पाणिनि से भी पूर्व हुए हैं, यह कहना असंगत है।

दूसरे 'मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं' इत्यादि में भास ने मेधातिथि का नाम लिया है, जिससे प्रतीत होता है कि भास मेधातिथि से पीछे हुए। परंतु यह मेधातिथि कौन था ? शास्त्रीजी ने इसे मनु-टीकाकार न मानकर कोई अन्य ऋषि माना है, जो किसी न्यायशास्त्र का कर्ता था। परंतु उसका वह न्यायशास्त्र कहीं भी नहीं पाया गया। इससे पंडितजी ने अनुमान किया है कि यह मेधातिथि मनु-टीकाकार न होकर कोई अन्य ऋषि होगा। मैं भी इस विषय में कोई निश्चित बात नहीं कहता। पाठकों के आगे अपने विचार रक्खूँगा, और यदि कोई उनके विपरीत प्रबल युक्ति या प्रमाण पाऊँगा, तो उसे सर्वथा मानने के लिये उद्यत रहूँगा।

पहले कहा जा चुका है कि शाक्य मुनि पाँचवीं और छठी शताब्दी के मध्य में थे, और इन्होंने अपनी अहिंसा और बुद्ध-धर्म का प्रचार बड़े ज़ोर-शोर से किया था। उस समय ब्राह्मण लोग और वेद के माननेवाले इन्हें 'पाषंड'-शब्द से पुकारने लगे। यही विषय भागवत-पुराण में भी इस प्रकार कहा गया है—

"यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रो हयजिहीर्षया ;
तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डमिहोच्यते ।
एवमिन्द्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया ;
तद्गृहीतविसृष्टेषु पाषण्डेषु मतिर्नृणाम् ।
धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु ;
प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ।"

इनकी टीका करते हुए श्रीधर स्वामी कहते हैं—"नग्नाः जैनाः रक्तपटाः बौद्धाः आदिशब्देन कापालिकादयः।" इसी 'पाषंड'-लक्षण का अनुकरण करके 'पाषण्डिनो विकर्मस्थान्' (अ० ४, श्लो० ३०) इत्यादि मनु के श्लोक की टीका करते हुए मेधातिथि ने "पाषण्डिनो बाह्यलिङ्गिनो रक्तपटनग्नचरकादयः" इत्यादि बौद्धों को ही लक्षित करके लिखा है। पर वास्तव में यह ठीक अर्थ नहीं है; 'पाषण्डाः सर्वलिङ्गिनः" इत्यादि अमरसिंह के वचनानुसार यथेच्छ धर्मचिह्न धारण करनेवालों को ही पाषंडी कहा है। पर हमें इससे कोई मतलब नहीं। हमारे प्रकृत अर्थ में यह बात सिद्ध हुई कि बौद्ध-काल के पीछे भागवत का प्रचार हुआ, और भागवत-पुराण के प्रचार-काल में ही, उसे देखकर मनु-संहिता के टीकाकार ने पाषंड-शब्द को बौद्धों के प्रति प्रयुक्त किया। इससे प्रतीत होता है कि मेधातिथि कहीं चौथी शताब्दी के आगे या थोड़ा पीछे हुआ होगा। संभव है, यह महाकवि भास का समकालीन हो। और, इसी से संभव है, उसके न्यायशास्त्र के अतीव प्रसिद्ध होने के कारण भास ने उसका नाम लिख दिया हो।

शास्त्रीजी ने भास को पाणिनि से पूर्व का बतलाया है। यह बात कभी ठीक नहीं हो सकती। यदि और विद्वानों का मत देखा जाय, तो भी पाणिनिजी भास से पहले के प्रतीत होते हैं। श्रीभांडारकर महोदय इन्हें छठी शताब्दी के पूर्व का ही मानते हैं। श्रीदक्षिणारंजन भट्टाचार्य बी० ए० ने भी ऐसा ही माना है।

एक बात और है। विल्फ़ुड साहब तथा राजतरंगिणी के मतानुसार महाभाष्य का काल निर्णीत हो चुका है। राजतरंगिणी में लिखा है—

"चन्द्राचार्यादिभिर्लब्ध्वा देशं तस्मात् तदागमम्;
प्रवर्तितं महाभाष्यं स्वं च व्याकरणं कृतम्।"

इससे राजतरंगिणी में महाभाष्य के प्रवर्तित होने का काल खी०पू० ४२३ शताब्दी में स्थित अभिमन्यु महाराज के समय में निर्द्धारित होता है। यदि इसी समय महाभाष्य को चंद्राचार्यादि से उपलब्ध माना जाय, तो इसका निर्माण-काल इससे भी पूर्व होगा। इसके अनुसार शास्त्रीजी का भास महाभाष्यकार का समकालीन अथवा कुछ आगे-पीछे का माना जायगा। भाष्यकार से कात्यायन बहुत पूर्व हुए थे, और कात्यायन से पाणिनि महाराज बहुत पूर्व हुए। तो फिर हमारी समझ में नहीं आता कि पं० गणपतिजी ने महाकवि भास को पाणिनि से पूर्व कैसे कह दिया। जिन 'आर्ष प्रयोगों' को लक्षित करके उन्होंने कहा है, वे यदि लेखप्रमाद से "छन्दोभङ्गकवयः कुर्वन्ति", "निरंकुशाः कवयः" आदि भाष्यकार के वचनों के अनुसार आर्ष मान लिए जायँ, तो कोई हानि नहीं। अथवा यह भी हो सकता है कि महाकवि भास ने, मतभेद होने के कारण, वाल्मीकि व्यासादि ऋषियों के वाक्यों की तरह, इन प्रयोगों को आर्ष मानकर स्वयं लिखने में कोई हानि न समझी हो। इस प्रकार इसके बहुत-से समाधान हो सकते हैं। अन्य कवियों ने भी कई आर्ष प्रयोग लिखे हैं। उदाहरण के तौर पर यदि देखा जाय, तो नैषधकार श्रीहर्ष ने "व्यनेषत्" (१४-५५) लिखा है, तथा कालिदास ने रघुवंश में "प्रभ्रंशयाम्यो नहुषं चकार" यह लिखा है। क्या ये पाणिनि से पूर्व हुए थे?

इसी बात के समर्थन में हम, महाराज उदयन, दर्शक, और प्रद्योत आदि जो राजा इसमें आए हैं, उनके काल को निर्द्धारित करेंगे। हम यहाँ एक बात और कह देना चाहते हैं। वह यह कि भास ने अपने नाटकों में कई नगरों और ग्रामों का वर्णन किया है—जैसे उज्जयिनी, कांपिल्य, पाटलिपुत्र, कौशांबी, लावाणक, वत्स, अवंती, मगध-राज्य आदि। प्रथम हम इन सब प्रदेशों का वर्णन करके पीछे उसे, जिसका हमारी उपर्युक्त समालोचना से संबंध होगा, दिखावेंगे।

उज्जयिनी—यह अवंती-राज्य की राजधानी थी। इसके विशाला, अवंती, अवंतिका और पुष्पकरंडिनी नाम भी थे। विक्रम के पूर्व सप्तम शताब्दी में भारतीय चार राज्य प्रबल थे। प्रथम मगध, जिसकी राजधानी राजगृह, दूसरा अवंती, जिसकी राजधानी उज्जैन, तीसरा वत्स, जिसकी राजधानी कौशांबी, चौथा गांधार, जिसकी राजधानी तक्षशिला थी। आजकल जिसे उज्जैन कहते हैं, वह प्राचीन उज्जयिनी से दक्षिण की ओर, एक मील की दूरी पर, बसा हुआ है। हियनसांग नाम के चीनी यात्री ने अपने समय में इस नगरी का इस प्रकार वर्णन किया है—

"उज्जैन का नगर ५ वर्ग-मील के क़रीब था। इसके पश्चिम की ओर मालवा-राज्य था, जिसकी राजधानी धारा-नगरी थी, जो कि उज्जयिनी से ५० मील की दूरी पर थी। पास ही चंबल-नदी बहती थी। उत्तरीय सीमा में मथुरा और कज्झोती, पूर्वीय सीमा में महेश्वरपुर और

दक्षिण की ओर सातपुरी के पहाड़ थे, जो कि नर्मदा और ताप्ती-नदी के मध्यस्थल में हैं। इसका राज्य १,००० वर्ग-मील तक फैला हुआ था। उस समय ब्राह्मण-राज्य था; पर कउकौसी और महेश्वरपुर का राजा बौद्ध था, और बाक़ी हिंदू-राजा राज्य करते थे। परंतु वि० पू० सातवीं शताब्दी में मालवा और अवंती-राज्य एक था। इनकी राजधानी यही उज्जयिनी थी।"

कहते हैं, दुष्यंत के वंशजों में हस्तिनापुर में हस्ति नाम का एक राजा हुआ, जिसने प्रतिष्ठान को छोड़ उत्तर पश्चिम की ओर गंगा-तीर पर हस्तिनापुर को, जो वर्तमान मेरठ के ज़िले में है, अपनी राजधानी बनाया। हस्ति के पुत्र अजमीढ के वंशजों में एक सेनजित् हुआ। इसी सेनजित् के वंशज 'समर' ने कांपिल्य को, जो आजकल आगरे के ज़िले में है, अपनी राजधानी बनाया। पांचालों की राजधानी कांपिल्य के विषय में बहुतों की सम्मति है कि वह फ़र्रुख़ाबाद के समीप थी। अब तक वहाँ उसके खँड-हर पाए जाते हैं, और वह कपिली के नाम से प्रसिद्ध है। यही कांपिल्य पांचाल-देश के राजा द्रुपद की राजधानी था। जरासंध के वंश के अंतिम राजा का नाम पुरंजय था। इसने मगध-देश पर सबसे पहले राज्य किया। यह पुरंजय बड़ा दुर्बल था। इससे उसके मंत्री शुनक ने अपने पुत्र प्रद्योत को अवंती तथा मगध का राजा बना दिया। पुरंजय के साथ ही जरासंध के वंश की समाप्ति माननी चाहिए। पुरूरवा के छः पुत्र हुए, जिनके नाम आयु, धीमान्, अमावसु, विश्वावसु, शतायु और श्रुतायु थे। अमावसु की वंश-परंपरा में कुशांब हुए, जिन्होंने कौशांबी-नगरी बसाई। इन्हीं कुशांब के वंश में गाधि और विश्वामित्र हुए। यह सारा ब्योरा पुराणों की वंशावलियों व अन्य इतिहास की पुस्तकों से स्पष्ट ज्ञात होता है।

लावाणक—यह ग्राम मगध-राज्य के निकट वत्स-राज्य के अंतर्गत था। इसी के विषय में स्वप्न-नाटक में "लावाणके हुतवहेन हृतांगयष्टिं" ऐसा लिखा है। वासवदत्ता को इसी लावाणक-ग्राम में जली हुई प्रसिद्ध किया गया था। कथा-सरित्सागर में भी इसके विषय में लिखा है—

"गृहस्या लावाणकं ग्रामः सहृदन्या नृपेण च :
पर्यन्ते मगधासन्नवर्ती (?) विषयो हि सः।"

इसके विषय में अधिक कुछ पता नहीं लगता।

पाटलिपुत्र—इसके विषय में हमें विशेष विचार करना है; क्योंकि पूर्वोक्त देश तो कुछ प्राचीन होने से हमारे ग्रंथ के कर्ता महाकवि भास के विषय में कुछ भी प्रकट नहीं करते। भास ने 'चारुदत्त' के द्वितीयांक में संवाहक के मुख से "पाडलिपुत्तं मे जम्मभूमी। पकिदीए वणिओ अहं" कहलाकर, पाटलिपुत्र का नाम लेकर, अपने को पाटलिपुत्र-ग्राम के निर्माण-काल से पीछे का हुआ माना है। और, श्रीयुत पंडित गणपतिजी ने भी प्रतिमा-नाटक की भूमिका में "चारुदत्ते पाटलिपुत्रस्य स्मरणं च तत्तस्य भासकालादपि पूर्वकालित्वे गमकं द्रष्टव्यम्" कहकर भास को पाटलिपुत्र के निर्माण-काल से पीछे का माना है। यह पाटलिपुत्र-नगर किसने और कब बसाया, इस विषय को कुछएक सम्मतियाँ देकर निश्चित करेंगे। महावंश-ग्रंथ में, जो कि बौद्धों का एक प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथ है, लिखा है—"पहले यह एक पाटलि नाम का ग्राम था। अजातशत्रु ने वहाँ एक दुर्ग बनवाया। यह दुर्ग उसने लिच्छिवियों को दबाने के लिये बनाया था। इसके संबंध में शाक्य मुनि ने एक भविष्यवाणी की कि यह ग्राम एक दिन प्रधान नगर होगा। अजातशत्रु ने जो ग्राम बसाया, उसका नाम अभी तक पाटलि-ग्राम था। कहते हैं, पाटली किसी राजा की कन्या थी; उसी के नाम पर इस ग्राम का नाम रक्खा गया। इसी के विषय का कथा-सरित्सागर में भी उल्लेख है। उसमें पाटलि के पिता का नाम महेंद्रवर्मा लिखा है। उसी की कन्या पाटली के आदेश से उसके पति पुत्रक ने इसका नाम 'पाटलीपुत्र' रक्खा। पर यह बात कहाँ तक ठीक है, यह नहीं कह सकते। सत्यव्रत सामाश्रमीजी ने पाटलिपुत्र को अजातशत्रु के पौत्र उदयाश्व का बसाया हुआ माना है; परंतु उन्होंने "अनुशोणं पाटलिपुत्रं", "अनुगङ्गं पाटलिपुत्रं" का झगड़ा मचा दिया है। वह कहते हैं, अजातशत्रु के समय में शोण-नदी पर पाटलिपुत्र-नगर बसा था, और चंद्रगुप्त के समय में गंगा के तट पर। उन्होंने इसके लिये मुद्राराक्षस का यह प्रमाण दिया है—"सुगाङ्गप्रासादशिखरारूढेन" इत्यादि। अर्थात् सुगांग-प्रासाद पर चढ़कर चंद्रगुप्त ने कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) को देखा। परंतु उन्होंने मुद्राराक्षस के ही उस श्लोक की ओर ध्यान नहीं दिया, जिसमें शोण-नदी का वर्णन है। यथा—"शोणं सिन्दूरशोणा मम गजपतयः पास्यन्ति शतशः" इत्यादि। जहाँ सुगांग-प्रासाद

से पाटलिपुत्र को "अनुगङ्गं पाटलिपुत्रं" कहकर गंगा के तीर पर माना जाता है, वहाँ शोण-नदी का वर्णन आने से शोण के तीर पर भी मानना पड़ेगा। और, वास्तव में है भी यही बात। पाटलिपुत्र गंगा और शोण, दोनों ही के मध्य में था। इस विषय पर 'इंपीरियल गज़ट ऑफ़् इंडिया' (Vol VII, Page 281) में शोण-नदी का वर्णन करते हुए लिखा है— "The old Town of Pataliputra, corresponding to modern Patna was situated at the Bank of 'Son' river and Ganges." अर्थात् प्राचीन पाटलिपुत्र शोण और गंगा के किनारे बसता था। इस प्रकार पाटलि-ग्राम का नाम उदयाश्व के द्वारा पाटलिपुत्र पड़ा। इस राजा का काल वि० पू० ३८८ से ३५८ तक कहा गया है। इस विषय में पं० हरिमंगल मिश्र, पं० विश्वेश्वरनाथ एम० ए०, महावंश बौद्ध-ग्रंथ तथा इंपीरियल गज़ट आदि के लेखक अन्य इतिहास-वेत्ताओं की एक ही राय है, और वे सब मानते हैं कि ई० पू० छठी शताब्दी के अंत में यह पाटलिपुत्र-नगर बसा। इस नगर के प्रसिद्ध होने में भी कुछ समय लगा होगा; क्योंकि बहुत काल तक इसका नाम पाटलि ग्राम ही रहा। अतएव हमारा कहना यह है कि शास्त्रीजी ने जो भास को पाँचवीं या छठी शताब्दी (ई० पू०) के अंतर्गत अथवा इससे भी पहले का माना है, यह ठीक नहीं हो सकता ; क्योंकि उन्होंने तो पाटलिपुत्र का नाम लिया है, जो कि छठी शताब्दी से बहुत पीछे इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कारण शास्त्रीजी की उक्त बात असंबद्ध है।

प्रसंगानुसार चंद्रगुप्त के समय में पाटलिपुत्र का जो वर्णन साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथजी ने दिया है, सो निम्न-लिखित है—

"यह नगर ६ मील के क़रीब लंबा और १½ मील के लगभग चौड़ा था। इसके इर्द-गिर्द लकड़ी की एक मज़बूत शहरपनाह लगी थी। इसमें तीर चलाने के छेद बने हुए थे, तथा यह शहरपनाह ६४ फाटकों या ५७० बुर्ज़ों से सुशोभित थी। शहर की तरफ़, गंगा की दूसरी ओर, शोण-नदी की धारा बहती थी। शहरपनाह के चारों तरफ़ ६०० फ़ीट चौड़ी और क़रीब तीस हाथ गहरी खाई थी। इसमें सोन का जल भरा रहता था, इत्यादि।"

उक्त पंडितजी ने इस विषय में बहुत कुछ लिखा है; परंतु यहाँ थोड़ा ही उद्धृत किया गया है।

अब हम फिर महाकवि भास की ओर आते हैं। हमारे विद्वान् श्रीनारायण शास्त्रीजी ने काव्य-प्रकाश के "धावकादीनामिव धनं" इत्यादि वाक्यों को लेकर एक बात निकाली है। उनकी युक्ति, जैसी उन्होंने दी थी, यदि कहीं सच्ची निकलती, तो हमारे साहित्यिक समाज को आज समस्त कवियों के इतिहास में हेर-फेर करना पड़ता, और ऐसी हलचल होती कि फिर संस्कृत-साहित्य के बहुत-से समय का सुधार करना कठिन हो जाता। शास्त्रीजी ने निम्न-लिखित श्लोकों के अनुसार यह सिद्ध किया था कि भास धावक के समकालीन हैं; और इनके तेरह रूपकों के साथ ही रत्नावली, नागानंद और प्रियदर्शिका-नाटिका भी, जो अब श्रीहर्ष कृत सिद्ध हुई है, उन्होंने बनाए। और, इनकी प्रस्तावना में जो श्रीहर्ष का नाम आता है, उसे ईसा के सन् ५५२ और ५८७ काल में होनेवाला हर्षविक्रमादित्य कहा है, तथा उसी की राजसभा में बाण, धावक और भास कवि को विद्यमान बताया है। जैसे काव्य-प्रकाशकार ने "बाणादीनामिव धनं", "धावकादीनामिव धनं" कहकर बाण और धावक के धन लेकर श्रीहर्ष के नाम पर पुस्तकें बनाने की बात कही है, उसी प्रकार यह भी कहा है कि भास ने श्रीहर्ष के नाम से उपर्युक्त ग्रंथ बनाए, और बदले में उससे धन लिया। इसकी पुष्टि में वह निम्न-लिखित प्रमाण देते हैं—

"भासो रामिलसोमिलो वररुचिः श्रीसाहसाङ्कः कवि-
र्मेण्ठो भारविकालिदासतरलाः स्कन्धः सुबन्धुश्च यः ;
दण्डी बाणदिवाकरौ गणपतिः कान्तश्च रत्नाकरः,
सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वेऽपि ते ।

कारणं तु कवित्वस्य न संपत्कुलीनता ;
धावकोऽपि हि यद्भासः कवीनामग्रिमोऽभवत् ।
आदौ भासेन रचिता नाटिका प्रियदर्शिका ;
निरीर्ष्यस्य रसज्ञस्य कस्य न प्रियदर्शना ।
तस्य रत्नावली नूनं रत्नमालेव राजते ;
दशरूपककामिन्या वक्षस्यत्यन्तशोभना ।
नागानन्दं समालोक्य यस्य श्रीहर्षविक्रमः ;
अमन्दानन्दभरितः स्वसभ्यमकरोत्कविम् ।
उदात्तराघवं नूनमुदात्तरसगुम्फितम् ;
तद्वाक्य मत्रभूत्याद्याः प्रणिन्युर्नाटकानि वै ।

शोकपावकसंतप्तस्य नवाब्जा किरणावली ;
मन्दाकस्येव कस्यात्र प्रददाति न निर्वृतिम् ।
भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ;
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।"

शास्त्रीजी ने कहा है कि राजशेखर के कवि-विमर्श में ये श्लोक हैं। यहाँ पर "धावकोऽपि हि यद्भासः कवीनामग्रिमोऽभवत्" (अर्थात् भास धावक—धोबी—होकर भी कवियों में अग्रगण्य हुआ—संपत्ति या कुलीनता कवित्व का कारण नहीं हो सकती) लिखा है। संभव है, भास कवि धोबी हो; क्योंकि यह किंवदंती प्राचीन काल से चली आती है। परंतु कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में "प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य" इस वाक्य में भास का नाम लिया है। इसी को लक्ष्य में रखकर नारायण शास्त्री ने प्रियदर्शिका और मालविकाग्निमित्र के शब्दों और वाक्यों की रचना-शैली की समता दिखाते हुए कहा है कि भास-रचित प्रियदर्शिका की छाया लेकर कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की रचना की, और भास का नाम लिया। इसी बात का पूने के प्रो० परांजपे महोदय ने भी समर्थन किया है। "नागानन्दं समालोक्य यस्य श्रीहर्षविक्रमः" इसमें कहा हुआ श्रीहर्षविक्रम और ७वीं शताब्दीवाला श्रीहर्षवर्द्धन एक नहीं हो सकते। इसलिये शास्त्रीजी ने इस हर्षविक्रम को राजतरंगिणी के—

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान् हर्षपराभिधः ;
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ।

इसके अनुसार उससे पीछे का हर्ष मान लिया है। हम यह नहीं कहते कि शास्त्रीजी के प्रमाणों को ऐसे ही अग्राह्य कर दिया जाय; परंतु जिस तरीक़े से यह वर्णन किया गया है, उससे हमें यह बात संदिग्ध प्रतीत हुई। हमारे मन में संदेह हुआ कि वास्तव में 'कवि-विमर्श' पुस्तक है भी या नहीं? और, जैसा कि शास्त्रीजी ने लिखा है, क्या राजशेखर को ही यह पुस्तक है? जब तक यह पुस्तक प्रकाशित न हो, तब तक हमें कोई भी गवेषणा इस बात के लिये उत्साहित न करती थी कि राजशेखर के पूर्वोक्त श्लोकों की पुष्टि की जाय; क्योंकि जब पंडित र० व० कृष्णमाचार्यजी ने—जो कि वाणीविलास की प्रियदर्शिका के प्रकाशक हैं—शास्त्रीजी से पूछा कि आपने ये श्लोक कहाँ देखे, तो उन्होंने उत्तर में लिखा कि उन्हें एक मित्र से कुछ पत्र मिले थे, जिनमें ये श्लोक थे!

प्रो० परांजपे ने शास्त्रीजी की इस न्यूनता पर खेद प्रकट किया है, और स्वयं इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित किया है कि नागानंद के कर्ता महाकवि भास ही हैं। उन्होंने कई समताप्रदर्शक स्थल ढूँढ़ ढूँढ़कर यह सिद्ध किया है कि नागानंद भास-निर्मित ही है—जैसे अगस्त्य-पूजा, ग्रीष्म व शरद् ऋतुओं के वर्णन, "कन्यका हि निर्दोषमिति कृत्वा" को "निर्दोषदर्शना कन्यका भवन्ति" इससे तुलना, नायिका का वृक्षों और लताओं के प्रति प्रेम। ऐसी ही अन्यान्य व्याकरण व साहित्य-संबंधी बातों का—जैसे "समानय अलं", "आपन्नावत्" आदि का—भास के तेरह रूपकों के साथ मिलान करके यह प्रमाणित किया है कि भास ही नागानंद और प्रियदर्शिका, दोनों का कर्ता है। हम इस विषय में इतना ही कहते हैं कि हमारे विद्वान् समालोचक ने इसी विचार के ऊपर ज़ोर देकर जिस गति से पहले आरंभ किया था, उसी गति से वह उसे समाप्त नहीं कर सके; क्योंकि इसी प्रकार यदि समता को लक्ष्य में रखकर विचार किया जाय, तो कुछ सिद्ध ही नहीं होता। ऐसी समता, जैसी शास्त्रीजी ने दिखाई है, और प्रोफ़ेसर साहब ने जिसका समर्थन किया है, हरएक ग्रंथ में खोजने से मिल जायगी। यह तो हो सकता है कि पंचतंत्र और हितोपदेश की समता करके हितोपदेश का पंचतंत्र से बाद का बना होना सिद्ध किया जाय, परंतु यह नहीं हो सकता कि किसी पुस्तक के शब्दों, वाक्यों तथा पारिभाषिकादि पदों का मिलान करके कोई असंगत सम्मति स्थिर की जाय। कालिदास की कविता के बहुत से शब्द वाल्मीकि-रामायण में मिलते हैं। इससे क्या कोई यह कह सकता है कि कालिदास को कुछ भी ज्ञान न था, उसने वाल्मीकि की नक़ल की? वास्तव में नागानंद और प्रियदर्शिका, दोनों पुस्तकें श्रीहर्षवर्द्धन की ही रचना हैं। हाँ, यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि श्रीहर्ष ने भास के नाटक अवश्य पढ़े होंगे। भास की शैली असुगम और मधुर है, और श्रीहर्ष की शैली अत्यंत सुगम और ललित। अतएव वह कालिदास के बाद की स्पष्ट प्रतीत होती है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि नागानंद तथा अन्य श्रीहर्ष के नाम से प्रसिद्ध नाटक भास से बहुत पीछे के बने हुए हैं।

"आनंदबंधु"

हिंसा परमो धर्मः

(१)

दुनिया में कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो किसी के नौकर न होते हुए सबके नौकर होते हैं। जिन्हें कुछ अपना ख़ास काम न होने पर भी सिर उठाने की फ़ुरसत नहीं होती। जामिद इसी श्रेणी के मनुष्यों में था। बिलकुल बेफ़िक्र, न किसी से दोस्ती, न किसी से दुश्मनी। जो ज़रा हँसकर बोला, उसका बे-दाम का ग़ुलाम हो गया। बे-काम का काम करने में उसे मज़ा आता था। गाँव में कोई बीमार पड़े, वह रोगी की सेवा-शुश्रूषा के लिये हाज़िर है। कहिए, तो आधी रात को हकीम के घर चला जाय, किसी जड़ी-बूटी की तलाश में मंज़िलों की ख़ाक छान आवे। मुमकिन न था कि वह किसी ग़रीब पर अत्याचार होते देखे और चुप रह जाय। फिर चाहे कोई उसे मार ही डाले, वह हिमायत करने से बाज़ न आता था। ऐसे सैकड़ों ही मौक़े उसके सामने आ चुके थे। कांस्टेबिलों से आए दिन उसकी छेड़-छाड़ होती ही रहती थी। इसीलिये लोग उसे बौड़म समझते थे। और बात भी यही थी। जो आदमी किसी का बोझ भारी देखकर, उससे छीनकर, अपने सिर पर ले ले, किसी का छप्पर उठाने या आग बुझाने के लिये कोसों दौड़ा चला जाय, उसे समझदार कौन कहेगा? सारांश यह कि उसकी ज़ात से दूसरों को चाहे कितना ही फ़ायदा पहुँचे, अपना कोई उपकार न होता था; यहाँ तक कि वह रोटियों के लिये भी दूसरों का मुहताज था। दीवाना तो वह था, और उसका ग़म दूसरे खाते थे।

(२)

आख़िर जब लोगों ने बहुत धिक्कारा—क्यों अपना जीवन नष्ट कर रहे हो, तुम दूसरों के लिये मरते हो, कोई तुम्हारा भी पूछनेवाला है? अगर एक दिन बीमार पड़ जाओ, तो कोई चुल्लू-भर पानी न दे; जब तक दूसरों की सेवा करते हो, लोग ख़ैरात समझकर खाने को दे देते हैं; जिस दिन आ पड़ेगी, कोई सीधे-मुँह बात भी न करेगा, तब जामिद की आँखें खुलीं। बरतन-भाँड़ा कुछ था ही नहीं। एक दिन उठा, और एक तरफ़ की राह ली। दो दिन के बाद एक शहर में जा पहुँचा। शहर बहुत बड़ा था। महल आसमान से बातें करनेवाले। सड़कें चौड़ी और साफ़। बाज़ार गुलज़ार; मसजिदों और मंदिरों की संख्या अगर मकानों से अधिक न थी, तो कम भी नहीं। देहात में न तो कोई मसजिद थी, न कोई मंदिर। मुसलमान लोग एक चबूतरे पर नमाज़ पढ़ लेते थे। हिंदू एक वृक्ष के नीचे पानी चढ़ा दिया करते थे। नगर में धर्म का यह माहात्म्य देखकर जामिद को बड़ा कुतूहल और आनंद हुआ। उसकी दृष्टि में मज़हब का जितना सम्मान था, उतना और किसी सांसारिक वस्तु का नहीं। वह सोचने लगा, ये लोग कितने ईमान के पक्के, कितने सत्यवादी हैं। इनमें कितनी दया, कितना विवेक, कितनी सहानुभूति होगी। तभी तो ख़ुदा ने इन्हें इतना माना है। वह हर आने-जानेवाले को श्रद्धा की दृष्टि से देखता और उसके सामने विनय से सिर झुकाता था। यहाँ के सभी प्राणी उसे देवतातुल्य मालूम होते थे।

घूमते-घूमते साँझ हो गई। वह थककर एक मंदिर के चबूतरे पर जा बैठा। मंदिर बहुत बड़ा था, ऊपर सुनहला कलश चमक रहा था। जगमोहन पर संगमरमर के चौके जड़े हुए थे; मगर आँगन में जगह-जगह गोबर और कूड़ा पड़ा था। जामिद को गंदगी से चिढ़ थी। देवालय की यह दशा देखकर उससे न रहा गया। इधर-उधर निगाह दौड़ाई कि कहीं झाड़ू मिल जाय, तो साफ़ कर दूँ। पर झाड़ू कहीं नज़र न आई। विवश होकर उसने अपने दामन से चबूतरे को साफ़ करना शुरू कर दिया।

ज़रा देर में भक्तों का जमाव होने लगा। उन्होंने जामिद को चबूतरा साफ़ करते देखा, तो आपस में बातें करने लगे—

"है तो मुसलमान?"

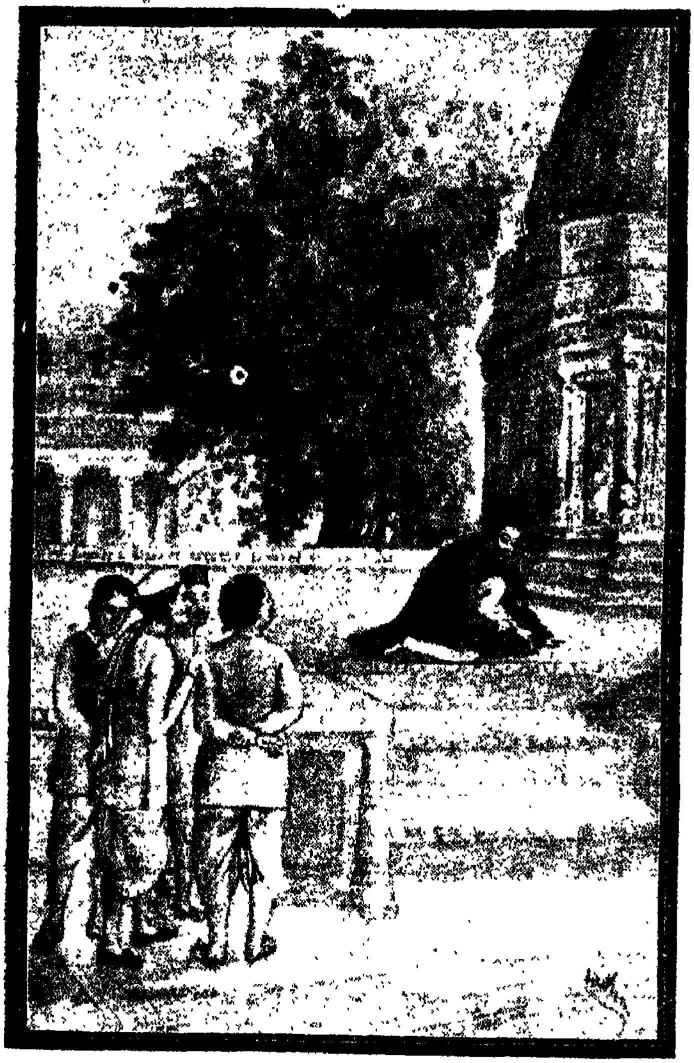
"मेहतर होगा।"

"नहीं, मेहतर अपने दामन से सफ़ाई नहीं करता। कोई पागल मालूम होता है।"

"उधर का भेदिया न हो।"

"नहीं, चेहरे से तो बड़ा ग़रीब मालूम होता है।"

"हसननिज़ामी का कोई मुरीद होगा।"



विवश होकर उसने अपने दामन से चबूतरे को साफ़ करना शुरू कर दिया।

"ठाकुरजी को कौन न मानेगा, साहब? जिसने पैदा किया, उसे न मानूँगा, तो किसे मानूँगा।"

भक्तों में सलाह होने लगी।

"देहाती है।"

"फाँस लेना चाहिए। जाने न पावे।"

(३)

जामिद फाँस लिया गया। उसका आदर-सत्कार होने लगा। एक हवादार मकान रहने को मिला। दोनों वक्त उत्तम पदार्थ खाने को मिलने लगे। दो-चार आदमी हरदम उसे घेरे रहते। जामिद को भजन ख़ूब याद थे। गला भी अच्छा था। वह रोज़ मंदिर में आकर कीर्तन करता। भक्ति के साथ स्वर-लालित्य भी हो, तो फिर क्या पूछना? लोगों पर उसके कीर्तन का बड़ा असर पड़ता। कितने ही लोग संगीत के लोभ से ही मंदिर में आने लगे। सबको विश्वास हो गया कि भगवान् ने यह शिकार चुनकर भेजा है।

एक दिन मंदिर में बहुत-से आदमी जमा हुए। आँगन में फ़र्श बिछाया गया। जामिद का सिर मुड़ा दिया गया। नए कपड़े पहनाए गए। हवन हुआ। जामिद के हाथों से मिठाई बँटवाई गई। वह अपने आश्रय-दाताओं की उदारता और धर्म-निष्ठा का और भी क़ायल हो गया। ये लोग कितने सज्जन हैं, मुझ-जैसे फटे-हाल परदेसी की इतनी ख़ातिर!

"अजी, गोबर के लालच से सफ़ाई कर रहा है। कोई भठियारा होगा। (जामिद से) गोबर मत ले जाना बे, समझा? कहाँ रहता है?"

"परदेसी मुसाफ़िर हूँ, साहब। मुझे गोबर लेकर क्या करना है। ठाकुरजी का मंदिर देखा, तो आकर बैठ गया। कूड़ा पड़ा हुआ था, मैंने सोचा, धर्मात्मा लोग आते होंगे, सफ़ाई करने लगा।"

"तुम तो मुसलमान हो न?"

"ठाकुरजी तो सबके ठाकुरजी हैं—क्या हिंदू, क्या मुसलमान।"

"तुम ठाकुरजी को मानते हो?"

इसी को सच्चा धर्म कहते हैं। जामिद को जीवन में कभी इतना सम्मान न मिला था। यहाँ वही सैलानी युवक, जिसे लोग बोड़म कहते थे, भक्तों का सिर-मौर बना हुआ था। सैकड़ों ही आदमी केवल इसके दर्शनों को आते थे। उसकी प्रकांड विद्वत्ता की कितनी ही कथाएँ प्रचलित हो गईं। पत्रों में यह समाचार निकला कि एक बड़े आलिम मौलवी साहब की शुद्धि हुई है। सीधा-सादा जामिद इस सम्मान का रहस्य कुछ न समझता था। ऐसे धर्म-परायण, सहृदय प्राणियों के लिये वह क्या कुछ न करता? वह नित्य पूजा करता, भजन गाता। उसके लिये यह कोई नई बात न थी। अपने गाँव

में भी वह बराबर सत्यनारायण की कथा में बैठा करता था। भजन-कीर्तन किया करता था। अंतर यही था कि देहात में उसकी क़दर न थी। यहाँ सब उसके भक्त थे।

एक दिन जामिद कई भक्तों के साथ बैठा हुआ कोई पुराण पढ़ रहा था, तो क्या देखता है कि सामने सड़क पर एक बलिष्ठ युवक माथे पर तिलक लगाए, जनेऊ पहने, एक बूढ़े, दुर्बल मनुष्य को मार रहा है। बुड्ढा रोता है, गिड़गिड़ाता है, और पैरों पड़-पड़ के कहता है कि महाराज, मेरा क़ुसूर माफ़ करो; किंतु तिलकधारी युवक को उस पर ज़रा भी दया नहीं आती। जामिद का रक्त खौल उठा। ऐसे दृश्य देखकर वह शांत न बैठ सकता था। तुरंत कूदकर बाहर निकला, और युवक के सामने आकर बोला—इस बुड्ढे को क्यों मारते हो भाई? तुम्हें इस पर ज़रा भी दया नहीं आती?

युवक—मैं मारते-मारते इसकी हड्डियाँ तोड़ दूँगा।

जामिद—आख़िर इसने क्या क़ुसूर किया है? कुछ मालूम तो हो।

युवक—इसकी मुर्ग़ी हमारे घर में घुस गई थी, और सारा घर गंदा कर आई।

जामिद—तो क्या इसने मुर्ग़ी को सिखा दिया था कि तुम्हारा घर गंदा कर आवे?

बुड्ढा—ख़ुदावंद, मैं तो उसे बराबर खाँचे में ढाँके रहता हूँ। आज ग़फ़लत हो गई। कहता हूँ, महाराज, क़ुसूर माफ़ करो; मगर नहीं मानते। हुज़ूर, मारते-मारते अधमरा कर दिया।

युवक—अभी नहीं मारा है, अब मारूँगा—खोदकर गाड़ दूँगा।

जामिद—खोदकर गाड़ दोगे भाई साहब, तो तुम भी यों न खड़े रहोगे। समझ गए? अगर फिर हाथ उठाया, तो अच्छा न होगा।

जवान को अपनी ताक़त का नशा था। उसने फिर बुड्ढे को चाँटा लगाया। पर चाँटा पड़ने के पहले ही जामिद ने उसकी गर्दन पकड़ ली। दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा। जामिद करारा जवान था। युवक को पटकनी दी तो चारों खाने चित गिर गया। उसका गिरना था कि भक्तों का समुदाय, जो अब तक मंदिर में बैठा तमाशा देख रहा था, लपक पड़ा, और जामिद पर चारों तरफ़ से चोटें पड़ने लगीं। जामिद की समझ में न आता था कि लोग मुझे क्यों मार रहे हैं। कोई कुछ नहीं पूछता। तिलकधारी जवान को कोई कुछ नहीं कहता। बस, जो आता है, मुझी पर हाथ साफ़ करता है। आख़िर वह बेदम होकर गिर पड़ा। तब लोगों में बातें होने लगीं।

"दगा दे गया!"

"धत् तेरी ज़ात की! इन म्लेच्छों से भलाई की आशा न रखनी चाहिए। कौवा कौवों ही के साथ मिलेगा। कमीना जब करेगा, कमीनापन। इसे कोई पूछता न था, मंदिर में झाड़ू लगा रहा था। देह पर कपड़े का तार भी न था, हमने इसका इतना सम्मान किया, पशु से आदमी बना दिया, फिर भी अपना न हुआ!"

"इनके धर्म का तो मूल ही यही है।"

जामिद रात-भर सड़क के किनारे पड़ा दर्द से कराहता रहा। उसे मार खाने का दुःख न था। ऐसी यातनाएँ वह कितनी बार भोग चुका था। उसे दुःख और आश्चर्य केवल इस बात का था कि इन लोगों ने क्यों एक दिन मेरा इतना सम्मान किया, और क्यों आज अकारण ही मेरी इतनी दुर्गति की? इनकी वह सज्जनता आज कहाँ गई? मैं तो वही हूँ। मैंने कोई क़ुसूर भी नहीं किया। मैंने तो वही किया, जो ऐसी दशा में सभी को करना चाहिए। फिर इन लोगों ने मुझ पर क्यों इतना अत्याचार किया? देवता क्यों राक्षस बन गए?

वह रात-भर इसी उलझन में पड़ा रहा। प्रातःकाल उठकर एक तरफ़ की राह ली।

(४)

जामिद अभी थोड़ी ही दूर गया था कि वही बूढ़ा उसे मिला। उसे देखते ही वह बोला—क़सम ख़ुदा की, तुमने कल मेरी जान बचा दी। सुना, ज़ालिमों ने तुम्हें बुरी तरह पीटा। मैं तो मौक़ा पाते ही निकल भागा। अब तक कहाँ थे? यहाँ लोग रात ही से तुमसे मिलने के लिये बेक़रार हो रहे हैं। क़ाज़ी साहब रात ही को तुम्हारी तलाश में निकले थे, मगर तुम न मिले। कल हम दोनों अकेले पड़ गए थे। दुश्मनों ने हमें पीट लिया। नमाज़ का वक़्त था, यहाँ सब लोग मसजिद में थे। अगर ज़रा भी ख़बर हो जाती, तो एक हज़ार लठैत पहुँच जाते। तब आटे-दाल का भाव मालूम होता। क़सम ख़ुदा की, आज से मैंने तीन कोड़ी मुर्ग़ियाँ पाली हैं। देखूँ, पंडितजी महाराज अब क्या करते हैं? क़सम ख़ुदा की, क़ाज़ी साहब

ने कहा है, अगर वह लौंडा ज़रा भी आँखें दिखावे, तो तुम आकर मुझसे कहना । या तो बचा घर छोड़कर भागेंगे, या हड्डी-पसली तोड़कर रख दी जायँगी ।

आमिद को लिए हुए वह बुड्ढा क़ाज़ी ज़ोरावरहुसैन के दरवाज़े पर पहुँचा । क़ाज़ी साहब वज़ू कर रहे थे । आमिद को देखते ही दौड़कर गले लगा लिया, और बोले — वल्लाह ! तुम्हें आँखें ढूँढ रही थीं । तुमने अकेले इतने काफ़िरों के दाँत खट्टे कर दिए ! क्यों न हो, मोमिन का ख़ून है ! काफ़िरों की हक़ीक़त क्या ! सुना, सब-के-सब तुम्हारी शुद्धि करने आ रहे थे । मगर तुमने उनके सारे मनसूबे पलट दिए । इस्लाम को ऐसे ही ख़ादिमों की ज़रूरत है । तुम्हीं-जैसे दीनदारों से इस्लाम का नाम रोशन है । ग़लती यही हुई कि तुमने एक महीने-भर तक सब्र नहीं किया । शादी हो जाने देते, तब मज़ा आता । एक नाज़नीन साथ लाते, और दौलत मुफ़्त । वल्लाह ! तुमने उजलत कर दी ।

दिन भर भक्तों का ताँता लगा रहा । आमिद को एक नज़र देखने का सबको शौक़ था । सभी उसकी हिम्मत, ज़ोर और मज़हबी जोश की प्रशंसा करते थे ।

(५)

पहर रात बीत चुकी थी । मुसाफ़िरों की आमद-रफ़्त कम हो चली थी । आमिद ने क़ाज़ी साहब से धर्म-ग्रंथ पढ़ना शुरू किया था । उन्होंने उसके लिये अपने बग़ल का कमरा ख़ाली कर दिया था । वह क़ाज़ी साहब से सबक़ लेकर आया, और सोने जा रहा था कि सहसा उसे दरवाज़े पर एक ताँगे के रुकने की आवाज़ सुनाई दी । क़ाज़ी साहब के मुरीद अक्सर आया करते थे । आमिद ने सोचा, कोई मुरीद आया होगा । नीचे आया, तो देखा, एक स्त्री ताँगे से उतरकर बरामदे में खड़ी है, और ताँगेवाला उसका असबाब उतार रहा है ।

महिला ने मकान को इधर-उधर देखकर कहा—नहीं जी मुझे अच्छी तरह ख़याल है, उनका मकान यह नहीं है । शायद तुम भूल गए हो ।

ताँगेवाला—हुज़ूर तो मानतीं ही नहीं । कह दिया कि बाबू साहब ने मकान तबदील कर दिया है । ऊपर चलिए ।

स्त्री ने कुछ झिझकते हुए कहा—बुलाते क्यों नहीं ? आवाज़ दो ?

ताँगेवाला—ओ साहब, आवाज़ क्या दूँ । जब जानता हूँ कि बाबू साहब का यही मकान है, तो नाहक़ चिल्लाने से क्या फ़ायदा ? बेचारे आराम कर रहे होंगे । आराम में ख़लल पड़ेगा । आप निसाख़ातिर रहिए, चलिए, ऊपर चलिए ।

औरत ऊपर चली । पीछे-पीछे ताँगेवाला असबाब लिए हुए चला । आमिद गुम-सुम नीचे खड़ा रहा । यह रहस्य उसकी समझ में न आया ।

ताँगेवाले की आवाज़ सुनते ही क़ाज़ी साहब छत पर निकल आए, और एक औरत को आते देख कमरे की खिड़कियाँ चारों तरफ़ से बंद करके खूँटी पर लटकती हुई तलवार उतार ली, और दरवाज़े पर आकर खड़े हो गए ।

औरत ने ज़ीना तय करके ज्यों ही छत पर पैर रक्खा कि क़ाज़ी साहब को देखकर झिझकी । वह तुरंत पीछे की तरफ़ मुड़ना चाहती थी कि क़ाज़ी साहब ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया, और अपने कमरे में घसीट लाए । इसी बीच में आमिद और ताँगेवाला, ये दोनों भी ऊपर आ गए थे । आमिद यह दृश्य देखकर विस्मित हो गया था । रहस्य और भी रहस्यमय हो गया था । यह विद्या का सागर, यह न्याय का भांडार, यह नीति, धर्म और दर्शन का आगार, इस समय एक अपरिचित महिला के ऊपर यह घोर अत्याचार कर रहा है । ताँगेवाले के साथ वह भी क़ाज़ी साहब के कमरे में चला गया । क़ाज़ी साहब तो स्त्री के दोनों हाथ पकड़े हुए थे । ताँगेवाले ने दरवाज़ा बंद कर दिया ।

महिला ने ताँगेवाले की ओर ख़ून-भरी आँखों से देखकर कहा—तू मुझे यहाँ क्यों लाया ?

क़ाज़ी साहब ने तलवार चमकाकर कहा—पहले आराम से बैठ जाओ, सब कुछ मालूम हो जायगा ।

औरत—तुम तो मुझे कोई मौलवी मालूम होते हो ? क्या तुम्हें ख़ुदा ने यही सिखाया है कि पराई बहू-बेटियों को ज़बरदस्ती घर में बंद करके उनकी आबरू बिगाड़ो ?

क़ाज़ी—हाँ, ख़ुदा का यही हुक्म है कि काफ़िरों को, जिस तरह मुमकिन हो, इस्लाम के रास्ते पर लाया जाय । अगर ख़ुशी से न आवें, तो जब्र से ।

औरत—इसी तरह अगर कोई तुम्हारी बहू-बेटी को पकड़कर बे-आबरू करे, तो ?



"अगर तुमने ज़बान खोली तो तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा।"

क़ाज़ी—हो ही रहा है। जैसा तुम हमारे साथ करोगे, वैसा ही हम तुम्हारे साथ करेंगे। फिर हम तो बे-आबरू नहीं करते, सिर्फ़ अपने मज़हब में शामिल करते हैं। इस्लाम क़बूल करने से आबरू बढ़ती है, घटती नहीं। हिंदू-क़ौम ने तो हमें मिटा देने का बीड़ा उठाया है। वह इस मुल्क से हमारा निशान मिटा देना चाहती है। धोखे से, लालच से, ज़ब्र से मुसलमानों को बे-दीन बनाया जा रहा है? तो क्या मुसलमान बैठे मुँह ताकेंगे?

औरत—हिंदू कभी ऐसा अत्याचार नहीं कर सकता। संभव है, तुम लोगों की शरारतों से तंग आकर नीचे दर्जे के लोग इस तरह बदला लेने लगे हों। मगर अब भी कोई सच्चा हिंदू इसे पसंद नहीं करता।

क़ाज़ी साहब ने कुछ सोचकर कहा—बेशक! पहले इस तरह की शरारतें मुसलमान शोहदे किया करते थे। मगर शरीफ़ लोग इन हरकतों को बुरा समझते थे, और अपने इमकान-भर रोकने की कोशिश करते थे। तालीम और तहज़ीब की तरक़्क़ी के साथ कुछ दिनों में यह गुंडापन ज़रूर ग़ायब हो जाता। मगर अब तो सारी हिंदू-क़ौम हमें निगलने के लिये तैयार बैठी हुई है। फिर हमारे लिये और रास्ता ही कौन-सा है। हम कमज़ोर हैं, इसलिये हमें मजबूर होकर अपने को क़ायम रखने के लिये दग़ा से काम लेना पड़ता है। मगर तुम इतना घबराती क्यों हो? तुम्हें यहाँ किसी बात की तकलीफ़ न होगी। इस्लाम औरतों के हक़ का जितना लिहाज़ करता है, उतना और कोई मज़हब नहीं करता। और मुसलमान मर्द तो अपनी औरत पर जान देता है। मेरे यह नौजवान दोस्त (जामिद) तुम्हारे सामने खड़े हैं, इन्हीं के साथ तुम्हारा निकाह कर दिया जायगा। बस, आराम से ज़िंदगी के दिन बसर करना।

औरत—मैं तुम्हें और तुम्हारे धर्म को घृणित समझती हूँ। तुम कुत्ते हो। इसके सिवा तुम्हारे लिये कोई दूसरा नाम नहीं। ख़ैरियत इसी में है कि मुझे जाने दो। नहीं तो मैं अभी शोर मचा दूँगी, और तुम्हारा सारा मौलवीपन निकल जायगा।

क़ाज़ी—अगर तुमने ज़बान खोली, तो तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा। बस, इतना समझ लो।

औरत—आबरू के सामने जान की कोई हक़ीक़त नहीं। तुम मेरी जान ले सकते हो, मगर आबरू नहीं ले सकते।

क़ाज़ी—क्यों नाहक़ ज़िद करती हो?

औरत ने दरवाज़े के पास जाकर कहा—मैं कहती हूँ, दरवाज़ा खोल दो।

जामिद अब तक चुपचाप खड़ा था। ज्यों ही स्त्री दर-

बाज़ू की तरफ़ बढ़ी, और क़ाज़ी साहब ने उसका हाथ पकड़कर खींचा, आमिद ने तुरंत दरवाज़ा खोल दिया, और क़ाज़ी साहब से बोला—इन्हें छोड़ दीजिए।

क़ाज़ी—क्या बकता है ?

आमिद—कुछ नहीं। ख़ैरियत इसी में है कि इन्हें छोड़ दीजिए।

लेकिन जब क़ाज़ी साहब ने उस महिला का हाथ न छोड़ा, और ताँगेवाला भी उसे पकड़ने के लिये बढ़ा, तो आमिद ने एक धक्का देकर क़ाज़ी साहब को ढकेल दिया। और उस स्त्री का हाथ पकड़े हुए कमरे से बाहर निकल गया। ताँगेवाला पीछे लपका ; मगर आमिद ने उसे इतने ज़ोर से धक्का दिया कि वह औंधे-मुँह जा गिरा। एक क्षण में आमिद और स्त्री, दोनो सड़क पर थे।

आमिद—आपका घर किस मुहल्ले में है ?

औरत—यहियागंज में।

आमिद—चलिए, मैं आपको पहुँचा आऊँ।

औरत—इससे बड़ी और क्या मेहरबानी होगी। मैं आपकी इस नेकी को कभी न भूलूँगी। आपने आज मेरी आबरू बचा ली ; नहीं तो मैं कहीं की न रहती। मुझे अब मालूम हुआ कि अच्छे और बुरे सब जगह होते हैं। मेरे शौहर का नाम पंडित राजकुमार है।

उसी वक़्त एक ताँगा सड़क पर आता दिखाई दिया। आमिद ने स्त्री को उस पर बिठा दिया, और ख़ुद बैठना ही चाहता था कि ऊपर से क़ाज़ी साहब और ताँगेवाला, दोनो लाठियाँ लिए हुए उतरे। क़ाज़ी साहब ने आमिद पर लट्ठ चलाया और डंडा ताँगे की छत पर पड़ा। इतने में आमिद ताँगे में जा बैठा, और ताँगा चल दिया।

यहियागंज में पंडित राजकुमार का पता लगाने में कोई कठिनाई न पड़ी। आमिद ने ज्यों ही आवाज़ दी, वह घबराए हुए बाहर निकल आए, और स्त्री को देखकर बोले—तुम कहाँ रह गई थीं इंदिरा ? मैंने तो तुम्हें स्टेशन पर कहीं न देखा। मुझे पहुँचने में ज़रा देर हो गई थी। तुम्हें इतनी देर कहाँ लगी ?

इंदिरा ने घर के अंदर क़दम रखते हुए कहा—बड़ी लंबी कथा है। ज़रा दम लेने दो, तो बता दूँगी। बस, इतना ही समझ लो कि आज अगर इस मुसलमान ने मेरी मदद न की होती, तो आबरू चली गई थी।

पंडितजी पूरी कथा सुनने के लिये और भी व्याकुल हो उठे। इंदिरा के साथ ही वह भी घर में चले गए। पर एक ही मिनट के बाद बाहर आकर आमिद से बोले—भाई साहब, शायद आप बनावट समझें, पर मुझे आपके रूप में इस समय अपने इष्टदेव के दर्शन हो रहे हैं। मेरी ज़बान में इतनी ताक़त नहीं कि आपका शुक्रिया अदा कर सकूँ। आइए, बैठ जाइए।

आमिद—जी नहीं, अब मुझे इजाज़त दीजिए।

पंडितजी—मैं आपकी इस नेकी का क्या बदला दे सकता हूँ ?

आमिद—इसका बदला यही है कि इस शरारत का बदला किसी ग़रीब मुसलमान से न लीजिएगा। मेरी आपसे यही दरख़्वास्त है।

यह कहकर आमिद चल खड़ा हुआ, और उस अँधेरी रात के सन्नाटे में शहर के बाहर निकल गया। उस शहर की विषाक्त वायु में साँस लेते हुए उसका दम घुटता था। वह जल्द-से-जल्द शहर से भागकर अपने गाँव में पहुँचना चाहता, जहाँ मज़हब का नाम सहानुभूति, प्रेम और सौहार्द था। धर्म और धार्मिक लोगों से उसे घृणा हो गई थी।

प्रेमचंद

फ़्रांस का विश्राम-तीर्थ

भारत में जिस तरह गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी आदि नदियों के तट पर तीर्थ बसाए गए हैं, उसी तरह योरप में समुद्र तथा अन्य जलाशयों के किनारे स्नान और पान-तीर्थ स्थापित किए गए हैं। तीर्थ-शब्द के माने ही संस्कृत में उस स्थान के हैं, जो जल के सन्निकट हो। इसलिये यह स्पष्ट है कि क्या भारत में, क्या योरप में, सर्वत्र तीर्थों की उत्पत्ति एक ही कारण से हुई होगी। कार्ल्सबाद, मारीनबाद, स्पाविशी आदि योरप के तीर्थ सदियों से प्रख्यात हैं। इन महातीर्थों के अतिरिक्त प्रत्येक देश में स्थानीय महत्त्व के सैकड़ों तीर्थ भी हैं। ऐसे कुछ स्थानों का वर्णन मैं माधुरी में कर चुका हूँ। मेरा मतलब जर्मनी के पूर्वी समुद्र के स्नान-तीर्थों से है। गरमियों में ये स्वास्थ्यकर स्थान यात्रियों से भर जाते हैं।

यही नहीं, ऐसे भी स्थल हैं, जो जाड़ों में भरते हैं। हमारे पूर्वज ऋषियों ने जिस प्रकार तीर्थ-यात्रा का काल-विभाग किया है, ठीक उसी प्रकार, और कभी-कभी उसके विरुद्ध, योरप के नास्तिक ऋषि काल-निर्णय करते हैं। हिंदोस्तान में गरमियों में बदरीनाथ और अमरकंटक की यात्रा की जाती है, तथा जाड़ों में जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारका आदि की। यहाँ गरमियों में स्वीडन, नारवे के शीत-प्रधान नगर, पर्वत-शिखर, जल-तीर्थ आदि भरते हैं, और जाड़ों में कान, नीस, मांट कार्लो, साँ रेमो, आदि-रिवियेरा की यात्रा होती है। मिसर ऐसे यात्रियों से भर जाता है। अमेरिकन अँगरेज़, फ्रेंच और जर्मन जहाज़ी कंपनियाँ सस्ते भाड़े में यात्री लादकर भारत की परिक्रमा भी करा देती हैं। स्विटज़रलैंड तो तीर्थराज ही है, जहाँ गरमियों में प्राकृतिक सौंदर्य अपनी अपूर्व छटा से जगत् का मन मोह लेता है, और जाड़ों में दिन-रात्रि शारीरिक व्यायाम करनेवालों के लिये महान् पर्व ही उपस्थित कर देता है। बर्फ़ पर स्केटिंग स्कींग आदि के शौक़ीन इस भाग्यशाली प्रदेश के कोने-कोने में फैल जाते हैं। इस देश का मुख्य व्यापार ही यह तीर्थ-यात्रा हो गया है। वहाँ के पंडे (होटलों और क्रीड़ाभूमि के स्वत्वाधिकारी) मालामाल हो गए हैं। बारहों महीने सम-भाव से आबाद रहनेवाली योरप की इस वाराणसी से दरिद्रता-राक्षसी भाग गई है। भारत में भी तीर्थ अपने स्वास्थ्यकर जल-वायु, ऋषि-मुनियों के सम्मिलन और सार्वजनिक देशाटन की इच्छा के कारण उत्पन्न हुए थे। जनता विद्वत्समागम से पुण्य लूटती थी, स्वास्थ्य-वृद्धि कर अपना दैहिक ओज बढ़ाती थी, देश-भ्रमण कर भारतीय समान संस्कृति गढ़ने में सहायता करती थी। उस समय—

"गंगागंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि ;
मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोकं स गच्छति।"

नहीं रचा गया था। 'जय गंगे' का असली अर्थ लगाया जाता था ; अर्थात् गंगाजल में स्नान करने और उसे पीने से यात्री अपनी आधिभौतिक व्याधियाँ नष्ट करता था। योरप के स्नान और पान-तीर्थ भी इसीलिये हैं। यहाँ के विद्वान्, राजनीति-विशारद, कलाविद्, व्यवसायी, विद्यार्थी, मज़दूर, सभी साधारण दिनों में कड़ा परिश्रम करते हैं। जब स्वास्थ्य में कुछ अंतर देखा, तो किसी बल-वर्द्धक स्थान को चल दिए। कुछ दिन वहाँ आराम किया। जब देखा कि अब तबियत तरोताज़ा हो गई है, तो वापस लौट चले।

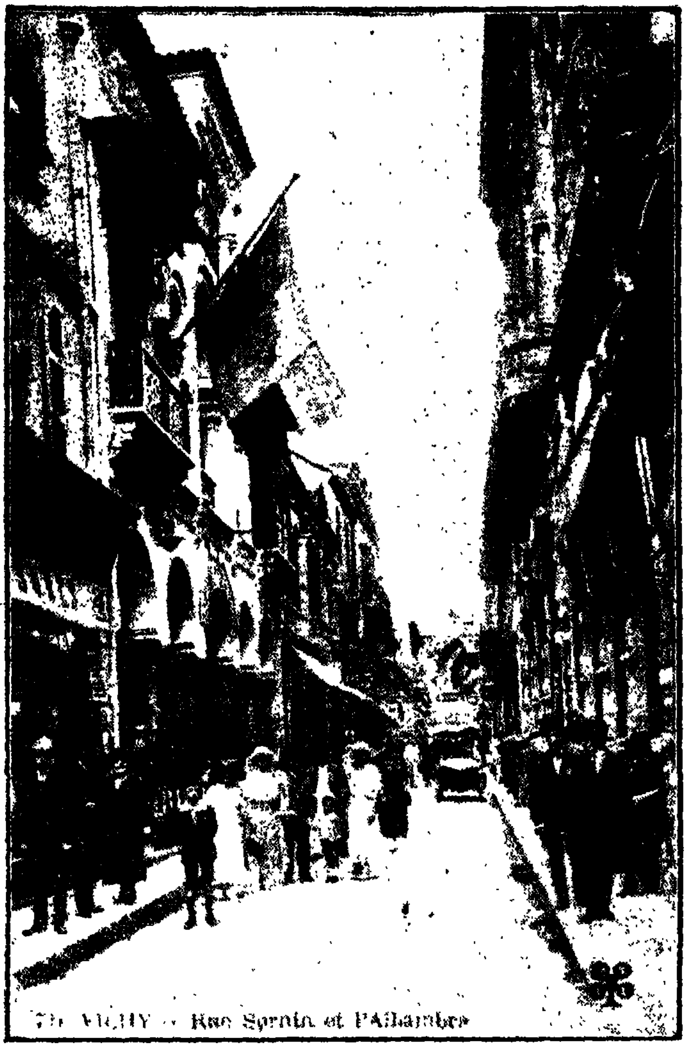
जिस विशी-नामक छोटे नगर से मैं यह लेख भेज रहा हूँ, वह भी ऐसा ही तीर्थ है। इसकी महिमा बड़ी पुरानी है। जब रोमन लोगों का फ़्रांस में राज्य था, उस समय



विशी का साधारण दृश्य

पेट के रोगी विशी के पानी से अपनी चिकित्सा करते थे। फ्रांस के बादशाह साल में कुछ दिन यहाँ रहकर आरोग्य-लाभ करते थे। उनका महल अब तक यहाँ वर्तमान है। इसकी प्राचीनता के विषय में मतभेद है, तो इसी बारे में कि १,२०० सन के कितने पहले से यह स्थान प्रसिद्ध था। यहाँ के जल के गुण फ्रेंचों के लिये ४७८ ई० में संत मार्त्यों ने प्रचारित किए। यह संत इस विभाग का पादरी था। फिर तो लोग दौड़े आने लगे। सन् ८४२ तक विशी इस जल की बदौलत समृद्ध होता रहा। किंतु इस साल नार्मडी के लोग इस पर टूट पड़े, और इसे लूट ले गए। प्रायः दो सौ वर्षों तक विशी इस धक्के से न सँभल सका। बारहवीं सदी में अँगरेज़ फ्रांस को लूट-खसोट रहे थे। फ्रांस में सर्वत्र इनके डाकूपन की धाक थी। उस समय बूराबाँ के ड्यूक ने विशी को क़िले की तरह मज़बूत बना दिया, जिसमें इनके हाथ से यह स्थान नष्ट-भ्रष्ट न हो। उस समय का घेरा अभी तक न्यूनाधिक रूप में विद्यमान है। पाठक जिस घंटाघर का चित्र देखेंगे, वह उसी काल का है। लुई द्वितीय ने इसकी प्रसिद्धि बढ़ाई। उसने यहाँ एक रोमन-कैथलिक संघाराम खोला। इसके पादरियों ने यहाँ के जल के आयुर्वैदिक गुण देखे, और इसकी सहायता से वे रोगियों को चंगा करने लगे। इस समय जां बां (Jean Bane)-नामक डॉक्टर ने एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम है Des merveilles des eaux minerales अर्थात् 'धातु-मिश्रित जल के आश्चर्य।' इसने उन सोतों का महत्त्व बढ़ा दिया, जिनके पानी में धातु मिले हुए थे। इसके बाद कई वैद्य विशी के पानी की तारीफ़ करने लगे। लुई चौदहवें ने यहाँ अस्पताल बनवाना आरंभ किया। किंतु फ्रांस की उस समय की डावाँडोल राजनीतिक स्थिति के कारण यह पूरा न हो सका। अब बड़े-बड़े आदमी यहाँ आने लगे। उस समय पेरिस से यहाँ पहुँचने में, घोड़ागाड़ी से, सात दिन लगते थे। किंतु जिसे सामर्थ्य थी, वे यहाँ आ जाया करते थे। लुई सोलहवें ने भी यहाँ अस्पताल बनाना चाहा। किंतु १७८६ के विप्लव ने उसे भी यह काम पूरा न करने दिया। नेपोलियन ने फिर से यह काम हाथ में लिया। वह भी पूरा न कर सका। अंत को १८१४ में आंगूलेम की डचेज़ ने अस्पताल की नींव डाली, जो इस बार बन ही गया। १८५३ में एक कंपनी ने यहाँ के सोतों का सरकार से ठेका ले लिया। विज्ञापन की धूम मचा दी गई। विशी सर्वत्र विदित हो गया। नेपोलियन (तीसरा) अक्सर यहाँ ठहरा करता था। उसने १८६१ में आलिए-नदी के किनारे की भूमि पार्क बनाने को दे दी। प्रायः मील-भर लंबा यह रमणीय तट फूल-पत्तों और वृक्ष-लताओं से सुसज्जित किया गया। कंपनी को यथेष्ट लाभ हुआ। १८६७ में फिर सरकार ने इसी को ठेका दे दिया। शर्त यह रक्खी कि यह अपने व्यय से नया अस्पताल, अप-टु-डेट स्नानागार काज़ीनो (Casino) आदि तैयार करे। नए-नए यात्रियों के शौक़ पूरे करने के लिये थिएटर रेस्टोराँ, काफ़े, नाचघर आदि खुलने लगे। थोड़े ही दिनों में बड़े-बड़े और सब तरह के सुख-सौंदर्य से परिपूर्ण होटल बन गए। विशी-गाँव नगर में परिणत हो गया। पेरिस के प्रसिद्ध डिपार्टमेंटल स्टोर्स अर्थात् वे दूकानें, जो अपने भिन्न भिन्न विभागों में सब मनुष्यों की सभी आवश्यकताओं की चीज़ें बेचती हैं, विशी में अपनी शाखाएँ खोलने लगीं। आं बां मार्शे (An bon Marche), नूवेल गैलरी (Nouvell Gallerie) यहाँ पहुँच गई। गैस बिजली से रात दिन में बदल गई। पानी सातवें तल्ले पर भी चढ़ गया। अब क्या बाक़ी रहा, जो पूरा किया जाय। रेल ५ घंटे में मुसाफ़िर को पेरिस से यहाँ पहुँचाने लगी। इस पर सुबीता यह कि पेरिस-लीयों-मेदेतरानी लाइन पर विशी पड़ गया। यह लाइन पेरिस से मारसेइ (Marseilles) और इटली जाती है। इस कारण जो भी फ्रांस या इँगलैंड को आता है, उसे इसी पथ से गुज़रना पड़ता है। १८३१ में जहाँ ६८७ यात्री आए थे वहाँ १८६१ में साढ़े सत्रह हज़ार पहुँचे। १९१६ में तो यह संख्या डेढ़ लाख तक पहुँच गई।

मैं सदा का रोगी। मुझे इधर कुछ-न-कुछ शिकायत बनी रहती थी। जर्मनी में डॉक्टर ने कहा, फ्रांस जा रहे हो, तो विशी चले जाना। वहाँ का जल आपको बहुत लाभ पहुँचावेगा। मैं पेरिस पहुँचा, पाँच-सात दिन वहाँ रहा, विशी को कूच कर दिया। रास्ते में छोटे-छोटे स्टेशन रुहेल-खंड-कुमाऊँ रेलवे-लाइन की याद दिला रहे थे। वाह! कैसे गंदे हैं! भारत की स्मृति ताज़ी हो रही थी। फ्रेंच-प्रकृति गरम जल-वायु के कारण चेष्टा करने पर भी उत्तरीय देशों की-सी सफ़ाई नहीं रख सकती। सो मुझे इसमें भारतीय रस का स्वाद मिल रहा था। वहाँ का ध्यान कर आगे बढ़ता चला आ रहा था। गरमी बेहद सता रही थी। कहीं सो



विशी की एक गली

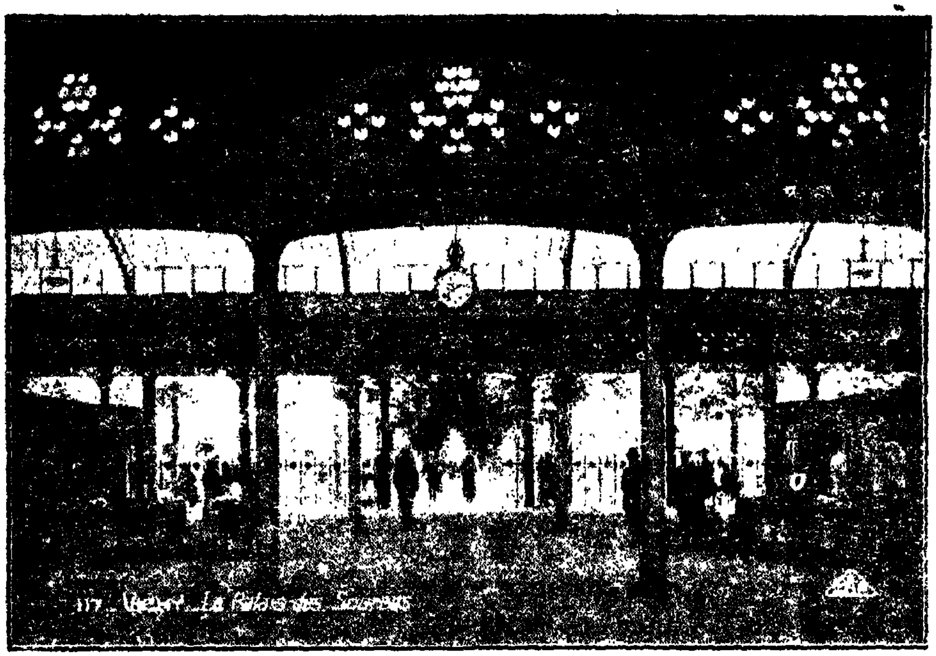
गया, कहाँ आ पड़ा। शाम को जब गाड़ी विशी पहुँची, तब वहाँ स्वप्न भी भंग हुआ। छोटा स्टेशन, कम गंदा। स्वास्थ्यकर स्थानों के सुंदर रंगीन चित्र दीवालों पर टँगे थे। यह लुभावना ढंग बता रहा था कि यहाँ कुछ फ़र्क़ मिलेगा। बाहर आते ही एक स्त्री की मूर्ति हाथ में बिजली की मशाल लिए आपका स्वागत कर रही है। चेहरे पर क्या मधुरता है, क्या सरलता है। हाथ उठाकर, आपको रोशनी दिखाकर, मौन वाणी से कह रही है—"मित्र, स्वागत है! आओ, स्वास्थ्य सुधारो, और सुख-पूर्वक अपने-अपने काम को लौटो। मेरे सामने भेद-भाव नहीं है; सब धर्म, सब वर्ण, सब देश समान हैं।" इसमें न्यूयार्क की स्वतंत्रता की विशालकाय मूर्ति का वह मायावी रूप नहीं मिलता, जो कालों और पीलों को एलिस-आइलैंड में ही खतियाकर भगा देता है। किंतु वेष है समानता का, प्राणिमात्र के स्वागत करने का। जो हो, विशी की यह देवी आत्मीय की भाँति वहाँ पैर रखते ही आपसे गोया गले मिलती है।

स्टेशन पर ही होटलवालों का ताँगा रहता है। आप चाहे जिस होटल में उतरना चाहें, एक ही बात है। यह आपको वहाँ छोड़ देगा। बात यह है कि यहाँ के होटलों के मालिकों ने अपना संगठन कर रक्खा है। इसकी कार्यकारिणी सभा ने मोटरें और ताँगे ख़रीद रक्खे हैं। ये रेल के पहुँचते ही स्टेशन पर हाज़िर रहते हैं, और आपको बिना भाड़े ठिकाने पर लगा देंगे। भाड़ा होटल की ख़ातिरदारी में शामिल है, या कहिए, कमरे के किराए में। मुझे एक ताँगा मिला। उसने मुझे और मेरे हैंडबैग को मेरे बताए हुए होटल में पहुँचा दिया। यहाँ पर उन पाठकों की जानकारी के लिये, जो योरप में रहते हैं, या जो कभी फ्रांस देखने का विचार रखते हैं, कुछ सूचित करता हूँ। फ्रांस-भर के होटलों के स्वत्वाधिकारी अपनी समिति Chambre Nationale De L'Hotelleric Francaise द्वारा प्रति-वर्ष होटलों की सूची, मय कमरों की संख्या उनके कम-से-कम और ज़्यादा-से-ज़्यादा दाम, भोजन का मूल्य आदि के, प्रकाशित करते हैं। चाहे जिस सैलानियों के दफ़्तर से आप इसे बिना मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। अगर न मिले, तो पेरिस की गली रूद् स्यूरेन 17, Rue de Surine में L'office National De Touriseme को, जो मिनिस्टर ऑफ़ पब्लिक वर्क्स के अधीन है, मँगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक दर्शनीय नगर की Syndicat d'jintiative को एक कार्ड डाल दीजिए, वह आपको उस विशेष स्थान की सूची भेज देगी।

फ़ेहरिस्तों में जिन सार्वजनिक निवासों के नाम दिए रहते हैं, उनमें किसी प्रकार की धोखेबाज़ी का कोई भय नहीं है। साथ ही यात्री अपनी गाँठ को देख किसी जगह पहुँचने से पहले ही यह ठीक कर लेता है कि वहाँ अमुक होटल में उतरूँगा। अन्यथा अज्ञानभाषी परदेश में यात्री को बड़ी हैरानी उठानी पड़ती है। अगर स्टेशन पर मोटरवाला आपकी कुछ बात समझा भी, तो महँगे-से-महँगे आश्रय-स्थान पर छोड़ देगा। मुझे ऐसे कई भारतीय सज्जन मिले हैं, जिन्हें यह सुबीता न मालूम होने के कारण कष्ट उठाना पड़ा है।

अस्तु, शाम को कमरे में खा-पीकर सो गया। दूसरे दिन प्रातःकाल ही होटल के मैनेजर ने पूछा कि तुम्हें यहाँ किस रोग का इलाज कराना है? मैंने कहा, स्नायविक और शारीरिक दौर्बल्य तथा पेट की चिकित्सा के लिये यहाँ आया हूँ। उसने कहा, डॉक्टर जानते हो? मेरे नहीं कहने पर उसने टेलीफ़ोन पर एक प्रसिद्ध डॉक्टर से बातचीत कर मुझसे कहा कि आपको तीन बजे शाम को हमारा आदमी डॉक्टर के पास रोग के निदान और उसकी चिकित्सा के लिये ले जायगा। वही हुआ। डॉक्टर ने जाँच की, कई अजीब तरह के यंत्रों से न-मालूम क्या-क्या पड़ताल की। अंत में कहा कि तुम्हें पुष्टि-कर भोजन न मिलने से स्वास्थ्य की यह दशा (Malnutrition) हो गई है। उसने मेरा दैनिक कार्य-क्रम तैयार कर दिया। इसके अनुसार मुझे सुबह आठ बजे उठना, तुरंत कलेवा करना, साढ़े नव बजे शोमेल (Source-Chomal)-नामक सोते का ४० ग्राम पानी पीना, साढ़े दस बजे फिर इसी सोते का इतना ही पानी पीना, इस बीच में प्रतिदिन गरम फ़व्वारे के द्वारा स्नानागार में सारा शरीर धुलवाना, बारह बजे भोजन करना, फिर शाम को ३½ और ४½ बजे ओपिताल नामक सोते का ४० ग्राम पानी पीना, ६½ बजे शाम को ब्यालू करना, ख़ाली समय, जिस प्रकार उचित हो, काम में लाना था। यही विशी का इलाज है। दवा-दारू के लिये तो यहाँ कोई आता नहीं, सब रोगी इस जल-पान और स्नान के लिये यहाँ आते हैं। इसी से उन्हें लाभ भी होता है। वास्तव में यहाँ के भिन्न-भिन्न सोते नाना रोगों के लिये रामबाण हैं। किसी का जल वातव्याधि का समूल नाश करता है, तो किसी का उदर-रोग का, किसी का उन्निद्र-रोग की जड़ उखाड़ता है, तो किसी का रक्त-हीनता की। लोग पानी पीते हैं, नहाते हैं, और तीन हफ़्ते में चंगे होकर घर वापस जाते हैं।

कोई यह न समझे कि ये सोते नैनीताल के गंधक के पानी की तरह निरर्थक बहते ही रहते हैं, और जिसका जब जी चाहा, वह लोटा लेकर सोते के पास जा पहुँचा, और भर-भरकर पानी पी आया। कभी ऐसा भी था। तीन सौ साल पहले इन सोतों का पानी पहाड़ी झरनों की भाँति जहाँ को रास्ता पाया, वहाँ को बहता था। वहाँ के खेत इस जल से भर जाते थे। अस्वादिष्ट होने के कारण मनुष्य इसे बहुत कम पीते थे। किंतु सहज बुद्धि से संपन्न गऊ, बैल, कुत्ते आदि यह अमृत पी अपने रोग दूर करते और ख़ून बढ़ाते थे। लेकिन १७७५ में जब फ्रांस के तत्कालीन राजा लुई सोलहवें की फूफियाँ मैदाम आदे-लाईद (Adelaide) और विक्त्वार (Victoire) आईं, तो पानी बँध गया। एक सोता प्याऊ में परिणत हो गया। अब उसका नाम Source Mesdames (सूर्स मैदाम) है। इसका महत्त्व तुरंत बढ़ गया; क्योंकि अब पशु इसे नहीं पी सकते थे। मनुष्य भी इसे बिना आयास न प्राप्त कर सकता था। बक़ौल अर्थ-शास्त्र के अब यह दाम में चढ़ गया। इसका मूल्य उस दवा से बहुत अधिक हो गया, जो मुफ़्त में सर्वत्र प्राप्त होने से संपत्ति में नहीं गिनी जाती। बस, चाह बढ़ी, और माँग होने लगी। इसके अनंतर सभी सोते सरकार की संपत्ति हो गए। तल-नप-कर पीने के लिये यह उदक मिलने लगा। वर्तमान समय में दूर-दूर से नल के द्वारा इनका पानी पुराने पार्क तक पहुँचाया गया है। वहाँ अलग अलग प्याऊ खोल दिए गए हैं। जिसको जहाँ का पानी आवश्यक है, वह उस प्याऊ के पास पहुँच जाता है। एक-एक प्याऊ में संगमरमर के कई नल बहते रहते हैं। हरएक के पास एक लड़की सिर में लखनवी चुन्नटदार टोपी पहने आपको जल देने को तैयार है। इन्हें देख अठारहवीं सदी के उस राजपूत चित्र की याद आती है, जिसमें सुषमा का आकर एक कोमल-वदनी ललना गरमियों में श्रांत पथिकों की प्यास बुझा रही है। यहाँ हर प्याऊ पर हज़ारों उम्मेदवार हैं। सब नंबरवार आते जाते और खड़े होते जाते हैं। किसी के हाथ में काँच के गिलास हैं, और कोई ख़ाली हाथ; क्योंकि इनके गिलास प्याऊ के चारों ओर दुहरी पाँत में



चार मुख्य प्याऊवाला भवन



सेलस्त्याँ प्याऊ और उसका पार्क

लगे हुए खूँटों में लटक रहे हैं। यह भी एक सुहावना दृश्य है। नाना वर्ण और विचित्र रूप के डेढ़ हज़ार गिलास केवल एक प्याऊ सूर सोपिताल(Source Hopilel)के चारों ओर लटक रहे हैं। धन्य है इन अबला कुमारिकाओं की स्मृति कि पानार्थी सामने आया कि बिना नंबर पूछे उसकी मनोनीता वाला उसका गिलास खूँटे से उतारकर, पानी भरकर, उसे दे देती है। यह आश्चर्य देखकर तबियत ख़ुश हो जाती है, और आदमी मुसकिराता हुआ, "मर्सीब्यँ मादंवाजेल" कहता हुआ पानी पीकर, फिर अपना जल-पात्र वापस करके, चला जाता है। पर इन देवदासियों को विश्राम कहाँ? इनके सामने ताँता बँधा ही रहता है, मानो बाबा विश्वनाथ का चरणोदक पीने के लिये पुण्यार्थी टूट रहे हों। इन प्याउओं को देखकर स्वभावतः देवमंदिरों की याद आती है। इनके काँच और पीतल के कलशदार मंडप देवालयों का प्रेम पैदा कर देते हैं। इन सोतों का पानी पिया ही नहीं जाता; गले की बीमारी में कई डॉक्टर इसको गट-गट पिलाते हैं। इस काम के लिये अलग कमरे बने हुए हैं, जहाँ उचित सामान प्रस्तुत रहता है। पानी पीने के यहाँ दाम नहीं लगते। प्रत्येक यात्री से, जो यहाँ पहुँचता और किसी होटल में रहता है, उसका भटियारा ३६ सांतीम, याने दो पैसे से कुछ कम, कमरे के किराए के साथ वसूल कर सरकारी ख़ज़ाने में भेज देता है। आपके यहाँ रहने से म्युनिसिपैलिटी पर आपका जो पानी का ख़र्च, सफ़ाई आदि का भार पड़ा, सब इस कर से अदा हो गया। अब आप शहर को गंदा करते फिरें, दिन-भर पानी पीते रहें, किंतु कोई कुछ न बोलेगा, भले ही आप इससे स्वयं अपनी हानि करें। प्याऊ यहाँ सबके लिये खुले हैं। गोया भगवान् का दरबार है। जो पहुँचा, उसे पानी मिला। जिसके पास गिलास नहीं है, उसे सरकारी पात्र दिया जाता है। लेकिन जब तक वैद्य परामर्श न दे कि तुम्हारे स्वास्थ्य को अमुक सोते का जल उपयुक्त है, आप अट-संट सोते में पहुँच अपना स्वास्थ्य सुधारने के स्थान पर बिगाड़ लेंगे। इसलिये पुराने पार्क में और प्याऊ में सर्वत्र नोटिस लटकाए गए हैं कि "आपके स्वास्थ्य के हित के लिये निवेदन किया जाता है कि बिना किसी योग्य चिकित्सक से राय लिए जिस किसी सोते का जल मत लेना।" बाहरी दृष्टि से देखने पर भी सोतों



ग्रांद्ग्री-प्याऊ

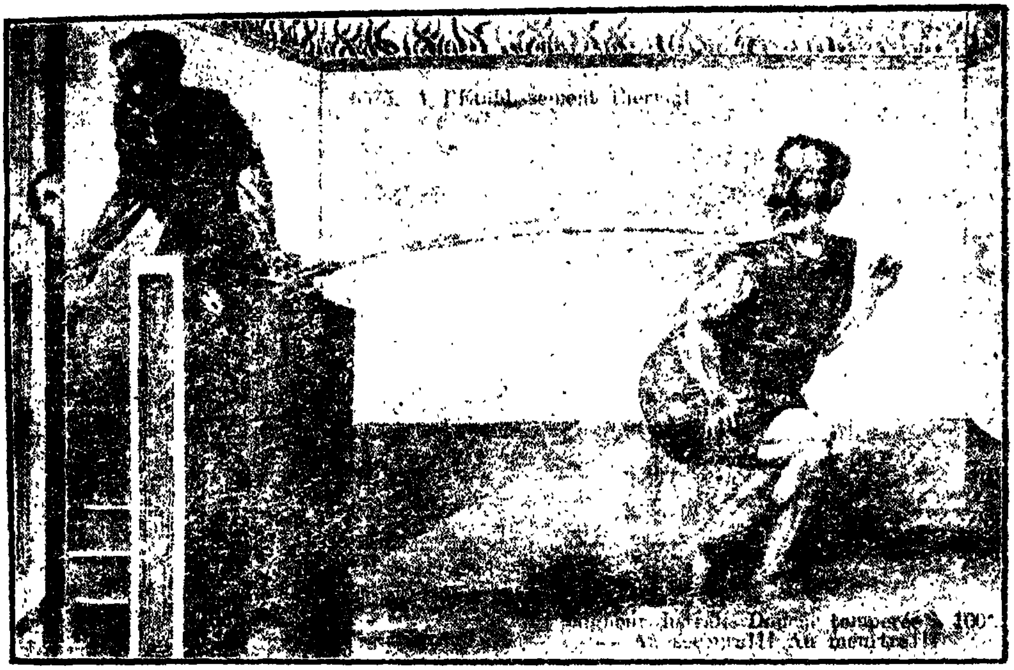
(यहाँ लखनवी टोपी और मंदिर के आकार का प्याऊ स्पष्ट देख पड़ता है)

का फ़र्क़ मालूम पड़ जाता है । कई का पानी गरम है, कई ठंडे हैं, किसी का स्वाद कुछ, किसी का कुछ । इसके अलावा वैद्यक-गुण में ये सोते एक दूसरे के विरुद्ध हैं । कई सोते ऐसे हैं कि यदि आप स्वस्थ हैं, और यों ही उनका जल पी बैठें, तो कोई रोग आपके पीछे चिपट जायगा । साथ ही आपको यह भी तो जानना चाहिए कि कितनी मात्रा आपके लिये पर्याप्त है । इसलिये यहाँ जो जल-पात्र बिकते हैं, उनमें नापने के लिये क्रम-बद्ध नंबर पड़े रहते हैं । जितने 'ग्राम' पानी रोगी के लिये निर्दिष्ट किया गया है, वह उतना रख लेता है, बाक़ी गिरा देता है ।

विशी में नाना प्रकार के रोगियों के लिये एक बृहत् जल-चिकित्सालय है । इसमें तरह तरह के स्नानों को महत्त्व दिया गया है । साधारण टब का स्नान तथा फ़व्वारे का नहाना तो है ही, किंतु सूर्यरश्मि-अवगाहन, ज्योतिःप्रवाह में निमज्जन, विद्युत् स्नान, भाप में अंगप्रोक्षण, तेज़ बहते हुए जल में शरीर धोना, गरम हवा में नहाना, अँतड़ियों को साफ़ करना, पेट धो डालना, धातुमिश्रित पानी में ग़ोते मारना, नेती-धोती, कई भाँति के आसनों में स्नान करना मालिश के साथ अंग-शौच आदि के अतिरिक्त वहाँ नवीन-से-नवीन यंत्रों से सुसज्जित mecanotherapic का भवन है, जिसमें आप जाकर बैठ जाइए, या खड़े रहिए, विना जल-प्रकाश से ही शरीर स्वच्छ हो जायगा, और साथ ही वह व्यायाम हो जायगा कि आदमी आश्चर्य करने लगता है । इनमें अधिकांश स्नानों के पहले, दूसरे, तीसरे दर्जे हैं । गुण सबका एक है । सजावट और आराम में बड़ा फ़र्क़ है । सबसे सस्ते स्नान का दाम ३ पैसे (५० सांतीम) और सबसे महँगे के $1\frac{1}{2}$ रुपया है ; अर्थात् निर्धन और धनी, सब यहाँ लाभ उठा सकते हैं । मैं हफ़्ते में दो रोज़ पेट साफ़ करवाता हूँ । शेष दिनों में Douce a grande percussion अर्थात् ज़बर्दस्त फ़व्वारे के तेज़ पानी से नहलाया जाता हूँ । इसमें जल की धार इतनी तेज़ रहती है कि पहलेपहल इसे सहना बहुत कठिन होता है । कई रोगी भागने लगते हैं । डॉक्टर के पुर्ज़े को देखकर नहलानेवाला पानी का ताप और ज़ोर नियमित करता है । इसके लिये विशेष यंत्र हैं । फिर विशेष-विशेष अंगों में ख़ास गरमी और तेज़ी की ज़रूरत होती है । मैं अपना ही उदाहरण देता हूँ । मेरे पेट पर ५ मिनट तक धार छोड़ी जाती थी । पहले जल कम गरम और धार कभी ज़ोर की कभी कमज़ोर । यह आधे गज़ की दूरी पर । इसके पीछे मुझे तीन गज़ दूर खड़ा होना पड़ता है, जहाँ इतने ज़ोर से पानी की सहस्र धाराएँ छोड़ी जाती हैं कि पहले रोज़ मैं धक्के के कारण जगह से हट



ज्योति और वायु का स्नान



जल की गरमी और तेज़ धार के सामने न टिक सकनेवाला स्नान-वीर

गया, अंत में शरीर को सब तरफ़ से धोकर अब पैरों की बारी आती है, तो मुझे अब तक चोट लगती है। और, जब उष्णता बढ़ाई जाती है, तो समझता हूँ कि अब की बार तो चमड़ा जल ही गया। परंतु डॉक्टर पूरी जाँच करने के बाद आपके लिये स्नान निर्द्धारित करता है, जिससे अंत में लाभ ही होता है, हानि नहीं।

विशी में बीसियों कारख़ाने हैं, जो यहाँ के सोतों को अर्थ में परिणत करते हैं। इनका जल इतना गुणकारी है कि संसार-भर में उसकी माँग है। फ्रांस में तो विशी-जल का उतना ही महत्त्व है, जितना भारत में गंगाजल का। छोटे-छोटे गाँवों में भी इसकी भरी हुई बोतलें बिकती हैं। किसी रेस्टोराँ की भोजन-सूची उठाइए, आपको पेय पदार्थों में यहाँ के पानी का नाम नित्य मिलेगा। किसी लिस्ट में यह नहीं छूटता। लोग भी बड़े चाव से इस सोडावाटर से भी कुस्वाद जल को पीते हैं। कहा जाता है, गंगाजल में कीड़े नहीं पड़ने और वह बहुत समय तक सड़ता नहीं। यही बात यहाँ भी है। यहाँ का पानी दीर्घकाल तक शुद्ध और लाभप्रद बना रहता है। यहाँ की सड़कों पर सुबह और शाम काशी की याद आती है। यहाँ के निवासी काँच की गंगाजलियाँ हाथ में लटकाए जब आते-जाते हैं, तो दृश्य थोड़ा-बहुत समान हो जाता है। कभी तीन-तीन दिन तक एक ही पानी चलता है। मैं जिस होटल में रहता हूँ, वहाँ देखता क्या हूँ कि मकान-मालिक और उसकी स्त्री शराब में भी सोते का पानी मिलाते हैं। यह वही मसला हो गया—"खाओ क़बाब और पियो शराब"। एक हलाल और दूसरी हराम है। मुझे यह देखकर हँसी आई। पर ये कहते हैं कि उनके स्वास्थ्य के लिये यह पथ्य है। "विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।" अस्तु, असल में यहाँ की आय इस निर्यात से ही समझनी चाहिए। इस हरद्वार में चाहे जो जितना जल पी ले, किंतु पेरिस में इसके १ फ्रां, ७५ सांतीम (२$\frac{1}{2}$ आने) लग जाते हैं। पानी सुखाकर नमक निकाला जाता है, जो कई रोगों पर अच्छा असर दिखाता है। कई तरह की गोलियाँ बनाई जाती हैं। शक्कर निकाली जाती है। हाँ, मिठाई भी इस जल से बनाई जाती है। यह पथ्य लड्डू और पेड़े कौन अपने साथ न ले जायगा? इन सब पदार्थों की ख़ासी बिक्री देख यहाँ पैसों के पीछे फिरनेवाले

मनुष्य-रूपी कीड़े सूँघ-सूँघकर पहुँचे। उन्होंने मिट्टी के तेल की खानों की तरह नए सोते ढूँढ़ निकाले, और सरकार से ठेका ले, पानी और उससे तैयार किए हुए विविध चूर्ण, पाचक और मिठाइयाँ नाना दिशाओं को चालान करने लगे। पृथ्वी विपुल है। सबके क़द्रदाँ मिल जाते हैं, और सभी आमदनी कर रहे हैं।

सच तो यह है कि इस तीर्थ में १८ हज़ार से अधिक चिर-अधिवासी काशी-प्रयाग के पंडों की भाँति आजीविका पैदा कर रहे हैं। इन्हें कोई दूसरा उपाय ढूँढ़ने की आवश्यकता है ही नहीं। यही क्यों, चतुर लोक-यात्राविद् बाहर से या लाखों पैदा कर ले जाते हैं। ६ महीने (मई से ऑक्टोबर) वहाँ व्यापार चमक उठता है। पार्क के चारों ओर बीस से अधिक बड़े तराज़ू आदमियों को तोलने के लिये रक्खे गए हैं। इनके स्वत्वाधिकारी एक-एक तराज़ू रखकर इतना अर्जन कर लेते हैं कि सुख से परिवार-सहित निर्वाह कर सकें। पाठक यह न ख़याल करें कि इन्हीं ने यह काम खोल रक्खा है। नहीं, हर दवाख़ाने में—और इनकी संख्या सौ-पचास है—तुला वर्तमान है। ऑटोमैटिक मशीनें तो मोड़-मोड़ पर पड़ी हुई हैं। पानी पिलानेवाली लड़कियाँ बख़शीश में ही पेट भर सकती हैं। होटल, काफ़े, किनो, थिएटरवालों का क्या कहना। यह लूट देखकर कई अमेरिकन और अँगरेज़-कंपनियों ने अपनी शाखाएँ खोल दी हैं। फ़्रांस के कुल बैंकों की ब्रांचें यहाँ हैं। पानी का प्रबंध करनेवाली कंपनी ने पुराने पार्क में ५-७ हज़ार कुर्सियाँ डाल रक्खी हैं। उन पर बैठनेवालों से प्रतिदिन ४० सांतीम लिया जाता है। मुझसे कहा गया कि इससे उसे कुर्सियों का पँचगुना मूल्य मिल जाता है। ढाई सौ डॉक्टर छः महीने काम कर बाक़ी छः महीने नवाबों की तरह रहते और सफ़र करते फिरते हैं। वैसे तो फ़्रांस में बेकारी है ही नहीं, बल्कि बाहर दूसरे देशों से यहाँ पचीस लाख मज़दूर बुलाए गए हैं कि युद्ध में नष्ट-भ्रष्ट की गई इमारतें फिर से खड़ी करें। किंतु विशी में सभी सुख-चैन से रहते हैं। अब इन देशों से भारत का मिलान कीजिए, जहाँ एक करोड़ मनुष्य प्रतिदिन भूखे रहते हैं। जो कुछ भोजन पाते हैं, वे सूखी रोटी-तरकारी या ख़ाली नमक के साथ खाकर समझते हैं कि हमारा मनुष्य-जन्म भी सफल है। योरप के पशु इनसे अधिक पुष्ट और मूल्यवान् भोजन खाते हैं। हमारे पढ़े-लिखे जितनी तनख़्वाह पाते हैं, उनसे तिगुना-चौगुना योरप का मामूली श्रमजीवी पैदा कर लेता है। इस पर भी वह संतुष्ट नहीं रहता। यह इसलिये कि उसमें जीवनी-शक्ति है। यदि उसे हर रोज़ पेट-भर मक्खन और गोश्त न मिले, तो मरने-मारने को तैयार रहता है। विप्लववादी तो बिना अपवाद सब मज़दूर हैं। हाँ, मैं कुछ लिखना छोड़ गया हूँ। शराब या बियर भी इनको प्रतिदिन दो या तीन बार अवश्य मिलनी चाहिए। वह भी ये वसूल करते हैं। मगर यहाँ कोई यह नहीं कहता कि ये बुरा काम करते हैं, या फ़िज़ूल-ख़र्च हैं। वे ही गोरे भारत में ब्याह-शादी का ख़र्च भी हमारी दरिद्रता के कारणों में शुमार करते हैं। जो हो, कोई इन्हें दो दिन भी सत्तू फँकवाकर देख ले कि समाज में किस प्रकार रौब बढ़ जाता है। रुंडित मुंडों के ऊपर किस भीषणता से तांडव-गति नाची जाती है। ऐसा क्यों न हो, "ज़िंदगी ज़िंदादिली का नाम है, मुर्दा दिल क्या ख़ाक जिया करते हैं।" मैं देखता और अनुभव करता हूँ कि मेरे देश में अधिकांश मुर्दे बसते हैं, और योरप में ज़िंदा आदमी। इस पर फ़्रांसवाले ज़ोर और ज़ुल्म को मिट्टी में मिलाने के लिये बार-बार उठकर अपने जीवित रहने का पता दे चुके हैं। इनके जीवन के आनंद में कौन दख़ल दे सकता है? इसीलिये आज यहाँ बेकारी का पता नहीं है, सब चैन में हैं। और, जितनी मात्रा में यहाँ के समाज में असंतोष है, वह आवश्यक है। इसी के न होने से हम ग़ुलामी से पीछा नहीं छुड़ा सक रहे हैं।

विशी में लोग केवल पानी पीने या नहाने ही नहीं आते, हज़ारों ऐसे भी आते हैं, जो सब प्रकार से स्वस्थ हैं। वे इसलिये आते हैं कि यह स्थान बड़ा मनोरम है। इसके इर्द-गिर्द जो पर्वत-श्रेणी और मैदान हैं, उनकी छवि हृदय को पुलकित कर देती है। आलिए(Allier)-नदी का वीचि-विलसित तट दर्शक के चित्त को रसमय आनंद में मग्न कर देता है। हरे-भरे खेत चरागाह में गाय और भेड़ों का चरना आँखों के आगे चित्रपट रख देता है। दूर-दूर के गाँव, उनके साफ़-सुथरे लाल खपरैलों से छाए हुए मकान क्या सुंदर भाते हैं! इस पर यहाँ का स्वच्छ शुद्ध नील-वर्ण आकाश और सूर्य की शुभ्र ज्योति इन सब पर वह रंग फेर देती है कि कलामर्मज्ञ इस स्थान को ढूँढ़ता फिरता है, पर पता नहीं पाता। यह विशी पर प्रकृति की कृपा है। किंतु मनुष्य



आलिए नदी का तट
(यह तैराकों का अड्डा है)



आधमील लंबी छायादार गैलरी



पार्क के बीच की सड़क

ने इतने में संतोष नहीं किया। उसने इसे भी सँवारने की सोची है। सोते के साथ सात-आठ बड़े-बड़े पार्क हैं। इनकी हरियाली, पुष्पों की सजावट, वृक्षों की सुंदरता का क्या वर्णन किया जाय, देखने-योग्य है। पुराने पार्क में प्रायः आधमील लंबी छप्परदार गैलरी उसके चारों ओर घूमी है। वर्षा में भी आप आधमील घूम सकते हैं। इसका दूसरा मतलब है आपका काजिनो सूखे पाँव पहुँचाना। ल्युत्सर्न, त्सूरिच आदि में जिस प्रकार kurhans या आरोग्य-भवन (ये भवन 'आँख के अंधे और नाम नयनसुख' की लोकोक्ति को अक्षरशः चरितार्थ करते हैं) हैं, वैसे ही फ्रांस में रंगालय हैं। कोई रोगी यदि इलाज करवाने आया, तो इसका यह तो मतलब नहीं कि वह दिन-रात मुहर्रमी सूरत बनाए बैठा रहे। उसके लिये मनोविनोद भी आवश्यक है। इसलिये योरप में प्रत्येक स्वास्थ्यकर स्थान का ओनग़ोश अस्पताल और काजिनो से होता है। यह काजिनो क्या बला है, सुनिए। किनो थिएटर, नाचघर, क़हवाघर, वाचनालय, पुस्तकालय, ताशघर, शतरंज-बिलियार्ड खेलने की जगह, कनसर्ट बैंड सुनने का स्थान—सब कुछ इसमें है। इसके बरामदों और बग़ीचों में आप धूप लेने के लिये बैठ सकते हैं। आपको सभा करनी हो, यहाँ किसी बड़े कमरे में कर लीजिए। किसी को भोज देना हो, तो काजिनो सब प्रबंध कर देगा। मतलब यह कि रंगालय अलाउद्दीन का चिराग़ है, जो मनमानी सेवा कर सकता है; लेकिन यह दिया बिना पैसे के कभी नहीं बलता। उक्त साएदार गैलरी काजिनो से चलती है, और आधमील का चक्कर काट यहीं वापस पहुँच जाती है। इस आधमील के घेरे के भीतर जो पार्क है, उसकी यहाँ बड़ी महिमा है। सब पानी पीनेवाले हर घंटे यहाँ आने के बदले इसमें एक कुरसी ले अड्डा जमा देते हैं। इनकी संख्या आठ-दस हज़ार तक हो जाती है। इस संकुचित स्थल में मनुष्यों का ठठ बँध जाता है। कोई पत्र पढ़ता है, कोई पुस्तक; कोई स्त्री सीने-पिरोने का काम करती है, तो कोई मर्द घुटने पर चिट्ठी का काग़ज़ रक्खे प्रियतमा को पत्र लिखता है। गपशप तो अधिकांश लड़ाते ही हैं। सुबह-शाम यहाँ बैंड बजता है। उस समय की भीड़ का क्या ठिकाना! गैलरी खड़े आदमियों से भर जाती है, सड़कें पट जाती हैं।

बाहर के लोगों को लुभाने के लिये यहाँ कई प्रकार के उत्सव मनाए जाते हैं। असल में यात्री छुट्टियों में आनंद



पुराने पार्क में बैंड बजने के समय का दृश्य



आलिए के तट पर नया पार्क

(यह पार्क मील-भर लंबा है)

का पर्व मनाने ही यहाँ आते हैं। किंतु उनकी तबियत झका देने के लिये इन त्योहारों का जन्म हुआ। योरप में दो त्योहार सबको मात देते हैं—(१) बाल-नाच, (२) घुड़दौड़। उत्सव के सभी समाज यहाँ नाच में समाप्त होते हैं। बिना इसके किसी जलसे का काम पूरा नहीं होता। हमारे पाठक न जानते होंगे कि बर्लिन में जब-जब भारतीय राष्ट्रीय दिवस मनाया जाता या अकस्मात् कोई हर्ष-समागम का अवसर आ पहुँचता है, तो उसकी सांगोपांग सिद्धि भी निमंत्रित जर्मन लड़कियों के साथ नाचकर की जाती है। फिर योरपियनों का क्या कहना? बर्लिन के एक नाचघरवाले ने यह विज्ञापन दे रक्खा था कि "चार्लस्टन-नामक नाच के विरुद्ध सब देवता परमात्मा-सहित लड़े; पर जिनके सिर पर यह भूत सवार हुआ, वे भी उसे न उतार पाए।" नाच का सैतान यहाँ सबके सिर पर चढ़ा हुआ है। इसका प्रबंध यदि म्युनिसिपैलिटी न करती, तो भी प्राइवेट डैंसिंग-हाल्स जनता की प्यास बुझाने को काफ़ी थे। लेकिन जब सारा नगर मिलकर आनंद मनाता है, तो यह विराट् पर्व अपना सानी नहीं रखता। जिस दिन Bataille de fleurs (पुष्प-वर्षा या कुसुमयुद्ध) मनाया जाता है, उस दिन यहाँ का उत्साह और राग रंग देखिए। मनुष्य क्या, पशु का हृदय भी विशेष उल्लास का अनुभव करने लगता है। योरप में ग्रीष्म ऋतु ही वसंत है। प्रकृति अपना शृंगार करने में कोई कसर नहीं रखती; इस यौवन में मदमाती होकर वह विचित्र वर्णों के चितचोर वस्त्र पहनकर जीव-जंतुओं में भी काम-रोग फैला देती है। इस समय यह मदनोत्सव कहिए या वसंतोत्सव भले-भलों का सिर फिरा देता है। देखिए, ये बूढ़े नवयुवतियों पर पुष्पधन्वा के बाण बरसा रहे हैं, अपने को भूल गए हैं, और समझ रहे हैं कि नवयुवकों ने इन्हें अपनी जवानी का कुछ भाग दे दिया है। सबके चेहरे आज दुःख और चिंता भूल गए हैं। प्राणिमात्र मानो उत्साह के वायु-मंडल में उतरा रहे हैं। इनका इस सुख के आकाश में स्वच्छंद विचरण करना भारत की होली की जोड़ का है। मेरा अभिप्राय उस होलिकोत्सव से है, जो हमारे देशभक्त सुधारकों के विषैले 'नीति-प्रचार' से मृतप्राय होने से देहात में निरक्षर ग्रामीणों के जीवित समाज में अपना स्वाभाविक रूप प्रकट करता है। हमारे नगरों में अब जीवन ढूँढ़ने से भी नहीं मिलता। हमारी न-समझी हुई सभ्यता, राष्ट्रीयता तथा इन सबसे अधिक नैतिक जीवन की चाह ने हमें मार डाला है।

"ग्रह-गृहीत पुनि बात-बस, ता पर बीछी मार ;
ताहि पियाइय बारुनी, कहहु कवन उपचार।"

अस्तु, विशी में यह फूलों की गंध पुकार रही है—

"रिंदो जाहिद से कहाँ खिंचती है मै ;
हो शरीक इस कारे नेक-अंजाम में।"

यह उत्सव यहाँ जून और अगस्त में दो बार होता है। इसके सिवा बीसियों त्योहार Fetes मनाए जाते हैं, जिनमें सब भाग लेते हैं। खेल तो सब प्रकार के होते ही हैं। तीर चलाने की प्रतिद्वंद्विता देखने लायक़ होती है। धनुर्विद्या-विशारद और अकुशल, सभी अपना-अपना जौहर दिखाते हैं। छोटी बालिकाएँ और नवयुवतियाँ जब मुसकिराती हुई हाथ में टेढ़ा तीर ले खड़ी होती हैं कि सामने कबूतर पर निशाना मारें, उस समय रसिक तुरंत ताड़ जाता है कि यह तीर कहीं और जा पड़ेगा, अन्यत्र घाव करेगा। मुझे कहना ही पड़ा—"कैसे तीरंदाज़ हो सीधा तो कर लो तीर को।" किंतु यह कौन कह सकता है कि यहाँ बाँकपन में ही सीधापन है। ये तो वह बला है जो "सँवारे से बिगड़ते हैं, बिगाड़े से सँवरते हैं।" नौ-कला-कुशलों के लिये यहाँ रेगाटा होते हैं। फ़ुटबाल, क्रीकेट, टेनिस आदि का तो रोज़ ही बोलबाला है। गाफ़ के लिये खेत-के-खेत पड़े हैं। इस पर घुड़दौड़ सबको मात देती है। दो-ढाई मील का मैदान यहाँ ग्राउंड तथा टर्फ़ का काम देता है। मोटर-दौड़, साइकिल-दौड़ आदि की सर्वजातीय प्रतिद्वंद्विता होती है। सबसे बड़ा उत्सव वह होता है, जब सारे फ़्रांस की सुंदरता की रानियों में से राजराजेश्वरी का निर्वाचन होता है। फ़्रांस के प्रत्येक नगर में हर साल एक रानी चुनी जाती है, जो उस वर्ष उस नगर में सुषमा की खान हो। विशी में इनमें से सबसे सुंदर का चुनाव होता है। इस उत्सव के लिये लोग कुंभ के मेले की भाँति दौड़े आते हैं।

पेरिस] हेमचंद्र जोशी

विचित्रता

नाना रूप-रंग और गुण के, निराले, नए
जग में अनेक दिव्य दृश्य दृष्टि आते हैं ;
कुछ ललचाते, कुछ लोचन लुभाते,
कुछ प्रीति उपजाते, कुछ चित्त को चुराते हैं।

किंतु तुममें है एक बहुत विचित्र बात,
और कहीं कभी हम जिसको न पाते हैं;
देखें जो तुम्हें, तो हम मन हैं गमाते, यदि
देखें न तुम्हें, तो निज प्राण ही गमाते हैं।
गोपालशरणसिंह

समर्थन

ख़ूब किया, जो तुमने इसको ला पिंजड़े में बंद किया।
चारा चुँगने को बेचारा,
दर-दर फिरता मारा-मारा,
दूध-भात बैठा खाता है, आहा! क्या आनंद दिया;
तरु-कोटर-वासी निरीह को स्वर्णासन-आसीन किया।
वन-विहंग को सुजन बनाया,
बातचीत करना सिखलाया,
राम-नाम का मज़ा चखाया, अमर किया, स्वाधीन किया।
राय कृष्णदास

इतिहास-निर्माण का कार्य

वर्तमान युग विशेषज्ञों का युग है। सभी मानवी क्षेत्रों के लिये यह बात कही जा सकती है। पर ऐतिहासिक अध्ययन एवं ऐतिहासिक खोज के संबंध में तो इसका विशेष महत्त्व है। हमारे पूर्वजों ने दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष आदि विषयों पर जितना ध्यान दिया, उतना चाहे इतिहास-लेखन पर भले ही न दिया हो, तथा यह विषय उन्होंने इतना आवश्यक न समझा हो, फिर भी हमारे देश में इतिहास-लेखन का सर्वथा अभाव नहीं था, और मि० डाऊ, प्रोफ़ेसर होरेन, प्रो० विल्सन, कर्नल टॉड आदि पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने ग्रंथों में इस मत की पुष्टि भी की है। अतएव अपने देश में कई इतिहास-ग्रंथ लिखे अवश्य गए; किंतु समय-चक्र से उनमें कई तो आप-ही-आप नष्ट हो गए, पर अधिकांश को समय-समय पर कई नृशंसात्माओं ने भस्मीभूत कर दिया। अनहलवाड़ा-पाटन के प्रसिद्ध पुस्तकालय को अलाउद्दीन ख़िलजी ने जला डाला। फ़ीरोज़-शाह तुग़लक़ ने कोहान में एक बड़े संस्कृत-पुस्तकालय को ख़ाक कर दिया, और सैयद ग़ुलाम-हुसेन ने अपने इतिहास-ग्रंथ "सैरुल-मुतख़रीन" में लिखा है कि "सुल्तान सिकंदर औरंगज़ेब जहाँ-जहाँ गया, उसने हिंदुओं के पुस्तकालयों को जलाया।" इन सब उपर्युक्त कारणों से अपने देश में इतिहास-संबंधी साहित्य की जो कमी है, उस पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। अतएव अपने यहाँ की बात जाने दीजिए; किंतु उन्नतिशील पाश्चात्य देशों में भी प्रायः सौ वर्ष पूर्व तक 'इतिहास' से किसी शास्त्र-विशेष का बोध नहीं होता था। भूतकाल के विषय में किसी भी प्रकार से जो कुछ लिखा जाता था, वही वहाँ इतिहास कहलाने लगता था। मठ में रहनेवाले साधुओं के रोज़नामचे, जिनमें धार्मिक त्योहारों तथा प्राचीन संतों की पुण्य-तिथियों के उत्सवों का उल्लेख और जादू-टोने द्वारा लोगों के रोग-मुक्त होने के वर्णन रहते थे, और जो लैटिन भाषा के व्याकरण-संबंधी नियमों और विवेचनों से भरे रहते थे, वे सभी इतिहास के अंतर्गत समझे जाते थे। साथ ही एक-एक लेखक सारे संसार का इतिहास लिख डालता था। उन्नीसवीं शताब्दी में इन बातों में परिवर्तन हो गया। अन्यान्य क्षेत्रों के साथ ऐतिहासिक क्षेत्र पर भी वैज्ञानिक प्रणाली का प्रभाव पड़ा। अब किसी बात के केवल साधारण कथन-मात्र से ही लोगों को संतोष न होने लगा। प्रत्येक कथन को, घटनाओं द्वारा, विस्तार-

पूर्वक पुष्टि करने की आवश्यकता समझी जाने लगी। लोग यह समझने लगे कि अपनी अल्पज्ञता को छिपाने के लिये अर्द्धशिक्षित लेखक ही ऐसे प्रमाण-रहित कथनों का आश्रय लेते हैं। प्राचीन रोम की स्थापना, आल्फ्रेड की कथा और जूलियस सीज़र की महत्त्वाकांक्षा आदि के विषय में जो धारणाएँ कई शताब्दियों से चली आती थीं, उनके मूल-प्रमाणों की खोज हो-होकर उनके विषय में नए मत निर्द्धारित किए गए। अभी तक प्रायः ऐसा होता था कि किसी ऐतिहासिक पात्र की प्रशंसा की जाती, तो उसे बढ़ाते-बढ़ाते सातवें स्वर्ग तक ऊँचा उठा देते थे; और यदि निंदा करना आरंभ करते, तो फिर पाताल ही में गिराकर संतोष करते थे। गत शताब्दी में यह निश्चय हुआ कि किसी एक ही पुस्तक अथवा व्यक्ति की बात को—फिर चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो—"बाबावाक्यं प्रमाणं" मान लेना ठीक नहीं। अब यह निश्चय हुआ कि किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के विषय में लिखते हुए उसमें जो प्रशंसा की बातें हों, उन्हें अवश्य लिखना चाहिए, पर इतनी अंधवीर-पूजा न करनी चाहिए कि उसकी मानवी त्रुटियों की ओर दृष्टि ही न डाली जाय। साथ ही निंदात्मक आलोचना को इतना न बढ़ाना चाहिए कि किसी व्यक्ति को नर-पिशाच ही बनाकर छोड़ा जाय, किंतु उसके श्रेयस्कर गुणों का उल्लेख होना भी आवश्यक है। यदि उसके विषय में सब प्रमाणों का पक्षपात-रहित अध्ययन करने पर कोई व्यक्ति देव-तुल्य सिद्ध हो, अथवा अन्य कोई व्यक्ति पशु-श्रेणी में गिरा हुआ मिले, तो बात दूसरी है। पर ऐसे व्यक्तियों की संख्या कितनी होगी? अधिकांश ऐतिहासिक पात्र मनुष्य-श्रेणी के ही होते हैं, उनमें गुण-दोष का सम्मिश्रण रहता है। हाँ, इन दोनों विकारों के अनुपात की मात्रा में अवश्य अंतर होता है। अब जनता-संबंधी इतिहास पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा, और भूतकाल के सभी अंगों पर, अर्थात् राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, व्यावसायिक, शिक्षात्मक अवस्था पर विचार होने लगा। फिर इतिहास लेखन की भाषा एवं शैली भी निर्द्धारित की गई। फिर यह निश्चय हुआ कि भाषा इतनी आलंकारिक न हो कि उसमें इतिहास के भावों के व्यक्त करने में अर्थ का अनर्थ हो जाय। हम लोगों के लिये यह बात बड़े महत्त्व की है। इस दिशा में हम लोग विशेष दोष के भागी हैं कि अलंकार के पीछे हमारे यहाँ के लेखक प्रायः इतिहास की हत्या कर बैठते हैं। ऐसा न होना चाहिए, और इस विषय में हमें विशेष सावधान हो जाना उचित है। ऐतिहासिक खोज का कार्य करने और ऐतिहासिक ग्रंथ लिखने के लिये अब विशेष शिक्षा और ज्ञान की आवश्यकता समझी जाने लगी है। जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, वकील आदि को अपना कार्य वर्षों सीखना पड़ता है, वैसे ही इतिहास-लेखक को भी अपने विषय में निष्णात होने और अपने कार्य को वैज्ञानिक रीति से करने के लिये वैसी शिक्षा प्राप्त कर उसका व्यावहारिक अभ्यास करना चाहिए। प्रमाण के विना उसे कुछ न लिखना चाहिए। पर किस प्रकार के प्रमाणों से उसे काम लेना चाहिए, और इतिहास-लेखन के कार्य में उसे किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इन्हीं बातों का इस लेख में, संक्षेप में, आगे उल्लेख होगा।

ऐतिहासिक सामग्री को हम दो मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं। एक प्रकार की सामग्री वह है, जो लेख-बद्ध हो, और दूसरे प्रकार की वह,

जो लेख-बद्ध न हो। यह बात तो निर्विवाद है कि इतिहास के निर्माण में दूसरे प्रकार के प्रमाण की अपेक्षा पहले प्रकार के प्रमाण से अधिक सहायता मिलती है। लेख-बद्ध सामग्री तो स्तंभरूप होती है, और अलेख-बद्ध सामग्री उसकी पूर्ति करती है। पर जहाँ लिखित प्रमाण का अभाव रहता है, वहाँ अन्य प्रमाणों का ही महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। अत्यंत प्राचीन काल के इतिहास-निर्माण में प्रायः दूसरे प्रकार की सामग्री का ही विशेष महत्त्व है।

शिला-लेखों और ताम्र-लेखों से इतिहास के निर्माण में बहुत सहायता मिल सकती है। काग़ज़ पर लिखी हुई सामग्री तो दीमक आदि के लगने से नष्ट हो जाती है; पर इस प्रकार की सामग्री का बहुत कुछ स्थायी रूप होता है। हमारे देश में सम्राट् अशोक के शिला-लेख और स्तंभ इस प्रकार के प्रमाण के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। इसके लिये प्राचीन भाषाओं के ज्ञान की बड़ी आवश्यकता होती है। कभी-कभी इस ज्ञान के अभाव से, ऐसे प्रमाण मिलने पर भी, भूतकाल की घटनाओं पर इनसे कोई प्रकाश नहीं पड़ता। जैसे, बैबिलन और असीरिया में मिले हुए शिला-लेखों के भाषा-ज्ञान के अभाव से बहुत-सी ज्ञातव्य बातें इतिहास के गर्भ ही में छिपी हुई हैं। समय का निर्णय करने में मुद्रा का स्थान बहुत महत्त्व-पूर्ण है। मुद्राओं में दिए हुए संवत्सरों द्वारा ही कई शासकों के राजत्व-काल के विषय में ठीक ठीक निर्णय हुआ है। मि० विंसेंट स्मिथ ने प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास की बहुत-सी तिथियाँ मुद्राओं द्वारा ही निश्चित की हैं। तिथि-निश्चय के अतिरिक्त मुद्राओं से उस काल की सभ्यता एवं आर्थिक अवस्था का भी किसी अंश में पता लग सकता है। कला-कौशल के कार्यों, चित्रकारी, पच्चीकारी, शस्त्रादि एवं गृह-निर्माण-कला तथा खँडहरों से भी इतिहासज्ञों का बड़ा काम निकलता है। पुराने शस्त्रों को देखकर इतिहास के विद्यार्थी के सम्मुख किसी प्राचीन युद्ध का सजीव चित्र खिंच जाता है, और खँडहरों एवं राजप्रासाद आदि भग्नावशेषों द्वारा अस्थि-अवशिष्ट भूतकाल मूर्तिमान् हो हमारे सम्मुख खड़ा हो जाता है। पर इस संजीवनी-क्रिया के लिये बड़े अनुभवी वैद्य की आवश्यकता होती है; अन्यथा इस पुनर्जन्म में इन अस्थिपंजरों का रूप कुछ-का-कुछ हो जाने का भय रहता है।

अब लिपि-बद्ध अथवा लिखित प्रमाण पर विचार करना चाहिए। यह भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। एक तो वह, जो स्वयं राजकर्मचारियों द्वारा लिखा गया हो; और दूसरा वह, जो शासन से संबंध रखते हुए भी दूसरों के द्वारा लिखा गया हो। इसमें सर्वप्रथम संधि-पत्र का उल्लेख करना उचित होगा। अंतरराष्ट्रीय संबंध एवं युद्धों के कारण समझने में इनके अध्ययन से बहुत काम निकल सकता है। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के संबंध के लिये संधि-पत्र का जो महत्त्व है, राजा और प्रजा के संबंध को समझने के लिये वही महत्त्व घोषणा-पत्र का है। प्रायः प्रजा के तत्कालीन कष्ट-विशेषों को दूर करने का ही वचन इन घोषणा-पत्रों में रहता है। प्रजा को संतुष्ट कर उसे शांत रखना इन घोषणा-पत्रों का मुख्य उद्देश्य रहता है। शासकगण प्रायः किसी अनिवार्य परिस्थिति के वश हो इन घोषणाओं द्वारा अपनी प्रजा को बड़े-बड़े वचन दे देते हैं, और फिर "प्राण जायँ बरु बचन न जाई" के आदर्श को छोड़कर अपने कहे हुए शब्दों का कुछ-का-कुछ आशय निकालते हैं, मानो अपनी प्रजा से

यह कहते हैं कि अपनी की हुई सब प्रतिज्ञाओं को कौन पूरी कर सकता है। किसी संकट के समय जैसे एक गृहस्थ देवी-देवतों की अनेक मनौती मान लेता है, और संकट-निवारण हो जाने पर वह उसे किसी न-किसी प्रकार टाल देता है, घोषणा-पत्रों के संबंध में शासकों का भी यही हाल समझिए। शासक और शासितों के पारस्परिक वैमनस्य और संघर्षण को भली भाँति समझने के लिये इन घोषणा-पत्रों एवं अधिकार-पत्रों के अध्ययन की अत्यंत आवश्यकता है। जागीर आदि देने के फ़रमान, समय-समय पर निकाली हुई सरकारी सूचनाएँ एवं दरबार और राजसभाओं के विवरण से भी बड़ी सहायता मिल सकती है। राजकर्मचारियों के पत्र-व्यवहार और संवाद-दाताओं—गुप्त और प्रकट—के विवरणों से भी भूतकाल के विषय में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हो सकती है।

उपर्युक्त सब प्रमाण राजकर्मचारियों द्वारा उद्धृत होते हैं। अब उन प्रमाणों का उल्लेख होगा, जो उन लोगों के द्वारा लिखे जाते हैं, जो राज-कर्मचारी नहीं हैं। प्रजा के किसी व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक घटनाओं का वर्णन, सार्वजनिक कार्य-कर्ताओं के आत्मचरित, आपस में उनका तथा साधारण प्रजा का पत्र-व्यवहार, यात्रियों के वृत्तांत, प्रजा के पारस्परिक संबंध के दस्तावेज़, लोगों के आय-व्यय के हिसाब आदि कई प्रमाणों को इस श्रेणी में रखना उचित होगा।

सार्वजनिक घटनाओं के वर्णनों की जाँच करते हुए यह पता लगाने का यत्न करना चाहिए कि जिन घटनाओं का वर्णन है, उनमें से प्रत्यक्ष रीति से कितनी लेखक ने स्वयं देखी-सुनी हैं, और कितनी के विषय में उसने यहाँ-वहाँ से कुछ सुनकर लिख दिया है। प्राचीन काल में आवागमन की कठिनाइयों के कारण दूर तक समाचारों के पहुँचते-पहुँचते उनका स्वरूप बहुत कुछ बदल जाता था। फिर सभी वर्णन समकालीन लेखकों द्वारा लिखे हुए भी नहीं मिलते; किंवदंतियों के आधार पर बीस-बीस, पचास-पचास और सौ-सौ वर्ष पूर्व के वर्णनों को इन लेखकों ने साधारण तत्कालीन लेखकों के सदृश लिखा है। अतएव स्थान और समय के अंतर से इनमें जो त्रुटि होना संभव है, उस पर इति-हासज्ञ का ध्यान अवश्य रहना चाहिए। इन विव-रणों में दी हुई सब घटनाओं की वह अलग-अलग जाँच करे; कुछ घटनाओं के विश्वासमूलक सिद्ध हो जाने पर अन्य घटनाओं को भी उसी प्रकार न मान ले। मुग़ल-काल में ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं, और महाराष्ट्र-काल के बखर भी इस प्रकार के प्रमाण के अच्छे उदाहरण हैं। मुसलमान-काल के इतिहास-निर्माण में आत्मचरितों से बड़ी सहायता मिली है। कई मुसलमान-शासकों ने अपने आत्म-चरित स्वयं लिखे हैं। तैमूर, बाबर और जहाँगीर के आत्मचरित उल्लेखनीय हैं। इनमें बाबर का आत्मचरित तो सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। यदि अपने संबंध की समय-समय पर होनेवाली घटनाएँ उसी समय लिख दी गई हैं, तो उनका मूल्य उन घट-नाओं से कहीं अधिक होगा, जो कई वर्षों बाद लिखी गई हों; क्योंकि इस दशा में स्मरण-शक्ति अकसर धोका दे देती है, और घटनाओं का क्रम एवं वर्णन संदेहमूलक अथवा अस्पष्ट हो जाता है। मेगास्थिनीज़, फ़ाहियान, हुएनसांग के यात्रा-वृत्तांतों से अपने देश के प्राचीन इतिहास के विषय में कई महत्त्व-पूर्ण बातों का पता चलता है। इब्नबतूता, मार्कोपोलो, हाकिंस, रो, टेरी, बर्नियर और टेव-र्नियर मुसलमान-काल के प्रसिद्ध यात्री हैं। अपनी अनुभव-हीनता के कारण इनमें से किसी-किसी

ने जनश्रुति के आधार पर कुछ तथ्य-हीन बातें भी लिख दी हैं। अतएव इनसे सहायता लेने के समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए। पत्र-व्यवहार से कई गुप्त बातों और उस समय की सामाजिक रीति-नीति का पता लगता है। इँगलैंड में पैस्टन-वंश का पत्र-व्यवहार इस संबंध का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। दस्तावेज़ और आय-व्यय के हिसाब से भी लोगों की आर्थिक दशा पर भी बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है।

इन सब बातों के विषय में ऊपर संक्षेप में ही विचार प्रकट किए गए हैं। किंतु इतिहास-लेखक के कार्य के महत्त्व और उसकी कठिनाइयों पर ज़रा विस्तार से विचार करना अच्छा होगा। सबसे अधिक ध्यान देने-योग्य और महत्त्व-पूर्ण बात यह है कि जो कुछ भी सामग्री प्राप्त हो, उसका उसे अन्वेषणात्मक रीति से उपयोग करना चाहिए। धीरे-धीरे चारों ओर देखते हुए, बड़ी सावधानी के साथ, उसे अपने कार्य की ओर बढ़ना चाहिए, और एकदम किसी निर्णय पर न पहुँच जाना चाहिए। इतिहास-लेखक भविष्य में आनेवाले लोगों के लिये मार्ग तैयार करता है, अतएव वह मार्ग लोगों को उद्दिष्ट स्थान पर ले जा सके, इस हेतु बार-बार उसकी परीक्षा करना उचित होगा। अतः यथाशक्ति उसे उसमें ऐसे चिह्न अंकित करने चाहिए, जो संदेह-मूलक न हों। इस दृष्टि से एक वैज्ञानिक की अपेक्षा एक इतिहास-विशारद का कार्य अधिक कठिन है। वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में कई बार प्रयोग करके अपने सिद्धांतों की प्रामाणिकता की जाँच कर सकता है। पर इतिहास-विशारद इतिहास की घटनाओं को उसी प्रकार कैसे दुहरा सकता है? अतएव उसे सावधानी से अधिक संभवनीय कुछ मुख्य-मुख्य दोषों से बचने का उद्योग सदैव करते रहना चाहिए। इन दोषों को हम मुख्यतः तीन विभागों में विभक्त कर सकते हैं। पहली कठिनाई स्वयं इतिहास-लेखक के संबंध की है। दूसरी ऐतिहासिक सामग्री की संयोजना की और तीसरी वह जिस प्रकार उस सामग्री से अपने निर्णय पर पहुँचकर इतिहास-लेखक ऐतिहासिक घटनाओं और निर्णय को अंकित करता है।

वर्तमान युग में इतिहास-लेखन की कला में जो नई-नई कसौटियाँ रख दी गई हैं, उनके कारण उपर्युक्त कठिनाइयाँ विशेष रीति से बढ़ गई हैं। पहले तो केवल यह समझा जाता था कि इतिहास-लेखक ने जिन घटनाओं को देखा या ऐसे लोगों से सुना हो, जिन्हें उन घटनाओं के विषय में अच्छी जानकारी हैं, उन्हीं को वह उसी प्रकार अंकित कर दे। बस, उसका उत्तरदायित्व पूर्ण हो चुका। इन घटनाओं का क्रम एवं कार्य-कारण समझाना, उनके विषय में कोई सम्मति देना, आलोचना करना अथवा निष्कर्ष निकालना उसका काम नहीं समझा जाता था। हाँ, बीच-बीच में यदि वह अपने व्यक्ति-गत द्वेषात्मक भावों को भी प्रकट कर देता था, तो भी वह बुरा नहीं समझा जाता था। किंतु अब यह सर्वमान्य सिद्धांत निश्चित हो गया है कि इतिहास-लेखक निष्पक्ष भाव से अपनी कथा का वर्णन करे। यह कार्य अत्यंत कठिन है, और व्यक्ति-गत दृष्टि से यही उसकी सबसे बड़ी कठिनाई है। प्रत्यक्ष-रूप से कोई पक्ष न लेते हुए भी कथा की घटनाएँ एवं शृंखला जिस ढंग से अंकित की जाती है, उससे परोक्ष-रीति से लेखक की विचार-धारा की झलक आए बिना नहीं रहती। सच्चा इतिहास-

लेखक यथासमय इस दोष से भी बचने का प्रयत्न करेगा। पर इससे आगे बढ़ने और अपने द्वेष-भावों को स्पष्टतः प्रकट करने पर तो फिर चाहे कोई कैसा ही विद्वान् क्यों न हो, वह इतिहास-लेखक के नाम को सार्थक नहीं कर सकता। जिन विदेशी सज्जनों ने भारतवर्ष के इतिहास पर ग्रंथ लिखे हैं, उनकी उद्योगशीलता, अध्ययन-अभिरुचि और अध्यवसाय की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। पर अभाग्यवश उनमें से अधिकांश, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीति से, अपने स्वभाव-जन्य द्वेष को दूर नहीं कर सके, और उन्होंने अनेक स्थलों पर जातीय पक्षपात से काम लिया है।

अर्वाचीन ऐतिहासिक को एक सिद्धांत निश्चित कर यह बतलाना पड़ता है कि अमुक घटना हुई, तो क्यों हुई? भिन्न-भिन्न समयों में होनेवाली घटनाओं को एक सूत्र में बाँधना और उनका पारस्परिक संबंध बतलाना भी उसका काम है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सभी आंदोलनों को समझाना उसका कर्तव्य है। राष्ट्रों के उत्थान-पतन, राज्य-संगठन के निर्माण, विकास और ह्रास आदि बातें भी उसे बतलानी चाहिए। पर उसे अपने लिखने का यह ढंग रखना चाहिए कि वह अपनी सम्मति एवं अपना विवेचन ज़बरन् दूसरों से स्वीकार कराने का प्रयत्न न करे; प्रत्युत घटनाओं का क्रम ऐसा रक्खे कि उसके पाठक यदि चाहें, तो स्वयं स्वतंत्रता-पूर्वक अपना निष्कर्ष निकाल सकें, चाहे वह निष्कर्ष उसके दिए हुए निष्कर्ष से सर्वथा भिन्न ही क्यों न हो। सारांश यह कि उसे न्यायाधीश के सदृश अपना कार्य करना चाहिए; सब पक्षों की बात सुनकर, सहानुभूति और द्वेष-रहित हो केवल न्याय की कसौटी पर कसकर अपना निर्णय प्रकट करना चाहिए। यह कार्य बड़े महत्त्व का है; पर साथ ही अत्यंत कठिन भी है। बाल्यकाल ही से जो संस्कार पड़ जाते हैं, और जो विचार हमारे हृदय में जम जाते हैं, उन्हें निकालना सरल नहीं। ऐसी धर्मांधता के उदाहरण हमारे सामने प्रायः प्रतिदिन आते रहते हैं। प्रत्यक्ष रीति से कोई पक्ष न लेने पर भी यदि लेखक ऐसी ही घटनाओं का उल्लेख करे, जो उसकी चिरस्थित मनोवृत्ति के अनुकूल हैं, और उसके हृदय-गत संस्कारों की पुष्टि न कर किसी रूप से उनके विरुद्ध जाती हैं, उन पर ज़ोर न दे, तो भी अन्याय ही होगा। यह एक अनुभव-सिद्ध बात है कि किसी भी उपन्यास या काव्य को पढ़ते समय या किसी युद्ध के समाचारों को मालूम करने की उत्सुकता से बहुधा हमारे हृदय में अनायास ही किसी एक पक्ष के साथ सहानुभूति छिपी रहती , जिसके उत्कर्ष और विजय पर हमारी हृदय-तंत्री बज उठती है, और जिसकी पराजय, वेदना अथवा अपकर्ष से हृदय को एक रहस्यमय धक्का लगता है। इतिहास लिखते-लिखते इतिहासज्ञ को जब यह संदेह होने लगे कि कई विरोधी मतों या व्यक्तियों में से किसी एक को न्याय-पूर्ण समझ उसके प्रति उसकी सहानुभूति हो गई है, तो उसी समय तद्विषय-संबंधी अपने सब विचारों को पुनः तीव्र आलोचना की दृष्टि से देखे, और फिर इस बात की जाँच करे कि ऐतिहासिक पुरुषों ने जिन भावों से प्रेरित होकर अपना कार्य किया, उन भावों के समझने में कहीं उनके साथ अन्याय तो नहीं हो गया , उनके कार्यों के औचित्य और अनौचित्य का निर्णय करने में उसने द्वेष से तो काम नहीं लिया।

ऊपर कहा जा चुका है कि इतिहास-लेखक को अपना कोई सिद्धांत एवं शृंखला निश्चय करनी पड़ती है, जिससे वह अपनी सब घटनाओं को एक सूत्र में गूँथ सके। किंतु इस बात में वह ज़रा भी चूक जाय, तो सब बिगड़ जाने का डर रहता है। यदि उसका सिद्धांत और उसकी शृंखला द्वेषमयी होगी, तो फिर वह ऐसी-ही-ऐसी घटनाओं को अंकित करेगा, जिससे वह अपनी इस शृंखला को प्रदर्शित कर सके। बात उलटी हो जायगी, अर्थात् उसे लिखना तो ऐसा चाहिए कि उसके सिद्धांत की सहायता से घटनाओं का क्रम समझ में आ जाय ; पर वह अपनी मिथ्या शृंखला को इतना महत्त्व दे देता है कि केवल उसे समझाने के लिये ही वह अपनी घटनाओं का क्रम निश्चित करता है। बड़े-बड़े प्रसिद्ध लेखक भी यह ग़लती कर बैठते हैं, और बहुधा यह होता है कि जो लेखक जितना चतुर होता है, वह उतना ही अधिक अपने मन-गढ़ंत सिद्धांत को प्रमाणित कर सकता है। इतिहास-लेखक को सदैव यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सत्य का अन्वेषण करना ही उसका सर्वश्रेष्ठ धर्म और सत्य की प्राप्ति होना ही उसका सर्वोत्तम पुरस्कार है।

अपनी सामग्री के आयोजन में इतिहास-लेखक को जितनी अधिक सामग्री उपलब्ध हो सके, उतनी उसे एकत्रित करना चाहिए। कम-से-कम किसी प्रधान और महत्त्व-पूर्ण सामग्री का छोड़ना तो किसी दशा में भी उचित नहीं। जब तक सब प्रकार के साक्ष्यात्मक प्रमाणों पर वह विचार नहीं करता, तब तक सत्य के निर्णय पर वह कैसे पहुँच सकता है। अपना निर्णय शीघ्रता से कर लेने पर किसी नए प्रमाण के प्राप्त होने पर वह असमंजस में पड़ जायगा। या तो उसे उस नवीन प्रमाण को अन्य सामग्री के साथ सम्मिलित कर, अपने निर्णय को दुहराकर, अपने इतिहास को पुनः लिखना पड़ेगा, अथवा पत्थर का कलेजा कर, सत्य की अवहेलना कर, एक बार जिस मार्ग को ग्रहण कर लिया है, उसी को पकड़े हुए वह चला जायगा। ऐसे न्याय की हत्या बिना हुए न रहेगी। अतएव किसी भी ज़िम्मेदार लेखक को जब तक यह पूर्ण विश्वास न हो जाय कि यथाशक्य उसने सब प्रमाण इकट्ठे कर लिए हैं, तब तक वह कभी इतिहास लिखने का साहस न करेगा। इतना करने पर भी जब उसे अपने लेखन-कार्य के बीच में कोई नई सूचना मिल जाय, और उसके कारण अपने लेख में परिवर्तन करना पड़े, तो ऐसा करना उसका धर्म है, फिर चाहे उसका कितना ही परिश्रम व्यर्थ क्यों न जाता हो, और उसे कितना ही अधिक परिश्रम क्यों न करना पड़ता हो।

उपर्युक्त विधि के अनुसार सामग्री उपलब्ध होने पर इतिहासज्ञ अपनी सामग्री को प्रधान और गौण, दो भागों में विभक्त करे। इसके बाद उसके कार्य की गुरुता आरंभ होगी। अब सब सामग्री की जाँच-पड़ताल वह किस प्रकार करे, और निर्णय पर किस प्रकार पहुँचे? उसे जो भिन्न-भिन्न प्रमाण प्राप्त हुए हैं, उनमें अनेक स्थलों पर उसे विरोध दिखाई देगा। जैसे वर्तमान राजनीतिक क्षेत्र में राजनीतिक पुरुषों और घटनाओं के विषय में पारस्परिक विरोधात्मक सम्मतियाँ रहती हैं, ऐतिहासिक पुरुषों तथा ऐतिहासिक घटनाओं का भी वही हाल होता है। आशय यह कि जो बात आज 'राजनीति' के अंतर्गत है, कल वही 'इतिहास' में परिवर्तित हो जाती है। भूतकाल की राजनीति वर्तमान काल का इतिहास है, और वर्तमान की राजनीति को ही भविष्य में इतिहास कहेंगे

अतएव जब राजनीतिक बातों में मतभेद होता है, तब ऐतिहासिक बातों में मतभेद होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। जब प्रधान-प्रधान प्रमाणों का आपस में विरोध हो, तब ऐसे अवसर पर गौण प्रमाण से बड़ी सहायता मिल सकती है। प्राचीन सामग्री किस प्रकार की है, प्राचीन लेखक की योग्यता अथवा सामग्री की क्षमता अन्य स्थलों पर कैसी रही है, उसमें सर्वथा निर्विकार घटनाओं का कैसा वर्णन किया है, वह कितना विश्वसनीय है—इन सब बातों को ध्यान में रखकर जैसे न्यायाधीश एक साक्षीदाता की बात मानता और दूसरे पर किसी कारण विश्वास नहीं करता, वही कार्य इतिहासकार को भी करना पड़ेगा। पर ऐसा करने में उसे सावधान रहने की बहुत अधिक आवश्यकता है। उसे प्राचीन काल के किसी भी लेख की मौलिकता पर अवश्य विचार करना चाहिए। बाद में किसी ने उसमें किसी मिथ्या बात का सम्मिश्रण तो नहीं कर दिया। किसी शासक की कृपा प्राप्त करने के हेतु उसकी चाटुकारी करने अथवा किसी मत-विशेष का पक्ष लेकर उसने किसी मिथ्या पक्ष की तो पुष्टि नहीं की। उदाहरणार्थ राजस्थान के चारण और भाटों की गाथाओं और साधारणतः राजदरबारों के कवियों की प्रशस्तियों का उपयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए। इन बातों पर भी उसका ध्यान रहे। जिन प्राचीन लेखकों का वह आश्रय ले रहा है, उनकी सत्य की खोज में क्या प्रवृत्ति थी, इस पर भी वह विचार करे। इतिहास-लेखक को बारंबार यह प्रश्न कर स्वयं अपनी शंकाओं का समाधान करना चाहिए। इस प्रणाली में बहुत समय और परिश्रम की आवश्यकता है। क्योंकि बहुधा लेखक की यही प्रवृत्ति रहती है कि एक-दो प्रधान प्रमाण मिल जाने पर केवल उन्हीं के आधार पर लिख डालने की उसकी इच्छा होती है, अन्य प्रमाणों के झंझट में पड़ वह अपने मस्तिष्क को अधिक कष्ट नहीं देना चाहता। लेकिन परिश्रम चाहे कितना ही क्यों न करना पड़े, और यह बात चाहे कितनी ही कष्टसाध्य क्यों न हो, पर सत्य की वेदी पर तपश्चर्या किए बिना कोई भी सच्चा इतिहासज्ञ नहीं कहा जा सकता।

सामग्री की जाँच और सत्य की खोज हो जाने पर अब उसे यह ध्यान रहे कि इतिहास का वर्णन करने में कोई आवश्यक बात रह न जाय, और न अनावश्यक बातों का तूल ही बढ़ाया जाय। अपने उद्यान में वह इतने वृक्षों को न लगा दे कि उद्यान का दृश्य ही न देख पड़े, या ऐसे किसी आवश्यक वृक्ष को लगाना न भूल जाय, जिसमें उद्यान की शोभा और उपादेयता में कुछ कमी रह जाय। आवश्यकतानुसार अपनी घटनाओं को वह फ़ुट-नोट और परिशिष्ट द्वारा भी समझा दे, और आवश्यकीय स्थानों पर, विशेषतः मतभेद के स्थानों पर, अपने प्रमाणों का भी उल्लेख कर दे। अपनी लेखन-शैली पर भी उसका ध्यान रहे। अलंकार की ओर न जाकर भावों की स्पष्टता ही उसका ध्येय होनी चाहिए। भूतकाल को मूर्तिमान् उपस्थित करने में उसे अपने भाषा-ज्ञान के उच्चतम कौशल का उपयोग करना पड़ेगा, जिससे स्थान-स्थान पर पाठकों को उसकी प्रतिभा का पता चल जायगा। पर इस संबंध में वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करे। भूतकाल पर चकाचौंध करनेवाला रंग चढ़ाने की आवश्यकता नहीं, उसे सजीव बना देना ही यथेष्ट है। मैकाले-सदृश प्रसिद्ध विद्वान् को भी आलंकारिक भाषा के चक्कर में पड़ जाने से सच्चे इतिहासकार का गौरव-पूर्ण पद नहीं प्राप्त हुआ।

इस समय हिंदी के कतिपय विद्वानों का ध्यान इतिहास-निर्माण की ओर गया है, और हिंदी-प्रेमी इस विषय के अध्ययन में अपनी रुचि प्रदर्शित करने लगे हैं। अतएव उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखना अच्छा होगा। इन बातों का सिद्धांत-रूप में अंकित करना कुछ कठिन नहीं। पर इन कठिनाइयों को हल करके व्यवहार में उसके अनुसार कार्य करना अत्यंत कठिन है। हम लोगों में से जो ऐतिहासिक क्षेत्र में कार्य कर मातृभाषा की सेवा करना चाहते हैं, वे इन आदर्शों को अपना ध्येय बनाकर यदि उनके अनुसार कार्य करने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे, तो बहुत कुछ सत्य की खोज कर सकेंगे।

रामचंद्र संधी

तुलसी-कृत रामायण पर अनेक दृष्टियों से विचार

प्रस्तावना

तुलसीदासजी की त्रिशतवर्षीया जयंती के कुछ ही पहले मैंने यह दिखलाने का प्रयत्न किया था कि संसार के काव्य में तुलसी-रामायण का स्थान क्या है। साथ ही मैंने उन्हीं सिद्धांतों को संसार की आगामी कविता का लक्ष्य प्रमाणित करने की चेष्टा की थी, जिनको हमारे महाकवि ने अपने सामने रखते हुए अपनी अद्भुत रचना को 'सब निपुणाई' से रचकर संसार का उपकार करने की कोशिश की है। संभव है, सब लोग उन सब बातों को स्वीकार न करें; परंतु मेरी समझ में इस बात से बहुत लोग सहमत होंगे कि कविवर शेक्सपियर के आदर्श से, जिसमें कविता का लक्ष्य केवल प्रकृति का दर्पण-मात्र (Holding mirror to nature) था, चाहे मध्यकालीन युग के कृत्रिम एवं संकुचित नियमों की बेड़ी से बँधे हुए साहित्य के उन्मुक्त करने का जो भी लाभ योरप को हुआ हो, किंतु उसी का घोर परिणाम पारस्परिक विरोध एवं संग्राम के रूप में भी प्रकट हुआ; क्योंकि रक्त-रंजित दाँत और पंजे (red with tooth and claw) भी प्रकृति का एक रूप हैं, और जब कोई आदर्श स्पष्टतः सामने नहीं रक्खा जाता, तो फ़ारसी-कहावत 'कुनद हम-जिंस बाहम-जिंस परवाज़' (सजातीय पक्षी सजातीय पक्षी के साथ उड़ता है) के अनुसार जो भावना जिस मनुष्य की होती है, वही अधिक परिपक्व हो जाती है। बुरे जीवन का भला होना दुर्लभ है। हाँ, जो भले हैं, वे ही और भले हो जायँगे। और, संभव है, बुरे और बुरे हो जायँ, जैसा उपन्यास-प्रेमियों के जीवन में प्रत्यक्ष ही देखा जाता है।

दूसरी ओर हमारे मनुष्य-जीवन और उसकी कठिनाइयों का प्रतिबिंब भी यदि काव्य में न हो, और वह केवल आकाश ही की बातें करे, तो भी काम नहीं बनता। यही कारण है कि अब मिल्टन और स्पेंसर प्रभृति महाकवियों की रचनाओं को उनके देश में भी सर्वसाधारण नहीं पढ़ते। परंतु हमारे कवि तुलसी का रामायण-निर्माण से मुख्य अभिप्राय यह था—"बरनौं रघुबर-बिमलजस, जो दायक फल चार।" उनकी कविता न केवल धर्म, और मोक्ष के ही लिये है, तथा न केवल अर्थ और काम के लिये, प्रत्युत चारों के समुचित सम्मिश्रण द्वारा इहलोक तथा परलोक, दोनों के सुधार की विधि सामने रक्खी गई है। मैं इसी दृष्टि से कहा करता हूँ कि तुलसी ने ज़मीन और आसमान के कुलाबे मिलाए हैं। तुलसी ने अपने काव्य में महाकाव्य और नाटक का सम्मिश्रण ऐसी सुंदर रीति से किया है कि वह मिल्टन, शेक्सपियर और स्पेंसर-जैसे संसार-प्रसिद्ध महाकवियों से भी नहीं बन सका। ठीक यही बात तुलसीजी के मानवी जीवन के आदर्श एवं उनकी कविता के लक्ष्य के संबंध में भी कही जा सकती है। हाँ, संन्यास-मार्ग के त्याग और कर्मयोग के ज्ञानयुक्त कर्म के सिद्धांतों को दूध और शकर की तरह इस प्रकार मिला दिया गया है कि कुल पुस्तक गीता के सिद्धांतों का निचोड़ अर्थात् ज्ञान तथा भक्ति-पूर्ण निष्काम कर्मों की एक काव्यमयी रचना ही प्रतीत होती है। अथवा यों कहिए कि निवृत्ति एवं प्रवृत्ति-मार्गों का सुंदर संयोग गंगा-यमुना के संगम की भाँति ब्रह्मज्ञानरूपी सरस्वती से मिलकर इस समस्त पुस्तक को प्रयाग का काव्यरूपी

सुंदर शरीर धारण कराकर मानो उसे स्वयं तीर्थराज बना रहा है।

मैं हिंदू-विश्वविद्यालय के कार्यकर्ताओं को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने अपने यहाँ हिंदी को उचित स्थान दिया, और सन् १९१८ ई० से क्या, बल्कि उसके पूर्व से मेरी पुकार सुनी। साथ ही मैं नागरीप्रचारिणी-सभा, काशी को भी धन्यवाद देता हूँ कि उसने मेरी रामायण-विषयक समालोचना को अपनी 'तुलसी-ग्रंथावली' में स्थान दिया।

क्या साहित्यिक दृष्टि से रामायण पढ़ी जानी चाहिए

परंतु तुलसी-जयंती के अवसर पर पूज्यवर मालवीयजी ने जो यह कहा था कि रामायण को काव्य तथा साहित्य की दृष्टि से पढ़ना मानो उसकी महिमा को घटाना है, इस विषय में अपने कुछ विचार प्रकट करने के पश्चात् मैं रामायण की अधिक समालोचना करने का प्रयत्न करूँगा।

इसमें संदेह नहीं कि महात्मा तुलसीदास ने भगवान् की भक्ति का ही आदर्श अपने सामने रखकर रामायण की रचना की थी; क्योंकि उनका सिद्धांत था—

"कलिजुग तरन उपाय न कोई; राम-भजन रामायन दोई।"

परंतु किसी भी महापुरुष की रचना अनेक दृष्टियों से देखी जा सकती है। कारण, कविवर बाबू रवींद्रनाथ के कथनानुसार कवि एक बाँसुरी के समान है, जिससे उसी ब्रह्म-शब्द की तान अनेकानेक ध्वनियों के रूप में नित ही नई-नई रीति पर निकलती रहती है, और इसीलिये लोग, देश तथा काल के अनुसार भाँति-भाँति की नवीन आवाज़ों की तानों को यथारुचि उसमें से सुनते तथा उनसे उत्साहित होकर संसार का उपकार करते हैं। तभी तो ठाकुर महोदय अपनी 'गीतांजलि' के पहले ही गीत में कहते हैं—

"This little flute of a reed thou hast carried over hills and dales and hast breathed through it melodies eternally new; at the immortal touch of thy hands my little heart loses its limits in joy and gives birth to utterances ineffable."

अर्थात् तूने अपनी बाँसुरी को पर्वतों और उपत्यकाओं में ले जाकर उसमें से नित्य नई तानों को प्रवाहित किया है। तेरे करों के अमरत्व-पूर्ण स्पर्श से मेरा लघु हृदय अपनी सभी चिंताओं को आनंदमयी भावनाओं में विलीन कर देता है, और ऐसे उद्गारों को प्रकट करता है, जो वस्तुतः अनिर्वचनीय हैं।

गांधी और रामायण

इस समय महात्मा गांधी संसार के सबसे बड़े पुरुष कहे जाते हैं। स्वयं ठाकुर महोदय का कथन है कि उनकी गणना बुद्ध और ईसा-जैसे महापुरुषों में की जा सकती है। महात्मा गांधी भी कहते हैं—

"जो आनंद मुझे गीता के गान तथा तुलसी-कृत रामायण से मिलता है, वह किसी अन्य वस्तु से नहीं।" क्या बीसवीं शताब्दी का यह सर्टीफ़िकेट इस बात को पूर्ण प्रमाणित नहीं करता कि यह पुस्तक अभी पुरानी नहीं हुई, प्रत्युत वैसी ही नई-की-नई बनी हुई है? यरवदा-जेल में रहते हुए भी जिस भजन को महात्माजी नित्य ही सबेरे गाया करते थे (मो सम कौन कुटिल, खल, कामी—इत्यादि), वह तुलसीजी का ही रचा हुआ है। उन्होंने अपने २१ दिनवाले व्रत के संदेश में भगवान् के प्रति अपनी भक्ति एवं श्रद्धा प्रकट करनेवाला जो भजन लिखा था, और जिसका गान उन्हें उस व्रत के दिनों में अत्यंत प्रिय था, वह भी तुलसीदास ही का है।

वेद-शास्त्र इत्यादि और रामायण

वेद शास्त्र का सार होने की दृष्टि से भी यह पुस्तक अद्भुत है। रायबरेली से एक महानुभाव तुलसीजी के दोहे-चौपाइयों की जोड़ के जो शास्त्र इत्यादि के मंत्रों को प्रकाशित कर रहे हैं, उनसे प्रकट होता है कि उनके पवित्र भावों एवं सिद्धांतों का सार अत्यंत मनोहर भाषा में तुलसी-कृत रामायण के अंदर मौजूद है। तुलसी का उद्देश्य ही यह था कि भाषा में ऐसी पवित्र पुस्तक की रचना की जाय, जिसके विषय में सचमुच कहा जा सके कि "कलिजुग तरन उपाय न कोई; राम-भजन रामायन दोई।"

राष्ट्रीयता और रामायण

स्वयं श्रीमान् मालवीयजी ने राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से विचार करते हुए यह बतलाया था कि जब हम पहले वह मानसिक स्वतंत्रता प्राप्त करें, जो तुलसीजी में थी कि मानो वह राम-राज्य ही में थे, और कोई दूसरा राज्य

उनके लिये था ही नहीं (देखिए, समस्त रामायण में कवि का किसी समकालीन ऐतिहासिक घटना का इशारा तक नहीं है), और उसी समता का भाव पैदा करें कि कोल, किरात, भरत इत्यादि कुटुंबीगण, भालु, वानर और स्वयं विभीषण, ये सब एक ही सूत्र में बँध जायँ, तभी देश का उद्धार हो सकता है।

पूज्यवर स्वामी श्रद्धानंदजी ने अछूत जातियों के उद्धार के लिये महाराज राम के निषाद तथा शबरी के प्रति व्यवहार का दृष्टांत दिया था, और अपने पिता के जीवन की एक घटना बतलाते हुए यह कहा था कि जरायम-पेशा जातियों के सुधार के लिये भी यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी होगी; क्योंकि इसमें ऐसी मनोहर एवं सरल भाषा में भाव व्यक्त किए गए हैं कि वे हृदय पर अपना प्रभाव तुरंत ही डालते हैं। उन्होंने बतलाया था कि एक समय उनके पिता पुलीस-सबइंस्पेक्टर की हैसियत से किसी मामले की तहक़ीक़ात कर रहे थे, और जब वह शाम को अपने प्रतिदिन के नियमानुसार रामायण की कथा कहने लगे, तो गाँववालों के साथ एक अभियुक्त भी उसे सुन रहा था। उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने वहीं अपने अपराध को स्वीकार करते हुए कहा कि मेरे लिये यही अच्छा है कि मैं राजदंड पाकर अपना हिसाब यहीं चुका दूँ, न कि भगवान् के सामने अपराधी बनकर नरक में जाऊँ।

दलितोद्धार

असहयोग के ज़माने में आपने बहुधा वह तसवीर देखी होगी, जिसमें लंका में हनुमान्‌जी रावण के सामने बँधे बैठे हैं, और उनके नीचे 'सत्याग्रही' छपा हुआ है। उसे देखते ही मुझे तुलसीजी की यह चौपाई याद आ जाती है—

सत्याग्रह

"मोहिं न कछु बाँधे कर लाजा;
कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा।"

हनुमान् के प्रभु राम थे, राष्ट्रीय असहयोगियों का प्रभु देश ही सही; पर सिद्धांत वही है।

हिंदू-राज्य को राम-राज्य के नैतिक सिद्धांतों की दृष्टि से देखिए, तो वहाँ विजय प्राप्त करने पर भी अपहरण-नीति (Annexation policy) का पता नहीं; लंका का राज्य विभीषण को और बालि का राज्य सुग्रीव को सौंप दिया जाता है। जीतने की पूरी ताक़त रखते हुए भी राम का अपनी ओर से अंगद को बसीठी बनाकर भेजना, अपनी प्रजा के पालनार्थ 'सचिव', 'महाजन', 'पंच', 'गुरु' इत्यादि की सलाह से काम करना, चित्रकूट की अनेक सभाओं में अपने भाषणों द्वारा स्नेह-पूर्ण एवं स्वतंत्र विचारों को प्रकट करना—ये दृश्य वर्तमान कूट-नीतिवाली कानफ़्रेंसों को कैसा लज्जित करते हैं। युद्ध से पूर्व राम तथा रावण के दलों में जो मनोविनोद की रीतियाँ हैं, वे भी सुंदर विरोधाभास से परिपूर्ण हैं। एक ओर तो मदिरा और मांस उड़ रहा है, तथा तामसिक गान हो रहा है, और दूसरी ओर चंद्रमा के स्याह धब्बे पर ललित काव्य की समस्याएँ पूरी की जा रही हैं। संक्षेप में एक ओर रावण-राज्य में प्राकृतिक वैभव तथा स्वेच्छाचारिता का चित्र और दूसरी ओर राम-राज्य के नियम अर्थात् क्षमा, दया, समता, सदाचार, शील, स्नेह इत्यादि का चित्र, ये दोनों पारस्परिक तुलना की दृष्टि से कितने शिक्षाप्रद हैं।

हिंदू-साम्राज्य का सिद्धांत

इसी प्रकार के एक विरोधात्मक दृश्य को देखकर विभीषण का दिल भी दहल गया, अर्थात् जब महाराज राम नंगे-पाँव होकर 'रावण रथी' से युद्ध करने के हेतु इस विश्वास पर चले कि—'जहाँ धर्म है वहाँ जय है', तो विभीषण से न रहा गया, और वह महाराज से पूछ ही तो बैठा कि आप कैसे विजयी हो सकेंगे? जिन निम्न-लिखित चौपाइयों में महाराज ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है, वे प्रत्येक दृष्टि से हिंदू-सभ्यता के नियमों का निचोड़ हैं, और हमारा दृढ़ विश्वास है कि जब तक संसार इसे स्वीकार न करेगा, तब तक ठाकुर महाशय के कथनानुसार, राष्ट्रसंघ भी लुटेरों का संघ बना रहेगा, और संसार में शांतिमय राम-राज्य के स्थान में भयंकर रावण-राज्य हो बना रहेगा। देखिए, लोकार्नो के समझौते के सिद्धांत कुछ दिन भी न टिक सके। पश्चिमी राष्ट्रीयतावाद का कैसा भयंकर चित्र श्रीयुक्त ठाकुर महोदय अपनी 'Nationalism' पुस्तक में खींचते हैं—

मानवी सभ्यता का आदर्श

"Have you not seen since the commencement of the existence of the Nation that the dread of it has been the one goblin-dread with which the whole world has been trembling? Wherever there is a dark corner, there is the suspicion of its secret malevolence, and people live in perpetual distrust of its back where it has no

eyes. Every sound of a footstep, every rustle of movement in the neighbourhood, sends a thrill of terror all round. And this terror is the parent of all that is base in man's nature,..............clever lies become matter of self-congratulation. Solemn pledges become a farce – laughable for their very solemnity.... Its one wish is to trade on the feebleness of the rest of the world, like some insects that are bred in paralysed flesh of victims, kept just enough alive to make them tooth-some and nutritious.

अर्थात् "क्या तुमने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि राष्ट्रीयतावाद अपने अस्तित्व के प्रारंभ से ही एक ऐसा भूत बना हुआ है, जिसके भय से सारा संसार काँप रहा है। जहाँ-कहीं भी कोई अँधेरा अर्थात् अज्ञात स्थान है, वहीं उस भूत के अप्रकट दुष्प्रयत्नों के होने की आशंका होती है, और आँखें सदैव ही उसके पृष्ठ-भाग से भी सशंक रहती हैं, यद्यपि वह भाग नेत्रहीन हुआ करता है। पार्श्व में होनेवाली पैरों की आहट तथा प्रगति की खड़खड़ाहट से चारों ओर भय का संचार होता है, और यही भय मानवी प्रकृति की सभी बुराइयों का उत्पादक है। चातुर्य-पूर्ण असत्यता पर अपने आपको धन्यवाद दिया जाता है। पवित्र प्रतिज्ञाएँ हँसी खेल समझी जाती हैं, जिनका केवल उसी पवित्रता के कारण ही मखौल उड़ाया जाता है। उसकी एक यही इच्छा है कि शेष जगत् की निर्बलता से लाभ उठाया जाय। उसकी उपमा उन कीड़ों से दी जा सकती है, जिनका उन आहतों के चेतना-हीन मांस से पोषण होता है, जो केवल उतना ही जीवित रक्खे जाते हैं कि कीड़ों की रसना तथा उदर की तृप्ति होती रहे।" कितना भयानक दृश्य है! क्यों? क्या इसमें सिर्फ़ कमज़ोर ही का मरण है? यदि ऐसा है, तो महाराज आर्थर का अंतिम विलाप बिलकुल ठीक है कि ईश्वर मनुष्य के व्योहारों में प्रतीत नहीं होता—

"I found Him in the shining of the stars,
I found Him in the flowering of the fields;
But in His ways with men I found Him not."

अर्थात् तारागण की चमक में ईश्वर का प्रकाश है, संसार के हरे-भरे खेतों में ईश्वर का दर्शन होता है। परंतु मनुष्य के प्रति व्यवहारों में ईश्वर प्राप्त नहीं है।

"कर्म-प्रधान बिस्व करि राखा;
जो जस कीन्ह सु तस फल चाखा।"

किंतु पश्चिमी भौतिक सभ्यता को अपनी करनी का फल मिलना शुरू हो गया है। स्वयं ठाकुर महोदय कहते हैं—

This European war is the war of retribution.

अर्थात् योरप का महासमर वस्तुतः योरप के देशों की करनी का फल है।

"In this war the death-throes of the Nation have commenced. Suddenly all the mechanism going mad, it has begun the dance of furies shattering its own limbs, scattering them into dust."

अर्थात् "इस संग्राम से राष्ट्रीयतावाद की मृत्यु-सूचक पीड़ा का प्रारंभ हो गया है। उसके कल-पुर्ज़े क़ाबू से बाहर हो गए हैं, और मृत्यु का पैशाचिक नृत्य शुरू हो गया है, जिसके द्वारा वह स्वयं ही अपने हाथ-पैरों की धज्जियाँ उड़ाकर उन्हें धूल में मिला रही है।"

आह यह उसी स्वार्थी मनुष्य की पूजा का अंतिम परिणाम है, जिसे apotheosis of selfishness (स्वार्थ-पूजा) कहते हैं। केवल Holding mirror to Nature (प्रकृति का दर्पण-मात्र होना) का यह फल है कि Nature red with tooth and claws (रक्त-रंजित दाँतों और पंजोंवाली प्रकृति) और Survival of the fittest (योग्यतम जीवन की भयंकर भावनाएँ) प्रकट हो रही हैं। वस्तुतः मनुष्यों तथा जातियों की यह अवस्था है कि—"डरपहिं एकहि एक निहारी" और "जीवहिं जीव अधार"—एक दूसरे को खा जाने पर उद्यत है!

भारतवासियो! उठो, और संसार में शांति की स्थापना करो। अब तुम्हारा समय है। देखो, ठाकुर महोदय क्या कहते हैं—"And we can still cherish the hope that when Power becomes ashamed to occupy its throne and is ready to make way for Love, when the morning comes for cleansing the blood-stained steps of the Nation along the high-road of humanity, we shall be called upon to bring our own vessel of sacred water – the water of worship—to sweeten the history of man into purity and with its sprinkling, make the trampled dust of centuries blessed with fruitfulness."

अर्थात् "हमें अब भी आशा है कि जब पशु-बल अपने सिंहासनासीन होने से लज्जित हो प्रेम के लिये मार्ग देगा, और जब प्रभात जातियों के रक्त-रंजित पगों को धोकर उन्हें मनुष्यता के मार्ग पर अग्रसर करने के लिये आवेगा, तब इससे हमारा पुनीत जल (पूजा-जल) का निजी पात्र मानवी इतिहास को पवित्र करने के लिये मँगाया जायगा, जिसके छिड़कने हो शताब्दियों की रौंदी हुई धूल से पवित्र फल उत्पन्न होंगे।" यही वस्तु मैं आपको भेंट करना चाहता हूँ। यह वही पवित्र जल है, जिसे आज योरप अपनी आत्मपिपासा शांत करने के लिये आपसे माँग रहा है।

महाराज राम सब वेदों, शास्त्रों, पुराणों तथा इतिहासों का सार विभीषण को सुनाते हैं, और कहते हैं कि विजय के हेतु क्या आवश्यक है—

"सुनहु सखा, कह कृपानिधाना।
जेहि जय होय सो स्यंदन आना।"

कैसा रथ हो?—

"शौरज, धीरज जहि रथ-चाका;
सत्य सील दृढ़ ध्वजा-पताका।"

शौर्य और धैर्य जिसके पहिए हैं; परंतु उसमें पताकाएँ सत्य और शील की लगी हुई हैं। हम जाति-रूप से या व्यक्ति की रीति पर शौर्य तथा धैर्य के साथ आगे बढ़ें; परंतु हाथों में सत्य एवं शील के झंडे लिए हुए, जिनमें किसी अन्य जाति या व्यक्ति को हमसे कोई भय न हो।

अब इस आदर्श को उस भयंकर चित्र से मिलाइए, जिसे ठाकुर महाशय ने उपर्युक्त शब्दों में खींचा है। इस आदर्श में न तो कूट-नीति का चातुर्यमय असत्यताएँ (Clever lies) हैं, और न वह भय कि तनिक पत्तों की खड़क से चारों ओर फैल जाय। और, फिर यह भी नहीं कि संसार को केवल त्याग की ही शिक्षा दी गई हो—

"बल-बिबेक-दम-परहित-घोरे;
छमा-दया-समता-रजु-जोरे।"

इस सभ्यता के रथ को कौन खींचता है? 'बल' आवश्यक है; पर साथ-ही-साथ 'विवेक' भी, जिसमें कहीं 'बल' अंध की तरह किसी को कुचल न दे। फिर 'दम' उसके ज़ोर को रोकने के लिये अलग एक नियंत्रण है। पर इन दो रुकावटों के होने पर भी पूर्ण संतोष नहीं। धन्य भारत की प्राचीन सभ्यता, जिसका दिग्दर्शन कराने के लिये ही रामायण की रचना की गई है। इतना भी स्वार्थ न रहे कि जहाँ 'बल', 'दम' तथा 'विवेक' के साथ दूसरे को हानि न पहुँचाते हुए स्वार्थ-साधन हो सके, वही स्वार्थ ठीक समझा जाय। पर यह तो केवल बुराई का निषेध-मात्र होगा। भलाई की स्थापना तो तभी होगी, जब 'पर-हित' का घोड़ा भी जुता हुआ हो; अर्थात् हम 'पर-हित' का भाव हृदय में रखते हुए आगे बढ़ें। वहाँ तिजारत की ओट में दूसरे का माल हज़म करने या सभ्यता-प्रचार की ओट में दूसरे देशों पर क़ब्ज़ा जमाने का भाव ही नदारद है। इसकी साक्षी रामजी के उस चरित्र में मिलती है, जो कोल, भील, वानरों में सभ्यता फैलाने तथा लंका की विजय में दृष्टिगोचर होता है।

फिर ये घोड़े क्षमा, दया, समता की त्रिपटी रस्सी से रथ में जुते हुए हों। मैं क्या, और मेरी पुकार ही क्या? पर यदि मेरी पुकार कभी देश के नेताओं के कानों तक पहुँचे, तो मैं तो यही कहूँगा कि भारत के झंडे पर ये ही तीन शब्द अंकित किए जायँ।

क्षमा, दया और समता

आह! योरप का गौरव तथा उसकी दुर्दशा, दोनों का मुख्य कारण Liberty, Equality & Fraternity (स्वतंत्रता, समता और भ्रातृभाव)—इन्हीं तीन शब्दों का मिक्सचर है। यह बात विचारणीय है कि 'समता' उपर्युक्त दोनों शब्द-समूहों में है; पर एक शब्द-समूह में उसके पहले 'क्षमा' और 'दया' है, और दूसरे के पहले 'स्वतंत्रता'। फल क्या होगा? यही हुआ कि 'स्वतंत्रता' के प्रभाव से सभी रुकावटों की तोड़-मरोड़ शुरू हो गई। फ्रांस के राज्य-विप्लव में मनुष्यों के सिर मूली-गाजर की तरह काटे गए। आज दिन भी पुर्तगाल, रूस, स्पेन इत्यादि देशों में वही लहू-लुहान का दृश्य दिखाई दे रहा है। यदि 'क्षमा' और 'दया' होती, तो अपराधियों को दंड अवश्य दिया जाता; परंतु वही 'क्षमा' का भाव रखते हुए। महाराज राम ने 'नादिरशाही, क़त्ले आम' और फ्रांसीसी गिलोटिन (सिर काटने की कल) के बदले राक्षसों पर 'क्षमा' की ही सुधा-वृष्टि की थी।

अब 'दया' का रहस्य भी देखिए। सभ्यता का केवल यह अभिप्राय नहीं कि हम अपने से बड़ों को घसीटकर नीचे लावें, मज़दूर लोग मालदारों को लूट लें, और शासक

लोग अपने पदों से च्युत कर दिए जायँ। यदि यही अभिप्राय है, तो वह योरप को ही मुबारक हो, जहाँ एक दिन भी राज्य-स्थिति का ठिकाना नहीं। हमारे तुलसी के शब्द-समूह में 'दया' का होना भी ज़रूरी है कि नीचेवाले ऊपर उठाए जायँ, और शबरी, निषाद, कोल, किरात, यहाँ तक कि राक्षसों तक की उन्नति हो। अगर भीम का कड़ा कलेजा हो, तो अर्जुन का दयालु हृदय भी अवश्य हो। योरपियन शब्द-समूह में तो भ्रातृभाव बेचारा तीसरे स्थान पर होने के कारण पूछा भी नहीं जाता; और अगर कभी पूछा भी जाता है, तो उस संगठन के लिये, जिसके द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये दूसरों में फूट डालना सुगम हो। किंतु राजा और प्रजा तथा मालदार और मज़दूर के पारस्परिक व्यवहारों में मैत्री अथवा सहानुभूति का लेश भी नहीं। तुलसी के शब्द-समूह में भ्रातृभाव-शब्द ही नहीं; क्योंकि 'समता' का अर्थ ही यही है, जिसे पृथक् कर देने से ही सारी गड़बड़ हुई। कहीं फ्रांस के झंडे पर तुलसी का शब्द-समूह अंकित होता, तो आज योरप का इतिहास इतना रक्त-रंजित न होता।

यह भी हमारी भूल है कि हम 'समता' के इतने अच्छे उपासक बन गए हैं कि बिना उस शब्द के हमारा झंडा हमारी पश्चिमी ऐनक-लगी आँखों में सूना जान पड़ेगा। परंतु तुलसीदासजी संसार के लिये एक आदर्श उपस्थित कर रहे हैं, न कि हमारी आँखों के लिये पश्चिमी मशीन का बना हुआ कोई खिलौना। क्या 'समता' के 'सब धान बाईस पंसेरी' और 'एक ही लाठी से सबको हाँकनेवाले सिद्धांत के परिणाम-स्वरूप मनुष्यों के रक्त से रणचंडी अभी तक तृप्त नहीं हुई? आज गवाँ का मज़दूर विद्वानों को ठुकराकर शासन-मंच पर बैठने के लिये तैयार है, और पश्चिमी संसार 'कम्यूनिज़्म' तथा 'बोलशेविज़्म' की ओर बड़ी तेज़ी से जा रहा है। आर्य-सभ्यता में भी साम्यवाद का भाव है; परंतु इस रूप में कि प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह 'दान' द्वारा अपनी विद्या और अपने बल तथा अपने धन को निम्न कक्षावाले मनुष्य को देकर अपना और उसका उद्धार करे। क्या राजा हर्ष का अपना समूचा राज्य-कोष दान में दे देना एक चिरस्मरणीय घटना नहीं है? दूर क्यों जाइए, अभी तक भारतवर्ष अपने भूखों, वृद्धों, विधवाओं, अनाथों और फ़क़ीरों का पालन, स्वेच्छा से, बिना किसी टैक्स के, करता है, यद्यपि प्रथा में बहुत कुछ बेढंगापन और बिगाड़ पैदा हो गया है। भारत में ग़रीब को अमीर का माल लूटने की कभी ज़रूरत नहीं पड़ती थी। प्रत्युत अमीर स्वयं ही अपने माल को 'दान' द्वारा ग़रीबों के पास पहुँचा देता था। अब भी 'बिरादरी' में ग़रीबों-अमीरों में समता का भाव बहुत कुछ मौजूद है। तुलसी ने अपनी रामायण के उत्तर-कांड में इस 'सब धान बाईस पंसेरी'वाली समता को कलियुग का एक लक्षण बतलाया है, और यह बात ठीक भी है।

तुलसी ने क्षमा, दया, समता को पताकाओं और ध्वजाओं के लिये नहीं बनाया, बल्कि वह तो कह चुके हैं कि ध्वजाओं पर तो उनके वे ही शब्द 'सत्य, शील, दृढ़' होने चाहिए। कारण, क्षमा, दया, समता तो 'बल' इत्यादि रूपी घोड़ों के लिये जोत का काम दे सकते हैं, मगर झंडे पर लिखे हुए ये शब्द अहंकार-सूचक होंगे। इसमें संदेह नहीं कि ये शब्द योरप की स्वतंत्रता, समता और भ्रातृभाव से कहीं बढ़कर हैं, किंतु फिर भी पूर्णतः आदर्श के अनुरूप नहीं।

राष्ट्रीय झंडे पर सत्याग्रह' अथवा 'दृढ़ सत्य-शील-आग्रह'

आर्य-सभ्यता का आदर्श 'दृढ़ सत्य एवं शील' ही रहा है। उसमें 'सब धान बाईस पंसेरी'वाला सिद्धांत कभी ठीक नहीं माना गया। और, यद्यपि ख़ून बहाने के लिये योरप के प्रत्येक देश में समय-समय पर इस सिद्धांत की बड़ी धूम रही; पर वस्तुतः वह एक दिन भी नहीं चल सका। जिस क्रांति ने फ्रांस में लुई को राज्यसिंहासन से उतारा, उसी ने नेपोलियन को पुनः सिंहासनासीन कर दिया। अभी पिछले दिनों लेनिन को वर्ष के भीतर ही वह क़ानून बदलना पड़ा, और जो जायदाद जिसकी है, वह उसी की माननी पड़ी। यही ठीक भी है। जब तक परमात्मा के इस विचित्र जगत् में भिन्न-भिन्न बल, पौरुष एवं मस्तिष्क के लोग पैदा होते हैं, तब तक विषमता का लोप सर्वथा असंभव है। ऐसे अवसर पर 'सभ्यता' ही व्यवहार का आदर्श हो सकती है, 'समता' नहीं। अभी थोड़े दिन हुए कि दक्षिण-आफ़्रिका के प्रतिनिधि महोदय ने 'बराबरवालों सभ्यता के लिये बराबर आदर' के सिद्धांत को ठीक बतलाया था। यदि ऐसा व्यवहार सत्यता के साथ किया जाय, और सभ्यता के मूल्य का सत्य निर्णय हो जाय, तो हम उक्त सिद्धांत से पूर्णतः सहमत हैं। परंतु जब केवल ज़बान से बाइबिल के माननेवाले लोग

पशु-बल एवं स्वार्थ की सभ्यता को बड़ा मानकर भारतीयों को अपने देश में नीचा स्थान देने के लिये ही यह सिद्धांत पेश करते हैं, तो हम उसे मानने को कदापि तैयार नहीं। सच्ची तुलना तो वही है, जो आर्य-सभ्यता में है, और जिसका समर्थन किसी-न-किसी रूप में सभी धर्मों द्वारा होता है। वह यह कि सर्वोच्च स्थान उनके लिये है, जो दूसरों को ज्ञान तथा विद्या देते हैं, अथवा जो समाज से दान लेकर उसे दूसरे पात्रों में बाँट देते हैं, और स्वयं यज्ञादि शुभ कर्म करते तथा वैसा ही अन्यों से भी कराते हैं—फिर चाहे आप उन्हें ब्राह्मण कहें, या पादरी, अथवा शेख़।

दूसरा स्थान उनका है, जो बल द्वारा समाज का पालन-पोषण और उस पर शासन करते हैं, चाहे आप उन्हें क्षत्रिय कहें, अथवा और कुछ। तीसरा स्थान उनका है, जो समाज के कोषाध्यक्ष हैं, और जो वाणिज्य-व्यवसाय द्वारा धनार्जन करके दान से समाज की सहायता करते हैं। चौथा स्थान उनका है, जो ज्ञान-बल-धन-हीन हैं, और जो किसी अन्य गुण को न रखते हुए केवल समाज-सेवा को अपना धर्म समझते हैं। यदि इन सबोंके पारस्परिक व्यवहारों में 'सत्य' का समावेश हो, और एक दूसरे पर पूरा भरोसा करे, तो फिर कभी काम न बिगड़े, और इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक समाज, प्रत्येक देश, और अंततः समस्त जगत् का सुधार एकसाथ ही होता चला जाय।

परंतु जैसा कि संसार-प्रसिद्ध कवि शेख़ सादी के कथन में 'रास्ती फ़ितना-अंगेज़' अर्थात् 'सत्यता' को उत्पात-जनक कहा गया है, ठीक वैसे ही बहुधा 'सत्यता' भी काली का भयंकर रूप धारण करके मनुष्यों का रक्तपान करती है। इस विकराल देवी की क्रोधाग्नि को बुझाने के लिये तुलसी ने अपने आदर्श-विषयक शब्द-समूह में 'सत्य' के साथ 'शील' को भी सम्मिलित किया है। 'शील' 'प्रेम' का व्यावहारिक रूप है, और बड़े, छोटे अथवा बराबर-वाले, सभी के लिये प्रयुक्त किया जाता है। भ्रातृभाव और क्षमा, दया इत्यादि इस 'शील' के अंग ही हैं। यदि 'शील' प्रेम का समुद्र है, तो ये केवल उसकी तरंगें।

महात्मा गांधी ने भी आदर्श 'सत्याग्रह' रक्खा है, पर उसके साथ 'शील'-शब्द न होने के कारण चौरीचौरा की-सी भयंकर घटनाओं के घटित होने की आशंका बनी ही रहती है। अतः सविनय निवेदन है कि यदि महात्माजी अपने 'सत्याग्रह' के स्थान पर तुलसी का 'सत्य-शीलाग्रह' का आदर्श रक्खें तो 'शील' शब्द द्वारा मिलने-वाली चेतावनी सदैव ही मिलती रहे।

यदि यह कहा जाय कि अहिंसा शब्द उक्त चेतावनी का काम देता है, तो पहले तो इस शब्द का प्रयोग 'सत्याग्रह'-शब्द के साथ उसे आदर्श कहनेवाले भी नहीं करते; दूसरे वह सिर्फ़ एक निषेधात्मक गुण है। उसमें शील-जनित प्रेम का प्रवाह नहीं। दूसरी ओर से आवाज़ उठती है कि यदि ऐसी उदारता शत्रु के प्रति दिखलाई जाय, तो काम कैसे चलेगा? इसका उत्तर रामजी ने अपने जीवन में कई बार दिखा दिया है। कैकेयी के प्रति उदारता, बालि के पश्चात्ताप पर उसे पुनः जीवन-प्रदान करने की तैयारी, यहाँ तक कि रावण को भी क्षमा कर देने को तत्परता तथा उसे अंत में स्वर्गधाम देना, ये सब बातें प्रकट कर रही हैं कि 'सत्य-शीलाग्रही' का क्रोध भी 'शील' का रूपां-तर-मात्र ही होता है, और वह जर्राह के नश्तर की तरह शरीर के केवल रुग्ण भाग को काटकर हट जाता है कि फिर 'शील' का क्षमा-रूपी दूसरा रूपांतर मरहम-पट्टी करे। कविवर शेक्सपियर का कथन है—"Human power then looks likest God's when mercy seasons justice", अर्थात् मानवीय शक्ति तभी ईश्वरीय शक्ति के रूप में प्रकट होती है, जब न्याय के साथ में दया भी हो। तुलसीजी केवल 'सत्य-शीलाग्रह' से ही संतुष्ट नहीं होते, प्रत्युत 'दृढ़' के रूप में एक और विशेषण भी लाते हैं, और कहते हैं कि हमारी ध्वजा-पताका पर 'दृढ़ सत्य-शीलाग्रह' अंकित होना चाहिए, जिससे हमारे 'सत्य' और 'शील', दोनों अंगद के पैर की तरह अटल हों।

उपर्युक्त समालोचना से यह विदित हो गया होगा कि तुलसीदासजी का यह आदर्श कितना महत्त्व पूर्ण है, और इन चौपाइयों द्वारा समस्त जगत् की विजय का उपाय कैसी उत्तम रीति पर बतलाया गया है। इस स्थान पर प्रत्येक शब्द की व्याख्या करना कुछ अनुपयुक्त-सा प्रतीत होता है। केवल इतना कहकर कि यदि आप इन चौपा-इयों पर गंभीरता-पूर्वक विचार करेंगे, तो आपको इनमें आर्य-सभ्यता का सार अवश्य मिलेगा, मैं आपके समक्ष शेष चौपाइयों को भी प्रस्तुत करता हूँ—

ईस-भजन सारथी सुजाना ; बिरति चर्म, संतोष कृपाना।
दान परसु, बुधि सक्ति प्रचंडा ; बर बिज्ञान कठिन कोदंडा।
संयम-नियम सिलीमुख नाना ; अमल अचल मन तून समाना।
कवच अभेद बिप्र-पद-पूजा ; यहि सम बिजय उपाय न दूजा।
सखा धर्म मम अस रथ जाके ; जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।

मैंने प्रयाग-निवासी स्वर्गीय अकबर की कविता में उनके सुपुत्र की (जब वह विलायत में थे) यह पुकार पढ़ी थी—

"दरमियाने क़ार-दरिया तख़्ताबंदम करदई ;
बाज़ मी गोई कि दामन तर मकुन, हुशियार बाश।"

अर्थात् "आपने मुझे दरिया की गहराई में बाँध दिया है, और उस पर यह कहते हैं कि दामन न भीगे ; सावधान रहना।"

पश्चिमी सभ्यता के भौतिक चमत्कार के सामने कितनी विवशता है ! वस्तुतः बड़ी मुश्किल का सामना है।

कई वर्ष हुए जब मेरे एक शिष्य-मित्र सरकारी छात्र-वृत्ति प्राप्त करके विलायत जाने लगे, तो मैंने यही बात उनको भेंट की थी। अब कई वर्ष हुए कि वह लौट भी आए, और हिंदू-युनिवर्सिटी के विज्ञान-विभाग में प्रोफ़ेसर हैं। उनका शुभनाम बाबू कृष्णकुमार माथुर है। वह कहते थे कि मैंने बहुत-से पश्चिमी देशों में भ्रमण किया, तथा वहाँ के बड़े बड़े विद्वानों से मेरी बातचीत हुई। लगभग सभी को यह मानना पड़ा कि किसी एक पुस्तक में एक ही स्थान पर ऐसा सर्वांगीण आदर्श नहीं है, जिसमें शौर्य, देश-भक्ति, विज्ञान तथा बुद्धि (Sublime reason, not mere logical reason) का ऐसा सुंदर मेल हो। यदि भारत के नवयुवकगण यह आदर्श लेकर बाहर जायँगे, तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि वे पश्चिमी चमत्कार के दासानुदास बनकर कदापि न लौटेंगे, अर्थात् कमल के पत्तों की तरह पश्चिमी सभ्यता-रूपी जल से ठंडक और हरियाली पाते हुए भी उसका उन पर प्रभाव न पड़ेगा।

मनुष्यों में पूज्य कौन है ?

उपर्युक्त चौपाइयों में एक चौपाई पूजा के विषय में भी है। तुलसीदासजी ने 'अभेद बिप्र-पद-पूजा' पर बहुत ज़ोर दिया है। और, बहुधा लोग इस कारण उन्हें बुरा भी कहते हैं। परंतु विप्र कौन हैं ? वे लोग, जिन्होंने आध्यात्मिकता के हेतु अपना सर्वस्व त्याग दिया है, और परोपकारी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आज भी क्या कारण है कि स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी दयानंद सरस्वती, राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी को देखकर योरप तथा अमेरिका चकित हो रहे हैं, और कह रहे हैं कि अगर कोई देश ऐसा है, जहाँ ईश्वरीय संदेश-वाहक उत्पन्न होते हैं, तो वह भारतवर्ष ही है। ऐसे ही लोग वस्तुतः विप्र हैं, और आध्यात्मिकता तथा परोपकारिता की पूजा ही संसार की मुक्ति का साधन हो सकता है। प्लेटो भी अपने अमूल्य आदेशों द्वारा ऐसे ही मनुष्यों की तैयारी की शिक्षा देता है, और उन्हीं को 'अरिस्टोस' (Aristos) कहते हुए उनके राज्य को सर्वोत्तम मानता है। भारतीय शासन-व्यवस्था के अनुसार ऐसे ही लोग विधानों के रचयिता हुआ करते थे, और शासन-कार्य शारीरिक तथा मानसिक बल से संपन्न क्षत्रियों के अधीन था। प्रत्येक दशा में किसी-न-किसी व्यक्ति की पूजा अवश्य होती है। पार्लियामेंट के शासन-काल में वक्तृत्व-कौशल तथा धन की पूजा होती है, अथवा अन्य प्रकार के अनुन्नत राज्यों में पाशविक शक्ति की खुल्लमखुल्ला पूजा की जाती है। सर फ्रेडरिक हैरीसन महोदय को मरते दम तक यह दुःख रहा कि आठ सौ वर्षों की निरंतर शिक्षा तथा साधना के पश्चात् भी इँगलैंड में शासन-संबंधी कार्यों के लिये योग्य व्यक्तियों का निर्वाचन असंभव है। लाला लाजपतराय ने भी हाल में अपने अँगरेज़ी समाचार-पत्र 'पीपुल' में लिखा था कि विलायत में भी निस्पृह तथा समदर्शी मनुष्यों के लिये पार्लियामेंट के निर्वाचन में कोई स्थान नहीं है, और उसी के अंधाधुंध अनुकरण में उससे भी बुरी दशा आज हमारे भारत की हो रही है। हमारे पूज्य नेताओं को इस पर पूर्ण विचार करना चाहिए, और निस्पृह, निष्काम किंतु निर्धन मनुष्यों के राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त किए जाने का प्रबंध आरंभ ही से करना चाहिए।

सर फ्रेडरिक हैरीसन ने, जो नब्बे वर्ष से भी अधिक आयु के होकर अभी हाल में परलोकगामी हुए हैं, अपनी अंतिम पुस्तक में लिखा है कि उन्नीसवीं शताब्दी का यह मिथ्या भ्रम कि प्रकृति में केवल 'बलवान् की विजय' का नियम काम करता है, अब मिटता जा रहा है, और यह धारणा प्रबल होती जाती है कि

प्रकृति में परोपकार का नियम बच्चों के पालन-पोषण इत्यादि असंख्य रीतियों पर काम करता हुआ नज़र आता है। अतः अब संसार की प्रवृत्ति अन्य जातियों को पराधीन बनाकर अपना पेट पालने की ओर नहीं, प्रत्युत पारस्परिक साहाय्य एवं सम्मिलन की ओर ही होनी चाहिए। अमेरिका के समाचार-पत्रों में यह पुकार बराबर सुनाई देती है कि भौतिक उन्नति की उन्माद-पूर्ण दौड़ में उसे हार्दिक शांति नहीं मिली। एक महानुभाव ने अभी हाल में अमेरिका से लिखा था—"हमारी समझ में नहीं आता कि अगर हमारे बनाए हुए माल के ख़रीदनेवाले कम हो जायँ, और संसार में सरलता का विकास हो, तो ये सब हमारे भौतिक तड़क-भड़क के सामान, हमारे सुरम्य उद्यान, हमारे भव्य भवन तथा हमारे बड़े-बड़े भोज-संबंधी उत्सव कहाँ होंगे ?"

अभी-अभी जर्मनी और अमेरिका से महात्माजी को निमंत्रण आया था कि पश्चिमी जगत् युद्धों एवं यंत्रों के पाशविक अत्याचारों से बिलकुल तंग आ गया है, अतः आप पधारने की कृपा कर अपनी पवित्र वाणी द्वारा हम दीन जनों की सहायता करें। हाय ! कैसा शोकप्रद उत्तर महात्माजी को देना पड़ा। उन्होंने लिखा था—मेरे साथ तो मेरे देश ही का शिक्षित समुदाय नहीं है, और जब तक यह समुदाय मेरा साथ देते हुए इस देश को स्वतंत्र बनाकर मेरे सिद्धांतों को दोषहीन न प्रमाणित कर सके, उस समय तक मैं अपनी इस निर्बलता की दशा में कहीं बाहर नहीं जाना चाहता।

मेरा यह अभिप्राय नहीं कि उचित मतभेद भी शेष न रहे, और न मेरा यही प्रयोजन है कि अंधों का-सा अनुकरण हो। परंतु कम-से-कम जातीय आदर्श पर तो सबको अवश्य ही सहमत होना चाहिए, तथा उस आदर्श को स्थापित करने में देश एवं देश-वासियों को तुलसी-कृत रामायण से अवश्य शिक्षा लेनी चाहिए।

ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से

इसमें संदेह नहीं कि रामायण को अक्षरशः ऐतिहासिक पुस्तक मानने में लोगों को संकोच है। स्वयं महात्मा गांधी भी ऐसा नहीं मानते। पर वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से भी वह एक विचित्र पुस्तक है। एक बार किसी ने ड्यूक ऑफ़् वेलिंगटन (नेपोलियन को परास्त करनेवाले प्रसिद्ध अँगरेज़ सेनापति) से पूछा कि आपने इँगलैंड के इतिहास का कितना अध्ययन किया है ? उन्होंने उत्तर दिया कि जितना मैं शेक्सपियर के नाटकों द्वारा कर सका। उनका यह भी कहना था कि वास्तविक इतिहास वही है, जो अतीतकालीन उच्च आदर्शों को जीती जागती सूरत में हमारे सामने रख दे, तथा हमारे भावी जीवन के सुधार का साधन बने, जो समय-समय पर हमें शिक्षा दे, तथा हमारे विचारों में एक साफ़ और सच्चा असर पैदा करे। इस दृष्टि से तुलसी-कृत रामायण हिंदू जाति के लिये एक अमूल्य रत्न है। पाठकगण अधिकतर इन विवादग्रस्त बातों को छोड़ दें कि रावण के वस्तुतः दस सिर थे या नहीं, अथवा हनुमान्‌जी के पूँछ भी थी या नहीं। इसपर उभय पक्ष के विचारकों का कथन अवश्य ही युक्ति-पूर्ण एवं महत्त्व-पूर्ण है। पर उन विवादों को प्रत्येक समय ध्यान में रखने से असली बात हाथ से जाती रहती है। अन्य देशों के लोग ऐसे विवादों द्वारा अपने प्राचीन कवियों की प्रतिष्ठा एवं उनसे शिक्षा लेने की उपयोगिता को कम नहीं कर देते। कौन नहीं जानता कि यदि 'पेरेडाइज़ लॉस्ट' पुस्तक के नरक एवं स्वर्ग पर उनके भौतिक आकारों के विचार से विवाद किया जाय, अथवा उसमें जो सूर्य के पृथ्वी के चारों ओर घूमने अथवा पृथ्वी के चारों ओर प्याज़ के छिलकों के सदृश मंडलों के पाए जाने के विषय में वर्णन है, उस पर विवाद किया जाय, तो आजकल के बहुत-से वैज्ञानिक अपना-अपना सिर हिलावेंगे, और कहेंगे कि यह सब मिथ्या कल्पना है। इसी प्रकार कविवर शेक्सपियर के नाटकों को यदि सूक्ष्म ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय, तो वे बहुधा घटनाओं की असत्यता तथा रहन-सहन एवं आचार-विचार की क्रमहीनता से परिपूर्ण मिलेंगे। आध्यात्मिक पुरुषों का आगमन एवं दर्शन हैमलेट के पिता के रूप में हो अथवा बैंकों की आत्मा के रूप में; पर इन बातों को आजकल के लोग मिथ्या ही प्रतीत करेंगे। परंतु क्या इस कारण हैमलेट तथा मैकबेथ-जैसे नाटकों की उत्कृष्टता के विषय में आपने तद्देशीय विद्वानों में किसी प्रकार का मत-भेद होते देखा ? मानवीय प्रकृति के उभार एवं उसके दोषपूर्ण चित्रों तथा भयप्रद परिणामों को दिखलाकर जितना काम हमारे सुधार के लिये उस महाकवि ने किया है; उतना काम कोई प्रसिद्ध ऐतिहास-लेखक भी केवल सम्राटों के जीवन तथा उनकी मृत्यु का हाल

कहकर अथवा बाल की खाल निकालनेवाली सचाई का स्पष्टीकरण करते हुए नहीं कर सका। अभी समाचार-पत्रों द्वारा ज्ञात हुआ था कि एक बायस्कोप कंपनी कुछ अतीतकालीन घटनाओं के फ़िल्म तैयार कराने में लाखों रुपए ख़र्च तथा कई हज़ार ऐक्टरों का प्रबंध कर रही है। यह क्यों? केवल इसलिये कि वह युग एक बार फिर हमारी आँखों के सामने उपस्थित हो जाय। इस ख़याल से देखते हुए तुलसी ने रामचरित और राम-राज्य का वर्णन करके, हिंदू-जाति के लिये सर्वांगीण शिक्षा तथा उसमें ऐक्य और संगठन पैदा करने के हेतु समुचित उपदेश एवं भलाई-बुराई के भीषण संघर्ष के ऐसे अच्छे नमूने पेश किए, और फिर ऐसे अच्छे नतीजे निकाले कि यह मृतप्राय जाति पुनः जीवित हो गई—उसकी सूखी खेती फिर लहलहाने लगी। धार्मिक संप्रदायों का पारस्परिक विरोध मिट गया, और संगठन के लिये ऐसा उत्साह फैला, जो वस्तुतः दर्शनीय था। जिस कार्य को समर्थ गुरु रामदास तथा गुरु गोविंदसिंह इत्यादि ने अपने-अपने अनुयायियों में किया, वही कार्य हमारे तुलसीजी ने हिंदी-भाषा-भाषियों में कर दिखाया। इसीलिये लाला हरदयालजी-जैसे एकपक्षीय राजनीतिक विचारवाले लोग भी कहते हैं कि तुलसी-कृत रामायण हमारी जातीय पुस्तक होनी चाहिए। एक बार जब कारलाइल से यह प्रश्न किया गया कि यदि आपसे यह पूछा जाय कि आप शेक्सपियर को खोना पसंद करेंगे, अथवा ब्रिटिश-साम्राज्य को, तो उसने हँसकर उत्तर दिया कि मुझे ब्रिटिश-साम्राज्य के जाने की कुछ भी परवा नहीं; क्योंकि शेक्सपियर के शेष रहने पर ब्रिटिश-साम्राज्य पुनः स्थापित हो सकेगा। लाला हरदयाल भी अपने एक लेख में तुलसी-कृत रामायण के विषय में कुछ ऐसी ही बातें लिख चुके हैं।

दार्शनिक दृष्टि से

दार्शनिक दृष्टि से भी यह पुस्तक बड़ी अनोखी है। मेरे एक प्रोफ़ेसर मित्र, जिन्होंने पाश्चात्य दर्शनों के अतिरिक्त पूर्वी दर्शनों का भी यथेष्ट अध्ययन किया था, कहा करते थे कि इस पुस्तक में कहीं-कहीं प्रत्येक विचार-दृष्टि से सर्वोत्तम दार्शनिक सिद्धांतों का ऐसे कवित्व-पूर्ण ढंग से समावेश किया गया है कि हृदय पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। जैसे, ब्रह्म विद्या (ईश्वरीय व्यक्तित्व) के विषय में तुलसी ने ऐसा कहा है—

"जान सकहु ते जानहु, निर्गुन सगुन सरूप;
मम हृद-पंकज-भृंग इव, बसहु राम नररूप।"

इस दोहे को वह हमेशा एक ख़ास ढंग से पढ़ा करते और कहा करते थे कि तुलसीजी ने ऐसा कहकर मानो सागर को गागर में भर दिया है। फिर कवि ने अपनी अनुपम कृति द्वारा मानवीय भावनाओं का तो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म दिग्दर्शन करा दिया है। सारांश यह कि उस पुस्तक को, जिसके बारे में तुलसी का दावा यह है कि "दायक फल चार" और "कलिजुग नरन-उपाय न कोई। राम-भजन रामायन दोई" बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी समझवाला मनुष्य, दोनों ही बड़ी चाह से पढ़ते हैं, और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उससे उचित शिक्षा ग्रहण करते हैं।

सारांश

पाठकों को मेरे उपर्युक्त कथन से ज्ञात हो गया होगा कि मैं यह कभी नहीं मानता कि रामायण का पाठ केवल काव्य या साहित्य की विचार-दृष्टि से ही होना चाहिए। इसके साथ मैं पूज्य मालवीयजी के इस विचार से भी सहमत हूँ कि रामायण-पाठ में पिंगल एवं अलंकार की उलझनों में उलझकर रह जाना भी बड़ी भूल है। परंतु रस्किन के कथनानुसार मेरा यह निवेदन अवश्य है कि किसी महान् व्यक्ति की रचना को शब्दशः नहीं, प्रत्युत अक्षरशः पढ़ना चाहिए। कारण, जिस विचार को व्यक्त करने के हेतु किसी महाकवि ने निर्वाचित शब्दों का प्रयोग किया है, यदि साहित्य के पारखी लोग अपनी विशेष योग्यता द्वारा उस विचार का स्पष्टीकरण न कर सकेंगे, तो फिर हीरा और काँच के अंतर का ज्ञान पूर्णतया नहीं हो सकता। हाँ, यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि चाहे हम उस महाकवि के विचार से सहमत न हों, पर प्रथम तो हमें रस्किन के इस ख़याल को दृष्टि में रखना चाहिए कि वस्तुतः हम उस कवि के विचारों को व्यक्त करना चाहते हैं, न कि अपने ही विचारों को उनमें तोड़-मरोड़कर रखना; और दूसरे यह कि किसी महापुरुष के विचार से सहमत न होकर, घमंड में आकर एकदम यह न कह देना चाहिए कि उसका कहना ग़लत है, और हमारा ठीक। अँगरेज़ी-शिक्षा का यह एक बुरा प्रभाव है कि जैसे 'I' (मैं) का शब्द सबसे नितांत पृथक् रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य I (अहम्मन्यता) से परिपूर्ण रहता है। 'मेरा

'यह विचार है', 'मैं यह मानता हूँ', 'मैं तो यह समझता हूँ', 'मैं तो यह मानने के लिये तैयार नहीं', 'मुझे यह हर्गिज़ ठीक नहीं मालूम होता' इत्यादि वाक्य न केवल उन मनुष्यों की जिह्वा पर रहते हैं, जिन्हें वस्तुतः उनकी योग्यता के विचार से मत-भेद का अधिकार है, प्रत्युत प्रत्येक मनुष्य के मुंह से ऐसे ही शब्द निकलते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपनी डेढ़ ईंट की मसजिद अलग बनाता है; प्रत्येक मनुष्य अपना एक निजी मंदिर बनाए हुए उसी में अहम्मन्यता की प्रतिमा पर बुद्धि तथा ज्ञान की बलि चढ़ाना स्वतंत्रता की पहली मंज़िल समझता है।

तुलसी की साहित्यिक पुष्प-वाटिका के प्रत्येक शब्द-रूपी पुष्प से मधु-मक्खी की तरह मधु निकालिए, और स्वयं मधुपान करते हुए उससे देश एवं जाति के सुधार के हेतु औषध का काम लीजिए। पर यह अत्यावश्यक है कि साहित्य एवं काव्य की विचार-दृष्टि से, किसी चतुर पारखी की तरह, प्रत्येक शब्द-रूपी रत्न को परखिए, और फिर अपने तथा दूसरों के लिये उसके उचित मूल्य का निर्णय कीजिए। अन्यथा जैसा कि रस्किन का कथन है कि "उत्तम पुस्तक के दस पृष्ठों को विचार-पूर्वक—शब्दशः नहीं, प्रत्युत अक्षरशः—पढ़ना इससे कहीं अच्छा है कि ब्रिटिश अजायबघर की सारी पुस्तकें शीघ्रता-पूर्वक पढ़ डाली जायँ।" किसी पुस्तक को यों ही साधारण रीति पर पढ़ने से कोई लाभ नहीं। फिर ज्ञान के साथ कर्म भी आवश्यक है। परंतु वास्तविक ज्ञान के लिये अक्षर-अक्षर को परख करते हुए पढ़ना ज़रूरी है, अन्यथा विपरीत ज्ञान हो जाने का भय है। हकीम सुक़रात जब विष-पान के हेतु अंतिम बार स्नान के लिये जाने लगा, तब अपने मित्र एवं शिष्य क्रीटो से कहा—"मेरे प्यारे क्रीटो, तुमको जानना चाहिए कि शब्द का दूषित प्रयोग न केवल स्वयं ही दोष है, प्रत्युत आत्मा को भी दूषित करता है।" यह कौन नहीं जानता कि बहुत-से प्रचलित शब्द (जैसे स्वतंत्रता-परतंत्रता, सहयोग-असहयोग, धर्म-अधर्म इत्यादि) के अनुचित प्रयोग से कितनी बुराइयाँ उत्पन्न हो गई हैं? अतः शब्दों को परखते हुए उनके वास्तविक मूल्य को जानना न केवल साहित्य-सेवा है, प्रत्युत ऐसी सेवा भी है, जो देश एवं जाति की आध्यात्मिक उन्नति में सहायक हो सकती है।

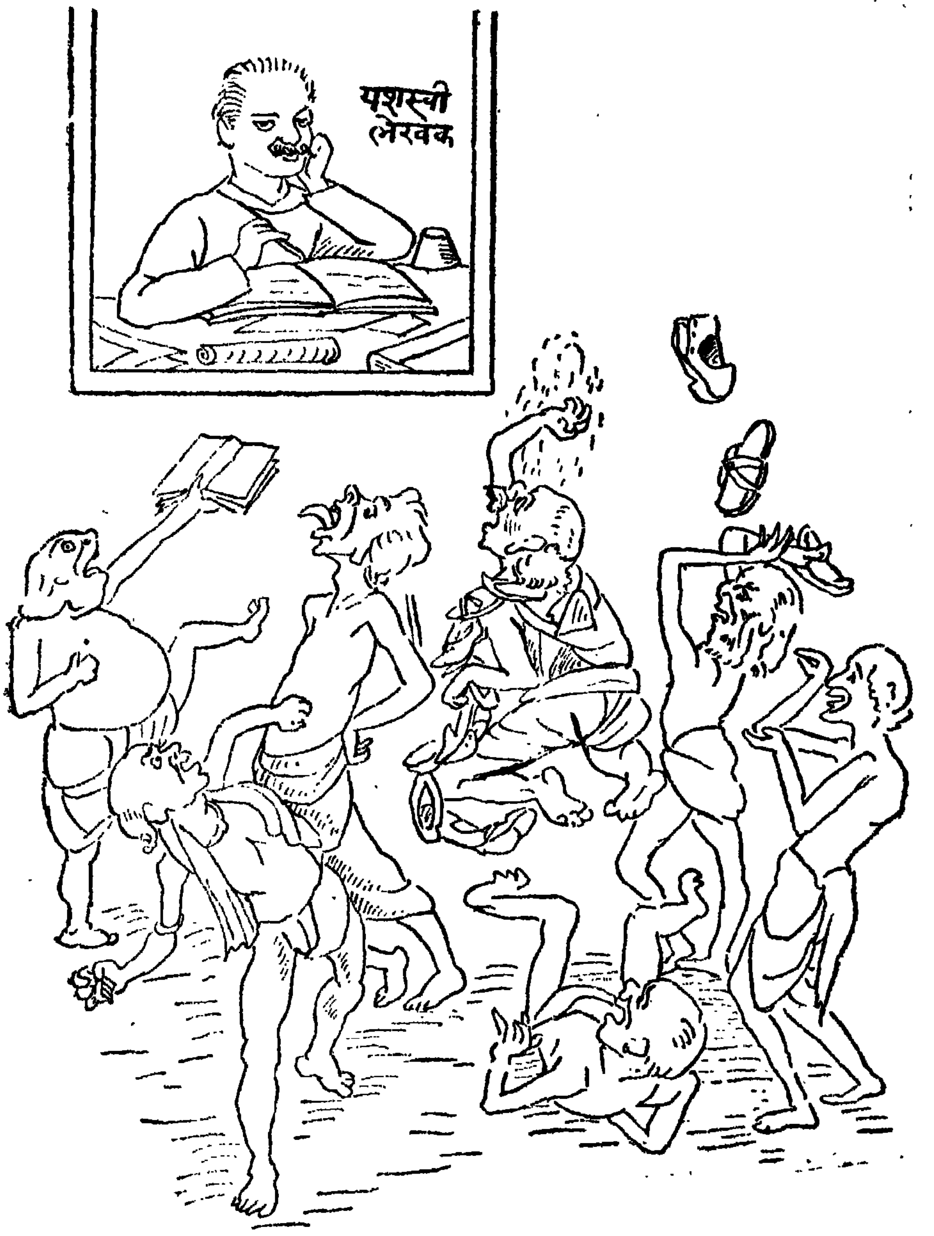
फिर देखिए, अन्य देशों के लोग अपने महाकवियों तथा अन्य महापुरुषों की रचनाओं को किस सूक्ष्म विचार-दृष्टि से पढ़ते हैं। इन्हीं अन्वेषण-पूर्ण प्रयत्नों के कारण शेक्सपियर से न केवल साहित्य, प्रत्युत इतिहास तथा सभ्यता एवं समाज-सुधार के प्रेमी भी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उपयुक्त शिक्षा ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त साहित्यिक विचार-दृष्टि से अध्ययन करने में आजकल एक विशेष लाभ और है। वह यह कि यदि मिल्टन और शेक्सपियर को चाहनेवाले लोग हमारे देश के 'ग़ालिब' और 'नसीम' के काव्योद्यानों में सैर करनेवालों से मिलकर तुलनात्मक विवाद न करेंगे, तो किसी को इस बात का पता नहीं चल सकता कि हमारे काव्य एवं साहित्य का स्थान कितना ऊँचा है।

मेरे विचार में संसार की आगामी कविता का आदर्श कुछ वैसा ही होगा, जैसा कि तुलसी का था, यद्यपि यह ठीक है कि देश-काल के विचार से थोड़ा-बहुत परिवर्तन होना आवश्यक है। फिर साहित्यिक विचार-दृष्टि से अध्ययन करने में धार्मिक एवं अन्य प्रकार के मत-भेद की ओर से दृष्टि हटकर केवल काव्य-चमत्कार तथा ... एवं विचार की उत्कृष्टता पर ही पड़ने लगती है, जब अध्ययन करनेवाले में रुचि एवं तन्मयता उत्पन्न हो जाती है, तो अन्य बातों को वह स्वयं ही अपनी ... के अनुसार व्यक्त करने लगता तथा उ... उठाता है।

मेरा तो विचार है कि इसकी बदौलत हमारे बहुत प्रिय कवि तुलसीदासजी न केवल भारत के, और प्रोफ़ेसर ग्रियर्सन के कथनानुसार केवल पूर्वी जगत् के, बल्कि समस्त जगत् के सर्वोच्च कवि माने जायँगे। यद्यपि मुझ-जैसे तुलसी-भक्त के ख़याल को लोग ठीक न समझें, और तुलसीजी को संसार का सबसे बड़ा कवि न मानें, पर इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि काव्य-जगत् में सादी, फ़िरदौसी, ग़ालिब, मिल्टन, शेक्सपियर इत्यादि जगत्-प्रसिद्ध महाकवियों की तुलना में हमारे प्रिय महाकवि तुलसीदासजी का पद भी इक्कीस ही रहेगा, उन्नीस नहीं।

राजबहादुर लमगोड़ा

समालोचकों का ऊधम



भाषा का विकास

(उत्तरार्द्ध)

अब संक्षेप में संस्कृत और पाली-भाषा के प्रधान भेद का दिग्दर्शन कराया जाता है। पाली की वर्ण-माला में ऋ, ॠ, लृ, ऐ और औ, ये स्वर तथा श, ष और विसर्ग हैं ही नहीं।

(१) संयोग के आदि का स्वर सदा ह्रस्व होता है और ऐ और औ के स्थान में ए और ओ हो जाते हैं। यथा ग्रीष्म=गिम्ह, चैत्य=चेतिय, मौद्गलायन=मोग्गलान इत्यादि।

(२) ऋवर्ण के स्थान में यथासुखोच्चारण अ, इ और उकारादेश होते हैं। यथा कृषिः=कसि, तृण=तिण, ऋषि=इसि, मृदु=मुदु, ऋतु=उतु इत्यादि।

(३) संयोग में यदि अंतिम वर्ण वर्गाक्षर हो, तो आदि वर्ण का लोप हो जाता है, और द्वितीय वर्ण का, यदि उसके पहले स्वर हो, तो द्वित्व होता है। यथा मुद्ग=मुग्ग, शब्द=सद्द, दुग्ध=दुद्ध, अद्भुत=अब्भुत, लब्ध=लद्ध, धर्म=धम्म, उल्का=उक्का, तर्क=तक्क, कर्त्ता=कत्ता इत्यादि।

(४) स्क, श्च, ष्ट, स्त और स्प के स्थान में ख, छ, ठ, थ और फ यथाक्रम आदेश होते हैं। यथा स्कंध=खंध स्तंभ=थंभ, स्तूप=थूप, स्पर्श=फस्स, पुष्कर=पोक्खर, पश्चात्=पच्छा, आश्चर्य=अच्छरिय, दृष्टि=दिट्ठि, पुष्ट=पुट्ठ, मस्तक=मत्थक, वस्तु=वत्थु, पुष्प=पुप्फ।

(५) श्न, ष्ण, श्म, स्म और ष्म के स्थान में न्ह, ण्ह, और म्ह आदेश होते हैं। यथा प्रश्न=पन्ह, उष्ण=उण्ह, अश्म=अम्ह, ग्रीष्म=गिम्ह, अश्मि=अम्हि।

(६) यदि संयोग का आदि अक्षर वर्गी हो और दूसरा वर्गी न हो, तो दूसरे का लोप हो जाता है; और आदि का वर्ण, यदि उसके पहले स्वर हो, तो द्वित्व हो जाता है। यथा क्रम=कम, ग्रीष्म=गिम्ह, व्रत=वत, तृण=तिन, शक्य=सक्क, शुक्र=सुक्क, तक्र=तक्क, पक्व=पक्क, पुत्र=पुत्त, विप्र=विप्प, गृद्ध=गिद्ध इत्यादि। पर यकार के पहले तवर्ग हो, तो तवर्ग के स्थान में चवर्गादेश होता है। यथा सत्य=सच्च, नृत्य=नच्च, मिथ्या=मिच्छा, अद्य=अज्ज, मद्य=मज्ज, मध्य=मज्झ, अन्य=अञ्ञ इत्यादि।

(७) क्ष, त्स और प्स के स्थान में क्ख, च्छ आदेश होते हैं। यथा लक्षण=लक्खण, वत्स=वच्छ, ईप्सा=इच्छा, अप्सरा=अच्छरा इत्यादि।

(८) कहीं-कहीं संयोगों का विकार नहीं होता। यथा ब्रह्मा, व्याधि, व्यग्र, प्लवंग, प्लवति, स्नेह। और, कहीं कहीं संयुक्त वर्ण वियुक्त हो जाते हैं, और आदि के वर्ण में यथासुखोच्चारण स्वर लगता है। यथा सूक्ष्म=सुखुम, शीर्ष=सिरीस, श्लाघा=सिलाघा, श्री=सिरी, ह्री=हिरी, आर्य=आरिय, कार्य्य=कारिय, वीर्य=वीरिय, अर्हा=अरहा, अर्हन्=अरिहन, गर्हा=गरिहा, वर्ह=बरिह, चैत्य=चेतिय, श्लोक=सिलोक इत्यादि।

(९) पकार कहीं-कहीं शब्दों के आदि में फकार हो जाता है। यथा परुष=फरुस, परशु=फरसु, पुष्प=फुस्प इत्यादि।

इनके अतिरिक्त प्रत्ययों, विभक्तियों तथा धातुओं का विकार और विपर्यय यथास्थान आगे के प्रकरणों में बतलाए जायँगे। यहाँ केवल स्थूल-स्थूल विकारों का दिग्दर्शन करा दिया गया है। यह पाली-भाषा बौद्ध-साहित्य की भाषा अवश्य है, और इसके साहित्य में विविध विषयों के ग्रंथ लिखे गए हैं; पर इतने ही से यह समझना कदापि ठीक नहीं कि यह कभी किसी प्रांत की बोलचाल की भाषा थी। प्रांतिक बोलियों के उदाहरण यदि देखना हो, तो अशोक के अभिलेखों को देखना चाहिए। ये भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों में, वहाँ की प्रांतिक भाषाओं में, शिलाओं और स्तूपों पर खोदे गए थे। हम नीचे एक अभिलेख को, जो भिन्न-भिन्न प्रांतों में मिलता है, उदाहरणार्थ देते हैं। इससे भिन्न भिन्न प्रांतों की बोलचाल की भाषा के संबंध में कुछ अनुमान हो सकेगा।

१. कालसी

देवानं पिये पियदसि[1] लाजा हेवं आहा अतिकंतं अंतलं[2] नो हुतपुलुवे सवं कालं अठकंमे वा[3] पटिवेदना वा स ममया हेवं कटे सवं कालं अदमनसा[4] मे [अंते[5]] ओलो धतसि[6] गभागालसि वचासि विनीतासि उयानसि [चे] सवता[7] पटिवेदिका अठं[3] जनसा [५] पटिवेदेंतु मे [ति[5]] सवता [चे] जनसा अठं कछामि[8] हकं यं[9] पिचा[7] किछि मुखते आनपयामि हकं[3]

१ पियदसा धौ० जौ० | २ अंतलं धौ० जौ० | ३ केवल कालसी में। ४ धौ० जौ० में ह्रस्व है—यथा अदमानस सवत, जनस, च, तस, पुन, सवलोकाहतेन, पलकमेन | ५ केवल धौ० और जौ० में।

दायकं वा सावकं वा ये[11] वा पुनौ महामातेहि अतियायिके आलोपिस[12] होति ताये ठाये[13] विवादे [वे] निझति[14] वा संतं पलिसाये[15] अनंतलियेना पटिवेदेनविये मे [ति] सवतो सवं कालं हेवं [मे[16]] आनगयिते[17] ममयाँ नथि हि मे दोसे[18] वे उठानसा[19] अठसंतेल नाये[20] चौ कटविय मुते हि मे सवलोकहिते तसौ [चे] पुनौ एसे[22] मुल[23] उठाने [चे] अठस तिलना[24] [चे] नथि हि कंमतला सवलोकहितेना य च किछि पलकमामि हकं किंति भुतानं अननियं[25] येहं [ति] हि द च कानि सुखायामि[26] पलत चा स्वगं आलाधयितु [ति] से एताये ठाये इयं धंम लिपि[29] लिखिता चिलाठतिकया[31] होतु तथा च मे[3] पुतदाले[32] पलकमांतु[33] सवलोकहिताये दुकले च इय आनत अगेनो पलक मेना [सेतो[35]]

शाहबाजगढ़ी

देवनं प्रियो (ये) * प्रियद्रशि रय (ज) एवं अहति (अह)। अतिक्रत (क) अंतरं न (नों) भु (हु) तपुवं (वे) सव्रं कलं (ल) अथ (थ) क्रमं (म) व पटिवेदन वतं (त) मय एवं किट सत्रं (त्र) कलं अश-मनस (तस) मे ओरो-धनस्पि (ओरोधने) व्रमगरस्पि (सि) व्रचस्पि विनितस्पि उयनस्पि सव्रत पट्टि (टि) वेदक अठं (थू) जनस पट्टि (टि) वेदतु मे सव (त्र) त्र च जनस पाट्ठ (थू) करोमि० [अहं] य पि च [०] किंचि मुखतो [ति] अण पय [पे] मि अहं दयकं व श्रवकं व येत्र पुन महमत्र (त्र) नं [हि] वो [०] अचयिक (के) अरोपतं (तं) भां (हो) तितये अठ (थू) ये विवदेव [०] निझति व संतं (त) परि-षये अनंतरि (लि) येन पटिवेदित वो [विये] ये सव [त्र] त सवं [त्र] कलं (ल) एव अणपितं मय नस्ति हि मेतोषो [षे] उठुनासि अठ [थू] संतिरणये च कटव [विय] मतं [ते] हि मे सत्र लोकहितं [ते] तस च [चु] ० [पुन एषे] मुलं [ले] एत्र [०] उथ (ठ) नं (ने) अठ (थू) सं (स) तिरण च नस्ति हि क्रमतरं [२] सव [त्र] लोकहितेन यं च किचि परकममि० [अहं] किति भुतनं अनणियं व्रचेयं [येहं] इअ च ष सुखयमि परत्र च स्पग्रं [ग्रं] अरधेतु० (तिसे) एतये अठ (थू) ये अयि (दंय) भ्रम० [दिपि] लिखि [दिपि] त [स्त] चिरथि [ठि] तिक [कं] मो (हो) तु तथ [थं] च मे पुत्र नतरो (रे) परकमतु [वं] सव [त्र] लोकहितये हुकरंतु [चु] सो इमं [०] अ [अ] त्र अग्रे० [न] परक्रमेन ।

गिरनार

देवानं प्रियो प्रियदसि राजा एवं आह अतिक्रांतं अंतरं न भूत प्रव स्वत्र कथा अथकमे व पटिवेदना वा त मया एवं कतं सवेकाले भुंजमानस मे ओरोधनम्हि गभागारम्हि वचम्हि व विनीतम्हि उयानेसुच सवत्र पटिवेदका स्टिता अथे मेजनस पटिवेदेथ इति सर्वत्र च जनस अथे करोमि यंच किंचिमुखतो आजपयामि स्वयं दापकं वा स्नावापकं वा य वा पुन महामात्रेसु आचायके आरोपितं भवतिताप अथाय विवादो निझतीव संतो परिसायं आनंतरं पटिवेदतव्यं मे सर्वत्र सर्वकाले एवं मया आत्रापितं नास्ति हि मे तोसो उस्टानम्हि अथ संतीरणाय व कतव्य मतेहि मे सर्वलोकहितं तस च पुन एस मूलं स्टानं च अथ संतीरणा च नास्तिहि कंटमतरं सर्वलोकहितत्या य च किंचि परकमामि आहं किंति भूतानं आनंणं गछेयं इधचनानि सुखापयामि परत्राचस्वगं आराधयंतु त एताय अथ यअय धंमलिपी लेखापिता किंति चिरंतिष्टेय इति । तथा च मे पुत्रा पोता च प्रपोत्रा च अनुवतरां सवलोक हिताय हुकरंतु इदं अजत अगेन पराकमेन ।

ऊपर एक ही धर्मलिपि के भिन्न-भिन्न पाठ दिए गए हैं, (१) में कालसी का पाठ दिया गया और नीचे टिप्पणी में धौली और जौगड के पाठभेद, जिनकी भाषा कालसी से मिलती है, दिए गए हैं। (२) में शाहबाजगढ़ी का पाठ है, और कोष्ठ में मानसेरा का पाठभेद दिया गया है। ये दोनों अभिलेख खरोष्ठी-लिपि में हैं। और, (३) में केवल गिरनार का पाठ है। अब आगे हम गिरनार के

६ ओलो० धनसि जौ० । ७ पटिवेदयंतु जौ० धौ० । ८ कलानि जौ० धौ० । ९ अं० धौ० जौ० । १० ए धौ० जौ० । ११ आलो० पिते धौ० जौ० । १२ तासि धौ० जौ० । १३ अठासि धौ० जौ० । १४ निझती । १५ पलिसाय धौ० जौ० । १६ आन तलियं जौ० धौ० । १७ अनुसथे जौ० धौ० पाठा । १८ तो स धौ० जौ० । १९ उठानसि धौ० जौ० । २० आठसंतिणा नाय धौ० जौ० । २१ मते धौ० । २२ इयं धौ० जौ० । २३ मूले जौ० धौ० । २४ अठ संतीलना धौ० जौ० । २५ आजनियं धौ० जौ० । २६ सुखयामि धौ० जौ० । २७ आलाधयंतू धौ० जौ० । २८ अठाये जौ० धौ० । २९ धंमलिपी जौ० धौ० । ३० लिखिता धौ० जौ० । ३१ चिलठितिका धौ० जौ० । ३२ पुता पपोता मे धौ० जौ० । ३३ पलकमंतु धौ० जौ० । ३४ चु धौ० जौ० । ३५ अनंत धौ० जौ० । ३६ धौ० सेतो [हस्ती की आकृति]

* कोष्ठ में मानसेरा का पाठ दिया गया है ।

अनुसार ऊपर की धर्मलिपि का संस्कृत और पाली में अनुवाद देते हैं। इससे यह अंतर जान पड़ेगा कि उस समय की प्रांतिक बोलियों में कितना अंतर था।

संस्कृत

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह। अतिक्रांतं अंतरं न भूतपूर्वं सर्वं कालं अर्थ कर्म वा प्रतिवेदना वा। तत् मया एवं कृतं सर्वस्मिन् [सर्वं] काले [लं] भुंजानस्य [अदतः अश्नतः] मे अवरोधने गर्भागारे व्रजे वा विनीते उद्यानेषु च सर्वत्र प्रतिवेदकाः स्थिताः अर्थं मे जनस्य प्रतिवेदयथ [दयंतु] इति। सर्वत्र च जनस्य अर्थं करोमि। यत् च किंचित् मुखतः आज्ञापयामि स्वयं [अहं] दायकं वा श्रावकं वा यद् वा पुनः महामात्रेषु [त्रे, त्राणां] आत्यायिकं आरोपितं भवति तस्मै [तस्मिन्] अर्थाय [अर्थे] विवादो [दे] निध्यातिः [ध्यातौ] वा सन् परिषदा आनन्तर्येण प्रतिवेदयितव्यं मे सर्वत्र सर्वस्मिन्[वं] काले [लं]। एवं मया [मे] आज्ञापितं [अनुशिष्टं] नास्ति हि मे तोषः उत्थाने अर्थसंतरणाय च। कर्तव्यं मतं हि मे सर्वलोकहितं। तस्य च पुनः एतद् मूलं उत्थानं च अर्थसन्तरणं च। नास्ति हि कर्मतरं सर्वलोकहितात्। यच्च किंचित् पराक्रमे अहं किमिति? भूतानां आनृण्यं गच्छेयं; इह च कानि [पि] सुखयामि परत्र च स्वर्गं आराधयंतु [यितुं]। तत् एतस्मै अर्थाय इयं धर्मलिपिः लेखिता किमिति? चिरं तिष्ठत् [चिरस्थितिका होतु] इति। तथा च मे पुत्राः पौत्राः च प्रपौत्राः च [पुत्रदारे। पुत्राः प्रपौत्राः मे] अनुवर्तन्तां [पराक्रमंतां] सर्वलोकहिताय दुष्करं तु [चरवानु] इदं अन्यत्र अग्रेण पराक्रमेण।

पाली

देवानं पियो पियदस्सि राजा हेवमाहे। अतिक्कन्तमंतर न भूतपुब्बं सब्बं काल अत्थकम्मे वा पटिवेदना वा। त मया एवं कतं सब्बस्मिं कालम्हि भुंजमानस्स मे ओरोधम्हि गब्भागारम्हि वचम्हि विनीतम्हि उय्यानेसु च सब्बत्र पटिवेदका ठिता अत्थे मे जनस्स पटिवेदेथ इति। सब्बत्र च जनस्स अत्थं करोमि यं च किंपि मुखतो आज्ञापयामि सयं दायकं वा सावकं वा यद्वा पुना महामत्तेसु अच्चयिक आरोपितं भवति। तायअत्थाय विवादोनिज्झति वा सन्तोपरिसायं [य] अनंतरं पटिवेदेतब्बं मे सब्बत्र सब्बे काले। एवं मया आज्ञापितं नत्थि हि मे तोसो उत्थानम्हि अत्थसन्तरणाय वा कातब्बमतोहि मे सब्बलोकहिता। यंच किंचि परक्कमामि अह किंति? भूतानं अनण्यं गच्छेयं। इधचकानि सुखापयामि परत्र च सग्गं आराधयतु। एताय अत्थाय इयं धम्मलिपिलेखापिता किंति चिरंतिट्ठेय इति। तथा च मे पुत्ता च पोता च पपोता च अनुवत्तन्तां सब्बलोकहिताय। दुक्करं तु इदं अञ्जत अग्गेण परक्कमेण।

हिडम्बा—हि! तव अ मम अ।

घटोत्कचः—कः प्रत्ययः?

हिडम्बा—एसोपच्चओ। जेदुअय्यउत्तो। उम्मत्त! अभिवादेहि पिदरम्।

(२) पंचरात्र, द्वितीय अंक—

(ततः प्रविशति वृद्धगोपालकः)

वृद्धगोपालकः—गावो मे अहीणवच्छा होन्तु। अविहवा अगोवजुवदीओ होन्तु। णोलाओ विलाडो एकच्छत्तपुहवीपदी होदु। महालअस्स विलाडस्स वस्स वड्ढणगोप्पदाणणिमित्तं इमस्सिं णअलोवत्तावीहिए आअंतु गोधणं पच्चे अकिदमंगलामोदो गोवदालआदालिआ अ दाव। एम्ब जेट्ठगच्छिअ अअणुभविष्णम् (विलोक्य) किण्णु हु एसो वाअसो सुक्खलुक्खं अलुहिअ सुक्खसाखाणिघट्टिअतुण्डं आदिच्चाहिमुहं विस्सलं विलवदि। सन्ती होदु सन्ती होदु अह्मणं गोधणस्स अ। जाव एणं अंगच्छिअ गोवदालआणं दालिआणं बाहलामि (परिक्रम्य) अले गोमित्तअ! गोमित्तअ!

(प्रविश्य)

गोमित्रकः—मादुल! वन्दामि।

वृद्धगोपालकः—सन्ती होदु सन्ती होदु। अह्माअ गोधणस्स अ। अले गोमित्तअ! महालाअस्स विलाडस्स वड्ढण गोप्पदाणणिमित्तं इमस्सिं णअलोवत्तणवीहीए आअंतु गोधणं पच्चेआ किदमंगलामोदो गोवदालआ गोवदालिआअ। अले गोमित्तअ! गोवदालआणं दालिआणं बाहल। गोमित्रकः—ज मादुलो आणवेदु। गोलक्खिणिए! पिदपिंड! सामिणि! वसभदत्त! महिसदत्त! आअच्छह सिग्धं।

(ततः प्रविशंति सर्वे)

सर्वे—मादुल! वन्दामि।

वृद्धगोपालकः—सन्ती होदु सन्ती होदु अह्माणं गोधणस्स अ गोवदालआणं दालिआणं अ। महालाअस्स विलाडस्स वस्सवड्ढण गोप्पदाणणिमित्तं इमस्सिं णअलोवत्तणवीहीए आअंतु गोधणं। तत्तअ वेलं गाअंतो णच्चंतो होम।

सर्वे—जं मादुलो आणवेदि। (सर्वे नृत्यंति)

वृद्धगोपालकः—ही ही पुट्ठु णच्चिदम् पुट्ठु गाइदं। जाव अहं पिणच्चामि। (नृत्यति)

वृद्धगोपालकः—पाहुलेण्णु एव संक्खदुंदुभिघोषं उप्पादिदे।

सर्वे—हा हा मादुल ! दिवाचंदप्पमा पंडुलजोव्वणंठिद मंडलु पुर्ण्या अतिथअ चित्थअ ।]

अशोक की धर्मलिपियों को मिलाने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय की प्रांतिक बोलियों में अंतर पड़ गया था, शब्दों के रूप और उनके प्रयोग-प्रयोग में भेद पड़ गया था, यद्यपि बौद्ध-धर्म के प्रचार के साथ-साथ मागधी भाषा, जिसे पाली कहते हैं, बौद्ध-धर्म के साहित्य की भाषा हो गई। विद्वानों ने उसे इस प्रकार व्याकरण के शिकंजे में रखकर कसा कि उसका अपने मूल-संस्कृत से कोई संबंध ही नहीं रहने दिया। उसके व्याकरण-कोष और धातुपाठ तक पाली-भाषा में बन गए, जिनके सहारे से लंका, बर्मा, श्याम आदि देशों के भिक्षु बिना संस्कृत का आश्रय लिए उसका अध्ययन-अध्यापन करने लगे, और इतनी व्युत्पन्नता लाभ की। इनके बल पाली-भाषा के विद्वान् ही नहीं होने लगे, अपितु पाली-भाषा में गद्य-पद्य के लेखक ग्रंथकार और टीकाटिप्पणी करनेवाले भी हुए।

प्रांतिक बोलियों में यद्यपि कोई साहित्य के ग्रंथ ईसा के जन्म के पूर्व के नहीं मिलते, और जान पड़ता है कि वे केवल बोलचाल की भाषा शताब्दियों तक रहीं, पर नाटककारों ने उन भाषाओं को अपने नाटकों में स्त्री और शूद्रादि अशिक्षित पात्रों के लिये काम में लाना आरंभ किया। अधिक संभव है कि आदि-नाटककारों ने उनका प्रयोग प्रकृत रूप ही में, अर्थात् जैसे लोग बोलते थे, किया हो, और वह व्याकरण के नियमों से जकड़ी हुई न रही हो; पर पीछे जब अनेक प्राकृत के व्याकरण बन गए, और लोग व्याकरण के नियमों के शिकंजे में कसी हुई प्राकृत-भाषा पढ़ने और लिखने लगे, तो जान पड़ता है कि लोगों ने पूर्व के नाटककारों की प्राकृत को भी अछूता नहीं छोड़ा, और उसे पीछे के बने व्याकरणों की खराद पर चढ़ाकर टकसाली प्राकृत बना दी।

यहाँ हम सबसे पहले भास और अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत के कुछ उदाहरण देकर फिर क्रमशः प्राकृत के विभागों के ऊपर लिखना उचित समझते हैं। कारण यह है कि भास की प्राकृत में अधिक प्राकृतत्व मिलता है। उसमें लोगों के हाथ बहुत कम लग पाए हैं, और यदि कहीं लगे भी हैं, तो उसे न लगने के बराबर समझना चाहिए।

(१) मध्यमव्यायोगः

हिडम्बा—आद ! चिरंजीव । कीदिसो माणुसो आणीदो ? किं बाहणो ? अदुधेरो ? किं बालो ? जइ एव्वं पेक्खामि दाव्वं ।

(उभौ उपक्रामतः) (दृष्ट्वा) किं एसो माणुसो आणीदो ? उम्मत्त । दुव्वलं खु अत्रं ।

घटोत्कचः—कस्य दैवतम् ?

गोपमित्रकः—हा हा मादुल ! एदे के विमणुण्णादहिपिड पंडुरे हि खुसे हि छोडअस अडिअं आलुहिअ पव्वं धोर्णु विहयंति चोला ।

वृद्धगोपालकः—ही ही पर पंपादा उट्ठिदा । दालआ ! दालिआ पिच्चं पुक्खणं पविषदि ।

सर्वे—जं मादुलो आणवेदि (निष्क्रान्ताः)

वृद्धगोपालकः—हा हा चिट्टह चिट्टह । पहरह पहरह । गहह गहह । इमं वुत्तंतं महाजअस्स णिवेदुस्सामो । (निष्क्रांतः)

३—अविमारकः—

धात्री—अहो संकडहाकप्पस्स । जइ एवं करीयदि, राअउलंहू सिर्ब होइ । जइ ण करीअदि अवस्सं सा विलज्जइ । मए अणाणहि उपा एहि विआरिदं च । मम वि सा अज्ज विपच्छा देदि किंताए पच्छादिदं । सा सदप्पहुदि सुभआवत्तअणोच्छदि आहारं णाभिलसदिणा रमदि गोट्ठी अणेण दिग्घं णिस्ससदि असम्बद्धं कहेदि, कहिदं ण आणाहि गूढं हसदि, पंडुभावं गच्छदि एकंपितहिं अच्छरिअं । एवं विधेहि अवत्थाविसेसेहि अत्ताणो लज्जाए मएण कुलमाणेण बालभावेण अ एकस्सावि किंचि णमंतेदि ।

नालिका—किस्स णमन्तेहि । मम सव्वं कहेहि ।

धात्री—हला ! जाणामि दे अभिप्पाअं अवत्थं जाणिअ सव्वहा इमं एदेण जोगेहित्ति ।

नालिका—किण्णु सुई दि सो ता दिसेहि गुण विसेसेहि अकुलीणो भवे ।

धात्री—तहिं च संदेसो । सुदं च मए भट्टिणी समोवेअमलेहि किल भणिदं । ण सो तादिसो । दुक्खुलजोत्ति । अत्ताणं केण विकारेण पच्छादेदित्ति ।

नालिका—कोणु खु भवे ।

धात्री—जदि सो संदेहो णत्थिको अणो अदिरित्त-गुणो जामादुओ भवे ।

यदि च विभवरूपज्ञानसत्त्वादयः स्यु-
र्ननु कुलविकलानां वर्तते वृत्तशुद्धिः ।

धुराहि कुलमस्य श्रोष्यसि प्रासकाले
त्यज कुलगतशङ्कां साध्यतां स्वान्तमेतत् ।

धात्री—ह लोकेग खु भगिदं ।

नायिका—एत्थ कोवि ण दिस्सदि ।

धात्री—पहिट्ट रोमकूवं मे सरीरं । असंसभं दव्वेण भणिदं । अहं पुण जाणामि ण एसो केवलो माणुसोत्ति ।

नायिका—गदोतस्स कुसलंदेहो । अहाणं भणं करेदिअ करेदित्ति चिन्तेमि ।

४—प्रतिज्ञायौगंधरायण—

(क) विदूषकः—भो देव ! उलपीठिआए मम मोदअमल्लअं णिक्खविअ दक्खिणा मास आणि गणिअ बंधिअ पडिवुत्तो दाणि मोदअमल्लअं ण पेक्खामि (विचिंत्य) आ एक मोदअपरितं सिदो ण दाव ओलग्गो मं अणुसरदि । उच्चदाए पाआरस्स अगाई कुक्कुराणं । अक्खदं असदाए आलोहणीअ पहिआणं । आदु अपिण खामामि । भोदु ओग्गाहस्सं दाव अहं । ही ही कुड्डो विअ सुअर वत्थी सुट्ठवादं एव्व उग्गिणामि । अहव लोहिदक्ख्याअणीए केरअं मम केरअंत्ति कदिअ सिवेण पडिहत्थीकिदं भवे (निरूप्य) । जदि वि एसो बहाआरो बहुकेहि रूवेहि अविणअं करेदि । भोदु पेक्खिस्सं दाव अहं । भो एदं खु मम मोदअं मल्लअं सिवस्स पादमूले चिट्ठइ । जाव णं गृण्हामि । देहि भट्टा ! देहि मे मोदअ मल्लअं भट्टा । तुवं वि मम चोरोसि । अवि ह आलहिदं खु मम मोद अमल्ल अं संदान तिमिरेण सुट्ठु ण पेक्खामि । भोदु पमज्जिस्सं दाव अहं । ही ही साहुले चित्तअर ! भाव ! साहु । जुत्तलेहदाए साणं जह जह पमज्जामि तह तह उज्जलदरं होइ । भोदु उदएण पमज्जिस्सं । कहिं णु हु उदअं । इदं सोहणं सुद्धं तडाअं । अहं विअ सिवो विअं सिवो विअं दाव एहिस्सं मोदअमल्लए णिरासो होदु ।

(ख) उन्मत्तकः—ही ही चंदे गिलदिल'हू । मुंच मुंच चंदं । यदिण मुचेशि, मुह दे पडिअ मुंचयिस्सं एशे एशे दुट्ठ अरशो परिब्भट्ठे आअच्छदि । एशे एशे चउप्पह वीहीएआअं । जाव णं आलुहिअ बलिं भक्खिस्सं । एशे एशे दालअ भट्टा । मं ताडेह । मा खु मा खु मं ताडेह । किं भणाशि आम्हाणं किं पिणच्चेदि त्ति । दक्खह दक्खह दालअभट्टा ! एशे दालअभट्टा ! पुणोवि मं ताडेह । मा खु मा खु ताडेह । तेन हि अहं पि तुम्हे ताडेमि ।

ऊपर के उद्धृत भास की प्राकृत के देखने से यह स्पष्ट अनुमान क्या, प्रतीत होता है कि यह प्राकृत बोलचाल की प्राकृत अवश्य है, और इसमें प्राकृत व्याकरण के ज्ञाताओं के हाथ कम लगे हैं । अश्वघोष * की प्राकृत भी स्वाभाविक प्राकृत है; पर खेद है कि उसके जो अंश मिले हैं, वे इतने कम हैं कि हम उदाहरणस्वरूप यहाँ दे नहीं सकते । इन दोनों की प्राकृत के बोलचाल की प्राकृत होने का एक और कारण प्रतीत होता है कि इनमें कविता या श्लोक नहीं हैं । कविता की रचना किसी भाषा में विद्वान् लोग तब करते हैं, जब वह भाषा संस्कृत या साहित्यिक अथवा विद्वानों की भाषा हो जाती है । ग्रामीण या बोलचाल की भाषा में ग्रामीणों को छोड़ विद्वान् कविता करने का या ऐसी भाषा की कविता को स्वरचित ग्रंथों में स्थान देने का प्रयास नहीं करते । आज तक किसी प्राच्य भाषा के ग्रंथ में ग्रामीण भाषा की कविता देखने में नहीं आई । दूर जाने की आवश्यकता नहीं, उर्दू-भाषा के प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय स्वनामधन्य पंडित रतननाथ दर 'सरशार' महोदय ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ फ़साना-आज़ाद में यद्यपि अनेक प्रकार की बोलचाल की भाषाओं का पात्रानुसार प्रयोग किया है; पर उनमें प्रायः कविता न तो की है, और

* अश्वघोष के नाटकों के कुछ फटे पत्ते कुटिलाक्षरों में मिले थे । उन्हें लुडर ने जर्मन-भाषा में अपनी आलोचना के साथ प्रकाशित किया है । उसी से कुछ वाक्यांश हम नीचे देते हैं । लुडर का मत है कि उसमें तीन प्रकार की प्राकृत मिलती है—(१) गोपों की, (२) विदूषक की, और (३) अज्ञात । तीनों के उदाहरण पृथक्-पृथक् नीचे देखिए—

(१) गोपः—

३०—पलिनत ताल फलवभिकाहि भुञ्जिता हि कुसलवातं अच्छलिगं ।

(२) विदूषक—

८—आलिमविचूरितेन ससोवअलरुचकेन लवणीफलावद ** समासवं वलकरेण ।

३०—निरूरतासं करिय इदानी कथंचिउरसति ।

(३) अज्ञात—

२०—अम्बवलरी कण्डे लगिय मदनधुजं ।

२७—अञ्जराज गह विसयमागता इमिनायेव ।

१४—उपादिसे ए दिसस्स बह्मणजनस्स अनुग्गाहको ।

न कविता उद्धृत करने की चेष्टा ही की है। संक्षेप यह है कि सद्ग्रंथकार अपने ग्रंथों में ग्रामीण बोलचाल की भाषा में कविता देना अच्छा नहीं समझते। ऐसा करना साहित्य की दृष्टि से एक दोष माना गया है, और माना जाता है।

कविकुलगुरु कालिदास के नाटकों की प्राकृत व्याकरण के नियमों से जकड़ी हुई है, और प्राकृत के श्लोक भी उसमें इतस्ततः मिलते हैं। यदि यह पीछे के संस्कार का फल, जो पंडितों ने उनकी भाषाओं में किया हो, नहीं है, तब तो यह मुक्तकंठ होकर कहा जा सकता है कि कालिदास ने अपने नाटकों की रचना ऐसे समय में अवश्य की, जब प्राकृत साहित्य की भाषा हो गई थी, और व्याकरण के नियमों के शिकंजे में जकड़बंद हो गई थी। इससे चाहे कविकुलगुरु का काल शताब्दियों क्यों न पीछे हट आवे, पर भाषा-तत्त्व या शब्द-शास्त्र की दृष्टि से उनके नाटकों को उनकी असली कृति मानने पर ऐसा अनुमान निर्विवाद ठहरेगा।

शकुंतला-नाटक में यद्यपि दो प्रकार की प्राकृत—शौरसेनी और मागधी—देखने में आती है, पर वह प्राकृत व्याकरण के नियमों से बँधी हुई है। हम कुछ उदाहरण इन दोनों प्रकार की प्राकृतों के देकर आगे प्राकृत के भेदों का वर्णन करना उचित समझते हैं—

(१) शौरसेनी—

अनसूया—"हला मामवि अत्थि कोदू हलता पुच्छामि दावणं [प्रकाशम्] अज्जस्स महुरालावजणिदो वीसम्भो मं आलावेदि; कदमो राएसिवंसो अलंकरी अदि अज्जेण, कदमो वा देसो विरह पज्जस्सुओ करीआदि, किंणिमित्तं वा अज्जेण सुउमारेण तवोवणागमणपरिस्समे अप्पा उवणीदोत्ति।"

(२) मागधी—

धीवर—"एकस्शिं दिअशे मए लोहिदमच्छके पाविदे, खंडशो कप्पिदे, जाव उदलब्भन्तले पेक्खामि दाव एशे महालअण भाशुले अंगुलीअए पेक्खिदे; पश्चाहृध विक्कअत्थं दंशअन्ते उजेवगहोदे भावमिश्शेहिं। एत्तिके दाव एदश्श आगमे अथ मं मालेध कुट्टेध वा।"

पर इन प्राकृतों में भी कहीं व्याकरण की शिथिलता यद्यपि बहुत कम है, पर खोजने पर मिलती है।

आजकल जो प्राकृत देखने में आती है, वह साधारणतया दो भेदों में विभक्त की जा सकती है—(१) जैन प्राकृत और अजैन प्राकृत। जैन प्राकृत के प्रधान दो भेद हैं, आर्ष और अनार्ष। आर्ष प्राकृत वह भाषा है, जिसमें जैनियों के प्राचीन ग्रंथ हैं। दूसरी अनार्ष है, जिसके भेद महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, और अपभ्रंश हैं। अजैन प्राकृत के महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, और पैशाची भेद हैं। अपभ्रंश लोक भाषा या अनार्य भाषा है, जिसका संस्कृत के साथ या तो कोई संबंध ही नहीं है, अथवा जिसके रूप की प्रकृति संस्कृत वा प्राकृत नहीं है।

प्राकृत, जिसका प्रयोग जैन और अजैन-ग्रंथों में हुआ है, बहुधा शौरसेनी या महाराष्ट्री है। कहीं-कहीं मागधी का प्रयोग मिलता है। कहते हैं, गुणाढ्य-नामक किसी कवि ने पैशाची-भाषा में बृहत्कथा नामक ग्रंथ लिखा था; पर वह अब अप्राप्य है। प्राकृत के वैयाकरणों ने 'भाषा' * और 'विभाषा', ये दो प्राकृत के भेद करके एक-एक में अनेक भेद किए हैं। पर वे भेद बहुत ही साधारण हैं। भाषातत्त्व की दृष्टि से काम के नहीं हैं। व्याकरणों में प्राकृत के साधारण नियम, जिन्हें प्रकृति कहते हैं, 'महाराष्ट्री' में दिए गए हैं। फिर विकृति या विशेष नियम को पृथक्-पृथक् दिया गया

---

*मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यर्द्धमागधी ;

वाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्त भाषाः प्रकीर्तिताः।

(१) मागधी, (२) अवंती, (३) प्राच्य, (४) शौरसेनी, (५) अर्द्धमागधी, (६) वाह्लीका और (७) दाक्षिणात्या, ये सात भाषा हैं। मार्कंडेय ने भाषाओं की संख्या केवल ४ लिखी है। उसने दाक्षिणात्या के स्थान में महाराष्ट्री लिखा है, और वाह्लीका का नाम नहीं दिया।

शकाराभीरचांडालशवरद्राविडोड्रजाः ;

हीना वनेचराणां च विभाषा सप्त कीर्तिताः।

(१) शकारी, (२) आभीरी, (३) चांडाली, (४) शावरी, (५) द्राविडी, (६) औड्री और (७) वनेचर या ढक्क-भाषा ये सात विभाषा हैं। मार्कंडेय ने वनेचर या ढक्क के स्थान में टाकी लिखा है। पर यह सब परिसंख्या-मात्र है, तर्कानुसार नहीं।

पैशाची की प्रकृति शौरसेनी है, और अपभ्रष्ट सबसे अलग है। अनुमान होता है कि उसके अनेक भेद थे; पर हेमचंद्राचार्य ने अपभ्रष्ट से केवल गुजरात और राजपूताने के मध्य की भाषा का ग्रहण किया है, जो पिंगल और डिंगल से मिलती-जुलती है।

है, और कह दिया गया है कि शेष अमुक के सदृश जानना चाहिए।

पहले यहाँ कुछ उदाहरण महाराष्ट्री के देकर फिर आगे चलकर प्राकृत के मोटे-मोटे नियम दिए जायँगे। महाराष्ट्री भाषा में सबसे प्राचीन जो ग्रंथ मिलता है, वह गौडवहो है। यह ग्रंथ ७वीं शताब्दी का है। इसे वाक्पतिराज ने, जो भवभूति का समकालीन था, लिखा था। इसमें यशोवर्मा का गौडराज को जीतने का वर्णन किया है।

> णियआए चिय वयाइ अत्ताणो गारवं णिवेसन्ती ;
> जे यन्ति पसंसं चिय जयन्ति इह ते महाकइणो।
> दोगच्चंमि वि सोक्खाइं ताण विहवेवि होन्तिदुक्खाइं ;
> कव्व परमत्थरसियाइं जाण जायन्ति हिययाइं।
> सोहेइ सुहावेइ य उव हुञ्जन्तो लवो विलच्छीए ;
> देवी सरस्सई उण असमग्गा किंपि विणडेइ।
> अत्थि णियत्तिय णीसेसभुवण दुरिया हिनन्दिय महिन्दो ;
> सिरि जसवम्मोत्ति दिसा पडिलग्ग गुणो महीनाहो।

प्राकृत में ऋ ॠ, लृ, ऐ और औ स्वर और ङ, ञ, श, ष, न और य तथा विसर्ग व्यंजन नहीं होते, और न भिन्न-वर्गीय संयुक्त अक्षर होते हैं। पाली-भाषा के सदृश इसमें भी व्यंजनांत शब्द नहीं होते। इसमें भी पाली-भाषा के सदृश केवल एकवचन और बहुवचन होते हैं, द्विवचन नहीं होता। पर पैशाची में न होता है, ण नहीं होता; और मागधी में स और ज न होकर उनके स्थान में श और य होता है।

(१) स्वरविपर्यय—

१—ऋकार के स्थान में अ, इ या उकार हो जाता है; पर केवल ऋकार को 'रि' भी होता है। यथा—वृद्धः= वड्ढो; वृषभः=वसहो ; कृपा=किवा; दृष्टं=दिट्ठं; तृप्तं= तिप्पं ; निवृत्तं=णिव्वुदं; मातृगृहरं=माउहरं=माइहरं; ऋतु=उतु, रितु; ऋषिः=इसी, रिसी; ऋजु=उज्जु, रिज्जु इत्यादि।

२—ऐकार और औकार के स्थान में ए या अइ और ओ या अउ हो जाता है। यथा—कैतवः=केढवो; वैधव्यं= वेद्व्वं; दैत्यः=दइच्चो ; दैवतं=दइवअं; वैरं=वइरं, वेरं ; कैलासः=केलासो, कइलासो ; यौवनं=जोव्वनं ; सौभाग्यं = सोहग्गं ; पौरः=पउरो ; पौरुषं=पउरुसं इत्यादि।

३—स्वरों का कहीं-कहीं विपर्यय हो जाता है। यथा— समृद्धिः=समिद्धी, सामिद्धी ; प्रसिद्धिः=पसिद्धी, पासिद्धी ; कृपणः=किविणो ; उत्तमः=उत्तिमो ; शय्या=सेज्जा ; कन्दुकः = गेंडुओ ; चामरं = चमरं ; ब्राह्मणः = बम्हणो ; मांसं = मंसं ; निशाचरः = निसिअरो इत्यादि।

४—संयोग के आदि-स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाते हैं ; पर इकार के स्थान में कहीं-कहीं उकारादेश भी होता है। यथा—विरहाग्निः=विरहग्गी ; मुनीन्द्रः=मुनिन्दो ; चूर्णं= चुण्णं ; नरेन्द्रो=णरिंदो ; म्लेच्छो=मिलिच्छो ; अधरोष्ठः= अदरुट्ठो ; नीलोत्पलं=नीलुप्पलं ; सिन्दूरं=सिंदूरं, सेदूरं ; पिण्डं=पिंडं, पेंडं इत्यादि।

व्यंजन-विकार—

(१) प्राकृत-भाषा में पाली-भाषा के सदृश ही व्यंजनांत पद या शब्द नहीं होते, और श, ष के स्थान में स हो जाता है। विसर्ग का लोप होता है, और अ के साथ विसर्ग का ओ हो जाता है। ङ, ञ, ण, न और अंत के मकार के स्थान में अनुस्वार हो जाता है। यथा— देवः=देवो; अग्निः=अग्गी; जलम्=जलं; पंक्तिः=पंत्ती; कंचुकः=कंचुओ; षण्मुखः=छंमुहो इत्यादि।

(२) संयुक्त वर्णों के लोप और विकार प्रायः पाली-भाषा के समान ही होता है। यथा—भक्तिः=भत्ती; गुप्तः= गुत्तो इत्यादि।

(३) आदि-वर्ण न हो, तो स्वर के परे—

(१) क, ग, च, ज, त, द, प, य, व और व का प्रायः लोप हो जाता है; और यदि अकार शेष रहे, तो कभी-कभी यथाश्रुति यकारादेश होता है। यथा—लोकः=लोओ; नगरं= णअरं; वचनं=वअणं; गजो=गओ; कितं=किअं; मदनः= मअणो; विपुलं=विउलं; दयालुः=दआलू; दिवसः=दिअहो; मदनमंजरी=मयणमंजरी इत्यादि।

(२) ख, घ, थ, ध, फ और भ के स्थान में प्रायः हकारादेश हो जाता है। यथा मुखं=मुहं; मेघः=मेहो; नाथः= णाहो; साधुः=साहू; मुक्ताफलं=मुत्ताहलं; शोभनं=सोहणं इत्यादि।

(३) ट, ठ और ड के स्थान में ड, ढ और ल आदेश होता है। यथा—घटः= घडो ; मठः=मढो ; तडागः= तलाओ।

(४) पकार का वकार और फकार का (कभी-कभी) भकारादेश होता है। यथा—शापः=सावो; शेफालिका= सेभालिआ, सेहालिआ।

(५) सर्वत्र आदि में हो या परे—

(१) य के स्थान में ज और न के स्थान में प्रायः ण हो जाता है। यथा—यमुना=जमुना ; आर्यपुत्रः=अज्ज-उत्तो ; नगरं=णअरं। मुनिः=मुणी।

(२) ज्ञ के स्थान में ण और क्ष के स्थान में ख, च्छ और झ आदेश होते हैं—ज्ञानं=णाणं; लक्षणं=लक्खणं; इक्षु=इच्छु; क्षीणं=छीणं, झीणं।

'अपभ्रष्ट' को यद्यपि प्राकृत का एक पृथक् भेद माना गया है, पर अपभ्रष्ट से प्रायः 'देशी' भाषा का ग्रहण होता है, और ऐसे अपभ्रष्ट शब्द प्रायः प्राकृत के सभी भेदों में मिलते हैं। वैयाकरणों ने ऐसे शब्दों को संस्कृत के शब्दों के स्थान में आदेश माना है; पर उनका संस्कृत शब्दों से कोई संबंध नहीं। कितने तो उनमें अन्य शब्दों के विकार हैं, और कितने देशी या अनार्य-भाषा के शब्द हैं, जिनका संस्कृत या आर्य-भाषा से कोई संपर्क नहीं। यहाँ कुछ उदाहरण ऐसे शब्दों के दिए जाते हैं—

प्राकृत	भाषा	संस्कृत
हेट्ठ	महाराष्ट्री	अधः
आढियो	,,	आहृतः
ओल्लं	,, मागधी आर्द्रं	
कूरा यथा कूरापिक्का	,,	ईषत्
उभं	,,	ऊर्ध्वं
दक्को	,,	दंष्टः
पक्कणो	,,	पण्डितः
पिसल्लो	,,	पिशाचः
भसरो	,,	भ्रमरः
आदिप्रो	,,	विष्णुः
अल्लं	,,	समर्थः
उज्जल	शौरसेनी	प्रगुणं
ढक्करि	अपभ्रंश	अद्भुतं
दडवडो	,,	अपस्कंदः
भंप्पलो	,,	कुक्कुटः
खेट्टु	,,	क्रीडा

भिन्न-भिन्न प्राकृतों के विकृत या विशेष नियम ये हैं—

(१) शौरसेनी में यदि शब्द के आदि में न हो, और संयोग में न हो तो त और थ के स्थान में द, ध हो जाते हैं।

(२) मागधी में स और ष नहीं होते, केवल श होता है। जैसा कि अब तक बिहार की कैथी में देखने में आता है, और ज के स्थान में य हो जाता है। क्ष के स्थान में स्क होता है।

(३) पैशाची में यदि आदि का वर्ण और संयुक्त न हो, तो वर्गों के तृतीय और चतुर्थ वर्ण के स्थान में प्रथम और द्वितीय होते हैं। णकार के स्थान में न होता है और ज्ञ और न्य के स्थान में पाली के सदृश ञ्ञ होता है। किसी-किसी के मत से तवर्ग के स्थान में टवर्ग हो जाता है, तथा ष्ट, स्न और र्य के स्थान में सट, सन और रिय आदेश होते हैं।

(४) पांचाली में र और ल का व्यत्यय होता है। टक्क-भाषा में शब्दों में उकार बहुत लगता है। आभीरी में कभी-कभी उ और र के स्थान में लकारादेश होता है।

विशेष इन प्राकृतों में महाराष्ट्री और शौरसेनी की प्रकृति संस्कृत है। पर विकृति के अतिरिक्त शौरसेनी शेष बातों में महाराष्ट्रीवत् होती है। शेष की प्रकृति शौरसेनी है।

हम यहाँ नीचे प्राकृत के कुछ ऐसे धातु देते हैं, जो देशज हैं—

	अर्थ		अर्थ		अर्थ
वज्जर		चव		झुणा	जुगुप्सा
पज्जर		सांस		खीर	बुभुक्षा
उप्पाल	कथन	साह	कथन	दुल्ल	
पिसुण		णिव्वर		पटह	पीना
संघ		(दुःखार्थे)		घोट्ट	
वसुआ	उत्-वा	उग्गाह		चय	त्याग
ओंघ	निद्रा	अवह	रचन	वेअड	खर्च
थक्क		विडविड्ड		सोल्ल	
निरप्प	स्था	अवहत्थ		पउल्ल	पच
वक (शौ-अप)		सारव		आउड्ड	
कुक्कुर	उत्थान	समार	सम्-आ-रच	णिउड्ड	मज्ज-निमज्जन
वा		केलाय		बुड्ड	
पव्वाय	म्लान	वुक्क	गर्जन	खुप्प	
णिज्झर	क्षय	ढिक्क			

	अर्थ
णिलुक्क	निलय
णिरग्घ	
रुंज	रवे
रुंट	
हण	श्रवण,
णिरवड	प्रभव
झर	
झूर	
भर	स्मरण
लट	
पयर	
कोक्क	व्याहरण
पोक्क	
छड्ड	
अवहेड	
मेल्ल	
उसिक्क	
रेअव	मोचन
णिलुञ्छ	
धसाड	
णिव्वल	
वेहव,	
वेलव	वंचन
जूरव	
उमच्छ	
परिअअ	अनुव्रज
जिम	
जेम	
कंप	
अण्ह	भुज
समाण	
चमढ	
कम्मव	
घट्ट	उपभुज
सगल	संघट्ट
मुर	स्फुट हास्य
चिंच	
चिंचअ	
चिंचिल्ल	मंड
रीड	
डिविडिक्क	
खुट्ट	
खुड	
उक्खुड	
उल्लुक्क	तुड
णिलुक्क	
लुक्क	
उच्छुर	

	अर्थ
रग्घ	
छज्ज	
सह	राज
रीर	
रेह	
पयल्ल	
उव्वेल्ल	प्रसारण
मउमह (गंध)	
णील	
धाड	निस्
वरहाड	
अड्ड	व्यापृ
वावार	
साहर	संवरण
साहट्ट	
सार	प्र-हृ
ओह	
ओरस	अवतरण
उअर	
चय	
तर	शक
तीर	
पार	
मल	
मढ	
परिहट्ट	मृद
खड्ड	
चड्ड	
पन्नाड	
णिव्वल	नि-पद
झड	शद
पक्खोड	
णीहर	आक्रंद
जूर	खिद
विसूर	
उत्थंघ	रुंध
रुंभ	
हक्क	नि-सिध
जूर	क्रुध
तड्ड	तन
विरल्ल	
अल्लिय	उपसृप
झंख	संतप
ओअग्ग	वि-आप
समाण	सम-आप

	अर्थ
ओराल	पुंज
वमाल	
जीह	लज्ज
ओसुक्क	त्याग
उग्घुस	
लुंछ	
पुंछ	
पुंस	
फुंस	
पुस	मृज
लुह	
हुल	
रोसाण	
घस (शौ)	
वेमअ	
मुसुमूर	
मूर	
सूर	
सूड	भंज
विर	
पविरंज	
करंज	
नीरंज	
वच्च	व्रज
वंज	
गुलुगुच्छ	
उत्थंघ	
उल्लाल	उत्क्षिप
उब्भुत्त	
उस्सिक्क	
हक्खुव	
णीरव	आक्षिप
कमवस	
लिस	स्वप
लोट्ट	
झंख	वि-लप
वडवड	
विड	गुप
णड	
तेअव	
संदुम	प्रदीप
संधुक्क	
अब्भुत्त	
संभाव	लुभ
खउर	क्षुभ
पड्डुह	
आढव	आ-रभ
झंख	
पच्चार	अप-आ-लभ
वेलव	

	अर्थ
घुल	घूर्ण
पहल	
हंस	विधूत
विवद्द	
अट्ट	कथ
कढ	
विरोल	मंथ
घुसल	
घुमज्ज	निसद्
घुलघुल	स्पंद
टिरिटिल	
ढुंढुल	
ढंढल	
चकम्म	
भम्मड	
भमाड़	
तलअंट	
झंट	
झंप	भ्रम
भुम	
गुम	
फुम	
ढुम	
फुस	
ढुस	
परी	
परा	
अई	
अइच्छ	
अणुवज्ज	
अवज्जस	
उक्कुस	
अक्कुस	
पच्चड्ड	
पच्छंद	गम
णिम्मह	
णी	
णीण	
णीलुक	
पद्द अ	
रंभ	
परिअल्ल	
बोल	
कड्ढ	
साअड्ढ	
अंच	
अणंछ	कृष
अयंछ	
आइंछ	

	अर्थ
गलत्थ	
अड्डक्ख	
सोल	
पेल	
णोल	क्षिप
छुह	
हुल	
परी	
घत्त	
गुल	
णिरिणास	
णिवह	गम
अवसेह	
अवहर	
अहिपच्चुअ	आ-गम
अब्भिड	संगम
उम्मत्थ	अभिआगम
पलोट	प्रत्यागम
पडिस	शम
परिसाम	
संखुड्ड	
खेड्ड	
उब्भाव	
किलिकिंच	रम
कोट्टुम	
मोट्टाय	
णीसर	
वेल्ल	
मग्घाड	
अग्घव	
उद्धुम	पुर
अंगुम	
अहिरेम	
जअड	त्वर
खिर	
झर	
पज्झर	
पच्चड	क्षर
णिच्चल	
णिट्टुअ	
थिप्प	वि-गल
णिट्टुह	
अप्पाह	सं-दिश

	अर्थ
णिसुढ	नम (भाराक्रांते)
णिच्छा	वि-क्रम
ओहाव	
उत्थार	आ-क्रम
छुंद	
विसद्	दल
वम्फ	वल
उत्थल	उत्क्षण
फिड	
फिट्ट	
फुड	भ्रंश
फुट्ट	
चुक्क	
भुल्ल	
णिरिणास	
णिवह	
अवसेह	नश
पडिसा	
सेह	
अवहर	
ओवास	अवकाश
निअच्छ	
पेच्छ	
अवयच्छ	
अवयज्झ	
वज्ज	दृश
सच्चव	
पुलोअ	
पुलअ	
निअ	
अवआस	
पास	
छिवि	
छिह	
आलुंख	स्पृश
आलिह	
रिअ	प्रवेश
णिवह	
णिरिणास	पिष
रोंच	
चड्डु	
डर	
बोज्ज	त्रस
वज्ज	
णिम	न्यस
णुम	

	अर्थ
अक्खोड	असि-कृष
ढुंढुल	गवेष
ढंढोल	
घस	
सामग्ग	श्लिष
अवयास	
परिअंत	
चोप्पड	म्रक्ष
आह	कांक्ष
अहिलंघ	
अहिलंख	
वच्च	
वंफ	
मह	
सिह	
विलुंप	
सामय	प्रतीक्ष
विहीर	
विरमाल	
रंप	तक्ष
रंफ	
छोल्ल	
कोआस	वि-कस
वोसट्ट	
गुंज	हस
खस	स्रंस
डिंभ	

	अर्थ
पच्चोट्ट	पर्यास
पल्लट्ट	
पल्हत्थ	
झंख	निःश्वस
ऊसल	उद्-लस
ऊसुंभ	
णिल्लस	
पुलआ	
गुंजोल्ल	
आरोआ	
भिस	भास
घिस	ग्रस
ओवाह	अव-गाह
चड	आ-रुह
वलग्ग	
गुम्म	मुह
गुम्मड	
अहिऊल	दह्
आलुंख	
वल	ग्रह
हर	
पंग	
निरुवार	
अहिपच्चुअ	
पुस (शौ)	मृज
छिर	क्षुर
छिप्प	
छोल्ल (अप)	क्षिप

ह२० जगन्मोहन वर्मा

हिंदू-पर्व *

(वैदिक काल)

वेदों में प्रथम वेद ऋग्वेद माना जाता है। इसमें जिस धर्म का वर्णन किया गया है, वह बड़े गंभीर तथा उच्च रूप में प्रकृति की पूजा है। चारों ओर फैला हुआ अनंत आकाश, कामकाजी गृहिणी की नाईं मनुष्यों को नींद से जगाकर उनको अपने कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ करनेवाला मनोहारी विकसित प्रभात, पृथ्वी को सजीव करनेवाला चमकता हुआ सूर्य (जिसका दूसरा नाम विष्णु अथवा पोषण करनेवाला भी है), संसार-भर में व्याप्त तथा प्राणी-मात्र का प्राण-वायु, हम लोगों को प्रसन्न तथा सजीव करनेवाला अग्नि, तथा भारत की भूमि को उपजाऊ बनाने एवं वृष्टि का आगमन जतानेवाली प्रचंड आँधियाँ आदि, ये ही हमारे पूर्वपुरुषों के आराध्य देवी-देवता थे। आर्य मुनिगण इन्हीं की उपासना बड़े प्रेम से किया करते थे। जब वे लोग श्रद्धा तथा प्रेम से इनमें से किसी एक देवता की स्तुति करते थे, उस समय यह भूल जाते थे कि इस देवता को छोड़ अन्य कोई देवता भी है। इसीलिये उनके सब सूक्तों की सृष्टि में एक-मात्र ईश्वर की स्तुति के उत्कर्ष तथा लक्षण पाए

* श्रीमहाराष्ट्र-हितकारी-मंडल, जमशेदपुर के गत वर्ष के 'श्रीगणपति-उत्सव' के अवसर पर लेखक द्वारा पठित। लेखक

आते हैं। यही कारण है कि बहुत-से विद्वान् वैदिक धर्म को अद्वैतवादी कहने से बहुधा हिचकते हैं।

वास्तव में ऋषि लोग प्रकृति-पूजा से उच्च, गूढ़ तथा श्रेष्ठ विचारों की ओर गए हैं। वे इसी प्रकृति के भिन्न-भिन्न अंशों में परमात्मा की अपूर्व शक्तियों को देखते थे। उन्होंने साफ़-साफ़ कहा है कि भिन्न-भिन्न देवता एक ही आदि-कारण (परमात्मा) के भिन्न-भिन्न रूप अथवा नाम हैं।

उस काल में आकाश ही की पूजा सबसे मुख्य थी, और आकाश के भिन्न-भिन्न रूप धारण करने के कारण उसे भिन्न-भिन्न नाम दिए गए, तथा इसी से पृथक्-पृथक् देवतों की कल्पना की गई। जिन प्राकृतिक वस्तुओं अथवा कार्यों से उन्हें लाभ या हानि होती थी, या उनमें कुछ विलक्षणता देख पड़ती थी, उन्हीं में वे भगवान् की शक्ति को देखते तथा श्रद्धा और प्रेम से उसकी पूजा करते थे। इसी प्रकार 'इंद्र', जिसका अर्थ 'वृष्टि करना' है, मेघों का देवता माना गया। ऐसे ही वरुण जल का तथा यम मृतकों का देवता। अन्य देवतों की भी कल्पना ऐसे ही हुई। इनकी कल्पना के अनेकों प्रमाण ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

पुरानी जातियों में अग्नि एक पूज्य वस्तु थी। भारतवर्ष में 'होमाग्नि' अधिक सत्कार की दृष्टि से देखी जाती थी, तथा अब भी देखी जाती है। अग्नि के बिना कोई होम या यज्ञ नहीं किया जाता था। अग्नि देवतों का आवाहन करनेवाली कही जाती थी। अग्नि से उनका अभिप्राय केवल पृथ्वी पर की अग्नि से ही नहीं, वरन् सूर्य तथा विद्युत् आदि की अग्नि से भी है। इसका निवास-स्थान स्वर्ग में समझा जाता था। लिखा है कि भृगु आदि ऋषियों ने इसे स्वर्ग में पाया, और पीछे ऋषियों ने इसे मनुष्य-जाति का बड़ा हितकारी समझा, तथा इसे पृथ्वी का देवता माना। कुछ उपनिषदों ने काली-कराली आदि भी अग्नि के नाम दिए हैं। इसी प्रकार मरुत् तथा रुद्र क्रमशः वायु तथा विद्युत् के देवता माने गए।

इसके पश्चात् अश्विनों का नाम है। कहते हैं, ये दोनों भाई बड़े निपुण वैद्य थे। ये तीन पहिए की गाड़ी पर बैठ संपूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा प्रतिदिन एक बार करते थे, और बड़े प्रेम तथा दया के साथ संसार के रोगियों की दया एवं दुखियों का उपकार करते थे।

'बृहस्पति' अथवा 'ब्रह्मणस्पति' सूक्तों का देवता है। 'ब्रह्मन्' का अर्थ सूक्त (सुंदर वचन) है। जिस प्रकार अग्नि तथा यज्ञ के हवन में शक्ति है, उसी प्रकार सूक्तों अर्थात् स्तुतियों में भी है। ऋग्वेद में यह 'ब्रह्मन्' एक साधारण देवता माना गया है। परंतु कई शताब्दियों के पश्चात् उपनिषदों के तत्त्वज्ञों ने एक सर्वव्यापक परमात्मा की कल्पना की, और उसको वैदिक नाम 'ब्रह्मन्' दिया। उसके उपरांत जब देश में बौद्ध-धर्म फैला, तब बौद्ध-धर्मावलंबियों ने अपने देवतों में 'ब्रह्मा' को एक कोमल तथा उपकारी देवता माना। जब पौराणिक हिंदू-धर्म ने भारतवर्ष में बौद्ध-मत को दबा दिया, तब पौराणिक काल के तत्त्वज्ञों ने सारे विश्व के रचयिता को 'ब्रह्मा' नाम दिया।

इसी प्रकार अपनी जातीय पुस्तकों की सबसे पुरानी कथाओं का विचार-पूर्वक मनन करने से हमको पुराणों की चटकीली-भड़कीली कथाओं की उत्पत्ति के सीधे-सादे कारण मालूम हो जाते हैं। इन कथाओं ने, प्रायः हज़ार वर्ष से कुछ ही ऊपर हुए, हम लोगों के विश्वास तथा आचरण के कारण हमारे हृदय-पट पर अपना पूरा प्रभुत्व जमा लिया है। इसकी तुलना उसी नदी से कर सकते हैं, जो अपने मुहाने के पास ऐसी फैली हुई है, जिसका पता नहीं; परंतु वही नदी अपने उद्गम-स्थान में एक छोटी साधारण पतली-सी धारा के रूप में निकल रही है। पीछे वही नदी अपने असली रूप को एकदम खो देती है, यद्यपि उसका नाम वही बना रहता है।

हम वैदिक 'ब्रह्मन्', विष्णु, सूर्य तथा रुद्र को पुराणों में क्रमशः सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता के रूप में उसी प्रकार नहीं पहचान सकते, जैसे हरद्वार की चमकीली छोटी धारा को गंगा के उस समुद्रवत् फैलाव में नहीं, जो उसके बंगाल की खाड़ी में मिलने के स्थान में है।

ये ही ऋग्वेद के मुख्य देवता । देवियों में केवल दो हैं, जिन्होंने कुछ स्पष्ट रूप पाया है, अर्थात् 'उषः' या प्रभात और 'सरस्वती', जो इस नाम की नदी था, और पीछे से वाग्देवी हुई। पंजाब में 'सरस्वती' नाम की एक नदी थी, जिसके किनारे आर्य लोग निवास करते थे।

इसी नदी की देवी का नाम 'सरस्वती' था, तथा उसी के तट पर आर्यों के धार्मिक कार्य हुआ करते थे। इसलिये यह नदी पवित्र मानी जाती थी। यहीं पर पवित्र 'सूक्तों' का उच्चारण होता था। विचारों की स्वाभाविक प्रगति से यह देवी उन्हीं 'सूक्तों' की देवी हो गई है, और उसी भाँति इसकी अब भी पूजा होती है। वैदिक देवी-देवतों में केवल यही एक देवी है, जिसकी पूजा आज तक चली आती है। दुर्गा, काली तथा लक्ष्मी आदि की कल्पना अथवा रचना पौराणिक काल में हुई है।

ऋग्वेद में वर्णित प्रकृति-पूजा, अर्थात् आज से हज़ारों वर्ष पूर्व के हमारे पूर्वज जिन प्राकृतिक देवी-देवतों की पूजा सिंध के तट पर करते थे, उनकी कल्पना से, तथा जिस एकनिष्ठ भक्ति के साथ उनकी पूजा होती थी, उससे एक वीर जाति की सरलता तथा शक्ति प्रकट होती है। इससे उन लोगों की उन्नति तथा सद्विचार भी प्रकट होते हैं, जिन्होंने सभ्यता में बहुत कुछ उन्नति कर ली थी। वैदिक देवतों की केवल कल्पना-मात्र ही से एक उच्च भाव प्रकट होता है, जिससे विदित होता है कि जिन लोगों ने इन देवतों की कल्पना की है, वे बड़े ही सदाचारी, ज्ञानी तथा तत्त्वज्ञ रहे होंगे।

ऐतिहासिक काव्य-काल

अब वैदिक काल के अंत पक्ष के ब्राह्मणों के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध यज्ञों का वर्णन सुनिए। इस काल को ऐतिहासिक काव्य-काल भी कहते हैं। इस काल के तथा इसके प्रथम काल के धर्मों में मुख्य भेद यह है कि इस काल में लोग यज्ञों को आवश्यक समझने लग गए। परंतु वैदिक काल में सृष्टि के सबसे अद्भुत आविष्कारों की स्तुति में ही 'सूक्त' बनाए जाते थे; किंतु ऐतिहासिक काल में सृष्टि के इन आविष्कारों को न मानकर इनके देवतों को इंद्र, वरुण, अग्नि तथा मरुत् के नाम से पूजने लगे। इस पूजा ने धीरे-धीरे यज्ञ का (अर्थात् देवतों को दूध, अन्न, जौ या सोम-रस चढ़ाने का) रूप धारण किया। वैदिक काल के अंत में ही धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन होने का पता लगता है; परंतु ऐतिहासिक काव्य-काल में तो यज्ञ के विधानादि इतने प्रबल हो गए कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। ब्राह्मणों की एक पृथक् जाति हो जाने के कारण ऐसा होना आवश्यक ही था। वे लोग विधानों को क्रमशः बढ़ाते गए, तथा प्रत्येक छोटी-छोटी बात पर बहुत ज़ोर देने लगे। परिणाम यह हुआ कि वे (ब्राह्मण) तथा पूजा करनेवाले यजमान, दोनों ही मूल देवता को, जिनकी वे पूजा करते थे, भूल गए; केवल यज्ञ-मात्र रह गया। यज्ञों में बहुधा पशु, सोना, गहना तथा अन्न-दान किया जाता था, और पशुओं का बलि भी किया जाता था। इसकी एक कथा शतपथ-ब्राह्मण में इस प्रकार दी है—

"सर्व-प्रथम देवतों ने मनुष्यों का बलि दिया। बलि देने के पश्चात् यज्ञ का देवता मनुष्य से निकलकर घोड़े में चला गया। अब यह विधान निश्चय हुआ कि घोड़े का बलि देना चाहिए, अतएव घोड़े का बलि दिया जाने लगा। पर यज्ञ का तत्त्व उसमें से निकलकर बैल में चला गया। फिर बैल का बलि दिया गया। आगे यज्ञ का तत्त्व बैल से निकलकर भेड़ी में गया। पुनः भेड़ी से बकरे में। जब बकरे का बलि दिया गया, तब यह तत्त्व बकरी से निकल पृथ्वी में प्रवेश कर गया। जब पृथ्वी खोदी गई, तो वह यज्ञ-तत्त्व चाँवल तथा यव के रूप में पाया गया। यही कारण है कि इन दोनों को लोग पृथ्वी खोदकर अर्थात् खेती करके पाते हैं।"

इस कथा से प्रकट होता है कि देवतों को अन्न का द्रव्य देने से उतना ही फल मिलता है, जितना इन सब निरपराध पशुओं का बलि देने से।

अब उन सब यज्ञों का, जिनका वर्णन यजुर्वेद में है, संक्षेप में वर्णन करना असंगत न होगा। जिस दिन नवचंद्र अर्थात् पूर्णचंद्र होता था, उसके दूसरे दिन 'दर्श-पूर्णमास' यज्ञ किया जाता था। इन दोनों दिनों को हिंदू लोग आज भी पवित्र मानते हैं। मृत पूर्वजों के लिये 'पिंड-पितृ-यज्ञ' किया जाता था। यह आजकल भी होता है। प्रतिदिन प्रातःकाल तथा संध्या को 'अग्निहोत्र' किया जाता था, जिसमें अग्नि को दूध चढ़ाया जाता था। 'चातुर्मास्य' यज्ञ प्रति चौथे महीने हुआ करता था।

'अग्निष्टोम' सोम-रस का यज्ञ होता था, और अधिक सोम-रस पान करने पर, प्रायश्चित्त में, 'सौत्रामणि-' नामक यज्ञ करना पड़ता था। बड़े-बड़े राजा लोग जब विजय प्राप्त करके यश तथा कीर्ति प्राप्त करते थे, तब वे 'राजसूय-यज्ञ' करते थे, तथा बड़े-बड़े युद्धों में विजयी होने पर वे 'अश्वमेध'-यज्ञ भी करते थे। इनमें सबसे साधारण परंतु हमारे काम के उपयोगी, बहुत ही मुख्य 'अग्न्याधान' अर्थात् होमाग्नि का जलाना होता था,

जिसका प्रभाव प्रत्येक आर्य के हृदय पर पड़ता था। उन दिनों आर्यों में एक भी मनुष्य ऐसा न था, जिसके घर में 'वेदी' न हो। उन दिनों वेदी में पवित्र होमाग्नि रखना प्रत्येक गृहस्थ का आवश्यक धर्म समझा जाता था।

ऐतिहासिक काल में यद्यपि कथाओं तथा यज्ञों की संख्या बढ़ रही थी, परंतु लोगों का धर्म वैदिक काल के ही समान था। ऋग्वेद के देवतों की पूजा होती थी। वेदों के 'सूक्तों' का पाठ भी होता था। भेद केवल इतना ही था कि वैदिक काल में देवतों की जितनी प्रतिष्ठा थी, वह अब लोप हो गई, और उसके स्थान में यज्ञ के केवल विधानों की प्रतिष्ठा होने लगी। इसी काल में क्रमशः नए देवता भी आर्यों के देवतों की नामावली में स्थान पाते गए। और, इन नए देवतों ने ही आगे चलकर प्रधानता प्राप्त कर ली।

पौराणिक काल

जो हिंदू-धर्म भारतवर्ष में बौद्ध-धर्म के पहले प्रचलित था, वह साधारणतः 'वैदिक धर्म' के नाम से प्रसिद्ध है, और जिस हिंदू धर्म ने बौद्ध धर्म के उपरांत उसका स्थान ग्रहण किया, वह साधारणतः पौराणिक धर्म कहलाता है। वैदिक धर्म तथा पौराणिक धर्म में दो मुख्य भेद हैं—एक तो सिद्धांत में, दूसरा आचार में। यह पहले बतलाया जा चुका है कि वैदिक धर्म, अंतिम समय तक, तत्त्वों के देवतों का धर्म था, अर्थात् इंद्र, अग्नि, सूर्य, वरुण, मरुत्, अश्विनी तथा अन्य देवतों का। यद्यपि ऋचाओं तथा उपनिषदों के बनानेवालों के हृदय में एक सर्वप्रधान, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक ईश्वर का विचार उदय हुआ था, तथापि, फिर भी, राजा तथा प्रजा समान-भाव से ऋग्वेद के प्राचीन देवतों को अब भी 'बलि' प्रदान करते थे। इसी भाँति पौराणिक धर्म में भी ये सब देवता माने जाते थे। परंतु इन देवतों से परे एक परमेश्वर, अपने तीन रूपों में अर्थात् सृष्टि करनेवाले 'ब्रह्मा', पालनेवाले 'विष्णु' तथा नाश करनेवाले 'शिव' के रूप में माना गया था। इस हिंदू-'त्रैकत्व' को मानना पौराणिक धर्म में एक नई बात थी। शायद इस विचार को पुराण-रचयिताओं ने बौद्ध-धर्म के सिद्धांत से लिया हो।

आचार के विषय में पौराणिक धर्म की नई बात 'मूर्ति-पूजा' है। वैदिक धर्म अग्नि में होम करने का धर्म था। अति प्राचीन काल में देवतों को जो कुछ चढ़ाया जाता था, वह सब अग्नि में हवन किया जाता था। यह प्रथा बहुत दिनों तक रही। जब बौद्ध-मतावलंबियों ने मूर्ति-पूजा आरंभ की, तब यह सब चढ़ावा मूर्ति को अर्पण किया जाने लगा। यही रीति दृढ़ता से प्रचलित होती गई, यहाँ तक कि वह आधुनिक हिंदू-रीतियों तथा विधानों का मूलतत्त्व हो गया है, यद्यपि अब भी हम लोगों के कतिपय अनुष्ठानों में हवन भी किया जाता है।

११वीं शताब्दी में अलबेरूनी भारत में आया। वह था तो मुसलमान, परंतु उसने हिंदू-धर्म की तथा हिंदुओं की खूब प्रशंसा की है, और जहाँ उसे दोष जान पड़े, वहाँ उसने कड़ी आलोचना भी की है। उसने हिंदू-त्योहारों के विषय में जो कुछ लिखा है, उसका संक्षेप में यहाँ वर्णन कर देना अनुचित न होगा—

वे त्योहार भी आजकल के हिंदू-त्योहारों ही के समान थे। वर्ष का आरंभ चैत्र से होता था, और एकादशी को 'हिंडोला-चैत्र' (शायद आधुनिक होली) होता था, जिसमें कृष्ण की मूर्ति पालने में झुलाई जाती थी। पूर्णिमा को वसंतोत्सव होता था, जो विशेषतः स्त्रियों ही के लिये था। इस उत्सव का वर्णन पौराणिक काल के नाटकों में भी पाया जाता । 'रत्नावली' का आरंभ 'वसंतोत्सव' ही से होता है। इस उत्सव में कामदेव की पूजा की जाती थी, तथा प्रसन्न-हृदय स्त्रियाँ एक दूसरे पर रंग छिड़कती थीं। होली के दिन रंग डालने की रीति अभी तक प्रायः सारे भारत में प्रचलित है। परंतु प्राचीन काल में जो कामदेव की पूजा होती थी, उस स्थान को श्रीकृष्ण ने ले लिया है। दक्षिण-भारत में होलिका-दहन के बदले कामदेव का दहन होना प्रसिद्ध है।

वैशाख-मास में तीसरे दिन गौरी की पूजा होती थी। उस दिन स्त्रियाँ स्नान कर गौरी की मूर्ति की पूजा करती थीं; धूप-दीप देती तथा व्रत रखती थीं। मालूम नहीं, स्त्रियाँ इस व्रत को आजकल भी करती हैं या नहीं। परंतु भाद्रपद-कृष्ण चौथ को हिंदू-स्त्रियाँ गौरी की पूजा करती हैं। दशमी से लेकर पूर्णिमा तक खेत जोतने तथा वर्ष की खेती आरंभ करने के पहले यज्ञ-पूजादि होती थी। इसके पश्चात् 'सायन-मेष' होता था। इस दिन उत्सव मनाया और ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। भारत-वर्ष में ज्येष्ठ का महीना ही उत्तम फल उत्पन्न करनेवाला है। इस मास की प्रतिपदा के दिन वर्ष के नवीन फल, शकुन

के लिये जल में बहाए जाते थे। पूर्णिमा के दिन स्त्रियों का एक पर्व होता था, जो 'रूपपंच' के नाम से प्रसिद्ध था। शायद यही पीछे 'वट-सावित्री' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। आषाढ़ में पूर्णिमा के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। इसी दिन 'व्यास-पूजा' तथा 'गुरु-पूजा' होती थी।

श्रावण के महीने में हल काटी जाती थी, और 'महा-नवमी' के पर्व पर नई हल भगवती की मूर्ति को चढ़ाई जाती थी। मास के १५वें, १६वें तथा २३वें दिनको अन्य त्योहार होते थे, जिनमें बहुत खेल-कूद होता था। भाद्रपद में बहुत अधिक त्योहार होते थे। मास के पहले दिन पितरों को दान दिया जाता था। तीसरे दिन स्त्रियों का एक त्योहार होता था। इस त्योहार को स्त्रियाँ आज-कल भी करती हैं। छठे दिन बंदियों को भोजन बाँटा जाता था। आठवें दिन 'ध्रुव-गृह' का पर्व होता था, जिसे गर्भवती स्त्रियाँ आरोग्य बालक होने के लिये करती थीं। इस पर्व को उत्तर-भारत की स्त्रियाँ आजकल भी करती हैं। इस पर्व का नाम 'जीउतिया' है। ११वें दिन पार्वती का त्योहार होता था, जिसमें पुजारी को डोरा (तागा) दिया जाता था, और पूर्णिमा के उपरांत पूरे पक्ष-भर में नित्य एक-न-एक त्योहार होता था। ११वीं शताब्दी के इन त्योहारों का स्थान अब अधिक धूमधाम के साथ दुर्गा तथा अन्य देवी-देवतों की पूजा ने ले लिया है।

कार्त्तिक के पहले दिन 'दीपावली' का उत्सव होता था। इस रात को बहुत-से दीपक जलाए जाते थे, तथा यह विश्वास किया जाता था कि वर्ष में इसी दिन लक्ष्मी-देवी विरोचन के पुत्र 'बलि' को छोड़ देती हैं। शायद पीछे से इस उत्सव के साथ 'काली-पूजा' का संबंध जोड़ दिया गया है। मार्गशीर्ष के तीसरे दिन तथा पूर्णिमा को गौरी के सम्मानार्थ स्त्रियों को भोजन कराया जाता था।

आजकल की भाँति उन दिनों भी इन त्योहारों के दिन मिष्टान्न बनते थे, तथा बंधु-बांधवों को भोजन कराया जाता था। हेमंत-ऋतु का उत्सव मनाने के लिये यह बहुत ही उत्तम प्रथा प्राचीन काल से चली आती थी।

माघ के महीने में पुनः स्त्रियों को भोजन कराया जाता था। इस मास में और भी कतिपय पर्व मनाए जाते थे। फाल्गुन के ८वें दिन ब्राह्मणों को भोजन दिया जाता था, तथा पूर्णिमा को 'दोल' (होली) होता था। उसके पहले दिन की रात्रि को 'महाशिवरात्र' कहते थे। परंतु आज-कल 'महाशिवरात्र' फाल्गुन-कृष्ण-चतुर्दशी को मनाई जाती है।*

आधुनिक पर्व

यह तो हुआ वैदिक तथा पौराणिक काल में हमारे धार्मिक तथा जातीय त्योहारों की अवस्था का वर्णन। अब मैं आधुनिक त्योहारों के विषय में अपना विचार प्रकट करता हूँ—

सबसे प्रथम 'वर्ष का पहला दिन' है, जो पृथ्वी के प्रायः सभी शिक्षित तथा उन्नति-प्राप्त जातियों में ही नहीं, बरन् कहीं-कहीं असभ्य एवं पिछड़ी हुई जातियों में भी बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। मेरे तुच्छ विचार में प्रत्येक जाति के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य ही नहीं, बरन् धर्म है कि वह अपने वर्ष के 'प्रथम दिन' को श्रद्धा-पूर्वक ख़ूब धूमधाम से मनावे। इस अवसर पर गत वर्ष के अपने देश तथा जाति के कार्य का सिंहावलोकन करे, तथा नए वर्ष के लिये अपने कर्तव्य का निर्णय। जो जाति इस महत्त्व-पूर्ण उत्सव को नहीं मनाती, परमात्मा जाने, उसकी स्थिति इस संसार की सभ्य जातियों की घुड़दौड़ में कहाँ पर है? हम लोगों में यह उत्सव प्रांत-प्रांत में प्रायः भिन्न-भिन्न दिवस मनाया जाता है। बंगाल में यह दिन प्रथम वैशाख अर्थात् 'मेष-संक्रांति' को मनाया जाता है। उत्तर-भारत में शायद इसके लिये कोई विशेष दिन नहीं है। यद्यपि संवत् चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदा से आरंभ होता है, तथा चैत्र-अमावस्या को समाप्त होता है, तथापि चैत्र-कृष्ण-प्रति-पदा ही को होली के साथ यह उत्सव मना लिया जाता है। हाँ, 'चैत्र-संक्रांति' को उत्तरीय भारत में भी ख़ूब धूम-धाम से, प्रत्येक गृहस्थ के घर में, यह उत्सव मनाया जाता है, तथा इस दिन उत्तम-उत्तम मिष्टान्न बनाए जाते हैं।

दूसरा पर्व 'राम-नवमी' का है। यह उत्सव चैत्र-शुक्ल-नवमी को मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र के जन्मोपलक्ष्य में मनाया जाता है। इस दिन लोग व्रत करते हैं। विष्णु के प्रधान दस अवतार माने जाते हैं, इसलिये इन सबकी जयं-तियाँ मनाना प्रत्येक हिंदू का धर्म है। परंतु न-जाने

* स्व० श्रीयुत रमेशचंद्रदत्त द्वारा लिखित तथा श्रीयुत गोपालदास द्वारा-अनुवादित "प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास"-नामक पुस्तक से।—लेखक

क्यों उनमें से केवल दो ही अवतारों की—राम और कृष्ण की—जयंतियाँ मनाई जाती हैं। ये ही दो अवतार आदर्श माने जाते हैं, शायद इसीलिये इनका महत्त्व हिंदू-जाति के हृदय में अब तक विद्यमान है। हिंदू-जाति जिस प्रकार अवनति की ओर अग्रसर हो रही है, उसे देखकर भय होता है कि शायद ये दोनों उत्सव भी कालांतर में कहीं लोप न हो जायँ।

'परशुराम-जयंती' का मनाना बहुत ही उचित तथा आवश्यक प्रतीत होता है। विष्णु का यह अवतार उस समय हुआ था, जिस समय इस भारतवर्ष में राज-सत्ता की बड़ी प्रधानता थी। राजा अपने को देवता समझ बैठे थे, तथा प्रजा के साथ मनमानी करते थे। विद्वान् ब्राह्मणों का पद राजों से नीचे हो रहा था, राजप्रबंध में प्रजा का कुछ हाथ न था, तथा देश में नाना प्रकार के अत्याचार होते थे। यह जयंती वैशाख-शुक्ल-तृतीया को पड़ती है। नृसिंह तथा बुद्धदेव की जयंतियाँ भी मनाना हिंदू-मात्र का धर्म है।

इसके पश्चात् हिंदू-स्त्रियों का प्रधान व्रत 'वट-सावित्री' है। इस दिन सती सावित्री ने अपने सतीत्व के बल से यमराज को हराकर अपने मृत पति सत्यवान को पुनर्जीवित किया था। इसको अलबेरूनी ने अपने लेख में 'रूपपंच' के नाम से वर्णन किया है। उसने ज्येष्ठ-पूर्णिमा को इस महोत्सव का होना बताया है। परंतु आजकल यह ज्येष्ठ-कृष्ण-त्रयोदशी से अमावस्या तक, तीन दिन मनाया जाता है। प्रायः संपूर्ण भारतवर्ष की हिंदू-स्त्रियाँ इस व्रत को मनाती हैं। किंतु हिंदू-जाति की केवल स्त्रियों ही को नहीं, वरन् पुरुषों को भी यह व्रत रखना चाहिए। कहिए, इस भारतवर्ष को छोड़कर, पृथ्वी के किसी भी देश के इतिहास में ऐसी सती का नाम पाया जाता है? ऐसा उत्सव इस भूमंडल की किसी भी जाति में मनाया जाता है? हाँ, फ्रांस में वीर बाला 'जोन ऑफ़ आर्क' का उत्सव अवश्य बड़े समारोह से मनाया जाता है। किंतु इस भारतवर्ष में इस वीर बाला के सदृश कितनी ही नारियाँ हो गई हैं; पर इस पतनाभिमुखी हिंदू-जाति को उनसे क्या मतलब? अब तो सीता, सावित्री की जन्मभूमि की स्त्रियाँ घर में बंद रक्खी जाती हैं, तथा अविद्या की साक्षात् मूर्ति बनाई जाती हैं।

'गंगा-दशहरा' ज्येष्ठ-शुक्ल-दशमी को होता है। इस दिन 'गंगा-स्नान तथा गंगा-पूजन' होता है। अलबेरूनी के लेखों से प्रकट होता है कि ११वीं शताब्दी में ज्येष्ठ-प्रतिपदा को एक पर्व होता था, जिस दिन जल में फल बहाए जाते थे। संभव है, वही पर्व आज 'गंगा-दशहरा' के नाम से प्रसिद्ध हो गया हो।

उड़ीसा-प्रदेश में आषाढ़-शुक्ल-द्वितीया को 'रथयात्रा' का उत्सव बड़ी धूमधाम से होता है। प्रायः भारतवर्ष के प्रत्येक कोने से यात्री इस दिन श्रीजगन्नाथजी का दर्शन करने के लिये पुरी में एकत्र होते हैं। कहते हैं, इसी दिन भगवान् रामचंद्र ने वनवास के पश्चात् अयोध्या में प्रवेश किया था।

श्रावण-शुक्ल-पंचमी को 'नाग-पंचमी' होती है। इस दिन नाग (शेषनाग) तथा सर्पों की पूजा होती है। मालूम होता है, यह पहले अनार्यों का पर्व था, तथा पीछे से आर्यों ने भी इसे मानना आरंभ कर दिया। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। आज भी अनेक हिंदू 'मुहर्रम' तथा 'क्रिस्मस' मनाते हैं। जब आर्यों ने अनार्यों पर विजय प्राप्त की, तथा उनमें हेल-मेल हो गया, तब, संभव है, आर्य लोग भी उनके पर्वों में सम्मिलित होकर उत्सव मनाने लग गए हों।

'श्रावणी पूर्णिमा' ब्राह्मणों का प्रधान पर्व है। इस दिन बहन अपने भाई को तथा पुरोहित अपने यजमान को 'राखी' बाँधता है। मूर्ख-से-मूर्ख ब्राह्मण भी दूसरी जाति के लोगों को राखी बाँधता है, और बदले में दक्षिणा (पैसे) लेता है। अलबेरूनी ने भी आषाढ़-पूर्णिमा को ब्राह्मण-भोजन कराना लिखा है। परंतु इस 'रक्षा-बंधन' के विषय में उसने कुछ भी नहीं लिखा।

वैदिक काल में इस श्रावणी पूर्णिमा को ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत बदलते थे, तथा गुरु-गृह जाकर पाठारंभ करते थे। यज्ञोपवीत बदलने की प्रथा अभी तक प्रचलित है। दक्षिण-भारत में ब्राह्मण लोग यह दिन बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। नदियों तथा जलाशयों के किनारे ब्राह्मणों का मेला-सा लग जाता है। सैकड़ों ब्राह्मण एक साथ बैठकर हवनादि तथा पूजा-पाठ करते हैं। यह दृश्य बड़ा ही प्रभावोत्पादक एवं मनोहर होता है।

भाद्र-कृष्ण-चौथ को स्त्रियाँ गौरी की तथा 'बहुला' की पूजा करती हैं। इसके पश्चात् भाद्र-कृष्ण-अष्टमी को 'श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी' का महोत्सव मनाया जाता है। कृष्ण भगवान् द्वारा महाभारत युद्धक्षेत्र में कही गई गीता आज भी सारे संसार में अद्वितीय गिनी जाती है। यह महोत्सव

समस्त भारतवर्ष में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। इस दिन के व्रत की प्रधानता सब पर विदित है, इसलिये अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। इसके पश्चात् भाद्र-शुक्ल-तृतीया को स्त्रियों का व्रत 'हरितालिका' आता है, तथा चतुर्थी को गणेशजी की पूजा होती है। दक्षिण-भारत में, विशेषकर महाराष्ट्र-प्रांत में तो गणपति-उत्सव को बड़ी धूम-धाम तथा समारोह से मनाते हैं। लोगों को एकता तथा प्रेम के सूत्र में बाँधने के लिये ही स्व० लोकमान्य श्रीबाल-गंगाधर तिलक ने इस 'गणपति' तथा शिवाजी-'उत्सव' को महाराष्ट्र में प्रचलित किया था। दोनों उत्सव महाराष्ट्र-बंधु बड़े आनंद तथा प्रेम से मनाते हैं। पंचमी को 'ऋषि-पंचमी' होती है। भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्दशी को 'श्रीअनंत चतुर्दशी' का व्रत होता है।

भाद्र-पूर्णिमा के पश्चात् पितृपक्ष आरंभ होता है, तथा आश्विन की अमावस्या को, महालया के दिन, पितरों का श्राद्ध होता है। देवी-देवतों के पूजन के साथ-साथ अपने पूजनीय पितरों का पूजन भी आवश्यक है, इसलिये हमारे पूर्व-पुरुषों ने इस महदनुष्ठान को हिंदू-पर्वों में एक विशेष स्थान दिया है।

आश्विन के शुक्ल-पक्ष में 'आयुध-पूजा' अथवा 'विजया-दशमी' का अनुष्ठान होता है। यह महोत्सव संपूर्ण भारत में किसी-न-किसी रूप में अवश्य मनाया जाता है। कहीं आयुध की पूजा होती है, कहीं शक्ति की उपासना होती है। यथार्थ में दोनों एक ही बात है। शक्ति का महत्त्व सब पर विदित है, अतः अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। परंतु बड़े खेद की बात है कि जिस जाति में ऐसे-ऐसे महोत्सव हों, वह जाति अधोगति को प्राप्त हो, तथा परतंत्रता की बेड़ी पहन संसार में लांछित हो! पुराणों में यह उत्सव अथवा अनुष्ठान क्षत्रियों के लिये बताया गया है। आश्विन-पूर्णिमा को 'शरद्-पूर्णिमा' कहते हैं।

कार्तिक की अमावस्या को दीपावली होती है, तथा इसी दिन संध्या को लक्ष्मी की पूजा भी। इसके संबंध में अलबेरूनी ने जो कुछ लिखा है, वह पहले बताया जा चुका है। पुराणों में यह उत्सव वैश्यों के लिये बताया गया है। शोक की बात है कि इस शुभ दिन को वैश्य लोग लक्ष्मी की पूजा के बदले जुआ खेलकर लक्ष्मी का दुर्व्यवहार करते हैं। न-जाने कैसे यह कुप्रथा इस पवित्र अनुष्ठान में समा गई है? इसी दिन फ़सली साल समाप्त होता है, तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से नूतन वर्ष आरंभ होता है।

कार्तिक के महीने में और भी अनेक त्योहार होते हैं। यथा गोवर्द्धनपूजा' (अन्नकूट), 'यम-द्वितीया', 'गोपाष्टमी' तथा 'जगद्धात्रीपूजा' आदि। यम-द्वितीया (भ्रातृद्वितीया) के दिन उत्तर-भारत में कायस्थ लोग चित्रगुप्त की पूजा करते हैं। यह कायस्थों के आदि-पुरुष तथा यमराज के मंत्री और लेखक हैं। कहा जाता है कि मनुष्यों के पाप-पुण्य का लेखा यही रखते हैं। यमराज का दूसरा नाम चित्रगुप्त भी है। *

इस दिन स्त्रियाँ अपने भाई तथा पति के दीर्घायु होने की कामना करती हैं। गोपाष्टमी को बड़े धूमधाम से गऊ की पूजा होती है। भारतवर्ष-जैसे कृषि-प्रधान देश में गऊ की पूजा होना आवश्यक है। कार्तिक-शुक्ल-एकादशी को 'कार्तिक-पूजा' होती है। इसको 'देवोत्थान-एकादशी' भी कहते हैं।

माघ-शुक्ल-पंचमी को, जिसे 'वसंत पंचमी' भी कहते हैं, वसंतागमन का उत्सव मनाया जाता है, तथा इसी दिन वाग्देवी सरस्वती की पूजा भी होती है। अलबेरूनी ने लिखा है—"इस महीने में स्त्रियों को भोजन कराया जाता था।" शायद उसका अभिप्राय इसी सरस्वती-पूजा से था।

फाल्गुन-कृष्ण-चतुर्दशी को 'महाशिवरात्र' का व्रत होता है। इस दिन शिवजी की पूजा होती है। सबके बाद 'होलिका-दहन' का त्योहार आता है। इसके विषय में दक्षिण-भारत में यह कहा जाता है कि इसी दिन शिव ने कामदेव को भस्म किया तथा उसकी स्त्री 'रति' के प्रार्थना करने पर उसे (कामदेव को) पुनर्जीवित भी कर दिया था। अलबेरूनी के लेखों से भी पता लगता है कि इस दिन प्रेम के देवता कामदेव की पूजा होती थी। परंतु पीछे से इस दिन कृष्ण भगवान् की पूजा होने लगी।

इस उत्सव के संबंध में उत्तर-भारत में कहा जाता है कि इसी दिन होलिका ने दुष्ट हिरण्यकश्यप की आज्ञा से भक्त प्रह्लाद को अपनी गोद में ले, अग्नि में प्रवेश किया था। परंतु वह स्वयं जलकर राख हो गई, और प्रह्लाद बाल-बाल बच गए। इसी आनंद में भक्त लोग होलिका को नाना प्रकार के दुर्वाक्य कहने तथा प्रह्लाद के बच जाने

* श्रीधर-भाषा-कोष।

पर आनंद मनाने लगे। खेद की बात है, ऐसे महत्त्व-पूर्ण त्योहार पर मूर्ख लोग शराब के नशे में चूर हो स्त्रियों को गाली देते तथा नाना प्रकार के उत्पात एवं अत्याचार करते हैं।

इसी दिन संवत् जलाया जाता है, जिसका तात्पर्य गत वर्ष के परस्पर के भेद-भाव तथा वैमनस्य आदि को स्वाहा करना और नए वर्ष में प्रेम से मिल-जुलकर प्रवेश करने का अमूल्य उपदेश है। पुराणों में यह उत्सव केवल शूद्रों के लिये बताया गया है। परंतु प्रत्येक हिंदू इस महोत्सव को प्रेम-पूर्वक मनाता है।

उपर्युक्त पर्वों को छोड़कर साल में चौबीस एकादशी होती हैं। प्रत्येक एकादशी के माहात्म्य की एक-न-एक विचित्र कथा पुराणों में लिखी है। जो हो, एकादशी का उपवास करने से शरीर तथा मन शुद्ध होता है। तेज, बल, वीर्य की वृद्धि होती है। भगवान् का भजन-पूजन करने से मन तथा आत्मा की शुद्धि होती है; मन में पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं।

इनको छोड़कर साल की बारह संक्रांतियाँ भी हैं। ये भी त्योहारों में गिनी जाती हैं। और भी अनेक छोटे-छोटे पर्व हैं, जिनको हिंदू लोग मानते हैं।

ये तो हुई पर्वों की बातें। इन त्योहारों के अतिरिक्त देश के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक सुधारकों और देशभक्तों की जयंतियाँ मानना भी हमारा परम धर्म है। जो जाति अपने पूर्वजों तथा महापुरुषों के चरित्र से शिक्षा नहीं प्राप्त करती, उसको इस संसार से नाश हो जाने में अधिक समय नहीं लगता।

आवश्यकता

हमारे हृदय में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि साल में इतने त्योहारों की, जिन्हें पर्व अथवा व्रत कहते हैं, कौन-सी आवश्यकता है? हमारे तुच्छ विचार में हिंदू-जाति को संगठित करने, भेद-भाव मिटाने और उच्च आदर्शों के अनुकरण से अपने को उच्चतम बनाने के लिये परम उपयोगी होने के कारण ही इन त्योहारों की सृष्टि हुई है। हमारे पूर्वजों ने केवल प्रयोजनवादी बनकर ही इन त्योहारों की सृष्टि नहीं की, वरन् उन्होंने महत्त्ववाद को अपना लक्ष्य बनाया था। वे महत्त्ववादी थे, इसलिये केवल अपने चित्त को शांति प्रदान करने के उद्देश्य से इनका प्रचार नहीं किया। उन्होंने अपनी भावी संतान की हित-कामना से इन त्योहारों की सृष्टि की थी। जिस समय इन त्योहारों की सृष्टि हमारे पूर्वजों के द्वारा हुई, उस समय उनके सामने हिंदू-संगठन का बहुत ही आवश्यक प्रश्न था। उस समय भारतवर्ष पर विदेशियों के हमले होने लग गए थे। हिंदुओं में फूट का बीज भी बोया जा चुका था, भारतीय राजागण भारतवर्ष के बाहर के देशों पर अपना अधिकार गँवा रहे थे, हिंदू-धर्म-ग्रंथ विधर्मियों के द्वारा भस्म किए जा रहे थे, लक्ष्मी भी लुटेरों के द्वारा यहाँ से दूसरे-दूसरे देशों को जा रही थी, वैदिक काल के उच्च भाव, पवित्रता, सच्चरित्रता, सत्प्रेम, सहानुभूति तथा एकता का ह्रास हो रहा था। अस्तु, भारत की भावी दशा का चित्र उन ऋषि-मुनियों के सामने झलकने लगा; और जैसे-जैसे आवश्यकता पड़ती गई, इन पर्वों की संख्या भी बढ़ती गई।

त्योहारों का उद्देश्य जाति को परस्पर एकता तथा प्रेम के सूत्र में बाँधना ही है, और इस दृष्टि से यह अत्यंत सुंदर तथा सरल उपाय है। व्रत के दिन उपवास करते हैं, परमात्मा का भजन तथा पूजन करते हैं। इससे शरीर तथा मन की शुद्धि होती है; शरीर के रोगों का नाश होता है। एकसाथ मिल-जुलकर कार्य करने की अमूल्य शिक्षा मिलती है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम-पूर्वक मिलने का सुअवसर प्राप्त होता है, अपने सब भाइयों के साथ मिलकर अपनी जाति, अपने देश की अवस्था पर विचार करने का अवसर मिलता है।

प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है कि वह अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ अपने बंधु-बांधवों को भी उन्नति-पथ पर ले चले, और यह उद्देश्य हम त्योहारों के द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। किंतु इसमें श्रद्धा तथा प्रेम की आवश्यकता है।

किसी भी जाति के त्योहार उस जाति के चरित्र के उज्ज्वल उदाहरण हैं। यदि कोई जाति अपना चरित्र भूल जाय, तो उसे उचित है कि वह अपने प्राचीन इतिहास की महत्त्व-पूर्ण घटनाओं को देखे, उन पर विचार करे, तथा उससे शिक्षा प्राप्त करे। दूसरा उपाय यह है कि वह अपने जातीय त्योहारों को श्रद्धा-पूर्वक मनावे, जिससे उसके पूर्वजों का चित्र-चरित्र उसकी आँखों के सामने आ जाया करे। अपने जातीय त्योहारों को श्रद्धा

देना मानो अपनी जाति तथा जीवन को ही भुला देना एवं मृत्यु तथा पतन के मुख में शीघ्रता से आगे बढ़ना है।

हमारे पाश्चात्य शुभचिंतक हमारे दुःख से दुःखी होकर हमसे कहते हैं कि यदि इतने त्योहार अमेरिका तथा योरप में मनाए जाते, तो आज पश्चिम इतनी उन्नति न कर पाता। उनसे पूछना चाहिए कि उनकी उन्नति का तात्पर्य क्या है? उनसे यह मालूम करना चाहिए कि क्या उनकी उन्नति का फल गत योरपीय महायुद्ध नहीं है? उनकी उन्नति का अर्थ अपने से निर्बल जातियों का गला घोटना तथा उनका रक्त चूसना नहीं है? पिता-पुत्र, माता-पुत्र भाई-बहन तथा पति-पत्नी में आदर्श-प्रेम की शून्यता नहीं है? क्या उस उन्नति से संसार में अशांति उत्पन्न नहीं होती? उस उन्नति का फल जगत्पिता परमात्मा को भूल जाना नहीं है? हमारा तो कहना है कि पाश्चात्य उन्नति का परिणाम यही सब है। किंतु हमारे पूर्वजों ने उन्नति का अर्थ कुछ दूसरा ही समझा था। उनकी उन्नति का अर्थ मोक्ष, सुख, सहानुभूति, शांति, अपने से निर्बलों की रक्षा, अलौकिक प्रेम तथा एकता है। उनकी उन्नति का उद्देश्य केवल इतना ही था—अर्थात् मोक्ष, मुक्ति, स्वतंत्रता *।

ओंकार पांडेय

प्रेम

हे विश्व-धन यशस्वी, त्रैलोक्य-नाटिका में
मूर्च्छित पड़ा मचल क्यों?
तन्मय तरुण तपस्वी, ऐश्वर्य-वाटिका में
उत्सुक खड़ा अचल क्यों?
चंचल वसंत-बाला, शृंगार फूल का कर
मद ढाल, पी रही है;
बिखरी प्रसून-माला, ब्रज-गोपिका बिना वर
सुन वेणु जी रही है।
उस ओर खींचता है, लघु पुष्प-बाण सुंदर
कंदर्प-मुग्ध मन में;
पीयूष सींचता है, वैकुंठ से उतरकर
पिक साँवला विजन में?
तू भृंग-सा सिकुड़कर, नलिनी-पराग पर क्यों
विक्षिप्त सो रहा है?
पागल पतंग! उड़कर, द्रुत दीप-ज्योति पर क्यों
सर्वस्व खो रहा है?
कल्लोल-तुल्य निर्मल, रस-प्राण में विकल-सा
लहरा रहा मधुर तू;
नित नाच-नाच कोमल, नट-सा सुखी सफल-सा
कुछ गा रहा चतुर तू।
स्वर्गीय दूत बनकर, किस मौन-मंत्र-बल से
है इंद्र-जाल रचता?
घनश्याम-तुल्य तन कर, उल्लास छीन छल से
नभ-गोद में मचलता?
विद्रोह-सा टहलता, तरुणी प्रफुल्ल-यौवन
व्याकुल विरह सताता;
पंखा नवीन झलता, मोहन मलय-पवन बन
सुंदर सु-मन खिलाता।
क्यों ओस-सा पड़ा है सुकुमार वन-लता पर?
कर आरती उषा की;
चित-चोर-सा खड़ा है, धर मृदु कपोल पर कर
छवि छीन राधिका की।
किस रास का करेगा, अभिनेक मुस्किराकर
हे भाग्यवान भोगी!
झोली फटी भरेगा, तू शुद्ध मन फिराकर
किस दीन की वियोगी?
सौंदर्य-सत्य-पथ पर, मैं हूँ खड़ा उमंगी
अवतार चीन्ह तेरा;
चढ़ मुक्त कीर्ति-रथ पर, आ दौड़ शीघ्र संगी,
सुन प्रेम-गीत मेरा।

"गुलाब"

---

* विद्वानों से मेरी प्रार्थना है कि कृपया इस विषय पर अधिक प्रकाश डालें।—लेखक

'दास' और 'बिहारी'

तुलनात्मक पद्धति ही साहित्य-परिशीलन की सच्ची पद्धति है। दो कवियों के समान भाववाले छंदों की तुलना करने से ही जाना जा सकता है कि किसकी उक्ति अधिक चमत्कारिणी है और किसकी कम। सामना होने पर वीरों की वास्तविक वीरता का परिचय मिलता है; और तुलना करने से ही जान पड़ता है कि विषय-विशेष का वर्णन करने में कौन कवि कहाँ तक समर्थ हुआ है। किंतु यहाँ जिन दो कवियों की तुलना करने हम जा रहे हैं, उनका पहले संक्षिप्त परिचय करा देना उचित है।

महाकवि बिहारीलाल माथुर ब्राह्मण थे। इनका जन्म संभवतः संवत् १६६० विक्रमी में, ग्वालियर के निकट, बसुआ-गोविंदपुर में हुआ था। इनका कविता-काल लगभग संवत् १७१० से १७२० तक है। और, अनुमान से विक्रम-संवत् १७२० में इनकी मृत्यु हुई। इनकी लिखी हुई सतसई एक बड़ा ही लोक-प्रिय और प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसका परिचय कराना व्यर्थ ही है। सतसई में कुल ७१९ दोहे हैं। कुछ दोहों को छोड़कर शेष सब शृंगार-रस के हैं। बिहारी की सतसई हिंदी-साहित्य का भूषण है। इस पर अनेकों टीकाएँ बन चुकी हैं, और अब भी बनती जा रही हैं। मिश्रबंधु महोदयों ने अपने ग्रंथ 'हिंदी-नवरत्न' में बिहारीलाल को महाकवियों के मध्य चौथा स्थान दिया है।

महाकवि भिखारीदास, उपनाम 'दास' जी का कविता-काल लगभग विक्रम-संवत् १७९१ से १८१० तक माना गया है। वह जाति के कायस्थ और ट्योंगा, ज़िला प्रतापगढ़ के निवासी थे। आप हिंदी के एक आचार्य माने जाते हैं। दासजी ने दशांग-काव्य पर बड़ी अनूठी रचना की। साहित्य के किसी अंग को इन्होंने अछूता नहीं छोड़ा; रस, अलंकार, ध्वनि, काव्य के गुण-दोष, नायक-नायिका-भेद तथा पिंगल आदि सभी विषयों का विशद विवेचन किया है। आपने 'नाम-प्रकाश' नाम से अमर-कोष का अनुवाद भी किया है। आपके रचे हुए ग्रंथ छंदोऽर्णवपिंगल, रस-सारांश, शृंगार-निर्णय, काव्य-निर्णय, नाम-प्रकाश तथा विष्णु-पुराण हैं। 'बाग़-बहार'-नामक एक और ग्रंथ भी इन्हीं का बनाया हुआ सुना जाता है। मिश्रबंधुओं ने इनका परिचय इस प्रकार दिया है—

"यह बड़ा भारी कवि था, और इसकी भाषा ख़ूब मधुर है। चाहे किसी दूसरे का भी भाव हो; पर इनके वर्णन कर देने के पीछे वह भाव प्रायः इन्हीं का-सा हो जाता था। यह भाषा-काव्य का भारी आचार्य है।'

'दास' और 'बिहारी' की कविता में अनेक स्थलों पर भाव-साम्य पाया जाता है। दासजी बिहारी के परवर्ती कवि हैं, अतः बहुत संभव है कि दासजी ने बिहारीलाल से भाव लिए हों।

भावापहरण कोई बुरी बात नहीं। दूसरे की उक्ति को लेकर उसका पूर्ण रूप से निर्वाह कर ले जाना कोई साधारण काम नहीं। ऐसा अपहरण स्तुत्य नहीं, तो गर्ह्य भी नहीं हो सकता। दूसरे के भाव को लेकर उससे अधिक चमत्कार दिखला देना और भी कठिन कार्य है। ऐसा अपहरण तो सर्वथा स्तुत्य ही होगा। कुछ लोग भावापहरण को बहुत बड़ा दूषण समझते हैं। परंतु इस दूषण से कदाचित् ही कोई कवि बचा हो। आदि-कवि को छोड़ सभी कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के भावों को अपनाया है। स्वयं बिहारीलाल ने दर्जनों दोहों की काव्य-सामग्री अपने पूर्ववर्ती संस्कृत, प्राकृत तथा हिंदी-कवियों से ली है। हाँ, किसी भाव को लेकर उसका पूर्ण रूप से निर्वाह न कर पाना अवश्य एक दूषण है। परंतु दूसरे की उक्ति को सूक्ति बना देनेवाला भावापहरण दूषण नहीं, वरन् भूषण है। यहाँ अत्यंत समता-पूर्ण छंदों की ही तुलना की जाती है।

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै-
निंद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विश्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं,
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरंचुम्बिता।

(अमरुक)

महाकवि अमरुक संस्कृत के एक बड़े भारी शृंगारी कवि हो गए हैं। आपके 'अमरुक-शतक' का रसास्वादन संस्कृत काव्य-रसिकों का जीवनाधार है। उपर्युक्त पद्य उसी शतक का एक बहुमूल्य रत्न है। पद्य का भाव है कि पति सोने का बहाना किए लेटा हुआ था। बाला ने वास-

स्थान सूना देखा, तो चुपचाप उसके पास गई, और थोड़ी देर तक उसका मुख देखती रही, तत्पश्चात् उसने उसका मुख चूम लिया। इतने ही में पति की गंड-स्थली पर रोमांच हो आया, जिससे वह उसका बहाना समझ गई। उसने लज्जा से सिर नीचा कर लिया। ऐसी 'लज्जा-नम्रमुखी' बाला का पति ने हँसते हुए बहुत देर मुख-चुंबन किया।

इसी सुप्रसिद्ध छंद का भाव बिहारी और दास ने भी लिया है। बिहारी का दोहा है—

मैं मिसहा सोयो समुझि, मुँह चूम्यो ढिग जाय।
हँस्यो, खिस्यानी, गर गह्यो, रही गरे लपटाय।

परंतु बिहारी का दोहा अमरुक के पद्य को नहीं पाता। अमरुक की बाला विशेष लज्जावती है। वह बिहारी की नायिका की भाँति नायक को सोया हुआ समझकर, पास आकर, एकाएक उसका चुंबन नहीं कर लेती; वरन् उसने अच्छी तरह देख लिया है कि वास-गृह शून्य है, उसमें कोई और व्यक्ति नहीं है। तत्पश्चात् वह उठी, और धीरे-धीरे उसके पास गई, इस विचार से कि कहीं वह पैरों की आहट पाकर जग न पड़े। फिर भी उसने आते ही चुंबन नहीं किया, प्रत्युत पति के मुख को देर तक देखती रही। जब सब प्रकार से उसे विश्वास हो गया कि वह सो रहा है, तब उसने उसका चुंबन किया। नायक सो तो रहा ही नहीं था, वह तो बहाना किए लेटा हुआ था। चुंबन करते ही गंड-स्थली पर रोमांच (सात्त्विक अनुभाव) हो आया। बेचारी बाला ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया। फिर क्या था? पति ने एक चुंबन का बदला अनेकों चुंबनों द्वारा लिया। यदि कहा जाय कि बिहारीलाल के पास इस प्रकार बढ़ाकर वर्णन करने के लिये स्थान नहीं था; क्योंकि दोहा-छंद बहुत छोटा है, उसमें बड़े छंद के बराबर स्थान नहीं है। यह मान लेने पर भी कहना ही पड़ेगा कि श्लोक का-सा चमत्कार दोहे में नहीं आया।

बिहारी के दोहे में मुख चूमते ही नायक हँस पड़ा, जिससे नायिका लज्जित हो गई। पति ने उसका गला पकड़ लिया, और नायिका उसके गले से लिपट गई। यदि वह सचमुच ही लज्जित हो गई थी, तो प्रियतम के गला पकड़ने पर '*रही गरे लपटाय*', ऐसा निर्लज्जता-पूर्ण कार्य कैसे कर सकती? जान पड़ता है, नायक के हँसने पर वह सचमुच 'खिस्यानी' नहीं, वरन् उसने यों ही खिसियाने का-सा मुँह बना लिया होगा; नहीं तो नायक के गला पकड़ने पर अपने-आप गले से न लिपट जाती।

पद्य का भाव दोहे में आकर बिगड़ गया है। फिर भी दोहे में लज्जा-नम्रमुखी, के लिये खिस्यानी-शब्द बहुत अच्छा है।

किंतु बिहारीलाल यहाँ चूक गए; 'नावक के तीर से' निशाना नहीं लगा सके। इसी ऊपर लिखे हुए अमरुक के पद्य की छाया लेकर दासजी ने भी निम्न-लिखित सवैया लिखा है—

मिस सोइबो लाल को मानि सही,
हु हरे उठि मौन महा धरिकै;
पट टारि रसीली निहारि रही,
मुख की रुचि को रुचि को करिकै;
पुलकावलि पेखि कपोलन में,
सु खिस्याइ लजाइ मुरी अरिकै;
लखि प्यारो विनोद सों गोद गह्यो,
उमह्यो सुख मोद हियो भरिकै।

अमरुक और बिहारी, दोनों कविवरों ने घटना का उल्लेख स्पष्ट ही, खुले शब्दों में किया है; शिष्टता आदि का कुछ विचार न कर स्पष्ट ही चुंबन-क्रिया का वर्णन कर दिया है। बीसवीं शताब्दी के शिष्ट-समुदाय को इसमें प्रकाश-श्रृंगार होने से अश्लीलता की झलक दिखलाई देगी।

बिहारी को तो "हँस्यौ खिस्यानी गर गह्यो, रही गरे लपटाय" कहने में कुछ भी संकोच नहीं हुआ। और, फिर वह भी नायिका के मुख से; क्योंकि वही तो कह रही है कि "मैं मिसहा सोयो समुझि मुँह चूम्यो ढिग जाय।"

दासजी को इस प्रकार स्पष्ट ही इस चुंबन-परिरंभण-क्रिया का वर्णन करना अच्छा नहीं जान पड़ा। उन्होंने अश्लीलता की इस झलक को दूर करने पर कमर कसी, और पूर्णरूप से सफलता भी प्राप्त की।

शून्य वास-गृह के अतिरिक्त और कहीं भरे-घर में पति-पत्नी ऐसी 'लीलाएँ' नहीं करते। अतः पद्य का "शून्यं वास-गृहं विलोक्य" अनावश्यक है। और, फिर "हरे उठि" और "मौन महा धरिकै।" इस शब्द-समूह से भी वास-गृह का शून्य होना पाया जाता है।

दास की नायिका "लाल को मिस सोइबो" *सही मान* कर चुपचाप धीरे से उठी; उठकर उसके मुख पर से 'पट्ट' हटाया, और मुख की शोभा बड़े चाव से देखने लगी।

इतने ही में नायक के कपोलों पर रोमांच हो आया। बेचारी देखते ही 'खिस्याइ' गई, लज्जित होकर मुड़ी, जाने की चेष्टा की। नायक ने उसे इस प्रकार लज्जित देख उठकर विनोद से अंक में भर लिया।

जिस गोपनीय घटना को महाकवि अमरुक और बिहारीलाल ने स्पष्ट शब्दों में खोलकर कह दिया है, उस पर दासजी ने 'पटु' से पर्दा डाल दिया है। इस रहस्य का इस प्रकार से भंडाफोड़ कर देना कदापि उचित नहीं था।

लाल सोने का बहाना किए हुए पट ताने पड़े हैं। लाल को सोया हुआ जानकर रसीली चुपचाप उठी, धीरे से उपवस्त्र हटाया, और "मुख की रुचि को रुचि को करिकै" देखने लगी। उसकी कोई बुरी इच्छा नहीं है। नायक का धैर्य जाता रहा, बहाना न निभ सका। कपोलों पर रोमांच—सात्त्विक अनुभाव—हो आया। यह देख रसीली "खिस्याय लजाय" मुड़ी। नायक ने उसकी वह दशा देखकर विनोद-पूर्वक अंक में भर लिया। फिर कवि ने "उमह्यो सुख मोद हियो भरिकै"-मात्र कहकर छंद समाप्त कर दिया है और "लज्जा नम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता" अथवा "हँस्यो, खिस्यानी, गर गह्यो, रही गरे लपटाय" कहकर अश्लीलता की झलक नहीं आने दी।

नायिका मध्या है। उसमें अनुराग और लज्जा, दोनों समान रूप से विद्यमान हैं। उसका अनुराग "पटु टारि रसीली निहारि रही मुख को रुचि को रुचि को करिकै" इस पंक्ति से प्रकट है, और लज्जावश चुंबन न करना लज्जा का द्योतक है।

दासजी का सवैया अमरुक के पद्य और बिहारी के दोहे से बढ़ा-चढ़ा हुआ है। अमरुक और बिहारी, इन दो बड़े महारथियों पर विजय पाना आचार्य दास का ही काम है।

सवैए में अर्थगांभीर्य के अतिरिक्त शब्दालंकारों की भी कमी नहीं है। जैसा सुंदर भाव है, वैसी ही मनोहर शब्द-योजना भी। इसी को 'पांचाली' रीति कहते हैं। प्रसाद और माधुर्य तो छलक ही रहा है।

"लखि प्यारो विनोद सों गोद गह्यो
　　उमह्यो सुख मोद हियो भरिकै।"

कैसी सुंदर शब्द-योजना है। कोमल कांतपदावली इसी का नाम है।

दासजी ने यह छंद 'रस ध्वनि' अथवा विवक्षित वाच्य-रसध्वनि के उदाहरण में दिया है *।

कविवर बिहारीलाल का एक दोहा यह है—

नेह न, नैनन को कछू उपजी बड़ी बलाय ;
नीर-भरे नित-प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय।

कोई प्रेयसी कहती है कि यह स्नेह नहीं है, इन नेत्रों को कोई बड़ी बला पैदा हो गई ; क्योंकि नित्य-प्रति जल-पूर्ण रहने पर भी इनकी प्यास नहीं बुझती।

परंतु नेत्रों की प्यास कहीं पानी से बुझती है ? इन्हें तो दर्शन की प्यास है। जो ओषधि जिस रोग के लिये नहीं बनाई गई, उसके सेवन से यदि वह रोग अच्छा न हो, तो इसमें आश्चर्य की बात कौन-सी है ? नेत्र जल के प्यासे नहीं हैं, इसी से इनकी प्यास नहीं बुझती।

रसनिधि कहते हैं—

तृषित दगन की मिटत कहुँ आँसू-बूँदन प्यास ?

आश्चर्य की बात तो तब है, जब दर्शन की प्यास दर्शन से न बुझे। दासजी ने यही बात निम्न-लिखित सवैए में बतलाई है—

नाभि सरोवरी औ त्रिवली के तरंगनि पैरत ही दिन-राति हैं;
बूड़ि रहैं तन पानिप हू मैं, नहीं बनमालहु में बिलगाति हैं।
'दासजू' प्यासी नई अँखियाँ घनस्याम बिलोकत हू अकुलाति हैं;
पीबो करैं अधरामृत हू को तऊ इनकी सखि प्यास न जाति हैं।

श्यामा घनश्याम के स्वरूप को नख से शिख तक देखती है; परंतु फिर भी उसकी तृप्ति नहीं होती। उसके नेत्र घनश्याम की 'नाभि-सरोवरी' और त्रिवली की तरंगों में तैरते रहते हैं, 'तन-पानिप' में डूबे रहते हैं, बनमाल पर भी नहीं ठहरते। यही नहीं, अधरामृत का पान भी करते रहते हैं। परंतु प्यास फिर भी नहीं बुझती। कैसी सुंदर उक्ति है !

'आनँद ये उपज्योई रहै पिय मोहन को मुख देखिबो कीजै।
　　(कुलपति मिश्र)

बस यही जी चाहता है कि—

इंदु ते अधिक अरबिंदु ते अधिक ऐसो,
आनन गोबिंद को निहरिबोई करिए। (पद्माकर)

---

* जिस ध्वनि में रस, भाव, रसाभास और भावाभास व्यंग्यार्थ द्वारा बोध होते हैं, उसे रस-ध्वनि कहते हैं। (पं० गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री-रचित रसवाटिका, पृष्ठ १५८)

कैसा अद्भुत व्यापार है ! प्रसाद-गुण और माधुर्य तो दास की प्रधान विशेषताएँ हैं।

उल्लिखित दोनों पद्यों में कौन उत्कृष्ट है, इसका निर्णय सुविज्ञ, सहृदय पाठक स्वयं कर लें। हमें तो दास के सवैए में बिहारी के दोहे से अधिक चमत्कार जान पड़ता है।

बिहारी के उक्त दोहे का भाव 'रसनिधि' ने भी अपनाया है; परंतु उसका निर्वाह नहीं कर सके, उलटे बिहारी की उक्ति को दुर्दशा कर डाली है—

पीवत-पीवत रूप-रस, बढ़त रहै हित-प्यास।
दई दई नेही दगन, कछू अनोखी प्यास।

इस विषय का वर्णन महाकवि गंग ने निराले ढंग से किया है। उपर्युक्त छंदों में और इसमें कोई भाव-साम्य नहीं है। कवित्त की केवल अंतिम पंक्ति लिखी जाती है—

मन मेरो गरुओ गयो री बूड़ि, मैं न पायो,
नैन मेरे हरुए तिरत रूप-जल मैं।

बिहारी का एक और दोहा है, पहले में अनोखी प्यास का और इसमें अनोखी भूख का वर्णन है—

छिनक छबीले लाल वह, जौ लगि नहिं बतराइ।
ऊख, महूख, पियूष की, तौ लगि भूख न जाइ।

बिहारी के इन्हीं दोहों के भाव से मिलता-जुलता एक छंद देवजी का भी बड़ा ही मनोहर है, जिसे नीचे उद्धृत करते हैं—

हाय कहा कहौं चंचल या मन की गति मैं मति मेरी भुलानी;
हौं समुझाय कियो रस-भोग न तेऊ तऊ तिसना बिनसानी।
दाड़िम, दाख, रसाल, सिता, मधु, ऊख पिए औ पियूष से पानी;
पै न तऊ तरुनी तिय के अधरान के पीबे की प्यास बुझानी।
(देव)

कविवर बिहारीलाल कहते हैं—

झमकि चढ़ति उतरति अटा, नेक न थाकति देह;
भई रहत नट को बटा, अटकी नागरि नेह।

कवि ने इसमें 'उत्कंठिता' का चित्र-सा खींच दिया है। नागरी प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है। कोठे पर चढ़ती-उतरती हुई नागरी, नट के बटा के समान जान पड़ती है।

बिहारी के इस दोहे का भाव बड़े-बड़े कवियों ने लिया है। देवजी ने तो नागरी के कर में 'दीरघ बंसु' देकर सचमुच नट की-सी पूरी कला करा दी है—

दीरघ बंसु लिए कर मैं, उर मैं न कहूँ भरमै भटकी-सी;
धीर उपानन पाउँ धरै बरतै न परै लटकै लटकी-सी।
साधति देह सनेह निराट कहूँ मति कोऊ कहूँ अटकी-सी;
ऊँचे अकास चढ़ै-उतरै सु करै दिन-रैन कला नट की-सी।

परंतु 'ऊँचे अकास' पर कैसे चढ़ती-उतरती है ? देवजी की नायिका को कोई दैवी-शक्ति प्राप्त हो गई है, तभी तो वह आकाश पर चढ़ने-उतरने लगी है।

खड़ी बोली के सुकवि 'सीतल' ने भी बिहारी के भाव को अपनाया है।

भूतल तें नभ, नभ तें अवनी, अँगु उछलै नट का बटा हुआ।

बिहारी की इसी उक्ति को दासजी ने भी अपने नूतन और अनूठे ढंग से अपनाया है। कहना तो यह चाहिए कि उन्होंने बिहारी की उक्ति को सूक्ति बना दिया है—

छिन होत हरीरी मही को लखै निरखै घन मे छिन जोति-छटा;
अवलोकति इंद्रबधू की पत्यारी, बिलोकति है छिन कारी घटा।
लखि ऊँचे कदंबनि को तरसै, दरसै उत नाचत मोर अटा;
अध-ऊरध आवत जात भयो चित नागरि को नट कैसो बटा।

सावन आ गया ! परंतु मनभावन अब तक नहीं आए। एक ओर नेत्ररंजक हरित भूमि है, दूसरी ओर घने घनों में दिव्य विद्युच्छटा है। इधर हरित भूमि पर इंद्रबधूएँ विहार कर रही हैं, तो उधर आकाश में काली-काली घटाएँ छाई हुई हैं। इधर पृथ्वी पर कदंब फूले हुए अलौकिक छटा दिखा रहे हैं, तो उधर कोठे पर मयूरगण हर्षोन्मत्त होकर नृत्य कर रहे हैं, अपने इष्टदेव घनश्याम को देखकर फूले नहीं समाते। वर्षा का कैसा सच्चा और स्वाभाविक चित्र खींचा है।

दुखिया विरहिणी यह सब देख रही है। कभी हरी भूमि को देखती है, तो कभी विद्युच्छटा को। कभी इंद्रबधूएँ उसके चित्त को आकर्षित कर लेती हैं, तो कभी काली घटा चित्त पर चढ़ जाती है। कदंब की डालियाँ देखकर कभी वह व्याकुल-चित्त हो जाती है, तो कभी घनों को देखकर आनंद से नाचते हुए मयूरों को देख अपने जीवन-धन घनश्याम से मिलने के लिये उसका चंचल-चित्त अधीर हो उठता है। इस प्रकार विरहिणी नागरी का चित्त—"अध ऊरध आवत जात" नट के बटा के समान जान पड़ता है।

प्रिय-वियोग-विधुरा विरहिणी का कैसा सुंदर और सच्चा वर्णन है। परंतु मिश्रबंधु महोदयों की सम्मति में दासजी

की कविता में स्वाभाविक वर्णनों का अभाव-सा है। किंतु यह कहाँ तक सच है, इसे सहृदय पाठक स्वयं विचारकर देख लें।

नागरी के चंचल चित्त की उपमा नट के बटा से देना उचित है, नागरी से नहीं। चतुर नट पल-भर में नीचे-ऊपर आता-जाता है। चंचल चित्त इस कला में नट से भी कहीं अधिक पटु होता है।

छंद में भाव की मनोहरता के साथ-ही-साथ शब्द-योजना की भी मनोमुग्धकारी छटा देखने-योग्य है। न कहीं अनुप्रास के लिये व्यर्थ के शब्द रक्खे गए हैं, न किसी शब्द का रूप ही विकृत किया गया है। जहाँ कहीं अनुप्रास आ गया है, वह स्वाभाविक ही है। अनुप्रास के आडंबर से रहित मधुर छंद का यह एक उत्तम उदाहरण है।

और देखिए, बिहारीलालजी कहते हैं—

लिखन बैठि जाकी सबिहि, गहि-गहि गरब गरूर ;
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।

इसकी टीका करते हुए पं० पद्मसिंहजी लिखते हैं—
"एक बार नहीं, अनेक बार और एक नहीं, संसार-भर के अनेक, साधारण नहीं, चतुर चितेरे—जिन्हें अपनी चित्र-कला पर गर्व था—दावे के साथ सबी—शबीह—खींचने बैठे, पर चित्रकार बेवक़ूफ़ बनकर—हारकर—बैठ रहे। चित्र नहीं खिंच सका—नहीं खिंच सका।"

परंतु बेचारे चतुर चितेरों से चित्र क्यों नहीं खिंच सका, इसका कारण कवि ने स्पष्ट नहीं बताया है। चित्र न खिंच सकने का कारण बतलाना 'चित्र नहीं खिंच सका' इस कथन से अधिक कठिन है। शर्माजी ने इस दोहे के स्पष्टीकरण के लिये बड़ी खींचातानी की है। उन्होंने ज़फ़र और बक़्र के निम्न-लिखित उर्दू के शेर भी उद्धृत किए हैं—

"क्या मुसव्विर यार की तस्वीरे क़ामत खींचते ?
खिंच न सकती उनसे वह गर ता क़यामत खींचते।"

(ज़फ़र)

"तस्वीर में उतरा न फ़रोगे रुख़े रोशन।
साँचे में कभी धूप को ढलते नहीं देखा।"

(बक़्र बदायूँनी)

अस्तु। जो बात बिहारी के दोहे में कही गई है, वही ज़फ़र के शेर में भी। ज़फ़र भी चित्र न खिंच सकने का कोई कारण नहीं बतलाते। ज़फ़र के शेर में बक़्र के दिए हुए शेर का एक अंश भी चमत्कार नहीं है। इसी प्रकार बक़्र के शेर में बिहारी के दोहे से भी कहीं अधिक चमत्कार है।

महाकवि दासजी ने भी एक कारण चित्र न खिंच सकने का लिखा है, जिसे हम नीचे लिखते हैं—

भावी, भूत, वर्तमान मानवी न ह्वै है ऐसी,
देवी दानवी न हूँ सो न्यारे यह औरई ;
या विधि की वनिता जो बिधिना बनायो चहै,
'दास' तौ समुझिए प्रकासे निज बौरई।
चित्रित करै धौं क्यों चितेरो यह चालि, काले,
परौं दिन बीते दुति औरै और दौरई ;
आजु भोर औरई, पहर होत औरई है,
दुपहर औरई, रजनि होति औरई।

सुर, नर और दानव—किसी भी जाति में ऐसी सुंदरी न कोई थी, न है, और न होना संभव है। यदि ऐसी सुंदरी विधाता भी बनाने का प्रयत्न करे, तो समझ लीजिए कि वह अपना पागलपन ही प्रकट करता है। तब ऐसी विचित्र रूपवती का चित्र बेचारा चितेरा—कैसा ही चतुर क्यों न हो—कैसे चित्रित कर सकता है, जिसका रूप (वयःसंधि के कारण) पल-पल पर बदल रहा है ?

"आजु भोर औरई, पहर होत औरई है ;
दुपहर औरई, रजनि होति औरई।"

बेचारे चतुर चितेरे क्रूर हो गए, तो कौन-सा आश्चर्य है ? चतुरानन विधाता भी, जिसने उस सुंदरी को बनाया है, उसके समान दूसरी वनिता नहीं बना सकता है। फिर बेचारे चतुर चित्रकार किस गिनती में हैं ?

दासजी के इसी भाव को महाकवि पद्माकर ने लिया है, और यही कारण किसी व्रजबाला के स्वरूप-वर्णन में अपनी आशंका का दिया है—

पल-पल में पलटन लगे जाके अंग अनूप ;
ऐसी इक व्रजबाल को, कहि नहिं सकत सरूप।

* * *

गोरी के मुख एक तिल, सो मोहि खरो सुहाय ;
मानहु पंकज की कली, भौंर बिलंब्यो आय।

(मुबारक)

× × ×

ललित स्याम लीला ललन, चढ़ी चिबुक छबि दून ;
मधु छाक्यो मधुकर पर्यो, मनो गुलाब-प्रसून।

(बिहारी)

पंकज की कली पर भौंरे का 'बिलमना' कुछ अनुचित-सा है। गोरी के मुख को उत्फुल्ल कमल कहना उचित

है। गोरी के मुख के तिल की उपमा यहाँ 'कमल-कलिका' पर 'बिलमे हुए' भौंरे से दी गई है।

इस दोहे का विहारी ने संस्कार किया। 'गोरी के मुख एक तिल' के स्थान पर 'ललित स्याम लीला चिबुक' लाया गया, और 'मानहु पंकज की कली, भौंर बिलंव्यो आय' का स्थान 'मधु छाक्यो मधुकर मनो, पर्‌यो गुलाब-प्रसून' को दिया गया। चिबुक की उपमा 'गुलाब-प्रसून' से देना अत्यंत उचित है। उतनी गोरी के मुख को 'पंकज-कली' से नहीं। विहारी का दोहा मुबारक के दोहे से उत्कृष्ट है।

विहारी के इसी दोहे को 'विक्रम' ने, शब्दों का कुछ हेर-फेर करके, अपनाया है—

अति दुति ठोढ़ी बिंदु की, ऐसी लखी कहूँ न ;
मधुकर सूनु छक्यो पर्‌यो, मनो गुलाब-प्रसून ।

किंतु 'चढ़ी चिबुक छबि दून' कहकर विहारी ने 'छबि' को सीमा-बद्ध कर दिया है। कदाचित् यही बात विक्रम को अच्छी नहीं लगी, और 'दून तिगुन' न कहकर 'अति दुति ठोढ़ी बिंदु की, ऐसी लखी कहूँ न' कहा है। परंतु वास्तव में 'चढ़ी चिबुक छबि दून' अथवा, 'ऐसी लखी कहूँ न'—किसी की भी आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि चिबुक के बिंदु की उत्प्रेक्षा तो गुलाब-प्रसून पर मधुछका मलिंद-मात्र' ही है। इसी से इन भर्ती के शब्दों को हटाने के लिये दासजी ने 'उत्प्रेक्षा' का स्थान 'उपमेयोपमा' को देकर, उसी भाव को इस प्रकार कहा है—

लख्यो गुलाब-प्रसून में, मैं मधु छक्यो मलिंदु ;
जैसो तेरो चिबुक में, ललित लोल तिल-बिंदु ।

कोई भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता, जिसमें दासजी ने दूसरे का भाव लेकर उसमें नवीन चमत्कार न पैदा कर दिया हो। फिर ऐसा तो कोई उदाहरण है ही नहीं, जिसमें वह दूसरे का भाव लेकर उसका पूर्ण रूप से निर्वाह न कर सके हों।

* * *

कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय ;
वह खाए बौरात नर, यह पाए बौराय ।

(विहारी)

× × ×

सुवर्णं बहु यस्यास्ति तस्य न स्यात्कथं मदः ।
नामसाम्यदहो यस्य धुस्तूरोऽपि मदप्रदः ।

(कस्यचित् कवेः)

एक ही बात ऊपर उद्धृत विहारी के दोहे और संस्कृत के पद्य में कही गई है। दोहे का 'कनक'-शब्द श्लिष्ट है, जिसके अर्थ धतूरा और स्वर्ण, दोनों हैं।

दोहे तथा श्लोक, दोनों में शब्दों के बल पर ही चमत्कार पैदा किया गया है। कनक और स्वर्ण-शब्द वस्तुतः धन अथवा लक्ष्मी के लिये आए हैं। दासजी ने यही बात निराले ढंग से, इस सोरठे में, दिखलाई है—

कालकूट बिष नाहिं, बिष है केवल इंदिरा ;
हरि जागत छकि ताहि, वा सँग हरि नींद न तजत ।

दासजी कहते हैं कि कालकूट—हलाहल—विष नहीं है, विष तो केवल इंदिरा—लक्ष्मी—है। कालकूट को पीकर महादेवजी जागते ही रहते हैं, सचेत ही रहते हैं। कालकूट उन्हें अचेत नहीं कर देता। परंतु इंदिरा के साथ में हरि—विष्णु भगवान्—निद्रा नहीं छोड़ते हैं, लक्ष्मी के प्रसंग से वह अचेत ही रहते हैं।

दासजी के सोरठे के आगे संस्कृत का पद्य और विहारी का दोहा, दोनों ही 'दिन के दीपक' दिखाई देते हैं।

* * *

सायक सम घायक नयन, रँगे त्रिबिध रंग गात ;
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ।

(विहारी)

× × ×

कंज सकोच गड़े रहैं कीच में मीनन बोरि दियो दह नीरन ;
'दास' कहै मृगहू को उदास कै बास दियो है अरण्य गँभीरन ।
आपुस में उपमा उपमेय ह्वै नैन ये निंदत हैं कबि धीरन ;
खंजनहू को उड़ाय दियो हलुके करि डारे अनंग के तीरन ।

दोहे का भाव है कि (श्वेत, श्याम, रतनार) त्रिविध रंग में रँगे नेत्र तीर के समान (सायक-सम घायक) घातक हैं। इन्हें देखकर मीन भी पानी में (लज्जा से) छिप जाते हैं, और कमल भी देखकर लज्जित हो जाते हैं।

दासजी के सवैए में महाविरे का बड़ा अच्छा चमत्कार है। कविवर विहारीलाल ने 'सायक-सम घायक' कहा है। परंतु उन नेत्रों के आगे 'सायक' क्या वस्तु हैं, जिन्होंने तीरों—और फिर कामदेव के तीरों—को भी हलका कर डाला है?

सच तो यह है कि दासजी का सवैया विहारी के दोहे से अर्थ-गौरव और महाविरा, दोनों बातों में बढ़-चढ़ा है। सहृदय इसके साक्षी हैं।

इस अर्थ में खींचातानी अथवा गद्य को दोष और दोष

को गुथा सिद्ध करना अच्छा नहीं समझते। हम दास के साथ पक्षपात भी नहीं करते हैं। हाँ, महाविरे का ऐसा सुंदर समावेश हिंदी में अन्यत्र देखने को कदाचित् ही मिले। उर्दू-भाषा में भी ऐसे सुंदर महाविरेदार छंद (अशआर) थोड़े ही मिलेंगे।

इसी (नेत्रों के) विषय पर एक पद हिंदी-साहित्य-सूर्य महात्मा सूरदास का भी बड़ा ही मनोहर है। उसे भी हम यहाँ पाठकों के मनोरंजनार्थ उद्धृत करते हैं —

नंदनँदन के बिछुरे अँखियाँ उपमा-जोग नहीं ;
कंज, खंज, मृग, मीन न होहीं कबिजन वृथा कहीं।
कंज होति, मुँदि जात पलक में जामिनि होति जहीं ;
खंज होति उड़ि जात छिनक में प्रीतम जित तितहीं।
मृग होतीं, रहतीं निसि-बासर चंद बदन ढिंगहीं ;
'सूर' सरोवर ते बिछुरे कहु जीवत मीन कहीं।

* * *

और भी देखिए—

कौन्हेंहु कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौन ;
भो मन मोहन रूप मिलि, पानी में को लौन।
(बिहारी)

× × ×

न्यारो न होत बफारो ज्यों धूम में,
धूम ज्यों जात घनै घन में पिलि ;
'दास' उसास मिलै जिमि पौन में,
पौन ज्यों जात है आँधिन में हिलि।
कौन जुदो करै लौन ज्यों नीर में,
नीर ज्यों छीर में जात खरो खिलि ;
त्यों मति मेरी मिली मन मेरे सों,
मो मन गो मनमोहन सों मिलि।
(दास)

ऊपर लिखे हुए बिहारी के दोहे को साहित्य के मर्मज्ञों, कविता के जौहरियों ने एक बड़ा ही अनमोल रत्न माना है ; और है भी ऐसा ही। परंतु विस्तृत हिंदी-साहित्य-सागर के गर्भ में इससे भी अधिक मूल्यवान् कितने ही रत्न छिपे पड़े हैं।

नायिका कहती है कि मेरे मन को करोड़ों यत्न करने पर भी अब कौन निकाल सकता है? वह तो मनमोहन के रूप में मिलकर 'पानी में को लौन' हो गया है। वस्तुतः बड़ी ही सुंदर उक्ति है।

परंतु दासजी कहते हैं कि अकेला मन ही नहीं मनमोहन से मिल गया, वरन् मति भी उन्हीं से जा मिली है। मन और मति, दोनों ही हाथ से निकल गए। मन तो गया ही, साथ ही मति को भी हर ले गया।

"बह गए, दिल भी गया, सब्र करारो नींद भी।"

दासजी के छंद में 'पानी में को लौन'-जैसी एक उपमा नहीं, वैसी ही चमत्कारिणी ६ उपमाएँ हैं। शब्द-योजना कैसी मधुर है। टवर्ग का तो कहीं पता ही नहीं। मीलित वर्ण एक भी नहीं मिलता। अनुप्रास का आडंबर फैलाने की चेष्टा नहीं की गई। फिर भी स्वाभाविक अनुप्रास आ ही गया है। उसकी अंतिम पंक्ति देखिए, कैसी मनोमोहक शब्दावली है।

श्रीयुत पद्मसिंहजी शर्मा बिहारी के दोहों के विषय में लिखते हैं —"बिहारी के दोहों पर समय-समय पर बड़े-बड़े बाकमाल लोगों ने कुंडलियाँ (सवैए) और कवित्त गढ़ने का प्रयत्न किया है; पर किसी की भी कला ठीक नहीं बैठी। ज़रा से दोहे में जो भाव सिमटा बैठा था, वह वहाँ से निकलते ही इतना फैला कि कुंडलियों और कवित्तों के बड़े मैदान में नहीं समा सका।" इत्यादि।

शर्माजी के कथन में बहुत कुछ सत्यता है। कई दोहों का भाव तो एक कवित्त, सवैया या कुंडलिया में भली भाँति भरना तो एक ओर रहा, एक दोहे का भी भाव पूर्ण रूप से व्यक्त करने में बड़े-बड़े कवि असमर्थ हुए हैं। भारतेंदु बाबू ने बिहारी के दोहों पर छंद लिखना आरंभ किया था, परंतु इस कार्य को दुःसाध्य समझकर छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त शर्माजी ने अपने उक्त कथन को अपने सतसई 'सौष्ठव-निबंध' में अनेकों उदाहरणों द्वारा प्रमाणित भी किया है। फिर ऐसी दशा में बिहारी के तीन-चार दोहों — साधारण नहीं सतसई के चोटी पर के दोहों— का भाव एक कवित्त में भरना — नहीं-नहीं, उसमें भी नूतन चमत्कार उत्पन्न करना—कितना कठिन कार्य है, इसका अनुमान ही किया जा सकता है।

शर्माजी ने उक्त पुस्तक के 'बिहारी का विरह-वर्णन'-शीर्षक निबंध में बिहारी-सतसई के कुछ उत्कृष्ट—चोटी पर के—दोहों का संग्रह किया है, उसमें निम्न-लिखित चार दोहे आरंभ ही में दिए हैं—

सारे जतननि सिसिर रितु, सहि बिरहिन तन ताप ;
बसिबे को ग्रीषम दिनन, पर्यो परोसन पाप।
आड़े दे आले बसन, जाड़े हू की राति।

साहस कै-कै नेह बस, सखी सबै ढिंग जाति।
औंधाई सीसी सुलखि, बिरह बरत बिललात;
बीचहि सूखि गुलाब गो, छींटौ छुई न गात।
जिहि निदाघ दुपहर रहै, भई माह की राति;
तिहि उसीर की रावटी, खरी आवटी जाति।

इन दोहों की व्याख्या करने के पश्चात् शर्माजी लिखते हैं—

"कविवर भिखारीदास ने बिहारीलाल के उल्लिखित १, २, ३, ४ दोहों से कतरन लेकर कवित्त की यह कंथा तैयार की है"—

एरे निरदई दई दरस तौ दे रे वह,
ऐसी भई तेरे या बिरह-ज्वाल जागिकै;
'दास' आसपास पुर नगर के बासी उत,
माह हू को जानत निदाहै रह्यो लागिकै।
लै-लै हारे जतन भिगाए तन ईठ कोऊ,
नीठि ढिंग जात तऊ आवै फेर भागिकै;
दीसी मैं गुलाब-जल सीसी मैं मगहि सूखै,
सीसी यों पघिलि परै अंचल सों दागिकै।

परंतु शर्माजी का यह कथन दासजी के कवित्त की रमणीयता को नष्ट नहीं कर सकता। दासजी ने यह कंथा तैयार की है, अथवा कविता-कामिनी को समुचित वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके, पाठकों के सामने लाकर खड़ा कर दिया है, यह सहृदय पाठक समझें। कवित्त में तो दोहे से कहीं अधिक चमत्कार भरा हुआ है।

दासजी की अंतिम पंक्ति का भाव रामसहायदास ने लिया है—

बिरह आँच नहिं सहि सकी, सखी भई बेताब;
चनकि गई सीसी गयो, छिरकति छनकि गुलाब।
(शृंगार-सतसई)

जिन बिहारी के एक-एक दोहे का भाव बड़े-बड़े कवि चार-चार और छः-छः पंक्तियों में भली भाँति नहीं भर सके, महाकवि दास ने उन्हीं के दोहों का संस्कार करके, कवित्त की एक-एक पंक्ति में एक-एक दोहे के भाव को अनूठा चमत्कार उत्पन्न करके भर दिया है। यह आचार्य दास का ही काम है, अन्य कवियों में यह बात कहाँ!

* * *

हौं ही बौरी बिरह बस; कै बौरो सब गाम;
कहा जानिए कहत हैं, ससिहि सीतकर नाम।
(बिहारी)

बिरहिणी कहती है कि मैं बावली हो गई हूँ, या सारा गाँव ही बावला है। क्या समझकर ये लोग चंद्रमा को 'शीतकर' ठंडी किरणवाला कहते हैं?

शर्माजी ने इसी प्रसंग में पंडितराज जगन्नाथ का एक पद्य लिखा है—

संग्रामाङ्गणसम्मुखाहतकियद्विश्वम्भराधीश्वर-
व्यादीर्णीकृतमध्यभागविवरोन्मीलन्नभोनीलिमा।
अङ्गारप्रखरैः करैः कवलयन्नेतन्महीमण्डलं
मार्तण्डोऽयमुदेति केन पशुना लोके शशाङ्कीकृतः।

"चंद्रोदय को देखकर विरही कहता है कि अंगारों की तरह तीक्ष्ण किरणों से भूमंडल को भस्म करता हुआ यह तो मार्तंड निकल रहा है। कौन पशु इसे चंद्रमा कहता है? इसमें जो श्यामता देख पड़ती है, वह शश-लांछन नहीं है; किंतु रणभूमि में सम्मुख लड़कर मरे हुए क्षत्रियों के द्वारा कटे हुए मध्यभाग से आकाश की नीलिमा चमक रही है।"

परंतु शश-लांछन न होने का कारण कुछ चमत्कार-पूर्ण नहीं जान पड़ता। जान पड़ता है कि बिहारी ने दोहे का भाव जगद्विख्यात महाकवि कालिदास के निम्न-लिखित पद्य-रत्न से लिया है। अतः इसके लिये बिहारी कालिदास के ऋणी हैं, न कि पंडितराज के—

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु;
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारी करोषि।

अर्थात्—

हिमांशु चंदा सों, कुसुम-शर तोसों कहत क्यों?
नहीं साँचे दोऊ इन गुनन मो से जनन को।
खरी छोड़ै ज्वाला वह किरणमाला सँग घरी,
तुहू वज्राकारी निज सुमन के बानन करै।
(स्व० राजा लक्ष्मणसिंह-कृत अभिज्ञानशाकुंतल)

कविवर मतिराम के एक कवित्त की अंतिम पंक्ति भी कुछ ऐसा ही भाव प्रकट करती है—

"तीछन जुन्हाई भई ग्रीषम को घाम नयो,
भीषम पियूषभानु भानु दुपहर को।"

बिहारी के उक्त दोहे के भाव को महाकवि देव नए ढंग से अपनाते हैं—

रैनि सोई दिन इंदु दिनेस जुन्हाई है घाम घनो विष घाई ।
फूलनि सेज सुगंध दुकूलनि सूल उठै तन-तूल ज्यों ताई ।
बाहेर भीतर भौंहरे ऊ न रह्यो परै 'देव' सु पूछन आई ।
हौं ही भुलानी कि भूले सबै, कहैं ग्रीषम सों सरदागम माई ।

विरहिणी को शरद्-ऋतु की दुःखद रात्रि दिन-सी जान पड़ती है, जिसमें चंद्रमा ही सूर्य है। चारों ओर फैली हुई ज्योत्स्ना ही उसे 'घना घाम' जान पड़ती है। सुगंधित पुष्प-शय्या और रेशमी वस्त्र उसे शूल-से जान पड़ते हैं। शरीर रुई के समान जला जाता है। न बाहर रहा जाता है, न भीतर ही रहा जाता है, और न भुइँहरे (तहखाने) में ही चैन पड़ती है। 'भौंहरे ऊ न रह्यो परै।' इसी से बेचारी पूछ रही है कि मैं भूलती हूँ, अथवा सब लोग भूलते हैं, जो ग्रीष्म-ऋतु को शरदागम कहते हैं।

इसी विषय का वर्णन अब दासजी से भी सुनिए—

याहि खराद्यो खराद चढ़ाय बिरंचि बिचारि कछू मलिनाई ।
सूर भयो बगरयो चहुँ ओर तरैयन मैं जु लसै छबि छाई ।
'दास' नए जगनू मग फैले, वहै रज-सी इतहू भरि आई ।
चोखन है किए घाम अनोखो, मसी न अली यह, है मलिनाई ।

उल्लिखित सभी पद्यों का वर्णनीय विषय एक ही है, केवल वर्णन-शैली विभिन्न है।

दासजी ने भी उसी पुराने भाव को (यह चंद्र नहीं है, सूर्य है) अपनी प्रतिभा-रूपी खराद पर चढ़ाकर कैसा चमका दिया है, मानो दास की प्रखर प्रतिभा ही जगमगा रही हो। अब विज्ञ पाठक पिछले उल्लिखित पद्यों से एक बार फिर तुलना करके देखें कि हमारा कथन असत्य तो नहीं है।

इसी भाव का द्योतक एक और छंद भी यहाँ उद्धृत करते हैं—

सीतकर नाम धरि हाय बरसावत तू,
बिरही बिचारेन पै ज्वालन के जाल है।
काहे को सुधाकर कहावत है तेरो कर,
काल के कराल करहू ते बिकराल है।
नाम बिपरीत तेरे काम हैं रे दोषाकर,
दोषनि की खानि है, तू बिषधर ब्याल है।
कोऊ कहै सीतकर, सुधाकर; हौं तो कहौं,
ज्वालकर, कालकर जैसो तेरो हाल है।

विरहिणी चंद्रमा को संबोधित करके कहती है कि 'नाम तो तेरा सीतकर है'; पर बेचारे विरही जनों पर अंगार बरसाता है। हाय! हाय! तू सुधाकर क्यों कहलाता है? तेरे 'कर' (किरणें) तो काल के भी कर (हाथों) से विकराल हैं। ऐ दोषों की खान दोषाकर! तेरे काम नाम के विपरीत ही हैं (नाम सीतकर परंतु ज्वाला बरसाता है)। नाम सुधाकर, परंतु काम विरही जनों को मारना। तू तो विषधर सर्प है। चाहे कोई तुझे 'सीतकर' और 'सुधाकर' कहे, समस्त संसार तुझे इसी नाम से पुकारे; परंतु मैं तो तुझे तेरे गुणों के अनुसार 'ज्वालकर' और 'कालकर' ही कहा करूँगी।

कोई भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता, जिसमें दासजी ने दूसरे का भाव लेकर उसे अपना न कर लिया हो।

पंडित पद्मसिंहजी शर्मा ने 'विहारी की सतसई' के पृष्ठ १८१ पर लिखा है—

"कविवर भिखारीदास की गणना हिंदी के आचार्यों में की जाती है। इन्होंने प्रायः कविता के प्रत्येक अंग पर लिखा है। पर यह भी जहाँ विहारी का अनुकरण करने लगे हैं, वहाँ वैसा चमत्कार नहीं ला सके हैं, जैसा कि नीचे के उदाहरण से सिद्ध है। पर इससे इनके श्रेष्ठ कवि होने में संदेह नहीं किया जा सकता।"

अतएव अब उस उदाहरण को भी देख लीजिए, जिसके आधार पर शर्माजी ने यह मत स्थिर किया है—

छिन छिन बसन न, हरत हठि, लालन-दृग बरजोर ।
सावधान के बटपरा, ये जागत के चोर ।

(विहारी)

लाल निहारे दृगन को, हाल कही नहिं जाय ।
सावधान रहिए तऊ, छिन छिन लेत चुराय ।

(दास)

इन दोहों के अर्थ में बड़ा भेद है; फिर भी कुछ साम्य है ही। विहारी के दोहे में 'लालन-दृग बरजोर', 'बटपरा' और 'चोर' दोनों ओर नहीं लगाए जा सकते हैं। 'बटपरा' के लिये तो 'बरजोर' कहना उचित है, किंतु चोर के लिये नहीं। चोर चोरी करते हैं, न कि बरजोरी। किंतु दास का दोहा सर्वथा निर्दोष है, उसमें इस प्रकार का कोई दोष नहीं है।

हमने विहारी और दास की सूक्तियों की ही तुलना की है, ऐसा नहीं किया है कि विहारी की साधारण उक्तियों की तुलना दास की सूक्तियों से की हो, और इस प्रकार दास को विहारी से श्रेष्ठ सिद्ध किया हो।

"प्रेमी"

पूर्णिमा

शरद्-पूर्णिमा थी। क्षितिज को चीरकर चंद्र गुब्बारे के समान ऊपर उठ रहा था। मैं जाह्नवी-तट पर बैठा हुआ चंद्रदेव की तरफ़ एकटक देख रहा था। गंगा महारानी चाँदी की पतली चादर-सी हिल रही थीं। हिलती हुई लहरों पर चंद्रदेव की किरणें अपूर्व सुंदर देख पड़ती थीं। कभी-कभी उसी प्रकाश में बायस्कोप के दृश्य की तरह छोटी-छोटी नावें इधर-उधर तैरती हुई दिखलाई देती थीं।

मैं कुछ दुःखी था, एकांत में पत्थर के एक गुंबज पर बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था। संसार की दशा पर, प्रेम पर, सामाजिक बंधनों पर भावनाएँ दौड़ रही थीं। एकाएक मुझे कुछ स्मरण आया।

आज भी वही दृश्य है। पूरे ७ वर्ष हो गए। सारा दृश्य मेरी आँखों के सामने घूम गया।

दिन बीतते कितनी देर लगती है। देखते-देखते संसार की सब बातें बदल जाती हैं। जवानी चली आती है, बुढ़ापा आ जाता है, रूप नष्ट हो जाता है। एक दिन मित्र-संबंधी, सब छूट जाते हैं। यही विश्व की लीला है।

कृष्णा की मधुर-स्मृति ने उस समय मुझे विकल कर दिया। मैं अधीर होकर रोने लगा। रोने के बाद हृदय कुछ शांत हुआ। मैं आकाश की ओर देखकर कहने लगा—"अभागे कृष्णा! तूने धोखा खाया। तूने इस संसार को भली भाँति नहीं देखा। वह केवल प्रेम की एक झलक थी, जिसमें पड़कर तूने अपना सब कुछ खो दिया। किंतु क्या वह वास्तव में था?"

(२)

कृष्णा बड़े स्वच्छ और शुद्ध-हृदय का युवक था। उससे मेरी बड़ी मित्रता थी। वह अपने मन की बात मुझसे कहकर अपना हृदय हलका कर लेता था। चाँदनी रात में कृष्णा और हम इसी पत्थर के गुंबज पर कभी-कभी आकर बैठते भी थे।

कृष्णा अपनी प्रेम-कहानी सुनाता। मैं चुपचाप बैठकर सुनता। कृष्णा का प्रेम हीरा से कब आरंभ हुआ था, यह तो मालूम न था। किंतु जिन दिनों कृष्णा उसके प्रेम में पागल था, उस समय मुझसे नित्य अपने हृदयोद्गार प्रकट किया करता था।

उसने पहलेपहल अपनी कहानी इस तरह कही—"देखो, जीवन! तुम मुझसे प्रायः मेरी उदासीनता का कारण पूछा करते हो। मुझे यों तो संसार में किसी प्रकार का कष्ट नहीं; किंतु फिर भी मैं दुःखी रहता हूँ। मैंने जान-बूझकर अपना जीवन दुःखमय बना लिया है। अब मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। तुमसे कभी-कभी मिल लेता हूँ। नहीं तो मुझे किसी से मिलना तक पसंद नहीं।"

इतना कहकर वह विचारों में लीन हो गया। मैं चुपचाप उसकी ओर देख रहा था।

वह फिर कहने लगा—"मैं हीरा को कितना चाहता हूँ, यह मैं किन शब्दों में प्रकट करूँ। मगर हाँ, इतना मैं कह सकता हूँ कि संसार के सब सुखों को मैं उसके लिये त्याग सकता हूँ। किंतु मेरा अभाग्य! उसका मिलना बड़ा कठिन है। फिर भी मैं न-जाने क्यों उसकी ही चिंतना में अपना सारा समय बिता देता हूँ।"

मैंने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—"वह कौन है?"

कृष्णा ने कहा—"जीवन! वह मेरे हृदय-मंदिर की देवी है। यहीं रहती है। उसकी सुंदरता विचित्र है। आँखों में तो उसकी जादू भरा हुआ है। अच्छा, कभी तुम्हें दिखला दूँगा।"

मैंने पूछा—क्या उसका विवाह हो गया है?

कृष्णा ने कहा—हाँ, उसका विवाह तो हो गया है, परंतु नहीं के बराबर है; क्योंकि वह विधवा है।

मैंने कहा—तब तो तुम अन्याय करते हो।

कृष्णा ने कहा—परंतु मैं तो उसके साथ ब्याह करने के लिये प्रस्तुत हूँ।

मैंने कहा—तब तो तुम पूरे रिफ़ार्मर हो!

कृष्णा ने गंभीर होकर कहा—यह तुम्हारे हँसने की बात नहीं है जीवन! मैं उसे केवल विलास के लिये नहीं चाहता। तुम मेरे साथ दिल्लगी करते हो। किंतु मेरे ऊपर जो बीत रही है, वह मैं ही जानता हूँ। तुम उस दर्द को क्या जानो?

मैंने कहा—अच्छा, हीरा से तुमसे मुलाक़ात कैसे हुई?

उसने कहा—हीरा के मकान के सामने मेरे एक संबंधी रहते हैं। महीने-दो महीने में जब मैं किसी काम से उनके

वहाँ जाता हूँ, तब उससे दो-चार बातें बड़ी कठिनाई से हो जाती हैं। कारण, उसकी बड़ी देखरेख रहती है। मैं नित्य उसी रास्ते से जाता हूँ, और एक बार उसका दर्शन मिल जाता है। उस दिन जब मैं गया था, तो उसने एक दोहा लिखकर फेंक दिया था, जो दिन-रात मुझे चुभा करता है—

हम पंछी परबत बसे, बिके पराए हाथ।
हाड़-माँस कतहूँ रहैं, प्रान तुम्हारे साथ।

कृष्णा ने इतनी करुण वाणी में यह दोहा पढ़ा कि ज्ञात होता था, इसका एक-एक अक्षर उसके मर्मस्थल पर अंकित है। मेरे हृदय में भी यह चुभा, और उसी दिन से हीरा के साथ मेरी सहानुभूति हो गई।

(३)

संध्या का समय था। सूर्य बादलों की जालो से झाँककर कभी-कभी चोरी से देख लेता था।

उस दिन बहुत दिनों के बाद कृष्णा मिला था।

मैंने कहा—क्यों? मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की?

आज उसके चेहरे पर बड़ी उदासी थी। उसने कहा—हाँ भई, आजकल बड़ी बुरी दशा है। ख़ैर, मैंने तो अब मान लिया है कि एक-न-एक दिन कामना पूरी ही होगी।

कृष्णा एक तो यों ही दुबला-पतला था, उस पर हीरा की चिंता ने तो उसकी रंगत ही एकदम बदल दी।

उसने कहा—कहीं घूमने चलते हो?

मैंने कहा—चलो।

चलते-चलते एक स्थान पर वह रुका, वह खड़ा हो गया, और बड़ी आतुरता से एक ओर देखने लगा।

मैंने देखा—सामनेवाले मकान में एक स्त्री है। उसकी अवस्था २० वर्ष की होगी। उसके अंग-प्रत्यंग में अपूर्व लावण्य झलक रहा है। वह कृष्णा की तरफ़ तृषित नेत्रों से देख रही है।

कृष्णा ने वहाँ से आगे बढ़ते हुए धीरे से कहा—देखो, यही मेरी जीवन-स्वामिनी है।

मैं चुपचाप चला आ रहा था। मन में बार-बार हीरा और कृष्णा के प्रेम पर करुणा उत्पन्न हो रही थी। बेचारे एक दूसरे के लिये कितने दुःखी हैं!

उस दिन फिर कृष्णा अपने घर चला गया। मैं भी अपने घर चला आया।

इसी तरह कई मास बीत गए। हम दोनों प्रायः मिलते, और कभी-कभी दूर से हीरा को देखने के लिये भी जाते। हीरा मुझे भी अच्छी तरह पहचान गई कि मैं कृष्णा का मित्र हूँ।



"देखो, यही मेरी जीवन-स्वामिनी है।"

एक दिन मैं कृष्णा के घर गया। कृष्णा अपने कमरे में एक कुरसी पर बैठा था। मैं भी उसके पास बैठ गया। उसने कहा—आज अच्छे मौक़े पर आए। लो, तुम्हारे लिये भेंट आई है।

मैंने कहा—कहाँ से ?

उसने दो बंडल मेरे हाथ में रख दिए। उसमें हाथ के बनाए हुए दो सुंदर रूमाल थे, और साथमें एक पत्र। एकरूमाल पर लिखा था—"प्राणनाथ", और दूसरे पर कुछ नहीं।

कृष्णा ने कहा—पत्र पढ़ो, तब सब हाल मालूम होगा।

पत्र में लिखा था—

"प्राणेश, मैं आपके दर्शनों के लिये दिन-रात विकल रहती हूँ। मेरी दशा दिन-पर-दिन बिगड़ती जाती है। घर का कुछ काम-काज भी नहीं कर पाती हूँ। मैं आपकी सेवा के लिये सब तरह से तैयार हूँ, आपकी दासी हूँ। विवाह होना तो असंभव है; क्योंकि मेरे पिता यह कभी न स्वीकार करेंगे। किंतु मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ। अब जैसा आप कहें, मैं करूँ। हाथ के बने हुए दो रूमाल भेजती हूँ—एक आपके लिये, दूसरा आपके मित्र के लिये। स्वीकार हो।

आपकी दासी,

हीरा।"

पत्र पढ़कर मैं कृष्णा की तरफ़ देखने लगा।

कृष्णा ने कहा—देखो जीवन, मैं इस तरह हीरा को घर से निकालकर बाहर नहीं हो जाना चाहता। इसमें बदनामी है; उसको कलंकित करना है। समाज में उसका मान न रह जायगा। हाँ, यदि विवाह हो जाता, तो मैं उसे प्रसन्नता-पूर्वक ग्रहण करता। किंतु हीरा के पिता कट्टर सनातनधर्मी हैं, वह विवाह करना स्वीकार न करेंगे। ख़ैर, अब मैं अपना जीवन किसी तरह निराशा में ही व्यतीत करूँगा। हाय! उसके बिना कैसे रहूँगा? अब नहीं सहा जाता उसका वियोग।

मैंने देखा, विचित्र परिस्थिति है। कृष्णा न तो हीरा के ध्यान को हटा सकता है, न उसे ग्रहण ही कर सकता है!

मैंने कहा—कृष्णा! हीरा का विचार त्याग दो। इसी में तुम्हें सुख है।

कृष्णा ने कहा—तुम मेरी पीड़ा नहीं जानते। तुमने कभी ऐसा दर्द नहीं पाया है, इसीलिये ऐसा कहते हो। मेरे जीवन का अंत हो जाय; पर मैं हीरा को नहीं भूल सकता।

मैंने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया; क्योंकि मैं जानता था कि प्रेम का उन्माद बड़ा भयंकर होता है।

(४)

दिन बीतने लगे। प्रेम-चिंता से ज्यों-ज्यों कृष्णा का शरीर दुर्बल होता गया, त्यों-त्यों हीरा को समाज के कलंक से बचाए रखने का विचार उसके मन में दृढ़ होता गया। परंतु वह दृढ़ता मृत्यु के आघात को सहन करने के लिये पर्याप्त न थी।

देखते-देखते कृष्णा को क्षय-रोग हो गया। मृत्यु के पंजे से कृष्णा न बच सका। वह सहसा भरी-जवानी में चल बसा!

बरसात के बाद यही शरद्-पूर्णिमा थी। उस दिन लोग भागीरथी को दिए जलाकर चढ़ा रहे थे। हमने कृष्णा की सुकुमार देह जलाकर भागीरथी को उत्सर्ग कर दिया। अपने गर्म-गर्म आँसुओं को भागीरथी के शीतल जल में मिलाकर हम घर लौट आए!

तब से आज ७ वर्ष हो गए। वही स्मृति आज भी हृदय में नाच रही है। पूर्ण चंद्र के प्रकाश में, उस घटना का रेखा-चित्र आकाश के नील-पट पर अभी हमारे नेत्रों के सामने है। एक वह पूर्णिमा थी, जिस दिन कृष्णा ने अपनी प्रेम-कहानी सुनाई थी; दूसरी वह, जिस दिन उस कहानी का सदा के लिये अंत हो गया। तीसरी पूर्णिमा आज है, जब उसकी स्मृति-मात्र रह गई है!

मैं बैठा हुआ यही सोच रहा था। सोचते-सोचते मेरी समाधि भंग हुई। सामने देखा, एक मलिन-वेषधारी रमणी दीन भाव से खड़ी है। उसकी गोद में तीन वर्ष का एक बालक है। केश बिखरे हुए हैं, जवानी ढल रही है। उसके नेत्रों से ज्ञात होता था कि वह किसी अच्छे घर की है। मेरे सामने वह पत्थर की प्रतिमा की तरह खड़ी-खड़ी मेरी विचार-समाधि टूटने की प्रतीक्षा कर रही थी।

मैं उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगा। उसने काँपते हुए स्वर में कहा—"मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ।" इतना कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू छलछला आए। मुझे बड़ा कौतूहल हुआ।

मैंने कहा—तुम्हें क्या कहना है? कहो।

उसने कहा—मैं बड़ी दुःखी हूँ। संसार में मेरा कोई नहीं है, अपनी क़िस्मत को रोती हूँ। आज बहुत साहस

करके घर से निकली हूँ, और वह भी इसीलिये कि गंगा मैया के तट पर कोई सहायक मिल जाय।

मैंने समझा, यह कोई भिखारिणी है, मुझसे बातें बना रही है। उसी समय चंद्रदेव के उज्ज्वल प्रकाश में उसका मुख चमक पड़ा, और मुझे वह परिचित-सी जान पड़ी। सोचने लगा—इसे मैंने कहीं देखा है। कहाँ देखा है?—ध्यान नहीं।

क्षण-भर में मेरा उसके ऊपर विश्वास हो गया। मैंने कहा—मुझसे किस प्रकार की सहायता तुम चाहती हो? कहो।

मेरी सहानुभूति से उसका हृदय उमड़ पड़ा। उसने कहा—मेरे पति मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं, मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। हाय! मैं किससे अपना दुःख कहूँ?

मैंने कहा—चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। जहाँ तक मुझसे हो सकेगा, तुम्हारी सहायता करूँगा।

मैं उसके घर पहुँचा। उस समय एक पुरुष, जिसकी अवस्था तीस वर्ष की होगी, एक शय्या पर पड़ा था। ज्ञात होता था कि बहुत दिनों से वह रोग-ग्रस्त है। शरीर एकदम पीला पड़ गया था, हड्डी-हड्डी दिखलाई देती थी। उसकी अंतिम साँस चल रही थी। वह बोल नहीं सकता था। कभी-कभी आँखें खोलकर वह उस बालक की तरफ़ देखता और फिर आँखें बंद कर लेता था।

देखते-देखते उसके प्राण-पखेरू उड़ गए!

वह स्त्री विलाप करने लगी—"ईश्वर! मुझे संसार में दुःख ही भोगना लिखा है। हाय! मुझे तुमने क्यों उत्पन्न किया! मैं पतित हुई, पतित होने में मैंने सुख समझा। पर मैं तो दीन-दुनिया, दोनों से गई। समाज से बहिष्कृत हूँ। मुझ अनाथिनी का अब कोई अवलंब नहीं!"

मैं उसकी सब बातें सुन रहा था। मेरा कौतूहल बढ़ता ही गया। उसका पूर्ण वृत्तांत जानने की अभिलाषा प्रबल हो उठी। एकाएक मुझे कृष्णा और हीरा का स्मरण हो आया। हीरा का कुछ पता नहीं था। कृष्णा की मृत्यु के बाद मैंने समझा कि हीरा की खोज-ख़बर लूँ। परंतु साहस न हुआ। मुझे अपने चरित्र पर संदेह हो रहा था, और अपनी निर्बलता को मैं भली भाँति जानता था। इसलिये मैं उससे अलग ही रहना चाहता था।

यदि समाज ने ऐसी ही कठोरता उसके साथ भी की हो, यदि वह भी इसी स्त्री के समान अवलंब-विहीन हो ठोकरें खा रही हो, तो क्या कृष्णा की मित्रता के कारण हीरा के प्रति मेरा कोई कर्तव्य नहीं है? मैं चिंता-मग्न हो गया।

अकस्मात् अभागिनी विधवा की रोदन-ध्वनि तीव्र हो गई। वह तीन वर्ष के बच्चे को गोद में लेकर, छाती पीट-पीटकर रोने लगी।

मैंने उसे समझाया। कहा—देवी, इस संसार की यही लीला है। जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु भी होती है। एक-न-एक दिन सभी इस संसार से बिदाई ले लेते हैं। धीरज धरो, ईश्वर सबका सहायक है। क्या तुम्हारे कोई संबंधी इत्यादि नहीं हैं?

उस स्त्री ने बड़े ही कातर स्वर में कहा—नहीं, मैं समाज से निकाली हुई हूँ, पतित हूँ! प्रेम के कारण मैंने समाज को छोड़ा, घर छोड़ा, जीवन का सब सुख छोड़ा। वह एक जवानी का तूफ़ान था, जिसके कारण मैं आज इस दशा को पहुँची। मैं विधवा थी। घर छोड़कर इन्हीं के साथ निकल पड़ी। आज ६ वर्ष से कुछ अधिक हो गए। धन-दौलत सब नष्ट हो गया। यह प्रायः बीमार ही रहने लगे। सब काम-काज छुट गया। आज यह दशा है।

मैंने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। कारण, मृतक शरीर की अंतिम क्रिया शेष थी।

मैंने शीघ्र प्रबंध कर लिया। उस अज्ञात युवक के शव को लेकर मैं श्मशान पर गया।

चिता जलने लगी। देखते-देखते शरीर राख हो गया।

मैं बड़ा दुःखी हो रहा था संसार की इस अनित्यता पर। दुनिया से निराशा और घृणा हो रही थी। कृष्णा की स्मृति और इस विधवा की दुर्दशा की तुलना करते-करते मेरे आँसू बहने लगे।

स्त्री ने मुझे रोते देखकर कहा—आप क्यों रो रहे हैं?

वह भी रो रही थी; परंतु उसे मेरे रोने पर आश्चर्य था।

मैंने कहा—मैं आज दूसरी बार श्मशान पर आया हूँ। एक बार अपने प्यारे मित्र कृष्णा के शव को भी मैं इसी स्थान पर फूँक चुका हूँ। उसी की स्मृति मुझे रुला रही है।

कृष्णा का नाम सुनकर वह चौंक पड़ी। उसकी कुछ दशा ही बदल गई।

एक ठंडी आह भरकर उसने कहा—हाय ! मेरे ही कारण उनकी मृत्यु हुई । हे ईश्वर ! मुझे बचाओ, मैं बड़ी पापिनी हूँ—अभागिनी हूँ ।

मैं उसकी तरफ़ स्तब्ध होकर देखने लगा, यह हीरा तो नहीं है ? किंतु हीरा में और इसमें बड़ा अंतर है । न वह रूप है, न वे आँखें ! फिर भी अपना कौतूहल मिटाने के लिये मैंने उससे पूछा—"तुम्हारा नाम हीरा तो नहीं है ?"

उसने आश्चर्य-चकित होकर कहा—जीहाँ, यह अभागिनी हीरा ही है । और, आप — ?

मैंने कहा—मैं हूँ कृष्णा का मित्र जीवन ।

मेरा नाम सुनकर वह लज्जा और संकोच से ज़मीन में गड़ गई । उसके मुँह से निकला—"हे हरि, अब मेरा अंत कर दो ।"

मैंने बालक को गोद में लेकर कहा—मेरे लिये अब यही कृष्णा है । तुम घबड़ाओ मत, मैं अभी जीवित हूँ । कृष्णा के नाम पर मैं तुम्हारी मदद करूँगा । मुझे विश्वास है, वह निर्मल प्रेमी आत्मा जहाँ कहीं होगा, प्रसन्न होगा ।

हीरा का कंठ रुँधने लगा । वह बैठ गई । उसकी गड्ढों में धँसी हुई आँखों से अश्रु-धारा बह रही थी ।

वह दुःखिनी हीरा मेरे चरणों पर गिर पड़ी । बालक गोद में था । शरत्पूर्णिमा के अस्त होनेवाले चंद्रमंडल से जैसे कृष्णा की मूर्ति झाँक रही थी ।

विनोदशंकर व्यास



मेरे लिये अब यही कृष्णा है

शिक्षा का माध्यम और मध्य-प्रदेश का अनुभव

(४)

परिवर्तन का प्रभाव

पिछले लेखों में यह बतलाया गया है कि प्रत्येक हाई स्कूल में एक-एक सेक्शन अँगरेज़ी माध्यमवालों के लिये रक्खा गया था, और शेष खंड देशी माध्यमवालों के लिये । अँगरेज़ी माध्यम लेनेवालों में महाराष्ट्र, बंगाली, पारसी, गुजराती आदि अन्य प्रदेशों से आए हुए लोगों के बच्चे रक्खे गए ।

संख्या पूरी करने के लिये कुछ अन्य विद्यार्थी भी रख दिए गए। विशेषकर सरकारी मुलाज़िमों के लड़के । कारण, इनके पालकों की कभी हिंदी और कभी मराठी-ज़िलों में तैनाती होती है। इसलिये यदि वे हिंदी-माध्यम लें, तो मराठी-ज़िलों में आने पर कठिनाई हो । अँगरेज़ी-माध्यम तो कहीं भी मिल सकता है। इन कारणों से अँगरेज़ी-माध्यम लेनेवालों में उन लोगों की संख्या अधिक रहती है, जिनमें शिक्षा का प्रभाव अधिक है, जिनके पूर्वज साहसी थे । दूसरा कारण देश छोड़ परदेश आए। जो अपने माता-पिता के साथ अन्य प्रांतों में रह आए हैं, ऐसे लोगों के घर में 'कल्चर' की मात्रा अधिक रहना स्वाभाविक ही है। इसके विपरीत हिंदी-माध्यम के खंडों में बहुधा ऐसे विद्यार्थी अधिक गए, जिनको एक प्रकार के 'कूप-मंडूक' कहना अनुचित न होगा । एक समय एक हिंदी-माध्यम खंड में पूछ-ताँछ करने से मालूम हुआ कि तीस विद्यार्थियों में से केवल दो ऐसे हैं, जिन्होंने प्रयाग तक यात्रा कर गंगा-दर्शन किए हैं । एक या दो ऐसे भी निकले, जो कलकत्ता या बंबई देख आए थे। शेष मध्य-प्रदेश के बाहर नहीं गए थे । मध्य-प्रदेश की बात तो दूर रही, आसपास के किसी ज़िले में हो आए, तो मानो काबुल जीत आए थे ।

घर के वातावरण तथा पर्यटन का प्रभाव मानसिक शक्ति पर बहुत पड़ता है, विशेषकर कुमार-अवस्था में, अर्थात् १४ वर्ष से लेकर १८ वर्ष की अवस्था में । यह बहुधा देखने में आया है कि अच्छी परिस्थिति के बालक पहले तो मंदबुद्धि देख पड़ते हैं ; पर कुमार-अवस्था को प्राप्त होते ही उनकी बुद्धि में विचित्र विकास होने लगता है, और उनकी उन्नति घुड़दौड़ की तेज़ी की तरह होने लगती है । ऊपर लिख आए हैं कि अच्छी परिस्थिति के बालक बहुधा अँगरेज़ी-माध्यम लेते हैं, और यदि उनकी कुमार-अवस्था में कुछ विशेष उन्नति हो, तो माध्यम को यश देना ठीक न होगा । यदि होड़ाहोड़ में घर की परिस्थिति अनुकूल न होने से हिंदी-माध्यमवाले कुछ पीछे भी पड़ जायँ, तो माध्यम को दोष नहीं दे सकते ।

इस प्रदेश में देखने में आया है कि हिंदी-भाषा-भाषी मिडिल स्कूल में अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं देख पड़ते , ऊँचे नंबर मज़े में ले आते हैं । परंतु हाई स्कूलों में कुमार-अवस्था पर पहुँचने पर, घर की परिस्थिति उतनी अनुकूल न होने के कारण, अन्य भाषा-भाषियों की अपेक्षा पीछे पड़ने लगते हैं। कॉलेजों में घर की परिस्थिति का प्रभाव और भी विशेष पड़ता है । यदि माध्यम के बारे में पक्षपात-रहित विचार करना हो, तो इन सब बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है ।

दोनों माध्यमों की परस्पर तुलना करने का अच्छा अवकाश मॉडल हाई स्कूल, जबलपुर में, जहाँ दोनों माध्यम के विद्यार्थी पढ़ते हैं, गत चार वर्षों में मुझे मिला । जितने विद्यार्थी भरती हुए, मैंने उनके तीन विभाग, योग्यता के अनुसार, किए । अर्थात् प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के विद्यार्थी । प्रत्येक श्रेणी के विद्यार्थियों की उन्नति के अलग-अलग ग्राफ़ तैयार कराए गए । जहाँ तक बन सका, एक ही शिक्षक को दोनों माध्यमों की कक्षाएँ और उनके एक ही विषय दिए । कारण, भिन्न-भिन्न शिक्षकों की योग्यता भिन्न-भिन्न होने से उन्नति की तुलना करना कठिन होता । दो साल के अवलोकन के उपरांत जो ग्राफ़ तैयार कराए गए, उनसे निम्नलिखित सार निकले—

(१) अँगरेज़ी के अभ्यास में देखा गया कि प्रथम श्रेणी के विद्यार्थी के अभ्यास में माध्यम का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता । दोनों माध्यमवाले प्रायः एक-सी उन्नति दिखलाते हैं । द्वितीय श्रेणी के विद्यार्थियों में यह देखा गया कि हिंदी-माध्यमवाले १६-२१ की कमी दिखलाते हैं । उनकी हीनता कुछ विशेष ध्यान देने पर ही दृष्टिगोचर होती है । परंतु तृतीय श्रेणी के विद्यार्थी अँगरेज़ी में अधिक कमज़ोर पाए गए ।

(२) साइंस और गणित में प्रथम और दूसरी श्रेणी के विद्यार्थियों का अभ्यास प्रायः समानांतर रहा । पर तृतीय श्रेणी में हिंदी-माध्यमवाले विशेष उन्नति दिखला गए ।

(३) भूगोल और इतिहास में हिंदी-माध्यम के प्रत्येक वर्ग के विद्यार्थी अँगरेज़ी-माध्यम के समान वर्ग के विद्यार्थियों से अधिक उन्नति दिखला गए ।

(४) संस्कृत में हिंदी-माध्यमवालों की उन्नति बहुत ही ज़्यादा हुई ।

मतलब यह कि अँगरेज़ी को छोड़ बाक़ी सब विषयों में कमज़ोर विद्यार्थी हिंदी-माध्यम लेकर अधिक उन्नति दिखला गए। प्रथम और द्वितीय श्रेणी के विद्यार्थियों पर माध्यम का प्रभाव बहुत कम पड़ता है ।

तीन साल के उपरांत प्रत्येक विद्यार्थी का कार्य और

भी वर्षों की मे देखने पर मालूम हुआ कि शिक्षित (अँगरेज़ी में) कुटुंबों के विद्यार्थी अँगरेज़ी में आप-से-आप अच्छी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, चाहे वे कोई भी माध्यम लें। पर ऐसे बालक, जिनके घरों में अँगरेज़ी की चर्चा नहीं है, दोनों माध्यमों की कक्षाओं में प्रायः एक-सी ही उन्नति दिखलाते हैं। मैंने तो यह अदाज़ किया कि माध्यम कोई कुछ भी ले, अँगरेज़ी की उन्नति घर के वातावरण के अनुसार होती है न कि माध्यम के अनुसार। यदि मेरा अवलोकन ठीक है, तो जो लोग यह पुकार मचाते हैं कि माध्यम बदलने से अँगरेज़ी की योग्यता कम हो जायगी, वे निरे भ्रम में हैं।

उपर्युक्त निर्णय परीक्षा-पत्रों के आधार पर किया गया है। मुझे गत चार वर्षों में अनेक जगह भिन्न-भिन्न विषयों पर, दोनों माध्यमों द्वारा, पाठ देने और देखने के मौक़े मिले हैं। यदि शिक्षा का अभिप्राय यह माना जाय कि मानसिक विकास हो, विचार-शक्ति जाग्रत हो, विद्यार्थी केवल पढ़े ही नहीं, पर कुछ गुने भी, जो कुछ देखे, उसे जाँचे भी, बात तौल-तौलकर कहे, तो इसमें कोई शक नहीं कि मातृभाषा का माध्यम कहीं बढ़कर है। शर्त यही कि शिक्षक भी मातृभाषा अच्छी तरह जानता हो। देशी माध्यम होने से बुद्धि जाग्रत होती है; जो बतलाया जाता है, उस पर धड़ाधड़ प्रश्न होने लगते हैं, तथ्यातथ्य का निर्णय शीघ्र और उत्तम रीति से होता है; बालकों में एक नए प्रकार का जीवन देख पड़ने लगता है।

परंतु परीक्षा में इस जागृति का प्रभाव कम देख सकते हैं। कारण, अँगरेज़ी लिखने में समय कम लगता है; प्रायः सब अक्षर गोल या वर्तुलाकार होने से क़लम सपाटे से दौड़ती है। उधर हिंदी में प्रायः सब अक्षर सरल, आड़ी और लंब-रूप रेखाओं से बनते हैं। बार-बार क़लम का धारा-प्रवाह रुकता है। फिर मात्रा अनुस्वार आदि के लिये क़लम उठानी पड़ती है। इन कारणों से हिंदी-लेखक धीरे-धीरे लिखता है। उसकी गति कछुए के समान होती है। परीक्षाओं में नियत समय में नियत प्रश्नों का उत्तर शीघ्रता से देना होता है। इसमें खरगोश-रूपी अँगरेज़ी लेखक आगे निकल जाता है, और बेचारा मंद-गतिगामी हिंदी-लेखक पीछे पड़ जाता है। मैंने अनेकों बार दोनों माध्यमवालों के एक-एक प्रश्न के उत्तरों की तुलना की, तो मालूम हुआ कि हिंदी-माध्यमवालों के उत्तर सवाल-दर-सवाल अच्छे हैं; पर जब टोटल करने बैठे, तो कम। कारण यही कि नियत समय में कम प्रश्नों के उत्तर लिखे गए। अतएव हिंदी-प्रेमियों का लक्ष्य इस ओर आकर्षित करने की ज़रूरत है। हिंदी-वर्णमाला बाँचनेवालों के लिये उत्तम है; पर अधिक लिखनेवालों के लिये क्या सरल एवं शीघ्र-लिपि तैयार नहीं हो सकती?

फिर यह भी देखने में आया कि जो बात अँगरेज़ी में थोड़े शब्दों में कही जा सकती है, उसी को हिंदी में कहने में सवाए-ड्योढ़े शब्द लगते हैं। अनुवादकों का भी यही अनुभव है कि किसी भी अँगरेज़ी-पुस्तक का पूरा पूरा अनुवाद करने में इतनी ही अर्थात् सवाई-ड्योढ़ी जगह अधिक लगती है। जैसे-जैसे हिंदी का विकास होगा, उसमें क्षमता अधिक आवेगी, और यह कठिनाई धीरे-धीरे निकल जायगी। परंतु दोनों माध्यमों की उपयोगिता की तुलना करते समय लोगों को यह न भूल जाना चाहिए कि एक तो हिंदी-अक्षर धीरे लिखे जाते हैं और फिर बात पूरे तौर पर लिखने के लिये हिंदी में अधिक शब्दों की आवश्यकता होती है। इसी कारण परीक्षाओं के फल द्वारा माध्यमों की परस्पर उपयोगिता लक्ष्य में पूर्णतः नहीं आ सकती।

एक बात का ध्यान रखना और भी आवश्यक है। वह यह कि अँगरेज़ी में एक-से-एक बढ़कर उत्तम, उपयोगी पुस्तकें हर साल प्रकाशित होती हैं। उनकी बिक्री अधिक होती है। इसलिये प्रकाशक लोग पुरस्कार अच्छा देकर अच्छे विद्वानों से लिखा सकते हैं। हिंदी के केवल एक प्रदेश ही में माध्यम बदला है। वह भी एक खिचड़ी प्रदेश में। इस कारण हिंदी-पुस्तकों की बिक्री बहुत कम है। प्रकाशक क्या लेखकों को दे सकते हैं, और क्या मुनाफ़ा उठा सकते हैं? जब तक पुरस्कार अच्छा न मिलेगा, तब तक अच्छे लेखक किस बिरते पर क़लम उठावेंगे? उस पर भी राय साहब द्विवेदी का भारतवर्ष का इतिहास, लेले और राजवाड़े की बनाई हुई गणित तथा संस्कृत-शिक्षा, पांडेय और बाजपेयीजी का भूगोल आदि मिडिल स्कूलों के लिये उत्तम पुस्तकें तैयार होकर छप गई हैं। परंतु मुझे पूर्ण निश्चय है कि बिक्री कम होने से बेचारे लेखकों को अपनी योग्यता का उचित पुरस्कार भी न मिला होगा। मराठी-भाषा में तो हिंदी की अपेक्षा और भी अधिक पुस्तकें तैयार हो गई हैं।

परंतु फिर भी कई विषय ऐसे हैं कि उन पर हाई स्कूल-कक्षाओं के लिये यथायोग्य पुस्तकें नहीं तैयार हुईं। जैसे साइंस, रेखागणित, हिंदोस्तान का वैज्ञानिक भूगोल, पृथ्वी का वैज्ञानिक भूगोल, इँगलैंड का इतिहास। इनमें विद्यार्थियों को या तो अँगरेज़ी की पुस्तकों से या हिंदी की अधूरी, दूषित, अवनत रूप में लिखी हुई पुस्तकों से काम चलाना पड़ता है। इस होड़ाहोड़ में एक सवार तो अरबी घोड़े पर सवार है, और दूसरा भटियारे के टट्टू पर। यदि भटियारे का टट्टू आगे न जाकर पीछे ही लगा रहे, तो क्या उसको यश न देना चाहिए?

सन् १९२४ ई० के मार्च महीने में हिंदी, मराठी उर्दू और अँगरेज़ी-माध्यम लेनेवालों की मैट्रिक्युलेशन-परीक्षा (जिसे अब यहाँ हाई स्कूल-सर्टीफ़िकेट-परीक्षा कहते हैं) हुई। यह परीक्षा सारे प्रदेश की एक होती है। उसका फल इस प्रकार रहा—

(१) अँगरेज़ी-माध्यम लेनेवालों में ३६ फ़ी सदी पास हुए
(२) हिंदी ,, ,, ,, ३६ ,, ,, ,,
(३) मराठी ,, ,, ,, ३४ ,, ,, ,,
(४) उर्दू ,, ,, ,, २४ ,, ,, ,,

अब ज़रा विषयवार देखना चाहिए कि कैसा फल निकला।

विषय	अँगरेज़ी-माध्यम-वाले पास (फ़ी सदी)	देशी माध्यमवाले पास (फ़ी सदी)
अँगरेज़ी	७०	५६
गणित-पाटीगणित	५६	५६
,, रेखागणित	७२	७४
इतिहास (हिंदोस्तान इँगलिस्तान)	५८	५६
भूगोल	५०	७६
फ़िज़िक्स	५८	७६
केमिस्ट्री	८२	८८
संस्कृत	७७	७६

इस साल की परीक्षा से ऐसा मालूम होने लगा कि देशी माध्यमवाले अँगरेज़ी में कमज़ोर हो गए, और गणित तथा इतिहास में कुछ विशेष उन्नत न देख पड़े।

इस वर्ष प्रत्येक माध्यम का परीक्षक स्वतंत्र रूप से अपनी भाषा के पर्चे जाँचता था। संभव था, परीक्षा-फल का प्रभाव परीक्षकों की चित्त-वृत्ति के अनुसार हुआ हो। इसलिये दूसरे वर्ष ऐसा प्रबंध किया गया कि जाँचनेवालों के लिये हिदायतें तैयार की गईं, जिससे सब माध्यम के पर्चे एक ही नियमों के अनुसार जँचे। सन् १९२६ की रिपोर्ट में सेक्रेटरी, हाई-स्कूल-बोर्ड लिखते हैं कि परीक्षा-फल सब विषयों में दोनों माध्यमवालों का प्रायः एक-सा निकला। इसके माने यह कि अँगरेज़ी में भी देशी माध्यमवाले कुछ हलके न निकले। अलबत्ता परीक्षा-फलों के इस प्रकार डावाँडोल होने से कोई स्थिर सार निकालना कठिन है। परंतु इतना तो पक्का सबूत हो गया है कि हिंदी या देशी माध्यमवाले इस होड़ाहोड़ में किसी प्रकार कम नहीं निकलते; उन्हें किसी प्रकार की हानि नहीं। किंतु पहले जो बातें बतलाई गई हैं— अर्थात् उत्तम विद्यार्थियों का अँगरेज़ी माध्यम बहुतायत से लेना, इस माध्यमवालों की परिस्थिति का अधिक अनुकूल होना, पाठ्य-पुस्तकों की देशी भाषा में कमी, शिक्षकों का देशी भाषाओं का अपूर्ण ज्ञान आदि— उनके अनुसार यदि देशी भाषा का माध्यम लेनेवाले बराबरी भी कर गए, तो हमारी भी समझ में बहुत कर गए।

अभी हाल में एक और कठिनाई उत्पन्न हुई है। हाई स्कूल-बोर्ड ने यह तय किया है कि भविष्य में पर्चे केवल अँगरेज़ी में ही दिए जायँगे। इससे देशी माध्यमवालों की कठिनाई और भी बढ़ जायगी। पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि शिक्षा-विज्ञान का यह जो अटल सिद्धांत है कि शिक्षा मातृभाषा द्वारा देने से ही लाभकारी हो सकती है, वह इतना पुष्ट है कि हज़ार कठिनाइयाँ आने पर भी उसको विजय मिलेगी। जिस प्रकार कड़ी आँच देने से सोने-चाँदी के गुण अधिक प्रकट होते हैं, वैसे ही कठिनाइयाँ पड़ने से ही किसी सिद्धांत के गुण खिलेंगे।

देशी माध्यम लेनेवाले गत दो वर्षों से कॉलेज में भी पहुँच गए हैं। इंटरमीडिएट-क्लासों को पढ़ानेवाले अध्यापकों से दरियाफ़्त करने से मालूम होता है कि ये लोग अँगरेज़ी-माध्यम द्वारा पढ़े हुए विद्यार्थियों की अपेक्षा किसी प्रकार पीछे नहीं रहते। विद्यार्थियों का भी कहना यही है कि उन्हें कॉलेज में माध्यम बदलने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

बड़े हर्ष की बात है कि संयुक्त-प्रांत तथा बिहार में भी शिक्षा का माध्यम बदलनेवाला है। यदि तीनों

प्रदेशों के अधिकारी संगठित कार्य करें, तो शीघ्र ही उत्तम प्रकार की पुस्तकें तैयार हो जायँगी, और उनका उपयोग तीनों प्रदेशों में होने से ग्रंथकर्ताओं तथा प्रकाशकों को परिश्रम का उचित फल भी मिलने लगेगा। मध्य-प्रदेश एक खिचड़ी प्रदेश है। यहाँ देशी माध्यम चलाने में अनेक कठिनाइयाँ पड़ी हैं। संयुक्त-प्रांत तथा बिहार में उतनी न होंगी, और उन्हें मध्य-प्रदेश के अनुभव भी प्राप्त हो सकेंगे।

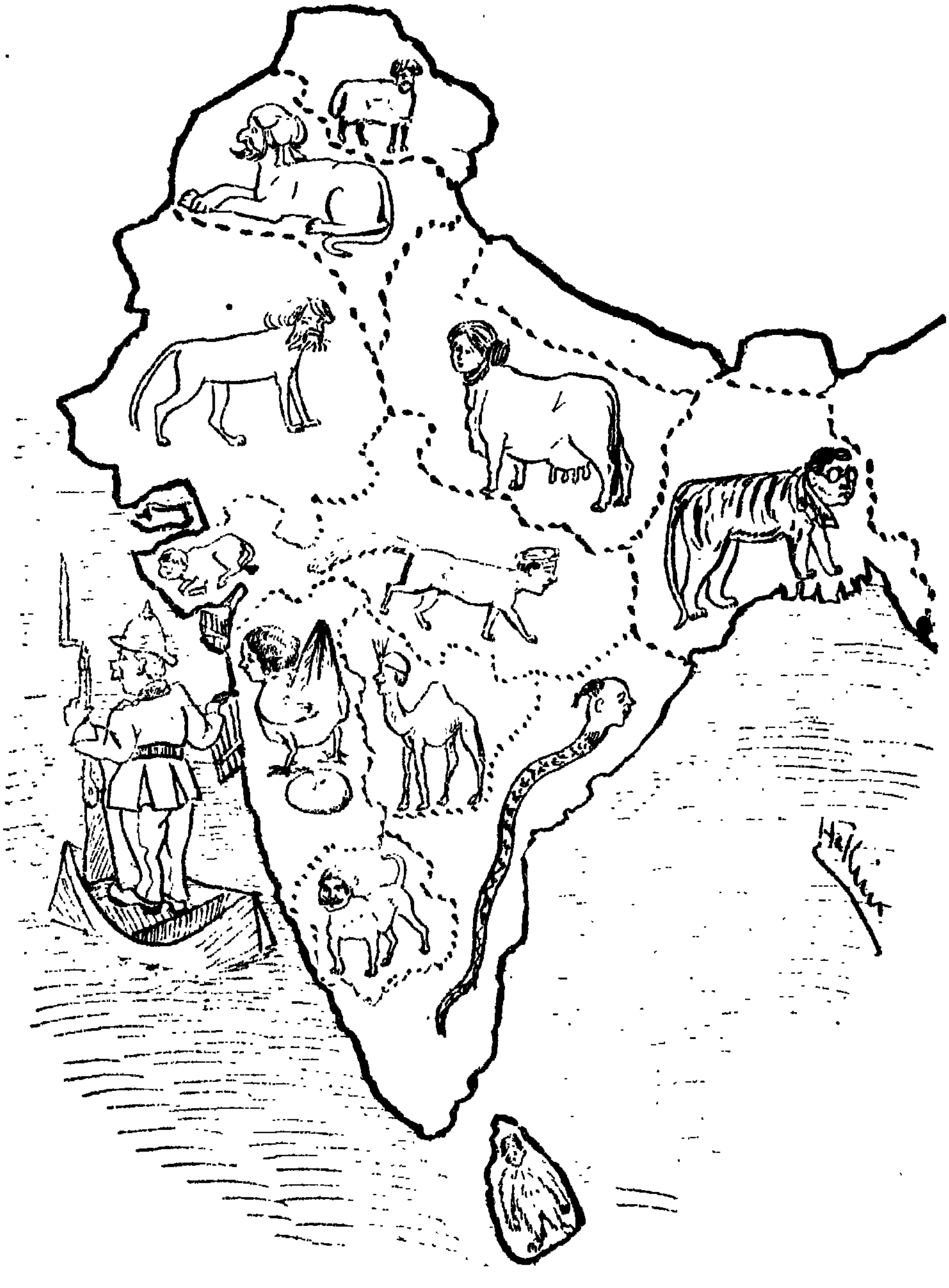
लज्जाशंकर झा

निर्दय माली !

कितनी कच्ची, कितनी अविकच, थी कितनी भोली-भाली !
कोमल कलिका कर्कश कर से क्यों मल डाली, ऐ माली ?
मत्त मिलिंदों का आलिंगन, संचित रस का सुखकर पान—
यह भी नहीं देखने पाई ; थी यह अभी निरी नादान !
था आकर्षण नहीं सुरभि का, कैसे किसे बुलाती यह ?
रूप नहीं था, रंग नहीं था, कैसे किसे लुभाती यह ?
कुछ भी नहीं देखने पाई ; क्या जीवन में कर पाई ?
जग के सुख का नाम न जाना, व्यर्थ कली जग में आई !
बन जाती जो फूल, सजाती तेरा ही प्यारा उद्यान ;
रसिकों को फिर रिझा, दिलाती तुझको ही कुछ धन का दान।
चढ़ती किंवा देव के सिर पर, या बाला के बालों में ;
सुख पाती, तेरा गुण गाती शोभित होकर थालों में।
किंतु न कुछ भी समझा-बूझा, तूने इसे मिटाया, हंत !
हुआ जन्म के पहले ही हा इसकी आशाओं का अंत !
चूम-चूमकर जिसे समीरण करता था पल-पल पर प्यार ;
खिल आने की आसपास के पत्ते करते थे मनुहार।
किंतु न जो इन सब बातों का अर्थ समझने पाती थी ;
ज़रा नहीं कहना करती थी, ज़रा नहीं मुसकाती थी।
वही कली—अलियों की आशा, वही समीरण की प्यारी ;
वही संगिनी प्रिय पत्तों की, हुई आज उनसे न्यारी !
क्यों न निकालो मन को मलकर शूल-फूल फल-पत्र अनेक ?
मिली यही असहाय तुझे ; क्यों तोड़ी, मली, और दी फेंक !
कैसे मन में निरपराध पर हाथ उठाने की आई ?
लज्जा आई नहीं, न तूने क्यों कुछ भी शंका खाई ?
विकसित रूप, रंग, रस, सौरभ—सभी किसी दिन सजती साज ;
पर तेरी निर्दयता से मिल गई धूल में कलिका आज !
क्या हँसता है ?—इतना निष्ठुर ! कैसा मानव है माली।
उस कलिका को—अपने धन को—खोकर रोती है डाली ?
केवल डाली नहीं—भूमि भी, नभ भी व्यथित, प्रकृति भी मूक ;
रोते हैं मन-ही-मन तरु भी, उठती है हृदयों में हूक।
तेरा तो यह खेल हो गया, हुआ किसी का जीवन-नाश ;
शोभा-हीन हुए ये पल्लव, प्रेमी अलि हो गए हताश।

जगन्नाथप्रसाद खत्री "मिलिंद"

अजायबघर





[स्वरकार और शब्दकार—संगीत श्रीयुत विश्वंभरसहाय "व्याकुल"]

ठुमरी बिहाग—तीन ताल

बोल :

श्याम चुनरिया मोरि फारी ।
तोरी गगरिया,
दीन्हीं गारी ।
व्याकुल तेरो मोहन निरखनि
रार करत है अनारी, मुरारी ।

स्थायी

२				०				३				×			
—	नी	ध	सां	नी	ध	म	प	प	ग	—	म	सा	नि	सा	—
—	श्या	म	चु	न	रि	या	—	—	मो	—	रि	फा	—	री	—
—	सा	ग	म	प	म	प	—	—	नी	—	सां	नी	ध	नी	ध
—	तो	री	ग	ग	रि	या	—	—	दी	—	न्हीं	गा	—	री	—

अन्तरा

प	नी	ध	सां	ग	ग	प	पध	निसां	रां	—	—	रें	सां	नि	ध
—	श्या	म	चु	व्या	कु	ल	ते-	--	रो	—	—	मो	ह	न	नि
प	ध	नी	—	म	—	ग	म	प	प	नी	सां	नी	—	प	—
र	ख	नि	—	रा	—	र	क	र	त	है	अ	ना	—	री	—
सां	नी	ध	सां	नी	ध	म	प	प	ग	—	म	सा	नि	सा	—
मु	रा	री	चु	न	रि	या	—	—	मो	—	रि	फा	—	री	—

स्वर-लिपि के संकेत

(स्वर)

१· जिन स्वरों के नीचे बिंदु हो, वे मंद्र-सप्तक के, जिनमें कोई बिंदु न हो, वे मध्य-सप्तक के, तथा जिनके शीर्ष में बिंदु हो, वे तार-सप्तक के समझे जायँ। जैसे—सा, सा, सां।

२· जिन स्वरों के नीचे लकीर हो, उन्हें कोमल समझिए। जैसे—रे, गा, धा, नि। जिनमें कोई चिह्न न हो, वे तीव्र हैं। जैसे—रे, गा, धा, नि।

३· मध्यम-कोमल का चिह्न 'मा' और मध्यम-तीव्र का चिह्न 'मं' है।

(ताल)

१. सम का चिह्न × है, ताल के लिये अंक समझिए, और ख़ाली का द्योतक ० है।

२. ‿ इस चिह्न में जितने स्वर रहें, वे एक मात्रा में गाए या बजाए जायँगे। जैसे—सारे।

३. —यह दीर्घ मात्रा का चिह्न है। जिस स्वर या वर्ण के आगे यह चिह्न हो, उसे एक मात्रा-काल तक अधिक गाइए या बजाइए।



१. सर पुरुषोत्तमदास-ठाकुरदास

हरएक देश में, हर समय में, धुरंधर राजनीतिज्ञ व्यक्तियों में गिने जाने-वाला एक विशेष समुदाय रहता है। इस समुदाय में सिद्धांतों के अनुसार अलग-अलग पार्टियाँ रहती हैं। हमारे देश में भी इस प्रकार के भिन्न-भिन्न सिद्धांतों के राजनीतिज्ञ व्यक्तियों की पार्टियाँ मौजूद हैं। सर्वसाधारण पर भी इन पार्टियों का प्रभाव पड़ता रहता है। जनता का बड़ा हिस्सा ऐसा होता है, जिसे स्वतः, व्यक्तिगत रूप से, हरएक पार्टी के सिद्धांतों का सूक्ष्म रूप से मनन करने का अवसर ही नहीं मिलता। इस अवस्था में किसी भी पार्टी के विषय में यह कहना उचित नहीं कि उसके सिद्धांत ही देश के लिये लाभदायक सिद्ध होंगे, यद्यपि जिस पार्टी के सिद्धांतों में आत्मत्याग की मात्रा विशेष होती है, उसका जनता में अधिक आदरणीय होना स्वाभाविक ही है। आज ऐसे ही एक पार्टी के नेता का परिचय पाठकों को कराया जाता है। इनका शुभनाम है सर पुरुषोत्तमदास-ठाकुरदास।

आपका जन्म गुजरात-प्रांत की प्रसिद्ध मोढ-वैश्य-जाति में हुआ है। आपके घराने में व्यापार का कार्य पहले ही से होता चला आ रहा है। इस समय जिस फ़र्म के आप मालिक और संचालक हैं, उसका नाम 'मेसर्स नारायणदास-राजाराम-कंपनी' है, जो बंबई में एक बहुत ही प्रसिद्ध फ़र्म है। यह होते हुए भी आपके पिता, क़ानूनी पेशे से विशेष प्रेम होने के कारण, सालिसिटरी करते थे। पुरुषोत्तमदास ने भी बी० ए० पास करने पर उसी लाइन में आने की इच्छा की, और एल्-एल्० बी० की परीक्षा पास भी कर ली। परंतु कई कारणों से आपको क़ानूनी पेशे से अरुचि हो गई, और आप अपने पूज्य चाचा श्रीयुत व्रजभूषणदासजी के आग्रह से अपने फ़र्म ही में काम सीखने लग गए। वहाँ अपनी योग्यता के कारण आप उस फ़र्म के मुख्य संचालक भी हो गए।

जब तक आप अपने फ़र्म के कार्य-संचालन में स्वतंत्र नहीं हुए, तब तक आपने किसी भी सार्वजनिक कार्य में भाग नहीं लिया; क्योंकि आप अपने ऊपरी वृद्ध जनों की आज्ञा का पालन पूर्ण रूप से करना अपना कर्तव्य समझते थे। और, वे यह चाहते न थे कि यह सार्वजनिक कार्यों में अभी से पड़ जायँ।

सार्वजनिक जीवन में आपका सबसे पहला कार्य यह हुआ कि सन् १९११ में गुजरात-प्रांत में दुष्काल पड़ा। उस दुष्काल-संकट-निवारण के लिये एक कमेटी नियुक्त हुई। उसके मंत्री का कार्य-भार आपको सौंपा गया। उस कार्य में आपको बड़ी ही सफलता प्राप्त हुई। बंबई-नगर में नहीं, सारे गुजरात-प्रांत में आपकी योग्यता की ख्याति फैल गई।



सर पुरुषोत्तमदास-ठाकुरदास

उस साल चारे की विशेष कमी थी। दुष्काल ख़त्म हो आने पर बरसात जून-महीने की जगह आख़िर जुलाई में शुरू हुई। इससे सरकारी विभाग में भी चारे की तंगी हो गई। सरकार को भी फ़िक्र हुई; किंतु जब सरकार ने आपसे घास के लिये कहा, तो आपने सरकारी विभाग को भी काफ़ी घास दी, और अन्य दुष्काल-पीड़ित विभागों को भी बराबर सहायता पहुँचाते रहे। यही आपका पहला सार्वजनिक कार्य था, और इसमें आपको सफलता प्राप्त हुई। इससे आपका उत्साह भी बढ़ गया, और लोगों में आपकी कीर्ति भी फैलने लगी।

इसके पश्चात् १९१८-१९ में कुछ तो दुष्काल के कारण और कुछ लड़ाई के कारण, अन्न की बड़ी महँगी हुई। इस समय भी दुष्काल-पीड़ित स्थानों में सस्ता अन्न पहुँचाने का कार्य आपको ही सौंपा गया। इस कार्य में भी आपने अपनी व्यापार कुशलता द्वारा इतना कार्य किया, जितना होने की आशा नहीं थी।

लड़ाई के अवसर पर आपने वार-फ़ंड के सभासद् तथा वार-हॉस्पिटल के सभासद् की हैसियत से उत्तम कार्य किया। यह होते हुए भी, राजनीतिक क्षेत्र में, सबसे प्रथम आप बंबई की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सरकार द्वारा मनोनीत सभासद् हुए। आप कौंसिल में यद्यपि सरकार द्वारा मनोनीत थे, किंतु सरकार का अनुचित पक्ष आपने कभी नहीं लिया।

सन् १९२० में आपकी नियुक्ति रेलवे-कमीशन में हुई। उस समय सर्वसाधारण की धारणा थी कि इस कार्य में आपको सफलता न मिलेगी; क्योंकि देश के अगुआ सदा से रेलवे की व्यवस्था सरकार द्वारा होने का ही प्रतिपादन करते आ रहे थे, और सरकार इसका विरोध करती थी। ऐसे कमीशन के परिणाम की आशंका सरकार के पक्ष में आने की सहज ही थी। सर पुरुषोत्तमदास के इस कमीशन में नियुक्त होने के पश्चात् इनके कई मित्रों ने ताने भी दिए। किंतु जब कमीशन की बहुमत-रिपोर्ट, रेलवे की व्यवस्था कंपनी द्वारा न होकर सरकार द्वारा होने के पक्ष में प्रकाशित हुई, तब सब आपकी वाह-वाह करने लगे।

बात यह हुई कि कमीशन में आपने स्वतंत्र होकर कार्य किया, और भारतवर्ष के अगुआ जिस सिद्धांत को इस विषय में मानते थे, उसका समर्थन भी अच्छा किया। यह आपकी मिहनत का ही फल था कि सर्वसाधारण को यह मालूम हो गया कि रेलवे के काम में आनेवाला माल विलायत में, दूसरे देशों के माल के मुक़ाबले, जान-बूझकर बहुत अधिक महँगा ख़रीदा जाता है। इस संबंध में भारत के भूतपूर्व अर्थसचिव सर विलियम मायर ने कमीशन के सामने गवाही देते हुए सर पुरुषोत्तमदास के प्रश्नों के उत्तर में जो कुछ कहा, उससे रेलवे-संबंधी सरकारी नीति का एक प्रकार से भंडाफोड़ हो गया।

इसके पश्चात् का आपका कार्य छाँट-कमेटी का कार्य है। इस संबंध में एक विचित्र बात यह है कि सब सरकारी महकमों में ख़र्च अनाप-शनाप बढ़ गया है, और वह कम हो सकता है — यह सबसे पहले आपको सूझी। आपके यत्न से ही यह कार्य हो सका। बात यह हुई कि जिस समय आपके हृदय में यह बात पैदा हुई, उस समय कलकत्ते के योरपियन व्यापारियों के चेंबर ऑफ़ कामर्स के सभापति सर राजेंल मेंकिन बंबई में आए हुए थे। आपकी उनसे मुलाक़ात हुई। उस समय आपने अपनी दलीलों से उनको इस बात पर राज़ी कर लिया कि यदि देशी और योरपियन व्यापारी संस्थाओं का एक संयुक्त डेपुटेशन सरकार के पास इस विषय में प्रार्थना करने जाय, तो ज़रूर सफलता हो सकती है। परिणाम वैसा ही हुआ। सरकारी ख़र्च कम करनेवाली कमेटी में आपने कई एक कार्य ऐसे किए कि व्यापारी नीति जाननेवाले के सिवा किसी दूसरे का उनका समझना कठिन था। सरकार से फ़ौज का ख़र्च कम करने को तो कहा ही गया; किंतु इस विषय में आपने जो नोट लिखे हैं, वे एक गरम दल के अगुआ की नीति से भी बढ़े हुए हैं।

इसके सिवा आपके कई भाषण, जो लेजिस्लेटिव असेंबली में भिन्न-भिन्न अवसरों पर हुए हैं, बड़े ही मार्के के हैं। जो कौंसिलों का कार्य-विवरण पढ़ते हैं, उनको इनके भाषणों में विशेषता ज़रूर मालूम पड़ती है।

आप राजनीति में इतना भाग लेते हैं, परंतु व्यापारी कार्यों की ओर आपका लक्ष्य बराबर रहता है। आपकी फ़र्म रुई के व्यापार में एक पुरानी और उच्च कोटि की गिनी जाती है। आप रुई के व्यापार के विशेषज्ञ हैं, तथा व्यापारियों में आपका मान-मरतबा बहुत ऊँचा है। रुई के व्यापार का नियम बनाने तथा संचालन करने की संस्था 'ईस्ट इंडिया-कॉटन-एसोसिएशन' के आप प्रायः आरंभ ही से सभापति हैं। रुई के व्यापार पर कई बार कई प्रकार की आफ़तें आईं, किंतु प्रायः हर समय आपकी दूरदर्शिता तथा मिहनत से वे दूर हो गईं। हाल में जो करेंसी-कमीशन नियुक्त हुआ है, इसके भी आप एक सभासद् नियुक्त हुए हैं।

आपकी आयु इस समय ४५ वर्ष की है। यद्यपि आप विलायत-यात्रा के पक्षपाती हैं, तथापि बाल-विवाह के विरोधी हैं। कई बातों में समाज-सुधार के भी पक्षपाती हैं; किंतु बहुत-सी बातों में आप पुरानी रीति-नीति के ही समर्थक हैं।

बंबई के धनिकों में भी आपकी गणना प्रथम श्रेणी में है, तथा राजा और प्रजा, दोनों में आपका पूरा सम्मान है। आप राज-नियम से डरते भी हैं, अर्थात् राज-नियम के विरुद्ध होकर कोई कार्य सहसा कर डालना आप अनुचित समझते हैं।

सर पुरुषोत्तमदास के इस परिचय से पाठकों को यह एक विशेष बात मालूम होगी कि मनुष्य धनवान् होते हुए भी यह राजनीतिज्ञ हो सकता है, तथा सरकार के कार्यों की आलोचना भी कर सकता है। विशेषकर ऐसे लक्ष्मी-पुत्रों को तो आपके चरित्र से सदुपदेश शिक्षा मिलेगी, जो बेचारे 'असेसर' का डर होने से भी अपनी प्रामाणिक राय — यदि उस साहब के विरुद्ध हुई तो — प्रकट करना अदालत के नाराज़ होने का कारण मानते हैं। उन बेचारों को तो रायसाहब बनने में भी अपने हृदय को कुचलना पड़ता है; पर आप सरकार के कार्यों की आलोचना और लाखों-करोड़ों का व्यापार करते हुए भी सर पुरुषोत्तमदास-ठाकुरदास नाइट, सी० आई० ई०, एम० बी० ई० हैं।

वेगराज गुप्त

× × ×

२. [illegible]

संतोष का विषय है कि हिंदी-साहित्याकाश में अब कभी-कभी मौलिक ग्रंथ-रचना की ध्वनि एवं प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगी है। यह निःसंदेह शुभ लक्षण है। किसी

भाषा में आकर-ग्रंथों की रचना तभी होती है, जब उस भाषा के प्रेमी उस रचना के लिये वैसा प्रबंध करते हैं। आधुनिक पाश्चात्य जगत् के साहित्य-प्रेमियों ने, सुनते हैं, मौलिक ग्रंथ रचना के लिये नगरों से दूर, वनश्री-संपन्न, नीरव स्थानों में ऐसे मंदिर बनवा दिए हैं, जहाँ भरण-पोषण की चिंता से सर्वथा विमुक्त विद्वज्जन स्वच्छंदता-पूर्वक अपने-अपने अभीष्ट विषयों पर मनन और चिंतन करते रहते हैं। उन्हें भोजन देने के लिये जो भृत्यगण जाते हैं, वे कहते हैं कि कभी-कभी कोई-कोई विद्वान् अपने विचारों की तरंगों में इतने तन्मय हो जाते हैं कि एक-एक, दो-दो दिन तक भोजन ही नहीं करते। भृत्यों को परोसा हुआ भोजन ज्यों-के त्यों उठा लाना पड़ता है। इस प्रकार के स्वतंत्र वातावरण में जब वे लोग वर्षों रहते हैं, तब कहीं आकर मौलिक ग्रंथों की रचना करने में समर्थ होते हैं। उन्हें भरण-पोषण की चिंता से मुक्त करनेवाले उदाराशय साहित्य पूजक उनसे यह कभी नहीं पूछते कि आप इतने दिनों से हमारे साहित्य-भवन में अपनी उदर-पूर्ति कर रहे हैं; कहिए तो, आपने इतने दिनों में क्या काम किया? सारांश, उन देशों में लक्ष्मी के लाड़ले सरस्वती के कृपा-भाजनों की सेवा करना भली भाँति जानते हैं, और यह भी जानते हैं कि उनकी विचार-परंपरा उनके हितों की साधक एवं वर्द्धक होगी। इसीलिये वे उनकी सेवा तन, मन और धन से किया करते हैं।

हिंदी-भाषा के जो प्रेमी हिंदी में आकर-साहित्य के लिये व्याकुल हो रहे हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे उक्त परिस्थिति को ध्यान देकर फिर ऐसे हिंदी-साहित्य के ग्रंथ-कारों की स्थिति पर विचार करें। हिंदी के ग्रंथकारों को रात-दिन अपने और अपने आश्रित कुटुंबियों की उदर-पूर्ति की चिंता में मग्न रहना पड़ता है। इसके सिवा उन्हें अपने अन्नदाता को प्रसन्न रखने की चिंता भी रखनी पड़ती है। इस चिंता-चक्की के बीच में रात-दिन पड़े रहनेवाले स्वतंत्र ग्रंथ लिखने के लिये कैसे समर्थ हो सकते हैं, इस पर हिंदी में मौलिक ग्रंथ देखने की इच्छा रखनेवाले सज्जनों को उदारता-पूर्वक विचार करना चाहिए।

एक बार यों ही आकर-ग्रंथों की चर्चा चलने पर मैंने स्वर्गवासी पंडित माधवरावजी सप्रे से कहा था कि हिंदी के धनीमानी जब तक सुयोग्य विद्वानों को भरण-पोषण की चिंता से मुक्त करने का प्रबंध नहीं करेंगे तब तक हिंदी-साहित्य में मौलिक ग्रंथों की सृष्टि होना कठिन ही है। सप्रेजी ने मेरी भावना को हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की पटनावाली बैठक में अपने स्वप्न के रूप में प्रकट किया। और, उनके स्वप्न ने जब जबलपुर में हिंदी-मंदिर के रूप में जन्म लिया, तब मुझे आशा हुई थी कि संभवतः वह योग्य ग्रंथकारों को उदर-पूर्ति की चिंता से मुक्त कर, उन्हें आकर-ग्रंथ-रचना करने में स्वतंत्र कर देगा। खेद है, मेरी उस आशा को उक्त मंदिर के उत्पादक की कीर्ति-बुभुक्षा उदर-सात कर गई।

बंबई के श्रीवेंकटेश्वर तथा लखनऊ के नवलकिशोर-छापेख़ानों के स्वामियों ने हिंदी-साहित्य के द्वारा ख़ासा धन और नाम कमाया है। आज तक उन लोगों ने ग्रंथ-लेखकों का आदर-सत्कार थोड़ी-सी पुस्तकें और थोड़ा-सा रुपया देकर ही किया है, और अभी तक वे उसी प्रथा को चलाते जाते हैं। हिंदी-भाषा-भाषी या विभिन्न भाषा-भाषी इस तरह जो कुछ पा जाते हैं, उसी को बहुत कुछ मानकर वे अपने प्रधान व्यवसाय के साथ-साथ हिंदी के ग्रंथ लिखने का व्यवसाय भी करते जाते हैं। यदि इसी प्रणाली से हिंदी के साहित्य-भांडार की पूर्ति की जाती रहेगी, तो उसे आकर-ग्रंथों का सौभाग्य प्राप्त होगा या नहीं, यह कहना संदिग्ध है। ऐसी अवस्था में उक्त मुद्रणालयों के स्वामियों और पुस्तक-प्रकाशकों से मेरी यही प्रार्थना है कि वे लोग मिल-जुलकर एक नियत पूँजी एकत्र कर लें, और उससे एक ऐसी संस्था बना दें, जो सुयोग्य ग्रंथकारों को भरण-पोषण की चिंता से आजीवन मुक्त रखने का प्रबंध कर सके। जब इस प्रकार का प्रबंध किया जायगा, तभी हिंदी के साहित्य को मौलिक ग्रंथ प्राप्त होंगे।

आशा है, हिंदी में मौलिक साहित्य देखने की इच्छा रखनेवाले सज्जन मेरी इस सूचना पर विचार करने की कृपा करेंगे।

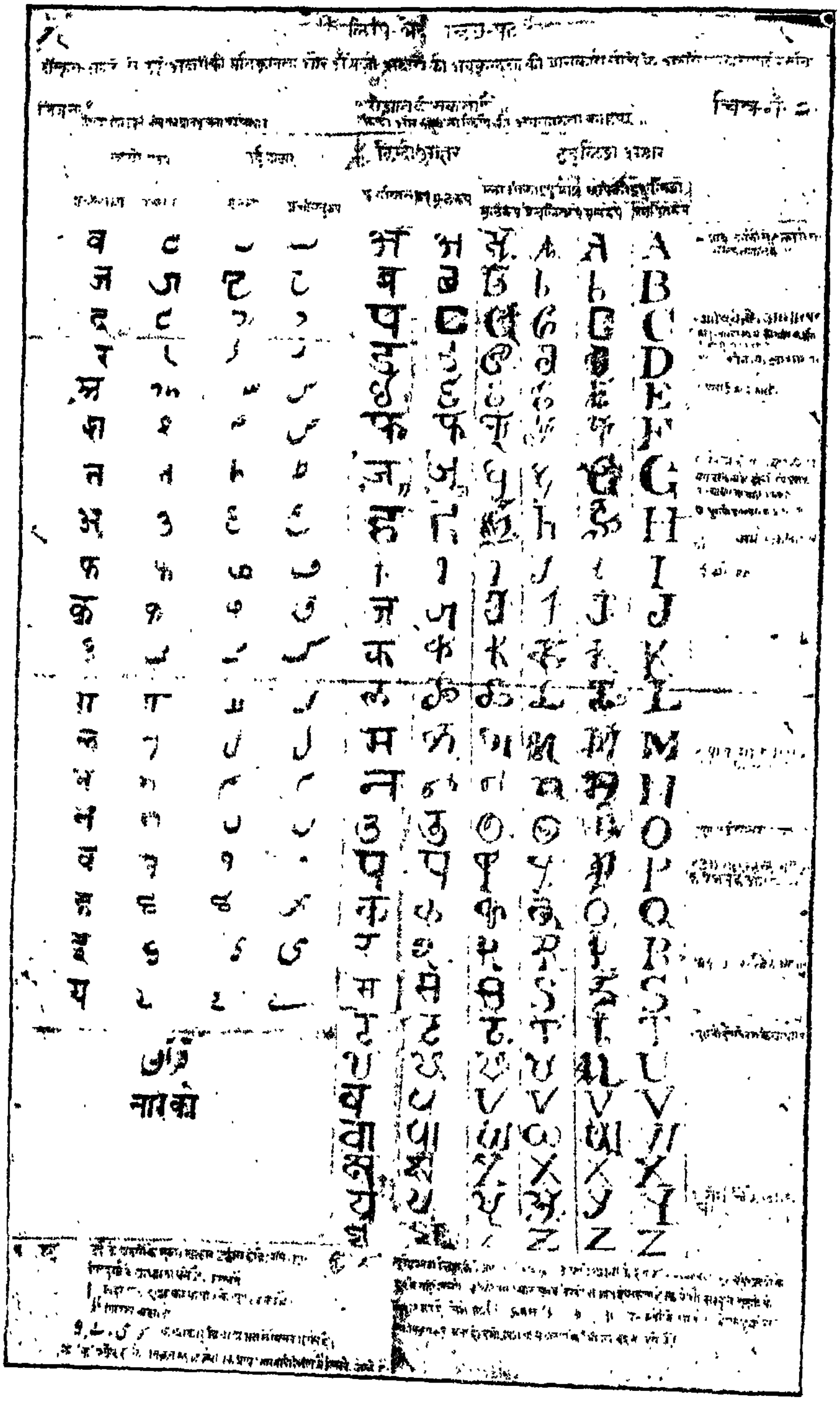
गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

× × ×

३. लिपि-भेद

यह बात तो निर्विवाद और सर्वमान्य है ही कि वेद संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं। इसलिये उनकी भाषा (संस्कृत) के

शब्द प्रत्येक भाषा में न्यूनाधिक पाए जाते हैं। लेकिन इस लेखमें पाठकों के मनोरंजनार्थ, जैसा कि मेरे अनुभव में आया, यह दिखलानेकी यथाशक्ति चेष्टा करूँगा कि वेद-लिपि (संस्कृत-अक्षर, जो सब से प्राचीन हैं) के ही आधार पर अन्य लिपियों की रचना हुई है। यह तो स्पष्ट ही है कि बँगला, गुजराती और मराठी आदि जो भारतीय लिपियाँ हैं, वे संस्कृत-लिपि के आधार पर ही बनी हैं। इनके अतिरिक्त रोमन-लिपि, जिससे फ्रेंच, इँगलिश और जर्मन-लिपि, तथा अरबी, जिससे फ़ारसी और उर्दू की लिपि मिलती है, इसी संस्कृत-लिपि के आधार पर बनी हैं। हाँ, उनके दो-चार अक्षरों की बनावट संस्कृत-अक्षर से नहीं मिलती। इससे ज्ञात होता है कि जब आर्य लोग मध्य-एशिया में होते हुए पृथ्वीके भिन्न-भिन्न प्रदेशों में विभक्त हो गए, तब वहाँ के आदि-निवासियों के संसर्ग से तथा अपनी



लिपि भेद-चित्रपट

लिपि को पृथक् रखने की इच्छा से उनकी रचना वैसी हुई है।

प्राचीन धर्म-ग्रंथ और पुराणों के देखने से ज्ञात होता है कि ब्रह्माजी के पोते वेदज्ञ कश्यपमुनि की स्त्री अदिति से देवता, और दिति से दैत्य उत्पन्न हुए थे। दिति और अदिति में सौतिया डाह की अधिक मात्रा होने के कारण उनके पुत्र भी आपस में लड़ा करते थे। यह वैर-भाव इतना बढ़ गया था कि देवता जो कोई अच्छा काम भी करते, तो दैत्य ठीक उसके विरुद्ध ही करना अपना कर्तव्य समझते। जब देवता वंश-परंपरा के धर्मानुसार और वेदानुकूल आचरण करने के कारण गऊ और हरि-भक्तों की रक्षा करना धर्म का अंग मानने लगे, तब दैत्यों ने ठीक उनके विरुद्ध उन्हें मारना अपना कर्तव्य निश्चित किया। इससे प्रतीत होता है कि पहले तो दैत्यों ने अपने इस विचार का मौखिक रूप में प्रचार किया; लेकिन जब उनके अनुयायी बढ़ने लगे, तब उन्होंने इस वैपरीत्य को धर्म के रूप में, संसार में सदैव के लिये छोड़ जाने की दृष्टि से, ठीक संस्कृत-अक्षरों के विपरीत आकार में नवीन लिपि बनाई, और विपरीत ही लिखना आरंभ किया। जैसी उलटी अरबी, फ़ारसी और उर्दू की लिखावट है, उसी के अनुसार—यदि अतिशयोक्ति न समझी जाय तो—कुरान-शब्द भी नरक-शब्द के बहुवचन का ठीक उलटा है। तात्पर्य यह कि अरबी, जिससे फ़ारसी और उर्दू की लिपि मिलती है, की उत्पत्ति संस्कृत-लिपि के आधार पर, विपरीत रूप में, हुई है, जिसका अनुभव चित्र देखने से हो सकता है।

इँगलिश-अक्षरों की जो लिपि है, वह किसी ईर्ष्या या शत्रुता के कारण इस रूप में नहीं प्रचलित हुई, बल्कि इसके अधिकांश अक्षर संस्कृत-अक्षरों से मिलते-जुलते हैं। उसमें जो लिखने के अक्षरों में बड़े और छोटे का भेद है, वह यथार्थ में प्रधान और अप्रधान लिपि है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि अँगरेज़ी-लिपि उतनी प्राचीन नहीं, जितनी अरबी या फ़ारसी; क्योंकि इनकी लिपि तो ठीक संस्कृत-अक्षरों के विपरीत है, जिसकी उत्पत्ति दैत्यों के समय से है। पर अँगरेज़ी-लिपि की उत्पत्ति आर्यों के भारत-आगमन के पश्चात् हुई मालूम पड़ती है, चाहे भारत के आर्यों ने योरप में जाकर इसकी रचना की हो, या स्वयं योरप-निवासियों ने भारत की लिपि-भेद से उत्पन्न हुए भेद-भाव को अनिष्ट का कारण जानकर इसकी रचना की हो। जब आर्यों का भारत में आगमन हुआ, उस समय यहाँ के आदि-निवासियों के संसर्ग से एक नई मिश्रित लिपि बन गई। उस समय यद्यपि मुख्य लिपि संस्कृत ही थी, तो भी सर्वसाधारण उसी मिश्रित लिपि का व्यवहार करते थे, जैसा वर्तमान काल में जोधपुर-राज्य में, हिंदी मुख्य भाषा होने पर भी, सर्वसाधारण मारवाड़ी और हिंदी-मिश्रित 'देशी' का ही व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार उस समय की मिश्रित और संस्कृत के आधार पर एक नवीन प्रधान एवं अप्रधान लिपि बनाई गई, जिसके नाम अपने देश के अनुसार रोमन, फ्रेंच, जर्मन और इँगलिश रख लिए गए। इससे यह भी जान पड़ता है कि लिपि-भेद के कारण जो भारतवर्ष में भेद-भाव था, उसकी इति करने के लिये इस लिपि की रचना की गई, और समानता का भाव प्रकट करने के लिये प्रधान लिपि संस्कृत में कुछ अप्रधान (मिश्रित) लिपि को स्थान दिया गया, और इसी लिखने की इँगलिश की लिपि के आधार पर छापे के अक्षर बनाकर पृथक्ता प्रदर्शित की गई, जिसका अनुभव इसी चित्र में नं० २ के अवलोकन से हो सकता है।

रामनारायण त्रिपाठी

× × ×

४. सूने घर में

ज्योति जगाकर भी टटोलनेवाला मैं क्या पाऊँगा?
अंधकार ही रहे; न सूने घर में दीप जलाऊँगा।
है विषाद का राज्य, तड़पता बंदी बनकर सुख मेरा;
कैसे मूर्च्छित उत्कंठा की दारुण प्यास बुझाऊँगा?
सहमी-सी हैं खड़ी, कहीं ये टूट न जावें दीवारें;
करुणा की आँखें बरसातीं तप्त आँसुओं की धारें।
झुका हुआ नभ झाँक रहा है, हो अति विकल, खिड़कियों से;
अनिल साँस भर रहा, रहीं पड़ मुझ पर जो दुख की मारें!
कैसी आग भरी है रोनी आशा की इन आहों में!
चिनगारियाँ खेलतीं लपटों के सँग हिल-मिल चाहों में।
जाकर कहाँ रहूँ? —है मेरा अपना अब संसार कहाँ?
फेंक दिया जाता हूँ, अब जा पड़ता जिनकी राहों में!
बढ़ती ही जाती विराट् सीमा है इस 'सूनेपन' की;
गलियाँ आज अँधेरी कितनी हैं मेरे जीवन-वन की!
नहीं जानता, कब तक गिननी होंगी ये सूनी घड़ियाँ?
शांत करेगा आकर 'कोई' कब ज्वाला पागल मन की!

श्रीजनार्दनप्रसाद झा "द्विज"

× × ×

५. प्रेम की भिक्षा

भिखारी ! तू नित्य मेरे द्वार पर आता है, और दिन-भर बैठकर खाली हाथ लौट जाता है। तेरा यह व्यवहार मेरे लिये एक दुर्घट रहस्य है।

देवि ! मैं खाली हाथों अवश्य लौटता हूँ; परंतु आपके दिव्य दर्शनों से मेरा शून्य हृदय भर जाता है।

हृदय को पूर्ण कर क्या लाभ उठावेगा ? जो कुछ माँगना हो, माँग।

जो माँगना था सो मिल गया।

मेरे बिना कुछ दिए तू किस प्रकार कह सकता है कि तेरा अभीष्ट पूर्ण हुआ ?

मुझको संसार में ठिकाना न था, मैं आपके हृदय-मंदिर में थोड़ा-सा स्थान चाहता था; वह मुझे प्राप्त हो गया। आपका यह दयालु प्रश्न मेरे कथन का साक्षी है।

काव्य और अलंकार की निरर्थक बातों को छोड़ दे। रुपया-पैसा, धन-धान्य, यश और ऐश्वर्य—जिसकी तुझे आवश्यकता हो माँग।

मुझे धन-संपत्ति और ऐश्वर्य की चाह नहीं। धन-संपत्ति के अर्थ मैं यहाँ नहीं आया।

फिर किसलिये आया है ?

उसके लिये, जो अन्यत्र नहीं मिल सकता।

इन कूट पहेलियों का कोई अर्थ नहीं। काव्य और अलंकारों पर जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता।

काव्य और अलंकार के द्वारा भावों का संचार होता है। उनके बिना जीवन शुष्क है, और उसके निर्वाह करने की आवश्यकता नहीं। रसमय जीवन ही जीवन कहलाने योग्य है। काव्य और अलंकार मेरे मनोरथों को पूर्णतः प्रकट करने में समर्थ नहीं हैं। मेरे हृदय के भाव काव्य को जीवन देते हैं, और मेरा जीवन काव्यमय है। मैं कुछ नहीं चाहता।

कुछ न चाहनेवाले ही तो सब कुछ चाहते हैं। तू तो मेरा सर्वस्व चाहता है।

यदि भिक्षा में मुझे सर्वस्व न मिले, तो मेरा भिक्षुक होना निरर्थक है, और आपका दाता होना भी निष्फल है। यदि आप कुछ देना ही चाहती हैं, तो प्रेम की भिक्षा दीजिए।

मुझसे प्रेम की भिक्षा माँगने का तू किस प्रकार साहस करता है ? कहाँ तू और कहाँ मैं ?

जब तक मुझे यह भिक्षा नहीं मिलती, तभी तक यह अंतर है। भिक्षा मिलते ही सारा भेद-भाव विलीन हो जायगा।

नटखट भिखारी ! अपनी भीख ले। तेरा अविचल प्रेम विजयी हुआ।

"अज्ञात"

× × ×

६. "माधव और मदन"

माधव ! तेरी निशि की मुरली बजी हमारे मन में ;
तेरा सखा मदन आ बैठा मेरे नंदन-वन में।
किया अतिथि-सत्कार, तोड़कर सुमन चढ़ाए मैंने ;
नहीं जानता था, हाथों में थे उसके शर पैने।
लक्ष्य हमारा हृदय हुआ, मैं भू पर गिरा गगन से ;
ज्ञान-मालिका टूट गई, जो मिली मुझे निर्जन से।
आया बनकर अतिथि, बनाया मुझको कंदुक कर का ;
हाव-भाव के ताड़न से मैं रहा नहीं निज घर का।
किया चेतना-हीन मुझे, मैं भ्रमित हुआ इस जग में ;
कंचन की कड़ियाँ ले बाँधीं भरी ही रग-रग में।
तीखी चितवन, मधुर हास्य युत आनन की उलझन में ;
डाल दिया माधव ! तेरे उस मदन-सखा ने क्षण में।
जितना मधुर निशा की मुरली माधव ! लगती मन को ;
उतना ही हन बाण मारता सखा तुम्हारा तन को।
हुआ मेल अनमिल यह कैसे तुम दोनों के मन में ?
लगा दिया दावानल तुमने मेरे नंदन-वन में।
माधव और मदन ने मिलकर किया नाश उपवन का ;
भस्म शेष है, भरा उसी में गायन विशद गगन का।
विदा हो चुके जाओ अब तुम मेरे इस नंदन से ;
सुनने दो संगीत मुझे अब अपने इसी विजन से।

द्वारकाप्रसाद मौर्य

× × ×

७. "कौशल्या, कोशल राष्ट्र की राजकुमारी तथा श्रीराम की माता"

कई वर्षों से मुझे ये विचार व्यथित कर रहे हैं कि कौशल्या किस देश के राजा की कन्या थीं, इनके पिता का नाम क्या था, दशरथ को यह कैसे प्राप्त हुईं (स्वयंवर द्वारा अथवा साधारण विवाह द्वारा) ? रामायण आदि में इनके माता-पिता की चर्चा क्यों नहीं की गई ? कवि वाल्मीकि तथा कालिदास आदि ने इनके विषय में और लिखना क्यों उचित नहीं समझा ?



चित्र-दर्शन

[राय कृष्णदासजी की कृपा से प्राप्त]

चित्रहिं मैं जाके लखे होत अनंत अनंद :
सपने हूँ कबहूँ सखी, मोहिं मिलिहैं ब्रजचंद ।

(महाकवि मतिराम)

N. K. Press, Lucknow.

[शब्द-शास्त्र के अनुसार कौशल्या (कौसल्या)* -शब्द कोशल-शब्द से बना है। इसकी व्युत्पत्ति कोशल+ञ्य्+यप् है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसका अर्थ कोशल-राष्ट्र की राजकुमारी है।

वाल्मीकीय रामायण की कथा के अनुसार कौशल्या का विवाह कोशल-राष्ट्र के सम्राट् दशरथ से हुआ। अब प्रश्न यह उठता है कि कोशलाधिपति दशरथ ने किस कोशलराज की कन्या का पाणि-ग्रहण किया? क्या उन्होंने अपने परिवार ही में विवाह किया? अथवा उस समय कोशल नाम का अन्य कोई राष्ट्र था, जहाँ की राजकुमारी को उन्होंने अपनाया?

जो ग्रंथ हमें इस विषय में न्यूनाधिक सहायता प्रदान करते हैं, वे रामायण, महाभारत, कालिदास का रघुवंश तथा चीनी यात्रियों के वृत्तांत और कनिंघम का पुरातन भूगोल है। इन ग्रंथों में सबसे प्रामाणिक ग्रंथ वाल्मीकीय रामायण है। ऋषि वाल्मीकि ने कोशल-राष्ट्र का विवरण बालकांड के पंचम सर्ग में ऐसा दिया है—

"कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान् ;
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ।
अयोध्यानामनगरी तत्रासीलोकविश्रुता ;
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ।"

इस अवतरण का विशद अर्थ यह है कि "कोशल नाम का एक समृद्ध जनपद प्रचुर धन-धान्य से परिपूर्ण सरयू-नदी के तट पर विस्तृत था; इस देश की विख्यात नगरी अयोध्या थी, जिसे स्वयं मानवेंद्र मनु ने बनाई थी।"

इस अवतरण के अनुसार उस समय कोशल नाम का अन्य कोई राष्ट्र न था; केवल वही राज्य था, जिसकी प्रधान पुरी अयोध्या थी। यह कोशल-राज्य इन दिनों अवध-प्रांत से मिलता-जुलता है। मेरे लेख की नायिका इसी देश में प्रादुर्भूत हुई। पर इनके पिता-माता का उल्लेख करने के विषय में वाल्मीकि ने मौन धारण कर लिया है। वह कैकेयी के उद्भव-स्थल का तो उल्लेख करते हैं; पर मैं नहीं समझ सकता कि महाराज दशरथ की पटरानी कौशल्या के पिता आदि के विषय में उन्हें कुछ लिखने के लिये क्यों अवसर नहीं मिला?

पहली बात, जो मुझे खटकती है, विषय की अप्रियता है। मनोविज्ञान के सिद्धांत के अनुसार मनुष्य अप्रिय वस्तु का उल्लेख नहीं करना चाहता, और प्रिय वस्तु की चर्चा वह बार-बार करता है। जिस चीज़ से किसी व्यक्ति को घृणा हो, उसे वह भूल जाता है; उसका नाम तक भी उसे विस्मृत हो जाता है। कालिदास तथा वाल्मीकि के संबंध में यही सिद्धांत ठीक प्रतीत होता है। बात ऐसी जान पड़ती है कि कौशल्या के पिता भी इक्ष्वाकु-वंशीय क्षत्रिय थे; वह उसी कोशल के राजकुमार तथा सामंत थे, जिस राष्ट्र के अधिकारी दशरथ थे। वह शक्तिशाली थे, पर थे पुत्रहीन। उनका पराक्रम दशरथ आदि से कम न था। कौशल्या के पिता के मरने के अनंतर दशरथ उनके राज्य को अपने साम्राज्य में मिलाना चाहते थे। पर कौशल्या की प्रजा ऐसा नहीं चाहती थी। अतः युद्ध-निवारण के लिये दशरथ ने कौशल्या का पाणि-ग्रहण किया। यह विवाह संभवतः इक्ष्वाकु-वंशीय घराने में हुआ; क्योंकि अनेक स्थलों में कौशल्या 'कोशलात्मजा' के नाम से पुकारी गई हैं।

यह तो एक प्रकार का अनुमान है। पर जब हम महाभारत के पृष्ठों को उलटते हैं, तो अन्य कोशल का भी उल्लेख पाते हैं। महाभारत-काल में उत्तर-कोशल नाम का एक राष्ट्र था, और पूर्व-कोशल नाम का एक दूसरा राज्य। महाभारत के सभापर्व के ग्यारहवें, उनतीसवें तथा तीसवें अध्याय में उत्तर तथा पूर्व-कोशल की चर्चा की गई है*। महभारत के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रंथ में पूर्व-कोशल का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। कालिदास ने दक्षिण-कोशल की चर्चा की है। चीनी-यात्री हुएनसंग ने दक्षिण-कोशल ही का वर्णन किया है। इस दक्षिण-कोशल की स्थिति के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। सभापर्व के अनुसार सहदेव, नर्मदा और अवंति-राज्य को लाँघकर पूर्व-कोशल गए थे। उसी के आगे वेरवा-तट है। इसी वेरवा-नदी को आजकल 'वेनगंगा' कहते हैं। यह मध्यप्रदेश में नागपुर के पूर्वांश से निकलकर, तिरछी बहकर, गोदावरी-नदी में

*"कौशल्या" अथवा "कौसल्या", ये दोनों शब्द ठीक हैं।

* (१) दक्षिणाश्च ये च पाञ्चालाः पूर्वाः कुन्तिषु कोशलाः ।
(सभापर्व, अध्याय ११)

(२) ततो गोपालकक्षं च सोत्तरानपि कोशलान् ।
(सभापर्व, अध्याय २९)

(३) कोशलाधिपतिं चैव तथा वेण्वातटाधिपम् ;
कान्तारकांश्च समरे तथा प्राक्कोशलान्नृपान् ।
(सभापर्व, अध्याय ३०)

जा गिरी है। इससे अनुमान होता है कि नर्मदा-नदी के दक्षिण-पूर्व और वर्तमान वेनगंगा के उत्तर-दक्षिण कोशल-राज्य अवस्थित था।

ईसा की सातवीं सदी के प्रारंभ में सुप्रसिद्ध चीनी परिव्राजक हुएनसंग कोशल-राज्य पहुँचे थे। उन्होंने लिखा है—"कलिंग-राज्य से १,८०० लि (कोई डेढ़ सौ कोस) उत्तर-पश्चिम चलने से कोशल-जनपद मिलता है। इस देश का परिमाण ५,००० लि (४१६$\frac{2}{3}$कोस) है। इसकी सीमा के चारों ओर पहाड़ और जंगल हैं। इसकी राजधानी लगभग ४०लि (प्रायः सवा तीन कोस) होगी। इसकी भूमि उर्वरा और प्रभूत शस्य-शालिनी है। इससे ९०० लि (क़रीब ७५ कोस) दक्षिण आंध्र-राज्य है"। (सि० यु० कि० १०)

प्रत्नतत्त्वविद् कनिंघम के मत से महानदी और उसकी शाखा की उत्तरवर्ती उपत्यका ही महाकोशल का दक्षिण-कोशल है। वह उत्तर में नर्मदा-नदी के उत्पत्ति-स्थान अमरकंटक से दक्षिण कांगेर तक और पूर्व को हासदा तथा जोंक-नदी से पश्चिम वेनगंगा की उपत्यका-भूमि तक विस्तृत है। जब-तब मंडला, बालाघाट, वेनगंगा-तट एवं महानदी का मध्य-विभाग, संबलपुर और सोनपुर तक दक्षिण-कोशल माना जाता था*।

रॉयल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल, एन्० एस्०, भाग६, पृष्ठ २६० में लिखा है—"जिसे हम गोंडवन और छत्तीसगढ़ कहते हैं, महाभारत के समय में वही देश दक्षिण-कोशल के नाम से प्रख्यात था। गुप्त-राजों के अधिकार-काल में वह और भी विस्तृत हो गया, और महाकोशल कहलाने लगा। महाकोशलाधिपति भवगुप्त के समय की शिला-लिपि पढ़ने से जान पड़ता है कि उत्कल और कलिंग-पर्यंत उनका अधिकार हो गया था। उड़ीसे के केशरी-राज उनको कर देते थे।"

रघुवंश में भी जिस दक्षिण-कोशल का उल्लेख है, वह भी छत्तीसगढ़ तथा गोंडवन से मिलता-जुलता है। अस्तु, इन अवतरणों का निष्कर्ष यह है कि दक्षिण-कोशल नाम का एक राष्ट्र था। उत्तर-कोशल तथा इसके बीच में सरयू-नदी सीमा समझी जाती थी। इसका विस्तार विंध्य-पर्वत तक था। रघुवंश के आधार पर मैं एक दूसरा सिद्धांत उपस्थित करना चाहता हूँ कि कौशल्या दक्षिण-कोशल के अधिपति की कन्या थीं। इनके विवाह के बाद दक्षिण-कोशल उत्तर-कोशल में मिला लिया गया। इस दूसरे अनुमान का एक-मात्र प्रमाण कालिदास का रघुवंश है। रघुवंश के अनुसार दिलीप से लव-कुश तक की वंशावली इस प्रकार है—

दिलीप
|
रघु
|
अज
|
दशरथ
|
राम
|
लव — कुश

कालिदास रघुवंश के तृतीय सर्ग के पाँचवें श्लोक में दिलीप को 'उत्तर-कोशलेश्वर' के नाम से संबोधित करते हैं—

"न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं
स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी;
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः
प्रियासखीरुत्तरकोशलेश्वरः।"

उत्तर-कोशल की स्थिति दक्षिण-कोशल की स्थिति सूचित करती है। अब सवाल यह है कि दक्षिण-कोशल पर कौन शासन करता था? संभवतः इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग के ७०वें श्लोक में रघु को हम 'कोशलेश्वर' की उपाधि से विभूषित पाते हैं, यद्यपि दिलीप केवल उत्तर-कोशलाधिपति थे। रघु के इस उपाधि से विभूषित होने का कारण उनका दिग्विजय था। यद्यपि अपने दिग्विजय द्वारा वह 'कोशलेश्वर' कहे गए, तथापि दक्षिण-कोशल ने उत्तर-कोशल का आधिपत्य नहीं स्वीकार किया। यह बात इंदुमती के स्वयंवर के विवरण से प्रकट है। अज, रघु के जीवन-काल ही में विदर्भ-देश को गए थे। वहाँ वह उत्तर-कोशलेंद्र ही कहे गए हैं—

इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत्;
काकुत्स्थशब्दं यत उन्नतेच्छाः श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोशलेन्द्राः।

यह दक्षिण-कोशल उत्तर-कोशल के आधिपत्य में नहीं आया। इसका दूसरा प्रमाण नवम सर्ग का प्रथम श्लोक है—

* (Cunningham's Arch' Survey Reports, Vol. XVIII P. 68)

पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्समधिगम्य समाधिजितेन्द्रियः ;
दशरथः प्रशशास महारथो यमवतामवतां च धुरिस्थितः ।

अज के देहावसान के अनंतर भी दक्षिण-कोशल पर दशरथ का प्रभुत्व न था । दक्षिण-कोशल पर अन्य शासक राज्य करते थे । वह उत्तर-कोशलेश्वरों से किसी प्रकार पराक्रम में कम न थे । दोनों में अनबन थी । अज के मरने के अनंतर युद्ध की आशंका की जाती थी । इसका कारण दक्षिण-कोशलेश्वर के उत्तराधिकारी का अभाव था । दशरथ दक्षिण-कोशल पर दावा करते थे, पर उसे जीत न सकते थे । अतः कौशल्या का पाणि-ग्रहण कर, जो राज्य की एक-मात्र उत्तराधिकारिणी थी, दशरथ ने उत्तर तथा दक्षिण-कोशल को मिलाकर एक कोशल-साम्राज्य की स्थापना की ।

उत्तर-कोशल तथा दक्षिण-कोशल को मिलाकर एक संयुक्त-कोशल-साम्राज्य कुछ समय तक रहा । यह बात हमें रघुवंश के पंद्रहवें सर्ग के ९७ तथा ९८ श्लोकों से मालूम होती है * ।

श्रीराम ने अपने जीवन के अंतिम काल में कोशल-साम्राज्य को दो भागों में विभक्त किया । उत्तर-कोशल, जिसकी राजधानी शरावती थी, लव को मिला । पुनः दक्षिण-कोशल कुश को दिया गया । इस राज्य की प्रधान नगरी कुशावती थी ।

इन सामग्रियों से यह बात विदित हुई कि कौशल्या दक्षिण-कोशल के सम्राट् की पुत्री थीं । इनका विवाह दशरथ से हुआ । विवाह के अनंतर ये दोनों राष्ट्र संयुक्त-कोशल-राष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध हुए । राम ने पुनः इन्हें दो भागों में विभाजित कर दिया । यह दूसरा अनुमान है ।

इन दोनों अनुमानों को मैं भारतीय इतिहास-वेत्ताओं के अनुसंधान तथा समालोचना के लिये उपस्थित करता हूँ ।

रामदीन पांडेय

× × ×

* स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागांकुशं कुशम् ;
शरावत्यां सतां सूक्तैर्जनिताश्रुलवं लवम् ।
उदक्प्रतस्थे स्थिरधीः सानुजोऽग्निपुरःसरः ;
अन्वितः पतिवात्सल्याद्गृहवर्जमयोध्यया ।

८. एकांत

शून्य में
देख पड़ा आलोक ।
अंतस्तल में, विजन विपिन में,
सघन कुंज में, पतझड़ में भी
देख पड़ा वह लोक ।
विरह-निशा में, सुधा-तृषा में,
उषा-हास में, शशि-प्रकाश में
देख पड़ा पर शोक !
न पाया किंतु अगम आलोक ।
शरच्चंद्र में,
रवि-हित-व्याकुल अरविंदों में,
मृगतृष्णा में,
दुश्शासन-कर-ग्राह-ग्रसित कुररी-कृष्णा में,
जंगल में,
आप्यायित, रसरंग रलित मंगल-मंडल में,
बकुल-कुंज में,
मंजुल वंजुल-वृक्ष-पुंज में,
कालिंदी के कूल,
सरस संध्या-बेला में,
नाटक-नटवर,
कदंब तरु पर
वंशीवट में,
सुपीत पट में, अद्भुत नर्तक,
अलबेला में ।
देखा ;
पर न हुआ मन शांत,
अंत में,
व्यथित कुंठित हो,
द्रवित दुखित हो,
क्लांत-म्लान हो,
दैन्य-मान हो,
विगत-राग हो, रुद्ध कंठ हो बैठ गया एकांत ।

उमाशंकर पाठक

× × ×

९. कवि-कौशल

कविवर कालिदास और महात्मा तुलसीदास, दोनों ही इस कलिकाल के कवि हैं । एक ने संस्कृत में अपनी कविता

की है, और दूसरे ने अपनी कविता-सुधाधारा भाषा में बहाई है। एक का समय ईसवी सन् के कुछ पूर्व या पीछे और दूसरे का सोलहवीं शताब्दी है। एक का जन्म कविता-कामिनी के अंग-सौष्ठव के अर्थ तथा दूसरे का उसके द्वारा राम-रस-पान करने-कराने के लिये हुआ था। एक को शिव-पार्वती का प्रेम था, और दूसरे को सीता-राम के प्रति पूर्ण अनुराग था। शिव राम हैं, तथा राम शिव—यह दोनों ही का दृढ़ निश्चय था।

एक ही कथा-भाग पर दोनों अपनी-अपनी उक्ति से कविता करते थे। उदाहरण में शिव-पुराण की कथा लीजिए।

शिव-पुराण में सती देहावसान होने पर 'पार्वती' नाम पाती हैं, और महादेव की आराधना कर उन्हें प्राप्त करती हैं। इसी कथा के आधार पर कालिदास अपने 'कुमार-संभव' में नारद को कामधर से हिमालय के गृह पहुँचाते हैं, तथा साधारण रूप से उन्हें बता देते हैं कि यह कन्या शिव की अर्द्धांगिनी होगी, और इसे शिव-सेवा के लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिए। और, वह घर छोड़ शिव-सेवा में लग जाती हैं।

तुलसीदास भी नारद को घूमते-घूमते हिमालय के यहाँ पहुँचाते और उस कन्या का हाथ देखकर शंभु-संयोग की बात सुनाते हैं; पर तुलसीदास पहलेपहल कन्या को कहीं जाने नहीं देते, जैसे कालिदास और पुराण जाने देते हैं।

जब महादेव द्वारा मदन-दहन हो जाता है, तब पार्वती शिव-सेवा छोड़ पर निराश न होकर घर पहुँचती हैं, और कठिन तपस्या की बात सोचती हैं। पुराण और कालिदास यहाँ कहते हैं, और पार्वती की सखी द्वारा हिमवान् और मैना की स्वीकृति पार्वती को दिलाते हैं, यहाँ तक कि कवि कालिदास माता की आज्ञा की उतनी परवा नहीं करते। माता की आज्ञा देते-न-देते पार्वती वन चली जाती हैं, पर तुलसीदास को यह बात स्वीकृत नहीं। आप सखियों में भी माता को रिझाने की शक्ति नहीं देखते। इससे स्वयं पार्वती को माता के पास पहुँचाते हैं। वह अपनी माता के पास पहुँचकर कहती है—"हे माता, एक गौर ब्राह्मण ने मुझे स्वप्न में कहा है कि पार्वती, तुम तपस्या करो, और महादेव को प्राप्त करो।" यह गौर ब्राह्मण और स्वप्न की बात तुलसीदास की अपनी है, तथा पुराणों में और कालिदास में नहीं पाई जाती। तुलसीदास ने इसकी बदौलत नीति-मार्ग की अवहेलना से पार्वती को बचा लिया है, और सखियों की ज़रूरत भी नहीं रहने दी है। पुराण में नारद एक बार पार्वती को शिव के पास भेजते हैं। फिर जब काम-दहन हो जाता है, और पार्वती डरकर घर चली आती है, तब हिमालय के पास पहुँचते हैं, और पार्वती को वन जाने देने के लिये सिफ़ारिश करते हैं। पर कालिदास एक बार ही नारद से काम लेते हैं, दूसरी बार उनकी ज़रूरत नहीं समझते। तुलसीदास नारद को एक बार हिमालय के पास और लाते हैं, जब महादेवजी के भीषण रूप को देखकर स्त्रियाँ डर जाती हैं, और विवाह का रंग भंग हो जाता है। पर स्मरण रहे, यह तुलसीदास की बिलकुल नई सूझ है; पुराण और कालिदास इस विषय में मौन हैं।

पुराण में महादेव के पास ऋषिगण उपस्थित होते हैं, और पार्वती की सिफ़ारिश करते हैं। तब उन्हें हिमालय के पास भेजते हैं कि बातचीत ठीक कर आवें।

कालिदास ऋषियों को हिमालय के पास भेजते तो अवश्य हैं; पर महज़ इसी बात के लिये कि मैं तैयार हूँ, हिमालय अपनी कन्या का पाणि-ग्रहण मुझसे कर सकते हैं।

पुराण और कालिदास, दोनों में पार्वती की परीक्षा स्वयं शिवजी ब्रह्मचारी का वेष धरकर करते हैं, और बहुत कुछ महादेव की निंदा करते हैं। पर पार्वती को किसी तरह भी अपनी हठ से न हटते देखकर आप प्रकट हो जाते हैं।

तुलसीदास यह परीक्षण-कार्य बड़े जोखिम का समझते हैं, और समाज में किसी तरह की अश्लीलता न आवे, इस ख़याल से पार्वती की परीक्षा का कार्य सप्तर्षियों के हवाले करते हैं, तथा पार्वती के विवाह की बात भी केवल सप्तर्षियों के कहने पर स्वीकार कर लेना उचित नहीं समझते। इससे स्वयं—

"प्रकटे राम कृतज्ञ कृपाला;
रूप-सील-निधि तेज बिसाला"

से आज्ञा पाकर

"सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा;
परम धर्म यह नाथ हमारा।"

शिव द्वारा कहवाते हैं। अब भी क्या यह कहने की ज़रूरत है कि तुलसीदास हिंदी-संसार में इतने प्रिय क्यों हैं?

रति का विलाप सुन पुराण में स्वयं महादेव कामदेव के पुनः मिलने का आशीर्वाद देते हैं। कालिदास इसे

आकाशवाणी द्वारा बताने में अच्छा समझते हैं ; पर तुलसीदास पुराण को निष्प्रयोजन छोड़ना अच्छा नहीं समझते।

महादेव की बारात जब 'औषधि-प्रस्थ' पहुँचती है, तब कालिदास अंगनाओं के अटारियों पर चढ़ने और नीवी-धारण-प्रबंध में लगते हैं, जो स्यात् पुराण का भी मर्म है। पर महात्मा तुलसीदास को विश्व-विजयिनी एक नई उक्ति सूझती है। वह महादेव के रूप को बहुत भयंकर बना देते हैं, और मैना उन्हें देखकर डर जाती है, जिससे लड़कों और गाँव के लोगों का कौतूहल-वर्द्धन होता है। फिर सबको समझाने के लिये नारद आते हैं, और "गिरिजा हर की प्रिया सदा अर्द्धांगिनी है" ठीक किया जाता है।

दोनों कविवर राम और शिव में भेद नहीं देखना चाहते, और कहते हैं, जो राम है, वही शिव है। पर अपनी-अपनी भावना के वश तुलसीदास के शिव, बिना राम की आज्ञा पाए, पार्वती का विवाह ठीक नहीं करते। उधर कालिदास लक्ष्मी से 'उमा-महेश' का विवाह-छत्र धारण कराते हैं ; क्योंकि एक शिव-पार्वती को 'परमेश्वरौ' समझना है, और दूसरे को राम-भक्ति का जादू-मंत्र उच्चारण करना तथा समाज को उच्छृंखलता से बचाना है।

कालिदास की वह पंक्ति, जहाँ वह देवों को एक समझते हैं, यही है। कुमारसंभव के ७वें सर्ग का ४४वाँ श्लोक है—

एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम् ;
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ।

एक ही मूर्ति तीन प्रकार की कही जाती है। इन तीनों का बड़ा-छोटा होना साधारण है, अर्थात् कुछ प्रयोजन नहीं रखता। जब जिसने चाहा, बड़ा किया, और जब चाहा छोटा किया। कभी महादेव के पहले विष्णु हैं, और कभी विष्णु के पहले महादेव; कभी इन दोनों के पहले ब्रह्मा हैं, तथा कभी यही दोनों ब्रह्मा के पहले हैं।

रामदास राम

× × ×

१०. करुण हास्य

सिसकता हास्य, अधर से फिसल,
आह में उड़कर, मत दे आन ;
कौन समझेगा तेरी पीर ?
तड़प मत तू यों ही नादान।
हृदय का बाँध आयगा टूट,
बहेगा तू होकर असहाय ;
सहारा तुझको देगा कौन ?
डूब आवेगा तू निरुपाय।
वेदनामय करुणा के हास्य !
अधर पर मत रो अब लाचार ;
व्यथा के दूत, हँसी-मिस, हाय !
हिला मत अंतर पट का द्वार।
व्यथा भोली पल सोई एक,
गई थी भूल पुरानी तान ;
अरे खटकाकर तूने द्वार,
जगाया क्यों उसको अनजान ?
हँसी की चमक, अचानक आज
हृदय में मत कर व्यर्थ प्रकाश ;
पुरानी भूली सुख की याद
दिलाकर मत कर मुझे उदास।
आह के मेघों में ऐ हास्य !
चमक ले पल-भर को चुपचाप,
बरसने दे उर पर जल धार,
हृदय के खोने दे सब ताप।
तड़पते डर की चंचल चाल,
बनाती है क्यों मुझे अधीर ?
अधर पर अटक हृदय का भार,
मुझे देती क्यों इतनी पीर ?
हँसी को सभी हँसेंगे ; कौन
रुदन में भी देता है साथ ?
हँसी को सभी देखते; कौन
आह के लिये बढ़ाता हाथ ?

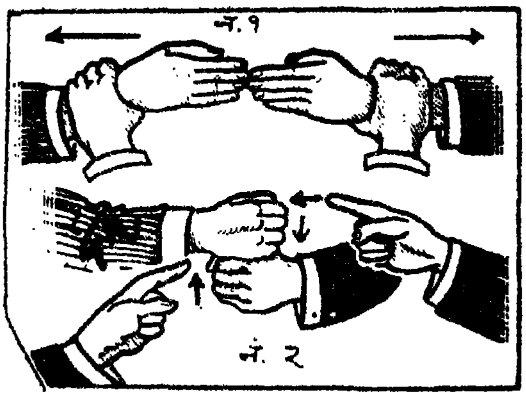
हरिकृष्ण विजयवर्गीय "प्रेमी"



१. उँगलियों का खेल

बालकों की एक बड़ी शिकायत यह रहती है कि सभी लोग उन्हें पढ़ने ही का उपदेश किया करते हैं। लड़कों को किसी भी अपरिचित मनुष्य के सामने निकलने में शर्म जान पड़ती है। इसका एक कारण यह है कि नए व्यक्ति उनसे जो प्रश्न पूछते हैं, उनमें यह प्रश्न अवश्य होता है कि तुम क्या पढ़ते हो? कोई भी व्यक्ति यह नहीं पूछता कि तुम कौन-कौन-से खेल जानते हो? अस्तु, मैं नीचे कई मनोरंजक खेल देता हूँ, और बालकों से अनुरोध करता हूँ कि वे जितना समय पढ़ने में लगाते हैं, उतना ही समय खेल-कूद में भी लगावें।

अपने हाथ की उँगलियों को सटाओ, जैसा चित्र नं० १ में दिया हुआ है। फिर अपने किसी मित्र से

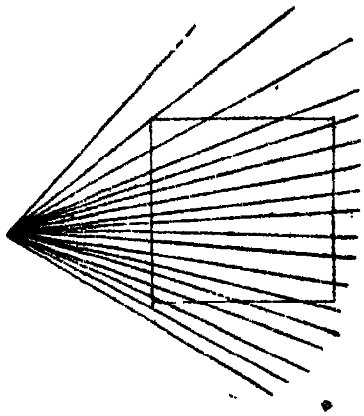


कहो कि वह तुम्हारी कलाइयों को अपने दोनों हाथों से पकड़कर तुम्हारे हाथों को अलग करे। तुम देखोगे कि वह ऐसा नहीं कर सकेगा। इसके बाद अपने मित्र से कहो कि वह अपनी मुट्ठियाँ बाँधकर एक हाथ को दूसरे हाथ पर रक्खे, जैसा चित्र नं० २ में दिया हुआ है। तुम उसके किसी भी हाथ की कलाई पर एक उँगली से धीरे से मारो; दोनों हाथ अलग-अलग हो जायँगे। कैसा अच्छा खेल है!

× × ×

२. नया वर्ग

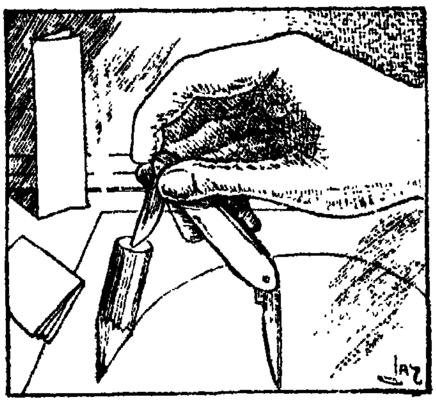
नीचे दिया हुआ चित्र अपने किसी मित्र को दिखाकर पूछो कि बीच का चित्र वर्ग है या नहीं? वह अवश्य कहेगा—नहीं। तुम भी ऐसा ही कहोगे; क्योंकि इसकी एक भुजा दूसरी से बड़ी देख पड़ती है। किंतु उन भुजाओं को नापकर देखो, तो मालूम होगा कि वे सभी बराबर हैं, और वह चित्र वर्ग है। तुम्हारी आँखों ने तुम्हें कैसा धोखा दिया!



× × ×

३. चाक़ू से कंपास

परीक्षा के दिनों में जो बालक अपना "इंसट्रुमेंट बॉक्स" लेकर परीक्षा-भवन में नहीं जाते, उन्हें कभी-कभी बड़ी दिक़्क़त उठानी पड़ती है। किंतु यदि वे

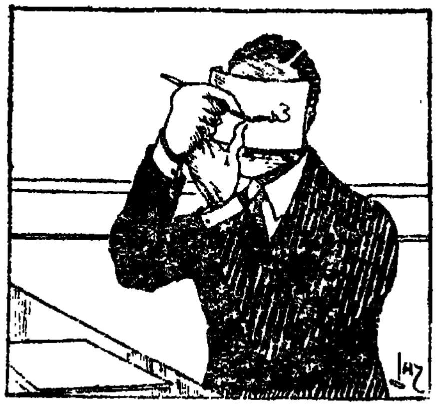


चाहें, तो अपने चाक़ू से 'कंपास' का काम ले सकते हैं। दो फलवाली छुरी के छोटे फल में एक पेंसिल लगाकर यह काम निकाला जा सकता है। चित्र में देखो, तरीक़ा समझ जाओगे।

× × ×

४. एक मनोरंजक खेल

यहाँ मैं एक मनोरंजक खेल दे रहा हूँ, जिसे तुम किसी भी मनुष्य—छोटे या बड़े—के साथ खेल सकते हो। एक कागज़ का टुकड़ा लेकर अपने मित्र की आँखों को ढकते हुए उसके मस्तक पर उसे फैला दो, और उसके हाथ में एक पेंसिल देकर अपना नाम उस कागज़



पर लिखने को कहो। वह तुरंत उलटी ओर से—बाएँ से दाहने—अपना नाम लिखना शुरू कर देगा। अब तुम उसे उसका लिखा हुआ दिखलाओ। पहले तो वह उसे देखकर आश्चर्य करेगा; किंतु पीछे बात उसकी समझ में आ जायगी।   रमेशप्रसाद

× × ×

५. सौ रुपए की भैंस

किसी गाँव में भोला नाम का एक किसान रहता था। वह इतना सीधा था कि यदि हम उसे मूर्ख कहें, तो अनुचित न होगा। उसकी स्त्री बहुत भली थी। भोला अपनी मूर्खता से नित्य काम बिगाड़ा करता, पर वह कभी कुछ न कहती। एक दिन उसकी स्त्री ने कहा—"आजकल खर्च की कुछ तंगी है। मालूम पड़ता है, अब बिना भैंस बेचे काम न चलेगा।"

भोला को उसकी बात बहुत ठीक जँची।

गाँव से कुछ ही कोस दूर बाज़ार लगती थी। अगले बाज़ार के दिन भोला भैंस को लेकर बाज़ार पहुँचा।

वह दिन-भर वहाँ बैठा रहा; पर कोई गाहक न मिला। अंत में निराश होकर वह घर को लौट पड़ा।

कुछ दूर चलने के बाद उसे एक आदमी मिला, जो अपने टट्टू पर जा रहा था। दोनों में बातें होने लगीं। जब टट्टूवाले ने यह जाना कि भोला की भैंस बिकाऊ है, तो वह उसे टट्टू के बदले में लेने के लिये तुरंत राज़ी हो गया। भोला ने उसे खुशी-खुशी उसके हवाले कर दिया, और स्वयं टट्टू पर चढ़कर चल दिया।

कुछ दूर आगे चलकर दूसरा आदमी मिला, जो एक बकरा लिए जा रहा था। बातचीत होते-होते उसने बकरे की इतनी खूबियाँ गिनाईं कि भोला ने उसे टट्टू से बदल लिया।

आगे एक आदमी मेढ़ा लिए जा रहा था। भोला की निगाह में बकरे की अपेक्षा मेढ़ा अधिक अच्छा जँचा, और उसने बकरा देकर मेढ़ा ले लिया।

आगे चलकर भोला को एक और आदमी मिला, जो जंजीर में कुत्ते को बाँधे लिए जा रहा था। कुत्ते की स्वामिभक्ति भोला ने बहुत पहले से सुन रक्खी थी; पर उसके अनुभव का उसे कभी मौक़ा न मिला था, इससे कुत्तेवाले से बहुत प्रार्थना करके उसने मेढ़े को कुत्ते से बदल लिया।

आगे बढ़ते ही उसे एक मनुष्य बिल्ली लिए दिखलाई पड़ा। बिल्ली का 'म्याऊँ-म्याऊँ'-शब्द उसे बहुत पसंद आया। उस पर जब बिल्लीवाले ने बतलाया कि वह घर में चूहे नहीं रहने देती, तब तो भोला लोटपोट हो गया, और तुरंत ही कुत्ते के बदले बिल्ली ले ली।

आगे उसे एक आदमी के हाथ में मुरगा दिखलाई पड़ा। मुरगेवाले ने कहा—"मुर्ग़ा क्या है, घड़ी है; सुबह होते-होते जगा देता है।"

भोला—"सचमुच?"

आदमी—"और नहीं तो क्या?"

इस पर भोला ने बड़े आग्रह से बिल्ली देकर मुर्ग़ा ले लिया।

भोला ने दिन-भर कुछ खाया तो था नहीं, इससे उसे बड़े ज़ोरों की भूख लग रही थी। पर घर अभी दूर था, इससे भोला ने पास के एक गाँव में जाकर सराय में खाना खाया, और बदले में वह मुर्ग़ा दे दिया।

खाना खाने के बाद मुँह पोंछता हुआ भोला घर की ओर चला। इसी बीच में उसका एक पड़ोसी मिला, जो उसी की तरह बाज़ार से घर लौटा जा रहा था। दोनों में बातें होते-होते जब पड़ोसी को भोला की उस दिन की अक़्लमंदी मालूम हुई, तो वह हँसकर कहने लगा—"देखना, भोला, आज घर पर कैसी बीतती है! अगर बिना पिटे बचो, तो जानो कि बड़े खुश-क़िस्मत हो।"

भोला—"सो बात नहीं। मेरी स्त्री को मेरे सब काम अच्छे लगते हैं। हम चाहे जो स्याह-सफ़ेद करें, वह कुछ नहीं कहती।"

पड़ोसी—"और दिन की जाने दो, आज देखना, कैसी हालत होती है! यदि आज तुम्हारी स्त्री तुम्हें कुछ न कहे, तो लो, हम सौ रुपए की शर्त लगाते हैं।"

भोला—"हाँ, रही।"

जब भोला घर पहुँचा, तो उसका पड़ोसी भी साथ गया। दरवाज़े ही पर उसकी स्त्री मिल गई। उसे देखकर भोलाराम बोले—लो, बाज़ार हो आए।

स्त्री—कितने रुपए लगे?

भोला—सो कुछ न पूछो। दिन-भर बाज़ार में बैठा रहा, कोई गाहक ही न मिला। तब मैंने झुँझलाकर उसे एक टट्टू से बदल लिया।

स्त्री—टट्टू से बदल लिया ! यह तो बहुत अच्छा किया। चलो, बाजार-हाट जाने-आने में सुबीता हो गया।

भोला—पर टट्टू भी तो नहीं लाया हूँ। आगे चलकर मैंने उसके बदले में एक बकरा ले लिया।

स्त्री—बकरा ! यह तो अच्छा ही रहा। टट्टू रखकर हम लोग व्यर्थ क्यों खर्च बढ़ाते ?

भोला—पर बकरा भी तो नहीं है। आगे चलकर बकरे को मैंने एक मेढ़े से बदल लिया।

स्त्री—मेढ़ा तो मुझे भी बहुत पसंद है। चलो, अब घर ही की ऊन से कपड़े बनेंगे।

भोला—लेकिन अब मेढ़ा कहाँ ! उसे तो मैंने एक कुत्ते से बदल लिया।

स्त्री—तुम तो मानो अंतर्जामी हो। मेरे मन ही का काम किया। और, और कुछ नहीं, तो घर की चौकसी तो रक्खेगा।

भोला—पर मैंने तो उसे देकर एक बिल्ली ले ली।

स्त्री—यह तो और भी अच्छी रही। चूहों से तो अब परेशान न रहूँगी।

भोला—पर बिल्ली भी नहीं है ! उसे मैंने एक मुर्ग़े से बदल लिया।

स्त्री—क्या कहना है ! अब ठीक समय पर सोकर तो उठा करेंगे।

भोला—पर आज दिन-भर कुछ खाया नहीं था, इससे जब भूख बहुत लगी, तो मैंने उसे भोजन के बदले सरायवाले को दे दिया।

स्त्री—बहुत ठीक किया; और क्या भूखे रहते ?

इस पर भोला दरवाज़े की ओर बढ़कर पड़ोसी से बोला—"कहो, हमारे सौ खरे हो गए न !"

भूपनारायण दीक्षित

× × ×

६. चोर की सज़ा *

देखो, उलटा बाँध चोर को रहा सिपाही कैसा मार।
हाय-हाय कहकर चिल्लाता, सुनता है खासी फटकार।



किंतु न कोई उसे छुड़ाता; होठों पर आई है जान।
कभी करोगे चोरी तुम तो यही सज़ा कर लो अनुमान।

वस्तु किसी की लेने की जो होवे तुमको चाह।
भले माँगकर ले लो उसको, नहीं बिगाड़ो राह।
पहले तो जो पास न होवे, उसकी करो न चाह;
हाँ, कोशिश करते जाओ पर तजो चोर की राह।
चोरों का विश्वास, कोई करता है नहीं।
इससे इनका बास, कारागृह रहता सदा।

गुरुराम "भक्त"

---

* अप्रकाशित "बाल-विलास" से।—संपादक



१. पौदों की विचित्रताएँ

जब पौदों को काफ़ी सूर्य का प्रकाश और नर्मी मिलती है, तब क्या वे संतुष्ट जान पड़ते हैं ? पौदे को जड़ से उखाड़ डालने अथवा उसकी टहनियाँ, पत्तियाँ या फूलों को तोड़ लेने पर क्या उसे तकलीफ़ होती है ? क्या पौदों को कठिनाइयों और विपत्तियों से अपनी रक्षा करने का ज्ञान होता है ?

ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका समुचित उत्तर डॉ० जगदीश-चंद्र वसु बहुत पहले दे चुके हैं । उन्हें मनुष्य और पौदे के जीवन में किसी प्रकार का तारतम्य नहीं मिलता । उनका विचार है कि जैसे मनुष्य अच्छा भोजन और वस्त्र पाकर प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार पौदे सूर्य का प्रकाश और गर्मी पाकर प्रसन्न एवं संतुष्ट होते हैं । जिस प्रकार हमें पैर में ठोकर लगने या किसी अंग की हड्डी टूट जाने पर कष्ट जान पड़ता है, उसी प्रकार पौदे भी डालियाँ, पत्तियाँ या फूलों के टूटने पर कष्ट का अनुभव करते हैं । पौदे दुःख-सुख, तकलीफ़-आराम, प्रसन्नता-शोक आदि का अनुभव करते हैं, यह भी प्रमाणित हो चुका है । किंतु अभी तक यह प्रमाणित नहीं हुआ था कि पौदों के ज्ञान या विवेचन-शक्ति होती है । दो प्रसिद्ध उद्भिद्-तत्त्व-विशारदों—प्रो० टायस डिक्सन और प्रो० फ़्रैंकलिन फ़िच—का विश्वास है कि पौदों में मनुष्य के-जैसा ज्ञान और दुःख-सुख तथा अन्य उत्तेजनाओं के अनुकूल अपनी परिस्थिति को बना लेने की शक्ति है । वे तो यहाँ तक कहते हैं कि एक दिन हम लोग यह भी प्रमाणित करने में समर्थ होंगे कि वृक्षों तथा पौदों में मनुष्य-जैसी ही आत्मा भी होती है ।

गुलाब तथा अन्य फूलों को आँधी आने की पूर्व-सूचना मिल जाती है, और वे अपनी रक्षा करने के लिये पहले ही से तैयार हो जाते हैं । खिले हुए फूल सिकुड़ जाते हैं ; पत्तियाँ भी अपनी रक्षा के लिये तैयार हो जाती हैं । जो पौदे कीड़े-मकोड़े खाकर जीवन धारण करते हैं, उनका व्यवहार देखकर तो इस विषय में कुछ भी शक नहीं रह जाता कि उद्भिज्जगत् के 'प्राणियों' के भी मनुष्यों-जैसा ही ज्ञान होता है । 'सन-ड्यु'-नामक राक्षस-पौदे पर, जो कीड़े-मकोड़े खाकर रहता है, छोटा कंकड़, धातु का टुकड़ा या दूसरी कोई वस्तु फेंकने से कोई फल नहीं होता । किंतु ज्यों ही उस पर कोई कीड़ा आकर गिरता है, उसकी पत्तियाँ बड़ी फुरती से उसे दबा लेती और अपना आहार बनाती हैं । न-मालूम किस शक्ति द्वारा ये पौदे कीड़ों की उपस्थिति को ताड़ जाते हैं । इन पौदों के निकट भी यदि कोई कीड़ा उपस्थित हो, तो उसका पता इन्हें लग जाता है । वैज्ञानिकों ने कीड़ों को काग़ज़ पर 'आलपीन' द्वारा अँटकाकर, पौदों से कुछ दूर पर रखकर देखा है कि ये पौदे अपनी पत्तियों को उस

दिशा में झुका देते हैं, और यदि कीड़े उनकी पहुँच के भीतर हुए, तो उन पर टूट पड़ते हैं। इन पौदों का स्पर्श-ज्ञान इतना तेज़ होता है कि यदि उन पर ३/८ इंच लंबा बाल का टुकड़ा डाला जाय, तो भी वे तुरंत उसका अनुभव कर लेंगे।

बाघ अपने शिकार को पाकर कितना ख़ुश जान पड़ता है। ठीक वैसी ही ख़ुशी 'वेनस'-नामक मक्खी फसानेवाला पौदा अपना शिकार पाकर प्रकट करता है। इस पौदे की पत्तियों के दोनों ओर तीन-तीन काँटे होते हैं। वे ज्ञानेंद्रियों का काम करते हैं। ज्यों ही कोई कीड़ा आकर पत्ती पर गिरता या उसके पास पहुँचता है, त्यों ही वह बड़ी तेज़ी से बंद हो जाती है, और बेचारा कीड़ा निस्सहाय होकर प्राण गँवाता है।

सभी पौदों को नई एवं कष्टकर परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। उनका जीवन आत्मरक्षा का एक संग्राम है। उन्हें अपनी जीवन-रक्षा के लिये अक्सर अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनाना पड़ता है। कभी-कभी उनका व्यवहार किसी दैवी शक्ति द्वारा प्रेरित जान पड़ता है।

मनुष्य ही क्यों, सभी प्राणियों को विश्राम की आवश्यकता होती है। मनुष्य और पौदों में जब प्रायः समानता स्थापित हो गई, तब यह अनुमान कर लेना भूल नहीं कि वे भी विश्राम करते हैं। बहुतेरे लोग समझते हैं कि रात में अँधेरा हो जाने ही के कारण पौदों के फूल नीचे की ओर झुक जाते हैं, वे अपनी पंखुड़ियों को समेट लेते हैं, और उनकी पत्तियाँ गिर जाती हैं। किंतु असल बात यह है कि रात में पौदे भी सोते हैं। सोने के समय जैसे हम लोग अपनी पेशियों को ढीला कर देते हैं, उसी प्रकार पौदे भी अपनी पेशियों को ढीला कर देते हैं, जिसका उपरि-लिखित फल होता है। कुछ लोग पूछ सकते हैं कि पौदों को यदि दिन ही में किसी अँधेरे घर में रख दें, तो क्या हो? अँधेरा पाकर क्या वे उस समय भी सो रहेंगे या जगे रहेंगे? इसके उत्तर में मैं कहूँगा कि यदि किसी मनुष्य को दिन ही में किसी काल-कोठरी में बंद कर दिया जाय, तो क्या हो? पौदों को दिन में अँधेरी कोठरी में बंद करके परीक्षा की गई है। पहले तो कुछ देर के लिये वे कुछ-कुछ निद्रित होने की अवस्था को पहुँच जाते हैं, किंतु पीछे उनको अपनी भूल ज्ञात हो जाती है, और वे तुरंत सिर उठाकर सजग हो जाते हैं। अँधेरे का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

पौदों को समय का ज्ञान मनुष्यों से कहीं ज़्यादा होता है। वे सूर्योदय के बहुत पहले उठते हैं, उनके फूल ठीक समय पर खिलते और ठीक समय पर बंद होते हैं। प्रसिद्ध स्विडिश वैज्ञानिक लिनेइयस ने एक बार एक फूल-घड़ी बनाई, जो अपने भिन्न-भिन्न फूलों को खिलाकर तथा बंद कर ठीक समय बतलाया करती थी। बग़ीचे के सभी फूल एक अच्छी, ठीक समय देनेवाली घड़ी का काम करते हैं।

पौदों को स्वाद-ज्ञान भी होता है। यदि ऐसा न होता, तो मिट्टी के कई प्रकार के पदार्थों से वे अपनी रक्षणोपयोगी वस्तु ही को कैसे ग्रहण कर सकते?

ऊपर बतलाया जा चुका है कि पौदों का जीवन मनुष्यों के जीवन से बहुत कुछ मिलता है। मनुष्य खाते-पीते और मौज करते हैं; पौदे भी ऐसा ही करते हैं। मनुष्य शादी करते



कुछ पौदे खास तौर से बने हुए जाल में मक्खियाँ फसाते हैं, और तब, पशुओं की तरह, अपने शिकार को हज़म करते हैं

और संतान पैदा करते हैं, फिर पौदे उनसे क्यों पीछे पड़े रहें। उद्भिद्-शास्त्रियों का कहना है कि पराग-भक्षक कीड़ों के आविर्भाव के पहले रंगीन फूलों का पता तक नहीं था। किंतु संतान पैदा करना ही पौदों के जीवन का—जैसे अन्य प्राणियों के जीवन का—प्रधान लक्ष्य है। पर यह काम विना स्वजातीय फूल का पराग पाए नहीं हो सकता। इस बात को समझकर ही फूलों ने कीड़ों को आकर्षित करने के लिये अपने को रंगीन बनाया। लेकिन, फिर भी, रंगीन बना लेने ही से तो काम नहीं चलता; क्योंकि चमक-दमक देख-कर कीड़े उन पर भूल तो अवश्य जायँगे, किंतु जब तक वे फूलों पर बैठेंगे नहीं, तब तक पराग ग्रहण कैसे करेंगे? इस विचार से फूलों ने मद पैदा किया। मद के लोभ से कीड़े फूलों पर बैठते हैं, और पराग उनके अंगों में चिपक जाता है। वे पुनः दूसरे फूलों पर जाकर बैठते हैं, और वहाँ पराग छोड़ आते तथा फूलों की संतान-वृद्धि में सहायता करते हैं।

क्या फूलों की रहन-सहन मनुष्यों की रहन-सहन से अधिक विचित्र नहीं है?

× × ×

२. अनिद्रा

आजकल बहुत-से लोग अनिद्रा-रोग से पीड़ित देखे जाते हैं। अनिद्रा के यों तो कई कारण हैं; किंतु उनमें सर्वप्रधान है रात में अधिक भोजन करना। लाखों मनुष्य ठीक भोजन न करने के कारण अनिद्रा-रोग से ग्रसित रहते हैं। बहुतेरे ऐसे हैं, जिन्हें अनपच रहता है; किंतु उसका उन्हें ज्ञान नहीं होता। हमारी पाचन शक्ति भोजन पचाने की यथाशक्ति चेष्टा करती है, तो भी हमारे अत्याचार के कारण वह हमारे खाए हुए सब पदार्थों को नहीं पचा सकती; क्योंकि हम लोग प्रायः आवश्यकता से अधिक भोजन किया करते हैं। इसके अलावा कुछ लोग रात में बहुत देर करके या ठीक सोने के पहले ही खाते हैं। फल यह होता है कि रात के पहले हिस्से में तो वे सुख की नींद सोते हैं। किंतु ज्यों-ज्यों रात बीतती जाती है, त्यों-त्यों उनकी निद्रा में व्याघात उप-स्थित होता है, और रात का दूसरा हिस्सा व्यर्थ के स्वप्न देखने में बीतता है।

डॉ० एलिज़बेथ स्लोन चेसर सोने के समय से तीन घंटे पूर्व कोई भी गरिष्ठ पदार्थ खाने को मना करती हैं। उनके विचार में ब्यालू का समय ७ बजे शाम को है; क्योंकि इसके बाद दो-तीन घंटे मज़े में काम किया जा सकता है। इतने समय के काम से भोजन बहुत कुछ पच जायगा। सोने के समय एक ग्लास दूध या किसी फल का रस हमारा अंतिम भोजन होना चाहिए।

अत्यधिक मानसिक परिश्रम करने से भी अनिद्रा होती है। किंतु अधिक भोजन और काम करने से अनिद्रा होने की जितनी संभावना होती है, उतनी अत्यधिक मानसिक परिश्रम करने से नहीं; क्योंकि मस्तिष्क पर भोजनोत्पादक विष का चिंताओं से ज़्यादा प्रभाव पड़ता है।

अनिद्रा का दूसरा कारण कुपथ्य भोजन है। हममें कुछ लोग बहुत-सा मांस खा लेते या शराब पीते हैं, और रोटी, दूध, शाक-सब्ज़ी की ओर उतना ध्यान नहीं देते। यदि इस कारण अनिद्रा-रोग हुआ हो, तो दवा बड़ी आसान है। कुपथ्य भोजन छोड़ दीजिए, काफ़ी रोटी, भात, दाल, दूध, मक्खन, फल और तरकारी खाइए। अनिद्रा जाती रहेगी।

× × ×

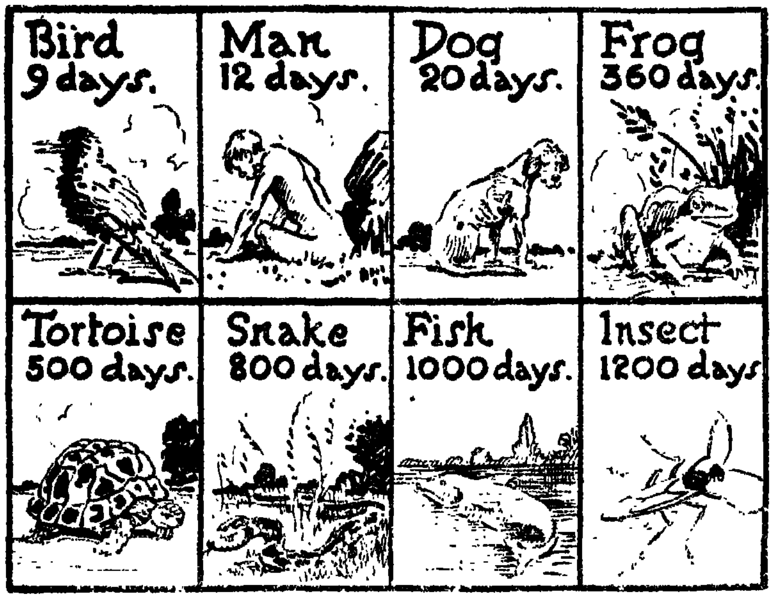
३. अंधा घड़ीसाज़

साधारणतः देखा जाता है कि अंधे मनुष्य, जो जन्म ही के अंधे हैं, अपने नेत्र की कमी को किसी दूसरी इंद्रिय द्वारा पूरा करते हैं। अक्सर उनका स्पर्श-ज्ञान बढ़ जाता है। हालबीच में 'रिपिन'-नामक एक अंधा घड़ीसाज़ रहता है। वह घड़ियों के सभी पुर्ज़े निकालकर पुनः उन्हें यथास्थान जमा देता था। इस काम में उसे आँखवाले घड़ीसाज़ों से समय भी कम लगता था। घड़ियों की मरम्मत करना उसके बाएँ हाथ का खेल था। एक बार उसके यहाँ से किसी ने घड़ियों के कुछ पहिए और स्क्रू चुरा लिए। चोर पकड़ा गया। रिपिन ने उन पुर्ज़ों को केवल छूकर बतला दिया कि वे उसके थे। घड़ियों की जो त्रुटियाँ अन्य घड़ीसाज़ नहीं निकाल सकते थे, उन्हें रिपिन निकाल ही नहीं, प्रत्युत दूर भी कर देता था। इस देश के अंधे क्या करते हैं?

× × ×

४. उपवास की अवधि

लोग ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक खोज में अग्रसर होते जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी निरीहता का पता भी लगता जाता है। उपवास ही को लीजिए। जितने समय तक एक कीड़ा या पतिंगा उपवास कर सकता है, उतने काल तक संसार का



उपवास की अवधि

शायद कोई भी प्राणी भोजन के बिना नहीं रह सकता। कोई-कोई कीड़े चार-चार साल तक बिना भोजन किए हुए ज़िंदा रह सकते हैं। इसके बाद स्थान है मछलियों का। ये हज़ार दिनों तक उपवास कर सकती हैं। इसके बाद साँप, कछुआ, मेंढक का नंबर है। इनके उपवास-काल की अवधि क्रमशः ८००, ५०० और ३६० दिन हैं। कुत्ते बीस दिनों से ज़्यादा उपवास नहीं कर सकते, और मनुष्य तो सिर्फ़ बारह दिन! चिड़िया ६ दिनों तक बिना किसी प्रकार के आहार के रह सकती है। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि यह नियम एक जाति के सभी प्राणियों के विषय में लागू है। कोई-कोई मनुष्य कई महीनों तक उपवास करते हुए देखे गए हैं। जो चित्र ऊपर दिया गया है, उसमें प्राणियों का औसत उपवास-काल बताया गया है।

× × ×

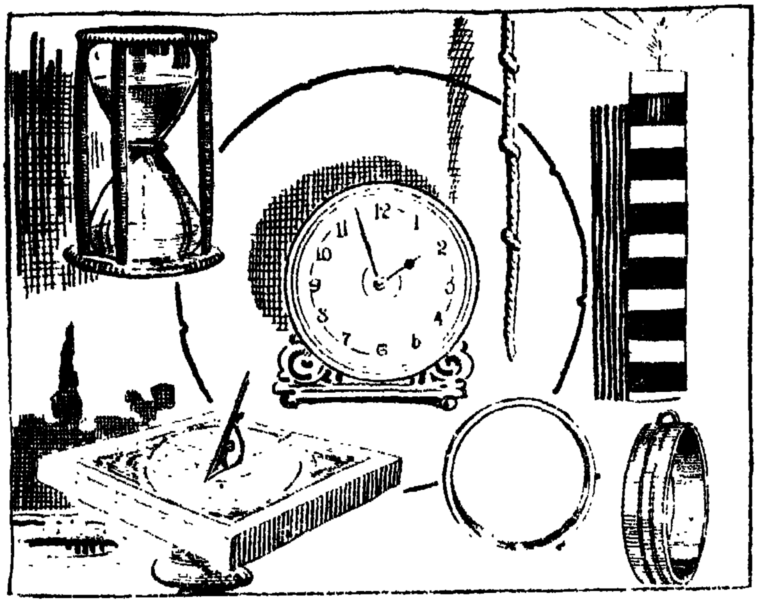
५. अद्भुत घड़ियाँ

एक फ़्रांस-निवासी ने एक घड़ी बनाई है। इसके बनाने में उसे बारह साल लगे हैं। विशेषता यह है कि वह हर चौथाई घंटे पर आवाज़ करती है। इसके ऊपर पृथ्वी की एक प्रति आकृति सूर्य की परिक्रमा करती है। घड़ी साल, महीना, दिन, घंटा, मिनट, सेकंड और राशि-चक्रों को भी बतलाती है। किंतु इससे यह न समझना चाहिए कि यही एक अद्भुत घड़ी बनी है। कुछ दिन हुए, न्यू यार्क के एक इंजीनियर ने एक घड़ी बनाई है, जिसका समय प्रति-दिन रेडियो द्वारा मिलाया जाता है। यह घड़ी अपने आसपास की और भी कई घड़ियों को चलाती, उनका समय मिलाती तथा ठीक रखती है। आशा की जाती है कि ऐसी घड़ियाँ रेडियो द्वारा एक-एक प्रांत की घड़ियों का समय अपने अनुकूल रक्खा करेंगी।

लंदन के वाटरलू-स्टेशन पर चार मुँहवाली एक घड़ी है, जो बिजली द्वारा चलाई जाती है। लंदन में पृथ्वी-तल के नीचे जितनी घड़ियाँ हैं, सब ऐसी ही बिजली की घड़ियों द्वारा चलाई और ठीक रक्खी जाती हैं। कुछ साल हुए, रूस के ज़ार ने एक पोलिश कारीगर की ख्याति सुनकर उसके पास कुछ ताँबे की कीलें, लकड़ी के टुकड़े, टूटे हुए शीशे और चीनी के बर्तन, दो-तीन लोहे की कीलें आदि सामान भेजा, और हुक्म दिया कि एक घड़ी बनाकर भेज दो। समय पाकर एक घड़ी आई, जो उन्हीं वस्तुओं की बनी थी, और अच्छा काम दे रही थी।

वेल्स-कैथीड्रल में एक विचित्र घड़ी है, जिसे सन् १३२० ई० में महंत पिटर लाइट फ़ुट ने बनाया था। इसमें आकाश के नक्षत्रों और ग्रहों आदि के नमूने बने हैं। यह घंटा, दिन, महीना आदि, सभी बतलाती है। एक घड़ी में दोनों ओर दो सवार बने हैं। घंटा बजने के समय वे दोनों ओर से आते हैं, और बीच में भेंट होने पर एक दूसरे पर बर्छे चलाने लगते हैं। वे उतने ही बार बर्छे चलाते हैं, जितना बजा हो। उनके बर्छे चलाते ही घंटे की आवाज़ होती है। स्ट्रेस्बर्ग-कैथीड्रल में भी एक अद्भुत घड़ी है। उसमें ज्योतिष-संबंधी आकाश-स्थित सभी ग्रह-नक्षत्र-राशि आदि अंकित हैं। उनकी गति-स्थान आदि भी असली-जैसे हैं। इसलिये उसे देखने ही से पता लग जाता है कि वर्ष के किस दिन किसी विशेष ग्रह का स्थान कहाँ है। इसके कल-पुर्ज़े संसार में अद्वितीय हैं।

जिस घड़ी के विषय में सबसे पहले लिखा गया है, उसमें विशेषता केवल चौथाई घंटे पर आवाज़ करना ही



भिन्न-भिन्न प्रकार की घड़ियाँ

नहीं है। उसमें पहले चौथाई घंटे पर एक लड़के की आकृति दिखाकर 'घड़-घड़'-शब्द होता है, दूसरे चौथाई घंटे अर्थात् आधे घंटे पर एक युवक का एक छड़ी से, तीसरे चौथाई घंटे पर एक सैनिक का एक तलवार से और घंटा पूरा हो जाने पर एक बूढ़े की एक लाठी से घंटे पर मारकर आवाज़ करना देख पड़ता है। इसी समय मृत्यु की आकृति का एक पुतला निकलकर, आख़िरी चोट घंटे पर देकर घंटे का बजना ख़त्म करता है। दोपहर को बारह बजने के साथ ही क्राइस्ट, जो एक ऊँचे स्थान पर बैठे रहते हैं, के सामने से उनके बारहों चेले अभिवादन करते हुए निकलते हैं। पीटर ज्यों ही उनके पास से गुज़रते हैं, त्यों ही एक मुर्ग़ा अपना पंख फड़फड़ाता है, और तीन बार बाँग देता है। कैसी अद्भुत घड़ी है!'

अब कुछ पुरानी घड़ियों के विषय में भी सुन लीजिए। एक बालू-घड़ी होती थी। जिसमें दो आधार होते थे, और दोनों को मिलाता हुआ एक पतला सूराख़। एक आधार में बालू रहती थी। उस पतले सूराख़ से होकर दूसरे आधार में गिरने में एक निश्चित समय लगेगा ही। इसी के द्वारा समय का अनुमान किया जाता था। वैज्ञानिक कार्यों में आज भी यह घड़ी काम में आती है। रस्सी या मोमबत्ती को जलाकर, लकड़ी या धूप-घड़ी से समय जानने की प्रथा प्राचीन काल से प्रचलित है। इनके कुछ चित्र दिए गए हैं।

× × ×

६. एक पहिए की साइकिल

बर्लिन के रास्ते पर एक दिन लोगों ने एक क्लर्क को एक पहिए की साइकिल पर ऑफ़िस जाते हुए देखकर आश्चर्य किया था। किंतु अब ऐसी ही साइकिल का प्रचार होने लगेगा, तब आश्चर्य की कोई बात न रहेगी। इस साइकिल पर चढ़ने के लिये बहुत अच्छे 'बैलेंस' की ज़रूरत है। दो पहिएवाली साइकिल पर चढ़ते-चढ़ते जिन लोगों ने अपना 'बैलेंस' दुरुस्त कर लिया है, वे इस साइकिल पर



एक पहिए की साइकिल

आसानी से चढ़ सकते हैं। भीड़ आदि में साइकिल को उठाकर टाँग भी सकते हैं।

रमेशप्रसाद



१. गृहस्थों के प्रति

गृहस्थ बनना एक बड़ी ज़िम्मेदारी का काम है । खेद है, अधिकांश स्त्री-पुरुष, इस ज़िम्मेदारी का कुछ भी ज्ञान न रहने पर भी, गृहस्थी का बोझ उठा लेते हैं । इसका परिणाम क्या होता है ? वे अनेक प्रकार की ऐसी भद्दी भूलें करते हैं, जिनके कारण उनका गार्हस्थ्य जीवन दुःखमय हो जाता है । शास्त्रकारों ने लिखा है कि पुरुष को पहले 'धी' (बुद्धि और विद्या) प्राप्त करनी चाहिए ; उसके बाद 'श्री' अर्थात् धन-दौलत, और फिर 'स्त्री' । इस क्रम में गड़बड़ हो जाने से ही गृहस्थी नरक बन जाती है । आजकल भारत में यह हाल है कि लड़का अभी स्कूल की किसी छोटी कक्षा में ही पढ़ता रहता है, और उसका विवाह हो जाता है । तब उसे विद्याध्ययन छोड़कर धन कमाने की आवश्यकता होती है । परंतु शारीरिक तथा बौद्धिक अपरिपक्वता तथा अयोग्यता के कारण वह किसी भी काम में सफल नहीं होता ।

किंतु आज हम जिस बात पर विचार करना चाहते हैं, वह माता-पिता का सदाचार-रक्षा-संबंधी उत्तरदायित्व है । हम अपने इर्द-गिर्द इस संसार में ऐसे सैकड़ों लोगों को देखते हैं, जो धन कमाने की तो मानो मशीन हैं ; वे बातचीत में बड़े चतुर हैं, सरकार में बड़ी मान-प्रतिष्ठा रखते हैं, और बड़े-बड़े उच्च पदों को सुशोभित करते हैं । परंतु अपने बाल-बच्चों और संबंधियों के आचार की रक्षा का उन्हें कुछ ध्यान ही नहीं । उनके लड़के और लड़कियाँ दुराचार में लिप्त हो रही हैं, परंतु उन्हें मालूम तक नहीं । युवक और युवतियों की चेष्टाओं को समझने की उनमें बुद्धि ही नहीं । दिन-दहाड़े इन लोगों के घरों में आचार की चोरी होती है, परंतु इनकी दृष्टि ही उधर नहीं जाती । फिर जब एकदम भंडा फूटता है, तो इनके दुःख और शोक की सीमा नहीं रहती । इनके लड़के और लड़कियाँ चरित्र-भ्रष्ट होकर घर से भाग जाती हैं, और इनसे हाथ मलने के सिवा और कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ता । इनकी संतान को अनेक तरह की बुरी आदतें पड़ जाती हैं, और इनको पता तक नहीं लगता । यदि पता लगता भी है, तो उस समय, जब कि रोग असाध्य हो चुकता और संतान आयु-भर के लिये रोगी हो जाती है । इसलिये माता-पिता की आँखें सदैव खुली रहने की आवश्यकता है । परंतु जब तक उन्होंने बच्चों — लड़कों तथा लड़कियों — और स्त्रियों के मनोविज्ञान का अध्ययन न किया हो, जब तक वे काम-शास्त्र के सिद्धांतों को न जानते हों, तब तक वे यथोचित रूप से अपने परिवार की रक्षा नहीं कर सकते । हम अपनी बात को दो-एक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं ।

साधारणतः यह समझा जाता है कि लड़कों को ही हस्त-मैथुन आदि अस्वाभाविक क्रियाओं द्वारा वीर्य-नाश

की बुरी लत पड़ जाती है, और इसलिये दो लड़कों का एक खाट पर सोना या एक ही कोठरी में रहना बुरा है। स्कूलों के छात्रावासों में भी केवल दो लड़के एक कमरे में नहीं रक्खे जाते। परंतु लड़कियों के विषय में इस लत के होने का किसी को ख़याल तक नहीं होता; लड़कियों को लड़कों से न मिलने देना ही उनकी रक्षा के लिये पर्याप्त समझा जाता है। दो युवतियों के एक ही खाट पर सोने पर किसी भी माता-पिता या छात्रावास की अधिष्ठात्री को आपत्ति नहीं होती। किंतु यह एक भारी अज्ञान है। लड़कियों में भी यह लत उतनी ही पाई जाती है, जितनी लड़कों में।

एक युवक ने एक बार अपने एक मित्र से शिकायत की कि मेरा विवाह हुए दो वर्ष हो गए हैं। मेरी स्त्री का मेरी विधवा बहन पर बड़ा प्यार है। वह उसी के साथ उठती-बैठती और रात को भी उसी के साथ सोती है। मेरे अनुरोध करने पर भी वह एकांत में मेरे पास नहीं आती; बलात्कार करूँ, तो चिल्लाने लगती है। मैं बहुत तंग आ गया हूँ। मुझे कोई उपाय बताइए।

मित्र ने कहा कि तुम ननँद-भौजाई की चेष्टाओं पर तनिक दृष्टि रखना; गुप्त रूप से देखना कि वे एकांत में क्या करती हैं। उस युवक ने जो चौकसी से काम लिया, तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे आपस में पुरुषायत करती हैं। ननँद ने अपनी काम-वासना की तृप्ति के लिये युवती भावज को अपना साधन बना रक्खा था। जब उसने इस बात की सूचना अपने मित्र को दी, तो उसने कहा कि ननँद को उसके ससुराल भेज दो। इनको अलग-अलग कर देना ही इस रोग की दवा है। उसने अपनी बहन को कोई बहाना करके, बड़ी मुश्किल से, उसको ससुराल भिजवा दिया, यद्यपि वह इसके लिये तैयार नहीं थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी स्त्री का अपने पति में अनुराग हो गया, और पुरुष के सहवास का जो उसके मन में त्रास बैठा दिया गया था, वह दूर हो गया। काम-वासना के उत्तेजित होने से लड़के और लड़कियों को एक विशेष प्रकार की मादकता का अनुभव होता है, और अज्ञानता-वश उन्हें बुरी लत पड़ जाती है। इसलिये माताओं और अध्यापिकाओं को चाहिए कि वे लड़कियों की गति-मति को ध्यान-पूर्वक देखती रहें, और उनमें किसी बुरी लत का तनिक भी संदेह होने पर, उन्हें एकांत में ले जाकर प्यार से समझाने और उस लत को छुड़ाने का प्रयत्न करें।

मनुष्य-शरीर में कामवासना के अनेक केंद्र हैं। उनको मलने या रगड़ने से कामोद्दीपन हो जाता है। उदाहरणार्थ स्तन, मूत्रेंद्रिय, जाँघ, ठुड्डी इत्यादि ऐसे अंग हैं, जिनका मदन के साथ विशेष संबंध है। इसीलिये ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों के लिये इनका अनावश्यक स्पर्श वर्जित है। बाइसिकल और घोड़े की सवारी से भी कई लोगों में उत्तेजना पैदा हो जाती है। अँगूठा या उँगली चूसने से कई छोटे बच्चों में मस्ती-सी पैदा हो जाती है। सयानी माताएँ देख सकती हैं कि हमारी संतान अज्ञानतः किसी ढंग से ब्रह्मचर्य का नाश तो नहीं कर रही है।

काम-कला के योरपीय आचार्य श्री० हेवेलाक एलिस ने अपनी पुस्तक में एक दृष्टांत दिया है। एक स्कूल में बीस-पचीस लड़कियाँ सीने की मशीनें चला रही थीं। जब श्री० एलिस उनके कमरे में गए, तो उन्होंने क्या देखा कि बाक़ी मशीनें तो ठीक गति से चल रही हैं, परंतु एक लड़की बे-तहाशा चला रही है। उसमें से ठिक्...ठिक्... ठि...ठि...ठिक् का लंबा शब्द निकल रहा है। उन्होंने उस लड़की को ध्यान से देखा, तो उसके दाँत भींचे हुए, शरीर ऐंठा हुआ, गालों पर लाली और माथे पर पसीने की बूँदें देख पड़ीं। वह उन्माद की-सी दशा में बेसुध थी। उसे पता तक न था कि कोई मुझे ताड़ रहा है। दो-चार मिनट के बाद उसकी मशीन ठहरकर स्वाभाविक गति से चलने लगी। उसके शरीर की ऐंठन और गालों की गुलाबी रंगत भी दूर हो गई। श्री० एलिस ने स्कूल की अधिष्ठात्री से कहा कि ज़रा इस लड़की का अंदर का कपड़ा तो देखिए। अधिष्ठात्री ने देखा, तो वह सचमुच स्मर-जल से भीगा हुआ था।

अधिष्ठात्री को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने इसका ध्यान रक्खा। थोड़ी देर बाद एक दूसरी लड़की की मशीन से भी वैसा ही लंबा एवं अनर्गल शब्द सुन पड़ा। वह झट उसके पास पहुँची। उसे भी उसने उसी दशा में पाया। ऐंठन के उपरांत शरीर ढीला पड़ जाने—चरम धातु के क्षरित हो जाने—के बाद जब उसका भी निचला वस्त्र देखा गया, तो वह भी भीगा हुआ मिला। श्री० एलिस ने अध्यापिका को बताया कि एक जाँघ को दूसरी जाँघ पर रखकर ये लड़कियाँ अपनी गुह्येंद्रियों को मसलती

हैं, इससे इन्हें उत्तेजना उत्पन्न होती है। परिणामतः वीर्य धातु क्षरित हो जाती है। यह भी एक प्रकार का मैथुन है।

उन्होंने एक और स्त्री का भी उदाहरण दिया है। वह रेल पर सवार होने के लिये स्टेशन आई थी। गाड़ी आने में अभी कुछ देर थी। वह एक अकेली पड़ी हुई बेंच पर बैठ गई। स्त्री ने अपने पेड़ू को जल्दी-जल्दी घुमाकर अपनी जननेंद्रिय को बेंच के सख़्त किनारे के साथ रगड़ना शुरू किया। थोड़ी देर में उसे मदनोन्माद उत्पन्न हो गया। उसके गालों पर लाली झलकने लगी। उसने आँखें बंद कर लीं, और दाँत कसकर मीच लिए। थोड़ी देर बाद जब स्मर-जल के पतन से उसके गुप्त अंग भीग गए, तो उसका जोश उतर गया, और वह उठकर दूसरी मुसाफ़िर-स्त्रियों में जा बैठी।

अमृतसर में एक बूढ़ा रहा करता था। लोग उसे 'भक्तजी' कहते थे। वह छोटी-छोटी लड़कियों को चिवड़े-रेवड़ियाँ बाँटकर अपने घर ले जाता। वहाँ उन्हें कहता कि पति-पत्नी का खेल खेलो। फिर कहता, तुम्हें खेलना नहीं आता। आओ, मैं तुम्हें सिखाऊँ। वह इतना बूढ़ा था कि उससे किसी प्रकार का व्यभिचार हो सकना संभव न था। परंतु वह अपनी बुरी आदत कैसे छोड़ता। किंतु इससे छोटी लड़कियों में, छोटी आयु में ही, काम-वासना के जागृत होने का भय अवश्य था, जिससे भयंकर परिणाम पैदा हो सकते थे। माताएँ लड़कियों को रोज़ चिवड़े-रेवड़ियाँ लाते देखतीं और प्रसन्न होतीं। परंतु किसी को भी यह ध्यान न आता कि देखें तो सही, यह बुड्ढा रोज़ इतने पैसे क्यों ख़र्च करता है? अंत में एक दिन एक बड़ी लड़की भी उसके जाल में फँस गई। उसने उसके घर में जो लीला देखी, वह सब अपने घरवालों को आकर सुना दी। तब तो सारी गली में शोर मच गया, और सभी उस बुड्ढे को बुरा-भला कहने लगे।

हो सकता है कि कुछ अति सभ्य मनुष्य हमारी उपर्युक्त बातों को अश्लील कहकर उनका यहाँ लिखा जाना अनुचित समझें। परंतु उनसे मत-भेद रखते हुए हम इतना ही निवेदन करना चाहते हैं कि स्त्री-पुरुष के अंगों में, उनके नामों या उनकी स्वाभाविक क्रियाओं में कुछ भी अश्लीलता नहीं है; अश्लीलता है उनके दुरुपयोग में। ये इंद्रियाँ सब पवित्र हैं। इनकी उपयोगिता का यथार्थ ज्ञान न होने से ही मनुष्य भयंकर भूलें करते और हानि उठाते हैं। हमारा विश्वास है कि जो बातें ऊपर लिखी गई हैं, यदि उनका ज्ञान माता-पिता तथा अध्यापिकाओं को हो, तो वे बहू-बेटियों और लड़कियों को अनेक प्रकार की हानियों से बचा सकती हैं। हमें मालूम है, स्कूलों और कन्या-पाठशालाओं में सौ पीछे दस से भी अधिक कन्याएँ इस लत में फँसी हुई हैं। इन विद्यालयों में युवती अध्यापिकाएँ और बड़ी कक्षाओं की लड़कियाँ छोटी लड़कियों को ख़राब करती हैं। परंतु अज्ञान के कारण किसी को उन पर संदेह नहीं होता। यदि उनकी अध्यापिकाओं और अधिष्ठात्रियों को इस विषय की कुछ समझ हो, तो वे उनकी यह बुरी लत छुड़ा सकती हैं।

एक दूसरी बुराई की ओर भी हम गृहस्थ स्त्री-पुरुषों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। प्रायः देखा जाता है कि पति-पत्नी एक दूसरे के चरित्र पर व्यर्थ शंका करने लगते हैं। शंकाशीलता का यह स्वभाव कई बार बहुत बुरे परिणाम उत्पन्न करता है। हम यह नहीं कहते कि स्त्री-पुरुष एक दूसरे के चरित्र की निगरानी न करें, या दुराचार से आँख मीच लें। परंतु निर्मूल संदेह से सिवा दुःख के और कुछ नहीं हाथ आता।

एक सज्जन ने अपने पुत्र का विवाह किया। सौभाग्य से बहू बड़ी सुशीला और बुद्धिमती मिली। ससुर बहू की सुशीलता से बहुत प्रसन्न था। प्रसन्न होकर वह अपनी स्त्री से कहता कि देखो, बहू कैसी अच्छी है, कैसा प्रबंध करती है, कैसी बुद्धिमती है, कैसी अच्छी रसोई बनाती है; तू कुछ भी नहीं जानती। पति के मुख से दो-चार बार बहू की प्रशंसा सुनकर स्त्री को संदेह हो गया। वह रुष्ट होकर पति से बोली कि बस, इस घर में या तो मैं रहूँगी, या बहू ही रहेगी। यह मेरी सौत बनकर यहाँ नहीं रह सकती। यह सुनकर बेचारी बहू बहुत रोई-पीटी; परंतु सास ने एक न सुनी। ससुर महाशय बड़े शुद्धाचारी थे। जब स्त्री के लड़ाई-झगड़े से बहुत तंग आ गए, तो उन्होंने गली में खड़े होकर कहा कि लोगो, मैं सबके सामने कहता हूँ कि यह बहू मेरी बेटी है। मैं बहू और बेटे को नहीं छोड़ सकता। मेरी स्त्री यदि नहीं रहना चाहती, तो बेशक चली जाय। तब वह स्त्री छाती पीटने लगी, और मायके दौड़ गई। परंतु कुछ दिन बाद आप ही लौट आई।

कुछ माता-पिता बच्चों को ऐसी बातें करने का उपदेश करते हैं, जिन पर वे स्वयं आचरण नहीं कर सकते। इससे वे अपनी स्थिति को उपहासजनक बना लेते हैं।

संतराम

× × ×

२. तितली बटुआ *

यह सुंदर बटुआ प्रत्येक समय भिन्न-भिन्न प्रकार की पोशाकों के साथ काम में लाया जा सकता है। इसकी परत ख़ानेदार-क्रोशिए की, अस्तर रेशम का और झालर पोतों की होती है।

परतों के लिये ५० नंबर का क्रोशिया-काटन अथवा कोई अन्य इतना मोटा धागा लो, जिससे एक इंच में ६ ख़ाने बनें। धागा सफ़ेद अथवा किसी भी हल्के सुंदर रंग का हो सकता है।

यह १८ चेन करके बीच में से आरंभ किया जाता है।

१ पंक्ति—३ चेन छोड़ो; १ तेहरा प्रत्येक अगली १५ चेनों में।

२-७ पंक्ति—३ चेन १ तेहरा पहली पंक्ति के प्रत्येक तेहरे पर (घर के दोनों धागों में)। अब तेहरों का एक चौकोना बन गया।

८ पंक्ति—इस चौकोने के चारों ओर दोहरे बुनो; परंतु प्रत्येक कोनों पर लौटते समय एक घर में ३ दोहरे बुनो।

९ पंक्ति—अब धागे को तोड़कर चौखूँटे की चौथी पंक्ति पर बाँध लो, अथवा सादे फंदे करके चौथी पंक्ति के ऊपर पहुँच जाओ। ५ चेन (पहले ख़ाने के लिये), २ घर छोड़कर १ तेहरा, २ और ख़ाने, * २ चेन, ५ तेहरे कोने के तीन दोहरों में (पहले में १, दूसरे में ३ और फिर पहले में १), २ चेन, १ तेहरा अगले दोहरे में, ५ ख़ाने और। अब चारों ओर ऊपरवाले इस * चिह्नों से इसी प्रकार बनाओ। अंत में २ ख़ाने रहेंगे। अब इनके बाद की २ चेनों को आरंभ करो, और ५ चेन में की तीसरी में जोड़ दो। कोनों के बीच में ७ ख़ाने रहेंगे।

१० पंक्ति—४ ख़ाने * १ तेहरा कोनेवाले ५ तेहरों में से पहले तेहरे पर (यह ख़ानों में से पिछला तेहरा होगा), २ चेन, ५ तेहरे तीसरे तेहरे में, २ चेन, १ तेहरा पाँचवें तेहरे पर * ७ ख़ाने पहले चिह्न से फिर चारों तरफ़ बनाओ; परंतु अंत में ३ ख़ाने करके जोड़ दो।

११ पंक्ति—१०वीं पंक्ति की तरह बनेगी; परंतु प्रत्येक ओर २ ख़ाने बढ़ जायँगे।

१२ पंक्ति—४ तेहरे (पहले तेहरे के लिये ३ चेन बनाकर) कोने में (दसवीं पंक्तिवाले चिह्न * से चिह्न * तक), ५ ख़ाने। चारों तरफ़ इसी तरह बनाओ; अंत में ४ ख़ाने, २ चेन करके तीन चेन के सिरे पर जोड़ दो।

१३ पंक्ति—१२वीं की तरह; परंतु इसमें ५ ख़ानों की जगह ६ ख़ाने होंगे।

१४ पंक्ति—४ तेहरे, ३ ख़ाने, ७ तेहरे, २ ख़ाने, कोना, २ ख़ाने, ७ तेहरे, ३ ख़ाने। चारों तरफ़ ऐसा ही करके जोड़ दो।

१५ पंक्ति—४ तेहरे, २ ख़ाने, १३ तेहरे, २ ख़ाने, कोना, २ ख़ाने, १३ तेहरे, २ ख़ाने। इसी तरह चारों तरफ़ करके जोड़ दो।

१६ पंक्ति—४ तेहरे, १ ख़ाना, १९ तेहरे, २ ख़ाने, कोना, २ ख़ाने, १९ तेहरे, २ ख़ाने चारों तरफ़ बनाकर जोड़ दो।

१७ पंक्ति—७ तेहरे, *९ ख़ाने, कोना, ९ ख़ाने, १० तेहरे, चारों ओर ऐसे ही * से बनाओ। अंत में ३ तेहरे ३ चेन के ऊपर जोड़ दो।

१८ पंक्ति—२२ तेहरे, * ५ ख़ाने, कोना, ५ ख़ाने, ४० तेहरे। चारों तरफ़ ऐसे ही बनाकर अंत में १८ तेहरे जोड़ दो।

१९ पंक्ति—४ तेहरे, १ ख़ाने, १० तेहरे, १ ख़ाना, ७ तेहरे, ५ ख़ाने, कोना, ५ ख़ाने, ७ तेहरे, १ ख़ाना, १० तेहरे, १ ख़ाना। चारों तरफ़ ऐसे ही जोड़ो।

२० पंक्ति—४ तेहरे, (२ ख़ाने, ७ तेहरे, दो बार), ५ ख़ाने, कोना, ५ ख़ाने, (७ तेहरे, २ ख़ाने, दो बार)। चारों तरफ़ ऐसे ही जोड़ो।

२१ पंक्ति—१ ख़ाना, ४ तेहरे, २ ख़ाने, १६ तेहरे, ६ ख़ाने, तेहरा अगले तेहरे पर, ५ तेहरे अगले में या ५ तेहरों में से तीसरे ते० में, अगले २ घरों में एक-एक तेहरा, ६ ख़ाने, १६ तेहरे, २ ख़ाने, ४ तेहरे, चारों तरफ़ ऐसे ही बुनो। अंत में ३ तेहरे, ५ चेन की तीसरी चेन में जोड़ो।

२२ पंक्ति—२ ख़ाने, * ४ तेहरे, ३ ख़ाने, १३ तेहरे, ५ ख़ाने, कोना, (इधर-उधरवाले तेहरों में एक-एक तेहरा और बीचवाले तेहरे में ५ तेहरे), ५ ख़ाने, १३ तेहरे, ३ ख़ाने, * से चारों तरफ़; अंत में २ चेन करके ५ चेन में की तीसरी में जोड़ दो।

२३ पंक्ति—३ ख़ाने, * ४ तेहरे, ४ ख़ाने, १२ तेहरे, २ ख़ाने, कोना। जैसे, २२वीं पंक्ति में बना है। सारे १७ तेहरे, ३ ख़ाने, १२ तेहरे, ४ ख़ाने, ४ तेहरे, ५ ख़ाने * से चारों तरफ़, १ ख़ाना, २ चेन, तीसरी में जोड़ो।

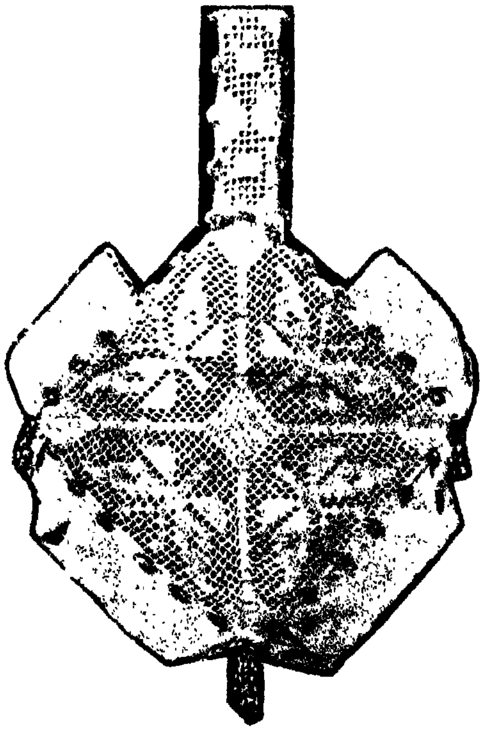
* यह क्रोशिए की दस्तकारी का प्रथम लेख है। पारिभाषिक शब्दों के लिये माधुरी वर्ष ५, संख्या ४ देखिए—मा०-संपा०

२४ पंक्ति—३ खाने, * ४ तेहरे, ११ ख़ाने, कोना, (२१ तेहरे), ११ ख़ाने, ४ तेहरे, ५ ख़ाने चारों तरफ़; अंत में २३वीं पंक्ति की तरह।

२५ पंक्ति—१५ ख़ाने, * कोना (२५ तेहरा) २१ ख़ाने चारों तरफ़ अंत में १३ ख़ाने, २ चेन जोड़ो।

२६ पंक्ति—किनारे के लिये (२ दोहरे-क्रोशिए ख़ाने में और दो क्रोशिया तेहरे में) ५ बार, ४ चेन छोटो। पीछे के तीसरे दोहरे क्रोशिए में सादे फंदे से जोड़ दो। छोटो। चेन के छल्ले में ७ दो० क्रो० बनाओ, और इसी प्रकार प्रत्येक कोने पर; फिर तिकोने के दोनों सिरों पर; और इन दोनों के बीच में बराबर-बराबर अंतर पर ४ छल्ले बनाती जाओ।

इन छोटे-छोटे छल्लों पर पोतों के फूल लगाए जायँगे (क्रोशिए से पिछली लकीर बनाते वक़्त धागे में यदि पोतें पिरो ली जातीं, और प्रत्येक दोहरे के साथ-साथ उनको बुनती जातीं, तो ये क्रोशिए से ही लग सकते थे); परंतु सुई धागे से लगाना सुगम और शीघ्र होता है। फूल के बीचोबीच दो बड़े मोती रखने चाहिए। छल्ले के सिरे पर धागे को बाँध लो, और इसमें एक छोटी पोत पिरो लो। सुई को दोहरों में डाल दो या छोटा-सा टाँका लेकर, एक और पोत पिरोकर. कस दो। अब दो बड़े मोती पिरोओ, और उसी दोहरे में बाँध दो, जहाँ से तुमने आरंभ किया था। अब छल्ले के चारों ओर हरएक घर में एक-एक पोत पिरोकर सीती जाओ। दूसरे छल्ले पर आने के लिये सुई-धागे को दोहरे-क्रोशिए की लकीरों के पीछे से या बीच में से ले जाओ, और फिर उसी तरह बनाओ। छोटी-बड़ी और हल्के-गहरे एक ही रंग की पोतें लगाने से बहुत सुंदर फूल बनाए जा सकते हैं। दोनों परतों का एक कोना ऊपर करके रक्खो, और अस्तर को नीचे की तरफ़ किनारों पर ढीला रक्खो। अस्तर ऊपर की तरफ़ के आधे बीच तक इसी तरह आवे, जैसा चित्र में है। अस्तर के किनारे पर लगी हुई पतली रेशमी गोट को परत के साथ जोड़ दो, और जोड़ते समय एक लंबे धागे में पिरोई हुई पोतों की लकीर को हर पोत के बाद एक सुई के नन्हें-नन्हें टाँके से जड़ दो।



तितली बटुआ

हैंडिल

२४ फंदों की चेन बनाओ—

१ पंक्ति—३ चेन छोड़कर ६ फंदों में ६ तेहरे, १ ख़ाना, १० तेहरे।

२-३ पंक्ति—१० तेहरे (३ चेन पहले तेहरे के लिये) १ ख़ाना, १० तेहरे।

४ पंक्ति—७ तेहरे, ३ ख़ाने, ७ तेहरे।

५ पंक्ति—४ तेहरे, ५ ख़ाने, ४ तेहरे।

६-७ पंक्ति—७ ख़ाने।

८-१० पंक्ति—२ ख़ाने, १० तेहरे, २ ख़ाने।

११-१५ पंक्ति—७वीं से लेकर क्रम से तीसरी के अनुसार।

दूसरी पंक्ति से फिर ऐसा ही बनाओ। इसका सिरा भी उसी प्रकार बनेगा, जैसा चौकोने का बना था। उसी प्रकार अस्तर भी लगा दो। चौकोने के ऊपर के सिरों के साथ हैंडिल के सिरों को सफ़ाई और मज़बूती से सी दो, और निचले और दोनों ओर के कोनों पर पोतों के सवा और डेढ़ इंच लंबे गुच्छे लटका दो।

ओमवती देवी



१. मिश्र हरिप्रसाद

इस कवि का वर्णन 'मिश्रबंधु-विनोद' में नहीं है। इनके पिता गंगेश मिश्र का नाम विनोद में नंबर ५०० पर दिया है। गंगेश ने 'विक्रम-विलास' नाम से बैताल-पचीसी का अनुवाद हिंदी-पद्य में, संवत् १७३६ में, किया था। मिश्र हरिप्रसाद-रचित तीन ग्रंथ मालूम हुए हैं—(१) भाषा तिलक, (२) बालकराम-विनोद, तथा (३) नवरस। इनमें से पहले दो हमने देखे हैं और इस लेख में उन्हीं का कुछ परिचय पाठकों को देते हैं।

हरिप्रसादजी ने अपने वंश का परिचय 'भाषा-तिलक' में दिया है—'मथुरा में मकरंद पुरोहित नाम के एक माथुर चौबे रहते थे। उनके पाँच पुत्र श्रीवल्लभ, श्रीराम, हृदयराम, गंगेश तथा मानसिंह हुए। गंगेश का प्रसिद्ध नाम गंगापति भी था। इन्हीं गंगेश के पुत्र हरिप्रसाद थे।"

हरिप्रसाद का जन्म-संवत ठीक-ठीक नहीं मालूम हुआ। यदि संवत् १७३६ या उसके दो-चार वर्ष पश्चात् का माना जाय, तो ठीक ही होगा।

'भाषा-तिलक' में काव्य के सभी मुख्य-मुख्य विषय, संक्षेप में, दिए गए हैं। कवि ने स्वयं ग्रंथानुक्रमणिका इस रीति से लिखी है—

कबि-सिच्छा पहले कहौं, छंद-भेद को ज्ञान ;
बरननीय बिधि पुनि कहौं, जो कबि करौ प्रमान।
कबिता के गुन-दोष पुनि, अलंकार-रस-रीति ;
सब्द-अर्थ की सक्ति पुनि कहियत बस्तु प्रतीति।

इस ग्रंथ में सोलह अध्याय हैं, जिनको कवि ने 'विरंचन' के नाम से लिखा है—

१—ग्रंथावतारनिरूपणम्	प्रथम विरंचन
२—नाममाला	द्वितीय ,,
३—छंद-विवेचन	तृतीय ,,
४—काव्य-लक्षणपरीक्षणम्	चतुर्थ ,,
५—गुण-निरूपणम्	पंचम ,,
६—दोषोद्घोषण	षष्ठ ,,
७—शब्दालंकार-विचार	सप्तम ,,
८—उपमालंकारविचारणम्	अष्टम ,,
९—अतिशयविषमविवेचन	नवम ,,
१०—शब्द-श्लेष-वर्णन	दशम ,,
११—वास्तव-प्रस्ताव	एकादश ,,
१२—रसध्वनि-निरूपणम्	द्वादश ,,
१३—वर्ण-वर्णनम्	त्रयोदश ,,
१४—कवि-सिच्छावर्णनम्	चतुर्दश ,,
१५—कविज्ञान-विज्ञापनम्	पंचदश ,,
१६—ग्रंथ-समासम्	षोडश ,,

इस विरंचन-सूची से पाठकों को ग्रंथ में वर्णित विषयों का कुछ हाल मालूम हो जायगा। दोहा,

सवैया, कवित्त, सब ही प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है। 'भाषा-तिलक' का निर्माण-काल संवत् १७८७ है।

संवत सत्रह सौ बरस मोद मनोहर आदि।
भाषा-तिलक विचित्र इह ग्रंथनि ते उतपादि।
जो रस-तंबिध काननि सुन्यौ मुनि-मुख लियौ निवास।
बेद मास बसु नैन तिथि कवि तिनि कियौ प्रकास।

ग्रंथ परिमाण में २२०१ अनुष्टुप् छंदों के बराबर है।

'बालकराम-विनोद' में नायिका-भेद तथा संक्षेप में रस-निरूपण किया गया है। जो पुस्तक हमारे पास है, वह अपूर्ण है। इस कारण यह नहीं मालूम हो सका कि जिनके लिये यह ग्रंथ लिखा गया है, वह बालकराम कौन थे। और, न ग्रंथ के निर्माण का संवत् ही मालूम हो सका है। ग्रंथ के देखने से अनुमान होता है कि समग्र ग्रंथ परिमाण में ६२० अनुष्टुप् छंदों के बराबर अवश्य होगा।

अब हम 'भाषा-तिलक' और 'बालकराम-विनोद' से कुछ अवतरण देते हैं, जिससे पाठकों को हरिप्रसादजी की कविता का कुछ परिचय मिले, और मिश्रबंधु महोदयों को प्रेरणा प्रदान करने में सुगमता हो—

(भाषा-तिलक से)

नारायन-नाभि-सरवर के सरोरुह ते,
एक ही के वैभव अनेकनि बिचारे हैं।
कबिन को माते हहरानी पाइ पूजे यह,
प्रतिबिंब सुभ याही बिंब के सवारे हैं।
गंगापति पाइ गुरु सादर सराहे मुख,
सुख सनमुख सिर नाइ उर धारे हैं।
मित्र के सरन सब संकटहरन जग-
देव के चरन से सहायक हमारे हैं।

अथ समाधि—

अर्थ, और को और में, आरोपित दरसाइ।
सो समाधि कोउ अर्थ की, महिमा होइ लखाइ।
बिन कारन यह देखियो, कहूँक छाया हेतु।
जदपि प्रगट है अथ, तउ समझै हू सुख देतु।

छाया-हेतु समाधि। यथा—

नैननि को प्रतिबिंब निहारि करे जल में कर-पंकज थोखे;
हाथ न आवतु नाइ रहे सिर लाज सखीन की आपने धोखे।
भूलि फिरे फिर यों मुसकाइ, सुने पुनि कानन कैतक चोखे;
साँचिले नीरज हू न गहे झिझकाइ रहे पिय देखत पोखे।

अर्थापत्ति—

सिद्ध एक कीजे जहाँ अर्थ और है सिद्ध;
अलंकार बरनत तहाँ अर्थापत्ति प्रसिद्ध।

यथा—

सरस-सुधाकर कर-निकर, जीति किए आधीन;
सुजस रावरे सेत सब, आन कौन है दीन।

यथा (सवैया)—

कुंभज तापस बिंध्य गुरू बड़वानल-से जठरानल जारे;
नेकु में आतपि-आतपि के अमृपान सुखाइ किए जिन खारे।
जाइ न सोखति ताहि चकोर कहूँ बिधि बारिधि पान की बारे;
केतक अंब कनूकनि में पुनि हैं कितने ससि के कर भारे।

(बालकराम-विनोद से)

स्वाधीन-प्रिया (उदाहरण)—

पिय के उर की उर बसी, सौतिन के उर साल;
क्यों न सुहागिनि राधिका, पाइन लागतु लाल।

खंडिता (लक्षण)—

और नारि-संयोग को, चिह्न कछूक निहारि;
पिय पै कोपु जतावई, सो खंडिता बिचारि।

उदाहरण—

बिन गुन हार गरे गुह्यो, दियो महावर भाल;
रीझि खीझि अब जाहु तहँ, तिनको कियो निहाल।

दानवीर (उदाहरण)—

जाचक आवत-जात सुमेर लों मान भरोर भरे सब ही ते;
दान-दयानिधि श्रीरघुबीर सराहत हैं सब ही जब ही ते।
औधि के ईस करे बकसीस न जात गुनी अलंकार बही ते;
देसनि-देसनि गाँवनि-गाँवनि सूम कुबेर सुने तब ही ते।

शांत-रस—

शांत सुरस है, भाव है, भक्ति ज्ञान की रीति;
शास्त्र प्रीति पेषान अरु, वत्सल मधुर प्रतीति।
शम रति थाई शांत-रस, स्वाद जोग ही जानि;
भक्तिनि को सुख होहु घन, अघन सु ज्ञानी मानि।

आलंबन—

चारि भुजा कटि पीत पट, कौस्तुभ उर बनमाल;
सजल जलद से रुचिर तन, आलंबन नँदलाल।

आलंबन-भेद—

आलंबन की रीति यह, कहूँ लहे बैराग;
तापस मुनि जिन जिय लखौ, जिनको पूरो भाग।

मिश्र हरिप्रसाद का 'भाषा-तिलक' इस योग्य है कि

कोई उत्साही प्रकाशक उसका मुद्रण कराकर हिंदी-प्रेमियों को उसे सुलभ कर दे। विद्यार्थियों के लिये तो यह ग्रंथ परम उपयोगी होगा।

याज्ञिक-त्रय

× × ×

२. छोटा नागपुर के कवि

बिहारोत्कल-प्रांत की एक कमिश्नरी छोटा नागपुर है। इस कमिश्नरी में नागपुर-नामक एक स्थान है। वह ज़िला राँची में है। राँची ज़िला तथा उसके आसपास के निवासी अधिकांश में कोल, उराँव और मुंडा हैं। उनकी अपनी भाषा है। वह भाषा दो प्रकार की है, मुंडारी और उराँव। उनकी सभ्यता भी अपनी है, यद्यपि पूजा-पाठ और धार्मिक सिद्धांत में वे वैदिक धर्मावलंबी हैं। उनके आचार-विचार तथा दंत-कथाओं पर विचार करने से मालूम होता है कि जिस असभ्यावस्था में वे आज हैं, उसी में सदा से नहीं रहे हैं। वे पहले वैदिक धर्म से पूर्णतः परिचित थे, ऐसा जान पड़ता है। जंगलों में आ बसने के कारण उनके यहाँ विद्या का लोप हो गया है, और आज वे जंगली कहे जाते हैं।

मुंडा और उराँवों से, खरवार तथा चेरो भी, जो अपने को क्षत्रिय कहते हैं, रंग-रूप और आचार-विचार में बहुत मिलते हैं। मुंडा और उराँवों में एक प्रकार के नाच की पुरानी प्रथा है। उस नाच को साधारणतः 'करमा' कहते हैं। मानर पर पुरुष गाते और नाचते हैं। नाच में एक पंक्ति स्त्रियों की और दूसरी पुरुषों की होती है। दो पंक्तियों की एक जमात का गाना और नाचना एक संग होता है। उस जमात में स्त्री और पुरुष सभी ऐसे नाते के होते हैं, जो आपस के आमोद-प्रमोद में भाग ले सकें। जिस जमात में मा-बाप होते हैं, उसमें लड़की-लड़के भाग नहीं लेते। शेष सभी नाते के लोग सम्मिलित होते हैं। पर्दे की प्रथा उनमें नहीं है। पुरुष-दल मानर पर ताल देता हुआ राग अलापता है, और स्त्रियाँ उसे दुहराती हैं। गोल चक्कर में वे नाचते हैं। उनके नाच-गान कई प्रकार के हैं। उनके नाच की कला देखकर बिना प्रशंसा किए नहीं रहा जाता। नाच में बाज़ी लगाकर स्त्रियाँ और पुरुष अपना-अपना कौशल प्रदर्शित करते हैं।

ऐसे तो कमिश्नरी-भर में, जहाँ कहीं वे हैं, उनका नाच-गान होता है; किंतु राँची के पास नागपुर में, जिसे छोटा नागपुर कहते हैं, इसकी प्रथा बहुत अधिक प्रसिद्ध है। वहाँ के सभी लोग उनके नाच-गान में भाग लेते हैं। छोटा नागपुर के झूमर की बहुत ख्याति है। इस ख्याति का कारण उनका विचित्र नाच-गान ही नहीं है, बल्कि उनके गानों की उत्तमता भी है। उनके गानों के रचनेवाले कई प्रसिद्ध-प्रसिद्ध प्रतिभा-संपन्न कवि वहाँ हो गए हैं। कवियों की सूझ, भाव-विदग्धता, विचार-परिपक्वता, काव्य की अभिज्ञता और हिंदू-शास्त्र-मर्मज्ञता का पता उनकी कविताओं के अध्ययन और अनुशीलन से चलता है।

वहाँ के कवियों की कविताओं (गानों) में विविध विषयों का समावेश है। उनके काव्य की शैली निराली है, राग सरस और अनोखे हैं, मात्रा गाने की सुविधा के अनुसार हैं, कविता भाव और रहस्य से भरी है, और गानों में काव्य-गुण भी वर्तमान हैं। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, पौराणिक आख्यायिकाएँ, कोकशास्त्र, बुझौवल, निर्गुण, दानलीला, नागलीला, कहानियाँ, ओझाई आदि की बातों से उन कवियों की कविताएँ भरी पड़ी हैं। उन कवियों ने जो कुछ रचा है, सब गाने के लिये ही। उसी के द्वारा जंगली कहलानेवालों में उन्होंने विविध विषयों के ज्ञान का प्रचार किया है। फगुआ, दोहा, चौपाई, मट्ठा, विवाह, पावस, दढ़िया, करमा, डोमकच्छ, बँगला, झूमटा, झूमर आदि रागों के नाम हैं।

गीतों की भाषा संस्कृत-शब्दों से भरी है। जिस प्रकार विद्यापति की कविता में संस्कृत के शुद्ध शब्दों के साथ ऐसे अपभ्रंश और विकृत शब्द हैं, जिनका अर्थ सहज में नहीं मालूम होता, वैसे ही छोटा नागपुर के कवियों की भाषा में संस्कृत के शुद्ध और विकृत शब्द आए हैं। किंतु विद्यापति की भाषा से उनकी भाषा स्पष्ट कही जा सकती है। छोटा नागपुर के कवियों की कविता में क्रियावाचक शब्दों का रूप बदला हुआ है।

उन कवियों के गीतों की छपी हुई पुस्तक कोई अब तक मेरे देखने में नहीं आई। न मुझे यही ठीक मालूम है कि कोई कहीं छपी है या नहीं, यदि छपी है, तो कहाँ से प्राप्य है। दंत-कथा है कि वहाँ के कवियों के गानों का छपानेवाला निर्वंश हो जाता है। हाल में सुनने में आया है कि एकबार उसी भाग के किसी ने कुछ छपवाना आरंभ किया था; किंतु कुछ अनिष्ट आ पड़ने से उसने वह काम बंद कर दिया। वहाँ के गानों की हस्त-लिपियाँ बहुत

घरों में पाई जाती हैं; परंतु उधर का कोई उन्हें बेचने को तैयार नहीं होता; क्योंकि वे ग्रंथ साहब की भाँति उसकी पूजा करते हैं।

कुछ काल से मैं इन कवियों की रचनाओं की खोज में हूँ। अब तक बरजूराम, हनुमानसिंह, सोबरनशाह, बंधु-लोहार, घासी महंत और कमल मलार की कुछ कविताएँ मिल सकी हैं। इन सबों में कवि हनुमानसिंह की कविता बहुत बढ़ी-चढ़ी जान पड़ती है। पुरुलिया के दक्षिण तमाड़ के रघुनाथ नृप ने कृष्णावतार और घम्मनदास ने भूतखंड की रचना की है। इन दोनों की कविता का बहुत कम अंश अभी तक मैंने देखा है। रघुनाथ नृप की रचना बँगला में अधिक है। यदि किसी प्रकाशक या लेखक के पास उधर के कवियों की रचनाएँ हों, तो मैं उनके सहयोग का प्रार्थी हूँ।

यह भी प्रथा है कि नाच-गान में कुछ दक्ष गाने नाचने-वाले बाज़ी पर खेलड़ी रखते और हारते-जीतते हैं। बाज़ी में प्रश्न और उत्तर के गाने होते हैं। एक प्रश्न करता है, दूसरा उसका यथोचित उत्तर देता है। ऊपर के कवियों की कविता से नमूने के तौर पर एक-एक छोटा-छोटा प्रश्न नीचे दिया जाता है—

१. द्विज बरजू पूछे सुनु प्राणी ;
माटी के घट में बोले कवनी ?
(बरजूराम)

२. सुनंकार संसार के कौन करे :
नहिं देखो पग कर, नहिं सुनो बानिवर।
वह अलख रूप कौन धरे ? सु०
(हनुमानसिंह)

३. हो पांहे पाँड़े मियाँ ?
तुम लोग बीच में जो परपंच किया।
राम रहिम दूनो नाम के धरिया ;
बिलग-बिलग चले राह रहियाँ।
हम तुम एके संग लेहु मँटियाँ ;
कौन विचार करे छूतियाँ टेक।
(सोबरनशाह)

४. बंधु लोहार पूछे अबिनाशी ;
पहले सँड़सी कि बने कुँटासी ?
लोहा न नसे राम, कधी से कतरवूँ चाम ;
कौन बाँस के नर माथी। पहले०।
(बंधु लोहार)

५. नहीं करूँ बनिज सेत सेंदुर के ;
चलूँ बजार साहब सतगुरु के।
भवजल जब अगमधार,
प्रभुजी तुम खेवहु पार ;
कलपत हैं हंस यही जग के। चलूँ०।
सत सुकृत चढ़ल नाव,
कोई नहिं जब खेवनहार ;
का करब यही जग में रही के। चलूँ०।
उहाँ त्रिकुटी दोकान नाम,
कौड़ी नाहीं लगे छदाम ;
सुख खरीद लेहु मुकुर के। चलूँ०।
जब महंथ घासीदास,
मेटहु प्रभु, जीव के त्रास ;
भए पुरान पिंजड़ा पदीन के। चलूँ०।
(घासी महंथ, उदासीखंड)

६. तहाँ भयऊ चरित्र अनूपा, सुरभूपा,
हम कहसे पविता ?
दोहा—गंगा के तट पर सुनो, इक सेमर-विस्तार ;
तेही पर खोंता डाँस एक, मैना बसत उदास।
तहाँ अंडा दिए शिशु होता हरषिता ;
करे दिन गुजार। टेक।
दो०—दिन बीतो ऐसो बहो, साल पहुँचा आय ;
मैना तब तेजित भयो, बाल बहुत दुखपाय।
एक दिन पवन करे जोरा, तरु तोरा ;
गिरे गंगा मँझारे। टेक।
दो०—गंगा में आरति पड़ी, पंछी के बड़ भाग ;
अति दुखित बहुवंत तनु, पाप सकल तन जात।
अमरावति करे वहाँ बासा, सुख पासा,
इन्हीं कमल बनाई। टेक।
(कमल मलार मैनाखंड से)

पांडेय रामावतार शर्मा



१. साहित्य

बिहारी-रत्नाकर—प्रणेता, श्रीजगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव (माधुरी-संपादक); आकार माधुरी-का-सा; पृष्ठ-संख्या ३२+२६६+४६; मूल्य ५) सजिल्द; सुकवि-माधुरी-माला का प्रथम पुष्प।

यह 'बिहारी-सतसई' की वही रत्नाकरी टीका है, जिसकी बहुत दिनों से धूम थी, और जिसके देखने के लिये आँखें तरस रही थीं। परमात्मा को धन्यवाद है कि यह छप गई, और आँखें भी ठंडी हुईं। इसके टीकाकार बाबू जगन्नाथदासजी "रत्नाकर" बी० ए० वर्तमान समय ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं, और वास्तव में वह हैं भी। उनकी रचनाएँ देखने से प्राचीन कवियों की याद आए बिना नहीं रहती। ऐसे कवि की टीका भला क्यों न अच्छी होगी। रत्नाकरजी ने सतसई के दोहों के पाठ शुद्ध और क्रम ठीक करने में बहुत खोज तथा परिश्रम किया है। आपको इसमें प्रायः सफलता भी हुई है। आज तक बहुत-सी टीकाएँ देखने में आईं; पर यह अपने ढंग की निराली ही है। सतसई का भाव हृदयंगम करने के लिये यह अच्छी है। पर अर्थ में कहीं-कहीं खींचतान की गई है। रत्नाकरजी ने "कहलाने एकत बसत" में 'कहलाने' का अर्थ "व्याकुल हुए" और "कातर हुए" लिखा है; पर प्रमाण कुछ नहीं दिया। 'कहलाने' का अर्थ तो 'किस लिये' है, और इसी अर्थ में अब तक इसका प्रयोग, जहाँ तक मुझे स्मरण है, बुंदेलखंड आदि में होता है। पं० प्रभुदयालु पाँडेय की टीका और लाल-चंद्रिका में भी यही अर्थ है। इसलिये रत्नाकरजी को अपने अर्थ के समर्थन में प्रमाण देना उचित था। इसी तरह 'सतर'-शब्द अब तक ब्रजभाषा में 'खड़े' और 'सीधे' अर्थ में व्यवहृत होता है; पर रत्नाकरजी ने इसका अर्थ 'कड़ी' और "तर्जन-युक्त" लिखा है। सारांश यह कि ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों के अर्थ में कहीं-कहीं गड़बड़ हो गई है। हाँ, गंगा-पुस्तकमाला ने इसे प्रकाशित कर बड़ा काम किया। इसकी बड़ी ज़रूरत थी। पं० पद्मसिंहजी की टीका 'संजीवन-भाष्य' होने पर भी अधूरी ही है। सतसई के प्रेमियों को रत्नाकरी टीका से बड़ा लाभ होगा, इसमें संदेह नहीं। सतसई के शब्दों का एक कोष भी अंत में दे दिया जाता, तो और भी अच्छा होता। सबसे बड़ी बात तो इसमें बिहारी का चित्र है, जो जयपुर से खोजकर लाया गया है। मिश्रबंधुओं ने तो कल्पित चित्र देकर बिहारी को उजड्ड एवं लंपट बना दिया था। "बिहारी-रत्नाकर" संग्रह करने योग्य है।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

× × ×

भ्रमरगीतसार—रचयिता, महात्मा सूरदासजी; संपादक, पं० रामचंद्र शुक्ल, प्रो० हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी; प्रकाशक, साहित्य-सेवा-सदन, काशी; पृष्ठ-संख्या २५०; मूल्य १); छपाई-सफ़ाई अत्यंत साधारण।

हिंदी साहित्य के दुर्भाग्य से ही हिंदी साहित्य-गगन के एकमात्र सूर्य महात्मा सूर की कृति का कोई भी सर्वांग-

पूर्ण संस्करण नहीं प्रकाशित हुआ। जितने भी संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उन सबमें विशुद्धता का तो अभाव है ही; साथ ही वे अपूर्ण भी हैं।

सम्मेलन द्वारा और इंडियन प्रेस द्वारा प्रकाशित 'संक्षिप्त सूरसागर' से तृष्णा का शांत होना तो दूर रहा, उलटे वह उन्हें देखकर कईगुनी बढ़ गई है। अब सम्मेलन तथा काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के पुस्तक-प्रकाशन-विभाग की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है, जब इन संस्थाओं से 'सूरसागर' का एक विशुद्ध एवं उपयोगी संस्करण प्रकाशित हो।

एक-मात्र इस अभाव की पूर्ति करने की इच्छा से ही काशी के साहित्य-सेवा सदन ने सूरसागर के सर्वोत्कृष्ट भाग अर्थात् 'भ्रमरगीत' को, सुप्रसिद्ध लेखक पं० रामचंद्र शुक्ल से संपादन कराकर, प्रकाशित किया है। इस संस्करण में पाठ की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्राचीन पुस्तकों में पाठांतर बहुत मिलते हैं। किंतु प्रस्तुत पुस्तक में पाठांतर नहीं दिए गए हैं। साधारण पाठांतर देने से कोई लाभ भी नहीं है। परंतु यदि कहीं पाठांतर के साथ अर्थांतर भी हो, तो उसे दे देना परमावश्यक है। हाँ, पाद-टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ देकर पुस्तक की उपादेयता बढ़ा दी गई है।

आरंभ में, ७९ पृष्ठ की भूमिका में, महात्मा सूरदासजी की प्रतिभा को यथावत प्रकाशित करने के हेतु एक पांडित्य-पूर्ण समालोचना की गई है। पं० रामचंद्र शुक्ल की काव्य-मर्मज्ञता तथा लेखन-शैली से 'जायसी' के पाठक अच्छी तरह परिचित हैं। शुक्लजी का परिश्रम अत्यंत सराहनीय है। उनकी 'तुलसी-ग्रंथावली' की प्रस्तावना तथा 'जायसी' और समालोच्य पुस्तक की भूमिकाएँ हिंदी-साहित्य में अच्छी समालोचना के अभाव की पूर्ति ही नहीं करतीं, वरन् 'अहाहा' और 'वाह-वाह'-वाली समालोचना की चाल के लेखकों को विशुद्ध एवं कल्याणकारी समालोचना करना सिखाती हैं। इस पुस्तक की भूमिका शुक्लजी के विस्तृत अध्ययन तथा घोर परिश्रम का फल है। आशा है, शुक्लजी स्वयं महात्मा सूरदासजी के विषय में एक विस्तृत आलोचना शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे। यदि यह पुस्तक कुछ अच्छी छपी होती, तो अधिक अच्छा था। सस्तेपन का आदर्श अच्छा है। परंतु इसके साथ कुछ छपाई-सफ़ाई की सुंदरता तथा अच्छे काग़ज़ की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। हम संपादक तथा प्रकाशक, दोनों को बधाई देते हैं, और हिंदी-प्रेमियों से अनुरोध करते हैं कि इस पुस्तक को पढ़कर अवश्य लाभ उठावें।

× × ×

जरासंध-वध महाकाव्य—रचयिता, बाबू गोपालचंदजी, उपनाम 'गिरिधरदास'; संपादक, बा० व्रजरत्नदास; प्रकाशक, कमलमणि-ग्रंथमाला-कार्यालय, काशी; पृष्ठ-संख्या २००; मूल्य १)

यह रचना भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी के पिता गिरिधरदासजी की सर्वोत्तम कृति है; परंतु है अपूर्ण। इसमें कंस की मृत्यु के बाद से लेकर पश्चिम तथा उत्तर द्वार तक के युद्ध की कथा ११ सर्गों में वर्णित है। इस अंतिम सर्ग का भी कुछ अंश संपादक महाशय ने पूर्ण किया है। इस वीर-रसात्मक महाकाव्य के आरंभ में ३९ पृष्ठों में कवि-परिचय तथा ग्रंथ-परिचय अच्छा दिया हुआ है। इस ग्रंथ-रत्न को हिंदी का सर्वप्रथम महाकाव्य प्रमाणित करते हुए लिखा है—"गो० तुलसीदासजी का रामचरितमानस महाकाव्य' से कहीं बढ़कर है। महाकवि केशवदास की रामचंद्रिका महाकाव्य कही जा सकती है; पर 'सर्गबंध महाकाव्य' नहीं है। इन कारणों से जरासंध वध ही हिंदी का पहला महाकाव्य माना जा सकता है।" वीर-रसात्मक हिंदी-काव्य-रचयिताओं में बाबू गिरिधरदास का वास्तविक स्थान निश्चित करने के लिये महाकवि भूषण की प्रबंध-काव्य लिखने की अशक्तता दिखाई गई है, और सूदन का 'सुजान-चरित्र' प्रबंध-काव्य होने पर भी महाकाव्य के लक्षणों से युक्त नहीं है। इस प्रकार की विचार-प्रणाली के अनुसार यह कहा गया है कि "इस ढंग का ग्रंथ केवल कविवर केशवदास-कृत रामचंद्रिका ही है।" किंतु मेरे विचार में सूदन के 'सुजान-चरित्र' की बहुत कुछ विशेषताओं का इस 'महाकाव्य' में सर्वथा अभाव है। दोनों वीर-रस के कवियों की कृतियों की वास्तविक तुलना करने से यह अच्छी तरह प्रतिपादित किया जा सकता है कि युद्धों का आँखों-देखा वर्णन होने के कारण जरासंध-वध महाकाव्य की अपेक्षा सूदन के 'सुजान-चरित्र' में वीर-रस की अधिक पुष्टि हुई है। मत में विभिन्नता होना स्वाभाविक है; परंतु यह समझ में नहीं आता कि वीर-गाथाओं के सर्वोत्कृष्ट लेखक महाकवि चंद के लिये इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया; उनकी तो वीर-रस के कवियों में गिनती भी नहीं की गई!

पुस्तक का संपादन अच्छा हुआ है। पाद-टिप्पणियाँ अत्यंत उपयोगी हैं। सफ़ाई-छपाई भी साधारणतः अच्छी है। जिस समय मुझे हिंदी का साधारण ज्ञान भी न था, उसी समय से मैं अपने पुस्तकालय की इस महा-काव्य की ४० वर्ष पहले प्रकाशित लिथोवाली प्रति में अश्वबंध, पदातिबंध, रथबंध, गजबंध आदि चित्र-काव्य के छंदों को देखकर ही बाबू गिरिधरदास के काव्य-कौशल की सराहना किया करता था। और, आज भी, विचार-पद्धति में बहुत कुछ परिवर्तन हो जाने के कारण दृष्टि-कोण में अंतर होते हुए भी, इस महाकाव्य पर मेरी वही श्रद्धा है। अस्तु, इसमें कोई संदेह नहीं कि शृंगार-रस-मय हिंदी-साहित्य में वीर-रस का अभाव दूर करने के लिये इस महाकाव्य का एक संशोधित संस्करण निकलने की अत्यंत आवश्यकता थी।

× × ×

चंद्रकांत (प्रथम भाग)—मूल-गुजराती-लेखक, स्वर्गीय इच्छाराम-सूर्यराम देसाई ; अनुवादक, पांडे रामप्रताप-अंबालाल शर्मा ; संशोधक, शास्त्री रघुवंश शर्मा अवस्थी ; पृष्ठ-संख्या ५०० ; मूल्य ४॥)

वर्तमान गुजराती गद्य-साहित्य में स्वर्गीय इच्छाराम-सूर्यराम देसाई को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। उन्होंने अपनी मातृभाषा की जो सेवा की है, वह किसी भी हिंदी-सेवी ने की हो, इसमें संदेह है। उन्होंने केवल 'गुजराती'-नामक साप्ताहिक का संपादन करके ही गुजराती-जनता को कृतज्ञ नहीं किया, प्रत्युत अनेकानेक उच्च कोटि के ग्रंथ लिखकर गुजराती गद्य-साहित्य की अनुपम श्रीवृद्धि भी की है। गुजराती-प्रिंटिंग-प्रेस के संस्थापक यही महाशय थे। इन्हीं के द्वारा रचित चंद्रकांत का गुजरात-प्रांत में बहुत मान है। गुजराती में इसके ६ संस्करण हो चुके हैं। अब हिंदी के सौभाग्य से इसके हिंदी-संस्करण के भी दूसरी बार छपने का अवसर आ गया है।

इस पुस्तक में वेदांत-शास्त्र-विषयक लगभग समस्त विषय अत्यंत ही सरल-सुलभ कर दिए गए हैं। साधारण वार्तालाप के ढंग से ही कथाओं द्वारा अत्यंत गूढ़ विषयों का सरल भाषा में प्रतिपादन किया गया है। जो सज्जन वेदांत-शास्त्र को, अत्यंत गूढ़ होने के कारण, अपनी बुद्धि के द्वारा अज्ञेय समझकर इस विषय की चर्चा से दूर भागते हैं, उनके लिये यह ग्रंथ वास्तव में परमोपयोगी है। प्रत्येक तत्त्व को अच्छी तरह समझाने के लिये विशेष कर हिंदू-धर्म-संबंधी पौराणिक आख्यायिकाओं का ही आश्रय लिया गया है। गुजराती-प्रेस की सफ़ाई-छपाई के लिये तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। वह हिंदी-प्रेसवालों के लिये आदर्श-रूप ही है। जब तक इस प्रकार के ग्रंथों का प्रचार नहीं होगा, तब तक इस देश के पाश्चात्य सभ्यता के पक्षपाती सज्जनों के हृदय में स्वार्थ-पूर्ण जड़वाद की जड़ निरंतर अधिकाधिक जमती जायगी। हम इस ग्रंथ-रत्न का पुनः स्वागत करते हैं।

भवानीशंकर याज्ञिक

× × ×

२. उपन्यास और कहानियाँ

प्रेमद्वादशी—लेखक, प्रेमचंदजी बी० ए०; संपादक, दुलारेलाल भार्गव ; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; आकार २०×३० सोलह पेजी ; पृष्ठ-संख्या २०६ ; मूल्य सादी जिल्द का १।) ; रेशमी जिल्द का १॥)

यह गंगा-पुस्तकमाला का अट्ठावनवाँ पुष्प है। इसके रचयिता श्रीप्रेमचंदजी हैं, जिनका गौरव 'गल्पों' के कारण ही हिंदी-संसार में बढ़ा है। इसके संपादक श्रीदुलारेलालजी भार्गव हैं, जो 'माधुरी' का संपादन सुचारुरूप से कर रहे हैं। बँगला के 'गल्प'-शब्द की घुसपैठ हिंदी में इधर-ही-उधर थी, पर अब गंगा-पुस्तकमाला के संपादक ने भी 'गल्प' को ग्रहण कर लिया। अब कहीं रोक-टोक नहीं हो सकती। सबसे बड़ी सनद मिल गई।

यह पुस्तक श्रीप्रेमचंदजी की नई-पुरानी बारह 'गल्पों' का संग्रह-मात्र है। कुछ गल्पें तो मासिक पत्रों में पहले छप चुकी हैं, और कुछ कोरी हैं। यह शायद सभी मुक्त कंठ से कहेंगे कि प्रेमचंदजी नाटकों और उपन्यासों की अपेक्षा गल्पों में अधिक सफल हुए हैं। गल्पें छोटी, पर सुंदर और भाव-पूर्ण हैं; पढ़ने में जी लगता है। हाँ, भाषा कहीं-कहीं शिथिल और चिंतनीय है। यह होने पर भी पुस्तक संग्राह्य है।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

× × ×

३. आयुर्वेद

नाड़ी-विज्ञान—'संकलनकर्ता, पं० गोविंदकृष्ण रिसबुड'; स्कूली साइज ; कागज़ आदि संतोषजनक ; पृ०-सं० १५१ ; मूल्य ॥) है

पूना-निवासी श्रीयुत गंगाधर गणेश फडके ने मराठी-भाषा में 'नाड़ी-परीक्षा-शास्त्र'-नामक एक पुस्तक लिखी थी । यह हिंदी-पुस्तक प्रायः उसी का रूपांतर है। रिस-बुडजी ने इस पुस्तक के संकलन में यथेष्ट परिश्रम किया है । प्राच्य तथा पाश्चात्य रीति से नाड़ी-विज्ञान-संबंधी अनेक आवश्यक और ज्ञातव्य बातों का सन्निवेश इसमें बड़े अच्छे ढंग से किया गया है । हमारी सम्मति में प्रत्येक चिकित्सा-व्यवसायी तथा आयुर्वेद के जिज्ञासु को यह पुस्तक अवश्य ध्यान पूर्वक पढ़नी चाहिए । भाषा परिमार्जनीय है । यदि इसकी कुछ त्रुटियों को दूर करके परिमार्जित भाषा में अच्छे ढंग से इसका संपादन हो जाय, तो निस्संदेह यह पुस्तक हिंदी जगत् में बड़े काम की हो सकती है ।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

४. महिला-साहित्य

वनिता-विलास (महिला-माला की दसवीं मणि)—लेखक, भूतपूर्व सरस्वती-संपादक पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारीजी ; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ ; पृष्ठ-संख्या १० ; काग़ज़, छपाई, सफ़ाई, बँधाई उत्तम ; अनेक सादे और रंगीन चित्रों-सहित ; मूल्य ॥।)

पूज्य द्विवेदीजी ने समय-समय पर जिन भारतवर्षीय एवं विदेशी महिला-रत्नों की जीवनियाँ लिखी थीं, इसमें उन्हींका संग्रह किया गया है । संग्रह सुंदर हुआ है, और जीवनियाँ बड़े ही रोचक ढंग से लिखी गई हैं । भाषा और भावों के विषय में क्या कहा जाय ; इसके लिये द्विवेदीजी का नाम ही काफ़ी है । प्रियंवदा का चित्र बहुत ही सुंदर और भाव-पूर्ण है । वह चित्र-कला का एक उत्तम नमूना है । आशा है, पाठिकाएँ यह पुस्तक प्रेम से पढ़ेंगी ।

× × ×

जच्चा (महिला-माला की आठवीं मणि)—लेखक, भिषग्मणि कविराज श्रीप्रतापसिंह वैद्य-विशारद ; संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारीजी ; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ ; पृष्ठ-संख्या १६० ; काग़ज़, छपाई, सफ़ाई, बँधाई उत्तम ; मूल्य ॥।=)

हमारे देश में स्त्रियों की दशा बहुत ही गई-बीती है । और बातें जाने दीजिए, वे अनेक शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त रहती हैं, पर अपने कष्ट के विषय में ज़बान भी नहीं हिला सकतीं ; प्रसव की असीम वेदना सहन करती हैं, जिसका उन पर तथा उनके शिशु पर बड़ा ही घातक परिणाम होता है ; पर वे नहीं जानतीं कि यह पीड़ा क्यों हो रही है, उनका शिशु क्यों छटपटा रहा है, और इस दुःख-दर्द से बचने के क्या उपाय हैं । ऐसी दशा में कुशल वैद्यजी ने यह मौलिक पुस्तक लिखकर साहित्य की जो सेवा की है, सो तो है ही; पर उन्होंने महिलाओं का बहुत ही उपकार किया है । हम प्रत्येक पढ़ी-लिखी पाठिका से प्रार्थना करते हैं कि वह अविलंब इस पुस्तक का संग्रह करे, इसके पाठ से लाभ उठावे, तथा अपने और अपने शिशु के दुःखमय जीवन को सुखमय बनाने की चेष्टा करे । पुस्तक की विषय-सूची इस प्रकार है—मासिकधर्म, श्वेतप्रदर, जननेंद्रिय की अस्वाभाविक उत्तेजना, वंध्यात्व, गर्भ-धारण, गर्भिणी के रोग, सौर में प्रवेश, प्रसव, ज़च्चा और शिशु की हिफ़ाज़त, बिना चिकित्सक के प्रसव का प्रबंध और ओषधियों के प्रयोग । इस सूची से मालूम हो जाता है कि लेखक ने पुस्तक लिखने में कोई बात छोड़ी नहीं । प्रत्येक विषय का प्रतिपादन विस्तार के साथ किया गया है, तथा सभी बातें बड़ी सरलता और शिष्टता से समझाई गई हैं । अंत में ओषधियों के प्रयोग दे देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है । देवीजी ने संपादन भी योग्यता-पूर्वक किया है । जहाँ लेखक से उनका मत नहीं मिला, वहाँ उन्होंने अपनी टिप्पणियाँ लगा दी हैं । यह बहुत अच्छा हुआ है । पुस्तक की भाषा कहीं-कहीं क्लिष्ट हो जाने से साधारण शिक्षा पाई हुई पाठिकाएँ विषय समझने में कठिनाई का अनुभव करेंगी । आशा है, आगामी संस्करण में यह थोड़ी-सी त्रुटि भी दूर हो जायगी ।

ज़हूरबख़्श

× × ×

गुप्त संदेश (प्रथम भाग)—लेखक, डॉक्टर युद्धवीरसिंह पी० ई० एच्०, आई० एम० पी० ; संपादिका, श्रीकृष्णकुमारी देवी ; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ ; मूल्य ॥=)

यह पुस्तक माताओं, विवाहित देवियों तथा उन कन्याओं के लिये लिखी गई है, जिनकी अवस्था परिपक्व है, और विवाह होनेवाला है । यह युवतियों के लिये

भी लाभदायक शिक्षा और संग्रह-योग्य ज्ञान से परिपूर्ण है। स्त्रियों का जीवन किस प्रकार सुखमय बन सकता है, इसका उपाय इसमें बताया गया है। सचमुच यह स्त्रियों के बड़े काम की पुस्तक है। यदि इसके अनुसार कन्याओं का लालन-पालन हो, तो वे अवश्य वीर-जननी हो सकती हैं। इसके लेखक डॉक्टर हैं, इसलिये उनकी बातें माननीय हैं। ऐसी अच्छी पुस्तक लिखने और प्रकाशित करने के लिये लेखक और प्रकाशक, दोनों धन्यवाद के पात्र हैं। प्रत्येक स्त्री के हाथ में इसकी एक-एक प्रति रहनी चाहिए। इससे उन्हें ऐहिक और पारलौकिक, दोनों सुख मिल सकते हैं। भाषा भी सरल और सबके समझने योग्य है। स्त्री-रोगों के नुसख़े भी हैं, जो बड़े सुलभ हैं।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

× × ×

५. बाल-साहित्य

लड़कियों का खेल (बाल-विनोद-वाटिका का छठा पुष्प)—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष; संपादक, श्रीप्रेमचंदजी; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या ८०; कागज़, छपाई आदि उत्तम; मूल्य ।)

घोष बाबू स्त्रियोपयोगी तथा बालकोपयोगी पुस्तकों के सफल लेखक थे। लड़कियों के ये खेल आपकी ही कल्पना के सुंदर फल हैं। खेल सरल और पद्य-बद्ध भाषा में रचे गए हैं। इनसे बालिकाओं का मन तो बहलेगा ही, साथ ही उन्हें कुछ शिक्षा भी मिलेगी, और उनके हृदयों में सद्भावों का उदय होगा। इसमें बालकों का मनोरंजन भी हो सकता है। चित्रों ने पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ा दी है।

× × ×

खिलवाड़ (बाल-विनोद-वाटिका का बारहवाँ पुष्प)—लेखक, श्रीभूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०; संपादक, श्रीप्रेमचंदजी; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या ३२; मूल्य ।)

यह पुस्तक सुंदर, चिकने काग़ज़ पर, रंगीन स्याहियों से छापी गई है। लेखक ने इसमें २३ विषयों पर बहुत ही सरस, सरल और मनोहर भाषा में पद्य लिखे हैं। पुस्तक सचित्र और बहुत ही विचित्र है। छोटे-छोटे बच्चे इसे पढ़कर खाना-पीना और रोना भी भूल जायँगे। दाम थोड़ा और काम चोखा है।

हम चाहते हैं कि गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय की इन पुस्तकों का बच्चों में ख़ूब प्रचार किया जाय।

ज़हूरबख़्श

× × ×

सरल बहीखाता—लेखक, पंडित अयोध्याप्रसाद शर्मा 'विशारद' डिप्टी-इंस्पेक्टर, शिक्षा-विभाग, बीकानेर-राज्य; प्रकाशक, महेंद्र-ब्रदर्स, बीकानेर; पृष्ठ-संख्या ४६; आकार २०×३० सोलहपेजी; कागज़-छपाई साधारण; मूल्य ।)

इस पुस्तक में रोज़नामचा, रोकड़ और खाता लिखने के नियम, उदाहरण-सहित, सरल भाषा में, बहुत अच्छी तरह से, समझाए गए हैं। अभ्यास के लिये प्रश्न भी दे दिए गए हैं। पुस्तक विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी है। इसका प्रचार हिंदी-पाठशालाओं में होना चाहिए।

× × ×

व्यापार-रत्न-संग्रह—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत मोतीलाल रब्बावाला, गोराकुंड, इंदौर; आकार २०×३० सोलहपेजी; पृष्ठ-संख्या ६१; कागज़-छपाई उत्तम; मूल्य ।।)

इस पुस्तक में निम्न-लिखित रत्नों का संग्रह है—अँगरेज़ी वर्णमाला; अँगरेज़ी और हिंदी भारतीय नगरों के नाम; गिनती; महीना, दिन और मौसमों के नाम (अँगरेज़ी और हिंदी में); हिंदी अर्थ-सहित कुछ अँगरेज़ी क्रियाएँ, सर्वनाम, उपसर्ग, विशेषण; ख़रीदी, बिक्री और सट्टा-संबंधी शब्द; तार लिखने का तरीक़ा उसके क़ायदे; हिंदुस्तानी बाज़ारू तोल; हिंदी और अँगरेज़ी में रंगों के नाम; किराना, तेलहन, धान, कपड़े, मेवा इत्यादि वस्तुओं के नाम इत्यादि। पुस्तक उन व्यक्तियों के लिये लिखी गई है, जो अँगरेज़ी नहीं जानते, और सट्टा अथवा दलाली कर रहे या करना चाहते हैं। सट्टे के व्यापारियों के विशेष लाभ के लिये इसमें सट्टे का संक्षिप्त इतिहास, न्यूयार्क के काटन-एक्सचेंज के कुछ नियम, भारत में कपास के बोने और उपज का समय तथा परिमाण इत्यादि दिया गया है। दलाल और सट्टे के व्यापारियों को इससे लाभ उठाना चाहिए।

× × ×

न्यायालय-कार्यवाही (अर्थात् कार्रवाई अदालत)—लेखक तथा प्रकाशक, पंडित बैजनाथजी

सनाढ्य, किशरौल, मुरादाबाद ; आकार २०×३० सोलह पेजी ; पृष्ठ-संख्या ७८ ; काग़ज़-छपाई साधारण ; मूल्य ।=)

इसमें न्यायालय-संबंधी प्रायः सब काग़ज़-पत्रों—जैसे दस्तावेज़, प्रामिसरी नोट, किरायानामा, रेहननामा, बयनामा, अमानतनामा, मुख़्तारनामा, वसीयतनामा, ज़मानतनामा, इक़रारनामा, वकालतनामा इत्यादि —के हिंदी में नमूने हैं। ज़ाब्ता दीवानी और फ़ौजदारी के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की दरख़्वास्तों के भी क़रीब २० नमूने दिए हैं। युक्तप्रांत के कोर्टों की भाषा उर्दू और हिंदी, दोनों हैं ; परंतु न्यायालय-संबंधी काग़ज़-पत्रों में उर्दू का ही अधिक बोलबाला है। नागरी-लिपि में बहुत कम दस्तावेज़ तथा अन्य पत्र लिखे जाते हैं, और नागरी-लिपि में लिखी हुई बहुत कम दरख़्वास्तें पेश की जाती हैं। इसका प्रधान कारण है पेशकारों का हिंदी-लिपि अच्छी तरह से न जानना, तथा नागरी-लिपि में दस्तावेज़ और दरख़्वास्तें लिखनेवालों की कमी। इस पुस्तक से नागरी-लिपि में न्यायालय-संबंधी काग़ज़-पत्र लिखनेवालों को बड़ी सहायता मिलेगी। पुस्तक के अंत में न्यायालय संबंधी हिंदी-उर्दू शब्द-कोष भी दे दिया गया है। इससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। पुस्तक के आरंभ में विषय-सूची का अभाव बहुत खटकता है।

अदालतों में हिंदी-प्रचार करने के लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के प्रचार-विभाग को इस पुस्तक के प्रचार में सहायता देनी चाहिए। अदालतों से संबंध रखनेवाले व्यक्तियों को भी इससे लाभ उठाना चाहिए।

× × ×

हम सौ वर्ष कैसे जीवें ?—लेखक, बा० केदारनाथजी गुप्त, हेडमास्टर दारागंज-हाईस्कूल, प्रयाग ; प्रकाशक, छात्र-हितकारी-पुस्तकमाला दारागंज, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या १४१×१३ ; आकार २०×३० सोलहपेजी ; काग़ज़-छपाई उत्तम ; मूल्य ।।।)

भारत की मृत्यु-संख्या बहुत अधिक है। लाखों व्यक्ति प्रतिवर्ष, छोटी उमर में ही, स्वर्ग सिधार जाते हैं। भारतवासियों की औसत आयु आजकल २५ वर्ष से भी कम है, जब कि हमारे पूर्वज सैकड़ों वर्ष तक जीवन-सुख भोगते थे। इस पुस्तक के विद्वान् लेखक ने यह बतलाया है कि हमारी स्वास्थ्य-हीनता के प्रधान कारण हैं वीर्य-नाश, व्यायाम का अभाव, भोजन की अव्यवस्था और स्वास्थ्य-संबंधी अन्य छोटी-छोटी बातों पर ध्यान न देना। इस पुस्तक में गुप्तजी ने स्वास्थ्य को सुधारने और उसे ठीक बनाए रखने के ऐसे सुलभ तरीक़े बतलाए हैं, जिनके उपयोग से साधारण एवं रोगी व्यक्ति भी अधिक समय तक जी सकते हैं। यदि बचपन ही से इन नियमों का पालन बराबर किया जाय, तो प्रत्येक व्यक्ति यदि सौ वर्ष तक भी स्वस्थ रह सके, तो कोई आश्चर्य नहीं।

पुस्तक के आरंभ में चित्र देकर शरीर की रचना समझाई गई है। फिर शुद्ध वायु, शुद्ध जल और सात्त्विक भोजन का महत्त्व समझाते हुए यह बतलाया गया है कि हम क्या खायँ और कब खायँ। व्यायाम, ब्रह्मचर्य, प्राणायाम उपवास, जल-चिकित्सा इत्यादि महत्त्व-पूर्ण विषयों पर भी काफ़ी प्रकाश डाला गया है। अंत में मादक द्रव्यों से होनेवाली हानियाँ बतलाते हुए कुछ साधारण रोग और उनके उपचार दे दिए गए हैं।

पुस्तक सबके लिये उपयोगी है। विद्यार्थियों के लिये तो यह विशेष रूप से उपयोगी है। उन्हें इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए। प्रत्येक पाठशाला की लाइब्रेरी में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए। ऐसी उत्तम पुस्तक लिखने के लिये हम गुप्तजी को हार्दिक बधाई देते हैं।

दयाशंकर दुबे

× × ×

शव-सुधाकर—"भाषा टीका (?) सहितः, योधपुरीय कार्यकारिणी सभायाः (?) सभ्यैः पोकरण ठाकुर........ महाशयैः प्रकाशितः।"

डबल क्राउन (१६ पेजी) आकार के लगभग साढ़े तीन सौ पृष्ठों में साफ़-सुथरी छपी हुई इस पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय इसके नाम से ही प्रकट है। शिवार्चन-संबंधी बहुत-सी बातें इसमें सन्निविष्ट हैं। मूल संस्कृत और हिंदी टीका है। मूल्य लिखा नहीं। जोधपुर के रा० ब० ठाकुर मंगलसिंह-जी सी० आई० ई० ने इसे प्रकाशित किया है।

× × ×

पशु-महासभा (प्रथम खंड)—लेखक तथा प्रकाशक, अमरसिंह चेतराम मसानिया ; स्कूली साइज़ ; काग़ज़ आदि साधारण ; पृष्ठ-संख्या ७६ ; मूल्य ।)

पुस्तक का विषय उसके नाम से ही प्रकट है। मांस-भक्षकों के विरुद्ध पशुओं ने व्याख्यान दिए हैं।

× × ×

हिंदू-संगठन—लेखक, भाई परमानंद ; प्रकाशक, भारत-कार्यालय, कानपुर ; स्कूली साइज़ ; कागज़-छपाई संतोष-जनक; पृष्ठ-संख्या ४७; मूल्य ~)॥

भाई परमानंद को भारत का प्रत्येक पढ़ा-लिखा आदमी जानता है। आपके ऐतिहासिक प्रगाढ़ पांडित्य और अदम्य देशभक्ति को सभी देशी और विदेशी जानते हैं। प्रस्तुत पुस्तिका 'हिंदू-सभा', कांग्रेस, और चुनाव को लक्ष्य करके लिखी गई है। हिंदूसभा पर किए गए आक्षेपों का 'तुर्की-ब-तुर्की' जवाब दिया गया है। इसमें बहुत-सी ज्ञातव्य बातों का सन्निवेश है।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

७. प्राप्ति-स्वीकार

निम्न-लिखित पुस्तकें और मिल गई हैं। प्रेषक महाशयों को धन्यवाद—

१. अभिलाप-बत्तीसी—लेखक, गोस्वामी श्रीहित-चंद्रलालजी ; प्रकाशक, पंडित श्रीभीमसेन-रामानंदजी पुरोहित, मु० अटेर ग्वालियर-राज्य। पद्य-बद्ध ; मूल्य ~)

२. रामकृष्ण-मिशन होम सर्विस, बनारस, की २५वीं वार्षिक रिपोर्ट—प्रकाशक, स्वामी असीमानंद, रामकृष्ण-मिशन, काशी।

३. पुष्प-चयन—लेखक, जयनारायण मल्लिक ; प्रकाशक, दुःखहरणप्रसाद, मनोहरपट्टी, पटना ; मूल्य ~)

४. आरोग्य-दीपक—लेखक और प्रकाशक, ह० तुलसीप्रसाद अग्रवाल, आर्यावर्तीय औषधालय, अलीगढ़ ; मूल्य =)

५. ढोंग-कथा—लेखक, पं० रामलाल भट्ट हकीम, कानपुर; मूल्य ~)

६. श्रीव्रजमोहन—(मासिक पत्र) ; संपादक, श्री-व्रजमोहनसिंह वर्मा, महिसौरा (जैतीपुर), उन्नाव ; वार्षिक मूल्य २)

७. श्रीडीडवाणा-हिंदी-पुस्तकालय का वार्षिक कार्य-विवरण और आय-व्यय का ब्यौरा—प्रकाशक, श्रीडीडवाणा-हिंदी-पुस्तकालय, डीडवाणा।

८. काशी के हिंदी-साहित्य-विद्यालय का निवेदन।

९. जैन-दिगंबर-महिला-परिषद् की सन् १९२२ जनवरी से १९२५ दिसंबर तक की रिपोर्ट।

१०. शिलाजतु-वर्णन—प्रकाशक, बा० रामचंद्र वर्मा; मालिक, हिमालय कंपनी; पोस्ट कनखल, यू० पी०

११. वाणी-विनोद—रचयिता, ला० बाँकेबिहारीलाल सक्सेना उपनाम "बाँके पिया" नादानमहल रोड, लखनऊ।

१२. कविता-कुसुम—संपादक, गोपालदत्त पंत साहित्याचार्य; प्रकाशक, नागरी-प्रचारिणी सभा, बुलंदशहर; समस्या-पूर्तियों का संग्रह ; मूल्य ~)॥

१३. आयुर्वेदिक एंड होमियोपैथिक मेडीकल कॉलेज, अलीगढ़ का विशेष विवरण ; प्रकाशक, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ।

१४. चुनाव पर पं० मथुराप्रसाद नैथाणी, सिविल इंजीनियर का वक्तव्य ; मूल्य ~)

१५. चारण-जाति पर आक्षेप और महा-सम्मेलन का कर्तव्य—लेखक और प्रकाशक, भँवर फतेहकरण बारहट, जागीरदार खीनावड़ी, पो० नीमाज (मारवाड़); मूल्य प्रेम।

१६. अन्नपूर्णाजी का अन्नकूट—लेखक और प्रकाशक, अन्नपूर्णाजी के महंत गो० शिवनाथपुरीजी, काशी।

१७. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन-प्रचार-कार्यालय, मदरास के प्रश्न-पत्र।

१८. मेरी भावना—लेखक, पं० युगलकिशोर ; प्रकाशक, शांतिचंद्र जैन बुलंदशहरी, बिजनौर ; मूल्य)॥

१९. मस्तकरंजन और दंतमंजन की बड़ी छोटी डिबिया—प्रेषक, कन्हैयालाल सूरजमल, रतलाम (सी० आई०)।

२०. गांधार-रस, अमृतधारा और दर्द-शिकन की एक-एक शीशी—प्रेषक, मैनेजर, अमृतधारा-भवन, लाहौर।

२१. श्रीकृष्ण भगवान् का एक चित्र—प्रेषक, सुख-संचारक कंपनी, मथुरा; मूल्य ।)

२२. आवश्यक परमउपयोगी नियम—प्रेषक, एस्० सी० जैन बिजनौर, मूल्य)॥

२३. सर्वतंत्र सिद्धांत पदार्थ लक्षण संग्रह का परिशिष्ट—प्रेषिका, श्रीमती मनभरी-देवी, ग्राम पुट्ठी, पोस्ट जमालपुर, जिला हिसार; मूल्य परोपकार; डाक-व्यय ~)



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—

(१) "भारत-भारती" (नवम संस्करण)। लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त ; मूल्य १)

(२) "अमृत की घूँट"। लेखक, श्रीयुत पं० केशव-शरण भार्गव ; मूल्य २॥)

(३) "संक्षिप्त पद्मावत" (मलिक मुहम्मद जायसी-कृत पद्मावत-काव्य का संक्षिप्त संस्करण)। संकलन-कर्ता और संपादक, श्रीयुत श्यामसुंदरदास बी० ए० और सत्यजीवन वर्मा एम्० ए० ; मूल्य १॥)

(४) "कृष्णकांत का वसीयतनामा"। सामाजिक उपन्यास। मूल-लेखक, श्रीबंकिमचंद्र चटर्जी ; अनुवादक, श्रीमुरारीलाल अग्रवाल ; मूल्य १)

(५) "दुर्गेश-नंदिनी"। ऐतिहासिक उपन्यास। मूल-लेखक, श्रीबंकिमचंद्र चटर्जी ; अनुवादक, श्रीकमलेश ; मूल्य १)

(६) "सीताराम"। ऐतिहासिक उपन्यास। मूल-लेखक, श्रीबंकिमचंद्र चटर्जी ; अनुवादक, श्रीमुरारीलाल अग्रवाल ; मूल्य १॥)

(७) "भारत के महापुरुष" (तृतीय खंड)। हिंदू-नरेशों की जीवनियों का संग्रह। श्रीयुत पं० रामशंकरजी त्रिपाठी द्वारा संपादित ; मूल्य ३॥)

(८) "मणिमाला" (सामाजिक और पारिवारिक कहानियाँ)। मूल-लेखक, श्रीयुत प्रभातकुमार मुखोपाध्याय ; अनुवादक, श्रीयुत पं० रूपनारायण पांडेय ; मूल्य २।)

(९) "सुदर्शन-सुधा" (१६ कहानियों का संग्रह)। लेखक, श्रीयुत सुदर्शन ; मूल्य २)



१. कवि-सम्मेलन

उधर कवि-सम्मेलनों की बाढ़-सी आ गई थी; पर इधर ज़रा कवि-सम्मेलनों की धूम कम है। हमारे हरएक कार्य का यही हाल होता है। जब उमंग उठती है, तब हम हद से ज़्यादा किसी काम को करने लग जाते हैं; पर जहाँ कुछ दिन बीते, और उत्साह में भाटा आया, वहाँ बस, उस काम का नाम भी कोई नहीं लेता। यही हाल कवि-सम्मेलनों का भी देख पड़ता है। एक बात और। जिस काम का कुछ लक्ष्य या उद्देश्य होता है वह काम स्थायी और सफल होता है। हमारे कवि-सम्मेलनों का, जहाँ तक हम समझते हैं, कुछ लक्ष्य या उद्देश्य नहीं होता; केवल धूमधाम या नाम के लिये ही वे किए जाते हैं। हमारी समझ में यदि कवि-सम्मेलनों के दो उद्देश्य रक्खे जायँ, तो कुछ काम हो सकता है। एक उद्देश्य तो नामानुसार कवियों का सम्मेलन—आपस में हेल-मेल की वृद्धि और परिचय—होना चाहिए। यह उद्देश्य गौण माना जा सकता है। मुख्य उद्देश्य होना चाहिए नवयुवक नवीन कवियों की कविता का सुधार और प्रचार। उर्दू के शायरों की तरह हिंदी के कवि भी यदि सम्मेलन में पढ़ी जाने के लिये कोई कविता लिखें, तो पहले उसे अपने गुरु, या किसी वयोवृद्ध, अनुभवी कवि अथवा कविता-मर्मज्ञ को उसे सुना दें, हो सके, और अगर आवश्यक हो, तो उसमें यत्र-तत्र आवश्यक संशोधन भी उनसे करा लें; फिर उसके बाद उसे सम्मेलन में आकर पढ़ें। ऐसा करने से उनकी कविता खराद पर चढ़ते-चढ़ते बहुत सुंदर और रोचक बनने लगेगी। हमारी राय में प्रत्येक बड़े शहर में वहाँ के नवीन कवियों को एक वार्षिक कवि-सम्मेलन का आयोजन तो अवश्य ही करना चाहिए। गत वर्ष कानपूर में एक अखिल भारतीय सम्मेलन की नींव भी डाली जा चुकी है, जिसका आगामी दूसरा अधिवेशन लखनऊ में होना तय पाया है। इस अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन-कार्यालय के साथ अन्य सब कवि-सम्मेलनों को संबद्ध हो जाना होगा। पर कहते शर्म आती है, हम भारतीयों में आलस्य और लापर्वाही, ये दो दोष ऐसे हैं, जो कुछ होने नहीं देते। अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन के निर्वाचित पदाधिकारियों से हमारी प्रार्थना है कि वे उक्त सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन की तैयारी में लग जायँ। ढिलाई करने से काम नहीं चलेगा। उन्हें शीघ्र एक महती सार्वजनिक सभा करके स्वागतकारिणी समिति का संगठन कर लेना चाहिए। साथ ही समय और

सभापति का निश्चय भी हो जाना चाहिए। सम्मेलन की चर्चा और आंदोलन प्रत्येक हिंदी-पत्र में होने की आवश्यकता है। इस कार्य में अवध के रईसों और ताल्लुक़दारों को भी जी खोलकर धन-जन से सहायता करनी चाहिए। हम अपने मान्य कवियों और कविता-प्रेमियों से यह अनुरोध करते हैं कि इस कवि-सम्मेलन के समय और सभापति के बारे में अपने विचार हिंदी-पत्रों में प्रकट करने की कृपा करें, जिसमें कार्यकर्ताओं को सहूलियत हो।

× × ×

२. सर जॉर्ज बर्नार्ड शा

स्वीडन की स्वीडिश रॉयल एकाडेमी की ओर से इस बार साहित्य-रचना के लिये सुप्रसिद्ध नोबेल-पुरस्कार इँगलैंड के आयरिश लेखक सर जॉर्ज बर्नार्ड शा को दिया जायगा, यह समाचार पाठकों ने पत्रों में पढ़ लिया होगा।



सर जॉर्ज बर्नार्ड शा

(आपको इस वर्ष साहित्य-विषय पर नोबेल-पुरस्कार मिला है)

बहुत पाठक यह न जानते होंगे कि यह पुरस्कार कैसा है, और इसका दाता कौन है। इसलिये संक्षेप में ये बातें यहाँ लिखी जाती हैं। डिनामाइट का आविष्कार करनेवाले सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्फ्रेड नोबेल साहब की मृत्यु १ दिसंबर, सन् १८९६ में हुई थी। इन्होंने मरते समय २ करोड़ ६२½ लाख रुपए अपने ट्रस्टियों को सौंपकर एक वसीयत लिख दी थी कि इन रुपयों की आमदनी से साल में ५ पुरस्कार उनके नाम से दिए जायँ—१. भौतिक विज्ञान पर, २. रसायन पर, ३. औषधि-विज्ञान या शरीर-विज्ञान पर, ४. साहित्य पर, ५. शांति-रक्षा पर। इन पाँचों विषयों में से किसी विषय के द्वारा जो कोई जगत् की सबसे अधिक भलाई करेगा, उसे उस विषय पर पुरस्कार दिया जायगा। पहले-पहल सन् १९०१ में यह पुरस्कार दिया गया था। यह पुरस्कार १ लाख १८ हज़ार क्रोनर अर्थात् लगभग सवा-लाख रुपए का होता है। इस बार यह पुरस्कार पानेवाले बर्नार्ड शा ने आयरिश होकर भी अपनी सब सुप्रसिद्ध रचना अँगरेज़ी में ही लिखी है। उनकी व्यंग्य-रचना ही अधिक महत्त्व की समझी जाती है। अँगरेज़ों के और योरप के राजतंत्र शासन पर ही उनकी लेखनी की तलवार बराबर चला करती है। बर्नार्ड शा फ़ेबियन सोसाइटी के एक प्रसिद्ध नेता हैं। मिस्टर शा नवीन नाट्य और नवीन चिंता-धारा के प्रवर्तक इबसेन के सुयोग्य शिष्य हैं। उन्होंने योरप के समाज और राजनीति में जहाँ जो त्रुटि पाई है, उस पर ख़ूब निष्ठुर होकर क़लम चलाई है। उन्हें अब से पहले ही यह पुरस्कार मिल जाना चाहिए था। आपने यह पुरस्कार की रक़म स्वीडन और ब्रिटिश-द्वीपों में साहित्य और कला का ज्ञान बढ़ाने तथा परस्पर घनिष्ठता स्थापित करने के लिये दे डालने की इच्छा प्रकट की थी। पर कुछ क़ानूनी अड़चन रहने के कारण उसे आपने अभी अस्थायी रूप से स्वीकार कर लिया है। आप इस रक़म को स्वयं न लेकर इसी काम में ख़र्च करना चाहते हैं। सन् १९०७ से साहित्य-विषय पर अब तक निम्न-लिखित विद्वान् मनुष्य यह पुरस्कार पा चुके हैं—

सन्	पानेवाला	निवास-स्थान
१९०७	रडयार्ड किपलिंग	इँगलैंड
१९०८	आर० यूकेन	जर्मनी
१९०९	सेल्मा लेगरलाफ़	स्वीडन

सन्	पानेवाला	निवास-स्थान
१९१०	पी० हेसी	फ़्रांस
१९११	जी० मेटरलिंक	बेलजियम
१९१२	जी० फ़ाटमैन	जर्मनी
१९१३	श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर	भारतवर्ष
१९१४	किसी को नहीं मिला	
१९१५	रोम्याँ रोलाँ	फ़्रांस
१९१६	फ़्रान् हिडेनस्टैम	जर्मनी
१९१७	के० जिलेरूक और एच्० पांटपीडन रूस	
१९१८	किसी को नहीं दिया गया	
१९१९	सी० स्पिटेलर	
१९२०	नुट हैमसून	नार्वे
१९२१	अनातोले फ़्रांस	फ़्रांस
१९२२	जे० बेनावांते	स्पेन
१९२३	कवि ईट्स	आयर्लैंड
१९२४	डब्लू० रेमंट	पोलैंड
१९२५	सिगफ़्रिट	विंडसेट
१९२६	सर जॉर्ज बर्नार्ड शा	आयर्लैंड

हम इस चुनाव के लिये पुरस्कार-दाताओं को बधाई देते हैं। मि० शा की रचना पढ़नेवाले जानते हैं कि वह इस सम्मान के सर्वथा अधिकारी हैं।

× × ×

३. ग्राम-संगठन

इधर हमारे देश के नेताओं को कौंसिलों में जाने का ऐसा मोह समाया है कि वे कौंसिलों को ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन माने बैठे हैं। इस बार देश में कौंसिल-इलेक्शन को लेकर, पाश्चात्य देशों के अनुकरण पर, जैसा नंग-नाच हुआ है, जैसे भद्दे आक्षेप परस्पर किए गए हैं, उनका न होना ही देश के लिये अच्छा था। अस्तु। यह बात निर्विवाद सिद्ध और प्रमाणित हो चुकी है कि कौंसिलों में आकर न तो उन्हें तोड़ा जा सकता है, और न उनके द्वारा देश का कुछ उपकार किया जा सकता है, अपकार भले ही किया जा सके। कौंसिलों की स्थापना से देश पर ख़र्च का बोझ तो बेतरह लद गया है, पर देशवासियों के अधिकार रत्ती-भर नहीं बढ़े। कौंसिलों में न आकर अगर देश के नेता और कार्यकर्ता शुद्ध चित्त से काम करना चाहें, तो वे बहुत कुछ देश का उपकार कर सकते हैं। जब तक नेताओं के पीछे प्रबल जनमत न होगा, और जब तक देश में शिक्षा का प्रचार कर—देशवासियों में राजनीतिक ज्ञान का प्रसार कर—उन्हें इस योग्य न बनाया जायगा कि वे अपना हित-अहित समझ सकें, अपने कर्तव्य का निर्णय कर सकें, जब तक देश की बेकारी, उदासी और आर्थिक अभाव न दूर किया जायगा, तब तक न तो हमारा भीतरी सुधार ही हो सकेगा, और न अमला-तंत्र ही हमारी बात सुनेगा। हम लोगों में से जो शहरों में रहते हैं, पढ़े-लिखे हैं, धनोपार्जन करके उसे विलासिता में फूक देते हैं, वे यह अनुभव ही नहीं करते कि देश कहने से केवल कुछ नगरों या नगरवासियों का ही बोध नहीं होता। देश वास्तव में देहात और देहाती ही हैं, जो आप भूखे रहकर भी हमारे लिये अन्न पैदा करते हैं। उन्हें निरक्षर, असभ्य, गँवार कहकर उनसे घृणा करना ही सच्ची सभ्यता नहीं है। शहर के नामधारी नेता आँखें खोलकर यह देखना ही नहीं चाहते कि देश के मर्मस्थल देहातों की कैसी दयनीय दशा हो रही है। हम जब तक अपने किसान भाइयों को मनुष्य नहीं बनाते, उन्हें भाई समझकर नहीं अपनाते, अन्नदाता समझकर उनकी इज़्ज़त नहीं करते, अपने देशोद्धार के कार्य में उनको साथ नहीं लेते, तब तक लाख सिर पटकने पर भी कुछ नहीं हो सकता। हमारे नेताओं में से कुछ लोगों ने ग्राम-संगठन की बात सोची अवश्य थी, पर उस दिशा में कार्य का आरंभ नहीं किया। वह हिर-फिरकर फिर कौंसिलों में सिर मारने लग गए। उधर सरकार ने कृषि-कमीशन नियुक्त करके किसानों की सहानुभूति अपनी ओर आकृष्ट करने का श्रीगणेश भी कर दिया है। कुछ लोग इसे भी सरकार की एक चाल बतलाते हैं। पर हमारा यह कहना है कि यह चाल भले ही हो, पर इससे किसानों का कुछ उपकार भी हो सकता है। हम लोगों ने केवल बातें बनाने के सिवा अब तक क्या किया है? अब भी अगर हम चुपके बैठे रहेंगे, ग्राम-संगठन के कार्य को अपने हाथ में न लेंगे, तो आगे कुछ नहीं कर सकेंगे। आज दिन ग्रामों की बड़ी दुर्दशा है। वहाँ साक्षात् दारिद्र्य और नाना प्रकार के रोगों का निवास है। ग्रामवासियों में न तो एका है, न उनके पास धन है; न वे शिक्षा पाते हैं, न उन्हें देश की स्थिति का ज्ञान है। किसानों को ज़मींदार, महाजन और अदालत कंगाल बनाए डालती है। उनको इस त्रिदोष से मुक्त करना, उनका हाथ पकड़कर उन्हें ऊपर

उठाना हमारे नेताओं और देश के कार्यकर्ताओं का सबसे पहला काम है। पर यह काम सहज में नहीं होने का। इस काम के करने में पैदल चलना, कड़ी धूप बरदाश्त करना और तरह-तरह के कष्ट उठाना तथा ऐश-आराम से मुँह मोड़ना होगा। केवल मोटर पर बैठकर एक चक्कर लगा आने से अथवा एक-दो सभाएँ करके लेक्चर दे आने से असली काम कुछ नहीं हो सकता। स्थायी और ठोस काम करने के लिये यह आवश्यक होगा कि कुछ कर्तव्य-निष्ठ युवक अपना अमूल्य समय कुछ दिनों तक इसी काम में लगावें। देहात में—देहातियों के बीच—जाकर रहें, उनको उचित परामर्श दें, उनमें मुफ़्त शिक्षा का प्रचार करें, उन्हें समाचार-पत्र आदि सुनाकर देश की दशा और परिस्थिति का परिचय करावें, उन्हें उनमें फैली हुई बुराइयों की हानियाँ दिखाकर उनसे बचने के लिये प्रोत्साहित करें। इस काम के लिये धन की भी अवश्य ही आवश्यकता होगी; पर उससे बढ़कर कर्मनिष्ठ, देशप्राण सच्चे कार्यकर्ता नवयुवकों की आवश्यकता है।

× × ×

४. प्रवासी भारतवासी

बहुत-से लोग यह नहीं जानते कि भारत के बाहर १९ लाख के लगभग भारतीय भाई स्थायी रूप से रहने लगे हैं। इनमें से अधिकांश का जन्म उपनिवेशों में ही हुआ है। दक्षिण-आफ्रिका-प्रवासी भारतवासियों का दो-तिहाई हिस्सा वहीं पैदा हुआ है। फ़िजी में ऐसे भारतीयों की संख्या फ़ी सदी ४३ है। मारिशस, ब्रिटिश-गायना और ट्रिनीडाड में ऐसे लोगों की संख्या शायद और भी अधिक है। दिन-दिन ऐसे भारतीयों की संख्या बाहर बढ़ती ही जायगी। इनमें प्रायः सभी मज़दूरी-पेशा हैं। प्रवासी भारतवासियों के संबंध में जो लोग पुस्तकें और समाचार-पत्र पढ़ते रहते हैं, वे जानते हैं कि उनकी आर्थिक और ...िक अवस्था कैसी चिंतनीय और शोचनीय है। जो ... ...ारतीय मज़दूरों या क़ुलियों को ... की आपत्ति का कारण यही है कि ... असहाय हैं—उनमें संगठन नहीं ... अपनी कुछ सहायता नहीं कर ... सी प्रकार की शिक्षा एक तो मिलती ...र मिलती भी है, तो वह न मिलने के ... भारतीय लोग साधारणतः आईन-क़ानून मानकर चलते हैं। किंतु फ़िजी के फ़ीसदी ७५ अपराधी भारतीय ही होते हैं। कुछ दिनों से वहाँ यंगमैंस क्रिश्चियन एसोसिएशन के अन्यतम सेक्रेटरी मिस्टर ए० डब्लू० मैकमिलन साहब उनको उन्नत बनाने की चेष्टा कर रहे हैं, उनमें जन-हितकर कार्यों की जड़ जमा रहे हैं। अर्सा हुआ, हिंदी के प्रेमी और माधुरी के सुलेखक पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने देशवासियों और सरकार के निकट इन प्रवासियों के लिये एक शिक्षा-कमीशन भेजने का प्रस्ताव किया था। मालूम नहीं, उसका क्या हुआ। इन सभी उपनिवेशों में शिक्षा के अत्यंताभाव की बात हम पहले ही कह चुके हैं। फ़िजी में २५,००० भारतीय बालक हैं, जिनमें केवल १,४०० स्कूलों में पढ़ने जाते हैं। ये जो थोड़े-से भारतीय बालक स्कूलों में शिक्षा पाते हैं, सो भी गवर्नमेंट की कृपा से नहीं। यह भी क्रिश्चियन पादरियों के उद्योग का फल है। फ़िजी और अन्यान्य उपनिवेशों में भारतीयों के लिये शिक्षा का अच्छा बंदोबस्त रहना ज़रूरी है। और, उन शिक्षा-संस्थाओं की देखभाल के लिये भारतीय इंस्पेक्टर ही रखने चाहिए। पूर्व-आफ्रिका, वेस्ट-इंडीज़, ब्रिटिश-गायना आदि सभी स्थानों में भारतीयों की शिक्षा की ऐसी ही बुरी दशा है। ब्रिटिश-गायना में तो उनकी राजनीतिक दुरवस्था पर ही शिक्षा की अव्यवस्था की ज़िम्मेदारी है। वहाँ की सरकार उनकी शिक्षा की ओर से इसीलिये इतनी उदासीन है कि भारतीय लोग शिक्षित होकर राजनीतिक वोट देने का अधिकार माँगने लगेंगे। भारतीयों की सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक अवस्था की उन्नति अगर करनी है, उनके और भी अन्य प्रकार के अभाव-अभियोग दूर करने हैं, तो शीघ्र ही उनको उन्नत शिक्षा देने की आवश्यकता है। साधारण निर्वाचन-सूची के विरुद्ध योरपियन औपनिवेशिकों की आपत्ति यह है कि गोरे वोटर काले वोटरों से हार जायँगे। किंतु इसका भी उत्तर है। गोरों को असुविधा होने के कारण क्या कालों को नागरिकता के अधिकार से वंचित रक्खा जायगा? प्रवासी भारतवासियों की उन्नति उनके स्वदेशी भाइयों पर ही संपूर्ण रूप से निर्भर है। ईसाई मिशनरी लोग जब स्वयं प्रवृत्त होकर प्रवासी भारतीयों की शिक्षा और सामाजिक स्थिति की उन्नति करने में लगे हैं, तब भारतीय लोग क्या स्वजाति की भलाई की कोई भी ज़िम्मेदारी न लेंगे? समुद्र-पार के भारतवासियों के अभाव-अभियोगों को दूर करने

की चेष्टा हम लोग लगकर नहीं करते, और सुशिक्षित विदेशी लोग उन्हें और भी गढ़े में गिराना चाहते हैं, यह बड़ी ही लज्जा की बात है। जाति के प्रति सजातीयों का जो कर्तव्य होता है, उसके अनुरोध से आत्मत्याग की दीक्षा लिए हुए बहुत-से भारतीय युवकों को वहाँ आकर अम्लान मुख से स्वयं कष्ट उठाना और अपने गिरे हुए भाइयों की दशा सुधारना उचित है। उन्हीं से हमें पूर्ण आशा है। वे लोग शिक्षक, समाज-संस्कारक होकर अथवा अन्य किसी उपयोगी कार्य का भार लेकर यदि अपने जीवन का कुछ समय प्रवासी भारतवासियों की सेवा में लगावें, और देश के धनी लोग धन से इस कार्य में उनकी सहायता करें, तो सहज में देश का मुख उज्ज्वल हो सकता है।

× × ×

५. नंदकुमारदेव शर्माजी का स्वर्गवास

आज हमें पाठकों को एक शोक-समाचार सुनाते बड़ा दुःख होता है। गत ८ नवंबर को हिंदी के विख्यात लेखक पं० नंदकुमारदेव शर्माजी की अकाल-मृत्यु हो गई। शर्माजी की अवस्था अभी ४० वर्ष के ही लगभग थी। शर्माजी ने अपनी ज़ोरदार लेखनी द्वारा हिंदी-साहित्य की बड़ी सेवा की थी। उन्होंने हिंदी में ऐतिहासिक पुस्तकों के अभाव को यथाशक्ति दूर किया है। आपकी लिखी महाराज रणजीतसिंह, सिक्खों का उत्थान और पतन, वीरकेसरी शिवाजी, लाजपत-महिमा, राजा महेंद्रप्रतापसिंह, स्वर्गवासी लोकमान्य तिलक आदि अनेक पुस्तकें आज उनकी साहित्य-सेवा का परिचय दे रही हैं। शर्माजी ने हिंदी के कई पत्रों का सुचारु रूप से संपादन भी किया था, जिसके कारण उनकी भाषा मँजी हुई, ओज-पूर्ण और प्रभावोत्पादक थी। शर्माजी ने अलवर-राज्य के इतिहास-विभाग में भी कुछ समय व्यतीत किया था। शायद इसी लिये उनकी रुचि इतिहास लिखने की ओर अधिक दिखाई पड़ती थी। आप सच्चरित्र और मिलनसार-प्रकृति के थे। आपकी अकाल-मृत्यु से हिंदी-संसार की जो क्षति हुई है, उसका पूरा होना असंभव है। ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि वह उनके शोक-संतप्त परिवार को इस दुःख में धैर्य दे, और शर्माजी की आत्मा को शांति।

× × ×

६. बंगाल-सरकार की पॉलिसी

मालूम होता है, विधाता ही आजकल हिंदुओं के प्रतिकूल है। जब से इस जाति का साम्राज्य भारतवर्ष से उठ गया, और इसे विदेशी जातियों के आधिपत्य में रहना पड़ा, उसी दिन से बराबर इस जाति के साहित्य, कला, धर्म आदि को मिटाने के लिये तन, मन और धन से प्रयत्न हो रहा है। जो गति हिंदू-जाति की मुसलमान-राज्य में हुई, वह किसी से छिपी नहीं। इतिहास उसका साक्षी है। इसके बाद आज हम पर अँगरेज़ों का राज्य है। आज वे हमारे ट्रस्टी बने हैं। कहा जाता है, अँगरेज़-जाति अपने वादे की बड़ी पक्की होती है, और इसका उसे अभिमान भी है। वे ब्रिटिश-न्याय के नाम की दुहाई संसार में देते फिरते हैं। परंतु आज हम देखते हैं कि महारानी विक्टोरिया की शाही घोषणा में दिए हुए वचनों को मेटने पर ब्रिटिश कर्मचारी कमर बाँधकर तुले हुए हैं। पंजाब-हत्याकांड के अधिष्ठाता की जिस प्रकार पीठ ठोकी गई, वही ब्रिटिश-न्याय है। महारानी विक्टोरिया ने सन् १८५८ की घोषणा में कहा था कि "ब्रिटिश-सरकार भारतवासियों के धर्म-विषय में सदा निष्पक्ष भाव रक्खेगी, उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करेगी।" परंतु "प्रवासी" कहता है कि उसे विश्वस्त सूत्र से यह मालूम हुआ है कि बंगाल-सरकार ने एक क़ानून का मसविदा तैयार किया है, जिसका आशय यह है कि हिंदू किसी समय भी किसी मसजिद के सामने बाजा न बजावें। इस आशय का प्रस्ताव बंगाल-सरकार नवीन निर्मित प्रांतीय कौंसिल में रहीमी मंत्रिमंडल के सामने पेश करेगी। यह निश्चित है कि प्रस्ताव कौंसिल में पास भी हो जायगा; क्योंकि बंगाल-कौंसिल में मुसलमान और सरकारी सदस्यों की मिली हुई संख्या हिंदू-सदस्यों से अधिक है। बंगाल-सरकार की यह नीति नई नहीं है; क्योंकि अँगरेज़ कर्मचारी 'Divideand kule' सिद्धांत के पूरे अनुयायी होते हैं। यदि इस प्रकार की नीति का अवलंबन कर भिन्न-भिन्न जातियों को न लड़ाया जाय, तो पराधीनता यहाँ दो दिन भी नहीं [illegible] सकती। इस प्रस्ताव के पास हो जाने का [illegible] हाथ परिणाम होगा, इसकी चिंता [illegible] सकेंगे। आज [illegible] स्वाभाविक ही है। उस अवस्था में [illegible] दाक्षिण्य और हिंदुओं का क्या कर्तव्य होगा, इस [illegible] ग्रामवासियों [illegible] न यह निर्विवाद है कि यदि यह [illegible] शिक्षा पाते हैं, न सुलझाई गई, तो वह केवल यहीं सीमा को [illegible] ज़मींदार, सारे भारतवर्ष में उस चिनगारी के द्वारा [illegible]। उनको [illegible] ऊपर

प्रज्वलित होगी, जिसको शांत करना भारत-सरकार के लिये कठिन ही नहीं, असंभव हो जायगा। बंगाल-सरकार की यह नीति शायद भारत-सचिव तथा वायसराय द्वारा अनुमोदित ही होगी। कारण, ऊपर की शह बिना पाए प्रांतीय सरकार ऐसा क़ानून बनाने का साहस कभी नहीं कर सकती। युक्तप्रांत में कई जगह रामलीला आदि उत्सवों के बंद हो जाने से बंगाल-सरकार को इस प्रकार का साहस हुआ हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। परंतु बंगाल-सरकार को यह निश्चय समझ लेना चाहिए कि हिंदुओं का मसजिदों के सामने सदा के लिये बाजा बंद कर देना बंग-भंग के सदृश एक प्रांतीय प्रश्न नहीं है। इसका संबंध २१ करोड़ हिंदुओं के धर्म से है। उसे ध्यान रखना चाहिए कि इस देश में प्राण रहते कोई हिंदू अपने धार्मिक स्वत्वों को नहीं छोड़ सकता। बंगाल लार्ड लिटन का चिरऋणी रहेगा, जिनकी कृपा से बंगाल आर्डिनेंस बना, जिसके कारण प्रांत के उत्साही, मातृ-भूमि की सेवा में कटिबद्ध, निरपराध अनेक नवयुवकों को अनिश्चित काल के लिये सरकारी मेहमान बनना पड़ा है। आप ही के शासन-काल में बंगाल में कितने ही दंगे हुए, जिनमें प्रजा को अपने धन, परिवार और प्राणों को बचाने के लाले पड़ गए। इतना होने पर भी लार्ड लिटन संतुष्ट नहीं हुए। आज वह इस प्रस्ताव को लेकर अंतिम भयंकर अस्त्र का प्रयोग करने जा रहे हैं। कारण, वह जानते हैं कि वह यहाँ दो दिन के मेहमान और हैं, और इसीलिये उनकी नादानी का फल उन्हें नहीं, उनके उत्तरा-धिकारी को भोगना पड़ेगा। हम भारत-सरकार से यह कह देना चाहते हैं कि वह ऐसा कोई क़ानून न बनने दे, जिसमें स्थायी अशांति का बीज निहित हो।

× × ×

७. जर्मनी की आर्थिक अवस्था

...न्य के म... ने उसकी बिलकुल कायापलट कर दी
...गों की सामाजिक और आर्थिक
...जाती है। इसी स्थिति से आज
...हो रहे हैं। कितने ही राज्य स्वतंत्र
...देश छिन्न-भिन्न हो गए। किसी में
...र का समागम हुआ, और किसी ने फिर
...ा स्थापना की। सामाजिक ह्रास का
...ना तो बिलकुल असंभव ही है। इस वैज्ञानिक

युग में योरप के देशों में धर्म का अस्तित्व तो एक प्रकार से मुश्किल ही है। वहाँ की आर्थिक अवस्था इतनी बिगड़ी है कि अभी तक कितने ही देश उसके कारण अपनी पूर्वावस्था पर नहीं पहुँच पाए। योरप ही क्या, समस्त संसार के बाज़ारों में ऐसी उथल-पुथल हुई है कि व्यापारिक स्थिति डावाँडोल हो रही है। करेंसी के विनिमय में नित्य-प्रति ऐसा ज्वार-भाटा आ रहा है कि उसके कारण जो ऋणी देश थे, वे अऋणी हो रहे हैं, और अऋणी ऋणी होते चले जा रहे हैं। युद्ध के काल में खेती न होने के कारण खाद्य पदार्थों का अकाल पड़ रहा है, जिसके कारण कोई देश पनपने नहीं पाता। इसमें संदेह नहीं कि मित्र-दल ने जर्मनी का जिस प्रकार से सत्यानाश किया है, उससे उसका फिर १०० वर्ष में अपनी पूर्व उन्नत दशा को पहुँचना असंभव है। युद्ध के जुर्माने से ही वह इतना दबा हुआ है कि उसका सिर उठाना मुश्किल है। उसके प्रायः सभी बाहरी उपनिवेश छीन लिए गए हैं, और व्यापारिक स्वतंत्रता भी नष्ट कर दी गई है। उसकी बढ़ती हुई प्रजा को छोटे-से देश जर्मनी की चहारदीवारी में बंद रहना पड़ेगा। बाहर के देशों से व्यापारिक संबंध न रखने की परिस्थिति में किस प्रकार वह अपना गुज़र करेगा, इसका अनुमान हम नहीं कर सकते। जर्मनों ने इन सब कठिनाइयों का सामना करते हुए आज भी धैर्य नहीं छोड़ा है। जर्मन लोग बड़े संयमी, उत्साही और परिश्रमी होते हैं। उनका धन गया, बल गया, देश गया, सब कुछ गया; परंतु वे अब भी संसार में जीवित रहना चाहते हैं, और वह भी स्वाभिमान के साथ। अवस्था में केवल विद्या उनकी सहायक हो रही है। प्रतिभा, कार्य-दक्षता और राजनीति के ही कारण वे आज भी संसार को चमत्कृत कर देना चाहते हैं। थोड़े ही दिन हुए एक जर्मन रासायनिक ने पारे से सोना निकालने की विधि निकाली थी। जर्मन-सरकार ने इस उद्योग के लिये बड़े बड़े कारख़ाने बनाने का विचार कर लिया है। यदि जर्मनों को इसमें पूर्ण सफलता मिल गई, जैसी कि आशा है, तो जर्मनी में धन की कमी न रहेगी, और फिर सोना इतना महँगा न बिकेगा।

आजकल योरप में शांति-स्थापन के लिये बड़े उद्योग हो रहे हैं। लीग-ऑफ़्-नेशन्स के द्वारा यह कार्य किया जा रहा है। देशों में परस्पर मित्रता का व्यवहार बढ़ाने के

लिये योरपवाले बहुत उत्सुक हो रहे हैं। जर्मनी को लीग-ऑफ़्-नेशन्स का हाल ही में सभासद बना लेना इस बात का द्योतक है। व्यापारिक बंधन, जिनसे जर्मनी बहुत कुछ जकड़ा गया था, अब धीरे-धीरे शिथिल हो रहे हैं। पिछले सप्ताहों में योरप में तीन ऐसी मुख्य घटनाएँ घटित हुई हैं, जिनसे जर्मनी की हो नहीं, समस्त योरप की आर्थिक दशा में विचित्र परिवर्तन होने की संभावना है। प्रथम तो एक Continental Steel Cartel का निर्माण किया गया है। दूसरे अँगरेज़ और जर्मन व्यवसायी नेताओं की एक सभा हुई है, जिसमें दोनों देशों की परस्पर व्यापार-संबंधी अड़चनों को शीघ्र दूर करने का मंतव्य स्थिर किया गया है। तीसरे योरप के धनी और व्यापारिक प्रमुख नेताओं ने एक प्रार्थना-पत्र योरपीय व्यापार के बंधनों को हटाने के आशय से प्रकाशित किया है। Continental Steel Cartel के विषय में इँगलैंड के पत्रों में बहुत टीका-टिप्पणियाँ हो रही हैं। कोई पत्र इसको इँगलैंड के लिये हितकर और कोई अहितकर बतलाते हैं; परंतु अधिकतर सम्मतियाँ हित के ही पक्ष में हैं।

Continental Steel Cartel के संबंध में दो समझौते किए गए हैं, जो जर्मनी, फ़्रांस, बेलजियम और लक्ज़ेंबर्ग प्रदेशों को माननीय होंगे। इनके अनुसार चारों देशों का एक सम्मिलित कोष स्थापित किया गया है— चारों प्रदेशों के व्यवसाय का एक संघ बनाया गया है, जिसका संचालन चारों देशों के मेंबरों की एक कमेटी करेगी। सभी मेंबरों को समान अधिकार प्राप्त होंगे।

कौन देश कितना लोहा बनावे, इसका निर्णय भिन्न-भिन्न देशों की सन् १९२६ के प्रथम अर्द्ध में होनेवाली लोहे की उपज के हिसाब से किया गया है। इस हिसाब से जर्मनी को ४०, फ़्रांस को ३१, बेलजियम को १२, लक्ज़ेंबर्ग को ८ और रूस को ६ फ़ीसदी के लगभग लोहे की उपज करने का अधिकार दिया गया है। इस समझौते में एक मुख्य बात यह रक्खी गई है कि जो प्रदेश इस संघ में सम्मिलित होना चाहेंगे, वे भी इन्हीं शर्तों पर सम्मिलित हो सकेंगे। इस संघ के विषय में इंग्लिश-व्यवसाय के एक प्रमुख नेता ने बड़े महत्त्व के साथ इस प्रकार विचार प्रकट किए हैं—

व्यापारिक क्रांति, करेंसी के भावों में निरंतर चढ़ाव-उतार, सामाजिक कठिनाइयों और लोहे के व्यवसाय पर अधिक टैक्स होने के कारण बिक्री और उपज की क़ीमतों में इतनी गड़बड़ हो गई है कि अच्छे-से-अच्छे कारख़ाने प्रत्येक महीने घाटा उठा रहे हैं। जितने कारख़ाने हैं, वे सभी अपने मूल धन के बल पर ही व्यवसाय कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि वे कितने दिन जीवित रह सकेंगे। बहुत-से बड़े-बड़े संघ इस शोचनीय अवस्था को दूर करने के लिये स्थापित किए गए। किंतु पारस्परिक स्पर्द्धा के कारण भाव गिर जाने से यहाँ तक दुर्दशा हुई कि उन्हें भी बंद कर देना पड़ा है। करेंसी में अधिक उतार-चढ़ाव के कारण लोहे का भाव इतना गिरा कि आज लोहा युद्ध के पहले की अपेक्षा २० से ३० फ़ीसदी महँगा हो गया है। इन्हीं सब कारणों से व्यावसायिक सुधार की इच्छा रखनेवाले जर्मनों को फ़्रांस और अन्य देशों से सहायता लेना अनिवार्य प्रतीत हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं कि संघ के समझौते के अनुसार जर्मनी को बहुत कुछ त्याग करना पड़ा है; क्योंकि लोहे की उपज, अन्य देशों के मुक़ाबले, उसे कम करनी पड़ेगी। परंतु आगे चलकर जर्मनों को इसके द्वारा अधिक लाभ होने की संभावना प्रतीत हो रही है। कारण, इस Cartel (संघ) के द्वारा जर्मनी बाज़ार के भावों को ठीक तौर से नियमित कर सकेगा, और अंतर-जातीय व्यापारिक कठिनाइयाँ दूर करने में भी समर्थ होगा।

× × ×

८. कुछ प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकें

राजपूताना आर्य-सभ्यता की जैसे खान है, वैसे ही वहाँ उस सभ्यता के प्रदर्शक चिन्ह भी मौजूद हैं। समय-चक्र उन्हें नहीं मिटा सका। उसके प्रत्येक घर में खोज करने पर अभी ऐसा साहित्य प्राप्त हो ... है जो
कार में विलीन है। गत वर्ष की ...
प्राप्त कुछ हस्त-लिखित पुस्तकों क...
चुका है। अब अजमेर के ...
देने पर हमें कुछ अन्य हस्त-लिखि...
में सूचना देने का साहस होता है।
यति जीवनलालजी के द्वारा उन्हें देखने
...रियासत में बी० बी० ऐंड

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय से शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

पवित्र पापी

(सुप्रसिद्ध रूसी उपन्यास-लेखक, डॉसटाय विस्की के लोक-प्रिय उपन्यास Crime and Punishment का हिंदी-अनुवाद)

[अनुवादक पं० ब्रजकृष्ण गुर्टू बी० ए०, एल्-एल्० बी० और कविराज विद्याधर विद्यालंकार]

मनोविज्ञान का अद्वितीय उपन्यास । मनुष्य के विचारों का विचित्र विश्लेषण, जिज्ञासु ज्ञान-पिपासा शांत करने को क्या नहीं कर सकता, हत्यारे के सिर पर हत्या किस प्रकार सवार होकर बोलती है, पुलिस की तहक़ीक़ात में कल्पना की मात्रा कितनी होती है, सशंक मनुष्य कौन-सा अनर्थ ऐसा है जो वह नहीं कर सकता, आदि बातें ऐसी सुंदर, सरल और मनोरंजक भाषा में लिखी गई हैं कि उपन्यास पढ़ते ही बनता है । रूस की दरिद्रता, वहाँ की राजनीतिक अवस्था, पुलिस की तहक़ीक़ात का ढंग, साइबेरिया के जेल की दशा, शराबख़ाने का दृश्य, सच्ची मित्रता का अनुपम चित्र, स्वार्थी मनुष्य का लोभ प्रेम देखते ही बनता है । एक बार पुस्तक खोलिए, फिर बिना समाप्त किए पुस्तक रखने की इच्छा ही नहीं होती । अपने ढंग के इस नए और निराले ४२० पृष्ठ के इस सचित्र उपन्यास का मूल्य लगभग १)

मिस्टर व्यास की कथा

[लेखक, आनंद-संपादक पं० शिवनाथजी शर्मा]

हास्य-रस के वयोवृद्ध लेखकों में पं० शिवनाथजी शर्मा का स्थान सर्वोपरि है । यह पुस्तक समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिये समय-समय पर लिखी गई भाव-भरित, व्यंग्य-पूर्ण, विनोदी, मर्म-स्पर्शी कथाओं का संग्रह है । मिस्टर व्यास की कथा वास्तव में व्यास की कथा ही है । इसे बराबर पढ़ते जाइए, कहीं रुकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी । एक के बाद एक ऐसे नवीन प्रसंग आते हैं कि उनको पढ़ते ही बनता है । क्या मजाल कि इससे कभी तबियत ऊब जाय । पढ़ते जाइए, लेखक की क़लम की करामात सराहते जाइए । हास्य-रस की कुछ पुस्तकें हिंदी-साहित्य में इधर निकली हैं । गाली-गलौज और असभ्य हास्य ही में लेखकों ने वे पुस्तकें रँग डाली हैं । पर वास्तव में हास्य-रस किसे कहते हैं, यह किसी ने नहीं बताया । सौम्य और चुटीली भाषा में किसी बात की बुराई बताकर उसे दूर करने की कला सीखनी हो, तो यह पुस्तक अवश्य पढ़िए । सभ्य मज़ाक़ किसे कहते हैं, किसी को खूब पेट-भर बनाइए, क्या मजाल कि उसे बुरा लगे ! यही नहीं, इसमें आपको हास्य-रस के लेख लिखने के अनेक नए ढंग मालूम होंगे । फिर भी आप इसका कोई लेख व्यक्ति-गत आक्षेप या असभ्य भाषा में लिखा न पाइएगा । सभी लेख अपने ढंग के नए और निराले हैं । मूल्य लगभग १)

हँसी-खेल

[लेखक, श्रीयुत जगमोहन 'विकसित']

बाल-विनोद-वाटिका का नया पुष्प । छोटे-छोटे बालकों के लिये यह पुस्तक बड़ी सुंदर और सरल भाषा में लिखाई गई है । प्रत्येक बालक बिना किसी की सहायता के इसके चित्र ही देखकर पाठ का अभिप्राय समझ जायगा । सुंदर रंग-बिरंगी स्याही में छपी हुई पुस्तक का मूल्य लगभग ॥)

मिलने का पता—संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ७॥), छ मास का ४) और प्रति संख्या का ।॥) है। वी० पी० से मँगाने में ≈) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छ महीने का ५) और प्रति संख्या का ॥≈) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है; और प्रति मास शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को पत्रिका प्रकाशित हो जाती है। लेकिन ग्राहक बननेवाले चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो अगले महीने के शुक्ल-पक्ष की सप्तमी तक कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। लेकिन उक्त तिथि के बाद सूचना मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा, और उस संख्या को ग्राहक ॥-) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना व्यवस्थापक गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ या मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाक-घर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १५ रोज़ पेशतर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो ना-पसंद लेख संपादक लौटाना मंज़ूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए। हाँ, चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक अर्थ प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

पं० दुलारेलाल भार्गव

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	...	...	३०)	प्रति	मास
½ ,, या १ ,, ,,	...	...	१६)	,,	,,
¼ ,, या ½ ,, ,,	...	...	१०)	,,	,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,,	...	...	६)	,,	,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल-भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ४,००,००० पढ़े-लिखे, धनी-मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार खूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एवं प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०-५० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से अपेक्षाकृत कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो कीजिए।

मैनेजर माधुरी, लखनऊ



[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ५ { पौष-शुक्ल ७, ३०३ तुलसी-संवत् (१९८३ वि०)— } संख्या ६
खंड १ { १० जनवरी, १९२७ ई० } पूर्ण संख्या ५४

उद्धव और गोपी

(१)

ढाँग जात्यौ ढरकि, परकि उर सोग जात्यौ,
जोग जात्यौ सरकि सकंप कँखियानि तैं ;
कहै "रतनाकर" न करते प्रपंच ऐंठि,
बैठि धरा देखते कहूँ धौं नखियानि तैं।
रहते अदेख नाहिं वेष वह देखन हूँ,
देखन हमारैं आन मोर-पँखियानि तैं,
ऊधौ, ब्रह्म-ज्ञान कौ बखान करते ना नैंकु,
देखि लेते कान्ह जौ हमारी अँखियानि तैं।

(२)

कान्ह हूँ तैं आनहीं बिधान करिबे कौं ब्रह्म,
मधु परियानि की चपल कँखियाँ चहैं,
कहै "रतनाकर" हँसैं कै कही रोवैं अब,
गगन अथाह थाह लेन मखियाँ चहैं।
अगुन-सगुन-फंद-बंद निरवारन कौं,
धारन कौं न्याय की नुकीली नखियाँ चहैं ;
मोर-पँखियाँ कौ मौरवारी चारु चाहन कौं,
ऊधौ, अँखियाँ चहैं, न मोरपँखियाँ चहैं।

"रत्नाकर"



[हिन्दी [illegible] विनोदिनी, साहित्य [illegible], सचित्र मासिक पत्रिका]

मिलत, मधुर मधु, नित्य-[illegible], सुधा-माधुर्य [illegible] :
[illegible] यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ५ खंड १ (पौष-शुक्ल ७, ३०३ तुलसी-संवत् (१९८३ वि०)— १० जनवरी, १९२७ ई०) संख्या ६ पूर्ण संख्या ५४

उद्धव और गोपी

(१)

हाथ पाती छाँह, परस पर मोम आन्यौ,
मोम आन्यौ सबहि सकल कँखियानि तें ।
कौ "रतनाकर" न करै प्रति पीर,
बैठि ख्याल रच्यौ इह पै अँखियानि तें ।
कहै [illegible] नाहिं यह वह देखत हैं,
देखत हमारे जान मोर पँखियानि तें,
ऊधौ, ब्रह्म-ज्ञान कौ बखान करते न नैंकु,
देखि लेते कान्ह जौ हमारी अँखियानि तें ।

(२)

कान्ह हूँ सौं आनि कैं बिधान करिबे कौं ब्रह्म,
मधुपुरियानि की चपल कँखियाँ चहैं,
कहै "रतनाकर" हँसैं के कहौ रोवैं अब,
गगन अथाह थाह लेन मखियाँ चहैं ।
अगुन-अपार-निराकार-निरंजन कौं,
मानस कौ प्यार कौ नुकीली नखियाँ चहैं :
मोर-पँखिया कौ मौरवारौ चारु चाहन कौं,
ऊधौ, अँखियाँ चहैं, न मोरपँखियाँ चहैं ।

"रत्नाकर"

ईश्वर-बहिष्कार का प्रयत्न

जिस समय कोल्हापुर में बैठा हुआ मैं 'आस्तिकवाद' लिख रहा था, उसी समय 'प्रत्यक्षवादी' महाशय के ईश्वर-बहिष्कार-संबंधी लेख 'माधुरी' में छप रहे थे। इधर मैं आस्तिकता के अभाव को उन्नति तथा शांति में बाधक समझ रहा था, उधर मेरे 'प्रत्यक्षवादी' मित्र 'आस्तिकता' को ही भयंकर समझकर ईश्वर के बहिष्कार का प्रयत्न कर रहे थे। एक ही समय में एक ही देश तथा जाति की लगभग एक-सी परिस्थिति में रहते हुए दो मस्तिष्कों में परस्पर-विरुद्ध विचार कैसे उत्पन्न हुए, यह मनोविज्ञान-वेत्ताओं के लिये एक जटिल समस्या होगी। परंतु उन अनुसंधान-कर्ताओं को भी, जो ग्रंथ-कारों के विचारों के क्रम से देश तथा काल का क्रम निकाला करते हैं, कुछ-न-कुछ विचार करने को सामग्री मिल सकेगी।

'आस्तिकवाद' लिखते समय यदि सब लेख मिल जाते, तो मुझे बड़ा हर्ष होता। मुझे इनके संबंध में गत ऑक्टोबर, सन् १९२६ में, लगभग आठ मास पश्चात्, ज्ञात हुआ, और मैंने इनको बड़ी ही उत्कंठा से पढ़ा। एक बात में हम दोनों के विचार मिलते हैं, अर्थात् रोग हम दोनों को एक ही देख पड़ता है; परंतु उसके निदान और उपचार में आकाश-पाताल का भेद है। 'प्रत्यक्षवादी' महाशय ठीक कहते हैं—

"सातवें आसमान पर मुहम्मद साहब का 'बुराक़' पर चढ़कर जाना, रिज़्वाँ का इन्हें बहिश्त दिखलाना, महात्मा ईसा मसीह का आसमान पर उठाया जाना तथा गरुड़पुराण आदि की स्वर्गों और नरकों की कल्पनाएँ—सभी इस बात की साक्षी हैं कि धर्म केवल कल्पना-मात्र है।" (माधुरी, वर्ष ४, खंड २, पृ० ६४१)

"जहाँ शारीरिक हानि पहुँचाने के लिये नशेबाज़ी और दुराचार के अनेकों अड्डे होते हैं, वहाँ मनुष्य को मानसिक हानि पहुँचाने और निकम्मा बनाने के लिये धार्मिक अड्डे—गिरजे, मंदिर और मस्जिदें—भी हैं।" (पृ० ७७३)

"सिखानेवाले धनिक, पुरोहित और राजकर्मचारियों में कोई भी ईश्वर को नहीं मानता। पर हरएक ईश्वर के मानने का ढोंग रचता है।" (पृ० ७७३)

"कितने झगड़े ईश्वर और धर्म के नाम पर होते हैं? आज हिंदू-मुसलमानों के बीच भारत में जो परिस्थिति है, इसकी ज़िम्मेदारी धर्म ही पर है। आज क़ुरान को हटा दिया जाय, तो आज ही भारत में सुख-शांति आ सकती है।" (पृ० ५९)

"धर्म की व्यवस्था हमेशा धन से ख़रीदी जाती रही है, और अब भी ख़रीदी जा सकती है। डायर और ओ' डायर की क्रूरताओं का पादरियों और मालाबार के मोपलों के राक्षसी कार्यों का मौलवियों ने समर्थन किया।" (पृ० २१२)

"किसी समय योरप में धर्म के नाम पर ऐसे अत्याचार हुए हैं कि उन्हें देखकर शैतान, जिसे धर्म के माननेवालों ने इतना बुरा चित्रित किया है, यदि सचमुच होता, तो लज्जा से सिर झुका लेता। योरप का धर्म-इतिहास (History of the Church) इसका साक्षी है। 'इनक्वीज़िशन' के क़ानून ने क्या कुछ अत्याचार नहीं किया? यह क़ानून पुरोहितराज पोप की तृष्णा-पूर्ति के लिये, धर्म-विरोधी की खोज करके उसे प्रताड़ित करने के निमित्त बनाया गया था।" (पृ० २१३)

"धर्मांधता के नाश के साथ-ही-साथ पाश्चात्य देशों के अभ्युदय का इतिहास आरंभ होता है।" (पृ० २१३)

किंतु इन बातों को मानते हुए भी मैं 'प्रत्यक्षवादी' महाशय के इस वाक्य से सहमत नहीं हूँ कि—

"मनुष्य जितनी जल्दी ईश्वर, ख़ुदा या गॉड और धर्म, मज़हब या रिलीजन को त्याग दे, उतना ही अच्छा।" (पृ० ६४१)

यह सत्य है कि "ईश्वर मूर्खों के लिये अंधों का घर है।" (पृ० २१९)

परंतु मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं कि "बुद्धिमानों के लिये भी" ईश्वर अंधों का घर है। वस्तुतः मूर्खता एक प्रकार का अंधापन ही है। इसलिये 'मूर्खों' के लिये तो सभी चीज़ें "अंधों का घर हैं।" संसार में कौन-सी वस्तु ऐसी है, जो 'मूर्खों' के लिये अंधों का घर नहीं? चाहे राजनीति को लीजिए, चाहे जीवन के छोटे या बड़े किसी अन्य विभाग को। मूर्खों के लिये तो अंधकार-ही-अंधकार है। परंतु जिस बात का दुरुपयोग मनुष्य

मूर्खता या थोड़े-बहुत अज्ञान के कारण करता है, उसका क्या, ज्ञान प्राप्त करके, सदुपयोग नहीं कर सकता? आपने 'धर्मांधता' के जो दोष दिखाए हैं, वे तो ठीक हैं; परंतु क्या 'धर्म' और 'अंधता', दोनों सहोदर भाई-बहन हैं? क्या इनका एक दूसरे से पृथक्त्व संभव नहीं? क्या 'धर्म' के साथ मैं हम समालेपन का ख़याल नहीं कर सकते? हमको तो कुछ अन्य ही 'प्रत्यक्ष' होता है, और 'अनुमान' भी अन्य ही। जहाँ हम ऊपर-लिखे अनुसार 'धर्मांधता' के अत्याचार देखते हैं, वहीं हमें सहस्रों उदाहरण उन परोपकारियों, आत्मत्यागियों, दानियों, समाज-सेवियों, देश-भक्तों और प्राणि-हित-चिंतकों के भी मिलते हैं, जिनके उच्च भावों का आदि-स्रोत आस्तिकता ही थी। इस प्रकार के मनुष्यों का किसी देश या किसी काल में अभाव नहीं रहा। आपने बड़ी उत्तमता से उन मनुष्यों का चित्र खींचा है, जो ईश्वर-विश्वास या ईश्वर-भक्ति का ढोंग फैलाकर बहुरूपियों की भाँति लोगों को ठगते हैं। परंतु आपके 'प्रत्यक्षवाद' में यदि इन उदाहरणों का समावेश है, तो उन असंख्य उदाहरणों का समावेश क्यों नहीं, जहाँ परोपकार, दान तथा आत्मत्याग का ईश्वर-विश्वास के कारण ही प्रकाश हुआ? जिस प्रकार एक ठग राजा का रूप रखकर प्रजा को ठग लेता है, परंतु उससे सच्चे राजा पर दोष नहीं आता; जिस प्रकार वह मास्टर का रूप रखकर लड़कों को ठग सकता है, परंतु उससे सच्चे मास्टर पर दोष नहीं आता; जिस प्रकार वह कोतवाल का रूप रखकर जनता को ठग सकता है, परंतु उससे सच्चे कोतवाल पर दोष नहीं आता; उसी प्रकार यदि एक ठग या अनेक ठग ईश्वर-भक्तों का रूप रखकर संसार को ठग लें, तो सच्चे ईश्वर-भक्तों पर क्यों दोष आना चाहिए? कौन ऐसा बुद्धिमान् है, जो विष-युक्त अन्न से होनेवाली हानि का अनुभव करके शुद्ध अन्न का भी तिरस्कार करने लगे? हम उसकी विद्वत्ता के लिये कौन-से शब्दों का प्रयोग करें, जो मदारी के खोटे रुपयों से धोखा खाकर सभी रुपयों को खोटा समझ बैठा है? हम यह मानते हैं कि लोगों ने धर्म के नाम पर बड़े-बड़े अत्याचार किए; परंतु क्या इसी धर्म के नाम पर कोई पुण्य नहीं किया गया? यदि 'प्रत्यक्षवाद' में 'साहित्य-प्रमाण' भी लिया जा सके (और, मैं समझता हूँ कि अवश्य लिया जा सकेगा; अन्यथा हमारे "प्रत्यक्षवादी" मित्र इतिहासों के अनेक उदाहरण न देते), तो धर्म के नाम पर किए गए पुण्यों की संख्या पापों से कहीं अधिक मिलेगी, और ईश्वर के नाम पर रक्षित लोगों की गणना भी ईश्वर के नाम पर सताए लोगों की गणना से कई गुनी होगी।

शायद लेखक महोदय के हृदय में इस बात का प्रभाव था। इसीलिये उनको यह कहना पड़ा—

"ईश्वर के पूजनेवाले, दासवृत्ति का समर्थन करनेवाले कहते हैं कि यदि धार्मिक बुद्धिवालों को देश का या और किसी संस्था आदि का प्रबंध सौंपा जाय, तो वर्तमान समाज भी बुरा नहीं है। क़ानून बुरा नहीं होता, बर्तनेवाले ही बुरे होते हैं। ईश्वर बुरा नहीं है, उसकी आज्ञा को न माननेवाले ही बुरे हैं। राजा अच्छा भी होता है, बुरा भी। बुरा राजा बुरा है, बुराई बुराई है, न कि राजा का पद ही बुरा है।" (पृष्ठ २१४)

परंतु आप इसके खंडन में कहते हैं—"यह हमारे भोले भाइयों की नादानी है। मैं कहता हूँ, क़ानून क्यों हो? न क़ानून होगा, न कोई उसे बुरा बर्तेगा; न ख़ुदा होगा, न उसके नाम पर हज़ारों-लाखों टन काग़ज़ रद्दी किया जायगा। मनुष्य यदि सोचकर अपने समाज का संगठन करे, तो वह ईश्वर, राजा और क़ानून के बिना भी बहुत आनंद के साथ रह सकता है।" (पृष्ठ २१५)

आपके समस्त लेख की जान यह उद्धरण है; क्योंकि इससे आपकी उस विचार-सरणी का पता चलता है, जो आपको ईश्वर-बहिष्कार के प्रयत्न के लिये प्रेरणा करती है। आप क़ानून को मानना नहीं चाहते, इसीलिये राजा से रुष्ट हैं, और इसीलिये ईश्वर से भी। "न क़ानून होगा, न कोई उसे बुरा बर्तेगा।" न आँख होगी, न कोई उससे अनर्थ देखेगा? न हाथ होंगे, न कोई उनसे अत्याचार करेगा? न जीभ होगी, न कोई उससे गाली देगा? न मनुष्य होंगे, न लड़ाई-झगड़े होंगे? बड़ा सीधा इलाज है, भिन्न-भिन्न रोगों की एक-मात्र औषध! एक अमृतधारा से शायद बहुत-से रोग अच्छे न हों; परंतु 'प्रत्यक्षवादी' का ईश्वर-बहिष्कार और राज-बहिष्कार या क़ानून-बहिष्कार समस्त रोगों को एकदम नष्ट कर देगा। न मर्ज़ रहेगा, न मरीज़।

परंतु यदि आप क़ानून के ही विरोधी हैं, तो "समाज का संगठन" कैसे होगा? और, आप "पहले से अधिक संयमी, मनुष्य-भक्त एवं समाज-सेवा के प्रेमी" (पृष्ठ २१५)

कैसे बन गए ? बिना क़ानून के 'संयम' कैसा ? यदि एक व्यक्ति बिना क़ानून के 'संयमी' नहीं हो सकता, तो मनुष्य-समाज कैसे हो सकेगा ? या तो आप अपने कहने के विरुद्ध यह मानें कि "क़ानून बुरा नहीं होता, बर्तनेवाले ही बुरे होते हैं", या यह कि यदि एक क़ानून बुरा है, तो उसकी जगह अच्छा क़ानून भी बनाया जा सकता है। परंतु बिना क़ानून के तो आप एक क़दम भी नहीं चल सकते। आप ठीक कहते हैं कि "न्यायानुमोदित, धर्मानुमोदित या उचित वही है, जो बुद्धि-ग्राह्य हो, ज्ञानानुमोदित हो।" (पृष्ठ २१५) परंतु क्या 'क़ानून' इस कसौटी पर नहीं कसता ? क्या आपको संसार में कोई क़ानून बुद्धि-ग्राह्य नहीं जँचता ? यह तो संभव है कि बहुत-से क़ानून 'न्यायानुमोदित' न हों; परंतु आप किसी क़ानून-विशेष की तो समालोचना ही नहीं करते, आप तो सभी क़ानूनों पर पानी फेर रहे हैं। ऐसा क्यों ?

आपकी दूसरी कसौटी यह है कि "मनुष्य स्वातंत्र्य का संरक्षक हो।" परंतु आपने अपने समस्त लेख में इस स्वातंत्र्य की विवेचना नहीं की। यदि हम इस 'स्वातंत्र्य' का अर्थ आपके क़ानून-संबंधी उद्धरण के सहारे निकालें, तो शायद यही कि आप मनुष्य को समस्त क़ानूनों से स्वतंत्र करना चाहते हैं। परंतु क्या आप ऐसा करने में सफल होंगे ? और, यदि सफल भी हो गए, तो क्या आप मनुष्य-समाज को शांतिमय बना सकेंगे ? सोचिए, आप तो "प्रत्यक्षवादी" हैं। अन्य प्रमाण शायद आपके मत में ग्राह्य नहीं। फिर क्या आपने मनुष्य-समाज की उस दशा का भी प्रत्यक्ष विचार किया है, जिसमें किसी क़ानून का राज्य न हो, किसी राजा या राज्य के क़ानून न हों, किसी ईश्वर आदि का अवलंबन न हो ? आप कहते हैं—"मैंने गत २० वर्षों से ख़ुदा की परवा नहीं की। इससे मेरा कुछ भी हर्ज नहीं हुआ, उलटे काम बहुत हुआ है।" (पृष्ठ २१५)। क्यों साहब, कौन 'काम' ? किसी 'क़ानून' के अनुसार काम या अंधाधुंधी काम ? आप ख़ुदा की परवा करें या न करें; परंतु क्या आपने उन नियमों की भी परवा नहीं की, जिनके विषय में आप कहते हैं कि "मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह नैसर्गिक नियमों के अनुसार चले।" (पृष्ठ २१४) ये नैसर्गिक नियम क़ानून की कोटि में आते हैं या नहीं, इसकी कहीं विवेचना नहीं की गई। हाँ, यह बताया गया है कि इन नियमों का अनुसरण क्यों करना चाहिए। यथा—"क्योंकि उनको उसी ने प्रत्यक्ष किया है। उसके सिर पर किसी व्यक्ति या समष्टि ने उन्हें ज़बरदस्ती नहीं लादा।" (पृष्ठ २१४)। "उसने"—किसने ? मनुष्य ने ? किस मनुष्य ने ? अनुसरण करनेवाले मनुष्य ने, या उसके भाइयों या पूर्वजों ने ? भाइयों या पूर्वजों के प्रत्यक्ष किए हुए नियमों को तो आप 'ज़बरदस्ती लादना' कहते हैं। इसलिये शायद आपका मतलब उसी मनुष्य से है। अच्छा, एक मनुष्य चोरी करता है ! उसको कोई दंड दे, या नहीं ? अन्य व्यक्ति उसे क्यों दंड दे ? वह अपने प्रत्यक्ष के फल को उस पर 'ज़बरदस्ती' क्यों 'लादे' ? रहा वह स्वयं। उसने तो प्रत्यक्ष किया नहीं कि चोरी बुरा कर्म है। उसका प्रत्यक्ष तो यही है कि चोरी की, और लड्डू खाए ! न करता, तो शायद भूखों मरता। ऐसे प्रत्यक्षवादी हों, तो वह हज़रत थे जो कहा करते थे—

> यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ;
> भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।

हम आपके इस कथन से सहमत हैं कि "जो ऐसे नियमों को मानते हैं, जिन्हें किसी डाकू या डाकुओं के गिरोह ने बनाकर अपने या कल्पित ईश्वर के नाम से जारी किया है, वे क्या वज्रमूर्ख नहीं हैं ?" (पृष्ठ २१४) आपकी तरह हमको भी "पक्षपाती, निर्दय, कल्पित ईश्वर की ज़रूरत नहीं।" (पृष्ठ २१४) परंतु हम यह कैसे मान लें कि जिस ईश्वर ने आपको उत्पन्न किया, कान, आँख तथा मनुष्य का शरीर-रूपी उत्तम रत्न दिए, जिसने इन इंद्रियों से सीखने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये अन्न-जल से लेकर सूर्य-चंद्र-पर्यंत अनेकों और असंख्यों अद्भुत पदार्थ दिए, वह ईश्वर कल्पित और निर्दय है। जिस ईश्वर ने 'अहं ददामि गर्भेषु भोजनं' के अनुसार आपको गर्भ में बढ़ने की सामग्री दी—जिसको शायद आप इस समय 'प्रत्यक्ष' नहीं कर सकते, और 'अनुमान' करना नहीं चाहते—जिस ईश्वर ने आपको इतना बड़ा किया, और जो ईश्वर, इस बात के होते हुए भी कि आपने "बीस वर्षों से उसकी परवा नहीं की" (पृ० २१५), इस समय भी आपकी परवा कर रहा है, जिसकी दया का हाथ सोते-जागते आपके सिर पर है, उसे निर्दय कहना कल्पना नहीं, तो क्या है ?

आप कहेंगे, मुझे किसी ईश्वर ने नहीं बनाया, और न किसी ईश्वर ने गर्भ में भोजन ही दिया; मेरे ऊपर

किसी ईश्वर की दया का एहसान नहीं है ; क्योंकि "ईश्वर एक ऐसा कल्पित पदार्थ है, जिसे कभी किसी ने अपनी ज्ञानेंद्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया, इसलिये कि उसका अभाव है। और, जिस पदार्थ का अत्यंताभाव है, उसका अस्तित्व कभी हो ही नहीं सकता।" (पृ० ६४०) इसमें हम किसको प्रतिज्ञा कहें, किसको हेतु और किसको उदाहरण ? ऐसी युक्तियों को सिलोजिस्टिक फ़ार्म देने में तो बाबा अरिस्टॉटल को भी नानी मरती। पाठकगण ज़रा विचार करें। एक उद्धरण में इतनी बातें ! गागर में सागर !

(१) "ईश्वर कल्पित पदार्थ है।" क्यों ?

(२) "उसे कभी किसी ने अपनी ज्ञानेंद्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया।"

पहली 'प्रतिज्ञा' है, और दूसरा 'हेतु'। अर्थात् यदि "किसी ने" "कभी" "अपनी" "ज्ञानेंद्रियों" से 'प्रत्यक्ष' नहीं किया, तो वह "पदार्थ" "कल्पित" होता है। एक-एक शब्द पर विचार कीजिए। श्रीयुत परम पूज्य 'प्रत्यक्षवादी' महाशय ने 'कभी' 'अपनी' 'ज्ञानेंद्रियों' से अपनी जननी के 'जननीत्व' या जनक के 'जनकत्व' को 'प्रत्यक्ष' नहीं किया। क्या मेरा यह हेतु ठीक है ? मेरी 'कल्पना' तो नहीं ? स्पष्ट बताइए। क्योंकि आपके समस्त लेख में 'कल्पना'-शब्द का इतनी बार प्रयोग हुआ है कि उसके गिनने के लिये समय चाहिए। मुझे भय है कि आप शायद यह कह दें—"मुझे इसका प्रत्यक्ष हुआ है।" आप तो प्रत्यक्षवादी ठहरे। अच्छा, कह दीजिए। क्या हर्ज है ? शायद आपको 'प्रत्यक्ष' हुआ हो ? परंतु नहीं। मैं जानता हूँ, और यथार्थ जानता हूँ कि आप कभी ऐसा न कहेंगे। मेरी यह 'कल्पना' नहीं, किंतु दृढ़ विश्वास है कि आपको अपनी जननी के जननीत्व और जनक के जनकत्व का "कभी" "अपनी" "ज्ञानेंद्रियों" से "प्रत्यक्ष" नहीं हुआ। और, न आज तक "किसी" अन्य को हुआ। इसलिये क्या नतीजा निकला ? चाहे तो लॉजिक या मंतिक के साधारण विद्यार्थी से पूछिए, चाहे इन विद्याओं के किसी धुरंधर विद्वान् गौतम या अरिस्टॉटिल अथवा आधुनिक लॉजीशियन के पास जाइए, सब यही कहेंगे कि आपकी बताई हुई प्रेमिसेज़ (Premises) से तो आपकी पूज्य माता और पूज्य पिता, दोनों कल्पित ठहरते हैं। परंतु शायद आप गौतम और अरिस्टॉटल से नाराज़ हों ? आप उनके पास क्यों जाने लगे ? वे तो केवल 'प्रत्यक्षवादी' नहीं : वे तो हमारी तरह अन्य प्रमाणों को भी मानते हैं। अच्छा, तो आप स्वयं कुछ नतीजा निकालिए। परंतु 'नतीजा' आप निकाल ही नहीं सकते। केवल "प्रत्यक्षवाद" या "शुद्ध प्रत्यक्षवाद" में तो नतीजा निकालने की गुंजाइश ही नहीं। परंतु यदि आप 'शुद्ध प्रत्यक्षवादी' हैं, तो आपने ईश्वर के कल्पित होने का नतीजा कैसे निकाल लिया ? आप शायद कहें कि हमने अपने पिता-माता के 'पितृत्व' का ज्ञान अन्य पुरुषों के कहने से प्राप्त किया ! परंतु नहीं, नहीं ; ऐसा आप हर्गिज़ न कहेंगे। क्या आप अपने मुँह से अपना ही खंडन करेंगे ? आपका तो मत ही है कि

"शुनीदः के बुवद मानिंद दीदः"

अर्थात् सुनी बात देखी के बराबर नहीं हो सकती।

परंतु आपका तर्क यहीं समाप्त नहीं हो जाता। पाठक कई बार पढ़ें। हर बार नई बात निकलेगी। उसी को फिर दोहराइए—

(१) "ईश्वर कल्पित पदार्थ है।" क्यों ?

(२) उसे "कभी किसी ने अपनी ज्ञानेंद्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया।" क्यों नहीं किया ?

(३) "इसलिये कि उसका अभाव है।"

फिर क्या ? लीजिए एक और नया आविष्कार।

(४) "जिस पदार्थ का अत्यंत अभाव है, उसका अस्तित्व कभी हो ही नहीं सकता।"

आप ईश्वर का अभाव सिद्ध करना चाहते हैं, उसके लिये हेतु क्या ? यही कि उसका 'अभाव'—उसका अत्यंत अभाव है इत्यादि-इत्यादि। इसी को कहते हैं "दावा बेदलील।" आप 'दावे' को ही अनेक रूपों में प्रकट करते हैं, और इसी का नाम दलील रखते हैं। क्या ख़ूब ! "ईश्वर प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता ?" इसलिये कि "उसका अभाव है।" "अभाव क्यों है ?", इसलिये कि "प्रत्यक्ष नहीं होता।" क्या यह 'अन्योन्याश्रय-दोष' का उदाहरण नहीं है ?

परंतु मैं पूछता हूँ कि आपने "कभी" और "किसी ने", ये दो शब्द क्यों प्रयुक्त किए ? बिना 'अविनाभाव' माने हुए कोई इन दो शब्दों का प्रयोग करने का अधिकार नहीं रखता। और, 'प्रत्यक्षवाद' में 'अविनाभाव' माना नहीं जाता। हाँ, यदि आपका प्रत्यक्षवाद "शुद्ध" न होकर "विशिष्ट" हो, तो और बात है।

शायद पाठकगण यह शिकायत करें कि "प्रत्यक्षवादी"-शब्द के पीछे मैं इतना क्यों पड़ गया। परंतु मैं यह कहता हूँ कि मेरा ऐसा करना अप्रासंगिक नहीं। वस्तुतः समस्त लेख में यही बात अनेक रूपों और अनेक शब्दों में दोहराई गई है कि ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये कल्पित है। अन्य किसी हेतु के देने की चेष्टा ही नहीं की गई। हाँ, लच्छेदार इबारत में उन अत्याचारों को भी ईश्वर के नाम पर मढ़ दिया है, जिनके लिये सब सच्चे ईश्वर-भक्त खेद प्रकट करते हैं, और जो 'आस्तिकता' के कारण नहीं, किंतु सच्ची आस्तिकता के अभाव के कारण प्रकट होते हैं। कौन नहीं जानता कि आजकल की हिंदू-मुसलमानों की लड़ाई में मज़हब या ईश्वर का बहाना है। वास्तविक कारण राजनीतिक है? इसी प्रकार मौलवियों, पंडितों या पादरियों के अत्याचारों या अनर्थों का कारण भी आस्तिकता नहीं, किंतु कभी अज्ञान और कभी स्वार्थ होता है। यदि किसी डॉक्टर के उपचार द्वारा कोई रोगी मर जाय, तो आप क्या नतीजा निकालेंगे? क्या यह कि वह रोगी 'डॉक्टरी'-विद्या के कारण मर गया? या डॉक्टर के अज्ञान, आलस्य अथवा स्वार्थ के कारण? स्वयं विचार कीजिए।

अब ज़रा आपके साइंस की भी परीक्षा कीजिए। आप लिखते हैं—

"संसार में जितनी वस्तुएँ हैं, वे चाहे कितनी भी सूक्ष्म क्यों न हों, सबका प्रादुर्भाव प्रकृति से होता है। और, प्रकृति-जन्य सारे पदार्थ किसी-न-किसी दशा में इंद्रिय-ग्राह्य होते हैं।" (पृ० ६४०)

ये दोनों बातें ग़लत हैं। सब सूक्ष्म वस्तुओं का "प्रादुर्भाव प्रकृति से" हो ही नहीं सकता। एक 'जीव' को ही लीजिए, जिसे आपके कथनानुसार शंकराचार्य ने ईश्वर समझ लिया। (पृ० ६४१), यद्यपि शंकराचार्य का मत सर्वथा इससे उलटा था। उन्होंने जीव को ईश्वर नहीं समझा; किंतु ईश्वर को जीव समझा। परंतु आपके लिये सब धान बाईस पंसेरी हैं। चाहे आग को पानी समझें, चाहे पानी को आग, सब एक ही बात है। आप लिखते हैं—

"संभव है, रसायन-शास्त्र के अनुसार जीव भी दो या अनेक चीज़ों के मेल से उत्पन्न कोई स्थिति-विशेष हो।" (पृ० ६४१)

क़ुर्बान जाइए इस तर्क पर! क्या यह 'प्रत्यक्षवाद' का तर्क है? 'संभव' प्रमाण भी प्रत्यक्ष के अंतर्गत! शायद आपने "अपनी" "ज्ञानेंद्रियों" से इसे "प्रत्यक्ष" किया हो! अन्यथा आप इस 'संभव' के बोझ को 'ज़बर्दस्ती' अपने ऊपर क्यों 'लादते', या दूसरों को 'लादने' की क्यों सलाह देते। परंतु क्या आपने कभी जानने की कोशिश की कि साइंस क्या कहता है?

"पीराँ न मी परंद व मुरीदाँ मी परानंद"

गुरु तो नहीं उड़ सकते, पर चेले उनको उड़ाते फिरते हैं। हम यहाँ आल्फ्रेड रसेल वालेस-जैसे नामी और धुरंधर साइंसवेत्ता की प्रसिद्ध पुस्तक 'जीवन-जगत्' (The world of Life) की भूमिका से एक उद्धरण देते हैं—

"... ......the most prominent feature of my book is that I enter into a popular, yet critical examination of those underlying fundamental problems, which Darwin purposely excluded from his work as being beyond the Scope of *his* enquiry. Such are, the nature and causes of Life itself; and more especially of its most fundamental and mysterious powers—— growth and reproduction.

......I argue, that they necessarily imply first a *creative power*, which so constituted matter as to render these marvels possible, next a *directive mind*, which is demanded at every step of what we term growth; and often look upon as so simple and natural a process as to require no explanation; and, lastly, *Ultimate purpose*, in the very existence of the whole vast life-world in all its long course of evolution throughout the eons of geological time." (Preface, pp. VI-VII)

लीजिए, नए युग का एक प्रसिद्ध साइंसवेत्ता और विकासवादी अपनी "ज्ञानेंद्रियों" से "प्रत्यक्ष" करके बिना किसी मौलवी, पंडित या पादरी के बहकाने में आए हुए, प्रकृति और संसार के निरीक्षण से यह नतीजा निकालता है कि—

(१) इस प्रकृति को चलानेवाली इससे भिन्न एक उत्पादक शक्ति (Creative power) है।

(२) और, इस शक्ति में संचालक बुद्धि (Directive mind) है।

(३) जिससे अंतिम प्रयोजन (Ultimate purpose) का पता चलता है।

अब बताइए कि आस्तिक लोग 'ईश्वर' नाम के पदार्थ में यही बातें मानते हैं, या नहीं?

मैंने ऊपर कहा है कि आपने दोनों बातें ग़लत लिखी हैं। पहली यह कि "सब सूक्ष्म पदार्थों का प्रादुर्भाव प्रकृति से होता है।" रसेल कहता है कि 'जीवन-जगत्' की वृद्धि आदि का प्रादुर्भाव केवल प्रकृति से नहीं हो सकता। इससे भी अधिक प्रकृति के निज संचालन के लिये (which so *constituted the matter* as to render these marvels possible) उत्पादक शक्ति, संचालक बुद्धि आदि की ज़रूरत है। आपकी यह बात भी ग़लत है कि "प्रकृति-जन्य सारे पदार्थ किसी-न-किसी दशा में इंद्रिय-ग्राह्य होते हैं"; क्योंकि आप स्वयं लिखते हैं—

"बिजली बहुत ही सूक्ष्म रूप की एक वस्तु है। आँख, कान, नाक आदि द्वारा इसे यों नहीं देख सकते। लेकिन बिजली की उत्पत्ति प्राकृत पदार्थों से होती है। और, जब हम उसका व्यवहार किसी रूप में करते हैं, तो द्रव्यों में उसको स्पष्ट देखते हैं कि काम कर रही है।"

यहाँ स्पष्ट हो गया कि बिजली प्राकृतिक पदार्थ होने पर भी इंद्रिय-ग्राह्य नहीं; किंतु उसका 'काम' अन्य "द्रव्यों" द्वारा इंद्रिय-गोचर होता है। आप तारों को देखते हैं, बिजली को नहीं। और, केवल तारों की गति से नतीजा निकालते हैं कि इनमें विद्युत्-शक्ति काम कर रही है। आप बिजली को स्पष्ट नहीं, उसके काम को देखते हैं। किंतु अब प्रकृति-जन्य सूक्ष्म पदार्थों को भी स्पष्ट नहीं देख सकते, तो उस ईश्वर को, जो प्रकृति-जन्य नहीं, प्रत्युत प्रकृति का संचालक है, किस प्रकार देख सकेंगे? और, यदि अगोचर होने से बिजली को कल्पित नहीं मानते, तो ईश्वर का अगोचर होना उसके अभाव या अत्यंताभाव को कैसे सिद्ध कर सकता है? यदि आप कहें कि हम बिजली को चाहे न देखें, किंतु उसके काम को देखते हैं, तो हम भी कहेंगे कि हम ईश्वर को नहीं देखते, परंतु उसके काम को देखते हैं। जिस प्रकार यदि तार स्वयं हिल सकने की शक्ति रखते, तो आप कभी उनकी गति से बिजली के अस्तित्व का अनुमान न करते। इसी प्रकार यदि प्राकृतिक पदार्थों में स्वयं किसी वस्तु के बनाने आदि की शक्ति होती, तो हम उन की उत्पत्ति आदि से ईश्वर के होने का अनुमान न करते। परंतु रसेल वालेस-जैसे विद्वानों ने जगत् के जीवित पदार्थों का भली भाँति निरीक्षण करके मालूम किया कि प्रकृति स्वयं अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाने में असमर्थ है। अतः आवश्यक है कि उत्पादक और बुद्धि-संरक्ष शक्ति को माना जाय। इस संबंध में आप लिखते हैं—

"प्राणों के उद्गम और विकास का आधार तथा जीवन के सर्वश्रेष्ठ प्रकट प्रकाश का मूल प्रकृति है। निष्पक्ष विज्ञान इस बात की गवाही देता है। वस्तु के विकास में, प्राणियों की उत्पत्ति में, हम देखते हैं कि पिछला रूप मिट जाता और अभिनव विकसित उन्नत रूप उसका स्थानापन्न हो जाता है। मनुष्यता (सज्ञान पशुपन) में केवल पशुता के बल का दिन-दिन ह्रास होता जाता है, और ज्ञान का विकास। यह क्रिया नैसर्गिक है। इसी ज्ञान-वृद्धि के कारण प्रकृति के गुप्त रहस्य मनुष्य को मालूम होते जाते हैं। इस विकास-काल में, विज्ञान के प्रचंड मार्तंड के प्रकाश में, सिवा विक्षिप्तों के और कौन ऐसा हो सकता है, जो अंधकार के समय के कल्पित ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करेगा।" (पृष्ठ ७७२)

अब हम आपकी बात मानें या रसेल वालेस की? रसेल वालेस "अंधकार के समय" का नहीं है। उसने "विकास-काल में", "विज्ञान के प्रचंड मार्तंड के प्रकाश में" "प्रकृति के गुप्त रहस्यों" को जानकर ही यह नतीजा निकाला कि केवल प्रकृति, बिना ईश्वर की सहायता के, "नैसर्गिक क्रिया" करने के असमर्थ है। यह वालेस वह मनुष्य है जो डार्विन के समय से विकासवाद-संबंधी खोजें करता रहा, और डार्विन की मृत्यु के पश्चात् बहुत मुद्दत तक उन बातों का अनुसंधान करता रहा, जिनको उसने अधूरा छोड़ दिया था। "सिवा विक्षिप्तों के और कौन ऐसा हो सकता है", जो उसकी खोज के सामने सिर न झुकावे? आप लाप्लेस के विश्वक्रम-ज्ञान (System of the Universe) के भरोसे ही ईश्वर की आवश्यकता नहीं समझते (पृष्ठ २१३)। परंतु मैं आपके ही शब्दों में कहता हूँ कि "यह बीसवीं सदी का विज्ञान-काल है।" (पृष्ठ ७७२) नेपोलियन के समय का विज्ञान-काल, जिसमें प्रत्येक साइंस का विद्यार्थी भी अक़्ल के पीछे लठ लेकर "ईश्वर के बहिष्कार" का प्रयत्न करने लगता था, कभी का सेन-नदी में बहकर अटलांटिक-महासागर में लुप्त हो गया। आजकल के धुरंधर साइंसवालों ने कई बातों में अपने विचार बदल दिए हैं, और अनेक अंशों में अपनी तथा अपने साइंस की अल्पज्ञता स्वीकार कर ली है।

परंतु आप अभी बाबा आदम के ज़माने की 'बहिश्त' और 'दोज़ख़' तथा लाप्लेस के समय के साइंस की ही दुहाई दे रहे हैं। क्या आपने सर ऑलीवर लाज-जैसे प्रसिद्ध साइंस-वेत्ताओं की पुस्तकें नहीं पढ़ीं, और क्या आपने धार्मिक जगत् के अनेक परिवर्तनों का अध्ययन नहीं किया ?

आपको शिकायत है कि "जिस ईश्वर को ज्ञान का भांडार" आदि माना जाता है, उसको "गौतम, कणाद... डिकार्टे" आदि नहीं सिद्ध कर पाए, और "वेद-शास्त्र केवल 'नेति-नेति' कहकर रह गए।" (पृष्ठ ७७३)। इससे आप नतीजा निकालते हैं कि ईश्वर है ही नहीं। परंतु यदि आप इन्हीं दर्जन-भर दार्शनिकों की पुस्तकों का न्याय-पूर्वक अवलोकन करें, तो ज्ञात होगा कि वे ईश्वर को मानने के साथ-साथ अपनी अल्पज्ञता को भी मानते थे। 'नेति-नेति' का अर्थ 'नास्ति-नास्ति' नहीं है। और, न 'नेति-नेति' से 'नास्ति-नास्ति' की सिद्धि ही होती है। परंतु आपके प्रत्यक्षवाद में जो कुछ न हो जाय, वह थोड़ा। मैं पूछता हूँ कि क्या प्रकृति के आप पूर्णज्ञ हो गए ? क्या "नैसर्गिक नियमों" का आपको पूर्ण ज्ञान है ? यदि नहीं, तो क्या आप प्रकृति के विषय में भी एक अंश में उसी प्रकार 'नेति-नेति' का प्रयोग नहीं करते, जैसे वैदिक ग्रंथों में ईश्वर के विषय में किया गया है ? आप कहते हैं कि डिकार्टे आदि ईश्वर की "संतोष-जनक व्याख्या" नहीं कर सके। इसलिये "अवश्य ईश्वर का अभाव है।" (पृष्ठ ७७३) परंतु आपके किस साइंस-वेत्ता ने उस प्रकृति की "संतोष-जनक व्याख्या" कर डाली, जिसके ऊपर आप-को इतना नाज़ है ? बेचारा न्यूटन तो ज्ञान-सागर के तट पर कंकड़ियाँ ही बीनता रहा, और आजकल के बड़े-बड़े साइंस-वेत्ता भी इसी नतीजे पर पहुँचते हैं। परंतु शायद आपने प्रकृति की "संतोष-जनक व्याख्या" कर ली होगी। तभी तो उपनिषद् कहते हैं कि—

"अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ।"

आपने ५८वें और ५९वें पृष्ठ पर "अल्लाहमियाँ की पैदाइश की तरफ़ ध्यान" दिया है, और "ईश्वर की जड़ खोदकर उसमें केरोसिन तेल डालने" की चेष्टा की है। परंतु हमको न तो उनसे ईश्वर की पैदाइश का ही पता चला, और न आपके केरोसिन तेल के ही दर्शन हुए। गर्जे तो बहुत; परंतु वर्षा की एक बूँद भी न पड़ी। न युक्ति, न तर्क। केवल शब्द-जाल ही-शब्द जाल है। हाँ, एक प्रमाण अवश्य दिया, और वह यह कि "यह सब मनुष्य की ही कल्पना है, वास्तविक कुछ नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि मनुष्य ने जो कल्पना की, अपने ही रूप के अनुरूप की।" (पृष्ठ ५९) परंतु आपका यह प्रमाण भी अनर्थक ही रहा, और "मारो घुटना, फूटे आँख" की कहावत चरितार्थ रही। आपको यही नहीं मालूम कि आस्तिक लोग ईश्वर में अनेकों ऐसे गुण मानते हैं, जो उनके निज गुणों के अनुरूप नहीं कहे जा सकते। जैसे "सर्वव्यापक होना", "जन्म-रहित होना", "सर्वज्ञ होना", 'अनंत होना" इत्यादि। यदि किसी देश या किसी काल के मनुष्यों ने ईश्वर में कुछ अपने गुणों का भी आरोप कर दिया, तो यह उनकी भूल थी। परंतु इससे ईश्वर के अस्तित्व का कैसे खंडन हो गया ? आपके साइंस-दाँ भी किसी पदार्थ में एक काल में एक प्रकार के गुण बताते हैं, और दूसरे काल में अधिक ज्ञान होने से उसके विपरीत बताने लगते हैं। यदि यही नियम आप 'धर्म' और 'ईश्वर' के विषय में भी लागू रखते, तो कई पृष्ठों को भरने के कष्ट से बच जाते।

सच तो यह है कि आपके समस्त लेख को आद्योपांत पढ़कर मुझे उसमें कोई युक्ति ऐसी नहीं मिली, जिससे आप ईश्वर के अभाव को सिद्ध कर सके हों। हाँ, "दूसरी पुस्तक छपाकर अनेक प्रमाणों को संग्रह करने का" वादा अवश्य किया है। जब पुस्तक छपेगी, तब देखा जायगा। परंतु कृपा करके प्रमाण दीजिएगा। केवल लफ़्फ़ाज़ी या इधर-उधर की हाँकने से कुछ लाभ नहीं।

गंगाप्रसाद उपाध्याय

धर्म-सूत्र

(१)



ष्ठ का महीना था, दोपहर का समय। आकाश से आग बरसती थी। बाज़ार खुला था, मगर कहीं कोई आदमी नज़र न आता था। धूप की तरफ़ देखने से भी गरमी लगती थी, मानो वह धूप धूप न थी, जलता हुआ अलाव था। लाला चंदूलाल और उनकी स्त्री अपने मकान के कच्चे फ़र्श पर लेटे थे। परंतु गरमी के मारे

नींद न आती थी। हाँ, कभी-कभी ऊँघ जाते थे, जिससे तबियत और ज़्यादा ख़राब हो जाती थी। इतने में किसी ने द्वार खटखटाया।

लाला चंदूलाल सोते न थे, मगर उनको इस आनेवाले पर ग़ुस्सा आया। सोचा, ऐसे कुसमय में आनेवाला कौन है? हम तकलीफ़ में बहुत जल्द झुँझला उठते हैं। गरम पानी को उबालने के लिये तेज़ आग की आवश्यकता नहीं, हलकी-सी आँच ही काफ़ी है। लाला चंदूलाल ने उसी तरह लेटे-लेटे पूछा—"कौन है इस समय?"

"जल्दी दरवाज़ा खोल दो।"

चंदूलाल का हृदय धड़कने लगा। यह उनके प्यारे मित्र द्वारकादास थे। उनका क्रोध एक क्षण में दूर हो गया। जल्दी से कुरता पहना। स्त्री से कहा, कपड़े ठीक कर लो। बिस्तर से चादर निकालकर ज़मीन पर बिछा दी, और जाकर दरवाज़ा खोल दिया। द्वारकादास घबराए हुए अंदर आए। उन्होंने कोट-टोपी उतारकर खाट पर रख दी, और आप ज़मीन पर लेट गए। मुँह से बात न निकलती थी।

चंदूलाल ने उन्हें क्रोध के प्रेम की दृष्टि से देखकर कहा—"इस दोपहर में बाहर निकलने की क्या पड़ी थी? ज़रा बचकर रहा करो, नहीं तो लू लग जायगी।"

चंदूलाल की स्त्री जमना छोटा-सा घूँघट निकाले एक कोने में खड़ी थी। उसने द्वारकादास की तरफ़ देखकर धीरे से कहा—"इस गरमी में भी भला कोई बाहर निकलता है! सारे कपड़े पसीने से तर हो गए।"

चंदूलाल ने पंखे की रस्सी खींचते हुए कहा—"मैं पंखा खींचता हूँ। तुम कुएँ से जाकर थोड़ा ताज़ा पानी ले आओ।"

जमना ने ज़रा भी ननु-नच न किया, और घड़ा उठाकर पानी लेने चली गई। थोड़ी देर बाद द्वारकादास ने आँखें खोलीं, और बोले—"यहाँ आकर ऐसा मालूम होता है, जैसे किसी ने नदी में फेंक दिया हो। कैसी ठंडी जगह है, गरमी नाम को नहीं।"

चंदू०—"बाहर से आए हो, तभी ये बातें बना रहे हो। हमारा तो दम घुटा जाता है।"

द्वारका०—"कदाचित् यही कारण हो। बाहर तो आग बरसती है।"

चंदू०—"मगर तुम इस समय आए किधर से हो?"

द्वारका०—"एक असामी की तरफ़ गया था। उसने बहुत तंग कर रक्खा है। सोचा, दावा करने से पहले एक बार अंतिम प्रयत्न कर देखूँ, शायद मान जाय। परंतु वह किसी की सुनता ही नहीं। अब नालिश किए बिना काम न चलेगा।"

चंदू०—"तो क्या पैदल गए थे?"

द्वारका०—"नहीं, गया तो ताँगे पर था; पर अब पैदल ही आ रहा हूँ। समझो, जान बच गई; नहीं मरने में शक न था। ताँगा टूट गया, घोड़ा ज़ख़्मी हो गया।"

चंदूलाल ने आश्चर्य से पूछा—"अरे! यह कैसे?"

द्वारका०—"घोड़ा बेक़ाबू हो गया था। ताँगा एक वृक्ष से टकरा गया।"

चंदू०—"और, साईस क्या सो रहा था?"

द्वारका०—"उसने बहुत हाथ-पाँव मारे; पर उसकी कुछ न चली। कुसमय में साहस भी साथ छोड़ देता है।"

चंदू०—"ख़ैर, जान बच गई, यही बड़ी बात है। कहो, खाना तो अभी न खाया होगा?"

द्वारका०—"कभी का खा चुका। एक दोस्त मिल गए थे, उन्होंने खिला दिया।"

एकाएक द्वारकादास ने इधर-उधर देखकर पूछा—"भाभीजी कहाँ चली गईं?"

"तुम्हारे लिये पानी लेने गई थीं—लो, वह आ गईं।"

द्वारकादास को बहुत दुःख हुआ। हम अपने मित्र को कष्ट दे सकते हैं, उससे लड़ाई-झगड़ा करने में भी हमें संकोच नहीं होता; मगर मित्र की स्त्री के सामने पहुँचकर हम धर्म और दया के अवतार बन जाते हैं। द्वारकादास ने कहा—"यह तुमने इन पर ज़ुल्म किया है। मैं दुबारा तुम्हारे यहाँ पैर न रक्खूँगा।"

इतने में जमना पानी का घड़ा लिए अंदर आ गई, और बोली—"शरबत घोल दूँ?"

द्वारकादास ने उसकी तरफ़ कातर दृष्टि से देखकर कहा—"भाभी, तुमने मुझसे क्यों न कहा? मुझे मालूम नहीं हुआ, नहीं तो इस धूप में तुम्हें बाहर न निकलने देता।"

जमना लजा गई, जो सुशीला स्त्रियों का स्वभाव है। उसने मुँह से कुछ न कहा; परंतु उसके हाव-भाव साफ़ कह रहे थे—यह तो रोज़ का काम है, कोई नई बात नहीं।

(२)

द्वारकादास ने ठंडा जल सिर में डाला, मिसरी का शर-

चल दिया, तब जान में जान आई । मगर अब उनमें घर आने की शक्ति न थी । ऐसी गरमी में तीन मील का फ़ासिला कौन तय करे ? दो बज गए थे, यह समय उनके सोने का था । आँखें अपने आप बंद होने लगीं । शरीर में आलस्य छा गया, जो नींद आने की पूर्व-सूचना है । द्वारकादास ने बहुत यत्न किया कि आँखें बंद न हों ; परंतु नींद का रोकना आसान नहीं । आख़िर हँसकर बोले—"भाई साहब, भाभीजी समझती होंगी, शरबत पिलाकर छुटकारा हो गया । मगर मैं तो शाम से पहले न टलूँगा । बुरी तरह नींद आ रही है ।"

जमना—(हँसकर धीरे से) "यह कोई सराय समझी है ? यहाँ मुफ़्त सोने की आज्ञा नहीं ।"

चंदू०—"लो, सुन लिया तुमने ? यह घर है, सराय नहीं ।"

द्वारका०—"चुप रहो जी, तुम बीच में बोलनेवाले कौन हो ? देवर-भाभी की लड़ाई है । (ऊँची आवाज़ से) हाँ भाभी, मैं मुफ़्त न रहूँगा, किराया दूँगा । मगर पहले तय कर लो, कहीं बाद में झगड़ा न हो जाय ।"

चंदू०—"चलो, हमें कोई पूछता ही नहीं ।"

द्वारका०—"बोलो भाभी, क्या किराया देना होगा ?"

जमना—(पति से) "इनसे कहो, रात को रोटी यहीं खानी होगी ।"

द्वारकादास—"यह किराया बहुत ज़्यादा है, कम कीजिए ।"

चंदू०—(स्त्री से) "कहते हैं, ज़्यादा है, कम कीजिए । कुछ है गुंजाइश ?"

जमना ने सिर के इशारे से कहा—"नहीं ।"

द्वारका०—"ख़ैर, मुझे स्वीकार है ।"

चंदू०—"अगर ऐसे-ऐसे दो-चार सौदे रोज़ हो जाया करें, तब तो मेरा दिवाला निकलने में देर नहीं ।"

द्वारका०—"क्या कहा आपने ? बर्फ़ में सर्द किए हुए आम, पुलाव और सरदा भी खाना होगा । चलो भाई, आज जो कुछ होना है, हो जाय । यह भी सही ।"

चंदू०—"कान बजते हैं हुज़ूर के ?"

द्वारका०—(जान-बूझकर) "मलाई भी होगी ? यह तो सरासर ज़्यादती है मेरे साथ । परंतु जब ओखली में सिर दिया, तो मूसल का क्या डर ।"

चंदूलाल और जमना, दोनों हँसने लगे । मगर द्वारकादास के मुँह पर हँसी न थी । थोड़ी देर के बाद छत की तरफ़ देखकर बोले—"पंखा तो बहुत बाँका है ; देखकर जी ख़ुश हो गया । क्या यहाँ कोई पंखा-क़ुली मिल जायगा ? अगर हो, तो बुला लो, नहीं नींद न आवेगी ।"

जमना ने मुसकिराकर कहा—"इसका किराया अलग देना होगा ।"

द्वारका०—"हमारी भाभी बड़ी सख़्त-मिज़ाज हैं, ज़रा रू-रियायत नहीं करतीं । मुझे तो डर लगने लगा । मगर इसके बिना गुज़ारा न होगा । (चंदूलाल से) यार, कोई क़ुली बुलाओ ।"

चंदू०—"होश करो । यहाँ क़ुली कहाँ ?"

द्वारका०—"सच कह रहे हो ?"

चंदू०—(व्यंग्य से) "जी नहीं, झूठ बोल रहा हूँ ।"

द्वारका०—"तो नींद आ चुकी ।"

इस समय द्वारकादास के मुँह पर परेशानी थी, आँखों में निराशा । चारों तरफ़ देखते थे कि कहीं हँसी तो नहीं कर रहे । शहर का रहनेवाला गाँव में आ बसा था, और अपनी बेबसी पर तड़पता था, जैसे पहाड़ का रहनेवाला गर्म देश में आकर घबरा जाता है । उस समय उसके मन में कैसे-कैसे विचार आते हैं ? अपनी जन्म-भूमि और उसके सुंदर सुहावने दृश्य आँखों-तले फिर जाते हैं । यही दशा द्वारकादास की थी । उनको शहर याद आ गया, जहाँ आराम पैसों के वज़न बिकता है । इस समय वह रोज़ सोया करते थे । क्या आज भी सोवेंगे ? उन्होंने ठंडी साँस भरी ।

जमना ने अपने पति की ओर देखकर कहा—"संभव है, कोई आदमी मिल जाय । इनको तो नींद न आवेगी ।"

चंदूलाल आदमी देखने बाहर चले ; मगर कोई ऐसा आदमी न मिला । यह गाँव था, शहर नहीं । गाँव के लोग ग़रीब होते हैं, परंतु लोभी नहीं । वे साधारण काम-काज करने से नहीं घबराते, न उनको इससे संकोच ही होता है । मगर पैसे लेकर टहल-सेवा करना वे मौत से बढ़कर समझते हैं । वैसे हल चलाने को दिन-भर तैयार रहेंगे । लेकिन शहर का बच्चा-बच्चा लोभी है । वहाँ ऐसे आदमी पग-पग पर मिल जायँगे । चंदूलाल ने बहुत ढूँढ़ा ; परंतु उन्हें कोई क़ुली न मिला । मेहनती सभी थे, मज़दूर एक भी न था । निराश होकर चंदूलाल वापस आए । जमना

दरवाज़े पर खड़ी थीं ; धीरे से बोली—"कोई आदमी मिला ?"

"नहीं।"

"तो अब क्या होगा ?"

"मुझे पहले से आशा न थी।"

"बड़ी लज्जा की बात है। उन्हें नींद न आवेगी।"

"पर किया क्या जाय ?"

"कहेंगे, एक दिन के लिये आ निकले थे, पंखे का भी प्रबंध न हो सका।"

"यहाँ किसान बसते हैं, मज़दूर नहीं।"

"मुझे तो बड़ी शर्म आती है।"

"तो तुम्हीं किसी को पकड़ लाओ, मैं तुम्हें रोकता थोड़ा ही हूँ।"

जमना ने कुछ देर सोचा। सहसा उसे एक रास्ता सूझ गया। मुसकिराकर बोली—"तो आप जाइए, मैं प्रबंध किए देती हूँ।"

चंदूलाल कुछ न समझ सके, सिर झुकाकर अंदर चले गए।

(२)

थोड़ी देर के बाद पंखा चलने लगा। द्वारकादास ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे किसी का रोग कट जाय। चंदूलाल से हँस-हँसकर बातें करने लगे। चंदूलाल सोचते थे, लाज रह गई ; नहीं तो इन्हें मुँह दिखाने-लायक़ न रहता। वह मन-ही-मन जमना की प्रशंसा कर रहे थे—कैसी समझदार स्त्री है। कोई मूर्खा होती, तो सीधे-मुँह बात न करती। कहती, तुम्हारा दोस्त आया है, तो मैं क्या करूँ, मुझसे बाहर नहीं निकला जाता। परंतु उसके चेहरे पर कैसा विषाद था, आँखों में कैसी उद्विग्नता थी। मालूम होता था, वह इसे अपना अपमान समझती है। मर्द मिलता न था, किसी स्त्री को पकड़ लाई होगी। यह स्त्री नहीं, देवी है।

द्वारकादास ने कहा—"कहो, अब यह आदमी कैसे मिल गया ?"

चंदू०—"तुम्हारी भाभी ढूँढ लाई है। मैं तो हारकर वापस चला आया था।"

द्वारकादास—"तो मालूम हुआ, तुम निरे मिट्टी के लोंदे ही हो। जो काम तुमसे न हो सका, वह उन्होंने कर दिखाया।"

चंदू०—"इसमें क्या शक है। मैं आप हार मानता हूँ।"

द्वारका०—"ऐसी ही देवियाँ होती हैं, जिन्हें लोग घर की लक्ष्मी कहते हैं।"

चंदू०—"यह न कहो, तो रात का खाना कैसे मिले ?"

द्वारका०—"मगर वह आप किधर चली गईं ?"

चंदूलाल—"इसी कोठरी में होंगी।"

द्वारकादास ने चारों तरफ़ देखा। हर चीज़ साफ़ थी, और अपने ठिकाने रक्खी थी। ये चीज़ें बहुत मूल्यवान् न थीं ; परंतु उनकी सफ़ाई देखकर दिल ख़ुश हो जाता था। कहीं भी गर्दा, जाला या दाग़ दिखाई न देता था। फ़र्श, दीवारें, छत—सब ऐसे चमकते थे, जैसे शीशा। द्वारकादास सन्नाटे में आ गए। यह मकान न था, किसी योगी का दिल था। वही सादगी थी, वही पवित्रता ; वही तपस्या थी, वही शांति। यहाँ दुनियादारों के ठाट-बाट न थे, योगियों का आत्म-संयम था, वही त्याग, वही संतोष। यहाँ गैस-बिजली के लैंप न जलते थे, परंतु सच्चे प्रेम का प्रकाश चारों तरफ़ फैला हुआ था। द्वारकादास ने इन भाग्यवानों को मन-ही-मन नमस्कार किया। सोकर उठे, तो पाँच बज चुके थे। मगर चंदूलाल अभी तक सोते थे। द्वारकादास बाहर निकले। वह चाहते थे कि चंदूलाल के जगने से पहले ही पंखा-कुली को मज़दूरी देकर भेज दें। उन्हें भय था कि अगर चंदूलाल जग उठे, तो वह ये पैसे उन्हें कभी न देने देंगे। द्वारकादास को यह स्वीकार न था। चंदूलाल उनके मित्र थे। ऐसे खरे, प्रेमी, सरल-हृदय आदमी दुनिया में किसी ने कम देखे होंगे। वह अमीर न थे, उनकी आय बहुत थोड़ी थी ; परंतु आत्म-सम्मान की दौलत से वह मालामाल थे। लाला द्वारकादास उनके इन दैवी गुणों पर लट्टू थे। सोचा, मैंने उनके सामने पैसे दिए, तो बुरा मानेंगे। ताज्जुब नहीं, इसे अपना अपमान समझें। यह बात उनके लिये असह्य थी।

परंतु बाहर आए, तो उनका दिल बैठ गया। जैसे किसी ने ऊँचे मकान से गिरा दिया हो। बाहर आँगन की खुली धूप में दो चारपाइयाँ खड़ी करके जमना अपने हाथों से पंखा खींच रही थी। वह नीच ज़ात की औरत न थी, दिन-रात परिश्रम करनेवाली जातिन न थी। उसने ऐसा काम आज से पहले कभी न किया था। मगर आज ढाई घंटों से वह बराबर रस्सी खींच रही थी। कोमल हाथ थक गए थे, फिर भी खींच रही थी। सारी देह पसीने से भीग



"बाहर आँगन की खुली धूप में दो चारपाइयाँ खड़ी करके जमना अपने हाथों से पंखा खींच रही थी।"

गई थी, फिर भी खींच रही थी। ऐसी लगन से किसी भक्त ने अपने उपास्य-देव को भी कम रिझाया होगा, और यह परिश्रम, यह तपस्या केवल इसलिये थी कि उसके पति का मित्र आराम की नींद सो सके। उसे अपने पति का कितना ख़याल है, उसकी मान-मर्यादा की कितनी परवा है! द्वारकादास की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने पहले घर देखा था, अब गृहिणी के दर्शन किए। घर पवित्र था, परंतु गृहिणी की पवित्रता के सामने उसकी पवित्रता कितनी थोड़ी, कैसी तुच्छ थी! यह श्रद्धा, यह भावना, यह सरलता देखकर उनका दिल दहल गया। इस स्वार्थ-पूर्ण संसार में ऐसी देवियाँ भी हैं, उन्हें यह ख़याल न था। उनके पैर रुक गए, जैसे किसी ने उनमें बेड़ियाँ डाल दी हों। ये बेड़ियाँ लोहे की या पीतल की न थीं; ये भक्ति और प्रेम की थीं। द्वारकादास आगे न बढ़ सके। उन्हें देखकर जमना का गौरव मिट्टी में मिल जाता। मनुष्य दुश्मन का सुदृढ़ गढ़ तोड़ सकता है, मगर अबोध बालक का मिट्टी का घरौंदा तोड़ने की शक्ति किसमें है? द्वारकादास वापस चले आए।

देखकर मक्खी नहीं निगली जाती। द्वारकादास ने आते ही चंदूलाल को जगा दिया, और बातें करने लगे। अभिप्राय यह था कि जमना समझ जाय कि जग पड़े हैं। अब उन्हें जमना का पंखा खींचना एक क्षण के लिये भी सह्य न था।

जमना ने आवाज़ सुनी, पंखा छोड़ दिया, और अंदर चली आई। इसके बाद हाथ-मुँह धोकर सिर का दुपट्टा ठीक करके उस कमरे में आ गई, जहाँ दोनों मित्र बैठे बातें कर रहे थे। इस समय जमना के मुख-मंडल पर स्वर्गीय आभा थी। मगर चंदूलाल और द्वारकादास की आँखें ऊपर न उठती थीं। वे अपनी दृष्टि में आप ही गिरे हुए थे, जैसे उनसे कोई पाप हो गया हो। तीनों के दिलों में विचार अलग-अलग थे, मगर भाव एक ही। जैसे त्रिवेणी में तीन नदियाँ अलग-अलग रास्तों से आकर एक हो जाती हैं।

(४)

शाम को द्वारकादास चलने लगे, तो उनकी आँखें सजल हो गईं। वह अमीर आदमी थे। उन्होंने शानदार जलसे देखे थे। बढ़िया और स्वादिष्ठ खाने खाए थे। मगर

जो रस, जो स्वाद इस देहाती खाने में था, वह इससे पहले कभी उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था। वह चटपटी चीज़ों का भोजन था, बनावट और सजावट का नहीं। वह विशुद्ध और विलक्षण प्रेम का भोज था। लेमोनेड और आइस-क्रीम में गैस की तेज़ी ज़रूर है, मगर उनमें संदल और क्योड़े की ठंडक कहाँ? उनमें स्वाद है, मगर प्यास भड़क उठती है। इनमें सादगी है, परंतु हृदय को शांति मिल जाती है।

चलते समय द्वारकादास ने कहा—"भाई! सच कहता हूँ, आज का दिन मुझे कभी न भूलेगा। ताँगे का टूटना शुभ हो गया, वर्ना यह खाना कभी न मिलता।"

चंदू०—"भीलनी के घर भगवान् आ गए थे। अब बेरों की प्रशंसा हो रही है।"

द्वारका०—"मुझे शर्मिंदा न करो। जो लज़्ज़त इस खाने में थी, वह मा की रोटियों के बाद मुझे और कहीं नहीं मिली।"

चंदू०—(हँसकर) "स्त्री की रोटियों में भी नहीं?"

द्वारका०—"नहीं, वहाँ भी नहीं।"

चंदू०—"झूठ बोल रहे हो। तुम्हारी यह उक्ति कैसे मान लूँ?"

द्वारका०—"प्यारी स्त्री का प्यार दुनिया में बहुत उच्च वस्तु है, परंतु स्नेहमयी बहन की प्रीति उससे भी उच्च है। वह अगर चाय है, तो यह मीठा दूध। चाय और दूध की तुलना किसने की है?"

चंदू०—(व्यंग्य के भाव से) "तुम तो चाय के बिना रह न सकते थे। यह काया-पलट कबसे?"

द्वारका०—"दूध देखा न था। आज आँखें खुल गईं।"

चंदू०—"परंतु यह तुम्हारी भाभी हैं, बहन नहीं।"

द्वारका०—"मैं इन्हें अब भाभी न कहूँगा। भाभी का संसारी नाता है, बहन का नाता धर्म का है। यह पवित्रता, प्रेम, बलिदान का नाता है। मेरे दो भाई हैं, बहन कोई नहीं। मैंने अपने इस दुर्भाग्य पर प्रायः घंटों आँसू बहाए हैं। आज इस गाँव में आकर मुझे बहन मिल गई। मिट्टी के टुकड़ों में हीरे की कनी छिपी होगी, यह ज्ञान न था। अब यह गाँव मेरे लिये देहात नहीं, तीर्थ-राज है।"

चंदूलाल और जमना, दोनों इस प्रेम-पूर्ण भाषण को इस तरह सुन रहे थे, जैसे कोई तत्त्व-वेत्ता उनके सामने किसी गूढ़ रहस्य का बखान कर रहा हो। दोनों के मुँह में ज़बानें थीं, परंतु उनमें वाणी न थी। दोनों चुपचाप खड़े सुन रहे थे कि द्वारकादास ने आगे बढ़कर जमना का घूँघट उलट दिया, और कहा—"तुम्हें अब मुझसे परदा करने की आवश्यकता नहीं। मैं तुम्हारा भाई हूँ।"

चंदूलाल मुसकिराने लगे; मगर जमना के चेहरे पर हँसी न थी। उसके चेहरे पर वे भाव थे, जो हरएक धार्मिक यज्ञ के अवसर पर आर्य-ललनाओं के चेहरे पर प्रकट होते हैं। हम मर्द लोग धर्म के साथ हँसी कर सकते हैं; परंतु हमारी देवियाँ ऐसी पतित कभी नहीं हुईं। जमना ने बहन की आँखों से, जिनमें अमर प्रेम का कभी समाप्त न होनेवाला सोता फूट रहा था, अपने धर्म-भाई की तरफ़ देखा, और आँखों-ही-आँखों में कहा—भाई-बहन बनना आसान है; परंतु इस धर्म-सूत्र का निबाहना बड़ा कठिन है।

द्वारकादास ने इस मौन-संदेश का उत्तर न दिया, केवल गरदन ऊँची उठाई। जमना को उत्तर मिल गया। यह उत्तर कितना आशा-पूर्ण था, कितना प्रकाशमय। जमना का हृदय आनंद-सागर में हिलोरें मारने लगा। उसके भी कोई भाई न था; आज वह कमी पूरी हो गई।

(४)

इस समय द्वारकादास ऐसे ख़ुश थे, जैसे किसी ग़रीब को हीरा मिल जाय। उनके क़दम ज़मीन पर न पड़ते थे। उन्होंने एक सती-साध्वी का पावन-प्रेम जीत लिया था। चारों तरफ़ रात का अँधेरा छाया हुआ था; मगर उनकी आँखों के सामने वही स्वर्गीय आभा थी—वही सुंदर झोंपड़ा, वही खुला आँगन, वही प्रेम-भरी मुसकिराहट और निःस्वार्थ सहानुभूति के रस में डूबी हुई मधुर बातें। ज्यों-ज्यों स्यालकोट के पास पहुँचते जाते थे, उनका दिल उदास होता जाता था, जैसे जवान लड़का अपनी प्यारी मा से पहली बार बिछड़ा हो। यहाँ तक कि शहर के बिलकुल पास पहुँचकर उनके पैर रुक गए। आँखों में आँसू आ गए। जमना किस तरह पंखा खींचती थी? कैसे बहनों के-से आदर से? उस समय वह इस मर्त्यलोक की रहनेवाली नहीं, स्वर्ग की देवी मालूम होती थी। मैं उसका कौन था? कोई भी नहीं। मेरा उसके साथ कोई संबंध-नाता-रिश्ता न था; परंतु फिर भी उसने मेरे दो घड़ी के आराम के लिये अपने नाज़ुक हाथों से

पूरे ढाई घंटे तक पंखा खींचा, और वह भी धूप में बैठकर। यह स्वार्थ-रहित प्रेम का भार कब उतरेगा? किस तरह?

विचार-तरंग यहीं तक पहुँचने पाई थी कि उनका घर आ गया। परंतु वह इन विचारों को नहीं छोड़ना चाहते थे, मानो यह घटना साधारण घटना न थी, ज्ञान और भक्ति से भरी हुई मनोरंजक कहानी थी।

रात को उन्होंने खाना न खाया, तो तारा—पत्नी—ने पूछा—"क्या कुछ तकलीफ़ है?"

द्वारका०—"नहीं, मैं ज़रा मुरादपुर चला गया था; चंदूलाल ने खिला दिया।"

तारा—"कुछ उदास मालूम होते हो।"

द्वारका०—"आज तो मैं बहुत ही ख़ुश हूँ।"

तारा—"रुपया मिल गया होगा।"

द्वारका०—"आज जो चीज़ मिली है, वह रुपए से भी बढ़कर है।"

तारा—"वह क्या?"

द्वारका०—"समझ जाओ।"

तारा—"मुझमें यह गुण कहाँ?"

द्वारकादास तारा की प्रकृति से अपरिचित न थे। वह जानते थे कि तारा इस बात से कभी प्रसन्न न होगी। मगर वह चुप न रह सके। हम ख़ुशी की बात छिपाकर नहीं रख सकते। दुःख काला पत्थर है, जो पानी में पड़कर आँखों से ओझल हो जाता है; परंतु ख़ुशी वह चमकदार शीशा है, जो गहराई में भी चमकता है। इस जीवन-ज्योति को दिल के तहख़ाने में किसने छिपाया है? द्वारकादास ने सारी कथा तारा से कह डाली।

तारा ने यह कथा सुनी; मगर ठीक उसी तरह, जैसे कोई सूम-साहूकार किसी मेहमान का आना सुने, और झल्ला उठे। उसने इस पर थोड़ी देर विचार किया, और तब धीरे से कहा—"चलो! किसी दिन, त्योहार पर, चार पैसे की चीज़ भेज देना। ग़रीब आदमी हैं, ख़ुश हो जायँगे।"

द्वारका०—"तुम्हारा अनुमान ग़लत है। वे ग़रीब हैं, पर उनके दिल ग़रीब नहीं।"

तारा—"तो सारा घर उठाकर दे दीजिए। मैं अगर हाथ पकड़ूँ, तो जो चोर की सज़ा वह मेरी।"

द्वारका०—"तुम कैसी वाहियात बातें करती हो?"

तारा—"अभी गालियाँ मिलती हैं, वह महारानी दो-चार बार यहाँ आ गईं, तो धक्के मिलेंगे। मगर मैं उसे अपने मकान में पैर न रखने दूँगी।"

द्वारकादास का चेहरा लाल हो गया। तमककर बोले—"वह यहाँ ज़रूर आवेगी। तुमको जो कुछ करना हो, कर लो।"

तारा—"तो यह क्यों नहीं कहते कि नई दुलहिन से मन मिला है! पर एक बात कहे देती हूँ। मैं उन स्त्रियों में नहीं हूँ, जो अपना घर सामने लुटते हुए देखती और मन मारकर रह जाती हैं। मैं उस कम-ज़ात का पेट चीर दूँगी।"

क्या सोचा था, और क्या हो गया! द्वारकादास स्वभाव से ही अत्यंत सहनशील थे; परंतु इस दोषारोपण से उनके जैसे आग लग गई। चंदन भी रगड़ा जाय, तो उससे आग निकलती है। गरजकर बोले—"ख़बरदार! सँभलकर बोलो। यही शब्द दुबारा कहे, तो मुँह से जीभ खींच लूँगा।"

तारा को विश्वास हो गया कि पति-देव हाथ से गए। थोड़ी देर चित्रवत् बैठी रही, इसके बाद ठंडी साँस भरकर बोली—"मगर वह तुम्हारी कौन है, जिसके कारण घर में यह महाभारत शुरू कर रहे हो?"

द्वारका०—"वह मेरी बहन है।"

तारा—"मा-जाई तो नहीं।"

द्वारका०—"मगर मुँह-बोली तो है। उसका दर्जा मा-जाई से भी ऊँचा है। यह धर्म-सूत्र है, वह रक्त का बंधन है। मैं उसके लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ।"

तारा बैठी हुई थी, यह सुनकर खड़ी हो गई, और चिल्लाकर बोली—"तुम्हारी यह धौंस न चलेगी। मैं भी इसी दुनिया में पली हूँ। मुझे तुम्हारा मन साफ़ नहीं मालूम होता।"

द्वारकादास के क्रोध पर इन शब्दों ने वही काम किया, जो ईंधन आग पर करता है। उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। मगर उन्होंने मुँह से कुछ न कहा। करवट बदली, और ऐसा प्रकट किया कि नींद आ गई है। क्रोध के बाद चुप्पी ज्ञान-सूचक, सजीव एवं सशब्द होती है।

अब तारा को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। रह-रहकर दिल में पछता रही थी कि मेरे मुँह में आग लग जाय, मुफ़्त में कहाँ का झगड़ा खड़ा कर दिया! जाम बस में रहती,

तो बात यहाँ तक न बढ़ती। उसने धीरे-धीरे आगे बढ़कर, द्वारकादास के शरीर पर हाथ फेरकर मधुर स्वर में कहा—"मुझसे बड़ी मूर्खता हो गई। अब माफ़ कर दो, फिर ख़ता न होगी।"

ये शब्द नहीं थे, शर्बत के घूँट थे। द्वारकादास का क्रोध जाता रहा। एकाएक इस शर्बत में कड़वापन आ गया। तारा के हृदय-बेधी शब्द याद आ गए। द्वारकादास ने तारा का हाथ हटाकर जवाब दिया—"मेरा मन खोटा है। मुझसे माफ़ी कैसी?"

तारा निराश होकर उठ गई, और अपनी चारपाई पर जा लेटी। मगर देर तक नींद न आई। द्वारकादास की भी यही दशा थी। दोनों अपने क्रोध पर शर्मिन्दा थे, दोनों चाहते थे कि मेल हो जाय; मगर अभिमान ने मुँह पकड़ लिया। इसी तरह रात गुज़र गई। दोनों उठे; परंतु रोज़ की तरह प्रफुल्लित-हृदय नहीं, किंतु मुँह फुलाए हुए। आज द्वारकादास ने न तारा से तौलिया माँगा, न साबुन, न तेल। नौकर से कहकर य सारी चीज़ें मँगवा लीं, और जल्दी-जल्दी नहा लिया। यह देखकर तारा उदास हो गई। उसके लिये यह ऐसी सख़्त सज़ा थी, जिसके सामने वह मारपीट की भी परवा न करती। मगर उसने मुँह से कुछ न कहा। चुपचाप बैठी एक पुस्तक के चित्र देखती रही। पर उसका मन इन चित्रों में न था। इतने में द्वारकादास ने कपड़े पहने, और छड़ी हाथ में लेकर दूकान को चले गए। तारा ने सोचा, दोपहर को आवेंगे, तब मना लूँगी। वह मेरे स्वामी हैं, कोई ग़ैर नहीं। उनसे संकोच कैसा? मगर द्वारकादास उस दिन घर नहीं आए। रोटी खाने के लिये नौकर को भेज दिया। तारा ने अपने रूठे पति को मनाने के लिये कई अच्छी-अच्छी चीज़ें पकाई थीं, कई बातें सोची थीं। परंतु कोई काम न आई। तारा हताश हो गई—क्या अब मेल न होगा? लड़ाई सभी के यहाँ होती है; पर ऐसी नहीं कि दिल में मैल आ जाय। फिर भी उसने सारी चीज़ें थाल में सजाकर रक्खीं, और सफ़ेद तौलिए से ढककर भेज दीं।

यह थाल न था, सुलह का संदेश था। द्वारकादास सब कुछ समझ गए। परंतु उन्होंने केवल तीन चपातियाँ खाईं, और दाल-भाजी। इसके सिवा और किसी चीज़ में हाथ भी न लगाया। आम, मुरब्बा, ख़रबूज़ा, अचार आदि सब उसी तरह पड़े रहे। तारा बड़े शौक़ से खाना खाने बैठी थी। थाल देखकर उसका दिल छोटा हो गया। उसने खाना छोड़ दिया, और आप जाकर पलँग पर लेट गई। सुलह की प्रार्थना स्वीकार नहीं हुई।

इसी तरह तीन-चार दिन गुज़र गए। दोनों अपनी-अपनी बात पर अड़े रहे, यहाँ तक कि चौथे दिन द्वारकादास को बुख़ार हो आया। पता नहीं, गर्मी से या आंतरिक पीड़ा से। मगर द्वारकादास को इससे हार्दिक प्रसन्नता हुई! जैसे यह बुख़ार बुख़ार नहीं था, उनके विजय की पूर्व-सूचना थी। सोचने लगे, अब देखता हूँ, तारा कैसे तनी रहती है? कैसे मुँह फुलाए बैठी रहती है? सुनेगी, तो होश उड़ जायँगे। दौड़ी हुई आवेगी। सारा घमंड मिट्टी में मिल जायगा। हाथ जोड़ेगी, मिन्नतें करेगी।

ऐसा ही हुआ भी। तारा घबरा गई। अब वह कैसे रूठी रहती? उसका पति बीमार है। उसे जान प्यारी थी, पर पति जान से भी प्यारा था। वह उड़ती हुई पति के पास आई, और उनकी तरफ़ ताकने लगी। इस समय उसको ऐसा मालूम हुआ, जैसे द्वारकादास बहुत दुबले हो गए हैं। ख़याल आया, यह मेरी ही करतूत है। वह उनकी चारपाई पर बैठ गई, और उनके माथे पर हाथ फेरने लगी। इसके बाद उसने उनका मुँह अपनी तरफ़ किया, और आँखों में आँसू भरकर कहा—"क्या अब यह क्रोध न उतरेगा? मेरी जीभ जल जाय! क्रोध में जो जी में आया, बक गई। अब बैठी पछता रही हूँ।"

द्वारकादास यह सुनकर अपने को न सँभाल सके। उनकी आँखों में भी आँसू आ गए। उन्होंने तारा को गले लगा लिया, और रोने लगे।

(६)

ग़रीबों के यहाँ रोग बढ़ जाय, तो डॉक्टर आता है। अमीरों के यहाँ रोग बढ़ जाय, तो संबंधी आते हैं। जहाँ डॉक्टर का आना साधारण बात है, वहाँ संबंधी लोग सहज ही में जमा हो जाते हैं।

द्वारकादास बीमार हुए, तो डॉक्टर दोनों वक़्त आने लगा। मगर रोग कम न हुआ, उलटा बढ़ गया। यहाँ तक कि तीन दिन गुज़र गए, और बुख़ार न उतरा। द्वारकादास दिन-दिन भर बेहोश रहने लगे। तारा उनके पास बैठी रोया करती थी। इस रोने से उसके दिल का ग़ुबार निकल जाता था। मगर इस ग़ुबार और द्वारकादास के बुख़ार से कोई संबंध न था। उस पर कोई प्रभाव न

पड़ा। इसके बाद रोग भयानक हो गया। द्वारकादास बकने-झकने लगे। तारा के दिल में बुरे-बुरे विचार उठे। हम जिन्हें प्यार करते हैं, उनके बारे में हमें प्रायः भयंकर आशंकाएँ ही सताती हैं। बेगानों के संबंध में ऐसे विचार हमारे मन में कभी नहीं आते।

कुछ दिनों के बाद रोग और भी बढ़ गया। अब द्वारकादास किसी को न पहचानने लगे। बेहोशी में बड़बड़ाया करते। कभी कहते, जमना मेरी बहन है, ऐसी बहन दुनिया में किसी और की न होगी। मगर मेरी स्त्री को क्या कहा जाय, उसे कुछ और ही संदेह है। कभी कहते, तारा, अब तो ख़ुश होगी, जमना ने तेरे यहाँ आने से इनकार कर दिया है। कभी कहते, मैं जमना को न बुलाऊँगा, तारा नाराज़ हो जायगी।

तारा ये बातें सुनती, तो उसके कलेजे में भाले चुभ जाते, आँखें सजल हो आतीं। सोचती इस बीमारी का मूल-कारण मैं ही हूँ। मुझे क्या मालूम था कि मेरी बातें इनके दिल को लग जायँगी। जानती, तो होंठ सी लेती। अब उन बातों को कैसे लौटाऊँ? वह ज़बान की सख़्त थी; पर उसका दिल प्रेम से भरा था, जैसे मीठे और ठंडे जल का सोता सख़्त पत्थरों के तले छिपकर बहता है।

दोपहर का समय था। तारा द्वारकादास के पास बैठी चिंता-सागर में ग़ोते खा रही थी। इतने में द्वारकादास ने करवट बदली, और बोले—"तू कौन है?"

तारा का सिर चकराने लगा। क्या अब यहाँ तक नौबत आ गई! घबराकर बोली—"मैं तारा हूँ।"

द्वारकादास ने उसकी तरफ़ देखा; मगर इस तरह, जैसे कोई पागल हवा की तरफ़ देखता है, और नहीं समझता कि मैंने क्या देखा। इसके बाद उन्होंने फिर करवट बदली, और सो गए।

जिस तरह कुदाल की चोट से चट्टान टुकड़े-टुकड़े हो जाती है, और पानी का फ़व्वारा बाहर आ जाता है, उसी तरह द्वारकादास की नैराश्य-उत्पादक दशा से तारा का सख़्त-मिज़ाजी काफ़ूर हो गई, और प्यार का पानी बाहर आ गया। इस जल-धारा के सामने ईंट-पत्थर कबतक ठहर सकते हैं—कितनी देर?

तारा ने उसी समय नौकर को बुलाकर कहा—"गाड़ी लेकर मुरादपुर जा। वहाँ इनके दोस्त चंदूलाल रहते हैं। उन्हें और उनकी स्त्री जमना को साथ ले आ। कहना, कई



"द्वारकादास ने करवट बदली, और बोले—"तू कौन है?"

दिन से बेसुध पड़े हैं, और बहन-बहन पुकार रहे हैं। जब तक तुम न आओगे, अच्छे न होंगे।"

तीन ही मील की दूरी थी। आने-जाने में देर न लगी। चार बजते-बजते चंदूलाल और जमना, दोनों द्वारकादास के यहाँ आ पहुँचे। तारा ने उनको देखा, तो उसकी जान-में-जान आ गई। उसे विश्वास हो गया कि अब इनके स्वस्थ होने में देर नहीं; एक-आध दिन में उठ खड़े होंगे।

जमना देहाती औरत थी। उसकी शक्ल-सूरत तारा को पसंद न आई। मगर उसने इसकी परवा न की। उसके गले लगकर बोली—"देखो तो, क्या हाल हो गया है? दिन-रात तुम्हें बुलाते रहते हैं।"

जमना—"तुमने पहले ख़बर क्यों नहीं दी? अचरज की बात है! भाई इतना बीमार हो, और बहन को ख़बर तक न भेजी जाय!"

तारा—"मैंने सोचा था, ख़्वाह-मख़्वाह तकलीफ़ क्यों दूँ?"

जमना—"मालूम होता है, तुम अभी तक मुझे पराया ही समझती हो?"

तारा—"पराया कैसे समझ सकती हूँ? उनकी बहन को पराया समझूँगी, तो रहूँगी कैसे?"

जमना—"शहर की रहनेवाली बातें करना ख़ूब जानती हैं। मैं अनपढ़ देहातिन तुमसे पार न पा सकूँगी।"

तारा—"कुछ दिन ठहर जाओ, तुम्हें भी बातें आ जायँगी। मगर पहले अपने भाई को चारपाई से उठा लो।"

जमना—"मैं पापिन कौन हूँ, परमात्मा उठावेगा।"

यह कहते-कहते जमना की आँखों में आँसू आ गए। इस समय तक चंदूलाल द्वारकादास को झुके हुए देख रहे थे। वह जमना से बोले—"इन्हें कहो, हमें दवा देने का समय आदि समझा दें, और जाकर आराम करें। अब हम आ गए हैं, इन्हें कष्ट न होगा। मालूम होता है, कई रातों से जाग रही हैं। कहीं आप भी बीमार न हो जायँ।"

तारा ने उनको सब कुछ समझा दिया, और आप उनके खाने-पीने का प्रबंध करने चली। इस समय वह ऐसी ख़ुश थी, जैसे किसी को डूबा हुआ धन मिल गया हो। अब उसे कोई आशंका, कोई चिंता न थी, मानो जमना क्या आई, कोई सिविल-सरजन आ गया। मगर द्वारकादास का रोग साधारण न था। तीन महीने वह चारपाई से नहीं उठे।

इस बीच में जमना ने जिस प्यार, परिश्रम, आत्म-समर्पण का परिचय दिया, उसे देखकर तारा दंग रह गई। उसे खाने-पीने की सुध न थी, विश्राम की इच्छा न थी। कुरसी पर बैठी-बैठी ऊँघ लेती। कहती, सो गई, तो दवा देने का समय निकल जायगा। ऐसी सावधानी से किसी मा ने अपने पुत्र का भी इलाज न किया होगा। तारा का सब संदेह निर्मूल सिद्ध हुआ। संसारी जीवों की पापमयी वासना में यह स्थिरता, यह भावना, यह श्रद्धा कहाँ? वह खोटे सोने के समान चमकती तो बहुत है, परंतु परीक्षा की आग में पड़कर वह चमक स्थिर नहीं रहती। तारा की कूटनीति ने जिसे पीतल समझा था, वह खरा सोना निकला। तारा ने शांति की साँस ली।

(७)

द्वारकादास स्वस्थ हो गए। तारा, जमना, चंदूलाल ऐसे ख़ुश थे, जैसे विद्यार्थी परीक्षा में पास होकर ख़ुश होता है। उनकी चेष्टाएँ सफल हो गई थीं। उन्होंने मरता हुआ रोगी बचा लिया था। अब उनके होंठों पर हँसी थी, आँखों में ज्योति। चारों तरफ़ चहकते फिरते थे, जैसे पक्षी फूलों की डालियों पर चहकते हैं। अब यह घर किसी रोगी का कमरा न था, जहाँ ऊँची आवाज़ से बोलना बुरा समझा जाय, वरन् ब्याहवाला घर था, जहाँ आठों पहर चहल-पहल रहती है। सब द्वारकादास की चारपाई के गिर्द कुरसियाँ डालकर बैठ जाते, और ताश उड़ाते। पहले तारा चंदूलाल को देखती, तो दौड़कर छिप जाती थी। मगर अब वह परदा न रहा। और, जमना ने तो उसके दिल में घर ही कर लिया था। वह छाया के समान उसके साथ रहती और कहती, तू चली जायगी, तो मैं क्या करूँगी? जमना उत्तर देती, अपने बलमू से प्यार करेगी, और क्या करेगी? इसके जवाब में तारा का मुँह बंद हो जाता। इसी तरह कुछ दिन और गुज़र गए। अब द्वारकादास चलने-फिरने के योग्य थे। शरीर में बल आ गया, चेहरे पर लाली। चंदूलाल और जमना चलने की तैयारियाँ करने लगे। तारा ने यह सुना, तो घबरा गई। जमना के गुणों ने उसका मन मुग्ध कर लिया था। रात को वह पति से बोली—"जमना जाने को कहती है।"

द्वारका०—"ठीक कहती है। तीन महीने हो गए; अब कब तक बैठे रहें? आज्ञा दे दो।"

तारा—"पर मेरा दिल कैसे मानेगा?"

द्वारका०—"उसे मैं मना लूँगा।"

तारा शर्मा गई; बोली—"आप तो छेड़ते हैं।"

द्वारका०—"नहीं तारा, मैं हँसी नहीं करता। तुम आप ही सोचो, पराए घर में कब तक बैठे रहें।"

तारा—"यह घर उनका अपना है, पराया नहीं। मैं जमना को अपनी ननँद समझती हूँ।"

द्वारकादास के रोम-रोम में ख़ुशी की लहर दौड़ गई। साहस से बोले—"बहनों को भी अपनी सुसराल जाना ही पड़ता है। अपने घर में राजकुमारियाँ भी नहीं रहतीं।"

तारा—"सुसराल भेजना चाहते हो, तो फिर उसी ढंग से भेजो।"

द्वारकादास चौंक पड़े। थोड़ी देर बाद बोले—"तारा, तुम्हारा मतलब क्या है?"

तारा—"इस समय सस्ते न छूटोगे। तुमने उसे बहन बनाया है, वह तुम्हारे यहाँ पहली बार आई है। यों समझो कि यह उसका गौना है। चार पैसे दिए बिना भेज दोगे, तो वह अपने जी में क्या कहेगी?"

द्वारकादास को ऐसा मालूम हुआ, जैसे आँखों से परदा हट गया हो। उन्हें आज पहली बार ज्ञान हुआ कि उन्होंने तारा को पहचानने में कैसी भूल की थी। उनका ख़याल था कि तारा संकुचित-हृदय, भाव-रहित, सूम एवं अज्ञान स्त्री है। मगर आज वही स्त्री कैसी विशाल-हृदय, स्नेहमयी, और साहसवती प्रतीत होती थी। उसके एक-एक शब्द में प्रेम की सुगंध थी। उसे मान की परवा थी, पैसे की परवा न थी। मगर द्वारकादास अधीर नहीं हो गए, न उन्होंने अपने हार्दिक भावों को प्रकट किया। धीरे से बोले—"बहुत ख़र्च करना पड़ेगा?"

तारा—"परंतु इसके बिना काम भी नहीं चलेगा।"

द्वारका०—"जानती हो, आजकल कार-बार का हाल भी संतोष-जनक नहीं है।"

तारा—"रोटी तो खाते हैं।"

द्वारका०—"चुप हो रहें, तो कैसा हो?"

तारा—"नाक कट जायगी। गाँव-भर में सब जानते हैं कि जमना अपने भाई के यहाँ आई है। जब ख़ाली हाथ देखेंगे, तो क्या कहेंगे? यही कि बस, इसी हौसले पर भाई बने थे? इन बातों से जमना के दिल पर क्या गुज़रेगी? सुनकर रोने लगेगी।"

द्वारकादास जाल बिछाते जाते थे, और तारा भोले कबूतर की तरह उसमें फँसती जाती थी। उन्होंने किसी असहाय की तरह सिर हिलाया, और कहा—"तारा, बुरे फँसे!"

तारा—"अब तो कुछ करना ही पड़ेगा।"

द्वारका०—"तुम्हारी सम्मति में कुछ देना चाहिए; चालीस-पचास रुपए दे दें?"

तारा—"ज़रा अपनी हैसियत देख लो। लोग कहेंगे, नाम बड़ा और दर्शन थोड़े।"

द्वारका०—"तोबा! अब न बोलूँगा। तुम जो चाहो, दे दो। केवल मैं ही भाई नहीं हूँ, तुम भी भाभी हो।"

तारा को ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने राज-सिंहासन पर चढ़ा दिया हो। कुछ सोचकर बोली—"कम-से-कम दो-तीन आभूषण होंगे। ढाई-तीन सौ रुपए के।"

द्वारका०—"और?"

तारा—"सात जोड़े रेशमी, इक्कीस जोड़े सूती।"

द्वारका०—"राम-राम!"

तारा—"कुछ बर्तन भी होंगे।"

द्वारका०—"तुम मेरा दिवाला निकलवा दोगी?"

तारा—"चंदूलाल के कपड़े अलग रहे। वह आप बनवा दें, मैं उसमें दख़ल न दूँगी।"

द्वारका०—"तो कुछ दिन और रोक लो; यह सब कुछ एक-आध दिन में तैयार न होगा।"

तारा—"इसकी चिंता न करें। जमना की इतनी मजाल नहीं कि मुझसे बिना पूछे चली जाय।"

एक सप्ताह और बीत गया।

× × ×

आज चंदूलाल और जमना के चलने का दिन है। सबकी आँखों में वियोग के आँसू भरे हुए हैं। जमना तो फूट-फूटकर रो रही है, जैसे लड़की ब्याह के बाद सुसराल को जाते समय रोती है।

चंदूलाल कभी उन चीज़ों को देखते, कभी द्वारकादास को। वह हैरान हो रहे थे। पड़ोसी कहते, द्वारकादास को शाबास है। कलजुग में लोग इतना अपनी सगी बहनों को भी नहीं देते।

इतने में ताँगा दरवाज़े पर आ गया। जमना तारा के गले से लिपटकर रोने लगी। इस रोने में कितनी वेदना

थी, कितनी व्यथा, इसे कोई बहन ही समझ सकती है। तारा के दिल में भाव-सागर उमड़ा हुआ था। वह सोचती—यह वही स्त्री है, जिसने मेरे स्वामी की सेवा की है, उनको मौत के मुँह से खींचा है; जिसे मेरा पति अपनी बहन समझता है, चाहता है, प्यार करता है। आज वह बिछुड़ रही है।

जमना की निष्काम सेवा ने पहले द्वारकादास को वशीभूत किया था, अब तारा भी उसका दम भरने लगी। यह सब प्रेम का चमत्कार है, इसी स्वर्गीय शक्ति का जादू है। इसमें पड़कर राक्षस भी देवता बन जाते हैं। तारा तो फिर भी संसारी स्त्री थी।

तारा से मिलकर जमना द्वारकादास के गले मिली, और फिर फूट-फूटकर रोई। द्वारकादास भी रो रहे थे। आख़िर उन्होंने बड़े आग्रह से चुप कराया, और कहा—"लो, अब गाड़ी में बैठ जाओ। विलंब हो रहा है।"

जमना ने दुपट्टे के आँचल से आँसू पोंछते हुए कहा—"मगर यह तुमने बहुत तकलीफ़ की। इसकी कोई ज़रूरत न थी।"

द्वारका०—"परमात्मा करे, हम सदा इसी तरह करते रहें।"

जमना—"देखो भाई! मैं तुमसे मन की बात कहती हूँ। मैं पैसे की नहीं, प्यार की भूखी हूँ। मुझे पैसा दो या न दो, मगर कभी-कभी मिलते रहना। यह तुम्हारी बहन का अनुरोध है।"

द्वारका०—"जो अपनी बहन को भूल जाय, उसका क्या भला होगा?"

जमना—"पर यह ऋण तो मुझसे न उतरेगा।"

द्वारका०—"यह ऋण नहीं, मेरे धर्म सूत्र की पूर्ति है। तुम्हारी सेवा-सत्कार का बदला देना मेरी शक्ति के बाहर है।"

तारा ने मुसकिराकर कहा—"जंगल की मैना को शहर का पानी लग गया; अब कैसे जाय?"

जमना ने हँसकर तारा की तरफ़ देखा, मगर प्रेम के इस सुखद कटाक्ष का जवाब न दिया। द्वारकादास को लक्ष्य करके बोली—"जिसने अपने बीमार भाई की सेवा न की, वह बहन कहाने के योग्य नहीं।"

द्वारका०—"मुरादपुर का खाना कभी न भूलेगा।"

जमना—"क्या बातें करते हो, वह तो विदुर का साक था।"

द्वारका०—"और वह पंखा?"

जमना चौंक पड़ी। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई गुप्त रहस्य प्रकट हो गया हो। प्रकाश-पूर्ण लज्जा ने चेहरा लाल कर दिया। उसने केवल 'अरे' कहा, और इससे ज़्यादा कुछ न कह सकी। द्वारकादास और तारा, दोनों हँसने लगे।

जमना ने तारा से कहा—"तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया। इस बात का एक बार भी ज़िक्र नहीं किया। किया होता, तो मैं सावधान हो जाती।"

तारा—"मुझे तुम्हारे भाई ने मना कर दिया था। मैं समझती न थी। इसमें छिपाने की क्या बात है? मगर इस समय मज़ा आ गया, वर्ना तुम्हारा मुँह बंद न होता।"

सुदर्शन

क्या पौदे भी मांस खाते हैं?

संसार की ओर एक दृष्टि डालने से अद्भुत दृश्य दिखाई देता है। छोटे-छोटे जीवों से लेकर मनुष्य-समाज तक, सब एक ही धुन में लगे हैं। एक छोटे भुनगे को एक बड़ा कीड़ा भक्षण कर लेता है, उस कीड़े को एक छोटी चिड़िया खा जाती है, और साँप उस चिड़िया को निगल जाता है। साँप के खानेवाले मधुर-भाषी मोर हैं, और मोर को बहुत-से मनुष्य खा जाते हैं। यह सारा भ्रम-जाल किसलिये फैला हुआ है? यही नहीं, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का अशुभ-चिंतक, एक जाति दूसरे जाति की शत्रु और एक देश दूसरे देश का सर्वस्व अपहरण करने के लिये हाथ फैलाए खड़ा है! यह सब किसकी कृपा है? पेट-देवता की। पेट की समस्या बड़ी कठिन है। भारतवर्ष में तो इसका कहना ही क्या, जहाँ दिन-भर कठिन परिश्रम करने पर भी शाम तक पेट-पूजा नहीं हो पाती, और जहाँ "क्षुधा-सिंहनी उदर-गिरि प्रसन चहत नृप-मेघ" की ही कथा निरंतर गाई जाती है। सर विलियम हंटर के मत से चार करोड़ भारतवासी अपने जीवन-भर में केवल एक ही बार भोजन पाते हैं, और सर चार्ल्स इलियट के मतानुसार सात करोड़ भारतीय साल-भर में एक दिन भी भर-पेट भोजन नहीं पाते। यह पढ़कर किसके ख़ून के आँसू नहीं बहते? भारत-सरीखे कृषि-प्रधान

देश के लिये यह महान् संकट का विषय है। क्या ईश्वर ने भारतीयों के भाग्य में रूखी-सूखी रोटी भी नहीं लिखी? इस प्रश्न का उत्तर देने से यहाँ हमारा अर्थ नहीं सिद्ध होगा। हाँ, यह कहना आवश्यक है कि ईश्वर जब जड़ तक को भोजन देने की चेष्टा करता है, तो चेतन को क्यों न देगा? वनस्पति-साम्राज्य के जीवधारी जीवधारी होते हुए भी जड़ हैं। उनमें गति करने की शक्ति नहीं है। प्रकृति उन्हें किस प्रकार साँस लेने को वायु, पीने को जल और खाने को भोजन देती है, इसकी बड़ी मनोरंजक कहानी है। इसके अतिरिक्त उन्हें भोजन के मुख्य भाग प्रोटीन के अभाव में प्रकृति ने उन्हें मांस-भक्षण करने की शक्ति भी तो दे रक्खी है। और, यह मांस खाने की क्रिया किस रीति से संपादित होती है, यही इस लेख में बताया जायगा।

हमारा मुख्य भोजन क्या है? यह सबको मालूम है कि किसी-न-किसी रूप में हमारी जठराग्नि को शांत करनेवाले वनस्पति ही हैं। गेहूँ, चना, चाँवल इत्यादि ही हमारे भोजन हैं। उत्तरीय साइबेरिया तथा ग्रीनलैंड आदि हिमाच्छादित देशों के इने-गिने निवासियों की तरह यहाँ लाखों के लिये केवल मांस ही खाकर जीवन व्यतीत करना टेढ़ा काम है। हममें बहुत कम या संभवतः कोई भी ऐसे जीवन को पसंद नहीं करेगा। यदि कुछ ऐसे साहसी पुरुष इसका अनुभव करने पर उद्यत भी हो जायँ, तो विश्वास है कि शीघ्र ही वे अपनी भूल पर पश्चात्ताप कर फिर वनस्पति-देव की ही शरण आवें। अच्छा, यदि यह कल्पना भी कर लें कि संसार के प्राणी केवल मांस ही खाकर रहेंगे, तो प्रश्न यह उठता है कि समस्त सृष्टि के देहधारी जीवों का मांस कितने दिन चलेगा, और यह रीति कब तक चलेगी?

श्वास, भोजन और पानी जीवन के लिये सबसे अधिक आवश्यक हैं। इनके लिये हमारे फेफड़े, मुँह तथा उदर काम करते हैं। हमारी ही तरह हमारे जीवनाधार (वनस्पति) भी खाते, पीते और साँस लेते हैं। हमारी आँखों को सुख देनेवाले हरे-हरे सुंदर पत्ते उनके फेफड़े हैं; जड़ें उनके मुख हैं, जिनके द्वारा वे भूमि-गर्भ से निर्मल जल खींचकर अपनी प्यास बुझाते हैं, और खनिज-पदार्थ एकत्रित कर अपनी पेट-पूजा करते हैं। इसी पेट-पूजा का एक चित्र यहाँ पाठकों के सामने उपस्थित किया जा रहा है। हरे-भरे बग़ीचों के स्वच्छ वायु-सेवन का लाभ किससे छिपा नहीं है। वायु के मुख्य तीन भाग ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, कारबोनिक एसिड गैस छोटे-छोटे बच्चे जानते हैं। प्राणी-मात्र के जीवन-दीप का तेल ऑक्सिजन है, जो वायुमंडल में प्रति सैकड़ा बीस के लगभग है। इस दीप के बुझाने को आँधी, जिसकी मात्रा वायु में प्रति दस सहस्र पीछे केवल चार है, कारबोनिक एसिड गैस है। यदि इसकी मात्रा चार से थोड़ी भी अधिक कर दी जाय, तो प्राणी-मात्र की दुर्दशा होने लगे। प्रतिक्षण साँस द्वारा हम यही विष निकालते रहते हैं; किंतु तब भी आश्चर्य यह है कि वायु में इसकी मात्रा वही बनी रहती है। प्राणियों के प्राण-घातक इस हलाहल को पान करनेवाले शिव कौन हैं? यही तेजस्वी वनस्पति, जो "What is food to the one is poison to the other" को अक्षरशः चरितार्थ करते हैं। इतने ही से उनका कार्य नहीं समाप्त हो जाता, वरन् इस विष का पानकर वे अपने छोटे-बड़े अनेक शरीर धारण कर हमारी सेवा ही करते रहते हैं। मीठे-मीठे स्वादिष्ठ फल, नवीन सभ्यता के अलंकार—मेज़, कुरसी, गाड़ियाँ और मकान—इसी विष के फल और कार्बन के अंग हैं। बड़े-बड़े रसायनज्ञों के अत्यंत परिश्रम से भी कारबोनिक एसिड गैस इत्यादि को मिलाकर एक इंच लकड़ी बनाना असंभव है। लेकिन यह क्रिया वनस्पतियों के बाएँ हाथ का खेल है।

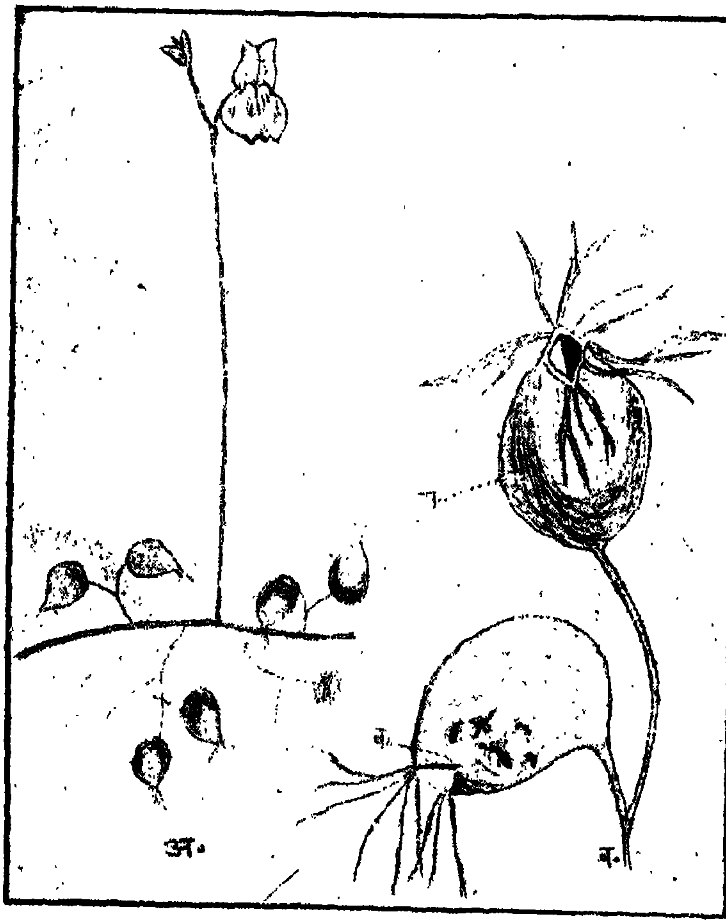
प्राणियों की भाँति वनस्पतियों की भोजन-सामग्री में खनिज-पदार्थों के सिवा प्रोटीन की तरह कोई-न-कोई नाइट्रोजन-मिश्रित (Nitrogenous) भाग परमावश्यक है। इसके बिना प्राणियों के शरीर में मांस नहीं बन सकता। वनस्पति भी इसके बिना मुरझाए और दुर्बल दिखाई देते हैं। यही कारण है कि किसान अपने खेत में खाद डालकर, अच्छी तरह उसे मिट्टी में मिलाकर तब बीज बोता है। खाद में—विशेषतः प्राणियों के मल-मूत्र से बनाई हुई खाद में—नाइट्रोजन-मिश्रित भाग बहुत रहता है। सीधे हवा से नाइट्रोजन का खींचना प्रायः वनस्पतियों के लिये असंभव है। भोजन के पदार्थों में मांस, अंडे, बादाम और मटर आदि में नाइट्रोजन का भाग विशेष है। मांस के सड़ने से नाइट्रोजन से उत्पन्न भाग अमोनिया के रूप में प्रकट होता है, जिसे बहुत-से सूक्ष्म जीवाणु (Bacteria) परिवर्तित कर इस योग्य

बना देते हैं कि वनस्पति उसे अपनी जड़ों द्वारा सुगमता से खींचकर अपना पेट पालते हैं। यदि किसी प्राणी के भोजन से नाइट्रोजन का भाग निकाल दिया जाय, तो वह थोड़े ही काल में क्षीण होकर अनेक रोगों से ग्रस्त हो जायगा। ठीक यही दशा वनस्पतियों की भी नाइट्रोजन के बिना होती है, और इस प्रकार क्षीण एवं रोग-ग्रसित हो, वे भी अनेक व्याधियों के शिकार बनकर प्राण देते हैं। मैंने बहुत-से किसानों को देखा है कि जब कटहल के वृक्ष रोगी होकर फल देना बंद कर देते हैं, तो वे उनकी जड़ के समीप की भूमि खोदकर, उस स्थान पर मछली या झींगे डालकर मिट्टी से ढक देते हैं। इसका प्रभाव बड़ा विलक्षण होता है। थोड़े ही काल में वृक्ष हरे-भरे होकर फूलने-फलने लगते हैं। किसानों को तो इसका कारण ठीक-ठीक मालूम नहीं है, परंतु बात वास्तव में यह है कि खाद, मछली के सड़ने पर उसके नाइट्रोजन से उत्पन्न भाग को खींचकर वृक्ष को बली और स्वस्थ बना देती है। इस कारण नाइट्रोजन वनस्पति का प्राकृतिक भोजन है। इसके बिना उसका जीना असंभव है। साधारण भूमि में नाइट्रोजन से उत्पन्न पदार्थों की मात्रा इतनी काफ़ी होती है कि वृक्षों का काम चलता रहता है; किंतु बहुत काल तक बिना सहायता के जब नाइट्रोजन का भाग कम हो जाता है, तो उसमें लगे पौदे धन-हीन कुटुंब में पाले हुए बच्चों की भाँति रोगी एवं दुर्बल हो जाते हैं।

पृथ्वी में नाइट्रोजन का भाग पूर्ण करने के लिये मुख्य तीन साधन हैं—मनुष्य, कृमि और पौदे। बहुत-से पौदों में यह गुण होता है कि वे नाइट्रोजन से उत्पन्न पदार्थ बड़ी उत्तमता से संग्रह करते हैं। वे नाइट्रोजन खींचकर उसे अपने अंग तथा जड़ की गाँठों में भर लेते हैं, और इस रीति से पृथ्वी में मिलकर वे उसे नाइट्रोजन से धनी बना देते हैं। Rotation of crops (कभी कोई फ़सल बोना, कभी कोई) का सिद्धांत इसी पर अवलंबित है। एक अशिक्षित किसान भी जिस खेत से पहली फ़सल में धान काटता है, दूसरी फ़सल में उसमें मटर बोता है। अमेरिका और जर्मनी में यह क्रिया बड़ी उत्तमता से होती है। जर्मनी के उद्योगी किसान इस रीति से अपने खेतों में लूपिन (Lupin) बोकर प्रतिवर्ष अपनी कृषि के लिये हवा से पचास करोड़ पौंड नाइट्रोजन खींचते हैं।

दलदल, अत्यंत रेतीली तथा पथरीली भूमि में नत्र-जनित पदार्थों की कमी रहती है। अतः ऐसी भूमि में उगनेवाले पौदे पृथ्वी से नाइट्रोजन की आशा नहीं करते। ऐसी अवस्था में उनके प्राण की रक्षा के लिये उन्हें कौन नाइट्रोजन देता तथा उसकी किस प्रकार ये साधना करते हैं? जो प्राणी केवल वनस्पति ही पर निर्वाह करते हैं, उन्हें अधिकांश में नमक खाने की आवश्यकता पड़ती है। इस कारण वे जंगलों से बहुत दूर, नमक चाटने की लालसा से, नमक की खान अथवा पहाड़ों के समीप जाकर अपनी कामना पूरी करते हैं। प्राचीन काल में नमक के पहाड़ों का पता इन्हीं जीवों की गति का अनुसंधान करने से लगा करता था। किंतु वनस्पतियों के पैर तो होते नहीं कि अन्यत्र कहीं जाकर अपनी नाइट्रोजन की भूख बुझावें। "अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम" के अनुसार प्रकृति-देवी ने उन्हें ऐसी शक्ति दे रक्खी है कि बैठे-बैठाए उन्हें इच्छित वस्तु मिल जाती है। इसके लिये उनके पास ऐसी युक्तियाँ हैं कि सुनकर, देखकर बड़ा अचंभा होता है। जड़ का, जो चलने-फिरने से विवश है, पकड़कर शिकार करना और मांस-भक्षण करना सुनकर किसे विस्मय न होगा? जैसा कि पूर्वोक्त रीति से प्रकट कर चुके हैं, दलदल इत्यादि में नत्रजनित पदार्थ का अभाव रहता है। इस कारण मांसा-हारी पौदे प्रायः ऐसी ही जगहों में मिलते हैं। इन्हें सर्वदा नाइट्रोजन की भूख बनी रहती है। यह भूख वे मांस खाकर मिटाते हैं। मांस के लिये वे छोटे-छोटे कीड़ों को फसाने की अनेक तरकीबें करते हैं। इस मांस को पचाने के लिये उनके पेट से एक प्रकार का रस निकलता है, जो हमारे पेट के पाक-रस से मिलता-जुलता है। ये पौदे मांस के बड़े प्रेमी होते हैं, और हिंसक जीवों की तरह मांस के लिये मुँह फैलाए बैठे रहते हैं। संभवतः मांसाहारी पौदों की जातियाँ संख्या में पाँच सौ के लगभग हैं, जो छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों को पकड़ने में अनेक युक्तियों का प्रयोग करते हैं। जंगलों में हाथियों को पकड़ने के लिये बड़े-बड़े गड्ढे खोदकर जिस प्रकार उन्हें धोखे से गिराते या लोहे के पींजड़ों में मांस का प्रलोभन देकर सिंह को बंदी करते हैं, उसी प्रकार या कुछ बढ़-चढ़कर ही धोखा देनेवाले ये मांसप्रिय वनस्पति भी हैं। इन्हीं युक्तियों के आधार पर विद्वानों ने मांसाहारी पौदों को तीन श्रेणियों में रक्खा है। प्रथम श्रेणी के पौदे

अपने शिकार को पकड़ने के लिये एक ऐसी कोठरी बनाते हैं, जिसमें कीड़े बड़ी सुगमता से अंदर घुस जायँ। परंतु निकलने के समय वे दरवाज़ा बंद पाते हैं। इस कोठरी की दीवाल से ऐसा रस निकलता है, जो कीड़ों को मारकर और पकाकर पौदे के लिये खाने का प्रबंध कर देता है। ऐसे पौदे शिकार के समय कोई गति करने की शक्ति नहीं रखते। दूसरी श्रेणी के पौदे उपर्युक्त विशेषता होने के अतिरिक्त शिकार को अपने पंजों में बड़ी होशियारी से पकड़ते हैं, और इस उद्योग में उनकी जीवों के समान गति होती है। ये अपने शरीर को हिला-डुलाकर, कीड़ों को मारकर अपना पेट भरते हैं। तीसरी श्रेणी के पौदे चिड़ीमार के भाई हैं। वे अपने शरीर में चिपचिपी वस्तु लपेटकर मानों जाल फैलाए बैठे रहते हैं, और कीड़ों को इस गोंद में फँसाकर उनका संहार करते हैं। "मांसाहारी कुतो दया" को चरितार्थ कर, बेचारे भोलेभाले जीवों का वध करने में उन्हें कुछ भी संकोच नहीं होता। प्राणी वनस्पतियों का भक्षक और वनस्पति प्राणियों के संहारक हैं, यह रहस्य अद्‌भुत है। क्या प्रकृति को अपने पुत्रों का इस प्रकार निरंतर युद्ध देखना भाता है? जो हो; किंतु यह युद्ध तो कालचक्र का नियम-सा जान पड़ता है। यह क्रिया एक ही प्रकार के अथवा छोटे-छोटे जीवों में ही नहीं मिलती, वरन् जो मानव-जाति अपने को सभ्य और प्राणियों में श्रेष्ठ समझती है, वह भी बड़े-बड़े भीषण युद्ध रचकर लाखों मनुष्यों का संहार कर विजय की डींग हाँकती है। ऐसी अवस्था में भूखे वनस्पतियों के ही मत्थे कलंक का टीका लगाने का भार हम पाठकों ही पर छोड़ देते हैं।



चित्र नं० १

वनस्पतियों का वास्तविक पेट देखना हो, तो प्रथम श्रेणी के पौदों के पास आइए। इनके पेट की बनावट में परस्पर कुछ अंतर अवश्य होता है, किंतु क्रिया एक ही होती है। प्रथम हम ब्लैडर वर्ट (Bladder wort) के उदाहरण से चलते हैं। यहाँ चित्र नं० १ में एक ऐसा ही पौदा * बतलाया गया है। यह जल का रहनेवाला है, और

---

* इस पौदे के संबंध में मतभेद है। मदरास के डॉक्टर टी० एकाम्बरम् ने यह अनुसंधान किया है कि इनके थैले साधारणतः पिचके रहते हैं। किंतु कीड़ों के आने के पूर्व वे फूलकर पानी को अंदर खींच लेते हैं, और उसकी धारा में कीड़े भीतर बह जाते हैं, तथा उपर्युक्त क्रिया होने लगती है। इस कारण बहुत लोगों का मत है कि ये भी गति करनेवाले पौदों में हैं। इस भूल को शुद्ध करके डॉक्टर एकाम्बरम् ने वैज्ञानिक संसार की एक बहुत बड़ी त्रुटि दूर की है।

इसके तने पर छोटे-छोटे थैले (थ) लगे दिखाई दे रहे हैं। इन थैलों के मुँह पर एक कपाट (चित्र नं० क) लगा रहता है, जो बाहर से धक्का देने पर तुरंत खुलकर भीतर को चला जाता है। परंतु धक्का हटते ही खटके की तरह बंद हो जाता है, और भीतर से अनेक यत्न करने पर भी नहीं खुल सकता। इस बड़े थैले की दीवाल में असंख्य छोटी-छोटी थैलियाँ होती हैं, जिनसे एक ऐसा रस टपकता है, जो कीड़ों को गला देता है। थैले के मुँह पर, बाहरी तरफ़, बड़े-बड़े नुकीले रोएँ होते हैं, जो उन बड़े-बड़े कीड़ों को अंदर नहीं घुसने देते, जिनके जाने से कपाट या थैला टूटने का भय होता है। जब कोई छोटा कीड़ा अपने भोजन की तलाश में या अपने शत्रु के भय से भागकर आता है, तो थैले के मुँह पर पहुँचते ही, उनके अपने लाभ की आशा से भीतर आने की चेष्टा करते ही, उनके स्वागत के लिये कुटिल कपाट खुल जाता और प्रवेश करने के उपरांत स्प्रिंग-लगे किवाड़ों की भाँति तत्काल बंद हो जाता है। भीतर पहुँचकर कीड़े को इस नए घर में बड़ा विस्मय होता है; किंतु अधिक सोच-विचार के पूर्व ही इस घर की दीवालों से प्रलय की धारा बहने लगती है, जो बेचारे कीड़े का नाश कर और उसके शरीर के मांस से उत्तमोत्तम भोजन बनाकर अपने स्वामी को खिलाती है। ऐसे अनेक कीड़ों के अस्थि-पंजर चित्र नं० के कारागार में पड़े दिखाई दे रहे हैं। कोई कीड़ा थोड़े ही समय में और कोई दो से छः घंटे तक में पकता है। यह पौदा पानी, दलदल तथा कभी-कभी पहाड़ों की दरारों में भी पाया गया है। थैले की लंबाई प्रायः एक इंच के आठवें भाग के बराबर होती है।

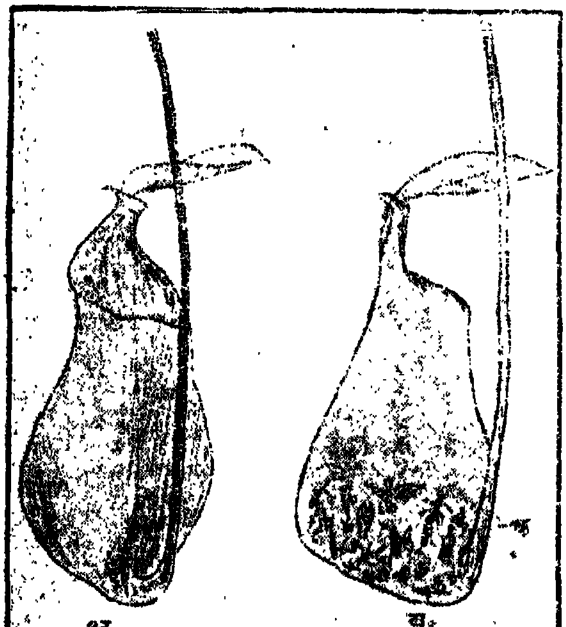
इस कालकोठरी-रूपी पेट का उदाहरण पिचर (Pitcher plant) में भी बड़ी उत्तमता से पाया जाता है। इनकी बनावट तथा रंग-रूप बड़ा विलक्षण होता है। इनकी पत्तियों के डंठल परिवर्तित होकर घड़े, नालियाँ तथा थैलों के आकार के हो जाते हैं। इन्हीं भिन्न-भिन्न रूपों के भ्रम-जाल में आकर कीड़े अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं। यहाँ चित्र नं० २ में एक ऐसे ही घड़े की शक्ल बनी हुई है। यह घड़ा अत्यंत सुहावने हरे रंग का होता है, और उसके ऊपर एक पत्ती, ढक्कन की भाँति, लगी रहती है। इस पत्ती के ऊपर ऐसी रंग-बिरंगी रेखाएँ होती हैं कि वह पुष्प की तरह सुंदर और आकर्षित दिखाई देती है। कीड़े इस सौंदर्य के वशीभूत हो जब घड़े के ढक्कन पर आकर बैठते हैं, तो उनके फँसाने के लिये मानो पहले से ही घड़े के मुँह पर मधु के कण इधर-उधर बिखराए रहते हैं। वे शहद की लालसा से नीचे उतरते हैं, और उसके स्वाद में ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें भयंकर मृत्यु-कुंड, जो उनके ठीक नीचे ही रहता है, नहीं दिखाई देता। मधु चाटते-चाटते वे मुँह के अत्यंत चिकने भाग पर आ पहुँचते हैं, जिसके ऊपर से फिसलकर वे तत्काल नीचे गिर पड़ते हैं। संकट-ग्रस्त होने पर जब आँखें खुलीं, तो नीचे से ऊपर चढ़ने का अथक किंतु व्यर्थ उद्योग करने में वे अपने बल को नष्ट करते हैं; क्योंकि वहाँ तो हज़ारों किरचें ऊपर से नीचे को नोक झुकाए हुए उन्हें रोकने को तैयार रहती हैं। एक से बचे, तो दूसरे से छिद गए। इस प्रकार आहत हो, जब आशा छोड़ वे नीचे को लौटते हैं, तो क्या देखते हैं कि एक खट्टे रस के प्रवाह में वे डूबे जा रहे हैं।



चित्र नं० २

वह खारा रस कूप की दीवाल से निकलकर उनके शरीर को आरे की भाँति काटने लगती है, और थोड़े ही समय में वे प्राण त्याग, उसमें बहने लगते हैं। जो प्रभाव हमारे शरीर पर तेज़ाब पड़ने का होता है, आरंभ में वही वेदना सहकर इन छोटे जीवों के प्राण निकलते हैं। इसके उपरांत इस रस में उनके शरीर का कोमल मांस-युक्त भाग गलकर रस में मिल जाता है, और उसे पौदा धीरे-धीरे चूस लेता है। यहाँ चित्र में कीड़ों को निकलने से रोकने-वाले काँटे (का) मुँह पर तथा अंदर दिखाई दे रहे हैं।

कीड़ों की यही दशा चित्र नं० ३ के नेपनथीज़ के थैलों या घड़ों में भी होती है। ये घड़े यों तो तीन या चार इंच लंबे होते हैं, किंतु किसी-किसी में—यथा Nepenthes Edwardsiana में—ये बीस इंच तक लंबे पाए गए हैं। इनके मुँह पर भी मक्खियों को फुसलाने के लिये मधु

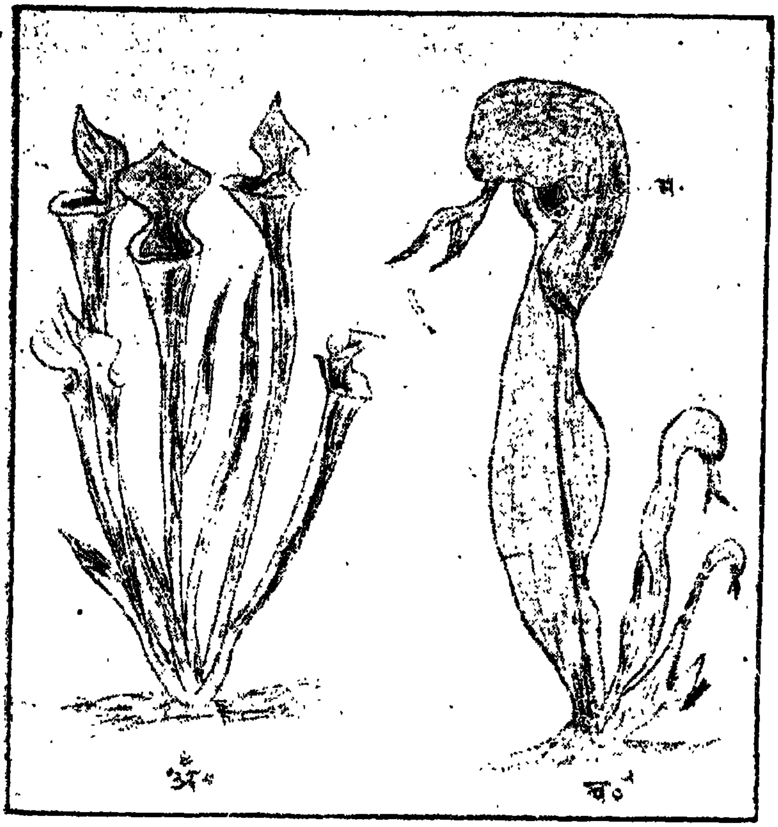


चित्र नं० ३

का स्राव होता है। यहाँ चित्र नं० ३ में एक ऐसा ही घड़ा ढकन-रहित दिखाया गया है। चित्र के (अ०)-भाग में पूरे घड़े की शक्ल है, और (ब०) में केवल घड़े का आधा भाग काटकर दिखाया गया है, जिसमें गिरकर अनेक मरे हुए कीड़ों (क) की हड्डियाँ मौजूद हैं। अमेरिका के एक विद्वान् प्रोफ़ेसर ग्रे ने कीड़ों तथा मक्खियों के इन घड़ों में गिरने का एक बड़ा रहस्य-पूर्ण वृत्तांत दिया है।

ग्रे साहब का कहना है कि ढकन के इधर-उधर उड़कर मक्खियाँ कुछ तो मुँह पर और कुछ उसी पर आ बैठती हैं। इसके बाद मुँह पर बैठी हुई मक्खियाँ शहद चाटते-चाटते अंदर घुसती हैं। घड़े के होठों को पारकर जब वे भीतर जाती हैं, तब ढकन पर बैठी हुई मक्खियों को वे दिखाई नहीं देतीं। इस पर उनको बड़ा कौतूहल होता है और या तो वे उड़ जाती हैं, या वे भी मुँह पर बैठकर उपर्युक्त मक्खियों का अनुकरण करती हैं। किंतु पहले उनके प्रत्येक कार्य बड़ी सावधानी से होते हैं। बचा-खुचा शहद उनकी भूख की अग्नि में आहुति के समान होकर, उन्हें अंदर आने को विवश करता है। होठों के पार करने पर उन्हें अत्यंत चिकनी, फिसलनेवाली सतह मिलती है, जहाँ पाँव पड़ते ही वे नीचे को गिर पड़ती हैं। इस चिकनी सतह पर यदि किसी ने चतुरता-पूर्वक अपने को सँभाल लिया, तो वह बाहर निकलकर, भयभीत हो, सिर पर पैर रखकर भागती है; किंतु जो नीचे गिरीं, उनकी व्यवस्था कुछ और ही होती है। उनके भाग्य में एक अथाह सागर पड़ता है, जिसमें डूब-डूबकर वे अपना प्राण गँवाती हैं। मरने के बाद उनके शरीर की वही गति होती है, जो बतला चुके हैं। कभी-कभी इन घड़ों में बहुत अधिक जल होता है। डॉक्टर हुकर ने एक ऐसे घड़े का वर्णन किया है, जिसकी लंबाई डेढ़ फ़ीट थी, और उसमें इतना पानी था कि उससे दस आदमियों के लिये चाय बन सकती थी, एक साधारण पक्षी डूबकर मर सकता था। बहुधा यह देखा गया है कि इन प्रकृति-संचित घड़ों के जल से प्यासे व्याकुल बटोहियों की अनेक बार जानें बची हैं; क्योंकि प्रायः ये ऐसे स्थान पर होते हैं, जहाँ वर्षा कम और सूखा अधिक होता है।

इसके अतिरिक्त पाठकों के सामने चित्र नं० ४ (अ०) और (ब०) में दो बड़े विचित्र पौदों का वर्णन किया जाता है। चित्र (अ०) की शक्ल बिगुल की तरह है, इसी कारण उसका नाम Trumpet-leaf रख दिया है। ये बिगुल-पत्तों के ही रूपांतर हैं। इनके खोखले बड़े लंबे और जल से भरे होते हैं। जल एकत्र करने के लिये इन्होंने



चित्र नं० ४

हो चुकी है । इस 'प्रेम के कराल पंथ' में पड़कर किसी जीव का बचना संभव नहीं । नेपन-थीज़-जाति बंगाल, लंका और फ़िलिपाइन्स में भी पाई जाती है । "मुख में राम, बग़ल में छुरी" तथा सुंदरता और आंतरिक क्रूरता इनको देखकर तुलसीदासजी के "मन मलीन तन सुंदर कैसे ; विष-रस-भरा कनक-घट जैसे" का स्मरण होने लगता है । इसी प्रकार इस संसार में अनेक ऐसे अंध-कूप पड़े हुए हैं, जिनके बाहरी धोखे और प्रलो-भनों में पड़कर, कीड़ों की भाँति बुद्धि से विचलित मनुष्य अपने को विपत्तियों का दास बना देता है। हचिनसन् साहब लिखते हैं कि नेपनथीज़ की एक जाति का घड़ा पचास सेंटीमीटर लंबा और दस सेंटीमीटर चौड़ा होता है ; उसके भीतर यदि कबूतर छिपा दिया जाय, तो बाहर से उसका देखना असंभव है । इसका खोखला पानी से भरा रहता है, जो खट्टा और हमारे पेट के पाक-रस से मिलता-जुलता होता है । यदि इसमें थोड़ा मांस डालकर कुछ समय के बाद निकालें, तो उसी हालत में मिलेगा, जैसा किसी मांसाहारी जीव के पेट से निकालने पर ।

पत्तियों को धारणकर अद्भुत युक्ति निकाली है । इनके स्वरूप बड़े सुंदर और लुभावने होते हैं, और इनके मुँह पर भी मधु का स्रात होता है । यह प्रपंच रचने का जो प्रयोजन है, उसे अब पाठक स्वयं विचार सकते हैं । चित्र (ब०) की आकृति बड़ी विलक्षण है । दूर से देखने से ऐसा प्रतीत होता है, मानों एक विषैला सर्प क्रोध से उन्मत्त हो अपनी ज़बान बाहर निकाले खड़ा है, और समीप जाते ही खा लेगा । किंतु वस्तुतः जैसा रूप है, वैसा ही गुण है ; क्योंकि सर्प की नाईं यह अनेक जीवों का प्राण हरण कर उनका भक्षण करता है । इसके मुँह (म) से ज़बान बाहर निकली हुई है, जो बहुत सुंदर और चमकीली होती है । यह आजकल के सुंदर और रंगीन साइनबोर्डों की तरह अनेक भोलेभालों को फँसाने में ज़रा भी नहीं चूकता । मुँह पर मधु और पेट में विष ये भी धारण करते हैं ; और इस मधु के ग्राहकों की भी वही गति होती है, जो नेपनथीज़ के प्रेमियों की

उपन्यास-लेखकों के तर्क-वितर्क की रहस्य पूर्ण घटनाओं को पढ़कर लोगों को बड़ा विस्मय होता है । कहीं किसी अनूठी वस्तु को देखकर ज्यों ही हाथ से छुआ, त्यों ही बस, उसमें पकड़ गए । इस प्रकार की बातों की 'चंद्रकांता' आदि में लोग बड़ी तारीफ़ करते हैं । अभी बहुत समय नहीं हुआ, योरपीय युद्ध में हम लोग पढ़ा करते थे कि जर्मनों ने बिजली के बल से अनेक युक्तियाँ निकालकर शत्रु-सेना को विध्वंस करने का अनूठा ढंग रचा था । किंतु उपन्यासों के तर्क तथा नूतन वैज्ञानिक आविष्कारों के



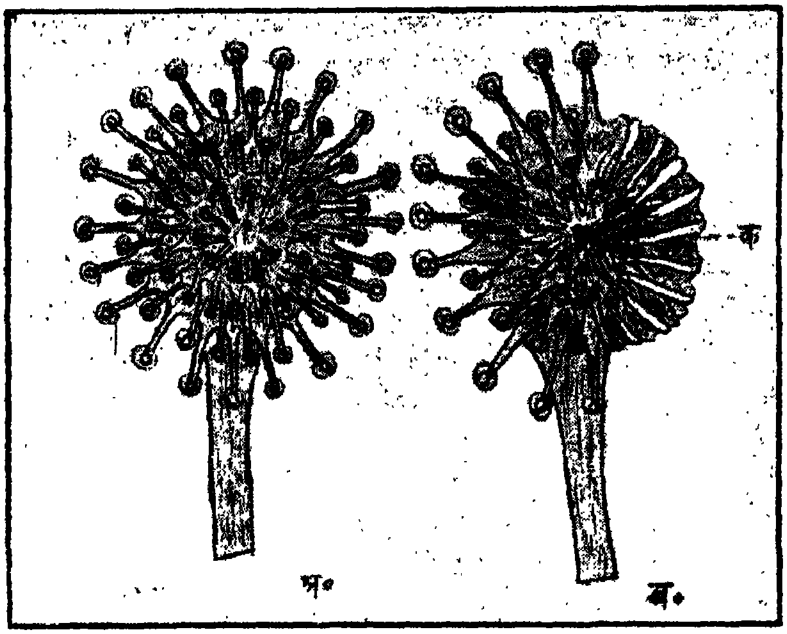
चित्र नं० ५

बहुत पूर्व से प्रकृति में नित्य नए ऐसे रहस्य हुआ करते हैं। केवल देखने के लिये आँखें होनी चाहिए। अब हम पाठकों को उन वनस्पतियों से परिचित कराने की चेष्टा करेंगे, जो अपने शिकार को पकड़ने के लिये अपने शरीर को हिला-डुलाकर प्रत्यक्ष हरकत करते हैं। यहाँ चित्र नं० ५ में एक ऐसे ही पौदे (Mexican Butterwort) की शक्ल दी हुई है। इसकी पत्तियाँ जड़ के ऊपर ही से निकलकर एक गुच्छे के रूप में भूमि के निकट ही रहती हैं।

पौदा प्रायः नरम भूमि में उगता है। पत्तियाँ मोटी, दलदार और उसके दोनों किनारे ऊपर की ओर मुड़े हुए होते हैं। पत्ती के ऊपरी सतह पर असंख्य छोटे-छोटे कोष होते हैं। इन कोषों की संख्या प्रति वर्गइंच डेढ़ लाख होती है। इनसे एक गाढ़ी वस्तु निकलती है। जब कीड़ा या मक्खी चित्र नं० ५ (म) आकर बैठती है, तो वह वस्तु उसके शरीर से चिपक जाती है, और वह तड़फड़ाने लगती है। जितना ही वह तड़फड़ाती है, उतना ही गाढ़े रस में लिप्त होते-होते उसके श्वास-द्वार बंद हो जाते हैं। अब इस बीच में पत्ती स्वयं क्या करती है, वह सुनिए। कीड़े के बैठने पर दोनों मुड़े हुए किनारे धीरे-धीरे बंद होकर, बीच में आकर एक दूसरे से मिल जाते और ऊपर से कीड़े को घेर लेते हैं। उसके साथ ही उनमें से एक तेज़ाब-सरीखा रस निकलना आरंभ हो जाता है, जो कीड़े के कोमल शरीर को चूस लेता है, और केवल कड़े भाग ऊपर सीठी के रूप में बच रहते हैं। इसके पश्चात् पत्ती फिर खुलकर अपनी असली हालत में आ जाती है। यह खट्टा-रस बड़ा विचित्र होता है। यह दूध में मिलाने से प्राणियों के पेट से निकले हुए रेनेट (Rennet) की भाँति उसे जमा देता है। इसमें कृमि-नाशक (Antiseptic) शक्ति बड़ी प्रबल होती है, और इस कारण स्कैंडिनेविया के निवासी हज़ारों वर्षों से अपने तथा अपने पशुओं के घावों में इसे लगाकर उन्हें अच्छा करते हैं। अतः इस पौदे में पकड़ने के अतिरिक्त शिकार को फँसाकर चूस लेने की भी शक्ति है। लसदार वस्तु का अभिप्राय केवल उसे फँसा रखने का है; क्योंकि पत्तियों की गति बहुत तेज़ नहीं होती। अगर कीड़े वैसे ही स्वच्छंद बैठे रहें, तो पत्ती को मुड़ते देखकर वे उड़ जायँगे, और फिर पौदे को ख़ाली हाथ पछताना पड़ेगा। किंतु इनके अतिरिक्त ऐसे पौदे भी हैं, जो तेज़ हरकत करके कीड़ों को पकड़ते हैं। अतः उन्हें किसी चिपचिपी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती। बस, कीड़ा बैठा नहीं कि झट उन्होंने पकड़कर अपने पंजे में किया। यह घटना इतनी रहस्य-पूर्ण है कि जल्दी समझ में नहीं आती कि यह गति किस प्रकार होने लगती है।

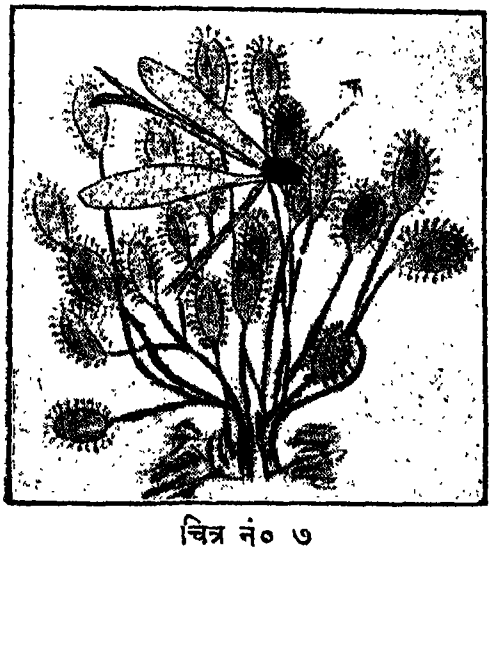
यहाँ चित्र नं० ६ सन-ड्यू * (Sun dew) की पत्ती का है। इस पत्ती में जैसा कि चित्र (अ०) में प्रदर्शित है, अनेक छोटी-छोटी पतली उँगलियों के आकार की रचना कई क़तार में होती है। इन उँगलियों के सिरे पर छोटी-छोटी गाँठें होती हैं। ज्यों ही कीड़ा पत्ती के भाग या इन उँगलियों पर आ बैठता है, त्यों ही समस्त पत्ती में एक अद्भुत उत्तेजना उत्पन्न होती है और सारी उँगलियाँ उस

* D. Burmanni हिंदोस्तान में, मुख्यतः दक्षिण में, मिलता है।



चित्र नं० ६

कीड़े पर मुड़ जाती हैं। पत्ता भी गहरी हो जाती है, और चम्मच की शक्ल धारण कर लेती है। उस पर उँगलियाँ ऐसी बंद हो जाती हैं, मानों किसी ने कीड़े को मुट्ठी में बंद कर लिया हो। यह तमाशा चित्र (ब०) में, कीड़े (क) के ऊपर, उँगलियाँ बंद होकर दिखा रही हैं। इसके उपरांत यह उपर्युक्त कही हुई गाँठों से प्राण-घातक रस निकालकर कीड़े का काम तमाम करता है। कीड़ा



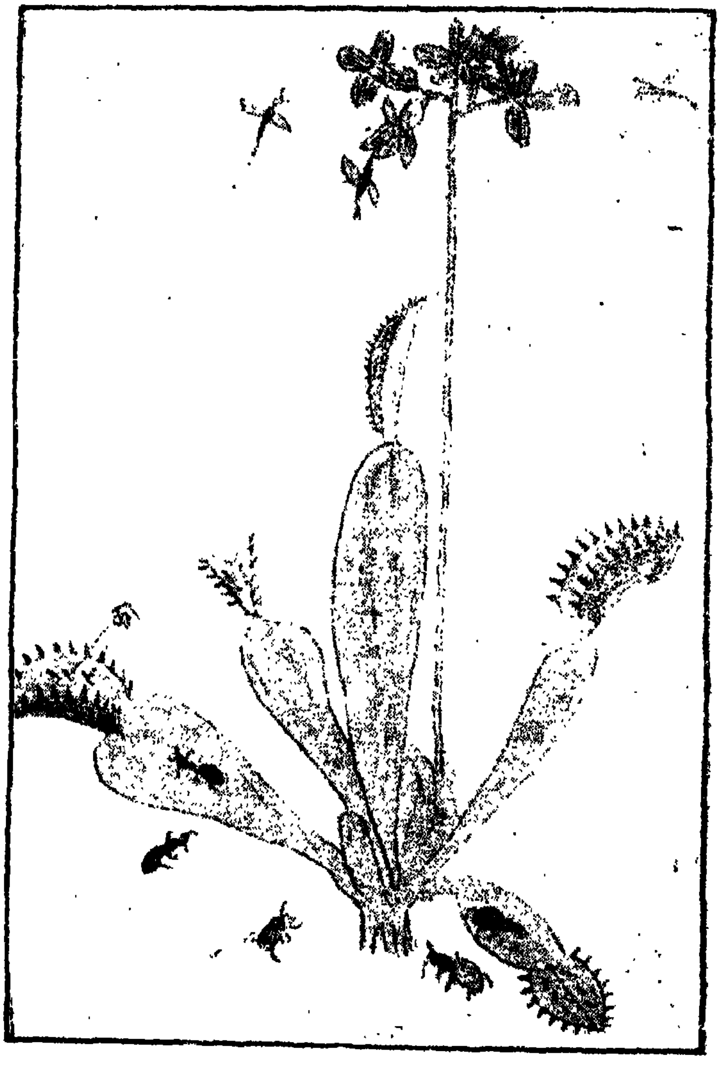
चित्र नं० ७

चम्मच में पककर पौदे का पेट भरता है। इस क्रिया के समाप्त होने पर उँगलियाँ थककर फिर सीधी हो जाती हैं, और दूसरे शिकार की घात में बैठकर समय काटती हैं। यह उदाहरण तो ऐसा है, जिसमें एक शिकार के पकड़ने के लिये एक ही पत्ती का उद्योग दिखाई देता है। किंतु इसके अतिरिक्त ऐसे पौदे भी हैं, जिनमें शिकार के पौदे के किसी अंग के स्पर्श से सारे पौदे में हलचल मच जाती है। यहाँ चित्र नं० ७ में एक ऐसा ही पौदा है, जिसकी तीन पत्तियों ने मिलकर एक फर्तिंग-मक्खी (फ) (dragon fly) को बड़ी भयंकर रीति से जकड़ रक्खा है। अब उसका छुड़ाकर भागना असंभव है। ऐसे भयानक चंगुल में फसे हुए जीवों की जो गति हुई है, इसकी भी वही समझिए। इस श्रेणी के पौदे तितली, मक्खी, गुबरैले, चींटी तथा पतिंगे आदि से अपना पेट भरते हैं। भारतवर्ष में— शिमले में —इस जाति का पौदा मिलता है, जिसका नाम ड्रासेरा ल्यूनेटा (Drosera lunata) है। इसकी पत्तियाँ चंद्राकार होती हैं, और यह नरम भूमि में उपजता है। इन पौदों का स्पर्श-ज्ञान इतना प्रबल होता है कि चित्त चकित हो जाता है। जिस स्पर्श-ज्ञान के लिये हमारे शरीर में इतने टेढ़े स्नायु-मंडल का निर्माण हुआ है—जिसकी सहायता के विना हमारे कोई कार्य नहीं हो सकते—वह सब इन पत्तियों के स्पर्श-ज्ञान के सामने भूल जाता है। परीक्षा लेने से इस बात का प्रमाण मिलता है कि एक अत्यंत पतले बाल का टुकड़ा, जिसकी लंबाई $\frac{१}{१६५}$ इंच और वज़न·०००० ८२२ मिली-ग्रॉम था, रखते ही पत्ते की उँगलियाँ हिलने लगीं, और थोड़ी ही देर में मुट्ठी बँध गई। इससे कई गुना बड़ा या भारी टुकड़ा तेज़-से-तेज़ ज़बानवाले आदमी को कुछ नहीं जान पड़ेगा। फिर $\frac{१}{४००००}$ मिली-ग्रॉम अमोनियम सल्फ़ेट डालते ही विलक्षण उत्तेजना

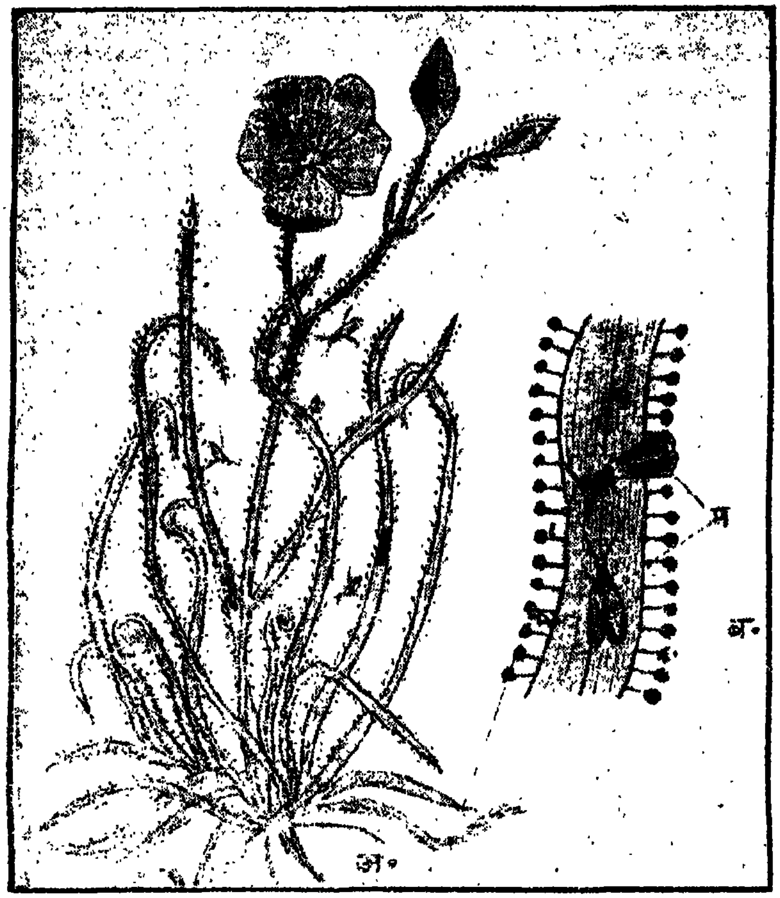
पैदा हो गई। इनका चैतन्य ऐसा प्रशंसनीय है! मनुष्य-शरीर के किसी भी भाग में इस दरजे के ज्ञान का चिह्न नहीं मिलता।

कीड़ों के पकड़ने का सबसे अद्भुत उदाहरण वीनस-फ्लाई-ट्रैप (Venus' Fly trap) नामक पौदों में मिलता है। इस पौदे की भी पत्तियाँ भूमि से बहुत ऊँची नहीं जातीं। पत्ती का अग्रभाग (चित्र ८) देखने से खुली हुई पुस्तक का अनुमान होता है। उसके दोनों किनारों पर बलिष्ठ दाँतों की पंक्ति होती है, और वह एक हिंसक जंतु के खुले हुए मुँह के समान दिखाई देती है। पत्ती के इसी भाग की ऊपरी सतह पर, मध्य-रेखा के प्रत्येक ओर, तीन-तीन काँटे (का) होते हैं। इन काँटों को अद्भुत स्पर्श-ज्ञान होता है। पत्ती को सिवा इस काँटेदार स्थान के और कहीं छूने से कोई उत्तेजना नहीं होती। किंतु यदि मध्य-रेखा के दोनों ओर का एक काँटा भी छू जाय, तो आफ़त ही आई समझिए। पत्ती चूहेदानी के खटके की तरह झट बंद हो जाती है, और किनारे के दाँत एक दूसरे के बीच में निकल-कर ऐसे जकड़ लेते हैं, जैसे मगर अपने दाँतों से अपना शिकार पकड़ता है, अथवा कोई मनुष्य अपने दोनों हाथों की उँगलियों का प्रयोग कर, हाथों में ख़ूब कसकर किसी वस्तु को पकड़ता है। चित्र नं० ८ में इसी जाति के पौदे की शक्ल दी है। जब कोई अभागा कीड़ा रेंगते-रेंगते पत्ती के इस भाग पर आ पहुँचता है, तो उपर्युक्त काँटों में से एक से टकराकर अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारता है; क्योंकि छूते ही तत्काल पत्ती मुँह बंद कर दाँतों को बल-पूर्वक जकड़ लेती है। इसके उपरांत काँटों की समीप-वर्ती थैलियों से वही हलाहल निकलता है, जो बेचारे कीड़ों के लिये प्राण-घातक होकर उनका शीघ्र ही अंत कर देता है।

जर्मनों का बिजली का उदाहरण भी इसी में मिलता है। वैज्ञानिकों ने अनुसंधान कर यह निश्चय किया है कि जब इसके काँटे में कोई वस्तु छू जाती है, तो एक विलक्षण उत्ते-जना उत्पन्न होकर पत्ती में बिजली दौड़ने लगती है। इस बिजली के प्रवाह को उन्होंने यंत्रों द्वारा नाप तक लिया है। इसी प्रवाह के प्रभाव से पत्ती स्प्रिंग-लगे खटके की भाँति फ़ौरन् बंद हो जाती है। यदि ऐसी ही रचना मनुष्य को करने को दी जाय, तो बड़ी कठिन समस्या आ खड़ी होगी। सत्य है, मनुष्य के कार्यों की प्रकृति से क्या समता? मनुष्य भी तो प्रकृति का ही एक खेल है।



चित्र नं० ८



चित्र नं० ९

की तरह उँगलियाँ और न हिलने-डोलने की ही शक्ति। तथापि यह अपना शिकार पकड़ने में बड़ा प्रवीण है। इसके पास केवल लंबी-लंबी पत्तियों के दोनों किनारों पर छोटी गाँठें होती हैं, जो आवश्यकतानुसार गोंद तैयार कर बाहर निकाला करती हैं। इसके अतिरिक्त पत्ती के ऊपर छोटे-छोटे अनेक कोष होते हैं। इन कोषों से पाक रस का स्राव होता है। चित्र नं० ८ के (ब०) में एक ऐसा पत्ता काटकर, जिसमें कीड़े फँसे हुए हैं, दिखाई गई है। मक्खी के पत्ते पर बैठते ही उसके पंख, पैर और शरीर में यह लसदार वस्तु चिपक जाती है, जिससे खिन्न होकर मक्खी छुड़ाने की चेष्टा से रेंगकर उस स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है, तो वहाँ और अधिक लसदार वस्तु उसके पीछे पड़ती है, और इस उद्योग में वह "छूट न अधिक-अधिक अरुझाई" के वश हो प्राण-त्याग करती है। पौदे की क्षुधाग्नि से उत्तेजित रस निकलकर उसे चूस लेते हैं। पुर्तगाल में ओपोर्टो-निवासी इस पौदे को छोटे-छोटे गमलों में लगाकर कमरों तथा रहने के स्थानों में टाँग देते हैं, और यह मक्खियों को फँसाकर उनको महा उत्पात से बचाता है। इनसे सज्जा भी रहती है, और एक बड़ा काम भी निकलता है। "आम के-आम और गुठलियों के दाम" इसी का नाम है।

इस कथा को समाप्त करते हुए एक छोटे शिकारी पौदे का स्मरण हो आया। इसका नाम है मक्खीमार (Fly catcher)। प्रत्येक व्यक्ति को इसका अनुभव है कि मक्खियों के मारे नाकों दम रहता है। उन्हें दूर करने के अनेक यत्न करने पर भी वे पीछा नहीं छोड़तीं। 'फारमलीन' छिड़ककर उन्हें भगाने की अपेक्षा मक्खीमार-काग़ज़ प्रयोग करने की प्रथा अधिक है। इस काग़ज़ को मक्खियों के आने-जाने तथा उड़ने के स्थान पर फैला देते हैं। काग़ज़ पर एक लसदार वस्तु पुती होती है, जिसको देखकर मक्खियों की इच्छा उस पर बैठने की होती है। परंतु उस पर बैठते ही उनके पंख फँस जाते हैं, और वहीं उनका काम तमाम हो जाता है। इससे भी उत्तम क्रिया इस मक्खीमार पौदे में होती है। यद्यपि इस बेचारे के पास न पिचर पौदे के समान पेट है, न सन-ड्यू

श्रीकमलादत्त त्रिपाठी

प्रेम-प्रभाव

(१)

है वह निष्ठुर, किंतु मुझे खलती न कभी उसकी निठुराई;
हैं उसके कटु बोल सुधा-कण-से लगते मुझको सुखदाई।
रोष-भरे उसके दृग की करती मन मुग्ध ललाम ललाई;
याद नहीं रहती दुख की लख के उसकी मुख-चंद्र-जुन्हाई।

(२)

है उसका चिढ़ना नित ही मुझको युग जीवन का फल पाना ;
है सुख-साज-समान मुझे उसका निज भौंह-कमान चढ़ाना ।
है मन को मुददायक ही उसका मुझको बहुभाँति खिझाना ;
घायल जो उर को करता, वह है उसका मुझको तज जाना ।

गोपालशरणसिंह

मुसोलिनी

कौन जानता था कि ब्रीमन के सैनिक स्कूल का एक एकांत-सेवी एवं प्रतिभा-हीन बालक किसी समय फ़्रांस का सम्राट् तथा योरप का विजयी होगा ? कौन जानता था कि बंबई-हाईकोर्ट का एक असफल बैरिस्टर, जिसने निराश होकर स्कूल-टीचरी के लिये कोशिश की, और वहाँ से कोरा जवाब पाया, एक दिन संसार का सबसे बड़ा आदमी होगा ? कौन जानता था कि इटली के एक देहाती लुहार का लड़का किसी समय इतना शक्तिशाली पुरुष होगा, जिसके भय से बड़े-बड़े साम्राज्यों के कर्णधार काँपेंगे ? माना कि लुहार का लड़का बड़ा चटपटा था; पर इससे क्या ? लुहार का लड़का बड़ी तरक़्क़ी करेगा, किसी कंपनी का फ़ोरमैन हो जायगा ; और यदि वह इस सीमा को भी पार करे, तो एक इंजीनियर हो सकता है । परंतु जिस लुहार के बारे में हम लिख रहे हैं, वह वास्तव में होनहार था । लेकिन उसको होनहार समझते हुए भी किसी ने स्वप्न में भी यह ख़याल नहीं किया था कि वह एक दिन इटली का राष्ट्र-संचालक होगा । संचालक ही नहीं, इससे भी कुछ अधिक !

मुसोलिनी इस समय क्या है, इसका उत्तर इस लेख की सीमा के बाहर है । मुसोलिनी के चरित्र की समालोचना उसके जीवन-काल में नहीं हो सकती । भविष्य में इतिहास के विद्यार्थी इस प्रश्न पर विचार करेंगे । इस समय एक तटस्थ दर्शक के लिये मुसोलिनी एक आँधी है, जिसके सामने खड़े होने पर हाथ हठात् आँखों की रक्षा के लिये उठते हैं । अपने शत्रुओं के लिये वह ग्रीष्म का सूर्य है । वे उसके तेज से तिलमिला रहे हैं । जो वास्तव में उससे द्वेष रखते और दिन-रात उसके पतन के लिये प्रयत्न कर रहे हैं, वे भी उसके सामने उसकी ताज़ीम करते हैं ; उसके संकट-काल में सहानुभूति के तार भेजते हैं ; उसकी विजय पर बधाई के संवाद भेजते हैं । भुवन-विख्यात कविसम्राट् रवींद्र ने मुसोलिनी के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है—"उसके गंभीर मुख-मंडल को देखने से ही उसके प्रति अपने-आप सम्मान पैदा होता है, और यह विश्वास नहीं होता कि यह वही व्यक्ति है, जिसके विरुद्ध निर्दय एवं अत्याचारी होने का दोष लगाया जाता है ।"

शत्रुओं के लिये मुसोलिनी काल के समान कठोर है । उनको दंड देने के लिये वह निर्दयता से काम लेता है । अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह हीन-से-हीन काम कर सकता है । उसके लिये 'न्याय', 'उचित' अथवा 'अनुचित' की दुहाई वृथा है । परंतु ऐसा होने पर भी वह इटली-निवासियों की आँख की पुतली है । इटली उसके उपकारों के लिये कृतज्ञ है ; क्योंकि वह इटली का रक्षक है । इटली को उसने संकट-काल में बचाया है । जिस महायुद्ध के बाद फ़्रांस-जैसा देश दिवालिया हो गया, इटली उसके बाद एक महाशक्ति होकर निकला । यह है केवल एक व्यक्ति का पुरुषार्थ ! इटली के लोग उसके दीर्घ जीवन के लिये प्रार्थना करते हैं । उसके अनुयायियों में केवल 'विवेक-हीन जनता' ही नहीं है, वरन् बड़े-बड़े विद्वान्, धुरंधर राजनीतिज्ञ—जिनमें से बहुत-से कई बार मंत्रि-मंडलों में रह चुके हैं—प्रोफ़ेसर, लेखक, संपादक, राजवंशीय सरदार तथा बड़े-बड़े ज़मींदार उसके भक्त हैं । वह मज़दूर और पूँजीपति, दोनों को प्रिय है । जहाँ मुसोलिनी का पसीना बहता है, वहाँ इटली की जनता अपना ख़ून बहाने को तैयार है । वह मुसोलिनी के विरुद्ध एक बात कहनेवाले को दस खरी-खोटी सुनाने को तैयार है ।

किंतु जहाँ मुसोलिनी के ऐसे भक्त हैं, वहाँ उसके कट्टर दुश्मनों की भी कमी नहीं है । हम रात-दिन समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं कि उसके ऊपर बम फेंका गया, उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचे जाते हैं, उसके जीवन का अंत करने के लिये उसके शत्रु अपने जीवन का प्रण कर चुके हैं । कई बार यह वीर पुरुष हत्यारों की घात से बाल-बाल बचा है । और, बहुत ही संभव है कि मुसोलिनी एक कर्म-योगी की तरह अपना काम करते हुए किसी हत्यारे के बम का शिकार हो जाय ।

वह निर्भीक है। बम के धड़ाके से उसके दिल की धड़कन सत्तर से बहत्तर नहीं होती। बड़ी-बड़ी विचलित करनेवाली घटनाओं से भी उसके प्रोग्राम में एक मिनट का भी फ़र्क़ नहीं पड़ता।

किंतु षड्यंत्रों और बम-कांडों से यह सिद्ध नहीं होता कि वह इटली में अप्रिय है, वरन् इसके विपरीत बम-कांड के बाद की घटनाएँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि इटली-निवासी उसको कितना चाहते हैं। दो बम-कांडों में हम देख चुके कि बम फेंकनेवालों के ऊपर क्रोधांध जनता किस प्रकार टूट पड़ी, और पुलीस को हत्यारों की रक्षा करने में कितनी क्षति उठानी पड़ी। वास्तव में इटली की जनता मुसोलिनी के दुश्मनों के ख़ून की प्यासी है।

इस समय मुसोलिनी योरप का सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति है। यदि महायुद्ध में जर्मनी की विजय होती, तो उसके बाद कैसर का जो स्थान संसार में होता, वही इस समय मुसोलिनी का है। उसका आतंक सभी पर है। यद्यपि इटली इतना शक्तिशाली नहीं है, जितना इँगलैंड, फ़्रांस अथवा अमेरिका। तथापि इस समय मुसोलिनी के शब्दों में बाल्डविन अथवा पुआँकारे के शब्दों से अधिक ताक़त है। इससे अधिक कुछ न कहकर हम अपने पाठकों को मुसोलिनी के जीवन से परिचित कराते हैं। मुसोलिनी का जीवनचरित्र पढ़ने से स्पष्ट विदित होगा कि वह केवल परिस्थिति से लाभ उठानेवाला ही मनुष्य नहीं है। वरन् उसमें ऐसे गुण भी विद्यमान हैं, जिनसे वह केवल परिस्थितियों का अनुगमन न कर उन्हें अपने अनुकूल बनाता है। पर यदि हम यह कहें कि वह स्वयं परिस्थितियों को पैदा करता है, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। यही महान् आत्मा का लक्षण है।

बेनिटो मुसोलिनी का जन्म २९ जुलाई, सन् १८८३ ई० को, इटली के रोमाना (Romagna)-प्रांत के अंतर्गत डेविया-ग्राम में हुआ था। पिता का नाम एलेसांद्रो मुसोलिनी और माता का रोज़ा था। एलेसांद्रो साधारण स्थिति का मनुष्य था। वह लुहारी के काम से जीविका चलाता था, और साथ ही डेविया-गाँव की सराय का चौकीदार भी था। इससे भी कुछ आय हो जाती थी। पाठकों को आश्चर्य होगा कि मुसोलिनी-जैसे पुरुष का बाप लुहार और भठियारे का काम करता था। परंतु ऐसा होना भारतीय पाठकों के लिये स्वाभाविक है; क्योंकि 'लुहार' कहने से सहसा हमारे सामने अपने देश के एक मैले-कुचैले, अपढ़ प्राणी का दृश्य आ जाता है। वह अपने 'कारख़ाने' में बैठकर हथौड़ी पीट रहा है।



बेनिटो मुसोलिनी

उसका बारह वर्ष का लड़का एक लँगोटी पहने, पसीने से तर, बाबा आदम के ज़माने की धौंकनी धौंक रहा है। 'क' उसके लिये इतना ही काला है, जितना उसका कालिख लगा हुआ शरीर। ऐसे लुहार के बालक में नेतृत्व की आशा का स्वप्न भला कौन देखता? परंतु लुहार एलेसांद्रो हमारे देश के लुहारों के समान न था। यद्यपि उसने किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं पाई थी, तथापि अपनी भाषा का उसे अच्छा ज्ञान था। मेज़िनी का अनुयायी होने से वह देश की स्वतंत्रता के युद्ध में भाग ले चुका था। संसार की प्रगति का उसको सम्यक् ज्ञान ही न था, वरन् वह स्वयं अंतरराष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लिया करता था। उस समय योरप में साम्यवाद का उदय हो रहा था। साम्यवाद की एक शाखा का नाम 'Internationlism' है। एलेसांद्रो इसी विचार-पद्धति का अनुयायी था। वह अपने आसपास के प्रांत में इस आंदोलन का नेता समझा जाता था। अपने विचारों के ही कारण उसे तीन साल तक जेल की हवा भी खानी पड़ी थी। यही नहीं, वह अपने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का प्रधान भी था। मुसोलिनी ऐसे लुहार का लड़का था। अतएव मुसोलिनी की नसों में राजनीतिक तत्त्व भिदे हुए थे। परंतु पिता की अपेक्षा माता का बच्चे के स्वभाव और चरित्र पर अधिक प्रभाव पड़ता है। रोज़ा एक विदुषी महिला थी। उसका स्वभाव इतना अच्छा था कि पड़ोस के लोग उसको, छोटी अवस्था होने पर भी, सम्मान की दृष्टि से देखते थे। वे उसको "अच्छी बी" कहकर संबोधन करते थे। वह अपने गाँव की पाठशाला में अध्यापिका थी। पाठशाला उसी सराय में थी, जिसका संरक्षक एलेसांद्रो था। मुसोलिनी ने प्रारंभिक शिक्षा अपनी माता द्वारा इसी स्कूल में पाई।

बाल्यकाल में मुसोलिनी बड़ी ही उद्धत प्रकृति का था। अपने से बड़े लड़कों पर भी उसका आतंक जमा रहता था। खेल-कूद में उसका अधिक समय व्यतीत होता था। गाँव-भर के लड़के उसको अपना अगुआ मानकर खेला करते थे। अगुआ बनने के लक्षण उसमें बचपन से ही हैं। प्रारंभ में उसने अपने पिता से लुहारी का काम सीखा, और माता से पढ़ना-लिखना। इन शिक्षाओं के साथ-साथ मुसोलिनी के चरित्र में एक वृद्धा स्त्री के चरित्र की छाप पड़ी। पड़ोस में एक 'गिवोना' नाम की वृद्धा रहती थी। उसका जीवन अद्भुत था। उसकी इच्छा-शक्ति बड़ी प्रबल थी। लोगों के दिल में उसका रोब था। वह कुछ जादू-टोना तथा हाथ देखकर भाग्य-परीक्षा भी करती थी। मुसोलिनी ने बचपन में उससे ये बातें सीखी थीं। अपनी इच्छा-शक्ति से लोगों को निस्तेज कर देना मुसोलिनी ने इसी बुढ़िया से सीखा। भविष्य में क्या होगा, इसका पहले से उसे आभास हो जाता है। इस बात से हमारा तात्पर्य यह नहीं कि वह जादूगर है; परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि भविष्य-दर्शी अवश्य है। आनेवाली घटना का सामना करने के लिये वह तैयार रहता है। हाँ, यह उसकी राजनीतिक दूरदर्शिता हो सकती है। इस बुढ़िया के अतिरिक्त प्रसिद्ध उपन्यासकार और कवि विक्टर ह्यूगो के विचारों की भी मुसोलिनी पर छाप पड़ी। ला मिज़रेबिल्स (Les Miserables) का अनुवाद उसने कई बार पढ़ा। वह उसकी एक प्रति सदैव अपने पास रखता था। इसके अध्ययन से उसका मानसिक विकास हुआ, और साथ ही उसकी ज्ञान-पिपासा जाग्रत् हुई। विदुषी माता बालक की चित्त-वृत्ति को ताड़ गई। वह समझ गई कि बालक शिक्षा का प्यासा है, उसको उच्च शिक्षा की आवश्यकता है। किसी-न-किसी प्रकार उसे कॉलेज में भेजने का प्रबंध होना चाहिए। यह विचार माता के चित्त को चिंतित करने लगा। परंतु माता के इस विचार से पिता सहमत न था। इसका कारण यह था कि आस-पास के सब कॉलेजों में पादरी ही शिक्षक थे। वह नहीं चाहता था कि मुसोलिनी के मानस-पटल पर पादरियों के विचारों की छाया पड़े। परंतु अंत में वह फ़ायंज़ा-नगर के 'सालसियन फ़ादर्स' कॉलेज में भरती करा दिया गया। मुसोलिनी में यद्यपि ज्ञान की तृषा थी, तथापि नियम-बद्ध होकर पढ़ने में उसका चित्त नहीं लगता था। कॉलेज उसके लिये जेलख़ाना था। किसी प्रकार घर का मोह त्यागकर वह छः वर्ष तक फ़ायंज़ा के कॉलेज में रहा। तत्पश्चात् उसने एक ट्रेनिंग-कॉलेज में प्रवेश किया। इस प्रकार अठारह वर्ष की अवस्था में वह एक ट्रेंड टीचर हो गया।

शिक्षा समाप्त करते ही जीविका की चिंता हुई। मुसोलिनी के ज़िले का सदर प्रीडापियो है। इसी शहर की चुंगी में सेक्रेटरी का स्थान रिक्त था। मुसोलिनी ने प्रार्थना-पत्र भेजा, और वहाँ से उसे कोरा जवाब मिला। उसकी अवस्था काफ़ी नहीं समझी

गई। परंतु अवस्था का प्रश्न तो केवल बहाना-मात्र था। बात दूसरी ही थी। इस छोटी अवस्था में मुसोलिनी अपने तीव्र स्वभाव तथा स्वतंत्र विचारों के लिये प्रसिद्ध हो चुका था। चुंगी-विभाग समझता था कि यदि वह सेक्रेटरी होगा, तो हर बात में तूफ़ान खड़ा कर देगा। चुंगी-विभाग के इस कृत्य से एलेसांद्रो के आत्माभिमान को बड़ा धक्का लगा। उसने बड़े गंभीर और तीव्र स्वर में मेयर तथा सदस्यों को फटकारते हुए कहा—"इस बात को याद रक्खो। तुम कभी अपने इस कृत्य के लिये पछताओगे। एक समय क्रिस्पी भी अपने स्थानीय बोर्ड की लिकरी के अयोग्य समझा गया था।" एलेसांद्रो के ये शब्द उस समय भले ही हँसी में उड़ा दिए गए हों, परंतु आज इन शब्दों का वज़न मालूम होता है। एक लुहार का अपने लड़के के ऊपर इतना विश्वास कि वह उसके लिये क्रिस्पी-जैसे भुवन-विख्यात, शक्तिशाली राजतंत्री (Statesman) के-से भविष्य की आशा करता है। इस समय यह कहने का भी साहस नहीं होता कि एलेसांद्रो ने ये बातें निराधार कह दी थीं। वास्तव में वह मुसोलिनी के अंदर जलती हुई दीप-शिखा को देखता था, और उसे पूरा विश्वास था कि वह शिखा किसी समय प्रकट होकर संसार की आँखें चौंधिया देगी।

एक प्रकार से यह बहुत ही अच्छा हुआ कि उसको चुंगी की नौकरी नहीं मिली। आराम की रोटी उन्नति में बाधक है। ठोकर खाने से आदमी को दुनिया का अनुभव होता है; आत्मविश्वास की वृद्धि होती है। अभी तक मुसोलिनी को परिजनों का बड़ा मोह था। इस समय उसने साहस करके घर छोड़ा, और कुछ बनकर लौटा। इमिलिया-प्रांत में ग्वालतेरी-नामक एक क़स्बा है। मुसोलिनी वहाँ पर शिक्षक हो गया। थोड़े समय में अधिकारियों से खटपट हो जाने के कारण उसको वह स्थान छोड़ना पड़ा। बात यह थी कि ग्वालतेरी में कुछ नामधारी साम्यवादी रहते थे। मुसोलिनी आदर्शवादी साम्यवादी था। वह कहता था कि साम्यवाद कोई मौखिक वाद-विवाद की चीज़ नहीं है; सिद्धांतों का आचरण होना चाहिए। वह अपने स्वाभाविक मुँहफट तरीक़े से सब लोगों से वाद-विवाद करता था। पाठशाला के अधिकारियों को एक 'स्कूल टीचर' का राजनीतिक विषयों में इस प्रकार बढ़-बढ़ कर बातें करना खटकता था। नगर के मेयर और मुसोलिनी में खटपट रहने लगी, और एक दिन अच्छी तरह से निपटारा हो गया। मुसोलिनी कहता था कि उसको जो वेतन मिलता है, वह उसकी पेट की ज्वाला को शांत करने के लिये पर्याप्त नहीं है। दूसरी शिकायत यह थी कि उसको विचारों की स्वतंत्रता में अवरोध न किया जाय। रोटी के बदले उसने अपना कुछ समय अवश्य बेच दिया था; परंतु अपनी आत्मा का विक्रय नहीं किया था। इसी बात पर उसने त्याग-पत्र दे दिया।

जिस समय मुसोलिनी ने नौकरी छोड़ी, उसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी। बनिए का हिसाब कोट बेचकर चुकाया। शाम को खाना मिलने की आशा न थी। वह स्विज़रलैंड जाना चाहता था; पर टिकट के लिये पैसा नहीं। उसने घर को बड़े संकोच के साथ तार दिया। घर की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। परंतु माता ने ज्यों-त्यों करके कुछ भेजा। उस धन से टिकट ख़रीदकर उसने स्विज़रलैंड की गाड़ी पकड़ी। एक स्टेशन में उसने एक दैनिक पत्र ख़रीदा। देखता क्या है कि पिता की गिरफ़्तारी का समाचार छपा है। घर से दूर है, और लौटने के लिये पैसा नहीं। माता को सांत्वना देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। इस दुबधा में भी उसके विदेश-यात्रा के उत्साह ने विजय पाई।

जिस समय वह इवर्डन-नगर में पहुँचा, उसके पास एक बार की चाय के लिये भी काफ़ी पैसे न थे। स्विज़रलैंड में उसने किन-किन कष्टों का सामना किया, और किस अदम्य साहस से अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न किया, इसका पूरा विवरण यहाँ पर देना उपयुक्त नहीं। इवर्डन के पास ही ओर्ब-नगर है। वहाँ आकर मुसोलिनी ने मेमारी का काम करके जीविकोपार्जन किया। कुछ दिनों तक तो वह केवल पत्थर और गारा देने का काम करता रहा। परंतु थोड़े ही समय में वह मेमार का काम भी सीख गया, और अनेक वर्षों तक उसने इस काम से रोज़ी कमाई। मुसोलिनी ने स्वयं एक पत्र में, जिसमें ३ दिसंबर, सन् १६०२ की तारीख़ पड़ी है, अपने मित्र को लिखा है कि "मैं ग्यारह घंटे तक कठिन परिश्रम करता हूँ। शाम को कुछ भुने हुए आलुओं से ही संतोष करना पड़ता है। सोने के लिये पुआल है। ओढ़ने की कमी के कारण पहनने के कपड़े उतारने की नौबत नहीं आती।" लेकिन थोड़े दिनों के बाद यह भी नहीं रहा। ठेकेदार से झगड़ा हो

गया । मुसोलिनी उसकी अनावश्यक झिड़की बरदाश्त करने को तैयार न था । हाथ का काम भी मानसिक परतंत्रता से मुक्त नहीं है ।

ओर्ब छोड़ने के बाद मुसोलिनी लुज़ान पहुँचा । इस समय भी उसके पास एक पैसा नहीं था । दो दिन तक निराहार, निराश्रय होकर राजमार्ग तथा पार्कों में पड़ा रहा । स्विस क़ानून के अनुसार जिस व्यक्ति के पास कुछ पैसा नहीं है, वह जेल के बाहर नहीं रह सकता । पुलीस से जान बचाने के लिये वह इधर-उधर फिरता रहा । जब क्षुधार्त होकर चलने में असमर्थ हो गया, तब तो एक पार्क में विलियम टेल की मूर्ति के नीचे बैठ गया । कई बार उसके मन में विचार आया कि सुंदर वस्त्राभूषणों से युक्त सैलानी दंपतियों से कुछ याचना करे । इसके लिये मन में फ्रेंच के छोटे-छोटे वाक्य बनाकर कहने को वह तैयार भी होता था ; परंतु झट उसका आत्माभिमान उसके दीन वचनों को उसकी ज़बान पर ही रोक देता था ।



मुसोलिनी की पुत्री एडा

धनी लोगों के भोग-विलास की प्रचुरता और भूखे लोगों का क्षुधा-ज्वाला का दृश्य एक ही साथ देखने से उसके साम्यवादी विचारों में तीव्रता आ गई । एक दिन मुसोलिनी लुज़ान के पुल के नीचे बालू पर सो रहा था । रात को वर्षा हुई । उससे बचने के लिये वह पास की दूकान से एक टीन की चद्दर, जो बाहर पड़ी हुई थी, ले आया । दूसरे ही दिन उसको जेल की हवा खानी पड़ी । यह उसकी पहली कारागार-यात्रा थी ।

मुसोलिनी ने मेमार का काम करके निर्वाह किया, और जेनेवा-विश्वविद्यालय में अध्ययन भी करता रहा । यहाँ उस पर प्रोफ़ेसर विल्फ़्रेडो पैरेटो का ख़ूब प्रभाव पड़ा । इनकी देख-रेख में उसे थोड़े ही समय में राजनीति और अर्थशास्त्र का अच्छा ज्ञान हो गया । साथ ही उसने फ्रेंच, जर्मन, इँगलिश, और स्पेनिश का अध्ययन किया । फ्रेंच में तो उसका अच्छी तरह से प्रवेश हो गया ।

जेनेवा में विद्यार्थी-जीवन व्यतीत करते हुए वह अपने स्वतंत्र और साम्यवादी विचारों के कारण स्थानीय अधिकारियों की नज़रों में चुभने लगा । फल-स्वरूप जेनेवा से निर्वासित कर दिया गया । वहाँ से वह ज़्यूरिच गया । यहाँ भी उसकी आँच अधिकारियों को असह्य हो गई, और वह निर्वासित कर दिया गया । थोड़े दिनों तक जर्मनी में भ्रमण करने के बाद सन् १९०४ ई० में वह



मुसोलिनी का पुत्र विटॉरियो

बर्न-नगर में आया। वहाँ एक दिन वह एक व्यक्ति से साम्यवाद पर बहस कर रहा था। बात-ही-बात में हाथा-पाई की नौबत आ गई। मुसोलिनी पर राजनीतिक अपराध करने का अभियोग लगाया गया, और वह स्विज़रलैंड से निर्वासित कर इटली भेज दिया गया।

इटली लौटने पर वह कुछ दिनों तक एक स्कूल में फिर अध्यापक रहा। परंतु वास्तव में यह काम उसकी प्रकृति के अनुकूल न था। वह तो राजनीतिक क्षेत्र में युद्ध करने के लिये अवतीर्ण हुआ था। १९०७ ई० में वह एक बार ट्रेंट की यात्रा के लिये गया। ट्रेंट महासमर के पूर्व आस्ट्रियन साम्राज्य के अंतर्गत था। रक्त, वेश-भूषा और भाषा में ट्रेंट-निवासी इटालियन हैं। दोनों की इच्छा एक होने की थी। परंतु इटलीवाले अपने पराधीन भाइयों की सहायता करने में असमर्थ थे। जिस प्रकार आजकल भारतवासी अपने प्रवासी भाइयों की दुर्दशा देख मन मसोसकर रह जाते हैं, ठीक उसी प्रकार इटलीवाले भी सहानुभूति प्रदर्शित करके ही रह जाते थे। परंतु इटली स्वयं स्वतंत्र था, इसलिये उसकी सहानु-भूति में कुछ बल था। यही कारण है कि इटलीवाले अवसर पाते ही अपने बिछुड़े हुए भाइयों से मिल सके।

जब मुसोलिनी ने ट्रेंट-निवासियों के कष्टों का अनुभव किया, तो उसको प्रतीत हुआ कि वहाँ रहकर अपने असहाय देशवासियों की सेवा करनी चाहिए। ट्रेंट के मज़दूर-संघ ने उसको अपना मंत्री नियुक्त किया। बस, इसी समय से मुसोलिनी का राजनीतिक जीवन आरंभ होता है। साम्यवादी दल के प्रमुख-पत्र 'पोपोलो' का संपादन-भार भी उसी पर आ पड़ा। इस पत्र के द्वारा उसने प्रथम बार अपने विचारों को देश के सामने रक्खा। आस्ट्रिया की सरकार को यह विचार-स्वातंत्र्य सह्य नहीं हुआ, और मुसोलिनी के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिये उसके ऊपर विद्वेषात्मक लेख लिखने का अपराध लगाया गया। फलतः थोड़े दिन के कठिन कारावास का दंड देकर वह आस्ट्रिया की सीमा से निर्वासित कर दिया गया। किंतु इटली आकर उसने दुगने उत्साह से काम किया। सन् १९१० ई० में उसने 'la lotta de clas' (The class war)-नामक पत्र निकाला। पत्र की नीति उसके नाम से ही स्पष्ट है। मुसोलिनी कट्टर साम्यवादी था; परंतु अंतरराष्ट्रीय नहीं। उसका साम्यवाद देश के हितों का विरोधी नहीं था। वह इटली की शासन-प्रणाली से संतुष्ट नहीं था। उसमें केवल उच्च श्रेणी के लोगों का हाथ था। इन्हीं लोगों के हाथों से शक्ति छीनने के लिये उसने अपने शक्तिशाली पत्र का संचालन किया। दो वर्ष तक उसने इस पत्र का संपादन किया। इस अर्से में मुसोलिनी के जीवन में बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुईं। दो वर्ष के बाद हम मुसोलिनी को सारे साम्यवादी दल का नेता देखते हैं। उसका पत्र इतनी साधारण स्थिति में निकलता था कि मुसोलिनी संपादक, प्रूफ़-रीडर, प्रेषक और कभी छापने का काम भी स्वयं किया करता था। किंतु वही पत्र अल्प काल में देश के उच्च कोटि के पत्रों में गिना जाने लगा, और उसके कार्यालय में सैकड़ों आदमी काम करने लगे।

मुसोलिनी से पत्र की और पत्र से मुसोलिनी की ख्याति बढ़ी। जब कभी राजनीतिक समस्या उपस्थित होती, तो लोग पथ-प्रदर्शन के लिये उसके पत्र की राय देखते थे। उसकी राय निर्भीक, गंभीर एवं युक्ति-पूर्ण होती थी। उसकी नीति की एक ही कसौटी है कि वह सर्व-प्रथम इटली का हित साधन करे। वह कहता था कि न तो मैं लोक-प्रियता का भूखा हूँ, और न वोट का भिखारी। वह अपने अनुयायियों को प्रत्यक्ष मार्ग की शिक्षा दिया करता था। उसकी शिक्षा थी कि यदि तुम चाहते हो कि अमुक काम होना चाहिए, तो दल-बल के साथ अधिकारियों पर टूट पड़ो; उनको बाध्य कर दो कि तुम्हारे मन का काम करें। 'विरोध' और 'प्रार्थना' की नीति में उसका तनिक भी विश्वास नहीं है।

१९१२ ई० में उसको साम्यवादी दल के प्रमुख पत्र 'अवंति' का संपादन करना पड़ा। उसके संपादक होते ही ग्राहक-संख्या चालीस हज़ार से एक लाख हो गई। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि मुसोलिनी की लेखनी में क्या जादू भरा हुआ था, और उसके व्यक्तित्व का क्या प्रभाव था।

वह कोई प्रतिभाशाली लेखक नहीं है; परंतु उसके शब्दों में जान है। उसके अंदर इच्छा-शक्ति की दृढ़ता प्रतीत होती है। उसके शब्दों के पीछे उसके व्यक्तित्व की ताक़त मालूम होती है।

महासमर से साम्यवाद का रूप बदल गया। सिद्धां-ततः साम्यवादी युद्ध के विरोधी हैं; परंतु पिछले समर में

हम देखते हैं कि देशभक्ति के सामने इस सिद्धांत की जड़ हिल गई है ; बड़े-बड़े कट्टर साम्यवादी 'देश के लिये' मरने में गौरव समझने लगे। इन्हीं में मुसोलिनी भी एक था। उसने 'अवंति'-पत्र के संपादन से हाथ खींच लिया। इस समय साम्यवादी दल में उसका बहुमत नहीं था। यह समय उसके जीवन का प्रधान घटना-काल है। साम्य-वाद के विचारों से उसे संतोष नहीं हुआ। उनमें उसको देश का यथार्थ हित प्रतीत नहीं हुआ। उसके विचारों की धारा दूसरी ही तरफ़ बहने लगी। आज वह 'फ़ेसिज़्म' का अवतार हो रहा है। साम्यवाद और फ़ेसिज़्म में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है।

'अवंति' से संबंध छोड़ने के बाद अपने मित्रों की सहायता से उसने 'Il popolo de Italia' (The People of Itali)-नाम का पत्र निकाला। अभी तक यह पत्र शान से निकल रहा है। इस पत्र को यदि मुसोलिनी की तलवार और फ़ेसिज़्म का स्तंभ कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं। इस समय इसका संपादन मुसोलिनी का छोटा भाई करता है।

महासमर के संकट-काल में प्रत्येक नागरिक को सैनिक का काम करना पड़ा। मुसोलिनी भी एक साधारण सैनिक के दरजे में भर्ती किया गया। उसने अपने सैनिक जीवन के अनुभव लिखे हैं। उनसे ज्ञात होता है कि बड़े-बड़े धुरंधर राजनीतिज्ञ भी किस प्रकार एक तुच्छ सैनिक का काम किस तत्परता और कर्तव्य-परायणता के साथ करते हैं। भारतवर्ष के जीवन में यह बात नहीं देखी जाती। जो आदमी अपनेको कुछ समझने लगता है, वह स्वयं सेवक का कार्य अपनी शान के ख़िलाफ़ समझता है। हम लोग आत्म-शासन को स्वतंत्रता का घातक समझते हैं।

महासमर के समाप्त होते ही सैनिक मुसोलिनी ने बंदूक छोड़कर संपादकीय तलवार हाथ में ली। अभी तक वह शत्रुओं से लड़ रहा था। अब उसको मित्र-राष्ट्र के कूटनीतिज्ञों से लड़ना था। इटली ने बड़ी-बड़ी आशाओं के साथ युद्ध-क्षेत्र में प्रवेश किया। यदि लंदन की गुप्त संधि पूर्ण रूप से निबाही जाती, तो इटली को लड़ाई की लूट में बहुत बड़ा भाग मिलता। परंतु जब संधि की शर्तों की चर्चा होने लगी, तो इटली को मालूम हुआ कि उसकी माँगों पर किसी का ध्यान ही नहीं है। 'डैलमैशिया' का मिलना तो अलग रहा, दूँटो और ट्रिएस्ट भी, जो इटली के ही टुकड़े हैं, उसको नहीं दिए गए। इस समय मुसोलिनी ने अपने पत्र द्वारा संधि-सम्मेलन के सामने इस बात को रक्खा कि इटली ऐसी संधि को स्वीकार नहीं करेगा। सारे देश ने एक स्वर से उसका साथ दिया। इटली की तत्का-लीन सरकार इटली के हितों को उतनी दृढ़ता के साथ संधि-सम्मेलन में पेश नहीं कर रही थी, जैसा कि इटली की जनता चाहती थी। इटली की आंतरिक स्थिति भी बड़ी शोचनीय हो रही थी। सारा देश लड़ाई के भार से तबाह हो गया था। खाने-पीने की सामग्री का अभाव था। चीज़ों की क़ीमत बढ़ रही थी। काग़ज़ी मुद्रा का परिमाण सीमा से बाहर चला गया था। युद्ध-क्षेत्र की खाइयों से लौटे हुए सिपाहियों के लिये रहने को स्थान और खाने को रोटी नहीं थी। जगह-जगह हड़ताल और दंगे हो रहे थे। ऐसा ज्ञात होता था कि सारे देश में बोलशेविज़्म की जड़ जम जायगी, और चिरस्थायी सामाजिक संस्था का ध्वंस हो जायगा। यह तो आंतरिक स्थिति थी। उधर संधि-सम्मेलन में लॉयड जार्ज और क्लीमेंशो की तूती बोल रही थी। विलसन के १४ नियम काफ़ूर हो गए थे। आंतरिक और बाह्य, दोनों स्थितियों को सुलझाने की शक्ति सरकार में नहीं थी। ऐसे समय में इटली की आँख एक व्यक्ति पर थी। वह मुसोलिनी था। लोगों को मुसो-लिनी से यह आशा थी कि वह देश को विध्वंस के गड्ढे से बाहर निकालेगा। लोगों की यह आशा निराधार न थी।

१९१९ ई० के प्रारंभ में स्थान-स्थान पर बोलशेविक सभाएँ और जलसे हो रहे थे। उसी समय फ़ेसिस्ट-आंदो-लन के अंकुर निकल रहे थे। इस स्थान पर फ़ेसिस्ट सिद्धांतों की समालोचना करना संभव नहीं। मोटे तौर से फ़ेसिस्ट-आंदोलन का अभिप्राय देश की एकता और समृद्धि है। पहले देश का हित, पीछे और सब। २३ मार्च को सबसे पहले मिलान-नगर में फ़ेसिस्ट दल का एक बैठक हुई। जब इस दल का उद्देश्य और कार्य-क्रम देश के सामने आया, तो उसने इसका हृदय से स्वागत किया। मेंबरों की संख्या दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी।

'फ़्यूम' की समस्या ने मुसोलिनी के आंदोलन को बड़ी सहायता दी। जिस समय (१२ सितंबर, १९१९) इटली के महाकवि गैब्रियल डे आनन्ज़ियो (Gabriel D'An-nunzio) ने अकस्मात् फ़्यूम-नगरी पर इटली का झंडा

फहरा दिया, उस समय मुसोलिनी ने इस कार्य की सराहना की। वह स्वयं फ़्रायूम गया, और समस्त इटली ने इस कार्य का स्वागत किया। इटली की सरकार मित्र-राष्ट्रों से दबी हुई थी; उसने फ़्रायूम-कांड के उत्तरदायित्व को स्वीकार नहीं किया, और अपनी नेकनियती का सबूत देने लिये मुसोलिनी और उसके बहुत-से सहकारियों को गिरफ़्तार कर लिया। उसकी गिरफ़्तारी से देश में हलचल मच गई। दूसरे ही दिन निटी (Nitti) की सरकार को विवश होकर उसे छोड़ना पड़ा।

दो वर्ष तक कम्यूनिज़्म और फ़ेसिज़्म, दोनों आंदोलन बराबर चलते रहे। कम्यूनिस्ट लोग लूट-पाट और बम-कांड करते थे। रात-दिन इटली के नगरों और गाँवों में भयंकर घटनाएँ हो रही थीं। किंतु मुसोलिनी का दल संगठित हो रहा था। देश का रुख़ भी उसकी तरफ़ था। रात-दिन के बम-कांडों से जनता तंग आ गई। सन् १९२१ के मई-मास के चुनाव में फ़ेसिस्ट दल को अच्छी सफलता हुई। दो वर्ष पहले के चुनाव में मुसोलिनी को सफलता नहीं हुई थी। इस समय उसकी पार्टी के ३३ सदस्य चुने गए। अब लोगों को विश्वास हो गया कि कम्यूनिज़्म फेसिज़्म के सामने नहीं ठहर सकता। इस चुनाव में कम्यूनिस्ट दल को मुँह की खानी पड़ी।

१९२२ के ऑक्टोबर-महीने में नेपल्स-नगर में फ़ेसिस्ट-कांग्रेस का समारोह के साथ अधिवेशन हुआ। इस समय संगठन का काम पूरा हो चुका था। अब केवल आक्रमण करने की देर थी। २४ ता० को उसने घोषणा प्रकाशित की—"फ़ेसिस्ट दल अधिक दिन तक देश की अराजक स्थिति को नहीं देख सकता। सरकार को चाहिए कि वह चुपचाप आत्म-समर्पण कर दे; अन्यथा हम उससे शक्ति छीन लेंगे।"

मुसोलिनी की इस घोषणा से सरकार घबरा गई। पहले उसने इस बात का प्रयत्न किया कि मुसोलिनी को मंत्रिमंडल में स्थान देकर अपना लिया जाय। परंतु वह पूर्ण अधिकार चाहता था। उसने प्रधान मंत्री होने से पहले ही अपना मंत्रिमंडल निर्धारित कर लिया था।

किंतु मुसोलिनी ने सरकार को शक्तिहीन करने की धमकी निराधार ही नहीं दी थी। इटली के कोने-कोने से फ़ेसिस्ट नवयुवक काले कुर्ते पहने हुए मिलान में एकत्र हो रहे थे। इस दल के सभी सैनिक शिक्षा पाए हुए नहीं थे। रास्ते में चलते-चलते मार्चिंग भी सिखाया जा रहा था। बहुतों के पास रायफ़ल के स्थान पर डंडा ही था। २१ तारीख़ को मिलान से रोम पर चढ़ाई करने का दिन था।



मुसोलिनी का बस्ट

उसी दिन दोपहर को मुसोलिनी ने टेलीफ़ोन द्वारा राजा का संवाद पाया कि वह रोम में आकर अपना मंत्रिमंडल बनावे। मुसोलिनी ने जवाब दिया कि इसको तार द्वारा प्रमाणित संवाद करने पर मैं रोम आ सकता हूँ। दो घंटे बाद उसको तार मिला कि राजा मुसोलिनी को सरकार का भार वहन करने के लिये निमंत्रित करता है। उसी समय यह समाचार सारे देश में फैल गया। उसका आगमन सबने हर्ष-पूर्वक मनाया। रात ही को वह रोम पहुँचा। दूसरे दिन उसने प्रधान मंत्री का पद ग्रहण किया; उसी समय से सब कामों में अपना मत देना शुरू कर दिया। मंत्रिमंडल तो उसके मन ही में था, केवल घोषणा करने की देर थी। पाँच घंटे के अंदर उसने सब ठीक कर दिया। जहाँ अशांति होने का डर था, वहाँ सेना भेजी। सारे देश में कहीं पर पत्ती भी नहीं खटकी। इतना घोर परिवर्तन शांति के साथ समाप्त हुआ। राजतंत्र की मशीन का एक पुर्ज़ा भी अव्यवस्थित नहीं हुआ।

जब शासन की बागडोर मुसोलिनी के हाथ में आ गई, तो उसने अपने अनुयायियों से कहा कि शासनारूढ़ होना उनका उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य तो है उन ख़राबियों और अड़चनों को दूर करना, जो इटली की समृद्धि में बाधक हैं। उनका लक्ष्य सीज़र का रोमन साम्राज्य है। रोम की शक्ति, रोम की सभ्यता, रोम की कला और विद्या तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करना उनका कार्य-क्रम है। उनको घर के द्रोहियों से लड़ना और बाहरी दुश्मनों से मोर्चा लेना है। मुसोलिनी को अधिक बोलने की आदत नहीं है। वह कर्मयोगी है, काम करना जानता है। आए दिन वह अविश्रांत-चित्त हो इटली की समृद्धि के लिये प्रयत्न कर रहा है। उसका एक ही धर्म है, एक ही सदाचार है, और वह है इटली।

इटली के लिये उसने क्या किया है, इस प्रश्न का उत्तर यहाँ पर नहीं दिया जा सकता। जो लोग अंतरराष्ट्रीय राजनीति की तरफ़ ज़रा भी ध्यान देते हैं, वे यह समझते हैं कि मुसोलिनी ने किस प्रकार इटली की धाक जमाई है। कर्फ़ू-कांड के समय समस्त मित्र-राष्ट्रों को इतनी हिम्मत नहीं हुई कि वे मुसोलिनी को उसके 'अनीतियुक्त कार्य' से रोक सकें। उसने राष्ट्र-संघ के मत की अवहेलना की, और संघ के संरक्षकों ने इसको चुपचाप सह लिया। लूसेन-कान्फ़्रेंस में मुसोलिनी के व्यक्तित्व का क्या प्रभाव था, वह संसार से छिपा नहीं है। वाशिंगटन की कान्फ़्रेंस में उसने इटली को फ़्रांस की बराबरी में रखवाया। फ़्रांस और इटली की जल-शक्ति का अनुपात बराबर है। लोकार्नो के बाद मुसोलिनी का स्थान बहुत ही ऊँचा हो गया है। यद्यपि इटली से संबंध रखनेवाली कोई बात लोकार्नो के सामने नहीं थी, फिर भी उससे बिना पूछे कुछ करने का साहस किसी को नहीं है। इस समय वह लोकार्नो का संपादक और योरप की शांति का संरक्षक समझा जाता है। उत्तरीय-अफ़्रिका में इटली के उपनिवेशों की उन्नति के लिये वह निरंतर प्रयत्न कर रहा है। मोरक्को पर भी उसके दाँत लगे हैं। अँगरेज़ों की स्थिति भूमध्य-सागर में डाँवाडोल है। मुसोलिनी के मतानुसार भूमध्य-सागर इटली का सरोवर है, उसका विहार-स्थल है। वह उसका एकाधिपत्य चाहता है।

मुसोलिनी की तूती इस समय सारे संसार में बोल रही है। वह इस युग का नेपोलियन हो रहा है। इटली के इतिहास में उसका नाम जुलियस सीज़र की तरह अमर रहेगा।

चंद्रदत्त पांडेय

कविवर रहीम के संबंध में हिंदी-कवियों की उक्तियाँ

जिस देश में शृंखलाबद्ध इतिहास लिखने की रीति नहीं, वहाँ किंवदंतियों तथा कथानकों का ऐतिहासिक मूल्य कुछ कम नहीं है। यद्यपि किंवदंतियों तथा दंतकथाओं में कल्पना का भी समावेश है, तथापि उनमें कुछ-न-कुछ ऐतिहासिक आधार अवश्य ही रहता है। हिंदी-साहित्य के इतिहास में तो किंवदंतियों को एक विशेष स्थान प्राप्त है। और, आजकल तो नई नई खोज के कारण इन किंवदंतियों का वास्तविक मूल्य दिन-पर-दिन मालूम होता जाता है, और इसीलिये इन कथानकों की सत्यता की अनेकांश में पुष्टि होती जाती है।

अन्य सम्मानित कवियों की तरह ख़ानख़ाना अब्दुर्रहीम के संबंध में भी अनेक किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। 'अकबरी दरबार' के एक समुज्ज्वल रत्न होने के कारण उनकी प्रतिष्ठा इतनी चिरस्थायी नहीं हुई, जितनी उनकी उदारता तथा साहित्य-प्रेम के कारण। काव्य-रसिकता, दानवीरता, युद्धवीरता, उदारता, परोपकारिता, गुण-ग्राहकता आदि अनेक गुणों के कारण उनकी निष्कलंक कीर्ति-चंद्रिका मुग़ल-साम्राज्य की विस्तृत सीमा का उल्लंघन कर सुदूर देशों में भी पूर्णतया व्याप्त थी। अनेक कवियों को सम्मान तथा आश्रय देकर रहीम ने जो हिंदी का हित किया है, वह किसी भी मुसलमान-कवि ने नहीं किया। इस लेख में, अपनी खोज के फल-स्वरूप, हिंदी की प्राचीन पुस्तकों से रहीम की मुख्य गुणग्राहकता, वीरता आदि अनेक गुणों का परिचय देनेवाले कतिपय छंद उद्धृत किए जाते हैं, जिससे उस समय के इतिहास की सामग्री उपलब्ध होने के साथ-साथ रहीम की दिगंत-व्यापी प्रतिष्ठा का भी बहुत कुछ अनुमान हो सकता है।

१. केशवदास

महाकवि केशवदास का रहीम से घनिष्ठ परिचय था। उन्होंने सं० १६६९ में "जहाँगीर-चंद्रिका"-नामक एक पुस्तक रची है। इस पुस्तक में अधिकांश में जहाँगीर के दरबार का वर्णन है। प्रसंग-वश उसमें रहीम के विषय में भी निम्न-लिखित छंद हैं—

बैरमखाँ पुत्र सो हि हुमाऊँ को साहि सिंधु,
　　माती सिंधु पार कीनी कीर्ति करबर की।
शील को सुमेर, शुद्ध साँच को समुद्र, रन-
　　रुद्रगनि "केसौदास" पाई हरि-हर की।
पावक प्रताप जाहि जारि जारी प्रक...
　　......साहिबी समूल मूल गर की;
प्रेमपरिपूरन पियूष सींचि कल्पबेलि,
　　पाल लीनी पातसाही साहि अकबर की।
ताको पुत्र प्रसिद्ध महि सब खानन को खान,
भयो खानखाना प्रकट, जहाँगीर तनु-त्रान।
साहिजू की साहिबी को रच्छक अनंत गति,
　　कीनों एक भगवंत हनुवंत बीर सों;
जाको जस "केसौदास" भूतल के आसपास,
　　सोहत छबीलो छीर-सागर के छीर सों।
आमत उदार अति पावन बिचारि चारु,
　　जहाँ-तहाँ आदरिनो गंगाजी के नीर सों;
खलन के घालिबे को खलक के पालिबे को,
　　खानखाना एक रामचंद्रजू के तीर सों।

इसी पुस्तक में महाकवि केशवदास ने 'उद्यम' तथा 'भाग्य' के परस्पर वार्तालाप में सभा के सभी सरदारों का वर्णन किया है। 'उद्यम' तथा 'भाग्य' के रहीम-संबंधी प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं—

उद्यम—

सभा-सरोवर हंस-से, सोभित देव-समान;
वे दोऊ नृप कौन हैं, कहिए भाग्य प्रमान।

भाग्य—

जीते जिन गक्खरी, भिखारी कीने मक्खरी जे,
　　खानि खुरासानि बाँधि (?) खरियो पर के;
चोरि मारे गोरिया बराह बोरि बारिधि में,
　　मृग से बिडारे गुजराती लीने डर के।
दच्छिन के दच्छ दीह दंती ज्यों बिडारे बीर
　　"केसौदास" अनायास कीने घर-घर के;
साहिबी के रखवार सोभिजे सभा में दोऊ,
　　खानखाना, मानसिंह सिंह अकब्बर के।

२. आढ़ा

महडू शाखा का आढ़ा नाम का एक चारण था। उसका वास्तविक नाम आसकरन था। परंतु स्थूल शरीर होने के कारण उसको लोग 'आढ़ा' कहा करते थे। उसने रहीम की प्रशंसा में निम्न-लिखित चार दोहे कहे हैं—

खानखाना नव्वाब हो, मोहिं अचंभो एह;
मायो[1] किमि गिरि मेरुमन, साढ़ तिहत्थी[2] देह।
खानखाना नवाब रे, खाँड़े आग खिवंत[3];
जलवाला नर प्राजलें[4], तृणवाला जीवंत[5]।
खानखाना नवाबरी, आदमगीरी[6] धन्न;
मह ठकुराई मेरु-गिरि, मनी न राई मन्न[7]।

---

१. समाया। २. साढ़े तीन हाथ की। ३. तेरे खड्ग से अग्नि की वर्षा होती है। ४. पानीवाले अर्थात् पराक्रमी पुरुष जल जाते हैं। ५. दाँतों में तृण धारण करनेवाले दीन पुरुष जीवित रहते हैं। ६. उदारता। ७. मेरुगिरि-जैसी ठकुराई भी अपने मन में नहीं मानी।

खानखाना नवाबरा, अड़िया भुज ब्रह्मंडै।
पूँठे तो है चंडिपुर, धार तले नवखंड।

इन दोहों पर प्रसन्न होकर रहीम ने जाड़ा कवि को प्रत्येक दोहे पर एक-एक लाख रुपए देने चाहे ; परंतु कवि ने विनय-पूर्वक भेंट को अस्वीकार कर दिया, और अपने आश्रयदाता महाराणा प्रताप के भाई जगमल को रहीम के द्वारा बादशाह से जहाजपुर का परगना दिलवाया।

वह परगना पहले मेवाड़-प्रांत का ही एक भाग था। रहीम ने भी जाड़ा के दोहों का जवाब इस प्रकार दिया था—

धर्र जड्डा अंबर्र जड़ा, जड्डा महड्ड जोय।
जड्डा नाम अलाहदाँ, और न जड्डा कोय।

३. मंडन

संवत् १८१२ की लिखी हुई 'जस-कवित्त' की प्रति में मंडन कवि का एक छंद रहीम की प्रशंसा का दिया हुआ है। वह इस प्रकार है—

तेरे गुन खानखाना परत दुनी के कान,
ये तेरे कान गुन आपनो धरत हैं ;
तू तो खग्ग खोलि-खोलि खलन पै कर लेत,
लेत यह तापै कर, नेक न डरत है।
"मंडन सुकबि" तू चढ़त नवखंडन पै,
यह भुज-दंड तेरे चाढ़िए रहत है ;
ओहती अटल खान साहब तुरकमान,
तेरी या कमान तोसों तेहु सो करत है।

४. प्रसिद्ध

'शिवसिंह-सरोज' में 'प्रसिद्ध' कवि का खानखाना के यहाँ होना लिखा है। उसी पुस्तक में इस कवि का यह छंद भी दिया है—

गाजी खानखाना तेरे धौंसा की धुकार सुनि,
सुत तजि, पति तजि, भाजी बैरी-बाल हैं ;
कटि लचकत, बार-बार ना सँभारि जात,
परी बिकराल जहँ सघन तमाल हैं।
कबि "परसिद्ध" तहाँ खगन खिझायो आनि,
जल भरि-भरि लेती दृगन बिसाल हैं ;
बेनी खैंचे मोर, सीसफूल को चकोर खैंचे,
मुकता की माल ऐंचि खैंचत मराल हैं।

स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने भी स्वरचित 'खानखानानामा' में इसी कवि का एक छंद और दिया है। वह इस प्रकार है—

सात दीप, सात सिंधु थरक-थरक करैं,
जाके डर टूटत अखूट गढ़ राना के ;
कंपत कुबेर बेर मेर मरजाद छाँड़ि,
एक-एक रोम झर पड़े हनुमाना के।
धरनि धसक धसपुसक धसक गई,
भनत "प्रसिद्ध" खंभ डोले खुरसाना के ;
सेस-फन फूट-फूट चूर चकचूर भए,
चले पेसखाना जो नवाब खानखाना के।

५. गंग

हमारे पुस्तकालय में गंग कवि के कवित्तों का एक अच्छा संग्रह है। उसमें रहीम की प्रशंसा के अनेक कवित्त हैं। गंग के वीर-रसात्मक छंद विशेषकर रहीम-संबंधी ही हैं।

बाँधिबे को अंजलि, बिलोकिबे को काल दिग,
राखिबे को पास जिय, मारिबे को रोस है ;
जारिबे को तन-मन, भरिबे को हियो आँखें,
धरिबे को पग मग, गनिबे को कोस है।
खाइबे को सौंहैं, भौंहैं चढ़िबे-उतारिबे को,
सुनिबे को प्रानघात किए अफसोस है ;
बैरम के खानखाना, तेरे डर बैरी-बधू,
लेबे को उसास, मुख दीबे ही को दोस है।

× × ×

नवल नवाब खानखानाजू, तिहारी त्रास,
भागे देस-पति धुनि सुनत निसान की ;
"गंग" कहै तिनहूँ की रानी रजधानी छाँड़ि,
फिरै बिललानी सुधि भूली खान-पान की।
तेऊ मिलीं करिन, हरिन, मृग-बानरनि,
तिनहूँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की ;
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरिन,
मृगन कलानिधि, कपिन जानी जानकी।

× × ×

हहर हवेली सुनि सटक समरकंदी,
धीर ना धरत धुनि सुनत निसाना की ;
मक्का को ठाठ ठट्यो प्रलय सो पलट्यो "गंग",
खुरासान, अस्पहान लगे एक आना की।
बाँवन उबाँठे बीठे भींठ-भीठे महबूना,
हिए भर न हेरियत अबट बहाना की ;

१. भुजाओं के बल पर ब्रह्मांड डटा हुआ है। २. पीठ पर। ३. दिल्ली। ४. पृथ्वी, धरा। ५. आकाश। ६. कवि की शाखा। ७. ईश्वर।

तोसेखानें, फीलखानें, खजाने, हरमखानें,
खाने-खाने खबर नवाब खानखाना की।

× × ×

नवल नवाब खानखानाजी रिसाने रन,
कीने अरि जेर समसेर सर सरजे;
माँस के पहाड़ समसानु करि राखे सत्रु,
कीने घमसान भूमि-आसमान लरजे।
सोनित की धार सों चुवत चंद्रमा सों भार,
मारो भयो भेद रुद्रन की हाहा बरजे;
न्यारो बोल बोलत कपाल, मुंडमाल न्यारी,
न्यारो गजराज, न्यारो मृगराज गरजे।

× × ×

प्रबल प्रचंड बली बैरम के खानखाना,
तेरी धाक दीपत दिसान दह दहकी;
कहै कबि "गंग" तहाँ भारी सूर-बीरन के,
उमड़ि अखंड दल प्रलै पौन लहकी।
न्यों गमसान, तहाँ तोप-तीर-बान चले,
मंडि बलवान किरवान कोप गहकी;
तुंड काटि, मुंड काटि, जोसन जिरह काटि,
नीमा. जामा, जीन काटि जिमी आनि ठहकी।

× × ×

चकित भँवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमलबन;
अहि फनि-मनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन घन।
हंस मानसर तज्यो, चक्क-चक्की न मिले अति;
बहु सुंदरि पद्मिनी, पुरुष न चहैं, न करैं रति।
खलभलित सेस कवि "गंग" भनि, अमित तेज रबि-रथ खस्यो;
खानानखान बैरम सुवन, जिदिन कोप करि तँग कस्यो।

× × ×

कस्यप के तरनि, तरनि के करन जैसे,
उदधि के इंदु जैसे, भए यों जिजाना के;
दसरथ के राम और स्याम के समर जैसे,
ईस के गनेस औ कमलपत्र आना के।
सिंधु के ज्यों सुरतरु, पौन के ज्यों हनुमान,
चंद के ज्यों बुध, अनिरुद्ध सिंह बाना के;
तैसेई सपूत खान बैरम के खानखाना,
वैसेई दराबखाँ[1] सपूत खानखाना के।

× × ×

१. दाराबखाँ रहीम का पुत्र था, और दक्षिण की लड़ाइयों में साथ रहा था।

नवल नवाब खानखानाजू, तिहारे डर,
परी है खलक खलभैल जहँ-तहँ जू;
राजन की रजधानी डोली फिरैं बन बन,
नैठन को दैठे बैठे मरें बेटी-बहू जू।
चहूँ गिरि राहैं परी समुद अथाहैं अब,
कहैं कवि "गंग" चक्क बकी ओर चहूँ जू;
भूमि चली सेस धरि, सेस चल्यो कच्छ धरि,
कच्छ चल्यो कोल धरि, कोल चल्यो कहूँ जू।

× × ×

ठठा मार्यो खानाखाना दच्छन अजीम कोका,
इसकखाँ मारि मारे कसमीर ठौर के;
साहि के हरामखोर मारे साह कुलीखान,
कहाँ लौं गनाऊँ गुन उमरान और के।
रुस्तम नवाब मारि बालाघाट बार कियो,
फाजिल फिरंगी मारे टापनि सरोर के;
वास्ती को काम छह हजार असवार जोरे,
जैनखाँ जुनारदारे मारे इकनौर[1] के।

× × ×

... ... बैन तडंन अदच्छन;
नगनि आत नागिनि पनाग नायक उरिद्गन।
इध: बरनि सरबरनि तीर तरवारिन पत्त पर;
हार्दं हार्द हा, हूंधि हुलिल गाहे तिलंग नर।
खानानखान बैराम-पुव, जदिन कुप्पि कर खग्ग लिय;
कलमलि सकल दक्खिन मुलक, पट्टन पट्टन पट्ट किय।

× × ×

बैरम को खानखाना बिरच्यो बिराने देस,
दच्छिन में फौज मारी खग्ग-मुख जो परी;
माते-माते हाथिन के हलका हलक डारे,
मानों महामारुत झकोर डारी झोपरी।
लोहू के अलेले "गंग" गिरजा गलेले देत,
चौंथ-चौंथ खात गीध चर्ब मुख चोपरी;
तियनि-समेत प्रेत हाके देत बीर-खेत,
खखल-खखल हँसैं खलन की खोपरी।

× × ×

१. 'शिवसिंह-सरोज' में लिखा है कि इकनौर, जिला इटावा पर जैनखाँ का अत्याचार होने पर गंग के पुत्र ने जहाँगीर के पास एक अर्जी भेजी थी, जिसके एक कवित्त का अंतिम अंश "जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के" था। परंतु इस कवित्त से यह बात भ्रामक सिद्ध होती है।

कुंकुम कुंभि संकुशहि, गहरि हिय गिरि हिय फस्यव ।
दर-दरेर कुब्बेर, बेर जिमि मेर पब्बस्यव ।
सरस कमल संपुस्य सूर आथवति पइजव ।
गिरि गगम्मि तिय गम्म, कंठ कामिनिय उचित्थव ।
मनि "गंग" अदिव्वय दव्वादेय, दव्विय कर दव्विय गयो ।
खानानखान बैरम-सुवन, जादिन दखल दक्खिन दयो ।

× × ×

राजे भाजे राज छोड़ि, रन छांड़ि राजपूत ,
राउति छोड़ि राउत, रनाई छोड़ि राना जू ।
कहै कवि "गंग" इक समुद के चहूँ कूल ,
कियो न करे कबूल तिय खसमाना जू ।
पच्छिम पुरतगाल कासमीर अवताल ,
खक्खर को देस बाढ्यो भक्खर भगाना जू ।
रूम-साम, लोम-सोम, बलक-बदाऊँ सान ,
खेत-खेज खुरासान खांभे खानखाना जू !

× × ×

गंग गोछ मोछें जमुन, अधरन सरसुति राग ।
प्रकट खानखाना भयो, कामद बदन प्रयाग ।

× × ×

धमक निसान सुनि, धमकि तुरान चित ,
चमक किरान मुलतान भहराना जू ।
मारू मरदान काम रुके करवान आदि ,
मेवार के रानहि दवान आन माना जू ।
पुर्तगाल पच्छमाध पलटान उत्तराध ,
गुजरात-देस अरु दच्छिन दवाना जू ।
थरवान हबसान हहेलान रूम सान ,
खेल-भेल खुरासान चढ़े खानखाना जू ।

६. संत

सेर सम सील सम धीरज सुमेर सम ,
सेर सम साहेब जमाल सरसाना था ।
करन कुबेर बलि कीरति कमाल करि ,
तालेबंद मरद दरदमंद दाना था ।
दरबार दरस-परस दरवेसन को,
तालिब-तलब कुल आलम बखाना था ।
गाहक गुनी के, सुखचाहक दुनी के बीच
"संत" कवि दान को खजाना खानखाना था ।

७. हरिनाथ

हरिनाथ कवि का भी एक छंद रहीम की प्रशंसा में मिलता है। यह हरिनाथ कौन हैं, सो ठीक-ठीक पता नहीं चलता। परंतु यह अनुमान किया जा सकता है कि यह वही हरिनाथ हैं, जिन्होंने बांधव-नरेश नेजाराम बघेले से एक दोहे पर एक लाख रुपए पाए थे, और आमेर के राजा मानसिंह से दो दोहों पर दो लाख। पर मार्ग में एक नागर-पुत्र को एक दोहे पर जो कुछ मिला, सब दे डाला। यह रहीम के समकालीन थे और बड़े-बड़े राजा-महाराजों के यहाँ इनकी पहुँच भी थी। इनके पिता महापात्र नरहरि अकबर के दरबार में ही थे। इन कारणों से हमें रहीम की प्रशंसा करनेवाले हरिनाथ नरहरि के पुत्र ही मालूम पड़ते हैं। उनका कवित्त इस प्रकार है—

बैरम के तने खानखानाजू के अनुदिन ,
दोउ प्रभु सहज सुभाए ध्यान ध्याए हैं ।
कहै "हरिनाथ" सातों द्वीप को दिपनि करि ,
जोहखंड करनाल ताल सों बजाए हैं ।
एतनी भगति दिलीपति की अधिक देखो ,
पूजत नए को भाए ताने मद पाए हैं ।
अरि सिर साजे जहाँगीर के पगन तरे ,
टूटे-फूटे फाटे सिव सीस पै चढ़ाए हैं ।

८. अलाकुली कवि

लंका लायो लूट किधौं सिंहल को कूट-कूट ,
हाथी-घोड़े-ऊँट एते पाए ते खजाने हैं ।
'अलाकुली' कवि की कुबेर ते मिताई कीनी ,
अनतुले अनमाए नग औ नगीने हैं ।
पाई है तैं खान लच्छ भई पहिचान भूप ,
रह्यो है जहाँ नए समान कहा कौन है ।
पारस ते पायो किधौं पारा ते कमायो किधौं ,
समुद ते लायो किधौं खानखाना दाने है ।

९. तारा कवि

जोरावर अवजोर रवि-रथ कैसे जोर ,
बने जोर देखे दोठि जोरि रहियतु है ।
है न को लिवैया ऐसो, है न को दिवैया ऐसो ,
दान खानखाना को लहे ते लहियतु है ।
तन-मन वारि बाजी द्वै तन सभारि जात ,
और अधिकाई कहाँ कासों कहियतु है ।
पौन की बड़ाई बरनत सब "तारा कवि" ,
पूरो न परत, याते पौन कहियतु है ।

१०. अज्ञात

इसी विषय के कुछ छंद और मिले हैं। परंतु इनके

रचयिता का नाम नहीं ज्ञात हो सका। अज्ञात कवियों के छंद निम्न-लिखित हैं—

दक्खिन को जूम खानखानाजू, तिहारो सुनि,
होत है अचंभो राजा-राय-उमराय के।
एक दिन एक रात और दिन आधए लौं,
आए जो मुकाबिले को गए ना विराय के।
बासर के घूमे ते ख़ुमार है-है गिरत हैं,
भेद-भेदे बिब्हल ते मारे हैं लराय के;
जामनी के जूने सूर सूरज को पैंडो देखैं,
मोर राहगीर दरवाजे ज्यों सराय के।

× × ×

नगर ठठा की रजधानी धूरधानी कीनी,
धरक्यो खँधारी खान पानी ना हलक में;
काँहे है तुखार औ बुखार न उपार भरे,
उजबक उजर के गयो है पलक में।
पौरि-पौरि परे सेर ठौर-ठौर पौरि दई,
खानखाना ध्याए ते अवाज है खलक में;
पिय भाजे तिय छांड़ि, तिया करे पीउ पीउ,
बाबा-बाबा बिललात बालक बलक में।

× × ×

मदन-रूप-तन तबल बार बारुन गल गज्जइ;
बहु सनाह पाखरी द्वार दुंदुभि बहु बज्जइ।
बहु साहस उत्थपन फेर थप्पन समर्थ बर;
सहनसाह सिरछत्र ताहि रक्खन समर्थ नर।
खानानखान बैरम-सुवन, चित्तहहर रस रत्तयो;
धन-मद-जोबन-राज-मद, एकहि मदन मत्तयो।

× × ×

खानखान ना जाँचियो, जहाँ दलिद्र न जाय;
कूप नीर अद्रे बिना, नीलो धरा न पाय।
खानाखान नवाब तैं, वाही खग उखाल;
मुदफर पड़ें न ऊठियो, जैसे अंबा डाल।
खानाखान नवाब तैं, हथ लगाए एम;
मुदफर पड़े न ऊठियो, गए जोबसी जेम।
खानाखान नवाब हो, तुम धुर खैंबनहार;
सेरा सेंती नहिं खिंचे, इस दरगह का भार।

× × ×

काह रे करजदार भगरत बार-बार,
नेक दिल धीर धर जान इतबारी से;
देहूँ दर हाल माल, लिखले सवाई साल,
देखना बिहाल मत जानना भिखारी से।
सेवा खानखाना की उमेदवारी दान की ते,
महर महान की सूँ होत धनधारी से;
अब घरी-पल माँझ, पहर-द्वै पहर माँझ,
आज-काल के हैरे... द्वै हजारी से।

× × ×

दिए के हुकुम आगे दिए, रहे जामिनी के,
देह के कहन राख्यो देह के चहत हैं;
बखत के नाम नाम राखत जिहान माँहि,
धन के सबद धन-धन जे कहत हैं।
खानखानाजू की अब ऐसी बकसीस भई,
बाकी बकसीस अरु बस सांस हत हैं;
हाथिन के नाम हाथी रहत तबेलन में,
घोरा दिए घोरा सतरंज में रहत हैं।

× × ×

काहू की सिकारि स्याल लोमन को खेल होत,
काहू की सिकारि मृग मारि सुख मानो है;
काहू की सिकार साथ सिकरा-सिचान-बाज,
काहू की सिकार देखो बाम्हन बखानो है।
खानाखान की सिकार सिंधु पैके वार पार,
छंद-बंद-फंद खट बरन को ठानो है;
अब ही सुनोगे मास दोय-तीन-चार माँझ,
कोन हू दिसा को पातसाह बाँध आनो है।

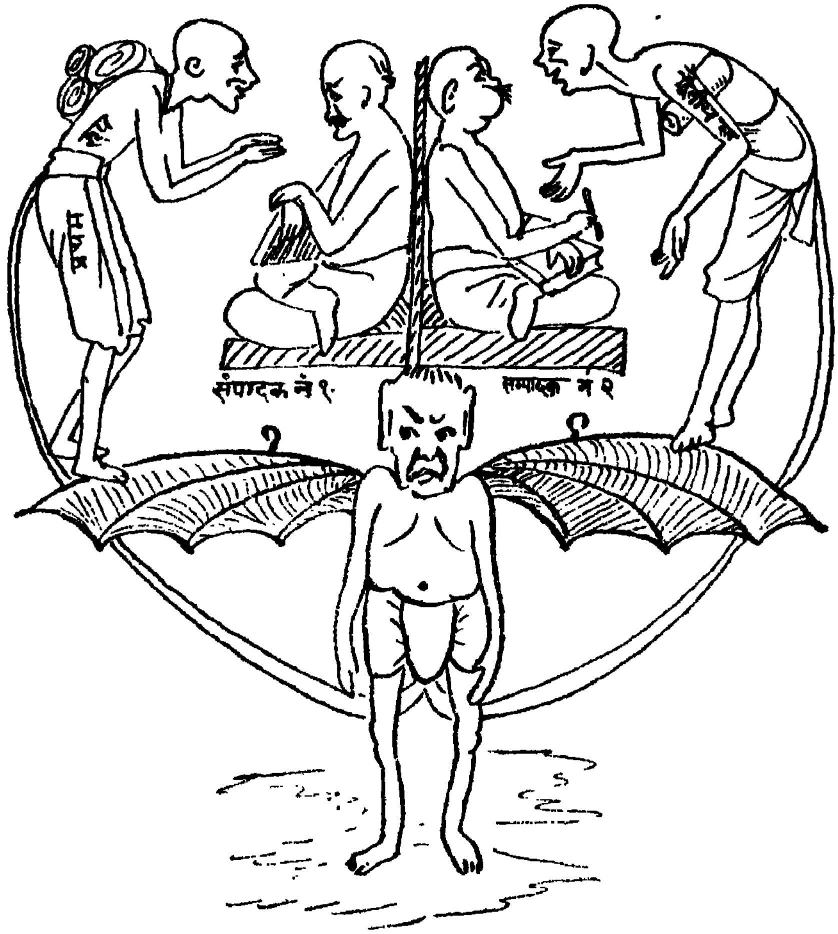
× × ×

रहीम के पुत्र एलचबहादुर की भी प्रशंसा में 'अभिमन्यु' कवि ने एक छंद रचा है। उसे देकर यह लेख समाप्त किया जाता है—

जैसे मृगराजन के छौना गजराजन पे,
छोटे-छोटे धावन करत आय घाव हैं;
तैसे लरिकाई ही ते एलचबहादुर ने,
भारी फौज मारी, मानों अंगद को पांव है।
कहै "अभिमन्यु" कुल दच्छिन तें जेर करो,
और कौन देस जाय मूछों देत ताव है;
दादे ते सरस बाप, बाप ते सरस आप,
महाबली बैरम के बंस को सुभाव है।

याज्ञिकत्रय

साहित्यिक चमगादड़



साहि० चम०—(प्रथम रूप में नं० १ पत्र-संपादक के पास जाकर) भाई साहब, आप बड़े सफल और सुयोग्य संपादक हैं। मैं तो बराबर अपने इष्ट-मित्रों से आपकी योग्यता की प्रशंसा किया करता हूँ। यह मेरा लेख लीजिए; अपने पत्र में छाप दीजिए। बड़ी कृपा होगी। (नं० २ संपादक के लिये) अमुक संपादक तो कुछ जानता-वानता नहीं, इसी से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

नं० १ संपादक— (लेख पढ़कर) क्षमा कीजिए।

साहि० चम०—(द्वितीय रूप में नं० २ पत्र-संपादक के पास जाकर नं० १ संपादक के संबंध में) अजी, वह संपादन-कला क्या जाने ? पढ़ा-लिखा भी तो राम का नाम ही है ! मैं उसकी जल्दी ही ख़बर लेनेवाला हूँ ! मेरा यह लेख आप छाप डालें, फिर वह स्मरणीय समालोचना भी आपके ही पत्र में छपाऊँगा।

नं० २ संपादक—हूँ ! फिर दर्शन दीजिएगा, इस समय तो मैं बहुत ही व्यस्त हूँ।

साहि० चम०—(अपने असली रूप में रोता हुआ, मन में) तुम दोनों ही दुष्टों से समझ लूँगा। मैं भी अब पाँचवें सवारों में समझा जाने लगा हूँ ! हाँ !

हमारी आर्थिक अवस्था

भारत की दरिद्रता ही सब कठिनाइयों की जड़ है। स्वराज्य की एक-मात्र आशा व्यापारिक उन्नति तथा देशोद्धार में बाधक दरिद्रता ही है। जब तक यह दरिद्रता पिंड न छोड़ेगी तब तक दुर्भिक्ष, महामारी, प्लेग आदि कभी पीछा नहीं छोड़ सकते। आज जैसी भारत-सरकार की व्यापारिक नीति तथा राजकीय प्रणाली है, वैसा ही यदि यह देश कृषि-प्रधान न होता, और प्रकृति-देवी की इस पर सदा अनुकंपा न बनी रहती, तो न-जाने इस संसार में भारतीयों का अस्तित्व भी रहता या नहीं। आज जो व्यापार की विषमता (Balance of trade) भारत के पक्ष में रहा करती है, अर्थात भारत का निर्यात जो साधारणतः आयात से अधिक रहा करता है, उसका कारण यह है कि यहाँ से कच्चा माल पर्याप्त रूप से निर्यात किया जाता है। यदि भारतवर्ष बाहर से तैयार माल न मँगाता, तथा उसे अपने यहाँ माल तैयार करने की पूरी स्वतंत्रता होती, तो आज भी भारत सब देशों का शिरोमणि होता, और स्वतंत्रता की ध्वजा फहराता। पर ब्रिटिश राज्य में यह कब संभव हो सकता है?

अब प्रश्न यह है कि इस दरिद्रता का कारण क्या है? भारतवर्ष कब तक इसका शिकार बना रहेगा? इससे पिंड छूट सकता है या नहीं? यदि इन प्रश्नों पर भली भाँति विचार किया जाय, तो स्पष्ट मालूम होगा कि इसके कई कारण हैं। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि हम लोग अपनी वास्तविक दशा जानते ही नहीं। केवल हाय हाय करते रहते हैं, कुछ सोचते नहीं। इस निबंध में यही बतलाने की चेष्टा की गई है।

अपार जन-संख्या की वृद्धि

एक समय था, जब करोड़ों बीघे ज़मीन को कोई पूछनेवाला तक नहीं था। जिसकी जितनी पहुँच थी, वह अपनी शक्ति के अनुसार उतनी ही ज़मीन आबाद कर अपने अधिकार में कर लेता था, और उसकी पैदावार से अपना भरण-पोषण करता था। पहले जन-संख्या कम रहने के कारण लोग थोड़ी-सी खेती-बारी करके अपने खाद्य पदार्थों को प्राप्त कर लेते थे। पर आज वैसी हालत नहीं है। आजकल तो पड़ती ज़मीन, गोचर-भूमि तथा जंगल आदि तक आबाद किए जा रहे हैं। ज़मीन की उत्पादन-शक्ति का उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है, हमारी दरिद्रता बढ़ रही है, तथा लोग भूख के कारण अकाल ही काल के मुख में जा रहे हैं। विज्ञ पाठकों को यह बात मालूम होगी कि हमारे यहाँ जन-संख्या की वृद्धि बहुत हो रही है। आज से सौ वर्ष पूर्व माल्थस् साहब ने अपनी एक पुस्तक में यह दिखलाया था कि "यदि कोई बाधा न हो, तो जन-संख्या की ज्यामितिक वृद्धि (Geometrical Progression) अर्थात् १, २, ४, ८, १६, ३२ और खाद्य पदार्थ की अंक-गणितीय वृद्धि (Arithmetical Progression) अर्थात् २, ४, ६, ८, १०, १२ होती है। यदि यह वृद्धि नैतिक नियमों से न रोकी जाय, तो दरिद्रता तथा अन्यान्य व्याधियों से कम हो जाती है।"

अब यह विचार करना है कि यह सिद्धांत भारतवर्ष पर लागू है या नहीं, और कहाँ तक सच है? इस संबंध में यह कहना कि यह सच है या नहीं, बड़ा कठिन है। पर इतने दिनों के अनुभव के बाद यह पता लगा है कि यद्यपि माल्थस् का कथन अक्षरशः सत्य नहीं है, फिर भी, इसमें कुछ तथ्य अवश्य है। अब यहाँ यह शंका उठ सकती है कि कितने ही देशों में तो जन-संख्या अधिक हो जाने पर भी कोई असर नहीं पड़ता, धनोपार्जन में बहुत सहायता मिलती और देश की श्रीवृद्धि होती है। पर इस प्रकार की दलीलें सब देशों के लिये कदापि लागू नहीं हो सकतीं। संभव है, यह किसी विशेष देश के लिये लाभ-प्रद हो; पर सब देशों के लिये नहीं। आप योरप के देशों को लीजिए। आप देखेंगे कि उन पर इसका प्रभाव उतना नहीं पड़ा। इसका कारण यह है कि वे देश उन्नतिशील हैं, अतः विदेश से खाद्य पदार्थ मँगाकर अपनी आवश्यकताएँ पूरी कर सकते हैं। उनमें व्यापारिक तथा राजकीय शक्ति है, जिससे वे विदेश से प्रचुर खाद्य पदार्थ मँगा लेते हैं। अतः उन पर प्रभाव नहीं पड़ता।

किंतु, जैसा कि ऊपर कहा गया है, भारत कृषि-प्रधान देश है, और यहाँ के रहनेवाले एक-मात्र कृषि पर ही निर्भर रहते हैं। ऐसी हालत में, करोड़ों मनुष्यों की रक्षा के लिये, खाद्य पदार्थों का उपार्जन करना अत्यावश्यक

है। लेकिन इतनी सुविधाएँ रहने पर भी लोग भूखों रहते हैं; क्योंकि भारत को राजकीय अधिकार कुछ नहीं है, तथा व्यापार की हालत बहुत बुरी है। सबसे बड़ी दिक़्क़त तो यह है कि जितनी जन-संख्या है, उतनी उपज नहीं है, जैसा कि नीचे दिए हुए अंकों से मालूम होता है—

जन-संख्या की वृद्धि

सन् १८७२	सन् १९११	सन् १९२१
२०,६१,६२,३६०	३१,२१,५६,०००	३१,८९,४२,४८०

अर्थात् ११,२७,८०,१२० मनुष्यों की वृद्धि ४९ वर्षों में हुई।

सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार ३१,८९,४२,४८० मनुष्यों में ९,९८,३२,०९६ मर्द और ९,४६,५७,०७७ स्त्रियाँ तथा १२,४४,५३,३०७ बालक हैं। इसी हिसाब से यदि प्रत्येक मर्द को २ पौंड प्रतिदिन दिया जाय, तो ३,३२,७७,३६५ टन, प्रत्येक स्त्री को १¾ पौंड की दर से २,७०,४४,८७१ टन तथा प्रत्येक बालक को १ पौंड की दर से २,०७,४२,२१८ टन खाद्य पदार्थ अर्थात् ८,१०,६४,४६२ टन की आवश्यकता है। नीचे के अंकों से साफ़ मालूम होगा कि हमको कितने की आवश्यकता है। हमारे यहाँ कितना उपजता है—

(दस लाख टन में)

चावल	३२·३	जिसमें	२·२	बाहर जाता है
गेहूँ	८·७	,,	१·३	,,
जव	३·३			
ज्वार	७·२			
बाजरा	३·५			
रागी	१·२	,,	१·०	,,
मक्का	२·५			
चना	४·८			
विविध पैदावार	१०·५			
जोड़	७६·०		४·५	

इसके अतिरिक्त ७·६ की हानि हो जाती है; १२·२ जानवरों के खाने के लिये, २·० बीज आदि के लिये अर्थात् २६·३ खाने के काम में नहीं आता। केवल (७६·०—२६·३) ४९·७ टन बाक़ी रह जाता है, अर्थात् ४१ प्रति सैकड़े मनुष्यों को भोजन नहीं मिलता। अर्थशास्त्र के विख्यात लेखक पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ने "भारत में कृषि-सुधार" नाम की पुस्तक में बड़े अन्वेषण के साथ यह दिखलाया है कि "आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या सन् १९१३-१४ में दस करोड़, और सन् १९२०-२१ में तेरह करोड़ थी। इसी बीच में यह संख्या १७ करोड़ तक बढ़ गई थी। सात वर्ष (१९११-१२ से १९१७-१८ तक) का औसत देखने से यह मालूम होता है कि प्रति सैकड़े ६४·६ मनुष्य आधे-पेट खाकर रहते हैं।" दुबेजी के कथन से तो यह मालूम होता है कि लगभग दो तिहाई मनुष्य आधे पेट खाकर अपनी आत्मा की रक्षा किसी तरह करते हैं, अथवा यों कहिए कि प्रत्येक मनुष्य तीन दफ़े भोजन के बदले केवल एक ही दफ़े खाकर ज़िंदगी बसर करते हैं। भारत की ऐसी ही दशा है, जिससे यहाँ के अधिवासी शक्तिहीन होते जा रहे हैं।

भारत की ऐसी दीन अवस्था पर सब देशवाले तरस खाते हैं; पर हमारी उन्नतिशील सरकार इसी बात की हामी भरती है कि भारत की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है। इसकी सारी ज़िम्मेदारी भारत-सरकार के ऊपर है। यदि भारत-सरकार थोड़ा भी ध्यान इस ओर देती, तो भारत अपने पैर पर खड़ा हो सकता, और अपनी रक्षा कर सकता। आज सरकार जिस दुर्भिक्ष हटाने के लिये भाँति-भाँति की चेष्टाएँ करने पर भी असफल हो रही है, वह 'छूमंतर' के समान भाग जाता, यदि सरकार सचमुच भारत की दरिद्रता हटाने के लिये तैयार हो जाती।

भारतीय मज़दूर तथा बेकारी

संसार के सभी राष्ट्रों में आज मज़दूरों का बहुत बड़ा प्रभाव है; क्योंकि देश की सभ्यता तथा उत्थान का आधार मज़दूर ही हैं। यदि आज मज़दूर श्रम करना छोड़ दें, तो सब काम बंद हो जाय। जो राष्ट्र जितना सभ्य तथा उन्नतिशील है, उसके यहाँ उतना ही मज़दूरी का भाव अधिक और मज़दूरों का मान है। अमेरिका में केवल टेबिल झाड़नेवाले को चार-पाँच रु० प्रतिदिन मिल जाते हैं। यह तो हुई योरप के देशों की हालत। अब आप अपने घर की हालत सुनिए। हमारे यहाँ अधिक-से-अधिक मज़दूर कम मज़दूरी पर काम करने के लिये मिल जाते हैं। यहाँ तो ४ आने पैसे दे दिए, और दिन-भर काम करा लिया। हिंदोस्तान में अन्य देशों की भाँति हर जगह कल-कारख़ाने

नहीं, वरन् कुछ मुख्य-मुख्य नगरों में हैं, जो अधिकांश समुद्र के निकट हैं। वे भी अब इने-गिने हैं। भारत कृषि-प्रधान देश तो है, पर अनेक प्रांतों के कृषक केवल छः अथवा आठ महीने कृषि-कार्य में लगे रहते हैं, शेष महीनों में बेकार रहा करते हैं। कुछ श्रमजीवी इन अवकाश के दिनों में बाहर जाकर कारख़ानों में नाना भाँति की कठिनाइयाँ, अपमान तथा क्लेश सहकर मज़दूरी करते हैं। वहाँ मज़दूरों की जो दुर्गति होती है, उसका रोमांचकारी इतिहास बड़ा दुःखद है। स्थानाभाव के कारण एक कोठरी में बीस-बीस आदमियों को लाचार होकर रहना पड़ता है। सरकार की एक रिपोर्ट से यह पता लगा है कि "बंबई के एक कारख़ाने की एक कोठरी में, जो १५ फ़ीट लंबी और १२ फ़ीट चौड़ी थी, एक मज़दूर-परिवार रहता था, जिसमें ३० आदमी थे। वह बिलकुल गंदी थी, और उसमें चूहे दौड़ा करते थे। उस कोठरी की ६ स्त्रियों में तीन स्त्रियाँ गर्भवती थीं, जिन्हें खाना-पीना तथा साफ़ हवा मिलना कठिन था।" बंबई की १६२१ की मनुष्य-गणना से मालूम होता है कि "७० प्रति सैकड़े श्रमजीवी एक ही बड़ी कोठरी में रहते हैं, और जो बहुत छोटी कोठरी है, उसमें कम-से-कम ५ मनुष्य रहते हैं।" कारख़ानों में काम करनेवाले श्रमजीवियों के इस तरह रहने से उनका स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है, तथा व्यभिचार अधिक बढ़ता है। मनुष्य-गणना से मालूम होता है कि भारत में (सन् १६२१) मज़दूरों की संख्या प्रति सैकड़े ३०.२१, अमेरिका में (१६२३) १२.३ तथा युनाइटेड किंगडम (इँगलैंड, स्कॉटलैंड आदि) में ११.७ थी। भारत में प्रत्येक मज़दूर का औसत जीवन-काल २४ वर्ष है, और अमेरिका में ५० वर्ष। पेट के कारण इन सब कठिनाइयों के रहने पर भी श्रमजीवियों को काम करना ही पड़ता है।

यह तो हुई अपढ़ लोगों की बात। अब पढ़े-लिखे शिक्षित कहलानेवालों की कहानी सुनिए। जो लोग आज पढ़े-लिखे और बड़े-बड़े पदवीधारी हैं, वे तो इनसे भी अधिक दुःख उठा रहे हैं। वे आज अपने सम्मान का ख़याल कर कृषि कर ही नहीं सकते; तथा पूँजी के अभाव से कोई व्यापार भी नहीं खोल सकते। अंत में उन्हें चाकरी की फ़िक्र लग जाती है। जो हज़ारों रुपए ख़र्च कर मैट्रिक्युलेशन अथवा स्कूल-लीविंग परीक्षा पास हो जाते हैं, वे १५) अथवा २०) रु० पर क्लर्की करते हैं, जो उनके पेट के लिये काफ़ी नहीं है। आज एक साधारण जगह ख़ाली होने पर सैकड़ों आवेदन-पत्र आते हैं; पर अंत में एक-दो को छोड़ सबको अपना-सा मुँह लेकर लौट जाना पड़ता है। यही हमारे शिक्षित लोगों की हालत है। बेकारी का प्रश्न न-जाने कब तक तय होगा। जिस देश की ऐसी बुरी हालत हो, भला वह कब तक उठ सकता है?

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली

आज भारतवर्ष में जैसा पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार बढ़ रहा है, और उसका जैसा प्रभाव ग्रामीणों पर पड़ रहा है, वैसा यदि वास्तविक शिक्षा का प्रचार किया जाय, तो बहुत कुछ उपकार हो सकता है। आज जिस प्रकार यहाँ मोटर, साइकिल तथा अन्यान्य आश्चर्यजनक ऐश व आराम की चीज़ों का प्रचार बढ़ाया जा रहा है, उसी प्रकार पठन-पाठन का प्रचार नहीं होता। इतने दिनों तक राज्य करके सरकार ने केवल प्रति सैकड़े ४ आदमियों को पढ़ाया है; अर्थात् ३१ करोड़ में केवल ८ लाख ४० हज़ार आदमी पढ़े-लिखे हैं। शेष सब अपढ़ हैं। कहीं-कहीं बोर्डों ने प्रारंभिक शिक्षा देने का प्रबंध किया है, जिससे छोटे-छोटे बालक कुछ पढ़ लेते हैं। पर आर्थिक कठिनाइयों के कारण उन्हें पढ़ना-लिखना छोड़कर पेट का धंधा करना पड़ता है। आज उच्च कोटि की शिक्षा बहुत कम लोग पाते हैं। आजकल की शिक्षा केवल सेवकाई करने की शिक्षा है। बहुत कम शिक्षित लोग कोई स्वतंत्र पेशा कर सकते हैं। ऐसी शिक्षा पानेवालों की जो दशा हो रही है, उसे पाठक स्वयं जानते हैं। जब तक व्यापारिक शिक्षा का प्रबंध न किया जायगा, तब तक भारत की दरिद्रता नहीं दूर हो सकती। नगरों में बड़े-बड़े स्कूल-कॉलेज खोल देने ही से शिक्षा का प्रचार नहीं हो सकता, बल्कि सरकार को यह चाहिए कि ग्रामों में शिक्षा अनिवार्य कर दे। सरकार जब तक इस ओर ध्यान न देगी, तब तक समृद्धिहीन भारतवासी अपने भविष्य-निर्माता बालकों को अवनति से नहीं बचा सकते, तथा उन्हें स्वतंत्रता की राह भी नहीं दिखा सकते। आज व्यावहारिक औद्योगिक शिक्षा का इस देश में इतना अभाव है कि भारत की पूँजी से खुले हुए बहुत बड़े-बड़े कारख़ानों तक के संचालन के लिये भी विदेशियों का मुँह ताकना और उनके अधीन रहकर काम करना पड़ता है।

सरकार की कर-संबंधी नीति

आज जो नित्य की व्यावहारिक चीज़ें हम देखते हैं, और

जिनके बिना हमारा काम चलना कठिन है, उनकी भी हालत बहुत बुरी है। भारतवर्ष में कौन ऐसा आदमी है, जिसे नमक, मिट्टी का तेल तथा कपड़े की आवश्यकता न पड़ती हो? बड़े-बड़े राजप्रासादों में रहनेवालों से लेकर टूटी-फूटी झोपड़ी में रहनेवाले कंगाल को भी नमक की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी-ऐसी आवश्यक चीज़ों पर सरकार ने कर इतनी अधिक मात्रा में लगाया है कि उसे प्रत्येक मनुष्य को लाचार होकर देना ही पड़ता है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि जो उपयोग की चीज़ें बाज़ारों में मिलती हैं, उनका मूल्य इतना अधिक इसीलिये है कि उनमें उत्पादन-व्यय, लाभ तथा कर सम्मिलित हैं, जिन्हें ख़रीदारों को अपने पास से देना पड़ता है। सरकार ने नमक पर १।) प्रति मन कर लगाया है, जो प्रत्येक मनुष्य पर तीन आने के हिसाब से पड़ता है। धनी-मानी लोगों को तो उसकी पर्वा नहीं, परंतु अधिकांश निर्धन मनुष्य पिसे जाते हैं।

हमारा व्यवसाय भी इस कर से वंचित नहीं है। यहाँ तक कि छोटे-छोटे स्वदेशी कारख़ानों को भी पूरा कर देना पड़ता है। इसका भी हाल सुनिए। इँगलैंड में अबाधित व्यापार-नीति है। वहाँ कोई ऐसा कर नहीं देना पड़ता, जिससे देश के उद्योग-धंधों को किसी प्रकार की हानि पहुँचे। पर भारतवर्ष में यह बात नहीं है। यहाँ तो भारतीय कारख़ानों को उचितसंरक्षण देकर प्रोत्साहित करने के बदले उन पर अधिक कर लगा दिया जाता है, जिसका फल यह होता है कि विदेश से आई हुई चीज़ों का मूल्य स्वदेश का बनी हुई चीज़ों से कम पड़ता है। इस कारण प्रतिस्पर्द्धा में कोई स्वदेशी चीज़ें नहीं ठहरती, और बड़े-बड़े कारख़ाने बंद हो जाते हैं। योरप के अन्य राष्ट्रों ने भी कर लगाया है; पर प्रतिदिन की व्यावहारिक चीज़ों पर नहीं, बल्कि कुछ आराम की चीज़ों पर। यद्यपि अन्य देशों में अबाधित व्यापार-नीति है, पर वहाँ की सरकारों ने अपने स्वदेशी कारख़ानों को भली भाँति संरक्षण दे रक्खा है, तथा स्वदेशी कारख़ानों को वे सदा उत्साहित करती रहती हैं। भारत-सरकार को चाहिए कि वह भी यहाँ के कारख़ानों को संरक्षण दे। जब तक इस तरह की नीति भारत में प्रचारित न की जायगी, तब तक भारत की बनी चीज़ें विदेशी चीज़ों के मुक़ाबले में कभी नहीं ठहर सकतीं।

भारत के लिये अबाधित व्यापार लाभदायक है अथवा नहीं, इस संबंध में यहाँ इतना ही कहना काफ़ी है कि आज भारत की जैसी आर्थिक अवस्था है, उसमें बाधित व्यापार-नीति लाभप्रद है; क्योंकि जब तक स्वदेशी कारख़ाने स्वावलंबी न होंगे, तब तक बाहर की आई हुई चीज़ों पर पूरा कर लगाना चाहिए। ऐसा करने से बाहर की चीज़ें सस्ती नहीं मिलेंगी।

संसार के भिन्न-भिन्न देशों का आर्थिक इतिहास पढ़ने से मालूम होता है कि जहाँ कहीं सरकार ने कर लगाया है, वहाँ ख़ूब सोच-विचार कर। उसी तरह यदि भारत-सरकार ऐश व आराम की चीज़ों अर्थात् मोटर, साइकिल, लेवेंडर, तंबाकू तथा शराब आदि पर अधिकाधिक कर लगा दे, तो बहुत अच्छा हो। नमक, कपड़े तथा मिट्टी के तेल पर कर लगाना ग़रीबों को चूसना है। जब सरकार ऐसी चीज़ों पर कर लगावेगी, तो वह केवल उन्हीं आराम चाहनेवाले तथा व्यसनी लोगों पर पड़ेगा, जिन्हें ऐसी-ऐसी आराम की चीज़ों का शौक़ है। ऐसा करने से वे ग़रीब बेचारे तो बच जायँगे, जिन्हें इनकी बिलकुल आवश्यकता नहीं। सरकार को इस ओर पूरा ध्यान देना चाहिए।

विदेशी पूँजी

यह सभी जानते हैं कि पूँजी प्रधानतः व्यापारिक कामों के लिये अत्यावश्यक है। बिना पूँजी के संसार का कोई काम या कारोबार चलना बहुत कठिन है। आज जो हमारे यहाँ इतने कल-पुर्ज़े, नहर, रेल तथा भाँति-भाँति की मशीनें देख पड़ती हैं, उनमें क्या भारतीय पूँजी लगी है? क्या भारतवासियों पर उनके कार्य-संचालन का भार है? यदि विचार किया जाय, तो मालूम होगा कि अधिकाधिक कल-पुर्ज़े श्वेतांगों के अधिकार में हैं, और उन पर उनका एकाधिकार है। अब यह सोचना है कि क्या भारतवर्ष में पूँजी नहीं है? क्या भारतीयों में इतनी योग्यता नहीं कि वे कारख़ाने खोलकर उन्हें चला सकें?

पूँजी के संबंध में सरकार की ओर से यह कहा जाता है—"भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहाँ लोग धन-संचय कर उसका पूँजी के रूप में उपयोग करना नहीं जानते। उनकी आदतें बहुत बुरी हैं। वे कुछ रुपए तो भाँति-भाँति के आभूषण बनवाने में ख़र्च कर डालते हैं, और कुछ दबा रखते हैं। कोई व्यवसाय

करने का नाम तक नहीं लेता ; क्योंकि उन्हें अपनी पूँजी के मारे जाने का भय है...।" भारत-सरकार की ओर से, सन् १६२१-२२ में, आनरेबुल इब्राहीम रहीमतुल्ला की अध्यक्षता में, भारत की आर्थिक अवस्था की जाँच करने के लिये "आर्थिक कमीशन" बिठाया गया था, जिसने एक बहुत बड़ी रिपोर्ट दी थी। विदेशी पूँजी के संबंध में उक्त कमीशन ने एक विचित्र रिपोर्ट दी थी। पर अल्पमत की रिपोर्ट ग्रहणीय है। बहुमत की रिपोर्ट यह थी कि "भारत को ऐसी अवस्था में विदेश से पूँजी मँगाना बहुत ज़रूरी है ; क्योंकि भारत में पूँजी काफ़ी नहीं है।" अल्पमत की राय थी—"we will therefore, state at once that we would raise no objections to Foreign Capital in India-obtaining the benefit of the protective policy provided suitable condition are laid down to safe-guard the essential interests of India." बात भी ठीक है। यदि ऐसी शर्तों पर विदेशी पूँजी आवे, तो अत्युत्तम है।

भारतवर्ष में भी पूँजी की कमी नहीं है। यदि थोड़ा प्रयत्न किया जाय, तो पूँजी मिल सकती है। योरप के महायुद्ध के समय भारतवासियों ने करोड़ों रुपए भारत-सरकार को क़र्ज़ देकर यह प्रमाणित कर दिया है कि भारत में पूँजी की कमी नहीं है। यहाँ इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि हमारे यहाँ के धनी-मानी लोग पूँजी मारे जाने के डर से उसे बाहर नहीं निकालते। यह कमज़ोरी है और कमज़ोरी का कारण विदेशी स्पर्द्धा है। सरकार ने अब स्वदेशी व्यवसायों को संरक्षण देने की नीति का अवलंबन करना आरंभ कर दिया है, और अब लोगों को यह विश्वास हो जायगा कि उनकी पूँजी मारी न जायगी, तब करोड़ों रुपए आसानी से निकल आवेंगे। सरकार की ओर से संरक्षण के संबंध में यह कहा जाता है कि यदि सब कंपनियों को संरक्षण दे दिया जाय, तो फल यह होगा कि बहुतेरी कंपनियाँ आडंबर बनाकर संरक्षण ले लेंगी, और इसका फल यह होगा कि ऐसी कंपनियाँ आलसी और उद्योगहीन बन जायँगी, तथा अपने पैरों खड़े होने की चेष्टा तक न करेंगी। यह बात कुछ अंशों में ठीक है। पर सरकार को संरक्षण देते समय इस पर पूरा विचार करना चाहिए कि जो कंपनियाँ सचमुच संरक्षण देने से लाभ उठा सकती हैं, उन्हीं को संरक्षण दिया जाय, औरों को नहीं। अनुचित लाभ उठानेवाली अथवा काफ़ी उत्पादन न कर सकनेवाली, कंपनी को भूलकर भी संरक्षण न देना चाहिए।

कुछ लोग यह सोचते हैं कि विदेश की पूँजी से खुले हुए व्यवसायों से जो लाभ होता है, वह यदि किसी विदेशी अथवा स्वदेशी पूँजीपति के पास जाय, तो कोई हर्ज नहीं ; क्योंकि इससे उत्पादन अधिक और देश समृद्धिशाली होगा। इस प्रकार की धारणा बिलकुल काल्पनिक है ; क्योंकि कोई देश उसी हालत में समृद्धिशाली हो सकता है, जब स्वदेशी व्यवसाय का लाभ स्वदेश ही में रह जाय। यदि ऐसा हो जाय, तो कोई राष्ट्र (विशेषतः भारतवर्ष) अल्पकाल ही में समृद्धिशाली तथा संपन्न हो सकता है, और देश का उद्धार भी हो सकता है।

भारतवर्ष में अभी विदेशी पूँजी की आवश्यकता तो है, पर भारत-सरकार इस बात पर पूरी निगरानी करे कि भारत के व्यवसायों को वह किसी तरह धक्का न पहुँचावे। साथ-ही-साथ यह भी ख़याल रखना चाहिए कि विदेशी पूँजी से खुली हुई कंपनियों में (१) भारतवासियों का प्रतिनिधित्व, संचालक-मंडल (Directors on the Board) में भली भाँति होने पावे, (२) जितनी कंपनियाँ यहाँ खोली जायँ, उनकी स्थापना भारत में ही हो, (३) सब कंपनियाँ यहीं रजिस्टर्ड की जायँ, और उनकी पूँजी भारतीय प्रचलित मुद्रा (Rupee capital) में हो, तथा (४) भारतीय युवकों को व्यापारिक शिक्षा देने के लिये समुचित प्रबंध करके उन्हें प्रोत्साहित किया जाय।

उपर्युक्त बातों से अब यह स्पष्ट हो गया कि हमारे यहाँ, पूँजी की कमी के कारण, आज जितने कारख़ाने देख पड़ते हैं, वे सब विदेशियों के ही हाथ में हैं। जहाँ कहीं ज्वाइंट-स्टॉक्स-कंपनियाँ हैं, वहाँ भी भारतीयों को यह अधिकार नहीं कि वे उसके संचालन में भाग ले सकें। उन विदेशी पूँजीपतियों के कारख़ानों से हमारी भलाई होने के बदले हानि हो रही है, और करोड़ों रुपए बाहर चले जाते हैं, जिससे हमारा देश निर्धन हो रहा है।

प्रचलित मुद्रा-प्रणाली

अति प्राचीन काल में हमारे यहाँ सुवर्ण की ही मुद्रा प्रचलित थी, जिसका उल्लेख वेदों में भी है। हिंदू-राज्यकाल के बाद जैसे-जैसे राज्य-परिवर्तन होता गया, वैसे-वैसे कुछ

हेर-फेर तो अवश्य हुआ, पर किसी राजा ने सुवर्ण की प्रचलित मुद्रा को हटाया नहीं। मुसलमानों के शासन-काल में अनेक प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित थीं : पर उस समय भी 'मोहर' चलती थी। ब्रिटिश-राज्य में भी कुछ दिन पूर्व यही प्रथा थी। पर भारत-सरकार ने जान-बूझकर उसे अब बंद कर दिया है, और लोगों को क्रमशः काग़ज़ी सिक्के (Paper Currency) की ओर झुका रही है। संसार के सभी देशों में स्वर्ण-मुद्रा का प्रचार है ; पर आज भारतवर्ष में नहीं है। जिनसे हमारा घनिष्ठ संबंध है, उनको देना-पावना चुकाने में जो हमें कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं, उन्हें हमीं जानते हैं। आज जो सुवर्ण के बदले रुपए तथा नोटों का प्रचार बढ़ रहा है, उसका भी इतिहास रहस्यमय है। सन् १८६१ ई० में भारत-सरकार ने एक विज्ञप्ति द्वारा यह बतलाया था कि "भारत-सरकार वाणिज्य-व्यापार के कामों में सुविधा देने, रुपए ढोने की कठिनाइयों से बचाने, फ़सल के समय रुपए की माँग पूरी करने और अन्य कठिनाइयों से बचाने के लिये नोट जारी करेगी......।" जब से यह विज्ञप्ति प्रकाशित हुई, तब से नोट का चलन हुआ। सरकार ने इन नोटों के संरक्षणार्थ एक काग़ज़ी मुद्रा-संरक्षण-कोष (Paper Currency Reserve) बनाया, जिसमें सोना, चाँदी तथा इन्हीं धातुओं के सिक्के एवं कुछ सिक्युरिटियाँ हैं। कई वर्षों की अंक-गणना से पता लगता है कि इस कोष में बहुत अधिक सिक्युरिटियाँ रक्खी जाने लगी हैं, और नोटों से जो लाभ होता है, वह भी इसी कोष में जा रहा है। इस कोष का अधिकांश भाग इँगलैंड में चाँदी ख़रीदने के लिये रक्खा गया है, जो बिलकुल अनावश्यक है। यदि इस कोष का निर्माण नोटों को ख़तरे से बचाने के लिये है, तो इस कोष को केवल भारतवर्ष में ही रखना चाहिए ; क्योंकि ऐसा करने ही में भारत की भलाई है।

जिस तरह नोटों को ख़तरे से बचाने के लिये काग़ज़ी मुद्रा-संरक्षण-कोष है, ठीक उसी प्रकार विनिमय की दरों को स्थायी रखने के लिये मुद्रा-ढलाई-लाभ-कोष (Gold Standard Reserve) है। इँगलैंड तथा अन्यान्य देशों में भारतवर्ष के सदृश चाँदी के सिक्के नहीं हैं, इसलिये लेन-देन में बड़ी कठिनाई होती है। इन पारस्परिक विनिमय की कठिनाइयों को दूर करने के लिये इस कोष का निर्माण हुआ है, जो लंदन में रक्खा गया है। इस कोष का भारत-सचिव नियंत्रण करते हैं, और वह उसी के द्वारा विदेशी व्यापारियों का देना-पावना, उनकी प्रचलित एवं प्रामाणिक मुद्रा में, भुगता देते हैं। लंदन संसार के नगरों में सर्वश्रेष्ठ तथा व्यापारिक केंद्र है, इसलिये देने-पावने में कठिनाई नहीं होने पाती। मुद्रा ढालने में जो लाभ होता है, वह भी इसी कोष में आता है, जिसकी वृद्धि प्रतिदिन हो रही है। ता० ३१ मई १९२५ तक इसमें निम्न-लिखित संपत्ति थी, जो इस प्रकार इँगलैंड में रक्खी गई थी —

Cash at short Notice अर्थात् अल्पकाल के लिये उधार दिया हुआ नक़द धन	१,७६१ पौंड
British Government Securities (Value as on 31st March last)—अर्थात् ब्रिटिश-सरकार की सिक्युरिटियाँ (जिनका मोल ३१ मार्च की दर से था)	३५,०१५,५६६ पौंड
British Govt. Securities since purchased—अर्थात् ब्रिटिश सरकार की सिक्युरिटियाँ, जो ख़रीदी गई थीं	५,[illegible]२,७७७ पौंड
जोड़	४०,३१०,१३४ पौंड

अर्थात् लगभग ६०,४६,५२,०१० रु० इस कोष में हैं, जो सर्वदा अल्पकालिक उधार दी हुई नक़द रक़म है। अर्थात्, जब चाहें तब यह रक़म मिल जा सकती है। जो अपार धन इस कोष में रक्खा गया और विलायत की कंपनियों को दिया गया है, वह बुरा है। नाम-मात्र के सूद पर अल्पकालिक (Cash at short Notice) के बहाने विलायत की कंपनियाँ और सरकार लाभ उठा रही हैं, और प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए बचा लेती हैं, जिसके लिये उन्हें किसी प्रकार का झंझट नहीं उठाना पड़ता।

कहा जाता है कि इस कोष से विनिमय की दर स्थिर रहती है। पर युद्ध-काल के समय उसने विनिमय के दर पर कौन-सा नियंत्रण किया ? उस समय यहाँ से बहुत ज़्यादा खाद्य पदार्थ इँगलैंड भेजा गया था, और वहाँ से बहुत कम चीज़ें आई थीं। ऐसी हालत में विनिमय की दर बढ़ने लगी;

क्योंकि आवश्यकतानुसार चाँदी की माँग पूरी न हो सकी, और कौंसिल-बिल महँगे बिकने लगे। निम्नांकित अंकों से यह बात साफ़ मालूम होती है—

	पौं०	शि०	पेंस
१ली अगस्त सन् १९१७ ई०	×	१	५
१५वीं एप्रिल ,, १९१८ ,,	×	१	६
१५,, मई ,, १९१९ ,,	×	१	८
१५,, अगस्त ,, ,, ,,	×	१	१०
१ ली ऑक्टोबर,, ,, ,,	×	२	१/२
२ री दिसंबर ,, ,, ,,	×	२	३ १/८
१ली फ़रवरी ,, १९२० ,,	×	२	८ १/२

युद्ध-काल के समय विनिमय की दर इस प्रकार चढ़ गई, और १ली फ़रवरी, १९२० तक वह २ शि० ८½ पेंस तक हो गई। उसके बाद कभी घटी, और कभी बढ़ी। इस वर्ष बहुत दिनों से इसकी दर १ शि० ६ पेंस है। अब स्पष्ट हो गया होगा कि मुद्रा-ढलाई-लाभ-कोष इसलिये नहीं रक्खा गया कि वह विनिमय की दर स्थिर रक्खे। उसका कुछ दूसरा ही मतलब है, जो प्रकट रूप से नहीं बतलाया जाता। इस बढ़ती से भारत को लाभ है या हानि, इसका उल्लेख "भारतीय करेंसी तथा विनिमय"-शीर्षक लेख में सविस्तर प्रकाशित हो चुका है। कुछ लोग यह समझते हैं कि इससे भारत को लाभ है; क्योंकि पहले १) रु० के बदले १ शि० ४ पें० मिलते थे, और अब १ शि० ६ पें० मिलते हैं, अर्थात् विलायती चीज़ अब सस्ती मिलेगी। किंतु लोग इस दर को तात्कालिक लाभदायक तो समझते हैं, पर भविष्य में जो इसका प्रभाव पड़ेगा, उसको नहीं सोचते। इसका फल यह होगा कि विदेशी माल सस्ता होने से लोग ख़ूब मँगावेंगे, तब हमारे यहाँ की महँगी चीज़ें नहीं बिकेंगी, और हमारे स्वदेशी कारख़ानों तथा व्यवसाय को धक्का लगेगा। जो सॉवरेन या सोना भारत-सरकार के कोष में विदेश से आए हुए कौंसिल-बिलों का भुगतान करने के लिये रक्खा हुआ है, उसका मूल्य घटकर दो-तिहाई रह जायगा, अर्थात् हमें लगभग ४० करोड़ की हानि होगी। इसके अतिरिक्त जिन लोगों ने सोना ख़रीदकर अपने पास रक्खा है, उनको भी घाटा होगा; क्योंकि उसका मूल्य भी बहुत कम हो जायगा।

इस कोष का एक भाग यद्यपि भारतवर्ष में रहता है, तथापि अधिकतर भाग विलायत में ही रहता है। विलायत में इस कोष को रखने से जो हानियाँ हो रही हैं, वे अपार हैं। इसको भारतवर्ष में ही रखने के लिये बड़ी व्यवस्थापिका सभा में कई बार कहा-सुनी हुई, तथा भारतवर्ष के चारों ओर आंदोलन भी किया गया; पर सरकार एक नहीं सुनती। भगवान् जाने, सरकार क्या सोच रही है, और उसके मन में क्या है? आज भारत में पूँजी के अभाव से कोई कारोबार नहीं होता, विदेशी पूँजी का लाभ तथा सूद बाहर चला जाता है; पर भारत का अपार धन मुद्रा-ढलाई-लाभ-कोष के नाम से रखकर, अपने स्वदेशी मित्रों तथा स्वजनों को देकर, भारत-सरकार लूट मचा रही है। यदि यही कोष भारत में रहता, और उसी तरह लोगों को उधार देकर व्यापार तथा व्यवसाय कराया जाता, तो भारत की आर्थिक अवस्था बहुत कुछ सँभल जाती। भारत-सरकार न-जाने क्यों दरिद्र भारतीयों की ओर से इस तरह उदासीन है कि उनकी आर्थिक अवस्था सुधारने की चेष्टा नहीं करती।

वेतन के नाम पर अपार धन का अपहरण

एक ओर तो ऐसी दुर्दशा है, उधर दूसरी ओर का भी हाल हृदय-विदारक है। हमारी आर्थिक कठिनाइयाँ रहने पर भी ख़र्च कम नहीं है। यद्यपि ६७,००० मील नहर का प्रबंध करने से २,८०,००,००० एकड़ ज़मीन सींची जाती है, और इससे कुछ उत्पादन भी होता तथा सहयोग-समितियों से कृषकों को बचत होती है, तथापि विदेशी अफ़सरों तथा फ़ौजी सिपाहियों को इतना अधिक वेतन देना पड़ता है, जिसकी कुछ हद नहीं! अकेले वायसराय को भत्ते के अतिरिक्त ८३,००० डालर * मिलते हैं, लेकिन अमेरिका के प्रेसीडेंट को केवल ७५,००० डालर ही। वायसराय की कार्यकारिणी समिति के सदस्य को २६,००० डालर मिलते हैं, पर अमेरिका के केबिनेट के सदस्य को १२,०००ही। मदरास के गवर्नर को ४०,००० डालर तथा भत्ता मिलता है; पर न्यूयार्क के गवर्नर को १०,००० पौंड ही। बंगाल के चीफ़ जस्टिस को २४,००० डालर मिलते हैं; पर अमेरिका के चीफ़ जस्टिस को १५,००० डालर ही। यह तो हुआ अँगरेज़ों का वेतन। भारतीयों को क्या मिलता है, वह भी सुनिए। चौबीस घंटे काम करनेवाले सिपाही का सालाना

* एक डालर क़रीब तीन रुपयों के होता है।

वेतन ४० से ८५ डालर तक है। इतना वेतन देने के अतिरिक्त भूतपूर्व अफ़सरों को ३५,००,००० से ४०,००,००० पौंड पेंसन भी देनी पड़ती है।

भारत में शांति-स्थापन के लिये पलटन में करोड़ों रुपए ख़र्च किए जाते हैं। १६२५-२६ में भारत-सरकार की आमदनी ३०,१६,००,००० डालर रक्खी गई थी, जिसमें २०,०८,३३,३३४ डालर फ़ौजी ख़र्च के लिये थे। क्या इतनी बड़ी रक़म फ़ौज में ख़र्च कर देना न्याय है? मि० रैम्ज़े मैकडॉनेल्ड ने अपनी पुस्तक "दि गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया" में ठीक ही कहा है—

"Upon civil and military pensicns alone the Indian tax-payer has to find for claimants living in England something like 3,500,000 to 4,000,000 pounds a year. And these dead charges under a foreign government are doubly serious, for they are not only drawn from Indian production, but are withdrawn from India itself."

उसी पुस्तक में आपने पलटनों के संबंध में यह कहा है—

"A large part of the army in India—certainly one half—is an imperial army, which we require for other than purely Indian purposes, and its cost, therefore should be met from Imperial and not Indian Funds. When we stationed troops in other part of the empire, we did not charge them upon the colonies, but in India we have the influence of the dead hand."

लेखक का यह कथन बिलकुल सत्य है। सरकार भारत के नाम पर बहुत ज़्यादा पलटनें रखकर भारत के धन पर गुलछर्रे उड़ाती है, इसमें किसी तरह की शंका नहीं।

भारतवर्ष में जन-संख्या की बहुत वृद्धि हो गई है; पर वही हाल तो फ़्रांस, जापान तथा जर्मनी का भी है। ऐसी हालत में भी केवल हमारी दशा ख़राब है, और फ़्रांस, जापान तथा जर्मनी संपन्न हैं। इसका एकमात्र उत्तरदायित्व भारत-सरकार के ऊपर है। यदि भारत-सरकार हम लोगों की सचमुच भलाई करना चाहती, तो बहुत कुछ कर सकती। परंतु न-जाने भारत के भाग्य में कब तक गुलामी करना लिखा है।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो गया कि हमारी आर्थिक अवस्था कैसी है, और किन-किन कारणों से हमारी दरिद्रता बढ़ रही है। हम इसमें कुछ सुधार चाहें, तो कर सकते हैं, पर बहुत थोड़ा; क्योंकि हमारे अधिकार ही कितने हैं। सरकार जिस तरह चाहती है उसी तरह मनमाने सब काम करती है, किसी की बात नहीं सुनती। जहाँ देखिए, राजकीय प्रणाली में, कर-संरक्षण-नीति में, मुद्रा-संबंधी नियमों तथा अन्य सभी बातों में, दोष हैं, और उनका सुधारना बहुत आवश्यक है। पर जहाँ सरकार के हित में थोड़ी भी बाधा पहुँचती है, वहाँ वह टस-से-मस नहीं होती। व्यवस्थापिका सभाओं में बड़े-बड़े प्रस्ताव पास किए जाते हैं; लेकिन सरकार उन्हीं प्रस्तावों पर ख़याल करती है, जो उसके हित में बाधक नहीं होते। यही हमारी वर्तमान आर्थिक अवस्था है। कहने का तात्पर्य यह कि देश की यह दशा सुधारने, देशोद्धार करने, घर के व्यवसाय आदि को पुनर्जीवित करने तथा सुख की नींद सोने के लिये आर्थिक स्वराज्य की नितांत आवश्यकता है। इसके बिना हमारी परतंत्रता कभी नहीं दूर हो सकती।

लक्ष्मीनारायणसिंह

"दुर्गावती"

(आलोचना)

पं० बदरीनाथ भट्ट हिंदी के एक सुयोग्य और लब्धप्रतिष्ठ मौलिक लेखक हैं। आपने हिंदी-साहित्य में मौलिक रचनाओं—विशेषकर नाटकों—का खेदजनक अभाव अवलोकन कर साहित्य के इस विशेष अंग की पूर्ति का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया है। आपने मौलिक रचनाओं द्वारा इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न भी किया है। वर्तमान समय में हिंदी की सुरम्य वाटिका इन्हीं मौलिक रचना-प्रसूनों के सौरभ से व्याप्त हो रही है, और अन्य अमर-लेखकों का चित्त इस ओर आकर्षित करती है कि वे भी मौलिक कृतियों द्वारा इस वाटिका को रम्यतर बनावें, तथा अपने साहित्य का मस्तक ऊँचा करें। हिंदी-साहित्य के अधिकांश नाटक तथा उप-

न्यास बँगला, मराठी तथा अन्यान्य भाषाओं से अनूदित होकर साहित्य की शोभा-वृद्धि कर रहे हैं। परंतु आश्चर्य-जनक विषय यह है कि मौलिक कृतियों की गणना उँग-लियों पर की जा सकती है। अद्यावधि हिंदी के धुरंधर विद्वानों ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इसी कारण साहित्य का एक मुख्य अंग अपूर्णता की दशा में पड़ा रहा। परंतु आजकल कुछ साहित्य-सेवी, इस अभाव से पीड़ित होकर, इस अंग की पूर्ति का प्रयत्न कर रहे हैं, और उनका साहस प्रशंसनीय है। इन्हीं में एक पं० बदरीनाथ-भट्ट बी० ए० भी हैं, जिन्होंने इस अभाव की पूर्ति, स्वतंत्र रचनाओं द्वारा, की है। आपकी कृतियाँ निम्न-लिखित हैं—(१) चंद्रगुप्त नाटक, (२) तुलसीदास नाटक, (३) वेनचरित नाटक, (४) चुंगी की उम्मीदवारी आदि! नाटक साहित्य का मुख्य अंग है। वह साहित्य अपूर्ण कहा जायगा, जिसमें मौलिक रूपकों की प्रचुरता न हो। बँगला या अँगरेज़ी, किसी भी भाषा के साहित्य के इतिहास का अध्ययन करिए, उसमें मौलिक रूपकों की बहुलता दृष्टिगोचर होगी। इसी कारण उनका साहित्य पूर्ण तथा सभ्य कहा जाता है। जिन साहित्यों में इनका अभाव है, वे 'अपूर्ण' संज्ञा से संबोधित किए जाते हैं! इस कारण साहित्य के इस अंग की पूर्ति अत्यावश्यक है!



पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०

मौलिक रूपकों की अधिक आवश्यकता है; क्योंकि नाटक प्रत्येक देश के आचार व्यवहार, धार्मिक तथा सामाजिक अनीतियों को इस प्रकार रंग-मंच पर चित्रित अथवा प्रदर्शित करता है कि दर्शक-मंडली का उधर ध्यान आकर्षित हो, वह उन पर मनन करे, और समाज तथा धर्म को इन दूषणों से उन्मुक्त कर सके। देश की अवस्था का सुधार इन्हीं के द्वारा सरलता-पूर्वक हो सकता है, देश को स्वतंत्रता देवी के मंदिर का मार्ग भी प्रदर्शित किया जा सकता है। इस कारण मौलिक रूपकों की रचना द्वारा साहित्य के एक मुख्य अभाव की पूर्ति ही नहीं, वरन् देश और जाति की भी उन्नति होती है। अन्य भाषाओं से अनूदित नाटकों को पढ़ने से हम अन्य जातियों के आचार-विचार से परिचित हो जाते हैं; परंतु इस समय नितांत आवश्य-कता इस बात की है कि हम स्वदेश की दशा से स्वयं परिचित हो जायँ, और भारतीयों को भी उनकी अधो-गति से परिचित करा दें, उन्हें उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर होने में सहायता प्रदान करें। देश का यह

महान् उपकार हम तभी कर सकते हैं, जब अपने साहित्य को धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक रूपकों से परिपूर्ण कर दें। देश-सुधार का यह उत्तरदायित्व इन्हीं मौलिक लेखकों के ऊपर है। अब ऐसी आशा की जाती है कि अनुवाद का गौण कार्य अन्य अल्पज्ञ लेखकों के ऊपर छोड़कर हिंदी के धुरंधर लेखक इस ओर तन-मन से लग जायँगे, और देश तथा साहित्य, दोनों का अकथनीय उपकार करेंगे। दासता के दुःख से भारतीय—विशेषकर हिंदू-जाति—अपनी प्राचीन अवस्था को भूल गई है। इस कारण, इस जाति में पुनः सजीवता उत्पन्न करने के लिये, इन्हीं मौलिक रूपकों की अनिवार्य आवश्यकता है। मेरे कथन का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि मौलिक रचनाओं की ही वृद्धि की जाय, और अनुवाद एक भी न किया जाय। उत्तमोत्तम पुस्तकों का अनुवाद अवश्य होना चाहिए; परंतु विद्वानों का प्रथम लक्ष्य मौलिक रचना की ओर होना चाहिए, न कि अनुवाद की ओर, जैसा कि कुछ आधुनिक लेखकों का है।

देश-सुधार का दूसरा मुख्य साधन उपन्यास हैं। उपन्यासों द्वारा भी देश-सुधार का महान् कार्य किया जा सकता है, जैसा कि श्रीयुत प्रेमचंद बी० ए० के उपन्यास कर रहे हैं। पर उपन्यासों द्वारा देश-सुधार उतनी सुगमता से नहीं हो सकता; क्योंकि वे केवल श्रव्य होते हैं। दृश्य गुण से वे रहित हैं। इस कारण वे उतना प्रभाव जनता के हृदय पर नहीं डाल सकते। परंतु नाटक दृश्य और श्रव्य, दोनों होने के कारण अधिक प्रभाव डाल सकते हैं। इसी कारण साहित्य-क्षेत्र में नाटकों का स्थान उपन्यासों से कहीं ऊँचा है। दृश्य होने के कारण ही नाटक के चरित्रनायक तथा अन्य पात्रों का चरित्र अधिक माननीय और अनुकरणीय प्रतीत होता है, और हम उनके गुणों का अनुकरण करना चाहते हैं। पक्षांतर में उपन्यास के चरित्र-नायक तथा अन्य पात्र हमको उतना प्रभावान्वित नहीं करते; क्योंकि उनको हम रंग-मंच पर कार्य करते नहीं देख पाते।

इस समय राजनीतिक, सामाजिक, तथा धार्मिक रूपकों की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि सामाजिक तथा धार्मिक कुरीतियों का बहिष्कार किए बिना किसी जाति के उठाने का विचार बिलकुल वृथा और असंभव भी है। इस कारण मैं हिंदी के विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। भारतवर्ष में इस समय भी अधिकांश मनुष्य यह नहीं अनुभव करते कि वे दासता की बेड़ियों में जकड़े हैं। इसका कारण नैतिक तथा ऐतिहासिक नाटकों का अभाव है। यदि हिंदी-साहित्य का भांडार इन्हीं रूपकों से पूर्ण कर दिया जाय, तो देश में राजनीतिक क्रांति सहज ही में उत्पन्न की जा सकती है, और देश का उपकार भी हो सकता है। आशा है, साहित्य-सेवी इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

प्रस्तुत नाटक

नाटक का चरित्रनायक एक प्रसिद्ध, वीर, देश-सेवक, तथा आत्म-त्यागी व्यक्ति होना चाहिए। परंतु प्रकरण में यह आवश्यक नहीं। उसका चरित्रनायक कपोल-कल्पित भी हो सकता है। पर नाटक का चरित्रनायक अवश्य एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति होना चाहिए। इस नाटक का नायक अकबर और नायिका दुर्गावती है। दोनों प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, न कि कपोल-कल्पित।

प्रारंभ

भारतीय नाटकों का प्रारंभ अधिकतर नट और नटी की प्रार्थना से होता है। तत्पश्चात् दोनों नाटक तथा चरित्रनायक के विषय में वार्तालाप और कौन नाटक खेला जाय, यह निर्णय करते हैं। भट्टजी ने अपने अन्य नाटकों में इस परंपरा-रीति का अनुसरण किया है। पर 'दुर्गावती नाटक' में इस नियम का उल्लंघन कर गए हैं। नाटकों के आरंभ में प्रस्तावना का होना नितांत आवश्यक है; क्योंकि दर्शक-मंडली का चरित्रनायक की ओर तभी ध्यान आकर्षित हो सकता है, जब वह उससे अच्छी तरह परिचित हो। प्रस्तावना में दर्शक-मंडली को नट और नटी के वार्तालाप द्वारा यह सूचित कर देना चाहिए कि नाटक का चरित्रनायक या नायिका एक वीर, प्रजावत्सल तथा त्यागी व्यक्ति है, जिसमें दर्शकों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो जाय, और वे उसके चरित्र का अनुकरण करें। जब वे चरित्रनायक के विषय में कुछ जान लेंगे, तब उनके मन में प्रेममय कुतूहल होगा, और वे उसके चरित्र से विशेष लाभान्वित होंगे। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने इस नियम का अनुसरण केवल इसीलिये नहीं किया कि उनके पहले के लेखक ऐसा कर गए हैं, बल्कि उन्होंने प्रस्तावना के महत्व और आदर्श का अनुभव कर यह निश्चय किया कि दर्शक-मंडली को यह सूचित कर दें कि वे किस महान् व्यक्ति का चरित्र आज रंग-मंच पर देखेंगे,

...र उससे वे क्या लाभ उठा सकते हैं। इसी कारण प्रस्तावना (prologue or prelude) का होना आवश्यक है। एक उदाहरण लीजिए। दुर्गावती-नाटक आज रंग-मंच पर खेला जानेवाला है। यदि नट और नटी के वार्तालाप द्वारा दर्शकों पर यह पूर्णतः व्यक्त हो जायगा कि आज के नाटक की चरित्रनायिका वह वीर, आदर्श क्षत्राणी दुर्गावती है, जिसने सम्राट् अकबर की सेना को पराजित किया, और अंत में स्वतंत्रता की बलि-वेदी पर अपने प्राण अर्पित कर दिए, यदि उसके अन्य गुणों का मनोरंजक वर्णन कर दिया जायगा, तो दर्शकों के हृदय में ऐसे उच्च, त्यागी व्यक्ति का चरित्र देखने के लिये तीव्र उत्कंठा होगी, वे उसके चरित्र से विशेष प्रभावान्वित होंगे, और उनका विशेष लाभ होगा। अन्यथा वे केवल यही जानेंगे कि आज दुर्गावती नाटक खेला जायगा। उस चरित्रनायिका की सत्कृतियों से अनभिज्ञ रहने के कारण उनमें वैसी उत्कंठा न होगी, और इस कारण लाभ भी कम ही होगा। अतएव नाटक का आदर्श दर्शकों के आगे व्यक्त करने के लिये प्रस्तावना का होना अनिवार्य है। यह इस कृति में दोष है, जो इसमें 'प्रस्तावना' नहीं रक्खी गई।

नाटक के तीन मुख्य अंग हैं—(१) वस्तु (Plot), (२) नेता (Hero), (३) रस Sentiment)। बिना इन तीनों के किसी नाटक की रचना नहीं की जा सकती। इनका नाटक में होना आवश्यक है।

वस्तु (Plot)

वस्तु पाँच मुख्य भागों में विभक्त है—(१) आरंभ (Exposition and initial incidents), (२) यत्न (Efforts), (३) प्राप्त्याशा (Prospects of Success), (४) नियताप्ति (Certain attainments through the removal of obstacles) और (५) फलागम (obtainment of the desired end or catastrophe)। इन्हीं पाँचों अवस्थाओं द्वारा नाटक की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

(१) इस नाटक का आरंभ मुग़ल-सम्राट् अकबर के राजत्व-काल से होता है। नाटक पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि अकबर और दुर्गावती का भीषण संघर्ष चित्तौर के युद्ध के पश्चात् हुआ है। लेखक ने नाटक का आरंभ बहुत अच्छी तरह से किया है। प्रारंभ में ही दर्शक-मंडली अकबर के चरित्र ही से नहीं परिचित होती, वरन् भविष्य के युद्ध का भीषण चित्र भी खींच लेती है। इस कारण नाटक का आरंभ अकबर के गुप्त विचारों से होता है। अकबर के हृदय-क्षेत्र में यह विचार अंकुरित होता है, और अनेक कारणों से वह विचार और सुदृढ़ रूप धारण कर लेता है। इसको Initial incidents या दूसरी अवस्था कहते हैं, जब कि कुछ कारण उस इच्छा की पुष्टि करते हैं। यथा सर्व-प्रथम कारण बाग़ी जागीरदारों का अकबर से सहायता की प्रार्थना करना है। अकबर युद्ध के लिये कोई कारण खोज रहा था। बदनसिंह को उसने सहर्ष जन और धन से सहायता देना स्वीकृत कर लिया। हिंदी की यह प्रसिद्ध कहावत इस स्थल पर घटित होती है कि "बिल्ली के भाग से छींका टूटा"। अकबर तो स्वयं युद्ध के लिये कटि-बद्ध था। जागीरदारों के मिस उसने युद्ध की घोषणा कर दी। वह "टट्टी की ओट से शिकार खेलना चाहता था", जिसमें कोई यह न कहे कि अकबर ने अन्याय-पूर्वक एक महिला से युद्ध किया। अन्य कारण (Initial incidents) राज्य की तृष्णा, आसफ़ख़ाँ का दो बार एक महिला से युद्ध में पराजित होना, अकबर का अपनी मान-हानि के लिये विशेष चिंतित होना, मंत्री अधारसिंह का बंदीगृह से रात्रि को निकल भागना आदि हैं, जो इस इच्छा की पुष्टि और उसे युद्ध करने के लिये उत्तेजित करते हैं।

(२) दूसरी अवस्था यत्न की है। युद्ध की घोषणा कर दी गई। दोनों दल युद्ध-सज्जा से सज्जित होकर रण-भूमि में आते हैं। युद्ध के साज दोनों ओर सजे जा रहे हैं।

(३) तीसरी अवस्था प्राप्त्याशा की है। दूसरी अवस्था में युद्ध का प्रारंभ हो जाता है, और तीसरी अवस्था में दोनों दल विश्वास करते हैं कि विजय हमारी है। यह आशा दोनों दलों में है; परंतु अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि किस पक्ष की जय होगी और किस-की पराजय। इस अवस्था को Climax or Crisis भी कहते हैं। इसमें लेखक नाटक को इस विकट अवस्था में ले आता है कि दर्शक नहीं कह सकता—"ऊँट किस करवट बैठेगा।"

(४) चौथी अवस्था नियताप्ति की है। मुग़ल-सैनिकों द्वारा कुछ राजपूत वीरों की मृत्यु होती है, और मुग़ल-सेना में विश्वास होने लगता है कि शत्रु को पराजित कर दिया। सुमेरसिंह, अधारसिंह आदि

की मृत्यु होती है, और शत्रु की आशा अब विश्वास का रूप धारण कर लेती है। इस अवस्था को नियताप्ति (Certain attainments through the removal of obstacles) कहते हैं।

(५) पाँचवीं अवस्था में युद्ध का अंत हो जाता है, शत्रु की मनोकामना पूर्ण हो जाती है, और मुख्य-मुख्य वीरों की मृत्यु होती है। दुर्गावती, अधारसिंह, सुमेरसिंह, वीरनारायण आदि की मृत्यु होती है, और शत्रु राज्याधिकार अपने हाथ में कर लेता है। वस्तु (Plot) का निर्वाह अच्छी तरह से किया है; एक के पश्चात् एक घटना इस प्रकार प्रदर्शित की गई है कि समझने में कठिनता नहीं पड़ती।

वस्तु दो भागों में विभाजित है—(१) प्रधान वस्तु (Main Plot) और (२) गौण (Under Plot) वस्तु। संस्कृत में एक को आधिकारिक और दूसरी को प्रासंगिक कहते हैं। शेक्सपियर ने अपने दुःखांत नाटकों में भी ऐसे पात्र (Comic characters) रख दिए हैं, जो अपनी उलटी-सीधी बातों द्वारा मनोरंजन करते हैं। इन चरित्रों के रख देने से लेखक का उद्देश्य सरलता से सिद्ध हो जाता है, अर्थात् Tragic effect (दुःखांत नाटक का रंग) और चटकीला चढ़ता है। इस नाटक में इस प्रकार के चरित्र रख दिए गए हैं। दोनों प्लॉटों का सम्मिश्रण भी भली प्रकार से हुआ है।

नाटक कम-से-कम पाँच अंकों का होना चाहिए; अन्यथा उस कृति को नाटक की संज्ञा नहीं दी जा सकती। संस्कृत-नाटकों में हम यही पाते हैं। नाटक ५ अंकों से कम और दस अंकों से अधिक न हो। इससे अधिक होने पर नाटक रुचिकर होने के बदले अरुचिकर और भार मालूम होने लगता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी इस नियम का अनुसरण किया है। पं० बदरीनाथ भट्ट ने इस नाटक को तीन अंकों में समाप्त किया है। प्रथम अंक में प्रारंभ और यत्न का भी कुछ अंश ले आए हैं, जो कि दो अंकों में होना चाहिए। इससे कहीं अच्छा होता, यदि भट्टजी उसको दो भाग में विभाजित कर देते। एक में प्रस्तावना रखते, तथा दूसरे में यत्न के भाग को ले आते। उस हालत में अंक आवश्यकता से अधिक लंबा न हो जाता, और यह दोष भी न आने पाता। दूसरे अंक में प्राप्त्याशा का चित्र अंकित किया है, और यत्न का कुछ अंश इसमें भी आ गया है। तीसरे अंक में नियताप्ति और फलागम, दोनों ठूस दिए गए हैं, जो कि दो अंकों में होने चाहिए। यह इस कृति का दोष है। अंक-विभाजन में अवश्य दोष आ गया है, और तीन ही अंक में सब रख दिया है, जो कि पाँच अंकों में रखना चाहिए अंक बहुत बड़े हो गए हैं, जब कि छोटे अंकों से काम और अच्छी तरह से चल जाता।

चरित्रनायिका (Heroine)

इस नाटक की चरित्रनायिका दुर्गावती है। चरित्रनायक या नायिका की संज्ञा उस व्यक्ति को दी जाती है, जिसके आधार पर नाटक की रचना की जाय, और जो अपने अद्वितीय गुणों के कारण दर्शकों के चित्त पर आदि से अंत तक चढ़ा रहे। शेक्सपियर के दुःखांत नाटकों में चरित्र-नायक का ही प्रभाव आद्योपांत दृष्टिगोचर होता है। जूलियस सीज़र तथा हैमलेट के पढ़ने से यह अच्छी तरह समझ में आ जाता है। जूलियस सीज़र के प्रति गुप्त मंत्रणाएँ की गईं। मृत्यु के पश्चात् भी उसका प्रभाव घटा नहीं, बढ़ता ही गया, और एक प्रकार से वही उस नाटक का प्रधान कारण था। इस नाटक का मुख्य कारण दुर्गावती है। उसी के कारण यह रोमांचकारी युद्ध हुआ, और उसी का प्रभाव नाटक में आद्योपांत व्याप्त है। इस कारण इस नाटक की नायिका और नायक क्रमशः क्षत्राणी दुर्गावती और अकबर हैं। नायक चार प्रकार के होते हैं—(१) धीरोदात्त, (२) धीरललित, (३) धीरशांत, तथा (४) धीरोद्धत। धीरोदात्त चरित्रनायक में ये आठ गुण अवश्य होने चाहिए—(१) शोभा, (२) विलास, (३) माधुर्य, (४) गांभीर्य, (५) धैर्य, (६) तेज, (७) लालित्य, (८) औदार्य। नायिका में भी इन्हीं आठों गुणों का समावेश होना चाहिए। किसी नाटक की नायिका स्वकीया होनी चाहिए, न कि परकीया। इसको चरित्रनायिका का पद न देना चाहिए। इस नाटक की चरित्र नायिका दुर्गावती है। नायिका के साथ धात्रेयी, प्रतिवेशिका, दासी आदि की भी आवश्यकता होती है। नायक के साथ भी उसी प्रकार पीठमर्द, विदूषक, सभासद आदि होने चाहिए। नायक अथवा नायिका के दो मुख्य भाग हैं—(१) Tragic Hero दुःखांत नाटक का चरित्रनायक) और (२) Comic Hero (सुखांत नाटक का चरित्र-नायक)। नायक दोनों ही हैं; परंतु उनके चरित्र में महान् अंतर है। दुःखांत नाटक का चरित्रनायक एक आदर्श व्यक्ति होना चाहिए। उसका चरित्र सामान्य मनुष्यों के चरित्र से परे होता है। अर्थात् ऐसे चरित्र मनुष्य-

समाज में विरले ही मिलेंगे। हम उनका केवल विचार द्वारा दर्शन कर सकते हैं, प्रत्यक्ष रूप में नहीं। जैसे हैमलेट, मैकवेथ, जूलियस सीज़र आदि। सुखांत नाटक के चरित्र-नायकों के समान चरित्रों का मिल जाना कठिन नहीं है! शेक्सपियर के Twelfth Night के चरित्र-नायक Duke Orsino (आरसिनो) के समान चरित्र खोजने पर प्राप्य हैं; परंतु हैमलेट और जूलियस सीज़र आदि नहीं प्राप्त हो सकते। इनमें आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता आदि गुण विशेष रूप से हैं। परंतु सुखांत नाटक के चरित्रनायकों में इस प्रकार के गुण इतनी बहुलता से नहीं होते। रानी दुर्गावती का चरित्र इस दुःखांत नाटक के सर्वथा उपयुक्त है।

चरित्र-चित्रण

दुर्गावती का चरित्र-चित्रण भले प्रकार से किया गया है। वह एक न्यायशील तथा सदय रानी थी, जो सत्य-पथ से विचलित होना न जानती थी, अपनी प्रजा पर सदैव वात्सल्य भाव रखती और अन्यायियों को समुचित दंड देती थी। इस कलियुग में राम-राज्य का सुख सबको नहीं नसीब था। वह एक आदर्श रानी ही नहीं, वरन् रण-कौशल से अभिज्ञ भी थी। शासक-धर्म का उसने पूर्ण निर्वाह किया, प्रजा के स्वातंत्र्य की रक्षा के लिये महाराणा प्रताप-सिंह के समान अकबर से घोर युद्ध किया, और अंत में स्वाधीनता की वेदी पर अपने प्राण दे दिए। रणभूमि में इस क्षत्राणी ने जिस अद्वितीय वीरता तथा धीरता से शत्रु-सेना का मर्दन किया, वह वर्णनातीत है। रण-भूमि में दुर्गावती ने साक्षात् 'दुर्गा' का-सा उग्र रूप धारण कर लिया था, और अपने खड्ग द्वारा भूमि को शत्रुओं के रक्त से रंजित कर दिया था। इसका चरित्र सुचारु रूप से चित्रित किया गया है।

सुमति का चरित्र अत्यंत उच्च कोटि का है। उसका पति देश-द्रोही बनकर शत्रु-पक्ष में सम्मिलित हो गया, और अपने देश की स्वतंत्रता के लिये स्वयं कुठार बन गया। इस समय सुमति के सम्मुख एक जटिल समस्या उपस्थित होती है। एक ओर पति-प्रेम आकृष्ट करता है, और दूसरी ओर देश-प्रेम। उसने एक विशाल-हृदय तथा निःस्वार्थ रमणी की तरह देश-प्रेम के आगे पति-प्रेम तथा अपने भावी सुखों का तिरस्कार किया। यही नहीं, स्वतंत्रता के निमित्त पति की मृत्यु का कारण भी बनना स्वीकार किया; परंतु मरण-पर्यंत अपने इस प्रण का कि "मुझे विधवा होना स्वीकार है; पर देश की लाज न जाय" परित्याग नहीं किया। इस रमणी का चरित्र अतीव उच्च है। सुमति के चरित्र-चित्रण में दो-एक स्थलों पर अस्वाभाविकता आ गई है। यथा एक स्थान पर सुमति का एक कविता पढ़ना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। रानी दुर्गावती ने बदनसिंह के कुल का नाश न करके उसे क्षमा कर दिया। ऐसे स्थल पर सुमति कहती है—

"दया का ऋण है भारी, बल नहीं मुझको चुकाने का।
वही भगवान् अवसर दे मुझे कुछ कर दिखाने का।"

ऐसे स्थलों पर मुख से शब्द ही नहीं निकलते; यदि निकलते भी हैं, तो टूटे-फूटे, न कि ऐसे सुललित और छंदोबद्ध। चंद्रगुप्त-नाटक में भी महेंद्र के सात जहाज़ डूब गए हैं, और वह उस जगह भी शोकावस्था में कविता में वार्तालाप करता है, जो अस्वाभाविक प्रतीत होता है। ऐसे स्थलों पर, अथवा शोक आदि अवस्थाओं में, पात्रों से इस प्रकार वार्तालाप कराना अस्वाभाविक है। अच्छा होता, यदि यह छंद न होता, सुमति टूटे-फूटे शब्दों में अपने हार्दिक भावों को व्यक्त करती। यह स्वाभाविक होता।

अकबर को राज-तृष्णा का चित्र इस नाटक में अंकित किया गया है। पर अकबर ने अपनी तृष्णा को व्यक्त नहीं किया। बदनसिंह ने आकर सहायता की याचना की, इस कारण टट्टी की ओट शिकार खेलने का सुअवसर उसे प्राप्त हुआ, और उस अवसर से उसने लाभ उठाया। इसके चरित्र में कोई विशेषता नहीं है। अकबर मानी है; पर भीतर कुछ और है और बाहर कुछ और। बदनसिंह आदि से दरबार की बातचीत मेरे इस कथन की पुष्टि करती है।

बदनसिंह के समान मनुष्यों ने ही राजपूतों की दासता की नींव भारतवर्ष में डाली। जयचंद्र ने जिस प्रकार शहाबुद्दीन गोरी से मिलकर, ११९३ ई० में, पृथ्वीराज का नाश कराया, अपना भी अंत में नाश किया, और अपनी जाति को सदैव के लिये कलंकित कर दिया, अथवा विभीषण ने जिस प्रकार अपने कुल का विनाश किया, उसी प्रकार सरदार बदनसिंह ने भी शत्रु से मिलकर अपनी तथा अपने देश की स्वतंत्रता पर पानी फेर दिया। राजपूतों की जब कभी पराजय हुई है, तब बदनसिंह-जैसे कुपुत्रों के ही कारण। बदनसिंह का भावी सुख-चिंतन उसी प्रकार निर्मूल है, जिस प्रकार कोई मनुष्य एक वृक्ष से

फल-फूल की आशा करे, पर स्वयं कुठार से उसका मूलोच्छेदन कर डाले। भट्टजी ने बदनसिंह के भावों का चित्रण अच्छी तरह किया है। बदनसिंह के चरित्र में दृढ़ता नहीं है, तथा मान-हानि का भी उसे विशेष ध्यान नहीं है। स्वार्थी मनुष्य मान-हानि का कदापि विचार नहीं करता। बदनसिंह को कितनी ही बार आसफ़ख़ाँ ने ताने दिए; पर उसका कुछ फल न हुआ। यह कथन सर्वथा सत्य है कि "स्वार्थ मनुष्य को अंधा बना देता है।" इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण बदनसिंह है। संसार में बदनसिंह के-से कायरों की कमी नहीं है, जो स्वयं अपना नाश करते हैं। ये बहुत भयानक होते हैं, और इनसे सजग रहना चाहिए; क्योंकि "घर का भेदिया लंका-दाह।" ये मीठी छुरी चलाते हैं। इनकी शत्रुता से इनकी मित्रता अधिक भयंकर है।

गिड़धाड़ीसिंह अव्यक्त रूप से अकबर की सहायता करता है। यह बना हुआ सिद्धी है। इस प्रकार के मनुष्य भी अधिकता से प्राप्य हैं। इनके "मुँह में राम बग़ल में छुरी" रहती है। ऐसे मनुष्य ऊपर से वेदांत, त्याग आदि विषयों पर घंटों बकते हैं; पर उनमें चरित्र की दृढ़ता ज़रा भी नहीं होती। ये समय पड़ने पर अपने सहोदर का भी गला घोटने को तैयार हो जाते हैं। यह 'भीतरी काट' बहुत बुरी होती है। गिड़धाड़ीसिंह इन कामों में पंडित है। वेदांत के लेक्चर घंटों दे सकता है; पर एक शब्द का भी अनुसरण नहीं करेगा। देश में इस प्रकार के मनुष्य बहुत हैं, जो कहना सब कुछ जानते हैं, पर करते कुछ भी नहीं। इस नाटक में यह सबसे निकृष्ट चरित्र है।

वीरनारायण की वीरता व धैर्य का वर्णन समुचित रीति से किया गया है। रणभूमि में वीर अभिमन्यु के समान इस वीर ने भी हद दर्जे की वीरता दिखलाई, और अंत को देश-रक्षा के लिये प्राण दे दिए। पुत्र का क्या धर्म होना चाहिए, यह इसने दिखा दिया। माता के कहने पर स्वयं सहस्रों मनुष्यों का संहार कर बाहर निकल गया, और सेना लाकर पुनः युद्ध किया। अभिमन्यु के समान इस वीर को भी अकाल-मृत्यु हुई।

पृथ्वीराज उस बेबस और बेकस मनुष्य के समान है, जिसके हृदय में विचार तो उत्पन्न होते हैं, पर उनको कार्य-रूप में परिणत करने की शक्ति नहीं है। हमारे हृदय में तब उत्साह का संचार होता है, जब हम पृथ्वीराज के इन वचनों को सुनते हैं—"क्या हम लोग सच्चे राजपूत हैं? हमारे राज्य में घोड़ा-गाड़ी पर कोई भी नहीं चढ़ सकता, और न कोई छतरी लगा सकता है। तो क्या इतने से ही हम क्षत्रिय कहलाने के योग्य हैं? शोक!" आसफ़ख़ाँ का यह ताना कि—

"अपना सारा मुल्क नज़र कर हुआ शेर बनने का चाव;
अपनी राजकुमारी देकर देते हो मूछों पर ताव।"

—सुनकर पृथ्वीराज के हृदय में विराट् विप्लव होता है; पर फल कुछ नहीं होता। जैसे मनुष्य के हृदय-सागर में अगणित विचार-तरंगों का प्रादुर्भाव और विनाश होता है, उसी प्रकार वही पृथ्वीराज के विचारों की भी गति हुई! इस प्रकार के मनुष्य भी बहुत हैं, जो एक वस्तु को बुरा जानते हुए भी उसका परित्याग कदापि न करेंगे। उन्हींमें एक पृथ्वीराज है, जो अपनी दासता पर शोक करता है, पर दासता से मुक्त होने के लिये थोड़ा भी प्रयत्न नहीं करता।

भाषा

इस नाटक की भाषा सरल, सरस और मुहावरेदार है। यह नाटक मुहावरों के सामयिक प्रयोग, परिमार्जित भाषा तथा भावदिग्दर्शन में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के नाटकों की जोड़ का है। नाटक में ऐसे उपयुक्त स्थलों पर लेखक ने मुहावरों का प्रयोग किया है कि उसकी भाषा-प्रौढ़ता का क़ायल होना पड़ता है। परंतु कुछ स्थानों पर अस्वाभाविकता भी आ गई है। मुग़ल-सम्राट् की सभा की भाषा शुद्ध उर्दू होनी चाहिए, न कि शुद्ध परिमार्जित हिंदी। उसी प्रकार हिंदू-राजा की सभा की भाषा शुद्ध हिंदी होनी चाहिए, न कि उर्दू। यदि मुग़ल-दरबार में शुद्ध हिंदी भाषा का प्रयोग किया जाय, तो अस्वाभाविक प्रतीत होता है, और ऐतिहासिक दृष्टि से भी उर्दू का होना स्वाभाविक है, न कि हिंदी का। एक उदाहरण लीजिए। अकबर सभा में सभासदों से घिरा हुआ राज्यासन पर आसीन है। इसी समय रानी के कायस्थ मंत्री अधारसिंह का आगमन होता और सभासद उसका स्वागत करते हैं। इस स्थान पर अकबर और अधारसिंह से शुद्ध हिंदी में बात-चीत होती है, जो कि सर्वथा अनुपयुक्त है। इसके कितने ही कारण हैं। (१) मुग़ल-सम्राट् के दरबार-ख़ास की ज़बान उर्दू होनी चाहिए, न कि हिंदी। उसी प्रकार एक हिंदू-

राजा की सभा की भाषा हिंदी होनी चाहिए, न कि उर्दू। सभा की भाषा की मर्यादा (Prestige of the court language) का पालन अवश्य करना चाहिए ; नहीं तो ऐतिहासिक भूल का दोष इस कृति में लगता है । इस कारण उस समय की भाषा हिंदी न होकर उर्दू ही होनी चाहिए। (२) अधारसिंह जाति का कायस्थ है, और कायस्थों की मातृ-भाषा एक प्रकार से उर्दू ही होती है। इस कारण हम यह भी नहीं कह सकते कि अधारसिंह उर्दू से अनभिज्ञ था, और न यही कह सकते हैं कि वह एक हिंदू-रानी का मंत्री था, इस कारण उसने हिंदी का प्रयोग किया, अथवा वह उर्दू से अनभिज्ञ था। फिर अधारसिंह ने किस कारण से मुग़ल-दरबार में उर्दू का प्रयोग न करके हिंदी का प्रयोग किया, और सभा की भाषा का तिरस्कार किया ? अकबर 'स्वागत-भवन', 'कृपा', 'बुद्धिमानी' आदि अनेक हिंदी-शब्दों का प्रयोग करता है, जो कि सर्वथा अस्वाभाविक है । अन्य स्थलों की उर्दू भी परिमार्जित नहीं है । मेरा आशय एक उदाहरण से व्यक्त हो जायगा । श्रीराधाकृष्णदासजी ने एक नाटक—'महाराणा प्रतापसिंह'—लिखा है। यह पुस्तक नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ने मुद्रित की है। इस नाटक को पढ़ने से ज्ञात होता है कि ऐसी ही उर्दू-भाषा का प्रयोग मुग़ल-सम्राट् अकबर की सभा के उपयुक्त है। मुग़ल-दरबार में किस तहज़ीब के साथ लोग बोलते और किस भाषा का प्रयोग करते थे, यह सब उपर्युक्त पुस्तक पढ़ने से ज्ञात हो सकता है। लेखक स्वयं उर्दू-भाषा से अधिक परिचित नहीं हैं ; नहीं तो उनसे ऐसी भूल न होती। मुग़ल-दरबार की भाषा में कुछ उत्कृष्टता नहीं है, और पुस्तक की भाषा पढ़कर ठीक-ठीक यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि उस समय की भाषा कैसी रही होगी । बाबू राधाकृष्णदास के 'महाराणा प्रतापसिंह' को पढ़ने से यह विषय पूर्णतः ज्ञात हो सकता है कि उस समय की भाषा कैसी थी । तर्ज़-तरीक़े का भी कुछ पता उक्त नाटक से चल सकता है। मध्यम श्रेणी के मनुष्यों के लिये मध्यम श्रेणी की भाषा रक्खी गई है, और यह उचित भी है। संस्कृत के नाटकों में भी इस बात का ध्यान रक्खा गया है। मुख्य तथा सभी पात्र संस्कृत-भाषा का प्रयोग करते हैं ; पर मध्यम श्रेणी के पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं, न कि शुद्ध परिमार्जित संस्कृत का। शेक्सपियर ने भी अपने नाटकों में इस क्रम का निर्वाह किया है। इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि जो जिस श्रेणी का पात्र हो, उससे वैसी भाषा का प्रयोग कराया जाय । दुर्गावती में राजकर्मचारी जब ग्रामीणों को प्रोत्साहित करता है, तो उस समय उसकी भाषा अधिक क्लिष्ट हो जाती है, जो न होनी चाहिए ; क्योंकि ग्रामीणों में इतनी बुद्धि कहाँ कि वे वैसी भाषा को समझ सकें। दो-एक भले ही समझ लें ; पर अधिक नहीं समझ सकते। एक उदाहरण लीजिए—"क्या तुम चाहते हो कि इस प्यारे देश का प्रबंध महारानीजी के हाथ से निकलकर तुमसे तनिक भी सहानुभूति न रखनेवाले विधर्मी विदेशियों के हाथ में चला जाय ?" इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी भाषा क्लिष्ट हो गई है, जो न होनी चाहिए ; क्योंकि ग्रामीण इस प्रकार की परिमार्जित भाषा को कदापि नहीं समझ सकते। भट्टजी यदि चाहते, तो भाषा इतनी कठिन न होती। परंतु इसका विचार उन्होंने नहीं किया। अन्य स्थानों पर भाषा ज़ोरदार और साहित्यिक है। महावरों का उपयुक्त स्थान पर प्रयोग किया गया है । युद्धस्थल की भाषा भी अच्छी है। उसे श्रवण कर उत्साह तथा वीरता का संचार हो जाता है ।

रस तथा भाव-चित्रण (Sentiment)

भाव-चित्रण को रस के अंतर्गत ही समझना चाहिए। रस नाटक का तीसरा मुख्य अंग है, जिसके बिना किसी नाटक अथवा काव्य की रचना नहीं की जा सकती। कारण, काव्य की परिभाषा है—"वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।" काव्य का विशेष गुण उसकी 'रसात्मकता' ही है। और, जिसमें यह गुण नहीं, वह काव्य अथवा नाटक कैसा ! जिस प्रकार बिना आधार (नींव) के भवन नहीं बनाया जा सकता, उसी प्रकार बिना रस के नाटक की रचना नहीं की जा सकती। नाटक को यदि शरीर मान लें, तो रस को प्राण अवश्य मानना पड़ेगा ; क्योंकि काव्य अथवा नाटकरूपी निर्जीव शरीर में रस ही सजीवता उत्पन्न करता है। इस कारण रस को यदि 'प्राण' कहें, तो अत्युक्ति न होगी। और, रस के बिना किसी भी कृति की शोभा नहीं हो सकती। इस कारण रस का होना नितांत आवश्यक है। रस उस स्थायी भाव को कहते हैं,

जो चरित्रनायक अथवा अन्य पात्रों के विभाव-अनुभावादि से हृदय में उत्पन्न किया जाता है। नाटक के पात्रों की वीरता देखकर हमारे हृदय में वीर-रस का संचार हो जाता है, अन्य भाव उस भाव की उत्तरोत्तर पुष्टि करते हैं, और अंत में जो भाव चिरकाल के लिये हृत्पट पर अंकित हो जाता है, उसी को 'स्थायी भाव' की संज्ञा देते हैं। इसी को रस कहते हैं। कालिदास के शृंगार-रस-पूर्ण नाटकों को पढ़कर हृदय में शृंगार-रस के भावों का प्रादुर्भाव होता है। भवभूति के करुण तथा वीर-रस के नाटकों को पढ़ने से हृदय उन्हीं रसों की तरंगों से परिप्लावित हो जाता है। नाटक को देख अथवा पढ़कर हृदय में एक भाव पैठ जाता है। उसे स्थायी भाव कहते हैं। भाव उस मानसिक कल्पना अथवा विचार को कहते हैं, जो किसी वस्तु के देखने से हृदय में अंकुरित हो जाता है। एक सुंदर नवयुवती अथवा एक डरे हुए व्यक्ति को सामने देखकर हृदय में प्रेम और दया के भाव स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं। विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि रस की उत्तरोत्तर वृद्धि अथवा पुष्टि करने में सहायक होते हैं। विभाव के दो मुख्य अंग हैं—(१) आलंबन, (२) उद्दीपन। अनुभाव के अंतर्गत सात्त्विक भाव आ जाता है। सात्त्विक भाव आठ प्रकार के होते हैं। संस्कृत का एक कवि इस विषय पर लिखता है—

"स्तम्भप्रलयरोमाञ्चाः स्वेदवैवर्ण्यवेपथुः। अश्रुवैस्वर्य-मिति .. ।" अंतिम संचारी भाव है। ये सब मिलकर मनुष्य के हृदय में एक भाव (वीर, करुण अथवा शृंगार) उत्पन्न करते हैं, जो स्थायी भाव कहलाता है। स्थायी भाव चिरकाल तक हृदय में बना रहता है। स्थायी भाव आठ प्रकार के होते हैं—(१) रति, (२) हास, (३) शोक, (४) क्रोध, (५) उत्साह, (६) भय, (७) जुगुप्सा, (८) विस्मय। इन्हीं पर ये आठों रस क्रमशः निर्भर हैं—(१) शृंगार, (२) हास्य, (३) करुण, (४) रौद्र, (५) वीर, (६) भयानक, (७) बीभत्स, (८) अद्भुत। नवाँ रस शांत है, जिसका स्थायी भाव शम और दम हैं। इस नाटक में वीर-रस का प्राधान्य है, और दर्शक के चित्त पर स्थायी भाव वीर-रस का ही होता है। यद्यपि करुण का सम्मिश्रण कर दिया गया है, पर वह प्रधान रस की ही पुष्टि करता है।

आठ रस होने पर भी नाटक के उपयुक्त केवल तीन ही रस हैं—(१) वीर, (२) शृंगार, (३) करुण। इन्हीं तीनों में से एक का आश्रय लेकर नाटक की रचना की जाती है। संस्कृत-साहित्य में कालिदास के नाटकों में शृंगार-रस का तथा भवभूति के रूपकों में करुण और वीर-रस का प्राधान्य है। हिंदी-साहित्य में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के नाटक पढ़ने से ज्ञात होता है कि इन्हीं तीनों में से एक का आश्रय लेकर उन्होंने नाटकों की रचना की है। इन रसों की पुष्टि के लिये अन्य रसों का यथासमय समावेश किया जा सकता है; परंतु मुख्य रस (Predominating Sentiment) इन्हीं तीनों में से एक का होना नितांत आवश्यक है। भारतेंदु बाबू की 'नाटकावली' में इस विषय पर विशेष कहा गया है। यहाँ इतना ही काफ़ी है।

यह वीर-रस प्रधान नाटक है, और करुण का समावेश मुख्य रस को पुष्ट करने के लिये कराया गया है। सर्वप्रथम चरित्रनायक के हृदय में कोई कार्य करने की इच्छा उत्पन्न होती है, तत्पश्चात् अनेक कारण उस विचार के अंकुर को सींचा करते हैं, उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि में सहायता करते हैं। विभाव यही करता है। वह चरित्रनायक की इच्छाओं की पुष्टि में सतत सहायक होता है। विभाव के दो मुख्य अंग हैं—(१) आलंबन, (२) उद्दीपन। विभाव चरित्रनायक को कार्य करने के लिये उत्तेजित और प्रेरित करता है। जिसके आधार पर रस ठहरा हुआ होता है, उस चरित्रनायक अथवा नायिका को 'आलंबन' की संज्ञा देंगे। संस्कृत में आलंबन और अवलंबन-शब्द का एक ही अर्थ होता है। एक में आ और दूसरे में अव प्रत्यय है। प्रत्यय लगाने से अधिकतर अर्थ में भेद हो जाता है; पर कहीं-कहीं नहीं भी होता। एक उदाहरण लीजिए। आलंबन-शब्द का अर्थ है जिस व्यक्ति का रस अवलंबन करे। इस नाटक में अकबर के हृदय में दुर्गावती के राज्यापहरण की इच्छा उत्पन्न हुई। और, रस आकर इस चरित्रनायक का सहारा लेता है, इस कारण यह आलंबन है। क्रोधाग्नि तथा शत्रुता की भयंकर ज्वाला को उद्दीप्त करने के लिये कुछ कारणों की आवश्यकता है, और वे इस नाटक में बहुतायत से हैं! बदनसिंह का अकबर के निकट सहायता के लिये आना, अकबर के सेनापति आसफ़ख़ाँ का दो बार एक महिला द्वारा पराजित होना, अकबर का अपनी मान-हानि के लिये

विशेष चिंतित होना तथा अधारसिंह का बंदीगृह से आधी रात को निकल भागना आदि अनेकों ऐसे कारण हैं, जो 'उद्दीपन' हैं; क्योंकि ये कारण चरित्रनायक की इच्छा को उत्तेजित करते हैं कि वह युद्ध करे। अकबर का क्रोध अब उद्दीप्त हो गया है। तीसरी अवस्था अनुभाव की है। इस अवस्था में अकबर तथा रानी दुर्गावती के मुखों पर वीरता, क्रोध आदि भाव व्यक्त रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। दुर्गावती के मुखारविंद पर वीरता के चिह्न अंकित हो जाते हैं; और वह अपनी सेना में वीर-रस का संचार करना चाहती है। वीर-शब्दों का उत्तेजित भाव से कहना, बाहुओं का फड़कना आदि अनुभाव, अर्थात् वे चिह्न हैं जो हृदय के भावों को व्यक्त करते हैं। वीर सैनिक-गण वीरता के गान गा रहे हैं, तथा शत्रु-पक्ष से भी गगन-भेदी जयोल्लास की घोषणा हो रही है। संचारी भाव में कुछ और कारणों से शत्रुता प्रगाढ़ हो जाती और युद्ध छिड़ जाता है। अनुभाव के अंतर्गत सात्त्विक भाव हैं। वे भाव भी 'अनुभाव' की अवस्था में वीरों में होते हैं। इसके पश्चात् युद्ध का आरंभ हो जाता है। मारू बाजा वीरों को युद्ध करने के लिये उत्तेजित करता है, और वीर प्राण-पण से स्वदेश के लिये युद्ध करते हैं।

अब मैं Plot अथवा वस्तु की पाँचों अवस्थाओं की ओर पुनः आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। (१) आरंभ, (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियताप्ति, (५) फलागम—इन पाँचों अवस्थाओं को घटित करने से युद्ध का चित्र विशेष रूप से स्पष्ट हो जायगा।

(१) प्रथम अवस्था आरंभ की है, जब कि युद्ध का आरंभ हुआ। (२) द्वितीय अवस्था में दोनों पक्षों के वीर जी तोड़कर लड़ रहे हैं। यह अवस्था प्रयत्न की है, जब कि दोनों दलों के वीर युद्ध कर रहे हैं। (३) तीसरी अवस्था प्राप्त्याशा की है। इस अवस्था को Crisis or Climax भी कहते हैं। जय की आशा दोनों दलों को है; पर फल निश्चित नहीं। (४) चतुर्थ अवस्था नियताप्ति (Falling action) की है। राजपूत वीरों (अधारसिंह, सुमेरसिंह आदि) की मृत्यु होती है, और शत्रु-पक्ष को विश्वास होने लगता है कि विजय हमारी है। युद्ध का फल भी इसी अवस्था में निश्चित हो जाता है। (५) पाँचवीं अवस्था फलागम (Catastrophe) की है। शेष मुख्य वीरों की भी मृत्यु होती है, और शत्रु राज्य पर अपना अधिकार जमा लेता है। इस प्रकार युद्ध की समाप्ति होती है।

भाव-चित्रण

भाव-चित्रण के विषय में दो-एक शब्द और कहने हैं। यह विषय रस के अंतर्गत ही है। नाटक के पात्रों का स्पष्ट चरित्र-चित्रण उन्हीं के स्वगत भावों को यथावत् प्रकट कर देने से हो सकता है। अँगरेज़ी के महाकवि शेक्सपियर ने इसके द्वारा पात्रों के जटिल तथा विरोधी भावों का स्पष्ट चित्रण करके उनको सजीव-सा बना दिया है—हैमलेट, मैकबेथ, जूलियस सीज़र आदि के चरित्रों में वह सजीवता भर दी है, जिसके कारण वे साहित्य-संसार में अजर-अमर रहेंगे। पं० बदरीनाथ भट्ट ने बदनसिंह के भावों का वास्तविक चित्र नेत्रों के सम्मुख उपस्थित कर दिया है। अकबर के स्वगत भावों को सुनकर हम उसके चरित्र ही से परिचित नहीं हो जाते, वरन् भावी युद्ध का सजीव चित्र भी आँखों के आगे खींच लेते हैं। इसका प्रयोग समयोचित हुआ है। सुमति के भाव-चित्रण में भी दोष आ गया है, उसका उसके चरित्र-चित्रण में वर्णन कर दिया है। एक स्थल पर और अस्वाभाविकता आ गई है। दो-एक स्थलों पर कविता के आ जाने से स्वगत का रंग उतना अधिक नहीं चढ़ता, जितना चाहिए। एक उदाहरण लीजिए—पृथ्वीराज मन-ही-मन अपनी जाति के कायरपन तथा नपुंसकता पर उसे धिक्कार दे रहे हैं। इस समय उनके हृदय में आत्मग्लानि तथा आत्मनिंदा की मात्रा भी अत्यधिक है। ऐसे अवसर पर वह अपने भावों को छंदोबद्ध भाषा में प्रकट करते हैं, जो स्वाभाविक नहीं जँचता। कहीं स्वाभाविक होता, यदि कविता इस स्थान पर न होती। ऐसा ही था, तो दो-तीन पंक्तियों में भट्टजी पृथ्वीराज की आत्मग्लानि का चित्र और भी व्यक्त कर देते। इस समय की कविता 'बेसुरी तान' के समान हृदय पर प्रभाव नहीं डालती। दूसरे इसकी आवश्यकता भी नहीं है; क्योंकि शोक तथा आत्मग्लानि की अवस्थाओं में कविता अस्वाभाविक प्रतीत होती है। ऐसे समय में दो-चार प्रभाव डालनेवाले शब्दों का प्रयोग होना चाहिए, न कि लंबी-लंबी कविताओं का। यह दोष चंद्रगुप्त नाटक में महेंद्र के चरित्र में भी आ गया है। छंदों की इतनी प्रचुरता न होनी चाहिए, जिसमें

उससे श्री के ह्रास की संभावना हो । अन्य स्थलों पर भाव-चित्रण तथा भाषा, दोनों ही मनोहर और उपयुक्त हैं ।

अंत में एक दृश्य स्वर्ग का चित्रित किया गया है, जिसमें दुर्गावती तथा वीरनारायण का अन्य स्वर्गीय महान् आत्माओं से साक्षात्कार होता है । इस दृश्य की आवश्यकता भी थी, जिसमें देशद्रोही तथा कायर देख लें कि न्यायशील और सत्यप्रतिज्ञ आत्माएँ इस अनित्य, क्षणभंगुर संसार में तो अपना नाम अजर-अमर कर ही जाती हैं, पर स्वर्ग में भी उनको सुख-ही-सुख है । यह दृश्य बहुत अच्छा है । नाटक का अंत भरत-वाक्य से सदा होता है । इस नाटक में स्वर्गीय आत्माएँ उसी ढंग के एक मधुर गान को गाती हैं, और पर्दा गिरता है !

हरिश्चंद्र टंडन

फूल

(१)

विकसित उपवन के शृंगार,
मुकुलित-विश्व-विनोद-विहार ;
मौन युगांतर का इतिहास,
क्यों लिखते भर मृदु उल्लास ?

(२)

शरद्-वधू-सौंदर्य समेट,
चंद्र-किरण का हार लपेट ;
श्यामल पल्लव से मुख ढाँक,
चुपके रहे किसे तुम झाँक ?

(३)

मुक्त लता का चुंबन-दान,
पागल तुम्हें बनाता क्या न ?
नर्तन-लहरी में उन्मत्त,
बहे जा रहे कहाँ प्रमत्त ?

(४)

केलि-कला-उत्सव-आनंद,
मानस-मंदिर में स्वच्छंद ;
नाच रहे नटवर-से मौन,
तुम्हें प्रसिद्ध बनाकर कौन ?

(५)

वसुंधरा के श्वेत नक्षत्र,
धारण कर यश-गौरव-छत्र ;
मुदित लता पत्रों को घेर,
क्यों तुम रहे सुगंध बिखेर ?

(६)

उषा-सुंदरी अंचल छोर,
फैला नभ अरण्य की ओर ;
तुम्हें बुलाती है उस पार,
कर वसंत के साथ विहार ।

(७)

लघु विनोद में निपुण, निधान,
ओस-बूँद बालिका अजान,
त्याग विमल-वल्लरी-कुटीर,
नहलाती है तुम्हें अधीर ।

(८)

तव सौंदर्य-स्वरूप निहार,
पिकी कूककर बारंबार ;
मधुर मोद में उछल सुजान,
मुग्ध लेखनी है अनजान ।

(९)

पवन-हिंडोले पर झुक, झूल,
मुसुका मधुर मनोहर फूल ;
कोकिल-कलरव में चुपचाप,
ठगे जा रहे क्यों तुम आप ?

(१०)

किसी विपिन-बाला के पास,
बनकर कर्णफूल स-हुलास ;
आप्रन जीवन, यौवन खोल,
चूम रहे क्यों गोल कपोल ?

(११)

वधू-अलक-आसन पर—कौन ?
मुसकाते मन-ही-मन मौन ;
खिलकर शैल-शिखर पर मित्र !
खींच रहे तुम किसका चित्र ?

(१२)

मालिन के दग-द्वय उत्फुल्ल,
तुम्हें ढूँढ़ते परम प्रफुल्ल ;

चकित प्रतीक्षा-पथ पर शांत,
किसे बुलाते हो तुम कांत?

(१३)

गंध-कणों के गेंद उछाल,
संध्या को सुवर्ण-मद डाल;
द्रुम-सहज-शाखा पर मौन,
झूम रहे तुम परिचित—कौन?

(१४)

मधुसूदन! नव चारों ओर,
भृंग-प्रेमिकाएँ कर शोर;
सोच विनोद-विहार-विलास,
दौड़-दौड़ रचतीं नव रास।

(१५)

मुरझाकर दो दिन के बाद,
बरसाना वन में न विषाद;
पाकर कवि-यौवन-उद्यान,
रहना खिले प्रसून सुजान!

"गुलाब"

महाकवि भास

(उत्तरार्द्ध)

महाराज उदयन

आजकल भारतवर्ष के प्राचीन राजों का इतिहास जानना एक जटिल समस्या हो गई है। उसके जानने में यद्यपि इतने प्रयत्न हुए, तथापि आज तक ऐसा कोई निर्णय नहीं हो सका, जो निस्संदेह सर्वथा सबको मान्य हो। विदेशियों ने भी भरसक प्रयत्न किए; परंतु शोक से कहना पड़ता है कि अब तक कुछ भी निर्द्धारित न हुआ। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने ग्रंथ लिखे, सो केवल परोपदेश की इच्छा से। देखने से स्पष्ट पता लगता है कि उन दिनों रूखी-सूखी घटनावलियाँ लोगों को न रुचती थीं। वे इतिहासों को उपाख्यानों की रीति से लिखा करते थे। मुख्य घटनाओं को छोड़कर, साधारण-साधारण बातों को रोचक बना-बनाकर उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्तियों से घटा-बढ़ाकर मनोरंजन के लिये ही इतिहासों और अन्य ग्रंथों का निर्माण करते थे। झूठ-सच द्वारा, किसी भी प्रकार से, लोगों को उपदेश मिले, तथा शिष्टाचार की रीति का परिपालन हो, इसी बात का ध्यान रक्खा गया कि इसका परिणाम यह हुआ कि जिसने क़लम उठाई, उसीने अपना नया इतिहास गढ़ डाला। यहाँ तक कि सारे इतिहास में गड़बड़ मच गई। और क्या कहें, यदि आज युधिष्ठिराब्द न चला होता, तो किसी को कौरवों तथा पांडवों की स्थिति में विश्वास न होता। राजतरंगिणी आदि जो दो-एक इतिहास-ग्रंथ पाए जाते हैं, वे भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं। उनमें भी कविता-संबंधी कल्पित बातें जहाँ-तहाँ पाई जाती हैं।

यदि गंभीरता-पूर्वक विचारा जाय, तो पुराणादि ग्रंथों में भी बहुत कुछ इतिहास भरा पड़ा है। वे निरे कल्पना और मिथ्या के भांडार नहीं कहे जा सकते। जिस प्रकार वैदिक और औपनिषदिक उपाख्यानों द्वारा इतिहास का पता लगाया जाता है, उसी प्रकार पुराणों से बहुत कुछ पता चल सकता है। इनमें सूर्य-वंशी, चंद्र-वंशी राजों की वंशावलियाँ हैं, तथा समकालीन राजों का भी वर्णन है, जो आगे दिखाया जायगा। यहाँ पर हम अपने पाठकों को, पुराणों द्वारा निर्णय करने से पहले, बहुत पीछे ले चलते हैं।

हमारी वैदिक सभ्यता कब से चली, इस विषय में लो० बालगंगाधर तिलक का सिद्धांत है कि आर्य लोग विक्रम से आठ हज़ार वर्ष पूर्व उत्तरीय ध्रुव के समीप एशिया के उस उत्तरीय भाग में बसते थे, जिसे अब साइबेरिया कहते हैं। इस बात का प्रमाण वह वेद-मंत्रों व अन्य ग्रंथों से देते हैं। पं० हरप्रसादजी लिखते हैं कि आर्य-सभ्यता का समय ईसामसीह से साढ़े चार सहस्र वर्ष पूर्व था। हिंदू-शास्त्र के अनुसार इस संसार के एक महायुग में चार युग होते हैं। पहला सत्ययुग १७,२८,००० वर्ष का, दूसरा त्रेतायुग १२,९६,००० वर्ष का, तीसरा द्वापरयुग ८,६४,००० वर्ष का और चौथा कलियुग ४,३२,००० वर्ष का; अर्थात् कलि से द्वापर दुगना, त्रेता तिगना, और सत्ययुग चौगुना होता है।

इनमें पहले तीन युग समाप्त हो चुके हैं, और कलियुग चल रहा है।

हम कलियुग के प्रारंभ होने का समय निकालकर

महाभारत-युद्ध का काल निर्धारित करेंगे, और फिर उससे महाराज उदयन की तिथि ढूँढने का प्रयत्न करेंगे।

कलियुग का प्रारंभ होने के समय में कई सम्मतियाँ हैं। साहित्याचार्य पंडित विश्वेश्वरनाथजी ने इसका प्रारंभ विक्रमी संवत् से ३,१४४ वर्ष पूर्व, १८ फ़रवरी से, माना है। अतः विक्रमी संवत् में ३,१४४ वर्ष जोड़ देने से कलियुग-संवत् निकल आता है। वराहमिहिर अपनी बनाई वाराहीसंहिता में लिखते हैं—

"आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षट्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य ।"

अर्थात् युधिष्ठिर के राज्य-समय में सप्तर्षि मघा-नक्षत्र पर थे। उनका संवत् २,५२६ वर्ष तक रहा, और इसके बाद शक-संवत् प्रचलित हुआ। इससे युधिष्ठिर-संवत् और शक-संवत् का अंतर २,५२६ वर्ष हो आता है। यदि यह कथन ठीक हो, तो मानना पड़ेगा कि कलियुग के ६५३ वर्ष बाद महाभारत-युद्ध हुआ। कल्हण ने राजतरंगिणी में लिखा है—

"भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः ।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ।
शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले ,
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः ।"

अर्थात् कलि के ६५३ वर्ष बीतने पर कौरव और पांडव हुए। यह मत वराहमिहिर के लेख की पुष्टि करता है।

पंडित हरिमंगल मिश्रजी को यह बात मान्य नहीं। वह इन दोनों बातों को जनश्रुति-मात्र मानते हैं; क्योंकि विष्णुपुराण में एक स्थान पर लिखा है, हस्तिनापुर के महाराज परीक्षित् से लेकर पटना के शिशुनाग-वंशी महाराज नंद के राज्याभिषेक तक १,०१५ वर्ष बीत चुके थे। इसी के लिये श्रीमद्भागवत में १,११० और मत्स्यपुराण में १,०५० वर्ष का समय लिखा है।

उन्होंने हमारा ध्यान मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण और मत्स्य-पुराण के नष्ट हो जाने की ओर दिलाया है। वह इस प्रकार है—१,०१५ सौर वर्ष प्रायः १,०५० चांद्र वर्ष के बराबर होते हैं। प्रत्येक सौर वर्ष में ३६६ और प्रत्येक चांद्र वर्ष में ३५४ दिन होते हैं। प्रत्येक चांद्र वर्ष सौर वर्ष से लगभग १२ दिन छोटा होता है। १,०१५ सौर वर्षों में, (१,०१५×३६६) ३,७१,४७० दिन हुए, और प्रत्येक १,०५० चांद्र वर्ष में ३,७१,७०० (१,०५०×३५४) दिन होते हैं। सो वे स्थूल गणना से बराबर हैं। निदान यह कल्पना कि विष्णु-पुराण में सौर गणना के अनुसार वर्षों की संख्या दी गई है, और मत्स्यपुराण में चांद्र गणना के अनुसार, विरोध-भंजक होने से, सर्वथा मान्य है। पुराणों से यह भी प्रतीत होता है कि नंद के राज्यारंभ से १०० वर्ष पीछे चंद्रगुप्त मौर्य पाटलिपुत्र के राज-सिंहासन पर बैठा। पं० हरप्रसाद शास्त्री चंद्रगुप्त मौर्य का राज्यारंभ सन् ईसवी से ३१२ वर्ष पूर्व मानते हैं। विंसेंट स्मिथ की कल्पना है कि चंद्रगुप्त मौर्य विक्रमाब्द से २६४ वर्ष पूर्व पटने के राज-सिंहासन पर बैठा। परंतु पुराणों में विक्रम-संवत् से २५५ वर्ष पूर्व इसका राज्यारंभ-काल निकलता है, और नंद का अभिषेक इससे १०० वर्ष पूर्व। इससे विक्रम से ६५५ वर्ष पूर्व नंद का समय निकला।

इसमें १,०१५ वर्ष जोड़ने से परीक्षित् का जन्म-काल तथा कौरव-पांडवों का युद्ध-काल गत कलि १,६७५ व विक्रम से १,३७० अथवा ईसवी सन् से लगभग १,४२७ वर्ष पूर्व अनुमित हुआ। इस प्रकार मिश्रजी ने विक्रम से लगभग १,३७० वर्ष पूर्व महाराज युधिष्ठिर का काल स्थिर किया है, और गत कलि के ३,०४५ वर्ष तथा राजतरंगिणी के २,६६२ वर्ष, पुराणों से भिन्न होने के कारण, असंबद्ध और अशुद्ध माने हैं।

इस बात के समर्थन में वह कहते हैं—"विक्रमाब्द से १,३७० वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध, और विक्रम से १,३३४ वर्ष पूर्व प्रायः श्रीकृष्ण के अवसान का समय प्रतीत होता है। श्रीमद्भागवत स्कंध ११, अध्याय ६ के २५वें श्लोक के अनुसार श्रीकृष्ण प्रायः १२५ वर्ष संसार में रहे। अतएव उनका जन्म काल १,४५९ वर्ष पूर्व सिद्ध हुआ। विक्रमाब्द से १,४५७ वर्ष पूर्व विश्वावसु संवत्सर था, और उज्जयिनी के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने श्रीकृष्ण-जन्म विश्वावसु-संवत्सर में बतलाया है। अतः पुराणों और ज्योतिषियों की बात मेल खा जाने से श्रीकृष्ण के जन्म का समय उपर्युक्त सिद्ध होता है। वैसे तो कुरुक्षेत्र के युद्ध-काल से लेकर सिकंदर (यूनानी) के भारतवर्ष पर चढ़ाई करने से कुछ पूर्व तक तीन राजवंशों की पीढ़ियाँ पुराणों में मिलती हैं। मगध में जरासंध के वंशज राजा थे; जिनमें से अंतिम पुरंजय जरासंध की १०वीं पीढ़ी में था। मगध में पुरंजय के पीछे प्रद्योत और शिशुनाग-वंश का अधिकार हुआ।

अयोध्या में बृहद्बल के वंशज महाराज शुद्धोदन के पुत्र गौतमबुद्ध कोसल के उत्तरीय भाग के राजा थे, यद्यपि राजधानी अयोध्या नहीं, कपिलवस्तु थी। बृहद्बल वंशी राजा प्रसेनजित श्रावस्ती में कोसल-देश का राजा था। शुद्धोदन को लोग शाक्यवंशी भी कहते हैं; क्योंकि पुराणों में उसके पूर्वज का नाम शाक्य मिलता है। लोगों ने गौतमबुद्ध को भी शाक्यसिंह लिखा है। हस्तिनापुर के राजा परीक्षित् के वंशज वत्सराज उदयन कौशांबी में राज्य करते थे। यह शिशुनाग-वंशी बिंबसार उज्जयिनी के चंडप्रद्योत और गौतमबुद्ध के समकालीन थे। इनके वंश के राजों में महाभारत के समय से लेखा लगाकर देखने से २४ पीढ़ियाँ होती हैं। इतने काल के अनुसार पुराणादि के ६०० वर्ष व्यतीत होते हैं।

इस क्रम से कलियुगी संवत् को विक्रम से २,५७० वर्ष पूर्व और राजतरंगिणी के मतानुसार विक्रमाब्द से ३,०४४ वर्ष पूर्व माना जाता है। तो यहाँ लगभग ५०० वर्ष का अंतर है। परंतु यह बड़ी अद्भुत बात है कि कलियुग के दोनों कालों के माननेवाले गौतमबुद्ध के काल को एक ही मानते हैं; अर्थात् गौतमबुद्ध से ऊपरवाले राजों के ही काल में मतभेद है। कारण, गौतमबुद्ध के समय से भारतवर्ष का इतिहास बहुत कुछ जैन-ग्रंथों के आधार पर निर्मित है, और वह सत्य सिद्ध हो चुका है। इनमें अंतर केवल ५०० वर्ष का है। अब विचारना यह है कि यह ५०० वर्षों का अंतर क्यों पड़ा? कहना पड़ेगा कि राजों की वंशावलियों में किसी का कुछ मतभेद नहीं, भेद केवल काल में ही है। जो कलियुग के संवत् को विक्रम से ३,०४४ वर्ष पूर्व मानते हैं, उनके मत में जरासंध से नीचे के राजों का समय २,७०० वर्ष पड़ता है। मोटे हिसाब से प्रत्येक पीढ़ी के राज्य का औसत ११२ वर्ष पड़ता है। इसके अतिरिक्त दूसरा पक्ष, जो कलियुग-संवत् को विक्रम से २,५७० वर्ष पूर्व मानता है, उसके मत में प्रत्येक पीढ़ी का औसत लगभग ६० वर्ष के अंदर तक होता है। इस तरह ५०० वर्षों का अंतर निकल जाता है। परंतु इन मतभेदों से हमारे नाटक के नायक महाराज उदयन के काल में कुछ भी अंतर नहीं आता; क्योंकि पुराणों में उसे गौतमबुद्ध का समकालीन माना गया है। 'प्राचीन भारत' में निम्न-लिखित सूर्य-वंशी और चंद्र-वंशी राजा पुराणानुसार समकालीन माने गए हैं—

(१) सूर्य-वंशी महाराज मनु के पुत्र 'इक्ष्वाकु' और चंद्र-वंशी राजा बुध के सुत पुरूरवा समकालीन हैं।

(२) सूर्य-वंशी मान्धाता ने चंद्र-वंशी (यादव) शशबिंदु की कन्या चैत्ररथी से विवाह किया था, इसलिये वह समकालीन हैं।

(३) चंद्र-वंशी विश्वामित्र राजा की कन्या शकुंतला सूर्य-वंशी राजा मतिनार के पोते दुष्यंत को ब्याही गई थी। विश्वामित्र, त्रिशंकु, हरिश्चंद्र, दशरथ इत्यादि समकालीन राजा थे।

(४) कृतवीर्य के पुत्र (हैहय-वंशी) सहस्रार्जुन, चंद्र-वंशी विश्वामित्र के भांजे के पुत्र परशुराम, लंका का राजा रावण, मान्धाता, दशरथ, राम आदि, ये सब अधिकांश समकालीन हैं।

(५) अयोध्या का इक्ष्वाकु-वंशी बृहद्बल, चंद्र-वंशी कौरव, पांडव, जरासंध, तथा यदु-वंशी उग्रसेन, कंस, बलराम, श्रीकृष्ण, शिशुपाल इत्यादि भी समकालीन हैं।

(६) सूर्य-वंशी राजा शुद्धोदन (कपिलवस्तु के शाक्य कुलवाले) उनके पुत्र सिद्धार्थ, गौतमबुद्ध, राजा प्रसेनजित् (श्रावस्ती के सूर्य-वंशी), कौशांबी के चंद्र-वंशी (हस्तिनापुर के परीक्षित् की शाखा में उत्पन्न) वत्सराज उदयन, अवंती का चंडप्रद्योत, मगध का शिशुनाग वंशी राजा बिंबसार, दर्शक इत्यादि समकालीन हैं।

इन सब बातों से पता चलता है कि महाराज उदयन गौतमबुद्ध के समकालीन थे। इस बात को कलियुग-काल के दोनों पक्षोंवालों (मिश्रजी और विश्वेश्वरनाथजी) ने गौतमबुद्ध के आसपास का माना है। इसके अतिरिक्त विश्वेश्वरनाथजी ने शिशुनागवंशी राजा दर्शक को, जो उदयन का समकालीन था, ई० पू० चतुर्थ शताब्दी में माना है।

उनका कथन निम्न-लिखित है—

"पुराणों से पता चलता है कि यह (महाराज दर्शक) अजातशत्रु का उत्तराधिकारी था। इसके हर्षक, दर्भक, दशक, वंशक आदि नाम पुराणों में मिलते हैं। इसका राज्यकाल मत्स्यपुराण और वायुपुराण में २४ या २५ वर्ष लिखा है, तथा ब्रह्मांडपुराण में ३५ वर्ष दिया है। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रसिद्ध जैन-तीर्थंकर महावीर इसके समय तक विद्यमान था। परंतु नहीं कह सकते, यह कहाँ तक ठीक

है। क्योंकि महावीर की मृत्यु ई० सन् से ५२७ वर्ष पूर्व मानी गई है। महावीर तीर्थंकर का देहांत पावा (पटना) में हुआ था। भास के 'स्वप्नवासवदत्ता'-नाटक में इस राजा का वर्णन है। उससे प्रकट होता है कि दर्शक मगध का राजा था, और इसकी बहन पद्मावती का विवाह कौशांबी के राजा उदयन से हुआ था। इस दर्शक की सहायता से उदयन को गया हुआ राज्य फिर मिल गया था। उक्त नाटक का रचना-काल ई० सन् की तीसरी शताब्दी अनुमान किया जाता है। स्मिथ ने इसका राज्यारोहण-काल विक्रम से ४७० वर्ष पूर्व माना है। इसी के समय में पर्शिया के राजा डेरियस (ई० सन् से पूर्व ५२१ से ४८५ तक) ने ई० स० से ५१६ वर्ष पूर्व के निकट हिरात, गांधार, सिंध और उत्तर-पश्चिमी पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिया था। बहुत से विद्वान् इस घटना का बिंबसार के समय में होना मानते हैं।"

विश्वेश्वरनाथजी के इस लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि राजा उदयन ख्री० पू० पंचम शताब्दी के हैं। सत्याश्रमीजी ने गौतमबुद्ध का निर्वाण-काल ५८८ ख्री० पू० माना है, और अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसका समर्थन किया है। इससे महाराज उदयन का काल ख्री० पू० पंचम और षष्ट शताब्दी के अंतर्गत है।

मिश्रजी ने महाराज उदयन की वंशावली भागवत-पुराण के अनुसार यों लिखी है—

(१) बुध	(१६) रौद्राश्व
(२) पुरूरवा	(१७) ऋतेयु
(३) आयु	(१८) रंतिभार
(४) नहुष	(१९) सुमति
(५) ययाति	(२०) रैभ्य
(६) पुरु	(२१) दुष्यंत
(७) जनमेजय	(२२) भरत (भरत-वंश चला)
(८) प्रचिन्वान्	(२३) वितथ
(९) प्रवीर	(२४) मन्यु
(१०) मनस्यु	(२५) बृहत्क्षत्र
(११) चारुपद	(२६) हस्ती
(१२) सुद्यु	(२७) अजमीढ
(१३) बहुगव	(२८) ऋक्ष
(१४) संयाति	(२९) संवरण
(१५) अहंयाति	(३०) कुरु (कौरव)

इस कुरु के दो पुत्र हुए, एक जह्नु, दूसरा सुधनु। सुधनु की संतान के भी २८ पीढ़ी तक, रिपुंजय राजा तक, भागवत में दिए हुए राजों के नाम आते हैं, तथा बृहत्क्षत्र के पुत्र हस्ती के संतान की शाखा-प्रशाखाएँ भी बहुत दी हुई हैं, जो कि अप्रासंगिक होने से नहीं लिखी जातीं। इससे आगे कुरु से जह्नु की संतान में निम्न-लिखित राजा हुए—

(३०) कुरु	(३५) जयसेन	(४०) ऋक्ष
(३१) जह्नु	(३६) राधिक	(४१) दिलीप
(३२) सुरथ	(३७) द्युमान्	(४२) प्रतीप
(३३) विदूरथ	(३८) क्रोधन	
(३४) सार्वभौम	(३९) देवातिथि	(४३) शंतनु

(४४) विचित्रवीर्य

(४५) पांडु — धृतराष्ट्र

युधिष्ठिर भीम (४६) अर्जुन नकुल सहदेव — दुर्योधनादि सौ पुत्र

(४७) अभिमन्यु

(४८) परीक्षित्

(४९) जनमेजय

(५०) शतानीक

(५१) सहस्रानीक

(५२) अश्वमेध

(५३) असीमकृष्ण

(५४) महाराज उदयन

किन्हीं महाशयों ने उदयन महाराज को अभिमन्यु से २५वीं पीढ़ी में माना है। मालूम होता है, मिश्रजी ने बीच के छोटे-छोटे राजों के नाम छोड़ दिए हैं।

महाराज उदयन के समकालीन राजा दर्शक (दर्शक शिशुनाग-वंशी थे) और प्रद्योत की वंशावली—

(१) शिशुनागवंश	६०३—५६३	वि० पू०
(२) काकवर्ण	५६३—५२७	"
(३) क्षेमधर्मा	५२७—४९१	"
(४) क्षत्रौजा	४९१—४६७	"
(५) बिंबसार	४६७—४२९	"
(६) अजातशत्रु	४२९—४१२	"

(७) दर्शक	४१२—३६८	वि० पू०
(८) उदयन	३६८—३५५	,,
(९) महानंद	३५५—२६७	,,
(१०) सुमाली आदि	२६७—२५५	,,
(११) चंद्रगुप्त मौर्य	२५५—२३१	,,

महाराज प्रद्योत की वंशावली

मगध-राजवंश

(१) जरासंध	१३८३
(२) सहदेव	१३७०
(३) सोमापि	१३१२
(४) श्रुतायु	१२४८
(५) निरमित्र	१२२२
(६) सुकृत	१२८२
(७) बृहत्कर्मा	११३६
(८) सेनजित्	११०३
(९) श्रुतंजय	१०८०
(१०) नृप	१०२०
(११) शुचि	१०१२
(१२) क्षेम	९५४
(१३) भुवन	९२६
(१४) धर्मनेत्र	८६२
(१५) नृपति	८५७
(१६) सुव्रत	७९९
(१७) दृढ़सेन	७६१
(१८) सुमति	७२३
(१९) सुबल	६९०
(२०) सुनेत्र	६६८
(२१) सत्यजित्	५४५
(२२) वीरजित्	५१०
(२३) अरिंजय	४८०
(२४) प्रद्योत	४६० से ३९ वि० पू० तक।

इतिहास बतलाता है कि परीक्षित् के पीछे उनके पुत्र जनमेजय हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे। अपने पिता के देरो तक्षक-जाति के लोगों के यह परम शत्रु थे। तक्षक-जाति के अनेक लोगों को इन्होंने बंदी किया, उन्हें जलती आग में झोंककर अपने पिता का बदला लिया। ऐसा जान पड़ता है कि परीक्षित् से तक्षक-जाति के लोग वैर रखते थे, और उन्हें मार डालने का अवसर ढूँढा करते थे। अंत को किसी तक्षक ने महाराज परीक्षित् का वध करने में सफलता प्राप्त की, तथा वह मनुष्य, जिसने परीक्षित् का वध किया, जनमेजय के हाथ न लगा, और किसी तरह आग में झोंके जाने से बच गया। आस्तीक नाम के किसी ब्राह्मण ने आकर जनमेजय से शेष तक्षक-जातिवालों के प्राणदान की प्रार्थना की। राजा ने उसके अनुरोध से तक्षक-जातिवालों का वध बंद कर दिया।

जनमेजय के दरबार में व्यास के शिष्य वैशंपायन ने उपस्थित होकर महाराज को महाभारत का समग्र इतिहास सुनाया था। परीक्षित् और जनमेजय का नाम शतपथ-ब्राह्मण में भी आता है। कुछ लोग कहते हैं कि जनमेजय के परपोते नेमिचक्र ही महाराज उदयन थे। पर यह बात ठीक नहीं। जिन्होंने यह लिखा है, उन्हीं के ग्रंथों में नेमिचक्र का काल वि० पू० १०१२ लिखा है, और साथ ही महाराज उदयन को गौतमबुद्ध का समकालीन भी, जो कि उन्हीं के मतानुसार ५१० वि० पू० में हुए थे। यह बात विरोध से अप्रामाणिक है।

महाराज उदयन के पोते का पोता क्षेमक था, जो परम दुर्बल था। उसने अपने राज्य का सारा भार अपने मंत्री पर छोड़ दिया था। क्षेमक को मारकर मंत्री स्वयं राज-सिंहासन पर बैठ गया। इस मंत्री का नाम विसर्प था। उसकी वंश-परंपरा में १४ पीढ़ियों तक राज्य रहा। फिर अंतिम राजा मदनपाल के मंत्री महाराजि ने राजा को मारकर सिंहासन ले लिया। महाराजि के वंश ने १५ पीढ़ियों तक राज्य किया। इसकी वंश-परंपरा समाप्त होने पर एक दूसरे वंश ने १० पीढ़ियों तक राज्य किया। कुमाऊँ के सुखवंत ने आकर इस वंश के अंतिम राजा राजपाल को मार डाला, और आप राज्य करने लगा। अंत को उज्जयिनी-पति विक्रमादित्य ने इस राज्य को मालवा-राज्य में मिलाकर अपने अधीन कर लिया।

इसके अतिरिक्त महाराज उदयन के हाल का कुछ भी पता नहीं चलता। अब हम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पाठकों का ध्यान भास की ओर ले जाते हैं।

पंडित गणपतिजी ने महाकवि भास का काल-निरूपण करते-करते उसे पाँचवीं और छठी (ख्री० पू०) शताब्दी से भी पहले का मानकर वाल्मीकि, व्यास आदि का समकालीन माना है। यदि शास्त्रीजी महाराज उदयन, प्रद्योत और दर्शक का काल जानने तथा स्वप्न नाटक में आए

हुए नगरादि का निर्माण-काल निकालने का कष्ट उठाकर फिर इसके कर्ता की ओर ध्यान देते, तो भास को पाणिनि से भी पूर्वभव कभी न कहते। महाकवि भास खी० पू० चतुर्थ शताब्दी से पहले किसी तरह भी नहीं आ सकते।

"आनंदबंधु"

योरप में सहकार

भिन्न-भिन्न देशों में, भिन्न-भिन्न समयों में, सहकार की उत्पत्ति हुई है। भारतवर्ष की जातियाँ और ग्राम-संस्थाएँ एक हद तक सहकारी-संस्थाएँ ही हैं। आज से क़रीब ढाई सौ वर्ष पहले जापान में कुछ रेशम के कारख़ाने सहकारी-तत्व के आधार पर चलाए गए थे। इनमें से कुछ आज तक चल रहे हैं। इँगलैंड में मज़दूरों की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिये, उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में, सहकारी-संस्थाएँ स्थापित की गईं। फ़्रांस और जर्मनी ने इँगलैंड का अनुकरण किया। सबसे पहले सन् १८४८ में, जर्मनी में, साखशाली संस्थाओं की नींव पड़ी। प्रारंभ में इनकी प्रगति धीमी थी। किंतु सन् १८८० के बाद इन संस्थाओं ने ख़ूब तरक़्क़ी की, और शीघ्र ही भिन्न-भिन्न प्रकार की सहकारी-संस्थाएँ सारे देश में फैल गईं। इँगलैंड और जर्मनी में सहकारी-सभाओं को अच्छी सफलता भी मिली। यह देखकर अन्य देशों का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ, और तब आवश्यक परिवर्तन और परिवर्द्धन के बाद भिन्न-भिन्न देशों में सहकारी-संस्थाओं की नींव डाली गई। योरप में शायद ही कोई ऐसा देश मिले, जहाँ सहकारी-संस्थाओं की स्थापना और उन्नति के लिये तन-मन-धन से प्रयत्न न किए गए हों। स्विज़रलैंड, सर्बिया, फ़िनलैंड, अमेरिका, कनाडा, अरजंटाइन, स्पेन आदि पाश्चात्य देशों में इसका जाल-सा बिछ गया। एशिया के भी जापान, साइबेरिया, भारत आदि देशों में सहयोग-संस्थाएँ स्थापित की जा चुकी हैं। इस लेख में उन्हीं देशों की सहयोग-संस्थाओं के इतिहास पर संक्षेप में विचार किया जायगा, जिनकी परिस्थिति भारत की परिस्थिति से मिलती-जुलती है।

१. इँगलैंड में सहकार

इँगलैंड में, उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में, वाणिज्य-क्रांति ने बहुत ज़ोर पकड़ा। गृह-शिल्प रसातल को चला गया, और उसकी जगह बड़े-बड़े कारख़ाने स्थापित हो गए। ये कारख़ाने शहरों में स्थापित किए गए, जिससे देहाती लोगों के झुंड-के-झुंड अपनी-अपनी जन्म-भूमि छोड़कर शहरों में आ बसे। कारख़ानों के मालिकों में स्पर्द्धा के भाव बढ़ गए, जिससे, संगठन के अभाव के कारण, मज़दूरों को बहुत ज़्यादा तकलीफ़ होने लगी। इस दुरवस्था को सुधारने के लिये लोग व्यग्र हो उठे। सबसे पहले राबर्ट ओवेन ने अपने कारख़ाने के मज़दूरों की हालत सुधारने का बीड़ा उठाया। ओवेन यह सिद्ध करना चाहता था कि यदि मज़दूरों के साथ उदारता का बर्ताव और उनकी हालत सुधारने की कोशिश की जाय, उनसे उनकी शक्ति के बाहर काम न लिया जाय, तो कारख़ाने का काम बड़ी उत्तमता से चल सकता और बहुत ज़्यादा फ़ायदा भी हो सकता है। ओवेन तन-मन-धन से इस काम में जुट गया। लगातार बीस वर्ष तक यह कारख़ाना सफलतापूर्वक चलता रहा। कारख़ाने के मज़दूरों की हालत बहुत अच्छी हो गई। यह एक आदर्श कारख़ाना माना जाने लगा, और देश के बड़े-बड़े लोग बहुत दूर-दूर से इसे देखने आने लगे। तत्कालीन राजा और रानी ने भी इस कारख़ाने का निरीक्षण कर ओवेन को उत्साहित किया। इसके बाद, धार्मिक मतभेद के कारण, यह कारख़ाना अधिक समय तक जीवित न रह सका। धीरे-धीरे मज़दूरों को जीवन के लिये आवश्यक पदार्थ सस्ते दामों में देने के लिये सहकारी-भांडार स्थापित किए गए। सन् १८४४ में २८ मज़दूरों ने मिलकर एक सहयोग-भांडार की नींव डाली। यह भांडार २८ पौंड की पूँजी से शुरू किया गया था। दो-दो, तीन-तीन पेंस की किस्तों से पूँजी इकट्ठी की गई थी। आगे चलकर इस भांडार ने ख़ूब तरक़्क़ी की, और शीघ्र ही सारे इँगलैंड में ऐसे ही अनेकों भांडार खुल गए। शुरू में प्रत्येक सभासद बारी-बारी से दूकान पर बैठकर सौदा बेचा करता था। आजकल इस भांडार के सभ्यों की संख्या सोलह हज़ार से भी अधिक है, और एक साल में तीन लाख से भी अधिक मूल्य का सौदा बेचा जाता है।

यहाँ इन सहयोग-मंडलों की कार्य-संचालन-पद्धति पर

[सं]क्षेप में कुछ लिखना अप्रासंगिक न होगा। सोलह वर्ष या इससे अधिक उमर का हरएक व्यक्ति मंडल का सभ्य बनाया जा सकता है, बशर्ते कि उसे सभासद् बनाने में मंडल की हानि होने की संभावना न हो। प्रत्येक सभ्य को कम-से-कम एक हिस्सा तो ज़रूर ही ख़रीदना पड़ता है। हिस्से की क़ीमत एक पौंड से ज़्यादा नहीं रक्खी जाती, और वह भी तीन-तीन चार-चार पेंस की क़िस्तों में वसूल की जाती है। क़िस्त प्रति सप्ताह या प्रतिमास चुकानी होती है। हिस्से पर मिलनेवाला लाभ हिस्से में शामिल कर लिया जाता है। प्रत्येक सभ्य को एक मत देने का अधिकार रहता है, और प्रतिनिधि द्वारा मत देने की प्रथा का एकदम अभाव है। निर्वाचित दस या पंद्रह सभ्यों की एक प्रबंधक-समिति बनाई जाती है। इस समिति के सभ्यों को वेतन या अलाउंस नहीं दिया जाता। नौकरों का वेतन, प्रबंध संबंधी ख़र्च, पूँजी पर ब्याज, स्थायी कोष, शिक्षा-कोष, धर्मार्थ आदि में लगनेवाली रक़म निकाल डालने के बाद जो बचत होती है, वह प्रति पौंड के हिसाब से हिस्सेदारों में बाँट दी जाती है। हिस्सेदारों में बाँटे जानेवाले मुनाफ़े की दर संस्था के अधिवेशन में ही निश्चित की जाती है।

भांडारों के सभ्य ही माल ख़रीदनेवाले भी होते हैं। कभी-कभी कई संस्थाएँ मिलकर एक संघ बना लेती हैं, और फिर वह संघ एक ख़ास तरह का माल तैयार करने के लिये कारख़ाने भी जारी करता है। इँगलैंड में कुछ सहकारी-भांडार ऐसे हैं, जिनके पास बूट, डबल रोटी, कपड़े आदि रोज़ के काम में आनेवाली चीज़ें तैयार करने के लिये अपने निज के कारख़ाने हैं।

फुटकल सामान बेचनेवाले कई सहयोग-भांडार मिलकर अपना एक संघ स्थापित कर लेते हैं, और फिर विदेशों से थोकबंद सामान सस्ते दामों पर मँगवाने का प्रबंध किया जाता है। बहुत-सी संस्थाओं के सीलोन, आयर्लैंड, डेनमार्क आदि दूरस्थ देशों में अपने निज के कारख़ाने भी हैं। इन संस्थाओं के अपने बैंक और बीमा-कंपनियाँ भी हैं।

इँगलैंड की कृषि-सहयोग-समितियों ने भी अच्छी सफलता प्राप्त की है। ग्रेट-ब्रिटन में साखवाली सहयोग-समितियों की संख्या बहुत कम है। वहाँ सहयोग-सिद्धांत पर स्थापित गृह-निर्माण-संस्थाएँ (Building societies) कुछ अच्छी हालत में हैं। ये संस्थाएँ दो प्रकार की पाई जाती हैं। पहले प्रकार की गृह-निर्माण-संस्थाएँ एक विशेष क़ानून से रजिस्ट्री कराई जाती हैं। ये संस्थाएँ सहयोग-सभाओं से बिलकुल भिन्न प्रकार की हैं। दूसरे प्रकार की गृह-निर्माण-संस्थाएँ सहकारी सभाओं के क़ानून की रू से रजिस्ट्री कराई जाती हैं। इनमें कुछ तो सहकारी-भांडारों से संबद्ध हैं, जिनका मूल-धन भांडार के सभ्यों के लिये मकान बनवाने में व्यय किया जाता है। कई गृह-निर्माण-समितियों के पास अपनी निज की इमारतें हैं, जो सभ्यों को किराए पर दी जाती हैं। कुछ समितियाँ मकान बनवाकर सभ्यों को बेंच देती हैं, और छोटी-छोटी क़िस्तों में क़ीमत वसूल की जाती है। कुछ सभाएँ मकान बनवाने और ख़रीदने के लिये सभ्यों को रुपए उधार देती हैं।

२. जर्मनी में सहयोग-सभाएँ

जर्मनी साखवाली सहयोग-समितियों की जन्मभूमि है। दो प्रसिद्ध देश-सेवकों के अतुलनीय साहस के कारण ही जर्मनी में इन संस्थाओं को अच्छी सफलता मिली है। ग़रीब मज़दूरों की शोचनीय अवस्था से द्रवित होकर ही इन दोनों महानुभावों ने यह काम हाथ में लिया था, और इनके परिश्रम ही के कारण देश का महान् उपकार हुआ। एक सज्जन ने नागरिकों के हित के लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया था, और दूसरे का उद्देश था देहातियों की हित-कामना। वर्तमान काल में दोनों ही प्रकार की समितियाँ ख़ूब फूली फली हैं। इन दोनों महानुभावों में से एक का नाम था स्कूल्स और दूसरे का रैफ़िसन।

स्कूल्स ने सन् १८४७ में मित्र-मंडलों की स्थापना की। सन् १८४६ में प्राविडेंट-फ़ंड की स्थापना की गई, और सन् १८५० में साखवाली सहयोग-संस्था की नींव डाली गई। इस सभा की पूँजी धनी लोगों से ली गई थी। संस्थापक को अपनी यह भूल शीघ्र ही मालूम हो गई, और उसने इसको सुधार भी लिया।

स्कूल्स के लिये एक स्थान पर लिखा है—"वह जन्म से ही संपत्ति शास्त्र के सिद्धांतों का प्रचारक था। उसके भव्य चेहरे, प्रभावशाली वक्तृता, आत्म-विश्वास एवं अपूर्व साहस ने ही उसको एक आदर्श प्रचारक बना दिया था। अपनी इच्छा-शक्ति के बल पर उसने देश के कोने-कोने में सहयोग-सिद्धांतों की प्रतिध्वनि गुंजारित कर दी थी।"

रफ़ीसन को अपने काम में अनेकों विघ्नों का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि प्रारंभ में, स्वयं जर्मन सरकार ने भी इस जन-हितकारी काम में रोड़े अटकाए। जर्मन सरकार हर तरह से उसको तंग करने लगी; परंतु वह विघ्न-बाधाओं और कष्टों से घबराकर अपने उद्देश से विरत होनेवाला मनुष्य न था। ज्यों-ज्यों सरकार उसको तंग करने लगी, त्यों-त्यों वह दूने उत्साह और मनोयोग से अपना काम करने लगा। अंत तक रफ़ीसन को सरकार से किसी प्रकार की सहायता न मिली, और न सरकार ने उसके काम की कोई क़द्र ही की।

रफ़ीसन द्वारा संस्थापित सभाएँ शहरों के कारीगरों, छोटे-छोटे व्यापारियों और अन्य ग़रीब नागरिकों के लिये ही अस्तित्व में आई थीं। अन्य सहकारी-संस्थाओं के समान इनका उद्देश्य भी मितव्यय, पारस्परिक सहायता और द्रव्योपार्जन ही था। इनकी ज़िम्मेदारी अमर्यादित रक्खी गई थी। सभासद को कम-से-कम एक हिस्सा लेना पड़ता था। हरएक हिस्सा पाँच पौंड का रक्खा गया था। हिस्से का रुपया माहवार क़िस्त से वसूल किया जाता था। क़िस्तें ऐसी रक्खी गई थीं कि हरएक आदमी सहूलियत के साथ जमा करा सके। हिस्से पर मुनाफ़ा भी ज़्यादा दिया जाता था। उत्पादक कामों के लिये ही रुपया उधार दिया जाता था। इन सभाओं से काश्तकारों को कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचा; क्योंकि इनके नियम काश्तकारी-धंधे के अनुकूल न थे। कभी-कभी ये संस्थाएँ सहकारी-सिद्धांतों के प्रतिकूल चलाई जाती थीं। परंतु रेफ़िसन द्वारा संस्थापित सभाएँ सहकारी-तत्त्वों के अनुसार नैतिक पाए पर क़ायम की गई थीं।

सन् १८१८ में रेफ़िसन का जन्म हुआ। जिस ज़िले में वह बर्गो-मास्टर (पटेल) नियुक्त किया गया था, वहाँ की प्रजा बहुत ही ग़रीब थी। लोगों को न तो खाने को काफ़ी मोटा अन्न ही मिलता था और न बेचारों को लज्जा-निवारणार्थ मोटा कपड़ा ही। प्रजा की दयनीय दशा देखकर उसका हृदय पसीज उठा। अकाल ने सारे ज़िले में भयानक दृश्य उपस्थित कर दिया। सारे प्रांत में हाहाकार मच गया। इससे रेफ़िसन को गहरी चोट पहुँची, और तब वह तन-मन-धन से जनता के दुःख-निवारणार्थ कमर कसकर तैयार हो गया।

उस प्रांत में साहूकारी-धंधा यहूदियों के हाथ में था। ये लोग बड़ी ही दुष्ट प्रकृति के थे। ये लोग सस्ते दामों पर किसानों से माल ख़रीद लेते थे। ग़रीबी के कारण काश्तकारों को सभी आवश्यक पदार्थ इन्हीं लोगों से उधार ख़रीदने पड़ते थे। ये लोग दुगने-तिगने दामों पर माल बेचते थे, और सूद भी बहुत ज़्यादा लेते थे। यहूदी लोग अपनी दुबली गउएँ किसानों के यहाँ चराई पर रखते थे, और गऊ के हृष्ट-पुष्ट हो जाने पर उसे लौटा लेते थे। तब दूसरी गऊ किसान के यहाँ भेज दी जाती थी। यहूदी ही नहीं, ईसाई महाजन भी ऐसा ही करते थे। रेफ़िसन इन सब बातों से भली भाँति परिचित था। सन् १८४८ में एक डबल रोटी का कारख़ाना खोला गया। इस कारख़ाने में बनी रोटी आधे मूल्य पर बेची जाती थी। इसके बाद मवेशी ख़रीदने के लिये सहयोग-समिति खोली गई, और सन् १८४९ में तीन सौ पौंड की पूँजी से एक सहकारी बैंक खोला गया।

रेफ़िसन शांत प्रकृति का आदमी था। उसने अपने सिद्धांत के प्रचार के लिये किसी प्रकार का प्रचार-कार्य हाथ में नहीं लिया था, अपना कार्य एक ही प्रांत में शुरू किया था। प्रचार-कार्य के अभाव के कारण उसके सिद्धांतों का प्रचार उतनी शीघ्रता से नहीं हुआ। सन् १८८० तक रेफ़िसन का कार्य कूर्म-गति से उन्नति करता रहा। किंतु बाद को सहकारी-सभाएँ धड़ाधड़ खुलने लगीं, और सन् १८९६ में इन संस्थाओं की संख्या २,२०० तक पहुँच गई। उस प्रांत के निवासी रेफ़िसन को बहुत चाहते थे। उसकी मृत्यु हो जाने पर जर्मनी की आधी जनता ने उसके लिये शोक मनाया था।

रेफ़िसन ने जर्मनी की ग़रीब प्रजा के लिये ही अपने बैंक स्थापित किए थे। इसलिये उसने शेयर के लिये कोई ख़ास रक़म मुक़र्रर नहीं की थी। और, प्रवेश-फ़ी भी नहीं देनी पड़ती थी। जब क़ानून द्वारा शेयर की क़ीमत ठहरा देना अनिवार्य कर दिया गया, तब उसने शेयर का मूल्य दस-पंद्रह मार्क नियत कर दिया, और उसके साथ ही छोटी-छोटी क़िस्तों में वसूल करने का नियम बना दिया। किंतु सभासदों की सच्चरित्रता और व्यवहार की सफ़ाई पर ज़्यादा ध्यान दिया जाता था। प्रामाणिक, गंभीर और शांत प्रकृति का आदमी ही सभ्य बनाया जाता था। दस-दस, पंद्रह-पंद्रह वर्ष के लिये रुपया उधार दिया जाता था; किंतु उधार लेनेवाले को उसकी ज़रूरत से ज़्यादा रक़म

कदापि नहीं दी जाती थी। यदि क़र्ज़ लिया हुआ रुपया किसी दूसरे काम में लगा दिया जाता था, तो एक महीने का नोटिस देकर पूरी रक़म वसूल कर ली जाती थी। क़र्ज़ लेनेवाले को व्यक्तिशः ज़मानत पर, और दूसरी दो ज़मानतों पर रुपया उधार दिया जाता था। प्रति तीसरे महीने इन ज़मानत देनेवालों की हैसियत की जाँच कर ली जाती थी। प्रत्येक सभ्य को एक मत देने का अधिकार था। सभा का कार्य-संचालन प्रबंधक-समिति द्वारा किया जाता था। इस समिति के सभ्यों को किसी प्रकार का अलाउंस या फ़ीस बिलकुल नहीं दी जाती थी। सिर्फ़ ख़ज़ानची को ही वेतन दिया जाता था। किंतु वह प्रबंधक समिति का सभासद नहीं हो सकता था, और न उसको मत देने का ही अधिकार था। शेयर की क़ीमत बहुत कम रक्खी गई थी, और मुनाफ़ा भी कम बाँटा जाता था। मुनाफ़े का एक बड़ा भाग स्थायी कोष में जमा कर दिया जाता था। सभा के टूट जाने पर स्थायी कोष की रक़म सभासदों में नहीं बाँटी जाती थी। यह रक़म किसी सार्वजनिक काम में ही व्यय की जाती थी। भारतवर्ष की कृषि-सहयोग-समितियों में इन सिद्धांतों को स्थान दिया गया है।

रेफ़िसन-पद्धति की साखवाली मंडलियों के कारण जर्मनी की जनता में सहयोग के तत्त्वों का अच्छा प्रचार हुआ, जिससे धीरे-धीरे कृषि-सहयोग-संस्थाओं का उदय हुआ। धीरे-धीरे जर्मनी में सहकारी-अन्न-भांडार, सहकारी-क्रय-विक्रय-संस्थाएँ, सहकारी-दुग्धशालाएँ आदि कई प्रकार की कृषि-सहयोग संस्थाएँ खुल गईं, जिनकी बदौलत ग़रीब जर्मन-प्रजा का बड़ा उपकार हुआ। इन्हीं सहयोग-समितियों की बदौलत थोड़े ही वर्षों में जर्मनी के कई वीरान और निर्जन प्रदेश हरे-भरे हो गए, और लोगों की ग़रीबी बहुत कुछ घट गई। वर्तमान काल में जर्मनी में पैंतीस हज़ार के क़रीब सहकारी-सभाएँ हैं, और सभासदों की संख्या ६३ लाख के क़रीब पहुँच गई है। सहकारी सभाओं को आर्थिक सहायता देने के लिये सेंट्रल बैंक की स्थापना की गई है। यह बैंक सभाओं का नियंत्रण और निरीक्षण भी करता है। सन् १९१५ में इस बैंक ने एक अरब पौंड से भी अधिक का लेन-देन किया था।

३. डेनमार्क में सहकार

डेनमार्क की कृषि-सहयोग-संस्थाएँ आदर्श मानी जाती हैं, और संसार के बड़े-बड़े देशों से अनेकों प्रतिनिधि इन संस्थाओं का अध्ययन करने के लिये वहाँ जाते हैं। इस देश का क्षेत्रफल क़रीब सोलह हज़ार वर्गमील है। वहाँ की ज़मीन की उपज-शक्ति बहुत घट गई थी। जन-संख्या भी २८ लाख के क़रीब थी। कृषि-प्रधान देश होने के कारण डेनमार्क का अपने पड़ोसी शिल्प-वाणिज्य-प्रधान देशों के आगे टिक सकना टेढ़ी खीर थी। किंतु आज डेनमार्क योरप में अतिसमृद्धिशाली देश माना जाता है। सन् १८६५ में, जब देश में कृषि और सहयोग-संगठन का अभाव था, प्रत्येक डेनिश की औसत आय ३२ पौंड से कुछ ही अधिक थी, और पूँजी का औसत व्यक्ति पीछे २३० पौंड पड़ता था।

सन् १८६० की लड़ाई में वह अपने दो बड़े और उपजाऊ प्रांत खो बैठा। जटलैंड और बाल्टिक-सागर के कुछ ही टापू उसके अधिकार में रह गए। इस भू-भाग में भी एक बड़ा हिस्सा दलदल, रेगिस्तान और पत्थरों से व्याप्त था, जहाँ एक दाना भी प्राप्त नहीं हो सकता था। नोनी, मलाई आदि तैयार करने की रीति भी बाप-दादों के ज़माने की थी। उसमें समयानुकूल कुछ भी परिवर्तन नहीं किया गया था। डेनमार्क में गेहूँ बहुत ज़्यादा पैदा होता था। किंतु गेहूँ सस्ता हो जाने के कारण भी उसको बहुत नुक़सान उठाना पड़ता था। क्योंकि पैदावार का एक बड़ा भाग हर साल विदेशों को भेज दिया जाता था। इन्हीं सब कारणों से देश की सांपत्तिक अवस्था बहुत गिर गई थी। किंतु डेनिश लोग हिम्मत हारनेवाले प्राणी नहीं। कृषि-सहयोग-संस्थाओं के बल पर उन्होंने अपना गत वैभव ही नहीं प्राप्त कर लिया, प्रत्युत वाणिज्य-संसार में वे एक शक्ति बन बैठे।

अपने उद्धार के लिये डेनमार्क को बड़ा प्रयास करना पड़ा। समुद्र के किनारे की पाँच हज़ार वर्गमील रेतीली ज़मीन कृषि के योग्य बनाई गई। धीरे-धीरे सड़कें, रेल, नहरें, बग़ीचे आदि बनाए गए, और थोड़े ही वर्षों में क़रीब दस लाख एकड़ ज़मीन में खेती की जाने लगी। बाद को दुग्ध-शालाओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। किसान अपने-अपने घरों में मक्खन तैयार करते थे, जिससे वह एक-सा नहीं हो पाता था। दलाल और आढ़तिए किसानों से मक्खन ख़रीदकर विदेशों में भेज देते थे। इससे वे लोग तो मालामाल हो जाते थे, पर किसानों को दो कौर अन्न भी खाने को नहीं मिलता

था। इसलिये मक्खन बनाने के यंत्र मँगाए गए। कारतकार अपना-अपना क्रीम इन कारख़ानों में भेज देते, और कारख़ाना इस क्रीम से मक्खन तैयार कर लेता। ये कारख़ाने सहकारी तत्त्व पर चलाए गए। बाद को कारख़ानों ने क्रीम तैयार करने का भार भी ले लिया, जिससे दूध ही कारख़ानों को भेजा जाने लगा। राष्ट्रीय और कृषि-विज्ञान की व्यावहारिक पद्धति का अवलंबन कर कार्यारंभ किया गया, जिससे जनता को वैज्ञानिकों के अन्वेषणों से लाभ उठाने का सुयोग प्राप्त हो गया। मांस और दूध की वृद्धि तथा उत्तमता के लिये पशुओं की नस्ल सुधारने का काम भी हाथ में लिया गया।

सहकारिता के सिद्धांतों के प्रचार के लिये किसी प्रकार का प्रचार-कार्य हाथ में नहीं लिया गया था। संस्थाओं का संगठन करने का काम भी किसी ने नहीं किया। न तो डेनमार्क में कोई प्रचारक ही था, और न प्रचार-संस्थाओं का अस्तित्व ही। इन सभी प्रकार की संस्थाओं का जन्म वहाँ आप-ही-आप, नैसर्गिक रीति से ही, हुआ है। एक बार यह पूर्ण विश्वास दिला देने पर कि अमुक संस्था उनके लाभ के लिये है, वे तन-मन-धन से उसे अपना लेते हैं। यही कारण है कि डेनमार्क में सहयोग के संपूर्ण अंगों का पूर्ण विकास हुआ है। डेनमार्क में एक भी उद्योग धंधा या व्यवसाय ऐसा न मिलेगा, जो सहयोग-सिद्धांतों के अनुसार न चलाया जाता हो। कुछ नियंत्रक संस्थाएँ भी हैं। गउओं के दूध के गुण-दोषों की जाँच तथा दूध में मक्खन का परिमाण, गउओं को खिलाए जानेवाले बिनौले और खली एवं दूध की पैदावार का मिलान करना आदि काम ही इन संस्थाओं के ज़िम्मे हैं। इस प्रकार की जाँच से यह बात मालूम हो जाती है कि किस जाति की मवेशी पालना ज़्यादा फ़ायदेमंद है। डेनमार्क में दलालों और मध्यस्थों का एकदम अभाव है। आयात और निर्यात-व्यापार में वहाँ इनकी कोई ज़रूरत ही नहीं पड़ती। छोटे-छोटे कारतकार भी अपना माल सहकारी-सभाओं द्वारा उतनी ही क़ीमत पर सरलता से बेच सकते हैं, जितनी क़ीमत पर बड़े-बड़े कारतकार बेचते हैं। इन सहकारी-सभाओं को इतनी अधिक सफलता प्राप्त हुई है, और इनके लाभ से लोग इतने अधिक परिचित हो गए हैं कि बड़े-बड़े कारतकार भी इन सभाओं के सभ्य बन गए हैं।

डेनमार्क में गऊ का बड़ा महत्त्व है। कहें, तो कह सकते हैं कि गऊ डेनमार्क की राष्ट्रीय संपत्ति है। बहुत प्राचीन काल से भारतवासी गऊ को अतिपूज्य मानते आए हैं। किंतु इधर कुछ वर्षों से हमने समय के फेर में पड़कर गऊ के महत्त्व को भुला दिया है। यदि शांत चित्त से विचार किया जाय, तो यह बात तुरंत ध्यान में आ जायगी कि गऊ ही भारत की राष्ट्रीय संपत्ति है।

डेनमार्क में पहला सहकारी-भांडार सन् १८६६ में खोला गया। इस समय इन भांडारों की संख्या १,६०० के क़रीब है। ये देहाती जनता के हित के लिये ही स्थापित किए गए हैं। सबसे पहली दुग्धशाला सन् १८८७ में स्थापित की गई थी, और इस समय इनकी संख्या १,८०० तक पहुँच गई है।

सहकारी-सभाओं से डेनमार्क को कितना लाभ पहुँचा, इस बात को बताने के लिये केवल इतना ही कहना काफ़ी होगा कि वहाँ के कारतकारों को मक्खन की क़ीमत पहले की अपेक्षा लगभग ४० सैकड़ा अधिक मिलने लगी है। ढोरों की नस्ल सुधर जाने के कारण दूध की पैदावार भी बहुत बढ़ गई है। सारांश, इन सहकारी-समितियों की बदौलत मवेशी, मुर्गी, सुअर आदि की संख्या ही नहीं बढ़ी, पैदावार और उसका दर्जा (quality) भी बढ़ गया है।

४. आयर्लैंड में सहयोग

आयर्लैंड (भारत) और आयर्लैंड की सांपत्तिक अवस्था क़रीब-क़रीब एक-सी है। अतएव आयर्लैंड के सहयोग के इतिहास से परिचित होना हम भारतवासियों के लिये हितकर है। आयर्लैंड कृषि-प्रधान देश है। वहाँ की प्रतिशत ८० जनता खेती पर जीवन-निर्वाह करती है। आयर्लैंड की जनता ग़रीब, निरक्षर और असंगठित थी। सदा से आयर्लैंड की खेती की पैदावार का एक-मात्र बाज़ार इँगलैंड ही रहा है। किंतु यांत्रिक और वाणिज्य जीवन के कारण अँगरेज़ जाति का स्वभाव बदल गया। अतएव इँगलैंड में आयरिश माल घटिया दर्जे का माना जाने लगा; क्योंकि अँगरेज़ लोगों की रुचि ही बदल गई थी। किंतु डेनिश लोगों ने अपनी कार्य-कुशलता, वाणिज्य-पटुता और दूरदर्शिता के कारण अँगरेज़ी बाज़ारों को हथिया लिया। इधर अमेरिका का माल भी इँगलैंड के बाज़ारों में आने लगा। फलतः माल सस्ता हो गया। इसलिये आयरिश प्रजा को कृषि

द्वारा जीवन-निर्वाह करना कठिन हो गया। लोग घरबार छोड़कर विदेशों में जा बसे, जिससे सारा देश वीरान हो गया। इस हालत को देखकर नेता चिंतित हो उठे, और इस द्वीपांतर-वास को रोकने के लिये उपाय सोचने लगे।

आयर्लैंड ही में क्यों, सारे पश्चिमी संसार में देहाती लोग शहरों में आकर बसने लगे थे; क्योंकि कलों की उन्नति के कारण बड़े-बड़े कारख़ाने उन शहरों में ही स्थापित किए गए थे, जहाँ की परिस्थिति उनकी उन्नति के अनुकूल थी। लोगों के शहरों में आकर बस जाने के कारण हरसाल हज़ारों एकड़ ज़मीन पड़ती रहने लगी। कृषकों की दशा सुधारने के लिये कई क़ानून बनाए गए; किंतु लाभ कुछ भी न हुआ। कम-से-कम आयरिश देश-भक्तों के मन में यह बात जम गई कि उत्तम खेती, उत्तम वाणिज्य और उत्तम जीवन ही उन्नति का मूल-मंत्र है, और इस मंत्र की सिद्धि के लिये सहयोग-संगठन ही एक-मात्र साधन है।

आयर्लैंड की प्रजा पूर्ण रूप से दलालों और महाजनों के चंगुल में फँसी हुई थी। ये लोग किसानों को मोल और तोल में ठग लिया करते थे; सूद भी ज़्यादा लेते थे। भाँति-भाँति के उपायों से किसानों का माल सस्ता ख़रीद लिया जाता था। अतएव वाणिज्य-पद्धति में सुधार करने के लिये रेफ़िसन-पद्धति की लाखवाली कृषि-सहयोग-संस्थाएँ स्थापित की गईं, जिनके कारण अढ़तियों और दलालों का नाम-निशान मिट गया। बाद को वैज्ञानिक कृषि-शिक्षा का समुचित प्रबंध किया गया, जिससे पैदावार भी बढ़ गई, और माल भी उत्तम प्राप्त होने लगा। फल यह हुआ कि किसानों की सांपत्तिक अवस्था बहुत कुछ सुधर गई, और जनता का जीवन भी सुखमय हो गया।

आयर्लैंड की खेतीबारी-व्यवस्थापक-समितियों (Agricultural organisation Societies) की बदौलत ही मक्खन तैयार करने के व्यवसाय का अंत नहीं हो पाया। हज़ारों ग़रीब काश्तकार साहूकारों के राक्षसी पंजे से बच गए। उन्हें कम सूद पर मनमाना रुपया उधार मिलने लगा। खेती की बहुत ही तरक़्क़ी हो गई, और विदेशी बाज़ारों की प्रतियोगिता के आगे वह अपने पैर जमाए रह सका। सरकार द्वारा स्थापित कृषि-विभाग और आयरिश देश-भक्तों द्वारा संस्थापित सहयोग-संस्थाओं ने आयर्लैंड का पुनरुद्धार कर डाला। कहें, तो कह सकते हैं कि विशृंखलित आयरिश राष्ट्र को सुसंगठित करने का सब श्रेय इन्हीं को प्राप्त है।

भारत की सहयोग-समितियों के दोषों को देखकर कुछ लोग उनकी उन्नति के लिये हतोत्साह-से दिखलाई देते हैं। ऐसे लोगों को आयर्लैंड से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। ऐसे ही दोष आयर्लैंड की सहयोग-समितियों में भी वर्तमान थे, और कुछ समितियों में आज भी विद्यमान हैं। आयर्लैंड में सहयोग-संस्थाओं को अच्छी सफलता मिली है, और उनका भविष्य उज्ज्वल जान पड़ता है। सरकार के आलोचकों ने मुक्त-कंठ से स्वीकार किया है कि दोषों का निराकरण कर लेने पर सहयोग-संस्थाएँ अच्छी सफलता प्राप्त कर लेंगी; क्योंकि उनका कार्य-संचालन सुयोग्य हाथों द्वारा हो रहा है।

शंकरराव जोशी

ठाकुर दाम्भीसिंह साहब

(ठाकुर साहब कई ख़ुशामदियों से बातें कर रहे हैं)

ठाकुर—और आप तो सब बातें जानते हैं, लेकिन फिर भी मैं विश्वासपूर्वक, बल्कि यक़ीनन कहता हूँ कि मैंने इस संसार को आप लोगों से कहीं अधिक देखा-भाला और जाँचा-पड़ताला है।

ख़ुशा०—इसमें क्या शक है।

ठाकुर—आजकल के आदमियों के मुक़ाबिले में पहले लोगों के आचार-व्यवहार, बातचीत, डीलडौल, जिस्म-शरीर दुगुने—

एक ख़ुशा०—बल्कि तिगुने—

दूसरा ख़ुशा०—बल्कि चौगुने—

तीसरा ख़ुशा०—बल्कि पँचगुने—

ठाकुर—बल्कि छःगुने, सतगुने, अठगुने, नौगुने, दस-गुने वग़ैरह हुआ करते थे।

ख़ुशा०—(एक दूसरे की ओर मुसकिराकर देखते हुए) बेशक, इसमें क्या झूठ है!

ठाकुर—नहीं, बहुत-से लोगों को मेरी बात पर विश्वास नहीं होता।

एक ख़ुशा०—उनकी बात जाने दीजिए।

दूसरा—वे सब-के-सब बेवक़ूफ़ हैं।

तीसरा—इसमें क्या शक है।

चौथा—भला कहाँ ठाकुर साहब और कहाँ वे !

ठाकुर—मतलब यह है कि अगर ऐसा न होता तो आज हिंदू-जाती संसार से कभी की क्यों न लोप हो गई होती ?

एक खुशा०—भला इस बात का वे लोग क्या जवाब रखते हैं ?

ठाकुर—मेरा कहना तो यह है कि आजकल के कु-संस्कारों ने हमारे बच्चों यानी लड़केवालों को गुड्डा-गुड़िया बना दिया—

खुशा०—सच है।

ठाकुर—यानी उन्हें किसी काम का न रक्खा—

खुशा०—बेशक।

ठाकुर—यानी वे किसी भी मर्ज़ की दवा न रहे, सिवा इसके कि अपनी खटिया पर पड़े-पड़े क़ब्ज़ की शिकायत किया करें और डॉक्टरों, हकीमों, मंतकियों-ज्योतिषियों, झाड़ूवालों—एँ ? बल्कि झाड़फूँकवालों, चूरनवालों, टोटका और छू-मंतर करनेवालों को रोज़ कई बार फ़ीस दिया करें; खाना-वाना तो कुछ न खायँ, दिन-रात बस निरा दूध पिया करें, और इतना होने पर भी अजीरन की शिकायत किया करें !

खुशा०—आपका कहना बिलकुल ही सच है।

ठाकुर—भगवान् जाने इनके पेट को क्या हो गया है, जो ज़रा खाने से ही बस कुछ पूछिए न।

खुशा०—क्यों न हो, आप तजुर्बे की बातें कहते हैं।

ठाकुर—मगर शोक कि फिर भी मेरी बात कोई नहीं मानता ! क्या झूठी दुनिया रह गई है कि अपना मतलब निकल जाने के बाद कोई किसी को नहीं पहचानता !

खुशा०—ज़माना बुरा—

ठाकुर—(बीच ही में) और मेरी तो यह राय है कि जो कुछ मेरे यहाँ पुराने ज़माने से होता आया है, मैं तो—जब तक मेरा दम ग़नीमत है तब तक—उसी लीक पर चलूँगा।

एक खुशा०—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' ऐसा कुछ महात्मा लोग आपस में कहते-सुनते देखे जा सकते हैं।

ठाकुर—देखिए न ! हम लोगों में बहादुरी आवे कहाँ से ? रद्दी-सद्दी, सड़े-बुसे और कूड़ा-करकट उपन्यास तो पढ़ते हैं, और वीरता की कहानियों से बात नहीं करते ! ऐसी अमूल्य पुस्तक उठाकर भी नहीं देखते जैसे टॉड साहब का राजस्थान।

एक खुशा०—उसमें तो वीरता कूट-कूटकर—

ठाकुर—(बीच ही में) अजी उसके बारे में आप लोग क्या जान सकते हैं ? हमसे पूछिए हमसे—हम क्षत्रिय हैं। जनाब ! उसमें ऐसी-ऐसी वीरता की बातें लिखी हैं कि जिनको पढ़कर मेरी तो—सच कहता हूँ कि—भुजाएँ फड़कने लगती हैं; यहाँ तक कि कभी-कभी तो मैं—क्या कहूँ—पास बैठे हुए आदमियों को—आदमियों पर हाथ छोड़ बैठता हूँ।

(खुशामदी एक दूसरे की ओर देखकर हँसते हुए 'क्यों न हो, आख़िर आप भी तो उन्हीं में से हैं, आदि कहते हैं)

ठाकुर—जी हाँ, यही तो मेरा भी कहना है, आख़िर मैं भी तो उन्हीं में से हूँ। इस बदन में (छाती पर हाथ रखता हुआ) भी तो वही ख़ून जोश खाता है। यही सब बातें दिखलाने के लिये ही मैंने आज एक पुतलीवाले से कह दिया था। वह अब आता ही होगा। मैं भी आप लोगों और इन लोगों को इसी कारण से—इसी बहाने—कुछ-न-कुछ देते रहने की इच्छा किया करता हूँ कि जिसमें आप लोग मेरी जगह-जगह प्रशंसा किया करें, क्योंकि—

"रुस्तम रहा ज़मीं पे, न बहराम रह गया;
मर्दों का आसमाँ के तले नाम रह गया।"

(एक ओर से पुतलीवाले का और दूसरी ओर से कुछ चंदा माँगनेवालों का प्रवेश क्या कहा ? हाँ—

"आसमाँ के तले नाम रह गया।"

आइए महाशयजी ! क्या कहूँ, यह पुतलीवाला—

पुतली०—(कई बार झुककर) सलाम हजूर ! हजूर का बोलबाला, वैरियों का मुँह काला; दाता हजूर को सलामत रक्खे, आल-औलाद बढ़ावै !

ठाकुर—अच्छा अब बकै मत। (रोब से सबकी ओर देखते हुए) झटपट अपना सरंजाम ठीक कर।

(रोब से सबकी ओर देखते हैं। पुतलीवाला सरंजाम ठीक करता है)

एक चंदा माँगनेवाला—(दूसरे के कान में) यह तमाशा क्यों कराया जा रहा है ?

(ठाकुर साहब सुन लेते हैं)

ठाकुर—लीजिए ! अब प्रश्न यह है कि पुतलियों का तमाशा क्यों कराया गया है, इससे लाभ क्या ? महाशयजी ! इससे बड़े-बड़े उपदेश मिल सकते हैं। समझनेवाले के लिये सभी कहीं सब कुछ है, और देशभक्त के लिये



ठाकुर डार्नासिंह साहब

[पं० बदरीनाथ भट्ट की नई पुस्तक "लबड़धोंधों" से]

ठाकुर साहब—'हाय-हाय' कैसा ? साला चांनीह जीतेगा !

(मा० पृ० ८०३)

N. K. Press, Lucknow

कहीं भी कुछ नहीं। यह तो अपनी अपनी समझ की बात रही। भला सोचने की बात है कि अगर इससे कुछ भी लाभ न होता, तो आज आप यहाँ तक आने का कष्ट ही क्यों उठाते?

एक खुशा०—सच है।

दूसरा—ठाकुर साहब ने भी क्या भीतरी कही है?

ठाकुर—हाँ, तब तो आपके दर्शन ही नहीं हो सकते थे। (सब एक दूसरे की ओर देखते और जैसे-तैसे अपनी हँसी रोकते हैं।) आप कुछ भी क्यों न समझें, या न समझें, मैं तो यही कहूँगा कि यह संसार भी पुतलियों का एक तमाशा है। हम सब लोग पुतलियाँ हैं। अगर इस तमाशे से लाभ नहीं तो इससे भी कुछ लाभ नहीं! मतलब यह है कि अगर ईश्वर की राय भी आपसे मिल जाय, तो न सिर्फ़ अभी हाल ही प्रलै हो जाय, बल्कि कभी भी किसी के भी न बच रहने से ज़रा भी किसी क़िस्म की भी पुतलियों का तमाशा किसी को भी कभी भी न दीखे—या न दीख सके।

खुशा०—वाह! क्या बात निकाली है।

चंदेवाला—मेरा यह मतलब नहीं था—

ठाकुर—नहीं नहीं, आपका कुछ भी मतलब क्यों न हो, बहुत-से लोग मुझे बेवक़ूफ़ या आधा पागल समझते हैं। वे अगर मुझे पूरा ही पागल समझें, तो भी मेरे पास उनके लिये कोई इलाज नहीं। आप बुरा न मानियेगा, मैंने आपके ऊपर कुछ नहीं कहा। देखिए बड़े-बड़े राजा लोग अभी हाल ही आपके सामने आते होंगे। मैं कोई झूठ नहीं कहता। या तो आप टॉड साहब का 'इस्थान' पढ़ लीजिए, और या फिर अपनी आँखें खोलकर यह तमाशा देख लीजिए। तब आपकी समझ में सब बातें आ सकेंगी।

(तमाशा शुरू होता है। झाड़ू देनेवाला, भिश्ती आदि आते और अपना-अपना काम करके चले जाते हैं। दरबार जमा होता है। अकबर बादशाह सिंहासन पर और सब राजा लोग इधर-उधर बैठते हैं। मुजरा होता है)

पुतली०—देखिए हजूर, अब राजा मानसिंह चीतोड़ जीतने चले—

ठाकुर—ठहर! ठहर! बदमाश!

पुतली०—एँ? देखिए जे चले।

(मानसिंह की पुतली आगे बढ़कर बादशाह को कई बार सलाम करके चलने के लिये पीठ फेरती है)

ठाकुर—(खड़े होकर, बड़े जोश के साथ) ठहर! पहले बतला कि कौन कहाँ और क्यों जाता है।

पुतली०—हजूर, जे (पुतली को चलाता हुआ) राजा मानसिंह जैपुरवाले, बादसाह से हुकुम लेकर चीतौड़गढ़ को जीतने—

ठाकुर—(क्रोध और जोश में) अरे जातिद्रोही! कलंकी! बदमाश! पहले मुझसे तो जान बचा ले, फिर कहीं जाने का नाम लीजो। मैं अभी लाखों को ढेर—(ठाकुर साहब डंडा लेकर पुतलियों पर पिल पड़ते और मानसिंह की पुतली के अलावा और भी कई पुतलियाँ तोड़-फोड़ डालते हैं, दो-एक हाथ पुतलीवाले के भी जमाते हैं। देखनेवाले आश्चर्य और भय से बग़लें झाँकते हैं *)

पुतली०—हाय मैं मरा—

ठाकुर—'हाय हाय' कैसी? साला चीतौड़ जीतेगा!

पुतली०—मैं मरा—हाय मेरा रुजगार गया—

ठाकुर—(कुछ ठंडे होकर) क्या कहा? क्या हुआ? क्या हुआ?

पुतली०—हुआ क्या हजूर! अब तो मैं जीता ही मरा—मैं तो गरीब आदमी हूँ, अब कैसे अपनी रोज़ी कमाऊँगा। हाय, इधर कमर में—

ठाकुर—क्या?

पुतली०—मैं यहाँ क्यों आया? हाय करम—

ठाकुर—(नरमी के साथ) तेरी क्या हानि हुई?

पुतली०—मेरी रोज़ी गई—

ठाकुर—अच्छा, तो कितने का नुक़सान हुआ, सच-सच बता।

पुतली०—पाँच रुपए का।

ठाकुर—(उदासीनता के साथ) हम नहीं जानते, तूने ऐसा बुरा तमाशा क्यों दिखाया?

पुतली०—(अपना सामान समेटता और रोता हुआ) अब किसको रोऊँ? हाय, गरीब की कहीं सुनवाई नहीं—

ठाकुर—क्या तुझे मालूम नहीं था कि हम लोग मानसिंह से नाराज़ हैं?

पुतली०—हजूर! मेरे तो करम फूट गए, मैंने अच्छा तमासा—

ठाकुर—(सोचकर) और हम उसे अपनी जाति का कलंक समझते हैं—

पुतली०—तो तमासे का जो कुछ ठेरा था सो हो दिलवा दीजिए, आगे आपकी मरजी—

* ऐसा ही एक सीन 'Don Quixote' में भी आया है।—लेखक

ठाकुर—हम तो दो आने देंगे।

पुतली०—हजूर ऐसा गरीब-मारी मत करो, आठ आने ठैरे थे।

ठाकुर—किससे ठैरे थे?

पुतली०—हजूर से—

ठाकुर—किसके सामने? (ख़ुशामदियों की ओर) हाँ, बिना गवाही के मुकदमा खारिज समझा जाता है।

पुतली०—मैं तो गरीब हूँ, हजूर झूठ नहीं कहूँ हूँ, आज सबेरे आपसे हो ठैरे थे।

ठाकुर—अच्छा तो अगर मान भी लें कि 'ठैरे थे' या 'आठ आने ठैरे थे,' तो भी ठैरने से क्या होता है? आठ आने की जगह आठ रुपए—या बल्कि यों कहिए (ख़ुशामदियों की ओर) कि आठ सौ रुपए—ठैरते तो क्या मैं दे देता? ऐसा अंधेर कैसे हो सके है? (पुतलीवाले की ओर) जो चार आदमी कहेंगे, सो दूँगा। (ख़ुशामदियों की ओर) तमाशा देखनेवाले चार भलेमानस जो कह देंगे, सो दे दिया जायगा। क्यों साब! इसका तमाशा कै पैसे का था?

पुतली०—हजूर! मैंने तो अपने जानें अच्छा-है-अच्छा—

ठाकुर—(जोश में आकर बीच ही में) तमाशा तो तूने ऐसा दिखाया था कि आठ आने की जगह तुझे आठ जूते भी नहीं दिए जाने चाहिएँ। (क्रोध से) और तू जो कहता है कि 'ठैरे थे,' सो ठैरने से क्या होता है? हम कहते हैं कि 'आठ आने ठैरे थे'—ठैरे थे तो क्या हुआ? कुछ दे तो नहीं दिए गए थे? भला सोचने की बात है, दिया तो वही जायगा जो वाजिब होगा। अगर हमने आठ आने ठैराकर तुझे दे दिए होते, तो बात दूसरी होती, क्योंकि 'प्रान जायँ पर बचन न जाई।' बस, अब तो वही मिलेगा, जो ठीक समझा जायगा। (ख़ुशामदियों की ओर) क्यों न? और पहले तो इसी बात का तेरे पास क्या सबूत है कि हमने जिस वक़्त तुझसे ठैराए, उसी वक़्त आठ आने दे नहीं दिए। ऐसा तू बड़ा भोला है न, जो अपने पैसे छोड़ जाता!

एक चंदेवाला—ठाकुर साहब क्या कहें, नुक़सान तो बेचारे का हुआ ही—

ठाकुर—अजी नुक़सान-फ़ायदा तो होता ही रहता है। (पुतलीवाले से) अरे भाई चार आने से ज़्यादे नहीं देंगे, तुझे लेने होयँ तो ले जा, नहीं तो माफ़ कर।

पुतली०—(रोकर) वाह हजूर वाह, मैं तो गरीब आदमी हूँ—मेरी कहाँ सुनाई होगी; न मैं कोई पढ़ा-लिखा हूँ; मैं तो आप लोगों का गुलाम हूँ। जो आपकी मर्जी सो ही मेरे लिये भगवान् की मर्जी; करमों में बदा था सो हुआ; जे सामान जो टूटा है, इसका भी कुछ मिल जाता, तो बड़ी मेहरबानगी होती।

ठाकुर—अच्छा, अभी तो तू चार आने ले जा, बाकी के लिये कल्ह बात करियो।

पुतली०—(हाथ जोड़कर और ठाकुर साहब के पैर छूकर) हाँ हजूर, कुछ तो परवस्ती होनी चाहिए!

(ठाकुर साहब बड़ी मुश्किल से तरह-तरह का मुँह बनाते हुए चार आने अंटी में से निकालकर देते हैं। पुतलीवाला लेता है)

पुतली०—हजूर की खिजमत में कल्ह हाजर होऊँगा। हाँ, हजूर का बोलबाला रहे—(सामान लेकर जाता है)

ठाकुर—अरे मंसुखा! ओ मंसुखा।

(मंसुखा नौकर का प्रवेश)

मंसुखा—हजूर—हुकुम?

ठाकुर—(पुतलीवाले की ओर इशारा करके) देख, वो जा रहा है, दीखा? हाँ, जब कभी वो पुतलीवाला आवे, तो कह दीजो कि ठाकुर साहब घर पै नहीं हैं। जब कभी वो आवे, तभी दरवाजे पर से ही टरका दिया करियो। बदमाश कहीं का, देखूँ अब क्या लिए लेता है? मुझे ही ठगना चाहता था! (चंदेवालों से) हाँ महाशयजी, कहिए; पुतलीवाले से तो पीछा छुटा, अब आप कहिए।

एक चंदेवाला—ठाकुर साहब, करोड़ों अनाथ बालक विधर्मी हो रहे हैं। उनकी रक्षा करने के लिये—

ठाकुर—अच्छा, तो जो विधर्मी हो गए हैं उनकी रक्षा के लिये—हाँ—विधर्मियों की रक्षा के लिये मैं कुछ नहीं दे सकता।

दूसरा चंदेवाला—विधर्मियों की रक्षा के लिये नहीं, बल्कि उन बच्चों की परवरिश के लिये, जो अनाथ हैं और सहायता न मिलने पर विधर्मी हो जायँगे—

ठाकुर—ऐसों के लिये, जो थोड़े ही दिनों में विधर्मी हो जायँगे, मेरे पास कौड़ी नहीं है। और दूसरे, इस बात का क्या सबूत है कि वे सब क्षत्रिय हैं?

तीसरा—एक ऐसा अनाथालय बन जाय, जिसमें—

ठाकुर—हाँ, मैं समझ गया, मुझे भी घर की मरम्मत करानी है। अच्छा, तो इसके बारे में आप फिर कभी मुझसे मिलिए। इस वक़्त तो मुझे फ़ुरसत नहीं है। सेठ तिलोकचंद के घर दावत है। कल्ह मिलिए। सब काम हो जायगा। मैं अच्छे कामों के लिये चंदा क्या, अपनी जान तक दे देता हूँ—दे दिया करता हूँ।

चंदेवाला—(दूसरे की ओर मुसकिराते हुए) बहुत अच्छा, नमस्ते।

(चंदेवाले जाने लगते हैं। ठाकुर साहब मंसुखा से उनकी ओर इशारा करके कान में कुछ कहते हैं। सहसा वे पीछे को मुँह मोड़कर ठाकुर साहब को ऐसा करते देखते हैं, और हँसकर चले जाते हैं)

ठाकुर—(खुशामदियों से) बदमाशों ने नाक में दम कर लिया!

खुशा०—इसमें क्या शक है।

ठाकुर—(उठकर चलते हुए) देखूँ, मुझसे क्या लिए लेते हैं? (सब लोग उनके पीछे-पीछे जाते हैं) ऐसों का तो यही इलाज है।

खुशा०—इसमें क्या शक है!

बदरीनाथ भट्ट

स्व-जीवनी

(२)

उस ग्राम में स्मरण-रमणीय-प्रिय-नाम में जन्म अपना हुआ अब्द उन्नीस-सोलह-असित माघ-निशि-अर्द्ध चौदस रविज-वार वर लग्न भूषित प्रथम याम में।

ग्राम वह उस समय सकल-सुख-धाम था शांति का सुमति-संपन्न विश्राम था जहाँ पर सर्वदा कभी निष्काम और कभी शुचि कामना-मिलित अभिराम होता रहे पुण्य का कुछ-न-कुछ प्रेममय सात्विक क्षेममय सुर-स्पृहणीय कमनीय शुभ काम था।

यादवों का वहाँ भूमि-स्वामित्व था जिन्हें स्थानीय कुछ प्राप्त नामित्व था यद्यपि धन-तरणि-संपर्क-संजनित दुर्धर्ष दुर्वृत्त व्यवहार-सूचक उन्हें लोक-अपवाद भी प्राप्त कुछ कम न था।

एक वयोवृद्ध उनमें पुरुष-श्रेष्ठ थे बृहत् परिवार भर में वही ज्येष्ठ थे रूप में सुघर आकार में भव्य, व्यवहार में शुद्ध बरताव में शिष्ट थे। नाम ठाकुर लछीरामसिंह ख्यात था, घर "हवेली" तथा "गढ़ी" कर ज्ञात था।

ज्ञात नहिं किस विकट जाल के बीच पड़ उन्होंने या किसी पूर्व जन ने बहुत अल्प धन में रहन गाँव वह रख दिया कोटला ग्राम के अधिप के पास जो उसी कुल से अतिव निकट संबद्ध था। फिर किसी भाँति उससे न वह छुट सका स्वत्व यों टूटकर फिर नहीं जुट सका। आज वह देश अति दुर्दशा-ग्रस्त है द्रोह से दग्ध दारिद्र्य से ध्वस्त है। ग्राम में आज औद्दत्य का राज है, अनवरत पतन का सज रहा साज है।

वहाँ कुछ वैश्य भी विभव-संपन्न थे. धर्म में जैन बहु नम्रता-ऐन सब सुघर संतान धन-धान्य से धन्य उस ग्राम में सदृश उनके न जन अन्य थे। किंतु वह भी अधोगमन में लग्न थे, कलह युत कुमति के पंक में मग्न थे। आज दिन वह दुखित दीन दुरवस्थ हैं आत्म-अस्तित्व में अतिव अस्वस्थ हैं।

उसी विधि दीखते सुखित कृषिकार थे, प्राय उनके सभी श्लाघ्य व्यवहार थे। आज वह भी निपट भिन्न हैं हो रहे स्वात्मगत सत्व के चिह्न हैं खो रहे।

घर हमारा विभव में न अभ्यस्त था, धार्मिक व्यसन में ही रहे व्यस्त था आज वह भी नहीं विपद् से रहित है, कर चुका बहुत कुछ आत्मगत अहित है।

ग्राम उस समय जिस समय की है कथा दूर तक प्रांत के बीच विख्यात था। दृश्य उसका अभी हृदय पर है खिचा स्पष्ट जैसा कि हो आज ही का रचा।

एक प्राचीन "परकोट" जिसका अधिक भाग था भग्न और भूमि से मिल रहा मूल से लग्न जिसके कि खाई खुदी कहीं देती दिखाई कहीं लुप्त थी। बीच उसके कहीं सजल कीचड़ कहीं सघन काई-घना सड़ी बेलें सिंघाड़े तथा कमल की लता कहिं कुटिल कहिं पड़ी रहती बहुत थीं मनोहर बड़ा। कहीं पर उसी में खेत रहते सजे सघन सुंदर हरे ललित शोभा भरे साग-भाजी सरस बेल पल्लवित मृदु फूल बहु रंग के मंजु मिश्रित खिले।

आम के बहुत-से बाग थे ग्राम के पूर्व पश्चिम व उत्तर-दिशा में खड़े। पूर्व कुछ दूर एक किंशुकारण्य था जहाँ पर वन्य वाराह मृग शशक त्यों अन्य वन-जंतु अनिरुद्ध स्वातंत्र्य संयुक्त थे विचरते।

बाग और ग्राम के मध्य बहु दूर तक भूमि थी भग्न नीची मृदुल नामयी बीच जिसके रहे गड़े गहरे बड़े कीच-संकुलित बहु मलिन जल के कई। जहाँ सारस रहें ध्यान में लीन थे क्योंकि उस सलिल में बसें बहु मीन थे। अन्य पक्षी कि जो मीन-भक्षी रहे प्राय वह भी वहाँ प्राय मँडलायें थे। ग्राम-शूकर तथा महिष के वृंद भी अमित

आनंद-युत नित्य थे क्रीड़ते। तथा भंगी प्रभृति निम्न जातीय जन जाल थे मछलियों के लिये डालते। दृश्य उनका सभा को लगे घृण्य था ग्राम का उच्च-जातीय समुदाय जिसको निरख प्राय हो जाय अति खिन्न था।

तदपि वह ग्राम शुचि प्रेम का स्थान था। हृदय में सभों के सदा उसका सुदृढ़ निहित हित-कामना-सहित अभिमान था।

पास उसके बसे और जो ग्राम हैं निम्न निर्दिष्ट उनके सुभग नाम हैं—

१ सराय नूरमहल	६ खेरिया	११ सुनावई
२ महाराजपुर	७ गोंदई	१२ रूदऊ
३ रंजौरगढ़ी	८ फ़तेहगढ़ी	१३ रामपुर
४ सिकाद (सआवत) पुर	९ उदीगढ़ी	१४ हुसैनपुर
५ हिम्मतपुर	१० सौंठि की नगरा	१५ सदाईगढ़ी

आस्य से विदित श्रुति-मधुर प्रिय नाम ये स्मरण मन-हरण, कृषि-कर्म-क्रम-मर्म-संमनन श्रम-स्वेद उर खेद तरतम-सुगम-रीति-सबद्ध-मति-भीति-भ्रम ग्राम्य-जन-ज्ञान-विज्ञान-संजनन सुख-धाम हैं।

दक्षिणी सीम पर सुघर शाही दड़ा आगरे को चला गया सीधा बड़ा और पश्चिम अधिक उपवनों से जड़ा दूर उत्तर अवधि विपुल ऊपर पड़ा।

दड़े के निकट कुल-सती का स्थान है। पंद्रवीं शताब्दी बीच सुगृहीत-शुभ-नाम श्रीनरोत्तम शर्म पाठक प्रयत-पाणि-पीड़ित प्रिया श्रीमती देवि "लौंगा" भिधा यहाँ पर सती सद्विधि हुई। अतः उस स्थान का तीर्थसम मान है। सती-मठ-मध्य सन्निहित शिव-लिंग है प्राय होता वहाँ पर अतः ग्राम के सुजन-समुदाय का सांध्य सत्संग है। पाठकों के सकल मांगलिक कार्य का सती-अर्चन अनुल्लंघ्य एक अंग है। अतः उनका कोई कुलज करता नहीं इस सनातन कुलाचार को भंग है।

उत्तरी अलँग में अनति ही दूर एक अल्प कृषि-भूमि "ठेरा" सुविख्यात है—अंश अवशिष्ट उस वंश-संपत्ति का पूर्व जिसकी कही जा चुकी बात है।

मलिंगार, मसूरी

२३-७-२६

(३)

पूर्व आषाढ़ नक्षत्र था जन्म का नाम "भूधर" तदनुसार रक्खा गया, किंतु पश्चात् कब किसी को ज्ञात नाहिं निज का नाम किस भाँति श्रीधर पड़ा। नामकरणादि का स्मरण कुछ भी नहीं। अक्षरारंभ का बना कुछ ज्ञान है किंतु उस समय पर किया था हवन बहु पठन में रुचि न थी चित्त उद्विग्न-सा रुग्ण-सा रहा कई एक दिन क्रोध-भय-भ्रांति-घिन-व्याकुलित शांति-बिन निपट निर्विण्ण निस्तेज। क्या हेतु था ज्ञात नहिं। वर्णमाला बड़ी कठिनता से पढ़ा। पिताजी को उसे सिखलाने में मुझे कई दिन तक बहुत अधिक मेहनत पड़ी।

सातवें वर्ष आत्मीय उत्कर्ष-प्रद, सकल सुकुलीन ग्रामीण-जन-हर्ष-कर सुमत शास्त्रीय सुविमर्ष-पूर्वक सुनिर्णीत शुचि प्रयत विधि सहित उपनयन का स्वकुल-अनुकूल उत्सव अनुष्ठित हुआ।

मंत्र-दीक्षा मिली पूज्य पितृचरण से पूर्वजन-प्रथित-पथ-उचित-अनुसरण से, विनय-शिक्षा, प्रणति, प्रण, तितिक्षा, प्रणय, सुवच, शुचिता, सुजन-संग, अनुदिन-नियम बद्ध संध्याग्नित्य आदि अनुबद्ध उपदेश अब उन्हीं से नित्य नव अनघ अनमोल मिलने लगे स्नेह-मधु में पगे।

ग्यारवें वर्ष में ब्याह व्यवहित हुआ मधुपुरी पुरी से अनति दूरस्थ गोकुल-महावन-निकट कृष्ण-व्रज-गोपिका-केलि-लीला-निलय सुखद-सान्निध्य गत "चौहरी" नाम सौंदर्य-निधि-ग्राम में।

श्वसुर-कुल यदपि सामान्य कुल था तदपि सुकुल था सकल सम्मान-भाजन, सुजन वृंद वंदित सुयश विमल-चारित्र्य-धन सौम्यता भद्रता नम्रता के लिये विदित था वह भली भाँति उस ठाम में।

उस सुकुल की सुता सकल सद्गुण-युता देव-कन्या-सदृश रूप छवि की लता काल की चाल के विवश इस बाल की बनी दस साल की बाल पत्नी प्रिया।

मलिंगार, मसूरी

२७-८-२६

(४)

अक्षरारंभ के बाद बहुकाल तक कठिन क्रम से नियत पठन चलता रहा—पिताजी के निकट कभी घर पर कभी मदरसे में तथा कभी टलता रहा। पिताजी ने ततः कौमदी का कराया स्वयम् सविधि आरंभ सुमुहूर्त से। संधि का भाग श्रम सहित उनसे पढ़ा शेष क्रम-बद्ध भागीरथी पुरी से।

मलिंगार, मसूरी

(अगस्त के अंत के लगभग) श्रीधर पाठक

[सू०—खंड ३ (पूरा) और खंड ४ (आरंभ) मेरी बीमारी में लिखे गए थे। बीमारी हृदय की थी, और मुझे ज्ञात न थी। उसने भयानक ज़ोर पकड़ा। मुझे पहाड़ से प्रयाग लौट आना पड़ा, और यहाँ पहुँचते ही रोगशय्या-शायी हो गया। रोग इतना बढ़ा कि गुरुजन और डॉक्टर मेरे जीवित रहने के विषय में अत्यंत सन्दिग्ध हो गए, परंतु ईश्वर की दया से मैं अब फिर स्वस्थवत् हूँ। परंतु यह अब असंभव-सा प्रतीत होता है कि मैं इस कार्य को समाप्त कर सकूँ, यद्यपि "हरेरिच्छा बलीयसी" के अनुसार यह संभव भी है।]

श्रीपद्मकोट, प्रयाग
२७-११-२६ } श्री० पा०

स्मृति और उसके नियम

उपक्रम

माधुरी की किसी गत संख्या में, 'कल्पना'-शीर्षक लेख में, 'स्मृति' का उल्लेख किया गया था। उसमें मैंने बतलाया था कि स्मृति कल्पना की सगी बहन है। आज यहाँ स्मृति के विषय में विचार किया जायगा।

स्मृति क्या है ?

प्रश्न यह है कि स्मृति क्या है ? कल्पना कीजिए, हम एक अत्यंत मनोरम उद्यान में बैठे हैं। सामने एक रमणीय पुष्प है। हम उसकी शोभा देखने में दत्तचित्त हैं। प्रकृति की सुंदरता में हमारा मन रमा हुआ है। कुछ समय के उपरांत हमारे एक मित्र आते हैं, और हम लोग परिभ्रमण के लिये बाहर चले जाते हैं। हम उद्यान से निकलते हैं। थोड़े समय तक ऐसा मालूम होता है कि वह फूल हमारी आँखों के सामने है। हम अपने मित्र के साथ धीरे-धीरे चल रहे हैं। अकस्मात् हम लोगों को एक मधुर गाना सुनाई पड़ता है। गाना समाप्त होने पर भी वह मधुर स्वर हमारे कर्ण-कुहरों में गूँजता रहता है। आगे चलकर उस मित्र के घर पर पहुँचते हैं। सुंदर और मधुर मिष्टान्न हमारे सामने परोसे जाते हैं। हम अपने मित्र के साथ भोजन कर रहे हैं। भोजन समाप्त हुआ, तो भी हमारी जीभ चटपटा रही है। हमारे मित्र हमारे सामने सुंदर-सुंदर सुगंध लाकर रखते हैं। हमारी नाक उनका उपभोग करती है, और हमारा मन उसी में रम जाता है। अब प्रश्न यह है कि पदार्थों के अभाव में भी हमें प्रत्यक्ष ज्ञान क्यों होता है ? क्या ये सब कल्पना के कारण हैं ? देखने में तो यही मालूम होता है। पर ज़रा इसका विश्लेषण करें, तो पता चलेगा कि इसका कारण कुछ और है। अच्छा, प्रत्यक्ष किस प्रकार से होता है ? यह समझने के लिये हमें शरीर-विज्ञान से सहायता लेनी पड़ेगी। हमारे ग्यारह इंद्रियाँ हैं, जिनमें आँख इत्यादि पाँच ज्ञानेंद्रियाँ तथा मुख इत्यादि पाँच कर्मेंद्रियाँ और मन उभयेंद्रिय (अर्थात् ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय, दोनों ही) है। हमारा शरीर स्नायुओं से भरा हुआ है। ये स्नायु दो प्रकार के हैं—ज्ञान-स्नायु और कर्म-स्नायु। इन सबका संबंध हमारे मस्तिष्क से है। ज्ञान-स्नायु आँख इत्यादि ज्ञानेंद्रियों से निकलकर मस्तिष्क तक विस्तृत हैं। आपने टेलीफ़ोन-यंत्र देखा ही होगा। हमारा शरीर भी कुछ-कुछ उसी प्रकार का है। सामने एक सुंदर फूल है। उसके रंगों से वायु-मंडल में तरंगें उठती हैं। ये हमारी आँखों की तंत्रियों पर जाकर टकराती हैं। तंत्रियाँ संचालित होकर मस्तिष्क को ख़बर पहुँचाती हैं। जिस प्रकार टेलीफ़ोन में कहीं से बोलने पर प्रधान ऑफ़िस की तंत्रियाँ झंकृत होती हैं, ठीक उसी प्रकार किसी इंद्रिय में कुछ होने से मन को ख़बर मिल जाती है। आपने सितार तो देखा ही होगा। जब सितार बजाकर छोड़ दिया जाता है, तब भी उसकी तंत्रियाँ खड़खड़ाती ही रहती हैं। इसी प्रकार जब पदार्थ हमारी इंद्रियों की स्नायुओं को खड़खड़ाकर चले जाते हैं, तो भी स्नायु खड़खड़ाते ही रहते हैं, और इसी कारण पदार्थों के अभाव में भी हमें प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। अब प्रश्न है कि इसे हम किस प्रकार के ज्ञान में रख सकते हैं ? यहाँ पर यह कह देना उचित है कि प्रत्यक्ष ज्ञान पदार्थों और इंद्रियों के संयोग से होता है। इन उदाहरणों में यद्यपि पदार्थों का अभाव है, तथापि पदार्थों और इंद्रियों के संबंध का अभाव नहीं है। अतएव इसे प्रत्यक्ष के अंतर्गत रख सकते हैं। ऐसे प्रत्यक्ष को हम सुविधा के लिये प्रत्यक्षावशेष कह सकते हैं। अस्तु। फिर स्मृति क्या है ? कल मैंने मिठाइयाँ खाई थीं; आज वह दृश्य सामने आ गया। यही स्मृति है। पदार्थों और इंद्रियों के

संसर्ग के अभाव में जो अतीत प्रत्यक्ष का ज्ञान होता है, उसी को वास्तव में स्मृति कहते हैं।

स्मृति का विश्लेषण

हम यह तो जान चुके कि स्मृति क्या है, और क्या नहीं। अब प्रश्न यह है कि इसके कौन-कौन-से अंग हैं, तथा इसका रूप क्या है? मुझे हिंदू-विश्वविद्यालय के उपाधिवितरण-महोत्सव की जीती-जागती स्मृति है। लीजिए, इसी का विश्लेषण कीजिए। अच्छा, यहाँ उपाधिवितरण-महोत्सव अतीत का है। यह अतीत मेरे मन में आ गया है। यही अतीत का मन में आगमन स्मृति की पहली सीढ़ी है। अस्तु। अच्छा हुआ, अतीत मन में आया। पर इसके साथ-ही-साथ मुझे यह भी जानना चाहिए कि यह अतीत मेरा है। यह स्मृति की दूसरी सीढ़ी है। इसे अतीत का निजीकरण कहते हैं। इसके उपरांत इसका भी नियत ज्ञान होना चाहिए कि किस समय का यह ज्ञान है। यह स्मृति की तीसरी सीढ़ी 'अतीत' का नियतिकरण के नाम से पुकारी जाती है। साथ-ही-साथ यह उपाधिवितरण मेरी आँखों के सामने नहीं है। यदि आँखों के सामने हो, तब तो प्रत्यक्ष ही हो जाय। अतएव स्मृति सदा अतीत की होगी। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि स्मृति के ये चरण एक के बाद दूसरे आते हैं। मैंने सीढ़ी-शब्द का प्रयोग किया है सही, पर मेरा मतलब यह नहीं है। यद्यपि मन आत्मा है, तथापि इसे अनात्मा ही के शब्दों में लिखते हैं। यद्यपि यह अमूर्त है, तथापि भाषा में इसका व्यवहार मूर्त ही जैसा होता है।

स्मृति की मात्रा

स्मृति का हम परिचय पा चुके। पर सदा यह इसी रूप में नहीं रहती। ऊपर पूर्ण स्मृति का रूप बतलाया गया है। 'उपचेतना'-शीर्षक लेख में बतलाया गया था कि चेतना की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। इससे हम यह तो भली भाँति अनुमान कर सकते हैं कि स्मृति का भी तारतम्य अवश्य ही होगा। अब देखना है कि यह तारतम्य किस प्रकार का है। कल्पना कीजिए, मैं टहल रहा हूँ। इतने में एक आदमी से भेंट होती है। वह आदमी मुझे नमस्कार करता है। मेरी चेतना में खलबली पड़ जाती है। मैं सोचने लगता हूँ। लाख सिर पटकता हूँ; पर उसे नहीं पहचान पाता। लाचार हो मुझे पूछना पड़ता है कि आप कौन हैं? यहाँ केवल इतनी स्मृति है कि कदाचित् यह व्यक्ति परिचित है। इसे संदेह-स्मृति कह सकते हैं। विजया की छुट्टी में मैं डालटनगंज आया। निरर्थक और एकांत परिभ्रमण से मुझे बचपन ही से प्रेम है। सायंकाल का समय था। मैं टहलते-टहलते बहुत दूर तक निकल गया। मैं आत्मा की स्वतंत्रता पर तर्क-वितर्क करने में लगा हुआ था। इतने ही में एक व्यक्ति मेरे कंधों पर हाथ रखकर बोला—"कहो भाई, आजकल कहाँ हो? हम लोगों को तो ज़रा भी याद नहीं करते।" मेरी चेतना इस नए संवित् का सामना करने के लिये तैयार हो गई। बहुत विचार करने पर यह मालूम हुआ कि यह हमारे साथी हैं। पर नाम तो लाख सिर पटकने पर भी याद न आया। मैंने पूछा—"भाई, मुझे इतना तो स्मरण है कि आप हमारे सहपाठी हैं; पर आपका नाम याद नहीं पड़ता।" उन्होंने कहा—"मेरा नाम 'अ' पर है।" बहुत-कुछ सोचने पर मैंने कहा कि क्या आपका नाम अवधविहारी है? यहाँ स्मृति की मात्रा पहले से कहीं अधिक है; पर तो भी यह पूर्ण स्मृति नहीं है। इसी प्रकार स्मृति की मात्रा भिन्न-भिन्न है। पूर्ण स्मृति का तो उदाहरण दिया ही गया था।

स्मृति के भेद

हम यह देख चुके कि स्मृति की मात्रा किस प्रकार घटती-बढ़ती रहती है, अब प्रश्न यह है कि इसके भेद कितने हैं? हम इंद्रियों के भेद तो बतला चुके। उन्हीं की सहायता से अब स्मृति के भी भेद बतलावेंगे। हमने एक सुंदर फूल देखा है। वह हमें याद है। इसे चक्षु-स्मृति कहते हैं। इसी प्रकार कर्ण-स्मृति, घ्राण स्मृति आदि के भी भेद हैं। यहाँ पर यह बतला देना उचित है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न स्मृति की प्रधानता रहती है। एक व्यक्ति था। वह सदा मार्ग पर खड़ा रहकर भीख माँगता था। उसकी चक्षु-स्मृति अत्यंत तीव्र थी। उस मार्ग से जितने व्यक्ति आते थे, सभी को वह याद रखता था। इसी प्रकार जब मैं हिंदू-विश्वविद्यालय में पढ़ रहा था, उस समय स्वनामधन्य श्रीयुत डॉक्टर गणेशप्रसादजी प्रिंसिपल के पद को सुशोभित कर रहे थे। उस वर्ष हम लोग हज़ारों विद्यार्थी थे; पर वे सभी को पहचानते थे। छोटा नागपुर के स्कूल-इंस्पेक्टर की भी स्मृति ऐसी ही विलक्षण है। आप जिसे एक बार देख लेते हैं, उसे कभी नहीं भूलते। जब मैं बाँदा में था, तो वहाँ के स्टेशन-मास्टर

से मेरा विशेष परिचय था। उनकी कर्ण-स्मृति अत्यंत ही तीव्र थी। जिसकी बोली एक बार सुन लेते, कभी न भूलते थे। इसी प्रकार किसी को तिथि आसानी से याद रहती है, तो किसी को नाम। इन्हें क्रमशः तिथि-स्मृति और नाम-स्मृति कह सकते हैं। ऐसे ही मनोवैज्ञानिकों ने मार्ग-स्मृति, रूप-स्मृति इत्यादि अनेक भेद कर दिए हैं। पर ये सभी चक्षु-स्मृति के अंतर्गत रह सकते हैं। प्राचीन काल में हमारे यहाँ की स्मृति अत्यंत तीव्र थी। हमारे धार्मिक ग्रंथ श्रुति, स्मृति और वेद के नाम से पुकारे जाते थे। ग्रंथ-शब्द का निर्माण तो बहुत ही थोड़े समय का है। श्रुति, स्मृति और वेद इससे पहले के हैं। श्रुति का अर्थ है जो सुना जाय, स्मृति का अर्थ है जो स्मरण किया जाय, और वेद का अर्थ है जो जाना जाय। पहले आजकल के-जैसे छापेखाने नहीं थे, और न पुस्तकें ही। पढ़ने का ढंग कुछ और ही था। विद्यार्थी गुरु के पास जाते थे, गुरु विद्यार्थियों के पास नहीं। गुरु उनकी परीक्षा लेकर उपयुक्त पात्र चुन लेते थे, और उन्हीं को केवल शिक्षा दी जाती थी। आजकल की तरह सभी को एक ही शिक्षा नहीं दी जाती थी। जो जिसका अधिकारी होता था, वह वही पाता था। ठोंक-पीटकर वैद्यराज नहीं बनाए जाते थे। साम्यवादी चाहे लाख चिल्लाते रहें, पर बालकों की प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न रहेंगी ही। सबको लेकर बी० ए०, एम्० ए० की चक्की में पीसने से लाभ के बदले हानि होने की आशंका है। अस्तु। पात्र चुन लेने के उपरांत गुरु उन्हें शिक्षा देते थे। विद्यार्थी उनकी बातों को ध्यान-पूर्वक सुनते थे। यह तो श्रवण हुआ। इसके उपरांत मनन और निदिध्यासन की क्रियाएँ होती थीं। पहले यह नहीं होता था कि प्रोफ़ेसर साहब अपना चर्खा चला रहे हैं, और विद्यार्थी हँसी-मज़ाक़ में लगे हुए हैं। आज तो धारणा यह है कि चलो भाई, कोए को टर्राने दो। परीक्षा का समय आवेगा, तो जे० एल्० बनर्जी और ए० एल्० बनर्जी के रहते कभी परीक्षा में असफलता हो सकती है? कदापि नहीं। पर भाई यह नहीं समझते कि "बिन गुरु होहि न ज्ञान", और समझने ही क्यों लगे? जब गुरुजी घंटे दो-घंटे उन्हीं बनर्जी और चटर्जी के गाने अपने मस्तिष्क-प्लेट में भरकर, अपना ग्रामोफ़ोन स्टेज पर लड़कों के सामने बजाने लगते हैं, तब वे कैसे समझ सकते हैं? लेकिन ज़रा यह भी तो सोचना चाहिए कि पुस्तक की विद्या, दूसरे के घर में स्त्री तथा मंत्री के बिना राजा निस्संदेह शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जब तक गुरु ग्रामोफ़ोन बने रहेंगे, और टके के लिये कोसों दौड़कर विद्यार्थियों के डेरे पर पढ़ाने आया करेंगे, तब तक वे जनता की ठोकरें खाते हुए आदर के स्वप्न ही देखते रहेंगे। स्मृति-शक्ति को सजीव रखने की आवश्यकता है।

स्मृति का स्थान

मनोवैज्ञानिकों में स्मृति के स्थान के संबंध में मतभेद है। शक्तिवादियों के मत में स्मृति मन की एक शक्ति है। मस्तिष्क में बहुत-से छोटे-छोटे कोष हैं। इन्हीं कोषों में स्मृति की शक्ति है। इनमें शुद्ध रुधिर पहुँचने से स्मृति अत्यंत तीव्र हो जाती है। जब यह रुधिर विषैला हो जाता है, तब स्मृति क्षीण पड़ जाती है। यही कारण है कि ब्रह्मचर्य-अवस्था में हमारी और आपकी स्मृति अत्यंत तीव्र रहती है। धीरे-धीरे, जैसे-जैसे ब्रह्मचर्य का ह्रास होता है, वैसे-वैसे हमारी स्मृति भी क्षीण होती जाती है। दूसरे मतवालों का कहना है कि हमारे संवितों का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर पड़ता है। हमारे मस्तिष्क पर कुछ ऐसे मार्ग बन जाते हैं कि ज़रा-सा अवसर पाकर हमारा मन उन्हीं मार्गों पर चलता है, और इसी क्रिया के फल-स्वरूप स्मृति उत्पन्न होती है। इस मत के अनुसार मस्तिष्क ग्रामोफ़ोन के रेकर्ड के समान है। जिस प्रकार प्लेट में गाने भरे जाते हैं, ठीक उसी प्रकार हमारे मस्तिष्क में विचारों की लकीरें पड़ जाती हैं। इन लकीरों पर ज़रा सुई चढ़ी कि फिर वे ही गाने सुनाई पड़े। तीसरे मत-वालों का कहना है कि विचारों का संस्कार हमारे मन पर पड़ता है, और हमारा मन ज़रा-सा भी अवसर पाकर उसी ओर झुकता है। ये मत क्रमशः 'मस्तिष्क-संस्कार' और 'मन-संस्कार' के नाम से पुकारे जा सकते हैं। चौथे मत-वालों का कहना है कि हमारी चेतना की अनेक मात्राएँ हैं। संसार में अचेतन का तो नाम ही नहीं। इस मत के अनुसार चेतना एक स्वच्छ झील के समान है। जो पानी अभी ऊपर है, वह नीचे आ जाता है, और जो नीचे है, वह ऊपर चला आता है। जो अभी पूर्ण चेतना में है, वही थोड़े समय में उपचेतना में चला जाता है। हमारी स्मृतियाँ उपचेतना में पड़ी रहती हैं, और अवसर पाकर उपचेतना ऊपर आ जाती है। पाँचवाँ मत यह है कि हमारे मस्तिष्क के दो भाग हैं। जिस प्रकार नाटक के

मात्र परदे के अंदर से सज-धजकर स्टेज पर आकर अभिनय दिखाते और फिर परदे के अंदर चले जाते हैं, उसी प्रकार हमारी स्मृतियाँ आती-जाती हैं। इन्हें क्रमशः 'उपचेतनावाद' और 'विस्मृतिवाद' कहते हैं। पूर्व-जन्म की स्मृति के विचार से उपचेतनावाद ही में सत्य है। यों तो हम लोग पूर्व-जन्म में विश्वास करते ही हैं; पर अब धीरे-धीरे पाश्चात्य दार्शनिकों का भी ध्यान इस ओर खिंचा है। आजकल कुछ ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण पाए जाते हैं, जिनके कारण लोगों को पूर्व-जन्म में विश्वास करना ही पड़ता है। उदाहरण के लिये एक-दो दृष्टांत यहाँ पर दिए जाते हैं। जिन दिनों मैं हिंदू-विश्वविद्यालय में था, एक बालक मास्टर बर्वे नाम का आया। उसकी आयु पाँच वर्ष के लगभग थी। पर संगीत में उसकी विलक्षण प्रगति थी। इतनी प्रगति क्या इस पाँच वर्ष के जीवन में प्राप्त हो सकती है? सभी को कहना पड़ा कि यह पूर्व-जन्म का संस्कार है। इसी प्रकार श्रीयुत बाबू श्यामसुंदरलाल, स्टेशन-मास्टर, (हलद्वानी, आर०के०आर०) ने अपनी लड़की की पुनर्जन्म-कथा लिखी है। आप सन् १९२२ में तीर्थ-यात्रा के लिये गोकुल गए थे। साथ में आपकी स्त्री और तीन वर्ष की लड़की हीरा भी थी। वे नंद-यशोदा का घर देखने के लिये गए। उनकी लड़की उनके पहाड़ी नौकर की गोद में थी। अचानक एक छोटा-सा घर देखकर हीरा नौकर की गोद से उतर गई, और उस मकान में घुस पड़ी। वहाँ जाकर एक वृद्धा से अपनी स्लेट, पट्टी, चाकी, आदि के विषय में पूछने लगी। वृद्धा फूट-फूटकर रोने लगी। नौकर ने मालकिन की आज्ञा के अनुसार हीरा को अपनी गोद में ले लिया, और वे सब यमुना की ओर चले। वृद्धा उनके पीछे-पीछे चली। सब नदी-तट पर पहुँच गए। हीरा ने कहा—"ऐ वृद्धा मा! क्या तुम फिर मुझे यहीं पर डुबा दोगी?" वृद्धा ने रोते हुए कहा—ठीक इसी स्थान पर लगभग तीन वर्ष हुए, उसका एक बारह वर्ष का लड़का डूबकर मर गया था, और यह लड़की ठीक उसी लड़के की तरह बोलती है।

"सौंदर्य" शीर्षक लेख में यह बतलाया गया था कि

स्मृति के उपयोग

ब्रह्म "सत्यं शिवं सुंदरम्" है, और हमारा लक्ष्य ब्रह्म ही होना है। यह भी बतलाया जा चुका है कि ब्रह्म कारण और संसार कार्य है। जो गुण ब्रह्म में हैं, वे हममें भी। केवल मात्रा का तारतम्य है। जिस प्रकार छोटी नदी बड़ी में और बड़ी नदी समुद्र में गिरती है, ठीक उसी प्रकार हमारी आत्मा गुरु से होती हुई ब्रह्म में विलीन हो जाती है। इसी को बौद्ध लोगों ने निर्वाण कहा है। जीवन के लक्ष्य तीन हैं—सत्य-प्राप्ति, सौंदर्य-प्राप्ति और मंगल-प्राप्ति। हमारे जितने काम हैं, सबके ये ही लक्ष्य हैं।

हमारे जीवन का दारोमदार इसी स्मृति पर है। हमारा ही क्यों, संसार के सारे जीव इसी पर चल रहे हैं। यदि यह हटा दी जाय, तो फिर बच ही क्या जाता है? मैं जिस बँगले में, डालटनगंज में, रहता हूँ, उसमें एक अनार का वृक्ष है। उसकी जड़ दालान में और शाखाएँ आँगन में फैली हुई हैं। पहले शाखा ऊपर की ओर बढ़ी; पर छत में जाकर टकरा गई। उस दिन से उसने उस ओर का बढ़ना छोड़ ही दिया। उसकी पहले की स्मृति नहीं मिटी थी। उद्भिदों में स्मृति सुनकर आप चौंक न उठें। डॉक्टर वसु ने तो प्रेम और क्रोध आदि उच्च भावों का पौदों में होना सिद्ध ही कर दिखलाया है। यदि आप एक कुत्ते को बुलाकर पीटें, तो वह फिर कभी पास न आवेगा। यह क्यों? स्मृति के कारण। बच्चे की उँगली जब एक बार जल जाती है, तो फिर वह आग की ओर नहीं जाता। हमारे यहाँ तो कहावत ही है—"दूध का जला छाँछ फूँक-फूँककर पीता है।"

कभी मैंने यह भी बतलाया था कि सत्य-प्राप्ति के तीन उपाय हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और प्रमाण। इन तीनों ही में स्मृति से काम लेना पड़ता है। पहले प्रत्यक्ष को लीजिए। आपके सामने गाय है। आप क्या देखते हैं? रूप, रंग, आकार इत्यादि। पर गाय क्यों कहते हैं? क्योंकि अम्मा ने ऐसा बतलाया था। यह तो स्मृति है। अब अनुमान लीजिए। मनुष्य मरणशील है। श्याम मनुष्य है, अतएव मरण-शील है। यहाँ मनुष्य मरणशील है, यह बात हम किस प्रकार जानते हैं? बहुत-से मनुष्यों को मरते देखा है, इसीलिये हमारा ऐसा अनुमान है। पर सभी एक समय तो नहीं मरते, अतएव स्मृति से यहाँ भी काम लेना पड़ता है। फिर देखते हैं कि प्रमाण में भी हमें स्मृति की सहायता लेनी पड़ती है। अतएव हम यह तो जान चुके कि स्मृति से सत्य-प्राप्ति में सहायता ली जाती है।

अब सौंदर्य-प्राप्ति का लक्ष्य लीजिए। देखना यह है कि इसमें इस स्मृति से कितना काम लेना पड़ता है। सौंदर्य-प्राप्ति के चित्रकार, शिल्पी, कवि, गायक आदि उपासक हैं। पहले चित्रकार ही को लीजिए। काग़ज़, रंग, ब्रश आदि सामग्री उसके हाथ में है। वह ब्रश चला रहा है। 'कल्पना'-शीर्षक लेख में बतलाया गया था कि चित्रकार को कल्पना से काम लेना पड़ता है। पर कल्पना तो स्मृति के आधार पर चलती है। इससे यह सिद्ध होता है कि चित्रकार को स्मृति से भी सहायता लेनी पड़ती है। जब तक उसे सुंदर-सुंदर मनोरम दृश्य स्मरण न होते रहेंगे, तब तक वह चतुर चित्रकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार चतुर शिल्पी, चतुर कवि और चतुर गायक अनुभव और स्मृति के लिये लगे रहते हैं; क्योंकि इन दोनों के अभाव में निपुणता आ ही नहीं सकती। इस प्रकार हम देखते हैं कि सौंदर्य-प्राप्ति में भी स्मृति से काम लेना पड़ता है।

मंगल-प्राप्ति के लिये भी स्मृति की विशेष आवश्यकता पड़ती है। कल्पना कीजिए, हम अपने देश के हित के काम करने जाते हैं। अब समस्या है कि देश-हित किस प्रकार किया जा सकता है। इसके लिये हमें अतीत का अनुभव देखना पड़ता है। यह अनुभव हमारा अपना हो सकता है, अथवा किसी अन्य व्यक्ति का। अस्तु, हमें देखना पड़ता है कि देश की किस अवस्था में कौन-से उपाय सफल होंगे; यह काम स्मृति का है। अतएव हम यह तो देख चुके कि मंगल-प्राप्ति में भी स्मृति से सहायता लेनी पड़ती है। इस प्रकार इसका काम जीवन के सभी अवसरों में पड़ता है।

स्मृति और विस्मृति

दिन-रात तथा सुख-दुःख की भाँति स्मृति और विस्मृति भी अन्योन्य पूरक हैं। ये दोनों ही सापेक्ष हैं। जिस प्रकार पिता की पहचान पुत्र अथवा पुत्री के बिना नहीं होती, उसी प्रकार स्मृति को विस्मृति के बिना नहीं समझ सकते। अब जानना यह है कि विस्मृति क्या है। जिस प्रकार किसी अतीत को याद रखना स्मृति है, उसी प्रकार किसी अतीत को भूल जाना विस्मृति। हमारे मस्तिष्क में रात-दिन अनेक अनुभव मँडलाते रहते हैं। हम यदि इन सबका एक ही बार स्मरण करना चाहें, तो हमारे मस्तिष्क पर असहनीय बोझ पड़ेगा, और वह हमारा साथ न दे सकेगा। उदाहरण के लिये एक वकील को ले लीजिए। यदि वह बेचारा सभी अभियोगों की बात याद रक्खे, तो उसे कोई बात ही न याद रहेगी। प्रत्युत वह विक्षिप्त-सा हो जायगा। उसे चाहिए कि जिस समय जिस स्मृति की आवश्यकता पड़े, उसी से काम ले। इसी प्रकार जीवन में पग-पग पर विस्मृति की आवश्यकता पड़ती है। एक की स्मृति का अर्थ ही है अन्य की विस्मृति। विस्मृति दो प्रकार की होती है—सचेतन विस्मृति और अचेतन विस्मृति। हमारा मस्तिष्क कभी-कभी ऐसा धोखा देता है कि हम जिसे याद रखना चाहते हैं, उसी को भूल जाते हैं, और जिसे भूल जाना चाहते हैं, उसकी याद बनी रहती है। इस प्रकार "अंधा गुरु-बहरा चेला" की कहावत चरितार्थ होती है। हमें आज्ञाकारी मस्तिष्क की आवश्यकता है। यह स्मृति-शक्ति सब मनुष्यों में समान नहीं पाई जाती। तो क्या ब्रह्म सम-दर्शी नहीं है? क्या उसमें भी हमारे और आपके समान पक्षपात भरा हुआ है? यदि नहीं, तो ऐसा अन्याय क्यों? किसी की स्मृति तीव्र तो किसी की मंद क्यों है? किंतु यह ब्रह्म का दोष नहीं है। यह हमारे और आपके कर्म का दोष है। हमारा वर्तमान जन्म पूर्व-जन्म के कर्म के अनुसार हुआ है। हम अपने संस्कारों के स्वयं उत्तरदायी हैं।

"कर्म-प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करहि, सो तस फल चाखा।"

फिर भी जो कुछ शक्तियाँ हम अपने साथ लाते हैं, उनका भी तो उपयोग नहीं करते। बिना अभ्यास के हमारी शक्तियाँ क्षीण होती जाती हैं; अंत में विलुप्त हो जाती हैं। जिस प्रकार शरीर के विकास के लिये शारीरिक व्यायाम की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार मानसिक विकास के लिये मानसिक व्यायाम—योग—की आवश्यकता है। ध्यान के लिये ध्यान के व्यायाम, स्मृति के लिये स्मृति के व्यायाम—इसी प्रकार और भी व्यायाम जानिए। हमारे यहाँ स्मृति के विकास के लिये अनेक उपाय थे। बचपन में हमारे बालक सारस्वत और अमरकोष रट डालते थे। आजकल शिक्षा के हिमायती इस प्रथा को भले ही निंदनीय और निकृष्ट समझें; पर यह स्मृति के लिये अत्यंत आवश्यक है। गणित का विद्यार्थी यदि पहाड़ा, सवैया, ड्योढ़ा, ढैया याद न रक्खे, तो गणित के प्रश्न हल करने में उसे कितनी अधिक कठिनाई पड़ेगी? बाल्यकाल में मेधा तीव्र रहती है। यदि वह उस समय काम में न लाई जाय, तो उसमें समय पाकर ज़ंग लग जाता, और

वह कौड़ी-काम को न रहेगी। मनोवैज्ञानिक जेम्स साहब का कथन है कि २५ वर्ष की अवस्था के उपरांत हम कोई नया अभ्यास नहीं डाल सकते। अतएव चाहिए कि अच्छे-अच्छे अभ्यास बचपन ही से डाले जायँ, जिसमें आगे चलकर हमें पछताना न पड़े।

स्मृति और काल

कह चुके हैं कि स्मृति अतीत की होती है; पर अतीत का क्षेत्र कुछ नियत नहीं है। कल को भी हम अतीत कह सकते हैं, और इसी प्रकार पिछला साल, उसके और पहले का साल, गत शताब्दी, गत युग और गत कल्प भी अतीत ही के अंतर्गत है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की प्रकृति भिन्न-भिन्न है, अतएव उनकी स्मृति में भी भेद पड़ जाते हैं। कोई कल की भी बात नहीं याद रख सकते, और कोई वर्षों की बात याद रखते हैं। यह सब अभ्यास पर निर्भर है। कुछ मनुष्य तो योग-बल से अपनी स्मृतियों का इतना विकास कर लेते हैं कि पूर्व-जन्म की भी सब बातें बतला देते हैं।

स्मृति को प्रौढ़ करने के उपाय

जब स्मृति की इतनी भारी आवश्यकता है, तो इसको प्रौढ़ करने के उपाय ढूँढ़ निकालना चाहिए। किंतु पहले हम यह जान लें कि प्रत्यक्ष के उपादान क्या हैं? फूल देखने को ही ले लीजिए। यहाँ फूल, आँख, मस्तिष्क और मन अंग हैं। अब इन्हीं के सहारे हम स्मृति को प्रौढ़ करने के उपाय ढूँढ़कर निकाल लेंगे। देखने से मालूम पड़ेगा कि दो ही प्रधान उपाय हो सकते हैं—एक बाह्य और दूसरा आंतरिक। फिर भेद करने से शारीरिक, मस्तिष्क-संबंधी, मानसिक और बाह्य। पहले बतला चुके हैं कि शरीर और मन में अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। यदि हम रोगी हैं, तो पंद्रह मिनट पढ़ने से हमारा माथा चकराने लगता है। यदि हमारे मन में चिंता है, तो हमारा शरीर घुने हुए काठ के समान मालूम होता है, और हम दिन-दिन दुर्बल होते जाते हैं। यहाँ तक देखा गया है कि चिंता के कारण कितने ही व्यक्तियों की अकाल-मृत्यु तक हो गई है। अतएव सबसे पहले हमें अपने शरीर की ओर देखना चाहिए; क्योंकि "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"। अब प्रश्न यह है कि शरीर किस भाँति नीरोग रह सकता है? इसके उत्तर में हमारे आचार्यों का कथन है कि शरीर के लिये वायु, भोजन, जल, तेज और आकाश की आवश्यकता पड़ती है। हमें यह देखना चाहिए कि ये पाँचों हमें शुद्ध मिलें, और दूषित पदार्थों से हम सदा अलग रहें। साथ ही हमारे शरीर का संगठन इस प्रकार का है कि हमें व्यायाम की भी आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त परिमाण का भी सदा ध्यान रहना चाहिए। नियत समय और नियत परिमाण में सभी बातें अच्छी होती हैं। "अति सर्वत्र वर्जयेत्", ऐसा न हो कि किसी इंद्रिय का अतिप्रयोग, न्यून प्रयोग अथवा दुष्प्रयोग हो। हमें ब्रह्मचर्य की बड़ी भारी आवश्यकता है। मिताहारी होना ही ब्रह्मचारी होना है। इस प्रकार हमारा शरीर नीरोग रहेगा, और उसके साथ-ही-साथ मस्तिष्क भी बलवान् बना रहेगा। पर साथ ही अभ्यास की भी आवश्यकता है। हमारा मस्तिष्क चाहे लाख बलवान् हो; पर यदि हम उससे काम न लें, तो वह कौड़ी-काम का भी न रहेगा। यही कारण है कि बहुत-से बलवान् मूर्ख रहते हैं, जिन्हें देखकर लोग भ्रम में पड़ जाते हैं कि शरीर और मन में कोई संबंध नहीं है। अब हमारा शरीर भी नीरोग है, मस्तिष्क भी अच्छा है, पर यदि हमारी इंद्रियों को शिक्षा नहीं दी गई है, यदि वे अभ्यास से मँज नहीं गई हैं, तो कुछ भी हमारा काम नहीं चलेगा। इंद्रियों के अभ्यास के लिये अनेक उपाय निकाले गए हैं। डॉक्टर मौंटिसरी, फ्रोबेल, बेडन पावल आदि आधुनिक शिक्षातत्त्वज्ञों ने इस विषय में बहुत कुछ किया है। बेडन पावल ने अपने स्काउटिंग में एक खेल निकाला है, जिसका नाम KinkGame अथवा Scouts'eye है। खेलनेवालों को कुछ मिनटों के लिये टेबुल पर बहुत-सी चीज़ें दिखलाई जाती हैं। फिर चीज़ें रूमाल से छिपा दी जाती हैं, और खेलनेवालों को उनके नाम लिखने पड़ते हैं। इससे आँखों का अच्छा अभ्यास होता है। डॉक्टर मौंटिसरी ने भी इसी प्रकार के खेल निकाले हैं। अनेक धातुओं की घंटियाँ बनाई और वे सब बजाई जाती हैं। लड़के शब्द ही सुनकर बिना देखे बतलाते हैं कि अमुक धातु की घंटी बजी। इससे कानों का अच्छा अभ्यास होता है। इसी प्रकार और-और इंद्रियों के भी अभ्यास के लिये खेल बनाए गए हैं।

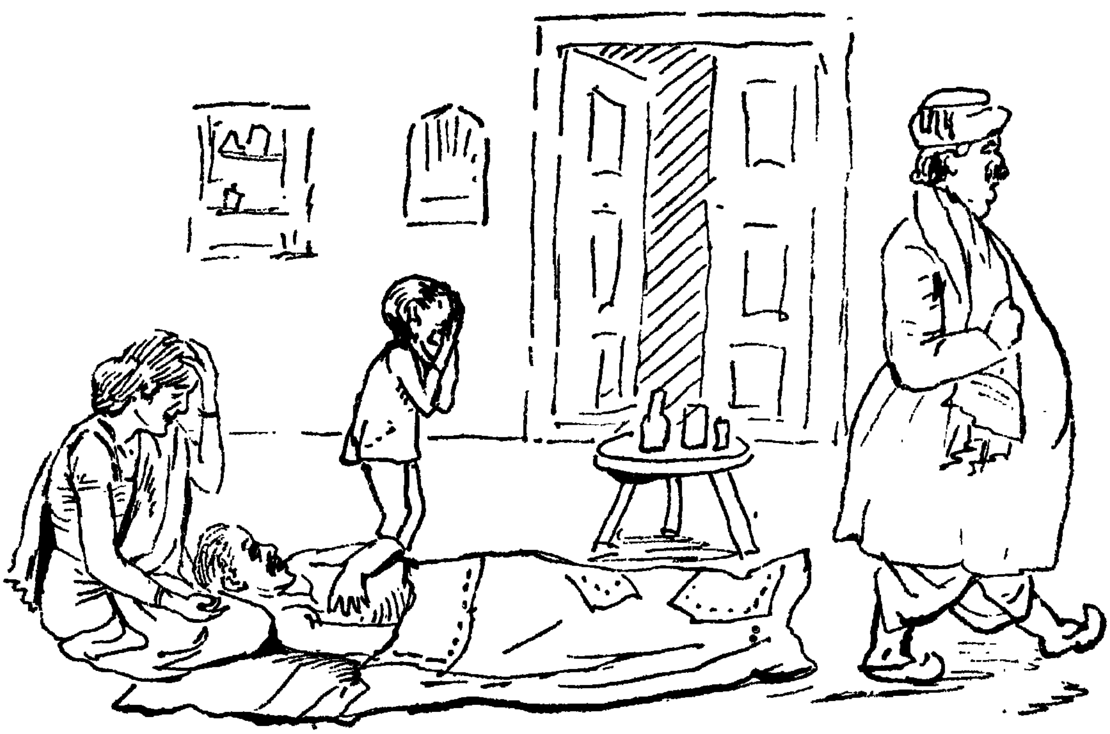
अब मानसिक उपाय लीजिए। स्मृति के लिये सबसे अधिक आवश्यकता यह है कि हम ध्यान-पूर्वक प्रत्यक्ष का अनुभव करें। और, ध्यान के लिये मनोरंजन की भारी आवश्यकता है। यदि हमारा मनोरंजन नहीं होता, तो हम ध्यान नहीं दे सकते। अब जितना ही हमसे

अधिक संबंध रहेगा, उतना ही हमारे लिये अनुभव मनोरंजक होगा। समस्या को हमें अपनाने की आवश्यकता है। कारण, जब तक समस्या हमारी अपनी न बन लेगी, तब तक हम उसे स्मरण नहीं रख सकते। इसी कारण स्टीवेंसन आदि समस्यावाद (Project method) के माननेवालों का कहना है कि शिक्षा का जीवन से घनिष्ठ संबंध होना चाहिए। स्कूल और संसार में आकाश-पाताल का अंतर न रहना चाहिए।

अब अंतिम उपाय बाह्य को लेते हैं। पहली बात तो यह है कि प्रत्यक्ष अत्यंत प्रौढ़ होना चाहिए। इसके लिये प्रत्यक्ष के पदार्थ की परिस्थिति इस प्रकार की होनी चाहिए कि सबमें प्रत्यक्ष ही प्रमुख रहे। साथ-ही-साथ साहचर्य के नियमों पर भी ध्यान रहना चाहिए। साहचर्य के नियमों से एक पदार्थ दूसरे की स्मृति को सजग कर देता है। इन साहचर्य के नियमों की चर्चा अन्य समय की जायगी। आवृत्ति से भी स्मृति को सहायता पहुँचती है। इसी सत्य पर विज्ञापन दाता काम करते हैं। आवृत्ति से पदार्थों में ज़ोर आ जाता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—"रसरी आवत जात ते सिल पर परत निशान।" फिर अनेक इंद्रियों से जब प्रत्यक्ष होता है, तब स्मृति तीव्र हो जाती है। शिक्षकों को चाहिए कि पाठ समाप्त होने पर बोर्ड पर कठिन शब्दों को बोलते और लिखते जायँ, और विद्यार्थियों को भी बोल-बोलकर लिखने का आदेश दें। इसमें कान, आँख, हाथ, मुँह आदि इंद्रियों का एकसाथ काम पड़ता है, और इस कारण यह अधिक दिनों याद रहेगा। यहाँ पर निरर्थक वाक्य-खंडों का दुहराना—जैसे, 'अकबर-अकबर-अकबर का अकबर का जन्म अकबर का जन्म"—निरर्थक है, यह बतला देना उचित है। अच्छा तो यह है कि पूरा पाठ पढ़ा जाय, किताब बंद कर दी जाय, फिर देखा जाय कि क्या याद है, क्या नहीं। एक दिन एक पाठ को बीस बार पढ़ने की अपेक्षा एक मास में बीस बार पढ़ना अच्छा है। बीच-बीच में मस्तिष्क को आराम देना भी आवश्यक है; क्योंकि आराम के समय में भी मस्तिष्क स्वतंत्र होकर काम करता है, और चेतना न सही, उपचेतना तो काम देती ही है।

"बाबा"

वैद्यराज





[स्वरकार और शब्दकार—राना खलकसिंह, खनियाधाना-राज्य]

सोहनी—तीन ताल

हे हरि, अब न विलंब करो।
भारत-नौका भँवर-पड़ी है,
उसका ध्यान धरो।
क्रूर, कुटिल केवट मतवारे,
लगने देते नहीं किनारे;
कर्णधार बन शीघ्र हमारे,
सारे दुःख हरो।

स्थायी

२				०				३				×			
ता	धीं	धीं	धा	धा	तीं	तीं	ता	ता	धीं	धीं	ता	ता	धीं	धीं	धा
नि	सां	नि	ध	म	ग	ग	ग	म	ध	नि	सां	रीं	—	—	सां
हे	—	ह	रि	अ	ब	न	वि	लं	—	ब	क	रो	—	—	—
नि	सां	नि	ध	गं	—	गं	गं	गं	—	मं	मं	गं	रिं	रिं	रिं
हे	—	ह	रि	भा	—	र	त	नौ	—	का	—	भँ	व	र	प
रिं	रिं	सां	सां	नी	ध	म	ग	म	ध	नि	सां	रिं	—	—	सां
ड़ी	—	है	—	उ	स	का	—	ध्या	—	न	ध	रो	—	—	—

अंतरा

नि	सां	नि	ध	ग	—	ग	ग	म	ध	नि	सां	रिं	गिं	सां	रिं
हे	—	ह	रि	क्रू	—	र	कु	टि	ल	के	—	व	ट	म	त
नि	नि	सां	सां	नि	नि	नि	—	नि	नि	ध	ध	म	ध	नि	सां
वा	—	रे	—	ल	ग	ने	—	दे	—	ते	—	न	हीं	—	कि

ध नि ध —	मं मं ग ग	मं मं ध ध	मं ग मं ग
मा — रे —	क — णं धा	— र थ न	शी — ग्र ह
रि — सा —	ग — ग —	मं ध नि सां	रीं — — सां
मां — रे —	सा — रे —	दुः — ख ह	री — — —

स्वर-लिपि के संकेत

(स्वर)

१. जिन स्वरों के नीचे बिंदु हो, वे मंद्र सप्तक के, जिनमें कोई बिंदु न हो, वे मध्य-सप्तक के, तथा जिनके शीर्ष में बिंदु हो, वे तार-सप्तक के समझे जायँ। जैसे—सा, सा, सां।

२. जिन स्वरों के नीचे लकीर हो, उन्हें कोमल समझिए। जैसे—रे, गा, धा, नि। जिनमें कोई चिह्न न हो, वे तीव्र हैं। जैसे—रे, गा धा, नि।

३. मध्यम-कोमल का चिह्न 'मा' और मध्यम-तीव्र का चिह्न 'मां' है।

४. ⌒ यह चिह्न किस स्वर से किस स्वर-पर्यंत मींड है, इसका प्रदर्शक है।

(ताल)

१. सम का चिह्न × है, ताल के लिये अंक समझिए, और ख़ाली का द्योतक ० है।

२. ‿ इस चिह्न में जितने स्वर रहें, वे एक मात्रा में गाए या बजाए जायँगे। जैसे—सारे।

३.—यह दीर्घ मात्रा का चिह्न है। जिस स्वर या वर्ण के आगे यह चिह्न हो, उसे एक मात्रा-काल तक अधिक गाइए या बजाइए।



१. जात-पाँत-तोड़क मंडल, लाहौर का वार्षिक अधिवेशन

जात-पाँत-तोड़क मंडल का सालाना जलसा २७ नवंबर, सन् १९२६ ई०, शनिवार को गुरुदत्त-भवन के अहाते में १२ बजे से हुआ। कानफ्रेंस के प्रधान का पद कांगड़ी-गुरुकुल के आचार्य प्रोफ़ेसर रामदेवजी ने सुशोभित किया। सम्मेलन को आपसे बढ़कर और दूसरा योग्य प्रधान मिलना कठिन था। आपने अपने लड़के और लड़की की सगाई ज़ात से बाहर करके ज़ात-पाँत के बंधन को क्रियात्मक रूप से तोड़ डाला है। अपने भाषण में आपने भारतीय इतिहास से कई उदाहरण देकर ज़ात-पाँत की हानियाँ दिखलाईं। आपने कहा—

"महाभारत में कर्ण-जैसे महावीर को कौरवों के साथ इसीलिये मिलना पड़ा कि उसे शूद्र का पुत्र कहकर उसका अपमान किया गया था। कर्ण ही एक ऐसा वीर था, जो पराक्रमी पांडवों का सामना कर सकता था। और, वही लड़ाई को इतने दिन तक जारी रख सका।

"दूसरा उदाहरण बाबर का है। बाबर ने जब भारत पर आक्रमण किया, तो राना साँगा ने उसे १६ बार पराजित किया। बाबर बहुत हतोत्साह हो गया, और उसने मदिरा-पान करना तथा संगीतादि का सुनना एकदम छोड़ दिया। सत्रहवीं बार जब उसने राना साँगा पर चढ़ाई की, तो दुर्भाग्य से राना की सेना में एक बहुत बड़ा झगड़ा खड़ा हो गया। राना ने अपनी सेना के एक दल को सबसे पहले आक्रमण करने की आज्ञा दी; परंतु एक दूसरे दल ने उस पर आपत्ति करते हुए कहा कि हमारे रहते हुए नीच ज़ात के लोगों को युद्ध आरंभ करने की आज्ञा कभी नहीं दी जा सकती। इसलिये उच्च जाति के राजपूतों का एक दूसरा दल राना को छोड़कर बाबर से जा मिला, और राना को हार खानी पड़ी।

"तीसरा उदाहरण अकबर का है। वह वैदिक धर्म को ग्रहण करना चाहता था। परंतु गऊ और गधे की मिसाल देकर उसको ऐसा करने से रोक दिया गया, और वह ज़ात-पाँत के बंधनों के कारण ही हिंदू न बन सका। राजपूतों ने अपनी लड़कियाँ तो ख़ुशी-ख़ुशी मुसलमानों को दे दीं, किंतु उनकी लड़कियाँ लेने से इनकार कर दिया, और इस प्रकार देश तथा धर्म के शत्रुओं की संख्या बढ़ाने के अपराधी हुए।

"यदि मुझे आर्य-समाज का शासक (डिक्टेटर) बना दिया जाय, तो मेरा सबसे पहला यह काम होगा कि ज़ात-पाँत की मुर्दा लाश से चिमटे हुए नक़ली आर्यों को कान पकड़कर बाहर निकाल दूँ।"

तत्पश्चात् ब्रह्म-समाज के भाई धुर्धारचंद्र बनर्जी बोलने के लिये खड़े हुए। आपने बड़ी ओजस्विनी भाषा में अपने दक्षिण के अनुभवों का वर्णन किया। ट्रावनकोर

के ज़मूरन का दृष्टांत देते हुए आपने कहा कि ज़मूरन ने एक शूद्रा-स्त्री से विवाह कर रक्खा है। उसके उस स्त्री से उत्पन्न एक सुशिक्षित लड़का भी है। वह लड़का ज़मूरन के सामने इसलिये नहीं आ सकता कि वह शूद्रा माता के गर्भ से है।

आपने और दो सगे भाइयों का हाल सुनाया, जिनमें एक हिंदू और दूसरा ईसाई है। ईसाई को तो किसी भी सड़क पर आने की मनाई नहीं; किंतु बेचारा हिंदू उन सड़कों पर अपनी छाया भी नहीं डाल सकता, जिन पर वर्णधारी लोग चलते-फिरते हैं।

इसके बाद प्रोफ़ेसर धर्मेंद्रनाथ शास्त्री एम्० ए० ने आकर नवयुवकों और युवतियों से, अपने माता-पिता की धमकियों की कुछ भी परवा न करते हुए, जाति से बाहर विवाह करने का अनुरोध किया। आपने कहा कि आर्य-समाज के दोनों दलों को कोई दूसरी कानफ़्रेंस नहीं, केवल ज़ात-पाँत-तोड़क मंडल ही मिला सकता है। इन शब्दों के साथ नीचे लिखा प्रस्ताव पेश किया—

प्रस्ताव नं० १—यह सम्मेलन गुरुकुलों के स्नातक और स्नातिकाओं से आशा करता है, और कॉलेजों में पढ़नेवाले छात्रों और छात्रियों से अनुरोध करता है कि वे हिंदू-समाज को ज़ात-पाँत के बंधनों से मुक्त करने के पवित्र उद्देश्य से ज़ात-पाँत को तोड़कर विवाह करने की प्रतिज्ञा करें।

इसका समर्थन श्रीमती विद्यावती शारदा ने और अनु-मोदन प्रोफ़ेसर पंडित धर्मवीर शास्त्री ने किया। प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया गया।

दूसरा प्रस्ताव भाई सुधीरचंद्र बनर्जी ने उपस्थित किया—

प्रस्ताव नं० २—ज़ात-पाँत के हानिकारक बंधनों को तोड़ना हम सबका साझे का काम है। इसलिये यह सम्मेलन ब्रह्म-समाज, सिक्ख, देव-समाजी और जैन आदि ज़ात-पाँत के न माननेवाले हिंदुओं से अनुरोध करता है कि वे मंडल को उसके प्रचार-कार्य में सहायता दें।

जालंधर-कन्या-महाविद्यालय की कुमारी रामप्यारी के समर्थन से यह प्रस्ताव पास हुआ।

प्रस्ताव नं० ३—इस सम्मेलन की दृष्टि में आर्य-समाज ने अब तक जो कुछ किया है, वह न तो पर्याप्त ही है, और न संतोष-जनक ही। ज़ात-पाँत के रहते आर्य-समाज कभी सार्वभौम नहीं बन सकता। अतः यह सम्मेलन आर्य-समाज के समासदों को परामर्श देता है कि वे केवल उन्हीं सज्जनों को पदाधिकारी बनाया करें, जिन्होंने स्वयं ज़ात-पाँत को तोड़ रक्खा हो, या जो कम-से-कम ज़ात-पाँत तोड़ने के समर्थक हों।

मंडल के महोपदेशक पं० भूमानंदजी द्वारा उपस्थित किया गया। यह प्रस्ताव काठियावाड़ के डॉक्टर विश्वमित्र के अनुमोदन करने पर स्वीकृत हुआ।

संतराम

× × ×

२. निहोरा

आँखिन मैं मेघमाला फाटि धौं कहाँ तें परी,
बुद्धि हू अनाथिनी-सी आज भरमानी जाय;
हिय मैं असांति उतपात है मचाय रही,
सांति साथ छोड़ि कहूँ भागिकै लुकानी जाय।
सुख की सरित मेरी बरद! सुखानी जाय,
ज्ञान की दुकान मेरे देखत बिकानी जाय;
करुना-जलद बरसाओ, हरसाओ हरि,
आसा-लता मेरी आज नाथ! मुरझानी जाय।
और मुँह बाए अठिलात लीलि लेवे काज,
देखि-देखि ताहि मेरो प्रान अकुलाइ जाय;
तरल तरंग-माल भूधर की अनुहार,
नाव ढिग आय, ताहि अतिहि हिगाइ जाय।
घुमड़ि-घुमड़ि घनघोर हू गरजि रहे,
दामिनी भयावनी हू आवनो लखाइ जाय;
तेरो ही भरोसो, अब तेरी ही कृपा की आस,
तनिक-सो नाव मोरी नाथ, न बिलाइ जाय।

भूपनारायण दीक्षित

× × ×

३. महामहोपाध्याय पं० रघुनंदन त्रिपाठी

काशी और पटने के बीच 'शाहाबाद' नाम का एक ज़िला है, जिसका दूसरा नाम 'आरा' है। यह आरा पटने से सोलह कोस पश्चिम है। आरे से पाँच कोस पश्चिम 'जगदीशपुर' नाम का एक छोटा-सा क़स्बा है। इस क़स्बे के स्वामी थे बिहार के क्षत्रिय कुल-तिलक स्वर्गीय श्रीमान् बाबू कुँअरसिंहजी, जिनकी वीरता समस्त भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। जगदीशपुर से एक कोस दक्षिण की ओर दिलीपपुर नाम का एक गाँव है।

वहाँ सरयूपारीण ब्राह्मण-कुल-भूषण श्रीरामीवराम त्रिपाठी नाम के एक प्रसिद्ध विद्वान् रहते थे। उन्हीं के प्रथम

पुत्र श्रीरघुनंदन त्रिपाठी हैं। इन्होंने बाल्यकाल में अपने पूज्य पिताजी से व्याकरण, काव्य, कोष, अलंकार आदि विषय पढ़े। आपकी कुशाग्रबुद्धि विद्वानों को चमत्कृत करनेवाली थी। थोड़ी ही अवस्था में इन्होंने विशेष विद्योपार्जन कर लिया।



महामहोपाध्याय पं० रघुनंदन त्रिपाठी

कुछ दिनों के बाद इन्होंने भोजपुर-महाराज के महामान्य स्वर्गीय श्रीदुर्गादत्त परमहंसजी तथा टिकारी-राज्य के राजगुरु शाकद्वीपीय, विप्र-कुल-भूषण, स्वर्गीय श्रीविश्वेश्वरदत्तजी से व्याकरण, न्याय, सांख्य, वेदांत आदि विषय पढ़े। फिर काशी में आकर गवर्नमेंट संस्कृत-कॉलेज में प्रवेश किया। वहाँ महामहोपाध्याय पं० गंगाधर शास्त्री सी० आई० ई० से साहित्य, वैयाकरण-केसरी महामहोपाध्याय पं० शिवकुमारजी शास्त्री से व्याकरण, महामहोपाध्याय पं० कैलासचंद्र शिरोमणि भट्टाचार्य से न्याय, सांख्य, योग, वेदांत पढ़ा, और पूर्वोक्त विषयों में परीक्षा दी, तथा साहित्याचार्य, व्याकरणोपाध्याय तथा सांख्य-योगोपाध्याय की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

इसके बाद आप भोजपुराधीश्वर महाराज की सभा में गए। वहाँ इन्होंने अपनी विद्या-बुद्धि के चमत्कार से महाराज तथा सभासदों को चमत्कृत किया। महाराज ने इनको सर्वोत्तम बिदाई दी। वहाँ आपने कविता का चमत्कार दिखलाया, जिससे प्रसन्न होकर स्वर्गीय महाराज सर राधाप्रसादसिंह बहादुर के० सी० आई० ई० ने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की पुस्तक, दो पीतांबर और दो अशर्फ़ियाँ देकर इनका सत्कार किया।

सन् १८८८ ई० में बिहार के डाइरेक्टर ने आपको पूर्निया-ज़िला स्कूल का हेड पंडित बनाया। इसके बाद क्रमशः दुमका, मुंगेर, आरा, छपरा, पटना आदि ज़िलों में इनकी बदली हुई। अंत में आप गया-ज़िला स्कूल के हेड पंडित बनाए गए। यहीं से आपने पेंशन भी ली। ३२ वर्षों तक आपने गवर्नमेंट स्कूलों में शिक्षा का कार्य बड़ी योग्यता के साथ किया, और उनकी दिनों-दिन उन्नति ही होती गई। अंत में आपको गवर्नमेंट ने बिहार के सर्वप्रधान पटना-कॉलेज में संस्कृत-प्रोफ़ेसर का पद देना चाहा; किंतु आपने वृद्धता के कारण अस्वीकार कर दिया।

आपसे सभी अँगरेज़ कर्मचारी लार्ड, कमिश्नर आदि संतुष्ट रहते थे। १९१३ ई० में आपको बड़े लाट की ओर से 'महामहोपाध्याय' की उपाधि मिली। १९१४ ई० में बिहार-पंडित-सभा से 'विद्या-सागर' की और उसके बाद 'भारतधर्म-महामंडल' से 'विद्यानिधि' की उपाधि मिली।

आपका आदर सभी समाजों के लोग करते हैं। आपके हृदय में भेद-भाव का लेश-मात्र नहीं है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि आप एकबार सरयूपारीण ब्राह्मण होकर भी शाकद्वीपीय ब्राह्मण-महासभा के सभापति बनाए गए। फिर सरयूपारीण ब्राह्मण-महासभा के सभापति बनाए गए। इसमें आश्चर्य की बात नहीं।

आप 'बिहार-संस्कृत-समाज' के प्रधान मंत्री और 'बिहारोत्कल-संस्कृत-कौंसिल'-नामक संस्कृत-परीक्षा-सभा के प्रधान सभ्य हैं। आप स्कूल एक्ज़ामिनेशन बोर्ड, 'बिहार-संस्कृत-संजीवन-समाज', बिहारोत्कल-कौंसिल, 'बिहार पंडित-सभा' आदि संस्थाओं के व्याकरण, सांख्य, योग, वेदांत, काव्य आदि विषयों के परीक्षक रहते हैं। आपने कई वर्षों तक पटना-युनिवर्सिटी में भी परीक्षक का कार्य बड़ी योग्यता के साथ किया है। आप ही ने छपरे में

'बाल-विद्यावर्धिनी-सभा' तथा मुंगेर में सनातनधर्म-सभा की स्थापना की थी।

आपका आचरण, पवित्रता, सौजन्य, सत्यता, पक्षपात-शून्यता आदि उत्तम गुण अनुकरण करने योग्य हैं। आजकल आप अपनी जन्मभूमि दिल्लीपपुर में ही रहते हैं।

यद्यपि आप संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् हैं, तथापि हिंदी-भाषा के भी अच्छे कवि और हितैषी हैं। आप ही सरीखे हिंदी-भक्तों से हिंदी की भलाई होने की आशा है। आपने धर्मचिंतामणि आदि अनेक ग्रंथों की रचना की है। आपके प्रथम पुत्र पंडित देवदत्त त्रिपाठी पटना-कॉलेज के संस्कृत-प्रोफ़ेसर हैं। पिता के सदृश आप भी बड़े ही मिलनसार एवं परोपकारी हैं।

अक्षयवट मिश्र

× × ×

४. तंत्र-चर्चा

तांत्रिक उपासना-विधान के अनुसार मनुष्य के मानसिक भाव तीन प्रकार के होते हैं—(१) पशु भाव अर्थात् पशु-वृत्ति, (२) वीर-भाव अर्थात् वीरोचित मन की चचलता, और (३) दैव-भाव अर्थात् दैव-तुल्य आकांक्षाएँ—

वामकेश्वर तंत्र में लिखा है—

''जन्ममात्रं पशुभावं वर्षषोडशकावधि ;
ततश्च वीरभावन्तु यावत्पञ्चाशतो भवेत् ।
द्वितीयांशे वीरभावस्तृतीयो दिव्यभावकः ;
एवं भावत्रयेणैव भवेत्यं हि भवेत् प्रियं ।
एष ज्ञानकुलाचारो यत्र देवमयो भवेत् ;
भावो हि मानसो धर्मो मनसैव सदाभ्यसेत् ।

अर्थात् जन्म-काल से सोलह वर्ष की अवस्था तक मनुष्य का भाव पशुवत् रहता है; सत्रहवें वर्ष से पचास वर्ष पर्यंत मनुष्य में वीर-भाव विद्यमान रहता है; इसके उपरांत दिव्य भाव की प्रवृत्ति होती है। अंत में ये तीनों भाव एक हो जाते हैं। यही कुलाचार है। इसके प्राप्त होते ही मनुष्य देव-तुल्य हो जाता है। मन की ये वृत्तियाँ हैं, और मन के साधनों से ही प्राप्त हो सकती हैं। मन की सबसे उत्तम स्थिति जब सर्वोच्च स्थान प्राप्त करती है, जब साधनों द्वारा दिव्य प्रवृत्ति प्राप्त हो जाती है—जिससे साधक स्त्री हो अथवा पुरुष, देव-तुल्य स्वभाव प्राप्त कर लेता है, और इस अवस्था में पहुँचकर सब व्यवहार एकचित्त समभाव से, मित्र-शत्रु, सबको समान जानकर, सुख-दुःख, मानापमान से अविचल होकर करने-योग्य हो जाता है—तब ऐसे सिद्ध पुरुष से कदापि किसी प्रकार के हिंसात्मक कर्म संभव नहीं होते।

आजकल शब्दों के गूढ़ार्थ के स्पष्टीकरण में, विशेषतः तांत्रिक ग्रंथ और उनमें व्यवहृत शब्दों के अर्थ में, बहुधा अनर्थ हुआ करता है। उदाहरण-स्वरूप ''पंच मकार'' की आजकल ख़ासी छीछालेदर है। जनसाधारण और ऐसे अनेक लोग भी, जो अपने को तांत्रिक, शाक्त अथवा कौलिक कहा करते हैं, इस पवित्र शब्द के अर्थ को तोड़-मरोड़कर, अपने प्रथम भाव के प्रभाव से प्रभावित होकर, अश्लील अर्थ लगाकर, अपनी पाशविक प्रवृत्ति का परिचय दिया करते हैं, जिसे सुनकर अनेक महानुभाव, उनके 'अर्थ में अनर्थ' करने के कारण, ''पंच मकार'' को घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

उसके अर्थ का अनर्थ करने का कारण स्पष्ट है। प्रथम तो तंत्र-धर्म से अनभिज्ञ मनुष्य द्वेष-भाव से अनुचित आक्षेप करते हैं; दूसरे मिथ्याभिमानी साधक बननेवालों की मूर्खता के कारण वैसा होता है। भाषा-ज्ञान के प्रचुर मात्रा में अभाव से और विशेषकर सद्गुरुओं से दीक्षा न लेने के कारण अज्ञानांधकार से प्रेरित होकर शाक्तों में कुछ ऐसे-ऐसे घृणित, पाशविक, अश्लील विधानों का प्रचार हो गया है कि वास्तव में उन कर्मों को देखकर सज्जन-मात्र को शाक्त धर्म के अनुयायियों से घृणा तथा अश्रद्धा हो गई है। जिस शब्द की प्रशंसा में पुरातन सर्वमान्य पूज्य धर्म-ग्रंथों में कहा गया है कि ''मकारपञ्चकं देवि देवानामपि दुर्लभम्'' अर्थात् देवी-देवताओं को भी ''पंच मकार'' प्राप्त करना दुर्लभ है। उसका ऐसा छीछालेदर अवांछनीय है। वास्तव में ''पंच मकार'' याज्ञिक विधानों के सांकेतिक शब्दों के समूह को कहते हैं, जिसके प्रमाण में ''आगमसार'' के कतिपय श्लोक यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

१ मद्य—सोमधारा क्षरेद् यातु ब्रह्मरन्ध्राद्वरानने ;
पीत्वानन्दमयो तां यः स एव मद्यसाधकः ।

अर्थात् जो मनुष्य उस अमृत-धारा को पान करता है, जो मस्तिष्क के सूक्ष्म भागों से प्रवाहित होती है, उसका हृदय अकथनीय आनंद से परिपूर्ण हो जाता है। इसी धारा की वस्तु को 'मद्य' कहते हैं।

२ मांस—माशब्दाद्रसना ज्ञेया तदंशान् रसना प्रिये ;
सदा यो भक्षयेद्देवि स एव मांससाधकः ।

मा-शब्द का अर्थ रसना अथवा जिह्वा है, जिससे शब्द का उच्चारण होता है। जो साधक इसका नित्य भक्षण करते अर्थात् अपने वाक्यों को अपने वश में किए रहते हैं, वे ही यथार्थ में मांस के पूजक कहे जाने के योग्य हैं। और, ऐसा पुरुष योगाभ्यासी के अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं हो सकता।

३ मत्स्य—गङ्गायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद्यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः।

अर्थात् गंगा यमुना के मध्य में दो मछलियाँ सदा घूमती रहती हैं। इन मछलियों का जो भक्षण करते हैं, वे ही मत्स्य के उपासक कहलाए जाने के योग्य होते हैं। यहाँ पर गंगा-यमुना दो सूक्ष्म नाड़ियों के नाम हैं। इन्हें 'इड़ा' और 'पिंगला' भी कहते हैं। इनमें विचरनेवाली मछलियों से आने-जानेवाली दो प्रकार की श्वास से मतलब है। इन मछलियों के उपासक से उस पुरुष या प्राणी का अर्थ है, जो साधनों के अभ्यास से अपने प्राण-वायु पर शासन कर सकता हो। इसी को योग की साधारण भाषा में प्राणायाम कहते हैं।

४ मुद्रा—सहस्रारे महापद्मे कर्णिका मुद्रिका चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलं पारदोपमः।
सूर्यकोटि प्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।
× × ×
अतीव कमनीयञ्च महाकुण्डलिनीयुतम्।
यस्य ज्ञानोदयस्तस्य मुद्रासाधक उच्यते।

अर्थात् आत्मा का स्थान मस्तिष्क के उच्च स्थान पर सहस्र-दल पद्म में है। यद्यपि वह कोटि सूर्यों के उज्ज्वल-तम प्रकाश के सदृश है, तथापि कोटि चंद्रमाओं की शीतलता देनेवाला भी होता है। जो जीव इस आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वही मुद्रा का उपासक माना जाता है।

५ मैथुन—मैथुनं परमं तत्त्वं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।
मैथुनाज्जायते सिद्धिः ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्।

अर्थात् सृष्टि-रक्षा और संहार का मूलकारण मैथुन ही होता है। धर्म-ग्रंथों में इसका महत्त्व विस्तार-पूर्वक वर्णित है। यह सब सिद्धियों का दाता है, और इसी के सहारे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। गुप्त अर्थ में 'मैथुन', योग की शब्दावली में, ईश्वर की अनंत गुणावलियों के रटने को कहते हैं।

उपर्युक्त पंक्तियों को मैंने अपने ही विश्वास के आधार पर नहीं लिखा है। कलकत्ते के तर्क-रत्न महाशय ने अपनी "महानिर्वाण तंत्र" की टीका में इन्हें उद्धृत किया है। मैंने उसी पुस्तक की अँगरेज़ी-टिप्पणियों का हिंदी में केवल सरल मर्मानुवाद कर दिया है।

रघुनाथसेन सिंह

× × ×

५. त्याग

हे अनंत की गौरव-गरिमा!
हे पागल प्रेमी के प्यार।
हे महत्त्व माया ममता के
मनोमुग्धकर त्रिविध विचार।
हे निराश की आश, निपट निर्धन
के धन, मृदु मंगल-मूल;
हे नीरव निशीथ के तारे,
हे ऊपर के कुसुमित फूल।
भग्न हृदय के गीत, आर्त
अंतरतल के उथले उद्गार;
शुचि सुरूप के सुमन सलोने,
हे वीणा के बिखरे तार।
हे भावों के भवन भव्यतम,
हे कविता की मूक मिठास;
विषम वियोगी युगल प्रेमियों की
हे चिर-संचित अभिलाष;
हे कवि की कमनीय कल्पना,
हे प्रमत्त के प्रबल प्रमाद;
हे मेरे निशि-दिन के साथी,
हे विस्मृत अतीत की याद।
चले किधर को गए, कुछ कहो?
इस प्रकार कर मेरा त्याग।
खोया है किस जगह, बता दे,
अनुपम वह तेरा अनुराग?
देखेगा क्या इधर एकटक,
करके कुछ करुणा की कोर?
हे मेरे चित-चोर, कभी क्या
आवेगा तू फिर इस ओर?

"कंटक"

× × ×

६. हिंदुओं में छुआछूत

जब से शुद्धि का सूत्रपात हुआ, जब से अर्द्ध मुसलमान मलकाने हिंदू बनाए गए, तब से हिंदू-मुसलमानों में लड़ाई आरंभ हो गई। न्याय से और अन्याय से हिंदू-ललनाएँ, हिंदू-बालक मुसलमान बनाए जा रहे हैं, और तभी से जगह-जगह मार-काट, लट्ठालट्ठी और सिर-फुटौवल का बाज़ार गर्म है। अतएव जब तक इस प्रश्न की तह तक न पहुँचा जायगा, जब तक इसके मूल को उखाड़कर न फेंक दिया जायगा, तब तक हज़ार सिर मारने पर भी इस झगड़े का मिटना असंभव है। सच पूछो, तो सरकारी क़ानून इस बीमारी की दवा नहीं है।

मुसलमान-समाज भले ही शुद्धि और संगठन के सिर पर इस झगड़े का दोष मढ़े, किंतु मेरी जहाँ तक बुद्धि पहुँचती है, मैं कहने का साहस कर सकता हूँ कि संगठन इस अभिशाप का दोषी नहीं है। उस समय नेता-नाम-धारी हिंदू सज्जनों को चाहिए था कि वे पहले पक्का संगठन करते, और तब शुद्धि के लिये समस्त संप्रदायों के नेताओं की कोई विश्वस्त संस्था बनाकर इस प्रश्न के हरएक पहलू पर विचार करते। इस तरह भूल तो नेताओं की है, और कष्ट उठा रही है भारतवर्ष की समस्त जनता। यह शुद्धि-शब्द बहुत बड़ा है। इसे मैं तीन भागों में विभाजित करता हूँ—एक जन्म के मुसलमानों को हिंदू बनाना; दूसरा जो सदिच्छा से नहीं, संयोग-वश हिंदू से मुसलमान हो गया अथवा बल-पूर्वक मुसलमान बनाया गया है, उसे उसकी आंतरिक इच्छा से—यदि सचमुच उसे इस कार्य का पश्चात्ताप हो—हिंदू बनाने के लिये समय के अनुसार शास्त्र-सम्मति से प्रायश्चित्त कराकर अपनी जाति में मिलाना; तीसरा अछूत हिंदुओं की गिरी हुई दशा को सुधारकर ऊँचा उठाना।

इनमें से पहला भाग सर्वथा त्याज्य है। यही सब झगड़ों की जड़ है, और यह कदापि संभव नहीं कि मुसलमान-समाज इसे चुपचाप सहन कर ले। जिस दिन स्पष्ट रूप से इसके बंद करने की घोषणा कर दी जायगी, हिंदू-मुसलमानों की लड़ाई आधी रह जायगी। दूसरी बात बेशक मुसलमानों के पसंद आने के योग्य नहीं। किंतु यदि समस्त संप्रदायों के नेताओं की सद्-व्यवस्था से, वैध आंदोलन द्वारा एकतंत्र होकर, इसका कार्य किया जायगा, तो मामूली रोड़े अटकाने के सिवा मुसलमान इसे किसी-न-किसी तरह अवश्य स्वीकार करेंगे, और हिंदू और मुसलमानों के वैमनस्य के दूर करने के लिये यदि सच्चा उद्योग किया जाय, तो केवल इन्हीं दो प्रश्नों में सब झगड़ों की समाप्ति है। बाजों का सवाल बाद का है, और गोवध के प्रश्न पर अभी तक दो-एक नगरों को छोड़कर कहीं पर ज़ोर नहीं दिया गया है।

तीसरी बात इस प्रश्न की अछूत जातियों के उद्धार की है। यह सवाल इस समय अवश्य हाथ में लेने योग्य है, और इसके लिये भी कार्य आरंभ करने के पूर्व समस्त संप्रदायों के नेताओं की कोई बैठक करके प्रथम सबकी सम्मति एकत्र कर लेना श्रेयस्कर है। नेताओं की, कार्य-कर्ताओं की धींगाधींगी से आर्य-समाज, सुधारकों और सनातनधर्मावलंबियों के बीच की खाईं पाटने के बदले दिन-दिन चौड़ी की जा रही है। इस मुटमर्दी और धींगाधींगी के मृतक ने हिंदू-महासभा तक को नहीं छोड़ा है, और यह कभी संभव नहीं कि जब तक उक्त सभा के कर्णधार हिंदू-महासभा के मंतव्यों में से ऐसे विवादग्रस्त विषयों को स्पष्ट रूप से न निकाल दें, वे हिंदुओं की वास्तविक उन्नति करने में चुनाव की "तू-तू मैं-मैं" के सिवा कदापि कृतकार्य नहीं हो सकते। गत दो अधिवेशन अवश्य ही इसके सुधार की आशा से निकल गए; किंतु यदि तीसरे जलसे तक इसका सुधार न हुआ, तो यह निश्चय है कि सनातनधर्मावलंबी हिंदुओं को इससे अलग होकर स्वतंत्र कार्य करने के लिये विवश होना पड़ेगा। महात्मा गांधीजी ने चाहे एक ढेड़ की लड़की को गोद लेकर उसे उच्च वर्ण में शामिल कर लिया हो, किंतु मौखिक बात के बतंगड़ के सिवा अभी तक यह कहीं से जानने में नहीं आया कि कांगड़ी-गुरुकुल की टकसाल ने अपने पचीस-तीस वर्ष के जीवन में कितने भंगी-चमारों को वेदाध्ययन कराकर ब्राह्मणत्व का सर्टीफ़िकेट दिया और उन नवजात द्विजों ने देश का किस पैमाने में उद्धार किया।

अछूत जातियों के उद्धार की आवश्यकता है, और जब तक ऐसा न किया जाय, हिंदू-संगठन कभी दृढ़ नहीं हो सकता, इस कार्य में कभी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। इसके साथ ऊपर बताए हुए वैध आंदोलन द्वारा जब तक इसका कोई राजमार्ग न निकाला जायगा, तब तक हिंदुओं की जन-संख्या का ह्रास कदापि नहीं बंद हो

सकता। अछूतों का उद्धार उन्हें जनेऊ पहनाकर ब्राह्मण बनाने ही में नहीं है, उन्हें भोजन करते समय पास बैठाने और न उनका छुआ अन्न खा लेने में है। उनके लिये अवश्य देव-दर्शन की व्यवस्था करनी चाहिए, उनके पीने के लिये स्वच्छ जल मिलने का आयोजन होना चाहिए, और उनको घृणा की दृष्टि से देखना बंद करना चाहिए। ये बातें शीघ्रातिशीघ्र करने की हैं। किंतु इतना इस जगह अवश्य ही कह देना चाहिए कि "नाथ थारो भूखाँ भजन न होई।" सुख से उनका पेट भरे, आराम से वे लोग रह सकें—इस बात की आवश्यकता है। वे हिंदू-समाज के एक विशिष्ट अंग हैं। यदि उनका कार्य उनसे न कराया जायगा, तो एक बहुत भारी विप्लव खड़ा हो जायगा। पर, वे दिन दूर नहीं, जब आजकल के 'नेता'-नामधारी जीव बग़लें झाँकते हुए अलग हो जायँगे, और उनकी भूल का, उनकी ग़लती अथवा नासमझी का भार सामान्य हिंदू-जनता को उठाना पड़ेगा, जैसा कि वास्तव में हो ही रहा है।

हिंदू-समाज में छुआछूत का विषय आज का नहीं है। ज़रा-सा भी परिश्रम करके यदि याज्ञवल्क्य-स्मृति की 'मिताक्षरा-टीका' देखी जाय, तो मालूम होता है कि स्त्री-पुरुष के प्रतिलोम-संसर्ग से, शूद्रों का अंत्यजों से संबंध होकर, ये जातियाँ बनी हैं, और हिंदुओं में जब रज-वीर्य की पवित्रता का प्राधान्य है, तब धर्म-शास्त्र यह कदापि आज्ञा नहीं दे सकता कि कोई चमार या मेहतर पवित्र होकर ब्राह्मण बन सकता है। शास्त्रों में वाल्मीकि-जैसे इसके प्रतिवाद अवश्य मिलेंगे। किंतु इसके विपरीत जन्मांतर में हिमालय में शूद्र का तप और मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचंद्र का उसे खड्ग से वध करना भी एक ज्वलंत उदाहरण विद्यमान है। सच्चे हिंदू वास्तव में इन अंत्यज जातियों से यदि घृणा करते होते, तो कदापि यह संभव न था कि रैदास-जैसे चमार भक्त के ही लिये हिंदू-जनता में इतनी भक्ति, इतनी पूज्यबुद्धि होती। असल बात यही है कि उत्तम बनने के लिये उसमें उत्तम गुण होने चाहिए—यों न तो गुरुकुल की टकसाल किसी ढेड़ को ब्राह्मण बना सकती है, और न महात्माजी का भंगी की लड़की को गोद लेना अछूतों को ऊँचा-से-ऊँचा आसन दिला सकता है।

हिंदू-समाज में छुआछूत की सीमा केवल अंत्यज जातियों पर ही समाप्त होती हो, सो बात नहीं। हिंदुओं में रजस्वला माता को तीन दिन तक पुत्र भी नहीं छू सकता। श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ ब्राह्मण तक मृताशौच के समय शूद्रों से अस्पृश्य हो जाता है। प्लेग तथा हैज़े के प्रकोप ने इसको प्रमाणित कर दिया है कि रोगी को, उसके घरवालों को, उसके बच्चों और घर को स्पर्श करना मृत्यु को न्योता देना है। अपढ़ हिंदुओं में, छुआछूत को धर्म मानकर उसका पालन करनेवाले हिंदुओं में ऐसे लोगों की संख्या सैकड़ों पर निकलेगी, जिन्होंने इस भय की कुछ पर्वा न कर, स्वजनों की रक्षा करने के लिये, अपने प्राणों की आहुति दे डाली है। किंतु छुआछूत के कट्टर विरोधियों में यदि ऐसे व्यक्ति निकल आवें, जो स्वजनों को पड़ोसियों के ऊपर निराधार छोड़कर भाग निकले हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं। इसीलिये कहना पड़ता है कि "हाथी के दाँत खाने के और होते हैं, और दिखाने के और।" और यह ज़बानी हमदर्दी समाज में विप्लव मचाने के सिवा और किसी काम की नहीं है।

लज्जाराम मेहता

× × ×

७. मुरली

जदपि पयोधि मथि, पाइके पियूष-रस,
सुख सों सदाई सुर सारे बिलसत हैं।
मोहन-मधुर-अधरामृत के स्वाद-हित,
तौहूँ सुर नित चित माँहिं हुलसत हैं।
हेरत उपाय लख्यौ बंसी सों बनैगो काज,
ब्रजराज जाको अधरान पै लसत हैं;
भाषत "रसाल" ह्वै निहाल सब काल सुर,
राग-अनुराग जाय बंसी में बसत हैं।
जामैं ना सुमन फूल फूलत फबीले कहूँ,
जामैं गाँस-फाँस कौ बिसाल-जाल छायो है;
काया कूबरी है, पोर-पोर मैं पोलाई परी,
जीवन बिफल जासु बिधना बनायो है।
ताहू पै दवारि बारि बंस बीच नासिबे कौं,
बिधि ने सकल बिधि ठाठ ठहरायो है;
देखि हरि-प्यारी अपनायो तेहि बंसी करि,
हरि ने "रसाल" अधरामृत पियायो है।

रामशंकर शुक्ल "रसाल"

× × ×

८. सचित्र परिचय

नैरोबी से क़रीब पाँच मील दूर एक मिशन है, जहाँ नीग्रो-जाति को रोमन कैथलिक-धर्म की दीक्षा देने का



डुएल गिरजाघर

काम होता है। साथ ही बहुत-से नीग्रो पढ़ाए जाते हैं। इस मिशन के क़रीब दो-तीन मील लंबा-चौड़ा एक स्थान है, और मिशन के ख़र्च के निकालने के लिये काफ़ी आदि उसमें बोई जाती है। इसका असली नाम सेंट आस्टिस मिशन है ; परंतु इसके प्रचलित नाम फ़्रेंच मिशन तथा किकोइयू मिशन हैं। इस मिशन में एक सुंदर डुएल गिरजाघर है, जो बहुत सुंदर और दर्शनीय स्थान है।

उस गिरजाघर के अंदर का यह सुंदर चित्र है। इसका यही संक्षिप्त परिचय है।

नैरोबी] गोवर्धनदास-बिशनदास वधवा

× × ×

९. आँसू

आहा! आँसुओं की झड़ी, कभी मोतियों की लड़ी,
कभी कभी जीवन के घन बीच तारे हैं :
विरह-विहार कभी, प्रीति-पारावार कभी,
कभी स्नेह-सार, कभी प्रेम के फुहारे हैं।
दुःख के दुकूल कभी, सुख-सर-कूल कभी,
समयानुकूल कभी आग के अँगारे हैं ;
मानस के रस कभी, करुणा-कलस कभी,
तेरी उपमाएँ कवि खोज-खोज हारे हैं।

रामानुजदास

× × ×

१०. प्राचीन कविता और धनाढ्यों का कर्तव्य

आजकल कविता की क्या ही शोचनीय दशा है! प्रायः पत्रों की शिकायतें सुनाई पड़ती हैं कि अच्छी कविताओं का तो दर्शन ही नहीं होता। साहित्य-हितैषियों के सामने एक विकराल समस्या है ; क्योंकि कविता साहित्य का एक प्रधान अंग है, और इससे "सत्यं शिवं सुंदरम्" तीनों ही की प्रतिपत्ति होती है। कविता का ह्रास यदि साहित्य का ह्रास कहा जाय, तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

प्रश्न यह है कि इस ह्रास के कारण क्या हैं? यहाँ साहित्य-मर्मज्ञों में मतभेद है। कुछ का कहना है कि कविता कल्पना के अधीन होती है, अतएव कल्पना के ह्रास के साथ-ही-साथ कविता का भी ह्रास होना अवश्यंभावी है। हम जैसे-जैसे बढ़ते हैं, हमारी कविता क्षीण पड़ती जाती है। इस प्रकार सभ्यता का विकास ही कविता के ह्रास का कारण समझा जाता है। इसके विपरीत मैंने अपने 'कल्पना'-शीर्षक लेख में यह बतलाया था कि कल्पना का इस प्रकार ह्रास नहीं होता। हमारी कल्पना हमारे विकास के साथ-साथ क्षीण नहीं पड़ती जाती। इस प्रकार यह मत तर्क के आगे ठहर ही नहीं सकता।

दूसरे मतवालों का कहना है कि आजकल की प्रकृति कविता के अनुकूल नहीं है। इसके विरुद्ध भी कुछ लोगों की सम्मति है। आजकल तो कवि होना बच्चों का खेल हो गया है। श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तवजी ने कवि बनने का क्या ही सरल उपाय लिखा है—क्या ही अच्छा नुस्ख़ा है। एक वर्णमाला की पुस्तक, पिंगल की कोई छोटी-मोटी किताब और पुराने मासिक पत्रों की फ़ाइल। बस, ठोंक-पीटकर कवि बन जाइए। क्या ही आसान मंत्र है। शोक है, बेचारे सूर, तुलसी, केशव, देव इत्यादि कवियों को यह मालूम ही न था। कुछ लोगों का कहना है कि कविता की प्रतिभा नैसर्गिक बुद्धि के कारण होती है। सच है, सभी कोई कवि नहीं हो सकते। पर नैसर्गिक बुद्धि के लिये अनुकूल परिस्थिति की आवश्यकता

भी तो पड़ती है। यदि प्रतिभाशाली कवि की भी परिस्थिति अनुकूल न हो, तो उसकी प्रतिभा भी विलीन हो जायगी। अतएव अनुकूल परिस्थिति का होना अत्यंत आवश्यक है।

यह अनुकूल परिस्थिति क्या है? सबसे पहले तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमें अतीत की बहुत ही आवश्यकता है। यदि प्रत्येक बालक अपने अनुभवों ही पर चले, तो वह कुछ नहीं कर सकता। इसी प्रकार यदि हम कविता में अपनी पैतृक संपत्ति अर्थात् प्राचीन कविताओं का उपयोग न करें, तो हम अच्छे कवि नहीं हो सकते। आजकल की शिक्षा ऐसी है कि हम मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, शेली, बाइरन, शेक्सपियर इत्यादि कवियों की कृतियों से तो परिचित रहते हैं, पर सूर, तुलसी, केशव, देव, भूषण, चंदबरदाई, पजनेश, पद्माकर आदि कवियों के नाम तक नहीं जानते। हाँ, आजकल हमारे विश्वविद्यालयों का कुछ ध्यान इस ओर गया है। यह अच्छी बात है; पर इतने ही से काम नहीं चल सकता। हम विश्वविद्यालयों से उतनी आशा नहीं रखते; क्योंकि उनके समक्ष और भी कितने ही प्रश्न हैं। गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय का इस ओर प्रयास सराहनीय है। पर संचालकों से यह प्रार्थना है कि इन ग्रंथों का मूल्य, प्रचार की दृष्टि से, यथासंभव कम रक्खें। इस विषय में हमारे राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार आदि धनाढ्य और निर्द्धन भी गंगा-पुस्तकमाला को सहायता देकर मूल्य कम करने में सहायता दे सकते हैं जिसमें हिंदी-प्रेमी भी प्राचीन कविताओं का रसास्वादन कर सकें।

किसी बात का प्रचार करने के लिये परीक्षाओं की बड़ी कड़ी आवश्यकता है, और परीक्षाओं के लिये उसी प्रकार पुरस्कारों की आवश्यकता है। अब पुरस्कार धनी-मानी हिंदी-हितैषियों को छोड़ और कहाँ से आ सकते हैं? आजकल द्रव्य और धन का माहात्म्य बहुत ही बढ़ गया है। सभी काम आज धन के लिये किए जाते हैं। अतएव इस ओर उत्साह बढ़ाने के लिये पुरस्कारों की बड़ी भारी आवश्यकता है। बिड़लाजी ने धर्म-प्रचार के लिये कितना प्रयत्न किया है, और कितना धन दिया है। इसी प्रकार क्या अन्य धनी-मानी सज्जन कविताओं के—प्राचीन कविताओं के—लिये धन की सहायता दें, तो क्या ही अच्छी बात हो। जब हमारी दयालु सरकार जंगली भाषाओं के भी प्रचार के लिये २५०), २००), १०००) तक के पुरस्कार दे रही है, तब क्या हमारे राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार, धनी-मानी सज्जन विद्या-प्रचार के लिये—प्राचीन कविताओं के लिये—पुरस्कार देने में उत्साह न दिखावेंगे? यह तो इनके कुल की रीति ही है।

"बाबा"

× × ×

११. बेकार बहुत हैं

बेमौत ज़िबह करने को तैयार बहुत हैं।
गरदन तो मेरा एक है, तलवार बहुत हैं।
यों आँख छिपाकर न बेइंसाफ़ कीजिए;
इस आपके अंदाज़ के दीदार बहुत हैं।
क्यों कमसिनी से हाथ धोके आप हैं बैठे?
मालूम क्या नहीं कि गुनहगार बहुत हैं?
बेताब दर-बदर न फिरें हम, तो करें क्या?
मशहूर है कि गुल नहीं, पर ख़ार बहुत हैं।
अब पूछता हूँ, कुछ तो हैं नादान ही बनते;
मतलब के लिये गोकि वह हुशियार बहुत हैं।
मकतब में जाके क्या करें, तबियत नहीं लगती;
बी० ए०, एम्० ए० सुना है कि बेकार बहुत हैं।
गो रोकता हज़ार हूँ, सुनता नहीं मेरो;
नादाँ ग़रीब दिल से तो लाचार बहुत हैं।
जब आप ही सुनते नहीं, तो कौन सुनेगा?
मेरे लिये भी क्या कहीं 'सरकार' बहुत हैं?

राजनाथ पांडेय 'नाथ'

× × ×

१२. बिहार-उड़ीसा में ज़िला-बोर्डों के अधिकार

विगत वैशाख-मास की माधुरी में श्रीयुत हर्षदेव ओली ने अपने 'ज़िला-बोर्डों का कर्तव्य'-नामक लेख में लिखा है—"ज़िला-बोर्डों पर प्रांतीय तथा भारतीय व्यवस्थापिका सभाओं की भाँति कोई विशेष नियंत्रण नहीं है, इसलिये उनके हाथ में सार्वजनिक जीवन को सुचारु बनाने के बहुत-से अधिकार हैं।"

अन्य प्रांतों के विषय में तो मैं कुछ नहीं कह सकता, किंतु बिहार-उड़ीसा-प्रांत के ज़िला-बोर्डों को वे अधिकार नहीं प्राप्त हैं। इस प्रांत के लगभग सभी बोर्डों में यद्यपि कांग्रेसवालों का बहुमत है, तथापि ये लोग अपनी इच्छानुसार कोई कार्य नहीं कर सकते। कारण यह कि बोर्डों में इन लोगों के प्रविष्ट होते ही सरकार ने एक ऐसा

क़ानून बना डाला, जिसके अनुसार वहाँ के प्रत्येक बोर्ड में एक-एक ऑडीटर नियुक्त कर दिया गया। किसी भी काम को उसके नाजायज़ ठहराने पर उस काम में ख़र्च किए गए रुपए सदस्यों को देने होते हैं। जनता की अनेकों प्रार्थनाओं और विरोधों को ठुकराकर यह बिल पास कर दिया गया है। क्या इन ऑडिटरों का अधिकार व्यवस्थापिका सभाओं के गवर्नर और गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकारों से कम है?

शुकदेवप्रसादसिंह

× × ×

१३. मातृ-वंदना

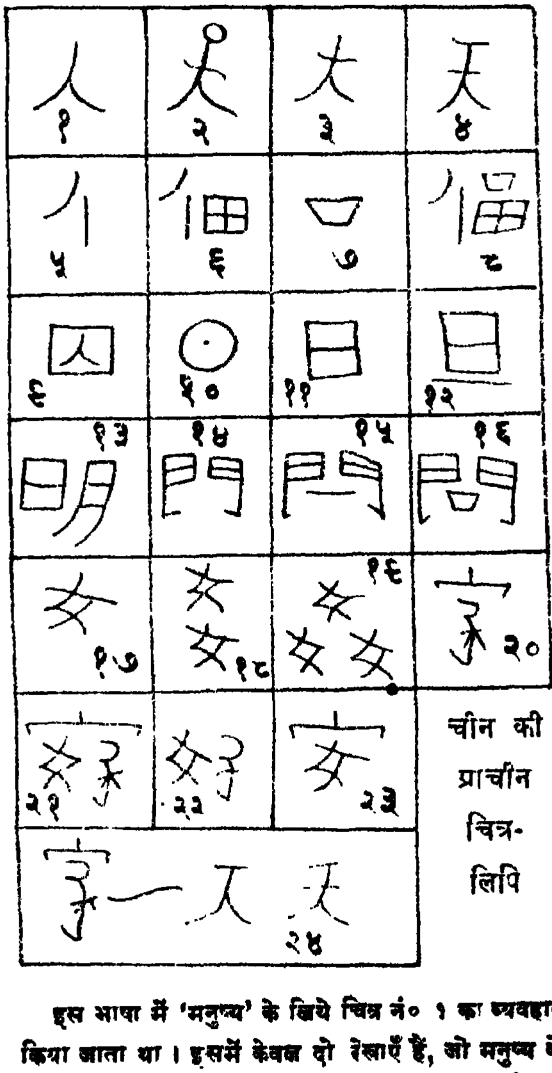
वंदे जननी मम प्यारी।
सीस-मुकुट-मणि हिमगिरि धारे,
हिंद-पयोनिधि चरण पखारे,
चंद्र-सूर्य आरती उतारें,
श्यामल अंचलधारी। वंदे०।
सरस सुपरिमल मलयज शीतल,
कंठ-हार-कल शुचि गंगा-जल,
फूले कुसुम विपुल नव द्रुम-दल,
जल-थल की छवि न्यारी। वंदे०।
मंगल-करनी, दारिद-हरनी,
दुख-दल-दलनी, ज्ञान-वितरनी,
सुर-नर-ऋषि-मुनियों की जननी,
शक्ति शालिनी भारी। वंदे०।
विभव-पालिनी, शस्त्र-धारिनी,
भय-निवारनी विश्व-तारिनी,
कार्य-कारनी, रिपु विदारिनी,
तीस कोटि सुतवारी। वंदे।

दारावख़ाँ "अभिलाषी"

× × ×

१४. चीन की प्राचीन चित्र-लिपि

किसी देश का सच्चा इतिहास जानने के लिये उस देश की भाषा का अध्ययन करना चाहिए। वहाँ के साहित्य के बिना हमें उस देश का ठीक-ठीक इतिहास उपलब्ध नहीं हो सकता। देशवासियों की मानसिक तथा साहित्यिक अवस्था की विवेचना इतिहास का एक मुख्य अंग है। अँगरेज़ी में एक कहावत है "Style is the man" अर्थात् रचना-शैली लेखक की परिचायिका है। और, मैं इसी के साथ-साथ यह कहता हूँ कि language is the nation. अर्थात् भाषा ही राष्ट्र है। इसी उद्देश्य से इस लेख में चीन के प्राचीन साहित्य की कुछ मनोरंजक बातों की व्याख्या की गई है। यह भाषा सचमुच कठिन है; किंतु साथ-ही-साथ बहुत सरल भी। जिनकी स्मरण-शक्ति क्षीण नहीं है, उन्हें इस भाषा के समझने में कुछ भी दिक़्क़त नहीं हो सकती। इस भाषा में ख़ास-ख़ास शब्दों के लिये ख़ास-ख़ास चित्र हैं, और इन्हीं चित्रों से शब्दों का अभिप्राय प्रकट होता है। इसीलिये इसे चित्र-लिपि कहते हैं। ये चित्र बड़े ही हृदयंगम हैं।



चीन की प्राचीन चित्र-लिपि

इस भाषा में 'मनुष्य' के लिये चित्र नं० १ का व्यवहार किया जाता था। इसमें केवल दो रेखाएँ हैं, जो मनुष्य के पैरों की प्रतिमूर्ति-स्वरूप हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि चीन-देश के निवासी मस्तिष्क तथा हाथों को प्रधानता और

उपयोगिता से पूर्णतः परिचित न थे। कुछ और पहले के साहित्य के अवलोकन से पता चलता है कि 'मनुष्य' के लिये जिस चित्र का प्रयोग होता था, वह बहुत ही सीधा और मानव-शरीर का एक साँचा ही था। Israelits के लालसागर के पार करने के सात सौ वर्ष पहले तक चित्र नं० २ लिखा जाता था। इसके उपरांत लोगों ने नं० १ ही लिखना आरंभ कर दिया।

लगभग प्रत्येक शब्द के लिये एक-एक चित्र रहने पर भी एक शब्द में बहुत-से शब्दों का समावेश हो जाता था। एक शब्द लिखने के लिये कई एक चित्र बनाने पड़ते थे। 'बड़ा'-शब्द लिखने के लिये लोग चित्र नं० ३ का आश्रय लेते थे। 'मनुष्य' लिखकर उसके बीच से एक रेखा खींच दी जाती थी, जिसका मतलब यह था कि सृष्टि में सबसे प्रबल एवं श्रेष्ठ मनुष्य ही हैं। लोगों का यह भी विश्वास था कि मानव-जाति से भी श्रेष्ठ एवं प्रभावशाली एक स्वर्गीय सत्ता है, मनुष्य एक सर्वशक्तिमान् सत्ता के अधीन है। 'बड़ा' के मस्तक पर एक सीधी लकीर खींच देने से मनुष्य का महत्त्व घट जाता और वह एक ऐसा चित्र बन जाता, जिसका अर्थ स्वर्ग' था (नं० ४)।

'मनुष्य' का एक रूप और भी है; पर उसका प्रयोग मुख्य-मुख्य स्थानों में होता है। जब वह अन्य शब्दों के साथ मिलाकर लिखा जाता है, तब उसका आकार नं० ५ के समान होता है। नीचे के उदाहरण से यह ठीक-ठीक मालूम हो जायगा। खेत जोतने बोनेवालों को कृषक कहते हैं। बस, चीन में भी यही परिभाषा थी, और इसी के अनुसार उनका 'कृषक'-शब्द भी बना था। 'खेत' के बाईं और मनुष्यवाला नं० ५ का चित्र जोड़ देने से 'कृषक' शब्द का बोध होता था (नं० ६)। इस चित्र से यह भी पता चलता है कि उन्हें सुख का कैसा अनुभव था, और सुख की परिभाषा उनके समाज में क्या थी। 'खेत' के ऊपर 'मुख' (नं० ७) लिखकर उसके पहले 'मनुष्य' लिख देने से 'सुख' का चित्र तैयार हो जाता था (नं० ८)। सुख का कैसा भाव-पूर्ण नक़्शा है। इससे चीन के किसानों की क्षुधार्त दशा पर बहुत प्रकाश पड़ता है। लाखों उद्योगी कृषकों के खेत बाढ़ के कारण जल-प्लावित हो नष्ट हो जाते थे। ऐसी दशा में जिसकी खेती बच गई, जिसका धान्य-पूर्ण क्षेत्र नष्ट न हुआ, उसका सुखी समझा जाना स्वाभाविक ही नहीं, उचित भी था।

अनेक पूर्वीय देशों में और प्रधानतः चीन में जो दंड-प्रथा प्रचलित थी, उसे सभी जानते हैं। क़ैदी के गले में लकड़ी की एक बड़ी भारी चौकोर वेदी पहनाकर उसे शहर में चारो ओर घुमाया जाता था। इस प्रकार के दंड का ध्यान करते हुए 'क़ैदी' के लिये चित्र बनाना बहुत ही सरल था। अतः हम देखते हैं कि एक चतुर्भुज के भीतर 'मनुष्य' लिख देने से 'क़ैदी' बन जाता था (नं० ९)।

'सूर्य' भी दो प्रकार से लिखा जाता था। सैकड़ों वर्ष पहले एक वृत्त बनाकर उसके बीच में एक बिंदु दे देने से 'सूर्य' समझा जाता था (नं० १०)। किंतु वृत्त की अपेक्षा चतुर्भुज बनाना सहज है। इसीलिये टेढ़ी रेखाओं का स्थान सरल रेखाओं ने ग्रहण कर लिया, और 'सूर्य' नं० ११ की तरह लिखा जाने लगा। उन लोगों ने असंभव को भी संभव बना दिया, वृत्त को चतुर्भुज में परिणत कर दिया। 'सूर्य' के बाद क्षितिज के लिये एक चिह्न की आवश्यकता हुई, इसलिये 'सूर्यवाले' चित्र के नीचे एक सीधी लकीर खींच दी गई (नं० १२)।

इस लिपि के बनानेवालों ने कुछ शब्द-चित्रों के निर्माण में अपनी बुद्धिमत्ता तथा योग्यता का अच्छा परिचय दिया है। यह बात उसके 'प्रकाश'-शब्द से सिद्ध होती है। प्रथम उन्होंने 'सूर्य' लिखा; पर इसकी चमक उन्हें काफ़ी नहीं मालूम हुई। अतः इसके साथ-साथ 'चंद्रमा' भी जोड़ दिया गया, और इन दोनों दीप्तिमान् ग्रहों से 'प्रकाश'-शब्द की उत्पत्ति हुई (नं० १३)। इन शब्दों में एक बात बड़े मार्के की है। प्रत्येक रेखा का कुछ-न-कुछ अर्थ अवश्य है। 'द्वार'-शब्द में प्रवेश-मार्ग साफ़ मालूम होता है (नं० १४)। उन्हें चोरों का भी भय था, इसलिये 'ताला'-शब्द के लिये दोनों दरवाज़ों के बीच में एक लकीर खींच दी गई (नं० १५) चीन में भीख माँगना एक रोज़गार-सा हो गया था; इसलिये इसका चित्र भी भाव-पूर्ण है (नं० १६)। 'द्वार के भीतर मुँह' से भीख माँगने का तात्पर्य स्पष्ट प्रकट होता है।

'स्त्री' के लिये शब्द लिखने के पहले स्त्रियों से क्षमा माँगना आवश्यक है। कारण यह कि चीन में स्त्रियों की दशा बड़ी शोचनीय थी। पुरुष सब वस्तुओं का स्वामी समझा जाता था, और स्त्रियाँ बिलकुल गई-गुज़री। चीन की इस पुरानी चित्र-लिपि में 'स्त्री'-शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है, जिनका अर्थ है संदेह और धूर्तता (नं० १७)।

समूचा सभ्य जगत् यह मानता है कि सौजन्य और सहनशीलता स्त्रियों के प्रधान एवं स्वाभाविक गुण हैं। चीन-निवासी इससे सहमत नहीं थे। उनकी धारणा थी कि संसार के मुख्य-मुख्य दोष स्त्रियों ही में पाए जाते हैं। यही कारण था कि 'स्त्री'-शब्द का दो बार चित्र दे देने से 'झगड़ा'-शब्द बन जाता था (नं० १८)। इतना ही नहीं, उनका विश्वास था कि स्त्रियाँ स्वभाव से ही लड़ाका एवं वाचाल होती हैं। जहाँ कुछ स्त्रियाँ जमा हों, वहाँ गपशप होना अनिवार्य है (नं० १६)। 'गपशप' के लिये तीन स्त्रियोंवाले चित्रों का प्रयोग किया जाता था।

पुरुषों की दशा भी विचित्र ही थी। प्रत्येक पुरुष को अपने गौरव का अभिमान होता है, अपनी कुलीनता का गर्व होता है। किंतु चीनवासियों में इसका पूरा अभाव था। यह बात उनके 'गृह'-शब्द से मालूम हो जाती है। उनके 'गृह'-शब्द की व्याख्या करने से ज्ञान होता है कि वह दो शब्दों से बना है—'छत' और 'सुअर'। 'छत' के नीचे 'सुअर' लिख देने से 'गृह' बन जाता था (नं० २०)।

इस चित्र-लिपि का जितना अध्ययन कीजिए, उतनी ही नई बातें प्रकट होती हैं। अब उनके 'विवाह'-शब्द पर विचार कीजिए। इस पर दृष्टि डालते ही विश्वास हो जाता है कि चीन के पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ कहलाने का जो दम भरते थे, सो वास्तव में उनका यह दावा बिलकुल बेकार था। उन्हें अपनी इज़्ज़त का ध्यान न था। उनका 'विवाह'-शब्द तीन शब्दों के योग से बना था—'छत', 'सुअर', और 'स्त्री' (नं० २१)। कहाँ पवित्र विवाह-संबंध, और कहाँ 'स्त्री और सुअर' का संबंध। कैसी भद्दी सूझ और कैसा बेढब मिलान है! न-मालूम इस लिपि के बनानेवालों को स्त्रियों से क्या वैर था, जो उन लोगों ने इनका इतना अपमान किया। बेचारी स्त्रियाँ कर ही क्या सकती थीं। न तो समाज में उनकी क़द्र थी, और न वे शिक्षित ही थीं।

इन चित्रों से यह भी पता चलता है कि चीन-निवासी बड़े ही स्वार्थी थे। यदि किसी स्त्री के लड़की उत्पन्न हो, तो उस अभागिन की दशा अकथनीय ही समझिए। यदि दैवसंयोग से उसके पुत्र हो जाय, तो उसके आदर-सत्कार का क्या ठिकाना। 'लड़की का पिता' कहलाना चीन के नवयुवक अपनी निंदा समझते थे। ऐसी दशा में यदि उनका 'अच्छा'-शब्द 'स्त्री' और 'पुत्र' के मेल से बना हो, तो कोई आश्चर्य नहीं (नं० २२)।

ख़ैर, जो कुछ हो। मैं समझता हूँ कि 'शांति'-शब्द से स्त्रियों को प्रसन्न होना चाहिए; क्योंकि अन्य शब्दों में उनकी जो निंदा हुई है, उसी के बदले इस शब्द में उनकी प्रशंसा की गई है। 'शांति' में हम 'छत' और 'स्त्री' शब्दों को पाते हैं (नं० २३)। इस चित्र का थोड़े में अभिप्राय यह है कि स्त्री शांति का मूल-कारण है। शांति की ध्वनि उसी घर में विराजती है, जिसमें स्त्री का वास है। आजकल चीन ने बहुत उन्नति की है। उसका साहित्य भी बहुत-कुछ सुधर गया है। इस उन्नति-प्रवाह के साथ-साथ उन्हें यह भी उचित है कि अपनी पूर्व-लिपि का पूर्ण बहिष्कार न करें, और पाश्चात्य की नक़ल करने में अपने आदि-पुरुषों के महत्त्व-पूर्ण आदर्शों को न भुला दें। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि जिस समय अँगरेज़ों ने यह सीखा था कि "God had made of one blood all nations to dwell upon earth" (ईश्वर ने पृथ्वी पर रहने के लिये सब जातियों को एक ही रक्त से बनाया था), उसके पाँच सौ वर्ष पहले ही चीन के एक प्राचीन दार्शनिक ने यह घोषणा की थी कि—

"Tien Hsia yee Jia."

"संसार के सब प्राणी एक ही परिवार के हैं।" (चित्र नं० २४)।

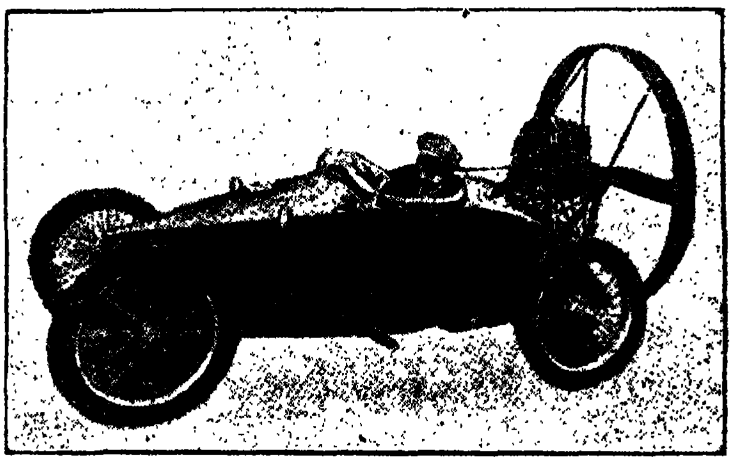
लक्ष्मीप्रसाद द्विवेदी



१. बालक की बनाई हुई मोटर

अगर तुमसे कोई आदमी पूछे कि तुम अपने छुट्टी के समय को किस प्रकार बिताते हो, तो तुम क्या उत्तर दोगे? कहोगे खेल-कूद ही में। अच्छा, तुम्हारे खेल-कूद के साथ ही यदि कोई उपयोगी काम हुआ करे, तो क्या तुम उसे नहीं करोगे? देखो, पाश्चात्य देशों के बालक भी तुम्हारे ही-जैसे खिलाड़ी होते हैं, किंतु वे खेल-ही-खेल में बहुत-सी उपयोगी वस्तुएँ भी बनाया करते हैं। नीचे जिस मोटर का चित्र दिया जा रहा है, वह १७ वर्ष के एक बालक की बनाई हुई है। इसमें उसने वायुयान का एक चालक लगाया है, जिससे मोटर चलती है। क्या खेल में तुम भी ऐसी कोई चीज़ बना सकते हो?

× × ×



बालक अपनी ही बनाई हुई मोटर में बैठा है

२. जापानी बालकों के पत्र

इस देश में बालकों के लिये जैसे कई मासिक पत्र निकलते हैं, उसी प्रकार जापान में भी सैकड़ों बालोपयोगी मासिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं। उनकी खपत भी बहुत है, और मूल्य कम।



एक जापानी पत्र का चित्र

विलायती अखबारों की तरह इनमें भी रंग बिरंगे विचित्र-विचित्र चित्र निकला करते हैं। इनमें जो कहानियाँ निकला करती हैं, वे सभी सचित्र होती हैं। इससे बालकों का मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही चित्र रहने की वजह से वे खिलाड़ी लड़कों को बहुत पसंद होती हैं। एक ऐसे ही जापानी पत्र का चित्र दिया गया है।

× × ×

३. दौड़नेवाली बालिका

जापान की एक दौड़ में श्रीमती मेत्सु टाकामुरा प्रथम हुई है। उसकी उमर १५ साल की है। सिर्फ तेरह सेकिंड में वह १३४ गज दौड़ी थी।

रमेशप्रसाद

× × ×

४. कुत्ते की आत्मकहानी

रास्ते में चलते-चलते मुझे एक बुड्ढा कुत्ता मिल गया। यह कुत्ता मेरे एक पड़ोसी के यहाँ पला था; पर अब उसके गिरे दिन हैं। मालिक ने उसे मकान से निकाल दिया है। खाने-पीने को नहीं देता। बेचारा क्या करे, यहाँ-वहाँ भटकता फिरता है। मुझे देखकर वह मेरे पैरों के पास आकर गिर पड़ा, और अपनी पूँछ हिला-हिलाकर धीमे स्वर में कुछ बिनती-सी करने लगा। जब मैंने ध्यान से उसकी बातें सुनीं, तो मुझे विदित हुआ कि वह अपनी आत्मकहानी कह रहा है। वह बोला—

"महाराज, मेरे दिन इस संसार में कभी सुख से नहीं बीते, सदा कठिनाइयाँ ही झेलनी पड़ीं। जिस समय मेरा जन्म हुआ था, उस समय मेरी आँखें नहीं खुली थीं। मेरी मा मुझे और मेरे दूसरे भाइयों को दूध पिलाती थी। जब तक हम लोगों की आँखें न खुलीं, तब तक तो वह हमारे पास ही, इधर-उधर से कुछ खा-पीकर, घूमा करती थी। हम लोग छुटपन में बहुत ही सुंदर मालूम पड़ते थे। हमारी सुंदरता देखकर बहुत-से बच्चे हम लोगों को खिलाने के लिये आते थे। पर मेरी मा समझती थी कि वे लोग हमें लेकर भाग जायँगे, मकान के भीतर छिपा लेंगे, अनेक प्रकार के कष्ट देंगे। यही सोचकर वह उन लोगों को हमारे पास नहीं आने देती थी। माता का प्रेम कैसा विचित्र होता है। जब वह हम लोगों पर किसी तरह की विपत्ति आई हुई देखती, तब खुद आगे होकर उसका सामना करती और हम लोगों

को उस विपत्ति से बचाती थी । यद्यपि वह यह जानती थी कि जब ये मेरे बच्चे बड़े हो जायँगे, तब मुझे किसी प्रकार का सुख न देंगे, तथापि इन बातों की ओर बिलकुल ही ध्यान न देकर वह सदैव बड़े चाव से हम लोगों का लालन-पालन करती थी।

"जब हम लोग कुछ बड़े हुए, तब अपनी माता के साथ थोड़ी-थोड़ी दूर तक दौड़ने और उसके पीछे-पीछे भागने लगे। एक दिन आपके उस पड़ोसी के लड़के ने मुझे पकड़ लिया। मेरी मा उस समय कुछ दूर निकल गई थी। मैंने उसे चिचियाकर बुलाया। पर जब तक वह मेरे पास आवे, वह दुष्ट मुझे लिए हुए अपने मकान के भीतर जा पहुँचा। वहाँ उसने मुझे जंजीर से बाँध दिया। मैं वहीं पर बँधा-बँधा चिल्लाता रहा। मेरा चिल्लाना सुनकर मेरी मा बार-बार मेरे पास आने का उपाय सोचती थी; किंतु उस दुष्ट के मारे वह मेरे पास न आ सकी। मैं भी परवश था, क्या करता? जंजीरों से जकड़ा हुआ पड़ा था। वह दुष्ट मुझे चाहे जिस तरह से रखता। परमात्मा परवश किसी को न करे, यही सोचता रह गया।

"जो बालक मुझे अपने मकान में ले आया था, वह अब मेरा मालिक हो गया। वह मुझे भोजन भी अच्छी तरह से देता था। मैंने कुछ ही समय में उसके घर के सब लोगों को पहचान लिया। जब वे लोग मेरे पास आते, तब मैं कुछ विनीत स्वर से तथा पूँछ हिलाकर उनका स्वागत करता। यदि कोई मुझसे किसी कारण अप्रसन्न हो जाता, और मार भी देता, तो कुछ समय चिल्लाकर शांत हो जाता, और उस बात को अपने हृदय से इस प्रकार दूर कर देता था, जैसे कभी हुई ही न हो। जब मैं कुछ-कुछ समझने लगा, तो मेरे मालिक ने मुझे मकान का चौकीदार बना दिया। इस पद को पाकर मुझे अपने कर्तव्य का ध्यान आ गया। बस, उसी समय से मैंने अपना आहार बिलकुल कम कर दिया। सोचा, जो मनुष्य बहुत ज़्यादा खा लेते हैं, वे सोते भी अधिक हैं, तथा काम पड़ने पर सब काम उचित रीति से नहीं कर सकते। नींद तो मुझे कभी आती ही न थी। मुझे जिस समय कुछ अवकाश मिलता, मैं अपने आराम के लिये आँखें बंद कर लेता था। मेरे सोते समय में भी यदि कोई मनुष्य मेरे पास आता था, तो मैं उसके पैरों की आहट पाकर जग पड़ता था, और एकदम इस तरह सचेत हो अपने कार्य में लग जाता था कि कोई यह न कह सकता था कि यह अभी सो रहा था। जब मुझे यह मालूम होता था कि यह मनुष्य मेरे मालिक के घर का नहीं है, तब मैं बिना अपने मालिक की आज्ञा पाए उसे भीतर नहीं जाने देता था। ये तो मेरे बिलकुल ही मामूली काम हैं। पर मेरे दूसरे अनेक भाई इस प्रकार के काम करते हैं, जिन्हें सुनकर आप एकदम अचंभे में पड़ जायँगे।

"जिस समय योरप-महाद्वीप में बड़ा भारी युद्ध हो रहा था, उस समय हमारे भाई शत्रु की खबर लाने को तैयार किए गए थे। देखिए, ऐसे समय में जहाँ मनुष्य जाने में सकुचते थे, वहाँ हमारे भाइयों ने किस प्रकार उत्साह से काम किया। लड़ाई खतम होने और जीतने पर कोई मनुष्य यह निश्चय करता है कि अब हमको पदक तथा भारी इनाम मिलेगा। पर उन लोगों ने हमारी ओर बिलकुल ही ध्यान न दिया, और अपने काम में लगे रहे। वहाँ हमारे ही भाई चिट्ठियाँ इधर-उधर ले जाते तथा बाजार से सामान तक खरीदकर ले आते, और अपने मालिक को दो देते थे। रास्ते में किसी भी

आदमी की हिम्मत नहीं कि वह उनसे छीन सके। नदी-तालाब आदि में डूबे हुए बच्चों को भी हमारे भाई निकालकर पार लगाते हैं।

"एक समय मेरा मालिक किसी गाँव को जा रहा था। रास्ते में बड़ा भारी जंगल पड़ता था। मैं भी मालिक के साथ था। मैं कभी मालिक के आगे जाता था, कभी पीछे। जिस समय मैं मालिक के आगे जा रहा था, उस समय अचानक मेरी नज़र एक शेर पर पड़ गई। बस, मैं एकदम भोंकने लगा। मेरा भोंकना सुन मेरा मालिक सावधान हो गया। यद्यपि उस समय उसके पास हथियार थे, फिर भी वह मुझे अकेला ही भूमि पर छोड़ एक बड़े ऊँचे पेड़ पर चढ़ गया। मैं क्या करता? पेड़ पर चढ़ना तो मुझे आता ही नहीं। वहीं पर खड़ा-खड़ा अपने हृदय को पक्का कर, अपने स्वामी की रक्षा करने के लिये, पेड़ के आस-पास घूमता रहा। मेरा भोंकना सुन वह शेर भागकर उसी जंगल में कहीं पर जा छिपा। शेर को भाग गया देख मालिक भी पेड़ से उतर आया, और बहुत जल्दी-जल्दी चलकर गाँव में पहुँच गया।

"किंतु मेरे मालिक को ये सब बातें भूल गईं। उसको और कुछ बहाना न मिला, तो अब उसने मुझे यह कहकर मकान से निकाल दिया है कि तू विष्ठा खाने लगा है। पर यदि मैं कुत्ता होकर प्रत्यक्ष रूप में विष्ठा खाता हूँ, तो क्या बुरा है। मनुष्य तो प्रत्यक्ष तथा गुप्त, सब रूपों में विष्ठा खाते हैं। जो मनुष्य झूठ बोलते हैं, वे क्या विष्ठा नहीं खाते? दूसरे जीवधारियों को मारकर खा लेना क्या विष्ठा खाना नहीं है? मनुष्य जब भोजन करने को बैठते हैं, तब अनेकों मक्खियाँ अपने पैरों में विष्ठा लगाकर उनके भोजन पर आकर बैठ जाती हैं। तो क्या यह विष्ठा खाना न हुआ? पर संसार विचित्र है। लोग बड़ी-बड़ी सभाओं में जाकर वचन दे आते हैं कि हम आज से शराब न पिएँगे। पर मकान पर आकर छिपकर, चोरी से, जैसे बनता है शराब पीते हैं। क्या यह विष्ठा खाना नहीं है? पर नहीं, उसको तो मुझे दुरदुराना था, इसलिये इसी बहाने से मुझे मकान से निकाल दिया। अच्छा भाई, ऐसा ही सही। वह सब तरह से समर्थ है, चाहे जो कर सकता है। यदि बड़े बनकर गरीबों और दीनों के पेट न फाड़ें, तो बड़े फिर किस लिये। पर मैं अपने दिल को समझाता रहता हूँ। लोग कैसे स्वार्थी होते हैं। जब तक उनका काम चलता रहता है, तब तक तो कोई बात नहीं; पर जब मैं किसी काम का न रहा, तब मकान से निकाल दिया।

"अरे भाई, मैं तो एक कुत्ता ही था, लोग अपने माता-पिता को, जब वे बूढ़े हो जाते हैं, मकान से निकाल देते हैं—यदि नहीं भी निकालते, तो मकान के एक कोने में कुछ चीथड़े देकर एक घड़ा एक तूँबा पानी पीने को रख अलग कर देते हैं—तब मेरी गिनती ही क्या?" इतना कहते-कहते उसका गला भर आया। आगे कुछ न कह सका। जब कभी कहेगा, तब फिर बताऊँगा।

हरिप्रसाद द्विवेदी

× × ×

५. खेत का चूहा

खेत का चूहा घर के चूहे की अपेक्षा छोटा होता है। गेहूँ या जौ के पौदों पर यह बड़ी आसानी से चढ़ जाता और उनकी बालियाँ खाता है। खाते समय यह अपनी दुम पौदे के डंठल से लपेट देता है। अब वह गिर नहीं सकता।

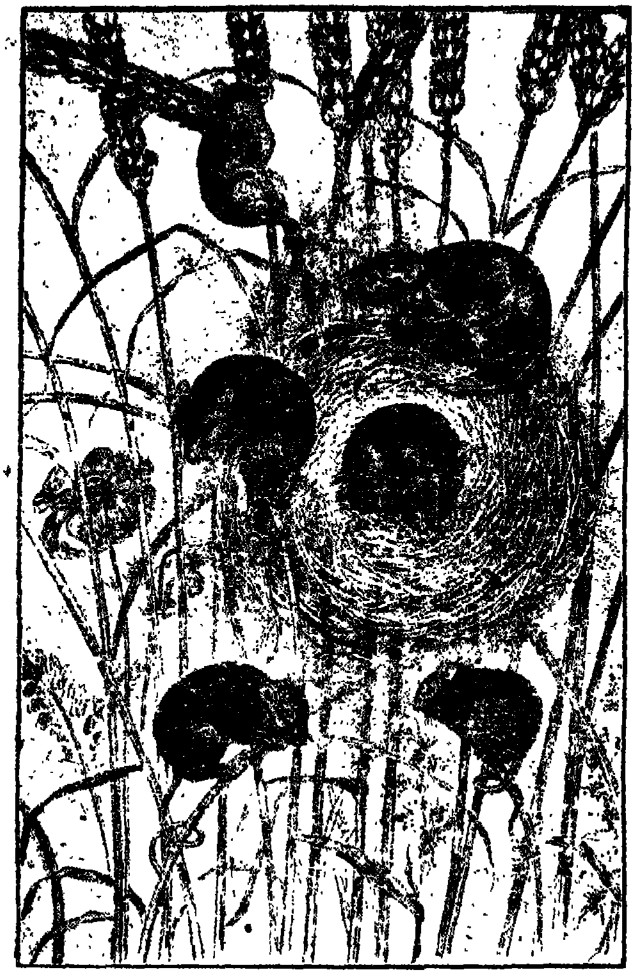
शत्रुओं से बचने के लिये यह बिल तो बनाता



मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब

[श्रीयुत पं० हनूमान शर्मा की कृपा से प्राप्त]

N. K. Press, Lucknow.



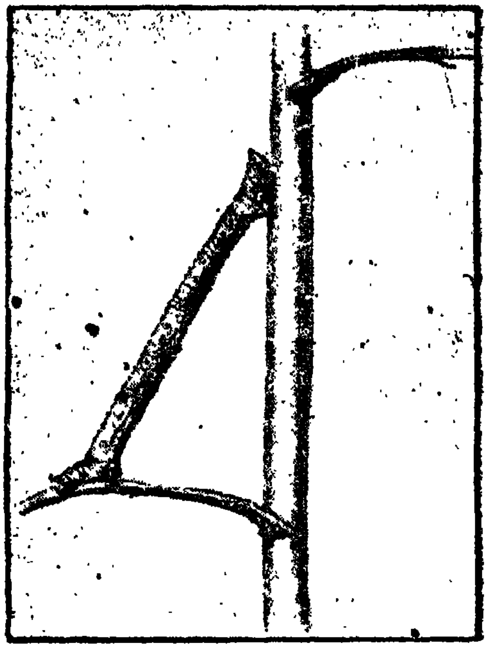
खेत के चूहे

है; पर उसमें रहता बहुत कम है। रहने के लिये खेत के पोदों पर ही घास, फूस और पत्तियों का एक छोटा-सा गोलाकार घोंसला बना लेता है, जिसमें आने-जाने के लिये नीचे की ओर एक छोटा-सा छेद होता है। जब जोरों की वर्षा होती और खेतों में पानी भर जाता है, तब जमीन पर रहनेवाले अनेक छोटे जीव-जंतु डूब जाते हैं। पर खेत का चूहा अपने बाल-बच्चों के साथ आनंद से अपने घोंसले में बैठा-बैठा पानी की बहार देखा करता है।

× × ×

६. विचित्र पतिंगा

यह सफ़ेद रंग का होता है, और वृक्षों पर रहता है। इसके पर कुछ-कुछ काले और धब्बेदार होते हैं, और वृक्षों की छाल से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। इसके सिर के ओर छः हुक होते हैं, जिनके सहारे



विचित्र पतिंगा

यह वृक्षों से चिमटा रहता है। जब यह अपने पर समेटकर और शरीर को कड़ा करके अपने सिर के हुकों तथा पैरों के बल वृक्ष पर तिरछा होकर टँग जाता है, तो वृक्ष में निकली हुई एक छोटी-सी शाख की तरह मालूम पड़ता है। इसके अनेक शत्रु हैं। उनसे बचने का इसके पास केवल यही एक उपाय है।

भगनारायण दीक्षित



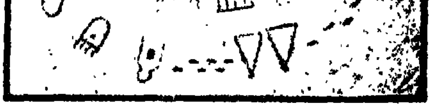
१. संसार की एक विचित्र भाषा

अमेरिका की इंडियन जाति एक विचित्र भाषा व्यवहार में लाती है। इसे हम चिह्न (Sign) और चित्र- (Picture) भाषा कह सकते हैं। कैलिफ़ोर्निया के विलियम टामकिन ने उनकी भाषा का एक कोष (Indian Sign Language) बनाया है। उसमें उन्होंने प्रायः ८०० इशारों का अर्थ दिया है। गत ४१ वर्षों से आप इंडियनों की भाषा का अध्ययन कर रहे हैं, इसलिये ऐसी आशा की जा सकती है कि आपने जितने इशारों का अर्थ दिया है, वे सही होंगे। पहले उन्होंने लाल-इंडियनों से घनिष्ठता बढ़ाई। फिर उनसे इशारे द्वारा बातचीत करना सीखा। इसके बाद उनकी बोली सीखी; इसके बाद उनके रहन-सहन, भाषा और विचित्र चित्र-भाषा सीखने में अपना समय लगाया। चिह्न-भाषा के कई उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं। ये चिह्न इतने सर्व-देश-व्यापी हैं कि उन्हें सीखने में कुछ भी समय नहीं लगेगा। इस देश के लोग भी उनमें से कई इशारों से काम लेते हैं।

इसी कोष में २२० चित्र-शब्दों के अर्थ भी दिए हुए हैं। इन शब्दों को वहाँ के पुराने बाशिंदे चट्टान, लकड़ी या चमड़े पर लिखते थे। ज़्यादहतर ये चित्र-शब्द कहानियाँ लिखने के काम में लाए जाते थे। ऐसी ही एक कहानी का चित्र यहाँ दिया जाता है। क्या आप उसे पढ़ सकते हैं? यदि नहीं, तो मैं आपकी सहायता करता हूँ, पढ़िए। बीच से आरंभ कीजिए, और घूमते घूमते बाहर निकलिए। हरएक चित्र का अर्थ है—"एक पुरुष और स्त्री में लड़ाई हुई।



ऊपर के चित्र में दाहना ओर मि० टामकिन खड़े हैं



चिह्न-भाषा के अर्थ-सहित कुछ नमूने

पुरुष शिकार खेलने जाना चाहता था, और स्त्री मना करती थी। किंतु पुरुष नहीं माना, वह तीर-धनुष लेकर जंगल की ओर चला। रास्ते में पानी पड़ने लगा। वह शरण पाने के लिये स्थान ढूँढने लगा। उसे दो झोपड़ियाँ मिलीं; किंतु एक में एक लड़का था, जिसके शीतला निकली हुई थी, और दूसरे में एक मनुष्य था, जिसके शरीर-भर में चेचक फूट निकली थी। उन झोपड़ियों में स्थान न पाकर वह दौड़ पड़ा, और एक नदी के तीर पर उपस्थित हुआ। एक मछली पकड़ी, उसे खा डाला, और दो दिन तक वहाँ आराम करता रहा। फिर आगे बढ़ा, और एक सुअर देखा। उसने सुअर को भी मारा, और उसे अपने पेट के हवाले किया। आगे बढ़ने पर उसे एक गाँव मिला; किंतु वहाँ के निवासी उसके शत्रु निकले, इसलिये उसे भागना पड़ा। भागते-भागते वह एक झील के पास पहुँचा। वहाँ उसने एक हिरन देखा। उसे अपने तीर से मार डाला, और मृत हिरन को घसीटते हुए अपने घर पहुँचा। उसकी स्त्री और बालक उसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए।"

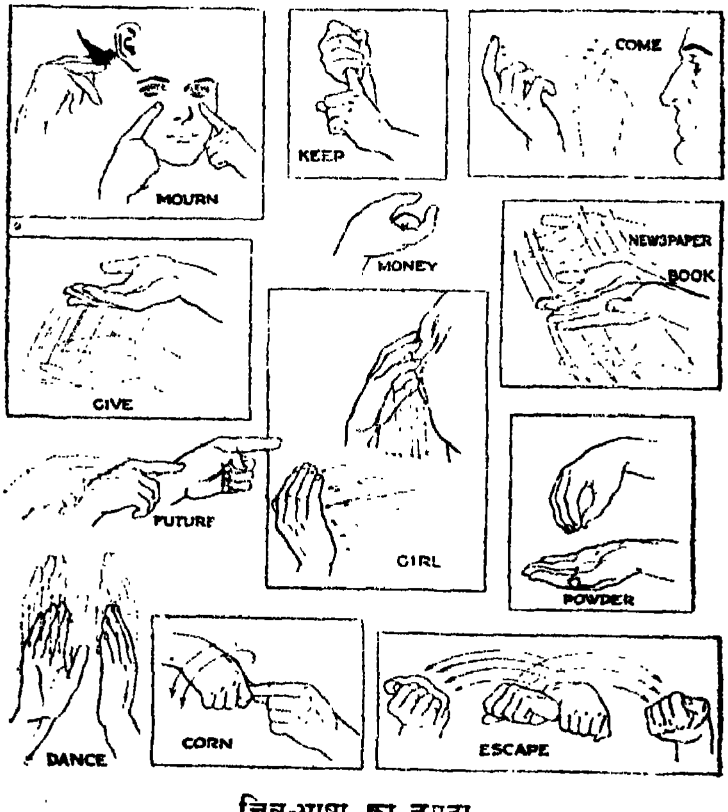
इस भाषा की तुलना अन्य किसी भी भाषा से नहीं हो सकती। यह बड़ा भावोत्पादक है। चिह्न-भाषा शायद संसार की सब-प्रथम भाषा है, और शायद यह पृथ्वी-व्यापी भी है। जिस देश के लोग हमारी बोली नहीं समझ सकते, उन्हें हम इशारा द्वारा ही अपने मनोगत भाव समझाते हैं। इस भाषा की उत्पत्ति आवश्यकता-वश ही हुई होगी। उत्तरी अमेरिका में इतनी जातियाँ रहती थीं, और वे इतनी भाषाओं का प्रयोग करती थीं कि एक दूसरे की बोली समझना उनके लिये मुश्किल था। जब एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों से मिलते थे, तब इसी भाषा द्वारा अपने भावों को प्रकट करते थे।

माँगने के लिये जिस प्रकार हम लोग हाथ फैलाते हैं, उसी प्रकार ये लाल-इंडियन मा बुलाने के लिये अपनी उँगली हिलाते हैं। आँख से आँसू टपकाने का इशारा शोक का भाव प्रकट करने के लिये कैसा अच्छा साधन है। बाल झाड़ने का भाव बतलाकर स्त्री और लड़की जताना कैसा स्वाभाविक है। नाचने का भाव हाथ ऊपर-नीचे करके बतलाया जाता है। इसी प्रकार के और-और भी भाव हैं।

× × ×

२. संसार का सबसे तेज़ प्राणी

मन के बाद सांसारिक वस्तुओं में सबसे तेज़ चलनेवाली वस्तु बंदूक की गोली है। मन एक सेकिंड में कितना तेज़ जाता है, इसका अंदाज़ा कोई भी अभी तक नहीं लगा सका। बंदूक की गोली एक सेकिंड में १००० गज़ जाती है। डॉ० चार्ल्स एच० टी० टाउनशेंड एक दिन मेक्सिको में एक नदी के किनारे खड़े थे। उनकी दृष्टि-पथ के सामने एक नारंगी रंग की वस्तु आई, और एक



चित्र-भाषा का नमूना

(इन चित्रों में एक कहानी लिखी हुई है, जिसका अर्थ नं० १ नोट में है)

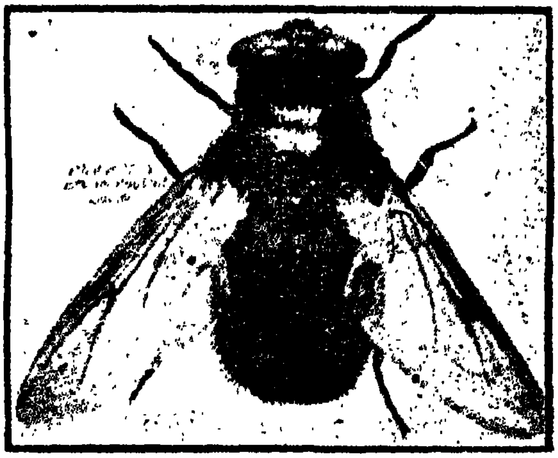
क्षण में ओझल हो गई। यह वस्तु संसार का सबसे तेज़ प्राणी था। मधु-मक्खी के सदृश और क़रीब उतना ही बड़ा यह कीड़ा संसार का सबसे तेज़ उड़नेवाला प्राणी है, जिसे हम अब तक जान सके हैं। यह उत्तरीय और दक्षिणी अमेरिका और योरप के कुछ हिस्सों में पाया जाता है। इसे 'केफ़िनोमिया' (Caphenomyia) कहते हैं। इसकी चाल घंटे में ८१५ मील (अर्थात् मिनट में प्रायः १४ मील) है।

अब इसकी तुलना पृथ्वी के तीव्र-गामी पदार्थों की चाल से कीजिए। आपको ज्ञात पड़ेगा कि इसकी चाल उनकी तुलना में कितनी अधिक है। एक सेकिंड में तेज़-से-तेज़ वायुयान १३० गज़, रेलगाड़ी ३० गज़ और सबसे तेज़ मनुष्य (चार्ली पैडक) ११ गज़ जाता है। पर 'केफ़िनोमिया' उसी समय में ४०० गज़ की दौड़ लगाता है! कहिए, यह सबसे तीव्र-गामी प्राणी ही नहीं, वस्तु भी है या नहीं? यदि मनुष्यों के लिये इस कीड़े की चाल से उड़ना या चलना संभव हो जाय, तो वे सिर्फ़ १७ घंटे में पृथ्वी-भर की परिक्रमा कर डालें। यदि कोई आदमी चार बजे सुबह उठकर इसकी चाल से न्यूयार्क से चले, तो वह रेनो (Reno) में कलेवा और पेकिंग के पास टिफ़िन करेगा, कांस्टेंटिनोपल में चाय पिएगा और मैड्रिड में ब्यालू करेगा। फिर भी रात के ६ बजे न्यूयार्क में हाज़िर होकर उस रात का सिनेमा या थिएटर देख सकेगा।

इस कीड़े के आविष्कार ने वैज्ञानिक संसार में हल-चल मचा दी है। कीड़े जब इतनी तेज़ी से उड़ सकते हैं, तो हम लोग अपने वायुयानों की गति को क्यों नहीं बढ़ा सकते? मनुष्यों ने आकाश में उड़ने की बात चिड़ियों से सीखी थी, और कुछ ही समय में उन्होंने इतनी उन्नति की कि वे चिड़ियों से भी तेज़ उड़ने लगे। अब हमें 'केफ़िनोमिया' ने बतलाया है कि जिस चाल से हमारे वायुयान इस समय उड़ रहे हैं, वह बड़ी धीमी है। इसके बाद यदि वैज्ञानिक चाल में इस कीड़े को मात करें, तब न उनकी तारीफ़ की जाय। इसके शरीर, पंख तथा अन्य शारीरिक अवयवों की परीक्षा कर वैज्ञानिक अपने वायुयानों का वज़न और आकार कम करना चाहते हैं। साथ ही वे उन्हें अधिक मज़बूत और लचीला भी बनाना चाहते हैं। शक्ति पैदा करने का तरीक़ा भी हमें इन्हीं कीड़ों से सीखना पड़ेगा। ये किस प्रकार इतनी शक्ति पैदा करते हैं, क्योंकर इतनी तेज़ी से उड़ सकते हैं, कौन शक्ति इन्हें इतने समय तक उड़ने के योग्य बनाती है—ये ऐसे विषय हैं, जो वैज्ञानिकों के ध्यान को इस समय आकृष्ट कर रहे हैं। ऐसा देखा गया है कि ये कीड़े ऊँचे पहाड़ों पर, जहाँ का वायुमंडल साफ़ होता है, देर तक धूप में बैठे रहते हैं। हो सकता है, ये सूर्य की तीव्र बैंगनी-किरण (ultra violet rays) से शक्ति ग्रहण करते हों।

हमारे तेज़ वायुयानों के पंखे मिनट में दो हज़ार बार घूमते हैं। किंतु वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इन कीड़ों के डैने सेकिंड में लाखों बार हिलते हैं, और इसलिये ये इतनी तेज़ी से चल सकते हैं। यदि हमें अपने वायुयानों की गति को बढ़ाना है, तो उनके पंखों को और तेज़ी के साथ घुमाना पड़ेगा। वायुयानों के तेज़ चलने में वायु की रुकावट भी बाधक है। 'केफ़िनोमिया' किस प्रकार इस रुकावट को दूर करता है, यह भी एक अज्ञात विषय है। शायद इसके शरीर में छोटे-छोटे रोएँ होते हैं, इसीलिये यह वायु की रुकावट का अनुभव नहीं कर पाता।

किंतु सबसे बड़ी कठिनाई जो इस समय हमारे सामने उपस्थित है, वह इन कीड़ों को पकड़ने की है। ये इतना तेज़ उड़ते हैं कि इन्हें पकड़ना मुशकिल हो जाता है। धोखा देकर जो दो-चार पकड़े हैं, वे अभी चिड़ियाख़ाने में रक्खे गए हैं। इनके शरीर की परीक्षा के लिये हमें बहुत-से कीड़ों को पकड़ना पड़ेगा।



संसार का सबसे तेज प्राणी केफ़िनोमिया

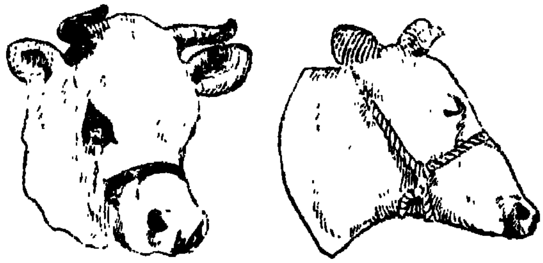
इन कीड़ों के अंडा देने का तरीक़ा बड़ा विचित्र है। ये हिरने, बारहसिंगे आदि जानवरों की नाक में अंडा दिया करते हैं। जहाँ इन जानवरों के झुंड चरते होते हैं, वहीं ये पहुँच जाते हैं, उनके सिर के चारों ओर उड़ते-उड़ते उनकी नाक में घुस जाते और वहाँ अंडा देते हैं। किंतु यह काम जानवरों को प्रीतिकर नहीं जान पड़ता। वे ज़ोरों से छींकते हैं, और ये कीड़े निकल पड़ते हैं। किंतु इनके अंडे नाक के भीतर ही रह जाते हैं। इसके बाद कीड़ा दूसरे जानवर की नाक में अंडा देने के लिये चला जाता है।

× × ×

२. गऊ

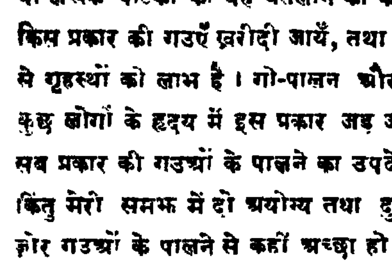
गउओं की उपयोगिता, उनके पालने के लाभ आदि विषयों पर हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः लेख निकला करते हैं। किंतु, जहाँ तक मैं जानता हूँ, कोई भी संपादक या लेखक पाठकों को यह बतलाने का कष्ट नहीं करता कि किस प्रकार की गउएँ ख़रीदी जायँ, तथा कैसी गउएँ पालने से गृहस्थों को लाभ है। गो-पालन और गो-रक्षा का भाव कुछ लोगों के हृदय में इस प्रकार जड़ जमाए हुए है कि वे सब प्रकार की गउओं के पालने का उपदेश दिया करते हैं। किंतु मेरी समझ में दो अयोग्य तथा दुबली-पतली कमज़ोर गउओं के पालने से कहीं अच्छा हो कि एक हट्टी-कट्टी अधिक दूध देनेवाली अच्छी नस्ल की गाय पाली जाय, और उसी से अच्छी गउएँ तैयार की जायँ। अच्छी गउएँ ख़रीदी नहीं जातीं। वे अपने यहाँ तैयार की जाती हैं। गऊ ख़रीदते समय उसकी अच्छी तरह परीक्षा कर लेनी चाहिए। यह भी याद रखने लायक़ बात है कि जब तक गऊ को आप अपने यहाँ कुछ दिन रखिएगा नहीं, तब तक उसके गुणागुण को आप ठीक-ठीक समझ न पाइएगा।

ख़रीदते वक़्त यह देख लेना चाहिए कि जो गऊ ख़रीदी जाय, वह अच्छी नस्ल की हो, और उसका स्वास्थ्य अच्छा हो। अच्छा स्वास्थ्य होने का एक लक्षण गऊ की नाक और नथनों का बड़ा होना है। नथने (नाक के छिद्र) बड़े होने से गउएँ साँस द्वारा अधिक हवा ले सकती हैं। जिनका चेहरा भरा हुआ, किंतु मांस-युक्त न हो, जिनकी आँखें चमकीली पीछे का हिस्सा चौड़ा, थन बड़े-बड़े और दूर-दूर हों, ऐसी गउएँ अच्छी समझी जाती हैं। धीमी आँख, पतला मुँह, छोटा स्तन, पतले पीछे के हिस्सेवाली गउएँ अच्छी नहीं होतीं। जो गऊ अपने अगले और पिछले पैरों को सटा-सटाकर खड़ी होती हो उसे कभी नहीं ख़रीदना चाहिए। पैर फैलाकर खड़ी होनेवाली गउएँ अधिक दूध देती और अच्छी नस्ल की समझी जाती हैं।

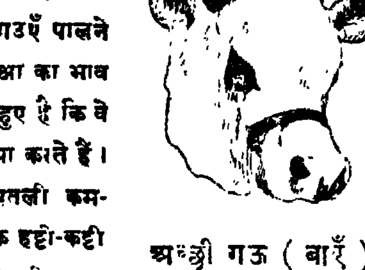


अच्छी गऊ (बाएँ) और ख़राब गऊ (दाहने) के सिर के चित्र

अच्छी गउओं का चमड़ा नरम, मुलायम और गठा हुआ होता है। उनकी पसली की हड्डियाँ तीन-तीन अंगुल की दूरी पर होती हैं। ऐसी गउओं की रीढ़ उठी हुई और उसके जोड़ सटे-सटे होते हैं। गऊ ख़रीदते समय इस बात का भी ख़याल रखना चाहिए कि उसकी पीठ टेढ़ी न हो। कंधे से पूँछ की जड़ तक जिन गउओं की पीठ सीधी हो, वे ही अच्छी होती हैं। जिन गउओं के थन लंबे, चिकने और नीचे की ओर झुके हुए, किंतु ज़मीन को छूते हुए न हों, वे ही अच्छी समझी जाती हैं। थन बड़ा होने से उसमें अधिक परिमाण में दूध रहता है। अलग-अलग होने से दुहने में सुगमता होती है।



अच्छी गऊ



ख़राब गऊ

गऊ ख़रीदते समय आप उसके दूध का अंदाज़ा भी नहीं लगा सकते ; क्योंकि बेचने के समय बेचनेवाला दूध अधिक दिखलाने की नीयत से उसे दूध बढ़ानेवाले पदार्थ खिला देता है, जिससे उस समय तो दूध बढ़ आता है, किंतु पीछे असलियत का पता चलता है। गउओं से सदा प्रेम और दया का व्यवहार करना चाहिए। लहसुन आदि खिलाने से गउओं के दूध में उसकी बदबू आ जाती है।

× × ×

४. स्वप्न-निर्देशक यंत्र

साइंस एंड इनवेंशन-नामक एक वैज्ञानिक पत्र में स्वप्न-निर्देशक यंत्र का वर्णन छपा है। यह यंत्र किसी मनुष्य के शरीर के साथ, उसके हृदय के पास, बाँध दिया जाता है, और उसका संबंध एक 'रेकार्डर' के साथ कर दिया जाता है। 'रेकार्डर' में काग़ज़ लगा रहता है, जिस पर



स्वप्न-निर्देशक यंत्र

उक्त मनुष्य का स्वप्न अंकित होता जाता है। अवश्य ही जो स्वप्न मनुष्य देखता है, उसका वर्णन या दृश्य नहीं, किंतु उसके हृदयोत्थित भावों का संकेत-मात्र अंकित होता है। स्वप्न-काल में मनुष्य के हृदय में जो-जो भाव—दुःख, हर्ष, शोक, विषाद, क्रोध, उत्तेजना आदि—उठते हैं, उनका यह एक ख़ासा चित्र होता है।

× × ×

५. बालों की गणना

अब मनुष्यों के सिर के बाल गिने और तौले जाने लगे हैं। न्यूयार्क के चार्ल्स नेस्लर ने दो ऐसे यंत्र बनाए हैं, जो ऊपर लिखे कार्य करते हैं। एक यंत्र मनुष्य के सिर के बालों को ठीक-ठीक गिन डालता है। साधारणतः मनुष्यों के सिर का क्षेत्रफल १०० से १३० वर्गइंच होता है, और बालों की संख्या १,००,००० से २,९०,००० तक होती है। मनुष्यों के सिर के बाल प्रतिमास आधे इंच के हिसाब से बढ़ते हैं। दूसरा यंत्र बालों का गुण बतलाता है। इस यंत्र द्वारा पता लगा है कि बालों में ऊन के-से गुण होते हैं। पानी से ऊन और बाल, दोनों सिकुड़ते हैं। यही नहीं, यह यंत्र यह भी बतलाता है कि बाल कितना सिकुड़ा।

× × ×

६. खोई हुई वस्तु

बहुत-से लोग अपनी असावधानी के कारण अपनी वस्तुएँ रेल के डब्बे, टैक्सी, भाड़े की गाड़ी या ट्रम्टम पर छोड़ जाते हैं। इस देश में ऐसी कोई संस्था नहीं, जो उनका पता लगावे, और उन्हें उनके असली मालिक के हवाले कर दे। यहाँ ऐसा कोई क़ानून भी नहीं, जो दूसरे की वस्तु पानेवाले और उसे उसके मालिक को न देनेवालों को दंड दिया करे। किंतु इँगलैंड में जो वस्तुएँ रेल, टैक्सी, 'बस', पुस्तकालय, गिरजाघर या किसी अन्य सार्वजनिक स्थानों में पाई जाती हैं, वे १८७० ई० में पास हुए एक एक्ट के मुताबिक़ स्कॉटलैंड-यार्ड-ऑफ़िस में पहुँचा दी जाती हैं। यदि कोई मनुष्य किसी पाई हुई वस्तु को २४ घंटे के भीतर उक्त ऑफ़िस में नहीं पहुँचाता, और उसका पता लग जाता है, तो उसे १० पौंड जुर्माना देना पड़ता है। हमारे यहाँ जिस प्रकार लोग पाई हुई वस्तु को हज़म कर लेते हैं, वैसा इँगलैंड में कोई नहीं करने पाता। इसके अलावा पानेवालों को इनाम देने की भी व्यवस्था Lost Property Act में है। प्राप्त वस्तु के मूल्य का प्रति पौंड दो से तीन शिलिंग के हिसाब से पानेवाले को इनाम

मिलता है। किंतु यह रक़म एक शिलिंग से कम न होनी चाहिए। छोटी-छोटी वस्तुओं पर ही इतना कम इनाम मिलता है। अधिक मूल्य की वस्तुओं पर इससे कहीं ज़्यादा इनाम होता है। एक भाग्यशाली 'बस'-ड्राइवर को एक गठरी मिली, जिसमें तीन हज़ार पौंड के जवाहरात थे। इसका इनाम उसे पचहत्तर पौंड मिला। उससे भी भाग्यवान् वह गाड़ीवान था, जिसने ३,५०० पौंड के सरकारी काग़ज़ पाए थे। इसके ईमान का पुरस्कार उसे सौ पौंड मिले। यह भी एक अच्छा पेशा है।

पाई हुई वस्तुएँ तीन महीने तक स्कॉटलैंड-यार्ड में रक्खी जाती हैं। यदि इस समय तक उन्हें लेने के लिये कोई आदमी नहीं आता, तो इस अवधि के बाद उन्हें पानेवाले चाहें, तो ले सकते हैं। अन्यथा वे बेच दी जाती हैं। चेक-किताब, चिट्ठियाँ, और अन्य दस्तावेज़-पत्र जला डाले जाते हैं।

रेल और स्टेशनों पर पाई हुई वस्तुओं के लिये रेलवे-कंपनी ने अपना अलग नियम बनाया है। वहाँ पार्लियामेंट के क़ानून की पाबंदी नहीं होती। इन स्थानों पर पाई हुई चीज़ें रेलवे-क्लीयरिंग हाउस में भेज दी जाती हैं। वहाँ उनकी सूची तैयार करके ख़ास-ख़ास स्थानों पर चिपका दी जाती है। जिनकी वे वस्तुएँ होती हैं, वे इसी क्लीयरिंग हाउस से उन्हें ले सकते हैं। लावारिस सामान कुछ दिनों के बाद नीलाम कर दिया जाता है।

× × ×

७. नए तर्ज़ की क़लम

एक नए तर्ज़ की क़लम ईजाद हुई है। उसमें लिखने के लिये रोशनाई के बदले पानी का व्यवहार किया जाता है। यह क़लम फ़ाउंटेन पेन के सदृश है। इसकी नली में पतली रोशनाई के बदले ठोस रोशनाई की एक पतली-सी सींक लगी रहती है। यह सींक निब तक पहुँचती है। लिखने के समय क़लम को पानी में डुबा देते हैं। पानी कुछ रोशनाई को घुलाकर उसे लिखने लायक़ बना देता है। इस प्रकार की क़लम से सिर्फ़ एक ही फ़ायदा हमें देख पड़ता है। दावात के लुढ़क जाने से जो रोशनाई की बरबादी होती थी, वह इस क़लम के व्यवहार से न होगी। दावात में रोशनाई के बदले पानी रहेगा। अगर गिरेगा भी, तो पानी ही। फ़ाउंटेन पेन में जो सुबीता है, वह इसमें नहीं। हाँ, लड़कों को ऐसी क़लम देने से रोशनाई का नुक़सान बेशक न होगा।

× × ×

८. भेड़ों के बालों की बाढ़

लीड्स-विश्वविद्यालय के प्रो० बेकर ने चेस्टर में एक वक्तृता देते हुए कहा है कि एक ऐसा तरीक़ा निकाला गया है, जिससे भेड़ों के बाल जल्दी-जल्दी बढ़ाए जा सकें। इसके आविष्कारक एक जापानी वैज्ञानिक हैं। उन्होंने एक प्रकार की एक तरल दवा बाज़ार में रक्खी है। इस दवा को एक दिन का बीच देकर भेड़ों के शरीर में सुई द्वारा प्रवेश कराने से उनके बाल जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं। सिर्फ़ दो महीने के इंजेक्शन से बाल इतने बढ़ जाते हैं, जितने साधारण अवस्था में बारह महीने में बढ़ते हैं। इस दवा के प्रयोग से साल में दो-तीन बार भेड़ों के बाल काटे जा सकेंगे। इस प्रकार संसार की ऊन की उत्पत्ति बढ़ जायगी।

× × ×

९. ३५ इंच व्यास का फूल

बोर्नियो में एक फूल पाया गया है, जिसका व्यास ३५ इंच होता है। इसकी कलियाँ मनुष्य के सिर के बराबर होती हैं।

रमेशप्रसाद



१. पतिव्रता श्रीमती वौंडर वार्ट

श्रीमती वौंडर वार्ट के विषय में पाश्चात्य देशों में यह बात प्रसिद्ध है कि वह एक आदर्श पतिव्रता स्त्री थीं। उनके पति पर यह अभियोग लगाया गया था कि वह स्वेबिया-निवासी जॉन के साथ सम्राट् अलबर्ट के वध में सम्मिलित थे। यद्यपि यह अभियोग पुराने और नए इतिहासज्ञों के प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता कि उनके पति रुडाल्फ़ वौंडर वार्ट ने इस निकृष्ट कार्य में कोई तात्कालिक भाग लिया हो, फिर भी इस अभियोग पर ही उनको अपने जीवन से हाथ धोने पड़े, और उनको चर्ख़ * पर चढ़ा दिया गया। यह दुर्घटना सन् १३०८ में हुई। वौंडर वार्ट अंत समय तक यही कहते रहे कि मैं निर्दोष हूँ; परंतु सुनता कौन था। अंत समय तक इनकी पतिव्रता स्त्री गर्ट्रूड उनके पास रहीं। श्रीमती गर्ट्रूड ने इस समस्त दुर्घटना का वृत्तांत अपने मित्र फ़्रौनस्टर्न को इस प्रकार लिखा था—

“प्रिय फ़्रौनस्टर्न, मैं अपनी विपत्तियों का वृत्तांत तुम्हें किस प्रकार लिखूँ? हृदय विदीर्ण हो रहा है, लेखनी चलती नहीं। मुझसे जो कुछ भी अपने पति की सेवा हो सकती थी, वह मैंने की। चर्ख़ के नीचे बैठे-बैठे ही जो कुछ मुझसे बन पड़ा, सब कुछ किया। जब उनको चर्ख़ पर चढ़ा दिया गया, और कष्ट असह्य हो गया, तो कभी मैं ईश्वर से उनकी आत्मा की शांति के लिये प्रार्थना और कभी धैर्य धारण करने के लिये उनको उत्साहित करती थी। जब उनका शरीर इस असह्य कष्ट से अत्यंत निर्बल होकर काँपने लगा, तो मैंने पास पड़ी हुई मोटी लकड़ियों से चर्ख़ तक चढ़ने के लिये एक सीढ़ी बनाई। इस सीढ़ी के सहारे मैं उनके पास पहुँची, उनके काँपते हुए शरीर के अंगों को सहारा दिया, और मुख पर हवा के झोंकों से सिर के बाल जो आ गए थे, उनको हटाया।

“मुझे देखकर मेरे पति बहुत घबराए और निरंतर चिल्लाते रहे—‘मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, मैं तुम्हारी विनती करता हूँ, तुम यहाँ से चली जाओ। प्रातःकाल होने पर यदि किसी ने तुम्हें यहाँ देख लिया, तो क्या जानें, तुम्हारी क्या गति होगी, और मेरे ऊपर और कौन-सी नई आपत्ति आवेगी। हे परमात्मन्! क्या अभी तक मेरे संकटों का अंत नहीं।’

“इस पर मैंने उत्तर दिया—‘मैं आपके साथ ही आज अपना जीवन त्यागूँगी। इसीलिये मैं यहाँ आई हूँ। संसार में कोई शक्ति ऐसी नहीं, जो मेरा आपसे वियोग

* प्राचीन समय में चर्ख़ एक लकड़ी का चक्कर होता था, जिस पर अपराधी को चढ़ा दिया जाता और उसे घुमाया जाता था। ऐसा करने से अपराधी का अंग भंग हो जाता था, और अंत को वह मर जाता था।

करा सके।' यह कहकर मैंने उनको अपने गले से लगा लिया, और ईश्वर से अत्यंत अधीनता के साथ बिनती करने लगी कि वह मेरे पति को शीघ्र मृत्यु दें, जिसमें वह इस असह्य कष्ट से छूट जायँ। यह रात्रि की बात थी।

"धीरे-धीरे प्रातःकाल का समय आ गया। इस समय बहुत-से मनुष्य मेरी ओर आते हुए दिखाई दिए। मैंने उन मोटी लकड़ियों को, जिनकी सीढ़ी बनाई थी, जहाँ से उठाया था, वहीं रख दिया। रात्रि के समय पहरेदार मुझे देखकर भाग गया था; परंतु कहीं आस-पास ही छिपा हुआ था। रात्रि को जो कुछ हुआ, उसे पहरेदार ने सारे नगर में फैला दिया, जिसका फल यह हुआ कि प्रातःकाल ही नगर के मर्द, औरत और बच्चों के समूह हमें देखने आने लगे।

"जब मेरे निकट बहुत-से स्त्री-पुरुष आने लगे, तो उनमें मैंने कई अपनी परिचित स्त्रियों को भी देखा। इन स्त्रियों में लागो वीनविनटरियट—नगर-कोतवाल की स्त्री—भी थी। मैंने उसको प्रणाम करके उससे प्रार्थना की कि वह अपने पति से कहकर वधिक को तुरंत मेरे पति के कष्ट-निवारण की आज्ञा दिला दे।

"मेरे पति ने भी इस मेरी प्रार्थना को सुन, चर्ख़ पर से ही मेरी ओर फूली हुई आँखों से देखा, और ठंडी साँस भरकर कहा—'कोतवाल क्या कर सकते हैं? महारानी ने प्राण-दंड दिया है। कोतवाल को तो आज्ञा का पालन करना ही होगा। यदि ऐसी आज्ञा न होती, और कोतवाल इस अंतिम प्रार्थना को स्वीकार कर लेते, तो वह मेरा बड़ा ही उपकार करते।'

"कुछ व्यक्ति मिठाई और अन्य खाद्य पदार्थ भी मेरे जल-पान के लिये ले आए थे; परंतु मैं यह जल-पान कब कर सकती थी? मेरे लिये तो उपस्थित जनता के आँसू, जो उस समय मेरे दुःख में उनके नेत्रों से निकल रहे थे, और हरएक उपस्थित हृदय में हमारे लिये जो दया और करुणा उत्पन्न हो रही थी, वही सबसे बड़ी जलपान की सामग्री थी। जैसे-जैसे दिन चढ़ता गया, जनता की संख्या और भी बढ़ती गई। इस समूह में मैंने नगर के हाकिम स्टीनर वॉन फ़गेन को, और उनके दोनों लड़कों को भी, देखा। एक अन्य महिला—वॉन न्यूफ़्रेमवेक—को भी देखा, जो हमारे कष्ट और संकट के निवारण के लिये हाथ जोड़ परमात्मा से प्रार्थना कर रही थी।

"आख़िर को वधिक भी आ गया, और साथ ही लेफ़्रेक्ट-नामक पादरी भी आए। वधिक ने ठंडी साँस भरकर कहा—'हे परमात्मन्! इस दुर्भाग्य पर दया करो, और इसकी आत्मा को शांति दो।' पादरी ने मेरे पति से पूछा—'तुम अपने अपराध को स्वीकार करते हो कि नहीं?' वार्ट ने यह सुनते ही अपनी आत्मा का सारा बल लगाकर उन्हीं शब्दों को फिर दोहराया, जो उन्होंने महारानी के समीप न्यायालय में कहे थे, और अभियोग को सार-हीन बतलाया था। पादरी यह सुनकर मौन हो गया।

"इसके पश्चात् तुरंत ही 'मार्ग ख़ाली करो, मार्ग ख़ाली करो' के शब्द सुनाई दिए, और सवारों की सेना अपने कपाल-त्राण उतारे हुए आगे बढ़ी। वधिक घुटनों के बल बैठ गया। पादरी ने अपनी छाती पर हाथ रखकर ठंडी साँस भरी। माता-पिता ने अपने बच्चों को गोद में उठा लिया, और सवार घेरा बनाकर खड़े हो गए। इन सवारों में सबसे लंबे सवार ड्यूक लिओपोल्ड ने रिकाब में ही खड़े होकर वधिक से कहा—'कौए आज कहाँ उड़ गए, जो इस पापी के नेत्रों को नोच नहीं लेते!' फिर दूसरे सवार ने घृणा-पूर्ण दृष्टि से मेरे पति को देखा, और मुँह बनाकर कुछ हँसते हुए कहा—'जब तक इसके साँस में साँस है, इसको तड़पने दो। परंतु इस समूह को यहाँ से हटा देना चाहिए।—ओ दुष्टो! तुम्हारे इस रोने-चिल्लाने से मेरा सिर फिरा जाता है। ये कदापि दया के पात्र नहीं हो सकते। यह स्त्री यहाँ कहाँ से आई? यह कौन है? इसका यहाँ क्या काम है? इसको अभी यहाँ से भगा दो।'

"इस समय मैंने महारानी की बोली पहचानी, जिसका नाम आग्नेस था, और जो सवार के वेष में थी। मैंने पहचान लिया कि यह किसी स्त्री के मुख के शब्द हैं, और निस्संदेह यह आग्नेस है।

"तीसरे सवार ने कहा—'यह वार्ट की स्त्री है। गत रात्रि को जब मृत्यु का हुक्म सुनाया गया, हम इसको अपने साथ कीबर्ग ले गए थे। यह हमें वहाँ छोड़कर भाग आई, और अब इसको हम यहाँ देख रहे हैं। हमारा तो अनुमान यह था कि निराश होकर यह कोट की जल-भरी खाई में कूद पड़ी होगी। हम तो इसको प्रातःकाल से ढूँढ रहे हैं। कैसी पतिव्रता है! इसको अब आने दो, इससे हमको क्या लेना है?'

"इस समय मैंने सज्जन स्वभाववाले लैंडेनबर्ग को भी पहचाना। मेरे विषय में उसने कई उत्तम विचार प्रकट किए। उनको सुनकर मेरा चित्त यह चाहता था कि उसके पैरों पर गिर पड़ूँ।

"चौथे सवार ने कहा—'गर्टड, क्या तुम अपनी भलाई की बात नहीं सुनोगी? आत्मघात मत करो। संसार के उद्धारार्थ ही अपने को बचाओ। तुम निश्चय जानो, ऐसा करने से तुम्हें पछताना नहीं पड़ेगा।' यह कहनेवाला कौन था? यह मार्गरेट थी। मैं काँपने लगी। इसी ने मार्ग में मुझसे अनेक बार कहा था कि इस अपराधी वार्ट को इसके भाग्य पर ही छोड़ दो, और मेरे साथ सुख-चैन से रहो। यह सुनते ही मेरा हृदय विदीर्ण हो गया, और मैं रो उठी—'हे परमात्मन्! अब तो यह दुःख सहा नहीं जाता। दया करो।'

"आगनेस ने एक सवार को संकेत किया कि मुझे उठाकर चर्ख़ से दूर ले जाय। वह सवार जैसे ही मेरे पास पहुँचा, मैंने अपनी बाँहें, जिस स्थान पर वह चर्ख़ रक्खा था, उसके चारों ओर डाल दीं, और अपनी ओर अपने पति की मृत्यु के लिये विश्वपति के दरबार में प्रार्थना करने लगी। परंतु मेरे इस प्रयत्न का फल कुछ भी नहीं हुआ। दो मनुष्य मुझे वहाँ से घसीट लाए। मैंने परमात्मा से सहायता माँगी, और अंत को परमात्मा ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ही ली।

"वॉन लैंडनबर्ग ने, जो आस्ट्रिया का सच्चा सेवक था, फिर कहा—'इस दुखिया को मत सताओ। ऐसा पतिव्रत धर्म इस पृथ्वी पर दुर्लभ है। देवता भी इस पतिभक्ति से हर्षित हो रहे हैं। इस समय इस जनता के समूह को हटा देना चाहिए।'

"जो मुझे उठाकर लाया था, उस सवार ने मुझे छोड़ दिया, और अन्य सवार भी चले गए। लेम्प्रेक्ट के नेत्रों से जल की धारा बहने लगी। लेम्प्रेक्ट ने अपने कर्तव्य का दृढ़ता के साथ नियम-पूर्वक पालन किया, और महारानी की आज्ञा पूरी की। परंतु आज्ञा-पालन के साथ ही दया और करुणा ने सर्वथा उसको जकड़ लिया, और मेरे साथ-साथ वह भी रोने लगा—'हे देवी, मुझसे अब रहा नहीं जाता। मेरी आँखों में घोर अंधकार छा रहा है। तुम्हारे नाम का स्वर्गवासी कीर्तन किया करेंगे। यह निर्दय संसार भला तुम्हें क्या याद रक्खेगा? देखना, अंत समय तक प्रीति की रीति निभाना—पतिव्रत-धर्म का पालन करना। परमात्मा तुम्हारे साथ है, वह तुम्हारी रक्षा करेगा।' यह कहकर लेम्प्रेक्ट मेरे पास से चला गया।

"इस समय सिवा पहरेदार और वधिक के सभी चले गए थे। सायंकाल आया, और फिर रात्रि भी आ गई। रात्रि के आगमन के साथ ही आँधी का भी आगमन हुआ, और इस घोर प्राकृतिक विप्लव में मैंने भी रो-रोकर अपनी आंतरिक विनय दुःख-भंजन दीनानाथ के दरबार में पहुँचाई।

"रात्रि को जब ठंडी हवा बहुत चलने लगी, तो पहरेदार मेरे ओढ़ने के लिये एक वस्त्र लाया। इस वस्त्र को लेकर मैं चर्ख़ पर चढ़ गई, और इसे मैंने अपने पति के नग्न और थके हुए शरीर पर डाल दिया। ठंडी हवा उनके रोम-रोम को वेध रही थी, और उनका कंठ सूख रहा था। मैं अपने पाँव के जूते में कुछ जल लाई, और वह हम दोनों ने पिया। मुझे इस समय कोई आश्चर्य है, तो यही कि इस घोर संकट को अपनी आँखों से देखते हुए भी मैं कैसे जीवित रही! उस परमात्मा को मैं किस प्रकार धन्यवाद दूँ, जिसने मुझे साहस और बल दिया, जिससे मैं अपने पति के चरणों में बैठी हुई उसका ध्यान करती रही।

"जब कभी मेरे पति के मुख से कोई आह निकलती, तो ऐसा प्रतीत होता था, मानो मेरे हृदय में तीर लग रहे हैं। इस घोर संकट में यदि मेरे लिये कोई ढाढ़स की बात थी, तो बस, यही कि इस थोड़े-से समय के संकट के पश्चात् मैं अनंत सुख की भागी हूँगी। इसी आशा ने मुझे अत्यंत सहनशील बना रक्खा था।

"यद्यपि मेरे पति ने प्रथम बहुत आग्रह-पूर्वक यह कहा था कि मैं उनके पास से चली जाऊँ, मेरे निकट ठहरने से उनको और भी कष्ट होता है, परंतु इस समय अंत में उन्होंने अनेक धन्यवाद दिए। जब मैं उनके कष्ट-निवारण के लिये परमात्मा से प्रार्थना करती थी, तो उनको बहुत ही शांति मिलती थी।

"मुझमें कदापि यह शक्ति नहीं कि अपने पति के अंत समय का किसी प्रकार भी वर्णन कर सकूँ। सायंकाल के समय, मृत्यु से पहले, उन्होंने अंतिम बार अपने सिर को हिलाया। यह समझकर कि संभव है, कुछ कहना चाहते हों, मैं उनके और भी निकट गई। इस समय

उन्होंने बड़े धीमे स्वर से ये अंतिम शब्द उचारण किए—'प्रिये ! तुमने मुझे मेरे अंत तक निभाया।' यह कहते ही फ़ौरन् उनके प्राण निकल गए। मैं पति के मृत शरीर को देख-देखकर परमात्मा को अनेक धन्यवाद देने लगी कि उसने इस कठिन परीक्षा में मेरी सहायता की।"

श्यामाचरण

× × ×

२. सतिया लेस

७० नंबर के धागे से बुनो। इस लेस की चौड़ाई ३½ इंच होगी।

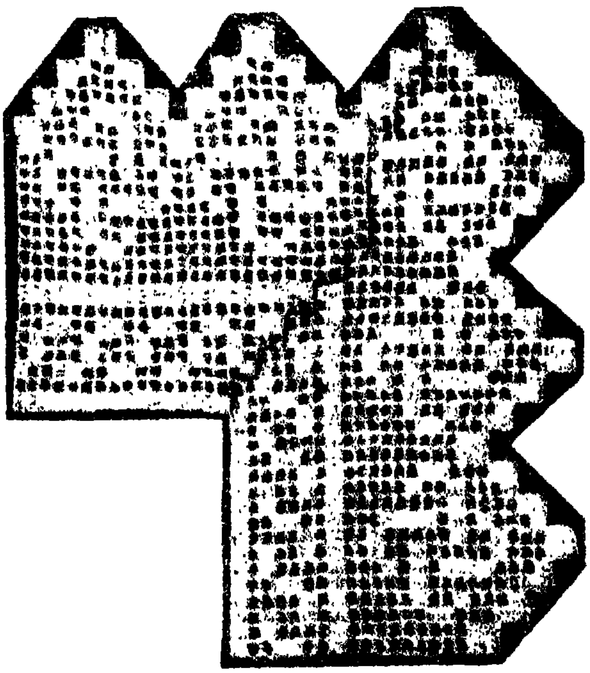
प्रारंभ में ६२ चेन करो।

१ पंक्ति—१ तेहरा चेन के चौथे घर में, ५ तेहरे और सब ७ तेहरे हो जायँगे—१ ख़ाने, ४ ते०, २ ख़ा०, ७ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, ३ चेन लौटो।

२ पंक्ति—३ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, ४ ख़ा०, ४ ते०, ६ ख़ा०, ७ ते०, ६ चेन चौड़ा करने के लिये लौटो।

३ पंक्ति—४ घर छोड़ो, ५ ते० अगले ५ घरों में, १ ते० पहले ते० में, ३ ख़ा०, ७ ते०, ६ ख़ा०, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, ३ चे० लौटो।

४ पंक्ति—३ ते०, ४ ख़ा०, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, ५ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, ३ ख़ा०, ४ ते०, ६ चे० पहले की भाँति चौड़ा करने के लिये लौटो।



५ पंक्ति—७ ते०, ७ ख़ा०, ४ ते०, ५ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ७ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, ३ चे० लौटो।

६ पंक्ति—३ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, ४ ख़ा०, ४ ते०, ३ ख़ा०, (४ ते०, १ ख़ा०) दो बार, १३ ते०, ३ ख़ा०, ४ ते०, ६ चे० लौटो।

७ पंक्ति—७ ते०, ३ ख़ा०, ४ ते०, ५ ख़ा०, (४ ते०, २ ख़ा०) दो बार, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, ३ चेन लौटो।

८ पंक्ति—३ ते०, ४ ख़ा०, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, ५ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, ३ ख़ा०, ७ ते० लौटो।

९ पंक्ति—७ ते० पर सादा फंदा, ३ चेन पहले ते० के लिये, ३ और ते०, ३ ख़ा०, (४ ते०, १ ख़ा०) दो बार, १३ ते०, ३ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ७ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, ३ चे० लौटो।

१० पंक्ति—३ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, ४ ख़ा०, ४ ते०, ८ ख़ा०, ४ ते०, ४ ख़ा०, ७ ते० लौटो।

११ पंक्ति—७ ते० पर सादा फंदा, ३ चेन, ३ और तेहरे, ३ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, ५ ख़ा०, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, ३ चे० लौटो।

१२ पंक्ति—३ ते०, ४ ख़ा०, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, ६ ख़ा०, ७ ते०, ३ ख़ा०, ७ ते० लौटो। सादा फंदा ७ ते० पर। अब पहली पंक्ति से बनाती जाओ।

कोने के लिये ५वीं पंक्ति के अंत में ५ चेन करके लौटो।

१ पंक्ति—२ ख़ा०, ४ ते०, ४ ख़ा०, ४ ते०, ३ ख़ा०, (४ ते०, १ ख़ा०) दो बार, १३ ते०, ३ ख़ा०, ४ ते०, ६ चेन चौड़ा करने के लिये।

२ पंक्ति—७ ते०, ३ ख़ा०, ४ ते०, ५ ख़ा०, (४ ते०, २ ख़ा०) दो बार, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, ५ चे० लौटो।

३ पंक्ति—३ ख़ा०, ४ ते०, १ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, ५ ख़ा०, ४ ते०, २ ख़ा०, ४ ते०, ३ ख़ा०, ७ ते० लौटो।

४ पंक्ति—सादा फंदा ७ तेहरों पर, ३ चे०, ३ ते०,

३ ख़ा०, (४ तै०, १ ख़ा०) दो बार, १३ तै०, ३ ख़ा०, ४ तै०, २ ख़ा०, ४ तै०, ५ चे० लौटो।

५ पंक्ति—३ ख़ा०, ४ तै०, ८ ख़ा०, ४ तै०, ४ ख़ा०, ७ तै० लौटो।

६ पंक्ति—सादा फंदा पहले की तरह, ३ चे०, ३ तै०, ३ ख़ा०, ४ तै०, २ ख़ा०, ४ तै०, ५ ख़ा०, ४ तै०, १ ख़ा०, ३ चे० लौटो।

७ पंक्ति—६ और तेहरे, ६ ख़ा०, ७ तै०, ३ ख़ा०, ७ तै० लौटो।

८ पंक्ति—सादा फंदा पहले की तरह, ३ चे०, ६ तै०, ६ ख़ा०, ५ चे० लौटो।

९ पंक्ति—९ ख़ा०, ७ तै०, ९ चे० चौड़ा करने के लिये लौटो।

१० पंक्ति—७ तै०, ३ ख़ा०, ७ तै०, ४ ख़ा०, ५ चे० लौटो।

११ पंक्ति—३ ख़ा०, ४ तै०, २ ख़ा०, ४ तै०, ३ ख़ा०, ४ तै०, ९ चेन चौड़ा करने के लिये लौटो।

१२ पंक्ति—७ तै०, ७ ख़ा०, ४ तै०, ३ ख़ा०, ५ चे० लौटो।

१३ पंक्ति—(१ ख़ा०, ४ तै०) दो बार, १ ख़ा०, १३ तै०, ३ ख़ा०, ४ तै०, ९ चे० चौड़ा करने के लिये लौटो।

१४ पंक्ति—७ तै०, ३ ख़ा०, ४ तै०, ५ ख़ा०, ४ तै०, २ ख़ा०, ४ तै०, ३ चे० लौटो।

१५ पंक्ति—३ तै०, ५ ख़ा०, ४ तै०, २ ख़ा०, ४ तै०, ३ ख़ा०, ७ तै० लौटो।

१६ पंक्ति—सादा फंदा, ३ चे०, ३ तै०, ३ ख़ा०, (४ तै०, १ ख़ा०) दो बार, १३ तै०, १ ख़ा०, ५ चे० लौटो।

१७ पंक्ति—६ ख़ा०, ४ तै०, ४ ख़ा०, ७ तै० लौटो।

१८ पंक्ति—सादा फंदा, ३ चे०, ३ तै०, ३ ख़ा०, ४ तै०, २ ख़ा०, ४ तै०, १ ख़ा०, ५ चे० लौटो।

१९ पंक्ति—२ ख़ा०, ७ तै०, ३ ख़ा०, ७ तै०, ३ चे० लौटो।

२० पंक्ति—९ तै०, ५ ख़ा०, ५ चे० लौटो।

२१ पंक्ति—३ ख़ा०, ४ तै०, ३ चे० लौटो।

२२ पंक्ति—६ तै०, २ ख़ा०, ३ चे० लौटो।

२३ पंक्ति—६ तै०, ३ चे० लौटो।

२४ पंक्ति—६ तै०, कार्य को कोने के घुमाव के लिये उलट दो।

१ पंक्ति—सादे फंदे तेहरों की अंतिम दो पंक्तियों के सिरे किनारों पर, ३ चे०, ३ तै०, २ ख़ा०, १ सादा फंदा करके पहला अलग ख़ाने के तेहरेवाली नोक से और ऊपरवाले ख़ाने दोनों से जोड़ दो (सब जुड़ाई इसी प्रकार होगी), लौटो।

२ पंक्ति—१ ख़ा०, ७ तै० लौटो।

३ पंक्ति—सादे फंदे ७ तै० पर, ३ चे०, ३ तै०, २ ख़ा०, सादे फंदे पहले की तरह, लौटो।

४ पंक्ति—१ ख़ा०, ७ तै० लौटो।

५ पंक्ति—सादे फंदे ७ तेहरों पर, ३ चे०, ६ तै०, ७ ख़ा०, सादे फंदे पहले की तरह लौटो।

६ पंक्ति—७ ख़ा०, ७ तै०, ९ चे०, बढ़ाने के लिये लौटो।

७ पंक्ति—७ तै०, ३ ख़ा०, ७ तै०, ६ ख़ा०, सादे फंदे पहले की तरह लौटो।

८ पंक्ति—५ ख़ा०, ४ तै०, २ ख़ा०, ४ तै०, ३ ख़ा० ४ तै०, ९ चे० बढ़ाने के लिये लौटो।

९ पंक्ति—७ तै०, ७ ख़ा०, ४ तै०, ५ ख़ा०, ४ तै०, १ ख़ा०, सादे फंदे पहले की तरह लौटो।

१० पंक्ति—१ ख़ा०, ४ तै०, ३ ख़ा०, (४ तै०, १ ख़ा०) दो बार, १३ तै०, ३ ख़ा०, ४ तै०, ९ चे०, बढ़ाने के लिये लौटो।

११ पंक्ति—७ तै०, ३ ख़ा०, ४ तै०, ५ ख़ा०, (४ तै०, २ ख़ा०) दो बार, सादे फंदे पहले की तरह लौटो।

१२ पंक्ति—(१ ख़ा०, ४ तै०) दो बार, २ ख़ा०, ४ तै०, ५ ख़ा०, ४ तै०, २ ख़ा०, ४ तै०, ३ ख़ा०, ७ तै० लौटो।

१३ पंक्ति—सादे फंदे, ३ चे०, ३ तै०, ३ ख़ा०, (४ तै०, १ ख़ा०) दो बार, १३ तै०, ३ ख़ा०, ४ तै०, ४ ख़ा०, ४ तै०, सादे फंदे, लौटो।

१४ पंक्ति—१ ख़ा०, ७ तै०, २ ख़ा०, ४ तै०, ७ ख़ा०, ४ तै०, ४ ख़ा०, ७ तै० लौटो।

१५ पंक्ति—सादे फंदे, ३ चे०, ३ तै०, ३ ख़ा०, ४ तै०, २ ख़ा०, ४ तै०, ५ ख़ा०, ४ तै०, १ ख़ा०, ४ तै०, ४ ख़ा०, ५ तै०, सादे फंदे कोने के पहले हिस्से के चार तेहरों पर, ३ चे०, लौटो।

१६ पंक्ति ३ से०, ४ खा०, ४ से०, १ खा०, ४ से०, ६ खा०, ७ से०, ३ खा०, ७ से०, छोटो, सादे फदे ६ लेहरों पर। लेस की ६ पंक्ति से बनाते आओ।

ओमवती देवी

× × ×

३. लेडी स्ट्राथकोना नाम की एक महिला विगत १८वीं अगस्त को ५० और ६० लाख पौंड के बीच संपत्ति छोड़कर मरी है, जो ७½ करोड़ और ९ करोड़ रुपए के बराबर होती है। उसकी संपत्ति इँगलैंड में अब तक जितनी महिलाएँ धन छोड़कर मरी हैं, उन सबसे अधिक बतलाई जाती है। यह अपने पिता के मरने पर पियरेस बनी थी।

गोपीनाथ वर्मा

× × ×

४. हिंदू-हृदय और सुता की बिदा

पालन-पोषण एवं शिक्षण के अनंतर योग्य वय में बालिकाओं को उनके पति-गृह के लिये बिदा करने की प्रथा प्रायः सभी सभ्य जातियों में पाई जाती है। परंतु उसका जितना महत्त्व हिंदू-जाति के हृदय में है, उतना कदाचित् ही किसी जाति के हृदय में हो। महर्षि कण्व शकुंतला की बिदा के समय कहते हैं—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भित बाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनया विश्लेषदुःखैर्नवैः॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

अर्थात् शकुंतला जायगी, यह स्मरण करते ही हृदय उत्कंठा से भर रहा है, गिरते हुए आँसुओं के रोकने से कंठ गद्गद हो रहा है, चिंता होने के कारण दृष्टि जड़ हो गई है। जब हम वन में रहनेवालों को स्नेह के कारण ऐसी विकलता हो रही है, तब लड़की के अलग होने के नवीन दुःख से गृहस्थ लोग कितने दुःखित होते होंगे?

महाकवि तुलसीदासजी ने तो इस विषय में परा काष्ठा ही कर दी है—

सीय बिलोकि धीरता भागी;
रहे कहावत परम बिरागी।
लीन्हि राय उर लाय जानकी;
मिटी महा मरजाद ज्ञान की।

सचमुच, अब भी जिसको ईश्वर ने सुता-जैसी सुता दी है, और जो बालकों के पक्षपात से रहित हृदय रखते हैं, उनकी दशा उसकी बिदा के समय ऐसी ही हो जाती है।

भानुसिंह बाघेल



१. "सुकवि-माधुरी-माला"

माधुरी वर्ष ५, खंड १, संख्या १ में उपर्युक्त शीर्षक देखकर ही चित्त के आनंद की सीमा न रही। वस्तुतः भार्गव महोदय एक-के-बाद एक वही सब काम करते आ रहे हैं, जिनका करना तो दूर रहा, जिनकी ओर बहुत ही कम लोगों का ध्यान भी गया या जाता होगा। इन सब उपकारों के लिये आप धन्यवादार्ह हैं, और आपका नाम सदा भाषा-साहित्य-जगत् में अमर रहेगा। ईश्वर आपको ऐसे-ऐसे पुनीत और अनोखे कार्य करने को उत्तरोत्तर शक्ति और साहाय्य की अभिवृद्धि करे, यही आंतरिक कामना है।

हमने आपके 'बिहारी-रत्नाकर' के इस वक्तव्य को माधुरी में पढ़ा। इसमें आपने उन कवियों की नामावली दी है, जिनकी रचनाओं को आप इस नवीन माला में गुंफित करना चाहते हैं। मुझे इस नामावली में कुछ लोकोत्तर-सौरभ-समन्वित दिव्य पुष्प नहीं देख पड़े, जिन्हें मैं कई बार पहले अपनी आँखों देख चुका हूँ। मैं यह नहीं कहता कि आपकी यह भूल है, या जान-बूझकर आप इन्हें छोड़ रहे हैं। नहीं, इनका नाम तो मैंने कभी किसी साहित्य-सेवी के मुख से नहीं सुना। ऐसी दशा में कहना पड़ता है कि इन दिव्य पुष्पों से अभी तक बहुत-से साहित्य-रस-लोलुप भौंरे अपरिचित ही हैं। इसलिये आज मैं उनमें से कुछ का संक्षिप्त परिचय देता हूँ, और आशा करता हूँ कि सबसे पहले इनकी ओर ध्यान दिया जायगा; क्योंकि ये बिलकुल अप्रकाशित हैं।

सन् १७-१८ में मैं वृंदावन में था। वहाँ से 'वैष्णव-सर्वस्व' नाम का एक मासिक पत्र निकलता था। इस पत्र के संपादक थे श्रीकिशोरीलालजी गोस्वामी। मैं इसी का सहकारी संपादक था। उस समय मुझे कुछ साहित्य के रत्न देख पड़े, जिनका अभी तक बहुत कम रसिक नाम जानते हैं। वे रत्न क्यों छिपे पड़े हैं? उन्हें लोग नहीं जानते, इसका क्या कारण है, सुनिए।

वैष्णवों के चार संप्रदायों में श्रीनिंबार्क-संप्रदाय अन्यतम है। इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण भगवान् की उपासना विहित है। पहले यह संप्रदाय बिलकुल वेदांत-मग्न था। वेदांत के सब सिद्धांत-ग्रंथ संस्कृत-भाषा में थे, और उन्हीं का प्रणयन होता था। परंतु कोई तीन-चार सौ वर्ष से इस संप्रदाय में हिंदी का भी प्रवेश हुआ है, साथ ही शृंगार-रस का प्रादुर्भाव भी। फलतः सैकड़ों भक्त कवियों ने अपनी प्यारी और पूज्य ब्रज-भाषा में रस-राज से परिप्लावित अनेकों ग्रंथ रचे, जिनसे आनंद प्राप्त कर आज साहित्य-रसिक मस्त हैं। परंतु बहुत-से रत्न अभी छिपे हैं। कारण, इसी समय से इस वैष्णव-संप्रदाय में दो शाखाएँ हो गईं—एक 'वेदांती', और दूसरी 'रसिक'।

वृंदावन में इन्हीं नामों से ये दोनों शाखाएँ पुकारी जाती हैं। इनमें से 'वेदांत-पार्टी' तो 'असम्यार्थाभिधायित्वाश्रोपदेष्टव्यं काव्यम्'' के सिद्धांत की है, और दूसरी 'रसिक-पार्टी' हिंदी के शृंगार-प्रधान उन निबंधों को सर्वस्व माने बैठी है। वेदांती लोग तनिक तर्क-कुशल और वाचाल होते हैं — शृंगारी-जन वैसे नहीं। इसी कारण एक के द्वारा दूसरी पार्टी सदा आक्षेप-भाजन होती रहती है। ये शृंगार-पार्टीवाले बेचारे चुपचाप रहते हैं। स्वामी हरिदास और श्रीहितहरिवंशजी इन्हीं में हैं।

ये वृंदावन के शृंगारी भक्त अपने शृंगारमय भाषा-ग्रंथों को किसी को दिखाते नहीं। जब कोई उनकी पार्टी में शामिल हो जाय, और उन लोगों को विश्वास हो जाय कि यह पक्का हो गया, अब फूटने का नहीं, तब उसे वे अपने शृंगार-ग्रंथ विधिवत् पढ़ाते हैं। इन ग्रंथों को ये बड़े आदर से रखते और इनकी पूजा करते हैं। दूसरे किसी को दिखाना या छपाने की बात करना पाप समझते हैं। वे कहते हैं कि अनधिकारी को हम लोग इस रस का दान नहीं कर सकते, और छपने से तो अनधिकार-चेष्टा बढ़ जाती है, एवं पूज्य ग्रंथों का अनादर तथा अपमान होता है, अतः उन्हें बड़ी हिफ़ाज़त से छिपाए रखना चाहिए।

कुछ भी हो, हमारी समझ में तो यही आया कि ये लोग अपनी वेदांत-पार्टी के आक्षेपों से घबराकर ही ऐसा करते हैं, और कोई कारण नहीं। अब हम उनका कुछ परिचय देंगे, जो छिपे हुए रत्न कंदराओं में पड़े-पड़े जगमगा रहे हैं, और जिनसे जन-साधारण कुछ भी आनंद नहीं उठा पाते। इन ग्रंथों का मिलना कुछ कठिन नहीं; क्योंकि व्रज की इस शृंगारी वैष्णव-पार्टी में भी अब उनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है, जो इन रत्नों को प्रसिद्ध करना चाहते हैं। अगर माधुरी-संपादक महोदय की इच्छा हुई, तो तीन-चार रत्न निकालने-निकलवाने का उद्योग तो स्वयं मैं ही कर सकता हूँ, जिनके विषय में मैं कुछ जानता हूँ और जिनका मार्ग-निर्देश यहाँ करूँगा। इसके अतिरिक्त पूज्य श्रीकिशोरीलालजी गोस्वामी से भी इस कार्य में बहुत कुछ मदद मिल सकती है; क्योंकि गोस्वामीजी भी श्रीनिंबार्क-संप्रदाय और इस शृंगारी पार्टी ही के हैं। यही नहीं, बल्कि आप इस संप्रदाय के नेता और वंश-परंपरा से संप्रदाय के विशेष अधिकारी भी हैं। इस संप्रदाय के आचार्य श्रीस्वभूदेवाचार्यजी के आप वंशज हैं। यही सब कारण है कि आप इसमें सफल होंगे।

वैष्णवों की इस शृंगार-पार्टी का सबसे पुराना और आदरणीय निबंध 'युगल-शतक' है। ये लोग इसे 'आदि-बानी' कहते हैं; क्योंकि इस संप्रदाय में, भाषा में, शृंगार-प्रधान यही निबंध पहले-पहल बना था। इसके प्रणेता हैं श्रीनिंबार्क-संप्रदाय के आचार्य श्रीभट्टदेवजी महाराज। भक्तमाल में श्रीनाभादासजी ने इनका चरित्र लिखा है।

इस 'युगल-शतक' में सौ गाने-योग्य पद हैं, जो सूरदास के पदों की जोड़ के हैं, और मेरी समझ में, उनसे बढ़-चढ़कर नहीं, तो घटकर भी नहीं हैं। प्रत्येक पद के आदि में एक सरस दोहा है, और दोहे के आगे पद्य। दोहे का ही भाव पद्य में व्यक्त किया गया है, मानो दोहा सूत्र है; और पद्य उसका भाष्य। इन पद्यों में साहित्य के सब गुण प्रचुर मात्रा में वर्तमान हैं। इस निबंध का विषय है श्रीकृष्ण भगवान् की शृंगारमय लीला। भाषा बड़ी मीठी, प्यारी एवं विशुद्ध है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि श्रीभट्टजी ने, जहाँ तक मेरा ख़याल है, दाक्षिणात्य होते हुए भी व्रज-भाषा में जैसी मधुर और सरस कविता की है, वैसी बहुत-से व्रजवासी कवि भी नहीं कर सके

दूसरा ग्रंथ 'महाबानी' है। यह शतक से दूसरे दर्जे का (काव्यत्व में नहीं, प्राचीनत्व और पूज्यत्व में) माना जाता है। इस ग्रंथ में भी क्रम, प्रतिपाद्य विषय और भाषा आदि उसी भाँति हैं; परंतु ग्रंथ बहुत बड़ा है। यह युगल-शतक का ही विस्तार है—भारत का महाभारत है। इसे श्रीभट्टजी के शिष्य ने बनाया है। उनका नाम इस समय मुझे स्मरण नहीं आता। आप भी अपने संप्रदाय के आचार्य थे। आपने संस्कृत में भी वेदांत-विषय पर कई ग्रंथ लिखे हैं। साथ ही आप भी दाक्षिणात्य थे। दाक्षिणात्य होते हुए भी व्रजभाषा पर इतना अधिकार जमा लेना इनके आचार्यत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इनका यह ग्रंथ बृहत्, सुंदर, सरस और साहित्य के सब गुणों से संयुक्त है। इसे मैंने अच्छी तरह देखा है, पूरा देखा है, और संपूर्ण अपने हाथों दो महीने में लिखा है। वृंदावन के त्यागी साधु श्रीबिहारीदासजी ने

यह ग्रंथ मुझे लिखने को दिया था। इसमें कोई शक नहीं कि यह ग्रंथ शृंगार-रस के ग्रंथों में विशेष स्थान का अधिकारी है।

ऊपर लिखे इन दोनों ग्रंथों को शृंगारी भक्त बड़े आदर से छिपाकर रखते और इनकी पूजा करते हैं।

ऊपर लिखे दोनों शृंगार-निबंधों के अतिरिक्त मैंने एक और उत्तम ग्रंथ इसी संप्रदाय के एक आचार्य का ही देखा है। इस बृहत्काय ग्रंथ का नाम है 'परशुराम-सागर'। इस बड़े ग्रंथ में प्रायः दोहे हैं, और विषय-विभाग करके भक्ति, वैराग्य, नीति तथा सदाचार आदि इसके वर्णनीय विषय हैं। 'परशुराम-सागर' तुलसी-कृत रामायण की बराबरी का है। इसके रचयिता भी इसी संप्रदाय के आचार्य श्रीपरशुरामदेवजी हैं। आप राजपूताने में जन्म लेकर भी व्रजभाषा के आचार्य थे।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से अप्रकाशित ग्रंथ मैंने देखे और सुने हैं। परंतु इन्हें तो मैंने पूर्ण रूप से देखा है। मुझे विश्वास है कि इस नवीन माला के प्रकाशक और संचालक महोदय इन स्वर्गीय पुष्पों को ढुँढवा-ढुँढवाकर माला को सजावेंगे। ये ऐसे फूल हैं, जिन्हें बहुत कम लोगों ने देखा या सुना है। मेरी यह भी प्रार्थना है कि इन ग्रंथों के प्रणयन और संपादन आदि में उन्हीं स्वनामधन्य गोस्वामीजी का सहारा लिया जाय, तो बहुत अच्छा हो, जिनका नाम मैं पहले ले चुका हूँ, और जिन्हें संपादक महोदय ने सहायकों की गणना में सम्मिलित किया है।

किशोरीदास वाजपेयी

× × ×

२. कवि मौलाराम

हमारे सम्मुख भारत की प्राचीन चित्रकला के कुछ नमूने हैं। इनमें चार काश्मीर के प्रसिद्ध राजपूत चित्रकार मौलाराम की जादू-भरी क़लम से उतरे हैं। न हमें चित्रांकण के नियमों ही से विशेष परिचय है, और न हम चित्रों का वैज्ञानिक परीक्षण ही कर सकते हैं। तो भी इतना तो अवश्य कहेंगे कि उन्हें देखते ही हमारा हृदय एकदम प्रफुल्लित हो उठा। इन चित्रों के शिरोभाग पर कुछ पद्य भी देख पड़ते हैं। उनके पढ़ने से ज्ञात होता है कि मौलाराम में काव्य-प्रतिभा भी खूब ही थी।

पहला चित्र है 'मोरप्रिया'। इसके शिरोभाग पर जो दोहा है उसे पढ़कर हमें एक संस्कृत-श्लोक का स्मरण हो आया—

दत्ता तेन कविभ्यः पृथ्वी सकलापि कनकसम्पूर्णा,
दिव्यां सुकाव्यरचनाम् कवीनां च यो विजानाति।

मौलाराम के भाव भी इतने ही ऊँचे हैं। वह कहते हैं—

"कइ हजार कइ लक्ष हैं, अर्ब-खर्ब धन-ग्राम;
समुझै 'मौलाराम' सो सर्बहु देहु इनाम।"

दूसरा चित्र है 'मयंक-मुखी'। उसके शीर्षक में अत्यंत ही सुंदर सवैया है—

कर सीस धरे लटकी-सी परै पहुँची इक सों सरसावति है।
दृग सों दृग जोर मरोरि कै भौं, करकंज सं चंचु बचावति है।
सब हाव औ भाव लखै (?) के अपने मुकटाक्ष दिखावति है;
कवि 'मौलाराम' मयंक-मुखी मुख हेरि मयूख खिलावति है।

तीसरे चित्र में निम्न पद्य है—

बनठन आय सहेट में बैठ अब सकुचाइ;
ज्यौं पतंग पिंजरहि में बासकसज्जा जाइ।

कवित्त

फूले जल कमल कहीं लतिका लपटाय रही,
सघन कुंजपुंज में सुगंध गंध भोगती।
करत हैं कलोलहि जहँ पक्षी पशु ठौर-ठौर,
चौंकि-चौंकि चितवै चहुं ओर नैन तोकती।
रूप की उजारी बिमल दीप की सिखा-सी दिपै,
छिपे ना छिपायो गात ज्यों-ज्यों वह रोकती।
कहत कवि 'मौलाराम' नील सारी ओढ़ प्यारी,
अंग को दुराय नदलाल को विलोकती।

मौलाराम की जीवनी के विषय में हमें केवल इतना ही ज्ञात हो सका कि इनके पिता का नाम मंगलराम था। कवि का जन्म संवत् १८१७ वि० में हुआ था। आप काश्मीर के राजा जयकृतेशाह के आश्रित थे। दरबार में आपको कुछ दिन तक अपनी चित्रशाला छोड़कर राजनीति में भी भाग लेना पड़ा था। 'मोरप्रिया'-नामक चित्र में जो तिथि दी गई है, उससे जान पड़ता है कि आपने अपने १२वें वर्ष ही में इतने सुंदर भाव चित्रांकित किए थे। आपकी मृत्यु संवत् १८९० वि० में हुई।

खोज करने पर आपकी अन्य हिंदी-कविताएँ भी शायद मिल सकें।

गोविंद-रामचंद्र चरि



१. इतिहास

भारत के प्राचीन राजवंश (राष्ट्रकूट)—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ एम्० आर० ए० एस्; प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, बंबई; मूल्य ३)

लेखक महाशय संस्कृत तथा इतिहास के योग्य विद्वान् हैं। इसके पहले आप प्राचीन राजवंश के दो भाग प्रकाशित कर चुके हैं, यह तीसरा भाग है। प्रस्तुत पुस्तक में आपने राष्ट्रकूट-वंश का इतिहास लिखा है। आपका मत है कि क़न्नौज के गाहड़वाल दक्षिण के राष्ट्रकूटों के ही वंशज हैं। आपने अनेक युक्तियों से इस मत को पुष्ट करने की चेष्टा भी की है। हमने युक्तियों को आदि से अंत तक पढ़ा; परंतु हमें यह आशा नहीं कि विद्वान् लोग लेखक महाशय की इन युक्तियों से प्रतिपादित मत का समर्थन करें। जो हो, गाहड़वालों के इतिहास में राष्ट्रकूटों का इतिहास सम्मिलित कर देने से पुस्तक का महत्त्व अवश्य बढ़ गया है। राष्ट्रकूटों के कुछ वंशजों ने अपनी कीर्ति भारतवर्ष के बाहर तक फैलाई थी। अमोघवर्ष इस वंश का बड़ा प्रतापी राजा था। अजंता और इलोरा की कारीगरी तथा पुराणों की बहुत कुछ गाथाएँ भी राष्ट्रकूटों के ही काल में निर्मित हुईं। गाहड़वालों में गोविंदचंद्र तथा जयचंद्र बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके पश्चात् उत्तरीय भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य होने पर गाहड़वाल-वंशज सीहाजी ने भारत-मरुभूमि की ओर भागकर स्वतंत्रता की शरण ली। यहीं मारवाड़-राज्य स्थापित हुआ, जिसके अधिपतियों ने मुग़लों का साथ देकर अनेक वीरता के कार्य किए, और फिर औरंगज़ेब के समय में, उसकी अदूरदर्शिता के कारण उससे बिगड़कर, मुग़ल-राज्य के नाश में भी सहायता दी। इन्हीं के वंशज प्रतापसिंहजी ने इस महान् युद्ध में अँगरेज़ों का साथ देकर अपने पूर्वजों की तरह पुनः मारवाड़ का मुख उज्ज्वल किया है।

बस, पुस्तक का अंश मान्यखेट के राष्ट्रकूटों तथा क़न्नौज और मारवाड़ के गाहड़वालों की गाथाओं में है। यों तो किशनगढ़, बीकानेर आदि की अन्य शाखाओं का भी इसमें विवरण दिया है।

पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। यह हम मानते हैं कि इस ढंग की पुस्तकों में कोई रोचकता नहीं होती। इतिहास लिखने का अब ढंग ही बदल गया है। अब लोगों को चारणों की भाँति राजवंशों के गुणानुवाद गाने में आनंद नहीं आता। अब वे अपनी ही कथा सुनना चाहते हैं। परंतु तो भी, जिस उद्देश्य से पुस्तक लिखी गई है उसे देखते हुए लेखक महाशय का उत्साह प्रशंसनीय है। यदि साधारण पाठकों में नहीं, तो कम-से-कम पुस्तकालयों में इसका प्रचार अवश्य होना चाहिए।

× × ×

अग्रवाल-इतिहास—लेखक, श्रीयुत बी० एल्० जैन अग्रवाल सी० टी०; प्रकाशक, श्रीयुत एम्० सी० जैन, बाराबंकी; मूल्य ॥)

आरंभ में लेखक महाशय का एक चित्र है, और उसके पीछे भिन्न-भिन्न ग्रंथों की रचना आपने की है, उनका उल्लेख। बस, ग्रंथ की सबसे बढ़िया चीज़ यही है। बाक़ी सब अग्रवालों के प्राचीन क्षात्र वैभव की गाथा है। मालूम नहीं, लोग क्षत्रियत्व के क्यों पीछे पड़े हैं। वैश्यों के लिये क्षत्रिय बनने का दावा करना कोई गौरव की बात नहीं। यदि और कुछ नहीं, तो यह मानना ही पड़ेगा कि क्षत्रियों ने ही देश की स्वतंत्रता खोई। वैश्यों के सिर इस कलंक का टीका तो नहीं है। फिर वैश्य बने रहने में क्या हर्ज है? जो हो, साधारण पाठकों के लिये इस पुस्तक में कौतूहल की सामग्री अवश्य है। अग्रवाल पाठकों के शायद काम भी आवे। कहीं झगड़ों में शास्त्रार्थ हो, तो इसके तर्कों से सहायता भी मिल सकती है।

कालिदास कपूर

× × ×

२. साहित्य

बिहारी-रत्नाकर—टीकाकार, श्रीयुत जगन्नाथदास बी० ए० "रत्नाकर"; संपादक श्रीदुलारेलाल भार्गव; प्राप्ति-स्थान—गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; मूल्य ५)

भारतीय साहित्य में कुछ ग्रंथ इतने अधिक उत्कृष्ट हैं, जिनकी समता अन्य ग्रंथ नहीं कर सकते। वे संस्कृत में हैं या भाषा में, गद्य में या पद्य में, और कविता में या गीतों में; परंतु उनमें कुछ ऐसा महत्त्व है कि सब प्रकार के विद्वान् उन पर अनुराग रखते और उनके अंतस्तल का अन्वेषण करते हैं। समालोच्य पुस्तक इसी कोटि की है। कवि-सम्राट् बिहारीदास के सात सौ दोहे बहुमूल्य रत्नों की भाँति पिरोए हुए हैं, और केवल कविता-प्रेमी ही नहीं, पढ़े-लिखे सभी विद्वान् उन रत्नों का तारतम्य जानने में व्यग्र रहते हैं।

जिस प्रकार ज्ञान में गीता, विज्ञान में भागवत, गुण-गान में रामायण और सदनुष्ठानों में सप्तशती आदि सर्वोत्कृष्ट समझी जाती हैं, उसी प्रकार भाषा-कविता में 'बिहारी-सतसई' सर्वश्रेष्ठ समझी गई है। और, जिस प्रकार उपर्युक्त ग्रंथों के आशय ज्ञात होने के लिये अनेक प्रकार की टीका-टिप्पणी और प्रयत्न किए गए हैं, उसी प्रकार सतसई के मर्माशय प्रकट करने के लिये अनेक विद्वानों ने इस पर भी कई टीकाएँ की हैं। तो भी कई एक दोहों का तारतम्य अभी तक नहीं मिल पाया है, और अब भी बहुधा विद्वान् उसके लिये बहुत खोज कर रहे हैं।

हाल ही में इस पर "रत्नाकरी" नाम की एक और टीका प्रकाशित हुई है। यह माधुरी-संपादक पं० दुलारेलाल भार्गव की सहृदयता तथा बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" के परिश्रम का फल है। रत्नाकरजी ने इसका संकलन करने के पहले सतसई के अर्थों की भली भाँति छान-बीन हो जाने के लिये कुछ ऐसे प्रयत्न भी किए थे, जो सर्व-साधारण के लिये कठिन ही नहीं, असंभव भी थे।

बिहारी-सतसई पर अब तक पचासों टीकाएँ हो चुकी हैं, और प्रत्येक विद्वान् ने इसका भावार्थ जानने के लिये अपना प्रगाढ़ पांडित्य प्रकट किया है। परंतु उनमें अधिकांश पुस्तकें ऐसे स्थानों में सुरक्षित हैं, जिन पर राजों की अटूट मुहरें लगी हुई हैं, और उनकी चाबियाँ महाराजों के पास हैं।

इतना होने पर भी रत्नाकरजी ने जयपुर-जैसी राज-धानियों से पाँच-सात अति प्राचीन और प्रामाणिक पुस्तकें प्राप्त करके उक्त टीका का संकलन किया है, और बिहारी के सारगर्भित एवं बह्वर्थ दोहों का वास्तविक अर्थ विदित करने की चेष्टा की है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि अब तक की प्रकाशित हुई पुस्तकों की अपेक्षा प्रस्तुत पुस्तक कितने अधिक महत्त्व की है, और रत्नाकर के सद्रत्न ढूँढने में श्वास-प्रद नलिका की तरह यह टीका कितनी अधिक उपयोगी है।

संभव है, अधिकांश पाठक इस बात से अनभिज्ञ होंगे कि बिहारी-सतसई' में किस महत्त्व का आधिक्य है। उनको बतलाने के लिये—

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही में फँस्यो, पीछे कौन हवाल।

इस दोहे के अर्थ पर ध्यान दिलाया जाता है।

(१) अभी इसमें न तो पराग है, न मधुर मधु है, न वह खिलने पर आई है, और न अभी खिलने का समय आया है। फिर रे भ्रमर! तू कली ही में इस प्रकार फँस गया है, तो पीछे क्या हाल होगा?

(२) सदनुष्ठान के सिद्ध होने की न तो अभी इसमें सामग्री है, न भविष्य फल का मधुर मधु है, न उसका होना आरंभ हुआ है, और न अभी आरंभ होने का समय आया है। फिर नाप-जोख करने ही में तू इस प्रकार निकम्मा होकर बैठ गया है, तो अनुष्ठान के आरंभ होने पर तेरा क्या हाल होगा?

(३) तीसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि इस देह में न तो काम का संचार हुआ है, न काम-वासना तृप्त करने का मधुर मधु है, न अभी वह पुष्पवती हुई है, और न अभी पुष्पवती होने का समय आया है। फिर नव-विवाहित बालिका ही में इतना आसक्त हो गया है, तो पीछे क्या हाल होगा?

इसी प्रकार इस ग्रंथ के प्रत्येक दोहे में अनेक प्रकार के अर्थ गुंफित हैं, और आर्थिक, पारमार्थिक, सामाजिक और व्यावहारिक, अनेक विषय प्रतिपादित हैं। अतएव रत्नाकरजी की टीका अधिक उपयोगी प्रतीत होती है। सुपठित पाठकों के यह मनन करने योग्य है।

इस नयनाभिराम चित्रोंवाली, सुंदर सुनहली जिल्द और स्वच्छ छपाईवाली पुस्तक में जयपुर के महाराज जय-सिंह और कवि-सम्राट् बिहारीदास के रंगीन चित्र बड़े ही अच्छे हैं। क्या ही अच्छा होता, यदि इसमें महाराज जयसिंह तथा बिहारीदास का कुछ परिचय भी दे दिया जाता, और कुछ दोहों के पृथक्-पृथक् आशय प्रकट करने के लिये टिप्पणियाँ भी।

बहुत लोग 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु' को महाराज पर घटित करते हैं। इस विषय के विस्तृत विवेचन विख्यात भी हैं। परंतु महाराज जयसिंह के और शिवाजी के परस्पर के प्रश्नोत्तर और उनके ज्वलंत भाषणों को देखते हुए संदेह हो सकता है कि ऐसे साहसी वीर और विलक्षण राजा को उक्त दोहे में कही हुई नवविवा-हित बालिका में आसक्त माननेवाला अर्थ कहाँ तक यथार्थ होता है। यदि उपर्युक्त अर्थों की तरह यह भाव भी किसी दूसरे विषय से संबंध रखता हो, तो क्या आश्चर्य है।

हनुमान शर्मा

× × ×

३. व्याकरण

व्याकरण-प्रबोध—लेखक, अखौरी नवरंगसहाय, राँची; प्रकाशक, अखौरी किशुनसहाय, ओल्ड कमिश्नर-कंपाउंड, राँची; आकार रॉयल अठपजी; पृष्ठ-संख्या ११२; मूल्य ।-)

यह पुस्तक प्रायमरी तथा मिडिल के परीक्षार्थियों के लिये बहुत ही उपयोगी है। मेरा मत है कि व्याकरण साहित्य का अनुयायी है। अतएव इसका अध्ययन साहित्य ही के सहारे होना चाहिए। व्याकरण के पढ़ाने की अनेक रीतियाँ हैं, यथा हठोक्ति, आगमन, और निगमन। इनमें आगमन की प्रशंसा शिक्षाविशारदों ने की है। यह पुस्तक आगमन-रीति पर लिखी गई है, उदाहरणों द्वारा नियम बनाए गए हैं। केवल उपयोगी नियमों ही का समावेश किया गया है। बालकों के मस्तिष्क पर व्यर्थ भार नहीं दिया गया है। मेरे विचार से व्याकरण को भाषा का सेवक बनकर रहना चाहिए, स्वामी बनकर नहीं। शोक की बात है कि प्रायः लेखकों का इस ओर ध्यान नहीं है। पुस्तकों की रचना विद्यार्थियों के लिये होती है। अतएव रचना करते समय लेखकों को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं पर ध्यान रखते हुए सरल भाषा का प्रयोग करना चाहिए। हर्ष की बात है कि इसके लेखक ने इस ओर भी ध्यान रक्खा है। साहित्य एक कला है। अतएव यह भी अन्य कलाओं के समान अभ्यास पर बहुत कुछ निर्भर है। प्रत्येक पाठ में इसी विचार से अभ्यास दिए गए हैं। संधि और समास-प्रकरणों में एक-आध जगह सुधार की आवश्यकता जान पड़ती है; परंतु विद्यार्थियों के लिये इससे कुछ हानि नहीं है। वे भली भाँति समझ सकते हैं।

'बाल'

× × ×

४. जीवन-चरित्र

शाही दृश्य—लेखक, महाशय मक्खनलाल गुप्त "सर्क"; प्रकाशक, नागरीप्रचारिणी-सभा, काशी; पृष्ठ-संख्या २४८; सजिल्द; मूल्य १।)

यह मनोरंजन-पुस्तकमाला का ४४वाँ ग्रंथ है। नाम कुछ और है, चीज़ कुछ और। नाम से तो अनुमान होता है कि बादशाही शान-शौक़त की चर्चा होगी; लेकिन वास्तव में यह बेगम शमरू का जीवन-वृत्तांत है। मुग़ल बादशाहों के पतन-काल में बेगम शमरू एक नामी औरत हो गई है। वह थी तो एक वेश्या-पुत्री, लेकिन उसका विवाह रेनहार्ड-नामक एक फ़्रांसीसी सरदार से हुआ था, जिसने लार्ड क्लाइव के समय में अँगरेज़ों से पराजित होने के बाद, मीरक़ासिम, नवाब शुजाउद्दौला, भरतपुर-राज्य आदि की सेना में बहुत कुछ कीर्ति प्राप्त करके, अंत को मुग़ल-दरबार का आश्रय ग्रहण किया था। मुग़ल-दरबार ने उसकी सैनिक सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे सरधने की जागीर दे दी, जिसमें ६ परगने थे। रंग उसका साँवला था, इस-लिये उसके साथवाले उसे Sombre (सोंबरे) कहते थे, जिसका अर्थ है काला। वही शब्द बिगड़कर शमरू

हो गया। वह बड़ा साहसी, रण-कुशल, कूट-नीति-चतुर मनुष्य था, और इस संघर्ष के समय उसे कीर्ति-लाभ के अच्छे अवसर मिले। उसके बाद उसकी पत्नी 'शमरू बेगम' के नाम से सरधने की जागीर की उत्तराधिकारिणी हुई। वह भी बड़े जीवट की औरत थी। अपने पति के साथ बराबर लड़ाइयों में शरीक होने के कारण वह भी युद्ध-कला में दक्ष हो गई थी। जागीरदारों को जंगी ख़िदमत के लिये सेना रखनी पड़ती थी। शमरू की सेना में योरप के गुंडे भरे हुए थे, जिनमें अँगरेज़, फ़्रांसीसी, डच, जर्मन, सभी जाति के लोग थे। वे नए ढंग की क़वायद जानते थे, इसलिये पुराने ढंग की भारतीय सेनाओं से अक्सर बाज़ी मार ले जाते थे। शमरू की मृत्यु के बाद बेगम शमरू के लिये इन चरित्रहीन गुंडों को क़ाबू में रखना आसान न था। किंतु बेगम भी असाधारण प्रतिभा की स्त्री थी। अपने जीवन के अंत तक उसने अपनी जागीर को सुरक्षित रक्खा, जो उस ज़माने में अत्यंत कठिन था। उसकी क़ब्र सरधने में है। उसका बनवाया हुआ एक गिरजाघर भी वहाँ मौजूद है।

प्रस्तुत ग्रंथ में बेगम शमरू का जीवन-चरित्र बड़ी खोज से लिखा गया है। इसमें ३ अध्याय हैं। पहले अध्याय में मुग़लों के अधिकाधिक पतन का वृत्तांत है, दूसरे में शमरू का जीवन-चरित्र है, और तीसरे में बेगम शमरू के हालात हैं। इस साहस, संग्राम, द्वंद्व, आघात-प्रत्याघात के जीवन में एक प्रेमकांड भी है। शमरू की मृत्यु के १४ वर्ष बाद बेगम शमरू ने अपनी सेना के एक फ़्रांसीसी नायक से पुनर्विवाह कर लिया। इस पर जॉर्ज टॉमस नाम का एक अफ़सर, जो बेगम से बहुत प्रेम करता था, नाराज़ होकर मराठों की सेना से जा मिला। इधर फ़्रांसीसी जनरल के व्यवहार से सेना के लोग बिगड़ उठे। बग़ावत हो गई। बेगम उसे लेकर भागी। बाग़ियों ने उसे घेर लिया। बेगम ने जब देखा कि अब प्राण नहीं बचते, और इन दुष्टों के हाथों में पड़कर न-जाने क्या-क्या दुर्गति होगी, तो उसने अपनी छाती में छुरी मार ली। उसके फ़्रांसीसी पति को जब बाग़ियों के बीच में घिरे हुए यह ख़बर मिली, तो उसने पिस्तौल से आत्मघात कर लिया। लेकिन बेगम का घाव गहरा न था। वह बच गई। बाग़ियों ने उसे लाकर क़ैद कर दिया। अब बेगम को जॉर्ज टॉमस की याद आई। उसने उसे एक पत्र लिखकर अपनी सहायता के लिये बुलाया। यद्यपि यह बग़ावत जॉर्ज टॉमस ही के इशारे से हुई थी, फिर भी उक्त पत्र पाकर उसका पुराना प्रेम-भाव जाग्रत् हो गया। वह तुरंत बेगम की सहायता के लिये आ पहुँचा, और उसे क़ैद से छुड़ाया। बेगम ने ख़ुश होकर उसका विवाह अपनी एक ख़वास से कर दिया, जिसे उसने लड़की की तरह पाला था। पुस्तक बड़ी मनोरंजक है।

× × ×

५. नाटक और कहानियाँ

सूर्योदय—लेखक, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा; प्रकाशक, रामलाल वर्मा, कलकत्ता; पृष्ठ-संख्या १२७; मूल्य १)

यह मौलिक नाटक है; लेकिन इससे मौलिक साहित्य का सम्मान कुछ अधिक नहीं होता। प्लॉट अच्छा है भाषा भी मँजी हुई है; किंतु इसके अभिनय में अरसिक मंडली चाहे तालियाँ पीटे, रसिक-समाज तो स्त्री-पुरुष को पद्यों में बातें करते देखकर ज़रूर ही ऊब जायगा। हमारी वर्तमान नाट्य-कला में सबसे बड़ा दूषण यही है कि चरित्रों की स्वाभाविकता गीतों के हाथ बेच दी जाती है। गाना किसी मजलिस में तो अच्छा मालूम होता है, लेकिन एक बूढ़े सेठ के मुँह से पैसे की पद्यमय प्रशंसा सुनकर जी ऊब जाता है, और बेअख़्तियार मुँह से निकल आता है कि यह नाटक है, या नाटक का स्वाँग? इस नाटक में यह ऐब किसी बाज़ारी नाटक से कम नहीं है। लेखक महोदय से हम इससे कहीं अच्छी चीज़ की आशा करते हैं।

× × ×

जंबूकुमार नाटक—लेखक और प्रकाशक, बी० एल्० जैन चैतन्य सी० टी०; पृष्ठ-संख्या ९६; मूल्य ||-)

जैन-इतिहास में श्रीजंबूकुमार एक महात्मा हो गए हैं। वह राजपुत्र थे, उनके चार रानियाँ थीं। पर कुमार ज्ञान के इच्छुक थे। विवाह के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने दीक्षा ले ली, और कैवल्य ज्ञान प्राप्त करके अंत में निर्वाण पद को पहुँचे। इस नाटक में जंबूकुमार के विवाह, वैराग्य-चिंतन, माता और चारों रानियों के अनुनय-विनय, और कुमार के गृह-त्याग और गुरु-दीक्षा के दृश्य दिखाए गए हैं। नाटक में तुकबंदियों में ख़ूब सवाल-जवाब किए गए हैं। पाठकों और दर्शकों को उस प्रश्नोत्तरी में नौटंकी या अमानत की 'इंदर-सभा' का आनंद आवेगा।

× × ×

महेंद्र—लेखक तथा प्रकाशक, श्रीरामप्रसादसिंह एम्० ए० बी० एल्०, आरा ; पृष्ठ-संख्या २१ ; मूल्य ।-)

यह एक वियोगात्मक आत्मकहानी है, जिसे लेखक ने अपने मित्र महेंद्र की अकाल-मृत्यु से दुःखी होकर हृदय के शोकोद्गार-स्वरूप लिखा है। भाव और भाषा, दोनों ही सुंदर हैं। अँगरेज़ी तथा हिंदी के प्रेम-पद्यों से भावों को अलंकृत किया गया है। किंतु सरस होते हुए भी भाषा जटिल हो गई है। मूल्य इससे कम होना चाहिए।

प्रेमचंद

× × ×

प्रेम-द्वादशी—लेखक, श्रीमान् प्रेमचंदजी ; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ ; आकार २०×३० सोलहपेजी ; पृष्ठ-संख्या २०६ ; काग़ज़-छपाई उत्तम ; मूल्य सादी १।), रेशमी जिल्द १॥।)

इस पुस्तक में सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक श्रीमान् प्रेमचंदजी की १२ सर्वोत्तम सचित्र गल्पों का संग्रह है। मैं गल्प-लेखक नहीं, और न मैं गल्पों की बारीकियों को ही समझ सकता हूँ। फिर भी प्रकाशक महोदय ने इस पुस्तक को मेरे पास समालोचनार्थ भेजने की कृपा की है, और साधारण पाठक की हैसियत से मैं यह कह सकता हूँ कि कहानियाँ बहुत अच्छी एवं उपदेश-पूर्ण हैं। आशा है, हिंदी-संसार इस उत्तम संग्रह का उचित आदर करेगा।

× × ×

६. महिला-साहित्य

वनिता-विलास—लेखक पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ ; आकार २० × ३० सोलहपेजी ; पृष्ठ-संख्या ९० ; मूल्य ।॥)

इसमें बारह वीर और विदुषी नारियों की सचित्र जीवनियाँ हैं। समय-समय पर श्रीमान् द्विवेदीजी ने सरस्वती में कुछ वीर नारियों के जो जीवन-चरित्र प्रकाशित कराए थे, उनका संग्रह इसमें है। जीवनियों से हम कई तरह की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। स्त्रियों के लिये यह विशेष रूप से उपयोगी है। उन्हें इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

दयाशंकर दुबे

× × ×

७. बाल-साहित्य

लड़कियों का खेल—लेखक, स्वर्गीय गिरिजाकुमार घोष; संपादक, प्रेमचंदजी; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; मूल्य ॥); पृष्ठ-संख्या ८०।

यह 'बाल-विनोद-वाटिका' का छठा पुष्प है। इसमें छोटे-छोटे पद्य हैं, जिनसे मनोरंजन के साथ-साथ लड़कियों को सुशिक्षा भी मिलती है। भाषा सरल और भाव अच्छे हैं। अभिनय के योग्य भी कुछ गीत हैं। यह बालिकाओं के काम की चीज़ है। इसका प्रचार वांछनीय है।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

× × ×

८. उर्दू

दुष्यंत व शकुंतला (उर्दू-काव्य-ग्रंथ)—लेखक, मुंशी एकबाल वर्मा 'सेहर' हरगामी; प्रकाशक, ज़माना-कार्यालय, कानपुर; मूल्य ।=)

कई साल हुए, इस काव्य का पहला संस्करण निकला था। यह दूसरा संस्करण है। मुं० दयानारायण निगम एडीटर-ज़माना ने इसकी सुंदर भूमिका लिखी है। कथानक तो कालिदास का ही है, पर कहीं-कहीं परिवर्तन कर दिया गया है। लगभग ४० वर्ष हुए, शकुंतला पर एक मुसलमान कवि ने एक उर्दू-काव्य, नवलकिशोर-प्रेस द्वारा, प्रकाशित कराया था। पर कवि ने मुसलमानी सभ्यता और भावों का उस पर गहरा रंग चढ़ा दिया था। वर्माजी ने अनुवाद नहीं किया है। अलंकार, भाव, उक्तियाँ, सब नई हैं ; पर हैं सब भारतवर्ष ही की। काव्य का बहर वही है, जो मसनवी 'गुलज़ार नसीम' का है। 'गुलज़ार नसीम' उर्दू-काव्यों में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इस काव्य में 'गुलज़ार नसीम' के कितने ही गुण विद्यमान हैं। अगर उतना ज़ोरदार बयान नहीं है, तो उतनी कृत्रिमता भी नहीं। लेकिन शैली बिलकुल वही है। वर्माजी ने नसीम के तर्ज़ को ख़ूब अपना लिया है।

शकुंतला जब दुष्यंत के घर से निराश होकर चलती है, तब उसने जो उद्गार प्रकट किए हैं, उन्हें वर्माजी के शब्दों में सुनिए—

अच्छा क़िसमत का जो लिखा हो,
राज़ी हूँ उसी पै जो रज़ा हो।

उम्मीद से आई शाद होकर,
अब जाती हूँ नामुराद होकर।
याद आएगी मेरी गर किसी दिन,
पछताएगा सोचकर किसी दिन।
महरूम हूँ अपने हम बतन से,
रिश्ता जोड़ूँगी अब अजल से।
यह कहके वह निकली सूरते-आह,
और हो गई साथियों के हमराह।

जिन सज्जनों को इस अमर कथा का उर्दू में स्वाद लेना हो, वे इस काव्य को अवश्य पढ़ें।

प्रेमचंद

× × ×

६. फुटकल

महाकवि बाण भट्ट—लेखक, श्रीकेदारनाथ शर्मा सारस्वत; मिलने का पता—प्रबंधक, सारस्वत-भवन, काशी।

संस्कृत-साहित्य में महाकवि बाण भट्ट का स्थान बहुत ऊँचा है। इस कवि के संबंध में एक विस्तृत निबंध का यह संक्षिप्त संस्करण है। इसमें बाण भट्ट का कुछ परिचय और उनकी रचना की कुछ बानगी दी गई है।

× × ×

प्रेम-वीणा—रचयिता, "प्रेमपुष्प"; प्रकाशक, ठाकुर विंध्येश्वरीप्रसादसिंह "निर्मम" विशारद, कालिकासदन, बलिया।

इसमें कुल ६ कविताओं का संग्रह किया गया है।

× × ×

शिशुता-नागरी—लेखक और प्रकाशक, ठा० रामकुमार सिंह, मांडव्येश्वरपुर (मडना), फ़ैज़ाबाद। मूल्य ~)॥

यह वर्णमाला की एक अच्छी पुस्तक है। सचित्र है। कुछ नेताओं के भी चित्र दिए हैं।

× × ×

मतवाला—लेखक, सुकविगण; प्रकाशक, पं० श्रीराम-शिवप्रसादजी शुक्ल, हरदा (सी० पी०)। मूल्य ~)॥

यह "मतवाला"-समस्या की भिन्न-भिन्न कवियों द्वारा पूर्तियों का संग्रह है। पूर्तियाँ अधिकांश साधारण हैं।

× × ×

स्काउट-गीत—लेखक, मुंशीराम "विचित्र"; प्रकाशक, हरियाना-साहित्य-सदन, रोहतक। मूल्य)॥

बालचरों के लिये यह एक साधारण गीत है। स्कूल-मास्टर विद्यार्थियों के लिये चाहें, तो मँगा सकते हैं।

× × ×

पेट्रोलियम—लेखक, श्रीधीरेंद्रनाथ चक्रवर्ती एम्० एस्-सी०; प्रेषक, रजिस्ट्रार प्रयाग-विश्वविद्यालय।

यह 'विज्ञान' से उद्धृत एक लेख है। इसमें पेट्रोलियम के प्राप्त होने के स्थान का पता और उसका उपयोग दिया है।

× × ×

जैन-दर्शन—लेखक, श्रीविजयेंद्र सूरि; अनुवादक, कृष्णलाल वर्माजी; प्रकाशक, मंत्री आत्मानंद-जैन ट्रैक्ट सोसाइटी, अंबाला। मूल्य ~)

यह जैन-धर्म के प्रतिपादन में एक छोटा-सा निबंध है।

× × ×

हीरू के कहिनी—लेखक और प्रकाशक, पांडेय वंशीधर शर्मा, ग्राम बालपुर, पोस्ट चंद्रपुर, जिला बिलासपुर। मूल्य ≈)

यह छत्तीसगढ़ी भाषा में लिखी हुई कहानियों की एक छोटी-सी पुस्तिका है। समर्पण, निवेदन, भूमिका आदि, सब छत्तीसगढ़ी भाषा में है। अतएव उसी भाषा के जाननेवालों के मनोविनोद की चीज़ है। लेकिन छत्तीस-गढ़ी भाषा को प्रायः हिंदी-पाठक भी थोड़ा बहुत समझ ही सकते हैं।

× × ×

मारवाड़ के रीत-रस्म—लेखक, कुँअर जगदीशसिंह गहलोत; प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-मंदिर, घंटाघर, जोधपुर। मूल्य ।)

भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रायः भिन्न-भिन्न प्रकार के नामों से रीति-रस्म प्रचलित हैं। मारवाड़ में प्रचलित प्रायः सभी सामाजिक रीति-रस्मों का इसमें वर्णन किया गया है। रीति-रस्म प्रायः एक-सी हैं; नाम उनके भिन्न-भिन्न हैं।



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—

(१) "मिलन-मंदिर" (सामाजिक-उपन्यास)—सुरेंद्र-मोहन भट्टाचार्य की बँगला-पुस्तक का अविकल अनुवाद। मूल्य २॥) और ३)

(२) "छंदःप्रभाकर" (नूतन, परिशोधित और परिवर्द्धित षष्ठ संस्करण)—लेखक, जगन्नाथप्रसाद 'भानु'; मूल्य २)

(३) "वीर मराठे" (ऐतिहासिक उपन्यास)—लेखक, भीमसेन विद्यालंकार; मूल्य १)

(४) "वीर-व्रत-पालन या महाराणा प्रताप" (प्रथम खंड—ऐतिहासिक उपन्यास)—लेखक, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा; मूल्य २॥)

(५) "नवीन बीन या नदीमे दीन" (सचित्र)—लाला भगवानदीनजी की ४२ कविताओं का संग्रह। मूल्य १)

(६) "जनमेजय का नाग-यज्ञ" (पौराणिक नाटक)—लेखक, बा० जयशंकर "प्रसाद"; मूल्य ॥=)

(७) "जरासंध-वध-महाकाव्य" (पूर्वार्द्ध)—बा० गोपालचंद्र उपनाम "गिरिधरदास"-कृत और बा० ब्रज-रत्नदास बी० ए० द्वारा संपादित; मूल्य १)

(८) "माणिक-मंदिर" (सामाजिक उपन्यास)—लेखक, श्रीमदारीलाल गुप्त; मूल्य २)

(९) "जननी-जीवन" (श्रीविप्रदास मुखोपाध्याय-लिखित 'जननी-जीवन'-नामक बँगला-पुस्तक के आधार पर लिखित)—लेखक, पं० शिवसहाय चतुर्वेदी; मूल्य ॥)

(१०) "गल्प-विनोद" (गल्पों का संग्रह)—लेखिका, श्रीमती शारदाकुमारी देवी; मूल्य १)

(११) "शांता" (स्त्रियोपयोगी सामाजिक उपन्यास)—लेखक, पं० रामकिशोर मालवीय; मूल्य ॥)

(१२) "प्रेम-प्रमोद" (कहानियों का संग्रह)—लेखक, श्रीप्रेमचंद; मूल्य १॥=) और २॥)



१. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

भरतपुर में होनेवाले आगामी हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन फ़रवरी के अंत में होना एक प्रकार से निश्चित ही समझना चाहिए। इधर एक सूचना प्रकाशित हुई है कि अब स्वागत-कारिणी समिति का संगठन कर लिया गया है, और सभापति-पद के लिये ५ नाम भी चुन लिए गए हैं। इसमें संदेह नहीं कि इस बार सम्मेलन के कार्य में बड़ी ढिलाई की गई है। सम्मेलन की तिथियाँ बढ़ाने का अभिप्राय यह था कि सम्मेलन का कार्य और भी अच्छी तरह किया जा सके, और यह अधिवेशन अभूतपूर्व हो। पर फल विपरीत ही देखने में आया— कार्य करने में और भी शिथिलता देख पड़ी। कार्यकर्ताओं को चाहिए था कि वे जुटकर कार्य करते, और अपने कार्य और कठिनाइयों की सूचना जनता को देते रहते। ख़ैर, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, अब भी अगर जुटकर तत्परता से कार्य किया जायगा, तो सम्मेलन आशा के अनुरूप ही होगा। स्वागत-मंत्री की सूचना से यह भी मालूम हुआ कि लेख लिखने की विषय-सूची प्रकाशित हो जाने पर भी अब तक हिंदी के सुयोग्य विद्वानों ने कोई निबंध लिखकर कार्यकर्ताओं के पास नहीं भेजा। वास्तव में यह बड़े खेद की बात है, और इससे हिंदी के विद्वानों का हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की ओर लापरवाही का भाव ही प्रकट होता है। ऐसा न होना चाहिए। हम हिंदी के सुयोग्य लेखकों से साग्रह अनुरोध करते हैं कि वे यथासंभव शीघ्र ही अपने चुने हुए विषय पर पांडित्य-पूर्ण निबंध लिखना शुरू कर दें, और उसकी सूचना स्वागत-मंत्री के पास भेजने की कृपा करें, जिसमें वे लेख पहले ही पुस्तकाकार छपाए जा सकें। ऐसा कर सकने से सम्मेलन के अवसर पर उन लेखों की बिक्री भी यथेष्ट हो जाने की संभावना है।

हम सुनते हैं महाराज भरतपुर-नरेश ख़ास तौर पर इस बार के सम्मेलन के काम में दिलचस्पी ले रहे हैं। यह भी हिंदी-भाषा के लिये शुभ लक्षण है। स्वागत-कारिणी समिति से हमारी यह भी प्रार्थना है कि वह शीघ्र ही समय और सभापति का निर्वाचन करके उसकी सूचना प्रकाशित कर दे। सभापति का चुनाव दो-एक महीने पहले ही हो जाना चाहिए, जिसमें निर्वाचित सभापति को अपना सुचिंतित भाषण लिखने के लिये यथेष्ट अवसर मिले। हमें आशा है, इस बार के निर्वाचित सभापति महोदय अपने भाषण में हिंदी-साहित्य की वर्तमान प्रगति और परिस्थिति पर यथेष्ट प्रकाश डालते हुए आगे किस तरह किन उपायों से हिंदी-साहित्य की उन्नति और प्रसार किया जाय, इस पर भी अपनी सम्मति अवश्य देंगे।

× × ×

२. लेखों की विषय-सूची

इस बार लेख लिखने के लिये जो विषय चुने गए हैं, वे बहुत अच्छे हैं। चुनाव अच्छा किया गया है। लेखकों की जानकारी के लिये हम यहाँ पर विषय-सूची दिए देते हैं—

१. राजपूताने में हिंदी-पुस्तकों की खोज के उपाय।
२. राजपूताने में हिंदी की दशा।
३. देशी राज्य और हिंदी।
४. भरतपुर के हिंदी-कवि तथा लेखक।
५. व्रजभाषा।
६. हिंदू और मुसलमान।
७. व्रजभाषा तथा खड़ी बोली।
८. राजपूताने में हिंदी की उन्नति के उपाय।
९. हिंदी-साहित्य की वर्तमान दशा।
१०. सूरदासजी का हिंदी-साहित्य पर प्रभाव।
११. राजपूताना और महिला-समाज।
१२. हिंदी में वीर-काव्य।
१३. डिंगल-काव्य।
१४. अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
१५. बाँसवाड़ा के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
१६. बीकानेर के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
१७. बूँदी के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
१८. धौलपुर के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
१९. डूँगरपुर के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
२०. जयपुर के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
२१. मारवाड़ के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
२२. करौली के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
२३. किशनगढ़ के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
२४. कोटा के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
२५. जोधपुर के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
२६. उदयपुर के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
२७. प्रतापगढ़ के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
२८. सिरोही के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
२९. टोंक के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
३०. कुशलगढ़ के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
३१. झाबा के अलवर-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
३२. नीमराना-राज्य के हिंदी-कवि तथा लेखक।
३३. जैसलमेर के हिंदी-कवि तथा लेखक।
३४. शेखावाटी के हिंदी-कवि तथा लेखक।
३५. अजमेर-प्रांत के हिंदी-कवि तथा लेखक।
३६. बंगाल में हिंदी-प्रचार के उपाय।
३७. विदेशियों में हिंदी-प्रचार के उपाय।
३८. अपभ्रंश शब्दों का वर्तमान देशी भाषाओं से संबंध।
३९. वैष्णव-धर्म और व्रजभाषा।
४०. हिंदी और उर्दू-साहित्य का पारस्परिक प्रभाव।
४१. भरतपुर-राजवंश के वीर—
  १—महाराजा सूरजमल जाट
  २—महाराजा जवाहिरसिंह (विशेषतः)
४२. हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य।
४३. हिंदी-साहित्य-निर्माण में योरपीय भाषाओं का स्थान।
४४. आधुनिक हिंदी-साहित्य के विकास की दशा और गति।
४५. श्रीमंगलाप्रसाद-पारितोषिक।
४६. वर्तमान हिंदी-गद्य की भाषा और शैली।
४७. साहित्य में उपन्यास और नाटक का स्थान तथा हिंदी-साहित्य में उपन्यास और नाटक।
४८. हिंदी-साहित्य पर वर्तमान राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव।
४९. आधुनिक पत्र-संपादन-कला।
५०. कृषि और गो-पालन।
५१. मध्यमोत्तर काल (१७००-१८५०) में वीर-काव्य।

५२ मध्यमोत्तर काल में हिंदुत्व की दशा।

५३ हिंदी में ऐतिहासिक साहित्य।

५४ हिंदी का गणित-संबंधी साहित्य।

इनमें कुछ विषय तो ऐसे हैं, जिन पर राजपूताने के विद्वान् ही अच्छा निबंध लिख सकेंगे; किंतु कुछ विषय ऐसे भी हैं, जिन पर प्रत्येक प्रांत का अध्ययनशील विद्वान् लिख सकता है। हमें विश्वास है कि योग्यता रखनेवाले सज्जन अवश्य लेख लिखकर हिंदी-साहित्य के भांडार को भरने की चेष्टा करेंगे।

× × ×

१. एक अप्रकाशित ग्रंथ

हिंदी-भाषा के सेवक अनेकों कवियों और लेखकों के अनेकों ग्रंथ अब तक अज्ञात और अप्रकाशित ही पड़े हैं, यह हिंदी और हिंदी-भाषाभाषियों के लिये दुर्भाग्य और लज्जा की बात है, इसमें संदेह नहीं। अभी हमें उत्तर-पाड़ा (ग्राम), ज़िला रायबरेली के निवासी पंडित गिरिधारीलाल त्रिपाठी की एक रचना देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का घनाक्षरी में स्वतंत्र अनुवाद है। इन गिरिधारीलालजी को हुए अभी सौ वर्ष भी नहीं हुए। इनके पौत्र यह पुस्तक हमारे पास लाए थे। रचना बड़ी सरस और मनोरम है। नमूने के तौर पर यहाँ हम उसके कई छंद देते हैं। पाठक देखेंगे, इसमें शब्द-योजना कैसी सुंदर और भाव कैसे मधुर हैं। हम आशा करते हैं, कोई-न-कोई सहृदय काव्यानुरागी प्रकाशक इस ग्रंथ को कवि के पौत्र से लेकर प्रकाशित करने की अवश्य चेष्टा करेंगे। पत्र-व्यवहार करने का पता है—पं० केदारनाथ त्रिपाठी, ग्राम उत्तरपाड़ा, पोस्ट भाँव, ज़िला राय-बरेली (अवध)। अच्छा, अब कविता का नमूना देखिए—

एकई रदन गज-बदन बिराजमान
 मदन-कदन सुत, सदन सुकाम के;
कहै, गिरिधारी गिरिराजनंदिनी के नंद,
 आनंद के कंद जगबंद बर नाम के।
सुंडादंडमंडली कमंडली को मोहै मन,
 भाल चंद मंडली बिलास गुनग्राम के;
ऐसे गननायक के ऋद्धिबरदायक के,
 पायँ बंदि करत चरित्र स्यामा-स्याम के।
देवकी कहत—पति, सुत को उपाय कीजै,
 नातरु न बाँचै पर्यो हाथ घातकन के;
बालकहि लैकै और कढ़ि जाउ कौनौ ओर,
 बहुंदव सोचत ज्यों चोर हाटकन के।
भटभीर सोय गए, चौकीदार सोय गए,
 सोयगे खबरदार चारु चाटकन के;
टूटिगे निगड़ लोह-संगरऊ छूटि गए,
 आपु ही ते उघरि कपाट फाटकन के।
सीस धरि बालक अनूप देवकी के पति,
 मथुरा ते ताक्यो पंथ गोकुल को जान के;
कहै गिरिधारी भारी भादौं की अँधेरी साँझ,
 जमुना मँझाय लीन्हो जोर निज प्रान के।
सहमि सुभाइ रह्यो पायँ परसे को जही,
 चढ़्यो उफलायकै प्रबाह बेप्रमान के;
तनिक कन्हैया की तननी भौंह ताकी वही,
 तरनितनया बही नीरे तरवान के।

× × ×

४. महाराज छत्रसाल का स्मारक

प्रत्येक जीवित जाति अपने संरक्षक वीर पुरुषों की याद बड़ी श्रद्धा से करती है। अन्य देशों में स्वतंत्रता के लिये कष्ट सहनेवाले, जाति को जगानेवाले, जातीयता के हिमायतियों का नाम बड़े आदर से लिया जाता है, उनकी पूजा इष्टदेव की तरह की जाती है। ऐसे पूज्य नर-रत्नों के अमर अक्षय स्मारक भी बनाए जाते हैं। विधि-विडंबना से आज भारतवासी—जिनके पूर्वज वीर-पूजा के प्रख्यात पुजारी और स्वयं वीर थे—पराधीन होकर अपनी विशेषताओं को बहुत कुछ भूल गए हैं। हमारे यहाँ जिन महापुरुषों ने देश के लिये बहुत कष्ट सहे और जातीयता की नींव डाली, उनको, विदेशी विधर्मी लेखकों के इशारे पर, हम भी डाकू-लुटेरा-विद्रोही आदि समझ बैठे हैं। कितना घोर अधःपतन है! किंतु अब हवा पलटी है, देश में जातीयता के भावों का संचार होने के साथ ही हम भी अपने पूज्य पूर्वज महापुरुषों के महत्त्व पर दृष्टिपात करने लगे हैं। हमें सूचना मिली है कि बुंदेलखंड-केसरी, प्रातःस्मरणीय महाराज छत्रसाल का स्मारक बनाया जानेवाला है। महाराज छत्रसाल को हम महाराणा प्रताप अथवा शिवाजी के बराबर नहीं, तो उनके बाद ही देश-प्रेमियों और देश की स्वतंत्रता के रक्षकों में स्थान दे सकते हैं। आपके वंशधर श्रीमान् पन्ना-नरेश ने अपने पूर्वज महाराज छत्रसाल की स्मृति को पुन-



बुंदेलखंड-केसरी महाराज छत्रसाल

जीवित करने का आयोजन करके प्रशंसनीय कर्तव्य का पालन किया है। महाराज छत्रसाल की एक मर्मर मूर्ति स्थापित की जायगी। उसके साथ ही स्मारक-स्वरूप एक पुस्तकालय भी रहेगा, जिसमें प्राचीन और अर्वाचीन उपयोगी पुस्तकों का संग्रह किया जायगा। सच्चा स्मारक यही होगा। हम इस सत्संकल्प के लिये महाराज को साधुवाद देते हैं। इस स्मारक के खर्च में सर्वसाधारण की ओर से भी जो कुछ श्रद्धा का दान मिलेगा, वह भी सादर ग्रहण किया जायगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि देश को धनी-मानी और साधारण जनता इस सत्कार्य में सहर्ष योगदान करेगी। इसके साथ ही एक सूचना और भी प्रकाशित करते हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। वह यह कि महाराज छत्रसाल पर सर्वोत्तम कविता करनेवाले सज्जन को श्रीमती महेंद्र महारानी (पन्ना-राज्य) की ओर से १०१) रुपए का पारितोषिक भी दिया जायगा। कविता में महाराज छत्रसाल के नैतिक, सामाजिक, धार्मिक और वैयक्तिक जीवन पर भी प्रकाश डालना आवश्यक होगा। कविता ब्रजभाषा में होनी चाहिए। ४०० पंक्तियों से कम न हो। हिंदी के ३ धुरंधर साहित्य-मर्मज्ञ विद्वान् निर्णय करेंगे। कविता भेजने की अंतिम तिथि २० जनवरी, १९२७ निश्चित है। कविता इस पते पर भेजनी होगी—अध्यक्ष, श्रीबलदेव-मेला-समिति, पन्ना-राज्य (मध्य-भारत)। हमें आशा है, सुकवि महोदय अवश्य इस वीर-महापुरुष के गुणानुवाद से अपनी लेखनी को पवित्र करेंगे।

× × ×

४. मिस्टर ए० एच्० मेकेंज़ी

मिस्टर मेकेंज़ी का जन्म ९ फ़रवरी, सन् १८८० ई० को, इँगलैंड में, हुआ था। चार वर्ष अध्ययन के बाद उन्होंने एबरडीन-विश्वविद्यालय से एम्०ए० और बी०एस्०-सी० की डिगरियाँ प्राप्त कीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने तीन वर्ष तक रॉयल साइंस कॉलेज में अध्ययन किया, और उस संस्था के सदस्य बनाए गए। सन् १९०८ ई० में मिस्टर मेकेंज़ी इंडियन एजुकेशनल सर्विस के मेंबर होकर ट्रेनिंग कॉलेज, इलाहाबाद के प्रोफ़ेसर बनाए गए। परंतु उस पद पर कार्य करने के पहले ही उन्होंने १४ ऑक्टोबर, सन् १९०८ से २७ एप्रिल, सन् १९०९ तक इलाहाबाद डिवीज़न के एडीशनल इंस्पेक्टर ऑफ़् स्कूल्स की जगह पर काम किया। इस समय के बीतने पर आप २८ एप्रिल, सन् १९०९ को ट्रेनिंग कॉलेज, इलाहाबाद के प्रिंसिपल बनाए गए, और २३ जून, सन् १९२० तक उसी पद पर काम करते रहे। दो बार संयुक्तप्रांत में वर्नाक्युलर-शिक्षा के प्रचार के लिये इनकी विशेष नियुक्ति की गई और एक बार वह सरकार की ओर से आधुनिक शिक्षा-संबंधी उन्नति—विशेषकर इँगलैंड और स्कॉटलैंड के पब्लिक स्कूलों की शिक्षा-प्रणाली—का अध्ययन करने के लिये इँगलैंड भेजे गए। २४ जून, सन् १९२० से १६ दिसंबर, सन् १९२१ तक इन्होंने चीफ़ इंस्पेक्टर ऑफ़् वर्नाक्युलर एजुकेशन का काम किया। १७ दिसंबर, सन् १९२१ से



मिस्टर ए० एच्० मेकेंज़ी एम्० ए०, बी० एस्-सी०, एम्० एल्० सी०

(युक्तप्रांत के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर)

यह डाइरेक्टर ऑफ़् पब्लिक इंस्ट्रक्शन के पद पर हैं। १ एप्रिल, सन् १९२३ से आप युक्तप्रांत की कौंसिल में सरकार की ओर से शिक्षा-विभाग के डिपुटी-सेक्रेटरी का काम कर रहे हैं। हमें आशा है, आपसे देश में शिक्षा-प्रचार के काम में यथेष्ट सहायता मिलेगी।

× × ×

६. व्यायाम-चर्चा

शरीर और मन का अविच्छेद्य संबंध है। एक के उन्नत और दूसरे के अवनत होने से काम नहीं चल सकता। जो अधिक विद्योपार्जन कर चुका है, पर शरीर से शिथिल है, उसका जीवन कभी सुखमय नहीं हो सकता। खेद के साथ लिखना पड़ता है, हमारे यहाँ के नवयुवक विद्यार्थियों की कुछ ऐसी ही स्थिति देख पड़ती है। वे अपना पाठ याद करने में जितना मन लगाते हैं, उतना व्यायाम-चर्चा में नहीं। फल-स्वरूप किसी को संसार में प्रवेश करने से पहले ही आँखों की कमज़ोरी के कारण चश्मा लगाने की ज़रूरत पड़ती है, कोई बारहो महीने रोगी बना रहता है, और कोई इतना कमज़ोर है कि एक धक्का मारने से ही सात क़लाबाज़ियाँ खा जाय। ऐसे विद्यार्थियों और नवयुवकों को आधुनिक भीम प्रो० राममूर्ति के अमूल्य उपदेशों पर ध्यान देकर उन्हीं के अनुसार कार्य करना चाहिए। प्रोफ़ेसर महाशय ने बंबई में, कुछ दिन हुए, एक भाषण दिया था। उसमें उन्होंने कहा था—इस समय हमारी जाति के अभ्युत्थान और उन्नति के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि व्यायाम-चर्चा की जाय। प्रो० राममूर्ति इस समय जाति के पुनर्गठन के उद्देश्य से अपने सर्कस का कार्य स्थगित करके शारीरिक शक्ति के अनुशीलन के लिये एक संस्था स्थापित करने के उद्देश्य में लगे हुए हैं। प्रोफ़ेसर साहब से फ़्री-प्रेस के एक प्रतिनिधि ने मुलाक़ात की थी। उससे आपने कहा—भारत के विद्यार्थियों में इस समय फ़ी सदी नब्बे आदमी ऐसे हैं, जिनका शरीर अत्यंत क्षीण और दुर्बल है। उनको व्यायाम-चर्चा की आवश्यकता समझा दी जाय, कुछ आनंददायक व्यायामों का अभ्यास करा दिया जाय, तो सहज ही इस समस्या का समाधान हो सकता है। व्यायाम करने का उद्देश्य यह नहीं है कि बड़े-बड़े पहलवान तैयार किए जायँ। व्यायाम का उद्देश्य होना चाहिए शरीर की शक्ति को आवश्यकता के अनुरूप बढ़ाना, जिससे शरीर स्वस्थ रहे, मानसिक विकास हो, और वह व्यक्ति अपने चरित्र को उन्नत बना सके। शारीरिक शक्ति से चरित्र की उन्नति अवश्य ही अधिक महत्त्व रखती है; किंतु वास्तव में दोनो परस्पर सापेक्ष हैं। जिसका शरीर और मन स्वस्थ नहीं है, वह अपने चरित्र को कदापि उन्नत नहीं बना सकता। किसी भी वस्तु को प्राप्त करने के लिये साहस की आवश्यकता होती है। और, साहस होता है शक्ति से। मानसिक शक्ति की नींव शारीरिक शक्ति पर स्थित होती है। हम लोग यदि शरीर की शक्ति न बढ़ावेंगे, तो हममें आत्मविश्वास कभी पैदा नहीं हो सकता। यदि हम सच्चे मनुष्य की तरह आत्मविश्वासी होकर अपने घर और अंतःपुर की रक्षा नहीं कर सकते, स्त्रियों की इज़्ज़त और मंदिरों की पवित्रता की रक्षा करने में असमर्थ हैं, तो हमारे लिये चरित्र, शक्ति और आत्मीय उन्नति की बात मन में लाना भी कठिन होगा। इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य उन्नति करके देवता

बन सकता है, किंतु इसमें भी संदेह नहीं कि मनुष्य के विकास की प्रथम सीढ़ी पाशविक या शारीरिक शक्ति ही है। जो बालक कमज़ोर या कायर है, उसके लिये निर्भीक मनुष्य बनना एक प्रकार से असंभव हो कहा जा सकता है। मनुष्य पहले शारीरिक सहज ज्ञान को लेकर ही पैदा होता है—उस समय शारीरिक अभाव-अभियोग और भय ही उसकी दृष्टि में प्रबल होता है। लड़कपन में ही शारीरिक शक्ति की साधना और आराधना में मन न लगाने से मनुष्य कदापि नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में अग्रसर नहीं हो सकता। कारण, शारीरिक उपयुक्तता के बिना उक्त योग्यताओं को प्राप्त करना सर्वथा असंभव है। शारीरिक परिश्रम के कार्य से डरने और शरीर की शक्ति में सामंजस्य न रखकर बहुत बड़ी मात्रा में मानसिक अनुशीलन की चेष्टा करने से ही आज हमारे नवयुवक इस अवस्था को पहुँच गए हैं कि जीविका के क्षेत्र में भी वे शारीरिक परिश्रम से बचकर चलना चाहते हैं। यह ध्वंस की राह है। इससे जाति को बचाने का एकमात्र उपाय यही है कि अब स्त्री और पुरुष, दोनों शारीरिक शक्ति का अनुशीलन यथेष्ट रूप से करें। यह याद रखना चाहिए कि सबल, स्वस्थ और आनंदमय चित्त में ही भगवान् की इच्छा का उदय हुआ करता है। मनुष्य को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक, तीनों प्रकार की शक्ति का विकास करने की आवश्यकता है। इनमें से किसी एक के भी अभाव से यथार्थ उन्नति में बाधा पड़ सकती है। मतलब यह कि मनुष्य की उन्नति का प्रथम सोपान शारीरिक शक्ति और अखंड स्वास्थ्य है। आजकल जो लड़के कुछ व्यायाम-चर्चा के खेल खेलते भी हैं, तो वे प्रायः विलायती ही होते हैं। किंतु वे संपूर्ण अंश में इस देश के लिये उपयोगी नहीं होते। प्रो० राममूर्ति की राय में शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिये पुरानी भारतीय प्रथा—पुरानी चाल की कसरत और खेल—ही हमारे लिये सर्वोत्तम है। योरप और अमेरिका की कसरत की तरह भारत की कसरत से तत्काल ख़ूब फल नहीं दिखाई पड़ता, यह ठीक है। तथापि यह इसलिये अधिक महत्त्व रखती है कि इसका फल स्थायी होता है। इससे शरीर की शक्ति बढ़ाने के साथ ही चित्त में शांति आती है। हमें आशा है, हमारे देश के आशास्थल नवयुवक अब विद्याध्ययन के साथ ही शारीरिक शक्ति बढ़ाने की ओर भी यथेष्ट ध्यान देंगे।

× × ×

७. योरप में भारत के शिल्प का आदर

इस समय हमारे देश में विलायती चीज़ों का, विलायती फ़ैशन का बड़ा आदर देखा जाता है। किंतु एक समय वह भी था, जब भारत की वस्तुओं का, भारत के शिल्प का योरप में आदर हुआ करता था। दैव-विडंबना और हमारी अकर्मण्यता से आज उलटी गंगा बह रही है। किंतु समय सदा एक-सा नहीं रहता। अब कुछ उत्साही भारतवासियों की ओर से यह उद्योग होने लगा है कि विदेशों में फिर भारत का शिल्प आदर की दृष्टि से देखा जाय। इन उद्योगी पुरुषों में बंगाल (कलकत्ता) के श्रीयुत अक्षयकुमार नंदी महाशय का नाम उल्लेख योग्य है। आप स्त्रियों के लिये मातृमंदिर नाम की एक सुंदर मासिक पत्रिका भी बँगला में निकालते हैं, और इकोनमिक जुएलरी वर्क्स, कलकत्ता के स्वामी भी हैं। आपके यहाँ बहुत सुंदर सादे और जड़ाऊ गहने (भारतीय और विलायती ढंग के भी) तैयार होते हैं। सन् १९२४ में, विलायत में, जो बृहत् प्रदर्शिनी हुई थी, उसमें आप भी अपनी दूकान ले गए थे। वहाँ आपके माल की ख़ूब खपत हुई। आपके यहाँ की ख़ास तौर की बनी हुई सोने की चूड़ियाँ अनेक अँगरेज़ महिलाओं ने पसंद कीं और ख़रीदीं। १५,००० ग्राहकों ने आपकी दूकान से सौदा ख़रीदा। आपके यहाँ की वीणापाणि-चूड़ी, वीणापाणि-आर्मलेट तथा अन्य कई नए स्टाइल के गहने बहुत पसंद किए गए। महामान्य सम्राट् पंचम जॉर्ज की धर्मपत्नी महारानी मेरी ने भी वीणापाणि-आर्मलेट की बड़ी प्रशंसा की थी। सन् १९२५ में फिर आपके भाई दुबारा दूकान लेकर प्रदर्शिनी में गए थे। लंदन में शायद आप अपनी एक शाखा खोलने का भी विचार कर रहे हैं। सन् १९२४ में प्रदर्शिनी बंद होने पर नंदी महाशय ने स्कॉटलैंड और आयर्लैंड में घूमकर वहाँ के शिल्प-वाणिज्य के संबंध में विशेष अभिज्ञता भी प्राप्त की, और वहाँ से स्त्रियों के आभूषण बनाने में सहायता करनेवाली कुछ हैंड-मशीनें भी अपने साथ लाए हैं। इसमें संदेह नहीं कि आप एक उद्योगी पुरुष हैं, और आपके द्वारा आभूषण-शिल्प की बहुत कुछ उन्नति होने की आशा है।

× × ×

८. एक ऐतिहासिक आविष्कार

सर ऑरल स्टीन साहब गत मार्च, एप्रिल और मई में पश्चिमोत्तर-सीमा प्रांत में प्राचीन ऐतिहासिक खोज

कर रहे थे। उस समय उन्होंने उक्त स्थान पर सिकंदर बादशाह के भारत-विजय करने के लिये किए गए आक्रमण का पहला स्थान खोज निकाला। उनका कहना यही है। सिकंदर ने ईसा के जन्म से पहले ३२७-२६ सन् में भारत पर आक्रमण किया था। सिकंदर के भारत-आक्रमण का इतिहास अरियन डायडोर और गरार्टियस ने सबसे पहले लिखा था। ख्री० पू० ३२७ सन् में सिकंदर ने बाक्ट्रिया से भारत-विजय के लिये यात्रा की थी। उसने हिंदूकुश-पर्वत को लाँघकर, काबुल-नदी के किनारे-किनारे, अपनी सेना के एक हिस्से को पेशावर-उपत्यका की ओर रवाना किया था। उसके बाद शेष सेना लेकर वह स्वयं कुनाल-नदी पार कर बाजूर नाम के स्थान में आकर उपस्थित हुआ। उस समय बाजूर में अश्वसिया नाम का राजा रहता था। सिकंदर ने पहले उसके साथ युद्ध किया था। यह स्थान इस समय मिला है। उसके बाद और एक युद्ध की जगह भी मिली है, जो पंजीकोरा नदी के उस पार टाला-उपत्यका में अवस्थित है। निम्न स्थान में पंजीकोरा एक बहुत बड़ा शहर था। इसका बहुत कुछ प्रमाण मिस्टर स्टीन ने खोज निकाला है। इसी जगह सिकंदर को पहले भयानक युद्ध करना पड़ा था। उसके बाद आगे बढ़कर सिकंदर ने बजोरा नाम के स्थान पर आक्रमण किया। मिस्टर स्टीन का कहना है कि उक्त बजीरा का नाम इस समय बीरकोट है। बीरकोट पहाड़ में इंडो-ग्रीक शासकों के चलाए बहुत-से सिक्के प्राप्त हुए हैं। बीरकोट से १० मील के फ़ासले पर ऊदीगाँव नाम का एक बड़ा क़स्बा है। वहाँ भी अनेक सिक्के मिले हैं। बीरकोट के और यहाँ के सिक्के एक ही समय और एक ही आकार के हैं। इसके उपरांत सिकंदर ने ओड़ा पर और फिर सुकेलाटिस-नामक स्थान (यह पेशावर के पास ही है, और इसका वर्तमान नाम चरसादा है) पर आक्रमण किया। ये सब स्थान सिंधु-नदी के किनारे ही हैं। इस स्थान पर कई छोटे-छोटे नगरों पर अधिकार करते हुए सिकंदर एंकेसिसा नाम के स्थान पर उपस्थित हुआ। बहुतों का अनुमान है कि यह स्थान सिंधु-नदी के दाहने किनारे पर स्थित इस समय का अंबा नाम का गाँव है। सिकंदर ने यहीं छावनी डालकर इरोनस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की थी। इस युद्ध में लोगास का पुत्र टालेमी उपस्थित था, और उसी ने सेना का संचालन किया था। इरोनस एक ऐसा स्थान था, जिसे कई पर्वतों ने मिलकर बहुत ही मज़बूत बना दिया था। यह पर्वत-समुदाय बहुत ऊँचा है। इसी के ऊपर इरोनस-शहर बसा हुआ था। एरियन जो इतिहास लिखा गया है, उसके अनुसार यह इरोनस ही सिकंदर के प्रसिद्ध युद्ध का स्थान है। मेसिडोनिया के वीर योद्धाओं ने यहाँ बड़ा भयानक युद्ध किया था। यही इस खोज का विवरण है। सर स्टीन इस संबंध में और भी बहुत-सी बातों के आविष्कार की चेष्टा कर रहे हैं। आशा है, उनकी यह चेष्टा शीघ्र ही सफल होगी, और वह यशस्वी होंगे।

× × ×

९. बड़ोदा-नरेश का हिंदी-प्रेम

हिंदी के लिये यह सौभाग्य की बात है कि साधारण जनता के सिवा देश के राजे-महाराजे भी अब उसकी ओर कृपा-कोर करने लगे हैं। यह तो हमारे पाठकों को मालूम ही है कि श्रीमान् बड़ोदा-नरेश एक आदर्श राजा हैं। आपने अपने राज्य में जो सुधार किए हैं, अपनी प्रजा के लिये जो सुविधाएँ कर दी हैं, वे अन्य देसी रियासतों की कौन कहे, ब्रिटिश भारत में भी नहीं देख पड़तीं। वास्तव में बड़ोदा, मैसूर आदि दो-चार रियासतें भारत के गौरव की सामग्री हैं। बड़ोदे के वर्तमान नरेश बड़े भारी विद्या-प्रेमी हैं। आपकी कृपा हिंदी पर सदा से रही है। आप दो-एक बार हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशनों में भी पधारे हैं। आपने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को अच्छी और सस्ती पुस्तकें प्रकाशित करने के लिये २०००) रुपए का दान भी दिया है। आपके ही राज्य से हिंदी की अनेक उपयोगी पुस्तकें लिखवाकर जयदेव-बंधु ने प्रकाशित की हैं। इस तरह आप हिंदी की उन्नति के उद्योगों में सम्मिलित रहते हैं। आपने अपने यहाँ सन् १९०६ से शिक्षा अनिवार्य कर दी है। हाल ही में आपने एक कमीशन इसलिये मुक़र्रर किया है कि वह राज्य में अनिवार्य शिक्षा के बारे में जाँच करे। आपने अभी एक और कार्य ऐसा किया है, जिससे आपके हिंदी-प्रेम का पूरा परिचय प्राप्त होता है। आपने यह हुक्म निकाला है कि आपके राज्य के स्कूलों में चौथे दर्जे और लोअर-मिडिल तक हिंदी पढ़ना अनिवार्य माना जाय। इसी सिलसिले में अपना यह विचार भी प्रकट किया है कि हिंदी ही राष्ट्र-भाषा है, और वह शीघ्र ही व्यावहारिक रूप में राष्ट्र-भाषा मानी जाने लगी। उस समय बच्चों को



बड़ौदा-नरेश महाराज सयाजीराव गायकवाड़

हिंदी के इस आरंभिक अभ्यास से हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की बड़ी सहूलियत होगी। महाराजा साहब का यह कथन सोलहों आने सच है। शीघ्र ही वह समय आनेवाला है, जब देश-भर में हिंदी ही राष्ट्र-भाषा होकर प्रचलित हो जायगी, और ऊँची-से-ऊँची शिक्षा हिंदी में ही दी जाने लगेगी। हम श्रीमान् की इस सहृदयता और समझदारी का सादर अभिनंदन करते हुए ईश्वर से आपके चिरजीवी होने की प्रार्थना करते हैं। हमें आशा ही नहीं, विश्वास है कि आपके अनुकरणीय आदरणीय आदर्श को सामने रखकर अन्य देसी रियासतों के अधीश्वर भी अपने यहाँ हिंदी की शिक्षा अनिवार्य कर देंगे। तथास्तु।

× × ×

१०. स्वर्गीय कुँअर हनुमंतसिंह
रघुवंशी

हिंदी के पुराने सेवक एक-एक करके परलोकवासी होते चले जा रहे हैं, यह बड़े खेद की बात है। किंतु यह दुर्भाग्य की बात है कि उनके रिक्त स्थान की पूर्ति करनेवाले, वैसी ही सच्ची लगन से मातृ-भाषा की सेवा करनेवाले, सज्जन नहीं नज़र आते। इधर पं० नंदकुमारदेवशर्मा और प्रो० राधाकृष्ण झा एम्० ए० के साथ ही कुँअर हनुमंतसिंह रघुवंशी की मृत्यु का समाचार पढ़कर हमारे शोक की सीमा नहीं रही। कुँअर साहब उन आदमियों में से थे, जो चुपचाप काम करना ही पसंद करते हैं, किसी से लड़ने-झगड़ने से सदा दूर रहते हैं। हनुमंतसिंहजी बड़गूजर-ठाकुर थे। बुलंदशहर-ज़िले के औरंगाबाद-चाँदोख नाम के स्थान में फाल्गुन-सुदि ७, संवत् १९२४ वि० को आपका जन्म हुआ था। शुरू में आप गाँव में ही हिंदी और उर्दू की शिक्षा पाते रहे। फिर बुलंदशहर के हाई स्कूल में अँगरेज़ी पढ़ने लगे। वहाँ से मिडिल और आगरा-कॉलिजिएट स्कूल से आपने एंट्रेंस पास किया। आप आर्य-समाज के सिद्धांतों के अनुयायी थे। छात्रावस्था में ही आप हिंदी में लेख वग़ैरह लिखने लगे थे। इसके बाद आप भिनगा-रियासत में एक अच्छे पद पर नौकर हो गए। भिनगा-नरेश की आप पर विशेष कृपा रहती थी। चार वर्ष नौकरी करने



स्वर्गीय कुँअर हनुमंतसिंह रघुवंशी

के बाद आप आगरे चले गए। वहाँ आपने 'राजपूत-ऐंग्लो-ओरियंटल-प्रेस' नाम से एक छापाख़ाना खोल दिया। क्षत्रिय-महासभा का मुखपत्र 'राजपूत' (पाक्षिक) इसी प्रेस से निकलने लगा, और कुँअर साहब ही उसके संपादक हुए। यह पत्र बराबर अब तक निकल रहा है। आप ख़ास अपना पत्र 'स्वदेश-बांधव' भी निकालते थे। इसके १० वर्ष तक संपादक आप ही थे। आप बड़े मिलनसार और अध्ययनशील विद्वान् थे। आगरे में नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना भी आप ही के उद्योग से हुई थी। वहाँ एक सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना में भी आपका हाथ था। आपने अपने जीवन का अधिकांश समय मातृ-भाषा की सेवा में ही लगाया। आपकी लिखी पुस्तकें अच्छी हैं, और उनका प्रचार भी काफ़ी है। उनकी संख्या २०-२५ के लगभग होगी। आप भाषा सरल और सुंदर लिखते थे। इस समय आपकी अवस्था ४८ वर्ष की हो चुकी थी, यह ४९वाँ वर्ष चल रहा था। आपके ३ पुत्र, २ कन्याएँ और आपकी विधवा पत्नी हैं। हम आपके क्षुब्ध परिवार के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हुए ईश्वर से आपकी आत्मा को शांति-प्रदान करने के लिये प्रार्थना करते हैं।

× × ×

११. आदर्श शिशु

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के अनेक दोषों को देखते हुए, उनमें से कुछ के निराकरण-स्वरूप, हम यहाँ एक आदर्श गृहस्थ-शिक्षण का परिचय देते हैं। भारतीय गृहस्थ स्त्रियाँ प्रायः पढ़ी-लिखी नहीं रहतीं ; किंतु जो पढ़ी-लिखी हैं, उनके लिये यह उदाहरण अनुकरणीय है। पाठक आगे जिस बालिका का चित्र देखेंगे, उसकी अवस्था अभी कुल तीन वर्ष के भी भीतर है। लेकिन यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह तीसरी-चौथी कक्षा की हिंदी पुस्तकें अच्छी तरह पढ़ सकती है। हमने इस बालिका को स्वयं, अपनी आँखों, पुस्तकें पढ़ाकर देखा है, और अपनी इस शंका के निवारणार्थ कि कहीं इसको पुस्तकें रटा तो नहीं दी गई—क्योंकि बाल्यावस्था में रटने की शक्ति बालकों में अधिक होती है, और यदि ऐसा भी होता, तो भी आश्चर्य की बात थी ; लेकिन ऐसा है ही नहीं—उलट-पुलटकर कई प्रकार के प्रश्न भी किए ; किंतु प्रत्येक प्रश्न का उत्तर इसने बिलकुल ठीक-ठीक दिया। तभी हमारी

वह इच्छा हुई कि इस आदर्श गृहस्थ-शिक्षा पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। इस संबंध में बालिका से भी अधिक धन्यवाद के पात्र इसके माता-पिता हैं, जिनकी शिक्षा-प्रणाली का रूप बालिका में विकसित हो रहा है। बालिका का नाम शांतिबाई है, और वह भारतवर्ष के एक



शांतिबाई

प्रसिद्ध प्राच्य विद्याओं के पंडित और प्रोफ़ेसर की पुत्री है। अभी हम बालिका के माता-पिता का नाम नहीं बतलाना चाहते। समय आवेगा, जब इस आदर्श दंपति का सचित्र परिचय पाठकों की भेंट करेंगे।

अच्छा, तो अब शांतिबाई ने यह शिक्षा कितने समय में और कैसे प्राप्त की? ढाई वर्ष के बच्चे तो ठीक तरह से बोल तक नहीं सकते; उनका कंठ ही नहीं फूटता। तब अवश्य ही यह एक महान् आश्चर्य है। अभी केवल ४ महीने हुए, जब से शांतिबाई की आदर्श माता ने बालिका को शब्दों के द्वारा अक्षरों का ज्ञान कराया। किसी भी अक्षर का ज्ञान कराने के लिये बालिका के मस्तिष्क में पहले पूरे शब्द की कल्पना उत्पन्न की गई। शीघ्र ही वह सब वर्णों को पहचानने लगी। धीरे-धीरे छोटे-छोटे वाक्य पढ़ने लगी, और आज वह तीसरी-चौथी कक्षा के विद्यार्थियों के बराबर पढ़ सकती है। शांति को गिनती भी अच्छी तरह मालूम है, यहाँ तक कि वह बीस तक पहाड़े भी पढ़ सकती है। अपने पिता-माता और बड़ी बहनों से सुनते-सुनते कई श्लोक भी उसे कंठस्थ हो गए हैं। इसी प्रकार रामायण की कई चौपाइयाँ भी कंठाग्र हैं। इन बातों के सीखने में बालिका के मस्तिष्क पर कोई ज़ोर डाला गया हो, सो बात नहीं। यह इस गृहस्थ एवं आदर्श शिक्षण की एक ख़ास विशेषता है। एक और बात मार्के की है। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, शांति समझकर प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करती है। बालिका बड़ी होनहार है। ईश्वर उसे चिरायु करे, ताकि समय आने पर वह भारत का मुख उज्ज्वल कर सके। इसके साथ-साथ यह हमारे लिये अभिमान की बात है कि इस गिरी हुई दशा में भी देश में ऐसे आदर्श गृहस्थ मौजूद हैं, जिनका अनुकरण प्रत्येक देश के लिये वांछनीय है।

× × ×

१२. सच्चा शहीद

"शीश जिनके धरम पर चढ़े हैं।
झंडे दुनिया में उनके गड़े हैं।"

धर्म की वेदी बड़ी पवित्र होती है। उस पर चढ़ने के लिये ध्येय, लगन और सच्ची निष्ठा की आवश्यकता होती है। सब उस पर चढ़ने का साहस नहीं कर सकते। पिछले दिनों हमने बहुतेरे शहीदों की याद के बलद नक़ारे सुने थे। पर हमारी समझ में वे सब महज़ फ़रेब का डंका पीटने के लिये थे। आज हमारे सामने एक सच्चे, निर्मोह और आदर्श शहीद का उदाहरण पेश है। धन्य हैं वे माताएँ, जिनकी कोख से ऐसे वीरों का जन्म होता है, और इसके बाद धन्य है वह जाति और वह देश, जिसमें ऐसे शहीद जन्म लेकर उसे पवित्र करते हैं। इधर एक सौ वर्ष का ही इतिहास हिंदू-जाति के लिये कितने अभिमान का कारण है कि उसके एक नहीं, चार-चार वीर शहीद हो गए! ईसाई जिन ईसामसीह को शहीद कहते हैं, मुसलमान जिन हसन-हुसैन को 'शहीद' कहकर अभिमान से छाती फुलाते हैं, उसी कोटि के और उसी उद्देश्य के ये शहीद हिंदू-जाति के लिये अभिमान की चीज़ हैं। एक नहीं, एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, और तीसरे के बाद चौथा— न-



स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानंद

कर गया पूरी सबों का आस श्रद्धानंद ;
दुश्मनों को भी किया न निरास श्रद्धानंद ।
हँस के, रोके, खोके कोई दास श्रद्धानंद ;
ताकता सब ओर भर-भर सास श्रद्धानंद ।
कोई छिपकर ढूँढता है लास श्रद्धानंद ।
कर रहा क़ुरबान भोग-विलास श्रद्धानंद ।
पहनता है कोई आप लिबास श्रद्धानंद ।
हैं किसी के उड़ते होश-हवास श्रद्धानंद ।
मार कोई अब न पाता पास श्रद्धानंद ;
बाज़ पर कहता है तब शाबास श्रद्धानंद ।
चाँद छिपता फिरता तेरे त्रास श्रद्धानंद ।
हिल रहा है आसमानक़यास श्रद्धानंद ।
तूने दिखलाया करिश्मा ख़ास श्रद्धानंद ।
हो रहा है आज आमोल्लास श्रद्धानंद ।
जिस लिये तूने लिया सन्यास श्रद्धानंद ।
हो गया पूरा वही विश्वास श्रद्धानंद ।
तेरो क़ुदरत जो भी जाने काश श्रद्धानंद ,
तो मिटे, मिटकर बने हर साँस श्रद्धानंद ।

जाने कितने शहीद निकलेंगे । स्वामी दयानंद के बलिदान का पूरा इतिहास नहीं बन पाया कि पंडित लेखराम छुरे के घाट उतारे गए। उनका रक्त नहीं सूख पाया कि महाशय रामचंद्र का ख़ून हुआ, और उनका रक्त भी अभी ताज़ा ही था कि स्वामी श्रद्धानंद गोली से मार दिए गए ! यह सब किस लिये ? इसी हिंदू-जाति की रक्षा करने के लिये, हिंदुओं को मरने से बचाने के लिये, हिंदू-जाति को ज़िंदा रखने के लिये ! स्वामी श्रद्धानंद एक वैसे ही शहीद हैं, जिनके रक्त से सिंचकर जातियाँ पनपती हैं । हिंदू-जाति का आदर्श है अपने शरीर का बलिदान करना । अन्य जातियों की तरह यहाँ पशुओं, पक्षियों और मुरदों का बलिदान नहीं होता । यहाँ जीवितों का बलिदान होता है । यही उसका रक्त-रंजित इतिहास है, और स्वामी श्रद्धानंद का बलिदान उसका ताज़ा सबूत ।

यों तो जब से शुद्धि-आंदोलन शुरू हुआ, तभी से स्वामीजी का वध करने की चर्चा सुनाई पड़ने लगी थी । किंतु समय नहीं आया था । घटनावली भी कुछ ऐसा ही बतलाती है कि उनके क़त्ल के लिये पूरा षड्यंत्र बहुत दिनों से रचा जा रहा था । मौलाना मोहम्मदअली की स्पीचें, नमाज़ के वाज़ और १८ ता० के "ग़रीबों का अख़बार" में निकला हुआ "शुद्धि-रूपी रावण" नामी कार्टून इसकी शहादत में पेश किए जा सकते हैं । स्वामीजी स्वयं शहीदों का हाल जानते थे, इसलिये उन्हें इसका तनिक भी ख़याल न रहा होगा । वह जानते थे, और उनका दृढ़ विश्वास था कि धर्म की शोभा आत्मबलिदान है । उसी का पालन उनके जीवन में हुआ, और बिलकुल सार्थक हुआ । घटना यों हुई—

अभी कुछ दिनों से स्वामीजी बीमार रहा करते थे। गौहाटी-कांग्रेस में भी उनका जाने का विचार नहीं था । ब्रांको-निमोनिया का आक्रमण हुआ था । वह अभी रोगशय्या पर ही थे । २३ दिसंबर को, तीसरे पहर, अब्दुलरशीद नाम का एक व्यक्ति उनसे मिलने के लिये चार बजे के लगभग आया । उसे स्वामीजी के स्थान तक भेजने के लिये और दो-तीन मुसलमान साइकिलों पर आए थे । स्वामीजी के नौकर धरमसिंह से उसने कहा कि इस्लाम के संबंध में मैं स्वामी से कुछ बातचीत करना चाहता हूँ । धरमसिंह की

इच्छा उसे अंदर ले आने की नहीं थी; लेकिन स्वामीजी ने एक आगंतुक को विमुख जाने देना ठीक नहीं समझा। धरमसिंह उसे भीतर ले गया। स्वामीजी से उसने इस्लाम-धर्म की चर्चा छेड़ दी। स्वामीजी ने कहा— मैं बहुत कमज़ोर हूँ; फिर किसी दिन आ जाना, तब बातचीत करूँगा। अब्दुलरशीद ने कहा—मुझे प्यास लगी है। नौकर पानी ले आया, और बाहर ले जाकर उसे पिला दिया। नौकर ख़ाली ग्लास रखने के लिये लौट पड़ा, और इसी बीच में अब्दुलरशीद ने स्वामीजी पर तमंचा दाग़ दिया। उसने ३ फ़ैर स्वामीजी की छाती पर किए। स्वामीजी को बचाने के लिये धरमसिंह दौड़ा। वह भी दाहनी जाँघ में घायल हुआ। इस प्रकार संगीनों और तोपों से घिरी हुई भारत की राजधानी दिल्ली में एक वृद्ध संन्यासी की हत्या एक मुसलमान ने कर दी। किंतु इससे क्या हुआ? क्या स्वामीजी मर गए? यदि अब्दुलरशीद के लिये "एक काफ़िर को मार डालने से बहिश्त का दरवाज़ा खुल गया", तो वैदिक धर्म के अनुयायी, पुनर्जन्म के माननेवाले स्वामीजी को एक जीर्ण-शीर्ण शरीर त्याग-कर नया शरीर धारण करने का जल्दी अवसर मिला। उन्होंने अपने डॉक्टर से बीमारी की हालत में ऐसी ही इच्छा प्रकट की थी। बात यह है कि बलिदान का इतिहास तो सदा रक्त-रंजित होता है। हमको विश्वास है कि इस निर्दोष, निस्पृह एवं निष्कलंक संन्यासी के एक-एक बूँद रक्त से एक-एक श्रद्धानंद उत्पन्न होगा, जो देश और हिंदू-जाति के लिये सदैव ही बलिदान होता रहेगा। हिंदू-जाति के लिये यह ज़बर्दस्त चेतावनी है। उसे अपने को ज़िंदा रखने का रास्ता अच्छी तरह समझ-बूझकर निकालना चाहिए। हमारी समझ में इस वृद्ध संन्यासी की हत्या ने भारत के इतिहास में एक नया परिच्छेद खोल दिया है, जिसमें हिंदू-जाति के गौरव, वैदिक धर्म के उत्कर्ष और शहीदों के बलिदान अंकित होंगे। स्वामीजी के स्मारक के संबंध में भी हम यहाँ प्रसंग-वश कुछ कह देना चाहते हैं। उनके स्थापित किए हुए काँगड़ी के गुरुकुल से प्रतिवर्ष अधिक-से-अधिक संख्या में अनेकों श्रद्धानंद की आत्माएँ ऐसी निकलनी चाहिए, जो संसार में शुद्धि की धूम मचा दें। उनका उद्देश्य ही उनके जीवन का स्मारक है, और ऐसे स्मारक के संबंध में हिंदू-जाति का क्या कर्तव्य है, यह वह स्वयं सोचे। कर्तव्य-क्षेत्र उसकी आँखों के सामने खुला हुआ है। यह कहना ही फ़िज़ूल है कि स्वामीजी व्यक्तिरूप में एक संस्था थे, और संस्थाओं के लिये व्यक्तियों का बलिदान एक मामूली बात है। हमने चित्र के नीचे स्वामीजी के आदर्शों के भक्त एक कवि के जो उद्गार दिए हैं, वही स्वामीजी के चरणों में हमारी श्रद्धांजलि है।

× × ×

१३. क्षमा का एक और रूप

माधुरी की किसी पिछली संख्या में हमने साहित्यिक क्षमा का कुछ चित्रण किया था। आज एक और रूप का परिचय कराते हैं। यह है सामाजिक क्षमा। महात्मा गांधी ने क्षमा के रूपों की व्याख्या करते हुए एक समय लिखा था कि सबल की ओर से किसी पाप का प्रतिकार न किया जाना अथवा किसी अपराध को तरह दे देना ही क्षमा है। उनका भाव कुछ ऐसा ही था। बात भी ऐसी है। समर्थ और सबल मनुष्य की सच्ची क्षमा निर्बल की कायरता का द्योतक है। निर्बल किसी को क्षमा-प्रदान नहीं कर सकता; और वह यदि कमज़ोर होकर क्षमा-प्रदान करता है, तो यह उसकी कायरता है। इसी को हम सामाजिक क्षमा का रूप देते हैं। मनुष्य-स्वभाव में सर्वत्र समानता है। इंद्रियों और भावनाओं का उद्गम-स्थान एक ही है, चाहे उनके कार्यों में कुछ अंतर पड़ जाय। ऐसी स्थिति में जब किसी के साथ कोई बुराई करता है, तो वह उसके साथ उस बुराई का बदला लेने के लिये तैयार रहता है। यह बदला लेने का स्वभाव संसार में सर्वत्र एक-सा है। इसी प्रकार अच्छाइयों का बदला होता है। किसी के साथ कुछ भलाई की जाने पर वह यदि भलाई करने पर, बदला देने की दृष्टि से, तत्पर हो, तो वह भी उसी स्वभाव के अंतर्गत है। लेकिन बुराई की जाने, हानि पहुँचाने और व्यर्थ का उत्पात मचाने पर जब 'क्षमा-क्षमा' की आवाज़ उठाई जाती है, तब हमारे सामने वही उपर्युक्त तर्क आ खड़ा होता है कि आख़िर क्षमा करने का अधिकार किसको है, और क्षमा है क्या चीज़? इसका विचार करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि निर्बल की क्षमा कायरता का लक्षण है। इसी के साथ यह भी कहा जा सकता है कि यदि सचमुच सबल भी क्षमा-प्रदान करें, तो क्या वह भी थोड़ी देर के लिये कायरता कही जायगी,

या नहीं ? अभी स्वामी श्रद्धानंदजी को एक मुसलमान ने गोली से मार डाला है। स्वामीजी की हत्या की गई, और ऐसे समय की गई, जब हिंदू-मुसलमानों का वैमनस्य बढ़ रहा है। इस घटना पर अफ़सोस ज़ाहिर करके पंडित मोतीलालजी नेहरू कहते हैं कि हिंदू-मुसलमानों के भाईचारे के मार्ग में यह घटना न लाई जानी चाहिए। क्योंकि स्वराज्य प्राप्त करने के लिये यह भाईचारा अनिवार्य—अत्यंत आवश्यक है। उधर मौलाना अबुलकलाम आज़ाद कहते हैं कि इस घटना से कांग्रेस की आँखें खुल जानी चाहिए कि वह देश को सच्ची राष्ट्रीयता की दीक्षा दे, और एक बदमाश मुसलमान के काम को आधार मानकर मुसलमान-समाज को ही न बुरा समझ लेना चाहिए। उधर मि० फूकन कहते हैं कि इस घटना से हिंदुओं में ग़लतफ़हमी न फैलनी चाहिए। कहने का मतलब यह कि सभी हिंदू और मुसलमान नेता अफ़सोस ज़ाहिर करके इसी आशय की बातें कहते हैं, जिनका दूसरा अर्थ यह है कि बूढ़े संन्यासी की हत्या क्षमा कर दी जाय। और भी नेताओं के ऐसे ही विचार हैं। ख़ैर, हमने मान लिया कि राष्ट्र-निर्माण के मार्ग में यह रोड़ा न आना चाहिए। लेकिन क्या यह क्षमा है ? राजनीति और समाजनीति, दोनों में क्षमा अज्ञान के लिये दी जाती है, जान-बूझकर अपराध करनेवाले को नहीं। यदि ऐसी ही क्षमा की नींव पर राष्ट्र का निर्माण हो रहा है, तो हमारी समझ में वह बिलकुल बालू की भीत है, और उसका विचार ही त्याज्य है। मौलाना मोहम्मदअली उस दिन अभी 'गऊ की सभ्यता" का बहिष्कार करने की नियत से हिंदुस्थान के बाहर अरब से वहाँ की सभ्यता लाने के लिये गए थे। आज, जैसा हम समझते हैं, शुद्धि-आंदोलन के जन्मदाता का ख़ून करके हिंदुओं पर आतंक जमाया जा रहा है। जाहिल मुसलमानों को 'बहिश्त' की उम्मीद दिलाकर ख़्वाजा हसन निज़ामी और उन्हीं की श्रेणी के मुसलमान मुल्ला 'काफ़िरों' का ख़ून करा रहे हैं। हत्या कराकर जो धर्म और धर्मप्रचारक बहिश्त का रास्ता दिखलाते हैं, उनके लिये क्या क्षमा अभीष्ट है ? बूढ़े संन्यासी की हत्या से मौलाना शौकतअली का सिर "शर्म से ऊपर नहीं उठता" — क्या इसी को क्षमा का कारण माना जा सकता है ? क्या यही राष्ट्रनिर्माण है, और क्या इसी के लिये क्षमा की पुकार मचाई जा रही है ? हमारी समझ में क्षमा का रूप व्यापक है, और वह एक ही नहीं, सभी के पहचानने के लिये है। यदि क्षमा है, तो फिर भारतवर्ष में अँगरेज़ों का शासन क्यों नहीं रहने दिया जाता ? क्यों स्वराज्य की चेष्टाएँ की जा रही हैं ? नेताओं को स्मरण रखना चाहिए कि ऐसी क्षमा की नींव पर वे स्वतंत्रता का महल नहीं खड़ा कर सकते। ऐसा सोचना ही उनकी भूल होगी। वास्तव में यह क्षमा नहीं, प्रत्युत क्षमा का उपहास करना है। और यह ठीक वैसा ही है, जैसा किसी इंद्रियों से शिथिल मनुष्य को सदाचारी कहना।

× × ×

१४. संयुक्तप्रांतीय राजनीतिक परिषद्

संयुक्तप्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन का २०वाँ अधिवेशन काशीपुर (नैनीताल) में मार्गशीर्ष-कृष्णा ३०, शुक्ल १, को सानंद समाप्त हो गया। सभापति का आसन काशी के प्रसिद्ध रईस और प्रांत के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्रीयुत शिवप्रसादजी गुप्त ने सुशोभित किया था। सभापति की हैसियत से दिया हुआ गुप्तजी का यह भाषण उनके परिपक्व विचारों का सच्चा प्रतिबिंब है। उन्होंने अपने भाषण में बहुत-सी अनाप-शनाप बातें न बढ़ाकर केवल यही निष्कर्ष रक्खा है कि स्वराज्य-प्राप्ति के लिये एकता की सर्वप्रथम आवश्यकता है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि उनके भाषण में अन्यान्य बातों की उपेक्षा की गई हो। नहीं, प्रायः सभी महत्त्व-पूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है। स्वराज्य का अर्थ, देश की दीन अवस्था, धर्म का संकुचित अर्थ, भारतीय मुसलमान, स्वावलंबन, खद्दर का महत्त्व, मिलों और करघों की तुलना, औद्योगिकतावाद, व्यवस्थापक सभाएँ इत्यादि प्रधान-प्रधान सभी प्रश्नों पर विचार किया गया है। अंत में, अभी हाल में जो साम्राज्य-सम्मेलन हुआ है, और जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य का अंत हो जाने की घोषणा की गई है, उसके अनुसार गुप्तजी ने भारतवासियों को यह चेतावनी दी है कि अब कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण आफ़्रिका आदि ब्रिटिश स्वामित्व से बाहर हो गए। इसका आशय यह है कि वे सभी अब इँगलैंड के बराबर हैं, और फलतः भारत पर स्वामित्व प्राप्त करेंगे। इस समस्या पर गुप्तजी ने अच्छी चेतावनी दी है। भारतवर्ष को इस पर विचार करना चाहिए।

किंतु भारतीय मुसलमानों की चर्चा करते हुए गुप्तजी एक स्थल पर लिखते हैं—'हिंदुओं को भी समझना चाहिए कि अब अहम्मन्यता का समय बीत गया, कोई मनुष्य म्लेच्छ नहीं है, सबको अपनी इच्छा के अनुसार भगवान् की पूजा करने का, उसके निमित्त बलि चढ़ाने का अधिकार है; इसमें बाहुबल से रोक-टोक करना और पशु-रक्षा में रक्तपात करना मनुष्योचित कार्य नहीं है।" इसका अंतिम वाक्य हमारी समझ में नहीं आया। यदि निरीह एवं मूक पशुओं की रक्षा करना "मनुष्योचित कार्य नहीं है, तो फिर वह कौन-सा कार्य है? गो-रक्षा के लिये हिंदुओं की ओर से जो प्रयत्न किया जाता है, शायद गुप्तजी का यहाँ उसी से आशय है। हम यह मानते हैं कि रक्तपात करना ही पशुता एवं कायरता है, और नर-रक्तपात तो उससे भी निंद्य है; किंतु सामाजिक स्वतंत्रता का उल्लेख तथा समर्थन करते हुए गुप्तजी को यह भी बतलाना चाहिए था कि नर-रक्तपात का अवसर न आने देने के लिये पशुरक्षा के उपाय का क्या साधन है? क्या ये पशु स्वराज्य अथवा राष्ट्र के लिये, जिसका स्वप्न गुप्तजी देख रहे हैं, आवश्यक नहीं हैं? गुप्तजी का यह आक्षेप उन हिंदुओं पर है, जो गोरक्षा के हिमायती हैं, और उनके लिखने का अर्थ यही निकलता है कि मुसलमानों को गोहत्या करने देना चाहिए। किंतु हम इस बात से सहमत नहीं हो सकते। मुसलमान ही क्या, इतर जातियाँ भी अब भी गो-हत्या करती हैं। उन्हें अभी तक नहीं सूझ पड़ रहा है। किंतु इससे भी बदतर हालत यह है कि मुसलमान हिंदुओं का दिल दुखाने के लिये, उनकी आँखों के सामने, आम सड़क पर और फूल-माला पहनाकर, बाजे बजाते हुए गऊओं को वध करने के लिये ले जाते हैं। क्या यह एक सामूहिक स्वतंत्रता पर आक्रमण नहीं है? फिर इसका स्पष्टीकरण गुप्तजी ने क्यों नहीं किया? वर्षों से मुसलमान गोहत्या करते आ रहे हैं; लेकिन उसका यह स्वरूप नहीं था, और इसी से हिंदुओं ने तब कोई आपत्ति नहीं उठाई। इसी प्रकार बाजे का प्रश्न भी पहले विवाद-ग्रस्त नहीं था। इधर ही कुछ दिनों से मुसलमानों ने यह प्रश्न उठाया है कि मसजिदों के सामने बाजा न बजना चाहिए। अतएव भाषण पढ़कर हमें तो यही कहना पड़ता है कि गुप्तजी का 'स्वराज्य' मुसलमानों के दृष्टिकोण का अधिक समर्थक है।

हाँ, हमारी सम्मति में भी कांग्रेस को भारतीय व्यवस्थापक सभा और प्रांतीय व्यवस्थापिकाओं के संबंध में निर्णय कर देना चाहिए। किंतु कांग्रेस के पक्षवालों को कौंसिलों में जाने की ज़रूरत क्या है? उनके लिये तो विधायक कार्यक्रम के लिये अनंत क्षेत्र पड़ा है? क्या कौंसिलों में पहुँचकर ये लोग शासन को रोक सकते हैं? तब क्यों न अपनी शक्तियों का बाहर उपयोग करें? हमारी समझ में तो इस संबंध में यही आता है कि कांग्रेस के नाम पर लोग कौंसिलों में केवल 'वाहवाही' के लिये घुसते हैं। अब गया-कांग्रेस का वातावरण नहीं रहा। इसलिये कार्य-क्रम में नवीनता लाने की ज़रूरत है। गुप्तजी को भी यह बतलाना चाहिए था। हाँ, परिषद् ने यह एक बहुत अच्छा प्रस्ताव पास किया है कि "सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व राष्ट्रहित में बाधक है, विपक्षी इससे लाभ उठाते हैं। इसलिये सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के विपक्ष में कांग्रेस को अपनी आज्ञा घोषित करनी चाहिए।" प्रस्ताव का समर्थन एक मुसलमान सज्जन ने किया था।

× × ×

१५. मुसलमानों की आर्थिक कानफ्रेंस

एक ओर हत्याएँ की जा रही हैं, और उनके लिये क्षमा माँगी जा रही है, और दूसरी ओर मुसलमानों की आर्थिक परिषद् का आयोजन हो रहा है। इस हत्या के पूर्व, ११ दिसंबर की संख्या में करांची के "मुस्लिम एडवोकेट' में, उसके संपादक ने मुस्लिम आर्थिक परिषद् की आवश्यकता बतलाते हुए कुछ ऐसी ही बातें लिखी हैं, जिन्हें पढ़कर यह कहना पड़ता है कि मुसलमान हर तरह से हिंदुओं के विरुद्ध अपनी शक्तियों का संग्रह कर रहे हैं। अभीतक एक राष्ट्रीय परिषद् की आवश्यकता देश के हिंदू और मुसलमान-नेता समझ रहे थे, किंतु, जैसा कि मुसलमानों ने मुस्लिम लीग का टर्की और अरब के नाम पर अलग संगठन कर लिया, उसी तरह अब मुसलमानों की आर्थिक परिषद् का संगठन शेख़मार्जी अब्दुलमजीद पेश कर रहे हैं। हमें इस प्रस्ताव का स्वागत करते हुए कुछ संकोच के साथ अपने कुछ हिंदुओं की बुद्धि पर तरस आता है, और वह भी इसलिये कि यह प्रस्ताव राष्ट्रीय प्रगति में एक गहरी खाई है। इस प्रस्ताव का बहाना यह लिया गया है कि सिंध के 'हिंदू-जाति'-पत्र ने मुसलमान नाइयों के बहिष्कार के लिये उभाराव (एक

स्थान) के हिंदुओं को सलाह दी थी। इसी के आधार पर "हिंदुओं के हिंदू-भारत, हिंदू-शासन, हिंदू-ईश्वर, हिंदू-प्रकृति, हिंदू-क़ानून, हिंदू-सोसाइटी, हिंदू-भोजन और प्रत्येक बात को हिंदू-दृष्टि से चाहने" का जुर्म लगाकर ग़लतफ़हमी फैलाई जा रही है। साथ ही मुसलमानों को अपना संगठन—आर्थिक दृष्टि से अपने को स्वतंत्र करने के लिये ही नहीं, प्रत्युत छिपे रूप से हिंदुओं का बहिष्कार करने के लिये—करने को उभाड़ा गया है। इसीलिये मुसलमानों के नेताओं से हिंदू-दूकानदारों की जगह मुसलमानों की दूकानें खुलवाने की अपील ज़ोरों से की गई है। यद्यपि यही कार्य गुप्त रूप से चल रहा था, फिर भी अब इसे खुल्लमखुल्ला मुसलमान-नेताओं के सामने रखकर इस पत्र के संपादक ने मानो एक गहरी खाई को और भी चौड़ा और गहरा बना दिया है। राष्ट्रीयता की दृष्टि से हम ऐसे विचारों को बड़ा घातक समझते हैं, और देश के कर्णधारों का ध्यान इस ओर दिलाते हैं।

× × ×

१६. "आस्तिकवाद"

ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में भिन्न-भिन्न समाजों और धर्मों के दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न विचार हैं। प्रायः सभी धर्मों और समाजों में उसका अस्तित्व स्वीकार किया गया है। किंतु इधर वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ लोगों में उसके अस्तित्व पर आशंका उठने लगी है। गत वर्ष माधुरी में ईश्वर-बहिष्कार के संबंध में भी हमने एक लेखक के विचार इसीलिये पाठकों के सामने रक्खे थे कि उन्हें इस विषय पर कुछ विचार करने का अवसर मिले। उसके बाद हमने ईश्वर के स्वरूपों पर भी एक लेख प्रकाशित किया, और हर्ष के साथ हमें यह सूचना देने का साहस हो रहा है कि ईश्वर की सत्ता को न माननेवाले महानुभावों के संतोष के लिये एक पुस्तक भी तैयार हो गई है। "आस्तिकवाद" में उसके लेखक हमारे मित्र पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय एम्० ए० ने ईश्वर की सत्ता के विषय में पाश्चात्य तथा पूर्व के सभी विद्वानों के आक्षेपों की मीमांसा की है। 'फ्लिंट' की पुस्तक 'थाइज़्म' और वालेस के "वर्ल्ड ऑफ़ लाइफ़" के ग्रंथ ही से अधिकतर उदाहरण दिए गए हैं। अद्वैतवाद के संबंध में स्वामी शंकराचार्यजी के भाष्य से भी पुष्कल उदाहरण उद्धृत किए गए हैं। ४५० पृष्ठों के इस



पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम्० ए०

अनुपम ग्रंथ को १२ अध्यायों में विभक्त करके अनेक दृष्टियों से विषय का प्रतिपादन किया गया है। यथा—(१) विषय की व्यापकता, (२) मनुष्य अल्पज्ञ है, (३) सृष्टि-रचना, (४) सृष्टिकर्ता, (५) साइंस और आस्तिकवाद, (६, ७, ८) ईश्वर के गुण, (९) कर्म और फल, (१०) शंका-समाधान, (११) आस्तिकता की उपयोगिता और (१२) ईश्वर-प्राप्ति के साधन। हर्बर्ट स्पेंसर, ह्यूम, टिंडल, फ़्लिंट, मिल और प्रोफ़े० हेल्महोल्ट्ज़ आदि की शंकाओं तथा पाश्चात्य एवं प्राच्य मतों का खंडन-मंडन अच्छे ढंग से किया गया है। लेखक ने यह ग्रंथ वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक आदि कई दृष्टियों से लिखा है। सृष्टि-रचना, सृष्टिकर्ता, ईश्वर के गुण तथा शंका-समाधान अध्याय तो बड़ी विवेचना के साथ लिखे गए जान पड़ते हैं। वे लेखक के पांडित्य, अध्ययन और विचारसरणी पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। इस छोटे-से नोट में पुस्तक के प्रतिपादित विषय पर विवेचनात्मक पंक्तियाँ लिखना आसान बात नहीं है। विज्ञान, दर्शन और धर्म का सामंजस्य, आर्ष-ग्रंथों की साक्षी देकर, बतलाया गया है। लेखक की छोटी-सी भूमिका के अतिरिक्त आरंभ में महात्मा नारायण

स्वामी का एक सारगर्भित प्राक्कथन भी है। साहित्य-क्षेत्र में हम इस ग्रंथ का स्वागत करते और उपाध्यायजी को शतशः धन्यवाद देते हैं।

× × ×

१७. लखनऊ में ऐतिहासिक खोज-कमीशन

ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करने के लिये इन दिनों एक कमीशन बैठाया गया है। भारतीय सभ्यता और उसका संसार के इतर देशों से अति प्राचीन काल से संबंध ही इस बात की साक्षी है कि यहाँ खोज करने पर बहुत अधिक ऐतिहासिक काग़ज़-पत्र तथा अन्य प्रकार की सामग्री मिल सकती है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर उपर्युक्त कमीशन कार्य कर रहा है। सचमुच प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों से ही किसी देश की सभ्यता का पता चल सकता है। अभी इस कमीशन की रिपोर्ट निकलने में समय लगेगा। ऐतिहासिक अनुसंधान का कार्य एक-दो दिन का नहीं होता। आशा है, उस समय उसमें कितनी ही ज्ञातव्य, किंतु अज्ञात, बातों का पता लगेगा। लखनऊ में इस कमीशन के सामने कई महत्त्वपूर्ण पत्र पढ़े गए थे। इनमें सर इवेन कॉटन, प्रोफ़े० एच्० सी० सिनहा, प्रोफ़े० के० आर० क़ानूनगो, मेजर वी० जे० सेठ और मि० अब्दुलअली ने जिन विषयों के लेख पढ़े थे, वे अधिक अच्छे थे, उनमें खोज की कुछ अधिक सामग्री थी। आशा है, इस कमीशन को अपने कार्य और उद्देश्य में अधिकाधिक सफलता मिलेगी।

× × ×

१८. स्वर्गीय श्रीयुत गोकुलप्रसादजी

यह लिखते दुःख होता है कि प्रसिद्ध इतिहासज्ञ और पुरातत्त्ववेत्ता रायबहादुर हीरालालजी बी० ए०, रिटायर्ड डिपुटी कमिश्नर के भाई श्रीयुत गोकुलप्रसादजी का २१ नवंबर, सन् १९२६ को देहांत हो गया। श्रीयुत गोकुलप्रसादजी का जन्म विक्रम-संवत् १९३३ में कटनी-मुड़वारा, ज़िला जबलपुर में हुआ था। बी० ए० तक शिक्षा पाकर आप सरकारी नौकरी में शामिल हुए, और नायब तहसीलदारी से आरंभ कर क्रमशः तहसीलदार, एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर और इनकमटैक्स ऑफ़िसर हुए। इस समय आप इनकमटैक्स-विभाग के असिस्टेंट कमिश्नर थे, और ११००) मासिक पाते थे। आपको पेंशन का समय नज़दीक आ ही रहा था कि ५० वर्ष की अवस्था में आपने इहलोक-लीला संवरण कर दी।



स्वर्गीय श्रीयुत गोकुलप्रसादजी

आपके परिचय का मुख्य कारण आपकी हिंदी सेवा है। हमने इतनी ऊँची तनख़्वाह पानेवाले ऐसे सरकारी कर्मचारी बहुत कम देखे हैं, जिन्हें हिंदी के प्रति थोड़ा-बहुत भी अनुराग हो। यह आज की बात नहीं, पचीस तीस वर्ष की अवस्था से ही गोकुलप्रसादजी साहित्य से बड़ा प्रेम रखने लगे थे। सरकारी काम से अवकाश न मिलने पर भी आपने तीन पुस्तकें रायपुर-रश्मि, दुर्ग-दर्पण और सिवनी-सरोजिनी—बड़ी खोज के साथ लिखी हैं। ये तीनों पुस्तकें हिंदीवालों के लिये अँगरेज़ी के डिस्ट्रिक्ट गैज़ेटियरों का काम देती हैं। साहित्य-जगत् में इनकी काफ़ी प्रशंसा हुई है। अँगरेज़ी में भी आपने अनेक विषयों पर लेख लिखे, जिनमें किसी-किसी से सरकारी रिपोर्टों तक में उद्धरण किया गया है।

आशा है, जो लोग सरकारी नौकरी में रहने के कारण हिंदी की सेवा के लिये समय का अभाव बतलाया करते हैं, उनके लिये श्रीयुत गोकुलप्रसादजी का उदाहरण किसी हद तक आदर्श होगा। अंत में हम शोकसंतप्त रायबहादुर हीरालालजी के प्रति, उनके इस असहनीय भ्रातृवियोग के समय, समवेदना और सहानुभूति प्रकट करते हुए गोकुलप्रसादजी की आत्मा के लिये ईश्वर से शांति की प्रार्थना करते हैं।

× × ×

१६. प्रो० राधाकृष्ण झा का देहांत

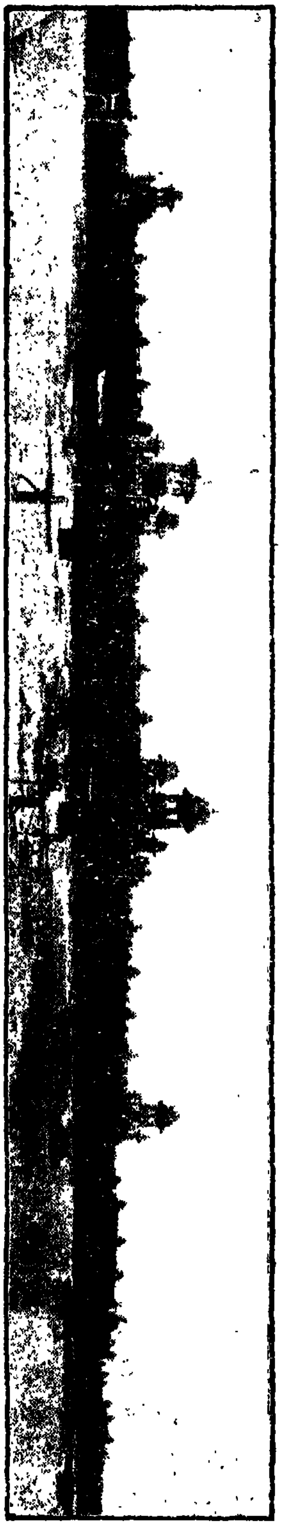
प्रो० राधाकृष्णजी झा की मृत्यु राजयक्ष्मा रोग से अकाल में ही हो गई। आप माधुरी पर बड़ी कृपा रखते थे। ईश्वर आपकी आत्मा को शांति और आपके परिवार को धैर्य दें। हम आपका सचित्र परिचय अगली किसी संख्या में देंगे।

× × ×

२०. लखनऊ का नया स्टेशन

बग़ल में पाठक जो चित्र देखते हैं, वह लखनऊ के नए रेलवे स्टेशन का है। सर हारकोर्ट बटलर की कृपा से कौंसिल चेंबर और प्रांतीय सेक्रेटेरियट प्रयाग से लखनऊ आ गया। अब लखनऊ प्रांत का केंद्र हो गया। अतएव रेलवे-स्टेशन भला क्यों पीछे रहता? पुराने स्टेशन को नया रूप देने में महीनों लग गए हैं। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि इसमें कितना धन और परिश्रम लगाया गया है। अब यह मुग़ल-इमारतों के टाइप का बड़ा शानदार बन गया है।

ता० १३ दिसंबर को सर विलियम मैरिस के हाथों इसका उद्घाटन हुआ। नया स्टेशन १,२०६ फ़ीट लंबा है। इसमें ४ बुर्ज हैं, जो प्रत्येक १०६ फ़ीट ऊँचे हैं। इतनी ही ऊँचाई के दो और बुर्ज भी दोनों सिरों पर हैं। ख़ास इमारत में तीन लंबे चौड़े कमरे हैं। अन्य छोटे-बड़े कमरों की संख्या तो गिना नहीं जा सकती। प्लेटफ़ार्म, वेटिंग रूम आदि का ज़िक्र बेकार है; स्टेशन अपने ढंग का निराला है, और यह लखनऊ के लिये एक शान की चीज़ है। इसमें कुल ७३ लाख की लागत लगेगी। अभी यह एक अंशमात्र बना है। यह भारत में सर्वश्रेष्ठ स्टेशन होगा।



लखनऊ का नया स्टेशन

श्रीः

माधुरी

विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र

मासिक पत्रिका

वर्ष ५, खंड १

श्रावण-पौष ३०३ तुलसी-संवत् (१९८३ वि०)

अगस्त-जनवरी, १९२६-२७ ई०

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

प्रोप्राइटर

श्रीविष्णुनारायण भार्गव

मालिक, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

वार्षिक मूल्य ७॥)] [छमाही मूल्य ४)

मुद्रक तथा प्रकाशक—
केसरीदास सेठ, सुपरिंटेंडेंट
नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

लेख-सूची

१—पद्य

संख्या लेख	लेखक	पृष्ठ
१. आह ! ...	बा० जयशंकर "प्रसाद"	२४
२. उद्गार ...	श्रीयुत सुमित्रानंदन पंत	४८१
३. उद्धव और गोपी	बा० जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०	७२६
४. उसकी छवि	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	३५७
५. कहाँ ? ...	पं० रामनरेश त्रिपाठी	३२२
६. कौन ? ...	पं० जनार्दनप्रसाद झा "द्विज"	६२
७. गजेंद्र-मोक्ष	पं० दामोदरदास चतुर्वेदी	३५७
८. गौरव-गर्विता	पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"	४१
९. गौरव-गान	पं० रामनारायण मिश्र एम्० एस्-सी०	१६५
१०. छबीली छटा	बा० जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०	४४१
११. छली पवन	श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद खत्री "मिलिंद"	८०
१२. जन्मभूमि	श्रीयुत 'गुलाब"	४६०
१३. "तीज-परब"	श्रीयुत भानुप्रसाद	२३६
१४. तुमसे ...	पं० जनार्दनप्रसाद झा "द्विज"	२६७
१५. नंदनंदन ...	बा० जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०	१
१६. निर्दय माली !	बा० जगन्नाथप्रसाद खत्री "मिलिंद"	६७०
१७. पथिक ...	श्रीयुत "गुलाब"	२३०
१८. पूर्ति-पीयूष	बा० जयशंकर "प्रसाद"	१६१
१९. प्रतिध्वनि	पं० मातादीन शुक्ल साहित्य-शास्त्री	४६६
२०. प्रेम ...	श्रीयुत ' गुलाब"	६५२
२१. प्रेम-प्रभाव	श्रीगोपालशरणसिंह	७५७
२२. प्रोषितपतिका	पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"	५८५
२३. फूल ...	श्रीयुत ' गुलाब"	७६०
२४. बिजली ...	श्रीयुत "गुलाब"	३१६
२५. भ्रमर-गीत	पं० श्रीधर पाठक	१६१
२६. मेरी टेक	पं० मातादीन शुक्ल साहित्य-शास्त्री	३१४
२७. युद्ध ...	बा० देवीप्रसाद गुप्त "कुसुमाकर" बी० ए०	५१८
२८. वर्षा-वर्णन	पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी एम्० आर्० ए० एस्०	६१
२९. विचित्रता	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	६१३
३०. समर्थन ...	श्रीयुत राय कृष्णदास	६१४
३१. शान का दंड	पं० रामनरेश त्रिपाठी	४१

२—गद्य

ख्या लेख	लेखक	पृष्ठ
१. अक्षयवट	श्रीयुत कुलदीपसहाय बी० ए०	११५
२. अमीर खुसरो	पं० पद्मसिंह शर्मा	२६
३. आसाम की खसिया-जाति ...	श्रीयुत युगलकिशोर केडिया	३०६
४. इतिहास-निर्माण का कार्य ...	श्रीयुत रामचंद्र संघी एम्० ए०	६१४
५. ईश्वर-बहिष्कार का प्रयत्न ...	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम्० ए०	७३०
६. ऋग्वेद का निर्माण-काल ...	प्रोफ़ेसर महेंद्रप्रताप शास्त्री एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०	३२६
७. कवि-चर्चा	पं० हरिश्चंद्र त्रिपाठी "कवींद्र", पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीयुत लक्ष्मीनारायणसिंह "सुधांशु", श्रीयुत हरिनंदनसिंह, पं० राधेनारायण वाजपेयी "प्रज्ञावैद्य", पं० रामस्वरूप शर्मा "शार्दूल", पं० चंद्रशेखर पांडेय, श्रीयुत याज्ञिकत्रय, पांडेय रामावतार शर्मा बी० ए०, पं० किशोरीदास वाजपेयी और श्रीगोविंद-रामचंद्र खाँडे १२६, २६७, ४०७, ५५०, ७०० और	८४६
८. कविवर रहीम के संबंध में हिंदी-कवियों की उक्तियाँ ...	श्रीयुत याज्ञिकत्रय	७६६
९. क्या पौदे भी मांस खाते हैं? (सचित्र)...	पं० कमलादत्त त्रिपाठी बी० एस्-सी०, एम्० बी० बी० एस्०	७४७
१०. चित्रमय जोधपुर (सचित्र) ...	कुँअर जगदीशसिंह गहलोत एम्० आर० ए० एस्० १८२ और	३५७
११. जिनेवा की यात्रा	पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी एम् ए०, एल्० टी० ...	४५१
१२. जीवाणुवाद	श्रीयुत "मिश्रबंधु"	४६
१३. टर्की से हमें क्या शिक्षा मिलती है?	पं० जनार्दन भट्ट बी० ए०	४८१
१४. ठाकुर दानीसिंह साहब (सचित्र प्रहसन)	पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०	८०१
१५. तामिल-प्रांत में हिंदी-प्रचार ...	पं० रघुवरदयाल मिश्र विशारद	२५
१६. तुलसीकृत रामायण पर अनेक दृष्टियों से विचार ...	श्रीयुत राजबहादुर लमगोड़ा एम्०ए०,एल्-एल्०बी० ...	६२२
१७. दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश और अलाउद्दीन ख़िलजी ...	पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए०, साहित्य-रत्न ...	५०२
१८. 'दास' और 'बिहारी' ...	श्रीयुत "प्रेमी" साहित्यालंकार	६५३
१९. "दुर्गावती" (सचित्र आलोचना) ...	श्रीहरिश्चंद्र टंडन	७८०
२०. "दुलारे-दोहावली" का एक दोहा	पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० ...	२३६
२१. "दुलारे-दोहावली"	पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए०, साहित्य-रत्न ...	३४०
२२. देशी राजा और धर्म ...	पं० रामचंद्र शर्मा	५१८
२३. धर्म-सूत्र (सचित्र कहानी) ...	श्रीयुत सुदर्शन बी० ए०	७३१
२४. नर-व्याघ्र अब्दुलहमीद ...	पं० बनारसीदास चतुर्वेदी	३४१
२५. 'पारसी-धर्म' की उत्पत्ति का कारण	श्रीयुत सत्यव्रत सिद्धांतालंकार (अलंकार-संपादक) ...	४६७

संख्या लेख	लेखक	पृष्ठ
२६. पाश्चात्य विद्वानों का पूर्वी साहित्य से प्रेम	पं० सूर्यप्रसाद चतुर्वेदी एम्० ए०	२१६
२७. पुस्तक-परिचय	मेहता लज्जाराम शर्मा, पं० मातादीन शुक्ल साहित्य-शास्त्री, विद्यावाचस्पति पं० शालग्राम शास्त्री साहित्याचार्य, श्रीयुत "स०", श्रीयुत कालिदास कपूर एम्० ए०, एल्० टी०, श्रीयुत आद्यादत्त ठाकुर एम्० ए०, काव्यतीर्थ, श्रीमती कमलादेवी शर्मा, पं० देवदत्त मिश्र, श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी०, पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ साहित्याचार्य, बा० अजितप्रसाद एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पं० भवानीशंकर याज्ञिक एम्० बी०, बी० एस्०, श्रीयुत प्रकाशदत्त, पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०, बा० रामचंद्र संघी एम्० ए०, प्रोफ़ेसर दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पं० मुकुटधर पांडेय, श्रीयुत प्रेमचंद बी० ए०, श्रीयुत ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, रायबहादुर श्रीयुत हीरालाल बी० ए०, एम्० आर० ए० एस्०, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी एम्० आर० ए० एस्०, पं० अवध उपाध्याय, पं० हनूमान शर्मा और श्रीयुत "शाल" एम्० ए०, बी० एल्०	१३१, २७१, ४१२, ५५५, ७०४ और ८४६
२८. पूने का अनाथ विद्यार्थी-गृह	विद्यार्थी जगन्नाथप्रसाद चमड़िया	५१५
२९. पूर्णिमा (सचित्र कहानी) ...	श्रीयुत विनोदशंकर व्यास	६६२
३०. प्राचीन भारत में स्वाधीनता का भाव	श्रीयुत इंद्र वेदालंकार	३२४
३१. फ्रांस का विशी-तीर्थ (सचित्र) ...	पं० हेमचंद्र जोशी बी० ए०	६००
३२. बादशाह औरंगज़ेब और अकबर का पत्र-व्यवहार	पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ साहित्याचार्य	३७२
३३. बाल-विनोद	बा० जगमोहन "विकसित", श्रीयुत ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद, श्रीराम शर्मा, पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०, बा० गुरुराम "भक्त", बा० रमेशप्रसाद बी० एस्-सी०, केमिस्ट और पं० हरिप्रसाद द्विवेदी	१०६ २२४, ३९२, ५३६, ६६० और ८२६
३४. "बिहारी-रत्नाकर"	डॉक्टर गंगानाथ झा एम्० ए०, डी० लिट्० (वाइस चैंसलर इलाहाबाद-विश्वविद्यालय)	५०७
३५. बैरागी (सचित्र कहानी) ...	बा० जयशंकर "प्रसाद"	४४६
३६. भारत में खद्दर-प्रचार... ...	पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ...	५४
३७. भारतवर्ष का एक राष्ट्रीय इतिहास	प्रो० जयचंद्र विद्यालंकार	१६२
३८. भारत में शक्कर की पैदावार ...	बा० जयदेवप्रसाद गुप्त बी० कॉम्०	४७२
३९. भारतीय गान-विद्या का संक्षिप्त अर्वाचीन इतिहास	श्रीयुत महादेव रामचंद्र संडकर	५०६
४०. भाषा का विकास	स्व० बाबू जगन्मोहन वर्मा	४४२ और ६३४

संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
४१.	मनोरमा-संपादकों की काव्य-मर्मज्ञता	श्रीयुत "हृषीकेश"	६०
४२.	महाकवि भास	श्रीयुत "आनंदबंधु" शास्त्री ... ... ५८६ और	७६१
४३.	महाकोसल के राजा रत्नदेव (द्वितीय) का ताम्र-शासन	पं० लोचनप्रसाद पांडेय	३१७
४४.	महिला-मनोरंजन	श्रीयुत संतराम बी० ए०, श्रीयुत इंद्र वेदालंकार, श्रीमती कौशल्या देवी, श्रीमती ओमवती देवी, श्रीयुत सी० एस्० आचार्य आर्टिस्ट, पं० राजनाथ शर्मा, श्रीयुत गोपीनाथ वर्मा, श्रीयुत श्यामाचरण और श्रीभानुसिंह बाघेल १२०, २६३, ४०३, ५४६, ६११ और	८४०
४५.	मुसोलिनी (सचित्र)	पं० चंद्रदत्त पांडेय शास्त्री	७५८
४६.	योरप में सहकार	श्रीयुत शंकरराव जोशी एल्० ए० जी०	७६६
४७.	राजमंत्र (सचित्र कहानी) ...	श्रीयुत रामजी अग्रवाल	४६१
४८.	रानीगंज 'कोयला'-क्षेत्र की यात्रा	पं० निरंजनलाल शर्मा एम्० एस्-सी०	८१
४९.	रामलीला (सचित्र कहानी)	श्रीयुत प्रेमचंद बी० ए०	३६८
५०.	लंदन में पार्लियामेंट का उद्घाटन	एक भारतीय यात्री	२२६
५१.	लांछन (सचित्र कहानी) ...	श्रीयुत प्रेमचंद बी० ए०	६७
५२.	लिवरपूल का रुई का बाज़ार ...	श्रीयुत कस्तूरमल बाँठिया बी० कॉम्०	२०४
५३.	वर्तमान चीन	ठाकुर छेदीलाल एम्० ए० (आक्सन), एम्० एल्० सी०, बार-एट-लॉ	३१४
५४.	वर्षा तथा कृषि	प्रोफ़ेसर हरनारायण बाथम एम्० ए० और श्रीयुत श्रीपाल-सिंह बी० एस्-सी०	६२
५५.	विक्रय-कला	पं० शंकरराव जोशी (एग्रिकल्चरल ऑफ़िसर) ...	४६६
५६.	विद्यापति की कविता पर एक समालोचनात्मक दृष्टिपात ...	पं० कृपानाथ मिश्र बी० ए०, ऑनर्स	३५०
५७.	विविध विषय	संपादक १४३, २८२, ४२४, ५६५, ७१२ और	८५६
५८.	विज्ञान-वाटिका	श्रीयुत रमेशप्रसाद बी० एस्-सी० केमिस्ट और पं० ओझ पांडेय ... ११३, २५१, ३९७, ५४०, ६९० और	८३४
५९.	विज्ञान की प्रगति में बाधाएँ ...	श्रीयुत संतराम बी० ए०	२३१
६०.	शिमला (सचित्र)	कुमारी कौशल्यादेवी	४८६
६१.	शिक्षा का माध्यम और मध्यप्रदेश का अनुभव	पं० लज्जाशंकर झा बी० ए०, आई० ई० एस्० २२२, ३४७, ४६१ और	६६६
६२.	शेरशाह सूर की राव मालदेव पर चढ़ाई	रायबहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा	४३
६३.	श्रीरघुनाथजी की मिथिला-यात्रा	श्रीअवधवासी लाला सीताराम बी० ए०	२१८
६४.	संगीत-सुधा	स्वरकार, पं० धर्मानंद त्रिपाठी और शब्दकार, पं० गोविंदवल्लभ पंत; स्वरकार, श्रीलालबहादुरसिंह और शब्दकार, महात्मा सूरदास ; स्वरकार, श्रीयुत कविदेव स्वामी और शब्दकार श्रीबलदेवजी ; स्वरकार, श्रीविष्णु अण्णाजी कशालकर संगीत-प्रवीण और शब्दकार, पं० श्रीधर पाठक ; स्वरकार,	

संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
		और शब्दकार, श्रीयुत विश्वंभरसहाय "व्याकुल" तथा स्वरकार और शब्दकार, राजा खलकसिंह ६४, २४२, २७८,	५२२, ६७२ और ८१५
६५.	संतोष-धन (सचित्र कहानी)	पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक	१७४
६६.	समुद्र संतरण (सचित्र कहानी)	बा० जयशंकर "प्रसाद"	१०
६७.	सहृदय, रसिक और भावक ...	श्रीयुत के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर एम्० ए०... ...	२३४
६८.	साहित्य-सूचना		१४२, २८१, ४२३, ५६४, ७११ और ८५५
६९.	सुकवि-माधुरी-माला ...	पं० दुलारेलाल भार्गव (माधुरी-संपादक)	२
७०.	सुमन संचय	पं० शंकरराव जोशी एग्रीकल्चर ऑफ़िसर, श्रीयुत वियोगी-हरि, श्रीकिशनलाल सरसोंदे, श्रीयुत कवींद्र, पं० लोचनप्रसाद पांडेय, श्रीयुत "कंटक", श्रीयुत घीसूलाल, श्रीयुत इकबाल वर्मा "सेहर", श्रीयुत सत्यजीवन वर्मा एम्० ए०, पं० अयोध्या-नाथ शर्मा, एम्०ए०, श्रीयुत "सम्राट्", श्रीयुत कामताप्रसाद सागरीय, श्रीयुत नवलकिशोर अग्रवाल चौधरी, पं० बनारसी-दास चतुर्वेदी, पं० हेमचंद्र जोशी बी० ए०, विद्यावाचस्पति पं० शालग्राम शास्त्री साहित्याचार्य, पं० मातादीन शुक्ल साहित्य-शास्त्री, पं० नृसिंह पाठक "अमर", पांडेय गजानन शर्मा "व्रज-चंद्", श्रीयुत चंद्रनाथ मालवीय "वारीश", पं० भोलानाथ शर्मा, पं० वंशगोपाल बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीयुत अमर-नाथ पंड्या, श्रीयुत गुरुभक्तसिंह भक्त बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीयुत "गुप्त", मेहता लज्जाराम शर्मा, श्रीयुत बलभद्र, श्रीयुत "चातक", बा० रामसिंहासनसहाय श्रीवास्तव "मधुर", पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र "शितिकंठ", श्रीयुत गोविंद-रामचंद्र "चाँदे" बी०ए०, श्रीयुत संत, श्रीयुत "माधुरी का एक प्रेमी पाठक", श्रीयुत "हृदय", प्रो० श्रीनारायण चतुर्वेदी एम्०ए०, एल्०टी०, पं० श्रीराम शर्मा, पं० खड्गजीत मिश्र एम्०ए०, एल्-एल्०बी०, एम्० एल्० सी०, श्रीयुत कामताप्रसाद गुरु, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीयुत प्रभातकुमार, पं० सकलनारायण पांडेय तीर्थत्रय, श्रीयुत "अलि", पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम्०ए०, पं० श्यामबिहारीलाल त्रिपाठी, पं० हरिश्चंद्रपति त्रिपाठी, पं० मक्खनलाल गर्ग, बा० जगन्नाथप्रसाद खत्री "मिलिंद", श्रीयुत "एकलव्य", बा० शिवनारायण टंडन, श्रीयुत श्रीधर वात्सल्य, पं० उदित मिश्र, पं० श्यामापति पांडेय (श्याम), श्रीयुत राजेश्वरप्रसादसिंह, श्रीयुत संतराम बी० ए०, बा० बेगराज गुप्त, पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, पं० राम-नारायण त्रिपाठी, पं० जनार्दन झा "द्विज", श्रीयुत "अज्ञात", श्रीयुत द्वारकाप्रसाद "मौर्य" बी० ए०, एल्-एल्० बी०, पं० रामदीन पांडेय साहित्योपाध्याय, पं० उमाशंकर पाठक,	

संख्या लेख		लेखक	पृष्ठ
		प्रो० रामदासराम, श्रीयुत हरिकृष्ण विजयवर्गीय "प्रेमी", पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल० टी०, पं० अक्षयवट मिश्र, श्रीरघुनाथसेन सिंह, पं० रामशंकर शुक्ल "रसाल" बी० ए०, श्रीगोवर्द्धनदास-बिशनदास बधवा, श्रीरामानुजदास बी० ए०, श्रीयुत "बाण" एम्० ए०, बी० एड्०, पं० राजनाथ पांडेय "नाथ", श्रीशुकदेवप्रसादसिंह, श्रीयुत दाराबख़्श "अभिलाषी" और पं० लक्ष्मीप्रसाद द्विवेदी ...	१६, २४४, ३८०, ५२४, ६७४ और ८१७
७१. स्मृति और उसके नियम	...	श्रीयुत "बाण" एम्० ए०, बी० एड्०	८०७
७२. स्व जीवनी	... ...	पं० श्रीधर पाठक	२४ और ८०५
७३. हमारी आर्थिक अवस्था	...	श्रीलक्ष्मीनारायणसिंह बी० ए० ऑनर्स	७७३
७४. हाइने	... ...	पं० हेमचंद्र जोशी बी० ए०	१४
७५. हिंदी-प्रेमी डॉक्टर 'के'	...	श्रीयुत ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद	४७८
७६. हिंदू-पर्व	... ...	पं० जोखू पांडेय	१४४
७७. हिंसा परमो धर्मः (सचित्र कहानी)		श्रीयुत प्रेमचंद बी० ए०	५६५
७८. हिमालय का पथिक (सचित्र कहानी)		बाबू जयशंकर "प्रसाद"	३०६

चित्र-सूची

क—रंगीन

संख्या चित्र		चित्रकार	पृष्ठ
१. उद्दीपन	... ...	राय कृष्णदास की कृपा से प्राप्त	१६१
२. कृष्ण-यशोदा	... ...	पं० दुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से	४१
३. गो-दोहन	... ...	श्रीयुत गोविंदराम-उदयराम	२०८
४. चित्र-दर्शन	... ...	राय कृष्णदास की कृपा से प्राप्त	६८०
५. ठाकुर दानीसिंह साहब	...	'खबड़धोंधों' पुस्तक का एक रंगीन चित्र	८०३
६. दीपक राग	... ...	श्रीयुत एन्० सी० मेहता आई० सी० एस्० की कृपा से प्राप्त	३६२
७. नव नेह	... ...	श्रीदुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से	५८५
८. परोपकार	... ...	श्रीदुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से	२१७
९. पवित्र प्रेम	... ...	श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा	१
१०. मनोहरता	... ...	श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा	६३२
११. महाराज रणबीरसिंह (जंबू)	...	जागीरदार मियाँ बसंतसिंह की कृपा से प्राप्त... ...	२५६
१२. मानिनी	... ...	पं० दुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से	८१
१३. मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब	...	पं० हनूमान शर्मा की कृपा से प्राप्त...	८३२
१४. मुग़ल-सम्राट् हुमायूँ	...	पं० हनूमान शर्मा की कृपा से प्राप्त...	५१६
१५. यौवनागमन	... ...	श्रीदुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से	३४४

संख्या	चित्र	चित्रकार	पृष्ठ
१६.	रागिनी मधु-माधवी	श्रीयुत एन्० सी० मेहता आई० सी० एस्० की कृपा से प्राप्त	१२१
१७.	रूप-गर्विता	श्रीदुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से	४८८
१८.	विरह-विह्वला	श्रीदुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से	७२९
१९.	स्वस्थ शरीर	श्रीदुलारेलाल भार्गव की चित्रशाला से	४४१

ख—व्यंग्य

संख्या	चित्र	पृष्ठ
१.	अजायबघर	६७१
२.	आश्रय	२४१
३.	कौंसिल-सुंदरी	५१४
४.	परदा	४६६
५.	बेकारी	३७७
६.	वोट का भिखारी—[चित्रकार, श्रीयुत गुरुस्वामी	५२१
७.	मेरी शरण आओ—[चित्रकार, श्रीयुत मोहनलाल महतो "वियोगी"	३२३
८.	वैद्यराज—[चित्रकार, श्रीयुत जगन्नाथ-प्रसाद मिश्र ड्राइंगमास्टर	८१४
९.	शिकार और शिकारी—[चित्रकार, श्रीयुत मोहनलाल महतो "वियोगी"	२०३
१०.	समय का फेर	४२
११.	समालोचकों का ऊधम	९३३
१२.	साहित्यिक चमगादड़	७७२
१३.	स्वराज्य—[चित्रकार, श्रीयुत मोहनलाल महतो "वियोगी"	४३

ग—सादे

संख्या	चित्र	पृष्ठ
१.	"अगर तुमने ज़बान खोली, तो तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा"	५९९
२.	अच्छी गऊ, ख़राब गऊ	८३७
३.	अच्छी गऊ और ख़राब गऊ के सिर के चित्र	८३७
४.	आध मील लंबी छायादार गैलरी	६१०
५.	आधे ग्राम का गुबरैला २५ ग्राम और प्रयत्न करने पर उससे भी अधिक बोझा उठा सकता है	११७
६.	आयर्लैंड का २०० वर्ष का पुराना चरख़ा	२४४
७.	आलिए-नदी का तट (यह तीरंदाज़ों का अड्डा है)	६१०
८.	आलिए के तट पर नया पार्क (यह पार्क मील-भर लंबा है)	६१२
९.	ऑनरेबुल राय राजेश्वरबली साहब बी० ए०, ओ० बी० ई०, शिक्षा-मंत्री (यू० पी०)	५६७
१०.	इलीशियम	४८८
११.	उँगलियों का खेल	६८६
१२.	उन्मादरोग-चिकित्सा के विशेषज्ञ हकीम अशरतहुसैन साहब मालगुज़ार	३८५
१३.	उपवास की अवधि	६९३
१४.	"ऋषिवर, यह अभागा तुम्हारी शरण में आया है। दया करो, दया!"	४९५
१५.	एक कीड़े की संतान साल-भर में तेरह भेड़ों के शरीर से निकली हुई ऊन को नष्ट कर सकती है	३९९
१६.	एक खसिया-स्त्री और उसका बच्चा	३११
१७.	एक जापानी पत्र का चित्र	८३०
१८.	एक जीवन के दाएँ हाथ में लिपट गया, और दूसरा बाएँ में	५३६
१९.	एक पहिए की साइकिल	६९४
२०.	एक मनोरंजक खेल	६८७
२१.	अंतरराष्ट्रीय श्रमजीवी संस्था का कार्यालय, जिनेवा	४५९
२२.	कपड़ा नष्ट करनेवाले कीड़े (ऊपर) और उनके बच्चों (नीचे) का आकार (एक बटन की तुलना में)	३९९
२३.	कपड़े के कटाव का गुलूबंद	४३४
२४.	कविवर श्रीजगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०	८
२५.	"किसरी के सिर का बंधन खोलकर वहीं माला अटका दी"	३०८
२६.	कुँअर जगदीशसिंह गहलोत एम्०आर०ए०एस्०	१८३
२७.	कुछ पौदे ख़ास तौर से बने हुए जाल में मक्खियाँ फँसाते हैं, और तब पशुओं की तरह अपने शिकार को हज़म करते हैं	६९१

संख्या	चित्र	पृष्ठ
२८-२९.	कुल्टी "लोहे का कारख़ाना"	८८ और ८९
३०.	कैसे मूर्ख हो ? यहाँ तुम्हारा धर्म क्या है ? भेद-भाव भूलकर देश पर बलिदान होना ।"	४६३
३१.	"क्या पौदे भी मांस खाते हैं ?"-शीर्षक लेख-संबंधी ६ चित्र	७५० से ७५७ तक
३२.	खसियों की दावत	३१०
३३.	खसियों का गार्हस्थ्य जीवन	३१०
३४.	खसिया-राजा शिलांग	३११
३५.	खसिया-लड़कियों का नाच	३१२
३६.	खसियों की बस्ती	३१२
३७.	खसिया लोग घास ले आ रहे हैं	३१३
३८.	खेत के चूहे	८३३
३९.	गोंडवाना-काल का भौगोलिक चित्र	८३
४०.	ग्रामीण-प्याऊ (यहाँ लखनवी टोपी और मंदिर के आकार का प्याऊ स्पष्ट देख पड़ता है)	६०६
४१.	घुड़सवार ने अपने घोड़े पर खड़े होकर, जैसे ही ऊँट-सवार के पैर पकड़े कि घोड़ा आगे बढ़ गया और वह भी लटक गया	२५५
४२.	चरयापुर कोयले की खान	८८
४३.	चाक़ू से कंपास	६८७
४४.	चार मुख्य प्याऊवाला भवन	६०५
४५.	चित्र-भाषा का नमूना (इन चित्रों में एक कहानी लिखी हुई है, जिसका अर्थ नं० १ नोट में है)	८३५
४६.	चिह्न-भाषा के अर्थ-सहित कुछ नमूने	८३४
४७.	चीन की प्राचीन चित्र-लिपि	८२६
४८.	चोर की सज़ा	६८६
४९.	चौखूँटे चश्मे का फ़ैशन	५४४
५०.	जाड़े के दिनों में शिमला	४८८
५१.	जल की गरमी और तेज़ धार के सामने न टिक सकनेवाला स्नान-वीर	६०८
५२.	जॉन टेलर अंधा होने पर भी अपनी आँखों पर ऐनक लगाए हुए है	५४४
५३.	जापान की भयंकर केंकड़ा-मकड़ी (इसके दो मज़बूत, काटनेवाली तथा विकराल भुजाएँ १५-१५ फ़ीट लंबी होती हैं)	३८७
५४.	जिनेवा में आर्व और रोन का संगम	४५२
५५.	जिनेवा और स्विस रिपब्लिक के मिलन के उपलक्ष्य में	४५२
५६.	जिनेवा का अंतरराष्ट्रीय स्कूल	४५४
५७.	जीविका के लिये सिगरेट पीना	४०१
५८.	जोधपुर का विहंगम दृश्य	१८५
५९.	जोधपुर बसानेवाले राव जोधाजी राठौर	१८६
६०.	जोधपुर का क़िला और गुलाबसागर तालाब	११०
६१.	जोधपुर का क़िला	१११
६२.	जोधपुर का दरबार-हाईस्कूल (नवीन भवन)	११३
६३.	जोधपुर का महकमा ख़ास (सदर कचहरी)	३५८
६४.	जोधपुर का श्रीराजपूत-हाईस्कूल (चौपासनी)	३६६
६५.	ज्योति और वायु का स्नान	६०७
६६.	टेबिल-लैंप में फ़ोनोग्राफ़	५४३
६७.	डॉक्टर एफ़० ई० के साहब और उनकी धर्मपत्नी	४८०
६८.	डॉक्टर सुधींद्र बोस	५२५
६९.	डॉ० डी० ए० पटवर्धन रिटायर्ड स्टेट-सर्जन	५१७
७०.	डुग्ल गिरजाघर	८२४
७१.	ड्यूक ऑफ़ ब्रुंसविक का स्मारक	४५७
७२.	तितली बटुआ	६६६
७३.	तिशरगढ़ कोयले की खान	८८
७४.	"देखो, यही मेरी जीवन-स्वामिनी है ।"	६६३
७५.	द्वारकादास ने करवट बदली, और बोले— "तू कौन है ?"	७४४
७६.	धीवर-बाला वंशी बजा रही है, और नाव अपने मन से चल रही है	१३
७७.	नए तर्ज़ का वायुयान	४००
७८.	नया वर्ग	६८७
७९.	"निषाद अपनी नौका खोल चुका था"	३६६
८०.	"परंतु वैरागी अटल, अचल था ।"	४५०
८१.	पश्चिमी शिमला	४८७
८२.	पार्क के बीच की सड़क	६११
८३.	पिछली लीग ऑफ़् नेशन्स की बैठक में उपस्थित भारतीय प्रतिनिधि बाईं ओर से— सर अतुलचंद्र चटर्जी, महाराज पटियाला, सर रशब्रुक विलियम्स	४५६
८४.	पिस्सू का बढ़ाया हुआ चित्र	११६
८५.	पुराने पार्क में बैंड बजने के समय का दृश्य	६१२
८६.	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम्० ए०	८७०
८७.	पंडित विश्वेश्वरनाथ रेउ एम्० आर० ए० एस्०	३५६
८८.	पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०	७८१

संख्या	चित्र	पृष्ठ
८९.	प्रसिद्ध महात्मा देवीदीन सैन्यासी	२६७
९०.	फ़र्रुख़ाबाद के छपे हुए कपड़े का नमूना	२४५
९१.	फ़ीट (मेला) का एक दृश्य	४८९
९२.	फ़ीट (मेला) का दूसरा दृश्य	४८९
९३.	फ्रांस की ओर से युद्ध में लड़नेवाले जिनेवा के मृत वालंटियरों का स्मारक	४५६
९४.	बकरी का विचित्र बच्चा	४३०
९५.	बगोनिया की कोयले की खान के मज़दूर	८७
९६.	बगोनिया "कोयले की खान" और हिंदू-विश्वविद्यालय की पार्टी	८७
९७.	बड़ोदा-नरेश महाराज सयाजीराव गायकवाड़	८६३
९८.	बराकर-नदी का पुल (डाक-बँगले के समीप का दृश्य)	८९
९९.	"बात-की-बात में उसके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ गईं"	१८१
१००.	बालक अपनी ही बनाई हुई मोटर में बैठा है	८२९
१०१.	बालक के सिर से भी छोटा बंदर	४०२
१०२.	बालदिया बनजारे	१८४
१०३.	बालसमंद-झील	३६५
१०४.	"बाहर आँगन की खुली धूप में दो चारपाइयाँ खड़ी करके जमना अपने हाथों से पंखा खींच रही थी"	७४०
१०५.	बिसनजी	३९४
१०६.	बुंदेलखंड-केसरी महाराज छत्रसाल	८५९
१०७.	बेनिटो मुसोलिनी	७५९
१०८.	ब्रह्मदेश का शूर बंदर	२४६
१०९.	ब्रिटिश-रेज़िडेंसी का भवन	१८९
११०.	भरतपुर-नरेश सवाई श्रीकिशनसिंह	५६८
१११.	भविष्य का एक विवाह	२६१
११२.	भविष्य के भोजन-गृह का एक दृश्य	५४१
११३.	भारत-सरकार की राजधानी	४८९
११४.	भिन्न-भिन्न प्रकार की घड़ियाँ	६६४
११५.	मक्खी अपने से कई गुने अधिक वज़न के कीड़े को ले आती है	११७
११६.	मचान से चूहे अंडे चुरा रहे हैं	११४
११७.	"मछली फँसाती हूँ" कहकर उसने जाल को लहरा दिया	११
११८.	मधुमक्खी अपने वज़न से बीसगुने अधिक वज़न की वस्तु लेकर चल सकती है	११७
११९.	मधुमक्खियों के राजा मि० ई० आर० रूट (दोनों चित्रों में रूट महाशय का टोप, कान, भुजा और सिर मक्खियों से आच्छादित है)	३९३
१२०.	मनुष्य में यदि पतिंगों की-सी कूदने की शक्ति होती, तो वह ३०० फ़ीट ऊँचा मकान फाँद जाता	११७
१२१.	मनुष्य के जबड़े भी चीटियों के जबड़ों की तरह मज़बूत होते, तो वह आजकल की बड़ी-से-बड़ी दो रेल-गाड़ियों के वज़न को दाँतों से उठा लेता	११८
१२२.	महात्मा रामदेवजी तुँवर (रामशाहपीर)	३६३
१२३.	महामहोपाध्याय पं० रघुनंदन त्रिपाठी	८१९
१२४.	महामंदिर का विशाल भवन	१८९
१२५.	महाराज चंद्रशमशेरजंगबहादुर राणा ऑनरेरी जेनरल ब्रिटिश आर्मी	१५६
१२६.	महाराज (द्वितीय) जसवंतसिंह का थड़ा (स्मृति-भवन)	१९४
१२७.	महाराज अजीतसिंहजी का विशाल देवल (मंडोर में)	३६२
१२८.	माल-रोड	४८७
१२९.	मि० टामकिन और लालइंडियन	८३४
१३०.	मिस एलिज़ा टॉन हूथाक	५४४
१३१.	मिस शिलोमिथ विंसेंट एम्० ए०	५४७
१३२.	मिस्टर ए० एच्० मैकेंज़ी एम्० ए०, बी० एस्० सी०, एम्० एल्० सी०, (युक्तप्रांत के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर) ५०२ और	८६०
१३३.	मुसोलिनी का पुत्र विटॉरियो	७६२
१३४.	मुसोलिनी की पुत्री एडा	७६२
१३५.	मुसोलिनी की बस्ट	७६५
१३६.	"मेरे लिये अब यही कृष्णा है"	६६६
१३७.	योरप के धार्मिक सुधार-आंदोलन का अंतरराष्ट्रीय स्मारक	४५४
१३८.	"रज़ा मियाँ ने बिटिया के लिये ये खिलौने दिए थे"	७१
१३९.	राई का बाग़ राजमहल (यहाँ पर महाराज जसवंतसिंह (द्वितीय) महर्षि दयानंद सरस्वती से उपदेश सुना करते थे)	३५८
१४०.	रानीगंज-क्षेत्र की शिलाएँ	८४

संख्या	चित्र	पृष्ठ
१४१.	रानीगंज कोयला-क्षेत्र	८६
१४२.	रानीगंज-श्रेणी की शिलाओं के परत (दक्षिण की ओर झुके हुए)... ...	६०
१४३.	लखनऊ का नया स्टेशन	८७२
१४४.	लाइफ़-बोट में लगाने का रेडियो-सेट ...	५४५
१४५.	लिपि-भेद-चित्रपट	६७८
१४६.	"लेकिन न-जाने क्यों पिताजी ने उनकी ओर कुपित नेत्रों से देखा, और मूछों पर ताव दिया"	३७१
१४७.	वालरस सिर निकाले हुए	२५६
१४८.	वालरस का शिकार	२५७
१४९.	विचित्र पतिंगा	८३३
१५०.	"विवश होकर उसने अपने दामन से चबूतरे को साफ़ करना शुरू कर दिया"	५६६
१५१.	विवाह के बाद जूते पड़ रहे हैं ...	५४२
१५२.	शिशी का साधारण दृश्य	६०१
१५३.	शिशी की एक गली	६०३
१५४.	वीर कल्लू (Hero Stones) ...	२४५
१५५.	"शारदा की लोथ पड़ी हुई थी।" ...	७४
१५६.	शांतिबाई	८६५
१५७.	शिमले का क्राइस्ट चर्च	४८७
१५८.	शिमले का पोस्ट-ऑफ़िस	४८७
१५९.	शिमले का विहंगम-दृश्य	४८८
१६०.	शिमले का तुषारपात ...	४८८
१६१.	श्रीनर-व्याघ्र अब्दुलहमीद ...	३४१
१६२.	श्रीमती तीजा-माजी का मंदिर ...	१८७
१६३.	श्रीमत्पंडित लीलाधरजी महाराज (७३ वर्ष की अवस्था में)	२४
१६४.	श्रीयुत गणेशशंकरजी विद्यार्थी ...	७२७
१६५.	श्रीयुत तारकनाथदास एम्० ए०, पी-एच्० डी०	६७
१६६.	श्रीयुत लक्ष्मीनारायण-शिवनारायण ...	४३४
१६७.	श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर	१५८
१६८.	सतिया लेस	८४३
१६९.	सबसे कमज़ोर गुबरैला भी पँचगुना वज़न उठा सकता है	११७
१७०.	सबसे मज़बूत गुबरैला अपने से ४०० गुने अधिक वज़न की वस्तु उठा लेता है ...	११७
१७१.	समुद्र के प्राणी (ऊपर प्राणियों के और नीचे पौदों के चित्र हैं)	४०१
१७२.	मिस्टर जॉर्ज बर्नार्ड शॉ (आपको इस वर्ष साहित्य-विषय पर नोबेल-पुरस्कार मिला है)	७१३
१७३.	सर पुरुषोत्तमदास-ठाकुरदास ...	६७५
१७४.	साइकिल पर मिस्टर अर्ली ...	११६
१७५.	सेलस्त्याँ प्याऊ और उसका पार्क ...	६०५
१७६.	संयुक्त-प्रांत के वर्तमान गवर्नर सर विलियम मैरिस (आपही के नाम से लखनऊ में संगीत-कॉलेज खोला गया है) ...	५६६
१७७.	संसार का सबसे तेज़ प्राणी केफ़िनोमिया	८३६
१७८.	स्कूल नावों पर लदकर आ रहा है ...	४००
१७९.	स्व० कुँअर हनुमंतसिंह रघुवंशी ...	८६४
१८०.	स्व० धार-नरेश महाराजा सर उदाजीराव के० सी० एस्० आई०, के० सी० वी० ओ०, के० बी० ई० और लेफ़्टिनेंट कर्नल	४३०
१८१.	स्वप्न-निर्देशक यंत्र	८३५
१८२.	स्वर्गीय पं० कृष्णनारायण बाँदू एम्० ए०	७२४
१८३.	स्व० श्रीमती सरस्वती बाई डॉ० पटवर्धन की धर्मपत्नी (आप ही की स्मृति-रक्षा के लिये डॉ० पटवर्धन ने २०,०००) की लागत का भवन अनाथ-विद्यार्थी-गृह को दिया है) ...	५१८
१८४.	स्वर्गीय श्रीयुत गोकुलप्रसादजी ...	८७
१८५.	स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानंद	८६१
१८६.	स्विजरलैंड की गउएँ (भैंस की तरह इनके कुंभ नहीं होता)	५५
१८७.	हथेली के बराबर मोटर-साइकिल ...	४०
१८८.	हम ताल ठोंककर कहते हैं, हम नहीं किसी से डरते हैं	५३
१८९.	"हमारे तो यही दोनों धन हैं" ...	१७
१९०.	हाइने का जन्म-गृह...	१
१९१.	हाइने (सन् १८२१ का चित्र) ...	१
१९२.	हाइने (मृत्यु के पूर्व)	